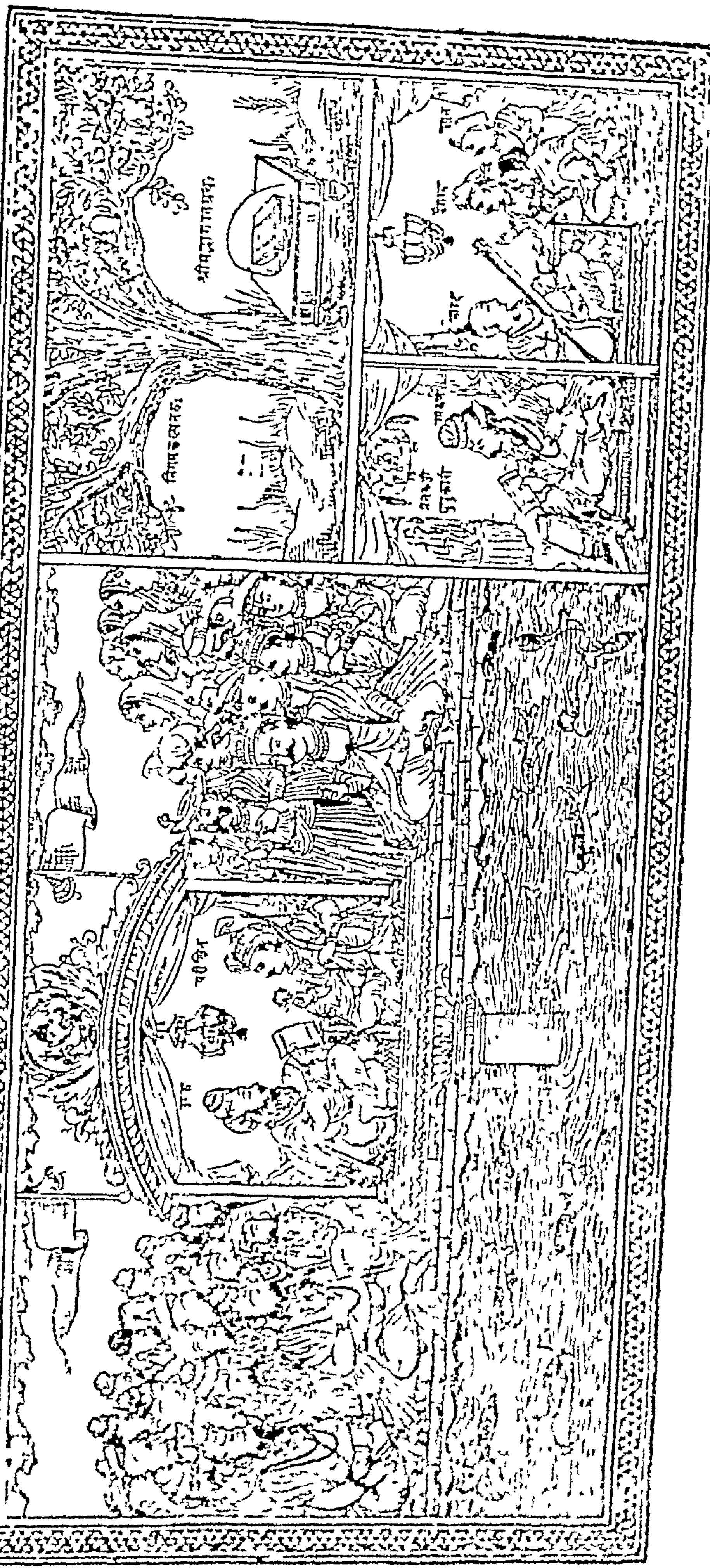


श्रीवैकुण्ठविहारिणे नमः ।

अथ श्रीमद्भागवतभाषाटीकाविषयानुक्रमणिकाप्रारम्भः ।

अष्टमस्कन्धः ८.

नवमस्कन्धः ९.

दशमस्कन्धपूर्वार्द्धम् १०.

एकादशस्कंधः ११.

द्वादशस्कंधः १२.

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकाविषयानुक्रमः समाप्तः ।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ १ ॥

सूचना ।

सर्वविद्वद्वर कृष्णचरणाम्बुजपरायणसे विनय है कि, सम्वत् १९४६में इस महापुराण कल्पवृक्षका भारतान्तर्गत प्रथमजन्म अत्यन्त सरल सुखमय जगत्प्रसिद्ध व्रजभाषामें पदार्थमुक्तावलीनामक अतिशुद्ध भाषाटीका कराई और अत्युत्तम प्राचीन २ कविवरोंके ज्ञान भक्तिमार्गी वचनचातुरी प्रेमप्रवाहके ५०० सुललित दृष्टांतभी सम्मिलित कराये, टीका अक्षरार्थ होनेपरभी अनेक श्रुति स्मृति पुराणके दृष्टांत देकर शंकासमाधान कियागया, परीक्षासे और मान्यवर पण्डितोंकी विद्वत्तासे इसकी टीका ऐसी अत्युत्तम मनोरंजन दुःखभंजन हुई कि,जिसके श्रवणामृत पानसे कदापि इच्छा तृप्त नहीं होती । ऐसे अनुपम अमूल्य अलभ्य रत्नका विकास होतेही ग्राहकगण आनंदपूर्वक अंगीकारकर इस निगम कल्पतरुकी छायामें विश्रांत हो भवसेतुरूपी कथामृत पानकर पुनर्वार छापनेका सावकाश दिया।इसकी दूसरी आवृत्ति संवत् १९४८में छपाई इस अन्तरमें इतर क्षुद्र व्यापारियोंको व्यापारकी सूझी फिर क्या था रुपयाही कमाना अभीष्ट ! झटपट सावकाश पा काट छाँट कागज स्याही पाठ नकल गढ यामिनी वामिनीकी गढी बनालिया ! ग्राहक जानतेही हैं कि, असलसे तुच्छ नकलभी मन विकल करदेती है सो महिमाभी लम्बे लम्बे शब्दोंसे गाई गई, पर "क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः" इससे सावधान ! पुनः सावधान!! यह देखिये जिसकी बहुत दिनोंसे लोग चन्द्रचकोरकी समान अपेक्षा करतेथे सो तृतीयावृत्ति छपकर प्रसिद्ध होगई थी, तिस उपरांतभी भागवतरसास्वादी सत्पुरुषोंके कथारसपानार्थ पुनःभी छपनेका अवकाश आया इसलिये विशेषतः सज्जनलोगोंके प्रेमार्थ चतुर्थावृत्ति श्रीयुत विद्वद्वर कृष्णकृपापात्राधिकारी नानाविधग्रन्थनिर्माणनिपुण आयुर्वेदोद्धारक परमपवित्रचरित्रपण्डितमण्डलीमण्डितमुरादाबादनिवासी श्रीशालिग्रामजीके रसमय मधुर सुन्दर भाषाटीकासे परिष्कृत करि पुष्ट कागजमें पहलेकी अपेक्षा बड़े २ टाइपमें छपीथी वोभी सब हाथोंहाथ बिकगई फिर भी यह उसी प्रकार पंचम और षष्ठआवृत्ति बिकनेपर सप्तमावृत्ति पहलेकी अपेक्षा कथा दृष्टांत और बड़ा अक्षर होनेसे बहुतही बढगईहै सो यह अलभ्य स्वर्ण सुगंध कल्पतरु भवसागरसेतु आनन्दमय सब प्राणिमात्रको एक२प्रति रखनी परमावश्यकहै॥

दोहा—एक पंक्तिकी आधी हू, ताहूकी पुनि आध । कृष्ण कथा जे नित पढैं, कटैं कोटि अपराध ॥ १ ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयाध्यक्ष—मुंबई.

प्रस्तावना ।

प्रिय पाठकवृन्द !

भारतवर्षके विद्वानोंपर यह बात छिपी नहीं है कि, संसारसागरसे पार करनेको भागवतही परमोत्तम ग्रंथ है, जिसकी महिमा सारे भारतवर्षमें छारही है, सम्पूर्ण इतिहास पुराण भागवतकी प्रशंसा करते हैं, कारण यही है कि, चार वेद, छः शास्त्र, अष्टादश पुराणका सार भागवतमें विद्यमान है, वेदके गूढ आशय, वेदान्तका रहस्य, सांख्ययोगका सार, मीमांसाका विचार, न्यायका सिद्धान्त, श्रीमद्भागवतमें स्पष्टरूपसे दिखाकर सर्वोपरि भगवद्भक्तिकी महिमा वर्णन की है । यह वह महापुराण है कि, जिसको निर्माण कर श्रीवेदव्यासजीका व्यग्रभी चित्त शांत होगया; यह वही अमृत है जिससे श्रवणद्वारा पानकर राजा परीक्षित्ने अमरत्व लाभ किया, गोकर्णका भ्राता धुन्धुकारी इसीके श्रवण करनेसे प्रेतत्वसे मुक्त हुआ; सूतके द्वारा शौनकादिक श्रीमद्भागवतही श्रवणकर मुक्त हुए, यह क्या, लाखों जीव इसके श्रवणमात्रसे मुक्त होगये, होते जातेहैं, और होंगे; प्रतिवर्ष नगर नगर गाँव गाँवमें इसका पारायण सप्ताह यज्ञके नामसे होताहै और स्त्री पुरुष रुचिके अनुसार इसे श्रवणकर अपनी मनोकामनाको प्राप्त होते हैं, शुकदेवजीके मुखसे निकलीहुई भागवतरूपी अमृतकी सरिता अनन्तधारा हो जगत्को पावन कर रही है, संपूर्ण धर्म कर्मके विचार और भगवद्भक्तिसे भरपूर यह "श्रीभागवत" श्रोता वक्ताओंका सर्वस्व है, इसीसे जगत्में भगवत महिमा अप्रतिहतरूपसे विराजरही है, चौबीसों अवतारोंकी कथा इसमें विस्तारसहित वर्णन कीगई है, जिसके पाठसे मनुष्य भगवद्भक्तिका स्वरूप होजाताहै और चारों पदार्थोंकी भी इच्छा नहीं रखता विशेषकर इसमें श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद नंदनंदन मुकुन्द गोविन्दके जन्मसे लेकर पश्चिमावस्थातक ऐसे मनोहर चरित्र वर्णन किये हैं; जिसके श्रवण करनेसे मनुष्योंका चित्त स्नेहमय होजाताहै, जिन श्रीकृष्णकी लीलाका आश्रय ले आजदिन व्रजमंडलसहित भारतमंडल उनके स्वरूपाकार होरहाहै, संस्कृत प्राकृत भाषामें बड़े२कवि काव्य बनाकर जिनकी लीलाओंका वर्णन और अपनी जिह्वाको पवित्र कर गोलोकवासी हुए हैं, प्रत्येक मनुष्यके मुखसे जिन श्रीकृष्णके चरित्र मंगलकार्यमें श्रवणगोचर होतेहैं उन श्रीकृष्णके स्वरूपका ज्ञान करानेहारा और उनके निकट प्राप्त करनेहारा यह महापुराणहीहै, श्रीकृष्णके गोलोक पधारनेपर उनकी मूर्त्तिरूप "श्रीमद्भागवत" विद्यमान है जिसप्रकार मणियोंके भीतर सूत रहकर उनकी माला कर देताहै

इसीप्रकार इसके प्रत्येक पदमें भगवन्महिमा गर्भितहो इसकी महिमा विस्तार करहरी है. यह ग्रंथ जैसा सम्पूर्ण वेद शास्त्र पुराणोंका सारहै,
उसी प्रकार बृहत् और महाकठिनभी है. इसी कारण इसके अर्थोंमें अच्छे विद्वानोकी बुद्धिभी चकित होजाती है कहाभी है कि– " विद्यावतां
भागवते परीक्षा " यह विस्तृत ग्रंथ १२ स्कंध ३३५ अध्याय एवं १८००० अष्टादश सहस्र श्लोकोंमें पूर्णहुआ है. इसकी कठिनतासे सर्व
साधारणको इसका स्वाद मिलना बडाही कठिन था और सप्ताहयज्ञमेंही इसका श्रवण होताथा और जिनको अधिक विद्या नहींथी, वे पंडित
इसके बाँचनेका साहस नहीं करतेथे और इसके स्वादसे बहुधा वंचित रहतेथे. इसी कारण चार पदार्थके साधक इस श्रीमद्भागवतको सर्व साधा
रणके समझनेके निमित्त जगद्विख्यात उपकारपरायण सज्जनमनरंजन गुणग्राहक सद्ग्रन्थप्रचारक वैश्यवंशदिवाकर सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्ण
दासजी महाशयने विक्रम सम्वत् १९४६ में इस ग्रंथको वृंदावननिवासी सुप्रसिद्ध विद्वद्वर श्रीमन्नारायणशास्त्रीजीसे परमप्रिय सुमधुर व्रजभा
षामें " पदार्थमुक्तावली " नामक भाषाटीका (जिस सरल सुखसमय व्रजभाषा, व्रजवल्लभी, व्रजमनरंजनी, व्रजवचनामृतको देवताभी,
अपेक्षा करते हैं) वही सुप्रसिद्ध पण्डित गणेशीलालकी सहायतासे शुद्ध कराकर दोप्रकारसे यंत्रालयमें मुद्रित कराई, जिसमें एकमें तो मूल
और भाषाटीका, दूसरी केवल भाषा–इसमें श्रीभागवतके प्रत्येक अध्यायके आदि अन्तका श्लोक लिखकर शेष श्लोकांकसहित केवल भाषाही
छापकर उसका यथार्थ नाम " शुकसागर " रक्खा. वास्तविक यह कार्य भारतवर्षमें प्रथमही हुआ, इससे पूर्व देशभाषामें ऐसी कोई टीका
निर्मित नहीं हुईथी, बस छपतेही यह पुस्तक हाथों हाथ महात्माओंने मँगाई और ऐसी मनभाई कि, थोडे महीनोंके पश्चात्ही यंत्रालयमें एकभी
पुस्तक नहीं रही, इसकारण इसके छापनेकी आवश्यकता समझकर यंत्रालयाधिपतिने इसके शोधनेका भार श्रीयुत पंडित ज्वालाप्रसाद
जीको समर्पण किया उस समय उन्होंने इस महापुराणमें कथा कहनेवालोंके उपयोगी बहुतसे दृष्टान्त मिलाकर और शोधकर इसे यंत्रालयमें
संवत् १९४८ में भेजदिया परन्तु छपनेहीकी देर थी कि, प्रेमी महाशयोंके पत्र पर पत्र आनेलगे और ग्रन्थ यंत्रालयमें न रहनेके कारण
तृतीयावृत्ति छापनेकी आवश्यकता हुई तबकी वारभी फिर इस ग्रन्थमें बहुतसे कथानक जो परिश्रमसे प्राप्त हुए हैं जो कि व्रजवासी अपनी
कथाओंमें कहा करतेहैं और पंचाध्यायीकी विशेष वार्ता दूसरे ग्रंथोंसे संग्रह कीहुई यह सब दशमस्कंधमें यथास्थानमें टिप्पणी करके उन्होंने

लगादिये हैं और दृष्टान्तभी बहुत कथाके उपयोगी लिखदिये हैं और प्रत्येक श्लोकके अर्थ और आशयको श्रीधरीटीकाके अनुसार विचार कर बहुत स्पष्टतासे खोलदियाहै जिससे पाठ करनेवालोंको किसीप्रकारकी भ्रांति न हो और शंका समाधानभी जिनका भागवतसे सबन्धहै उचित रीतिसे यथायोग्य अपने स्थानोंपर लगादियेगये तब तो वह तृतीयावृत्तिभी भक्तिरसिकजनोंकी अत्यन्त उत्कंठासे थोडेही समयमें बिकगई ऐसी इस पुस्तककी तीन आवृत्तियां उठगई. और तोभी भक्तिमान् सद्गृहस्थोंकी इस ग्रन्थके संग्रहमें उत्कंठा अधिकतर रही इसवास्ते–औरभी इस ग्रंथमें वाचकजनोंके विशेष सुलभताके अर्थ भाषासौंदर्य आनेकी आवश्यकता थी सो पूर्ण करनेके लिये मेरेको कहा तब मैंने–पूर्व पूर्व आवृत्तियोंमें पंडितजनोंने कीहुई सब व्यवस्थाओंको विशेषरीतिसे अलंकृत कर भाषासौंदर्य पूर्ण रीतिसे लायाहै, बहुत कहनेसे क्या है. शब्द शास्त्रकी गंभीरताको विद्वान् जानतेहैं, उसका जितना खोज कियाजाय उतनाही सूक्ष्म अर्थ दीखताहै. सुवर्णको जितना आगमें धरा जाय उतनाही निखरताहै, इसीप्रकार चतुर्थावृत्तिमेंभी बहुत सावधानीसे इसके अर्थ और शुद्धतापर ध्यान देकर यंत्रित कियागया है. पुनः पंचम और षष्ठ आवृत्तिके पुस्तक न रहनेसे अब सप्तमावृत्ति छपीहै देखनेसे विदित होजायगा कि, अबकी बार किसप्रकार इस महापुराणको अलंकृत कियाहै आपके प्रसन्न होनेही पर परिश्रमके सफल होनेकी आशा है. यद्यपि यथाशक्ति इसके शोधनादिमें सावधानी कीगई है तथापि कहीं न्यूनाधिक होगयाहो तो उसमें सज्जन महाशय हंसके समान गुणग्राही होंगे. कारण कि, सर्वज्ञ और निर्भ्रान्त तो केवल एक परमेश्वरही है ।

सज्जनोंका प्रेमाभिलाषी–शालिग्राम, मुरादाबाद–(पश्चिमोत्तर प्र०)

श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा—गणपति गौरि गिरीशश्री,—कृष्णचरण चित लाय । करत तिलक माहात्म्यको, कीजै आय सहाय ॥१॥ व्यासदेव शुकदेव श्री,—शौनक सूत प्रणाम ॥ बार बार कर प्रेमसे, कीजै पूरणकाम ॥ २ ॥ जिन जातेहुएके पीछे चलते २ श्रीव्यासजी महाराज विरहसे व्याकुल होकर पुत्र २ पुकारने लगे, वही वार्ता तन्मय होजानेके कारण वृक्षोंनेभी उनसे कही उस सर्व प्राणियोंके हृदयमें स्थित मुनिको मैं नमस्कार करताहूँ ॥ १ ॥ नैमिषारण्य क्षेत्रमें बैठेहुए महाबुद्धिमान् सूतजीको प्रणाम करके कथारूपी अमृतस्वादके रसिक शौनकजी कहतेभये ॥ २ ॥ शौनकजी बोले कि, हे सूत ! सर्वथा अज्ञानतिमिरको नाशक कोटिसूर्यसमप्रकाशक हमारे कर्णोंको रसायनरूप कथाओंका सार आप वर्णन की

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ श्रीमद्भागवत माहात्म्यं प्रारभ्यते ॥ ॥ यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ १ ॥ नैमिशे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ शौनक उवाच ॥ अज्ञानध्वांतविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ॥ सूताऽऽख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥ ३ ॥ भक्तिज्ञानविरागाप्तविवेको वर्धते कथम् ॥ मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ४ ॥ इह घोरे कलौ प्राप्ते जीवश्चासुरतां गतः ॥ क्लेशाक्रांतस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥५॥ श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ॥ कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ॥ ६ ॥ चिंतामणिर्लोकसुखं सुरेंद्रः स्वर्गसंपदम् ॥ प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुंठं योगिदुर्लभम् ॥ ७ ॥

जिये ॥ ३ ॥ किसप्रकारसे भक्ति ज्ञान वैराग्यकी प्राप्ति होती है और ज्ञान किसप्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होता है और, महात्मा वैष्णवजन किसप्रकारसे मायामोहको त्याग करतेहैं ॥ ४ ॥ इस घोर कलियुगके प्रवृत्त होनेसे जीव असुरभावको प्राप्त होगये हैं उन क्लेशसे दबेहुए जीवोंके शोधनेके निमित्त क्या कर्तव्य है ? ॥५॥ जो कल्याणोंका कल्याण पवित्रोंका पवित्र और सम्यक्प्रकार कृष्णकी प्राप्ति करनेवाला साधन होय सो आप हमसे अब कहिये ॥ ६ ॥ चिन्तामणि संसारसुखको इन्द्र स्वर्गकी संपदाको देता है और गुरु प्रसन्न होकर योगिदुर्लभ वैकुंठगतिको देताहै ॥ ७ ॥

सूतजी बोले हे शौनक ! तुम्हारे मनमें बहुत प्रीति है, इसकारण मैं विचारकर सर्वसिद्धान्तयुक्त संसारका भयनाशक ॥ ८ ॥ भक्तिकी वृद्धि करनेहारा,
श्रीकृष्णके संतोषका कारण मैं तुमसे वर्णन करताहूँ सो तुम सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥ कालसर्पके मुखके ग्रास होनेके त्रासका नाशक
श्रीमद्भागवतशास्त्र कलियुगमें शुकदेवजीने कहाहै ॥ १० ॥ इससे अधिक मन शुद्ध करनेके निमित्त और कुछ नहीं है जन्मान्तरके पुण्य प्राप्त होनेसे
भागवतकी प्राप्ति होतीहै ॥ ११ ॥ जिस समय परीक्षित् सभामें बैठेथे और शुकदेवजी कथा कहनेका प्रारंभ कियाचाहते थे तब वहां देवता

सूत उवाच ॥ प्रीतिः शौनक चित्ते ते यतो वच्मि विचार्य च ॥ सर्वसिद्धांतनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ॥ ८ ॥ भक्त्यो
घवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥ ९ ॥ कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णा
शहेतवे ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ १० ॥ एतस्मादपरं किंचिन्मनश्शुद्ध्यै न विद्यते ॥ जन्मांतरे
भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ ११ ॥ परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ॥ सुधाकुंभं गृहीत्वैव देवास्तत्र समा
गमन् ॥ १२ ॥ शुकं नत्वाऽवदन्सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ॥ कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥ १३ ॥ एवं
विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ॥ प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १४ ॥ क्व सुधा क्व कथा लोके क्व
काचः क्व मणिर्महान् ॥ ब्रह्मरातो विचार्येति तदा देवाञ्जहास ह ॥ १५ ॥

अमृतका कलश लेकर आये ॥ १२ ॥ शुकदेवजीको दंडवत् करके सब बोले महाराज ! कथारूपी अमृत हमें दीजिये, इसके बदले यह अमृत ली
जिये, देवता अपने कार्यमें कुशल होतेही हैं ॥ १३ ॥ इस बदलेके करनेसे राजाको आप अमृत पिलाइये और हम सब देवता
भागवतरूपी अमृत पियें ॥ १४ ॥ कहां तो अमृत और कहां संसारमें यह कथा, कहां काच कहां मणि, यह बात विचार शुकदेवजी देव
ताओंके ऊपर हँसे ॥ १५ ॥

तिनको अभक्त जानकर कथारूपी अमृत नहीं दिया श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंकोभी दुर्लभ है ॥ १६ ॥ इसप्रकार राजाका मोक्ष देखकर ब्रह्माजीभी विस्मित हुये सत्यलोकमें तुलाको बाँध और साधनोंके संग इसे तोला ॥१७॥ इसके गौरवके सामने और सब साधन हलके भये तिस समय सब ऋषि बडे विस्मित हुए ॥ १८ ॥ पृथ्वीमें भागवतशास्त्रको भगवानका रूप मानतेभये जो पढने सुननेसे शीघ्र वैकुण्ठका फल देताहै ॥ १९ ॥ सप्ताहमें श्रवण करनेहारेको सर्वथा मुक्तिदायक है यह सनकादिकोंने दया करके नारदजीके अर्थ पूर्वकालमें कहाहै ॥ २० ॥ यद्यपि यह कथा

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ॥ श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥ १६ ॥ राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाताऽपि विस्मितः ॥ सत्यलोके तुलां बद्ध्वा तोलयत्साधनान्यदः ॥१७॥ लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ॥ तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १८ ॥ मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं क्षितौ ॥ पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुंठ फलदायकम् ॥ १९ ॥ सप्ताहश्रवणेनैव सर्वथा मुक्तिदायकम् ॥ सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २० ॥ यद्यपि ब्रह्मसंबंधाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ॥ सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥ २१ ॥ शौनक उवाच ॥ लोकविग्रहयुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ॥ विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥२२॥ सूत उवाच ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्ति पुष्टं कथानकम् ॥ शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २३ ॥

नारदजीने ब्रह्माजीसे सुनी है परन्तु इसके सप्ताहमें श्रवण करनेकी विधिसे सनत्कुमारने तिनसे वर्णन करी है ॥ २१ ॥ शौनकजी बोले लोकमें द्वेष करानेवाले दो घडीसे अधिक एक स्थानमें न रहनेवाले नारदजीने यह किसप्रकार स्थिर होकर प्रीतिपूर्वक विधिसे श्रवण करी और उनके साथ इनका संयोग कहाँ हुआ ॥ २२ ॥ सूतजी बोले यह भक्तियुक्त कथा मैं आपके प्रति कहूंगा जो कुछ मुझसे शुकदेवजीने अपना अन्तरंग शिष्य विचारकर कहाहै ॥ २३ ॥

एक समय बदरिकाश्रममें वे शुद्ध चारों ऋषि सत्संगके निमित्त नारदजीके देखनेको आये ॥ २४ ॥ कुमार बोले नारदजी! तुम दीनमुख कस होरहे हो, तुम्हें क्या चिंता है? जल्दीसे कहाँको जाओगे और अब कहाँसे आये हो? ॥ २५ ॥ इस समय तुम ऐसे शून्यचित्त हो जैसे किसीका धन खोजाय, मुक्तसंग तुममें यह बात अनुचित है इसकारण इसका कारण कहो? ॥ २६ ॥ नारदजी बोले, मैं सब लोकोंमें उत्तम पृथ्वीको जानकर पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरीको गया ॥ २७ ॥ हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्ग, सेतुवन्ध आदि तीर्थोंमें इधर उधर घूमता फिरा ॥ २८ ॥ परन्तु कहीं

एकदा तु विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः ॥ सत्संगार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २४ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चितापरो भवान् ॥ त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २५ ॥ इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ॥ तवेदं मुक्तसंगस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ॥ पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २७ ॥ हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं सेतुबन्धनम् ॥ एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २८ ॥ नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनस्संतोषकारकम् ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताऽधुना ॥२९॥ सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ॥ उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥ ॥ ३० ॥ मंदाः सुमंदमतयो मंदभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ पाखंडनिरताः संतो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३१ ॥ तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ॥ कन्याया विक्रयो लोभाद्दंपतीनां च कल्कनम् ॥ ३२ ॥

मन संतोषकारक कोई कल्याणकी बात न देखी अधर्मके मित्र कलियुगने अब यह सब पृथ्वी बाधित करलीहै ॥ २९ ॥ अब सत्य तप शौच दया नहीं हैं इसकारण जीव तुच्छ झूंठ बोलने और केवल उदरपोषण करनेवाले होगयेहैं ॥ ३० ॥ आलसी बुद्धिहीन मंदभाग्य रोगादिसे पीडित पाखंड निरत लिंगसे विरक्त यति आदिभी स्त्री धन सहित हैं ॥ ३१ ॥ घरमें स्त्रीहीकी प्रभुताई है, साले सम्मतिदाता हैं, लोभसे कन्याविक्रय होता है, स्त्री पुरुषोंमें कलह रहने लगाहै ॥ ३२ ॥

आश्रम अर्थात् मठोंमें तीर्थ और नदियोंमें यवनोंका अधिकार होगया है और देवताओंके स्थानभी दुष्टोंने नष्टप्राय करदियेहैं ॥ ३३ ॥ न योगी न सिद्ध न ज्ञानी न कोई सत्क्रियायुक्त मनुष्य है कलिरूपी दावानलसे सब साधन भस्म होगयेहैं ॥ ३४ ॥ अन्नके बेचनेवाले जनपदके मनुष्य, वेद बेचने हारे ब्राह्मण, भग बेचनेवाली स्त्रियें कलियुगमें होती हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकार कलियुगके दोष देखता पृथ्वीमें विचरताहुआ मैं यमुनाके किनारे आया जहां कृष्णचंद्रने अनेक लीला करी थीं ॥ ३६ ॥ वहां जो मैंने आश्चर्य देखा सो हे मुनियो ! श्रवण करो—वहां एक युवा स्त्री दुःखीमन बैठीथी ॥ ३७ ॥

आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ॥ देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥ ३३ ॥ न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ॥ कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३४ ॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ॥ कामिन्यः केशशूलिन्यः संभवंति कलाविह ॥ ३५ ॥ एवं पश्यन्कलेर्दोषान्पर्यटन्नवनीमहम् ॥ यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३६ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३७ ॥ द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसंतावचेतनौ ॥ शुश्रूषंती प्रबोधंती रुदती च तयोः पुरः ॥ ३८ ॥ दशदिक्षु निरीक्षंती रक्षितारं निजं वपुः ॥ वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा दूरागतः सोऽहं कौतुकेन तदंतिकम् ॥ मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥ ४० ॥ बालोवाच ॥ भोभोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिंतामपि नाशय ॥ दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाऽघहरं परम् ॥ ४१ ॥

उसके धोरे दो बुड्ढे अचेत पड़े साँस ले रहेथे वोह उनकी शुश्रूषा करती और समझाती हुई उनके आगे रोतीथी ॥ ३८ ॥ अपने शरीरकी रक्षा करने वालेको दशों दिशामें देखतीथी सैकडों स्त्री उसको पवन करतीं और वारंवार समझातीथीं ॥ ३९ ॥ उसे दूरसे देखतेही मैं कौतुकसे उसके धोरे गया । वोह बाला मुझे देखतेही उठ बैठी और व्याकुल होकर बोली ॥ ४० ॥ हे साधु ! थोड़ी देर ठहरो मेरी चिन्ताकोभी नाश करो तुम्हारा दर्शन संसारके जीवोंका निश्चय पाप दूर करनेवाला है ॥ ४१ ॥

---

१ अट्टमन्न शिवो वेद शूलो विक्रय उच्यते । केशो भगमिति प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

प्रायः तुम्हारे वाक्यसे दुःखकी शांति होजायगी जब बडा भाग्य होताहै तब तुम्हारा दर्शन होता है ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले तू कौन है और यह दोनों कौन हैं और यह कमलनयनी स्त्रियें कौन हैं ? हे देवि ! अपने दुःखके कारणको विस्तारसहित कहो ? ॥ ४३ ॥ बाला बोली, मैं भक्ति जगत् विख्यात हूँ और यह ज्ञान वैराग्य नाम मेरे दोनों पुत्र कालयोगसे वृद्ध हुए पड़े हैं ॥ ४४ ॥ यह गंगादि नदियें मेरी सेवा करनेको आगई हैं तौभी देवताओंके सेवा करनेसेभी मेरी शांति नहीं होगी ॥ ४५ ॥ हे तपोधन ! इससमय मन लगाकर मेरी बात सुनो मेरी कथा बड़ी है उसे सुनकर सुख

बहुधा तव वाक्येन दुःखशांतिर्भविष्यति ॥ यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ कासि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ॥ वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ४३ ॥ बालोवाच ॥ अहं भक्ति रिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ॥ ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ ४४ ॥ गंगाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः ॥ तथापि न च मे श्रेयः सेवितायाः सुरैरपि ॥ ४५ ॥ इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपोधन ॥ वार्ता मे विततास्प्यस्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ४६ ॥ उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥ ४७ ॥ तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खंडितांगिका ॥ दुर्बलाहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह मंदता ॥ ४८ ॥ वृंदावनं पुनः प्राप्य नवीने वसुरूपिणी ॥ जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु सांप्रतम् ॥ ४९ ॥ इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे विश्यतः श्रमात् ॥ इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५० ॥

होगा ॥ ४६ ॥ मैं द्रविडदेशमें उत्पन्न होकर कर्णाटकदेशमें वृद्धिको प्राप्त भई कहीं कहीं महाराप्रदेशमें और गुर्जरदेशमें वृद्ध होगई ॥ ४७ ॥ तहाँ घोर कलियुगसे पाखण्डोंसे खंडितशरीर मैं पुत्रोंसहित बडी दुर्बल होगई ॥ ४८ ॥ अब इस समय वृन्दावनमें फिर सुन्दर रूपवती पहलेकी नाई होगई हूँ ॥ ४९ ॥ यह मेरे दोनों पुत्र श्रमसे दुःखित पडेहैं इस स्थानको छोडके परदेशको जारहीहूँ ॥ ५० ॥

सो यह दोनों वूढे होगये.इस दुःखसे मैं दुःखी हूँ और मैं जवान होगई और मेरे दोनों पुत्र कैसे वृद्ध होगये ॥ ५१ ॥ तीनों साथही रहतेथे यह विपरीतता कैसे हुई माता वृद्धा पुत्र तरुण यह तो योग्य है पर यह विपरीत तो घटताही नहीं ॥५२॥ इसकारण मैं बडे आश्चर्यपूर्वक अपने आत्माको शोचतीहूँ हे योगी महात्मन्! आप कहिये इसमें क्या कारण है? ॥५३॥ नारदजी बोले, हे निष्पापे! मैं ज्ञानसे अपनेमें यह सब तेरी वार्ता देखताहूँ तू दुःख मत कर परमेश्वर तेरा कल्याण करैंगे ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले, क्षणमात्रमें सब विचारकर मुनीश्वर कहने लगे, हे बाले! सावधान होकर सुन

जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ॥ साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५१ ॥ त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ॥ घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥ ५२ ॥ अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ॥ वद योगनिधे धीमन्कारणं चात्र किं भवेत् ॥ ५३ ॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ॥ न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥५४॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः॥ नारद उवाच ॥ शृणुष्वाऽवहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ॥५५॥ तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ जना अघासुरायंते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ॥ ५६ ॥ इह संतो विषीदंति प्रहृष्यंति ह्यसाधवः ॥ धत्ते धैर्यं तु यो धीमान्स धीरः पंडितोऽथ वा ॥ ५७ ॥ अस्पृश्याऽनवलोक्येयं शेषभारकरी धरा ॥ वर्षेवर्षे क्रमाज्जाता मंगलं नापि दृश्यते ॥ ५८ ॥

इससमय दारुण कलियुग वर्त्तता है ॥ ५५ ॥ इसकारण सदाचार योगमार्ग तप लुप्त होगये हैं इसी कारणसे मनुष्य पाप करनेके कारण असुरभावको प्राप्त होगयेहैं ॥ ५६ ॥ इस युगमें संत दुःख पातेहैं असाधु प्रसन्न रहते हैं जो बुद्धिमान् धैर्य धारण करताहै वोही धीर पंडित है अथवा ॥ ५७ ॥ यह शेषजीको भार करानेहारी पृथ्वी अब छूने और देखनेके अयोग्य होगई है और प्रतिवर्ष क्रमसे ऐसीही होती जाती है कि, अब कहीं शुभ वार्ता नहीं दीखती ॥ ५८ ॥

तुझेभी पुत्रसहित अब कोई नहीं देखता पुत्र दारा धनादिके अनुरागसे अंधेहुए तेरा आदर कोई नहीं करते इससे तू जर्जर होगई है ॥ ५९ ॥
वृंदावनके संयोगसे अब फिर तु नवीन तरुणी होगई इससे वृंदावन धन्य है जहां भक्ति विराजती है ॥ ६० ॥ इस वृंदावनमें यह ज्ञान वैराग्य ग्राहका
भावसे वृद्धावस्थाको नहीं त्यागन करैंगे इस स्थानमें इन ज्ञान वैराग्यकी और कुछ तेरीभी कामक्रोधादि दुःखाभावसे सुखपूर्वक स्थिति होगी ऐसा
माना जाता है ॥ ६१ ॥ भक्ति बोली, महाराज ! परीक्षित्‌ने इस अपवित्र कलियुगको क्यों स्थापित किया और इसके प्रवृत्त होतेही सब बडा सार
बल कहाँ गया ? ॥६२॥ दयायुक्त भगवान् विष्णु इस पापको कैसे देखते हैं यह मेरा संदेह दूर करो तुम्हारी वाणीसे मैं प्रसन्न हूं ॥६३॥ नारदजी बोले

न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति सांप्रतम् ॥ उपेक्षिताऽनुरागांधैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ५९ ॥ वृंदावनस्य संयो
गात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ॥ धन्यं वृंदावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६० ॥ अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुंचतः ॥
किंचिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६१ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ॥
प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६२ ॥ करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ॥ इमं मे संशयं छिन्धि
त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ॥ सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे क
श्मलं ते गमिष्यति ॥६४॥ यदा मुकुंदो भगवान्क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतं गतः॥ तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥
॥ ६५ ॥ दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ॥ न मया मारणीयोऽयं सारंग इव सारभुक् ॥ ६६ ॥

हे बाले ! जो तैंने पूछा है तो प्रेमसे श्रवण कर मैं तेरे अर्थ सम्पूर्ण वर्णन करूंगा जिससे तेरा दुःख दूर होगा ॥ ६४ ॥ जब मुकुन्द भगवान् पृथ्वीको
त्यागन कर अपने धामको पधारे उसी दिनसे सब साधनका बाधक कलियुग आनकर प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ जिस समय दिग्विजय करते राजा
परीक्षित्‌ने कलिको देखा तुरंत यह इसे मारनेको उद्यत हुए तब यह दीनतापूर्वक शरणमें आनकर प्राप्त हुआ तब राजाने विचारा कि, यह शरणमें
आया है इस कारण मुझे मारना नहीं योग्य, राजाकी नाईं सारका भोगनेवाला था ॥ ६६ ॥

क्योंकि जो फल तपस्या और योगसमाधिसेभी नहीं होता है वोह फल कलियुगमें केवल अच्छीप्रकार केशवके नाम लेनेसे प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ जिसमें केवल एक भक्तिही साधन है और ज्ञान वैराग्यादि जिसविषे निरस हैं ऐसे कलियुगको देख कलिवासी जनोंके सुख करनेको केवल भक्ति करनेसेही मनुष्य तर जायँगे राजाने उसका स्थापन किया ॥ ६८ ॥ कुकर्माचरण करनेसे सबका स्थिरांश अब निकलगया है और पृथ्वीमें पदार्थ बीजहीन भूसीकी नाईं उत्पन्न होतेहैं ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंने थोडे धनके लोभसे भगवत्सम्बन्धी वार्ता घरघरमें जिस तिस मनुष्यसे कहनी प्रारम्भ करदी है इससे कथाका सार अर्थात् फल जातारहा ॥ ७० ॥ बडे भयंकर कुत्सितकर्म नास्तिक पापी मनुष्य तीर्थोंमें वास करनेलगे इसकारण तीर्थोंका सार

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्त्तनात् ॥ ६७ ॥ एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ॥ विष्णुरातः स्थापितवान्कलिजानां सुखाय च ॥ ६८ ॥ कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ॥ पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ६९ ॥ विप्रैर्भागवती वार्ता गेहेगेहे जनेजने ॥ कारिता कणलोभेन कथा सारस्ततो गतः ॥ ७० ॥ अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ॥ तेपि तिष्ठंति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७१ ॥ कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ॥ तेऽपि तिष्ठंति तपसि तपस्सारस्ततो गतः ॥ ७२ ॥ मनसश्चाजयाल्लोभाद्दंभात्पाखंडसंश्रयात् ॥ शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥ ७३ ॥ पंडितास्तु कलत्रेण रमंते महिषा इव ॥ पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥ ७४ ॥ न हि वैष्णवता कुत्र संप्रदायपुरस्सरा ॥ एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थलेस्थले ॥ ७५ ॥

जातारहा ॥ ७१ ॥ जिनके चित्त काम क्रोध महालोभसे व्याकुल हैं वेभी तप करनेलगे इससे तपस्याका सार जातारहा ॥ ७२ ॥ मनके नहीं जीतनेसे लोभ दंभ पाखण्डके आश्रय करनेसे शास्त्रके अनभ्याससे ध्यानयोगका फल जातारहा ॥ ७३ ॥ पंडित महिषकी नाईं स्त्रियोंके साथ रमते हुये पुत्रोत्पादन करनेमें तो चतुर हैं परंतु मुक्तिसाधनमें मूर्ख हैं ॥ ७४ ॥ कहीं वैष्णवता जो सब संप्रदायोंमें श्रेष्ठ है नहीं पाईजाती । इसप्रकार स्थान २ में सब पदार्थोंका सार जातारहा ॥ ७५ ॥

फिर यह तो युगधर्मही है इसमें किसीका दोप नही इसकारण पुण्डरीकाक्ष निकट स्थितहुएभी सहन करते हैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले, हे शौनक! इसप्रकार नारदजीके वचन सुन बडी विस्मयको प्राप्त हो भक्ति फिर बोली सो तुम सुनो ॥ ७७ ॥ भक्ति बोली देवर्षि! तुम धन्य हो मेरे भाग्यसेही आनकर प्राप्त हुएहो साधुओका दर्शन लोकमें सब सिद्धियोंका देनेहारा है ॥ ७८ ॥ जगत्में जिन तुम्हारी केवल अनुपम वचनरचनाको विचारकर, कयाधूका पुत्र प्रह्लाद शापको त्यागतासया और जिसकी कृपासे यह ध्रुव अचलपदको प्राप्त हुआ सब क्षेमोके पात्र ऐसे ब्रह्माके पुत्र नारदको नमस्कार

अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ॥ अतस्तु पुंडरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥ भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥ ७७ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ सुरर्षे त्वं च धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ॥ साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७८ ॥ जयति जयति माया यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ॥ ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नताऽस्मि ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ७॥ ॥ नारद उवाच ॥ वृथा खेदायसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ॥ श्रीकृष्णचरणांभोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥ द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ॥ पालिता गोपसुंदर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥ २ ॥ त्वं तु भद्रे प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ॥ त्वयाहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३ ॥

करतीहूँ ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे भागवतमाहात्म्ये भापाटीकायां भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारदजी बोले–तू वृथा खेद करती है और क्यों चिंतातुर होरही है? श्रीकृष्णके चरणकमलके स्मरण करते ये सब दुःख जातारहेगा ॥१॥ जिन श्रीकृष्णने कौरवोंके महासंकटसे द्रौपदीकी रक्षा करी गोपकुमारी शंखचूडादिसे बचाई वोह कहीं नहीं गये हैं ॥ २ ॥ और तू तो भक्ति उनको प्राणोंसेभी अधिक प्यारी है तुझसे बुलाये भगवान् तो नीचोंके घरोंमेंभी आते हैं ॥ ३ ॥

सत्ययुगादि तीन युगोंमे ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधक थे कलियुगमें केवल भक्तिही ब्रह्मसायुज्यकी देनेहारी है ॥ ४ ॥ वोह परमात्मा चिद्रूप परमानन्द चिन्मूर्ति सुन्दरी कृष्णवल्लभा अपना स्वरूपही तुमको उत्पन्न करतेहुए ॥ ५ ॥ तब तैंने हाथ जोडकर कहा कि, मैं क्या करूं ? तब कृष्णने आज्ञा करी कि, मेरे भक्तोंको पुष्ट कर जब तैंने यह अंगीकार किया तब भगवान् कृष्ण प्रसन्न हुए ॥६॥ तब तेरे निमित्त यह मुक्ति दासी दी और यह दोनों ज्ञान वैराग्यभी दास दिये ॥ ७ ॥ अपने निजरूपसे तो तू वैकुण्ठमें पोपण करती है और पृथ्वीमें भक्तोंके विशेष संतुष्टिके अर्थ

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ॥ कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥ इति निश्चित्य चिद्रूपः सरूपां त्वां ससर्ज ह ॥ परमानंदचिन्मूर्तिः सुंदरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥ बद्धांजलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ॥ त्वां तदाज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान्पोषयेति च ॥ ६ ॥ अंगीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ॥ मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥ पोषणं स्वेन रूपेण वैकुंठे त्वं करोषि च ॥ भूमौ भक्तिविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ॥ ८ ॥ मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ॥ कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥ कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखंडामयपीडिता ॥ त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुंठं पुनरेव सा ॥ १० ॥ स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ॥ पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११ ॥ उपेक्षातः कलौ मंदौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ॥ तथापि चिंतां मुंच त्वमुपायं चिंतयाम्यहम् ॥ १२ ॥

तैंने छायारूप किया है ॥ ८ ॥ मुक्ति और ज्ञान वैराग्यके साथ लेकर तुम पृथ्वीमें आई और सत्ययुगसे लेकर द्वापरके अन्ततक तुम बडे आनंदसे पृथ्वीमें रही ॥ ९ ॥ कलियुगमें पाखण्डसे पीडित होनेसे क्षयको प्राप्त होगई तुम्हारी आज्ञासे फिर वोह शीघ्र वैकुण्ठको गई ॥ १० ॥ और फिर तेरे स्मरणमात्रसेही इस स्थानमें फिर आजाती है और तैंने यह पुत्र करके अपने निकट रक्खे हैं ॥ ११ ॥ कलियुगमें यद्यपि त्यागसे यह मंद बूढे तेरे पुत्र होगये हैं तोभी चिन्ता त्यागनकर इसका मैं उपाय शोचताहूँ ॥ १२ ॥

हे सुमुखी ! कलियुगके समान कोईभी युग नहीं है तिसमें तुझे मैं घरघर प्रत्येक मनुष्यमें स्थापन करूंगा ॥ १३ ॥ और धर्मोका तिरस्कार कर और महोत्सवोंको आगे करके जो मैं लोकमें तुझे प्रवृत्त न करूं तो हरिका दास नहीं ॥ १४ ॥ जो इस कलियुगमें तुझसे युक्त जीव होंगे यदि वे पापीभी हों तोभी कृष्णके मंदिरमें जायँगे ॥ १५ ॥ जिनके हृदयमें सर्वदा प्रेमरूपिणी भक्ति वास करेगी वे उज्ज्वलमूर्त्ति होजायँगे कभी यम का दर्शन नहीं करैंगे ॥ १६ ॥ भक्तियुक्त मनवाले महात्माओंको प्रेत, पिशाच, राक्षस, असुर कोईभी स्पर्श नहीं करसकैंगे ॥ १७ ॥ तप,

कलिना सदृशः कोपि युगो नास्ति वरानने ॥ तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहेगेहे जनेजने ॥ १३ ॥ अन्यधर्मांस्तिर स्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ॥ तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥ १४ ॥ तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ॥ पापिनोऽपि गमिष्यंति निर्भयाः कृष्णमंदिरम् ॥ १५ ॥ येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ॥ न ते पश्यंति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥१६॥ न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वाऽसुरोऽपि वा ॥ भक्तियुक्तमनस्का नां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥ न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ॥ हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गो पिकाः ॥१८॥ नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ॥ कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९ ॥ भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदंति जगत्रये ॥ दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तिविनिंदकः ॥ २० ॥ अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ॥ अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥

वेद और ज्ञानभी हरिको ऐसा वशमें नहीं करसके जैसा कि, भक्ति वश करदेती है इसमें गोपियें प्रमाण हैं ॥ १८ ॥ हजार जन्मके अनुष्ठानसे मनुष्यकी भक्तिमें प्रीति होती है कलियुगमें भक्तिसेही कृष्ण आगे स्थित होते हैं ॥ १९ ॥ जो भक्तिद्रोह करते हैं वोह त्रिलो कीमें दुःखी होते हैं आगे भक्तिकी निंदा करनेसे दुर्वासा बडे दुःखी हुएथे ॥ २० ॥ व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ, ज्ञानकथालापसे क्या है ? एक भक्तिही मुक्ति देनेवाली है ॥ २१ ॥

सूतजी बोले—इसप्रकार नारदजीसे कहेहुए अपने माहात्म्यको सुनकर भक्ति सर्वांगपुष्टिसंयुक्त हो नारदजीसे बोली॥२२॥भक्ति बोली—अहो नारदजी! तुमको धन्य है, तुममें मेरी दृढ प्रीति है सो मैं कभी नहीं त्यागन करूंगी सदैव चित्तमें धारण किये रहूंगी ॥ २३ ॥ हे महात्मन्! तुमने कृपापूर्वक मेरी सब बाधा क्षणमात्रमें दूर करदी परन्तु अभीतक इन मेरे पुत्रोंको चेतना नहीं हुई सो इन्हें जगाओ जगाओ ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, दयालु नारदजी भक्तिके वचन सुनकर हाथसे सहरातेहुए उन दोनोंको जगाने लगे ॥ २५ ॥ कानके धोरे मुखकरके नारदजीने ऊँचे स्वरसे पुकारा—ज्ञान!

॥ सूत उवाच ॥ ॥ इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ॥ सर्वांगपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ॥ न कदाचिद्विमुंचामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥२३॥ कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ॥ पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधयबोधय ॥२४॥ सूत उवाच॥ तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ॥ तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥ मुखं संयोज्य कर्णांते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ॥ ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥ वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ॥ बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥२७॥ नेत्रैरनवलोकंतौ जृंभंतौ सालसावुभौ ॥ बकवत्पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमांगकौ ॥२८॥ क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ॥ ऋषिश्चिंतापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥ २९ ॥ अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ॥ चिंतयन्निति गोविन्दं स्मरयामास भार्गव ॥ ३० ॥

शीघ्र जागो रे वैराग्य! शीघ्र जागो ॥ २६ ॥ वेदवेदान्तके शब्द और वारंवार गीताके पाठ करके जब नारदजीने जगाया तो बलपूर्वक वे बडी कठिनाईसे उठे ॥ २७ ॥ नेत्र मीचे बडे आलसमें जँभाई लेने लगे बगलेकी नाईं श्वेत बाल होरहे सूखे काष्ठकी नाईं शरीर था ॥ २८ ॥ भूखके मारे क्षीण होनेके कारण वे फिर सोगये तब नारदजीको बडी चिन्ता हुई क्या करूं ॥२९॥ अहो! इन वृद्धोंकी बडी निद्रा कैसे जायगी? इसप्रकार विचार करते करते नारदजी गोविंद भगवान्का स्मरण करनेलगे ॥ ३० ॥

तब आकाशवाणी हुई तपोधन ! खेद मत करो तुम्हारा उद्यम सफल होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥३१॥ इसके निमित्त देवऋषि ! तुम सत्कर्मका प्रारम्भ करो और साधुओंके भूषण महात्मा वे सत्कर्म तुमसे कहैंगे ॥ ३२ ॥ सत्कर्मके करनेमात्रसेही इन दोनोंकी निद्रासहित वृद्धता जाती रहैगी और सब जगह भक्तिका प्रकाश होगा ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी उन सबोंने स्पष्ट सुनी नारदजीने कही यह क्या बात है मैंने नहीं जानी तब वडे आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले, इस आकाशवाणीनेभी गुप्तरूपसे कहा है सो वोह क्या साधन है जिससे इन दोनोंका कार्य हो ॥ ३५॥

व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ॥ उद्यमः सफलस्ते तु भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥ एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ॥ तत्ते कर्माभिधास्यंति साधवः साधुभूषणाः ॥३२॥ सत्कर्मणि कृते तस्मिन्सनिद्रा वृद्धताऽनयोः ॥ गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥ इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ॥ नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ अनयाऽऽकाशवाण्याऽपि गोप्यत्वेन निरूपितम् ॥ किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥ ३५॥ क्व भविष्यंति संतस्ते कथं दास्यंति साधनम् ॥ मयात्र किं प्रकर्तव्यं तदुक्तं व्योमभाषया ॥३६॥ सूत उवाच ॥ तत्र तावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ॥ तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥ वृत्तांतः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ॥ असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ॥ ३८ ॥ मूकीभूतास्तथाऽन्ये तु कियंतस्तु पलायिताः ॥ हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः ॥ ३९ ॥

वोह सन्त कहाँ होंगे और साधन किसप्रकार देंगे और जो आकाशवाणीने कहा है मैं उसे किसप्रकार करूं ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले, नारदजी भक्ति ज्ञान वैराग्यको तहांही ठहराकर आप वहांसे चले तीर्थोंमें होतेहुए मुनियोंसे पूछते हुए ॥ ३७ ॥ सबने वृतान्त सुना परन्तु किसीने निश्चय करके न बताया कोई बोले असाध्य है कोई बोले समझमें नहीं आता ॥ ३८ ॥ कोई चुप होगये कोई सुनतेही चलदिये इसप्रकार त्रिलोकीमें विस्मय दायक बडा हाहाकार हुआ ॥ ३९ ॥

जब कि, वेदान्त और वारंवार गीताके पाठसेभी भक्ति ज्ञान वैराग्यका त्रिक (तिगड्डा) न उठा तो ॥४०॥ और उपाय कछु नही है यह वार्ता मनुष्य कानों कानोंमें कहनेलगे भाई योगिराज ! नारदजीकेभी तो बुद्धिमें यह बात न आई ॥ ४१ ॥ तो और इतर मनुष्य इसे किसप्रकार कहसकते हैं ? इसप्रकार ऋषियोंने दुर्गम वार्ता निर्णय करके कही ॥ ४२ ॥ तब नारदजी चिन्तातुर होकर बदरीवनमें आये और यह निश्चय किया कि, यहां तप करूंगा ॥ ४३ ॥ तबतक आगे सनकादिमुनियोंको जिनकी करोड सूर्यके समान कान्ति है देखकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी

वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ४० ॥ उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ॥ ४१ ॥ तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ एवं ऋषिगणैः पृष्टं निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥ ततश्चिंतातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ॥ तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥ तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ॥ कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमः स्थितः ॥ कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४५ ॥ भवंतो योगिनः सर्वे बुद्धिमंतो बहुश्रुताः ॥ पंचहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥ सदा वैकुंठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ॥ लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७ ॥ हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ॥ अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥ ४८ ॥

बोले ॥ ४४ ॥ नारदजी कहने लगे इस समय बडे भाग्यसे आपका दर्शन हुआ है हे कुमारो ! मेरे ऊपर कृपा करके शीघ्र कहो ॥ ४५ ॥ तुम सब बुद्धिमान् शास्त्रवेत्ता योगी हो सदा पांच वर्षके रहते और सबसे पूर्व उत्पन्न हुये हो ॥ ४६ ॥ सदा वैकुंठमें रहते भगवान्के गुणानुवाद गाते हो भगवान्के लीलारूपी अमृतरससे मत्त एक कथामात्रसेही जीते हो ॥ ४७ ॥ "हरिः शरणम्" अर्थात् परमात्माकी शरण हूं यही जिनके मुखसे नित्य वचन निकलता है इस कारण कालसे प्राप्त जरा तुमको बाधा नहीं करती ॥ ४८ ॥

पहले नारायणके दो द्वारपाल जिनके भ्रूभंगमात्रसेही पृथ्वीमें गिरे और फिर जिनकी कृपासे शीघ्र वैकुंठको गये ॥ ४९ ॥ वोही बडाही भाग्य है जो आपका दर्शन प्राप्त हुआ है आप दयालुओंको मुझ दीनके ऊपर दया करनी योग्य है ॥ ५० ॥ जो कुछ आकाशवाणीने कहा है सो क्या साधन है यह आप बताइये और कैसे अनुष्ठान करना चाहिये सो आप विस्तारपूर्वक कहो ॥५१॥ भक्ति ज्ञान वैराग्यको किसप्रकारसे सुखकी प्राप्ति होगी और सब वर्णोंमें प्रेमपूर्वक यत्नसे उनका कैसे स्थापन होगा ॥५२॥ कुमार बोले, देवर्षे ! चिंता मत करो मनमें प्रसन्न हो इसका उपाय सुखसाध्य पूर्वकालसेही

येषां भ्रूभंगमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ॥ भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः परं गतौ ॥ ४९ ॥ अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ॥ अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥ अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ॥ अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवंतु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ॥ स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ मा चिंतां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ॥ उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥ अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ॥ सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥ त्वयि चित्रं न मंतव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ॥ घटते कृष्णदासस्य भक्तेः स्थापनता सदा ॥ ५५ ॥ ऋषिभिर्बहवो लोके पंथानः प्रकटीकृताः ॥ श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥ ५६ ॥ वैकुंठसाधकः पंथाः स तु गोप्यो हि वर्तते ॥ तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥

है ॥ ५३ ॥ अहो नारदजी ! धन्य हो तुम विरक्तोंके शिरोमणि हो सदा श्रीकृष्णके दासोंमें तुम अग्रणी हो योगके सूर्य हो ॥ ५४ ॥ भक्तिके निमित्त श्रम करना यह तुममें कुछ विचित्र वार्ता नहीं है श्रीकृष्णदासोंको तो सदा भक्तिकी स्थापना करनी योग्यही है ॥ ५५ ॥ ऋषियोंने लोकमें बहुतसे मार्ग प्रगट कियेहैं वे सब श्रमसाध्य हैं और प्रायः सब स्वर्गफलके देनेहारे हैं ॥५६॥ परन्तु जो वैकुंठसाधक पंथ है वोह गुप्तही है उसके उपदेश करने वाले पुरुष भाग्यसेही प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥

जो पूर्व आकाशवाणीने तुमको सत्कर्मका उपदेश दिया है सो स्थिरचित्तसे प्रसन्न होकर सुनो हम कहते हैं ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याययज्ञ (वेदका पढना), ज्ञानयज्ञ यह सर्व कर्म फलसे स्वर्गादिके देनेहारे हैं ॥ ५९ ॥ परन्तु सत्कर्मका जतानेहारा पंडितोंने ज्ञान यज्ञ कहा है वोह श्रीमद्भागवतका आलाप जो शुकादिमहात्माओंने गाया है ॥ ६० ॥ उसके शब्दसे भक्ति ज्ञान वैराग्यका बड़ा बल बढेगा दोनोंका कष्ट दूर होगा भक्तिको सुख मिलैगा ॥ ६१ ॥ श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे यह सब कलिके दोष इसप्रकार नाश होजायँगे जैसे कि, सिंहके शब्दसे

सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ॥ तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ॥ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ॥ ५९ ॥ सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ॥ श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥ ६० ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ॥ व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१ ॥ प्रलयं हि गमिष्यंति श्रीमद्भागवतध्वनेः॥ कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव ॥ ६२ ॥ ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ॥ प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥ श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ॥ तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोकेश्लोके पदेपदे ॥ ६५ ॥ छिंदंतु संशयं ह्येतं भवंतोऽमोघदर्शनाः ॥ विलंबो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥ ६६ ॥

भेडिये भाग जाते हैं ॥ ६२ ॥ तब ज्ञान वैराग्यसे संयुक्त प्रेमरस बहानेहारी भक्ति घर घर मनुप्य मनुष्यमें क्रीडा करेगी ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले–जब कि, वेद वेदान्तके शब्द और गीतापाठसेभी भक्ति ज्ञान वैराग्यका त्रिक नहीं उठा तो ॥ ६४ ॥ श्रीमद्भागवतके आलापसे कैसे चैतन्यको प्राप्त होगा उसकी कथामेंभी तो श्लोक श्लोकमें पदपदमें वेदार्थही है ॥ ६५ ॥ अमोघदर्शन आप लोग यह मेरा संदेह दूर कीजिये. हे शरणागत वत्सलो ! इसमें विलम्ब मत करो ॥ ६६ ॥

कुमार बोले—वेदोपनिषद्के सारसे भागवत कथा हुई, तिससे पृथग्भूत हुई, फलोन्नति औरभी अतिउत्तम होगई है ॥ ६७ ॥ जैसे मूलसे लेकर अग्रभागपर्य्यन्त रसवाली चीज बाहरसे उतना स्वादिष्ट नहीं लगती जितना कि, वोही रस पृथक् फलमें होकर विश्वमनोहररूप होता है ॥ ६८ ॥ जैसे दूधमें स्थित घी ऐसा स्वादिष्ट नहीं होता जैसा कि, पृथक् होकर वोह स्वादिष्ट देवताओंका रसवर्द्धक होता है ॥ ६९ ॥ जैसे बूरा गन्नेमें सर्वत्र व्याप्त रहती है परन्तु वोह पृथग्भूत होकर जैसी मीठी लगती है तैसी भागवतकथा है ॥ ७० ॥ यह सर्व वेदसम्मत भागवत पुराण ज्ञान वैरा

कुमारा ऊचुः ॥ वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ॥ अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलोन्नतिः ॥ ६७ ॥ आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वदते यथा ॥ संभूय स पृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥ ६८ ॥ यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ॥ पृथग्भूतं हि तद्दिव्यं देवानां रसवर्धनम् ॥ ६९ ॥ इक्षूणामपि मध्यांतं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ॥ पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१ ॥ वेदांतवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ॥ परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥ तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ॥ तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ॥ ७३ ॥ तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ॥ श्रीमद्भागवतश्रावे शोकदुःखविनाशनम् ॥ ७४ ॥

ग्यके स्थापन करनेहीको प्रकाश किया है ॥ ७१ ॥ वेद वेदान्तके पारगामी गीताके कर्त्ता दुःखको प्राप्त होतेहुए अज्ञानसागरमें मोहित व्यासजीसे ॥ ७२ ॥ जो तुमने पहले चतुःश्लोकी भागवत कही जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल व्यासजी दुःखरहित होगये ॥ ७३ ॥ फिर तुमैं इसमें विस्मय कैसे प्राप्त हुआ जो तुम प्रश्न करते हो श्रीमद्भागवत जो शोक दुःखका नाशक है सो सुनाओ ॥ ७४ ॥

नारद बोले—जिसका दर्शन तत्काल अशुभोंको दूरकर संसारी दुःखसे दुःखियोंका कल्याण करता है, सम्पूर्ण शेषजीके मुखोंसे गाईहुई कथाका पान करनेवालेके प्रेमसे प्रकाश करनेवाले भगवान्की मैं शरण हूं ॥ ७५ ॥ जब बहुत जन्मके भाग्य उदय होनेसे मनुष्योंको सत्संगकी प्राप्ति होतीहै तब अज्ञानकृत मोह मदके अन्धकारका नाश होकर ज्ञान उदय होता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥ नारदजी बोले—यत्नपूर्वक भक्ति ज्ञानके स्थापनके निमित्त मैं शुकशास्त्रकी कथाका उज्वल ज्ञानयज्ञ

नारद उवाच ॥ यद्दर्शनं च विनिहंत्यशुभानि सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ॥ निश्शेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥ भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै ॥ अज्ञानहेतुकृतमोहमदांधकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥ यत्र कार्यो महायज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ॥ महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥ कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं ब्रुवतामितः ॥ ३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ॥ गंगाद्वारसमीपे तु तटमानंदनामकम् ॥ ४ ॥ नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ॥ नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ॥ ५ ॥

करूंगा ॥ १ ॥ जहां यह महायज्ञ कियाजाय आप उस स्थानको बताइये वेदके जाननेवालोंमें शुकशास्त्रकी महिमा कहने योग्य है ॥ २ ॥ यह श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनतक सुननी योग्य है और उसमें क्या विधान है सो मुझसे आप कहिये ॥ ३ ॥ कुमार बोले—हे नारदजी ! सुनो हम कहते हैं नम्रीभूत ज्ञानयुक्त गंगाद्वारके समीपही आनन्द नाम तट है ॥ ४ ॥ अनेक ऋपिगणोंसे युक्त देवता सिद्धोंसे सेवित अनेक वृक्ष वेलोंसे संघटित नवीन कोमल वालुकासे युक्त ॥ ५ ॥

बडा मनोहर एकान्त स्थान सुवर्णके आकारवाले कमलोंकी सुगन्धिसे युक्त जिसके समीपके रहनेवाले जीवोंके मनमें वैर नहीं होता ॥ ६ ॥ उस स्थानमें तुमको अप्रयत्न होकर ज्ञानयज्ञ करना चाहिये और तहाँही अपूर्व और रसरूपवाली कथा होगी ॥ ७ ॥ और निर्बल जरासे जर्जरित देह वे ज्ञान वैराग्यको भक्तिसहित आगे करके तहाँ हमभी जॉयगे ॥ ८ ॥ जहाँ भागवतकी कथा होती है तहां भक्ति आदिक सब जायँ कथाशब्दश्रवणमात्रसे भक्ति ज्ञान वैराग्यका त्रिक तरुणतायुक्त होता है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि, इसप्रकार कहकर कुमार नारदजी

रम्यमेकांतदेशस्थं हैमपद्मसुशोभितम् ॥ यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ॥ अपूर्वा रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥ पुरःस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरम् ॥ तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्र गमिष्यति ॥ ८ ॥ यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ॥ कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ॥ गंगातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥ यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ॥ भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलंपटाः ॥ धावंतोप्याऽऽययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥ भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ॥ रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकंडपुत्रोऽत्रिजपिप्पलादाः ॥ १३ ॥

के साथही कथाके पान करनेको शीघ्र गंगातटमें आये ॥ १० ॥ जब वे उस तटपर आये तब बडा कोलाहल हुआ भूलोकमें, देवलोकमें और इसीप्रकार ब्रह्मलोकमें भी कोलाहल हुआ ॥ ११ ॥ श्रीमद्भागवतरूपी अमृतके पान करनेको प्रथम तो जो वैष्णव थे वे चारों ओरसे दौडे ॥ १२ ॥ भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुरामजी, विश्वामित्र, शाकल, मृकण्डुके पुत्र मार्कण्डेय, अत्रिके पुत्र दत्तात्रेय, पिप्पलाद, ॥ १३ ॥

योगीश्वर याज्ञवल्क्य, जैगीषव्य, व्यास, पराशर, छायाशुक, जाजलि, जह्नु ये मुख्य मुख्य ऋषिगण अपने पुत्र शिष्य स्त्रीसहित प्रणयपूर्वक आये ॥ १४ ॥ वेदान्त वेद मंत्र तंत्र अपनी मूर्ति धारणकर आये, इसीप्रकार सत्रह पुराण छः शास्त्रभी आये ॥१५॥ गंगादि नदियें, पुष्करादि सरोवर, सब क्षेत्र दिशा और दंडकादिवन ॥ १६ ॥ पर्वत आदि सब आये और जो देवता गंधर्व दानव शरीरके गौरवसे नहीं आये उन्हें मानपूर्वक ब्रह्माके पुत्र भृगुजी बुलालाये ॥ १७ ॥ तब नारदसे दीक्षित हो दियेहुए उत्तम आसनपर कृष्णकथामें तत्पर सबसे नमस्कृत हो कुमार बैठे ॥ १८ ॥ वैष्णव विरक्त

योगीश्वरौ व्यासपराशरौ च च्छायाशुको जाजलिजह्नुमुख्याः ॥ सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिरा ययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥ ॥ वेदांतानि च वेदाश्च मंत्रास्तंत्राः समूर्तयः ॥ दश सप्त पुराणानि षट् शास्त्राणि तथाऽऽययुः ॥ १५ ॥ गंगाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ॥ क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दंडकादिवनानि च ॥ १६ ॥ नगादयो ययुस्तत्र देवगंधर्वकिन्नराः ॥ गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः संबोध्य चानयत् ॥ १७ ॥ दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ॥ कुमारा वंदिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८ ॥ वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ॥ मुख्यभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥ एकभागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ॥ वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थोऽन्यत्र स्त्रियोन्यतः ॥ २० ॥ जयशब्दो नमश्शब्दः शंखशब्दस्तथैव च ॥ चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥ विमानानि समारुह्य कियंतो देवनायकाः ॥ कल्पवृक्षप्रसूनानि सर्वे तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥

संन्यासी ब्रह्मचारी यह मुख्य भागमें स्थित हुए, सबके आगे नारदजी बैठे ॥१९॥ एक भागमें ऋषिगण एक भागमें देवता एक स्थानमें वेद उपनिषद एक स्थानमें तीर्थ और एक स्थानमें स्त्रियें बैठीं ॥ २० ॥ तब जयशब्द नमःशब्द और शंखोंका शब्द होनेलगा और चूर्ण खीलें फूलोंकी बड़ी वर्षा हुई ॥ २१ ॥ कितने तो देवनायक विमानोंमें चढे आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

सूतजी बोले—इसप्रकार सबके एकचित्त होकर बैठनेमें नारदजीके निमित्त कुमारने भागवतमाहात्म्य कहना प्रारंभ किया ॥ २३ ॥ कुमार बोले शुकशास्त्रसे उत्पन्न हुई महिमाको मैं तुमसे कहूंगा जिसके श्रवणमात्रसे हाथमें मुक्ति प्राप्त होतीहै ॥ २४ ॥ यह श्रीमद्भागवतकी कथा सदा सेवनीय है जिसके श्रवणमात्रसे श्रीकृष्ण चित्तमें प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥ इस ग्रन्थमें अठारह सहस्र श्लोक और द्वादश स्कंध हैं यह परीक्षित् और शुकदेवजीके संवादवाली भागवत सुनो ॥ २६ ॥ पुरुष अज्ञानसे तबतक इस संसारचक्रमें भ्रमता है जबतक शुकशास्त्रकी कथा

सूत उवाच ॥ एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ॥ महात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामो महत्त्वं शुकशास्त्रजम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥ सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥ ग्रंथोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कंधसंमितः ॥ परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ॥ २६ ॥ तावत्संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ॥ यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥ २७ ॥ किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ॥ एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥ २८ ॥ कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥ २९ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ ३० ॥ तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसंति तपोधनाः ॥ यावन्न श्रूयते सम्यक्छ्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥ न गंगा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥

क्षणमात्र कर्णगोचर नहीं होती ॥ २७ ॥ बहुतसे शास्त्र और भ्रमानेहारे पुराणोंके सुननेसे क्या है एक भागवतशास्त्रही मुक्तिदान करके गर्जता है ॥ २८ ॥ जिस घरमें नित्य भागवतकी कथा होती है वोह घर तीर्थरूप है वहाँ रहनेहारोंके पाप नाश होजाते हैं ॥ २९ ॥ हजार अश्वमेध सौ वाजपेय शुकशास्त्रकी कथाकी सोलहवीं कलाभी नहीं है ॥ ३० ॥ हे तपोधनो ! तबतकही इस देहमें पाप निवास करते हैं जबतक कि मनुष्य मन लगाकर भागवत कथा नहीं श्रवण करते हैं ॥ ३१ ॥ शुकशास्त्रके फलकी बराबरी गंगा, गया, काशी, पुष्कर, प्रयागभी नहीं करसक्ते ॥ ३२ ॥

जो परा गतिकी इच्छा रखते हो तो नित्यही अपने मुखसे आधा श्लोक वा एक चौथाई श्लोकही भागवतका उच्चारण किया करो ॥ ३३ ॥ वेदादि ओंकार, वेदमाता गायत्री, पुरुषसूक्त, ऋक्, यजुः, साम, तीनों वेद, भागवत पुराण "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" द्वादशाक्षर मंत्र ॥३४॥ द्वादशात्मा सूर्य, प्रयाग, संवत्सरात्मक काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, कामधेनु, द्वादशी ॥ ३५ ॥ तुलसी, वसन्त ऋतु, पुरुषोत्तम, श्रीकृष्ण इनको बुद्धिमान् तत्त्वसे पृथग्भाव नहीं देखते हैं ॥ ३६ ॥ जो प्रतिदिन भागवत शास्त्रको अर्थसे बाँचतेहैं उनके कोटि जन्मके किये पाप नष्ट होजातेहैं इसमें कुछ

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥ वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ॥ त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ॥ ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥ तुलसी च वसंतश्च पुरुषोत्तम एव च ॥ एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ॥ ३६ ॥ यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ॥ जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥३७॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ॥ नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥३८॥ उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिंतनम् ॥ तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥३९॥ अंतकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ॥ प्रीत्या तस्यैव वैकुंठं गोविंदोऽपि प्रयच्छति ॥४०॥ हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ॥ कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

संदेह नहीं ॥ ३७ ॥ जो भागवतका आधा वा चौथाई श्लोक प्रतिदिन पढतेहैं उन्हें राजसूय और अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ नित्य भागवतका कथन नारायणका कीर्तन तुलसीका पोषण और धेनुओंका सेवन समान है ॥ ३९ ॥ अन्तकालमें जिसने शुकशास्त्रकी वाणी श्रवण करीहै उसे श्रीव्रजराज प्रसन्न हो वैकुंठ देते हैं ॥ ४० ॥ जो कोई सुवर्णसिंहासनसहित वैष्णवके निमित्त इसे प्रदान करते हैं वोह पुरुष निश्चय श्रीकृष्णकी सायुज्य पदवीको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

जिस मूर्खने जन्मसे अन्ततक मन लगाकर शुकशास्त्रकथा नहीं पान करी उसने चंडाल और खरकी नाईं अपना जन्म वृथा खोया और उत्पन्न होकर माताको दुःख दिया ॥ ४२ ॥ जिसने कभी शुककथाका कोई वचन नहीं सुना वोह पापकर्मा जीवितही मृतक है उस पशुसमान पृथ्वीपर भाररूप मनुष्यको धिक्कार है ऐसा ब्रह्मादिदेवता कहते हैं ॥ ४३ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा संसारमें दुर्लभ है कोटिजन्मके प्राप्त हुये पुण्योंसे प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥ इस कारण हे योगनिधान बुद्धिमन् ! यह कथा यत्नपूर्वक सुनने योग्य है इसमें कोई दिनोंका नियम नहीं सदा सुनै ॥४५॥ सत्य

आजन्ममात्रमपि येन शठेन किंचिच्चित्रं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ॥ चांडालवच्च खरवद्धत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा ॥ ४२ ॥ जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ॥ धिक्तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपमेवं वदंति दिवि देवसरोजमुख्यः ॥ ४३ ॥ दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ॥ कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥ तेन योगनिधे धीमञ्छ्रोतव्या सा प्रयत्नतः ॥ दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५ ॥ सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया ॥ ४६ ॥ मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ॥ दीक्षा कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४७ ॥ श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् ॥ तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥ मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥ कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणाल्लभेत् ॥ ५० ॥

और ब्रह्मचर्यसहित सदा सुनै अशक्य होनेसे कलियुगमें शुकआज्ञासे विशेषता कही है ॥ ४६ ॥ मनवृत्तियोंका जीतना नियमाचरण करना दीक्षा करनेमें अशक्य हो तो सप्ताह सुनना श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ नित्य श्रद्धापूर्वक श्रवण करनेसे माघमासमें जितना फल कहाहै वोह फल सप्ताह श्रवण करनेसे होता है ॥ ४८ ॥ मनके अजय होने रोग होने और आयुके क्षय होने और कलियुगके बहुत दोष होनेसे सप्ताह श्रवण श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ जो फल तप योग समाधिसे नहीं होता सो फल अनायास सप्ताह श्रवणसे होता है ॥ ५० ॥

यज्ञसे सप्ताह गर्जता है, सप्ताह व्रतसे गर्जता है, तपसे तीर्थोंसे नित्य गर्जता है ॥५१॥ योग ज्ञान ध्यानसे सप्ताह गर्जता है, हम उसके गर्जनेको क्या कहैं रे रे कहकर गर्जता है अर्थात् जबतक भागवत नहीं सुनी तबतक व्रतादिक हैं इसके श्रवण करनेके अन्तरमें सब आ जाते हैं ॥ ५२ ॥ शौनकजी बोले यह बडे आश्चर्यका कथानक सुनाया ज्ञान धर्मादिकोंको तिरस्कार करके अब परब्रह्मका सूचक भागवतपुराण मोक्षको देनेहारा है सो सुनाओ ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले, जब श्रीकृष्ण पृथ्वीको त्यागन करके अपने पदको जाने लगे तब एकादशमें कहे ज्ञानको सुनकर उद्धवजी बोले ॥५४॥

यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ॥ तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥ योगाद्गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ॥ किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥ शौनक उवाच ॥ साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं ज्ञानादिधर्मान्विगणय्य सांप्रतम् ॥ निःश्रेयसे भागवतं पुराणं जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥५३ ॥ सूत उवाच ॥ यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गंतुमुद्यतः ॥ एकादशं परिश्रुत्वाप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ॥ मच्चित्ते महती चिंता तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ५५ ॥ आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यंति पुनः खलाः ॥ तत्संगेनैव संतोऽपि गमिष्यंत्युग्रतां यदा ॥ ५६ ॥ तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ॥ अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥ अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ॥ भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥

हे भगवन्! आप तो भक्तकार्यको विधान करके जातेहो अब जो मेरे मनमें बड़ी चिन्ता है उसे सुनकर मुझे समझाकर सुखी करो ॥ ५५ ॥ यह घोर कलियुग आया है इसमें वड़े खल उत्पन्न होंगे उनके संगसे सन्तभी जब उग्रताको प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ तब यह गोरूपा भूमि भाराक्रान्त होकर किसका आश्रय करैगी ? हे कमललोचन! तुम्हें छोड कोई इसका दूसरा रक्षक नहीं है ॥ ५७ ॥ इसकारण हे भक्तवत्सल! सत्पुरुषोंके ऊपर दया करके मत जाओ निराकार चिन्मय आप भक्तोंहीके कारणसे सगुण हुयेहो ॥ ५८ ॥

तुम्हारे वियोगसे तुम्हारे भक्त पृथ्वीमें कैसे रहेंगे निर्गुण उपासनामें कष्ट होगा इससे कुछ विचारिये ॥ ५९ ॥ ऐसे उद्धवजीके वचन सुनकर भगवान् प्रभासक्षेत्रमें विचार करने लगे भक्तोंके अवलम्बनके निमित्त मुझे क्या करना योग्य है ? ॥ ६० ॥ जो अपना तेज था सो भागवतमें धरदिया अन्तर्धान होकर यह श्रीमद्भागवतरूपी समुद्रमें प्रवेश करगये ॥ ६१ ॥ इसकारण यह श्रीकृष्णकी वाणीरूप प्रत्यक्ष मूर्ति है सेवन श्रवण पाठ दर्शन करनेसे पाप दूर करती है ॥ ६२ ॥ इसकारण सबसे अधिक सप्ताहश्रवण कहा है और सब साधनोंका तिरस्कार करके कलियुगमें यह धर्म कहा है ॥

त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यंति भूतले ॥ निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ॥ ५९ ॥ इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिंतयद्धरिः ॥ भक्तावलंबनार्थाय किं विधेयं मयेति च ॥ ६० ॥ स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ॥ तिरोधाय प्रविष्टोयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥ ६१ ॥ तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ॥ सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥ ६२ ॥ सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योप्यधिकं कृतम् ॥ साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६३ ॥ दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ॥ कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६४ ॥ अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ॥ कथं त्याज्या भवेत्पुंभिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः ॥६५॥ सूत उवाच ॥ एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ॥ आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६ ॥ भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ॥ श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदंती ॥ ६७ ॥

॥ ६३ ॥ दुःख दरिद्र दुर्भाग्य और पापके धोनेके निमित्त काम क्रोधके जयके निमित्त कलियुगमें यही धर्म कहा है ॥ ६४ ॥ अथवा वैष्णवी माया जो देवतोंकोभी दुस्त्यज सो मनुष्योंसे कैसे त्यागन होगी इसकारण सप्ताहविधि कही है ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले—इसप्रकार सप्ताहश्रवणका बड़ा धर्म जब ऋषिने सभामें कथन किया तब एक बड़ा आश्चर्य उस समय हुआ है शौनकजी ! तुम सुनो ॥ ६६ ॥ तब भक्ति अपने दोनों जवान हुए ज्ञान वैराग्योंको लेकर शीघ्र प्रेमके मारे सभामें प्रगट हुई और श्रीकृष्ण, गोविन्द, हरे, मुरारे, नाथ—यह नाम वारंवार उच्चारण करने लगी ॥ ६७ ॥

उस भागवतार्थभूषण सुन्दर वेष किये सभामें आईहुईको देखने लगे और यह कैसे मुनिजनोंके मध्यमें आई इसप्रकार सब कोई तर्कना करने लगे ॥ ६८ ॥ तब कुमार उस समय बोले यह इस समय कथाहीके निमित्त आई इसप्रकार वोह भक्ति ज्ञान वैराग्यसहित सुनकर बड़ी नम्र हो सनत्कुमारसे बोली ॥ ६९ ॥ भक्ति बोली कि, कलियुगसे प्रनष्टभी मुझको आपने कथारस सुनाकर पुष्ट किया है अब मैं कहाँ रहूँ सो बतावो तब वे ब्रह्माके पुत्र इसप्रकार वचन बोले ॥ ७० ॥ गोविंदके समान रूप धारण करनेवाली स्नेह करनेहारी संसाररोगकी हरनेहारी वड़े धीरज

तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ॥ कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्यं मुनीनामिति तर्कयंतः ॥६८॥
ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताऽधुनेयम् ॥ एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥
॥ ६९ ॥ भक्तिरुवाच ॥ भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा कलिप्रनष्टाऽपि कथारसेन ॥ काहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवंतु ब्राह्मा इदं
तां गिरमूचिरे ते ॥ ७० ॥ भक्तेषु गोविंदसुरूपधर्त्रीं प्रेमैककर्त्रीं भवरोगहंत्री ॥ सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरंतरं
वैष्णवमानसानि ॥ ७१ ॥ ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वा द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ॥ एवं तदाज्ञाऽवसरेऽपि भक्ति
स्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥ ७२ ॥ सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ॥
हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥ ७३ ॥

धरनेहारे वैष्णवभक्तोंके मनमें तू नित्य वासकर ॥ ७१ ॥ तो यह कलियुगके दोष तुझको देखनेको समर्थ न हो इसप्रकार उनकी आज्ञासे भक्ति नारायणके भक्तोंके चित्तमें प्रवेश करगई ॥ ७२ ॥ सम्पूर्ण संसारके मध्यमें वे निर्धनभी धन्य जिनके हृदयमें भक्ति निवास करती है भक्तिसूत्रसे वशीभूत हो भगवान् अपने लोकको छोड़कर उनके हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥ ७३ ॥

इस ब्रह्मरूप भागवतका पृथ्वीमें हम आपसे क्या माहात्म्य कहैं जिसके कहने सुननेसे श्रोता वक्ता कृष्णके समान विभूतिको प्राप्त करते हैं फिर और धर्मोंसे क्या है ? ॥ ७४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले इसके उपरान्त वैष्णवोंके चित्तमें अलौकिक भक्ति देख भगवान् भक्तवत्सल ॥ १ ॥ वनमाली घनश्याम पीतवस्त्रधारे मनोहर वेष किये कमरमें क्षुद्रघंटिका मोरमुकुट सुंदर कुंडल धारण किये ॥२॥ त्रिभंगी छबि किये सुंदर कौस्तुभ मणिसे विराजमान कोटि कामदेवके समान शोभायमान हरिचं

ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ॥ यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥ ७४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ॥ निजलोकं परित्यज्य भगवान्भक्तवत्सलः ॥ १ ॥ वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ॥ कांचीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः ॥२॥ त्रिभंगललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः ॥ कोटिमन्मथलावण्यो हरिचंदनचर्चितः ॥ ३ ॥ परमानंदचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ॥ आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ ४ ॥ वैकुंठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ॥ तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥ ५ ॥ तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ॥ चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शंखरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥ तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ॥ दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ॥ मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पापतमा भवंति ॥ ८ ॥

दन लगाये हुए ॥ ३ ॥ परमानंद चिन्मूर्ति मधुर मुरली धारण किये भक्तोंके निर्मल मनोंमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥ जो वैकुण्ठके रहनेवाले और जो वैष्णव उद्धवादिक हैं वे गूढरूपसे कथा सुननेको स्थित हुए ॥५॥ तब जय जय शब्द रसरूप भागवतकी पुष्टिचूर्ण और पुष्पोंकी वृष्टि और वारंवार शंखध्वनि हुई ॥ ६ ॥ उस सभामें स्थित हुओंको देह गेह और आत्माकी सुधि न रही सबकी तन्मय अवस्था देखकर नारदजी वचन बोले ॥७॥ हे मुनीश्वरो ! आज इस जनसमुदायमें मैंने सप्ताहकी अलौकिक महिमा देखी जिससे मूढ शठ पशु पक्षीभी सब निष्पाप होते हैं ॥ ८ ॥

इससे इस कलियुगमें चित्तके शुद्ध करनेके निमित्त और कुछ नहीं है पापसमूह विध्वंस करनेको इसके समान पृथ्वीमें और कुछ नहीं है ॥ ९ ॥
परन्तु यह आप मुझसे कहिये कि, कथामय सप्ताह यज्ञसे कौन कौन विशुद्ध होते हैं महात्माओंने लोकका हित विचारकर क्या कोई नवीन मार्ग
स्थापित कियाहै ? ॥ १० ॥ कुमार बोले—जो मानदेनेवाले पापात्मा सदा दुराचारवाले कुत्सितमार्गमें चलनेवाले क्रोधाग्निसे दग्ध कुटिल
कामी हैं वेभी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र होजाते हैं ॥ ११ ॥ सत्यसे हीन पिता माताको दोष देनेवाले तृष्णासे व्याकुल आश्रमधर्मसे

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ॥ अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥ ९ ॥ केके विशुध्यंति वदंतु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ॥ कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोपि नवीनमार्गः ॥ १० ॥ कुमारा ऊचुः ॥ ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ॥ क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ ११ ॥ सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ॥ ये दांभिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ १२ ॥ पंचोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ॥ ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ १३ ॥ कायेन वाचा मनसापि पातकं नित्यं प्रकुर्वंति शठा हठेन ये ॥ परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ १४ ॥ अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥

वर्जित जो पाखण्डी घमंडी हिंसकभी हैं वेभी सप्ताहयज्ञसे कलियुगमें पवित्र होजाते हैं ॥ १२ ॥ पांच बडे उग्र पाप छल छद्मकारी जो क्रूर और
पिशाचोंकी नाईं निर्दयी हैं जो ब्राह्मणोंके द्रव्य हरणकर पुष्ट होते व्यभिचारी हैं वेभी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र होते हैं ॥ १३ ॥ और जो शठ
हठपूर्वक मन वचन कर्मसे नित्य पाप करते हैं पराये द्रव्य लेकर पुष्ट होते हैं वे मलीन दुष्टचित्तवारे कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र होते हैं ॥ १४ ॥
यहाँ मैं तुमसे एक पुरातन इतिहास कहूँगा जिसके सुननेसेही पाप नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

तुंगभद्रा नदीके किनारे एक सर्वोत्तम नाम उत्तम पत्तन था, जहांके चारों वर्ण अपने धर्मके सत्कर्मोंमें तत्पर थे ॥ १६ ॥ उसी पुरमें सब वेदोंका जाननेवाला आत्मदेव नाम ब्राह्मण श्रौतस्मार्तकर्मोंका पारंगत दूसरे सूर्यकी नाईं निवास करतारहा ॥ १७ ॥ वो भिक्षुक धनवान् था उसकी स्त्रीका नाम धुन्धुली सुन्दरी सत्कुलोत्पन्ना सदा अपनी टेक रखनेहारी थी ॥ १८ ॥ लोकवार्त्तामें प्रीतिकरनेहारी क्रूरा और वहुत बोलती थी वलवान् घरके कार्योंमें कृपण क्लेशकारिणी थी ॥ १९ ॥ इसप्रकार प्रेमपूर्वक उन दोनोंको रहते विहार करते हे राजन् ! अर्थ कामसम्पन्न गृहादिक उन्हें सुखकारी न हुआ ॥ २० ॥ तव उन्होने सन्तानके निमित्त दीनोंको गौ भूमि सुवर्ण सदा देकर धर्म करना प्रारम्भ

तुंगभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ॥ यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥ आत्मदेवः पुरे तस्मिन्सर्ववेद विशारदः ॥ श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥१७॥ भिक्षुको वित्तवाँल्लोके तत्प्रिया धुंधुली स्मृता ॥ स्ववाक्य स्थापिका नित्यं सुंदरी सुकुलोद्भवा ॥१८॥ लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो वहुजल्पिका ॥ शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलह प्रिया ॥१९॥ एवं निवसतोः प्रेम्णा दंपत्यो रममाणयोः ॥ अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ॥२०॥ पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां संतानहेतवे ॥ गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१ ॥ धनार्थं धर्ममात्रेण ताभ्यां नीतं तथाऽपि च ॥ न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिंतातुरो भृशम् ॥ २२ ॥ एकदा स द्विजो दुःखाद्गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥२३॥ पीत्वा जलं विषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ॥ मुहूर्तादपि तत्रैव संन्या सी कश्चिदागतः ॥२४॥ दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदंतिकम् ॥ नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन्संस्थितः पुरः ॥२५॥

किया ॥ २१ ॥ जव कि, उन दोनों स्त्री पुरुषोंने धर्ममार्गमें आधा धन लगादिया और तौ भी कोई बेटा वेटी न हुई तब ब्राह्मणको वड़ी चिन्ता हुई ॥ २२ ॥ एक समय वोह ब्राह्मण दुःखी हो वरसे निकल वनको चलागया दुपहरके समय प्याससे व्याकुल हो एक सरोवरके निकट प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ जल पीकर सन्तानके दुःखसे दुःखी वोह तहांही बैठगया कि, एक मुहूर्त उपरान्त कोई संन्यासी तहां आया ॥ २४ ॥ जब वोह जल पीचुका तब यह ब्राह्मण उसके धोरे जा चरण वंदनकर श्वास लेता आगे बैठा ॥ २५ ॥

यति बोला ब्राह्मण ! क्यों रोता है तेरे मनमें क्या चिंता है तू शीघ्र मुझसे अपने दुःखका कारण कह ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोला महाराज ! सब पापसे संचित किये दुःखको आपसे क्या कहूं मेरे पूर्वज पितर मेरे दिये हुये जलको श्वाससे गरम कर पीते हैं कि, आगेको इसके सन्तान न होनेसे हमें जल न मिलेगा ॥ २७ ॥ मेरे दियेहुएको प्रीतिसे देवता ब्राह्मणभी नहीं ग्रहण करते मैं सन्तानके दुःखसे जडताको प्राप्त हो प्राण त्यागन करनेको यह आयाहूँ ॥ २८ ॥ संतानके विना जीनेको धिक्कार है विना संतानके घरको धिक्कार है पुत्रहीनके धनको धिक्कार है संतानके विना कुलको धिक्कार है ॥

यतिरुवाच ॥ कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिंता बलीयसी ॥ वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम् ॥ मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुंजते ॥ २७ ॥ मद्दत्तं नैव गृह्णंति प्रीत्या देवा द्विजातयः ॥ प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ॥ २८ ॥ धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ॥ धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संततिं विना ॥ २९ ॥ पाल्यते या मया धेनुः सा वंध्या सर्वथा भवेत् ॥ यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वंध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३० ॥ यत्फलं मद्गृहायातं शीघ्रं तच्च विशुष्यति ॥ निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किं मतो जीवितेन मे ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वे दुःखपीडितः ॥ तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाऽभूद्गरीयसी ॥ ३२ ॥ तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ॥ सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥

॥ २९ ॥ जो में धेनु पालता हूं वोहभी तो वंध्या होती है और जो मैं वृक्ष लगाता हूं वोहभी फलरहित होजाता है॥ ३० ॥ जो फल मेरे घर आता है वोह शीघ्र सूखजाता है तो निर्भाग्य पुत्रहीन मेरे जीनेसे क्या है ? ॥ ३१ ॥ ऐसा कह वोह ब्राह्मण उस यतिके धोरे बैठकर ऊंचे स्वरसे रोने लगा तब उस संन्यासीके चित्तमें बड़ी दया हुई ॥ ३२ ॥ वोह योगी उसकी माथेकी रेखा अर्थात् प्रारब्धको बाँचताहुआ सब जानकर फिर ब्राह्मणके प्रति विस्तारपूर्वक वचन बोला ॥ ३३ ॥

यति बोले, ब्राह्मण ! संतानरूप अज्ञानको त्यागनकर, कर्मकी गति बड़ी बलवान् है ज्ञानके आश्रित हो संसारवासनाको त्यागन कर ॥ ३४ ॥ सुन ब्राह्मण ! इस समय मैंने तेरी प्रारब्ध देखी सात जन्मपर्यन्त तेरे पुत्र नहीं है ॥ ३५ ॥ संतानसे सगर और अंगराजाने पहले बड़ा दुःख पायाथा अरे कुटुम्बकी आशा त्याग संन्यासमें सर्वथा सुख है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण बोला मुझे ज्ञानसे कुछ न होगा कैसेही हो पुत्र दीजिये नहीं तो तुम्हारे आगेही मैं प्राणोंको दुःखी हुआ त्याग करदूंगा ॥ ३७ ॥ पुत्रादिसुखहीन यह संन्यास भी शुष्कही है गृहस्थही जो पुत्र पौत्र युक्त हैं वो लोकमें प्रसन्न

यतिरुवाच ॥ मुंचाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ॥ विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ ३४ ॥ शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ॥ सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥ संततेः सगरो दुःखमवापांगः पुरा तथा ॥ रे मुंचाद्य कुटुंबाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ॥ नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥ पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ॥ गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३८ ॥ इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ॥ चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखाविमार्जनात् ॥ ३९ ॥ न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ॥ अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४० ॥ तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ॥ इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥

हैं ॥ ३८ ॥ यह ब्राह्मणका आग्रह देख वोह तपस्वी बोला अरे विधिके अंक मिटानेसे चित्रकेतुको बड़ा दुःख हुआ था इस कारण प्रारब्धका अतिक्रमण नहीं करना ॥ ३९ ॥ जैसे दैवहत होनेसे उद्यम वृथा होता है इसीप्रकार पुत्रसे तुझे कुछ सुख नहीं प्राप्तहोगा इसकारण तुझे हठी अर्थीसे मैं क्या कहूं ॥ ४० ॥ उस ब्राह्मणका बहुत आग्रह देखकर यतीने उसे एक फल दिया और यह कहा इसे तू अपनी स्त्रीको खवाव एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥

सत्य शौच दया दानपूर्वक रहना दुपहरके उपरांत अतिथिको भोजन कराकर आप खाना इसप्रकारसे एक वर्षतक स्त्री रहेगी तो श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ ४२ ॥ यह कहकर योगी चलेगये ब्राह्मण अपने घरमें आया वोह फल स्त्रीको दे उसका विधान बताय ब्राह्मण कहीं चलागया ॥ ४३ ॥ उसकी तरुणी कुटिल तो थी ही सखीके आगे रुदन करनेलगी अरी मुझे बड़ी चिंता उत्पन्न हुई है मैं इस फलको न खाऊँगी ॥ ४४ ॥ फल खानेसे गर्भ रहेगा फिर पेट बढेगा थोड़ा भोजन करनेसे निर्बलता हो जायगी तो घरके काम कैसे होंगे ? ॥ ४५ ॥ कहीं भाग्यसे गाँवमें डाका पडजाय तो

सत्यं शौचं दयादानमेकभक्तं तु भोजनम् ॥ वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ॥ पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥ ४३ ॥ तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह ॥ अहो चिंता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये॥ ४४ ॥ फलभक्ष्येण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ॥ स्वल्पभक्ष्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥४५॥ दैवाद्धाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ॥ शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत्॥४६॥ तिर्यक् चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत् ॥ प्रसूता दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७ ॥ मंदाया मयि सर्वस्वं ननांदा संहरेत्तदा ॥ सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥ लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ॥ वंध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९ ॥

गर्भिणी कैसे भाजैं शुककी नाई रहतेहुए गर्भको कोखसे कैसे त्यागन करै ॥ ४६ ॥ और जो कहीं गर्भ टेढा पड़गया तो मेरा मरणही होजायगा, प्रसूतिके समय बड़ा दुःख होता है उसे सुकुमारी मैं कैसे सहूं ॥ ४७ ॥ तब मुझ मंदभागिनीके सर्वस्व धनको ननद हरण करलेगी और फिर सत्य शौचादि नियमसे मुझे यह दुःसाध्यही दीखेहै ॥ ४८ ॥ फिर बालकके लालन पालनमें बडा दुःख होता है या तो वंध्या या विधवा नारी सुखी है यह मेरी मति है ॥ ४९ ॥

ऐसी कुतर्कना करके उसने वोह फल नहीं खाया और जब पतिने पूँछा कि, फल खाया तो कहदिया कि हां खालिया ॥ ५० ॥ एक समय उसकी भगिनी निज इच्छासे उसके घर आई उसके आगे इसने सब वृत्तान्त सुनाकर कहा कि, मुझे यह बड़ी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ इसी दुःखसे दुर्बल होगई हूँ छोटी बहन ! बता तो क्या करूं तब वोह बोली मुझे गर्भ है उत्पन्न होनेपर तुझे दूंगी ॥ ५२ ॥ तबतक तू सगर्भासी होकर घरमें सुखी रह तू मेरे पतिको द्रव्य दीजै वोह तुझे बालकको देदेगा ॥ ५३ ॥ मेरा बालक छः महीनेका मरगया ऐसा मैं प्रगट करदूंगी और प्रतिदिन आकर तेरे

एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ॥ पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥ ५० ॥ एकदा भगिनी तस्या स्तद्गृहे स्वेच्छयाऽऽगता ॥ तदग्रे कथितं सर्वं चिंतेयं महती हि मे ॥ ५१ ॥ दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ॥ साऽऽब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥ ५२ ॥ तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ॥ वित्तं त्वं मत्पते र्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥ षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ॥ तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमा गत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥ फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु सांप्रतम् ॥ तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५ ॥ अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ॥ आनीय जनको बालं रहस्ये धुंधुलीं ददौ ॥ ५६ ॥ तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ॥ लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥ ५७ ॥ ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ गीतवादि त्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मंगलं बहु ॥ ५८ ॥

बालककूं मैं दूध पियाया करूंगी ॥ ५४ ॥ और परीक्षाके निमित्त तू यह फल इस समय गायकूं देदे यह सुनकर उसने स्त्रीस्वभावसे यह सब कुछ किया ॥ ५५ ॥ कुछ समय उपरान्त उस नारीके बालक हुआ तब उसके पिताने एकान्तमें वोह बालक लाकर धुंधुलीको दिया ॥ ५६ ॥ तब धुन्धुलीने अपने स्वामीसे कही कि, मेरे सुखपूर्वक बालक उत्पन्न होगया आत्मदेवके संतान होनेसे बहुतोंको प्रसन्नता हुई ॥ ५७ ॥ जातकर्म किया ब्राह्मणोंको दान दिया गीत बाजोंके शब्द और सब मंगल उसके द्वारेपर हुए ॥ ५८ ॥

धुन्धुली अपने पतिसे बोली मेरे कुचोंमें दूध नहीं है सो मैं निर्दुग्धा दूसरीके दूध विना बालकको कैसे पालोंगी ॥ ५९ ॥ मेरी बहनका थोडेही दिनोंका उत्पन्न हुआ बालक मरगया है उसे अपने घरमें बुलालो काम धंधाभी करैगी बालककोभी पालन करैगी ॥ ६० ॥ पतिने पुत्ररक्षाके निमित्त यह सब कुछ किया माताने पुत्रका नाम धुंधुकारी रक्खा ॥ ६१ ॥ तीन महीने उपरान्त उस गायकेभी एक बालक उत्पन्न हुआ सर्वांग सुंदर उज्ज्वल दिव्यशरीर सुवर्णकी नाई ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण उसे देख बडा प्रसन्न हो स्वयं उसके संस्कार करता हुआ इसे आश्चर्य मानकर वहुत

भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ॥ अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥ मत्स्वसायाः प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ॥ तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥ पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ॥ पुत्रस्य धुंधुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥ ६१ ॥ त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ॥ सर्वांगसुंदरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान्स्वयमादधे ॥ मत्वाश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ॥ ६३ ॥ भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ॥ धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४ ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ॥ गोकर्णं च सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥ ६५ ॥ कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ॥ गोकर्णः पंडितो ज्ञानी धुंधुकारी महाखलः ॥ ६६ ॥ स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधसंयुतः ॥ दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनः ॥ ६७ ॥

मनुष्य देखनेको आये ॥ ६३ ॥ देखो अब आत्मदेवका भाग्य उदय हुआ है जो गौने भी देवरूपी बालक उत्पन्न किया है बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ६४ ॥ दैवसे किसीने भी इस भेदको नहीं जाना सब शरीर मनुष्यका केवल कानही गौके थे इसकारण पिताने इसका गोकर्णही नाम धरा ॥ ६५ ॥ कुछ कालमें वोह दोनों बालक तरुण हुए गोकर्ण ज्ञानी पंडित और धुन्धुकारी बडा दुष्ट हुआ ॥ ६६ ॥ स्नान शौच क्रियासे रहित कुत्सित वस्तु भक्षण करै क्रोधी दुष्टपरिग्रहकर्ता चाण्डालोंके हाथ भोजन करै ॥ ६७ ॥

चोर सबसे वैरकर पराये घरोंमें आग लगादे छोटे बालकोंको देखकर कुएमें डालदे ॥ ६८ ॥ हत्यारा शस्त्र धारे दीन और अंधोंको दुःख दे चांडालोंके संग प्रीति करै जाल लिये फिरै ॥ ६९ ॥ वेश्याके संगसे उसने अपने पिताका सब धन नष्ट करदिया एक समय पिता माताको पीटकर घरके बर्तन लेगया ॥ ७० ॥ उसका पिता कृपण धनहीन होजानेसे ऊंचे स्वरसे रोनेलगा पुत्रका न होनाही भला है, क्योंकि, कुपुत्र दुःखदायक है ॥ ७१ ॥ कहाँ रहूँ कहाँ जाऊँ कौन मेरे दुःख दूरकरै मैं दुःखसे प्राण त्याग दूंगा हा! बड़ा कष्ट है ॥ ७२ ॥ उस समय ज्ञानी गोकर्ण आकर

चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ॥ लालनायार्भकान्हत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत ॥ ६८ ॥ हिंसकः शस्त्रधारी च दीनांधानां प्रपीडकः ॥ चांडालाभिरतो नित्यं पाशहस्तश्च संगतः ॥ ६९ ॥ तेन वेश्याकुसंगेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ॥ एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥७०॥ तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह॥ वंध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥ ७१ ॥ क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ॥ प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥ तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ॥ बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥ असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ॥ सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४ ॥ न चेंद्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ॥ सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकांतजीविनः ॥ ७५ ॥ मुंचाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ॥ निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥

पिताको वैराग्य दिखाता हुआ समझाने लगा ॥ ७३ ॥ यह संसार असार है दुःखरूप मोह करानेहारा है। सुत किसका, धन किसका यह सब मिथ्या है, इसमें प्रेम करनेहारा रात दिन दुःखी होता है ॥ ७४ ॥ इंद्रकोभी कुछ सुख नहीं न चक्रवर्तीको कुछ है परन्तु एकान्तसेभी विरक्त मुनिकोही कुछ सुख है ॥ ७५ ॥ यह संतानरूप अज्ञान छोड़ मोहसे नरक होता है यह देह एक दिन गिरजायगा इसकारण सब कुछ त्यागनकर वनको जाओ ॥ ७६ ॥

उसके यह वचन सुन वनके जानेकी इच्छा करते गोकर्णसे इसप्रकार इसके पिता बोले हे पुत्र ! वनमें क्या कर्तव्य है सो तुम विस्तारसे कहो ॥७७॥ स्नेहपाशसे बँधाहुआ मैं लँगडा हुआ मूर्ख कर्मोंसे इस संसाररूपी अंधकूपमें पडा हूँ. हे दयालु पुत्र ! मुझे निकाल ॥७८॥ गोकर्ण बोला इस अस्थि मांस रुधिरसे बनेहुए देहमें अभिमान मत करो, स्त्रीपुत्रोंसे ममताको त्यागन करो, इस जगत्को प्रतिदिन क्षणभंगुर जानो, भक्तिमें प्रीति करके वैराग्यका सुख अनुभव करो ॥ ७९ ॥ नित्य भागवतधर्मोंको सेवन करो, काम्यकर्मोंका त्यागन करो, काम और तृष्णाको छोड साधुओंकी सेवा

तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गंतुकामः पिताऽब्रवीत् ॥ किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सुविस्तरम् ॥ ७७ ॥ अंधकूपे स्नेहपाशै र्बद्धः पंगुरहं शठः ॥ कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ॥ ७८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुंच ॥ पश्याऽनिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ ७९ ॥ धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ॥ अन्यस्य दोषगुणचिंतनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥ एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ॥ भक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययाऽसौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ छ ॥ सूत उवाच ॥ पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ॥ क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥

करो, औरोंके दोष गुणोंका चिंतन छोड़ भगवत्की सेवा और कथारसको नित्य पिओ ॥ ८० ॥ यह पुत्रका उपदेश सुन घर त्यागन कर वोह साठ वर्षकी अवस्था युक्त ब्राह्मण स्थिरमति करके वनको चलागया । नित्यप्रति श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा करने और दशमके पाठ करनेसे श्रीकृष्णको प्राप्त हुआ ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, पिताके मरजानेसे धुन्धुकारीने माताको बहुत मारा और कहा बता, धन कहाँ है ? नहीं तो लातोंसे मारूंगा ॥ १ ॥

इसप्रकार माता उसके वचनसे भयभीत दुःखी हो रातमें कुएमें गिरकर मरगई ॥ २ ॥ गोकर्ण योगमें स्थित हो तीर्थयात्राको चलेगये उसे न दुःख न सुख न कोई वैरी है न बन्धु ॥ ३ ॥ धुंधुकारी उस घरमें पांच वेश्याओंके साथ रहनेलगा बडा कुत्सितकर्मी उनका पालन मूर्खतासे करने लगा ॥ ४ ॥ एक समय उनको गहनेकी इच्छा हुई तो यह कामान्ध मृत्युका विचार न करके घरसे निकला ॥ ५ ॥ इधर उधरसे द्रव्य संचय करके फिर घरको आया उन्हें कितने एक भूषण और वस्त्र दिये ॥ ६ ॥ वहुत धनसंचय देखकर वे स्त्री रात्रिमें विचारने लगीं यह प्रतिदिन चोरी करता है

इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ॥ कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥ गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः ॥ न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बांधवः ॥ ३ ॥ धुंधुकारी गृहेऽतिष्ठत्पंचपण्यवधूवृतः ॥ अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः ॥ ४ ॥ एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ॥ तदर्थं निर्गतो गेहात्कामांधो मृत्युमस्मरन् ॥ ५ ॥ यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ॥ ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियंति च ॥ ६ ॥ बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो व्यचारयन् ॥ चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥ वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ॥ अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८ ॥ निहत्यैनं गृहीत्वाऽर्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ॥ इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबध्य रश्मिभिः ॥ ९ ॥ पाशं कंठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ॥ त्वरितं न ममारासौ चिंतायुक्तास्तदाऽभवन् ॥ १० ॥

कदाचित् राजा पकडलेगा तो ॥ ७ ॥ यह सब धन लेकर फिर इसे निश्चय मार डालेगा तो धनकी रक्षाके निमित्त गुप्त रीतिसे हमहीं इसे क्यों न मारडालैं ॥ ८ ॥ इसे मारके यह सब धन ले इच्छापूर्वक विचरैं. यह उन्होंने निश्चय करके सोते हुएको रस्सियोंसे बाँधा ॥ ९ ॥ इसके गलेमें फाँसी डालकर मारने लगीं जब यह जल्दी न मरा तो चिन्तासे विचारने लगीं ॥ १० ॥

बहुतसारे अंगारोंसे उसका मुख जलाया तब अग्नि लगनेके दुःखं करके वोह मरगया ॥ दोहा–जो गणिकाके सँग रमै, तेहिकी यह गति होय ॥ तासे कबहूं भूलसे, इनसे रमो न कोय ॥ ११ ॥ वे साहसवाली स्त्रियें उसके देहको गढेमें दाब देतीहुईं यह भेद किसीनेभी नहीं जाना ॥ १२ ॥ आदमियोंके पूछनेपर कहा कि, हमारा प्यारा दूर गया है वोह द्रव्य कमानेगया है इस वर्षके अन्तमें आवेगा ॥ १३ ॥ पंडितोंको योग्य है कि, दुष्ट स्त्रियोंका विश्वास न करैं जो इनका विश्वास करता है सो दुःखी होता है ॥ १४ ॥ इनके वचन कामियोंको रस बढानेवाले अमृतकी

तप्तांगारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ॥ अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११ ॥ तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२ ॥ लोकैः पृष्टा वदंति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ॥ आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन्वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥ स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद्बुधः ॥ विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४ ॥ सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५ ॥ संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ॥ धुंधुकारी बभूवाऽथ महान्प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥ वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥ न लेभे शरणं कुत्र हा दैवेति मुहुर्वदन् ॥ कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८ ॥ अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ॥ यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धं प्रवर्तयन् ॥ १९ ॥

समान हैं हृदय छुरेकी धाराकी नाईं है इससे कहते हैं कि, स्त्रियोंको कौन प्यारा है अर्थात् कोई भी नहीं है ॥ १५ ॥ वे कुलटा बहुत भर्त्ता करने वाली उसका सब धन लेकर चलीगईं और धुंधुकारी कुकर्मसे महाप्रेत हुआ ॥ १६ ॥ वायुरूप धारण कियेहुये नित्य दश दिशाओंमें फिरै शीत धूपसे व्याकुल निराहार भूँखा प्यासा ॥ १७ ॥ कहीं शांतिको न प्राप्त हुआ. हा दैव ! ऐसा वारंवार कहने लगा कुछ कालमें गोकर्णने लोगोंसे सुना कि, धुंधुकारी मरगया ॥ १८ ॥ उसे अनाथ जानकर गयामें श्राद्ध किया और जिस जिस तीर्थमें जाय तहाँ तहाँ श्राद्ध करै ॥ १९ ॥

इसप्रकार भ्रमण करताहुआ अपने नगरमें प्राप्त हुआ रात्रिमें घरके आँगनमें सोनेको आया इसे किसीने न जाना ॥ २० ॥ वोह धुंधुकारी तहाँ अपने भाईको सोता जानकर अर्द्धरात्रिमें महाभयानक शरीर दिखाता हुआ ॥ २१ ॥ कभी मेढा कभी हाथी कभी भैंसा होजाय कभी इन्द्र कभी अग्नि होजाय फिर पुरुष होगया ॥ २२ ॥ इस विपरीतको देखकर धीरज धारणकर गोकर्णने जाना कि, यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआ है ऐसा निश्चयकर बोला ॥ २३ ॥ गोकर्ण बोला, भाई ! तू कौन है जो रात्रिमें यहाँ आया है और इस दशाको प्राप्त है क्या तू प्रेत पिशाच वा राक्षस है सो

एवं भ्रमन्स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ॥ रात्रौ गृहांगणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २० ॥ तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुंधुकारी स्वबांधवम् ॥ निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ॥ सकृदिंद्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥ वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ॥ अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ॥ किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनःपुनः ॥ अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ २५ ॥ ततोंजलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदीरयन् ॥ तत्सेकाद्धतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६ ॥ प्रेत उवाच ॥ अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुंधुकारीति नामतः ॥ स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥

हमसे कह ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, जब इसप्रकारसे गोकर्णने पूछा तो वोह ऊंचे स्वरसे रोनेलगा वचन कहनेमें असमर्थ था केवल संज्ञाही करता हुआ अर्थात् संकेतसे कहा ॥ २५ ॥ तब गोकर्ण अंजलीमें जल ले मंत्र पढकर छिडका उसके छिडकनेसे पापरहित हो वोह कहने लगा ॥ २६ ॥ प्रेत बोला, गोकर्ण ! मैं धुन्धुकारी नाम तुह्मारा भाई हूं अपनेही दोषसे मैंने अपना ब्राह्मणत्व नाश करदिया है ॥ २७ ॥

महा अज्ञानमें रहनेवाले मेरे कुकर्मोंकी संख्या नहीं है मैं लोकोंका मारनेवाला मुझे स्त्रियोंने दुःखसे मारडाला ॥ २८ ॥ इससे प्रेतत्वको प्राप्त हुआहूं अपनी दुर्दशाभी कहताहूं दैवाधीनके फल प्राप्त होनेसे मैं पवन भक्षण कर जीता हूं ॥ २९ ॥ हे कृपासिंधु बंधु ! मुझे इस संकटसे शीघ्र छुड़ाओ यह वचन सुनकर गोकर्ण उसके प्रति कहने लगा ॥ ३० ॥ गोकर्ण बोला भाई ! मैंने तो तेरे निमित्त गयामें पिण्ड दिये थे सो अबभी मुक्ति नहीं हुई यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ३१ ॥ जो गयामें पिंड देनेसे मुक्ति न होवे तो फिर और उपाय नहीं है। हे प्रेत ! अब मैं क्या करूं सो तू विस्तारसे

अतः प्रेतत्व कर्मणो नास्ति संख्या मे महाऽज्ञाने विवर्तिनः ॥ लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥ अतः प्रेतत्व मापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ॥ वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥ २९ ॥ अहो बंधो कृपासिंधो भ्रातर्मामाशु मोचय ॥ गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ ३० ॥ गोकर्ण उवाच ॥ त्वदर्थं तु गयापिंडो मया दत्तो विधानतः ॥ तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१ ॥ गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ॥ किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ३२ ॥ प्रेत उवाच ॥ गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥ उपायमपरं किंचित्त द्विचारय सांप्रतम् ॥ ॥ ३३ ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ॥ शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥ ३४ ॥ इदानीं तु निजस्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ॥ त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥ धुंधुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ॥ गोकर्णश्चिंतयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥ ३६ ॥

कह ॥ ३२ ॥ प्रेत बोला, सौ गयाश्राद्धसेभी मेरी मुक्ति नहीं होगी कोई और उपाय तुम विचारो ॥ ३३ ॥ उसके यह वचन सुनकर गोकर्णको बड़ा आश्चर्य हुआ जो सौ श्राद्धसेभी मुक्ति न हो तो तेरी मुक्ति असाध्य है॥३४॥अब तू प्रेत ! अपने स्थानमें निर्भय रह तेरी मुक्तिका साधन मैं विचारकर करूंगा ॥ ३५ ॥ यह सुनके धुंधुकारी अपने स्थानको गया गोकर्णने सब रात्रिमें विचार किया परन्तु कोई उपाय निश्चित न हुआ ॥ ३६ ॥

प्रातः कालको गोकर्णका आना सुनकर बहुत लोग देखनेको आये तब गोकर्णने रात्रिका वृत्तान्त उनसे सब कहकर सुनाया ॥ ३७ ॥ विद्वान् योगी ब्रह्मवादी बहुत शास्त्र देखने लगे परन्तु कोई उपाय उसकी मुक्तिका नहीं सिद्ध हुआ ॥३८॥ तब सबने यही निश्चय किया कि, सूर्य भगवान्से इसका उपाय बूझिये जो वोह कहैं सो करो । तब गोकर्णने मंत्रबलसे सूर्यका वेग रोक दिया ॥ ३९ ॥ हे जगतके साक्षी ! तुम को नमस्कार है इसकी मुक्तिका उपाय बताओ ॥ ४० ॥ यह वचन सुनकर भगवान् भास्कर दूरसे स्फुट बोले श्रीमद्भागवतका सप्ताह-यज्ञ

प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ॥ तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ॥ ३७ ॥ विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ॥ तन्मुक्तिं नैव पश्यंति पश्यंतः शास्त्रसंचयान् ॥३८॥ ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ॥ गोकर्णः स्तंभनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा ॥ ३९ ॥ तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन्ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ॥ ४० ॥ तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमेतदभाषत ॥ श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहे वाचनं कुरु ॥ ४१ ॥ इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ सर्वेऽब्रुवन्प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ॥ ४२ ॥ गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ॥ ४३ ॥ पंग्वंधवृद्धमंदाश्च तेपि पापक्षयाय वै ॥ समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः ॥ ४४ ॥ यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ स प्रेतोपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ॥४५॥

करो मुक्ति हो जायगी ॥ ४१ ॥ यह धर्मरूप सूर्य भगवानका वचन सबने सुना सब कहने लगे निश्चय यह शुभकर्म कीजिये ॥ ४२ ॥ गोकर्णभी निश्चय कर कथा बाँचनेमें प्रवृत्त हुए तहाँ श्रवण करनेको देश और गाँवके मनुष्य आये ॥ ४३ ॥ लँगडे अंधे वृद्ध मंदभी पाप दूर करनेके निमित्त आये देवताओंको विस्मयदायक वडा समाज हुआ ॥ ४४ ॥ जब आसनके ऊपर बैठके गोकर्ण कथा कहने लगे तब वोह प्रेतभी आया और इधर उधर स्थान देखने लगा ॥ ४५ ॥

तब तहाँ एक सात गाठोंका बांस देखकर उसकी मूलमें छिद्रके द्वारा प्रवेशकर सुननेको बैठगया ॥ ४६ ॥ वोह पवनरूपी था इसकारण स्थित न रहसका तब बांसमें प्रवेश किया गोकर्णने एक मुख्य वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता कल्पना करके ॥ ४७ ॥ प्रथमस्कंधकी अच्छीप्रकार कथा गोकर्णने सुनाई जब संध्यासमय कथा विसर्जन हुई तब बडा आश्चर्य हुआ ॥ ४८ ॥ बांसकी एक गाँठ टूटगई और बडा शब्द हुआ इसीप्रकार दूसरे दिन संध्याके समय दूसरी गाँठ फटगई ॥ ४९ ॥ तीसरे दिन संध्यासमय तीसरी गाँठ फटगई. इसप्रकार सात दिनमें सात गाँठें

सप्तग्रंथियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणाय स्थितो ह्यसौ ॥ ४६ ॥ वातरूपी स्थितिं कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥ वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ॥ ४७ ॥ प्रथमस्कंधतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ दिनांते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ॥ ४८ ॥ वंशैकग्रंथिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥ द्वितीयेह्नि तथा सायं द्वितीयग्रंथिभेदनम् ॥ ४९ ॥ तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रंथिभेदनम् ॥ एवं सप्तदिनैर्वंशसप्तग्रंथिविभेदनम् ॥ ५० ॥ कृत्वापि द्वादशस्कंधश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥ दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममंडितः ॥ ५१ ॥ पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ॥ ५२ ॥ त्वयाहं मोचितो बंधात्कृपया प्रेतकश्मलात् ॥ धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ॥ ५३ ॥

टूटगई ॥ ५० ॥ द्वादशस्कंधके श्रवण करनेसे धुंधुकारी प्रेतत्वको त्यागन करता हुआ दिव्यरूप धारण कियेहुए तुलसीमाला पहरेहुए ॥ ५१ ॥ पीतवस्त्र धारण किये घनश्याम मुकुटधारे कुंडल पहरे, गोकर्ण अपने भाईको नमस्कार करके बोला ॥ ५२ ॥ भाई ! तुमने बडी कृपाकरके प्रेतरूपी पापसे छुडाया है यह भागवती कथा प्रेतबाधा दूर करनेवाली धन्य है ॥ ५३ ॥

यह सप्ताह धन्य है जो कृष्णलोक फलका देनेहारा है सप्ताह सुननेको बैठतेही मनुष्यके पाप काँपने लगते हैं ॥ ५४ ॥ हम प्रेतोंकी तो यह भागवत प्रलय करदेगी गीला सूखा लघु स्थूल वाणी मन कर्मसे किये ॥ ५५ ॥ पापको यह सप्ताह यज्ञ नाशकर देताहै जैसे अग्नि समिधाको इस भारतवर्षमें देवताओंकी सभामें विद्वानोंने ॥ ५६ ॥ कथा नहीं सुननेवालोंका निष्फल जन्म कहाहै मोहसे रक्षा कर करके पुष्ट बलवान् देहसे क्या है ॥ ५७ ॥ जिस शरीरने यह शुकशास्त्रकथा नहीं सुनी वोह अस्थियोंका स्तंभ नसोंसे बद्ध मांस रुधिरसे लेपित ॥ ५८ ॥ चर्मसे

सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ कंपंते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ॥ ५४ ॥ अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ॥ ५५ ॥ श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सूरिभिर्वेदसंसदि ॥ ५६ ॥ अकथाश्रविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥ ५७ ॥ अश्रवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ अस्थिस्तंभं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ॥ ५८ ॥ चर्मावनद्धं दुर्गंधं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ जराशोकविपाकार्तं रोगमंदिरमातुरम् ॥ ५९ ॥ दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभंगुरम् ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञांतं शरीरमिति वर्णितम् ॥ ६० ॥ अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥ यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ॥ ६१ ॥ तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ॥ ६२ ॥

आच्छादित दुर्गन्धयुक्त मूत्र पुरीषका पात्र है-बुढापा, शोकके फलसे युक्त रोगका स्थान दुःखरूप ॥ ५९ ॥ कभी मरता नहीं दुर्धर खोटा दोषसहित क्षणभंगुर कीडे विष्ठा और भस्मसंज्ञावाला यह शरीर कहाहै ॥ ६० ॥ इस अस्थिरसे सदैव रहनेहारा कर्म क्यों न साधन किया जाय जो प्रातःकाल खाया हुआ अन्न सायंकालमें नष्ट होजाता है ॥ ६१ ॥ सो अन्नादिके रससे पुष्ट इस कायाकी क्या नित्यता है क्षणभंगुर है सप्ताह श्रवण करनेसे लोकमें भगवान् निकटही प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥

इससे दोषनिवृत्तिके निमित्त एक यही साधन है जलोंमें बुद्बुदेकी नाईं, जंतुओंमें मशककी नाईं, कथाश्रवण रहित जन वृथाही उत्पन्न होते हैं ॥ ६३ ॥ जहाँ जड और सूखे बाँसकी भी गांठें टूट गईं तो फिर चित्तकी ग्रंथि टूट जाय तो क्या आश्चर्य है ॥ ६४ ॥ हृदयकी ग्रंथि टूट जाती सब संदेह नाश होजाते कर्म क्षय होजाते हैं जो सप्ताह श्रवण करते हैं ॥ ६५ ॥ संसाररूपी कीचडमें फँसे हुओंको धोनेमें यह कथा श्रेष्ठ है जिसका चित्त कथारूपी तीर्थमें है उसकी पंडितोंने मुक्ति कही है ॥ ६६ ॥ यह उसके कहते हुएही वैकुंठसे विमान आया जिसके चारोंओर प्रभा फैली

अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥ बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जंतुषु ॥ जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६३ ॥ जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्रंथिविभेदनम् ॥ चित्रं किमु तदा चित्तग्रंथिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४ ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥ ६५ ॥ संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ॥ कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ॥ ६६ ॥ एवं ब्रुवति वै तस्मिन्विमानमगमत्तदा ॥ वैकुंठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमंडलम् ॥ ६७ ॥ सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुंधुलीसुतः ॥ विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ अत्रैव बहवः संति श्रोतारो मम निर्मलाः ॥ आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९ ॥ श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ॥ फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवंतु हरिप्रियाः ॥ ७० ॥ हरिदासा ऊचुः ॥ श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोपि संस्थितः ॥ श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥ ७१ ॥

हुई वैकुंठ वासियोंसे युक्त ॥ ६७ ॥ सबके देखते हुए धुंधुलीका पुत्र विमानमें बैठा और तब विमानमें वैष्णवोंको बैठा देखकर गोकर्ण कहने लगा ॥ ६८ ॥ गोकर्ण बोले यहाँ बहुतसे सुननेवाले उज्ज्वल चित्त मेरी कथाके हैं उनके निमित्त विमान क्यों नहीं आये ॥ ६९ ॥ जब कि, सबका श्रवण बराबरही होताहै तो फलमें भेद क्यों हुआहै हरिके प्यारो ? यह बात कहो ॥ ७० ॥ हरिदास बोले, श्रवणके भेदसे फलका भी भेद हुआहै सबने सुना है परन्तु तिस प्रकारसे मनन नहीं किया ॥ ७१ ॥

इसकारणसे भजनसेभी फलभेद हुआ सात रात्रिपर्यंत व्रत करके प्रेतने श्रवण किया ॥ ७२ ॥ और उसने स्थिरचित्त होकर मननादि भी किया जिसको दृढ नहीं होता उसका ज्ञान हत है जिसने प्रमादसे सुनाहै वोहभी हत है ॥ ७३ ॥ संदिग्ध मंत्र हत है व्यग्रचित्तका जप हत अर्थात् निरर्थक है वैष्णवरहित देश हत है अपात्र अर्थात् विद्या सद्गुण रहितको श्राद्धमें देनाभी वृथा है ॥ ७४ ॥ वेदविद्यारहितको दान देना निरर्थक है सदाचाररहित कुल हत है गुरुके वाक्योंमें विश्वास और अपनेमें दीनताकी भावना करनी योग्य है ॥ ७५ ॥ मनके दोषोंको जीतना कथामें निश्चल

फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ॥ ७२ ॥ मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥ ७३ ॥ संदिग्धो हि हतो मंत्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥ अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ॥ ७४ ॥ हतमश्रोत्रिये दानमनाचारहतं कुलम् ॥ विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन्दीनत्वभावना ॥७५॥ मनो दोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ॥७६॥ पुनः श्रवांते सर्वेषां वैकुंठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ गोकर्ण तव गोविंदो गोलोकं दास्यति स्वयम् ॥ ७७॥ एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुंठं हरिकीर्तनाः ॥ श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ॥७८॥ सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद ॥ ७९ ॥ विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ॥ जयशब्दा नमश्शब्दास्तत्रासन्बहवस्तदा ॥ ८० ॥

मति रखनी जब इसप्रकारसे विश्वस्त शुद्धचित्त हो तब कथा सुननेका फल होता है ॥ ७६ ॥ फिर कथान्तमें सबका वैकुंठलोकमें वास होताहै हे गोकर्ण ! तुझे तो गोविंद भगवान् स्वयं गोलोकको देंगे ॥७७॥ इसप्रकारसे कहकर वे भगवान्के पार्षद सब वैकुंठलोकको चले गये फिर श्रावणके महीनेमें गोकर्णने कथाका आरंभ किया ॥ ७८॥ फिर सात रात्रिवाली सप्ताहकी कथाको उन सबने सुना ॥ हे नारदजी ! सुनो जब कथा समाप्त हुई तब ॥ ७९ ॥ विमानों और भक्तों सहित भगवान् प्रगट हुए तब चारों ओरसे जयशब्द नमः शब्द होने लगा ॥ ८० ॥

भगवान्‌ने प्रसन्न होकर तहाँ पांचजन्य शंखकी ध्वनि करी गोकर्णको आलिंगन करिकै अपने रूपकी समान बनालिया ॥८१॥ और जितने श्रोता थे उनको क्षणमात्रमें भगवान्‌ने घनश्याम पीतवस्त्रयुक्त किरीट कुंडलधारी करदिया ॥ ८२ ॥ और जो उस ग्राममें श्वानसे लेकर चांडालादि जाति के थे वेभी गोकर्णकी कृपासे विमानमें स्थितहुए ॥ ८३ ॥ वे भगवान्‌ने उस स्थानमें भेजदिये जहाँ योगी गमन करतेहैं और गोपाल श्रीकृष्णचंद्र गोकर्णसहित गोपवल्लभ गोलोकको गये ॥ ८४ ॥ कथाश्रवणसे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् गये जैसे पूर्वकालमें श्रीरामचंद्र अयोध्या

पांचजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ॥ गोकर्णं तु समालिंग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१ ॥ श्रोतॄनन्यान्घनश्यामान्पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुंडलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥ तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचांडालजातयः ॥ विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ ८३ ॥ प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छंति योगिनः ॥ गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ॥ ८४ ॥ कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ॥ ८५ ॥ तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ॥ तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥ ८६ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किं फलवृंदमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ॥ कर्णेन गोकर्णकथाक्षरं यैः पीतं च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥ वातांबुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ॥ योगैश्च संयाति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन याति याम् ॥ ८८ ॥

वासियोंको साकेत लोकको लेगयेथे ॥ ८५ ॥ इसीप्रकार भगवान् कृष्णचंद्रभी योगियोंके दुर्लभ गोलोकको उन्हे लेगये वहां सूर्य चंद्रमा और सिद्धोंकीभी कभी गति नहीं होती ॥ ८६ ॥ जो सप्ताहयज्ञमें इस कथाश्रवणसे फल प्राप्त होताहै हे महात्माओ ! हम कहांतक वर्णन करैं जिन्होंने गोकर्णकथाके अक्षर कर्णद्वारा पान किये हैं वे फिर गर्भमें नहीं आते ॥ ८७ ॥ जिस गतिको सप्ताह श्रवण करनेसे प्राप्त होतेहैं तिस गतिको पवन जल पत्ते भक्षण करि तपस्यासे देहके सुखानेवाले बहुत दिनोंसे उग्र तपके संचयवाले तथा योगीभी नहीं प्राप्त होते ॥ ८८ ॥

इस पवित्र इतिहासकोभी शांडिल्य मुनीश्वर चित्रकूटमे पाठ करनेसे ब्रह्मानंदसे व्याप्त हुए ॥८९॥ यह पवित्र आख्यान है जो इसे एक वार भी पाठकर लेताहै उसके सब पाप दूर होजाते हैं जो श्राद्धमें पढे तो पितरोंकी तृप्ति होतीहै नित्य पाठ करनेसे फिर जन्म नही होता ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां गोकर्णवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ कुमार बोले–अब हम तुम्हे सप्ताहश्रवणकी विधि सुनातेहैं जो विधि प्रायः धनसे भी साध्य है ॥ १ ॥ प्रथम तो ज्योतिषीको बुलाकर मुहूर्त पूछै जैसी विवाहादिमें मंडप रचना होती है तिसप्रकार करै ॥ २ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं शांडिल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानंदपरिप्लुतः ॥ ८९ ॥ आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ॥ श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्षवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ॥ सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छय यत्नतः ॥ विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ॥ एते मासाः कथारंभे श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः ॥ ३ ॥ मासानां विग्रहे यानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ॥ सहायाश्चेतरे चात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४ ॥ देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ॥ भविष्यति कथा चात्र आगंतव्यं कुटुंबिभिः ॥ ५ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ॥ ६ ॥

भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ, श्रावण ये महीनें कथारंभमें सुननेवालोको मोक्षसूचक हैं ॥ ३ ॥ जो महीनोके विग्रह हैं अर्थात् भद्रा, दग्ध, व्यतीपात, वैधृत, गंडान्त, रक्ष, मृत्यु उत्पातादि निंदित दिनोंको त्यागदे और सहाय जो अच्छा दिन नक्षत्रादि हैं सो सर्वथा करणीय हैं ॥ ४ ॥ देश देशमें यत्नपूर्वक यह वार्ता प्रगटकर देनी हमारे यहाँ कथा होगी सब कोई कुटुम्बसहित आओ ॥ ५ ॥ कोई हरिकथासे दूर हैं, कोई अच्युतके गुण कीर्तनसे दूर हैं, स्त्री शूद्रादिकोंको जिसप्रकारसे बोध होजाय सो करना ॥ ६ ॥

देश देशमें जो विरक्त वैष्णव कीर्तन करनेवाले हैं उनके पास भी पत्र भेजने और यह लिखदेना ॥ ७ ॥ महादुर्लभ सात दिनपर्यन्त सत्पुरुषोंका समाज होगा और अपूर्वरसरूपी भगवान्‌की कथा होगी ॥ ८ ॥ श्रीमद्भागवतरूपी अमृतके पानमें रसलंपट आप प्रेमीजन शीघ्र आइये ॥ ९ ॥ यदि अवकाश न हो तो एक दिनको तो अवश्य आइये क्योंकि इस समाजका क्षणमात्रकाभी सत्संग दुर्लभ है ॥ १० ॥ इसप्रकारसे उन सबको पत्र भेजकर आयेहुओंके निमित्त वास और स्थान कल्पना करे ॥ ११ ॥ चाहे तीर्थमें, चाहे वनमें, चाहे घरमें सुने

देशेदेशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ ७ ॥ सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ॥ अपूर्वरसरूपेव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलंपटाः ॥ भवंतश्च तथा शीघ्रमायांतु प्रेमतत्पराः ॥९॥ नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु ॥ सर्वथागमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥१०॥ एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ॥ आगंतुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥ तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ॥ विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ॥१२॥ शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमंडनम् ॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ॥ १३ ॥ अर्वाक्पंचाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ॥ कर्तव्यो मंडपः प्रोच्चैः कदलीखंडमंडितः ॥ १४ ॥ फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ॥ चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसंपद्विराजितः ॥ १५ ॥

कहीं कथा स्थान बडी पृथ्वीमें कल्पना करे जहाँ बहुत स्थान हो ॥ १२ ॥ जलादिकोंसे संमार्जन कर बुहारीसे बुहार गोबरसे लीपदे गेरू आदिकोंसे चित्रित कर घरकी सामग्री उठाकर एक कोनेमें लगादे ॥ १३ ॥ पांच दिन पहले बड़े बड़े आसन ग्रहणकर रक्खे केलेके वृक्षोंसे मंडित मंडप ऊँचा बनावे ॥ १४ ॥ फल पुष्प पत्ते आदि सहित चारोंओर बंदनवार बांधदे चारोंओर ध्वजा बांधदे वितान अर्थात् चंदोवा तानदे ॥ १५ ॥

वेदिकाके ऊपरभागमें सात लोक अर्थात् सात स्थान बनावे उनमें विरक्त ब्राह्मण बैठावे ॥ १६ ॥ प्रथम तो तिन्हें यथायोग्य आसन दे पुनः वक्ताकोभी एक दिव्य सुंदर ऊँचा आसन जिसपर बैठकर कथा कहै ॥ १७ ॥ वक्ता उत्तरकी ओर मुख करके बैठे और सुननेहारे पूर्वकी ओर मुख करके बैठें अथवा वक्ता पूर्वको देखकर बैठे श्रोता उत्तरको ॥ १८ ॥ अथवा पूजा करनेहारे और पूज्यके मध्यसे पूर्वदिशामें सब सुननेहारे बैठें ॥ १९ ॥ विरक्त वैष्णव ब्राह्मण वेदशास्त्रानुसार शुद्ध अथवा वेदशास्त्रका जाननेहारा दृष्टान्त देनेमें कुशल धीर लोभरहित ऐसा वक्ता होना चाहिये ॥ २० ॥ जो अनेक धर्मोंमें भ्रमते हैं अर्थात् जहां जैसा देखा वहाँ पैसेके निमित्त उसी मतमें होगये स्त्रीलंपट अर्थात् पराई

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ॥ तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥१६॥ पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ॥ वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥ उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा ॥ प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥ अथ वा पूर्वदिग्ज्ञेयाः पूज्यपूजकमध्यतः ॥ श्रोतॄणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥ १९ ॥ विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्राभिशुद्धिकृत् ॥ दृष्टांतकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिस्स्पृहः ॥ २० ॥ अनेकधर्मविभ्रांताः स्त्रैणाः पाखंडवादिनः ॥ शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पंडिताः ॥ २१ ॥ वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ॥ पंडितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥ वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनाद्वाग्व्रताप्तये ॥ अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥ २३ ॥ नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं संप्रयत्नतः ॥ कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

स्त्रियोंको चोरीसे ले भागनेवाले पाखंडवादी यदि वे पंडित भी हों तोभी यह श्रेष्ठ शास्त्रकी कथा उनसे न कहावे ॥ २१ ॥ कथा कहनेवालेके धोरे एक औरभी पंडित स्थापन करने योग्य है जो संदेहोंको छेदन करनेमें समर्थ हो लोकोंको समझासकै ॥ २२ ॥ व्रतके निमित्त वक्ताको एक दिन पहले क्षौर कराना योग्य है और अरुणोदय होतेही यह शौचादिसे निवृत्तहो स्नान करै ॥ २३ ॥ प्रथम तो नित्य संध्या संक्षेपसे करके कथाके विघ्ननाशके निमित्त गणेशजीका पूजन करै ॥ २४ ॥

पितृन्संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ मंडलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५ ॥ कृष्णमुद्दिश्य मंत्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ॥ प्रदक्षिणनमस्कारान्पूजांते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥ संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥ कर्ममोहगृहीतांगं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥ श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ॥ कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ॥ २८ ॥ ततस्तु श्रीफलं दत्त्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥ स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ॥२९॥ श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ॥ स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥ ३० ॥ मनोरथो मदीयोयं सफलः सर्वथा त्वया ॥ निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोहं तव केशव ॥ ३१ ॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् ॥ संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजांते तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥ शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥ तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ॥ सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥

पितरोंका तर्पण करके शुद्धिके वास्ते प्रायश्चित्त करे, एक मंडल बनाकर हरि भगवान्का पूजन करना चाहिये ॥ २५ ॥ कृष्णके उद्देशसे अर्थात् "नमः कृष्णाय" इस मंत्रोंसे आरंभ कर पूजा सम्पूर्ण करे प्रदक्षिणा नमस्कारादि करके पूजाके अन्तमें स्तुति करे ॥ २६ ॥ कि, हे करुणानिधान! संसारसागरमें मग्न हुये मुझ दीनको जो कि, मैं कर्ममोहसे गृहीत होरहा हूं आप संसारसागरसे उद्धार कीजिये ॥ २७ ॥ फिर श्रीमद्भागवतकी भी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिये प्रीतिसे धूप दीप नैवेद्य करे ॥ २८ ॥ फिर नारियल चढाकर नमस्कार करे, फिर प्रसन्न चित्त होकर स्तुति करे ॥ २९ ॥ यह श्रीभागवतकी कथा प्रत्यक्ष श्रीकृष्णरूपही है. हे नाथ ! भवसागरसे मुक्तहोनेके निमित्त मैंने यह स्वीकार किया है ॥ ३० ॥ यह मेरा मनोरथ तुम्हींसे सफल होगा सो महाराज मैं आपका दास हूं ऐसा हो कि, इसकी निर्विघ्न समाप्ति होजाय ॥३१॥ ऐसे नम्र वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे. वस्त्र भूषणसे भूषित कर फिर पूजा करके स्तुति करे ॥३२॥ आप शुकदेवके रूप ज्ञानदेनेहारे सब शास्त्रके ज्ञाता हो इस कथाके प्रकाशसे मेरा अज्ञान दूर करो ॥३३॥ फिर वक्ताके आगे कल्याणके निमित्त नियम करे प्रसन्न होकर यथाशक्ति सात रात्रितक नियम धारण करे ॥३४॥

कथाभंगनिवृत्तिके निमित्त पांच ब्राह्मणोंको वरण करै वे द्वादशाक्षर "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस विद्याका जप करते रहैं ॥ ३५ ॥ और वैष्णव ब्राह्मणोंको तथा हरिचरित्र कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार कर पूजन कर उनसे आज्ञा ले आप आसनपर बैठे ॥ ३६ ॥ लोक, धन, स्थान, पुत्रादि सबकी चिंता त्यागन करके कथामें शुद्ध बुद्धिसे चित्त लगावे उसे उत्तम फल प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ वक्ताको सूर्योदयसे लेकर साढेतीन प्रहरतक कथा बाँचनी योग्य है और जल्दी न करै धीरे कंठसे बाँचे ॥ ३८ ॥ दुपहरको दो घडीपर्यंत कथाका विराम करै कथान्तमें वैष्णव भगवा

वरणं पंचविप्राणां कथाभंगनिवृत्तये ॥ कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ॥ नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥ ३६ ॥ लोकवित्तधनागारपुत्रचिंतां व्युदस्य च ॥ कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ॥३७॥ आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरांतिकम् ॥ वाचनीया कथा सम्यग्धीरकंठं सुधीमता ॥ ३८ ॥ कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ॥ तत्कथामनुकार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ ३९ ॥ मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥ उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥ घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम् ॥ ४१ ॥ फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ॥ सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥ भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारणम् ॥ नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥ ४३ ॥

नका कीर्तन करै ॥३९॥ मल मूत्रकी बाधा शान्तिके निमित्त लघु आहार करना योग्य है सो कथा सुननेहारोंको चावल दुग्धादिका भोजन एकबार कर्तव्य है ॥४०॥ यदि शक्ति हो तो सात रात्रिपर्य्यन्त व्रत करके कथा सुनै अथवा घृतपान दुग्धपान कर सुनै ॥ ४१ ॥ या फलाहार करकै सुने वा एकही बार भोजन करै अथवा जिसप्रकारसे श्रवण करनेमें आलस्य न आवै सुखमिले सो करै ॥ ४२ ॥ यदि भोजन करनेसे कथाश्रवण करनेमें आलस्यादि न आवै तो अच्छा है और यदि उपवास करनेसे कथामें विघ्न पडे तो वोह ठीक नहीं ॥ ४३ ॥

हे नारदजी ! सप्ताहमें व्रत करनेवालोंके तुम नियम सुनो विष्णुदीक्षाविहीन जो गायत्रीका जप वा जिन्होंने भगवान्का मंत्र गुरुसे नहीं लियाहै उनका कथाश्रवणकरनेमें अधिकार नहीं है ॥४४॥ ब्रह्मचर्य, पृथ्वीमें शयन, पत्तलमें भोजन, कथासमाप्तिमें भोजन, नित्यव्रती करै ॥४५॥ कथा सुननेवाले व्रती दो पत्तेवाले अन्न, मधु, तैल, गारिष्ठ अन्न, स्वाभाविक दुष्ट अन्न और बासी अन्नको सदा त्यागन करै॥४६॥ काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दंभ, मोह, वैर कथाश्रवणकरनेहारा त्यागदे ॥ ४७ ॥ कथाका व्रती वेद वैष्णव ब्राह्मण गुरु गौ व्रतधारी स्त्री राजा कुटुम्बियोंकी निंदा न

सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्छृणु नारद ॥ विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४५ ॥ द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥ भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥ कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ दंभं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥ ४७ ॥ वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥ रजस्वलांत्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥ सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ उदारं मानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ॥ ५० ॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ॥ अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥ ५१ ॥ अपुष्पा काकवंध्या च वंध्या या च मृतार्भका ॥ स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

करै ॥४८॥ रजस्वला नीच म्लेच्छ पतित चांडाल ब्राह्मणद्वेषी और जे वेदबाह्य हैं उनसे व्रती बात न करै ॥ ४९ ॥ सत्य, पवित्रता, दया, मौन, नम्रता, विनय, मनमें उदारता यह व्रतीको कर्तव्य हैं ॥५०॥ दरिद्री क्षयी रोगी निर्भाग्य पापकर्मा जिसके पुत्र न हो और मुक्तिकी इच्छावाला सदा इस कथाको सुनै ॥ ५१ ॥ जिसको रजोदर्शन न होता हो काकवंध्या अर्थात् एकबार जिसके बालक हुआहो अथवा जिसके बालक होकर मरजातेहों जिसका गर्भ गिरनेलगे वह स्त्रीभी कथाको प्रयत्नसे सुनै ॥ ५२ ॥

इन सात दिनपर्यंत जो विधिपूर्वक सुनै तो अक्षय फल होताहै, यह दिव्य कथा अत्युत्तम है, करोडों यज्ञ फलकी देनेहारी है ॥ ५३ ॥ इसप्रकार व्रतका विधान करकै फिर उद्यापन करै फलकी इच्छा करनेवालोंको जन्माष्टमीके व्रतकी नाईं यह कर्तव्य है ॥ ५४ ॥ निष्किंचन अर्थात् निष्काम भक्तोंको उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है वे निष्काम वैष्णव श्रवणमात्रसेही पवित्र होजाते हैं ॥ ५५ ॥ इस सप्ताहयज्ञकी समाप्तिमें श्रोताओंको पुस्तककी और वक्ताकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी योग्य है ॥५६॥ प्रसाद नैवेद्य तुलसीमाला सुननेवालोंको देनी फिर मृदंग ताल आदि

एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत् ॥ अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५३ ॥ एवं कृत्वा व्रतविधिमु-द्यापनमथाचरेत् ॥ जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकांक्षिभिः ॥ ५४ ॥ अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ॥ श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ ५५ ॥ एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन्समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्याऽतिभक्तितः ॥ ५६ ॥ प्रसादतुलसीमालाः श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ॥ मृदंगतालललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ॥ ५७ ॥ जयशब्दं नमश्शब्दं शंखशब्दं च कारयेत् ॥ विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५८ ॥ विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ॥ गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशांतये ॥ ५९ ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ॥ पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६० ॥ अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ॥ तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥

वाजोंसे कीर्तन करना योग्य है ॥ ५७ ॥ फिर जयशब्द नमःशब्द और शंखध्वनि करै ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्न दे ॥ ५८ ॥ जो मुख्य श्रोता विरक्त हो तो दूसरे दिन गीता बाँचनी और जो गृहस्थ होय तो कर्मशांतिके निमित्त हवन कर्तव्य है ॥ ५९ ॥ प्रतिश्लोक दशमस्कंधकेसे विधिपूर्वक खीर शहद घी तिल अन्नोंसे हवन करै ॥ ६० ॥ अथवा गायत्रीसे सावधान होकर हवन करै क्योंकि यह परम पुराण तत्त्वसे गायत्रीमय ही है ॥ ६१ ॥

जो होम करनेमें असमर्थ हो तो बुद्धिमान् उसके फलकी सिद्धिके निमित्त होम करने योग्य वस्तु दे अनेक प्रकार छिद्रशांतिके निमित्त और न्यू
नता अधिकता ॥ ६२ ॥ दोषोंके शान्त करनेको सहस्रनामका पाठ करै इससे सब सफल होजाताहै क्योंकि इससे अधिक और कुछ नहीं है ॥
॥ ६३ ॥ फिर बारह ब्राह्मणोंको बूरा मिश्रित खीरसे भोजन करावे और व्रतपूर्तिके निमित्त सुवर्ण गाय देना योग्य है ॥ ६४ ॥ और जो सम
र्थ हो तो तीन पलका सोनेका सिंह बनाकर उसके ऊपर सुंदर अक्षरोंसे लिखीहुई यह पुस्तक स्थापन करै ॥ ६५ ॥ पूजन कर आवाहनादि उप
चार दक्षिणा सहित वस्त्र भूषण गंधादिसे पूजित जितेन्द्रिय ॥६६॥ बुद्धिमान् आचार्यके निमित्त पुस्तक प्रदान करै तौ भवबंधनसे मुक्त होजाय

होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये ॥ नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः॥६२॥ दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥ तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ ६३ ॥ द्वादश ब्राह्मणान्पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः ॥ दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥६४॥ शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ॥ तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५ ॥ संपूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ॥ वस्त्रभूषणगंधाद्यैः पूजिताय यतात्मने॥ ६६ ॥ आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबंधनैः ॥ एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७ ॥ फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ॥ धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥६८॥ कुमारा ऊचुः ॥ इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥ ६९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ॥ सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ७० ॥

इस प्रकारके सब पाप हरनेहारे विधानके करनेसे ॥ ६७ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण फलका देनेहारा होताहै. यह धर्मार्थकाममोक्षका साधन
है इसमें,कुछभी सन्देह नहीं है ॥६८॥ कुमार बोले नारदजी, यह तो सब कुछ तुमको सुनाया अब क्या सुननेकी इच्छाहै ? श्रीमद्भागवतके श्रवण
करनेसेही भुक्ति मुक्ति हाथमें स्थित होतीहै ॥६९॥ सूतजी बोले, ऐसा कहनेके उपरान्त वे सनकादिक महात्मा भागवतकी कथा वर्णन करते हुए
जो कथा सब पापकी हरनेहारी पुण्यरूप भुक्ति मुक्तिकी देनेहारीहै ॥ ७० ॥

इस सप्ताह कथाको सब जितेंद्रिय महात्मा और सब प्राणियोंसे यथाविधि श्रवण करनेसे पुरुषोत्तम भगवान्‌को प्रसन्न किया ॥ ७१ ॥ तिससे अन्तमें ज्ञान वैराग्य और भक्तिकी बड़ी पुष्टि हुई सब प्राणियोंके मनहरनेहारे ज्ञान वैराग्य तत्काल तरुण होगये ॥ ७२ ॥ नारदजी अपना मनोरथ पूर्ण होजानेसे कृतार्थ होगये शरीर पुलकित सर्वांगमें आनंद भरगया ॥ ७३ ॥ इसप्रकार भगवान्‌के प्यारे नारदजी कथा श्रवण करके प्रेमसे गद्गदवाणी हो हाथ जोड सनकादिकोंसे ॥ ७४ ॥ नारदजी बोले—मैं धन्य हूं, आप करुणासागरोंने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की, आज मुझे

श्रृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ॥ यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥ तदंते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता पुरा ॥ तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ॥ ७२ ॥ नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे ॥ पुलकीकृतसर्वांगः परमानंदसंभृतः ॥ ७३ ॥ एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृतांजलिः ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ॥ अद्य मे भगवाँल्लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥ ७५ ॥ श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ॥ वैकुंठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ॥ परिभ्रमन्समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ७७ ॥ तत्रायये षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचंद्रमाः ॥ कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन्भागवतं शनैश्शनैः ॥ ७८ ॥

सब पाप हरनेहारे हरि भगवान् मिलगये ॥ ७५ ॥ हे तपोधनवारे महात्माओ ! सब धर्मोंसे श्रवणधर्म अधिक है कारण कि, जिसके श्रवणसे वैकुंठमें स्थित कृष्ण प्राप्त होतेहैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि, वैष्णवोत्तम नारदजी जिससमय यह कहरहेथे उसी समय विचरते हुए योगीश्वर शुकदेवजी आगये ॥ ७७ ॥ वोह षोडश वर्षकी अवस्था युक्त व्यासजीके पुत्र ज्ञानमहासागरके चन्द्रमा श्रीमद्भागवतके प्रकाशक कथावसानमें अपनेही लाभसे परिपूर्ण प्रेमपूर्वक शनैःशनैः श्रीमद्भागवतका पाठकरते हुए आये ॥ ७८ ॥

इन बडे उग्र तेजस्वीको देखतेही सब सभासद् उठ खडेहुये और महा आसन दिया और नारदजीने प्रीतिपूर्वक उनका पूजन किया तब सुखसे स्थित हो शुकदेवजी बोले सो वाणी सुनो ॥ ७९ ॥ शुकदेवजी बोले वेद कल्पवृक्ष है उसका यह भागवत फल है सो मुझ शुकदेवके मुखसे पृथ्वीमें गिराहै इस कारण अमृतरूपी रससे संयुक्त है जिस फलमें तोतेकी चोंच लगजाती है वोह अधिक मीठा होताहै यहाँ शुकरूपी शुकदेवजीने इसका स्वाद लियाहै इसकारण यह अधिक मीठा होगया है " यह भाग्य है " यह भक्तिरूप रससे पूर्ण है हे रसिको ! भगवच्चरितामृत पान करनेहारे महात्माओ ! इससे मोक्षभी न्यून है इसकारण इसे वारंवार पान करो ॥८०॥जिस श्रीमद्भागवतमेंसे फलकांक्षारूप कपट धर्म सम्यक् त्यागदियाहै

दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ॥ प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत्संशृणुता मलां गिरम् ॥ ७९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रस मालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८० ॥ धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तुशिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्त त्क्षणात् ॥ ८१ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्प्रपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ ८२ ॥

केवल ईश्वरसेवारूप धर्म निरूपण किया है मत्सरता रहित सत्पुरुषोंका इसमें अधिकार है महामुनि श्रीनारायणके बनायेहुए इस श्रीमद्भागवतमें वास्तव परमार्थरूप एक परमेश्वरही जानने योग्य है जो कल्याणदायक तीनों तापका नाश करनेहारा है निश्चय श्रीमद्भागवतके सुननेवाले माहात्माओंके हृदयमें शीघ्र ईश्वर प्राप्त होजाताहै क्या और शास्त्रोंसे शीघ्र हृदयमें प्राप्त होजाताहै अर्थात् नहीं होता ॥ ८१ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराणोंमें श्रेष्ठ वैष्णवोंका परमधन है जिसमें भक्तोंके परमप्रिय ज्ञान परब्रह्म श्रीकृष्णही गाये जाते हैं जिस श्रीमद्भागवतमें ज्ञान वैराग्य भक्तिसहित निष्कर्मतारूप ब्रह्म हृदयमें प्राप्त होते हैं इसके श्रवण पठन करनेसे विचारकरने भाक्ति करनेसे मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ८२ ॥

स्वर्गमें सत्यलोकमें कैलासमें वैकुंठमें यह रस नहीं है इस कारणसे सद्भाग्यवाले इसे पियो कभी त्याग न करो ॥ ८३ ॥ सूतजी बोले,
शुक देवजीके ऐसा कहते संते सभाके मध्यमें नारायण प्रगट होगये । प्रह्लाद, बलि, उद्धव, अर्जुनादि करके युक्त भगवान्का नारदजीने पूजन
किया ॥ ८४ ॥ आगे आसनमें बैठे हुए भगवानके सम्मुख वे सब कीर्तन करने लगे पार्वती सहित शिव और ब्रह्माजी कीर्त्तन दर्शन कर
नेके निमित्त तहाँ आये ॥ ८५ ॥ प्रह्लादने तालैं धारण करीं, तरलगतिसे उद्धवने छैने अर्थात् झाँझ धारण करीं, नारदजीने वीणा धारण

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुंठे नास्त्ययं रसः ॥ अतः पिबंतु सद्भाग्या मा मा मुंचत कर्हिचित ॥ ८३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं
ब्रुवाणे सति बादरायणे मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ॥ प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥
॥ ८४ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चाक्रिरे कीर्त्तनमग्रतस्तदा ॥ भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत्कीर्तनदर्श
नाय ॥ ८५ ॥ प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जु
नोऽभूत् ॥ इंद्रोऽवादीन्मृदंगं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्राग्रे भाववक्ता रसविरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥
॥ ८६ ॥ ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ॥ अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि
वचोऽब्रवीत्तत् ॥ ८७ ॥ मत्तो वरं भागवताः श्रृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि सांप्रतम् ॥ श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्र
सन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥ ८८ ॥

किया, स्वरभेदमें कुशल होनेसे अर्जुनने राग गाना प्रारम्भ किया, इन्द्रने मृदंग बजाना प्रारम्भ किया । कुमार जय जय अथवा धन्य २ कहने
लगे और सबके आगे रसकी विरचनासे भावके बतानेवाले शुकदेवजी हुए ॥ ८६ ॥ उन तेजस्वियोंके स्थानमें भक्ति ज्ञान वैराग्योंका त्रिक
नटकी नाईं नाचने लगा यह अलौकिक कीर्तन देखकर नारायण प्रसन्न होकर वचन बोले ॥८७॥ हे भक्तो ! तुम्हारे कीर्तनसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ
जो इच्छा हो सो वर माँगों. यह सुनकर वे सब हरिभक्त प्रेमसे गद्गद हो बोले ॥ ८८ ॥

महाराज ! सप्ताहकी कथाओंमे इसीप्रकार आपको प्रगट होना योग्य है अथवा भक्तोंके हृदयमें प्रगटहुआ कीजिये यही हमारा मनोरथ पूर्ण करो बहुत अच्छा ऐसा कहकर नारायण अन्तर्धान होगये ॥ ८९ ॥ इसके उपरान्त नारदजी सनकादिकोंके चरणोंको नमस्कार करते हुए और शुकदेवजी तथा अन्य तपस्वियोंकोभी नमस्कार किया वे सब मोहरहित प्रसन्न हो कथामृत पान करके यथास्थानको चले गये ॥ ९० ॥ भक्ति ज्ञान वैराग्य सहित शुकदेवजीने इस भागवत शास्त्रमें स्थापित करीहै इस कारण भागवतके सेवन करनेसे भगवान् वैष्णवोंके चित्तमें प्राप्त होते हैं ॥ ९१॥

नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमतिप्रयत्नात्॥ मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वान्तरधीयताच्युतः॥ ॥ ८९ ॥ ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ॥ अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९० ॥ भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेपि तदा शुकेन ॥ अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१ ॥ दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ॥ संसारसिंधोः परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥ शौनक उवाच ॥ शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ॥ सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिंधि मे संशयं त्विमम् ॥ ९३ ॥ सूत उवाच ॥ आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ॥ नवमीतो नभस्ये च कथारंभं शुकोऽकरोत ॥ ९४ ॥

दारिद्र्य दुःखज्वरसे दुःखित माया पिशाचिनीसे मर्दित संसारसमुद्रमें गिरतेहुओंको कल्याणके निमित्त यह भागवतकी कथा गर्जतीहै ॥ ९२ ॥ शौनकजी बोले, शुकदेवजीने राजा परीक्षित्को यह कथा कब सुनाई और गोकर्णने कब सुनाई तथा सनत्कुमारादिकोंने नारदजीको कब सुनाई ? यह हमारा संदेह दूर करो ॥ ९३ ॥ सूतजी बोले—कृष्णचंद्रके परलोक जानेके तीस वर्ष उपरान्त भादोंके शुक्ल पक्षकी नौमीको शुकदेवजीने यह कथा राजा परीक्षितको सुनाई ॥ ९४ ॥

परीक्षित्को कथासुनानेके दोसौ वर्ष उपरान्त आषाढके शुक्ल पक्षमें गोकर्णने कथाका आरम्भ कियाथा ॥ ९५ ॥ तिससेभी फिर कलियुगके तीन सौ वर्ष व्यतीत होनेमें कार्तिकके शुक्ल पक्षमें सनकादिकोंने कथा सुनाई ॥ ९६ ॥ हे पापरहित ! जो कुछ तुमने पूछा सो मैंने सुनाया कलियुगमें यह भागवतकी वार्ता संसाररोगकी नाश करनेवाली है ॥ ९७ ॥ कृष्णकी प्यारी सब पापोंकी नाश करनेहारी मुक्तिकी कारण भक्तिकी लीला करानेहारी यह कथाहै जो जो महात्मा आदरसे इस कथाको पान करते हैं उनको और तीर्थोंके सेवन करनेकी क्या आवश्यकता है ॥ ९८ ॥ यमराजने

परीक्षिच्छ्रवणांते च कलौ वर्षशतद्वये ॥ शुद्धे शुचौ नवम्याञ्च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ॥ ९५ ॥ तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ॥ ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥ इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ ९७ ॥ कृष्णप्रियं सकलकश्मलनाशनं च मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ॥ संतः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हितार्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ ९८ ॥ स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगवत्कथासु मत्तान्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥ असारे संसारे विषयविषसंगाकुलधियः क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथाऽतुलसुधाम्॥ किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुन्युक्तिकथने ॥ १०० ॥

पाश हाथमें लिये अपने दूतोंके कानमें यह बात कही कि, जो भगवत्कथा रसमें मत्त हैं तुम उनके निकट कभी मत जाइयो मैं औरोंका कर्ता हूं परन्तु वैष्णवोंका नहीं हूं वे प्रतिदिन भागवतकी सेवा करते हैं ॥ ९९ ॥ इस असार संसारमें विषयरूपी विषके संसर्गसे व्याकुल बुद्धिवालोंको योग्य है कि आधे क्षणको तो अतुल अमृतरूपी शुकदेवजीकी गाथाको कल्याणके निमित्त पानकरें, अरे ! कुत्सित कथाके कुमार्गमें क्यों व्यर्थ फिरते हो इस कथाके श्रवण करनेमें निश्चय मुक्ति होती है इस वार्त्ताके महाराज परीक्षित् साक्षी हैं ॥ १०० ॥

रसप्रवाहके युक्त श्रीशुकदेवजीने यह कथा कही है जो कोई इसे कंठमें धारण करता है वोह वैकुंठका प्रभु होता है ॥ १०१ ॥ हे शौनक ! इस प्रकारसे यह परमगुह्य सब सिद्धान्तोंका सिद्धान्त अनेक शास्त्रोंकी आलोचना कर कहा है जगत्में शुक कथासे निर्मल और कुछ नहीं है परम सुखके कारण द्वादशस्कंधात्मक श्रीमद्भागवत रसको पानकर ॥ १०२ ॥ जो नियमित होकर इस कथाको श्रवण करते और भक्ति प्रीतिसे शुद्ध

रसप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ॥ कंठे संबध्यते येन स वैकुंठप्रभुर्भवेत् ॥ १०१ ॥ इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धांतसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुंजं विलोक्य ॥ जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किंचित्पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥ १०२ ॥ एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ॥ तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्नहि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥ १०३ ॥ ॥ इति श्रीपाद्मे महापुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

वैष्णवोंके आगे सुनाते हैं वे वक्ता श्रोता सम्यक् विधान करनेसे सम्पूर्ण फलको प्राप्त होते हैं सत्य वचनसे संसारमें कोई वस्तुभी असाध्य नहीं है ॥ १०३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कान्यकुब्जवंशोद्भवसुखानंदमिश्रसूनुपण्डितज्वालाप्रसादकृतभाषाटीकायां श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ शुभमस्तु ॥

कवित्त—नित्यप्रति प्रेम नेम यम व्रत धारकर राखिकै विश्वास सुनै कथा मन लायकै ॥ ताके सब पापके पहारहू विलाय जात होय सो पवित्र ब्रह्म तीर्थमें नहायके ॥
कैसोही हो कार्य अभिलाष हियेमाहिं धरो तुर्त होय सिद्ध सुख पाइये अघायकै ॥ कहै ज्वालाप्रसाद जो पाठ करै सदैवहू धर्म अर्थ काम मोक्ष लेवै सो बुलायकै ॥ १ ॥

दोहा—श्रीव्रजचन्द मुकुन्दको, ध्यान हृदयमें लाय। कियो महातमको तिलक, यदुपति रहैं सहाय ॥

एतच्छ्रीमद्भागवतमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं मुंबय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन खेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयेऽङ्कितम् ।
वैशाख कृष्ण शके १८३५, संवत् १९७०.

श्रीभागवतस्थवृत्तलक्षणानि उवाचपरिगणनं ग्रंथसंख्यागणना च ।

॥ श्रीहरिः ॥ निगमकल्पतरोः० ॥ द्रुतविलंबितमाह नभौ भरौ ॥ जयजय जह्यजामजित० ॥ यह वेदस्तुतिमें नर्कुटक छंदहै ॥ ताको लक्षण ॥ यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्कुटकम् ॥ वामबाहुकृतवामकपोलो०॥ इहां युगलगीतमें स्वागता छंदहै ॥ तस्य लक्षणम् ॥ स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम् ॥ जन्माद्यस्य यतो० ॥ यह शार्दूलविक्रीडित छंदहै ॥ तस्य ल० ॥ सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ॥ नृवाजिकांचनशिबिकाभिरच्युतं० ॥ यह रुचिरा छंदहै ॥ तस्य लक्षणम् ॥ जभौ सजौगिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः ॥ चतुर्थमें दक्षयज्ञकी स्तुतिमें ॥ सदस्या ऊचुः॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र० ॥ यह मंदाक्रांता छंदहै ॥ तस्यलक्षणम् ॥ मंदाक्रांतांबुधिरसनगैर्मोभनौ तौगयुग्मम् ॥ रुद्र उवाच ॥ तववरदवरांह्वा० ॥ यह मालिनी छंदहै तल्लक्षणम् ॥ ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः॥ पत्न्य ऊचुः ॥ यज्ञोयं तव यजनाय० ॥ यह प्रहर्षिणी छंदहै॥ तल्लक्षणम्॥आशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षणीयम॥सिद्धा ऊचुः॥अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्याम्॥यह भुजंगप्रयात छंदहै ॥ तल्लक्षणम्॥भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः ॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः०॥ यह स्रग्विणी छंदहै॥तल्लक्षणम्॥कीर्त्तितैषा चतूरेफिका स्रग्विणी॥लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं यह वातोर्म्मी छंदहै॥ तल्लक्षणम् ॥ वातोर्म्मीयं गदिताम्भौतगौगः॥ब्राह्मणा ऊचुः॥त्वं क्रतुस्त्वं हविः०॥ यहभी स्रग्विणी छंदहै॥ योगेश्वरा ऊचुः॥जगदुद्भवस्थितिलयेषु०॥यह मंजुभाषिणी छंदहै॥तल्लक्षणम्॥सजसा जगौ च यदि मंजुभाषिणी ॥ गंधर्वाप्सरस ऊचुः॥अंशांशास्ते देवमरीच्यादय एते० ॥ यह मत्तमयूर छंदहै ॥ तल्लक्षणम् ॥ वेदैरंध्रैर्म्तौयसगा मत्तमयूरम् ॥ सप्तममें प्रह्लादचरित्र देवतानकी स्तुतिमें ॥ चारणा ऊचुः॥हरेतवांघ्रिपंकजम्०॥यह प्रमाणिका छंदहै॥तल्लक्षणम्॥ प्रमाणिका जरौलगौ॥ तीर्थचक्रे नृपाणां यदजनियदुषु०॥यह स्रग्धराछंदहै ॥ ताको लक्षण ॥ म्रभ्नैर्यानांत्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा० ॥ यह भीष्मजीकी स्तुति॥पुष्पिताग्रा छंदहै ताको लक्षण॥ अयुजि नयुगरेफतोयकारो युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा॥ नायं देहो देहभाजां नृलोके०॥यह शालिनी छंदहै॥तल्लक्षणम्॥ मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः॥इति छंदांसि॥ अथ उवाच॥ प्रथमस्कंधमें ॥ वेदव्यास०॥३॥सूत०॥३२॥ ऋषय०॥२॥शौनक॥६॥नारद॥३॥ अर्जुन०॥१॥भगवान्०॥२॥कुंत्युवाच ॥ १॥ भीष्म उवाच॥१॥ रजोवाच ॥३॥ ब्राह्मणा ऊचुः॥१॥युधिष्ठिर उ० ॥४॥ संजय० ॥१॥ धारण्युवा० ॥ १ ॥ धर्म उ०॥१॥ प्रथमस्कंधमें सब उवाच ६२ हैं॥ अथ द्वितीयस्कंधे ॥ शुकउ०॥८॥ राजोवा०॥३॥ शौनकउ०॥२॥सूत०॥४॥ नारद उ० ॥१॥ब्रह्मा उ०॥४॥भगवानु०॥२॥द्वितीयस्कंधमें सब उवाच २४हैं॥अथ तृतीयस्कंधमें॥शुक उ०॥१४॥रजोवा०॥२॥सूत उ०॥८॥विदुर०॥११॥

उद्धव ३ भगवान् २० मैत्रेय ४२ शौनक २ कुमाराः १ देवाः २ ऋषिरु० ४ ब्रह्मो० ८ मनु २ ऋषयः २ दिति ३ कश्यप २ मुनयः १ देवहूती ७ जीव १ ॥ तृतीयस्कंधमें सब उवाच १३४ हैं ॥ अथ चतुर्थस्कंधे ॥ मैत्रेय ६६ विदुर ९ शुक ३ अत्रि १ देवाः २ सती १ ऋषिरु० १ भगवान् ६ देवी १ ब्रह्मा ३ दक्ष २ महादेव १ राजो०५सूत २ ऋत्विजः १ सदस्याः १ रुद्र ३ भृगु १ इंद्र १ पत्न्यः १ ऋषयः २ सिद्धाः १ यजमानी१लोकपालाः १ योगेश्वर १ अग्नि १ ब्राह्मण १ पृथ्वी १ देव्यः १ राम २ प्रचेतस २ सुरुचि १ नारद १ ध्रुव ३ मुनयः२ मनु १ धनद १ सुनंदनंदौ १ अंग २ सदसस्पतयः १ वेन १ पृथु ४ प्रजा १ धरा १ सनत्कुमार १ ॥ चतुर्थस्कंधमें सब उवाच १५९ हैं ॥ अथ पंचमस्कंधमें राजो०६शुक२२ब्रह्मो १ भगवान् २ ऋषभदेव ३ ऋषिरु० ४ सहो १ ब्राह्मण ३ रहूगण १ भद्रश्रवस१ ॥ पंचमस्कंधमें ४२ हैं ॥ अथ षष्ठस्कंधे राजो० १० शुक ३९ बादरायणि६विष्णुदूताः २ ऋषिरु० ३ ब्रह्मो १ विश्वरूप १ देवा ३ यम १ सूत ३ प्रजापति १ भगवान् ३ दक्ष१वृत्र १ इंद्र १ परीक्षित् १ चित्रकेतु४अंगिरा२ पार्वती १ दिति २ कश्यप २ नारद २ जीव १ ॥ षष्ठस्कंधमें सब ९२ हैं॥अथ सप्तमस्कंधे ॥ राजो० २ शुक ३ नारद २८ युधिष्ठिर ६ ऋषि १ हिरण्यकशिपु ५ यम२ प्रह्लाद ८ ब्रह्मो ४ गुरु १ दैत्यपुत्रा१ इंद्र २ रुद्र १ विद्याधर १ सिद्धा १ पितरः १ ऋषयः १ नागा १ मनवः १ प्रजापतयः १ गंधर्वा १ चारणा १ किंपुरुषा १ वैतालिका १ किन्नरा १ विष्णुपार्षदा १ भगवान् ४ ब्राह्मण १ ॥ सप्तमस्कंधमें सब ८२ हैं ॥ अथ अष्टमस्कंधे ॥ राजो ७ ऋषि २ मनु १ शुक ४९ सूत ३ गजेंद्र १ गुरु १ भगवान् १२ ब्रह्मो ४ प्रजापति १ शिव २ बलि ६ विंध्यावली १ नारद १ बादरायणि १ अदिति३ कश्यप १ प्रह्लाद १ शुक्र १ ॥ अष्टमस्कंधमें ९९ हैं ॥ नवमस्कंधे ॥ राजो० ८ शुक ३१ सूत १ ब्रह्मा १ शंकर १ भगवान् २ बादरायणि ४ अंबरीष १ दुर्वासा १ अंशुमान १ ब्राह्मण १ देवा १ पुरूरवा १ उर्वशी २ ययाति १ यदु १ पूरु १ शकुंतला १ दुष्यंत १ ॥ नवमस्कंधमें सब ६१ हैं॥ अथ दशमस्कंधपूर्वार्द्धे ॥ राजो० १० शुक ९३ सूत ३ वसुदेव ५ देवकी १ भगवान् १५ नंद ३ नंदादय ऊचुः १ गर्ग २ नारद १ ब्रह्मा १ नागपत्न्यः १ काली १ ऋषि २ गोपा ऊ० १ यज्ञपत्न्यः १ इंद्र १ सुरभि १ बादरायणि ५ वरुण १ गोप्य ऊ० ६ सर्प १ अक्रूर ५ सैरंध्री१ चाणूर १ गुरु १ समुद्र १ उद्धव २ धृतराष्ट्र १ पूर्वार्द्धमें सब १६८ हैं ॥ अथ उत्तरार्द्धे ॥ शुक ७३ भगवान् २९ राजो० १४ मुचकुंद २ बादरायणि १२ रुक्मिणी ३ ब्राह्मण ३ रति १ युधिष्ठिर ३ कुन्ती १ वसुदेव ४ द्रौपदी १ सत्यभामा १ जांबवती १ भद्रा १ मित्रविंदा १ लक्ष्मणा २ कालिंदी २ महिष्यः २ मुनयः ३ सूत ३ देवकी १ बलि १ श्रुतदेव १ भूमि १ उषा १ चित्रलेखा १ ज्वर १ रुद्र १ नृग १ नारद ५ ऋषि ४ ऋषयः३ दूत १ उद्धव १ राजा १ सारथि १ अर्जुन १ परीक्षित् १ सनंदन १ श्रुतय ऊ० १ ॥ उत्तरार्द्धमें सब १९० हैं इति दशमः ॥ अथ एकादशस्कंधे॥बादरायणि २ राजो०७

शुक १२ वसुदेव १ नारद २ निमि ४ कवि १ हरि १ अंतरिक्ष १ प्रबुद्ध १ पिप्पलायन १ आविर्होत्र १ द्रुमिल १ चमस १ करभाजन १ देवा
ऊ० १ ब्रह्मा १ भगवान् ४४ उद्धव २३ यदु १ ब्राह्मण ४ पिंगला १ सनकादयः १ ऋषि १ द्विज १ ऐल १ एकादशमें सब ११६ हैं॥अथ द्वादशस्कं
धे ॥ शुक ५ राजो० २ सूत १८ शौनक ४ याज्ञवल्क्य १ मार्कंडेय ३ भगवान् ३ ऋषि ३ ॥ द्वादशमें ३७ हैं ॥ सब १२ स्कंधोका जोड़ १२६७ ॥
अथ स्तुतिर्लिख्यते ॥ प्रथमस्कंधमें अर्जुनस्तुति २ कुंतीस्तुति १ भीष्मस्तुति ३ ॥ द्वितीयमे तृतीयमें महदादिकस्तु० ४ ब्रह्मस्तुति ५ ऋषिस्तुति
वराहकी ६ देवस्तुति ब्रह्माकी ७ कुमारस्तुति ८ कर्दमस्तुति ९ जीवस्तुति १० देवहूतिस्तु० ११ ॥ चतुर्थमे नरनारायणस्तुति १२ शिवप्रार्थना
१३ दक्षसे क्षमाकराई १४ दक्षस्तुति विष्णुकी १५ ऋत्विज १६ सदस्य १७ रुद्र १८ भृगु १९ ब्रह्मा २० इंद्र २१ पत्नी २२ ऋषि २३ सिद्ध२४यज
मानी २५ लोकपाल २६ योगेश्वर २७ ब्रह्मा२८अग्नि २९ देवता ३० गंधर्वाप्सरा ३१ विद्याधर ३२ ब्राह्मण ३३ ध्रुवस्तु० ३४ पृथुस्तु० ३५ पृथ्वी
कृत पृथुस्तु० ३६ पृथुकृतविष्णुस्तव ३७ प्रजाकृतस्तुति पृथुकी ३८ प्रचेताकृत विष्णुस्तुति ३९ ॥ पंचममे ऋत्विग्जनकृत विष्णुस्तु० ४० भव
कर्तृक संकर्षणस्तु० ४१ भद्रश्रवःकर्तृकहयग्रीव० ४२ प्रह्लादकृत नृसिंहस्तुति ४३ लक्ष्मीकर्तृक भगवत्स्तु० ४४ सत्यव्रतकर्तृक मत्स्यस्तु० ४५
पृथ्वीकर्तृक वराहस्तु० ४६ हनुमत्कर्तृकरामस्तु० ४७ नारदकर्तृक नरनारायणस्तु० ४८ ॥ षष्ठस्कंधमें ॥ हंसगुह्यस्तव ४९ वृत्रदेवकर्तृक विष्णुस्तु०
५० पुनः देवकृत विष्णुस्तव ५१ चित्रकेतुकृतसंकर्षणस्तव ५२ ॥ सप्तमस्कंधमें ॥ हिरण्यकशिपुकर्तृक विष्णु ५३ ब्रह्मकर्तृकनृसिंहस्तव ५४ रुद्र
कर्तृकनृ० ५५ इंद्रकर्तृक० नृ०५६ ऋषिक० नृ० ५७ पितृक० नृ० ५८ सिद्धक० नृ० ५९ विद्याधरक० नृ० ६० नागकन्याक० नृ० ६१ मनुक० नृ०
६२ प्रजापतिक० नृ० ६३ गंधर्वक० नृ० ६४ चारणक० नृ० ६५ यमक० नृ० ६६ किंपुरुषक० नृ० ६७ वैतालिकक० नृ० ६८ किन्नर०नृ०६९
विष्णुपार्ष० नृ० ७० प्रह्लाद० नृ० ७१ पुनर्ब्रह्मक० नृ० ७२ ॥ अष्टममें ॥ मनुकृतविष्णुस्तव ७३ गजेंद्रकृतविष्णुस्तव ७४ देवकृ० वि०स्त० ७५ ब्रह्म
कृत वि० स्त० ७६ देवादिकृ०शिवस्त० ७७ शिवकृत० वि० स्त० ७८ अदितिकृत वि० स्त० ७९ ब्रह्मकृत विष्णु० स्त० ८० सत्यव्रतकृत०
वि० स्त० ८१ ॥ नवमस्कंधमें ॥ अंबरीषकृतसुदर्शनस्तव ८२ अंशुमत्कृतकपिलस्तुति ८३ ॥ दशममें पूर्वार्धमें ॥ गर्भस्तुति ८४ वसुदेवकृतस्तव ८५
देवकीक० स्तुति ८६ यमलार्जुन० स्तव ८७ ब्रह्मस्तुति ८८ नागपत्नी० स्तु० ८९ इंद्रकृ० स्तुति ९० नारदस्तु० ९१ अक्रूरस्तुति ९२ पुनःअक्रू
रस्तव ९३ ॥ उत्तरार्द्धमें ॥ मुचुकुंदस्तुति ९४ भूमि० स्तव० ९५ ज्वर० स्तव ९६ रुद्रस्तुति ९७ कौरवकृतबलदेवस्त० ९८ राजकृतस्तव ९९ बलिराज
कृ० स्त० १०० श्रुतदेवस्त० १०१ बहुलाश्व० स्तव १०२ देवस्तव १०३ ॥ एकादशमें ॥ देव० स्तव १०४ ॥ द्वादशमें मार्कंडेयस्तव १०५॥

जिला मथुरा, ग्राम गोवर्धननिवासी महाभारती—पंडित—गोवर्धनात्मजस्य आनन्दवल्लभस्य कृतिरियं परोपकाराय ।

प्रथम स्कंध.

अ	श्लो	अ	अ	श्लो	अ
१	२६	२४	११	४६	८
२	३६	८	१२	२९	१६
३	४७	०	१३	५१	२०
४	३४	८	१४	४६	०
५	४१	४	१५	६४	२०
६	४०	०	१६	४१	२०
७	६०	२०	१७	४४	२०
८	५४	२४	१८	५६	१६
९	५५	०	१९	५२	४
१०	३१	२८	समाप्तम्		

जोड प्रथमस्कंधको श्लोक ८८० ॥ अक्षर १४ ॥

द्वितीयस्कंध.

अ	श्लो	अ
१	४४	२४
२	५१	१०
३	२८	०
४	३०	१६
५	४३	०
६	५९	२४
७	८९	१६
८	२८	१६
९	५२	१२
१०	५२	०

जोड द्वितीयस्कंधको श्लोक ४७० ॥ अक्षर २२ ॥

तृतीयस्कंध

अ	श्लो	अ	अ	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	८०	०	११	४२	८	२१	६०	०	३१	५६	२४
२	३८	२८	१२	५७	०	२२	४१	२८	३२	४४	१६
३	३०	०	१३	६२	८	२३	६३	१६	३३	४०	१६
४	३७	१६	१४	५७	२८	२४	४८	४			
५	५१	१२	१५	७५	१६	२५	४७	२४			
६	४०	२८	१६	४७	८	२६	७३	०			
७	४७	८	१७	३५	१६	२७	३०	१२			
८	४५	१६	१८	३५	१६	२८	५७	१६			
९	६२	२४	१९	४४	०	२९	४६	०			
१०	३०	०	२०	५४	२४	३०	३४	१६			

जोड तृतीयस्कंधको श्लो १६२२ ॥ अक्षर १२ ॥

चतुर्थस्कंध.

अ.	श्लो	अ	अ	श्लो	अ	अ	श्लो	अ	अ.	श्लो	अ
१	६९	०	११	४१	४	२१	५४	०	३१	३१	३०
२	३६	१२	१२	५६	८	२२	७२	८			
३	३४	०	१३	६१	०	२३	४२	१६			
४	४९	१६	१४	४७	०	२४	८५	२४			
५	३२	१२	१५	२६	२०	२५	६४	२८			
६	५९	०	१६	२९	०	२६	२४	१६			
७	७९	१६	१७	४०	२	२७	३१	१६			
८	८७	१२	१८	३०	०	२८	६५	०			
९	७९	१२	१९	४३	८	२९	१३	१२			
१०	३२	८	२०	४३	२८	३०	५४	२०			

जोड चतुर्थस्कंधको श्लोक १५९६ ॥ अक्षर ८ ॥

पञ्चमस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	७९	२४	११	२३	१२	२१	३१	८
२	४१	२०	१२	२२	०	२२	३५	१४
३	३४	०	१३	३९	६	२३	२७	१३
४	३४	०	१४	८०	२६	२४	७२	२१
५	६३	३	१५	२७	३	२५	३२	७
६	६३	२८	१६	५१	३०	२६	९४	२१
७	३०	१५	१७	५०	०	जोड पञ्चमस्कन्धको श्लोक १२६१ अक्षर ६		
८	५३	१८	१८	६८	८			
९	५२	२	१९	५६	०			
१०	४६	२१	२०	८३	२६			

षष्ठस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	६९	१२	११	३५	१०
२	५१	०	१२	३८	८
३	४०	२८	१३	२५	२८
४	६०	०	१४	६७	०
५	४४	०	१५	२८	२४
६	४५	१६	१६	७५	४
७	४०	८	१७	८३	०
८	४८	२६	१८	७८	१६
९	८०	०	१९	३४	४
१०	३५	२०			

जोड षष्ठस्कन्धको श्लोक ९९३ ॥ अक्षर १७ ॥

सप्तमस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	५१	८	११	३६	१६
२	६१	२०	१२	३७	१६
३	४०	१२	१३	४६	१६
४	५०	०	१४	४२	१६
५	५८	१६	१५	८५	०
६	३५	८	जोड सप्तमस्कन्धको श्लोक ८३० ॥ अक्षर ८॥		
७	५६	२४			
८	७६	२०			
९	८३	०			
१०	७४	२८			

अष्टमस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	३४	१२	११	५१	८	२१	३६	२८
२	३९	२४	१२	५६	४	२२	४३	१२
३	४३	१६	१३	३६	०	२३	३४	२०
४	२८	१२	१४	११	०	२४	६७	४
५	५१	२८	१५	४०	१२	जोड अष्टमस्कन्धको श्लोक ॥ १०४४ ॥ अक्षर ॥२२॥		
६	९२	२८	१६	६३	०			
७	५७	२०	१७	३३	१२			
८	५१	१९	१८	३९	०			
९	३२	१६	१९	४६	८			
१०	६१	२८	२०	४१	२४			

नवमस्कन्ध.

अ	श्लो	अ	अ	श्लो	अ	अ	श्लो	अ
१	४२	०	११	३८	१६	२१	३७	८
२	३६	१६	१२	१६	१६	२२	४९	१६
३	३८	१६	१३	२७	०	२३	३९	१६
४	७७	२०	१४	५०	०	२४	६९	८
५	३०	४	१५	४४	१६			
६	५८	२४	१६	३७	१६			
७	२७	०	१७	१८	१६			
८	३३	२०	१८	५१	१६			
९	५०	१२	१९	२९	२८			
१०	७१	४	२०	३९	१६			

जोड नवमस्कन्धको

श्लोक १०१४ ॥ अक्षर ॥ १६ ॥

दशमस्कन्ध

अ	श्लो	अ	अ	श्लो	अ	अ	श्लो	अ	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ	श्लो	अ.	अ	श्लो	अ	अ.	श्लो	अ.
१	७१	१२	११	६२	०	२१	३१	१३	३१	२६	२६	४१	५५	२४	५१	६२	१२	६१	४४	१३	७१	५४	२०
२	४३	१६	१२	५२	२०	२२	४१	०	३२	२४	२६	४२	४०	२४	५२	४९	८	६२	३४	१६	७२	५४	२४
३	५५	२४	१३	७३	२०	२३	५४	०	३३	४८	२०	४३	४२	१६	५३	६२	०	६३	५८	४	७३	३५	१६
४	४७	१६	१४	८१	१२	२४	३८	०	३४	३३	०	४४	५५	२०	५४	६२	१६	६४	४७	०	७४	५५	८
५	३२	२४	१५	५८	१६	२५	३४	०	३५	३५	०	४५	५१	१६	५५	४२	८	६५	३३	०	७५	४५	२४
६	४९	१६	१६	८४	८	२६	२६	२८	३६	४१	१६	४६	४९	१२	५६	४६	२४	६६	४८	२२	७६	३३	०
७	४४	६	१७	२६	०	२७	३१	१४	३७	३९	१६	४७	८३	०	५७	४३	४	६७	२८	०	७७	४१	१२
८	५९	२०	१८	३५	१६	२८	१७	१६	३८	५२	१२	४८	४३	२८	५८	५९	२४	६८	५३	८	७८	३५	०
९	२७	२०	१९	१६	२४	२९	६०	१६	३९	६४	१६	४९	३१	२४	५९	५०	८	६९	५२	८	७९	३४	१६
१०	४९	१६	२०	४८	०	३०	५०	०	४०	३२	१२	५०	६४	०	६०	७४	९	७०	५४	१६	८०	४६	२८

दशमस्कन्ध.				एकादशस्कन्ध.												द्वादशस्कन्ध					
अ.	श्लो	अ.		अ.	श्लो	अ.	अ	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ	अ.	श्लो	अ	अ	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
८१	५४	२८	जोड दशमस्कन्धको श्लोक ४२६९ ॥ अक्षर ॥ २७ ॥	१	२७	२४	११	५०	१६	२१	४३	१२	३१	३१	८	१	४२	१६	११	५४	४
८२	५३	२४		२	६१	१०	१२	२८	४	२२	६३	६	जोड एकादशस्कंधको श्लोक १४६७ ॥ अक्षर ॥२४॥			२	४४	१६	१२	७६	४
८३	५१	२८		३	६०	१६	१३	४६	१२	२३	६७	१२				३	५२	२८	१३	२५	१६
८४	७६	२४		४	३४	१२	१४	४७	२०	२४	२९	०				४	४६	२८	जोड द्वादशस्कंधको श्लोक ६०९ अक्षर २८		
८५	६४	४		५	५८	४	१५	३६	०	२५	३६	१६				५	१३	१६			
८६	६२	०		६	६०	१२	१६	४४	२८	२६	३५	२८				६	८८	२४			
८७	८३	१२		७	७६	२०	१७	५७	१२	२७	५५	०				७	२५	१६			
८८	४२	०		८	४४	२३	१८	४८	१६	२८	५१	२०				८	५७	१६			
८९	७२	२०		९	३६	१६	१९	३७	१२	२९	५७	८				९	३९	२०			
९०	६०	१०		१०	३७	१२	२०	३८	०	३०	५४	२८				१०	४२	१६			

जोड संपूर्ण श्रीमद्भागवत द्वादशस्कंधको श्लोक १६००८ सोलह हजार आठ श्लोक हैं और उवाच श्लोक १२६७ मिलके १७२७५ हैं यह सख्या किसी ५५ पुस्तककी हैं. परंतु अन्यान्य अनेक पुस्तक संग्रह करके हमने महापरिश्रमसे पाठ पाठांतर जितने मिले वे सब मिलाये हैं. ऐसे मिलाकर बराबर १८००० संख्याका यह संपूर्ण ग्रंथ संपादन करके भाषाटीका सुधारके सप्तमावृत्ति छपाया है यह ग्रंथ सर्वांगपरमसुंदर साग्रहांनिस वाचकलोकोंको परिपूर्ण फलदेनेवाला है.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष–मुंबई.

॥ अथ श्रीमद्भागवतं भाषाटीकायुतं सदृष्टान्तं प्रारभ्यते ॥


नारद
व्यास


कलि
परीक्षित


उत्तरा


कृष्ण
पाण्डव कौरव
भीष्म


शमीक ऋषि
परीक्षित्


परीक्षित्
शुक
ऋषि

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ सोरठा—ऋद्धिसिद्धिदातार, सिद्धिसदन वारणवदन ॥ सुमिरौं बारंबार, मदनकदनके लालको ॥१॥ गणपति कृपानिधान, देहु हर्षि वरदान म्वाहिं ॥ भाषातिलक प्रमान, वरणहुँ श्रीभागवतको ॥२॥ जयशिवआनँदकन्द, भूतनाथ भवभयहरण॥भक्तिविषयनिर्द्वन्द, गौरवर्ण मंगलकरण ॥३॥ हे व्रजचन्द मुकुन्द, व्रजभूषण दूषणहरण ॥ काटहु भवभयफन्द, चरणशरणलीआनकर ॥४॥ जयजयजयजगदेव, सेवत शेषमहेश अज ॥ महिमाअमितअभेव, वेदभेदजानतनहीं ॥५॥ देहु मोहिं वरदान, राधावर यह वर सदा ॥ प्रेमभरीमुसकान, नित चितमें खटकतरहै ॥ ६ ॥ मुहिचहियेकछुनाहिं, और वस्तुप्रभुजगतकी ॥ वसीरहैमनमाहिं, यहबांकी झांकी सदा ॥७॥ लिये लकुटियाहाथ, गायनकेपाछे फिरत ॥ ग्वालबाल लियेसाथ, मोरमुकुटशिरपरधरे ॥८॥ करमुरली उरमाल, शीशमुकुट कटिपीतपट ॥ याछबिसोंनँदलाल, बसहुहृदयममनिशिदिवस ॥ ९ ॥ गुरुप दरजधारिशीश, तिलकभागवतकोरचहुँ ॥ जोशुकदेवमुनीश,कह्योपरीक्षितनृपतिसों ॥ १० ॥ श्रीभगवत्कलावतार * श्रीवेदव्यासजीने अनेकपुराण और अनेकशास्त्र तथा महाभारतादिक प्रबन्ध किये, परन्तु चित्तको शान्ति न हुई और उन उन शास्त्रोंके कहेहुए सिद्धान्तोंमें अप्रसन्न हुए, भगवत्के अवतार श्रीनारदमुनिके उपदेशसे श्रीमद्भागवतशास्त्र रचा, जिसमें श्रीभगवत्हीके गुण वर्णन किये, उसके प्रारम्भमें विघ्नकी निवृत्ति और आनन्दकी सिद्धिके लिये श्रीभागवतके इष्टदेवका स्मरणरूप मंगलाचरण करते हैं। श्रीभगवान् व्यासजी, ग्रन्थके मंगलाचरणमें परमेश्वरका स्वरूपलक्षण और तटस्थलक्षणसे वर्णन करते हैं—प्रथम स्वरूपलक्षणको कहते हैं, जो परमेश्वर त्रिकालमें एकरस सत्यस्वरूप हैं, जिसमें मायाके सत, रज, तम, तीन गुण अपने (पंचभूत इन्द्रिय देवतारूप प्रपंच) कार्य सहित सर्वत्र मिथ्या भासते हैं, जिस अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे

---

* **प्रश्न**—कवियोंने छोटेसे छोटे ग्रन्थ वनाये और वडे वडे ग्रन्थभी वनाये परन्तु मगलाचरणके दश दश पाच पाच श्लोक सवने कहे और व्यासजीनेभी छोटे २ ग्रन्थोमें मगलाचरणके श्लोक वनाये और वडे ग्रन्थोंमे तो देवी देवता सवही मनाये परन्तु श्रीमद्भागवत पुराणकी आदिमें गणेशकी वा गुरुकी वदनामें एक श्लोकभी नहीं लिखा केवल विना प्रीति ब्रह्मका ध्यान व्यासने दो श्लोकोंमें किया जो ब्रह्मका ध्यानभी दश वीस श्लोकोंमें प्रीतिसहित करते तो हमारे मनमे ऐसी शकाभी न होती, अव इस हमारी भारी शकाको निवारण करो कि मगलाचरण न होनेका क्या कारण है?।

उत्तर—जब वडे बुद्धिमान् व्यासजीने अठारह पुराण अनेक शास्त्र और इतिहास वनाये परन्तु उनके मनको सतोप न हुआ तव भगवान्के चारित्र गानेके लिये नारदमुनिने व्यासजीको उपदेश किया,उस समय हर्षरूप समुद्रमे व्यासजी मग्न होगये, जैसे कामी पुरुष सुदर स्त्रीको पाकर सुखी होताहै, वैसेही नारदमुनिकी आज्ञा पाकर व्यासजी सुखी हुए और श्रीमद्भागवतके वनानेकी इतनी शीघ्रता की कि, मगलाचरणका वनानाही भूलगये, आतुरतामे एक श्लोक अकेले ब्रह्मके ध्यानमें लिखदिया ।

असत्य प्रपंच सत्यकी समान दृष्टि आताहै इस कारण वह सब सत्य है जैसे किसीको रात्रिके समय ऊपरभूमिमें जलका भ्रम और थलका भ्रम होताहै और दिनमें मरु मरीचिकामें जल दृष्टि आता है जैसे कांचमें जलका भ्रम होताहै यह सब भ्रम अधिष्ठानकी सत्यतासे सत्यही दिखाई देतेहैं ऐसेही अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे मिथ्या भी प्रपंच सत्यसम दीखता है अथवा ब्रह्मकी ही पारमार्थिकी सत्यता कथन करनेके हेतु प्रपंचको मिथ्याभाव वर्णन किया है "जिस ब्रह्ममें यह प्रपंच सर्व कालमें असत्यहै कभी सत् नहीं है" इसके कहनेसे ब्रह्ममें प्रपंचरूपी उपाधिका सम्बन्ध कहाहै उसकी निवृत्ति करते हैं, जिसने अपने तेजसे सर्व कालमें मायाके लक्षण कपट दूर किये हैं अन्धकारमें जो रस्सी पड़ी हो और उसमें किसीको सर्प प्रतीत हुआ सो वास्तवमें उस सर्प और रस्सीका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसेही अधिष्ठान ब्रह्ममें अज्ञान अवस्थामें जो प्रपंच प्रतीत होताहै उसका ज्ञान अवस्थामें कुछभी सम्बन्ध नहीं, उस परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं । अब तटस्थ लक्षणसे कहतेहैं जो इस विश्वका, उत्पत्ति, पालन, प्रलय करताहै जो घट

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ अथ श्रीमद्भागवतं प्रारभ्यते ॥ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यंति यत्सूरयः ॥ तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

पटादिक पदार्थोंमें सत्य रूपसे व्यापक और अकार्य अथवा प्रपंचका सत्तारूप कारण है जैसे घटका कारण मृत्तिका और कुण्डलादिक आभूषणका कारण सुवर्ण है अथवा ब्रह्मका विश्व, मृत्तिकाका घट, सुवर्णका कुण्डल कार्य है, जो जिसका कार्य है वह उससे भिन्न नहीं । श्रुतिमें लिखाहै "यतो वेति" जिससे सम्पूर्ण जीव उत्पन्न होतेहैं और उत्पन्न हुएहैं, जिसके जिवाये जीतेहैं और प्रलयकालमें जिसमें समातेहैं और मुक्तिकालमें जिसमें प्रविष्ट होतेहैं और स्मृतिमें भी लिखाहै "यतः सर्वाणीति" युगकी आदिमें जिस ब्रह्मसे सब जीव उत्पन्न होते हैं और युगके अन्तमें सब उसीमें लय हो जातेहैं इत्यादिक । यदि कोई कहै कि, जगत्का कारण तो जड माया है उसका ध्यान करते हैं ? सो कहते हैं, हम सर्वज्ञ स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् जिसने सबसे पूर्व ब्रह्माको उत्पन्न किया उसके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया जो सत्यस्वरूप है जिसकी सत्यतासे असत्य प्रपंच सत्यसा दीखताहै जो मायारूपी कपटजालसे दूर है उस परमेश्वरका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

इस श्रीमद्भागवतमें ईश्वराराधनाके वह धर्म वर्णन करतेहैं जिसमें मोक्ष पर्यंत फलचाहनारूप कपटका लेश नहीं इस कारण यह कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्डविषयक शास्त्रोंसे श्रेष्ठ है अब अधिकारियोंकी श्रेष्ठता कहते हैं, जो मत्सर रहित कृपालु संत हैं, यहां कर्मकाण्डकी श्रेष्ठता कही, उनको परमार्थरूप वस्तु (यहां द्रव्य गुणादिक वास्तव परमार्थ वस्तु नहीं कहे हैं) जानने योग्य है, अथवा वस्तु जो ब्रह्म उसका अंश जीवहै और वस्तुकी शक्ति मायाहै यह तीनों ब्रह्मरूपहैं भिन्न नहीहैं यह विना यत्नही जाननेके योग्य है क्योंकि परम सुखदायक और अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीनों तापोंको जडसे उखाडनेहारा है ! ज्ञानकाण्डकी श्रेष्ठता दिखाकर अब कर्त्ताकी श्रेष्ठता दिखातेहैं, महामुनि नारायणने यह प्रथम संक्षेपसे रचाहै (देवताकाण्डसे श्रेष्ठता दिखातेहैं) और शास्त्रोंके साधनसे ईश्वरकी स्थिति शीघ्र हृदयमें नहीं होती और इसके श्रवण मात्रसेही ईश्वरकी स्थिति हृदयमें होतीहै इसलिये परमादर कर सेवनीय है ॥ २ ॥ जब परमादर सत्कारसे सेवन योग्य है तो यह कहतेहैं कि

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३ ॥

'पान करो' अखिलकामनादायक वेदरूपी कल्पवृक्षका फल श्रीभागवत है (जो मुझे स्वर्गसे नारदजीके द्वारा प्राप्त हुआ) । मैंने अपने पुत्र शुकदेवजीके मुखमें धरा , शुकदेवजीके मुखसे निर्गत होनेसे अमृतके समान मीठे रससे युक्त होगया "लोकमें यह बात प्रसिद्धहै कि, जिस फलमें तोतेकी चोंच लगे है सो फल मीठा होवेहै" यहां शुकरूप श्रीव्यासनंदन शुकदेवकी चोंच लगनेसे उनके शिष्यरूप पत्तोंपर लुडकता हुवा धीरे धीरे पृथ्वीमें प्राप्त हुवा, आशय यह है कि, इतने ऊंचेसे गिरा और फूटा नहीं, रस वही है कि जिस रसके प्राप्त होनेसे जीवको परमानन्द प्राप्त हो, हे रसिकजनो ! रसजाननेवालो ! धन्य भाग्यहै तुम लोगोंका जो ऐसा अमृतरूपी फल पृथ्वीपर प्राप्त हुवा, यह अलभ्य लाभकी उक्तिहै, इसकारण इस भागवत फलको बारंबार पियो यह फल रसरूपी है इसमें छिलका और गुठली किंचिन्मात्रभी नहीं है केवल रसही रस भराहै, इसलिये पीनेको कहा, इसकारण श्रीमद्भागवत अमृतरूपी रसका पान जीवन्मुक्ति अवस्थामेंभी करना उचित है, स्वर्गादिक सुखके समान त्यागना नहीं है

सेवनही करने योग्यहै ॥ ३ ॥ इन तीन श्लोकोंमें श्रीमद्भागवतकी उत्तमता और श्रेष्ठता और गौरव दिखाकर अब सब शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवतके इष्टदेवताको स्मरण कर इस ग्रन्थका प्रारंभ करूंहूं। ब्रह्माजीका मनोमय चक्र कुंठितधार होकर गिरा उसी तीर्थका नाम नैमिष है यह कथा वायुपुराणमेंहै " एक समय बहुतसे ऋषि लोग ब्रह्माजीके पास गये और यह कहा कि, हे ब्रह्मन् ! हमको तपके योग्य कोई उत्तम तीर्थ बताओ कौनसा तीर्थ अत्यन्तपावन और पवित्रहै, ऋषि लोगोंका यह वचन सुन ब्रह्माजी बोले कि, हे ऋषिगण ! मैं मनोमय चक्र बनाकर छोड़ताहूं तुम सब इसके पीछे पीछे चले जाओ, जिस स्थानपर इस चक्रकी धार कुंठित होकर गिरपडे वह भूमि तपके योग्य जानलेना यह कह ब्रह्माजीने मनोमय चक्र छोडा। उसका प्रकाश मार्तण्डकी सदृश सम्पूर्ण ब्रह्मांडमें फैलगया, वह चक्र जिस स्थानपर गिरा उस स्थानका नाम उस दिनसे नैमिषारण्य विख्यात हुवा " और वाराहपुराणमें ऐसा लिखाहै कि, "किसी समय गौरवमुख ऋषिसे भगवानने कहाथा कि, हे गौरवमुख ! इस वनमें मैंने निमिषमात्र कालमें अनेक दानवोंकी सेनाका संहार कियाहै इसलिये इस वनका नाम नैमिषारण्य हुवा" ब्राह्मणोंको तपस्याके लिये यह भूमि परमोत्तम है। एक समय शौनकादि ८८००० अट्ठाशीसहस्र ऋषियोंने स्वर्गकी प्राप्तिके हेतु नैमिषारण्य क्षेत्रमें १०००० दशसहस्र वर्षतक यज्ञ करनेका संकल्प किया ॥ ४ ॥ एक दिन वह मुनि प्रातः काल उठ नित्यक्रिया कर जब नैमित्तिक अग्निहोत्र करचुके उसी समय व्यासजीके परम कृपापात्र सूतजी आपहुँचे, तब ऋषियोंने सूतजीको देख ब्रह्मासन बिछादिया, सूतजी सब ऋषिगणको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे आसनपर बैठे और परस्पर कुशल क्षेम बूझचुके तब ऋषिलोग सूतजीसे बोले ॥ ५ ॥ कि, हे सूतजी ! हे निष्पाप ! सर्व शास्त्र पुराण इतिहास तुमने व्यासजी महाराजसे पढेहैं और देखेहैं ॥ ६ ॥ और ज्ञानियोंमें शिरोमणि श्रीव्यासजी महाराज जिन जिन शास्त्रोंको जानतेहैं और सगुण

नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥ त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ॥ सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ ६ ॥ यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः ॥ अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥

निर्गुण ब्रह्मके उपासक और भी जिन जिन शास्त्रोंको जानते हैं ॥७॥ हे सौम्य! हे सूतजी ! उन सब शास्त्रोंको गुरुकी कृपासे तुम यथार्थ जानतेहो क्योंकि निष्कपटप्रेमी शिष्यको गुरु गुप्तपदार्थको भी प्रगट कर देते हैं ॥८॥ हे आयुष्मन् ! उन सब शास्त्रोंका सिद्धान्त निश्चय कर सरल रीतिसे हमको उपदेश करो, जिस सिद्धान्तको जानिकै मुमुक्षु जीव सुगमसे साधन कर मोक्षके भागी हों ॥९॥ इस कलियुगमें प्रथम तो जीवोंकी आयुही अल्प है, दूसरे आलसी, तीसरे मन्दबुद्धि और मन्दभागी, चौथे विघ्नोंसे व्याकुल, पांचवें रोगग्रसित हैं ॥ १० ॥ हे सूतजी ! बहुतसे शास्त्रोंके सुननेसेही फलकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि विभागपूर्वक सुननेके योग्य सैकडों शास्त्र हैं,इस कारण हे साधो ! सब साधनोंमें सारभूत जो सिद्धान्त

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥ तत्रतत्रांजसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् ॥ पुंसामेकांततःश्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ९ ॥ प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः ॥ मंदाः सुमंदमतयो मंदभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥ भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ॥ अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनाऽऽत्मा संप्रसीदति ॥ ११ ॥ सूत जानासि भद्रं ते भगवान्सात्वतां पतिः ॥ देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥ १२ ॥ तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यंगाऽनुवर्णितुम् ॥ यस्याऽवतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥१३॥ आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ॥ ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥१४॥ यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ॥ सद्यः पुनंत्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया॥१५॥

होय उसे अपनी बुद्धिसे निश्चय करके हम लोगोको उपदेश करो जिससे हम श्रद्धालुओंकी बुद्धि शांत होय (यह शौनकका पहिला प्रश्न हुवा) ॥ ॥ ११ ॥ हे सूतजी ! तुम्हारा कल्याण हो, यह तुम जानते हो भगवान् वसुदेवजीकी स्त्री देवकीके पुत्र किस कार्य करनेके लिये हुए थे ॥१२ ॥ हे अंग सूतजी ! जिनका साधारण अवतार प्राणियोंके कल्याण और समृद्धिके हेतु होता है उनके चरित्र वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥ पराधीन जीवभी जिसके नाम स्मरण कर संसारके बन्धनसे छूट तुरन्त मुक्ति पाते हैं और जिनसे भय भी भयभीत है ॥ १४ ॥ उन भगवान्के चरणारविंदोंके आश्रयी

शान्त मार्गमें निपुण मुनि संगतिमात्रसे ही जीवको पवित्र कर देतेहैं और गंगाजीका जल तौ बहुत दिनों सेवा करो तब पवित्र करता है ॥ १५ ॥ साधारण भी जिनके कर्मोंको गाकर पुण्यश्लोक कहाये उन भगवान्के कलिमलनाशक यशको अंतःकरणकी शुद्धि चाहनेवाला कौन नहीं सुनैगा (यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुवा) ॥ १६ ॥ नारदादि मुनियोंने जो भगवान्के उदारकर्म गाए उन गुणोंके सुननेके श्रद्धावान् हम हैं सो कृपा करके हमें सुनाओ, जो लीलासे ब्रह्मा रुद्रादिक मूर्तिधारण करतेहैं (यह तीसरा प्रश्न समाप्त हुवा) ॥ १७ ॥ हे बुद्धिमन् ! जो परमेश्वर अपनी माया करके यथेष्ट लीला अवतारोंको धारण करैं हैं, उनकी मनोहर कथा कृपाकरके हमें सुनाओ ॥ १८ ॥ हे सूतजी ! उस परमेश्वरकी महिमा और उनके

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ॥ शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥ तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥ अथाऽऽख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ॥ लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्याऽऽत्ममायया ॥१८॥ वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ॥ यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादुस्वादु पदेपदे ॥ १९ ॥ कृतवान्किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ॥ अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥ २० ॥ कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम् ॥ आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥ २१ ॥ त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ॥ कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥ २२ ॥

पराक्रमोंको सुनते सुनते हमारी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि रसिकोंको भगवान्का यश पद पदपै स्वादसे अधिक स्वादिष्ट लगता है, भगवत्का यश अनेक प्रकार स्वादसे पूरित है (यह चौथा प्रश्न हुआ) ॥ १९ ॥ श्रीबलरामके साथ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन गोवर्द्धनोद्धारणादिक जो मनुष्योंसे दुःसाध्य कर्म कपटसे मनुष्य रूप धरकै किये सो कहो ॥ २० ॥ महाघोर कलियुगको आता जान इसके डरसे वैकुण्ठके जानेकी इच्छा करकै हम इस नैमिषारण्य वैष्णव क्षेत्रमें एक सहस्र वर्षका संकल्प कर श्रीभगवान्के गुणानुवाद सुननेको बैठे हैं ॥ २१ ॥ हे सूतजी ! इस समय आपका दर्शन भगवत्की कृपासेही हमको हुआ है, क्योंकि अति धैर्यवानोंके धैर्यरूपी सेतुके तोड़नेवाले महा कराल

कलिकाल रूप समुद्रके तरनेकी इच्छा जैसे हमको हुई उसी समय आपका दर्शन हुवा, जैसे समुद्र पार करनेको जहाज सहित मल्लाह आजाय (यह पांचवां प्रश्न समाप्त हुवा) ॥२२॥ धर्मके कवचवत् रक्षक ब्रह्मण्य योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने निज परमधामको सिधाये तब धर्म किसकी शरणमें रहा? (यह छठा प्रश्न समाप्त हुवा) ॥२३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पापाटीकायां नैमिपारण्योपाख्यानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ दोहा–इसद्वितीयअध्यायमें, शुकवनकीन्हप्रवेश ॥ जैसे आये निजभवन, नारदके उपदेश ॥१॥ *श्रीवेदव्यासजी बोले कि शौनकादिक ऋषियोका प्रश्न सुनकर, रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा उसके वचनकी प्रशंसा करके उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए ॥१॥ सूतजी बोले कि, जो

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ॥ स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २३॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ छ ॥ व्यास उवाच ॥ इतिसंप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ॥ प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेतितन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥ यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोंधम् ॥ संसारिणां करुणयाऽह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥

जन्मलेतेही कर्ममार्गको त्याग संन्यास लेकर वनको चले और व्यासजी उन शुकदेवके विरहमें व्याकुल हो पुत्र! पुत्र!! पुकारते उनके पीछे हुए, तब पिताके मोह दूर करनेको वृक्षरूप बनके उत्तर दिया और उनका स्नेह दूर किया, जो सब जीवोंके हृदयमें योग बलसे प्रवेश किये हैं, ऐसे शुकदेवजीको बारम्बार नमस्कार करूंहूं ॥ २ ॥ जिसमें अपना प्रभाव और सब श्रुतियोंका सार, एक अध्यात्म विद्याका साक्षात् दीपक संसारको तरनेकी इच्छा करनेवाले जीवों पर कृपा करकै जो शुकदेवजीने गोप्य पुराण कहाहै, उन व्यास पुत्रकी हम शरणहैं ॥ ३ ॥

---

* शंका–प्रथम स्कन्ध पहिले अध्यायके आरम्भमे "व्यास उवाच" क्यों नहीं लिखा? फिर दूसरे अध्यायके प्रारम्भमें व्यास उवाच क्यों लिखा?

उत्तर–व्यासजीने बडे हर्षसे श्रीमद्भागवतके बनानेका प्रारम्भ किया परन्तु शीघ्रतामें अपने नामके लिखनेका ध्यान नहीं रहा, पीछे जब व्यासको ध्यान आया तो दूसरे अध्यायके आदिमें अपना नाम लिखा कि, व्यास उवाच ॥

नारायण नर नरोत्तम देवी सरस्वती और व्यासजीको नमस्कार करके जयरूप ग्रन्थका वर्णन करताहूं॥४॥हे मुनियो!आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया सब लोकका मंगलदायक श्रीकृष्णचन्द्र व्रजनायकका जो वृत्तान्त बूझा यह सब शास्त्रोंका सार है और इस असार संसारसे उद्धार करने वालाहै और आत्माको प्रसन्न करताहै। धर्म दोप्रकारका है,प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग,स्वर्गादिकके लिये जो किया जाय वह धर्म प्रवृत्तिमार्ग है और श्रवण, आदर आदिक जो लक्षणा भक्तिहै,सो निवृत्तिमार्ग है,वह मुक्तिदायकहै सोई पुरुषोंका परमधर्महै॥५॥जिससेनारायणमें फलरहित,विघ्न रहित,भक्ति होय उससे

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमंगलम् ॥ यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनाऽऽत्मा संप्रसीदति ॥ ५ ॥ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ॥ अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति ॥ ६ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥ ७ ॥ धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ॥ नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥ धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ॥ नार्थस्य धर्मैकांतस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥९ ॥ कामस्य नेंद्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ॥ जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥ वदंति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ॥ ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११ ॥

जीवात्मा अत्यन्त प्रसन्न होताहै॥६॥वासुदेव भगवान्में भक्तियोग करै तो शीघ्र ज्ञान और वैराग्य उपनिषद्का उत्पन्नहोताहै॥७॥अच्छा अनुष्ठान करा हुवा धर्म मनुष्योंको विष्वक्सेन भगवान्की कथामें जो प्रीति न करावै तो वह केवल श्रमहीहै ॥८॥ मोक्षपर्यन्त धर्म फलप्राप्त होनेसे प्रयोजननहींहै और धर्मके योग्य धन व्ययकरना उसका फल कामलाभके लियेनहींहै,धन धर्मका फल मोक्षहै॥९॥कामको विषय भोगकर इन्द्रियोंसे प्रीति लाभ नहीं होती इससे जबतकजीवितरहै तबतक यह जीवतत्त्वके जाननेकी इच्छाकरताहै,कर्मका फल स्वर्गादि नहींहै मोक्षप्राप्ति फलहै ॥१०॥ तत्त्ववेत्ता जो अद्वितीय

ज्ञान कहतेहैं उसीको उपनिषद् ब्रह्म कहैं हैं परमात्मा कहैं हैं, भगवान् कहैं हैं॥ ११॥ मुनिजन उस ब्रह्ममें ज्ञान वैराग्य युक्त भक्ति श्रद्धासे वेदान्त सुनकर आत्मामें आत्माका दर्शन करतेहैं ॥ १२ ॥ हे ऋषियो ! इससे वर्णाश्रमके विभागसे सुन्दर अनुष्ठित धर्मकी यही सिद्धि है कि परमेश्वरका प्रसन्नकरना यही मनुष्योके योग्य है ॥ १३ ॥ इस कारण एकाग्रमनसे भगवान् सात्त्वतपतिका श्रवण, कीर्तन, ध्यान, पूजन करना योग्य है ॥ १४ ॥ जिस भगवान्का ध्यानरूप खड्ग लेकर कर्मरूप ग्रन्थिके बन्धनका विद्वान् (पण्डित) खण्डन करतेहैं, उनकी कथामें कौन प्रीति नहीं करैगा ॥ १५ ॥

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ॥ पश्यंत्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥ १२ ॥ अतः पुंभिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ॥ स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥ १३ ॥ तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतां पतिः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥ १४ ॥ यदनुध्याऽसिना युक्ताः कर्मग्रंथिनिबंधनम् ॥ छिंदंति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥ १५ ॥ शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ॥ स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ १६ ॥ शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ हृद्यंतःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥१७॥ नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥१८॥ तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये ॥ चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥ १९ ॥ एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ॥ भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसंगस्य जायते ॥ २० ॥

हे द्विजो! वासुदेव भगवान्की कथामें सुननेवाले श्रद्धालुकी रुचि महात्मा लोगोंकी सेवा करनेसे और पुण्यतीर्थ की सेवासे होतीहै॥ १६॥ सत्य पुरुषोंके मित्र पुण्यरूप श्रवण, कीर्तन करनेयोग्य श्रीकृष्ण अपनी कथा सुननेवाले सज्जनोंके हृदयमें वास कर सब अमंगल नाश करतेहैं॥ १७॥ जब नित्यप्रति भगवान्की सेवा करनेसे अमंगल नष्ट होगये तब भगवान् वासुदेवमें फलानुसन्धान रहित निष्काम भक्ति उत्पन्न होतीहै ॥ १८ ॥ जब रज, तम, भाव कामादि लोभादिकसे जिनका मन बींधा नहीं उनका मन सतोगुणमें स्थित होकर प्रसन्न होताहै॥ १९ ॥ भगवान्के भक्तियोगसे जिसका मन प्रसन्न है उसको भगवान्के तत्त्वका ज्ञान मुक्तसंग होनेसे होताहै ॥ २० ॥

जीव जब अपनेही रूपमें परमात्माका दर्शन करताहै तब उसके हृदयकी ग्रन्थि खुल जातीहै और सब संशय मिट जातेहैं, सब कर्मोका क्षय होजाता है ॥ २१ ॥ इस कारण सज्जन पुरुष मनको शुद्धकरनेवाली भक्ति नित्य वासुदेव भगवान्में करतेहैं॥२२॥सत्त्व, रज, तम यह तीनों मायाके गुण हैं उन तीनों गुणोंसे मिलाहुवा परम पुरुष एक इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन,नाशके लिये,ब्रह्मा,विष्णु, महेश यह संज्ञा धारण करतेहैं परन्तु इन तीनोंमें कल्याणके और शुभ फलके दाता वासुदेव ही हैं ॥ २३ ॥ पृथ्वीके विकारसे काठमें धुआँ होताहै, जिससे वेदत्रयीप्रतिपाद्य कर्मसाधक अग्नि होताहै इसी प्रकार तमसे रज रजसे सत्त्वगुण बढके ब्रह्मका दर्शन होताहै ॥ २४ ॥ इस कारणसे पहिले विशुद्ध सत्त्वमूर्ति इन्द्रियोंसे परे भगवान्को

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥ २१ ॥ अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ॥ वासुदेवे भगवति कुर्वंत्याऽऽत्मप्रसादिनीम् ॥ २२ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहाऽस्य धत्ते ॥ स्थित्यादये हरिविरिंचिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥ २३ ॥ पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २४ ॥ भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवंतमधोक्षजम् ॥ सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पंते येऽनु तानिह ॥ २५ ॥ मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ ॥ नारायणकलाः शांता भजंति ह्यनसूयवः ॥ २६ ॥ रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजंति वै ॥ पितृभूतप्रजेशादीञ्छ्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७ ॥ वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ॥ वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८ ॥

कल्याणके हेतु मुनीश्वर लोग भजतेथे, अबभी जो उनके पीछे इसप्रकार भजें हैं वह जीव इस संसारमे परमानन्द पाते हैं ॥ २५ ॥ इसकारण मुक्तिके चाहनेवाले घोररूप भूतपतियोंको त्याग कर निन्दाको छोड़ शान्तरूप नारायणकी कलाको भजैहैं ॥ २६ ॥ राजसी तामसी स्वभाववाले और सामान्य शीलवाले, पितर, भूत, प्रेत, प्रजाके अधीश्वरोंको लक्ष्मी, ऐश्वर्य, पुत्रके लिये पूजते हैं ॥ २७ सब शास्त्रोंका सार यही है कि, मोक्षके लिये मोक्षदाता वासुदेवका भजन करै, वेदभी वासुदेवकाही वर्णन करते हैं और यज्ञभी वासुदेवको कहैं हैं, योगभी वासुदेवको

कहैं हैं सब क्रिया वासुदेवका प्रतिपादन करैं हैं ॥२८॥ ज्ञानभी वासुदेवको कहैं हैं,तपभी वासुदेवको कहैं हैं, सब धर्म वासुदेवहीका वर्णन करैं हैं, गति सब वासुदेवहीको कहैं हैं ॥ २९ ॥ उस भगवान्ने अपनी मायासे पहिले इस विश्वको रचा, सत् असत् रूप गुणमयी मायासे आप समर्थहैं ॥ ३० ॥ उस मायाके गुणोंमें गुणवान्की भांति विज्ञानसे अधिक बढकर भीतर प्रवेश कर प्रकाश करैं हैं ॥३१॥ जैसे अपने उत्पत्तिस्थान काष्ठमेंही अग्नि अनेक भांतिसे प्रकाश करैहै ऐसेही विश्वात्मा पुरुष सब भूतोंमें नाना रूपसे प्रकाश करताहै॥३२॥ वह परमेश्वर गुणमय भूत सूक्ष्म इन्द्रिय आत्माके भावसे अपने रचेहुए पंचभूतोंमें उन गुणोंको भोगैहै ॥३३॥ वह वासुदेव भगवान् जगत्कर्ता संसारको सत्त्वगुणसे पालन करैहै, देव, पक्षी मनुष्यादिमें लीला

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ॥ वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥२९॥ स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ॥ सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥३०॥ तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ॥ अंतःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृंभितः ॥ ३१ ॥ यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु ॥ नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥३२॥ असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेंद्रियात्मभिः ॥ स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुंक्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥ ३३ ॥ भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः ॥ लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥३४॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ॥ संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥

वतार धारण करैहै॥३४॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां भगवद्गुणानुवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥दोहा–परब्रह्मअवतार जों, धरे चार अरु वीस ॥ सो वरणौ अब चरित सब, सुनिये कथा ऋषीश ॥ १ ॥ ❀ सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि इस अध्यायमें चौवीस

* शंका–सनकादिकोंने सूतजीसे श्रीकृष्णके अवतारकी कथा बूझीथी सूतने श्रीकृष्णके अवतारकी कथाको छोडकर आदिसे भगवान्के सब अवतारोंकी कथा क्यों वर्णन की बडे सन्देहकी बात है !

उत्तर–श्रीकृष्णके चरित्र दो प्रकारके ससारमें देख पडतेहैं, सत्सग करनेवाले मनुष्य तो श्रीकृष्णके चरित्रको मोक्षरूप मानेंगे और मूर्खलोग श्रीकृष्णके चरित्रको विषयका समुद्ररूप मानेंगे और युगयुगमें श्रीकृष्णका चरित्र बहुत विस्तारसे लिखाहै, यह विचार किया कि सनकादिक तो परमहस हैं श्रीकृष्णके चरित्रोंको सुनके मोक्षरूप मानेंगे, परन्तु पहिले कृष्णचरित्रको मूर्खलोग सुनेंगे तो वह मूर्खलोग उसको मोक्षरूप नहीं समझेंगे, उसको जारसुख मानकर श्रीकृष्णकी नाईं परस्त्रियोंसे क्रीडा करेंगे और रौरव नरकमें पडेंगे, पहिले श्रीकृष्णका अमृतरूप चरित्र जो वर्णन करेगे तो मूर्खलोग कृष्णके चरित्ररूप अमृतको अमृत नहीं जानेंगे विषयरूपी समुद्र समझकर उसमें डूब मरेंगे और जो पहिले और और अवतारोंके चरित्र वर्णन करेंगे तो उन चरित्रोको धीरे धीरे सुनकर मूर्खभी ज्ञानी होजावेंगे और पीछेसे श्रीकृष्णके चरित्रोंको सुनेंगे तो भ्रम नहीं करेंगे, मोक्षरूप मानेंगे, इसलिय प्रथम कृष्णका चरित्र सूतजीने वर्णन नहीं किया ।

२

अवतारोंकी कथा है, पुरुष अवतार हुआ, भगवान्‌ने महत्तत्त्व आदिले पुरुष रूप धारण किया, संसार रचनेकी इच्छा कर सोलह कलाके रूपसे अवतार लिया ॥१॥जब जलशायी नारायणने योगनिद्रा विस्तारी, उस समय श्रीनारायणके नाभिरूप सरोवरके कमलमेंसे विश्वरचनेवालोंके पति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए॥२॥जिनके अंगसे जगत्‌का विस्तार हुआहै, वह भगवान्‌का विशुद्ध तत्त्व महा बलिष्ठरूप है॥३॥जिनके असंख्यचरण,जंघा,भुजा, मुख,अद्भुत हैं और जिसमें असंख्य मस्तक,श्रवण, नेत्र,नासिका हैं,असंख्य शिर,भूषण,वस्त्र,कुण्डल, विराजरहेहैं ऐसे स्वरूपका ज्ञान नेत्रोंसे योगीजन दर्शन करते हैं॥४॥यह आदिनारायण सब अवतारोंका बीज अव्यय है, सब कार्य अन्त समय इसीमें प्रवेश करे हैं,जिसके अंश ब्रह्माजी हैं,जिसके

यस्यांभसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ॥ नाभिह्रदांबुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ २ ॥ यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ॥ तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥ पश्यंत्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥ सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यंबरकुंडलोल्लसत् ॥ ४ ॥ एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥ यस्यांशांशेन सृज्यंते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ५ ॥ स एव प्रथमो देवः कौमारं सर्गमास्थितः ॥ चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखंडितम् ॥ ६ ॥ द्वितीयं तु भवायाऽस्य रसातलगतां महीम् ॥ उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥ तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ॥ तंत्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मिणां यतः ॥ ८ ॥ तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ॥ भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥

अंशसे मरीचि आदिक देव, पशु, पक्षी मनुष्यादि रचेजातेहैं ॥५॥ प्रथम सनत्कुमार अवतार श्रीनारायणने लिया उनका चरित्र वर्णन करते हैं, सो प्रथम देवकुमार हुए,ब्राह्मण होकरभी अति अखण्ड कठिन तप कर ब्रह्मचर्य व्रत करतेरहे॥ ६ ॥ दूसरी बार वाराह अवतार धारण कर रसातल गईहुई पृथ्वीको उठालाये,इस विश्वकी उत्पत्तिके लिये यज्ञेश वाराहजी हुए॥७॥तीसरी बार सो भगवान् नारदजी हुए, ऋषियोंमें देवऋषि होकर सब कर्मोंके बन्धनसे छूटगये,जिन्होंने वैष्णवोंके लिये, पंचरात्र तंत्र कहा ॥ ८॥ चौथी बार धर्मकी कला नाम स्त्रीके उदरसे नरनारायण नाम विख्यात ऋषि हुए

और संसारके जीवोंको दिखानेके लिये बदरीकेदारमें जाकर तप किया ॥९॥ पांचवीं बार कपिलदेव अवतार धरकर सिद्धेश कपिल नाम होकर बहुत दिनोंसे जो तत्त्वसमूहोंका ज्ञान नष्ट होगयाथा उसके निश्चय करनेको सांख्यशास्त्र बनाकर आसुरि ब्राह्मणको उपदेश किया और अपनी माताको ज्ञान दिया ॥१०॥ छठा दत्तात्रेय अवतार ले अत्रिमुनिके पुत्र हुए और अनसूयाको प्रसन्न करा और राजा अलर्क अरु प्रह्लाद भक्तको आत्मविद्या पढ़ाई ॥ ॥११॥ सातवॉ यज्ञअवतार हुवा रुचि प्रजापतिकी आकूती नाम स्त्रीके उदरसे यज्ञ भगवान्‌ने जन्म लिया यामानाम देवगण समेत स्वायंभुव मन्वन्तरकी रक्षा करी ॥१२॥ आठवीं बार ऋषभदेवजीका अवतार हुआ, नाभिनाम राजाकी मेरुदेवी नाम स्त्रीसे प्रगट हुए, सब आश्रम जिसको नमस्कार

पंचमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचाऽऽसुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥ षष्ठमत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ॥ आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११ ॥ ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ॥ स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवांतरम् ॥ १२ ॥ अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ॥ दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥ रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे ॥ नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥ सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मंदराचलम् ॥ दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६ ॥ धान्वंतरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ॥ अपाययत् सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ॥ १७ ॥

करतेथे, जिन्होंने धीर पुरुषोंको पारमहंस्य आश्रम दिखाया॥१३॥ नवमीं बार पृथु अवतार राजा वेनके शरीर मथनेसे हुआ, ऋषियोंकी चाहनासे पृथु अवतार धारण करके सब औषधी जिसने छिपालीं उस गऊ रूपी पृथ्वीको दुहकर सब वस्तुका सारांश निकाला, यह अवतार अत्यन्त श्रेष्ठ हुआ ॥ ॥१४॥ दशवीं बार मत्स्यावतार धर चाक्षुष मन्वन्तरमें सब समुद्र एक हुए, पृथ्वीमय नावमें बिठाकर वैवस्वत मनुकी रक्षा करी (और सत्यव्रतको सप्तऋषियों समेत नौका पर बैठालकर ज्ञान उपदेश किया और उसको अपनी माया कौतुक दिखाया।)॥१५॥ ग्यारहवीं बार कच्छप रूप धरा जब सुर असुरोंने समुद्रको मथा, उस समय कच्छप अवतार धर मंदराचल पर्वतको भगवान्‌ने पीठपर धरा ॥१६॥ बारहवीं बार धन्वन्तरि अवतार धारणकर

एक कलश अमृतका हाथमें लिये समुद्रसे उत्पन्न हुए। तेरहवीं बार मोहनी अवतार धारणकर दैत्योंको अपना सुन्दर स्वरूप दिखाकर मोहित किया और अमृतका कलश उनसे लेलिया और देवताओंको पिलाकर उनकी रक्षा करी॥१७॥ चौदहवीं बार नृसिंहरूप धर हिरण्यकशिपुदैत्यका नखोंसे उदर विदार अपने प्यारे भक्त प्रह्लादकी रक्षाकरी ॥१८॥ पन्द्रहवींबार वामनतनु धर राजा बलिके यज्ञमें गये और तीन पग पृथ्वी मांगकर इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया और बलिको पातालका राजा किया"परन्तु मांगना अत्यन्त बुरा कामहै,मांगनेवालेको सबठौर छोटा बनना पडताहै इसीकारण नारायणने छोटा रूप धारण किया"॥१९॥सोलहवां परशुराम अवतार धर क्षत्रियोंका क्षय किया और उनसे इक्कीसबार पृथ्वीको जीतकर ब्राह्मणोंको दान करदी ॥२०॥ सत्रहवीं बार पराशरजीकी पत्नी सत्यवतीके उदरसे व्यास अवतार ले पुरुषोंको निर्बुद्धि और अज्ञानी जानकर वेदका विभाग

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येंद्रमूर्जितम् ॥ ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥ पंचदशं वामनकं कृत्वाऽगादध्वरं बलेः ॥ पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥ अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ॥ त्रिस्सप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥ ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥ नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ॥ समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२ ॥ एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ॥ रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥ ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् ॥ बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥

और वेदकी शाखाओंका विस्तार और अठारह पुराण महाभारतादिक ग्रन्थ रच संसारका उद्धार किया ॥२१॥ अठारहवीं बार श्रीरामचन्द्र अवतार धारण कर भक्तोंके कार्य करनेके लिये समुद्रका पुल बांध रावण घननाद कुम्भकर्णादि राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उतारा और अनेकाश्चर्य युक्त कर्म करके देवताओंकी रक्षा करी ॥ २२ ॥ उन्नीसवीं बार बलराम और श्रीकृष्णचन्द्र अवतार धरकर कालयवन, जरासन्ध, कंसादिक दुष्ट राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उतार भक्तोका संसारसे उद्धार करनेके लिये अद्भुत अद्भुत चरित्र दिखाये ॥२३॥ बीसवीं बार कलियुगकी प्रवृत्ति देख जिनसुत बुद्धने गयाके समीप कीकट देशमें अवतार लिया " जब कलियुग आया तब देवताओंने यज्ञ करकरके दैत्योंका बल नहीं चलने दिया

तो दैत्योंने अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे बूझा कि हे भगवन्! देवतालोग सर्वथा इन्द्रपुरीका राज्य करना चाहतेहैं कोई ऐसा उत्तम उपाय बताओ जिसमें दैत्यकुलका राज्य बना रहै, शुक्राचार्यने कहा हे दैत्यो! देवताओंका राज्य यज्ञादिक कर्म करनेसे निष्कण्टक बनरहाहै तुमभी यज्ञ करो शुक्राचार्यका उपदेश मान दैत्योंनेभी यज्ञ करना आरंभ करदिया तब तो सब देवता भयभीत होकर विष्णुके पास गये और बहुत स्तुति कर हाथ जोड़कर बोले कि, हे वैकुण्ठनाथ! अब दैत्यलोगभी यज्ञ करनेको उपस्थित हैं। जो उनका यज्ञ पूर्ण होगया तो वह लोग हमसे बलवान् होजांयगे और हमारा बल उनके सन्मुख कुछ न चलैगा और फिर हम उनको कभी नहीं जीत सकैंगे अब हमको कोई ऐसा उपाय बताओ जिसमें हमारा कल्याण होय। देवताओंका यह वचन सुन श्रीनारायणजीने उसी समय बौद्ध अवतार धारण किया और सेवडेका रूप धर मैले कुचैले वस्त्र पहन चौंरी हाथमें लेकर वहां पहुँचे जहां दैत्यलोग यज्ञ कररहेथे, दैत्योंने उनका तेजस्वी स्वरूप देख और ज्ञानवान् जान बडा आदर सन्मान किया और उनसे बूझा कि, हे कृपानाथ! आपके हाथमें यह क्या वस्तु है? बौद्धजीने कहा यह चौंरी है, दैत्य बोले कि हे नाथ! इसके रखनेसे क्या

अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ॥ जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः॥ २५ ॥

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः॥ यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥

लाभ है? बौद्धजीने उत्तर दिया कि जिस स्थानपर मनुष्य बैठताहै उसके नीचे छोटे छोटे जीव जो पृथ्वीपर रहते हैं, वह दबकर मरजाते हैं, सो इस चौंरीसे भूमिको झाडकर बैठना चाहिये जिससे जीवोंकी रक्षा हो, फिर दैत्योंने बूझा कि हे स्वामिन्! आपके वस्त्र मैले कुचैले किस कारण हैं? बौद्धजीने कहा–कपडे धोनेसे भी जीवहिंसा होतीहै क्योंकि वस्त्रोंमें अनेक जीव रहतेहैं दैत्योंने जब इस प्रकारके वचन सुने, तब तो दैत्योंके मनमें दया उपजी और यज्ञ करनेसे उनका चित्त हटगया और परस्पर विचार करने लगे कि यज्ञ करनेमें तो अनेक जीवोंकी हिंसा होगी तो हमारा सब यज्ञ करना निष्फल है बरन् और दूना पापका भागी होना पडैगा ऐसे मनही मनमें सोच समझ दैत्योंने यज्ञ करना बंद करदिया तब तो उनका सब पुरुषार्थ ढीला होगया और सब धर्म कर्म नष्ट होगये और देवताओंका बल बढा ॥ २४ ॥ युगकी सन्धिमें जब राजा भी चोर होजांयगे, तब सम्भलग्राममें विष्णुयश नाम ब्राह्मणके यहां जगत्पति कल्किअवतार धारण करेंगे ॥ २५ ॥ उस सत्त्वगुणी परब्रह्म परमेश्वरके अनंत अवतार हैं, जैसे कभी जिस सरोवरसे जल नहीं घटै, उस सरोवरसे तुच्छ प्रवाहवाली अनेक नदी बहैं हैं ॥ २६ ॥

ऋषि, मुनि, देवता, मनुसुत, महाबली, प्रजापति, यह सब परब्रह्म परमेश्वरकी कला हैं ॥ २७ ॥ उस अविनाशी पुरुषके यह सब अंश और कला हैं, श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं भगवान् हैं, शत्रुओंसे जब जगत् व्याकुल होजाताहै तब युग युगमें अवतार ले सबको सुखी करते हैं ॥ २८ ॥ उस अविनाशी अव्यय पुरुषके छिपे हुए जन्मोंकी कथा जो नर पवित्र होकर संध्या समय और प्रातःकाल पढे हैं और सुने हैं, वह लोग अनेक २ कष्टोंके समूहोंसे छूट जातेहैं ॥ २९ ॥ जिसका रूप नहीं और चित् एक रस व्यापक उसका वह रूप है, यह तत्त्वादि मायाके गुणोंसे जीवात्मा अन्तर्यामीमें प्रगट होते हैं ॥ ३० ॥ जैसे पवनके आश्रयसे मेघ आकाशमें रहतेहैं, यह अज्ञानियोने मान रक्खाहै, जैसे पृथ्वीके रेणुको धुन्धकारादिक

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ॥ कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ २७ ॥ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भागवान् स्वयम् ॥ इंद्रारिव्याकुलं लोकं मृडयंति युगेयुगे ॥ २८ ॥ जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ॥ सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ॥ मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥३०॥ यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ॥ एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥ अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ॥ अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥ यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ॥ अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥ यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ॥ संपन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥

पवनमें अज्ञानी समझते हैं तैसे द्रष्टा आत्मामें दृश्यत्वादि शरीरधर्म अज्ञानियोंने माना है ॥ ३१ ॥ इस कारण पर ईश्वर अति सूक्ष्म है, अनंत आकार, विशेष रहित है, अदृष्ट अश्रुतवस्तु है, इसलिये जीवांतर्यामी है, वारबार अपना ज्ञान होनेके हेतु जीवरूपसे होताहै ॥ ३२ ॥ जिसमें अपने ज्ञानसे यह सत् असत् रूप अविद्यासे जीवात्माके अन्तर्यामीमें विचारे तौ ब्रह्मका दर्शन होताहै ॥ ३३ ॥ जो यह क्रीडा करनेवाली परमेश्वरकी माया दूर होजाय तो श्रेष्ठमतवाले ब्रह्मरूपमें लय होतेहैं और अपनी महिमामें आपही पूजित होते हैं ॥ ३४ ॥

ऐसे अकर्ताके कर्म और अजन्माके जन्म वेदमें छिपेहुए हैं, यह सब लक्षण अन्तर्यामीके हैं ऐसे कवीश्वर लोग वर्णन करतेहैं ॥ ३५ ॥ अमोघ लीलाधारी ईश्वर इस विश्वको रचैहै, पालन करैहै, प्रलय करैहै परन्तु इसमें आसक्त नहीं होता, सब जीवोंमें अन्तर्हित है स्वतंत्र है छै गुणोंको ईश्वर है परन्तु छहों इन्द्रियोके विषय दूरसे ग्रहण करै है, छहों इन्द्रियोंका स्वामी है ॥ ३६ ॥ मन वचनसे नाम रूपका विस्तार करैहै ऐसे ईश्वरकी लीलाको कोई मनुष्य सम्पूर्णतासे नही जान सक्ता, जैसे नटकी लीलाको मूर्ख लोग नहीं जानते ॥३७॥ जो मनुष्य कुटिलभाव त्याग सदा अनुकूलतासे परमेश्वरके चरणारविन्दोंकी सुगन्धको भजै हैं सो मनुष्य चक्रधारी महाप्रतापी दीर्घपराक्रमी धाता परमेश्वरकी पदवीको जानतेहैं ॥ ३८ ॥ इससे

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ॥ वर्णयंति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥ स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ॥ भूतेषु चांतर्हित आत्मतंत्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६ ॥ नचास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जंतुः कुमनीष ऊतीः ॥ नामानि रूपाणि मनोवचोभिः संतन्वतो नटचर्यामिवाऽज्ञः ॥ ३७ ॥ स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरंतवीर्यस्य रथांगपाणेः ॥ योऽमायया संततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगंधम् ॥ ॥ ३८ ॥ अथेह धन्या भगवंत इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ॥ कुर्वंति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥ ३९ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥ निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥ सर्ववेदेतिहासानां सारंसारं समुद्धृतम् ॥ ४१ ॥ स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ प्रायोपविष्टं गंगायां परीतं परमर्षिभिः ॥ ४२ ॥

तुम लोग सब धन्य हो जो सब लोकके नाथ परमेश्वरमें सर्वात्मासे आत्मभावना करतेहो, अब तुम्हारा जन्म मरण संसारमें नहीं होगा ॥ ३९ ॥ सब वेदोंके समान, भगवान्के चरित्रोंसे परिपूर्ण ऐसा उत्तम यह श्रीमद्भागवत महापुराण व्यासजीने बनायाहै ॥ ४० ॥ संसारके सुखके लिये धनदायक मंगलदायक महान् ज्ञानवान् आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजीको सब वेदों और इतिहासोंका सार निकालकर पढाया ॥ ४१ ॥ वही श्रीमद्भागवत समस्त वेद इतिहासोंका तत्त्व निकालकर शुकदेवजीने राजा परीक्षित्को सुनाया, परम ऋषि समेत राजा

परीक्षित् गंगाकिनारे अन्तसमयतक बैठे रहे ॥ ४२ ॥ धर्म ज्ञानादिसहित जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द द्वारकासे परमधामको गये, तब कलियुगका समय जान लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट देख श्रीवेदव्यासजीने यह श्रीमद्भागवत महापुराण धर्मरूपी सूर्यका प्रकाश किया॥ ४३ ॥ हे ऋषियो ! श्रीशुकदेवजी तेजस्वीने राजा परीक्षित्से यह बात कही, वहांभी उनकी कथा संक्षेपसे हमने सुनी सो कथा जैसी हमने सुनी है और गुरुसे पढ़ीहै, अपनी बुद्धिके अनुसार आप लोगोंको विस्तारसहित सुनावेंगे ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे चतुर्विंशत्यवतारकथावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥दोहा–सुनत प्रश्न सब ऋषिनके, हर्ष सूत मुसकाय॥ जेहि विधि बने पुराण सब,कहौ कथा समझाय ॥१॥ व्यासजी बोले

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥ कलौ नष्टदृशामेष पुराणाऽर्कोऽधुनोदितः ॥ ४३ ॥ तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षे र्भूरितेजसः ॥ अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ॥ सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाऽधीतं यथामति ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० म० प्रथमस्कं० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥ वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूतसूत महाभाग वद नो वदतां वर ॥ कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ॥ २ ॥ कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ॥ कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान्संहितां मुनिः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः ॥ एकांतमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥ ४ ॥

कि, पूर्ण यज्ञकर्त्ता मुनिमण्डलीके मध्य सूतजी जो विराजमान थे, उनसे वृद्ध कुलभूषण ऋग्वेद पारगामी शौनक मुनि बोले ॥ १ ॥ कि, हे सूत ! हे महाभाग ! ! हे सत्यवक्ता ! ! ! श्रीमद्भागवतकी पुण्यदायक कथा हमको सुनाओ, जो भगवान् श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्से कही थी ॥२॥ कौनसे युगमें किस स्थानमें किस कारणसे भागवतकी प्रवृत्ति हुई, व्यासजीके चित्तमें किसने प्रेरणा करी,जो मुनिवरने यह अमृतरूपी संहिता रची? ॥३॥ उनके पुत्र महायोगी, दिगम्बर वेषधारी, समदर्शी, भेदभावरहित, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, भगवत् भजनमें लवलीन ऐसे शुकदेवजीने ॥४॥

"जिस समय जन्म लिया उसी समय संन्यास ले, संसारकी माया तज, नार विवारसहित वनको चलदिये और मनमें यह विचार किया कि, यहाँ रहनेसे सैकड़ों आपत्ति हैं, इसलिये अभी वनमें जाकर परमेश्वरका भजन करना चाहिये, पुत्रकी यह दशा देख व्यासजी मनमें अत्यन्त सोच संकोच कर मोहवश पुत्रके विरहमें व्याकुल हो पुत्र पुत्र पुकारते पुत्रके पीछे दौड़े; हे पुत्र ! हमको कहां छोड़े जातेहो, ठहरो ठहरो किंचिन्मात्र खड़े होकर हमारी एक बात तो सुनते जाओ, परन्तु शुकदेवजीने खडा होना उचित न समझा क्योंकि यह तो संसारसे पहिलेही विरक्त होकर परमेश्वरके चरणारविन्दोंमें अपने मनको लवलीन करचुके थे, शुकदेवजीने अपने मनमें कहा देखो हमारे पिताको इस अवस्थामें भी कुछ ज्ञान नहीं, संसारकी मायामें लिप्त होरहे हैं, उनको धैर्य देनेके लिये वनके वृक्षोंमें प्रवेश होकर कहा, हे व्यासजी ! तुम किस मायामें भूलरहेहो ? न कोई किसी का पुत्र है न कोई किसीका पिताहै यह सब स्वप्नकासा व्यवहार है, संसारकी गति सदासे इसी भांति चली आतीहै और यह जीव बारबार संसारमें

दृष्ट्वाऽनुयातमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ॥ तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः॥५॥कथमालक्षितः पौरैः संप्राप्तः कुरुजांगलान् ॥ उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ॥६॥

जन्म लेता है और मरता है, यह संसार आवागमनकी जड़ है, यह बात सुन व्यासजीको धैर्य हुआ" यह कह शुकदेवजी आगेको चले तो मार्गमें एक सरोवर दृष्टि आया उसमें देवस्त्री नंगी स्नान कररही थीं उन्होंने शुकदेवजीको देख कुछ लज्जा नहीं करी उसी भांति नंगी खड़ीरहीं, पीछे व्यासजी वृद्ध बाबाभी वहां पहुँचे, तव तो सब देवांगना लज्जितहो अपना अंग वस्त्रोंसे ढकने लगीं यह विचित्र भाव देख व्यासजी अपने मनमें विचार करने लगे कि, शुकदेव हमारे पुत्रको देख इन्होंने लज्जा नहीं करी और मुझ वृद्ध मनुष्यको देख वस्त्र पहन लिये, इसका क्या कारण है, उन देवांगनाओंने देवदृष्टिसे व्यासजीके मनका भ्रम जान कहा हे व्यासजी ! आप स्त्री और पुरुषके भेद भावको भली भांति जानतेहो, इसलिये आपसे लज्जा की, और शुकदेवजीकी परमहंस गति है वह स्त्री और पुरुषमें कुछ भेद नहीं समझते वह समदर्शी हैं इस लिये हमने उनसे कुछ लज्जा नहीं करी । यह बात सुन व्यासजीके मनका सब सन्देह जाता रहा ॥ ५ ॥ कुरु जांगल देशमें गये तो कैसे विदित हुआ कि, यह शुकदेवजी हैं, उन्मत्त गूँगे जडकी नाईं हस्तिनापुरमें फिरतेथे ॥ ६ ॥

सो परम भागवत शुकाचार्यसे राजऋषि परीक्षित्‌का संवाद कैसे हुआ ? ॥ ७ ॥ हे सूतजी ! इस बातका हमको बड़ा सन्देह है, जो महाभाग्य
शुकाचार्य गोदोहन मात्रसे अधिक कहीं नहीं ठहर सक्ते थे, ऐसे विरक्त होकर सात दिन राजा परीक्षित्‌के निकट कैसे ठहर कर कथा सुनाते रहे
और उनके आश्रमको पवित्र किया × ॥ ८ ॥ हे सूत ! अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्‌को भागवतोंमें उत्तम कहते हैं, सो उनका जन्म कर्म महाआश्चर्य

कथं वा पांडवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ॥ संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥ ७ ॥ स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८ ॥ अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ॥ तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९ ॥ स सम्राट् कस्य वा हेतोः पांडूनां मानवर्धनः ॥ प्रायोपविष्टो गंगायामनादृत्याऽधिराट्श्रियम्॥ १० ॥ नमंति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हाऽऽनीय धनानि शत्रवः॥ कथं स वीरः श्रियमंग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥ ११ ॥

का है सो कहो ॥ ९ ॥ पाण्डुकुलभूषण चक्रवर्ती महाराज परीक्षित् राज्यलक्ष्मीका अनादर कर किस हेतुसे गंगाके किनारे अन्न जल त्यागकर
अन्तसमयतक बैठे सो कहो ॥ १० ॥ हे मित्र सूत ! शत्रुलोग धन लाकर जिनके चरणोंको प्रणाम करते हैं, अपनी देहकी रक्षाके लिये ऐसी लक्ष्मी
को वीर तरुण राजा परीक्षित्‌ने प्राणसहित त्यागनेकी कैसे इच्छा करी ? ॥ ११ ॥

× शंका–श्रीशुकदेवजी जिसके ऊपर अत्यन्त कृपा करतेथे उसके स्थानपर इतनी देर ठहरतेथे कि, जितनी देर गायके दुहनेमे लगतीहै, सो शुकदेवजी गंगाके किनारेपर सातदिन क्यों ठहरे ? और राजा परीक्षित्‌को श्रीमद्भागवत क्यों सुनाई ? ।

उत्तर–एक दिन अपनी इच्छासे श्रीशुकदेवजी गोलोकको गये, तव श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने विधिपूर्वक शुकदेवजीका पूजन किया, पूजन ग्रहण करके जब शुकदेवजी चलने लगे तव राजा परीक्षित्‌के मोक्ष होनेके लिये श्रीकृष्णने शुकदेवकी प्रार्थना की कि, हे मुने ! पाण्डव मेरे बडे मित्र थे, उन अर्जुनका यह परीक्षित् पोताहै, शृंगीऋषिके शापसे तक्षक साँप उसको काटेगा और सर्पसे काटा निःसन्देह नरकमें जाताहै, जव वह परीक्षित् नरकमें गया तो त्रिलोकीमे मेरी वडी दुर्नामता होगी, लोग हँसी करेंगे कि, कृष्णके मित्रका पोता नरकमें जाताहै, देखो भाई ! अव जैसी आपकी इच्छा हो उसी प्रकारसे परीक्षित्‌का नरकसे उद्धार करो और उसको मेरे लोकको भेजो, इस प्रकार श्रीकृष्ण जगदाधारकी प्रार्थनासे गंगाके निकट राजा परीक्षित्‌के पास सातदिन रहकर श्रीमद्भागवतकी कथा सुनाई, जिसके सुननेसे महादुस्तर संसारसे निस्तार हो जाताहै क्योंकि, चार वेद, छह शास्त्र, अठारह पुराण, भारतादि अनेक ग्रन्थोंका सार निकालकर मुक्तिदायक वेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतकोही हितचित्तसे रचा है ।

संसारके कल्याणके लिये सब जीवों के ऐश्वर्यके अर्थ सुन्दर यशस्वी श्रीनारायणके परायण जन जीतेहैं कुछ अपनी देह आत्माके कारण नही, जब ऐसा है तौ अनेक जीवोंको जीवदान देनेवाली देहको वैराग्य लेकर कैसे त्याग किया ?॥ १२ ॥ हे कृपासिन्धु ! जो कुछ मैंने पूछा और जो कुछ मेरे बूझनेमे रह गया होय सो सब कृपा करके हमसे कहो क्योंकि, वेद विषय छोडकर वाणीसे जानने योग्य अर्थमें तुम चतुर और पारगामी हो ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि ! बहत्तर ७२ चतुरयुगियोंमें जब तीसरी वार द्वापरयुग आया तब पराशर मुनिसे उपरिचर वसुके वीर्यसे उत्पन्न सत्यवतीमें योगीश्वर श्रीव्यासजी महाराजने विष्णुकी कलासे अवतार लिया ॥ १४ ॥ सो व्यासजी एकसमय सरस्वतीमें स्नान कर

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ॥ जीवंति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥ १२ ॥ तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन ॥ मन्ये त्वा विषये वाचां स्नातमन्यत्र च्छांदसात् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ॥ जातः पराशराद्योगी वासव्या कलया हरेः ॥ १४ ॥ स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि ॥ विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥ १५ ॥ परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगेयुगे ॥ १६ ॥ भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ॥ अश्रद्दधानान्निस्सत्त्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥ दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥ १८ ॥ चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसंतत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥ १९ ॥

पवित्र हो सूर्योदयके समय एकांत स्थान बद्रिकाश्रममें बैठेथे ॥ १५ ॥ भूत भविष्यके ज्ञाता श्रीव्यासदेव कलियुगके कारणसे युग युगमें पृथ्वीपर सब वर्णाश्रम धर्म उलटेहुए जानकर ॥ १६ ॥ शरीरधारियोंको शक्तिहीन, श्रद्धाहीन, सत्त्वगुणहीन, बुद्धिहीन, आयुहीन ॥ १७ ॥ ऐसे दुर्भागी जीवोंको देख श्रीमुनिराज दिव्यज्ञानचक्षुसे सब वर्णोंका और सब आश्रमोंका हित विचारकर ॥ १८ ॥ ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, आग्नीध्र इन चारोंसे अनुष्ठेय प्रजाओंके शुद्धकारक वैदिककर्मको जानकर यज्ञोंके अविच्छेदके लिये एक वेदके चार भाग किये ॥ १९ ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यह चार अलग अलग किये इतिहास पुराणोको पंचम वेद कहाहै ॥ २० ॥ पैलमुनिने ऋग्वेद पढा, जैमिनि पण्डितने सामवेद सीखा, वैशंपायनजी यजुर्वेदके पारंगत हुए ॥ २१ ॥ अंगिरा गोत्री, सुमन्तुमुनि, अथर्ववेदके ज्ञाता हुए, उस वेदके मारण उच्चाटनादिकर्म करनेसे उनका नाम दारुक हुआ और इतिहास पुराणोके पारगामी हमारे पिता रोमहर्षणजी हुए ॥ २२ ॥ वह सब ऋषि अपने अपने वेदका अनेक प्रकारसे विभाग करनेलगे, उनके शिष्य और प्रशिष्य और उनकेभी शिष्योंसे वेदोंकी शाखा हुई ॥ २३ ॥ पहिले बड़े बड़े चतुर और अतिविशालबुद्धि वेदका अर्थ जानतेथे, अब उन्हीं वेदोंको मूर्ख निर्बुद्धि लोग पढके उनके उलटे पुलटे अर्थ करने लगे तब व्यासजी

ऋग्यजुःसामाऽथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ॥ इतिहासः पुराणं च पंचमो वेद उच्यते ॥ २० ॥ तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ॥ वैशंपायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥ २१ ॥ अथर्वांगिरसामासीत्सुमंतुर्दारुणो मुनिः ॥ इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२ ॥ त एव ऋषयो वेदं स्वंस्वं व्यस्यन्ननेकधा ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥ २३ ॥ त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यंते पुरुषैर्यथा ॥ एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥ २४ ॥ स्त्रीशूद्रद्विजबंधूना त्रयी न श्रुतिगोचरा ॥ कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥ इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ २५ ॥ एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ॥ सर्वात्मकेनापि यदा नाऽतुष्यद्धृदयं ततः ॥ २६ ॥ नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ॥ वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥ २७ ॥ धृतव्रतेन हि मया छंदांसि गुरवोग्नयः ॥ मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥ २८ ॥

महाराजने यह बनाया ॥ २४ ॥ स्त्री शूद्र और मूर्ख इन तीनोंको वेदत्रयी पढनेका अधिकार नहीं, उनके कल्याणके लिये यह विचार कृपापूर्वक महाभारत बनाया ॥ २५ ॥ और व्यासजीने सब वेदोंका सार लेकर उसे बनाया, हे शौनकादिक मुनियो ! सब जीवोंके हितके लिये अधिक परिश्रम करके महाभारतादिक ग्रन्थ रचे परन्तु मन तौभी प्रसन्न नहीं हुआ और वारवार यही विचार करते थे कि अब हम कौनसा ग्रन्थ रचें, जिसमें हमारे मनको धैर्य हो ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसी चिन्तामें व्यासजी पवित्र सरस्वतीके किनारे एकांतमे बैठे अनेक अनेक तर्क वितर्क करते करते

उदासीनचित्त होकर धर्मात्मा व्यासजी कहने लगे मैंने व्रत करके अनेक शुद्ध कर्म करके गुरु, अग्नि, सबको निष्कपट भावसे माना और उनकी आज्ञाको अपने शिर धारण किया ॥ २८ ॥ भारतके बहानेसे सब वेदका अर्थ कहा, जिस भारतमें स्त्री शूद्रादिकका भी धर्म, अर्थ, काम जानपड़ै ॥ २९ ॥ मैं ब्रह्मतेजवालोंमें श्रेष्ठभी हूं परन्तु बड़े खेदकी बात है कि, मेरा जीव समर्थ मनसे प्रसन्न नहीं ॥ ३० ॥ अथवा वोह भागवत धर्म अनेक प्रकारसे नहीं कहे हैं जो भागवत धर्म परमहंसोंको प्यारे हैं वह भगवत्को प्यारे हैं ॥ ३१ ॥ अपने आपको छोटा समझ खेदित मन इसी सोचमें व्यासजी सरस्वतीके निकट बैठे विचारकर रहे थे कि, उसी अवसरपर श्रीनारदजी उस आश्रमपर आये ॥ ३२ ॥

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ॥ दृश्यते यत्र धर्मादिस्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥ २९ ॥ अथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ॥ असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥ ३० ॥ किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ॥ प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥ ३१ ॥ तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ॥ कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥ ३२ ॥ तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ॥ पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भा० म० प्रथ० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ॥ देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥ १ ॥

उनको देख व्यासजी अत्यन्त प्रफुल्लित हो शीघ्रतासे उठे और विधिवत् पूजन कर बड़े आदर सत्कारसे आसनपर बैठाला ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां नारदव्याससंगमो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥दोहा—इस पंचम अध्यायमें, नारद व्यास मिलाप॥कही कथा सब देवऋषि, जैसे मुनिभये आप ॥ १ ॥ इतनी कथा कह सूतजी बोले कि, सुखपूर्वक बैठे व्यासजीसे सर्व विद्यासागर जगत् उजागर वीणा हाथमें लिये देवऋषि नारदजी मुसकाके बोले * ॥ १ ॥

* **शंका**—त्रिलोकीमें किसी जीवको नारदजी दु खी देखके अत्यन्तदुःखी होतेथे और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडतेथे और विह्वल होजातेथे भगवान्के भक्त नारदजी उस जीवके दु ख दूर करनेके लिये अनेक उपाय करतेथे कि, कोई प्राणी दु खी न हो यह विचार सदा सबका उपकार करते, फिर ऐसे दयालु भगवान्के प्यारे वेदव्यासजीको दु खी देखकर नारदमुनि क्यों हँसे? और यह अयोग्य काम क्यों किया, यह बडाभारी सन्देह है कि, अपना स्वभाव क्यों छोडा ? ॥

उत्तर—नारद मुनिने वडा स्नेह करके वडे आदरसे व्यासजीको निवारण किया कि, हे व्यास! ससारके ठगनेवाले ग्रन्थ मत बनाओ, जिसके नामका ग्रन्थ उसकी तो प्रशसा और दूसरेकी निन्दा, फिर दूसरे नामका-

नारद उवाच॥ पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ॥ परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥ जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् ॥ कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥ जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे ॥ तन्मूलमव्यक्तमगाधबोध पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥ ५ ॥ स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ॥ परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसंगः ॥ ६ ॥

हे पराशरपुत्र! हे महाभाग! आपके शरीरसे शरीरका अभिमानी प्रसन्न है और मनका अभिमानी मनसे प्रसन्न है कि नहीं ॥ २ ॥ जो जानने योग्य था सो भी आपने जाना अद्भुत अद्भुत सब अर्थोंकी खानि महाभारत भी आपने रचा ॥ ३ ॥ जो सनातन नित्य परब्रह्मकोभी विचारसे आपने प्राप्त किया एक वेदके चार भाग किये और उनका सार निकाल और बहुतसे ग्रन्थ और पुराण रचे तौभी ऐसे शोचवश हो रहेहो जैसे किसीने अनेक यत्नकर अपना कार्य सिद्ध कियाहो और उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआहो जैसे वह सोच करे है, हे प्रभो! तुम सर्वज्ञ होकर ऐसे सोचवश किस कारण होरहेहो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले जो तुमने कहा सो सब सत्य है परन्तु तौभी मेरा मन प्रसन्न नही है इसका कारण में नहीं जानता इसलिये आपको ब्रह्माजीका पुत्र ब्रह्मज्ञानी जान आपसे पूँछूहूं ॥ ५ ॥ जो सबसे गुप्त बातहै सो आप भली भांति जानते हो क्योंकि, जो पुराणपुरुष है उसकी तुमने उपासना करीहै, गुणरहीत कार्य कारणके नियंता जो अपने मनसेही सब विश्वको रचै पाले संहार करै है ॥ ६ ॥

—ग्रन्थ उसीकी प्रशंसा और जिसकी प्रशंसा की थी दूसरे ग्रन्थमें उसकी निन्दा, ऐसे ग्रन्थ मत बनाओ कि, जिसमें मोक्षदायक यदुनायकका नाम न हो सुखका समुद्र और जिसमें भगवान्के अनेक प्रकारके चरित्रहो कोई ऐसा मोक्षदायक ग्रन्थ वर्णन करो, इसप्रकारकी शिक्षा बारबार नारदमुनिने व्यासजीको दी, व्यासजीको अपनी कविताका बडाभारी अभिमान था, उन्होंने नारदकी कहीहुई एक बात भी नहीं मानी और अनेक प्रकारके ग्रन्थ बनाये, परन्तु उन ग्रन्थोंके बनानेसे व्यासजीको किंचित् मात्रभी सुख नहीं हुआ, ग्रन्थ बनानेके पीछे वरन् व्यासजीको और अधिक दुःख प्राप्तहुआ तब फिर व्यासको नारदजीने दुःखी देखा तब उनके ऊपर कृपाकरके और व्यासको त्रास देनेके लिये नारदमुनि हँसेथे कुछ अभिमानमें निर्दयी होकर नहीं हँसेथे, व्यासजीको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया और उनके मनका सब संशय हरलिया।

सूर्यकी भांति त्रिलोकीमें तुम विचरते हो पवनकी नाई सबके अंतःकरणकी जानते हो, बुद्धिकी वृत्तिको भली भांति जानते हो परन्तु मेंभी परब्रह्म और वेदमें धर्मसे और व्रतसे परायण हूं तौभी मेरे मनकी न्यूनता नही गई सो तुमको भली भांति प्रगट है ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे व्यासमुनि ! आपने भगवान्‌का निर्मल यश वर्णन नहीं किया, इसीलिये आपका मन प्रसन्न नहीं है यही न्यूनता समझो ॥ ८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रधानतासे आपने धर्म अर्थादिक कहेहैं उस प्रधानतासे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी महिमा वर्णन नहीं किया ॥ ९ ॥ जिसमें जगत्‌के पवित्र करनेवाले परमात्माका यश नहीं कहा, चाहे उसमें कैसे ही चित्र विचित्र पद हों और वह काकतुल्य कामियोंको अच्छी लगे. ऐसी कविताईको

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमंतश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ॥ परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ॥ येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥ ८ ॥ यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ॥ न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥ ९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमंत्युशिक्क्षयाः ॥ १० ॥ तद्वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनंतस्य यशोंकितानि यच्छृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥ ११ ॥

सत्त्वगुणप्रधान परब्रह्ममें निवास करनेवाले मनस्वी सार असारके ज्ञानी ब्रह्मवादी काकतीर्थ कहैं हैं अत्यन्त करकै उस कविताईको नहीं पढ़ते * जैसे प्रसिद्ध है कि, मानससरोवरवासी हंस मानससरोवरही में विचरते हैं वह कमल वनको त्याग जहाँ जूठन डाली जाती है और काक काँव काँव करते हैं वहाँ हंस कभी नहीं जाते इसी भांति भगवद्भक्त भगवतहीके चरित्रोंके ग्रन्थ पढै हैं रसिक ग्रन्थोंमें ध्यान नहीं लगाते ॥ १० ॥ एक एक श्लोक चाहे जिस ग्रन्थका अशुद्ध हो परन्तु परमेश्वरका विषय हो, जो संसारके जीवोंका पाप नाश करै है, और सुयशका प्रकाश करै ऐसी कविताई और कथाको साधु ब्राह्मण गावैं हैं और सुनावैं हैं और सुनैं हैं ॥ ११ ॥

* कवित्त—कहा भयो जौन काव्य भेद भाव द्वन्द्वविना, हरी यश जामें सोई कहत सुहाई है । सन्त जन गावैं सुनैं कहैं जाप ताही कोरी,कविता बनाई देख गिरा पछिताई है ॥ रामरस विना जैसे फीको लगै स्वाद तिमि, रामरस विना स्वाद गन्धहु न आई है । भक्त मनभाई सुखदाई है सुहाई जामें, कृष्णकथा गाई सोई सांची कविताई है ॥ १ ॥

और जिसने ब्रह्मार्पण कर्म किया परन्तु भगवद्भक्तिसे रहित है, वह उपाधिरहित अत्यन्त ज्ञान शोभाको नहीं प्राप्त होता, फिर फलके समय भी दुःख होताहै जिसने निष्काम कर्म ईश्वरमें समर्पण नहीं किये उसकी ऐसीही गति होती है ॥ १२ ॥ इस कारण हे महाभाग ! आप यथार्थद्रष्टा हो, शुद्ध, यशस्वी, तेजस्वी, सत्यवादी सब व्रत करनेवाले हो अब आप चित्तको सावधान करके परमेश्वरकी लीला वर्णन करो, जिसको पढकर संसारके बन्धनसे लोग छूटें और ॥ १३ ॥ भगवान्के यशविना जो कुछ पृथक् दृष्टिसे वर्णन किया है उस नाम रूपमें पड़कर बुद्धि चंचल होजाती हैं जैसे वायुसे कम्पित नौका जलमें एक ठिकाने नहीं रहती ॥ १४ ॥ धर्मके लिये शिक्षा करनेवाले, तुम्हारी नैष्कर्मकी आज्ञाको देख दुष्टजन महा

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्य कारणम् ॥ १२ ॥ अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ॥ उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ ततोऽन्यथा किंचिन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ॥ न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥ १४ ॥ जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः ॥ यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥ १५ ॥ विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनंतपारस्य निवृत्तितः सुखम् ॥ प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभोः ॥ १६ ॥ त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणांबुजं हरेर्भजन्नपकोऽथ पतेत्ततो यदि ॥ यत्र क्व वा भद्रमभूदमुष्य किं को वाऽर्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥ १७ ॥

अन्याय करैंगे और तुम्हारे वाक्योंसे संसारके तुच्छ जीव यही मानैंगे कि, यह भी एक प्रकारका धर्म है, यह नहीं जानैंगे कि इसका व्यासजीने निवारण किया है ॥ १५ ॥ जो अति निपुण हैं वह स्वभावसे अनन्त अपार परमेश्वरके स्वरूपको जानेहैं गुणोसे प्रवर्त्तमान जीवोंसे भिन्न समर्थ ईश्वरलीला तुम वर्णन करो ॥ १६ ॥ अपने धर्मको त्यागकर वासुदेवके चरणारविन्दका भजन करते करते जो अधबीचमें मरजाय तो उसको अपने धर्मके त्यागनेका दोष होता है परंतु स्वधर्मसे भजनेवाले इस जीवका जहाँ कहीं कुयोनिमें भी जन्महोय तौ भी भक्तही होता है भक्ति सदा

कल्याणकी दाता है भक्ति सब कार्यको सिद्ध करै है ॥ १७ ॥ विवेकी उस सुखके लिये यत्न करै और वह सुख ब्रह्मलोकतक होजाओ और नीचे स्थावरतक होजाओ परन्तु सब नहीं मिलता, विषयसुख प्राचीन कर्मसे सब ठौर नरकादिकमें भी विना यत्न किये दुःखकीसी भांति प्राप्त होता है ऐसे ही सुख भी प्राचीन कर्मसे गम्भीर वेगवाले कालसे विनाही चाहे आनकर प्रगट हो जाताहै ॥ १८ ॥ मुकुन्दसेवी जन, कभी भी संसारमें नहीं आता है, हे मित्र ! केवल कर्मनिष्ठावालोंकी भांति, क्योंकि भगवच्चरणारविन्दका स्पर्श फिर स्मरण करै है त्यागनेकी इच्छा नहीं करते वह रस

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ॥ तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥ ॥ १८ ॥ न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदंग संसृतिम् ॥ स्मरन्मुकुंदांघ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥ १९ ॥ इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवाः ॥ तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथाऽपि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २० ॥ त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक्परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ॥ अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥ २१ ॥ इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ॥ अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥ २२ ॥

मान कर उसको ग्रहण करते हैं ॥१९॥ यह विश्व ईश्वररूप ही है और नहीं है, जिससे जगत्‌की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है सो तुम सब भली भांति जानोहो तौभी आपको एक देशमात्र दिखाया है ॥२०॥ हे आमोघदृष्टिवाले ! परपुरुप परमात्माकी तुम साक्षात् कला हो सो मनसे परमात्माको जानो जिसे अजन्मा कहते हैं उसी परमात्माने जगत्‌के कल्याणके लिये जन्म लिया ऐसे महाप्रतापीकी लीला वर्णन करो ॥२१॥ पुरुषके तप, श्रवण, दान, पुण्य करने और सुन्दर कूप, बावडी बनाने, श्रेष्ठयुक्तिका, बुद्धिका यही प्रयोजन कवियोंने कहाहै कि, परमात्माका गुण गाना॥२२॥

हे व्यासदेव ! मैं पहिले जन्ममें एक वेदवादी ब्राह्मणकी दासीसे उत्पन्न हुआथा, मुझे बाल अवस्थामें ही वर्षाकालमें ठहरे हुए साधुओंकी सेवा करने को नियुक्त कर दियाथा, वह ब्राह्मण साधु संतोंकी सेवामें लवलीन था वर्षाके दिनोंमें उस ब्राह्मणके स्थानपर साधु संत आनकर उसके यहां विश्राम किया करतेथे और उस ब्राह्मणने साधु लोगोंके चौका वर्तनकी टहलके लिये मेरी माताको नियतकर दियाथा, मैंभी अपनी माताके संग उन साधुओंके निकट रहकर आठोंपहर उनका दर्शन करता रहताथा, जिस समय साधु लोग परस्पर बैठकर श्रीनारायणकी कथा वार्ता कहतेथे, उस समय मैंभी उनके समीप बैठा सुनता रहता और उनकी सेवा करता रहताथा और वह ऋषिभी मेरे ऊपर दया करतेथे ॥ २३ ॥ मेरे चित्तकी सब

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ॥ निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥ २३ ॥ ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दांतेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ॥ चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥ २४ ॥ उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुंजे तदपास्तकिल्बिषः ॥ एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥ २५ ॥ तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ॥ ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यंग ममाभवद्रुचिः ॥ २६ ॥ तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ॥ ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥ २७ ॥

चंचलता दूर होगई, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता थोडा बोलता और वह समदर्शी साधुभी मुझपर अनुग्रह करतेथे ॥ २४ ॥ उस ब्राह्मणकी आज्ञानुसार उन साधुओंके पात्रोंमें उच्छिष्ट जो शेप रहजाताथा मैं नित्यप्रति वही भोजन पाताथा इससे मेरे सब पाप दूर होगये जब मैं ऐसे विशुद्ध चित्तसे रहने लगा तब तो उस धर्ममें मेरी अधिक रुचि होगई ॥ २५ ॥ हे मित्र ! दिन रात कृष्णकथा उनके मुखसे सुननेसे प्रिय यशवाले भगवान् वासुदेवमें मेरी रुचि दिन दिन अधिक होती गई ॥२६॥ हे व्यास ! श्रीनारायणके चरणारविन्दोंमें जब मेरी अधिक रुचि बढी तौ मेरी अखण्डित बुद्धि होगई, यह सब मुझको दीखने लगा सत् असत् अपनी मायासे ब्रह्ममें कल्पित मानने लगा ॥ २७ ॥

इसप्रकार शरद वर्षाऋतुमें दिनरात परमेश्वरका निर्मल यश सुनतारहूं जो महात्मा मुनियोंने गाया उससे आत्माके रज, तम, नाशकरनेवाली प्रवृत्ति होगई ॥ २८ ॥ वह अनुरागी, नम्र, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, मुझ सेवक बालकपर अत्यन्त कृपा करनेलगे ॥ २९ ॥ वह दीनवत्सल साधु चलते समय मुझे साक्षात् श्रीभगवान्के मुखसे निर्गत गुह्यतम ज्ञानका उपदेश करगये ॥ ३० ॥ उस ज्ञानसे सर्वव्यापक भगवान् वासुदेवकी मायाका प्रभाव जाना जिससे उस परम पदवीको सब जातेहैं ॥३१॥ हे ब्रह्मन्! यह आध्यात्मादि तापत्रयीकी औषधि है जो बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट, चैतन्य, पूर्णरूप, भगवान् ब्रह्म, ईश्वरमें सब कर्म समर्पण करना ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत! जो रोग जिस वस्तुसे जीवोंको होय वह रोग उस वस्तुसे

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ॥ संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ॥ २८ ॥ तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ॥ श्रद्दधानस्य बालस्य दांतस्यानुचरस्य च ॥ २९ ॥ ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ॥ अन्ववोचन्गमिष्यंतः कृपया दीनवत्सलाः ॥ ३० ॥ येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ॥ मायानुभावमविदं येन गच्छंति तत्पदम् ॥ ३१ ॥ एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ॥ यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥ ३२ ॥ आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ॥ तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥३३॥ एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः॥त एवात्मविनाशाय कल्पंते कल्पिताः परे॥३४॥

उनका नहीं जाता चाहे कैसीही चिकित्सा करो ॥ ३३ ॥ ऐसे मनुष्योके सब कर्मकाण्ड अपने निमित्तसे करै तो सदा संसारमें जन्मता मरता रहताहै और अपना विनाश होयहै वही सब परमेश्वरमें समर्पण करै तो अपना मोक्ष होताहै प्रथम तो महात्मा पुरुषोंकी सेवा उससे उनकी कृपा होय उस कृपासे उस धर्ममें श्रद्धा होय तब भगवत्कथा सुननेसे ईश्वरमें प्रीति होय उस प्रीतिसे दोनों देहोंको विवेक होय ऐसा आत्मज्ञान होताहै तब दृढ भक्ति उस भक्तिसे भगवान्का तत्त्वज्ञान उस तत्त्वज्ञानसे सर्वज्ञत्व सर्वात्मत्व अपहतपाप्मत्व इत्यादि भगवद्गुण प्रगट होनेका यह क्रम है ॥ ३४ ॥

जिस कर्ममें भगवत्की प्रसन्नताहै यह जानिके जो कर्म करै है उस कर्मके अधीन भक्तियों समेत ज्ञान होताहै ॥ ३५ ॥ भगवान्की आज्ञाहै कि, सब शुभ कर्म करो यह जान जो कर्म करै हैं उनका मोक्ष होताहै जो मनुष्य श्रीकृष्णके गुण अपने मुखसे उच्चारण करै है वह निःसन्देह मोक्षका भागी है ॥ ३६ ॥ भगवान्को नमस्कार और वासुदेवका ध्यान करै प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्धको नमस्कार करै ॥ ३७ ॥ इन मूर्तियोंके नामसे मंत्रोक्त मूर्ति बनावै वह मूर्तियोंके नामसे है और बाह्यकी यह मूर्ति नहीं है ऐसा जानकर जो पूजन करै तो वो पुरुष सुंदर दर्शन करने योग्य होजाताहै ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन्! यह अपना ज्ञान जो मैंने अनुष्ठानकिया इससे परमात्माने मुझको ज्ञान ऐश्वर्य दिया ॥३९॥ हे बहुश्रुत ! विभुकी लीला

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ॥ ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् ॥ गृणंति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरंति च ॥ ३६ ॥ ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ ३७ ॥ इति मूर्त्यभिधानेन मंत्रमूर्तिममूर्तिकम् ॥ यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥ ३८ ॥ इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ॥ अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ॥ ३९ ॥ त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदा बुभुत्सितम् ॥ आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां संक्लेशनिर्वाणमुशंति नान्यथा ॥४०॥ इति श्रीमद्भा० प्रथ० व्यासनारदसं० पंचमोऽध्यायः ॥५॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ॥ भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव ॥ वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥ २ ॥

तुमभी कहो जिससे ज्ञानियोंके सब जाननेकी इच्छा पुरी होजाय और दुःखसे पीड़ित जीवोंका सब क्लेश जिससे शान्त होगा और प्रकारसे नहीं ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषाटीकायां श्रीव्यासनारदसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥५॥ दोहा–मिले छठे अध्यायमें, ज्यों नारदको सिद्ध ॥ जगत माँहि जाते भये, नारद परमप्रसिद्ध ॥ १ ॥ इतनी कथा सुनाय सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि! सत्यवतीसुत व्यासजी देवऋषि नारदके जन्म कर्मकी कथा सुनकर फिर नारदजीसे बूझने लगे ॥१॥ कि, हे कृपासिंधु ! वह ज्ञानदाता भिक्षु जब सब चलेगये तो आपने प्रथम

अवस्थामें क्या किया ॥ २ ॥ हे स्वायंभुव ! आपने पिछली अवस्था कैसे व्यतीत करी जब काल आया तो वह शरीर कैसे त्यागन किया ॥ ३ ॥ हे सुरसत्तम ! प्रथम कल्पका स्मरण तुमको कैसे बनारहा सबको परलोकदाता यह काल खंडित न हुआ तुम्हारी स्मृतिभी खंडित नहीं हुई सो कहो ॥ ४ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, ज्ञानदाता भिक्षु जब चलेगये तब आयुकी आदिमें यह किया ॥ ५ ॥ मेरी माता स्त्रीस्वभाव मूढ दासी कोई बाततक करनी जिसको न आवे एक मैंही उसके अकेला बेटा मुझसे अधिक स्नेह रक्खे ॥६॥ और मेरे निर्वाहकी चिंता रात दिन करती रहै परन्तु

स्वायंभुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः ॥ कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३ ॥ प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम ॥ न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ॥ वर्तमानो वयस्याऽऽद्ये तत एतदकारषम् ॥ ५ ॥ एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी ॥ मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबंधनम् ॥ ६ ॥ सास्वतंत्रा न कल्पासीद्योगक्षेमं ममेच्छती ॥ ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥ ७ ॥ अहं च तद्ब्रह्मकुल ऊषिवांस्तदवेक्षया ॥ दिग्देशकालाऽव्युत्पन्नो बालकः पंचहायनः ॥ ८ ॥ एकदा निर्गतां गेहाद्दुहंतीं निशि गां पथि ॥ सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥ ९ ॥ तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ॥ अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥ १० ॥

वहभी पराधीन और असमर्थ थी जैसे काठकी पुतली नटुवेके वशमें रहतीहै ॥ ७ ॥ माताके स्नेहसे मैं उस ब्राह्मणके पास रहता रहा परन्तु मनसें दिनरात यह विचार करता रहूं कि, इस मोहकी फांसीसे किस दिन छूटूंगा साधुलोगोंकी कृपासे मैं अपने आपको पांचवर्षका नहीं समझताथा ॥८॥ एक दिन मेरी माता उस ब्राह्मणके लिये दूध दुहानेको जाती थी सो मार्गमें उस बिचारीको काले सर्पने डसलिया ❋ ॥ ९ ॥ तब मैं अत्यन्त आनन्दहो उस समय यही विचार किया कि, ईश्वर भक्तोका सदा कल्याण करते हैं और मुझे अपना दास जान मुझपरभी अनुग्रह किया

* शंका—नारदकी माताके ऊपर मुनि लोगोंकी बडी कृपाथी, क्योंकि जो कृपा नहीं करते तो मुनियोंके सकाशमें नारद और दासीकी स्थिति क्यों होती ? ऐसी मुनियोंकी कृपामें नारदजीकी माता सर्पके काटनेसे क्यों मरगई, ऐसी खोटी मृत्यु नारदजीकी माताकी सुनके हमको बडी शका होतीहै ॥

उत्तर—नारदकी माताने मुनियोंको तीर्थयात्रा करनेके लिये जाता देखकर और अपने पुत्र नारदको ज्ञानमें रमण करता जानके और इन्द्रियोंको बडी बलवान् समझके भगवान् वासुदेवकी प्रार्थना करनेलगी-

यह बात निश्चय समझ में उसी समय उत्तर दिशाकी ओरको चलदिया ॥ १० ॥ समृद्ध देश, राजधानी, ग्राम, व्रज, रत्नादि उत्पत्ति स्थान किसानोंके गांव, सुपारी, पुष्पोंकी वाटिका, स्वतःसिद्ध वृक्षसमूहोंसे वन डट रहे और वृक्षसमूहोंके सुन्दर उपवन देखे ॥ ११ ॥ चित्रधातु विचित्र पर्वत हाथी वृक्षोंकी शाखा तोड़रहे निर्मल जल भरे ताल झकोलरहे मार्गमें जहां तहां मनोहर, कूप, बावडी, ताल, नदी, वन, दृष्टि आतेथे ॥१२॥ सुन्दर सुन्दर भ्रमर जहां तहां गुञ्जार रहेथे पक्षी चित्र विचित्र अपनी अपनी बोली बोल रहेथे नर्पल, वांस वीर्णमूलके समूह कुशा

स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥ ११ ॥ चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ॥ जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥ १२ ॥ चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ॥ नलवेणुशरस्तंबकुशकीचकगह्वरम् ॥ १३ ॥ एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ॥ घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाऽजिरम् ॥ १४ ॥

बांसोंमें आपसे आप छिद्र हो रहेहैं उसमें पवन भरकर वांसुरीके समान सुरीले शब्द निकल रहे हैं वह कीचक कहाते हैं, इनसेही महागम्भीर हो रहा ॥ १३ ॥ मैं अकेला ऐसे महा घोरभयंकर वनमें सर्प, विच्छू, शृगाल जहां भयानक बोली बोल रहेथे उनको देखता चला जाताथा ॥ १४ ॥

—और अपने मनमें यह विचारनेलगी कि, मुनिलोग तो मुझको छोडकर अपने अपने आश्रमोंको चलदिये और पुत्र मेरा ज्ञानमे मतवाला है, अब मेरी प्रतिपाल कौन करेगा, क्योकि इन्द्रिय तो अपनी अपनी ओर को मेरे प्राण खैंच खैंच मुझको कठिन दु खदेगी, नारदकी माताने विचारकिया कि शूद्रकुलमें मेरा जन्महुआ, शूद्रोंकी मैंने सगति की, किसी शुभकर्मके प्रभावसे मुझको मुनियोंकी सगति प्राप्तहुई है और ज्ञान ध्यानमें हीनहू, मेरे हृदयमें कुछभी ज्ञान नहीं, अब मैं निराधारहू, मेरा मरण शीघ्र होना चाहिये ईसप्रकार भगवान्से विनय करने लगी, तब भगवान्ने उसकी विनय स्वीकार करके शीघ्र मृत्यु होनेके लिये सापसे कटवाया, जब वह मरगई तो उसको सुरपुरका वासदिया और उसको अपने सन्मुख रखा, इसलिये सर्पबाधासे नारदजीकी माताका मरणहुआ, इसलिये उसको अपने सन्मुख रक्खा कि, जिस प्राणीको साप उसले ताहै उसकी दुर्गति होती है इसकी कुगति न हो और नारदकी माताको मुनियोंकी कृपासे भगवान्ने अपने सन्मुख वासस्थान दिया ।

चलते चलते सब शरीर शिथिल होगया तौ एक सुन्दर सरोवर मुझको दृष्टि आया तब मैं भूखा प्यासा उस तालके जलमें स्नान करके जल पिया तो मेरे शरीरका सब श्रम दूर हुआ ॥१५॥ उस महागम्भीर सरोवरके तीर एक पीपलका वृक्ष था मैं उस पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर परमेश्वरके स्वरूपका हृदयमें ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ भावसे मन जीतकर परमात्माके अमल चरणकमलका ध्यान करने लगा प्रीतिवशहो नेत्रोंसे आंसू बहनेलगे तब धीरे धीरे हृदयमें भगवान् वासुदेवका दिव्यरूप ऐसा दिखाई दिया कि, एक पुरुष सुन्दर स्वरूप जिसके मुखारविन्दका प्रकाश कोटि भास्करोंसे भी अधिक चतुर्भुजी मूर्ति, शंख चक्र गदा पद्म चारों हाथोंमें लिये पीताम्बर पहने वैजयंती माला कण्ठमें धारण किये किरीट मुकुट शिरधरे, त्रिभंगी छबिकरे मकराकृत कुण्डल कानोंमें पहने, श्यामस्वरूप कमलनयन, लंबी भुजा, तापहारिणी चितवन्

परिश्रांतेंद्रियात्माऽहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ॥ स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥ १५ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः ॥ आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिंतयम् ॥ १६ ॥ ध्यायतश्चरणांभोजं भावनिर्जितचेतसा ॥ औत्कंठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥ १७ ॥ प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकांगोतिनिर्वृतः ॥ आनंदसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥ १८ ॥ रूपं भगवतो यत्तन्मनःकांतं शुचापहम् ॥ अपश्यन्सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥ १९ ॥ दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ॥ वीक्षमाणोपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥ २० ॥ एवं यतंतं विजने मामाहागोचरो गिराम् ॥ गंभीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥ २१ ॥

मन्द मन्द मुसकाते बांकी झांकी दिखाते मेरे सम्मुख आये, उस मनमोहन स्वरूपको देखतेही मैंने परमानन्द होकर चाहा कि इसी सुन्दर स्वरूपको निहारता रहूं ॥ १७ ॥ प्रेम प्रीतिके भावसे हृदय पुलकायमान होगया मन महासुखीहो आनन्दके महाप्रवाहमें लीन होगया देहकी सब सुधि बिसरगई परमात्माकी भी सुधि नहीं रही ॥ १८ ॥ मनको सुखदायक शोकनाशक जो भगवान्का रूप है सो एक संग हृदयमें दीखा और मैं आनंदसे देखतारहा विवशतासे मेरा मन कुछ खेदित हुआ जब वह स्वरूप मेरे ध्यानसे अंतर्धान हुआ ॥ १९ ॥ उस रूपके देखनेको फिर हृदयमें मन लगाया प्रथम जो रूप देखा था वह रूप फिर दिखाई नहीं दिया ॥ २० ॥ उस एकान्त वनमें मुझ यत्नशीलको परमेश्वरने गम्भीर

आकाशवाणीसे मेरे मनका सब शोक दूरकिया ॥ २१ ॥ बडे खेदकी बात है कि, इस जन्ममें तू मेरा दर्शन करनेके योग्य नहीं था, क्योंकि कामका मल जिनके हृदय और मनके दग्ध नहीं हुए हैं उन कुयोगियोंको मेरा दर्शन नहीं होता ॥ २२ ॥ हे पापरहित ! एक बार मैंने अपना स्वरूप तुझको इसलिये दिखायाहै कि, तेरे मनमें अनुराग बढे और जो मेरे चाहनेवाले साधक लोग हैं वह सब कामादिक विषयका त्याग करदेतेहैं ॥ २३ ॥ और थोडीहीसी सज्जनोंकी सेवासे तेरी मति मुझमें अत्यन्त दृढ होगई अब इस निंदित देहको त्याग तू मेरा पार्षद होगा ॥ २४ ॥ और मुझसे तेरी प्रीति सृष्टिके आदि अंतमें कभी नहीं छूटैगी और मेरी कृपासे तुझे इस जन्मका सब वृत्तान्त स्मरण रहैगा ॥ २५ ॥ इस श्लोकमें

हंतास्मिञ्जन्मनि भवान्न मां द्रष्टुमिहार्हति ॥ अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥ २२ ॥ सकृद्यद्दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ॥ मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुंचति हृच्छयान् ॥ २३ ॥ सत्सेवया दीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः॥ हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गंता मज्जनतामसि ॥ २४ ॥ मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥ २५ ॥ एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिंगमलिंगमीश्वरम् ॥ अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णावनामं विदधेऽनुकंपितः ॥ २६ ॥ नामान्यनंतस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ॥ गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥ २७ ॥ एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ॥ कालः प्रादुरभूत्काले विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २८ ॥

विलक्षण बात है कि, जिसकी देह नही, सबसे बडी जिसकी श्वास आकाशके भीतर जिसकी मूर्ति, ऐसे ईश्वर परमात्मा मुझसे कहकर चुप होगये मैंने भी सब बडोंकी कृपासे उस परब्रह्म परमेश्वरको बारंबार प्रणाम किया ॥ २६ ॥ और सब लज्जा तजकर भगवान्का भजन करने लगा, जो मांगलिक छिपेहुए परमेश्वरके चरित्र थे उनका स्मरण करने लगा और सब पृथ्वीपर फिरूं और अपने मनको प्रसन्न रक्खूं किसी वस्तुकी चाहना नहीं करता मद, मत्सर ईर्षा, सब त्यागदी,कालकी वाट दिनरात देखता रहता ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे अकस्मात् सुदामा पर्वतसे बिजली निकलै और उसीमें समाय उसकी समान कृष्णमें मेरी मति हुई और किसीमें आसक्त नहीं,निर्मल आत्मा मेरा होगया जब मृत्युका समय आया तो मृत्युहोगई॥२८॥

प्रारब्धकर्म समाप्त हुए तब पंचभूतका यह शरीर गिरपडा शुद्ध भगवत् पार्षदका देह जो शुद्ध सत्त्वमय है सो परमात्माने मुझको दिया ॥ २९ ॥ कल्पके अंतमें इस त्रिलोकीका संहार कर श्रीनारायणने क्षीरसमुद्रमें सोनेकी इच्छा करी और वह शेषशय्यापर सोये, तब उनके श्वासके संगमें प्रविष्ट होगया ॥ ३० ॥ जब सहस्रयुग सोते सोते होगये तब उठे, तब ब्रह्मा अंतर्यामी ईश्वरने इसके रचनेकी इच्छा करी, तब मरीच्यादि ऋषि हुए और प्राणसे हम हुए ॥ ३१ ॥ सब ठौरमें मेरे जानेकी गति होगई बाहर भीतर त्रिलोकीमें कहीं चलाजाऊँ अखण्डित ब्रह्मचर्य लेकर महविष्णुके अनुग्रहसे सब संसारमें पर्यटन करूं हूँ ॥ ३२ ॥ श्रीईश्वरके दिये जो "सा, री, ग, म, प, ध, नी" यह सात स्वर हैं, ब्रह्मरूप इनके ग्राम, इस वीणामें बजाता

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ॥ आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः ॥ २९ ॥ कल्पांत इदमादाय शयानेंभस्युदन्वतः ॥ शिशयिषोरनुप्राणं विविशेंतरहं विभोः ॥ ३० ॥ सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थायेदं सिसृक्षतः ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥ अंतर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कंदितव्रतः ॥ अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥ ३२ ॥ देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥ मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥ ३३ ॥ प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ॥ आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ ३४ ॥ एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया [illegible] ॥ भवसिंधुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥ ३५ ॥ यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ॥ मुकुन्दसेवया यद्वत्तथा [illegible] न शाम्यति ॥ ३६ ॥ सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥ ३७ ॥

[illegible] सब संसारमें घूमता फिरूं हूँ ॥ ३३ ॥ और भगवान्‌के चरित्र जब मैं गाऊं हूँ तो ऐसा मग्न हो जाऊं हूँ मानो श्रीकृष्णचन्द्र [illegible] दर्शन देतेहैं और मुझको बुलातेहैं ॥ ३४ ॥ आतुर चित्तवालोंको विषयस्पर्शकी इच्छासे वारंवार संसारसमुद्रके [illegible] ॥ ३५ ॥ काम लोभ मोहसे ग्रसित जीवका मन योगके मार्गमें यम नियमादिसे शान्त नहीं होता जैसे [illegible] ॥ ३६ ॥ हे पापरहित व्यासजी ! जो तुमने बूझा सो हमने सब जन्म कर्मका रहस्य आपसे कहा और

आपका मन प्रसन्न किया ॥३७॥ सूतजी बोले कि, शौनकमुनि सत्यवतीके पुत्र श्रीव्यासजीसे भगवान् नारदमुनि ऐसे कहके उनसे आज्ञा ले वीणा बजाते हरिगुणगाते स्वप्रयोजन संकल्पशून्य होकर चलेगये ॥ ३८ ॥ देवर्षि धन्य हैं जो भगवान्‌की कीर्ति गातेहैं और आनन्द होतेहैं और नित्य प्रति वीणा बजाकर सब आतुर संसारका उद्धार करतेहैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां व्यासं प्रति नारदपूर्वजन्मकथावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, रची भागवत व्यास ॥ पुनि पढाय निजपुत्रको पूरी मनकी आस ॥७॥ शौनकमुनि बोले कि हे सूतजी ! जब नारदमुनि चलेगये तब उनका सब अभिप्राय सुनकर सर्वसमर्थ विभु व्यासजीने क्या किया ॥ १ ॥

सूत उवाच ॥ एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ॥ आमंत्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ ३८ ॥ अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ॥ गायन्माद्यन्निदं तंत्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीभा० प्रथम० व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ शौनक उवाच ॥ निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः ॥ श्रुतवांस्तदभिप्रेतमितः किमकरोद्विभुः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ॥ शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥ २ ॥ तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमंडिते ॥ आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥ ३ ॥ भक्तियोगेन मनसि सम्यक्प्रणिहितेऽमले ॥ अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ॥ ४ ॥ यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ॥ परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥ ५ ॥ अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ॥ लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥ ६ ॥

ब्रह्मनदी सरस्वती के किनारे ऋषियोंका यज्ञ बढानेवाला पश्चिमकी ओर शम्याप्रासनामक एक आश्रम था ॥ २ ॥ उस आश्रमके चारों ओर बेरके वृक्ष शोभा देरहेथे उनकी शीतल छायामें व्यासजी बैठे आचमन कर मनसे परमेश्वरका ध्यान करने लगे ॥ ३ ॥ भक्तियोगसे अपने निर्मल मनको निश्चल किया तो पूर्ण पुरुषका दर्शन हुआ और उनके आधीन जो मायाहै उसकोभी देखा ॥ ४ ॥ जिस मायासे मोहित होनेसे जीव त्रिगुणसे परभी आत्माको देहरूप मानताहै और उस देहमें जो सुख दुःख होतेहैं सो आत्मामें मानताहै ॥ ५ ॥ अनर्थनाशक साक्षात

भक्तियोग भगवान्में जब लोग न करनेलगे तो श्रीव्यासजीने श्रीमद्भागवतसंहिता बनाई ॥ ६ ॥ जिस श्रीमद्भागवतसंहिताके हितचित्तसे सुननेसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द परमपुरुषके चरणारविन्दोंमें मोह शोक जरानाशक सुखप्रकाशक भक्ति, पुरुषको उत्पन्न होती है *॥७॥ सो व्यासदेव श्रीभागवतसंहिता रचकर और शोधकर अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढाने लगे वह शुकदेवजी सदा निवृत्ति मार्गमें लगे रहतेथे ॥८॥ शौनक ऋषि बोले कि, हे सूतजी ! जो सदा निवृत्तिमार्गमें लगे रहें सब संसारसे जिनका त्याग आत्मामें रमण करते रहैं ऐसे शुकदेवजीनें किस कारण ऐसी भारी संहिताके पढनेका अभ्यास किया ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! आत्माराम क्रोध अहंकाररूपी गांठें जिनकी दूर होगई ऐसे मुनि

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ॥ भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहजरापहा ॥ ७ ॥ स संहितां भागवतीं कृत्वाऽनुक्रम्य चात्मजम् ॥ शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥ ८ ॥ शौनक उवाच ॥ स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः ॥ कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥९॥ सूत उवाच ॥ आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रंथा अप्युरुक्रमे ॥ कुर्वंत्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥१०॥ हरेर्गुणाऽऽक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः ॥ अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥११॥ परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्म कर्म विलायनम् ॥ संस्थां च पांडुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥१२॥

लोग फलकी इच्छा नहीं करते विनाही फल परमेश्वरकी भक्ति करैं हैं हरिके गुण ऐसेहीहैं ॥ १० ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंमें जिनकी परम प्रीति ऐसे भगवान् शुकाचार्यने यह महाव्याख्यान पढा उन शुकदेवजीको विष्णुके भक्त बड़े प्यारेहैं ॥११॥अब हम तुमको परीक्षित् राजऋषिके, जन्म, कर्म,

---

* शंका–सूतजीने ऐसे वचन क्यों कहे ? कि, भागवत सुनेगा तो श्रीकृष्णमें भक्ति होगी, इस बातसे तो यह विदित होताहै कि, भागवतके सुननेसे केवल अकेले कृष्णकी भक्ति होती है और जो भगवान्के अनन्त अवतार हैं उनमें भक्ति नहीं होगी यह बडे सन्देहकी बात हैं ।

उत्तर–मुनिलोग आदर सत्कार करके व्यासजीकोभी कृष्ण कहतेहैं, क्योंकि भगवान्के अनन्त नाम हैं, कृष्ण, विष्णु जगन्नाथ इनको आदि लेके और अनेक नाम हैं, तोभी व्यासजी सूतके गुरु हैं कृष्ण नाम सूतजीके हृदयमें सदा प्यारा है इसलिये सूतने कहा कि, भागवतके सुननेसे कृष्ण जो व्यास हैं उनमें भक्ति होगी कुछ विरुद्ध नहीं कहा क्योंकि सब संसार कृष्ण भगवान्का रूप है, भगवान्के एकरूपमें भक्ति हुई तो अनंत रूपमें होवेगी, ईश्वरके रूपमेंभी कुछ भेद नहीं है ।

मुक्ति मृत्युकी और पाण्डुपुत्रोंके स्वर्ग जाने और श्रीकृष्णचन्द्रकी कथाओंका उदय सुनाते हैं ॥१२॥ जैसे—जब परीक्षित् गर्भमें थे तब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे श्रीकृष्णचन्द्रने रक्षा करी उस कथाका प्रारम्भ करतेहैं ॥ जिस समय युद्धमें कौरव पाण्डव धृष्टद्युम्न प्रभृतियों समेत वीरलोग वीरगतियोंको गये. भीमसेनकी फैंकी गदाके लगनेसे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी जंघा टूटीथी ॥ १३ ॥ उस समय अश्वत्थामा दुर्योधनका प्रिय मित्र, उसकी जंघा टूटी देखकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंका शिर काटलाया, यह बहुत बुरी बात है । इस निन्दित कर्मकी शास्त्रमें बड़ी निन्दा लिखीहै ॥१४॥ द्रौपदी पुत्रोंका मरना सुनकर महादुःखी हो रोती पीटती आँखोंसे आंसू बहाती अर्जुनके पास आई, अर्जुनने उसको रोनेसे बंद किया और यह

यदा मृधे कौरवसृंजयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ॥ वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदंडे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥ १३ ॥ भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ॥ उपाहरद्विप्रियमेव तस्य तज्जुगुप्सितं कर्म विगर्हयंति ॥ १४ ॥ माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना ॥ तदारुदद्बाष्पकलाकुलाक्षी तां सांत्वयन्नाह किरीटमाली ॥ १५ ॥ तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ॥ गांडीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६ ॥ इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सांत्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः ॥ अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥ १७ ॥ तमापतंतं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्नमना रथेन ॥ पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथार्कः ॥ १८ ॥

कहा ॥१५॥ हे भद्रे ! आगका लगानेवाला १, विषका देनेवाला २, शस्त्रका बांधनेवाला ३, धनका चुरानेवाला ४, पराई भूमिका हरनेवाला ५, स्त्री और बालकोंका मारनेवाला ६, यह छै आततायी कहलातेहैं सो ब्राह्मणोंमें अधम आततायी अश्वत्थामाका शिर गाण्डीव धनुपसे निकरे बाणोंसे काटकर तेरे सन्मुख लाऊं उसके ऊपर खड़ी होकर तुम स्नान करोगी तो तुम्हारा पुत्रोंके मरनेका शोक दूर होगा ॥ १६ ॥ ऐसे द्रौपदीको मन मनोहर विचित्र वाक्योंसे प्रसन्न करके श्रीकृष्ण जिसके मित्र और सारथी कवच पहरे, गाण्डीव धनुप हाथमें लिये कपिध्वज अर्जुन गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे रथपर चढके दौड़ा ॥ १७ ॥ बालघाती कम्पितहृदय प्राणोंका भयकिये जो लिये अश्वत्थामा अर्जुनको दूरसे अपने

पीछे आता देख, रथपर बैठकर जहाँतक भागगया वहाँतक भागा। जैसे शिवके भयसे सूर्य भागेथे। वामनपुराणमें ऐसे लिखा है " विद्युन्माली नाम एक शिवका भक्त राक्षस था उसको शिवजीने सोनेका एक विमान दिया, सो वह राक्षस विमानपर चढा सूर्यके पीछे २ फिरा करे विमानके प्रकाशसे रातहोनी दूर होगई, तब सूर्यने देखा कि, मेरा तेज तो नष्ट होगया यह जान उसका विमान पृथ्वीपर गिरादिया, यह सुन महादेवजी कोप करके सूर्यके मारनेको दौडे तब तो सूर्य घबराकर भागे और रुद्रकी क्रूरदृष्टिसे जलकर काशीमें गिरे सो आजतक काशीमें लोलार्क नाम तीर्थ विख्यातहै"॥१८॥ जब अश्वत्थामाके रथके घोडे थकगये और अपने शरीरका कोई रक्षक नही दिखाई दिया तब विप्रपुत्रने अपनी रक्षाके लिये ब्रह्मास्त्र

यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रांतवाजिनम्॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥ १९ ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः॥ अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥२०॥ ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचंडं सर्वतोदिशम्॥ प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥ २१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कृष्णकृष्ण महाभाग भक्तानामभयङ्कर ॥ त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः॥ २२ ॥ त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ॥ मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥ २३ ॥ स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः॥ विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम्॥ २४॥ तथाऽयं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया॥ स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥ २५॥

चलानेकी चेष्टा की ॥ १९ ॥ तब आचमन कर प्राण बचानेके लिये ब्रह्मास्त्र चलाया परन्तु ब्रह्मास्त्रका फेरना वह नहीं जानताथा ॥ २० ॥ सब ओरसे प्रचण्डतेज जब ब्रह्मास्त्रका प्रगटा तब प्राणोंपर आपत्ति आई जान, अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले ॥ २१ ॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण महाभाग! तुम भक्तोंके अभयकारक और संसारके जीव जंतुओंके सुखदायक हो ॥ २२ ॥ तुम आदिपुरुष साक्षात् केवल मायासे परे हो अपनी चिच्छक्तिसे मायाका तिरस्कार कर कैवल्य आत्मामें आप स्थित हो ॥ २३ ॥ मायामोहितचित्त ऐसे जीवलोकका अपने प्रभावसे धर्मादिक लक्षण कल्याण सो तुमही विधान करो हो ॥२४॥ यह आपका अवतार भूमिका भार उतारनेकी इच्छासे है और अपने जातिके और एकान्तभक्तोंके ध्यानके लिये है ॥२५॥

हे देवदेव ! यह क्या है? कहाँसे आयाहै? सब ओरसे परमदारुण तेज आवैहै हम नहीं जानते ॥ २६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पार्थ ! प्राणोंपर आपत्ति आती देख द्रोणाचार्यके पुत्रने ब्रह्मास्त्र चलाया है सो यह चलाना तो जानता है परन्तु अपने पास बुलाना नहीं जानता ॥ २७ ॥ इस अस्त्रको दूर करनेवाला और कोई उपाय नहींहै तुम भी अपना ब्रह्मास्त्र चलाकर अपने तेजसे इसका नाश करो, क्योंकि, तुम दोनों बातें जानते हो ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! शत्रुनाशी अर्जुन भगवान्‌की बात सुनकर जलसे आचमनकर श्रीकृष्ण महाराजकी परिक्रमा करके उस ब्राह्मणपर ब्रह्मास्त्र चलाया ॥ २९ ॥ तब दोनों ब्रह्मास्त्र परस्पर लडने लगे उनका तेज महाप्रचण्ड पृथ्वी आकाशको ढककर महाप्रलयकासा

किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ॥ सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ॥ नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥२७॥ न ह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ॥ जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ॥ स्पृष्ट्वाऽपस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे॥२९॥ संहत्याऽन्योऽन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ॥ आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऽस्त्रतेजस्तु तयोस्त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत् ॥ दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥ ३१ ॥ प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ॥ मतं च वासुदेवस्य संजहाराऽर्जुनो द्वयम् ॥ ३२ ॥ तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ॥ बबंधाऽमर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३ ॥

समय करदिया। जैसे महाप्रलयमें संकर्षणके मुखकी अग्नि, ऊपरसे सूर्यका तेज यह दोनों मिलकर बढैं हैं उसी भाँति दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज बढ़ा ॥ ३० ॥ उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज महाघोर त्रिलोकीको फूँके डालता था और जलीहुई प्रजा कहतीथी कि, आज महाप्रलयका समय आगया ॥ ३१ ॥ प्रजा और लोकका नाश होता देख वासुदेवका मत लेकर अर्जुनने दोनोंको शान्तकर अपने पास बुलालिया ॥ ३२ ॥ बडे वेगसे उनको पकडकर गौतमवंशकी गौतमी कृपीके कठोर पुत्र अश्वत्थामाको क्रोधसे लाललाल तांबेके रंगकेसे नेत्र किये यज्ञके पशुकी भाँति

बांधलिया ॥ ३३ ॥ शोक रोप युक्त धनंजयकी धर्मनिष्ठा देख श्रीकृष्णजी सेनानिवासस्थानमें बलसे रस्सीसे वैरीको बांधकर लेजाते अर्जुनसे क्रोधित हो बोले ॥ ३४ ॥ हे पार्थ ! यह अधम ब्राह्मण रक्षा करने योग्य नहीं, इसको अभी मारडालो इस पापीने सोते हुए निरपराधी बालकोंको मारा है ॥ ३५॥ धर्मशास्त्रमें ऐसे लिखा है कि, जो कोई मद्यादिकसे मत्त हो १, याँ और किसी प्रकारसे प्रमत्त हो २, ग्रहवातादिसे उन्मत्त हो ३, सोता हुआ जीव ४, बालक ५, स्त्री ६, जो कोई उद्यम नहीं जानता ७, जो कोई अपनी शरण आयाहो ८, इन आठजीवोंकी धर्मवेत्ताओंको सदैव रक्षा करनी चाहिये चाहै अपने शत्रुभी हों तौ भी इनका मारना योग्य नहीं ॥३६॥ पराये प्राण लेकर जो निर्दयी दुष्ट अपने प्राण पुष्ट करता है, उसका

शिबिराय निनीषंतं दाम्ना बद्ध्वा रिपुं बलात् ॥ प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानंबुजेक्षणः ॥ ३४ ॥ मैनं पार्थाऽर्हसि त्रातुं ब्रह्मबंधुमिमं जहि ॥ योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५ ॥ मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ॥ प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हंति धर्मवित् ॥ ३६ ॥ स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ॥ तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥ ३७ ॥ प्रतिश्रुतं च भवता पांचाल्यै शृण्वतो मम ॥ आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८॥ तदसौ वध्यतां पाप आतताय्यात्मबंधुहा ॥ भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ॥ ३९ ॥ एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ॥ नैच्छद्धंतुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥ ४० ॥ अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविंदप्रियसारथिः ॥ न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचंत्या आत्मजान्हतान् ॥ ४१ ॥

मारनाही श्रेष्ठ है उस दुष्टके मारनेसे पुरुष नरकमें नही जाते ॥ ३७ ॥ मेरे सन्मुख आपने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा कीथी कि, हे प्राणप्रिये ! जो तेरे पुत्रोंका मारनेवाला है उसका शिर काटकर तेरे आगे लाऊंगा ॥ ३८ ॥ सो तुम अपने पुत्रके वध करनेवाले आततायीको अवश्य मारो ! हे वीर ! दुर्योधन भी इन बालकोंको देख दुःखीः हुआ. यह अपने कुलमें धूरि समान है ॥ ३९ ॥ ऐसे श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद अर्जुनको समझाने लगे. और अर्जुन यह जानताथा कि, यही मेरे पुत्रोंका मारनेवाला है तौभी गुरुपुत्र समझ मारनेकी इच्छा नहीं करी ॥ ४० ॥ ऐसे धर्मधारी अर्जुन जिनके श्रीकृष्ण सरीखे मित्र और सारथी सो अश्वत्थामाको पकड़कर अपने दलमें लाया जहाँ द्रौपदी बैठी अपने मरे पुत्रोंका शोक कर

रहीथी, कहा हे द्रुपदनंदिनि ! तुम्हारे पुत्रोंका मारनेवाला यह उपस्थित है ॥ ४१ ॥ पशुके समान गलेमें फांसी पड़ी निंदित कर्मसे नीचेको मुखकरे अपराधी गुरुपुत्र अश्वत्थामाको देख कृपाकरकै शील स्वभाववाली द्रौपदीने नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ और अपने पति अर्जुनसे कहा हे स्वामी ! इसका बांधना मुझको सहन नहीं हो सक्ता, छोडदो, छोडदो यह ब्राह्मण हमारा परम पूज्य है इसके मारनेसे हमारे पुत्र जी नहीं सक्ते यह हत्यारा अपने कर्मोंका फल आप भोगैगा जिस भाँति मैं अपने मरेहुए पुत्रोंका शोक करती हूं, इसी प्रकार कृपी इसकी माताभी पुत्रके मरनेका दुःख देखैगी ॥ ४३ ॥ और आपको इसके पिताने गोप्य मंत्र सहित धनुर्वेद और ब्रह्मास्त्र चलाना और बुलाना दोनों बातें

तथाऽऽहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ॥ निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२ ॥ उवाच चाऽसहंत्यस्य बंधनानयनं सती ॥ मुच्यतामुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥ ४३ ॥ सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ॥ अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ॥ तस्याऽऽत्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ॥ वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वंद्यमभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥ मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ॥ यथाहं मृतवत्सार्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥ ४७ ॥

सिखाईं और इसको इसके पिताने ब्रह्मास्त्रचलाना सिखाया परंतु बुलाना नहीं सिखाया, इसलिये जिस द्रोणाचार्यकी कृपासे सब अस्त्र, शस्त्र, यंत्र, मंत्र, तंत्र, तुम सीखेहो इसलिये इसको गुरुपुत्र समझकर छोडदो ॥ ४४ ॥ क्योंकि, उन भगवान् द्रोणाचार्यने तुमको पुत्र करके समझा, सो उन द्रोणाचार्यकी अर्द्धांगिनी कृपी इस पुत्रके रहनेसे सती नहीं हुई इस इकलौते अपने पुत्रका सुख देख देख जियेहै, हाय ! जैसे मैं अपने मरेहुये पुत्रोका शोक करूंहूं, ऐसेही वहभी सोच करैगी ॥ ४५ ॥ इसलिये हे धर्मज्ञ ! हे महाभाग ! आप गुरु कुलको कष्ट नहीं दीजिये, बारंबार पूजन और वन्दन करने योग्य ब्राह्मण हैं ॥ ४६ ॥ पतिव्रता गौतमी इसकी माताको सोच न हो, क्योंकि,

जैसे मेरे मुखपर आंसू बारंबार धारासे चले जातेहैं और मैं शिर पटक पटक रोरहीहूं ऐसे कहीं वह पुत्रके शोकमें न रोवें ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण कुल जिसपै कोप करै चाहे वह कैसाही राजाहो उसका वंश और परिवार क्षणमात्रमें ब्रह्मतेजसे भस्म होजाताहै ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! निष्कपट धर्मशीला शान्त स्वभाववाली द्रौपदीके वचन सुन धर्मपुत्र युधिष्ठिरने बड़ी प्रशंसा करी ॥४९॥ नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, देवकी नन्दन भगवान् और जो स्त्रियें वहां प्रस्तुत थीं द्रौपदीकी यह बात सुन सबका मन प्रसन्न हुआ ॥५०॥ उस समय भीमसेन द्रौपदीकी बात सुन कर बड़े क्रोधसे बोले कि, ऐसे दुष्टका मारनाही अच्छाहै, क्योंकि, अपने मित्र दुर्योधनका और अपना दोनोंका कुछ प्रयोजन न होते, सोतेहुए बालकोंको

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः ॥ तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबंधं शुचाऽर्पितम् ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ॥ राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनंदद्वचो द्विजाः ॥ ४९ ॥ नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनंजयः ॥ भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥ ५० ॥ तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः ॥ न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योहन्सुप्तान्शिशून्वृथा ॥ ५१ ॥ निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ॥ आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥ ५२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मबंधुर्न हंतव्य आततायी वधार्हणः ॥ मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥५३॥ कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सांत्वयता प्रियाम् ॥ प्रियं च भीमसेनस्य पांचाल्या मह्यमेव च ॥ ५४ ॥

मारडाला "तुमने अश्वत्थामाके शिर काटनेकी प्रतिज्ञा कीथी, सो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये और जो तुम कहतेहो कि, हमको ब्रह्महत्याका कलंक लगैगा सो इसमें ब्रह्मअंश और ब्राह्मणका एक कर्मभी नहीं रहा, राजाओंका धर्म है कि, ऐसे मनुष्योंको अवश्य मारना चाहिये" ॥ ५१ ॥ भीमसेनकी यह बात सुन द्रौपदी और अर्जुनकी ओर देखकर ॥ ५२ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् वासुदेव बोले कि, आततायी वधके योग्य है और ब्राह्मणहोय तो मारना नहीं चाहिये दोनों बातें हमने कही हैं परन्तु ब्राह्मणके लिये देहदण्ड देना उचित नहीं यह हमारी आज्ञाहै कि, सदा ब्राह्मणोंकी रक्षा करो, उनको धन दो, पूजा करो, ब्राह्मण कैसाही अपराध करै परन्तु वह वधके योग्य नहीं ॥५३॥ द्रौपदीके सन्मुख जो आपने

व्याकुल और भयभीत हो रोती डकराती श्रीकृष्णके पासको दौड़ी * ॥ ८ ॥ और आनकर प्रार्थना की हे महायोगिन् ! हे दीनवत्सल ! हे जगत्पते ! मेरी रक्षाकरो मेरी रक्षाकरो! इस अग्निकी मृत्युसे इस विश्वमें आपके अतिरिक्त अभयदाता मुझको कोई दृष्ट नहीं होता ॥ ९ ॥ हे ईश ! तप्त लोहकी समान बाण सामनेसे चला आताहै हे समर्थ ! हे दीनानाथ ! चाहे मेरा दाह होजाय परन्तु मेरा गर्भ स्थितरहै॥ १० ॥ सूतजी बोले कि, भक्तवत्सल भगवान् उत्तराके दीन वचन सुन; कहनेलगे कि, हे उत्तरे ! अश्वत्थामाने यह समझकर ब्रह्मास्त्र चलायाहै कि, पाण्डवोंके वंशमें कोई न रहै॥ ११॥

पाहिपाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते ॥ नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥ अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो॥ कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ उपधार्य वचस्तस्या भगवान्भक्तवत्सलः ॥ अपांडवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ ११ ॥ तर्ह्येवाऽथ मुनिश्रेष्ठ पांडवाः पंच सायकान् ॥ आत्मनोऽभिमुखान् दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥१२॥ व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ॥ सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः॥१३॥अंतःस्थः सर्वभूतानामात्मायोगेश्वरो हरिः॥ स्वमाययाऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतंतवे॥१४॥

देखा तो पांच बाण पांचो पाण्डवोंके भस्म करनेके लिये सामनेसे अग्निसम प्रकाश करते चले आतेहैं यह देखकर पाण्डव अपने अस्त्र ग्रहण करने लगे ॥ १२ ॥ पांण्डवोंको अपना हितकारी जान श्रीबाँकेविहारी भक्तभयहारी मुनिमनरंजन कोटि कष्टभंजन देवकीनंदनने पांडवोंकी रक्षाके लिये चक्र सुदर्शन सँभाला ॥ १३ ॥ सब जीवमात्रके अंतर्यामी व्यापक सकल दुःखहर्ता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अपनी मायासे कौरवोंके संतानकी

* शंका—ब्रह्मास्त्रका ऐसा प्रताप शास्त्रमें लिखाहै कि, जिस समय योद्धालोग ब्रह्मास्त्रको धनुषपर रखकर छोडतेहैं तो कभी तीन लोकके भस्म करनेको छोडतेहैं, धनुषसे छूटतेही त्रिलोकीको भस्म कर डालताहै, परन्तु उत्तराकी देहमें ब्रह्मास्त्र लगके उसी समय उत्तराको भस्म क्यो नहीं किया ?

उत्तर—पतिहीन उत्तरा रात दिन अत्यन्त भक्तिसे श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्मरण करतीथी, नेत्रोसे प्रेमके आसुओंकी धारा बहीचलीजाती और इस मन्त्रको निरन्तर बैठी जपती रहतीथी मन्त्र "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृपालो भक्तरक्षक । नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमोनम ॥ १ ॥" अर्थ—हे हरि, हे कृष्ण, हे हरि, हे कृष्ण, हे हरि, हे कृष्ण, आपको नमस्कार है आप कृपालु हैं और भक्तोंके रक्षा करनेवालेहैं उसीसमय अश्वत्थामाका छोडाहुआ ब्रह्मास्त्र उत्तराकी देहमें लगके, श्रीकृष्णके स्मरणके प्रभावसे ठण्डा होगया तोभी उत्तरा व्याकुल होकर कृष्ण कृष्ण पुकारने लगी, जो ईश्वरका भजन उत्तरा न करती तो उसी समय ब्रह्मास्त्र उसको भस्म करदेता, परन्तु भजनके प्रभावसे उसका शरीर नहीं जला ॥

वृद्धिके लिये विराटकी बेटी उत्तराका दुःख देख चक्रसुदर्शनको आज्ञा दी कि, तुम उत्तराके उदरमें जाकर ब्रह्मास्त्रकी गर्मीको शान्तकरो और पीछेसे आपभी श्रीकृष्ण मुकुंद मधुसूदन भक्तहितकारी अंगुष्ठमात्र तनु धारणकर उत्तराके उदरमें घुसगये और ऐसी शीतलता फैलाई कि, उसके हृदयका सब कष्ट शमन होगया उस समय परीक्षित्‌ने मधुसूदनकी माधुरीमूर्तिको अपने हृदयमें धारणकरलिया और कहा हे वैकुण्ठनाथ ! इस दासपर आपने बडा अनुग्रह किया गर्भहीमें जो मुझे दर्शनदिया धन्यहै मेरा भाग्य आपकी कृपाका कहाँतक उपकार वर्णन करूँ ॥ १४ ॥ हे शौनक ऋषि ! जो कभी निष्फल नहीं होता, जिसका संसारमें कोई सामना नहीं करसकै और उसकी प्रबल प्रचण्ड ज्वालासे त्रिलोकीमें कोई जीवमात्र न बचसकै, सो ब्रह्मास्त्रभी विष्णुके चक्रसुदर्शनके सन्मुख क्षणमात्रमें शान्त होगया ॥ १५ ॥ सबको आश्चर्य दिखानेवाली भगवान्‌की

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ॥ वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥ १५ ॥ मा मंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ॥ य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हंत्यजः ॥ १६ ॥ ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ॥ प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥ १७ ॥ कुन्त्युवाच ॥ नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ॥ अलक्ष्यं सर्वभूतानामंतर्बहिरवस्थितम् ॥ १८ ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाऽधोक्षजमव्ययम् ॥ न लक्ष्यसे मूढदृशां नटो नाट्यधरो यथा ॥ १९ ॥

लीलामें कुछ आश्चर्य मत मानो वह अपनी प्रकाशिनी मायासे इस विश्वको रचैहै, रक्षा करैहै, संहारकरैहै और आप अजन्मा है ॥१६॥ ब्रह्मास्त्रसे छुटे पुत्रोंको देख कुन्ती द्रौपदी समेत श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारका जानेका समाचार सुन हरिके समीप आनकर ॥ १७ ॥ कुन्ती बोली कि, हे आदि पुरुष ! अविनाशी,प्रकृतिसे परे, जो किसीके देखनेमें न आवै, सब जीवोंके बाहर भीतरकी जाननेवाले तुम संसारमें व्यापकहो, तुमको वारंवारनमस्कार करूँहूं॥१८॥जो मायारूपी जवनिकासे दृष्ट और अदृष्ट हैं,जो इन्द्रियोंसे उत्पन्नहुए ज्ञानसे नहीं जानेजाते,अविनाशी आपको मैं मूढ अज्ञानी स्त्री क्या जानूँ मूढदृष्टियुक्त पुरुष तुमको नहीं देखसक्ते । जैसे नटकी मायाको नाटकीविद्याविहीन पुरुष नहीं जानसक्ते तैसेही आप हो ॥ १९ ॥

जीवात्माके द्वारा जो परमात्माको देखनेवाले परमहंस मनन करनेवाले मुनि राग द्वेष शून्य निर्मल अन्तःकरण युक्त माहात्माओंकोभी जाननेमें नहीं आते भक्तियोग विधानके निमित्त आपने अवतार धारण कियाहै सो मैं स्त्री आपकी महिमाको कैसे जानूं ॥ २० ॥ वासुदेव, देवकी नन्दन, नन्दगोपकुमार, गोविन्द, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दको वारंबार नमस्कार है ॥२१॥ जिनकी नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, ऐसे कमल मालाधारी कमलदललोचन, कमलसमान कोमल अमल चरणवालेको वारंबार नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे हृषीकेश ! दुष्ट कंसके भयसे देवकी बहुत दिनतक घरमें बन्द रहीथी तब अकेली देवकीकी आपहीने रक्षाकरी और मेरीभी आप समर्थने पुत्रोंसाहित विपत्तिसे वारंवार रक्षाकरी और अपनी

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ॥ भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥ २० ॥ कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनाय च ॥ नंदगोपकुमाराय गोविन्दाय नमोनमः ॥ २१ ॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २२ ॥ यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता ॥ विमोचिताऽहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ २३ ॥ विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ॥ मृधेमृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्मि हरेऽभिरक्षिता ॥ २४ ॥ विपदः संतु नः शश्वत्तत्रतत्र जगद्गुरो ॥ भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५ ॥ जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ॥ नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥ २६ ॥

माताके समान आप सदा मुझपर दया करतेरहे ॥ २३ ॥ और जिन जिन विपत्तियोंसे रक्षा करी वह विपत्ति यहथीं, भीमसेनको विषके लड्डुओंसे लाक्षामन्दिरमें अग्निसे पुरुष खानेवाले हिडंबादि बकके दीखनेसे, खोटी सभासे, वनवासके कष्टसे, संग्राममें अनेक महारथियोंके अस्त्रसे, अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे और सब ओरकी विपत्तियोंसे अनेकवार रक्षाकरी॥२४॥ हे जगद्गुरो ! जहाँ तहाँ हमपै तो विपत्तियाँही रहें, क्योंकि, उन विपत्तियोंमें मोक्षदाता तुम्हारा दर्शन होताहै, फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ २५ ॥ सत्कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्र, लक्ष्मी इनके होनेसे पुरुषको अभिमान होता जाताहै, सो भक्तजन आठपहर जिनके नाम भजें, श्रीकृष्ण, गोविंद, नारायण, वासुदेव ऐसे उच्चारण करनेके योग्य नहीं होते ॥ २६ ॥

जिनको किसी वस्तुकी कांक्षा नहीं जो ऐसे भक्त हैं जिनके मनसे धन गुणोंकी वृत्ति दूर होगई, उन आत्माराम शांत मोक्षदाताको नमस्कारहै॥२७॥ काल ईश्वर जिसका आदि अन्त नहीं ऐसे प्रभु समदर्शी सबको एक भाव वर्तें सब जीवोंमें किसी निमित्तसे परस्पर क्लेश होता है ऐसे तुमको मानू हूं ॥२८॥ हे भगवन्! मनुष्योंको एक लीलामात्र चेष्टाकरो, ऐसी तुम्हारी करनेकी इच्छा है सो कोई भी नहीं जानता, जिसका कोई शत्रु मित्र नहीं यह ईश्वरमें मनुष्योंको विषममति होती है कि, इसपै कृपा करें हैं, इसपै कृपा नहीं करते ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन्! सबमें तुम व्याप्त हो, ऐसे तुम्हारे अकर्त्ताके कर्म, अजन्माके जन्म, आश्चर्यमय हैं, कभी वाराहरूप, कभी रामचन्द्ररूप, कभी वामनरूप, कभी मत्स्यरूप धारण करते हो, यह सब

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ आत्मारामाय शांताय कैवल्यपतये नमः ॥ २७ ॥ मन्ये त्वा कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ॥ समं चरंतं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥ २८ ॥ न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडंबनम् ॥ न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणाम् ॥ २९ ॥ जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ॥ तिर्यङ्नृषिषु यादस्सु तदत्यंतविडंबनम् ॥ ३० ॥ गोप्याऽऽददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्या ते दशाऽश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् ॥ वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥ केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ॥ यदोः प्रियस्याऽन्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥ ३२ ॥ अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ॥ अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥

कहनेमात्रको हैं ॥ ३० ॥ जिससमय यशोदाने तुम्हारे अपराधको देखकर बांधनेके लिये रस्सी ली तब तुम आंसुओंसे आखोंका अंजन बहाय व्याकुल हो, नीचेको मुखकर भयके भावसे अलग जा बैठे और जिस समय दधिके भाजन फोड़डाले उस समयकी जो आपकी दशा है, मुझको मोहकरावै है क्योंकि, जो भय आपके सन्मुख थरथर काँपै है सो तुम यशोदासे आप डरो यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ३१ ॥ पुण्यश्लोकोंके कीर्तनके लिये प्रिय यदुके वशंमें आपने अजन्मा होकर जन्मलिया, जैसे मलयगिरिपर चन्दन उपजै है, उसीप्रकार अजन्माने जन्मलिया, कोई कोई ऐसे कहै हैं॥३२॥और कोई मुनीश्वर ऐसे कहै हैं कि, वसुदेव देवकीकी चाहनासे अवतार लिया, आप जन्म कभी नहीं लेते, तौभी इस विश्वके

कल्याणके लिये और देवद्रोहियोके वधके कारण अवतार धारण करते हैं ॥ ३३ ॥ और कोई ऐसे कहे हैं कि, समुद्रमे जैसे नाव डूबती हो उसकी रक्षाकरै इस प्रकार महाभारसे व्याकुल पृथ्वीको निहार भूभार हरनेको ब्रह्माकी प्रार्थनासे अवतारलेतेहैं ॥ ३४ ॥ कोई आचार्य ऐसे कहे हैं, अविद्या, कामकर्मसे दुःखी होकर विश्वके जीव पुनि श्रवण स्मरण करें हें इस कारण अवतार धारण करते हें ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य तुम्हारी लीलाको देखते हैं और चरित्रोंको सुनते हैं, और सुनाते हैं और वारंवार स्मरण करते हें और यश गाते हें मनहीं मनमें मग्न होतेहैं, वह मनुष्य थोड़ेही दिनोमें संसारके प्रवाहनाशक तुम्हारे चरणारविन्दका दर्शन करतेहैं ॥ ३६ ॥ हे भक्ताभीष्टदायक ! हे प्रभो ! निश्चय है कि, आपके दर्शनहीमे

भारावतरणायाऽन्ये भुवो नाव इवोदधौ ॥ सीदंत्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥ ३४ ॥ भवेऽस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ॥ श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ ३५ ॥ शृण्वन्ति गायन्ति गृणंत्यभीक्ष्णशः स्मरंति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ॥ त एव पश्यंत्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदांबुजम् ॥ ३६ ॥ अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ॥ येषां न चान्यद्भवतः पदांबुजात्परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥ ३७ ॥ के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पांडवाः ॥ भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥ ३८ ॥ नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ॥ त्वत्पदैरंकिता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ ३९ ॥ इमे जनपदाः स्वृद्धा सुपक्वौषधिवीरुधः ॥ वनाद्रिनद्युदन्वंतो ह्येधंते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥

जीते हैं, आपके सुहृद् हें उनको आप अब त्यागो हो, हम तो आपहीकी कृपासे शत्रुओके दुःखदायक हैं हमको आपके चरणकमलके अतिरिक्त कोई वस्तु सुखदायक नहींहै ॥ ३७ ॥ यादवोंसहित हमारा विना आपके दर्शनके नामरूपसे क्या है, जैसे विना जीवके इन्द्रियोंके नाम रूपसे कुछ कार्य सिद्धि नहीं होती ॥ ३८ ॥ हे गदाधर ! जैसी अब पृथ्वी शोभायमान है फिर ऐसी शोभा नहीं देगी, क्योकि अब तो आपके वज्र, यव, अंकुश आदि चिह्नयुक्त चरणोंसे शोभित है, फिर इन चरणोंका अभाव हो जायगा॥३९॥ आपके होनेसे यह देश सुन्दर समृद्धिमान् है, सुन्दर सुन्दर रूपकी औषधी, लतायें जहाँ तहाँ उपस्थित हैं, वन, पर्वत, नदी यह सब आपके देखनेसे वृद्धिको प्राप्त हैं ॥ ४० ॥

इसलिये हे विश्वेश ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वमूर्ते ! अपने जनोंमें, पाण्डवोंमें, यादवोंमें यह स्नेहकी जो फांसी है, इसको तुम काटो ॥ ४१ ॥ हे मधुपते ! तुम्हारे चरणोंमें मेरी यह बुद्धि सदा लगी रहै और कहीं नहीं लगै, जैसे गंगाका प्रवाह निरन्तर समुद्रमें मिला रहता है ॥ ४२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुनसख हे यादवकुलभूषण ! हे पृथ्वीद्रोही क्षत्रिय वंश नाशक ! हे अक्षीणप्रभाव ! हे गोविन्द ! हे गरुडध्वज ! हे गोब्राह्मणदेवताक्लेशनाशक ! हे योगीश्वर ! हे अखिलगुरो ! हे भगवन् ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ४३ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषिगण ! सब महिमा जिसमें उदित है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनकी मधुर मधुर पदोंसे जब कुन्तीने स्तुतिकरी, तब भगवान् परमानन्द मन्द मन्द मुसकाये, मानो मायासे मोहका जाल डाल रहे हैं हरिकी हँसी सब जनोंको उन्माद करती है ॥ ४४ ॥ हे कुन्ती ! जो तुम्हारी इच्छा होय सो वरमाँगो मैं तुम्हारे

अथ विश्वेश विश्वात्मन्विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ॥ स्नेहपाशमिमं छिंधि दृढं पांडुषु वृष्णिषु ॥ ४१ ॥ त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ॥ रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभाऽवनिध्रुग्राजन्यवंशदहनाऽनपवर्गवीर्य ॥ गोविंद गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराऽखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ॥ मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ॥ ४४ ॥ तां बाढमित्युपामंत्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ॥ स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥ ४५ ॥ व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाऽबुध्यत शुचार्पितः ॥ ४६ ॥

सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करूंगा ऐसे कह हस्तिनापुरमें आय सुभद्रादि स्त्रियोंसे बूझकर अपने नगरके चलनेको उपस्थित हुए, उससमय युधिष्ठिरने बहुत कहा कि आपको यहाँसे हमैं छोड़कर जाना नहीं चाहिये, तुम्हारे जानेसे हम लोगोंको बड़ा दुःखहोगा, तुम विना हमारी सहायता कौन करैगा, जो सुख हमको तुम्हारे चरणकमल कोमल अमलके देखनेसे मिलता था, वह सुख हमको इस राज्यके पानेसे नहीं मिलता, तुम्हारे चरणारविन्दोंके विनादेखे हमको धैर्य किसभाँति होगा और शत्रुओके हाथसे कौन बचावैगा, हे नाथ ! अब हमको शत्रुओसे जीतनेका उपाय कौन बतावैगा अब हम क्या करैं ॥४५॥ ईश्वरकी चेष्टा जाननेवाले व्यासादिकोंने और अद्भुत कर्मवाले श्रीकृष्णजीने अनेक इतिहासोंसे ज्ञानभी दिया, तोभी शोकके मारे

युधिष्ठिरका मन शान्त न हुआ॥४६॥उस समय राजा युधिष्ठिर अपने मरे सुहृद बांधवोंका चिंतवनकर बोले कि,हे ब्राह्मणो ! मैं उस समय अज्ञान और मोहवश होगया था, हाय ! मुझ दुरात्माके हृदयमें ऐसा अज्ञानसमूह होगया कि, जिस देहको श्वान शृगालभी नहीं खाते, मैंने उसी देहके पोषणके लिये बहुत अक्षौहिणीसेना मारी, (उस अक्षौहिणीकी संख्या इस प्रकारहै २१८७० जिसमें हाथी, ६५६१० घोडे, २१८७०रथ,१०९३५० पैदल इसको अक्षौहिणी कहते हैं)॥४७॥४८॥ बालक, ब्राह्मण, सुहृद, मित्र, पिता, भ्राता, गुरु, इनका द्रोही जो मैं हूँ सो मेरा नरकसे करोड़ों वर्षतकभी उद्धार न होगा ॥४९॥ आप जो कहतेहैं धर्मयुद्धमें द्वेपियोंके वंध करनेसे प्रजापालक राजाओंको पाप नहीं होता इस शिक्षाके वचन मेरे मनको

आह राजा धर्मसुतश्चिंतयन्सुहृदां वधम् ॥ प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ॥४७॥ अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ॥ पारक्यस्यैव देहस्य बह्वयो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥४८॥ बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ॥ न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥ ४९ ॥ नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ॥ इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥ ५० ॥ स्त्रीणां मद्धतबंधूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम्॥५१॥ यथा पंकेन पंकांभः सुरया वा सुराकृतम् ॥ भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ ५२ ॥ इति श्रीभा० प्र० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ॥ ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥१॥

बोध नहीं करते॥ ५० ॥ मेरे हाथसे भ्रातृगण मारे गयेहैं, उनकी स्त्रियोंके मनमें उठाहुआ तीव्र द्रोह दूर करनेको मैं कितनेही गृहस्थाश्रमके कर्म करूँ तौभी मैं उस पापसे उद्धार नहीं होसक्ता ॥५१॥ जैसे कीचका सना कीचसे नहीं धोयाजाता, मदिरासे मदिराका पात्र नहीं शुद्ध होता तैसेही हठसे एक जीवकीभी हिंसा यज्ञोंके करनेसे नहीं छूटती ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापोनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ दोहा–कहौं नवम अध्यायमें, भीष्मकृष्णसंवाद ॥ राज्य युधिष्ठिरको दियो, मेटो सकलविपाद ॥९॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषिराज ! युधिष्ठिर प्रजाके द्रोहसे भयभीत हो, सब धर्मके जाननेकी इच्छा करके जहाँ भीष्मपितामह कुरुक्षेत्रमें बाणोंकी शय्यापर पड़ेथे इनके पास आये॥१॥

और सब भाई सुवर्णभूषणभूषित घोड़ोंके रथोंपर आरूढ हो भीष्मपितामहके निकट पहुँचे और उसी समय व्यास, धौम्य, कृपाचार्यादिकभी
वहाँ आगये॥२॥हे शौनक ! अर्जुनको और द्रौपदीको अपने साथ लिये रथपर बैठे भगवान् इस प्रकार शोभित हुए जैसे यक्षोंसहित कुबेर शोभा
पावैं ॥३॥ स्वर्गसे मानों कोई देवता गिरपडा है इसप्रकार पृथ्वीपर पड़े भीष्मपितामहको सब सभृत्य पाण्डव और श्रीकृष्णचन्द्रसहित प्रणाम किया
॥ ४ ॥ तहाँ हे सत्तम ! देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि भीष्मपितामहके देखनेको आये ॥५॥ पर्वतमुनि, नारदमुनि, धौम्य, भगवान् बादरायणजी, बृहदश्व, भर

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ॥ अन्वगच्छन्रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥ भगवानपि विप्रर्षे
रथेन सधनंजयः ॥ स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ॥ प्रणेमुः
पांडवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥४ ॥ तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ॥ राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुंगवम्
॥ ५॥ पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः॥ बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥ ६ ॥ वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो
गृत्समदोऽसितः ॥ कक्षीवान्गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥ ७ ॥ अन्ये च मुनयो ब्रह्मन्ब्रह्मरातादयोऽमलाः ॥
शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपांगिरसादयः ॥ ८ ॥ तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ॥ पूजयामास धर्मज्ञो देश
कालविभागवित् ॥९॥ कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ॥ हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥ १० ॥
पांडपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसंगतान् ॥ अभ्याचष्टाऽनुरागास्रैरंधीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥

द्वाज, सशिष्य परशुराम॥६॥ वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, असित, त्रित, गृत्समद, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, कौशिक, सुदर्शन ॥७॥ और निर्मल शुकाचार्यादि
कमुनि, शिष्योंको संग लेकर, कश्यप, अंगिरा आदि अनेक ऋषि मुनि आये॥८॥सूतजी बोले, हे ब्रह्मन् ! उस समय धर्मज्ञ पितामह उन सब महात्मा
पुरुषोंको देख, देश काल विभाग जाननेवाले भीष्मपितामहने मानसीपूजन किया ॥ ९ ॥ जगदीश्वर हृदयनिवासी, अपनी मायासे जिन्होंने विग्रह
धारण किया, सिंहासनपर विराजमान श्रीकृष्णका, भगवत्के प्रभाव जाननेवाले भीष्मपितामहने पूजन किया ॥ १० ॥ विनय स्नेहसे मग्न समीप बैठे

नेत्रोंमें जल भरकर पाण्डुपुत्रोंसे प्रेम प्रीतिसनी वाणीसे भीष्मपितामह बोले ॥ ११ ॥ महा कष्ट है बड़ा अन्याय है हे धर्मपुत्रो ! ब्राह्मण धर्म भगवान्के आश्रित होकर भी क्लेशसे जीते हो * ॥१२॥ महारथी राजा पाण्डुके मरे पीछे बालक जिनकी सन्तान ऐसी, वधू कुन्तीने तुम्हारे लिये बड़ा क्लेश भोगा ॥ १३ ॥ जो आपको अप्रिय है सो सब यह समयकी करीहुई बात है सो काल वह है कि जिसके वशमें सब लोग हैं, जैसे मेघपंक्ति पवनके वशमें रहती है ॥ १४ ॥ जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसे गदाधारी, जहां अर्जुनसे गाण्डीवधनुषधारी, श्रीकृष्णसे मित्र,

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनंदनाः ॥ जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥ १२ ॥ संस्थितेऽतिरथे पांडौ पृथा बालप्रजा वधूः ॥ युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥ १३ ॥ सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ॥ सकलो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥ १४ ॥ यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ॥ कृष्णोऽस्त्री गांडिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥ १५ ॥ न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितम् ॥ यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यंते कवयोऽपि हि ॥ १६ ॥ तस्मादिदं दैवतंत्रं व्यवस्य भरतर्षभ ॥ तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥ १७ ॥ एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ॥ मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥ १८ ॥ अस्यानुभावं भगवान्वेद गुह्यतमं शिवः ॥ देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान्कपिलो नृप ॥ १९ ॥

तहाँ भी विपत्ति पड़ी, ॥ १५ ॥ हे युधिष्ठिर ! मुझको पूर्ण विश्वास है कि विना परमात्माकी इच्छा कोई कार्य नहीं होता उसकी अपार महिमा कोई नहीं जानसका, जिनके जाननेकी इच्छा करके बड़े बड़े कविलोगभी मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! यह संसारके दुःख सुख दैवाधीन हैं, हे नाथ ! हे प्रभो ! उनके अनुवर्ती जो आप हो, सो तुम इस अनाथ प्रजाका पालन करो ॥१७॥ यह साक्षात् भगवान् आद्य नारायण पुरुष हैं, मायासे लोकको मोहित कर वृष्णियोंमें छिपकर विचरे हैं ॥ १८ ॥ इनका प्रभाव जो छिपाहुआ है उसको महादेवजी जाने हैं, व देवऋषि नारदजी और

* शंका–भीष्मजीको ज्ञानियोंकी सभामें गुनरोग म [illegible] करते थे यह भीष्मजी मूर्खोंकी समान मोहे [illegible] पाण्डवोंहो रोये [illegible]
उत्तर–भीष्मजीने पाण्डवोंको [illegible] भगवानी जानके, उनके ऊपर दया करके उनका अभिमान दूर करनेके [illegible]

साक्षात् भगवान् कपिलदेवजी जाने हैं ॥ १९ ॥ अज्ञानसे जिनको तुम मामाका पुत्र, परममित्र, सुहृदोत्तम मानो हो, जिन्होंने तुम्हारा मंत्रीपना किया, दूत बने, और तुम्हारे प्यारे हितकारी व सारथी बने ॥ २० ॥ सर्वात्मा, समदृष्टिवाला जिनके समान कोई नहीं, जिनको अहंकार नहीं, रागादिकका जिनमें लेश नहीं. ऐसे ईश्वरको नीचे उच्च कर्म करना, यह हमारे योग्यहै यह बात हमारे योग्य नहीं है यह बुद्धिकी विषमता परमेश्वरमें नहीं है ॥२१॥ हे राजा युधिष्ठिर! यद्यपि परमेश्वरमें यह बात है तौभी जो उनके एकान्तमें ध्यान करनेवाले भक्तहैं उनपर दया ही करै हैं" उनकी बड़ाई और अपने भाग्यकी बड़ाई कहाँतक करूं" देखो! जो मेरे प्राण त्यागनेके समय श्रीकृष्णचन्द्रने आनकर दर्शन दिया॥२२॥ भक्तिसे जिसमें मन लगाकर

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ॥ अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥ २० ॥ सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्याऽनहंकृतेः ॥ तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१ ॥ तथाप्येकांतभक्तेषु पश्य भूपाऽनुकंपितम् ॥ यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥ २२ ॥ भक्त्यावेश्य मनो यस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्तयन् ॥ त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥ २३ ॥ स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ॥ प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखांबुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपंजरे ॥ अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥ २५ ॥ पुरुषस्वभाव विहितान्यथावर्णं यथाऽऽश्रमम् ॥ वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥ २६ ॥ दानधर्मान्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः ॥ स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥ २७ ॥

वाणीसे जिनका नाम आठ प्रहर कीर्त्तन करै और इसी ध्यानमें देहत्याग करे तो वह पुरुप कामकर्मसे छूट जाता है ॥ २३ ॥ जबतक मैं देह त्याग न करूँ, तबतक प्रसन्नवदन कमलनयन रुचिरमुखकमल चतुर्भुज देवदेव तुम्हारा मार्ग ध्यानयोग्य है मेरे सन्मुख दर्शन देतेरहो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि, बाणोंकी शय्यापर सोये भीष्मजीकी यह वाणी सुन युधिष्ठिर सब ऋषियोंके मध्यमें अनेक धर्म बूझनेलगे ॥ २५ ॥ जो धर्म पुरुषके स्वभावके योग्य हैं वर्णोके धर्म, आश्रमोके धर्म, वैराग्य राग उपाधियोंके धर्म, वेदोक्त प्रवृत्तिमार्ग, निवृत्तिमार्ग ॥ २६ ॥ दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म,

स्त्रियोंके धर्म भगवद्धर्म संक्षेप विस्तारसे अलग अलग कहे ॥ २७ ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके उपाय, हे मुने ! अनेक अनेक प्रकारके इतिहास कथामें तत्त्ववेत्ता भीष्मजीने वर्णन किये । उस समय द्रौपदीभी वहाँ भीष्मपितामहके निकट बैठी थी जब भीष्मपितामहने कहा कि, जो कोई धर्मात्मा इस धर्मका जाननेवाला मनुष्य बैठा हो; और उस सभामें कोई अधर्मी अधर्म करना चाहे, तो धर्मात्मा पुरुषको उचित है कि उस पापीको पापकर्मसे वर्जै. कदाचित् वह वर्जित करनेके योग्य नहीं होय और कुछ सामर्थ्य न रखता हो, तो उस सभासे उठकर चलाजाय , भीष्मपितामहका यह वचन सुन कर द्रौपदी राजा युधिष्ठिर और अर्जुनकी ओर देखकर हँसी, और फिर अत्यन्त लज्जित होकर कहा देखो ! राजा दुर्योधनकी सभामें भीष्मपितामहके सन्मुख अधर्मसे मेरी दुर्दशा हुई, और दुःशासनने मुझको नग्न करनेके लिये मेरा वस्त्र खेंचा, और राजा दुर्योधनने मुझे अपनी जंघापर बैठनेका उद्योग किया और सब सभा मेरा उपहास करनेको उस समय उपस्थित थी, उस समय ऐसी महादुर्दशा होनेपर मुझ पापिनीके पापी प्राण न निकले, और मैं इतनेपरभी अपना मुख तुमलोगोंको दिखातीहूँ, ऐसे जीवनसे तो मरनाही भला था, परन्तु क्या कीजै ? परमेश्वरकी इच्छासे

धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने ॥ नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८ ॥

किसीका वश नहीं चलता, मेरे भाग्यमें ऐसाही लिखा था, जो उस विपत्तिमें द्वारकापति मेरी पति न रखते तो सब धर्म डूबजाते; तब भीष्मपितामहने द्रौपदीको उदास और मनमलीन देखतेही उसके अन्तःकरणकी बात अपने ज्ञानसे जानकर कहा, हे पुत्री ! तुम अपने मनमें कुछ सोच संकोच मत करो, यह सब धिक्कार मेरे ऊपर है, क्योंकि जिस समय यह महा अन्याय तेरे ऊपर हुआथा, उस समय मैं वहांथा तौ परन्तु मेरे मनमें तब यह ज्ञान नहीं था. इस कारण हे बेटी ! मेरा अपराध क्षमाकर, परमात्माकी इच्छा इसी भांति थी जो परमेश्वरको करना होता है; उसका उसी प्रकार बानक बनजाताहै किसीकी चतुराई नहीं चलती, इसका एक कारण औरहै, सो मैं तुझसे कहूं हूँ कोई मनुष्य कैसाही चतुर और ज्ञानीहो, परन्तु अधर्मीकी संगतिसे उसका धर्म कर्म ज्ञान ध्यान सब नष्ट होजाता है, और समयपर काम नहीं आता. जो कोई अधर्मीका अन्न भोजन करताहै उसकी बुद्धि उसीके समान होजाती है; सो मैंने उन दिनों दुर्योधन अधर्मीका अन्न भोजन किया था, इस कारण मुझको उस समय धर्म अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं रहा और मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई अब मुझको एक महीना छब्बीस दिन अन्न जल छोड़े और बाणोंकी शय्यापर पड़े होगया इसलिये अब मेरे शरीरसे दुर्योधन

दुराचारीके अन्नका विकार और उसके संगका प्रभाव निवृत्त होगया तो अब मुझे इसबातका विचार हुआ, कि मैंनेभी अत्याचारियोंके संग रहकर अत्याचार किया ॥ हे पुत्री ! इस बातपर मुझको एक दृष्टान्त महाभारतका स्मरण हुआ.त्रेतायुगमें राजा शिबिके राज्यमें,एक बड़े महात्मा परमहंस पुरुष रहते थे, बड़े धर्मात्मा और ज्ञानवान् थे राजा उनकी सेवा तन मनसे करता था उस राजाके नगरमें एक ब्राह्मणने अपनी कन्याका आभूषण किसी सुनारको बनानेके लिये दिया सो उस सुनारने सुवर्ण तो बदललिया और पीतलका गहना बनाकर और ऊपरसे सोना चढ़ाकर ब्राह्मणको दिया. उस ब्राह्मणने विना दिखाये भलाये वह गहना अपनी पुत्रीको पहना दिया. वह लड़की उस आभूषणको पहनकर अपनी ससुरालको चलीगई उसका पति चतुर था पीतलका गहना देखकर अत्यन्त क्रोधवन्त हुआ और उस लड़कीको पिताके घर पहुँचा दिया. तब उस ब्राह्मणने बहुत दुःख मानकर राजा शिबिके समीप जाय निवेदनपत्र दे अपना सब वृत्तान्त कहा, तब राजा, शिबिने उस ब्राह्मणकी बात सुनकर सुनारको पकड़ मँगाया और उसको अपराधी समझकर सब उसका अन्न धन लुटवाकर भंडारमें मँगालिया और उसको कारागारमें भिजवादिया, उसी अन्नका भोजन परमहंसनेभी किया. उस सुनारका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि भ्रष्ट होगई और रानीका रत्नजडित हार चुरालिया और अलग किसी गुप्त स्थानमें जा छिपे. और अन्न जलभी तीन दिनतक उनको नहीं प्राप्त हुआ तब तो उपास करनेसे सुनारके अन्नका विकार उनके उदरसे जातारहा तो फिर ज्ञान हुआ तो समझा कि मैंने बड़ा अन्याय किया जो रानीका हार चुरालिया.यह समझ राजाके सन्मुख जाकर कहा. मैंने बडा पाप किया,इस पापके बदले मुझको नरक भोगना पड़ैगा, इसलिये अपने कर्मका दण्ड इसी देहसे भोगलेना उचितहै, जिससें परलोककी चिंता न रहै, इस कारण हे पृथ्वीनाथ ! इस पापके बदलेमें मेरे दोनों हाथ कटवा दीजिये कि, मैं अपने अधर्मका दण्ड इसी जन्ममें भोगलूं, न जानिये परलोकमें क्या दशा होगी, यह बात सुनतेही राजाने उदास होकर पण्डित और ज्ञानियोंको बुलाकर बूझा कि, यह क्या कारण है जो परमहंसका चित्त उस दिन ऐसा बदलगया, कि इन्होंने हार चुराया और अब आपही उस हारको लेकर मेरे पास आये, और कहते हैं कि मेरे हाथ कटवादो, ब्राह्मणोंने अपनी विद्याके विचारसे कहा कि, हे भूपाल मणि ! जिस दिन परमहंसने चोरी करीथी उस दिन किसी पापीका अन्न खानेसे परमहंसकी यह गति होगई, सो राजाने बूझा तो विदित हुआ कि उसी सुनार अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि बदलगई थी, सुनारको बुलाकर बूझा कि तैंने पीतलपर सोना कैसे चढ़ाया ? उसने कहा कि एक घाती किसीके बालकको मारकर उसका गहना मेरे हाथ बेंचा,उस धान्यके खानेसे मैं मतिहीन होगया सो हे द्रौपदी !

एक दिन अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसका ज्ञान नष्ट होगया जो उसने चोरी करी, और मैं राजा दुर्योधन अधर्मीका सदा अन्न भोजन करताथा और उसके संग रहताथा, मुझे उस समय इतना ज्ञान नहीं हुआ. जो दुर्योधनके तेरे ऊपर अन्याय करनेसे उसे वर्जित करता और वह नहीं मानता, यह सब मेराही अपराध है. क्षमाकर, यह कह भगवान् वासुदेवकी मनोहर मूर्त्तिको हृदयमें धारणकर नेत्र बन्द कर लिये ॥ २८ ॥ उसी समय काल आनकर प्राप्त हुआ. जिसको अपनी इच्छासे मोक्ष जाना होय सो उत्तरायण काल है ॥ २९ ॥ युद्धमें सदा सबके समीप रहनेवाले, सहस्रों मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले, सो भीष्मपितामह सहस्र अर्थ कहनेवाले वाणीसे, आदिपुरुष भगवान् पीताम्बरधारी चतुर्भुज सम्मुख स्थित श्रीकृष्णजीमें सब संग

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ॥ यो योगिनश्छंदमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥ २९ ॥ तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसंगं मन आदिपूरुषे ॥ कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थिते मीलितदृग्व्यधारयत् ॥ ३० ॥ विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाऽऽशु गतायुधश्रमः ॥ निवृत्तसर्वेंद्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम् ॥ ३१ ॥ भीष्म उवाच ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि ॥ स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ ३२ ॥ त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवरांबरं दधाने ॥ वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥

छोड मन लगाया ॥ ३० ॥ बुद्धिको शुद्ध और मन स्थिर करनेसे जिनके पाप नष्ट होगये, और श्रीकृष्णजीके दर्शनसे आयुधोंके लगनेकी व्यथा दूर होगई और सब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंका भ्रम भी जिनका दूर हो गया, सो भीष्मजी देह त्यागनेके समय जनार्दन भगवान्‌की स्तुति करके बोले ॥ ३१ ॥ हे यादवकुलश्रेष्ठ ! महामहिमायुक्त स्वरूपभूत परमानन्दको प्राप्त किसी समय विहार करनेके निमित्त योगमायाके आश्रित हो देहधारण करते हो, जिससे संसार कृतार्थ होय. ऐसे भगवान् षड्गुण ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्णजीमें मैंने निष्काम बुद्धि समर्पण करी ॥ ३२ ॥ त्रिलोकीमें सुन्दर तमालवत् नीलवर्ण सूर्यकी किरणसम प्रकाशवान् तनुपर उज्वल वस्त्र धारण किये, मुखारविन्दपर सघन समूहवत् अलकैं चारों

ओरको छिटकरहीं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र यदुनायकमें निष्काम मेरी प्रीति हो ॥ ३३ ॥ युद्धमें घोड़ोंके खुरोंकी धूरिसे अटी हुई अलकें इधर उधरको बिखरी हुईं, और अलकोंके श्रमसे जिस मुखपर पसीना ऐसे आरहाथा, जैसे श्यामकमलके फूलपर ओसके कण चमकते हैं, कठिन मैंने बाणोंसे जिनकी देह मैंने भेदन कर डाली, ऐसे शोभायमान कवचधारी श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी बुद्धि लगै ॥ ३४ ॥ अर्जुनका वचन सुन शीघ्र अपने रथको कौरवोंकी सेनामें खड़ा करके शत्रुओंके सेनापतियोंकी आयु छीनकर, यह भीष्म, यह द्रोण, यह कर्ण, ऐसे उंगली दिखानेके बहानेसे सबकी आयु खैंचकर अर्जुनकी जय कराई ऐसे पार्थसखा श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी प्रीति हो ॥३५॥ दूर खड़ी सेनाका मुख देख, मोहित खिन्न अर्जुनकी कुमतिको अध्यात्मविद्या (गीताशास्त्र) के उपदेशसे दूर किया ऐसे श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति मेरे नेत्रोंमें बसी रहै ॥ ३६ ॥ हे नाथ! आप अपने भक्तोंका ऐसा

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ॥ मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४ ॥ सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ॥ स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥ ३५ ॥ व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ॥ कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥ ३६ ॥ स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ॥ धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हंतुमिभं गतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥

वचन प्रतिपालन करते हैं कि, जब महाभारत भी नहीं हुआ था तो आपने प्रतिज्ञा करीथी, कि हम विना शस्त्रधारण किये केवल पाण्डवोंकी सहायता करैंगे, और इधर मैंने प्रण कियाथा, कि जो मैं भीष्मपितामह हूं तो आपको संग्राममें व्याकुल करके तुम्हारी प्रतिज्ञा छुड़ाकर एकवार आपको शस्त्रग्रहण कराढूंगा, सो आपने भक्तभावकी रीतिसे सोचा कि, मेरी प्रतिज्ञा छूटजाय तो छूटजाय परन्तु मेरे भक्तकी प्रतिज्ञा नही छूटै, क्योंकि जब भक्तकी प्रतिज्ञा छूटगई तो फिर कोई भक्त पूर्ण प्रतिज्ञा नही करैगा और भक्ति संसारसे उठ जायगी, यह समझकर अपनी प्रतिज्ञा छोड़दी और मैंने अपना प्रण पूरा करनेके लिये अर्जुनके रथका चक्र तोड़कर घोडोंका घात किया, और उसके रथकी ध्वजा तोड़ धनुषको काटकर गिरादिया तब आप अत्यन्त क्रोधित होकर उसी रथका चक्र उठाकर मेरे मारनेके लिये मेरे पीछे दौड़े, उस समय दुपट्टेसे कैसे शोभायमान दिखाई देते थे

जैसे श्याम घटामें चपला चमक जाती है, जब आप दौड़ते दौड़ते व्याकुल होगये उस समय आपका पीताम्बर पृथ्वीपर गिरपड़ा उसके गिरनेका यह अभिप्राय था, कि जब आपने अपनी प्रतिज्ञा त्यागकर शस्त्रधारण किया, तब पृथ्वीका हृदय काँपने लगा, कि श्रीकृष्ण भगवान्ने तो भूमिका भार उतारनेके लिये संसारमें अवतार लिया है कहीं वहभी अपनी प्रतिज्ञा न छोड़दें, मेदिनीके मनका भाव जानकर उसका संशय मिटानेके लिये अपना उपर्णा धरनीपर गिरादिया, और यह कहा कि हे वसुधे! धैर्य धारणकर धैर्य धारणकर, शोकाकुल मत हो! मैंने अपने भक्तकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये अपना प्रण छोड़ाहै परन्तु तेरा भार अवश्य उतारूंगा, तू किसी प्रकारका संदेह मतकर. हे वसुमति! जब तेरे मनमें विस्मय हुआ मैंने उसी समय तुझको धैर्य देनेके लिये अपना पीतांबर तुझको सौंपा, कि जबतक तेरा भार न उतारूं तबलों मेरा उपर्णा अपने पास रक्खा रहनेदे ऐसे पृथ्वीको धैर्य देनेवाले मदनमोहनमें मेरी रुचि हो ॥ ३७ ॥ मुझ आततायीके तीक्ष्ण बाणोंसे आपका कवच भग्नहो शरीरमेंसे रुधिर

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ॥ प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान्गतिर्मुकुंदः ॥ ३८ ॥ विजयरथकुटुंब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ॥ भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हता गताः स्वरूपम् ॥ ३९ ॥ ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ॥ कृतमनुकृतवत्य उन्मदांधाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥ ०

निकलने लगा, उस समय हठपूर्वक मेरे सन्मुख मुझे मारनेको आये "और मैं चाहता था कि पाण्डवोंकी सब सेनाको मारकर भगादूं तब तुम मेरे रथके चारों ओर आनकर अनेक अनेक प्रकारके रूप अपने मुझको दिखातेथे, जिन रूपोंको देख देखकर मेरे मनमें भ्रांति होतीथी कि इनमें कौनसा रूप सत्य है कौनसा मायाका है? तब तुम मेरे बाणोंकी चोट सहकर मेरी सराहना करतेथे अब मैं उन बातोंका स्मरण करताहूं तो आपके सन्मुख मेरा मुख नहीं होता; सो आपने मेरे अपराधपर कुछ ध्यान नहीं किया और मरती समय मुझको आनकर दर्शन दिया" हे घनश्याम! यही श्यामस्वरूप मेरे नेत्रोंमें बसारहे ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथरूप कुटुम्बमें कोड़ा लिये घोड़ोंकी पचरंगी बागडोर पकड़े सारथीपनकी शोभा धारण किये, दर्शनीय भगवानमें मुझ मरणशीलकी प्रीति होय, जो आपके दर्शन करते करते युद्धमें मरे, सो आपके स्वरूपको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ ललित गति विलास मनोहर हास्ययुक्त नम्र विलोकन श्रीकृष्णके चरित्रोंका अनुष्ठान करनेवाली मदमत्त गोपवधूभी जिनके स्वरूपको प्राप्त होगई ॥ ४० ॥

राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अनेक मुनिगण नृपतिसमूहके समक्ष जिनकी सबसे पहिले पूजाहुई, आज मेरा धन्य भाग्य है, सो श्रीकृष्णचन्द्र दर्शन योग्य मेरी दृष्टिके सन्मुख आनकर प्रगट हुए ॥४१॥ अपने रचेहुए शरीरधारियोंके हृदयमें विराजमान, जन्मरहित, मोहरहितकी मैं शरणागत हूं, जैसे सब प्राणियोंकी दृष्टियोंमें एक सूर्य अनेक घटोंमें दिखाई देताहै ऐसे एक ईश्वर जीवोंके शरीरके भेदसे अनेक दृष्टि आतेहैं॥४२॥ सूतजी बोले कि हे ऋषिगण ! भगवान् कृष्णमें मन वाणी दृष्टिकी वृत्तियोंसहित जीवात्माको लगाकर भीष्मजी अंतःश्वासी उपरामको प्राप्तहुए॥४३॥ भीष्मजीको उपाधि रहित ब्रह्ममें लीन जानकर, जैसे सन्ध्या समय सब पक्षी चुप हो जातेहैं ऐसे सब चुप होगये॥४४॥ देवता मनुष्योंके बजाये हुए बाजे बजे, राजाओंमें साधु

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेंतःसदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम्॥अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशि गोचर एष आविरात्मा ॥४१॥ तमिममहमजं शरीरभाजां हृदिहृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ॥ प्रतिदृशमिव नैकधाऽर्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥ ४२ ॥ सूत उवाच ॥ कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य सोंतःश्वास उपारमत् ॥ ४३ ॥ संपद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ॥ सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥ ४४ ॥ तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ॥ शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव ॥ युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥ ४६ ॥

प्रशंसा करनेलगे,आकाशसे फूलोंकी वर्षाहुई ॥४५॥ हे शौनक मुनि ! भीष्मजीकी दाह क्रियाकर युधिष्ठिर एक घड़ी शोकसे अपने मनमें बहुत दुःखी हुए "उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने पाण्डवोंको बहुत समझाया कि जैसी मृत्यु संसारमें भीष्मजीकी हुई है, ऐसी मृत्यु दूसरेकी होनी बहुत दुर्लभ है, संसारमें जिसने शरीर धारणकिया वह अवश्य एक दिन कालकौर होगा इसलिये मरनेका शोच करना वृथा है, जो कोई संसारमें नरतनु पाकर माया मोहमें लिप्तरहै और परमात्मासे विमुख रहकर कलह क्लेशमें अपने दिन व्यतीत करै और वह अपना तनु त्याग करै उसके लिये शोक करना अवश्य चाहिये क्योंकि, वह नरकमें वासकर कष्ट भोगैगा, और भीष्मपितामहने तो संसारमें भक्तिपूर्वक धर्म संयुक्त रहकर तनु त्याग किया, इसलिये इनके

मरनेका क्या शोक संताप है? आप तो चतुर और ज्ञानी हैं, अधिक समझाना तो मूर्खोंको चाहिये. यह बात सुनकर युधिष्ठिरने अपने मनको धैर्य दिया" ॥ ४६ ॥ उस समय सब मुनियोंने प्रसन्न होकर छिपे नामोंसे श्रीकृष्णकी स्तुतिकरी, और श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति हृदयमें बसाय सब अपने अपने आश्रमको गये ॥ ४७ ॥ तब श्रीयदुनाथसमेत युधिष्ठिरने हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्रसहित तपस्विनी गान्धारीको शान्त किया ॥४८॥ धृतराष्ट्रने और वासुदेवने राजा युधिष्ठिरकी सराहना करी और समर्थ राजा युधिष्ठिर प्रसन्न हो, धर्म कर्मसे अपने परदादाकी राजगद्दीपर बैठकर धर्मराज करने लगे ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां भीष्मस्तुतियुधिष्ठिरराजप्रलंभो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ॥ ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः ॥ ४७ ॥ ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ॥ पितरं सांत्वयामास गांधारीं च तपस्विनीम् ॥४८॥ पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ॥ चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भा० प्रथ० युधिष्ठिरराज्यप्रलंभनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

शौनक उवाच ॥ हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ॥ निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥ २ ॥ निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ॥ शशास गामिन्द्र इवाऽजिताश्रयः परिध्युपांतामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥

दोहा—कियो दशम अध्यायमें, धर्मराजसुत राज। गमन द्वारकाको कियो, कृष्णचन्द्र महाराज ॥ १० ॥ इतनी कथा सुन शौनक मुनि बोले, कि हे सूतजी महाराज! जो अपनेसे अधिक राज्यकी इच्छा करतेथे, उन अन्यायी दुराचारियोंको मारकर, धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयों समेत वैरागी होकर कैसे अपना समय व्यतीत किया, सो वर्णन कीजै? ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकमुनि! जो कुरुवंशरूप दावानलसे जले वंशको श्रीकृष्णचन्द्र फिर अपनी कृपादृष्टिसे उत्पन्नकर हस्तिनापुरके राज्यमें युधिष्ठिरको प्रवेश कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२॥ और राजा युधिष्ठिर, भीष्मपितामह और श्रीयदुनाथ भगवान्का परमज्ञान सुनकर, सब भ्रम और भटकनाको छोड़ श्रीकृष्णाश्रयसे सब

भाइयोंसमेत समुद्रपर्यन्त पृथ्वी और प्रजाका इन्द्रकी समान पालन करने लगे ॥ ३ ॥ जब इच्छा होती तब मेघ बरसता सब पृथ्वी कामधेनु हो रहीथी, गौओंसे व्रज पूरित हो रहाथा ॥ ४ ॥ नदी, समुद्र, पर्वत, वन, वनस्पति, लतासमेत सब औषधियें, सब ऋतुमें इच्छापूर्वक फूलती फलती थीं॥५॥और राजा युधिष्ठिरके राज्यमें किसी जीवको किसी समय, मानसी व्यथा, रोग, शीत उष्णादिक, अध्यात्मिक, अधिदैव, अधिभूत, दुःख नहीं होतेथे ॥ ६ ॥ श्रीद्वारकानाथ देवकीनंदन अपने मित्र पाण्डवोंका दुःख दूर करनेके लिये और भगिनीकी प्रीतिकी इच्छासे कुछ दिनों हस्तिनापुर में वास करके पश्चात् युधिष्ठिरसे सम्मतिकर और आज्ञा ले भेंट प्रणाम कर,और वहांके पुरुषोसे यथायोग्य मिल प्रणामको प्राप्तहो श्रीभगवान् वासुदेव

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ॥ सिषिचुः स्म व्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥ ४ ॥ नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ॥ फलंत्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥ ५ ॥ नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ॥ अजातशत्रावभवञ्जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित ॥ ६ ॥ उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपया न्हरिः ॥ सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥७॥ आमंत्र्य चाऽभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ॥ आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोभिवादितः ॥ ८ ॥ सुभद्रा द्रौपदी कुंती विराटतनया तथा ॥ गांधारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥ ९ ॥ वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ॥ न सेहिरे विमुह्यंतो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥ सत्संगान्मुक्तदुस्संगो हातुं नोत्सहते बुधः ॥ कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥

रथपर बैठे ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र युयुत्सु "जो धृतराष्ट्रके वीर्यसे वेश्यासे जन्माथा" कृपाचार्य, नकुल, सहदेव ॥ ९ ॥ भीम, धौम्यऋषि, और मत्स्यसुता उत्तरा, आदि मोहके वशहो, मदनमोहन व्रजनाथ बाँकेविहारीके वियोगको न सहसके, मत्स्यसुता सत्यवतीका भी नाम है ॥ १० ॥ महात्मा पुरुषोंके मुखसे जो बुद्धिमानने एकबार भी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके यशको सुना, वह उसी समय सब लोभ मोह स्त्री पुत्रादिकोंकी प्रीति तज उस कृष्णगुणगानेवालेके सत्संगको नहीं त्यागसक्ता ॥ ११ ॥

जिन युधिष्ठिरादिकोंकी श्रीकृष्णमें अलौकिक प्रीति, नित्यप्रति (आना, जाना, हँसना), देखना, छूना, बोलना, (चलना), शयन, आसन, भोजन रहताथा उनसे उनका विरह किसप्रकार सहाजाय॥१२॥सब अतिस्नेहके मारे बँधेहुए श्रीकृष्णकी पूजा करनेके लिये जहां तहां चले॥१३॥देवकीसुतकी यात्रामें किसीप्रकारका अमंगल न हो इसलिये बांधवोंकी स्त्रियोंने उत्कंठाके मारे आँखोंके आँसू आँखोहीमें रोके ॥१४॥ और जहांतहां मृदंग, शंख, वीणा,

तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् ॥ दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥ १२ ॥ सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनु द्रुतचेतसः ॥ वीक्षंतः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्रतत्र ह ॥ १३ ॥ न्यरुंधन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कंठ्याद्देवकीसुते ॥ निर्यात्यगारान्नोभद्रमिति स्याद्बांधवस्त्रियः ॥ १४ ॥ मृदंगशंखभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ॥ धुंधुर्यानकघंटाद्या नेदुर्दुंदुभयस्तथा ॥ १५ ॥ प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ॥ ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६ ॥ सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ॥ रत्नदंडं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

भेरी, गोमुख, धुंधरी, घण्टा, दुंदुभी बाजे बड़े गम्भीर शब्दसे बजरहेथे ॥ १५ ॥ और कौरवोंकी स्त्रियें छज्जोंपर बैठीहुई श्रीमदनमोहन बाँके विहारीकी प्रीतिके जालमें फँसी, लज्जाके मारे मनहीमन मुसकाय तिरछी चितवनसे देखतीथीं, और जय जय शब्दकर श्रीकृष्णपर सुगंधित पुष्पोंकी वर्षा करती थीं * ॥१६॥महाहर्षसे श्रीकृष्णजीके ऊपर श्वेतछत्र अर्जुन लगाये खडेथे, जिसमें सुन्दर रत्नोंकी डंडी और मोतियोंके गुच्छे लटक रहेथे ॥ १७ ॥

* शंका–विधवा जो कुरुवंशियोंकी स्त्रियें थीं सो उन्होंने प्रेम करके लज्जाकरके मुसकायके श्रीकृष्णको क्यों देखा ? पतिव्रता स्त्री अपने पतिको प्रीतिसे वा लज्जासे अथवा मुसकानेसे देखती हैं, और जारिणी स्त्री व्यभिचारी पुरुषको विषयवासनासे देखती हैं, कौरवोंकी स्त्री सब बडे बडे कुलकी जन्मीहुई बडी पतिव्रता शुद्ध कर्म धर्म करनेवाली, ऐसी स्त्री किसी जन्मके पापसे विधवा होगई तो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु श्रीकृष्ण पर पुरुष हैं उनको उन्होंने प्रेमसे लज्जासे मृदुमुसकानसे क्यों देखा ? जो कभी कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने श्रीकृष्णको भगवान् जानके प्रेमसे, लज्जासे, मृदुमुसकानसे देखा तोभी अयोग्य है, भगवान्‌ही जान लियाथा कृष्णको तोभी हाथजोडकर नमस्कार करना चाहिये था अपनी दीनता दिखाकर कृष्णके सन्मुख खडीहो नेत्रोंके जलसे उनके चरण कमलको धो उनका चरणामृत लेतीं इस प्रकारसे नमस्कार करना योग्य था, फिर यह क्यों नहीं किया ?

उत्तर–कुरुवंशियोंकी स्त्रियोने अपने २ मनमें विचार किया, कि हमारे सबके पतियोंको पाण्डवोंने युद्धमें मारा है अब हम सब अनाथ हो रही है इसलिये हमारी सबकी रक्षा करनेवाले एक भगवान् है

परम अद्भुत पंखा उद्धव और सात्यकी हाथमें लिये पवन कर रहेथे, और पुरुषोत्तमपर पुष्पोंकी वर्षा मार्गमें होती चली जातीथी, उस
समयकी शोभाको कौन वर्णन करसकै ? ॥ १८॥ निर्गुण सगुण परमेश्वरके जो अनेक अनेक रूपके योग्य सत्य आशीर्वाद जहां तहां ब्राह्मणोंके मुखसे
सुनाई आतेथे ॥ १९ ॥ मन लगाये कौरवेंद्र युधिष्ठिरके पुरकी स्त्रियोंके परस्पर कहे मनोहर वचन मनको मोहे लेतेथे ॥ २० ॥ उत्तम आत्मामें निश्चय

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ॥ विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥ अश्रूयंताऽऽशिषः सत्यास्त
त्रतत्र द्विजेरिताः ॥ नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥ अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ॥
कौरवेंद्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥ २० ॥ स्त्रिय ऊचुः ॥ स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ॥
अग्रेगुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥ स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमाया
प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ॥ अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोनुससार शास्त्रकृत् ॥ २२ ॥

करके पुरातन एक पुरुष यह हुए, समस्त जगत् जिनकी देहमें गुणोंसे आगे जिनका जन्म, निशामें जो शक्ति सो उस समय आँखे न मीचैं सो यह
पूर्ण परमात्मा है ॥ २१ ॥ अपने वीर्यसे प्रेरित सबकी जिवाने रचनेवाली प्रकृतिको नामरूप जिस आत्मा व्यापकमें नहीं होसकै, उसमें रूप, नाम,

—इसलिये कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने प्रेमसे श्रीकृष्णको देखा और कौरव पाण्डवोंका युद्ध जब नहीं हुआथा तब श्रीकृष्ण अनेकवार हस्तिनापुरको आये और हस्तिनापुरमें जो जो कौरवोंकी सभायेंथीं इनमें वैठे और कौरवोंने वारम्वार श्रीकृष्णका अनादर किया इस वातको कौरवोंकी स्त्रियें भली भांति जानतीथीं कि, हमारे पतियोंने श्रीकृष्णका निरादर किया है ऐसा स्त्रियोंने जानभी लिया तोभी कामदेवसे उन्मत्त होरहीथीं स्त्री भगवान्‌का आदर सन्मान कभी न करतीं परन्तु विषयसुखके अभिमानसे मतवाली हो रहीथीं, उन भगवान्‌के अनादरको कुरुवंशियोंकी स्त्री स्मरण करके श्रीकृष्णके संग पहिले तो उन्मत्त होकर बुराई की फिर उसी कर्म करके वहुत लज्जाको प्राप्तहोकर मुख नीचेको करके अत्यन्त लज्जासे देखा, क्षत्रियोंके कुलमें जो स्त्रियें तथा पुरुष उत्पन्न होतेहैं उनका स्वभाव महा कठिन होताहै सहस्र वर्ष बीत जानेपरभी अपने शत्रुको नहीं भूलते, जिसने अपने आपको दुःख दिया है उससे वदला लेनेके लिये मरते समय अपनी सन्तानसे कह जाते हैं कि, शत्रुसे वदला अवश्य लेना, जब अपने प्राण छोडते हैं, इसलिये कौरवोंकी स्त्री अपने अपने स्वभावमें चतुरथीं, इस कठिन स्वभावसे कौरवोंकी स्त्रियोंने श्रीकृष्णको मुसकायकर देखा कौरवोंकी स्त्रियोंने विचार किया कि, जिस प्रकार हम सवको इन कृष्णने पतिहीन करके हमपर विपत्ति डालीहैं ऐसे ही इनकीभी सब स्त्रियें इन करके थोडेही दिनोंमें हीन होजावेंगी इसलिये कौरवोंकी स्त्रियोंने मन्दहास्यसे कृष्णको देखतीथीं ॥

विधान, करनेको सब शिक्षा शास्त्र करनेवाले सो यह फिर मायामें स्थितहुए ॥ २२ ॥ निश्चय यह परमेश्वर हैं, जिनके पदको बडे बड़े जितेन्द्री विवेकी देखे हैं, सो यह श्रीव्रजानन्द सब जीवात्माओंके शुद्ध करनेवालेहैं ॥ २३ ॥ सो यह ईश्वर वह हैं कि जिनकी सत्कथा सखाओंने और वेदमें गुह्यनामोंमें इनकी एकान्तकी बातें जाननेवालोंने कही गाई हैं, कि यह एक परमात्मा अपनी लीलासे संसारकी उत्पत्ति पालन संहार करतेहैं परन्तु इस विश्वमें आसक्त नहीं होते ॥२४॥ जब तामसी बुद्धिवाले राजा पृथ्वीपर अधर्मसे राज्य करेहैं तब परब्रह्म परमात्मा सात्त्विक रूप धरकर निःसन्देह संसार स्थितिके लिये युग युगमें अपना रूप धारणकर ऐश्वर्य, सत्यप्रतिज्ञा, यथार्थ वार्ता, भक्तोंपर कृपा, यह अद्भुत कर्म करतेहैं॥२५॥

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेंद्रिया निर्जितमातरिश्वनः ॥ पश्यंति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥ २३ ॥ स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ॥ य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥ यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवंति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ॥ धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगेयुगे ॥ २५ ॥ अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलमहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ॥ यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चंक्रमणेन चांचति ॥ २६ ॥ अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ॥ पश्यंति नित्यं यदनुग्रहेषितस्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः॥ २७ ॥ नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ॥ पिबंति याः सख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियः संमुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥

यह यादवकुल अत्यन्त श्लाघा करने योग्यहै, यह मधुवन अत्यन्त पुनीत स्थानहै, जिसे सब जगत्के स्वामी श्रीपतिने जन्मले और चल फिरकर पूजनके योग्य किया ॥ २६ ॥ यह द्वारकापुरी पुण्य यशकर्त्री और स्वर्गके उत्तम यशकी तिरस्कार करनेवालीहै, जिसमें नित्य अनुग्रहीत दृष्टि और मधुर मुसकानयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रजीको उनकी प्रजा देखतीहै ॥२७॥ हे सखी! जिन स्त्रियोंका इन्होंने पाणिग्रहण कियाहै निश्चय उन स्त्रियोंने जन्मान्तरमें व्रत स्नान हवनसे ईश्वरका पूजन कियाहै. और जिनके अधरामृतमें अपने अंतःकरण लगाकर व्रजस्त्रियां बारंबार मोहित होतीथीं॥२८॥

शिशुपालआदिक बड़े बड़े नामी राजाओंको जीतकर अपने पराक्रमरूप वीर्यसे स्वयंवरसे सुन्दरियोंको हरलाये, और प्रद्युम्न, साम्ब, अम्बादि पुत्र जिनने उत्पन्न किए और भौमासुरको मारकर जो कई सहस्र स्त्री लाये, उन सबके धन्य भाग्यहैं ॥ २९ ॥ यह परम स्त्रीभावको ही प्राप्तथीं, क्योंकि जिनमें चतुराई नहीं, शोक संताप नहीं, परन्तु देवी शोभित हुईं. यह सब व्रत पूजनका प्रभाव है कि, जिन्होंने हृदयग्राहिणी मधुर वाणियोंसे व्रजराजको मोहित करलिया, कि कभी उनके घरसे बाहर नहीं निकलतेथे ॥ ३० ॥ वह पुरकी स्त्रियें इसप्रकारसे बातें करतीथीं और व्रजचंद्र उनकी ओर देख देख आनन्दितहोकर मुसकाते चलेजातेथे ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरने भगवान्‌को

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ॥ प्रद्युम्नसांबांबसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥ २९ ॥ एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ॥ यासां गृहात्पुष्करलोचनः पतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥ ३० ॥ एवंविधा गदंतीनां स गिरः पुरयोषिताम् ॥ निरीक्षणेनाभिनंदन्सस्मितेन ययौ हरिः ॥ ३१ ॥ अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ॥ परेभ्यः शंकितः स्नेहात्प्रायुंक्त चतुरंगिणीम् ॥ ३२ ॥ अथ दूरागतान्छौरिः कौरवान्विरहातुरान् ॥ सन्निवर्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥ कुरुजांगलपांचालाञ्छूरसेनान्सयामुनान् ॥ ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥ मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ॥ आनर्तान्भार्गवोपागाच्छांतवाहो मनाग्विभुः ॥ ३५ ॥

अकेला जान शत्रुओंकी शंकासे अपने स्नेहसे रक्षाके लिये थोडीसी सेना उनके साथ भेजदी, जिसमे हाथी घोड़े रथ पालकी पैदलथे ॥ ३२ ॥ और आप चारों भाई बहुत कुरुवंशियोंसमेत पहुँचानेको संगचले, प्रेमप्रीतिकी जब बातें करते करते बहुत दूर निकलगये, तब विरहातुर कौरवोंको श्रीकृष्णजीने हस्तिनापुरको लौटादिया और आप द्वारकाजीको चल दिये ॥ ३३ ॥ कुरु, जांगल, पांचाल, शूरसेन, यमुना किनारेके देश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, सरस्वतीतीरके देश ॥ ३४ ॥ मारवाडसे बड़े सौवीर, आभीरदेश और और देशोंमें होतेहुए, आनर्तदेशमें जो

द्वारकाके समीप है पहुँचे और घोडे थकजानेके कारण वहीं विश्राम किया ॥ ३९ ॥ जहाँ जहाँ सूर्यास्त होनेपर श्रीकृष्णने विश्राम किया वहाँ
वहांके वासी. श्रीकृष्णजीके निकट आनआनकर भेंट पूजन करते थे, और परस्पर कहतेथे, कि यही आदिपुरुष अविनाशी भूमिका भार उतारनेके
लिये संसारमें जन्मले अपने भक्तोंको सुखदेते हैं, जिनका दर्शन शिव विरंचि नारदादि देवताओंके ध्यानमें नहीं आता, उनका दर्शन हम लोगोंको
बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ, और धन्यभाग्य उन वृन्दावनके ग्वाल ग्वालिनियोंके हैं, जिन्होंने व्रजमें रहकर दिन रात इनके साथ आहार व्यवहार रास
विलास किया, और इन्होंने ही कौरव पाण्डवोंमें महाभारत कराके कुरुवंशविध्वंस करादिया, कोई यह कहतेथे कि यदुवंशियोंने पूर्व जन्ममें बड़ा
उग्रतप किया होगा, जिसके प्रतापसे इनको अपना हितू और सम्बन्धी समझ दिन रात संग रहकर आनन्द भोगा, और उनको अनेक अनेक प्रकारका
सुखदिया। और उन नगरनिवासियोंकी नारी बाँकेविहारीकी बाँकी झांकी देख मतवाली हो परस्पर कहतीथीं, आली! इस सांवलीसूरत मोहनीमूरतने
तो हमारे ऊपर ऐसी मोहनी डाली, न खानेकी, नपीनेकी, नसोनेकी, न जागनेकी, क्याकरें क्या नकरें! किसी प्रकार मनको धैर्य नहीं होता, दूसरी सखी
बोली—अरी! तेरीतो एकही दिनमे यह गति होगई वह व्रजनारी बिचारी कैसे जीती होंगी, जिन्होंने जन्मभर इन्हींके संग रास विलास किया, और सारी

तत्रतत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ॥ सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भा० प्र० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान्स्वकान् ॥ दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥ १ ॥

अवस्था इनहीके नेग लगादी, उनकी क्या गति होगी? हम तो एकही इनकी तिरछी चितवन देख तिरछी होगई; और एक सखी बोली-आली! जो यह
वनमाली सदा यहां रहैं तो हमारा मनोरथ पूर्णहो. एक बोली, अरी! हमारे ऐसेभाग्य कहा हैं. एक बोली—प्यारी! अभीसे तो हारीहारी बातें मतकरे, अभी तो
कुंजविहारी तुम्हारी आँखोंके आगेही फिररहेहैं. एकबोली—अरी! कहीं इनके फंदेमें अपना मन मत फँसादेना यह बड़ेकपटीहैं, जो राधाही अपनीप्यारीको
वनमें अकेली छोडकर चलेगये तो और किसके होंगे? सखी तू नहीं जानती यह सच्ची प्रीतिके प्रेमी हैं, द्रौपदीकी कैसी लाज रक्खी, गजको ग्राहसे कैसा
बचाया. रुक्मिणीके बुलानेसे कैसे पहुँचे, प्रह्लादके हेत खंभ फाडकर कैसे प्रकटे, भारतमें भारतीके अण्डे कैसे बचाये? इस प्रकार सब स्त्री पुरुष हरिके
गुण गाय गाय आनन्दित होते थे, हे शौनकऋषि! ऐसे ही चलते चलते श्रीकृष्णचन्द्र आनर्तदेशमें पहुँचे जो द्वारकाके समीपही है, वहां घोडे थक
गये और उसी स्थानपर द्वारकाधीशने वास किया ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णस्थानानर्तदेशागमनो
नाम दशमोऽध्यायः॥ १० ॥ दोहा—एकादश अध्यायमें, कृष्ण द्वारकाचन्द। जाय द्वारकापुरीमें, दियो सबहिं आनन्द॥ ११ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रआनन्दकन्दने

समृद्ध आनर्तदेशसे चल द्वारकाके निकट जाय यदुवंशियोंका विपाद शान्त करनेको पांचजन्य शंख बजाया ॥ १॥जिसका श्वेत उदर श्रीभगवानके अधरकी ललाईसे लाल होगया, कमलसदृश हस्तसम्पुटमें धरा हुआ ऐसा शोभायमान दिखाई देताथा, जैसे लाल कमलके समूहमें राजहंस शोभित होताहै ॥ २ ॥ जगतके भय नाश करनेवाले शंखकी धुनि सुन, कृष्णदर्शनाभिलाषी प्रजा कृष्णचन्द्रका आगमनजान सन्मुखचले ॥ ३ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रको बड़े आदर सत्कारसे भेंटदी, जैसे कोई सूर्यनारायणको दीपदानदेता है, भगवान् तो आप आत्माराम पूर्णकाम हैं, निज लाभसे

स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याऽधरशोणशोणिमा ॥ दाध्मायमानः करकंजसंपुटे यथाब्जखंडे कलहंस उत्स्वनः ॥ २ ॥ तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ॥ प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥ ३ ॥ तत्रोपनीतब लयो रवेर्दीपमिवाऽऽदृताः ॥ आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ ४ ॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा॥ पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥ ५ ॥ नताः स्म ते नाथ सदांघ्रिपंकजं विरिंचवैरिंचसुरेंद्रवंदितम् ॥ परायणं क्षेम मिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परः प्रभुः ॥ ६ ॥ भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताऽथ सुहृत्पतिः पिता ॥ त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥ ७ ॥ अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ॥ प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥ ८ ॥

नित्य प्रसन्न हैं ॥ ४ ॥ प्रसन्नवदनसे अत्यन्त हर्षित हो गद्गदकण्ठसे मधुर वचन बोले. जैसे सब सुहृद रक्षक पितासे बालक मीठे बोले हैं ॥ ५ ॥ हे नाथ ! ब्रह्मा, शिव,सनकादिकदेवता इन्द्रसे नमस्कृत कुशलकी इच्छावालोंको परम आश्रयदायक जहां कालका सामर्थ्य नहीं ऐसे आपके चरणकमलको सदा नमस्कारकरे हैं ॥६॥ हे विश्वभावन ! हम सबकी उत्पत्ति आपहीसे है, तुमहीं माताहो तुमहीं मित्रहो, तुमही पतिहो, तुमहीं पिताहो, तुमहीं सद्गुरुहो, तुमही हमारे परमदेवताहो, जो हम सब तुम्हारी सेवाकरके कृतार्थ होतेहैं ❀ ॥७॥ स्वर्गवासी देवताओंका तो दूरसेही दर्शन होताहै और जिसमें

* शंका–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका गुरु एकही होताहै, चाहे दुष्ट हो, चाहे महात्मा हो, परन्तु गुरु नारायणकी समान हैं, तीन लोकमें ब्रह्माकी बनाईहुई सब वस्तु अनेक प्रकारकी देख पडती हैं, परन्तु गुरुओंका बहुत होना कभीभी कोई प्राणी नहीं देखता, जो कोई सज्जन ऐसा कहे कि दत्तात्रेयने चौबीस २४ गुरु किये तो यह बात सत्यहै, परन्तु दत्तात्रेयने चौबीसका लक्षण ग्रहण किया. चौबीस जनोंने दत्तात्रेयको मन्त्र उपदेश नहीं किया, उपदेश देनेवालेको शास्त्रमें गुरु कहतेहैं उपदेश देनेवाला दत्तात्रेयका एक गुरु दत्तात्रेयका मनथा, ऋषियोंनेभी कहाहै कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको गुरु एककरना चाहिये–

सब प्रकारकी सुन्दरताई, और प्रेमभरी मुसकान, मनोहर वचन, बाँकी चितवन सहित आपके मुखको सदा देखे हैं, इस कारण हम ऐश्वर्यवान् हैं ॥ ८ ॥ हे अंबुजाक्ष ! हे अच्युत ! जब आप हस्तिनापुरको अथवा मथुराको अपने इष्टमित्रोंको देखनेको पधारो हों, वह समय करोड वर्षके समान हमको व्यतीत होताहै, जैसे सूर्यके विना नेत्रोंसे कुछ नहीं दीखता, ऐसे हमारी गति होजातीहै ॥ ९ ॥ प्रजाकी मधुर मधुर वाणी सुन सुनकर

यर्ह्यंबुजाक्षाऽपससार भो भवान्कुरून्मधून्वाऽथ सुहृद्दिदृक्षया ॥ तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाऽच्युत ॥ ९ ॥ इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ॥ शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥ १० ॥ मधुभोजदशार्हार्हकुकुरांधकवृष्णिभिः ॥ आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण भक्तवत्सलने आनन्दसहित सबको अनुग्रहकी दृष्टिसे देख कुशल क्षेम बूझते बूझते द्वारका पुरीमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ अपने समान जिनमें बल ऐसे, मधु, भोज, दशार्ह, कुकुर, अंधक, वृष्णि वंशोत्पन्न यादव जैसे भोगवतीपुरीकी नाग रक्षा करतेहैं उसी भाँति वह द्वारकापुरीकी

–लोक, शास्त्र तो गुरु एकही होना कहताहै तो फिर द्वारकावासी प्रजाने श्रीकृष्णको क्यों कहा कि आप हमारे सबके सद्गुरुहैं । इस बातसे ऐसाभी जानाजाताहै कि असत् गुरुभी होतेहोंगे, जैसे पाप पुण्य, जन्म मरण, हानि लाभ, यश अपयश, झूठ सत्य, रात दिन आदिकी जोडी हैं, इसी प्रकार सत् असत्कीभी जोडी है ?

उत्तर–त्रिलोकीके चर अचरके लिये कृष्णभगवान्ने अवतार नहीं लियाथा, जब देवताओंको राक्षसोंने बहुतही दुःख दिया तब विष्णुभगवान्ने कुछ दिनोपरान्त श्रीकृष्ण अवतार धारकर चर अचरकी, और यदुवंशियोंकी रक्षा तो सब प्रकारसे निशि दिन करतेहीरहे, और द्वारकावासी मनुष्योंको गर्गमुनि सदा यही शिक्षा करते रहे, कि तुम सब श्रीकृष्णचन्द्रको परब्रह्म जानो, इनसे अधिक और कोई दूसरा रक्षाकी देवता त्रिलोकीमें नहीं है, इस प्रकार गर्गमुनिके कहे हुए वाक्योंको सब प्रजाने अपने अपने हृदयमें बसालिया, और त्रिलोकीके सब पदार्थोंको हृदयसे त्यागदिया, और वेदशास्त्रके अनुसार चलनेलगे, यह कर्म करना योग्यहै यह कर्म करना अयोग्यहै ऐसा विचारकर शुद्धचित्तको सब प्रजा गण अपने मनमें यह जानने लगे कि जो जो वस्तु संसारमें ब्रह्माने रचीहै वह सब श्रीकृष्णमयहैं, उन सबोंको कृष्णरूप जानतेथे, त्रिलोकीके चर अचरको कृष्णरूप जानके, आप हमारे सबके सद्गुरु हो, ऐसे वाक्य द्वारकावासी प्रजागण कहतेथे ॥

रक्षा कर रहेहैं ॥ ११ ॥ जिस द्वारकापुरीमें सब दिन वसंत ऋतुही बनी रहैहै सब प्रकारके जिसमें वन उपवन आराम शोभित हैं, जिसमें सब, ऋतुओके पुष्प खिले पुण्यदायक वृक्ष लतामंडप शोभितहैं, फल प्रधान होंय वह उद्यान कहावेहैं, और पुष्पप्रधान होय वह उपवन कहाताहै, खेलनेके अर्थ जो वनहै उसको आराम कहतेहैं यह जहाँ शोभितहैं और तालोंमें कमलोंकी शोभा न्यारीही हो रही थी ॥ १२ ॥ गोपुर द्वारमार्गोंमें उत्सव होरहाहै तोरण बन्दनवारें बँधीहैं, चित्र विचित्र गरुडचिह्नसे अंकित ध्वजा लगरहीहैं, जयदायक यंत्र जिसमें कढे ऐसे बड़ेबडे झण्डे जहाँ तहाँ फहराय रहेहैं, जिनकी ओटसे धूम घोरे नहीं आती ॥ १३ ॥ महामार्ग, छोटेमार्ग, दूकानदारोंके मार्ग, चौराहे, सब झाडे बुहारे स्वच्छहैं

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः॥ उद्यानोपवनारामवृतपद्माकरश्रियम् ॥ १२ ॥ गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरंतःप्रतिहतातपाम् ॥ १३ ॥ संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम्॥ सिक्तां गंधजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षतांकुरैः ॥ १४ ॥ द्वारिद्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः॥ अलंकृतां पूर्णकुंभैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥१५॥ निशम्य प्रेष्ठमायांतं वसुदेवो महामनाः॥ अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥१६॥ प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सांबो जाबवतीसुतः ॥ प्रहर्षवेगोच्छ्वसितशयनासनभोजनाः ॥ १७॥ वारणेंद्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः स सुमंगलैः ॥ शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ॥ प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ १८ ॥ वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ लसत्कुंडलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥ १९ ॥

उनपर सुगन्धियोंका जल छिडका हुआहै, फल, पुष्प, अक्षत, दूर्वा अंकुर, जहाँ तहाँ बिखर रहेहैं ॥ १४ ॥ मंदिरोके द्वारद्वारपर, दधि, अक्षत, चन्दन, पान, सुपारी, फल, फूल, कञ्चनके कलश, बलिदान, धूप, दीप, शोभा दे रहेहैं. ऐसी द्वारकाकी शोभा होरहीहै ॥ १५ ॥ उस समय देवकीनन्दनका आना सुनकर महाबुद्धिमान्, वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, बलराम अद्भुत पराक्रमी सब आये ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, जाम्बवतीसुत, साम्ब, अत्यन्त हर्षके मारे शयन, आसन, भोजन त्याग चलदिये ॥१७॥ एक गजेन्द्र आगे कर, ब्राह्मण मंगल गाते शंख बजाते आतेहैं, ब्राह्मणोंके वेदपाठका गम्भीर शब्द होरहाहै ॥ १८ ॥ रथपर बैठे श्रीकृष्णको देख नमस्कार दंडवत् कर स्तुति करनेलगे और जो बड़े बड़े यादवथे

वे श्रीकृष्णसे भेंटकर अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥ १९ ॥ सहस्रों वेश्या श्रीकृष्णके दर्शनके लिये रथोंमें बैठकर आईं, तिनके सुन्दर सुन्दर कपोलोंपर कुण्डल अद्भुत शोभा दे रहेहैं ॥ २० ॥ नवरस जाननेवाले नट, तालके संग नाचैं वह नर्तक, गानेवाले गन्धर्व, पुराणवक्ता सूत, वंशोंके जाननेवाले मागध, जैसा देखैं वैसा कहैं वह उनका बन्दीजन यह सब यदुनाथके अद्भुत चरित्र गावैंहैं ॥२१॥ श्रीकृष्णजीने उन गुणियों और पुरवासियोंको आते देख यथाविधि आदर सन्मान किया ॥२२॥ कोई शिरसे नवैं, कोई वाणीसे नवैं, कोई मिलैं, कोई हाथसे हाथ मिलावैं, किसीको मुसकाकर देखा, चाण्डालतकका हृदय शान्त कर सबको यथायोग्य वर दिया ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषिराज! जब श्रीकृष्णजी राजमार्गमें आये तब द्वारकाकी सब

नटनर्तकगंधर्वाः सूतमागधबंदिनः ॥ गायंति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥ २० ॥ भगवांस्तत्र बंधूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ॥ यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ २१ ॥ प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ॥ आश्वास्य चाऽऽश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥२२॥ स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ॥ आशीर्भिर्युज्यमानोन्यैर्बंदिभिश्चाविशत्पुरम् ॥ २३ ॥ राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ॥ हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥ २४ ॥ नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ॥ न वितृप्यंति हि दृशः श्रियो धामांगमच्युतम् ॥ २५ ॥ श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् ॥ बाहवो लोकपालानां सारंगाणां पदांबुजम् ॥ २६ ॥ सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ॥ पिशंगवासा वनमालया बभौ घना यथार्कोडुपचापवैद्युतैः ॥ २७ ॥

स्त्रियाँ उनका महाउत्सव देखनेको कोठोंपर जा बैठीं ॥२४॥ श्रीजीका धाम जिनका अंग ऐसे अच्युतको नित्य देखनेवाले द्वारकावासियोंकी दृष्टि तृप्त नहीं हुई ॥२५॥ लक्ष्मी जिनके हृदयमें निवास करै, जिनका मुख सब प्राणियोंकी दृष्टियोंकी सौंदर्यतामृतपानार्थ पात्रहै जिनके बाहु लोकपालोंका निवासस्थान हैं ॥२६॥ शुक्ल छत्र चमरकी शोभा निरालेही ढंगकीहै, मार्गमें पुष्पोंकी वृष्टि औरही रंग दिखा रहीहै, श्याम अंगपर पीतांबर वनमालाकी छबि औरही प्रकारकीथी, यह सब छबि मिलकर कैसी ज्ञात होतीथी, मानों सूर्य, तारागण, इन्द्रधनुष, बिजली, यह एक संग विराजमानहैं. शुक्लछत्रसे सूर्यकी उपमादी, पुष्पवृष्टिसे नक्षत्रोंकी, चन्द्रमासे मण्डलाकार चमरकी, धनुषसे वनमालाकी, बिजलीसे पीतांबरकी यह अद्भुतोपमा कहावेहैं ॥२७॥

राजभवनमें आनकर अपनी मातासे मिले फिर पिताके मंदिरमें जाकर पिताको दंडवत्कर शिरसे सातों देवकी आदि माताओंकी आनन्दित हो वन्दनाकरी ॥२८॥ उन्होंने पुत्रको गोदीमें बैठाया, स्नेहसे स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा, हर्षसे विह्वल होकर दहने नेत्रोंके जलसे सींचा, "पीछे हस्तिना पुरकी कुशल और महाभारतका वृत्तान्त और पाण्डवोंका विजय सब ब्योरेवार सुनाया,पाण्डवोंका विजय सुन वसुदेव देवकी प्रसन्न हुए परन्तु गान्धारीके पुत्रोंका अरु और और महारथियोंका मरण सुन शोक हुआ"॥२९॥सब कामसे निश्चिंत हो रनवासमें प्रवेश किया जहाँ सोलह सहस्र एकसौ आठ रानी छज्जोंपर बैठी देख रहीथीं ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर बहुत आनन्दहो जैसे नियमसे व्रती बैठीं थीं वैसेही बाँकेविहारीकी बाँकी छबि देख

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ॥ ववंदे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥ २८ ॥ ताः पुत्रमंकमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ॥ हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥ अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ॥ प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० ॥ पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ॥ उत्तस्थुरारात्सहसाऽऽसनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥ ३१ ॥ तमात्मजैर्दृष्टिभिरंतरात्मना दुरंतभावाः परिरेभिरे पतिम् ॥ निरुद्धमप्यास्रवदंबुनेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥ ३२ ॥ यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्यांघ्रियुगं नवंनवम् ॥ पदेपदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥ एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ॥ विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥

लज्जितनेत्र किये सोलहौ शृंगारकर उठधाईं "याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है, क्रीडा करना, मलके शिर धोना, समाजमें जाना, उत्सव देखना, हँसी करनी, परायेघर जाना, जिसका पति परदेशमें होय उस स्त्रीको यह छःकाम नहीं करना चाहिये" ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि ! पुत्रोंसे दृष्टिसे अंतःकरणसे, जिनका श्रीकृष्णमें अत्यन्तभाव है अपने पतिसे मिलीं, प्रेमकी विह्वलतासे लज्जित नेत्रोंका जल नहीं रुकसका, ऑसू बह निकले ॥ ३२ ॥ यद्यपि श्रीकृष्ण उनके पासहैं एकान्तमें रहतेहैं तौभी उनके दोनों चरणोंका नवीन २ संगम क्षण क्षणमें कौन भूलैगा जिनके धोरेसे चञ्चल लक्ष्मीभी नहीं जाती ॥ ३३ ॥ पृथ्वीपर भाररूप जिन राजाओंके जन्म जिनकी अक्षौहिणी सेनाका चारों ओर तेज फैलरहाथा

ऐसे राजाओंका परस्पर वैर कराकर वध करादिया और आप उपरामको प्राप्त हुये, जैसे बांसके वनमें आपसमें बांससे बांस घिसनेसे अग्नि उत्पन्नहो, वनको जलाकर आपही शान्त होजातीहै ॥ ३४ ॥ सो यह अपनी मायासे मनुष्यलीला करनेको अवतार धारण करतेहैं, स्त्रीरत्नसमूहमें स्थित भगवान् प्राकृत संसारी जीवोंकी नाईं रमण करने लगे ॥ ३५ ॥ जिन स्त्रियोंके गंभीर अभिप्राय, मनोहर वचन, सुन्दर लाज सहित हास्यसे ताडित महादेवजीने मोहित होकर अपना पिनाक धनुष त्यागन किया, ऐसी वह स्त्री श्रीकृष्णजीकी इन्द्रियोंको वश करनेको कपट भावसे समर्थ न हुईं ॥ ३६ ॥ उन श्रीकृष्णजीको यह प्राकृत लोग अपने सदृश, अपना साथी, अपना मित्र मनुष्यही मानैहैं, वह आदि पुरुष अविनाशी

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ॥ रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥ ३५ ॥ उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ॥ संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्यैंद्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥ ३६ ॥ तमयं मन्यते लोको ह्यसंगमपि संगिनम् ॥ आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥३७॥ एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ॥ न युज्यतेऽसदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥ ३८ ॥ तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चाऽनुव्रतं रहः ॥ अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे एकादशोऽध्यायः॥११॥ शौनक उवाच॥अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा॥उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाऽऽजीवितः पुनः॥१॥

श्रीकृष्णचंद्र किसीका संग नहीं करतेहैं, और जो उनको अज्ञानी व्यापारी विषयी मानै हैं सो मूर्ख हैं ॥ ३७ ॥ ईश्वरकी यही ईश्वरता है, कि मायामें स्थित होकर, असत् सुख दुःखादिक मायाके गुणोंसे लिप्त न होना. जैसे मायाश्रया बुद्धि मायाकी उपाधिमें लिप्त नहीं होती है ॥ ३८ ॥ वह मूर्ख स्त्रियां श्रीकृष्णके प्रभावको न जानकर स्त्रियोंके प्रेमी एकान्तविहारशील अपने पतिको मानतीथीं, जैसे अहंकारवृत्तियुक्त बुद्धि ईश्वरको स्वाधीन मानतीहै ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वारकाप्रवेशो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
दोहा–इस द्वादश अध्यायमें, प्रगटे कुरुकुलचन्द ॥ धर्मध्वज कलिमलदलन, पूरण आनँद कन्द ॥ १२ ॥ इतनी कथा सुन शौनक मुनि

बोले—हे सूतजी महाराज ! अश्वत्थामाके छोड़े ब्रह्मास्त्रसे जो उत्तराका गर्भ नष्ट होगयाथा, उसे फिर ईश्वरने बचादिया ॥ १ ॥ उसका आश्चर्ययुक्त जन्म, कर्म, राज्यस्थिति और किसप्रकार शरीर त्यागन किया ? सो कहो ॥ २ ॥ आप इसके कहने योग्य हैं. सो आप हम सुननेकी इच्छा करनेवाले श्रद्धालुओंको सुनाओ, जो कुछ शुकदेवजीने वर्णन कियाहै ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिकमुनि ! राजा युधिष्ठिर पिताके समान प्रजाको सुखदेते और राज्यका पालन करतेथे, सब कामकी चाहना त्याग श्रीकृष्णके चरणकमलकी सेवा करतेथे ॥ ४ ॥ सम्पत्ति यज्ञ, लोक, स्त्री, भाई, पृथ्वी, जम्बूद्वीपका राज्य, यश, स्वर्गतक पहुँचा ॥ ५ ॥ हे शौनकमुनि ! जिनका मन परमेश्वरमें लगरहाहै, उन्हें देवता

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ॥ निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥ २ ॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामि गदितुं यदि मन्यसे ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥३॥ सूत उवाच ॥ अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रंजयन्प्रजाः ॥ निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादाब्जसेवया ॥ ४ ॥ सम्पदः क्रतवो विप्रा महिषी भ्रातरो मही ॥ जंबूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ॥ ५ ॥ किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुंदमनसो द्विजाः ॥ अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥ ६ ॥ मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनंदन ॥ ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥ ७ ॥ अंगुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ॥ अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥ ८ ॥ श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकांचनकुंडलम् ॥ क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ॥९॥ परिभ्रमंतमुल्काभ्यां भ्रामयंतं गदां मुहुः ॥ अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ॥ विधमंतं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥ १० ॥

ओंके प्रिय कामादिकभी आनन्द नहीं देते. जैसे भूखोंको पुष्पमाला चन्दन इत्यादि सुख नहीं देते, ऐसेही राजा युधिष्ठिरको जानो ॥ ६ ॥ हे भृगुनन्दन ! जब माताके गर्भमेंभी अस्त्रके तेजसे उत्तरासुत तपितहुए, तब एक पुरुष दृष्टि आया ॥ ७ ॥ अंगुष्ठमात्र निर्मलकान्ति, सुवर्णसमान मस्तक, अति सुन्दर श्यामवर्ण बिजली सदृश पीताम्बर पहरे श्रीअच्युत भगवान्को देखा॥८॥शोभायमान लंबी लंबी चार भुजा, मकराकृतिकुण्डल, लाल लाल नेत्र, गदा हाथमें लिये चारों ओर घूमते फिरैहैं ॥ ९ ॥ एक ओर उल्कासी घूमती दीखै, अत्यन्त श्रेष्ठ भक्तोंकी रक्षामें परायण ऐसी

कौमोदकी गदाको वारंवार घुमा रहेहैं अपनी गदासे ब्रह्मास्त्रके तेजका नाश करदिया, जैसे सूर्यके तेजको कुहर नाश करेहै, चारोंओरको नेत्र खोलकर देखा कि यह मेरे निकट कौन फिरैहै ॥१०॥ धर्मरक्षक देह विभु भगवान् उस ब्रह्मास्त्रके तेजको दूरकर, दशमासके वालकके देखते देखते तहां अन्तर्द्धान होगये ॥ ११ ॥ तब सब गुण सम्पन्न अनुकूल ग्रहोंके उदयके समय, वंशधारी पाण्डुके वंशमें जन्म लिया मानो फिर पाण्डुराजा संसारमें जन्मे ॥१२॥ प्रसन्नमन राजायुधिष्ठिर धौम्य कृपादिक ब्राह्मणोंको बुलाकर बालकके जन्मसमयके सर्व कर्म कराये, स्वस्तिवाचन मंगलाचरण कराये ॥ १३ ॥ जबतक नालच्छेदन नहीं होता तबलों सूतक नहीं लगता, नालकटनेके पीछे सूतक लगेहै, सो सुवर्ण, गो, धरती, ग्राम, हाथी,

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः ॥ मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ ११ ॥ ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूल ग्रहोदये ॥ जज्ञे वंशधरः पांडोर्भूयः पांडुरिवौजसा ॥ १२ ॥ तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ॥ जातकं कारयामास वाचयित्वा च मंगलम् ॥ १३ ॥ हिरण्यं गां महीं ग्रामान्हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ॥ प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित ॥ १४ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयानतम् ॥ एष ह्यस्मिन्प्रजातंतौ कुरूणां पौरवर्षभ॥१५॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ॥ रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १६ ॥ तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ॥ भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अप्येष वंश्यान्रा जर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः ॥ अनुवर्तिता सुयशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥ १८ ॥

घोड़े, श्रेष्ठ समय जानकर याचकोंको देनेलगे, सुन्दर सुन्दर भोजन ब्राह्मणोको जिमाये, पुत्रके उत्पन्न होनेके समय तीर्थमें दान करनेके समान दान किया ॥ १४ ॥ उससमय प्रसन्नब्राह्मण नम्रीभूत राजा युधिष्ठिरसे बोले हे पुरुकुलमुकुटमणि ! यह पुत्रभी प्रजापालनमें आपकी समान होगा ॥ १५ ॥ कोई राजा इसके सन्मुख स्थित न होगा, यह बालक ऐसे समयमें और शुद्ध दिनमें उत्पन्न हुआ है, तुम्हारे सबके ऊपर अनुग्रहके लिये सर्वव्यापक, सबके उत्पत्तिकर्ता, प्रभु विष्णुभगवान्ने इसकी रक्षा करी है ॥ १६ ॥ इसलिये इसका नाम लोकमें विष्णुरात होगा, बडा यशस्वी अरु महाभागवत होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥ श्रीयुधिष्ठिरजी बोले कि हे सत्तमो! पुण्यश्लोक महात्मा राजा ऋषियोंके वंशके अनुसार

साधुवादसे उनका अनुवर्ती होगा कि नहीं होगा सो कहो ?॥१८॥ ब्राह्मण बोले, कि हे पार्थ! यह पुरुष प्रजारक्षक साक्षात् इक्ष्वाकुकी सदृश, ब्रह्मण्य सत्यवादी दाशरथि रामचंद्रके समान होगा ॥ १९ ॥ यह बड़ा दानी शरणागतका प्रतिपालक राजा शिवि उशीनरदेशवासीकी नाईं होगा, उशीनरदेशवासी राजाशिविने अपना मांस सिकरेको देकर शरणागत कपोतकी रक्षाकरी।अपनोंका यश संसारमें विस्तारित करैगा, भरत समान याज्ञिकोंमें यश

ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पार्थ प्रजाऽविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः॥ ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा ॥१९॥ एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः॥ यशो वितनिता स्वानां दौष्यंतिरिव यज्वनाम् ॥२०॥ धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चाऽर्जुनयोर्द्वयोः ॥ हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥ २१ ॥ मृगेंद्र इव विक्रांतो निषेव्यो हिमवानिव ॥ तितिक्षुर्वसुधेवाऽसौ सहिष्णुः पितराविव॥२२॥ पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ॥ आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥२३॥

विस्तारी होगा ॥२०॥ धनुषधारियोंमें अग्रणी सहस्रार्जुन अर्जुनकी नाई, अग्निके समान दुर्द्धर्ष, सागरके समान गम्भीर होगा ॥२१॥ सिंहकी समान विकराल, धैर्यमें हिमाचलकी सदृश, वसुधाकी नाईं सहनशील, अरु माता पिताकी नाईं सहनेवाला होगा ॥ २२ ॥ * साम्यभावमें ब्रह्माके समान

* शका–परीक्षितका जन्महुआ तब परीक्षित कैसा होगा, एसी भविष्य कालकी बात युधिष्ठिरने ज्योतिषी ब्राह्मणोंसे बूझी, तब ज्योतिषी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर ! यह बालक बडा बुद्धिमान् होगा और सब ससारको ब्रह्माके समान दृष्टिसे देखेगा, दानदेनेमें शिव महादेवके समान उदारचित्त होगा रमापति विष्णु भगवानके समान सब प्राणियोंका स्वामी होगा, ससारके उत्पत्ति, पालन, सहारके करनेवाले जो तीन देवता हैं, उनकी समताकी उपमा कभी भी किसीने नहीं दी, ब्राह्मणोने तीनों देवताओकी उपमा परीक्षितको दी, परन्तु ऐसी उपमा ससारमें आजतक किसीको भी नही दीगई, और ऐसी उपमा हमने कभी सुनी भी नहीं फिर ऐसी उपमा क्योंदी ?

उत्तर–"पितामहसमस्साम्ये" इस श्लोकमें ब्राह्मणोंने ब्रह्माको पितामह नहीं कहाथा, शिवजीको गिरीश नहीं कहाथा, विष्णुको रमाश्रय नहीं कहाथा पाच पाण्डव धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव इनका बालक जो परीक्षित अपने दादाके समान ससारको एक दृष्टिसे देखेगा ऐसा मुनियोंनें कहाहै, ब्रह्माके समान नहीं कहाहै जैसा भूमिमें सुन्दरकर्म करनेवाला गिरीश है, हिमवानपर्वतकी नाईं चलायमान नहीं होता जैसे दूसरेको वर देनेमें बडा उदारहै, तैसे परीक्षितको भी गिरीशकहा, हिमवानके समान देनेमें उदार होवेगा, रमानाम प्रकाशकाहै, उस प्रकाशका स्वामी सूर्यहै, ईसीलिये सब प्राणियोंका स्वामी सूर्यहै, सूर्य विना प्राणीका निर्वाह नहीं होता, मुनियोंने कहाथा कि जैसे सूर्य उदय होकर ससारको आनन्द देताहै, वैसेही परीक्षितभी राजा होकर अपनी प्रजाको आनन्द देगा, ऐसा मुनियोंने कहाथा कुछ ईश्वरके तुल्य परीक्षितको नहीं कहाथा ॥

होगा, शीघ्र प्रसन्न होनेमें महादेवकी सदृश, समस्त जीवोंके आश्रय भगवानकी नाईं रहैगा ॥ २३ ॥ सब सद्गुणोंका माहात्म्य यह कृष्णभक्त होगा, उदारतामें रंतिदेव और धर्मात्माओंमें ययातिके समान होगा ॥ २४ ॥ धैर्यमें बलिसमान, समतामें श्रीकृष्णचन्द्रजीकी नाईं, प्रह्लादकी नाईं सब सत्पदार्थग्राही होगा और अश्वमेध करके वृद्धजनोंकी उपासना करैगा ॥ २५ ॥ राजर्षियोंका उत्पन्न कर्त्ता, पाखण्डियोंका शिक्षक, भूमिके व धर्मके कारणसे यह कलियुगको पकडैगा ॥२६॥ ब्राह्मणके पुत्रके शापसे तक्षक सर्पके काटनेसे मृत्यु होगी, सबका संग त्यागकर श्रीमद्भागवत सुन, श्रीवैकुण्ठनाथके वैकुण्ठको प्राप्त होगा ॥ २७ ॥ आत्माकी यथार्थता जानकर व्यासपुत्र शुकदेवसे ज्ञानसुन, श्रीगंगाजीमें देहत्याग अभयपदवीको

सर्वसद्गुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः ॥ रंतिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥२४॥ धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः ॥ आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥ २५ ॥ राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् ॥ निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥ २६ ॥ तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ॥ प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसंगः पदं हरेः ॥ २७ ॥ जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ ॥ हित्वेदं नृप गंगायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ॥ २८ ॥ इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः ॥ लब्धोपचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान्गृहान् ॥ २९ ॥ स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ॥ गर्भदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ॥ ३० ॥ स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः ॥ आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥ ३१ ॥ यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया ॥ राजाऽलब्धधनो दध्याव न्यत्र करदंडयोः ॥ ३२ ॥ तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः ॥ धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ॥ ३३ ॥

प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ ज्योतिषी ब्राह्मण पण्डित लोग यह वचन राजासे कहकर पूजा दक्षिणा लेकर अपने अपने स्थानोंको चलेगये ॥ २९ ॥ और संसारमें नाम परीक्षित विख्यात हुआ, क्योंकि गर्भमें श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया, और उनहीके ध्यानमें रहकर सब जनोंकी परीक्षा कर ० ॥ सो राजकुमार दिन दिन ऐसे बढने लगे जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा बढता है, उसी समान पूर्ण हुए ॥ ३१ ॥ सजातियोंके द्रोह छासे अश्वमेधयज्ञ करनेके लिये, राजाको कर दण्डके विना धन प्राप्तहुआ ॥ ३२ ॥ यह प्रयोजन जानकर भगवान्के भेजे, सब भाई

उत्तरकी दिशासे बहुत धन लाये ॥ ३३ ॥ उस धनसे सब सामग्री उपस्थितकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरने तीन अश्वमेधयज्ञ किये, जातिके द्रोहसे डरकर यज्ञोंसे भगवान् वासुदेवका पूजन किया ॥ ३४ ॥ राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाय ब्राह्मणोंसे यज्ञकराय अपने सुहृद् जनोंके प्यारकी इच्छासे कुछ मास वहां निवास किया ॥ ३५ ॥ इतनी कथा सुनाय सूतजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! कुछ दिन पीछे राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा ले, द्रौपदीसे बूझ, भाई बंधु मित्रोंसे बिदा हो, नौकर चाकर यादवोंसमेत श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द द्वारकापुरीको चलेगये ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे परीक्षिज्जन्मोत्सवो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा—त्रयोदशम अध्यायमें, बिदुरकथाउ

तेन संभृतसंभारो लब्धकामो युधिष्ठिरः ॥ वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिम् ॥ ३४ ॥ आहूतो भगवान्राज्ञा याज
यित्वा द्विजैर्नृप ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृदः प्रियकाम्यया ॥ ३५ ॥ ततो राज्ञाऽभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बंधुभिः ॥
ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भा० प्रथम० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ विदु
रस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ॥ ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरं तयाऽवाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥ यावतः कृतवान्प्रश्ना
न्क्षत्ता कौषारवाग्रतः ॥ जातैकभक्तिर्गोविंदे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥ २ ॥ तं बंधुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः ॥ धृतराष्ट्रो
युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥ ३ ॥ गांधारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी ॥ अन्याश्च जामयः पांडोर्ज्ञातयः
ससुताः स्त्रियः ॥ ४ ॥ प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ॥ अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वंगाभिवादनैः ॥ ५ ॥

परान्त । धृतराष्ट्रके मोक्षको, वरणों सब वृत्तान्त ॥ १३ ॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! विदुरजी तीर्थयात्रामें मैत्रेयजीसे श्रीकृष्णचन्द्रकी गति सुनके हस्तिनापुरमें आये, अरु जिस बातके जाननेकी इच्छा थी सो सब पूरी हुई ॥ १ ॥ और विदुरजीने मैत्रेयजीके आगे जितने प्रश्न करे उनमें तीन चार प्रश्नसेही विदुरजीकी श्रीगोविन्दमें पूर्ण भक्ति हुई, सो उन प्रश्नोंसे उपराम हुआ ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! अपने भाई विदुरजीको आता देख, सब भाइयोंसमेत धर्मपुत्र, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य, कुन्ती ॥ ३ ॥ गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी (द्रोणाचार्यकी स्त्री), जातिकी स्त्रियें, पुत्रसहित और स्त्रियें ॥ ४ ॥ अत्यन्त हर्षसे जैसे देहमें प्राण आवैं ऐसे आयेको सब बड़े आदर सत्कारसे मिले ॥ ५ ॥

विरहकी उत्कण्ठासे प्रेमके विवश होकर नेत्रोंसे जलधारा (प्रवाह) बहने लगी युधिष्ठिरने हाथजोड़कर पूजनकर आसनपर बैठाला ॥६॥ जब भोजनसे निश्चिंत हो आसनपर विश्राम किया, उस समय नम्रतासे प्रणामकर उनके चरण दाबनेलगे, और यह बोले कि आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया जो इस समय आनकर दर्शन दिया ॥ ७ ॥ हम पांचों भाई आपके पक्षरूपी छायामें पले, आप हमको कभी स्मरण करतेथे वा नहीं, जैसे पक्षी अपने पुत्रोंको अतिस्नेहसे पंखोंकी छायामें बढावैहैं, उसीरीतिसे आपने हमको बढ़ाया अरु हमारी माता सहित सब विपत्तियोंसे बचाया, विषसे, अग्निसे और अनेकठौर विघ्नोंसे रक्षा करी "जिस समय दुर्योधनादिक कौरवोंने हमको लाहके कोटमें बन्द करके यह विचार किया कि इनको भस्मकर डालें उस समय आपने कृपाकरके पहिलेही सुरंग खुदवाकर हमको बचाया, हम कहांलों आपकी बड़ाई करें आप तो सदा हमारी सहाय

मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कंठ्यकातराः ॥ राजा तमर्हयांचक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥ ६ ॥ तं भुक्तवंतमासीनं विश्रांतं सुखमासने ॥ प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ॥ विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥ ८ ॥ कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् ॥ तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥ ९ ॥ भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो ॥ तीर्थीकुर्वंति तीर्थानि स्वांतःस्थेन गदाभृता ॥ १० ॥ अपि नः सुहृदस्तात बांधवाः कृष्णदेवताः ॥ दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥ ११ ॥

करते रहे" ॥ ८ ॥ इस क्षितिमण्डलमें आपने कौन वृत्तिसे शरीरका निर्वाह किया, इस भारतवर्षमें पृथ्वीपर जितने तीर्थक्षेत्र मुख्य हैं, सो सब आपने किये ॥ ९ ॥ आपसरीखे महात्माओंकी तीर्थयात्रा तीर्थोंपर कृपाकरनेके लिये है, कुछ अपने अर्थ नहीं। आप सरीखे भागवत तो आपही तीर्थरूप हैं, आपके दर्शनसे तीर्थ भी पवित्र होजातेहैं । अपने अंतःकरणके निवासी गदाधारी भगवान्से, मलिन जनोंके कुसंगसे तीर्थभी मलिन होजाते हैं, उनको फिर सत्कर्मअनुष्ठानी, वेदान्ती, ज्ञानी, भगवद्भक्त, पवित्र, सत्त्वादि गुणयुक्त ब्राह्मण पवित्र करै हैं, भगवद्भक्तोंके सत्संगसे तीर्थभी पवित्र होजाते हैं ॥ १० ॥ हे पितः ! आपने बहुत तीर्थ किये, परन्तु द्वारकापुरीमेंभी गयेथे वा नहीं क्योंकि हमारे सुहृद बान्धव श्रीकृष्णादिक यादवोंको आप भली भांति जानते हैं. हमको जबसे राज्यदेकर गये हैं तबसे उनका कुछ समाचार नहीं मिला, न जाने वह अपनी

पुरीमें कैसेहैं कैसे नहीं ? सो कृपाकरके कहो ॥ ११ ॥ धर्मराजने जब यह बूझा तब विदुरजीने सब तीर्थोंका वृत्तान्त कहा जैसा कुछ देखाथा वैसा परन्तु यदुकुलके क्षय होनेका वर्णन नहीं किया ॥ १२ ॥ यह भलीभाँति निश्चय है कि जो बात अप्रिय है सहने योग्य नहीं है वह मनुष्योंको आपही प्रगट होजातीहै. दयालु विदुरजीने अपने सामने उनका दुःखी देखना उचित न जानकर नहीं कहा ॥ १३ ॥ "जब रनवासमें स्त्रियोंने विदुरजीके आनेका वृत्तान्त सुना तब द्रौपदी आदिने अपने पास बुलाया अरु परमेश्वरका परम भक्त जानकर विदुरजीको दंडवत किया और उनके आनेसे बहुत प्रसन्न हुई. फिर विदुरजी धृतराष्ट्रके भवनमें जाय उन्हें और गान्धारीको दण्डवत करी तब धृतराष्ट्रने उन्हें उठाय हृदयसे लगाय नेत्रोंमें जल भरकर कहा—हे भ्रातः ! तुम्हारे जानेके पीछे मेरे ऊपर बड़ा कष्टपडा अरु हमारे सब पुत्र मारे गये, राज्य नष्ट होगया, यह बात सुनकर विदुरजीने

इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् ॥ यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥ १२ ॥ नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् ॥ नावेदयत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥ १३ ॥ कंचित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥ १४ ॥

कहा हे भ्रातः ! हरि इच्छा बलवान् है उसकी गतिसे किसीकी पार नहीं बसाती, परमेश्वरकी इच्छा इसी प्रकारथी. उन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण संसारमें अवतार लियाथा. देवगति किसीसे जानी नहीं जाती अब धैर्य धारण करनेका समय है यह तो कहो कि राजा युधिष्ठिर तुम्हारा आदर सत्कार किसप्रकार करतेहैं, धृतराष्ट्रने उत्तर दिया कि, युधिष्ठिरतो हमसे बड़ास्नेह रखताहै मुझको अपने पिता और गान्धारीको महतारीकी समान मानताहै और सब भाईभी हमसे अधिक रीति प्रीति रखतेहैं परन्तु भीमसेन, युधिष्ठिरके पीछे हमको दुर्वाक्य कहताहै, यह दुःख नहीं देखाजाता, धृतराष्ट्रकी बातें सुन कुछ काल विदुरजीने वहां वास किया, और देवताओंकी समान सुखीहो, बडे भ्राताके कल्याणके कारण सबसे रीतिप्रीति करते रहे ॥ १४ ॥ ❋

* इसकी कथा इसप्रकारहै—किसी देशमें चोर किसीका धन चुराकर भागे, और राजाके दूत उनके पीछे दौडे, वह चोर भागते भागते वहाँ पहुँचे जहाँ माडव्य ऋषि तप कर रहेथे, उनके निकटही चोर जाकर छिपरहे, राजाके दूतोंने उनके समीप जानकर ऋषि समेत चोरोंको पकडकर राजाके पास लेगये, राजाने आज्ञा दी कि सबको शूली देदो, राजाकी आज्ञासे चोरोंको शूलीपर चढाना आरम्भ किया, माडव्य ऋषिकी ओरको जो देखा तो उनको ऋषिजान शूलीसे उतारलिया अरु दण्डवत् प्रणामकर अपना अपराध क्षमा करा उनको प्रसन्नकिया, पीछे माडव्यऋषि धर्मराजके निकट जाकर बडे क्रोधसे बोला कि, अरे यम तैंने मुझे किस अपराधसे शूलीपर चढाया ? तब यमराज बोले कि महाराज ! आपने बालकपनमें टीडीको कुशाके अग्रभागसे छेदकर खेलेथे, उसके बदलेमें शूलीपर आप चढाये गये, यमराजका यह वचन सुन माडव्य ऋषिने यमराजको शापदिया कि मैंने बाल अवस्थामें अज्ञानसे यह काम किया उसका तैंने मुझे ऐसा भारी दण्ड दिया, अब तू शूद्र हो, यह वही विदुरजी हैं ।

यमराज मांडव्यके शापसे शूद्रयोनिमें विदुर हुएथे, तबतक यमराजके स्थानमें अर्यमा काम करते रहे ॥१५॥ युधिष्ठिर राज्यपाय पोतेको कुलोद्धारक देख लोकपालसमान भ्राताओं सहित परम लक्ष्मीसे आनन्दित हुए ॥ १६ ॥ गृहके व्यापारमें ऐसे आसक्त होगये उन्हें विदित न हुवा कि परम दुस्तर कालका समय आनपहुँचा ॥१७॥ यह अभिप्राय जानकर विदुरजी धृतराष्ट्रसे बोले हे राजन्! शीघ्र निकलो यह भयंकर भय आताहै, सो देखो ॥ १८ ॥ हे प्रभो! जिसकालके लौटानेका कोई उपाय नहीं है जो कहींसे कभीभी नहीं जासकैहै सो यह भगवान् काल हम सबको ऐसेही आवैहै ॥ १९ ॥ जिस कालसे ग्रसा हुवा जीव अधिक प्रियप्राणोंसे तत्काल वियोग पाताहै, और धन पुत्रादिककी तो बातही क्याहै ॥ २० ॥ जब पिता, भ्राता, सुहृद,

अबिभ्रदर्यमा दंडं यथावदघकारिषु ॥ यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम् ॥ भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥ १६ ॥ एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ॥ अत्यक्रामद विज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥ १७ ॥ विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ॥ राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥ १८ ॥ प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ॥ स एव भगवान्कालः सर्वेषां नः समागतः ॥ १९ ॥ येन चैवा ऽभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि ॥ जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥ २० ॥ पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ॥ आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥ २१ ॥ अहो महीयसी जंतोर्जीविताशा यया भवान् ॥ भीमे नावर्जितं पिंडमादत्ते गृहपालवत् ॥ २२ ॥ अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ॥ हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥ २३ ॥ तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः ॥ परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥ २४ ॥

पुत्र सब तुम्हारे मारेगये, सब आयु तुम्हारी हो चुकी, देहको बुढापेने घेरलिया तौभी पराये घरमें रहतेहो ॥ २१ ॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि, इस जीवको जीवनकी बड़ी आशा लगरहीहै, सो तुमकोभी है, भीमसेनके दियेहुए टुकड़े श्वानकी नाईं तुम खाओहो ॥ २२ ॥ तुमनेभी तो अपनी चल तीमें उनके साथ कुछ कसर नहीं करी, लाहेके कोटमें बन्दकरके आग लगाई, लड्डुओंमें विषदिया, उनकी स्त्री द्रौपदीकी सभामें अवज्ञा करी, पृथ्वी उनकी छीनी, धन धाम उनका लिया, अब उनका दिया अन्न खाकर शरीर पुष्ट करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं निकलेगा ॥ २३ ॥ कृपणपनसे जीनेकी

इच्छा अच्छी नही, और जो इच्छाभी है तौभी यह तुम्हारा जराजीर्ण शरीर सब प्रकार क्षीण होगयाहै जैसे पुराने वस्त्र त्यागने योग्य होतेहैं ऐसी तुम्हारी देहकी गति है सो अब धैर्य धरो ॥ २४ ॥ विरक्त, सब बन्धनोंसे मुक्तहो, इस देहको त्यागे सो अज्ञातगति स्वार्थरहित धीर कहाताहै ॥ ॥ २५ ॥ जो कोई अपने आप अथवा पराये उपदेशसे आत्माको पहिचानकर हृदयमें परमेश्वरके चरणारविन्दोको धारण कर घर त्याग संन्यास

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबंधनः ॥ अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥ २५ ॥ यः स्वकात्परतो वेह जात निर्वेद आत्मवान् ॥ हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥ २६ ॥ अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ॥ इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥ २७ ॥ एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितो ह्याजमीढः ॥ छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥ २८ ॥

धारण करतेहैं वही मनुष्य मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २६ ॥ अपने सम्बन्धियोसे छिपकर तुम उत्तराखण्डको चलो, इससे पीछे पुरुषोंका गुणनाशक बहुत बुरा समय आवैगा ❀ ॥ २७ ॥ आजमीढवंशी जन्मान्धको इसभाँति विदुरजीने सब समझाया तब तो धृतराष्ट्र अपना

---

* **शका**– धृतराष्ट्र और पाण्डुका छोटा भाई विदुर कैसे था, सब शास्त्रोंमें और भारत इत्यादि इतिहासोंमें ऐसा लिखाहै कि अपने जन्म होनेके पीछे अपनी माताके उदरमें जो बालक उत्पन्न होताहै, उसको शास्त्रमें और लोकमे छोटा भाई कहते है, दूसरी माताका जन्मा बालक लोकमें और शास्त्रमें छोटा भाई नहीं कहाता, धृतराष्ट्र और पाण्डु यह क्षत्रियाणीके पुत्र, और विदुर शूद्रीका पुत्र, फिर धृतराष्ट्रका छोटा भाई विदुर क्यों कर हुवा ?

उत्तर–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारो वर्णोके विवाह होनेकी विधि शास्त्रमें अथवा लोकमें कही है वही विधि श्रेष्ठ है, और प्रथम है और शास्त्रसे और लोकसे जो विवाहकी विधिहै, उसको अनु कहतेहैं, शास्त्रमें उस अनुकी विधि माने और अन्यायसे जो जन्मले उसको मुनीश्वरलोग अनुज कहते हैं इसीलिये विदुर लोगोंका नाम अनुज है । विदुर वर्णसंकरकोभी कहते हैं, अथवा अपने जन्मके पीछे अपनी मातामें जो जन्म लेताहै, उसकोभी शास्त्रमें और लोकमें अनुज कहते हैं, शब्दके अर्थ अनेक प्रकारके हैं, परन्तु जो अर्थ जिस स्थानमें जैसा घट जाय अथवा अयोग्य न जानपडे वही अर्थ उस पदका लगाना चाहिये, जैसे पय पानीको कहते हैं, और पय दूधकोभी कहते हैं, गो धेनुका नामभी है, गो पृथ्वीका नामभी है, गो जलका नामभी है, गो इन्द्रियोका नामभी है, गो वाक्स्थानका नामभीहै, देखिये गो शब्दके कितने अर्थ हुये इसलिये, "विदुरेणानुजेन" ऐसा वचन व्यासजीने कहा, धृतराष्ट्रको छोटा भाई नहीं कहा ॥

८

चित्त दृढ कर कुटुम्बके लोगोंसे स्नेह त्याग विदुरजीने जो मुक्तमार्ग बताया उसपर आरूढ होकर वहांसे चले ॥ २८ ॥ और पतिके जानेका समाचार सुन, सुबलदुहिता, पतिव्रता, साध्वी गान्धारी भी उनके संग चलनेको उपस्थित हुई संन्यस्त दण्डले अतिहर्षसे हिमालयको गये, मनस्वी शूरोंको जैसे युद्धमें सुन्दर प्रहार प्यारे लगै हैं तैसे जानो ॥ २९ ॥ राजा युधिष्ठिर सन्ध्यावन्दनसे निश्चितहो, अग्निहोत्रकर, तिल, गौ, भूमि, सुवर्ण दानदे, ब्राह्मणोंको नमस्कारकर माता पिताकी वन्दना करनेके लिये उनके मन्दिरमें गये, वहां विदुर, धृतराष्ट्र, गान्धारीको न देखा ॥ ३० ॥ उद्विग्न मनसे वहां बैठगये और संजयसे बूझा कि, हे संजय ! हमारे चाचा वृद्ध नेत्रहीन सो कहांचले गये ॥

पतिं प्रयांतं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ॥ हिमालयं न्यस्तदंडप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः ॥२९॥
अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ॥ गृहं प्रविष्टो गुरुवंदनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च
॥ ३० ॥ तत्र संजयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः ॥ गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥ अंबा च हतपुत्राऽऽ
र्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृद् ॥ ३१ ॥ अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबंधुः सभार्यया ॥ आशंसमानः शमलं गंगायां दुःखितो
ऽपतत् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ॥ अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥ ३३ ॥ सूत
उवाच ॥ कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः ॥ आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥ ३४ ॥ विमृज्याऽ
श्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ॥ अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥ ३५ ॥

पुत्रोंके शोकसे महाव्याकुल हमारी चाची भी नहीं दिखाई देती-जो आपको विदितहो तौ कहो क्योंकि व्यासजी महाराजकी कृपासे तुम सब जानते हो ॥ ३१ ॥ मुझ बुद्धिहीनमें अपराध विचार बन्धुओंके मरनेसे दुःखी होकर स्त्रीसहित गंगामें तौ नहीं डूबमरे ॥ ३२ ॥ जब हमारे पिता परमधामको चलेगये तो हम सबको बालक जानकर अनेक कष्टोंसे हमारी रक्षा करी अरु पाला वह हमारी चाची चाचा यहांसे कहां चलेगये॥३३॥सूतजी बोले, कि हे शौनक मुनि ! संजय अपने ईश्वर युधिष्ठिरको महादुःखी देख अतिपीड़ित हुआ और मुखसे कुछ नहीं कहसका ॥३४ ॥ दोनों हाथोंसे आंसू

पोंछ बुद्धिको सावधानकर मनको धैर्यदे प्रभुके चरणोंका स्मरण करते अजातशत्रुसे बोले और प्रभुके चरणोंका स्मरण किया ॥ ३५ ॥ संजयबोले, कि हे कुरुनन्दन ! तुम्हारे पिताके समाचार,मैं कुछ नहीं जानता. और गान्धारी तुम्हारी चाचीके जानेकी भी मुझको कुछ सुधि नहीं. मैं इन महात्माओंसे वंचित हुआ हूँ ॥ ३६ ॥ उसी समय कहींसे घूमतेघामते नारदजी भी तुम्बुरु गन्धर्वको संगलिये आगये, उनको देख भाइयों समेत उठ पूजा सत्कार प्रणामकर बोले ॥ ३७ ॥ कि हे भगवन् ! हमारे चाचा चाची न जानिये कहां चले गये, पुत्रोंके निधन होनेसे महादुःखी हो, तपस्विनी गांधारी कहाँगई ॥ ३८ ॥ अपार शोकसागरमें डूबेहुएको धैर्यरूपी केवट बनकर नारदजी आप आन पहुँचे. "हे अज्ञाननाशक ! महाबु

संजय उवाच ॥ नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनंदन ॥ गांधार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥३६॥ अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुंबुरुः ॥ प्रत्युत्थायाभिवाद्याऽऽह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥ ३७॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन्क गतावितः ॥ अंबा वा हतपुत्राऽऽर्ता क्व गता च तपस्विनी ॥ ३८॥ कर्णधार इवापारे भगवान्पारदर्शकः ॥ अथाबभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ ३९ ॥ मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥ लोकाः सपाला यस्येमे वहंति बलिमीशितुः ॥ ४० ॥ स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥ यथा गावो नसि प्रोतास्तंत्यां बद्धाः स्वदामभिः ॥ वाक्तंत्यां नामभिर्बद्धा वहंति बलिमीशितुः ॥ ४१ ॥ यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ॥ इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥ ४२ ॥

द्धिमान्, सर्वज्ञानी, विघ्नहर्ता, सबकी विपत्तिमें आनकर सहायक होतेहो, जो उनको कहीं सिंह व्याघ्रने खालिया, अथवा कहीं कुयेंमें डूबकर मरगये तो मेरी बड़ी दुर्नामता होगी, किसीके सम्मुख मुख दिखानेको भी न रहूंगा आप दिव्यदृष्टि हैं, दया करके बतादीजे हम उनकी विनतीकर उनको यहां लौटार लावेंगे क्योंकि भोजन छाजनमें अत्यन्त दुःखी होंगे" युधिष्ठिरके वचन सुनकर, मुनिसत्तम भगवान् नारदजी बोले कि हे राजन् ! शोक संताप मत करो. यह सब संसार ईश्वरके वशमें है ॥ ॥३९॥ ४० ॥ जो सबका ईश्वर है उसको अपने पालकसहित सब लोग भेटते हैं वोही परमात्मा सब जीवोंका संयोग वियोग करे हैं । जैसे बलवान् बैल नाथके वशमें होकर अपने स्वामीका सब कार्यकर बलिदेता है, ऐसे यह करना यह

न करना ऐसी वेदकी वाणीरूप डोरेमें वर्णाश्रम धर्मरूप नाथसे बँधे सबजीव परमेश्वरको बलि देते हैं जैसे खेलनेवालेकी इच्छासे खेलकी सब साम
ग्रियोंका संयोग वियोग हो जाता है,इसी प्रकार ईश्वरकी इच्छासे सब जीवोंका संयोग वियोग समझना चाहिये॥४१॥४२॥जो लोकको ध्रुव मानो,अथवा
अध्रुव मानो वा दोनोंको मत मानो,मोहसे, स्नेहसे,सब प्रकारसे, शोक करना नहीं चाहिये ॥४३॥ हे युधिष्ठिर ! यह जो अज्ञानपनकी तुम्हारी व्याकु
लता है इसको त्यागो, क्योकि तुम कहो हो, कि अज्ञान, अनाथ, कृपण,अन्धे, मुझ विन वनमें कैसे रहेंगे और उनके खाने पीनेकी सुधि कौन लेगा
यह शोच करना तुम्हारा सब वृथाहै॥४४॥कालकर्मगुण इनके आधीन यह पञ्चतत्त्वका बना हुआ देह है,सो यह किसकी रक्षा करसक्ता है. जैसे अजगर

यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ॥ सर्वथा हि न शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥ ४३ ॥ तस्माज्जह्यंग
वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ॥ कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरन्वनमाश्रिताः ॥ ४४ ॥ कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पांचभौ
तिकः ॥ कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥ ४५ ॥ अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ॥ फल्गूनि
तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥ ४६ ॥ तदिदं भगवान्राजन्नेक आत्माऽऽत्मनां स्वदृक् ॥ अंतरोऽनंतरो भाति
पश्य तं माययोरुधा ॥ ४७ ॥ सोयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः ॥ कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषाम्
॥ ४८ ॥ निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ॥ तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥ ४९ ॥ धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा
गांधार्या च स्वभार्यया ॥ दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥ ५० ॥

सर्प ग्रसित जीव औरको कैसे बचा सकेगा॥४५॥चार पगवाले पशुआदि तृणादिकको खाते हैं हाथ जिनके हैं वह जीव औरभी सूक्ष्म वस्तुका भक्षण करे
हैं, ऐसे ही सब जीवमात्र जीवोंका जीव बचावे हैं परन्तु सब कालग्रसित हैं॥४६॥हे राजन् ! सर्वद्रष्टा एक सब आत्माओंमें एक भीतर बाहर जामे नही
मायासे बहुत दीखैहैं, सजातीय,विजातीय, स्वगतभेद शून्य, यह भगवान् प्रकाश करे हैं ॥४७ ॥ हे महाराज ! सो यह भगवान् भूतभावन कालरूपने
सुरद्रोहियोंके मारणके कारण पृथ्वीपर मनुज अवतार धारणकिया है ॥ ४८ ॥ देवताओंका तो सब कार्य करचुके हैं केवल यदुकुलकी और
बाट देखरहे हैं, तबलों तुम भी यहां रहो जबलों ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यहां रहें, पीछे तुमभी चलेजाना ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! धृतराष्ट्र,

विदुर सहित गान्धारीको लिये हिमाचलकी दक्षिण ओर ऋषियोंके आश्रममें गयेहैं ॥ ५० ॥ जहां गंगाजी सात ओर बहकर, आप सात रूप हुईहैं, सातों ऋषियोंकी प्रीतिके अर्थ सप्तस्रोत ऐसे विख्यातहैं ॥ ५१ ॥ वहां सदा स्नानकर यथाविधि अग्निहोत्रकर. वायुभक्षणके आश्रय रहकर अति शान्त मनसे परमात्माके चरणोंमें चित्त लगा, सब कुटुम्बसे स्नेह तज वहां वास करेंगे ॥ ५२ ॥ आसन जीत श्वास जीत इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके हरिभावनासे दूर होकर राजस, तामस, सात्त्विक सब मल जिनके भस्म होगये ॥ ५३ ॥ विशेष ज्ञानकी व्यापक जिनकी देह, जीवान्तर्यामी, सर्वाधार, बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें जीवात्माका संयोगकर तद्रूप होकर परमात्मामें लीन होंगे, जैसे घट फूटनेसे घटाकाश महाकाशमें

स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ॥ सप्तानां प्रीतये नाम्ना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥ ५१ ॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ॥ अब्भक्ष उपशांतात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥ ५२ ॥ जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतष डिंद्रियः ॥ हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोऽमलः ॥५३॥ विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ॥ ब्रह्मण्यात्मा नमाधारे घटांबरमिवांबरे ॥ ५४ ॥ ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः ॥ निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवा चलः ॥ ५५ ॥ तस्यांतरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥ स वा अद्यतनाद्राजन्परतः पंचमेऽहनि ॥ कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥ ५६ ॥ दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ॥ बहिःस्थिता पतिं साध्वी तम ग्निमनुवेक्ष्यति ॥ ५७ ॥ विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनंदन ॥ हर्षशोकयुतस्तस्माद्गंता तीर्थनिषेवकः ॥ ५८ ॥

लीन होजाताहै ॥ ५४ ॥ मायागुणोंकी वासना जिनसे सर्वत्र दूर होगई, इन्द्रियें अंतःकरण जिनका शुद्ध होगया, सब प्रकारके आहार जिन्होंने त्यागदिये; सो खम्भकी सदृश अचल होगये ॥ ५५ ॥ सब कर्मसे संन्यस्त हैं उसमें कोई विघ्न मत करना, हे राजन्! सो वह आजसे पांच दिन उपरान्त अपना शरीर त्यागन करेंगे, और देह आपही भस्म होजायगी. विदुरजीके ज्ञानसे धृतराष्ट्रको मोक्ष प्राप्त होगी ॥ ५६ ॥ पर्णशालामें अग्निसे जब देह भस्म होजायगी, तो गान्धारी उनकी स्त्रीभी उसी अग्निमें प्रवेश करके सती होजायगी ॥ ५७ ॥ हे कुरुनन्दन ! विदुरजी यह

आश्चर्य देखकर अति हर्ष शोकयुक्त तीर्थयात्राको चलेजायँगे ॥ ५८ ॥ ऐसे कह तुंबुरु गन्धर्वसमेत नारदजी स्वर्ग लोकको चलेगये, और युधिष्ठिर उनका वचन मान हृदयसे सब शोक संताप त्यागकर वासुदेव भगवान्‌के ध्यानमें लवलीन हुए ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोक्त्या धृतराष्ट्रमोक्षवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा–पार्थ द्वारकाकी कथा, जैसे बरणी आय। भयो दुखी सुन धर्म सुत, कहों सकल समझाय ॥१४॥ जब द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द देवकीनन्दनका समाचार बहुत दिनोंसे न मिला तो युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा, कि भाई तुम द्वारकाको जाओ और द्वारकानाथकी सुधि लाओ, धर्मराजकी यह बात सुनकर बन्धुके देखनेकी इच्छासे पार्थने द्वारकाको

इत्युक्त्वाऽथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुंबुरुः ॥ युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भा० प्रथ० त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बंधुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १ ॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नाऽयात्ततोऽर्जुनः ॥ ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वह ॥ २ ॥ कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ॥ पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥ ३ ॥ जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृदंपतीनां च कल्कनम् ॥ ४ ॥ निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ॥ लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बंधुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥

गमन किया पुण्ययशस्वी श्रीकृष्णचंद्रकी सुधिके लिये ॥ १ ॥ हे शौनकमुनि! जब कई मास व्यतीत होगये और अर्जुन द्वारकासे न लौटे, उस समय युधिष्ठिर घोर उत्पात देखने लगे ॥२॥ कालकी घोरगति, धर्मका उलटापन, दिखाई देनेलगा, मनुष्योंके मनमें, क्रोध, लोभ, मोह, मिथ्यावाद बसगया. सब जीवोंकी पापयुक्त बातें दीखने लगीं ॥ ३ ॥ सब लोग व्योहारमें कपट करनेलगे, सुहृदतामें ठगपना, पिता, पुत्र, स्त्री, पुरुष, भाई बन्धुओंमें क्लेश होनेलगा ॥४॥ अत्यन्त अरिष्टकारी शकुन होनेलगे, ऐसा समय आगया कि, लोभसे आदिलेकर अधर्मकी प्रकृति देखकर युधिष्ठिर शोचवश हो भीमसेनसे बोले ॥ ५ ॥ हे भ्रातः! अर्जुनको श्रीकृष्णजीकी सुधि लेनेको द्वारकाको भेजाहै, न जानिये पुण्य यशवाले श्रीयदुनाथकी

क्या करनेकी इच्छा है? ॥६॥सो हे भइयाभीम ! सात महीने अर्जुनको गये बीते,सो अबतक आया नहीं, न जानिये क्या कारणहै यह भेद हम कुछ
नहीं जानसक्ते ॥७॥ ऐसा निश्चय होताहै कि नारदजी जो कहगये थे वह समय आगया; क्योंकि जिस समय सब क्रीडाके साधन श्रीभगवान् शरी
रको त्यागेंगे वह समय सब अमांगलिक होगा॥८॥जिन श्रीकृष्णजीकी कृपासे सब हमारी सम्पदा, राज्य, प्राण,कुल,स्त्री,प्रजा, वैरियोंसे विजय,सब
लोकका धन हुआ॥९॥ हे नरव्याघ्र ! स्वर्गके, भूमिके, शरीरके, दारुण बुद्धिके मोहके करानेवाले भयानक * उत्पातको देखो ॥१०॥ छातीका
वामभाग, वामनेत्र, वामभुजा, बारंबार फड़कती हैं और हृदय बारंबार कांपताहै इन लक्षणोंसे यह विदित होताहै, कि शीघ्र कुछ अप्रिय बात

गताः सप्ताऽधुना मासा भीमसेन तवानुजः ॥ नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमंजसा ॥ ७ ॥ अपि देवर्षिणाऽऽदिष्टः
स कालोयमुपस्थितः ॥ यदात्मनोंगमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥८॥यस्मान्नः संपदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ॥
आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥ ९ ॥ पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान्सदैहिकान् ॥ दारुणाञ्शंस
तो दूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥ १० ॥ ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरंत्यंग पुनःपुनः ॥ वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यंति
विप्रियम् ॥ ११ ॥ शिवैषोद्यंतमादित्यमभिरौत्यनलानना ॥ मामंग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यभीरुवत् ॥ १२ ॥ शस्ताः
कुर्वंति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ॥ वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥ १३ ॥ मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कंप
यन्मनः ॥ प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥ १४ ॥ धूम्रा दिशः परिधयः कंपते भूः सहाद्रिभिः ॥ निर्घातश्च
महानासीत्साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥

सुनाई देगी ॥ ११ ॥ सूर्यके सन्मुख खड़ी होकर शृगालिनी रोतीहैं और मुखसे आग उगलती हैं, हे भइया भीम ! मेरे सन्मुख निःशंक खड़े होकर
श्वान रोते हैं ॥ १२ ॥ अच्छे पशु गौ आदिक तौ मेरे बांये ओर होकर निकलतेहैं और गर्दभ आदि दुष्ट पशु मेरी परिक्रमा करैहैं. हे पुरुषसिंह
भीम ! मेरे रथके घोडे जब सवार होताहूं तब रोतेसे दीखैं हैं ॥ १३ ॥ मृत्युका दूत यह कपोत, उलूक व काक रातको बोलतेहैं, उनका
बोलना विश्वका शून्य करना चाहताहै ऐसे कुलक्षणोंको देख देख मेरा हृदय कांपताहै ॥ १४ ॥ सब दिशाओंमें धुन्ध छा रहाहै (सूर्य चन्द्रमाके

* दोहा—जानै हरि इच्छा कहा, कछु नहिं जानीजात । हे भइया मोहिं होतहै नये नये उत्पात ॥ १ ॥

मण्डल बँधेहैं) पर्वतों सहित भूचाल हो रहाहै, विना बादल आकाशसे गर्जनेका शब्द सुनाई आताहै ॥ १५ ॥ पवन धूरि लेकर आकाशको चढै है; सब नभमण्डलमें रेतसे अन्धकार छारहाहै, सब ओरसे भयानक मेघ रुधिर बरसातेहैं ॥ १६ ॥ स्वर्गमें सब ग्रह परस्पर लड़ते हैं. सूर्य कान्तिहीन दृष्टि आताहै, यह देखो भूतगणोंसे व्याकुल होकर सब पृथ्वी मानो अग्निसम उत्तप्त हो रहीहै ॥ १७ ॥ नदी और नद ताल और सरोवर क्षोभको प्राप्तहैं, अग्नि घृत डालनेसे प्रज्वलित नहीं होती, न जानिये यह कुसमय क्या करैगा॥१८॥बछडे गायोंका दूध प्रसन्न होकर नहीं पीते, माता स्तनोंसे दूध नहीं छोड़ती धेनु सूर्यनारायणके सन्मुख खडीहोकर नेत्रोंसे जलधारा बहातीहै, खरकोंमें वृषभ प्रसन्न चित्तसे शब्द नहीं करते ॥१९॥

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ॥ असृग्वर्षंति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥ १६ ॥ सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ॥ ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥ १७ ॥ नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ॥ न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥ न पिबंति स्तनं वत्सा न दुह्यंति च मातरः ॥ रुदंत्यश्रुमुखा गावो न हृष्यंत्यृषभा व्रजे ॥ १९ ॥ दैवतानि रुदंतीव स्विद्यंति ह्युच्चलंति च ॥ इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥ भ्रष्टश्रियो निरानंदाः किमघं दर्शयंति नः ॥ २० ॥ मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ॥ अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥ ॥ २१ ॥ इति चिंतयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ॥ राज्ञः प्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥ तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ॥ अधोवदनमब्बिन्दून्मुंचंतं नयनाब्जयोः ॥ २३ ॥

मन्दिरोंमें देवताओंकी प्रतिमा रुदन कर रहीहैं, पसीना आताहै, कम्पायमान हो रही हैं, देश, ग्राम, पुर, नगर, कूप, वाटिका, आश्रम इन सबकी शोभा मलीन होगई, आनन्दका नाम नहीं, न जानिये यह हमको क्या दुःखदेंगे ? ॥ २० ॥ निश्चय है कि इन उत्पातोसे अनन्य पुरुष श्रीकृष्णकी शोभासे और भगवत्के चरणारविन्दसे जिसका सौभाग्य हीन होगया, इसलिये भूमिकी शोभा नष्ट होगई ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिस समय राजा युधिष्ठिरजी बैठे यह विचार कररहेथे कि यह आरिष्ट क्या करैंगे ? उसी समय राजा युधिष्ठिरके समीप यदुपुरीसे अर्जुन आये ॥ २२ ॥ आतेही नीचेको

मुखकर धर्मराजके चरणोंमें गिरपडे अत्यन्त व्याकुल आंसुओंसे पूर्णनेत्र ॥ २३ ॥ कान्तिहीन सुहृद अर्जुनके सन्मुख नारदजीके वचन स्मरणकर कम्पित हृदय हो राजा युधिष्ठिर बूझनेलगे ॥ २४ ॥ हे भ्रातः ! मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्वत, अन्धक, वृष्णि यह सब राजा आनन्दित हैं ॥ २५ ॥ मान्यवर शूर नाना वसुदेव तो प्रसन्नहैं. भाई सहित मामा कुशलहैं ॥ २६ ॥ सातों बहिनें उनकी स्त्रियें, हमारी मामी, पुत्रसहित, पुत्रवधू

विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ॥ पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ॥ मधुभोजदशार्हार्हसात्वतांधकवृष्णयः ॥ २५ ॥ शूरो मातामहः कच्चित्स्व स्त्यास्ते वाऽथ मारिषः ॥ मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुंदुभिः ॥ २६ ॥ सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ॥ आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥ २७ ॥ कच्चिद्राजाऽऽहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ॥ हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयंतगदसारणाः ॥ २८ ॥ आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ॥ कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः ॥ २९ ॥ प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ॥ गम्भीररयोनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥ ३० ॥

सहित, देवकी आदिकी क्षेमहै,॥२७॥ राजा आहुक, देवक भाई सहित, जिसका पुत्र महाखोटाहै वह जीतेहै ? हृदीक, पुत्रसहित अक्रूर, जयन्त,गद, सारण ॥ २८ ॥ शत्रुजित आदिक कुशलहैं ? भगवान् सात्वतोंके प्रभु बलदेवजी अच्छे हैं ? ॥ २९ ॥ सब वृष्णियोमें महारथी प्रद्युम्न तो सुखी हैं

शंका—सात द्वीप पृथ्वीके राजा युधिष्ठिर थे उनको चिट्ठीसें अथवा दूतसे यह बात क्यों नहीं जानपडी कि सब यदुवशी परस्पर लडकर मरगये, यह बडे आश्चर्यकी बातहै और बडी शका होती है कोई छोटा राजाभी होताहै वहभी अपने राज्यका सब समाचार पाता रहताहै, और धर्मराज सात द्वीपके राजाथे तोभी उनको यह समाचार नहीं मिला कि यदुवशका विध्वस होगया यदुवशीभी कुछ ऐसे वैसे नहींथे बडे नामी और पुरुषार्थी पुरुषथे, फिर क्या कारण जो उनके मरनेका समाचार नहीं मिला ?

उत्तर—जिस दिन द्वारकासे अर्जुन, युधिष्ठिरके पास आया उसके दश दिन पहिले दूतोंसे धर्मराजने सुनाथा कि सब यदुवशी कुशलक्षेमसे हैं, कालकी गति महाकठिनहै, ब्राह्मणके शापसे एक क्षण मात्रमें सब यदुवशका नाश होगया, तब सबका मृतक कर्म करके सातवें दिन अर्जुन राजा युधिष्ठिरके पास आया, बीचमें भाइयोंका चित्त दु खी होनेके लिये समाचार किसी दूतके द्वारा नहीं भेजा ॥

भगवान्की समान महागम्भीर वेगवाले अनिरुद्धजी कुछ बड़े हुए हैं कि अभी छोटे हैं ? ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवतीपुत्र साम्ब और सब श्रीकृष्णसुत पुत्रसहित ऋषभादिक ॥३१॥ श्रीकृष्णजीके अनुचर श्रुतदेव उद्धवादिक सुनन्द, नन्द यादवोंमें मुख्य श्रेष्ठ हैं ॥३२॥ राम कृष्णकी भुजासे पालित वह सब प्रसन्नहैं, जिन्होंने हमसे सौहृद कियाहै वह सब कुशलहैं ? ॥३३॥ ब्राह्मणोंके पालनेवाले भक्तवत्सल गोरक्षक भगवान् भाई बन्धुसमेत द्वारकामें सुधर्मा सभामें सुखीहैं ॥३४॥ सब लोगोंके मंगलके लिये सबकी कुशलके अर्थ सबकी वृद्धिके कारण शेषजीके सखा आदिपुरुष श्रीकृष्ण

सुषेणश्चारुदेष्णश्च सांबो जांबवतीसुतः ॥ अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥ ३१ ॥ तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः ॥ सुनंदनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥ ३२ ॥ अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ॥ अपि स्मरंति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥ ३३ ॥ भगवानपि गोविंदो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥ ३४ ॥ मंगलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ॥ आस्ते यदुकुलांभोधावाद्योऽनंतसखः पुमान् ॥ ३५ ॥ यद्बाहुदंडगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ॥ क्रीडंति परमानंदं महापौरुषिका इव ॥ ३६ ॥ यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा सत्यादयो ह्यष्टसहस्रयोषितः ॥ निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरंति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥ ३७ ॥ यद्बाहुदंडाभ्युदयाऽनुजीविनो यदुप्रवीरा ह्यऽकुतोभया मुहुः ॥ अधिक्रमंत्यंघ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥ ३८ ॥ कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ॥ अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥ ३९ ॥

यदुकुलमें प्रसन्नहैं? ॥३५॥ जिनकी भुजारूपी दण्डसे रहित द्वारकामें पूजित होकर, यादव परमानन्दसे वैकुंठनाथके पार्षदकीनाईं क्रीडा करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनके चरणारविन्दकी सेवारूप मुख्य कर्मसे सत्यभामादिक सोलहसहस्र स्त्रियाँ संग्राममें देवताओंके उन देवभोग्य पारिजातादिकोंको भगवान् लातेभये कि, जो इंद्राणीके उचितहैं ॥ ३७ ॥ यादवलोग जिनकी भुजाओंके प्रतापसे निर्भय उत्साहित सुरसत्तम योग्य सुधर्मा सभा अपने बलसे लाये और बारंबार उसमें चरण धरतेहैं ॥ ३८ ॥ हे तात ! हे भैया ! तुम तो प्रसन्नहो ? मुझको ऐसा विदित होताहै कि तुह्मारा तेज नष्ट होगया,

किसीने अमंगल शब्द प्रेम रहित वाणीसे तो
अथवा बहुत दिनोंके रहनेसे भाइयोंने तुम्हारा आदर सत्कार नही किया ? क्या तुम्हारी अवज्ञा करी ? किसीने अमंगल शब्द प्रेम रहित वाणीसे तो तुमको नहीं पुकारा ? पहिले किसीको आशाका भरोसादे पीछे क्या वस्तु उसे नहीदी ? ऐसा तो नहीं हुआ ॥३९॥४०॥ कोई, भयभीत, ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री तुम्हारी शरण आये होंय उनको तो तुमने कहीं नहीं त्याग दिया ॥४१॥ अगम्यास्त्रीसे तुमने रमण तो नहीं किया? अथवा विना शृंगारवाली नीच स्त्रीसे तो तुम नहीं बोले ? अथवा उत्तम वा सामान्य पुरुषने मार्गमें तुमको पराजय तो नहीं किया ?॥४२॥ अथवा भोजनके समय किसी ब्राह्मण वा वृद्ध, वा बालक, वा और किसी पुरुषको त्यागकर पहिले तुमने भोजन तो नहीं करलिया ? अथवा कोई असह्य महानिषिद्ध कर्म तो

कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमंगलैः ॥ न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥ कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ॥ शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥४१॥ कच्चित् त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् ॥ पराजितो वाऽथ भवान् नोत्तमैर्नाऽसमैः पथि ॥ ४२ ॥ अपि स्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् ॥ जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥ ४३ ॥ कच्चित्प्रेष्ठतमेनाऽथ हृदयेनात्मबंधुना ॥ शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० प्र० युधिष्ठिरदर्शनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः ॥ नानाशंकाऽऽस्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥ १ ॥

तुमने नहीं किया ? ॥ ४३ ॥ अथवा हमारे प्यारे नेत्रोके तारे हृदयरूप बन्धु श्रीकृष्णचंद्र आनन्दकन्द सर्व सुख देनेहारे तो कही परधामको नहीं सिधारे ? जिनके मारे तुम अत्यन्त व्याकुल होरहेहो. और कोई रोग तो मुझे विदित नहीं होता यह कारण क्या है. वर्णन तो करो ? क्यों ऐसे तनु छीन मनमलीन कांतिहीन होरहेहो ? जो बात हो सो सत्य सत्य कहो जो मेरे मनको धैर्य हो॥४४॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥दोहा–पञ्चदशमअध्यायमें, पुन यदुवंशविनास । धर्मराजसबराजतज, कियोहिमालयवास ॥१५॥ सूतजी बोले, कि हे शौनक ऋषि ! श्रीकृष्णके सखा अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने अनेक अनेक प्रकारसे बूझा, परन्तु यदुनाथके वियोगमें ऐसे कृशित होगये ॥१॥

कि, उत्तर न दिया गया, शोकके मारे मुख हृदयकमल सूखगया, शरीरकी कान्ति जातीरही, श्रीकृष्ण सर्व समर्थका ध्यान करनेलगे, परन्तु मुखसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं रही ॥ २ ॥ बड़े कष्टसे शोकको रोक नेत्रोंके आंसू पोंछ श्रीकृष्णके अंतर्धान होजानेके कारण प्रेमवश व्याकुलहो ॥ ३ ॥ उनका सारथीपनका समय, सखाभाव, मित्रता, सुहृदताको स्मरणकर, भाई युधिष्ठिरके आगे शोकको रोक रुके गदगद कण्ठसे बोले ॥४॥ हे महाराज ! बन्धुरूप श्रीहरिने मुझको ठगलिया, देवताओंको विस्मयदायक मेरा तेजभी जातारहा "मैं क्या कहूँ ? और क्या आप बारंबार मुझसे बूझतेहो ? हमारे प्राणप्यारे द्वारकानाथ हमारी पीठपर हाथ धरनेवाले हमको धोखा देकर परमधामको चलेगये, और हम अपने मूर्खपनसे उनको अपना ममेरा भाई ही समझते रहे, उनको आदि पुरुष अविनाशी नहीं जाना, जो परमात्मा समझकर हम उनके चरणारविन्दोंकी सेवा करते तो भवसागरसे पार उतर मोक्षको प्राप्त होते, उनकी माया ऐसी प्रबल है कि, उसके फंदमें फँसकर हमने जगदीश्वरको नही पहिचाना जैसे एक समय

शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ॥ विभुं तमेवाऽनुध्यायन्नाऽशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥ कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनाऽऽमृज्य नेत्रयोः ॥ परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयोत्कंठ्यकातरः ॥ ३ ॥ सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ॥ नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ वंचितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ॥ येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ ५ ॥

चन्द्रमा दक्ष प्रजापतिके शापसे बहुत कालतक क्षीरसमुद्रमें रहा, यह बात सबको विदित है कि चन्द्रमामें अमृत रहता है और कच्छ मच्छ आदि अनेक जलचर उसमें रहतेथे और उसी समुद्रमें चन्द्रमा बसताथा, और संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं जो अपना अमर होना न चाहे सब यही इच्छा रखतेहैं कि अमृत मिले तो हम पीकर अमरहो संसारमें रहकर आनन्द भोगें, परन्तु मच्छ कच्छ सहस्रों वर्षतक चन्द्रमाके संग रहे और अमृतका कुछ ध्यान नहीं किया, जिस प्रकार उन समुद्रके जीवोंने चन्द्रमाका भेद नहीं जाना और उसकोभी समुद्रका एक जीव माना, इसी प्रकार हम लोगोंने भी परब्रह्म परमात्माको नहीं पहिचाना यदुवंशीही जाना. अब वह बात समझकर हमको बड़ा पश्चात्ताप आताहै कि हाय ! हम भाईकेही धोखेमें रहे और परमेश्वर हमारे हाथसे निकल गये, हाय ! हमने आदि पुरुष अविनाशीको अपना सारथी समझा हे भ्रातः ! जो समस्त भूमंडल मेरे तेजके सन्मुख थरथर

काँपताथा आज वह मेरा सब तेज नष्ट होगया" ॥ ५ ॥ जिस प्राणके क्षणमात्रके वियोग होनेसे यह लोग नहीं रहते मृतक कहावे हैं सो प्राणरूप श्रीभगवान्‌के अन्तर्धान होनेसे हमभी मृतककी समान होगये ॥६॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके आश्रयसे द्रुपदके यहाँ आये कामसे उन्मत्त राजाओंका तेज स्वयंवरमें मैंने हरा और धनुप सूधाकर मत्स्यवेधन किया और द्रौपदीको हम ले आये ॥ ७ ॥ जिन श्रीविपिनविहारीके समीप रहकर खाण्डव वन अग्निको भोजन करनेके लिये दिया और देवगणसहित सुरेशको जीतकर मयनाम दैत्यकी बनाई हुई अद्भुतसभा जिसमें अनेक अनेक प्रकारकी शिल्पकारी, विद्याकी कारीगरी थी सो सभा हमको मिली और आपके यज्ञमें सब देशोके राजाओंने आन आनकर भेटें दीं. यह सब उन्हीं

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यऽप्रियदर्शनः ॥ उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥ ६ ॥ यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमुपा गतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ॥ तेजो हृतं खलु मयाऽभिहतश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाऽधिगता च कृष्णा॥७॥ यत्संनिधावहमु खांडवमग्नयेऽदामिंद्रं च साऽमरगणं तरसा विजित्य ॥ लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥ ८ ॥ यत्तेजसा नृपशिरोंघ्रिमहन्मखार्थे आर्योनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ॥ तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरे ते ॥ ९ ॥ पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्टचारुकबरं कितवैः सभायाम् ॥ स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ॥१०॥

यदुनन्दनकी दया थी ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे राजाओंके शिरपर चरण धरनेवाला जरासन्ध जिसमें दशसहस्र हाथीका बल था ऐसे बड़े भारी बलवान्‌को भीमसेननें यज्ञके लिये मारा, और भैरवजीके यज्ञके कारण उसने जिन राजाओंको रोक रक्खाथा उनको छुटाया और वह सब नरेश आपके यज्ञमें भेंट लाये ॥ ९ ॥ आँखोंसे आँसू बहाती श्रीकृष्णजीके चरणोंमें पड़ी तुम्हारी द्रौपदीका राजसूययज्ञमें रचित गुँथाहुआ अभिषेक होनेसे श्लाघनीय श्रेष्ठ रमणीका जूडा जिन कपटी दुर्योधनादिकोंने सभामें छूकर बखेरा यह देख भीमसेननें प्रतिज्ञा करी, कि इस जूड़ेके खोलनेवालोंको मारकर उनकी स्त्रियोंका जूडा खुलवाया क्योंकि वैधव्य कालमें माथेका जूडा खोलाजाताहै और फिर नहीं बँधताहै

इसीप्रकार भगवान्ने विचारा कि मेरे भक्तोंकी स्त्रियोंका जूडा तो थोडेही दिनों खुला रहेगा परन्तु तुम्हारी विधवाओंका जूडा जबतक जियेंगी तबतक खुला रहैगा. यह सब उन्हीं पूर्ण प्रतापीका प्रतापथा ॥ १० ॥ * हे नरेंद्र! जिन कृष्णजीने वनमें आये दश सहस्र शिष्योंको संगलिये दुर्यो

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरंतकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्यः ॥ शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ता ममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः ॥ ११ ॥ यत्तेजसाऽथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ॥ अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेंद्रभवने महदासनार्धम् ॥ १२ ॥

धनके भेजे अत्यन्त दुरन्तकष्टसे दुर्वासा ऋषिसे हमारी रक्षाकरी और शाकपत्रको पाय त्रिलोकी तृप्तकरी, कि जलमें स्नान करते सब चेले भागगये ॥ ११॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे मैंने पार्वती सहित महादेव शूलपाणिको भुलादिया उन्होंने मुझको अपना पाशुपत अस्त्र दिया फिर औरोंनेभी अनेक

* भारतमें यह इतिहास इस भाँति लिखाहै—किसीसमय दुर्योधनने दुर्वासा ऋषिको भोजन करवायाथा. दुर्योधनसे प्रसन्न हो दुर्वासा ऋषि बोले, कि कुछ मागो, तब दुर्योधनने मनमें विचार किया कि दुर्वासाके शापसे पाण्डवकुल नष्ट होजाय तो अच्छाहै, तब दुर्योधनने कहा कि युधिष्ठिर हमारे कुलमें मुख्यहैं, जब द्रौपदी प्रसाद पायले उस समय तुम दशसहस्र शिष्योंको सायले उसके घरको भोजनको जाना, यह वचन सुन दुर्वासाने वैसाही किया, युधिष्ठिरने दुर्वासाको देख अत्यन्त आदर सन्मानसे मध्याह्नकृत्य कर दण्डवत् प्रणाम किया. दुर्वासाने कहा मुनिसमूह जलमें स्नान करनेको गयेहैं भोजन करैंगे, युधिष्ठिरने कहा बहुत अच्छा यह बात सुन द्रौपदीने चिन्तासे आतुर होकर श्रीकृष्ण विश्वंभरका स्मरण किया कि हे दीनानाथ! आज धर्मराजकी और मेरी लाज आपके हाथहै, हे यदुपति! जो मेरी अपति हुई तो आपहीकी अपतिहै, श्रीकृष्ण चन्द्र वनवारी भक्तहितकारी तत्क्षण आन उपस्थित हुए और द्रौपदीसे बूझा क्यों? द्रौपदी बोली, कि हेदीनबन्धु! हेभक्तवत्सल! हेभगवन्! आज दुर्वासाऋषि शिष्योंसहित हमारे घर आयेहैं और यहा भोजनकी कुछ सामग्री उपस्थित नहीं क्या कियाजाय? इस कारण आपका स्मरण कियाहै यह बात सुन श्रीविश्वनाथ बोले, कि हमभी भूखेहैं, पहिले हमको भोजन करादो पीछे दुर्वासाको देखा जायगा, तब द्रौपदी अत्यन्त लज्जित हुई अरु हाथ जोडकर बोली—कि हे स्वामी! मेरे भोजन पर्यन्त अक्षय अन्न वटलोईसे निकल्ताहै, जब मैं इसमेंका भोजन करलूहूँ फिर इसमे भोजन नहीं रहता, सो हे नाथ! अब मैं भोजन करचुकी इसमें अब कुछ भोजन नहीं रहा फिर भगवान् बोले कि उस वटलोईको यहातो लाओ यह सुन वह वटलोई लाई उसके किनारेमें कोई शाकान्न लगा रहगयाथा सो पायकर भगवान् बोले कि इस शाकान्नसे विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न होंय यह कह युधिष्ठिरसे कहा कि, अब मुनि समूहको भोजनके लिये बुलाओ सो यह स्नान करके सब भागगये क्योंकि भगवान्ने तो उनके पेट पहलेही भरदियेथे, दुर्वासा ऋषिने कहा कि हमने वृथा पाक बनवाया यह भयमान सब चेलोंसमेत दुर्वासा ऋषि वहाँसे भागगये अरु यह वरदान दिया कि वासुदेव भगवान् सदा तुम्हारी जय करै ॥

अस्त्र दिये. इसी शरीरसे इन्द्रलोकमें आधा आसन इन्द्रका हमको मिला ॥१२॥ तहाँ स्वर्गमें हम विहार करतेथे तव इन्द्रसहित देवताओंने निवात कवच वैरियोंके मारनेके लिये मेरा गाण्डीव धनुष मेरे भुजदण्डका आश्रय कियाथा. हे युधिष्ठिर ! ऐसा मेरा प्रभाव बढाया ऐसे श्रीद्वारकानाथने अपनी माया दिखाकर मुझको ठग लिया ॥ १३ ॥ जिन श्रीकृष्णरूप बन्धुके आश्रितहो अपार भीष्मादि महारथी रूप ग्राहोंसे दुस्तर कुरुसेनारूप सागरको अकेला रथसे पार होगया और मोहास्त्रसे मोहितकर उत्तर गोग्रहमें शत्रुओंके शिरोंसे तेजवन्त मणिमय मुकुट कुण्डल पाग बहुत

तत्रैव मे विहरतो भुजदंडयुग्मं गांडीवलक्षणमरातिवधाय देवाः॥ सेंद्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥१३॥ यद्बांधवः कुरुबलाब्धिमनंतपारमेको रथेन ततरेऽहमतीर्यसत्त्वम् ॥ प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥ १४ ॥ यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमंडलमंडितासु ॥ अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥ १५ ॥ यद्दोष्षु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशलसैंधवबाह्लिकाद्यैः ॥ अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नोपस्पृशुर्नृहरिदासमिवाऽऽसुराणि ॥ १६ ॥

धन लाया. हाय ! सो श्रीकृष्ण हमारे प्यारे अन्तर्धान होगये✻ ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर ! बड़े राजेन्द्रोंके रथोंसे शोभित भीष्मपितामह, गुरु, कर्ण, शल्य, इनकी सेनामें सारथी होकर मेरे आगे चले और उन रथी यूथपालोंकी आयु,मन, बल,सब शस्त्रादिकुशलता दृष्टिसे क्षीण करते चले जातेथे ॥ १५ ॥ उन्होंने मुझे अपनी भुजाओंमें रखलिया फिर गुरु, भीष्म, कर्ण, द्रोण, त्रिगर्त, शल्य, सैंधव, बाह्लीक इनके अमोघ महिमावाले तीव्र

✻ शंका—कुरुक्षेत्रमें जो क्षत्रिय आयेथे वह सव मरगये, कौरवोमें तीन वचे और पाण्डवोंमें सात वचे, फिर अर्जुनने युधिष्ठिरसे क्यों कहा कि, जिन भगवान्के कृपासे कौरवोंकी समुद्ररूप सेनाको मारकर मैं अकेला पार गया ।

उत्तर—युधिष्ठिरसे अर्जुनने निस्सन्देह यह कहा कि, जिन भगवान्की कृपासे कौरवोंकी समुद्ररूप सेनाको मार कर पार होगया, परन्तु यह वात कुरुक्षेत्रकी नहीं है, जव कौरवोंने विराटकी गायोंको हरना चाहा यह वहाँकी बात है, भीष्मकी आज्ञा पाकर जव कौरवोंने विराटकी गायोंको वलात्कार लेनेकी इच्छा की तव अर्जुनने सव कौरवोंको मूर्छित करके और जो सेनाके वडे वडे नामी योद्धा और वलवान् थे उनके मुकुट उतार कर वहुत शीघ्रताके साथ विराट नगरको चलागया, और सभामें जाकर उन मुकुटोंको राजा विराटकी भेंटमे रखदिया उस समयकी वात राजा युधिष्ठिरसे अर्जुनने कहीथी ॥

सोऽयं वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्ममभवाय भजंति भव्याः ॥ मां श्रांतवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥ १७ ॥ नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनंदनेति ॥ संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठंति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ॥ सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥ १९ ॥ सोऽहं नृपेंद्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥ अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमंग रक्षन्गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥ तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमंति ॥ सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥ २१ ॥

अस्त्र मेरे शरीरको स्पर्श न करसके जैसे भगवत्के दासको नीच लोग नहीं छूसक्ते ॥ १६ ॥ जिनके चरणकमलका श्रेष्ठजन मोक्षके लिये दिनरात भजन करते हैं जब मेरे घोड़े थकजानेसे मैं रथसे नीचे उतरकर खडा होगया तब मुझको श्रीकृष्णके प्रभावसे परास्त रथी वैरी न मारसके. ऐसे त्रिलोकीके नाथको मैंने अपना सारथी बनाया, हाय! मुझसे बड़ी भारी भूल हुई ॥ १७ ॥ हे नरदेव! श्रीकृष्ण जब उदार रुचिर शोभित मधुर मुसकानयुक्त मृदुल मनमोहिनी वाणीसे, हे अर्जुन! हे पार्थ! हे धनंजय! हे सखे! हे कुरुनन्दन! कहतेथे वह बातें जब मुझको स्मरण होतीहैं तौ हृदयमें शूलसा खटक जाताहै ॥ १८ ॥ शय्या, आसन, अटन चाहे जैसे मैं बोलता भोजन इत्यादिमें हे बन्धो! हे सखे! सत्य है जो तुम कहोहो सब सत्य है, ऐसे बोलते जैसे सखाका अपराध सखा सहै पिता पुत्रके अवगुण सहै श्रीकृष्णजी अपने बडप्पनसे मुझसे कुमतिके अपराध सहतेथे ॥ १९ ॥ हे राजन्! अंग, सखा, प्रीतम, हृदयवल्लभ, पुरुषोत्तमके विना मैं ऐसा शून्य होगयाहूँ कि, श्रीकृष्णके परिवारकी रक्षा करतेहुए मुझे मार्गमें भीलोंने लूट लिया ॥ २० ॥ देखो भाई! जो पृथ्वीके राजा मेरे नामसे थरथर कांपते थे मैं वही धनंजय हूँ, और वही रथहै, वही घोडेहैं वही धनुषहै, वही बाणहैं वही मेरी भुजा हैं जिन भुजाओंके बलसे मैंने महेश, सुरेश, गन्धर्व और मयनाम राक्षसको परास्त करदिया, और भीष्मपितामह, कर्ण, जयद्रथ आदि बड़े बड़े बलशाली योद्धाओंका विध्वंस किया, और यज्ञके घोड़ेके संग गया अरु बड़े बड़े नामी नरेशोंका मानभंग करके उनको अपने संग

लिया, और सब पृथ्वीपर यज्ञके घोड़ेको फिराकर हस्तिनापुरमें लाया, अश्वत्थामाका मस्तक चीरकर मणि निकाली, परन्तु विना द्वारकानाथके यह सब निष्फल होगये, जैसे भस्ममें कियाहुआ हवन, कपटीसे मिला धन, ऊषरमें बोया अन्न निष्फल होताहै ॥ २१ ॥ हे नरेन्द्र! सुहृदपुरके सुहृद जो आपने बूझे वह सब दुर्वासा ऋषिके शापसे परस्पर कटकटकर मरगये ॥ २२ ॥ "आदिपुरुष अविनाशी त्रिलोकीनाथने चित्तमें विचारा कि, यह यदुवंशी हमारे वंशमें बड़े नामी और बलवान् हैं, न जानिये मेरे पीछे संसारमें क्या क्या उपद्रव मचावें और लोगोंको कैसे कैसे दुःख दें? इसलिये अपने आगेही इन लोगोका कुछ उपाय करना चाहिये, परन्तु अपने हाथसे उनका मारना भी उचित नहीं समझा,इसलिये दुर्वासा ऋषिसे उनको शाप दिलवादिया."तब वह वारुणी मदिरा पीपीकर ऐसे उन्मत्त हुए कि तनमनकी सुधि बुधि कुछ न रही अजानकी भांति सब परस्पर कटमरे, चार पांच

राजंस्त्वयाऽनुपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ॥ विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥ २२ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ॥ अजानतामिवान्योन्यं चतुष्पंचाऽवशेषिताः ॥ २३ ॥ प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ॥ मिथो निघ्नंति भूतानि भावयंति च यन्मिथः ॥ २४ ॥ जलौकसां जले यद्वन्महांतोऽदंत्यणीयसः ॥ दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥ २५ ॥ एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः ॥ यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहार ह ॥ २६ ॥ देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ॥ हरंति स्मरतश्चित्तं गोविंदाभिहितानि मे ॥ २७ ॥

शेष रहगयेहैं ॥ २३ ॥ हे भ्रातः! प्रायः यह ईश्वरकी चेष्टा है कभी परस्पर विध्वंस कराते हैं कभी पालन करते हैं जैसे समुद्रके वासी बडे जीव छोटे जीवोंको खाजाते हैं ऐसे बली राजा निर्बलको परस्पर जीतलेतेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ ऐसे बली महान् यादवोंसे छोटे छोटे यादवोंका विध्वंस करवाकर भूमिका भार उतारा ॥ २६ ॥ देश, काल, योग्य, अर्थ, हृदय तापके नाशक श्रीकृष्णके वचन जब मैं स्मरण करताहूं तो मेरा चित्त व्याकुल होजाताहै, उसी समय मेरे प्राण देहसे निकल जाते; परन्तु इस कारण यह पापी प्राण देहमें पाप भोगनेको रह गये, जब यदुनाथ परमधामको सिधारे तब दारुक सारथीसे मुझे यह बात कहलाभेजी थी कि, स्त्री और बालकोंको द्वारकासे हस्तिनापुरको अपने साथ ले जाना, और मेरे वियोगका कुछ शोच मत करना जो कुछ ज्ञान गीतामें हमने तुमसे कहाहै उसीके अनुसार इस शरीरको

झूठा समझना और चैतन्य आत्माको सत्य जानकर अपने मनको धैर्य देना, हे भ्रातः ! वही ज्ञान समझकर मैंने संतोष किया है ॥ २७ ॥ ऐसे सोचते सोचते अर्जुनने श्रीकृष्णके चरणकमलको हृदयमें धारणकर अपने चित्तको धैर्य दिया ॥ २८ ॥ और भगवान् वासुदेवके चरणोंमें प्रीति बढाई, जिस भक्तिके प्रभावसे सब कामादिक अरु मल नष्ट होगये ॥ २९ ॥ जिस गीताका ज्ञान संग्रामके आदिमें भगवान्‌ने मुझको सुनाया था, वह ज्ञान काल कर्म अन्धकारसे मैं भूल गयाथा, अब फिर श्रीकृष्णकी कृपासे प्राप्त हुआ ॥३०॥ ब्रह्मज्ञानसे जब अविद्या लीन होगइ तो फिर निर्गुणहो, स्थूलशरीरहीन सुन्दर भोग भोग्य होकर, द्वैतभ्रम सब नष्ट होगया तब विशोक होता है ॥ ३१ ॥ भगवन्मार्गकी बात सुनकर यदुकुलका विध्वंस सुनकर युधिष्ठिरने निश्चल चित्त करके स्वर्गके जानेका विचार किया. "भीमसेन सहदेवादि अपने भाइयोंसे कहा—अब हम

एवं चिंतयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ॥ सौहार्देनातिगाढेन शांताऽऽसीद्विमला मतिः ॥ २८ ॥ वासुदेवांघ्र्यभिध्यानपरिबृंहितरंहसा ॥ भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥ २९ ॥ गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्धनि ॥ कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥ ३० ॥ विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संच्छिन्नद्वैतसंशयः ॥ लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिंगत्वादसंभवः ॥ ३१ ॥ निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ॥ स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥ पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ॥ एकांतभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥ ३३ ॥ ययाऽहरद्भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ॥ कंटकं कंटकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ॥ ३४ ॥

जीकर क्या करैंगे ? और यह राज्य हमारे किस कामका है ? जब हमारी बातका बूझनेवाला और पतिका रखनेवाला नहीं है. जब २ हमपर भीड पडतीथी उसीसमय आयके सहाय किया करतेथे, हाय ! अब कौन हमारी रक्षा करैगा ?" ॥३२॥ अर्जुनके मुखसे द्वारकानाथके परमधामके जानेका समाचार कुन्तीने सुनकर एकान्तभक्ति कर भगवान् वासुदेवमें मन लगाय हाय करके अपना शरीर त्यागकर जीवन्मुक्त हुई; "और द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा आदिने रोरोकर इतना विलाप किया कि जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता" ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिर बोले, क्यों वृथाविलाप करो हो ? जन्मरहित भगवान्‌ने जिस शरीरसे भूमिका भार दूर किया उस शरीरको भी त्यागदिया. जैसे कांटेको कांटेसे निकालैं हैं ऐसेही समझो

क्योंकि परमेश्वरको तो दोनों शरीर समान हैं ॥ ३४ ॥ जैसे मत्स्यादिक रूपको अजन्मा ईश्वर धारण करैहै, त्यागन करै है; जैसे नट अनेक रूप धरता है फिर त्यागन करता हैं जिस देहसे जैसे भूभारका नाश किया, ऐसेही वह तनुभी त्याग दिया ॥ ३५ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र इस संसारको त्यागकर परमधामको गये उसी दिनसे अज्ञानियोंके चित्तमें अधर्मका हेतु कलियुग आनकर वर्तने लगा ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने अपने घर, राज्य, नगरमें कलियुगका आगमन जान, लोभ, झूठ, कपट, हिंसा, अधर्मका चक्र आता देख, वनगमनकी इच्छा करी ॥ ३७ ॥ राजा युधिष्ठिरने अपने पोतेको गुणमें अपने समान विनयी गुणग्राही जान समुद्रपर्यन्त भूमिका राज्यतिलक हस्तिनापुरमें करदिया

यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः ॥ भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम्॥३५॥यदा मुकुंदो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ॥ तदाहरेवाऽप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि ॥ विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥ ३७ ॥ स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ॥ तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिंचद्गजाह्वये ॥ ३८ ॥ मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥ ३९ ॥ विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् ॥ निर्ममो निरहंकारः संच्छिन्नाशेषबंधनः ॥ ४० ॥ वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ॥ मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पंचत्वे, ह्यजोहवीत् ॥ ४१ ॥ त्रित्वे हुत्वाऽथ पंचत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ॥ सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥४२॥ चीरवासा निराहारो बद्धवाङ् मुक्तमूर्धजः ॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥४३ ॥

॥३८॥और शूरसेनदेशके पति वज्रनाभको मथुराका राज्याभिषेक कर प्राजापत्य इष्टिकर अग्निको परमेश्वरने पीलिया॥३९॥तहां सब वस्त्र कंकण आदिकोंको त्याग, ममता छोड़, अहंकार तज, सब उपाधिको अलग किया ॥ ४० ॥ वाणीको मनमें लगाय, मनको प्राणमें लीनकर, प्राणको अपानमें और अपानको मृत्युमें लीनकर उत्सर्ग वायुके सहित मृत्युको पंचत्वमें होम दिया ॥ ४१ ॥ पंचभूतोंको त्रिगुणमें, त्रिगुणको अविद्यामें अविद्याको जीवमें, जीवको अव्यय ब्रह्ममें लीन करदिया ॥ ४२ ॥ चीर वस्त्रपहन, भोजनत्याग, मौन बन, शिरके बाल खोल, अपना रूप

पांचों भाइयोंने जड़ उन्मत्त पिशाचकी सदृश वनालिया ॥४३॥सवकी ओरसे दृष्टि फेरली, कान वन्द करलिये, वाहिरसे वन उत्तर दिशाको चल दिये उस दिशाको बड़े बड़े महात्मापुरुष पहिले भी गयेहैं ॥४४॥ हृदयमें परब्रह्मका ध्यान करैंहैं, जहांके गये फिर नहीं आते हैं, ब्रह्मका वेत्ता ब्रह्मही होता है पीछे ब्रह्मलोकको जाताहै सब भैया निश्चयकर युधिष्ठिरके पीछे चलदिये ॥४५॥ अधर्मके मित्र कलियुगने सव प्रजा भूमिमें स्पर्श कर लिया यह देखा॥४६॥सब कृत्योंको साधकर, आत्माकी अत्यन्त क्षेम जान वैकुण्ठनाथ भगवान्‌के चरणारविन्दोंका मनसे ध्यान करने लगे॥४७॥उनके ध्यान और बढ़ीहुई भक्तिसे सब इन्द्रियें विशुद्धकर परात्पर नारायणमें एकान्त मतिकर परमगतिको प्राप्तहुए विपयी असत् पुरुपोंको वह नहीं प्राप्त होती

अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ॥ उदीचीं प्रविवेशाऽऽशां गतपूर्वां महात्मभिः ॥४४॥ हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्ना ऽऽवर्तेत यतो गतः ॥ सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः॥ ४५ ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥ ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वाऽऽत्यंतिकमात्मनः ॥ ४६ ॥ मनसा धारयामासुर्वैकुंठचरणांबुजम् ॥ तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या वि शुद्धधिषणाः परे ॥ ४७ ॥ तस्मिन्नारायणपदे एकांतमतयो गतिम् ॥ अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ॥ विधूतक ल्मषाः स्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥ ४८ ॥ विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ॥ कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥ ४९ ॥ द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ॥ वासुदेवे भगवति ह्येकांतमतिराप तम् ॥ ५० ॥ यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ॥ शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० प्रथ० पञ्चदशोध्यायः ॥ १५ ॥

सब कल्मष धोयकर निर्मल शरीर हो, वैकुण्ठस्थानको गये॥४८॥आत्मज्ञानी विदुरजी भी प्रभासक्षेत्रमें देह त्यागकर श्रीकृष्णमें चित्त लगाय युधिष्ठिरादिसहित अपने अधिकारस्थानको गये ॥ ४९ ॥ अपनी ओर न देखें ऐसे पतियोको जान द्रौपदी भगवान् वासुदेवमें एकान्तमन लगाय परम पदको प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ भगवत्‌के प्यारे पाण्डुके पुत्रोंका यह स्वर्गारोहण श्रद्धासे जो सुनैं हैं वह पवित्र होते हैं सदा मंगल होते हैं, श्रीनारायणमें भक्ति होकर सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥५१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषाटीकायां पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

दोहा—पाय परीक्षित राज जिमि,देखे सब निज देश ॥ सो सब वरणों हितसहित, जो कुछ लखेउ नरेश ॥१५॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि ! महाभागवत परीक्षित् जब ब्राह्मणोंकी शिक्षासे पृथ्वीकी रक्षा करनेलगे, जन्मके समय सब विद्वान् आनकर जैसे जैसे गुण कह गयेथे, वैसेही सब महागुण उनमें सम्पन्न थे ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने राजा उत्तरकी पुत्री इरावतीके साथ विवाह किया उससे जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दक्षिणा देकर तीन अश्वमेध यज्ञ किये. गंगातीरपर कृपाचार्यको गुरु कर, जिस यज्ञमें देवता सन्मुख आन आन कर अपना अपना भाग लेगये ॥ ३ ॥ किसी समय राजाओंकेसा वेष धारण किये शूद्र गौको और बैलको पाँवसे मारता

सूत उवाच ॥ ततः परीक्षिद्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह ॥ यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥ १ ॥ स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ॥ जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत्सुतान् ॥ २ ॥ आजहाराश्वमेधांस्त्रीन्गंगायां भूरिदक्षिणान् ॥ शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः ॥ ३ ॥ निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ॥ नृपलिंगधरं शूद्रं घ्नंतं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥ शौनक उवाच ॥ कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ॥ नृदेवचिह्नधृक्छूद्रः कोसौ गा यः पदाऽहनत् ॥ ५ ॥ तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥ अथ वास्य पदांभोजमकरंदलिहां सताम् ॥ किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ॥ ६ ॥ क्षुद्रायुषां नृणामंग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥ ७ ॥ न कश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहान्तकः ॥ एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ॥ अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥ ८ ॥

कलियुगको दिग्विजयमें अपने पराक्रमसे राजाने पकड़ा ॥४॥ शौनक ऋषि बोले, कि राजा परीक्षित्ने दिग्विजयमें किसलिये कलियुगको पकड़ा ? राजाओंके चिह्न धारनेवाला वह शूद्र कौन था, जो पाँवसे गौको मारताथा ? ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! जो कृष्णकथा अधीन बात होय सो अथवा श्रीकृष्णके पदकमलके मकरन्दके स्वाद लेनेवाले संतोंकी कथा होय सो कहो। खोटी कथाओंसे क्या प्रयोजन है जो वृथा आयुको क्षय करें, जो लोग वृथा अपनी आयुको खोते हैं वही नरकमें वास करते हैं ॥ ६ ॥ हे मुने ! थोड़ी आयु मरणवाले मोक्षकी इच्छावाले मनुष्योंको मृत्यु है, उसको सब कर्म बन्धनका शमन करनेवालेने यज्ञमें बुलाया ॥ ७ ॥ जबतक यह मृत्यु यहां रहैगी तबतक कोई नहीं मरैगा. इसलिये भगवान्,

मृत्युको और परम ऋषियोंको बुलाया और कहा तुमभी यहां बैठकर कथा सुनाकरो. अहो मनुष्यो ! नरलोकमें हरिलीला कथा अमृत पियो, ॥ ८ ॥ कलियुगमें हरिचरित्र श्रवण करनेसे इष्टापूर्त आदि कराये सदृश फल होताहै ॥ मंद, मंद बुद्धिवाले, थोड़ी आयुवाले जीव रात तो सोनेमें गमावे हैं और दिन व्यर्थ कर्मोंमें खोवे हैं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, कि जब परीक्षित् कुरु जांगल देशमें बसतेथे तब अपने चक्रसे रक्षित राज्यमें कलियुग आता जानकर बहुत अमांगलिक बातें सुन परीक्षित्ने धनुष बाण हाथमें लिया ॥ १० ॥ सेनापतिको बुलाकर कहा शीघ्र सेना

"यस्मिन्पीते कृतं सर्वमिष्टापूर्तादिकं भवेत्" ॥ मंदस्य मंदप्रज्ञस्य वयो मंदायुषश्च वै ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥९॥ सूत उवाच ॥ यदा परीक्षित्कुरुजांगले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ॥ निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौंडिराददे ॥ १० ॥ स्वलंकृतं श्यामतुरंगयोजितं रथं मृगेंद्रध्वजमास्थितः पुरात् ॥ वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥११॥ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून् ॥ किंपुरुषादीनि सर्वाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १२ ॥ तत्रतत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ॥ प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥ १३ ॥ आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ॥ स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १४ ॥

सजाओ सुन्दर शृंगार किये श्यामकर्ण घोड़े जिसमें जुतेहुए सिंहध्वज रथमें बैठे रथ घोड़े हाथी सिपाहियोंकी चतुरंगिनी सेना संग लिये दिग्विजयको निकले * ॥११॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारतवर्ष, उत्तरकुरु, किंपुरुष, हरिवर्ष, रम्यक, हिरण्मय, इत्यादि खंडोंको जीतकर बलि लिया ॥ १२ ॥ और उन खण्डोंमें अपने पूर्वके महात्मा पुरुषोंका और कृष्णका माहात्म्य जतानेवाला गायाहुआ यश सुना ॥१३॥ अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे

* शंका–जब राजा परीक्षित् दिग्विजयको गये तब पाण्डवोंका यश सब दिशान्तरोंमें सुना, वह पाण्डवोंका यश और बडाई करनेवाले कौन थे ? क्योंकि जिनको पाण्डवोंने दण्ड दिया उन्होंने पाण्डवोंका यश क्यों गाया ?

उत्तर–जुआरी, चोर, व्यभिचारी, ठग, बटमार, लम्पट और लबारी आदि लेकर जो अनेक दुष्ट हैं, जिनसे भयभीत और डरे हुए जो मुनिजन थे वह सब बारबार अनेक अनेक प्रकारसे पाण्डवोंका यश गान करकरके राजा परीक्षितको सुनातेथे, कि हे राजन् ! तुम्हारे दादा परदादा ऐसे धर्मात्मा और बलवान् थे कि जिनके राज्यमें हम सब आनन्दसे तप करतेथे, और अब तुम्हारे राज्यमें दुष्ट और अत्याचारी हमारी तपस्यामें भग डालतेहैं, और दुःख देतेहैं ऐसे दुःख भरे मुनियोंके वचन सुनकर राजा परीक्षित्ने उसी समय दुष्टोंको मारकर मुनियोंको निर्भय रूप धन प्रदान किया ॥

अपनी रक्षा, यादवोका और पाण्डवोका स्नेह, उनकी केशवमें भक्ति यह सुनी ॥ १४ ॥ उनपर अति सन्तुष्ट हो, प्रीतिसे प्रफुल्लित नयन कर महामना परीक्षित्ने महाधन वस्त्र हार दिये ॥ १५ ॥ अपने प्यारे पाण्डवोंका सारथीपन, पारषद बनना, सेवा करनी, सख्यभाव, दूत बनना, वीरासन बैठकर रक्षा करनी, उनके पीछे चलना, प्रणाम करना, विष्णुकी जगत्कर्तृता सुन राजा परीक्षित्ने विष्णुके चरणारविन्दोंमें मन लगादिया ॥ १६ ॥ ऐसे राजा थे दिन रात उनकी ऐसी वृत्ति थी पूर्वपुरुषोंकी भाँति राज्य करतेथे थोड़ी देर पीछे एक ऐसा आश्चर्य हुआ सो सुनो ॥ १७ ॥ वृषरूपधारी धर्म एक पदसे चलताहै और उसके तीन पद टूटरहे हैं आँखोंसे आंसू चलेजातेहैं, कान्तिहीन, बछडे जिसके

तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृंभितलोचनः ॥ महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ॥ १५ ॥ सारथ्यपारषदसेवन सख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् ॥ स्निग्धेषु पांडुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविंदे ॥ १६ ॥ तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ॥ नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत्तन्निबोध मे ॥१७॥ धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् ॥ पृच्छति स्माऽश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥१८॥ कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसि म्लायतेषन्मुखेन ॥ आलक्षये भवतीमंतराधिं दूरे बंधुं शोचसि कंचनांब ॥ १९ ॥ पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणाम् ॥ अथो सुरादीन्हृतयज्ञभागान्प्रजा उतस्विन्मघवत्यवर्षति ॥ २० ॥

नष्ट होगये हैं, सबकी माता पृथ्वी गोरूप धारण किये उसके समीप खड़ीहै दोनों परस्पर कुछ वार्तालाप कररहे हैं. धर्मने पूछा ॥१८॥ हे भद्रे ! हे अम्ब ! तुम अच्छी तो हो ? मुख मलीनसा होरहा है तनु छीन दिखाई देती है आपके हृदयमें कुछ पीडा तो नहीं है ? अथवा तुह्मारे बन्धु कहीं दूर तो नहीं चलेगये जिस कारण तुम्हारी यह दशाहै ? ॥१९॥ क्या तुमको मेरे पैर टूटे देखकर शोच होगया जो तुम रोतीहो ? कदाचित् तुमको मेरे तीन पांव टूटजानेका दुःखहै ? तुमपर शूद्र राज्य करै हैं यह कष्ट है ? अथवा यज्ञमें जिनको भाग नहीं मिलता उन देवताओंका शोकहै ? वा प्रजाका

दुःखहै क्या मेघ जो नहीं बरसता यह संशयहै ॥२०॥ हे पृथ्वी ! पत्यादि स्त्रीकी, माता पिता पुत्रकी रक्षा नही करतेहैं क्या यह संतापहै? वा पुरुष खानेवाले निर्दयिओंसे महाक्लेशित सबहैं यह विषादहै? कुकर्मियोंमें सरस्वती जाय बसी अथवा जो ब्राह्मणोंको न मानें उनके घर लक्ष्मीदेवी गई, राजा लोग ब्राह्मणोंको न मानने लगे,कुलीन ब्राह्मण सेवकाई करने लगे क्या यह सन्देह है ? ॥२१॥अथवा कलियुगग्रसित क्षत्रिय होगये, उनके राज्य सब कलियुगी होगये सब जीव इधर उधर भोजनके लिये;जल पीनेके अर्थ स्नानके कारण मैथुन करनेको ऊपरको मुख उठाये फिरैहैं॥२२॥ हे अम्ब ! हे धरणि ! अथवा तुम्हारे ऊपर जो बडाभारी भार है इसके उतारनेवाले ईश्वर अवतारधारी अन्तर्धान होगये यह शोक तो नहीं है ? वा मोक्षदायक

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालाञ्छोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ॥ वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥ २१ ॥ किंक्षत्रबंधून्कलिनोपसृष्टात्राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ॥ इतस्ततो वाऽशनपानवासःस्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥ २२ ॥ यद्वांब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ॥ अंतर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलंबितानि ॥ २३ ॥ इदं ममाऽऽचक्ष्व बताऽऽधिमूलं वसुंधरे येन विकर्शितासि ॥ कालेन वा ते बलिना बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमद्य सौभगम् ॥ २४ ॥ धरण्युवाच ॥ भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ॥ चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥ २५ ॥ सत्यं शौचं दया क्षांतिस्त्यागः संतोष आर्जवम् ॥ शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥ २६ ॥

उनके करेहुए कर्मोंको स्मरण करोहो? ॥ २३ ॥ हे वसुन्धरे ! जिसलिये तुम अतिक्लेशितहो, सो अपने दुःखका कारण कहो । अथवा बलियोंके बली काल सहित देवताओंका पूजनीय सौभाग्य अब हरा गयाहै क्या यह अप्रसन्नताहै ? ॥ २४ ॥ पृथ्वी बोली–हे धर्म ! आप तो सब जानो हो तो भी तुम मुझसे बूझोहो, अच्छा मैं ही कहती हूं, लोकके सुखदाता चारपादसे आप वर्तते हैं ॥ २५॥ यथार्थ बोलना १ शुद्ध रहना २ पराया दुःख न सहना ३ क्रोध आवै उस समय मनको रोकना ४ धन मांगै उसको सदा धन देना ५ सदा मग्न रहना ६ किसीसे टेढा न होना ७ मनको निश्चल रखना ८ बाह्य इन्द्रियोंका निश्चल करना ९ अपने धर्मका त्याग न करना १० शत्रु मित्रका दुर्भाव न रखना ११ औरके अपराध सहना १२

लाभ प्राप्तिमें उदासीन रहना १३ सत्शास्त्रका विचार करते रहना १४ ॥ २६ ॥ परमेश्वर है यह ज्ञान मानना १५ तृष्णाका त्याग करना १६ हमारा नियन्ता है यह मानना १७ संग्राममें उत्साह करना १८ प्रभाव रखना १९ चतुराई रखना २० जो काम करना हो उसका स्मरण रखना २१ पराधीन न रहना २२ सब क्रिया कर्ममें निपुण रहना २३ सदा शोभायमान रहना २४ कभी व्याकुल न होना २५ कठोर चित्त न रखना २६ ॥ २७ ॥ बुद्धिको प्रकाशित रखना २७ विजयी रहना २८ सुन्दर स्वभाव रखना २९ सहनशक्ति रखना ३० पराक्रम रखना ३१ देहमें बल रखना ३२ सब भोग भोगना ३३ गम्भीरचित्त रहना ३४ चञ्चल न रहना ३५ सबमें श्रद्धा रखना ३६ जिसमें यश होय सो काम करना ३७ पूजा होय सो

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो वलं स्मृतिः ॥ स्वातंत्र्यं कौशलं कांतिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥२७॥ प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ॥ गांभीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥ २८ ॥ एते चान्यं च भगवन्नित्या यत्र महा गुणाः ॥ प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियंति स्म कर्हिचित ॥ २९ ॥ तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन सांप्रतम् ॥ शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥ ३० ॥ आत्मानं चानुशोचामि भवंतं चाऽमरोत्तमम् ॥ देवा न्पितॄनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपांगमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्नाः ॥ सा श्रीः स्ववासमरविंदवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥ ३२ ॥

कर्म करना ३८ अभिमान न करना ३९ ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! यह उनतालीस गुण भागवानमें हैं और भी महागुण हैं, महत्त्वकी इच्छावालोंको यह करना योग्य है हरिमेंसे यह गुण कभी भी नहीं जाते ॥ २९ ॥ सब गुणपात्र श्रीनिवास सदा हितकारी अब इस पृथ्वीपर नही हैं इसलिये शोच करूंहूं कि पापी कलियुगने सब लोग ग्रसलिये हैं यही शोच है ॥ ३० ॥ मेरे तो वत्स न रहे, केवल आप एक पदसे रहे हैं, देवश्रेष्टको, देवताओंको, पित्रोंको, ऋषियोंको, साधुवोंको, सब ब्राह्मण आदि वर्णोंको, सब आश्रमोंको मैं शोचती हूं ॥ ३१ ॥ लक्ष्मीका कटाक्ष हमपर होय यह कामना कर बहुत दिनतक भगवत्प्रपन्न ब्रह्मादिकने तप किया. सो लक्ष्मी अपने वासस्थान कमलको त्यागकर जिनके चरणारविन्दकी सुन्दरताको अपने हृदयमें

ध्यान करती है ॥ ३२ ॥ भगवान्के कमल, वज्र, अंकुश, ध्वजा इत्यादि चिह्न अंकित श्रीमच्चरणकमलसें अलंकृत थी, और भगवत् विभूतिको प्राप्त होकर त्रिलोकीमें शोभायमान हुई, यह गर्व जब मुझको हुआ तो सब लोकसमेत मुझे त्यागदिया यह शोच है ॥ ३३ ॥ मेरे ऊपर अति भारकारी असुरवंशी राजाओंकी सैकड़ो अक्षौहिणी आपने अपने अधीन होकर मारडालीं, स्थित होनेमें असमर्थ आप धर्मको अपने पुरुषार्थसे स्थापन कर यादवोंमें शरीर धारणकर कार्य किया ॥ ३४ ॥ प्रेमका अवलोकन, मनोहर मुसकान, कोमल वचनोंसे सत्यभामादिकका मान धीरता मथन करतेहुए उनके शोभायमान चरणस्पर्शसे मुझे रोमांच हो आताथा। ऐसे मनमोहनका विरह कौन सहन कर सक्ता है? ॥ ३५ ॥ धरणी और

तस्याऽहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृतांगी ॥ त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदंते ॥ ३३ ॥ यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतंत्रः ॥ त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदंगम् ॥ ३४ ॥ का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ॥ स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदंघ्रिविटंकितायाः ॥ ३५ ॥ तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ॥ परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भा० म हा० प्रथम० षोडशोध्यायः ॥ १६ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ॥ दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलांछनम् ॥ १ ॥ वृषं मृणालधवलं मेहंतमिव बिभ्यतम् ॥ वेपमानं पदैकेन सीदंतं शूद्रताडितम् ॥ २ ॥

धर्ममें परस्पर यह वार्ता होरहीथी, उसी समय पूर्ववाहनी सरस्वती युक्त कुरुक्षेत्रमें परीक्षित् नामक राजऋषि पहुँचे ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां धरणीधर्मसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा—सप्तदशम अध्यायमें, धर्मनृपतिसंवाद । जेहिप्रकार मेटो सकल, धरणीधर्मविषाद ॥१७॥ सूतजी बोले; कि हे शौनकऋषि! तहां राजापरीक्षित्ने देखा कि दण्ड हाथमें लिये शूद्र राजाओंकासा वेष किये, एक पुरुष गाय बैलको माररहा है ॥ १ ॥ कमलनालकी समान श्वेतवर्ण भयभीत एक पदसे स्थित चलनेमें असमर्थ होनेके कारण कम्पायमान गोबर

करते हुए दुःखित शूद्रसे ताडित बैलको देखा ॥ २ ॥ धर्मको पूर्ण करनेवाली, दीन, शूद्रके चरणप्रहारसे तिरस्कृत, वत्सहीन, कृशित, भोजनमें इच्छाहीन नेत्रोंसे आंसू बहाती, गोरूपधारिणी पृथ्वी देखी ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित् सुवर्णखचित रथमें बैठे, धनुषबाण चढाये मेघसमान गम्भीर वाणीसे बूझने लगे ॥ ४ ॥ अरे नीच! तू कौनहै? सब पृथ्वीका राजा तो मैं हूं और मेरे सन्मुख अपने बलसे निर्बलोंको मारता है, प्रगटमें तैंने राजाका वेष धारण कर रक्खा है. परन्तु नटकी नाईं है, तेरा कर्म शूद्रोंके समान है ॥ ५ ॥ तू कौन है? क्या गांडीवधनुषधारी अर्जुनको तैंने दूर गया जाना है, और श्रीकृष्णचन्द्र महाराज त्रिलोकीनाथको तू भूलगया अरु उनको वैकुंठ गया समझा? क्या तैंने पृथ्वीको अभीसे वीरहीन

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ॥ विवत्सामश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥ ३ ॥ पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् ॥ मेघगंभीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥ ४ ॥ कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान्बली ॥ नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ॥ ५ ॥ कस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गांडीवधन्वना ॥ शोच्योऽस्यशोच्यान्रहसि प्रहरन्वधमर्हसि ॥ ६ ॥ त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ॥ वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥ न जातु कौरवेंद्राणां दोर्दंडपरिरंभिते ॥ भूतलेऽनुपतंत्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥ मा सौरभेयाऽनुशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयम् ॥ मा रोदीरंब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ ॥ यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यंते साध्वसाधुभिः ॥ तस्य मत्तस्य नश्यंति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥ १० ॥

समझ लिया? जो गायको और बैलको एकान्तमें सताता है. इस कारण तू महा अपराधी है अरु वध करने योग्य है॥६॥ तब राजाने बैलसे बूझा हे कमलनालसदृशधवलकाय! तुम कौन हो? अरु तीन पांवरहित हो? एकचरणसे चलना चाहते हो, बैलरूप धारण किये कोई देवता तो तुम नहीं हो जो मुझे भ्रम कराते हो? ॥ ७ ॥ कौरवोंके भुजदण्डोंसे रक्षित पृथ्वीपर तुम्हारे विना किसी प्राणीमात्रके दुःखसे आंसू नहीं निकलते हैं ॥ ८ ॥ हे सुरभिनंदन! इस शूद्रसे अब तुमको कुछ भय नहीं होगा, हे गोमाता! तुम्हाराभी कल्याण होगा मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूं ॥९॥ जिस राजाके देशमें साधुप्रजा दुष्टोंसे दुःखित होती है. उस मदान्ध राजाके चार गुण; कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य, परलोक, नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

राजाओंका यही परम धर्म है कि आर्तोंकी पीडा दूर करनी इसलिये मैं इस दुष्टको जीता नहीं छोडूँगा॥११॥हे सुरभिनन्दन! तुम्हारे तीन चरणोंको किसने तोडा तुम तो चार चरणवाले हो "तुम शीघ्र बताओ? मैं अभी उसके हाथ काटूंगा, मैं श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक अर्जुनका पोताहूं, जो तुम्हारा दुःख दूर नहीं करूंगा तो पाण्डवोंके कुलको दोष लगैगा, मनुष्यकी तो क्या सामर्थ्य है जो देवताभी मेरे राज्यमें आन किसी दीनको सतावेगा, निःसन्देह मैं उसी समय उसका शिर काट डालूँगा" श्रीकृष्णके सेवक राजाओके राज्यमें तुमसरीखा कोई न होय॥१२॥ हे वृष! तुम्हारा कल्याण हो निरपराधी

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ॥ अत एवं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥ ११ ॥ कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद ॥ मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥ १२ ॥ आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ॥ आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥ जनेऽनागस्यघं युंजन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ॥ १३ ॥ अनागस्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरंकुशः ॥ आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि सांगदम् ॥ १४ ॥ राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ॥ शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥१५॥ धर्म उवाच ॥ एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ॥ येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥ १६ ॥

साधु सन्तोंको विरूप करना यह राजाओंकी कीर्तिको दूषण लगानेवाला है॥१३॥निरपराधी पुरुषको अपराध लगानेवालेको सब ओरसे मेरा भय रहताहै, ब्राह्मण, बालक, गौ इनको जो दोष निरंकुश होकर लगावे वह देवताभी होय तो उसकी बाजू समेत भुजा काटडालूं ॥ १४ ॥ परम धर्म राजाओंका यही है कि स्वधर्ममें जो स्थित हो उसका पालन करना और विना विपत्तिके समय पाखण्डियोंको शास्त्रके अनुसार शिक्षा करना ॥ १५ ॥ धर्म बोला, कि पाण्डुवंशियोंको यही अभयदान वचन कहना युक्त है जिनके गुणोंसे वशीभूत भगवान्ने दूतादिक कर्म स्वीकार कियेथे ❀ ॥ १६ ॥

* शंका—बैलरूप धर्मसे राजा परीक्षित्ने पूछा कि हे धर्मरूप वृष! तुमको कौनसा दुष्ट प्राणी दुःख देताहै, उसको मुझे बताओ, मैं अभी तुम्हारे दुःखदेनेवाले दुष्टको मारडालूंगा, तब धर्मने अपने दुःख देनेवाले शत्रुको नहीं बताया कि कलियुग मुझको बडा दुःख देताहै, यह बडे आश्चर्यकी बात है कि क्यों नहीं बताया, और क्यों झूठ बोला कि मैं अपने दुःख देनेवालेको नहीं जानता? झूठ बोलना धर्मका काम नहीं। उत्तर—धर्मने ऐसा विचार कर राजा परीक्षित्के सन्मुख अपने वैरीको नहीं बताया, कि यह राजा परीक्षित् पाण्डवोंका पोताहै, और बडा बुद्धिमान् है, अपने मनसेही सब संसारके चरित्रोंको जानलेगा, और ऐसाभी लिखाहै कि अपना प्राण नष्ट होताहो, और दूसरेका प्राण अपने झूठ बोलनेसे बचजाय तो वह झूठ बोलनाभी सत्यकी समान है, धर्मने अपने मनमें विचारा कि जो मैं अपने शत्रुको बताऊगा तो उसी समय राजा उसको मार डालेगा, मुझको पाप होगा अपने मनसे मेरे शत्रुको जैसा चाहैगा वैसा करेगा इसलिये धर्मने झूठ कहा ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! जहां क्लेशका बीज होता है वहभी मैं नहीं जानता, जिनके वचनोंके मदसे जीव विमोहित होता है ॥ १७ ॥ कोई विकल्पवादी आत्मामें आत्माको मानते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहतेहैं, कोई कर्मको, कोई स्वभावको प्रभु मानतेहैं ॥१८॥ किसीने तर्क अनिर्देशनिश्चय किया है, जिस परमेश्वरकी इच्छासे सब जीव उत्पन्न होतेहैं वही परमात्माहै इसमें जो आपको जान पड़े सो अपनी बुद्धिसे विचारलो "मैं किसीका नाम नहीं बता सक्ता कि, किसने मुझे सताया" ॥ १९ ॥ हे द्विजसत्तम! धर्मने जब ऐसे वचन कहे तब तो राजा परीक्षित् चित्त सावधान करके बड़ा दुःखी हुआ "और मनमें विचारा कि यह वृषरूप धारण किये धर्महै. और गोरूपी धरणीहै और यह शूद्ररूपधारी कलियुगहै. इसी दुष्टने धर्मके पांव तोड़कर धरणीको दुःख दियाहै, और इस वसुन्धराके स्वामी परमेश्वर परमधामको चलेगये इसीलिये यह आंखोमे आंसू भरे चिन्ता कररहीहै धर्मात्माका नाम लेनेसे

न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ॥ पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥ १७ ॥ केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ॥ दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥ १८ ॥ अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ॥ अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश्य स्वमनीषया ॥१९॥ एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड् द्विजसत्तम ॥ समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्टतम् ॥ २० ॥ धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ॥ यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥ २१ ॥ अथ वा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ॥ चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥ २२ ॥ तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः ॥ अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसंगमदैस्तव ॥ २३ ॥ इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ॥ तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥ २४ ॥

धर्म और पापीका नाम लेनेसे पाप होता है इसी कारण वृषरूपी धर्मने कलियुगको पापी जानकर उसका नाम नहीं लिया, यह विचार परीक्षित बोला" ॥ २० ॥ हे धर्मज्ञ! क्या तुम धर्म हो? वृषरूप धारण किये बोलतेहो, जो कोई अधर्मकी बात करताहै और जो उसकी सूचना करताहै उन दोनोंको इकसार पाप होताहै ॥२१॥ अथवा देवताओंकी मायाको कोई नही जानसक्ता, मन वचनसे जो जीवोंको निश्चय होय वही श्रेष्ठहै ॥२२॥ धर्मके चार चरण, तप, सत्य, शौच, दया, है और अधर्मके अंशसे विस्मय, परस्त्रीप्रसंग, मद यह तीनहैं, इनके प्रवृत्त होनेसे तीन चरण टूटकर एक चरण शेष रहगयाहै ॥ २३ ॥ अब हे धर्म! सत्य एकचरण तुम्हारा रहगयाहै उसको भी यह कलियुग तोड़ना चाहताहै, क्योंकि झूंठ बोलनेसे

यह कलियुग बढ़ताहै ॥ २४ ॥ भगवानने सब भार जिसका दूर किया ऐसी सती वसुन्धरा श्रीमान्पदोंके स्पर्शसे सब ओरसे मंगलरूप होरहीथी ॥ २५ ॥ सो आज कृष्ण महाराजके विरहसे व्याकुलहो आंखोंसे आंसू बहारहीहै, साध्वी जैसे दुर्भागिनीहो शोक करैहै ब्राह्मण निन्दक राजा रूपधारी शूद्र मेरे ऊपर राज्य करें यह कठिन दुःखहै ॥ २६ ॥ महारथी राजाने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको शान्तकर, तीक्ष्णखड्ग अधर्मी कलियुगके वधके निमित्त उठाया ॥ २७ ॥ जब कलियुगने देखा कि यह बलवान् राजा इससमय क्रोधमें भररहाहै और मुझको मारनेके लिये उपस्थितहै, और मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं जो इससे युद्धकरूं, यह विचार कर नृपके सब चिह्न त्याग भयभीतहो राजाके चरणोंमें

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ॥ श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥ २५ ॥ शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताऽधुना ॥ अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यंति मामिति ॥ २६ ॥ इति धर्मं महीं चैव सांत्वयित्वा महारथः ॥ निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥ २७ ॥ तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ॥ तत्पादमूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥ २८ ॥ पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः ॥ शरण्यो नावधीच्छ्लोक्यः आह चेदं हसन्निव ॥ २९ ॥ राजोवाच ॥ न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ॥ न वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥ ३० ॥ त्वां वर्तमानं नरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ॥ लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च माया कलहश्च दंभः ॥ ३१ ॥

गिरपड़ा और अपने प्राण बचानेके लिये राजाकी विनती करनेलगा ॥ २८ ॥ राजा उस शूद्रको अपने पैरोंमें पड़ा देख दीनवत्सल कृपालु हँसकर बोले, कि शरणागतको नामी नरेश नहीं मारते ॥ २९ ॥ राजा बोले–कि अर्जुन सरीखे यशस्वियोंके हाथजोड़, जो शरण आयाहै उसको किसी प्रकारका भय नहीं है परन्तु तू अधर्मका रूपहै जहां तक हमारा राज्यहै तुझे रहना उचित नहीं शीघ्र यहांसे चलाजा ॥ ३० ॥ नरदेह धारणकर जो तू रहैगा तो अधर्मका समूह बढैगा; लोभ, अनृत, चौर्य, मूर्खता, अहंकार, पाप, माया, क्लेश, दम्भ यह अधिक बढैंगे ॥ ३१ ॥

हे अधर्मके मित्र ! तू यहाँ मत रह, और जो सत्य, धर्म, व्रत, करै तो रह, यज्ञके विस्तारमें चतुर ज्ञानी लोग इस ब्रह्मावर्तमें यज्ञेश्वरका यज्ञसे यजन करै हैं ॥३२॥ इस यज्ञमें भगवान् वासुदेवका पूजन होताहै. यज्ञमूर्ति ईश्वर यज्ञ करनेवालोको कल्याण करतेहैं अमोघ सब कामना पूर्ण होती हैं. जैसे स्थावर जंगमोंके बाहर भीतर वायु रहैहै तैसे ईश्वर रहैहै ॥३३॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियो ! जब राजा परीक्षित्ने यह वचन कहे तब तो कलियुग थरथर कांपने लगा. खड्ग हाथमें लिये यमराजकी नाईं राजा परीक्षित्को देखकर बोला ॥ ३४॥ हे महाराज ! तुम्हारी आज्ञासे जहां कहीं रहूंगा तो वहां भी आप धनुष बाण लिये मेरे पीछे फिरोगे; इसकारण मैं यहां नहीं रहूंगा ॥३५॥ हे धर्मवानोंमें श्रेष्ठ ! ब्रह्माने चार युग रचे, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर अपना अपना राज्य भोगचुके, अब मेरे राज्य करनेका समय आया और ४३२००० (चारलाख बत्तीस सहस्र) वर्षकी मेरी अवस्था है,

न वर्तितव्यं तदधर्मबंधो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ॥ ब्रह्मावर्ते यत्र यजंति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमानः इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ॥ कामानमोघान्स्थिरजंगमानामंतर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥ ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ॥ तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३४ ॥ यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ॥ लक्षये तत्रतत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥ ३५ ॥ तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ॥ यत्रैव नियतो वत्स्ये आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥ ३६ ॥

सो मुझको भोगनी पड़ैगी और मुझे आप आज्ञा देते हैं कि, तू हमारे राज्यसे निकलजा सो सात द्वीप नौखण्डमें तो आपका राज्यहै फिर मैं कहां जाकर बसूं ? और जो विधाताका लेख है वह किसी प्रकार मिट नहीं सक्ता, फिर मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? हे दीनदयालु ! आप मेरे अवगुणोंका विचार तो करते हैं परन्तु मेरे गुणोंकी ओर ध्यान नहीं करते सो मुझमें एक गुण अत्यन्त उत्तमहै वह आपसे निवेदन करताहूं सतयुगमें जिस राजाके राज्यमें एक मनुष्य अपराध करताथा और समस्त राज्यभरके मनुष्य दण्ड पातेथे, त्रेतामें एक मनुष्यके पाप करनेसे सब ग्रामका ग्राम दण्डका भागी होताथा और द्वापरमें जो कोई कुकर्म करताथा तो उसके सब कुटुम्बको शासना दीजातीथी और कलियुगमें जो पुरुष अन्याय करताहै वही अपने शरीरसे भोगता है दूसरेसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, और युगोंमें मनुष्योंको मनसा पाप

लगताथा और उसका दण्ड भोगना पड़ताथा, सो मेरे राज्यमें मनसा पाप नहीं लगता, बरन् मनसा पुण्यका फल मिलताहै. जब इस बातपर राजा परीक्षित् संतुष्ट न हुये और उनके मनमें दया नहीं आई तो फिर कलियुगने कहा हे दीनानाथ ! मुझमें एक गुण और बड़ा लाभदायक है सतयुगमें जो कोई वैकुण्ठके जानेके लिये दशसहस्र वर्ष जप तप संयम करताथा तब उसकी मनोकामना सफल होतीथी, त्रेतामें जब मनुष्य बहुत साधन लगाकर सहस्र वर्षतक अश्वमेध यज्ञ करते थे तब उनका मनोरथ सिद्ध होताथा, द्वापरमें सौवर्षतक दान, व्रत, पूजा, ध्यान भगवान् वासुदेवका करनेसे पूर्ण इच्छा होतीथी. और मेरे राज्यमें जो मनुष्य एक पल मात्रकोभी एकाग्रचित्तकरके सच्चे मनसे परमेश्वरका भजनकरै, वा सच्चे मनसे हृदयमें ध्यान करै, और उनकी कथा वार्ता सुनै वह अपने सर्वत्र कार्यको साध अनेक जन्मके पापोंसे छूट मोक्षका भागी होताहै जब कलियुगमें यह पूरा गुण सुना, तब तो राजा परीक्षित् कलियुगपर बहुत प्रसन्न हुए;

सूत उवाच ॥ अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ॥ द्यूतं पानं स्त्रियस्सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥ ३७ ॥ पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ॥ ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पंचमम् ॥ ३८ ॥ अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ॥ औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥ ३९ ॥ अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ॥ विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥ ४० ॥

तौ कलियुग हाथ जोड़कर बोला, कि हे पृथ्वीनाथ ! हे दयानिधि ! हे दीनदयालु ! जो आप मुझपर प्रसन्न हो तौ कृपा करके मुझको प्राणदान दीजै. और जिस स्थानपर आपकी आज्ञा मेरे रहनेकी हो मैं वहां निश्चिन्त होकर रहूं, और सदा आपका आज्ञाकारी रहूंगा ॥ ३६ ॥ जब इस प्रकार कलियुगने प्रार्थना करी तब राजा कलियुगके लिये स्थान बताने लगे, जहाँ जुआ होताहो, जहाँ मदिरा बिकताहो, जहां वेश्या रहतीहों और जहां जीवहिंसा होतीहो, यह चार स्थान तुमको दिये तुम इन चारो स्थानोंमें वास करो ॥३७॥ फिर विनती करके कलियुग बोला हे कृपासिन्धो ! मेरा कुटुम्ब बहुतहै इन स्थानोंमें कैसे समायगा, तब राजाने कहा—सोनेमेंभी तुम रहो, इसी प्रकार; झूठ, मद, काम ,रजोगुण, वैर यह पांच स्थान तुमको और दिये राजापरीक्षित्के दिये हुए उन्हीं पांचों स्थानोंपर अधर्मी कलिने अपना वास किया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो पुरुष संसारमें अपनी

वृद्धि चाहै तो इन पांचोंके निकट न जाय, धर्मात्मा राजा, लोकपति, विशेष करके इनका सेवन नहीं करै ॥ ४० ॥ धर्मरूपी वृषके तीन पद, तप शौच दया यह नष्ट होगयेथे इनको अपने धर्मसे अच्छा किया, और पृथ्वीकोभी धैर्य देकर शान्तकिया ॥ ४१ ॥ सो यह राजा परीक्षित् राजाओंके योग्य आसनपर बैठे. जो राजसिंहासन राजा युधिष्ठिर और अर्जुन वनको जाते समय इनको देगयेथे ॥ ४२ ॥ अब वह राजऋषि कौरवोंकी शोभाबढानेवाले महाभागवत चक्रवर्ती, महायशस्वी, हस्तिनापुरमें हैं ॥ ४३ ॥ राजा अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित्का ऐसा प्रतापहै कि, वह समस्त पृथ्वीका पालन करतेहैं, तबही तुम यज्ञ करतेहो ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां कलिनिग्रहोनाम सप्तदशोऽध्यायः

वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति ॥ प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥ ४१ ॥ स एष एतर्ह्यध्यास्ते आसनं पार्थिवोचितम् ॥ पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञाऽरण्यं विविक्षता ॥ ४२ ॥ आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेंद्रः श्रियोल्लसन् ॥ गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४३ ॥ इत्थंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ॥ यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० प्रथमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ॥ अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ १ ॥ ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ॥ न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥ २ ॥ उत्सृज्य सर्वतः संगं विज्ञाताजितसंस्थितिः ॥ वैयासके र्जहौ शिष्यो गंगायां स्वं कलेवरम् ॥ ३ ॥ नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ॥ स्यात्संभ्रमोंतकालेऽपि स्मरतां तत्पदांबुजम् ॥ ४ ॥

॥ १७ ॥ दोहा—अष्टादशअध्यायमें, कियोनृपतिअतिपाप । ताकेबदलेमेंदियो, शृंगीऋषिने शाप ॥ १८ ॥ जो राजा परीक्षित् अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर माताके पेटमें नहीं मरे. यह अद्भुतकर्मवाले श्रीकृष्णजीकी ही कृपाथी ॥ १ ॥ ब्राह्मणने क्रोध करके यह शाप दिया कि तुझको तक्षक सांप काटैगा तौभी इस प्राण नाशक महाभयसे मोहित न हुए, और भगवान् वासुदेवके चरण कमलमें ही लवलीन रहे ॥ २ ॥ सबका संग त्याग वैरागले, भगवत्तत्त्व जान व्यासपुत्र श्रीशुकदेव मुनिके समीप श्रीगंगाजीके तटपर तनुत्याग किया ॥ ३ ॥ ऐसे श्रीमद्भागवतकी वार्त्ता सेवन

करनेवाले, उनकी कथा अमृतपान करनेवालोंको श्रीकृष्णचन्द्रके चरण कमल स्मरण करनेवालोंको अन्तकालमेंभी संभ्रम नहीं होता है ॥ ४ ॥
कलियुग प्रविष्ट तो हुआ परन्तु सब स्थानोंमें अभीतक प्रवेश नहीं किया जबतक पृथ्वीनरेश परीक्षित् राज्य करते रहे ॥ ५ ॥ जिस दिनसे जिस
समयसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने पृथ्वीको त्यागा, उसी दिनसे यहां अधर्मवर्द्धक कलियुगने सब पृथ्वीपर प्रवेश किया ॥ ६ ॥ राजा
परीक्षित्‌ने कलियुगसे शत्रुता नहीं की भ्रमरवत् सारग्राही हुए, क्योंकि जिस कलियुगमें मानसी पुण्य तो संकल्प मात्र करनेसे सिद्ध होताहै,
और संकल्प करनेसे पाप नहीं होता. कदाचित् करोभी तो उसका फल तत्काल नहीं होता ॥ ७ ॥ जो प्राणी धैर्यसे कार्य करनेवाले हैं उनका

तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोपीह सर्वतः ॥ यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भग
वानुत्ससर्ज गाम् ॥ तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥ ६ ॥ नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारंग इव सारभुक् ॥ कुशला
न्याशु सिध्यंति नेतराणि कृतानि यत् ॥ ७ ॥ किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा ॥ अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको
नृषु वर्तते ॥ ८ ॥ उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया ॥ वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥ ९ ॥ यायाः कथा
भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ॥ गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समाः
सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ॥ यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥ ११ ॥ कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रा
त्मनां भवान् ॥ आपाययति गोविंदपादपद्मासवं मधु ॥ १२ ॥

अधर्मी कलियुग क्या कर सक्ता है, मदान्ध मनुष्योंमें कलियुग शीघ्र प्रवेश करै है जैसे बालकोंमें भेडिया आताहै और शूरमाओंके निकट
नहीं आता ॥ ८ ॥ पुण्यरूप परीक्षित्‌का आख्यान हमने आपके सामने वर्णन किया. भगवान् वासुदेवकी कथा वार्ता जिसमें होय ऐसा
आख्यान कोई और बूझो ॥ ९ ॥ कथनयोग्य श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म हैं उन भगवान् वासुदेवकी जो जो कथा गुण कर्म आश्रयहैं वह मनुष्य संसारमें
सुखकी इच्छा करनेवालोको सदा सेवने योग्यहैं ॥ १० ॥ सब ऋषि बोले कि हे सूत ! हे सौम्य ! सहस्र वर्षकी तुम्हारी आयु हो, बहुत दिनोंतक
संसारमें तुम्हारा यश रहै, जो तुम श्रीकृष्णचन्द्रके चारित्र मनुष्योंको अमृतके तुल्य पान करातेहो ॥ ११ ॥ अविश्वासवाले इस कर्मरूपी

धुयेंसे धुंधरी आत्मा हमारी होगई, सो आप मनुष्योंको अमृतरूपी श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका मधुपान कराओ ॥ १२ ॥ भगवतके भक्तोंके संग करनेवालोंको एक लव मात्रके सत्संगकी समता स्वर्ग नहीं कर सक्ता, न मुक्तिका आशीर्वाद उन्हें देसक्ते हैं ॥ १३ ॥ महात्माओंके एकान्त ध्यान उनकी कथामें कौन रसवेत्ता तृप्त होताहै ? कोई नहीं. निर्गुणी ईश्वरके गुणोंका अन्त योगेश्वर, शिव, ब्रह्मादिक नहीं जान सक्ते ॥ १४ ॥ हे विद्वज्जन ! हरिके उदार विशुद्ध चरित्र सुननेवाले लोगोंसे भगवत्प्रधान आप विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १५ ॥ महाभागवत मोक्षके जाननेमें चतुर बुद्धिमान्

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३ ॥ को नाम तृप्येद्रसवित्कथाया महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ नांतं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥ १४ ॥ तन्नो भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ हरेरुदाराचरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥ १५ ॥ स वै महाभागवतः परीक्षिद्येना ऽपवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ॥ ज्ञानेन वैय्यासकिशब्दितेन भेजे खगेंद्रध्वजपादमूलम् ॥ १६ ॥ तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्या नमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ॥ आख्याह्यनंताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्मद्वृद्धानुवृत्त्याऽपि विलोमजाताः ॥ दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥ १८ ॥ कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ योऽनंतशक्तिर्भगवाननंतो महद्गुणत्वाद्यमनंतमाहुः ॥ १९ ॥

राजा परीक्षित्, व्यासपुत्र शुकाचार्यके कहेहुए ज्ञानसे गरुडध्वज श्रीहरिके चरणोंके समीपको प्राप्तहुए ॥ १६ ॥ अतिश्रेष्ठ, पुण्यदायक, जिसमें सुगम अर्थ, अति अद्भुत, योगागम्य, अनन्त चरित्र युक्त, परीक्षित्की जिसमें कथान्क, भागवतोंको आनन्ददायक बहुत बड़ा आख्यान हमसे कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! बड़े आनन्दकी बात है कि विलोममें हमारा जन्म है तो भी वृद्धोंकी सेवासे हमारा जन्म सफल हुआ और महात्माओंका सत्संग कुलके जन्मकी जो मानसी पीड़ा है उसको शीघ्र नाश करताहै ॥ १८ ॥ महात्माओंका एकान्तमें चिन्तवन योग्य

श्रीनारायणका नाम लेना सब पापोंसे छुड़ाता है, अनन्तशक्ति भगवान् अनंत महागुणवान् होनेसे अनंत कहाते हैं ॥ १९ ॥ बस इतनाही कहना पूर्ण है कि, गुणोंमें जिनकी समान कोई नहीं, लक्ष्मीकी जिनको इच्छा नहीं, ऐसे परमात्माके चरणोंकी रेणुओंको लक्ष्मी दिन राति सेवन करती है और ब्रह्मादिककी प्रार्थनाको भी त्याग देतीहै ॥ २० ॥ जिनके चरणनखका प्रक्षालन गंगाजी ब्रह्माजीसे धोयाहुआ जल सबको पवित्र करताहै ऐसे सर्वसामर्थ्यवान् भगवान् वासुदेवसे अधिक और भगवत्पदार्थ लोकमें कौनहै अर्थात् कोई नहींहै ॥ २१ ॥ जहां अनुरागी धीर देहादि कोंमें सबका संग त्यागकर परमहंसोंका आश्रम जो सबके पीछेकाहै उसको जाते हैं. जिसमें कोई हिंसा नहींहै उपशांति आदि अपना धर्म उसमें है

एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ॥ हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्यांघ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥२०॥ अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिंचोपहृतार्हणांभः ॥ सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुंदात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः॥२१॥ यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु संगमूढम्॥व्रजंति यत्पारमहंस्यमंत्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ २२॥ अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ॥ नभः पतंत्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३ ॥ एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वने ॥ मृगाननुगतः श्रांतः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥ २४ ॥ जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ ददर्श मुनिमासीनं शांतं मीलितलोचनम् ॥ २५ ॥ प्रतिरुद्धेंद्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ॥ स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥ २६ ॥

॥ २२ ॥ हे सूर्यसमान ! हे त्रयीमूर्ति ! आपने जो हमसे बूझा है सो जितना मुझको ज्ञानहै उतना हम आपसे कहैंगे जैसे पक्षी लोग अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ैहैं, उसीभाँति विष्णु नारायणकी लीलाको अपनी बुद्धिके अनुसार विद्वान् लोक कहतेहैं ॥ २३ ॥ एक दिन राजा परीक्षित् धनुष बाण लेकर वनमें आखेट खेलनेको गये, मृगोंके पीछे दौड़नेसे भूख प्यासके मारे अत्यन्त व्याकुल हो ॥ २४ ॥ जलाशय ढूँढ़ते ढूँढ़ते एक आश्रममें प्रवेश किया, वहां एक ऋषीश्वर शान्तस्वरूप नेत्र मूँदे बैठे देखे ॥ २५ ॥ प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियें, सब जीते, सबसे उपराम हुए, तीनों अवस्थासे

तुरीया अवस्थाको प्राप्त हुए, क्रियारहित, ब्रह्मभूत, ब्रह्मरूप हो रहेथे ॥ २६ ॥ जटा सब शरीरपर बिखर रहीं रुरुनामक मृगके चर्मके ऊपर बैठे. जिनको देहका कुछ अनुसंधान नहीं, उन शमीक मुनिसे भूख प्यासका मारा शुष्ककण्ठ राजा बोला ॥ २७ ॥ "मैं पियासाहूं" जब ऋषिने, तृण, भूमि, अर्घ्य, मीठे वचनोसे राजाका सत्कार नहीं किया, तब राजाने अपने मनमें समझा कि इसको अपने तपका घमण्ड है. इसलिये इसने मेरी अवज्ञा करी, यह समझ राजाके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन्! ऐसा कभी नहीं हुआ जो राजा भूख प्याससे व्याकुल हो ब्राह्मणों

विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ॥ विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥ २७ ॥ अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्ताऽर्घसूनृतः ॥ अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥ २८ ॥ अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृडभ्यामर्दितात्मनः ॥ ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च ॥ २९ ॥ स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ॥ विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥ ३० ॥ एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ॥ मृषा समाधिराहोस्वित् किं नः स्यात्क्षत्रबंधुभिः ॥ ३१ ॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः ॥ राज्ञाऽघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

पर क्रोध और मत्सरता की हो ॥ २९ ॥ यह विचारकर राजा परीक्षित उस ब्रह्मऋषिके कण्ठमें मरा हुआ सर्प क्रोध करके धनुषके अग्रभागसे डालदिया और अपने नगरको चला आया "अरु मार्गमे मनही मन यह कहता जाताथा" ❁ ॥ ३० ॥ सब इन्द्रियोको रोके नेत्र मूंदे झूंठी समाधि लगाये इसने अपने मनमें यह समझा होगा कि क्षत्रिय लोग हमारा क्या करैंगे ? ॥ ३१ ॥ उनका अतितेजस्वी बालकपुत्र बालकोंके

* शका–राजा परीक्षित तो बडा बुद्धिमान्था फिर उसकी बुद्धि भ्रष्ट क्यो होगई ? जो नीचपनसे राजा परीक्षितने मराहुआ साँप उठाकर मुनिके गले में डालदिया, यह क्या कौतुक किया? ऐसा काम तो कोई उन्मत्तभी नहीं करता जो कदापि ऐसा मान लियाजाय कि परीक्षितकी बुद्धि कलियुगने भ्रष्ट करदी तोभी शोभा नहीं होती, क्योंकि कलियुगको राजा परीक्षितने रहनेके लिये स्थान दिया, तब कलियुगसे राजा परीक्षितने कहा कि हमारे राज्यमें तू अपना पराक्रम मत करना, इसप्रकार राजाका और कलियुगका वचन हुआ था, सो कलियुगने तुरन्तही अपने वचन को छोड दिया ?

उत्तर–राजा परीक्षित सात वर्षका बालकथा, तब बालकोका खेल खेलते खेलते पाण्डवोंकी सभामें गया, वहाँ पावक मुनि बैठेथे उनको सूतके सर्पसे डरादिया, तब सभामें पावकमुनि जो विराजमानथे उन्होंने परीक्षितको शाप देदिया और कहा कि, पाण्डवोके देखते देखते हे दुष्ट बालक ! हमको सर्पसे डराता है इसलिये तेरी मृत्युभी सर्पसे होगी, उस मुनिके शापसे राजाकी बुद्धि भ्रष्ट होगईथी, तब ऐसा बडा पाप राजा परीक्षितने किया ॥

संग खेलता था, वहां किसी लडकेने आकर कहा, हे बन्धो ! आज तुम्हारे पिताके गलेमें राजा परीक्षित मरा हुआ साँप डाल गये हैं. यह बात सुन शृंगीऋषि कहने लगा ॥ ३२ ॥ बडा अधर्म है, कि पालक, पुष्ट, दास, द्वारपालक, राजाओंको अपने स्वामीमें अपराध करना नहीं चाहिये, जैसे काक, श्वान करते हैं ॥ ३३ ॥क्षत्रियोंको ब्राह्मणोंने द्वारपालक किया है. सो द्वारवासी घरमें जाकर उसी पात्रमें कैसे भोजन करने योग्य है ॥ ३४ ॥ पाखण्डियोंके शिक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीसे चले गये, सो मैं धर्मके सेतु तोड़नेवालोंको आज भली भांति शिक्षा करता हूं, तुम सब मेरा पुरुषार्थ देखो ॥३५॥ यह कह शृंगीऋषि क्रोधसे लाल नेत्रकर अपने समान बालकोंके सन्मुख कौशिकी नदीका जल हाथमें लेकर राजाके ऊपर

अहो अधर्मः पालानां पीव्नां बलिभुजामिव ॥ स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रबंधुर्हि द्वारपालो निरूपितः ॥ स कथं तद्गृहे द्वाःस्थः सभांडं भोक्तुमर्हति ॥ ३४ ॥ कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ॥ तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ॥ कौशिक्याऽप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥ ३६ ॥ इति लंघितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ॥ दंक्ष्यति स्म कुलांगारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥ ३७ ॥ ततोऽभ्येत्याऽऽश्रमं बालो गले सर्पकलेवरम् ॥ पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकंठो रुरोद ह ॥ ३८ ॥ स वा आंगिरसो ब्रह्मञ्छ्रुत्वा सुतविलापनम् ॥ उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥ ३९ ॥ विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि ॥ केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥ ४० ॥ निशम्य शप्तमतदर्हं नरेंद्रं स ब्राह्मणो नाऽऽत्मजमभ्यनंदत ॥ अहो बतांहो महदद्य ते कृतं स्वल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥ ४१ ॥

वाग्वज्र छोड़ा ॥३६॥ आजसे सातवेंदिन मर्यादानाशक कुलमें अंगाररूप मेरा भेजा तक्षकसर्प मेरे द्रोहीको काटै ॥३७॥ पीछे आश्रमपर आनकर अपने पिताके गलेमें सर्प पड़ा देख बहुत दुःखी हुआ और धाड़े मार मारकर रोने लगा ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस अंगिरागोत्री शमीकऋषिने पुत्रका विलाप सुन, साधारणसे नेत्र खोलकर अपने कण्ठमें मरा सांप देखा ॥ ३९ ॥ उसको निकाल पुत्रसे बोले, हे पुत्र ! क्यों रोता है ? किसने तेरा अनादर किया ? यह बात पिताके मुखसे सुन, उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥४०॥ यह बात सुन शमीकऋषि घबराकर बोले. "अरे बेटा ! तैंने

यह क्या किया? जो राजा परीक्षित शापके योग्य नहीं थे उनको तैंने विना समझे शाप दिया, अरे पुत्र! यह अच्छा नहीं हुआ" बडे खेदकी बात है कि थोडे अपराध करनेपर द्रोहसे ऐसा कठिन दण्ड दिया ॥ ४१ ॥ हे मूर्ख! राजा परीक्षित मनुष्योंके समान नहीं हैं, उनका पराजय करना योग्य नहीं है. जिनके महातेजसे प्रजा रक्षित हो भयरहित सदा सुख भोगती है ॥४२॥ श्रीभगवतका स्वरूप राजा प्रजाकी रक्षा न करै तो यह लोक चोरोंके बढ़नेसे नष्ट होजाय. मेढ़ोंके समूहकी भाँति ॥ ४३ ॥ जब राजा नष्ट हो जायगा तो उनका धनभी लूट जायगा. इस पापसे हमारा सब वंश पाप भोगेगा, परस्पर मरैंगे, मारैंगे, शापदेंगे, वहुत चोर लुटेरे बढ़कर, पशु, स्त्री, इत्यादि अनेक पदार्थ हरे जायँगे ॥ ४४ ॥ तब सदाचार, धर्म, वेदोक्त

न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ॥ यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विंदंति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥ ४२ ॥ अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथांगपाणावयमंग लोकः ॥ तदा हि चौरप्रचुरो विनंक्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥ ॥ ४३ ॥ तदद्य नः पापमुपैत्य नन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुंपकात् ॥ परस्परं घ्नंति शपंति वृंजते पशून्स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ॥ ४४ ॥ तदार्यधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ॥ ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥ ४५ ॥ धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः ॥ साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ॥ क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवाऽस्मच्छापमर्हति ॥ ४६ ॥ अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनाऽपक्वबुद्धिना ॥ पापं कृतं तद्भगवान्सर्वात्मा क्षंतुमर्हति ॥ ४७ ॥

वर्णाश्रम, आचार, सब मनुष्योंके लीन हो जायँगे अर्थ कामकी अभिलाषा करनेवाले, वानर, श्वान पशुओंकी नाईं सब वर्णसंकर होजायँगे ॥४५॥ हे पुत्र! धर्मकी रक्षा करनेवाला नरपति साक्षात् महायशस्वी, राजर्षि, अश्वमेधकारी, राजा परीक्षित है ॥ क्षुधा, तृषा, परिश्रमसहित, अपने स्थानपर आया और हमारे यहां आकर उलटा शापित हुआ, क्या वह शापके योग्य था? ॥ ४६ ॥ यह बात शमीक ऋषिने अपने पुत्र शृंगीऋषिसे कही फिर परमात्माका ध्यान करके यह प्रार्थना की कि हे नाथ! मेरे पापरहित अज्ञान बालक सेवकसे बड़ा अपराध हुआ. इस अज्ञान बालकका

दोप क्षमा करो॥४७॥तिरस्कृत, वंचित, शापित, अवमानित, ताड़ित, भगवानके भक्त अपने अपराध करनेवालेको शाप नहीं देते॥४८॥ पुत्रके अपराधसे महामुनि अत्यन्त दुःखी हुए. परन्तु राजाने जो अपराध किया उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया॥४९॥ बाहुल्य करके लोकमें परकार्यके साधक ब्राह्मणोंको दुःख सुख कुछ नहीं व्यापता न उनको कोई व्यथा होय, न वह प्रसन्न होंय.क्योंकि वह गुणोंसे सर्व व्यापक ईश्वरके समान आप हो जाते हैं. ❀॥५०॥ इति श्रीभा. महा. प्रथमस्कन्धे भा. टी. यां विप्रशापवर्णनो नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥ दोहा—वरणों कथाविशेपसव, यथा शाप इतिहास॥

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि ॥ नास्य तत्प्रतिकुर्वंति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥ ४८ ॥ इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः॥ स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाऽघं तदचिंतयत् ॥४९॥ प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वंद्वेषु योजिताः॥ न व्यथंति न हृष्यंति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे प्रथमस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
सूत उवाच ॥ महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिंतयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ॥ अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥

राजकाज तज नृपतिज्यो,कीन्ह गंगतटवास॥१९॥ सूतजी बोले कि हे शौनक मुनि! राजा परीक्षितने अपने आप जो निंदित कर्म किया उसका चिन्तवन कर अपने मनमें बहुत दुःखी होकर कहने लगे, कि मैंने बिना अपराध ब्राह्मणको सताया जिनका तेज छिपाहुआ निरपराधी ब्राह्मणपर महानीच

* "फिर शमीकऋपिने सोचा कि जो कुछ होनाथा सो हुआ परन्तु राजाको यह वृत्तान्त अवश्य कहला भेजना चाहिये, जिससे वह अपनी मोक्षका उपाय करले, यह बात सुनकर जगत्के लोग तो शृंगी ऋपिको दूपण देहींगे परन्तु ऐसे धर्मात्मा राजाको यह बात अवश्य जतादेनी चाहिये" यह विचार शमीकमुनिने एक अपने शिष्यसे कहा तू राजा परीक्षितके पास जाकर हमारी ओरसे आशीर्वाद देकर यह कहना कि, शृगीने तुमको शाप दियाहै कि सापके काटनेसे तुम्हारी अकालमृत्यु होगी,सो तुम सावधान होकर अपनी मोक्षका यत्न करो इतनी कथा कह सूतजी बोले, कि हे ब्रह्मन्! देखो जो राजा परीक्षित अश्वत्थामाके अस्त्रसे बचा जिसने धर्मकी और वरणीकी रक्षाकर कलिकालको अपने वशमे किया, वही राजा परीक्षित एक ब्राह्मणके बालकके शापसे सर्पके मुखमे गया और किसीसे उसकी रक्षा न हुई ऐसा तेज और महा घोर क्रोध ब्राह्मणोंका है ॥ ५१ ॥

कर्म अपनी मूर्खतासे मैंने किया ॥१॥ निश्चयहै कि मैंने ईश्वरके भक्त महात्माकी * अवज्ञा करीहै इसलिये थोड़े दिनोंमें अत्यन्त दुःख शीघ्र इस पापके प्रायश्चित्तके लिये मुझकोहो, मेरी यह इच्छाहै, क्योंकि अपने आप फिर ऐसा पाप मैं न करूं ॥२॥ राज्य, सेना, ऋद्धि, कोष, अत्यन्त कुपित ब्राह्मणके कुलसे उठी आग क्षणमात्रमें सबको भस्म करदे. जो मुझ अमंगलीककी ऐसी पापी बुद्धि, ब्राह्मण, गो, देवतामें फिर कभी न होय॥३॥ ऐसे चिंतवन करही रहेथे, उसी समय शमीकमुनिके भेजेहुए एक शिष्यने आकर कहा, कि हे राजन्, शमीकमुनिके पुत्र शृंगीऋषिने आपको यह शाप दियाहै; कि आजसे सातवें दिन तक्षक सांप राजाको डसैगा जिससे मृत्यु होजायगी, यह सुन राजाने तक्षकाग्निको बहुत उत्तम माना, क्योंकि

ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ॥ तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥
॥ २ ॥ अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे॥ दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः॥
॥ ३ ॥ स चिंतयन्नित्थमथाशृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ॥ स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य
विरक्तिकारणम् ॥ ४ ॥ अथो विहायेममसुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् ॥ कृष्णांघ्रिसेवामधिमन्यमान उपा
विशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥ या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णांघ्रिरेण्वभ्यधिकांबुनेत्री ॥ पुनाति लोकानुभयत्र
सेशान्कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥

विषयासक्तोंको यह विरक्तताका कारण है॥४॥राज्य और देह दोनों पहिलेही त्यागनेके योग्य हैं, और यह अधिकता है कि श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविन्दोंकी सेवा करूंगा यह विचार श्रीगंगाजीके तट जानेकी इच्छा करी॥५॥तुलसीमिश्रित श्रीकृष्णके चरणोंकी रेणुसे अत्यन्त शोभित, अधिक पवित्र निर्मल जल बहानेवाली गंगाजी दोनों लोकोंको ईशसहित सबको पवित्र करे हैं, ऐसी गंगाको जिसकी मृत्यु निकट आईहो अवश्य सेवन करै. "परन्तु राजाके मनमें इस बातका बड़ा खेदथा कि इस अन्यायके वदले ऋषिने मुझको तुरन्त दंड नहीं दिया जो तुरन्त प्राण छूट जाते तौ सात दिनतक

* कवित्त–सर्व अगभग होत, गुरकी जो निन्दाकरै, नरकमाहिं वासहोत, नारीके चुरायेसे । अन्धे और लूलेहोत, जीवनके हिंसकजे, ज्ञान बुद्धि नष्ट होत, नीचधान्यखायेमे ॥ कुष्ठी और मूकहोत, मुनिनको सतावैंजो, नरकमाहिंवासहोत, परनिंदा गायेसे । विप्रके पूजनसे, यशहोतगालि ग्राम, वशको विनाशहोत, विप्रके सतायेसे ॥ १ ॥

इस पापी शरीरके रखनेका क्या अभिप्रायथा. अब मुझको उचित है कि सात दिन तो मेरे मरनेकेहैं इस अन्यायी शरीरको यही दण्डहै कि अन्नपानी नदूं क्योंकि जिस देहसे परमेश्वरका भजन और भक्ति नहो वह देह किसी कामका नहीं, अब सब माया, मोह, स्त्री, पुत्र, धन, धाम त्याग परमात्माके ध्यानमें लय होना चाहिये. इतनी अवस्था हमारी संसारके माया मोहमें वृथा नष्ट हुई और तौभी यह पापी मन विरक्त न हुआ और जब मैं सातवें दिन मरजाऊंगा तब यह राज्य और धन धराही रहैगा. इसलिये मुझको उचित है कि मैं पहिलेही इन सबका माया मोह त्यागदूं और श्रीगंगाजीके निकट जाऊं जो तीनोंलोकोंका निस्तारा करतीहै सातदिन वहीं बैठकर वैकुण्ठनाथका भजन करूं तो मोक्षहो. क्योंकि संसारीमें जो जन्मलेगा वह अवश्य मरैगा ब्रह्मादिक देवताभी अमर नहीं रहते. इस संसारमें जो कोई जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है और चौरासी लक्ष योनिमें भ्रमता फिरता है सो इस सात दिनमें अब कोई ऐसा उपाय करूं जिसमें आवागमनके फन्देसे मुक्ति पाऊं, यह बात विचार सर्व नगर

इति व्यवच्छिद्य स पांडवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ॥ दध्यौ मुकुंदांघ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसंगः ॥
॥७॥ तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः॥ प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनंति संतः
॥८॥ अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरंगिराश्च ॥ पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इंद्रप्रमदेध्मबाहौ ॥ ९ ॥

निवासियोंको बुलाय जनमेजय नामक अपने बड़े पुत्रको जिसकी चौदह वर्षकी अवस्थाथी राज्यसिंहासनका अधिकारी किया और सब राजकाजका भार मंत्री और प्रधानोंको सौपकर जनमेजयसे कहा—हे पुत्र ! गो, ब्राह्मण, साधु, संतकी रक्षा करना, और प्रजाको पुत्रकी समान पालना, किसीपर अन्याय न करना, यह कह राजाने अपना मन विरक्तकर भूषण वस्त्र तनुसे उतार रानियोंको समझाया कि, स्त्रियोंका धर्म यही है कि जिस बातमें उसके पतिकी पति रहै वह काम करना चाहिये.पतिके धर्ममें विघ्न नहीं डालै.परमेश्वर जनमेजयादि पुत्रोंको जीता रक्खें,तुमको सर्व प्रकारका सुख है,इस भांति सबको धैर्य दिया. हे शौनकमुनि ! सो पाण्डुनन्दन यह निश्चय कर अनशनव्रत ले गंगातीर जाय सब भाव हरिमें कर मौनव्रतधार सब संग त्याग भगवानके चरणोंका ध्यान करने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ सर्वत्र भुवनके पवित्रकर्त्ता महा अनुभव ज्ञानी शिष्यों सहित बहुतसे तीर्थयात्राके मिषसे आप सर्व तीर्थोंको पवित्र करनेवाले ब्राह्मण मनन शील मुनि आने लगे॥८॥अत्रि,वसिष्ट,च्यवन,शरद्वान,अरिष्टनेमि,भृगु,अंगिरा, पराशर,

विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मबाहु, ॥९॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, द्वैपायन, भगवत अवतार श्रीनारद ॥१०॥ और देवर्षि, ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ, राजर्षिवर्य, अरुणादिक नाना ऋषिवर्य आये ॥११॥ जब आनन्दपूर्वक सब बैठगये तब राजाने सबको प्रणाम किया. एकान्तचित्त कुशासनपर बैठे, हात जोड़कर जो अपनी करनेकी इच्छाथी सो कही ॥ १२ ॥ फिर बोले, कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि शीलवान् महात्माओंने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, इसकारण मैं राजाओंमें धन्य हूं, क्योंकि ब्राह्मणोंके चरणामृतने

मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ॥ मैत्रेय और्वः कवषः कुंभयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥
॥ १० ॥ अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ॥ नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववंदे ॥
॥ ११ ॥ सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ॥ विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥ १२ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ॥ राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥ १३ ॥ तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ॥ निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥ १४ ॥ तं मोपयातं प्रतियंतु विप्रा गंगा च देवी धृतचित्तमीशे ॥ द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥ पुनश्च भूयाद्भगवत्यनंते रतिः प्रसंगश्च तदाश्रयेषु ॥ महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥ १६ ॥

राजाओंका कुल दूरसे त्यागाहै और एक मुझसे यह निंदित कर्म होगया ॥ १३ ॥ घरमें बारंबार आसक्तचित्त मुझ पापीको ज्ञानदायक पर अवरोंमें ईश्वरही ब्राह्मण शाप रूप होगये जिससे मुझे शीघ्र भय होताहै ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरो ! मैं आपकी शरणागत हूं यह जानो कि परमेश्वरको और गंगाजीको चित्तमें धारण करलिया, विप्रके शापसे कपटी तक्षकके काटनेका मुझे भय नहीं; आप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी कथा गाइये ॥ १५ ॥ जिससे अनन्त भगवान्में मेरी प्रीति अधिक होय, और उनके आश्रयी महात्मा ब्राह्मणोंमें मेरी मैत्री होय और जहां जहां मेरा जन्म होय, तहां

तहां सबको नमस्कार होय,और ब्राह्मणोंकी शरणमें रहूँ ॥ १६॥ राजा परीक्षित् ऐसे निश्चयकर पूर्वके मूल कुशाके आसनपर महाधीर उत्तरकी ओरको मुखकर समुद्रकी स्त्री गंगाजीके दक्षिणकी ओर बैठे, और जनमेजयको सब राज्यका भार पहिले ही सौंप गयेथे ॥ १७ ॥ जब वह नरदेव अन्न जल त्याग एकाग्रचित्त बैठे तब देवताओंके समूहके समूह स्वर्गमें प्रशंसा करकर दुन्दुभी बजाय बजाय वारंवार भूमिमें पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १८ ॥ जो महाऋषि आयेथे वह सब प्रशंसा और बडाई करने लगे जिनका प्रजाके अनुग्रहके अर्थ शील सार है वह मुनि उत्तमश्लोकके सुन्दर गुण वर्णन करनेलगे ॥ १९ ॥ हे राजर्पिवर्य ! श्रीकृष्णके अनुवर्ती आपमें यह कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि भगवत्के समीपकी चाहनावाले

इति स्म राजाऽध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ॥ उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥ १७ ॥ एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः ॥ प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥ १८ ॥ महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ॥ ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥ १९ ॥ न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ॥ येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥ २० ॥ सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय ॥ लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥ २१ ॥ आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम् ॥ आभाषतैतानभिवंद्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥ २२ ॥ समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ॥ नेहाथवाऽमुत्र च कश्चनाऽर्थमृते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥ २३ ॥

राजाने किरीटोंसे सेवित राज्य त्याग दिया ॥ २० ॥ जबतक यह शरीरको नहीं त्यागैंगे तबतक हम इनहीके निकट बैठे रहैंगे, क्योंकि यह भागवतोंमें प्रधान पवित्र विशोक वैकुण्ठको जायँगे ॥२१॥ सब ऋपिगणोंका पक्षपात शून्य अमृतरूपी गम्भीर अर्थ सत्य वचन राजा परीक्षित् सुनकर विष्णुके चरित्र सुननेकी इच्छासे सब ऋपीश्वरोंको प्रणाम करके यह बोला ॥ २२ ॥ त्रिलोकसे ऊपर सत्यलोकमें जैसे वेदमूर्ति धारकर बैठेहैं ऐसे ही सब आनकर मेरे निकट विराजमान हुएहो, पराये अनुग्रहके लिये परिश्रम करनेका आपका स्वभाव है, इस लोकमें जो कर्तव्य होय अथवा

परलोकके लिये जो कुछ होय सो सब कृपाकरके वर्णन कीजिये ॥२३॥ हे मुनिगणों ! आपपर विश्वास कर जो कुछ बूझने योग्यहै सो बूझताहूं कि इस समय क्या करना चाहिये ? सब प्रकारसे जिसकी मृत्यु आई होय उसको शुद्ध कृत्य होनेका कृपापूर्वक सम्मतिकर कोई उपाय बताइये ॥ २४ ॥ यह सुन कोई बोले कि यज्ञकरो, किसीने कहा योगकरो, कोई बोले तपकरो, किसीने कहा दान करो, यह विवाद होरहाथा, उसी समय व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजी अपनी इच्छासे विचरते विचरते इच्छारहित, आश्रमचिह्न रहित, यथालाभसंतुष्ट, स्त्री बालक पीछे कौतूहलसे लगे अवधूत वेष किये, शुकदेवजी आये ॥२५॥ षोडश वर्षकी अवस्था,मृदुचरण, हाथ, हृदय, बाहु, कन्धा, कपोल, शरीर सुन्दर,विशालनेत्र, उठे

ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ॥ सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥ २४ ॥ तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ॥ अलक्ष्यलिंगो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥ तं व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाहंसकपोलगात्रम् ॥ चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कंबुसुजातकंठम् ॥२६॥ निगूढजत्रुं पृथुतुंगवक्षसमावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ॥ दिगंबरं वक्रविकीर्णकेशं प्रलंबबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥ २७ ॥ श्यामं सदाऽपीच्यवयोऽगलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ॥ प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥ २८ ॥ स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ॥ ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥ २९ ॥

हुए दोनों तुल्य कर्ण, सुन्दर भौं, मुख, शंखसमान कण्ठ शोभायमान ॥ २६ ॥ मांससे छिपी हुई कण्ठसे नीचेकी दोनों हड्डी, चौडा ऊँचा वक्षस्थल कुण्डके समान गोल गम्भीर नाभिस्थल तिरछी झुकी हुई रेखाओंसे मनोहर उदर, दिगम्बर अर्थात् नग्न, फैलेहुए केश, लम्बे भुजदण्ड यह शोभा सुरोत्तम कीसी शुकदेवजीकी हो रही॥२७॥सुन्दर, श्याम शरीर, श्रीयुक्त अंग, मनोहर मुसकान, गुप्ततेज ऐसे लक्षणोंसे पहिचानकर मुनि आसनोंसे उठ खडेहुए ॥ २८ ॥ राजापरीक्षितने अतिथि शुकदेवजीको देख दण्डवत् प्रणाम कर पूजन किया, अज्ञानी स्त्री बालक सब चले गये. यह पूजितहो

महासिंहासनपर बैठे ॥ २९ ॥ तहां महापूज्योंमें ब्रह्मऋषि, राजर्षि, देवर्षियोंके समूहमें भगवान् शुकदेवजी अत्यन्त शोभित हुए जैसे ग्रह नक्षत्र तारागणोंके समूहमें चन्द्रमा शोभा देता है ॥३०॥ सब अर्थमें जिनकी बुद्धि अति शान्त बैठे ऐसे शुकदेव मुनिको भागवत नृप प्राप्त होकर मस्तकसे प्रणामकर सावधानीसे हाथ जोड़ नमस्कार कर कोमल वाणीसे बूझने लगे ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज ब्राह्मणोंकी सेवा करके क्षत्रिय लोग सफल जन्म हुए अतिथि रूप आपने कृपाकरके मुझे दर्शन दिया ॥३२॥ जिनब्राह्मणोंके स्मरणसे पुरुषोंके ग्रहादिक शीघ्र शुद्ध होजातेहैं, और दर्शन स्पर्शन

स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः ॥ व्यरोचताऽलं भगवान्यथेंदुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः॥३०॥प्रशां
तमासीनमकुंठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ॥प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृतांजलिर्नत्वा गिरा सूनृतयाऽन्वपृच्छत्
॥३१॥ अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्या क्षत्रबंधवः ॥ कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥ ३२ ॥ येषां संस्मरणात्पुं
सां सद्यः शुध्यंति वै गृहाः ॥ किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥ ३३ ॥ सान्निध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महांत्य
पि ॥ सद्यो नश्यंति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥ ३४ ॥ अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ॥ पैतृष्वस्रेयप्री
त्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबांधवः ॥३५॥ अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ॥ नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः
॥ ३६ ॥ अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ॥ पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७ ॥

पाद धोनेसे मिष्टान्न भोजन करानेसे तो अत्यन्तही शुद्ध और पवित्र होतेहैं, सबपाप ताप कांप जाते हैं॥३३॥ हे महायोगिन् ! आपकी समीपतासे पुरुषोंके महापातक नष्ट होजातेहैं, जैसे विष्णुकी समीपतासे गयादिक असुर नष्ट होगये॥३४॥यद्यपि ऐसा है तथापि श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्रपर प्रसन्न हुए जो आप रूप धारण कर फूफीके कुलवालोंकी प्रीतिके अर्थ उस गोत्रके कारण भाई बन्धु होकर रहे ॥३५॥ अत्यन्त मृतक संसिद्ध याचक, मनुष्योंको अप्रगटगति वालोंका दर्शन होना कठिनहै॥३६॥इस्से योगियोंके परम गुरु आपसे सिद्धिका उपाय पूछताहूं, इस संसारमें मरणधर्मी पुरुषको सर्वथा जो कर्तव्य होय

सो कहो * ॥३७॥ हे प्रभो ! मनुष्यसे जो श्रवण, जप, स्मरण, भजनके योग्य होय अथवा कुछ और प्रकारसे जो होय सो कहो ॥३८॥ हे ब्रह्मन् ! गृहस्थीके घरमें गोदोहन कालसे अधिक स्थिति होना आपका बहुत कठिन है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि ! राजाने कोमल वाक्योंसे जब यह बूझा

यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥३८॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ॥ प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कंधे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ छ ॥ समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः ॥ १ ॥

तो धर्मज्ञ शुकाचार्य कहनेलगे ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

* शंका–मुनिने राजा परीक्षित्को शापदिया कि आजसे सातवें दिन सर्पके काटनेसे राजाकी मृत्यु होगी तब सात दिनमें राजा परीक्षितने सब काम कार्यका प्रबन्ध कैसे किया । मुनिका शाप सुनकर पुत्रको राज्य तिलकदे गगाके तटपर गया फिर सात दिनमें मुनियोंका आना और बडे बडे मुक्तिमार्गके जाननेवाले महात्मा पुरुषोंका बुलाना, और श्रीशुकदेव मुनिका कथाप्रसग सुनाना और अनेक प्रकारके काम जैसे गगाके किनारे आये जो देव, मुनि, राजर्षि, औरभी बहुतसे साधु सत उनका पूजन करना, आदर सत्कार सहित सबको आसन देकर बैठना, और वारबार कथामें प्रश्न करना यह सब काम सात दिनमें कैसे किये ?

उत्तर–शृंगीऋषिके मुखसे अपने शापको मुनिसे सुनके व्याकुलहो, फिर धैर्य धारण कर स्थित चित्तसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करने लगे, और आखोंसे आसू बहन लगे, कि अब क्या किया जाय? जिस दिनसे मुनिने मुझको शाप दिया वह दिन आजहै, क्योंकि कल मैंने मुनिका अपराध किया था, आज मुझको शापदिया आजसे सातवे दिन मेरी मृत्यु होगी, और अभी काम मुझको बहुत करने हैं, ऐसा विचार फिर व्रजचन्द्रके चरणारविन्दका ध्यान करनेलगा, उसी समय वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी कृष्ण भगवान्ने सात दिन सातयुगकी समान कर दिये, तब राजा परीक्षित्के सात दिनमें सब काम बन गये ।

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां क्षेमराज–श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम्। संवत १९७०, शके १८३५.

इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते प्रथमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वितीयस्कंधप्रारंभः ॥



सनत्कुमार
नर
ध्रुव
पृथु
नारद
शुक
नृसिंह
बौद्ध

सोरठा—जय वृन्दावनचन्द, श्रीमुकुन्द गोविन्द हरि ॥ नँदनंदन सुखकन्द, कृपा करहु जन जान निज ॥ १ ॥ अतिसुन्दर कमनीय, जो छबि श्यामाश्यामकी ॥ बसहि सदा मम हीय, यह वर देहु गणेश मुहिं ॥२॥ गुरु पद रज धर शीश, कहों द्वितीयस्कन्ध अब ॥ सब मिलि देहु अशीश, शीघ्र भागवत पूर्ण हो ॥३॥ दोहा—कहत प्रथम अध्यायमें, नृपसों श्रीशुकदेव। आदि विराट स्वरूपको, वर्णत हैं सब भेव॥१॥श्रीवासुदेवाय नमः॥ "जैसे द्वितीय स्कन्धके प्रथमाध्यायमें श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितके प्रश्नकी प्रशंसा करके भगवत्के विराट् स्वरूपका वर्णन कियाहै, सो सब कथा वर्णन करेंगे" श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जगतहितकारी, भक्तजनोंका सम्मत श्रवणयोग्य, और अत्यन्त श्रेष्ठ ऐसा यह अच्छा प्रश्न किया ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! जो आत्मतत्त्वको नहीं विचारते हैं, और घरमें जहां पांच हत्या नित्य होती हैं * ऐसे मनुष्योंकी श्रवण योग्य

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ॥ आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥ श्रोतव्यादीनि राजेंद्र नृणां संति सहस्रशः ॥ अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ २ ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ॥ दिवा चार्थेहया राजन्कुटुंबभरणेन वा ॥ ३ ॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ॥ तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४ ॥ तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥ ५ ॥ एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ॥ जन्मलाभः परः पुंसामंते नारायणस्मृतिः ॥ ६ ॥

बातें सहस्रों हैं हे राजन् ! रात्रिमें निद्रा और मैथुनमें आयुको नष्ट करते हैं, दिनमें धनके प्राप्त करने, व कुटुम्बके पालन पोषणकी चिन्तामें सब अवस्थाको क्षय करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ अपनी आत्माकी अत्यन्त खोटी सेना, देह, पुत्र, स्त्री इनके मोहमें आसक्त होकर इनका नाश देखते हैं, तथापि परमात्माकी ओर नहीं देखते ॥ ४ ॥ हे भारत ! इसलिये सबके अन्तर्यामी, सुन्दर भगवान् वासुदेव, कष्टहर्ता ईश्वरकी कथा श्रवण करने व कीर्तन करने योग्य है, मोक्षकी इच्छा करनेवालोंको उन्हींका नाम स्मरण करना चाहिये ॥ ५ ॥ तत्त्वोंका विचार, सांख्य, अष्टांग योग, स्वधर्ममें अत्यन्त

* वह पांच हत्या यह हैं १ ऊखल, २ चक्की, ३ चूल्हा, ४ पलहडी, ५ बुहारी इन स्थानोंमें सदा जीव मरते हैं

शंका—शुकदेवजीने राजा परीक्षित्से कहा कि श्रीमद्भागवत जो यह महापुराण है सो ब्रह्मके गुणसे मिलाहुआ है परन्तु भागवतमें ब्रह्मके लक्षणका वर्णन एकभी कहीं नहीं देख पडता—

निष्ठा करनी, यही संसारमें जन्म लेनेका परमलाभ है कि अन्तसमयमें नारायणमें स्मृति होय ॥६॥ प्रायः विधिनिषेध रहित मुनिलोग श्रीकृष्णके गुण कथनमें और निर्गुण बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें रमण करतेहैं ॥ ७ ॥ श्रीभगवत्प्रोक्त यह भागवत नामक पुराण वेदके समान, ब्रह्मका सुन्दर ज्ञान करानेवाला है । सो द्वापरके आदिमें वेदव्यास पितासे हमने पढ़ाथा ॥ ८ ॥ हे राजर्षे ! उत्तम यशस्वीकी लीलासे निर्गुणमें हमारी अत्यन्त निष्ठाथी श्रीकृष्णके चरित्रोंने मन ग्रहण कर लिया इस कारण यह आख्यान पढ़ा ॥ ९ ॥ महापुरुष श्रीविष्णुके गुणग्राहक आपहो, सो हम आपसे कहैंगे इसमें श्रद्धा करनेवालोंको मुक्तिदायक माधव मुकुंदमें प्रीतियुक्त मति होती है ॥ १० ॥ हे नृप ! अत्यन्त वैराग्यवान्

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ॥ नैर्गुण्यस्था रमंते स्म गुणानुकथने हरेः ॥ ७ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥ ८ ॥ परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया॥गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥ ९ ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् ॥ यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुंदे मतिः सती ॥ १० ॥ एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ॥ योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥ किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह ॥ वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥ १२ ॥ खट्वांगो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्ता मिहायुषः ॥ मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥ १३ ॥

मुमुक्षु जनोको और योगियोंको निर्भय श्रीकृष्णका नाम सदा कीर्तन करना, सबने यही निर्णय किया है ॥ ११ ॥ जो मदान्ध हैं उनको कुछ नहीं देख पड़ता, और बरसोंमें भी उनसे कुछ नहीं होता; और जो शुभ कार्यमें यत्न करै उसकी वह दो घड़ी भी श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥ खट्वांग नाम राजर्षि दो घड़ी अपनी आयु जान एक मुहूर्तमें सबको त्यागकर अभयदायक परमेश्वरको प्राप्त हुए, जब राजाने इन्द्रकी सहायता कर दैत्योंको जीता तब देवता प्रसन्न होकर बोले, वर माँगो । यह सुन राजाने कहा कि प्रथम मेरी अवस्थाका वृत्तान्त कहिये कि मैं कितने दिन और जीऊँगा ? तब देवताओंने कहा तुम दो घड़ी और जियोगे, यह सुन राजा खट्वांग शीघ्र विमानपर बैठ भूमिमें आ श्रीकृष्णकी

—उत्तर—व्यासदेवजीने पहले श्रीमद्भागवतमें अनेक प्रकारके इतिहास तथा राजाओंके चरित्र वर्णन किये हैं ब्रह्मज्ञानी मनुष्य सब भले बुरे जो ससारी जीवोंको ब्रह्मरूप जानतेहैं तथा जो पुरुष ब्रह्मज्ञानसे हीन हैं हम लोग अभिमानयुक्त नेत्रोंसे बहुत प्रकार ससारको देखते हैं भलेको भला बुरेको बुरा और श्रीशुकदेवजी महाराज ब्रह्मज्ञानी थे, चर अचर सबको ब्रह्मरूप जानतेथे इतिहास, पुराण, राजाओंके चरित्रोंकोभी ब्रह्मरूप जानके श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसम्मत कहतेहैं ॥

शरणागति कर मुक्त होगया ॥ १३ ॥ सो हे राजन् ! तुम तौ सातदिन जियोगे, जो जो परलोक साधनकी क्रिया हैं सो सावधानीसे करो ॥ १४ ॥ जब अंतमें काल आवै तब यह पुरुष मृत्युके भयसे रहित होकर असंग रूप शस्त्रसे इस देह और इसके पीछे जो पुत्र कलत्रादिकसे सुखकी इच्छा है उसको काटै ॥ १५ ॥ घरसे निकलकर धीर पुरुष पुण्यतीर्थोंके जलमें तो स्नान करै, एकान्तमें विधिवत् पवित्र आसन पर बैठे ॥ १६ ॥ शुद्ध 'अ उ म्' यह तीन अक्षर युक्त परब्रह्म स्वरूप ओंकारका मनमें अभ्यास करे, मनको व श्वासको जीते, ब्रह्मका जो बीज मंत्र प्रणव उसको कभी भूलै नहीं ॥ १७ ॥ बुद्धि सारथीसे मन इन्द्रियोंको विषयोंसे जीतै, अनेक कर्मोंसे मनको खेंचकर भगवत्के रूपमें बुद्धिसे धारण करै ॥ १८ ॥

तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीविताविधिः ॥ उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम् ॥ १४ ॥ अंतकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ॥ छिंद्यादसंगशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥ १५ ॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः ॥ शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥ १६ ॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं पदम् ॥ मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ १७ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥ १८ ॥ तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा ॥ मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥ पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥ १९ ॥ रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः ॥ यच्छेद्धारणया धीरो हंति या तत्कृतं मलम् ॥ २० ॥ यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः ॥ आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥ २१ ॥

और एक मुहूर्तकोभी परमात्माके चरणकमलोंका ध्यान न भूलै सब रूपका ऐसे चित्तसे ध्यान करै मनको सब विषयोंसे हटाय परमानंदके साक्षात्कार विना कुछ भी स्मरण न करै वही विष्णुका परमपद है जिससे मन प्रसन्न होय; जो मानसी पूजामें लवलीन हैं, उनको वैकुण्ठवास ॥ १९ ॥ मिलताहै अपना मन रजोगुणसे प्रेरा हुआ तमोगुणसे विमूढ धारणा करके; रज तमके करे हुए मलका नाश करै ॥ २० ॥ जिस धारणाके करते २ अपने कल्याणके करनेवाले आश्रयको, देखते हुए प्राणीको उसी कल्याणसे भगवत्के रूपमें भक्तिरूपयोग प्रीति शीघ्र होती है ॥ २१ ॥

राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! जैसी सम्मत धारणा सुन्दर होती है! जिस धारणासे शीघ्र पुरुषका मन निर्मल होय सो कहो ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी
बोले कि, अतिस्थूल विराट्रूप हम कहते हैं सो तुम सावधान चित्त करके सुनो; आसन और श्वासको जीतो, संग सुसंग करो, सब इन्द्रियोंको
जीतो, स्थूल भगवत्के रूपमें मनको और बुद्धिको लगाओ ॥ २३ ॥ जितने रूप हैं उनके मध्यमें विराट्देह यह है कि जहाँ भूत, भविष्यत्, वर्तमान
सत्विश्व ईश्वरमें ही दीखता है ॥ २४ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, यह सप्त आवरण सहित इस ब्रह्मांड, अथवा
शरीरमें जो विराट् पुरुष है सो भगवान् इस धारणाके आश्रय है ॥ २५ ॥ अब विराट् रूपका वर्णन करते हैं सर्वव्यापक ईश्वरके पादमूलमें

राजोवाच ॥ यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता ॥ यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥ २२ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ जितासनो जितश्वासो जितसंगो जितेंद्रियः ॥ स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥ २३ ॥ विशेषस्त
स्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ॥ यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥ २४ ॥ आंडकोशे शरीरेऽस्मिन्स
प्तावरणसंयुते ॥ वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान्धारणाश्रयः ॥ २५ ॥ पातालमेतस्य हि पादमूलं पठंति पार्ष्णि
प्रपदे रसातलम् ॥ महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥ २६ ॥ द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरु
द्वयं वितलं चातलं च ॥ महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणंति ॥ २७॥ उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य
ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ॥ तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥ २८ ॥ इंद्रादयो बाहव
आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ॥ नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गंधो मुखमग्निरिद्धः ॥ २९ ॥

पाताल है, एँड़ीमें रसातल है, विश्व रचनेहारेकी एँड़ीके ऊपरकी गाँठोके भागमें महातल है; और तलातल विराट् पुरुपकी जंघामें है ॥ २६ ॥
विश्वमूर्तिके दोनों जानुओंमें सुतल लोक है, दोनों ऊरूमें वितल अतल लोकहैं, महीतल जंघनमें है, नभस्थल नाभिमें है ॥ २७ ॥ ज्योतियोंका
समूह जहाँ सूर्य चन्द्रमा रहतेहैं वह स्वर्ग ईश्वरके हृदयमें है । ग्रीवामें महर्लोक, वदनमें जनलोक और आदिपुरुषके ललाटमें तपलोक है । और
सहस्रशिरधारीके शिरमें सत्यलोक है ॥ २८ ॥ तेजोमय इन्द्रादिक बाहुओंमें, सब दिशा कर्णोंमें, शब्द श्रोत्रोंमें, अश्विनीकुमार नासिकामें, गन्ध

घ्राण इन्द्रियमें, देदीप्यमान अग्नि मुखमें है ॥ २९ ॥ अन्तरिक्ष नेत्रगोलक हैं; चक्षु इन्द्रिय सूर्य है, विष्णुके दोनों पलक दिन रात हैं; भ्रुकुटियोंका चलना ब्रह्मपद है; जल इनका तालु है, रस इनकी जीभ है ॥३०॥ अनन्तके वेद शिर हैं, यमराज डाढ़, स्नेह दाँत, सब जनोंको उन्माद करानेवाली हँसी, अपार विस्तार स्वर्ग अर्थात् विश्वरचना उनका कटाक्ष है ॥ ३१ ॥ लज्जा ऊपरका होंठ, लोभ नीचेका होंठ, धर्म उनके स्तन, अधर्मका मार्ग पीठ है, प्रजापति शिश्न इन्द्रिय है, मित्रावरुण अंडकोश है, कोखमें सातों समुद्र हैं; और सब पहाड़ उनके हाड़ हैं ॥३२॥ सब नदी इनकी नाड़ी हैं, सब वृक्ष शरीरके रोम हैं; हे नृपेंद्र ! श्रीभगवान् विश्वरूप हैं; अनन्तवीर्य हरिका श्वास पवन है, गति अवस्था है, गुण प्रवाह संसार भगवान्का कर्म

तद्भ्रूविजृंभः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा
द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतंगः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ॥ ३० ॥ छंदांस्यनंतस्य शिरो गृणंति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ॥ हासो जनोन्मादकरी च माया दुरंत सर्गो यदपांगमोक्षः ॥ ३१ ॥ व्रीडोत्तरोष्ठोधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ॥ कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥ ३२ ॥ नद्योऽस्य नाड्योथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेंद्र ॥ अनंतवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः ॥ ३३ ॥ ईशस्य केशान्विदुरंबुवाहान्वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ॥ अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चंद्रमाः सर्वविकारकोशः ॥ ३४ ॥ विज्ञानशक्तिं महिमामनंति सर्वात्मनोंतःकरणं गिरित्रम् ॥ अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशः ॥ ३५ ॥ वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ॥ गंधर्वविद्याधरचारणाप्सरःस्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥ ३६ ॥

हैं, हे कुरुनन्दन ! व्यापक ईश्वरके वस्त्र संध्या है, प्रभात छाती है, सब विकारोंका कोष चन्द्रमा भगवान्का सर्वात्मा श्रीहरिके अंतःकरण शिवजी हैं, हाथी, घोड़े, ऊंट और खिच्चर परमेश्वरके नख हैं, सब मृग व्याकरण शब्दशास्त्र सब पक्षी हैं, सब मनुष्योंके निवास मनु, भगवान्की बुद्धि है. गंधर्व, विद्याधर, चारणादि अप्सरा भगवान्की स्मृति हैं, और असुरोंकी सब सेना उनका पराक्रम है ॥ ३६ ॥

...याके कारण पा...
और अन्न भोजनको अंजली बहु...
उनकी कंथा बनावे, वृक्षोंसे फलादिक ।...
कन्दराओंमें वास करे; उनहींमें शरणागतोंके...
अपने आपही सिद्ध होय, तब ईश्वरको ...

ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरु, और चरणके आश्रित श्यामवर्ण शूद्र उनके पद हैं, नाना प्रकारके जिनके नाम, सब प्रकारसे पूजनीय, देवगण सहित जिस्में अनेक द्रव्योंसे प्रयोग विस्तारयज्ञ जो होताहै, वह यज्ञ भगवान्का वीर्य है ॥ ३७ ॥ ईश्वरके विग्रहकी यह अवयवोंकी स्थिति है, सो मैंने तुमसे कही. इस स्थूल शरीरमें मन अपनी बुद्धिसे मुमुक्षु जनोंकरके भले प्रकार धारण किया जाताहै. इससे परे और कुछ नहीं है ॥३८॥ सब बुद्धिकी वृत्तिसे अनुभव करके स्वप्नके समय एक आत्माकोही जो जन सब ओरसे देखते हैं, और मन लगाय सत्य स्वरूप आनन्दसागर ईश्वरको, और वस्तुओंमें आसक्त रहित होकर भजन करै, क्योंकि आसक्त होनेसे संसारबन्धनमें स्थिति होतीहै, ईश्वर विद्या शक्तिके आश्रय है, इसकारण

ब्रह्माऽऽननं क्षत्रभुजो महात्मा विडूरुरंघ्रिश्रितकृष्णवर्णः ॥ नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्मवितानयोगः ॥ ॥ ३७ ॥ इयानसावीश्वरविग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितो मया ते ॥ संधार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किंचित् ॥ ३८ ॥ स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ॥ तं सत्यमानंदनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे महापुरुषसंस्थावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुरा धारणयाऽऽत्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ॥ तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥ १ ॥

बन्धनमें नहीं आता और जीव अविद्या शक्तिके आश्रय हैं, इस कारण संसारके बन्धनसे मुक्त नहीं होता ॥ ३९ ॥ इति श्रीभा० म० द्वि० भाषाटी० विराट्रूपवर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—कहूं द्वितियअध्यायमें, हरिको सूक्षम रूप। पुनि कछु वरणों पुरुपकी, आकृति परम अनूप ॥१॥ ❀ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे पहिले प्रलयके समयमें इस धारणासे ईश्वर प्रसन्न हुए। ब्रह्माजी उनसे सृष्टिके रचनेकी स्मृतिको प्राप्त होकर महाप्रलयके

* शंका—व्यासदेवजीने यह शका उत्पन्न करनेवाला वचन किसलिये वर्णन किया है ? दूसरे अध्यायकी आदिमें पहिले तो ब्रह्मका वर्णन किया है फिर पीछे भगवान्की भक्तिका वर्णन किया है, उसके पीछे भगवान्की कथाकी प्रीति वर्णन करी है इसमें शका यह है कि पहिले कथाकी प्रीति फिर भक्ति तब ब्रह्मका चिन्तवन होना चाहिये ॥

उत्तर—कथाके सुननेसे भक्तोंके हृदयमें भक्ति उत्पन्न होती है, भक्तिसे ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञानसे ब्रह्मका चिन्तवन होता है, इसलिये ज्ञानमें जो चतुर व्यासदेवजी हैं उन्होंने मुक्ति होनेके लिये तीन धर्म वर्णन किये. तथा ब्रह्मके ध्यानमे जो मतवाले योगी हैं उनको ऐसा विचार नहीं रहता कि यह बात पहिले वर्णन करनी चाहिये, यह बात पीछे वर्णन करनी चाहिये वह सबको समान समझते हैं इसलिये इन महात्मा पुरुषोंके कुछ आगे पीछेका विचार नहीं

पहले जैसा यह विश्व था उसी प्रकारका फिर रचा. उनकी निश्चयकारी बुद्धि और अमोघ दृष्टि थी, इस धारणासे विश्व रचनेकी सामर्थ्य होती है॥१॥
उपासना फलसेवी विरक्तको शुद्ध आत्मधारणामें अधिकार है। इसलिये वैराग्यके अर्थ सब कर्म फलकी निन्दा करते हैं। शब्द ब्रह्म जो वेदका मार्ग यह है, कि जिसमें कुछ प्रयोजन नहीं, ऐसे स्वर्गादिक नामसे साधककी बुद्धि ध्यान करैहै। सो उन २ लोकोंमें घूमताभीहै. परन्तु अपने अभिप्रायको नहीं पहुँचता, क्योंकि मायामय वासनामें यह सो रहा है। इस कारण अखण्डितसुख इसको नहीं मिलता॥२॥इसलिये पण्डित लोग नाममात्र भोगके योग्य पदार्थोंमें, जितनेमें देहका निर्वाह हो; उतनेहीमें आसक्त होकर यह निश्चय करनेवाली बुद्धि है। विना परिश्रम जब प्रयोजन सिद्ध होजाय तौ उनमें परिश्रम समझकर यत्न न करै॥ ३ ॥ विना परिश्रम यह पदार्थ हैं, फिर इनके लिये ज्ञानी पुरुष परिश्रम नही करै। शयनके लिये जब पृथ्वी

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पंथा यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः॥ परिभ्रमंस्तत्र न विंदतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥ २ ॥ अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ॥ सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥ ३ ॥ सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपवर्हणैः किम् ॥ सत्यंजलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥४॥ चीराणि किं पथि न संति दिशंति भिक्षां नैवांघ्रिपाः परभृतः सारितोऽप्यशुष्यन्॥ रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्कस्माद्भजंति कवयो धनदुर्मदांधान् ॥ ५ ॥ एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियार्थो भगवाननंतः ॥ तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥ ६ ॥

है, तौ शय्याके कारण परिश्रम करना वृथा है; स्वतःसिद्ध तकियेके लिये भुजा है, फिर तकिया बनानेकी क्या आवश्यकता है ? जल पीनेको और अन्न भोजनको अंजली बहुत है फिर पात्रका रखना वृथा है। दिगम्बर रहै, वल्कल पहिरै, वस्त्रसे कुछ प्रयोजन न रक्खै॥४॥मार्गमेंसे चीर लाकर उनकी कंथा बनावै, वृक्षोंसे फलादिक भिक्षा मांग पेट भरै, सबका भरण पोषण करनेवाली नदियोंसे जल पिये; वह कभी शुष्क नहीं होतीं। पर्वतकी कन्दराओंमें वास करै; उनहींमें शरणागतोंकी रक्षा परमेश्वर करताहै। फिर क्यों विद्वान् महात्मा, धनमें अंधे भये अज्ञानियोंका सेवन करैं ॥ ५ ॥ ऐसे चित्त जब अपने आपही सिद्ध होय, तब ईश्वरको अपना प्रिय जान, भगवान् अनंतके महाआनंदसे निश्चिंत स्वरूपको भजे ॥ तब संसारके

हेतुओंका नाश होताहै ॥ ६ ॥ ऐसा कौनहै जो परमेश्वरके ध्यानकी चिन्ताको त्याग विषयोंका ध्यान करै ? पशुबुद्धिवाले तौ विषयकाही सेवन करते हैं; अपने करे हुए कर्मोंके क्लेशोंका सहन करनेवाले जीव वैतरणी नदीमें पड़तेहैं, यह देख सदा परमात्माका स्मरण करै । उसे एक पलको न भूले ॥ ७ ॥ अब मानसी पूजाका वर्णन करते हैं । कोई अपने देहके भीतर हृदयके भीतर अवकाशमें जहां तर्जनी अंगुष्ठ फैलावै एक बिलस्त भरमें पुरुष बसतेहैं । चारभुजा, कमल, चक्र, शंख, गदा, धारे, प्रसन्नमुख ईश्वरकी धारणा करके स्मरण करतेहैं * ॥ ८ ॥ प्रसन्नमुखपद्मदलवत् लोचन,

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिंतामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात् ॥ पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापाञ्जुषाणम् ॥ ७ ॥ केचित्स्वदेहांतर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसंतम् ॥ चतुर्भुजं कंजरथांगशंखगदाधरं धारणया स्मरंति ॥ ८ ॥ प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदंबकिंजल्कपिशंगवाससम् ॥ लसन्महारत्नहिरण्मयांगदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुंडलम् ॥ ९ ॥ उन्निद्रहृत्पंकजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ॥ श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकंधरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ॥ १० ॥ विभूषितं मेखलयांऽगुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकंकणादिभिः ॥ स्निग्धामलाकुंचितनीलकुंतलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥ ११ ॥

कदंब प्रसूनकी समान पीतांबर धारण किये, सुवर्णके भुजबन्दोंमें शोभायमान महारत्न दमक रहे; और महामणियोंके जड़े हुये किरीट कुण्डल धारे हैं ॥ ९ ॥ प्रसन्न हृदयकमलके पत्ररूप स्थानपर, जिनके चरणकमल योगीश्वरोंसे स्थापन किये जातेहैं, महालक्ष्मी भृगुलता हृदयमें दीखै हैं, कौस्तुभ रत्न कण्ठमें धारण किये हैं, जिसकी कांति कभी मलीन नहीं होती ऐसी प्रसूनमाल ग्रीवामें शोभायमान है ॥ १० ॥ कोंधनी, अँगूठियें

* शंका–द्वितीय स्कन्धकी आदिमें शुकदेवजीने परीक्षितसे कहा कि, राजा यह तुम्हारा प्रश्न बहुत श्रेष्ठहै परन्तु भगवान्को नमस्कार क्यों नहीं किया ? भगवान्को नमस्कार करना अवश्य चाहिये था, तीन अध्याय वितायके तथा तीनों अध्यायोंमें अनेक प्रकारकी कथा कहके पीछेसे बहुत श्लोकोंसे चौथे अध्यायमें भगवान्को नमस्कार शुकदेवजीने क्यों किया ?

उत्तर–शुकदेवजीने राजाकी नवीन सगत देखके प्रशसाभाव कियाहै कि, राजा तुम्हारा प्रश्न बहुत अच्छाहै, नई रीति प्रीतिमे तुरन्त मन प्रसन्न नहीं होता. पीछेसे भगवान् वासुदेवमें परीक्षित्की प्रीति देखके शुकदेवजी बहुत आनन्दित हुए, शापका भय नाश करनेको ब्रह्मका लेख उलट देनेमें परीक्षित्को वैकुण्ठकी प्राप्ति करनेमें शुकदेवजी समर्थ हैं इसलिये बहुत श्लोकोंसे भगवान्के चरणोंका नमस्कार किया ॥

कड़े, कंकण, नूपुर इत्यादिकोंसे भूषित हैं ॥ चिकनी, निर्मल, घूँघरवाली श्यामअलकोंसे शोभित, मनहरण मुस्कानयुक्त॥ ११॥ उदारलीलासे हास्य, नेत्रोंपर अत्यन्त शोभित भ्रुकुटीका चलाना, उससे बड़ा अनुग्रह सूचित होताहै. चिंतवन करके प्रगट होताहै उनका दर्शन करै, जब तक मन धारणा करके उनमें स्थित रहै ॥ १२ ॥ गदाधरके चरणोंसे लेकर हाँसीपर्यन्त एक २ अंगको बुद्धिसे अनुभव करै, जो जो स्थान विना यत्न प्रकट होजाय, उसको त्यागकर और और जंघा आदिको ध्यान करै तैसेही बुद्धि शुद्धि होती जायगी ॥ १३ ॥ पर अवर द्रष्टा विश्वेश्वरमें भक्तियोग जबतक न होय, तबतक स्थूल विराट् पुरुषका रूप आवश्यक कर्मके अनुष्ठानके उपरान्त नियमोंमें तत्परहो स्मरण करै, यह तो समीप मृत्युवा

अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभंगसंसूचितभूर्यनुग्रहम्॥ ईक्षेत चिंतामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते॥१२॥ एकैकशोऽगानि धियाऽनुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ॥ जितंजितं स्थानमपोह्य धारयेत्परंपरं शुध्यति धीर्यथायथा ॥ १३ ॥ यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ॥ तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥ १४ ॥ स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यतिर्यदा जिहासुरिममंग लोकम् ॥ काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥ १५ ॥ मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ॥ आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशांतिर्विरमेत कृत्यात् ॥ १६ ॥ न यत्र कालोऽनिमिषो परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ॥ न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥ १७ ॥

लेको कर्तव्यहै ॥ १४ ॥ और अपने आप देह त्यागै उसको कर्तव्यहै । हे नरनाथ ! जो इसलोकके त्यागनेकी इच्छा करै वह स्थिर सुखद एक आसन बैठ शुभ कालमें पुण्यदेशमें मनको आसक्त न करै, प्राणको जीतै, मनसे योगाभ्यासही योगीको मोक्षदायक है ॥ १५ ॥ अपनी निर्मल बुद्धिसे बुद्ध्यादिकोंके द्रष्टा जीवमें मन लगावै । जीवात्माको शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें एक करके आनंदको प्राप्त होकर सब कृत्यसे विराम करै, उससे परे कोई कार्य कर्तव्य नहीं है ॥ १६ ॥ जिस आत्मस्वरूपमें देवनका परम प्रभु, काल भी समर्थ नहीं हो सकैहै, वहां जगत्के ईश्वर देवताओंकी क्या सामर्थ्य है ? वहां न सतोगुणकी चलै, न तमोगुणकी; न रजोगुण, न अहंकार, न महत्तत्त्व, न माया, इन सबकी कुछ सामर्थ्य नहीं, फिर जगत्की

तौ क्या सामर्थ्य है? ॥ १७ ॥ यह भी "नहीं नहीं" कहनेवाले उसको विष्णुका परमपद कहते हैं. आत्माको त्यागकर औरमें मित्रता नहीं करते; पूजनीय ईश्वरको क्षण २ में हृदयसे मिलते हैं ॥१८॥ ईश्वरका चिंतवन करके इस प्रकार मुनि स्थित होकर सबसे उपराम करै, ब्रह्मज्ञानकी दृष्टिके बलसे विषयवासना त्यागकर, अपनी एँड़ीसे गुदाको बन्दकर, सब परिश्रम जीत, नाभि, आदि छः स्थानोंमें पवनको प्राप्त करै ॥१९॥ वह पवन जो नाभिके मणिपूरक चक्रमें स्थित है उसको, हृदयमें अनाहत चक्रमें रोककर, उदानगतिसे कण्ठके विशुद्धि चक्रमें उस पवनको प्राप्त करै वह मुनि है. पीछे बुद्धिसे अनुसंधानकर चित्तको जीतनेवाला अपने तालुके मूलमें धीरेसे उस वायुको प्राप्त करै ॥ २० ॥ दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नाक,

परं पदं वैष्णवमामनंति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्याऽर्हपदं पदे पदे ॥ १८ ॥ इत्थं मुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरंधिताशयः ॥ स्वपार्ष्णिनाऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥ १९ ॥ नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ॥ ततोऽनुसंधाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥ २० ॥ तस्माद्भ्रुवोरंतरमुन्नयेत निरुद्धसप्ताऽऽयतनोऽनपेक्षः ॥ स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुंठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः ॥ २१ ॥ यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् ॥ अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेंद्रियैश्च ॥ २२ ॥ योगेश्वराणां गतिमाहुरंतर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनांतरात्मनाम् ॥ न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवंति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३ ॥

एक मुख, इन सातोंको रोककर चाहना न करै, किसी वस्तुकी. वो मुनि वहांसे उस भ्रुकुटी भीतर आज्ञाचक्र है उसमें प्राप्त करै, एक घडी स्थित होकर, शुद्ध दृष्टिकर, परब्रह्मको प्राप्तहो, ब्रह्मरंध्रको भेदकर देह इन्द्रियें सबको त्याग करै ॥ २१ ॥ यह पूर्वोक्त सद्योमुक्ति कही, अब क्रममुक्ति कहते हैं॥हे नृपेंद्र! जो ब्रह्माके स्थानमें होकर जाता है, जहाँ गगनचारी सिद्धोंका विहारस्थान है; और अणिमादिक अष्ट सिद्धि मिलती हैं इस ब्रह्माण्डमें मन इन्द्रियोंके साथही चला जाता है, क्योंकि मृत्युके समय जो वासना प्राणीके हृदयमें रहती है कि सब लोकोंके भोग भोगताहुआ जाऊं; तौ मन इन्द्रियसहित जीव जाता है ॥ २२ ॥ पवनरूप जिनकी देह, उपासना, भगवद्धर्म, अष्टांगयोग, समाधि, इनके करनेवाले योगीश्वरोंको त्रिलोकीके

बाहर भीतर सब स्थानोंमें जानेकी गति होतीहै; जो ऐसे कहते हैं वह उस गतिके कर्मोंसे नहीं प्राप्त होतेहैं ॥ २३ ॥ हे भूपाल ! आकाशमें होकर, ब्रह्मलोकके मार्गमें ज्योतिर्मय सुषुम्णा नाड़ीसे अग्निअभिमानी देवताको प्राप्त होताहै पीछे सब मलरहित हो, सो ऊपर वर्तमान हरिसंबंधी तारारूप शिशुमारचक्रको प्राप्त होता है, शिशुमारचक्रका वर्णन पंचमस्कन्धमें करेंगे॥२४॥श्रीविष्णुभगवान्,और सूर्यादिकोंका आश्रय,भूत विश्वकी नाभिरूप चक्रको उल्लंघन करते हैं । क्योंकि उस्से परे फिर स्वार्गियोंकी गति नहीं है,इसकारण एकही निर्मल लिंग शरीर अणुरूप होकर औरोंसे नमस्कृत ब्रह्मवेत्ताओंके स्थान, महर्लोकको प्राप्त होताहै।महाकल्पकी आयुवाले पंडित भृगु आदिक जहां रमण करतेहैं॥२५॥इसके उपरान्त कल्पांतमें श्रीशेषजीके

वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ॥ विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ॥ नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमंते ॥ २५ ॥ अथो अनंतस्य मुखानलेन दंदह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ॥ निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं यद्द्वै परार्ध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ॥ २६ ॥ न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ॥ यच्चित्ततोदः कृपयानिदंविदां दुरंतदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥ २७ ॥ ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोनलमूर्तिरत्वरन् ॥ ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिंगम् ॥ २८ ॥

मुखकी अग्निसे संसारको भस्म देखकर सिद्धेश्वरोंसे सेवित स्थान जो द्विपरार्द्धमे स्थित रहे हैं, उस ब्रह्मलोकको जाते हैं ॥ २६ ॥ उस ब्रह्मलोकमें शोक,वृद्धापन,मृत्यु,दुःख,भय कहींसे कभी नहीं होता है.जो भगवत्के ध्यानको नहीं जानते हैं उनको भगवत्की कृपाविना,दुःखकारी चित्तको व्यथा उपजानेवाला जन्म मरण होता रहता है; परन्तु वहां शोकादिक कभी नही होताहैं जो ब्रह्मलोकमें जाते हैं उनकी गति तीन प्रकारकी है, जो बहुत पुण्य बहुत दान कर गये हैं,वह कल्पान्तरमें पुण्यकी न्यूनाधिकतासे अधिकारी होतेहैं,जो हिरण्यगर्भादिककी उपासनाके बलसे गयेहैं वह ब्रह्माके संग मुक्ति पावेंगे,जो भगवत्के उपासक हैं,वह अपनी इच्छासे ब्रह्माण्डको भेदकर श्रीवैकुण्ठमें वैष्णवपदको जातेहैं॥२७॥पीछे लिंगदेहसे पृथ्वीरूपको

प्राप्त होकर, भय त्याग पृथ्वीरूप हो, जलको प्राप्तहो शीघ्रता न करके ज्योतिर्मयहो, वायुको प्राप्तहो, पवनरूप होकर, बड़े भारी ब्रह्मके स्वरूप आकाशको प्राप्त होताहै॥२८॥ भगवद्भक्तको ब्रह्माण्ड भेदनेका जो प्रकारहै सो कहते हैं॥ईश्वररचित प्रकृतिके किसी अंशसे महत्तत्त्व होताहै,उसके अंशसे अहंकार, और उसके अंशसे शब्द बनताहै, उसकी मात्राके द्वारा आकाश, आकाशके अंशसे स्पर्श, उसकी मात्राके द्वारा वायु, वायुके अंशसे रूप, तन्मात्राके द्वारा तेज, तेजके अंशसे रस, उसकी मात्रासे जल, जलसे गंध और जलकी मात्रासे पृथ्वी होतीहै. यह सब मिलकर चतुर्दश भुवनात्मक विराट् शरीर ब्रह्माण्ड होताहै, उस ब्रह्माण्डका पंचशतकोटि योजन विस्तार है. पृथ्वी शब्द वाच्य विशेष अंड कटाह शतकोटि योजन विस्तार वाला है। कोई२ पंचाशत कोटि योजन कहते हैं फिर वायु आदिकोंके अनगिन्त अंश हैं सो वह उत्तरोत्तर शतगुणे अधिक हैं। आठ पृथ्वीके आवरण

घ्राणेन गंधं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ॥ श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥
॥ २९ ॥ स भूतसूक्ष्मेंद्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ॥ संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधम् ॥ ३० ॥ तेनाऽऽत्मनाऽऽत्मानमुपैति शांतमानंदमानंदमयोऽवसाने ॥ एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै
पुनर्नेह विषज्जतेऽग ॥ ३१ ॥ एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च ॥ ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट
आराधितो भगवान्वासुदेवः ॥ ३२ ॥

व्यापक हैं ॥ घ्राणसे गंध, रसनासे रस, दृष्टिसे रूप, त्वचासे स्पर्श, श्रोत्रसे आकाशके गुणको प्राप्त होकर योगी प्राणसे उन २ क्रियाओंको प्राप्त होतेहैं ॥ २९ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है, तामस, राजस, सात्त्विक, तामससे जड़भूत सूक्ष्म उत्पन्न होतेहैं, राजससे बहिर्मुख दश इन्द्रियें सात्त्विकसे मन इन्द्रिय देवता, उनका लय उस अहंकारसे होताहै । सो योगी भूत सूक्ष्म इन्द्रियोंका लय, मनोमय, देवमय, अहंकारको गतिसे प्राप्त होकर, गुणोंका जिसमें लय ऐसे महत्तत्त्वको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ हे नरेश! आनन्दमय जीव उपाधियोंके अंतमें प्रधानरूपसे उस आत्माको प्राप्त होताहै, भगवत्की गतिको जो गयाहै सो फिर इस संसारमें आसक्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र । यह दोनों मार्ग वेदने गायेहैं सनातन मार्ग आपने

जाना है पहिले भगवान्‌की ब्रह्माने आराधना करीथी, तब भगवान् वासुदेवने यह गति ब्रह्माजीसे कहीथी ॥ ३२ ॥ जो जीव संसारमें फँसरहेहैं, उनको इससे अधिक और कल्याणदायक मार्ग नहीं है, जिससे कि, भगवान् वासुदेवमें भक्तियोग हो ॥ ३३ ॥ भगवान् चतुरानन निर्विकारी एकाग्र चित्त करके वेदको तीनबार, बुद्धिसे विचारकर आत्मामें प्रीतिहोय जिस्से वही निश्चय करते हुए ॥ ३४ ॥ भगवान् सब जीवोंमें अपने आत्मा करके श्रीहरि दीखे हैं, बुद्धि आदि जो ईश्वरके देखनेके उपायहैं और अनुमान करनेके जो लक्षण हैं उनसे दीखतेहैं ॥ ३५ ॥ हे नृपेन्द्र! इसकारण सर्वात्मा हरि सर्वत्र सब कालमें श्रवण करनेके योग्यहैं। और वही मधुसूदन सब जीवोंके स्मरण करने योग्यहैं ॥ ३६ ॥ जो कोई भगवान् सर्वव्यापककी

न ह्यतोऽन्यः शिवः पंथा विशतः संसृताविह ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥ ३३ ॥ भगवान्ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ॥ तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥ ३४ ॥ भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ॥ दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥ ३६ ॥ पिबंति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ॥ पुनंति ते विषयविदूषिताशयं व्रजंति तच्चरणसरोरुहांतिकम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वितीयस्कंधे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ॥ नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ ॥ १ ॥ ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ॥ इंद्रमिंद्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥

अथवा ब्राह्मणोंकी कथामृतको श्रवणोंसे भली प्रकार भर २ के पीतेहैं, वह विषयोंसे अतिदूषित अंतःकरणको पवित्र कर श्रीहरिके चरणकमलोंके समीप जातेहैं ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां सूक्ष्मरूपध्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ दोहा—कहों तृतीय अध्यायमें, देवार्चनको हेत। जौन जौनसे देवता, जेहि २ फलको देत ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले जो बात आपने हमसे पूँछी सो हमने कही. आसन्नमृत्यु बुद्धिमान् मनुष्योंको यह श्रीहरिकी कथा श्रवणादिकही श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ परन्तु अनेक कामोंकी फल प्राप्तिके लिये अन्य अन्य देवताओंका भी भजन करना योग्य है, ब्रह्मतेज बढानेकी इच्छावाले वेदपति ब्रह्माका पूजन करें, इन्द्रियोंकी पुष्टता चाहनेवाले इन्द्रकी

पूजा करैं, सन्तानवृद्धि चाहनेवाला दक्षप्रजापतिकी पूजा करै * ॥ २ ॥ लक्ष्मीकी इच्छावाला दुर्गादेवीकी पूजा करै, तेजकी अभिलाषावाला अग्निकी पूजा करै, धनकी कामनावाला श्रेष्ठ वसुका पूजन करै। जो वीर्यवान् होनाचाहै वह वीर्यदाता महादेवका पूजन करै ॥ ३ ॥ अन्नादिक भोगकी इच्छावाला अदितिकी सेवामें अनुरक्त हो, स्वर्गकी कामनावाला द्वादश आदित्योंकी पूजा करै, राज्यकी कामनावाला विश्वेदेवाओंका भजन करै, जो देश देशान्तरकी प्रजाको अपने अधीन करना चाहै वह साध्यानामक देवताओंका पूजन करै ॥ ४ ॥ आयुका प्रार्थी अश्विनीकुमारको और पुष्टिकी कामनावाला पृथ्वीको स्वच्छकर पूजन करै। जिसको अपनी प्रतिष्ठाकी वाञ्छा हो वह लोकप्राप्त

देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥ वसुकामो वसून्रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥ ३ ॥ अन्नाद्यकामस्त्व दितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥ विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥४॥ आयुःकामोऽश्विनौ देवौ पुष्टि काम इलां यजेत् ॥ प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥५॥ रूपाभिकामो गंधर्वान्स्त्रीकामोप्सर उर्वशीम् ॥ आधि पत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥ यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ॥ विद्याकामस्तु गिरिशं दांपत्यार्थ उमां सतीम् ॥ ७ ॥ धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तंतुं तन्वन्पितॄन्यजेत् ॥ रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥ ८ ॥

द्यावापृथ्वीकी पूजा करै ॥ ५ ॥ रूपका चाहनेवाला गन्धर्वोंकी, सुन्दर स्त्री चाहनेवाला उर्वशी अप्सराकी, और सब देशके राज्यकी कामनावाला परमेष्ठी नामक ईश्वरका पूजन करै ॥ ६ ॥ यशकी इच्छावाला यज्ञपुरुषकी, और कोपकी इच्छावाला प्रचेता वरुणकी, विद्या चाहनेवाला महादेवजीकी, दंपतिमें प्रीत्यर्थ पार्वतीजीकी ॥ ७ ॥ धर्मका चाहनेवाला विष्णुकी, संतानकी वृद्धि चाहनेवाला अर्यमा नामक

* शंका—शुकदेवजीसे राजा परीक्षित्ने बूझा कि, हे मुनिराज! मरनेवाले मनुष्यको क्या काम करना चाहिये? सो शुकदेवजीने इसका उत्तर तो पीछे दिया, और जो राजाने सब देवताओंका पूजन नहीं बूझा था सो शुकदेवजीने देवताओंका पूजन क्यों वर्णन किया।

उत्तर—शुकदेवजीने अपने मनमें विचारा कि, सब कामना सिद्ध होनेके लिये पृथक् पृथक् देवताओंके पूजनकी विधि हम वर्णन करैंगे तो सब जीवोंको सुख उत्पन्न होगा. ऐसा विचारके राजाने नहींभी बूझा था तौभी सब कामोंकी प्राप्ति होनेके लिये सब देवताओंका पृथक् पृथक् पूजन वर्णन किया, शुकदेवजीने विचार किया कि, सब मनुष्य अपने अपने हृदयमें अपने अपने कामोंको देखके हमारी कही हुई विधिसे देवताओंका पूजन करके सुखको प्राप्त होंगे ॥

पितरोंकी, जो सदा बाधा विपत्तिसे अपनी रक्षा चाहे वह यक्षोंकी, बलकी कामनावाला मरुद्गणोंकी ॥ ८ ॥ जिसको राजगद्दीकी इच्छा होय वह मनु महाराजकी, और शत्रुका नाश चाहनेवाला निर्ऋति मृत्युकी, भोगकी इच्छा हो तौ चन्द्रमाकी, किसी कामकी इच्छा न हो केवल वैराग्यकी चाहना हो वह परमपुरुष भगवानकी ॥ ९ ॥ जिसको किसी वस्तुकी चाहना न हो अथवा सब वस्तुकी इच्छाके संग मोक्षकी भी कामना हो तौ उदार भक्ति और तीव्र बुद्धिसे परम पुरुष विष्णुभगवानकी पूजा करै ॥ १० ॥ ईश्वरमें अचल भाव हो, ब्राह्मण भगवत् भक्तोंकी संगति करना यही सब कर्म करनेवालेको परमपुरुषार्थका लाभ है ॥ ११ ॥ सब ओरसे रागादिकका समूह जिस्से दूर होजावे, ऐसा ज्ञान जिस कथामें होताहै तब

राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् ॥ कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥ अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १० ॥ एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ॥ भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसंगतः ॥ ११ ॥ ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसंगः ॥ कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥ शौनक उवाच ॥ इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः ॥ किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥१३॥ एतच्छुश्रूषतां विद्वन्सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ॥ कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥ १४ ॥ स वै भागवतो राजा पांडवेयो महारथः ॥ बालक्रीडनकैः क्रीडन्कृष्णक्रीडां य आददे ॥ १५ ॥

आत्मा मन प्रसन्न होताहै, जब सब विषयोंसे मन हटै है तब कैवल्यसम्मत मार्गमें भक्तियोग होताहै, तब सब सुख होते हैं. और तब वह हरिकथामें प्रीति करते हैं ॥१२॥ शौनकजी बोले–कि, भरतवंशियोंमे श्रेष्ठ राजा परीक्षितने यह कथा सुनकर, फिर व्यासपुत्र, शब्दब्रह्मके ज्ञाता, परब्रह्मदर्शी शुकदेवजीसे क्या बूझा ? ॥ १३ ॥ हे विद्वज्जन ! सुननेकी इच्छावाले मुझसे आप कहनेके योग्यहो, संतोंकी सभामें श्रीभगवानकी कथाही फलहै, सो निश्चय करनेसे होताहै ॥ १४ ॥ सो भागवत पाण्डुनन्दन महारथी परीक्षित बालक्रीडामें खेलनेके समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी

क्रीडा किया करतेथे ॥ १५ ॥ और व्यासपुत्र भगवान् वासुदेवमें परायण, कथनयोग्य श्रीवृन्दावनविहारीके उदार चारित्र संतोंकी सभामें सदा कहा करते हैं ॥ १६ ॥ सूर्यनारायण उदय अस्त होकर नित्य पुरुषकी आयुका हरण करते हैं। उत्तम यशस्वी परमेश्वरकी चिंतनाके विना जो क्षण व्यतीत होते हैं,वहआयु वृथा जाती है॥१७॥ वृक्ष क्या जीते नहीं हैं? धौंकनी क्या श्वास नहीं लेतीहै? और ग्रामके पशु क्या नहीं खातेहैं? वा विष्ठादिक नहीं करते हैं? इनकी आयु व्यर्थही है ॥ १८ ॥ श्वान, ग्रामसूकर, ऊँट, गधा यह जिसकी स्तुति करें वह व्यक्तिभी पशु है। जिसके श्रवणमें कभी भगवच्चारित्र न सुनाया गया है वह पुरुष पशुतुल्य है ॥ १९ ॥ परमेश्वरके चारित्र जो मनुष्य कानसे न सुने वह कान साँपके बिल

वैयासकिश्च भगवान्वासुदेवपरायणः ॥ उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६ ॥ आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ॥ तस्यर्ते यत्क्षणो नीतः उत्तमश्लोकवार्तया ॥ १७ ॥ तरवः किं न जीवंति भस्त्राः किं न श्वसंत्युत ॥ न खादंति न मेहंति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥ १८ ॥ श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ॥ न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥ बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ॥ जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥ २० ॥ भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुंदम् ॥ शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्कांचनकंकणौ वा ॥ २१ ॥ बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥ पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ २२ ॥

समान हैं। और हे सूत! जिनकी जीभसे परमात्माका नाम नहीं निकलता और भगवत्कथा नहीं होती वह खोटी जीभ मेंडककी जिह्वावत् है. और वृथा बकवाद करती है ॥ २० ॥ रेशमी वस्त्रवेष्टित, शोभायमान किरीटयुक्त शिर, जो भक्तवत्सलको प्रणाम नहीं करता; वह मस्तक केवल शरीरपर भार है। यदि हाथोंमें सुन्दर २ कंकणादि शोभितहों, परंतु वह भुजा हरिकी सेवा करै नहीं तो वह भी काष्ठकी करछीके तुल्य हैं ॥ २१ ॥ जिननेत्रोंने बाँकेबिहारीकी मनोहर झाँकी न निहारी, और महात्मा पुरुषोंका न दर्शन किया वह आँखें मोरपखकी सदृश हैं, और जिन पैरोंसे

मधुसूदनके क्षेत्रोमें न फिरा, और तीर्थयात्रा न करी वह पद वृक्षोंकी समान हैं ॥ २२॥जिसके शरीरमें ब्राह्मणों और नारायणके चरणकी रजका न स्पर्श हुआ वह प्राणी जीताहुआ मृतकतुल्यहै। जिसने विष्णुभगवान् और शालिग्रामके ऊपर चढीहुई तुलसी पत्रकी सुगन्ध न ली वह श्वास लेता हुआ मृतक है ॥ २३ ॥ बडे खेदका विषयहै कि, ग्रहण करनेयोग्य जो भगवत्के नाम हृदयसे नही लेते वह हृदय प्रस्तरकी नाईंहै। जिन्हें हरियश श्रवण करनेसे हृदयमें विकार न हो और आंखोमें जल न आवै; शरीरके रोम खड़े न हों वह हृदय पाषाणनिर्मित समझो ॥ २४ ॥ जो अभक्त हैं उनका किया कर्म सब व्यर्थ है। हे अंग! हमारे मनके अनुकूल तुम कहो, भक्तोंमें प्रधान व्यासनन्दन आत्मविद्याके ज्ञातासे जो राजाने बूझा

जीवञ्छवो भागवतांघ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ॥ श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गंधम् ॥ २३ ॥ तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ॥ न विक्रियेताऽथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥ २४ ॥ अथाभिधेह्यंग मनोनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ॥ यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपति साधु पृष्टः ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे श्रोतृश्रद्धानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ॥ उपधार्य मतिं कृष्ण औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबंधुषु ॥ राज्ये चाविकले नित्यं निरूढां ममतां जहौ ॥ २ ॥ पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ॥ कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥ ३ ॥

और उन्होंने कहा सो आपभी कहिये ॥२५॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां ब्रह्मादिदेवपूजनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–अब कछु वर्णन सृष्टिको, वर्णतमतिअनुसार ॥ रचना पालन लय करन, भगवत कौन प्रकार॥१॥

सूतजी बोले कि, शुकाचार्यकी आत्माके तत्त्व निश्चय करनेवाले वचन सुनकर भली भांति राजेंद्र परीक्षितने कृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना मन लगाया ॥१॥ शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, भ्राता, वन्धु, राज्य, पशु और धन इन सबकी ममता संपूर्ण त्यागदी ॥२॥ हे श्रेष्ठजनो! जो तुमने मुझसे पूंछा, इसीको श्रीकृष्णके अनुभव सुननेमें श्रद्धावाले

पुरुष बूझतेहैं ॥३॥ अपनी मृत्यु निकट जान धर्म, अर्थ, काम इनको सम्यक् प्रकार ईश्वरमें समर्पणकर पतितपावन गोवर्द्धनधारी नारायणमें अपनी आत्माको लगाया॥४॥परीक्षित् बोले कि,हे ब्रह्मन्! हे पापरहित! श्रीवासुदेव भगवान्‌की कथा कहनेवाले वचन बहुत सुन्दर हैं,जिस्से मेरा सब अंधकार दूर होगया ॥५॥जिसकी चिंता ब्रह्मादिक करते हैं ऐसे इस विश्वको भगवान् अपनी मायासे जिसप्रकार आप रचना करतेहैं वह मैं सुना चाहताहूं॥६॥ जैसे इस विश्वको रचकर पालन व फिर संहार करते हैं; जिस शक्तिका आश्रय लेकर परमपुरुष बहुत शक्ति धारण करतेहैं ? सो कहो ॥७॥ हे ब्रह्मन् !

संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ॥ वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवाऽनघ ॥ तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥ ५ ॥ भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ॥ यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥ ६ ॥ यथा गोपायति विश्वं यथा संयच्छते पुनः ॥ यांयां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् ॥ आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन्करोति विकरोति च ॥७॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्हरेरद्भुतकर्मणः ॥ दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥ ८ ॥ यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा ॥ बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥ विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा ॥ शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान्खलु ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः ॥ हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥

अद्भुतकर्म करनेवाले लोकनाथ हरिकी चेष्टा यथार्थ बड़े २ कवियोंसेभी निश्चय नहीं करी गई है, ऐसा विदित होता है ॥ ८ ॥ जन्म धारण कर कर्मकर्ता एक ईश्वर एक कालमें अथवा क्रम २ से प्रकृतिके गुणोंको धारण करते हैं ॥ ९ ॥ यह श्रवण करनेकी मेरी इच्छाहै सो आप कृपाकर कहिये ? ॥ क्योंकि आप परमेश्वर और शब्द परब्रह्मके भली प्रकार पारंगत हैं ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि, श्रीहरिके गुणानुवाद कहनेको नरनाथ परीक्षितने ऐसे प्रार्थना की, तब व्यासनंदन श्रीशुकदेवजीने श्रीवृन्दावनचन्द्रका स्मरणकर श्रीमद्भागवतके कहनेका प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हरिकी महिमाका प्रमाण नहीं, इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार इन चरित्रोंसे ब्रह्मादिक तीन शक्ति धारण करनेवाले घट २ वासी, किसीको जिनका मार्ग नहीं दीखै ऐसे परमपुरुष ईश्वरको मेरा नमस्कार है ॥ १२ ॥ धर्मवर्ती संतोंके कष्टनाशक, अधर्मी असंतोंके विनाशक, सब जीवमात्रमें जिनकी मूर्ति परमहंस आश्रममें स्थित पुरुषोंको वारबार ढूँढ़नेकी योग्यता देनेवाले परमेश्वरको फिर नमस्कार है ॥ १३ ॥ भक्तपालक, कुत्सित योगियोंसे दूर, अपने समान वा अधिकतासे रहित, ऐश्वर्यसे अपने स्वरूपमें रमण करनेहारे परब्रह्मको वारंवार नमस्कार है॥

श्रीशुक उवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ॥ गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामंतर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥ १२ ॥ भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाऽखिलसत्त्वमूर्तये ॥ पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥ १३ ॥ नमोनमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ॥ निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ १४ ॥ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वंदनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ॥ लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः ॥ १५ ॥ विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्संगं व्युदस्योभयतोंतरात्मनः ॥ विंदंति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः ॥ १६ ॥ तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मंत्रविदः सुमंगलाः ॥ क्षेमं न विंदंति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः ॥ १७ ॥

॥१४॥ जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन कथाश्रवण, पूजन सब लोकोंके पापको शीघ्र नाश करता है। उन सुन्दर मंगलरूप यशस्वी परमात्माको नमस्कार है। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वरको सब ओरसे नमस्कार मात्रही श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ विवेकी लोग जिनके चरणकी सेवासे आत्माका दोनों ओरसे संग त्याग परिश्रमरहित परब्रह्मकी गतिको प्राप्त होतेहैं ऐसे मंगलरूप यशस्वीके अर्थ नमस्कार है ॥ १६ ॥ तपस्वी, महादानी, यशस्वी, मनस्वी, मंत्रवेत्ता, मंगलकारी अपने २ करेहुए जिन कर्मोंको परमेश्वरमें समर्प्पण किये विना क्षेमको प्राप्त नहीं होते हैं,

ऐसे सुंदर मंगलरूप यशस्वीको नमस्कार है ॥ १७ ॥ किरात, हूण, आंध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खशादिक और और पापी भी जिसके आश्रयसे शुद्ध होजाते हैं उस सर्वव्यापक शीलयुक्त ईश्वरके अर्थ नमस्कार है ॥ १८ ॥ आत्मज्ञानियोंके आत्मा, सबके ईश्वर, वेदत्रयीमय, धर्ममय, तपोमय,निष्कपटी, ब्रह्मा, शंकर आदियोंसे अति आश्चर्यद्वारा जिनकी मूर्ति देखने योग्य है सो भगवान् मुझपर प्रसन्न होवें ॥ १९ ॥ श्रीभू लीलानायक, यज्ञपति, प्रजापति, बुद्धिपति, लोकपति, धरापति, अन्धक, वृष्णि सात्वतोंके पति, गति, संतोंके पति मुझपर प्रसन्न होवें॥२०॥जिनके

किरातहूणांध्रपुलिंदपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खशादयः ॥ येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यंति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१८॥ स एष आत्माऽऽत्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ॥ गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिंगो भगवान्प्रसीदताम् ॥१९॥ श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः॥ पतिर्गतिश्चांधकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः॥ २० ॥ यदंघ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धियाऽनुपश्यंति हि तत्त्वमात्मनः॥ वदंति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुंदो भगवान्प्रसीदताम् ॥ २१ ॥ प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ॥ स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलाऽऽस्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ २२ ॥ भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ॥ भुंक्ते गुणान्षोडशषोडशात्मकः सोऽलंकृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥ २३ ॥

दोनों चरणोंके निरन्तर ध्यानरूप समाधिसे धुई हुई बुद्धिसे सगुण, निर्गुण, उपासना करके ईश्वरके तत्त्वका दर्शन करते हैं और पंडित लोग अपनी बुद्धिके अनुसार इस तत्त्वका वर्णन करते हैं, सो मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥२१॥ कल्पके आदिमें ब्रह्माके हृदयमें सृष्टिके रचनेवाली स्मृतिको विस्तार करनेवालेसे प्रेरित सरस्वती ब्रह्माके मुखसे प्रगट हुई, वह असाधारण लक्षण ऋषियोंके भी बड़े श्रेष्ठ ईश्वर मुझपर प्रसन्न होवें ॥२२॥ जो ईश्वर पंचभूतोंसे इन सबको निर्माणकर इनके भीतर बसतेहैं, वे षोड़शकलाधारी समर्थ सोलह गुणोंके भोक्ता भगवान् मेरे वचनोंको

अलं कृतकरें ॥ २३ ॥ ब्रह्माके अन्तर्यामी भक्तजन जिनके मुखकमलके मादक ज्ञानमय रसको पीते हैं, उन ब्रह्माके अन्तर्यामी भगवान् वासुदेवके अर्थ नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे नृपाल ! वेदगर्भ साक्षात् हरि व्यापक ईश्वरने जो ब्रह्माजीसे कहा, ब्रह्माने नारदजीसे कहा वह यही बात है जो तुमने प्रश्न किया ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां वक्तृश्रद्धानिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा—इस पंचम अध्यायमें, विराटलीलारूप । विराटकी सब सृष्टिको, वरणों परम अनूप ॥ ५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे देवाधिदेव ! हे सर्व जीववत्सल ! हे पूर्वज ! आपके अर्थ नमस्कार है. आत्माके तत्त्वका निरन्तर दर्शन देनेवाला ज्ञान आप कहिये ॥ १ ॥ हे प्रभो ! जो रूप है,

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखांबुरुहासवम् ॥ २४ ॥ एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते ॥ वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे वक्तृश्रद्धानिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावनपूर्वज ॥ तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥ यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ॥ यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥ २ ॥ सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ ३ ॥ यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ॥ एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥ ४ ॥ आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्स्वयम् ॥ आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥ ५ ॥

जिसके आश्रय यह सब हैं, और जिस्से यह सब रचागया है, जिस्में यह लीन और जिसके अधीन है, जो कुछ है वह तत्त्व सिद्धान्तसे आप कहो ॥ २ ॥ हे प्रभो ! तुम भूत भविष्यत् वर्तमान यह सब जानते हो, हाथमें जैसे निर्मल जलकी बूँद अथवा आमला होय ऐसे अत्यन्त ज्ञानकर निश्चिन्त हो, इस विश्वको तुम जानते हो ॥ ३ ॥ जो विशेष ज्ञान है, जो आधार है, जिसमें तुम परायण हो; जो स्वरूप है अपनी मायासे सब जीवोंको एक तुम रचो हो मुझको तौ तुम ही ईश्वर जान पड़ते हो ॥ ४ ॥ उन सबका आपही पालन करते हो तुम्हारा

तिरस्कार कोई नहीं करसकता जैसे श्रमरहित मकड़ी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर घर रचती है तद्वत् तुम हो ॥ ५ ॥ हे विभो ! इस विश्वमें उत्तम अधम समान मनुष्यादि नामरूप द्विपदत्वादि गुण शुक्लादिसे साध्य सूक्ष्म स्थूल और तुमसे परे कोई नहीं है यह सब तुमसे ही होताहै ॥ ६ ॥ सावधान अच्छी प्रकार होकर आपभी घोर तप करते हो इसलिये हमको बड़ी चिन्ता व खेद उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ हे सर्वज्ञ ! हे सकलेश्वर ! मैं जो जिज्ञासा करता हूं सो आपसे शिक्षित जैसे मैं जानसकूं तैसे विशेषकर मुझसे तुम कहो ॥ ८ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र !

नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो ॥ नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ॥ ६ ॥ स भवानचरद्धोरं यत्तपः सुसमाहितः ॥ तेन खेदयसे नस्त्वं पराऽऽशंकां प्रयच्छसि ॥ ७ ॥ एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर ॥ विजानीहि यथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ॥ यदहं चोदितो धर्मे भगवद्वीर्यदर्शने ॥ ९ ॥ नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः ॥ अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥ १० ॥ येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ॥ यथाऽर्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११ ॥ तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवंति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥ विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ॥ विमोहिता विकत्थंते ममाहमिति दुर्धियः ॥ १३ ॥

दयावंत तुम्हारा संदेह ठीक है। हे सौम्य ! भगवतके वीर्यके प्रकाशमें जो तुमने मुझसे प्रेरणा की ॥ ९ ॥ हे नारद ! जैसे आप मुझसे कहते हैं यह ऐसे ही है, तुम्हारा कहना मिथ्या नहीं है। मुझसे परे और कौन है ? यह ऐसेही है ॥ १० ॥ जिनके प्रकाशित प्रकाशसे विश्वको मैं प्रकाश करूंहूँ, जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे यह ईश्वरकी सत्तासे सब प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥ तिन भगवान्को नमस्कार है। वासुदेवका ध्यान करते हैं जिनकी दुर्जय मायासे मुझको सब जीव जगद्गुरु कहते हैं ॥ १२ ॥ उस ईश्वरके सम्मुख खड़े होनेसे जिसको लाज

आवे ऐसी मायासे मोहित दुर्बुद्धिवाले हमसरीखे ब्रह्मादिक 'यह मेरा है, यह हम हैं' ऐसी श्लाघा करते हैं ॥ १३ ॥ सबका उत्तर ब्रह्मदेव कहते हैं कि–द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव यह सिद्धान्तसे विचारे हैं तौ हे ब्रह्मन्! वासुदेवसे परे कुछ नहीं हैं ॥ १४ ॥ वेद नारायणको कहते हैं, सब देवता नारायणके अंशसे जन्मे हैं, सब लोक नारायणका वर्णन करते हैं, सब यज्ञ नारायणका वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥ योगशास्त्र नारायणका वर्णन करते हैं, तप नारायणको कहता है। ज्ञान नारायणको कहता है, सबकी गति नारायण ही है ॥ १६ ॥ जीवके द्रष्टा ईश्वर, सर्वान्तर्यामी सर्व व्यापी, उनके रचेहुये पदार्थ में रचूहूं. उन्होंने मुझको रचाहै, उनके कटाक्षसे मैं प्रेरित हूं ॥ १७ ॥ आपके निर्गुण ईश्वरमें सत्त्व, रज, तम,

द्रव्य कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥ १४ ॥ नारायणपरा वेदा देवा नारायणांगजाः ॥ नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ १५ ॥ नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः॥ १६ ॥ तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ॥ सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥ १७ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ॥ स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ ॥ १८ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ॥ बध्नंति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥ १९ ॥ स एष भगवाँल्लिंगैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ॥ स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन्सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥ कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ॥ आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥ २१ ॥ कालाद्गुणव्यतिकरः परिणामस्स्वभावतः ॥ कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२ ॥

यह तीन गुण उत्पत्ति, पालन, संहारमें मायासे ग्रहण करते हैं ॥ १८ ॥ कार्य कारण कर्ता अपनेमें द्रव्य ज्ञान क्रियाके आश्रयी गुण नित्य मायावी पुरुषको बंधन करते हैं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्! सो ये भगवान् तीन गुणोंसे सबके और मेरे ईश्वर हैं, उनके ब्राह्मणोंकोही उनकी गति देखनेमें आती है ॥ २० ॥ काल कर्म स्वभाव अपनी मायासे मायाके स्वामी आत्मामें अपनी इच्छासे प्राप्त विविध प्रकारसे होनेकी इच्छासे ग्रहण करते हैं ॥ २१ ॥ कालसे गुणोंका उलट पलट होताहै. स्वभावसे औरका और रूप होजाता है; पुरुष जिसके स्वामी ऐसे कर्मसे महत्तत्त्व होय है ॥ २२ ॥

रज सत्त्वसे बढेहुए महत्तत्त्वसे, द्रव्य ज्ञान क्रियात्मक तम प्रधान होता है ॥ २३ ॥ उसीको अहंकार कहते हैं, उसमें तीन प्रकारके विकार होते हैं। वैकारिक, तैजस, तामस, यह तीन भेद होते हैं. हे प्रभो! द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति हुई ॥ २४ ॥ सब भूतोंका आदि तामस जब विकारको प्राप्त हुआ तब आकाश हुआ उसकी मात्रा शब्द गुण है। जो द्रष्टा और दृश्य इनका जतानेवाला है ॥ २५ ॥ जब आकाश विकारको प्राप्त हुआ तब स्पर्शगुणवाला पवन हुआ वह आकाशका शब्दगुणवाला होनेसे शब्दवान् और ओज, सह, बल, प्राण इनका कारण हुआ ॥२६॥

महतस्तु विकुर्वाणाद्रजःसत्त्वोपबृंहितात् ॥ तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः॥२३॥सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥ द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥ २४ ॥ तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ॥ तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिंगं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ २५ ॥ नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः ॥ परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥ २६ ॥ वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः ॥ उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥ २७ ॥ तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदंभो रसात्मकम् ॥ रूपवत्स्पर्शवच्चांभो घोषवच्च परान्वयात् ॥२८॥ विशेषस्तु विकुर्वाणादंभसो गन्धवानभूत् ॥ परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥२९॥वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोश्विवह्नींद्रोपेंद्रमित्रकाः ॥३०॥ तैजसात्तु विकुर्वाणादिंद्रियाणि दशाभवन् ॥ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ ॥ श्रोत्रं त्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेढ्रांघ्रिपायवः॥३१॥

काल कर्मके स्वभावसे जब विकारी वायु हुआ तब रूपकी सदृश स्पर्श, शब्दकी सदृश तेज, उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ तेज जब विकारी हुआ, तब रस आत्मा जल हुआ रूपकी सदृश, स्पर्शकी सदृश, जल शब्दवत् हुआ, जल जब विकारको प्राप्त हुआ, तब जलसे पृथ्वी हुई, सबमें व्याप्त रस स्पर्श रूप गुण हुये ॥ २८ ॥ २९ ॥ विकारी आत्मासे विकारी दश देव हुये। दिशा, पवन, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, ब्रह्मा ये दश हुये ॥ ३० ॥ तैजस अहंकार जब विकारी हुआ तब दश इन्द्रियें हुईं। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति,

बुद्धि, प्राण, तैजस, अहंकारसे हुये। कान, त्वचा, नाक, नेत्र, जीभ, वाणी, भुजा, लिंग, गुदा, चरण ये हुए ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मवित्तम! जब यह भूत, इन्द्रिय, भुजा, मन गुण न मिले तब शरीर रचनेमें समर्थ न हुये ॥ ३२ ॥ तब भगवत्की शक्तिसे प्रेरित सब परस्पर मिलकर सत् असत्को ले समष्टि (सब ब्रह्मांड) व्यष्टि (एक २ शरीर) युक्तविश्व रचा ॥ ३३ ॥ जब असंख्यवर्ष होगये तब यह अंड जलमें पड़ारहा, फिर काल कर्म स्वभावमें स्थित होकर सदा जीनेवाले परमात्मा अचेतन जीवको जिवाते भये ॥ ३४ ॥ सो यह पुरुष सहस्र ऊरु, चरण, भुजा, नेत्र और

यदैतेऽसंगता भावा भूतेंद्रियमनोगुणाः ॥ यदाऽऽयतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥ ३२ ॥ तदा संहत्य चान्योऽन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ॥ सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥ ३३ ॥ वर्षपूगसहस्रांते तदंडमुदकेशयम् ॥ कालकर्म स्वभावस्थो जीवो जीवमजीवयत् ॥ ३४ ॥ स एष पुरुषस्तस्मादंडं निर्भिद्य निर्गतः ॥ सहस्रोर्वंघ्रिबाह्वक्षः सहस्रानन शीर्षवान् ॥ ३५ ॥ यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयंति मनीषिणः ॥ कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥ ३६ ॥ पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ॥ ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥ ३७ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥ ३८ ॥ ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तन द्वयात् ॥ मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥ ३९ ॥ तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ॥ जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघाभ्यां तु तलातलम् ॥ ४० ॥

सहस्र शिरवाले हुये ॥ ३५ ॥ जिसकी लेशमात्र चेष्टासे बुद्धिमान् लोकोंकी कल्पना करतेहैं, कमरसे नीचे सात लोक हैं और सात लोक जंघादिकके ऊपर हैं ॥ ३६ ॥ परब्रह्म पुरुषका मुख ब्राह्मण, क्षत्रिय भुजा, ऊरु वैश्य, और पांवसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ३७ ॥ भूलोक पगमें, भुवर्लोक नाभिमें, स्वर्ग लोक हृदयमें, और उरमें महर्लोक है ॥३८॥ ग्रीवामें जनलोक, स्तनोंमें तपलोक, मस्तकमें सत्यलोक है। ब्रह्मलोक वैकुण्ठ सनातन हैं,इस ब्रह्माण्डमें नहीं हैं ॥ ३९ ॥ उनकी कमरमें अतल लोक, विभुके ऊरुमें वितललोक, जानुमें शुद्ध सुतल लोक, जंघामें तलातल लोक ॥४०॥

गुल्फोंमें महातल लोक, एँड़ियोंमें रसातल, और पादके तले पाताललोक है। ऐसे लोकमय पुरुष ईश्वर है ॥ ४१ ॥ पांवमें भूर्लोक, नाभिमें भुवर्लोक, और स्वर्गलोक मस्तकमें है ॥ ऐसे भी, लोकोंकी कल्पना है ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीविराट्सृष्टिहरिलीलाविराट्रूपवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–इस छठयें अध्यायमें, कहौ विराट्विभूति ॥ नरसूक्तार्थ बखानिहों, सकल विश्व करतूति ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, विराट् पुरुषकी विभूति वर्णन करते हैं। अस्मदादिकोंकी वाणीके स्वामी वह्नि उन ईश्वरका मुख उत्पत्ति स्थान है। इनमें चार बातें हैं। वाणी तो इन्द्रिय है, वरुण देवता, मुख उत्पत्तिस्थान है, रसका स्वाद लेना यह उसका विषय है। यह बात सब स्थानोंमें जानलेना। ग्रन्थविस्तारके कारण अधिक नहीं लिखा है। गायत्री आदि सात छन्द जो हैं सो अपने लोगोंकी सप्त त्वचाहैं। जो देवताओंके

महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ॥ पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्विती० जनननिरूपणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छंदसां सप्त धातवः ॥ हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥ १ ॥ सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ॥ अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥ २ ॥ रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ॥ कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ॥३॥ तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् ॥ त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ॥४॥ रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः ॥ केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ॥ ५ ॥

निमित्त दियाजाय वह अन्न हव्य है जो पितरोंके लिये दियाजाय वह अन्न कव्य है, इस अन्नकी सब रस और अमृतकी जिह्वा कारण है॥१॥हमारे सबके प्राण वायु उत्तम क्षेत्र उनकी नाक है जिसमें मोद प्रमोद जाननेवाली घ्राणेन्द्रिय है। अश्विनीकुमार देवताहैं सब औषधी विषय हैं ॥ २ ॥ रूप और रूपप्रकाशक तेज इन परमेश्वरके चक्षु इन्द्रिय स्थानहै। स्वर्ग और सूर्य इनका स्थान परमेश्वरके नेत्रगोलकहैं। दिशा और तीर्थ इनका स्थान परमात्माके कर्ण अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियके अधिष्ठानहैं और आकाश और उसका सूक्ष्मरूप शब्द इन दोनोंका स्थान ईश्वरका श्रोत्र इन्द्रिय है॥३॥ वस्तुके सारांश, स्थान ईश्वरका शरीरहै, स्पर्श गुणवाला वायु ईश्वरकी त्वचा है ॥४॥सबवृक्ष ईश्वरके रोमहैं जिनसे यज्ञपूर्ण होतेहैं- शिला, लोह, मेघ, बिजुली,

केश मूछ नख हैं ॥ ५ ॥ क्षेमकारी लोकपाल हरिकी बाहुहैं। क्षेमी ईश्वरका पाद रखना भूर्भुवः स्वर्ग लोक है ॥ ६ ॥ सबकाम व वर हरिके चरण स्थानमें हैं, ब्रह्मा जिसका देवता ऐसे विश्वके मेघ शुक्र हैं॥७॥ईश्वरका शिश्न उपस्थ वह है जो संतानार्थ भोग करते हैं जिससे आनंद सुख और नहीं है हे नारद ! मलत्यागका यम मित्र इनका पायु इन्द्रिय गुदा है तिरस्कार अधर्म अज्ञान यह भगवान्की पीठ है ॥ ८ ॥ ९ ॥ सरोवर व नदी ईश्वरकी नाड़ियें हैं समस्त पर्वत ईश्वरके हाथ हैं प्रधान रस समुद्र है जिसमें जीवोंका नाश है॥ १०॥वह उस महापुरुषका पेट है हृदय मनका स्थान

बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ विक्रमो भूर्भुवस्स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ॥ ६ ॥ सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् ॥ अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ ७ ॥ पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानंदनिर्वृतेः ॥ पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ॥ ८ ॥ हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥ पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः ॥ ९ ॥ नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥ अव्यक्तरससिंधूनां भूतानां निधनस्य च ॥ १० ॥ उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥ धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च ॥ ११ ॥ विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥ अहं भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः ॥ १२ ॥ सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ॥ गंधर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः ॥ १३ ॥ पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ॥ अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ॥ १४ ॥ ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ॥ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ १५ ॥

है, धर्मका मेरे तुम्हारे, सनकादिकोंका महादेवजीका ॥ ११ ॥ शेष ज्ञानका और सतोगुणका जो परमेश्वरका चित्त है सो स्थान है । हम तुम शिव ये सब मुनिलोग जो तुमसे पहले जन्मे हैं ॥१२॥देवता, असुर, नर, नाग, पक्षी, मृग, सर्प, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग ॥१३॥ पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और अनेक प्रकारके जितने जीव जल, थल और आकाशके ॥ १४ ॥ नवग्रह, अश्विनीआदि नक्षत्र, प्रलयके समय जो पूँछल तारे होते हैं वह और विजली गर्जनशब्द भूत भविष्यत् वर्तमान और जो कुछ है यह सब पुरुष परमेश्वरस्वरूपही है जो सब

जीवमात्रके शरीररूप पुरियोंमें सोवे वह पुरुष ईश्वर है ॥ १५ ॥ उन ईश्वरसे व्याप्य यह विश्वहै कि, वितस्तिभरमें विराजते हैं । सूर्य अपने मंडलको प्रकाशित करता हुआ जैसे बाहर भीतर प्रकाश करता है ऐसेही विराट् देहको प्रकाश करता हुआ ब्रह्मांडको ईश्वर प्रकाशित करता है ॥ १६ ॥ ऐसे इस विराट्रूपमें बाहर भीतर पुरुष तपते हैं भयरहित मोक्षके ईश्वरने मरणधर्मक अन्न कर्म फलको प्रगट किया ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! पुरुषकी महिमा बड़ी कठिन है ईश्वरके पुरुषके पादमें सब जीवोंकी स्थिति है ऐसा जानो ॥ १८ ॥ क्षेमदायक, अभयदायक अमृत, त्रिलोकीके शिरपर रक्खा. अथवा क्षेमी, अभयी, मरण जहां नहीं ऐसी त्रिपाद विभूति त्रिलोकी शिरपर रक्खी । त्रिपाद विभूति बाहर है,

तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥ स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ॥ १६ ॥ एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यं तर्बहिः पुमान् ॥ सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ॥ १७ ॥ महिमैष ततो ब्रह्मन्पुरुषस्य दुरत्ययः ॥ पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः॥ १८ ॥ अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥ पादास्त्रयो बहिश्चासन्न प्रजानां य आश्रमाः ॥ अंतस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥ १९ ॥ सृती विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे ॥ यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥ २० ॥ यस्मादंडं विराड् जज्ञे भूतेंद्रियगुणात्मकः ॥ तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥ २१ ॥ यदाऽस्य नाभ्यां न्नलिनादहमासं महात्मनः ॥ नाविदं यज्ञसंभारान्पुरुषावयवादृते ॥ २२ ॥ तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ॥ इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥ २३ ॥

जो नैष्टिक ब्रह्मचारियोंके स्थान हैं आश्रम हैं ॥ इस त्रिलोकीके भीतर गृहस्थी ब्रह्मचर्य नहीं करते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका घरमेंही सदा मोक्ष होताहै अनेक प्रकारसे सब ओरसे जिनकी पूजा होय वह ईश्वर शिक्षाशास्त्र और एक विना शिक्षाका शास्त्र जिसमें दो मार्ग प्रगट किये विद्या अविद्या रची. परन्तु ईश्वर दोनोके आश्रित हैं, अविद्या बंधनकी करनेवाली है और विद्या मुक्तिकी दाता है ॥ १९ ॥ २० ॥ भूत इन्द्रियसे गुणात्मक विराट् ब्रह्माण्ड हुआ. जिससे अनेक द्रव्य हुए. इस विश्वको सूर्यकी नाईं ईश्वरने तपाया ॥ २१ ॥ जिससमय व्यापक ईश्वरकी नाभिके कमलसे मैं उत्पन्न हुआ, तब पुरुषके अवयवके विना यज्ञकी कुछ सामग्री न देखी ॥ २२ ॥ तिनके यज्ञके

पशु, वनस्पति, कुशा और देवताओंके यजनयोग्य स्थान रचे, और जिसमें बहुत गुण ऐसा समय रचा ॥ २३ ॥ सब पात्रादि रचे, ओषधी, घृतादिक, मधुरादिक, सुवर्णादिक धातु, मृत्तिका, जल, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, चार ब्राह्मण, और जिसमें हवन करे वह कर्म रचा, हे सत्तम ! ॥ २४ ॥ ज्योतिष्टोमादिनाम सुवर्णादि दक्षिणा, एकादश्यादि सब व्रत; देवताओंके नाम सबके निमित्त बौधायनादि कर्मपद्धति संकल्प अनुष्ठानका क्रियातंत्र ॥ २५ ॥ विष्णुक्रमादि गति देवताओंका ध्यानादि मति प्रायश्चित्त जो करना उनको भगवान्में समर्पण करना. पुरुषके अवयवोंसे मैंने सब सामग्री रची ॥२६॥ पुरुषके अवयोंकी ऐसे सब सामग्रीसे पूजनीय परमात्माने पुरुषका यज्ञ किया ॥२७॥ उनके पीछे प्रजापति

वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥ २४ ॥ नामधेयानि मंत्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ॥ देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तंत्रमेव च ॥ २५ ॥ गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम् ॥ पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥२६॥ इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम् ॥ तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥ ॥ २७ ॥ ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव ॥ अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥ २८ ॥ ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ॥ पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥ २९ ॥ नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ॥ गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥ ३० ॥ सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ॥ विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥ ३१ ॥ इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि ॥ नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ॥ ३२ ॥

नौ, यह तुम्हारे भ्राता सावधान होकर इन्द्रादिरूपसे अपने आपही पुरुषका पूजन करने लगे ॥ २८ ॥ उसके पीछे अपने समयमें सब मनुष्य, सब ऋषि और सब पितर विबुध दैत्य मनुष्य, यज्ञोंसे समर्थ जनार्दनका यज्ञ किया ॥ २९ ॥ यह सब विश्व भगवान् नारायणमें स्थित है इस सृष्टिके रचनेकी आदिमें बहुत मायाके गुण ग्रहण किये, आप सब गुणोंसे पृथक् रहे ॥ ३० ॥ उसी परमात्माकी आज्ञासे संसारको मैं रचताहूं, और ईश्वरके वश होकर शिव संहार करैहैं, पुरुष विष्णुरूप होकर विश्वकी रक्षा करते हैं. तीनशक्तिधारी मायाधारी ईश्वर है ॥ ३१ ॥ हे नारद ! जैसे हमसे तैंने बूझा उसी प्रकार मैंने कहा. भगवान्के विना सत असत् आत्मक इस विश्वमें कुछ भी नहीं है ॥ ३२ ॥

हे नारद ! मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती, और मनकी गति कभी मिथ्या नहीं होती. मेरी इन्द्रियें कभी खोटे मार्गमें नहीं जातीं, क्योंकि निश्चय करके अत्यन्त भक्तिसे हृदयमें हरिको धारण किया है ॥ ३३ ॥ सो हम वेदमय, तपोमय, प्रजापतियोंके पति सबसे वन्दित सुन्दर योगमें स्थित होकर तप करते हैं. परन्तु मैं अपने सृजन करनेहारेको अबतक नहीं जानता ॥ ३४ ॥ शरणागतके रक्षक, संसारके नाशक, स्वस्तिदाता, मंगलदायक नारायणके चरणके हम आश्रित हैं जो भगवान् अपनी मायाका विस्तार आपभी नहीं जानते, जिस प्रकार आकाशका अंत आकाश नहीं जानसक्ता इसी प्रकार औरोंकी तो क्या सामर्थ्य है ? जैसे आकाशके पुष्पको न देखना कुछ सर्वज्ञताका नाश नहीं करता ॥

न भारती मेंऽग मृषोपलक्ष्यते न वै कचिन्मे मनसो मृषा गतिः॥ न मे हृषीकाणि पतंत्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठयवता धृतो हरिः ॥ ३३ ॥ सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवंदितः पतिः ॥ आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तन्नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ॥ ३४ ॥ नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् ॥ यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वांतमथापरे कुतः ॥ ३५ ॥ नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुताऽपरे सुराः ॥ तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥ ३६ ॥ यस्यावतारकर्माणि गायंति ह्यस्मदादयः ॥ न यं विदंति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥३७॥ स एष आद्यः पुरुषः कल्पेकल्पे सृजत्यजः ॥ आत्माऽऽत्मन्यात्मनाऽऽत्मानं संयच्छति च पाति च ॥३८॥ विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् ॥ सत्यं पूर्णमनाद्यंतं निर्गुणं नित्यमद्वयम्॥३९॥

॥ ३५ ॥ जिसकी गतिको न हम, न तुम सब, न शिव जानें. फिर देवताओंकी तो क्या सामर्थ्य है ? उनकी मायासे मोहित बुद्धिवाले सब इस मायाके रचेहुए विश्वको अपने ज्ञानके अनुसार वर्णन करते हैं ॥ ३६ ॥ जिन ईश्वरके अवतारोंके कर्म (अस्मदादिक) अर्थात् हम सब गाते हैं परन्तु सिद्धान्तसे उनको नहीं जानते, उन त्रिलोकनाथके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥ ३७ ॥ सो अजन्मा पुरुष ईश्वर सबसे प्रथम है । वही कल्प २ में विश्वरचना कर्ता अधिकरण साधन कर्म सब रूप आपही है, वही संहार करताहै वही रक्षा करताहै ॥ ३८ ॥ विषय आकार रहित है जलशायी है ज्ञानस्वरूप है सबका अन्तर्यामी है, संदेहादिरहित है, स्थिर है, सत्यरूप है।

सबमें पूर्ण है । आदिअंतरहित है, मायाकृत गुण जिसमें नहीं हैं, सदा रहै है । ईश्वरके विना और कोई नहीं है ॥ ३९ ॥ प्रसन्न आत्मा मन इन्द्रियें अंतःकरण होतेहैं । तब मुनिगण ईश्वरको जानते हैं । हे नारद ! जब खोटेलोग खोटीतर्क करतेहैं तब सब ईश्वरका ज्ञान नष्ट होकर आदिपुरुष अन्तर्धान हो जातेहैं ॥ ४० ॥ परब्रह्मका प्रथम अवतार पुरुष है । काल स्वभाव सत् असत् मन महाभूत अहंकार गुण आदि इन्द्रियें विराट् स्वरूप स्थावर जंगम यह सब परमेश्वरके अवतार हैं ॥ ४१ ॥ हम महादेव यज्ञ प्रजेश्वर दक्षादिक तुम सब स्वर्लोकपालक, खगलोकपालक, मनुष्यलोकपालक, तललोकपालक, सब ईश्वरकी विभूति हैं ॥ ४२ ॥ गन्धर्व, विद्याधर, चारण, ईश यक्ष, राक्षस उरग, सर्पोंके

ऋषे विदंति मुनयः प्रशांतात्मेंद्रियाशयाः ॥ यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥४०॥ आद्योवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ॥ द्रव्यं विकारो गुण इंद्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥ ४१ ॥ अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ॥ स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥४२॥ गंधर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ॥ ये वा ऋषीणामृषभाः पितॄणां दैत्येंद्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ॥ अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्मांडयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥ ४३ ॥ यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोजस्सहस्वद्बलवत्क्षमावत् ॥ श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥ ४४ ॥ प्राधान्यतो यानृष आमनंति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ॥ आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वि० विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

स्वामी जो ऋषियोंसे बड़े हैं, पित्रीश्वर, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवेन्द्र और प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड, जल जन्तु, मृग, पक्षियोंके ईश इस ब्रह्माण्डकटाहमें जो कुछ है सो स्वरूप सब परमेश्वरका है जो कुछ इस लोकमें है सो भगवान्के महापराक्रम बलकी नाई क्षमावत् श्री लज्जा संपदा और ईश्वरके समान जो है वह जो रूपवान् है जो विनारूपवान् हैं यह सब परमतत्त्व हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ प्रधानतासे जिन्हें ऋषिलोग नमस्कार करतेहैं, वह लीलावतार पुरुष ब्रह्मके हैं. वह कानोंका मल दूरकरनेवाले हैं वह सुन्दर अब हम तुमसे कहेंगे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, जो हरि किये विहार ॥ भिन्न भिन्न वर्णन करों, चौबीसों अवतार॥७॥ ब्रह्माजी बोले—कि, अब वाराह अवतार कहतेहैं। पृथ्वीतल उद्धारके कारण श्रीवाराहजी अनंत भगवान्ने वाराहरूप धारण किया। जब हिरण्याक्षदैत्य महासमुद्रमें आया तब उसको मार धरतीको डाढ़पर रखलाये। जिसप्रकार पाकशासनने पर्वतोंको विदारडाला था, इसीरीति भगवान् वाराहजीने हिरण्याक्षका उदर दाँतोंसे फाड़डाला ॥ १ ॥ अब यज्ञावतार कहतेहैं। रुचि प्रजापतिकी आकूतिनाम स्त्रीसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका सुयज्ञ नाम प्रसिद्ध हुआ. वह सुयज्ञ अपनी सुदक्षिणानाम स्त्रीसे सुयमनामक देवताओंको उत्पन्न करताहुआ। उसीने इन्द्र होकर तीनों लोकोंकी महापीडाका नाश किया जो पहले सुयज्ञ नामक था

ब्रह्मोवाच ॥ यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनंतः ॥ अंतर्महाऽर्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाऽद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥ १ ॥ जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ॥ लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥ २ ॥ जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ॥ ऊचे ययाऽऽत्मशमलं गुणसंगपंकमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥ अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्टो दत्तो मयाहमिति यद्भगवान्स दत्तः ॥ यत्पादपंकजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥ ४ ॥

परन्तु मातामहने हरिनाम रक्खा. देवोंकी उत्पत्ति लोकत्रयकी पीड़ा हरना उनका काम है यह सब अवतारमें और अवतारका कर्म सब स्थानों में जान लेना ॥ २ ॥ अब कपिल अवतार कहतेहैं। हे नारद ! कर्दमजीके घर देवहूतीसे नौ भगिनी सहित कपिलदेवजीने अवतार लिया और अपनी माताको सांख्यशास्त्र—अर्थात् ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। जिस ब्रह्मविद्यासे जीव जो मलिन करनेवाले संसारकीचको इसी जन्ममें धोकर महात्मा कपिलदेवजीकी गतिको प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ अब दत्तात्रेय अवतारका वर्णन करते हैं. जब अत्रिऋषिने पुत्रकी चाहना की तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर कहा "मैं स्वयंही तुम्हारे घर जन्म लूँगा" इसकारण दत्तात्रेय नामसे हृषीकेशने अवतार लिया, जिनके चरणपंकजकी रजसे

निर्मल आत्मावाले यदु, हैहयादिक, ऐहिक; आमुष्मिक, भुक्ति मुक्तिरूपा योगसिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ अब सनकादिक अवतारका वर्णन करतेहैं। पहिले अनेक लोक रचनेकी इच्छामें बहुत तप किया, तपके प्रभावसे परमेश्वरने सनकादिकका अवतार लिया। पहिले कल्पके प्रलयमें नष्ट आत्मतत्त्वको सुंदरतासे वर्णन किया। जिनके कहनेमात्रसे मुनिलोगोंने अपने आपमें साक्षात् परमात्माको देखा ॥ ५ ॥ अब नर–नारायण अवतारकी कथा कहतेहैं। धर्मकी स्त्री दक्षसुता, मूर्तिनामसे प्रसिद्ध थी। उसमें अपने तपके प्रभावसे नर–नारायण हुये। उनका तप भंग करनेको कामसेना नाम अप्सरायें उनके पास गई, परन्तु नर–नारायणके निकट अपनी समान उर्वशी आदि स्त्रियोंको देख अपने रूपका अभिमान

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुस्सनोऽभूत् ॥ प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥ दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनंगपृतना घटितुं न शेकुः॥ ६ ॥ कामं दहंति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहंतमपि ते न दहंत्यसह्यम् ॥ सोऽयं यदंतरमलं निविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥ ७ ॥ विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरंति राज्ञो बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ॥ तस्मा अदाद्ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवंति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ ८ ॥

भूलगई और ईश्वर नर–नारायणका व्रतभंग न करसकी ॥ ६ ॥ महासुकर्मकारी त्रिपुरारीने, क्रोधदृष्टिसे कामदेवको भस्म किया, परन्तु देहके जलानेवाले क्रोधको भस्म न करसके सो यह रोष नर–नारायणके हृदयमें प्रवेश करनेसे बहुत डरा, फिर कुसुमायुध उनके हृदयमें कैसे प्रवेश करसके ? ॥ ७ ॥ अब ध्रुव अवतार कहते हैं। उत्तानपाद नरनाथके गृहमें ध्रुवजीने जन्म लिया, एक समय ध्रुवने पिताके अंकमें बैठनेको मन किया तब निकट बैठीहुई सुरुचिविमाताके कहे कटुवाक्य बाणोंसे विद्ध होकर बालक ध्रुवजी तपके अर्थ काननमें चलेगये और स्तुति करनेसे प्रसन्न हो हरिने ध्रुवको ध्रुवपद दिया। स्वर्गवासी औत्तानपादि राजर्षिके समीप, भृगुआदिक ऊपरसे, और नीचेसे सप्तर्षि जिनकी स्तुति करतेहैं ॥८॥

अब पृथु अवतार कहते हैं। एक समय राजा वेनके पाखण्ड अवलम्बनसे धर्म नष्ट होगया, तब ब्राह्मणके वाक्यरूप वज्रसे उसका पुरुषार्थ और सब ऐश्वर्य नष्ट होगया और नरकमें गिरा, तब मुनियोंकी प्रार्थनासे भगवान्ने पृथु होकर रक्षा करी. जगत्में * पुत्र नाम विख्यात किया। महात्मा पृथुने पृथ्वीको दुहा और सब वस्तु निकाली ॥ ९ ॥ अब ऋषभ अवतारका वृत्तान्त सुनो, यह नाभिके पुत्र सुदेवीपुत्र ऋषभदेवजी हुए। समानद्रष्टा जड़की नांई बन योगाभ्यास किया, जिनके पारमहंस्यपदको ऋषियोंने नमस्कार किया. स्वस्थ इन्द्रियें जिनकी शांत सबका संग त्याग ऐसे ऋषभदेवजी हुए, जिनसे जैनमत प्रगट हुआ ॥ १० ॥ अब हयग्रीव अवतारका वर्णन सुनो

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतंतम् ॥ त्रात्वाऽर्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥ ९ ॥ नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम् ॥ यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनंति स्वस्थः प्रशांतकरणः परिमुक्तसंगः ॥ १० ॥ सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ॥ छंदोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ ११ ॥ मत्स्यो युगांतसमये मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ॥ विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥ १२ ॥ क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ॥ पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकंडूः ॥ १३ ॥

मेरे यज्ञमें हयग्रीव अवतार भगवान् हुए। साक्षात् यज्ञपुरुष, सुवर्णसदृश वर्ण, वेदमय, यज्ञमय, सर्व देवतामय, वेदरूप सुन्दरवाणीसे अर्थात् वेदरूप नामके श्वाससे हुए ॥ ११ ॥ अब मत्स्यावतार कहते हैं। प्रलयकालके समयमें वैवस्वत मनुने पृथ्वीमय सब जीवोंका आश्रयरूप मत्स्यभगवान्को देखा. महाभयानक जलमें मेरे मुखसे गलित वेदमार्गोंको लाकर हर्षसे प्रलयके जलमें विहार किया ॥ १२ ॥ अब कच्छपावतार कहतेहैं। सत्ययुगमें क्षीरसमुद्रमें अमृतके लिये देवता और दानवयूथ मथन करने लगे, तब आदिदेव भगवान्ने कच्छपरूप धारणकर मन्दराचल पर्वतको पीठपर धर ज्यों २ घुमातेथे त्यों २ कूर्म महाराजका खुजाहट जाता था और सुख प्राप्त होता था। जब निद्राके वशहो बहुतसे

* " पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुत. । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा " ॥

श्वास छोड़े उस दिनसे आजतक समुद्रमें विलास करते हैं ॥ १३ ॥ अब नृसिंह अवतारका वर्णन सुनो । सुरगणोंको महाभयभीत देख नरसिंह रूप अतिघोर धारण किया कि, महाभयंकर रूप; टेढ़ी २ भ्रुकुटि, महाकालकी समान भयानक डाढ़ें, नेत्र लाल २ अग्निवत्प्रदीपमान, शीघ्र गदा लेकर निकट आये हिरण्यकशिपुके हृदयको महाकराल नखोंसे फाड़डाला । अब हरि अवतारका वर्णन करते हैं—त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें, महाबलवान् ग्राहने गजेंद्रका पांव पकड़कर जलमेंको खेंचा । तब यूथपति गजनाथ व्याकुल हो कमलफूल शुण्डमें ले यह कहनेलगा । हे आदिपुरुष ! हे दीनबन्धु ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे पुण्ययश ! हे श्रवणमंगलनामधेय ! रक्षा करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ श्रीहरि शरणागतवत्सल, गजेंद्रकी पुकार सुनकर महाबली

त्रैविष्टपोरुभयहा स नृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ॥ दैत्येंद्रमाशु गदयाऽभिपतंतमाराद्रूरो निपात्य विददार नखैः स्फुरंतम् ॥ १४ ॥ अंतःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण यूथपतिरंबुजहस्त आर्तः ॥ आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेय ॥ १५ ॥ श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ॥ चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥ १६ ॥ ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकान्विचक्रम इमान्यदथाधियज्ञः ॥ क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याच्ञामृते पथि चरन्प्रभुभिर्न चाल्यः ॥ १७ ॥ नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखां धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ॥ यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमंग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥ १८ ॥

चक्रायुध लिये गरुड़पर बैठ तत्काल आन चक्रसे मगरका मुख काट शुण्ड पकड़ कृपा करके गजका उद्धार किया ॥ १६ ॥ आपसे अब वामन अवतार कहतेहैं । गुणोंमें सबसे बड़े, अदितिके द्वादशपुत्रोंमेंसे छोटे वामनजी हुए, जिन्होंने तीनों लोकोंको दोनों पगोंसे नाप लिया । यज्ञ भगवान्ने पृथ्वी वामनरूप धारणकर बलिसे तीन पदके मिससे लेली क्योंकि धर्ममार्गमें वर्तमान समर्थको ईश्वर मांगनेकी वृत्तिके विना चलायमान न करसके ॥ १७ ॥ हे नारदजी ! श्रीभगवान्के चरणोंका धोवन गंगाजल बलिने शिरपर धारण किया, राज्यप्राप्तिके लिये नहीं, क्योंकि राजा

बलिने जो प्रतिज्ञा की थी, उस्से अधिक करनेकी इच्छा कर अपनी देह और शिरमें हरिका तीसरा चरण पूरा किया ॥ १८ ॥
अवतार कहतेहैं । हे नारद हंस भगवान्ने अत्यन्त भक्तिभावसे प्रसन्न हो ज्ञानयोग भागवत आत्मज्ञानका प्रकाशक तुमसे कहा जिसू
वासुदेवके शरणागत भक्त विना परिश्रम प्राप्त होतेहैं ॥ १९ ॥ अब मन्वन्तर अवतार कहते । दशों दिशाओंमें जिसकी अप्रतिबन्ध
वर्तनेसे सुदर्शनचक्र मन्वन्तरोंमें मनुवंशधारी भगवान्ने धारण किया और दुष्ट राजाओंको दंड दिया, और त्रिलोकीमें अपने चरित्र
प्रकाशकर अपनी सुन्दर कीर्तिका विस्तार किया ॥ २० ॥ अब धन्वन्तरिका वर्णन सुनो । धन्वन्तरि भगवान्ने अपनी कीर्ति

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् ॥ ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं यद्वासुदे
वशरणा विदुरंजसैव ॥ १९ ॥ चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो मन्वंतरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ॥ दुष्टेषु राजसु दमं
व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥ २० ॥ धन्वंतरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां
रुज आशु हंति ॥ यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१ ॥ क्षत्रं क्षयाय विधिनो
पभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ॥ उद्धंत्यसाववनिकंटकमुग्रवीर्यस्त्रिस्सप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥
॥ २२ ॥ अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ॥ तिष्ठन्वनं सदयितानुज आविवेश
यस्मिन्विरुध्य दशकंधर आर्तिमार्च्छत् ॥ २३ ॥

अपने नामसे महारोगियोंका रोग दूर किया और यज्ञमें अमृत असुरोंसे लाये । लोकमें वैद्यकशास्त्र आयुर्वेद, अवतार
सहित मनुष्योंको सिखाया ॥ २१ ॥ अब परशुराम अवतार कहते हैं । दैवसे प्राप्त ब्राह्मणद्रोही, वेदमार्गत्यागी, न
तीपर कंटक, क्षत्रियोंके क्षयके अर्थ उग्रवीर्य धार तीक्ष्णधारके परशेसे इक्कीस बार क्षत्रियोको मार २ कर पृथ्वीब्राह्मणोंको
॥ २२ ॥ अब श्रीरामचन्द्र अवतार वर्णन करते हैं। हमारे ब्रह्मादिकोंके ऊपर प्रसन्नहो पन्द्रह कलाका अवतार धार कलाके ई
योंमें श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्नहो राजादशरथकी आज्ञामान सीता लक्ष्मण सहित वनको गमन किया जिनसे विरोधकर लंकानाथ

प्राप्त हुआ ॥२३॥ सीताके विरहमें क्रोधसे लाल २ नेत्र करके समुद्र तीक्ष्णतेजके ताप और भयके मारे थर२काँपने लगा ❋ ॥२४॥ युद्धमें रावणके, स्थलके स्पर्शसे इन्द्रका ऐरावत हाथी घबड़ागया और उसके दांतोंके टुकड़े२होगयेथे इसी गर्वसे राक्षसाधिपति दशशीश दशों दिशाओंमें निर्भय रता फिरता था। उस सीताहारी राक्षसेन्द्रके वर्द्धित महागर्वको शीघ्र प्राणसहित मर्य्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने नाश किया ॥ २५ ॥ अब श्री अवतारका वर्णन करतेहैं। असुरोंके अंशी राजाओंके समूहसे दुःखित भूमि क्लेश नाशकर, बलदाऊ सहित कृष्ण जिनके केश, किसी मनुष्यसे

यस्मा अदादुदधिरूढभयांगवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः ॥ दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥२४॥ वक्षस्स्थलस्पर्शरुग्णमहेंद्रवाहदंतैर्विडंबितककुब्जुष ऊढहासम् ॥ सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥ २५ ॥ भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ॥ जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबंधनानि ॥ २६ ॥ तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ॥ यद्रिंगतांतरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् ॥ २७ ॥

मार्ग नहीं जानाजाय, वह परब्रह्म श्रीकृष्णावतार धारणकर अपनी महिमाके प्रकट करनेवाले कर्म करेंगे। कोई यह तर्क न करै कि, केशमात्र अवतार हैं क्योंकि भारका उतारना क्या बड़ा कार्य है? हमारे केशहैं। यह प्रगट करनेके लिये और राम कृष्ण वर्ण सूचनाके लिये ऐसा लिखाहै ❋ ॥२६॥२७॥

* शंका—किसी शास्त्र पुराणमें यह नहीं सुना कि, त्रिपुरासुरके पुरको जलानेकी इच्छा शिवजीने की तव शिवको पुरके सन्मुख जानेके लिये समुद्रने मार्ग दिया इसी प्रकार नारदसे ब्रह्माने कहा कि रामचन्द्रको लंकामें जानेके लिये सागरने मार्ग दिया, जो तीनों पुरके जलानेकी इच्छा की और महादेवको समुद्रने मार्ग दिया यह वडीभारी शका है ॥

उत्तर—शंकरके चरणोंमें शंकरके भक्तोंका अधिक जो प्रेम है वही समुद्र है उसी प्रेमसमुद्रमें शिव सर्वदा मतवाले रहतेहैं. जव कभी भक्तोंके ऊपर शिवजी क्रोध करतेहैं तव प्रेमरूपी समुद्र शिवके भक्तोंके पास जानेके लिये क्रोधको पन्थ नहीं देता, जव तीन पुर जलानेके लिये विष्णुआदि सव देवताओंने शिवजीकी प्रार्थना की तव भोलेनाथ अपने हृदयमें त्रिपुरको थोडा भक्त समझ उसके ऊपर क्रुद्ध हुए, उसके होनेके कारणसे प्रेमके समुद्रने मार्ग दिया, मार्ग देना यह है कि, त्रिपुरको जलानेके लिये शिवजीने सम्पूर्ण निश्चय करलिया. इसीलिये ब्रह्माने यह कहा कि —

* "स चापि केशौ हरिरुच्च जह्रे शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम् । तौ चापि केशावविशेतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च ॥१॥ तयोरेको बलभद्रो बभूव योसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः ॥ कृष्णो द्वितीय केशवः सबभूव केशो योसो वर्णत कृष्ण उक्तः" ॥ महाभारतमें लिखाहै कि, ईश्वरने दो वाल काले सफेद उखाडे, वह दोनों वाल यादवोंके कुलमें रोहिणी और देवकी स्त्रीमें प्रवेश करगये । जो उन देवका श्वेत केश था, उससे संकर्षण उत्पन्न हुये दूसरे श्यामवर्णकेशसे केशीवधकारी गोपी आनदकारी विहारी श्रीकृष्णचन्द्र हुए । जिन्होंने वालकपनमें पूतनाको मारा और जव तीन मासके हुए तव शकटासुर, वकासुरके सहार किया, जव घुटनों चलने लगे तव अति उन्नत यमलार्जुन वृक्षोंको मूलसे उखाडा, भला यह कार्य विना ईश्वरके कौन साधन करसकताहै ? ॥

जिन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनने व्रजमें व्रजके गाय वत्स जब कालीदहका जल पीकर अचेत होगयेथे, उनपर अनुग्रह कर अमृत दृष्टिकी वृष्टि कर उनको जिलाया, और यमुनाकी शुद्धिके लिये उसमें विहारकर और अति चंचल जिह्वावाले कालीनागको नाथ और उसे जलसे निकाल लाये ॥ २८ ॥ उन भक्तवत्सल यशोदानन्दनके अलौकिक कर्म हैं। क्योंकि जब दावाग्निसे पवित्र वन जला तौ आप उसमें सोतेथे। उस भीषणाग्निसे निश्चय सबका काल आया था यह जान भक्तवत्सलने सबसे कहा कि नेत्र बंद करो। नेत्रोंके बंद करतेही व्रजको उबारा और अग्निका पान करगये ॥२९॥ जब यशोदा मैया श्रीकृष्णके बांधनेको रस्सी लाई और वह रज्जु पूरी न हुई तब वह दूसरी और लाई

यद्दै व्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान्पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ॥ तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन्ह्रदिन्याम्॥२८॥तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निश्शयानं दावाग्निना शुचि वने परिदह्यमाने ॥ उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितांतकालं नेत्रे पिधाय्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥२९॥ गृह्णीत यद्यदुपबंधममुष्य माता शुल्बं सुतस्य न तु तत्तदमुष्य माति ॥ यज्जृंभतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शंकितमनाः प्रतिबोधिताऽऽसीत्॥३०॥ नंदं च मोक्ष्यति भयाद्वरुणस्य पाशाद्गोपान्बिलेषु पिहितान्मयसूनुना च ॥ अह्न्यापृतं निशि शयानमतिश्रमेण लोकं विकुंठ उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥३१॥ गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः ॥ धर्तोच्छिलींध्रमिव सप्त दिनानि सप्तवर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥ ३२ ॥

जब वहभी ओछी हुई तब और लाई, इस भांति सब घर भरकी रस्सियें जोड़ीं परन्तु पूरी न हुई। जब श्रीकृष्णने कहा कि, मैया मैंने माटी नहीं खाई मेरा मुख देखले, श्रीकृष्णने यशोदाको मुख दिखलाया तौ उसमें सब विश्व दृष्टि आया, यशोदा विश्वको देख शंकित हुई। परन्तु पश्चात् ज्ञान हुआ ॥ ३० ॥ वरुणकी फाँसीसे भयभीत नंदको बचावेंगे। व्योमासुरके पर्वतकी गुफामें गायोंको बंद करनेपर उन्हें छुटावेंगे। और दिनमें तौ सब काम करके रात्रिको अतिश्रमसे सोये हुए सब गोकुलवासियोंको वैकुंठ दिखलावेंगे ॥३१॥ हे नारद ! जब गोपोंके इन्द्रयज्ञ न करनेपर व्रजका नाश करनेको क्रोधित हुआ इंद्र जब मूसलधाराओंसे वर्षा करेगा तब सात वर्षके श्रीकृष्णचंद्र गौ आदिकोंकी रक्षाके लिये छत्राककी तरह

सात दिनलों गिरि गोवर्द्धनको बायें हाथकी कन उँगलीपर धारण करैंगे ॥ ३२ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंसे युक्त श्वेत रजनीमें रासकी इच्छा करके क्रीड़ा करती मधुर पदसे नाच२राग गाय २ व्रजयुवतियोंका कामदेव जगाया। गोपस्त्रियोंके हरनेवाले कुबेरके सेवक शंखचूडके शिरका रत्न हरेंगे॥३३॥ और प्रलंबासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर, मल्ल, कुवलियापीड, कंस, कालयवन, नरकासुर, पौंड्रकादिक, शाल्व, द्विविदबंदर, वल्वल, दंतवक्र, सप्त वृषभ, शंबर, विदूरथ, रुक्मैया आदिक और संग्राममें श्लाघनीय धनुषधारी, कांबोज, मत्स्य, कुरु, कैकय, सृंजय आदिक यह सब, बलदेव, भीमसेन,

क्रीडन्वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन॥ उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ ३३ ॥ ये च प्रलंबखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौंड्रकाद्याः ॥ अन्ये च शाल्वकपि बल्वलदंतवक्रसप्तोक्षशंबरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥ ३४ ॥ ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः कांबोजमत्स्यकुरुकैक यसृंजयाद्याः ॥ यास्यंत्यदर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥ ३५ ॥ कालेन मीलितधियाम वमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ॥ आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ॥३६॥ देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः ॥ लोकान्घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥ ३७ ॥ यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखंडिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ॥ स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगांते ॥ ३८ ॥

अर्जुन इनके मिससे दुर्लभदर्शन श्रीहरि ऐसे दुष्टोंको वैकुंठ धाम पहुँचावेंगे ॥ ३४॥३५ ॥ अब व्यासअवतार कहतेहैं। कालकरके मनुष्योंकी बुद्धि संकुचित हुई और मनुष्योंकी आयु थोड़ी होनेलगी और वह वेदको भूलने लगे। तब युग२ में सत्यवतीसे श्रीव्यासजी प्रकट हो वेदरूप वृक्षकी शाखा भेद करके उनका विस्तार करेंगे ॥ ३६ ॥ अब बौद्ध अवतार कहतेहैं। देवताओंके द्रोही वेदमें निष्ठा करनेवालोंको मयदैत्यकी रचीहुई पुरियोंसे अदृश्य लोकोंका नाशकारक बुद्धिके मोह करनेहारे, लोभ बढानेहारे पाखण्ड धर्मको बौद्धजी कहैंगे ॥३७॥ अब कल्कि अवतारका वर्णन करते हैं।

जिस समय कहीं हरिकी कथा न होगी, ब्राह्मण पाखण्डी होजायँगे; शूद्र राजा वन राज्य करेंगे । स्वाहा, स्वधा, वषट्; यह वेदवाणी जब न होग, मनुष्य पशुकी समान होजायँगे उस समय कलियुगके अंतमें भगवान् कल्कीअवतार धारणकर शिक्षा करेंगे ॥ ३८ ॥ माया गुणावतार भग॰ विभूति हैं सो इस संसारके रचनेमें तप हम सप्तऋषि नौप्रजाके ईश, स्थान, धर्म, यज्ञ, मनु, देवता राजालोग संसारमें अधर्महरनेवाले क्रोधी असु आदिक बहुतशक्तिधारी ईश्वरकी मायाकी यह सब विभूतियें हैं ॥३९॥ यह अवतारोंकी कथा मैंने संक्षेपसे कहीहै, विस्तारसहित कहनेको किसका सामर्थ्य है? अर्थात् किसीका भी नहीं, विष्णुके चरित्र कोई नहीं कहसक्ता चाहे पृथ्वीके रजके कण गिनले. जो ईश्वरने अत्यन्त वेगसे

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ॥ अंते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥ ३९ ॥ विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ॥ चस्कंभ यः स्वरहसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकंपयानम् ॥ ४० ॥ नांतं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ॥ गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१ ॥ येषां स एव भगवान्दययेदनंतः सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ॥ ते दुस्तरामतितरंति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥ ४२ ॥

मान सत्यलोक पर्यंत लोक धारण किया ऐसा अधिक जिनका वेग है ॥ ४० ॥ पुरुष ईश्वरके मायावलके अंतको हम नहीं जानसक्ते । हे मुनि ! इन तुम्हारे भाइयोंमेंसे भी कोई नहीं जान सक्ता । सहस्रमुखधारी आदिदेव शेषजी भी सदा ईश्वरके गुण गाते हैं, परन्तु अवतक पार नहीं पाया, और न पावेंगे । फिर औरोंकी तौ क्या गिनती है ॥४१॥ कोई यह शंका करै कि, कोई हरिके गुणोंको न कहसक्ता हो तौ मोक्ष कैसे होताहै ? उत्तर । मोक्ष हरिकी कृपासे होता है और किसीसे नहीं हो सक्ता. सो भी जब अनंत भगवान् कृपा करें और सब प्रकारसे निष्कपट होकर जो उनके चरणारविन्दोंका आश्रय लेकर अतिदुस्तर, देवताओंकी मायासे तरजाते हैं और श्वान शृगालोंके भोज्य देहमें आसक्तिमान् पुरुष

नहीं तर सकते ॥ ४२ ॥ हे नारद ! उनहीकी कृपासे परमात्माकी योगमायाको मैं जानताहूं और तुम जानोहो तथा शिव, भगवान्, प्रह्लाद, मनुकी स्त्री शतरूपा; स्वायंभुवमनु, उनके पुत्र प्राचीनबर्हि, ऋभु, ध्रुवजी ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकु, नृपति ऐल, मुचुकुन्द, जनक, गाधि; नृपेंद्र रघु, अंबरीष, सगर, नहुषादिक, मान्धाता, अलर्क, शतधनु, पश्चात् रंतिदेव, भीष्मपितामह, बलि, अमूर्तरय, दिलीप ॥ ४४ ॥ सौभरि, उतंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण, विभीषण, हनुमान्, उपेंद्र, दत्तात्रेय, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर, श्रुतदेववर्य ॥४५॥ यह सब

वेदाऽहमंग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ॥ पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिर्ऋभुरंग उत ध्रुवश्च ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकुरैलमुचुकुंदविदेहगाधिरघ्वंबरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ॥ मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरंतिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥ ४४ ॥ सौभर्युतंकशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ॥ येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेंद्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥ ४५ ॥ ते वै विदंत्यतितरंति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ॥ यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥ ४६ ॥ शश्वत्प्रशांतमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ॥ शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥ ४७ ॥ तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥ सध्र्यङ्नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिंद्रः ॥ ४८ ॥

जानते हैं, इससे तर गये. ईश्वरकी मायाको स्त्री, शूद्र, हूण, यवन, शबर और पापी जीव, जो जो अद्भुत चरित्रकारी, ईश्वरपरायण, जिन्होंने भली भाँति शिक्षा ली है वह और जिन्होंने ईश्वरधारणा की है वह यह सब जानतेहैं. और पशु पक्षियोंकी तो क्या चर्चा है ? यह सब तर गये ॥ ४६ ॥ अब भगवतका स्वरूप वर्णन करते हैं । सदा प्रशांतमन, भयरहित, ज्ञानघन, शुद्ध; समान, कार्य कारणसे परे, आत्माका तत्त्व है, जहां बहुतकारकवान्, क्रियाकारक शब्द नहीं कह सक्ते हैं । जिनके सम्मुख माया लज्जाके मारे मुख नहीं करती, दूरसे दूरही भागती है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सोई परमपुरुष ईश्वर वह स्थान है जिसको कोई ब्रह्म निरंतर; यतिलोग मनको जिसे प्राप्त होकर अकर्तापन और साधनोंको त्याग देते हैं । जैसे कुये खोदनेपर फावड़े आदिको छोड़ देते हैं, वा जैसे इन्द्र स्वयं बादलरूप होनेसे खनित्रादि वस्तुको नहीं ग्रहण करते ॥ ४९ ॥ सो भगवान् सर्व कल्याणकारी कर्मके फलदायक हैं, इसलिये इस विश्वका भाव स्वभावविहित सत् पदार्थकी प्रसिद्धि है। जैसे सब धातुओंके वियोगसे देह नष्ट होती है परंतु देहके संग आकाशका नाश नहीं होता, ऐसे ही अजन्मा पुरुष देहके साथ जन्म लेते हैं परंतु सबके फलदाता आप हैं. हे नारद ! सो यह भगवान् सब विश्वमें जिनकी भावना है उन राधारमणके चारित्र मैंने संक्षेपसे कहे हैं । इन ईश्वरसे पृथक् सत् असत् कुछ नहीं है ॥५०॥ जो

स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ॥ देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥ ४९ ॥ सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः ॥ समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥ ५० ॥ इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ॥ संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥ ५१ ॥ यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति ॥ सर्वात्मन्यखिलाधार इति संकल्प्य वर्णय ॥५२॥ मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययाऽऽत्मा न मुह्यति ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन्गुणाख्यानेऽगुणस्य च ॥ यस्मैयस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥१॥

मुझसे भगवान्ने कहा है सो यह भागवतपुराण महाआनंददायक है। हरिकी विभूतियोंका संग्रह है अब इसे तुम विख्यात करो ॥ ५१ ॥ जिस रीतिसे वृन्दावनविहारीमें मनुष्योंकी भक्ति हो सबके आधार ईश्वरका चिंतवन करके तुम वर्णन करो॥५२॥ जो परमेश्वरकी मायाका वर्णन करतेहैं और उनकी प्रशंसा करतेहैं और जो श्रद्धासे नित्य परमात्माके चरित्र सुनतेहैं वह मायाकरके कभी मोहको प्राप्त नहीं होते ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशावतारवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥ दोहा—ब्रह्मा नारदको सुनत, अति अनुपम संवाद। देवराज शुकदेवसों, पूछो अति आह्लाद॥८॥ राजा बोलताहै हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार ब्रह्माजीसे प्रेरित हो देवदर्शन नारदजी निर्गुण ईश्वरके गुण जिन २ के अर्थ कहते भये सो आप

वर्णन कीजिये ? ॥१॥ हे वेद विदांवर ! मुझे उसके सुननेकी अभिलाषा है। अद्भुत पराक्रमी ईश्वरकी कथा लोकमें सुन्दर मंगल करनेवालीहै ॥२॥ हे महा भाग ! वह कथा वर्णन करो। सबसे मन हटाय वैराग्य ले सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णजीमें मन लगाऊं और इस दुःखदायी देहका त्याग करूं, सो कहो ॥ ३ ॥ श्रद्धायुक्त हो हरिके गुण नित्य श्रवणकरनेसे श्रीकृष्णलीलाओंको मुखसे कहै। थोड़ेही दिनोंमें भगवान् हृदयमें प्रवेश करतेहैं ॥४॥ कानके छिद्रमें हो सदा मधुसूदन अपने जनोंके हृदयका जो कमल है और उसमें जो मल है उसका नाश करदेते हैं। जैसे जलका मल शरदऋतुके आनेसे दूर होजाताहै ॥ ५ ॥ पवित्र आत्मापुरुष श्रीवासुदेवके चरणमूलका त्याग नहीं करते वह सब क्लेशसे छूट जातेहैं. जैसे मार्ग चलनेवाले अपने घर

एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदां वर ॥ हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमंगलाः ॥२॥ कथयस्व महाभाग यथाऽहमखिलात्मनि ॥ कृष्णे निवेश्य निस्संगं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥३॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ॥ कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ॥ ४ ॥ प्रविष्टः कर्णरंध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ॥ धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५ ॥ धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुंचति ॥ मुक्तसर्वपरिक्लेशः पांथः स्वशरणं यथा ॥ ६ ॥ यदधातुमतो ब्रह्मन्देहारंभोऽस्य धातुभिः ॥ यदृच्छया हेतुना वा भवंतो जानते यथा ॥ ७॥ आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् ॥ यावानयं वै पुरुष इयत्ताऽवयवैः पृथक् ॥ तावानसाविति प्रोक्तः संस्थाऽवयववानिव ॥ ८ ॥ अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ॥ ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ ९ ॥

आय सब दुःखसे छूट जातेहैं ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! त्वचा, रुधिर, मांस, स्नायु, मेद, मज्जा, हाड़ इन सात धातुओंसे रहित जिनकी देह ऐसे ईश्वरका पंचभूत देहधारना निजइच्छासे है या किसीकारणसे शरीर धारण करते हैं ?जो आप यथार्थ जानते हो सो कहिये ॥७॥ सब लोकोंकी रचनारूप कमल जिनकी नाभिमें यह पुरुष रचतेहैं जैसे अवयवोंसे अलग २ हैं और इतने हैं यह सब कहो ? तितनेही यह ईश्वर कहेहैं। संख्या अवयवकी समान है. हे शुकाचार्य ! जिसको हम न जानते हों सो आप सब कहैं ॥ ८ ॥ अजन्मा ईश्वर सब जीवोंको रचते हैं उनकी कृपासे ब्रह्मा

रचते हैं, नाभिकमलसे जन्मे ब्रह्माजीने उनका रूप देखा ॥ ९ ॥ वह ईश्वर पुरुष विश्वकी उत्पत्ति पालन संहार करताहै । मायाके ईश, अपनी मायाको त्याग सबके अन्तर्यामी भी कहां सोते रहतेहैं ? ॥ १० ॥ पुरुषके अवयवोंसे पूर्वकल्पित लोकपालक इनके अवयवोंसे रचेगये यह सब श्रवण कराइये ॥ ११ ॥ जैसा कल्प है जैसा विकल्प है जैसा कालका अनुमान किया जाताहै, भूत भविष्यत् वर्तमान आयुका जो प्रमाण है सो कहो ? ॥१२॥ कालकी गति जो छोटी मोटी है जितनी कर्मकी गतियें हैं और जैसी गति होतीहैं सो हे द्विजसत्तम ! शुकाचार्य ! आप कहिये ? ॥१३॥ सत्त्वादि गुणोंका देवादिरूप परिणामकी इच्छा करनेवाले जीवोंके मध्यमें जिसपरिणाममें पुण्य पापके कर्मोंका स्वरूप समूह

स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः ॥ मुक्त्वाऽऽत्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ॥ १० ॥ पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः ॥ लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥ ११ ॥ यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ॥ भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ॥ १२ ॥ कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ॥ यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥ १३ ॥ यस्मिन्कर्मसमावायो यथा येनोपगृह्यते ॥ गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १४ ॥ भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् ॥ सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदोकसाम् ॥ १५ ॥ प्रमाणमंडकोशस्य बाह्याभ्यंतरभेदतः ॥ महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥ १६ ॥ अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः ॥ युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥ १७ ॥ नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः ॥ श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीविनाम् ॥ १८ ॥

किस कर्मके समुदायसे कैसे करनेसे कौन अधिकारी देव आदिभावको प्राप्त होताहै ? सो कहो ॥१४॥ भूमि, पाताल, सब दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप इनकी उत्पत्ति और जो इनके वासी हैं सो कहो ॥ १५ ॥ इस ब्रह्माण्डका प्रमाण, बाहर भीतरका भेद, महात्माओंका चरित्र, वर्णाश्रमका निर्णय, जिन २ स्वभावोंसे सब वर्ण आश्रमका निर्द्धार होय सो कहो ? ॥ १६ ॥ अत्यन्त आश्चर्यदायक, श्रीहरिअवतारोंके चरित्र, और युगयुगोंके प्रमाण और युग २ में जो धर्म होयँ सो कहो ? ॥ १७ ॥ मनुष्योंके साधारण धर्म होंय सो कहो; और जो जो व्यवहारियोंके

धर्म होंय सो कहो, और प्रजापालोंके अधिकारी राजर्षियोंके धर्म कहो । सब जीवमात्रका आपद्धर्म सो कहिये ॥ १८ ॥ तत्त्वोंकी संख्या, और उनके लक्षण अथवा किसी हेतुसे उनके लक्षण जैसे होंय सो कहो? परमेश्वरके पूजनकी विधि, अष्टांगयोगकी विधि, ब्रह्मविद्या; यह सब कहो॥१९॥ योगीश्वरोंके ऐश्वर्यकी गति, अर्चिआदि मार्गके योगियोंके लिंगदेहके भंगकी गति, ऋगादिवेद, आयुर्वेदादि, धर्म शास्त्रोंकी गति, इतिहास पुराणोंका सार यह सब कहो ॥ २० ॥ सब जीवनका प्रलय स्थिति महाप्रलय वैदिक कर्म पूर्तकर्म कामना करके कर्म करना, अर्थ धर्म कामकी विधि यह सब

तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् ॥ पुरुषाराधनविधिर्योगस्याऽऽध्यात्मिकस्य च ॥ १९ ॥ योगेश्वरैश्वर्यगति लिंगभंगस्तु योगिनाम् ॥ वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥२०॥ संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः ॥ इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥ २१ ॥ यश्चानुशायिनां सर्गः पाखंडस्य च संभवः ॥ आत्मनो बंधमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥ २२ ॥ यथात्मतंत्रो भगवान्विक्रीडत्यात्ममायया ॥ विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥ २३ ॥ सर्वमेतच्च भगवन्पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ॥ तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥ २४ ॥ अत्र प्रमाणं हि भवान्परमेष्ठी यथात्मभूः ॥ परे चेहानुतिष्ठंति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥ २५ ॥

कहिये ॥ २१ ॥ उपाधिरहित जीवोंके धर्म, उनकी रचना, पाखंडकी उत्पत्ति जीवोंका बंधमोक्ष स्वरूपमें स्थिति सो कहो ॥ २२ ॥ जैसे स्वाधीन भगवान् अपनी मायासे क्रीड़ा करतेहैं, कभी मायाको त्याग साक्षी समान विभु विराजतेहैं सो कहो ॥ २३ ॥ इन प्रश्नोंके उत्तर क्रमसे अपने सिद्धान्तसे आप कहने योग्यहो हे महामुनि । मैं तुम्हारे आश्रितहूँ ॥ २४ ॥ इसमें स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रमाण हैं पहिलेसे पहिले हुए वह और सब इसी

१ "वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥ अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते ॥" बावडी कुआ तालाव आदि देवमंदिर बनाना, सदा अन्नदान और बाग लगाना इनको निर्माण कर्म पूर्त कहतेहैं ।

मार्गमें स्थित रहेंगे ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे प्राण भूख प्याससे नहीं निकलेंगे भागवतकथामृत पानकरनेवाले मुझको कुपित द्विजके सर्पका भय किंचित् भी नहींहै ॥ २६ ॥ सूतजी बोले संतोंके प्रति हरिकी कथामें इस प्रकार राजाने प्रार्थना की; तब सभामें राजा परीक्षितसे शुकदेवजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ वेदके समान भागवत नाम पुराण ब्रह्मकल्पमें ब्रह्मासे भगवान्ने कहाथा ॥ २८ ॥ पांडवोंमें श्रेष्ठ परीक्षित जो जो पूछतेहैं सो सब संक्षेपसे और विस्तारसे व्याख्या करनेको प्रारंभ किया ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां राजकृतप्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–कथा नवम अध्यायकी, नाशक सब सन्देह । चतुःश्लोकी भागवत, वरणों सहित सनेह ॥ ९ ॥

न मेऽसवः परायंति ब्रह्मन्ननशनादमी ॥ पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपितद्विजात् ॥२६॥ सूत उवाच ॥ स उपामंत्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ॥ ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥ २७ ॥ प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २८ ॥ यद्यत्परीक्षिदृषभः पांडूनामनुपृच्छति ॥ आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥२९॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे प्रश्नविधिर्नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ श्रीशुक उवाच ॥ आत्ममायामृते राजन्परस्यानुभवात्मनः ॥ न घटेतार्थसंबंधः स्वप्नद्रष्टुरिवांजसा ॥ १ ॥ बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया ॥ रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥ २ ॥ यर्हि वाव महिम्नि स्वे परस्मिन्कालमाययोः ॥ रमेत गतसंमोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३ ॥ आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाह भगवानृतम् ॥ ब्रह्मणे दर्शयन्रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अनुभवात्मा परमेश्वरको देहका संबंध अपनी मायाके विना नहीं होता । जैसे अनायास करके स्वप्नके द्रष्टाको स्वप्नके समयका देहसंबंध नहीं होताहै ॥ १ ॥ अनेक रूपवाली मायासे बाल युवादि रूप देव नरादि रूपकी नांई प्रकाश करती है । इस मायाके गुणमें रमण करके "मेरा है" "हम हैं" ऐसे आप माने है ॥ २ ॥ जिस समय अपनी महिमामें रमण करताहै उस काल मायासे परे ईश्वरमें सब मोह त्याग और अहंकार ममकार दोनोंको त्याग साक्षीकी सदृश रहताहै ॥ ३ ॥ जीवके तत्त्वशुद्धिके कारण जो भग

वान्ने सत्य कहाहै सो निष्कपट तपके विना नहीं होता। ब्रह्माको अपना रूप दिखायाहै ॥ ४ ॥ सो आदिदेव ब्रह्माजी जगत्के परमगुरु अपने कमलमें बैठकर जगत्के रचनेका विचार करने लगे, इस संसारके रचनेके योग्य दृष्टिको नहीं पहुँचे, जिससे यह विश्व रचनेकी विधि ठीक होय ॥ ॥ ५ ॥ एक समय ब्रह्माजी यही चिंतवन कर रहेथे, तब उस जलमेंसे दोबार यह शब्द सुनाई आया कि 'तप करो' २ (क) से लेके (म) पर्यंत अक्षरोंकी स्पर्श संज्ञा है। इनमें १६ वॉ अक्षर (त) है और इक्कीसवाँ (प) है दोनों मिलकर तप हुआ ॥ हे राजेन्द्र! जिनको किसी वस्तुकी चाहना नहीं ऐसे मुनियोंका वह धन है। तपोधन मुनि प्रसिद्ध हैं ॥ ६ ॥ तपकरो यह सुन ब्रह्माजीने सब ओर देखा। और वक्ताके देखनेकी इच्छा

स आदिदेवो जगतां परो गुरुः स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत ॥ तां नाध्यगच्छद्दृशमत्र संमतां प्रपंचनिर्माणविधि
र्यया भवेत् ॥ ५ ॥ स चिंतयन्द्व्यक्षरमेकदांभस्युपाशृणोद्विर्गदितं वचो विभुः ॥ स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किंचना
नां नृप यद्धनं विदुः ॥६॥ निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो विलोक्य तत्राऽऽन्यदपश्यमानः ॥ स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य
तद्धितं तपस्युपादिष्ट इवाऽऽदधे मनः ॥ ७ ॥ दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेंद्रियः ॥ अतप्य
तस्माऽखिललोकतापनं तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥ ८ ॥ तस्मै स्वलोकं भगवान्सभाजितः संदर्शयामास परं न य
त्परम् ॥ व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥ ९ ॥ प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न
च कालविक्रमः ॥ न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥

करी। तब कमलपर बैठ अपना हित विचार तप करनेको मनमें धारणा की * ॥ ७ ॥ सफल दर्शन पवन, मन, जीत कर्म इंद्रियें और ज्ञान इंद्रियें जीत तप करनेवालोंमें अति तपस्वी ब्रह्माजीने सब लोकको प्रकाश करनेवाला दिव्य तप सहस्र वर्षतक किया ॥ ८ ॥ जिससे श्रेष्ठ और कोई नहीं. क्लेश, मोह, संभ्रम जहां नहीं, सत्पुरुषवान् आत्मवेत्ता अपने दर्शन करनेवालोंसे श्रीवैकुण्ठ लोकको प्रसन्नहो भगवान्ने ब्रह्माके लिये दिखाया ॥ ९ ॥ जिस वैकुण्ठमें राजस, तामस नहीं, शुद्ध सत्त्व जहाँ बर्तै है, रज तम मिला सत्त्व गुण जहां नहीं। जहां कालका पराक्रम नहीं

* शंका—भगवान्की आज्ञाको पाकर ब्रह्मा कमलके फूलपर बैठकर तपस्या करनेलगे, परन्तु उस तपका क्या नाम है तप तो अनत हैं ब्रह्माने कौनसा तप किया? ॥

उत्तर—ब्रह्मा नारायणकी आज्ञा पाकर अपने मनको हृदयमें स्थिर करके बडे प्रेमसे नारायणके नामका जप करने लगे सो परम तप है ॥

चलता, मायाका नाम नहीं वहां रागादिककी क्या सामर्थ्यहै ? देव असुर जिनका दोनों पूजन करें ऐसे भगवत्के पार्षद जहां हैं॥ १० ॥ पार्षदोंका वर्णन करतेहैं । श्यामसुन्दर, उज्ज्वल स्वरूप, कमलनयन, पीतांबर पहिरे, परममनोहर, अतिसुकुमार, उत्तम २ रत्नमणि जटित ॥ ११ ॥ सब आभूषण धारण किये अति तेजस्वी मूंगा वैडूर्य मणि कमलके तन्तुकेसी कांतिवाले और देदीप्यमान कुंडल मुकुट माला धारण किये और चार भुजा धारण किये ऐसे सब भगवान्के पार्षद हैं महात्माओंके प्रकाशमान शोभित विमानोंकी पंक्तियोंसे श्रीवैकुंठ लोक सब ओरसे विशेष करके प्रकाशमान होरहा है ॥ १२ ॥ उत्तम स्त्रियोंकी कांतिसे ऐसा प्रकाशित होरहा है, जैसे बिजुलीसहित मेघमालासे आकाश शोभित होताहै । दामिनीसदृश तो स्त्रियें हैं ।

श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशंगवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः ॥ सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ प्रवालवैडूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुंडलमौलिमालिनः ॥ ११ ॥ भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते लसद्विमानावलिभिर्महात्मना ॥ विद्योतमानः प्रमदोत्तमादिभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः ॥ १२ ॥ श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगाय पादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः ॥ प्रेंखं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥ १३ ॥ ददर्श तत्राऽखिलसात्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ सुनंदनंदप्रबलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम् ॥ १४ ॥ भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवप्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ॥ किरीटिनं कुंडलिनं चतुर्भुजं पीतांबरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥ १५ ॥

मेघपंक्तिकी समान विमान हैं, आकाशकी तुल्य वैकुंठ लोक है॥ १३ ॥ वहां वैकुंठमें रूपवती महालक्ष्मीजी श्रीनारायणके चरणोंमें अनेक विभूतियोंसे मानकरै हैं । और हिंडोलेमें झुलावें हैं । वसंतके अनुचर, भ्रमर अनेक २ प्रकारसे गुंजार करते हैं और अपने प्यारे प्रीतमके चारित्रोंको गाती जाती हैं और आनंदसे झूलतीहैं ॥ उस वैकुंठमें सब भक्तोंके पति श्रीभूलीलानायक यज्ञपति जगत्पालक सुनंद, नंद, प्रबल, अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षद सबओरसे जिनकी सेवा करें उन समर्थ त्रिलोकीनाथका ब्रह्माजीने दर्शन किया भृत्यजनोंके प्रसादमें जिनका मुख दर्शनकरने वालोंको प्रमदकी नांई हर्षदायक, प्रसन्ननयन, जिनकी मुसकानसे नेत्र मुख लाल हो रहे, शीशपर मुकुट, कानोंमें कुंडल, चार भुजा, पीतांबर धारण किये, हृदयमें श्रीजी

विराजमान हो रही हैं ॥ १४ ॥१५॥ अत्यन्त पूजने योग्य, सिंहासनपर विराजमान, परब्रह्म,प्रकृति,पुरुष,महत्तत्त्व अहंकार चार तो यह, और ग्यारह इन्द्रियें, पंचमहाभूत, सोलह पांच उनकी मात्रा इन शक्तियों और अपने सब स्वाभाविक जो ऐश्वर्य उनसे युक्त, योगियोंका ध्रुव आगामी ऐश्वर्य समेत अपने मंदिरमें सदा रमण करतेहैं ॥ १६ ॥ जिनके दर्शनके आनंदसे अंतःकरण प्रसन्न मन रोमाञ्चित देह प्रेमके भावसे नेत्रोंमें आंसूभर आनंदमें मग्नहो ब्रह्माने श्रीवासुदेवके चरणसरोरुहको नमस्कार किया. जिनका दर्शन परमहंसोंको ज्ञानमार्गसे होता है, उनका दर्शन ब्रह्माजीने किया ॥ १७ ॥ संसारके रचनेमें जो हरिकी आज्ञा उसकी सुन्दरतामें स्थित चित्त उन ब्रह्माजीसे मंद मुसकानकी वाणीसे चिदानंद घनश्याम, आप

अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं वृतं चतुष्षोडशपंचशक्तिभिः ॥ युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन्रममाणमीश्वरम् ॥ १६ ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतांतरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ॥ ननाम पादांबुजमस्य विश्वसृग्यत्पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥१७॥ तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् ॥ बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयाऽहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया ॥ चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥ १९ ॥ वरं वरय भद्रं ते वरेशं माऽभिवाञ्छितम् ॥ ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः ॥ २० ॥ मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् ॥ यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥ २१ ॥

ब्रह्माका हाथसे हाथ पकड़कर ॥ १८ ॥ बोले कि, हे वेदगर्भ ! विश्वके रचनेकी इच्छासे तुमने हमें बहुत प्रसन्न किया और सहस्र वर्षतक अत्यन्त तप किया, जो मूर्ख योगीजन हैं उनसे मैं बहुत प्रसन्न नहीं होताहूं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मा ! आपका कल्याण हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं जो इच्छा हो सो वर मांगो,कल्याणकी प्राप्तिमें पुरुषको जबतक श्रम है तबतक मेरा दर्शन नहीं होता। अब तुम्हें मेरा दर्शन होगया अब तुमको कोई परिश्रम न होगा। जो इच्छा हो सो मांगो ॥२०॥ मेरे मनकी इच्छाका यह प्रभाव है कि मेरे लोकका तुमको दर्शन हुआ. यह मनमें मत विचारना

कि मैंने तपके बलसे यह किया है। स्वतंत्र कभी न होना। मेरीही कृपासे तुमको यह दर्शन हुआ। जो श्रवण करके एकान्तमें तुमने सहस्रवर्ष तप किया॥ २१ ॥ जब कर्मसे तुम विशेष मोहित हुए तब मैंने तुमसे कहा हे पापरहित! तप कर, तप मेरा हृदय है, तप साक्षात् मेरा देह है, तप मेरी भीतरकी शक्ति है॥ २२ ॥ तपसेही इस विश्वको रचताहूं, और फिर तपसे ही संसारका पालन व संहार करताहूं। यह तपरूप बडा पराक्रम है, बड़ा दुस्तर है। तपका बडा प्रभाव है तप करना बडा कठिन है ॥२३॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोकेश! सब जीवमात्रके अधिष्ठाता सबमें स्थित हो, दृढ ज्ञानमें जो करनेकी इच्छा है उसको तुम जानते ही हो॥ २४ ॥ यद्यपि आप ऐसे हैं तौ भी हे नाथ! आपसे जो मांगे ऐसे

प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते॥ तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोऽनघ॥ २२ ॥ सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः॥ बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः॥२३॥ ब्रह्मोवाच॥ भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम्॥ वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम्॥ २४ ॥ तथापि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम्॥ परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः॥ २५ ॥ यथाऽऽत्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम्॥ विलुंपन्विसृजन्गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना॥ २६ ॥ क्रीडस्यमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते॥ तथा तद्विषयां धेहि मनीषां मयि माधव॥ २७ ॥ भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतंद्रितः॥ नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं त्वदनुग्रहात्॥ २८ ॥ यावत्सखा सख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भोजनम्॥ अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो मा मे समुन्नद्धमदोऽजमानिनः॥ २९ ॥

मनुष्यको जो याचित पदार्थ है सो तुम हो। निर्गुण तुम्हारे सूक्ष्म स्थूलको जैसे जानूं सो कहो॥२५॥ जैसे आप मायाके संयोगसे अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे वर्द्धित विश्वका संहार रचना पालन आपही चतुरानन आदिरूप धारणकर क्रीड़ा करतेहो॥ २६ ॥ हे अमोघसंकल्प! जैसे मकड़ी अपने तन्तुओंके जालसे आप फैल जाती है ऐसे ही आप क्रीडा करते हैं। हे माधव! अब आप दयाकरके सृष्टिके रचनेकी बुद्धि मेरे हृदयमें धारणकरो॥ २७ ॥ जो आपसे शिक्षित होकर मैं निरालस्य हो तुम्हारे अनुग्रहसे प्रजासर्गकी चेष्टा करूंगा; परंतु अहंकारका बंधन न हो॥ २८ ॥ हे ईश! तुमने लौकिक सखाकी समान जान, स्वर्गादिकमें मेरा सन्मान किया। सो प्रजाके रचनेरूप कर्ममें अव्याकुल

होकर उत्तम मध्यमादिक भेदसे जीवका विभाग करूं तब "अजमानी" मुझको यह महामद न होय सो कीजे ॥ २९ ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले कि मेरा शास्त्रोक्तज्ञान अत्यन्त छिपाहुआ है वह अनुभव, भक्ति, सब साधन सहित है सो कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ ३० ॥ स्वरूपसे जैसे हम हैं, और जैसे सत्तावान् हैं; जो रूप कर्म गुण हमारे हैं, इसी प्रकार तत्त्वोंका ज्ञान विशेष करके मेरी कृपासे तुमको होय ॥ ३१ ॥ इस सृष्टिसे पहले मैं ही था अतिरिक्त मेरे और दूसरा कोई नहीं था, अरु स्थूल सूक्ष्म इनका परम कारण कुछ भी नहीं था। पीछे सृष्टिका कारण मैं ही हूं, पीछे सृष्टिके उपरान्त भी मैंही हूं ॥ ३२ ॥ जो यह विश्व है सो भी मैंहीं हूं, जो कुछ शेष रहेगा सो भी मैंहीं हूं। जो कुछ सब सृष्टिका मूल है सोभी मैंहीं हूं। जिस प्रकार सुवर्णके अलंकार नाक, कान, हाथ पांवके भिन्न २ होतेहैं। जैसे कंकण, कुण्डल, कर्णफूल, मालादिक पृथक् २ होतेहैं,

श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ॥ सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया ॥३०॥ यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः॥ तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥३१॥ अहमेऽऽवासमेवाऽग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ॥ पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ॥ तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥ ३३ ॥ यथा महांति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ॥ प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ॥ ३४ ॥ एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ ३५ ॥

जब सबको गलादिया तौ फिर केवल कंचनका कंचन, इसी भाँति मुझको समझना कि अनादि अनन्त अद्वितीय परिपूर्ण मैंही हूं अर्थके बीच जो प्रतीत होता है और आत्मामें प्रतीत नहीं होता है उसको मेरी माया जानो। जैसे दो चन्द्रमा प्रतीत होते हैं। जैसे राहु ग्रहमंडलमें स्थित है परन्तु दीखता नहीं। ग्रहणके द्वारा दीखता है। इसप्रकार यह माया कार्योंके द्वारा दीखती है। साक्षात् प्रगट नहीं होती ॥ ३३ ॥ जैसे पंचमहाभूतसे संसारीके छोटे बड़े जीवमात्रमें प्रविष्ट, अप्रविष्टकी समान विदित होते हैं ऐसेही प्रकार मैं उनमें ज्ञात नहीं होताहूं ॥३४॥ आत्मतत्त्वके जाननेवालेको इतनाही जानना योग्य है। अन्वय, व्यतिरेकसे जो सब ठौर सदा ही ईश्वर है। कार्यमें कारण भावसे जो सदा वर्ते उसका नाम

अन्वय है. कारण अवस्थामें उनसे अलग रहे वह व्यतिरेक ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मा ! एकाग्रचित्त करके परम समाधिसे तुम इस मतमें स्थिर रहोगे तौ तुम कल्पों विकल्पोंमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि है उसका तुमको कभी भी यह अभिमान न होगा कि इस संसारका कर्त्ता मैं हूं ॥ ३६ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि मनुष्योंमें श्रेष्ठ जो ब्रह्माजी हैं उनसे अजन्मा ईश्वर यह कहकर अंतर्धान होगये ॥ ३७ ॥ आदिरूप अविनाशी जगदीश्वरके अन्तर्धान होने उपरान्त सब जीवमय ब्रह्मा श्रीविश्वनाथको हाथ जोड़कर विश्वको पहलेकी रीतिसे रचना आरम्भ करनेलगे ॥ ३८ ॥ प्रजापति धर्मपतिने एक समय यम नियमको प्रजाके कल्याणके लिये और अपने स्वार्थकी कामनाके लिये रचना की और यम नियमा

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ॥ भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संप्रदिश्यैवमजनो जनानां परमेष्ठिनम् ॥ पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः ॥ ३७ ॥ अंतर्हितेंद्रियार्थाय हरये विहितांजलिः ॥ सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥ ३८ ॥ प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् ॥ भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥ ३९ ॥ तं नारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः ॥ शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥ ४० ॥ मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः ॥ महाभागवतो राजन्पितरं पर्यतोषयत् ॥ ४१ ॥ तुष्टं निशम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् ॥ देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥ ४२ ॥ तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ॥ प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥ ४३ ॥

कमें आप स्थितहुये ॥ ३९ ॥ अतिप्रिय भागलेनेवालोंमें पुत्रोंमें पिता ब्रह्मामें अनुरक्त शील नम्रतादि शुश्रूषा करनेहारे नारदजी ब्रह्माजीकी
वा करने लगे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! मायाके ईश्वर व्यापक विष्णुकी मायाको जाननेकी इच्छाकर महामुनि महाभागवत नारदजीने पिताको प्रसन्न
"वेवेष्टीति विष्णुः" सबमें व्यापै उसका नाम विष्णु है; व्याकरणमें विष्लृ व्याप्तौ धातु है उससे विष्णुशब्द व्युत्पादित होताहै ॥ ४१ ॥ सब
मह ब्रह्माको प्रसन्न जानकर नारदने बूझाथा, जो आप हमसे पूछतेहैं ॥४२॥ दश लक्षणयुक्त, अत्यन्त शोभायमान, श्रीभागवत पुराण जो

भगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा और उन्होंने अपने प्रियपुत्र नारदसे कहा ॥ ४३ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! सरस्वतीके तटपर नारदजीने परब्रह्मके ध्यानी, परमज्ञानी, महातेजस्वी, व्यास मुनिको सुनाया ॥ ४४ ॥ जो हमसे तुमने जिज्ञासा किया कि विराट् पुरुषसे यह विश्व कैसे होता है ? वह, और तुम्हारे कहे हुए सब प्रश्न, और और भी बातें जैसी हैं तैसेही कहेंगे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुःश्लोकीभागवतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा—तहँ शुकदेव प्रमोदभर, लक्षण दशहु पुरान । भूप परीक्षितसे कहत, संयुत अर्थ महान ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि अब सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, आश्रय ॥ १ ॥

नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ॥ ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायाऽमिततेजसे ॥ ४४ ॥ यदुताऽहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् ॥ यथाऽऽसीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० द्वितीयस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥ मन्वंतरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥ दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ॥ वर्णयंति महात्मानः श्रुतेनाऽर्थेन चांजसा ॥ २ ॥ भूतमात्रेंद्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः ॥ ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥ ३ ॥ स्थितिर्वैकुंठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ॥ मन्वंतराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥ ४ ॥

दशवें आश्रयलक्षणकी विशेष शुद्धिके लिये नौ लक्षण महात्मा लोग सुने अर्थसे अनायाससे वर्णन करते हैं अथवा श्रुतियोंसे कहतेहैं ॥ २ ॥ अब दशों लक्षणोंका वर्णन करते हैं । नभ, मही, जल, तेज, वायु, गंध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस । पायु, उपस्थ, पद, कर, वाक्, यह पांचों कर्मेन्द्रिय हैं । नाक, कान, रसना, त्वचा, नेत्र, यह पांचों ज्ञानेंद्रिय हैं । अहंकार, मन, बुद्धि, अंतःकरण, इन पंच भूतमात्रा इंद्रियोंकी उत्पत्तिको सर्ग कहते हैं ॥ ब्रह्मासे गुणकी विषमता होनेसे विराट् पुरुषसे जो उत्पन्न हुआ उसका नाम विसर्ग है ॥ ३ ॥ वैकुंठका विजय यह है कि परमात्माकी रचीहुई मर्य्यादाओंका पालन करना, इसका नाम स्थान है, अपने भक्तोंपर कृपा करना इसका नाम पोषण है । मन्वन्तरोंके

अधिपतियोंका जो धर्म वा सद्धर्मका नाम मन्वन्तर है । कर्मकी वासनाका नाम ऊति है ॥ ४ ॥ श्रीआदिपुरुष नारायणके अवतारोंका चरित्र और इनके पीछे महात्मा पुरुषोंके नाना प्रकारके आख्यानोंकी अधिक वार्ताका नाम ईशकथा है ॥ ५ ॥ इस ईश्वरकी योगनिद्राके पश्चात् शक्ति और उपाधियोंसहित लय होजानेका नाम निरोधहै । अन्यथा रूपको त्याग करके अपने स्वरूपमें स्थिति होनेका नाम मुक्ति है ॥ ६ ॥ जो सृष्टिको उत्पन्न पालन और लय करता है; जिसको परब्रह्म कहते हैं उसीका नाम आश्रय है ॥ ७ ॥ यो यह आध्यात्मिक पुरुष है, सोई

अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ॥ पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥ ५ ॥ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ॥ मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ ६ ॥ आभासश्च निरोधश्च यतश्चाऽध्यवसीयते ॥ स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥ ७ ॥ योऽऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ॥ यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥ ८ ॥ एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ॥ त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः ॥ ९ ॥ पुरुषोंऽडं विनिर्भिद्य यदासौ स विनिर्गतः ॥ आत्मनोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ॥ १० ॥ तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ॥ तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥ ११ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ यदनुग्रहतः संति न संति यदुपेक्षया ॥ १२ ॥ एको नानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्समुत्थितः ॥ वीर्यं हिरण्मयं देवो मायया व्यसृजत्त्रिधा ॥ १३ ॥

यह आधिदैविक है; जो इनमें विभक्त है सोई आधिभौतिक है ॥ ८ ॥ एकको एकके अभावमें जब नहीं प्राप्त होता है उसमें जो दृक्, रूप, सूर्य, वपु, इस त्रितयको जो जानताहै सो आत्मा अपने आश्रय है, उसकोभी आश्रय कहते हैं ॥ ९ ॥ जब विराट् पुरुष अंडको भेदकर बाहर निकले, तब अपने रहनेके अर्थ स्थानकी इच्छा करी, तब आप ईश्वर पवित्र हैं इस कारण पवित्र जलकी रचना की ॥१०॥ अपने रचेहुये जलमें सहस्र वर्षतक वास किया, तदनन्तर परब्रह्म सच्चिदानंदने नररूप धारण किया, इस कारण नारायण नाम हुआ ॥ ११ ॥ द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव, जिनकी कृपासे होता है और जिनकी इच्छा नहीं होय तो नहीं होय ॥ १२ ॥ एक परमात्माने जब नानाप्रकार होनेकी इच्छा की तब योग

शय्यासे उठ सुवर्णमय अपने वीर्यके तीन भाग किये ॥ १३ ॥ अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत; इनको ईश्वरने रचा, एक पुरुषका वीर्य तीन प्रकारके भेदोंको प्राप्त हुआ सो तुम ध्यान धरके सुनो ॥१४॥ जब विशेष चेष्टा की तब पुरुषमेंसे इन्द्रियशक्ति, मनःशक्ति, देहशक्ति यह हुई और सबमें मुख्य प्राण हुए ॥ १५ ॥ सब जीवोंमें ईश्वर प्राणरूप चेष्टा करता है, सो सब इन्द्रियें चेष्टा करती हैं, जो चेष्टाका त्याग करताहै तौ प्राणभी चेष्टा त्याग करते हैं. जैसे राजाके पीछे राजाका भृत्य, राजा चलै तौ भृत्य भी चलै, राजा खड़ा होजाय तौ भृत्यभी खड़े होजाते हैं ॥१६॥ एक देह जो परमात्माने रची, तब उसमें प्राणने प्रेरणा की, तब भूँख प्यास हुई, तब जल पीने और भोजन करनेको प्रथम मुख निकला, यहां यह

अधिदैवमथाऽध्यात्ममधिभूतमिति प्रभुः ॥ यथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधाभिद्यत तच्छृणु ॥ १४ ॥ अंतश्शरीर आकाशात्पु रुषस्य विचेष्टतः ॥ ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः ॥ १५ ॥ अनुप्राणंति यं प्राणाः प्राणंतं सर्वजंतुषु ॥ अपानंतमपानंति नरदेवमिवानुगाः ॥ १६ ॥ प्राणेन क्षिपता क्षुत्तृडंतरा जायते प्रभोः ॥ पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखं निरभिद्यत ॥ १७ ॥ मुखतस्तालु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रोपजायते ॥ ततो नानारसो जज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥ १८ ॥ विव क्षोर्मुखतो भूम्नो वह्निर्वाग्व्याहृतं तयोः ॥ जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥ १९ ॥ नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति ॥ तत्र वायुर्गंधवहो घ्राणो नसि जिघृक्षतः ॥ २० ॥ यदात्मनि निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः ॥ निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥ २१ ॥

बात जाननी उचित है कि तालु अधिष्ठान है, जिह्वा इन्द्रिय है, नाना प्रकारके रस विषय हैं, वरुण देवता हैं यह सर्वत्र जान लेना ॥ १७ ॥ मुखसे तालु हुआ तहां जिह्वा हुई जीभसे अनेक प्रकारके स्वादोंका ज्ञान हुआ ॥ १८ ॥ फिर कुछ बोलनेकी इच्छा हुई उस समय जीवकी अग्नि देवता. वाणी इन्द्रिय सुन्दर शब्द निकला, परन्तु जलमें वचनकी रुकावट होतीहै; नासिकाका पवन जब अत्यन्त चलायमान हुआ; तब नासिका हुई, वायु जिसका देवता है. सो सुगन्धदाता घ्राण इन्द्रिय सूंघनेको हुई ॥ १९ ॥ २० ॥ जब देखनेकी इच्छा हुई कुछ न

देखा, देवतात्मक रूपगुण करनेहारी चक्षु इन्द्रिय हुई ॥ २१ ॥ जब वेदवचन सुननेकी इच्छा हुई तव दिशादेवता वारिदेवता श्रोत्र श्रवण इन्द्रिय गुणके ग्रहण करनेहारे कान निकले ॥ २२ ॥ वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, लघु, गुरु, उष्ण, शीतके ज्ञानकी इच्छा हुई. तब केश रोम जिसमें वृक्ष समान ऐसी त्वचा उत्पन्न हुई बाहर भीतर पवनके प्रवेश गुणवारी त्वचासे स्पर्शका ज्ञान हुआ। उसमें सर्व लोकोंके पालन करनेवाले पवन देवने प्रवेश किया ॥२३॥ जब अनेक प्रकारके कर्म करनेकी इच्छा हुई तव बल इन्द्रिय इन्द्र देवतात्मक सब पदार्थोंको धरने उठानेके कर्म योग्य दो हाथ बने ॥ २४ ॥ जब इसकी इच्छा हुई कि जहां मेरा मन होय तहां जाऊं, तब विष्णु भगवान् जिनके देवता, यज्ञादिकके समिधादिक लाना

बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः ॥ कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणग्रहः ॥ २२॥ वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताः ॥ जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्ना तस्यां रोममहीरुहाः ॥ तत्र चांतर्बहिर्वातस्त्वचा लब्धगुणो वृतः॥२३॥ हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया ॥ तयोस्तु बलमिंद्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥ २४ ॥ गतिं जिगीषतः पादौ रुरुहातेऽभिकामिकाम् ॥ पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥ २५ ॥ निरभिद्यत शिश्नो वै प्रजानंदामृतार्थिनः ॥ उपस्थ आसीत्कामानां प्रियं तदुभयाश्रयम् ॥ २६ ॥ उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यत वै गुदम् ॥ ततः पायुस्ततो मित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः ॥ २७ ॥ आसिसृप्सोः पुरः पुर्या नाभिद्वारमपानतः ॥ तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्त्वमुभयाश्रयम् ॥ २८ ॥ आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यंत्रनाडयः ॥ नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये ॥ २९ ॥

और अनेक कर्म करने तथा तीर्थगमन योग्य चरण प्रगट हुये ॥ २५ ॥ जब यह इच्छा हुई कि पुत्र होवें; विषय आनन्द अमृत सुख हो तब शिश्न इन्द्रिय प्रजापति जिसके देवता, कामप्रिय लिंग बनाया, जो दोनों कार्य करे ॥ २६ ॥ भोजन करने उपरांत जब उसके मल त्यागनेकी इच्छा हुई तब पायु इन्द्रिय मल त्याग कर्मयुक्त मित्र देवतात्मक उभयकार्यसाधक गुदा हुई ॥ २७ ॥ जब इस देहरूप पुरीसे देहरूप पुरोंमें जानेकी अभिलाषा हुई तब नाभिद्वारकी अपान वायुसे अपानद्वारा मृत्यु होना, पृथक् होना दोनों कार्यसाधक नाभि उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ जब अन्न पानी ग्रहण करनेवाली इच्छा हुई. तब कोप, कुक्षि, आँतें, नाड़ियें हुई, नदियें समुद्र कोष पानीके देवता हुए । पुष्टि तिनके

आश्रयरूप हुई ॥ २९ ॥ ईश्वरकी मायाके अत्यन्त चिन्तवनकी इच्छा हुई तब हृदय हुआ । उस हृदयमें मन चन्द्रमा देवता समेत संकल्प काम इत्यादिक हुए ॥३०॥ त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, हाड़ यह सप्तधातु हुई, सप्तप्राण और सप्तधातुयें; भूमि, जल, तेज, वायु, आकाशसे होतेहैं ॥ ३१ ॥ सब इन्द्रियें गुणोंसे होती हैं, और गुण अहंकारसे होतेहैं; मन सब विकारका स्वरूप है; बुद्धि विशेष ज्ञानकी रूपिणी है॥३२॥ यह नारायणका स्थूलरूप मैंने तुमसे कहा, जो पृथ्वीसे आदि आठ आवरणसे बाहर व्यापते हैं ॥ ३३ ॥ मायासे परे सूक्ष्मतम अव्यक्त, विशेषण रहित अनादिमध्य अनंत सदा एकरूप वाणी मनसे परे वह परमात्मा है ॥ ३४ ॥ यह दोष गुण निर्गुणरूप आदिपुरुष नारायणके मैंने तुमसे

निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरभिद्यत ॥ ततो मनस्ततश्चंद्रः संकल्पः काम एव च ॥ ३० ॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिधातवः ॥ भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमांबुवायुभिः ॥ ३१ ॥ गुणात्मकानींद्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः ॥ मनः सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥३२॥ एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ॥ मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥ ३३ ॥ अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ॥ अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥ ॥ ३४ ॥ अमुनी भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते ॥ उभे अपि न गृह्णंति मायासृष्टे विपश्चितः ॥३५॥ स वाच्यवाचकतया भगवान्ब्रह्मरूपधृक् ॥ नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माऽकर्मकः परः ॥ ३६ ॥ प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् ॥ सिद्धचारणगंधर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७ ॥ किन्नराप्सरसो नागान्सर्पान्किंपुरुषोरगान् ॥ मातृरक्षःपिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥ ३८ ॥ कूष्मांडोन्मादवेतालान्यातुधानान्ग्रहानपि ॥ खगान्मृगान्पशून्वृक्षान्गिरीन्नृप सरीसृपान् ॥३९॥

वर्णन किये, परन्तु इस मायाके रचे विद्वान् लोग दोनोंको ग्रहण नहीं करते ॥ ३५ ॥ सो भक्तवत्सल ब्रह्मरूपधारी कुछ कर्म नहीं करते । वह परमेश्वर कर्मकारक वाच्यरूपसे नाम धारण करते, और वाच्यरूपसे रूप क्रिया धारण करतेहैं ॥ ३६ ॥ जो जो रूप यशोदानंदन जगत्कार्यके अर्थ धरते हैं सो हम आपसे कहतेहैं, कि प्रजापति, मनुदेवता, पित्रोंके गण पृथक् २ सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, सुर, गुह्यक ॥ ३७ ॥ किन्नर, अप्सरा, सर्प, वानर, उरग, सप्तमातृका, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत, विनायक ॥ ३८ ॥ कूष्माण्ड, उन्मादकारी ग्रह, वेताल, यातुधान,

पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, रेंगनेवाले जीव, सरीसृप ॥ ३९ ॥ स्थावर, जंगमरूप दो प्रकारके जीव, और जल, स्थल, आकाशवासी जीव, उत्तम नीच कुछ २ दोनों मिलेहुए यह कर्मकी गतियें हैं. यह सब रूप भगवान्ने धारण किये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! सत्त्व, रज, तम इन तीनोंसे देवता मनुष्य नारकी जीव होतेहैं । उनमें भी एक २ गति तीन तीन प्रकारसे भेदको प्राप्त होती है जब एक और गुणसे और प्रकारका होजाता है, तब स्वभाव नष्ट होताहै । जिसका जैसा स्वभाव होताहै उसकी गतिभी उसी प्रकार होजाती है ॥ ४१ ॥ वही भगवान् वासुदेव धर्मरूपधारी जगत्के धारण करनेवाले इस विश्वमें तिर्यक् पशु पक्षियोंमें अवतार लेकर इसका स्थापन कर पुष्ट करते हैं ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त काल अग्नि

द्विविधाश्चतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभौकसः ॥ कुशलाऽकुशला मिश्राः कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥४०॥ सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः ॥ तत्राप्येकैकशो राजन्भिद्यंते गतयस्त्रिधा ॥ यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥ ४१ ॥ स एवेदं जगद्धाता भगवान्धर्मरूपधृक् ॥ पुष्णाति स्थापयन्विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥४२॥ ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः ॥ संनियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः ॥ ४३ ॥ इत्थंभावेन कथितो भगवान्भगवत्तमः ॥ नेत्थंभावेन हि परं द्रष्टुमर्हंति सूरयः ॥४४॥ नास्य कर्माणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते ॥ कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययाऽऽरोपितं हि तत् ॥ ४५ ॥ अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः ॥ विधिः साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृतवैकृताः ॥ ४६ ॥ परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् ॥ यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ॥ ४७ ॥

रूप, रुद्रान्तर्यामी ईश्वर जिस्में यह सब रचा हुआ है । इस संसारका कालसे संहार किया करते हैं । जैसे मेघके समूहको पवन उड़ा देताहै ॥४३॥ इस प्रकारसे भगवान् भक्तवश्यका वर्णन किया इस भावके विना और प्रकारसे बड़े २ विवेकी लोग भी उन्हें नहीं देख सक्ते ॥ ४४ ॥ इन परमेश्वरके जन्मादिक और कर्मकर्तापनेके भाव मायासे होते हैं ॥ ४५ ॥ यह ब्रह्माका कल्प विकलपसहित कहा । जहां साधारण विधि है जिसमें प्राकृत वैकृत सर्ग होते हैं ॥ ४६ ॥ परिमाण, कल्प, लक्षण, विग्रह, स्थूल, सूक्ष्म कालको तृतीयस्कंधमें कहेंगे, अब

पाद्मकल्प सम्पूर्णतासे कहते हैं सो सुनो ॥ ४७ ॥ शौनकजी बोले कि हे सूतजी ! जो तुमने कहा कि हमने भागवतोत्तम विदुरजीको समझा है जो त्यागने रहित बांधवोंका त्याग कर पृथ्वीके सब तीर्थोंमें विचरते फिरे ॥ ४८ ॥ मैत्रेय और विदुरजीका कहा संवाद जिसमें ब्रह्मविद्याका वर्णन था. अथवा मैत्रेयजीने उनसे बूझा तौ विदुरजीने उनसे क्या तत्त्वज्ञान कहा ? ॥ ४९ ॥ हे सौम्य ! उन विदुरजीकी कथाका वर्णन करो;

शौनक उवाच ॥ यदाह नो भवान्सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः ॥ चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वा बंधून्सुदुस्त्यजान् ॥ ४८ ॥ कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः ॥ यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाच ह ॥ ४९ ॥ ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम् ॥ बंधुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान्पुनः ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ॥ तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ इति द्वितीयस्कंधः समाप्तः ॥ २ ॥

बांधवोके त्यागनेका कारण, और फिर किस प्रकार प्रत्यावर्तन किया सो सब विस्तारसहित वर्णन कीजे ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि, जो राजा परीक्षित्ने व्यासनन्दन शुकदेवजीसे बूझाथा, और भूपालसे जो कुछ भगवान् महामुनि शुकदेवजीने कहा सो राजेन्द्रके ही प्रश्न अनुसार हम तुमसे कहतेहैं ध्यान लगायकर सुनो ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये ऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९७०, शके १८३५.

इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वितीयस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते तृतीयस्कंधप्रारम्भः ॥

तृतीयस्कंधः

परीक्षित
शुक
विदुर
मैत्रेय
शेष
सनत्कुमार
ब्रह्मा
शेषशायी
लक्ष्मी
स्वायंभुव
शतरूपा
कश्यप
दिति
जयविजय
विष्णु
सनत्कुमार
वराह
हिरण्याक्ष
कर्दम
कपिल

सोरठा–जय गजवदन गणेश, विघ्न कदनप्रद सुखसदन ॥ एकरदन सम वेश, मदनकदनके वर नंदन ॥ १ ॥ जय श्रीनन्दकुमार, ब्रह्मभूषण दूषण हरण ॥ अपनो दास निहार, दयासिंधु कीजे दया ॥२॥ दोहा–कह्यो द्वितीय स्कन्ध शुक, पुनि प्रभुपद धर ध्यान ॥ कथा तृतीयस्कंधकी, लागे करन बखान ॥३॥ इस तृतीय स्कन्धके, तेतीसों अध्याय ॥ कहे परीक्षितनृपतिसों, शुकाचार्य समुझाय ॥ ४ ॥ तीसरे स्कन्धमें तेतीस अध्यायहैं, जिनमें सर्गका वर्णन है। ईश्वरकी इच्छासे गुणोंके चलायमान होनेसे ब्रह्माण्डका होना इसका नाम सर्ग है; प्रथम अध्यायमें क्षीणआयु बान्धवोंको त्याग विदुरजी जैसे घरसे चलेगये उनका संवाद आदिसे वर्णन करते हैं। पहिले भगवानका और ब्रह्माका संवाद संक्षेपसे कहाहै; अब फिर शेषजीकी कही भागवत सुन्दर विस्तारसे कहतेहैं। दो प्रकारसे श्रीमद्भागवतके संप्रदायकी प्रवृत्ति है; एक संक्षेपसे श्रीनारायण ब्रह्माके द्वारा, और विस्तारसे शेषजी सनत्कुमार, सांख्यायनादि द्वारा हुई. तहां द्वितीयस्कन्धमें श्रीनारायण ब्रह्माके संवादमें संक्षेपसे "अहमेवासमेवाग्रे" इत्यादि करके चतुःश्लोकी

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल ॥ क्षत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥ यद्वा अयं मंत्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ॥ पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः ॥ कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥ ३ ॥

भागवत कही. सोई ब्रह्मा नारदके संवादसे दशलक्षणसे कुछ विस्तारसहित कही, सोई शेषजीकी कहीहुईको अब अतिविस्तारसे कहनेके कारण तृतीयस्कंधका प्रारम्भ है। पहिले चार अध्यायमें विदुर मैत्रेयका संगम, फिर आठ अध्यायमें विसर्गसहित सब प्रपंच कहा, विसर्गके प्रस्तावसे सात अध्यायमें वाराह अवतारका वर्णन कियाहै, एक अध्यायमें विसर्गकी संपूर्णता कहीहै; फिर चार अध्यायमें कपिलदेवजीके अवतारकी कथा कहीहै; इसके पीछे नव अध्यायमें, कपिलदेवजीका आख्यान किया। इस प्रकार तृतीयस्कन्धकी तेंतीस अध्यायमें प्रवृत्तिहै ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण! सर्व सम्पदासे पूर्ण गृहको त्याग बनमें जा विदुरजीने निश्चय कर भगवान् मैत्रेयजीसे पहले यह चारित्र इसप्रकार बूझा ॥ १ ॥ सर्वके ईश्वर, षड्गुणऐश्वर्यवान् यह जगन्नाथ श्रीकृष्ण तुम्हारे पांडवोंके मंत्री हुए. और दुर्योधनके गृहको त्याग विदुरजीको अपना जान उनके घरपर गये ॥ २ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने कहा कि हे समर्थ शुकाचार्य! भगवान् मैत्रेय और विदुरजीका सत्संग कहां हुआ? और

किस समय हुआ ? सो विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ हे मुने ! उन शुद्धात्मा विदुरजीका प्रश्न ऐसे महात्मा मैत्रेयजीसे कुछ थोडे प्रयोजनका देनेवाला तौ न हुआ होगा, बरन अधिकही प्रयोजनका साधक होगा; क्योंकि जिसके प्रश्नकी सराहना महात्मा पुरुष करतेहैं ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि, "राजा परीक्षितका अत्युत्तम प्रश्न सुनकर आत्मज्ञानी प्रसन्न मन श्रीशुकदेवजी बोले" कि हे नरपाल ! सुनो–जिस समय दुष्ट राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंको पुष्टकियाथा; इसलिये अधर्मसे विनष्टदृष्टि हुई, सो बड़े भाई पाण्डुके अनाथपुत्रोंको लाक्षाभवनमें प्रवेश करवाकर उनको जलानेकी इच्छा की ॥ ५॥६॥ जिस समय सभामें अपनी पुत्रवधू राजा युधिष्ठिरकी पत्नी द्रौपदी अपने अश्रुजलसे पयोधरोंकी कुंकुमको धोरहीथी; उसके केशोंको

न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्याऽमलात्मनः ॥ तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ॥ प्रत्याह तं स बहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ॥ भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबन्धून्प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥ ६ ॥ यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ॥ न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरंत्याः कुचकुंकुमानि ॥ ७ ॥ द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलंबस्य वनागतस्य ॥ न याचतोऽदात्समयेन दायं तमोजुषाणो यदजातशत्रोः ॥८॥ यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ॥ न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥९॥ यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ॥ अथाह तन्मंत्रदृशां वरीयान्यन्मंत्रिणो वैदुरिकं वदंति ॥१०॥

पकड खैंच रहाथा, यह पुत्रका कुकर्म देखकरभी धृतराष्ट्रने उसको नहीं निवारण किया ॥ ७ ॥ अधर्मसे जुएमें हारे हुए, सीधे सत्यवादी बारहवर्ष बनमें बस जब घर आये तब पुरोहितको भेजा और अपना राज्य मांगा; और महाप्रतापी राजा युधिष्ठिर जिनका कोई शत्रु नहीं उनको अधर्मी दुर्योधनसेवी, धृतराष्ट्रने भागदेना नहीं स्वीकार किया ॥ ८ ॥जिस समय युधिष्ठिरके भेजेहुए जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रजीने सब पुरुषोंको अमृततुल्य वचन सभामें सुनाये तब नष्टपुण्य धृतराष्ट्रने उन वचनोंका बहुत मान न किया ॥ ९ ॥ जिस कालमें धृतराष्ट्रका बुलाया हुवा विदुर भवनमें प्रविष्ट होनेपर बडे भ्राता धृतराष्ट्रने मंत्र (सलाह) के वास्ते पूछा और इसके अनंतर मंत्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ विदुरने जो जो मंत्र कहे

उनको मंत्री सभामें अबतक भी यह विदुरनीति है ऐसे दृष्टांत देते हैं ॥ १० ॥ "जो जो विपत्ति युधिष्ठिरके सहने योग्य न थी, वह भी उसने सही; उस असह्य अपराधके सहनेहारे युधिष्ठिरका अंश तुम देदो । सब भ्राताओं सहित सर्परूपी भीमसेन क्रोधसे श्वास ले रहा है, जिस्से तुम सदा भयभीत रहतेहो" ॥ ११ ॥ विदुरजी फिर कहने लगे हे धृतराष्ट्र! तुम भीमसेन और अर्जुन समान बलवान् नहीं हो, और अपने मनमें यह अभिमान मत करो कि मेरे बहुतसे पुत्र हैं क्योकि तुम यह नहीं जानते कि पाण्डवोंके पृष्ठरक्षक श्रीयदुनायकका हाथ और उनको श्रीमुकुन्दने निजभावसे ग्रहण किया है, और वह मुकुन्द स्वयं भगवान् हैं. जिनके साथ सब देवता और मुनीश्वर हैं; सो अपनी द्वारकापुरीमें विद्यमान हैं, कहीं चले नहीं गए हैं; फिर वह द्वारकानाथ यदुवंशीय राजाओंके पूज्य हैं और उनके संग यदुवंशीभी बलवान् और एकसे एक [illegible]

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवाऽऽगः ॥ सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन्मृषा यत् त्वमलं बिभेषि ॥ ११ ॥ पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुंदो गृहीतवान्स क्षितिदेवदेवः ॥ आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥ १२ ॥ स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान्प्रविष्टोऽयमपत्यमत्या ॥ पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुल[illegible] ॥ १३ ॥ इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ॥ असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णा[illegible] ॥ १४ ॥

[illegible] वासुदेव भगवानने बड़े २ राजाओंको जानकर स्वाधीन किया, इसलिये सब राजालोगभी उनके पक्षमें [illegible] भीरुता और वीरताका जो अभिमान है, उसको छोड़कर पांडवोंको उनका भाग देदो ॥ १२ ॥ सो यह [illegible] दोषरूपधारी तुम्हारे घरमें घुसाहै. जिसको तुम पुत्रबुद्धिसे पुष्ट करतेहो. कृष्णविमुख श्रीनष्ट एक दुर्योधनको [illegible] कुल विनाश न हो वही अपत्य है ॥ १३ ॥ अत्यन्त शीलवान् विदुरजी उस सभामें ऐसा कह [illegible] फड़कने लगे, और वह लाल २ नेत्र कर बोला,—"इस दुष्टको यहांसे निकालो" इसी

१. उन्होंने कहा था—"इस कपटीको यहां किसने बुलाया है? यह दासी पुत्र होकर हमसे

पाला जाकर हमारेही प्रतिकूल शत्रुओंकी कुशल चाहता है; इसलिये इस जीतेहुए अमांगलिकको शीघ्र नगरसे निकालो ॥ १४ ॥ अपने भाई धृतराष्ट्रके सन्मुख दुर्योधनके वचनबाणसे विद्ध हो कहा कि, ईश्वरकी मायाका माहात्म्य ऐसाही है. ऐसे मनमें विचार विदुरजी अपने धनुषको द्वारपर रखकर तीर्थयात्राको चलदिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ कौरवोंके पुण्यकर्मसे प्राप्त विदुरजी हस्तिनापुरसे निकल अपने चरणोंसे हरिके क्षेत्रोंको पवित्र करने

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ॥ तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशुपुराच्छ्वसानः ॥ १५ ॥ स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ॥ स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥ १६ ॥ स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ॥ अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥ १७ ॥ पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुंजेष्वपंकतोयेषु सरित्सरस्सु ॥ अनंतलिंगैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥१८॥ गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधश्शयनोऽवधूतः ॥ अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ १९ ॥

चले गये. पृथ्वीपर जहां२ ब्रह्म, रुद्र,आदि अनेक रूप हो आप निवास करते हैं तहां २ सब क्षेत्रोंमें गये ❋ ॥१७॥ पुरोंमें पुण्यदाता जो उपवन उनमें, पर्वतोंमें, कुंजोंमें, सरोवरोंमें, अपङ्कनदियोंमें, ईश्वरके चिह्नोंसे सुंदर अलंकृतोंमें, और जो जो तीर्थोंके स्थान क्षेत्र हैं उन सबमें अकेले विदुरजी विचरते फिरे ॥१८॥ एकांत वृत्ति, शांतस्वभाव, पवित्र आत्मा सदा सब तीर्थोंमें स्नान करैं, पृथ्वीपर शयन करैं,शरीरके संस्कार न करैं, अवधूत रहैं, वल्कल

---

* शंका—यमराजके हृदयमें सदा अपने राज्यकी प्रीति और अनरीति बनी रहती है सो यमराज विदुरजी होते हुए तो विदुरजीने यमराज बनकर तीर्थसेवन आदि लेके उत्तम क्रिया क्यों करी ? यमराजका वश चले तो दूसरा जीवभी उत्तम कर्म नहीं करने पाता, फिर विदुरने यमराज बनकर यह शुभकर्म क्यों किया ? और मनुष्य जिस योनिमें जन्म लेता है उस योनिकी प्रकृति महाकाठिनतासे छूटती है, फिर विदुरजीसे यमकी प्रकृति क्यों छूटगई ? जो तीर्थयात्रा करने लगे ॥

उत्तर—यह तुम्हारा वचन बहुत सत्य है कि, सब प्राणियोंकी प्रकृति महाकाठिनतासे छूटती है परतु उसी महादु.खसे छूटनेवाली प्रकृतिको महात्मापुरुषोंकी संगति नीच प्रकृतिकोभी उच्च प्रकृति कर देती है. दुष्ट जीवोंके त्रास देनेवाले यमराज हैं, महात्मापुरुषोंसे वेभी डरते हैं. और विदुरजीने तो व्यासजीके अंशसे जन्म लिया था. इसलिये यमराज विदुररूप होकर दुष्ट कर्मोंको त्याग उत्तम क्रिया करने लगे. और व्यासजी महाराजकी कृपासे विदुरजी भगवान्के भक्त हुए ॥

वसन पहिनें, रूपको छिपाये अवधूत वेप बनाए वह व्रत करने लगे जिस्से परमात्मा प्रसन्न हो ॥१९॥ इस भाँति भारतवर्षमें विचरते २ बहुत दिन हो गए, उस समय राजा युधिष्ठिर श्रीपुण्डरीकाक्ष कृष्णचन्द्रकी सहायतासे पृथ्वीपर एकछत्र राज करतेथे ॥२०॥ जैसे बाँसोंके बनमें बांसोंके रगड़नेसे अग्नि निकल बाँसोंको जलाकर निवृत्त होजाती है, उसीप्रकार प्रभासक्षेत्रमें अपने सुहृद कौरवपाण्डवोंका विनाश सुना कि, परस्पर ईर्पा करके भस्म हो गये; उनका अत्यन्त शोक किया फिर चुप होकर पूर्ववाहिनी सरस्वतीके निकट गये ॥ २१ ॥ उस सरस्वतीके निकट एकादश तीर्थ हैं, ब्रह्मविष्णु शिवतीर्थ १, शुक्राचार्यका मन्दिर२, मनुका स्थान३, पृथुका भवन४, अग्निकुण्ड५, शनैश्चरका चित्र६, वायुका वासस्थान ७, सुदास राजाकी प्रतिमा८,

इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ॥ तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥ ॥ २० ॥ तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ॥ संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥ २१ ॥ तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ॥ तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥ २२ ॥ अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ॥ प्रत्यंगमुख्यांकितमंदिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरंति ॥ २३ ॥ ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजांगलांश्च ॥ कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥ २४ ॥ स वासुदेवानुचरं प्रशांतं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम् ॥ आलिंग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥ २५ ॥

गोशाला९, स्वामिकार्तिकका मंदिर१०, श्राद्धदेवमनुकी सभा११ इन सबका विदुरजीने सेवन किया ॥२२॥ औरभी ऋषियोंके, देवताओंके, बनाएहुये, विष्णुके स्थान वहांपर हैं. जिनमें विष्णुके संपूर्ण अंगकी शोभा करनेवाले आयुधोंमें मुख्य जो सुदर्शनायुधसे चिह्नित शोभायमान अनेकानेक प्रकारके मंदिर हैं उनके दर्शनसे श्रीकृष्णका स्मरण होता था तहाँ२ मज्जन वंदन करते फिरते थे॥२३॥ सुराष्ट्र, ऋद्ध, सौवीर, मत्स्य, कुरु, जांगल इन सब देशोंको यथाक्रम उल्लंघन करके यमुना पुलिनपर आये तहाँ परम भागवत उद्धवको देखा ॥२४॥ श्रीकुंजविहारीके अनुचर प्रशांत, बृहस्पतिके नीतिशास्त्रमें पहिले विख्यात शिष्य उद्धवको हृदयसे लगा विदुरजी मिले और भगवतकी प्रजा और अपने इष्ट मित्रोंके कुशलकी विदुरजीने जिज्ञासा की ॥ २५ ॥

और फिर बूझा कि श्रीरामकृष्ण कुशल हैं, जो पुराणपुरुष अपनी नाभिमेंसे पैदा हुये ब्रह्माजीकी सेवासे प्रसन्न हो यहां अवतार लिया; और पृथ्वीको कुशल विधानकर अब इस समय अवकाशसे शूरसेनके गृहमें विराजते हैं ॥ २६ ॥ कुरुके परमसुहृद हमारे भगिनीपति परमपूज्य वसुदेवजी कुशल हैं ? जो अति उदार वसुदेवजी अपनी बहिनोंको बहुत धन दे तृप्त कर शूरसेनकी समान सदा धन देते रहे हैं ॥ २७ ॥ सब सेनाके सेनापति, यादवाधीश, महावीर प्रद्युम्न कुशल हैं ? जिन मदनके अवतारको रुक्मिणीने पूर्वजन्ममें अनेकप्रकारकी आराधना कर पाया है ॥ २८ ॥ सात्वत, वृष्णि, भोज, दाशार्हइनके स्वामी उग्रसेन महाराज सुखी हैं ? नृपासनाशात्यागी उग्रसेनको कमलनयन भगवानने स्वयं नृपासन त्याग

कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलाऽवतीर्णौ ॥ आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥ २६ ॥ कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमंग शौरिः ॥ यो वै स्वसृणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो वरं तर्पणेन ॥ २७ ॥ कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमंग वीरः ॥ यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रा न्स्मरमादिसर्गे ॥ २८ ॥ कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते॥ यमभ्यषिंचच्छतपत्रनेत्रो नृपास नाशां परिहृत्य दूरात् ॥ २९ ॥ कच्चिद्धरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु सांबः ॥ असूत यं जांववती व्रताढ्या देवं गुहं योंऽबिकया धृतोऽग्रे ॥ ३० ॥ क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ॥ लेभेंऽज साऽधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥ ३१ ॥ कच्चिद्बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ॥ यः कृष्णपादांकितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥ ३२ ॥

अभिषेक किया ॥ २९ ॥ हे सौम्य उद्धव ! महारथियोंमें अग्रगण्य वृन्दावनविहारीकी समान शीलवान् जैसे पूर्वजन्ममें शैलसुता भवानीने स्वामि कार्तिकको उत्पन्न किया; इसीप्रकार व्रतकरके जाम्बवतीने जिन्हें उत्पन्न किया सो श्रीकृष्णतनय साम्ब अच्छे हैं ॥ ३० ॥ जो गति यतियोंको महादुर्लभ है सो श्रीयदुनायककी सेवासे सहजमें प्राप्त हुई और जिनको अर्जुनसे धनुरहस्य प्राप्त हुवा ऐसे शान्तरूप सात्यकी सुखी हैं ? ॥ ३१ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान्, निष्पाप, भगवतके शरणागत, आठों याम श्रीकृष्णके प्रेमरसमें जो मग्न, सब लज्जाको तज ब्रजकी रजमें लोटनेहारे श्वफल्कसुत

अक्रूर तो आनंदमें हैं ?॥३२॥ देवकीनाम भोजकी कन्या, अदितिकी समान सब जगत्के स्वामी; आदि ब्रह्म, अविनाशी त्रिलोकीनाथ जिनके पुत्र, श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दको जिन्होंने गर्भमें इसप्रकार धारण किया जैसे वेदत्रयी यज्ञके विस्तृत अर्थको धारण करती है सो देवकी प्रसन्न हैं ? ॥३३॥ भगवान् उपासकोंकी कामनाके दाता आपके अनिरुद्धजी तौ कुशल हैं जिनको वेद शब्दशास्त्रके कारण मनोमय अंतःकरणके चतुर्थतत्त्ववेद मानते हैं ॥ ३४ ॥ हे विद्वज्जन ! अपने आत्मदेव अनन्य वृत्तिसे जो भगवत्परायण हैं वे सुखी हैं ? हृदीकादि सत्यभामाके पुत्र, चारुदेष्ण, गद आदिमें जिनके सो भगवान्के पुत्र प्रसन्न हैं॥३५॥ अर्जुन श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंसे धर्मसमेत धर्मके सेतुकी धर्मावतार युधिष्ठिर क्या रक्षाकरते हैं? जिनकी

कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ॥ या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥३३॥ अपिस्विदास्ते भगवान्सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ॥ यमामनंति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ॥ हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादयः स्वस्ति चरंति सौम्य ॥ ३५ ॥ अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ॥ दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥ ३६ ॥ किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुंचत् ॥ यस्यांघ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥ ३७॥ कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गांडीवधन्वोपरतारिरास्ते ॥ अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥ ३८ ॥ यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृतौ पक्ष्मभिरक्षिणीव ॥ रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥ ३९ ॥

सभामें विशेष जयकी अनुवृत्ति और सम्राटपनकी लक्ष्मीसे दुर्योधन तपता हुआ ॥ ३६ ॥ अपराधकारी कुरुओंमें क्रोधी भीमसेन सर्पकी सदृश महाघोर श्वास लेनेवाला गदा ग्रहणकर विचित्र मार्गोंमें विचरते समय जिस भीमसेनके चरणकी धमक धरती नहीं सहन कर सकी सो पवनपुत्र भीमसेन प्रसन्न हैं ॥ ३७ ॥ महारथी यूथपोंमें यशस्वी शत्रुनाशक अलक्षित जिनके बाणोंसे मायासे ठगे हुए भीलरूप धारण किये हुए भूतनाथ प्रसन्नहुए सो गाण्डीवधनुषधारी इन्द्रसुत अर्जुन अच्छीतरह हैं ? ॥३८॥ और माद्रीके पुत्रोंकोभी तुमने देखा जिनका कुन्ती पुत्रसमान पालन करती है, और जिसप्रकार

पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार रक्षा की, शत्रु इन्द्रके मुखसे जैसे गरुड अमृत लावे उनकी सदृश युद्ध करके बरजोरी अप्सरा भाग लेकर बिहार करतेहैं वे प्रसन्न हैं ॥३९॥ बडे आश्चर्यकी बात है कि, पाण्डु राजर्षिके विना केवल पुत्रोंकी रक्षाके अर्थ कुन्ती जीवन धारण करती है। एकही वीर जिन पाण्डुने एक धनुष लेकर अकेले चारों दिशाओंको जीतकर शत्रुओंका विनाश किया ॥ ४० ॥ हे सौम्य उद्धव ! हमारा ज्येष्ठ बंधु जो अभिमानके मदमें अंधा होरहाथा उसका मैं सोच करता हूं कि, वह नरकमें पड़ेगा क्योंकि उनके आश्रित होकर जिसने परलोकमें गये पांडुभ्राताके साथ द्रोह करा अर्थात् पांडुके पुत्रोंको दुःख दिया और मैं जीवता हुआ सुहृद् भ्राता पुरसे निकाला गया इसलिये वह नरकमें कैसे नहीं पडेगा अवश्य पडेगा ॥ ४१ ॥ मनुष्योंमें अवतार धर नरलीला कर मनुष्योंके बुद्धिको चलायमान कर्ता,सब संसारके धारक श्री वृन्दावन

अहोपृथाऽपि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनाऽपि तेन ॥ यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥ ४० ॥ सौम्यानुशोचे तमधः पतंतं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ॥ निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन ॥ ४१ ॥ सोऽहं हरेर्मर्त्यविडंबनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ॥ नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन्गतविस्मयोऽत्र ॥४२॥ नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ॥ वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशो ह्युपैक्षताघं भगवान्कुरूणाम् ॥ ४३ ॥ अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ॥ नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतंत्रम् ॥ ४४ ॥

विहारीके प्रसादसे मैं परमपदवीको प्राप्त कर विषादरहित हो सब पृथ्वीपर विचरता फिरा और मैंने अपने रूपको ऐसा छिपाया कि किसीने मुझको नहीं पहिचाना॥४२॥ इन तीनों मदसे युक्त हो, सेनासे सब धरतीको चलायमान करें उनका हठ हटानेके अर्थ वध करने और शरणागतोंका कष्ट हरनेको देवकीनन्दनने कौरवोंका अपराध क्षमाकिया ॥ ४३ ॥ अजन्मा ईश्वरके जन्म पाखण्डी और दुष्टोंके नाश करने और अकर्ताके कर्म पुरुषोंके ग्रहण करनेके अर्थ हैं इनके विना गुणोसे परे जो ईश्वर है उनके विना कर्मके वश होना और ब्रह्मनिष्ठाका धारण और देहके योग्य नहीं है ॥४४॥

१ विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः ।

हे सखे ! शरणागत सब लोकपालोंके और अपनी आज्ञामें जो स्थित हैं उनके कारण यादवोमें जन्म लिया, ऐसे तीर्थरूप वसुदेवकुमार बॉके विहारी, कृष्णमुरारीकी मनोहर कथा सुनाओ ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः॥१॥ दोहा—कहौ द्वितीय अध्यायमें, उद्धव विरह विलाप। जैसे वरणो विदुरसे, सकल शोक सन्ताप ॥२॥ श्रीशुकदेवजी बोले, श्रीकृष्णका स्मरण करानेहारी ऐसी बातें भागवत विदुरजीने उद्धवसे पूछीं. तब श्रीवृन्दावनविहारीके विरहमें उद्धव सब सुधि बुधि बिसराय खडे होगये और मुखसे कुछ

तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ॥ अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भागवतः पृष्टः क्षत्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ॥ प्रतिवक्तुं न चोत्सेहे औत्कंठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥१॥ यः पंचहाय नो मात्रा प्रातराशाय याचितः ॥ तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥ २ ॥ स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः ॥ पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥ ३ ॥

न कहसके * ॥१॥ जिस समय उद्धव पांच वर्षके थे तब बाललीलामेंभी श्रीगोविन्दके चरणारविंदकी पूजा करते रहे थे और जब प्रातःकाल मैया भोजनको बुलाती तबभी न जाते ॥ २ ॥ सो उद्धवजी उनकी सेवा करते २ अब वृद्ध होगये थे, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलका स्मरणकर जो कुछ

* शका—सब विष्णुके भक्तोंमें सब ज्ञानियोंमें सब शास्त्रोंमें उद्धवजी बडे ज्ञानी बडे भक्त, कृपाके सागर श्रीकृष्णने जिनको अपना परमप्रियतम जानकर ज्ञानदिया, सो ऐसे बडे ज्ञानी होकर उद्धवजी विदुरजीके मुखसे श्रीकृष्ण बलराम आदिक सब यदुवंशियोंका विनाश सुनकर मूर्खोंकी समान शोक क्यो करने लगे ?

उत्तर—उद्धवजीने विचार किया कि जो मैं श्रीकृष्णजीके विरहको सुनकर शोक संताप न करूगा तौ मेरा चरित्र सुनके कलियुगमें सब प्राणी भगवान्का विरह सुनकर कोईभी शोक न करेगा तौ सब प्राणियोंको कलियुगमें श्रीवैकुण्ठनाथका वैकुण्ठधाम नहीं मिलेगा इसलिये उद्धवजी परमज्ञानी भी थे. और विष्णुभक्त भी थे तौ भी भक्तजनोंके प्रीति बढानेके लिये शोक किया कि कलिकालके लोगोंको प्रेमसेही परमधाम प्राप्त होगा॥

जिज्ञासा किया सो वर्णन करने लगे ॥३॥ श्रीकृष्णके चरणामृत और पूर्णभक्तिमें अत्यन्त मग्न हो अतिसुख पाय मुहूर्तमात्रको मौन होगये ॥ ॥ ४ ॥ और पुलकायमान हो नेत्र मूँद शोक तज प्रेमप्रवाहमें निमग्न सब अर्थ परिपूर्णसी दशा होगई ॥५॥ धीरे २ में भगवान्के ध्यानसे फिर संदेहानुसन्धानमें आन अश्रु निवारण कर उद्धवजी फिर विदुरजीसे बोले ॥६॥ "हे विदुरजी ! हमारे नेत्रोंके तारे श्रीकृष्णरूप सूर्य अस्त होगये" और कालरूप अजगरने सब शोभित ग्रहोंको डसलिया अब मैं किसकी कुशल और प्रसन्नता कहूं ॥ ७ ॥ यह सब लोक भाग्यहीन हैं. और यादव तौ सभी महा अभागे हैं प्रारब्धके मंद हैं. जो आदिपुरुष अविनाशीके निकट वास करते रहे और तौभी लोकनाथ विश्वात्माको नहीं पहिचाना जैसे

स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णांघ्रिसुधया भृशम् ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ॥ ४ ॥ पुलकोद्भिन्नसर्वांगो मुंचन्मीलद्दृशा शुचः ॥ पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥ ५ ॥ शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ॥ विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥ ६ ॥ उद्धव उवाच ॥ कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ॥ किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥ ७ ॥ दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ॥ ये संवसंतो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥८॥ इंगितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः ॥ सात्वतामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥ ९ ॥ देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः ॥ भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥ १० ॥ प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् ॥ आदायांतरधाद्यस्तु स्वबिंबं लोकलोचनम् ॥ ११ ॥

एक समय सुधाकर किसी शापसे जलनिधिमें मीन होकर रहा परन्तु किसी जलचरने नहीं जाना कि; यह अमृतकी खानि है. अथवा जैसे मीन अवतारको जलचरोंने संसारतारक नहीं समझा.और कहीं ऐसाभी लिखा है कि समुद्रमथनसे पहले चंद्ररूप हरिको संसारतापहारक नहीं माना इसी प्रकार हमारी गति जानो ॥८॥ भगवत् चित्तके ज्ञाता; अतिनिपुण एक स्थानमें सदा रहनेहारे, यादवोंने यदुनाथ, यादवश्रेष्ठ जगन्निवास ईश्वरको अपना मित्र करके माना ॥ ९ ॥ असत्पदार्थके अधीन असुरादिक ईश्वरकी मायासे फँसे हुए थे उनके वाक्योंसे आत्मा हरिमें जिनका चित्त लगा ऐसी हमारी बुद्धि भ्रमी ॥ १० ॥ तप नहीं किया दृष्टि तृप्त नहीं हुई ऐसे मनुष्योंको संसारके नेत्र अपने मनमोहन स्वरूपका दर्शन दिखाय आप

अंतर्धान होगये ॥ ११ ॥ जिन्होने नरलीलाके योग्य अपनी योगमायाका बल दिखानेको शरीर ग्रहण किया, सो अपनेको विस्मय करानेवाले, अत्यन्तसौभाग्य, ऋद्धिके भण्डार, भूषणके भूषण श्रीभगवान् वासुदेवहैं ॥१२॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें दृष्टिके आनन्ददायक मदनमोहनकी मनोहर छबि देख तीनों लोकोंने यह माना कि,ब्रह्माकी सृष्टिमें आज श्रीकृष्णचंद्रजीके श्रीअंगमें सब चतुराई बिसरगई, क्योंकि सब अवतारोंके अंग चतुराननके रचे हुए नहीं हैं आप स्वयंभू हैं ॥१३॥ जिनकी परमसुखदायक प्रेमयुक्त अनुरागरसभरी मुसकान तिरछी चितवन देख, सुधासम मधुरवाणी सुन, सुन्दर रासविलास देख,दृष्टिसे वह बुद्धिसे न जाने जायँ; अपूर्णमनोरथसी,मानवती, व्रजबाला ऐसी होगई कि व्रजविहारीको, जाता

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ॥ विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणांगम् ॥१२॥यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ॥ कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्य मन्यत ॥ १३ ॥ यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ॥ व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥ १४ ॥ स्वशांतरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकंपितात्मा ॥ परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्यथाऽग्निः ॥ १५ ॥ मा खेदयत्येतदजस्य जन्मविडंबनं यद्वसुदेवगेहे ॥ व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनंतवीर्यः ॥१६॥ दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवंद्य पित्रोः॥ तातांब कंसादुरुशंकितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥ १७ ॥

देख उनके संग अपने नेत्रोंको भी भेज दिया कि,हमारे प्यारे अकेले जातेहैं और आप अपनी सुधि बुधि बिसार ठगीसी रह गईं॥१४॥ भगवान् अपने शांत अशांत रूपोंमें और स्वरूपोंसे, दुखारी दासोंपर दयालु देह धार पर अवरके ईश महाअंशसे युक्त अजन्मा ईश्वरने जन्म लिया. जैसे महाभूतरूपमें नित्य वसनेहारी अग्निकाष्ठमेंसे प्रगट हुई. इसीप्रकार अवतार धर सब दुष्टोंको मार भूमिका भार उतारा॥१५॥ उद्धवजी बोले अतर्क्य अगम्यके यह चरित्र समझकर मुझकोभी खेद होताहै अजन्माभी वसुदेवदेवकीके घरमें जन्म ले और व्रजमें सब घर २ घूमे. शत्रुओंके भयसे भयभीत रहे जिनमें अनंत बल और जरासन्धके भयसे द्वारका बसाई, और मथुरा तजकर वहां रहे ॥१६॥ हे विदुर ! इन बातोंको स्मरण कर २ के मेरे चित्तमें

व्यथा और हंसी दोनो आती हैं जब मातापिताके चरणारविन्दकी वन्दनाकर यह बोले कि, हे तात! हे जननी! मेरा अपराध क्षमा करो मुझपर प्रसन्नहो. कंसकी शंकासे आपकी सेवा मुझसे कुछ वन नहीं पड़ी ॥१७॥ जिन्होने, चलायमान भ्रूविटपरूप यमधर्मराजसे पृथ्वीका भार उतारा, उनके चरणारविंदकी रजको कौन ऐसा मूर्ख है जो भूल सक्ता है ॥ १८ ॥ धर्मराजके राजसूययज्ञमें श्रीकृष्णकी निन्दा कर शिशुपालको जो सिद्धि प्राप्त हुई सो आपने देखी जिस सिद्धिके सुन्दरयोगसे योगीजन मोक्षको प्राप्त होते हैं ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका वियोग कौन सहसक्ताहै? ॥१९॥ इसीप्रकार भारतके युद्धमें वीर मनुष्य नेत्रोंके आनन्ददायक श्रीकृष्णके मुखारविन्दका रस नेत्रोंसे पान करने लगे, अर्जुनके अस्त्रसे पवित्र होकर

को वा अमुष्यांघ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ॥ यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतांतेन तिरश्चकार ॥ ॥ १८ ॥ दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ॥ यां योगिनः संस्पृहयंति सम्यग्योगेन कस्तद्वि रहं सहेत ॥ १९ ॥ तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविंदम् ॥ नेत्रैः पिवंतो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥ २० ॥ स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याऽऽप्तसमस्तकामः ॥ वलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥ २१ ॥ तत्तस्य कैंकर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यंग यदुग्रसेनम् ॥ तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठि धिष्ण्ये न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥ २२ ॥ अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ॥ लेभे गतिं धा त्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ २३ ॥

भीष्मादिक वीर लोग बेखटक वैकुण्ठको चलेगये ॥२०॥ आज श्रीकृष्णके समान कोई वलवान् और उनसे अधिक नहीं है, अपनी राज्यलक्ष्मीसे सब भोग जिनको प्राप्त हैं, और चिरलोकपाल ब्रह्मादिक शक्रादिक बलिदानपूर्वक जिनके चरणारविंदकी चौकीको अपने किरीटके अग्रभागसे स्तुति करतेहैं ॥ २१ ॥ सो प्रभु सुधर्मासभामें राज्यसिंहासनपर बैठे और उग्रसेनसे कहते रहे थे; "हे देव! आप हमको निरन्तर धारण करो" उनकी यह बात सुनकर हम दासोंको बड़ा विस्मय होता है ॥२२॥ आश्चर्यकी बात है कि, महादुष्ट पूतना राक्षसीने स्तनोंमें कालकूट लगा मारनेकी इच्छाकर

दूध पिलानेके बहाने यशोदानंदको गोदमें लिया, और उसको यशोदा माताकी समान मान परमगति दी. ऐसे दीनदयालु, परमकृपालु, श्रीकृष्ण प्यारेके विना किसकी शरण जाय़ँ ॥२३॥ देखो महाक्रोधसे असुरोने श्रीकृष्णमें मन लगाया हम उनको परमभागवत मानतेहैं जो संग्राममें गरुड़ जीके ऊपर चढ़ अपने सम्मुख आयेहुए श्रीकृष्णके दर्शन कर वैकुंठको गये ॥ २४ ॥ कंसके बंधनमें वसुदेवदेवकीके घर पृथ्वीका भार उतारनेको ब्रह्माकी प्रार्थना करनेपर अवतार धारण किया ॥ २५ ॥ दुष्ट कंसके भयसे वसुदेवजीने नंदके घर ब्रजमें पहुँचाया, तहां एकादशवर्ष अपने तेजको गुप्त करके ब्रजमें वास किया और अनेक प्रकारके चारित्र दिखलाये ॥ २६ ॥ ग्वालबालसमेत गोपाललालने गाय वत्स चराये, कालिंदीके कूलपर

मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरंभमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ॥ ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसे सुनाभायुधमापतंतम् ॥ ॥ २४ ॥ वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेंद्रबंधने ॥ चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥२५॥ ततो नंदव्रजमितः पित्रा कंसाद्धि बिभ्यता ॥ एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥ २६ ॥ परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारयन्व्याहरद्विभुः ॥ यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलितांघ्रिपे ॥ २७ ॥ कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् ॥ रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥ २८ ॥ स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् ॥ चारयन्ननुगान्गोपान्रणद्वेणुररीरमत् ॥ ॥ २९ ॥ प्रयुक्तान्भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ॥ लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥ ३० ॥

कुंजोंमें वृक्षोंमें कोकिलादिक पक्षियोंके समूह मनोहरशब्द करते, और नवल लितलतिका जहाँ लहलहारहीं थीं उन उपवनोंमें नित्यप्रति विहार करते थे ॥ २७ ॥ मुग्ध तथा बालसिंहकी तरह है देखना जिनका ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र रोते हुएकी तरह और हँसते हुएकी तरह देखेने योग्य बालअवस्थाके सुख ब्रजवासियोंको दिखाते भये॥२८॥ जब बाँकेविहारी अधिक बड़े होगये तब लक्ष्मीका स्थान गोवर्द्धनके निकट गाय बैलोंको चराय बांसुरी बजाय २ ग्वालबालोंके संग अनेक २ ढंगके रास रंग इत्यादिक खेल किया करते थे ॥ २९ ॥ उस समय महाबली कंसके भेजे बड़े २ बलशाली दैत्य नानाप्रकारके रूप धरकर ब्रजमें आये उनको भक्तहितकारी बांके विहारीने बालक्रीड़ासे विनष्ट कर वैकुंठको भेजदिया ॥ ३० ॥

जिसप्रकार बालक घरोंदा बनाके बिगाड़ देतेहैं फिर भगवान्ने विष जलपान करनेसे मरेहुए गोप और गायोंको जिलाय कालीदहमें कूद काली अहिको नाथकर निकाल अपना चरणचिह्न उसके मस्तकपर लगाय रमणक द्वीपको पहुँचाया,और कालिन्दीका जल निर्मल करके वही जल गोप गायोंको पान कराया ॥ ३१ ॥ फिर ब्राह्मणोंके द्वारा समर्थ भगवान्ने नन्दजीसे गौओंकी पूजाके अर्थ यज्ञ कराया ॥ ३२ ॥ अपनी प्रतिष्ठा भंग समझकर इन्द्रने क्रोधयुक्त हो व्रजपर मूसलधार जल बरसाया तब गोप ग्वाल बछड़ोंको दुःखी देख मंगलकी इच्छाकर श्रीव्रजनाथने कंदुक इव गोवर्द्धनको उठाय बायें करकी कनअंगुलीपर धारणकर व्रजमण्डलकी रक्षा की ॥३३॥ शरद शशधरकी विमलकिरणोंसे प्रकाशित रजनीमुखको मान मनमोह

विपन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ॥ उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥ ३१ ॥ अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ॥ वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥ ३२ ॥ वर्षतींद्रे व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः ॥ गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥ ३३ ॥ शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् ॥ गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मंडलमंडनः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भा०म०तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ उद्धव उवाच ॥ ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ॥ निपात्य तुंगाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥ १ ॥ सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ॥ तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पंचजनोदरात् ॥ २ ॥

नने मनमोहिनी मुरलीमें मनोहर गीत गाय, व्रजबालाओंको बुलाय उनके संग विहार किया ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोद्धवसंवादे श्रीकृष्णचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ दोहा–कहौं तृतीय अध्यायमें, व्रजको सब वृत्तान्त ॥ फेर द्वारकाके चरित, वरणों आद्योपान्त ॥३॥ उद्धवजी बोले कि, फिर श्रीकृष्णचन्द्र सुखधाम बलराम समेत अक्रूरके संग मधुपुरीमें आये और अपने पिताके कल्याणकी इच्छा कर संकर्षणसहित रंगभूमिमें जाय ऊँचे मंचपरसे असुरनाथ कंसके केश पकड़ पृथ्वीपर धर पटका,प्राण निकलने उपरान्त उसकी शवको घसीटते फिरे ॥ १ ॥ फिर सान्दीपनि गुरुके घर जाय उनके मुखसे कहे हुये चारों वेद एक बारमें विस्तारसहित पढ़ चौंसठ कला स्मरण कीं.

फिर गुरुके मरेहुए पुत्र पंचजनके उदरसे लाकर गुरुदक्षिणामें गुरुजीको देदिये ❋ ॥२॥ फिर श्रीमहालक्ष्मीके सदृश रूपवती रुक्मिणीजीके विवाहकी इच्छा कर अनेक भूपालोंको साथ ले राजाशिशुपाल व्याहने आयाथा उसकाल भगवान् वासुदेव सबके देखते बडे नरेशोंके मध्यसे उन लोगोंके शिरपर पग धरकर रुक्मिणीको इस प्रकार हरलाये, जिस प्रकार पक्षिराजने अमृतहरण किया था ॥ ३ ॥ फिर यदुवीरने अवधनगरमें जा सात बेनथे बैलोंको नाथकर स्वयंवरमें सत्या; नाग्नजितकी पुत्रीके संग विवाह किया; और बैलोंने जिनका मानभंग किया सो अत्याचारी नाग्नजितीके अभिलाषी,

समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ॥ गांधर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥ ३ ॥ ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ॥ तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञाञ्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥ ४ ॥ प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुरार्च्छद्द्युतरुं यदर्थे ॥ वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषांधः क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥ ५ ॥ सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसंतं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ॥ आमंत्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदंतः पुरमाविवेश ॥ ६ ॥

अज्ञानी शस्त्रधारी दुष्टोंका अपने शस्त्रसे विध्वंस किया ॥ ४ ॥ जिस सत्यभामा प्रियाके प्रेमनिमित्त ससारी मनुष्योंकी सदृश पारिजात समूल उखाड लाये और जब दलसमेत क्रोधसे अन्धा स्त्रियोंके मध्यमें विषयी इन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्रसे लडनेको आया तौ क्षणमात्रमें गर्वप्रहारी बाँके विहारीने उसका गर्व दूर किया ॥ ५ ॥ फिर श्रीवैकुण्ठनाथने संग्राममें बड़े लम्बे भौमासुरका चक्रसे वध किया। उसे गिरा देख उसकी माता

---

* शंका—उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि, सान्दीपनि नाम गुरुके पास रहकर श्रीकृष्णजीने मोक्षप्राप्ति होनेकी विद्या सीखी सो मोक्षविद्या प्राप्तहोनेपर फिर राग द्वेष जीवोंसे क्यों किया ?

उत्तर—सान्दीपनि गुरुसे श्रीकृष्णजीने चौसठ कलाओंको प्राप्त किया, परन्तु तीन लोक चौदह भुवन ब्रह्माके अंशसे प्रकाशमान हो रहे हैं और चौसठ कलाभी उसके अंशसे प्रकाशित हो रही हैं, ऐसी कोई वस्तु ससारमें नहीं है जो कि ब्रह्माके अंशसे शून्य हो, ऐसा श्रेष्ठ ज्ञान चौसठ कलाके मिससे श्रीकृष्णजीने सीखा, तब जिस जीवको जैसी अभिलाषा रही उसके सग वैसी ही लीला करी, फिर राग, द्वेप कहा रहा इस लिये उद्धवजीने ब्रह्मविद्या प्राप्त होनेको कहा था।

पृथ्वीने अत्यन्त व्याकुल होकर प्रभुसे प्रार्थना की भूमिकी विनय सुन उसके पौत्र भगदत्तको राजतिलक दे उसके भवनमें गये॥६॥तहाँ भौमासुरकी हरीहुई सोलह हजार भूपालोंकी कन्याओंने श्रीवृन्दावनविहारीकी बाँकी छबि निहार शीघ्र उठ अतिहर्षित हो लाज अनुरागकी चितवनसे मनहीमन विवाहकी अभिलाषा की ॥७॥ और उन स्त्रियोंके मन्दिरोंमें एक मुहूर्तमात्रमें अपनी मायासे उनके चित्तानुसार हो विवाहयोग्य प्रकार सहित पाणिग्रहण किया ॥८॥ और फिर उन सोलहसहस्र युवतियोंको द्वारकामें लेजाय षोडशसहस्रसदनोंमें एक संग बसे. तब उन सब रानियोंके गुणोंमें अपने समान दश२पुत्रोंको एक२स्त्रियोंमें मायाको अनेकप्रकारकरनेकी इच्छासे उत्पन्न किया॥९॥ फिर कालयवन जरासन्ध शाल्वादिकोंकी

तत्राहृतास्ता नरदेवकन्या कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबंधुम् ॥ उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडाऽनुरागप्रहितावलोकैः ॥ ७ ॥ आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ॥ सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥ ८ ॥ तास्वऽपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ॥ एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥ कालमागधशाल्वादीननीकै रुंधतः पुरम् ॥ अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥१०॥ शंबरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च ॥ अन्यांश्च दंतवक्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥ ११ ॥ अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् ॥ चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ॥ १२ ॥ स कर्णदुश्शासनसौबलानां कुमंत्रपाकेन हतश्रियायुषाम् ॥ सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमुर्व्यां न ननंद पश्यन् ॥ १३ ॥

सेनाने जब द्वारकाको रोका तब उनका विध्वंस किया, और अपने पूर्वजोंके दिव्य तेजको जागृत किया ॥ १० ॥ फिर शंबरासुर, द्विविद वानर, बाणासुर, मुर, निकुंभ, बल्वल, और दंतवक्रादिक जो बडे २ बलवान् असुर थे उनमेंसे किसीको आपने मारा और किसीको औरके हाथोंसे कालकवलित कराया ॥ ११ ॥ इनके पीछे तुम्हारे भ्राताके पुत्रोंकी ओर जो नरेश थे उनकी सेना आनेसे कुरुक्षेत्रकी भूमि कंपित हुई थी ॥ १२ ॥ कर्ण, दुःशासन, सौबलके कुपरामर्शसे जिनकी राजलक्ष्मी आयु नष्ट हुई पवनकुमार भीमसेनने घोर युद्ध करके जिसकी जंघा तोड़ी उसको पृथ्वी

पर अचेत पडा देख श्रीकृष्ण कुछ प्रसन्न नहीं हुए ॥ १३ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, फाल्गुन, भीमसेन जिसमें मूल थे उन अठारह अक्षौहिणियोंके न होनेसे क्या लाभ हुआ ? मेरे अंश प्रद्युम्न आदि असह्य यादवरूप अभी हैं, भूमिपर बडा भारी भार तौ इनहींका है ॥१४॥ जब मीठी वारुणीके मदमें मतवाले हो, यादवलोग परस्पर विवाद करें, यही इनके संहार करनेका सहज उपाय है. और इनके मरनेका दूसरा उपाय नहीं और जब हम इस काजके करनेका प्रारंभ करेंगे तौ एक चित्तवालेभी ये यादव आपही नष्ट हो सब अन्तर्धान हो जावेंगे॥१५॥ऐसे विचार कर भगवान्‌ने अपने राज्यको स्थापित कर श्रेष्ठ रीति दरशाय सुहृदोंसहित आनंदित होते हुये ॥ १६ ॥ साधु अभिमन्युने विराट्‌पुत्री उत्तरामें गर्भ धारण किया, उसको द्रोणपुत्र

किंयान्भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ॥ अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥
॥ १४ ॥ मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ॥ नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते
स्वयं स्म ॥ १५ ॥ एवं संचिंत्य भगवान्स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम् ॥ नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥ १६ ॥
उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ॥ स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥ १७ ॥ अयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधै
स्त्रिभिर्विभुः ॥ सोऽपि क्ष्मामनुजैरक्षन्रेमे कृष्णमनुव्रतः॥१८॥भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ॥ कामान्सिषेवे
द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥ १९ ॥ स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया ॥ चरित्रेणाऽनवद्येन श्रीनिकेतेन
चात्मना २० ॥ इमं लोकममुं चैव रमयन्सुतरां यदून् ॥ रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥ २१ ॥

अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करना चाहा था, तब उस गर्भस्थित बालककी प्रणतपाल दीनदयालु त्रिलोकीनाथने रक्षा की फिर सामर्थ्यवान् जगत्पतिने तीन अश्वमेध यज्ञ राजा युधिष्ठिरसे करवाये और महाराज युधिष्ठिर श्रीवासुदेवकी कृपासे भ्राताओंसमेत पृथ्वीपर विहार करते रहे ॥१७॥१८॥ तदनन्तर भगवान् विश्वआत्माने लोकवेद मार्गानुसार द्वारावतीमें वास कर सांख्यशास्त्रमें मन लगाय सब प्रजाकी शिक्षाके कारण धर्म कर्म किये ॥ १९ ॥ मनोहर मुसकानकी दृष्टिसे और सुधा विनिन्दित मधुरवाणीसे लक्ष्मीनिवास शरीरसे सबको आनंद देते रहे ॥२०॥ इस लोक और उस

लोकमें निरन्तर यादवोंको रमण कराया और सोलह सहस्र रमणियोंसे आप रमण करते रहे ॥२१॥ बहुत वर्षतक रमण करते २ श्रीकृष्णको गृहस्थाश्रममें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥२२॥ जो हरि किसीके आधीन नहीं, अपने कार्योंमें स्वतंत्र, हैं उन परमात्माको विराग हुआ; तौ जिनके काम पराये आधीन हैं और आप भी वे पराधीन हैं, उनमें कौन ऐसा योगेश्वर है जो भगवतका भजन करता हुआ दैवाधीन कार्योंमें प्रीति करेगा ॥२३॥ एक समय द्वारकापुरीमें यदुवंशियोंके बालकों द्वारा खेलमें मुनिकी हँसी कराई, तब भगवदिच्छाके अनुकूल मुनिने उनको महाघोर शाप दिया ॥२४॥ फिर कुछ मास पश्चात् वृष्णि, भोज, अंधक आदिक प्रसन्न हो रथपर बैठ दैवसे विमोहित हो प्रभासक्षेत्रमें गये ॥ २५ ॥ वहां स्नान कर उसी वारिसे पितृ,

तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान्बहून् ॥ गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥ २२ ॥ दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ॥ को विस्रंभेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥ २३ ॥ पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः ॥ कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥ २४ ॥ ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजांधकादयः ॥ ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्दैवविमोहिताः ॥ २५ ॥ तत्र स्नात्वा पितॄन्देवानृषींश्चैव तदंभसा ॥ तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥ २६ ॥ हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकंबलान् ॥ यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥ २७ ॥ अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ॥ गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० तृतीय० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

उद्धव उवाच ॥ अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ॥ तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥

देव, ऋषियोंका तर्पण कर बहुत दूधवाली गायें अलंकारयुक्त, ब्राह्मणोंको दान करीं ॥ २६ ॥ और सुवर्ण, चांदी और अनेक प्रकारके रत्न आभूषण, शय्या, वस्त्र, दुशाले, पीतांबर, मृगचर्म, सवारी, रथ, हाथी, घोड़े, कन्या, पृथ्वी जिससे सब वृत्ति चले ऐसा दान विप्रोंको दिया॥२७॥फिर जिसमें अनेक रस पूर्ण ऐसा अन्न महीसुरोंको दे भगवत्के समर्पण किया; फिर उन गो ब्राह्मण हितकारी यादवोंने श्रीकृष्णजीके प्रसन्नतार्थ भूमिमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया ॥२८॥ इति श्रीमद्भा० महा० तृ० भाषाटीकायां प्रभासक्षेत्रागमनवर्णनं नाम तृतीयोध्यायः ॥३॥ दोहा–इस चतुर्थ अध्यायमें, बन्धुनिधन सुन कान। उद्धवशिक्षासे विदुर, गये मित्रसुत जान ॥ ४ ॥ उद्धवजी बोले कि, ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले भोजन करा, फिर वारुणीपान करनेसे सब

यादववीर ज्ञानशून्य होगये. और परस्पर बुरी २ बातें कर; मर्मस्थानमें वचनबाण एक दूसरेके मारने लगा ॥१॥ उस मदके दोषसे उनके चित्त विषम होगये. सूर्य अस्त होनेके समय जिसप्रकार बांस घिसकर अग्निके उत्पन्न होनेसे नष्ट होजातेहैं; ऐसे ही परस्पर वे लड़कर शापाग्निसे नष्ट होगये ॥ २ ॥ भगवान् अपनी मायाके इस प्रभावको देख सरस्वती नदीमें आचमन कर एक वृक्षकी जड़में बैठगये ॥ ३ ॥ उस समय शरणागतके पीड़ानाशक, अपने वंशके विध्वंस करनेवाले भगवान्ने मुझसे कहा कि, तुम बदरिकाश्रमको जाओ ॥४॥ यद्यपि उनके अभिप्रायोंको मैं भलीप्रकार जानताथा, तौ भी मैं शत्रुविनाशकारी, दैत्यारी श्रीवासुदेवजीके पश्चात्२गया क्योंकि श्रीयदुनाथके कोमल चरणोंका वियोग मैं सहन नहीं करसका ॥५॥ तब मैं

तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ॥ निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥ २ ॥ भगवान्स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ॥ सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥ ३ ॥ अहं प्रोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥ ४ ॥ अथाऽपि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिंदम ॥ पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥ ॥ ५ ॥ अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् ॥ श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥ ६ ॥ श्यामावदातं विरजं प्रशांतारुणलोचनम् ॥ दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशांबरेण च ॥ ७ ॥ वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणांघ्रिसरोरुहम् ॥ अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥ ८ ॥ तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखः ॥ लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥ ९ ॥ तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुंदः प्रमोदभावाऽऽनतकंधरस्य ॥ आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥ १० ॥

वृन्दावनविहारीके चरणचिह्न खोजता हुआ सरस्वतीके तटपर पहुँचा देखा तो राधाचित्तचोर श्रीनिवास स्वतंत्र अकेले वहाँ बैठेहैं ॥६॥ श्यामसुन्दर शुद्ध सत्वमय शांत लाल नेत्रोंवाले चारभुजाधारी आनन्दस्वरूप पीतांबर धारण किये॥७॥दहिना चरण बायें चरणपर स्थापित किये,पीपलके पेड़के निकट बैठे,पुष्टशरीर,जिन्होंने सम्पूर्णविषयोंका त्याग करदिया॥८॥तहाँ दैव इच्छासे महाभागवत व्यासजीके सुहृद्सखामैत्रेयजी भी विचरण करते हुए उधर आ निकले ॥९॥ तब भक्त अनुरागी आनन्दभावसे नीची ग्रीवा करे मेरे सम्मुख प्रेम हास्यकी दृष्टिसे विश्राम दे आनंदित होकर मुनीश्वरसे

श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाऽहमंतर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवापमन्यैः ॥ सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥ ११ ॥ स एष भावश्चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ॥ यन्मां नृलोकान्रह उत्सृजंतं दिष्ट्या ददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ॥ १२ ॥ पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ॥ ज्ञानं परं मन्महिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदंति ॥ १३ ॥ इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ॥ स्नेहोत्थरोमास्खलिताक्षरस्तं मुंचञ्छुचः प्रांजलिराबभाषे ॥ १४ ॥ कोन्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ॥ तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन्भवत्पदांभोजनिषेवणोत्सुकः ॥ १५ ॥ कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ॥ कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥ १६ ॥

श्रीव्रजनाथजी बोले हे वसुरूप उद्धव ! तुम्हारे मनकी जो गति है वह मैं भली प्रकार जानता हूं और तुम्हारी अभिलषित वस्तु तुमको दूंगा, जो औरोंको प्राप्त नहीं होती, प्रथम विश्वके रचयिता वसुओंके यज्ञमें मेरी सिद्धिकी कामनासे तुमने मेरा यजन कियाथा॥ १०॥ ११॥सो हे तात ! मेरी कृपासे यह आपका अन्तिम जन्म है,इसी जन्ममें तुम मेरे अनुग्रहका फल भोग लो,अब मैं मृत्युलोक त्याग वैकुण्ठधामको जाता हूं,इस समय मेरा एकान्तमें एकान्तभक्तिसे दर्शन करो,यही परमानंद है ॥ १२ ॥ पहिले पाद्मकल्पकी आदिसृष्टिमें कमलासन ब्रह्माजीसे मैंने अपनी लीलाका प्रकाशक परमश्रेष्ठ ज्ञान कहा था जिसको महाज्ञानी परमचतुर विद्वान् लोग "भागवत" कहते हैं सोई ज्ञान प्रथम मैंने तुमको दिया अब तुम उस विमलज्ञानको विचार संसारी माया मोह तज मेरा भजन करो ॥१३॥ ऐसे आदरभावसे जब कृपानिधानने मुझे समझाया तब परमपुरुषके क्षण २ के प्रति अनुग्रहका पात्र स्नेहसे मेरे रोमांच खड़े होकर गद्गद कंठ होगया, मुखसे शब्द न निकला; शोकाश्रु नेत्रोंमें आगये तब मैं बड़े कष्टसे हाथ जोड़कर बोला ॥ १४ ॥ हे ईश ! हे प्रभु ! यद्यपि इस संसारमें तुम्हारे पदपंकज सेवन करनेवालोंको चारों पदार्थोंमें सब पदार्थ प्राप्त होतेहैं तथापि मैं भी आपके चरणकमलका सेवक हूँ परन्तु मुझको उन पदार्थोंमेंसे किसीकी इच्छा नहीं ॥ १५ ॥ जो अघटमान हैं सो कहते हैं कि, जो चेष्टा न करै अकर्ताके कर्म,

अजन्माके जन्म, शत्रुओंके भयसे भागना, कालकी आत्मा असंख्यात रमणियोंसे विहार करना, अपनी आत्मामें सदा रमण करना, ऐसे तुम्हारे अद्भुतचरित्र देखकर इस संसारमें सब विवेकियोंकी बुद्धि खेदको प्राप्त होती है ॥१६॥ हे प्रभो ! हे देव ! सब कालमें अखंड,अंतर्यामी जगत्के कारण अज्ञानकी नाईं मुझे निकट बुलाकर मंत्र बूझतेथे और मुझको बड़ाई देतेथे, इसकारण मेरा मन आपके चरणकमलको नहीं छोड़ा चाहता॥१७॥ अपने आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला ज्ञान संपूर्ण ब्रह्मासे तुमने कहा. हे स्वामिन् ! जो मेरे जानने योग्य हो सो कहो जिससे अनायास संसा

मंत्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुंठिताखंडसदात्मबोधः ॥ पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाऽप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥१७॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान्समग्रम् ॥ अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदाऽजसा यद्वृजिनं तरेम॥ १८॥ इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः ॥ आदिदेशाऽरविंदाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥ १९ ॥ स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ॥ प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥ २० ॥ सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभो ॥ गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममंडलम् ॥ २१ ॥ यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः ॥ मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥ २२ ॥

रके दुःखसे हम सब तरें ॥१८॥ ऐसे मेरे हृदयकी प्रीति जान श्रीवासुदेव भगवान् कमलनयनसे आत्माकी परम स्थितिका ज्ञान कहा *॥१९॥ तब मैंने उसीप्रकार भगवान् वासुदेवका आराधन किया, उनके चरणामृतके प्रतापसे आपसे आप तत्त्व आत्माके ज्ञानका मार्ग मुझको प्राप्त होगया तब मैं उनके चरणोंको प्रणाम कर परिक्रमा दे विरहमें आतुर हो यहां आया हूँ॥२०॥ उनके दर्शनकी प्राप्तिके हर्ष और वियोगकी पीडासे खेदित हो प्रभुके प्रिय बदरिकाश्रम मंडलको जाऊंगा ॥२१॥ जहां नारायणदेव और नर ऋषि सब उपद्रवरहित दुश्चर तप कल्पपर्यंत सब लोकके अनुग्रहके

* शंका–उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि, हे विदुर ! भगवान् मुझको बडी सुन्दर अपनी स्थिति बतलाते थे सो भगवान्की बडी सुन्दर स्थितिका ठिकाना कहां है ?
उत्तर–भगवान्की बडी सुन्दरस्थिति भक्तिमें है वा भक्तजनोंके हृदयमें है,वहीं सदा भगवान् वास करतेहैं,भगवान्की बडी स्थिति दोही स्थानोंमें है उनही अपनी बडी स्थितिके स्थानोंको भगवान्ने उद्धवसे कहाथा ।

दि लक्षणोंको देखकर जान पड़ताहै कि, तुम्हारा अंतःकरण सावधान नहीं है. बतावो तो सही ऐसी अनमनी किसलिये होरही हो? ॥ १० ॥ यह सुनकर अदितिने कहा कि,हे स्वामिन्! गो, ब्राह्मण, धर्मादि सबकाही मंगलहै. हे गृहमेधिन्! जो गृह;धर्म,अर्थ,काम इन तीनोंका उद्भवस्थान है वहभी कुशल से है अर्थात् धर्मादि त्रिवर्गभी यथारीतिसे निर्वाह होतेहैं ॥११॥ और मैं जो आपका ध्यान करती हूं,उसके प्रभावसे अग्नि, अतिथि, भिक्षुक प्रभृति जो कोईभीहै, वह सबही बलि (भोजन) की वासना करतेहैं और अघाये हुयेहैं ॥ १२ ॥ आप हमारे प्रजाध्यक्षहैं और ऐसाही धर्मोपदेश करतेहैं; फिर भला हमारे मनकी कामना पूर्ण क्यों नहीं होगी? ॥१३॥ हे प्रजेश! सब प्रजा आपकेही मन और शरीरसे उत्पन्न हो सत्त्व,रज अथवा तमोगुणका

अदितिरुवाच ॥ भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ॥ त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥ ११ ॥ अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ॥ सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥१२॥ को नु मे भगवन्कामो न संपद्येत मानसः ॥ यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥ १३ ॥ तवैव मारीच मनश्शरीरजाः प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ॥ समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥ १४ ॥ तस्मादीश भजंत्या मे श्रेयश्चिंतय सुव्रत ॥ हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥ १५ ॥ परैर्विवासिता साऽहं मग्ना व्यसनसागरे ॥ ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥ १६ ॥ यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ॥ तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ॥ अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥ १८ ॥

अवलम्बन करती हैं. सुरादि सब प्रजाओंमें यद्यपि समान भावहै तो भी महेश्वरगण भक्त पुरुषके प्रति विशेष अनुग्रह करते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये मैं भक्ति करके आपको भजतीहूँ,सो आप मेरी भलाईका विचारकरें. हे प्रभो! मेरी सौतके पुत्र दैत्य लोगोंने हमारे पुत्रकी लक्ष्मीको हरण किया और स्थानभी छीन लिया सो आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा करें और दितिके पुत्रोंने हमको निकाल दियाहै, इसीकारण मैं दुःखके समुद्रमें डूब रही हूं। हे ब्रह्मन्! दानवोंने प्रबल होकर हमारे पुत्रोका ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और स्थान जो जो वस्तु थीं वह सब हरण करलीहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ सो हे कल्याणकारिन्! हमारे पुत्र उन सबको जिस प्रकार फिर प्राप्त हों, वैसाही कल्याण आप अपनी बुद्धिसे विचारें ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,

हे राजन् ! जब अदितिने इस प्रकारसे कश्यपजीकी प्रार्थना की, तब महर्षि कश्यपजी विस्मित होकर बोले कि, अहो ! भगवान् विष्णुकी माया
कैसी बलवान है ! कैसा आश्चर्य है, यह जगत् स्नेहकी फाँसीमें बँध रहा है॥ १८॥ हे भद्रे ! कहाँ तो पंचभूतका बना हुआ देह और कहां प्रकृतिसे
परवर्ती आत्मा कौन किसका पतिहै और कौन किसका पुत्र है ? केवल मोहही इन सबका कारण है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! महर्षि कश्यपजीने
जब इस प्रकारसे तत्त्वज्ञानका उपदेशकर देखा कि, इससे अदितिको संतोष न हुआ तब फिर बोले कि, हे भद्रे ! सब प्राणियोंके अन्तर्यामी, जगत्के
गुरु, आदिपुरुष, वासुदेव भगवान् की तुम पूजा करो ॥ २० ॥ वह दीनदयालु दीनपर दया करनेवाले अवश्यही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे.
हम भली भाँति जानते हैं कि, भगवत्सेवाही अमोघ है; इसके सिवाय और कुछ अमोघ नहीं है॥ २१ ॥ यह सुन अदिति प्रसन्नमन हो कहने लगी

क देहो भौतिकोऽनात्मा क चात्मा प्रकृतेः परः ॥ कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥ १९ ॥ उपतिष्ठस्व पुरुषं
भगवंतं जनार्दनम् ॥ सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥ २० ॥ स विधास्यति ते कामान् हरिर्दीनानुकंपनः ॥ अमो
घा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥ २१ ॥ अदितिरुवाच ॥ केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ॥ यथा मे सत्य
संकल्पो विदध्याच्च मनोरथम् ॥२२॥ आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ॥ आशु तुष्यति मे देवः सीदंत्याः सह
पुत्रकैः ॥ २३ ॥ कश्यप उवाच ॥ एतन्मे भगवान् पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः ॥ यथाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोष
णम् ॥ २४ ॥ फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ अर्चयेदरविंदाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥ २५ ॥ सिनीवाल्यां
मृदाऽऽलिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ॥ यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मंत्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥

कि, हे ब्रह्मन् ! मैं किसविधानसे जगद्गुरु भगवान्की उपासना करूं, जिस प्रकारसे वह सत्यसंकल्प हमारा मनोरथ पूर्ण करै ॥ २२ ॥ और पुत्रों
सहित दुःखी हुई मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न होजावें, सो आप मुझको वैसेही पूजा करनेकी विधि बतला दीजिये ॥ २३ ॥ यह सुनकर कश्यपजीने
कहा कि, हे भद्रे ! हमने पहले पुत्रकी इच्छाकरके पद्मयोनि ब्रह्माजीसे यह बात पूँछी थी, तो उन्होंने मुझको केशवतोषणनामक जिस व्रतका उप
देश किया था वही व्रत हम तुमसे कहते हैं सो तुम सचेतहो मन लगाय सुनो ॥ २४ ॥ फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें बारह दिनका पयोव्रत करै, तिस
व्रतमें भक्तियुक्त होकर कमललोचन भगवान्की पूजा करै ॥ २५ ॥ हे सति ! जो मिलसके तो सूकरकी खोदी मट्टी शरीरमें लगायकर नदीके

जलमें स्नान करै और स्नान करनेके समय इस मंत्रको पढ़ै ॥ २६ ॥ हे देवि ! स्थानकी इच्छा करके आदिवराहजीने तुमको रसातलसे उद्धार कियाथा, सो हे पृथ्वी ! तुमको नमस्कार है । तुम हमारा पाप दूर करो॥२७॥तिसके पीछे नित्य नैमित्तिक नियमोंका पालनकर सावधान चित्तसे मूर्तिमें, पृथ्वीमें, सूर्यमें, जलमें अथवा अग्निमें वा गुरुमें, जहाँ इच्छा हो वहां भगवानकी पूजा करै॥२८॥पूजाके समय नव मंत्रोंको पढ़कर भगवान्का आवाहनादि करना होता है, वे नव मंत्र यहहैं—हे भगवन् वासुदेव ! आप बड़ेसे बड़े पुरुषहैं. सर्व प्राणियोंके निवासस्थान हैं, सबके साक्षी हैं सो आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ आप चौबीस तत्त्वोंके जाननेवाले हैं सांख्ययोगका विस्तार करनेवाले हैं सो ऐसे अव्यक्त सूक्ष्म प्रधान पुरुषको

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ॥ उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७ ॥ निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः ॥ अर्चायां स्थंडिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ॥ सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९ ॥ नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ॥ चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥ ३० ॥ नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःश्रृंगाय तंतवे ॥ सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ३१ ॥ नमः शिवाय रुद्राय:नमः शक्तिधराय च ॥ सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥ नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ॥ योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ ३३ ॥ नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ॥ नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥ ३४ ॥ नमो मरकतश्यामवपुषेधिगतश्रिये ॥ केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥

नमस्कार है ॥ ३० ॥ वह विष्णुभगवान् यज्ञके फलका विस्तार करनेवाले हैं और यज्ञरूपी हैं उनके दो शिर (प्रायणीय और उदयनीय) हैं तीन चरण (सवनत्रय) हैं चार शृंग (चारों वेद) हैं, सात हस्त (सात छंद) हैं त्रयी विद्या आत्मा है उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥ शिव और रुद्ररूपी उन भगवान्को नमस्कार है, वह शक्तिधर हैं, सर्वविद्याओंके पति हैं. और प्राणियोंके अधिपति हैं उनको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ उन हिरण्यगर्भको नमस्कार है, वह जगतके आत्मा योगेश्वर हैं जिनका शरीरही योगके कारण है उनको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! आप आदिदेव हैं, सबके साक्षीरूप हैं, तथा नारायण नर और हरि हैं सो आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! आप केशव हैं, आपका शरीर

मरकत मणिके समान श्यामवर्णहै, आप पीताम्बर धारण किये हुये हैं आप श्रीको प्राप्त हुए हैं सो आपको नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ हे वरेण्य ! हे वरदश्रेष्ठ !! आप पुरुषोंको सब वर देते हैं, इस कारण वीरलोग कल्याणके लिये आपकी चरण रजको पूजते हैं ॥ ३६ ॥ अहो ! देवता लोग और लक्ष्मीजी जिनके चरणकमलके सौरभकी चाहना करते हैं, वह भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्नहों ॥ ३७ ॥ इन मंत्रोंसे आवाहन कर सन्मान करै, इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान्को श्रद्धायुक्त हो पाद्य व आचमनादिकसे गंध मालादिकसे पूजकर स्नान करावे और "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस बारह अक्षरके मंत्रसे विद्याद्वारा पूजन करै ॥ ३८ ॥ गंध, पुष्प आदिसे पूजनकर भगवान्को दूधसे स्नान करावे फिर वस्त्र, यज्ञोपवीत,

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ॥ अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥ अन्ववर्तत यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ॥ स्पृहयंत इवामोदं भगवन् मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥ एतैर्मंत्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ॥ अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३८ ॥ अर्चित्वा गंधमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ॥ वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ॥ गंधधूपादिभिश्चार्चेद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥ शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ॥ ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥ निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुंजीत वा स्वयम् ॥ दत्त्वाचमनमर्चित्वा तांबूलं च निवेदयेत् ॥ ४१ ॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दंडवन्मुदा ॥ ४२ ॥

आभूषण, पाद्य, आचमन, गंध, धूप, नैवेद्यादि उपचारोंसे द्वादशाक्षर मंत्रको पढ पढ़कर हितचित्तसे पूजन करै ॥ ३९ ॥ हे सति ! जो आपसे बसाय तो दूधमें खीर बनाय उसका श्रीनारायणके भोग लगावै फिर घृत और गुड़के सहित उस खीरको निवेदन करके मूल विद्या अर्थात् बारह अक्षरके मंत्रसे होम करै ॥४०॥ फिर निवेदन किये हुएको भगवद्भक्तोंको भोजन करावै अथवा स्वयं भोजन करले । हे भद्रे ! पूजा करनेके पीछे आचमन कराय फिर ताम्बूल निवेदन करै ॥ ४१ ॥ फिर एकशत आठ (१०८) वार द्वादशाक्षर मंत्र जप करके पहले कहे व और दूसरे मंत्रोंसे भगवान्की स्तुति करै. उसके पीछे परिक्रमा करके भूमिपर गिर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करै और निर्माल्य ग्रहण करके फिर

देवताको विसर्जन करै ॥ ४२ ॥ फिर खीरसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै कि, जिनकी गिनती दोसे कम न हो ॥ ४३ ॥ फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञाले बंधु बांधवों सहित अपने आपभी भोजन करै, फिर रात्रिमें ब्रह्मचारी रहकर प्रभातको प्रथमदिन ॥ ४४ ॥ प्रातःकाल स्नान कर पवित्र होजाय; फिर गायके दूधसे भगवान्‌को स्नान करावे और पूजा करे, जबतक व्रत समाप्त न हो तबतक ऐसेही करना चाहिये ॥ ४५ ॥ हे देवि ! केवल दूधही पान करके विष्णु भगवान्‌का पूजन करनेसे आदर पाता हुआ इस प्रकारसे व्रत करै और पहलेहीकी समान अग्निमें होम करै और ब्राह्मण भोजन करावै ॥ ४६ ॥ इसप्रकार बारह दिनका पयोव्रत करै अर्थात् पड़वा तिथिसे शुक्ला त्रयोदशीतक होम,पूजन और ब्राह्मण भोजनादिसे भगवान्

कृत्वा शिरसि तच्छेषं देवमुद्वासयेत्ततः ॥ द्व्यवरान्भोजयेद्विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥ ४३ ॥ भुंजीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ॥ ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥ ४४ ॥ स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ॥ पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५ ॥ पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः ॥ पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६ ॥ एवं त्वहरहः कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ॥ ब्रह्मचर्यमधः स्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८ ॥ वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ॥ अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥ त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पंचकैर्विभोः ॥ कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥ ५० ॥ पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ५१ ॥

वासुदेवकी आराधना करै ॥ ४७ ॥ इन बारह दिन तक ब्रह्मचर्यका पालन करना, पृथ्वीमें शयन करना और तीनों संध्याओंमें स्नान करना आवश्यक है॥ ४८ ॥ असाधु लोगोंसे संभाषण न करै, सर्व प्राणियोंमें हिंसा हिर्ष न करै, सबको वासुदेवपरायण देखे, त्रयोदशीके दिनपंचामृतसे विष्णु भगवान्‌को विधिके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी बताई विधिसे शास्त्रानुसार स्नान करावै॥४९॥ इसके अनन्तर त्रयोदशीमें विधिके जाननेवाले विद्वानोंसे शास्त्रदृष्ट विधि करके विष्णुभगवान्‌का पंचामृतसे स्नान करावै ॥ ५० ॥ और धनादिकी कांक्षा छोड़कर बडीभारी पूजा करै, फिर दूधसे चरु तैयार

कर भगवान् विष्णुको निवेदन करै ॥५१॥ और अच्छी प्रकार पवित्र व सावधानहो पिछले कहे हुए मंत्रोंसे पूजा करे, जिससे परमपुरुष प्रसन्न होजायँ वैसी गुणयुक्त नैवेद्यका भोग लगावे ॥ ५२ ॥ फिर वस्त्र,भूषण और गोदान करके ज्ञान संपन्न आचार्य और पुरोहित लोगोंको संतुष्ट करे । हे सति ! इन सबके प्रसन्न करनेसे भगवान्की आराधना अपने आप होजाती है ॥ ५३ ॥ इन सब पुरुषोंको व और जो ब्राह्मण वहाँपर उस समय आजाँय, उन सबको अपनी सामर्थ्यके अनुसार उत्तम भोजन भक्षण करावे,फिर ऋत्विक् और गुरुको यथायोग्य देकर और जो पुरुष आगये हों उनको अन्ना दि देकर तृप्त करै ॥५४॥५५॥ दीन, अंधे,कृपण;इन लोगोंको भोजन करानेसे भगवान् हरिका प्रसन्न होना जानकर इनको भोजन करावै और फिर

शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ॥ नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥ ५२ ॥ आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्रा भरणधेनुभिः ॥ तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥ भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ॥ अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ॥ ५४ ॥ दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ अन्नाद्येनाऽऽश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥ ५५ ॥ भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनांधकृपणेषु च ॥ विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुंजीत सह बंधुभिः ॥५६ ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ॥ कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥ ५७ ॥ एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ॥ पितामहेनाभिहितं मया ते समुपाहृतम् ॥ ५८ ॥ त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ॥ आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥ ५९ ॥ अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ॥ तपस्सारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६० ॥

आप जाति भाइयों सहित भोजन करै ॥ ५६ ॥ हे भद्रे ! व्रतके समय प्रतिदिन गाना, बजाना, नाचना, स्तुतिपठन, स्वस्तिवाचन और भगवत् कथा इत्यादिसे भगवान्की पूजा करै ॥ ५७ ॥ हे महाभाग ! इसका नाम पयोव्रत है,इससेही परमपुरुषका आराधन होताहै, पितामह ब्रह्माजीने हमको यह व्रत बताया था, सो हमने प्रीतिके वशहो तुम्हारे आगे वर्णन किया ॥ ५८ ॥ श्रीकश्यपजी बोले कि, हे महाभागे ! तुम इस व्रतको भली भाँति करके इससे जितेन्द्रिय होकर भजनेके योग्य अव्यय भगवान्की आराधना करो ॥ ५९ ॥ इस व्रतका नाम सर्वज्ञ, यही सर्वव्रत,

यहां तपका सार है, यही बडाभारी दान और यही ईश्वरका तर्प्पण है ॥ ६० ॥ हे भद्रे ! जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं, वही नियम, वही उत्तम संयम, वही तप, वही दान, वही व्रत और वही यज्ञ है ॥ ६१ ॥ इसलिये तुम नियमसहित और श्रद्धापूर्वक इस व्रतको करो इससे भगवान् शीघ्रही प्रसन्न होकर तुमको मनोवांछित वरदान देंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां पयोव्रतवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ दोहा—व्रत करनेसे अदिति पर, ह्वै प्रसन्न भगवान ॥ सो सत्रह अध्यायमें, धारो तन सुखदान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे परीक्षित ! अपने स्वामी महर्षि कश्यपजीके इस प्रकार कहनेपर अदितिने श्रद्धापूर्वक आलस्य त्याग इस बारह दिनके व्रतको आरम्भ किया

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ॥ तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥ ६१ ॥ तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ॥ भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टमस्कन्धेऽदित्यै पयोव्रतोपदेशो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता साऽदिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ॥ अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतंद्रिता ॥ १ ॥ चिंतयंत्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् ॥ प्रगृह्येंद्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥ मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥ तस्मात्प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ॥ पीतवासाश्चतुर्बाहुः शंखचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ॥ ननाम भुवि कायेन दंडवत्प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥ सोत्थाय बद्धांजलिरीडितुं स्थिता नोत्सेह आनंदजलाकुलेक्षणा ॥ बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृतिस्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

॥१॥ वह अपनी बुद्धिको सारथि बनाय इन्द्रियरूप दुष्ट घोडोंको वशमें कर एकाग्रचित्तसे परमपुरुष ईश्वर चिन्तामें मग्न हुई ॥ २ ॥ और एकाग्र बुद्धिसे अखिलात्मा वासुदेव भगवान्में मन लगाय बराबर पयोव्रतको करनेलगी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! व्रतके करनेसे भगवान् आदिपुरुष शीघ्रही पीताम्बर धारण किये हुये हाथमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये अदितिके सामने आनकर प्रगट हुये ॥ ४ ॥ उनको निहारतेही अदिति आदरपूर्वक शीघ्रतासे उठी और प्रीतिसे विह्वल हो पृथ्वीमें गिरकर दण्डकीसी नाईं प्रणाम करती हुई ॥ ५ ॥ हे राजन् ! फिर प्रीतिसे विह्वल होनेके कारण अदिति हाथ जोड़ हुये उठी और केवल स्तुति करनेहीको असमर्थ न हुई बरन् उनके मुखसे बाततक न निकली,

उनके दोनों नेत्रोंमें आनन्दके आंसू भरआये, शरीर पुलकायमान होगया और उत्सवरूपी भगवान्का दर्शन पाय सब शरीर कम्पायमान होने लगा ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उन यज्ञपति, जगत्पति, रमापतिको देखकर कश्यपजीकी स्त्री अदिति नेत्रोंसे मानो पान करती बहुत देरके पीछे प्रीतिके भरे गद्गद वचनोंसे श्रीभगवान्की स्तुति करने लगी ॥ ७ ॥ अदितिने कहा कि, हे यज्ञेश ! हे यज्ञ पुरुष ! हे अद्भुत ! हे तीर्थपाद ! हे तीर्थ कीर्ति ! आपका नाम श्रवण होतेही मंगलकारी है. आपका उदय शरणमें आये भक्तलोगोंके पापोंका नाश करनेवाला है. हे आद्य ! हे भगवन् ! आप हमारा कल्याण करनेमें मन लगावें । हे प्रभो आप दीनानाथ हैं ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! यद्यपि आप विश्वस्वरूप हैं और विश्वके सृष्टि

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ॥ उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्प
तिम् ॥ ७ ॥ अदितिरुवाच ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेय ॥ आपन्नलोकवृजिनो
पशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥८॥ विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय
भूम्ने ॥ स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥ आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्यो
भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ॥ ज्ञानं च केवलमनंत भवंति तुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥ १० ॥
श्रीशुक उवाच ॥ अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः ॥ क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥ ११ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकांक्षितम् ॥ यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥ १२ ॥

स्थिति और प्रलयके कारण हैं, इच्छानुसार मायाके गुणको ग्रहण करते हैं, तथापि आप स्वस्थ हैं, अर्थात् आपका स्वरूप अप्रच्युत है, नित्य बढता हुआ जो पूर्णबोध है तिससे आपने परमात्मामें मायारूप तम नित्य निरस्त कियाहै, सो मैं आपको नमस्कार करती हूं ॥ ९ ॥ तुम्हारे प्रसन्न होनेसे मनुष्योंको ब्रह्माकीसी आयु, सुन्दर रूप, अतुल लक्ष्मी, स्वर्ग, पृथ्वी, सर्वयोगके गुण, धर्म, अर्थ, काम, ज्ञान, यह सब प्राप्त होजाते हैं. फिर वैरियोंपर विजय पानेका आशीर्वाद जो आपसे मिलेगा, इसमें कुछ बडी बात थोडीही है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हेराजन् ! जब अदितिने इस प्रकारसे स्तुति की तब सब प्राणियोंके अंतर्यामी कमललोचन भगवान् उनसे यह वचन कहने लगे ॥ ११ ॥ श्रीभगवान् बोले कि,

हे देवजननि ! तुम्हारी सौतके पुत्रोंने जो तुम्हारे पुत्रोंकी सम्पत्ति हरण करली है और स्थानभी छीन लिया है, उन अपने पुत्रोंके लिये अनेक दिनसे तुम जो चिन्ता करती हो, वह हम जानते हैं ॥१२ ॥ तुम्हारी वासना यह है कि दुर्मद दानव लोगोंको समरमें पराजित कर तुम्हारे पुत्रगण विजयको प्राप्त होवें और तुम उनके सहित एक जगह रहो ॥ १३ ॥ और इन्द्रादि तुम्हारे पुत्रगण विद्वेषियोंको जब संग्राममें मारडालें तब उन शत्रुओंकी स्त्रियें जो दुःखसे रोदन करैं उन्हें तुम देखो ॥ १४ ॥ और तुम्हारा अभिलाष यहभी है कि, तुम्हारे पुत्रगण अपनी जय लक्ष्मीको पाकर भली भाँति वृद्धिको प्राप्त होवें और पहलेकी समान स्वर्गमें विहार करैं कि, जिनको देखकर तुम प्रसन्न हो ओ ॥ १५ ॥ परन्तु हे देवि ! हमको जान पडता है कि, असुर यूथप लोगोंके ऊपर सहसा आक्रमण नहीं किया जासकेगा, क्योंकि सामर्थ्यवान् ब्राह्मणलोग

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ॥ प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥ इंद्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ॥ स्त्रियो रुदंतीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥ १४ ॥ आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशश्श्रियः ॥ नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥ प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः ॥ यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥ १६ ॥ अथाप्युपायो मम देवि चिंत्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते ॥ ममार्चनं नार्हति गंतुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥ १७ ॥ त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ॥ स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्गोप्ताऽस्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥ उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ॥ मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥

अनुकूल होकर उनकी रक्षा करते हैं, फिर जहाँपर ऐसी बात है वहाँपर विक्रम प्रकाश करनेसे सुख नहीं मिलेगा ॥ १६ ॥ किन्तु देवि ! तुमने पयोव्रत करके हमको बहुत संतोपित किया है, सो अब हम अवश्य इस विषयका उपाय करेंगे हमारी पूजा करनेसे निश्चय इच्छानुसार फल मिलता है, हमारी पूजाका विफल होना उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हे देवि ! तुमने सन्तानकी रक्षा करनेके लिये जो पूजा की और पयोव्रत करके हमारी स्तुति की इससे हम परम प्रसन्न हुये हैं मैं स्वयं अपने अंशसे तुम्हारा पुत्र होकर कश्यपजीके तपमें स्थित हो तुम्हारे पुत्रोंका पालन करूंगा ॥ १८ ॥ इसलिये तुम इस समय अपने पापरहित पति प्रजापति कश्यपजीके समीप जा उनकी सेवा करो और हमकोभी इसी

प्रकारसे अपने पतिमें अवस्थित हुआ चिन्ता करना ॥ १९ ॥ हे देवि ! यह बात किसी औरके निकट किसी प्रकारसेभी प्रकाश मत करना, क्योंकि देवता लोगोंका रहस्य भली भाँति छिपाये रहनेहीसे सिद्ध होता है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अदितिसे यह सब वचन कहकर भगवान् वासुदेव उसी स्थानमें अंतर्धान होगये, उसके पीछे अदिति अपने गर्भमें दुर्लभ भगवान्का वास होना सुन, मनमें कृतार्थ होगई और परमभक्तिके साथ पतिके निकट गई ॥ २१ ॥ महर्षि कश्यपजीकी अव्यर्थ दृष्टि थी, उन्होंनेभी योगकी समाधिमें देख लिया कि भगवान्

नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयाऽपि कथंचन ॥ सर्वं संपद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ॥ अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥ २१॥ उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुद्ध्यत ॥ २२ ॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥ सोदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ॥ समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथानिलः ॥ २३ ॥ अदितेर्धिष्ठितं गर्भे भगवंतं सनातनम् ॥ हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥ २४ ॥

हरिका अंश हममें प्रविष्ट है ॥ २२ ॥ सावधान मनवाले वह मुनि यद्यपि सब पुत्रोंको समान देखते थे, तोभी जैसे सब कहीं रहनेवाला वायु काष्ठकी रगडसे वनकी जलानेवाली अग्निको उत्पन्न करता है वैसेही अदितिजीके गर्भमें दैत्योंको क्षय करनेवाला, बहुत कालसे संचय किया हुआ वीर्य धारण किया ❋ ॥ २३ ॥ हे राजन् ! भगवान् सनातन विष्णुको अदितिके गर्भमें विराजमान हुआ जानतेही हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी गुह्यनामसे

❋ शंका–भगवान्के जन्म होनेके लिये कश्यपजीने अदितिके शरीरमें वीर्य्य स्थापन किया, यह बडी भारी शंका है कि विना वीर्य्य स्थापन किये क्या भगवान्का जन्म नहीं होगा ? क्योंकि वीर्य्यका जन्म तो चौरासी लक्ष योनिका होता है ? और भगवान् तो सर्वव्यापी हैं, उनके जन्म होनेके लिये वीर्य्य स्थापनका क्या काम था ?

उत्तर–भगवान् अनेक प्रकारका दुःख सहकर अपनी बनाई मर्यादाकी रक्षा करते हैं यह बात शास्त्रमें और लोकमें सबको प्रगट है, कि विना वीर्य्य संसारकी उत्पत्ति किसी प्रकार नहीं होसक्ती. इसलिये वीर्य्यकी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये वीर्य्यसे आप प्रगट होते हैं, जो वीर्यकी मर्यादा तथा अपनी बनाई लोककी मर्यादा तथा अपनी बनाई और भी मर्यादा न रक्खें तो परमेश्वर सब वस्तुमें विराजमान हैं फिर जन्म लेनेकी अवश्यकता थी परमेश्वरको सब बातका अधिकार है वैकुण्ठमें बैठे बैठे जो चाहें सो करें इसलिये कश्यपजीने अदितिमें वीर्य्य स्थापन किया.

उनकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि, हे उरुगाय भगवन् ! आपकी जय हो ! हे उरुक्रम ! आपको नमस्कार है । प्रभो ! आप ब्रह्मण्यदेव हैं आपको नमस्कार है । हे त्रियुग ! आपको वारम्वार नमस्कार है नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! पूर्व जन्ममें इन अदितिका नाम पृश्नि था, आप उनके गर्भमेंभी अर्भक होकर जन्मे थे, सो आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आप विधाता हैं, सब देवताओंमें प्रकाशमान हैं, सो आपको नमस्कार है । हे भगवन् ! स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, यह तीनों लोक आपकी नाभिमें वर्तमान हैं और आप त्रिलोकीके ऊपर स्थित हैं, सब जीवोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविशे हुए हैं. सो हे सर्वव्यापिन् ! मैं आपको नमस्कार करताहूं ॥ २६ ॥ हे ईश ! आप इस भुवनके आदि अन्त और

ब्रह्मोवाच ॥ जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥ २५ ॥ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ॥ त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ २६ ॥ त्वमादिरंतो भुवनस्य मध्यमनंतशक्तिं पुरुषं यमाहुः ॥ कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथांतः पतितं गभीरम् ॥ २७ ॥ त्वं वै प्रजानां स्थिरजंगमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः ॥ दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धेऽदितिगर्भे भगवदंशप्रवेशो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

मध्यहो, आपही अनन्तशक्ति पुरुष कहे जाते हैं, जैसे गंभीर प्रवाह जलमें गिरेहुए तृणादिको आकर्षण करता है, वैसेही कालरूपी जो आप हैं सो प्रलयकालमें इस विश्वको आकर्षण किया करते हैं ॥२७॥ हे भगवन् ! आप स्थावर जंगम सब प्रजा और प्रजापति लोगोके उत्पन्न करनेवाले हैं आपके जन्मादि नहीं हैं. हे देव ! जलमें डूबते हुए मनुष्यके लिये जैसे नाव प्राण बचानेका अवलम्बन है, वैसेही आप स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंके परमआश्रय हैं,इसलिये निःसन्देह आपका यह अवतार देवतालोगोंका कार्य साधन करनेके कारण हुआ है । सो आप बहुत शीघ्र स्वर्गसे निकालेहुए देवतालोगोंको फिर स्वर्गमें स्थापित कीजिये ॥२८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां भगवदंशप्रवेशो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

दोहा–अष्टादश अध्यायमें, बलिके यज्ञ मँझार ॥ श्रीवामनजी जिमि गये, सो सम्वाद उदार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब ब्रह्माजीने इसप्रकार भगवान्‌के कार्य और वीर्यकी स्तुति की तब जन्ममृत्युहीन वह भगवान् अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए, उनके नेत्र कमलदलके समान बड़े बड़े थे, चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, आयुध देदीप्यमान हो रहे थे और कमरमें पीताम्बर पडा हुआ था ॥ १ ॥ उनका शरीर श्याम और गौरवर्ण था, मकराकार कुण्डलोंकी श्री उनके वदनारविन्दको प्रकाशमान कर रही थी वक्षस्थलमें श्रीवत्स विराजमान था और वलय व अंगद (बाजू) सहित उनका किरीट और काञ्ची व मनोहर नूपुर यथास्थानमें शोभायमान होरहे थे ॥ २ ॥ और अत्यन्त सुन्दर वनमाला जो कि बहुतसे भ्रमरगणोंकी गुंजारसे शब्दायमान होरही थी, श्रीनारायण इससे विराजमान हो अपने शरीरकी कांतिसे प्रजापतिजी (कश्यपजी) के गृहके अंधकारको दूर कररहे थे;

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं विरिंचस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥ चतुर्भुजः शंखगदाब्जचक्रः पिशंगवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥ श्यामावदातो झषराजकुंडलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनांबुजः पुमान् ॥ श्रीवत्सवक्षा वलयांगदोल्लसत्किरीटकांचीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥ मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितश्रीवनमालया हरिः ॥ प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन्कंठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥ दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ॥ द्यौरंतरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ॥ सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥

और उनकी गर्दनमें प्रसिद्ध कौस्तुभमणि पड़ी हुई थी ॥ ३ ॥ जैसेही श्रीभगवान् इस प्रकारसे उत्पन्न हुये कि, वैसेही सब दिशायें और जलाशयोंने निर्मल रूप धारण किया, प्रजा हर्षित हुई और समस्त ऋतु अपने अपने गुणसे (फल पुष्पादिसे) शोभायमान हुईं। स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी और सब पर्वतोंपर मनोहर शोभा हुई। देव, द्विज, गायें, इन सबहीके मनमें परमहर्ष हुआ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भगवान् किस समयमें उत्पन्न हुये सो तुम सुनो। भादोंमहीनेकी शुक्ला द्वादशी जो कि श्रवणद्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है, उसी तिथिको श्रवण नक्षत्रमें प्रथमांशके मध्य अभिजित् मुहूर्त्तमें श्रीभगवान्‌ने जन्म लिया, उस कालमें अश्विनी आदि सब नक्षत्र और गुरु शुक्रादिक सब ग्रहोंने अनुकूल रहकर उनका जन्म उदार

किया था, अर्थात् उनके जन्मनक्षत्रमें ग्रह नक्षत्रादि सबही शुभ पड़े थे ॥ ५ ॥ हे महाराज ! जिस द्वादशीमें भगवान् वामनजीने जन्म लिया सो प्राचीन कविलोग कहते हैं कि, उस द्वादशीके दिवाभागमेंही श्रीनारायणका जन्म हुआ था, उस समय सूर्यभगवान् मध्याह्नमें स्थित थे, अर्थात् भली भाँति दुपहर होगया था, इस द्वादशीका नाम विजया है ॥ ६ ॥ जिस समय श्रीभगवान्‌ने जन्म लिया, उस समय शंख, नगाड़े, भेरी, ढोल आनक, तुरही व और अनेक बाजोंका बड़ा भारी शब्द होनेलगा ॥ ७ ॥ अप्सरायें प्रसन्न होकर नाचने लगीं और गन्धर्वलोग गाना आरंभ करने लगे, मुनि लोगोंने स्तुति करनी आरंभ की, फिर देववृन्द, मुनिवर्ग, पितृगण, सब अग्नियें ॥ ८ ॥ सिद्ध, विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, देवतालोगोंके सेवक व आदित्यगण नाच नाच कर गुण गानेलगे ॥ ९ ॥ और प्रशंसा कर कर फूल वर्षाय वर्षाय कश्यपजीके आश्रमको छाय

द्वादश्यां सविता तिष्ठन्मध्यंदिनगतो नृप ॥ विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥ शंखदुंदुभयो नेदुर्मृदंगपणवानकाः ॥ चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गंधर्वप्रवरा जगुः ॥ तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥ सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥ गायंतोऽतिप्रशंसंतो नृत्यंतो विबुधानुगाः ॥ अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ॥ गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥ यत्तद्वपुर्भाति विभूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः ॥ बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥ तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ॥ कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥

लिया ॥ १० ॥ हे राजन् ! अपने गर्भसे उन परमपुरुषको उत्पन्न हुआ देखकर अदितिको विस्मय और हर्ष एक साथ हुआ । प्रजापति कश्यपजी योगमायासे अवतार लिये हुये उन श्रीभगवान् हरिको देखकर विस्मययुक्त हो यही वचन बोले कि, हे भगवन् ! तुम्हारी जय हो ॥ ११ ॥ हे राजन् ! भगवान् हरिने जो यह अवतार मनुष्यका धारण किया कि; जिससे चित्त अव्यक्त था. अपनी द्युति, भूषण व आयुध सहित उस शरीरमें नटकी नाईं दर्शनकारी माता पिताके सामनेही वामन बटुकरूप होगये, उनकी गति दिव्य थी, ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं है ॥ १२ ॥ इन वामनजीका दर्शन करके महर्षि लोग आनंदप्रकाश करते करते कश्यपजीके स्थानपर गये ॥ और उनको आगेकर नारायणका जातकर्म संस्कार

कराने लगे ॥ १३ ॥ तिसके उपरान्त जब इन वामनजीका यज्ञोपवीत हुआ, तब सूर्यनारायणने स्वयं इनको गायत्री सिखाई, बृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र (जनेऊ) दिया और कश्यपजीने मेखला पहराई ॥ १४ ॥ भूमिने मृगचर्म दिया, सब वनोंके पति चन्द्रमाने दण्ड दिया, माताने कौपीन दी और उन जगत्पतिको स्वर्गने छत्र दान किया ॥ १५ ॥ अधिक करके वेदगर्भ ब्रह्माजीने कमण्डलु, सप्तर्षियोंने कुशा और सरस्वतीने अक्षमाला लेकर उन अविनाशीको उपहार दी ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जब वामनजीका जनेऊ होगया, तब वेदोंने उनको भिक्षापात्र दिया और साक्षात् सती अम्बिकाजीने उनको भिक्षा दी ॥ १७ ॥ यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचारी वामनजी इस प्रकार आदर सत्कार पा अपने तेजसे ब्रह्मर्षियोंकी सभाकोभी अतिक्रमण

तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥ ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दंडं सोमो वनस्पतिः ॥ कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥ कमंडलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ॥ अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥ तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ॥ भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादंबिका सती ॥१७॥ स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो बटुः ॥ ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥ १८ ॥ समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ॥ परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्विजः ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ॥ जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन्पदेपदे ॥ २० ॥ तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ॥ प्रवर्तयंतो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥ २१ ॥

करके शोभायमान होने लगे ॥ १८ ॥ अग्निके परिसमूहके द्वारा कुशोंको बराबर कर समाधान करके होम करने लगे ॥ १९ ॥ तिसके उपरान्त वामनजीने सुना कि, भृगुवंशियोंके प्रवर्तन किये हुये अनेक अश्वमेध यज्ञोंसे राजा बलि यज्ञ कर रहा है, इसलिये अखिल बलसे पूर्ण हो अपने भारसे पग पगपर पृथ्वी मण्डलको कम्पायमान करते हुये वामनजीने राजा बलिके यज्ञस्थानमें गमन किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! नर्मदाके उत्तर किनारेपर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमें बलिके श्रेष्ठ ऋत्विजोंने जो इन यज्ञोंको करा रहे थे, उन्होंने अपने उदय हुये सूर्यनारायणकी समान इन

वामनजीको देखा ॥ २१ ॥ श्रीवामनजीके तेजसे सब ऋत्विक् सभासद्गण और यजमान असुरश्रेष्ठ राजाबलि यह सब तेज रहित होगये और यह कहकर परस्पर तर्क वितर्क करनेलगे कि, "क्या यज्ञ देखनेकी इच्छासे सूर्य भगवान् आरहे हैं ? वा अग्नि हैं वा सनकादि ऋषियोंका आगमन हुआ" ? ॥ २२ ॥ शिष्योंके सहित भृगुगण करके इसप्रकार विविध भाँतिसे वितर्कित हो भगवान् वामनजी दण्डवाला छत्र, जलसे भरा कमण्डलु लिये हुए राजा बलिके अश्वमेध मण्डपमें आये ॥ २३ ॥ मूंजकी मेखला पहिरे मृगके चर्मकी उत्तरीय जो जनेऊकी समान बाँये कन्धेपर पड़ी थी, ऐसे जटिल विप्र मायारूपी वामन उन हरिको ॥ २४ ॥ यज्ञशालमें प्रवेश करता हुआ देखतेही उनके तेजसे व्याकुल हो

ते ऋत्विजो यजमानः सदस्या हततिषो वामनतेजसा नृप ॥ सूर्यः किलाऽऽयात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥ इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः ॥ सदंडछत्रं सजलं कमंडलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥२३॥ मौंज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ॥ जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥ २४ ॥ प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ॥ प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥ यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ॥ रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥ २६ ॥ स्वागतेनाभिनंद्याथ पादौ भगवतो बलिः ॥ अवनिज्यार्चयामास मुक्तसंगं मनोरमम् ॥ २७ ॥ तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविद् मूर्ध्न्यदधात्सुमंगलम् ॥ यद्देवदेवो गिरिशश्चंद्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २८ ॥

शिष्योंके सहित भृगुलोग उठ खड़ेहुए और उनका आदर सन्मान करने लगे ॥ २५ ॥ दर्शन करने योग्य मनोहर रूपवाले अनुकूल अंगयुक्त श्रीवामनजी महाराजको देख कर प्रसन्न हो राजा बलिने अपने हाथसे आसन दिया ॥२६॥ और कहा कि "भले आये महाराज विराजिये" यह कह कोमल अमल चरणकमलको पखार उन सुकुमार मनोहर हरिकी पूजा करनेलगा ॥ २७ ॥ हे राजन् ! भगवान्के मंगलकारी चरणोदकको जो कि, कलिमल नाश करनेवाला है, राजा बलिने अपने मस्तकपर चढाया. हे महाराज ! आप इस बातको कुछ विचित्र न समझें; क्योंकि चन्द्रमौलि देवदेव गिरीश भूतेश्वर महादेवजीनेभी परमभक्तिसे इस चरणामृतको अपने मस्तकपर चढाया था ॥ २८ ॥

तव राजा बलि भक्तिके प्रकाशित होनेसे कुतूहलके मारे कहनेलगा कि; हे ब्रह्मन्! आप सुखसे तो आये? मैं आपको नमस्कार करताहूं, मैं आपका कौनसा कार्य करूं सो आज्ञा कीजिये । हे श्रेष्ठ! हमको जान पड़ता है कि, आप ब्रह्मर्षिलोगोंके मूर्तिमान् तप हैं. आज मैं कृतार्थ हुआ ॥ २९ ॥ आप जो मेरे स्थानपर आनकर सुशोभित हुए इस कारण आज हमारे पितृगण तृप्त हुए। आज मेरा कुल पवित्र हुआ। और आज मेरा यह यज्ञ भली भाँतिसे पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥ आज हमारा अग्नियोंमें भली भाँति होम करना सफल हुआ. हे ब्राह्मणकुमार! आपके चरणोदकसे हमारा सब पाप धुलगया और आपके छोटे छोटे चरणोंके पडनेसे यह भूमि पवित्र होगई ॥ ३१ ॥ हे विप्रनन्दन! हम अनुमान करते हैं कि, आप

बलिरुवाच ॥ स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ॥ ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्यवपुर्धरम् ॥ २९ ॥ अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ॥ अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ॥ ३० ॥ अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ॥ हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥ ३१ ॥ यद्यद्बटो वांछसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ॥ गां कांचनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्र कन्याम् ॥ ग्रामान्समृद्धान् तुरगान् गजान् वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टम० बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं स सूनृतम् ॥ निशम्य भगवान् प्रीतः प्रतिनंद्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥

कुछ माँगनेके लिये आये हैं, सो जो इच्छा हो आप मुझसे लीजिये। हे पूज्यतम! गौ, सुवर्ण, श्रेष्ठ गृह, मीठा अन्न, कन्या, ऋद्धि सिद्धिसे भरेहुए ग्राम, अश्व, हाथी वा रथ जिसकी आपको आवश्यकता हो सो मुझसे माँगो मैं प्रस्तुत हूं * ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां बलिवामनसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा—ऊनविंशमें तीन पग, धरणी माँगी ईश ॥ कियो शुक्रने मनै जिमि, कहों सुमिरि जगदीश ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! ऐसे धर्मयुक्त सुन्दर राजा बलिके वचन सुन श्रीभगवान् प्रसन्न होकर और सन्मान करके

* शका—सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें ब्राह्मण राजाओंसे दान माँगते थे तब राजालोग गुरुसे अनेकवार बूझकर सुपात्र कुपात्र विचारके दान देतेथे, जब ऐसे विचारके दान देते थे तब वामन भगवान्ने तो बलिसे दान माँगा नहीं बिना माँगे दान देनेको बलि क्यों उपस्थित हुआ?—

राजा बलिसे यह वचन कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नरदेव ! तुम्हारे यह वचन अत्यन्त सुन्दर धर्मयुक्त यशके देनेवाले और कुलके योग्य हैं, क्यों न हो भृगुगण और अपने दादा कुलके बढानेवाले प्रशान्त प्रह्लादजीको तुमने पारलौकिक धर्ममें प्रमाण पाया है ॥२॥ हे राजन् ! तुम्हारे इस कुलमें ऐसा निस्सत्त्व अथवा कृपण पुरुष कोई नहीं हुआ कि, जिसने प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंका कार्य न किया हो, अथवा कुछ देनेको कहकर न दिया हो ॥ ३ ॥ हे नृप ! दानके अवसरमें, वा युद्धके कालमें याचकके मांगनेपर न देनेवाला अमनस्वी पुरुष तुम्हारे कुलमें नहीं है इसका प्रमाण देखो आकाशमें जिस प्रकार नक्षत्रनाथ चन्द्रमा दीप्तिमान् होते हैं वैसेही तुम्हारे कुलमें निर्मल यशसे युक्त होकर प्रह्लादजी प्रकाशमान

श्रीभगवानुवाच ॥ वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ॥ यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशांतः ॥ २ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निस्सत्त्वः कृपणः पुमान् ॥ प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये ॥ ३ ॥ न संति तीर्थे युधि चार्थिनाऽर्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृप ॥ युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्राद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४ ॥ यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ॥ प्रतिवीरं दिग्विजये नाविंदत गदायुधः ॥ ५ ॥ यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ॥ नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ हंतुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥

हैं ॥ ४ ॥ और तुम्हारे इस विख्यात वंशसे महावीर हिरण्याक्षने जन्म ग्रहण किया जो कि गदा धारणकिये दिग्विजय करनेको अकेलेही समस्त पृथ्वीमें घूमें, परन्तु उन्हें कहींभी कोई युद्ध करनेवाला बली न मिला ॥ ५ ॥ श्रीभगवान् विष्णुने जब पृथ्वीका उद्धार किया था, उस समय यह महावीर हिरण्याक्ष वहाँ आया था अतिकठिनाईसे उस हिरण्याक्षको हराय व उसके पुरुषार्थको दमनकर भगवान्‌ने अपने आपको विजयी नहीं माना ॥६॥ और इस हिरण्याक्षके सगे भाई हिरण्यकशिपुने जब उसके (हिरण्याक्षके) वधका वृत्तान्त सुना, तब यह भ्राताके मारनेवालेका प्राणसंहार करनेको

—उत्तर—धर्मशास्त्रका यह मत है कि, गृहस्थ ब्राह्मण दान मांगे तब राजा दान दे, अथवा विरक्त ब्राह्मण दान न मांगे तोभी राजा दान दे ऐसा धर्मशास्त्रके मतको जानकर राजा बलि, वामन विरक्त थे कुछ माँगामी नहीं तोभी दान देनेको उपस्थित हुआ।

क्रोधकर भगवान् विष्णुके स्थानको गया ॥ ७ ॥ माया जाननेवालोंमें श्रेष्ठ व कालको पहँचाननेवाले इस दानवको शूल धारण किये कालके समान आता हुवा देखकर भगवान् विष्णुने यह चिन्ता की ॥ ८ ॥ कि, जहाँ जहाँपर हम जाते हैं, वहीं वहींपर प्राणियोंकी मृत्युके समान हम इस दानवको अपने साथही देखतेहैं, इसकी दृष्टिके बहिर्भागमें रहाहै, ऐसा जो इसका हृदयहै मैं उसमें प्रवेश करताहूं ॥ ९ ॥ हे राजन्! भगवान् वासुदेव इसप्रकारसे विचार करके दौडते हुये उस शत्रुकी नासिकाके छेदसे उसके हृदयमें घुसगये, तथापि उनका चित्त विशेष उद्विग्न और श्वासकी अग्निसे अन्तर्हित होरहाथा ॥ १० ॥ हे राजा बलि ! जब हिरण्यकशिपुने विष्णु भगवान्‌को न देखा, तब उनके सूने स्थानमें घूम घामकर सिंहनाद करने लगा और पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, विवर, समुद्र सबमें उसने खोज किया, परंतु विष्णु भगवान् तो उसके अंतरमेंही पैठगयेथे, इससे कहीं नहीं दीखपड़े॥ ११ ॥

तमायांतं समालोक्य शूलपाणिं कृतांतवत् ॥ चिंतयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥ यतोयतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ॥ अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥ एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेंद्र ॥ श्वासानिलांतर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरंध्रेण विविग्नचेताः ॥ १० ॥ स तन्निकेतं परिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद ॥ क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ॥ ११ ॥ अपश्यन्निति होवाच मयाऽन्विष्टमिदं जगत् ॥ भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥ १२ ॥ वैरानुबंध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥ १३ ॥ पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः ॥ स्वमायुर्द्विजलिंगेभ्यो देवेभ्योऽदात्स याचितः ॥ १४ ॥

विष्णुके दर्शन न पाकर हिरण्यकशिपुने यह कहा था कि, मैंने सब संसारको ढूँढा, परन्तु अपने भाईके मारनेवालेका कहीं पता न पाया, हमको जान पडता है कि हमारा भ्रातृघाती उस स्थानमें चला गया है कि, जहाँसे पुरुष फिर नहीं लौटता ॥१२॥ हे राजन्! देहाभिमानी पुरुषोंका मरनेतक वैरभाव और अहंकार अभिमानसे बढ़ा हुआ क्रोध इसी प्रकारसे हुआ करताहै, क्योंकि उनकी उत्पत्ति अज्ञानसे है बस अज्ञानसे निवृत्ति होनेके पहिले पौरुषका छोडना केवल मूर्खता है इसीलिये हिरण्यकशिपुने अपने शत्रुकी खोज नहीं छोडी ॥ १३ ॥ हे असुरराज ! तुम्हारे पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन ऐसे ब्राह्मणवत्सल थे कि, अपना वैरी जानलेनेपरभी माँगनेपर द्विजवेषधारी देवतालोगोंको उन्होंने अपनी परमायु देदी थी ॥ १४ ॥

तुमने गृहमेधी ब्राह्मण और पूर्वज शूरगण और उद्यम युक्त यशवान् महात्माओंके धर्मका आचरण किया है ॥ १५ ॥ इसलिये हम तुमसे कुछ भूमिकी भिक्षा माँगते हैं। हे दैत्येन्द्र ! हम इस अपने चरणके प्रमाणकी तीन पग पृथ्वी चाहते हैं ❀ ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तुम वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हो और इस जगत्के सत्य सत्य ईश्वरभी हो परन्तु हम आपसे इसके अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं माँगते, क्योंकि विद्वान् पुरुष उतनाही लेते हैं जितना कि, उनको प्रयोजन होता है और इतनेके ग्रहण करनेसे किसी प्रकारका पापभी नहीं होता ॥ १७ ॥ राजा बलि यह सुनकर

भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ॥ ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्‌ वृणेऽहं वरदर्षभात् ॥ पदानि त्रीणि दैत्येंद्र संमितानि पदा मम ॥ १६ ॥ नान्यत्ते कामये राजन्वदान्या ज्जगदीश्वरात् ॥ नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थपरिग्रहः॥ १७॥ बलिरुवाच ॥ अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ॥ त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा॥ १८ ॥

अति विस्मित होकर बोले कि, बड़ा आश्चर्य है अजी विप्रकुमार ! तुम्हारी यह बातें वृद्ध लोगोंकी समान हैं, तुम बालक हो । तुम्हारी बुद्धि अनजानकी समान है, तुम अपने स्वार्थको कुछ नहीं जानते "राजा बलिकी इस बातका यह तात्पर्य है कि तुम बालककी समान हो, वास्तवमें बालक नहीं हो । तुम्हारी बुद्धि पण्डितोंकी बुद्धिके समान है, तुम अपना स्वार्थ नहीं जानते अर्थात् भक्तोंके अर्थकोही समझते हो, क्योंकि स्वयं

*शंका–वामनजी भगवान् होकर और ब्रह्मचारी होकर थोडेसे कामके लिये इतना झूठ क्यों बोले ? क्या बलिको दण्ड देनेका कोई दूसरा उपाय नहीं था ?

उत्तर–धर्मशास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, दुष्टके संग जो दुष्टता करते हैं उनको किसी प्रकारका दोष नहीं होता, राजा बलि कैसा दुष्ट था कि वह अपने मनमें जानता था कि, इन्द्रका पुण्य अभी है हम किसी प्रभावसे राज्यलेलेंगे तब भगवान्को दुःख भोगना पडैगा ऐसा जानता था तोभी शुक्राचार्यका पूजन करके इन्द्रका राज्य लेलिया, तब राज्यसे भ्रष्ट इन्द्र भगवान्से कहने लगा कि, महाराज ! मैंने (१००) सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं तब आपने मुझको इन्द्र बनाया है, कुछ ले देकर इन्द्र नहीं बना दिया है सौ (१००) यज्ञोंमें मैंने जो राज्य किया सो तो भोग लिया अब जो मेरा शेष पुण्य हो, उस पुण्यसे मेरा राज्य दो और राज्य न दो तो मेरा पुण्य दो, इस प्रकार इन्द्रके वचन सुनकर भगवान् लज्जित हुये और दुःखको प्राप्त होकर विचार किया कि, बिना छल किये हुये बलिसे इन्द्रको राज्य नहीं मिलेगा, ऐसा विचारकर झूठ बोलकर भगवान्ने इन्द्रको इन्द्रासन दिया ॥

परिपूर्ण हो, भक्तका अर्थ पूर्ण करनेके अतिरिक्त स्वयं आपका स्वार्थ अप्रसिद्ध है" ॥ १८ ॥ कैसे खेदकी बात है ? हम सब लोकोंके ईश्वर हैं, एक द्वीपकोभी दान कर सक्ते हैं, बहुत वचनोंसे आराधना करके फिर तुम हमारे पाससे अज्ञानकी समान केवल तीन पग भूमिका दान माँगते हो ॥ १९ ॥ हमसे प्रार्थना करके फिर किसी दूसरेका याचक नहीं बनना चाहिये इसलिये आप हमसे बहुतसी भूमि लेलीजिये। राजा बलिके वचन सुनकर श्रीभगवान् वामनजी कहनेलगे कि ॥ २० ॥ जो पुरुष अजितेन्द्रय है, जिसने अपनी तृष्णाको नहीं जीता है उसको त्रिलोकीमें जो कुछभी श्रेष्ठ वस्तुयें हैं वह सबभी तृप्त नहीं कर सक्तीं ॥ २१ ॥ जो पुरुष तीन चरण भूमिसे असंतुष्ट है, उसकी तृष्णा एक द्वीप पानेपरभी नहीं

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ॥ पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥ न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ॥ तस्माद् वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावंतो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेंद्रियम् ॥ न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥ २१॥ त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ॥ नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥ २२ ॥ सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ॥ अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥ २३ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ॥ नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४ ॥ पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः ॥ २५ ॥ यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्द्धते ॥ तत्प्रशाम्यत्यसतोषादंभसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥

छूटेगी, जब ऐसे पुरुषको एक द्वीप मिलजायगा तब वह सात द्वीपोके पानेका अभिलाप करेगा ॥ २२ ॥ और ऐसा सुनाभी है कि, राजा वेणु और गयादि नृपगणने सप्त द्वीपोंके अधिपति होकरभी अर्थ और कामके द्वारा तृष्णाका अंत नहीं पाया ॥ २३ ॥ यदृच्छा करके मिलेहुए द्रव्यसे जो संतुष्ट हैं वही सुखीहैं, असंतुष्ट और जिसने अपनी आत्माको नहीं जीताहै, वह तीनोंलोक पाकरभी सुखी नही होसक्ता ॥ २४ ॥ इसलिये कविलोगोंने कहाहै कि, अर्थ और कामकेलिये जो असन्तोष है यही पुरुषके संसारका कारण है और इच्छानुसार पाये हुएसे संतोष करनाही मुक्तिका हेतु है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इच्छानुसार वस्तुको पाकर संतोष करलेनेसे ब्राह्मणोंका तेज बढ जाता है, नहीं तो जलके पड़नेसे जिस प्रकार अग्नि बुझ जाती है

वैसेही असन्तोषी ब्राह्मणका तेज शान्त होकर नाशको प्राप्त होजाता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे वरदश्रेष्ठ ! हम तुमसे केवल तीन चरण भूमिकीही प्रार्थना करते हैं और इससेही हमारा कार्य सिद्ध होजायगा, क्योंकि प्रयोजनानुसार वित्तही सुखका देनेवाला है, शेष धन क्लेशका कारण होता है ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन ! जब वामनजीने इस प्रकार कहा, तब राजाबलि हँसकर बोला कि, "तब जो आपकी इच्छा सो ग्रहण कीजिये" यह कहकर भूमिदान करनेके लिये राजाबलिने जलका पात्र हाथमें लिया ॥ २८ ॥ कि, इतनेहीमें दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यजी विष्णुके कपटको जानगये । इस कारण उनको भूमिदान करनेकी सम्मति देख अपने शिष्य राजाबलि पर क्रुद्ध होकर शुक्राचार्यजी यह वचन कहने

तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ॥ एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तः स हसन्नाह वांछातः प्रतिगृह्यताम् ॥ वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २८ ॥ विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यं तमुशना त्वसुरेश्वरम् ॥ जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदांवरः ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य उवाच ॥ एष वैरोचने साक्षाद्भगवान् विष्णुरव्ययः ॥ कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ॥ न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥ एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ॥ दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान् विश्वकायः क्रमिष्यति ॥ सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥

लगे ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य बोले कि, हे विरोचननन्दन ! यह साक्षात् सनातन विष्णु भगवान् हैं, कश्यपजीके औरससे अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुये हैं और यह अवश्यही देवतालोगोंका कार्य सिद्ध करेंगे ॥ ३० ॥ यह तुमने किया क्या ? कि विना अनर्थके विचारे इनको भूमिदान देनेकी प्रतिज्ञा करली । हम जानगये कि अब मंगल नहीं, दैत्यलोगोंके लिये बड़ा अनर्थ आपहुँचा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! यह तुम्हारा स्थान, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, तेज, यश और विद्या सब छीनकर इन्द्रको देदेंगे यह मनुष्य नहीं यह भगवान् विष्णु मायाके योगसे वामनरूप हुए हैं ॥ ३२ ॥ तुमने वास्तवमें तीन चरण भूमिका देना स्वीकार तो कर लिया है, परन्तु यह तीन चरणमें हीं सब लोकोंको नापलेंगे क्योंकि यह विश्वमूर्ति हैं,

फिर क्रोध करके कहने लगे कि अरे मूढ ! विष्णुको सर्वस्व देकर फिर तू कहाँ रहेगा ? ॥ ३३ ॥ यह एक पैरसे सब पृथ्वीको नाप लेंगे, दूसरे चरणसे स्वर्गको नाप लेंगे, इनका विशाल शरीर आकाशमण्डलमें व्याप्त होजायगा, फिर तीसरे चरणकी गति कहाँसे होगी, सो बतावो ॥३४॥ जब तू वचन देकर फिर न देगा तब हमको जान पडता है कि, तेरा नरकमें वास होगा क्योंकि तू अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सकेगा ॥ ३५ ॥ अरे मूढ़ ! जिससे अपनी जीविका जाती रहे, वह दान प्रशंसाके योग्य नहीं होता, क्योंकि संसारमें जीविकावाले पुरुषके यहाँही यज्ञ, दान, तप और पुत्रादि कर्म हुआ करते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष धर्म यश, अर्थ, काम और सुजन इन पांचोंके लिये अपने धनका विभाग

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ॥ खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥ ३४ ॥ निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ॥ प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥ ३५ ॥ न तद्दानं प्रशंसंति येन वृत्तिर्विपद्यते ॥ दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥ ३६ ॥ धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ॥ पंचधा विभजन्वित्त मिहामुत्र च मोदते ॥ ३७ ॥ अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम॥सत्यमोमिति यत्प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥३८॥ सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ॥ वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥ ३९ ॥ तद्यथा वृक्ष उन्मूलश्शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ॥ एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४० ॥

करदेताहै, वह इस लोक और परलोक दोनोंमें सुखी होताहै ॥ ३७ ॥ अरे ! अब तू इस विचारको छोडदे कि "वचन देकर अब किस प्रकारसे मिथ्या बोलूं" सत्य मिथ्याकी व्यवस्थाके लिये बह्वृच श्रुतिमें जो कहा है, उसको तू हमसे सुन, "हां" बोल स्वीकार करके जो कहा जाता है, उसका नाम सत्य है और "ना" जो वचन है, यह मिथ्या है ॥ ३८ ॥ यह सत्य देहरूप वृक्षका पुष्पफल है, क्योंकि श्रुतिमें भी ऐसाही कहा है। परन्तु जब यह देहरूप वृक्षही जीवित न रहेगा, तब यह पुष्प फल कैसे होंगे ? इसलिये अनृत देहका मूल है, बस अनृतसेही देहकी रक्षा होती है ॥ ३९ ॥ अतएव जिस प्रकार जड़के उखड़नेसे वृक्ष सूख जाता है और शीघ्र गिरजाता है, वैसेही झूंठके नष्ट होनेसे देह शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥४०॥

और सदा सत्य कहनेसे देहकी यात्राका निर्वाह होना असंभव है इस कारण सत्यके दोष और मिथ्याके गुण तुम हमसे श्रवण करो। "हाँ" अक्षर जो है, यह सम्पत्तिको दूर लेजाता है और पुरुषको धन शून्य कर देता है, अथवा अपूर्ण किये रहता है अर्थात् याचककी आशाका अंत नहीं है, क्योंकि किसीने कहाभी है कि, "याचक कहा न मांगही, दाता कहा न दे" इसलिये वह पूर्ण नहीं होसक्ता। बस याचकसे "हाँ" कह स्वीकार करलेना अच्छा नहीं। देनेसे पुरुष धनमें न्यून होजाता है, अधिक करके जो पुरुष याचकसे "सब दूंगा" अंगीकार कर उसको देभी देता है, उस दाताका अपना कार्यभी सिद्ध नहीं होता, अर्थात् उसको अपने भोगकाभी उपाय नष्ट होजाता है परन्तु "ना" यह जो अनृत वाक्य है धनका व्यय न करानेके हेतु पूर्णस्वरूप है और अपनी ओरको दूसरेका खैंचनेवाला है, क्योंकि जो पुरुष नित्य कहता है कि हमारे पास कुछ नहीं है, वह अपने अनृतसे दूसरेके धनको खैंच सक्ता है। हे दैत्यराज! हमारी इस बातसे तुम यह न समझ लेना कि

पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति ॥ यत्किंचिदोमिति ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ॥ ४१ ॥ भिक्षवे सर्वमों कुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ अथैतत्पूर्णमध्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ॥ ४२ ॥ सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥ स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ॥ गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भा० म० अष्टम० वामनावतारे बलियाचनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ॥ तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥

अमृतकी समान सदाही अनृत सेवन करनेके योग्य है, क्योंकि जो सबही समय "ना" कहकर जो झूंठ बोलता है वह अत्यन्त अकीर्तिका भागी होता है और जीवित रहतेभी मृत्युकी समान रहता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ केवल इन सब बातोंमें अर्थात् स्त्रियोंके वश करनेमें, परिहासमें विवाहके समय वरादिकी प्रशंसा करनेमें, जीविकाकी रक्षा करनेमें, प्राणके संकटमें, इन अवसरोंमें और गौ, ब्राह्मणके लिये अर्थात् गौ, ब्राह्मणके हितार्थ, किसीकी हिंसा उपस्थित होनेपर झूंठ कभी दोषका देनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां वामनचरित्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा-बलिसे जिमि संकल्पले, बडे भये भगवान। कथा विंश अध्याय की, सो वरणों सुखदान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, हे श्रेष्ठ! दैत्यगुरु शुक्राचार्यके इस प्रकारसे कहनेपर

गृहपति राजाबलि कुछ देरतक चुपचाप रहे। और फिर सावधान होकर अपने गुरुजीसे यह वचन कहने लगे कि * ॥ १ ॥ राजाबलिने कहा कि, हे गुरो! आपने जो कुछभी आज्ञाकी, वह सब सत्य है, जिससे किसी कालमें भी अर्थ, काम, यश और जीविकाका व्याघात न हो गृहस्थोंका वही धर्म है ॥ २ ॥ परन्तु मैं महात्मा प्रह्लादका पोता "दूंगा" कह सब अंगीकार कर फिर साधारण बनियेकी समान धनके लोभसे ब्राह्मणसे किसप्रकार कहूँ कि "अब मैं नहीं दूंगा" ॥ ३ ॥ असत्यकी समान बडा अधर्म और कोई नहीं है क्योंकि इस पृथ्वीने कहा है कि जान पड़ता है कि झूंठ कहनेवालेके सिवाय और सबका भार मैं अपने ऊपर सम्हार सक्ती हूं ॥ ४ ॥ हे गुरुजी महाराज! जितना मैं ब्राह्मणोंके वचनोंसे डरता हूं

बलिरुवाच ॥ सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥ अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥ स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ॥ प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥ न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ॥ सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥ नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ॥ न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलंभनात् ॥ ५ ॥ यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ॥ तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥

उतना नर्कसे, दुःखके समुद्रसे, दारिद्रसे, स्थानके भ्रष्ट होनेसे और मृत्युसेभी उतना नहीं डरता ॥ ५ ॥ और इस लोकमें पृथ्वी आदि जो कुछ वस्तुयें दिखाई देती हैं; यह सब मृत पुरुषको अवश्यही त्याग करेंगी। फिर जीतेही क्यों न दान किया जाय? यदि कहो कि, सर्वस्व दान करनेसे जीविकाके विषयमें संकट होगा तब जीविका क्या? संकट दूर करनेके लिये आधा दो, पर इसमें यह कहना है कि, जो आध घड़ीमें उस दानसे ब्राह्मणको संतोष न हो, तो फिर उस दानके देनेका फलही क्या हुआ? बस इसी कारणसे जितना माँगा है, उससे थोड़ा देनेपर इन ब्राह्मण

* शंका–राजाबलिको श्रीशुकदेवजीने घरका पति करके वर्णन कियाहै सो घर किसका नामहै? राजा बलि इन्द्रकी गद्दीपर बैठकर त्रिलोकीका राजा बनकर फिर घरका पति कहाया ऐसा उत्तम घर क्या पदार्थहै? ॥ उत्तर–जो प्राणी भगवान्का नाम अत्यन्त आदर सत्कार और प्रेम प्रीतिसे जपते हैं, जप करनेका, ग्रहण करनाभी नाम है, उन प्राणियोंका गृह नाम है, उनका पति बलि है क्योंकि रात दिन राजा बलिकी समान भगवान्का भजन करनेवाला संसारमें कोईभी नहीं है, इसलिये श्रीशुकदेवजीने राजा बलिको गृहपति कहा ॥

कुमारको सन्तोष न होगा, जिससे हमारा दान व्यर्थ जायगा, इसलिये जो कुछभी इन्होंने माँगा है, हम वही सब देंगे ॥ ६ ॥ हे गुरो ! दधीचि शिबि, आदि साधु पुरुषोंने त्यागके अयोग्य प्राण देकर भी साधु लोगोंका उपकार किया है, फिर भला भूमि आदि साधारण वस्तुका क्या विचार किया जाय? ॥ ७ ॥ युद्धमें विमुख न होकर जिन दैत्येन्द्रोंने इस पृथ्वीको भोग किया था, सो कराल कालने इनका इसलोक व परलोक दोनोमें संहार किया, परन्तु जो कुछ यश वे इस पृथ्वीपर इकट्ठा करगये हैं, उसको कालभी नहीं संहार करसक्ता । इसलिये यशका इकट्ठा करनाही ठीक है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! देहत्याग करनेसे धनके त्याग करनेमें अधिक यश मिल सक्ता है । क्योंकि युद्धमें जिस प्रकार देहत्यागी अनेक पुरुष साधारणही देखेजातेहैं, परन्तु ऐसे पुरुष बहुत थोड़े देखनेमें आते हैं कि, जो सत्पात्रके आनेपर उसको श्रद्धा सहित धन देवें ॥ ९ ॥

श्रेयः कुर्वंति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ॥ दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥ यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येंद्रैरनिवर्तिभिः ॥ तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥ सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनुवृत्तास्तनुत्यजः ॥ न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥ मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ॥ कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो बटोरस्य ददामि वांछितम् ॥ १० ॥ यजंति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवंत आम्नायविधानकोविदाः ॥ स एष विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥ ११ ॥ तदप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ॥ तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥ १२ ॥ एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ॥ हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३ ॥

हे महाराज ! साधारण याचककी अभिलाषा पूर्ण करनेमें जो दरिद्रता आजाय; तो मनस्वी दयावान् पुरुषका इसमेंभी कल्याण है । इससे आपकी समान ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणका अभिलाष पूर्ण करनेमें जो हमें दरिद्रता आजाय तो यह दरिद्रता भलाई क्यों नहीं गिनी जायगी ? अतएव जो कुछ इन ब्राह्मणने माँगा है, वह हम अवश्य इसको दान देंगे ॥ १० ॥ हे मुने ! आपलोग वेद विद्यामें चतुर हैं, आप आदरपूर्वक योगयज्ञ द्वारा जिनकी पूजा किया करते हैं, यह ब्राह्मण वही वरदानी विष्णुजी हों, या हमारे शत्रुही हों, हम इनकी माँगीहुई भूमि अवश्य इनको दान करेंगे ॥ ११ ॥ हम निरपराध हैं, जो यह अधर्म करके हमको बाँधभी ले, तोभी हम इन भीत ब्राह्मणरूपी शत्रुकी हिंसा न करेंगे ॥ १२ ॥ जो यह उत्तम श्लोक विष्णु

भगवान् हैं और अपने यशको त्यागनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तब तो यह युद्धमें हमारा नाशकर इस सब भूमिको लेलेंगे, अथवा हम करके मारे जायँ तो पृथ्वीमें शयन करेंगे ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परिक्षित्! अपना शिष्य राजाबलिको श्रद्धारहित हो अपनी आज्ञाके प्रतिपालन करनेसे विमुख देखकर भाग्यके भेजे हुएकी समान दैत्यगुरु श्रीशुक्राचार्यने क्रोध करके सत्यप्रतिज्ञ इस असुरश्रेष्ठ राजा बलिको यह शाप दिया ॥ १४ ॥ श्रीशुक्राचार्यजी बोले कि, अरे अज्ञानी! तू अपनेको पण्डित मानताहै,हमारी उपेक्षा करके तैने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया इसलिये तू शीघ्रही श्रीभ्रष्ट होजायगा ॥ १५ ॥ हे महाराज! महात्मा बलि अपने गुरुजीसे इस प्रकार शापित होकरभी अपने सत्यसे विचलित

श्रीशुक उवाच ॥ एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ॥ शशाप दैवप्रहितः सत्यसंधं मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढं पंडितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ॥ मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रियः ॥ १५ ॥ एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ॥ वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥ विंध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ॥ आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥ यजमानस्स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ॥ अवनिज्याऽवहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥ तदासुरेंद्रं दिवि देवतागणा गंधर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ तत्कर्म सर्वेऽपि गृणंत आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदाऽन्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुंदुभयः सहस्रशो गंधर्वकिंपुरुषकिन्नरा जगुः ॥ मनस्विनानेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥ २० ॥

नहीं हुआ। उसने वामनजीको पूज, कुशको स्पर्श कर पृथ्वी दान दी ॥ १६ ॥ तिसके पीछे राजा बलिकी रानी विंध्यावली मोती जड़ेहुये आभूषण पहर और मालायें धारणकर एक जलसे भरा हुआ कलश लाकर अपने स्वामीके निकट स्थापित किया ॥ १७ ॥ यज्ञ करनेवाले राजा बलिने स्वयं इस जलसे परमहर्षके साथ श्रीवामनजीके दोनों चरण पखारे। फिर संसारके पवित्र करनेवाले उस जलको अपने मस्तकपर धारण किया ॥ १८ ॥ हे राजन्! इस समय स्वर्गमें देवतालोग और गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर व चारणादि सबही राजा बलिके इस कर्मकी प्रशंसाकर परमहर्षके साथ उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ १९ ॥ और बारम्बार हजारों नगाडे बजनेलगे और गन्धर्व, किन्नर, किंपुरुषगण यह

कहकर गानेलगे कि, राजा बलिने अति दुष्कर कर्म किया कि, सब जानबूझकर भी अपने शत्रुको त्रिभुवनदान करदिया ॥ हे परीक्षित् ! राजा बलिने पहले "जो इच्छा हो सो ग्रहण कीजिये" यह जो कहा था, तब भगवान्का वह वामनरूप आश्चर्यरूपसे बढा। इस मूर्तिकी आत्मामें त्रिगुणके रहनेसे पृथ्वीपर आकाश, दिक्, स्वर्ग, विवर, समुद्र, पशु, पक्षी, देव और ऋषि सम्पूर्ण उसमें अवस्थित थे ॥ २० ॥ २१ ॥ ऋत्विक् आचार्य और सभासदोंके सहित असुरराज बलि महाऐश्वर्यशाली हरिके त्रिगुणात्मक कलेवरमें पञ्चभूत, सब इन्द्रियें, गन्धादि आशय चित्त और जीवोंके सहित त्रिगुण विश्व देखनेलगे ॥ २२ ॥ अर्थात् इन्द्रकी सेनाही जिसकी सेना थी। वह राजा बलि इन विश्वमूर्ति हरिके चरणोंके नीचे

तं वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ॥ भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदा
सत ॥ २१ ॥ काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ॥ ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेंद्रियार्था
शयजीवयुक्तम् ॥ २२ ॥ रसामचष्टांघ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जंघयोः ॥ पतत्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते
रूर्वोर्गणं मारुतमिंद्रसेनः ॥ २३ ॥ संध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान् ॥ नाभ्यां नभः कुक्षिषु
सप्त सिन्धूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥ हृद्यंग धर्मं स्तनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेंदुम् ॥ श्रियं च
वक्षस्यरविंदहस्तां कंठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५ ॥ इंद्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ॥
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६ ॥

रसातल, दोनों चरणोंमें धरणी, दोनों जंघाओंमें पर्वत घुंटुओंमें सब पक्षी, और दोनों ऊरुमें मरुद्गणोंको देखा ॥ २३ ॥ भगवान् विभुके नेत्रोंमें सन्ध्या, गुह्यमें प्रजापति, जघनोंमें आप जिनमें मुख्य हैं ऐसे प्रजापति हैं, नाभिमें आकाश, कोखमें सातों समुद्र और छातीमें नक्षत्रमाला विराजमान देखी ॥ २४ ॥ और धीरजवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलिने उन मुरारिके हृदयमें धर्म, दोनों स्तनोंमे ऋत और सत्य, मनमें चंद्रमा, वक्षस्थलमें कमलका फूल हाथमें लिये कमला (लक्ष्मी), कण्ठमें सामवेद और समस्तवेद ॥ २५ ॥ चारों भुजाओंमें इन्द्रादि देवता लोग, दोनों कानोंमें सब

दिशायें, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नाकमें पवन, दोनों नेत्रोंमें सूर्य, शरीरमें अग्नि ॥ २६ ॥ वाणीमें चारों वेद, रसनामें वरुण, दोनों भौंवोंमें विधि और निषेध, दोनों नेत्रोंके पलकोंमें दिन और रात्रि, माथेमें क्रोध, अधरोंमें लोभ ॥ २७ ॥ स्पर्शमें काम, वीर्यमें जल, पीठमें अधर्म, चरण धरनेमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसनेमें माया, सब रोमावलीमें औषधियें ॥ २८ ॥ सब नाड़ियोंमें नदियें, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्मा, सब इन्द्रियोंमें देवता और ऋषिगण और गातमें स्थावर, जंगम, सब प्राणि राजा बलिने देखे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सर्वात्मा वामनजीके शरीरमें इस प्रकारसे त्रिभुवनको देखकर सारे असुरलोग विस्मयको प्राप्त हुए। परन्तु असह्य तेजवाला सुदर्शन चक्र, मेघकी समान गंभीर ध्वनिसे युक्त

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ॥ अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥ २७ ॥ स्पर्शे च कामं नृप रेतसोंभः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ॥ छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वौषधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ॥ प्राणेषु गात्रे स्थिरजंगमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९ ॥ सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरंग ॥ सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गस्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥ पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ॥ विद्याधरोऽसिः शतचंद्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ सुनंदमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सह लोकपालाः ॥ ३१ ॥ स्फुरत्किरीटांगदमीनकुंडलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलांबरैः ॥ मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ॥ ३२ ॥

शार्ङ्ग धनुष ॥ ३० ॥ बादलकी समान शब्दायमान पाञ्चजन्य शंख, कौमोदकी गदा, विद्याधर नामक शतचन्द्रयुक्त असि; उत्तम दो तरकस कि, जिनमें अक्षय सायक थे ॥ ३१ ॥ इन सबके ईश्वर उन ईश्वरको घेरकर सुनन्दादि बडे बड़े पार्षदगण लोकपालोंके सहित इस विराट् रूपकी स्तुति करने लगे। और श्रीभगवान् किरीट, बाजु व मकराकार कुण्डलोंसे अलंकृत और रत्नोत्तम श्रीवत्स, मेखला और वस्त्रोंसे शोभित हो भँवर जिसपर गुंजार करें ऐसी वनमालासे व्याप्त हो अत्यन्त दीप्तिमान् हुये ॥ ३२ ॥

तिसके उपरान्त वामनजीने एक चरणसे राजा बलिकी समस्त भूमि शरीरसे आकाश और दोनों भुजाओंसे सब दिशाओंको रोक लिया। श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! उन वामनरूपी भगवान्ने जब दूसरा चरण धरा तब स्वर्ग उनके लिये कुछ थोडासा स्थान हुआ, परन्तु उस तीसरे चरणके लिये कुछभी शेष न बचा। इसलिये यह चरण स्वर्गके ऊपर गमन करता हुआ,महर्लोक, जनलोक,तपलोकके ऊपर सत्य लोकमें जापहुँचा ॥३३॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां विश्वरूपदर्शनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा–जिमि बाँधो प्रभु नृपतिको, एक चरणके काज। सो इक्किस अध्यायमें, कहौं सुमरि यदुराज ॥१॥ इसके अनन्तर योगिवर श्रीशुकदेवजी;राजा परीक्षितसे कहैं हैं कि,हे नरदेव! वामनजीका तीसरा चरण

क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभश्शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥ पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥ उरुक्रमस्यांघ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टम० विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेंदुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनंदनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥ वेदोपवेदा नियमान्विता यमास्तर्केतिहासांगपुराणसंहिताः ॥ ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रंधितकर्मकल्मषाः ॥ ववंदिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ २ ॥ अथांघ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ॥ समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपंकेरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥

सत्यलोकमें पहुँचाहुआ देख पद्मयोनि ब्रह्माजी व मरीचि प्रभृति व्रतधारी बड़े बड़े ऋषि और सनन्दनादि योगीगण उस चरणके निकट गये. हे राजन्! उनके नखरूप निशाकरकी किरणोंसे ब्रह्माजीकी द्युतिभी क्षीण होगई और वह उस तेजसे ढकगये ॥ १ ॥ तिसके उपरान्त वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क,इतिहास, शिक्षादि, वेदाङ्ग, पुराण संहिताके जाननेवाले आये कि, जिनकी योगरूपी पवनमें ज्ञानाग्नि उद्दीप्त और उससे कर्मके मल भस्म होगये थे, वहभी वहाँ आये। हे कुरुश्रेष्ठ! यह सब भगवान्के चरणारविन्दोंका स्मरण करनेके लिये ब्रह्माजीके स्थानपर आये थे इसलिये

सबही इस चरण कमलकी वंदना करने लगे । यह चरण अत्यन्त दुर्लभ है, समस्त कर्मोंके द्वाराभी प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त
पद्मयोनि ब्रह्माजी जो कि, स्वयं नारायणकी नाभिसे उत्पन्नहुए कमलसे जन्मे थे, उन्होंने हर्षित होकर उन वामनजीके चरणको धोया और भक्ति
पूर्वक पूजा करके उनकी स्तुति करनेलगे । हे नरेन्द्र ! ब्रह्माजीके कमण्डलुका जल इन वामनजीके चरण धोनेसे पवित्र स्वर्गकी नदी हुई, वह नदी
अबतक भगवान्‌की अमलकीर्तिस्वरूप होकर आकाशसे गिरती हुई त्रिभुवनको पवित्र करती है ॥ ४ ॥ तिसके पीछे ब्रह्माजीसे आदि लेकर समस्त
लोकपाल अपने अपने सेवकगणोंके साथ आदरपूर्वक अपने स्वामी उन विष्णुभगवान्‌के लिये जिन्होंने अपने विस्तारको सकोड़ वामनरूप

धातुः कमंडलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेंद्र ॥ स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो
विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः ॥ सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥
तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगंधानुलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलांकुरैः ॥ ६ ॥ स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्य
महिमांकितैः ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च शंखदुंदुभिनिस्स्वनैः ॥ ७ ॥ जांबवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ॥ विजयं दिक्षु
सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया ॥ ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्य
मर्षिताः ॥ ९ ॥ न वा अयं ब्रह्मबंधुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ १० ॥

धारण किया था, भेंट देने लगे ॥ ५ ॥ अर्थात् सुशीतल जल, सुन्दर माला, सुगंधित चंदन व उबटन, सुवासित धूप, दीप, खीलैं, अक्षत, फल,
अंकुर, इनसे भगवान्‌की पूजा करने लगे ॥ ६ ॥ और स्तुति, भगवान्‌के पुरुषार्थकी महिमा, जयध्वनि, अधिक करके नृत्य, गीत, वाद्य और शंख
दुन्दुभीका शब्द इन सबसे वह देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! फिर ऋक्षराज जाम्बवान् भेरी बजायकर सब दिशाओंमें इस
विजयमहोत्सवको पुकारने लगा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इस ओर असुरलोग तीन चरण भूमि माँगनेके मिषसे अपने प्रभु यज्ञदीक्षित राजा बलिकी
समस्त पृथ्वी हरीहुई देख महाक्रोधसे कहने लगे ॥ ९ ॥ कि, अरे ! यह ब्रह्मबन्धु विष्णु नहीं है, यह कोई बड़ी भारी मायाका जाननेवाला है,

यह दुष्ट अपनेको ब्राह्मणरूप करके ठग देवताओंका कार्य करनेको आया है ॥१०॥ वटुकरूपी इस शत्रुने भिक्षुक होकर हम लोगोंका सर्वस्व हरण कर लिया, हमारे स्वामी सदा सत्यव्रतवाले हैं, विशेष करके इस समय यज्ञमें दीक्षित हुये हैं ॥ ११ ॥ सदा सत्य बोलते हैं, ब्राह्मणहितैषी हैं, दयावान्‌हैं और कभी मिथ्या नहीं बोल सक्ते हैं ॥ १२ ॥ और इसको हम लोग यदि मारडालें, ऐसा करनेसे हमें धर्म होगा और स्वामीकी सेवाभी होजायगी, इस प्रकारसे कह राजाबलिके अनुचर लोगोंने अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये ॥ १३ ॥ यह लोग शूल पटा हाथमें लेकर श्रीभगवान् वामनजीके मारडालनेको क्रोध सहित दौड़े, परन्तु राजाबलिकी ऐसी इच्छा नहीं थी ॥ १४ ॥ हे महाराज ! इन दानवसेनापतिलोगोंको आता हुआ देखकर

अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा॥ सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदंडस्य बर्हिषि ॥११॥ सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ॥ नानृतं भवितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥ तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ॥ इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचराऽसुराः ॥ १३ ॥ ते सर्वे वामनं हंतुं शूलपट्टिशपाणयः ॥ अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४ ॥ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृपान् ॥ प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥ १५ ॥ नन्दः सुनंदोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट् ॥ १६ ॥ जयंतः श्रुतदेवश्च पुष्पदंतोऽथ सात्वतः ॥ सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७ ॥ हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ॥ वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ॥ मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥

विष्णु भगवान्‌के सेवक हँसे और अपने अपने शस्त्र उठाय उन लोगोंको रोकने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन और गरुड़ ॥१६॥ जयंत, श्रुतदेव, पुष्पदंत, सात्वत, यह विष्णुके अनुचर जिनमें एक एकका बल दश हजार हाथियोंकी समान था यह लोग अति वेगसे असुरकी सेनाका नाश करने लगे राजाबलिने देखा कि, इन महापुरुषके सेवक हमारी सब सेनाका नाश किये डालते हैं, इसलिये शुक्राचार्यके शापकी बात स्मरणकर अपने सब सेनापतियोंको रोका ॥ १७ ॥ १८ ॥ और यह कहा, हे विप्रचित्ति ! हे राहु ! ! हे नेमि ! ! !

हमारी बात सुनो और युद्ध मत करो इसमें प्रवृत्त न हो क्योंकि यह समय हम लोगोंके लिये अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ जो सब प्राणियोंको सुख देनेके स्वामी हैं। हे दैत्यगण ! पौरुषसे उसको अतिक्रमण करनेकी किसीमें सामर्थ्य नहीं है ॥ २० ॥ हे भाइयो ! जो भगवान् पहले हमारा मंगल और देवता लोगोंका अमंगल करतेथे, वही भगवान् इस समय हमसे प्रतिकूल होगये हैं ॥ २१ ॥ और सुनो ! मंत्री, सेना, बुद्धि, दुर्ग, मंत्र, औषधादि और शमादि उपायसे कैसेभी कोई कालको उल्लंघन नहीं करसक्ता ॥ २२ ॥ इन हरिके सेवक देवतालोगोंको तुमने बार बार रणभूमिमें पराजित किया है, परन्तु इस समय यह भाग्यके बलसे बलवान् होगये हैं, इसलिये हमको युद्धमें जीतकर गर्जरहे हैं ॥ २३ ॥ हम लोगोके ऊपर जब

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ॥ तं नातिवर्तितुं दत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २० ॥ यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ॥ स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥ बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मंत्रौषधादिभिः ॥ सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ॥ दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदंति नः ॥ २३ ॥ एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥ रसां निर्विविशू राजन्विष्णुपार्षदताडिताः ॥ २५ ॥ अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभुचिकीर्षितम् ॥ बबंध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ॥ २६ ॥ हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम् ॥ गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ॥ नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८ ॥

काल फिर प्रसन्न होगा, तब फिर हम इन लोगोंको जीत लेंगे, इससे जो काल हमको जितावेगा, अब तुम लोग उसी समयकी राह देखो ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अपने स्वामीकी यह बात सुनकर दैत्य दानव लोग विष्णुजीके सेवकोसे मार खानेके डरसे पातालमें घुसनेको प्रस्तुत हुये ॥ २५ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज गरुडजी श्रीभगवान्के अभिप्रायको जान यज्ञमें सोमाभिषेकके दिन वरुणकी फाँसीसे राजाबलिको बाँधने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! श्री भगवान् श्रीविष्णुजीने जब इस प्रकारसे राजा बलिको बँधवाया, तब पृथ्वीकी सब दिशाओंमें महा हाहाकार मचने लगा ॥ २७ ॥ इसप्रकार वरुणपाशमें बँधनेसे जब राजा बलि श्रीभ्रष्ट हुआ, तब स्थिरबुद्धि और महा यशस्वी उस महात्मा

राजाबलिसे विष्णु भगवान् यह वचन कहने लगे कि ॥ २८ ॥ हे असुरश्रेष्ठ ! तैंने हमको तीन चरण पृथ्वी दान दी है सो हमारे दोही चरणमें सब पृथ्वी नप गई, अब तीसरे चरणकी भूमि कहाँ है? सो शीघ्र बता ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सूर्यनारायणकी किरणें जहाँतक पड़ती हैं, जहाँतक निशानाथ चंद्रमा तारागणोंके सहित अपनी चांदनी फैलाते हैं और जहाँ तक मेघ जल वर्षाते हैं, तहाँतक तुम्हारी सम्पूर्ण पृथ्वी है ॥ ३० ॥ हमने एक चरणसे समस्त भूलोकको नाप लिया, मेरे शरीरसे आकाश और सब दिशायें व्याप्त होगई । देखता नहीं कि, तेरे सामनेही

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर ॥ द्वाभ्यां क्रांता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥२९॥ यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिंदुः सहोडुभिः ॥ यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३० ॥ पदैकेन मया क्रांतो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ॥ स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥ ३१ ॥ प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ॥ विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२ ॥ वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ॥ प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलंभते ॥ ३३ ॥

दूसरे चरणसे स्वर्गलोकको नाप लिया; इस प्रकारसे हमने तेरा सर्वस्व नापा ॥ ३१ ॥ परन्तु यह सब लेनेसेभी तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई । इसलिये तुमको नरकमें वास करना चाहिये । अब तुम अपने गुरु शुक्राचार्यजीकी आज्ञा लेकर नरकमें प्रवेश करो * ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मणसे यह कहकर कि "दूंगा" और फिर नहीं देता, उस याचकके संग ठगाई करता है, उसका मनोरथ वृथा, उसको स्वर्ग अति दूर है और वह नीचे नरकमें

* शंका—वामन भगवान्ने प्रथम तो वलिसे कहा था कि, तू नरकमें वास कर तू बड़ा महापापी है फिर पीछे सुतल लोक वलिको दिया नरकको क्यों नहीं भेजा ? पामर जीवकी समान यह कौतुक किया, जैसे कोई क्रोधी मनुष्य क्रोध आनेपर जो चाहे सो मुखसे बकदे ?

उत्तर—वामन भगवान्ने जो लोक बलिको देनेके लिये कहाथा वही लोक उसको दिया, क्योंकि निरयका अर्थ नरक नहीं है, तथा जो लोक अयस जो लोहा तिस करके 'नि' कहिये रहित होय अर्थात् जिस लोकमें लोहा न हो, उस लोकको भी मुनिलोक निरय कहते हैं, भगवान्ने भी निरयका अर्थ ऐसा करके वलिसे कहा था कि, निरयमें वास करोगे, इसलिये निरय जो सुतल है तहाँ वलिको भेजदिया, क्योंकि, सुतल लोकमें मणियोंके सिवाय दूसरी धातु कोई नहीं है. और लोहकी कौन गिनती है निरयका अर्थ विचारके वामनजीने कहा था, नरकमें जानेको वलिको नहीं कहा ॥

गिरता है ॥ ३३ ॥ तैंने देनेको कहकर फिर हमको नहीं दिया और कपट किया, इसलिये इस झूँठका फल यही है कि आप कुछ दिन नरकमें भोग कीजिये ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां बलिनिग्रहणं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा–सुतल लोक पठयो बलिहि, प्रभु दीनो वरदान। सो बाइस अध्याय की, कथा सकल जगजान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार अंगीकार किये हुये राजा बलिको इस प्रकार भगवान्‌ने चलायमानभी किया, तथापि अविचलित चित्तसे यह राजाबलि वक्ष्यमाण अविक्लव वचन बोला ॥ १ ॥ राजाबलिने कहा, कि,हे उत्तमश्लोक भगवन्! मेरी कहीहुई प्रतिज्ञा असत्य नहीं है, आपनेही पहले कपटका आश्रय ले वामनरूप बनाय मुझसे भिक्षा माँगी और इस समय दूसरा रूप धारण किया, अच्छा जो इस प्रकारसेभी आप मेरी (प्रतिज्ञा) बातको झूंठ मानै, तोभी मैं अपना वचन

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ॥ तद्व्यलीकफलं भुंक्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टम० बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः ॥ भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचोऽव्यलीकं सुरवर्य मन्यते ॥ करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलंभनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबंधाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ॥ नवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥ पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दंडमर्हत्तमार्पितम् ॥ यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशंति हि ॥ ४ ॥

पूर्ण करताहूँ हमारा वचन ठगाईका नहीं हो सक्ता, आपने दो चरण तो नापही लिये तिसरे चरणका स्थान नहीं पाया सो मैं अपना मस्तक झुकाता हूं, इसपर यह अपना चरणकमल रखिये, क्योंकि मैं सब लोकोंका राजा हूं, तब क्या मेरा शरीर एक चरण की बराबर भी न होगा! ॥ २ ॥ हे महाराज! जिस प्रकार मैं अपकीर्तिसे डरताहूं, वैसा नरकसे, वरुणकी फाँसीसे अत्यन्त भयंकर विपत्तिसे नहीं डरता और धनके कष्टसे अथवा राज्यभ्रष्ट होनेसेभी मैं वैसा नहीं ड़रता ॥३॥ हे भगवन्! आपका किया हुआ यह दण्ड अपकीर्तिका कारण नहीं है, क्योंकि माननीय पुरुष जो दण्ड देते हैं, वह तो वाञ्छनीय हैं, क्योंकि माता अथवा पिता वा भ्राता किम्वा सुहृद् लोग ऐसा दण्ड नहीं देसकते इस

कारण आप हमारे हितैषी हैं,सो यह दण्ड जो दिया, इससे तो मैं बडाईकेही योग्य हुआ ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! आप वास्तवमें शत्रुके रूपसे प्रगट हैं परन्तु यथार्थमें आप शत्रु नहीं हैं,नहीं तो हम असुरलोगोंकेभी आपही परम गुरु हैं क्योंकि हम लोग महामदसे अंधे होगयेथे, सो आपने हमारी ममताका नाश करनेके लिये हमारे ज्ञानके नेत्र खोलदिये ॥ ५ ॥ अहो ! जिनसे वैर बाँधकर अनेक असुरगण सिद्धिको प्राप्त होगये और जिनको केवल एकान्त योगी लोगही प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ अनेक कर्मकारी उन्हीं परमगुरु करके हमको दंड मिला। और वरुणकी फाँसीसे बँधे फिर इससे हमको लाज अथवा दुःख क्या हो सक्ता है? बस इस बंधनसे न मैं दुःखी हूं न लज्जित हूं ॥७॥ हे भगवन् ! मेरे ऊपर जो आपने दण्डरूप यह अनुग्रह किया, सो मैं इसका अधिकारी नही था, आपने अपने भक्तका पोता जानकर मुझपर यह अनुग्रह किया,हमारे पितामह प्रह्लादजी आपके परम

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः ॥ यो नोऽनेकमदांधानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥ यस्मिन्वैरानुबंधेन रूढेन विबुधेतराः ॥ बहवो लेभिरे सिद्धिं यामुहैकांतयोगिनः ॥ ६ ॥ तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ॥ बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥ पितामहो मे भवदीयसंमतः प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ॥ भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥ किमात्मनाऽनेन जहाति योऽन्ततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ॥ किं जायया संसृतिहेतुभूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥ इत्थं स निश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ॥ ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥ १० ॥

प्रीतिपात्र हैं उनके साधुपनको सबही जानते हैं आप उन के परमाश्रय थे यद्यपि वह आपके शत्रु अपने पिता हिरण्यकशिपुकरके आश्चर्य हिंसाको प्राप्त हुयेथे ॥८॥ तोभी यह विचार करके कि, आयुके शेषमें आत्मीयनामधारी चोररूपी जो पुत्रादि हैं, वह जो देहको छोडकर आजाँयगे, सो उस देहसे क्या फल और स्त्री संसारकी हेतुभूत है, इससेभी कुछ फल नहीं। और घरसेभी क्या प्रयोजन है? इससे केवल आयुका क्षय होता है। सुख कुछ नही है ॥९॥ हे सत्तम ! अगाध बोधसम्पन्न हमारे पितामह प्रह्लादजी ऐसा निश्चय करके, यद्यपि आप उनके पक्ष (पितादि निशिचरों) के क्षयकारी थे, तथापि स्वजनसे भीत होतेहुए जहाँपर कि, किसी ओरसे भयकी सम्भावना नहीं और जो ध्रुव हैं, ऐसे आपके चरण

कमलकी शरणको प्राप्त हुये थे ॥१०॥ हे भगवन् ! इस समय दैव करके मैंभी अपने शत्रु आपकी शरण आया हूं, यह दैव हमसे अति अनुकूल है, क्योंकि बलात्कार इसने हमसे उस सम्पत्तिका त्यागकराया है जिससम्पत्तिसे पुरुष स्तब्धमति हो मृत्युके निकटहुए इस जीवनको अनित्य नहीं समझताहै ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि; हे कुरुश्रेष्ठ ! असुरश्रेष्ठ राजाबलि इस प्रकार कहरहा था कि, इतनेहीमें भगवद्भक्त प्रह्लादजी पूर्ण चन्द्रमाके समान आकाशसे उदय हो दैत्यराज बलिके निकट आनकर उपस्थित हुए॥ १२ ॥ श्रीप्रह्लादजीके दोनों नेत्र कमलदलके समान बडे बडे थे, श्यामवस्त्र धारण किये हुए थे, दोनों भुजायें अत्यन्त लम्बायमान थीं, वह अति ऊंचे थे, रंग श्याम था, अपनीकांतिसे विराजमान

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवांतिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ॥ इदं कृतांतांतिकवर्ति जीवितं ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ तमिंद्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ॥ प्रांशुं पिशंगांबरमंजनत्विषं प्रलंबबाहुं सुभगं समैक्षत ॥ १३ ॥ तस्मै बलिर्वारुणपाशयंत्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ॥ ननाम मूर्ध्नाऽश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥ १४ ॥ स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनंदनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ॥ उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविह्वलः ॥ १५ ॥

होरहे थे, इस प्रकारसे पितामह महात्मा प्रह्लादजीको राजा बलिने देखा ॥ १३ ॥ परन्तु वरुणजीकी फाँसीमें बँधनेके कारण पहलेकी समान भेंट देकर राजा बलि उनकी पूजा नहीं कर सका आँखोंमें आँसू भरकर और शिर झुका केवल प्रणाम करने लगा. हे राजन् ! उस समय ऐसा जानपड़ा कि, राजा बलिको अपने कियेहुए अहंकारादि अपराधका स्मरण हुआ कि, जिससे वह लाजके मारे चुप चाप मस्तक नवाकर रहगया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! सुनन्दादि पार्षदोंसे पूजित जगत्पति भगवान् हरिको राजा बलिके निकट बैठा हुआ देखकर प्रह्लादजीने विचारा कि, इसके ऊपर निःसन्देह भगवान्का अनुग्रह हुआ है. इसलिये यह महात्मा पुलकावलीसे पूर्ण व अश्रुजलसे पूर्ण हो मस्तक झुकाकर बारम्बार नमस्कार

करते करते भगवान्के निकट गये और निकट जाय शिर झुकाय प्रणामकर वैठगये ॥ १५ ॥ श्रीप्रह्लादजी वोले कि, हे भगवन् ! आपनेही बलिको इन्द्रपदवी दी और आपनेही लेली, सो आपने इसके इन्द्रपदको हरण नहीं किया. वरन् अपना पद फिर ग्रहण कर लिया, सो यह अच्छा नहीं हुआ, मैं अनुमान करताहूं कि, इसपर आपका वडाही अनुग्रह हुआ है, क्योंकि ऐश्वर्य और सम्पत्ति आत्माको मोह करनेवाली है, सो यह इनसे छूटगया ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! ऐश्वर्य व सम्पत्तिके मोहकी वार्ता क्या कहूं ? इससे विद्यावान् पुरुषभी मोहित होजाते हैं, इसलिये सम्पत्ति रहते कोई पुरुष भलीभाँति आत्मतत्त्वको नहीं देख सक्ता, सो आपने बलिकी सम्पत्ति लेकर इसपर वडा अनुग्रह प्रकाश किया, आप महाकरुणाकर हैं, जगदीश्वर अखिल लोकके साक्षी नारायण हैं, सो मैं आपको वारम्वार नमस्कार करताहूं श्रीशुकदेवजी वोले कि, हे परीक्षित् !

प्रह्लाद उवाच ॥ त्वयैव दत्तं पदमैंद्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ॥ मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥ यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ॥ तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृतांजलेः ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥ १८ ॥ वद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ॥ प्रांजलिः प्रणतोपेंद्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥ विंध्यावलिरुवाच ॥ क्रीडाऽर्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ॥ कर्त्तुः प्रभोस्तव किमस्य त आवहंति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥

इसके पीछे हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी हाथ जोडकर खडेहुये उन प्रह्लादजीके सामनेही उन वामनरूपी मधुसूदनसे कुछ कहनेकी इच्छा करने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! उसी समय राजा बलिकी स्त्री विंध्यावली भगवान्से कुछ कहनेके लिये आई. इस कारण ब्रह्माजी उसका सन्मान करनेके लिये कुछ देर चुपचाप रहे बलिकी स्त्री विंध्यावली पतिको बँधाहुआ देखकर भयके मारे व्याकुल होगई, फिर हाथ जोड नीचेको मुखकर यह वचन कहनेलगी ॥ १९ ॥ विंध्यावली वोली कि, हे ईश ! आपने अपनी क्रीडाके लिये यह त्रिजगत् वनायाहै, परन्तु दुर्बुद्धि लोग इसमें अपना अपना स्वामीपन कल्पित किया करते हैं. हे भगवन् ! आप त्रिजगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके करनेवाले हैं, सो कोई दूसरा आपको इस

जगत्में क्या देगा ? जो लोग कहते हैं कि "हमने आपको समर्पण किया" उनको लज्जा नहीं है, "हम स्वतंत्र हैं" उनमें केवल यही वाद आपने अवरोपित किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! विंध्यावलीके इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि इस हमारे स्वामीने आपसे जो यह कहा कि, हमने आपको तीनों लोक अर्पण करदिये हैं और तीसरे चरणके पूरा करनेको अपनी देहका देना कहा, सो इन्होंने देहादिमें अपना स्वामीपन जानकर जो कुछ कहा, तिससे निर्लज्जताही प्रकाशित होती है क्योंकि आप सर्वव्यापी हैं, इसलिये मन्दबुद्धिवाले इस राजाको आप कृपा करके छोड़ दीजिये ॥२१॥ यद्यपि भगवान्जी प्रह्लाद और रानी विंध्यावलीके दीन वचनोंसे प्रसन्न होगये, तथापि ब्रह्माजीने लोग दिखावेके लिये बहुत सारी विनती और प्रार्थना करके कहा कि, हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगन्मय ! आपने राजा बलिका सर्वस्व हरण कर लिया अब इसको दण्ड न देकर छोड़ दीजिये ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह असुरवर श्रेष्ठ बुद्धिवाला है और इसने अपने कर्मसे प्राप्त किये सब लोकोंको दान करदिया है, जिसने

ब्रह्मोवाच ॥ भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ॥ मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥ २१ ॥ कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ॥ निवेदितं च सर्वस्वमात्माऽविक्लवया धिया ॥ २२ ॥ यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वांकुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ॥ अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत्॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ॥ यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥२४॥ यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ॥ नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥ २५ ॥

अकातर होकर प्रथम सर्वस्व और पीछे अपना देहतक अर्पण कर दिया, वह फिर दण्ड पानेके योग्य नहीं हो सक्ता। हे भगवन् ! लोकोंमें शठताई को छोड़ जो आपके चरणामृतको पान करता है और दूबके अंकुरोंके दान करनेसे भी उत्तमगतिको पाता है, फिर यह राजा बलि कि, जिसने कातर रहित होकर आपको त्रिलोकीका दान कर दिया। फिरभी क्या यह दण्ड पानेके योग्य हो सकता है ? ॥ २३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! हम जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं, प्रथम उसके धनका नाश कर देते हैं क्योंकि धनसे ममता उत्पन्न होती है, तिससे पुरुष नम्रतारहित हो सब लोकोंको और मुझकोभी कुछ नहीं समझता, इसकारण मदके दूर करनेके लिये सब धनका हरण करनाही अनुग्रह है ॥ २४ ॥ और जीवात्मा सदा परवश होकर अपने कर्मों करके कृमि कीटादि अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ फिर पौरुषीगतिको

प्राप्त होताहै अर्थात् पुरुप होकर जन्मताहै ॥ २५ ॥ जो उस पुरुप जन्ममें जन्म, कर्म, वयस, सत्य, विद्या, ऐश्वर्य और धनादिसे उसको स्तंभ (ममता) न हुआ तो मेरा बड़ाही अनुग्रह है ॥ २६ ॥ हमने ध्रुवादिकोंको जो सम्पत्ति दान की है, उसमें एक कारण है, जो हमारे भक्त हैं वह अनम्रतादिके लिये भूत और सर्वप्रकार भलाईके प्रतिकूल जन्मादिके होनेपरभी कभी मोहित नहीं होते, इसलिये हम भक्तकी इच्छासे सम्पदा देते हैं, अभक्त सम्पदासे मोहित होजाताहै, इसलिये हम सव सम्पदा हरण करके उसपर अनुग्रह करते हैं ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह दानव (वलि) दैत्यलोगोंका अगुआ और कीर्तिका वढानेवाला है, इसने दुर्जय मायाको जीत लिया है, इसलिये यह खेदको प्राप्त होकरभी मोहित नहीं

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ॥ यद्यस्य न भवेत्स्तंभस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥ मानस्तंभनिमित्तानां जन्मादीनां समंततः ॥ सर्वश्रेयःप्रतीपानां हंत मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥ एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ॥ अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८ ॥ क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ॥ ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥ २९ ॥ गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ॥ छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥ ३० ॥ एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ॥ सावर्णेरंतरस्यायं भवितेंद्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥ तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ यत्राधयो व्याधयश्च क्लमस्तंद्रा पराभवः ॥ नोपसर्गा निवसतां संभवंति ममेक्षया ॥ ३२ ॥

होताहै ॥ २८ ॥ यह निर्धन होगया स्थानसे भ्रष्ट होगया, शत्रुसे बाँधागया, झिड़कारागया और इसके जातिवालोंने इसको छोड़दिया, व इसने अनेक प्रकारकी यातनाभी पाई, अधिक करके इसके गुरु शुक्राचार्यजीनेभी इसको बहुत धमकाया, शापभी दिया, तोभी इसने अपने संकल्पको नहीं छोडा ॥ २९ ॥ मैंने छलकरके जो धर्म उसको बताया उसकोभी यह नहीं छोड़ता इससे यह पुरुप अतिशय भक्तिमान् और सत्यवादी है ॥ ३० ॥ ऐसी निष्ठा रखनेके लिये मैंनेभी इसको ऐसा स्थान दिया है कि, जो देवतालोगोंकोभी नहीं मिलसक्ता, अव हमने इस बलिका आश्रय लिया, यह बलि सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होगा ॥ ३१ ॥ जवतक यह सावर्णि मन्वन्तर न आवै, तबतक तुम विश्वकर्मा

जीके बनाये सुतल लोकमें जाकर वास करो। यह स्थान साधारण नहीं हैं, जो लोग यहॉपर वास करते हैं, हमारी दृष्टिके पड़नेसे उनको आधि
व्याधि और न कभी थकावटकी अवाई होती है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! ब्रह्माजीको इस प्रकारसे उत्तर देकर भगवान् फिर करुणापरायण होकर
राजा बलिसे बोले कि, हे इन्द्रसेन ! हे महाराज ! तुम्हारा मंगल हो ! तुम अपने सब जातिवालोंके साथ सुतललोकको चलेजाओ कि, जिसे
स्वर्गके रहनेवालेभी चाहते हैं ॥ ३३ ॥ इस स्थानमें लोकपालगणभी तुमको पराभव नहीं कर सकेंगे। फिर दूसरेकी तो बातही क्या है ? जो
दैत्यलोग तुम्हारी आज्ञाको न मानेंगे, उनका संहार हमारे चक्रसे होजायगा ॥ ३४ ॥ सब सामग्रीके साथ और सब सेवकोंके साथ तुम्हारी रक्षा

इंद्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ॥ सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥ ३३ ॥ न त्वामभिभविष्यंति
लोकेशाः किमुतापरे ॥ त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४ ॥ रक्षिष्ये सर्वतोहं त्वां सानुगं सपरि
च्छदम् ॥ सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥ तत्र दानवदैत्यानां संगात्ते भाव आसुरः ॥ दृष्ट्वा मदनु
भावं वै सद्यः कुंठो विनंक्ष्यति ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशो
ऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवंतं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ॥ बद्धांजलिर्बाष्पकलाकुले
क्षणो भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १ ॥

करेंगे हे वीर ! क्या हमारे वियोगके मारे तुम वहॉ नहीं जानेकी इच्छा करते ? हम सत्यही सत्य कहते हैं कि, हमको तुम सदा उस स्थानमें
देखोगे ॥ ३५ ॥ वहॉ दैत्य दानवोंके संग रहनेसे असुरभाव मेरे प्रभावको देखकर उसीसमय नष्ट हो जायगा * ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते
महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां बलिमोक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ दोहा–सुतललोकको बलिगये, इन्द्र मिल्यो सुरलोक ॥ ताते
इस अध्यायमें, पढ़कर होहु विशोक ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम ! पुरातनपुरुष भगवान्ने जब इसप्रकारसे कहा, तब समस्त

* शंका–ऐसा कौनसा लोक है कि, जिसमें देवताभी बडे क्लेशसे जासक्तेहैं ? और उसी लोकको एक क्षणमें राजा बलि चलागया, जो कभी स्वर्गलोकको बलि गया तो स्वर्गलोक देवताओंका है और जो सुतल लोकको गया तो सुतल लोक नागोंका है ?–

साधुसम्मत महानुभाव राजा बलिके दोनों नेत्र आँसुओंकी कलाओंसे आकुल होगये। वह भक्तिसे उत्कंठित हो हाथ जोड गद्गद स्वरसे श्रीभगवान्से कहनेलगा ॥ १ ॥ राजा बलि बोला कि, अहो! आपके प्रति नमस्कार करनेकी कैसी आश्चर्यमय महिमा है। इसके लिये उद्यम करतेही भक्तजनोंके कार्य सिद्ध होजाते हैं, आपको नमस्कार करनेके उद्यमने इस अधम असुरकोभी उस अनुग्रहका दान किया कि, जो लोकपालोंकोभी नहीं मिलसक्ता. हे भगवन्! आप परमेश्वर हैं, मैं अति अवस्तु हूं, सो मैं भला क्या आपको त्रिलोकीका दान दूंगा? बरन् मैंने तो आपको भलीभाँति प्रणाम भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेको उद्यम किया है, सो इतनेही उद्यमका ऐसा माहात्म्य है कि, करोडों तप और दान करनेसे जो अनुग्रह प्राप्त नहीं होसक्ता, वह मुझको मिलगया। हे महाराज! आपके प्रणाम करनेका माहात्म्य अति आश्चर्यमय है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी

बलिरुवाच ॥ अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ॥ यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ॥ विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥ एवमिंद्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ॥ पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥ लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ॥ निशम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नेमं विरिंचो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ॥ यन्नो सुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवंद्यैरपि वंदिताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

कहैं हैं कि हे परीक्षित्! असुरश्रेष्ठ राजा बलिने इसप्रकार कहकर भगवान् वामनजीको और महेश्वरके साथ ब्रह्माजीको प्रणाम किया, तिसके पीछे प्रीतिमें भर प्रफुल्लित चित्त हो असुरसमूहके साथ सुतललोकको चलागया ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे भगवान् हरिने इन्द्रको फिर त्रिलोकी समर्पण कर अदितिकी कामनाको साध स्वयं इन्द्र व सब जगत्का पालन कियाथा ॥ ४ ॥ इधर अपने वंशधर पोते बलिको छूटते हुए और भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करता हुआ देख प्रह्लादजीने भक्तिसे गद्गद हो यह वचन कहे ॥ ५ ॥ प्रह्लादजीने कहा कि, हे भगवन्! जिन लोगोंकी वन्दना सम्पूर्ण विश्व करता है, वह समस्त लोग आपके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं, आप "सर्वप्रकारसे रक्षा करेंगे" यह कहकर जो हमारे दुर्गपाल

—उत्तर—वामन भगवान्ने जिस समय राजा बलिसे दान लिया उसी समय बलि जीताथा तोभी ससारसे मोक्ष करदिया या चाहै तो ससारमें रहै चाहै योगियोंके लोकको जाय, ऐसे लोकको देवता लोग बडे दुःखसेभी नहीं जासके, इसलिये शुकदेवजीने कहा कि, जिस लोकको बलि गया वह लोक देवताओंकोभी प्राप्त नहीं होता ॥

हुएको आपका यह प्रसाद अति दुर्लभ है ब्रह्मा, महेश्वर और लक्ष्मी कोईभी इस प्रसादको प्राप्त नहीं हुए; फिर दूसरेकी तो बातही क्या है ? ॥ ६ ॥ हे आश्रयपद ! आपके पदारविन्द मकरन्दका सेवन करके ब्रह्मादि देववृन्द विभूतियोंको भोग करते हैं, सो हम खलयोनि किस प्रकारसे आपकी कृपादृष्टिकी पदवीको प्राप्त होवैं ? ॥७॥ हे भगवन् ! आपकी चेष्टा अतिशय आश्चर्यकी है, यह तो कुछ बातही नहीं है ? आप अचिन्त्ययोग मायासे लीलापूर्वक त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं और सर्वात्मा व सर्वज्ञ होनेके कारण आप सबको समभागसे देखते हैं; आपका ऐसा विषमस्वभाव है । परन्तु भक्तके ऊपर स्नेह वश हो आपका ऐसा कल्पतरु स्वभाव हुआ है ॥ ८ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण

यत्पादपद्ममकरंदनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाऽश्नुवते विभूतीः ॥ कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥७॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ॥ सर्वात्मनस्समदृशो विषमः स्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ॥ मोदमानस्स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥ नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ॥ मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबंधनः ॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ आज्ञां भगवतो राजन्प्रह्लादो बलिना सह ॥ बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृतांजलिः ॥ ११ ॥ परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ॥ प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥ अथाहोशनसं राजन्हरिर्नारायणोऽतिके ॥ आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥

हो । तुमभी सुतललोकमें चलेजाओ । और अपने पोते बलिके साथ आनन्द करते हुए अपने जातिवालोंको सुख दो ॥ ९ ॥ हम वहाँपर गदा हाथमें लिये खडे रहेंगे । और वहां तुम नित्य हमको देखोगे, हमारे दर्शन करनेसे आनन्द पावोगे । और तुम्हारा ज्ञानभी नष्ट नहीं होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! निर्मलमतिवाला प्रह्लाद अपने पोते राजा बलिके साथ, "यही करता हूं" कह भगवान्की आज्ञाको स्वीकार करताहुआ । फिर सब असुर और सेनापति ॥ ११ ॥ हाथ जोडकर महात्मा आदि पुरुषकी परिक्रमा दे और प्रणामकर उनकी आज्ञा ले उसी समय सुतललोकको चले गये कि, जो बडाभारी पाताल था ॥ १२ ॥ इसके पीछे भगवान् वामनजी अति धोरे ब्रह्मवादियोंकी सभामें

ऋत्विक् लोगोंके बीच आसीन महर्षि शुक्राचार्यजीसे बोले ॥ १३ ॥ कि, हे ब्रह्मन् ! आपके शिष्य राजा बलिके यज्ञमें जो कुछ त्रुटि रहगई है, उसको आप स्वयं पूर्ण कीजिये. यदि तुम कहो कि, यजमानके विना यज्ञ किसप्रकार पूरा होसक्ता है ? सो बात नहीं । क्योंकि ब्राह्मण करके देखे जातेही सब कर्मोंकी विषमता समताको प्राप्त होती है, सो आपके करनेसे इस यज्ञके पूर्णहोजानेमें क्या संदेह है ? ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् वामनजीके ऐसे वचन सुनकर शुक्राचार्यजी बोले कि, हे भगवन् ! आप कर्मके प्रवर्तक यज्ञफल दाता और यज्ञपुरुष हैं, आप जिस करके सर्व प्रकार पूजित हुए उसको फिर कर्मोंकी वैषम्यता कहाँ रही ? ॥ १५ ॥ मंत्रसे स्वरादिभ्रंशद्वारा, तंत्रसे क्रमकी विपरीतता द्वारा और देश, काल, पात्र, वस्तुसे दक्षि

ब्रह्मन् सतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ॥ यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥ शुक्र उवाच ॥ कुतस्तत्कर्मवैषम्य यस्य कर्मेश्वरो भवान् ॥ यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥ १५ ॥ मंत्रतस्तंत्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ॥ सर्वं करोति निश्छिद्र नामसंकीर्तन तव ॥ १६ ॥ तथाऽपि वदतो भूमन्करिष्याम्यनुशासनम् ॥ एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञाऽनुपालनम् ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अभिनंद्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ॥ यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥ १८ ॥ एवं बलेर्महीं राजन्भिक्षित्वा वामनो हरिः ॥ ददौ भ्रात्रे महेंद्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥ १९ ॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ॥ दक्षभृग्वंगिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥ २० ॥ कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ॥ लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥ २१ ॥

णादि द्वारा जो जो न्यूनता होती हैं, आपका नाम; लेतेही उन सब छिद्रोंको दूर करता है ॥ १६ ॥ तथापि आप जो कुछ आज्ञा करतेहैं, उसको मैं अवश्य पालन करूंगा, क्योंकि, आपकी आज्ञा पालन करनेसेही पुरुषोंका कल्याण होता है ॥१७॥ हे राजन् ! शुक्राचार्यजीने इस प्रकारसे भगवान्की आज्ञापर हर्ष प्रगटकर सब ब्राह्मणों सहित राजा बलिके छिद्रको अच्छिद्र किया अर्थात् यज्ञ पूर्ण करदिया ॥ १८ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीभगवान् वासुदेवने वामन अवतार ले इस प्रकार राजा बलिके सन्मुख भूमिकी भिक्षा माँग, दानव लोगोंने जिसको हरण कर लिया था वह स्वर्ग फिर अपने भ्राता इन्द्रको देदिया ॥१९॥ तिसके उपरान्त कश्यप अदितिजीको प्रसन्न करनेके लिये और सर्व प्राणियोंके हितार्थ देवऋषि,

पितृगण,मनुवर्ग,दक्ष,भृगु,अंगिरादि मुनिगण और कुमार व भोलानाथ (शिव) के साथ प्रजापति ब्रह्माजीनें उन वामनजीको लोक व लोकपालोंका अधीश्वर किया * ॥२०॥२१॥ यद्यपि इन्द्र सब लोकोंके पतिहैं,तो भी समस्त वेद,धर्म,यश और सब प्रकारसे मंगल व्रतादिके पालन करनेमें निपुण वह वामनजी सर्वप्राणियोंका ऐश्वर्य बढानेको इन्द्रके ऊपर उपेन्द्र बनाये गये इसलिये उस समय सब प्राणियोंको बहुतही आनंद प्राप्तहुआ ॥२२॥२३॥ तिसके पीछे इन्द्र विमानपर चढाय आगेकर उन वामनजीको स्वर्गमें लेगये यह देखकर लोकपालोंके और ब्रह्माजीके मनमें परमानन्द

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ मंगलानां व्रतानांच कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥ २२ ॥ उपेन्द्रं कल्पयांचक्रे पतिं सर्वविभूतये ॥ तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३ ॥ ततस्त्विद्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ॥ लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ २४ ॥ प्राप्य त्रिभुवनं चेंद्र उपेंद्रभुजपालितः ॥ श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥ २५ ॥ ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ॥ पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥ २६ ॥ सुमहत्कर्म तद्विष्णोर्गायंतः परमाद्भुतम् ॥ धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥ २७ ॥

हुआ ॥२४॥ हे महाराज ! इसप्रकार इन्द्र त्रिलोकीको प्राप्त हो उपेन्द्रजीके बाहुबलसे उसको पालन करने लगा और परमश्रीसम्पन्न व निर्भय होकर सुख सम्भोगमें निमग्नहुआ ॥२५॥ इस ओर ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार, भृगुआदि मुनि पितृलोग और सर्व प्राणी, सिद्ध व वैमानिक सबही भगवान्के इस अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते करते अपने अपने स्थानोंको चलेगये । और सब स्थानोंमें कश्यपजीकी स्त्री अदितिजीकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई ॥२६॥२७॥

* शंका–जगत्के उत्पन्न करनेवाले, जगत्के स्वामी, जगतका पालन करनेवाले, जो भगवान् हैं उन भगवान्को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माजीने राज्य दिया, अधीश तो इन्द्रको और भगवान् उपेंद्र ब्रह्माने किया यह बडी शका है ?

उत्तर–भगवान्की आज्ञा मानकर ब्रह्माने बहुत प्रकारसे विचार किया और इन्द्रको त्रास देनेकेलिये भगवान्को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने अधीश्वर किया क्योंकि लोकमेंभी अपनी बराबर पुत्रको भाईको देखकर लोक कुकर्म नहीं करते इस प्रकारसे भगवान् इन्द्रका छोटा भाई हैं वामनके सन्मुख इन्द्र खोटा कर्म नहीं करेगा, इसलिये त्रिलोकीके नायको इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने स्वामी किया ॥

सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतः कुलनंदन ॥ उरुक्रमस्य चरितं श्रोतणामघमोचनम् ॥ २८ ॥ पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः ॥ किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मंत्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥ २९ ॥ य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारानुचरितं शृण्वन्याति परां गतिम् ॥ ३० ॥ क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ॥ यत्रयत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः॥३१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे वामनावतारचरिते त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडंबनम् ॥ १ ॥

हे कुरुनन्दन परीक्षित् ! श्रीभगवान्के यह पवित्र चारित्र श्रोता लोगोंके पापोंका नाशकरनेवाले हैं, सो हमने आपके सन्मुख सब वर्णन किये॥२८॥ जिसपुरुषने बलसे, अनेक भाँतिके विक्रम करनेवाले भगवान् विष्णुकी महिमाका पार देखलिया है, वह पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या भी करसक्ताहै, अर्थात् जिसप्रकार पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या नहीं होसक्ती, वैसेही भगवान्के चरित्रोंको गाते गाते कोई पार नहीं पा सक्ता । इसलिये मंत्र और मंत्रदर्शी पुरुष लोगोंने स्पष्ट कहा है कि, उत्पन्न हुये और उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंकी जातिमें कोई पुरुप पूर्णस्वरूप पुरुपकी महिमाको प्राप्त हुआ है ? अर्थात् कोई नहीं हुआ और न आगेको होगा ॥ २९ ॥ हे राजन् ! अद्भुत कर्मकारी देवदेव भगवान् वासुदेवके वामनावतार विषयक चरित्र जो मनुष्य गावेंगे, वा सुनेंगे अथवा सुनावेंगे वा लिखेंगे, उनको परमश्रेष्ठगति प्राप्त हो जायगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं कि, हे परीक्षित् ! देवता अथवा पितरोंमें अथवा लौकिककर्म करनेके समय जिस जिस कार्यमें इस चारित्रका गान होगा, वह समस्त कार्य यथावत् पूर्ण होंगे, इस बातको पंडित गण भलीप्रकार जानते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भापाटीकायां वामनावतारानुचारित्रवर्णनं नाम त्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा–कथा मत्स्य अवतारकी, चौविसवें अध्याय । रक्षा सत्यव्रतकी करी, सो कहिहौं समुझाय॥ १ ॥ राजापरीक्षित् व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे भगवन् ! आपने जो अनुग्रह करके वामन अवतारकी कथा मुझे सुनाई सो मुझे अत्यन्त प्रिय लगी, अब कृपापूर्वक मुझे वह कथा सुनाइये कि, जिस्में अद्भुत कर्मकारी भगवान्के प्रथमावतारकी माया

जिसमें उन्होंने मायाके द्वारा मत्स्यरूप धारण किया था, मैं श्रवण करनेकी इच्छा करताहूं ॥ १ ॥ क्योंकि मत्स्यरूप लोकमें निन्दित है और तमोगुणी स्वभाववाला होनेके कारण सहनेके अयोग्य है, सो ईश्वरने कर्मग्रसितकी समान होकर इस रूपको किस कारण धारण किया था? ॥२॥ वह सब वृत्तान्त आप मुझसे यथार्थ २ कहिये। हे योगिन्! भगवान् उत्तमश्लोकके चरित्र सबकोही सुखके देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, जब राजापरीक्षित्ने इस प्रकारसे प्रार्थना की, तब व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी वह सब लीला कहनेलगे, जो कि विष्णुभगवान्ने मत्स्यरूप धारण करके की थी ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित्! गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु, धर्म और

यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ॥ तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्तमिवेश्वरः ॥ २ ॥ एतन्नो भगवन् सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः ॥ उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोविप्रसुरसाधूनां छंदसामपि चेश्वरः ॥ रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः ॥ नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥ आसीदतीतकल्पांते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥ समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥ कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ॥ मुखतो निस्सृतान्वेदान्हयग्रीवोऽतिकेऽहरत् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा तद्दानवेंद्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ॥ दधार शफरीरूपं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥

अर्थकी रक्षा करनेको समय समयपर विष्णुभगवान् अवतार लिया करते हैं ॥ ५ ॥ बुद्धिके गुण करके ऊंचे नीचे प्राणियोंमें पवनके समान आदिपुरुष भगवान् विचरण करते हैं। परन्तु निर्गुण होनेके कारण ऊंच नीचको नहीं भजते और मत्स्यावतारका जो प्रयोजन है वह भी सुनो ॥ ६ ॥ अतीत कल्पके अन्तमें जब ब्रह्माजीकी निद्राके लिये प्रलय हुई; तब भूरादि सब लोक समुद्रके जलमें डूबगये ॥ ७ ॥ तब समयके वश होकर ब्रह्माजी सो रहे थे, तब उस समय उनके वदनमेंसे सब वेद निकले कि, जिनको दानवेंद्र हयग्रीवने हरण कर लिया ॥ ८ ॥ हे राजन्! जब दानवश्रेष्ठ हयग्रीवका यह कर्म भगवान् वासुदेवने जाना, तब वह इस दैत्यको दमन करनेके लिये शफरीरूप (मत्स्यरूप)

जब उस मीनने दीनभावसे राजर्षिके प्रति कहा कि, हे राजन्! यहाँपर अति बलवान् मकरादि जन्तु हैं, सो वह हमको भक्षण करलेंगे । इसलिये आप हमको इस स्थानमें न छोडिये ॥ २४ ॥ जब उस मत्स्यके ऐसे वचन सुनकर राजर्षि सत्यव्रत अतिशय मोहित होगये और मत्स्यसे बोले कि " आप कौन हैं ? " और मत्स्यके रूपसे हमको क्यों मोहित करते हैं ॥ २५ ॥ हमने कभी इस प्रकारका जलचर देखा न सुना आपने एक दिनमें अपना शरीर बढ़ायकर शत योजनके विस्तारवाले सरोवरको ढकलिया ॥ २६ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि, आप नारायण अथवा हरि हैं प्राणियोंपर अनुग्रह करनेकेलिये आपने जलचर रूप धारण किया है ॥ २७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपको नमस्कारहै । आप

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ॥ अदंत्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ॥ तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥ नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ॥ यो भवान्योजनशतमह्नाऽभिव्यानशे सरः ॥२६॥ नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ॥ अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥ २७ ॥ नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ॥ भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २८ ॥ सर्वे लीलाऽवतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ॥ ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥२९॥ न तेऽरविंदाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ॥ यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ॥ विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकांतजनप्रियः प्रियम् ॥ ३१ ॥

सृष्टि स्थिति और प्रलयके अधीश्वर हैं । हे प्रभो ! हम आपके भक्त हैं और शरणागत हैं, आप हमारे आत्मा और आश्रय हैं ॥ २८ ॥ आपके समस्त लीला अवतार प्राणियोंकी विभूतिके अर्थ हैं तो सही पर इस रूपके धारण करनेका क्या कारण है ? सो मैं जानना चाहताहूं ॥ २९ ॥ हे अरविन्दलोचन ! देहाभिमानी पुरुषोंकी उपासना जिस प्रकार व्यर्थ होती है, वैसेही सर्वसुहृद् और प्रिय आत्मा आपके चरणोंकी जैसा करना वैसे व्यर्थ नहीं होसक्ता. क्योंकि हम लोग केवल आपके भक्त हैं तो भी आपने ऐसी अनिर्वचनीय दयाप्रकाश करके हमको यह अद्भुत मूर्ति दर्शन कराई ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब राजा सत्यव्रतने इसप्रकारसे

कहा, तब जगतपालक मत्स्यरूपी भगवान् प्रलयके समुद्रमें विहार करनेकी इच्छासे अपने मनकी बात उस राजासे कहने लगे, क्योंकि भक्तजन उनको अत्यन्त प्यारे होतेहैं ॥ ३१ ॥ मत्स्यरूपी भगवान् बोले कि, हे अरिन्दम ! आजसे सातवेंदिन प्रलय होगी और उस प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूबजायगी ॥३२॥ हे राजन् ! जब प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूबने लगेगी, तब उससमय हमारी भेजी हुई एक बड़ीनाव तुम्हारे निकट आवेगी॥३३॥ तुम उसको देखतेही सब प्रकारकी औषधियें और छोटे बडे समस्त बीज ग्रहण करके सप्तऋषियोंको लेकर सब प्राणियोंके साथ ॥ ३४ ॥ उस नावपर अति शीघ्रताके साथ चढ़जाना । उस नावमें चढ़कर विना खेदके तुम सब जगह घूमसकोगे । हे राजन् ! जब सब जलही जल होगा, तब

श्रीभगवानुवाच ॥ सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिंदम ॥ निमंक्ष्यत्यप्ययांभोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥
॥ ३२ ॥ त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ॥ उपस्थास्यति नौः काचिद् विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३ ॥
त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ॥ सप्तर्षिभिः परिवृतस्सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ३४ ॥ आरुह्य महतीं नावं
विचरिष्यस्यविक्लवः ॥ एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥ ३५ ॥ दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ॥
उपस्थितस्य मे शृंगे निबध्नीहि महाहिना ॥ ३६ ॥ अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ॥ विकर्षन्विचरिष्यामि
यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥ मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ॥ वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि
॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थमादिश्य राजानं हरिरंतरधीयत ॥ सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९ ॥

उजेला नहीं रहेगा, परन्तु तुम ऋषिलोगोंके तेजसे सब कुछ देखनेको समर्थ होगे ॥ ३५ ॥ फिर प्रलयपवनके लगनेसे जब वह नाव कम्पायमान होने लगेगी; तब हम भी तुम्हारे समीप आजायँगे, तब तुम बृहत् सर्परूप रस्सीसे हमारे सींगमें नावको बाँध देना ॥ ३६ ॥ जबतक ब्रह्माजीकी रात रहेगी; तबतक हम उस नावको ऋषि लोगोंके सहित प्रलयके समुद्रमें खैंचते फिरेंगे ॥३७॥ हे राजन् ! परब्रह्मपदवाच्य जो हमारी महिमा है वह हम उसीसमय तुम्हारे प्रश्न करनेपर कहेंगे । तुम हमारी प्रसन्नतासे उस महिमाको अपने हृदयमें जान सकोगे ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान् इसप्रकार सत्यव्रतको आज्ञा दे उसी स्थानमें अंतर्धान होगये इसके उपरान्त यह राजर्षि सावधान हो भगवान्के आज्ञा दियेहुए कालकी राह देखनेलगे ॥३९॥

अर्थात् सत्यव्रत राजा मत्स्यरूपी भगवान्के चरित्रका स्मरण करताहुआ पूर्वकी ओरको हैं अग्रभाग जिनके ऐसे कुशोंको बिछाय कर उत्तरकी ओरको मुखकर बैठगया ॥ ४० ॥ कुछ कालके पीछे दिखाई दिया कि, समुद्रका नीर तीरको तोड़ सर्व प्रकारसे पृथ्वीको डुबाता हुआ बढने लगा और भयंकर मेघ अनिवारित जलधारा वर्षाने लगे ॥ ४१ ॥ राजा सत्यव्रतने भगवान्की आज्ञाका विचार करते करते देखा कि, एक नाव निकट आपहुँची । मत्स्यमूर्ति भगवान्की आज्ञाका स्मरण कर वह सत्यव्रत सब प्रकारकी औषधि व लतादि लेके सप्तऋषियोंके साथ उस नावपर आरूढ होगया ॥ ४२ ॥ जब यह सत्यव्रत राजर्षि नौकापर चढे तब मुनिलोग बोले कि, हे राजन् ! भगवान् केशवका ध्यान करो।

आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ॥ निषसाद हरेः पादौ चिंतयन्मत्स्यरूपिणः ॥ ४० ॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन्महीम् ॥ वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥४१॥ ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम्॥ तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥४२॥ तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् ॥ स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥ सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ॥ एकशृंगधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः॥४४॥ निबद्ध्य नावं तच्छृंगे यथोक्तो हरिणा पुरा ॥ वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ अनाद्यविद्यो पहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ॥ यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥

वही हम लोगोंको इस संकटसे बचाय मंगल करेंगे * ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जब राजा सत्यव्रतने ध्यान किया तब एक शृंग धारण किये मत्स्य भगवान् साक्षात् समुद्रमें प्रगट हुये। इनका यह शृंग सुवर्णका था और देहकी लम्बाई एक लाख योजनकी थी ॥ ४४ ॥ राजर्षि सत्यव्रत भगवान्की आज्ञानुसार अहिडोरसे इस मत्स्यके शृंगमें नौका बाँध प्रसन्नचित्त हो भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करनेलगे ॥ ४५ ॥ राजर्षिसत्यव्रतने

* शंका–मुनियोंने भगवान्का ध्यान करनेके लिये राजासे कहा था कि, महाराज ! भगवान्का ध्यान करो परन्तु मुनियोंने भगवान्का ध्यान क्यों नहीं किया ? उत्तर–मुनिलोग शरीरके सुख होनेके लिये भगवान्का ध्यान नहीं करते, मोक्षके लिये भगवान्का ध्यान करते हैं । उस समय शरीरकी रक्षाका काम था, इसलिये मुनियोंने भगवान्का ध्यान नहीं किया ॥

कहा कि, हे भगवन् ! जिनपुरुषोंका अंतःकरण अनादि अविद्यासे ढकाहुआ है, इसकारण जो अविद्यारूप संसारके परिश्रमसे आतुर हैं वह लोगभी इस संसारमें जिसके अनुग्रहके लिये आश्रित हो जिसको प्राप्त होते हैं आप वही पुरुष हैं। हम लोगोंको मुक्तिके देनेवाले आप परमगुरु हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! यह जन अत्यन्त अबोध है, अपने कर्मोंसेही इसका बंधन हुआ है, यह सुखकी इच्छासे असुरोंकेसे कर्म करनेकी चेष्टा करता फिरता है परन्तु जिनकी सेवा करनेसे वह सुखकी इच्छा छूटजाती है वह हमारे हृदयकी गाँठको खोलदें, वही भगवान् हमारे परमगुरु हैं ॥ ४७ ॥ अहो ! चाँदी जिस प्रकार अग्निकी सेवा करके अपनी मलीनताको छोड़ अपने पहले रूपको प्राप्त होजाती है और हीनबल हो अपने रंग अर्थात् स्वरूपकी भजना करती है, वही अव्यय ईश हमारे गुरु होवें, क्योंकि वही गुरुकेभी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥ अहो ! देवता, गुरु व सब श्रेष्ठजन एकत्र होकर

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबंधनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ॥ यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रंथिं स भिंद्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७ ॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ॥ भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥ न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ॥ कर्तुं समेताः प्रभवंति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥ अचक्षुरंधस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ॥ त्वमर्कदृक्सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नस्स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ॥ त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमंजसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥

भी जिसके प्रसादके दश हजार भागकेभी एक किनकेको प्राप्त करनेके लिये समर्थ नहीं होसक्ते। हे भगवन् ! आप वही ईश्वर हैं, हम आपकी शरण हैं ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! अंधा जिस प्रकार अंधेको आगे करके चलै, वैसेही अविद्वान् पुरुष अबोधको अपना गुरु बनाता है। हम वैसे नहीं हैं। आपके जाननेकी इच्छा करते हैं। इसलिये आपकोही गुरु बनाते हैं, आपका ज्ञान सूर्यके प्रकाशकी समान स्वयंसिद्ध है और आपही सब इन्द्रियोंके प्रकाशक हैं ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! प्राकृत गुरु केवल अनर्थके हेतु हैं, वह पुरुषको कामादिककी मतिका उपदेश करते हैं। तिससे मनुष्य तरनेके अयोग्य संसारको प्राप्त होजाता है, सो आप इस प्रकारके नहीं हैं, आप यथार्थमें अव्यय और अव्ययार्थ ज्ञानका उपदेश दिया करते हैं तिससे सर्व

साधारण अर्थात् सब कोई आपके पदको प्राप्त होजाते हैं ॥ ५१ ॥ हे देव ! यद्यपि आप सब पुरुषोंके सुहृद्, प्रिय, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञान और अष्टसिद्धिस्वरूप हैं, तोभी अनेक दूसरी बुद्धि और कामके वश होकर अपने हृदयमें स्थित हुये आपको नहीं जानसक्ते ॥ ५२ ॥ परन्तु हम ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपकी शरणमें आये हैं । आप देवताओंमें श्रेष्ठ, वरेण्य और ईश्वर हैं । हे भगवन् ! आप परमार्थप्रकाशक वचनोंसे हमारे हृदयमें उत्पन्नहुई अहंकारादिकी गाँठ खोलिये और आज्ञा स्वरूप प्रकाश करनेकी आज्ञा हो ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब राजर्षि सत्यव्रतने इस प्रकारसे स्तुति की तब मत्स्यरूपी भगवान् आदिपुरुषने प्रलयके महासमुद्रमें विहार करते करते

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ॥ तथापि लोको न भवंतमंधधीर्जानाति संतं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥ तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ॥ छिंध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रंथीन् हृदय्या न्विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवंतं नृपतिं भगवानादिपूरुषः ॥ मत्स्यरूपी महांभोधौ विहरंस्तत्त्वम ब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥ अश्रौषी दृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ॥ नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥५६॥ अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ॥ हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः॥५७॥ स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ विष्णोः प्रसादात् कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५८ ॥

उस राजर्षिको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया था ॥ ५४ ॥ और सांख्ययोग व क्रियाविशिष्ट दिव्यपुराण संहिता, अर्थात् मत्स्यपुराण और अतिगुप्त करने योग्य आत्मतत्त्वकोभी बड़ी भारी व्याख्याके सहित कहा था ॥ ५५ ॥ ऋषिगणोंके सहित सत्यव्रत राजर्षि नावमें बैठकर ब्रह्म और श्रीभगवान्के कहेहुए उस समस्त आत्मतत्त्वको विशेष करके सनातन धर्मकी कथा श्रवण करनेलगा और कुछ संदेहभी कथाके श्रवण करनेमें नहीं हुआ ॥ ५६ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, हे भारत ! पहले प्रलयके अंतमें जब ब्रह्माजी सोकर उठे तो उन मत्स्यरूपी भगवान्ने हयग्रीव असुरका संहार कर फिर सब वेद ब्रह्माजीको देदिये ॥ ५७ ॥ और यह सत्यव्रत राजा भगवान्के प्रसादसे ज्ञान विज्ञान

सम्पन्न हो इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुआ है ॥ ५८ ॥ हे राजन् परीक्षित ! सत्यव्रत राजर्षिके और मायामत्स्यरूपी भगवान् विष्णुके इस अवतारका बड़ा पवित्र आख्यान श्रवण करनेसे सब पाप छूट जाते हैं, ॥ ५९ ॥ श्रीभगवान् वासुदेवके इस अवतारको जो मनुष्य दिन प्रतिदिन कहें सुनेंगे उनके सब कार्य सिद्ध होजाते हैं और अंतमें परमगतिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ६० ॥ अहो ! प्रलयसमुद्रके जलमें शयन करते हुए और शक्ति

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ॥ संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ५९ ॥ अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ॥ संकल्पास्तस्य सिध्यंति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥ प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमुपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ॥ दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥६१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

॥ समाप्तोयमष्टमस्स्कन्धः ॥

रहित विधाताके वदनसे निकलेहुए सब वेदोंको जिस दानवने हरण कर लिया और जिन्होंने मत्स्यरूपी होकर उस हयग्रीव राक्षसको मार सब वेद सत्यव्रत और सप्तर्षियोंसे कहे थे, उन अखिल कारण मायामत्स्यरूपी भगवान्को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां मत्स्यावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

१ छप्पय–जय जय नटवर वेप तरणि तनया तट लम्पट । जय जय छट पट लटक चटक भूषित वंशीवट । जय जय मणिगण जटित सुहाटक घटित मुकुट धर ॥ जय जय उत्कट शकट विपाटक वेणु लकुट कर ॥ जय जयति चटुल तर पीतपट धर अघटित घटना चरण ॥ जय जयति निपट पटु करण प्रभु मम इच्छा पूरण करण ॥ १ ॥

इदं पुस्तकं क्षेमराजश्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्–मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९७०. शके १८३५,

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुतेऽष्टमस्कन्धसमाप्तिः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कंधप्रारम्भः ॥

नवमस्कंधः



अश्विनीकुमार
सुकन्या
च्यवन
सूर्य
सहस्रार्जुन
परशुराम
श्रीराम
सीता
हनुमान
देवयानी
शर्मिष्ठा
ययाति

सोरठा—जय वृन्दावन चन्द, जय मुकुन्द गोविन्द हरि ॥ जय प्रभु आनँदकन्द, जगवन्दन दुष्टनदलन ॥ १ ॥ जय त्रिभुवन आधार, जय जय जीवन जगतपति ॥ मम उर करहु विहार, कर मुरली शिर मुकुट धर ॥२॥ हे वृन्दावन चन्द, यह वर दीजे दयाकर ॥ श्रीव्रजको आनन्द, नित्यप्रति निरखत रहौं ॥ ३ ॥ शीश मुकुट उरमाल, सँग राधा बाधा हरण ॥ इहि छबिसों नँदलाल, बसहु सदा मेरे हिये ॥ ४ ॥ श्रीयमुनाके तीर, गाय चरावत सखन सँग ॥ ता छबिसों यदुवीर, वास करहु मेरे हृदय ॥५॥ अहो मदन गोपाल, रास रसिक राधारमण ॥ हरहु जगत जंजाल, करहु दया जन जानकर ॥६॥ कर त्रिशूल शशिभाल, शीश गंग मन्मथ दहन ॥ गलमें गरल कराल, आठपहर झलकत रहत॥७॥दोहा—स्कन्ध नवममें वंश द्वै, सूर्य सोम विस्तारि ॥ तेरहग्यारहसोंभने, क्रम अध्याय विचारि ॥१॥ तहां प्रथम अध्यायमें वैवस्वतसुत वंश ॥ मध्यभन्यो सुद्युम्नके स्त्रीत्व जास विधुवंश ॥ २ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ मन्वंतराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥ योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ॥ ज्ञानं योऽतीतकल्पांते लेभे पुरुषसेवया ॥ २॥ स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥ त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥ तेषां वंशं पृथग् ब्रह्मन्वंश्यानुचरितानि च ॥ कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥ ये भूता ये भविष्याश्च भवंत्यद्यतनाश्च ये ॥ तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! सब मन्वन्तरोंका वृत्तान्त और उन मन्वन्तरोंमें अनन्तवीर्यवान् भगवान् हरिने जो वीर्य प्रकाश किया, वह सम्पूर्ण आपके अनुग्रहसे मैंने सुना ॥ १ ॥ हे योगिन् ! अतीत कल्पके अन्तमें द्रविडाधिपति सत्यव्रत नामक राजर्षिने भगवान्की सेवा करके जो ज्ञान प्राप्त किया ॥ २ ॥ और वह वैवस्वतके पुत्र मनु हुए थे इसकोभी मैंने सुना और उन वैवस्वत मनुके पुत्र जो इक्ष्वाकु आदि राजा हुये, उनका वृत्तान्तभी आप कहही चुके हैं ॥ ३ ॥ हे महाभाग ! इन इक्ष्वाकु आदिका पृथक् पृथक् वंश और वंशोंमें होनेवालोंके चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ, सो कृपापूर्वक आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! इस वंशमें जो पुरुष होगयेहैं और जो आगेको होंगे जो अब

वर्तमान हैं पुण्यकीर्तिवाले उन सब मनुष्योंका विक्रम आप यथार्थ यथार्थ मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंकी सभामें राजा परीक्षित्‌ने जब इस प्रकारसे पूँछा, तब परमधर्मज्ञ श्रीशुकदेवजी कथाका आरंभ करनेलगे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित ! मनुके वंशका वृत्तान्त हम कहतेहैं; तुम श्रवण करो। परन्तु इनका विस्तारसे वृत्तान्त तो हम सहस्रों वर्षतक नहीं कहसक्ते ॥ ७ ॥ हे राजन्! जो परम पुरुष पर अपर भूतोके आत्मा हैं, आगे केवल वही थे कल्पके अन्तमें उनके अतिरिक्त विश्वमें और कुछ वस्तु नहीं थी ॥ ८ ॥ उन परमपुरुषकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमल उत्पन्नहुआ। हे महाराज ! उस कमलसे चतुर्मुख ब्रह्माजीका जन्म हुआ ॥ ९ ॥ इन ब्रह्माजीके मनसे मरीचि जन्मे, उनके पुत्र

सूत उवाच ॥ एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप ॥ न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७ ॥ परावरेषां
भूतानामात्मा यः पुरुषः परः ॥ स एवासीदिदं विश्वं कल्पांतेऽन्यन्न किंचन ॥ ८ ॥ तस्य नाभेः समभवत्पद्मकोशो
हिरण्मयः ॥ तस्मिञ्जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९ ॥ मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ॥ दाक्षायण्यां
ततोऽदित्यां विवस्वानभवत्सुतः ॥ १० ॥ ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ॥ श्रद्धायां जनयामास दश
पुत्रान्स आत्मवान् ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ॥ नरिष्यंतं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥
॥ १२ ॥ अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल ॥ मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥ १३ ॥ तत्र श्रद्धा मनोः
पत्नी होतारं समयाचत ॥ दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ १४ ॥

कश्यपजी हुये, इन कश्यपजीकी भार्या दक्षकी बेटी आदितिके गर्भ और कश्यपजीसे सूर्यका जन्म हुआ॥ १० ॥ हे भारत ! इन सूर्यनारायणसे संज्ञाके गर्भमें श्राद्धदेव मनु उत्पन्नहुए। इन श्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धा हुई कि, जिनके गर्भसे इन महात्माके दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ उनके नाम यह हैं यथा इक्ष्वाकु, नृग, शर्य्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग, और कवि ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंकी उत्पत्तिके पहले मनुजी निःसन्तान थे, इसलिये महर्षि वसिष्ठजीने उनको मित्रावरुणका यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मनुकी भार्या श्रद्धा उस यज्ञमें केवल दूधही पीकर नियमसहित

होताके निकटगई और प्रणाम करके यह प्रार्थना करी कि आप ऐसा होम करें कि, जिससे मेरे कन्या उत्पन्नहो ॥ १४ ॥ श्रद्धाकी प्रार्थनासे "अहे यज्ञकर" इसप्रकार अध्वर्य्युसे प्रेरित हो, होताने हविके ग्रहण होजानेपर मनमें इस प्रकारका ध्यान और मुखसे "वषट्" शब्द उच्चारण करके मनुभार्याकी प्रार्थनाको पूर्ण किया, ॥१५॥ हे राजन्! जब होताने इस प्रकारसे आचरण किया तब मनुके इला नाम एक कन्या उत्पन्नहुई। पुत्रकी चाहना होनेके कारण पुत्रीके होनेसे मनुको संतोष नहीं हुआ। इसलिये वह असंतुष्ट हो वसिष्ठजीसे बोले कि ॥ १६ ॥ हे भगवन्! आप ब्रह्मवादी हैं। आप लोगोंका यह विपरीत कर्म कैसे हुआ? हा! कैसा कष्ट है? इस प्रकारसे मंत्रका उलटा होना उचित नहीं है ॥ १७ ॥ आपलोग ब्रह्मज्ञ और योगी हैं। तपकी

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः ॥ हविषि व्यचरत्तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥ १५ ॥ होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साऽभवत् ॥ तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥ १६ ॥ भगवन्किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ॥ विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद् ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ ॥ यूयं मंत्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ॥ होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनंदनम् ॥ १९ ॥ एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ॥ तथाऽपि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा ॥ २० ॥ एवं व्यवसितो राजन्भगवान्सुमहायशाः ॥ अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥ तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ स एकदा महाराज विचरन्मृगयां वने ॥ वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैंधवम् ॥ २३ ॥

अग्निसे आपके अनन्तपाप भस्म होगये हैं, देवता लोगोंमें अमृतकी समान आप सब लोगोंमें इस प्रकार संकल्पकी विषमता कैसे हुई? ॥ १८ ॥ हे राजन्! मनुके यह वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठजी होताके व्यभिचारको समझगये और मनुसे बोले कि ॥ १९ ॥ हे वत्स! यद्यपि तुम्हारे होताने अन्यथाचरण किया है, तौभी हम तुमको सुन्दर पुत्रही देंगे ॥२०॥ हे राजन्! वसिष्ठजी इस प्रकारसे कह मनुकी कन्या इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे भगवान् आदिपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ वसिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् शीघ्रही प्रसन्न होगये और संतुष्ट हो वसिष्ठजीको मनमाना वरदान दिया उस वरके प्रभावसे मनुकी कन्या इला सुद्युम्न नामक श्रेष्ठ पुत्र होगई ॥ २२ ॥ हे महाराज! यह सुद्युम्न एक दिन सिंधुदेशके उत्पन्नहुये

घोड़ेपर चढकर और कुछेक मंत्रियोंको साथले आखेटके लिये वनमें विचरण करनेलगा ॥ २३ ॥ उसके हाथमें रुचिर धनुष और विचित्र बाण था और शरीरमें दृढ बख्तर पहरे हुए था, इसलिये वह मृगोंके पीछे निर्भय दौड़ता हुआ उत्तर दिशामें पहुँचा ॥ २४ ॥ यहाँ सुमेरु पर्वतकी तलैटीमें सुकुमार वन है, जहाँ भगवान् भूतनाथ भूतेश्वर सदा पार्वतीजीके साथ रहकर विहार किया करते हैं, मनुका पुत्र सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ उसी वनमें पहुँचा । उसने वहाँ पहुँचतेही अपने आपको स्त्री देखा और अपने घोड़ेको घोड़ी रूप पाया ॥ २५ ॥ २६ ॥ और उसके सब सेवक अकस्मात् अपने अपने पुरुषपनमें विकार हुआ देख परस्पर एक दूसरेको निहार विस्मित हुये ॥ २७ ॥ यह सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! यह स्थान ऐसे गुणवाला कैसे हुआ ? और किस पुरुषने इस स्थानको ऐसा करदिया ? इस बातको सुनकर हमको बडा कौतूहल हुआ

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ॥ दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २४ ॥ स कुमारो वन मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह ॥ यत्रास्ते भगवाञ्छर्वो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥ तस्मिन्प्रविष्ट एवासौ सुद्यु म्नः परवीरहा ॥ अपश्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ ॥ तथा तदनुगास्सर्वे आत्मलिंगविपर्ययम् ॥ दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन्वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन्कृतः ॥ प्रश्नमेनं समा चक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ॥ दिशो वितिमिराभासाः कुर्वंतः समुपागमन् ॥ २९ ॥ तान्विलोक्यांबिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ॥ भर्तुरंकात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥ ३० ॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः ॥ निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥

है, सो आप कृपा करके इस प्रश्नकी व्याख्या कीजिये ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे नृपश्रेष्ठ ! एक समय श्रेष्ठ बुद्धिवाले ऋषिलोग भगवान् गिरीश (महादेवजी) का दर्शन करनेकी वासनासे सब दिशाओंका अंधकार दूर करते और प्रकाशको रहित करते केवल अपना प्रभाव प्रकाशित करते हुये इस वनमें गये थे ॥ २९ ॥ उस समय भगवती अम्बिकादेवी विवसन अर्थात् वस्त्ररहित थीं, इसलिये मुनि लोगोको देखकर अत्यन्त लज्जित हुईं और घबराय पतिकी गोदीसे उतर झटपट कटि वसन पहरलिये ॥ ३० ॥ हरंगौरीका विहार देखकर उन सब ऋषिगणोंका मनभी स्त्री प्रसङ्गसे कलुषित हुआ । और वह उसी समय वहाँसे लौटकर नर नारायणके आश्रमको चलेगये ॥ ३१ ॥

तिसके पीछे भगवान् भूतनाथ अपनी प्राणप्यारीका प्रियकार्य करनेको समझाते बुझाते हुये बोले कि, आजसे जो कोई इस स्थानमें आवेगा, वह उसीसमय स्त्री होजायगा ❀ हे राजन्! तबसे सब पुरुषोंने इस वनको छोड़ दिया कोई उस दिशाकोभी तो नहीं जाता था ॥ ३२ ॥ राजकुमार सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ इस वनमें प्रवेश करनेके पीछे वन वनमें भ्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥ सखी सहेली नारियोंके साथ उस सुद्युम्नको अपने

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ॥ स्थानं यः प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ तत ऊर्ध्वं वनं तद्वै पुरुषा वर्जयंति हि ॥ सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥ ३३ ॥ अथ तामाश्रमाभ्याशे चरंतीं प्रमदोत्तमाम् ॥ स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान्बुधः ॥ ३४ ॥ सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५ ॥ एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥ ३६ ॥ स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ॥ सुद्युम्नस्याशयन्पुंस्त्वमुपाधावत शंकरम् ॥ ३७ ॥

आश्रमके समीप भ्रमण करता हुआ भगवान् बुधजीने देखा ॥ ३४ ॥ देखतेही बुधके मनमें कामदेवका संचार हुआ। और वह सुद्युम्न जो कि, मनोहर स्त्रीके रूपमेंथे, चन्द्रमाके पुत्रको देख उनको पति बनानेकी अभिलाषा की ॥ ३५ ॥ इसलिये बुधने उसका पाणिग्रहण किया और उसके गर्भसे बुधके पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ हे राजन्! ऐसा सुना गया है कि, मनुके पुत्र सुद्युम्नने इस प्रकार स्त्रीपनको प्राप्त

* शंका–महादेवजी तो वडे शीलवान् और दयानिधान थे, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा? कि हमारे स्थानके सामने जो कोई पुरुषमात्र आवेगा वह उसी समय स्त्री हो जावेगा, चौरासी लाख योनिमें किसी योनिका पुरुष क्यों न हो? और तीन लोकमें जो चराचरप्राणी हैं वह सव अपने अपने कामकी सिद्धिके लिये शिवके समीप कैलासको जाते हैं और वह लोग स्त्री नहीं होते क्या कारण?

उत्तर–जव शिवजी शाप दे चुके तो पीछे अपने मनमें विचारा कि, अव क्या उपाय करना चाहिये उसी दिनसे कैलासके चारों ओर अपने गण वैठाल दिये हैं जो कोई प्राणी कैलासको आता है तो शिवगण एक कोस आगे उसको रोकलेते हैं, और शिवजीसे वूझते हैं कि, हे महाराज! अमुक पुरुष आपके दर्शनके लिये आये हैं, तव महादेव आज्ञादेते हैं कि, आनेदो, तव वह मनुष्यको कैलासकी सीमाके भीतर ले जाते हैं. इसलिये वह लोग स्त्री नहीं होते कोशभर पर खडा होनेका कारण यही हैं, कि जिस सीमाके भीतर आनेमें स्त्री होते हैं, उस सीमाके दूर वह एक कोश भरपर खडा करते हैं ॥

हो अपने कुलाचार्य महर्षि वसिष्ठजीको स्मरण किया था ॥ ३७ ॥ स्मरण करतेही महर्षि वसिष्ठजी इनके समीप आये और इनकी यह दशा देख दयासिंधु दयाके मारे अति दुःखित हुये। और फिर उनको पुरुष करनेकी इच्छासे श्रीमहादेवजीके निकट जाय उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ हे राजन्! वशिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् उनके प्यारे कार्यको और अपने वचनको सत्य करनेके लिये यह बोले कि तुम्हारे गोत्रमें उत्पन्नहुआ सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहेगा। इस व्यवस्थासे यह सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करेगा ॥३९॥ हे राजन्! इस प्रकारसे कुलाचार्य वशिष्ठजीकी कृपासे यद्यपि सुद्युम्न पुरुषत्व पाय व्यवस्थापूर्वक पृथ्वीका पालन करता था परन्तु महीनेके महीने स्त्री होजानेसे छिपकर सभामें न आता, इसलिये

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ॥ स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥ ३८ ॥ मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ॥ इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ॥ पालयामास जगतीं नाभ्यनंदन्स्म तं प्रजाः ॥४०॥ तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च सुतास्त्रयः ॥ दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१ ॥ ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥ पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे इलोपाख्याने सुद्युम्नस्य स्त्रीपुंस्त्वयोः प्राप्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥ पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥

प्रजा उनसे असंतुष्ट थीं ॥ ४० ॥ इस राजा सुद्युम्नके तीन पुत्र थे, उत्कल, गय और विमल। यह तीनों जन धर्मपरायण थे और दक्षिण देशका राज्य करते थे ॥ ४१ ॥ प्रतिष्ठान पुरीका (जो अब प्रयागमें गंगाजीके पार झूसी नामसे प्रसिद्ध है) पति सुद्युम्न वृद्धावस्थाको प्राप्त हुआ देख अपने पुत्र पुरूरवाके हाथमें राज्यका भार सौंप वनको चलागया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—मनु द्वै सुत वैराग्यसे, रहे असुत वन जाय। करुपादिक पँचसुतनकी, कथा द्वितिय अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे नृपोत्तम! सुद्युम्नकी इस प्रकारसे अवस्था हुई तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामना करके शतवर्षतक यमुनामें तप

किया था ॥ १ ॥ तिसके पीछे सन्तानके अर्थ भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया; तिस यज्ञके करनेसे उन्होंने अपने योग्य दश पुत्र पाये । इन दश पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे ॥ २ ॥ हे राजन् ! मनुके पृषध्रनामक जो पुत्रहुआ था, उसको मनुजीने गोपालक बनाया इसलिये वह पुत्र वीरासन व्रत धारण करके रात्रिके समय सावधान होकर गायोंकी रक्षा करता था ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिके समय जल वर्षरहा था कि उसी समय एक सिंह आनकर गोठमें घुस गया । उसके घुसतेही गोठमें जितनी गायें सो रही थीं सब डकरायकर इधर उधर दौड़ने लगीं ॥ ४ ॥ गोठमें घुसा हुआ सिंह अतिशय बलवान् था, वह एक गायको जब पकड़कर भागने लगा, तब वह एक गाय अति आर्त होकर पुकारी, उस गायका

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ॥ इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्रान् लेभे स्वसदृशान् दश ॥ २ ॥ पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥३॥ एकदा प्राविशद् गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ॥ शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥ एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ॥ तस्यास्तत्क्रंदितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥ ५ ॥ खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ॥ अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशंकया ॥ ६ ॥ व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाऽग्राहतस्ततः ॥ निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥ ७ ॥ मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ॥ अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥ तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसम कामतः ॥ न क्षत्रबंधुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥ ९ ॥

डकराना सुनकर पृषध्र उस शार्दूलके पीछे दौड़ा ॥ ५ ॥ एक तो रात ऐसी अँधियारी थी, कि अपना देहभी नहीं दिखाई देता था, दूसरे घनघोर घटासे औरभी अंधकार होरहा था, कि जिससे कुछ नहीं दीखता था, इसलिये पृषध्रने खड्ग ग्रहण करके समीप व्याघ्र समझ अज्ञानतासे गायका शिर काट डाला ॥ ६ ॥ इस खड्गके चलानेसे सिंहकाभी कान कट गया वह अत्यन्त भीत हो मार्गमें रुधिर गिराता हुआ भागगया ॥ ७ ॥ पृषध्रने मनमें समझा था कि सिंह मरगया, परन्तु जब प्रभात हुआ तो देखा कि, कपिला मारी गई, तब बहुतही दुःखित हुआ ॥ ८ ॥ हे राजन् ! यद्यपि राजकुमार पृषध्रने यह अपराध अनजानमें किया था, तौ भी कुलपुरोहितने गायके शोकसे व्याकुल हो उसको यह शापदिया

कि, रे पापिष्ठ ! तू क्षत्रियोंका बंधुभी नहीं हो सकेगा बरन् इसी जन्ममें क्रमसे शूद्र होगा ❀ ॥ ९ ॥ जब इस प्रकारसे आचार्यने शाप दिया, तब पृषध्रने हाथ जोडकर उसको अंगीकर किया, फिर ब्रह्मचर्य धारणकर मुनियोंके प्यारे व्रतको ग्रहण किया ॥ १० ॥ तिसके पीछे सर्वात्मा निर्मल परमपुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करके एकान्तताको प्राप्त, सर्व प्राणियोंका सुहृद् और सबको समान अर्थात् बराबर देखनेवाला हुआ । उसने

एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः ॥ अधारयद्व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥ १० ॥ वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले ॥ एकांतित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥ ११ ॥ विमुक्तसंगः शांतात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥ १२ ॥ आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः ॥ विचचार महीमेतां जडांधबधिराकृतिः ॥ १३ ॥

संग छोड़ दिया, उसकी आत्मा शान्त होगई, दोनों नेत्र जिसके वशमें होगये संग्रहको त्याग अपने आपसे जो कुछ मिल जाता था, उसीसे अपनी जीविका करताथा ॥ ११ ॥ १२ ॥ और परमात्मामें आत्माको लगाकर ज्ञानसे तृप्त हो जड़ अंध, अथवा बहरेकी समान पृथ्वीपर घूमताथा ॥१३॥

* शंका– गौका वध करनेवाला राजा पृषध्र जो था उसको वसिष्ठजीने यह शाप दिया कि, तू गायका मारनेवाला है, इस दुष्ट कर्मके करनेसे शूद्रयोनिको प्राप्तहोगा, ऐसा शाप उसको क्यों दिया ? क्योंकि गायका वध करना शूद्रका कर्म नहीं है, चाण्डालका कर्म है,

उत्तर–सत्ययुगमें त्रिदण्डीनाम मुनि किसी समय बाज पक्षीका रूप धरकर ससारमें भ्रमण करते थे, एक दिन यमपुरीको अपनी इच्छासे कौतुक देखनेके लिये चलेगये, तब यमपुरीकी स्त्री मुनिका चरित्र जानकर कौतूहल करनेके लिये गौका रूप धरकर पक्षी रूप जो मुनि थे उनको अपने शृंगोंसे मारनेके लिये दौडी, तब मुनिने शाप दिया कि बारह १२ वर्ष तू गाय रूप रहैगी इसलिये वह यमपुरीकी स्त्री गाय बनकर अयोध्याके राजाकी गायोंमें रहा करती थी उसकी गोरूप स्त्रीको पृषध्रने दैवयोगसे मारडाला , तब मुनिका शाप छूटकर पृषध्रकी मोक्ष होनेके लिये आशीर्वाद देकर अपने पतिके पास गई. वशिष्ठजीने ध्यान करके सब चरित्र जान लिया और दो काम विचारकर गायोंका महात्म्य बढानेके लिये, कि आगेको कोई ऐसा काम न करै और पृषध्रकी मोक्ष होनेके लिये शाप, दिया कि जा ? तू शूद्र होजा, कोई बूझै कि शूद्र होनेका शाप क्यों दिया तो शूद्र होनेका कारण यह है कि शूद्र अभिमान रहित होते हैं और श्री गगाजीका भाई भी शूद्र है और यह सबको विदित हैं कि, भगवान्के चरणसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं और गगाजी भी भगवान्के चरणोंसे निकली हैं, इसलिये दो गुण करके शूद्रकी मुक्ति शीघ्र होती है, इसलिये वशिष्ठजीने पृषध्रको शूद्र होना कहा था ॥

हे राजन् ! इसप्रकार आचार्य व्यवहारयुक्त हो पृषध्रने वनमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म करदिया और परब्रह्मके पदको प्राप्त हुआ ॥१४॥ हे महाराज ! मनुका छोटा पुत्र कवि विषयका लालच छोड़ बंधु बांधवों सहित राज्यको छोड़नेके पीछे परमपुरुषको हृदयमें धारण करके किशोर अवस्थाके समयमेंही वनको चला गया । इसलिये उसका भी वंश आगेको न चला ॥ १५ ॥ परन्तु मनुके करूष नामक जो पुत्र था, उससे कारूप आख्यासे विख्यात क्षत्रिय जातिकी उत्पत्ति हुई; वह जाति ब्रह्मनिष्ठ, धर्मरक्षक और उत्तर मार्गके देश की राजा हुई ॥१६॥ इस प्रकार धृष्टनामक मनुके पुत्रसे धार्ष्ट्य नामसे प्रसिद्ध क्षत्रियोंकी जाति उत्पन्न हुई । वह इस पृथ्वीमण्डलपर ब्राह्मणपनको प्राप्त हुई है। हे राजन् ! नृगनामक जो मनुका

एवं वृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ॥ तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥ १४ ॥ कविः कनीयान् विषयेषु निस्स्पृहो विसृज्य राज्यं सह बंधुभिर्वनम् ॥ निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥ १५ ॥ करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः ॥ उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥ धृष्टाद्धार्ष्टमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ॥ नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७ ॥ वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता ॥ कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥ चित्रसेनो नरिष्यंताद्दृक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इंद्रसेनस्तु तत्सुतः ॥ १९ ॥ वीतिहोत्रस्त्विंद्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत् ॥ उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥ २०

था, उसका पुत्र सुमति, उसका पुत्र भूतज्योतिः और उसका संतान वसु हुआ ॥१७॥ वसुका पुत्र प्रतीक, उसका पुत्र ओघवान हुआ, इस ओघवानके औघवान नामक एक पुत्र और औघवती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई । उस औघवती कन्याके साथ राजा सुदर्शनने विवाह किया ॥१८॥ हे राजन् ! नरिष्यन्त नामक जो मनुका पुत्र था, उसका पुत्र चित्रसेन, उस चित्रसेनका पुत्र ऋक्ष उसका पुत्र मीढ्वान् और मीढ्वान्से कूर्च उत्पन्न हुआ, उस कूर्चके इन्द्रसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ इन्द्रसेनका पुत्र वीतिहोत्र और वीतिहोत्रसे सत्यश्रवाने जन्म ग्रहण किया इस सत्यश्रवाका पुत्र

उरुश्रवा और उरुश्रवासे देवदत्तकी उत्पत्ति हुई ॥ २० ॥ देवदत्तके पुत्र अग्निवेश्य हुए। यह स्वयं भगवान् अग्नि उत्पन्न हुएथे; यह अग्निवेश्यही कानीन और जातूकर्ण्य नामसे विख्यात महान् ऋषि हुए थे और उनसेही आग्निवेश्यायन नाम प्रसिद्ध ब्रह्मकुलकी उत्पत्ति हुई है॥२१॥ हे नृप! नरिष्यंतके वंशका वर्णन हुआ, अब दिष्टवंशका वर्णन करता हूं सो आप मन लगाय एकाग्रचित्त हो सुनिये ॥२२॥ दिष्टका पुत्र नाभाग, पीछे जिस नाभागकी कथा कहेंगे वह यह नाभाग नहीं है, यह और है जो कर्मद्वारा वैश्यपनको प्राप्त हुआथा, इसका पुत्र भलन्दन और भलन्दनसे वत्सप्री

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः ॥ कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥ २१ ॥ ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ॥ नरिष्यंतान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२ ॥ नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥ भलंदनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलंदनात् ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ॥ खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥ २४ ॥ विविंशतिसुतो रंभः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ॥ करंधमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृपः ॥ २५ ॥ तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत ॥ संवर्त्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यंगिरस्सुतः॥ २६ ॥ मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कश्चन ॥ सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम् ॥ २७ ॥ अमाद्यदिंद्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥ २८ ॥

तिकी उत्पत्ति हुई ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिका पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति, प्रमतिका पुत्र खनित्र, तिससे चाक्षुषने जन्म ग्रहण किया। चाक्षुषका पुत्र विविंशति ॥२४॥ तिसका पुत्र रम्भ, रम्भका पुत्र खनिनेत्र, जोकि परमधार्मिक हुआ, इस खनिनेत्रके पुत्र करन्धम राजाहुये ॥ २५ ॥ करन्धमके पुत्र अवीक्षित् अविक्षित्के मरुत्त जो कि, चक्रवर्ती हुए। जिनको अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्त्तने यज्ञ करायाथा ॥ २६ ॥ इस मरुत्तके यज्ञकी समान किसीका यज्ञ प्रसिद्ध नहीं है। उनके यज्ञके मध्य सब पात्र सुवर्णके बने हुए शोभायमानथे ॥ २७ ॥ जिनके यज्ञमें सोमपान करके

सुरेन्द्र प्रसन्न हुये बहुत सारी दक्षिणा पाय ब्राह्मणोंको हर्ष होताथा, इस यज्ञमें मरुद्गण परोसने वाले और विश्वेदेवागण सभासद हुएथे ॥ २८ ॥ इन मरुत्तके पुत्र दम, तिनके पुत्र राज्यवर्द्धन, तिनके सुत सुधृति सुधृतिका पुत्र नर ॥ २९ ॥ तिनका पुत्र केवल, तिससे बन्धुमान् उत्पन्न हुए। बन्धुमान्के पुत्र वेगवान्, तिनके पुत्र बंधु, तिनके संतान तृणबिन्दु राजा हुये ॥ ३० ॥ यह राजा अति उत्तमोत्तम गुणविभूपित था, श्रेष्ठ अप्सरा अलम्बुषा देवी उनके गुणोंपर मोहित हो, उनके संग हुई. इस अलम्बुषा अप्सराके तृणबिन्दुसे कई एक पुत्र और इडविडा नामक एक कन्या उत्पन्न

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्धनः ॥ सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥ २९ ॥ तत्सुतः केवलस्तस्माद्बंधुमान्वेगवांस्ततः ॥ बंधुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिंदुर्महीपतिः ॥ ३० ॥ तं भेजेऽलंबुषा देवी भजनीयगुणालयम् ॥ वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाऽभवत ॥ ३१ ॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ॥ प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥ ३२ ॥ विशालश्शून्यबंधुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ॥ विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥ ३३ ॥ हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ॥ तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवजः ॥ ३४ ॥ कृशाश्वात्सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ॥ इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥ ३५ ॥

हुई ॥ ३१ ॥ हे राजन्! योगीश्वर विश्रवाजी ऋषिने अपने पिताजीसे परमविद्याको प्राप्त होकर इस इडविडाके गर्भमें कुबेरको उत्पन्न किया ॥३२॥ अब तृणबिन्दुके पुत्रोंका वृत्तान्त सुनो। विशाल, शून्यबन्धु और धूम्रकेतु, यह तीन जन तृणबिंदुके पुत्र हुए। उनमें विशालही वंशकारी राजा हुआ। और उसने वैशाली नामक एक पुरी भी बनाई ॥३३॥ इस विशालका पुत्र हेमचन्द्र हेमचन्द्रका पुत्र धूम्राक्ष और इसका पुत्र संयम हुआ संयमके देवज और कृशाश्व यह दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ उनमें कृशाश्वका पुत्र सोमदत्त हुआ कि, जिसने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपति परम

पुरुषकी पूजा कर योगीश्वर लोगोंकी आश्रित उत्तमगति प्राप्त की ॥ ३५ ॥ सोमदत्तका पुत्र सुमति, सुमतिका पुत्र जनमेजय हुआ, श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! विशालवंशमें यह राजागण उत्पन्न हुए यह सब राजा तृणबिन्दुका यश धारण करनेवाले थे ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–मनुसुत वंश शर्यातिके, भई सुकन्या एक । तिसरे में रैवतकथा, वरणौं सहित विवेक ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! मनुका पुत्र शर्य्याति अति ब्रह्मनिष्ठ राजा हुआ । उसने अंगिरागणोंके यज्ञमें दूसरे दिवसका कर्तव्य कर्म उपदेश किया ॥ १ ॥ इस राजाके कमलके समान नेत्रवाली सुकन्या नाम एक कन्या हुई । एक समय राजा उसको साथले वनमें गया, जहां कि च्यवन मुनिका आश्रम था ॥ २ ॥ उस वनमें यह राजकुमारी अपनी सुकुमारी सखियोंके साथ फूल पत्तोंको

सोमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ॥ एते वैशालभूपालास्तृणबिंदोर्यशोधराः ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे कारूषकादिवंशानुकीर्त्तनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥ यो वा अंगिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥ १ ॥ सुकन्या नाम तस्यासीत्कन्या कमललोचना ॥ तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥ २ ॥ सा सखीभिः परिवृता विचिन्वंत्यंघ्रिपान्वने ॥ वल्मीकरंध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥३॥ सा दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ॥ अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत् सैनिकानां च तत्क्षणात् ॥ राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत्॥५॥ अप्यभद्रं न युष्मा भिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ॥ व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥

एकत्र करते करते एक स्थानमें गई और उसने उसी वनके मध्य बॅबईकी मट्टीके छेदमें पटबीजनेकी समान दो प्रकाशवान् वस्तु देखीं ॥ ३ ॥ यह देखकर राजकुमारी सुकन्याको अतिकौतूहल उत्पन्न हुआ, उसने भाग्य प्रेरितकी समान हो, उसीसमय एक कांटा ग्रहणकर मोहसे उन प्रकाशित छिद्रोंको फोड़दिया । हे राजन् ! विद्ध होतेही उस बम्बईके छिद्रोंमेंसे बराबर रुधिरकी धार निकलने लगी ॥ ४ ॥ राजा शर्य्यातिके साथ जो सेना थी, उन सब वीरोंका मल मूत्र रुकगया. यह देखकर राजा शर्याति विस्मित हुआ । और अपने साथी पुरुषोंसे पूंछनेलगा ॥५॥ क्या तुममेंसे किसीने महर्षि च्यवन ऋषिका कुछ अपराध किया है ? हमको भली भांति जान पड़ताहै कि, हम लोगोंमेंसे किसीने महर्षिके

आश्रमको दूषित किया होगा ॥ ६ ॥ यह सुनकर सुकन्याने भीत हो अपने पितासे निवेदन किया कि, हे पितः ! मुझसे कुछ अपराध हुआ है। मैंने न जानकर एक काँटेसे दो प्रकाशित पदार्थोंको वेध डाला है ॥ ७ ॥ बेटीके यह वचन सुनकर राजा शर्यातिको बड़ा भय हुआ। बँबईमें मुनि अंतर्हित हुए हैं उनके निकट जा विविध भाँतिकी स्तुतिसे प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त महर्षिका अभिप्राय जान राजाने अपनी कन्या उनको देदी । हे राजन् ! इस प्रकार राजा शर्याति विपदसे छूट, मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीसे सम्भाषण करनेके पीछे सावधान चित्तसे अपने स्थानको लौटगया ॥ ९ ॥ इस ओर अपने पति परमक्रोधी च्यवन ऋषिके योग्य चित्तकी जाननेवाली सुकन्या सावधान होकर सदा चित्तको देखकर उनकी

सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित्कृतं मया ॥ द्वे ज्योतिषी अजानंत्या निर्भिन्ने कंटकेन वै ॥ ७ ॥ दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ॥ मुनिं प्रसादयामास वल्मीकांतर्गतं शनैः ॥ ८ ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद्दुहितरं मुनेः ॥ कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामंत्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥ ९ ॥ सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ॥ प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्ताऽनुवृत्तिभिः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ॥ तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥ ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ॥ क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥ १२ ॥ बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनंद्य भिषक्तमौ ॥ निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसंततः ॥ ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः ॥ १४ ॥

सेवा करती थी ॥ १० ॥ कुछ कालके बीतनेपर एक दिन दोनों अश्विनीकुमार उनके आश्रममें आये । मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीने भली भाँति उनकी पूजा करके कहा कि, आप दोनों जन बड़े वैद्य हैं, सो कृपा करके हमको आप युवा कर दीजिये ॥ ११ ॥ स्त्रियें जिसरूप और जिस वयसको चाहती हैं वही तुम हमको देदो । तुम सोमपानरहित हो, कभी सोमपान नहीं किया है सो हम सोमयज्ञ करके तुमको सोमपूर्ण पात्र देवेंगे ॥ १२ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवनजीके यह वचन सुनकर दोनों अश्विनीकुमारोंने कहा कि "यही करते हैं" यह कह फिर आनन्द प्रकाशकर बोले कि, अच्छा तो पहले सिद्धोंके बनाये इस सरोवरमें स्नान करनेको चलिये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार कहनेसे जरासे ग्रसित है देह जिनका, नसें दिखाई देती हैं

कुप्यारे पकेहुए केशवाले महर्षि च्यवनजी इन दोनों देव वैद्योंके साथ सरोवरमें घुसे। अर्थात् दोनों अश्विनीकुमार इनको लेकर सरोवरमें घुसे॥ १४॥ कुछ देर पीछे उस सरोवरसे सुडौल शरीरवाले, रमणीप्रिय, तीन पुरुष निकले. तीनों जनोंके गलोंमें कमलकी मालायें पड़ी हुए थीं; कानोंमें कनक (सुवर्ण) कुण्डल विराजमान थे; तीनोंका स्वरूप अनुपम था और वस्त्रोंकी शोभा एक अपूर्वही भावको धारण किये हुए थी ॥ १५ ॥ तीनों जनेही सूर्यके समान तेजस्वी, समानरूप और समान अवस्थावाला देख पतिव्रता सुकन्याको अति विस्मय प्राप्त हुआ और वह नहीं

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः ॥ पद्मस्रजः कुंडलिनस्तुल्यरूपास्सुवाससः ॥ १५ ॥ तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः ॥ अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥ १६ ॥ दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ॥ ऋषिमामंत्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ॥ ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥

पहँचान सकी कि, हमारे पति कौनसे हैं ? इसलिये दोनों अश्विनीकुमारोंकी शरण गई अर्थात् उसने यह प्रार्थना करी कि, आप लोग पृथक् होकर हमारे पतिको हमें दिखादें ❊ ॥ १६ ॥ सुकन्याका पातिव्रत्य देख अश्विनीकुमारोंको संतोष हुआ और अपने आप अलग हो उसे उसके पति च्यवन ऋषिको देदिया. तिसके पीछे महर्षि च्यवनजीसे सम्भाषण कर वह दोनों अश्विनीकुमार विमानपर बैठ स्वर्गको गये॥ १७॥ हे राजन्! कुछेक कालके पीछे शर्याति राजाने यज्ञ करनेके लिये च्यवन ऋषिके आश्रममें जाकर देखा कि, कन्याके धोरे सूर्यके समान एक तेजस्वी पुरुष बैठे हुए हैं॥ १८॥

❊ शंका—सुकन्या अपने सन्मुख एक सरीखे तीन पुरुष खडे देखके अश्विनीकुमारकी शरणमें कैसे गई ? क्योंकि वह तो तीनों एक ठौर रहे थे, दीपक दीपकसे जलावे तो यह कैसे जान पडेगा कि, यह तिलके तेलका है यह अलसीके तेलका है, यह घीका दीपक है, ऐसेही वह तीनों एक रूप थे फिर उसने अश्विनीकुमारोंको कैसे पहँचाना ?

उत्तर—सुकन्याने अपने मनमें अश्विनी—कुमारोंका ध्यान किया था और उन दोनों देवताओंके सन्मुख वह नहीं गईथी, उसने अश्विनीकुमारोंका ध्यान करके वारम्वार उन्हींकी प्रार्थनाकी कि, हे महाराज ! हे दीनवत्सल !! हे कृपासिन्धो !!! आप दोनों जने मेरे पिताकी समान हो किसी प्रकार कृपा करके मेरे पतिको मुझे दिखा दो, जब अश्विनीकुमारोंकी इस प्रकार विनयकी तो उसका पति उसको मिलगया ॥

सुकन्या पिताको देखकर शीघ्रतासे उठी और उनके चरण छुए । राजा शर्यातिने आशीर्वाद दिया, परन्तु यह विचार वह प्रसन्न न हुए कि, हम जरा जीर्णच्यवन ऋषिको अपनी कन्या देगये थे,वह आश्रममें नहीं हैं । वरन् उनके बदलेमें स्वरूपवान् एक और युवा पुरुष बैठा हुआ है. यह सोचकर उनको बडी शंका हुई । तब वह अप्रसन्न होकर अपनी बेटीसे बोले ॥ १९ ॥ कि,यह क्या करनेकी वासना की है? अरी असत्यन ! तेरे पतिः लोकोंके नमस्कार करने योग्य हैं,उनको तैंने क्यों ठगा ? जराग्रसित होनेके कारण तू उनसे प्रसन्न न हुई । इससेही इस पथिकको उपपति बनाय तू भजती है ॥ २० ॥ अरे कुलकलंकिनि ! तैंने अति बुरे कुलमें उत्पन्नहुई स्रीकी बुद्धि करनेका किस प्रकारसे साहस किया ? हा ! हमारे कुलको दूषित किया, निर्लज्ज होकर

राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवंदनाम् ॥ आशिषश्चाप्रयुंजानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥ चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलंभितो लोकनमस्कृतो मुनिः ॥ त्वं यज्जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥ कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ॥ बिभर्षि जारं यदपत्रपाकुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥२१॥ एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ॥ उवाच तात जामाता तवैष भृगुनंदनः ॥ २२ ॥ शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलंभनम् ॥ विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३ ॥ सोमेन याजयन्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ॥ असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥ हंतुं तमाददे वज्रं सद्यो मन्युरमर्षितः ॥ सवज्रं स्तंभयामास भुजमिंद्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥

उपपतिकी पूजा करती है । पिता और पतिके कुलको तैंने एक बारही डुबायदिया ॥ २१ ॥ पिताजीके यह वचन सुन मन्द मुसकानवाली सुकन्या विस्मित हो कहने लगी कि, हे पिताजी ! यही आपके जमाई हैं,यही भृगुनन्दन च्यवनजी हैं ॥२२॥ फिर जिस प्रकारसे इनको रूपयौवनकी प्राप्ति हुई थी,वहभी सब वृत्तान्त पिताजीको कह सुनाया । यह सुन राजा शर्यातिने विस्मित और प्रसन्न होकर अपनी सुकन्याको हृदयसे लगाया ॥२३॥ हे राजन् ! तिसके पीछे महर्षि च्यवनजीने शर्याति राजाको सोमयज्ञ कराय सोम पीनेके योग्य न होनेपरभी अश्विनीकुमारोंको सोम पीनेको दिया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इन्द्रको तत्कालही क्रोध होआता है,उसने यह देख च्यवनऋषिका विनाश करनेके लिये वज्र हाथमें लिया था; परन्तु भृगुनन्दनने

अपने ब्रह्मतेजसे वज्रसहित इन्द्रका हाथ स्तम्भित करदिया ॥२५॥ यद्यपि पहले चिकित्सक होनेके कारण अश्विनीकुमार सोमयज्ञसे बाहर थे,तथापि तबसे सब देवताओंने उनको यज्ञमें सोम देनेके लिये अंगीकार किया ॥२६॥ इन शर्य्यातिके तीन पुत्र उत्पन्न हुये उत्तानबर्हि,आनर्त और भूरिसेन इन तीनोंमें आनर्तके रेवत नाम एक पुत्र हुआ॥२७॥ हे अरिन्दम ! यह रेवत सागरके बीचमें कुशस्थली नामक एक नगरी बसाय उसमें विराजमान हो आनर्त्तादि देशोंका पालन करताथा ॥२८॥ उसके शत पुत्र जन्में, उनमें ककुद्मी बड़ा और गुणोंमें श्रेष्ठ था यह ककुद्मी रेवती नामक अपनी कन्या को साथले उसके लिये वर ढूंढनेको ब्रह्माजीके पास गया ॥ २९॥ उस समय ब्रह्माजीकी सभामें गन्धर्वोंका गाना होरहाथा, इसलिये अवसर न पाय

अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ॥ भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥ उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ॥ शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥ सोऽतः समुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुंक्त विषयानानर्तादीनरिंदम ॥ २८ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मि ज्येष्ठमुत्तमम् ॥ ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥ कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ॥ आवर्त्तमाने गांधर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ॥ ३० ॥ तदंत आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥३१ ॥ अहो राजन्निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२॥ कालोभियातस्त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः ॥ तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥ कन्यारत्नमिदं राजन्नररत्नाय देहि भोः॥ भुवो भारावताराय भगवान्भूतभावनः ॥ ३४ ॥ अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ इत्यादिष्टोऽभिवंद्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥

कर ककुद्मी वहां क्षण कालतक ठहरा। और फिर अवकाश पाय प्रणाम करके अपना सब अभिप्राय निवेदन किया ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यह सुन ब्रह्माजी हँसकर बोले कि, हे राजन् ! तुमने जिन पुरुषोंको विचारा है, उन सबको कालने संहार कर डाला। इस समय उनके बेटे पोते और नातियोंका गोत्र व नाम मात्रभी नहीं सुनाजाता॥३२॥मूल बात यह है कि, तुमको यहाँ सत्ताईस चौकड़ी युग बीतगये इसलिये जाओ देवदेवके अंशसे जो महा बलवान् बलदेव हैं ॥ ३३ ॥ उन नररत्नको तुम यह अपनी कन्यारत्न समर्पण करो। हे राजन् ! जिनके कहने सुननेसे पुण्य होता है, वह भूत

भावन भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतार लेचुके हैं इस प्रकारसे आज्ञा पाय ककुद्मी ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने पुरमें आया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इनके भ्रातालोग यक्षोंके भयसे इस पुरीको छोड़कर सब दिशामें भागगये थे इसके पीछे दूषणरहित अंगवाली अपनी बेटीको बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदेवको इस राजाने देदिया और आप तप करनेके लिये नारायणके स्थान बदरिकाश्रमको चलागया ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–चतुर्थ मनुसुत नभगको, कहौं सहित विस्तार । अम्बरीष ताके तनय, भये भक्त आधार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, नभगका पुत्र नाभाग हुआ । इस नाभागने जब बहुत कालतक गुरुकुलमें वास किया; तब नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भ्राता लोगोंने झगडा करनेके समय इनके लिये पिताके धनका अंश नहीं रक्खा ॥ १ ॥ जब नाभाग ब्रह्म

त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ सुतां दत्त्वाऽनवद्यांगीं बलाय बलशालिने ॥ बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे शर्यात्यन्वयनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम् ॥ यविष्ठं व्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥ भ्रातरोऽभांक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ॥ त्वां म आर्यास्तताऽभांक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥ इमे अंगिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ॥ षष्ठंषष्ठमुपेत्याह कवे मुह्यंति कर्मणि ॥ ३ ॥

चर्यकी समाप्ति करके गुरुकुलसे अपने घरपर आया, तब उसके भाइयोंने पिताकोही उसके भागमें रक्खा, अर्थात् जब नाभागने आनकर भाइयोंसे पूंछा कि, तुमने हमारे लिये क्या रक्खा है ? तब भाइयोंने कहा कि, हमने तुम्हारे अर्थ पिताकोही अंशस्वरूप कर रक्खा है। इसलिये तुम पिताको ग्रहण करो। यह सुन नाभागने पिताजीके निकट जायकर कहा कि, हे पितः ! हमारे बड़े भाइयोंने आपको किसलिये हमारा भाग बनाया है ? तब पिताजी बोले कि, हे वत्स ! तुम उनकी बातका विश्वास मत करो, क्योंकि हम भागकी समान भोगनेयोग्य वस्तु नहीं हैं ॥ २ ॥ परन्तु तुम्हारे भ्राताओंने जो हमको तुम्हारा भाग बताया है इसलिये हम तुम्हारी जीविकाका उपाय बतलाये देतेहैं, हे विद्वन् ! अंगिरा मुनिलोग यज्ञ कर रहे हैं, वह लोग यद्यपि सुबुद्धिमान् हैं, तौभी वह विहित षड्यज्ञ उपस्थित होनेपर प्रत्येक षष्ठ दिवसमें कर्मको प्राप्त होकर ज्ञानके अभावसे

उनके अनुष्ठानमें मोहित होतेहैं ॥ ३ ॥ तुम जाकर उन महात्माओंको विश्वदेवसम्बन्धीय दो सूक्त पढाओ। कर्मके समाप्त होनेपर जब वह स्वर्गमें गमन करेंगे, तब यज्ञका बचाहुआ धन अवश्य तुमको देदेंगे, जाओ बिलम्ब न करो। इसी समय उनके निकट चले जाओ। हे राजन्! जब इस प्रकार नाभागने अपने पितासे सुना; तो उन्होंने ऐसाही किया और वह अंगिरा भी अपने यज्ञका बचाहुआ सब धन इस नाभागको देकर स्वर्गलोकमें चलेगये ॥ ४ ॥ ५ ॥ जब नाभाग वह धन अंगीकार करनेके लिये प्रस्तुत हुआ, तब इतनेहीमें श्यामवर्ण शरीरवाले एक पुरुष (रुद्र) ने उत्तरकी ओरसे आनकर कहा कि, यज्ञभूमिमें रक्खाहुआ यह सब धन हमारा है ॥ ६ ॥ तब नाभाग बोले कि, यह कैसे? यह धन तो हमको अभी ऋषिलोग देगयेहैं। नाभागके यह वचन सुन उस पुरुषने कहा "भाई झगड़ा क्यों करते हो? तुम जाकर अपने पितासे तो पूँछो" उस पुरुषके

तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ॥ ते स्वर्यंतो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥ ४ ॥ दास्यंत्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान्यथा ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥ तं कश्चित्स्वीकरिष्यंतं पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६ ॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ॥ स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान्पितरं तथा ॥ ७ ॥ यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ॥ चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८ ॥ नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ॥ इत्याह मे पिता ब्रह्मञ्शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ९ ॥ यत्ते पिताऽवदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे ॥ ददामि ते मंत्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥

यह वचन सुनकर नाभागने अपने पिताके निकट जाय यथाविधिसे पूँछा ॥ ७ ॥ यह सुन उसके पिता मनुने कहा कि, वत्स! दक्षके यज्ञमें जो वस्तु बची थी, ऋषिलोगोंने उन सबको भगवान् रुद्रका भाग बताया था, अधिक करके वह ईश्वर सबही कुछ पानेयोग्य हैं। फिर यज्ञमें बचेहुएकी तो बातही क्या है? ॥ ८ ॥ यह सुनकर नाभाग फिर उस पुरुष (रुद्र) के निकट आय शिर नवायकर बोला कि, हे ईश! यज्ञभूमिमें पडेहुए सब धनके आप अधिकारी हैं यह बात हमसे हमारे पिताने कही है। इसलिये प्रसन्न होकर आप हमारा अपराध क्षमा कीजिये, हम मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करतेहैं ॥ ९ ॥ नाभागकी विनती सुनकर रुद्रजीने कहा। "तुम्हारे पिताने धर्मवाक्य कहा है। और तुमभी धर्मवाक्य कहते हो इस

लिये तुम मन्त्रके जाननेवालेको हम ज्ञानरूप सनातन ब्रह्म देते हैं ॥ १० ॥ और यज्ञका बचा हुआ जो धनहै इसको भी तुम ग्रहण करो ! क्योंकि हमने यह तुमको दिया " हे राजन् ! धर्मवत्सल भगवान् रुद्रजी इस प्रकारसे कहकर वहीं अन्तर्धान होगये ॥ ११ ॥ जो पुरुष भलीभांतिसे सावधान हो सन्ध्या और प्रातःकालके समय इस उपाख्यानको सुनेगा, वह इसके प्रभावसे विद्वान् और मन्त्रका जाननेवाला हो अभिलाषा कियाहुआ धन पावेगा ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित् ! इसी नाभागसे अम्बरीषकी उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मशाप कहीं भी निष्फल नहीं होता; वहभी अर्थात् ब्राह्मण (दुर्वासा) की बनाई कृत्यारूप अग्निभी जिनको स्पर्श न करसक्ती; इसलिये वह परमभक्त और अतिशय

गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ॥ इत्युक्त्वांतर्हितो रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः ॥ ११ ॥ य एतत्संस्मरेत् प्रातस्सायं च सुसमाहितः ॥ कविर्भवति मंत्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥ १२ ॥ नाभागादंबरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ॥ नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः कचित् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः॥ न प्राभूद्यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदंडो दुरत्ययः ॥१४॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंबरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम्॥ अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५ ॥ मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम् ॥ विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान् ॥१६॥ वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्ट्रवत् स्मृतम् ॥१७॥

बुद्धिमान् हुए ॥ १३ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! बुद्धिमान् राजा अम्बरीषके चरित्र सुननेकी मुझे बड़ी अभिलाषा है बडे आश्चर्यकी बात है कि, ब्रह्म निर्मित कृत्यानल जो अति दुरत्यय है, वहभी राजा अम्बरीषको ठहरानेके लिये सामर्थ्यवान् न हुई ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग ! राजा अम्बरीष सप्तद्वीप पृथ्वी, अक्षय सम्पद और पृथ्वीके अतुल ऐश्वर्यको पायकर यद्यपि यह सब पदार्थ और पुरुषोंको अति दुर्लभ हैं, स्वप्नकी समान झूंठे समझने लगा, क्योंकि विभवके नाशका न जाननेवाला पुरुषभी विभवमें अथवा उसके अंशसे मोहको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ और इस राजाने भगवान् वासुदेवमें और उनके भक्त सब साधुओंमें उस परमभाव (भक्ति) को

प्राप्त हुआ था, जिससे यह विश्व अति तुच्छ जानपडता है॥ १७ ॥ अधिक करके उन्होंने श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रजीके पादारविन्दमें अपने चित्तको अपर्ण करदिया था । और अपने वचनोंको वैकुण्ठके गुणवर्णनमें लगाया था, अपने दोनों हाथ हरिमंदिरके मार्जनादिमें लगादिये थे, अपने कानोंको अच्युत सत्कथाओंके श्रवण करनेमें लगादियाथा ॥ १८ ॥ नेत्रोंको मुकुन्दके रूप देखनेमें लगा रक्खा था अंगसंगको भगवत् सेवकोंके शरीरस्पर्शमें, नासिकाको भगवच्चरण कमलके संयोगसे श्रेष्ठ तुलसीका जो सौरभ है उसके ग्रहणमें और रसनाको भगवान्के प्रति निवेदित अन्नादिके स्वाद चखनेमें तत्पर कर रक्खा था ॥ १९ ॥और चरण हरिके क्षेत्रमें जानेके लिये नियत कर रक्खे थे, इन्होंनें अपना मस्तक

स वै मनः कृष्णपदारविंदयोर्वचांसि वैकुंठगुणानुवर्णने ॥ करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥ मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽगसंगमम् ॥ घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९ ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवंदने ॥ कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥ २० ॥ एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ॥ सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥ २१ ॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचितांगदक्षिणैः ॥ ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२ ॥

हृषीकेशके चरणोंमें लगा दिया था चन्द्रमादिकी सेवा दासभावसे करता था, कुछ विषयकी इच्छासे नहीं उत्तम श्लोक भगवान्के जन जिसप्रकार इन वस्तुओंमें प्रीति रखते हैं, उसी प्रकार यहभी रखते थे ॥ २० ॥ इस प्रकारसे सब कर्मकलापोंको राजाने यज्ञपति भगवान्के अर्पण कर दिया था और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार राज्यका पालन करता था ॥ २१ ॥ और अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान्की आराधनामें सदा लगा रहता था इन यज्ञोंके अंग और दक्षिणामें बहुत धन लगाता था, और यह सब यज्ञ वसिष्ठ, असित गौतमादि ऋषियोंके कारणसे विस्तारित होते थे. हे राजन् ! धन्वदेश (मारवाड) में जहां सरस्वतीजी बहती थीं वहांपर राजा अम्बरीपने इन यज्ञोंको किया था ॥२२॥

उनके यज्ञमें सदस्य और ऋत्विगादि वसन भूषणादिद्वारा सजधजकर देवतालोगोंकी समान रूपवाले दिखाई देतेथे. आश्चर्य देखनेकी उत्कण्ठासे उन सभासदोंके पलक तलकभी नहीं लगते थे,इसलिये वह सबप्रकारसे देवतालोगोंकी समान होजातेथे ॥२३॥और राजा अम्बरीषकी प्रजाभी देवताओंके प्यारे स्वर्गलोककी चाहना नहीं रखतीथी. केवल भगवच्चरित्र श्रवण और कीर्त्तन करनेमें लगीरहतीथी ॥२४॥ फिर इससे उनके संबंधमें क्या कहाजाय? बस जो पुरुष अपने हृदयमें भगवान् मुकुन्दको देखताहै और स्वरूपसुखके द्वारा जो अतिशय आनन्द पाताहै॥२५॥इससे सिद्ध लोगोंकोभी दुर्लभ जो समस्त विषय हैं वह सब इस पुरुषको आनन्द नहीं उपजाय सक्ते वा हर्षित कराय सक्ते हैं। अधिक करके इस प्रकार राजा अम्बरीषने स्त्री,पुत्र,मित्र,

यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ॥ तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यंत सुवाससः ॥ २३ ॥ स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ॥ शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥२४॥ समर्द्धयंति तान्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः॥ दुर्लभ नापि सिद्धानां मुकुंदं हृदि पश्यतः ॥ २५ ॥ स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ॥ स्वधर्मेण हरिं प्रीणन्संगान्सर्वाञ्छनैर्जहौ ॥ २६ ॥ गृहेषु दारेषु सुतेषु बंधुषु द्विपोत्तमस्यंदनवाजिपत्तिषु ॥ अक्षय्यरत्नाऽभरणायुधादिष्वनंतकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥२७॥ तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयाहवम् ॥ एकांतभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥ २८ ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ॥ युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥ व्रतांते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ॥ स्नातः कदाचित्कालिंद्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३० ॥

हाथी,घोड़े, रथादि व अक्षय रत्न भूषणादि व अनंत कोषकोभी वृथा समझा॥२६॥२७॥ हे राजन्! यद्यपि राजा अम्बरीष इसप्रकार विरागी होगयाथा तौभी अपने शत्रुओंके जीतनेको असमर्थ नहीं हुआ, भगवान् वासुदेवने इस राजर्षिके भक्तिभावसे प्रसन्न हो जिससे शत्रुकी सेनाको भय होवै और भक्तोंकी रक्षा होवै, ऐसा सुदर्शन चक्र उनको देदियाथा ॥२८॥ हे राजन्! यह राजा अम्बरीष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करनेकी इच्छासे अपनी भार्या जो कि, शीलतामें अपनेही समान थी, उसके साथ मिलकर एक वर्षतक अखंड एकादशीके व्रतको धारण करनेलगे ॥ २९ ॥ एक समय मथुरामें जाय व्रतके अंतमें कि, जब कार्तिक महीनेके तीन दिन उपवास किया था। कालिन्दीमें स्नानकर मधुवनमें श्रीकृष्ण

चन्द्रकी पूजा करी ॥३०॥ महाभिषेककी विधिसे सब सामग्रियोंकी सम्पत्तिसे वस्त्र,आभूषण, गंध, फूल, मालाके द्वारा एकाग्रचित्तसे मुरलीमनोहरकी पूजा करनेलगे । तिसके उपरान्त बड़ेभाग्यवाले सिद्धकाम ब्राह्मणोंकी भक्तिभावसे पूजा करनेलगा ॥३१॥३२॥ जिनके सींग और खुर चांदीसे मढेथे शरीरमें शोभायमान वस्त्र पहर रही थीं, दुधारी थीं, स्वर्णलता, वयस; रूप और वत्सादि श्रेष्ट सम्पत्तियोंसे भूषित थीं, ऐसी छःअर्ब६०००००००००० गायें राजा अम्बरीषने साधु ब्राह्मणोंको दक्षिणामें देदी इसके पीछे ब्राह्मणलोगोंको षड्रस भोजन कराय * ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उनकी आज्ञा ले

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसंपदा ॥ अभिषिच्यांबराकल्पैर्गंधमाल्यार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ तद्गतांतरभावेन पूजयामास केशवम् ॥ ब्राह्मणांश्च महाभागान्सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥३२ ॥ गवां रुक्मविषाणीनां रूप्यांघ्रीणां सुवाससाम्॥ पयश्शीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥ ३३ ॥ प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ॥ भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥ ३४ ॥ लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ॥ तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५ ॥ तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ॥ ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६ ॥

आपभी व्रतपारणा करनेको तत्पर हुआ । हे राजन् ! राजा अम्बरीष व्रतपारणा करनेको जाताही था कि, इसी अवसरमें दुर्वासा मुनि अतिथिकी भाँति उन राजा अम्बरीषके स्थानमें आये ॥ ३५ ॥ दुर्वासा मुनिको देखतेही राजा अम्बरीषने व्रतपारणा नहीं किया और उसीसमय आकर प्रणाम व पूजा करके उनका भली भाँतिसे आदर सन्मान किया. फिर विनीतभावसे चरणोंके निकट खड़ा होकर भोजन करनेके लिये उनसे

* शंका–राजा अम्बरीषने (६०००००००००) छह अर्ब गायोंका दान किया है, सो हमको बडा सन्देह है कि छह अर्ब गायें और छह अर्ब वछडे और वछियाँ और छह अर्ब दानके लेनेवाले ब्राह्मण क्योंकर इकट्ठे होगये ?

उत्तर–ज्योतिष शास्त्रमें अर्बुद पांच सहस्र सज्ञा लिखीहै और एक अर्बुदको दशकोटि लिखा है "प्रायश्चित्तकदम्ब" तथा 'विधानपारिजातक' जिनमें एक एक लाख श्लोक हैं इनके सिवाय और भी जो धर्मशास्त्रके ग्रन्थ हैं उनमें भी एक अर्म्बुद ५००० सहस्रकी सज्ञा है इसी प्रमाणसे जानाजाताहै कि, पांच हजार गायें राजा अम्बरीषने दान की थीं ।

प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ राजाकी इस प्रार्थनासे दुर्वासा ऋषि हर्षित हो भोजन करना स्वीकार कर बोले कि, अभी नियमित मध्याह्नके नित्यकर्म हमने समाप्त नहीं किये हैं, यह कहकर नित्यकर्म करनेको यमुनाके तटपर गये । तिसके पीछे ब्रह्मचिन्ता करते करते यमुनाके पवित्र जलमें स्नान किया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जब दुर्वासा मुनि मध्याह्नकालकी क्रिया करनेगये तो वह बहुत विलम्ब होनेपरभी वहाँ नहीं गये । इस ओर द्वादशीका केवल अर्द्ध मुहूर्त्त शेष रहगया । इस मुहूर्त्तमें पारणा न करनेसे व्रतमें विकार होजायगा. धर्मज्ञ अम्बरीष राजा धर्म संकटमें पड़ ब्राह्मणों सहित विचार करने लगे ॥ ३८ ॥ राजाने कहा कि, जो दोष ब्राह्मणके अतिक्रममें है, द्वादशीमें पारणा न करनेसेभी वही दोषहै, अब हम क्या करें ? क्या करनेसे मेरा भला होगा ? और अधर्म मुझको न स्पर्श कर सकैगा ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंके सहित इस प्रकार विचार करके राजाने फिर यह निश्चय

प्रतिनंद्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ॥ निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिंदीसलिले शुभे ॥ ३७ ॥ मुहूर्त्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ॥ चिंतयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ॥ यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९ ॥ अंभसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ॥ प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४० ॥ इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिंतयन्मनसाऽच्युतम् ॥ प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥ ४१ ॥ दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ॥ राज्ञाऽभिनंदितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ॥ ४२ ॥ मन्युना प्रचलद्गात्रो भृकुटीकुटिलाननः ॥ बुभुक्षितश्च सुतरां कृतांजलिमभाषत ॥ ४३ ॥ अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ॥ धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४ ॥

किया कि, केवल चरणामृत पीकर व्रत समाप्त किया जायगा,क्योंकि केवल जलपान करनेको मुनि लोगोंने भोजन अभोजन दोनों कहा है ॥ ४० ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! राजा अम्बरीषने इसप्रकार विचार मनमें भगवान् वासुदेवका स्मरणकर जैसेही चरणामृत पिया वैसेही द्विजा गमन देखा॥ ४१ ॥ अर्थात् उसी समय दुर्वासाजी नित्यकर्म समाप्त करके यमुनाके किनारेसे राजा अम्बरीषके स्थानपर आन पहुँचे । यद्यपि राजाने उन मुनिको देखकर आनन्द प्रकाशित किया और हाथ जोड उनके सन्मुख खड़े हुए । तौभी इस राजा अम्बरीषका आचरण दुर्वासा ऋषिने ध्यान धरकर जानलिया ॥ ४२ ॥ इसलिये क्रोधसे कम्पित शरीरहो, भौहैं टेढीकर हाथ जोड़े खड़े हुए राजा अम्बरीषसे कहने लगे कि ॥ ४३ ॥ अहो ! यह पुरुष

कैसा निर्लज्ज है, धन सम्पत्तिके मदसे अत्यन्त मतवाला हो रहा है, अपने आपको ईश्वर मानता है, इसके धर्मव्यतिक्रमको तो देखो ॥ ४४ ॥ हम इसके आश्रममें अतिथि आये हैं; इसने आपही पहुनई करनेके लिये हमको निमंत्रण दिया परन्तु हमारा भोजन होनेसे प्रथमही यह इच्छानुसार भोजन करके बैठगया ! इसका फल इसको अभी दिखाताहूं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार कहते कहते क्रोधायमान हो मस्तकसे एक जटा उखाड़ उस राजाके सामने कालाग्निकी समान एक कृत्या बनाई ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! वह कृत्या खड्ग हाथमें ले अपने चरण धरनेसे पृथ्वीको कम्पायमान करती हुई प्रकाश पूर्वक आई । राजा अम्बरीष उसको अपने सन्मुख आती हुई देखकरभी अपने स्थानसे चलायमान नहीं हुए ॥ ४७ ॥ राजा अम्बरीष विष्णु भगवान्‌के परमभक्त थे, उन्होंने अपने भक्तपर यह भीर पड़ी देख अपने चक्रको आज्ञा दी, परम पुरुष भगवान्‌की आज्ञा

यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमंत्र्य च ॥ अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥४५॥ एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ॥ तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥ तामापतंतीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ॥ वेपयंतीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ॥ ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥ तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ॥ दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥ तमन्वधावद्भगवद्रथांगं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाऽहिम् ॥ तथानुषक्तं स निरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५० ॥ दिशो नभः क्ष्मां विवरान्समुद्राँल्लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ॥ यतोयतो धावति तत्रतत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥

पातेही अपने तेजसे इस कृत्याको भस्म करनेलगा, जिसप्रकार दावानल वनमें रहते हुए क्रोधित सर्पोंको दग्ध करै ॥ ४८ ॥ जब दुर्वासा ऋषिने देखा कि, हमारा किया यत्न विफल हुआ और अब यह चक्र हमारीही ओरको चला आता है इसलिये भीत हो प्राणोंकी रक्षा करनेको त्रासके मारे सब दिशाओंमें भागने लगे ॥ ४९ ॥ हे राजन ! जैसे लपट्युक्त उठी हुई दावानल बनैले सर्पोंके पीछे दौडती है, वैसेही भगवान्‌का चक्र इन ऋषिके पीछे पीछे दौड़ा । दुर्वासा मुनि इस चक्रको इसप्रकारसे अपने पीछे आता हुआ देखकर सुमेरुकी गुफामें प्रवेश करनेकी इच्छाकर महावेगसे दौड़ने लगे ॥ ५० ॥ दौड़ते दौड़ते दिक् आकाश, भूमि, विवर, सागर और लोकपाल सहित सब लोकोंमें और स्वर्गमेंभी दुर्वासा गये ।

परन्तु जहाँ वह जाते थे उस उस स्थानमें दुर्द्धर्ष चक्रभी उनके पीछे लगाही चला जाता था ॥ ५१ ॥ इसप्रकार शरण ढूंढते ढूंढते सब जगहमें भ्रमण करके यह कहीं भी अपने किसी रक्षकको नहीं पासके तब त्रसित हो पद्मयोनि ब्रह्माजीके निकटगये और कातरता प्रकाश करके बोले कि, हे भगवन् ! हे आत्मयोने ! इस दुःसह हरिके चक्रसे आप मेरी रक्षा करें ॥५२॥ ब्रह्माजी बोले कि,परार्द्ध नामक काल क्रीडाके अन्तमें काल स्वरूप जो विष्णु भगवान् हैं, वह जब सबके दग्ध करनेकी वासना करते हैं, तब उनकी भ्रुकुटी टेढी होजाती है, ब्रह्माण्ड समेत हमारा यह स्थान भी भस्म हो जायगा और हम (ब्रह्मा) शिव, दक्ष, भृगु आदि और प्रजापति, भूतपति, सुरपति इत्यादि जिनकी आज्ञाको प्राप्त होकर जिस प्रकारसे लोक

अलब्धनाथस्य यदा कुतश्चित्संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ॥ देवं विरिंचं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ॥ भ्रूभंगमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरो भविष्यति ॥ ५३ ॥ अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ॥ सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्धन्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥ ५४ ॥ प्रत्याख्यातो विरिंचेन विष्णुचक्रोपतापितः ॥ दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः ॥ भवंति कालेन भवंति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥ अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ॥ कपिलोऽपांतरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥

हितहो, उसीप्रकार अपने मस्तकपर सब नियमोंको रखते हैं सो तुमने उनकेही भक्तसे द्रोह किया है। इसलिये तुम्हारी रक्षा करनेकी सामर्थ्य हममें नहीं है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! जब ब्रह्माजीनेभी शरण नहीं दी, तब दुर्वासा कैलासके शिखर पर गये और विष्णुचक्रसे अति सन्तापित होनेके कारण कातरता प्रगट कर भगवान् महादेवजीकी शरण हुये ॥ ५५ ॥ महादेवजी बोले कि, हे तात ! उन महान् परमेश्वरके सन्मुख हमारी प्रभुताई कुछ नहीं चलेगी,उनसे ब्रह्मादि रूपका उपाधि भूत यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है इस प्रकारसे दृश्यमान ब्रह्माण्डका प्रमाण व और पदार्थ भी जिनमें कल्पित हैं; लोकपालाभिमानी हम हजार हजार वार भ्रान्त हुआ करते हैं ॥५६॥ हे वत्स ! सनत्कुमार, नारद, भगवान्,ब्रह्मा, कपिल (जिनके

अन्तका अंधकार दूर होगया था) देवल, धर्म, आसुरि ॥५७॥ और मरीचि आदि और भी सिद्धगण सर्वज्ञ होकरभी जिनकी मायाको नहीं जान सक्ते बरन् स्वयं उनकी मायासे घिरे हुए हैं ॥ ५८ ॥ उन्हीं विश्वेश्वरका यह शस्त्र (चक्र) है; सो हमलोग किसी भाँति इसे नहीं सहसक्ते इसलिये तुम उन्हीं विष्णु भगवान्‌की शरण जाओ वही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकारसे दुर्वासाजीको महादेवजीने भी शरणमें न रक्खा और कोरा जवाब दिया तब वह भगवान्‌के धाम वैकुण्ठको गये । कि, जहाँ भगवान् श्रीनिवास लक्ष्मीजीके साथ विराजमान थे ॥ ६० ॥ यह ऋषि कम्पायमान होकर श्रीभगवान्‌के चरणोंपर गिरपडे और कहने लगे कि, हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे साधुजनोंका भय

मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ॥ विदाम न वयं सर्वे यन्मायां माययाऽवृताः ॥ ५८ ॥ तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ॥ तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९ ॥ ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ॥ वैकुंठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥ स दह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ॥ आहाच्युतानंत सदीप्सित प्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥ ६१ ॥ अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम् ॥ विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज ॥ साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ॥ श्रियं चात्यंतिकीं ब्रह्मन्येषां गतिरहं परा ॥ ६४ ॥

हरनेवाले ! हे प्रभो ! मैंने बडा भारी अपराध किया है. हे विश्वभावन ! मेरी रक्षा करो ॥६१॥ हे प्रभो ! आपके परम प्रभावको न जानकर मैंने आपके प्रियभक्तका अपराध किया है. सो हे प्रभो ! अब अपराधका आप प्रायश्चित बताइये कि, जिस्से मेरा छुटकारा हो. हे भगवन् ! जो आपके भक्तका द्रोह करता है उसका छुटकारा नहीं हो सक्ता यह बात ठीक नहीं. क्योंकि जिनका नाम लेतेही नरकमें पडा हुआ पुरुष मुक्तिको प्राप्त होजाता है, उसके लिये असाध्य क्या है ? ॥ ६२ ॥ यह वचन सुनकर श्रीभगवान् बोले कि, हम भक्तके वश हैं, इसलिये परवश हैं. भक्तजन हमारे प्रिय हैं; इससे साधुगण हमारे हृदयको ग्रसे हुये हैं ॥ ६३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिन मनुष्योंकी गति एक मुझसेही

होती है, उन सब साधु पुरुषोंके सिवाय अपनी आत्माको और अत्यन्त लक्ष्मीकोभी प्यार नहीं करते ॥ ६४॥ जो पुरुषगण, स्त्री, पुत्र, गृह, स्वतन धन प्राण और इसलोक व परलोक सबको छोड़कर हमारी शरणमें आये हैं, हम उनको त्याग करके किस प्रकार उत्साहित होसक्ते हैं ? ॥ ६५ ॥ हे मुनि महाराज ! सर्वत्र समदर्शी साधुपुरुष लोग हममें अपने अपने हृदयको बांध हमको अपने वश किये हुये हैं कि जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने श्रेष्ठपतिको वश करलेती है॥६६॥ और वह भक्तगण साधुसेवाद्वारा सालोक्यादि चारों पदार्थोंके सन्मुख आनेपरभी उनके ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते, वह साधु सेवासेही परितृप्त होजाते हैं, इसलिये कालसे नाश होनेवाली और किसी वस्तुमें उनकी अभिलाषा होनेकी क्या सम्भावना है॥६७॥

ये दारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिमं परम् ॥ हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ॥ वशे कुर्वंति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥ ६६ ॥ मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम् ॥ ६७ ॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ॥ मदन्यत्तेन जानंति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥६८॥ उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ॥ अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ॥ ६९ ॥ साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ॥ ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥

और जिन २ पुरुषोंने हमको अपना हृदय अर्पण करदिया है । हम उनके हृदयको जानते हैं, वह हमारे अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते । और हमभी उनके अतिरिक्त और किसीको नहीं समझते ॥ ६८ ॥ इसलिये हे मुने ! जिससे कि, यह तुम्हें हिंसा उत्पन्न हुई है उसकेही निकट तुम विना विलम्ब किये चलेजाओ. हे मुने ! क्या तुम यह नहीं जानते हो कि, साधु लोगोके ऊपर चलाया हुआ तेज प्रहार करनेवालेकाही अमंगल करता है । ब्राह्मणोंकी तपस्या और विद्या यह दोनों भला करनेवाली तो हैं । परन्तु दुर्विनीत स्वामीके लिये यह दोनों विपरीत फल देनेवाली हैं,

परन्तु इस समय अपनी तपविद्याको मनमें लाय इस अनर्थ घटनापर विस्मय करना आपको योग्य नहीं है ॥ ६९ ॥ ७० ॥ इस समय तुम महाभाग नाभागपुत्र राजा अम्बरीषके निकट जाओ। जिससे तुम्हारा मंगल हो, उस पृथ्वीपतिसे क्षमा मांगनेका यत्न करो। तब इस उत्पातकी शांति होगी ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामम्बरीषोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–अम्बरीष हरिचक्रकी, विनय करी शिर नाय। ब्राह्मणकी रक्षा करी, इस पंचम अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! चक्रकी अग्निसे संतापित हुये

ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ॥ क्षमापय महाभागं ततः शांतिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० नवमस्कंधे अम्बरीषोपाख्याने दुर्वासोऽनुतापशमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ॥ अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः ॥ अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ॥ त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेंद्रियाणि च ॥ ३ ॥

दुर्वासा ऋषि विष्णु भगवान्‌की आज्ञासे उसी समय राजा अम्बरीषके यहाँ गये और दुःखित हो इस राजर्षिके चरण पकड़नेको झपटे * ॥ १ ॥ जब यह चरण छूने लगे, तब राजर्षि अम्बरीष अत्यन्त लज्जितहो और दुर्वासाजीको ऐसा व्याकुल देख व्यथा पाय भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ राजा अम्बरीष बोले कि, हे सुदर्शन! तुमही भगवान् सूर्य हो और तुमही सब नक्षत्रोंके स्वामी चंद्रमा हो, तुमही जल, तुमही भूमि,

शंका–दुर्वासा मुनि भगवान्‌के चक्रके तेजसे भस्म होनेको प्रस्तुत था, तो फिर उसने अम्बरीषके चरण कैसे ग्रहण किये? यह तो बडा अयोग्य कर्म है. दुर्वासाऋषि कुछ कलियुगी ब्राह्मण तो नहीं थे जो कि, देहके सुखके लिये नीचकर्म करने लगते, वह तो महाप्रतापी और परमतेजस्वी ब्राह्मण थे, फिर इसने नीचकर्म क्यों किया?

उत्तर–दशसहस्र (१००००) ब्राह्मणोंको साथ लिये दुर्वासाऋषि वडे अभिमान सहित त्रिलोकीमें घूमते फिरा करते थे और त्रिलोकीके मनुष्योंको शाप देदेकर वहुत दुःखी कर दिया, जो कोई किंचिन्मात्रभी अपराध करता उसको ऐसा भारी शाप देते कि, वह वहुत कालतक कष्टपाता तीनलोकको कम्पायमान देखकर भगवान् महादेवने दुर्वासा ऋषिका अभिमानभञ्जन करनेके लिये यह यत्न करके त्रिलोकीको सुखीकिया क्योंकि दुर्वासा ऋषिके चित्तमें अम्बरीषका चरित्र खटकनेलगा यह विचारके क्रोध करने लगे, इसलिये मोहको प्राप्तहुये दुर्वासा ऋषिने अम्बरीषके चरणोंको ग्रहण किया ॥

तुमहीं आकाश, तुमहीं पवन, तुमहीं मात्रा और तुमहीं सब इंद्रियें हो, अर्थात् तुम्हारीही शक्तिसे अग्नि आदि अपना अपना कार्य करते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये तुम्हें नमस्कार है हे अच्युतप्रिय ! तुम्हारी हजार धार हैं हे सर्वघातिन् ! हे पृथ्वीनाथ ! इस ब्राह्मण की रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे सुदर्शन ! ब्राह्मणकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य कर्म है। क्योकि तुम साक्षात् धर्म, अमृत, सत्य, यज्ञमूर्ति और सब यज्ञोंके भोगनेवाले हो, अधिक करके तुमही लोकपाल और ईश्वरकी परम सामर्थ्य हो ॥ ५ ॥ और तुम अद्भुतकर्मकारी हो, क्योंकि अखिल धर्मके सेतु स्वरूप हो, इसलिये तुमही अधर्म करतेहुए असुर लोगोंके धूमकेतु अर्थात् दाहक हो, तुम्हारा तेजसमूह अतिउज्ज्वल है, तुम त्रिलोकीके रक्षक हो, तुम मनकी समान वेगवान् हो

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ॥ सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४ ॥ त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ॥ त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५ ॥ नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ॥ त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥ त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ॥ दुरत्ययस्ते महिमा गिरांपते त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ ७ ॥ यदा विसृष्टस्त्वमनंजनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ॥ बाहूदरोर्वंघ्रिशिरोधराणि वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥ स त्वं जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ॥ विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९ ॥

तुम्हारी स्तुति करनेकी सामर्थ्य किसमें है ? इसलिये मैं तुम्हारे प्रति केवल नमः शब्दका प्रयोग करता हूं ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन ! तुम्हारे धर्ममय तेजसे अन्धकार दूर होताहै और महात्मा लोगोंकी दृष्टि प्रकाशित होती है। हे वाणीनाथ ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। सत, असत, पर, अपर इत्यादि समस्त पदार्थ तुम्हारेही स्वरूप हैं । क्योंकि सूर्यादिका प्रकाशभी तुमहीसे होता है ॥ ७ ॥ हे अनन्त अनञ्जन भगवान्के करसे जब तुम छोड़ेजाते हो, तब दैत्य दानवोंके बीचमें प्रवेश कर उनकी भुजायें, पेट, जाँघें, चरण और कन्धोंको काटतेहुए समरमें विराजमान होतेहो ॥ ८ ॥ हे जगत्त्रातः ! तुम ऐसे गुणोंसे युक्तहो कि, भगवान् गदाधरने खलपुरुषोंके मारनेको तुम्हें नियुक्त किया है इसलिये हमारे कुलका सौभाग्य करनेको

तुम इस विपदमें पड़ेहुए ब्राह्मणका मंगल करो। ऐसा करनेसे तुम्हारा बडाभारी अनुग्रह मेरे ऊपर होगा ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन ! यदि हमारे किसी दान करनेसे, वा किसी यज्ञ करनेसे कुछ पुण्य हुआ हो। यदि मैंने अपने धर्मका भलीभांतिसे अनुष्ठान किया हो, यदि मेरे कुलदेवता ब्राह्मण हों तो मेरी यही प्रार्थना है कि, इस धर्मके प्रभावसे यह मुनिजी शीघ्र निष्कण्टक होजायँ ॥ १० ॥ और अनुपम वह सब प्राणियोंके प्रति आत्मभावके हेतु सर्वगुणोंके आश्रय भगवान् यदि हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो उनके प्रसादसे यह ब्राह्मण शीघ्र संतापरहित हों ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब राजा अम्बरीषने इस प्रकार स्तुतिकी; तब भगवान्का सुदर्शनचक्र, जो ब्राह्मण श्रेष्ठ दुर्वासाजीको जलाये देता था; इन राजर्षिकी प्रार्थनासे शान्त

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥ यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ॥ सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥ अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥ १२ ॥ स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ॥ प्रशशंस तमुर्वीशं युंजानः परमाशिषः ॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अहो अनंतदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ॥ कृतागसोऽपि यद्राजन्मंगलानि समीहसे ॥ १४ ॥ दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ॥ यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ॥ तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥ १६ ॥ राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयाऽतिऽकरुणात्मना ॥ मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७ ॥

होगया ॥ १२ ॥ इसलिये दुर्वासाजी अस्त्राग्निके तापसे छुटकारा पाय कल्याणवान हुए। फिर दुर्वासा मुनि राजाको आशीर्वाददे अनेक अनेक प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥ दुर्वासाजी बोले, अहो ! भगवद्भक्तोंकी अद्भुत महिमा आज हमने देखी. हे राजन् ! यद्यपि हमने अपराध किया तौभी तुमने हमारी भलाईही चाही ॥ १४ ॥ अथवा जिन पुरुषोने सात्वतपति भगवान्को अपने वश किया है उन महात्मा साधु पुरुषोके लिये कौन बात दुस्त्यज वा दुर्लभ है ? ॥ १५ ॥ जिनका नामश्रवण करतेही पुरुष निर्मल हो जाताहै तीर्थपाद भगवान्के उन दासोसे कौनसा कार्य बच रहा है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तुम अतिकरुणात्मा हो, हम पर आपने बड़ाभारी अनुग्रह किया क्योकि हमारे अपराधकी ओर न निहार कर हमारे

प्राणोंकी रक्षाकी ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! अबतक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था इस राजाने फिर कभी इनके आनेको प्रार्थनाकी । और वारम्वार इनके चरण कमलोंकी वन्दना करके भोजन कराया ॥१८॥ आदर सहित आयेहुए सर्वाभिलाषकी पूर्ण करनेवाली पहुनईको मानकर महर्षि दुर्वासाजीको अति सन्तोष उत्पन्न हुआ. दुर्वासाजी आहार करनेके उपरान्त राजासे बोले कि, हे महाराज ! तुमभी भोजन करो ॥ १९ ॥ हे महीपाल ! तुम परम भागवत हो । हमारे ऊपर तुम्हारा बड़ा अनुग्रह हुआ तुम्हारे दर्शनकर और तुम्हारे सम्भाषण करनेसे जिससे कि, आत्मामें शुद्धि होती है ऐसा आतिथ्य जो तुमने किया इससे हमको बहुतही प्रीति उत्पन्न हुईहै ॥२०॥ स्वर्गवासी देवता लोगोंकी स्त्रियें तुम्हारे इस

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकांक्षया ॥ चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८ ॥ सोऽशित्वाऽऽहृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ॥ तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ॥ दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २० ॥ कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ॥ कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः । ययौ विहायसाऽऽमंत्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥ संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ॥ मुनिस्तद्दर्शनाकांक्षी राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥ २३ ॥ गते च दुर्वाससि सोंऽबरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ॥ ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥ २४ ॥

निर्मल कर्मको सदा गावेंगी और पृथ्वीके रहनेवाले सदा तुम्हारी परमपवित्र कीर्तिको गावेंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! महर्षि दुर्वासाजी सन्तुष्ट हो इस प्रकार कहकर राजर्षि अम्बरीषके साथ वार्त्तालाप करके आकाश मार्गसे हो ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २२ ॥ परन्तु वह गमन करके जबतक न आये थे, तब लों एक वर्ष समय तकके बीतनेपरभी राजा अम्बरीष उनके दर्शनकी इच्छासे केवल जलही पीकर रहेथे ॥२३ ॥ इसके उपरान्त एक वर्ष पीछे जब वह ऋषि आये, तब राजा अम्बरीषने ब्राह्मण भोजनसे जो पवित्र हुआ आहार सो भोजन किया और

ऋपिकी विपद व उद्धारकी बात स्मरण करके अपने धैर्यादि रूप वीर्य और भगवान्के प्रभावको आधार मानने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! अम्बरीष राजामें इस प्रकारके अनेक गुण हैं, वह अपने क्रिया कर्मसे परमात्मा भगवान् वासुदेवके प्रति परमभक्ति दिखलाते थे, उसी भक्तिके प्रभावसे ब्रह्मपदके सहित सब प्रकारके भोग इनके सन्मुख सदा प्राप्त रहते थे, परन्तु यह उन सबको नरककी समान जानते थे ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! तिसके उपरान्त यह वीर अपनी समान वीर्यवान् पुत्रको राज्य भार सौंप वनमें चलागया । जब कि, इस राजर्षिने अपना मन व आत्मा भगवान्में लगादिया था, इसलिये उनका गुण प्रवाह विध्वंस होगया । अर्थात् आवागमनसे इनका छुटकारा होगया ॥२६॥ हे राजन् !

एवंविधाऽनेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ॥ क्रिया कलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽऽविरिंचान्निरयांश्चकार ॥ २५ ॥ अथांबरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः ॥ वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद् ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यानमंबरीषस्य भूपतेः ॥ संकीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे अंबरीषोपाख्याने दुर्वास उपचरणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विरूपः केतुमान् शंभुरंबरीषसुतास्त्रयः ॥ विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तंतवेऽर्थितः ॥ अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥

राजा अम्बरीषके इस पवित्र चरित्रको जो मनुष्य सुनेंगे, और ध्यान करेंगे, सो भगवान्के भक्त होंगे । और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन महाराज अम्बरीषके चरित्रको गान करेंगे वह समस्त भगवान् विष्णुके प्रसादसे सरलतापूर्वक मुक्तपदवीको प्राप्त होंगे ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामंबरीषचरित्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा—अम्बरीष अध्याय षट, अरु शशाद इतिहास । मानधात इक्ष्वाकु कुल, सौभरि ऋषी विलास ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! राजा अम्बरीषके विरूप, केतुमान और शम्भु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए तिनमें विरूपका पुत्र पृषदश्व और इसका पुत्र रथीतर हुआ ॥१॥ रथीतरके पुत्र वा कन्या कुछ नहीं हुआ, वह निःसन्तान था, जब इसने संतानके

लिये महर्षि अंगिराजीसे प्रार्थना की, तब महर्षि अंगिराजीने उनकी भार्यामें ब्रह्मतेजसे युक्त कई पुत्र उत्पन्न कर दिये ॥२॥ हे राजन्! अंगिराजीसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, वह रथीतरके क्षेत्रमें उलटा होनेके कारण यद्यपि रथीतर गोत्री हुये थे तौभी अंगिराजीके वीर्यसे उनकी उत्पत्ति होनेके कारण आंगिरस-नामसे विख्यात हुए। अधिक करके इनके क्षेत्रोपेत ब्राह्मण होनेपर रथीतरकी दूसरी सन्तानमें मुख्य थे ॥३॥ ॥ हे राजन्! "मनुके दश पुत्रोंमें पृषध्र और कवि संसारत्यागी हुए थे, इसलिये उनका वंश नहीं हुआ। करूषादि सप्त पुत्रोंका वंश प्रथम कहा गया है इक्ष्वाकुका वंश बहुत बड़ा है। इसलिये पहले नहीं कहा, अब कहतेहैं" छींकें लेतेहुए मनुकी नासिकासे मनुपुत्र इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति हुई। इन इक्ष्वाकुके शत पुत्र हुए। तिनमें विकुक्षि,निमि और दण्डकादि श्रेष्ठ थे॥४॥इन शत पुत्रोंमें पचीस जन विंध्याचल और हिमालय पर्वतके मध्यमें पूर्वकी ओर आर्यावर्तके सन्मुख

एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वांगिरसाः स्मृताः ॥ रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥ क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ॥ तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदंडकाः ॥ ४ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ॥ पंचविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५ ॥ स एकदाऽष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ॥ मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ॥ ६ ॥ तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान्॥ श्रांतो बुभुक्षितो वीरः शशं चाऽऽददपस्मृतिः ॥ ७ ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः॥ चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥

समुद्र तक एक एक मण्डलके राजा हुए। इसी प्रकार पश्चिममेंभी इतनेमेंसे पचीस पुत्र एक एक मण्डलके राजा हुए। परन्तु मध्यस्थलमें ज्येष्ठ तीन पुत्र और दक्षिण उत्तरादि भागमें और पुत्रगण राजसिंहासनपर बैठे ॥५॥ एक दिन राजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्ध करनेके लिये विकुक्षिको निकट बुलायकर कहा हे वत्स! शीघ्र वनमें जाय श्राद्धके लिये पवित्र माँस लाओ ॥६॥ विकुक्षि "बहुत अच्छा" कह उसी समय वनमें चलागया और श्राद्धके योग्य अनेक पशुओंको मारने लगा। तिसके उपरान्त जब विकुक्षि थककर भूखा होगया, तब इसने भूलकर मारेहुए पशुओंमेंसे एक खरहे (खरगोश) का माँस भूनकर खालिया ॥ ७ ॥ फिर अवशिष्ट माँस लेकर पिताके निकट आया और सब उनको देदिया। इक्ष्वाकु राजाने उस माँसका श्राद्धोचित संस्कार करनेके लिये कुलगुरु वसिष्ठजीको बुलाया तब वशिष्ठजीने कहा कि, यह माँस दूषित होगया, इसलिये श्राद्ध कर्मके

योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ जब महर्षि वशिष्ठजीने सब ब्योरा भली भाँति कह सुनाया। तब राजाने अपने पुत्रके कर्मको जानकर उसको अपने देशसे निकाल दिया, क्योंकि श्राद्धके योग्य माँसका प्रथम भाग ग्रहण करलेनेसे उसका सदाचार छूटगया था ॥ ९ ॥ तिसके पीछे राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठजीके साथ ब्रह्मज्ञानका विचार करनेलगे फिर राज्यभोगसे विरागी होगये और योगके द्वारा शरीरको छोड़ परमतत्त्वको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ जब पिता वनको चले गये, तब विकुक्षि अपने देशमें आय शशाद नामसे विख्यात हो पिताके राज्यको ग्रहणकर उसको पालने लगा, इस शशादने यज्ञोंको करके भगवान् वासुदेवकी पूजा की. इस राजाने शशाका माँस जो खालिया था इसलिये इसका नाम शशाद प्रसिद्ध हुआ॥ ११॥ शशादका पुत्र पुरञ्जय हुआ, यह पुत्र इन्द्रवाह नामसे भी विख्यात था और कोई २ इसको ककुत्स्थभी कहते हैं जिन कर्मोंके करनेसे इनके यह कई नाम हुए

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाऽभिहितं नृपः ॥ देशान्निस्सारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९ ॥ स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन्॥ त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥ १० ॥ पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ॥ शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११ ॥ पुरंजयस्तस्य सुत इंद्रवाह इतीरितः ॥ ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥ १२ ॥ कृतांत आसीत्समरो देवानां सह दानवैः ॥ पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥ वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभो ॥ वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेंद्रो महावृषः ॥ १४ ॥ स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखाञ्छितान् ॥ स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥

हम उनको कहते हैं तुम श्रवण करो ॥ १२ ॥ पहले समयमें जब दानवोंके साथ देवता लोगोंका विश्वविनाशन संग्राम होरहा था, उस समय देवताओंने दैत्योंसे पराजितहो इस वीरको अपना सहायक बनाया ॥ १३ ॥ इसने कहा कि जो इन्द्र हमारे वाहन बनैं. तो हम अवश्य दैत्योंको वध करेंगे यह कहकर इन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था। पहले तो इन्द्रने लाजके मारे इस बातको नहीं माना फिर विश्वात्मा देवदेव विष्णुके कहनेसे पुरञ्जयका वाहन होनेके लिये महावृषभ हुए। "जब इस प्रकारसे इन्द्र वाहन हुए तब इन पुरञ्जयका नाम इन्द्रवाह हुवा" ॥ १४ ॥ तिसके पीछे राजा पुरञ्जय बख्तर पहर दिव्य धनुष और बहुतसे तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके उस बैलकी पीठपर जाय

विराजे । यह देखकर देवतालोग उनकी पूजा करनेलगे ॥ १५ ॥ फिर महात्मा पुरञ्जयने परमपुरुष विष्णुजीके तेजसे बढकर देवतालोगोंके द्वारा पश्चिम दिशासे दैत्योंकी पुरीको घेरा ॥ १६ ॥ तिसके उपरान्त इन पुरंजयके साथ दैत्यलोगोंका घोर संग्राम हुआ । जो दैत्य संग्राममें इनके सन्मुख आये, उन सबकोही इस नरनाथने यमराजके भवनको भेज दिया ॥१७॥ प्रलयाग्निके समान इन महाराजके उल्वण बाणोंका उत्पात देख सब बचेबचाये दैत्य पातालको भागगये ॥ १८ ॥ दैत्योंके भागनेपर इस राजर्षिने स्त्रियोंके सहित समस्त धन और पुर जीतकर देवराज इन्द्रको देदिया इन कार्योंके करनेसे इन महाराजका पुरञ्जय नाम हुआ ॥ १९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! इस पुरंजयका पुत्र अनेना था, इसका पुत्र पृथु,

तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ॥ प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्रिदशः पुरम् ॥ १६ ॥ तैस्तस्य चाभू त्प्रधनं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभिययुर्मृधे ॥ १७॥ तस्येषुपाताभिमुखं युगांताग्निमिवोल्ब णम् ॥ विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानास्स्वमालयम् ॥१८॥ जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये॥ प्रत्ययच्छत्स राजर्षि रिति नामभिराहृतः ॥१९॥ पुरंजयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ॥ विश्वरंधिस्ततश्चंद्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ २० ॥ शावस्तस्तत्सुतो येन शावस्ती निर्ममे पुरी ॥ बृहदश्वस्तु शावस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥ २१ ॥ यः प्रियार्थमुतंकस्य धुंधुनामाऽसुरं बली ॥ सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद्वृतः ॥ २२ ॥ धुंधुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ॥ धुंधोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३ ॥ दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ॥ दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुंभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥

तिससे विश्वरन्धिने जन्म ग्रहण किया, तिसका पुत्र चन्द्र, तिसका पुत्र युवनाश्व हुआ ॥ २० ॥ युवनाश्वके पुत्र शावस्त हुआ जिसने शावस्ती पुरी बसाई, इस शावस्तीका पुत्र बृहदश्व, उसका पुत्र कुवलयाश्व हुआ ॥ २१ ॥ इस महाबलवान् राजाने उतङ्क ऋषिका प्रिय कार्य करनेको अपने इक्कीस सहस्र (२१०००) पुत्रोंको साथ ले धुन्धु नामक असुरको मारडाला था ॥ २२ ॥ इससे इसका नाम धुन्धुमार हुआ । परन्तु इनके समस्त पुत्र धुन्धुकी मुखाग्निसे भस्म होगये केवल तीन बचेथे अर्थात् दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व इन तीनोंमें दृढाश्वका पुत्र

हर्यश्व और हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ ॥ २३ ॥ २४ ॥ निकुम्भका पुत्र बर्हणाश्व कि, जिससे कृशाश्व उत्पन्न हुआ, इस कृशाश्वका पुत्र सेन जित् नामक हुआ उसका पुत्र युवनाश्व हुआ। यह युवनाश्व सन्तान रहित था, इसलिये वनको चलागया ॥ २५ ॥ इसके सौ (१००) स्त्री थीं, संतानके न होनेसे वनमें जाकर यह सब अपनी भार्याओके साथ सदा शोकाकुल रहा करताथा, यह देख वनवासी ऋषिलोगोंने राजापर दयाकी और पुत्रके लिये सावधानहो उस राजासे इन्द्रदैवत्य यज्ञ करानेलगे ॥२६॥ हे राजन् ! अब आश्चर्यकी बात सुनो जब यज्ञ होहीरहा था कि,

बर्हणाश्वो निकुंभस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ॥ युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥ २५ ॥ भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ॥ इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैंद्रीं ते सुसमाहिताः॥२६॥राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ॥ दृष्ट्वा शयानान्विप्रांस्तान्पपौ मंत्रजलं स्वयम् ॥ २७ ॥ उत्थितास्ते निशम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ॥ पप्रच्छुः कस्य कर्मदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥२८॥ राज्ञा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रहितेन ते ॥ ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥२९ ॥

तब युवनाश्व एकदिन रात्रिके समय प्यासा हो जलके लिये यज्ञशालामें गया, उस समय यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण सोरहे थे,तब राजाने उस जलको उठायकर पीलिया कि जो राजाकी स्त्रीको देनेके लिये मंत्रसे पढकर रखखागयाथा ❀ ॥२७॥ जब पुरोहित लोग जागे तो उन्होंने देखा कि, कलशमें जल नहीं। इसलिये विस्मित होकर पूँछाकि "यह कर्म किसकाहै? पुत्रके उत्पन्न करनेवाले जलको कौन पीगया" ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त जब ज्ञात हुआ कि, ईश्वर प्रेरित होकर राजाने यह जल स्वयंपान करलिया है। तब "अहो ! भाग्य बड़ा बली है" पुरुषका बल किसी कामका

❀ शंका–राजा युवनाश्वने आप उठकर चोरकी तुल्य ब्राह्मणोंको सोता देखकर यज्ञका जल पीलिया, अनुचरोंके होते यह बालकोंके समान कर्म राजाने क्यों किया ?॥

उत्तर–पुष्करजीमें राजा युवनाश्व गंगाजीके,राजा–शन्तनुके वीर्यसे गर्भ देखकर बहुत हसा,परन्तु गंगाजीने युवनाश्वके अपराधका कुछ ध्यान न किया और क्षमा किया,परन्तु राजाके अपराधको भगवान्‌ने क्षमा नहीं किया, इसलिये राजाओंमें श्रेष्ठ जो युवनाश्व राजाथा उसको माया करके मूर्ख बनादिया और वह जल पिलाकर उसको गर्भ धारण करादिया कि, जैसे तू गर्भ देखकर हसाथा ऐसेहीं तेरा गर्भदेखकर लोग हसेंगे ॥

नहीं। यह वाक्य उच्चारण करते हुए ईश्वरको वारम्वार नमस्कार करनेलगे ॥ २९ ॥ इसके पीछे जब समय पूर्ण होगया, तब युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाडकर चक्रवर्ती लक्षणोंसे युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३०॥ यह देखकर ब्राह्मणलोग दुःखित हो यह कहकर चिल्लाने लगे कि हा ! यह कुमार दूध पीनेको बहुत रोरहा है, सो अब क्या पियेगा तब देवराज इन्द्र वत्स! रोवै मत "मां धाता अर्थात् मुझे पान कर" यह कहा। और अपनी अंगुली पीनेको दी इसी लिये इनका नाम मान्धाता हुआ ॥ ३१ ॥ मान्धाताके पिता युवनाश्वदेव ब्राह्मणोंके प्रसादसे मरे नहीं बरन उन्होंने तप करके कुछ दिनों पीछे उसी स्थानमें सिद्धि प्राप्त की॥३२॥ रावणादि चोरगण इस मान्धाताके प्रतापसे कम्पायमान हो त्रासित होते थे इसलिये

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ॥ युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥ ३० ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ॥ मां धाता वत्स मा रोदीरितींद्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥ न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः॥ युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥ त्रसद्दस्युरितींद्रोंग विदधे नाम तस्य वै ॥ यस्मात्त्रसंति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३ ॥ यौवनाश्वोथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ॥ सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥ ॥ ३४ ॥ ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतींद्रियम् ॥ ३५ ॥ द्रव्यं मंत्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ॥ धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥ ३६ ॥ यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ॥ सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३७ ॥ शशबिंदोर्दुहितरि बिंदुमत्यामधान्नृपः ॥ पुरुकुत्समंबरीषं मुचुकुंदं च योगिनम् ॥ ३८ ॥

इन्द्रने मान्धाताका दूसरा नाम 'त्रसदस्यु' रक्खा था. तिसके उपरान्त युवनाश्वका पुत्र सम्राट् हो भगवान् वासुदेवके तेजसे अकेलाही सप्तद्वीपोंको पालता था ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ आत्मवान् होकरभी अनेक अनेक दक्षिणा दे, अनेक यज्ञ करने लगा, उनसे यज्ञरूपी सर्वदेवमय सर्वात्मक सब इंद्रियोंसे पर उन यज्ञ भगवानकी पूजा करने लगा ॥३५॥ कि—द्रव्य, मंत्र, वलि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विक्, धर्मोपदेश और काल यह सब जिसके स्वरूप हैं ॥ ३६ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जहांसे सूर्य भगवान् उदय होते हैं और जहाँ अस्त हुआ करते हैं। इतनी दूरतक सब स्थान युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके क्षेत्र कहे जाते थे ॥३७॥ इस राजा मान्धाताके शशबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमतीके गर्भसे पुरुकुत्स, अम्बरीप और योगी

सुचुकुन्द यह तीन पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ इन तीन पुत्रोंकी ५० पचास बहने थीं, अर्थात् तीन पुत्रोंके अतिरिक्त मान्धाताके पचास ५० कन्या हुई थीं और वह सब सौभरि ऋषिको व्याही गईं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! सौभरि यमुनाके जलमें बैठे तप कर रहे थे, तब उन्होंने मीनराजाके मैथुनका आनंद देखा कि, जिससे इनकाभी विवाह करनेमें बड़ा भारी अनुराग हुआ, इसलिये तप करना छोड़ मान्धाताके निकट जाय अपनी स्त्री बनानेको एक कन्या माँगी ॥ ४० ॥ मान्धाताने इन ऋषीश्वरकी प्रार्थना सुनकर कहा कि; हमारी कन्याका स्वयंवर होगा सो जो कन्या तुम्हें वरै, उसको तुम लेना ॥४१॥ यह सुनकर सौभरिने मनमें समझा कि; हम जरा (बुढापा) से जीर्ण होगये हैं और हमारे केश श्वेत होगयेहैं, बडी अवस्था होजानेसे मस्तक कम्पायमान होता है, तिसपर हम तपस्वी हैं, यही जानकर राजा हमें कन्या देनेको सम्मत न हुए । इन्होंने हमें स्त्रियोंका कुप्यारा जान

तेषां स्वसारः पंचाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ यमुनांतर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः ॥ ३९ ॥ निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥ जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ॥ ४० ॥ सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे ॥ स विचिंत्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः ॥ ४१ ॥ वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥ साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ॥ किं पुनर्मनुजेंद्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥ ४२ ॥ मुनिः प्रवेशितः क्षत्त्रा कन्यांतःपुरमृद्धिमत् ॥ वृतश्च राजकन्याभिरेकः पंचाशता वरः ॥ ४३ ॥ तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ॥ ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥ ४४ ॥

छलसे हमको लौटाय दिया, अच्छा अब हम अपनी चेष्टा ऐसी बनाते हैं कि, जिससे मनुष्य स्त्रियोंकी तो बात ही क्या ? सुरसुन्दरीभी देखकर चाहना कर बैठें । यह सोच विचार इस कार्यके करनेको निश्चय किया ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त तप प्रभावसे इनका रूप वैसाही होगया जैसा कि, इन्होंने सोचा था. एक समय राजपुरीका प्रतिहारी इनको राजकन्याओंके अन्तःपुरमें लेगया । तिससे पचाशों कन्याओंने इनको अपना पति वरण किया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! मान्धाताकी कन्याओंमें प्रथम परस्पर बड़ा प्रेम था, परन्तु सौभरि ऋषिसे व्याह करनेके लिये उनमें चित्त लगाय सबकी सब परस्पर क्लेश करने लगीं और बोलीं कि, "यह हमारे योग्य वर हैं, तुम्हारे योग्य नही हैं" बस इन ऋषिके लिये उनमें बडा

क्लेश मचने लगा। तब सौभरि ऋषि बोले कि, तुम सबही हमसे विवाह करलो ॥ ४४ ॥ सौभरि ऋषि तपःसामर्थ्यसम्पन्न थे उनके कठिन तपः प्रभावसे उसी समय प्रत्येक भवनमें अनमोल सामग्री प्रस्तुत हुई। और अनेक प्रकारके वन, उपवन, शोभायमान होने लगे, सरोवरोंमें सुगन्धित कुमुद, कह्लारके वन फूल उठे। जितने गृह थे, सब दास दासियोंसे भलीभाँति शोभायमान होगये और सबकहीं भ्रमर गुंजार करने लगे। बन्दियोने मधुर स्वरसे गाना आरम्भ किया। वे ऋषि महामोलकी शय्या, आसन, वसन, भूषण, स्नान व उबटनादिसे सम्पन्न हो सब गृह व उपवनादिमें अपनी सब स्त्रियोसहित सदा विहार करने लगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे राजन्! सौभरिका गृहस्थाश्रम देख कर सातद्वीप पृथ्वीके राजा मान्धाताजी अति विस्मित होगये। उन्होंने अपने राज्य और सम्पत्तिका गर्व छोडदिया ॥ ४७ ॥ सौभरि ऋषि इस प्रकारसे

स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपश्श्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु ॥ गृहेषु नानोपवनामलांभस्सरस्सु सौगंधिककाननेषु ॥ ४५ ॥ महाऽर्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ॥ स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृंगवंदिषु ॥ ॥ ४६ ॥ यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ॥ विस्मितः स्तंभमजहात्सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥ ४७ ॥ एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ॥ सेवमानो न चाऽतुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥ स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ॥ ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसंगसमुत्थितम् ॥ ४९ ॥ अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ॥ अंतर्जले वारिचरप्रसंगात्प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५० ॥ संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिंद्रियाणि ॥ एकश्चरन्रहसि चित्तमनंत ईशे युंजीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसंगः ॥ ५१ ॥

गृहस्थाश्रममें रहकर भोग विलासके सुख भोगने लगे, परन्तु तो भी उनको किसी प्रकारसे तृप्ति नहीं हुई कि, जिस प्रकार घीकी बूँद गिरनेसे अग्नि बढ़ती है घटती नहीं ॥ ४८ ॥ किसी समय ऋग्वेदाचार्य यह सौभरि ऋषि एकान्तमें बैठ अपने आपेकी चिन्ता करने लगे। तब वह उस तपस्याकी हानिको समझे। जो उनको मत्स्यके संसर्गसे प्राप्त हुई थी ॥ ४९ ॥ इसलिये अछताय पछतायकर आपही आप बोले कि, हाय! हम साधु चरित्र व्रत और तपस्वी थे; हमारा यह नाश देखो। जलमें जलचरके संगमें रहनेसे सदाका इकट्ठा किया तपस्या रत्न खो दिया ॥ ५० ॥ मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि, दाम्पत्य धर्मवान् पुरुषोंका संग त्याग न करैं और इन्द्रियोंकी अग्नि उत्पन्न करनेको रोकना

भी उनका आवश्यकीय कार्य है । अकेले निर्जन वनमें भ्रमण करके अनन्त परमेश्वरमें चित्त लगाना उचित है । जो कहीं प्रसंग आजाय तो ईश्वरके लिये केवल धर्मवान् साधुका संग करना चाहिये ॥ ५१ ॥ हम अकेले जलमें तप कररहे थे, वहाँ मत्स्यसंसर्गवश भार्या ग्रहण करनेकी हमारी अभिलाषा हुई और एकके बदले पचास (५०) करी और एक एक स्त्रीके गर्भसे सौ सौ पुत्र उत्पन्न हुए कि जिससे सब पाँच हजार हुए। तौ भी हम इस लोक व परलोकके मनोरथका अंत नहीं पाते क्योंकि मायाके गुणसे मेरी मति हरी गई । इसलिये मैं विषयमें ही पुरुषार्थ समझताहूँ ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! जब सौभरि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें वास करते करते विरक्त हुए तब संग छोडनेको वानप्रस्थ धर्म धारण कर वनको चले गये । उनकी पतिपरायणा सब स्त्रियें उनके संग संग चलीं ॥ ५३ ॥ आत्मज्ञानके जाननेवाले यह मुनि जिससे परमात्मा मिलजाय ऐसी

एकस्तपस्व्यहमथांभसि मत्स्यसंगात्पञ्चाशदासमुतपञ्चसहस्रसर्गः ॥ नांतं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥ ५२ ॥ एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ॥ वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥ ॥ ५३ ॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् ॥ सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥ ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याऽऽध्यात्मिकीं गतिम् ॥ अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शांतमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागव० म० नवम० इक्ष्वाकुवंशवर्णने सौभर्याख्यानं नाम षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मांधातुः पुत्रप्रवरो योंबरीषः प्रकीर्तितः ॥ पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ १ ॥

तीक्ष्ण तपस्या करके तीनों अग्नियोके साथ आत्माको परमात्मामें मिला देते हुए ॥ ५४ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी, राजा परीक्षितसे बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! अपने पतिकी ऐसी आध्यात्मिकगति अर्थात् परब्रह्ममें लीन देख उनकी सब स्त्रियें उनके प्रभावसे उनके पीछे गईं जैसे अग्निके शान्त होजाने पर उसकी लपट उसके संगही बुझ जाती है ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां सौभर्युपाख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–सप्तम मान्धाता कुलहि, पुरु कुत्सो हरिचन्द । भये सत्यव्रत जगतमें, पूरण परमानन्द ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! मान्धाताके श्रेष्ठ पुत्र अम्बरीषको युवनाश्वने पुत्रभावसे गोद लिया, अम्बरीषका बेटा हारीत हुआ सो मान्धाताके गोत्रमें

श्रेष्ठ हुआ १ ॥ हे राजन् ! उरगोंने अपनी बहन नर्मदाको पुरुकुत्ससे विवाह दिया, शेषजीके कहनेसे यह नर्मदा अपने स्वामी पुरुकुत्सको पातालमें ले गई ॥ २ ॥ विष्णु शक्ति धारण करके वध करनेके योग्य अनेक गन्धर्वोंको निहत किया और पीछे आपने नागराजसे अनुपम वर प्राप्त किया। वह वर यह था कि, नर्मदाका यह समस्त रसातलके आनेका व्यापार जो पुरुष स्मरण करेंगे, उनको सर्पसे भय नहीं होगा। पुरुकुत्सका पुत्र त्रसद्दस्यु, इनके पुत्र अनरण्य॥३॥४॥तिनके हर्यश्व जिससे अरुणजीने जन्म ग्रहण किया। अरुणका पुत्र निबन्धन हुआ निबन्धनका पुत्र सत्यव्रत, जो कि "दुःखके हेतु तीन दोषोंके रहनेसे" त्रिशंकु नाम हुआ ॥ ५ ॥ इनके पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि, तू चाण्डाल

हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे ॥ नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ॥२॥ तया रसातलं नीतो भुजगेंद्रप्रयुक्तया ॥ गंधर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् ॥३॥ नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम्॥त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ॥ ४ ॥ हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोथ निबंधनः ॥ तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशंकुरिति विश्रुतः ॥५॥ प्राप्तश्चांडालतां शापाद्गुरोः कौशिक तेजसा ॥ सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ॥ ६ ॥ पातितोऽवाक्छिरा देवैस्तेनैव स्तंभितो बलात् ॥ त्रैशंकवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७॥

होजा इसलिये यह चाण्डालपनको प्राप्त हुए थे। फिर विश्वामित्र मुनिके प्रभावसे शरीरके सहित स्वर्गको गये और अबतक आकाशमें टिके हुए हैं, देवतालोगोंने इनको अवाक्‌शिरा कर स्वर्गसे गिराना चाहाथा; परन्तु महर्षि विश्वामित्रने इनको अपने बलसे वहीं थाम दिया। इन त्रिशंकुके पुत्र सत्यव्रतधारी महात्मा हरिश्चन्द्र हुए इनहीं राजार्षके निमित्त वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी परस्पर शाप देकर आडी और बक (बगला) पक्षी हुए। और इन दोनोंने एक वर्ष तक घोर युद्ध किया था ॥ ६ ॥ ७ ॥

---

१ हरिवंशमें यह तीन दोष प्रगट हैं, यथा-"पिताको असन्तुष्ट रखना, गुरुकी दुधारी गायका वध करना, विना धुली वस्तुका सेवन करना" यहापर एक इतिहास है कि, विश्वामित्र मुनिसे राजसूय यज्ञ कराय इस त्रिशंकुने ब्राह्मणकी कुमारी कन्याको हरण कर लिया था ॥

२ यहापर एक इतिहास प्रसिद्ध है कि "विश्वामित्र मुनिने राजसूय यज्ञ कराय उसकी दक्षिणामें सर्वस्व हरणकर राजा हरिश्चन्द्रको आर्त किया यह सुन महर्षि वसिष्ठजी क्रोधित हो विश्वामित्रके पास जाय शाप दिया कि, यह अन्यायाचरण करनेके हेतु तुम आडी पक्षी होजाओ विश्वामित्रने बदलेमें यह शाप दिया कि "तुम बगला होजाओ" फिर इन दोनोंने परस्पर आडी और बगला हो घोर युद्ध कियाथा" ६॥

इन हरिश्चन्द्रके प्रथम कोई पुत्र न था, इसलिये सदा अनमने रहते थे, एक समय देवर्षि नारदजीके उपदेशसे जलाधिपति वरुणजीकी शरण जाय कर प्रार्थना की कि,हे देव ! आप हमें यह वर दें कि हमारे एक पुत्र हो, हे प्रभो ! जो हमारे वीर पुत्र उत्पन्न होवे तो हम उसी पशु पुरुषसे आपका यज्ञ करें ॥८॥ वरुणजीने कहा कि, ऐसाही होगा। तब राजा हरिश्चन्द्रके रोहित नामक एक पुत्र हुआ। पुत्रके उत्पन्न होनेपर वरुणजी राजाके निकट आन कर बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र होगया, अब कहनेके अनुसार तुम हमारा यज्ञ करो कि, जिसमें यह तुम्हारा पुत्रही पशु बने तब राजा हरिश्चंद्र

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः॥ वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥ ८ ॥ यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ॥ तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥ ९ ॥ जातस्सुतो ह्यनेनांग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ॥ यदाप शुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥ १० ॥ निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ दंताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मे ध्यो भवेदिति ॥११॥ जाता दंता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत्॥ यदा पतंत्यस्य दंता अथ मेध्यो भवेदिति ॥१२॥

बोले कि,हे देव ! दश दिनकी आयु न होनेसे पशु पवित्र और यज्ञके योग्य नहीं होता,इसलिये में दशदिन बीतनेपर आपका यज्ञ करूंगा ❋॥९॥१०॥ हे राजापरीक्षित् ! दश दिनके बीततेही वरुणजी फिर आयकर बोले कि, अब यज्ञ करो तब महाराज हरिश्चंद्रने कहा कि, दांत निकलनेपर यज्ञ किया जायगा॥११॥ दांत निकलनेपर वरुणजीने आनकर कहा कि, दांतभी निकल आये अब तो यज्ञ करो तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि,दांत गिरनेपर यह

❋ शका–राजा हरिश्चन्द्रने सव यज्ञको त्यागकर पुत्रका मांस करके वरुणका जो यज्ञ उसके करनेको क्यों विचार किया और वरुणभी ऐसे उत्तम देव उससे बालहत्या ग्रहण करनेको क्यों अंगीकार किया ? इस वातसे जान पडता है कि, वरुण भी महापापी है इससे तो कलियुगही अच्छा है, क्योंकि इसमें ऐसे ऐसे अन्याय तो नहीं होते ।

उत्तर–राजा हरिश्चन्द्र अपने आपको पुत्रहीन जानके मनसे राजनीति विचारकर पुत्रके माससे यज्ञकरनेका विचार किया कि, अभी मेरे पुत्र नहीं है, वरुणको लोभ देके जो पुत्र मेरे होजावेगा तो नहीं मारूंगा पुत्रके लिये झूठ बोलनेका पापभी नहीं होवेगा, इसलिये हरिश्चन्द्रने पुत्रके मांससे यज्ञ करनेका विचारकिया ॥

महा पवित्र यज्ञ भली भाँति सम्पूर्ण होगा ॥१२॥ कुछदिन पीछे रोहितके दाँत गिरगये तब वरुणजी फिर राजाके निकट आनकर बोले कि, हे राजन्! हमारे पशुके दाँत गिरगये। अब तो यज्ञ अवश्यही करना चाहिये। हरिश्चन्द्रने कहा कि, दाँत गिरकर जबतक फिर न उपजें तबतक पशु पवित्र नही होता, यह सुनकर वरुणजी अपने स्थानको चलेगये ॥ १३ ॥ और कुछ समय उपरान्त फिर आनकर बोले कि, तुम्हारे पुत्रके दाँत दूसरी बार उत्पन्न हो आये, अब तो यज्ञकरो। तब राजर्षि हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया कि,हे वरुणदेव! जब क्षत्रिय पशु कवच बख्तर पहरने योग्य होताहै, तब वह पवित्र कहा जाताहै। सो हमारा पुत्र अभी इस योग्य हुआ नहीं। सो भला हम कैसे यज्ञ करदें? ॥१४॥ हे महाराज परीक्षित्! राजा हरिश्चन्द्रका चित्त स्नेहके वश होगया था,उन्होंने पुत्रानुरागके वश यज्ञकरनेके लिये वरुणजीको जो जो समय बताये,वह वरुणजी उसी समयकी राह देखनेलगे ॥ १५ ॥

पुनर्जाता पशोर्निपतिता दंता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशोः पुनर्दंता जायंतेऽथ पशुः शुचिः ॥ १३ ॥ पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ सान्नाहिको यदा राजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥१४॥ इति पुत्रानुरागेण स्नेहयंत्रितचेतसा ॥ कालं वंचयता तंतमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५ ॥ रोहीतस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ॥ प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६॥ पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ॥ रोहितो ग्राममेयाय तमिंद्रः प्रत्यषेधत ॥१७॥ भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ॥ रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत्समाम् ॥ १८ ॥ एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पंचमे तथा ॥ अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा ॥ १९ ॥

कि, इतनेमें रोहित पिताका अभिप्राय अर्थात् अपनेको पशु बनायकर वरुणजीके यज्ञ करनेकी इच्छाको जानगया। इसलिये वह अपने प्राण बचानेको धनुष ग्रहणकर वनको चलागया ॥१६॥ इससे वरुणजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रको सताया, इसलिये राजा हरिश्चन्द्रका पेट अति बड़ा होगया। इसके पीछे रोहितने सुना कि, पिताजीको वरुण देवताने पीड़ा दीहै इसलिये अपनी पुरीमें जानेकी इच्छा की, परन्तु देवराज इन्द्रने वहाँ आय रोहितको जानेसे रोका ॥१७॥ और कहा कि, तीर्थोंकी सेवा करते हुए पृथ्वीपर विचरण करना अत्यन्त पुण्यदायक है। सो तुम ऐसाही करो। यहाँ रोहिताश्वने एक वर्षतक वनमें वास कियाथा ॥१८॥ इस प्रकारसे दूसरे,तीसरे, चौथे और पांचवें वर्षमें जब रोहितने

पिताजीके पास जानेकी इच्छा की उसीसमय देवराज इन्द्र ब्राह्मणरूपसे उनके निकट आय इस प्रकारसे कहतेथे कि, "पुण्य तीर्थोंमें विचरण करो" ॥१९॥ इसलिये रोहित राजकुमारने छै (६) वर्षतक वनमें विचरण किया,इस प्रकार जब रोहितको छठा वर्ष वनमें रहते बीत गया और पुरीमें आनेलगा, तब यह रोहित अजीगर्त्तके मध्यम पुत्र शुनःशेपको उसके पितासे मोलले आये ॥ २० ॥ और इस शुनःशेपको अपने पिता राजा हरिश्चन्द्रको देकर प्रणाम किया। तिसके पीछे महायशस्वी प्रसिद्ध महात्मा महाराज हरिश्चन्द्रजीने नरमेध यज्ञकी विधिसे वरुणदेवताका यज्ञ प्रारंभ किया ॥२१॥ तब वरुणजीने राजा हरिश्चन्द्रकी उदर पीड़ा शान्त करदी। इस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा और अयास्य मुनि सामग हुए। हे राजा परीक्षित ! इस व्यापारसे देवराज इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके ऊपर प्रसन्न हो उनको एक सुवर्णका रथ दिया॥२२॥ ॥२३॥ हे महाराज ! शुनःशेपका माहात्म्य (विश्वामित्र उपाख्यानके प्रसंगमें) आगे वर्णन करेंगे. हे महाराज ! भार्या सहित राजा हरिश्चन्द्रका सत्य सामर्थ्य और धैर्य देखकर ॥२४॥ महामुनि विश्वामित्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुये थे,इसलिये उन्होंने महाराज हरिश्चन्द्रको अविहता अर्थात् परमज्ञान दियाथा तब इन राजर्षि हरिश्चन्द्रजीने अन्नमय मनको अन्न शब्द वाच्य पृथ्वीमें धारण अर्थात् पृथ्वीके साथ मिलाकर फिर उसको जलके साथ मिलाया। इसके उपरान्त उस जलको तेजके साथ एक करके उस तेजको वायुके साथ मिलाया, तिसके पीछे पवनको आकाशमें धारण करके इस आकाशको अहंकारमें मिलादिया फिर उस अहंकारको महत्तत्त्वमें मिलाय, विषयाकार हटाय, ज्ञानांशका आत्मस्वरूपमें

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ॥ उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥ २० ॥ शुनश्शेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवंदत ॥ ततः पुरुषमेधेन हरिश्चंद्रो महायशाः ॥ २१ ॥ मुक्तोदरोऽयजद्देवान्वरुणादीन्महत्कथः ॥ विश्वामित्रोऽभवत्तस्मिन्होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥ २२ ॥ जमदग्निरभूद्ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः ॥ तस्मै तुष्टो ददाविंद्रश्शातकौंभमयं रथम् ॥ २३ ॥ शुनश्शेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात्प्रचक्षते ॥ सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ॥ मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽऽपोऽनिलेन तत् ॥ २५ ॥ खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ॥ तस्मिञ्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन् ॥ २६ ॥

ध्यानकर जिसने आत्माके आवरण अज्ञानको भस्म कर डाला ॥ २५ ॥ २६ ॥ फिर निर्वाण सुख सम्पत्तिसे ज्ञानकलाको त्यागकर बन्धनसे मुक्त हुआ अनिर्देश्य और अप्रत्यक्ष स्वरूपमें स्थित हुआ ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा–अष्टम रोहित वंशमें, प्रगटे सगर भुवाल । तिनके सुत ऋषि शापसे, भस्म भये तत्काल ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित! रोहितका पुत्र हरित हुआ इस हरितसे चम्पने जन्म लिया कि, जिसने चम्पापुरी बसाई. चम्पका पुत्र सुदेव और

छित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ॥ अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥२७॥ इति श्रीमद्भागव० म० नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ हरितो रोहितसुतश्चंपस्तस्माद्विनिर्मिता ॥ चंपापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १ ॥ भरुकस्तत्सुतस्तस्माद्वृकस्तस्यापि बाहुकः ॥ सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥ वृद्धं तं पंचतां प्राप्तं महिष्यनुमरिष्यती ॥ और्वेण जानतात्मानं प्रजावंतं निवारिता ॥ ३ ॥ आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोंधसा सह ॥ सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४ ॥

सुदेवका पुत्र विजय हुआ ॥ १ ॥ विजयका पुत्र भरुक, इसका पुत्र वृक और वृकसे बाहुकने जन्म लिया. जब शत्रुओंने इस बाहुकका राज्य छीन लिया तब वह अपनी स्त्रियोंको साथ ले वनमें चलागया ॥ २ ॥ उसी स्थानमें वृद्ध होकर वह मृत्युको प्राप्तहुआ । इनकी स्त्री इनके साथ सती होनेको जातीथी कि, महर्षि और्वने इसको गर्भवती जानकर मरनेसे निवारण किया * ॥ ३ ॥ रानीकी सौतोंने इसको गर्भवती जानकर हिंसाके वश हुई और इसके गर्भका नाश करनेको अन्नके सहित गरल (विष) इसे खानेको दे दिया, परन्तु वह गर्भ

* शंका–और्वऋषि राजाकी स्त्री सत्य होती हुईको क्यों रोका ? और अपने आपको कृपालु क्यों माना कि, जो स्त्री सत्य नहीं होगी तो इसके पुत्र होगा, यह बड़ा सन्देह है ॥

उत्तर–पुत्र, भविष्य अर्थात् आगेकी बात जाननेवाले जो और्वऋषि थे उन्होंने ऐसा जाना कि, राजा सगर बड़ा बलवान होगा और सगरका चित्त होगा, सगरमें इसकी कीर्ति होगी लोकमें और शास्त्रमें शास्त्रोंमें यह विचार है कि, पुत्रमें और शिष्यमें कुछ भेद नहीं जानना चाहिये यह दोनों बराबर हैं ऐसा विचारके सगरको पुत्र मानकर अपने आपको कृपालु मानलेते ॥

विष देनेसे विनाश नहीं हुआ. तब इस गरके संग उत्पन्न होनेसे उस गर्भसे उपजे पुत्रका नाम सगर हुआ ॥ ४ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! यह सगर बड़ा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा हुआ इसी राजाने अपने गुरु और्व ऋषीश्वरके कहनेसे तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर ॥ ५ ॥ इन जातियोंको मार नहीं डाला बरन् राजा सगरने प्रत्येक जातिको पृथक् २ प्रकारसे विकृत कियाथा अर्थात् किसी जातिके केश सम्पूर्ण मुँडवादिये, किसीके डाढी मूँछें रखवादीं किसी जातिको खुले केश किया और किसीको अर्धमुण्डित ॥ ६ ॥ किसी जातिको अन्तर्वासविहीन करके केवल बहिर्वास धारी किया और किसी जातिको बहिर्वासहीन करके केवल कौपीनधारी किया. हे राजन् ! महाराज सगरने महर्षि और्वके बताये हुए उपायसे अश्वमेध यज्ञ करके सर्व देव और सर्वदेवमय परमात्मा परमेश्वर भगवान्ने हरिकी पूजा की जब उसने पृथ्वीपर

सगरश्चक्रवर्त्यासीत्सागरो यत्सुतैः कृतः ॥ यस्तालजंघान्यवनाञ्छकान्हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥ नावधीद्गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ॥ मुंडाञ्छ्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुंडितान् ॥ ६ ॥ अनंतर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ॥ सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७ ॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ॥ तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरंदरः ॥ ८ ॥ सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ॥ हयमन्वेषमाणास्ते समंतान्न्यखनन्महीम् ॥ ९ ॥ प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलांतिके ॥ एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ १० ॥ हन्यतांहन्यतां पाप इति षष्टिसहस्त्रिणः ॥ उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ ११ ॥

भ्रमण करनेको घोड़ा छोड़ा तब उसको देवराज इन्द्रने हरण करलिया ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे कुरुप्रवीर ! सगर राजाके दो स्त्री सुमति और केशिनी थीं राजाने यज्ञका घोड़ा ढूँढनेके लिये सुमतिके साठ हजार(६०,०००)पुत्रोंको आज्ञा दी. इस आज्ञाको पाय सुमतिके पुत्र अहंकार करके यज्ञके घोड़ेको खोजनेके लिये सारी पृथ्वी खोजने लगे ॥ ९ ॥ जब पृथ्वीपर घोड़ा नहीं मिला तो चारों ओरसे पृथ्वीको खोदडाला कुछ दिन पीछे यह सगरके पुत्र उत्तरपूर्वके कोनेमें जहां महर्षि कपिलदेवजीका आश्रम था वहां पहुँचे और वहांपर उस घोड़ेको बँधाहुआ देख "इसने हमारे घोड़ेको चुराया है, यही चोरहै देखो कैसी आँखें बंद करली हैं ॥ १० ॥ इस दुराचारी पापीको अभी मारडालो" इसप्रकारसे कहकर यह साठ हजार सहोदर

भाई अस्त्र शस्त्र उठाय महात्मा कपिलदेवजी पर दौडे भगवान् कपिलदेवजी उस समय समाधिमें स्थित थे, उन्होंने कुलाहल सुनकर समाधि त्यागदी
और नेत्र खोले ॥ ११॥ हे राजन्! देवराज इन्द्रकी मायासे सगरके पुत्रोंकी बुद्धि नाशको प्राप्त होरहीथी इसीलिये वह महर्षि कपिलदेवजी पर ऐसा
अत्याचार करनेको प्रस्तुत हुए परन्तु इस महाकुकार्य करनेके हेतु अतिमहान् अग्नि जो कि, महर्षि कपिलदेवजीके शरीरसे निकलतीथी उससे
यह सबके सब क्षण मात्रमें भस्म होगये ॥ १२ ॥ हे परीक्षित्! कोई कोई यह कहते हैं कि, कपिलदेवजीकी क्रोधाग्निसे सगरके पुत्र भस्म हुए, यह
साधुवाद नहीं क्योंकि भगवान् कपिलदेवजी शुद्ध सत्व मूर्ति हैं उनकाभी आत्मा जगतको पवित्र करनेबालाहै, सो आकाशमें पार्थिव धूरिकी समान
उन कपिलदेवजीमें किस प्रकारसे क्रोधरूपी तमोगुणका उदय होसक्ता है ॥ १३ ॥ और जिन कपिलदेवजीने इस संसारमें सांख्य शास्त्रकी अति

स्वशरीराग्निना तावन्महेंद्रहृतचेतसः ॥ महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात ॥ १२ ॥ न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेंद्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ॥ कथं तमो रोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजोभुवः ॥ १३ ॥ यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ॥ भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥ १४ ॥ योऽसमंजस इत्युक्तः स केशिन्यां नृपात्मजः ॥ तस्य पुत्रोंशुमान्नाम पितामहहितेरतः ॥ १५ ॥ असमंजस आत्मानं दर्शयन्नसमंजसम् ॥ जातिस्मरः पुरा संगाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १६ ॥ आचरन्गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ॥ सरय्वां क्रीडतो बालान्प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम् ॥ १७ ॥

दृढ नौका चलाई है, जिस नौकापर चढ़कर मुमुक्षुलोग दुरत्यय मृत्युके पन्थरूप संसारके पार होते हैं उन सर्वज्ञ सर्वात्मास्वरूप महामुनिमें शत्रुमित्रादि भेददृष्टिका होना किस प्रकारसे सम्भव है ? ॥ १४ ॥ सगर राजाके एक पुत्रका नाम असमंजस था "केवल अज्ञानी लोगही इनको असमंजस कहतेथे, पर वास्तवमें यह समंजसही थे" जो केशिनी रानीके गर्भसे उत्पन्न हुये थे उस असमंजसका पुत्र अंशुमान, सदा अपने दादाके हितकारी कार्य करता था ॥ १५॥ हे राजन्! यह असमंजस पहले जन्ममें योगी था, संग करनेके हेतु योगसे भ्रष्ट हुआ। इसलिये अपनी जातिका स्मरणकर दूसरे जन्ममेंभी संगके छोड़नेको निन्दनीय कार्य करनेवाली जातिकी भाँति निन्दनीय कर्म करता था अर्थात् लोगोंको उद्वेग जन्माय लोग निंदित

आचार और अपनी जातिके अर्थ विप्रिय कर्म करता हुआ खेलही खेलमें बालकोंको सरयूके जलमें डाल देता था ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकारके कर्म देख इनके पिता राजा सगरने पुत्रपनका स्नेह छोड़ इनको त्याग दिया.तब यह अपने योगके प्रभावसे मृतक बालकोंको फिर जिलायकर सबको दिखाया और फिर उस पुरीसे निकलकर चलेगये ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अयोध्यावासी प्रजाके लोग असमंजसके मारे हुये अपने अपने बालकोंको सजीव देखकर महाविस्मित हुये और राजा सगरने फिर असमंजसके लिये महासन्ताप किया ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, हे कुरुकुलभूषण ! अब इधरकी कथा सुनिये कि, जब सुमतिके सब पुत्र मारे गये तब राजा सगरने यज्ञके घोड़ेको खोजनेके लिये असमंजसके पुत्र अंशुमानको भेजदिया, तब अंशुमान उसी मार्गसे चले जो कि, उनके चाचा लोगोंने खोदकर बनाया था और फिर बहुत दूर जाकर

एवं वृत्तपरित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ॥ योगैश्वर्येण बालांस्तान्दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १८ ॥ अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान्पुनरागतान् ॥ दृष्ट्वा विसिष्मिरे राजन्राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १९ ॥ अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरंगान्वेषण ययौ ॥ पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥ २० ॥ तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ॥ अस्तौत्समाहितमनाः प्रांजलिः प्रणतो महान् ॥ २१ ॥ अंशुमानुवाच ॥ न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ॥ कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २२ ॥ ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान्विपश्यंत्युत वा तमश्च ॥ यन्मायया मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २३ ॥

भस्मकी ढेरके समीपही घोड़ेको बँधा हुआ देखा ॥ २० ॥ हे राजन् ! उस स्थानमें कपिल मुनि साक्षात् भगवान् रूप बैठे थे उनको बैठा हुआ देख महात्मा अंशुमान सावधान चित्तसे हाथ जोडकर उनकी स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ हे देव ! जो ब्रह्मा जन्मसे रहित हैं, उन्होंनेभी अबतक आपसे परे जो परमेश्वर आप हैं, आपको समाधि लगाकरभी नहीं देख पाया. न वह युक्तिसे आपको जानसके। फिर दूसरे अर्वाचीन पुरुष आपको कैसे देख सकते हैं ? ब्रह्माजीके मन शरीर और बुद्धिसे जो विविध देव तियक् नर सृष्टि होती है, वह लोग उसमेंही उत्पन्न हुये हैं, फिर तिसपर हम उनसे भी मूर्ख हैं; इसलिये हमको आपके दर्शन पानेकी कुछभी सम्भावना नहीं है ॥ २२ ॥ हे देव ! जो पुरुष देहधारी हैं यद्यपि वह लोग आपकी

आत्मामें भली भाँति विराजमान हैं तो भी आपको नहीं जानते, केवल सब गुणोंको देखते हैं, अथवा गुणभी उनको दिखाई नहीं देते, केवल तुमही देखते हैं,क्योकि उनमें त्रिगुण बुद्धिही प्रधान है. इसलिये बादरमें उनका ज्ञान है, अर्थात् वह बुद्धिके वश हैं, इसलिये जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें विषय देखते हैं और सुषुप्ति अवस्थामें केवल तुमही देखते हैं,आप निर्गुण हैं,इससे आपको किसी अवस्थामें नहीं देख पाते। क्योकि उनका चित्त आपकी मायासे मोहित होरहा है ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! आप ज्ञान घन स्वभाव अर्थात शुद्ध सत्त्व मूर्ति हैं इसलिये जिन पुरुषोंका माया गुण निमित्त भेद ध्वंसको प्राप्त होगयाहै, ऐसे सनक सनन्दनादि मुनिजनोकेभी आप विचारने योग्य हैं, मैं मूढ विचार करके भी किसप्रकार आपको जान सक्ता हूं ? फलतः आप ज्ञान घन स्वरूप हैं,इसलिये ज्ञानगम्य नहीं हैं, यद्यपि आप विचारके विषय हों तोभी मैं मायाके गुणोंमें लिपटा

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ॥ सनंदनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥ २४ ॥ प्रशांतमायागुणकर्मलिंगमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ॥ ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २५ ॥ त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ॥ भ्रमंति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रांतचेतसः ॥ २६ ॥ अद्य नः सर्वभूतात्मन्कामकर्मेन्द्रियाशयः ॥ मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान्कपिलोमुनिः ॥ अंशुमंतमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृपः ॥ २८ ॥

हुआ हूं इससे विचार करनेको समर्थ नहीं हूं ॥२४॥ हे प्रशान्त ! मायाके गुणसेही आपको विश्व सृष्टयादि कर्म हैं, आपका लिंग ब्रह्मादि रूपहैं आप कार्य कारणसे परे हैं, आपने केवल ज्ञानका उपदेश देनेके लिये इस शुद्ध सत्त्व मूर्तिको प्रगट किया है, इसलिये आप पुराणपुरुष हैं, सो मैं आपको केवल नमस्कार करता हूं ॥२५॥ हे विभो ! यह लोक आपकी मायासे,बना हुआ है इसमें वस्तुबुद्धि करके काम, लोभ, ईर्षा और मोहसे जिन मनुष्योंका चित्त भ्रान्त है,वह सबही गृहादिमें भ्रमण करते हैं ॥२६॥ हे सर्वात्मन् ! परन्तु आपकी कृपासे और आपका दर्शन होनेसे आज हमारा काम कर्म और इन्द्रियोंका आश्रय रूप अतिदृढ मोहपाश छिन्न होगया, अर्थात् आपके प्रसादसे हम कृतार्थ होगये ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि, हे महाराज ! इसप्रकारसे स्तुति करके कपिलदेवजीका प्रभाव गाया, तब वह कपिल भगवान् अनुग्रह

करने लगे। शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजी इस राजर्षिपर बहुत शीघ्र प्रसन्न होगये ॥ ८ ॥ महात्मा भगीरथजीने जो कुछ प्रार्थना की उसको लोकहितैषी भगवान् महादेवजीने तथास्तु कहा। और सावधान होकर गंगाजीको धारण किया, हे राजन्! गंगाजीके माहात्म्यका वर्णन कैसे करैं? उनका जल भगवान् वासुदेवके चरण स्पर्शसे पवित्र हुआ है ॥ ९ ॥ राजर्षि भगीरथजी भुवन पावनी गंगाजीको उस स्थान पर ले आये कि, जहां उनके चचा लोगोंकी भस्मढेर पडी थी भगीरथजी पवनकी समान वेगगामी रथपर सवार हो आगे आगे चलने लगे और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगाजी उनके पीछे पीछे बहती हुई सब लोकोंको पवित्रकर भस्महुए सगरके पुत्रों पर अपना पवित्र जल डालने लगीं ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ हे राजन्! सगरके पुत्र ब्राह्मणका अपराध करके भस्म हुए थे, जब कि उनकी राखके ऊपर गंगाजीका जल पडा और वह स्वर्गको

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ॥ दधारावहितो गंगां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥ भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ॥ यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥ १० ॥ रथेन वायुवेगेन प्रयांतमनुधावती ॥ देशान्पुनंती निर्दग्धानासिंचत्सगरात्मजान् ॥ ११ ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदंडहता अपि ॥ सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२ ॥ भस्मीभूतांगसंगेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवंते धृतव्रताः ॥ १३ ॥ न ह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ॥ अनंतचरणांभोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥ संनिवेश्य मनो यस्मिञ्छ्रद्धया मुनयोऽमलाः ॥ त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥

चले गये, तब उन लोगोंको कैसा फल मिलेगा जो कि श्रद्धापूर्वक श्रीगंगामहारानी जगत्सुखदानीकी सेवा करते हैं ॥ १२ ॥ सगरके पुत्र अपनी राखपर गंगाजीका जल पडनेसे जब पवित्र होगये और स्वर्गको सिधारे तब जो पुरुष गंगाजीका व्रत धारण करेंगे और श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करेंगे, उनका स्वर्गमें जाना कुछ विचित्र बात नहीं है ॥ १३ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! यहां पर यह गंगाजीकी महिमा जो हमने वर्णन की, यह कुछ बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि यह भगवान्के चरणसे उत्पन्न हुई हैं और संसारका नाश करनेवाली हैं अर्थात् इनकी सेवा करनेसे संसारका आना जाना छूट जाता है ॥ १४ ॥ हे परीक्षित्! अमल मुनि लोग श्रद्धासहित जिनमें

मनलगाय छोड़नेके अयोग्य देहका सम्बन्ध त्याग शीघ्रही उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवके रूपको प्राप्त होजाते हैं, उनके चरणसे उत्पन्न हुई गंगाजीका प्रभाव अवश्यही अनिर्वचनीय है ॥ १५ ॥ इन राजा भगीरथके पुत्र श्रुत, तिनके पुत्र नाभ, तिनसे सिंधुद्वीप उत्पन्न हुए। और तिनके अयुतायु जन्मे ॥ १६ ॥ तिन अयुतायुके ऋतुपर्ण हुए जोकि नलके सखा थे इन ऋतुपर्णने राजा नलको चौपडकी विद्या शिखाय उनसे अश्वविद्या सीखी थी इन ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ ॥ १७ ॥ तिसका पुत्र सुदास, तिसका बेटा सौदास हुआ जो मदयन्तीका पति था जिसको कोईकोई मित्रसह और कोई कोई कल्मापपाद कहते हैं, इनके कोई सन्तान नहीं हुई। यह अपने कर्म दोप और वसिष्ठजीके शापसे राक्षस योनिको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ राजापरीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! महात्मा सौदासको वसिष्ठजीने शाप क्यों दिया था? इस कथाके श्रवण

श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ॥ सिंधुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥ ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ॥ दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयंतीपतिर्नृप ॥ आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषांघ्रिमुत कचित् ॥ वसिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यस्स्वकर्मणा ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ किंनिमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सौदासो मृगयां किंचिच्चरन्रक्षो जघान ह ॥ मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥२०॥ स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ॥ गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥ परिवेक्ष्यमाणं भगवान्विलोक्याभक्ष्यमंजसा ॥ राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥

करनेकी मेरी बडी अभिलापा है, सो कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १९ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! एक समय राजा सौदासने मृगयाके लिये वनमें जाय घूमते घूमते एक राक्षसको मारडाला और उसके भाईको छोड दिया। इसलिये यह निशाचर राजासे बदला लेनेकी खोजमें रहा यह निशाचर इस राजाका बुरा चाहने लगा, रसोइयेका रूप बनाय उनके घरमें रहनेलगा, एकदिन राजपुरोहित वसिष्ठजीने आयकर भोजनकी इच्छा प्रकाशकी, तब इसी कपटवेषधारी राक्षसने भोजन बनाया। और उस भोजनमें मनुष्यका मांसभी मिला दिया ॥ २० ॥ २१ ॥ जब वह भोजन परोसा गया तब उस समय भगवान् वसिष्ठजीने दिव्य नेत्रोंसे देख लिया कि, भोजनमें अभक्ष्य वस्तु मिलाई गई है; इसलिये महाक्रोधित

होकर राजाको शाप दिया कि "मनुष्यका मांस व्यवहार करनेसे तुम राक्षस योनि पाओगे" ॥ २२ ॥ परन्तु तिसके पीछे महर्षि वसिष्ठजीने जाना कि; यह कर्म राक्षसका किया हुआ है, तब वशिष्ठजीने शापका क्षय करनेको बारह वर्षका व्रत किया राजाभी विना अपराध शाप पाकर क्रोधित हो हाथमें जल लेकर गुरुजीको शाप देनेके लिये प्रस्तुत हुआ ॥ २३ ॥ परन्तु उसकी स्त्री मदयन्तीने उसको निवारण किया, तब राजाने रोषसे तीव्रहो वह जल अपने पैरों पर डाल लिया, इस राजर्षिने यह जल इसलिये अपने पैरोंपर डाला कि दिग्, आकाश, पृथ्वी, यह सबही जीवमय हैं ॥ २४ ॥ उस शापित जलके डालनेसे उसके पैर काले होगये फिर यह राजा कल्माषपाद राक्षस भावको प्राप्त हो एक समय वनमें विचरण कर रहा था। हे राजन् ! इस प्रकार वनमें घूमते हुए उसने एक ब्राह्मणको ब्राह्मणीके साथ रति करता हुआ देखा

रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ॥ सोऽप्यपोंजलिनादाय गुरुं शप्तुं, समुद्यतः ॥ २३ ॥ वारितो मदयंत्याऽपो रुशतीः पादयोर्जहौ ॥ दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥ २४ ॥ राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ॥ व्यवायकाले ददृशे वनौकोदंपती द्विजौ ॥ २५ ॥ क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ॥ न भवान्राक्षसस्साक्षा दिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६ ॥ मदयंत्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ॥ देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७ ॥ देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ॥ तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८ ॥ एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपश्शीलगुणान्वितः ॥ आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वंतर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥

॥ २५ ॥ इससमय इस राजाको बड़ी भारी भूख लगी थी, तब इसने क्षुधासे पीडितहो उनमेंसे ब्राह्मणको भक्षण करनेके लिये पकड़ लिया ॥ ब्राह्मणके पकड़ लेनेसे ब्राह्मणी अत्यन्त दीन तनु छीन मन मलीन होकर बोली कि, हे राजन् ! तुम राक्षस नहीं हो, इक्ष्वाकुवंशियोंमेंसे एक महारथी वीर हो ॥२६॥ मदयन्तीके पति हो, आपको अधर्म करना उचित नहीं है। यह ब्राह्मण हमारा पति है, हम सन्तानकी इच्छा करके इनकी सेवाकर रही थी अबतक इनकी रति समाप्त नही हुई है, इसलिये आप अनुग्रह करके महारे पतिको छोड़ दीजिये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इस मनुष्य देहसे अखिल पुरुषार्थ होते हैं, इसलिये देहके नाशको सब अर्थोंका नाश कहा जाता है ॥ २८ ॥ अधिक करके यह ब्राह्मण विद्वान् तपःशील और

गुणयुक्त है और महापुरुष नामवाले जो परब्रह्म गुणयोगसे सब प्राणियोंमें अंतर्हित हैं " सर्व भूतके आत्मा" इस प्रकारकी चिन्तासे यह उनकी आराधना करना चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! हे धर्मज्ञ ! तुम राजर्षियोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये पितासे पुत्रकी समान तुम्हारे हाथसे यह ब्राह्मण मारे जानेके योग्य नहीं है ॥ ३० ॥ हे धर्मज्ञ ! आप साधुजनोंके सम्मत हैं, सो आज आप किस प्रकार गोवधकी समान इस निष्पाप और तीन वेदोंके वक्ता ब्राह्मणका वध सम्मत समझते हैं ? ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! हम इनके विना एक क्षणकोभी नहीं जीसकेंगी । सो इन हमारे पतिको यदि तुमने अवश्यही अपना भोजन करना विचारा है तो मृतकतुल्य हमकोभी तुम पहले भक्षण करलो ॥ ३२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्राह्मणकी भार्याने इस प्रकार

सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ॥ कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥ तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ॥ कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥ ३१ ॥ यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ॥ न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥ ३२ ॥ एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ॥ व्याघ्रः पशुमिवाखा दत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ॥ शोचंत्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४ ॥ यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ॥ तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५ ॥ एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ॥ तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥ विशापो द्वादशाब्दांते मैथुनाय समुद्यतः ॥ विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७ ॥

अनाथकी समान हो करुणाके वचन कहे, परन्तु तो भी शाप मोहित सौदासने उस ब्राह्मणको भक्षण करही लिया कि जैसे व्याघ्रपशुको भक्षण कर जाताहै ॥ ३३ ॥ जब ब्राह्मणीने देखा कि गर्भाधानकारी ब्राह्मणको राक्षसने भक्षण करही लिया, इसलिये अपने निमित्त शोक करते करते क्रोधित हो इसने उस राजाको यह शाप दिया कि ॥ ३४ ॥ अरे पापात्मा ! तैंने हमारे पतिको रतिसे अलग करके भक्षण कर लिया है, इसलिये तेरी मृत्युभी रति करते होगी ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! पतिलोकपरायण उस ब्राह्मणीने इसप्रकार इस सौदास राजाको शाप दे पतिकी अस्थि जलती हुई

अग्निमें डाल और स्वयंभी उसी चितामें बैठ स्वामीकी गतिको प्राप्त हुई और इस ओर जब बारहवर्ष बीतगये तब राजा सौदास शापसे छुटा. तिसके पीछे जब यह राजा एकदिन मैथुन करनेको प्रस्तुत हुआ. तब इस राजाकी भार्याने ब्राह्मणीका शाप कहकर राजाको निवारण किया॥३६॥ ॥३७॥ हे राजन् ! तबसे राजा सौदास स्त्रीके सुखसे अलग हुआ और अपने कर्मदोषसे निःसन्तान रहा, कुछ कालके पीछे वसिष्ठ मुनिने राजाकी अनुमतिसे उसकी स्त्री मदयन्तीको गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ परन्तु यह अबला सात वर्षतक इस गर्भको धारण किये रही, किसी प्रकारसे इसको प्रसव नहीं किया। तब वसिष्ठजीने आनकर अश्म (पत्थर) रानीके पेटमें मारा, इसलिये इस गर्भसे उत्पन्न हुये पुत्रका नाम अश्मक हुआ ॥ ३९ ॥ इस अश्मकसे मूलक राजाकी उत्पत्ति हुई जब परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया उस समय उसकी स्त्रियोंने चारोंओरसे घेरकर परशु

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः ॥ वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयंत्यां प्रजामधात् ॥३८॥ सा वै सप्त समा गर्भम विभ्रन्न व्यजायत ॥ जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ॥ नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥ ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडस्ततः ॥ राजा विश्वसहो यस्य खट्वांगश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः ॥ मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥ ४२ ॥ न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः ॥ न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३ ॥

रामजीके कोपसे रक्षा की थी, इसलिये इसका एक नाम नारीकवच हुआ और पृथ्वी जब क्षत्रियहीन हुई तब यही क्षत्रियवंशके मूल हुये थे, इससे मूलक कहलाते थे ॥ ४० ॥ इन अश्मकसे राजा दशरथका जन्म हुआ, दशरथका पुत्र ऐडविड, तिसका पुत्र राजा विश्वसह तिसके पुत्र चक्रवर्ती महाराज खट्वांग हुये. यह राजा खट्वांग अति अजीत थे जब देवतालोगोंने प्रार्थना की, तब इन्होंने युद्धमें राक्षस लोगोंका वध किया फिर जब प्रसन्न होकर देवता लोगोने इनसे वरदान माँगनेको कहा तब इन्होंने कहा कि, प्रथम तो यह बताओ "हमारी परमायु कितनी है" तब देवता लोगोंने कहा कि, आपकी परमायु दो घड़ी शेष है। यह जानकर खट्वांग राजा देवतालोगोंके दियेहुये विमानमें बैठकर अति शीघ्र अपने नगरमें आये और परमेश्वरमें मन लगाया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ फिर पीछे उनको यह निश्चय हुआ कि कुलदेव जो ब्रह्मकुल है; उनसे अधिक प्राण, पुत्र, धन, सम्पत्ति, पृथ्वी,

और हमारी मति कदाचित् थोडे अधर्ममेंभी रत नहीं हो और उत्तमश्लोक भगवान्के अतिरिक्त और
राज्य और स्त्री, भी प्यारी नहीं है ॥४३॥ और हमारी मति कदाचित् थोडे अधर्ममेंभी रत नहीं हो और हमसे कहते हैं कि, "अभिलषित वर मांगो" परन्तु
किसी वस्तुको हम नहीं देख सकें ? ॥४४॥ इसलिये त्रिभुवनेश्वर देवतालोग प्रसन्न होकर जो हमसे कहते हैं कि, वह
भूत भावन हरिमें अपनी भावना रहनेसे, हम उनसे भी कुछ वर नहीं चाहते ॥४५॥ जिन पुरुषोंकी इन्द्रियें चलायमान और बुद्धि विक्षिप्त है, वह
देवता होकरभी अपने हृदयमें स्थित प्रिय आत्माको नित्य नहीं देख पाते, फिर और किसीके देखनेकी क्या सम्भावना है ॥ ४६ ॥ इसलिये
गन्धर्व पुरकी समान ईश्वरकी मायासे रचे हुये जो गुण हैं, तिनमें वह संग जो कि, स्वभावसेही आत्मामें आरूढ हो रहा है, विश्वकर्ताके भावसे

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ॥ न पश्यामुत्तमश्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम् ॥ ४४ ॥ देवैः कामवरो दत्तो
मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ॥ न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥ ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ॥ न
विंदंति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥ अथेशमायारचितेषु संग गुणेषु गंधर्वपुरोपमेषु ॥ रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि
विश्वभर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ॥ हित्वाऽन्यभवमज्ञानं ततस्स्वं
भावमाश्रितः ॥ ४८ ॥ यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ॥ भगवान्वासुदेवेति यं गृणंति हि सात्वताः ॥ ४९ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे सूर्यवंशानुवर्णने गंगावतरणादि नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
खट्वांगाद्दीर्घवाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥ अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥

खट्वांग नारायण सम्बन्धिनी बुद्धिके योगसे इस प्रकार निश्चयकर देहादिके
छोडकर हम केवल उनकीही शरण जाते हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! राजा खट्वांग नारायण सम्बन्धिनी बुद्धिके योगसे इस प्रकार निश्चयकर देहादिके
आभिमानरूप अज्ञानको छोड़ फिर अपने भावमें स्थित हुआ ॥ ४८ ॥ जो सूक्ष्म परब्रह्म और रागादिसे परे हैं, इसलिये शून्यकी समान कल्पित
होतेहैं और अशून्य स्वरूप हैं और जिनके प्रति भक्तजन भगवान् वासुदेव शब्दका प्रयोग किया करते हैं, क्योंकि परब्रह्महीं भक्तोंपर अनुग्रह करनेके
लिये शक्ति प्रकाशित करके वासुदेव होतेहैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सूर्यवंशवर्णने खट्वांगचरितं नाम नवमो
ऽध्यायः ॥९॥ दोहा–दशवेंमें खट्वांगकुल, उसमें रामअवतार । रावणवध घर आवनो, राज्यकाज व्यवहार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा

परीक्षित् ! खट्वांगराजाका पुत्र दीर्घबाहु हुआ, तिससे रघुने जन्म लिया, रघुके पुत्र महायशश्वी अज हुये। हे महाराज परीक्षित् ! इन्हीं अजसे महात्मा दशरथजी उत्पन्न हुये॥ १ ॥ ब्रह्ममय हरि साक्षात् भगवान् देवतालोगोंकी प्रार्थनासे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त हो इन्हीं दशरथजीके पुत्र हुये थे, ॥ २ ॥ हे राजन् ! वाल्मीकादि तत्त्वदर्शी ऋषिलोगोंने इनही सीतापति रामचन्द्रजीका वर्णन किया है, यद्यपि यह चरित्र आपने बारंबार सुना है, तो भी हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं तुम सुनो ॥ ३॥ जो पिताजीका सत्य पालन करनेको राज्य छोड प्यारी सीताजीका स्पर्शभी जो नहीं सहारते थे, ऐसे कमलकी समान सुकुमार दोनों चरणोंसे वन वनमें घूमे थे, वानरेन्द्र हनुमान् अथवा सुग्रीव और अनुज लक्ष्मण जिनके मार्गकी थकावट दूर करते थे, शूर्पणखाके कान नाक काटनेसे विरूप करनेके कारण उसने रावणके

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः ॥ अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ २ ॥ रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥ गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ॥ वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा रोषितभ्रूविजृंभत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेंद्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥ विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ॥ पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुंगवाः ॥ ५ ॥ यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ॥ आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभंज मध्ये ॥ ६ ॥

निकट जाय उनकी स्त्रीको लोभ दिखाया, तब रावण आकर जिनकी प्यारी सीताजीको हरके लेगया था, प्रियाका विरह होनेसे जिनकी भ्रुकुटीसे समुद्र त्रसित होगया इसके उपरान्त उसही समुद्रके कहनेसे जो समुद्र पर सेतु बांध रावणादि खलगण रूप गहनवनके, बँधे अग्निरूप वही कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञमें मारीचादि प्रधान २ राक्षसोंको अकेलेही मारडाला था धोरे खडे होकर देखते हुये लक्ष्मणजीकी कुछ सहायता नहीं चाही ॥ ५ ॥ उन्होंने सीताजीके स्वयंवरगृहमें वीर पुरुष समूहके बीचमें जिन्होंने महादेवजीके धनुषको गन्नेकी समान उठाय लिया था और ज्यो चढानेके उपरान्त खैंचकर बीचमेंसे तोड़ दिया. हे राजन् !

वह धनुष अति भारी था कि, जिसे तीनसौ (३००) वाहक खैंचकर लाये थे परन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी लीला बालगजतुल्य अद्भुत कि, जिन्होंने एकखेलमेंही उस धनुषको तोड़ डाला ॥ ६ ॥ तिसके उपरान्त जिन सीताजीने उनके हृदयमें वास किया था, जिन सीताजीमें गुण, शील, वयस और अंगोंका गढन सब गुण श्रीरामचन्द्रजीकीही समान थे, उनको धनुष तोड़ सीताजीको लेजानेके समय धनुष टूटनेकी महाध्वनि सुनकर क्षुभित हुये परशुरामजीने जब धमकाया तब श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें गमन करते करतेही उनका गर्व चूर्ण कर दिया. हे महाराज ! आप तो परशुरामजीको जानते हैं ? यह वही महात्मा परशुरामजी हैं कि, जिनके बाहुबलसे यह पृथ्वी इक्कीसवार क्षत्रियोंसे हीन हो गई थी ॥ ७ ॥ किसी समय रानी कैकेयी पर प्रसन्न होकर राजा दशरथजीने यह वचन दिया था कि, जब कोई वरदान तुम मांगोगी,

जित्वानुरूपगुणशीलवयोंगरूपां सीताऽभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ॥ मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम्॥७॥यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः॥ राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसंगः ॥ ८ ॥ रक्षस्स्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ॥ जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदंडपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९ ॥ सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकंधरेण ॥ जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥ १० ॥

हम तुम्हें अवश्य देंगे. जब श्रीरामचन्द्रको अभिषेक होनेकी तैयारियां हुईं, तब इस कैकेयीने भरतजीका युवराज होना और श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना यह दो वरदान माँगे। यद्यपि महाराज दशरथजी स्त्रैण थे, तो भी यह जानकर कि, वचनभंग होनेसे इनको महापाप होगा. श्रीरामचन्द्रजीने,अपने पिताकी आज्ञाको मस्तकपर चढ़ाकर ग्रहण किया. कहा भी है कि " रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं बरु वचन न जाई" फिर जिस प्रकार योगीलोग त्यागनेके अयोग्य प्राणोंको छोड़देते हैं वैसेही राज्य, श्री, प्रणय, सुहृद् और रहनेका स्थानभी छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये ॥ ८ ॥ वनके बीच कामातुरा शूर्पणखाके नाक, कान, काट, खर, दूषण, त्रिशिरादि उस शूर्पणखाके मुख्य बान्धवोंसहित चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला, फिर महा कठिन धनुष हाथमें लेकर बराबरही विचरण करते हुये अतिकष्टसे वनमें वास

करने लगे । इसी बीचमें जनककुमारी जानकीजीकी सुन्दरता सुनकर राक्षस रावणके हृदयमें कामाग्नि वलनेलगी और सीताजीका हरण करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे दूर करनेके लिये उस दुरात्मा रावणने मारीच नाम राक्षसको नियुक्त किया. तब मारीच अद्भुत मृगका रूप धारण करके श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे बहुत दूरतक भागता हुआ लेगया" प्रगटत दुरत करत छल भूरी । यहि विधि प्रभुहि गयउ ले दूरी" जब श्रीरामचन्द्रजी उस कपटमृगके पीछे बहुत दूरतक चलेगये, तब उन्होंने हरिणरूपी निशाचरको अति तीक्ष्ण वाण चलायकर मारडाला कि, जैसे भगवान् रुद्रजीने मृगरूप धारण करके दौड़ते हुए ब्रह्माजीको वाणसे मारा था ॥९॥१०॥ इसी समयमें राक्षसोंमें नीच रावणने; भेडिये जैसे चुप चाप भेड़को उठाकर लेजाता है, वैसेही श्रीरामचन्द्रजीके पीछे उनकी भार्या सीताजीको हरण करलिया; तव श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्राण प्यारीसे अलग हो स्त्री रखनेवालोंका परिणाम अति दुःखितरूपी गतिको प्रकाशित करते हुए दीनकी समान अपने परमप्रिय भाई लक्ष्मणको

रक्षोधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ॥ भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥ दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबंधं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ॥ बुद्धाथ वालिनि हते प्लवगेंद्रसैन्यैर्वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चितांघ्रिः ॥ १२ ॥ यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ॥ सिंधुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविंदमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३ ॥

संगलिये वन वनमें घूमने लगे ॥ ११॥ और घूमते २ देखा कि, उनकेही लिये कर्म करके अर्थात् रावणके साथ संग्राम करके जटायु गिद्ध मरगया है, उसका देह पडा है, शास्त्रोक्त संस्कार अर्थात् दहनादि संस्कार कुछभी नहीं हुए थे, इसलिये इस पक्षीके मृतक देहको जलाय दिया और आगे चले । फिर उनके ग्रहण करनेको जो एक कबन्ध बाँहें फैलाये मुख बायेहुए आरहा था, उसका प्राण संहार किया, फिर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मित्रता करकेव ालिनाम वानरका वधकर, उनकी सेनासे अपनी भार्याका खोज कराया, फिर उनका पता जानकर समुद्रके तटपर गये इन श्रीरामचन्द्रजीने यद्यपि मनुष्यावतार धारण किया था, परन्तु महेश्वर और ब्रह्माजीभी उनके चरणोंकी वन्दना करते थे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके तटपर पहुँच तीन रात उपवासकर समुद्रके आनेकी बाट देखी, जब ऐसा करनेपरभी समुद्र न आया, तब श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त

कुपित हुए। क्रोधके कारण श्रीरामचन्द्रजीकी भ्रुकुटियें ऐसी टेढ़ी होरहीं थीं कि, उनकी दृष्टि समुद्रमें पड़तेही जलधिके रहनेवाले नाके आदि जलजन्तु अत्यन्त व्याकुल होगये तब समुद्र अपने शब्दको निवारण करके मूर्ति धार और मस्तकपर अर्घ्यादि पूजा उपहार लिये हुए श्रीराममचन्द्रजीके चरणोंके निकट आनकर कहने लगा ॥ १३ ॥ हे भूमन्! हम जडमति हैं, इसलिये अबतक आपको नहीं जानसके, आप निर्विकार आदिपुरुष और जगत्के अधीश्वर हैं, अधिक करके जिनके वश हुए सत्त्वगुणसे देवतालोग, रजोगुणसे प्रजापतिगण और तमोगुणसे भूतपति उत्पन्न होते हैं, सो आपही गुणेश्वर हैं ॥ १४ ॥ हे प्रभो! जो आपकी इच्छा हो तो हमारे जलको लांघकर चले जाओ, विश्वश्रवाके विष्ठाकी तुल्य दुरात्मा रावण त्रिभुवनको क्लेशका देनेवाला है, उसका शीघ्र वध करके अपनी भार्या सीताजीको ग्रहण कीजिये. हे प्रभो! यद्यपि हमारा जल आपके गमन

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ॥ यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥ १४ ॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीरपत्नीम् ॥ बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायंति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५ ॥ बद्धोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकंपितभूरुहांगैः ॥ सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लंकां विभीषणदृशाऽविशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥ सा वानरेंद्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटंका ॥ निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भशृंगाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥१७॥

करनेमें बाधा नहीं देसक्ता, तोभी इसमें पुल बाँध दीजिये। सेतुके बांधनेसे सदाही आपकी कीर्ति स्थिर रहेगी। क्योंकि इस सेतुके समीप आयकर यह दुष्करकार्य देख निःसन्देह राजालोग आपके यशको गावेंगे ॥ १५ ॥ हे राजन्! समुद्रके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने विविध भांतिके पर्वत शिखर और वृक्षोंसे उसके ऊपर सेतु बांधा, उन पर्वतोंके शिखरोंपर बहुतसे पेड़भी लगेहुए थे उन वृक्षोंकी शाखा वानरेन्द्रोंकी भुजाओंसे अत्यन्त कम्पायमान हुई थीं, जब सेतु बाँधलिया गया, तब विभीषणकी परामर्शसे सुग्रीव, नील, हनुमानादि सेनाके साथ श्रीरघुनाथजीने लंकापुरीमें प्रवेश किया, श्रीरामचन्द्रजीके प्रवेश करनेसे प्रथमही सीताजीके खोजनेके समय हनुमान्‌जीने लंकापुरीको जलाय दिया था ॥ १६ ॥ जैसेही श्रीरामचन्द्रजी सेनाके साथ लंकापुरीमें पहुँचे, वैसेही लंकापुरी घूमनेसी लगी जिसप्रकार हाथियोंके समूहसे

नदी चलायमान होजाती है, क्योंकि वानरेन्द्रोंकी सेनाने वहांके विहारस्थान, खजाने, कोषगृहादिके द्वार, पुरद्वार, सभा, बलभी (महलकी अग्र भागाच्छादनी छज्जा) और कपोतपालिकादि स्थान घेर लिये और इस सेनाने वेदि, चबूतरे, पताका, स्वर्णकलश और चौराहे आदि सब तोड़ फोड दिये ॥ १७ ॥ राक्षसराज रावणने यह देखकर निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, सम्पूर्ण अनुचर और इन्द्रजित्, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पादि पुत्रोंको और पीछेसे अपने भाई कुम्भकर्णको भेजा ॥ १८ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! यद्यपि सब राक्षसोंकी सेना, असि, शूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, शर, तोमर, खड्गादि विविध भाँतिके शस्त्रोंसे अतिशय दुर्द्धर्ष थी, तोभी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने माला पहिरेहुये, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, गन्धमादन, नील, अंगद, जाम्बवान् और पनसादि सेनापतियोंके साथ उनके ऊपर चढाई कीथी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! श्रीरामचन्द्रजीके

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुंभकुंभधूम्राक्षदुर्मुखसुरांतनरांतकादीन् ॥ पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकंपनादीन्सर्वानुगान्समहिनोदथ कुंभकर्णम् ॥ १८ ॥ तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगंधमादनीलांगदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९ ॥ तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वंद्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ॥ जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरंगदाद्याः सीताऽभिमर्शहतमंगलरावणेशान् ॥ २० ॥ रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ॥ स्वस्स्यंदने द्युमति मातलिनोपनीते विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः॥२१॥

इन सेनापतियोंने रावणके हाथी घोड़ोंसेयुक्त जितनी सेना आईथीं उनमें जिसप्रकारसे द्वन्द्वयुद्ध हो वैसाही कार्य करनेलगे अर्थात् उनके ऊपर झपटने लगे और पर्वत, गदा, बाण, चलाय चलाय कर उन राक्षसोंका संहार करने लगे । हे महाराज ! राक्षसोंकी सेनाका संहार क्यों न हो ? जब कि, बलात्कार जगज्जननी जानकीजीका अंगस्पर्शकरनेवाला रावण जिनका स्वामी था कि, जिसका सब मंगल नाशको प्राप्त होगया था॥२०॥इस प्रकारसे अपनी सेनाका नाश होता हुआ देखकर दुरात्मा रावण सहसा पुष्पकविमानपर आरूढ होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर दौडा, इसी समय इंद्रका सारथि मातलि दीप्तिमान् देवराज इंद्रका रथ लेकर श्रीरामचंद्रजीके निकट आया रघुनाथजी इस देदीप्यमान रथको देख झट सवार होकर स्थितहो

गये। श्रीरामचन्द्रजीको रथारूढ देखकर दुरात्मा रावण तीक्ष्ण २ छुरेवाले बाण श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाने लगा ॥ २१ ॥ तब सीतापति पाखण्डी रावणको ललकार कर बोले कि, अरे दुष्ट! तू राक्षसोंमेंभी विष्ठाकी समान है; कुत्ता जैसे गृहस्वामीके पीछे घरमें प्रवेश करके किसी सामग्रीको चुरायकर ले जाता है. वैसेही हमारे पीछे हमारी भार्याको तू हरण कर लेआयाहै, तू अति निर्लज्ज है क्योकि नीच कर्म किया है, हमारा वीर्य अमोघ है। देख! हम कृतान्तकी समान अभी तेरे किये इस नीच कर्मका फल देते हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार रावणको धिक्कार देकर वह बाण जो कि, धनुषपर चढाहुआ था; श्रीरामचन्द्रजीने छोड़ा, इस बाणने निशाचरराज रावणके ऊपर गिरकर उसके हृदयको फाड डाला तब हे राजन्!

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः कांताऽसमक्षमसतापहृता श्ववत्ते॥ त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुरलंघ्यवीर्यः ॥ २२ ॥ एवं क्षिपन्धनुषि संधितमुत्ससर्ज बाणं सवज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ॥ सोऽसृग्वमन्दशमुखैर्न्यपतद्विमानाद्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥ २३ ॥ ततो निष्क्रम्य लंकाया यातुधान्यः सहस्रशः॥ मंदोदर्या समं तस्मिन्प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥ २४ ॥ स्वान्स्वान्बंधून्परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ॥ रुरुदुस्सुस्वरं दीना घ्नंत्य आत्मानमात्मना ॥ २५ ॥ हा हता स्म वयं नाथ लोकरावण रावण॥ कं यायाच्छरणं लंका त्वद्विहीना परार्दिता॥२६॥ नैवं वेद महाभाग भवान्कामवशं गतः॥ तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम्॥२७॥

इसप्रकार रावण पुष्पकविमानसे नीचे गिर पडा कि; जैसे पुण्य क्षीणहोकर पुण्यवान् स्वर्गसे नीचे गिरता है रावणको गिरता हुआ देखकर सब लोक हाहाकार करने लगे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे सहस्रों राक्षसियें लंकाके बाहर आय मन्दोदरीनामक रावणकी स्त्री सहित रोती हुई रणभूमिमें घूमने लगीं ॥२४॥ इन राक्षसियोंके बन्धु बान्धव वीर्यवान् लक्ष्मणजीके बाणोंसे मारे गये थे. यह राक्षसियें उनको अपने हृदयसे लगाय लगाय शिर पीट पीट और छाती कूट कूट आर्त वाणीसे रोने लगी ॥ २५ राक्षसियें कहने लगीं कि, हा नाथ! हम मर मिटीं। हे रावण! तुम लोकोंके रुवाने वाले थे, हमारी लंकापुरी तुमसे विहीन हो शत्रुसे पीड़ित होरही है, सो इस समय हम किसकी शरण जाँय ?॥ २६ हे महाभाग! तुम कामके

वश हो एक वारही बुद्धिहीन होगये थे, जनकनन्दिनीके प्रभाव और तेजको नहीं जाना । इससेही तुम्हारी यह दशा हुई ॥ २७ ॥ हे कुलनन्दन ! तुम्हारे मारेजानेसे हम और यह लंकापुरी दोनों पतिहीन हुई । तुमने अपनेही दोपसे अपनी देहको शृगालोंका भक्ष्य किया और आत्माको नरकभोगी बनाया ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! इसके उपरान्त राक्षसेन्द्र विभीषणने महात्मा रामचन्द्रजीकी आज्ञा पाय अपने ज्येष्ठभ्राता रावणके मृतककर्म किये ॥ २९ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी अशोक वनमें गये; वहीं शीशमके वृक्षके नीचे वैठी हुई अतिक्षीण विरहके दुःखसे दुःखी जानकीजीको महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने देखा ॥ ३० ॥ प्रियतमा जानकीजीको अत्यन्त दीन हीन देखकर श्रीरामचन्द्रजीके कोमलहृदयमें दया आगई परन्तु पतिके दर्शनसे आनन्द पाय जनकनन्दिनी जानकीजीका वदनारविन्दभी विकसित

क्वैषा विधवा लंका वयं च कुलनन्दन ॥ देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेंद्रानुमोदितः ॥ पितृमेधविधानेन यदुक्तं सांपरायिकम् ॥ २९ ॥ ततो ददर्श भगवानशोकव निकाश्रमे ॥ क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकंपत ॥ आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपंकजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ॥ विभीषणाय भगवा न्दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥ ३२ ॥ लंकामायुश्च कल्पांतं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥ ३३ ॥ उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥ ३४ ॥

होने लगा, फिर महात्मा लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीको विमानपर वैठाय फिर हनुमानजीके साथ आपभी उसपर बैठे इसके उपरान्त विभीषणको राक्षसोंका राज्य दे लंकाका स्वमी बनाया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और एक कल्पभरकी आयु देदी, फिर चौदह वर्षका वनवास समाप्त करके विभीषणके साथ अयोध्यापुरीको चले, मार्गमें जातेहुए श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर लोकपाल गणोंके हाथोंसे छूटी हुई फूलोंकी मालाओंकी वर्षा होने लगी और शतधृत आदि गंधर्वगण परमानन्दसे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र गाने लगे । श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें जातेहुए सुना कि, भ्राता भरत अयोध्यासे बाहर भदरसामें आय अपना डेरा किये हुये हैं, वह कुशोंपर सोते और वल्कल पहरते हैं, प्राण धारण

करनेके लिये गोमूत्रमें पका केवल यवान्न खातेहैं, यह सुन रामचन्द्रजीका हृदय भर आया, रुवें खड़ेहोगये और विलाप कलाप करते हुए विभीषणसे
बोले ॥३३॥३४॥ महात्मा रामचन्द्रजी इसप्रकार विभीषणसे कहते विलाप करते चले जाते थे, हे महाराज परीक्षित् ! जबसे श्रीरामचन्द्रजी वनको
गये,तबसे भरतजी अयोध्यामें न जाय नन्दिग्राम(भदरसाही)में रहतेथे,अब भरतजीने सुना कि श्रीरघुनाथजी रणमें शत्रुको जीत,सीता और लक्ष्मण
सहित कुशलपूर्वक आगये तब भरतजी मंत्री, पुरोहित और पुरवासियोंके साथ उनको लिवालानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके निकट चले ॥ ३५ ॥
उस समय अनेक बाजे बजने लगे, गीत सुनाई आये और वेदपाठी ब्राह्मणोंके वेद पढनेका शब्द अतिजोरसे होने लगा और सुवर्णमय अनेक पता

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थंडिलेशयम् ॥ भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥ पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥३५॥ नंदिग्रामात्स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिस्स्वनैः ॥ ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३६ ॥ स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥ ३७ ॥ श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥ पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ पादुके न्यस्य पुरतः प्रांजलिर्बाष्पलोचनः ॥ ३९ ॥ तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ॥ ४० ॥

काये और चित्रमय ध्वजाओंसे शोभायमान असंख्य सुवर्णमय रथ, बख्तर पहिरे हुये बहुतसी सेना और पदाति सेवकभी बहुत सारे संग गये॥३६॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार जब राजाके योग्य चँवर, छत्र और सब सामग्री लेकर जब भरतजी अपने बड़े भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके
चरणोंपर गिरपड़े, तब उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी कि, जिससे उनके नेत्र व हृदय भीग गये । तब हाथ जोड़ दोनों करसे खडाऊँ आगे
रखदीं और फिर नेत्रजलसे स्नान कराते कराते बहुत देरतक भुजाओंसे पकड़ श्रीरामचन्द्रजीको अपने हृदयसे लगाये रहे । तिसके पीछे
श्रीरामचन्द्रसे सीता और लक्ष्मणजीके साथ मिलकर ब्राह्मण और कुलवृद्धपुरुषोंको नमस्कार किया तिसके उपरान्त सब प्रजाने श्रीरामचन्द्रजीको

नमस्कार किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९॥४० ॥ और उत्तर कोशलके सब रहनेवाले बहुत कालके पीछे अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको आया हुआ देखकर आनन्दके समुद्रमें स्नान करने लगे और अपने अपने दुपट्टे कँपातेहुये हर्षित हो फूलोंकी मालायें वर्षाय कर नाचे ॥ हे महाराज परीक्षित्! जब महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें आये उसकालमें भरतजीने उनकी खडाऊँ धारण करलीथीं. विभीषण, सुग्रीवने चामर और व्यजन लिया था पवनकुमार हनुमानजी श्वेत छत्र धारण कियेहुए थे शत्रुहनजीने धनुष और तरकश लिया, और जगज्जननी जानकीजीने तीर्थोंके जलसे भराहुआ कमण्डलु ग्रहण कियाथा और युवराज अंगदजी खड्ग और ऋक्षराज जाम्बवान् सुवर्णमय बख्तर ले आये पुष्पकविमानमें जब

तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ धुन्वंतमुत्तरासंगान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ॥ ४१ ॥ उत्तराः कोशला माल्यैः किरंतो नन्नृतुर्मुदा ॥ पादुके भरतोऽगृह्णाचामरव्यजनोत्तमे ॥ ४२ ॥ विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ धनुर्निषंगाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमंडलुम् ॥ ४३ ॥ अबिभ्रदंगदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण् नृप ॥ पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च बंदिभिः ॥ ४४ ॥ विरेजे भगवान्राजन्ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ भ्रातृभिर्नंदितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् ॥ ४५ ॥ प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ गुरून्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥

वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हुए, तब नारियोंने उनकी प्रशंसा की, बन्दीजनोंने यश बखाना ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार शोभायमान होरहेथे कि, जैसे तारागणोंके साथ निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है । अपने भ्राताओंसे सन्मानित होकर श्रीरामचन्द्रजीने उत्सवयुक्त पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ तिसके उपरान्त राजभवनके भीतर जाय कैकेयी आदि गुरुपत्नी, अपनी माता और गुरुजनोंकी पूजा श्रीरामचन्द्रजीने की फिर अपने सखा और छोटे जनोंसे पूजित हो सबका यथोचित सन्मान किया ॥ ४६ ॥

इसके पीछे सीता और लक्ष्मणजी भी जायकर यथानियम इन सब गुरुजनोंसे मिले प्राणोंको पायकर जिस प्रकार देह उठ खड़ी होती हैं उसी प्रकार अपने अपने पुत्रोंको पाय सब मातायें सहसा उठ खडी हुईं। और उनको गोदीमें बिठाय नेत्रजलसे उनका अभिषेक कर अपना शोक सन्ताप दूर करने लगीं ॥४७॥ इसके उपरान्त ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकी जटा छुडवाय कुलवृद्ध पुरुषोंके साथ मिलकर समुद्रके व और सब तीर्थोंके जलसे उनका अभिषेक किया ॥ ४८ ॥ हे महराज परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार शिरसे स्नानकर प्रथम शोभायमान वस्त्र धारण किये। फिर हार और अलंकारोंसे सजकर वसन भूषण पहरे, भाइयों और सीताजीके साथ दीप्तिमान् हो विराजमान होने लगे॥४९॥

वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ पुत्रान्स्वमातरस्तांस्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ॥ आरोप्यांकेऽभिषिंचंत्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४७॥ जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः ॥ अभ्यषिंचद्यथैवेन्द्रं चतुस्सिंधुजलादिभिः ॥ ४८ ॥ एवं कृतशिरस्स्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ॥ स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ४९ ॥ अग्रहीदासनं भ्राता प्रणिपत्य प्रसादितः ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥ ५० ॥ जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ त्रेतायां वर्त्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥ ५१ ॥ रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिंधवः ॥ ५२ ॥ सर्वे कामदुघा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥ नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥ ५३ ॥

तिसके पीछे महात्मा भरतजीने प्रमाण कर जब श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न किया, तब उन्होने राज्यसिंहासन ग्रहण किया स्वधर्मनिरत और वर्णाश्रम गुणोंसेयुक्त प्रजापुंजको पिताकी समान पालन करने लगे । हे राजा परीक्षित् ! सब प्राणियोंको सुखके देनेवाले धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी जब राजा हुए उस समय यद्यपि त्रेतायुग वर्तमान था; तो भी वह काल सत्ययुगकी समान जान पड़नेलगा। समुद्र, नद, नदी, पर्वत, वन, द्वीप, खण्ड सबही प्रजाका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हुए। कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके राजत्वमें राज्यके बीच आधि, व्याधि, जरा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि,

अथवा थकावट कुछभी न रही ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जबतक इच्छा न होती, तबतक मृत्यु किसीको नहीं दबासकती थी श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजी पवित्र और एकपत्नीव्रतधारी होकर सब लोगोंको राजर्षियोंका अनुष्ठान किये हुए गृहमें धैर्य उपदेश करके उसका स्वयंभी पालन करनेलगे ❀ और भावकी जाननेवाली देवी सीताजी अपने स्वामीका आश्रय ले प्रेम, सेवा, शीलता, भय और लाजसे उनके चित्तको हरे लेतीथीं ॥५४ ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां रामचरिते दशमोऽध्यायः ॥१०॥ दोहा–ग्यारहमें

मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥ एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥ ५४ ॥ स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन्स्वयमाचरन् ॥ प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥ धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताऽहरन्मनः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभाग० म० नवमस्कंधे इक्ष्वा० सगरोपाख्याने श्रीरामचरितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ॥ सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥ होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥ आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदंतरा ॥ मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोर्हति निस्स्पृहः ॥ ३ ॥

श्रीरामने, अवधपुरीमें आन ॥ यज्ञ किये भाइन सहित, सो सब कहौ बखान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! तिसके, पीछे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने आचार्य लोगोंके साथ उत्तमोत्तम यज्ञ करके सर्व देवमय परमदेव जो आपहैं, सो अपनीही पूजा करनेलगे ॥ १ ॥ यज्ञके अन्तमें पश्चिमदिशा, होताको और ब्रह्माजीको दक्षिणदिशा, अध्वर्युको पूर्वदिशा, और सामगान करने वालोंको उत्तरदिशा, श्रीरामचन्द्रजीने देदी इन दिशाओंके बीचकी जितनी भूमि थी, "इसको ब्राह्मणही पानेके योग्य हैं" यह विचार निःस्पृह श्रीरामचन्द्रजीने अवशेष पृथ्वी आचार्यको देदी॥२॥३॥

❀ शंका–रामचन्द्रके राज्यमें जो प्राणी मरनेकी इच्छा आप करता था उसीका मरण होता था और जो अपना मरना नहीं चाहता था, उसका मरण कभी नहीं होता था क्योंकि मृत्युतो सब लोकमें है किसी लोकमें जल्दी, किसी लोकमें देरसे परन्तु ऐसा लोक कोईभी नहीं है कि जिसलोकमें मृत्यु न होवे ? ॥

उत्तर–"अनिच्छता" इस शब्दका अर्थ मरणकी इच्छा करना नहीं होगा इसका यह अर्थ है कि, जो प्राणी रामचन्द्रके चरणारबिन्दके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते वे दिन रात उन्हींके चरणोंमें उन्मत्त रहते थे उन प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती थी ॥

इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः ॥ तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमंगल्यावशेषिता ॥ ४ ॥
ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ॥ प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥
अप्रत्तं नस्त्वया किन्नु भगवन्भुवनेश्वर ॥ यन्नोंतर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुंठमेधसे ॥ उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदंडार्पितांघ्रये ॥ ७ ॥
कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ॥ चरन्वाचोऽश्रृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥

इस प्रकारसे दानशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने जब सब दान करदिया तब केवल उनके पास वसन भूषण बचरहे और राजराजेश्वरी श्रीमती जानकी जीके पास भी केवल वसन भूषणही रहे अर्थात् इसके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्रजीने सब कुछ दान कर दिया * ॥४॥ परन्तु ब्राह्मण देवता श्रीरामचन्द्र जीकी ऐसी वत्सलता देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करके सब वस्तु श्रीरामचन्द्रजीको लौटायदी और बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! हे भुवनेश्वर ! आपने हमको क्या नहीं दिया है ? अर्थात् आपने हमको सब कुछ दिया क्योंकि आपने हम लोगोंके हृदयमें प्रवेश करके अपनी प्रभा विस्तार कर हमारे अन्धकारको दूर किया है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! आप ब्राह्मणदेव अकुण्ठ बुद्धिमान् हैं, सो हम आपको नमस्कार करते हैं । हे भगवन् ! आप उत्तम श्लोकोंमें आगे गिने जाने योग्य हैं, मुनिलोगभी अपने अपने चित्तमें आपके दोनों चरणकमलकी सदा चिन्ता करते हैं॥७॥ बहुत दिन गये पीछे किसी समय श्रीरामचन्द्रजी गूढ़ वेष धारण कर यह जाननेके लिये कि, हमारे राज्यमें लोग हमारी निन्दा करते हैं वा स्तुति; रात्रि

---

* शंका—जो कुछ वस्तु रामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको दान करके दी थी, वह वस्तु ब्राह्मणोंने दान लेकर कुछ घडी अथवा कुछ दिन पीछे वही दानवाली वस्तु ब्राह्मणोंने फिर पीछे प्रीतिसहित रामचन्द्रको देदी तब रामचन्द्रने अपनी दान की हुई वस्तु ब्राह्मणोंसे क्यों ली ? क्या कारण यह बडे सन्देहकी बात है ।

उत्तर—ब्राह्मणलोग प्रसन्न होकर अपना प्रसाद तुलसीदल पत्र आदि लेकर तथा तीन लोकका सुखपर्यंत जब क्षत्रियोंको देते हैं तब उसीसमय क्षत्रियलोग ब्राह्मणोंका दिया हुआ प्रसाद प्रीतिपूर्वक ले लेते हैं जब कोई राजा नहीं ले तो शीघ्रही ब्राह्मणलोग उस राजाको शाप दे देते हैं, ऐसा रामचन्द्रने मनमें विचारकर अपनी दी हुई वस्तु प्रसाद समझकर ग्रहण की थी, कुछ लोभ समझकर नहीं ली थी ॥

कालमें गुप्तभावसे घूमने लगे, एकदिन अकेले घूमरहेथे कि, एक पुरुषने अपनी स्त्रीसे कुछ कटुवचन कहे कि, जिनको वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने सुना ॥८॥ वह पुरुष अपनी स्त्रीसे कहरहा था कि, तू पराये घर जाया करती है, तू अतिदुष्टा असती है, मैं अब तुझे खाने पहरनेको नहीं दूंगा, रामचन्द्रजीकाही स्त्रियोंपर अनुराग है कि, पराये घरमें बहुत दिनोंतक रही सीताको फिर अपने घर रख,पालन कररहे हैं। मैं रामचन्द्र नहीं हूं; चली जा तेरा मुख नहीं देखनेका॥ ॥९॥ अज्ञान, अबाध्य, बहुमुख पुरुषके मुँहसे यह वचन सुनतेही श्रीरामचन्द्रजीको अत्यन्त भय हुआ और उन्होंने स्थानपर आय अपनी प्रियतमा जनकनन्दिनी जानकीजीको त्यागदिया। भीत पतिसे त्यागी हुई जानकीजी गर्भावस्थामें महर्षि वाल्मीकि

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ॥ स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥ इति लोकाद्बहुमुखाद्दुराराध्यादसंविदः ॥ पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अंतर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ॥ कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११ ॥ अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ॥ तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुश्श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ॥ गंधर्वान्कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥ १३ ॥ तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥ १४ ॥ हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ॥ १५ ॥

जीके आश्रममें आई ॥ १० ॥ कुछ दिनोंमें जानकीजीके समय पूर्ण होनेपर दो पुत्र उत्पन्न हुये। यह दोनों कुश, लव नामसे विख्यात हुये. महर्षि वाल्मीकिजीने उन दोनों पुत्रोंका जातकर्म और संस्कार किया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित ! इधर अयोध्यापुरीमें वीर्यवान् लक्ष्मणजीके दो पुत्र उत्पन्न हुये। उनका नाम अंगद और चित्रकेतु हुआ। महात्मा भरतजीके भी तक्ष और पुष्कल नामक दो पुत्र हुये ॥ १२ ॥ और शत्रुहनजीके पुत्रोंका नाम सुबाहु और श्रुतसेन हुआ। उसी समय भरतजी दिग्विजय करनेके लिये गये और करोड़ों गन्धर्वोंका संहार किया ॥ १३ ॥ और उनका सब धन लाकर राजाको देदिया। शत्रुहनजीने मधुके पुत्र लवणासुरका प्राणसंहार करके मधुवनमें मथुरापुरी बसाई। जनकनंदिनी जानकीजीका

जब रामचन्द्रजीने त्याग करदिया ॥ १४ ॥ १५ ॥ तब कुछ दिन पीछे अपने पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीको सौंप अपने पति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई पृथ्वीके विवरमें समाय गईं यह बात श्रीरामचन्द्रजीने भी सुनी । यद्यपि इन महाराज स्वयं ईश्वरने अपनी बुद्धिके बलसे शोक निवारण किया ॥१६॥ तोभी प्राणप्यारीके गुणगण बारम्बार याद आनेलगे कि, जिनके याद आनेको यह किसी प्रकार न रोकसके हे राजा परीक्षित ! स्त्री पुरुषोंका अनुराग सब कालमें इसीप्रकार भयका देनेवाला है ॥ १७ ॥ जब कि, यह अनुराग अवतारोंकोभी भयदाई हुआ तब गृहस्थीमें चित्त लगाये ग्राम्य पुरुषोंकी तो क्या बात है ? तिसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजी अखण्डित ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अग्निहोत्र करते रहे ॥ १८ ॥

ध्यायंती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्रामो रुंधन्नपि धिया शुचः ॥ १६ ॥ स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ स्त्रीपुंप्रसंग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः ॥ १७ ॥ अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ॥ त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखंडितम् ॥ १८ ॥ स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दंडककंटकैः ॥ स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥ १९ ॥ नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्त लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ॥ रक्षो वधो जलधिबंधनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥ यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायंत्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ॥ तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादांबुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

तिसके पीछे दण्डक वनके कॉटोंसे जिनके चरणकमल बींधगये थे उन्हीं चरणोंके स्मरणकारी भक्तजनोंके हृदयमें स्थापित करके अपने धामको चले गये ॥ १९ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रमें पुलबाँधना और अस्त्रसमूहसे राक्षसादिका वधकार्य यद्यपि कवि लोगोंने आश्चर्यमय वर्णन किया है तो भी इन कार्योंसे उनका कुछ यश नहीं हो सक्ता, क्योंकि उनका यश बहुत साम्यसे छुटा हुआ है, सो वैरीको मारनेके समय बन्दर बिचारे क्या उनकी सहायता करसक्ते हैं, इसलिये जिस प्रकार सुग्रीवादिके निकट इन श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय लेना केवल लीला मात्र है । वैसही राक्षसोंका वधादि कार्यभी लीलाही है हे महाराज । आप ऐसा न समझ लेना कि, हमारे यह वचन अयुक्त हैं । देवतालोगोंकी

प्रार्थनासे लीला करनेके लियेही भगवान्‌ने यह अवतार धारण किया था। अहो ! जिनका निर्मल यश दिग् दिगन्तरमें व्याप्त होकर दिक्पाल हस्तियोंका आच्छादनपटस्वरूप हुआ है, इसलिये अबतक जिसको युधिष्ठिरादि नृपतियोंकी सभामें ऋषिलोग निरन्तर गान करतेहैं और जिनके चरणकमल देवता और नृपति लोगोंसे सेवित हैं। हम उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें जातेहैं ॥ २० ॥२१॥ अयोध्या निवासियोंने जिन पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीको स्पर्श किया, वा दर्शन किया, अथवा जिन्होंने उनको बैठाला था, किंवा जो लोग उनके अनुमत हुये थे, वह सब पुण्यात्मा लोग उस स्थानमें गये जहाँ कि, योगीलोग जाया करते हैं ॥ २२ ॥ हे परीक्षित ! जो पुरुष श्रवणोंके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके इस आख्यानको धारण करेंगे; वह उपशमनिष्ठ हो निःसंदेह कर्मबंधनसे छूट जायँगे ॥ २३ ॥ तिसके उपरान्त राजा परीक्षित श्रीशुकदेवजीसे कहने लगे

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोपि वा ॥ कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छंति योगिनः ॥ २२ ॥ पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ॥ आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबंधैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथं स भगवान्रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः ॥ तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथादिशद्दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गां गंधोदैः करिणां मदशीकरैः ॥ स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥

कि, हे ब्रह्मन् ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं किस प्रकार वर्तमान थे ? उन्होंने अपने भ्राताओंसे जो कि, उनके अंशरूपही थे कैसा व्यवहार किया था और साक्षात् परमेश्वरस्वरूप जो श्रीरामचन्द्रजी थे, उनसे उनके भ्राता और प्रजाके लोग कैसा व्यवहार करते थे ॥२४ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षितका प्रश्न सुनकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजापरीक्षित ! त्रिभुवनके ईश्वर श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्यामें आय राजसिंहासनपर बैठनेके पीछे अपने भ्राताओंको दिग्विजय करनेके लिये आज्ञादी, फिर अपनी जातिवाले लोगोंके साथ बन्धुत्व, प्रकाशितकर अपने मित्रोंके साथ निरन्तर पुरीकी देखभाल करनेलगे ॥ २५ ॥ जबसे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक हुआ, तबसे अयोध्यापुरीके सब मार्गोंपर बराबर सुगन्धिका जल और हाथियोंके मदका जल छिड़का जाता था, यह अयोध्यापुरी अपने स्वामीको

प्राप्त होकर सब प्रकारसे समृद्धिसंपन्न हुई थी ॥ २६ ॥ वहाँके महल, पुरके द्वार, पत्थरसे बने हुये थे और द्वार द्वारपर जलसे भरे हुए सुवर्णके कलश सदा रक्खे रहते थे, सर्व स्थानोंमें सदाही पताका फहराती थीं, गुच्छोंके साथ सुपारियें, केला और शोभायमान वसन, पाट और कौतुक बनानेके योग्य वस्त्र, माला इत्यादिसे स्थान स्थानमें मंगलके तोरण बनाये गये थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ और जहाँ जहाँपर श्रीरामचन्द्रजी गमन करते थे उसी उसी स्थानमें पुरवासी लोग भेंट साथ लेकर आते थे और यह कहकर आशीर्वाद देते थे कि, हे देव ! आपने प्रथम वराहरूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार किया था, अब इसका आप प्रतिपालन कीजिये ॥ २९ ॥ राज्यकी प्रजा बहुत समयके पीछे अपने राजाके आनेका समाचार पाकर उनके दर्शन करनेकी वासनासे स्त्री पुरुष सबही अपने अपने घर छोड़कर महलोंकी छत्तपर चढे हुए थे और अपरितृप्तलोचनसे

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ॥ विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मंडिताम् ॥२७॥ पूगैः सवृंदैः रंभाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ॥ आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥ तमुपेयुस्तत्रतत्र पौरा अर्हणपाणयः ॥ आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥२९॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ॥ आरुह्य हर्म्याण्यरविंदलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वजादिभिः ॥ अनंताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥ विद्रुमौदुंबरद्वारैर्वैडूर्यस्तंभपंक्तिभिः ॥ स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥ चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ॥ मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कांतकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥

राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीको अवलोकन करके उनके ऊपर फूल वर्षाय रहे थे ॥ ३० ॥ जिस समय श्रीरामचन्द्रजीने अपने गृहमें प्रवेश किया उस समय श्रीरामचन्द्रजीका धनागार अत्यन्त अखिल रत्नादिसे परिपूर्ण और अनेकानेक महामोलकी सामग्रियोंसे सुशोभित था. यद्यपि इस धनागारको पहले श्रीरामचन्द्रजीके सम्बन्धीलोग भोग करचुके थे ॥ ३१ ॥ परन्तु तोभी यह पूर्ण था वहाँके द्वारोंकी देहलियें मूंगोंकी बनी हुई थीं थम्भ वैदूर्य्यमणिके बने हुए थे, गृहोंके आंगन मरकतमय होनेके कारण अतिस्वच्छ थे और स्फटिकमणिकी बनी हुई भीतें अत्यन्त दीप्तिमान् होरही थीं ॥ ३२ ॥ विचित्र पुष्पोंके हारोंसे श्रेष्ठ पट्टिकाओंसे और वस्त्र व रत्नोंकी किरणोंसे यह भवन दीप्तिमान्

होरहा था और चैतन्यतुल्य उज्ज्वल मुक्ताफलोंसे व कमनीय भोग साधनद्रव्य समूहोंसे यह भवन सबप्रकार सुसज्जित था. सुगन्धित धूपसे सुगन्धित पुष्पमण्डलसे मण्डित और सब अलंकारोंके अलंकारस्वरूप देवताओंकी समान स्त्री पुरुषोंसे यह भवन सेवित हो रहा था ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि अत्माराम मुनिलोगोंके अग्रगण्य थे, तोभी उस भवनमें अपनी प्राणप्यारी श्रीजानकीजीके साथ विहार करते थे. इन रामचन्द्रजीने बहुत वर्षोंतक यथाकालमें सब अभिलपित भोगोंका भोग किया था सब मनुष्य उन श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका ध्यान करते थे उन आत्माराम और धैर्यवान में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कालानुसार धर्मको विना पीड़ादिये रमण किया था ॥३५॥३६॥

धूपदीपैः सुरभिभिर्मंडितं पुष्पमण्डितैः ॥ स्त्रीपुंभिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ॥ रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥ बुभुजे च यथाकामं कामान्धर्ममपीडयन् ॥ वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्यातांघ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० म० नव० इक्ष्वा० सगरचरिते श्रीरामोपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ॥ पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत् ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ॥ ततो बलः स्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २ ॥ खगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ॥ ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीरामचरितवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥ दोहा–द्वादशमें कुशवंशकी, कहूँ कथा समझाय। पुनि इक्ष्वाकुसुत वंशकी, सकल कथा कहौं गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशजीके अतिथि नामक जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनसे निषध उत्पन्न हुए। निषधका पुत्र नभ, तिसका पुत्र पुंडरीक और तिसका सुत क्षेमधन्वा हुआ ॥ १ ॥ क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, तिसका पुत्र अनीह, अनीहके पारियात्र, पारियात्रका पुत्र बल हुआ, बलका पुत्र स्थल हुआ, स्थलके अर्क हुआ, अर्कके वज्रनाभ उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ वज्रनाभका बेटा खगण और तिसका पुत्र विधृति जन्मा, विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई।

यह हिरण्यनाभ महर्षि जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था ॥ ३ ॥ इसकेही निकट याज्ञवल्क्य ऋषिने उस अध्यात्मयोगको सीखा जिस्से महान् सिद्ध होकर हृदयकी गाँठ खुलजाती है ॥४॥ इस हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य और इस पुष्यसे ध्रुवसंधिकी उत्पत्ति हुई. तिसका पुत्र सुदर्शन, तिसका सुत अग्निवर्ण और अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र उत्पन्न हुआ। इस शीघ्रसे राजा मरु जन्मे ॥ ५ ॥ यह मरु योगमें सिद्धि प्राप्त करके कलापनामक ग्राममें विराजमान हैं ॥ जब यह कलियुगके अंतमें सूर्यवंशका नाश होता हुआ देखेंगे तब यह अपने फिर वंशको उत्पन्न करेंगे * ॥ ६ ॥ इनके पुत्र

शिष्यः कौसल्य अध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः ॥ योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रंथिभेदकम् ॥ ४ ॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसंधिस्ततोऽभवत् ॥ सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५ ॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ॥ कलेरंते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य संधिस्तस्याप्यमर्षणः ॥ सहस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ततः प्रसेनजित् तस्मात्तक्षको भविता पुनः ॥ ७ ॥ ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ॥८॥ बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥

प्रसुश्रुत, तिनके संतानसंधि, तिनका पुत्र अमर्षण, अमर्षणका पुत्र सहस्वान् और सहस्वानके विश्वसाह्व हुआ विश्वसाह्वके प्रसेनजित्। प्रसेनजित्से तक्षक ॥७॥ तक्षकसे बृहद्बल उत्पन्न हुआ कि, जिसका तुम्हारे पिता अभिमन्युने संग्राममें संहार किया था हे परीक्षित् ! ऊपर कहेहुये राजा इक्ष्वाकुवंशमें होगये हैं अब उनका वृत्तान्त सुनो जो कि, आगेको होंगे ॥ ८ ॥ इसके पीछे बृहद्बलके बृहद्रणनामक पुत्र होगा तिसका

* शंका–त्रिलोकीमें जो प्राणी जन्म लेता है उस प्राणीको काल खा लेता है परन्तु राजा मरुको कालने क्यों नहीं खाया ? जो राजा मरु कलियुगके नाश हुए पीछे सूर्यवंशको फिर उत्पन्न करेगा ? उत्तर–राजा मरु बाल्यावस्थासे परमेश्वरका भजन करनेलगा था और भजन करते करते बडा योगी होगया और योगियोंको काल किसी प्रकार नहीं खा सक्ता। क्योंकि काल तो योगियोंका रूप देखकर दूरसेही डरता है इसलिये राजा मरुको कालने नहीं खाया ॥

पुत्र उरुक्रिय होगा उरुक्रियका पुत्र वत्सवृद्ध ॥ ९ ॥ इस वत्सवृद्धसे प्रतिव्योम, तिसके भानु और इस भानुसे सेनापति दिवाकका जन्म होगा. तिसका पुत्र सहदेव, तिसका पुत्र वीरबृहदश्व तिसका पुत्र भानुमान् होगा ॥१०॥ इस भानुमान्का पुत्र प्रतीकाश्व, तिससे सुप्रतीक जन्मग्रहण करेंगे. तिसके मरुदेव, तिसके सुनक्षत्र और सुनक्षत्रसे पुष्करनामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ११ ॥ तिसके अन्तरिक्ष, तिसका पुत्र सुतपा, तिसके पुत्र अमित्रजित तिसका पुत्र बृहद्राज, बृहद्राजके बर्हि और बर्हिसे कृतञ्जयका जन्म होगा ॥ १२ ॥ कृतञ्जयका पुत्र रणञ्जय और तिससे संजयकी उत्पत्ति होगी। सञ्जयका पुत्र शाक्य, तिसका पुत्र शुद्धोद और तिसका पुत्र लांगल होगा ॥ १३ ॥ लांगलसे प्रसेनजित, तिससे क्षुद्रक और क्षुद्रकसे रणक और

प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥ १० ॥ प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ॥ ११ ॥ तस्यांतरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित ॥ बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतंजयः ॥ १२ ॥ रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥ तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लांगलस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १३ ॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ रणको भविता तस्मात्सुरथस्त नयस्ततः ॥ १४ ॥ सुमित्रो नाम निष्ठांत एते बार्हद्वलान्वयाः ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रांतो भविष्यति ॥ यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुचरिते कुशान्वय वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥ आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग् वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥

रणकसे सुरथ जन्म लेगा ॥१४॥ हे महाराज परीक्षित । तिसके यहाँ सुमित्र जन्मग्रहण करेगा और यह सब राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे, हे राजन् ! इक्ष्वाकुके वंशमें सुमित्र तक यह सब राजा होंगे । और सबसे पीछे सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश ध्वस्त होजायगा ॥ १५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां कुशान्वयवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–तेरहमें इक्ष्वाकु सुत, निमिका वंश बखान । तिसमें प्रगटे जनकसे, ज्ञानी परम सुजान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञ आरम्भ करके वसिष्ठ महर्षिजीको अपना ऋत्विज वरण किया, तब वसिष्ठजी बोले कि, यज्ञ करनेके लिये देवराज इन्द्र हमको वरण कर चुके हैं ॥ १ ॥

इस कारण विना इन्द्रका यज्ञ समाप्त कियेहुये हम तुमसे यज्ञ नहीं करा सके हैं जबतक इन्द्रका यज्ञ समाप्त हो तबतक ठहरे रहो । यह सुनकर महाराज निमि कुछ न बोले चुपचाप रहे । और महर्षि वसिष्ठजी देवराज इन्द्रका यज्ञ करने लगे ॥ २ ॥ वसिष्ठजीके जानेपर महाराज निमिने विचारा कि, इस जीवनका क्या ठिकाना है? यदि इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेके प्रथमही हमारी मृत्यु होजाय, तो फिर यज्ञ न हुआ, इसलिये जबतक

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ॥ तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोपींद्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥
निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् ॥ ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥ ३ ॥
शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ॥ अशपत्पतताद्देहो निमेः पंडितमानिनः ॥ ४ ॥
निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ॥ तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥

कुलगुरु वसिष्ठजी न आवें तबतक किसी औरही ऋत्विक्से यज्ञ आरम्भ कराऊं । यह विचार निमिराजाने यज्ञारम्भ किया ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त महर्षि वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ समाप्त कराय राजा निमिके स्थानपर आये, शिष्यका अन्याय देखकर मुनिको क्रोध उत्पन्न हुआ और क्रोधकरके यह शाप दिया कि, पण्डिताभिमानी इस निमिका देह शीघ्र छूट जाय * ॥ ४ ॥ जब कुलगुरु वसिष्ठजीने इस प्रकार अधर्मवर्ती

* शंका–राजा निमि बडा ज्ञानी और ध्यानी था वसिष्ठमुनि आदिक मुनियोंमें पूजन करने योग्य बडा महात्मा पुरुष था, उन दोनोंने फिर मूर्खोंकी समान काम क्यों किया ? राजाने मुनिको शाप दिया, मुनिने राजाको शापदिया, यह क्या कारण ?

उत्तर–जब नारदमुनि स्त्रीके लिये मोहित होगये और विवाह करनेकी इच्छा की, बडे कामियोंकी समान संसारमें भ्रमण करते फिरे, तब राजा निमि और वसिष्ठ यह दोनों उनको देखकर बहुत हँसे, तब दोनों जनोंको नारद मुनिने शापदिया कि, हे वसिष्ठमुनि ! हे राजा निमि ! हम स्त्रीके लिये दुःखी हो रहे हैं, हमारे मनमें विवाह करनेकी इच्छा नहीं है परन्तु भगवान्की मायाने हमको मोहित करलिया है, इसपर भी तुम दोनोंजन हमारी हँसी करते हो, इसलिये तुम दोनोंजने बहुत शीघ्र मायाके फन्दमें फँसकर हमारी समान बडी दुर्गतिको प्राप्त होओगे, इसलिये दोनों जनोंकी बुद्धि भ्रष्ट होगई थी ॥

होकर शाप दिया, तब राजा निमिभी उनको यह शाप देने लगा कि, "तुमने लोभके वश होकर धर्मकी ओरको नहीं देखा इसलिये तुम्हारा देहभी छूटजाय" ॥ ५ ॥ यह कहकर राजा निमिने अपनी देहको छोड़दिया। उसी समय वसिष्ठ ऋत्विक्का भी देह छूटगया, परन्तु कुछ कालके पीछे मित्रावरुणके यज्ञमें उर्वशीके गर्भसे वसिष्ठजीने फिर जन्म लिया, अर्थात् यज्ञ करते करते उर्वशीको देखकर मित्रावरुणजीका जो वीर्य गिरा, उस वीर्यको उन्होंने कलशमें रक्खा था, तिससेही फिर वसिष्ठजी उत्पन्न हुये ॥ ६ ॥ इधर जब यज्ञ करते करते राजा निमिका देह छूटगया, तब मुनि लोगोंने सुगंधित वस्तुमें (उत्तम तेलमें) उनके शरीरको रखदिया; इसके उपरान्त जब यज्ञ समाप्त होगया तो आयेहुये देवता लोगोंसे बोले कि "आप लोग यदि प्रसन्न हो और सामर्थ्य रखते हो तो राजाका यह देह सजीव हो उठे" देवतालोगोंने

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ॥ मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गंधवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ॥ समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥ राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ॥ तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबंधनम् ॥ ८ ॥ यस्य योगं न वांछंति वियोगभयकातराः ॥ भजंति चरणांभोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहं नावरुरुत्सेहं दुःखशोकभयावहम् ॥ सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ॥ उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥

कहा ऐसाही हो। तब राजा निमिका शरीर गंध वस्तुमेंसे ही बोला कि, हे प्रिय! हमें कभी देहका बन्धन न होवे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हरिसेवक मुनिलोग वियोगके भयसे कातर हो कदापि देह धारण करनेकी वाञ्छा नहीं करते। वह केवल मुक्तिके लिये भगवान्के चरणकमलकी सदा वन्दना किया करते हैं ॥ ९ ॥ और दुःख, शोक, भयके देनेवाले मनुष्यके शरीरकी मैं इच्छा नहीं करता, क्योंकि इस देहकी सर्वत्र मृत्यु है, जैसे मछलियोंकी जलमें सर्वत्र मृत्यु है ॥ १० ॥ तब देवतालोगोंने कहा कि, यह निमि विनाही देहके सब प्राणियोंके नेत्रोंपर इच्छानुसार वास करै ॥ इसका तात्पर्य यह है कि, ऐसा होनेसे मुनिलोग जिसलिये राजाके जीवनकी प्रार्थना करते हैं; वह प्रार्थना सिद्ध होजायगी और राजाको देहका संबंधभी नहीं होगा. हे राजन्! इसी वाक्यके अनुसार निमि जीवित हुए थे, नेत्रोंपर पलकका उघड़ना और

पडना इन्हीं राजा निमिके कियेसे होता है ॥ ११ ॥ परन्तु तिसके पीछे महर्षियोंने विचारा कि, विना राजाके राज्य सदा प्रजाका भय दिलाने वाला है । इसलिये सबने राजकुमारकी कामना करके इन निमिके देहको मथा, मथन करनेसे राजा निमिके मृतक देहसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ उस निमिके पुत्रका असामान्य जन्म होनेके कारण जनक नाम हुआ । इस शब्दका अर्थ उत्पादक है । और विदेहसे जन्म ग्रहण करनेके कारण इनका एक नाम विदेह हुआ और मथनेसे जन्म होनेके कारण एक नाम मिथिल हुआ अथवा मिथिलापुरीके निर्माण कर्ता होनेके कारण मिथिलाधिपति कहलाते थे ॥ १३ ॥ इन जनकके पुत्र उदावसु, इनके पुत्र नन्दिवर्द्धन हुए. नंदिवर्द्धनका पुत्र सुकेत और सुकेतका पुत्र देवरात हुआ ॥ १४ ॥ देवरातसे बृहद्रथका जन्म हुआ, तिसका पुत्र महावीर्य, महावीर्यका पुत्र सुधृति, तिसका सुत धृष्टकेतु,

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः ॥ देहं ममंथुः स्म निमेः कुमारस्समजायत ॥ १२ ॥ जन्मना जनकः सोऽभू द्वैदेहस्तु विदेहजः ॥ मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥ तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नंदिवर्धनः ॥ ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥१४॥ तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यस्सुधृत्पिता ॥ सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥ मरोः प्रदीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ॥ देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोथ महाधृतिः ॥ १६ ॥ कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः ॥ स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥ ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ॥ सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ॥ धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥

तिसका पुत्र हर्यश्व और तिससे मरुकी उत्पत्ति हुई ॥ १५ ॥ मरुका बेटा प्रदीकप, तिससे कृतरथने जन्म लिया. तिसका पुत्र देवमीढ और तिससे विश्रुत उत्पन्न हुआ और उससे महाधृतिने जन्म लिया ॥ १६ ॥ महाधृतिका पुत्र कृतरात, तिसका पुत्र महारोमा और महारोमाका बेटा स्वर्णरोमा हुआ तिससे ह्रस्वरोमाने जन्म ग्रहण किया ॥ १७ ॥ तिसके सीरध्वज जन्मा, ह्रस्वरोमा राजा यज्ञके लिये भूमि जोतरहे थे, उसी समय उसकी सीर अर्थात् हलके अग्र भागसे इस पुरुषका जन्म हुआ, इस कारणसे यह सीरध्वज कहलाता था ॥ १८ ॥ सीरध्वजका पुत्र कुशध्वज तिसका पुत्र धर्मध्वज धर्मध्वजके कृतध्वज और मितध्वज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥

अनेकवार चन्द्रमाके निकट गये और उनसे अपनी भार्याको माँगा, परन्तु मदमत्तताके कारण चन्द्रमाने अपनी गुरुभार्याको नहीं त्यागा । बस इसीलिये दैत्य व सुरोंमें महा संग्राम हुआ था ॥ ५ ॥ बृहस्पतिजीसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य डाह रखते थे इसीलिये उन्होंने अपने शिष्य असुर लोगोंके साथ चन्द्रमाको ग्रहण किया अर्थात् चन्द्रमाका पक्ष लिया और भूतेश्वर (महादेव) अंगिराजीके निकट विद्या पानेसे सब भूतोंको साथ ले अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिजीकी ओर हुए ॥६॥ देवराज इन्द्रभी अपने सब देवताओंके संग मिल अपने गुरु बृहस्पतिजीकी ओर गये । तिसके पीछे ताराके लिये सुर और असुरोंका नाशकारी महाघोर संग्राम होनेलगा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जब कुछ दिनोंतक युद्ध हुआ । तब देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे जाकर यह सब वृत्तान्त कहा । यह सुन महात्मा ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बुलाकर बहुत डाँटा । और तारा बृहस्पतिजीको

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ॥ हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो महेंद्रो गुरुम न्वयात् ॥ सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथांगिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ॥ तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदंतर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥ त्यजत्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ॥ नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सांता निकः सति ॥ ९ ॥ तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ॥ स्पृहामांगिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥

दिला दी ॥ ८ ॥ बृहस्पतिजी अपनी भार्या ताराको पायकर जानगये कि, यह अवला अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भवती हुई है । इसलिये ताराके ऊपर घृणा प्रकाश करके कहनेलगे । अरे दुर्म्मति रमणि ! ! हमारे क्षेत्रमें औरका गर्भ धारण किया । इसे शीघ्र गिरादे । अरे असति ! तू ऐसा समझकर न डरना कि, गर्भगिरानेके पीछे हम तुझे मार डालेंगे यद्यपि हमारे क्रोधकी अग्नि बहुत भड़क रही है तो भी तुझ स्त्री जातिको हम क्या भस्म करेंगे ? और अधिक करके हम सन्तानकी इच्छा करते हैं ॥ ९ ॥ पतिके यह वचन सुनकर तारा अतिलज्जित हुई और अपने गर्भसे तत्कालही कनक प्रभासम सुकुमारको छोड़ दिया । हे राजन् ! इस परम कुमारको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंने लेना चाहा ॥ १० ॥

और दोनों परस्पर कहनेलगे कि,यह बालक तुम्हारा नहीं है हमारा है इसलिये इन दोनों जनोंमें बहुत झगडा हुआ, पुत्रके लिये इन दोनोंमें झगड़ा होताहुआ देखकर ऋषि और देवतालोगोने तारासे पूंछा कि, यह वास्तवमें किसका पुत्र है, परन्तु तारा लाजके मारे कुछ भी न कहसकी और चुप होरही ॥११॥ इसलिये वह बालक अलीक लाजसे कोपायमान हो अपनी मातासे बोला "अरी अशुभे ! बोलती क्यों नहीं ? शीघ्र मेरे सामने अपना दोष वर्णन कर" ॥ १२ ॥ तिसके पीछे ब्रह्माजीने एकान्तमें ताराको बुलाय समझाया बुझाया और कहा हे वत्से ! बतलाओ यह किसका पुत्र है ? तब तारा नीचेको शिर झुकाय लाजसहित धीरेसे बोली कि "पुत्र तो यह चन्द्रमाजीका है" ताराके मुखसे यह वचन निकलतेही चन्द्रमाने उस पुत्रको लेलिया ॥ १३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इस बालककी गंभीर बुद्धि देखकर इसका नाम "बुध" रक्खा है. हे राजन् ! चन्द्रमा इस पुत्रको पाकर

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः ॥ प्रपच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥ कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ॥ किं नावोचस्त्वसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाऽऽशु मे ॥ १२ ॥ ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सांत्वयन् ॥ सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥१३॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ॥ बुद्ध्या गंभीरया येन पुत्रेणाऽऽपोडुराण्मुदम् ॥१४॥ ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ ॥ १५ ॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणा ॥ तदंतिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥ मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ॥ निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कंदर्पमिव रूपिणम् ॥१७॥ धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदंतिके ॥ स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८ ॥

परम हर्षित हुआ ॥१४॥ इस बुधसे इलाके गर्भमें पुरूरवाका जन्म हुआ यह पुरूरवा अत्यन्त विख्यात हुआ ॥ १५ ॥ एक समय देवर्षि नारदजी देवराज इन्द्रकी सभामें पुरूरवाके रूप, गुण, धन, उदारता, शीलता और विक्रमका गान कररहेथे । देववेश्या उर्वशी यह गुण सुनकर कामके वश होगई और राजाके निकट स्वयंही आई ॥ १६ ॥ हे परीक्षित् ! तुम ऐसी शंका मत करना कि, उर्वशी स्वर्गकी अप्सरा होकर मनुष्यके निकट क्यों गई ? यह अप्सरा मित्रावरुणके शापसे इस समय मनुष्यभावको प्राप्त हुई थी इसलिये पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामदेवकी समान रूपवान् सुनकर यह अधीर हो उनके निकट जाकर खड़ी होगई ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र आनन्दके मारे खिल

गये। राजाने पुलकित हो मधुर वचनसे कहा ॥ १८ ॥ हे सुन्दरी! हमारे साथ विहार करो। बहुत वर्षोंतक हमारा दोनोंका परमसुखसे रमण होगा और मैं यही चाहताहूं कि, मेरा तुम्हारा स्नेह ऐसाही बनारहे ॥ १९ ॥ उर्वशी बोली कि- हे सुन्दर! तुम्हारे प्रति किसके नेत्र और मन अनुरागी न होंगे? तुम्हारे हृदयको प्राप्त हो रमण करनेकी इच्छासे कोई इस हृदयसे दूर होनेकी इच्छा न करेगी ॥ २० ॥ तिसके उपरान्त शापके अंतमें प्रतिज्ञाभंग करनेके छलसे जानेके लिये कहनेलगी कि, हे प्रियवर! मैं प्रथमही आपसे यह वचन माँगे लेतीहूं कि, मेरे यह दोनों भेड़ोंके बच्चे तुमको धरोहरकी समान रखनेपडेंगे और हमारे साथ तुम रमण करो। क्योंकि जो पुरुष बडाईके योग्य है उसकोही स्त्रियें वरण करती हैं। इसलिये विजातीय होनेपरभी तुम्हारे वरण करनेमें हमें कोई दोष नहीं है ॥२१॥ हे वीर! परन्तु मैं तुम्हारे निकट रहकर घृतभक्षण करूंगी और मैथुनके अतिरिक्त किसी समय तुमको वस्त्ररहित न देखूं। जबतक इतनी बातें आप मेरी स्वीकार न करलेंगे तबतक मैं आपके संग कदापि प्रसंग न करूंगी. राजा पुरूरवाने उसकी सुन्दरताईपर मोहित होकर यह सब बातें अंगीकार करलीं ॥२२॥ और कहा कि, हे सुन्दरि! तुम्हारा आश्चर्यमय रूप और आश्चर्यमय भाव देखतेही मनुष्यका हृदय मोहित होजाताहै। तुम स्वर्गवासी देवी अपने आप यहाँ आई हो। फिर कौन मनुष्य तुम्हारी सेवा न करेगा? ॥ २३ ॥ हे राजन्! यह कहकर पुरुषप्रधान पुरूरवा उर्वशीके साथ देवतालोगोंके विहार स्थल चैत्ररथादि वनोंमें विहार करनेलगे। और उर्वशीभी यथायोग्य उस नृपालको आनन्द देनेलगी ॥२४॥ इस देवी उर्वशीके शरीरमें कमलके परागकी समान सुगंधि

राजोवाच ॥ स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ॥ संरमस्व मया साकं रतिर्नो शाश्वतीः समाः ॥ १९ ॥ उर्वश्युवाच ॥ कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुंदर ॥ यदंगांतरमासाद्य च्यवते न रिरंसया ॥ २० ॥ एतावुरणकौ राजन्न्यासौ रक्षस्व मानद ॥ संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥ २१ ॥ घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात् ॥ विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥ २२ ॥ अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ॥ को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥२३॥ तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयंत्या यथार्हतः ॥ रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥ २४ ॥ रममाणस्तया देव्या पद्मकिंजल्कगंधया ॥ तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५ ॥

निकलती थी । उर्व्वशीके साथ विहार करके राजा इसके वदनकी सुगन्धिसे बहुत दिनतक हर्ष पातेरहे॥२५॥इस ओर पुरमें देवराज इन्द्रने उर्वशीका दर्शन न पायकर गन्धर्वोंको अज्ञा दी कि,वह उर्व्वशी जहाँपर हो वहाँसे शीघ्र लेआओ ! क्योंकि विना उर्व्वशीके हमारे स्थानकी शोभा नहीं होती ॥२६॥ आधीरातके समय जब महाअन्धकार हुआ उस समय वह इन्द्रके भेजे गन्धर्व मृत्युलोकमें आये और उन मेढोंको हरण करके चलदिये जिनको धरोहरकी भाँति उर्वशीने पुरूरवाके निकट सौंपाथा ॥ २७ ॥ उन दोनों मेढोंको उर्व्वशी पुत्रके समान मानती थी; जब उन मेढोंको गन्धर्व गण हरण करके लेजानेलगे तब वह अति आर्त्त वाणीसे चिल्लाये । उस चिल्लानेके शब्दको सुन उर्व्वशी देवलोकमें जानेकी वासनासे खेदसहित राजा पुरूरवासे कहने लगी हा; ! मैं इस कुत्सित स्वामीसे मारी पड़ी, इस नपुंसकमें कुछ भी पुरुषार्थता नहीं है । बरन् यह अपने आपको वृथाही वीर

अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समचोदयत् ॥ उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६ ॥ त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ॥ उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ २७ ॥ निशम्याक्रंदितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ॥ हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ २८ ॥ यद्विस्रंभादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ॥ यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९ ॥ इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुंजरः ॥ निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥ ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतंत स्म विद्युतः ॥ आदाय मेषावायांतं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥

जानकर अभिमान करता है । इसके ऊपर विश्वास करनेसे मेरा नाश होगया । हाय ! मेरे पुत्रसमान मेढ़ोंको चोर हरण करके लिये चलेजातेहैं । अरे ! यह पुरुष कैसा ? कि, जो नारीकी समान भीत रहकर दिन रात घरमें पड़ा रहता है, हे राजन् ! जिसप्रकार हाथी अंकुशसे विद्ध होताहै, उसी प्रकार उर्व्वशीके वचन बाणके समान राजाके हृदयमें बिंधगये और उसी समय खड्ग ग्रहण करके क्रोधके मारे वस्त्र रहित मेढोंको हरनेवालोंपर झपटा ॥ २८॥२९॥३०॥ गंन्धर्वोंने देखा कि, राजा हमारे पीछे आता है तब गन्धर्वगणोंने मेढोंको छोड़दिया । और विशेष द्युतिमान होकर वहाँ प्रकाश करनेलगे । तब राजा उन मेढोके बच्चोंको लेकर वहाँ आया, परन्तु उस समय उर्वशीने उनको नग्न देखलिया । हे कुरुश्रेष्ठ ! "मैथुनके

अतिरिक्त नंगा न देख सकूँगी" इस बातको विचार वह अप्सरा वहाँसे चलीगई। इसके उपरान्त राजा पुरूरवा सेजपर उर्वशीको न पायकर अत्यन्त विमन हुआ। और उसीमें चित्त लगाय कातरता प्रकट करके शोकके वेगसे उन्मत्तकी नाईं पृथ्वीपर भ्रमण करनेलगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कुछ दिनों पीछे कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तीर वह अप्सरा पाँच सखियोके साथ राजा पुरूरवाको दिखाई दी, तब राजाने सिटपिटायकर हर्षित हो यह वचन कहे ॥ ३३ ॥ हे प्यारी ! हे निर्दयी बाला ! रहो रहो। हे सुमुखि ! मैं अबतक सावधान नहींहूं प्राणेश्वरि ! आओ तो दोनों एक स्थानपर बैठकर बात चीत करैं ॥ ३४ ॥ हे देवि ! हमारा यह कमनीय शरीर तुमसे दूर कियाहुआ जो यहाँ आया है अभी यहाँ गिरता है और देखो तुम्हारी

ऐलोपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२॥ स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ॥ पंच प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३ ॥ अहो जाये तिष्ठतिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४ ॥ सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादंत्येनं वृका गृध्रास्त्व त्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच ॥ मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाऽद्युर्वृका इमे ॥ क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ॥ घ्नंत्यल्पार्थेऽपि विस्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविस्रंभमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ॥ नवंनवमभीप्संत्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८ ॥

प्रसन्नताका पात्र न होनेसे भेडिये और गिद्ध इसको भक्षण कर जायँगे ॥ ३५ ॥ राजाके यह वचन सुनकर उर्वशी बोली कि, हे राजन् ! मरो नहीं तुम पुरुष हो धैर्य धारण करो। यह भेडिये अथवा प्रसिद्ध इन्द्रियें तुमको भक्षण न करैं अर्थात् तुम इंद्रियोंके वश मत होओ। हे राजन् ! कहींभी स्त्रियोंकी मित्रता नहीं स्थिर होती क्योंकि इनका हृदय भेडियेकी समान होताहै ॥३६॥ स्त्रियोंको स्वभावसेही करुणा नहीं होती, यह क्रूर और शान्तिरहित कहलाती हैं। अपने प्रीतमके लिये साहस करती हैं। थोडीसी बातके लिये यह विश्वासघातिनी पति अथवा भ्राताको प्राणोंसे मार डालती है ॥३७॥ अधिक करके जो पुँश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी हैं। इच्छानुसार घूमती हैं वह तो सौहार्दको एक साथ ही छोड़ देती हैं। वह अज्ञानी पुरुषके

सामने बाहरी और अलीक प्रेम प्रकट करती हैं ॥ ३८ ॥ जब राजाने बहुत विनती की, तब उर्वशी बोली कि, वर्षके अन्तमें तुम मेरे साथ एक दिन विहार कर सकोगे। और उससे ही तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगे ॥ ३९ ॥ उसके उपरान्त राजा पुरूरवा देवी उर्वशीको गर्भवती देख उसके वचन मान अपने नगरको चला आया परंतु वर्षके व्यतीत होनेपर फिर वहाँपर आया जहाँ कि; पहले उर्वशीसे भेंट हुई थी. वीर प्रसविनी उर्वशीको देखकर राजाको परम हर्ष हुआ । और प्रमुदितचित्तसे उर्वशीके पास एक रात बासकिया ॥ ४० ॥ फिर वियोगके भयसे राजाका चित्त व्याकुल हुआ । उर्वशी दीन राजाको विरहातुर देखकर कृपा करके बोली हे राजन्! हमारे लिये शोक क्यों करते हो ? गंधर्वलोगोकी विनय करो । वह गन्धर्वगण प्रसन्न होकर हमको सदाके लिये तुम्हें देदेंगे ॥ ४१ ॥ हे परीक्षित ! उर्वशीके यह वचन

संवत्सरांते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ॥ वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यंत्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
अंतर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् ॥ पुनस्तत्र गतोऽब्दांते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥ उपलभ्य मुदा युक्तः
समुवास तयाऽनिशम् ॥ अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥ गंधर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यंति मामिति ॥
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥ उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन्वने ॥ ४२ ॥ स्थालीं न्यस्य वने
गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३ ॥ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं
विलक्ष्य सः ॥ तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥

सुनकर राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी बड़ी स्तुति की कि, जिससे गन्धर्वगण बहुत ही शीघ्र प्रसन्न होगये उन्होने प्रसन्न होकर राजाको अग्नि स्थाली (टोकनी) दी । उसके देनेका तात्पर्य यह था कि, जब इससे अग्निकर्म किया जायगा, तबहीं उर्वशी प्राप्त हो जायगी । परंतु राजा पुरूरवाने उस अग्निस्थालीकोही उर्वशी समझा और उसको काँखमें दबाये वन वनमें घूमता फिरा। परन्तु फिर राजाका भ्रम दूर हो गया, अर्थात् यह समझलिया कि, यह उर्वशी नही किन्तु अग्निस्थाली है ॥ ४२ ॥ उसके उपरान्त इस अग्निस्थालीको वनमें डालकर घर आया और घरमें आय नित्य रात्रिके समय उर्वशीका ध्यान करने लगे । तिससे त्रेतायुगके आरंभके समय राजाके हृदयमें कर्मबोधक तीन वेद उत्पन्न हुये ॥४३॥ उसके पीछे राजा फिर वहींपर गया कि, जहाँ अग्निस्थाली पड़ी थी । और देखा कि, शमीवृक्षके गर्भमें एक चलद्रोणीका पेड

जमा है उसमें अग्निका होना भली भाँतिसे देख उर्वशीलोककी कामनासे उस राजाने उस चलद्रोणीके पेड़से दो अरणी बनाई। और उस अग्निको मथा;
हे राजन्! राजा पुरूरवाने किस प्रकारसे अरणियोंसे अग्नि निकाली,सो तुम सुनो। मंत्रके अनुसार नीचेकी अरणीको उर्वशी और उत्तरकी अरणीको
आत्मा समझकर और इन दोनोंमें जो काठका टुकड़ा था, उसका यह राजा पुत्रकी भांति ध्यान करने लगे ॥४४॥४५॥ जैसेही वह अरणी मथीगई
कि, उनमेंसे अग्नि निकली यह अग्नि साधारण नहीं। इससेही भोज्यधन जन्म लेता है उसके पीछे वह अग्नि त्रयीविद्याकी विधिके अनुसार कहेहुये
संस्कारसे त्रिवृत अर्थात् आहवनीयादि त्रिरूप हुई। फिर राजाने उस त्रिवृत अग्निको अपना पुत्र कहकर माना॥४६॥ और उर्वशीलोककी कामना
करके उस अग्निसे सर्वदेवमय यज्ञेश भगवान् वासुदेवका यज्ञ इस राजाने किया ॥ ४७ ॥ हे राजन्! पहले सत्ययुगमें सब प्रकारके वाक्योंका वीजभूत

उर्वशीं मंत्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ॥ आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्मंथनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ॥ त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥ तेनायजत यज्ञेशं भगवंतमधोक्षजम् ॥ उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥ एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥ देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥ अग्निना प्रजया राजा लोकं गांधर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० नवमस्कंधे सोमवंशचरिते ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ॥ आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥

ओंकारही एक मात्र वेद था, नारायणही अकेले देवता थे। अग्निही अकेला लौकिक था वर्णभी एकही था और अग्निभी एकही था ॥ ४८ ॥ फिर
त्रेतायुगके आरम्भमें पुरूरवासे तीन वेद उत्पन्न हुये। इसलिये इस युगमें यह राजा अग्निरूप प्रजाद्वारा गंधर्वलोकको प्राप्त होकर उर्वशीके साथ
विहार करने लगा। सत्ययुगमें सब ही पुरुष सत्त्वगुणप्रधान थे. इसलिये सबही ध्याननिष्ठ हुआ करते थे. उसके पीछे रजोगुणप्रधान त्रेतायुगमें
वेदादिके विभागसे कर्ममार्ग प्रकाशित हुआ है ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायाम् ऐलोपाख्यानवर्णनं नाम चतुर्दशो
ध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा–पुरूवाके वंशमें, भये गाधि गम्भीर ॥ ता दौहित्रके पुत्र भे, परशुराम रणधीर ॥ १ ॥ इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी बोले
कि, हे परीक्षित्! राजा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे ६ पुत्र उत्पन्न हुये जिनके नाम यह हैं। आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥

इनमें श्रुतायुके वसुमान्, सत्यायुके श्रुतञ्जय हुआ, रयका पुत्र एकनामा हुआ। जयकी संतान अमित हुई ॥ २ ॥ विजयका पुत्र भीम हुआ भीमका पुत्र काञ्चन और काञ्चनके होत्रक जन्मा। इस होत्रकके उन जह्नुका जन्म हुआ कि जिन्होने एकही घूंटमें सब गंगाजीका जल पान कर लियाथा जह्नुके पुरु जन्मा उसका बलाक तिसका बेटा अजक॥३॥अजकके यहाँ कुशने जन्म लिया। कुशके कुशाम्बु,मूर्तय, वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र

श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः ॥ रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ कांचनो होत्रकस्ततः ॥ तस्य जह्नुः सुतो गंगां गंडूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ॥ ३ ॥ ततः कुशः कुशस्यापि कुशांबुर्मूर्तयो वसुः ॥ कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत्कुशांबुजः ॥ ४ ॥ तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ॥ वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चंद्रवर्चसाम् ॥ सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ॥ ६ ॥

हुए उनमेंसे कुशाम्बुके गाधिने जन्म ग्रहण किया ❀ ॥ ४ ॥ इन गाधिके सत्यवती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। ब्राह्मण ऋचीकने राजा गाधिसे उस कन्याको माँग लियाथा। तब राजा गाधिने कन्याके योग्य यह वर न विचार कर निवेदन किया ॥ ५ ॥ हे महाराज! जिनका दॉयाँ अथवा बाँयाँ एक ओरका कान श्यामवर्ण हो और जिनके सब अंगोंमें चन्द्रमाकी समान ज्योति हो ऐसे एक सहस्र घोड़े तुम हमें इस कन्याके मूल्यमें दो

❀ शंका–पुत्र होनेके लिये सब राजा लोग यज्ञ किया करते थे परन्तु राजा गाधिने पुत्र होनेके लिये यज्ञ क्यों नहीं किया ? क्योंकि राजा गाधिकी स्त्रीने पुत्र होनेके लिये अपने जामातृसे याचना की थी, यह सन्देह हमारा निवारण करो ? ॥

उत्तर–राजा गाधि नित्यप्रति यही चिन्ता करते थे कि, किससमय पुत्र होनेके लिये यज्ञ करेंगे, यही विचार करते करते बहुत दिन वीतगये, तवतक ऋचीक नाम भृगुवशमें तपस्वी था. उसके संग राजा गाधिने अपनी सत्यवती कन्याका विवाह करदिया, तव रानी अपने जामातृ (जमाई) को सिद्ध समझकर, और अधिक अवस्या समझकर, पुत्रकी याचना करनेलगी, रानीने अपने मनमें विचारा कि, राजा यज्ञ करनेके लिये अभी विचारही रहाहै परतु अभी यज्ञ करता नहीं, इसलिये रानीने जामातृसे पुत्र होनेकी याचना की, कि राजा यज्ञ करै वा न करै ॥

तब हम तुम्हें यह कन्या दें। कुछ इन हजार घोड़ोंको आप अधिक न समझें, क्योंकि हम कुशिकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! ऋचीक मुनि राजाके ऐसे वचन सुनकर सब अभिप्राय जान वरुणजीके निकट उसीसमय चलेगये और वहाँसे एक हजार घोड़ोंको लाकर उस श्रेष्ठ मुखवाली कन्यासे विवाह किया॥७॥कुछ कालके पीछे ऋचीक मुनिकी भार्या और सासने पुत्रकी कामना करके इन ऋचीकसे प्रार्थना की तब इस ऋषिने अपनी भार्याके लिये ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिये क्षत्रिय मन्त्रसे चरु पकाय स्नान करनेको गये ॥ ८ ॥ उसी सत्यवतीकी माताने मनमें विचारा कि, भार्याके ऊपर पतिका अधिक स्नेह हुआ करताहै जामाता मेरी कन्याके लिये जो चरु बनायकर गयेहैं वह अवश्यही हमारे

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणांतिकम् ॥ आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥ स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ॥ श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥ तावत्सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ॥ श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदत्स्वयम्॥९॥तद्विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ॥ घोरो दंडधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ॥ अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ॥ रेणोः सुतां रेणुकां वै जमग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥

चरुसे श्रेष्ठ होगा। यह सोच विचार इसने अपनी कन्यासे वह चरु माँगा जो कि, ऋषि इस अपनी भार्याके लिये बनागये थे। सत्यवतीने माताकी प्रार्थनासे ब्रह्ममन्त्र युक्त अपना चरु उसको देदिया और आपने क्षत्रिय मंत्रका पढ़ा हुआ चरु भक्षणकिया॥९॥इसके उपरान्त जब मुनिनेआकर यहबात जानली तब अपनी स्त्रीसे बोले। "बडा नीचकर्म किया, चरुका अदल बदल करनेसे तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधारी होगा। और तुम्हारा भ्राता ब्रह्मचारी होगा"॥१०॥यह सुन सत्यवती अत्यन्तभीत हो अनेक भाँतिकी अनुनय विनय कर ऋषिसे बोली कि, महाराज! "ऐसा न हो" तब भार्गव प्रसन्न होकर बोले कि; तुम्हारा पौत्र भयंकर होगा। हे राजन्! तिसके पीछे सत्यवतीके जमदग्नि नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ हे राजन्! उसके वह सत्यवती अबला लोकपावनी महा पुण्यमय कौशिकी नदी होकर बही हैं हे परीक्षित्! इन महर्षि जमदग्निने रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया ॥ १२ ॥

उस रेणुकाके गर्भसे इन ऋषिके वसुमानादि बहुत पुत्र उत्पन्न हुये इनके सब पुत्रोंमें छोटे परशुराम हुए ॥ १३ ॥ प्राचीन कविलोग इनको भगवान् वासुदेवका अंश और हैहय नाम, क्षत्रिय कुलका अन्त करनेवाला कहते हैं । इन परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीसवार क्षत्रियहीन किया था ॥ १४ ॥ पहले क्षत्रियजातिके लोग रजोगुणसे व तमोगुणसे परिपूर्ण हो गर्वकारी और वेदविरुद्धाचारी हुए । इसलिये यह पृथ्वीपर भारकी नाईं होगये थे, यद्यपि अपराध इनका थोड़ा था, तौभी परशुरामजीने इनको मारही डाला ॥ १५ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अजितेन्द्रिय क्षत्रिय जातिने भगवान् परशुरामजीका ऐसा क्या अपराध किया था कि, जिससे उनका क्रोधानल बारम्बार

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ॥ यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलांतकम् ॥ त्रिस्सप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४ ॥ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ॥ रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंहसि ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ ॥ किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ॥ कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ॥ दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ॥ अव्याहतेंद्रियौजःश्रीस्तेजो वीर्यं यशो बलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ॥ चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥ १९ ॥ स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवांभसि मदोत्कटः ॥ वैजयंतीं स्रजं बिभ्रद् रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥

क्षत्रियकुलके ऊपर पडा था ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षितका प्रश्न सुनकर सहर्ष श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! हैहयोके अधिपति क्षत्रियश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनने सेवाके कर्मसे नारायणके अंशके अंश भगवान् दत्तात्रेयकी पूजा करके सहस्र भुजा प्राप्त कीं और इनकेही बलसे यह शत्रुओंपर दुर्द्धर्ष हुए थे । दत्तात्रेयकी सेवासे राजाको अव्याहत इन्द्रियसामर्थ्य, सम्पदा, प्रभाव, वीर्य, बल ॥ १७ ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्व और जिससे अणिमादिगुण विराजमान रहैं ऐसा ऐश्वर्य भी उन्होंने पाया था इसलिये यह राजा पवनकी समान अव्यर्थगतिवाला हो सब लोकोमें विना बाधाके भ्रमण करनेलगा ॥ १९ ॥ एक समय यह सहस्रार्ज्जुन वैजयन्ती माला धारणकर बहुतसी

स्त्रियोंके साथ नर्मदानदीके जलमें क्रीडा करने लगा। मदोन्मत्तताके कारण केलि करते करते इसकी हजार बाँहोंसे अचानक नर्मदाकी धार रुकगई ॥ २० ॥ उसी समय राक्षसराज रावण दिग्विजय करनेके लिये बाहर हो माहिष्मतीपुरीके समीप डेरा डाल शिवलिंग स्थापित कर, इस नदीके किनारे उनकी पूजा करता था, जब कार्तवीर्यार्जुनकी भुजाओंसे जलकी धार रुक गई। तब नदीकी धार प्रतिकूल हो नदीके किनारेको डुबाती हुई दूसरी ओरको लौटी। नदीकी धारके जलसे अपने डेरेको डूबता हुआ देखकर अर्जुनके वीर्यको वीर्याभिमानी रावण नहीं सहसका। तब रावणने विहार करतेहुए सहस्रार्जुनको पराजित करनेका उद्योग किया। हे राजन्! जब स्त्रियोंके सामने रावणने इस प्रकारका ढीठपन किया तब सहस्रार्जुनने क्रोधित हो उसको पकड़ लिया और अपने नगरमें बाँधकर ले आया और बंदरकी समान कुछ दिन अपने

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतस्सरिज्जलैः ॥ नामृष्यत्तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्री
णां समक्षं कृतकिल्बिषः ॥ माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२ ॥ स एकदा तु मृगयां विचरन्विपि
ने वने ॥ यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३ ॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ॥ ससैन्यामात्यवा
हाय हविष्मत्या तपोधनः ॥ २४ ॥ स वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ॥ तन्नाऽऽद्रियताग्निहोत्र्यां साभिला
षः स हैहयः ॥२५॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ॥ ते च माहीष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रंदतीं बलात् ॥ २६ ॥

घरमें बाँधा और फिर अवज्ञा कर छोड दिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ जिस प्रकार कार्त्तवीर्यार्जुन अपराधी होकर परशुरामजीके हाथसे मारागया। उसकाभी वर्णन हम करते हैं तुम सुनो। एक समय सहस्राज्र्जुन मृगयाके लिये विजन वनमें घूमता घूमता अकस्मात् जमदग्निजीके आश्रममें आय पहुँचा ॥ २३ ॥ मंत्री, सेना, सामन्त और अश्वादि वाहनसहित इस राजाको अपने आश्रममें आयाहुआ देखकर जमदग्निऋषिने अपनी कामधेनु गायके द्वारा भलीभाँति इनका अतिथिसत्कार किया ॥ २४ ॥ मुनिकी इस धेनुरत्नको अपने ऐश्वर्यमें श्रेष्ठ देखकर इस पहुनईसे सहस्रार्जुनको सन्तोष न हुआ। उसने हैहय लोगोंके साथ परामर्श करके इस गायके ले जानेका अभिलाष किया ॥ २५ ॥ इसलिये दर्प करके अपने पुरुषोंको

आज्ञा दी कि, ऋषिके अग्निहोत्रकी गाय लेलो। यह आज्ञा पाय सहस्रार्जुनके सेवक रोती और डकरातीहुई बच्चे सहित उस गायको बलात्कार (जबरदस्ती) पकडकर माहिष्मती नगरीको लेगये ॥ २६ ॥ जब राजा गायको लेकर माहिष्मती पुरीको चला आया तब जमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी आश्रममें आये। वह इस राजाकी यह दुष्टता सुनकर चोट खायेहुए सर्पकी समान क्रोधाग्निसे जल उठे ॥ २७ ॥ उसी समय परशुरामजी घोर परशा हाथमें ले तूणसहित धनुष बाण ले बख्तर पहरकर महाक्रोधित हो उस राजाके पीछे दौडे जैसे सिंह यूथपति हाथीके ऊपर झपटता है ॥ २८ ॥ हे राजन्! कार्तवीर्यार्जुन जब अग्निहोत्रकी गाय लेकर अपनी माहिष्मती पुरीमें प्रवेश करनाही चाहता था कि, इतनेहीमें उसने देखा कि, भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी मृगचर्म पहरे बाणादि आयुधसहित धनुप धारण किये महावेगसे आयरहेहैं और

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ॥ श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाऽऽहतः ॥ २७ ॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ॥ अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेंद्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥ तमापतंतं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ॥ ऐणेयचर्मांबरकर्मधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९ ॥ अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ॥ अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥ यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोनिलौजाः परचक्रसूदनः ॥ ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥३१॥

सूर्यकी समान प्रकाशमान इनकी जटा इधर उधर छिटकरही हैं ॥ २९ ॥ यह देखकर सहस्रार्जुनने भीतहो अपने बचनेके लिये हाथी, घोडे, रथ, पैदल और गदा, असि, बाण, ऋष्टि (अस्त्रविशेष) शतघ्नी और शक्तिसहित सत्रह अक्षौहिणी भयंकर सेना भेजदी। परन्तु परशुरामजीने अकेलेही उस सब सेनाका संहार करडाला ॥ ३० ॥ महात्मा परशुरामजीका वीर्य और मन पवनकी तुल्य, इस कारण शत्रुसेनाको नाश करनेके लिये वह अग्निकी समान थे वह अपना परशा चलातेहुए जहाँ जहाँ गये उसी उसी स्थानमें शत्रुसेनाके वीरगण छिन्नबाहु, छिन्नजंघ और छिन्नमुण्ड होकर पृथ्वीपर गिरनेलगे। और उनके अश्व सारथि सबही मारेगये ॥ ३१ ॥

हैहयपति अर्जुन रणभूमिमें रुधिरकी धारासे कीच उठी देख और परशुरामजीके कुठार व बाण प्रहारसे वर्म, ध्वजा, धनुष, बाण और शरीर छिन्न भिन्न होनेसे प्रायः सबही सेना युद्धमें गिरपड़ी है यह देख क्रोधित हो सहस्रबाहु आपही संग्राममें चलाआया ॥ ३२ ॥ और परशुरामजीका संहार करनेको अपनी सब भुजाओंसे एकवारही पाँचसौ (५००) धनुष ग्रहण कर पाँचसौ पर पाँचसौ तीक्ष्ण बाण चढाकर चलाने लगा । हे राजन् ! महा तेजस्वी परशुरामजी अस्त्रधारियोंमें आगे गिनने योग्य हैं यद्यपि वह एक धनुप चढा रहे थे, तोभी उसी धनुपसे अगणित बाण चलाकर एक साथ अर्ज्जुनके पांचसौ धनुप काट डाले ॥ ३३ ॥ धनुपोके कटजानेपर अपनीं भुजाओसे समर करनेके योग्य अनेक अनेक पर्वत और वृक्ष लेकर

दृष्ट्वा स सैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः ॥ विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहयमापत द्रुषा ॥३२॥ अथार्जुनः पंचशतेषु बाहुभिर्धनुष्षु वाणान्युगपत्स संदधे ॥ रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकध न्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥ पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेंऽघ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ॥ भुजान्कुठारेण क ठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृंगमिवाहरत् ॥ हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ॥ समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६ ॥ स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ॥ वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ रामराम महाबाहो भ वान्पापमकारषीत् ॥ अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥

महावेगसे रणभूमिमें खड़े हुए परशुरामजीके ऊपर दौडा यह देख परशुरामजीने अति पैनी धारवाले कुठारसे सर्पके फणोंकी समान उसकी सब भुजायें काटडालीं ॥३४॥ और पीछेसे पर्वतके शिखरकी समान सहस्रबाहुका मस्तकभी काट दिया । हे राजन्। सहस्रबाहुके मारेजाने पर उस के दश सहस्र पुत्र भयके मारे भाग गये ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त परशुरामजी बछेसहित उस गायको लेकर आश्रममें आये और शत्रुके हाथमें जानेसे क्लेशित हुई उस गायको लाकर अपने पिताजीको सौंपदिया ॥३६॥ परन्तु जिस समय परशुरामजीने अपना कियाहुआ कर्म पिता और भ्राताओंसे वर्णन किया, तव मुनिश्रेष्ठ जमदग्निको संतोष नहीं हुआ, और संमोहित विराग दिखाकर बोले ॥ ३७ ॥ हे राम ! हे महाबाहो !

तुम पापकर आये । कैसी खेदकी बात है? नरदेव राजा सर्वदेवमय स्वरूप है उसको तुमने वृथाही मारडाला ॥३८॥ हे तात ! हम ब्राह्मण क्षमागुणसेही पूजित हुयेहैं । यह गुण साधारण नहीं है । इसी गुणसे ब्रह्माजी लोकगुरु हो परमेष्ठी पदको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! जमदग्नि फिर बोले कि, हे वत्स ! क्षमासेही सूर्यसम्बन्धिनी प्रभाकी समान ब्रह्मसम्बन्धिनी श्री शोभायमान होतीहै ॥ और क्षमाशील पुरुषके ऊपर भगवान् वासुदेव शीघ्रही प्रसन्न होजातेहैं ॥ ४० ॥ हे अंग ! चक्रवर्ती राजाका वध ब्रह्मवधसे भी भारी है । इसलिये तुम भगवान् हरिमें मन लगाय तीर्थसेवा और यम नियमादि द्वारा अपने पापोंका नाश करो ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां परशुरामचरिते हैहयार्ज्जुनवधो नाम

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ॥ यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमया रोचते लक्ष्मी ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ॥ क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥४०॥ राज्ञो मूर्धाऽवसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ॥ तीर्थसंसेवया चांहो जह्यंगाऽच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० नवमस्कंधे सोमवंशचरिते कार्त्तवीर्यार्जुनवधो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनंदन ॥ संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गंगायां पद्ममालिनम् ॥ गन्धर्वराजं क्रीडंतमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥ विलोकयंती क्रीडंतमुदकार्थं नदीं गता ॥ होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा—सोलहमें जमदग्नि वध, युत सुत कियो हजार ॥ परशुराम तासों करत, क्षत्रिनको संहार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! पिताके उपदेशसे परशुरामजी "बहुत अच्छा" कह वनको चलेगये और एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके आश्रममें लौटआये ॥ १ ॥ किसी समय जमदग्निकी स्त्री रेणुकाने गंगाजीपर जाय वहाँ पद्ममाली गन्धर्वराजाको अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ देखा ॥ २ ॥ रेणुका जल लानेके लिये गंगाजीपर गई थी, विहार करतेहुये गन्धर्वराजाके देखनेसे रेणुकाने उनकी चाहना की और होमका

समय व्यतीत होगया इसको भी रेणुकाने न जाना* ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कालको बीतजाताहुआ देख; मुनिसे शापकी आशंक कर वह अत्यन्त भीत हुई। और शीघ्र आय जलकलशको मुनिके आगे रख खड़ी होगई॥४॥इधर अपनी भार्याके मानसिक व्यभिचारको जान महर्षि जमदग्निको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तीक्ष्ण हो अपने पुत्रोंको पुकारकर यह आज्ञा दी कि, तुम इसी समय अपनी पापिनी माताको मारडालो परन्तु इन पुत्रोंने पिताका वचन नहीं सुना ॥ ५ ॥ परंतु परशुराम अपने पिताकी समाधि और तपस्याके प्रभावको

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशंकिता ॥ आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृतांजलिः ॥ ४
व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ॥ घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥
रामः संबोधितः पित्रा भ्रातन्मात्रा सहावधीत् ॥ प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक्समाधेस्तपसश्च यः ॥ ६ ॥
वरेण च्छंदयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७ ॥

जानते थे, जब इनसे मुनिने कहा कि, तुम अपने इन भाइयोंको और अपनी माताको मारडालो। तब उन्होने विचारा कि, जो पिताकी आज्ञा उल्लंघन कर इनको नहीं मारता, तो पिताजी क्रोधित होकर हमको शाप देदेंगे और जो हम इनको मारडालेंगे तो कदाचित् हमारे ऊपर प्रसन्न हो यह हमारी माता और भ्राताओंको जिलाभी सक्तेहैं। इसलिये जैसेही पिताने आज्ञा दी वैसेही महात्मा परशुरामजीने माताके सहित अपने भ्राताओंका संहार किया ॥ ६ ॥ यह देखकर सत्यवतीके पुत्र जमदग्निमुनि परशुरामजीपर अत्यन्त प्रसन्न हुये। और परशुरामजीसे बोले कि, इच्छानुसार वर

* शंका–रेणुकाकी वृद्धावस्था थी तोभी स्त्रीपुरुषके रतिका आनन्द देखती थी यह बात सन्देह योग्य है ? वृद्धावस्थामें विषयकर्मका आनद क्यों देखा ?
उत्तर–बाल्यावस्थामें रेणुका अत्यन्त चञ्चल थी और अपने पिताके भवनमें रहती थी तोभी प्रत्येक कार्य चचलपनेके साथ करतीथी, एक दिन बहुतसी सखियोंको सग लेकर स्नान करनेके लिये एक नदीपर गई, एक वृद्ध चिड़िया अपने प्रिय पति पक्षीके सग विहार कररही थी उसको देखकर रेणुका बहुत हँसी तब चिड़ियाने अत्यन्त कुपित होकर शाप दिया कि, हे दुष्टिनी ! मैं तो अपने पतिके साथ रमण करती हूँ परतु तू वृद्धावस्थामें और दूसरे पुरुषके संग क्रीडा करेगी, सब क्रीडाओंका मूल आँखोंसे देखना है सो क्रीडा तू करेगी इसलिये रेणुकाने वृद्धवस्थामें पाप किया और कुछ दूसरा अन्याय नहीं किया ॥

माँगो। तब परशुरामजीने यह वरदान चाहा कि, हमारे भ्राता और माता फिर जी जाय ? और यह इस बातको भी भूलजायँ कि, हमने इनको मारा है ॥ ७ ॥ वैसेही जमदग्निमुनिने वर देकर कहा कि " ऐसाही हो " वैसेही इन मरे हुओंमें प्राण आगया और जैसे सोयाहुआ पुरुष नींदसे उठ बैठता है ? वैसेही यह सब उठ बैठे ॥ हे राजन् ! यह शंका मत करना कि, परशुरामने ऐसा निन्दित कर्म क्यों किया ? यह परशुरामजी अपने पिताके तपबलको भलीभाँति जानते थे ! इसीलिये उन्होंने अपने सुहृदोंको मारडाला था ॥ ८ ॥ हे महाराज ! इधर कार्त्तवीर्यार्जुनके दश हजार पुत्र परशुरामजीके वीर्यसे पराभव पाय अपने पिताके वधको याद करके कहींभी सुख स्वच्छन्दता पानेकेलिये समर्थ नहीं हुए ॥ ९ ॥ एक समय

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवांजसा ॥ पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥८॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्मरंतः स्वपितुर्वधम् ॥ रामवीर्यपराभूता लेभिरे न शमं क्वचित् ॥ ९ ॥ एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ॥ वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ॥ भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः ॥ प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबधवः ॥ १२ ॥ रेणुका शोकदुःखार्ता निघ्नंत्यात्मानमात्मना ॥ रामरामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥

परशुरामजी भ्राताओंसहित वनको गये थे। तब कार्तवीयार्ज्जुनके यह सब पुत्र अवसर पाय पिछला वैर लेनेकी इच्छासे परशुरामजीके आश्रममें आये ॥१०॥ इन सबने वहाँ आकर देखा कि, परशुरामजीके पिता जमदग्निमुनि भगवान्में चित्त लगाये हुए अग्निशालामें बैठे हुए हैं। यह अवसर पाय इन पापात्माओंने उसी समय इन मुनिको मार डाला ॥ ११ ॥ परशुरामजीकी माता रेणुका अपने पतिको मराहुआ देख अतिदीन हो अपने पतिके प्राणोंकी भिक्षा चाहने लगी परन्तु तोभी इन निठुर क्षत्रियोंको दया न आई और बलपूर्वक रेणुकाके केश पकड़कर ले गये ॥ ॥ १२ ॥ तब परशुरामजीकी माता पतिशोकसे आर्त हो अपनी छाती पीटती हुई "हा राम ! हा राम ! ! हा तात ! हा तात ! ! " कह बड़े जोरसे रोने और

विलाप करने लगी ॥१३॥ दूरसे "हा राम!" की पुकार और आर्त वाणी सुनकर वीर्यवान् परशुरामजी भ्राताओंसहित अति शीघ्र अपने
आश्रममें आये और वहां देखा कि, पिता मृतक हुए पडे हैं ॥१४॥ पिताको मृतक देख सब भाइयोंको ऐसा दुःख,शोक, क्रोध, झूँझलाहट और
पीडा उत्पन्न हुई कि, सबके वेगसे सब मोहितसे होगये इसके उपरान्त महात्मा परशुरामजी "हा तात! हा साधो! हा धार्मिक!" हमको छोड़कर
आप स्वर्गको चलेगये ॥ १५॥ इस प्रकार विलाप करनेलगे। और पिताके मृतक देहको अपने भाइयोंके निकट रखकर भयंकर परशा लिये मनमें
विचारने लगे कि, अब हम क्षत्रियोंके वंशको ध्वंस करदेंगे ॥ १६ ॥ हे राजन्! परशुरामजीने अतिशीघ्र माहिष्मती पुरीमें जाय उसके बीचमें

तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत्स्वनम् ॥ त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥ १४ ॥ तद्दुःखरोषामर्षा
र्तिशोकवेगविमोहितः ॥ हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान्स्वर्गतो भवान् ॥१५ ॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु
स्वयम् ॥ प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रांताय मनो दधे ॥ १६ ॥गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नं विहतश्रियम् ॥ तेषां स शीर्षभी
राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७ ॥ तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ॥ हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रे मंगलका
रिणि ॥ १८ ॥ त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥ स्यमंतपंचके चक्रे शोणितोदान्ह्रदान्नव ॥ १९ ॥
पितुः कायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि ॥ सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥

अर्ज्जुनपुत्रोंके मस्तक काट काटकर एक बडा भारी पर्वत बनाया ॥ १७ ॥ जब वह सहस्राऽर्जुनके पुत्र ब्रह्महत्या कर आये थे! तबहीं इस माहि
ष्मती पुरीकी शोभा जाती रही थी। मध्यस्थानमें मुण्डमय पर्वतके होनेसे वह पुरी औरभी भयानक हो गई। फिर तेजस्वी परशुरामजीने उस
कार्तवीर्याज्र्जुनके पुत्रोंके रुधिरसे एक नदी उत्पन्न की, वह नदी ब्रह्मद्वेषियोंको अत्यन्त भयकी देनेवाली हुई ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त क्षत्रियजा
तिको अन्यायके वश हुआ देख पिताके वधका हेतु कर परशुरामजीने *इक्कीसवार पृथ्वीको क्षत्रियहीन किया और स्यमन्तपञ्चकस्थानमें
रुधिरके नौ कुण्ड भरदिये ॥ १९ ॥ उसके पीछे परशुरामजीने अपने पिताका शिर उनकी देहसे लगाय, कुशोंके ऊपर रख विविध

* प्रश्न–परशुरामजीने इक्कीसवार क्षत्रियोंको क्यों मारा था। —उत्तर–रेणुकाने सहस्राऽर्जुनके पुत्रोंकी दुष्टता देख दुःखके मारे इक्कीस वार अपनी छातीको कूटा था इसलिये महात्मा परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियोंका नाश किया ॥

यज्ञोंसे सर्व देवमय आत्मा ईश्वरकी पूजा की ॥ २० ॥ उस यज्ञमें होताको पूर्वदिशा, ब्रह्माको दक्षिणदिशा, अध्वर्य्युको पश्चिमदिशा और उद्गाताको उत्तरदिशा दक्षिणामें देदी । अवान्तर दिशायें और दूसरे ऋत्विक् लोकोंको देदीं मध्यस्थल कश्यपजीको दान करदिया । फिर उपद्रष्टाको आर्यावर्त देश दक्षिणामें देकर सभासदोंकोभी यथायोग्य भूमि दक्षिणामें देदी ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसके पीछे महानदी सरस्वतीमें जाकर यज्ञान्त स्नान कर अनन्तपापोंको दूरकर बादल रहित सूर्यके समान आकाशमें विराजमान होने लगे ॥ २३ ॥ इस ओर महामुनि जमदग्नि परशुरामजीसे पूजित होनेके कारण स्मृतिही जिसका शरीर है ऐसे अपने शरीरको प्राप्तकर सप्तर्षि मण्डलमें जाय सप्तऋषि हुये ॥ २४ ॥ हे राजन्! कमललोचन जमदग्निके

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवांतरदिशः कश्यपाय च मध्यमाम् ॥ आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥ २३ ॥ स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ॥ ऋषीणां मंडले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥ जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ॥ आगामिन्यंतरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेंद्राद्रौ न्यस्तदंडः प्रशांतधीः ॥ उपगीयमानचरितः सिद्धगंधर्वचारणैः ॥ २६ ॥ एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः॥ अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ॥ २७ ॥ गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ॥ तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥

सुत भगवान् परशुरामजीभी आगामी मन्वन्तरमें वेदका प्रचार करेंगे अर्थात् वहभी वेदका प्रचार करनेवाले सप्तर्षियोंमेंसे एक होंगे ॥ २५ ॥ वह परशुरामजी दण्ड छोड शान्त चित्तसे अबतक महेन्द्र पर्वतपर विराजमान हैं । सिद्ध चारण और गंधर्वगण सदा उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं ॥२६॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे भगवान् विश्वात्मा ईश्वर हरिने भृगुकुलमें अवतार ले अनेकवार क्षत्रियोंका संहार कर भूमिका भार उतार दिया ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् । अब आगे सुनो । गाधिके प्रकाशमान अग्नितुल्य महातेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए ।

हे राजन्! यह तपके प्रभावसे क्षत्रीपन छोड़ ब्राह्मण होगये ॥ २८ ॥ हे महाराज! इन तेजस्वी विश्वामित्रजीके एक शत पुत्र उत्पन्न हुए तिनमें यद्यपि केवल मध्यमपुत्रका नाम मधुच्छन्द था, तोभी सब पुत्रही मधुच्छन्दस कहे जाते थे ॥ २९ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीने अजीगर्त्तके पुत्र शुनःशेपको भृगुवंशीय देवरात नामक पुत्र करके अपने सब पुत्रोंसे कहा था कि, तुम सब इनको अपना बड़ा भाई समझना ॥ ३० ॥ हे राजन्! इस शुनःशेपके पिता अजीगर्त्तने महाराजा हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशु बनानेके लिये मध्यम समझ, ममता छोड़ बेचदिया था परन्तु यह पुरुषपशु (शुनःशेप) प्रजेशादि वरुणादि देवता लोगोकी स्तुति करके पाशबंधनसे छूट गया ॥ ३१ ॥ वह देवतालोगोंको रात (प्रदत्त) होनेसे गाधिवंशमें

विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप ॥ मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छंदस एव ते ॥ २९ ॥ पुत्रं कृत्वा शुनश्शेपं देवरातं च भार्गवम् ॥ आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥ यो वै हरिश्चंद्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ॥ स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबंधनात् ॥ ३१ ॥ यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ॥ देवरात इति ख्यातः शुनश्शेपः स भार्गवः ॥ ३२ ॥ ये मधुच्छंदसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ॥ अशपत्तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥ स होवाच मधुच्छंदाः सार्धं पंचाशता ततः ॥ यन्नो भवान्संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठं मंत्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि ॥ विश्वामित्रः सुतानाह वीरवंतो भविष्यथ ॥ ये मानं मेऽनुगृह्णंतो वीरवंतमकर्त माम् ॥ ३५ ॥

देवरात नामसे प्रसिद्ध हुआ। परन्तु भृगुवंशमें उसका नाम शुनःशेप था ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रके मधुच्छन्द नामक जो पचास पुत्र बड़ेथे, उन्होंने शुनःशेपको बड़ा माननेमें अपना भला न समझा, इसलिये क्रोधित होकर विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोको यह शाप दिया कि, तुम अतिदुर्जन हो आजसे म्लेच्छ होजाओगे ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त मध्यमपुत्र मधुच्छन्दने अपने पचास छोटे भाइयोके साथ पिताके पास आनकर कहा कि "आप हमारे पिता हैं" हमको बडाई अथवा छुटाई जिसकी भी आज्ञा देंगे हम वही स्वीकार करेंगे ॥ ३४ ॥ कहकर इन्होंने मंत्रदर्शी शुनःशेपको अपना बड़ा भ्राता बनाया और सब एकवचन होकर बोले कि "हम सबही तुम्हारे अनुगामी अर्थात् छोटे भाई हुए" यह सुनकर

विश्वामित्रजी प्रसन्न हो अपने इन पुत्रोंसे बोले कि, तुमने हमारे मानको रखकर हमको पुत्रवान् किया इससे हमको बहुत सन्तोष हुआ और हम सन्तुष्ट होकर तुमको यह वर देते हैं कि, तुम लोग पुत्रवान् होगे ॥ ३५ ॥ हे कुशिकगण ! यह देवरात भी तुम्हारा कौशिक गोत्री है; क्योंकि यह हमारा पुत्र हुआ है। इसलिये तुम इसके अनुगामी होओ। हे राजन् ! इन पुत्रोंके अतिरिक्त विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय, क्रतुमदादि औरभी अनेक पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार अनुगृहीत हुए और एक पुरुषको पुत्र मानलेनेसे विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक अनेक प्रकारका होगया अर्थात् कुछ अभिशप्त और कुछेक प्रवरान्त प्राप्त हुए। बस देवरातको सबसे बड़ा माननेहीका यह

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ॥ अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥ एवं कौशिकगोत्रं तु वैश्वामित्रः पृथग्विधम् ॥ प्रवरांतरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे परशुरामकृतक्षत्रवधविश्वामित्रान्वययोर्वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः ॥ नहुषः क्षत्त्रवृद्धश्च रजी रंभश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥ अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ॥ क्षत्त्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥ २ ॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत ॥ शुनकश्शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमाः पिता ॥ धन्वंतरिर्दैर्घ्यतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४ ॥

बीज हुआ ॥ ३७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां परशुरामचारितवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा—सत्रहमें पुरूरवाको, ज्येष्ठ पुत्र भयो आय। ताके पाँचो सुतनको, सकल वंश कहो गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! पुरूरवाके * आयु नामक जो पुत्र हुआथा उसके पाँच पुत्र हुए नहुष,क्षत्रवृद्ध,रजि, रम्भ और अनेना इनके नाम थे। उनमें क्षत्रवृद्धके वंशका वृत्तान्त अब कहताहूं तुम श्रवण करो॥ १ ॥ २ ॥ क्षत्रवृद्धके पुत्र सुहोत्र,सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्समद यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए तिनमेंसे गृत्समदके शुनक उत्पन्न हुआ। उस शुनकसे ऋग्वेदियोमें श्रेष्ठ शौनक मुनि हुए॥ ३ ॥ काश्यका पुत्र काशी,उसका पुत्र राष्ट्र और बेटा तिसका दीर्घतमा, दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरी

* इस स्थानमें श्रीकृष्णावतारका प्रस्ताव करनेके लिये सक्षेपसे वशका वर्णन किया जाता है। जिसके वशमें स्वय भगवान् अवतार लेंगे। इस वशका वर्णन पीछेसे विस्तार सहित किया जायगा। इसलिये पुरूरवाके पाँच पुत्रोंमेंसे छोटे पुत्रका वर्णन करके अब ज्येष्ठके वशका वर्णन करते हैं ॥

हुए कि, जिन्होंने आयुर्वेदका प्रचार किया यह धन्वन्तारि यज्ञभोगी भगवान्के अंश स्मरण करतेही रोग क्लेशका भय नाश करते हैं इन धन्वन्तारि जीका पुत्र केतुमान, केतुमानका पुत्र भीमरथ ॥ ४ ॥ ५ ॥ उससे दिवोदासकी उत्पत्ति हुई इनके पुत्र द्युमान जो कि, प्रतर्दन भी कहाये जाते थे। और शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व भी यही कहाते थे इस द्युमानके अलर्कादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ उनमेंसे अलर्कने साठ सहस्र साठसौ अर्थात् छासठ (६६०००) सहस्रवर्षतक युवा अवस्था रखकर राज्यभोग किया था। हे राजन्! अलर्कके अतिरिक्त किसी युवाने इतने कालतक पृथ्वीका भोग नहीं किया ॥ ७ ॥ इस अलर्कसे संतति नामवाले राजाकी उत्पत्ति हुई, उसका पुत्र सुनीथ,

यज्ञभुग्वासुदेवांशस्स्मृतमात्रार्तिनाशनः ॥ तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मा
त्प्रतर्दन इति स्मृतः ॥ स एव शत्रुजिद्वत्स कृतध्वज इतीरितः ॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥ नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७ ॥ अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनी
थोऽथ सुकेतनः ॥ धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ॥ वीतिहो
त्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९ ॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ॥ रंभस्य रभसः पुत्रो गंभीरश्चा
क्रियस्ततः ॥ १० ॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ॥ शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥

सुनीथका पुत्र निकेतन, निकेतनका पुत्र धर्मकेतु और धर्मकेतुसे सत्यकेतुने जन्मग्रहण किया ॥ ८ ॥ सत्यकेतुके पुत्र धृष्टकेतु, उसके कुमार उत्पन्न हुए। उनका पुत्र वीतिहोत्र, इनके सुतभर्ग और इनके पुत्र भार्गभूमि हुए ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! यह सब नरेश काशिवंशीय हुये यह काशिके परदादा क्षत्रवृद्ध वंशके अनुगामी थे हे परीक्षित्! अब रम्भके वंशका वर्णन करते हैं आप सावधान हो चित्त लगाय सुनिये। रम्भका पुत्र रभस, उसका पुत्र गम्भीर उससे अक्रियकी उत्पत्ति हुई ॥ १० ॥ अक्रियका पुत्र ब्रह्मवित् हुआ। अब अनेनाके

वंशका वर्णन करते हैं अनेनाका पुत्र शुद्ध हुआ उसके शुचि उत्पन्न हुआ । शुचिके त्रिककुद, उनसे धर्मसारथि ॥ ११ ॥ इसके पुत्र शान्तरय जो कि, बड़े जितेन्द्रिय और ज्ञानी थे । इसलिये उन्होंने कोई पुत्रभी उत्पन्न नहीं किया हे महाराज ! रजिके अत्यन्त बलशाली पांच सौ(५००) पुत्र हुए ॥ १२ एक समय जब देवतालोगोंने प्रार्थना की तब इस रजिने दैत्योंका संहार करके इन्द्रपुरी देवतालोगोंको देदी देवताओंने राजा रजिको पुनः लौटाकर देदी ॥ १३ ॥ राजा रजिकी मृत्यु होनेपर देवराज इन्द्रने जब उनके पुत्रोंसे स्वर्गपुरी मांगी, तब उनके पुत्रोंने नहीं दी । और

ततश्शांतरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ॥ रजेः पंचशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥ देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेंद्रायाददाद्दिवम् ॥ इंद्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥१३॥ आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशंकितः॥ पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः॥१४॥ त्रिविष्टपं महेंद्राय यज्ञभागान्समाददुः ॥ गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयात्रजेः ॥ १५ ॥ अवधीद् भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः॥ कुशात्प्रतिः क्षात्त्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥ १६ ॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ॥ सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥

आपही स्वर्गपति होकर यज्ञका भाग लेनेलगे इसीलिये देवगुरु बृहस्पतिजीने रजिके पुत्रोंकी बुद्धिका नाश करनेके लिये अभिचार विधानसे अग्निमें होम किया ॥ १४ ॥ १५ ॥ उससे शीघ्रही रजिके सब पुत्र नीतिमार्गसे भ्रष्ट होगये । और फिर देवराज इन्द्रने सरलतासे उन सबको मारडाला, कोई शेष न रहा * हे राजन् ! क्षत्रवृद्धका पोता कुश, उसका पुत्र प्रति, प्रतिका पुत्र संजय, संजयका पुत्र जय ॥ १६ ॥ जयका पुत्र कृत और उसका पुत्र हर्यवन राजा हुआ हर्यवन राजाका पुत्र सहदेव उसका पुत्र अहीन और अहीनका पुत्र जयसेन हुआ ॥ १७ ॥

* शंका–बृहस्पतिजी अग्निमें किस वस्तुका होम करते थे ? जिस चीजके होमके प्रतापसे रजिराजाके पुत्रोंको इन्द्रने मारडाला ?
उत्तर–रक्षा करनेवाले जो परमरक्षक बृहस्पतिजी थे, सो राजा रजिके पुत्रोंको तेज मन्त्रसे अग्निमें होम करते थे, इसीकारण राजा रजिके तेजहीन होगये, तब राजा रजिके पुत्रोंको इन्द्रने मारडाला ॥

जयसेनका पुत्र संस्कृति उनका पुत्र जय, जयके क्षत्रधर्म और क्षत्रधर्मके महारथ हुआ यह सब भूपाल क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न हुये थे। अब आगे नहुषसे वंशका वृत्तान्त हम तुमसे वर्णन करते हैं तुम चित्त लगाय सावधान होकर श्रवण करो ॥१८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां क्षत्रवृद्धवंशानुवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–अट्ठारहमें नहुष सुत, भयो ययाति जुझार। षट पुत्र तिनके भये, तिनमें छोट उदार ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! जैसे शरीरके छः इन्द्रियें होती हैं, इसी प्रकारसे नहुष राजाके यति–ययाति–संयाति–आयति–वियति और कृति नामक छः (६) पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ इनमेंसे यति राजाका परिणाम अर्थात् राज्यको अनर्थका हेतु जान गया था। इसलिये पिताके राज्य

संस्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्त्रधर्मा महारथः ॥ क्षत्त्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥१८॥ इति श्रीमद्भा० म० नव० चंद्रवं० क्षत्त्रवृद्धवंशा० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ॥ षडिमे नहुषस्यासन्निंद्रियाणीव देहिनाम् ॥ १ ॥ राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ॥ यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥ पितरि भ्रंशिते स्थानादिंद्राण्या धर्षणाद्द्विजैः ॥ प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥३॥ चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन्भ्राता यवीयसः ॥ कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबंधुश्च नाहुषः ॥ राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा दानवेंद्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ॥ सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥

देनेपर इसने राज्यग्रहण नहीं किया, क्योंकि राज्यकार्यमें लगा हुआ पुरुष अपने आत्माको नहीं जानता है ॥ २ ॥ इससे इन्द्राणीके ऊपर ढिठाईका व्यवहार करनेके हेतु पिता (नहुष) के स्वर्गभ्रष्ट और अगस्त्यादि विप्रोंके शापसे अजगर होनेपर मध्यम पुत्र ययातिही राजा हुआ था ॥३॥ राजा ययातिने राजगद्दीपर बैठ अपने चार छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंमें राज्य करनेकी आज्ञा देदी व आप शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी दो कन्याओंसे विवाह कर पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥ ४ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! भगवान् शुक्राचार्यजी ब्रह्मर्षि और नहुषपुत्र ययाति क्षत्रिय था। सो यह ब्राह्मण क्षत्रियका प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ था? ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! ईश्वरकी इच्छासे प्रतिलोम विवाह दोषदायी

नहीं है। एकसमय दानवराज वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नामक कन्या सहस्र सखी और गुरुकी कन्या देवयानीके साथ पुरके समीपही एक उद्यानमें विहार करनेको गई। यह उपवन अत्यन्त मनोहर था। वृक्ष फूलोंके भारसे झुकेहुए थे। और वहाँ निकटही एक नलिनीकी रेतीमें भ्रमरगण कलवाणीसे गान कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ शर्मिष्ठाने सखियोंके साथ घूमते घूमते बागमें एक सरोवर देखा। यह सब कन्यायें किनारेपर अपने वस्त्र उतार परस्पर जलको उड़ायकर एक दूसरेके ऊपर जल डाल खेल करनेलगीं ॥८॥ उसी समय अचानक देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमहादेवजी पार्वतीके साथ नंदीश्वर पर चढे इस ओरको आये। यह इनको देखकर सब कन्यायें अत्यन्त लज्जित हो झटपट सरोवरसे बाहर निकलकर अपने वस्त्र पहरने लगीं ॥९॥

देवायान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले ॥ व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ॥ तीरे न्यस्य दुकूलानि विजः सिंचतीर्मिथः ॥ ८ ॥ वीक्ष्य व्रजतं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ॥ सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ॥ स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥ अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसांप्रतम् ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥११॥ यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ॥ धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पंथाश्च दर्शितः ॥ १२ ॥ यान्वदंत्युपतिष्ठंते लोकनाथाः सुरेश्वराः ॥ भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥ वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥

घबडाहटके मारे भूलमें गुरुकन्याके वस्त्र शर्मिष्ठाने अपने समझकर पहर लिये। यह देख देवयानी अति क्रोधित होकर बोली॥१०॥अरे इस दासीका अन्याय कर्म तो देखो जिस प्रकार कुतिया यज्ञके हविको खाजातीहै। वैसेही इस दुष्टाने मेरे पहरनेके कपडे पहर लिये ॥११॥ देखो जिन ब्राह्मणोंने तपस्या करके इस जगतकी उत्पत्ति की है, जो लोग परमपुरुषके मुख अर्थात् ब्रह्ममुखसे उत्पत्तिके हेतु सर्व श्रेष्ठ हैं। जो कि, ब्रह्मको धारण कियेहुये हैं जिन्होंने वेदका शुभ मार्ग बताया है। और सब लोकोंके नाथ सुरेश्वरगणभी और भगवान् विश्वात्मा पावन श्रीनिवासभी जिनकी पूजा किया करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ वह ब्राह्मणजाति सहजसेही माननीय है। और उनमें फिर हम महाप्रभावशाली भृगुवंशमें उत्पन्न हुई हैं। इस दासीका पिता

जो असुर है। वह भी हमारे पिताका शिष्य है। इस असत्यनकी चाल तो देखो कि, इसने हमारे पहरनेके वस्त्र पहर लिये हैं। जैसे शूद्रजाति वेदोंको धारण करै ॥१४॥ हे राजन्! जब गुरुकन्या देवयानीने इस प्रकार तिरस्कार किया। तब शर्मिष्ठा धर्षित हुई सर्पिणीकी समान बारम्बार लम्बे लम्बे श्वास लेने लगी। और क्रोधके मारे होठ चबाय चबायकर कहने लगी कि ॥ १५ ॥ अरी भिखमंगी! अपने आचरणको विना जानेही कटुवचन कहने लगी। काककी समान क्या तुम हमारे गृहका सुख नहीं देखती रहती हो ? ॥ १६ ॥ हे महाराज परीक्षित! इस प्रकारसे कठोर वचनभी गुरुकन्या देवायानीको कहकर शर्मिष्ठाका क्रोध शान्त नहीं हुआ, बरन् इसके वस्त्र उतार नङ्गीकर एक कुएमें धक्का देदिया ॥१७॥ देवयानीको

एवं शपंतीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ॥ रुषा श्वसंत्युरगीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५॥ आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ॥ किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैः सुपरुषैः शप्त्वाचार्यसुतां सतीम् ॥ शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ॥ प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥१८॥ दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥ तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ॥ राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजय ॥ २० ॥ हस्तग्राहोऽपरो मा भूद गृहीतायास्त्वया हि मे ॥ एष ईशकृतो वीर संबंधो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥

कुएमें ढ़केलकर शर्मिष्ठा अपने घरपर चली आई। भाग्यसे शिकार खेलकर घूमते घूमते राजा ययातिभी उस वनमें आय पहुँचे और प्यासके मारे जल भरनेके लिये जैसेही इस कुएँके समीप गये कि, वैसेही उन्होंने देवयानीको कुएमें देखा ॥१८॥ शुक्राचार्यकी कन्याको कुएँमें नङ्गी गिरी हुई देखकर राजाको अत्यन्त दया आई और तत्काल अपना दुपट्टा राजाने उसे पहरनेको देदिया और अपने हाथसे उसका हाथ पकडकर उस दयावान् राजाने उसको कुएँसे बाहर निकाल लिया ॥१९॥ देवयानी कुएँसे निकलकर प्रेम भरे वचन राजा ययातिसे बोली हे महाराज! आपने अनुग्रह करके हमारा हाथ पकडा है ॥ २० ॥ अब यही प्रार्थना है कि, जिस हाथको एकबार आपने मेरा पाणिग्रहण किया।

उसको कोई दूसरा ग्रहण न करने पावे ॥ २१ ॥ हे वीर ! यद्यपि प्रतिलोम विवाह ठीक नहीं तोभी मैं कुएमें डूबकर मरती थी इसी अवसरपर आपका दर्शन हुआ तब हमारा दोनों जनोंका यह बानक परमेश्वरने बनाया है । यह किसी पुरुषका बनाया नहीं है और हे नरेश ! ब्राह्मणके साथ मेरा विवाह नही होगा । क्योंकि पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दिया था । तब उन्होंने भी हमको शाप दिया थो ॥ २२ ॥ शास्त्रके प्रतिकूल और इच्छानुसार न होनेपरभी भाग्यसे प्राप्त हुआ जान और अपने अन्तःकरणको भी उसके प्रति सकाम देख यह निश्चय करके कि, मेरा मन अधर्ममें नहीं प्रवेश करता देवयानीके वाक्य को राजा ययातिने अंगीकार किया ॥२३॥ इसके उपरान्त जब राजा ययाति चलेगये । तब देवयानी

यदिदं कूपमग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ॥ कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्य
मशपं पुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ॥ मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥२३ ॥ गते राजनि
सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ॥ न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥ दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं
विगर्हयन् ॥ स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ॥
गुरुं प्रसादयन्मूर्धा पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥

उस स्थानसे रोती रोती पिताके निकट गई और सब वृत्तान्त निवेदन करदिया । अर्थात् शर्मिष्ठाने जो भिखमंगी कहा था । और कुएमें डालकर जो कुकर्म किया था, यह सब विस्तारपूर्वक इसने अपने पितासे कहा ॥ २४ ॥ यह सुनकर शुक्राचार्यके मनमें बडा दुःख हुआ पुरोहिताईकी निन्दा करते और भिक्षावृत्तिकी प्रशंसा करते यह दैत्यराजकी पुरीसे अपनी कन्यासहित बाहर चले ॥ २५ ॥ यह सुनकर राजा वृषपर्वाने जाना कि, गुरुजी अप्रसन्न होकर देवताओंकी जीतकरेंगे । इसलिये शीघ्रही मार्गमें जायकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा । और शिर नवायकर प्रसन्न

१ इसमें यह दृष्टान्त है कि बृहस्पतिके पुत्र कच जब शुक्राचार्य मुनिके निकट मृतसजीवनी विद्या ग्रहण करतेथे उस समय एक दिन शुक्रकी पुत्री देवयानीने उनके साथ विवाह करना चाहाथा, तब कच बोले कि "तुम हमारी गुरुकन्या होनेसे पूजने योग्य हो" फिर हम किसप्रकारसे तुम्हारा पाणि ग्रहण करैं ! तब देवयानीने कुपित हो यह शाप दिया कि, तुम्हारी विद्या प्रभाहीन होगी, तब कचनेभी यह शाप दिया कि "तुम्हारा ब्राह्मणके साथ विवाह नहीं होगा" इसलिये ब्राह्मण हमसे विवाह नहीं कर सकेगा ॥

करने लगा ॥२६॥ एक क्षणभरमें शुक्राचार्यका आधा क्रोध शान्त होगया और वह शिष्यसे बोले कि, हे राजन्! हमारी कन्या जो कुछ कहै सो इस की अभिलाषको तुम पूर्ण करो। क्योंकि हम इस अपनी कन्याको छोड़कर रह नहीं सक्ते ॥ २७ ॥ गुरुजीके यह वचन सुनकर गुरुकन्याकी प्रसन्नता चाहताहुआ राजा वृषपर्वा खड़ा रहा। तब देवयानी अपने मनकी बात प्रकाशित करके बोली कि, हमारे पिता जहाँ हमारा विवाह करैं, यह शर्मिष्ठा तुम्हारी कन्या उसी स्थानमें अपनी सब सखियोंके साथ जायकर हमारी दासी होवे ॥२८॥ वृषपर्वाने विचारा कि, गुरुजीके चलेजानेसे हमारे ऊपर घोर संकट आन पड़ेगा। और यहाँ रहनेसे हमारे कार्य सिद्ध होंगे। यह सोच विचार राजा वृषपर्वाने गुरुकन्या देवयानीके हाथमें सखियों सहित शर्मिष्ठाको सौंपदिया। जब पिताने शर्मिष्ठाको देदिया, तब यह हजार सखियोंके साथ देवयानीकी सेवा करनेलगी ॥ २९ ॥ इसके पीछे दैत्यगुरु शुक्रा

क्षणार्धमन्युर्भगवाञ्छिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ॥ कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७ ॥ तथेत्यव स्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ॥ पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८ ॥ स्वानां तत्संकटं वीक्ष्य तदर्थ स्य च गौरवम् ॥ देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः ॥ तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥ विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ॥ तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥ राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ॥ स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्य पद्यत ॥ ३२ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥

चार्यजीने शर्मिष्ठासहित देवयानीका राजा ययातिके साथ विवाह करदिया और भली भाँतिसे कहदिया कि, यद्यपि हम अपनी कन्याके साथ शर्मिष्ठाभी तुमको देते हैं तो भी तुम किसी समय इसको अपनी शय्यापर न ग्रहण कर सकोगे ॥३०॥ हे महाराज परीक्षित्! किसी समय शर्मिष्ठाने देखा कि देवयानीने स्वामीके सहवाससे परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न कियाहै। इसलिये ऋतुकाल आन पहुँचनेपर अपनी सखीके पति ययाति राजाको एकान्तमें बुलाय पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥३१॥ राजा ययाति अत्यन्त धर्मात्मा थे ऋतुकालमें राजकुमारी शर्मिष्ठासे संतानकेलिये प्रार्थित होकर विचारने लगे कि, इसकी कामना पूरी करनेसे धर्म है। इसलिये शुक्राचार्यजीका वचन स्मरण आनेपरभी उन्होंने दैवप्राप्त पिता ज्ञानसे

शर्मिष्ठाके साथ विहार किया राजा ययातिने धर्म समझकरही शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूर्ण की थी. कुछ कामके वश होकर नहीं की, उसके उपरान्त देवयानीने यदु और तुर्व्वसु, दो पुत्र उत्पन्न किये और शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु, अनु और पुरु; इन तीन पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अरे महाराज ! अपने स्वामीसे शर्मिष्ठाके गर्भकी उत्पत्ति जानकर देवयानी अभिमानसे परिपूर्ण होगई और क्रोधके मारे मूर्च्छितसी हो तत्काल पिताके घरको चलीगई ॥३४॥ हे राजन् ! राजा ययाति अत्यन्त कामीथे वह प्यारीका क्रोध देखकर विनती करके प्रसन्न करते करते अपनी प्रियभार्याके पीछे पीछे चले गये परन्तु चरण दाबनेसे भी तो वह देवयानीको प्रसन्न न करसके ॥ ३५ ॥ महाराज ! इस ओरका कन्याके मुखसे सब वृत्तान्त जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी महा क्रोधित हो घृणायुक्त वचनोंसे जामाताको पुकारने लगे । तू स्त्रीकामी होकर अन्यायके कर्म करता है अरे

गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ॥ देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमंत्रयन् ॥ न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामाऽनृतपूरुष ॥ त्वां जरा विशतां मंद विरूपकरणी नृणाम् ॥३६॥ ययातिरुवाच ॥ अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते ॥ व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योभिधास्यति ॥ ३७ ॥ इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ॥ यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥ मातामहकृतं वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ॥ वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९ ॥

मतिमन्द ! इस अपराधसे मनुष्योंको विरूप करनेवाली जरा (बुढापा) तेरे शरीरमें प्रवेश करै ॥ ३६ ॥ यह शाप सुनकर राजा ययातिका चित्त अत्यंत दुःखित हुआ । और निवेदन किया कि; ब्रह्मन् ! आपकी बेटीके काम भोगसे हम अबतक भी सब प्रकारसे तृप्त नहीं हुए हैं । तब शुक्राचार्यजी बोले कि, हाँ जो कोई पुरुष तुम्हारी जरा ग्रहण करले तो उसकी वयस अवस्थासे तुम इच्छानुसार काम भोग करसकोगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार राजा ययाति जराके उतरनेकी व्यवस्था पाकर पहले अपने बड़े पुत्र यदुको बुलाकर बोले । हे तात यदो ! हमारी यह जरा अवस्था ग्रहण करके अपनी वयस हमको दो । बेटा ! तुम्हारे नाना शुक्राचार्यने हमको जराग्रस्त किया है । परन्तु हम अबतक विषय भोगसे तृप्त नहीं हुए हैं । इसलिये यह जरा तुम लो । और तुम्हारी युवा अवस्था लेकर कुछ वर्षोंतक मैं विहार करूंगा ॥ ३८ ॥ क्योंकि तेरे नानाकी दीहुई

इस वृद्धावस्थाको मैं सह नहीं सकता इसलिये तुम्हारी दी हुई अवस्थासे मैं विषयोंको भोगकर तृप्त होजाऊँगा ॥ ३९ ॥ यह सुनकर यदु बोले कि, हे पिता ! आप मध्यम समयमें जराको प्राप्त हुये हैं आपको इस जराके लेनेको हमारा चित्त नहीं चाहता । क्योंकि बिना ग्राम्य सुखोंके भोगे कौन पुरुष उससे (काम भोगसे) तृष्णारहित होजाता है ॥४०॥ हे भारत ! तिसके पीछे तुर्वसु और द्रुह्यु इन दो पुत्रोंसे राजाने युवा अवस्था मांगी परन्तु उन्होंनेभी कोरा जवाब दिया । हे राजन् ! इन लोगोंको धर्मज्ञान नहींथा । यह अनित्य पदार्थकोही नित्य मानतेथे । फिर भला इन लोगोंसे पिताकी आज्ञा मानी जानेकी क्या सम्भावना ? ॥ ४१ ॥ परन्तु राजा ययातिका सबसे छोटा पुत्र यद्यपि वयसमें छोटा, तथापि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था सबसे पीछे उसको बुलाकर राजा ययातिने जरालेनेके लिये बोले कि, हे वत्स ! तुम अपने बडे भ्राताओंकी समान "नहीं" हमसे कहनेयोग्य

यदुरुवाच ॥ नोत्सहे जरसा स्थातुमंतरा प्राप्तया तव ॥ अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ॥ प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ॥ न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच ॥ को नु लोके मनुष्येंद्र पितुरात्मकृतः पुमान् ॥ प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विंदते परम् ॥ ४३ ॥ उत्तमश्चिंतितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ॥ अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चारितं पितुः ॥ ४४ ॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ॥ सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥४५॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक्पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेंद्रियः ॥४६॥

नहीं हो ॥ ४२ ॥ जब इसप्रकार राजा ययाति कहा; तब पुरुने कहा कि, हे मनुष्येंद्र ! इसलोकमें कोई पुरुषभी पिताका प्रत्युपकार नहीं करसक्ता है । पिता क्या साधारण पुरुष हैं ? क्योंकि उनसे देहका सम्बन्ध है । और उनकी प्रसन्नतासे पुरुष परम गतिको प्राप्त होजाता है ॥ ४३ ॥ जो पुत्र पिताका विचारा हुआ कार्य अपने आपही करदेता है, वह उत्तम कहलाता है । और जो आज्ञापाकर कार्य करता है, वह मध्यम है और जो आज्ञा पाकरभी उस कार्यको नही करता है, वह पुत्र नहीं किन्तु पिताका विष्ठामात्र है । और नीच कहलाता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कह हर्ष प्रकाश करके उसने पिताकी जरा अवस्था ग्रहण करली । राजा ययातिभी अपने पुत्रकी युवा अवस्था पाकर भली भांति सुख भोगनेलगा ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! राजा ययाति सप्तद्वीपका राजा था । वह भली भांति पुत्रकी समान प्रजाका पालन करने लगा । और इच्छानुसार

विषय भोग भोगने लगा। पुत्रकी युवा अवस्था पानेसे इस राजा ययातिकी सब इन्द्रियें प्रबल और अनिवारित होगईं * ॥ ४६ ॥ और देवयानी भी मन, वचन कायसे व और भी सब भाँति एकान्तमें दिनपर दिन अपने प्राणेश्वरको अत्यन्त प्रसन्न करती रहती थी ॥४७॥ हे राजन्! राजा ययाति भी अनेक अनेक दक्षिणा देकर अनेक यज्ञकर सर्ववेदमय सर्वदेवस्वरूप, यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवका भजन करने लगे ॥ ४८ ॥

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ॥ प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः॥ ४७ ॥
अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥
यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ॥ नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥
तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ॥ नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥

अर्थात् आकाशमण्डलमें जलदावलि (बादरोंकी पंक्ति) की समान जिससे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत् विरचित होकर यावत् इन्द्रियवृत्ति, तावत् विचित्ररूपसे प्रकाश पाताहै और इसी इन्द्रियवृत्तिके उपरममें स्वप्न और मायासहित मनोरथ पाय प्रकाशहीन होतेहैं ॥४९॥ राजा ययातिने विरागी

---

* शंका—राजा ययाति छोटे पुत्रकी अवस्था लेकरके उसी छोटे पुत्रकी माताके संग विहार करताथा, इस बातसे जानपडताहै कि पुत्रनेही अपनी माताके संग रमण किया, क्योंकि राजामें रमणकरनेकी सामर्थ्य होती तो पुत्रकी युवावस्था क्यों लेता ? इसने यह दो महापाप क्यों किये ? जो कोई ऐसा कहे कि, पुत्रको पिताकी आज्ञा करनी चाहिये यह भगवान्की बनाई मर्यादा है और धर्मशास्त्रकामी यही वाक्य है, सो सत्य है, निःसन्देह वह मर्यादा पूरी करनी चाहिये परन्तु न्याय अन्याय विचारकर कार्य करना चाहिये ? क्योंकि जो पिताकी बुद्धि मलिन होजाय और पिता आज्ञा करे कि, मेरे लिये वेश्या अथवा वारुणी अथवा बुरी वस्तुको लादे और वह अनेक प्रकारकी कुत्सित वस्तुपर दृष्टि करे तो पुत्रको ऐसे पिताकी आज्ञा कभी नहीं माननी चाहिये, फिर पुत्रने ऐसे पिताका वचन क्यों माना ?

उत्तर—शर्मिष्ठाके ओष्ठपान करके ययातिकी बुद्धि भ्रष्ट होगई और दैत्यकी कन्याका पुत्र राजा है इसलिये वह दोनों पापी मिलगये इस कारण महापाप किया ॥

होकर उन्हीं अन्तर्य्यामी परमसूक्ष्मरूप भगवान् वासुदेवके अनेक यज्ञ किये ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार सहस्र वर्ष तक अपराङ्मुख पञ्चइन्द्रिय और छठे मनसे सदा विषयभोग करकेभी सर्वभूमीश्वर राजा ययाति सब भाँतिसे तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा–नृप ययाति निज प्रियाको, अज सम चरित सुनाय। बहुरि मोक्षभागी भया, उन्निसवें अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित् ! राजा ययाति इस प्रकार विषयभोग करते करते अकस्मात् एक दिन अपने आपको स्त्रैण समझकर अपनी आत्माका विकार जान, वैराग्ययुक्त हो, अपनी परमप्यारी देवयानीसे यह वर्णन करने

एवं वर्षसहस्राणि मनष्षष्ठैर्मनःसुखम् ॥ ॥ विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिंद्रियैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० नवमस्कंधे ययातिचरितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमाचरन्कामांस्त्रैणोपह्लवमात्मनः ॥ बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ॥ धीरा यस्यानुशोचंति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥ बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः ॥ ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥ तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिंतयन् ॥ व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥ सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल ॥ तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कांतकामिनीः ॥ पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ॥ ५ ॥

लगे ॥ १ ॥ कि, हे भार्गवि ! हमारी समान कोई कामी एक गाँवमें रहाता था। वनवासी वीरगण उसके आचरणोंपर अबतक कभी कभी शोक किया करते हैं। सो उस पुरुषकी अनुष्ठान कीहुई गाथा मैं तुमसे वर्णन करता हूँ,श्रवण करो ॥२॥ "एक छागनी (पुरुष) वन (संसार) अपने प्रिय विषय को ढूँढते ढूँढते अचानक एक छागीको कर्मके वशसे कुएमें गिरी हुई देखी ॥ ३ ॥ इस अत्यन्तकामी छागने उस बकरीके निकालनेका उपाय सोचा और कुएके किनारे, अपने सींगोंसे मट्टी खोदकर उसके निकलनेका मार्ग कर दिया ॥ ४ ॥ इस मार्गसे वह कान्तियुक्त छागी कुएसे निकल उसी छागका अभिलाष करनेलगी. जब उस बकरीने इस बकरेको वरण करलिया तो और बहुत सारी छागी भी मोटे, ताजे रति करनेमें समर्थ, वीर्यके

सींचनेवाले और मैथुन करनेमें चतुर समझकर इस छागको चाहने लगीं ॥ ५ ॥ इसलिये वह एकही बकरा इन बहुतसी बकरियोंकी रति बढ़ाताहुआ इनके साथ केलि करने लगा वह छाग कामरूप गृहमें ऐसा फँसगया कि, अपनी आत्माको भी न जान सका ॥ ६ ॥ परन्तु जो छागी कुएमें गिरी थी, वह और छागियोंको अपनेसे अधिक प्यारी और उनके साथ अपने प्रियतमको सदा रमण करताहुआ देख अत्यन्त क्रोधित हुई और उस छागका यह कर्म बहुत नहीं सहसकी ॥ ७ ॥ इसलिये वह सुहृदयरूपी, वास्तवमें सुहृदक्षण सौहृद इन्द्रियासक्त और कामुक उस छागको छोड़ दुःखित हो अपने स्वामीके पास चली गई ॥ ८ ॥ यह छाग तो बहुतही स्त्रैण था, इसलिये कातर हो शब्द करता हुआ उसको मनानेके लिये

स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ॥ रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥ तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजाऽन्यया ॥ विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद्वस्तकर्म तत् ॥ ७ ॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ॥ इंद्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८ ॥ सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ॥ कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि संधितुम् ॥ ९ ॥ तस्य तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा ॥ लंबंतं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥ संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ॥ कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥ तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्या प्रेमयंत्रितः ॥ आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥

उसके पीछे २ जानेलगा, परन्तु मार्गमें वह उस बकरीको किसी प्रकारसे भी प्रसन्न न करसका ॥ ९ ॥ उस स्थानमें इस छागीके स्वामी एक ब्राह्मणने क्रोध करके इस छागके दोनों लम्बायमान अण्डकोश काटडाले। अर्थात् उसको भोग करने योग्य न रक्खा। परन्तु वह ब्राह्मण उपायभी जानता था, इसलिये अपनी बकरीके काम भोगार्थ फिर इस छागके अण्ड जोड़ दिये अर्थात् फिर उस छागको मैथुन करनेकी सामर्थ्य देदी ॥ १० ॥ हे भद्रे ! इस प्रकारसे यह छाग सवृद्ध वृषण अर्थात् रतिशक्ति युक्त हो कुएसे निकाली उस छागीके साथ बहुत कालतक विषयभोग करता रहा। परन्तु कामकी सेवासे अबतक उस बकरेको सन्तोष नहीं हुआ" ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु ! इस छागकी समान हमभी तुम्हारे प्रेममें

बँधकर अत्यन्त दीन होगये हैं। तुम्हारी मायासे मोहित होनेके कारण हम अपने आपको भी तो भूल गये हैं ॥ १२ ॥ हे भद्रे! पृथ्वीमें जितना धान्य, सुवर्ण, जितने पशु, जितनी स्त्री और जो जो वस्तु हैं सो यह सब भी कामसे हते हुये पुरुपके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सक्ती हैं ॥ १३ ॥ भोग विलासके, द्वारा कामकी किसीप्रकार शान्ति नहीं होती। वरन् घृतद्वारा अग्निकी समान विपय भोग वढ़ताही जाता है। जैसे घृत डालनेसे अग्नि ॥ १४ ॥ परन्तु जिस समय पुरुप सब प्राणियोंसे अमंगलभाव-अर्थात् राग द्वेपादिकी विपमताका त्याग कर देता है और सबमें समदृष्टि कर लेता है, तब उसको सब दिशा सुखदाई हो जाती हैं ॥ १५ ॥ इसलिये दुर्म्मति पुरुप जिसको नहीं छोड सक्ते और प्राचीन पुरुपके

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ न दुह्यंति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४ ॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमंगलम् ॥ समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ॥ तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥१७॥ पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् ॥ तथाऽपि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥१८॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ॥ निर्द्वंद्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥ दृष्टश्रुतमसद्बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ॥ संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥ २० ॥

पासभी जो पुरानी नही होती और जो दुःखकी राशिके लिये रहती है सुख चाहनेवाले पुरुपको चाहिये कि, उस तृष्णाको शीघ्र छोड़दे ॥ १६ ॥ और स्त्रीका संग तो सब प्रकारसे त्यागना आवश्यकहै. क्योंकि माता, वहन अथवा कन्याके संग इकलेमें एकासन पर वैठना ठीक नहीं। क्योंकि इन्द्रियें अतिशय बलवान् हैं विद्वान् पुरुपको भी खैंच लेती हैं ॥ १७ ॥ हे भद्रे! विचार करके देखो वारम्वार विपयकी सेवा करते हुये इसको पूरे एक सहस्र वर्ष वीतगये तोभी दिन दिन तृष्णा वढ़तीही जातीहै ॥ १८ ॥ इसलिये मैं पहले तृष्णाको छोडकर फिर ब्रह्ममें मन लगा जाऊंगा। फिर सुख दुःखादि द्वन्द्वरहित और निरहंकार हो मृगगणोंके साथ घूमूँगा ॥ १९ ॥ हे प्रिये! जो पुरुप देखे सुने संसारको भी आत्मनाशक

और असत् जानकर उसका अनुध्यान वा भोग छोड देते हैं । वही देखे सुने विषयके अनुध्यानादिमें पण्डित आत्मदर्शी हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! राजा ययातिने इसप्रकार अपनी स्त्रीको समझाय छोटे पुत्र पुरुको उसकी युवा अवस्था लौटाय उससे अपनी जरा अवस्था ग्रहण करली । फिर पीछे राजा ययातिको कुछ चाहना न रही ॥ २१ ॥ पूर्व दिशा द्रुह्युको, दक्षिण दिशा यदुको, पश्चिम दिशा तुर्व्वसुको और उत्तर दिशा अनुको राजा बनायदी ॥ २२ ॥ फिर सब भूमण्डलका राज्य क्षत्रियोत्तम प्यारे पुत्र पुरुको देकर और बडे बेटोंको इस पुरुकी

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ॥ दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम ॥ प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ॥ अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान्षड्वर्गं विषयेषु सः ॥ क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥ स तत्र निर्मुक्तसमस्तसंग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिंगः ॥ परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥

आज्ञामें रखकर आप वनको चलेगये * ॥ २३ ॥ हे राजन्! राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक शब्दादि विषय समूहमें छै इंद्रियोंके द्वारका सुख भोगा था । परन्तु उसने स्पृहा छोड़ एक क्षणभरमें इंद्रियोंके सुखको छोड़दिया जैसे पंख जम आनेपर पक्षियोके बच्चे घोंसलेको छोड़ जाते हैं ॥ २४ ॥ राजा ययाति संगको छोड़कर आत्मानुभावसे त्रिगुणात्मक रूप लिंग निस्तर होगया और भली भाँति विख्यात हो निर्मल परब्रह्म

---

* शंका–राजा ययाति बडे बुद्धिमान् और गुणनिधान थे, तोभी ऐसा बडा अन्याय क्योंकिया? कि, बडे पुत्रको छोडकर छोटे पुत्रको राज्य दिया, क्या कारण?

उत्तर–कामी लोभी क्रोधी ऐसे ऐसे जीव पृथ्वीपर हैं परन्तु न्याय अन्यायका विचार नहीं करते, नित्य अपने शरीरका सुख चाहते हैं, न्यायमें दुःख देखेंगे, तब न्यायको त्याग देंगे अन्यायमें सुख देखेंगे तब अन्याय करेंगे, जिसमें शरीरको सुखहो, उसीको पुण्य जानते है, और जिसमें शरीरके कष्टहो उसको पाप समझते हैं, सुकर्म कुकर्म कुछ नहीं देखते इस पापके प्रतापसे ययाति राजाने छोटे बडेका विचार नहीं किया जिसकी देहसे सुखपाया उसीको राज्य दिया ॥

वासुदेवमें शीघ्रही भगवत् गतिको प्राप्त होगया ॥ २५ ॥ स्त्री पुरुषका परस्पर स्नेह हेतु परिहासकी समान जो इतिहास कहागया देवयानी इसको सुनकर अपने प्रस्तोभ अर्थात निवृत्तिमार्गमें उत्साहित हुई ॥ २६ ॥ और वह अबला प्याऊ पर जानेवालोंकी समान ईश्वरपरतंत्र सुहृदगणोंका वास मायाविरचित समझी और स्वप्नकी समान उपमा देकर सबको मिथ्या जान सर्वत्र संग छोड़कर भगवान्‌में मन लगाय अपने शरीरको भी छोड़दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे राजन् ! अब यह बतलाते हैं कि, देवयानीने किस प्रकारसे भगवान् वासुदेवमें अपना मन लगाया था, सो तुम सुनो। भगवन् ! आप विधाता, वासुदेव, सर्वभूतोंके निवासस्थान, परमशान्त और अतिवृहत् हो इसलिये मैं आपको नमस्कार करतीहूँ ॥ २९ ॥

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ॥ स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥ सा सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ॥ विज्ञायेश्वरतंत्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥ २७ ॥ सर्वत्र संगमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ॥ कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिंगमात्मनः ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ सर्वभूताधिवासाय शांताय बृहते नमः ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नव० ययातिविरक्तिवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥ यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥ जन्मेजयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ॥ प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥ तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्माद्बहुगवस्ततः ॥ संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां ययात्युपाख्याने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा—ययाति सुत पुरुवंशमें, भये नृपति दुष्यंत। भरत पुत्र तिनके भये, भक्त शिरोमणि संत ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत। अब पुरुके वंशका वर्णन करते हैं, सो तुम सुनो। इसी वंशमें तुमने जन्म लिया है। अनेक राजर्षि इस पुरुवंशमें उत्पन्न हुये हैं ॥ १ ॥ पुरुसे जन्मेजय उत्पन्न हुये। जन्मेजयका पुत्र प्राचिन्वान् और उससे प्रवीरने जन्म ग्रहण किया, प्रवीरका पुत्र नमस्यु और उससे चारुपदका जन्म हुआ, चारुपदके यहाँ सुद्युने जन्म लिया, उससे बहुगव उत्पन्न हुआ

उसका पुत्र संयाति, संयातिका पुत्र अहंयाति और अहंयातिके यहाँ रौद्राश्व जन्मा ॥२॥३॥ इस रौद्राश्वने घृताची अप्सरासे दश पुत्र उत्पन्न किये, इनके नाम यह हैं—ऋतेयुं, कक्षेयुं, स्थंडलेयुं, कृतेयुं, जलेयुं, सन्ततेयु, धर्मेयुं, सत्येयुं व्रतेयुं और सबसे छोटा अवंनेयु, हुआ। हे राजन्! जिस प्रकार इन्द्रियगण जगत्के आत्मभूत मुख्य प्राणके वश रहते हैं, वैसेही यह दशपुत्र रौद्राश्वके वशमें रहते थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ इन रौद्राश्वके दश पुत्रों मेंसे ऋतेयुका रन्तिभार नामक एक पुत्र हुआ। उसके तीन पुत्र हुये. यथा सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ इन तीनोंमेंसे अप्रतिरथके पुत्र कण्व हुये ॥ ६ ॥ कण्वके मेधातिथि और तिनसे प्रस्कण्वादि द्विजातिगण उत्पन्न हुये। हे राजन्! रन्तिभार नामका बडा बेटा सुमति और उसका

ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थंडिलेयुः कृतेयुकः ॥ जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयु
श्चावमः स्मृतः ॥ घृताच्यामिंद्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयो रंतिभारोऽभूत्त्रयस्तस्यात्मजा नृप ॥
सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥ तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥ पुत्रोऽभूत्सुमते
रैभ्यो दुष्यंतस्तत्सुतो मतः ॥ ७ ॥ दुष्यंतो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः॥ तत्रासीनां स्वप्रभया मंडयंतीं रमामिव ॥
विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ॥८॥ बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तप
रिश्रमः ॥ ९ ॥ पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसञ्छ्लक्ष्णया गिरा ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे ॥ १० ॥

पुत्र रैभ्य और इन रैभ्यकेही पुत्र राजा दुष्यन्त हुये ॥ ७ ॥ एक समय यह राजा दुष्यन्त आखेट करते करते वनमें प्रवेशकर महर्षि कण्वके आश्रममें आय पहुँचे, वहांपर एक स्त्री बैठी हुई लक्ष्मीकी समान अपने शरीरकी प्रभासे आश्रमको शोभायमान कररही थी ॥ देवमायाकी समान उस तरुणीको देखतेही राजा दुष्यन्त मोहित होगया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त कुछ सेनाके सिपाही लेकर निकट जाय उस वरारोहाके साथ राजाने सम्भाषण किया. हे राजा परीक्षित्! उस सुन्दरीको देखतेही राजा दुष्यन्तको अनिर्व्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ था। और मानो उसको देखकर जंगलमें घूमनेसे जो थकावट हुई थी वह भी सब जातीरही ॥ ९ ॥ कामपीडित हो हँसते हँसते मधुर वचनसे राजाने

पूँछा कि, हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? ॥ १० ॥ और इस निर्जन वनमें क्या करनेकी वासना किये हुयेहो ? हे सुमध्यमे ! पुरुवंशीय लोगोंका चित्त कभी अधर्ममें नहीं लगता है. इसलिये स्पष्ट जान पड़ता है कि, तुम किसी क्षत्रिय वंशकी बेटी हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर शकुन्तलाने उत्तर दिया कि, हे राजन् ! मैं विश्वामित्रकी पुत्री हूं मेनका नामक अप्सरा मेरी माता है। स्वर्गमें जानेके समय माता मुझको इस निर्जन वनमें अकेली छोडकर चली गई। इसलिये वास्तवमें मैं क्षत्रियकी कन्या हूं इस बातको भगवान् कण्वऋषि भलीभांति जानते हैं. हे वीर ! हम आपका कौनसा कार्य करें ? सो आज्ञा कीजिये ॥ १२ ॥ हे महाराज ! आसन ग्रहण कीजिये और हमारी

किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ॥ न हि चेतः पौरवाणाम धर्मे रमते क्वचित् ॥ ११ ॥ शकुंतलोवाच ॥ विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ॥ वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं करवाम ते ॥ १२ ॥ आस्यतां ह्यरविंदाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ॥ भुज्यतां संति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १३ ॥ दुष्यंत उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ॥ स्वयं हि वृणते राज्ञां कन्यकास्सदृशं वरम् ॥ १४ ॥ ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुंतलाम् ॥ गांधर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥ १५ ॥ अमोघवीर्यो राजर्षि र्महिष्यां वीर्यमादधे ॥ श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १६ ॥

पूजा भी आप अंगीकार करें यहाँ निवारीके चावल हैं भोजन कीजिये और यदि रुचि हो तो रात्रिको भी यहांही रहिये ॥ १३ ॥ राजा दुष्यन्त बोले कि, हे सुन्दरि ! तुमने कुशिकके वंशमें जन्म लिया है वास्तवमें तुम्हारा आचरण ठीक है, क्योंकि राजकन्यायें समान स्वयम् वरको वरण करलेती हैं ॥ १४ ॥ शकुन्तलाने राजाकी यह बात सुनकर कहा कि, 'हां' तब देशकालके जाननेवाले इस राजाने शकुन्तलासे गन्धर्व विवाह किया ॥ १५ ॥ हे भारत ! अमोघवीर्यवान् राजा दुष्यन्त भार्या शकुन्तलामें वीर्याधान करके दूसरेदिन इसके

उपरान्त राजा अपने नगर हस्तिनापुरको चलेगये । तब यथायोग्य समयमें शकुन्तलाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥१६॥ महर्षि कण्वऋषीश्वरने वनमेंही यथायोग्य उस बालककी संस्कारादि क्रिया करदी। हे राजन् ! यह कुमार बालकपनसेही अपने बलसे सिंह पकड़ करके उनके साथ खेला करता था ॥१७॥ इसलिये महाविक्रमशाली देखकर प्रमदोत्तमा शकुन्तला भगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न उस पुत्रको ले अपने स्वामीके निकट गई ॥१८॥ परन्तु राजा दुष्यन्तने अनिन्दित इस स्त्री और पुत्रको ग्रहण नहीं किया। परन्तु जिस समय राजा दुष्यन्तने शकुन्तलाका निरादर किया तब श्रवण कारी सब प्राणियोंके सन्मुख आकाशसे अशरीरिणी वाणी प्रगट हो राजाको पुकारकर बोली कि ॥ १९ ॥ हे राजा दुष्यन्त ! माता भस्त्रा अर्थात्

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुदिताः क्रियाः ॥ बद्धा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १७ ॥ तं दुरत्ययविक्रांतमादाय प्रमदोत्तमा ॥ हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरंतिकमागमत् ॥ १८ ॥ यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिंदितौ ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥ १९ ॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुंतलाम् ॥ २० ॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात्। त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुंतला ॥ २१ ॥ पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ॥ महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २२ ॥

चर्मपात्रवत् आधार मात्र पिताकाही पुत्र है। क्योंकि आत्माही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। इसलिये अपने पुत्रको ग्रहण करके पालो और शकुन्तलाका अपमान न करो* ॥ २० ॥ हे नरदेव ! जो पुरुष वीर्य डालता है पुत्र उसकाही यमालयसे निस्तार करता है। और शकुन्तला यह सत्य कहती है तुमनेही इस पुत्रको गर्भमें धारण किया था ॥२१॥ हे भारत ! आकाशवाणीको सुनतेही राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको अंगीकार किया। कुछ कालके पीछे महाराज दुष्यन्त स्वर्गवासी होनेपर राजाके महायशस्वी यही भरतजी सिंहासनपर बैठकर चक्रवर्ती राजा हुए थे. महाराज

* शंका—थोडे ही दिनमें राजा दुष्यन्त अपने चरितको भूल गया, और शकुन्तलाको और अपने पुत्रको भी भूलगया, यह बडे आश्चर्यकी बात है? क्या पहले पुरुष भोले होते थे?

उत्तर—बडा बुद्धिमान् राजा दुष्यन्त था और यह भली प्रकार जानता था कि यह हमाराही पुत्र है और यह शकुन्तला हमारी स्त्री है, परन्तु लोकापवादसे डरकर उसको ग्रहण नहीं करता था, आकाशवाणीसे सबको विदित होगया तो राजाने ग्रहण किया ॥

भरत श्रीभगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न हुए थे इसलिये उनकी महिमा समस्त भूमण्डलमें गाई जाती है ॥ २२ ॥ उनके दाहिने हाथमें चक्र और दोनों चरणोंमें पद्मकोषका चिह्न विराजमान था। उन्होंने महाभिषेक कराय राजाधिराज हो गंगाजीके किनारे पर पचपन (५५) अश्वमेध यज्ञ करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा की ॥ २३ ॥ यह राजा भरत ममताके पुत्र मामतेय ऋषिको अपना पुरोहित बनाकर यमुनाके तीर पर अश्वमेध यज्ञके अठत्तर (७८) पवित्र अश्व (घोड़े) यथाक्रमसे बाँधे। इन यज्ञोंके समय राजर्षि भरतजीने बहुतसा धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दिया था ॥२४॥ हे राजन्! श्रेष्ठगुणवाले देशमें महाराज भरतजीकी अग्नि प्रणीत थी। उस अग्निप्रचयन कालमें हजारों ब्राह्मणलोग उन महाराज भरतजीकी दी हुई

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ॥ ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्भिुः ॥ २३ ॥ पंचपंचाशत मेध्यैर्गंगायामनु वाजिभिः ॥ सामंतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥ २४ ॥ अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबंध प्रददद्वसु ॥ भरतस्य हि दौष्यंतेरग्निः साचीगुणे चितः ॥ सहस्रं बद्दशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥ २५ ॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान्बद्धा विस्मापयन्नृपान् ॥ दौष्यंतिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २६ ॥ मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णा न्हिरण्येन परीवृतान् ॥ अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २७ ॥ भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ॥ नैवापुर्नैव प्राप्स्यंति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २८ ॥

गायोंको एक एक बद्दमें भाग करके लेगये थे एक बद्द तेरह सहस्र चौरासी १३०८४ का होता है ॥ २५ ॥ और महाराज भरतजीने एक बारहीमें एक सौ तैंतीस १३३ यज्ञीय घोड़े बाँध राजा लोगोंको विस्मितकर देवतालोगोंके विभवकोभी आक्रमण किया था उनका ऐसा कर्म करना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि वह भगवान् हरिको प्राप्त हुए थे ॥ २६ ॥ इन महाराज भरतने मष्णार नामक कर्ममें श्वेतदन्त और कृष्ण रंगके चौदह लाख १४००००० हाथी सुवर्णसे सजे हुए दान किये ॥ २७ ॥ महाराज भरतजीने जो कर्म किये, उन कर्मोंको पहिले हुए नृपति गणभी प्राप्त नहीं करसके और आगेको जो राजा होंगे वह भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। जैसे भुजाओंके बलसे स्वर्ग प्राप्त नहीं होसक्ता ॥ २८ ॥

इन महाराज भरतजीने दिग्विजय करनेको जाकर किरात, हूण, यवन, पौण्ड्र, कङ्क, खश, शक और दूसरे अब्रह्मण्य राजाओंको और सब
म्लेच्छजातिका संहार करडाला ॥ २९ ॥ पूर्वसमयमें जिन दानवोंने देवतालोगोंको जीतकर जिन रसातलादि स्थानोंमें वास किया था और
यह बली दानव लोग देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भी पातालमें लेगये थे। महात्मा भरतजीने उन सब देवाङ्गनाओंका उद्धार किया था ॥ ३० ॥ हे
महाराज! महाराज भरतजीके समयमें स्वर्ग और पृथ्वीसे प्रजालोगोंकी सब अभिलाषा पूरी होती थी। इस राजा भरतने सत्ताईस हजार वर्ष
तक राज्य करके सब दिशाओंमें अपनी सेना भेजी थी ॥ ३१ ॥ इसप्रकार राज्य भोग करनेके पीछे महाराज भरतजीने लोकपालोंका विभव

किरातहूणान्यवनानंध्रान्कंकान्खशाञ्छकान् ॥ अब्रह्मण्यान्नृपांश्चाहन्म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् ॥ २९ ॥
जित्वा पुराऽसुरा देवान्ये रसौकांसि भेजिरे ॥ देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३० ॥ सर्वकामान्दुदुहतुः
प्रजानां तस्य रोदसी ॥ समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३१ ॥ स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्
च्छ्रियम् ॥ चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३२ ॥ तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः ॥
जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ॥ ३३ ॥ तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ॥ मरुत्स्तोमेन
मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३४ ॥

अधिराज्यकी सम्पत्ति, अस्खलित सेना और आत्मप्राणादि सबहीको मिथ्या विचार कर विषयसे मुँह मोडा ॥ ३२ ॥ इन भरतजीके विदर्भ देशके
राजाकी बेटी सुसम्मत तीन स्त्रियें थी। एकसमय राजाने कहा कि "यह पुत्र हमारे अनुसार नहीं है" इसलिये यह तीनों ऐसी शंका करने लगीं
कि, वारंवार अनुहारका विचार कर कहीं यह राजा हमपर व्यभिचारकी शंका न कर बैठे और हमको त्यागदे। इसलिये अपनी अपनी संतानको
मारडाला ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वंशके व्यर्थ होनेसे महाराज भरतजीने पुत्रार्थ वायु और सोमका यज्ञ किया। इस यज्ञके मरुद्गणोंने प्रसन्न हो राजाके

हाथमें भरद्वाज नामक एक पुत्र समर्पण किया ॥ ३४ ॥ हे परीक्षित् ! अब भरद्वाजके जन्मका वृत्तान्त और समर्प्पणकी कथा कहते हैं । अपने भ्राता उतथ्यकी स्त्री ममतासे एक दिन छिपकर बृहस्पतिजीने भोग करना चाहा था। परन्तु उस समय गर्भके बीच एक और बालक था, फिर उस समय गर्भके मध्य दूसरे गर्भका स्थान कैसे हो ? इसलिये, गर्भके बालकने बृहस्पतिजीको वीर्य डालनेके अर्थ निवारण किया परन्तु बृहस्पतिजी कामान्ध होरहेथे। उन्होंने क्रोधित होकर बालकको यह शाप दिया कि, " तू अंधा होजा" और अपना वीर्य ममताके पेटमें डाला ॥ ३५ ॥ बृहस्पतिजीके शापसे उतथ्य नयनहीन दीर्घतमा हुयेथे परन्तु उन्होंने अपनी एडीके प्रहारसे बृहस्पतिजीके वीर्यको योनिके बाहर निकाल दिया। परन्तु उस भूमिपर गिरेहुये वीर्यसे उसी समय एक कुमार उत्पन्न हुआ। पीछे स्वामी हमको व्यभिचारिणी जानकर छोड़ न दें इस भयसे भीत होकर जब उतथ्यकी स्त्री ममताने उस कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की, तब उस समय देवतालोगोंने बृहस्पति और ममताके विवाद रूप इस

अंतर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ॥ प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३५ ॥
तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम् ॥ नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३६ ॥
मूढे भरद्वाजमिमं भरद्वाजं बृहस्पते ॥ यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३७ ॥

कुमारका नाम धरनेके लिये यह वचन कहे ॥ ३६ ॥ यथा—पुत्रको त्याग करके जाती हुई देख बृहस्पतिजीने ममतासे कहा । अरी मूढ स्त्री ! यह बालक एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे होनेके कारण इसका दो जनोंसे जन्म हुआ। इसलिये यह तुम्हारे स्वामीका भी पुत्रहै। स्वामीसे कुछ भयकी शंका नहीं तुम इस बालकको पालो तब ममताने उत्तर दिया कि, तुमभी इसका पालन पोषण करो। हम दोनों जनोंसे अन्यायके द्वारा यह बालक उत्पन्न हुआ है। सो मैं इकली क्यो इसका पालन पोषण करूंगी ! पिता माता अर्थात् बृहस्पति और ममता इस प्रकार कह झगडा करते करते इस बालकको छोडकर चले गये इसीलिये इसका नाम भरद्वाज हुआ क्योंकि भर (पोषण) और द्वाज (दोनोंसे उत्पन्न) इन दोनों शब्दोंके मिलानेसे भरद्वाज नाम हुआ ॥ ३७ ॥

हे राजा परीक्षित् । देवता लोगोंके इस प्रकार कहते कहते पर भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुये उस बालकको व्यर्थ समझकर उतथ्यकी भार्याने त्याग दिया । तब उस बालकको मरुद्गणोंने लेकर पालन किया था । जब भरत वंशके वितथ होनेका उपक्रम हुआ तब उस समय मरुद्गणोंने इस पुत्रको लेकर महाराजाधिराज भरतजीको देदिया ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां शकुन्तलोपाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा—भरत वंश इक्कीसमें, रंतिदेव अजमीढ । तिनके कुलकी कीर्ति सब, वरणों सहित सपीढ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् । वंशके वितथ होनेपर भरतजीको मरुद्गणोंने यह बालक दिया इसलिये इन भरद्वाजका नाम वितथ हुआ । इन वितथका पुत्र मन्यु उनसे बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुये ॥ १ ॥ उनमें नरका पुत्र संकृति हुआ । तिसका पुत्र गुरु और

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥ व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे शकुन्तलोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥ महावीर्यो नरो गर्गस्संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥ गुरुश्च रंतिदेवश्च संकृतेः पांडुनंदन ॥ रंतिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥२॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धंलब्धं बुभुक्षतः ॥ निष्किंचनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३ ॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपि गतः किल ॥ घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ॥ अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥

रन्तिदेव हुआ । हे राजन् ! इन रन्तिदेवकी महिमा इस लोक और परलोक दोनोमें गाई जाती है ॥ २ ॥ इस राजाका चित्त निरन्तर व्ययमें नियुक्त था । वह आप भूखे रहकर भी जो कुछ मिलता तत्काल दान कर देते ? यह धीर नरपति सब कुछ दान करके निष्किञ्चन हो सपरिवार क्षुधाके मारे अत्यन्त व्याकुल होगया ॥ ३ ॥ और विना जल पानकिये राजाको अडतालीस दिन व्यतीत होगये । सब परिवार विना आहारके कष्ट पारहा था और आप भी भूख प्यासके मारे कम्पायमान होरहे थे । उसी समय घृत, खीर और थूली भोजन करनेके लिये राजाको प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ उसको पाय राजा प्रातःकाल भोजन करनेको चले जाते थे । उसी समय कोई ब्राह्मण अतिथि आगया ॥ ५ ॥

तो राजा श्रद्धापूर्वक सर्वदेवमय भगवान् हरिको देखते हुए आदर पूर्वक उस ब्राह्मणको भी उस सब अन्नमेंसे विभाग करके देते हुए। और वह ब्राह्मण भोजन करके चला गया ॥ ६ ॥ तिसके पीछे उस बचे हुये अन्नादिको अपने सब परिवारको बाँट चूंट आप स्वयं भोजन करना चाहते थे कि उस अवसरपर और कोई शूद्र अपनेको अतिथि बताकर आया तो यह रन्तिदेव भगवान् हरिका स्मरण करके उस बचेहुए अन्नमेंसे उस शूद्रकोभी भाग देते हुए ॥ ७ ॥ जब वह एक शूद्र अतिथि आयकर बिदा हो चला गया कि, इतनेहीमें और एक जन बहुत सारे कुत्तोंको साथ लिये अतिथि बनकर वहाँ आया और आनकर बोला कि "मैं इन सब कुत्तोंके साथ बहुतही भूंखा हूँ" सो इस यूथके सहित मुझको तुम आहार दो

तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ॥ हरिं सर्वत्र संपश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥ अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ॥ विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७ ॥ याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ॥ राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८ ॥ स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम् ॥ तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ॥ पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥ ॥ १० ॥ तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ॥ कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥ न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ॥ आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामंतःस्थितो येन भवंत्यदुःखाः ॥ १२ ॥

॥ ८ ॥ राजाने उसका बहुतही आदर किया और सन्मान करके वह बचा हुआ अन्न कुत्तोंके यूथको और उनके स्वामिको खानेके लिये देकर उनको नमस्कार किया ॥ ९ ॥ उसके पीछे सब कुछ देकर एक जनकी तृप्तिके योग्य जो जल वहाँ बचा था। उसकेही पीनेका राजाने उद्योग किया कि, इतनेहीमें एक पुल्कस (चाण्डाल) आया और करुणा सहित यह वचन बोला कि, हे महाराज ! मैं बहुत थक गया हूँ ! सो मुझ अशुभ पुरुषको कुछ जल दीजिये ॥ १० ॥ इस चाण्डालके ऐसे करुणायुक्त वचन सुनकर राजा रन्तिदेवको अत्यन्त दया हुई और दुःखित हो यह अमृतमय वचन बोले कि ॥ ११ ॥ हम परमेश्वरसे अणिमादि अष्टसिद्धियुक्त गति अथवा मुक्तिकी भी कामना नहीं

करते। हमारी यही प्रार्थना है कि, हम सम्पूर्ण देहधारियोंके दुःखको भोक्तारूपसे भीतर स्थिर होकर प्राप्त हों। और हमसे सब प्राणियोंका दुःख दूर होजावे ॥ १२ ॥ यह दीन जन जीवन धारण करनेकी वासना करता है। इसके जीवनके लिये जल अर्पणकरतेही हमारी क्षुधा, तृषा, थकावट, अंगोंका घूमना कातरता, क्रान्ति, खेद, विपाद, मोह सबही निवृत्त होगये ॥ १३ ॥ इसप्रकार कहकर स्वभावसेही दयालु महाराज रन्तिदेवने स्वयं प्यासके मारे म्रियमाण होनेपरभी उस चाण्डालको अपने पीनेका जल देदिया ॥ १४ ॥ हे राजन्! त्रिभुवनाधीश जो ब्रह्मादि देवता फलाकांक्षी पुरुषोंको फल दान किया करते हैं यह सब महाराज रन्तिदेवके धैर्य और धर्मकी परीक्षा करनेके लिये विष्णुकी बनाई हुई मायासे

क्षुत्तृट्छ्रमो गात्रपरिभ्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः॥ सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३ ॥ एवं प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ॥ पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥ तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम्॥ आत्मानं दर्शयांचक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥ स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निस्संगो विगतस्पृहः ॥ वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे नमः परम् ॥ १६ ॥ ईश्वरालंबनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः॥ माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसंगानुभावेन रंतिदेवानुवर्तिनः ॥ अभवन्योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥

अपने अपने स्वरूपको दिखाते हुए ॥ १५ ॥ परन्तु महाराज रन्तिदेवने इन सब देवताओंको नमस्कार किया। और निःसङ्ग व स्पृहा रहित होकर केवल भगवान् वासुदेवको अर्पण कर दिया ॥ १६ ॥ इसलिये उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंसे कुछभी नहीं चाहा। हे राजन्! रन्तिदेवके ईश्वरातिरिक्त और किसी फलकी इच्छा न करनेपर अपने चित्तको ईश्वरावलम्बित करनेसे उनके निकट गुणमयी माया स्वप्नकी समान आत्मामेंही विलीन हुई थी ॥ १७ ॥ उनके अनुगामी जनगण इन राजा रन्तिदेवके संसर्गप्रभावसे सबही नारायणपरायण योगी होगये ॥ १८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! मन्युके पुत्र नरका वंश कहा गया । अब गर्गके वंशका वृत्तान्त कहते हैं सो तुम सुनो । गर्गसे शिनि उत्पन्न हुए । शिनिसे गार्ग्य यह ब्रह्मकुलके प्रवर्तक हुए ॥ १९ ॥ अब महावीर्यके वंशका विवरण सुनो । महावीर्यसे दुरितक्षय उत्पन्न हुआ । उनका पुत्र त्र्य्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि, यह तीनोंजने क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न होकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुये थे। अब मन्युके पाँच पुत्रोंमेंसे सबसे बड़ेका वंश सुनों । बृहत्क्षेत्रका पुत्र हस्ती हुआ कि, जिसने हस्तिनापुर बसाया ॥२०॥ इस × हस्तीके ❀ अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए.इनसें अजमीढके वंशसे

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत ॥ दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्र्य्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ॥ अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१ ॥ अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ॥ बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥ तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित्समजायत ॥ रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४ ॥ स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ॥ स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥ २५ ॥

प्रियमेधादि ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ और इस अजमीढसे बृहदिषु नाम और एक पुत्र जन्मा, उसका पुत्र बृहद्धनु हुआ । बृहद्धनुकी सन्तान बृहत्काय इसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥ २२ ॥ जयद्रथका पुत्र विशद उसका पुत्र सेनजित्, सेनजित्के रुचिराश्व, दृढ, हनुकाश्य और वत्स यह चार पुत्र हुए ॥२३॥ उनमें रुचिराश्वका पुत्र पार हुआ । उसका पुत्र पृथुसेन हुआ । हे राजन् ! पारका दूसरा पुत्र नीप और नीपके सौ(१००) पुत्र हुए ॥ २४॥ और इसी नीपने शुककी कन्या कृत्वीके गर्भसे ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया इस योगी ब्रह्मदत्तने अपनी भार्या सरस्वतीके गर्भसे

+ इसी राजा हस्तीने 'हस्तिनापुर' बसाया था जो अबतक गंगा भागीरथीके किनारे पर उपस्थित है ॥

❀ इसी अजमीढने 'अजमेर' बसाया जो आजकल पुष्करजीके निकट वर्तमान है और वास्तवमें इसका नाम 'अजमेढ' था जो आजकल अजमेर नामसे विख्यात है.

विष्वक्सेन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ❀ ॥२५॥ जिसने जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्र प्रणयन किया था । इस विष्वक्सेनसे उदक्स्वनने जन्म लिया । इनसे भल्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२६॥ द्विमीढका पुत्र यवीनर, यवीनरका पुत्र कृतमान उसके यहां सत्यधृति नामक पुत्र जन्मा सत्यधृतिका पुत्र दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥२७॥ सुपार्श्वसे सुमतिने जन्म लिया उसका पुत्र सन्नति नाम, उसका पुत्र कृति, जिसने हिरण्य नामसे योग विद्या सीखकर ॥ २८ ॥ प्राच्य सामकी छः संहिताओंका विभाग करके उनको पढ़ाया इस कृतिके नीप हुआ और नीपसे उग्रायुधकी

जैगीषव्योपदेशेन योगतंत्रं चकार ह ॥ उदक्स्वनस्ततस्तस्माद्भल्लादो वार्हदीषवः ॥ २६ ॥ यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ॥ नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७ ॥ सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ॥ कृती हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८ ॥ संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ॥ तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुंजयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ॥ नलिन्यामजमीढस्य नीलः शांतिस्सुतस्ततः ॥३०॥ शांतेः सुशांतिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ॥ भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पंचाऽऽसन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहदिषुः कांपिल्यः संजयः सुताः ॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पंचानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥

उत्पत्ति हुई. उग्रायुधके क्षेम्य, उसका पुत्र सुवीर, सुवीरका पुत्र रिपुञ्जय॥२९॥ उसका पुत्र बहुरथ हुआ हस्तीका पुत्र पुरुमीढ निःसन्तान रहा नलिनी नाम जो भार्या थी उससे नीलनाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ । और नीलका पुत्र शान्ति जन्मा ॥ ३० ॥ शान्तिका बेटा सुशान्ति, सुशान्तिका पुत्र पुरुज और उससे अर्कने जन्म ग्रहण किया । अर्कका पुत्र भर्म्याश्व और उसके मुद्गलादि पॉच पुत्र उत्पन्न हुए॥३१॥अर्थात् मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु

---

* शंका-राजा नीपने क्षत्रिय होकर शुकदेवजी ब्राह्मणकी कन्याके साथ अपना विवाह क्यों किया ? क्षत्रियकी पुत्रीको तो ब्राह्मण सदैव विवाहते रहे परन्तु ब्राह्मणकी कन्याके साथ क्षत्रियका विवाह हमने आजही सुनाहै, कभी देवयानीकी वात तो शापसे होगई, परन्तु यह अवकी हमको वडी शंका है ।

उत्तर-तीन लोकमें शुकदेवजीकी कन्या सव ब्रह्मज्ञानियोंमें परम ब्रह्मज्ञानी थी और ब्रह्मज्ञानीही पुरुषको अपना पतिकरना चाहती थी और किसी दूसरे पुरुषको नहीं चाहती थी और राजा नीप वडा ब्रह्मज्ञानी था ऐसा विचारके अपनी इच्छासे राजा नीपको उसने अपना पति वनाया, कुछ संसारकी रीतिसे वह विवाह नहीं हुवा था ॥

काम्पिल्य और संजय यह पांच पुत्र जन्मे। भर्म्याश्वने इन पुत्रोंको देखकर एक समय कहा था कि, हमारे यह पांच पुत्र पांच विषयके रक्षा करनेमें समर्थ हैं ॥ ३२ ॥ वह पांच देशका पालन कर सक्ते हैं। इसी कारण इन पुत्रोंकी पाञ्चाल संज्ञा हुई। और पाञ्चाल देश इनहींके नामसे प्रसिद्ध हुवा और मुद्गलसे मौद्गल्य गोत्री ब्रह्मकुल हुआ ॥३३॥ भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे शुभनरा मिथुनने जन्मलिया। इनमें दिवोदास नर और अहल्या नाम नारी थी। उसी अहल्यामें गौतमजीसे शतानन्दकी उत्पत्ति हुई ॥३४॥ शतानन्दका पुत्र सत्यधृति हुआ। यह धनुर्वेदको भलीभाँतिसे जानता था। उसका पुत्र शरद्वान् कि, जिसका वीर्य उर्वशीके दर्शनसे शरकण्डोंके समूहमें गिरा था। और फिर इसी वीर्यसे एक शुभ जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥३५॥

विषयाणामलमिमे इति पांचालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद्ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्या दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानंदस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ॥ शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ॥ ३५ ॥ शरस्तंबेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ तद्दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छंतनुर्मृगयां चरन् ॥ कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० न० भरतरन्तिदेवाजमीढादिचरितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मित्रायुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप ॥ सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जंतुजन्मकृत् ॥ १ ॥ तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुतः ॥ द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥ २ ॥

जब शन्तनु राजा मृगया करनेको गया तब उसने दैवात् इस जोड़ेको देखा। और दयाके वश हो अपने घरपर ले आया उस नर मिथुनमेंसे बालकका नाम कृप और बालिकाका नाम कृपी हुआ जो कि, द्रोणाचार्यकी स्त्री हुई ॥३६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां वंशानुकीर्त्तनं नाम एकाविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा-दिवोदासको वंश कह, ऋक्ष वंश बाईस। जरासन्ध और धर्मसुत, दुर्योधन धनईस ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ! दिवोदासका पुत्र मित्रायु, उसका पुत्र च्यवन, च्यवनका पुत्र सुदास, सुदासका सुत सहदेव और उसकी सन्तान सोमक हुआ. इस सोमकके सौ (१००) पुत्र थे। उनमें जन्तु बड़ा था ॥ १ ॥ और पृषत छोटा हुआ। इस

पृषतके सर्व सम्पद्-युक्त राजा द्रुपदने जन्म लिया। इन्ही राजा द्रुपदसे द्रौपदीका जन्म हुआ और इनके पुत्र धृष्टद्युम्नादि हुए ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु हुआ। यह सब धर्म्याश्वके पाञ्चाल वंशमे हुए और पंजाबके राजा थे। हे राजा परीक्षित्! अब अजमीढका दूसरा पुत्र जो ऋक्ष था, उसका पुत्र संवरण हुआ ॥ ३ ॥ इस संवरणसे सूर्यकी कन्या तपतीके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति कुरुने जन्म ग्रहण किया, इन कुरुके परीक्षित, सुधनु, ज॰ और निषधाश्व यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ इनमें सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन और इनके कृती हुआ। कृतीका उपरिचरवसु नाम पुत्र हुआ। उससे बृहद्रथ प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ और पुत्रोंके यह नाम हैं यथा-कुशांब,मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप इत्यादि।

धृष्टद्युम्नाद्धृष्टकेतुर्भार्म्याः पांचालका इमे॥ योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः॥ परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोस्सुताः ॥ ४ ॥ सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती॥ वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥ कुशांबमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ॥ बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥ ६ ॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः ॥ अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥ ७ ॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसंधिते॥ जीवजीवेति क्रीडंत्या जरासंधोऽभवत्सुतः ॥ ८ ॥ ततश्च सहदेवोऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः॥ परीक्षिदनपत्योऽभूत्सुरथो नाम जाह्नवः ॥ ९ ॥ ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततोऽभवत्॥ जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥

यह सबही चेदिप अर्थात् चंदेलीके राजा थे बृहद्रथसे कुशाग्रका जन्म हुआ उसका पुत्र ऋषभ, उसका सुत ॥ ६ ॥ सत्यहित सत्यहितका पुत्र पुष्पवान्, तिसका बेटा जहु हुआ। हे राजन्! बृहद्रथकी दूसरी भार्यासे एक पुत्र दो खण्ड होकर जन्मा था ॥ ७ ॥ उसकी माताने उस बालकको ऐसा देखकर बाहर फेंकवादिया। फिर जरा राक्षसीने उसको देख "जीवितहो जीवितहो" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक क्रीडा करते करते उन दोनों खण्डोंको जोड दिया था उससेही यह बालक सर्वावयव सम्पन्न हो जरासंध नाम हुआ ॥८॥ इस जरासन्धका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि,उससे श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई। हे राजन्! कुरुपुत्र परीक्षित्के सन्तान नहीं थी। जहुका पुत्र सुरथ ॥ ९ ॥ इस सुरथसे विदूरथका जन्म

हुआ। उसका पुत्र सार्व्वभौम, उसका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र राधिक, राधिकसे अयुतायुने जन्मलिया ॥ १० ॥ अयुतायुके क्रोधन, क्रोधनके देवातिथि उनके ऋक्ष और ऋक्षसे दिलीपने जन्म ग्रहण किया। और दिलीपके प्रतीप नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ इन प्रतीपके देवापि, शन्तनु और बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए। तिनमें बडा पुत्र देवापि पितृराज्यको छोडकर वनमें चला गया था ॥१२॥ इसलिये मध्यम पुत्र शन्तनु राजा हुए। पूर्व जन्ममें इनका नाम महाभिषक था। यह शन्तनु अपने हाथसे जिस किसी वृद्ध पुरुषको स्पर्श करते वही युवा होजाता ॥ १३ ॥ और शान्ति प्राप्त करलेता था. इस कर्मकेही करनेसे इनका शन्तनु नाम हुआ। इन शन्तनुजीके राजा होनेपर देवराज इन्द्रने जब बारह वर्षतक पानी न वर्षाया ॥१४॥ तब राजाने उद्विग्न होकर ब्राह्मणोंसे इसका कारण पूँछा तब ब्राह्मणोंने इस विषयमें केवल इतनाही कहा कि, महाराज ! बड़े भाईके

ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च ॥ ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥११॥ देवापिश्शंतनुस्तस्य वाह्लीक इति चात्मजाः ॥ पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥१२॥ अभवच्छंतनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः ॥ यंयं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥१३॥ शांतिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शंतनुः ॥ समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४ ॥ शंतनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ताऽयमग्रभुक् ॥ राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५ ॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छंदयामास सोऽब्रवीत् ॥ तन्मंत्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥ १६ ॥ वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह ॥ देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥ १७ ॥

रहते जो पुरुष राजसिंहासन पर बैठताहै वह अपनी समान पुरुष होनेपर भी परिवेत्ताही होजाताहै आप परिवेदन दोषसे दूषित हुये हैं. सो इस दोषको दूर करनेके लिये शीघ्र अपने बडे भाईको बुलाकर उनको राज्यभार देदो। तब देवता जल वर्षावेंगे। और पुरराष्ट्रोंकी वृद्धि होगी ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर राजा शन्तनु उसीसमय वनको चलेगये। और "प्रजापालन करनाही राजाका परम धर्म है। आप राज्यको स्वीकार कीजिये" यह कहकर अपने बडे भ्रातासे राज्य ग्रहण करनेके लिये विनय करने लगे। परन्तु इससे पहले शन्तनुके मंत्री अश्ववारने देवापिको पाखण्ड करके राज्यके अयोग्य करनेके लिये उनके पास कुछेक ब्राह्मणोंको भेज दिया था. पाखण्डमतानुयायी ब्राह्मणलोगोंकी कथाके द्वारा जब देवापि वेदमार्गसे

परिभ्रष्ट हुये तब इन्होंने शन्तनुकी प्रार्थना न मानी और वेद शास्त्रकी निन्दा करने लगे तब वेदोंकी निन्दा करनेसे नीचता पानेके कारण राज्यके योग्य देवापि न रहे । फिर उसके उपरान्त शन्तनुके राज्य भोग करनेमें और कोई दोष नहीं रहा । फिर यथाकालमें वर्षा होने लगी तबसे देवापि योगमार्गका अवलम्बनकर कलाप ग्राममें रहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ जब कलियुगमें चन्द्र वंशका नाश होजायगा तब सत्ययुगके पहले यह देवापि फिर चन्द्रवंशको स्थापित करैंगे शन्तनुके पुत्र बाह्लीकसे सोमदत्तकी उत्पत्ति हुई । इस सोमदत्तके भूरि भूरिश्रवा और शल यह तीन पुत्र उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ॥ वाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८ ॥ शलश्च शंतनोरासीद्गंगायां भीष्म आत्मवान् ॥ सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥ वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ॥ शंतनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्रांगदः सुतः ॥ २० ॥ विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्रांगदो हतः ॥ यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥

हे परीक्षित् । इन शन्तनुके गंगाजीके गर्भसे भीष्मजीका जन्म हुवा था । यह भीष्मजी धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाभागवत विद्वान् और वीर गणोंके अगुए थे, उन्होने संग्राममें परशुरामजीको[1] भी प्रसन्न किया था । हे राजन् ! इन शन्तनुसे दाश कान्यामें[2] चित्रांग और विचित्रवीर्यनामक दो पुत्र जन्में ॥ १९ ॥ २० ॥ उनमें छोटा विचित्रवीर्य हुआ बडा पुत्र चित्राङ्गत जिसको चित्रांगद नामक किसी गन्धर्वने मारडाला । शंतनुराजाके ग्रहण करनेसे पहले इस दाशकन्या (सत्यवती)में महर्षि पराशरसे साक्षात् भगवान् हरिके अंशसे कृष्णद्वैपायन मुनि (श्रीव्यासजी) का अवतार हुआ ॥ २१ ॥

१ शंका–रामचन्द्रके सामने त्रेतायुगमें परशुरामजी अपना धनुष बाण रखके उत्तर दिशामें तप करनेको चले गयेथे, रामायणमें ऐसा लिखा है, फिर द्वापर युगमें भीष्मजीके सग युद्ध कैसे किया उस समय परशुरामजीके पास धनुष बाण कहासे आया ?

उत्तर–जब परशुरामजीने रामचन्द्रजीके सामने अस्त्रोंका त्याग किया, उस समय कुछ उन्होंने ऐसी शपथ नहीं कीथी कि, आजसे हम कभी अस्त्र ग्रहण न करैंगे, इसलिये अम्बिकाको अत्यन्त दु खी देख कर और अपनी शरण आई जानकर तपके प्रभावसे दूसरा धनुषबाण बनाकर भीष्मके सग युद्ध करने लगे ॥

२ उपरिवसुके वीर्यद्वारा मत्स्यगर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी और केवट लोगोंने उसका पालन पोषण किया था । इसीलिये यह दाश कन्याके नामसे विख्यात हुई वास्तवमें इसका नाम सत्यवती था ॥

हे परीक्षित् ! उनके जन्म होनेसे पहिले समस्त वेद गुप्त होगये थे और उनसेही हमनेभी श्रीमद्भागवत शास्त्र प... था जो कि, इस समय आपको सुना रहे हैं। इन भगवान् बादरायणके पैलादि अनेक शिष्य थे परन्तु इन्होंने उनका स्वभाव जानकर सब शिष्योंको छोडकर हमारे प्रति परमगुह्य श्रीमद्भागवत शास्त्रकी व्याख्या की क्योंकि मैं उनका शान्त पुत्रथा ॥ २२ ॥ इन विचित्रवीर्यने काशीराजकी दो कन्या अम्बिका और अम्बा लिकासे विवाह किया,इन दोनों कन्याओंको महाबलवान् भीष्म स्वयंवरमेंसे लडकर छीन लाये थे। इन दोनों स्त्रियोंमें विचित्रवीर्य अत्यन्त अनुराग करतेथे इसलिये अल्प कालमेंही यक्ष्मारोगसे ग्रसित हो मृत्युको प्राप्त हुये ॥ २३ ॥ २४ ॥ इनके कोई सन्तान नहीं हुई तब इनके सहोदर भगवान्

वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ॥ हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥ २२ ॥ मह्यं पुत्राय शांताय परं गुह्यमिदं जगौ ॥ विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥ २३ ॥ स्वयंवरादुपानीते अंबिकां बालिके उभे ॥ तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥ २४ ॥ क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ॥ धृतराष्ट्र च पांडुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ २५ ॥ गांधार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ॥ तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥ २६ ॥ शापान्मैथुनरुद्धस्य पांडोः कुंत्यां महारथाः ॥ जाता धर्मानिलेंद्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥ २७ ॥

वेदव्यासजीने अपनी सत्यवती माताके कहनेसे अपने भाई विचित्र वीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर यह तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ २५ ॥ इनमें धृतराष्ट्रकी स्त्री गान्धारी हुई इस धृतराष्ट्रके गान्धारीसे सौ (१००) पुत्र जन्मे इन पुत्रोंमें दुर्योधन सबसे बड़ा था और दुःशला नाम एक कन्या हुई ॥ २६ ॥ हे राजन् ! पाण्डु राजा एक समय वनमें शिकार खेलनेको गये थे, वहाँ इन्होंने मैथुन करते हुये एक मृगका वध किया, तब मृगने इनको शाप दिया कि जब तुम मैथुन करोगे तबही तुम्हारी मृत्यु होजायगी। इन राजा पाण्डुकी स्त्री कुन्तीमें धर्म, पवन और इन्द्रके

वीर्यसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन, यह तीन पुत्र महारथी उत्पन्न हुये। और इन्हीं राजाकी माद्री नामक दूसरी भार्यामें अश्विनीकुमारसे नकुल
और सहदेवका जन्म हुआ इन पाँचों पाण्डवोंकी भार्या द्रौपदी हुई। द्रौपदीके गर्भमें युधिष्ठिरादि पाँच पांडवोंसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुये, जोकि
तुम्हारे पितृव्य थे ॥२७॥२८॥ अर्थात् युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे श्रुतसेन और अर्जुनसे श्रुतकीर्ति,नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा
उत्पन्न हुआ ॥ हे राजन् ! इन पाँच पांडवोंसे इनकी दूसरी भार्याओंमें इन पुत्रोंके अतिरिक्त (सिवाय) और भी पुत्र उत्पन्न हुयेथे युधिष्ठिरकी
पौरवी नामक जो दूसरी भार्याथी। उससे देवक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ। भीमसेनकी हिडिम्बा नामक वनितामें घटोत्कचने जन्म

द्रौपद्यां पंच पंचभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरात्प्रति
नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ॥
विंध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ॥ अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजञ्छ्रुतकर्मा
तथाऽपरे ॥ युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिंबायां काल्यां सर्वगतस्ततः ॥
सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥ ३१ ॥ करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः ॥ इरावतमुलूप्यां वै सुतायां
बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ॥ सर्वातिरथ
जिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥

ग्रहण किया ॥ २९ ॥ ३० ॥ इन भीमसेनके कालीनामक एक और भी भार्याथी, जिससे सर्वंगत नामक एक सन्तानने जन्मलिया सहदेवकी
विजया नामक दूसरी भर्या पर्वतकी बेटीने सुहोत्र नाम एक पुत्र उत्पन्न किया। नकुलकी करेणुमती नामक वनितामें निरमित्र नामक एक पुत्र
उत्पन्न हुआ. हे राजन् ! अर्जुनने नागराजकी कन्या उलूपीके गर्भसे इरावन्त नामक एकपुत्र उत्पन्न किया और मणिपुराधीशकी बेटीमें बभ्रुवाहन
नाम पुत्र उत्पन्न कियाथा। यद्यपि यह अर्जुनका बेटाथा। पर नानाके गोद लेनेसे मणिपुरपतिका पुत्र कहायाथा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इन अर्जुनके
सुभद्रा नामक और एक भर्याथी, उससे तुम्हारे पिता अभिमन्युने जन्म लिया। यह अभिन्यु समस्त अतिरथी वीरोंके जयकारी और

महावीरथे । हे महाराज परीक्षित् । उनकेही औरससे उत्तराके गर्भमें आपने जन्म लिया ॥ ३३ ॥ हे राजन् । अश्वत्थामाके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रके तेजसे कुरुवंशका जब नाश होरहाथा, तब तुमभी उससे नष्ट होते । परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरके प्रभावसे मृत्युके हाथसे तुम छूट गये ॥ ३४॥ हे तात । तुम्हारे इस समय जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन, और उग्रसेन यह चार पुत्रहैं ॥३५॥ हे परीक्षित्। तुम्हारे इन पुत्रोंमेंसे जनमेजय तक्षक (सर्प) से तुम्हारी मृत्युका होना सुनकर रोषके मारे सर्पसत्र यज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञाग्निमें सब सर्पोंको होम देगा ॥३६॥ और तुम्हारे यह पुत्र समस्त पृथ्वीको जीत अश्वमेध यज्ञ करेंगे और कावषेयवंशके " तुर " नामक ऋषिको पुरोहित बनाकर और भी बहुतसे

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोंतकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ॥ श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥३५॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम्॥ सर्पान्वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषाऽन्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ॥ समंतात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७ ॥ तस्य पुत्रश्शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ॥ अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥ सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधकः ॥ असीमकृष्णस्तस्यापि निमिचक्रस्तुतत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्या कौशांब्यां साधु वत्स्यति ॥ उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥

अश्वमेध यज्ञ करेंगे ॥ ३७ ॥ हे परीक्षित् । तुम्हारे पुत्र जनमेजयके शतानीक नामक एक पुत्र होगा यह शतानीक याज्ञवल्क्य मुनिसे तीन वेद पढेगा और शौनक मुनिसे ब्रह्मविद्या और आत्मज्ञान सीखेगा और कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेगा ॥ ३८ ॥ शतानीकका पुत्र सहस्रानीक होगा, उससे अश्वध्वजकी उत्पत्ति होगी । उनका पुत्र असीम कृष्ण और उनका पुत्र निमिचक्र होगा ॥ ३९ ॥ इस निमिचक्रके राजकालमें हस्तिनापुर गंगाजीमें डूबेगा । तब यह राजा कौशांबी नगरीमें वास करेगा । इस निमिचक्रके सन्तान चित्ररथ और

उसके कविरथ जन्मेगा ॥ ४० कविरथका पुत्र वृष्टिमान् और उनका पुत्र सुषेण नामक राजा होगा। सुषेणके सुनीथ नामक पुत्र जन्मेगा उसका पुत्र नृचक्षु होगा और उससे सुखीनल जन्म लेगा ॥ ४१ ॥ सुखीनलका पुत्र परिप्लुव होगा उससे सुनय जन्म धारण करेगा उसका पुत्र मेधावी, मेधावीका पुत्र नृपञ्जय और उससे दूर्व्व जन्म लेगा और उसका पुत्र तिमि होगा तिमिसे बृहद्रथकी उत्पत्ति होगी। इसका पुत्र सुदास और सुदाससे शतानीक जन्म धारण करेगा ॥ ४२ ॥ शतानीकका पुत्र दुर्दमन,इसका पुत्र बहीनर, बहीनरका पुत्र दंडपाणि इस दंडपाणिका पुत्र नेमि और इस नेमिसे क्षेमक नाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४३ ॥ हे महाराज परीक्षित्! देवर्षि सत्कृत ब्रह्म क्षत्रियवंश इस क्षेमकको राजा पाकर कलियुगमें

तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ॥ सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥ परिप्लुवः सुतस्तस्मा न्मेधावी सुनयात्मजः ॥ नृपंजयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥ ॥ ४२ ॥ शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ दंडपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मक्ष त्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ क्षेमकं प्राप्य राजनं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ ४४ ॥ अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥ भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ ४५ ॥ ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥ सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित ॥ ४६ ॥ ततः सृतंजयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ क्षेमोऽथ सुव्रतस्त स्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः ॥ ४७ ॥

समाप्तिको प्राप्त होजायगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा सुनाय कर नृपश्रेष्ठ परीक्षित्से बोले कि, हे कुरुवंशावतंस! अब मगध वंशमें जो राजा होंगे उनका वृत्तान्त कहता हूं। आप सचेत हो मन लगायकर सुनिये। बृहद्रथके पुत्र जरासन्धके सहदेव नामक पुत्र होगा सहदेवके मार्ज्जारि और इस मार्जारिसे श्रुतश्रवा जन्म ग्रहण करेगा ॥ ४५ ॥ इसका पुत्र अयुतायु उसकी सन्तान निरमित्र इसका पुत्र सुनक्षत्र, इस सुनक्षत्रसे बृहत्सेनकी उत्पत्ति होगी इस बृहत्सेनका पुत्र कर्मजित् उसके सृतञ्जय और उससे विप्रनाम एक नरेश उत्पन्न होगा। उसका पुत्र शुचि शुचिका

पुत्र क्षेम, उससे सुव्रत जन्मेगा। सुव्रतका पुत्र धर्मसूत्र और इस धर्मसूत्रके शम नाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इस समसे द्युमत्सेनकी उत्पत्ति होगी द्युमत्सेनका पुत्र सुमति होगा। इस सुमतिका पुत्र सुबल उत्पन्न होगा, सुबलका पुत्र सुनीथ, सुनीथका पुत्र सत्यजित, सत्यजित्का पुत्र विश्वजित् और विश्वजितका पुत्र रिपुञ्जय उत्पन्न होगा। हे राजा परीक्षित्! हजार वर्षतक यह सब राजा उत्पन्न होंगे और इनके उपरान्त जो समस्त राजा होंगे वह पीछे (द्वादशस्कन्धमें) कहे जायँगे ॥४८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥
दोहा—ययाति सुत अनुद्रुह्यु पुनि, वरणों तुर्वसु वंश ॥ पीछे ज्यामघ राज्य तक, यदुकुल कहौं प्रशंश ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरु

द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥ सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुंजयः ॥ बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥४८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे दिवोदासर्क्षयोर्वंशवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥
श्रीशुक उवाच ॥ अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च सुतास्त्रयः ॥ सभानरात्कालनरः सृंजयस्तत्सुतस्ततः ॥१॥ जनमेजय स्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ॥ उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ शिबिर्वेनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ॥ २ ॥ वृषादर्भः सुवीरश्च भद्रः कैकेय आत्मजाः ॥ शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ॥ ३ ॥ ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥ अंगवंगकलिंगाद्याः सुह्मपुंड्रांध्रसंज्ञिताः ॥ ४ ॥ जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते ॥ ५ ॥

कुलभूषण! पुरुका वंशतो आपसे कहा, अब राजा ययातिके चौथे पुत्र अनुके वंशका वर्णन करते हैं अनुके सभानर, चक्षु और परोक्ष यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सभानरका पुत्र कालनर, उसका पुत्र सृंजय ॥ १ ॥ और उसका पुत्र जनमेजय हुआ जनमेजयका पुत्र महाशील महामना नाम हुआ, महामनाके उशीनर और तितिक्षु यह दो पुत्र उत्पन्न हुए, इन दोनोंमें उशीनरके शिबि, वेन, शमि और दक्ष यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ इनमें शिबिसे वृषादर्भ, वीर, भद्र, कैकय यह चार पुत्र जन्मे। तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ ॥ ३ ॥ इसका पुत्र हेम, उसका पुत्र सुतपा

और सुपासे बलि नाम पुत्र हुआ, इस बलिके क्षेत्रमें दीर्घतमासे अंग, वंग, कलिङ्गादि और सुह्म, पुंड्र और अन्ध्र नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए इन सबोंने अपने अपने नामोंसे छः जनपद प्राच्य देशमें अंग, वंग, कलिंग, सुह्म और पुण्डरीक और अन्ध्र आदि वसाये ॥ ४ ॥ ५ ॥ अंगसे खनपान नामक जो पुत्र जन्मा उसका पुत्र दिविरथ, उसकी सन्तान धर्मरथ और उससे चित्ररथ जन्मा. चित्ररथके कोई सन्तान नहीं हुई ॥६॥ रोमपाद नाम करके यह राजा विख्यात था, उसके सखा दशरथ राजाने उसको पुत्रार्थ शान्तानामक अपनी कन्या दान करदी थी, इस कन्याका पाणिग्रहण ऋष्यशृंग मुनिने किया ॥ ७॥ हे राजन्! रोमपाद राजाके राज्यमें किसी कारणसे कुछ कालतक देवता इंद्रने जल नहीं वर्षाया

खनपानोंगतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ॥ ६ ॥ रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ शांतां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृंग उवाह ताम् ॥ ७ ॥ देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः ॥ ८ ॥ स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ॥ ९ ॥ चतुरंगो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुतः ॥ १० ॥ आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥ ११ ॥

तब राजाकी अनुमतिसे वारांगनागण तपोवनमें जाय गीत गाय बाजे बजाय बजाय नाचने लगीं। और हाव भाव कटाक्ष आलिंगन और अर्हण योगसे इन ऋष्यशृंगको ले आईं ॥ ८ ॥ ऋष्यशृंगके आतेही जल वर्षा। इसके उपरान्त इन मुनिने राजाको निःसन्तान देख यज्ञ कराय पुत्रका मुख दिखाया ॥९॥ इन रोमपादसे चतुरंग उत्पन्न हुआ। उसकी सन्तान पृथुलाक्ष पृथुलाक्षसे-बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥१०॥ इनमें बृहद्रथसे बृहन्मना जन्मा, उसका पुत्र जयद्रथ, जयद्रथका पुत्र विजय हुआ। इस विजयकी सम्भूति नामक भार्यासे धृतिने जन्म

ग्रहण किया ॥११॥ धृतिका पुत्र धृतव्रत, उसका पुत्र सत्कर्मा, उससे अधिरथ उत्पन्न हुआ, इस अधिरथने श्रीगंगाजीके किनारेपर क्रीडा करते हुये कुन्तीजीका बहाया सुन्दूकमें एक बालक पाया पर यह अधिरथ सन्तानहीनथा। इसीलिये इसने संदूकसे पाये हुये बालकको अपना पुत्र बनालिया। हे राजन्! इस बालकका नाम कर्ण था और इससेही वृषसेनकी उत्पत्ति हुई॥१२॥१३॥ययाति सुत द्रुह्युका पुत्र बभ्रु हुआ, बभ्रुका पुत्र सेतु,सेतुका पुत्र आरब्ध उसका पुत्र गान्धार, उसका बेटा धर्म और उससे धृत जन्मा ॥१४॥ धृतका पुत्र दुर्मना और उससे प्रचेताकी उत्पत्ति हुई। इस प्रचेताके सौ

ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥ योऽसौ गंगातटे क्रीडन्मंजूषांतर्गतं शिशुम् ॥ १२ ॥ कुंत्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत्सुतम् ॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ॥ १३ ॥ द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ आरब्धस्तस्य गांधारस्तस्य धर्मसुतो धृतः ॥ १४ ॥ धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ १५ ॥ तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करंधम उदारधीः ॥ १६ ॥ मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ दुष्यंतः स पुनर्भेजे स्ववंशं राज्यकामुकः ॥ १७ ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥ १८ ॥ यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः ॥ १९ ॥

(१००) पुत्र हुये जो कि, उत्तरदिशामें विराजमान होकर म्लेच्छाधिपति हुये हैं ॥१५॥ तुर्वसुका पुत्र वह्नि उसका सुत भर्ग, उससे भानुमान्का जन्म हुवा भानुमान्का पुत्र त्रिभानु उसका पुत्र उदारमति करन्धम जन्मा॥१६॥करन्धमका पुत्र मरुत इन्होंने पुत्ररहित होनेसे कुरुवंशीय राजा दुष्यन्तको गोद लिया, यह दुष्यन्त राज्याभिलाषी होकर फिर अपने कुरुवंशको प्राप्त हुयेथे ॥१७॥ हे नरश्रेष्ठ! अब राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करते हैं। यह अतिपवित्र वंश मानवमण्डलीके अनन्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १८॥ इस यदुवंशका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्यमात्र

पापोंसे छुटकारा पाते हैं। क्योंकि इसी वंशमें भगवान् वासुदेव नराकारसे अवतीर्ण हुये थे ॥ १९ ॥ यदुके सहस्रजित, क्रोष्टा, नल और रिपु यह चार पुत्र उत्पन्न हुये। उनमें सहस्रजित्का पुत्र शतजित् हुआ ॥ २० ॥ इसके महाहय, रेणुहय और हैहय यह तीन पुत्र हुये इनमें हैहयका पुत्र धर्म, उनका पुत्र नेत्र और नेत्रका पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्तिसे सोहंजि जन्मा, इसका पुत्र महिष्मान् और महिष्मान्का पुत्र भद्रसेन हुआ ॥ २१ ॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुये। इनमें धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा, यह चार पुत्र उत्पन्न हुये ॥ २२ ॥ इनमें कृतवीर्यका पुत्र

यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः ॥ २० ॥ महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥ धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुंतेः पिता ततः ॥ सोहंजिरभवत्कुंतेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥ २१ ॥ दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ॥ कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥ २२ ॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ॥ दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगमहागुणः ॥ २३ ॥ न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यंति पार्थिवाः ॥ यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥ २४ ॥ पंचाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः ॥ अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २५ ॥ तस्य पुत्रसहस्रेषु पंचैवोर्वरिता मृधे ॥ जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥ २६ ॥

अर्जुन हुआ। जो कि, सप्तद्वीपका अधीश्वर था। और जिसने श्रीभगवान्के अंश दत्तात्रेयजीसे योग गुण प्राप्त किया था ॥ २३ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि, कोई राजा यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन और शूरता, वीरता व दयादिसे इन महात्मा अर्जुनकी गतिको नहीं प्राप्त होसकता ॥ २४ ॥ इस राजाने अव्याहत पराक्रमसे पचासी हजार (८५०००) वर्षतक अक्षय छः इन्द्रियोंके सुखको भोगा था। इस राजाकी स्मरणशक्ति आश्चर्यमय थी कि, जिससे कदापि वित्तका नाश नहीं होता था ॥ २५ ॥ इन अर्जुनके हजार पुत्र थे, इनमेंसे केवल पाँच परशुरामके संग्राममें मर

नेसे शेष बचे थे। जिनके नाम यह हैं। जयध्वज १ शूरसेन २ वृषभ ३ मधु और ऊर्जित ५ ॥ २६ ॥ इनमें जयध्वजका पुत्र तालजंघ और इस तालजंघके शत पुत्र हुये तालजंघनामवाले इन सबका क्षत्रियोंके संग्राममें सगरने संहार किया था ॥ २७ ॥ जो कुछ भी हो–तालजंघके इन सब पुत्रोंमें बड़ा वीतिहोत्र था। हे राजन् ! महात्मा वृष्णि तो मधुका पुत्र था। इस मधुके शत (१००) पुत्र उत्पन्न हुये थे। यद्यपि वृष्णि और यदुके कारणसे मधुका कुल माधव, वृष्णि और यादव इन तीन नामोंको प्राप्त हुआ था तो भी वृष्णि ही इस कुलमें श्रेष्ठ था। यदुका पुत्र क्रोष्टु उसका

जयध्वजात्तालजंघस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ क्षत्रं यत्तालजंघाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥ २७ ॥ तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २८ ॥ माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेति संज्ञिताः ॥ यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥ २९ ॥ श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ॥ शशबिंदुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥ ३० ॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ॥ तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥ ३१ ॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ॥ तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥ ३२ ॥

पुत्र वृजिनवान् ॥ २८ ॥ २९ ॥ वृजिनवान्का पुत्र श्वाहि, उसका पुत्र रुशेकु, उसका सुत चित्ररथ, उससे महायोगी महाभाग शशबिन्दु की उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥ यह प्रत्येक जातिके श्रेष्ठ चौदह महारत्नोंका (हाथी, घोडे, रथ, स्त्री, बाण, निधि, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, झाल्य, मणि, छत्र और विमानादिका) स्वामी और अपराजित चक्रवर्ती था। हे परीक्षित् ! इसके दश हजार (१००००) स्त्रियें थीं ॥ ३१ ॥ इनमेंसे प्रत्येक स्त्रीके लक्षलक्ष (१०००००) पुत्र उत्पन्न हुये। जिससे सब मिलकर दशलाख हजार पुत्र जन्मे अर्थात् एक अर्ब (१०००००००००) इन सब

पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पृथुयशा इत्यादि छः पुत्र विख्यात हुये * ॥ ३२ ॥ इन छः पुत्रोंमें पृथुश्रवाका पुत्र धर्म हुआ कि, जिस धर्मके उशना पुत्रने सौ(१००)अश्वमेध यज्ञ किये उशनाका पुत्र रुचक हुआ । इस रुचकके पुरुजित,रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ यह पाँच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३३॥ इनमें ज्यामोघकी भार्या शैब्या थी । इस ज्यामघके कोई सन्तान नहीं थी भार्याके डरसे और विवाह नहीं किया यह एक समय इन्द्र भवनसे भोज्या नामक कन्याको हरण करके लारहाथा ॥ ३४ ॥ कि,इस कन्याको रथपर बैठे देखकर शैब्या अत्यन्त क्रोधित हुई और अपने

धर्मो नामोशनास्तस्य हयमेधशतस्य याट् ॥ तत्सुतो रुचकस्तस्य पंचाशन्नात्मजाः शृणु ॥ पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्या मघसंज्ञिताः ॥ ३३ ॥ ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ नाविंदच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्याम हारषीत् ॥३४॥ रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ॥ ३५ ॥ स्नु षा तवेत्यभिहिते स्मयंती पतिमब्रवीत् ॥ अहं वंध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ॥ ३६ ॥

पतिसे बोली कि, यह कौनहै ? जिसको मेरे बैठनेके रथपर चढ़ाकर लारहेहो ॥ ३५ ॥ तब ज्यामघने भयके मारे उत्तर दिया कि, यह तेरी पतोहूहै शैब्या विस्मित होकर बोली कि, मैं तो बाँझहूं और मेरे कोई सौत भी नहीं कि, यह कन्या जिसके बेटेकी बहू होवे फिर यह हमारी पतोहू कैसे हुई ? ॥ ३६ ॥

* शंका–राजा शशविन्दुके दशसहस्र (१००००) स्त्रियोंमें, एक अर्व (१०००००००००) पुत्र हुए, यह कैसे कौतूहलकी बात है कहनेवाले तो महात्मा हैं परन्तु सुननेवालोंको भी लज्जा आतीहै, भला यह बात सत्य हो सक्ती है ?

उत्तर–शशविन्दुके दशसहस्र (१००००) स्त्रीथीं,सो मनुष्यका स्वरूप धारण करनेवाली नहींथीं वह तो राजा बडा योगीथा सो दश इन्द्रियोंकी प्रकृति,सहस्र कहिये गिन्तीसे रहित सोई राजाकी स्त्रीथीं उन स्त्रियोंसे सौ कोटि पुत्र हुए सो वह भी मनुष्य नहीं हुए, वह तो योगमें प्रेम सुख आदि असंख्य गुणमान यह पुत्र हुए, व्यासजीने वर्णन तो किया परन्तु गुप्तरीतिसे किया क्योंकि संसारके प्राणियोंकी समझमें ऐसी बात नहीं आती और आती भी है तो देरसे आती है शीघ्र नहीं आती. इसलिये संसारपर घटाकर यह वही किया है ।

ज्यामघने कहा कि, प्राणेश्वरी ! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी यह उसकी ही वहू होगी. हे राजन् ! विश्वेदेव और पितृ लोगोंने ज्यामघके इस दीन वचनपर आनन्द प्रकाश किया, क्योंकि, ज्यामघने पहिले उनकी बहुत दिनोंतक पूजा की थी। तो उन्होंने कृपा करके वरदान दिया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त शैब्याके गर्भाधान हुआ और यथायोग्य कालमें इस रानीने एक श्रेष्ट कुमार उत्पन्न किया, इस कुमारका नाम विदर्भ हुआ फिर कुमार विदर्भने इस पतिव्रता कन्याका पाणिग्रहण किया कि, जिसको पिता हरण करलाये थे। और इसी राजा विदर्भने अपने नामसे विदर्भ देश

जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ अन्वमोदंत तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ॥ ३७ ॥ शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥ स विदर्भ इति प्रोक्तमुपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कंधेऽनुद्रुह्युतुर्वसुयदुवंशानुवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥ तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनंदनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ॥ कुशिक स्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥ क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्वृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ॥ ततो दशार्हो नाम्ना ऽभूत्तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥

बसाया ॥२८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां यदुवंशानुकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा–चौबिस माहिं विद भंके, भये तीन सुत वीर। राम कृष्ण तक वंश सब, कहौ सहित विस्तीर ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कुमार विदर्भने अपनी स्त्रीके गर्भसे कुश और क्रथ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, इनका तीसरा पुत्र रोमपाद हुआ ॥ १ ॥ इस रोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुसे कृतिने जन्म ग्रहण किया। कृतिका पुत्र उशिक, उससे चेदि और चेदिसे दमघोप राजाकी उत्पत्ति हुई ॥ २ ॥ हे राजन् ! विदर्भात्मज क्रथका पुत्र कुंति

हुआ। उसका धृष्टि, धृष्टिका पुत्र निर्वृति उससे दशार्ह नाम पुत्र हुआ दशार्हके व्योम॥३॥ व्योमका पुत्र जीमूत जीमूतके भीमरथ. इनसे नवरथने जन्म ग्रहण किया इनके पुत्र दशरथ हुए॥ ४॥ इनके शकुनि, शकुनिके करम्भि, करम्भिके देवरात देवरातके देवक्षेत्र, उनके मधु, मधुसे कुरुवंश उत्पन्न हुआ और कुरुवंशका पुत्र अनु॥ ५॥ उसका पुत्र कुरुहोत्र, उसका पुत्र आयु और उससे सात्वतकी उत्पत्ति हुई। हे आर्य! सात्वतके भजमान, भंजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज यह सात पुत्र उत्पन्न हुये॥ ६॥ इनमें भजमानके दो स्त्रियें हुईं। एक स्त्रीसे

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः॥ ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः॥ ४॥ करंभिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः॥ देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः॥ ५॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः॥ भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोंधकः॥ ६॥ सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष॥ भजमानस्य निम्लोचिः किंकिणो धृष्टिरेव च॥ ७॥ एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः॥ शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो॥ ८॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठंत्यमू॥ यथैव शृणुमो दूरात्संपश्यामस्तथांतिकात्॥ ९॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः॥ पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च॥ १०॥ येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि॥ महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये॥ ११॥

निम्लोचि, किंकिण और धृष्टि, यह तीन और दूसरी स्त्रीमें भी शताजित, सहस्राजित, और अयुताजित् यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए॥ ७॥ ८॥ हे राजन्*। देवावृधकी सन्तान बभ्रु हुआ, इन पिता पुत्रके प्रसंगमें कवि लोग दो श्लोक गाया करते हैं। तिन श्लोकोंका अर्थ यह है। "हम दूरसे जैसा सुनते हैं। निकटसे वैसा देखते भी हैं॥ ९॥ महात्मा बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवावृध राजा देवताकी समान है। इस वंशमें पाँच

* बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयो श्लोकौ पठत्यमू॥ यथैव शृणुमो दूरात्सपश्यामस्तथांऽतिकात्॥ १॥ बभ्रु. श्रेष्ठो मनुष्याणा देवैर्देवावृधः समः। पुरुषा. पच ५ पष्टिश्च ६० षट्सहस्राणि ६००० चाष्ट च ८॥ २॥ अर्थात् ६०७३ छ· सहस्र तिहत्तर॥

पंक्ति षट्सहस्र और आठ जो यह ६०७३ पुरुष हुये यह सब बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे मोक्षको प्राप्त हुये थे" सात्वतके पुत्र महाभोज अति धर्मात्मा थे। इनके वंशमें भोजगणोंकी उत्पत्ति हुई ॥१०॥११॥ हे परन्तप ! सात्वतके चौथे पुत्र वृष्णिके सुमित्र और युधाजित् नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। उनमें युधाजित्के पुत्र शिनि और अनमित्र हुये। उनमें अनमित्रका पुत्र निम्न हुआ ॥ १२ ॥ इस निम्नके सत्राजित और प्रसेन दो पुत्र हुये। हे राजन् ! अनमित्रके शिनि नामक एक दूसरा पुत्र जो था उसके यहाँ सत्यक जन्मा ॥ १३ ॥ सत्यकका पुत्र युयुधान (सात्यकि) युयुधानका पुत्र जय, जयका पुत्र कुणि इस कुणिसे युगंधरका जन्म हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ ! अनमित्रके वृष्णि नामक दूसरे पुत्रसे ॥ १४ ॥

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद् युधाजिच्च परंतप ॥ शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥ सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ॥ अनमित्रसुतो योन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥ १३ ॥ युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ॥ युगंधरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥ श्वफल्कश्चित्ररथश्च गांदिन्यां च श्वफल्कतः ॥ अक्रूरप्रमुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसंगः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ॥ धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गंधमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ॥ तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥ देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ॥ पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनंदनाः ॥ १८ ॥ कुकुरो भजमानश्च शुचिः कंबलबर्हिषः ॥ कुकुरस्यसुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥

श्वफल्क और चित्ररथने जन्म लिया, श्वफल्कसे गांदिनीके गर्भमें अक्रूरजीके सिवाय और भी बारह पुत्र जन्मे जो कि बड़े विख्यात हुये ॥ १५ ॥ यथा–आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुविर्त, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष अरिमर्दन ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न गन्धमाद और प्रतिबाहु यह बारह और अक्रूर मिलकर तेरह पुत्र हुये और इनके सुचीरा नामक एक बहनभी हुई थी ॥ १७ ॥ अक्रूरजीके देववान् और उपदेव दो पुत्र हुये ! चित्ररथका पुत्र पृथु इसके अतिरिक्त विदूरथादि बहुतसे पुत्र हुये ॥१८॥दूसरे कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बल बर्हिष यह चार अन्धकके पुत्र हुये, उनमें कुकुरका

पुत्र वह्नि और वह्निका पुत्र विलोमा॥१९॥उसका पुत्र कपोतरोमा। उसकी सन्तान वह अनु हुआ कि, जिसका सखा तुम्बुरु गन्धर्व था, इस अनुका पुत्र अन्धक उससे दुन्दुभि उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र अरिद्योत और तिसका पुत्र पुनर्वसु हुआ ॥ २० ॥ पुनर्वसुके आहुक पुत्र और आहुकी कन्या हुई आहुकके देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुये। देवकके देववान्, उपदेव, सुदेव, देववर्द्धन यह चार पुत्र उत्पन्न हुये। इन चार पुत्रोंके धृतदेवादि सात बहनैं थीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ यथा धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी इन सात कन्याओंके साथ वसुदेवजीने विवाह

कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुंबुरुः ॥ अंधको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥ तस्याहुकश्चाऽऽहुकी च कन्या चैवाऽऽहुकात्मजौ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ॥ तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥ शांतिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥ २३ ॥ कंसः सुनामा न्यग्रोधः कंकः शंकुः सुहुस्तथा ॥ राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥ २४ ॥ कंसा कंसवती कंका शूरभू राष्ट्रपालिका ॥ उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥ शूरो विदूरथादासीद् भजमानः सुतस्ततः ॥ शिनिस्तस्मात्स्वयंभोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥ देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ॥ देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ॥ वसुदेवं भागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥

। ॥ २३ ॥ हे परीक्षित ! उग्रसेनके पुत्र कंस, सुनामा, न्यग्रोध; कंक, शकु सुहु, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान्, यह नव पुत्र उत्पन्न हुये॥२४॥ कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू, राष्ट्रपालिका यह पांच कन्यायें वसुदेवजीके छोटे भाई जो देवभागादि थे इनकी भार्या हुईं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! ले चित्ररथके बेटे विदूरथका जो वर्णन कर आये हैं, उन विदूरथसे शूर उत्पन्न हुये उसका पुत्र भजमान, उससे शिनिका जन्म हुआ, निका पुत्र भोज और उसका हृदीक नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ उससे देवबाहु शतधनु और कृतवर्मा देवमीढ यह चार पुत्र उत्पन्न

हुये। उनमें देवमीढका पुत्र शूर हुआ, उसके मारिषा नामक एक पत्नी थी। मारिषाके गर्भसे शूरने दश पुत्र उत्पन्न किये! उनके नाम यह हैं, यथा–वसुदेव, देवभाग, देवश्रवस, आनक ॥ २७ ॥ २८ ॥ सृंजय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक और वृक हे राजन्! जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुआ उससमय स्वर्गसे देवतालोगोंने नगाड़े और ढोल बजायेथे ✻ ॥२९॥ इसीलिये इन वसुदेवजीका एक नाम आनकदुन्दुभि है क्योंकि

सृंजयं श्यामकं कंकं शमीकं वत्सकं वृकम् ॥ देवदुंदुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥ वसुदेवं हरेः स्थानं वदं त्यानकदुंदुभिम् ॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पंच कन्यकाः ॥ कुंतेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात ॥ ३१ ॥ साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतिं प्रतोषितात् ॥ तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम्॥ ३२ ॥

यह भगवान् हरिकी उत्पत्तिके स्थान थे। शूरसेनके इन पुत्रोंके अतिरिक्त पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा ॥ ३०॥ और राजाधिदेवी नामक पांच कन्या हुईं यह इन दश पुत्रोंकी बहने थीं, राजा शूरसेनने अपने सखा कुन्तिराजको निःसन्तान देखकर अपनी पृथा कन्या उसको देदी ॥ ३१ ॥ किसी समय हे परीक्षित्! दुर्वासा ऋषिके गृहमें आनेपर पृथाने भलीभाँति सेवाकर उनको संतुष्ट किया और दुर्वासा मुनिने प्रसन्न होकर पृथाको

✻ शंका–मृत्युलोकमें मनुष्य जन्म तो लेते हैं परन्तु किसीके जन्म होनेपर देवता दुन्दुभि नहीं बजाते और हमने आजतक कभी सुनाभी नहीं कि, मनुष्योंके जन्म लेनेपर देवता दुन्दुभि बजाते है परन्तु वसुदेवके जन्म होनेपर देवताओंने दुन्दुभि क्यों बजाया ? जो कोई कहै कि, भगवान् वसुदेवके घर जन्मलेंगे इसलिये देवताओंने आगेही हर्ष मानकर बजाये हैं तो दशरथ आदि लेकर बहुत जनोंके भगवान् पुत्र हुए तो दशरथ आदिके जन्म समय देवताओंने दुदुभि क्यों नहीं बजाये !

उत्तर–जो मथुरामें वसुदेवने जन्म लिया तब उससमय दुदुभिके निकट चन्द्रमा खड़ा था, चन्द्रमाने जानलिया कि इस लड़केके पुत्र भगवान् होंगे मेरे वशका प्रकाश करनेवाला यह बालक होगा, ऐसा जानकर चन्द्रमाने दुदुभि बजाया कुछ देवताओंने दुदुभि नहीं बजाया, और दशरथके जन्मके समय सूर्य दुदुभिके समीप नहीं थे और जो होते तो सूर्य भी निश्चय दुदुभि बजाते अपने अपने वशकी वृद्धि देखकर सबको हर्ष होता है ॥

देवाह्वान विद्या शिखा दी। इसके उपरान्त पृथाने उस विद्याके बलकी परीक्षा करनेके लिये सूर्य भगवान्‌को बुलाया ॥ ३२॥ परन्तु इन सूर्य भगवान्‌को तत्काल आता हुआ देखकर पृथा अति विस्मित हुई और विनयसहित यह वचन कहने लगी । हे देव! हमने केवल परीक्षाके लिये मन्त्र पढ़ा था इस समय आपसे कोई विशेष काम नहीं है इसलिये आप क्षमा करें ॥ ३३ ॥ यह सुनकर सूर्यभगवान् बोले कि, देव दर्शन व्यर्थ नहीं होता हम तुममें गर्भाधान करेंगे, पृथा बोली कि, मैं कन्या हूं संसारमें दूषित हूंगी, सूर्यनारायणने कहा कि,तुम कन्या समझकर अपने मनमें कुछ संकोच मत करो हम ऐसा करेंगे कि, जिस प्रकारसे तुम्हारी योनि दुष्ट नहीं होगी ॥३४॥ हे महाराज परीक्षित् ! इसप्रकार गर्भाधान करके सूर्य भगवान् स्वर्गको चलेगये,

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मयमानसा ॥ प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥ अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् ॥ योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥ इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ॥ सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ॥ प्रपितामहस्तामुवाह पांडुर्वै सत्यविक्रमः ॥ ३६ ॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ॥ यस्यामभूद्दन्तवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ३७ ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविंदत ॥ संतर्दनादयस्तस्यां पंचासन्कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥ राजाधिदेव्यामावंत्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ॥ दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९ ॥

उसी समय, दूसरे दिवाकरकी समान पृथाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ ३५॥ तो पृथाने लोकापवादसे डरकर उस पुत्रको सन्दूकमें रखकर नदीमें बहा दिया, इसके उपरान्त पृथाको देखकर तुम्हारे परदादा महाराज सत्यविक्रम पाण्डु विवाह कर लेगये ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! शूरसेनकी कन्या श्रुतदेवा करूषवंशीय वृद्धशर्माकी भार्या हुई । उसमें दितिसुत दन्तवक्रने सनकादि ऋषियोंके शापसे जन्म लिया और केकय वंशीय धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया, उससे सन्तर्दनादि पांच पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ और अवन्तीके राजा

जयसेनने राजाधिदेवीका पाणिग्रहण करके उससे बिन्द, अनुबिंद नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। हे राजा! चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ इसका पुत्र शिशुपाल उत्पन्न हुआ कि, जिसका वृत्तान्त पहले वर्णन करचुके हैं। अब वसुवदेजीके भ्राताओंका वृत्तान्त कहते हैं। देवभागकी भार्या केसाके चित्रकेतु और बृहद्बल यह दो पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ४० ॥ देवश्रवसकी भार्या कंसवतीके गर्भसे सुवीर और इषुमान्ने जन्म ग्रहण किया। आनककी वनिता कंकासे सत्यजित् और पुरजित् यह पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ४१ ॥ सृञ्जयकी भार्या राष्ट्रपालीके गर्भसे वृषदुर्मर्षणादि

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य संभवः ॥ देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥ कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ॥ कंकायामानकाज्जातः सत्यजित्पुरुजित्तथा ॥ ४१ ॥ सृंजयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ॥ हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा ॥ तक्षपुष्करशालादीन्दूर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३ ॥ सुमित्राऽर्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी ॥ कंकश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥ ४४ ॥

उत्पन्न हुये। श्यामककी वनिता शूरभूमिसे हरिकेश और हिरण्याक्षने जन्म लिया ॥ ४२ ॥ वत्सकने मिश्रकेशीनामक अप्सरामें वृकादि पुत्र उत्पन्न किये। वृककी पत्नी दूर्वाक्षीसे तक्ष, पुष्करशाल, प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ शमीक वनिता सुदामिनीने शमीकसे सुमित्र, अर्ज्जुन और पाल इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये। आनकने अपनी स्त्री कर्णिकाके गर्भसे ऋतुधामा और जयनामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४४ ॥

हे महाराज परीक्षित् ! वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि अनेक पत्नियें थीं ॥ ४५ ॥ इन स्त्रियोंमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥ पौरवीसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूतादि बारह पुत्र जन्मे । मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक और शूरादि पुत्र उत्पन्न हुए । भद्राने कुलका आनन्द देनेवाला केवल केशी

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ॥ देवकीप्रमुखा आसन्पत्न्य आनकदुंदुभेः ॥ ४५ ॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विमलं ध्रुवम् ॥ वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत ॥ ४६ ॥ सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च ॥ पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाऽभवन् ॥ ४७ ॥ नंदोपनंदकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ॥ कौसल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनंदनम् ॥ ४८ ॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमांगदादयः ॥ इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९ ॥ विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुंदुभेः ॥ शांतिदेवात्मजा राजञ्छमप्रतिश्रुतादयः ॥ ५० ॥ राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ॥ वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१ ॥

नामक एकही पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमांगद, प्रभृति जन्मे और इलामें उरुवल्कसे आदि लेके यदु जिनमें मुख्य ऐसे पुत्र हुए ॥४९॥ धृतदेवाके वसुदेवसे विपृष्ठने जन्म ग्रहण किया शान्तिदेवामें शम प्रतिश्रुत प्रभृति पुत्र उत्पन्न किये ॥५०॥ इसीप्रकार उपदेवासे कल्प वर्षादि दशपुत्र उत्पन्न हुए । श्रीदेवाके वसु, हंस, सुवंशादि छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥

देवरक्षिताके गद प्रभृति नव पुत्र उत्पन्न हुए जसे साक्षात् धमने आठ वसु उपजाये वैसेही वसुदेवजीने सहदेवासे पुरुविश्रुतप्रभृति आठ पुत्र उत्पन्न किये । इस प्रकार उनके देवकीमें आठ पुत्र उत्पन्न हुये । यथा कीर्तिमांन्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजुँ, सम्मर्दन, भद्रं और अहीश्वर संकर्षणँ, यह सात पुत्र और ॥५२॥५३॥५४॥ हे परीक्षित् । वसुदेव देवकीके अष्टम पुत्र स्वयं विष्णुभगवान् (श्रीकृष्ण)हुए । और तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्राजी भी उनसेही उत्पन्न हुई ॥५५॥ अधिक क्या कहें ? जिस जिस समय धर्मका क्षय और अधर्मकी वृद्धि होती है उसी समयमें भगवान् वासुदेव अपना अवतार

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ॥ वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव ॥ वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥ कीर्तिमंतं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ॥ ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥५४॥ अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल ॥ सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥ ॥ ५५ ॥ यदायदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ॥ तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६ ॥ न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ॥ आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७ ॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ॥ अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥

लिया करते हैं ॥५६॥ नहीं तो जो मायाके नियन्ता, संगविहीन, सर्वसाक्षी और सर्वगत ईश्वर हैं उनका मायाविनोदके अतिरिक्त (सिवाय) जन्म अथवा कर्मका और क्या हेतु होसक्ता है ? ॥ ५७ ॥ जिसकी माया चेष्टा जीवकेलिये अनुग्रह स्वरूप है, क्योंकि यह मायाही सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी निदान है. इसलिये जो सर्व जीवोंके अनुग्राहक हैं । फिर उनको कर्मादिके वश पडकर जन्मादि संबंधकी क्या सम्भावना ? इनके मायाचेष्टित श्रूयमाण होनेपर उसके द्वारा सृष्टि प्रभृतिकी निवृत्ति होनेपर वही जीवके मोक्ष होनेका कारण होते हैं ॥ ५८ ॥

हे परीक्षित् ! बहुतसी अक्षौहिणीके राजा नृपरूपी असुरगण जब पृथ्वीका आक्रमण करते हैं और अपने बोझसे पृथ्वीको दबालेते हैं । तब भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान्का यह अवतार होता है । क्योंकि जिन कर्मोंको सुरेश्वर लोग मनके द्वारा तर्क करके भी नहीं करसक्ते भगवान् मधुसूदन संकर्षणके साथ उन सब कर्मोंको लीलाहीसे कर डालते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राजन् ! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं यद्यपि वह संकल्पही करके पृथ्वीके भारको हरण करनेमें समर्थ थे, परन्तु तो भी कलियुगमें जो भक्त होंगे, उनके प्रति अनुग्रह प्रगट करनेके लिये दुःख, शोक और तमोगु

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलांछनैः ॥ भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥ कर्माण्यपरिमेयानि मनसा
ऽपि सुरेश्वरैः ॥ सह संकर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ॥ अनुग्रहाय
भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद् यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ॥ श्रोत्रांजलिरुपस्पृश्य धुनुते
कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकैः ॥ श्लाघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृंजयपांडुभिः ॥ ६३ ॥
स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ॥ नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वांगरम्यया ॥ ६४ ॥

णका नाशक यह पुण्य यश भगवान्ने विस्तारित किया है यह श्रेष्ठयश साधुपुरुषोंकेलिये कर्णामृत और श्रेष्ठ तीर्थस्वरूप है केवल एकबार कर्णरूप अञ्जलिसे पान करनेपर पुरुष कर्मवासना त्याग देनेको समर्थ होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसलिये भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पाण्डुवंशीय सब मनुष्यगण भगवान्के चरित्रकी बड़ाई किया करते हैं ॥ ६३ ॥ उन्हीं भगवान्ने सुन्दर मनोहर मुसकानके दर्शन, उदार वचन, विक्रमलीला, समस्त रमणीक मूर्तिके द्वारा सब मनुष्य लोकको प्रमुदित किया था ॥ ६४ ॥

मकराकार कुण्डल, मनोहर कर्ण, चमकते दमकते हुए कपोल, इन सबसे श्रीभगवान्का वदन अनुपम शोभायमान था, विलासयुक्त मुसकान मानों उसमें लगी हुई थीं, इसलिये मानो सदाही उत्सव होता. उस वदनको दृष्टिके द्वारा पान करके नर नारी परितृप्त नहीं हुए। वह सब आनन्दित तो हुए थे परन्तु नेत्रोंके बारंबार पलक मारनेको न सहकर निमेषके बनानेवाले राजा निमिके ऊपर बारंवार कोप करते थे॥६५॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रआनन्दकन्दने अपने रूपसे जन्म ग्रहण किया, उसके पीछे मनुष्याकार हो पिताजीके घरसे व्रजको चले गये। वहाँपर शत्रुओंका नाश कर व्रजवासियोंकी अभिलाष पूर्ण कर धन संपत्तिको बढ़ाया। फिर बहुतसी

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं सुविलासहासम्॥ नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबंत्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमश्च ॥ ६५ ॥ जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः ॥ उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीज आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥ ६६ ॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामंतस्समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः॥ दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशविदर्भान्वयानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ समाप्तोऽयं नवमस्कन्धः ॥

सुन्दरियोंसे विवाह कर उनसे सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये। फिर लोकसमाजमें स्वकृत वेदमार्गका विस्तार करके अनेक यज्ञोंको कर, आपने अपनीही पूजा की ॥ ६६ ॥ फिर उन्होंने कौरव और पाण्डवोंमें द्वेष उपजाय पृथ्वीका भारी भार उतार दिया। और दृष्टिसेही युद्धभूमिमें खड़े हुए राजाओंको कम्पायमान कर दिया, फिर जब अर्ज्जुनने रणमें जय पाई तब उसकी कीर्तिका विकास कर उद्धवजीको परमतत्त्वका उपदेश किया। और अन्त समय अपने उसी स्वरूपसे परमधामको चले गये ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां विदर्भवंशवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इदं पुस्तकं क्षेमराज--श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालैन)
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।
संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कंधसमाप्तिः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धप्रारम्भः ॥

सवैया–जाकी कृपा शुक ज्ञानी भये, अतिदानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी ॥ जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये व्यास पुराणनके अधिकारी ॥ जाकी कृपाते त्रिलोकधनी, सुकहावत श्रीव्रजचन्द विहारी ॥ मेरेहूँ काज करेगी सोई, श्रीकृष्णप्रिया वृषभानु दुलारी ॥ १॥ कवित्त–काहूको भरोसोहै गणेश शेष शारदको, काहूको भरोसोहै कालिका मशानीको ॥ काहूको भरोसो उमा रमा सिया लक्ष्मीको, काहूको भरोसो महादेव ब्रह्मज्ञानीको ॥ काहूको भरोसो गंग यमुना हनुमानजीको, काहूको भरोसो सिंहवाहिनी भवानीको ॥ तनसे औ मनसे कहै बार बार शालिग्राम, मोको तो भरोसो एक राधा महरानीको ॥ १ ॥ दोहा–हे मुकुन्द गोविंद हरि, नन्दनन्दन घनश्याम । चरणशरण मोहिं राखिये, कृपासिन्धु सुखधाम ॥ १ ॥ पूरण दशमस्कंधमें

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥ राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ॥ तत्रांशनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥

कियो कृष्ण यश गान ॥ सोनब्बे अध्याय करि, कीन्ह्यों सकल बखान ॥ २ ॥ तहां प्रथम अध्यायमें, कंस आपनो काल । सुनि देवकि संभूत तब हने तासु षट बाल ॥१॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि, हे दीनदयालु ! आपने प्रथम नवमस्कन्धमें चन्द्रवंश और सूर्यवंशमें जो जो नामी राजा हुये उन दोनों वंशोंके सब राजाओंका अति विचित्र चरित्र विस्तारसहित वर्णन किया * ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! धर्मशील महाराज यदुका वंशभी विस्तारपूर्वक आपने अच्छी रीतिसे कहा परन्तु अब दयाकरके वह कथा कहो, जो, महाराज यदुके वंशमें बलरामजीके साथ परिपूर्ण रूपसे अवतार धारण करके संसारके सुख देनेको जो जो अद्भुत लीला भगवान् वासुदेवने की, उनको विस्तार सहित हमारे सामने वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

---

* शंका–सूर्यवंशसे चद्रवंश हुवा है और राजा परीक्षित्के प्रश्नवाले श्लोकसे प्रथम सोमवंशका नाम है, सो पीछे सूर्यवंश क्यों वर्णन किया । सूर्यवंश तो प्रथम वर्णन करना चाहिये ? यह बडे संदेहकी वात हैं, प्रथमवालेको पीछे वर्णन करना और पीछे वालेको प्रथम यह क्या कारणहै यहां कोई छन्दमीं नहीं जो आगे पीछे छन्दभ्रष्ट होजानेके कारण लिखदिया.

उत्तर–राजा परीक्षित्ने चद्रवंशमें श्रीकृष्णका जन्म सुनकर और अपनेभी कुलका सन्मान करनेके लिये श्लोकमें प्रथम चद्रमाका कीर्त्तन किया ॥

सब प्राणियोंके प्रतिपालक भगवान् भूतभावनने यदुकुलमें जन्म लेकर जो जो आश्चर्ययुक्त चारित्र किये वह भी सब यथावत् हमारे आगे कथन करो ॥ ३ ॥ इस संसारमें तीन प्रकारके पुरुष हैं—एक तो ज्ञानी, दूसरे मुमुक्षु, तीसरे विषयी, इन तीनों प्रकारके मनुष्योंको उत्तमश्लोक भगवान्के चारित्र परमप्रिय हैं, सो दिन रात उनको गाते रहते हैं और ज्ञानी लोगोंको परमेश्वरके चारित्र सुननेसे संसारकी सब वासना छूटनेका उत्तम उपाय दिखाई देताहै और जिन मुमुक्षु जनोंको मोक्षकी इच्छा है ऐसे नारद, उद्धवादिकोंको संसाररूपी रोगोंके दूर करनेको सजीवन मूल औषधिहै और विषयमें जिनका मन है ऐसे मनुष्योंके मनको और कानोंको परमानन्दका देनेवाला यही विषय है, सिवाय आत्मघातीके और पशुघातीके ऐसा कौनसा मनुष्य है जो परमेश्वरके गुणानुवादको सुनकर आनन्दित न होगा ? ॥४॥ चाहे कुछ हो परन्तु हमको तो वृन्दावनविहारी भक्तिहितकारीका गुण

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः ॥ कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमा नाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहा मे समरेऽमरंजयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिंगिलैः ॥ दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥ द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदंगं संतानबीजं कुरुपांडवानाम् ॥ जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः॥६॥

दिन रात गाना और उनके उत्तम उत्तम चारित्रोंकी कथा नित्य प्रति सुननी, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र तो हमारे कुलपूज्यही थे, संग्राममें देवताओंकोभी पराजय करनेवाले पितामह भीष्म और दुर्योधन आदि महारथी रूप जिसमें वडवानल सौबल और दुःशासन रूप महागम्भीर नीर, भारी भारी वीर और योद्धाओंकी जहाँ तहाँ घूम रही थी वही उसमें तरंगें, शल्य, द्रोण, कर्ण आदिक महारथी रूप ग्राह थे, मर्यादारूप राजाओंकी कतार थी उस कौरवरूपी अत्यन्त गम्भीर समुद्रने जो द्रौपदीका चीर हरा वही उस समुद्रका विस्तार था, ऐसे दुस्तर महासागरको मेरे पितामह युधिष्ठिर आदिकोंने भक्तिरूप नौकाका आश्रय लेके बछड़ेके खुरकी सदृश समझकर बेखटक पार उतर गये ॥ ५ ॥ इतनाही मत समझना कि, भगवान्ने कृष्ण अवतार केवल पाण्डवोंकीही सहायताके लिये धारण किया था, मेरे भी प्राणोंकी रक्षा श्रीकृष्णजीनेही की थी, कौरव और

पाण्डवोंकी सन्तानका बीजरूप जो मेरा देह अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध होनेको था, उसी समय मेरी माता उत्तराने महादुःखी हो श्रीकृष्णकी शरण ली, उत्तराको दुःखी जानकर भगवान्ने चक्र ग्रहण कर मेरी माताकी कुक्षिमें प्रवेश करके मेरे तनुकी रक्षा करी ॥ ६ ॥ हे विद्वन्! सब जगत्के प्रकाश करनेवाले प्राणियोंमें परमपुरुष कालरूप, संसारको मोक्ष देनेवाले और उसीरूपसे दुरात्मा लोगोंको मृत्युके देनेवाले, जिन्होंने भक्तोंके ऊपर दया करके नरशरीर धारण किया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला हमारे आगे कहो, हमको उनके पराक्रमोंके सुननेकी बड़ी लालसा है ॥ ७ ॥ संकर्षण बलदेवको आपने पहिले तो देवकीका पुत्र कहा था अब दूसरी बार रोहिणीका पुत्र कहा, यह बडे आश्चर्यकी बात है कि दो माताओंसे एक पुत्र कैसे उत्पन्न हुवा ॥ ८ ॥ भक्तभावन भगवान् अपने माता पिता वसुदेव देवकीका घर छोड़कर व्रजमें नन्द यशोदाके घर

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामंतर्बहिः पूरुषकालरूपैः ॥ प्रयच्छतो मृत्युमुताऽमृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ॥ देवक्या गर्भसंबंधः कुतो देहांतरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ॥ क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ॥ भ्रातरं चावधीत् कंस मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ॥ यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ॥ वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥

क्यों गये? और भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी जातिवालोंको संग लेकर कहाँ निवास किया ? ॥ ९ ॥ गोपसखाओंके संग नन्दकुमार भगवान्ने व्रजमें नन्द यशोदाके घर रहकर कौन कौनसे उदार चरित्र किये? और मथुरामें जाकर अपने मामा कंसको अपने हाथसे कैसे मारा? मामाको मारना किसी प्रकार योग्य नहीं फिर उसका वध क्यों किया? ॥ १० ॥ हे प्रभो! मनुष्यदेह धारण करके भगवान् वासुदेवने यादवोंके साथ मथुरापुरीमें कितने दिनतक वास किया? और श्रीकृष्ण महाराजके कितनी स्त्री थीं ॥ ११ ॥ हे सर्वज्ञ! जो जो प्रथम मैंने आपसे बूझा उसके सिवाय और जो कुछ चरित्र मेरे बूझनेसे शेष रहगये हैं वह सब मेरे सामने वर्णन करना चाहिये क्योंकि मेरा चित्त श्रीकृष्णके गुणानुवाद

सुननेको अधिक चाहताहै और इस विषयमें मेरी बड़ी श्रद्धा है ॥ १२॥ हे मुनिवर ! यद्यपि यह क्षुधा पिपासा जगत्में परम दुःसहहै, तोभी मैंने उसको त्याग दिया, परन्तु आपके मुखारविन्दसे जो भगवान्की अमृतरूपी कथाका अमृत टपकताहै उसको पीता हूं. उसीके पीनेसे मुझको भूख प्यासकी कुछ बाधा नहीं ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि, हे भृगुनन्दन शौनकजी ! इसप्रकार भागवतोंमें मुख्य श्रीशुकदेवजी महाराजने यह उत्तम प्रश्न सुनके राजा परीक्षितकी प्रशंसा करके कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका चारित्र कहना आरम्भ किया ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजऋषियोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! आपकी बुद्धिने अच्छा निश्चय कियाहै कि, जिस बुद्धिसे आपकी कृष्णकथामें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रीति हुई है ॥ १५ ॥

नैषातिदुस्सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ॥ पिबंतं त्वन्मुखांभोजच्युतं हरिकथाऽमृतम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भृगुनंदन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ॥ प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ॥ वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ॥ वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ॥ आक्रांता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥ गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रंदंती करुणं विभोः ॥ उपस्थितांतिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥ १८ ॥ ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ॥ जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥

भगवान् वासुदेवकी कथा तीन जनोंको पवित्र करै है, श्रोताको, वक्ताको और प्रश्न कर्ताको, जैसे श्रीगंगाजीका जल तीन जनोंको पावन करै है, पुरोहितको, यजमानको और ग्रहण करनेवालेको ॥ १६ ॥ हे राजन् ! अभिमानी राजा जिनका सदा दैत्योंकेसा स्वभाव उनकी अधिक सेनाओंके भारसे पृथ्वी अत्यन्त दुःखी होकर गायका रूपधर ब्रह्माजीके निकट गई ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शरीर जिसका क्षीण मन मलीन जिसको देखकर सबके मनमें दया उपजे, इस प्रकार रंभाती डकराती आँखोंसे आंसू बहाती हुई ब्रह्माजीके समीप जाकर खड़ी हुई और अपना सब दुःख उनसे कहा ॥१८॥ ब्रह्माजी पृथ्वीका दुःख सुनकर सब देवताओंको और शिवजीको अपने संग लेकर क्षीरसागरके समीप गये, वहाँ विष्णुभगवान् शेषशय्यापर

शयन कररहे थे ॥१९॥ वहाँ जाय समाधि लगाय, जगदीश्वर भगवान् सम्पूर्ण अर्थियोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले देवोंके देव विष्णु भगवान्‌की पुरुष सूक्तके इन षोडश मंत्रोंसे "सहस्रशीर्षा पुरुषः" स्तुति करने लगे ॥२०॥ समाधिहीमें ब्रह्माजीको आकाशवाणीहुई, उस वाणीको सुनकर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि, हे देवताओ! मुझको श्रीनारायणकी आज्ञा हुई है उसको तुम सब लोग सुनो और सुनकर विलम्ब मत करो शीघ्र वैसेही करो॥२१॥ हमारी प्रार्थनासे पहिलेही भगवान्‌ने इस पृथ्वीका दुःख दूर करनेका विचार करलिया है, अब जबतक सब देवपति भगवान् अपनी काल शक्तिसे वसुंधराका भार उतारनेके लिये धरणीपर मनुज अवतार धारण न करैं, तबतक तुम सब अपने अपने अंशोंसे यदुकुलमें जाकर जन्म लो ॥ २२ ॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ॥ गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव माचिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ॥ स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥२२॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ॥ जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवंतु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलाऽनंतः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् ॥ आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥

वसुदेव देवकीके भवनमें साक्षात् आदिपुरुष भगवान् आनकर प्रगट होंगे उनके संग विहार करनेके लिये और हितके हेतु देवपत्नीभी व्रजमें जन्म धारण करैं ॥२३॥ और सहस्र मुखवाले स्वयंप्रकाश विष्णु भगवान्‌की अनंत कलासे शेषनागजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रके संग लीला करनेके लिये बलभद्र नामसे प्रथमही वसुदेवजीके घर जन्म धारण करेंगे ॥२४॥ फिर देवकीके गर्भको खैंचनेके लिये और यशोदाको मोह करनेके लिये परमेश्वरकी माया सब संसारके मनको मोहनेवाली, वह भी भगवान्‌की आज्ञाको मानकर अपने अशोंसहित यशोदाके भवनमें उत्पन्न होगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने देवताओंको आज्ञा दी और पृथ्वीको समझाय बुझाय आप अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥२६॥

यदुपति शूरसेन पहले मथुरापुरीमें बसता हुआ माथुर शूरसेन आदि देशोंको भोगता भया ॥ २७ ॥ यह मथुरापुरी सदासे यदुवंशियोंकी राजधानी थी और इसी मथुरा पुरीमें श्रीकृष्णभगवान् सदा विराजमान रहतेथे ॥२८॥ कंसकी अनीतिसे उग्रसेन अत्यन्त दुःखी रहतेथे और उग्रसेनका भ्राता जो देवक था उसकी कन्या देवकी जब विवाहने योग्य हुई, तब उसने उग्रसेन और कंससे बूझा इस लड़कीका विवाह किसके साथ करें? कंस बोला आजकल यदुवंशियोंमें शूरसेन बड़ा तेजस्वी और प्रतापी राजा है उनके पुत्र वसुदेवके साथ इसका विवाह कर दो तो अच्छा है, देवकने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाय शुभ लग्न ठहराय राजा शूरसेनके घर टीका भेजदिया, शूरसेन बड़ी धूमधामसे बरात सजाय सब देशके नरेश संग ले सब यदुवंशी मिल मथुरा पुरीमें वसुदेवजीको विवाहनेके लिये गये, जब बरात मथुरासमीप आई तब उग्रसेन देवक और कंस अपनी सेना संग

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम् ॥ माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साऽभूत्सर्वयादवभूभुजाम् ॥ मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ॥ देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥३०॥ चतुश्शतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ॥ अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥३१॥

ले आगे बढे और आदरसत्कारसे अगौनी कर बरातको नगरमें लाये और सुन्दर जनवासा दिया, फिर सब जनोंको अच्छे अच्छे भोजन जिमाय मंडपमें बैठाय वेदविधिसे देवकने वसुदेवको कन्यादान दिया और बरातको विदाकिया; शूरसेनका पुत्र वसुदेव अपनी विवाहिता स्त्री देवकीके साथ अपने घर जानेको रथपर बैठे ॥२९॥ और उग्रसेनका पुत्र कंस अपनी भगिनी देवकीको प्रसन्न करनेके लिये घोड़ोंकी राश पकड़कर रथ हांकनेको बैठा, उसके संग सैकडों रथ रत्नजटित स्वर्णके औरभी थे ॥ ३० ॥ अपनी कन्यापर अत्यन्त प्रीति करनेवाले देवकने देवकीको बिदाके समय स्वर्णकी माला और रत्नजटित अम्बारीवाले ४०० हाथी, पन्द्रहसहस्र १५००० घोड़े, अठारहसौ १८०० रथ ॥ ३१ ॥

और शृंगारसहित सुंदर सुकुमार दोसौ दासी वर कन्याकी सेवाके लिये दीं ॥ ३२॥ दूलह दुलहनकी यात्राके समय मंगलके लिये, शंख भेरी मृदंग दुंदुभि आदि सब बाजे बरातके बजने लगे और शूरसेन देवक आदि सब बरातके पहुँचानेको संगचले॥३३॥जब मथुरासे थोडी दूर बाहर बरात निकली और देवकीके रथके घोड़ोंकी बागडोर पकड़े जो कंस हाँक रहाथा उस समय कंसको आकाशवाणी हुई अरे मूर्ख ! जिसको हर्ष सहित तू पहुँचाने जाता है इसी देवकीके आठवें गर्भमें तेरा मारनेवाला उत्पन्न होगा॥३४॥इसप्रकार वाणीको सुन वह अधम पापी भोजवंशियोंके कुलको कलंक लगानेवाला कंस बहनको मारनेके लिये उपस्थित हुवा और खड्ग हाथमें ले केश पकड़ देवकीको रथसे नीचे खैंच ली और क्रोधसे दाँत चबाय चबाय होठोंको काट काट कहने लगा कि, जिस वृक्षको जड़सेही उखाड़ डाले तो फिर उसमें फल फूल क्यों लगेगा ? इसलिये इसीको

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ॥ दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शंखतूर्यमृदंगाश्च नेदुर्दुंदुभयः समम् ॥ प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमंगलम् ॥ ३३ ॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाऽशरीरवाक् ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हंता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ॥ भगिनीं हंतुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥ तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ वसुदेवो महाभाग उवाच परिसांत्वयन् ॥ ॥ ३६ ॥ वसुदेव उवाच ॥ श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ॥ स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ॥ अद्य वाऽब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥

न मारूं जो पुत्र होनेकी संशय ही न रहै, फिर निर्भय होकर अपना निष्कंटक राज्य करूं ॥ ३५ ॥ यह गति देख, उस निन्दनीय कर्म करनेवाले महामूर्ख निर्लज्ज कंसको बड़े ऐश्वर्यवान् वसुदेवजी स्तुति और युक्तियों और करुणा भरे मधुर वचनोंसे शान्त करके बोले कि, हे कंस ! तुम बड़े शूरवीर और योद्धाओंमें प्रशंसनीय गुणज्ञ और भोजवंशका सुयश फैलानेवाले हो देखो ! इस समय, एक तो विवाहका उत्साह, दूसरे यह सीधी साध्वी जाति स्त्री अबला, तीसरे तुम्हारी प्यारी बहन, फिर इस बिचारी दीन अबलाको मारना कौन धर्म है बली कभी अबलापर हाथ नहीं डालते क्योंकि स्त्रियोंके मारनेका शास्त्रमें महापाप लिखा है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो मृत्युके भयसे इस बिचारी दीनको मारो हो तो मृत्यु तो किसी

प्रकार मिटतीही नहीं क्योंकि मृत्यु तो जन्मधारी मनुष्योंके संगही लग रहीहै, जिस दिन मनुष्यका जन्म होता है, उसी दिन मृत्यु भी संग जन्मतीहै और जो अधिक जीवनके लिये इसको मारते हो तो मृत्यु आज अथवा सौ (१००) वर्षके अनंतर देह धारीका मरण निःसन्देह होगा॥३८॥ और मनुष्यको उस समय पाप करना भी उचित है, जो यह शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण करना न पड़े, सो यह कदापि होना नहीं क्योंकि मरण समय भी यह प्राणी अपने वशमें नहीं होता, वहाँभी कर्मोंके अनुसार प्रथम दूसरे शरीरको प्राप्त कर लेता है तब पीछे इस शरीरको त्यागै है॥३९॥ जैसे चलनेके समय मनुष्य अपना अगला पाँव सँभालकर रखलेता है तब पिछले पाँवको उठाता है जैसे जोंक चलते समय पहिले अगले तृणको पकड़ लेती है तब पिछले तृणको छोड़ती है ऐसेही यह देह जिसमें अनेक प्रकारके संस्कार लग रहे हैं जीवात्मा दूसरे शरीरको प्रथम ग्रहण

देहे पंचत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ॥ देहांतरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ॥ यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ ४०॥ स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः॥ दृष्टश्रुताभ्यां मनसाऽनुचिंतयन्प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः॥ ४१ ॥ यतोयतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पंचसु ॥ गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥

करलेता है पीछे पिछली देहको छोड़ता है ॥ ४० ॥ स्वप्नमें मनुष्य जैसे देखेहुए और सुनेहुए देह जिसमें अनेक प्रकारके संस्कार लग रहे हैं और मन उनके वशमें है वह मन उसीमें बस देहका चिन्तवन करता रहताहै और वह मनुष्य स्वप्नमेंभी वैसाही देखता है और उसी देहको अपनी समझकर कहता है, मैं हूं 'यह मेरा देह दुःखी है, ऐसे अपने आपको राजा और इन्द्रादिककी समान मानकर अभिमान करता है और जाग्रत देहकी सम्पूर्ण स्मृति भूलजाता है, फिर उसी संस्कारवाले मनसे मनोरथ देहको भूलकर जाग्रत्‌मेंभी उसी प्रकारके देहको देखता है और थोड़ी देरमें कहने लगता है 'मैं हूं यह शरीर मेरा है' ऐसा मानता है और स्वप्नके देहकी स्मृति कुछभी नहीं रहती. इसी प्रकार कर्मोंके अधीन होकर पूर्वदेहको छोडदेताहै और वैसाही और देह प्राप्त कर लेता है ॥ ४१ ॥ फलके देनेवाले कर्मोंसे प्रेरित विकारोंसे भराहुवा जो मन है, सो मायारचित महापंच

भूतोंके बनेहुए मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादिक जो शरीरहैं, जिस जिसकी ओरको दौडताहै और अभिमानको बांधताहै, उस उस शरीरमें जीवको संग लेकर जन्म लेताहै, यह मनही सब बातका कर्ता हर्ता ठहरा तो मनहीको जन्म लेना चाहिये. परंतु अकर्ता आत्मा क्यों जन्मताहै ? आत्मा उस मनको यह करके मानताहै कि, 'मैं हूं' इसकारण आत्मा उस मनके साथ जन्म लेताहै॥४२॥जैसे सूर्य चन्द्रमादिकोंकी ज्योति जलके भरे घटादिक पात्रोंमें प्रतिबिम्बरूप होकर पवनके वेगसे कंपायमान प्रतीत होते हैं, ऐसेही पुरुष अपनी अविद्यारचित देहमें रागके कारण प्रविष्ट आत्मा अभिमान करके मोहको प्राप्त होताहै, आत्मामें देहादिककी भ्रान्ति होनेसे जैसे सूक्ष्म और स्थूल देहादिकके धर्म आत्मामें दिखाई देतेहैं, वैसेही देहादिकमें आत्माकी भ्रांति होनेसे प्रेमपात्रत्व आदि आत्माके धर्म देहादिकमें प्रतीत होतेहैं, इसलिये इन्द्र और गर्दभादिके तनुमें प्रीति समान होनेसे मृत्युसे बचनेका

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ॥ एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥४३॥ तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः ॥ आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४ ॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्तिकोपमा ॥ हंतुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः॥४५॥श्रीशुक उवाच ॥ एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोपि दारुणः ॥ न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥४६॥ निर्बंधं तस्य तं ज्ञात्वा विचिंत्यानकदुंदुभिः ॥ प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

प्रयत्न करना वृथा है ॥ ४३ ॥ इसलिये अपने आत्माका कल्याण करनेवाले प्राणीको चाहिये किसीसे शत्रुभाव न रक्खै, क्योंकि शत्रुता करनेवाले पुरुषको दूसरे शत्रु और यमसे भी भय होता है ॥ ४४ ॥ इसलिये हे राजन् ! यह तुम्हारी छोटी बहिन है और अभी बालक है, दीन है, अबला है, देखो काठकी पुतलीकी नाईं तुम्हारे आगे खड़ी है और तुमको परमेश्वरने दीनहितकारी और स्वजनभयहारी बनाया है, यह मंगलरूपिणी आपके मारने योग्य नहीं, क्योंकि दीनको और पराधीनको मारनेका बडा दोष है ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशी राजा परीक्षित ! ऐसे प्रियवचन कहकर वसुदेवजीने साम और भेदसे समझाया, तो भी एक तो आपही दुष्ट, दूसरे राक्षसोंका साथी, तीसरे आकाशवाणीका भय, उस महाक्रूर कंसने वसुदेवजीकी बात एक भी न मानी ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने समझा कि, यह हठीला अपनी हठको कभी नहीं छोडेगा, ऐसा

विचारकर और देवकीकी मृत्यु निकट आई जानकर, समय बितानेके लिये अपने मनमें यह विचारने लगा ॥ ४७ ॥ चतुर लोगोंको उचित है कि, जहांतक अपना बल, विद्या, बुद्धि पहुँचे वहाँतक मृत्युको दूर करनेका उपाय करै, जब इतने प्रयत्नोंसेभी मृत्युसे न बचै तो फिर पुरुषका कुछ दोष नहीं है ॥ ४८ ॥ इसलिये पहिले तो इस मृत्युरूप कंसको देवकीके जो पुत्र होंगे उनके देनेका वचन बन्धकर किसी प्रकार पहिले तो इस दीन देवकीके प्राण बचाऊ, कदाचित् कोई कहे कि, पुत्र देके देवकीके प्राण बचाये यह तो बड़ी अनीति है ? नहीं, समयका टालदेना बड़े चतुरोंका काम है, जब देवकीके पुत्र होगा उस समय देखा जायगा, अब तो किसी प्रकार यह जीती बचै, न जानिये बालकके जन्मनेसे पहिले यह दुष्ट

मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद् बुद्धिबलोदयम् ॥ यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥ प्रादाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् ॥ सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ ॥ विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया ॥ उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ॥ एवं हि जंतोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥ एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ॥ पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरस्सरम् ॥ ५२ ॥

कंसही मरजाय तो फिर कुछ किसी बातका खटकाही न रहै, कदाचित् इसके पुत्रही न होय और जो पुत्र होय ही और कंस दया करके उसको न मारे, तो अवश्यंही मेरा पुत्र कंसको मारैगा और जो यह उलटी बात न होय और कोई कहे कि, तुम्हारा पुत्र बालक इस तरुण कंसको कैसे मारसक्ता है? तो आप ही वसुदेवजी अपने वचनका समाधान करते हैं कि, विधाताकी गति किसीके जाननेमें नहीं आती, जो प्राणी मरनेके योग्य हैं वह नहीं मरते और जो मरनेके योग्य नहीं हैं वह मरजाते हैं ॥ ४९॥५० ॥ देखो जब वनमें आग लगती है तो जो वृक्ष जलनहार नहीं हैं वह समीपके बच जाते हैं और जो जलनहार दूरके होते हैं वह जल जाते हैं जैसे गॉवमें अग्निके पासके घर जलनेसे रहजाते हैं और दूरके जल जाते हैं

* श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जहाँतक अपनी बुद्धि पहुँची वहाँतक वसुदेवजीने विचार करके बड़े प्यारसे कंसका आदर सत्कार किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ कंसको विश्वास दिखानेके लिये वसुदेवजी लोकरीतिकी सदृश प्रफुल्लित मुख कमलसे, महाक्रूर निर्लज्ज कंसके सामने मुसकराकर बोले, परन्तु मन तो अत्यन्त ही दुःखी था ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे सौम्य ! जो भय आपके चित्तमें आकाशवाणीने

प्रसार्य वदनांभोजं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वि साऽऽहाऽशरीरवाक् ॥ पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ॥ वसुदेवोपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥

उत्पन्न किया है वह भय तुम किंचिन्मात्रभी मत मानो, क्योंकि देवकीसे आपको कुछ भय है ही नहीं, परन्तु इसके पुत्रोंसे कुछ भय है सो वह भय मैं आपका दूर करे देताहूं, जो पुत्र इसके होगा उसको मैं उसी समय आपको समर्पण कर दूंगा ॥५४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! वसुदेवजीके वचनको सत्य मानकर कंसने अपनी बहिनको मारनेसे छोड दिया और वसुदेवजीभी प्रसन्न हो कंसकी बडाई करके बरात

* इस बातपर एक मनोहर दृष्टान्त है ॥ एक सेठजी मन्दिरमें बैठे हनुमान्‌जीकी पूजा कररहे थे, उसी समय नगरमें आग लगी और सैकडों घरोंको फूकती फांकती सेठजीके घरके निकट पहुँच गई, तब तो सब लोगोंने सेठजीसे जाकर कहा कि, आग आपके घरके समीप आगई शीघ्र पूजा छोड छाडके चलो कुयेंसे पानीके दश बीश घडे भरकर रखलो जब घरपर आग आगई तो पानी कहां ! सेठजी बोले कि, जिसकी हम पूजा करते हैं क्या आग वह नहीं बुझा सक्ता ? और वह हमारे घरको नहीं बचा सक्ता ! हमको कुछ प्रयोजन नहीं, जिसका घर होगा वह आप बुझालेगा, जब उसका, नाम पवनपुत्र है तो क्या अपने पिताको नहीं समझा सक्ता ! जिसके लिये हम बरसोंसे तन मन लगा रहे हैं क्या वह एक घडीको भी हमारा काम नहीं करसक्ता मुझको पूर्ण विश्वास है कि, वह मेरा कार्य सिद्ध करैगा—

कवित्त—लंकाको जरायो और सीताको बचाय दियो, आँच नाहिं आई विभीषणके मकानको । लगतेही शक्ति जब लखन गिरे पृथ्वी पर, औषधिको भेजो राम हनुमत् बलवानको ॥ मिली ना सजीवन जब पर्वत उठाय लाये, लखनको जिवायो शिरनायो भगवानको ॥ दुष्टनके भक्षक और रक्षक हरि भक्तनके, मोको तो भरोसो उन वीर हनुमानको ॥ १ ॥

उसी समय पुरवाई पवनसे पछा दिया पवन होगई और सेठजीका घर छोडकर पवन पीछेको लौटी और सेठजीका घर छोडकर और सैकडों घर फूकदिये, देखो किस किसकी आशा थी और कौन कौनसे घर जल गये, ऐसेही प्राणियोंके जन्म मरणका कारण भी विचारमें नहीं आता ॥

समेत देवकीको लेकर अपने घर आये ॥५५ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान्‌की पूजनेवाली देवकीने समय पाकर आठ पुत्र और एक कन्या एक एक वर्षके उपरान्त उत्पन्न किये ॥५६॥ प्रथम कीर्तिमान् पुत्र हुआ, उसको वसुदेवजी बड़े कष्टसे कंसके पास लेगये, क्योंकि मिथ्या बोलनेसे वसुदेवजी बहुत डरते थे ॥ ५७ ॥ अपने वचनोंका निर्वाह करनेवाले पुरुष ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका सहन नहीं करसक्ते, देखो वसुदेवजीने अपने पुत्रको अपने हाथसे मृत्युके मुखमें देदिया एक परमेश्वरके सिवाय कोई पदार्थ सत्य नहीं है, ऐसे समझनेवाले मनुष्योंको किसी बातकी अभिलाषा नहीं रहती, इसलिये वसुदेवजीने पुत्रके लाड प्यारको पहिलेसे पहिलेही त्याग दिया क्योंकि विद्वान् पुरुषोंको सिवाय सत्यके और किस वस्तुकी अपेक्षाहै और वसुदेवजीने यह भी नहीं समझा था कि, में पुत्रको आप ले जाऊंगा तो कंस दयाकरके न मारेगा, यह बात

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ॥ पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्तिमंतं प्रथमजं कंसायानकदुंदुभिः ॥ अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥ किं दुस्सहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ॥ किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ॥ कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ॥ अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युम विहितः किल ॥ ६० ॥ तथेति सुतमादाय ययावानकदुंदुभिः ॥ नाभ्यनंदत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१ ॥

वसुदेवजीके मनमें सैकड़ों कोसतकभी नहीं थी, क्योंकि दुष्टजन कौनसी बात नहीं कर सक्ता ? कंससे दुष्टके मनमें दया कब आसक्ती है. कोई कहै पहिली पहिलका तुरतका जन्मा पुत्र देवकीने कैसे दे दिया ? देवकीने समझा कि,जिसका काल नहीं उसको मारनेवाला कोई नहीं और जो मारभी डाले तो ऐसे पुत्र बहुत होंगे.मेरे सच्चे पुत्रतो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वैकुण्ठविहारी भक्तहितकारी हैं, यह समझकर कंसको देदिया ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! वसुदेवजीकी समता और सत्यता देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे कंस बोला कि, ॥ ५९ ॥ इस बालकको अपने घर फेरकर ले जाओ, क्योंकि इससे मुझको कुछ भय नहीं है तुम्हारे आठवें पुत्रसे मेरी मृत्यु निश्चय रची है ॥ ६० ॥ ऐसाही होगा वसुदेवजी यह कह पुत्रको लेकर

अपने घरको चलदिये, परन्तु कंसके वचनका कुछ विश्वास नहीं किया, क्योंकि कंस क्षणिकबुद्धि है उसका मन उसके वशमें नहीं है, अब फेरदिया है थोड़ी देरमें फिर मँगाले, जब यह बात नारदजीने सुनी कि, वसुदेवजीका पुत्र कंसने फेरदिया, उसी समय कंससे आनकर कहा ॥ ६१ ॥ व्रजमें नन्दजीसे आदि लेकर जो गोप ग्वाल हैं और वसुदेवजीसे आदि लेकर वृष्णि यादव और देवकीसे आदि लेकर यादवोंकी स्त्री ॥ ६२ यह जो तुम्हारे समीपवर्ती हैं सो हे कंस ! यह सम्पूर्ण वसुदेवजी और नन्दजीके वंशमें, जाति, बन्धु,सुहृद्, यह सब देवताही आनकर प्रगट हुये हैं ॥६३॥ पृथ्वीपर जो दैत्यलोगोंका भार बढ़ा है, उसके उद्धारके लिये भगवान्‌ने अवतार लेनेके लिये यह उपाय रचा है, सो तू जान ले, फिर आठ लकीरें पृथ्वीपर खैंचकर दिखाईं इधरसे गिनी तो आठ आईं और उधरसे गिनी तो आठ आईं और बीचमेंसे गिनी तो आठ आईं तब नारदजी बोले कि, आठवाँ

नंदाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ॥ वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ॥ ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसाय भगवाञ्शशंसाभ्येत्य नारदः ॥ भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ॥ देवक्या गर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥ ६५ ॥ देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ॥ जातंजातमहन्पुत्रं तयोरजनशंकया ॥ ६६ ॥ मातरं पितरं भ्रातन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ घ्नंति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥ आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ॥ महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥

गर्भ इनमें कौनसा समझना चाहिये ॥६४॥ इसप्रकार समझा बुझाकर नारदजी तो चले गये, तब कंसने यादवोंको देवता समझकर और देवकीके आठवें गर्भमें विष्णु भगवान् अवतार धारण करके, मुझको मारेंगे यह निश्चय समझके॥६५॥ देवकी और वसुदेवको बन्दीघरमें बंदकर पांवोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकडी डालदीं और जो जो इनके पुत्र हुये विष्णु भगवान्‌की शंका मान मँगवा मँगवाकर मारता रहा ॥६६॥ संसारमें अपने प्राणोंकी रक्षा करनेवाले अभिमानी घातकी और लोभी राजा, माता, पिता, भ्राता और मित्रोंकोभी मारडालते हैं ॥६७॥ और कंस यह भी जानता था कि; मैं पहिले जन्ममें कालनेमिनाम एक बडा राक्षस था और विष्णुने मुझको अपने हाथसे मारा था, सो अब मैं इस जन्ममें कंस हुवा हूं, यही

समझकर उसने यादवोंसे वैर किया ॥ ६८॥ यदुवंशी, भोजवंशी,अन्धक वंशियोंके राजा उग्रसेन अपने पिताको कारागारमें डालकर महाबली कंस आपही शूरसेन देशका राज्य करने लगा ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां कंसजन्मचारित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥दोहा–इस द्वितीय अध्यायमें, कंसहतनहितदेव । गर्भान्तर्गतदेवकी,विनवत विष्णु अभेव॥१॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! प्रलम्बासुर, बक, चाणूर,तृणावर्त,अघासुर, मुष्टिक,अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशि,धेनुकासुर॥१॥असुरोंके राजा बाणासुर और भौमासुरको संग लेकर मगध देशके राजा जरासंध आदि अपने सम्बन्धियोंकी सहायतासे महाबली कंस यादवोंको अत्यन्त दुःख देने लगा॥२॥यादवलोग कंसके भयसे दुःखित

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजांधकाधिपम् स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे श्रीकृष्णावतारहेत्वादिनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रलंबबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥ मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ॥ यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपांचालकैकयान् ॥ शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥ ३ ॥ एके तमनुरुंधाना ज्ञातयः पर्युपासत ॥ हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनंतं प्रचक्षते ॥ गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ॥ यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

होकर कुरुदेश, पांचाल, केकय,शाल्व, विदर्भ, निषध,विदेह, कोसलादि देशोंमें जा जाकर वास करनेलगे॥३॥और बहुतसे अक्रूरादिक यादव कंसके आज्ञाकारी बन दिन रात उसकी सेवा करने लगे, जब कंसने देवकीके छः बालक मार डाले ॥४॥ तब विष्णु भगवान्‌की कला शेषजी जिनका नाम कहतेहैं सो देवकीके गर्भमें स्थितहुये, यह गर्भ देवकीको हर्ष और शोकका बढानेवाला हुआ क्योंकि आनन्दरूप भगवान्‌का अवतार होगा इस बातका तो हर्ष और पहिलेके बालकोंकी समान इस बालककोभी कंस मार डालेगा इस बातका शोक दिन रात रहताथा ॥५॥ तब विश्वभावन भगवान्‌ने जाना

कि, मेरे प्रिय यादवोंको कंस बहुत दुःख देताहै उस समय अपने नेत्रोंसे योगमायाको प्रगट करके उसको आज्ञा की ॥६॥ कि, हे भद्रे! हे देवि! हे कल्याणरूपिणि! जो ग्वाल और गौवोसे शोभित व्रजभूमि है, तू वहाँ जाकर वसुदेवकी स्त्री रोहिणी नन्दरायजीके घर गोकुलमें है और दूसरी वसुदेवजीकी स्त्रियें कंसके भयसे गुप्त स्थानमें वास करती हैं ॥ ७ ॥ और देवकीके उदरमें मेरी कलारूप शेषनागजीने प्रवेश किया है, उनको वहाँसे निकालकर रोहिणीके उदरमें पहुंचादे कि, इस बातको कोई दूसरा न जाने और सब लोक तेरा यश बखानेंगे ॥८॥ हे मंगलरूपिणि! जब तु गर्भको खैंचेगी तो पीछे में परिपूर्णरूपसे देवकीके पुत्रभावको प्राप्त हूंगा और तू नंदरायजीकी भार्या यशोदाके उदरमें उत्पन्न हो ॥ ९ ॥ हे कल्याणि!

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ॥ रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नंदगोकुले ॥ अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसंति हि ॥ ७ ॥ देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥ ८ ॥ अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ॥ प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नंदपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥ अर्चिष्यंति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ॥ धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥ नामधेयानि कुर्वंति स्थानानि च नरा भुवि ॥ दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥११॥ कुमुदा चंडिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ॥ माया नारायणीशानी शारदेत्यंबिकेति च ॥ १२ ॥ गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ॥ रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ॥ प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत् ॥ १४ ॥

तू पुत्रादिकोंकी कामना करनेवाले मनुष्योंकी सब मनोकामना पूर्ण करनेवाली है और सब संसारके मनुष्य धूप, दीप, फल, फूलादि सामग्री और बलिदान, भेंटकर कलियुगमें तेरा पूजन करेंगे और तू उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करेगी ॥१०॥ पृथ्वीपर मनुष्य तेरे स्थान, भवन औरसुन्दर सुन्दर मन्दिर बनावेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी ॥ ११ ॥ कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका यह नाम धरेंगे ॥ १२ ॥ गर्भके खैंचनेसे संसारके लोग उस बालकका नाम 'संकर्षण' कहेंगे और जगत्को रमानेसे उसको 'राम' कहेंगे और महाबलशाली होनेसे उनको 'बलभद्र' कहेंगे ॥१३॥ इस प्रकार भगवान्की आज्ञा पातेही उनकी परिक्रमा दे, वचनोंको स्वीकार

करके पृथ्वीपर आनकर वही कार्य किया और मोहनीरूप वन मथुरामें वसुदेवके घर आई "और जो गर्भ छिपाकर लाई थी वह रोहिणीके उदरमें प्रवेश किया" और सव गोकुलवासियोंने यही जाना कि, पहिलाही आधान है, योग मायाका भेद किसीको प्रगट न हुवा, जव पूरे दिन हुए तो श्रावण सुदी चौदस वुधवारको वलदेवजीने गोकुलमें जन्म लिया और योगमायाने वसुदेव देवकीको स्वप्न दिया कि, मेंने तुम्हारे पुत्रको गर्भसे लेजाकर रोहिणीको देदियाहै अव तुम किसी वातकी चिन्ता मत करना, यह वात सुनतेही अचानक वसुदेव, देवकी चौंककर सोतेसे जाग उठे और देवकी अपने पतिसे कहने लगी कि, यह काम तो भगवान्ने वहुत अच्छा करदिया, परन्तु कंसको इसी समय जाकर जतादेना चाहिये, न जानिये कि, पीछे वह

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया॥ अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥
भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ॥ आविवेशांशभावेन मन आनकदुंदुभेः ॥ १६ ॥

दुष्ट क्या उपद्रव मचावे, यह सोच समझकर रखवालोंको वुला सव वृत्तान्त कह दिया; उन्होंने ज्योंका त्यों कंसको जा सुनाया कि, हे महाराज! आज देवकीका गर्भ पतित होगया, वालक पूरा नहीं हुवा यह वात सुनतेही कंस अकुलाकर वोला कि, जो कुछ हुवा सो हुवा परन्तु अव आगेको तुम आठवें गर्भको अच्छी चौकसी रखना, क्योंकि मुझको आठवेंही गर्भका वडा खटका है ॥१४॥ और वह योगमाया देवकीके उदरसे वालकको ले रोहिणीके उदरमें रख आई, तव सव पुरवासी मनुष्य पुकार पुकार कर कहनेलगे कि, अवकी वार कंसने अपनी वहिन देवकीको ऐसा धमकाया कि, उसका गर्भ अधूराही गिरगया; वालक पूरा नहीं होने पाया❀ ॥ १५ ॥ अपने भक्तोंको अभयदान देनेवाले विश्वात्मा भक्तभावन भगवान्

❀शंका–रोहिणी और वसुदेवजीकी रीति प्रीति कुछ वहुत दिनोंसे नहीं थी और वलभद्र रोहिणीके गर्भसे जन्मे, तव लोकमें निन्दा और दुर्नामता वसुदेव और रोहिणीकी क्यों नहीं हुई ? और जो कोई कहे कि, योगमायाने सव काम किया, यह वात वहुत ठीक है, परन्तु संसारमें तो भगवान्के चरित्रको कोई नहीं जानता और योगमायाकी वातको तो करोडों मनुष्योंमें एक दो जानते हैं, फिर संसारके लोगोंका सन्देह कैसे दूर हो ?

उत्तर–एक समय पुष्करजीके स्नान करनेके लिये सव संसारके मनुष्य गये,तव कंसभी सव यदुवंशियोंको संग लेकर पुष्करजीको गया कंसके संग वसुदेवजीभी पुष्करको गये और नन्दादिक गोपोंकी रक्षा सहित रोहिणीभी गई थी वहाँ सवकी रीति प्रीति सवसे हुई, परन्तु वसुदेव और रोहिणीकी भेंट कंसके भयसे नहीं हुई. परन्तु संसारके सव लोगोंने जान लिया कि, पुष्करमें वसुदेवजीसे रोहिणीकी भेंट होगई इसलिये वलदेवजीके जन्मनेपर कोईभी वसुदेव और रोहिणीकी निंदा नहीं करसका ॥

अपने परिपूर्ण रूपसे वसुदेव देवकीके मनमें आनकर प्रगट हुए ॥ १६ ॥ जब वसुदेवजीके मनमें भगवान् आनकर उपस्थितहुए, तब सूर्यके तेजकी समान वसुदेवजीमें तेज होगया, उस समय कोई मनुष्य तेजके प्रकाशके मारे वसुदेवजीके सन्मुख न आवै, ऐसे तेजवान् वसुदेवजी होगये ॥ १७ ॥ फिर विश्वके कर्ता सर्वात्मा मूर्तिमान् भगवान् जो कि देवकीमें पहिलेहीसे विराजमान थे, उनको वसुदेवजीने अपने मनसे देवकीके मनमें विराजमान किया, तब देवकीने भगवान्को भले प्रकार अपने मनसे अपने शरीरमें धारण करलिया जैसे पूर्वदिशा सर्वसुखदायक चन्द्रमाको परमप्रेमसे अपने हृदयमें धारण करती है ॥ १८ ॥ जैसे घटके भीतर छिपेहुए दीपकका प्रकाश नहीं होता और ज्ञानवंचक पुरुषोंमें छिपी हुई विद्या दूसरे लोगोंको आनन्द नहीं देसक्ती ऐसे भगवान् अपनी कांतिसंयुक्त देवकीके उदरमें निरन्तर आनन्द देतेथे परंतु वैसेही देवकी शोभाको

स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ॥ दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मंगलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ॥ दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽनंदकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे ॥ भोजेंद्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाऽजितांतरां विरोचयंतीं भवनं शुचिस्मिताम् ॥ आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी॥ ॥ २० ॥ किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतंत्रो न विहंति विक्रमम् ॥ स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हंत्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥

प्राप्त न होती थी ॥ १९ ॥ अजित भगवान्के देवकीके उदरमें रहनेसे कुछ २ कांति झलकी, उस कांतिने बन्दीगृहको प्रकाशवान् करदिया और सुन्दर रूपवाली देवकी मन्द मन्द मुसकराकर वसुदेवजीसे कुछ कह रहीथी उसी समय वहाँ कंस आपहुँचा और गर्भका प्रकाश देखकर कंस अपने मनमें कहने लगा कि, मेरे प्राणोंका हरनेवाला हरिरूप सिंह निश्चय इसी उदर रूप यमगुफामें आनकर बैठा है. क्योंकि पहिले इस देवकीका इतना तेज नहीं था ॥ २० ॥ फिर तो कंस अपने मनमें अनेक प्रकारके विचार करने लगा कि, अब मैं शीघ्र इसके लिये क्या उपाय करूं ? यह तो देवताओंका कार्य करनेको आही पहुँचा, अब सब प्रकारसे मुझको निश्चय होता है कि, यह अवश्य मुझको मारेगा, अब जो इस समय देवकीको

मैं मारता हूँ तो संसारमें बडा अपयश होगा, क्योंकि एक तो स्त्रीकी जाति, दूसरे मेरी बहिन और उसपरभी फिर गर्भिणी, जो मैंने इसको मार डाला तो सब संसारमें मेरी अपकीर्ति होगी, दूसरे लक्ष्मी और आयुका नाश होजायगा. महात्माओंके मुखसे मैंने ऐसा सुना है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य संसारमें दुष्टता करता है, वह जीतेही जी मृतककी समान है और उनके सन्मुखही लोग बुरा कहते हैं और वारम्वार धिकार देते हैं, निश्चय वह मनुष्य घोर नरकमें जाता है ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवसे वैर बाँधकर पापरूप कंस आप मरनेको समर्थ था तोभी इस घोरतम भावसे आपही निवृत्त हो भगवान्के जन्मकी बाट देखता रहा ॥ २३ ॥ जब बैठते, उठते सोते, जागते, भोजन करते और पृथ्वीपर विचरते, इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान्हीकी चिन्तामें रहताथा और सब जगत्को भगवत् रूपही देखता था ॥ २४ ॥ इतनेमें ब्रह्मा, महादेव, नारदादिक

स एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यंतनृशंसितेन ॥ देहे मृते तं मनुजाः शपंति गंता तमोंधं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥२२॥ इति घोरतमाद्भावात्संनिवृत्तः स्वयं प्रभुः ॥ आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबंधकृत् ॥२३॥ आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुंजानः पर्यटन्महीम् ॥ चिंतयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ॥ देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ २५ ॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्त्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ॥ सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पंचविधः षडात्मा ॥ सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥

मुनि और ऋषियोंसमेत देवता और गन्धर्व लोग वहाँ आनकर गर्भहीमें सर्व कामनाओंके पूर्ण करनेवाले भगवान् वासुदेवकी मधुर वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ आप सत्यसंकल्प और सत्य परायण हो, भूत भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें पृथ्वी, जल, तेज, पवन, आकाश इन पञ्चभूतोंके कारणरूप हो और पञ्चभूतोंके विनाश होनेके समय आपही अवशिष्ट रहते हो, समदृष्टि और मनोहर वाणीप्रवर्तक और ज्ञानियोके प्रेरणा करनेवाले सत्यरूप आपही हो, सो हे नाथ ! हम सब आपकी शरण आयेहैं, ॥ २६ ॥ यह देह ब्रह्माण्डरूप आदि वृक्ष आपकी मायासे उत्पन्न होकर आपहीके आश्रय रहताहै और इसकी रक्षाके लिये आप अनेकरूप धारण करतेहैं, उस वृक्षका आधार एक मायाहै। उसमें दो फलहैं, सुख और दुःख। उसकी तीन जड़है, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण। उसमें चार रसहैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । उसमें पांच

अंकुर हैं,जिनसे ज्ञान होता है, नेत्र, जिह्वा, नाक, कान, त्वक्। उसके छैं स्वभाव हैं, राग, द्वेष, क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह। उसमें सात प्रकारकी
छाल हैं;लोहित,मेद, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा; रेत। उसकी आठ शाखा हैं. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, उसमें
नौ खखोडल अर्थात् छिद्रहैं. नेत्र, मुख, कान, नाक उपस्थ और गुदा। उसमें दश पत्ते हैं, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल,
देवदत्त और धनंजय। उसपर दो पक्षी रहतेहैं. जीव और ईश्वर यह देहरूप वृक्ष है, कभी उपजै है, कभी कटै है, ऐसेही यह देह कभी जन्मे है, कभी
मरे है ॥२७॥ इस संसारके उत्पत्ति, पालन, संहार, करनेवाले आपही हो यह जगत् आपसे भिन्न नहीं है, आपकी मायाके वशीभूत हो जिनके
चित्त भूल रहे हैं, वह लोग जगत्को आपसे भिन्न देखते हैं और आपको नानाप्रकारका जानते हैं और जो ज्ञानी पुरुष हैं वह आपको एकही रूप

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं संनिधानं त्वमनुग्रहश्च ॥ त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यंति नाना न विपश्चितो ये ॥
॥ २८ ॥ बिभर्षि रूपाण्यबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ॥ सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः
खलानाम् ॥ २९ ॥ त्वय्यंबुजाक्षाखिलसत्त्वधामनि समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ॥ त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वंति
गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥ स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ॥ भवत्पदांभोरुहनावमत्र
ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥

मानतेहैं ॥ २८ ॥ हे प्रभो! एक रूप जो आप हो, सो ब्रह्मा बनकर जगतको उत्पन्न करतेहो, विष्णु बनकर रक्षा करते हो और शिव बनकर संहार करते
हो, सत्त्वगुणसे संयुक्त सत्पुरुषोंको सुख देते हो और अधार्मियोंको दण्ड देनेवाले जो रूपहैं उनके लिये उनको धारण करते हो ॥ २९ ॥ हे कमलदल
लोचन! समस्त जीवोंके जीवन आधार आपही हो, इसीसे आपके विषे ज्ञानी पुरुष समाधिद्वारा चित्तको लगाकर महत्पुरुषोंकी सिद्ध करी हुई
आपके चरणकमलरूप नौकाके आश्रयसे इस संसाररूप महासागरको अवगाहन करके बछड़ेके खुरकी समान समझकर पार उतर जाते हैं ॥३०॥
हे स्वयप्रकाश! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं इस महाभयंकर दुस्तर संसारसमुद्रको पार उतरनेके लिये, भजन भावना और सम्प्रदाय यह जो आपके
चरणकमलरूपी नौका है, उसको और दूसरे महात्माओंके पार उतरनेको छोडगये और आपभी पार उतरगये, हे प्रभो! आप अपने भक्तोंके

ऊपर दया करनेवाले हो ॥२१ हे कमलनयन ! जो ज्ञानी पुरुष अपने आपको जीवनमुक्त मानते हैं वह आपके चरणारविन्दके विषे भावना नहीं रखते. उसीसे अशुद्ध बुद्धि बने रहते हैं और बड़े बड़े कष्ट सहकर उच्च पदको प्राप्त होते हैं, सो वह उच्चपद किसको समझते हैं? उत्तम कुलमें जन्म होना और परिश्रम करके शास्त्रोंका पढ़ना, इनहीको उच्चपद जानतेहैं, आपके चरणारविन्दकी भक्तिका निरादर करतेहैं ! और फिर पीछे विघ्नोंसे पराभव होकर नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं ॥२२॥ हे माधव ! जो पुरुष आपहीके चरणोंमें प्रीति रखते हैं, और आपके दास कहलाते हैं, इन लोगोंको उन उच्चपद कहने वालोंकी नाईं किसी प्रकारका विघ्न नहीं होता. वरन्‌ हे प्रभु ! आपके भक्त निर्भय होकर बड़ेरभारी भयंकर विघ्नोंके माथेपर पाँव धरकर

येऽन्येऽरविंदाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतंत्यधोऽनादृतयुष्मदंघ्रयः ॥ ३२ ॥ तथा न ते माधव तावकाः कचिद्भ्रश्यंति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ॥ त्वयाभिगुप्ता विचरंति निर्भया विनयाकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥ सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान्स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ॥ वेदक्रियायोगतपस्समाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदाऽपमार्जनम्‌ ॥ गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥

सदा संसारमें घूमते रहते हैं ॥२३॥ हे प्रभु ! आप विश्वकी रक्षा करनेके समय सब प्राणियोंके पालनके लिये और शुभकर्मोंके फल देनेके लिये शुद्ध सत्त्वगुणस्वरूप धारण करते हो. जिस स्वरूपसे ब्रह्मचारी वेदपाठसे, गृहस्थी कर्म योगसे, वानप्रस्थ तपस्यासे, संन्यासी समाधिसे, सब अपनी अपनी प्रीतिसे आपका पूजन करते हैं. हे प्रभु ! जो आप संसारमें अवतार न लेते तो आपका पूजन बननाभी कठिन था. क्योंकि आपके सुन्दर स्वरूपकी मूर्तिमें भक्तोंका मन लगा रहता है ॥२४॥ हे विधाता ! आपका सत्त्वगुण मूर्तिमान्‌ सुन्दर स्वरूप प्रगट न होता तो अज्ञानका नाशक विज्ञान जो आपका प्रेरणा किया हुवा बुद्ध्यादिक गुणोंको प्रकाशे है और आपही सब प्रकारसे उन गुणोंके साक्षी हैं और ऐसेही इन्द्रियोंके प्रकाश

१ कवित्त–बनेहैं आचारी कोई कर्मधुरधारी ध्रुव कोई उपकारी बढे कोई निर्विकारी हैं ॥ कोई बडे पण्डित विरागसे न खण्डित अदण्डित अवनिमें उदण्डित विचारी हैं ॥ कोई षट शास्त्र पढे वाद औ विवाद बढे कोई कुलकाव्य गढे दया मढे मारी हैं ॥ छाके नाहिं सीके पीके प्रेमरस पीके नीके कहा किये जीके जीके फीके सुगकारी हैं ॥

आपके स्वरूपका अनुमान होता है, परन्तु आपका स्वरूप नेत्रोंके द्वारा प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशमान ! इस विश्वके परिपूर्ण साक्षी आपही हो और आपके नाम, गुण, कर्म, जन्म, वर्णन करनेमें नहीं आते, मन वाणीके निरूपणसे आपके स्वरूपका वर्णन नहीं होता. हे प्रभु ! तो भी जो आपके भक्तजनहैं सो ध्यान और उपासनामें आपके मनोहर स्वरूपका साक्षात् दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे मंगलरूप ! आपके जो मंगलरूप नाम हैं उनको कानोंसे सुनते हैं जिह्वासे उच्चारण करते हैं और दूसरे मनुष्योंको सुन्दर सुन्दर आपकी कथा सुनाते हैं, स्मरण करते हैं और पूजनादिक क्रियाओंमें और आपके चरणारविन्दोंमें जिन मनुष्योंका मन लग रहा है फिर संसारमें उनका जन्म मरण नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे ईश ! आपको अवतार लेनेसे और आपके चरणारविन्द पृथ्वीपर रखनेसे भूमिका भार सब एक बारही दूर हो जायगा, यह बड़े आनन्दकी बातहै कि,

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ॥ मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियंत्यथापि हि ॥ ३६ ॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिंतयन्नामानि रूपाणि च मंगलानि ते ॥ क्रियासु यस्त्वच्चरणारविंदयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥ दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ॥ दिष्ट्यांकितां त्वत्पदकैस्सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकंपिताम् ॥ ३८ ॥ न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ॥ भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयाऽऽत्मनि ॥ ३९ ॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥ त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वंदनं ते ॥ ४० ॥

आपके छोटे छोटे चरणारविन्द पृथ्वीपर जब पड़ेंगे और उनका हम दर्शन करेंगे तो आप अपने वैकुण्ठधामको जानकर पृथ्वी और स्वर्गपर कृपा दृष्टि करोगे और उसको हम अपने नेत्रोंसे देखेंगे उस समय महामंगल होगा ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! आप जो जन्मरहित हों; सो आपके जन्म लेनेका कारण सिवाय क्रीड़ा और विनोदके दूसरा और कोई हमारी समझमें नहीं आता. हे नित्यमुक्तिद ! प्राणियोंका भी जन्म मरण और पालन केवल आपके स्वरूपको न जाननेसे होताहै, यह अविद्याही जन्म मरणका मुख्य कारणहै ॥ ३९ ॥ हे भक्तवत्सल ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम वामनादिरूप धरकर आपने जिस प्रकार त्रिलोकीकी और हम लोगोंकी पहिले रक्षा की थी; उसी प्रकार अब

सब पृथ्वीका भार उतारो. हे वैकुण्ठविहारी ! हमारा आपको बारम्बार नमस्कार है॥ ४० ॥ अब सब देव देवकीसे कहते हैं, कि, हे माता ! हमारा कल्याण करनेके लिये साक्षात् परमपुरुष भगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे तुम्हारी कोखमें आये हैं, यह बड़ा आनन्द हुआ, अब कंसभी इनहीके हाथसे मारा जायगा, हमको निश्चय है, तुम किसी प्रकार मत डरो तुम्हारा पुत्र सब यादववंशकी रक्षा करनेवाला होगा * ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेव जी बोले कि, हे राजन् ! जिनका स्वरूप कहनेमें नहीं आवे ऐसे जो परमपुरुष भगवान् हैं, उनकी इस प्रकार यथावत् स्तुति करके ब्रह्माजी और महादेवजीको आगे करके सब देवता स्वर्गको चले गये ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां गर्भस्तुतिवर्णनं नाम

दिष्ट्यांब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ॥ मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥ ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे ब्रह्मादिकृतगर्भगतविष्णुस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥ यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शांतर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशः प्रसे दुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ॥ मही मंगलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा—इस तृतीय अध्यायमें, प्रगट भये व्रजचन्द । हरिको ले वसुदेवजी, गे गोकुल गृहनन्द ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके प्रगट होनेका समय आया, वह समय सर्वगुणसम्पन्न परमशोभायमान होगया और सुधाकर रोहिणी नक्षत्रपर आगया, शान्तयुक्त शुभ ग्रह तारागण होगये ॥ १ ॥ दशों दिशा प्रसन्न होगईं आकाश निर्मल होगया समस्त तारागण उज्ज्वल उदित हुए, पृथ्वी परममंगलरूपिणी होगई. पुर, नगर, ग्राम, व्रज, आकर, वनवाटिका, अत्यन्त रमणीक शोभायमान दृष्टि आनेलगे॥२॥

* कवित्त—फेर देवकीसे सबै देव अस बोले बैन, आदिपुरुष विश्वात्मा धाम है अशोकको ॥ जगत्को निवास सो निवास तेरी कुक्षीमाहिं, त्रास नाशवेको सब देवनके थोकको ॥ जननी जगत मातु धैर्य धरो धैर्य धरो, कसकाल आयगयो कामनाहीं शोकको ॥ यदुवंशपालक रु दुष्टकुलघालक सो, है है तुव बालक जो मालिक त्रिलोकीको ॥

नद नदियोंका जल स्वच्छ और शीतल होगया, तालोंमें कमल कमलिनी खिलने लगे, भ्रमर उन सुन्दर सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंकी सुगन्धि सूंघ सूंघकर उन्मत्त हो गुंजारने लगे, वृक्षोंकी शाखाओंपर पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियें बोलने लगे ॥ ३ ॥ सुखदायक शीतल, मंद, सुगन्ध सनी पवन बहने लगी, ब्राह्मणोंके होमकी अग्नि शान्त प्रज्वलित होगई ॥ ४ ॥ सिवाय कंसादिक राक्षसोंके सब महात्माओंके मन प्रसन्न होगये, स्वर्गमें भगवान्‌के अवतारसूचक दुन्दुभी बजने लगी ॥ ५ ॥ किन्नर, गंधर्व, भगवान्‌का यश गान करने लगे, सिद्ध, चारण, स्तुति करने लगे, विद्याधरोंकी स्त्रियें और अप्सरा नृत्य करने लगी ॥ ६ ॥ मुनि और देवता व्रजपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे. समुद्र आनन्दमें भरकर लहरें लेने

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ॥ द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥ ३ ॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगंधवहः शुचिः ॥ अग्नयश्च द्विजातीनां शांतास्तत्र समिंधत ॥ ४ ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ॥ जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुंदुभयो दिवि ॥ ५ ॥ जगुः किन्नरगंधर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ॥ मंदंमंदं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥ निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशींदुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतं बालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीतांबरं सांद्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुंडलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुंतलम् ॥ उद्दामकांच्यंगदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥

लगा मेघ मन्दमन्द शब्दसे गर्जने लगे, चपला क्षण क्षण मात्रमें चमकने लगी ॥ ७ ॥ इस प्रकार भादों वदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें आधी रातके समय देवरूपिणी देवकीके कोखमें सर्वान्तर्यामी भक्तभावन भगवान् साक्षात् अपनेरूपसे प्रगट हुए जैसे आधीरातके समय पूर्वदिशामें पूर्णमासीका चन्द्रमा उदय होता है ॥८॥ कमलसदृश नेत्रोंवाले, चार भुजा धारण किये; शंख; चक्र, गदा, आयुध उठाये; श्रीवत्सचिह्न धारण किये; गलसे शोभावाली कौस्तुभ मणि धारण किये; पीताम्बरधारण किये, सघन श्याम मेघके सदृश ॥ ९ ॥ महँगे मूल्यकी वैदूर्यमणिसे जटित मुकुट

कुंडलोंकी कांतिकरके देदीप्यमान केश धारण किये, सुन्दर कांची बाजूबन्द कंकण आदिकों करके शोभायमान, ऐसे अद्भुत बालक श्रीकृष्णको वसुदेवजी देखते भये ॥ १० ॥ विष्णु भगवान्को अपना पुत्र जान आश्चर्यसे वसुदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित होगये और मनमें धैर्यधर, उसी समय दशसहस्र गो दानकी मानसिक संकल्प ब्राह्मणोंको देनेके लिये किया ॥ ११ ॥ हे भारत ! हे अभिमन्युकुमार ! उस बालककी कांतिसे प्रसुतिकागार ऐसा प्रकाशमान हो रहा था कि किंचिन्मात्र भी अन्धकार नहीं रहा तो वसुदेवजीने पुत्रको परब्रह्म परमात्मा समझकर उनके प्रभावको देख शुद्ध बुद्धिसे हाथ जोड शिर झुका, निर्भय होकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १२॥ हे भगवन्! आपको मैंने भलीभाँति जाना, आप मायासे परे साक्षात् परमपुरुष हो केवल अनुभव और आनन्दही आपका स्वरूप है और सम्पूर्ण जनोंकी बुद्धिके द्रष्टा हो॥ १३॥ मैं भलीभाँति जानताहूं कि आप वही हैं

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुंदुभिस्तदा ॥ कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्यो ऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥ अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नतांगः कृतधीः कृतांजलिः ॥ स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयंतं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ केवलानुभवानंदस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ॥ तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४ ॥ यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ॥ नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयंति हि ॥ १५ ॥ स न्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यंतेऽनुगता इव ॥ प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥ १६ ॥

जो पहिले अपनी मायासे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण रूप यह विश्व रचा है, आप उसमें प्रविष्ट नहीं होते और सद्रूपसे प्रवेशसदृश देखनेमें आते हो ॥ १४ ॥ जैसे महत्तत्त्व, अंहकार, पंचतन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह सातों पदार्थ, पंच ज्ञानेन्द्रिय, और पंचकर्मेन्द्रिय ग्यारहवाँ मन पंचमहाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश; इन सोलह विकारोंके संग मिलकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको रचतेहैं और पृथक् पृथक् ब्रह्माण्डको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते॥ १५॥ और उत्पन्न होनेके उपरान्त ब्रह्माण्डमें प्रविष्टहोकर जैसे जाननेमें आतेहैं यथार्थ रीतिसे और प्रथम कारण रूपसे प्रविष्टही थे इसकारण उत्पन्न हुए कार्यमें उनका पीछेसे प्रवेश होना सम्भव नहीं होसक्ता तैसेही आपका प्रवेश पीछेसे सम्भव नहीं ॥ १६॥

ऐसेही आपके रूप बुद्ध्यादिक इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आते,विषयोंमें अपार हो परन्तु विषयोंके साथ आप ग्रहण करनेमें नहीं आते जैसे एक दूधमें शब्द,स्पर्श,यह पांचोंवस्तु हैं परन्तु नेत्रोंसे रूपही देखनेमें आता है रसका ज्ञान नेत्रोंसे किसीप्रकार नहीं होसक्ता, ऐसे विषयोंके ग्रहणमें आपका ग्रहण नहीं हो सक्ता, अपरिच्छिन्न पक्षीका घोसलेमें प्रवेश होताहै, आप अपरिच्छिन्न हैं इसलिये आपके स्वरूपमें बाहिर भीतरका भेद नहींहै, गर्भमें आप कब रह सक्ते हो, आवरण करके रहित हो, सर्वस्वरूप हो, सर्वात्मा हो, सर्वव्यापक हो और परमार्थ वस्तुरूप हो ॥ १७ ॥ आत्माके जो दृश्य गुण देहादिक हैं उनको आत्माके विना जो पुरुष सत्य मानते हैं वह निरे अज्ञानी हैं, विचारके देखो तो कथनमात्र विना देहादिक सब झूंठही

एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैस्सन्नपि तद्गुणाऽग्रहः ॥ अनावृतत्वाद्बहिरंतरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥ य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ॥ विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥ त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदंत्यनीहादगुणादविक्रियात् ॥ त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥ स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ॥ सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्य विश्वस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाऽखिलेश्वर ॥ राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥

हैं,इसलिये झूंठे देहादिकोंको जो पुरुष सत्य मानते हैं वह अज्ञानी हैं ॥१८॥ हे विभो ! निरीह,निर्गुण, निर्विकार, आपही हो,आपहीसे इस विश्वकी उत्पत्ति,पालन, संहार होताहै, आपही ईश्वर और ब्रह्मस्वरूप हो,इसीलिये आपमें कुछ विरोध नहीं है, आपका आश्रय लेकर तीनों गुणही विश्वको रचते हैं इसीलिये आपका नाम कर्त्ता है ॥ १९ ॥ आप अपनी मायासे सृष्टिके पालनके लिये सत्त्वगुणी शुक्लवर्ण विष्णुरूप धारण करते हो और जगत्की उत्पत्तिके समय रजोगुणी रक्तवर्ण ब्रह्मारूप धारण करते हो और विश्वके संहारके समय तमोगुणी कृष्णवर्ण रुद्ररूप धारण करते हो ॥ २० ॥ हे सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण ! हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर आप इस विश्वका पालन करनेके लिये मेरे घरमें उत्पन्न हुए हो और

क्षत्री जिनका नाम, ऐसे करोडों असुरोंके समूह जहां तहां चलायमान हो रहे हैं उनका विध्वंस करोगे ॥ २१ ॥ हे देवेश ! उस दुष्ट कंसने तुम्हारे जन्मका वृत्तान्त हमारे घरमें सुनके आपके बहुत भ्राता मारडाले हैं अभी जो कोई मनुष्य उस दुष्टसे कहदेगा कि,आपका अवतार हुआ तो वह सुनतेही शस्त्र हाथमें लेकर यहाँ चला आवेगा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब इस प्रकार वसुदेवजी स्तुति करचुके तब पीछे देवकी पुत्रमें महापुरुष भगवान्‌के सब लक्षण जानकर और मधुर मुसकानदेख, कंसके भयसे धीरे धीरे पुत्रकी स्तुति करनेलगी ॥ २३ ॥ अनादि व्यापक ज्योतिस्वरूप निर्गुण निर्विकार सत्तामात्र दिव्यगुणराशि निर्विशेष और चेष्टारहित जो तुम हो सो वह स्वरूप किसीके जाननेमें नही

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ॥ स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्यु दायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैनमात्मजं वीक्ष्यमहापुरुषलक्षणम् ॥ देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचि स्मिता ॥ २३ ॥ देवक्युवाच ॥ रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ॥ सत्तामात्रं निर्विशेषं नि रीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥ नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ॥ व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥ योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबंधो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ॥ निमेषादिर्वत्सरांतो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्सर्वाँल्लोकान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ॥ त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥

आता, वेद आपके स्वरूपका वर्णन करते हैं, सो तुम ज्ञानके प्रकाश करनेवाले साक्षात् विष्णु भगवान् हो ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माजीकी सौ (१००) वर्षकी अवस्था होती हैं उस समय प्रलयकालमें सब लोक नष्ट हो जाते हैं. पंचमहाभूत अपनी अपनी तन्मात्राओमें मिल जाते हैं और तन्मात्रा प्रधानमें लय हो जाती है,प्रधानके जाननेवाले उस समय केवल एक आपही अजन्मा अवशिष्ट रहजाते हो ॥ २५ ॥ हे मायाप्रेरक ! यह जो काल है इसको आपकी माया वर्णन करै है, इसी कालसे विश्व होता है,पलसे आदि लेके जिसकी वर्षतक गणना है यह परार्द्ध रूपसे बडा है ऐसे आप निर्भयरूप हो, सो मैं आपकी शरणागत हूं ॥२६॥ हे आदिपुरुष ! सब मनुष्य मृत्युरूपी सर्पके भयसे सब लोकोंमें भागे भागे

फिरते हैं और उनको बैठनेके लिये निर्भय स्थान कहीं नहीं मिलता, जब किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे आपके चरणारविन्दका आश्रय मिल जाता है तब उस निर्भय स्थानको प्राप्तकरके निर्भय होकर सोरहता है, फिर मृत्युभी उसके निकट नहीं आती, दूरसे दूर भागती है ॥ २७ ॥ महा भयानकस्वरूपवाला उग्रसेनका पुत्र जो कंस है, उससे हम अत्यन्त भयभीत हैं, सो उस दुष्टसे आप हमारी रक्षा करो, भक्तोंके भय दूर करने वाले और जाननेवाले ध्यान करनेके योग्य आप भगवान् स्वरूप हो अब आप इस श्यामसुन्दर स्वरूपको चर्मचक्षुवालोंको मत दिखाओ ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन ! आपका जन्म जो मेरे यहां हुवा है यह मत जानो, क्योंकि अधीरचित्तवाली स्त्री जाति जो मैं हूं सो आपके कारण उस कंसके भयसे अत्यन्त भयभीत हूं ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् ! शंख, चक्र, गदा, पद्मसे शोभायमान जो यह आपका चतुर्भुज और

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान्भृत्यवित्रासहाऽसि॥रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥ जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ॥ समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥ विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशांते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ॥ बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडंबनं हि तत् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति ॥ तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ॥सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु॥ सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥

अद्भुत स्वरूप है इसको छिपा लो ॥ ३० ॥ यह जो जगत् प्रत्यक्ष कालमें दृष्टि आता है प्रलयकालके समय विना परिश्रमही सब सृष्टिको अपने उदरमें धारण कर लेते हो, सो आप मेरे गर्भमें प्राप्त हुए हो, यह बड़े हास्यकी बात है ॥ ३१ ॥ यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र मुसकराकर बोले कि, अहो मातः ! तुमको अपने पूर्वजन्मकी सुधि नही है सो सुनो स्वायंभुव मन्वंतरमें पहिले तुम पृश्नि नाम थीं और वसुदेवजी उस समय पापरहित सुतपा प्रजापति थे ॥ ३२ ॥ तब तुम दोनोंको ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी, तब आपने इन्द्रियोंको रोककर बड़ा भारी तप किया ॥ ३३ ॥ वर्षा, वायु, धूप, गर्मी, शीत इन सब कालोंके गुणोंका ग्रहण किया और श्वास रोककर मनके मैलको दूर कर दिया ॥ ३४ ॥

सुखे पत्र और पवनका भोजन करके वर्षोंतक रहे और मुझसे वरदान प्राप्त करनेके मनोरथसे, आप शान्तचित्त हो मेरी आराधना करने लगे ॥ ३५ ॥ हे मातः ! तुम दोनों जनोंने मुझसे चित्त लगाकर बड़ा भारी तप किया, तप करते करते देवताओंके बारह सहस्र वर्ष बीतगये ॥ ॥ ३६ ॥ हे निष्पाप ! जब तुमने तप करनेके समय श्रद्धा भक्तिसे हृदयमें मेरा ध्यान किया, उसी समय इस देहसे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुवा ॥३७॥ तुम दोनोंके मनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये मैं उसी समय इसी शरीरसे आपके सन्मुख आनकर प्रगट हुवा और आपसे कहा कि, 'वर मांगो' 'वर मांगो' 'वर मांगो' तब आपने यह वर मांगा हे भगवन् ! जो आपके मनमें वर देनेकी इच्छा है और हमपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजे कि,

शीर्णपर्णानिलाहारावुपशांतेन चेतसा ॥ मत्तः कामानभीप्संतौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषाऽनवे ॥ तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥ प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दंपती ॥ न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥ गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान्भोगानभुंजाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात ॥ उपेंद्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥

तुम्हारे समान हमारे पुत्र होय ॥ ३८ ॥ संसारके विषयसुख आपने नहीं भोगे और कोई सन्तानभी नहीं, सो आपने मेरी मायासे मोहित होकर मुक्ति नहीं मांगी ॥ ३९ ॥ उस समय मैंने तुमको मनवांछित वर दिया कि, तुम्हारे मेरीही समान पुत्र होगा. यह वर देकर मैं अन्तर्धान होगया और तुम अपना मनोरथ करके विषयोंका सुखभोग भोगने लगे ॥ ४० ॥ जब मैंने शील उदारता इन गुणोंयुक्त अपनी सदृश दूसरा कोई पुरुष कहीं नहीं देखा, तब पृश्निगर्भ नामसे विख्यात होकर मैंही आपका पुत्र हुआ॥४१॥ फिर पीछे दूसरे जन्ममें आप कश्यप और अदिति हुए, वहांभी मैंने उपेंद्र नामसे आपहीके घर आनकर फिर जन्म लिया. हे जननि ! उस अवतारमें मेरा शरीर बहुत छोटा था, इसलिये मेरा नाम वामन विख्यात हुवा॥४२॥

फिर अब तीसरीबार उसीरूपसे आपके घरमें जन्म लिया हैं, हे मातः ! मेरा वचन सत्य मानो देखो तुमने एक बार वर मांगा मैंने तुम्हारे घर तीनबार जन्म लिया ॥ ४३ ॥ पहिले जन्मका स्मरण करानेके लिये मैंने तुमको यह रूप दिखाया हैं जो और प्रकार मनुष्यके बालकका रूप धर कर प्रगट होता तो तुम क्या जानते ? और तुमको कैसे विदित होता कि, परमेश्वरने हमारे घर आनकर अवतार लिया ॥ ४४ ॥ अब आपकी इच्छा है चाहे पुत्र भावसे मेरा सन्मान करो, चाहे ईश्वर जानकर मेरा ध्यान करो, मुझसे स्नेह करोगे तो परमभक्तिको प्राप्त होगे ॥४५॥ और जो तुमको कंसका यह भय है कि, मेरे इस पुत्रकोभी वह दुष्ट मार डालेगा, तो तुम मुझको गोकुलमें नन्दरायजीके घर पहुँचा दो और यशोदाके

तृतीयेऽस्मिन्भवेऽहं वै तेनैव वपुषाऽथ वाम् ॥ जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिंगेन जायते॥४४॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्॥ चिंतयंतौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥ ४५ ॥ यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥४६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ॥ पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥ ४७ ॥ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ॥ यदा बहिर्गंतुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नंदजायया ॥ ४८ ॥ तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वास्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ॥ द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृंखलैः ॥ ४९ ॥

गर्भमें प्रगट हुई मेरी योगमाया है उसको इसी समय अपने घरको लेआओ ॥ ४६ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह सब बातें समझाकर भगवान् चुप होगये और अपनी मायासे माता पिताके देखते देखते साधारण बालक होगये ॥ ४७ ॥ भगवत्की प्रेरणासे वसुदेवजीने प्रसूतिका घरमेंसे पुत्रको लेकर बाहिर निकलनेकी इच्छा की उसी समय गोकुलमें नन्दरायजीकी स्त्री यशोदाके उदरसे योगामायाने जन्म लिया ॥ ४८ ॥ उस समय योगमायाने सब पुरवासी और द्वारपालोंका ज्ञान हरलिया, उसी समय सब निद्राके वशीभूत होगये पावोंकी बेड़ी गिरपड़ी, जब श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी चले तब द्वारोंके बड़े बड़े जो किवॉड़ थे

उनमें जो लोहेकी भारी भारी संकलें पड़ी थीं और ताले लगरहे थे, वह सब आपसे आप खुलगये जैसे सूर्य नारायणके उदय होनेसे सर्वत्र अन्धकार दूर हो जाताहै ॥ और मन्द मन्द शब्दसे मेघ गर्ज गर्ज कर बरसने लगे आधीरात सायँ सायँ कररही थी अँधेरी झुक रहीथी मार्ग देखनेमें नहीं आता था, कभी कभी बीच बीचमें बिजली चमक जातीथी उसके आश्रयसे धीरे धीरे चले जाते थे, परन्तु वर्षा इनके ऊपर नहीं होती थी क्योंकि, पीछे पीछे शेषजी महाराज फणरूप छत्रछायासे जलका निवारण करते थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उस समय मेघोंके वर्षनेसे यमुना ऐसी चढरही

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्तंत यथा तमो रवेः ॥ ववर्ष पर्जन्य उपांशुगार्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ५० ॥ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गंभीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ॥ भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिंधुरिव श्रियः पतेः ॥ ५१ ॥ नंदव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ॥ सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात ॥ ५२ ॥

थी कि, कोसोंतक जल ही जल दिखाई देता था पवनके वेगसे जलमें ऊंची ऊंची तरंगें उठती थीं और जलके घरघराहटका शब्द दूर तक सुनाई आताथा उस गम्भीर नीरमें महा भयानक सैकडों भँवर पडते थे परंतु जैसे लंकाकी चढाईके समय श्रीरामचन्द्र महाराजको समुद्रने मार्ग दियाथा उसी प्रकार यमुनाने वसुदेवजीको मार्ग दिया ❀ ॥ ५१ ॥ जैसे तैसे कर वसुदेवजी गोकुलमें पहुँचे और नन्दजीके द्वारपर जाकर देखा तो किवाँड

* शंका—श्रीशुकदेवजीमुनिने राजा परीक्षित्‌मे कहा कि, श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी जब गोकुलको चले तब भगवान्‌को समुद्रने बडे सुखसे मार्ग दिया था उसी प्रकार यमुनाने वसुदेवजीको बडे सुखसे मार्ग दिया, हम बूझते हैं भला किस स्थानपर भगवान्‌को समुद्रने सुखसे मार्ग दिया ? यह बडी शंका है जो कोई कहे कि, लंकाको जानेके समय रामचन्द्रको तो यह बात व्यर्थ है क्योंकि रामचन्द्रने बहुत दुःख सहकर समुद्रके शोषनेके लिये अग्निबाण धनुषपर चढाया, तो त्रास मानकर आन मिला, तो भी रामचन्द्र पुल बाँधकर समुद्रके पार गये सुखसे तो समुद्रने नहीं जाने दिया ॥

उत्तर—इस स्थानपर भगवान्‌को सुखसे मार्ग देना यह है कि, राजा बलिको दर्शन देनेके लिये वामनजी नित्यप्रति सुतल लोकको जाते हैं तब पातालके जानेका एकही मार्ग है दूसरा और कोई मार्ग नहीं है भगवान् वामनजीको समुद्र सुखकर मार्गदेता है इसवास्ते भगवान् व्यासजीने सुखसे समुद्रको पय देनेके लिये कहा ॥

खुले पड़े हैं भीतर घुसकर देखा तो सब नींदमें मतवाले पड़े हैं और यशोदा मायाके मोहसे ऐसी बेसुधि पड़ीथी कि, उसको कन्याके उत्पन्न होने काभी ध्यान नहीं था उसको सोती देखकर वसुदेवजीने श्रीकृष्णको तो यशोदाकी शय्यापर सुलादिया और उसकी कन्याको उठाकर अपनी राह ली ॥ ५२ ॥ और उसी बन्दीगृहमें आनकर कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और आपने उसी प्रकार पांवोंमें बेडी और हाथोमें हथकड़ी पहन ली और उसी भांति बैठगये ॥५३॥ वसुदेवजीको देख देवकी बूझने लगी कि, स्वामी ! कुशलपूर्वक गोकुलमें पहुँचे पुत्र तो आनन्दमेंहै ? वसुदेवजीने कहा सब नारायणकी कृपा है, उसी समय यहां गोकुलमें नन्दरायके घर यशोदाजीके मनसे जब माया हटी तो जाना कि,मेरे कुछ बालक हुवा, परन्तु कुछ परिश्रम और कष्ट न पडा, क्योंकि योगमायाने पहिलेही स्मृति भुलाकर नींदके वश करदियाथा और यहभी कुछ ज्ञान नहीं रहा

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ॥ प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५३ ॥ यशोदा नंदपत्नी च जातं परमबुध्यत ॥ न तल्लिंगं परिश्रांता निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे श्रीकृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बहिरंतःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥१॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ॥ आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥२॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ॥ सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥

कि, मेरे पुत्रहुवा या कन्या ॥५४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णजन्मनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

दोहा–चौथे चण्डीवचन सुन, अतिसभीत भयो कंस । मंत्रिन सहित विचारकर, कियो बालविध्वंस ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! बाहिर भीतरके द्वार उसीप्रकार बन्द होगये, कन्या रो उठी बालकका रोना सुन सब रखवाले सावधान हो तोप छोडने लगे; हाथी चिंघाडने लगे, सिंह दहाडनें लगे भादोंकी अँधेरी झुकरहीथी, मेघ वरस रहा था सब चौकीदार और द्वारपाल पुकारते हुए उसी समय कंसके पास दौड़गये और जाते ही देवकीके बालक होनेका समाचार सुनाया, जो कंस उद्विग्न मनसे इसी आठवें गर्भका मार्ग जोहरहा था ॥१॥ २ ॥ सुनतेही कंस घबराकर यह कहता उठ खडा हुवा क्या मेरा कालरूप बालक उत्पन्न होगया ? खुलेबाल; गिरता पडता, ठोकरें खाता, कांपता हुवा खड्ग हाथमें ले प्रसूतिका

भवनकी ओरको दौडताहुवा बहनके पास गया ॥३॥ देवकी कंसको देख दीन होकर करुणा वचन बोली कि, जिसके सुननेसे सबके मनमें अत्यन्त दया उत्पन्न हो, हे भ्राता ! हे कल्याणरूप ! यह पुत्र नहीं है, यह देवीरूप कन्याहै, इसको मत मार, क्योंकि यह तेरी भानजी है और जो कदाचित यह जीती रहेगी तो मैं तेरेही पुत्रके संग इसका विवाह कर दूंगी ॥ ४ ॥ हे भ्राता ! अग्निके समान तेजवाले मेरे सात पुत्र जो तैंने मारे हैं, वह ताप मेरे हृदयसे अभी नहीं गया. परन्तु उसमें तेराभी क्या दोष है दैवने तेरी बुद्धिभी वैसेही करदी. अब यह कन्या तो मेरा हृदय ठण्डा करनेको मुझे छोडदे ॥ ५ ॥ हे सामर्थ्यवान् ! तैंने बहुत पुत्र मेरे मारे, अब दयाकर मैं तेरी छोटी बहन हूं, महादीन हूं, मन्दभागिनी हूं, यह मेरीअन्तकी पेटपोछनी कन्याहै इसको तू मुझे अपनी करके देदे जो मेरा थोडा बहुत धैर्य बँधारहे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! देवकी इस प्रकार कंससे

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ॥ स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हंतुमर्हसि ॥४॥ बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ॥ त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥ नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ॥ दातुमर्हसि मंदाया अंगेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपगुह्यात्मजामेवं रुदंत्या दीनदीनवत् ॥ याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७॥ तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ॥ अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥ सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यंबरं गता ॥ अदृश्यताऽनुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥ दिव्यस्रगंबरालेपरत्नाभरणभूषिता ॥ धनुश्शूलेषुचर्मासिशंख चक्रगदाधरा ॥ १० ॥

विनतीकर, कन्याको छातीसे लगाकर अति दीनकी नांई रुदन करने लगी. देवकी दीन तो नहीं थी, क्योंकि मनमें अत्यन्त प्रसन्न थी कि, मेरा पुत्र तो और स्थानपर पहुँचही गया और यह कन्या योगमायाहै यह इस दुष्टसे किसी प्रकार मरही नहीं सक्ती, तोभी देवकीके हाथसे उस दुष्टने कन्याको छीन ही लिया, देवकीने नम्र होकर बहुतेरी प्रार्थना की परन्तु उस दुष्टने न माना और कहा कि, इस कन्याको मैं कभी जीता न छोडूंगा, जो इस कन्याके साथ विवाह करेगा वह मुझको मारेगा ॥ ७ ॥ यह कह अपने स्वार्थके सिद्ध करनेके लिये तुरन्तकी उत्पन्न हुई अपनी भगिनीकी कन्याका चरण पकड घुमाकर शिलापर ज्योंहीं पटकनेको हुवा ॥ ८ ॥ उसी समय वह कन्या कंसके हाथसे छूट उसके माथेपर पांवधर उछलकर आकाशको चली गई और वहां प्रत्यक्ष देवीका दिव्यस्वरूप देखनेमें आया ॥ ९ ॥ अतिविशाल लाल लाल नेत्र, ललाटपर चन्दनका तिलक, कण्ठमें

पुष्पोंकी माला, सुन्दर शोभायमान वस्त्र,रत्नजटित आभूषण,आठ भुजा जिनमें धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, कृपाण, गदा, पद्म, शंख, चक्र आयुध लिये॥१०॥सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर,और नाग यह बारम्बार बलिदान देतेथे और प्रर्थना करते थे ॥११॥ अरे अधम कंस! मेरे मारनेसे तेरे हाथ क्या आया ? तेरे पूर्व जन्मका वैरी जो कि, तेरा मारनेवालाहै वह पहिलेही और कहीं दूसरे स्थानमें जन्म लेचुका, अरे मूर्ख! बालकोंको मारकर और मुझको पटककर वृथा तैंने अपने शिरपर पापका भार धरा, तेरा मारनेवाला सर्पकी समानहै और तू दादुरकी सदृशहै, दादुरको इतनी सामर्थ्य कहाँ है जो सर्पको निगलनेकी इच्छा करै अब तू सावधान रहना अब वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर भूमिका भार उतारैगा॥१२॥इसप्रकार भगवान् की देवी योगमाया कंससे कहकर बहुत स्थानोंमें दुर्गा, भद्रकाली, भगवती, भवानी, महामाया नामसे संसारमें विख्यात हुई ॥१३॥ इसप्रकार योग

सिद्धचारणगंधर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ॥ उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ ॥ किं मया हतया मंद जातः खलु तवांतकृत् ॥ यत्र क वाऽपूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ॥ १२ ॥ इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ॥ बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥ तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ॥ देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥ अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना॥ पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥१५॥ स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ॥ काँल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ॥ यद्विस्रंभादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्शिशून् ॥ १७ ॥

मायाका वचन सुनकर कंस अत्यन्त विस्मित हुवा और वसुदेव देवकीको कारागारसे उसीसमय छोडदिया और बेडी हथकडी उनके हाथ पांवोंसे निकलवादीं और विनय करके बहन बहनोईसे बोला कि॥१४॥अहो भगिनी! अहो भाम! मैं आपका बडा अपराधी हूं मुझ पापी अधर्मीने तुम्हारे संग बडा अनर्थ किया और अपने शरीरके सुखके लिये तुम्हारे छः बालक मारे जैसे कोई राक्षस अपने पुत्रोंको अपने हाथसे मारे है और मेरा मनोरथभी पूरा नहीं हुवा॥१५॥देखो! मैं कैसा निर्दयी और हत्यारा हूं, अपने जातिवाले हितकारी और सम्बन्धियोंका संग मैंने छोड दिया,हाय! मैं महापापी नीचबुद्धि न जानिये कौनसे नरकमें जाऊंगा,ब्रह्मघातीकी नांई मैं जीताही मृतककी समान हूं यह कलंक मेरा कैसे छूटेगा औरमैं किस जन्ममें उद्धरूंगा॥१६॥कोई कहै कि,मनुष्यही झूंठ बोलतेहैं, परन्तु देवताभी झूंठ बोलते हैं जिन्होंने कहाथा कि, देवकीके आठवें गर्भमें पुत्र होगा

सो कन्या उत्पन्न हुई; हाय ! मैंने झूँठी आकाशवाणीके कहनेसे अपनी वहनके वालक मारे मेरी क्या गति होगी ? ॥ १७ ॥ हे महाभागियो ! तुम अपने पुत्रोंके मारनेका शोक मत करो, यह प्राणी अपने किये हुए कर्मोंका भोग भोगते हैं और दैवाधीन हैं सर्वदा एकत्र नहीं रहसक्ते. तुम समझना कि, हमारे पुत्रोंकी आयु इतनीही थी॥ १८॥जैसे पृथ्वीके विकार घटपट इत्यादिक पदार्थ उत्पन्न होतेहैं,और फूटजाते हैं,इनके होनेमें पृथ्वीका विकार नहीं आता, ऐसेही यह देह जन्मता और मरताहै कुछ इसके संग आत्मा नहीं मरता जीता ॥१९॥ मूर्ख लोग ऐसे नहीं जानते वह देहकोही आत्मा मानतेहैं और देहको आत्मा माननेसे "मैं हूं "तू है"यह अनेक प्रकारके बुद्धि भेद उत्पन्न होतेहैं, इस भेदसे पुत्रादिकके देहसे योगवियोग होताहै

मा शोचतं महाभागावात्मजान्स्वकृतंभुजः ॥ जंतवो न सदैकत्र दैवाधीनाः सहासते ॥ १८॥ भुवि भौमानि भूतानि
यथा यांत्यपयांति च ॥ नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥ यथाऽनेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ॥
देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ॥ माऽनुशोच यतः
सर्वः स्वकृतं विंदतेऽवशः ॥ २१ ॥ यावद्धतोऽस्मि हंतास्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् ॥ तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्य
बाधकतामियात ॥ २२ ॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ॥ इत्युक्त्वाऽश्रुमुखः पादौ श्यालस्स्वस्रोरथा
ग्रहीत ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विस्रब्धः कन्यकागिरा ॥ देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥

इसीसे उनके अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती ॥ २० हे मंगलरूपिणी ! मैंने तेरे पुत्रोंको माराहै तो भी तू उनका शोक संताप मत कर, क्योंकि सब प्राणियोको परतंत्रतासे अपने अपने किये हुए कर्मोंका भोग भोगना पडताहै ॥२१॥जव तक प्राणी अपने स्वरूपको नहीं जानै और यह कहै कि, मैं मारता हूं और मैं मरता हूं, तब तक वह देहाभिमानी अज्ञान पुरुष मरता है और मारता है॥२२॥हे दीनदयालु ! हे सत्यवक्ताओ ! अब आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये,क्योंकि साधुजन दीनोंपर सदा दयाही करते हैं, यह कह आँखोंमें आँसू भरकर कंस वसुदेव देवकीके चरणोंमें गिरपड़ा ॥२३॥ और योग मायाने जो यह वचन कहा था कि, तेरा मारनेवाला कहीं उत्पन्न होगया इस वाणीपर विश्वास लाकर वसुदेव और देवकीके

पाँवोंकी बेड़ी कटवादी और सुहृदता और मित्रता अपनी जतानेलगा ॥ २४ ॥ हे देवकी ! अब मेरा अपराध क्षमाकर, देवकी अपने भ्राता कंसका अत्यन्त व्याकुल देखकर बोली कि, हे भय्या ! मैंने तेरा सब अपराध क्षमा किया तू मत डरै, यह कह उसकी आखोंसे आंसू पोंछनें लगी और वसुदेवजीभी उससे शत्रुता तजकर मुसकराकर बोले ॥२५॥ हे महाभाग कंस ! जैसे तुम कहते हो वैसेही है, देहधारियोंको अज्ञानसे अहंकार होता है, इसी अहंकारने मेरा तुम्हारा परस्पर भेद करदिया ॥२६॥ शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह, मद जिनको लगरहे हैं वह मनुष्य इनचारोंसे आपही मरते हैं, उनको कौन मारता है, वह उन्मत्त पुरुष यह नहीं जानते कि, परमेश्वरही पदार्थोंसे पदार्थोंका परस्पर नाश करताहै और उस परमात्माको नहीं देखते और अज्ञानी पुरुष मैं मरताहूं, मैं मारताहूं, ऐसे मानते हैं ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार प्रसन्न हो शुद्ध

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षांत्वा रोषं च देवकी ॥ व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥ एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेतिभिदा यतः ॥ २६ ॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ॥ मिथो घ्नंतं न पश्यंति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ॥ देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥ रात्र्यां तस्यां व्यतीतायां कंस आहूय मंत्रिणः ॥ तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥ आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ॥ देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥ एवं चेत्तर्हि भोजेंद्र पुरग्रामव्रजादिषु ॥ अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥

अंतःकरणवाले वसुदेव देवकीसे आज्ञा लेकर कंस अपने राजभवनको गया ॥ २८ ॥ और जैसे तैसे करके रात काटी प्रातःकाल होतेही कंसने अपने सब मंत्रियोंको बुलाया और जो कुछ योगमायाने कहा था कि, तेरा मारनेवाला उत्पन्न होगया है, यह सब वृत्तान्त मंत्रियोंके सामने ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥ २९ ॥ कंसके वचन सुनकर देवताओंके शत्रु अविवेकी, देवताओंपर क्रुद्ध होनेवाले जो अघासुर, तृणावर्त आदिक मंत्री थे वह कंससे बोले कि ॥ ३० ॥ हे यादवेन्द्र ! जो ऐसा भी है तो क्या चिन्ताहै ? आप कुछ सन्देह न कीजे केवल इतना काम करो कि–पुर, ग्राम, खिरक इत्यादि जितने स्थान हैं, उनमें दश पांच दिनके भीतर जो बालक उत्पन्न हुएहैं उनको मारनेकी हमको आज्ञा देदीजै हम आजही सब

बालकोंको बीन बीन कर मारआवेंगे उनमें जो आपका शत्रु होगा वहभी मारा जायगा ॥ ३१ ॥ और जो देवता संग्रामके नामसे थरथर काँपते हैं वह आपके सामने क्या पराक्रम करेंगे ? आपके धनुषकी टंकारही सुनकर निरन्तर व्याकुल रहते हैं ॥३२॥ जिस समय आप धनुषपर बाण चढा कर चारों ओरको प्रहार करते हो उस समय देवता अपने अपने प्राणोंको लेकर रणस्थलसे भाग जाते हैं और भाग जानाही उनका अच्छा है ॥३३॥ उनमें कोई कोई तो शस्त्र त्याग, दीन बन,हाथ जोडकर खड़ा होजाताहै और कोई निकच्छ होकर शरणमें आ कहता है कि, हम हारगये २ हमको मत मारो ॥ ३४ ॥ आपके सामने रथ जिनके टूटगये, शस्त्र हाथोंमेंसे छूटगये,भयभीत हो भाग गये, युद्धसे विमुख धनुष जिनके हाथोंसे गिरगये और जो संग्राम छोड़कर बैठरहे उनको तो आप मारते ही नहीं हो ॥३५॥ जहाँ कोई शूरवीर और युद्ध करनेवाले योद्धा नहीं होते उस निर्भय स्थानमें

किमुद्यमैः करिष्यंति देवाः समरभीरवः ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समंततः ॥ जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥ केचित्प्रांजलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ॥ मुक्तकच्छशिखाः केचिद्र केचिद्भीताः स्म वादिनः ॥ ३४ ॥ न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ॥ हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ॥ रहोजुषा किं हरिणा शंभुना वा वनौकसा ॥ ३६ ॥ किमिंद्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ॥ ततस्तन्मूलखनने नियुंक्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥

बैठकर झूठा बकवाद करनेवाले देवताओंसे और जो क्षीरसागरमें शेषशय्यापर पड़ा दिन रात लक्ष्मीसे भोगविलास करता रहता है उसीके ध्यानमें नित्य मतवाला हो आलस्यके मारे कोई काम नहीं करता उससे युद्ध कब होसक्ताहै जो आपके डरसे क्षीर समुद्रमें छिपाहुआ पड़ा है उस लक्ष्मीकी आशा करनेवाले विष्णुसे, इलावृतखण्डका रहनेवाला ज जातेही पुरुष स्त्री होजाय, दिन रात पार्वतीके संग क्रीड़ा करनी और उसीके मोहजालमें मग्न रहनेवाला विषके पीनेसे जिसका चित्त नित्य उद्विग्न रहै ऐसे बावले बहुरंगे शिवसे, ॥ ३६ ॥ तुच्छ पराक्रमी, किंचिन्मात्र विपत्ति पड़नेसे देवताओंको साथ ले भगवान्के पास जाकर पुकार मचावै. आपने सुनाही होगा कि, हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु और रावणादिक अनेक असुरोंने उसकी कैसी २ दुर्दशा की और बताओ आजतक किसको जीता, सदा घर बैठाही वज्र घुमाता

रहताहै और ऐसे असमर्थ इन्द्रसे, रहा ब्रह्मा वह दिन रात पूजा पाठमें लगा रहताहै उसको अपनेही कामोंसे पलभरको सावकाश नहीं ? फिर बताओ कि, इन लोगोंसे हमको क्या भय है और कौन इनमें हमसे युद्ध कर सक्ता है परन्तु तोभी वैरीही हैं न जानिये कलको क्या उपद्रव कर उठावें, क्योंकि शत्रुको और सर्पको छोटा न समझै, इसलिये इन लोगोंका छोडना अच्छा नहीं, इस समय तो इनकी जड उखाडनेको हम उपस्थित हैं, हम लोगोंको आज्ञा दीजिये ॥३७॥ जैसे विना उपाय किये शरीरका रोग जड पकड जाता है फिर पीछे उपाय करनेसे कुछ नहीं होसक्ता, जैसे योगी जन पहिले इंद्रियोंसे विषयभोग करके फिर पीछे उनको रोकना चाहैं तो फिर वह नहीं रुकसक्तीं, ऐसेही शत्रुको छोटा समझकर जो छोड देते हैं, फिर पीछे प्रबल होकर वह शत्रु जीतनेमें नहीं आता और जो कदाचित् जीत भी लिया तो बडी विपत्ति उठानी पडती है और बहुत दाँत

यथाऽऽमयोंगे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ॥ यथेंद्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥ मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ॥ तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥ विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ॥ श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुर द्विड् गुहाशयः ॥ तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ॥ अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं दुर्मंत्रिभिः कंसः सह संमंत्र्य दुर्मतिः ॥ ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशवृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

खट्टे होते हैं ॥ ३८ ॥ सब देवताओंकी जड विष्णु है और विष्णुकी जड सनातन धर्म है और सनातनधर्मकी मूल गौ, ब्राह्मण, तप, यज्ञ और दक्षिणा है ॥ ३९ ॥ हे राजन् कंस ! इसलिये वेदपाठी, तपस्वी, याज्ञिक, ब्राह्मण, यज्ञके उपयोगी और दूध देनेवाली गायोंको हम अवश्य मारेंगे ॥ ४० ॥ गौ, ब्राह्मण, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और यज्ञ यह सब विष्णु भगवान्के अंग हैं ॥ ४१ ॥ वह विष्णु सब देवताओंमें मुख्य, दैत्योंका द्रोही और सबके हृदयमें वास करनेवाला और ब्रह्मा, महादेव, सब देवता और ऋषियोंका मूलभी वही है, इसलिये ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंका मारना, यही विष्णुके मारनेका ठीक उपाय है ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् !

दुष्टबुद्धि कंस कालके फन्दमें फँसे हुयेने इस प्रकार दुष्ट मंत्रियोंके साथ, सम्मतिकरके ब्राह्मणोंको मारकर अपना कल्याण चाहा ॥ ४३ ॥ ❀ महा पुरुषोंका कष्ट जिनको प्रिय, इच्छापूर्वक रूप धारण करनेवाले असुरोंको सब देश विदेशोंमें साधु संतोंके मारनेके लिये आज्ञा देकर भेज दिया और आप अपने राज्यमंदिरको चलागया ॥ ४४॥ राजस, तामस स्वभाववाले दुर्बुद्धि, आज्ञानसे जिनका अन्तःकरण आच्छादित होरहा, मृत्यु जिनके शिरपर खेल रही, ऐसे ऐसे दैत्य साधुओंके विद्रोही होकर उनसे वैर करनेलगे ॥ ४५ ॥ सत्पुरुषोंसे द्वेष रखनेवाले पुरुषकी आयु,धन, यश,

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ॥ कामरूपधरान्दिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ ते वै रजःप्रकृतयस्त मसा मूढचेतसः ॥ सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥ आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥ हंति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० कंसाज्ञप्तकृतबालादिहिंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ॥ आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ॥ कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥

धर्म, परलोकसुख, महात्माओंका आशीर्वाद और मंगल इन सबका नाश होजाताहै ॥४६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां कंसस्यानीतिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ दोहा–पंचममें उत्सव अधिक, भयो नन्दके भौन । मथुराको वसुदेवने; कियो मिलन हित गौन ॥१॥ हे राजन्! पुत्रका जन्म होनेसे आनन्द सहित उदारचित्त नन्दरायजीने उसी समय स्नान कर पवित्र हो पीताम्बर पहन, शृंगार कर, आसनपर जा

* शंका–कसने राक्षसोंसे जिस ब्रह्मका बन्धन कराकर अपना कल्याण माना वह ब्रह्म कौन है? क्योंकि सर्वव्यापी, अजर, अमर, चैतन्यकारक, ऐसा जो ब्रह्म है वह कभीभी किसीके बन्धनमें नहीं आसक्ता और किसीके मारनेसे नहीं मर सक्ता, वह मरनेवाला ब्रह्म किसीके मारनेको नहीं है । जो राक्षसोंके मारनेसे मरगया ।

उत्तर–अजर, अमर, सर्वव्यापी ब्रह्म है सो "ब्रह्महत्याहित" मैंने इस श्लोकका अर्थ नहीं किया, इसश्लोकका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि, यज्ञादि, दानादि, स्नानादि, नारायणके पूजनादि, अनुराग अपने हृदयमें कोमलता, दया इनको आदिलेकर और अनेक प्रकारके कर्म सोई ब्रह्म हैं, उनका नाश कराकर कंस अपना हित मानताथा, ऐसा अर्थ व्यासजीने किया है ॥

विराजे ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुलाय मोतियोसे चौक पुराय उसपै सुवर्णका कलश स्थापन कर, गणेश, गौरी, वरुण इत्यादि देवता, पितृ, लोकपाल दिक्पाल इन सबका संस्थापन करके स्वस्तिवाचन कराय और पूजन कर पुत्रका जातिकर्म संस्कार कराय ॥ १ ॥ २ ॥ उसीसमय भूषित करी दोलाख गौवें और तिलोंके सातपर्वत बनाय ऊपरसे सुनहरी रंगका वस्त्र उढ़ाय उनके भीतर मणि, माणिक, मोती, हीरे और अनेक अनेक प्रकारके रत्न भर भरके ब्राह्मणोको दान कर दिये ॥ ३ ॥ कालसे तो पृथ्वी पदार्थ शुद्ध होता है, स्नान करनेसे शरीरशुद्धि होती है; धानेसे वस्त्रादिक शुद्ध होता है, संस्कारसे गर्भादिक शुद्ध होता है, तप करनेसे इंद्रियोंकी शुद्धि होती है, यज्ञ करनेसे ब्राह्मणोंकी शुद्धि होती है, दानकरनेसे धनकी शुद्धि होती है, सन्तोपसे मनकी शुद्धि होती है और आत्मविद्यासे आत्माकी शुद्धि होती है. यह विचार नन्दरायजीने अनेक

धेनूनां नियुतं प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते ॥ तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौंभांबरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नान शौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ॥ शुध्यंति दानैः संतुष्टया द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ॥ ४ ॥ सौमंगल्यगिरो विप्राः सूतमागधवंदिनः ॥ गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुंदुभयो मुहुः ॥ ५ ॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहांतरः ॥ चित्रध्वज पताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥

प्रकारके दान दिये ॥ ४ ॥ ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़ने लगे, पुराणवक्ता पुराण बॉचने लगे, गायक वंशावली बखानने लगे, भाट बन्दीजन यश वर्णन करने लगे, गायक गुण गाने लगे और भेरी नगाडे जहां तहां बजने लगे ॥ ५ ॥ व्रजमें द्वार द्वार आंगन आंगन घर घर सब झाड बुहार रहे हैं और बजारोंमें गलियोंमें घाटोंमें बाटोमें, रजबाहोंमें, चौराहोंमें बुहारी लगाकर गुलाबके जलसे, केवडेके जलसे, केतकीके जलसे सेवतीके जलसे, खसके जलसे, चन्दनके जलसे, छिरकने लगे. सब गोकुल और महावन नन्दगॉव सुगन्धसे सुगन्धित कर दिया । सबने अपनें अपनें भवनोंकी शोभा निराले ही निराले ढंगकी बनादी सुन्दर स्फटिक मणिके द्वार सुवर्णके किवॉड, वैडूर्यकी देहरी, मूंगोंकी चौखट, जिनमें पुष्प बिखररहे, आमके पत्ते और फूलोंकी बन्दनवारें जहां तहां लटकरहीं, सुवर्णके कलश कलशियें द्वार द्वार पर विज्जुच्छटासी चमक रहीं, ध्वजास्तंभ

गड़रहे हैं, जिनमें चित्र विचित्र रंग ध्वजापताका फहराय रही हैं मोतियोंकी माला जहां तहां लटक रहीं हैं; मानो भवन भवनमें पुत्रजन्मोत्सव हो रहा है ॥ ६ ॥ जबहीं ग्वालिये गाय बछडोंको लेलेकर वनको चले, उसी समय एक गोप वृक्षपर चढकर पिछौरिया घुमाकर बोला, अरे भैया ! आज कोई व्रजवासी वनको मत जाना हमारे नन्दरायजीके पुत्रका जन्म हुवा है, यह बात सुनके सब ग्वाल बाल आनन्दमें मग्न होगये और सब अपनी अपनी गायोंका शृंगार बनाने लगे, पहिले तो छोटी छोटी गाय, बछड़े, बछियाओंको हलदी तेल लगाकर उबटन किया. फिर गेरू, मेंहदी, लाख, हरतालसे रँगा और बीच बीचमें हलदी और रोलीके थापे लगाये, जंगाल और सिंगरफसे उनके सींगरंगे और मोरछल जिनमें लटक रहे ऐसी शोभायमान झूलें उढायदीं, मोरछलकी कलगी न्यारी ही पहिराय दीं, गलेमें घण्टोंकी मालाका शब्द निराला ही सुनाई आता था और कोई कोई गोप अपने अपने घरोंसे सुनहरी आभूषणोंके डिब्बे और उत्तम उत्तम वस्त्रोंकी गठरी उठालाये, मोहनमाला, चन्दनहार, हमेल, पचलडी, चम्पाकली, धुकधुकी, बछडे बछियाओंके गलेमें डाल दिये, पाँवोंमें पावटे, घुंघरू, कडे झाँझन, पहराय दीं और ऊपरसे शाल

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ॥ विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकांचनमालिनः ॥ ७ ॥
महार्हवस्त्राभरणाः कंचुकोष्णीषभूषिताः ॥ गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥

दुसाले जरीकी ओढनी उढायदीं, इसप्रकार सबने अपनी अपनी गायोंका शृंगार किया ॥ ७ ॥ सब गोप ग्वाल सुन्दर सुन्दर सूही, बैंजनी ऐंठदार पागें बांध बांध और दोचार पेंच गलेमें डाल सुन्दर सुन्दर जामें पहरलिये, किसी किसीने काछ बांध लिये किसीकी लटकवां धोती, रेशमी दुपट्टे ओढ लिये और भाँति भाँतिके आभूषण सज सुन्दर शृंगार बनाये यमुनाकी रज मस्तकपर चढ़ाये, कन्धोंपर तलवारें धरे, कानोंमें फूलोंके तुर्रे उरसे हुए, शिरमें मोरके पंखोंकी कलंगी धरे, भारी भारी लट्ठ लिये, पानसे मुख लाल करे थालोंमें भेंटें लिये गायोंको आगे आगे नचाते कुदाते गाते बजाते हँसते हँसाते, नन्दरायजीको बधाई देनेके लिये चले उस समय नन्दजीके द्वारपर बडी भारी भीर हुई उस छविको देख छविभी लज्जाकी मारी एक कोनेमें छिपी हुई, उस आनन्दको देख रही थी. इस उत्सवको देखनेके लिये स्वर्गसे ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक अनेक देवता अपनी अपनी स्त्रियोंको संगलिये मनुष्यरूप धारण किये गोपग्वालोंमें आनमिले और सब नन्दके द्वारपर पुकार पुकार बार बार यह कहते थे कि, आज नन्दघर बधाई है. उस समय नन्दजी ऐसे मग्न थे कि, अंगमें फूले नहीं समाते थे, और सबके हाथ पकड पकड अत्यन्त

आदर सत्कारसे कुशलक्षेम बूझ बूझ मखमलके बिछौनोंपर बिठाते जाते थे और बारबार सबको पान मिठाई दे देकर यह कहते थे कि, सब आप हीका प्रताप है दूसरे दिन यह शुभ संवाद समीप समीपके सब ग्रामोंमें भी पहुँच गया कि, नन्दजीके पुत्रका जन्महुआ. यह शुभ समाचार सुन सब व्रजवासी परमानन्द हो होकर इन इन ग्रामोंसे इथौरा, रीठा, कारब, रावल, लौहवन, महावन, राधाकुण्ड, बरसाना, गोपालपुर, विसौली, जसौली, विजौली, रसौली, मांठ,आंट, आढस, सुनर, वसई, छटीकरा, नरी, सेमरी, परासौली, कोठवन, मधुवन,बढैन, करहेला, नन्दीश्वर, नन्दगांव, बनेई,ऊंचागांव, चिकसौली, सुमहरा, कामवन, वृन्दावन, दीघम,होली,इत्यादि और अनेक गांवोंसे भेंटे ले ले कर चले तो वृद्ध वृद्ध जो गोप थे उन्होंनें भी अपना अपना शृंगार किया और युवा बालकोंका तो कहनाही क्या है, सुवर्णके थालोंमें हीरे, मणि,रत्न,पन्ना, पुखराज,हंसली, खंडुवे, कण्ठी, माला, कुरते टोपी, रोली, चन्दन, पान, मिठाई,मेवा,श्रीफल, घर घर कर सब व्रजवासी ड़फ,ढोल, झांझ,मृदंग, चंग, मुहचंग,उपंग, बजाते और गीत गाते धूम धाम मचाते नन्दरायजीके द्वारपर आये और उनको दण्डवत प्रणाम कर करके भेंटें उनके आगे धरीं उस समय नन्द

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ॥ आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राऽऽकल्पांजनादिभिः ॥ ९ ॥

नवकुंकुमकिंजल्कमुखपंकजभूतयः ॥ बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥

राय उनको देख देख प्रसन्न हो हो बड़े बड़े गोपोंसे मिल मिल सबको आदर सन्मानसे आसन दे देकर बैठालते थे, सब गोप बोले कि, नन्दरायजी हम आपके भाग्यकी बडाई नहीं कर सक्ते आज आपका पूर्व पुण्य उदय हुआ, तुम बडे धन्य भागी हो, तुमने हमारे मनके मनोरथ सिद्ध किये और आज हमारे मनकेसा समाज सजा है, नन्दरायजी बोले कि, भैया ! यह सब तुमही लोगोंके पुण्यका प्रभाव है, नहीं तो बुढापेमें मेरा ऐसा भाग्य कहांथा जो यह परमानन्द प्राप्त हुआ। कोई केवडा छिडक रहा है, कोई गुलाब छिडक रहा है, कोई पुष्पोंकी माला पहिरावै है, कोई केशर और चन्दन लगावै है, मानो त्रिलोकीका आनन्द नन्दकेही घर छाय रहा है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब व्रजबालाओंने सुना कि, हमारी व्रजेश्वरीके पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब सब गोपियोंने सुन्दर सुन्दर शृंगार बनाय, मेहँदी, महावर, रचाय नवीन नवीन केशर कस्तूरी मिलाय, मस्तकपर तिलक लगाये, फिर पीछे रेशमी वस्त्र आभूषण पहन, नेत्रोंमें अंजन आंज नखशिखसे अलंकृत हुई ॥ ९ ॥ केशर मुखारविन्दपर मली हुई हैं, कटि लचकरही है नितम्ब जिनकेपुष्ट हैं, कुच चलायमान हैं भेंटें लेले कर नन्दरायजीके

मन्दिरको चलनेकी सब सुन्दरी अभिलाषा कर रहीं थी ॥१०॥ उज्वल मणियोंके जडाऊ कुण्डल कानोंमें शोभायमान हैं, अति सुन्दर मुक्ताओंके हार कुचोंके बीचमें लटक रहे हैं, मानो दोपर्वतोंके बीचमें गंगाकी धार बह रही है. हाथोंमें कंकण,चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये, कमलसेभी कोमल जिनके चरण उनमें अनवट,बिछुवे, नूपुर पगपान, पहिनरहीं, जब एक संग सब मिलकर पग उठावें उस समय पायल और नूपुरोंकी झनकार इस प्रकार हो मानो आनन्दमय घन गर्जे है, उस शब्दसे दशों दिशाओंका अमंगल दूर होता चला जाता है और क्षीणकटिकी लचकसे जो शरीर कम्पायमान होताथा तो जुड़ेसे मालती और मदनबाणके फूलोंके हार खसिखसिकर उनके चरणोंमें गिरते थे सो वह हार आपसे आप नहीं गिरते थे केश उन चरणोंकी अद्भुत शोभा देख देखकर रीझते थे और बार बार प्रसन्न हो होकर पुष्पोंके हार उनपर चढाते थे और दूसरा प्रयोजन यह भी था कि,हमारे ऐसे भाग्य कहाँ थे यही हमको श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करानेके लिये चलते हैं, ऐसी ऐसी गोपियोंके झुण्डके झुण्ड नन्दजीके घरको चले

गोप्यः सुमृष्टमणिकुंडलनिष्ककंठ्यश्चित्रांबराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ॥ नंदालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोल कुंडलपयोधरहारशोभाः ॥११॥ ता आशिषः प्रयुंजानाश्चिरं पाहीति बालके ॥ हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिंचंत्यो जनमुज्जगुः ॥ १२ ॥ अवाद्यंत विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ॥ कृष्णे विश्वेश्वरेऽनंते नंदस्य व्रजमागते ॥ १३ ॥

जाते हैं,उस समयकी शोभाको कौन कवि वर्णन करसक्ता है ॥११॥ तब सब गोपिका नन्दरायजीके आँगनमें आनकर श्रीकृष्ण चन्द्रको आशीर्वाद देने लगीं. हे कृष्ण ! तुम चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो और हमारी बहुत दिनोंतक रक्षा करो. इस प्रकार बालकको आशिष देकर हलदीके चूर्णमें तैल और पानी मिलाय परस्पर छिड़कती छिड़काती गीत गाती आँगनमें केशर और चन्दनके रंगकी झारी और पिचकारी लिये धूम धाम मचारहीं थी ॥ १२ ॥ विश्वेश्वर विश्वभावन भगवान्के व्रजमें आतेही मनुष्योंके मनमें परमोत्सव बढा और मन्दिर मन्दिरमें भाँति भाँतिके बाजे बजने लगे, सब गोपिका श्यामसुन्दरका मुखारविन्द देख देख आनन्द हो हो न्यौछावर कर नन्दरानीसे कह रहीं थी कि, हे यशोदा ! तेरे पुत्रके तो चक्रवर्तीकेसे लक्षण हैं, चक्रादिक चिह्नोंके छिपानेके लिये अपने हाथोंकी मुट्ठी बांधली है तैने पूर्व जन्ममें भगवान्की बड़ी सेवा करी है जो ऐसा मनोहर पुत्र पाया है. यशोदा सबके पाओं पड़ पड़ कर कहती थी कि, इसमें मेरा क्या है यह सब

तुम्हाराही पुण्य हैं, सब गोपी आशिष देतीहैं कि, सदा सुहागन रहु और तेरा पुत्र युग युग जिये ॥ १३ ॥ व्रजवासियोंने उस दिन अत्यन्त प्रसन्न हो होकर घी, दूध, दही, माखन, जल, हलदी, मिला मिलाकर दधिकांदोंका प्रबन्ध किया, प्रथम नन्दरायको बुलाकर उनके ऊपर छिड़का फिर परस्पर ऐसा खेल मचा कि, जहां देखो तहां दधि माखनहीकी रेल पेल होरही थी, इस आनन्दको देवता विमानोंपर बैठे देख देखकर कहरहे थे कि, गोकुलवासियोंका धन्य भाग्य है, जिन परमपुरुष परमात्माका दर्शन शिव सनकादिकके ध्यानमें महा कठिनतासे आता है वह नन्दके घर जन्म लेकर व्रजवासियोंको आनन्द दिखारहे हैं और देवांगना पछिताय पछिताय कहरहीं थीं कि, हाय आज हम नन्दरायके घरकी दासीभी न हुई जो इस उत्सवके सुखको समीपसे देखकर अपने मनको प्रसन्नकरतीं, इसप्रकार दधिकांदोंके उत्सवमें सब व्रजवासी विह्वल होरहे थे ॥ १४ ॥ अतिउदारचित्त नन्दरायजीने सूत, मागध, बन्दीजन और जो जो गुणीजन गानेबजानेवालेथे सबको वस्त्र, आभूषण, गाय द्रव्य दानदिया और नन्दरा

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृतांबुभिः ॥ आसिंचंतो विलिंपंतो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥
नंदो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् ॥ सूतमागधबंदिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥ विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६ ॥

यसे सब वृद्धवृद्ध जनोंने कहा हे मित्र नन्द आज तो नाचनेका दिन है हमारे संग नाचलो, सो सबने नन्दजीका हाथ पकडकर इनको उठाया और सब व्रजवासी मग्न हो होकर नन्दकेसंग नाचने लगे और गोपियें बाजे बजाय बजाय गीत गाने लगी उस समयकी शोभाको देखकर सरस्वती हकी बकीसी हो चित्रकी समान होगई, फिर और कवियोंका क्या सामर्थ्य है जो उस मनभावनी सुहावनी शोभाका वर्णन करसकें ? ॥ १५ ॥ नन्दरायजी उदारचित्त पुत्रके कल्याणके लिये विष्णु भगवान्की आराधना करते थे और बारंबार यह वरदान मांगतेथे कि हे नाथ ! मुझपर प्रसन्नहोओ और यह मेरा बालक चिरंजीव रहै, इसीलिये नन्दजीके समीप जो जो गुणीजन आन आन कर जिस जिस वस्तुकी कामना करते थे, उनको वही वस्तु देदेकर उनकी अभिलाषा पूर्ण करते थे और यथायोग्य उनका पूजनभी करते थे ॥ १६ ॥

नन्दरायजीके घर सब व्रजकी बहू और बेटी आईं परन्तु रोहिणीजी नहीं आईं क्योंकि इनके पति मथुरामें थे. लिखा है कि, जिस स्त्रीका पति परदेशमें हो उसको शृंगार करना नहीं चाहिये और पराये घर न जाय; इसलिये नन्दजीके घर न गईं तब नन्दजीने रोहिणीसे जाकर कहा कि तुमही तो बड़भागिनी ठहरी सोई हमारे घर न आईं हमारे घर बधाई होरही है तुमको अवश्य चलना पडेगा, वह घर तो आपहीका है तुम हमको ऊपरी मत समझो, वह तो सोवरमें बैठी है, केवल एक सुनन्दा है उसको ऊपरहीके काम बहुत हैं, आई गई गोपियोंका आदर सत्कार कौन करे, रोहिणी बोलीं कि, इतने तुम चलो तुम्हारे भतीजेको दूधपिलाकर मैंभी आऊं हूं, तब नन्दराय बोले कि, मेरें संगही तुमको चलना पड़ेगा क्योंकि वहां काम का कारीधारी सिवाय आपके कोई दृष्टि नहीं आता नन्दजीकी आज्ञानुसार सुन्दर सुन्दर वस्त्र, आभूषण, मुक्तामाला, कण्ठाभरण, पहन बलदेव जीको गोदमें ले प्रसन्न होती हुई नन्दजीके संग चली और दासीके हाथमें पान फूल मेवा मिठाईकी थाली देदी और यशोदाके समीप आय कृष्णका

रोहिणी च महाभागा नंदगोपाभिनंदिता ॥ व्यचरद्दिव्यवासस्स्रक्कंठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥
तत आरभ्य नंदस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ॥ हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥
गोपान्गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ॥ नंदः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥

मुख देख नौछावर कर नायनको दी और आंगनमें जो जो गोपी कुरता टोपी लिये बैठी थीं उनके हाथसे लेकर मन्दिरमें धरने लगीं और यथायोग्य उनका आदर सन्मान करने लगीं और सब गोपी यह आशिष देती थीं कि, सदा नन्दालयमें ऐसाही उत्सव बना रहे ॥ १७ ॥ जिस दिनसे व्रजमें कृष्णजन्म हुआ उस दिनसे सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे नंदजी परिपूर्ण होगये, नंदरायजी नित खजानेको लुटाते थे परन्तु फिर भाण्डागारको जैसेका तैसाही भरा पाते थे, क्योंकि वैकुण्ठनाथकी भार्या लक्ष्मी सो व्रजमें आय मालिनीका वेष बनाय द्वारद्वार बन्दनवार बांधती फिरती थी तहां और सम्पत्तियोंकी क्या गिनती है ? ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलदीपक ! एक दिन नंदरायजीने गोकुलकी रक्षा करनेके लिये बहुतसे गोपोंको सब प्रकारसे नियुक्त किया और आप कुछ ग्वालोंको संग ले और दूध, दही, माखन, मटकियोंमें भरभर कर गाडियोंमें लाद

और वार्षिक कर लेकर मथुराको कंसकी भटके लिये लेगये ॥ १९ ॥ अपने परमहितकारी नन्दरायजीका आगमन सुनकर वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए कि, आज हमारे मित्र नन्दजी कंसकी बरसौडी देनेके लिये आये हैं, जब नंदजी कंसको कर दे चुके और किसी स्थानपर आनकर विश्राम किया, उस समय वसुदेवजी कुछ भोजनादिक लेकर नन्दजीसे मिलनेको गये ॥ २० ॥ जैसे मृतक देहमें प्राण आनेसे देह उठ खड़ा होताहै ऐसेही वसुदेवजीको आये देख नन्दजी अकुलाकर शीघ्र खड़ेहोगये और अपने प्यारे सुहृदका हाथ पकडकर प्रेममें विह्वलहो हृदयसे लगाकर मिलनेलगे ॥२१॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नंदमागतम् ॥ ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥२०॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ॥ प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः ॥ प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ॥ प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥ २३ ॥ दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः ॥ उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥

हे राजन् ! नन्दजीका वसुदेवजी पूजनकर सुखपूर्वक आसनपर बैठाय कुशल क्षेम बूझने लगे और अपने परम पियारे पुत्रोंमें जिनका मन अत्यन्त लगरहा था सो वसुदेवजी आदर सत्कार कर बोले॥२२॥अहो भ्राता नन्दजी तुम्हारे सन्तान नहीं होती थी और आपने पुत्र होनेकी आशाभी छोड़ दी थी क्योंकि बहुत वृद्धावस्था होगई थी, सो परमेश्वरकी कृपासे अब आपके पुत्र हुआ, यह सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए *॥ २३ ॥ इस संसारमें रहकर पुनर्जन्मकी नाईं आपका मिलना हुआ यह बड़े आनन्दका दिन है, सब मिलते हैं परन्तु संसारमें मित्रका मिलना बहुत दुर्लभ है ॥ २४ ॥

* शंका–वसुदेवजी ऐसे महात्मा होकर फिर उन्होंने अपने परममित्र नन्दजीके सग कपट क्यों किया ? जो सत्य बोलते कि, हमारे दो पुत्र आपके पास हैं आप रक्षा करो, क्योंकि विपत्तिमें सिवाय मित्रके और कोई दूसरा सहाय नहीं करसक्ता, ऐसा कहनेपर क्या श्रीकृष्णकी रक्षा नन्दजी न करते. कपटका क्या काम था ?

उत्तर–त्रिलोकीमें जो प्राणीहैं सो मायासे उन्मत्त हो रहे हैं, उसी प्रकार वसुदेवजीभी उन्मत्त होगये, जो कोई यह कहै कि विना कारण माया किसीको नहीं मोह करती, यह सब सत्य है, परन्तु वसुदेवजीको मोह होनेका क्या कारण था ? पहिले किसी समय नन्द और यशोदाको भगवान्ने यह वरदान दिया था कि हम जन्म तो दूसरेके यहां लेंगे परन्तु बाललीला तुम्हारे यहा करेंगे, इसलिये भगवान्ने मायासे मोहित करके कपट कराया, जो वसुदेव सत्य बोलते तो नन्दजी कृष्णकी पालना करते तो सही परन्तु कुछ भेददृष्टि रहती कि, दूसरेके पुत्र हैं इसलिये नन्दसे वसुदेवजीने कपट किया भावसे कपट नहीं किया ॥

अहो प्यारे ! नदीके प्रवाहसे काष्ठ और तृणादिक बहते हैं कभी स्थिर होते हैं परन्तु एक स्थानपर संगम नहीं होता. ऐसेही जो अपने प्यारे सुहृद् हैं उनका एक स्थानपर रहना नहीं होता ॥२५॥ हे नन्दजी ! बहुत जल, तृण और गुल्मलतायुक्त पशुओंका हितकारी जो अत्यन्त रमणीक महावन है तहां अपने सम्बंधियों सहित आप निवास करते हो वह महावन निरोग तो है ? इस वचनसे यह ध्वनि निकली कि, हमारे पुत्र जो आपके निवास स्थानपर वास करते हैं वह तो अच्छे हैं ? जहाँ जल, तृण अधिक होगा तो वहां गायोंकी अच्छी उदरपूर्ति होगी और दूधभी अधिक होगा और निरोग होगा तो उस दूधको हमारे पुत्र पियेंगे तो वह भी निरोग रहेंगे ॥ २६ ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे मित्र ! मेरा पुत्र अपनी जननीके संग आपके व्रजमें रहताहै और आपहीको अपना पिता समझताहै और आपही उस बालकके प्रतिपालकहैं, सो वह अपनी मातासहित प्रसन्न है ?

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ॥ ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५ ॥ कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यंबुतृणवीरुधम् ॥ बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥२६॥ भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ॥ तातं भवंतं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ॥ न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥ नंद उवाच ॥ अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ॥ एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ २९ ॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ॥ अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥

जो पुरुष अपने प्रियतम प्यारोंको संग लेकर धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पदार्थोंको करतेहैं और जो अपने प्यारे स्नेहियोंको छोडकर अकेले धर्म करते हैं, वा द्रव्यका भोग भोगतेहैं, अथवा काम विषयका भोग करते हैं तो यह त्रिवर्ग उनको सुखदायक नहीं होते॥२७॥२८॥वसुदेवजीके मधुर वचन सुनकर नन्दजी बोले कि अहो मित्र ! सब व्रजमें परमेश्वरकी कृपा है और आपके पुत्र बलरामजी भी अच्छे हैं उनके उत्पन्न होनेके पीछे मेरेभी एक पुत्र उत्पन्न हुआ है वहभी आपकी कृपासे अच्छा है, परन्तु आपकी ओरका हमको बडा दुःख बना रहता है ॥ २९ हे मित्र ! प्रारब्धही सर्वोपरि है, जिस समय पुत्रादिकोंका देनेवाला भाग्य हीन होजाता है उस समय वह पुत्रादिक भी नहीं होतेहैं, सब विछुड जातेहैं, और जब प्रारब्ध

अच्छा होताहै तो फिर सब आन मिलते हैं. हे भ्राता ! प्रारब्धही सुखका देनेवाला है और प्रारब्धही दुःखका देनेवाला है जो पुरुष इस प्रकार जानते हैं
वह कभी मोहको प्राप्त नहीं होते. इस वचनसे यह सूचित किया कि, अहो वसुदेव ! अपने मनमें पुत्रोंका सोच संकोच मत करो किसी समय आ
पके पुत्रोंकाभी संयोग होजायगा,हमसे वियोग हो जायगा ॥ ३० ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे नन्दरायजी ! विधाताने जो हमारे भाग्यमें लिखा है
उसको कोई नहीं मेटसक्ता और इस संसारमें आनकर ऐसा कौनहै जो कष्ट नहीं भोगता ? और आपकी समान अपना मित्र हम किसीको नहीं
देखते. देखो हमने कंसके भयसे अपनी गर्भवती स्त्रीको आपके यहां निःसन्देह भेज दिया और जब उसके पुत्र हुआ तो आपने अपने पुत्रकी समान
उसका लालन पालन किया, यह परमोपकार आपका मैं कैसे भूल सक्ता हूं ? जन्म जन्मांतरभी आपकी सेवा करूं तोभी उऋण नहीं हो सक्ता.
जब सुना कि, आपके यहां पुत्रका जन्म हुवा तो मैंने परमसुख माना. हे मित्र ! मैं अपने पुत्रोंमें और आपके पुत्रोंमें कुछ भेद नहीं समझता

वसुदेव उवाच ॥ करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ॥ नेह स्थेयं बहुतिथं संत्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ इति नंदादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० नंदवसुदेवसंगमो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदः
पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिंतयन् ॥ हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशंकितः ॥ १ ॥

परन्तु इन दिनों कंसने बडा उपद्रव मचा रक्खाहै छोटे छोटे बालकोंको मारनेकी आज्ञा देरक्खी है और आज एक पूतनानाम राक्षसीको गोकुल
मेंभी भेजा है,अब तुम वार्षिककर कंसको देचुके और हमसे भी मिल चुके, अब यहाँ रहना तुम्हारा बहुत दिनतक अच्छा नहीं, न जानिये
गोकुलमें पूतनाने क्या उत्पात मचाया होगा ? ॥३१॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीके वचन सुन नन्द
रायने सब गोपोंको आज्ञा दी कि, शीघ्र गाडी जोतो ! यह कह वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर नन्दजी मथुरा पुरीसे गोकुलको चल दिये ॥ ३२ ॥ इति
श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां कृष्णजन्मोत्सववर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥ दोहा—छठयेमें नँदरायजी,शोच करत मन जाहिं ।
मरी परी इक राक्षसी, देखी मारगमाहिं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! नन्दरायजी मार्गमें यह विचार करते हुए जारहे

थे कि वसुदेवका वचन तो मिथ्या होही नहीं सक्ता उत्पातके भयसे भगवान्‌का स्मरण करने लगे कि, हे जनप्रतिपालक ! जो यह दो बालक आपने दियेहैं तो इनकी रक्षाभी आपहीको करनी पड़ैगी ॥ १ ॥ महाघोर रूपवाली बालघातिनी पूतना नाम राक्षसी कंसकी पठाई हुई, जितने व्रजमें पुर ग्रामादिक थे सबमें बालकोंको मारती फिरती थी ॥२॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्‌के मनमें शंका हुई तो श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, वह पूतना नन्दजीके मन्दिरमें गई वा नहीं गई ? और गई तो क्या किया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! चिन्ता मत करो जहाँ परमेश्वरका यश और यज्ञादिक कर्म नहीं होते वहीं राक्षसी जा सक्ती है और अपना पुरुषार्थ करती है, और जिन स्थानोंमें भगवान्‌का स्मरण कीर्तन होता रहता है वहाँ राक्षसलोग क्या कर सक्ते हैं ? और नन्दजीके भवनमें तो साक्षात् अनन्त भगवान् विराजमान हैं फिर वहाँ पूतना बिचारी क्या कर सक्ती है ? आपही मारी जायगी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! अनेक राक्षस गांव गांवमें बालकोंको मारनेके लिये फिरते थे परन्तु तो ‌भी कंसके मनमें धैर्य नहीं था और

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ॥ शिशूंश्चचार निघ्नंती पुरग्रामव्रजादिषु ॥२॥ न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ॥ कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥ सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नंदगोकुलम् ॥ योषित्वा माययाऽऽत्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥ ४ ॥ तां केशबंधव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितंबस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ॥ सुवाससं कंपितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुंतलभूषिताननाम् ॥ ५ ॥

आठोंपहर इसी सोचमें व्याकुल रहता था कि, उसी अवसरमें पूतना नाम राक्षसीको बुलाकर अपना सब वृत्तान्त कहा कि और किसीसे तो हमारा कार्य पूरा न हुवा परन्तु मुझको विश्वासहै कि, तुझसे हमारा काम सिद्ध होगा और बालकोंका तो मुझको थोडाही खटका है परन्तु गोकुलमें नन्दके जो पुत्र हुवा है उसका मुझको बडा भय है सो तू गोकुलमें जा और उसको किसी प्रकारसे मारके आ, मैं तुझको पूरा पारितोषिक दूंगा. यह बात सुन तेही पूतना कंसकी आज्ञा शिरपर धारणकर गोकुलको चलदी और मार्गमें यह विचार करती जाती थी की किसप्रकार नन्दकुमारको मारना चाहिये? फिर सोचा कि और किसीप्रकारसे यह कर्म नहीं होगा, गोपीका वेष बनाकर बधाई देनेके मिष नन्दके घर जाऊं और छलबल कर उस बालकको मार आऊँ ऐसा विचार, बन ठन गोकुलमें पहुँची ॥४॥ उसकी चोटीमें मालतीके फूल गुँथे हुये थे, बडे२ नितम्ब और छोटे छोटे स्तनोंके भारसे कटि जिसकी

नीचेको झुकी जातीथी, सुन्दर सुन्दर वस्त्र धारण कररहीथी,कानोंमें कर्णफूल, कुण्डलोंकी छबि शशिको लज्जित कररहीथी और केशोंसे जिसका मुख शोभायमान होरहा था॥५॥मन्द मन्द मुसकान और बाँकी चितवन व्रजवासियोंके मनको मोहित करनेवाली, बेखटक राजभवनमें चली गई और द्वार पालोंपर ऐसी मोहिनी डाली कि,किसीने उसको नहीं रोका और उसके हाथमें एक कमलका फूलथा उसको देखकर सब गोपियोंने कहा कि,यह लक्ष्मी अपने पति नारायणके दर्शनके लिये आई हैं और यशोदा रोहिणीनेभी यही जाना॥६॥बालकोंको ग्रहरूप जो पूतनाहै सो छोटे २ बालकोंको खोजती हुई नन्दजीके मंदिरमें आई जहां दुष्टोंके मारनेवाले भगवान्,भस्ममें दबी हुई अग्निके समान बालकरूपमें अपने तेजको छिपाये शय्यापर पड़े सोरहे थे उनको देखा॥७॥स्थावर जंगम प्राणियोंके अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने उस बालघातिनी पूतनाको देखकर आंखें मीचली और हँसकर चुप होरहे,उस दुष्टा

वल्गुस्मितापांगविसर्गवीक्षितैर्मनो हरंतीं वनितां व्रजौकसाम् ॥ अमंसतांभोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नंदगृहेऽसदंतकम् ॥ बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥७॥ विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः ॥अनंतमारोपयदंकमंतकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥ तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यांतरा कोशपरिच्छदासिवत् ॥ वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम्॥९॥ तस्मिंस्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोरांकमादाय शिशोर्ददावथ॥ गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥

ने आतेही कालरूप भगवान्को गोदीमें उठालिया, जैसे कोई अज्ञानी पुरुष रस्सी समझकर सोते हुये साँपको उठालेता है॥८॥जैसे मखमलके म्यानकी तलवार ऊपरसे मनोहर और भीतरसे महातीव्र तीक्ष्णधारावाली होती है, ऐसी पूतनाको देख चकित होकर रोहिणी और यशोदा देखती रही मुखसे कुछ न कहा, तब एक गोपी बोली कि, तू कौनहै ? तब उस कपटिन पूतनाने कहा कि, मैं देवांगना हूं तुम्हारे यहां बधाई देने आई हूं इस मनोहर बालकको देखकर जी खिलानेको चाहा इसलिये गोदमें लेलिया; परमेश्वर करै यह बालक करोड़ वर्ष जीता रहै ॥९॥ ऐसी रीति प्रीति भरी बात चीतकर उस कपटरूप पूतनाने चुमकारके कृष्णको गोदमें ले लिया और भयानक विष लगा हुआ अपना स्तन उनके मुख कमलमें दे दिया,

तब तो कुपित होकर कृष्णचन्द्रने दोनों हाथोंसे स्तन उसका पकड़के प्राण सहित स्तनको औषधि समझकर पीगये ॥ १० ॥ तब पूतना बोली,अरे लाला छोडदे छोडदे मेरे प्राण चले बस रहनेदे मेरा अपराध क्षमाकर मेरे शरीरमें अत्यन्त पीडा होतीहै,जब नेत्र फटने लगे तो पुकारी अरी यशोदा! अरी यशोदा! अपने लालसे मुझको छुटा, मैं मरी,यह तेरा बालक मनुष्य नहीहै,यह तेरी कोखमें कोई महाबलवान् देवता उत्पन्न हुवा है यह कहतीही कहती हाथ पांव पीटकर मरगई ॥ ११ ॥ महा गम्भीर पूतनाके शब्दसे पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पायमान होगई, ग्रहतारागणसहित सब आकाशमण्डल चलायमान होगया,रसातल और दिशाओंमें घोर शब्द पूरित होगया, इन्द्रवज्रपातहोनेकी शंकासे मनुष्य पछाड़ खाखाकर पृथ्वीपर

सा मुंचमुंचालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाऽखिलजीवमर्मणि॥ विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा ॥ रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ॥१२॥ निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ॥ प्रसार्य गोष्ठे निज रूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥१३॥ पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यंतरद्रुमान् ॥ चूर्णयामास राजेंद्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥ ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकंदरनासिकम् ॥ गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥

गिरगये. ❀ ॥ १२ स्तनोंकी व्यथासे प्राण जिसके निकलगये और मरती समय कपटरूप जिसने अपना त्याग दिया,राक्षसीरूप प्रगट करलिया जैसे मरनेके समय वृत्रासुर कपट तजकर भूतलपरगिरा था, इसीप्रकार पूतनाभी हाथ पांव पसारके पृथ्वीपर गिरी ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जिस समय पूतना मरकर पृथ्वीपर गिरी उस समय छह कोशके बीचमें जो वृक्ष थे उनका चूर्ण होगया ॥ १४ ॥ उस महाभयानक रूपवाली पूतनाके मुँखमें हलकी समान दाढैं और पहाड़की कन्दराकी समान जिसकी नाक, पर्वतके शृंगकी सदृश जिसके स्तन और महाभयंकर

* शंका–कंसकी भेजी हुई पूतनाने मरते समय ऐसा गम्भीर शब्द किया कि, तीन लोक कम्पायमान होगये, बड़ा आश्चर्य मालूम पडता है, हम लोगोंने तो कभी नहीं सुना, राक्षसीके शब्दसे तीनों लोक काप उठे?

उत्तर–जब पूतनाने मरतेसमय शब्द किया उस समय गुप्त होकर तीन लोकमें स्थित जो प्रजा थी सो सब श्रीकृष्णके दर्शनके लिये व्रजमें आये थे सो सब प्रजागण पूतनाके शब्दको सुनके शीघ्र काँपने लगे इसलिये तीन लोकका नाम व्यासजीने कहा था, क्योंकि लोक प्रजाका भी नाम है लोकमें और प्रजामें कुछ भेद शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता.

लोहित रंगके जिसके बिखरे हुए केश थे ॥१५॥ अन्धकूपकी नाईं गम्भीर गम्भीर जिसके नेत्र, जैसे पुल बँधा होय तैसे हाथ पांव जंघा जिसके, सूखे सरोवरके समान जिसका उदर है ॥ १६ ॥ ऐसा महाभयानक पूतनाका देह देखकर गोप गोपी अत्यन्त भयभीत हुए. क्योंकि उसके गम्भीर शब्दसे पहिलेही उनके हृदय, कान, मस्तक, फटगये थे ॥ १७ ॥ उस पूतनाकी छातीपर निःशंक श्रीकृष्णचन्द्र क्रीडा कर रहे थे, सब गोपी जो हड़बड़ाई हुई व्याकुल फिरती थीं झटपट उस राक्षसीके ऊपरसे उठाकर हृदयसे लगालिया ॥१८॥ सबगोपी और यशोदा रोहिणी ब्रजनन्दनके गायकी पूँछसे झाडा देकर फूंक मारने लगीं और अनेक विधियोंसे रक्षाकर उतारे उतारे ॥ १९ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेको गोमूत्रसे स्नान कराय

अंधकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ॥ बद्धसेतुभुजोर्वंघ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ॥ पूर्वं तु तन्निस्स्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥ बालं च तस्या उरसि क्रीडंतमकुतोभयम् ॥ गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ॥ रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥१९॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम् ॥ रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः ॥ २० ॥ गोप्यः संस्पृष्टसलिला अंगेषु करयोः पृथक् ॥ न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥ अव्यादजोंघ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ॥ हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कंठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥

गोरजमें लुटाय गोबर लगाय द्वादश अंगोंमें केशवादिक द्वादश नामोंसे रक्षा करने लगीं ॥२०॥ सब गोपियोंका मन जो व्याकुल होरहाथा इसलिये पहिले कुछ श्रेष्ठ उपाय न करसकीं. फिर सावधान हो स्वस्थ चित्त कर सब गोपी स्नानकर आचमन ले अपने अंगोंमें तथा करोंमें पृथक् पृथक् अंगन्यास और करन्यास करके फिर नन्दनन्दनके शरीरमें बीजन्यास किया ॥२१॥ हे यशोदानन्दन ! अजन्मा भगवान् तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करैं, अणिमान् भगवान् तुम्हारे उरुओंकी रक्षा करैं, यज्ञ भगवान् तुम्हारी जंघाओंकी रक्षा करैं, अच्युत भगवान् तुम्हारी कटिकी रक्षाकरैं, हयग्रीव भगवान् तुम्हारे उदरकी रक्षा करैं, केशव भगवान् तुम्हारे हृदयकी रक्षाकरैं, विष्णु भगवान् तुम्हारी भुजाओंकीरक्षा करैं, उरुक्रम भगवान् तुम्हारे मुखारविन्दकी

रक्षा करें, ईश्वर भगवान् तुम्हारे माथेकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी भगवान् तुम्हारे अग्रभागकी रक्षा करें, गदाधर भगवान् तुम्हारे पश्चाद्भागकी रक्षा करें, धनुषधारी मधुनामदैत्यके हन्ता भगवान् और खड्गधारी अजन्मा भगवान् यह दोनों तुम्हारे दाहिने और बायें पार्श्वकी रक्षा करें, शंखधारी उरुगाय भगवान् चारों कोनोंकी रक्षा करें, उपेन्द्र भगवान् तुम्हारे ऊपरकी रक्षा करें, तार्क्ष्य भगवान् नीचे पृथ्वीमें रक्षा करें, हलधर भगवान् सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें ॥ २३ ॥ हृषीकेश भगवान् तुम्हारी इन्द्रियोंकी रक्षा करें, नारायण भगवान् तुम्हारे प्राणोंकी रक्षा करें, श्वेतद्वीपाधिपति भगवान् तुम्हारे चित्तकी रक्षा करें, योगेश्वर भगवान् तुम्हारे मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ भगवान् तुम्हारी बुद्धिकी रक्षा करें, पर भगवान् तुम्हारे आत्माकी रक्षा करें, विहारके समय गोविन्द भगवान् तुम्हारी रक्षा करें, शयनके समय माधव भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥ २५ ॥ वैकुण्ठनाथ भगवान्

चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ॥ कोणेषु शंख उरुगाय उपर्युपेंद्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समंतात् ॥ २३ ॥ इंद्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ॥ श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भश्च ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः क्रीडंतं पातु गोविंदः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥ व्रजंतमव्याद्वैकुंठ आसीनं त्वां श्रियःपतिः ॥ भुंजानं यज्ञभुक्पातु सर्वग्रहभयंकरः ॥ २६ ॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्मांडा येऽर्भकग्रहाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥ कोटरारेवतीज्येष्ठापूतनामातृकादयः ॥ उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेंद्रियद्रुहः ॥ २८ ॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये सर्वे नश्यंतु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ॥ पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥

चलने फिरनेके समय तुम्हारी रक्षा करें, लक्ष्मीपति भगवान् बैठनेके समय तुम्हारी रक्षा करें और सर्व ग्रहोंके भयसे दूर करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥ २६ ॥ डाकिनी, शाकिनी, यातुधान, कूष्माण्ड, बालग्रह भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायकगण ॥ २७ ॥ कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृकादिक जो राक्षसी हैं सो और उन्माद, अपस्मारादिक जो जो रोगके करनेवाले देह, प्राण, इन्द्रियोंके द्रोही हैं ॥ २८ ॥ और जो जो स्वप्नमें देखनेके उत्पात हैं वृद्ध ग्रह, बाल ग्रह, योगिनी, वेताल, जो समस्त विष्णु भगवान्के नाम लेनेसे डरतेहैं सो सब नष्ट होजॉय ॥ २९ इस प्रकार हाथ जोड गोपियोने विष्णुभगवान्की प्रार्थनासे रक्षा करके श्रीयशोदानन्दनको यशोदाको सौंपदिया

तब यशोदाजीने मनमोहनप्यारेको दूध पियाय घरमें छिपायके शय्यापर सुवायदिया ॥ ३० ॥ उसी अवसरमें नन्दादिक व्रजवासीभी मथुरासे आगये, तब मार्गमें मरीहुई पूतनाको पडी देखकर बड़ा आश्चर्य माना ॥ ३१ ॥ नन्दजी कहनेलगे कि, वसुदेवजी तो निश्चय कोई ऋषि वा योगेश्वर जान पड़ते हैं, क्योंकि जो कुछ उन्होंने हमसे कहा था वही हुवा. हमसे कहा था कि, तुम शीघ्र मथुरासे गोकुलको जाओ वहां कोई नया उत्पात होनेवाला है, सो आतेही नेत्रोंसे देखलिया ॥ ३२ ॥ पीछे सब गोकुलवासियोंने पूतनाके देहको कुल्हाडोंसे काट काटकर घरोंसे दूर लेजाकर चितामें धर उसको फूँकदिया ॥ ३३ ॥ जिस समय पूतनाका शरीर जलने लगा तो उसकी चितामेंसे अगरकीसी सुगंधिका धुवाँ निकलने लगा

तावन्नंदादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ॥ विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥ नूनं वतर्षिः संजातो योगेशो वा समास सः ॥ स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ॥ दूरे क्षिप्त्वाऽवयवशो न्यदहन्काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ॥ उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्यहतपाप्मनः ॥ ३४ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ॥ जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽऽप सद्गतिम् ॥ ३५ ॥ किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ॥ यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥ पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वंद्याभ्यां लोकवंदितैः ॥ अंगं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम् ॥ ३७ ॥ यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ॥ कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने उसके स्तन जो पान किये थे इससे सब पाप उसके दूर होगये ॥ ३४ ॥ जगतके बालकोंकी मारनेवाली और रुधिरकी प्यासी पूतनाने भगवान्को स्तन पिलाकर मारनेकी इच्छा की परन्तु भगवान्ने तोभी उसको मोक्ष दिया ॥ ३५ ॥ फिर श्रद्धा और भक्तिकरके श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्को माता अत्यन्त प्रिय पदार्थोंकी देनेवाली मुक्तिको पावै तो क्या आश्चर्यकी बात है ? ॥ ३६ ॥ अपने जनोंके हृदयमें वास करनेवाले और लोकवन्दित देवताओंके भी पूजनीय ऐसे जो देवताधिपति ब्रह्मा जिनको प्रणाम करैं ऐसे चरणारविन्दोंसे पूतनाका अंग दाबकर श्रीकृष्णचन्द्रने स्तन पान किया ॥ ३७ ॥ माताकी गति स्वर्ग है उस गतिको पूतना राक्षसीने प्राप्त किया और जिन गायों, गोपियोंका दूध

श्रीकृष्णचंद्रने पिया है जो वह सुन्दर गतिको प्राप्त होयँ तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३८ ॥ मोक्षको आदिलेकर समस्त पदार्थोंके देनेंवाले देवकीके पुत्र भगवान्ने पुत्रके स्नेहसे गाय और गोपियोंका दूध परिपूर्ण होकर पिया ॥ ३९ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रमें पुत्रभाव माननेवाली उन माता और गोपियोंको अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला संसार न होगा ॥४०॥ व्रजवासी लोग पूतनाकी चिताके धुयेंकी सुगंधि सूँघकर परस्पर कहने लगे कियह आज क्या है ? और यह सुगन्धि कहांसे आती है ? यह कहतेहुए नन्दादिक गोकुलमें आये ॥४१॥ तब ग्वालबालोंके मुखसे पूतनाका आना और उसका मरना और कुशलपूर्वक बालकका बचना सुनकर नन्दादिक व्रजवासी बड़ा आश्चर्य माननेलगे ॥४२॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! उदारबुद्धि नन्दजी मथुरासे आनकर पुत्रको गोदमें लेकर परमानन्दको प्राप्त हुए और बारंबार उसके शिरको सूंघ सूंघ मनही मनमें प्रसन्न

पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ॥ भगवान्देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥ तासामविरतं कृष्णे
कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ॥ न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसंभवः ॥ ४० ॥ कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ॥
किमिदं कुत एवेति वदंतो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ॥ श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति
शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥ नंदः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह
॥ ४३ ॥ य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविंदे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥ इति श्री
मद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० पूतनामोक्षो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

होते थे और चूम चूमकर प्यार करते थे ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्ने बूझा कि, हे भगवन् ! यह पूर्वजन्ममें पूतना कौन थी ? जिसको श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने ऐसी उत्तम गति दी ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, प्रथम जन्ममें यह राजा बलिकी कन्या थी और रत्नमाला इसका नाम था, जिस समय वामनजीके स्वरूपको इसने देखा तो मनहीमनमें यह कामना करी कि, जो ऐसा सुन्दर सुत मैं पाऊं तो हृदयपर रखकर स्तनपान कराऊं. श्रीभगवान् वासुदेव सर्व घटघटके वासी उसके हृदयकी गति जानकर उससे कहा कि, कृष्णावतारमें तेरी मनोकामना पूर्ण करूंगा. दैत्यकुलमें जो इसका जन्म था इसलिये तामसी देहके कारण राक्षसकेही घरमें जन्म लिया और पूतना नाम हुवा ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, शकटासुरहि गिराय। माताको मुखमें दिये, तीनों लोक दिखाय॥ १॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे प्रभो! छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सब प्राणियोंके दुःखोंके दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जिन जिन अवतारोंको धारण करके जो जो लीला करी हैं वह सब मेरे कानोंको और मेरे मनको प्रिय लगती हैं॥१॥ जो मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्रोंकी कथा दिन रात सुनतेहैं उनके मनकी ग्लानि जाती रहती है और अनेक प्रकारकी तृष्णाभी दूर हो जाती हैं, शीघ्रही सम्पूर्ण अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है, भगवान्में भक्ति और प्रेम बढताहै और हरिभक्तोंसे मित्रता होतीहै इसलिये अनुग्रह करके श्रीकृष्णके मनोहर चरित्र मुझको सुनाओ ॥ २ ॥ और अनन्त मनुष्य देह धारणकर मनुष्योंकीसी लीला

राजोवाच॥ येनयेनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः॥ करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो॥ १॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत्॥ २॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम्॥ मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुंधतः॥ ३॥ श्रीशुक उवाच॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्॥ वादित्रगीतद्विजमंत्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती॥ ४॥ नंदस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः॥ अन्नाद्यवासस्स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः॥ ॥ ५॥ औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः॥ नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत्॥ ६॥

करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रका मनोहर अद्भुत बालचरित्र हमारे सामने वर्णन करो॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब बहुत दिन व्यतीत हुए तो श्रीकृष्णकी वर्षगाँठके उत्सवका दिन आया और उसी दिन जन्मनक्षत्रका योगभी आगया तो उस दिन महामंगल हुवा और सब गोपिकाभी बधाई लेलेकर आईं. नन्दरानी यशोदाजीने बाजे बजवाये, गीतगवाये, ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन पढवाये और श्रीकृष्णचन्द्रको अभिषेक स्नान कराने लगीं॥४॥ जब स्नान करवाया तो बालमुकुन्दके नेत्रोंमें निद्रा आगई, तब सहजसे श्रीकृष्णको गाड़ेके नीचे पालनेमें व्रजरानीने थपकोरके सुलादिया॥ ५॥ भगवान्की बधाई लेनेसे जिनके मनमें अत्यन्त हर्ष बढ़रहा था, वह यशोदारानी उदारचित्त घर आईहुई गोपियोंका आदर

सन्मान कररही थी और ऐसी मग्न होरही थी कि, अपने पुत्रके रोनेका शब्दभी नहीं सुनसकीं, कृष्णको भूख लगी तो दूध पीनेकी इच्छा हुई, तब रोते २ पॉव ऊपरको उठा लिये ॥६॥ गाड़ेके नीचे पालनेमें सोतेहुए श्रीकृष्णके अति छोटे २ कोमल कमलसे जो चरणारविन्द लाल लाल मूंगोंके रंगथे, उन चरणोंकी ठोकरसे गाडा गिरपडा और अनेक प्रकारसे रसोंसे भरे तांबे, पीतलके बासन गिरपड़े, पहिये न्यारे न्यारे उखडकर गिरगये, धुरी निकलगई, जुआ टूटगया ॥७॥ यशोदा आदि लेकर जो जो व्रजकी स्त्रियें थीं और जो जो भेंटें लेकर वसुदेवके घर उत्सवमें आई थीं, और नन्दजीसे आदि लेकर जो जो व्रजवासी थे, सो सब उस आश्चर्यको देखके व्याकुल होगये कि, आपसे आप गाडा किस प्रकार टूट पडा ॥८॥ कोई कुछ कोई कुछ परस्पर विवाद करके कहने लगे और मनही मनमें व्याकुल थे परन्तु किसीको कुछ निश्चय नहीं हुआ तब नन्द यशोदासे समीपके खेलनेवा

अधश्शयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वंघ्रिहतं व्यवर्तत ॥ विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्न कूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ॥ नंदादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥ (इति ब्रुवंतोऽतिविवादमोहिता जनाः समंतात्परिवव्रुरार्तवत्) ॥ ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः ॥ रुदताऽनेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ॥ अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥ रुदंतं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ॥ कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥

ले बालकोंने कहा कि, तुम किसी बातका सन्देह क्यों करते हो, हमने अपनी आँखोंसे देखा कि, रोते रोते श्रीकृष्णने पॉवकी ठोकर मारी इससे यह शकट उलटकर गिर पड़ा, इसमें किंचिन्मात्रभी सन्देह नहीं ॥९॥ बालक समझकर श्रीकृष्णके अनन्त बलको किसीने नहीं जाना, इसलिये उन बालकोंकी बातका किसीने विश्वास नहीं माना और कहने लगे कि, कहां श्रीकृष्णके कोमल कमलसे चरण और कहां यह महा कठोर शकट, छोटेसे बालककी ठोकरसे कैसे टूट सक्ता है? भाई हमको तो किसी प्रकार विश्वास नहीं आता ॥ १० ॥ यशोदाने रोते हुये अपने पुत्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया और कहने लगी आज कोई बडा खोटा ग्रह हमारे ऊपर आगया था परन्तु तुम

पंचोंके प्रतापसे मेरा बालक बचा. उसीसमय ब्राह्मणोंको बुलाय बहुतसा दान पुण्य कर स्वस्तिवाचन पढवाकर व्रजभूषण प्यारेको दूध पिलाया और बारबार यही विचार करती रही कि, कहीं डर न गया हो ॥ ११ ॥ परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको न जाना और ब्राह्मणोंके कहनेसे आठों दिशाओंमें बलिदान करके और सम्पूर्ण वस्तु धरके गाड़ा रख दिया और ब्राह्मणोंने नवग्रहादिकोंका पूजन होम कराय; दधि, अक्षत, फल, फूल, कुश, चन्दन मँगाय जलसे गाडेका पूजन किया, देखो ! प्रेमी व्रजवासियोंका धान्य खाखाकर व्रजके ब्राह्मणभी प्रेमी हो गये जो गाड़ेका पूजन किया ॥ १२ ॥ निन्दा, झूंठ, पाखण्ड, ईर्षा, हिंसा, अभिमान नहीं है जिन पुरुषोंके उन सत्यवादी ब्राह्मणोंका अशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ॥ ॥ १३ ॥ यह बात मनमें विचारकर न्दरायजी श्रीकृष्णको गोदमें लेकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंसे शुद्ध और पवित्र

पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ॥ विप्रा हुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशांबुभिः ॥ १२ ॥ येऽसूयानृतदंभेर्ष्या हिंसामानविवर्जिताः ॥ न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥१३॥ इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ॥ जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नंदगोपः समाहितः ॥ हुत्वा चाग्निं द्विजा तिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥ गावः सर्वगुणोपेता वासस्स्रग्रुक्ममालिनीः ॥ आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्व जत ॥ १६ ॥ विप्रा मंत्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ॥ ता निष्फला भविष्यंति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ ॥ १७ ॥ एकदाऽऽरोहमारूढं लालयंती सुतं सती ॥ गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥

औषधियोंके पानीसे पुत्रका अभिषेककरातेभये॥१४॥फिर स्वस्तिवाचन और अग्निमें होम करातेभये नन्दरायजी और सब गोप गोपियोंने सावधान होकर श्रेष्ठ गुणकारी अन्नका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥ १५ ॥ सर्वगुणवाली गायोंको सुन्दर सुन्दर वस्त्रोंकी झूलें उढाय, स्वर्ण, चांदी और पुष्पोंकी माला आभूषण पहिराय, कञ्चनसे सींग मढाय पुत्रके कल्याणके लिये दीं और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लिया ॥ १६ ॥ वेद मंत्रोंके जाननेवाले योग्य ब्राह्मणोंने जो जो आशीर्वाद दिये सो उसी प्रकार होंगे. क्योंकि ब्रह्मवाक्य किसी समय निष्फल नहीं होते, यह बात शास्त्र और पुराणोंसे प्रकट है ॥ १७ ॥ एक दिन नन्दरानी श्रीकृष्णको लाड लडा लडाकर प्यार कर रही थी, उसी ससय श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतके समान अपने

शरीरका भार बढाया कि, वह भारी भार यशोदाजीसे सम्हारा न गया, बोझ बढानेका कारण यह है कि, श्रीकृष्णने जाना कि, जो मैं माताकी गोदमें रहा तो यह जो मेरे सन्मुख तृणावर्त्त उपस्थित है सो यह मेरी मातासहित मुझको उठाकर ले जायगा, इसलिये मुझको कष्ट होय तो होय परंतु मेरे कारण मेरी माताको कष्ट न होय ॥ १८ ॥ यशोदाने श्रीकृष्णमें भारी भार समझकर बड़ा आश्चर्य माना और बोझसे अति पीडित होकर त्रिलोकीनाथको पृथ्वीपर बैठालकर परमेश्वरका ध्यान करने लगी और मनही मनमें विचार करने लगी कि, आज मेरे कन्हैयामें इस प्रकार बोझ क्यों होगया ? इसी शोच विचारमें घरके कार्यमें लगगई ॥ १९॥ कंसका अनुचर जो तृणावर्त्त महाबलशाली था, कंसने

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ॥ महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥ दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ॥ चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ॥ ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥ २१ ॥ मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसातमसा वृतम् ॥ सुतं यशोदा नापश्य त्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥ नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ॥ तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ ॥ २३ ॥ इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ॥ अतिकरुणमनुस्मरंत्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४ ॥

कृष्णके मारनेके लिये उसको भेजा, वह पवनके बबूलेका रूप धरकर आया और पृथ्वीपर खेलते हुए कृष्णको उड़ाकर लेगया ॥ २० ॥ सब गोकुल धूरिसे आच्छादित होगया और ऐसी धूरि उडी कि सबकी ऑखें मिचगईं और अन्धकार हो गया, उसके घोरशब्दसे दिशा विदिशाओंमें सन्नाटा होने लगा ॥ २१ ॥ दो घडी तक गोकुलमें अन्धकार छायरहा, यशोदा व्रजभूषणके उठानेको आँगनमें दौडी आई, देखा तो वहाँ कृष्णका पता भी नहीं ॥ २२॥ तृणावर्तने कंकरी,ठीकरियोंकी बडी भारी वर्षा करी जिससे सब गोकुलवासी मोहको प्राप्त होकर अपनेही आपको न देखसके फिर दूसरेका देखना तो महाकठिन था ॥२३॥ इस प्रकार महाकठिन धूरिकी वर्षा होनेसे और आँधीके चलनेसे यशोदाने ढूँढते ढूँढते

कहीं भी व्रजभूषण प्यारेको नहीं पाया, तब अत्यन्त व्याकुल हो मरेहुए बछड़ेवाली गायकी नाईं निर्बल होकर पृथ्वीपर गिरपड़ी और करुणा भरे वचन कह कहकर शोच करने लगी ॥ २४ ॥ उस समय यशोदाका रुदन सुनकर पशुपक्षियोंकाभी हृदय विदीर्ण होताथा, अत्यन्त पीड़ित और महाव्याकुल हुई नेत्रोंमें आंसू भरे गोपियें श्रीकृष्णके विना देखे रोरोकर प्राण त्यागनेको प्रस्तुत थीं ॥ २५॥ इतनेमें धूलिबर्षा, आँधी तो थमगई और बबूलेका रूप धरनेवाले तृणावर्त्त दैत्यका वेग, सब धरणीके धारण करनेवाले विश्वनाथ भगवान्के उठा लेजानेसे आकाशको न उडागया तो शान्त होगया, इसी कारण उस दैत्यसे अधिक भारी भार लेकर ऊपरको न उडागया * ॥ २६ ॥ जब तृणावर्त्तको

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ॥ रुरुदुरनुपलभ्य नंदसूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥ ॥ २५ ॥ तृणावर्तः शांतरयो वात्यारूपधरो हरन् ॥ कृष्णं नभो गतो गंतुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥ तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ॥ गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ॥ अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥ तमंतरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ॥ पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदंत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥

बहुत बोझ ज्ञात होने लगा तब यह जाना कि, मैं किसी बडे पत्थरको उठालायाहूं, क्या कोई वज्र मेरे हाथमें है । यह कह श्रीकृष्णसे छूटनेकी इच्छा करने लगा, परंतु श्रीकृष्णने उसका कण्ठ ऐसा गहिकर पकडा था कि, वह किसी प्रकार न छूट सके ॥ २७ ॥ कण्ठके घुटनेसे उसकी चेष्टा हत होगई, नेत्र निकलपडे, मुखसे शब्द न निकल सका, प्राणहीन होकर वह तृणावर्त दैत्य श्रीकृष्णसमेत गोकुलमें गिरा ॥२८॥ जैसे महादेवके बाणका मारा त्रिपुरासुर पृथ्वीपर गिरा था, ऐसेही आकाशसे वह विकराल दैत्य शिलाके ऊपर गिरा, जिसके सब अंग टूटकर चूर होगये, यह महा

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द मुनिमनरञ्जन भक्तभयभञ्जन भगवान्का नाम है, फिर कृष्णचन्द्रने अपनी माताको और व्रजवासियोंको दुःखी करके और अपनी माताको रुवायके अपनी देहमें भारको बढाया तो जब तृणावर्त्त हरिको हरिके ले चला तब भगवान्ने अपनी देहमें भार क्यों नहीं बढाया, जो राक्षसके उठानेसे न उठते तो सबको कष्ट क्यों होता ?

उत्तर–ब्रह्माने पहिले तृणावर्त्तको वरदान दिया था, तेरे किये दु.खकरके यशोदाकी आँखोंसे आंसू गिरेंगे तब तेरी मृत्यु होगी इसलिये श्रीकृष्णने अपनी देहमें भार नहीं बढाया ॥

भयानकरूप उस तृणावर्तका रोती हुई ब्रजबालाओंने देखा ॥ २९ ॥ उस तृणावर्तकी छातीके ऊपर निर्भय खेलता हुवा श्रीकृष्णको भी देखा, सो तुरंत गोपियोंने दौडकर श्रीकृष्णको उठा, यशोदाकी गोदमें दे दिया और बड़ा आश्चर्य मानकर सब गोपी यह कहने लगीं कि, बालकको उठाकर यह राक्षस आकाशमें लेगयाथा, सो यह बालक मृत्युके मुखमेंसे फिर निकलकर आया है ॥ ३० ॥ नंदादिक गोप और गोपिका श्रीकृष्णको पाकर परमानंदको प्राप्त हुए और परस्पर कहने लगे कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि, देखो इस राक्षसने इस बालकके मारनेमें कुछभी कसर नहीं रक्खी, परंतु भगवान्नें इसको बचाया और यह दुष्ट अपने पापसे आपही मरगया और यह बालक साधुकी समान है, इसलिये इस दुष्टके हाथसे छूट आया, साधु पुरुष अपनी समताके भयसे छूटजाते हैं ॥ ३१ ॥ देखो हमने ऐसा कौनसा भारी तप किया है ? क्या भगवान् वासुदेवका पूजन

आदाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लंबमानम् ॥ तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ गोप्यश्च गोपाः किल नंदमुख्या लब्धाशिषः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥ अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ॥ हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ॥ यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबंधून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नंदगोपो बृहद्वने ॥ वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥ एकदार्भकमादाय स्वांकमारोप्य भामिनी ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥

कियाहै ? क्या कुआँ, बावडी, ताल, खुदवाये हैं ? क्या पंचयज्ञ कियेहैं ? क्या कोई बड़ाभारी दान किया है ! अथवा भूखे नंगे प्राणियोंपर दया करी है ? जिन पुण्योके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हुवा हमारा बालक अपने माता पिता बन्धुओंके सुख देनेके लिये लौटकर आगया ॥ ३२ ॥ नंदजीने गोकुलमें बहुतसे उत्पातोंको देखकर अपने मनमें बड़ा आश्चर्य माना, हमसे मथुरामें वसुदेवजीने पहिलेही कह दिया था कि, गोकुलमें बड़ाभारी उत्पात होगा, सो आज हमको वसुदेवजीके वचनका पूरा विश्वास हुवा ॥ ३३ ॥ एक समय यशोदाजी मनमोहन प्यारेको अपनी गोदमें बैठालकर मोहमें अतिनिमग्न होकर जिन स्तनोंसे दूध टपकता था सो स्तन पिलाने लगी, देखो यशोदाके कैसे उत्तम भाग्य हैं ॥ ३४ ॥

कुछ एक स्तन पिया पीछे यशोदाजी अपनी मन्दमुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दके ऊपर अँगुली धरकर दूध पिलाने लगीं, इतनेहीमें हे राजन्! श्रीकृष्णने जम्भाई ली उस समय उनके मुखमें यह सब संसार देखा ॥ ३५ ॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारागण, दिशा, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, स्थावर, जंगम, जीव इन सबको देखा ॥ ३६ ॥ हे राजन्! सब विश्वको तत्काल यशोदा श्रीकृष्णके मुखमें

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ॥ मुखं लालायती राजञ्जृंभतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥ खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येंदुवह्निश्वसनांबुधींश्च ॥ द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजंगमानि ॥ ३६ ॥ सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥ संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कंधे पू० शकटतृणावर्तभंजनविश्वप्रदर्शनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ॥ व्रजं जगाम नंदस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

देखकर डरके मारे कम्पायमान होकर अपने मृगकेसे नेत्र बन्द करलिये और बड़ा आश्चर्य माना कि, इस बालकके मुखमें मैने क्या जाल जंजाल देखा ❀ ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां तृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा–अष्टममें श्रीगर्गमुनि नन्दराय गृह आय। नामकरण उत्सव कियो, मुखमें विश्व दिखाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! बड़े तपस्वी और यादवोंके पुरोहित

❀ राजा परीक्षित् बोले कि हे प्रभो! पूर्वजन्ममें यह तृणावर्त्त कौन था, जो इसने राक्षसका शरीर पाया, यह सब कथा मुझको समझाकर कहो। श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यह तृणावर्त्त पाण्डुदेशका राजा था और विश्वविजय इसका नाम था दुर्वासा ऋषिके शापसे यह राक्षस होगया, परीक्षित्ने बूझा कि, क्या ऐसा खोटा कर्म उसने किया जो यह शाप दुर्वासाने दिया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, पाण्डुदेशका नरेश विश्वविजय था और एक सहस्र इसकी स्त्री थीं, एक दिन उन सब स्त्रियों समेत वनविहारके हेतु वनको गया वहा ऊंचे ऊंचे वृक्ष आकाशसे वातें कररहे, सुन्दर सुन्दर फल फूल खिलरहे, मोर कीर कोकिला, बोलरहे, एक ओरको गन्धमादन पर्वत निरालाही शोभा देरहा, उसके नीचे पुष्पमद्रानदी न्यारीही लहरें देती चली जाती थी ऐसा शोभायमान निर्जन वन देखकर उसी नदीमें स्त्री और आप नंगा होकर जलक्रीडा करनेलगा, मद पीपी कर स्त्री और राजा ऐसा मतवाला होगया कि, सम्पूर्ण लज्जा त्याग निर्लज्ज बन जलविहार करनेलगा, उसी समय एकलाख शिष्योंको साथ लिये दुर्वासा ऋषि भी उसी आश्रममें आगये, देखा तो सब स्त्रियोंके सग राजा नगा केलि कर रहा है, मुनिने कोपकरके शाप दे दिया कि रे दुष्ट! मेरे वचनके प्रतापसे तू असुर होजा, और भारतखण्डमें एक लाख वर्षतक भ्रमता फिर, जब व्रजमें श्रीकृष्णचन्द्र अवतार लेंगे तू उनके हाथसे मृत्यु पावेगा तब तेरी मोक्ष होगी, राजा यह शाप सुन बहुत उदास हुवा और अग्निकुण्ड बनाय सब स्त्रियों सहित अपना शरीर भस्म कर दिया ॥

श्रीगर्गाचार्य वसुदेवजीके भेजेहुए मथुरा पुरीसे गोकुलमें नन्दरायजीके घर आये ॥ १ ॥ गर्गाचार्यको देखकर नन्दजी बहुत प्रसन्न हुये और उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और भगवान्की समान जानकर पूजन किया ॥ २ ॥ गर्गाचार्यजीको सुंदर आसनपर बैठालकर षट्रस भोजन कराया और मधुर वाणीसे नन्दरायजी बोले कि, अहो ब्रह्मन् ! आप तो परिपूर्ण हो आपका पूजन हम किस प्रकार करसक्तेहैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! दीन गृहस्थ लोगोंके कल्याण करनेके लिये आपसरीखे महात्मा अपने आश्रमसे गृहस्थोंके घर जातेहैं और उनसे अपना कुछ प्रयोजन नहीं रखते ॥ ४ ॥ और जो देखने और सुननेमें नहीं आता उस ज्ञानका प्रगट करनेवाला और सूर्य चन्द्र नक्षत्रादिकोंका प्रतिपादन करनेवाला ज्योतिषशास्त्र साक्षात

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृतांजलिः ॥ आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरस्सरम् ॥ २ ॥ सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ॥ नंदयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ॥ निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतींद्रियम् ॥ प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥ ५ ॥ त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ॥ बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ॥ सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

आपने कथन कियाहै, जिसके पढ़नेसे पुरुष भूत, भविष्य, वर्तमान कालका वृत्तान्त जान सक्ताहै ॥ ५ ॥ उस ज्योतिष शास्त्रके कर्त्ता और वेदवादियोंमेंभी आप परिपूर्ण हो, इसलिये तुम हमारे दोनों पुत्रोंका नामकरण और संस्कार करो. तब गर्गाचार्यजीने कहा कि, जो तुम्हारे गुरु आचार्य होयँ उनसे नामकरण क्यों नहीं करालेते. तब नन्दजी बोले कि, हेमहाराज ! आपके सन्मुख और कौन है ! क्योंकि ब्राह्मण जन्मसेही सबके गुरु हैं ॥ ६ ॥ फिर गर्गाचार्यने कहा कि मैं यादवोंका पुरोहित हूं और सब जगत्में विख्यात हूं, जो मैं तुम्हारे पुत्रोंका नामकरण और संस्कार करूंगा तो वह दुष्टात्मा कंस इन बालकोंको देवकीके पुत्र समझेगा * ॥ ७ ॥

* शंका—गर्गाचार्यने नन्दजीके संग कपट क्यों किया ? हम श्रीकृष्णका नाम नहीं धरेंगे यह क्यों कहा ? इसलिये तो गये ही ये' झूंठ वचन एक क्षणमें ब्राह्मणोंके सब तपका नाश कर देताहै, जान बूझकर क्यों झूठ बोले ?

और आपकी और वसुदेवजीकी परम मित्रता है यह बात भी कंस भले प्रकार जानता है और दूसरे कंसको यहभी सन्देह है कि, देवकीके गर्भमें कन्या न होनी चाहिये, कहीं अपने पुत्रको पहुँचा न दिया हो यह समझे. क्योंकि कंस दिन रात सैकडों विचार किया करता है ॥८॥ और अब तो उसने देवकीके गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई समझही रक्खीहै और जो दूसरी यह बात सुनेगा कि, गर्गाचार्यने नन्दजीके घर जाकर बालकोका नाम रक्खा है, इससे निश्चय यह जानेगा कि यह वसुदेवजीके पुत्र हैं और कंस तो विनाही जाने इन बालकोंके मारनेका उपाय

देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ इति संचितयञ्छुत्वा कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ॥ देवक्या दारिकावचः ॥ अपि हंताऽऽगताशंकस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥ नंद उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोव्रजे ॥ कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ॥ चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥ गर्ग उवाच ॥ अयं हि रोहिणीपुत्रो रमय न्सुहृदो गुणैः ॥ आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ॥ यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशंत्युत ॥ १२ ॥

कर रहाहै और जो सत्य समझकर इन बालकोको मरवादिया तो बडा अनर्थ होगा ॥ ९ ॥ नन्दजी बोले कि, हे गर्गाचार्यजी ! वह उपाय करो जो हमारे साथी व्रजवासीभी नहीं जानैं. इसप्रकार एकान्त स्थान जहाँ गायोंका खिरक था वहां बैठकर स्वस्तिवाचन पढकर दोनों बालकोंका संस्कार किया. जोकि–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको करना योग्य है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार नन्दरायजीने जब प्रार्थना करी तो एकान्तमें गर्गाचार्यजीने छिपकर नामकरण किया. क्योंकि नामकरण करनेकी इच्छासे तो गगाचार्यजी आयेही थे ॥११॥ गर्गमुनि बोले कि, यह

उत्तर–गर्ग मुनिने अपने मनमें विचारा कि, जो हम नदसे सत्य बोलेंगे और प्रत्यक्ष कृष्णका नाम धरेंगे तो वडे उत्साहसे बाजे बजायके अनेक हर्षसे आनन्द करेंगे तब कंसादिक दैत्य जान जायँगे कि, यह बालक किसी यदुवंशीका है तो बडाभारी उत्पात होगा, इसलिये झूँठ बोले कि, विना कपट किये नन्दजी गुप्त नाम न धराते बडा उत्साह करते और शास्त्रमें ऐसा भी लिखा हैं पराये उपकारके लिये झूँठ बोलनेका कुछ दोष नहीं होता ॥

रोहिणीका पुत्र अपने गुणोंसे सुहृदोंको रमण करावेगा, इसलिये इसका नाम राम रखना चाहिये और बल अधिकहोग इसलिये इसका नाम बलदेव रखना चाहिये और बिछुरे यादवोंको मिलावेगा इसलिये इसका नाम संकर्षण होगा ॥ १२ ॥ और यह जो तुम्हारा दूसरा पुत्र है सो यह युग युगमें अवतार धारण करता है और इसके तीन रंग हुए श्वेत, लाल, पीला, सो सत्ययुगमें शुक्लवर्ण हुवा, त्रेतामें लाल वर्ण हुवा और द्वापरमें पीतवर्ण हुवा. अब इन्द्रनीलमणिकी सदृश श्यामसुन्दररूप धारणकिया है, इसलिये 'कृष्ण' नाम रखना चाहिये ॥ १३ ॥ किसी समय यह तुम्हारा महाभाग पुत्र वसुदेवजीके घर जन्मा था, इसलिये ज्ञानीपुरुष इसका नाम वासुदेव भी कहेंगे। तुम्हारे पुत्रके गुणकर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं और रूपभी अनेक हैं, उनको मैं नहीं जानता और कोई दूसरा पुरुषभी नहीं जानता, क्योंकि यह बालक परब्रह्म परमेश्वरका अवतार है, इसलिये इसका भेद ब्रह्मा,

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नंदात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥ १९ ॥

शिव, सनकादिकभी नहीं जानसक्ते ॥ १४ ॥ गाय, गोप, गोपी और तुमको आनन्द देनेवाला यह तुम्हारा पुत्र होगा और नन्दरायजी तुम्हारे ऊपर बडे बडे कष्ट आनकर प्राप्तहोंगे, उन कष्टोंको इनकी कृपासे सहजमें तर जाओगे ॥१५॥१६॥ हे व्रजराज ! पहिले जब कोई राजा नहीं था, तब इस बालकने पृथ्वीपर सब दुष्ट चोरोंको पीडितकर महात्माओंकी रक्षा करी और चोरोंको पराजय किया॥१७॥ और जो महात्मा पुरुष इस तुम्हारे पुत्रसे स्नेह रखते हैं उनका शत्रुलोग तिरस्कार नहीं कर सक्ते. जिसप्रकार विष्णुके सहायक रहनेसे देवताओंका दैत्यलोग कुछ नहीं करसक्ते ॥ १८ ॥ हे नन्दरायजी ! यह तुम्हारा पुत्र गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और प्रतापमें विष्णु भगवान्की समान जानपडताहै, सावधान होकर तुम इसकी रक्षा करना ॥ १९॥

शुकदेवजी बोले कि, हे व्रजनाथ! इसीराधाके साथ आपके पुत्रका विवाह होगा और यही राधा तुम्हारे कुलकी बाधा हरनेवाली होगी, यह कह सबको आशीर्वाद दे गर्गाचार्य बिदा होकर चलदिये, पीछे नन्दजीने परमानन्द हो अपने मनोरथको सब प्रकारसे परिपूर्ण समझा ॥ २० ॥ जब कुछ और थोडे दिन व्यतीत हुए तब बलदेवजी और श्रीकृष्ण दोनों भैया हाथ टेक२ कर घुटनो चलने लगे ॥ जिस समय कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई व्रजकी कीचमें विचरते थे उससमय उनके पावोंकी पैंजनी और कटिकी किंकिणीकी झनकारका सुन्दर शब्द सुनकर यशोदा और रोहिणी मनहीं मनमें आनन्द होती थीं और जो पथिक मार्गमें जाते उनहीके पीछे घुटनों२ थोड़ी दूर चले जाते, जब वह पुरुष इनकी ओरको देखते तब डरकर अपनी माताके पासको भागते ॥२१॥२२॥तब माता यशोदा और रोहिणी अपने पुत्रको उठाय हृदयसे लगाय उनके अंगोंको देखैं हैं, कहीं तो व्रजकी कीचमें लिपट रहेहैं और कहीं

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ नंदः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥ कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ ॥ जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिंगमाणौ विजह्रतुः ॥ २१ ॥ तावंघ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपंतौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ॥ तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरंति मात्रोः ॥ २२ ॥ तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवंत्यौ पंकांगरागरुचिरावुपगह्य दोर्भ्याम् ॥ दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मितालपदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२३॥ यर्ह्यंगनादर्शनीयकुमारलीलावंतर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ॥ वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षंत्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसंत्यः ॥२४॥ शृंग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकंटकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ॥ गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥

प्रमादकी केशर अंगमें लगी हुई है, जिनके स्तन दूधसे खसि आये हैं उनको खिलाय खिलाय दूध पिलाय पिलाय उनकी ओरको देख २ प्रेममें मग्न होरही हैं और उनके मुखकी भोली भोली मुसक्यान और छोटी २ दँतुरियोंकी छबि निहार निहार बारंबार प्रसन्न होती थीं॥२३॥जिस समय व्रजमें गोपियोंके देखनेके योग्य श्रीकृष्ण और बलराम बाललीलाओंको करने लगे और दौड दौडकर बछरोंकी पूँछ पकड पकडकर खैंचें, जब बछडे भागते तो यह उनके पीछे पीछे खिंचे चले जाते थे, इस प्रकारकी लीला वह गोपी देख देख घरोंके कामको छोड छोड हँस हँसकर हर्षको प्राप्त होती थीं ॥२४॥ माता यशोदा और रोहिणी, अति चंचल खेलमें लगेहुये श्रीकृष्ण बलदेवको देखकर गाय बैल डाढवाले जीव, बन्दर,

अग्नि, जल, सांप पक्षी कांटोंसे रोक रोक बचाती फिराकरती थीं और घरके काम धन्धे सब छोडदियेथे,जब रोहिणी और यशोदा फिरती फिरती हार जातीं तब श्रीकृष्ण बलभद्र माताओंके मनकी गति जानकर आँगनमें खेलने लगते॥२५॥ हे राजन् । व्रजमें रामकृष्ण दोनों भाई थोड़ेही दिनों पीछे घुटनोंहीके बल नहीं बरन् चरणोंसे अनायासपूर्वक चलने लगे ॥ कभी घरमें जाते कभी बाहर आते कभी भुजा उठा उठा कर बालकोंको बुलाते कभी धौरी, धूमरी, गौरी, काली नाम लेलेकर गायोंको गुहराते कभी माखन मिश्री मातासे माँग माँगके खाते, कभी मुकुरमें जो अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता तो उससे कहते ले भैया तू भी माखन खाले,जब वह प्रतिबिम्ब न लेता तो दोनो हाथोसे आधा आधा कर एक भाग उसको देते, जब माखन पृथ्वीपर गिर जाता तो कहते कि, भैया अब क्यों नहीं लेते वह बातभी बताओ इन अद्भुत चरित्रोंको यशोदा मैया छिप छिपकर देखती और अपने मनही मनमें प्रसन्न होती और झट पट आनकर गोदमे उठाय मुख चूम लेती, उस परमानन्दके सुखको कौन वर्णन करसक्ता

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ॥ अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरंजसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ॥ सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥ २७ ॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ॥ शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥ वत्सान्मुंचन्क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ॥ मर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भांडं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥

है ॥२६॥ एक दिन मदनमोहन व्रजवासियोंके बालकोंके संग अपनी सिंहपौर पर खेल रहे थे, सबकी एक अवस्था भोली भोली सूरत, कृष्णकी प्रीतिमें मतवाले अनेक अनेक प्रकारकी लीला कर रहेथे, कभी गाते,कभी हँसते,कभी किलकारी मारते,कभी अपनी माताको पुकारते, धन्य यशोदाके भाग्यको,मदनमोहनकी उस मनोहर छविको देख २ व्रजवासी लोग स्त्री पुरुष मनहीं मनमें कहतेथे कि,कोटि कामदेवभी इस शोभाकी समताको नहीं पासक्ते,देखो बलराम और घनश्याम अपनी समान अवस्थावाले व्रजवासियोंके बालकोंको संग लेकर नई नई क्रीडा कर हमलोगोंको कैसा कैसा आनन्द देते हैं ॥२७॥ गोपी श्रीकृष्णचन्द्रकी बाललीलाकी चपलता देखकर सब जुड मिलकर आईं और श्रीकृष्णकी माता यशोदाको सुनासुनाकर यह कहनेलगीं ॥ २८ ॥ अहो यशोदा । तुम अपने पुत्रको वर्जलेना हमारे घरोमें आनकर द्वन्द्व मचावै है, हम तो गायोंको

दुहने नहीं पातीं वह पहिलेसे पहिले बछडोंको खोलदेते हैं, बछडे दूध पीजाते हैं, दुहनेवाले ग्वालियें शिरमार मारकर चले जाते हैं, यशोदा बोली,
अरी तुम्हारे घर जब यह जाय तो इसको डाट दिया करो, यशोदाजीका वचन सुनकर गोपिका कहने लगीं कि, जब हम इसको डाटैं हैं तब यह हँस
देता है, इसकी हँसी देखकर हमकोभी हँसी आजाती है और यह चोरी उपाय करके दूध दही और जो कुछ मीठे मीठे पदार्थ हमारे घरोंमें रक्खे होते हैं
उनको स्वादसे चुरा चुराकर खा जाता है और जो कुछ बचरहता है उसको बन्दरोंको खिला देता है जो बन्दरभी नहीं खाते तो जान बूझकर
दूध दही घीके चिकने बासनोंको फोड डालता है और जो कदाचित् माखन दूध इसके हाथ नहीं लगता तो क्रोध करके गालियें देता है और यह कहता
है कि, इनके घरोंमें आग लग जाओ फिर पालनेमें सोते हुए हमारे बालकोंको रुआकर भाग जाताहै ॥२९॥ और ऊंचे २ छींकोंपर धरती हैं कि, जो
इसके हाथ न आवे, तब पीढा, पट्टा, ऊखली इत्यादि धरकर चोरीका उपाय करता है और किसी किसी छीकेके बासनमें छेदकरदेता है और नीचे सब

हस्ताऽग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभांडेषु तद्वित् ॥ ध्वांतागारे धृतमणिगणं स्वांगमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥ एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ॥ इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥

बालक मुख लगाकर सब गोरस पी जाते हैं और जो मीठा दही होता है तब तो खाजाते हैं और जो खट्टा होताहै तो गिरा देते हैं और जो मेवा मिष्टान्न
होताहै उसको बालकोंके कन्धेपर चढ़कर खा लेताहै और जो हम अन्धेरेमें घरमें दही माखन कहीं छिपाकरभी धरें हैं, तो इसके आभूषणोंमें जो रत्न,
मणि, माणिक, हीरे जडेहैं, उनका प्रकाश हो जाताहै, दूसरे इसका जो चन्द्रमासा मुख है उसकी उजियालीका चांदना होजाताहै तब हमारा धरा ढका
सब निकाल लावे है, तबतक हम घरमें बैठी रहै हैं उस समय आवे है तो हमको देखकर भाग जाताहै और जब हम अपने घरके काम धन्धेमें लग जाती
हैं उस समय घरमें आन घुसताहै ॥ ३० ॥ और जब कभी हम आनकर इसको देख पाती हैं और कहती हैं कि, अरे चोर! तो यह लौटकर कहता है कि,
तुमहीं चोर हो मैं तो घरका स्वामीहू, ऐसे हँसीकी बातोंमें बातको टाल देताहै, हमारे लिपे पुते घरोंको बिगाड़ देताहै, सब दिन सखाओंको संग लिये

चोरीकी चिंतामें फिरता रहाता है, यह कन्हैया तुम्हारा बड़ा ढीठहै और पेटमें इसके सैकडों छल भरेहैं, परन्तु मुँहका मीठाहै, जो तुमको विश्वास न आवे तो हम पकडके दिखावें कभी किसीके कपड़े फाडताहै कभी किसीको मारताहै, सब व्रजमें धूम धाम मचारक्खी है ॥ अब देखो ! तुम्हारे आगे कैसा भोला भाला बना खडाहै मानो कुछ जानताही नहीं । इसप्रकार जब गोपियोंने डराया तो उससमय भयसंयुक्त नेत्र उनमें श्रीमुखकी शोभा देखनेके लिये श्रीयशोदाजीसे आनके गोपियोंने उलाहना दिया तब श्रीयशोदाजी हँसके मनमोहन प्यारेको गोदीमें उठालिया और पुत्रसे कुछ कहा नहीं ॥२१॥ एक समय बलभद्रादिक गोपियोंके बालकोंमें क्रीड़ा कररहे थे, वहां श्रीकृष्णचन्द्र मट्टी खाने लगे, तब सब बालकोंने कहा आज कृष्णको कृष्णकी मातासे पिटवावेंगे, और जाकर यह कहेंगे कि, आज श्यामसुन्दरने मट्टी खाई है, तब यह विचार कर सब बालक और श्रीदामा यशोदाजीके पास

एकदा क्रीडमाणास्ते रामाद्या गोपदारकाः ॥ कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥ सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैहिणी ॥ यशोदा भयसंभ्रांतप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३ ॥ कस्मान्मृदमदांतात्मन्भवान्भक्षितवा न्रहः ॥ वदंति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥ नाहं भक्षितवानंब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ॥ यदि सत्य गिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥

गये और जाकर कहा कि, आज श्रीकृष्णने मट्टी खाई है ॥ ३२ ॥ तब परमहितकी करनेवाली श्रीकृष्णकी माता यशोदाने क्रोधितहो श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर धमकाया और भययुक्त चंचल नेत्र मोहन प्यारेसे यह कहा ॥ ३३ ॥ हे चपलगात चंचल ! तैंने अकेलेमें जाकर मट्टी क्यों खाई अरे अन्याई ! जो यह बात गॉवके लोग सुनेंगे तो घर घर यह जवाब होगा कि, नंदरानी ऐसी जोडा (कंजूस) हुई है कि, अपने बालकको पेटभर रोटीभी नहीं देती, इसलिये वह मट्टी खाखाकर दिन पूरे करेहै. यह बात सुनकर श्यामसुन्दर डरते काँपते बोले कि. हे माता ! यह झूँठबात तुझसे किसने कही ? कदाचित् कोई बालक तेरे पास आकर मुझको झूंठा कलंक लगा दे तो उसमें मेरा क्या अपराध है ? तब यशोदाने कहा कि, तेरे मित्र श्रीदामाने मुझसे कही है और तेरे ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊने कही है ॥ ३४ ॥ हे मैया ! मैंने मट्टी नहीं खाई और श्रीदामाकी ओरको खड़ी दृष्टिसे देखकर बोले क्योंरे श्रीदामा ! मैंने तेरे सामने मट्टी कब खाई थी ? श्रीदामा बोला मैंने तेरी मातासे कुछ नहीं कहा, तब यशोदाने छडी लेकर कहा सचबता ?

श्रीकृष्ण बोले कि, मैय्या ! जो तुझको विश्वास नहीं हो तो मेरा मुख देखले ॥ ३५ ॥ यह बात सुनकर यशोदा बोली मुझको तेरी झूँठी बातोंका किसी प्रकार विश्वास नहीं आता, जो तू सच्चा है तो अपना मुख फैलाकर दिखलादे ? यशोदाकी यह बात सुन, अनेक दुःखोंके दूरकनेवाले अखण्ड ऐश्वर्यवान् भगवान् क्रीड़ा करनेके लिये मनुजतनुधारी बालकरूप श्रीकृष्णचन्द्रने अपना मुखारविन्द फैलाकर यशोदाको दिखला दिया ॥ ३६ ॥ तब यशोदाजीने श्रीकृष्णके मुखमें स्थावर जंगम, विश्व; अन्तारिक्ष, दिशा, पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूगोल प्रवाह, वायु, अग्नि, चन्द्रमा, तारागण ॥३७॥ ज्योतिषचक्र, जल, तेज, आकाश, इन्द्रियोंके देवता, इन्द्रिय, मन, शब्दादिक और इनके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह पांचों—सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ॥ ३८ ॥ जीव, काल, स्वभाव, कर्म, अन्तःकरण और उसके होनेवाले चराचर और सम्पूर्ण प्राणियोंके भेद सहित चित्र

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ॥ व्यादत्ताऽव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः ॥ साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नींदुतारकम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ॥ वैकारिकाणींद्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ॥ सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शंकाम् ॥ ३९ ॥ किं स्वप्न एतदुत देवमाया किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ॥ अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥

विचित्र संसारको श्रीकृष्णचंद्रके मुखमें देखा और उसमेंही व्रजभूमि और अपने देहको देख यशोदाके मनमें भ्रम उत्पन्न हुवा ॥ ३९ ॥ और अपने मनहीं मनमें कहने लगी कि, मैं जो देखरही हूं क्या यह स्वप्न है ? नहीं नहीं, यह स्वप्न नहीं है, क्योंकि स्वप्न तो सोतेमें दिखाई देता है, तो क्या फिर परमेश्वरकी माया है ? नहीं नहीं, यह माया भी नहीं है, क्योंकि माया होती तो और लोग भी देखते, क्या जैसे मुकुरमें मुख दीखता है ऐसे दिखाई दिया ? क्या यह मेरी बुद्धिकाही भ्रमजाल है ? नहीं नहीं, ऐसा भी नहीं हो सक्ता, क्योंकि ऐसा होता तो दर्पण में जैसे दर्पण दृष्टि नहीं आता तैसे इस पुत्रके मुखमें यह पुत्र भी दीखना अनुचित है और बाहर तथा भीतर एकरूपसे जगत्की प्रतीति किसी प्रकार न होनी चाहिये,

अथवा मेरे पुत्र श्रीकृष्णका यह स्वाभाविक ऐश्वर्य है ? ॥ ४० ॥ जो ध्यान करके देखाजाय तो यह अंतिम पक्षही बलवान् जान पड़ता है, क्योंकि यह संसार जो किंचित्, मन वाणी और वचनसे अनायासपूर्वक भले प्रकार विचारमें नहीं आसक्ता, वह किसके आश्रय है और किस रीतिसे प्रतीत हो सक्ता है ? उस अचिन्तनीय स्वरूपको मैं बारंबार नमस्कार करती हूं ॥ ४१ ॥ इन व्रजराजके सम्पूर्ण धनकी अधिष्ठाता मैं हूं यह व्रजनाथ नन्दजी मेरे स्वामी हैं यह श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है और यह सब गोप गोपिका तथा गाय बछड़े मेरे हैं, मायासे जिनकी ऐसी कुबुद्धि होरही है, सो अब हे भगवन् ! तुम्हारी शरण हूं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यशोदाजीको कृष्णमें ईश्वरकी बुद्धि होगई तब

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरंजसा ॥ यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥ ४१ ॥ अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ॥ गोप्यश्च गोपाः सह गोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ॥ वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥ सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्याऽऽरोहमात्मजम् ॥ प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद्यथा पुरा ॥ ४४ ॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ॥ उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ नंदः किमकरोद्ब्रह्मञ्श्रेय एवं महोदयम् ॥ यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्णने विचार किया कि, माता तो परमगतिको पहुँची अब मेरा लालन पालन कौन करेगा. तब पुत्रने स्नेहरूपा अपनी वैष्णवी माया यशोदापर फैलादी ॥ ४३ ॥ उस समय यशोदाजीके मनसे श्रीकृष्णचन्द्रकी ईश्वरबुद्धि अलग करदी और पुत्रभाव मानिके श्रीकृष्णको गोदमें बैठाल प्रेममें मग्न होकर पहिलेकी समान वात्सल्यभाव करनेलगी ॥ ४४ ॥ ऋग्, यजु, साम, यह तीनों वेद, सांख्य योग समस्त निरन्तर जिन वासुदेव भगवान्की महिमाको रातदिन गाते हैं उन श्रीकृष्णको यशोदा पुत्रभावसे मानती है ॥ ४५ ॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदे

वजीसे बूझा कि, हे ब्रह्मन्! नन्दरायजीने ऐसा क्या पुण्य किया था जिसके प्रभावसे उनका ऐसा भाग्य उदय हुवा? और यशोदाजीने ऐसा कौनसा श्रेष्ठ पुण्य किया था जिससे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दनें उनका स्तन पान किया ॥ ४६ ॥ और सब लोकोंके पापका दूर करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका बालचरित्र आजतक जिसे कवीश्वरलोग वर्णन करतेहैं सो उस बाललीलाका सुख देवकी और वसुदेवजीको प्राप्त नहीं हुवा और नन्दयशोदाको प्राप्त हुवा इसका क्या कारण? ॥ ४७ ॥ यह गूढ वचन राजापरीक्षित्का सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! आठ वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण नाम वसुने अपनी धरा नाम स्त्रीको साथ लेकर ब्रह्माजीकी आज्ञा शीशपर धारणकर परमेश्वरका तप किया, तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर चतुरा

पितरौ नान्वविंदेतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ॥ गायंत्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच॥ द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ॥ करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ॥ भक्तिः स्यात्परमा लोके ययांजो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥ अस्त्वित्युक्तः स भगवान्व्रजे द्रोणो महायशाः ॥ जज्ञे नंद इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत् ॥ ५० ॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ॥ दंपत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

ननसे कहा कि, मेरे भक्त जो वर मांगें सो देना. ब्रह्मानें इन दोनोंके सन्मुख आनकर कहा कि, वर माँगो, तब वह स्त्री पुरुष बोले कि, हे प्रभो! जो हमपर प्रसन्न हो तो यह वर दो ॥ ४८ ॥ हमारे जन्म मृत्युलोकमें होयँ परन्तु विश्वेश्वर देवोंके देव हरि भगवान्में हमारी भक्ति बनी रहै; जिससे अनायास इस संसारसागरसे पार उतर जाँय ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीने वर दिया कि, जाओ पृथ्वीहीमें तुम्हारा जन्म होगा और तुमको भगवानकी भक्तिभी होगी, तब तो बड़े यशस्वी और तेजस्वी द्रोण वसु व्रजमें जन्म धारण कर नन्दनामसे प्रसिद्ध हुए और वह धरा यशोदा नामसे विख्यात हुई ॥ ५० ॥ हे भारत! जितने गोप गोपी थे सबमें भगवान्की भक्ति थी, परन्तु नन्द यशोदामें अधिकही भक्ति थी; जिनके घर पुत्र होकर वास

योगिराज उनका ध्यान करनेवाले भी उनकी गतिको नहीं पहुँचसक्ते और तप करके तपस्वियोंका मन जिनकी गतिको नहीं जान सक्ता, फिर यशोदा उनको कैसे पकड सक्ती थीं ॥९॥ मनमोहनके पीछे यशोदाजीकी गति नितम्बके भारसे शिथिल होगई दौडनेसे शीशके केशोंके बन्धन खुलगये और चोटीमें जो मालतीके फूल गुँथे रहे थे वह पुष्प आगे आगे गिरते जाते थे और यशोदा उनपर पॉव धरती चली जाती थी, क्योंकि पुष्पोंकी सुगंधसे चित्त व्याकुल नहीं होता, इस प्रकार यशोदाने महाकठिनतासे श्यामसुन्दरको पकडा ॥ १० ॥ अपराधी तो थे ही पकडतेही विह्वल होगये, रोरोकर काजल लगेहुये नेत्रोंको मलने लगे और हाहाकार कर यशोदासे कहने लगे कि, मया मुझे छोडदे, मैं नहीं जानता दही मही किसनें गिराया तोभी कृष्णका हाथ पकड छडी उठाकर यशोदाने धमकाया और कहा कि, सिवाय तेरे और दधिमाखनका चोर मेरे घर कौन

अन्वंचमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रांतगतिस्सुमध्यमा ॥ जवेनविस्रंसितकेशबंधनच्युतप्रसूनाऽनुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसं तं प्ररुदंतमक्षिणी कर्षंतमंजन्मषिणी स्वपाणिना ॥ उदीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयंत्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ॥ इयेष किलतं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥१२॥ न चांतर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ॥ पूर्वापरं बहिश्चांतर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥ तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम् ॥ गोपिकोलूखले दाम्ना बबंध प्राकृतं यथा ॥ १४ ॥ तद्दामबध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ॥ द्व्यंगुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥

आगया ॥ ११ ॥ पुत्र पर हित करनेवाली और भगवत्की गति न जाननेवाली यशोदाने मनमोहन प्यारेको व्याकुल समझकर छडी हाथमेंसे डालदी और पुत्रके पराक्रमको न समझकर रस्सीसे बॉधनेको प्रस्तुत हुई॥ १२ ॥ जिस आदि पुरुष अविनाशीके बाहर, भीतर, आगे, पीछे कुछभी नहीं है और जो पूर्ण अवतार है, जगत्के अन्तर, बाहर, तथा आगे, पीछे रहता और जो जगत्रूप है ॥ १३ ॥ इंद्रियोकी जिनमें गति नहीं ऐसे अव्यक्त भगवान्को पुत्र मानकर यशोदाजी रस्सी लेकर उलूखलसे बॉधने लगी; जैसे कोई साधारण बालकको बॉधताहै॥ १४ ॥ अपराधी समझकर जब यशोदा अपने मनमोहन प्यारेको बॉधने लगी, उस समय वह रस्सी दो अंगुल ओछी रहगई, तब यशोदाने उसमें दूसरी रस्सी

और जोडी ॥ १५ ॥ जो उसमें और रस्सी जोडी थी वह भी दो अंगुल ओछी रहगई, तब तीसरी और जोडी तो वह भी दो अंगुल ओछी होगई इस प्रकार जितनी रस्सी जोड़ी परन्तु पूरा न पडसका ॥ १६ ॥ तब तो यशोदाने सब घर भरकी रस्सी इकट्ठी करके जोडी और श्यामसुन्दर न बँधे, तब तो सब गोपी आश्चर्यमान हँसने लगीं और मुसकराकर यशोदा भी विस्मित होनेलगी ॥ १७ ॥ सब शरीर पसीनेमें डूबगया माला कण्ठसे टूटपडी, शिखासे शीशफूल खिसकगया तब यशोदाको श्रमित देखकर करुणामय श्रीकृष्णचन्द्र आपही कृपाकरके बन्धनमें बँधगये

यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे ॥ तदपि द्व्यंगुलं न्यूनं यद्यदादत्त बंधनम् ॥ १६ ॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ॥ गोपीनामुत्स्मयंतीनां स्मयंती विस्मिताऽभवत् ॥ १७ ॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ॥ दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबंधने ॥ १८ ॥ एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भक्तवश्यता ॥ स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ १९ ॥ नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया ॥ प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥ २० ॥

॥ १८ ॥ हे राजन् ! ऐसे कष्ट हरनेवाले भगवान् ब्रह्मासहित सर्व विश्व जिनके अधीन है, उन श्रीकृष्णचन्द्रने अपने भक्तोंको भक्त वश होना दिखाया कि, जो मेरे भक्त मुझको बाँधना चाहै तो बँधभी जाताहूं, मैं इस प्रकार भक्तोंके वशमें हूं * ॥ १९ ॥ हे राजन् भक्तिके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्से पुत्रके सम्बन्धसे जो प्रसाद गोपियोंने पाया सो प्रसाद ब्रह्माको न मिला और शिवजी जो भगवान्की आत्मा हैं उनकोभी प्राप्त न हुवा और लक्ष्मी सदा हृदयमें विराजमान और भार्या है, तोभी उनको यह प्रसाद हाथ न आया, जो प्रसाद

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने यशोदा माताको पहिले तो बहुत दुःखी किया फिर पीछे रस्सीसे बँधगये और पहिले अनेक उपायोंसे नहीं बँधे इसका क्या कारण ?
उत्तर—जब श्रीकृष्ण भक्तभयहारी, जगत् हितकारीने मृत्युलोकके आनेकी इच्छा की, तब सब गोलोककी गायें श्रीकृष्णके सग व्रजको आने लगीं, तब गोलोककी सेवा करनेवाली दासी रस्सी बनकर गायोंके [illegible] और [illegible] बँध कर चली आई, भगवान्ने विचारा कि, गोलोककी गायोंकी सेवा करनेवाली तो नन्दबाबाके घर आगई अब नन्दकी गायोंकी दासी जो यहापर रस्सी बनगई हैं इनको गोलोकमें भेजना [illegible] उन गायोंकी दासियोंको ससारसे मुक्त करनेके लिये फिर गोलोकको भेजनेके लिये एक रस्सीसे नहीं बँधे, एक रस्सीसे बँधे जाते तो यशोदा सब घरभरकी रस्सी क्यों इकट्ठी करके ले आती॥

यशोदाने ले रक्खा है ॥ २० ॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् जैसे भक्तोंको सहजमें प्राप्त होते हैं, ऐसे देहाभिमानी तपस्वी आदिकोंको और देहाभिमानरहित आत्मज्ञानियोंको सहज नहीं मिल सक्ते ॥ २१ ॥ इनको बाँध यशोदा तो घरके काम धन्धेमें लगगई इतनेमें सर्वसामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्, कुबेरके पुत्र जो प्रथम जन्ममें गुह्यक थे और अब आनकर यमलार्जुन वृक्ष हुए, उनका समय जान भगवान्ने उनकी ओरको देखा ॥ २२ ॥ प्रथम यह दोनों अत्यन्त शोभायमान नलकूबर, मणिग्रीव, नामसे विख्यात थे, कुबेरके पुत्र प्रथम जन्मके मदसे नारदके शापसे वृक्षयोनिको प्राप्तहुए ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ॥ ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥ कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ॥ अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥ नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥ इति श्रीभागव०म०दशम०पू० दामबन्धने कृष्णप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥ यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ॥ कैलासोपवने रम्ये मंदाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ॥ स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥ अंतः प्रविश्य गंगायामंभोजवनराजिनि ॥ चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥ ४ ॥

यमला अर्जुन वृक्ष दोउ दीन्हे कृष्ण गिराय। प्रगटे देव शरीर धर, परे चरणमें जाय ॥ १ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! नलकूबर, मणिग्रीवके शापकी कथा वर्णन कीजिये कि. उन दोनोंने ऐसा क्या निन्दित कर्म किया था कि, जिससे नारदजीके मनमें क्रोध उत्पन्न हुवा और उन दोनोंको ऐसा कठिन शाप दिया ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, शिवजीके अनुचर यह दोनों अत्यन्त अभिमानी मद पीनेसे मतवाले कुबेरके पुत्र, मन्दाकिनीके तटपर कैलासकी पुष्पवाटिकामें घूम रहेथे, ॥ २ ॥ वारुणी मदिराको पान करनेसे उनके नेत्र मदसे चलायमान होरहे थे और उपवनमें विचर रहे थे, उनके पीछे पीछे परमसुन्दरी स्त्रियें भी फिर रहीं थी ॥ ३ ॥ और कमलोंके समूहोंसे

सुशोभित श्रीगंगाजीके मध्यमें जाकर स्त्रियोंको संग लेकर विहार करने लगे जैसे हथिनियोंके संग हाथी विहार कर रहे थे * ॥४॥ हे कुरुकुल भूषण ! अनायासपूर्वक देवर्षि भगवान् नारदजी भी वहाँ आगये और उनको अत्यन्त क्रीडा करतादेखकर मतवाला समझा ॥ ५ ॥ नंगी स्त्रियोंने नारदजीको देखकर लज्जा मानी और शापके भयसे कॉपने लगीं उसी समय शीघ्रतासे अपने अपने वस्त्रोंके समीपको झपटीं परन्तु नलकूबर, मणि ग्रीवने वस्त्र नहीं पहिरे, नंगे ही खडेरहे ॥ ६ ॥ तब नारदजी कुबेरके पुत्रोंको मतवाला देखकर मद उनका दूर करनेके लिये और श्रीकृष्णचन्द्र आन

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ॥ अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशंकिताः ॥ वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥६॥ तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदांधौ सुरात्मजौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ॥ श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यंते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ॥ मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यंते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥

न्दकन्दके दर्शनके निमित्त शाप देतेहुए गान करने लगे ॥ ७ ॥ तब नारदजीने कहा कि, प्रिय विषयोंके भोग करनेवाले पुरुषकी बुद्धिको धन मदके विना हास्य हर्षणादिके कुलीनता पण्डिताई आदिसे हुवा मद अथवा रजोगुण नाश नहीं करसक्ता, परन्तु धनका मदही बुद्धिभ्रष्ट करदेताहै, क्योंकि लक्ष्मीका मद जिसको होताहै तो वह स्त्रीप्रसंग करता है अथवा जुआँ खेलता है और वारुणीका पान करता है ॥ ८ ॥ इस क्षणभंगुर शरीरको लक्ष्मीके मदसे अजर और अमर माननेवाले अजितेन्द्रिय मनुष्य निर्दयी होकर पशुओंको मारते हैं ॥ ९ ॥ राजाके देहकीभी मरनेके पीछे

* शंका–किसी नदी में भी कमलोंका वन होता है ? हमने शास्त्रोंमें ऐसा कहीं नहीं सुना और न आजतक किसी नदीमें हमने अपनी आंखसे कमलका वन देखा ? फिर दोनों यक्षोंने नदीके जलमें प्रवेश करके कमलके वनमें स्त्रियोंके संग विहार कैसे किया ?

उत्तर–"अंभोजवनराजिनि" इस श्लोकमें अंभोजवनराजिनिका अर्थ व्यासजीने कमलका वन नहीं किया. इसका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि, अंभोज जो कमल हैं उसके वनको राजि कहिये प्रकाश करनेवाला जो सूर्य है तिसको साक्षी करके नदीमें स्त्रियोंके संग यक्षलोग क्रीडा कर रहे थे सॉझ या दिनमें क्रीडाकरी यह अर्थ व्यासजीने किया है कमलवनका नहीं किया ॥

तीन गति होती हैं गाड़नेसे अथवा पृथ्वीपर डालनेसे कृमि होजाते हैं, जो पशु आदिक खाजाते हैं तो विष्ठा होजाताहै और अग्निमें जलनेसे भस्म होजाती है इस कारण इस तुच्छ शरीरके लिये प्राणियोंसे विरोध करना अच्छा नहीं है क्योंकि जीवोंके द्रोहसे तो नरकही प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ फिर यह देह किसका कहना चाहिये ? क्योंकि जो अन्न देकर इसका पालन पोषण करता है वह पुरुष कहता है कि, यह मेरा है उसका कहनाभी सत्य है माता पिता कहते हैं कि, हमारा है, हमारे वीर्यसे और हमारे उदरसे उत्पन्न हुआ है उनका कहना भी सत्य है, नाना कहता है कि, यह मेरा दौहित्र है मेरी कन्याके पेटसे उत्पन्न हुआ है इसका दिया पानी और इसका किया श्राद्ध मुझको प्राप्त हो सक्ता है मेरा पुत्र न होनेके पीछे मेरे धनका अधिकारी यही है, इस रीतिसे नानाका कहनाभी सत्य है, मोल लेनेवाला कहता है कि, मेरा है, उसका कहना भी किसी प्रकार असत्य नहीं है, कोई बलवान् पुरुष अपना दास वा चाकर बनाकर रक्खे और यह कहे कि, मेरा है तो उसका कहना भी वृथा नहीं,

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव वा ॥ मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ॥ को विद्वानात्मसात्कृत्वा हंति जंतूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदांधस्य दारिद्र्यं परमांजनम् ॥ आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥ यथा कंटकविद्धांगो जंतोर्नेच्छति तां व्यथाम् ॥ जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाऽविद्धकंटकः ॥ १४ ॥

अग्नि कहै है कि, यह मेरा है क्योंकि मेरेही तेजसे यह सब काम करता है, उसका कहना भी सत्य है, पृथ्वी आदिक कहते हैं कि, हमाराहै अन्त समय हमारे सिवाय और कहीं जाही नहीं सक्ता, उनके कहने में भी कुछ संशय नहीं और श्वानादिक कहते हैं हमारा है एक दिन हम इसको खायँगे, उनका कहना भी झूँठ नहीं ॥ ११ ॥ इस प्रकार यह तुच्छ शरीर मायाहीसे उत्पन्न होता है और मायाही में लय हो जाता है और पाँच सात विवादी उसमें विवाद करैं कि, यह हमारा है, ऐसे झगडेके देहको पाकर केवल अज्ञानियोंके सिवाय ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो जीवोंकी हिंसा करै । ॥ १२ ॥ जो अज्ञानी पुरुष धनके मदसे अन्धे होजाते हैं उनके लिये दरिद्रही श्रेष्ठ अंजन है दरिद्री पुरुष सब प्राणियोंको दुःख सुखमें अपनी समान देखता है, क्योकि अपने मनमें निर्धन विचार लेता है कि, मुझको दुःखने इस प्रकार बाधा करी थी, ऐसेही औरोंको भी बाधा करता होगा, जैसे मुझको सुख होता है ऐसे औरोंकोभी सुख होता है ॥ १३ ॥ जिस पुरुषके पाँवमें काँटा लगैहै वह पुरुष दूसरेके

पॉवमें भी कॉटा लगना नहीं चाहता, वह अपने मनमें विचार करताहै कि, जैसे मुझको कॉटा लगनेसे पीडा हुईहै ऐसेही सबको होती होगी और जिसके कॉटा लगा नहीं वह कॉटेकी पीडाको कैसे जान सक्ताहै कि, कॉटा लगनेसे इतना कष्ट होताहै ॥१४॥ इस बातपर एक दृष्टान्तहै * दरिद्री

दारिद्रो निरहंस्तंभो मुक्तः सर्वमदैरिह ॥ कृच्छ्रं यदृच्छयाऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥

पुरुषका अहंकार, मद और सम्पूर्ण प्रकारका अभिमान नष्ट होजाताहै और जो कष्ट आनकर प्राप्त होताहै तो वह कष्टही उसको तपस्याकी समान होजाता है; तपमें व्रत हो जाता है, क्योंकि दरिद्री अन्नके विना भूखा प्यासा रहता है, जब दरिद्रीको अन्न न मिले तो निःसन्देह वह भूखा प्यासा

---

* एक राजा था उसका पुत्र गुरुके पास विद्या पढता था, जब राजाकी अवस्था अधिक हुई तो राजाने विचार किया कि, अब इस मोह ममताको त्यागकर तप करना चाहिये और मंत्रियोंको बुलाकर सब राज्यका प्रबन्ध करदिया और राज्यसिंहासनका अधिकार पुत्रको देना चाहा यह चर्चा उन गुरुके कानमें भी पडी जो उनके पुत्रको पढाते थे गुरुने अपने मनमें विचार किया कि, मैंने राजकुमारको सब विद्या पढादीं, परन्तु अभीतक इसको दु:ख सुखका ज्ञान नहीं हुआ, दु:ख किसे कहते हैं और सुख किसे कहते हैं, ऐसी शिक्षा इसको अभी नहीं सिखाई अभी तो यह मेरे वशमें है मैं सब कुछ करसक्ताहूं और जब यह अपने वशमें होगया तो मैं कुछ नहीं करसक्ता और जो यह ऐसाही रहा तो न जानिये फिर किसको दुःख दे, यह शोच समझ उसको अपने पास बुलाकर पाँच सात सॉटी ऐसी शक्तिसे मारीं कि, शरीरकी सब खाल उडगई और रुधिर बहने लगा, इतने पर भी एक कोठरीमें बन्द करलिया जो तत्काल उपायभी न हो सके और जब वह रोगा तो रोनेतक भी न दिया दोपहरतक बन्द रहा तब उसको खोल दिया और चार लडकोंके साथ राजकुमारको राज्यभवनमें राजाके पास भेजदिया, राजकुमारने अपने पितासे सब वृत्तान्त कहा कि, विना अपराध गुरुने मुझको मारा और अपना सब शरीर दिखाया, राजाने देखा तो सॉटी जहॉ की तहां उछल रही हैं, रक्त बहरहाहै, राजकुमारकी यह दशा देखकर उसके पिताको बडा क्रोध आया और कोतवालको आज्ञा दी कि, उस ब्राह्मणको अभी पकडकर शूली देदो कि, उस निर्दयीने विना अपराध राजकुमारको मारा है, राजाकी आज्ञानुसार कोतवालने पकडकर बधिकोंको सौंप दिया कि, इसको शूली देदो, बधिक जिस समय उस ब्राह्मणको शूली देनेको लेचले, तब उस ब्राह्मणने कहा कि, मैं कुछ बात राजासे कहना चाहताहूं ? बधिक बोले चलो, ब्राह्मणने राजासे कहा कि, मुझको शूलीकी आज्ञा किसलिये हुई ? आपने मुझको राजकुमारके पढानेके लिये नियत किया था या शूली देनेके लिये ? राजाने कहा कि, क्या हमने विना अपराध मारनेके लिये कह दिया था, ब्राह्मण बोला कि, मैं नहीं मारा, राजाने राजकुमारका सब शरीर दिखाया और कहा यह क्या है ? ब्राह्मणने कहा कि यह भी एक प्रकारकी विद्या है, राजा बोला कि, यह कैसी शिक्षा है ? ब्राह्मण बोला कि मैंने सुना कि, प्रातःकाल राजकुमार राज्यसिंहासनपर बैठेंगे और अभीतक यह नहीं जानते दुःख कैसा होता है और जो मैंने इनको दुःख न दिखाया तो यह हजारों मनुष्योंको दुःख देंगे, अब इन्होंने दुःखका भेद जान लिया तो अब किसीको विना अपराध दुःख न देंगे अब इनको भले प्रकार दुःखका रूप दरशा दिया, राजा ब्राह्मणकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुवा और दशगॉव और अनेक प्रकारके आभूषण उसको पारितोषिकमें दे हाथ जोडकर कहा कि, मेरा अपराध क्षमा करना मैं आपकी गुप्त विद्याको नहीं समझा था, ब्राह्मण राजाको और कुँवरको आशीर्वाद देकर चलागया देखो ! पहिले ब्राह्मण कैसे चतुर होतेथे ॥

रहेगा तो वही व्रत होजायगा ॥१५॥ अन्नकी आकांक्षा करनेवाले दरिद्रीके घर नित्य कडाके होतेहैं. इससे उसका शरीर सूख जाताहै, इन्द्रियें शिथिल होजाती हैं, फिर उससे हिंसाभी नहीं होती, जो आपही मरताहै वह दूसरेको कैसे मारसक्ता है ? ॥ १६ ॥ दरिद्री मनुष्य सबको समान देखताहै और दरिद्रीको साधु महात्मा पुरुषभी मिलजातेहैं, जिस समय दरिद्री क्षुधित होकर अन्न अन्न पुकारता है, तब साधु महात्मा उससे कहते हैं कि, अरे ! कृष्ण कृष्ण पुकार जो सब संसारका पालन पोषण करनहाराहै. इसप्रकार वह साधु महात्मा लोग उसके अन्नकी तृष्णाको दूर करदेतेहैं, तब शीघ्र उसका संताप छूटजाता है ॥ १७ ॥ समचित्त और परमेश्वरके चरणानुरागी साधु महात्मा पुरुषोंको दरिद्रीही प्यारा होता है, उनको लक्ष्मीके मदसे

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः ॥ इंद्रियाण्यनुशुष्यंति हिंसापि विनिवर्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यंते साधवः समदर्शिनः ॥ सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुंदचरणैषिणाम् ॥ उपेक्ष्यैः किं धनस्तंभैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदांधयोः ॥ तमोमदं हरिष्यामि स्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥ यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ॥ न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥ ॥२०॥ अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ॥ स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥ वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ॥वृत्ते स्वलोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥

उन्मत्त दुष्ट लोगोंसे प्रयोजनही क्या? ॥१८॥ इसलिये मैं इन दोनोंको जोकि वारुणीके मदसे मतवाले, लक्ष्मीके मदसे अन्धे, स्त्रियोंके लम्पट और अजितेन्द्रिय हैं, इनसे अज्ञान हुए मदको मैं दूर करूंगा, क्योंकि इस समय यह अन्धे, होरहेहैं ॥१९॥ देखो ! यह कुबेरके पुत्र होकर अज्ञानमें डूबरहे हैं, यह नहीं जानते कि हम नंगे हैं, इनको कुछ भी अपने तनुकी सुधि नहीं अत्यन्त मतवाले होरहे हैं ॥ २० ॥ इसलिये यह दोनों स्थावर होनेके योग्य हैं जो फिर आगेको इन्हें ऐसा मद न होय और वृक्षयोनिमें भी मेरी कृपासे इनको सुधि बनीरहै ॥ २१ ॥ और भगवान् वासुदेवका दर्शन पाकर पीछे फिर स्वर्गमें जाकर देवता होयँ, परन्तु पहिले देवताओंके सौ (१००) वर्ष वृक्षयोनि भोगनी पडेगी, तदनन्तर

इनको भक्ति प्रातहोगी ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! देवर्षि नारदजी इसप्रकार कहकर नारायणके आश्रमको चलेगये, अब
नलकूबर, मणिग्रीव, दोनों यमलार्जुन वृक्ष हुए ॥ २३ ॥ अपने भक्तोंमें मुख्य श्रीनारदजीके वचन सत्यकरनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र महाराज
यमलार्जुनवृक्षोंके निकट हौले हौले चलेगये ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें विचार किया कि, श्रीनारदजी मेरे प्रिय भक्त हैं
और यह कुबेरके दोनों पुत्र हैं सो नारद महात्माने इनके विषयमें जो कुछ कहाहै सो सब सत्य करूंगा ॥ २५ ॥ इसप्रकार विचार करके
यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें होकर निकले और वृक्षोके बीचमें आनकर उलूखल को तिरछा करदिया ॥ २६ ॥ रस्सीसे उदरमें बँधे हुए उलूखलको

श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ॥ नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भा
गवतमुख्यस्य सत्यं कर्तु वचो हरिः ॥ जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ
धनदात्मजौ ॥ तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥ इत्यंतरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ॥ आत्म
निवशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलितांघ्रिबंधौ ॥
निष्पेततुः परमविक्रमिताऽतिवेपस्कंधप्रवालविटपौ कृतचंडशब्दौ ॥ २७ ॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरंतौ सिद्धा
वुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ॥ कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धांजली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥
कृष्णकृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ॥ व्यक्ताऽव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥

बालकरूप श्रीकृष्ण दामोदरने झटका मारकर खींचा, उस समय दोनोंवृक्ष जडसे उखड़कर पृथ्वीपर गिरपडे, श्रीकृष्णके पराक्रमसे गुद्दे, शाखा,
डाली और पत्ते, सब कॉपने लगे बडा भारी शब्द हुवा ॥ २७ ॥ जैसे संघर्षणके होनेसे अग्नि निकले, ऐसेही अतिशोभायमान दशों दिशा
ओंको प्रकाशमान करते दो पुरुष निकले, तब भगवान् त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको शिर झुकाकर प्रणाम किया और मदको त्यागा हाथ
जोड़ इसप्रकार प्रार्थना करनेलगे ॥२८॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! तुम बालक नहीं हो, परम कारणरूप हो और स्थूलसूक्ष्मरूप जो आपहो

उस रूपको ब्रह्मवेत्ता जानते हैं ॥ २९ ॥ सब प्राणियोंके देह, प्राण, इन्द्रिय, अहंकारके आपही एक ईश्वर हो और सम्पूर्णमें व्यापक भगवान् कालरूप आपही हो ॥३०॥ आपही महानरूप हो रजोगुण, तमोगुण सत्त्वगुण और सूक्ष्म मायारूप सब तुमही हो, देहोंके विकारके जाननेवाले साक्षीपुरुष आपही हो ॥ ३१ ॥ आप प्रकृतिके गुण, बुद्धि, अहंकार इन्द्रियादिकसे ग्रहणकरनेमें नहीं आते हो उत्पत्तिसे पहिलेही स्वयंप्रकाश जो आप हो तिनको कारण गुण आच्छादित जीव कैसे जानसक्ताहै ॥ ३२ ॥ वासुदेव, सर्वके कर्त्ता और स्वयंप्रकाशित किये हुए गुणोंसे जिनकी महिमा ढकरही है ऐसे जो आप ज्ञानस्वरूप हैं सो हम आपको बारंबार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! आप सबके शरीरोंमें

त्वमेकः सर्वभूतानां देहोऽस्वात्मेंद्रियेश्वरः ॥ त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥ त्वं महान्प्रकृतिः साक्षाद्रजस्सत्त्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ॥ कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥ तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥ यस्यावतारा ज्ञायंते शरीरेष्वशरीरिणः ॥ तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ॥ ३४ ॥ स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ॥ अवतीर्णोंशभागेन सांप्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमः परम कल्याण नमः परममंगल ॥ वासुदेवाय शांताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥ अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ ॥ दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥

रहकरभी शरीरके सम्बन्धसे रहित हो और यद्यपि आपका शरीरभी नहीं है परंतु जब अवतार धारण करते हो तब और प्राणियोंसे न होनेवाले जिनकी तुल्य वा अधिक कोई नहीं करसक्ता, ऐसे ऐसे चारित्रोंसे आपके अवतार जाने जाते हैं ॥ ३४ ॥ सब लोकोंके ऐश्वर्य और मोक्षके लिये निरन्तर परिपूर्ण रूप होकर अपने अंशोंसहित प्रगट हुए हो ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप ! हे मंगलरूप ! आपको नमस्कार है, आपके शान्त रूपको नमस्कार है. हेवासुदेव ! यदुकुलके रक्षा करनेवाले आपको बारंबार नमस्कार है ॥३६॥ हे परिपूर्ण भगवन् ! हम आपके दासोंके दास हैं, हमने भगवान् नारदजी महाराजकी कृपासे आपका दर्शन पायाहै और आपको परिपूर्ण रीतिसे जाना अब हमको आप आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥

हमारी वाणी आपके गुणानुवादोंको निरन्तर गाया करै कान आपकी कथाओंको सदा सुनते रहैं, हाथ आपकी सेवा और पूजनमें लगेरहैं हमारा मन
सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगारहै, हमारा मस्तक आपके निवासरूप जगत्को प्रणाम करतारहै, और हमारी दृष्टि तुम्हारी साधु मूर्तियोंका
नित्यप्रति दर्शन किया करे, हे दीनबन्धु ! हम बारंबार आपसे यह वर मांगते हैं ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब इसप्रकार नलकूबर,
मणिग्रीवने गोकुलनाथ भगवान्की स्तुतिकरी, तब रस्सीसे उलूखल जिनके उदरमें बँधरहा ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्द मुसकराकर
बोले ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे यक्षो ! करुणामय श्रीनारदजीने लक्ष्मीके मदसे तुमको अन्धा देखकर शाप दिया और तुमको लक्ष्मीसे
भ्रष्ट करके तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, इस सब इतिहासको मैं पहिलेहीसे जानता था ॥ ४० ॥ समानचित्त, ब्रह्मज्ञानी, सनातन धर्ममें तत्पर,

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ॥ स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः
सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सकीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः ॥ दाम्ना चोलू
खले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ॥ यच्छ्रीमदांधयोर्वा
ग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ॥ दर्शनान्नो भवेद्बंधः पुंसोऽक्ष्णोः
सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबरसादनम् ॥ संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ बद्धोलूखलमामंत्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥ इति
श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे यमलार्जुनयोः नारदशापमोचनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

उनमें भी मुझमें निरन्तर मन लगानेवाले महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे ऐसे पुरुषोंका बन्धन कटजाता है जैसे सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंका अन्धकार दूर
होजाता है ॥ ४१ ॥ हे नलकूबर ! हे मणिग्रीव ! तुम मेरे भक्त होकर अपने स्थानको जाओ, तुम्हारी मेरेविषे सर्वदा भावना रहेगी और तुम्हारा
जन्म मरण रूप संसार मुझमें प्रेम करनेसे छूट गया ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के वचन
सुनकर नलकूबर, मणिग्रीव बारंबार परिक्रमा करके प्रणाम करने लगे और उलूखलसे बँधेहुए श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा लेकर उत्तर दिशाको चले
गये ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां यमलाऽर्जुनयोः नारदशापमोचनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा—ग्यारहमें बछरन सहित, वृन्दावन हरि आय । वत्सासुर अरु बकासुर, हने कहूं सो गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, हे कुरुकुलभूषण ! वृक्षोंके गिरानेका शब्द सुन यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौड़ी और जिस उलूखलसे कृष्णको बाँधा था वहां न तो कृष्णको पाया और न उलूखलको देखा, तब तो एकाएकी घबराकर हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! हा मोहनप्यारे ! कह कहकर चिल्ला चिल्ला रोने लगीं, यशोदाकी चिल्लाहट सुनकर नन्दादिक समस्त गोप कहने लगे कि, यह कोई वज्र गिरा वा कोई और नया उत्पात हुवा ! इस भयसे भयभीत हो सब गोप वहाँ आये जहां वृक्ष गिरे थे॥१॥ देखा तो पृथ्वीपर यमलार्जुन वृक्ष उखड़ा हुवा पड़ाहै, गिरनेका कारण विद्यमान है, परन्तु गोपोंके मनमें भ्रम हुवा कि, आंधीभी नहीं आई वज्रभी नहीं टूटा, फिर यह वृक्ष आपसेआप कैसे उखड़पडे ॥ २ ॥ रस्सीसे बँधे बालक श्रीकृष्णको उलूखल खैंचते देखा तो भी व्रजवासियोंने न

श्रीशुक उवाच ॥ गोपा नंदादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥ तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशंकिताः ॥ १ ॥ भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ॥ बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥ उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं च बालकम् ॥ कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ॥ बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ॥ विलोक्य नंदः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥

जाना और परस्पर कहने लगे कि, यह किस राक्षसका कामहै कहांसे यह आश्चर्यरूप उत्पात हुवा, ऐसे कह व्रजवासी डरने लगे ॥ ३ ॥ वहां जो छोटे छोटे बालक खेल रहे थे उन्होंने कहा कि, यह श्रीकृष्ण उलूखलको खैंचे वृक्षोंके बीचमें आगया, तब यह उलूखल तिरछा होकर इन दोनों वृक्षोंके बीचमें अड़गया, तब इसने झटका मारकर खींचा, इससे यह दोनों वृक्ष गिरपड़े इनमेंसे दिव्यरूप दो पुरुष निकले उनको भी हमने देखा ॥ ४ ॥ बालकोंकी बातका किसी किसी व्रजवासीने तो विश्वास न माना और परस्पर कहने लगे कि, तनकसे बालकने इतने इतने बड़े वृक्षोंको कैसे उखाड़ डाला ? और कोई कोई व्रजवासी कहने लगे कि, इस बालकने जन्मसेही ऐसे औटपाय कियेहैं, जब बहुतही छोटा सा था तो पूतनाको मारा, तृणावर्त्तको मारा और गाड़ा पटकदिया, फिर यह, दो वृक्ष उखाड़ डाले तो क्या अचम्भा है ॥ ५ ॥ उलूखलको उदरमें बँधा देखकर

नन्दरायजी बोले कि, तुझको उलूखलसे किसने बाँधा है ! तब श्यामसुन्दरने कहा कि, मेरी प्यारी मैयाने, कृष्णके तुतलाते मधुरवचन सुन नन्दरायने उलूखलसे खोल हृदयसे लगालिया और हँसके बोले कि, चल बेटा तेरी मैयाको मारेंगे, श्रीकृष्ण बोले पिताजी ! मेरी मातासे कुछ मत कहना, क्योंकि उसका कुछ दोष नहीं सब अपराध मेराही है * ॥६॥ तब गोपियें बोलीं कि, हे मनमोहन प्यारे! हम तो ताली बजावें और तुम नाचो हम तुमको बहुतसा माखन खिलावैंगी, यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कभी बालककी नाईं नाचतेथे और कभी भोले बनकर गातेथे, जैसे काठकी पुतली बाजीगरके हाथमें

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ॥ उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयंत्रवत् ॥ ७॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ॥ बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥८॥ दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ॥ व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥ गृह्णीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ॥ फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ १० ॥

होतीहै और जिधरको फेरताहै, उधरको फिरतीहै ऐसेही गोपियोंके प्रेमके वशमें परब्रह्म परमेश्वर होरहेहैं ॥७॥ कभी यशोदाजी कहैं हैं कि, हे बेटा ! पीढ़ा लेआव, कभी कहती बाबाकी खड़ाऊं ले आव, तब तुरन्तही पीढ़ा ले आवें और तुरन्तही खड़ाऊं ले आवें और जब कोई वस्तु नहीं उठती तब माता माता पुकारतेहैं, इसप्रकार व्रजवासियोंको लीलाकरके आनंद देतेहैं ॥८॥ संसारमें पण्डित लोगोंके दिखानेको कि, "मैं इसप्रकार भक्त लोगोंके वशमें हूं" जैसे नचातेहैं वैसे नाचता हूं, इसप्रकार बाललीला करके व्रजवासियोंको प्रसन्न करतेहैं और व्रजवासी आनन्दित होतेहैं ॥९॥ (एकसमय फल लो ! ऐसा

* शंका—अपने पुत्र श्रीकृष्णको बहुत रोता देखकर और कमरमें बहुत कसके रस्सीमें बँधा देखकर और वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर, कभी श्रीकृष्णके ऊपर न गिरगया हो परन्तु श्रीकृष्णकी देहमें कहीं चोट नहीं लगी, परमेश्वरने शरीरकी रक्षा की, ऐसे अपने पुत्रको देखकर नन्दजी क्यों हँसे ? बालकको दुःखी देखकर तो ऊपरी लोगभी शोच करने लगते हैं और श्रीकृष्ण नन्दजीके पुत्र ठहरे फिर नन्दजीने शोच किस लिये नहीं किया ?

उत्तर—नन्दजी गर्गाचार्यके वचनोंको स्मरण करके हँसे क्योंकि गर्गाचार्य नन्दजीसे पहिलेही कह गये ये श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् नारायणका स्वरूपहैं श्रीकृष्णके जन्मसे नन्दजीने अपने भाग्यको लक्ष्मीके प्राणपति जगत्के स्वामी ऐसे श्रीकृष्णको वारवार नमस्कार करके और अपने आपको धन्य जानकर मनमें परमानन्द होकर नन्दजी हँसेथे कि, देखो ? आज मेरे भाग्यकी बड़ाई शिव, सनकादिक भी नहीं कर सक्ते ॥

मालिनीका शब्द सुनकर, सम्पूर्ण फलोंके देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् धान्य लेकर फल लेनेको चले॥ १०॥मालिनीने उनके धान्य डाल देनेके उपरान्त
मनमोहन प्यारेकी परमप्यारी छवि देख उनके दोनों हाथ फलोंसे भर दिये. तब व्रजरत्नने उसकी डलिया रत्नोंसे भरदी ॥ ११॥ यमलार्जुन वृक्षोंको
उखाडके श्रीकृष्ण यमुनाके तीरपर बालकोंके संग बलभद्रसहित खेल रहे थे, इनको रोहिणीजीने पुकारा दोनों भाई खेलमें ऐसे मग्न हो रहे थे कि, रोहि
णीके बुलानेसे भी न आये, तब पुत्रसे प्रेम करनेवाली यशोदाजीको रोहिणीने बुलानेकेलिये भेजा ॥ १२॥ १३॥ १४ ॥ बालकोंके संग कृष्ण बलदेवके
खेलते खेलते जब बहुत दिन चढ़ गया, तब यशोदाके पुत्रके स्नेहसे स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा तब यशोदाजी श्रीमनमोहन प्यारेको बुलाने लगीं

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् ॥ फलैरपूरयद्रत्नैः फलभांडमपूरि च ॥ ११ ॥ सार्त्तीरगतं कृष्णं भग्ना
र्जुनमथाह्वयत ॥ (रामं च रोहिणी देवी क्रीडंतं बालकैर्भृशम्) ॥ जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १२ ॥
पश्यपश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ॥ त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १३ ॥ नोपेयातां यदाहू
ता क्रीडासंगेन पुत्रकौ ॥ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ १४॥ इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्ने
हनिबद्धधीर्नृप ॥ हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ १५ ॥ क्रीडंतं सा सुतं बालैरतिवेलं
सहाग्रजम् ॥ यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी॥ १६॥कृष्णकृष्णारविंदाक्ष तात एहि स्तनं पिब ॥ अलं वि
हारैः क्षुत्क्षांतः क्रीडाश्रांतोऽसि पुत्रक॥ १७॥ हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनंदन ॥ प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान्भो
क्तुमर्हति ॥ १८॥ प्रतीक्षते त्वां दाशार्हो भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ॥ एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान्यात बालकाः ॥ १९ ॥

॥ १५ ॥ १६ ॥ हे कृष्ण ! हे कमलदललोचन ! हे प्यारे पुत्र ! स्तनपान करले, तू खेलते खेलते थकगया होगा. हे तात ! तुझको भूख बहुत लगी होगी
अब खेलको रहनेदे, संध्याको फिर खेलना ॥ १७ ॥ हे राम ! हे मोहन ! हे नंदलाल ! हे कुलभूषण ! शीघ्र छोटे भाईको अपने साथ लेकर घरको आवो
प्रातःकालही कलेऊ कर लिया है अब आनकर भोजन करले ॥ १८ ॥ अरे खेलके मतवाले ! व्रजनाथ तुझ विना भोजन करनेको बैठे हैं, तेरे आने
की बाट देखरहे हैं, तुझको बूढे बाबाकी दया नहीं आती, तू आनकर हमको प्रसन्न कर, इस बातको सुनकर कृष्ण आये तब बालक बोले कि,

जैसे तैसे करके तो खेल जमा है अब श्रीकृष्ण जाते हैं, इसको कभी नहीं खिलानेके, यह बात सुनकर श्रीकृष्ण फिर खेलने लगे, तब यशोदा
बोली कि, अरे बालको ! तुम्हारे घरबारहै कि नही, क्यों नहीं अपने घरोंको जाते ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब व्रजमें बडे बडे
उत्पात होने लगे तब नन्दादिक वृद्ध वृद्ध व्रजवासियोंने विचार किया कि, महावनमें तो नित नये उत्पात होते हैं. अब गोकुलके हितका कोई
विचार करना चाहिये ॥ २० ॥ जोकि, ज्ञान और अवस्था करके अधिक देश कालके तत्त्वको जाननेवाले और बलभद्र व कृष्णचन्द्रके
अतिहित करनेवाले उपनन्द नाम गोप तहाँ बोले ॥ २१ ॥ गोकुलके हितकी इच्छा करके उपनन्द कहने लगे कि, हम यहाँसे उठके
और स्थानपर वास करेंगे, यहां बालकोंके विघ्न करनेवाले बहुतसे उत्पात होतेहैं ॥ २२ ॥ बालकोंकी घातिक पूतना राक्षसीके हाथसे जैसे

श्रीशुक उवाच ॥ गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने ॥ नंदादयः समागम्य व्रजकार्यममंत्रयन् ॥ २० ॥ तत्रोपनंद
नामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ॥ देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २१ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुल
स्य हितैषिभिः ॥ आयांत्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २२ ॥ मुक्तः कथंचिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको
ह्यसौ ॥ हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥ २३ ॥ चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ॥ शिलायां पतितस्तत्र
परित्रातः सुरेश्वरैः ॥२४॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरंतरं प्राप्य बालकः ॥ असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २५ ॥
यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ॥ तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २६ ॥ वनं वृंदावनं
नाम पशव्यं नवकाननम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २७ ॥

तैसे कर यह बालक बचा और एक समय शकट इसके ऊपर गिरा उस विपत्तिसेभी भगवान्‌की कृपासे बचा ॥ २३ ॥ एक समय तृणावर्त
बवूलेका रूप धरके इस बालकको आकाशमें उडाकर लेगया और वहाँसे उसने शिलाके ऊपर पटक दिया, वहाँभी देवताओंने इसकी
रक्षा करी ॥ २४ ॥ यह बालक उलूखलमें बँधाहुआ दोनों वृक्षोंके बीचमें फँसगया और मरनेसे बचा, वहाँ उस समय और बालक भी कोई
नही था, वहाँ भी इस बालककी परमात्माने रक्षा करी ॥ २५ ॥ अब परमेश्वर और कोई दूसरा उत्पात व्रजमें न खडा करदे, इससे पहिलेही
बालकोको यहांसे लेकर और दूसरी ठौर कहीं चल बसें ॥२६॥ पशुओंका हितकारी और नये बाग बगीचे और पुष्पवाटिकावाला श्रीवृन्दावन

नाम वन है और वहीं अतीव उत्तम गोप गोपी, गायोंके रहने योग्य स्थान हैं और महापवित्र जहाँ गोवर्धन पर्वत है, यमुनाजीका किनारा है वहाँ तृण, जल, लता और उत्तम उत्तम सब प्रकारके वृक्ष हैं ॥ २७ ॥ उस वृन्दावनका वास सदैव अच्छा है, आपकी इच्छा हो तो गाडोंको जोतो और गायोंको आगे हाँकलो, अब विलम्ब करनेका समय नहीं है इस प्रकार उपनन्द गोपने नन्दजीसे कहा ॥ २८ ॥ उपनन्द गोपके वचन सुनकर सब वृद्धजनोंने कहा धन्य है आपकी बुद्धिको आपने बहुत अच्छा कहा . हे व्रजराज ! उपनन्दका कहना बहुत ठीकहै, हमारी भी सम्मति यहीहै वृंदावनमें वास कीजिये नन्दजीने कहा हमारीभी यही इच्छा थी परन्तु आपके कहनेसे और पक्की बात होगई. नन्दजीकी बात सुन

तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युंक्त माचिरम् ॥ गोधनान्यग्रतो यांतु भवतां यदि रोचते ॥ २८ ॥ तच्छुत्वै कधियो गोपाः साधुसाध्विति वादिनः ॥ व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥ २९ ॥ वृद्धान्बालान्स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च ॥ अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ ३० ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृंगाण्यापूर्य सर्वतः ॥ तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३१ ॥ गोप्यो रूढरथा नूतकुचकुंकुमकांतयः ॥ कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ ३२ ॥ तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ॥ रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३३ ॥

सबने अपनी अपनी गाडियोंको जोत घरकी सब सामग्री लादकर चलदिये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित ! प्रथम सब समानको गाडियोंमें भरकर ऊपर वृद्ध, बालक, स्त्रियोंको बैठालकर, धनुष बाण हाथोंमें लेलेकर ॥ ३० ॥ सब व्रजवासी सावधान हो गायोंको आगे कर, चारोओर बडे बड़े रणसिंग बजाते और तुरहीका शब्द करते पुरोहितको संग लेकर सब गोकुलवासी वृन्दावनको चलदिये ॥ ३१ ॥ गाडियोमें बैठी गोपी नवीन केशर कुचाओमें लगाये कठला, धुकधुकी कण्ठमें पहिरे, रथ और गाडियोंमें बैठीं कृष्णकी लीला गाती जाती थीं ॥ ३२ ॥ उसी प्रकार रोहिणी और यशोदा भी एक गाडीमें श्रीकृष्ण और बलदेवजीको साथ लिये बैठी थीं और

उनकी लीला और चरित्रोंको सुन सुनकर आनन्दको प्राप्त होती थीं ॥ ३३ ॥ सर्वानन्दको देनेवाले वृन्दावनमें आनकर गाडियोंको बराबर
खडा करके अर्द्धचन्द्रमाकी समान गायोंके रहनेके लिये एक खिरक बनाया ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! वृन्दावन, गोवर्द्धन और यमुनाजीका अत्यन्त
रमणीक तट देखकर श्रीकृष्ण और बलराम बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥ इसप्रकार बाललीला और तोतली मधुरवाणीसे व्रजवासियोंको आनन्द
देने लगे और जब दोनों भाई बछरे चरावने योग्य हुए तब वत्सपालक कहलाये ॥ ३६ ॥ व्रजभूमिके निकटही गोपालोंके बालकोंको संग लेके
श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई बछरोंको चराने लगे और भाँति भाँतिकी क्रीडा नित्य प्रति करने लगे ॥ ३७ ॥ कभी बाँसुरी बजाते थे और कभी
आमलोंको गोफनमें धरधरकर चलाते थे कभी पावोंमें घूँघुरू बाँधकर ऐसा नाच नचातेथे कि,अप्सराओंको लजाते थे.कभी परस्पर युद्ध करते

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापु
वृंदावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ॥ तत्र चक्रुर्व्रजाऽऽवासं शकटैरर्धचंद्रवत् ॥ ३४ ॥
लिनानि च ॥ वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥ ३५ ॥ एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छंतौ बालचेष्टितैः ॥ कलवा
क्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३६ ॥ अविदूरे व्रजभुवः सहगोपालदारकैः ॥ चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडा
परिच्छदौ ॥ ३७ ॥ क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ॥ क्वचित्पादैः किंकिणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः॥ ३८ ॥
वृषायमाणौ नर्दंतौ युयुधाते परस्परम् ॥ अनुकृत्य रुतैर्जंतूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ ३९ ॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सां
श्चारयतोः स्वकैः ॥ वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४० ॥

थे, कभी कम्बल उढाय कृष्ण बलदेव दोनों भैया ग्वालोंको बैल बनाते थे और इनके संग आप भी बैल बनकर गम्भीर शब्द करते थे ॥३८॥ कभी
पक्षियोंकी बोली बोल बोलकर कहतेहैं कि, हम हंस हैं कोई कहते हम मोर हैं, जैसे प्राकृत बालक खेल खेलतेहैं वैसेही दोनों भाई वनमें जाकर गोपोंके
संग नये नये खेल खेलते थे॥३९॥ एक समय यमुनाजीके तीरपर श्रीकृष्ण और बलराम बछरे चरानेको गये और वहाँ कंसने सुना कि, नन्दादिक
गोप गोकुल छोडकर वृन्दावनमें जा बसे हैं,तब कंसने अपने साथी वत्सासुरको बुलाकर विनयपूर्वक अपने दुःखका सब वृत्तान्त कहाकि,भाई ! नन्दके
पुत्रने मुझको बडा दुःख देरक्खाहै, कोई ऐसा उपाय करो जो वह बालक माराजाय. कंसकी यह बात सुन बत्सासुर बछरेका रूप बनाकर वृन्दावनमें

गया ॥ ४० ॥ और जो बछरे कृष्ण और बलराम चराते थे उनहीं बछरोंमें मिलकर यह भी चरने लगा और भयानकरूप देख सब बछरे डरकर जहाँ तहाँको भागगये. तब श्यामसुन्दरने उस राक्षसको पहँचानकर ऑखकी सैनसे बलदेवजीको जताया कि, देखो भाई ! यह दुष्ट राक्षस कंसका भेजाहुवा बछरेका रूप धरकर मेरे मारनेके लिये यहां आया है, तुम भी इसका ध्यान रखना ॥ ४१ ॥ वत्सासुर भी घूमता घामता अपनी घात लगाताहुवा धीरे धीरे वृन्दावनविहारीके समीप आ पहुँचा, तब श्रीकृष्णचन्द्रने उसका पिछला पैर पकड़कर एक कैथाके पेड़की जडमें घुमाकर ऐसा मारा कि, उसका प्राण निकलकर परमधामको सिधारा, बड़े भारी शरीरवाला वत्सासुर दैत्य कैथाके वृक्षसहित पृथ्वीपर गिरा ॥ ४२ ॥ उसको गिरा देखकर सब बालक अत्यन्त विस्मित हो धन्य धन्य कहने लगे और अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंने आकाशसे फूल बरसाये ॥४३॥ समस्त

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ॥ दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥ ४१ ॥ गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलांगूलमच्युतः ॥ भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ॥ स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४२ ॥ तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ देवाश्च परिसंतुष्टाः बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४३ ॥ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ॥ सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयंतौ विचेरतुः ॥४४॥स्वंस्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यंत एकदा॥ गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥ ४५ ॥

बालकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भ्राता बछरोंके वत्सपाल होकर प्रातः कालका कलेवा लेकर वनमें जाय बछरोंको चराते और अनेक अनेक प्रकारकी लीला विहार करते थे ॥ ४४ ॥ जब कंसने वत्सासुरके मारे जानेका वृत्तान्त सुना तो बडा शोच किया ? और उसके भाई बकासुरसे जाकर कहा कि, तू अपने भाईका बदला ले और उस दुष्ट कृष्णको मारकर मेरी छाती ठण्ढी कर. यह बात सुनकर बकासुर बगलेका रूप धारण कर वृन्दावनमें आया और कालिन्दीके किनारे पर्वताकार हो, मुंह फैलाकर इस घातमें जा बैठा कि, श्याम सुन्दर यहाँ आवे तो निगल जाऊँ उस दिन सब बालक अपने अपने बछरोके समूहोंको यमुनाजीके निकट जल पिलानेके लिये गये, वहाँ जाय बछरोंको जल

पिलाया और आप भी पिया ॥ ४५ ॥ और वहाँ उन बालकोंने वज्रसे टूटे गिरे पर्वतके शिखरके तुल्य बड़े मुखवाला एक पक्षी देखा और उसको
देखकर अत्यन्त भयभीत हुए ॥ ४६ ॥ यह महाबली तीक्ष्णचोंचवाला बगलेका रूप धारणकिये बकासुरनाम दैत्य था. वह बकासुर बलवान् आन
कर श्रीकृष्णको शीघ्रही निगल गया और कहा कि, मैंने आज अपने बत्सासुरका बदला ले लिया ॥ ४७ ॥ जब श्रीकृष्णको बकासुर लीलगया
तब बलदेवादिक सब बालक विना प्राणोंके इन्द्रियकी समान अचेत होगये और रोरोकर कहने लगे कि, हाय ! हम सब यशोदाको जाकर क्या
उत्तर देंगे ? जिसने अपना प्यारा पुत्र हमको सौंपदिया था, सब दौडे हुए बलदेवजीके पास आये और वृत्तान्त सुनाया कि, हमने बहुतेरा वर्जा
परन्तु श्यामसुन्दरने हमारा कहना एक न माना, अब हम क्या करैं और क्या न करैं ? बलदेवजी बोले कि, तुम घबराओ मत, उस दैत्यको मार

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ॥ तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृंगमिव च्युतम् ॥ ४६ ॥ स वै बको नाम महान
सुरो बकरूपधृक् ॥ आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुंडोऽग्रसद्बली ॥ ४७ ॥ कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ॥
बभूवुरिंद्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४८ ॥ तं तालुमूलं प्रदहंतमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ॥ चच्छर्द
सद्योऽतिरुषाऽक्षतं बकस्तुंडेन हंतुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ४९ ॥ तमापतंतं स निगृह्य तुंडयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां
पतिः ॥ पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ५० ॥ तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समा
किरन्नंदनमल्लिकादिभिः ॥ समीडिरे चानकशंखसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥ ५१ ॥

कर मनमोहन प्यारे अभी आते हैं, उसी समय गायनके पालनकरनहारे, नन्दके दुलारे, ग्वाल बालोंके प्यारे, यशोदाके नेत्रोंके तारे, जगत्के गुरु,
ब्रह्माके पिता, श्रीकृष्णचन्द्रने अग्निके अंगारकी समान उसके तालूको जलाना आरम्भ किया, उस बकासुरने कृष्णको तुरन्तही उगलदिया और
उनके शरीरमें कुछ भी कष्ट न हुवा, तब तो अत्यन्त क्रोध करके फिर बकासुर व्रजविहारीके ऊपरको धाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ सज्जनोंके सहायक,
देवताओंके आनन्ददायक, श्रीकृष्ण यदुनायक, कंसके सखा बकासुरको फिर आता देख दोनों हाथसे उसकी चोंच पकडके सब बालकोंके देखते
देखतेही तृणकी समान चीरकर बगेल दिया ॥ ५० ॥ उस समय सुरपुरनिवासी देवताओंने बकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके

ऊपर नन्दनवनके मालतीके पुष्पोंकी वर्षा करके दुंदुभि और शंख बजाय बजाय उनकी स्तुति करने लगे. इस कौतुकको देख देखकर ग्वाल बाल आश्चर्य मानते थे ॥५१॥ जैसे इंद्रियें प्राण आनेसे आनन्दित होतीं हैं तैसे बलभद्रादिक सब बालक बकासुरके मुखसे निकलेहुए श्यामसुन्दर प्यारेको देखकर आनन्दितहुए और छातीसे लगाकर सब बालक उनसे मिले और सब बछरोंको इकट्ठा करके बारंबार प्रशंसा करने लगे ॥ ५२ ॥ यह सुनतेही गोप और गोपी बहुत संशय करने लगे और गोप गोपी बडे आदर सत्कारसे श्रीकृष्णको देखनेलगे जैसे कोई मृतक होकर घर आजाताहै और सब कुटुम्बियोंका चित्त उनको देखते २ तृप्त नहीं होता ॥५३॥ सब गोप कहने लगे कि, इस बालकके ऊपर बडी बडी विपत्तियें पडी, परन्तु जो मारनेको आया वह आपही मारागया, क्योंकि पहिले उन्होंने औरोंको भय दिखाया ॥ ५४ ॥ महाभयंकर रूप धर धरकर अनेक असुर और राक्षस कृष्णके

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवेंद्रियो गणः ॥ स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान्व्रजमेत्य तज्जगुः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ॥ प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षंत तृषितेक्षणाः ॥५३॥ अहो बताऽस्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ॥ अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५४ ॥ अथाप्यभिभवंत्येनं नैवैते घोरदर्शनाः ॥ जिघांसयैनमासाद्य नश्यंत्यग्नौ पतंगवत् ॥ ५५ ॥ अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः संति कर्हिचित् ॥ गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥ ५६ इति नंदादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ॥ कुर्वंतो रममाणाश्च नाविंदन्भववेदनाम् ॥ ५७ ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागव० महापुराणे दशमस्कंधे पू० वत्सबकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मारनेको आये, परन्तु परमेश्वरकी दयासे इनका कुछ कर न सके, आपही मरनेके लिये इसके पास आये जैसे अग्निमें आकर पतंग जल जाते हैं तैसे आपही आनकर मरजातेहैं ॥ ५५ ॥ अहो ! वेदवादियोंकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती जो जो बातें गर्गाचार्य कहगये थे, वह सब बातें अब सत्य होती जाती हैं ॥ ५६ ॥ इस प्रकार कृष्ण बलरामकी रसभरी बातें कह कहकर आनन्दित होते थे और सुख पातेथे, जिन्होंने भवसागरकी वेदनाको कुछ न समझा इस प्रकार आँखमिचौनी, पुल बांधने, बन्दरोंकी समान कूदना, यह कौमार अवस्थाके खेल कर करके श्रीकृष्ण बलराम कौमार अवस्था व्यतीत करते थे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां वत्सबकवधो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा–द्वादशमें धारि सर्प वपु, निगले ग्वाल रु बाल । तासुं अघासुरको हनो, कृपासिंधु गोपाल ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! श्रीकृष्णने
एक दिन वनमें भोजन करनेके विचारसे प्रातःकाल उठकर सुन्दर शृंगी बजाकर अपने प्यारे ग्वालबालोंको जगाया और कलेवा बाँध बछरोंको आगेकर
श्रीकृष्णचन्द्र घरसे निकले ॥१॥ उन श्रीकृष्णके संग स्नेही ग्वालोके सहस्रों बालक उत्तम उत्तम छींके, बेत शृंगी और बाँसुरी लेलेकर सहस्रसे भी
अधिक संख्यावाले अपने अपने बछरोंके समूहोंको आगे करके आनन्द सहित घरसे चले ॥२॥ असंख्यात श्रीकृष्णके बछरोंमें मिलाकर चराते
चराते बाललीला करकरके यह बालक जहाँ तहाँ विहार करते थे ॥३॥ मणियोंसे जडाऊ सुवर्णके गहने पहने हुए थे, तोभी वनमें जाकर फलोंके कोंप

श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥ प्रबोधयञ्छृगरवेण चारुणा विनि
गतो वत्सपुरस्सरो हरिः ॥१॥ तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ॥ स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसं
ख्ययान्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ॥ चारयंतोर्भलीला
भिर्विजह्रुस्तत्रतत्र ह ॥३॥ फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः ॥ काचगुंजामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥
मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीञ्ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ॥ तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसंतश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरं गतः
कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥ केचिद्वेणून्वादयंतो ध्मांतः शृंगाणि
केचन ॥ केचिद्भृंगैः प्रगायंतः कूजंतः कोकिलैः परे ॥ ७ ॥

लोंके, चौटलियोंके, गुच्छोंके, फूलोंके, मोरपुच्छके और खडियामट्टी. गेरूके तिलक लगा लगाकर अपना अपना शृंगार कररहे थे ॥ ४ ॥ परस्प
र छींका बेत आदि चुराते, जब जान लेते तो दूसरे बालकके पासको फेंक देते थे, वह बालक फिर औरके पासको फेंक देते थे तब वह छींकेवाले बालक
रोने लगते, तब श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर उनके छींके बेत दिला देते थे ॥ ५ ॥ सुन्दर वनकी शोभा देखनेके लिये जब श्रीकृष्ण दूर चले जाते तब बा
लक परस्पर होड बदबदकर दौड़ते थे और कहते थे कि, पहिले मैं छुऊं, वह कहते थे कि, पहिले मैं छुऊं, इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको छूते थे और
आनन्दित हो होकर खेलते थे ॥६॥ कोई बालक बाँसुरी बजाते थे, कोई शृंगीका शब्द सुनाते थे, कोई २ बालक भौरोंके संग गाते थे.

और कोई कोई कोकिलाकी वाणीमें वाणी मिलाते थे ॥७॥ और कोई आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके संग दौडते। कोई बालक हंसोंके संग धीरे धीरे चलते कोई बालक बगलोंकी पाँतिके पास चुपके चुपके जा बैठते और कोई बालक मोरोंके संग नाचते थे॥ ८ ॥ कोई बालक बन्दरोंकी पूँछ पकड पकड कर खींचते थे, कोई पूंछ पकडेही पकड़े उनके संग कूदकर वृक्षोंपर चढ जाते थे और कोई बालक अपने कान दबा कर आंखे फैलाकर बन्दरोंके सन्मुख खडे हो घुडकी बताते थे कोई वृक्षोंपर चढ चढ नीचेको कूदते थे ॥ ९ ॥ कोई कोई मेंढकोंके संग फुदकते थे, जब वह पानीमें डुबकी मारें तब आप भी उसके संग डुबकी (गोता) मारते हैं कोई बालक अपनी परछाईं पानीमें देखकर उसकी हँसी करते थे कोई बालक कुएँ बावड़ीमें अपनी प्रतिध्वनिको सुन उनको गाली देते थे ॥ १० ॥ ब्रह्मज्ञानियोंको ब्रह्मस्वरूप करके जाननेमें

विच्छायाभिः प्रधावंतो गच्छंतः साधुः हंसकैः ॥ वकैरुपविशंतश्च नृत्यंतश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥ विकर्षंतः कीशवालानारोहंतश्च तैर्द्रुमान् ॥ विकुर्वंतश्च तैः साकं प्लवंतश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलंघंतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः ॥ विहसंतः प्रतिच्छायाः शपंतश्च प्रतिस्वनान् ॥१०॥ इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ॥ मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुंजाः ॥ ११ ॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः ॥ स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥ १२ ॥

आते हैं दासभावके करनेवाले भक्त जिनको परम दैवतरूप स्वामी जानते हैं और मायासे मोहित हुए पुरुष उनको मनुष्यका बालक मानते हैं जिनकी जैसी भावना है उनको वैसेही दिखाई देते . धन्य भाग्य है ग्वाल बालोंका, देखो ब्रह्मज्ञानियोंको केवल भगवान्का अनुभवही होताहै, भक्तोंके केवल भजनही सर्वानन्द है, परन्तु ग्वालबालोंकी ओरको देखिये कि, उन्होंने कैसे कैसे उग्र तप किये हैं कि दिनरात भगवान् वासुदेव जिनके संग आहार विहार करते हैं, देखो यह सखाभावका प्रभाव है ॥११॥ योगिजनोंको भी अनेक जन्म महाकष्ट सहकर तप करनेसे जिनके चरणारविन्दकी धूरी मिलनी अत्यन्त दुर्लभ है, सो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी वासुदेव भगवान् जिनके सन्मुख प्रत्यक्ष विराजमान रहें

उन व्रजवासियोंके भाग्यकी कहाँतक बडाई करें ॥ १२ ॥ इन ग्वालबालोंकी सुखपूर्वक लीलाको न सहन करके वह अघासुरनाम दैत्य उस वनमें आया कि, अमृत पान करनेवाले देवताभी अपने जीनेकी इच्छासे नित्य प्रति जिसके मरनेकी राह देखते थे ॥१३॥ कंसका भेजाहुवा, पूतना और बकासुरका छोटा भ्राता, वह अघासुर कृष्णादिक छोटे छोटे बालकोंको देखकर मनमें विचार करने लगा कि, इसी कृष्णने मेरे भाई और बहिनको मारा है, उन दोनोके बदले आज ग्वालबाल बछडें और बलदेव समेत इस कृष्णको मारूंगा ॥ १४ ॥ और अपने भैया बहनको भी इन बालकोंके संगही तिलांजलि दूंगा, तब सब व्रजवासी मृतक समान होजायँगे; प्राण गये पीछे देहोंकी क्या चिन्ता है ? क्योकि प्राणधारी पुरुषोंके तो पुत्रही

अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ॥ नित्यं यदंतर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ॥ अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥ एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापःकृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः॥ प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिंता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ॥ धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथिव्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥१६॥ धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननांतो गिरिशृंगदंष्ट्रः ॥ ध्वांतांतरास्यो वितताध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७ ॥

जीवन प्राण हैं ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर चार कोश लम्बा पर्वतकी समान मोटा अजगर सॉपका अद्भुत रूप धारणकर गुफाकी सदृश मुख पसार बछरे और बालकोंके निगलनेके लिये मार्गमें बैठगया ॥ १६ ॥ नीचेका होठ तो पृथ्वीपर और ऊपरका होठ बादलतक फैला रक्खा था पर्वतकी गुफाके समान जिसका मुख पहाडके शिखरकी सदृश जिसकी दाढें, गूढ कन्दराकी तुल्य मुखमें अन्धकार, बडे लम्बे चौडे मार्गकी नाईं, जिसकी जीभ, कठोर पवनके समान जिसका श्वास और अग्निकी तुल्य जिसकी दृष्टि थी ❀ ॥ १७ ॥

❀ शंका—अघासुर राक्षसके दोनों होठोंकी लम्बाई सुनकर हमारे सबके मनको बडा सन्देह है और हमारा हृदय कांपता है. क्योंकि ऐसी होठोंकी लम्बाई रावणकी तारककी और अनेक राक्षसोंकी भी न थी यह महिमा हमने आज तक कहीं नहीं सुनी, होठ थे या कोट थे ?

सब बालक उस अजगरको देखकर वृन्दावनकी शोभा समझकर खेलते खेलते फैले हुए उस अजगरके मुखकी लीलासेही उत्प्रेक्षा करने लगे ॥ १८ ॥ और परस्पर कहते थे कि, अहो मित्रो ! यह तो कहो कि, यह जो हमारे सन्मुख दिखाई देता है कोई पक्षी है वा मुनुष्य है ? हमारे निगलनेके लिये सर्पकी समान मुख पसार रहा है कि नहीं ॥ १९ ॥ सत्य है सूर्यके किरणोंसे लाल लाल बादल ऐसे दृष्टि आतेहैं मानो सर्पका ऊपरवाला होठ है और सूर्यकी परछाईंसे सब पृथ्वी ऐसी लाल लाल दिखाई देती है मानो सर्पके नीचेकी ठोड़ी है ॥ २० ॥ इधर उधर पर्वतकी

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ॥ व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षंते स्म लीलया ॥ १८ ॥ अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् ॥ अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुंडायते न वा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् ॥ अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छायया ऽरुणम् ॥ २० ॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ॥ तुङ्गशृङ्गाऽऽलयोप्ये तास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥ आस्तृताऽऽयाममार्गोयं रसनां प्रति गर्जति ॥ एषामंतर्गतं ध्वांतमेतदप्यंतराननम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत ॥ तद्दग्धसत्त्वदुर्गंधोऽप्यंतरामिषगंधवत् ॥ २३ ॥

कंदरासी महागम्भीर अँधियारी ऐसी जान पडती है मानो सर्पके मुखका अन्तहै ऊंचे ऊंचे पर्वतके शिखरसे हमको ऐसे दिखाई देतेहैं मानो साक्षात सर्प अजगरकी डाढेंहैं, तुम ध्यान करके देखो ॥ २१ ॥ यह लम्बा चौडा मार्ग हमको ऐसा दृष्टि आता है मानो साँपकी जिह्वा है और इन शिखरोंके भीतर हमको ऐसा अन्धकार दीखता है मानो सर्पके मुखके भीतरका भाग है ॥ २२ ॥ दावानलसे उष्ण उष्ण महातीक्ष्ण पवन ऐसा

उत्तर—अघासुरका पूर्वजन्मका पुण्य था, सो श्रीकृष्णका दर्शन करके बडे मुखसे अपने सन्मुख वर्द्धित होकर स्वर्गको चलागया, परन्तु अपने तेजसे ऊपरके होठको सगही लेतागया और इस जन्ममें जो पाप किया था वह श्रीकृष्णको देखकर डरकर मागा और पातालमें जानेकी इच्छाकी भूमिको भेद अघासुरका पाप रसातलको चला गया, परन्तु अघासुर नीचेके होठको खींचकर अपने सग लेतागया, पहिले अघासुरने श्रीकृष्ण महाराजके शरीरको स्पर्श किया तब उसके पुण्य पाप दोनों नष्ट होगये, तब अघासुर कृष्णकी देहमें मिलगया, पाप पुण्य नाश होनेका कारण यह है जबतक प्राणीके पुण्य रहेंगे तबतक वह स्वर्ग प्राणी मोगेगा और पाप रहेगा तो नरक मोगेगा, जब दोनों नष्ट होजायगे तब ईश्वरमें मिलेगा इसलिये आकाश और भूमिमें अघासुरके होठोंकी वृद्धि हुई ॥

लगता है मानो महाविषवाले सर्पका श्वास है और यह विचारकर देखो कि, अग्निमें जैसे जीव जलते हैं ऐसी दुर्गन्धि आती है यह सर्पके डसे हुए मानों मांसकी दुर्गन्धि है ? ॥ २३ ॥ इस सर्पके मुखमें जो हम घुस भी गये तो क्या यह हमको निगल जायगा ? और जो यह हमको निगल भी गया तो श्रीकृष्ण इसको बकासुरकी नाईं क्षणभरमें मार सक्ते हैं वा नहीं ? इस प्रकार परस्पर कहते सुनते बकासुरके विध्वंस करनेहारे श्रीकृष्णका सुन्दर मुखारविन्द देख हँसते हँसाते ताली बजाते सब ग्वालबाल आगेको चले, "ताली बजानेका कारण यह था कि, जो सर्प होगा तो सरक जायगा और जो वृन्दावनकी यह अद्भुत शोभा होगी तो खेलैंगे" ॥२४॥ श्रीवृन्दावनविहारी भक्तहितकारीने विचारा कि, वास्तवमें तो यह सर्पही है और सर्पका देह धारण किये हुए कोई दैत्य है और हमारे साथी बालकोंने इसे वृन्दावनकी शोभा समझकर फिर सर्पके भी सब लक्षण वर्णन किये यह अजान हैं

अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनंक्ष्यति ॥ क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसंतः करता डनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिंत्येत्य मृषा मृषायते ॥ रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृ त्स्थितः स्वानां निरोद्धं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥ तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरांतरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ॥ प्रती क्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकांतस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वक रादवच्युतान् ॥ दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७ ॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ॥ द्वयं कथं स्यादिति संविचिंत्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुंडमशेषदृग्घरिः ॥ २८ ॥

और परस्पर भूलसे बातें कर रहे हैं, ऐसा समझ सब प्राणियोंके हृदयमें वास करनेवाले भगवान्ने उन भोले बालकोंके वचन सुनकर जबतक उनके निषेध करनेको चाहा कि, इसमें मत घुसो कि, ॥ २५ ॥ इतनेमें वह सब बालक बछरों समेत उस अघासुर दैत्यके मुखमें घुसगये परन्तु अघासुरने अपने मरेहुए भाई बहनकी सुधि करके उन बालकोंको निगला नहीं, क्योंकि मनमें विचार किया कि, बकासुरका मारनेवाला मेरा वैरी कृष्ण तो अभी आयाही नहीं ॥ २६ ॥ सबके अभयदाता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अनाथकी समान दीन बालकोंको अपने हाथसे छूटे हुए जान और अघासुरके उदरमें घासकी सदृश देखकर दयासे पीडित हुये और आश्चर्यसे कहने लगे कि, कैसी अद्भुत गति है ॥ २७ ॥ अब इस समय

देवकी क्या उपाय करना चाहिये कि, यह दुष्ट तो माराजाय और मेरे जीवन प्राण परम प्रिय ग्वाल बाल बच जायँ, यह दोनों बातें एक बारमें कैसे होयँ ? यह विचारकरके सब संसारके द्रष्टा भगवान्ने अघासुरके मुखमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटमें खडे होकर देवता हाहाकार करने लगे और नैर्ऋतवंशी अघासुरके भाई बन्धु तथा कंसादिक राक्षसोंको परमानन्द हुवा ॥ २९ ॥ अविनाशी श्रीकृष्ण भगवान् देवताओंका हाहाकार शब्द सुनकर ग्वाल बाल बछरों समेत अपनेको चूर्ण करनेकी इच्छा करनेवाले उस अघासुरके कण्ठमें बढे ॥ ३० ॥ तब उस बड़े शरीरवाले राक्षसका घट घिरगया आँखें बाहरको निकल आईं इधर उधर छटपटाने लगा, देहमें श्वास

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ॥ जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबांधवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ॥ चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ॥ पूर्णोंतरंगे पवनो निरुद्धो मूर्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥ तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ॥ दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुंदो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ॥ प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ॥ गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिस्स्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥

रुकगया, बाहर निकलनेको मार्ग नहीं मिला, पवन उसके ब्रह्मरन्धको छेदन करके बाहर निकलगया ॥ ३१ ॥ अघासुरके श्वासके संगही प्राण बाहर सटक गये, तब सब बालक और बछरोंको मरा देखकर अपनी सजीवन दृष्टिसे अमृतकी वृष्टिकरके जिलादिया और उनको साथ लेकर फिर श्रीमुकुन्द भगवान् अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२ ॥ उस दुष्ट अघासुरके देहमेंसे बड़ी अद्भुत ज्योति निकलके अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करके आकाशमें स्थित हो श्रीकृष्णचन्द्रके बाहर निकलनेका पन्थ जोहती रही, जब श्रीकृष्ण उसके मुखसे बाहर निकले तब सब देवताओंके देखतेही देखते श्रीकृष्णके शरीरमें प्रविष्ट होगयी ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओने प्रसन्नहोकर आकाशसे फूल

वर्षाकर श्रीकृष्णकी पूजा करी, अप्सराओंने नृत्य किया, गन्धर्व गानेलगे, बाजेवाले बाजे बजाने लगे, ब्राह्मण जय जय शब्द करके स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ वह अद्भुत स्तोत्र और गीत, वाद्य, जय आदिक अनेक उत्सव मंगल शब्दोंको सुनकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे शीघ्रही चले आये और श्रीकृष्णकी महिमा देखकर आश्चर्यमय हुये ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! उस अजगरका सूखा हुवा अद्भुत खखोड़ल वृन्दावनमें बहुत दिनतक व्रजवासियोंके बालकोंके खेलनेके लिये एक गुफा होगई, मुखके मार्गको घुसें और नेत्रोंके मार्गसे निकल आवें, नेत्रोंके मार्गको घुसें तो मुखके मार्गको निकल आवें, इस प्रकार दिनरात विहार करते रहें ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्ने बालकोंको और अपने आपको मृत्युसे छुडाना और अघासुरकी मोक्षका करना यह सब पांच वर्षकी अवस्थाका कर्म आश्चर्य मानके सब बालक व्रजमें श्रीकृष्णकी पौगंड अवस्था

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान् ॥ श्रुत्वा स्वधाम्नोंत्यज आगतोऽचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृंदावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाऽऽक्रीडगह्वरम् ॥ ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ॥ मृत्योः पौगंडके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥ नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ॥ अघोपि यत्स्पर्शनधौतपातकः पापात्मसात्म्यं त्वस तां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥ सकृद्यदंगप्रतिमांतराहिता मनोमयीं भागवतीं ददौ गतिम् ॥ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्य भिव्युदस्तमायोंतर्गतो हि किं पुनः ॥ ३९ ॥

अर्थात् पांचवर्षके व्यतीत होने उपरान्त छठे वर्षके मध्यमें कहते भये ॥ ३७ ॥ मायासे मनुष्य बालक रूप धारण कियेहुए सम्पूर्ण स्थावर जंगमके आदिकारण परमात्मा श्रीकृष्णभगवान्के स्पर्शसे महापापी अघासुर पवित्र होगया, जो बात असत्पुरुषोंको महादुर्लभहै ऐसे भगवद्रूपमें वह लय होगया, यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है ॥३८॥ क्योंकि जिसकी मनोहर मूर्ति प्रह्लादादिक भक्तोंने एक बारहीं बलात्कारसे मनमें धारणकी और उसीके प्रभावसे उन लोगोंने मोक्ष पाई तो सदैव अपने आत्मानन्दके अनुभवसे और माया करके रहित श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के शरीरमें अघासुरका प्रवेश होनेसे उसकी मुक्ति हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है ॥ ३९ ॥

शौनकादिक ऋषीश्वरोंसे सूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणो! इस प्रकार अपनी माताके गर्भमें यदुकुलके देव श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित हुए राजा परीक्षित् अपनी रक्षाकरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके विचित्र पवित्र चारित्र सुनकर व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीसे फिर उसी प्रसंग सम्बन्धी प्रश्न किया, क्योकि उन चारित्रोंके सुननेसे राजा परीक्षित्का मन परीक्षित्के वशमें होगया ॥ ४० ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्ण महाराजने कुमार अवस्थामें जो लीला करी वह बालकोंने पौगंड अवस्थामें गाई, यह एक वर्षका अन्तर बीचमें कैसे पडगया? ॥ ४१ ॥ हे बड़े योगिराज! हे गुरो! यह बात मुझको समझाकर कहो, मेरे मनमें वडा आश्चर्य है? क्योंकि यह निश्चय भगवान्कीही माया है और कुछ नहीं है ॥ ४२ ॥ हे गुरो!

सूत उवाच ॥ ॥ इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ॥ पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कालांतरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ॥ यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगंडकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥ तद् ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो ॥ नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥ वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबंधवः ॥ यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानंतहृताखिलेंद्रियः ॥ कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० दशम० पू० अघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य श‍ृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥

हम क्षत्रियवंशी संसारमें अतिशय धन्य हैं, जिससे कि, तुमसे वारंबार कृष्णकथारूप अमृतपान करते हैं ॥ ४३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे हरिभक्तो! इस प्रकार राजाने प्रश्न करके अपनी श्रद्धा दिखाई, दूसरे हरिका स्मरण करतेही प्रथम तो श्रीशुकदेवजीकी समस्त इन्द्रियें नारायणमें लय होगई तब व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने बडे कष्टसे फिर नेत्र खोलकर भक्तोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित्से कहा ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायाम् अघासुरवधोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा—तेरहमें अज मोहवश, हरे ग्वाल अरु बाल। उसी रूपके कृष्णने, रचे बहुरि ततकाल ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! हे बड़भागी! हे भक्तिभूषण! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया, क्योंकि

ईश्वरकी कथाको श्रद्धासहित बारंबार सुनो हो इससे तुम परमश्रेष्ठ हो ॥ १ ॥ सारवस्तुके ग्रहण करनेवाले सज्जनोंका यही स्वभावहै, क्योंकि जिन पुरुषोंकी वाणी, कान और मन, यह सब भगवान्‌की कथामें लगे रहते हैं, उस वाणीसे कृष्णचन्द्रके गुणवर्णन करते हैं, कानोंसे नित्य नयी कथा सुनते रहते हैं, मनसे श्यामसुन्दरके स्वरूपका ध्यान करते रहते हैं ॥ इस प्रकार भगवान्‌की वार्त्तामें क्षण क्षण प्रति ध्यान लगाये रहते हैं और वह कथायें ऐसी प्रिय लगती हैं, मानो कभी नहीं सुनी हैं, जैसे विषयी पुरुषोंको स्त्रियोंकी बातें प्यारी लगती हैं ॥ २ ॥ हे राजापरीक्षित् ! यह कथा परमगूढ है तो भी मैं आपसे कहता हूँ, क्योंकि कैसीही गुप्त वार्त्ता हो गुरुको चाहिये कि, अपने प्यारे शिष्यके सामने सब कहै, सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥ अघासुरके मुखमेंसे मृतक बालक और बछरोंको जिवायकर यमुनाके किनारे अत्यन्त रमणीक रेतीमें उनको लायकर श्रीकृष्ण

सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ॥ प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता ॥ २ ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥३॥ तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ॥ सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगंधहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवाऽऽरूढं क्षुधार्दिताः ॥ वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरंतु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेति पाययित्वांभो वत्सानारुध्य शाद्वले ॥ मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥

भगवान् यह कहने लगे ॥४॥ हे परमप्यारे मित्रों ! यह अत्यन्त रमणीक रेती है और विहार करनेके लिये परमश्रेष्ठ और शोभायमान स्थान है, देखो कैसे सुन्दर और स्वच्छ बालूके कोमलकोमल बिछौने बिछरहेहैं, रंग रंगके कमल फूल रहे हैं, उनपर सुगन्धके लोभसे भौंरे गुंजार रहे हैं और जल पक्षियोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे चारों ओरके वृक्ष शब्दायमान होरहे हैं ॥५॥ यहाँ बैठकर कलेवा करलो, दिन भी बहुत चढ गया है और भूख भी अधिक लग रही है, बछरोंको भी जल पिलाकर यहीं चरनेके लिये छोड दो, सहज सहजमें घास चरते रहैंगे ॥६॥ सब बालकोंने; श्रीकृष्णके वचनोंको मान बछरोंको पानी पिला हरी हरी घासमें चरनेको छोड दिया और सब अपने अपने छींकोंको खोल खोल छाक परोस परोस

श्रीकृष्णके सग भोजन करनेको बैठे ॥ ७ ॥ व्रजवासियोंके बालक श्रीकृष्णचन्द्रके चारों ओर अनेक पंक्तियोंकी मण्डली बनाकर एकसाथ बैठ यदुनाथके सन्मुख मुख करनेसे जिनकी दृष्टि प्रफुल्लित हो रही थी, जैसे कमलकी कलीके चारों ओर पखुरियोंकी छवि दिखाई देती है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र तो कलीकी समान थे और ग्वाल बाल पखुरीकी समान, इसप्रकार यमुनाकी रेतीमें शोभायमान जान पडते थे ॥ ८ ॥ किसी बालकने फूलोंकी पत्तल बनाई, किसीने पखुरियोंकी पत्तल बनाई किसीने पत्तोंकी पत्तल बनाई किसीने अंकुरोंकी पत्तल बनाई और किसीने फलोंकी पत्तल बनाई और किसीने वृक्षोंकी छाल छीलकर पत्तलें बनाईं और उनपर भाँति भाँतिके भोजन परोसे, किसी किसीने छींकेहीमें भोजन करनेकी ठहरादी कोई शिलाहीपर अपना भोजन परोसकर खानेको बैठगया ॥ ९ ॥ सब बालक अपने अपने भोजन पृथक् पृथक् प्रकारके

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमंडलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ॥ सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथांभोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरंकुरैः फलैः ॥ शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥ सर्वे मिथो दर्शयंतः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ॥ हसंतो हासयंतश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥

आप खाते अरु औरोंको स्वाद दिखाते और चखाते परस्पर हँसते हँसाते ठट्ठे उडाते श्रीकृष्णके साथ भोजन कर रहे थे ॥ १० ॥ फेंटमें बाँसुरी उरझ रहे थे शृंगीबेतकी छड़ियोंको काँखमें दाब रहेथे, दही भातसे लिपटाहुवा ग्रास बाँयें हाथमें ले रहेथे और बेर, आमले, नींबु, आम जामुनादि फल अँगुलियोंमें धर लिये थे, यज्ञभोक्ता भगवान् चारोंओर अपनी मित्रमण्डलीमें बैठे उनसे हँसीकी बातें कह कह कर उनको हँसाते जाते थे और धीरे२ भोजन खाते जाते थे इस बालचरित्रको स्वर्गमें देवता देख देखकर आश्चर्यमय हो मनही मन कहते थे कि,देखो यज्ञ भोक्ता भगवान् किस प्रकार आनन्दित हो होकर व्रजवासियों के बालकोंकी जूंठन छीन छीन कर खारहे हैं, पूर्वजन्ममें इन्होंने पूर्ण पुण्य किये हैं ॥ ११ ॥

हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इसप्रकार श्रीकृष्णमें मन लगाये ग्वालबाल भोजन कररहे थे और बछरे हरी हरी घासके लोभसे बहुत दूर वनके भीतर चले गये ॥ १२ ॥ जब बछरे दूर चले गये तब सब बालक अपने मनमें घबराये, उस समय उनकी घबराहट दूर करनेके लिये भगवान् भयहारी उनसे बोले कि, हे मित्रो ! तुम भोजन करते रहो उठो मत क्योंकि ऐसी सुन्दर मण्डली फिर न बँधेगी, मैं अभी बछरोंको लिये आताहूं ॥ १३ ॥ इसप्रकार सबका धैर्य बँधाय दही भातका ग्रास हाथमें लिये श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफाओंमें, वनमें, कुंजोंमें, गह्वर स्थानोंमें अपने बछरोंको ढूँढ़ते ढूँढ़ते दूर चले गये ॥ १४ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! उसी अवसरमें कमलोद्भव ब्रह्माजी जो कि, प्रथम मायासे बालकरूप श्रीकृष्णका किया अघासुरका मोक्ष होना देखकर, अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो आकाशमें खडे खड़े देखरहे थे अब वह फिर श्रीकृष्णकी यह दूसरी माया देखनेके लिये यहांसे तो बालकोंको और वनमेंसे बछरोंको चुराकर दूसरे स्थानमें लेजाय अन्तर्धान होगये ❀ ॥ १५ ॥ जब वनमें बछरोंको न देखा तब

भारतैवं वत्सपेषु भुंजानेष्वच्युतात्मसु ॥ वत्सास्त्वंतर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ॥ मित्राण्याशान्मा विरमतेहाऽऽनेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाद्रिदरीकुंजगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ॥ विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥ १४ ॥ अंभोजन्मजनिस्तदंतरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मंजु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ॥ नीत्वान्यत्र कुरूद्वहांतरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥ ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ॥ उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समंततः ॥ १६ ॥

❀ शंका–भगवान्के अनेक अवतार हुए परन्तु किसी अवतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न नहीं हुवा यह बात शास्त्र और पुराणोंके वक्ता और आचार्यलोगोंसे सुनरक्खी है, परन्तु कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह क्यों उत्पन्न हुवा ?

उत्तर–ब्रह्माने नारदजीको मायामें ग्रसित हुवा देखकर उनकी हँसी करी, तब नारदने ब्रह्माको शाप दिया कि, हे पिताजी ! आपको भी माया ग्रसित करेगी, किसीदिन श्रीकृष्णको भोजन करते देखकर उनकी मायामें ग्रसित होओगे, हे पिताजी ! श्रीनारायणकी माया सर्वोपरि बलवती है, इस नारदके शापसे कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न हुवा ॥

लौटकर फिर यमुनातीरपर आये तो यहाँ बालकोंको भी न पाया, उस समय बालकोंको और बछरोंको वनमें चारों ओर ढूँढ़ते फिरे ॥ १६॥ जब वनमें कहीं बछरोंको और बालकोंको न पाया तब विश्वभावन भगवान् सब विश्वकी गतिके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें जान लिया कि यह सब ब्रह्माका कौतुक है ॥ १७ ॥ यह समझ जगदीश्वर भगवान्ने विचार किया कि जो मैं चुप होकर बैठ रहा तो बालकोंकी माता रोवेंगी और, जो ब्रह्माके पाससे छीनकर ले आऊंगा तो ब्रह्मा अपने मनमें लज्जित होगा और उसके मनका मोह दूर न होगा, बालकोंकी माताओंको आनन्द देनेके लिये और ब्रह्माको मोह बढ़ानेके लिये विश्वके सृजनहार श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने अपने ही अनेक रूप बनाये, बछरे भी आपही बने और ग्वालबालभी आपही बने ॥ १८ ॥ जैसा जिसके बछरोंका और बालकोंका छोटा अथवा बड़ा शरीर और जैसे जिनके हाथ पाँव थे, किसीके छै अंगुली थीं,

क्वाप्यदृष्ट्वांतर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ॥ सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥ १७ ॥ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ॥ उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषांबरम् ॥ यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोंगवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥ स्वयमात्मात्मगो वत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ॥ क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २० ॥ तत्तद्वत्सान्पृथङ्‌ नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ॥ तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयस्सुधाऽऽसवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥

जैसी जैसी उनके पास छड़ी, शृंगी, बाँसुरी, छींके थे,जैसे जिसके आभूषण वस्त्र, कुसुम्भी, हरी, पीली, गुलाबी, पगड़ी, थी, जैसा जिसका स्वभाव था वैसाही स्वभाव, रूप, गुण, नाम, अवस्था, आहार, व्योहार और लक्षण सर्वात्मा भगवान् आप बने ॥ १९ ॥ सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् आपही बछरे बने, आपही उनको घेर घेर कर अपने खेलोंसे खेलने लगे, उसीप्रकारका विहार करते हुए आपही व्रजमें पधारे ॥ २० ॥ हे राजन् ! जिन जिन व्रजवासियोंके बछरे थे समूहमेंसे अलग अलग होकर उन उनके खिरकोंमें घुसगये और जिन जिन व्रजवासियोंके बालक थे वह अपने अपने घरोंको चले गये ॥ २१ ॥ उन बालकोंकी माता बाँसुरियोंका शब्द सुनकर शीघ्रतासे उठ उठकर अपने अपने घरोंसे

वाहर निकलकर बालकोंके हाथ पकड़ पकड़ कर हृदयसे लगाने लगीं स्नेहसे स्तनोंमें दूध भर आया, वही अमृतकी तुल्य स्वादका दूध परब्रह्म
श्रीकृष्णचन्द्रको अपने २ पुत्र मानकर पिलाने लगीं ॥ २२ ॥ फिर पीछे उबटन करके मज्जन स्नान कराया चन्दन केशर लगाय गहने पहराने लगीं;
फिर मस्तकपर तिलक लगाय भोजन कराया । इस प्रकार सब गोपी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड़ लड़ातीथीं और वृन्दावनविहारी अपने सुन्दर सुन्दर
चरित्र दिखाकर उनको आनन्द देते थे, उस समय खेलका नियम साधकर सन्ध्याकाल व्रजमें आते थे ॥२३॥ इस प्रकार गोपियोंका मोह कहकर
अब गौओंका मोह करते हैं, गायें दौड दौडकर रम्भाय रम्भाय व्रजमें आती हैं और अपने अपने बछरोंको बुलाती हैं जब बछरे आते हैं तब अपने
अपने बछरोंको प्रेमसे अपनमें संचित हुये दूधको उन्हें, पिलावैं हैं बारंबार हित मानकर उनको चाटती जाती हैं ॥ २४ ॥ इस कृष्ण चन्द्रमें

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ॥ संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन
माधवः ॥ २३ ॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ॥ स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहु
र्लिहंत्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृतास्मिन्सर्वा स्नेहर्धिकां विना ॥ पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता
मायया विना ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याऽऽब्दमन्वहम् ॥ शनैर्निस्सीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत्॥२६॥
इत्थमात्माऽऽत्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः ॥ पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदा चारयन्व
त्सान्स रामो वनमाविशत् ॥ पंचषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥

सब गोप गोपियोंकी मैत्री भाव पहिले कैसी नाईं होगया, परन्तु पहिले इतना हित नहीं था अब पहिलेसे अधिक स्नेह बढ़गया गोपियोंमें भी
श्रीकृष्णकी बालभावना पहिलेकी समान रीति प्रीति होगई परन्तु मैं इसका पुत्र हूँ और यह मेरी माता है यह मोह नहीं रहा ॥ २५ ॥ व्रजवासि
योंकी अपने बालकोंमें स्नेहरूपी लता एक वर्षतक धीरे धीरे ऐसी बढी जिसकी वृद्धिका पारावार नहीं जैसे पहिले देवकीनन्दनमें बढी थी ॥२६॥
इस प्रकार सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बछरे और बालकोंके बहानेसे आपरूप बछरोंके आपरूप ग्वालोंको बनाय बछरे चराकर वनमें
व्रजमें एक वर्षतक क्रीड़ा करते रहे ॥ २७ ॥ जब कि, एक वर्ष पूरा होनेमें पांच सात दिन शेष रहगये तब एक दिन भगवान् बलभद्र भैयाको

संग लेकर वनमें बछरे चरानेको गये थे वहाँ बलभद्रजीको ऐसा कुछ देखनेमें आया ॥ २८ ॥ बहुत दूर जो गायें गोवर्धन पर्वतके ऊपर चर रही थीं उन्होंने व्रजके निकट अपने बछरोंको चरता देखा ॥ २९ ॥ बछरोंको देखतेही प्रेमके वश हो, अपने तन मनकी सब सुधि भूल गई और उनके थनोंसे दूध टपकने लगा, गोपोंके निवारण करने और विषम मार्गका कुछ भी ध्यान नहीं किया और ऐसी भागीं मानो दोहीं पाओंसे चल रही हैं, मुख और पूँछ ऊपरको उठाये बड़े वेगसे हुंकार शब्द करती बछरोंके समीप पहुँची ॥ ३० ॥ यद्यपि इन गायोंके और छोटे छोटे दूसरे बछरे भी थे तो भी वह गायें गोवर्द्धनपर्वतसे नीचे आय इन बछरोंसे मिल, उन बछरोंको दूध पिलाने लगीं और ऐसे उनके शरीरको चाटने लगीं मानो

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ॥ गोवर्धनाद्रिशिरसि चरंत्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाऽथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ॥ द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥ ३० ॥ समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ॥ गिलंत्य इव चांगागि लिहंत्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ॥ दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणप्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ॥ उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ॥ कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥

निगल जायँगी ॥ ३१ ॥ अब गोपोंका मोह कहते हैं, जब गोपोंने गायोंको घेरा तब गायें नहीं घिरीं तब लज्जित हो अपने मनहीं मनमें कहने लगे कि, हम बानेत गोप कहलाते हैं, परन्तु आज हमसे गायेंभी नहीं रुकीं, तब अपने मनमें बडा क्रोध करने लगे और उन कठिन कठिन मार्गोंमें बडी कठिनतासे नीचे आये, वहां बलदेवजीके संग बछरोंको लिये अपने पुत्रोंको देखा ॥ ३२ ॥ उनको देखतेही वह गोप अत्यन्तही प्रेमरसमें मग्न होगये, इससे सब क्रोध शान्त हुवा और प्रेम बढा. तब तो बालकोंको हाथ उठा उठाकर हृदयसे लगालिया और उनके माथेको सूंघकर व्रजवासी बडे आनन्दित हुये ॥ ३३ ॥ फिर पीछे वृद्ध वृद्ध गोप बालकोंको हृदयसे लगाकर बडे प्रसन्न हुये और महाकठिनतासे सहज सहजमें बालकोंको छोडके

बहार निकले बालकोंकी सुधिसे उनके नेत्रोंमें जल भरआया ॥ ३४ ॥ यद्यपि उन बालकों ने दूध पीना छोड़ दिया था और बड़े भी होगये थे, तोभी उन बालकोंमें व्रजवासियोंके प्रेमकी ऐसी वृद्धि देख और उसके कारणको न समझकर बलरामजी अपने मनमें विचार करने लगे ॥ ३५ ॥ कि, सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर जैसा प्रेम प्रथम था वैसाही अपूर्व प्रेम अब बालकोंपर भी बढता जाता है और यही नही मेरे हृदयमें भी वत्स और बालकोंपर क्षण क्षणमें अधिक प्रेमकी वृद्धि होती चली जाती है; यह बडी अद्भुत बात है न जानिये यह क्या कारण है ? ॥३६॥ यह क्या है ? देवताओंकी मायाहै, वा मनुष्योंकी मायाहै, अथवा राक्षसी मायाहै, ? मैं नहीं जानसक्ता यह कहाँसे आई और कैसी अलौकिक माया है ? क्योंकि इसने मुझको भी मोहित करलिया, इससे मुझको यह जान पडता है कि, जो यह माया मेरे स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी हो तो आश्चर्य

व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धेर्वीक्ष्यौत्कंठ्यमनुक्षणम् ॥ मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिंतयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥ व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥ केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युताऽऽसुरी ॥ प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति संचिंत्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ॥ सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥ नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाऽऽश्रयेऽपि ॥ सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥

नहीं ? क्योंकि और दूसरेकी माया मेरे मनको मोहित नहीं करसक्ती ॥३७॥ इसप्रकार शोच विचारकर दाशार्हवंशोद्भव बलदेवजीने अपनी ज्ञानदृष्टिसे देखा तो सब बछरे और बालक सर्वात्मा श्रीकृष्णरूपमें दिखाई दिये ॥३८॥ कि सब देवता ग्वाल बाल बने हैं और ऋषि मुनियोंने बछरोंका रूप धारण किया है, यह मैं जानता हूँ, परन्तु यह बालक अब तो देवता नहीं है और यह बछरे ऋषिभी नहीं हैं, अब तो मुझको सबमें श्रीकृष्ण दृष्टि आते हैं, जब यह भ्रम हुवा तो श्रीकृष्णसे बूझा कि, हे प्रभु ! इस भेदको प्रकाशो यह क्या भेद है ? सो तुम सम्पूर्ण भेद भिन्न भिन्न संक्षेपसे समझाकर कहो ? जो मेरे मनका सन्देह दूर हो ? जब इसप्रकार बलदेवजीने श्रीकृष्णसे कहा तब श्रीकृष्णने सब वृत्तान्त समझाकर कहा कि, हे भैया ! तुमको आज सुधि हुई है, जब ब्रह्माको मोह हुवा और बछरे और बालकोंको चुराकर लेगया तब मैंने, बालक और बछरोंक

वैसाही रूप धारण किया और उनके कुटुम्बियोंको क्लेश न होने दिया. इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेसे बलदेवजीने सब भेद जाना ॥३९॥ देखो यहां तो एकवर्ष बीत गया, परन्तु ब्रह्माका एक पल ही बीता था तब ब्रह्माने फिर आनकर देखा तो पहिले केसी नाईं बछरे और बालकोंको संगलिये श्रीवृन्दावनविहारी नये नये ढंगके खेल खेल रहेहैं ॥४०॥ यह अद्भुत कौतुक देख ब्रह्माजी अपने मनमें विचार करने लगे कि, गोकुलमें जितने बछरे और बालक हैं वह सब मेरी मायारूपी शयनमें पडे सोरहे हैं और अभीतक उठे नहीं ॥ ४१ ॥ फिर यह मेरी मायासे अलग जो ग्वालबाल और बछरे चररहे हैं और अनेक प्रकारके विहार कर रहेहैं, सो यह यहां कैसे आगये ! जितने मैं हरकर लेगयाहूं उतनेही उसीस्थानपर यहॉ वर्षदिनसे भगवान्‌के संग विहार कररहेहैं ॥४२॥ आपही मोहित हो ब्रह्माजी बहुत देरतक विचार करते रहे कि, इनमें कौनसे बालक और बछरे सत्यहैं और कौनसे

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ॥ पुरोवदब्दं क्रीडंतं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥ यावंतो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ॥ मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥४१॥ इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ॥ तावंत एव तत्राब्दं क्रीडंतो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥ एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मनि ॥ सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥ ४३ ॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ॥ स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥ ताभ्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ॥ महतीतरमायैश्यं निहंत्यात्मनि युंजतः ॥ ४५ ॥

असत्य हैं ? मैं जो हरकर लेगया वे सत्य हैं वा यह जो ब्रजविहारीके संग विहार कर रहेहैं ये सत्य हैं, दोनों एकसे दिखाई देतेहैं, क्या करूं मैं किसी प्रकार इस भेदको नहीं जानसक्ता ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हेराजन् ! कभी वनमें कभी ब्रह्मलोकमें एक वर्षतक चकईके समान ब्रह्मा दिन रात घूमते फि ! देखो ! इस प्रकार ब्रह्माजी विश्वके मोह करनेवाले और आप मोहरहित विष्णुभगवान्‌को अपनी मायासे मोहित करना चाहते थे परन्तु आपही मोहित होगये ॥ ४४ ॥ जैसे अँधेरी रातमें कुहर अन्धकारसे अपना पृथक् आवरण नहीं करसक्ता. क्योंकि उसी अन्धकारमें आप भी लय होजाता है. जैसे दिनमें खद्योत (पटबीजना) अपना प्रकाश पृथक् नहीं कर सक्ता, ऐसेही ऐश्वर्यवान् पुरुषोंपर कोई साधारण पुरुष अपनी माया करना चाहै तो उस अधमकी माया उत्तमपुरुपका कुछभी नहीं करसक्ती, बरन् चलाने

वालेहीकी सामर्थ्यका विनाश करतीहै ॥ ४५॥ देखो । ब्रह्माके देखतेही देखते क्षणमात्रमें और एक अद्भुत आश्चर्य हुआ. सब बछरे और बालक मेघवत् श्यामवर्ण, पीताम्बर पहिरे ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजरूप धारे, हाथमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये मस्तकपर किरीट, मुकुट, धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, कण्ठमें मोतियोंके हार और वनमाला पहिरे ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सकी कान्तिसे शोभायमान भुजाओंमें भुजबन्द पहिरे रत्नजटित शंखके समान तीन रेखावाले कंकण करमें धारण किये नूपुर, कटक कमरमें तगड़ी और मुन्दरियोंके धारण करनेसे शोभायमान ॥ ४८ ॥ बडे पुण्यवान् सज्जनोंसे समर्पण की हुई तुलसीकी नवीन और कोमल मालाओंसे शिरसे पाँवोंतक परिपूर्ण ॥ ४९ ॥

तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ॥ व्यदृश्यंत घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सांगददोरत्नकंबुकंकणपाणयः ॥ नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥ ४८ ॥ आंघ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥ कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥ चंद्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः ॥ स्वकार्थानामिव रजस्सत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥५०॥ आत्मादिस्तंबपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ॥ नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ॥ चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिः ॥ ५२ ॥ कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ॥ स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥

चन्द्रिकाकी सहश स्वच्छ मन्दहास्यसे मानो अपने दासोंको सत्त्वगुणसे पालन करते और अरुणाईयुक्त कटाक्षभरी चितवनसे अपने भक्तोंके मनोरथोंको मानो रजोगुणसे उत्पन्न करते विदित होतेथे ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे आदि लेके तृणपर्यन्त स्थावर जंगम समस्त प्राणी मूर्तिमान् होकर एक एक बछरेके सन्मुख नाच और गान आदिक अनेक अनेक प्रकारसे उनकी पूजा और शिष्टाचार करते थे ॥ ५१ ॥ और अणिमादिक अष्ट सिद्धि, मायासे लेकर महदादिक विभूति चौबीस तत्त्व, चारों ओर देदीप्यमान थे ॥ ५२ ॥ काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म, सत्त्वगुण,रजोगुण

तमोगुण यह रूप धारण कर प्रत्येककी सेवा करते थे. इन सबकी स्वतंत्रता श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमाके आगे नष्ट होगई थी॥५३॥ सत्यज्ञानरूप आनन्दमात्र एकरस जो ब्रह्ममूर्तिवाले तथा जिनकी चक्षु आत्मज्ञान हैं ऐसे महात्मा पुरुषभी जिनकी महिमाके माहात्म्यको नहीं जान सक्ते, ऐसा रूप ब्रह्माजीने सबका देखा ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ समस्त बछरे और बालकोंको परब्रह्ममय देखा जिसपर ब्रह्मकी कान्तिसे सम्पूर्ण स्थावर, जंगम और यह विश्व प्रकाशमान होरहा है ॥ ५५ ॥ उसके पीछे फिर बड़े आश्चर्यसे ब्रह्माजीकी सब इंद्रियें शिथिल होगई और उनके तेजसे ब्रह्माजी चुप होगये जैसे ग्रामकी रक्षा करनेवाली पुतलीके आगे चार मुखकी सुवर्णकी प्रतिमा खड़ी होय इस प्रकार खडा हुआ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सरस्वतीके स्वामी तर्कना रहित, स्वप्रकाश सुखनिधान प्रकृतिसे परे और ब्रह्मसे पृथक् वस्तुके मिथ्या जिनका

सत्यज्ञानानंतानंदमात्रैकरसमूर्तयः ॥ अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥ एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ॥ यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशद्रियः ॥ तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यंतीव पुत्तिका ॥ ५६ ॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ॥ अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७ ॥ ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ॥ कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥ ५८ ॥ सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ॥ वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥ ५९ ॥ यत्र नसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः ॥ मित्राणीवाऽजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥ ६० ॥

ज्ञान प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदोंसे होसक्ता है उस अलौकिक रूपको देखकर और उस महिमाको विचार कर यह क्या है ऐसे शोचतेहुए ब्रह्मा जो मोहित होगये और उनकी अवलोकन करनेकी शक्ति भी जाती रही. तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्माजीकी यह दशा देखकर मायाका आवरण उनके हृदयसे दूर कर दिया ॥ ५७ ॥ तब तो ब्रह्माजीकी सब इंद्रियें चैतन्य होगई जैसे मृतक पुरुष जी उठै है ऐसे बड़े कष्टसे नेत्रोंको खोलकर अपनी आत्मासहित ब्रह्माजीने जगत्को देखा ॥ ५८ ॥ जब ब्रह्माजीने चारों ओरको दृष्टि उठाकर देखा तो सन्मुखही चारों ओर प्रियपदार्थोंसे परिपूर्ण और मनुष्योंकी जीविकाके लिये वृक्षोंसे भरापुरा वृन्दावन है ॥ ५९ ॥ जिस वृन्दावनमें स्वाभाविक वैर करनेवाले सिंह

मृग और मनुष्य परस्पर परममित्रके समान रहते हैं, श्रीवृन्दावनविहारीके संग रहनेसे सब प्राणियोंका क्रोध और तृष्णा दूर होगई है ॥ ६० ॥
उस वृन्दावनमे गोपालवंशके बालकपनका आचरण करनेवाले अनन्त अगाध ज्ञानस्वरूप बछरे और ग्वालबालोंको पहिलेकी समान ढूंढते
फिरते थे और हाथमें दहीभातका ग्रास लिये अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरका दर्शन ब्रह्माको हुआ ॥ ६१ ॥ इसप्रकार वृन्दावन
विहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको देख उसी समय ब्रह्माजी अपने वाहन हंससे नीचे उतर कञ्चनके दण्डकी तुल्य अपनी देहसे साष्टांगकर
चारों मुकुटोंका अग्रभाग चरणारविन्दोंसे लगाय दण्डवत् कर आनन्दरूप आंसुओंके जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक किया ॥ ६२ ॥ प्रथम जो
भगवान्की अद्भुत महिमा देखी थी उसको वारंवार स्मरण कर करके श्रीगोविन्द भगवान्के चरणारविन्दोंमेंसे उठे और फिर गिरपड़े इस प्रकार

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनंतमगाधबोधम् ॥ वत्सान्सखीनिव पुरः परितो विचिन्वदेकं सपा
णिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदंडमिवातिपात्य ॥ स्पृष्ट्वा चतुर्मु
कुटकोटिभिरंघ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥ उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ॥
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वास्मृत्वा पुनःपुनः ॥ ६३ ॥ शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुंदमुद्वीक्ष्य विनम्रकंधरः ॥
कृतांजलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥ इति श्रीभाग० म० दशम० पू० ब्रह्ममोहनं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदंबराय गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥ वन्यस्रजे
कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥ १ ॥

वडी देरतक ब्रह्मा पाओंमें पडेरहे ॥ ६३ ॥ फिर पीछे कुछ कालोपरान्त सहज सहजमें उठ आंसू पोंछ भगवान्की ओर निहार लज्जाके मारे नीची
नार कर हाथ जोड शरीर कम्पायमान मुखसे कुछ कुछ अक्षर निकले इसप्रकार गद्गद वाणीसे ब्रह्माजी स्तुति करनेलगे कि, हे नाथ ! ॥ ६४ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां ब्रह्ममोहवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—चौदहमें हरिके चरित, अद्भुत
अलख लखाय । हरि अस्तुति अज ज्यों करी कहौं कथा सो गाय ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे स्तुति करने योग्य ! श्यामघटाकी समान तुम्हारा
शरीर, विजलीसम पीताम्बर धारण किये, गुंजाओंके कर्णभूषण, मयूरपुच्छके मुकुटसे शोभायमान मस्तक, कण्ठमें वनमाल पहिरे, दहीभातका

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ॥ अजावलेपांधतमोंधचक्षुष एषोऽनुकंप्यो मयि नाथवा निति॥१०॥ काहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टितांडघटसप्तवितस्तिकायः ॥क्वेदृग्विधाऽविगणितांडपराणुचर्या वाताध्व रोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥ उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ॥ किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनंतः ॥ १२ ॥ जगत्रयांतोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ॥ विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥

हे अच्युत ! हे अखंडरूप ! मैंने रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण आपके स्वरूपको नहीं जाना आपसे भिन्नहीं भगवान्को जाना मै अजन्मा जगत्का कर्ता हूं इस अभिमानसे अंधा होरहाहू आप मेरे स्वामी हो मुझे अपना दास जानकर कृपा करिये. क्योंकि मैं आपकी कृपाके योग्य हूं ॥ १० ॥ यदि आप मुझको ब्रह्मांडका नाम कहो तो हे भगवन् ! माया, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वीसे बने ब्रह्मांडमें सात विलादिकी देह वाला मैं कहां और आपके रोमकूपरूप झरोखोंमें ऐसे अनंत ब्रह्मांडरूप परमाणु घूमते फिरते रहते हैं, ऐसी आपकी अद्भुत महिमा कहां ? मुझमें और आपमें बड़ा अंतर है, इसलिये मुझको अत्यन्त तुच्छ जानकर मुझपर अनुग्रह कीजिये और यह भी समझना चाहिये कि, यह ब्रह्मा यद्यपि और लोकका अधिष्ठाता है तो भी हमारा अनुचरही है ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज (इन्द्रियोंसे जाननेमें न आवे) जो अनजान बालक अपनी माताकी गोदमें बैठकर पाँव उछाले अथवा लात मारे तो क्या माता उसको अपराधी माने ? " कोई कहे कि ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता कैसे कहा ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता इस प्रकार कहा" कि स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणरूप सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें विद्यमान है जो शब्दसे कहनेमें नहीं आता जब सब विश्व आपके उदरमें ठहरा, तो विश्वमें रहनेसे मैंभी आपके उदरमें हुवा, इसलिये मुझे अपना पुत्र समझकर मेरा अपराध क्षमा करो ॥ १२ ॥ हे नारायण ! प्रलयकालमें जब भूर्लोक, भुवर्लोक स्वर्लोक इन तीनों लोकोंका नाश हो जाता है तब चारों ओरसे समुद्रका जल उमड़े है, उस जलके भीतर नारायणकी नाभिसे एक कमल उपजे है, उस कमलनालसे ब्रह्मा उत्पन्न होता है, क्या यह बात झूंठ है ? क्या यह देववाणी नहीं है ? क्या मैं आपसे उत्पन्न नहीं हूं ? क्या तो कह दो यह बात झूंठ है और जो कहो कि झूंठ नहीं है तो मैं आपका पुत्रही हूं तो मेरा अपराध सब

प्रकारसे क्षमा करना चाहिये ॥ १३ ॥ क्या तुम नारायण नहीं हो ? नहीं ! तुमही नारायण हो और तुमहीं सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा हो हे अधीश ! सबके प्रेरणा करनेवाले समस्त लोकोंको साक्षात् देखोहो. नार जो जीवसमूह और जल जो आपका अयन (वास, आश्रय) है, इस लिये नारायण नाम आपका प्रसिद्ध है सो आपकी मूर्ति है और जो विचार करके देखिये तो यह भी सत्य नहींहै क्योंकि मुझको सब मायारूपही जान पडते हो ॥ १४ ॥ हे जगदीश्वर ! जगत्का आश्रयभूत आपका रूप जलके भीतर सत्य है तो जिस समय मैंने कमलनालके भीतर वैठकर सो (१००) वर्षतक आपको ढूँढ़ा तब आप क्यों नही दिखाई दिये ? और हृदयमें भी क्यों नहीं प्रगट हुए फिर तप करनेसे तुरंतही क्यों आपका रूप दिखाई दिया ? इसलिये यह सब आपकी मायाही है, तुम्हारी मूर्तिमें किसी देश कालका परिच्छेद नहीं बनसक्ता ॥ १५ ॥ हे मायाके करनहारे

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽखिललोकसाक्षी ॥ नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥ तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ॥ किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किन्नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥ अत्रैव मायाधमनाऽवतारे ह्यस्य प्रपंचस्य बहिः स्फुटस्य ॥ कृत्स्नस्य चांतर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥ यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ॥ तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ १७ ॥ अद्यैव त्वदृतेस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ॥ तावंतोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावंत्येव जगंत्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥ १८ ॥

बाहर भीतर समस्त विश्वके प्रकाश करनेवाले यदि यह जलादि प्रपञ्च तुमसे पृथक् होय तो इससे तुम्हारा परिच्छेद होना सम्भवहै परंतु यह मायासे उत्पन्न है यह बात आपने इस अवतारमें यशोदा मैयाको अपने उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दिखाकर प्रत्यक्ष कर दिया, इससे यह प्रपञ्च मायाहीका कियाहुवाहै ॥ १६ ॥ जिस प्रकार आपके उदरके भीतर आप समेत यह विश्व प्रकाशमानहै और तुम्हारे साथ इसका प्रकाश होना मायाके विनाही बनसक्ता है जो बाहरके जगत्का तुममें प्रतिबिम्ब पडे तो यह बाहरकी वस्तु उलटी दीखनी चाहिये और यदि आपको दर्पणस्थानमें माना जाय तो आपका दर्शन उसमें नहीं होना चाहिये, इस कारण यह सब मायाही है ॥ १७ ॥ केवल आपके विना यह सब संसार मायारूप है,

क्या यह मायाही दिखाई है ? क्योंकि, प्रथम आप अकेले थे, पीछे सम्पूर्ण व्रजके बछरे और ग्वालरूप हो गये, फिर कुछ कालोपरान्त सबके सब चतुर्भुजरूप होगये, फिर एक एक रूपके आगे मैं (ब्रह्मा) शिव, इन्द्र सहस्रों दृष्टि आये और एक एकने एक एक रूपकी स्तुति करी फिर आप ब्रह्मरूप होगये, फिर पीछे प्रणाम करनेमें भी नहीं आये, इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्मरूप अवशेष रहगये ॥१८॥ सर्वव्यापक आपके स्वरूपको मायामें स्थित हुये जो प्राणी नहीं जानते हैं उन पुरुषोंके ऊपर मायाको फैलाकर स्वतंत्रतासे आप प्रकाशो हो जगत्के उत्पन्न करनेके समय ब्रह्माका रूप धारण करलेते हो, पालनके समय विष्णुरूप धारण करलेते हो और संहारके समय तीन नेत्रवाले रुद्ररूप बन जाते हो ॥१९॥ हे ईश ! हे प्रभु ! हे जन्मरहित विधाता ! देवता, ऋषीश्वर, मनुष्य, पशु, पक्षी, और जलके जीवोंमें आप साधु लोगोंपर कृपा करनेके लिये और दुष्टोंके

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम्॥सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोंत इव त्रिनेत्रः ॥१९॥ सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य॥जन्माऽसतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥ २० ॥ कोवेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ॥ क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥ तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ॥ त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनंते माया त उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयं ज्योतिरनंत आद्यः ॥ नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरंजनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥

अभिमान हरनेके लिये जन्म लेते हो ॥२०॥ हेव्यापक ! हेभगवन् ! हेपरमात्मन् ! हेयोगेश्वर ! आप जो अपनी योगमायाको विस्तार करके जिस समय विहार करते हो उन लीलाओंको त्रिलोकीमें कौन जाननेवाला है ? कि कहाँ हैं, कैसी हैं, कौन हैं और कितनी हैं ॥ २१ ॥ इस लिये यह मिथ्या स्वरूप स्वप्नकी समान प्रकाशमान दुःखरूप सब संसार केवल आपके नित्यसुख चैतन्यमय अनन्तस्वरूपमें मायासे उत्पन्न होनेके कारण नित्यसुख और चैतन्यस्वरूपके समान भासै है परन्तु वास्तविकतासे असत्स्वरूप, स्वप्नतुल्य प्रतिभास रहित, कष्टसेभी अधिक कष्टरूप मानो कष्टमयही है ॥ २२ ॥ केवल सत्यस्वरूप तो एक आपही हो, क्योंकि आत्मा हो जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, जहाँतक मन जाता है

वह सब मायाहै, आत्मा दृश्य नहीं. इसलिये सत्य है आपमें कोई विकार नहीं इसलिये सत्यस्वरूप हो आप सबके कारण स्वरूप हो, सबके व्यापक होनेसे पुरुष कहलाते हो तुम सदा पूर्ण हो, नित्य सुखस्वरूप हो अक्षर हो अमृतहो, इसलिये आपका कभी विनाश नहीं होता, तुम अनंत और अद्वैत हो इसलिये आपके देश कालका परिच्छेद नहीं, आप स्वयंप्रकाश उपाधिरहित असंग हो, इसलिये ज्ञानके साधनसे आपकी प्राप्ति नहीं होती, आप निरञ्जन हो, इसलिये आपके स्वरूपमें किसी प्रकारका संस्कार भी नहीं है, आप नित्यमुक्तरूप हो अमृत हो ॥ २३ ॥ इसलिये आप सदा आत्मारूप हो और समस्त जीवोंके आत्मा हो, जिन पुरुषोने सूर्यरूप गुरुसे उपनिषद्के ज्ञानरूप नेत्र प्राप्त किये हैं वह महात्मा आत्माहीसे आपका दर्शन करके संसारसागरके पार हो जाते हैं ॥ २४ ॥ जबतक प्राणी आपके आत्मस्वरूपको आत्मरूप नहीं जानते तबतक उनको अज्ञानसे यह

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ॥ गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा ये ते तरंतीव भवानृतांबुधिम् ॥ २४ ॥ आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपंचितम् ॥ ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥ २५ ॥ अज्ञानसंज्ञौ भवबंधमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ॥ अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥ त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ॥ आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता ॥ २७ ॥

सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रगट भासता रहता है और वही प्रपञ्च आत्मरूपको जाननेसे लय होजाताहै, जबतक अज्ञान है तबतक रज्जु सर्परूप भासे है; जब ज्ञान होजाता है तबरज्जु रज्जुही जाननेमें आतीहैं,अज्ञानसे रज्जुमें सर्प जानना अध्यासहै और ज्ञानसे रज्जुही जानना अपवादहै ॥२५॥ संसारमें बन्धन और मोक्ष केवल अज्ञानसे है सत्य ज्ञानरूप आत्मासे भिन्न नहीं है निरन्तर चैतन्यरूप आत्मा परमेश्वर आपही हो ऐसा विचार करनेसे आत्मामें अज्ञान वा बन्धन कुछ भी नहीं है. जैसे सूर्यके सन्मुख रात दिन नही है, सदा प्रकाशही रहताहै ॥ २६ ॥ आत्मस्वरूप परब्रह्म आपको देह मानकर और देहादिकको आत्म मानकर यही खोयेहुए आत्मरूपी पदार्थको बाहर खोजना देखो ! यह मूर्खोंकी कैसी मूर्खता है, क्योंकि घरकी

खोई वस्तु कोई वनमें खोजने नहीं जाता ॥ २७॥ विना जाने झूँठ भी सत्यहीकी समान विदित होता है इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ * हे अनन्त ! ज्ञानीपुरुष तो इस देहमेंही आपको खोजते हैं, "यह भी आत्मा नहीं यह भी आत्मा नहीं" ऐसे जड़ पदार्थोंका त्याग करते हैं, क्योंकि

अंतर्भवेऽनंत भवंतमेव ह्यतत्त्यजंतो मृगयंति संतः ॥ असंतमप्यंत्यहिमंतरेण संतं गुणं तं किमु यंति संतः ॥ २८ ॥

अपने निकट यद्यपि सर्प नहीं भी है परन्तु उसका निषेध किये विना सत्य रज्जु जाननेका ज्ञान नहीं होता सर्पके निषेध होनेके उपरान्त रज्जु

---

* दृष्टांत–किसी राजाके यहाँ एक कुपठ्य (बे पढा) पुरोहित था परन्तु बोलचालमें महाधूर्त और पाखण्डी था, उसने राजाको " शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये " इस श्लोकके अर्थ दहीबडेके बतलाँ रक्खे थे कि, दही सफेद उसमें लिपटा होय है वही शुक्ल वस्त्र है और वेष्टीति विष्णु विशेष लिपटा होनेसे विष्णुहै, गोल गोल चन्द्रमाके समान मुख है और चतुर्भुजम् अर्थात् चतुर पुरुषोंके भोजन योग्य है ध्यान करतेही प्रसन्न मुख होजाता है और भोजन करनेसे सब विघ्न शात हो जाते हैं. राजा इस श्लोकके यह अर्थ सत्य समझकर और उसको महात्मा जानकर उसका बडा आदर सन्मान करता था, जो विद्वान् आवे, राजा उसीसे उस श्लोकका अर्थ बूझै, सब पंडित लोग विष्णु भगवान्हीका अर्थ करै, राजा कहै यह अर्थ इस श्लोकका नहीं इसी प्रकार अनेक पंडितोंका तिरस्कार होता था, तब एक पंडित और आये उन्होंने रुपयेका अर्थ किया, देखो ! यह रुपया श्वेतवर्णहै और चार चौअन्नी जो हैं यही उसकी चार भुजा हैं देखतेही मुख प्रसन्न होजाताहै और सब विघ्नोंका शात करनेवालाहै, इस अर्थको सुनकर राजाने कहा और पंडितोंसे तुम अच्छे हो दशांश पारितोषिकके योग्य हो, परन्तु सत्य अर्थ इसका आपभी नहीं जानते, उस महात्मा पंडितने विचारा कि, यह राजा किसी मूर्खका बहँकाया हुवाहै और यह राजा भी मूर्खहै, यह महात्मा पंडित राजाके पुरोहितके घर जाने लगे और उनसे बडी मित्रता करली और मिसरानीकोभी एक बडी चिकनपटकी तीयल बनादी और आभूषण भी अनेक अनेक प्रकारके बनादिये और अत्यन्त प्रेमसे उनकी सेवा करने लगे और दिन रात माताही माता कहते मुख सूखे । एक दिन उस ब्राह्मणीने कहा कि, इतने दिनोंसे तू हमारे यहा रहताहै तैंने कुछ अपना अभिप्राय नहीं कहा कि, तेरा क्या मनोरथहै ? ब्राह्मण बोला कि हे माता ! मेरा तो नाम न लेना परन्तु (शुक्लाम्बर) इस श्लोकका अर्थ अपने पतिसे बूझदो तो बहुत अच्छा है, वह बोली आजही लो, जैसे पुरोहितजी घर आये उसी समय बूझा कि, हे स्वामिन (शुक्लाम्बर) इस श्लोकका क्या अर्थ है ? परन्तु पुरोहितजीने बहुतेरी तीन पाचकी "नारि विवश नर सकल गुसाईं । नाचहिं नट मर्कट की नाईं" मिसराणीने एक न मानी निदान बतानाही पडा, मिसराणीने अगले दिन उन महात्माजीको बतादिया, महात्माजी अच्छे वस्त्र पहन काँखमें पोथी दबा, राजाकी सभामें गये और बडी धूमधामके साथ राजाको उस श्लोकका वही दहीबडेवाला अर्थ सुनाया, राजा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा तुम बडे विद्वान् हो, हमारे पास रहा करो और बहुत कुछ धन भी उनको दिया, पुरोहितजी इस बातको सुनकर शून्य होगये और अपने मनमें कहनेलगे कि, परमेश्वरने आज हमारी आजीविका यहाँसे बन्द करदी और महात्माजीने कहा यह राजा मूर्ख और मूर्खके समीप रहना किसी प्रकार अच्छा नहीं, यातो इसको पढाना चाहिये और जो यह न पढे तो यहाँसे सिधारना अच्छा है, पण्डितजीने राजासे कहा आप कुछ पढा करैं तो अच्छा है, राजाने स्वीकार किया और पण्डितजीने राजाको पढाना आरम्भ किया, व्याकरणके पढनेसे राजाको पद पदान्तका बोध होगया तो एकदिन उस श्लोकको विचारनेलगा तो कहीं भी दही बडेका अर्थ न पाया, तब राजा चकित हो पण्डितजी–

जाननेमें आती है ॥ २८ ॥ हे देव ! जब ज्ञानसेही मुक्ति हो जाती है तो मुक्तिकी क्यों बड़ाई की. ब्रह्मा कहैं हैं यद्यपि ज्ञान प्राप्त होना बहुत सुगम है
तो आपके चरणारविन्दोंके प्रसादके कणिकाके कणिकाका अनुग्रह जिसपर होगया वही तुम्हरी महिमाके स्वरूपको जानता है और जिसपर

अथापि ते देव पदांबुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ॥ जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तु मे नाथ स भूरि भागो भवेऽत्र वाऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम् ॥ येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥

तुम्हारे चरणाविन्दोंकी कृपाही नहीं है चाहे वह कितनाही विचार किया करै और वर्षोंतक ढूंढ़ा करे तोभी आपकी महिमाको नहीं जान सक्ता
शुद्धभक्तिसेही आपकी महिमा जानीजाती है ॥ २९ ॥ इस बातपर एक दृष्टान्त है * हे नाथ ! इस ब्रह्माके जन्ममें, अथवा और कोई जन्म होय

—और पुरोहितजीको बुला भेजा और आतेही राजाने उससे क्रोधकरके कहा कि, पुरोहितजी ? तुमने मुझे बडा धोखादिया, बताओ इसमें दहीबडेका अर्थ कहा है ? पुरोहितजीके तो छक्के छूट गये, पण्डित जीने कहा मैनेहीं क्या सबही पण्डितोने शुद्ध अर्थ किया था, जब आपने क्यों न माना ? तब राजा बोला उस समय मे अज्ञानी था, पडित बोले विना पढे यह ज्ञान कमी नहीं होता अब ज्ञान होनेसे आप समझे, ऐसेही यह प्राणी मायाके वशमें हो उलटाही समझे है ॥

* दृष्टान्त—एक राजाने अपने मन्त्रीसे कहा कोई ऐसी औषधी भी है कि, जिसके खानेसे परमेश्वरका दर्शन होजाय ? मन्त्रीने कहा हमारे दादा परदेशसे साढेतीनलाख रुपैये देकर एक ऐसीही पुडिया लाये हैं सो घर धरी है, राजा बोला मुझको लादो मे खाऊगा मन्त्री अपने घर जाकर चूल्हेकी राखकी पुडिया बाँधलाये और राजासे कहा इलायची, वशलोचन इसमें मिलाकर शहतमें चाटो, परन्तु इसका पथ्य अवश्य करना और जो पथ्य न करोगे तो औषधि क्या गुण करेगी, विना पथ्य साढेतीनलाख रुपैयेकी औषधि वृथा जायगी विचार देखो जो रोगी पथ्यको करे तो रोगको जीत लेहै और कुपथ्य करे तो रोग औषधिको जीत लेहै इससे पथ्यकी पुडिया खाओ तो मनमें झूँठ मतलाना और झूँठ मनमें लाओगेतो परमेश्वरका दर्शन न होगा, यह कह मन्त्री तो अपने घरको चले गये और प्रात काल होतेही राजाने पुडिया खाई सो औषधि मनमें झूँठ जानपडी सो औषधि धर चित्तको सावधान कर दोघडी पीछे फिर वह औषधि खाई, सो झूँठ फिर आँखों आगे आगया औषधि फिर रखदी, ऐसेही शोच विचारमें तीन पहर बीतगये, कहा अब कल खाँयगे, सन्ध्याको मन्त्री आया उसने बूझा औषधी खाई कि नहीं खाई ? राजा बोला झूँठ तो मनसे हटताही नहीं खांय कैसे ? मन्त्री बोला कि, यही उपाय भगवान्के मिलनेका है जो मनसे सब दुर्वासना निकलगई और मन शुद्ध होगया तब भगवान्का दर्शन होगया और तनक भी अन्तर रहगया तो भगवान् नहीं मिलते ॥

उसमें अथवा पशुपक्षियोंमें जन्म होय तो मैं अपना बड़ा भाग्य मानूंगा जब तुम्हारे व्रजवासियोंमेंसे किसीके चरणारविन्दकी सेवा करूंगा ॥ ३० ॥ देवताके जन्मसे अथवा और किसीके जन्मसे जिसमें आपकी भक्ति होय वही जन्म श्रेष्ठ है, इस प्रकार उत्कण्ठापूर्वक सात श्लोकसे स्तुति करते हैं अहो आश्चर्य ! व्रजकी गाय गोपी धन्यहैं. हे प्रभु ! जिन गोपियोंके स्तनोंका दूधरूप अमृत बछरे बन आपने आनन्दसे पेट भरकर पिया, आपकी तृप्तिके लिये अबतक यज्ञ भी पूर्ण नहीं हुये क्या यज्ञोंमें भी आपका पेट नहीं भरता है ? भगवान्‌के सखाओंकी महिमा किसीके कहनेमें और जाननेमें नहीं आती ॥३१॥ ब्रह्माजी बोले कि, नन्दरायजीके व्रजवासियोंका आश्चर्य रूप अहो भाग्य है परमानन्द पूर्णब्रह्म सनातन जिन व्रजवासियोंका सर्वदा मित्र होरहा है ॥ ३२ हे इन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कहनेको किसकी सामर्थ्य है, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता यज्ञदेवता महादेव बुद्धिके

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ॥ यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥ अहो भाग्यमहो भाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम् ॥ यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३२॥ एषां तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ॥ एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयो ह्युदजमध्वमृतासवं ते ॥ ३३ ॥ तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोभिषेकम् ॥ यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुंदस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥

अधिष्ठाता में (ब्रह्मा) ऐसे ग्यारह देवता महादेवसे आदि लेकर हम सब बड़ भागी हैं, कोई व्रजवासी इंद्रियरूप दोनोंसे आपके चरणारविन्दका मकरन्द अमृतकी तुल्य मधुर २ पीते हैं, जिस समय व्रजवासी तुम्हारा दर्शन नेत्रोंसे करते हैं, उस समय नेत्रोंका अधिष्ठाता सूर्य कृतार्थ होजाता है और कानोंसे तुम्हारी बात सुनते हैं, तब कानोंके देवता दिशा कृतार्थ होजाती हैं नाकसे तुम्हारा प्रसाद तुलसीपत्र सूंघेंहैं, तब नासिकाके देवता अश्विनीकुमार कृतार्थ होजाते हैं, जब हाथोंसे तुम्हारी सेवा करतेहैं तब हाथोंके देवता कृतार्थ होजातेहैं, इसी प्रकार सब इन्द्रियोंके सेवनसे सब देवता कृतार्थ होजाते हैं, सम्पूर्ण पदार्थोंके सेवा करनेवाले व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कैसे कही जाय ॥ ३३ ॥ इस लोकमें कदाचित मेरा जन्म होय तो वृन्दावनमें होय उसपरभी गोकुलमें, यह मैं नहीं कहता मनुष्यही योनिमें हो जो चाहे जिस योनिमें हो, परन्तु गोकुलमें हो, तो मैं

पूर्ण भाग्यशाली होऊं और मेरे धन्य भाग्य होयँ तब श्रीकृष्ण बोले कि, हे ब्रह्माजी ! सत्यलोकको छोड़कर यहाँ जन्म लेनेसे तुमको क्या लाभ होगा तब ब्रह्मा बोले, जिस जन्ममें व्रजवासियोंके चरणारविन्दकी रज मेरे मस्तकपर पडेगी वही मुझको परम लाभ होगा, तब श्रीकृष्ण बोले कि, व्रजवासी लोग काहेसे धन्य हैं ! तब ब्रह्मा बोले कि, इन व्रजवासियोंका पूर्ण जीवन व्रज है, क्योंकि जहां श्रीमुकुन्दपरायण हैं जिनके चरणारविन्दकी रजको नित्यप्रति वेद खोजते रहते हैं उस वृन्दावनकी रजका मिलना अहोभाग्य है ॥ ३४ ॥ इन व्रजवासियोंकी कृतार्थताका क्या वर्णन करूं ? जिनकी भक्तिसे तुम भी ऋणीसे होरहे हो ? तब श्रीकृष्णचन्द्र कहैं हैं कि, मैं किस वस्तुके देनेमें असमर्थ हूं ? जो ऋणी रहूं तहाँ ब्रह्माजी बोले कि, हे देव ! जगत्में प्रकाशमान समस्त फलरूप तुम हो इसलिये और फल व्रजवासियोंको क्या दोगे ! यह जब विचार करताहूं तब मेरा मन मोहित हो जाताहै, तब श्रीकृष्ण बोले, मैं अपने आपका ऋणी होजाऊंगा. तब ब्रह्माजी बोले कि, नहीं माताका स्वरूप धर कर पापिनी पूतना आई थी उसको आपनें

एषां घोषनिवासिनामुत भवान्किं देवरातेति नश्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ॥
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवाऽऽपिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥
तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् ॥ तावन्मोहोंघ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥

सर्वस्व अपनपा दिया, तब श्रीकृष्ण बोले व्रजवासियोंको परिवार सहित सर्वस्व और अपनपा दूंगा, तब ब्रह्माजी बोले कि, पूतनाका कुटुम्ब अघासुर बकासुरको आपने सर्वस्व और अपनपा दिया तब कृष्ण बोले कि, मेरे पास तो यही पदार्थ देनेको है तब ब्रह्माजी बोले कि, जिन व्रजवासियोंने धाम, धन, सुहृद्, प्रिय, देह, पुत्र, प्राण और अन्तःकरण आपमें अर्पणकर रक्खा हैं फिर क्या ऐसे व्रजवासियोंको और वैरियोंको क्या बराबरही रक्खोगे ! आप परमेश्वर हैं तो क्याहै ? परन्तु आपके यहां न्याय नहीं कहां बापुरी पूतना ? और कहां परमहितकारी व्रजवासी ! आपको अपनेही मनमें न्याय करना चाहिये ॥३५॥ हे कृष्ण ! जबतक रागादिक चोर इस शरीरमें उपस्थित हैं तबतक घराकारागार (बन्दीखाना) रूप है मोह भी तबहीतक पाओंकी बेडी है जबतक प्राणी तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण नहीं आता, आपकी शरण लिये पीछे रागादिक जो चोर हैं

वह भी चोरसे साह होजाते हैं और जो घर हैं वह भी सुन्दर मन्दिर होजाते हैं और सम्पूर्ण मोह दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! तुम संसाररहित हो तो भी संसारमें शरणागत भक्तोंको आनन्द देनेके लिये संसारमें वारम्वार अवतार धारण करो हो ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! हे प्रभो ! जो पुरुष आपको जानते हैं वह जानते होंगे, परन्तु में वहुत क्या कहूं । मनसे, वचनसे देहसे, आपका वैभव मेरे जाननेमें किसी प्रकारसे नहीं आसक्ता ? ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! अब मुझपै अनुग्रह करके मुझको सत्यलोकके जानेकी आज्ञा दीजे, आप सब जानते हो, अर्थात् अपनी अपार महिमा मेरा ज्ञान, बल, पराक्रम, सवके देखनेवाले हो, आपही इस जगत्के अधिष्ठाता हो, मेंने ऐसा ब्रह्मापना छोडा यह जगत् आपहीकी भेंट है ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! यदुकुलकमलपर स्नेह करनेवाले (दिवाकरकी सदृश)इसमें सूर्यकी उपमादी है. हे पृथ्वीके देवता ! ब्राह्मण, पशु, समुद्र, इनके वृद्धि करनेवाले

प्रपंचं निष्प्रपंचोऽपि विडंवयसि भूतले ॥ प्रपन्नजननाऽऽनंदसंदोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७ ॥ जानंत एव जानंतु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ॥ मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ॥ त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोपदायिन्क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ॥ उद्धर्म शार्वरहरक्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ॥ नत्वाऽभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥ ततोनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ॥ वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥

(सुधाकरकी समान) इसमें चन्द्रमाकी उपमा दी. हे पाखण्डरूप अन्धकारके विनाश करनेवाले, इसमें सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी उपमा आई पृथ्वीपर कंसादिक राक्षसोंके मारनेवाले, इसमें फिर सूर्यकी उपमा आई, हे सूर्य ! हे अर्हन् ! सवके पूज्य भगवान् ! अर्थात् छःप्रकारके ऐश्वर्यमे परिपूर्ण तुमको मेरा दण्डवत् है और नमस्कार हैं ॥ ४० इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी वोले कि, हेराजा परीक्षित् ! इस प्रकार सर्वव्यापक श्रीकृष्ण चन्द्रकी स्तुति कर, कल्पपर्यन्त तीन प्रदक्षिणादे, चरणारविन्दोंको नमस्कार कर जगत्के विधाता ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोकको चलेगये ❀ ॥ ४१ ॥ तब पीछे श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार बछरे और वालकोंको ले आये, प्रथमकी समान ग्वालमण्डलीको उसी यमुनाकी रेतीमें ले आये जहाँ पहिले

* शंका—जब श्रीकृष्णकी स्तुति करके ब्रह्माजी अपने लोकको गये परन्तु श्रीकृष्ण भगवान् ब्रह्मासे क्यों नहीं वोले ? जब स्थानोंपर देवताओंसे भगवान् वोलते हैं और आदर सत्कार करते हैं, फिर यहां भगवान्ने ब्रह्मका निरादर क्यों किया ?

बैठे भोजन कररहेथे और इस भेदको किसीने न जाना यह बात सुनकर राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, इतने दिनतक बालक कैसे यमुनाके किनारेपर बैठे रहे और भोजनपान कुछ न किया ? ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! जब अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्र विना एक वर्ष बीत गया, तो भी भगवान्की मायासे मोहित हुए उन बालकोंको वह समय आधे पलकी समान जान पडा ॥४३॥ भगवान्की मायासे मोहितचित्तवाला पुरुष इस संसारमें क्या क्या नहीं भूलसक्ता ? सो सम्पूर्ण जगत भगवत्की मायासे मोहित होकर बारंबार अपने आत्माको भूल रहाहै ॥४४॥ सब ग्वालबालोंने

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चांतरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन्क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥ किंकिं न विस्मरंतीह मायामोहितचेतसः ॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ॥ नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥४५॥ ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ॥ दर्शयंश्चर्माऽऽजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रितांगः प्रोद्दामवेणुदलशृंगरवोत्सवाढ्यः ॥ वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥ अद्यानेन महाव्यालो यशोदानंदसूनुना ॥ हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्परोद्भव कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् ॥ यो भूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा कि, भय्या! तुम तो बहुत शीघ्र आये, हमने तो तुम बिना एक ग्रास भी अभी नहीं खायाथा, अब आओ पहिले शीघ्रतासे भोजन कर लो ॥४५॥ सब इन्द्रियोंके प्रेरणा करनेवाले श्रीकृष्णभगवान् बालकोंकी बात सुनकर हँसे और बालकोंकेसंग भोजन करके मार्गमें जो सूखा हुआ अघासुरका देह पडा था उसको दिखाते वनसे लौटकर व्रजमें आये ॥४६॥४७॥ वनसे आनकर सब बालक अपने माता पिताओंसे कहने लगे कि, आज यशोदानंदने वनमें एक बडा भारी सर्प मारा और उससे हमारी रक्षा करी॥४८॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! व्रजवासियोंका इतना प्रेम

उत्तर–अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना मूर्खोंका काम है कि मैं ऐसा सज्जन हू, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णब्रह्म, सर्व विश्वके नाथ ब्रह्मासे कीहुई स्तुतिको सुनकर लज्जायमानहुये ब्रह्मासे कुछ भी नहीं बोले और विचार किया कि, हमने वृथा ब्रह्माके किये हुये चरित्रको नहीं माना क्योंकि जब ब्रह्मा वत्स बालकोंको हरिकर लेगया था तो हमको ब्रह्माजीकी स्तुति करके लेआना चाहिये था, ऐसे दयालु भगवान् लज्जासे नहीं बोले ॥

श्रीकृष्णमें कैसे हुआ ? जो कि पराया पुत्र था, अपने पुत्रोंमें इतना प्रेम पहिले नहीं था यह बात मुझे समझाकर कहो ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! श्रीकृष्णका नाम सर्वात्माहै, इसलिये श्रीकृष्ण सब प्राणियोंके साक्षात् आत्मा ठहरे,फिर सब प्राणियोंको अपना आत्माही परमप्रिय

श्रीशुक उवाच ॥ सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैकवल्लभः ॥ इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥

है, इसलिये श्रीकृष्णमें सन्तानसे बढकर अधिक प्रेम था, स्त्री, पुत्र, धन आदिक और जो पदार्थ हैं सो सब आत्माहीके सुखके लियेहैं ❋ ॥५० ॥

* दृष्टान्त–किसी नगरमें एक ब्राह्मण था, उसके सन्तान नहीं होती थी, प्रथम तो उसने यत्रमत्रादिकके बहुतसे उपाय किये परन्तु कुछ न हुआ, फिर वैद्यलोगोंकी भी बहुतसी औषधिये की और ज्योतिषियोंने
भी अनेक प्रकारके दान पुण्य कराये, परन्तु किसी प्रयत्नसे भी उसने पुत्रका मुख नहीं देखा. एक दिन वह वनमें पूजाके लिये फल फूल लेनेको गया, वहा उसको उदास देखकर एक महात्मा पुरुष उससे बूझने
लगे कि, हे ब्राह्मण ! तू क्यों इतना उदास है ? ब्राह्मण बोला कि, हे स्वामिन् ! मेरे सन्तान नहीं इस बातका मुझको वडा क्लेशहै. महात्माने कहा तू सन्तानगोपालका पाठकर तेरे पुत्र होगा. ब्राह्मणने वैसाही किया
और भगवत्की कृपासे उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ. जब वह बडा होगया तो साधु सन्तोंके धोरे बहुत बैठता और इकलौता बेटा समझकर उसके माता पिता भी उसपर लाड प्यार करते थे और वह भी
अपने माता पितासे अत्यन्त प्रेम रखता था, एक दिन कोई साधु गीताका पाठ कर रहे थे उसमें यह श्लोक आयाः–

श्लोक–अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

श्लोकार्थ–माता पिता सुहृद बन्धु कोई किसीका नहीं, यह सब केशवी माया है, इन लोगोंके लिये कभी शोच करना नहीं चाहिये.तुम बुद्धिहीनोंकी नाई उनके लिये शोक करते हो और कभी बुद्धिमानोंकी
नाई बात करते हो परन्तु ज्ञानी लोग मरने जीनेका कुछ शोक नहीं करते, वह लडका बोला. महाराज ! मेरे माता पिता तो मेरे ऊपर प्राण खोनेको उपस्थित हैं और मुझको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहतेहैं
साधु बोले, यह बात सब झूँठ है, लडकेने कहा मेरी बात झूँठ हो सक्ती है ? साधु बोले कि, अच्छा आज तू घर जाकर बीमार बनकर पड रह फिर तू सबकी परीक्षा कर लेना और तुझको झूँठ सत्य सब
प्रत्यक्ष दिखादेंगे. उस द्विजपुत्रने वैसाही किया, तब तो वैद्योंके उपाय और अनेकप्रकारके यत्र मत्र बडे बडे दान पुण्य होनेलगे, तब तो ब्राह्मणके बेटेने कहा कि, अब उन महात्मा पुरुषको बुलाना चाहिये जो कहते थे
कि,न कोई माता है, न पिता है तब उसने उन महात्माको बुलाया और जैसे रुपैयोंको कैंकरीकर दिया था वह सब दिखाया कि देखो मेरे माता पिता कितना रुपैया खर्च कर रहेहैं. साधु बोले कि, यह लडका मरजायगा तब
उसके माता पिता बोले कि, किसी प्रकार यह अच्छा भी होगा ! साधु बोले कि, एक उपाय है तीनवार इसके ऊपर दूध उतारा जाय जो उसको पियेगा वह तो मरजायगा परन्तु यह अच्छा हो जायगा । तुम
आपसमें सम्मत करलो कि, उस दूधको कौन पियेगा, अब तो सबको दिनमें तारे दीखने लगे और एककी ओरको एक देखने लगा परन्तु किसीने इस बातको अंगीकार न किया कि दूध मैं पिऊंगा और
सबने अपने अपने प्राणोंकी रक्षा करनी चाही तब बाबाजीने कहा कि, बच्चा ! देख कोई नहीं पीता तो इस दूधको हम पियेंगे ससारमें कोई किसीका नहीं सब अपने अपने प्राणोंके रक्षक हैं ॥

इसलिये हे राजा परीक्षित् ! देहधारियोंको जितना अपने आत्मामें प्यारहै उतना ममताके स्थान अपने पुत्र, धन, घर आदि लेकर जो वस्तुहैं उनमें नहीं है ॥ ५१॥ हे क्षत्रिवंशोत्तम राजा परीक्षित् ! जो पुरुष देहको आत्मा कहतेहैं उनको भी देह अत्यन्त प्रिय है और जो देहके अनुवर्ती स्त्री पुत्र धन आदिक हैं वह देहकी समान प्यारे नहीं लगते ॥ ५२ ॥ और देहको भी इस प्रकार मान ले कि, यह मेरा देह है, अर्थात् यह देह, जब ममताका स्थान होजाता है तब यह देह आत्माकी समान प्यारा नहीं रहता. क्योंकि जिस समय यह देह जीर्ण होजाता है अर्थात् अब यह देह किसी प्रकार

तद्राजेंद्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ॥ न तथा ममतालंबिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ॥ यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥ देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः ॥ यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिञ्जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेव सकलं जगच्चैतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ॥ जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥

स्थिर न रहैगा तौ भी जीनेकी आशा बलवान् रहती है कि, किसी उपायसे दोचार दिन और बच रहूँ ॥ ५३ ॥ इस बातसे यह निश्चय होताहै कि, सब देहधारियोंको अपना आत्माही अधिक प्यारा है, उस आत्माहीके लिये सब स्थावर जंगम आदि संसारपर जो प्रीति होती है सो सब आत्माहीका कारण है ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! सब प्राणियोंके आत्मा जगत्के कल्याण करनेके लिये मनुष्य देह धारण कर अपनी मायासे प्रकाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दही हैं, इस कारण उनपर प्रेम होना सम्भव है ॥ ५५ ॥ यही न समझना कि, श्रीकृष्णचन्द्र केवल

देहधारियोंहीके आत्मा हैं, नहीं वह सब जड पदार्थोंके भी आत्मा हैं वास्तवमें इस सब विश्वके आदिकारण श्रीकृष्णचन्द्रहीहैं, इस प्रकार माननें वाले पुरुषोंको सब स्थावर जंगममें भगवान्‌काही रूप भासे है कोई वस्तु इस संसारमें भगवान्‌से भिन्न नहीं है ॥ ५६ ॥ समस्त पदार्थोंको परमार्थरूपसे विचारकर देखिये तो कोई भी वस्तु अपने अपने कारणोंसे पृथक् नहीं है और जो जो कारण हैं वह भगवान्‌से पृथक् नहीं, इससे सिद्ध हुआ कि, कारणोंके भी मुख्य कारण श्रीकृष्णभगवान् हैं फिर कौनसी वस्तु श्रीकृष्णसे पृथक् रही तुमही बताओ ! ॥ ५७ ॥ पवित्र वंश निर्मल कीर्तिवाले श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरण,कमल रूप नौका जो परमप्रेमी सज्जनोंका आश्रय है जो पुरुष उन चरणारविन्दरूपी नौकाका आश्रय

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ॥ तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ॥ भवांबुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥ ५८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ यत्कौमारे हरिकृतं पौगंडे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारे रघार्दनं शाद्वलजेमनं च ॥ व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन्गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥

करते हैं, उनको संसाररूपी समुद्र बछरेके खुरके जलकी समान है और परम धामका उनको वास मिलता है कभी कोई विपत्ति नहीं होती ॥५८॥ जो जो लीला भगवान् ब्रजविहारीने पांच वर्षकी अवस्थामेंकी; सो बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें अपने अपने घर आन कही,उसका कारण जो तुमने हमसे बूझा सो सम्पूर्ण हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ५९ ॥ मुर नाम दैत्यके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रने मित्रोंके संग यह चरित्र किया अघासुरको मारा यमुनाकी रेतीमें ग्वालबालोंके साथ भोजन किया जड़ प्रपञ्चसे भिन्न शुद्ध सत्त्वगुणीरूप ब्रह्माको दिखाया बछरे और ग्वालबालोंका तद्वतरूप धारण किया ब्रह्माने प्रेममय हो बड़ी स्तुति की, इस अद्भुत चरित्रको जो कोई मनुष्य कहेगा अथवा सुनेगा उस पुरुषके सब पुरुषार्थ सफल होंगे और

श्रीकृष्णचन्द्रमें पूर्ण भक्ति होगी ॥ ६० इस प्रकार ऑखमिचौनीके खेलमें ठौर ठौर छिपना, नदियोंके पुल बाँधने, बन्दरकी समान वृक्षोंपर चढना
और कूदना और अनेक अनेक प्रकारके बाल्यावस्थाके और कौमार अवस्थाके श्रीकृष्ण और बलदेवजीने विहारकरके कौमार अवस्था पूर्ण करी॥६१॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—पन्द्रहमें धेनुक हनो, लीनी गाय
बचाय। मित्रनको आनँद दियो, धन धन श्रीयदुराय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब कौमार अवस्था व्यतीत हुई और पौगण्ड
अवस्थाका आरम्भ हुआ तब व्रजमें गाय चरानेके योग्य कृष्ण बलदेव दोनों भाई हुए.तब ग्वाल बालोंको साथ ले श्रीव्रजनाथने वृन्दावनको अपने
कोमल चरण कमलसे अत्यन्त पवित्र किया ॥१॥ मधुवंशके प्रकट होनेवाले श्रीश्यामसुन्दर बाँके विहारी कृष्णचन्द्र अपने यश गानेवाले ग्वाल

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥६१॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे
दशमस्कंधे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ
पशुपालसंमतौ ॥ गाश्चारयंतौ सखिभिः समं पदैर्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो गोपै
र्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥ पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥ तन्मंजुघोषालिमृग
द्विजाकुलं महन्मनःप्रख्यपयस्सरस्वता ॥ वातेन जुष्टं शतपत्रगंधिना निरीक्ष्य रंतुं भगवान्मनो दधे ॥ ३ ॥ स तत्र त
त्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ॥ स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥४॥

बालोंको संग लेकर बलदेव भ्राता सहित बाँसुरी बजाते, बछरोंको कुदाते गायोंको आगे आगे कर, क्रीड़ा करनेके मनोरथसे पशुहितकारी अनेक
प्रकारकी फुलवारी जहां फूल रहीं उस वृन्दावनमें विहार करनेके लिये गये सो वृन्दावन कैसा है॥२॥ मधुर मधुर वाणीवाले भौरे, मृग, अनेक प्रका
रके पक्षी जहाँ वास करैं, महत्पुरुषोंके मनकी सदृश निर्मल जलसे सुंदर सरोवर भरेहुए,जिनका स्पर्श करके कमल कमलिनी नित्य प्रफुल्लित रहतेहैं
उनकी सुगन्धयुक्त पवन दिनरात चलती रहतीहै,ऐसे मनोहर वृन्दावनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान्ने विहार करनेकी इच्छाकी॥३॥जहाँ तहाँ अरुण
वर्णके पल्लव निकल रहेहैं उनकी अद्भुत शोभा होरहीहै फल फूलोंके भारसे झुकके जिनकी शाखाओंके अग्रभाग चरणोंमें लग रहेथे ऐसे ऐसे सुन्दर

वृक्षोंको देखकर परमानन्दितहो मुसकायके आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बडे भ्राता बलदेवजीसे कहा ॥४॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे देवताओंमें श्रेष्ठ बलदेवजी ! देखो यह बडा आश्चर्यहै।यह वृन्दावनके वृक्षदेवताओंके पूजने योग्य अपने पापोंके नाश करनेकेलिये मौन साध आपके चरणारविन्दोंको फल फूल भेंटले लेकर अपनी शाखाओंसे झुक झुक कर प्रमाण करतेहैं किसलिये कि,जिस अज्ञानसे हमारा वृक्षजन्म हुवाहै वह अज्ञान दूर होजाय इसलिये झुकेहैं ॥५॥ हे आदिपुरुष ! सब लोकोंका पवित्र करने वाला आपका यशहै उसको निरन्तर यह भौंरे गान कर करके आपका भजन करतेहैं-ऐसा जान पडता है कि, यह भौंरे आपके मुख्य भक्त मुनिजन हैं ? हे पापरहित ! आप अपने दैवतरूपको छिपाये मनुजवेष बनाये

श्रीभगवानुवाच ॥ अहो अमी देववरामरार्चितं पादांबुजं ते सुमनःफलार्हणम् ॥ नमंत्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायंत आदिपुरुषानुपदं भजंते ॥ प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥ नृत्यंत्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ॥ सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान्हि सतां निसर्गः ॥ ७ ॥ धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ॥ नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योंतरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः॥ ८ ॥

इन ग्वालबालोंमें क्रीडा कर रहेहो तो यह मुनि भी भौंरेके रूपसे गुप्त होकर आपकी सेवा और भजन करतेहैं-हे सर्वात्मन्!इन्होंने यहां भी आपका पीछा नहीं छोडा ॥ ६॥ हे स्तुतिकरनेयोग्य ! देखो ? यह मोर आपके समीप कैसा सुन्दर नृत्य कररहेहैं और यह हरिणी गोपियोंकी नाईं चितवनसे भोली-भोली सूरत बनाये आपके ऊपर कैसा प्यार कररही हैं और देखो यह कोकिलाओंके समूह कैसी कैसी मधुरवाणीसे शुश्रूषा कररहे हैं यह वनवासी भी धन्य हैं क्योंकि अच्छे पुरुषोंका यही स्वभाव है जो कोई अतिथि अपने घर आवे तो जो कुछ अपने पास फल फूल होय सो उनकी भेंट करै ॥ ७ ॥ आज यह भूमि, तृण, लता आपके चरणारविन्दोंको स्पर्श करके आनन्दपावे है, धन्य हैं नदी, पर्वत, पक्षी वनके

पशु भी धन्य हैं जो आप दयापूर्वक चितवन करें हैं जिस वक्षस्थलकी लक्ष्मी इच्छा करती हैं उसका स्पर्श गोपियोंको होता है, इसलिये यह भी धन्य हैं ॥ ८ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलमुकुटमणि ! ऐसी अद्भुतवृन्दावनकी शोभा देख प्रसन्नमन श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतके समीप यमुना नदीके तीरपर गायनको चराते ग्वालबालोंके संग विहार करते थे ॥ ९ ॥ मदोन्मत्त भौरे जिस समय गुंजार करते थे, तब वनमाल पहिरे बलदेवजीके साथ श्रीकृष्ण आप भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाते थे ॥१०॥ कभी राजहंसोंकी मधुरवाणी सुन उनके संग वैसी ही मधुरवाणी बोलते थे, कभी अपने साथी मित्रोंको हँसानेके लिये मोरोंको नाचता देखकर उनके सन्मुख आप भी जामा फैलायके नाचते थे ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृंदावनं श्रीमत्प्रीतः प्रीतमनाः पशून् ॥ रेमे संचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥ क्वचि द्गायति गायत्सु मदांधालिष्वनुव्रतैः ॥ उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्च कलहंसानामनु कूजति कूजितम् ॥ अभिनृत्यति नृत्यंतं बर्हिणं हासयन्क्वचित् ॥ ११ ॥ मेघगंभीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ॥ क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ॥ अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित्क्रीडापरिश्रांतं गोपोत्संगोपबर्हणम् ॥ स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहना दिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ॥ गृहीतहस्तौ गोपालान्हसंतौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥

कभी जो कोई गाय चरती २ दूर निकलजाय तो मेघकी समान गम्भीर शब्दसे प्रसन्न हो उनके नाम लेलेकर बुलाते थे ॥ १२ ॥ कभी चकयी, चकोर, क्रौञ्च, चकवा, भारद्वाज चातक, कीर, कपोत, सारिका, मोर उनके शब्द सुन आप भी उसी प्रकारका शब्द उच्चारण करते थे कभी व्याघ्र, सिंहको देख डरकर और पशु भागते, वैसेही गायोंको देख भयभीत हो आप भी भागतेथे ॥ १३ ॥ किसी समय खेलते खेलते बलदेवजीको परिश्रम होजाता तब किसी मित्रकी गोदीमें शिरधर उसकी जंघाका तकिया बनाकर सो जाते, तब श्रीकृष्णचन्द्र आप उनके चरण दबाय पंखा करके उनकी थकावट दूर करते थे ❋ ॥ १४ ॥ किसी समय कृष्ण बलदेव परस्पर अद्भुत रीतिसे नृत्य करते, गाते,

* शंका–श्रीकृष्णने विष्णु भगवान् होकर अपने अंश शेषजीको अपनेसे वडा क्यों किया ? उलटा श्रीकृष्णका बलदेवजीको सेवन करना पडा ?

कूदते, लडते, भिडते और फिर ग्वालबालोंकी भुजा पकड हँसकर कृष्ण बलदेव दोनों भाई कहते देखो कैसा नाच नाचा कैसा गाना गाया, इस प्रकार अपनी अपनी बड़ाई करतेथे ॥ १५ ॥ किसी समय मल्लयुद्ध करते करते जब हार जाते तब श्रीकृष्ण वृक्षकी जडके सहारेसे, पत्तोंकी शय्यापर गोपोंकी गोदीका तकिया बनाकर सो जाते थे ॥ १६ ॥ हे राजन्! कोई ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण दाबते, कोई पापरहित ग्वाल बाल पत्तोंके और पुष्पोंके पंखे बनाकर श्यामसुन्दरके बयार करते थे ॥ १७ ॥ कोई ग्वाल स्नेहभरी बुद्धिसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी नींद किसी प्रकार न

क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ॥ वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपवर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनं चक्रुः क्वचित्तस्य महात्मनः ॥ अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ॥ गायंति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥ एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडंवयन् ॥ रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥१९॥ श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ॥ सुबल स्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥ रामराम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥ २१ ॥

उचट जाय इससे ऐसे ऐसे मनोहर मलारोके पद सहज सहजमें गातेथे ॥१८॥ इसप्रकार अपनी मायासे अपना ईश्वररूप छिपाये नई २ लीला करके गोपोंकेबालकोंको अनुकरण करते; लक्ष्मी जिनके चरणोंमें लोटें वह श्रीकृष्ण सुखधाम ग्रामके रहने वाले व्रजवासियोंके संग उनकी इच्छानुसार खेल खेलतेथे-बीच बीचमें कभी ईश्वरपनकीभी लीला दिखला देते थे ॥१९॥बलराम और श्याम सुंदरके मित्र श्रीदामा नाम गोप,सुबल,स्तोक,कृष्णादिक गोप प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे ॥ २० ॥ हे राम! हे राम! हे दीर्घबाहो!दुष्टोंके दलन करने हारे!हे श्रीकृष्ण! यहांसे थोड़ीसी दूर पर तालके

उत्तर—त्रेतामें लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत सेवा की थी और बिना रामचन्द्रकी आज्ञा लक्ष्मणजीने कोई कार्य नहीं किया, तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मणको वरदान दिया कि, हे भैया लक्ष्मण! द्वापरमें हम तुमको अपना बडा भाई बनाकर हम तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम्हारा नाम बलदेव होगा और हमारा नाम विपिनविहारी होगा, इसलिये शेषजी विष्णुसे बडे हुए ॥

वृक्षोंका एक बडा गम्भीर वन है ॥ २१ ॥ उस तालवनमें बहुतसे तालनके फल वृक्षोंके नीचे टूटे पडे हैं और भी टूट टूटकर बहुतसे गिरते हैं परन्तु धेनुकासुर दैत्य वहां रहता है उसने वह फल वहां रोक रक्खे हैं, न वह आप खाताहै और न किसी दूसरेको खाने देता है ॥२२॥ हे राम हे कृष्ण वह दैत्य बडा पराक्रमी और बलशाली है सदा गधेका रूप धारण किये रहता है और उसके समीप उसीके समान बडे बडे योद्धा उसीकी जातिके बहुतसे असुर उसके संग रहते हैं और उनके बीचमें वह मंडली बनाये बैठा रहता है ॥ २३ ॥ हे दुष्टदमन ! वह दुष्ट जहां कहीं मनुष्यको देखताहै उसको खाजाता है, इस डरसे कोई मनुष्य उस वनमें नहीं जाता और पशु पक्षियोंने भी उसके भयके मारे वह वन छोडदिया है ॥ २४ ॥

फलानि तत्र भूरीणि पतितानि पतंति च ॥ संति किं त्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥ २२ ॥ सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ॥ आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् ॥ न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यंतेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ॥ एष वै सुरभिर्गंधो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गंधलोभितचेतसाम् ॥ वांछास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥ ॥ २६ ॥ एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ॥ प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७ ॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्संपरिकंपयन् ॥ फलानि पातयामास मतंगज इवौजसा ॥ २८ ॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुर रासभः ॥ अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकंपयन् ॥ २९ ॥

आजतक किसीने नहीं खाये ऐसे सुगन्धित और मधुर फल वहां हैं, न मानो तो चारों ओर उनकी सुगंध फैल रही है सूंघके देखलो ॥ २५ ॥ हे कृष्णचन्द्र ! उनकी सुगंधसे हमारे मन लुभायगये हैं तुम वह फल लाकर हमको दो उन फलोंके खानेकी हमारी बडी इच्छा है, जो आपकी भी इच्छा हो तो उस वनको चलैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार मित्रोंके वचन सुन उनको प्रसन्न करनेके लिये सब मित्रोंको अपने संग ले दोनों भाई हँसकर ताल वनको चलदिये ॥ २७ ॥ वहां जाकर बलदेवजीने ताल बजाकर हाथसे तालके वृक्षोंको हिलाया तो फलोंके ढेरके ढेर पृथ्वी पर हो गये, जैसे मतवाला हाथी वृक्षोंको हिलाकर फलों के ढेरके ढेर नीचे डाल देता है ॥ २८ ॥ पृथ्वीपर फलोंके गिरनेका शब्द सुनकर

वह गर्दभरूप धेनुकासुर पर्वतोंसमेत पृथ्वीको कम्पायमान करता दौडकर बलरामजीके सन्मुख आया ॥ २९ ॥ उस महाबलवान् धेनुकासुरने शीघ्रतासे आनकर दोनों पिछले पावोंसे बलदेवजीके हृदयमें एक दुलत्ती मारी और गम्भीर शब्दसे रैंकने लगा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! क्रोधमें भरकर धेनुकासुरने फिर आनकर मुख फेर बलदेवजीके पिछले पावोंकी एक दुलत्ती और मारी ॥ ३१ ॥ तब तो बलदेवजीने उसकी दोनों टॉगे एक हाथसे पकड कर ऐसे घुमाया जैसे लडके गोफना घुमाते हैं जब उसके प्राण निकल गये तो फिर फिराकर एक तालके वृक्षके ऊपर फेंक दिया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जब धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उसके फेंकनेसे वह अत्यन्त भारी तालका वृक्ष टूटकर पृथ्वीपर गिरगया, उसके गिरनेसे

समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ॥ निहत्योरसि काशब्दं मुंचन्पर्यसरत्खलः ॥ ३० ॥ पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक्स्थितः ॥ चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥ स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ॥ चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाऽऽहतो महातालो वेपमानो महाशिराः ॥ पार्श्वस्थं कंपयन्भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ॥ तालाश्चकंपिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनंते जगदीश्वरे ॥ ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तंतुष्वंग यथा पटः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ॥ क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबांधवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया ॥ गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥

चारों ओरके वृक्ष टूट टूट कर पृथ्वीपर गिर गये, एककी चपेटसे एक, इस प्रकार अनेक वृक्षोंका चूरा होगया ॥ ३३ ॥ बलदेवजीने लीला करके जो धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उस गर्दभ देहकी चपेटसे सर्वत्र ताल वनके वृक्ष कॉपने लगे, जैसे महावेगकी आँधीसे सब पृथ्वी तलके वृक्ष कम्पायमान हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ बलदेवजीके इस पराक्रम करनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि वह अनन्त और जगदीश्वर हैं और यह विश्व उनमें ओतप्रोत होता रहता हैं जैसे वस्त्रके ताने बानेमें ओतप्रोत होता रहता है ॥ ३५ ॥ जब धेनुकासुर मरगया, तब उसके भाई बन्धु जातिवाले सब गधे क्रोधित होकर श्रीकृष्ण बलदेवके ऊपरको झपटे ॥३६॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भाइयोंके सामने जो जो गधे आये,

उनकी टाँगें पकड़ पकड़ घुमाय घुमाय वृक्षोंके ऊपर फेंक दिये ॥३७॥ उस कालमें लाल लाल तालके फलोंके समूहसे, श्वेत श्वेत मरेहुए गधोंकी लोथोंसे, हरी हरी तालके वृक्षोंकी शाखाओंसे और काली काली उन वृक्षोंकी जडोंसे, पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी, जैसे लाल, श्वेत, हरी, काली घटाओंसे आकाश शोभायमान दिखाई देता है ॥ ३८ ॥ ऐसे २ अद्भुत चरित्र कृष्ण बलदेवके देख देख देवतालोग प्रसन्न हो होकर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करतेथे और अनेक प्रकारके बाजे बजाय बजाय स्तोत्र पढ़तेथे ॥ ३९ ॥ जब धेनुकासुर मारागया तो फिर मनुष्य निःसन्देह होकर उन तालवृक्षोंके फलोंको खाने लगे और गायेंभी निर्भय होकर घास चरने लगीं ॥ ४० ॥ और अनुचर गोप जिनकी स्तुति करते कमलपत्रसे जिनके विशाल नेत्रोंको देखते और परमपवित्र जिनकी कथा और चारित्रोंको सुनते, सब ग्वाल बाल श्रीकृष्ण बलदेव सहित व्रजमें

फलप्रकरसंकीर्णा दैत्यदेहैर्गतासुभिः ॥ रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥ तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य विबुधादयः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥ कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥ तं गोरजश्छुरितकुंतलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ॥ वेणुं क्वणंतमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृंगैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ॥ तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपांगमोक्षम् ॥ ४३ ॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ॥ यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥

आये ॥ ४१ ॥ गायोंके खुरोंकी जो धूरि उड़ती थी उसके पड़नेसे जिनके केश धूसर वर्ण हो रहे हैं, मोरपुच्छोंके मुकुट शीशपर धारण कर रहेहैं, वनके पुष्पोंके तुर्रे कानोंमें लटक रहे हैं, तिरछी चितवनसे मनोहर मुसकानसे, इधर उधरको देखते, बाँसुरी बजाते, ग्वालबाल जिनका यश गाते, उन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दके देखनेके लिये सब गोपी जुड़ मिलकर आईं ॥ ४२ ॥ व्रजबालाओंने नेत्ररूपी भौरोंकी श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलके रससे दिन दिनकी तृष्णा और श्यामसुंदरके विरहकी तापको शान्त करके लाज भरी मुसकानसे और कटाक्ष भरी चितवनसे जो आदर सन्मान किया उसको स्वीकार करके व्रजमें आये ॥ ४३ ॥ पुत्रोंमें जिनका परमस्नेह वह यशोदा और रोहिणी अपने

पुत्रोंकी इच्छानुसार सब पदार्थ उपस्थित रखती थीं ॥ ४४ ॥ व्रजविहारीने व्रजमें आनकर उवटन स्नान किया तो मार्गका सब श्रम दूर होगया उस समय दोनों भाइयोंने सुन्दर सुन्दर पीताम्बर पहिर सुगन्धित पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण कर चन्दन चोवा लगाकर ॥ ४५॥ जो निश्चिंत हुए तो बड़े प्रेम प्रीतिसे माता माखन, मिश्री, मिष्टान्न और षड्रस भोजन परोसकर लाईं, उसको बड़ी प्रीतिसे भोग लगाया और आनन्दपूर्वक सुन्दर शय्यापर जाकर शयन करने लगे ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तनहितकारी श्रीकृष्णभगवान् नित्य प्रति वृन्दावनमें विहार किया करते थे. एक दिन विना वलरामको संग लिये अकेलेही ग्वाल बालोंको साथ ले यमुनाके तीरपर धेनु चराने

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ॥ नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गंधमंडितौ ॥ ४५ ॥ जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ॥ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥ एवं स भगवान्कृष्णो वृंदावनचरः कचित् ॥ ययौ राममृते राजन्कालिंदीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥ अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥ विषांभस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ॥ निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलांते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत ॥ ५० ॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलांतिकात् ॥ आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥

गये ॥ ४७ ॥ मार्गमें ग्रीष्मकी धूपसे अत्यन्त व्याकुल होकर गाय और ग्वालवाल बहुत तृषित हुए, तब सब प्यासके मारे कालीदहमें जाय विषसे दूषित यमुनाजीका जल पिया ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! उस जहरीले जलके पीनेसे ऐसे अचेत हुये कि, तन मनकी कुछ सुधि बुद्धि न रही, मृतककी समान निष्प्राण हो, मुरझाकर यमुनाके किनारे पर गिरगये ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने मित्र ग्वाल वाल और गायोंको मूर्छित देख, अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर सबको जिला दिया ॥ ५० ॥ जब सब गायें और ग्वालवाल जी उठे और श्रीकृष्णको अपने सन्मुख खड़ा देखा, और बडे आश्चर्यसे परस्पर देखने लगे ॥ ५१ ॥

और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी पूर्णानुकंपासे फिर जीवित हुये जान परमानन्द मानने लगे ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्व.र्धे भाषाटीकायां धेनुकासुरवधो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा—इस सोरह अध्यायमें, कालीदहमें जाय ॥ नाथो कालीनागको, पीछे करी सहाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कालिन्दीको कालियसर्पके विषसे बिगरी देखकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके जलको शुद्ध करनेके लिये उस कालिय सर्पको वहाँसे निकालदिया ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने बूझा कि, हे ब्रह्मन् । भगवान्ने महागम्भीर जलके भीतर कैसे कालिय नागको दण्ड दिया और वह किसकारण कालिन्दीके महागम्भीर जलमें वास करता था सो कृपाकर विस्तार सहित वर्णन

अन्वमंसत तद्राजन्गोविंदानुग्रहेक्षितम् ॥ पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० दशमस्कंधे पू० धेनुकासुरवधो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ॥ तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ कथमंतर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् ॥ स वै बहुयुगावासं यथाऽऽसीद्विप्र कथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छंदवर्तिनः ॥ गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालिंद्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद्विषाग्निना ॥ श्रप्यमाणपया यस्मिन्पतंत्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥ विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ॥ म्रियंते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥ ५ ॥

कीजिये ! ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी जो अपने भक्तोंको दिखाने के लिये अनेक अनेक प्रकारके चरित्र करते हैं सो उन भक्तभावन भगवान् गोपालनादिक परमोदार प्राणाधार चरित्रामृतके श्रवणद्वारा पान करनेसे कौन पुरुष तृप्त हो सक्ता है ? ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, कालिन्दी (यमुना) में कालीनागका एक कुण्ड था, जिसमें विषकी अग्निसे नित्य जल औटता रहता था और आकाशके उड़नेवाले पक्षी उस गरलकी तापसे जलकर उस जलमें गिर पड़ते थे ॥ ४ ॥ और उस विषैले जलकी लहरोंके जलकणोंसे मिली पवन जो चलतीथी उसके लगनेसे किनारेके वृक्ष और घास सूख जाती थी और जो जीव उस कुण्डके तटपर भूलसे चले जाते तो उसीसमय उस जलकी

झलसे जलकर तड़फ तड़फ मरजाते थे ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें कहा कि, इस कुण्डमें ऐसे विषशाली सर्पका रहना अत्यन्त दुःखदायक है, क्योंकि जो कोई पशु पक्षी वा पुरुष इस जलको पीताहै वह एक क्षणभरभी नहीं जीता, उसीसमय अकुलाकर मर जाताहै और दूसरे यमुनाके जलको दोष लगाता है, इसलिये ऐसा दुष्टका यहाँसे निकालनाही अच्छाहै, क्योंकि जो यह यहां रहा तो लाखों जीवोंकी हत्या करेगा, जिसके विषकी लपटसे चार कोशतक जल भडकता रहता है, ऐसा कोई सामर्थ्यवान् नहीं जो उस कुण्डके पास जासके जब इस प्रकार श्रीकृष्ण विचार विषके अभिमानी कालिय नागको देखकर और उसके विषसे बिगडीहुई यमुनाको देखकर, दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये जिन्होंने अवतार लिया है, वे श्रीकृष्ण महाराज कॉछ बॉध पीताम्बरसे कमर कस, उस महाऊँचे कदम्बके रूखसे ताल ठोंककर कालियकुण्डमें कूदपडे ॥ ६ ॥

तं चंडवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ॥ कृष्णः कदंबमधिरुह्य ततोऽतितुंगमास्फोटयगाढर शनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसितांबुराशिः ॥ पर्यक्प्लुतो विषक षायविभीषणोर्मिर्धावधन्नुश्शतमनंतबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदंडघूर्णवार्घोषमंग वरवारणवि क्रमस्य ॥ आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुश्श्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनाव दातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुंदरास्यम् ॥ क्रीडंतमप्रतिभयं कमलोदरांघ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चच्छाद ॥९ ॥

पुरुषोत्तम भगवान् जिस समय जलमें कूदे उस समय उनके भारके झटकेसे और सर्पके गरलकी गर्मीसे कालियदहका जल बहुत ऊपरको उछला और विषकी लपटोंके प्रभावसे अत्यन्त खारी और महाभयानक तरलतरंगें जलमें उठने लगीं और चारों ओरसे यमुनाका जल सौ सौ धनुषतक फैलगया, भगवान्‌का अनन्त बल है, इस कार्यमें को ई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन्! महाबलवान् हाथीके समान जिनका पुरुषार्थ जिस समय कालियदहमे जाकर गिरे, उस समय बलशाली भगवान्‌के भुजदण्डसे ताडित जल शब्दको सुनकर और श्रीकृष्णसे अपने घरका विनाश समझकर कालीनाग अपने मनमें कहने लगा कि, ऐसा कौन बलवान् है जो मेरे घरमें आनकर धूम मचा रहाहै, जब उससे न सहागया तब झट झपट श्रीकृष्णके सन्मुख धाया ॥ ८ ॥ दर्शन करनेके योग्य, सुन्दरस्वरूप, सुकुमार अवस्था, मेघवर्ण, हृदयमें भृगुलताका चिह्न

विराजमान, पीतवसन धारण किये, मन्दहास्य सहित जिनका मुखारविन्द, निर्मल खिलेहुये कमलसे जिनके पदपंकज, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्‌को
निश्शंक उस विषैले जलमें विहार करता देख,अत्यन्त क्रोधित हो बक्षस्थलमें डसनेको दौडा परन्तु उस मोहनीमूर्तिको निहारकर मोहित होगया ॥
॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके देहमें सर्प लिपटाहुआ देखकर सब प्यारे मित्र ग्वालबालक सब दुःखित हुये तथा श्रीकृष्णचन्द्रमें देह मित्र, धन, स्त्री समस्त
कामना जिनमें अर्पण करदी और दुःख शोक भयसे सुधि बुद्धि बिसार वे गोप पृथ्वीमें पछार खायके गिरतेभये ॥ १० ॥ गाय, बैल,
वत्स, छोटी छोटी बछियें, महा दुःखी होकर रम्भाने लगीं और टकटकी बाँधकर मनमोहन प्यारेकी ओर देखने लगीं और डरके मारे ऐसे सुस्त

तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ॥ कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशो
कभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥ गावो वृषा वत्सतर्यः क्रंदमानाः सुदुःखिताः ॥ कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदंत्य इव
तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ॥ उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥
तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नंदपुरोगमाः ॥ विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारतितुं गतम् ॥ १३॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं
मत्वा प्राप्तमतद्विदः ॥ तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वेग पशुवृत्तयः ॥
निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥

होरहे थे मानों रोरहे हैं ॥ ११ ॥ अनन्तर व्रजमें बडे २ तीन प्रकारके उत्पात हुये जैसे धरती कँपनेलगी, आकाशसे तारे छूटने लगे पुरुषोंकी
बाईं भुजा और बाईं ऑख फडकने लगे ऐसे शीघ्र भय जतानेवाले उत्पात होनेलगे ॥ १२ ॥ नन्दप्रभृति उन उत्पातोंको देखकर अत्यन्त
भयभीत हुये कि, आज विना बलदेवको संग लिये कृष्ण अकेले गायें चरानेको गयेहैं ॥१३॥ उन खोटे उत्पातोंसे श्रीकृष्णका निधन मानकर और
उनके प्रभावको कुछ न जानकर श्रीकृष्णमें जिनका तन, मन, धन लग रहा था, वह इन कठिन उत्पातोंके भयसे अत्यन्त पीडित हो ऐसे कहने लगे
॥१४॥ उस समय नन्द यशोदादिक सब व्रजवासी बाल, वृद्ध, स्त्री, अत्यन्त व्याकुल हो रोते पीटते पशुकी नाईं राम कृष्णके खोजनेको गोकुलसे

बाहर निकले,क्योंकि पूर्ण प्रेमसे जिनके मन श्रीकृष्णमें लग रहेथे ॥ १५ ॥ मधुवंशमें उत्पन्न हुये भगवान् बलदेवजी व्रजवासिनको व्याकुल देखके कुछ हँसे और अपने छोटे भैया श्रीकृष्णचन्द्रके अद्भुत प्रभावको जानतेथे। इनके हँसनेसे सबके प्राणबचे, क्योकि, जिसके बडे भैया हँसरहेहैं तब समझगये कि कुछ कुशल है ॥ १६ ॥ वह सब व्रजवासी कृष्णप्यारेको ढूँढते ढूँढते मार्गमें कृष्णचन्द्रके चरणचिह्न देखे, उन चरण चिह्नोंको देखकर सब पुकार कर कहने लगे कि, देखो भाई और ग्वाल बालोंकेभी चरणचिह्न पृथ्वीपर लग रहेहैं और गाय बछडे भी उनके संगहैं, विदित होताहै कि यमुनाके ओरको गये हैं, यह कह सब व्रजवासियोंने कुछ कुछ धैर्य धारण किया ॥१७॥ हेराजन्! वह लोग गायोंके मार्गमें और

तांस्तथाकातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः ॥ प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ॥ भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥ ते तत्रतत्राब्जयवांकुशाशनिध्वजो पपन्नानि पदानि विश्पतेः ॥ मार्गे गवामन्यपदांतरांतरे निरीक्षमाणा ययुरंगसत्वराः ॥ १८ ॥ अंतर्हृदे भुजगभो गपरीतमारात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयांते ॥ गोपांश्च मूढधिषाणान्परितः पशूंश्च संक्रंदतः परमकश्मलमापु रार्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनंते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरंत्यः ॥ ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुः खतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥

ग्वालोंके पदोंके बीचमें श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् जगदीश्वरके चरणोंके चिह्न कमल, यव,अंकुश,वज्र,ध्वजाकी रेखा देखते देखते बहुत शीघ्र चले॥१८॥ सब स्त्री, पुरुष कालीदहके किनारे पहुँचे जाकर देखा तो दहके भीतर कालीनाग श्यामसुंदरके शरीरमें लिपट रहा है और उनकी चेष्टा विहीन हो रही है, किनारे पर जडबुद्धिहुए ग्वाल बाल पछाड खाये पडे हैं, चारों ओर गाय बछड़े रम्भाते फिरैहैं, उन सबकी यह दशा देखकर सब महादुःखी हुए ॥ १९ ॥ जिन गोपियोंका मन अनन्त भगवान्में लय हो रहाहै वह गोपी मनमोहनमें मन लगानेवाली श्रीकृष्णचन्द्रका प्यार, मन्दमुसकान तिरछी चितवन, मधुर वचनोंकी सुधि करके अतिशय प्यारे श्यामसुंदरको सर्पसे ग्रसितहुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल होगई और तीनोलोक सूने

दिखाई देने लगे ॥ २० ॥ पुत्र श्रीकृष्णको दहमें देख यशोदा माता जलमें गिरने चली, तब गोपियां उन्हें पकड़ अति दुःखित होके आंखोंमें आँसू बहातीं यशोदाकी समान दुःख करतीं, व्रजमें करी हुई भगवान्की प्यारी लीला उनका वर्णन करतीं भगवान्के मुखकी ओर दृष्टि देकर गोपियां मृतकके समान होगईं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रमें प्राण लगाये कालिंदीके दहमें पुत्रशोकसे नन्द आदि व्रजवासियोंको दहमें गिरता देख श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले भगवान् बलदेवजी रोकते भये ॥ २२ ॥ इस प्रकार गोकुलवासियोकी अनन्य गति देख और उनको कोई छुडानेवाला नहीं यह समझके तथा स्त्री बालकों सहित गोकुलवासी मेरे लिये बहुत दुःखित हैं यह विचारके मनुष्यकी तुल्य लीला करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र

तास्ताः प्रियव्रजकथाः कथयंत्य आसन्कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशंतो नंदादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् ॥ प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥२२॥ इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ॥ आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरंगबंधात् ॥२३॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान्भुजंगः ॥ तस्थौ श्वसञ्श्वसनरंध्रविषांबरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥२४॥ तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ॥ क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेंद्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥२५॥

दो घडीतक उस सर्पके कुंडलीमें रहके फिर उसके बाहर निकलते भये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णने अपना इतना देह बढाया कि, उसके अंगके सब बन्द बन्द ढीले होगये, नस नस दुखनेलगीं हड्डियोंके जोड़ जोड़ टूटने लगे, तब तो वह नाग कृष्णचन्द्रको छोड़ महाक्रोधकर फणोंको उठा उठाकर लम्बे लम्बे श्वास लेनेलगा और नथनोंमेंसे विषकी झलैं निकलनेलगीं, आँखोंके पलक खुलेके खुले रहगये और मुखसे विषानलकी ज्वाला भडकनेलगीं, लकडी की नाईं कृष्णकी ओरको देख रहाथा ॥ २४॥ दो दो फाँकवाली जिह्वाओंसे अधरोंको क्षण क्षणमें चाट चाटकर क्रोध करता था; उस विकराल विषानलभरी चितवनवाले कालीनागके चारों ओर फिर फिर कर व्रजविहारी विहार करते फिरते थे जैसे गरुड सर्पके चारों ओर फिरताहै और वह

काली भी अपना अवसर देखता हुआ भगवान्के चारों ओर घूमता फिरता था, श्रीकृष्ण अपना दॉव विचारते थे, काली अपना दाँव विचारता था, श्रीकृष्णकी इच्छातो यह कि,मेरा दॉवलगै तो कालीके फणोंपर चढ़करनृत्यकरूँ और कालीके मनमें यह विचार कि,किसीप्रकार एक बारतो वनमाली को फिर लिपट जाऊँ दोनों अपना २ दाँव तक रहेथे ॥२५॥ जब फिरते फिरते कालीका पराक्रम घट गया तब कालीके ऊपरको उठेहुये फणोंको नीचे नवाय श्रीकृष्णने झट झपट कर उसका फण पकड चरणतले दाब उसकी नाकमें नाथ डालदीं और उसके शीशपर जा चढे और नाचनेलगे॥२६॥ जिस समय नटनागर नटवरवेष धरकर कालीके फणोंपर नाचनेको खडे हुए, उसको देखनेके लिये गन्धर्व, सिद्ध सुरगण चारण, देवांगना यह सब अत्यन्त प्रसन्न होकर मृदंग ढोलक नगाड़े आदि अनेक प्रकारके बाजे बजाते गीत गाते, पुष्प वर्षाते, भेंटें ले लेकर आये और भगवान्की स्तुति करने

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरस्स्वधिरूढ आद्यः ॥ तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादांबुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥ तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगंधर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ॥ प्रीत्या मृदंगपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥ यद्यच्छिरो न नमतेंग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्द खलदंडधरोंघ्रिपातैः ॥ क्षीणायुषो भ्रमत उल्वणमास्यतोऽसृग्नस्तो वमन्परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निश्श्वसतोरुषोच्चैः ॥ नृत्यन्पदाऽनुनमयन्दमयांबभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः॥२९॥

लगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! जिस कालीके एक सौ एक मस्तक थे, उसने जो मस्तक ऊपरको उठाया उसको दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रने उसीसमय पॉवकी ठोकरसे नीचेको दबादिया और जब वह क्षीण अवस्थावाला इधर उधर घूमने लगा तब मुखसे नासिकासे रुधिरकी धारा निकलने लगीं, शरीरके बन्द ढीले होगये, इस प्रकार कालीको दुष्टदमन भगवान्ने मर्दन किया ॥२८॥ तोभी उस काली नागने महाक्रोध करके लम्बे लम्बे श्वास लिये और मुखसे विष उगला और फिर शिर ऊपरको उठाये परन्तु भगवान् शत्रुदमननें नृत्य कर करके चरणोंकी ठोकरोंसे उसके मस्तकोंको नीचेको झुकादिया, उस समय गन्धर्व और देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर, शेपनागकी शय्यापर शयन करनेवाले नारायणकी समान जानकर

यशोदानन्दन भगवान्‌की पुष्पोंसे पूजा करी. उससमय व्रजवासियोंको आदिपुरुषकासा दर्शन हुवा ॥ २९॥हे राजन्! नटनागर भगवान्‌ने जोचित्र विचित्र ताण्डव नृत्य किया उससे कालीके फणरूपी छत्र टूट गये और सब शरीरकी नस नस ढीली होगई, मुखसे रुधिर बहनेलगा,तब श्रीकृष्णको स्थावर जंगमका गुरु पुराणपुरुष नारायण समझकर मनसे उनकी शरण ली ॥ ३० ॥ समस्त ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें विराजमान है ऐसे विश्वभावन भगवान् मुरलीधरने त्रिलोकीका भार अपने देहमें धारणकर कालीके मस्तकपर मुरली बजाय बजाय उछल उछलकर ताण्डवनृत्य किया, उस समय मुरलीमनोहरका कौतुक देखनेके लिये देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरादिक अपने अपने विमानोंपर बैठकर आये और अनेक प्रकारके बाजे बजाबजाकर श्रीवैकुण्ठविहारीके उत्तम उत्तम चरित्र गाने लगे, अप्सरायें भाँति भाँतिके नृत्य करने लगीं. देवता आकाशसे पुष्प वर्षाने लगे, उस समय देवता गन्धर्व, जो ताल स्वर सहित गाते थे, उसीमें मुरली मनोहर अपनी मुरलीकी तान मिलाते थे और जब कालीके शिरोंपर ठुमक ठुमक पग

तच्चित्रतांडवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरुवमन्नृप भग्नगात्रः ॥ स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥ कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ॥ दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबंधाः ॥ ३१ ॥ तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ॥ साध्व्यः कृतांजलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥

धरते थे और नूपुरोंका शब्द सब बाजोंमें मिल रहा था उन नूपुरोंकी झनकारकी ध्वनि सुनकर पवन पानी भी बहनेसे बन्द होगये, उससमयका आनन्द वर्णन करनेमें ब्रह्मादिक देवताभी चकित होते हैं, फिर और किसी दूसरेकी क्या सामर्थ्य है जो उस आनन्दका वर्णन करसके, जब त्रिभुवनपतिने त्रिभुवनका भार कालीके शिरपर रक्खा तब उसके सब अंग शिथिल होगये, मुखोंसे रक्तकी फुहारें निकलने लगीं देह थककर जब मृतक समान होगया और सब अभिमान जाता रहा, उस समय अपने जीवनकी आशा छोड फणोंको पृथ्वीपर पटकने लगा. मस्तक २ पर चरणारविन्दोंके चिह्न होगये, उससमय कालीकी दुर्दशा देख कर वस्त्र आभूषण जिनके अस्तव्यस्त होगये, केश खुलगये, ऐसी कालीकी पत्नियें पतिके शीशोंको छत्रकी समान टूटते देखकर हृदयमें कराघात करती नारायणकी शरण आईं ॥३१॥ अत्यन्त व्याकुल जिनके मन अपने अपने छोटे छोटे बच्चोंको

आगे करके नागकी पतिव्रता स्त्रियें अत्यन्त पीडित हो प्रथम पृथ्वीपर पडकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और अपने पतिके पापछुटानेके लिये श्रीकृष्ण भगवान्के चरण शरणमें आईं ॥ ३२ ॥ नागपत्नियें बोलीं, कि हे नाथ ! इस अपराधीको आपने दण्डदिया सो अच्छा किया. क्योंकि आपका अवतार दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये है शत्रु और मित्रको आप एकसा समझते हो, इसीलिये आपका नाम समदर्शी है, दुष्टको विचारकर दण्ड देतेहो और मित्र समझकर उनपर अनुग्रह करते हो, दुष्टोंको दण्ड देते हो यह आपकी कुछ विषमता नहीं है ॥ ३३ ॥ इस सर्पको आपने दण्ड दिया सो इसके ऊपर बडा अनुग्रह किया क्योंकि आपके दण्ड देनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं, जिस अपराधसे इसकी सर्प

नागपत्न्य ऊचुः ॥ न्याय्यो हि दंडः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ॥ रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयं भवता कृतो हि नो दंडोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ॥ यद्दंदशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥ ३४ ॥ तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ॥ धर्मोऽथवा सर्वजनानुकंपया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥ ३५ ॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवांघ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ॥ यद्वांछया श्रीर्ललनाऽचरत्तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥ न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वांछंति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

योनि हुई वह अपराध दूर होगया, इसलिये आपका क्रोध भी कृपारूपी है ॥ ३४ ॥ इस हमारे पतिने पूर्व जन्ममें ऐसा क्या तप किया है। जिससे सब प्राण दानदेनेवाले आप इसपर संतुष्ट हुए हो, इस मानरहित हमारे पतिने अपना मान तजकर औरोंका मान किया और सब लोगों पर दयाही करता रहा, नहीं तो ऐसे क्रूर बुद्धि सर्पपर आप क्यों अनुग्रह करते ? ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशवान् ! यह सर्प आपके चरणारविन्दकी रजके स्पर्श करनेका अधिकारी हुवा, सो कौनसी तपस्याका ऐसा श्रेष्ठ फल है ? यह हम नहीं जानतीं, जिन चरणारविन्दके स्पर्शके लिये लक्ष्मीजीसी उत्तम स्त्रीने सब कामनाओंको तजकर व्रतको धारण करके बहुतबरसों तक तप किया ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषोंने आपके चरणरविन्दकी रजकी शरण

ली है, वह पुरुष न तो स्वर्गकी न चक्रवर्ती राज्यकी, न शिवलोककी न इन्द्रलोककी, न ब्रह्म लोककी न पातालकी, न योगकी, न सिद्धियोंकी और न मोक्षकी चाहना करतेहैं ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! लक्ष्मीसे आदि लेकर बड़े बड़े ऋषि मुनियोंको आपके चरणारविन्दकी रज महादुर्लभ है, उस रजको, क्रोधके वश तमोगुणसे उत्पन्न विषवाले सर्पोंका राजा काली विना उपायही प्राप्त होगया क्योंकि अपने कर्मोंके वशसे संसारचक्रमें भ्रमते तुम्हारे चरणारविन्दके रजकी शरण चाहनेवाले शरीरधारियोंको मनमानी सम्पत्ति मिलती है ॥ ३८ ॥ छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त सर्व देहोंमें अन्तर्यामी रूप करके रहित उनमें विराजमान रहते हो, तोभी उनमें छिप नहीं जाते हो. पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश, इन पंचभूतोंके आश्रयरूप, सबके आदि कारण, आप कारणसे रहित, ऐसे परमकारण परमात्माको हम वारंबार नमस्कार करतीहैं ॥ ३९ ॥ आप ज्ञान विज्ञान कहिये चैतन्य

तदेष नाथाऽऽप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ॥ संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥ ४० ॥ कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ॥ विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेंद्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥ त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनंताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ॥ नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये॥४३॥

शक्ति करिके परिपूर्ण हो, व्यापक हो अनन्त शक्तिमान, निर्गुण निर्विकार मायाके प्रवर्त्तक हम वारंबार आपको नमस्कार करतीहैं ॥ ४० ॥ आप कालरूप हो, कालशक्तिके आश्रय हो, कालके अंगोंके देखनेवाले हो, विश्वरूप हो, विश्वके देखनेवाले हो और विश्वके कर्त्ता हो और विश्वके कारण हो, तुमको बारंबार नमस्कारहै ॥४१॥ पृथ्वी, जल, वायु, शब्द, आकाश, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और दश इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि चित्त इनके रूपहो, त्रिगुण अहंकारसे अपने अंशरूप जीवोंके स्वरूपका आच्छादन करनेवाले आपको बारंबार नमस्कारहै ॥ ४२ ॥ आप अहंकारसे आच्छादित नहीं, इससे अनन्त हो, दृष्टिगोचर नहीं इससे सूक्ष्म हो, उपाधियोंका विकार नहीं इससे निर्विकार हो, कोई कहता है सर्वज्ञ हो, कोई

कहता है सर्वज्ञ नहीं हो, कोई कहताहै हो, कोई कहताहै अचिन्तनीय हो, कोई कहताहै बद्ध हो, कोई कहताहै मुक्तहो कोई कहताहै एक हो कोई कहताहै अनेक हो इत्यादिक जो अनेक प्रकारके झगडेहैं तिनमें मायासे जो जैसे कहैहैं उस समय वैसेही होजाते हो,नाम नामी यह जो शक्तिका भेद इससे अनेकरूप करके प्रतीक्षा करने योग्य जो तुम हो ऐसे आपको बारंबार हमारा नमस्कार है ॥४३॥ आप नेत्रोंसे आदि लेकर सब इन्द्रियोंके प्रकाश करनेवाले हो, स्वतःसिद्ध ज्ञानके विषयी हो, वेदके कारण हो, वेद आपके श्वासोंसे हुए हैं प्रवृत्तिके प्रतिपादक वेदरूप आपको हम नमस्कार करतीहैं ॥ ४४ ॥ शुद्ध अंतःकरणके प्रकाश करनेवाले भक्तोंके रक्षक रामकृष्णरूप वसुदेवतनय, प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्ध रूप आपको

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमोनमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥ नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ॥ गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

हमारा नमस्कार है ॥ ४५ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणके प्रकाशक, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके प्रकाश करनेवाले अर्थात् इनके अधिष्ठाता हो, इसीसे चाररूप हो, तीनगुणोंसे उपासनाको चित्र विचित्र फल देनेके लिये अपने आत्माको ढककर अनेक रूपसे भासो हो. मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारसे चैतन्य निश्चयको आदि लेकर वृत्तिसे जाननेमें आओ हो. मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके साक्षी व अगोचर आपको नमस्कार करती हैं ॥ ❀ ॥ ४६ ॥

❀ दृष्टान्त—एक धनाढ्य ब्राह्मण कृष्णके बडेभक्त थे, परन्तु भोले भाले भी बहुत थे, लोगोंने धोखा दे दिलाकर और कुछ धन लेकर उनका एक चाण्डालकी कन्याके साथ विवाह कर दिया, एक दिन वह कन्या खिडकीमें बैठी थी अकस्मात् उसके देशके चाण्डाल वहाँ आ निकले, वह देखकर बोले कि, अरी नत्थनकी बेटी ! तू यहां कैसे आगई? लोगोंने बूझा कि, तुम इसको क्या जानों ? वह बोले कि, हमारे गांवकी जाई जन्मी, हमारे सामने छोटीसे बडी हुई, नत्थन भगीकी बेटी है, तब तो वह ब्राह्मण बहुत घबराये, पण्डितको बुलाकर बूझा कि, हमको क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ? ब्राह्मणोंने कहा कि, सूखे हुए पीपलके वृक्षके खखोडलमें जलो तो पाप छूटे, ब्राह्मण पीपलका खखोडल मँगाय उसमें माला लेकर बैठगये और लोगोंने उसमें आग लगादी, जब सब पीपलकी लकडी जलकर भस्म होगई ब्राह्मण बैठे माला फेरते रहे तब सब लोग उन ब्राह्मण देवताको दण्डवत् प्रणाम कर बोले कि, उठो अब प्रायश्चित हो चुका, ब्राह्मण बोले कि, अब वह स्त्री क्या करै ? लोग बोले कि, उसकी बिरादरीको देदो, ब्राह्मणने चाण्डालोंसे कहा कि, स्त्रीको तुम लेजाओ, चाण्डाल बोले कि, जब यह ब्राह्मणके घरमें रही तो अब हमारे किसकाम की है ? लोगोंने कहा तुमही रहने दो, ब्राह्मण बोले तुम मुझसे फिर प्रायश्चित कराओगे, लोग बोले नहीं—

आपकी महिमा विचारनेमें नहीं आती परन्तु सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति प्रकाश करनेके कारण जाननेमें आते हो, इन्द्रियोंके प्रेरक आत्मामें रमण करनेवाले सत्स्वभाव आपको हम बारंबार नमस्कार करती हैं ॥ ४७ ॥ स्थूल सूक्ष्म सबकी गतिके जाननेवाले हो सम्पूर्ण विश्वके साक्षीहो, विश्व आपके स्वरूपमें नहीं और विश्वके स्वरूपमें आप नहीं आप विश्वके निषेधकी अवधिहो जैसे सर्पके प्रकाशका आश्रय रस्सी आप विश्वप्रकाशनेके आश्रय हो, अरोप और निषेधके साक्षी आप हो; विश्वका आरोप और निषेधके ज्ञान अज्ञानके कारण हो, जहाँतक ज्ञान है वहाँतक विश्व माननेमें आवैहै अर्थात् विद्यासे और अविद्यासे अपवाद और अध्यासके हेतु आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! आप

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ॥ हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥ अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक् ॥ तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥ तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शांता अशांता उत मूढयोनयः ॥ शांताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥

चेष्टासे रहित हो। कालशक्तिको धारण करके सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन, संहार करोहो हे अमोघविहार अर्थात् सफलविहार क्रीड़ावाले अपनी इच्छासे उन उन संस्काररूपसे रहे स्वभावोंको प्रतिबोधन करतेहुए क्रीडा करते हो ॥ ४९ ॥ त्रिलोकीमें शांतस्वभाव, अशान्तस्वभाव, घोरस्वभाव, मूढस्वभाव, इस प्रकार सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुणकी प्रधानतासे तीन स्वभावके प्राणी आपके खेलनेके लिये खिलौना हैं। साधुओंकी रक्षा करनेके लिये कटिबद्ध होकर अवतार धारण करते हो, इसलिये आपको शांत स्वभावही

—अलग एक कोठरीमें रखदेना दो रोटी दूसे दे दिया करना दैवयोगसे चाण्डालिनीका देह छूट गया, तब वह ब्राह्मण चाण्डालोंसे बोले कि इसको उठाओ, चाण्डाल बोले इसे उठानेसे हमको बिरादरीमें रोटीदेनी पड़ेगी, हम इसको नहीं उठानेके तुमही उठाओ, ब्राह्मण बोला मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ैगा, ऐसेही शोच विचार करते दो घडी दिन रह गया, तब ब्राह्मणही उसको उठाने चले, उसका वस्त्र उघाड कर देखा तो उसके समीप फूल बहुतसे पडे हैं और पार्षदोंके पदोंके चिह्न लगरहे हैं, वहा न कोई चाण्डालिनी न कोई मृतक है बस वह नि संदेह परमधामको चली गई, सत्सङ्गतिकी ऐसी उत्तम महिमा है ॥

प्राणी प्रियहैं; क्योंकि सज्जनोंके धर्म पालनकी इच्छासे प्रवृत्ति करते आपने अभी उनकी रक्षाके लिये अवतार लिया है ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! अब हम अबलाओंपर कृपाकीजिये नहीं तो यह काली सर्प प्राण छोड़े देता है, सत्पुरुषोंके शोचनीय हम दीन अबलाओंपर अनुग्रह करके पतिरूप प्राणदान दीजिये ॥ ५१ ॥ स्वामीका यही धर्म है कि एकबार जो अपनी प्रजासे अपराध होजाय उस अपराधको क्षमा करदें, हे शान्तस्वरूप !

अनुगृह्णीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः ॥ स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५१ ॥ अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ॥ क्षंतुमर्हसि शांतात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५२ ॥ विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ॥ यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्सम भिष्टुतः ॥ मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जांघ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥

अनजान इस अज्ञान कालीके अपराध अब क्षमा करो * ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं कुछ आज्ञा करनी हो सो आज्ञा कीजिये, हम आपकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक करेंगी हे नाथ ! जो आपकी आज्ञाको हितचित्तसे करतेहैं उनके सम्पूर्ण भय छूट जातेहैं ॥५३॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी

---

* दृष्टान्त–जैसे एक राजाने किया, कैसे ? आधी रातके समय वेष बदलकर नगरकी शैरको निकला कि देखें कोतवाल और चौकीदार रात पहरा देते हैं वा नहीं देते चौकीदार ने बूझा कौन ! राजाने कुछ उत्तर न दिया, तब चौकीदारने पकडलिया और उनकी पगडी उतारकर उसीसे उनके हाथ बाँध लिये और बहुत मारा, परन्तु राजा तोभी न बोले, चौकीदारने और मारा और कहा कि, अरे दुष्ट ! तूही रोज चोरी करके लेजाता था आज बहुत दिनोंमें पकडा है, राजा तोभी न बोले कि चौकीदारने हवालातमें पकडकर बैठाल दिया, जब दिन निकला और लोग इधर उधरसे आने जाने लगे देखें तो राजा हवालातमें बैठे हैं, तब तो लोगोंने बडा आश्चर्य माना कि यह क्या बात है ! चौकीदारने सब वृत्तान्त सुनाया और राजाके चरणोंमें गिर गया कि मेरा अपराध क्षमा कीजे और राजाके हाथ पाव खोल दिये परन्तु मनमें डरता रहा, न जाने राजा मुझको क्या दड दें राजा चुप चाप उठकर मंदिरमें चले गये और स्नान पूजाकर राज्य दर्वारमें आये और चोवदारसे कहा कि जो चौकीदार रातको गोपालगजमें पहरा देता था उसको इसी समय हमारे पास लाओ, चौकीदार डरता कापता राजाके सन्मुख आया राजाने प्रसन्न होकर सौ (१००) अशरफी पारितोषिकमें उसे दी और एक गाव उसकी सन्तानके वास्ते दिया. मन्त्रीने हाथ जोडकर बूझा कि इसकी क्या वीरता लिखी जायगी राजाने अपना देह उघाडकर दिखाया और रातका सब वृत्तान्त सुनाया, मन्त्रीने कहा कि इसको तो शूली देनी चाहिये थी राजा बोला आप नहीं समझे यह अपने काममें बहुत सावधान है क्योंकि जो मुझसेही न चूका फिर यह औरसे कभी न चूकेगा अपने काममें सावधान रहनेवालेको सदा परमानन्द प्राप्त होता है ।

बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जब इसप्रकार नागपत्नियोंने श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी स्तुतिकी, तब भगवान्ने मूर्छित पड़ेहुए उस भग्नमस्तक काली नागको चरणकी ठोकरसे प्रहार कर छोड़दिया ॥५४॥ सहज सहजमें वह दीन काली सचेत होकर लम्बे लम्बे श्वास लेने लगा, और हाथ जोड़कर भगवान्से निवेदन करनेलगा॥५५॥ हे नाथ ! जबसे हम उत्पन्न हुए हैं तबसेही हम दुष्टहैं तामसी हमारा स्वभावहै,बड़ा भारी हमारा क्रोध है,लोगोंका खोटा आग्रहरूप स्वभाव नहीं छूटता ॥५६॥ हे सम्पूर्ण जगत्के रचनेवाले ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे अनेक प्रकारका विश्व आपने रचा है और जिसके स्वभाव, शक्ति, बल, योनि, बीज संस्कार और आवृत्तियें, यह सबकी पृथक् पृथक् प्रकारकीहैं, यह विश्व आपहीका रचाहुआ है ॥५७॥ हे

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ॥ कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राह कृतांजलिः ॥ ५५ ॥ कालिय उवाच ॥ वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ॥ स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥ त्वया सृष्ट मिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ॥ नानास्वभाववीर्यौजो योनिबीजाशयाकृति ॥ ५७॥ वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरु मन्यवः ॥ कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भवान्हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः ॥ नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥ ६० ॥

भगवन् ! इस विश्वमें हमें सर्प बनाये.जन्मसेही हमारे हृदयमें अधिक क्रोध बढ़ा और हम आपहीकी मायासे मोहित होरहेहैं सो आपसे मोहित हुए हम आपकी मायाको कैसे छोड़ सक्तेहैं ॥ ५८ ॥ सम्पूर्ण भेदोंको जानने वाले जगत्के ईश्वर आपही हो, सो आपही मायाके छुटानेके कारणहो, जो काम आपने हमको सौंपा, उसपै हम ऐसे दुष्ट रहे सो आपसे भी न चूके यह मानकर चाहै हमारे ऊपर कृपा करो, चाहे दण्ड दो आप परमेश्वर हो, सब काम करने योग्य हो हे राजन् ! जब दीनदयालु दीनानाथने व्यालको अत्यन्त बेहाल देखा. तब उसका श्रम दूर कर चतुर्भुज रूप दर्शन दिया ॥ ५९ ॥ और भगवान्ने कहा कि, मैंने तेरे मस्तकसे अपने चरणसरोज छुवादिये अब तुझको किसीप्रकारका शोक सन्ताप न होगा परन्तु

अब तू इस कुण्डका वास छोडकर रमणकद्वीपको चलाजा ॥ ६० ॥ और अपनी जातिके सर्प और बाल बच्चे स्त्रियोंको भी साथ लेजा, क्योंकि अब मैं यहाँ जलक्रीडा किया करूंगा और गाय बछड़े और ग्वालबाल यहाँका जल पिया करैंगे आजसे इसका नाम कालीकुण्ड हुआ, जो पुरुष प्रातःकाल उठकर अथवा संध्यासमय इस चरित्रका पाठ करेगा उसको सर्पका भय न होगा ॥६१॥ यह कालीदह स्थान मेरे विहार करनेका है जो पुरुष इसमें स्नानकर इस जलसे पितृदेवताका तर्प्पण करेगा वा व्रत और मेरा पूजन करेगा उसको अश्वमेध यज्ञका पुण्य होगा और अन्तसमय परमधामको जायगा, फिर इस असार संसारमें जन्म न लेगा ॥ ६२ ॥ जिस गरुडके भयसे रमणद्वीपको छोडके तू इस

स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ॥ य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ ६१ ॥ कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ॥ ६२ ॥ उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ॥ यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलांछितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच॥ एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥ दिव्यांबरस्त्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः ॥ दिव्यगंधानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥६५॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ततः प्रीतोभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवाद्य तम् ॥ ६६ ॥

दहमें आयके वास कियाहै गरुड तुझको अब न खायगा, क्योंकि तेरे मस्तकपर मेरा चरणचिह्न है ॥ ६३ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि अद्भुत लीलावाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने जब यह बात कही, तब नाग और नागकी स्त्रियें अत्यन्त आनन्द सहित श्रीकृष्ण भगवान्की पूजा करनेलगीं ॥ ६४ ॥ दिव्यवस्त्र, माला मणि, अमूल्य आभूषण और दिव्य सुंगध, केशर, कस्तूरी, चन्दन, आदिका लेपन और बड़ी बड़ी कमलकी मालाओंसे ॥६५॥ गरुडध्वज भगवान्की पूजा करी और कालीसर्पने भगवान्की आज्ञामान उसी समय परिक्रमा दे दण्डवत् प्रणाम कर

अपने कुटुम्ब समेत अपने उरगद्वीपको चलागया ॥ ६६ ॥ वृन्दावनविहारी, विहारकरनेके लिये मनुजरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे यमुनाजीका जल अमृतके समान निर्मल होगया लेशमात्र भी विष न रहा ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां कालियमर्दनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा–सत्रह काली नागको, भेजो रमणकद्वीप। बंधु बचाये अग्निते, सो तुम सुनहु महीप॥१॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित्‌ने पूँछा कि, हे भगवन्! ऐसे परमोत्तम रमणकद्वीपको छोडकर, कालीनाग यमुनामें क्यों आया ? और क्या कारण जो अकेले कालीहीने गरुडका अपराध किया, इसका सब वृत्तान्त विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाबाहु !

क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू०कालियदमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमंजसम् ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपहार्यैः सर्पजनैर्मासिमासीह यो बलिः ॥ वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥ २ ॥ स्वंस्वं भागं प्रयच्छंति नागाः पर्वणिपर्वणि ॥ गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ॥ कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः ॥ विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ॥ तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् ॥ अनुग्रहाद्भगवतः

राजा परीक्षित् ! गरुड़ नित्यप्रति रमणकद्वीपमें सर्पोंको भक्षण करनेको आता था तब संपूर्ण सर्पोंने आपसमें विचार कर मासमासको अपना दुःख निवृत्त करनेके लिये वृक्षकी जडमें एकांत गरुडकी भेंट रखनेका निश्चय करदिया ॥ २ ॥ सब सर्प अपनी अपनी बारीसे पीपलके वृक्षपर गरुडजीकी भेंट रखदिया करतेथे कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत होगये ॥ ३ ॥ अपने विषके और पराक्रमके घमण्डमें अभिमानी कद्रूका पुत्र काली, गरुडको कुछ वस्तु न समझकर सर्प्पान्न गरुडके भागको एक दिन आपही खागया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भगवान्‌के प्यारे भाग्यवान् गरुडजीने जब यह बात सुनी कि, हमारे भागका भोजन कालीनाग खागया, उसी समय क्रोधित होकर कालीके मारनेके लिये

अत्यन्त वेगसे कालीके पीछे झपटे ॥ ५ ॥ विषही जिसके शस्त्र वह कालीनाग ऊपरको फण उठा दौडकर गरुड़जीके सन्मुख आया, दन्तआयुध भयानक जीभ, पलक जिनमें लगें नहीं ऐसे भयंकर नेत्रोंवाला काली दाँतोंसे गरुडको काटने लगा ॥६॥ तब तो वासुदेव भगवान्‌के वाहन तार्क्ष्य गरुडजीने बडे क्रोधसे अपने अंगसे छुटाया और सुवर्णकेसे प्रकाशवाले अपने पंखोंसे और चोंचसे कद्रूके पुत्र कालीको मार कर गिरा दिया ॥ ७ ॥ गरुडजी जिससमय पंख प्रहार करतेथे तब पंखोंमेंसे वेदोंके स्वरोंकी ध्वनि निकलतीथी, उनके प्रहारसे और स्वरोंकी गुंजारसे सर्प व्याकुल होते चले जातेथे और काली भी अत्यन्त व्याकुल होगया तो मनमें विचार करने लगा कि, अब गरुडसे मैं किसी प्रकार न जीतूंगा, हारकर यह शोचा कि, अब वहाँ चलना चाहिये जहाँ सौभरि ऋषिने गरुड़को शाप देरक्खा है कि, 'यहाँ गरुड़ न आसके' दूसरे जलमें गरुडका पराक्रम भी न चल सकै, इस प्रकार अ

तमापतंतं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ॥ दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥ तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्प्रचंडवेगो मधुसूदनासनः॥ पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ॥ ह्रदं विवेश कालिंद्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ॥ निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोहरत् ॥ ९ ॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति॥ सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥ तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः॥ अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥

पना बचाव समझकर वृन्दावनके निकट यमुनाके कुण्डमें जाकर निवास किया ॥ ८ ॥ क्योंकि उस दहमें एक समय गरुड़जी मछलियाँ खानेकी इच्छासे आये, तब सौभरिऋषिनें गरुड़को रोका कि, भाई यह हमारे तपस्या करनेंका स्थानहै यहाँ मछली मत मारो, परन्तु क्षुधार्थी गरुड़नें ऋषीश्वरका वचन न माना॥९॥जब मछलियोंका पति एक बडा मत्स्य गरुड़जीने मारा तब मछलियोंको दीन और व्याकुल देखकर उनके बचानेके लिये सौभरि ऋषिने महाक्रोधित होकर यह शाप गरुड़को दिया ॥१०॥ कि, 'इस दहमें गरुड आनकर जो मछलियोंको खायगा तो उसीसमय गरुड़का देहान्त हो जायगा' यह बात मैं सत्य कहूँहूँ इस प्रकार प्राणीमात्रकी रक्षाकरनेवाले सौभरिऋषिने गरुड़को यह शाप दिया ॥ ११ ॥ यह बात काली

भली भाँति जानता था और किसीको यह सुधि नहीं थी कि, गरुडको सौभरिऋषिका शाप है, इस भयसे उस कुण्डमें काली वास करता था, सो श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुण्डसे निकाल कर उसके प्राचीन स्थान रमणकद्वीपको भेज दिया * ॥१२॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन कण्ठमें सुन्दरमाला पहरे, केशर चन्दन चर्चित वस्त्र धारण किये, मणि रत्नोंसे दीप्त सुवर्णके गहने पहने दहमेंसे निकले ॥ १३॥ तब व्रज विहारीको देखकर सब व्रजवासी खड़े होगये जैसे मृतक शरीरमें प्राण आनेसे सब इन्द्रियें चैतन्य होजाती हैं उसप्रकार आनन्दसे पूर्णचित्त हो दौडकर सब व्रजवासी हृदयसे लगा लगा कर मिले और विरहानलकी जो ताप हृदयमें भड़क रही थी वह सब शान्त होगई ॥ १४ ॥

कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रांतं दिव्यस्रग्गंधवाससम् ॥ महामणिगणाकीर्णं जांबूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ॥ प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे ॥ १४ ॥ यशोदा रोहिणी नंदो गोप्यो गो पाश्च कौरव ॥ कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिंग्य जहासास्यानुभाववित् ॥ नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥ नंदं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ॥ ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥

हे कुरुवंशावतंस राजा परीक्षित् ! यशोदाजी, रोहिणीजी, नन्दजी तथा गोप गोपियोंको श्रीकृष्णचन्द्रको आये हुये देखिके ऐसा अनन्द हुआ कि मानो गये हुए प्राण फिर चले आये ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेंवाले बलरामजी घनश्यामकों छातीसे लगाकर हँसकर मिले और गाय, बछरे, बैलोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुये और जो वृक्ष सूख गयेथे वह सब हरे होगये तब सब व्रजवासी बोले कि, भाई बलराम ! तुम भी अपने वचनके पूरेही निकले जो तुमने कहा था वैसाही हुवा अब घर चलनेकी क्या इच्छा है ? ॥१६॥ उसी समय गुरु, पुरोहित, ब्राह्मण, अपनी २ पत्नियों

---

* शंका—क्या उस कुण्डको कालीही नाग जानताथा और कोई दूसरा सर्प उस कुण्डको क्यों नहीं जानता था ? इसका क्या कारण ? उत्तर—कालीनाग नारदजीका चेलाथा, इसलिये नारदजीने कालीको कुण्ड बताया था कि, तुझको कभी विपत्तिकाल पड़े तो तू यमुनाके कुडमें चले जाना, उस कुण्डमें गरुडका बल नहीं चल सकेगा, इसलिये केवल कालीकोही उस कुण्डका वृत्तान्त विदित था ॥

सहित नन्दरायजीसे आनकर कहने लगे कि परमेश्वरने बड़ा अनुग्रह किया जो कालीनागका डसाहुवा तुम्हारा पुत्र बचगया, यह बडे मंगलका समय है ॥ १७ ॥ इनके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको मणि रत्न आभूषण सहित गोदान दीजिये उससमयकी बधाईमें नन्दरायजीनें प्रसन्न होकर हे राजन् ! गायें और सुवर्णका दान ब्रह्मणोंको दिया ॥१८॥ धर्मशीला यशोदा भी बड़ी भाग्यवती है जिसका पुत्र कालके गालमें जाकर लौट आया वह अपने पुत्रको पाय हृदयसे लगाय गोदमें बैठाय बारंबार नेत्रोंसे आंशू बहाने लगी ॥१९॥ हे राजन् परीक्षित! भूख प्यास करके पीडित व्रजवासी नष्टभये पुत्रको पायके गौवों समेत संपूर्ण दिनरात यमुनाजीके किनारे वास करते भये ॥ २० ॥ गरमीकी ऋतु थी आधी रातका समय था ठण्ढी ठण्ढी पवन जो लगी तो सब व्रजवासी पडके सोगये, तब सूखेवनको उस दावानल दैत्यने अग्निरूप वनकर जलाना आरम्भ कर दिया ॥२१॥सब

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ॥ नंदः प्रीतमना राजन्गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् ॥ १८॥ यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ॥ परिष्वज्यांकमारोप्य मुमोचाश्रुकला मुहुः ॥ १९ ॥ तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्शिताः ॥ ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिंद्या उपकूलतः ॥ २० ॥ तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ॥ सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥ तत उत्थाय संभ्रांता दह्यमाना व्रजौकसः ॥ कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥ कृष्णकृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ॥ एष घोरतमो वह्निस्तावकान्ग्रसते हि नः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ॥ न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥

पृथ्वी और आकाश लाल लाल दीखने लगा,पशु पक्षी व्याकुल होकर भागने लगे जब महा कुलाहलपडा तो सब व्रजवासी घबराकर जाग उठे और पुकार पुकार कर श्रीकृष्णचन्द्रके शरण आगये और कहने लगे ॥ २२ ॥ हेकृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे राम ! हे अत्यन्त पराक्रमी ! आप शीघ्र हमारी सहाय कीजे यह महाभयानक कृशानु हमको भस्म करे डालता है हे संकटमोचन ! शीघ्र हमारी सहाय कीजे जब जब हमलोगों पर भारी भीर पडती है तब तब तुमहीं सहाय किया करते हो. तृणावर्त, शकटासुर, बकासुर, अघासुरको मार हमारी रक्षा करी वैसेही अब भी हमारी रक्षा करो, हम सब आपहीके हैं ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! इस महाघोर कालरूप अग्निसे हम लोगोंको बचाओ. हे मित्र ! हम इस भयंकर अग्निमें

जलनेसे भी नहीं डरते केवल आपके चरणारविन्दके वियोगसे डरतेहैं, सो आपके निर्भय पदको हम नहीं त्याग सक्ते ॥ २४॥ इस प्रकार विश्वके ईश्वर और अनंतशक्तियोंके धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अपने व्रजवासियोंको व्याकुल देख उस भयानक अग्निको पान करते भये ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां दावानलमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–अष्टादशमें ग्रीष्मसे,लक्षित सुखद वसंत। हरिकी पाय सहाय कछु, हत्यो प्रलम्ब अनंत ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे नरेन्द्र! फिर श्रीवृन्दावनविहारी मनमें प्रसन्न होकर अपनी जातिके सब व्रजवासियोंको साथ लिये, अग्निका पान किये, पीछेपीछे व्रजवासी जिनके चारित्र गाते चले आतेथे, ऐसे श्यामसुन्दर गायोंके समूहोंसे शोभित व्रजकी ओरको पधारे ॥ १ ॥ गायोंके चरानेके बहानेसे अनेक प्रकारकी माया करके दोनों भाई व्रजमें विहार करतेथे

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥ तमग्निमपिबत्तीव्रमनंतोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० दशमस्कंधे पू० कालियनिर्यापणदावाग्निपानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥ अनुगीयमानोन्यविशद्व्रजं गोकुलमंडितम् ॥ १ ॥ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ॥ ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥ स च वृन्दावनगुणैर्वसंत इव लक्षितः ॥ यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ॥ शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममंडलमंडितम् ॥ ४ ॥

उसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आई वह समय देहधारियोंके लिये सुखदायक नही था ॥ २ ॥ परन्तु वह ग्रीष्मऋतु भी वृन्दावनके गुणोंसे वसंत ऋतुकी समान जान पड़ती थी क्योंकि जहाँ साक्षात् श्रीवृन्दावनविहारी कृष्णचन्द्र भगवान् बलरामजीके साथ विराजते थे फिर भी वहाँ वसन्त न रहै? बड़े आश्चर्यकी बात है? वहाँ तो सदा वसन्त रहना चाहिये, वृक्षोंपर बारहोंमास फल फूल खिलते रहैं, त्रिविध बयारी झकोलती रहैं आमोंकी डालियोंपर कोकिला कूकती रहैं भाँतिभाँति के पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियें बोलते रहैं, मोर शोर कर कर चारोंओर झिंगारते रहैं और अनेक अनेक प्रकारकी शोभा नित्यप्रति बनीरहै तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि जहाँ त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी विहार करें वहाँ भी यह शोभा न हो तो फिर कहां हो? ॥३॥ जहाँ जलके झरनोंका ऐसा गम्भीर शब्द हो रहाथा उस शब्दके सामने झींगरोंका शब्द सुनाई नहीं

देताथा और सदा झरनोंकी छींटोंसे हरे हरे वृक्षोंके समूहोंसे वृन्दावन अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ॥ ४ ॥ वहाँ हरी हरी घास ऐसी शोभायमान जान पडती थी मानों हरी मखमलका बिछौना बिछ रहाहै, उस वृन्दावनमें कह्लार, कंज और उत्पल यह जो भाँतिभाँतिके कमल हैं उनकी सुगन्धयुक्त नदी,सरोवर, झरनोंसे स्पर्श करके जो ठण्ढी ठण्ढी पवन आती थी इससे वृन्दावनवासियोंको ग्रीष्मकी अग्नि और मार्त्तण्डकी प्रचण्ड ताप नहीं सतातीथी ॥५॥ जहाँ अनेक नदियें हैं जिनके तट पर पहुँचतेही जलकी तरंगोंसे टापुओंकी और किनारोंकी भूमिमें सजलताई आती है, उस पृथ्वीकी सजलताई और हरियालीको विषकी समान भयंकर सूर्यकी किरणें नहीं सुखा सक्तीं ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके फूल जहाँ तहाँ फूल रहे

सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकंजोत्पलरेणुहारिणा ॥ न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समंततः ॥ न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्वणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ॥ गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः ॥ वेणुं विरणयन्गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥ प्रवालबर्हस्तवकस्रग्धातुकृतभूषणाः ॥ रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ॥ वेणुपाणितलैः शृंगैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः ॥ ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥

हैं, नाना प्रकारके जीव जन्तु, पक्षी मीठी मीठी बोलियें बोल रहेहैं॥७॥ उस अनुपम वनमें श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बलदेवजीको और ग्यालबालोंको साथ लेकर बाँसुरी बजाते विहार करनेकेलिये गाय बछड़ों सहित वृन्दावनको चले ॥ ८ ॥ बलराम श्रीकृष्णादिक ग्वालबाल, पत्र, मोरपुच्छ, गुच्छक, माला, धातु अर्थात गेरू खडिया, मनशिल, हरतालसे शृंगार करके कभी नाचतेथे, कभी गातेथे और कभी परस्पर युद्ध मचातेथे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र जब युद्ध करतेथे और नृत्य करतेथे, उस समय कितने बाँसुरीं करताल और शृंगी बजातेथे और कितने नई नई राग रागिनी गातेथे, कितने उनके नाचकी बडाई करतेथे ॥१०॥ हे राजन् ! देवता लोग गुप्त हो गोपोंका रूप धारणकरकर श्रीकृष्ण और

बलरामकी बारम्बार इसप्रकार प्रशंसा करतेथे जैसे नट नटकी बड़ाई करते हैं ॥ ११ ॥ सब शिरपर बाल धारणकिये श्रीकृष्ण बलराम दोनों
भाई कभी चाईंमाईं खेलते, कभी कूदते, कभी धक्का मुक्की करते, कभी खम्भ ठोंकते कभी खैंचातानी करते और कभी मल्लयुद्ध करते, इस प्रकार
एकसे एक अद्भुत लीला करतेथे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! कभी और दूसरे ग्वालबाल नाचतेथे तो कृष्ण बलदेव दोनों भाई आप गातेथे और बाँसुरी
बजाते थे और फिर उनकी प्रशंसा करते थे कि, तुमने भला नृत्य किया ॥१३॥ कभी बेलके फल हाथमें लेकर दो दो चार चार एक साथही उछालते
कभी कुंभीवृक्षके फलोंको फेंकते थे. कभी आँवलेके फल मुरलीनमें रख रखके बगेलते थे, कभी छोटे छोटे फल हाथमें लेकर बूझतेथे जो बतलादेते
तो फल लेलेते और जो नही बतला सक्ते थे तो वह फल हार जाते थे ॥ पहिले तो बलरामने श्यामसुंदरके नेत्र बन्द किये, सब सखा भागकर चारों

भ्रामणैर्लंघनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ॥ चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२॥ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ
वादकौ स्वयम् ॥ शशंसतुर्महाराज साधुसाध्वितिवादिनौ ॥ १३ ॥ क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुंभैः क्वचामलकमुष्टिभिः ॥
अस्पृश्यनेत्रबंधाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ॥ कदाचित्स्पंदोलिकया कर्हि
चिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुंजेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥

ओर छिपगये. तब बलदेवजीने कृष्णको छोडदिया और उनकी आँखें खोलदी. जिसको कृष्ण पकडकर लाते थे बलदेवजी उनहीकी आँखें मीचते
थे. कभी कुरंगके संग दौडते. कभी विहंगके ढंग पर चलते ॥ १४ ॥ कभी सरिताओंके सोतोंमें मेंढककी नाईं कूदते और जो कोई कूदनेके समय
पानीमें रपटकर गिर पडता तो सब सखा मिलके उसका हास्य करते थे. कभी वृक्षोंकी शाखाओंको पकड़ पकड़कर झूलते थे और सुंदर सुंदर
पुष्पोंके आभूषण बना बनाकर पहनते थे, कोई कोई सखा कहते भाई ! हमारी तो यह इच्छा है कि, बलरामको तो राजा बनावें और घनश्यामको
मंत्री बनावें और हम सब प्रजागण बनें और श्रीदामादिक ग्वालबालोंको सिपाही बनावें और जो ग्वालिनी इस मार्गको दधि लेकर
निकले उनसे दान लें ॥ १५ ॥ इसप्रकार राम कृष्ण दोनों भाई जगत्में जो जो खेल विख्यात हैं उन उन खेलोंको खेलकर प्रसन्न होते थे.

कभी यमुनाजी न्हाते, कभी गोवर्द्धनकी कन्दराओंमें घुसजाते कभी कुञ्जोंमें विचरते फिरते, कभी काननमें आनन ढक ढक कर विचरते, कभी सरोवरोंमें जलविहार करते और कभी कमल कुमोदिनीके फूल तोड़ तोड़ कानोंमें धरते थे ॥ १६ ॥ इसप्रकार दोनों भाई ग्वाल वालोंके संग वृन्दावनमें गायें चराते थे. तहाँ कृष्ण बलदेवके हरनेके लिये कंसने प्रलम्बासुरको भेजा उसने इनको सखाओंके साथ खेलताहुवा देख अपना रूप भी गोपहीका बनाकर उन ग्वालोंमें आन मिला ॥ १७ ॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जानलिया कि, यह असुर आया और

पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ॥ गोपरूपी प्रलंबोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः ॥ अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिंतयन् ॥ १८ ॥ तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् ॥ हे गोपा विहरिष्यामो द्वंद्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ॥ कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ॥ यत्रारोहंति जेतारो वहंति च पराजिताः ॥ २१ ॥

अपने मनमें उसके मारनेका विचारभी किया परन्तु तोभी उसको मित्र वनाकर उसकी प्रशंसा की और कहा कि, मित्र ! आप भले खेलके समय आगये ❀ ॥ १८ ॥ आप तो सब खेल जानतेही हो ? फिर सब सखाओंको बुलाकर कहा कि, हे मित्रो ! हम बराबरकी दो टोली बनाकर खेल खेलेंगे ॥ १९ ॥ बलराम और घनश्यामको दोनों टोलियोंका मुखिया बनाया और सबको यह वचन पुकारकर सुनादिया कि, जो जीतै सो हारेकी पीठ पर चढ़े और हाराहुवा उसको अपनी पीठपर चढ़ाकर, वटभाण्डीरतक उसी समय पहुँचादे ॥ २० ॥ इस प्रकार चढने चढ़ानेवाले

* शंका—रावणादिक अनेक राक्षसोंको भगवान्ने मारा, परन्तु किसी राक्षसके मारनेमें ऐसी चिन्ता नहीं की जैसे छोटेसे प्रलम्बासुरके मारनेमें चिन्ता की. सो क्या कारण जो उसके मारनेमें इतनी चिन्ता की ? उत्तर *प्रलम्बासुरकी मृत्यु ब्रह्माने शेषजीके हाथसे लिखी थी कि, तू शेषके हाथसे मरेगा और किसी दूसरेके हाथसे नहीं मरेगा, इस बातको भगवान् भले प्रकार जानतेथे और यह भी जानतेथे कि, शेषके मनमें बड़ी दयाहै और उनके हृदयमें नम्रताहै कभी दया करके शेषजी उसको न मारें और इस दुष्टका मारना अवश्य है क्योंकि जो यह बचगया तो ग्वालबालोंको बहुत दु.ख देगा इसलिये अधिक चिन्ता की ॥

कई खेलोंका प्रारम्भ किया और परस्पर दोनोंने स्वीकार कर लिया ॥ २१ ॥ इस प्रकार चढ़ते चढ़ाते गायोंको चराते श्रीकृष्ण अपने थोकको लेकर वटभाण्डीरकमें पहुँचे ॥ २२ हे राजन्! जब बलरामजीकी ओर श्रीदामा और वृषभादिक जीतगये तब श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरके उनको अपनी पीठपर चढ़ाकर लेगये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब हारे तब श्रीदामाको अपनी पीठपर चढ़ाया भद्रसेनने वृषभको चढ़ाया और प्रलम्बासुरने रोहिणीनन्दन बलरामजीको अपनी पीठपर चढ़ालिया ॥ २४ ॥ जब कि, उस प्रलम्बासुरने भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रको बलवान् समझा तो बलदेवहीको लेकर वटभाण्डीरक वनकी ओरको अत्यन्त शीघ्रता सहित झपटा चलागया ॥ २५ ॥ जब उस असुरसे पर्वतके

वहंतो वाह्यमानाश्च चारयंतश्च गोधनम् ॥ भांडीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ॥ क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूचुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवाञ्छ्रीदामानं पराजितः ॥ वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलंबो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुंगवः ॥ वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥ २५ ॥ तमुद्वहन्धरणिधरेंद्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ॥ स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवांबुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य तद्वपुरलमंबरे चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ॥ ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत ॥ २७ ॥

समान बलदेवजीका भारी भार न उठसका और पराक्रम उसका शिथिल होगया तब इसने अपना असुरदेह धारण करलिया, उस समय वह दैत्य सुवर्णके गहने पहने ऐसा शोभायमान दिखाई देता था जैसे चन्द्रमासहित बादलमें बिजली दमक जाती है और बलदेवजी उस दैत्यके काले शरीरपर कैसे दिखाई देते थे जैसे कालीघटामें चन्द्रमा, बलदेवजीके कानोके कुंडल कभी कभी दामिनीके समान दमक जाते थे, गलेका दुपट्टा जो झटका खाकर नीचेको लटक गया था वह ऐसा जान पडता था मानो इन्द्रका धनुष तन रहा है, गरमीके मारे उसकी देहसे प्रस्वेद जो टपकता था वह ऐसा ज्ञात होता था मानो आकाशसे बुन्दधारा पड़रही है ॥ २६ ॥ आकाशतक प्रकाशमान ऊंचा महाविकराल जिसका शरीर लाल लाल

नेत्र मानो तत्कालही ज्वालाको उगलेंगे महाभयंकर दाढें मानो बाढें धरीहुई बरछी बाल ताँबेके सदृश लाल लाल भयकारी दोनों भुजदण्ड मानो ब्रह्माण्डके तोडनेवाले हैं कानोंमें कनककुण्डल मस्तकपर मुकुटकी अद्भुत शोभा और उस असुरकी मनोहर कान्ति देखकर हल, मूशलके धारण करनेवाले बलदेवजी अपने मनमें कहने लगे कि, यह कैसा गोप ? मेरा जी डरता है ॥ २७ ॥ पहिले तो कुछ भय माना परन्तु पीछे सुधि आगई कि, यह तो असुर है, फिर तो भय त्याग बलदेवजीने जाना कि, हमारे गोपोंको छुटाकर बलात्कार हमको लिये जाता है; तब तो अविनाशीने महाक्रोध करके उसके शीशमें एक मुष्टिक मारा जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतको मारता है ॥ २८ ॥ मुष्टिकके लगतेही उसका शिर फूटकी नाईं फूट गया, दाँत टूट गये,

अथाऽऽगतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहायसाऽर्थमिव हरंतमात्मनः ॥ रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ॥ महारवं व्यसुरपतत्समीरयन्गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रलंबं निहतं बलेन बलशालिना ॥ गोपाः सुविस्मिता आसन्साधुसाध्विति वादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोऽभिगृणंतस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ॥ प्रेत्यागतमिवालिंग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥

मुखसे रक्तका वमन होने लगा, मानो रुधिरकी धारा बहरही है जिह्वा और नयन निकलकर बाहर आपड़े हाथ पाँव पसार दिये और बड़ा घोर शब्द कर मुख फैलाय पृथ्वीपर गिरा, जैसे इन्द्रके वज्रके मारे पहाड पृथ्वीपर गिरते हैं ॥ २९ ॥ महाबलवान् बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरको मराहुवा देखकर विस्मितहो ग्वालबाल कहनेलगे कि, भाई ! तुम दोनों वड़े वीरहो हमसे तुम्हारी बडाई नहीं हो सक्ती जहां जहां हमपर विपत्ति पडती है वहीं वहीं आप सहाय करतेहैं जैसे जो भाई तुम इससमय न होते तो यह एकनएक लडकेको पकडकर अवश्य लेजाता॥३०॥इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीबोले कि, उस समय सब ग्वालबाल और नंदलाल मिलकर बलदेवजीको आशीर्वाद देनेलगे कि, चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो, फिर प्रशंसा योग्य बलदेवजीकी

प्रशंसा करने लगे और जैसे कोई मरकर लौट आता है ऐसे बलदेवजीसे मिलकर प्रेममें मग्न होगये ॥३१॥ पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवताओंको
बड़ा आनन्द हुवा बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और धन्यवाद देने लगे ॥३२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां
प्रलम्बासुरवधो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, मुञ्ज विपिनमें जाय । गोप गाय सब अग्निसे, क्षणमें लिये बचाय ॥१॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! जब सब ग्वालबाल खेलमें लगगये तब उनकी गायें बछरे अपनी इच्छासे चरते २ हरी हरी घासके लालचमें

पापे प्रलंबे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥ अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधुसाध्विति ॥३२॥ इति श्रीमद्भाग० म०द०
पू० प्रलंबासुरवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥ स्वैरं
चरंत्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥१॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशंत्यो वनाद्वनम् ॥ इषीकाटवीं विविशुः क्रंदंत्यो
दावतर्षिताः ॥२॥ तेऽपश्यंतः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ॥ जातानुतापा न विदुर्विचिन्वंतो गवां गतिम् ॥
॥३॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरंकितैर्गवाम् ॥ मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाऽऽजीव्या विचेतसः ॥४॥

आनकर सघन वनमें चले गये ॥१॥ वह अजा अर्थात् ओसर गायें भैंसे उस वनसे चरती चरती आगे धेनुकवनमें चलीगईं उसके आगे महाघोर
मुंज है तहाँ चलीगईं क्योकि वनमें चारोंओर दव जो लगरही थी उसकी गर्मीसे प्यासकी मारी घबरा रहीं थीं * ॥२॥ जब बलराम कृष्णादिक
ग्वालबालोंने पशुओंको नहीं देखा तो मनमें अत्यन्त दुःखी हुये और जहाँ तहाँ खोजने लगे परन्तु पता कहीं नहीं लगा ॥३॥ फिर परस्पर
विचार सब ग्वालबाल गायोंके खुरोके चिह्नोंको और जो गायोंके दांतोंसे कटा हुवा घास था, उसको देखते देखते जहाँ जहाँ होकर गायें

* शंका–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको बकरीका पालन तथा भैंसका पालन अयोग्य है और शास्त्रमें भी इनका पालन अनुचित है, फिर श्रीकृष्णने बकरी और भैंसें क्यों पाली ?
उत्तर–पण्डित लोग बकरीका नाम अजा कहते है परन्तु अजा गायकी बछियाको भी कहते हैं और ओसरभी कहते हैं और मुनियोंने अजाका ऐसा अर्थ किया है कि, बालक जिसमें न हों उसका नाम
अजा है और महिषी नाम वृद्ध गायका है और जो युवा गाय हो उसका नाम गाय है, श्रीकृष्ण भगवान् सब बछिया और वृद्ध युवा गायोंका पालन किया करतेथे बकरी भैंसोका पालन करना तो गडरियोंका
काम है, श्रीकृष्णचन्द्रने बकरी भैंसें नहीं पालीं ॥

गई थीं वहाँ पहुँचे ॥४॥ मुंजवनमें घुसगये वहां जाकर मार्ग भूलगये, सीधा मार्ग अग्निसे रुकगया था, तब दुःखित हुईं कुछ थोड़ीसी गायोंके समूहोंको देखा, भूखे और प्यासे ढूँढनेके खेदसे और भी घबरारहे, वे हारे थके अपनी गायोंको घेरकर पीछे को लौटे ॥ ५ ॥ जो गायें इधर उधर रहगईं और दूर दूर चरती थीं, उनको मेघकी समान गम्भीर वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उनका नाम लेलेकर बुलाईं ॥ ६ ॥ तब सब गायें अपने अपने नाम सुनकर, हर्षित होकर रम्भाईं, इससे यह सूचित किया कि, हम तुम्हारी मनोहर वाणीको, सुनती तो हैं परंतु मार्गमें आग जो लगी है इसलिये तुम्हारे समीप आ नहीं सक्तीं मार्ग बड़ा विकट है ॥ ७॥ वहाँ बडी धूमधामसे धूमध्वजावाला अग्नि चारोंओर वनवासी जीवोंका जलानेवाला लगरहा था और पवनके वेगसे प्रचण्ड होरहा था और महाप्रबल लपटोंसे चराचरको भस्म करता चला जाता था और धुयेंके

मुंजाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रंदमानं स्वगोधनम् ॥ संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥५॥ ता आहूता भगवता मेघगंभीरया गिरा ॥ स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समंताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत्क्षय कृद्वनौकसाम् ॥ समीरितः सारथिनोल्वणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजंगमान्महान् ॥ ७ ॥ तमापतंतं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ॥ ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥ कृष्णकृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम ॥ दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हंत्यवसा दितुम् ॥ वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपणं बंधूनां भगवा न्हरिः ॥ निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥

धुन्धकारसे सर्वत्र वनमें महाघोर अन्धकार छागया. जीव, जन्तु, पशु, पक्षी धुयेंसे अन्धे हो २ जहाँके तहाँ जल जलकर रहजाते थे कोई किसीको बूझै नहीं था. तब सब ग्वाल मृत्युके भयसे दुःखित हो बलदेवजीसहित श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर विनय करने लगे ॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबलवान् ! हे राम ! हे अनंतपराक्रमवाले ! यह वनकी अग्नि हमको भस्म करे डालती है, अब शरणागतोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हम तुम्हारे मित्र हैं हमको ऐसा कठिन कष्ट दिखाना नहीं चाहिये, क्योंकि हम इतने कष्ट सहने योग्य नहीं हैं. आपही हमारे अधिष्ठाता हो और आपहीका हमको आश्रय है ॥ १० श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मित्रोंके

दीनवचन सुनकर कहने लगे कि, हे मित्रो भयभीत मतहो, अपनी अपनी आँखें मींचलो ॥ ११॥ उसीसमय श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार सबने अपने २
नेत्र मूँद लिये तब योगेश्वर भगवान्‌ने उस महाभयंकर अग्निको पानकर अपने प्यारे मित्रोंको महाकष्टसे बचाया ॥ १२ ॥ जब उन्होंने नेत्र खोले
तो फिर भाण्डीरवनमें आगये और अपने आपको और गायोंको अग्निसे छुटा देखकर बहुत विस्मित हुए कि, यह क्षणमात्रमेंही, क्या अचम्भा होगया
॥ १३ ॥ योगमायाका प्रभाव प्रगट दिखानेवाले अग्निसे बचानेसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको देखकर सब गोप कहने लगे कि, श्रीकृष्ण हमारे समान
मनुष्य नहीं हैं यह देवता जान पडतेहैं॥ १४॥जब जाना कि,सन्ध्यासमय हुई तब बलरामजी सहित श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्द मन्द

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्वणम् ॥ पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥ ततश्च तेऽक्षी
ण्युन्मील्य पुनर्भांडीरमापिताः ॥ निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥१३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्यो
गमायाऽनुभावितम् ॥ दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ॥
वेणुं विरणयन्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपीनां परमानंद आसीद्गोविंददर्शने ॥ क्षणं युगशतमिव यासां
येन विनाऽभवत् ॥१६॥ इति श्रीमद्भाग०महापुराणे दशम०पूर्वार्धे श्रीकृष्णकृतदावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥
॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलंबवधमेव च ॥ १ ॥

मन्द चालसे गायोंको लिये बाँसुरी बजाते गोपोंसे स्तुति कराते व्रजमें आये ॥ १५॥ जब ग्रामके समीप आगये तब मुरलीधरने मुरली बजाई; मुरलीकी
ध्वनि सुनतेही सब व्रजनारी अपने अपने घरोंका काम तजकर मार्गमें आन खड़ी हुईं और गोपीवल्लभका दर्शन करतेही गोपियोंको परमानन्द प्राप्त
हुवा और हृदयमें ठण्ढक होगई.क्योंकि विना श्यामसुन्दरके देखे एक एक क्षण सौ सौ युगकी समान व्यतीत होताथा ॥१६॥ इति श्रीमद्भागवते महा
पुराणे दशम०पू०भाषाटीकायां दावाग्निपानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥दोहा–कहौं बीस अध्यायमें, पावस शरदानन्द। जो जो कुछ लीलाकरी,
राम गोप नँदनन्द॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र बलरामने अग्निसे जो सब ग्वालबालोंको बचाया और प्रलम्बासुरको मारा,यह

अद्भुतकर्म गोपोंने स्त्रियोंसे कहा ॥ १ ॥ और बडे बडे वृद्ध गोप, गोपी, यह बात सुनकर आश्चर्य करने लगे और श्रीकृष्णको मुख्य देवता समझा ॥ २ ॥ जब ग्रीष्मऋतुने संसारके जीवोंको अधिक सताया. तब संसारी जीवोंको दुःखी देख पावस प्रचण्ड अपने बलके घमंडमें भरा, मार्त्तण्डके प्रकाशको दबाता, चारोंओर धूमधाम मचाता मेघोंका धौंसा बजाता, बादलका दल संग लिये, युद्धका सामान किये चढि आया तथा आकाशमें गड़गड़ाहट शब्द होने लगा ॥३॥ दामिनी दमकने लगी, बादल गर्जनेलगे. घनमें श्यामघटा छागई, सूर्य चन्द्रमा तारागणोंका प्रकाश आच्छादित होगया; उस समय आकाश ऐसा शोभायमान जानपडता था जैसे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जीव आच्छादित होरहाहै यह त्यागनेके योग्य दृष्टान्त है, प्राणीको ऐसा नहीं चाहिये कि, जो गुणोंसे आवृत होजाय ॥ ४ ॥ जैसे आठ महीने तक पृथ्वीका जलरूप द्रव्य सूर्यनारायण अपनी

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥ ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ॥ विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥ सांद्रनीलांबुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥ अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ॥ स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥ तडित्वंतो महामेघाश्चंडश्वसनवेपिताः ॥ प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥ तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही ॥ यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥

किरणोसे सोखै है और वर्षाऋतु आनेपर बरसावै है ऐसेही राजाको भी चाहिये कि, सुकालमें प्रजासे कर लेवै और अकालमें उनको अन्न धन देकर पालन करै यह ग्रहण करने योग्य दृष्टांत है, राजाको ऐसाही करना योग्यहै ॥ ५ ॥ जैसे प्रबल पवनकी झकोरसे बडे बडे मेघ बिजली जिनमें चमके विश्वको तप्त देख पुष्ट करनेवाले जीवन (जल) बरसानेलगे जैसे दयावान् पुरुष दुःखी जनोंको देखकर उनको सुखी करनेके लिये दया करके अपने प्राणतक देतेहैं, तैसेही बडे मेघ अपने बिजली रूप नेत्रोंसे संतप्त विश्वको देखकर पवनसे चलायमान हो जल बरसाते हैं, यह ग्रहण करने योग्य दृष्टान्त है महात्मा पुरुषोको ऐसाही करना चाहिये ॥६॥ पृथ्वी ग्रीष्मऋतुकी धूपसे अत्यन्त तप्त होकर जो सूख गई थी, इन्द्रने जल वर्षाकर जब उसको सींचा तो फिर वर्षाऋतुमें फूली और वृक्षोंपर भाँति भाँतिके फूल खिले और फल लगे ऐसेही सकामपुरुष धनकी अथवा

पुत्रकी इच्छा करके तप करता है, तब पहिले तो उसका देह दुर्बल होजाता है फिर तपका फल मिलनेसे उसका शरीर जैसेका तैसा होजाताहै, यह
त्यागने योग्य दृष्टान्त है. पुरुषको उचित है कि, सकाम तप न करै ॥ ७ ॥ वर्षाऋतुमें सन्ध्या समय खद्योत (पटबीजने) प्रकाश करतेहैं तारागण
प्रकाश नहीं करते जैसे कलियुगमें पापके प्रभावसे पाखण्डमार्ग चमकते रहतेहैं और वेदमार्ग अस्त होजाते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्तहै, चतुर पुरुषोंको
ऐसा नहीं चाहिये जो पाखण्ड मार्गमें प्रवृत्त हों॥ ८ ॥वर्षाऋतुमें मेघका गर्जना सुनकर मेढ़क बोलने लगते हैं; जैसे विद्यार्थी गुरुके सम्मुख मुख
बन्द किये चुप बैठे रहतेहैं. जब गुरु नित्य नैमित्तिक कर्मसे निश्चित होकर बोलतेहैं, तब आपभी शिष्य अपना पाठ लेकर बैठतेहैं. यह ग्राह्य दृष्टान्त
है कि, विद्यार्थियोंको यही चाहिये कि, गुरु जब अपने कार्यसे निश्चिन्त होजायँ और वह कहें तब आप अपना पाठ पढ़ें ॥ ९ ॥ क्षुद्रनदी जिनका

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांति न ग्रहाः ॥ यथा पापेन पाखंडा न हि वेदाः कलौ युगे ॥ ८॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं
मंडूका व्यसृजन्गिरः ॥ तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्यो
ऽनुशुष्यतीः ॥ पुंसो यथाऽस्वतंत्रस्य देहद्रविणसंपदः ॥ १० ॥ हरिता हरिभिः शष्पैरिंद्रगोपैश्च लोहिता ॥ उच्छिली
न्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभृत् ॥ ११ ॥

जल थोडेही दिनोंमें सूखजाताहै वर्षाऋतुमें जब अधिक जल वर्षताहै तब अपनी मर्यादाको छोड छोडकर चारों ओरको उफनने लगती
हैं, जैसे अजितेन्द्रिय पुरुषका मन धन और ऐश्वर्य पाकर खोटे मार्गोंकी ओरको चलता है और सब ठौरको पाँव फैलाता है, यह त्याज्य दृष्टान्तहै
ऐसा नहीं चाहिये जो मार्गमें अपने मनको चलावै ॥ १० ॥ वर्षाऋतुमें हरी हरी घास उत्पन्न होनेसे, लाल लाल बीरबहूटियोंके फिरनेसे,
उच्छिलीन्ध्र (छत्रिका, जो चौमासेमें छत्रके आकार पृथ्वीमें उत्पन्न होती है, बालक उनको साँपकी छत्री कहा करते हैं) उनके फूलनेसे और
सुन्दर सुन्दर वृक्षोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़तीथी जैसे राजाकी सेना चित्र विचित्र रंगसे सजी हुई छत्र छायावाली दिखाई देती है
यह ग्राह्य दृष्टान्त है, राजाओंको ऐसाही चाहिये; जो हरे लाल मखमलके नये नये बिछौने बिछावें और श्वेत श्वेत डेरे तम्बू तान दें ॥ ११ ॥

वर्षाऋतुमें हरे हरे धानोंके खेतोंको देख देख कर किसानोंका चित्त आनन्दित होता था और लाभ हानि दैवाधीन है, इस बातको असत्य समझकर जिन लोगोंने अन्न संग्रह किया था, उनको क्लेश हुआ, यह त्याज्य दृष्टान्त है, ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये जिसमें सबका बुरा चिन्तवन करना पडे ॥ १२ ॥ वर्षाऋतुमें जैसे जलाशयके रहनेवाले मनुष्य नये जलके सेवनकरनेंसे सुन्दर स्वरूपवान् होजाते हैं, जैसे हरि भगवान्का सेवनकरनेसे हरिजन सुन्दर स्वरूपको पाते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, मनुष्यको ऐसाही चाहिये ॥ १३ ॥ वर्षाऋतुमें समुद्रमें नदी आनकर मिली और पवनके चलनेसे तरंगें उठने लगीं उस समय समुद्रका जल चलायमान होगया, जैसे चित्त विषय वासनामें और काममें चलायमान हो जाता है. यह त्याज्य दृष्टान्तहै योगियोंको ऐसा नहीं चाहिये जो विषयवासनामें चलायमान होजायँ ॥ १४ ॥ वर्षाऋतुमें मेघोंकी बुन्दधार

क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ॥ धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥ १२॥ जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ॥ अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३ सरिद्भिः संगतः सिंधुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ॥ अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ॥ अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥ १५ ॥ मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ॥ नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ १६ ॥

पडनेसे पर्वत किञ्चिन्मात्र भी दुःख नहीं मानते बरन् धुल धुल कर उनकी शिलायें स्वच्छ और उज्ज्वल होजाती हैं, जैसे जिन मनुष्योंके मन भगवान्में लग रहे हैं उनके ऊपर कैसाही कष्ट पडे अर्थात् पुत्र मरजाय, धन लुटजाय, तनु दुर्बल होजाय, परन्तु वह कष्टको कुछ नहीं मानते, बरन् यह कहते हैं कि, विपक्षियोंसे पीछा छुटा, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, मनुष्यको चाहिये कि, विपत्तिमें व्याकुल न होय ॥ १५ ॥ वर्षाऋतुमें तृण और घासके बढ जानेसे मार्ग ढकगये और संदिग्ध (सन्देहयुक्त) होगये यह न जान पडता था कि, किस ग्रामका कौनसा मार्ग है, जैसे, ब्राह्मण एकबार वेद पढ़के पुस्तक बांधकर रखदेते हैं और उसका अभ्यास छोड देते हैं, फिर बहुत दिन उपरान्त पुस्तकको खोलकर देखते हैं तो उनको अनेक प्रकारके सन्देह उत्पन्न होते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्तहै कि, ब्राह्मणोंको ऐसा नहीं चाहिये जो पढ़नेका अभ्यास छोडदें, नहीं

प्रातःकाल उठकर अपना नित्यकर्म करें ॥ १६ ॥ लोगोंके परमहितकारी मेघ हैं उनमें चलायमान चपला क्षणमात्रको स्थिर नहीं रहती, कभी किसी बादलमें जा चमके है, कभी किसी बादलमें जा चमके है जैसे ज्ञानी पुरुषोंमें व्यभिचारिणी स्त्री स्थिर होकर नहीं बैठती, कभी किसीके घर कभी किसीके घर एक पुरुषके घर नहीं ठहरती, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, कभी भूलकर भी व्यभिचारिणी स्त्रीका विश्वास न करे * ॥ १७ ॥ वर्षाऋतुमें गर्जन शब्दके गडगडाहटवाले बादल आकाशमें प्रत्यञ्चा (रोदा) विना इन्द्रका धनुष शोभायमान दिखाई देता है, जैसे गुणोंके गम्भीर शब्दवाले प्रपञ्चमें आत्मा निर्गुण है, तोभी अत्यन्त शोभायमान जानपडे है, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, पुरुषको चाहिये कि,

लोकबंधुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ॥ स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्वियति माहेंद्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ॥ व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥ न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ॥ अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनंदञ्छिखंडिनः ॥ गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनाऽऽगमे ॥ २० ॥

ऐसे सुन्दर निर्गुण पुरुषका ध्यानकरे ॥ १८ ॥ वर्षाऋतुमें अपनी चांदनीसे प्रकाशमान जो मेघ हैं, उनसे आवृत होकर चन्द्रमा शोभायमान नहीं दीखाता, मलीनसा दिखाई देता है, जैसे आत्मासे प्रकाशमान अभिमानसे आच्छादित पुरुष अपने मनमें कहता है कि, मैंहीं ज्ञानी हूं, मैंहीं दानी हूं, मैंहीं शूरवीर हूं, मैंहीं रणधीर हूं मैंहीं पण्डित हूं मैंही सर्वज्ञ हूं, वही उसमें मलिनता है, यह त्याज्य दृष्टान्त है, पुरुषको चाहिये कि, अहंकार न करे ॥ १९ ॥ वर्षाऋतुमें ग्रीष्मके तपेहुये जो मोर मेघोंका शुभागमन देख, उनकी प्रशंसामें मनोहर शब्द करतेहैं. जैसे घरमें संतप्त हुये वैराग्यवान् पुरुष महात्मा पुरुषोंके आनेसे हर्षित हो मनोहर वाणीसे उनका आदर सत्कार करतेहैं. यह नहीं कि, हमही भूखे मरेहैं, इनके

* शंका–ससारमें जो गुणी जन हैं, सो सब अपनी स्त्रियोंके सग दु ख सुख गृहस्थीमें भोगते हैं परन्तु ऐसा किसी गुणीको नहीं सुना कि, उसकी स्त्रीने उसको त्याग दिया हो ? फिर शुकदेवजीने क्यों कहा कि, गुणी प्राणीमें स्त्री बहुत समयतक नहीं ठहरती, जैसे आकाशमें विजुली अधिक कालतक नहीं ठहरती यह शका है ?

उत्तर–"स्थैर्य न चक्रु कामिन्य" इस श्लोकमें शास्त्रके जाननेवाले मुनियोंने कामिनीका स्त्री अर्थ नहीं किया, ससारके सुखकी तृष्णा है कि जो अधिक प्रीति है सोई कामिनी है सो तृष्णाकी बहुत प्रीतिरूप कामिनी गुणी पुरुषोंमें बहुत कालतक नहीं ठहरती, बहुत कालतक मूर्खोंमें ठहरतीहै ऐसा अर्थ श्रीशुकदेवजीने कियाहै ॥

लिये कहाँसे लावैं ॥ २० ॥ वर्षाऋतुमें गरमीसे तपेहुये देवतालोग वृक्षरूप धारण किये अपनी मूलसे जल पीपीकर प्रफुल्लित हो, हरे हरे लाल लाल नवीन पल्लवोंसे समृद्धिमान् होरहे हैं जैसे तपस्या करनेसे मनुष्योंका देह प्रथम तो दुर्बल होजाता है फिर सुन्दर सुन्दर सुख भोग करनेसे और पुष्टकारक भोजन मिलनेसे उनका शरीर लाल होजाता है, यह त्याज्य दृष्टान्त है. मनुष्योंको चाहिये कि, खाने पीनेके लिये तप न करैं ॥ २१ ॥ वर्षाऋतुमें काँटे और कीचमें संयुक्त किनारेवाले सरोवरोंमें चकवी चकवे और सारस वासकरते थे, जैसे अनेक प्रकारके कर्म करनेकी पीड़ासे घरोंमें विषयी पुरुष वास करते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्त है, मनुष्यको ऐसा नहीं चाहिये कि, जो सदा घरहीमें शिर दिये पड़ारहै, नहीं कुछ कुछ भगवान् वासुदेवका भी भजन करै, जिसमें लोक और परलोक दोनों सुधरें ॥ २२ ॥ वर्षाऋतुमें जैसे इन्द्रके जल बरसानेसे नदियोंके जलका प्रवाह पुलोंको तोड़ता फोड़ता चलाजाता है और खेतोंकी मर्य्यादा भी टूटगई, जैसे पाखण्डियोंके शब्द सुनके कलियुगमें वेदमार्ग टूट

पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ॥ प्राक्क्षामास्तपसा श्रांता यथा कामानुसेवया ॥ २१ ॥ सरस्वशांतरोधस्सु न्यूषुरंगापि सारसाः ॥ गृहेष्वशांतकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यंत सेतवो वर्षतीश्वरे ॥ पाखंडिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥ व्यमुचन्वायुनिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ॥ यथाऽऽशिषो विश्पतयः कालेकाले द्विजेरिताः ॥२४॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ॥ गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥

जातेहैं और धर्म कर्म दूर हो जाते हैं यह त्याज्य दृष्टान्त है मनुष्य पाखण्डियोंके शब्द सुनकर वेदमार्गको न त्यागदे ॥ २३ ॥ वर्षाऋतुमें मेघगण पवनकी प्रेरणासे प्राणियोंपर अमृतकी तुल्य जल वर्ष रहे थे, जैसे समय समयपर राजा पुरोहितकी प्रेरणासे दान पुण्य करते रहते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, पुरोहित गुरुजनोंको ऐसाही चाहिये कि, जो प्रेरणाकरके यजमान और शिष्योंसे दान करावे और दीनपुरुषोंको दिलावैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार जहाँ चारोंओर आम, जामुन, खजूर जिस वृन्दावनमें पकरहे थे और उनकी शाखायें पृथ्वीकी ओर ऐसी झुकरही थीं जैसे परोपकारी पुरुष धन पाकर नीचेको झुकते हैं और फूल जो टपक टपक कर सुधासम वसुधापर गिरते थे, ऐसा जान पडता था मानो दानी द्रव्यका दान कर रहे हैं और खजूरके वृक्ष ऊँचे ऊँचे ऐसे विदित होते थे जैसे रणभूमिमें शूर खड़े हैं, ऐसे शोभायमान वनकी शोभा देखकर श्रीकृष्ण बलरामसमेत

ग्वाल बालोंको संग ले उस वनमें गायें चरानेके लिये गये ॥ २५॥ बड़े बड़े अयनोंके भारी भारी भारसे हौले हौले चलनेवाली गायें जब श्रीकृष्ण चन्द्रने नाम लेलेकर प्रीतिसे बुलाईं, तब स्तनोंसे जिसके दूध टपकरहा वह सब गायें दौड़ दौड़कर वृन्दावनविहारीके सन्मुख आनकर खड़ी होगईं ॥ २६ ॥ वनवासियोंको श्रीकृष्णने देखा, मधु और मकरन्द टपकनेवाली वृक्षोंकी लताओंसे रस टपकता था, गोवर्द्धन पर्वतसे जलकी धारायें बहतीं थीं, कहीं कहीं झरनोंसे पानी जो गिरता था उस पानीके शब्दसे ऐसा ज्ञात होता था मानों वृक्ष परस्पर बातें कररहेहैं, निकटही गुफायें थीं उनको देख देख ग्वालबाल और नंदलाल प्रसन्न होते थे ॥ २७ ॥ कहीं कहीं ऐसी वृक्षोंकी खखोडल और पर्वतकी कन्दरा थीं कि, जिनमें पानीकी बूँदभी नहीं जाती थी, जब भारी वर्षा होती थी तो उनहीमें घुसकर बैठ जाते थे और वनके फल फूल खा खाकर प्रसन्न होतेथे ॥ २८ ॥ इतनेमें यशोदाने

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ॥ ययुर्भगवताऽहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः॥२६॥वनौकसः प्रमुदिता वनराजी र्मधुच्युतः ॥ जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७ ॥ क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ॥ निर्विश्य भगवान्रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥ २८ ॥ दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलांतिके ॥ संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्ष णान्वितः ॥२९॥ शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ॥ तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥

दुपहरका समय देख अपने मनमें समझा कि, मोहन प्यारेको भूख लगी होगी, यह विचार कई एक ग्वालिनियोंके हाथ दही, भात, माखन, मिश्री और अनेक प्रकारकेव्यञ्जन थालोमें धर धरकर श्रीकृष्ण बलरामके पास भेज दिये, सो श्रीकृष्ण सखाओ समेत यमुनाके निकट ऐसे रमणीक घाट पर गये जहाँ शिलाके ऊपरही भात धरकर भोजन करनेयोग्य गोपोंको और बलदेवजीको संग लेकर भोजन करनेलगे और उसके स्वादकी सरा हना कर करके कभी सखाओंको देते थे और कभी उनके हाथमेंसे लेलेते थे ॥ २९ ॥ उस समय बैल बछरे पेट भरजानेसे हरी हरी घासपर बैठे आँखैं मीचे जुगाल कर रहे थे और गायें भी दूधके भारसे थक कर बैठी जुगाल कर रही थीं. राम कृष्ण उन गायोंको देख देखकर प्रसन्न होते थे और भोजन करते जाते थे और बारंबार परस्पर कहते थे कि, पावसकी समान संसारमें सुख देनेवाली और दूसरी ऋतु नहीं है ॥ ३० ॥

सब प्राणियोंकी आनन्दकारी और प्रेम प्रीतिकी बढ़ानेहारी पावसमें वृन्दावनकी शोभा और अपनी शक्तिसे युक्त वर्षा ऋतुको देखकर वृन्दावनविहा वृन्दावनकी प्रशंसा करने लगे कि, देखो! वृन्दावनमें वर्षाऋतु कैसी अनुपम शोभा दे रही है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार व्रजमें श्यामसुन्दर और बलरामके वास करते करते बादलोंसे रहित निर्मल जल बहानेवाली और मन्द मन्द त्रिविध पवन चलानेंवाली परम सुखदाई शरद्दतु आई ॥ ३२ ॥ शरद्दतुमें कमल उत्पन्न होनेसे जल निर्मल और शीतल होगया, जैसे योगीजनोंके चित्त भ्रष्ट होकर फिर योगका अभ्यास करनेसे शुद्ध होजाते हैं यह ग्राह्य दृष्टान्त कि, योगियोंको यही चाहिये कि, चित्तको शुद्ध करके योगाभ्यास करें ३३ ॥ वर्षाऋतुमें आकाशमें मेघ रात दिन गर्जते रहते हैं, शरद्दतुमें सब उनका गर्जना बंद हो गया, वर्षाऋतुमें बहुतसे मनुष्य मिलकर एक स्थानमें रहते हैं, शरद्दतुमें सब अलग अलग होगये, वर्षाऋतुमें ठौर ठौर कीच होती है, शरद्दतुमें सब भूमि सुहावनी होगई, वर्षाऋतुमें जल गदला और मैला होजाता है. शरद्दतुमें जल स्वच्छ और शीतल होगया

प्रावृट्छ्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदा वहाम् ॥ भगवान्पूजयांचक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवं निवसतो स्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छांब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥ शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ॥ भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥ व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पंकमपां मलम् ॥ शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥

जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमोंके भगवान्की भक्ति होनेसे सब क्लेश दूर होजाते हैं. ब्रह्मचारियोंके लिये शिष्य तबहीं तक जल भरा करते हैं, जबलों भक्ति प्राप्त नहीं होती भक्ति होनेके पीछे जल भरनेका परिश्रम नहीं रहता. जब शिष्यको भक्ति प्राप्त हो जाती है, तब उससे गुरुभी सेवा नहीं कराते· इसप्रकार बादलका गर्जना शरद्दतुमें बन्द होगया. गृहस्थके हृदयमें जबतक भक्ति उदय नहीं होती तबलों अपनी सन्तानादिकमें मोह ममता रखता है. भक्ति होनेके पीछे एकान्त वास करनेकी इच्छा करता है और सबका संग छोड़ देता है. ऐसेही प्राणियोंका एक स्थानपर वास है, सो छूट गया. वानप्रस्थको जबतक भक्ति प्रकट नहीं होती तबलों उसका मन मलिन रहता है. भक्ति होनेके पीछे जै उसकी मलिनता दूर होजाती है ऐसे पृथ्वीकी कीच सूख गई और सुहावनी होगई. संन्यासीका कामवासनारूप मल श्रीकृष्ण

वासुदेवमें भक्ति होनेसे दूर होजाता है, ऐसेही शरदमें जलका मल दूर हो गया ॥ ३४ ॥ शरदृतुमें मेघ अपना सर्वस्व त्याग श्वेत श्वेत रुईकेसे पहल दिखाई देते हैं. जैसे धन, दारा, पुत्र और विषय वासनाके दूर होनेसे शान्त स्वभाव मुनीश्वरलोग शोभायमान जान पडते हैं. यह ग्राह्य दृष्टांत है, मुनिलोगोंको यही चाहिये कि; सब वासनाओंको दूर करैं ॥ ३५ ॥ पर्वत अपना कल्याणरूप निर्मलजल कहीं कहीं को तो झरनोंसे बहाते हैं और कहीं कहींको नहीं भी बहाते, जैसे ज्ञानीपुरुष समय समय पर अपना ज्ञानरूप अमृत सुपात्रको देखकर देते हैं और कुपात्रको नहीं देते. यह ग्राह्य दृष्टांत है कि, विवेकी पुरुषको यही चाहिये कि, सुपात्र कुपात्रको देखकर उपदेशकरैं ॥ ३६ ॥ शरदृतुमें सरोवरोंमें थोड़े जलके रहनेवाले जीव जन्तु नित्य नित्य घटते जलको नहीं जान सके, जैसे अज्ञानी कुटुम्बी पुरुष घरोंमें रहकर अपनी नित्य

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ॥ यथा त्यक्तैषणाः शांता मुनयो मुक्तकिल्विषाः ॥ ३५ ॥ गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ॥ यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥ नैवाविदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः॥ यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविंदञ्शरदर्कजम् ॥ यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेंद्रियः ॥ ३८ ॥ शनैश्शनैर्जहुः पंकं स्थलान्यामं च वीरुधः ॥ यथाहंममतां धीराः ॥ शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलांबुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ॥ आत्मन्युपरते सम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥

क्षीण होतीहुई आयुर्बलको नही जानते. यह त्याज्य दृष्टान्त है कि, कुटुम्बीलोगोंको चाहिये कि, अचेत न हो कुछ परमेश्वरकी ओरका भी चिन्तवन करैं ॥ ३७ ॥ शरदृतुमें थोड़े जलके रहनेवाले जलचर सूर्यके तेजसे जल गरम होनेसे दुःखी होगये, जैसे कुटुम्बी पुरुष इन्द्रियोंको वशमें न करनेसे दरिद्रता और कृपणतामें रहकर कष्ट भोगते हैं. यह त्याज्य दृष्टांत है जो घरमें क्लेश होय तो उस घरको त्याग दे ॥ ३८ ॥ शरदृतुमें सहज सहजमें सब स्थानोंकी कीच सूख गई, लताओंका सब कच्चापन जाता रहा, जैसे मिथ्या देह गेहमें सज्जनपुरुष सहज सहजमें मायाकृत अहंता ममताको त्याग देते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, ज्ञानी पुरुषको यही चाहिये कि अभिमानका त्याग कर दें ॥ ३९ ॥ शरदृतुके आनेसे समुद्रका जल निर्मल होगया, जैसे आत्मज्ञान होनेसे महात्मा मुनियोंका पढना लिखना सब छूट जाताहै. यह ग्राह्य

दृष्टान्त है, आत्माके जाननेके पीछे लिखने पढनेका क्या प्रयोजन ? ॥ ४० ॥ शरदृतुमें खेतवाले किसान लोंगोंने जहाँ तहाँ भारी भारी मेंडे बाँध बाँधकर पानी रोंक लिया है जैसे योगिराज इंद्रियरूप द्वारसे जातेहुये ज्ञानको रोकलेतेहैं, इंद्रियोंको रोककर फिर मनको रोकते हैं. यह ग्राह्य दृष्टान्त है, योगियोंको यही चाहिये कि, ज्ञानको हृदयसे निकलने नही दें इन्द्रियोंको रोककर रक्खैं ॥ ४१ ॥ शरदृतुमें सूर्यकी किरणोंके तापको रात्रिके समय चन्द्रमाने उदय होकर दूर कर दिया, जैसे ज्ञान होनेके पीछे देहके अभिमानरूप तापको शान्तरूप चन्द्रमा उदय होकर हरलेता है, ऐसेही व्रजवासियोंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र मुकुन्दने दूर कर दिया ॥ ४२ ॥ शरदृतुमें मेघ दूर होगये आकाश निर्मल होगया, तारागणोंके प्रकाशसे आकाश शोभा पाने लगा, जैसे वेदके अर्थको दिखानेवाले सत्त्वगुणी चित्त शोभायमान जान

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्कर्षका दृढसेतुभिः ॥ यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत् ॥ देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ॥ सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥ अखंडमंडलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ॥ यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ॥ जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥ गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् ॥ अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥

पडते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है वही चित्त सुन्दर और शोभायमान है जिसमें वेदके अर्थका ज्ञान है ॥ ४३ ॥ शरदृतुमें समस्त मण्डलसे चन्द्रमा आकाशमें तारागणसहित शोभा देताहै, जैसे पृथ्वीमें यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र यादवोंसमेत शोभायमान जान पडेहै यह ग्राह्य दृष्टान्त है. मनुष्यको चाहिये कि, जैसे चन्द्रमा आकाशमण्डलको प्रकाशित करताहै ऐसेही शान्तरूप चन्द्रमासे हृदयको प्रकाशित करैं॥ ४४ ॥ शरदृतुमें पुष्पवाटिकाओंके पुष्पोंका स्पर्श करके जो पवन चलता है उसके स्पर्श करनेसे सब प्राणियोंके तनुका ताप दूर होजाता है, जैसे गोपिकाओंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके स्पर्शसे दूर होजाताहै, यह ग्राह्य दृष्टान्त है. मनुष्यको यही चाहिये कि; भगवान्का स्पर्श करके सांसारिक तापोंको त्याग दें ॥ ४५ ॥ शरदृतुमें गायें, हरिणी पक्षिणी और स्त्रियें पुष्पवती हुई, उनके पति उनके पीछे पीछे कामातुरहो

फिर रहे थे जैसे ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये पुरुष योग, यज्ञ, जप, तप करतेहैं, उनके पीछे फल आपसे आप लगे फिरते हैं ॥ ४६ ॥ शरदृतुमें कुमुदिनीके सिवाय और सब प्रकारके कमल सरोवरोमें फूलते हैं जैसे चोरोंके सिवाय सब प्रजागण राजाके उदय होनेसे प्रफुल्लित रहते हैं यह ग्राह्य दृष्टान्त है. ऐसा कौनसा मनुष्य है जो अपने स्वामीको देखकर प्रसन्न न हो ॥ ४७ ॥ शरदृतुमें ग्राम और नगरोंमें नवी न अन्नके भोजनका वैदिक उत्सवसे और इंद्रियोंके पुष्टिका कारक विवाहादिक लौकिक उत्सवसे और अन्न पकनेसे और श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके क्रीड़ा करनेसे पृथ्वी अत्यन्त शोभायमान दृष्टि आती थी ॥ ४८ ॥ वर्षाऋतुके थँभनेसे वणिक्, मुनीश्वर, राजा, ब्रह्मचारी यह शरदृतुमें अपने अपने कार्यमें लगगये. बनिये अपने अपने व्यवहारके लिये देश देशांतरोंको जाने लगे. साधु संन्यासी तीर्थयात्राओंके जानेका प्रबन्ध करने लगे. राजा लोग

उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्दिना ॥ राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामे त्वाग्रयणैरैंद्रियैश्च महोत्सवैः ॥ बभौ भूः पकसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्याऽर्थान्प्रपेदिरे ॥ वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिंडान्काल आगते ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० म० दश० पू० प्रावृट्शरद्वर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ॥ न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरस्सरिन्महीध्रम् ॥ मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

अपनी चतुरंगिनी सेना ले शत्रुओंके विजय करनेको चलदिये. ब्रह्मचारी विद्या पढ़नेके लिये पाठशालाओंको चलने लगे. जैसे मंत्र और योगादिसे सिद्ध महात्मा, आयुके बन्धनसे रुकरहे हों; वह समय आनेपर दिव्यदेह पाते हैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां प्रावृट्शरदृतुवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा–इक्किसमें वृन्दाविपिन, गये श्याम सुखधाम। वेणु गीत गोपीनको, वर्णत शालिग्राम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज! शरदृतुमें निर्मल कमलोंकी सुगन्धयुक्त पवनवाले वृन्दावनमें गाय बछड़े और ग्वालबालोंको संग ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनमें गये॥ १॥ फूलीहुई वनकी पंक्तियोंके सौरभसे मतवाले भौंरे और पक्षियोंके समूहके शब्दसे, सरोवर नदी

पर्वत, गूँजरहे थे, ऐसे सुन्दर मनोहर वृन्दावनमें बलराम और ग्वालबालोंसहित जाकर मुरली बजाने लगे और गायें बछरे चरनेको छोड़ दिये प्रमदात्मक कामका प्रकाश करनेवाला वंशीका शब्द सुनके कई एक व्रजबाला श्रीकृष्णके पीछे अपनी सखियोंके सामने उनकी प्रशंसा करने लगीं ॥ २ ॥ ३ ॥ हे महाराज ! जिस समय कुछ कहनेका प्रारम्भ किया, उसीसमय मन मोहिनी मनमोहनकी छविका स्मरण होगया, उस छविका स्मरण होतेही कामदेवने उनके मन व्याकुल करदिये, इसलिये उनसे श्यामसुन्दरकी कान्तिका कुछ वर्णन नहीं होसका ॥ ४ ॥ मोरपुच्छोंका मुकुट शीशपर धरके काछनी काछके कानोंमें कनेरके पुष्प धारण करके, सुवर्णकी सदृश पीतपट ओढ़कर कण्ठमें वैयजन्ती और वनमाल धारणकर नटवररूप बनाकर बाँसुरीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे पूर्ण करते गोपोंके समूह जिनकी कीर्ति वर्णन करें, वह श्रीवृन्दावनविहारी अपने

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ॥ काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥ तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरंत्यः कृष्णचेष्टितम् ॥ नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयंतीं च मालाम् ॥ रंध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दैर्वृंदारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥ इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम् ॥ श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयंतोऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥

चरणारविन्दोंके चिह्नसे रमणीक वृन्दावनमें गये, नटवर वेष बनानेका आशय यह है कि, तुमको नृत्य दिखानेके लिये मैंने यह वेप बनायाहै और कनेरपुष्प कानमें धरनेका कारण यह है कि, जब गोपियोंकी बात कानमें सुनाई न आवे तो कानोंमें अत्यन्त सन्ताप होगा तब कानोंको शीतल करनेके लिये पुष्प धारण किये हैं और पीताम्बर धारण करनेका कारण यह है कि, राधा प्यारीका शरीर ऐसाही पीतवर्ण है इसको देखकर प्रीतमप्यारीके शरीकी सुधि आती रहेगी दूसरे प्यारीकेसा पीतरंग मेरे हृदयसे लगा रहेगा और वैजयन्ती और वनमाल हृदयपर पडी रहनेका अभिप्राय यह है कि प्यारीके वियोगकी जो विरहानल है उसे शान्त करती रहैं गोपियोंके चरणचिह्नयुक्त मनोहर वृन्दावन जानकर वृन्दावनमें प्रवेश किया ऐसा सुन्दर मनमोहनका मनमोहन रूप देख धैर्य धर जैसे तैसे कर एकसे एक कहने लगीं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार सब जीवोंके

मनकी मोहनेवाली मनमोहनकी बाँसुरीकी टेर सुनकर व्रजबाला परस्पर उसकी प्रशंसा करने लगीं, प्रशंसा करती ही करती परमानन्द रूपके
सागरमें मग्न हो मुरलीमनोहरका मनसे अलिंगन करती थीं ॥६॥ गोपी कहने लगीं हे सखियो ! उनहीं नेत्रवान् पुरुषोंके नेत्र संसारमें धन्य हैं और
हम दूसरेको धन्यवाद नहीं देसक्तीं, जिन्होंने सखाओंसमेत गायोंको चराते मुरलीबजाते, प्रेम भरे कटाक्ष चलाते श्रीकृष्ण बलदेवका मुखारविन्द
देखाहे वही धन्य हैं ॥७॥ दूसरी सखी बोली कि, आमकी पल्लव मोरपुच्छ फूलोंके गुच्छे उत्पल कमलोंकी मालाओंसे देदीप्यमान नीलाम्बर पीता
म्बरोंसे चित्र विचित्र वेष धारण किये, श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई ग्वाल मण्डलीमें गाते हुए ऐसे शोभायमान जान पडते थे जैसे रंगभूमिमें दो नट
नाटक कर रहे हैं ॥८॥ तीसरी गोपी बोली कि, हे सखियो ! इस बाँसुरीने ऐसा कौनसा तप किया है कि, जिसके पुण्यके प्रभावसे हमारे पीने योग्य

गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ॥ वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालाऽनुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ॥ मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रंगे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ॥ भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥ ९ ॥ वृंदावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदांबुजलब्धलक्ष्मि ॥ गोविंदवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥

अधरामृतके रसको यह आपही अपनी इच्छापूर्वक पीरही है जिन सरोवरोंके जलसे इस बाँसुरीके बाँसोंको सींचा है उन सरोवरोंमें कमल नहीं फूलते
मानो आनन्दसे रोमांच होआये हैं और जिन वृक्षोंके वंशमें इस बाँसुरीके बाँस उत्पन्न हुए हैं उन वृक्षोंमें मद नहीं टपकता मानो आनन्दके आंसू
बहाते हैं क्यों ? वह अपने आपको धन्यवाद देते हैं कि, धन्य हमारे भाग्य जो हमारे वंशके बाँसोंमें ऐसी बाँसुरी उत्पन्न हुई कि, जो आठों पहर
श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके मुखारविन्दसे लगी रहती है, जैसे श्रेष्ठ मनुष्य अपने कुलमें सुपुत्रको भगवान्का भक्त देखकर आनन्दमान नेत्रोंसे
आँसू बहाते हैं ॥९॥ चौथी सखी बोली कि, हे आली ! यह वृन्दावन सुरपुरसे भी अधिक पृथ्वीका यश विस्तार कर रहा है, धन्य है यह पृथ्वी जिस

पर ऐसा परमानन्ददायक वृन्दावन परमधाम है, जिसमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविन्द धरनेसे जिसको और भी अधिक शोभा प्राप्त हुई और इस वृन्दावनमें जिस समय मुरलीमनोहरकी मुरलीका शब्द होता है, उसको मन्द गर्जनेवाली श्याम घटा जानके मोर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं, उनका अनुपम नाच देखकर सब जीव जन्तु निश्चल होकर बैठ जाते हैं, ऐसा परमानन्द किसी और दूसरे लोकमें भी सुना है ? कहीं नहीं यह पूर्णानन्द वृन्दावनमें ही है ॥ १० ॥ पांचवीं सखी बोली कि,हे सजनी ! यह पशु जाति मूर्ख हरिणी भी धन्य हैं कि, जो मुरलीका शब्द सुन अपने पतिको संग लिये विचित्र वेष किये, वृन्दावनविहारीका स्नेहकी चितवनसे सन्मान करै हैं और हमारे पति तो ऐसे निर्दयी हो गये कि, हमको उनका दर्शन भी नहीं करने देते ॥११॥ छठी सखी बोली कि, हे प्यारी ! यह तो अद्भुत बात सुनो ! स्त्रियोंको आनन्दका

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नंदनंदनमुपात्तविचित्रवेषम् ॥ आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपवेषं श्रुत्वा च तत्कणितवेणुविचित्रगीतम् ॥ देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबंत्यः ॥ शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशंत्यः ॥ १३ ॥ प्रायो बतांब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ॥ आरुह्य ये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवाला न्शृण्वंत्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥

देनेवाला श्यामसुन्दरका मनोहर रूप देखकर और उनकी बजाई बाँसुरीकी मनोहर ध्वनि सुनकर विमानोंमें बैठ गमन करती हुई देवताओंकी स्त्रियें यद्यपि अपने पतियोंकी गोदीमें बैठी हैं, तो भी कामदेवके बाणोंके लगनेसे ऐसी व्याकुल होगई कि, उनके शिरके बालोंमेंसे पुष्प गिरे जाते हैं, और नीवी खुली जाती हैं, जब देवांगनाही मनमोहनके स्वरूपको देखकर मोहित होगई तो फिर हम मोहित होगई तो क्या आश्चर्यकी बात है ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णप्यारेके मुखसे निकलते हुए बाँसुरीके गीतरूप अमृतको गायें बछड़े कानरूप पात्रोंसे ऊपरको उठा उठाकर पीते हैं और श्रीकृष्णचन्द्रको दृष्टिसे आलिंगन करते, प्रेमके आँसू बहाते चित्रकी समान लिखेसे खडे हैं बछड़ोंके मुखमें दूधके थन और गायोंके मुखमें घासके तृण मुखके मुखमेंही रह जाते हैं ॥ १३ ॥ हे माता ! इस वनमें जो पक्षी हैं सो सब मुनीश्वर हैं, जो मनोहर पत्रवाले वृक्षकी शाखाओंपर बैठकर

नेत्रोंको मूँद, मौन साध, श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेका दर्शन करैं हैं और बाँसुरीके मनोहर गीतोंको सुनैं हैं, क्योंकि मुनिलोग भी भगवान्के दर्शनके लिये काम कर्मको त्याग वेदकी शाखाओंके आश्रित हो, उनके विशालरूप कर्मोंका गुण ग्रहण कर सुखीहो मौन साध भगवान्के गुणानुवाद सुना करते हैं, इससे उसकी समतावाले यह पक्षी भी मुनिजनहीं जान पडते हैं ॥ १४ ॥ चैतन्य जीवोंकी दशा जो कुछ थी सो तो थी ही, परन्तु मुकुन्द भगवान्की बाँसुरीकीटेर सुनकर नदियोंमेंभी भ्रमर पड़ते हैं. उनसे यह सूचित होता है कि, यह भ्रमर नहीं पडते, हमारे हृदयमें

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ॥ आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णंति
पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून्सह रामगोपैः संचारयंतमनुवेणुमुदीरयंतम् ॥
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्स्ववपुषांबुद आतपत्रम्॥ १६ ॥

कामदेवके गढे पडते हैं, मानो जल स्तम्भित हो आलिंगन करके आच्छादनकरता है. ऐसेही लहर रूप हाथोंसे कमलके पुष्प भेंटें लेलेके मुरारी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दको समर्पण करैं हैं * ॥ १५ ॥ बलदेवजीको और ग्वालबालोंको संग लेकर धूपमें व्रजकी गायोंको चराते,मुरली बजाते अपने प्यारे मित्र घनश्यामको देख श्यामघन उनपर छत्र छाया कर नन्ही नन्ही बूँदोंकी वर्षा करने लगे, क्योंकि सच्चा मित्र

* दृष्टांत—चार भंगेडी नशेमें चूर होकर आपसमे कहने कि, राजाके आदमी कितने होंगे ? एक रणधीर सिंह बोला फलाने परगनेमें राजाके आदमी एक लाख हैं, दूसरा व्रजपालसिंह बोला फलाने परगनेमें पन्द्रह लाख आदमी हैं, तीसरा सरदारसिंह बोला कि, फलाने परगनेमें राजाके पच्चीस लाख आदमी हैं चौथा बलवन्तसिंह बोला फलाने परगनेमें पचास लाख आदमी हैंऔर नौलाख यहांहैं,सब एक करोड १०००००० हुये अब इसका खर्च विचारो कि, सालभरमें कुछ खजानेमें बचता वा नहीं एक बोला पचास लाख तो फौजका खर्च है, दूसरा बोला पचीसलाख महलमें उठैं हैं तीसरा बोला दश लाख इमारतमें उठै है, चौथा बोला पन्द्रहलाख वस्त्र आभूषणमें उठैं हैं, इस हिसाबसे खजानेमें कुछ नहीं पडता ? यह बात राजाके दूत सुन रहेथे, राजकाजकी बाते सुन राजाको परचा लिख दिया, राजाने मन्त्रीको बुलाकर खर्चका हिसाब बूझा तो सब उन्हींके कहनेके अनुसार ठीक निकला राजाने उन चारों भगेडियोंको बुलाकर बूझा कि, हमारे घरकी बात तुमने कैसे जानी ? हमको ऐसा मालूम पडता है कि तुम हमारे खजांचीसे मिले हुए हो ! भगेडी बोले कि न हम चोर और न हम आपके भडारीसे मिले हुए हम तो भगके नशेमें अपनी बातें कर रहेथे सो आपही विधि मिलगई होगी देखो चार कौडीकी भगके नशेमें राजाके घरका बन्दोबस्त बाँध दिया । और गोपी तो अमोल श्रीकृष्णका प्रेमामृत पी रही थीं जो कृष्णरूपका प्रबध बाँध दिया तो क्या बडी बात है ।

श्यामसुंदरका मेघही है, देखो कृष्णकाभी श्याम रंगऔर मेघोंका भी श्याम रंग, कृष्णके भी पीत वस्त्र और मेघोंके पीत विजली, कृष्णके सुक्तामाल और मेघोंके बगपाँति, कृष्णकी मुरली-गजैं और मेघ आपही गजैं, कृष्ण अमृतकी वर्षा करैं और मेघ जलकी वर्षा करैं, कृष्ण वनमें घूमै और मेघ आकाशमें घूमैं कृष्णपर भौंहोंके धनुष हैं मेघोंपर इन्द्रका धनुष है, कृष्णके मेघके सब लक्षण एकसे मिलते हैं॥ १६ ॥ और सखी बोली आली! हमसे तो यह वनकी भीलनी भी धन्य हैं, क्योंकि प्रियाके स्तनोंमें जो कि, चर्चित केशर, कस्तूरी जब रतिके समय कृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगी और वह चरण अरुणाई लिये जब वनमें विहार करते समय घासमें लगे हैं, उनको देख कामातुर भीलनी उस केशर और कस्तूरीको घासपरसे लेलेकर अपने मुख और स्तनोंपर लगा लगाकर कामाग्निकी तापको शान्त करती हैं, हे सखी! हमारे भाग्यमें तो

पूर्णाः पुलिंद्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन दयितास्तनमंडितेन ॥ तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आनन कुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥ हंतायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ॥ मानं तनोति सहगो गणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकन्दरकंदमूलैः ॥ १८ ॥ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥ अस्पंदनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

इतनाभी नहीं जो किसी प्रकार अपनी कामाग्निको शान्त करलें ॥ १७ ॥ एक गोपी और बोली कि, हे अबलाओ! हे सहेलियो! यह गोवर्द्धन पर्वत भगवान्के भक्तोंमें कोई परमभक्त जान पडताहै? क्योंकि इसके ऊपर बलराम और घनश्यामके चरणारविन्द लगनेसे तृणादिक जो उप जते हैं वह तृणादिक नहीं होते, मेरी समझमें ऐसा आता है कि, उसके रोम खडे हो रहे हैं और अपने आनंदमें मग्न है, कृष्ण बलरामको अपने ऊपर आता देख, उनको शीतल जल हरी घास, कंद, मूल, फल भेंट करके उनका आदर सत्कार करता है ॥ १८ ॥ एक और बोली हे सखियो! ग्वालबालोंको संग लेकर कृष्णचन्द्र बलराम जब वृन्दावनमें गायें चरातेहैं और सब त्रिलोकीके मोहनवालीको मधुर ध्वनिसे बजाते हैं

तब उस मनोहर बाँसुरीका शब्द सुनके सब जंगम स्थावरकी नाईं स्थिर होजाते हैं अर्थात् जहाँके तहाँ खड़ेकेखडे रहजाते हैं और अपने आनन्दमें
मग्न हैं और वृक्षोंकी जंगमोंकेसी गति है, अर्थात् उनके रोमांच होजाते हैं. हे सखी ! यह अद्भुत आश्चर्य है न आजतक कहीं आखोंसे देखा
और न कानोंसे सुना, परंतु इतने परभी बलराम और नन्दलाल अपना ग्वालपन दर्शा रहे हैं कैसे ? गायदोहनके समय गायोंके बाँधनेकी रस्सी
शिरसे बाँध रहे हैं और पांशी कन्धेपर धर रहे हैं उस समयकी कुंजविहारीलालकी शोभा वर्णन करनेकी किसको सामर्थ्य है ॥ १९ ॥
इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! इसप्रकार वृन्दावनमें विहार करनेवाले वृन्दावनविहारीके चरित्रोंको गोपी परस्पर
वर्णन करती करती कृष्णमय होगई ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां वेणुगीतवर्णनं नाम एकविंशो

एवंविधा भगवतो या वृंदावनचारिणः ॥ वर्णयंत्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥ इति श्रीभाग०महा०
दशमस्कंधे पू०श्रीकृष्णवेणुगीतवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हेमंते प्रथमे मासि नंद
व्रजकुमारिकाः ॥ चेरुर्हविष्यं भुंजानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्यांभसि कालिंद्या जलांते चोदितेऽरुणे ॥
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥२॥ गंधैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफल
तंडुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नंदगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ ४ ॥

ऽध्यायः ॥२१॥ दोहा--बाइसवें अध्यायमें, वरणों चीरचारित्र । गोपिनकों वरदान दै, कीन्हो यज्ञ पवित्र ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,
राजन् ! हेमंतऋतुमें पहिला जो अगहन है उसमें सोलहसहस्र गोपकुमारी कन्याओंने मूंगभातका भोजन करके कात्यायनीदेवीका व्रत करना
आरंभ किया ॥ १ ॥ और व्रत करके सूर्योदयके समय यमुनाजलमें स्नानकर तटपर बैठ, बालूकी कल्याणीदेवीकी प्रतिमा बनाकर ॥ २ ॥
चन्दन, सुगंध, फूल, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत और छोटी बड़ी सामग्रियोंसे देवीकी पूजा किया करती थीं ॥३॥ हे कात्यायनी देवी !
हे महामाये ! हे महायोगिनी ! हे अधीश्वरी ! हे देवी ! नन्दरायगोपके सुतको हमारा पति बना, हम बारंबार तुमको नमस्कार करती हैं ॥ ४ ॥

वह सब गोपकुमारिका इस मंत्रका जप करके पूजा किया करतीं इसी प्रकार उनको पूजन करते करते एक महीना व्यतीत होगया श्रीमनमोहनमें उनका मन दिनरात लगा रहता था ॥ ५ ॥ और नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर यही वर माँगती थीं कि, हमको नन्दकुमार श्यामसुन्दर वर मिलैं. इसप्रकार एक एकका नाम ले पुकार पुकारकर परस्पर हाथ पकड़ पकड़कर ॥ ६ ॥ उच्चस्वरसे अपने प्राणप्यारे यशोदानन्दनका नाम लेतीं और गुणानुवाद गातीं यमुनाजीपर स्नान करनेको जाया करतीं ॥ ७ ॥ एक दिन पहिले केसीनाई यमुनाके किनारेपर अपने अपने वस्त्र उतारकर सबने धर दिये और श्रीकृष्णचन्द्रके गुणगान कर करके यमुना जलमें विहार करने लगीं, तब योगेश्वरोके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके

इति मंत्रं जपंत्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥ ५ ॥ भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नंदसुतः पतिः ॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ॥ ६ ॥ कृष्णमुच्चैर्जगुर्यांत्यः कालिंद्यां स्नातुमन्वहम् ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ॥ ७ ॥ वासांसि कृष्णं गायंत्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ८ ॥ वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ॥ ९ ॥ हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ अत्रागत्याबलाः कामं स्वंस्वं वासः प्रगृह्यताम् ॥ १० ॥ सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥ ११ ॥ एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥ तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥ १२ ॥

मनका मनोरथ जानकर ॥ ८ ॥ अपनी मण्डलीके सखाओंको संग लेकर उनकी मनोकामना सिद्ध करानेके लिये यमुनाके किनारेपर पहुँचे और उन कन्याओंके वस्त्र लेकर झटपट कदम्बपर चढ़गये ॥ ९ ॥ और बालकों समेत आप ठट्ठेमारमारकर हँसने लगे और अनेक प्रकारकी मसखरीकी बातें करने लगे कि, हे अबलाओ ! हमारे समीप आओ और अपने वस्त्र लेजाओ ॥ १० ॥ इस समय मैं ठठोलीसे नहीं कहता. सत्य कहताहूं तुम व्रत करनेसे बहुत दुर्बल होगई हो इस बातको मेरे सखा सब प्रकारसे जानते हैं ॥ ११ ॥ मुझे कुछ दुर्भाव और आग्रह नहीं है, तुम

एक एक मेरे सन्मुख आती जाओ और अपने अपने वस्त्र लेतीजाओ, चाहे सब मिलकर एकबार लेजाओ और जबतक तुम ऐसा न करोगी मुझे अपने बाबानन्दकी सौगन्दहै तुम्हारे वस्त्र कभी न दूंगा ॥ १२ ॥ मनमोहनप्यारेकी मीठी मीठी बातें सुनकर परस्पर देख लज्जित हो, गोपियोंने जान लिया कि, ये परिहास करतेहैं यह शोच विचार कण्ठतक शीतल जलमें जाड़ेकी मारी खड़ी काँपतीं रहीं थीं जब बहुत देर होगई तब गोपिका बोलीं ॥ १३ ॥ हे कृष्णचन्द्र! अन्यायकी वार्ता न करो तुम नंदजीके प्यारे पुत्र हो यह हम जानती हैं हे प्यारे! शीतसे दुःखित हम सब कांपरही हैं इस

व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योऽन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ एवं ब्रुवति गोविंदे नर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः ॥ आकंठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥ माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नंदगोपसुतं प्रियम् ॥ जानीमोंग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४ ॥ श्यामसुंदर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ॥ अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छंतु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततो जलाशयात्सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ॥ पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥

लिये हमारे वस्त्र देओ ॥ १४ ॥ हे श्यामसुन्दर प्यारे! हम तुम्हारी दासी हैं, जो तुम कहोगे सोई करैंगी, परन्तु हमारी लाजके ग्राहक मत बनो जब लाजही जाती रही तो फिर शेष क्या रहा? हम आपके सामने निर्लज्ज होना नहीं चाहतीं, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, हे धर्मज्ञ! वस्त्र हमारे देदो नहीं तो हम राजा कंससे जाकर कहैंगी ॥ १५ ॥ गोपियोंकी रोष भरी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि, जो तुम मेरी दासी हो और मेरा कहना तुमको अंगीकार है तो हे मन्दमुसकानवालियो! तुम यहाँ आनकर अपने वस्त्र लेजाओ ॥ १६ ॥ जब कुछ उपाय न चलसका तब हारकर शरदीकी

मारी काँपती हुईं संकोच करती सम्पूर्ण गोपिका दोनों हाथोंसे अपने कुच और योनिको ढक जलसे बाहरको आईं, तब श्यामसुंदर बोले कि, दोनों
हाथ जोडकर सूर्यनारायणको प्रणाम करो ॥ १७ ॥ उनके शुद्धभावको देख श्रीकृष्णमहाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको शुद्धकन्या कुमारी
देखकर उनके वस्त्र कन्धोंपर धरे मन्दमन्द मुसकाय प्रीति पूर्वक बोले ॥ १८ ॥ कि, हे शशिवदनियो ! तुमने जो व्रत करके नंगी हो यमुनाजलमें
स्नान किया यह वरुणदेवताका अपराध हुवा, उस पापके दूर करनेके लिये हाथ जोड़ माथेसे लगाय पृथ्वीमें प्रणाम करके अपने अपने वस्त्र पहन
लो ॥ १९ ॥ व्रजबालाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी यह बातें सुन वस्त्र त्यागके नग्न स्नान करना व्रतखण्डकरनेवाला मानके उसके

भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ॥ स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥१८॥ यूयं विवस्त्रा यदपो
धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ॥ बद्ध्वांजलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंहसः कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥
इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्वा विवस्त्राऽऽप्लवनं व्रतच्युतिम् ॥ तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरव
द्यमृग्यतः ॥ २० ॥ तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥
दृढं प्रलब्धा त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ॥ वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन् प्रिय
संगनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः ॥ गृहीतचित्ता नोचेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥

पूर्ण करनेके लिये व्रतके और सब कर्मोंके फलदायक श्रीकृष्णभगवान्‌को नमस्कार किया क्योंकि वह सब पापोंके दूर करनेवाले हैं ॥ २० ॥ देव
कीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अधीनता करनेवाली गोपियोंको देखकर उनके वस्त्र देदिये ॥ २१ ॥ उनके संग बहुत छल किया, लाज उनकी छुटाई
हँसी उनकी करी, खिलौनेंकी नाईं उन्हें खिलाया वस्त्र उनके चुरालिये, तौ भी उन गोपियोंने कृष्णको दोष नहीं दिया, क्योंकि उनको अपना
प्राणनाथ समझकर उनके संग परमानंद मान रही थीं, ॥ २२ ॥ अपने अपने वस्त्र पहिर प्यारेके संग ऐसी वशीभूत होगईं और उनके चित्त
हरगये, श्रीकृष्णकी ओर खड़ी खड़ी देखतीही देखती ऐसी विह्वल होगईं कि, वहांसे चलने तककी सामर्थ्य न रही ॥ २३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र सर्वान्तर्यामी भगवान् दामोदरने उन अबलाओंके व्रतका संकल्प जानलिया कि, इन गोपिकाओंने मेरे चरणस्पर्शकी चाहनासे यह व्रत कियाहै ॥ २४ ॥ तब श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे सुशीलाओ ! जिसलिये तुमने मेरा व्रत किया है उस मनोरथको लाजकी मारी तुम नहीं कहतीं, परन्तु तो भी मैंने तुम्हारे मनोरथको जानलिया और मैंने तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन किया, इसलिये तुम्हारा मनोरथ सत्य होगा ॥ २५ ॥ हे मनोरंजिनी ! तुम अपने अपने घर जाओ, मुझ में मन लगानेवालोंकी कामना विषय भोगके लिये नही होती, जैसे भुनाहुआ अन्न दूसरी बार उपजनेके योग्य नहीं रहता ॥ २६ ॥ हे पूर्णव्रत करनेवालियो ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा. हे पतिव्रताओ ! जिस प्रयोजनके लिये तुमने यह व्रत किया और कात्यायनीदेवीकी आराधना की सो मैंने जाना; अब जब शरदृतुकी रात्रि आवैगी तब तुम सब मेरे संग विहार

तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया ॥ धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥ संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ॥ मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥२५॥ न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ॥ भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ २६॥ याताऽबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः॥ यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥ २७ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ॥ ध्यायंत्यस्तत्पदांभोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥ २८ ॥ अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः ॥ वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ॥ २९ ॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ॥ आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण हे अंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन ॥ विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥

कीजियो, अब तुम इस समय अपने २ घरको जाओ ॥ २७ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, जिन गोपियोंकी मनोकामना पूर्ण होगई वह गोपी भगवान्की आज्ञा मान और उनके चरणकमलका ध्यान करती हुई अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने अपने घरोंको चली गई और उसी दिनसे आठोपहर यही मानती थीं कि, वनमालीके संग परमसुख देनेवाली शरदृतु कब आवेगी ॥ २८ ॥ तब देवकीनन्दन श्रीकृष्णभी ग्वालबालोंको संग ले गायें चराते बलदेवजी सहित वृन्दावनसे भी और आगे बढगये ॥ २९ ॥ बडी तीक्ष्ण ग्रीष्मकी धूपमें अपनी छायासे छाया करनेवाले सघनवृक्षोंको देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मित्रोंसे कहा कि ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण ! हे अंशो ! हे श्रीमन् ! हे अर्जुन !

हे विशाल! हे ऋषभ! हे तेजस्विन्! हे देवप्रस्थ! हे वरूथप! ॥ ३१ इन बडभागी वृक्षोंको देखो तो यह कैसे भाग्यशाली हैं और सदा परोपकारके लिये एकान्तमें वास करते हैं, पवन, वर्षा, शीत, घाम आप सहते हैं और हमको इनसे बचाते हैं॥ ३२ ॥ अहो इन वृक्षोंका जन्म धन्य है, जिनसे हम सब लोग सुख पातेहैं और इनसे प्राणियोंकी जीविकाहै जैसे किसी मनुष्यके पाससे याचक विमुख नहीं जाता ऐसेही इन वृक्षोंके समीप आनकर प्राणी विमुख नहीं जाता ॥ ३३ ॥ इस संसारमें यह पत्र, फल, फूल, छाया, जड़, वल्कल, लकड़ी, सुगन्ध, गोंद, भस्म, कोयला कोंपल, आदिसे सब प्राणियोंकी मनोकामना पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ इस संसारमें उन्हीं देहधारियोंका जन्म सफल है, जोकि प्राण, धन, बुद्धि

पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकांतजीवितान् ॥ वातवर्षातपहिमान्सहंतो वारयंति नः ॥ ३२ ॥ अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ॥ सुजनस्यैव येषां वै विमुखा यांति नार्थिनः ॥ ३३ ॥ पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ॥ गंधनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते ॥ ३४ ॥ एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ॥ प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ॥ ३५ ॥ इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ॥ तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥ ३६ ॥ तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ॥ ततो नृप स्वयं गोपा कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्या उपवने कामं चारयंतः पशून्नृप ॥ कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे श्रीकृष्णकृतगोपीवस्त्रापहरणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

और वाणीसे परायेका भलाही करते रहते हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकार हरे हरे पात, गुच्छ, फल, फूल, कोंपलोंके समूहोंसे जिनकी शाखा झुँकरही हैं उन वृक्षोंके बीचमें होकर श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाकी ओरको गये ॥ ३६ ॥ हे राजन्! उस यमुनाके तीर ग्वालबालोंने निर्मल जल मंगलरूप गायोंको पिलाया और आप भी पिया ॥ ३७ ॥ हे महाराज! उस यमुना महारानीके किनारे पर गायोंको चराते हुए ग्वालबालोंको जब क्षुधा लगी तब घनश्याम बलरामजीके पास आनकर यह बात कहने लगे ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां चीरहरणलीलावर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा–तेइसवें अध्यायमें, माँगो हरि यज्ञ अन्न । विप्रोंनने दीनों नहीं, दियो नारि ते धन्न ॥ हे राम ! हे राम ! हे महापराक्रमी !
हे कृष्ण ! हे दुष्टोंके संहारकरनेवाले ! यह भूख हमको बहुत सताती है आप इसके शान्त करनेका कोई उपाय करो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी
बोले कि, हे राजन् ! गोपोंने जब श्रीकृष्णसे इसप्रकारकी प्रार्थना की तब देवकीनन्दन भगवान्ने अपनी भक्तिवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके ऊपर
प्रसन्न होकर यह कहा ॥ २ ॥ हे सखाओ ! वेदके पढ़नेवाले मथुरावासी ब्राह्मण स्वर्गकी इच्छा करनेके लिये आंगिरसनाम यज्ञ कररहे हैं,
देवताओंका पूजन जहाँ होरहाहै वहाँ जाओ ॥ ३ ॥ हे गोपो ! वहाँ उस यज्ञमें जाकर भात माँग लाओ और जो तुमको भात माँगते लज्जा

गोपा ऊचुः ॥ रामराम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः ॥ भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देव
यजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ सत्रमांगिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥ तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विस
र्जिताः ॥ कीर्तयंतो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचंत ते तथा ॥ कृतांजलि
पुटा विप्रान् दंडवत् पतिता भुवि ॥ ५ ॥ हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ॥ प्राप्ताञ्जानीत भद्रं वो गोपान्नो
रामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयंतावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ॥ तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि
श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥

लगती हो तो तुम मेरा और मेरे भाई बलरामका नाम लेना कि, उनके भेजे हुए हम तुम्हारे पास भोजन माँगने आये हैं ॥ ४ ॥ इसप्रकार
श्रीकृष्ण भगवान्की आज्ञा मानकर वह गोपलोग वैसेही भोजन माँगनेलगे और ब्राह्मणोंको हाथ जोड़ पृथ्वीमें पडकर दण्डवत्कर कहा ॥ ५ ॥
भूमिदेव ! हमारी बात सुनो ? श्रीकृष्णमहाराजकी कृपासे सदा आपके यहाँ ऐसाही मंगल होता रहै, हम श्रीकृष्णके आज्ञाकारी हैं और
जातिके गोप (अहीर) हैं श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार बलदेवजीके भेजेहुए हम आपके पास आये हैं सो आप उनको जानतेही होंगे ॥ ६ ॥
श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई गायें चरानेको आपके निकटही आये हैं और इस समय उनको भोजनकी इच्छाहै और अधिक

भूखेहैं; इसलिये आपसे भातकी चाहनाहै हे ब्राह्मणो! हे धर्म के जानने वालोंमें उत्तम! तुम्हारे यहां भातहै, यदि आपकी श्रद्धा हो तो माँगनेवाले कृष्ण बलरामको भोजन देदीजे ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठब्राह्मणो! तुम चुप क्यों होरहे? जो तुम कहो कि, हम यज्ञके करनेवाले दीक्षित हैं उनको हमारा भोजन करना नहीं चाहिये तो वहाँ यह विचारहै कि, दीक्षाके आरम्भसे लेकर पशुके हिंसने पहिले सौत्रामण्य यज्ञसे और ठौर दीक्षावालेके अन्न खानेसे कुछ दोष नहीं लगता. सो पशुका हिंसन तुम्हारे यहाँ हो चुका है, सौत्रामण्य यज्ञ आपके हैही नहीं, सो आपके अन्न भोजनमें हमको किसी प्रकार दोष नही है ॥ ८ ॥ इस प्रकार गोपोंने उनको शास्त्रानुसार समझाया भी, परन्तु तौ भी वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी बातको सुनी अनसुनी करगये क्योकि वह ब्राह्मण क्षुद्रफल वाले स्वर्गके जानेकी इच्छा कर रहे थे, वह क्लेशकारी कर्ममें अपनी

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ॥ अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥ इति ते भग
वद्याच्ञां शृण्वंतोऽपि न शुश्रुवुः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥ देशः कालः पृथग् द्रव्यं मंत्र तंत्र
र्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुधर्मश्च यन्मयः ॥ १० ॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवंतमधोक्षजम् ॥ मनुष्यदृष्ट्या
दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥ ११ ॥ न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परंतप ॥ गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्ण
रामयोः ॥ १२ ॥ तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥

मूर्खतासे लग रहेथे और अपने आपको बड़ा ज्ञानी और महात्मा जानतेथे ॥ ९ ॥ देश काल अलग अलग, चरु पुरोडाशादिक सामग्री मंत्र, तंत्र, ऋत्विज्, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ, धर्मफल, यह सब कृष्णमय हैं ॥ १० ॥ सो इंद्रियोंसे परे साक्षात् परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको उन कुत्सित बुद्धिवाले मूर्ख देहाभिमानी देहकोही आत्मा माननेवाले ब्राह्मणोने अज्ञानवश हो उनको कुछ भी नहीं पहिचाना मनुष्यही जानके अवज्ञा करी ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परंतप! उन ब्राह्मणोने चुप साध ली, न तो अपने मुखसे हां की और न ना की, तब गोपनिराश होकर लौट आये और श्रीकृष्ण, बलरामके पास आनकर कहा कि भले ब्राह्मणोके पास भेजा, उन्होने कुछ भी नहीं दिया, देखो हमारा अपमान भी हुआ और भोजन भी नही मिला, अब क्या उपाय करें? भूखके मारे तो प्राण निकले जाते हैं ॥ १२ ॥ जगदीश्वर श्रीकृष्णभगवान इस बातको सुनकर हँसे और फिर गोपोसे कहा कि, कार्यवालेको निराश होना नहीं चाहिये और माँगनेवालेको

मान कहाँ ? क्योंकि उसका मान तो सदैवही भंग रहता है । लौकिकरीति दिखलानेके लिये फिर श्रीकृष्णचन्द्रने गोपोंसे कहा कि ॥ १३ ॥ अब तुम फिर जाओ और उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोसे कहो कि, कृष्ण बलदेव दोनों भाई गायें चराते चराते यहाँ आगये हैं और भूखे हैं वह तुमको मुँह माँगा भोजन देकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करैंगी, क्योंकि वह शरीरसे तो घरमें वास करैहैं, परन्तु उनका मन मुझमेंही लग रहा है, इसीसे मुझमें उनका बड़ा प्यार है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर ग्वाल फिर गये, देखा तो पत्नीशालामें सब ब्राह्मणी शृंगार किये बैठी थीं उनके पास जाकर गोपोंने नमस्कार कर अधीनतासे यह वचन कहा ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणकी भार्याओ ! तुमको नमस्कार है, तुम हमारी एक बात सुनो, श्रीकृष्णचन्द्र आपके समीपही आगये हैं, उन्होंने हमको तुम्हारे पास भेजाहै ॥ १६ ॥ ग्वाल बाल और बलदेवजीको संगलेके गायें चराते चराते

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ॥ दास्यंति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथ पत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृताः ॥ नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ॥ इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन्स गोपालैः स रामो दूरमागतः ॥ बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ श्रुत्वाऽच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ॥ अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥

इतनी दूर चले आये हैं, इस समय भूखे हैं और उनके मित्र हम भी भूखे हैं, सो कुछ भोजन चाहते हैं तुम कृपा करके हमको दो ॥ १७ ॥ नित्य श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहनावाली और कृष्णचन्द्रकी कथामें तन, मन, धन, लगानेवाली, वह ब्राह्मणोंकी स्त्रियें व्रजभूषणका आना सुनकर अत्यन्त हर्षमानहुई, क्योंकि उनका मन तो पहिलेही श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लग रहा था ॥ १८ ॥ बड़े बड़े थालोंमें सुन्दर सुगन्ध युक्त चारप्रकारका भोजन भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य (चने, चबैना, रोटी, पूरी यह भक्ष्य) (दाल, भात, इत्यादि भोज्य) (कढी, क्षीर, इत्यादि लेह्य)(ऊख, आम, नींबू, इत्यादि चोष्य) सब ब्राह्मणोंकी स्त्रियें अपने मनमोहनप्यारेके लिये भोजन लेलेकर ऐसे धाईं जैसे नदियें

समुद्रमें को जाती हैं ॥ १९ ॥ उनके पति, भाई, बन्धु, पुत्रोंने बहुतेरा रोका परंतु वह न रुकीं. क्योंकि उनके मन तो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणार विन्दमें बरसोंसे लग रहे थे तब उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने ॥ २० ॥ उसी अशोक वृक्षके नवपल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके निकट उपवनमें ग्वाल वालोंको संग लिये भाई बलराम समेत मनमोहनप्यारेको फिरते देखा ॥ २१ ॥ श्यामस्वरूप, पीतवसन धारन किये, वनमाला पहिरे; मोर पुच्छका मुकुट शीशपर धरे, खरिया, गेरूके छाप लगाये, धातु मूँगा पहिरे, नटवर वेष बनाये, सखाके कण्ठमें भुजा डाले, दूसरे हाथमें कमलके फूलको घुमाते, कानोमें कमलके फूल लटकाये, कपोलोंपर अलकें छिटकाये, मन्दमन्द मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जैसे जैसे गुण कृष्ण प्यारेके अपने कानोंसे सुनके देखनेकी अत्यन्त अभिलाषा थी वैसेही प्रत्यक्ष जाकर अपने नेत्रोंसे देखे

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बंधुभिः सुतैः ॥ भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥ यमुनोपवनेऽशोकन वपल्लवमंडिते ॥ विचरंतं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवे षमनुव्रतांसे ॥ विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥ प्रायः श्रुतप्रियतमो दयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरंध्रैः ॥ अंतः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाभिमतयोर्विजहुर्नरेंद्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ॥ विज्ञायाखिलदृग् द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ॥ यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥

और अपने आपको परमबडभागी समझकर उस व्रजराजके अनूप स्वरूपको नेत्रोंके द्वारा हृदयमें लेजाकर बहुत देरतक आलिंगन किया और मनमोहनप्यारेको वहीं रहनेको स्थान दे सर्वत्र तापको त्याग दिया, जैसे अहंकार वृत्तियाँ सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षी हैं उनको आलिंगन करके और उनहींमें लीन होकर सब तापको त्याग देती हैं ॥ २३ ॥ पुत्रादिक गृहादिककी सब आश छोडकर मेरा दर्शन करनेके लिये आई हैं उन ब्रह्मपत्नियोंको देखकर सबकी बुद्धिकी परीक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र मुसकाके बोले ॥ २४ ॥ कि, हे बडभगिनीयो ! तुमने बहुत अच्छा किया जो यहाँ आईं आओ आओ हमारे समीप बैठो । इस समय हम तुम्हारी क्या शुश्रूषा करें ? हमारे लिये क्या आज्ञाहै ? हमारा

भोजन लेकर आई, इससे अधिक और कुछ
दर्शन करनेके लिये आई हो सो तुमको योग्य है, तुम हमको भूखा समझकर इस महानिर्जन वनमें भोजन लेकर आईं, इससे अधिक और कुछ
दया है ? इसके बदलेमें हम तुम्हें क्या दें ? जो इस समय हमारा घर भी धोरे होता तो कुछ पान फूल तुम्हारे आगे धरते सो वृन्दावनभी हमारा
यहाँसे बहुत दूर है, हमसे आपकी कुछ भी सेवा न बन पडी, इस बातका बड़ा पछतावाहै और हमारा मुख नही जो आपके प्रेमकी और परिश्रमकी
प्रशंसा करसकैं, इस समय हम सब प्रकारसे लाचार हैं ॥ २५ ॥ अपने स्वार्थके देखनेवाले ज्ञानी पुरुष आत्मारूप प्रिय जो मैं हूँ, सो मुझमें फलकी
बुद्धि अनिच्छा करके निरन्तर यथार्थ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु आत्मा सबसे अधिक प्रिय है. विचार लो प्राण, बुद्धि, मन, तनु,
धन, स्त्री, पुत्र, आदिक सब वस्तु जिस आत्माके सम्बन्धसे प्रिय लगते हैं फिर भला उस आत्मासे बढ़कर और कौनसी वस्तु प्रिय है ॥ २७ ॥

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ॥ अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥ प्राणबुद्धिमनस्स्वात्मदारापत्यधनादयः ॥ यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः कोन्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥ तद् यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः॥ स्वसत्रं पारयिष्यंति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ॥ प्राप्ता वयं तुलसिदामपदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलंघ्य समस्तबंधून् ॥ २९ ॥

जबतक तुम न जाओगी तबतक यज्ञ पूर्ण
इसलिये हे सुशीलाओ ! अब तुम अपनी यज्ञशालामें जाओ तुम कृतार्थ होगईं पति तुम्हारे गृहस्थ हैं, जबतक तुम न जाओगी तबतक यज्ञ पूर्ण
न होगा,क्योंकि,विना स्त्रीके यज्ञ पूरा नहीं होता इसलिये वह लोग यज्ञको तुम्हारे साथही पूरा करेंगे॥२८॥विप्रपत्नियोंने कहा कि,हे नाथ! आपको
अपने कोमल मुखारविन्दसे ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिये, क्योंकि आपहीने गीतामें कहा है, (न मे भक्तः प्रणश्यति) अर्थात् मेरे भक्तोंका
नाश नहीं होता (न स पुनरावर्तते) अर्थात् मुझमें प्राप्त होकर फिर लौट नहीं आता, यह आपहीकी आज्ञा है, फिर अपनी प्रतिज्ञाको सत्य क्यों
नहीं करते ? इधर उधर क्या देख रहे हो ? तुमने अपने चरणसे जो तुलसीकी माला ठुकरादी है उसको बड़े आदर सत्कारसे शिरपर चढ़ानेके
लिये अर्थात् आपके चरणारविन्दकी सेवा करनेके लिये आपकी शरण आई हैं, अब सब बन्धुजनोंको त्यागकर आपके चरण शरण हैं ॥ २९ ॥

हे दीनदयालु ! हम यही चाहती हैं कि, आपहीके चरणारविन्दमें हमारे देह पडे रहैं, स्वर्गादिकका सुखभोग हम नहीं चाहतीं, हमको तो अपना दासभावही अच्छा है ॥ ३० ॥ द्विजपत्नियोंकी प्रेम प्रीति भरी मधुर वाणी सुनकर मनहरण प्यारे स्नेहयुक्त मनोहर वचन बोले कि, तुम निःसन्देह अपने घर जाओ, तुम्हारे पति, पिता, तात, माता, भ्राता, पुत्र, तुम्हारी कुछ निंदा न करेंगे और संसारमें भी कोई मनुष्य तुमको दोष न लगा वेगा, देवताओंको साक्षात् दिखलाकर कहा कि, सब देवता और मनुष्यों को मेरा कहना स्वीकार है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें शरीरके स्पर्श होनेसे प्रीति नहीं रहती और अनुराग भी नहीं बढ़ता, इसलिये, तुम घरमें रहकर मुझमें मन लगाओ तो बहुत शीघ्र मुझको पाओगी ॥ ३२ ॥ (मेरा स्मरण, दर्शन, ध्यान, कीर्त्तन करनेसे जैसा भाव मुझमें होता है वैसा समीप रहनेसे नहीं होता, इसलिये तुमको उचित है कि, शीघ्र अपने

गृह्णंति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबंधुसुहृदः कुत एव चान्ये ॥ तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिमरिंदम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः ॥ लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यंगसंगो नृणामिह ॥ तन्मनो मयि युंजाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥ (स्मरणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥) श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ॥ ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३३ ॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवंतं यथाश्रुतम् ॥ हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबंधनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविंदस्तेनैवान्नेन गोपकान् ॥ चतुर्विधेनाऽऽशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥

मखभवनको जाओ) ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इसप्रकार जब श्रीकृष्णने द्विजपत्नियोंको समझाया तब वह द्विजांगना यज्ञशालामें पहुँची और उन ब्राह्मणोंने कुछ अपराध उनको न लगाया, निर्दोष समझकर अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्दपूर्वक यज्ञ समाप्त किया ॥ ३३ ॥ जिस समय सब स्त्रियें श्रीकृष्णके पासको भोजन लेकर चलीं उस समय एक स्त्रीके पतिने अपनी स्त्रीको जानेसे रोक लियाथा, उसनें जैसा श्रीकृष्णका रूप, रंग, स्वभाव कानोंसे सुन रक्खाथा उसी रूपका ध्यानकर हृदयमें आलिंगन करके कर्मोंके अधीन जो देह था उसको त्यागकर चैतन्यस्वरूप भगवद्रूपमें लय होगई ॥ ३४ ॥ और जो जो पक्वान्न मिठाई द्विजपत्नियोंने लाइ थीं उन चारप्रकारके व्यंजनोंको यमुनाके निकट

कुंजोंकी छायामें बैठ, अतिप्रसन्न हो श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी अपने हाथसे भोजन करातेथे और सब सखा उन भोजनोंकी प्रशंसा कर करके
प्रेमसे भोग लगारहे थे. जब सब सखा भोजन कर चुके तो पीछे अपने आप भी भोजन करके ब्राह्मणियोंकी बड़ी सराहना की ॥ ३५ ॥
इस प्रकार मनुष्यरूप धारण कर लीला करके लोगोंकी सदृश गोप गोपियोंको आनंददेके आपभी उनके साथ रमण करते भये ॥ ३६ ॥
इसके उपरान्त वह ब्राह्मण अपने भोजन न देनेके अपराधको स्मरण करके दुःख पाते भये क्योंकि श्रीकृष्ण और बलदेवको सामान्य मनुष्य
समझके अन्न नहीं दिया॥३७॥उन अपनी पत्नियोंकी श्रीकृष्ण भगवान्में अलौकिक प्रीति देखकर और अपने आपको भक्तिहीन समझकर

एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ॥ रेमे गोगोपगोपीनां रमयन्रूपवाक्कृतैः ॥ ३६ ॥ अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वत
प्यन् कृतागसः ॥ यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडंबयोः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ॥
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हन् ॥ ३८ ॥ धिग् जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ॥ धिक्
कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ॥ यद्वयं गुरवो
नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४० ॥ अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ॥ दुरंतभावं योऽविध्य
न्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४१ ॥

अत्यन्त दुःखी हो बारम्बार अपने आपको धिक्कार दे देकर अपनी निन्दा करते थे ॥ ३८ ॥ शुद्ध माता पितासे, सावित्री यज्ञोपवीतहुएसे,
यज्ञकी दीक्षा लियेसे यह तीन प्रकारका हमारा जन्म है इसको हमारी विद्याको हमारे कर्मको और हमारी चतुराईको बारम्बार धिक्कार है
हमारे व्रत करनेको धिक्कार है हमारे अनेक शास्त्रके पढ़नेको धिक्कार हमारे कुलको और क्रिया दक्षताको भी धिक्कार है,
क्योंकि जिससे जगदीश्वर भगवान्से विमुख हुए इसलिये हमको धिक्कार है और इस हमारी अधम बुद्धिको धिक्कार है ॥ ३९ ॥ निश्चय है
कि, भगवान् वासुदेवकी माया योगियोंको मोह उपजानेवाली है, इस मायासे मनुष्योंमें गुरु ब्राह्मण जो हम हैं सो स्वार्थमें मोहित

होरहेहैं हाय अहो बड़े आश्चर्यकी बातहै देखो! जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रमें स्त्रियोंकी कैसी अलौकिक भक्तिहै देखो! जिस भक्तिने गृहरूप मृत्युकी, फाँसियोंको काट दिया॥४०॥४१॥ तो विचारतो करो यह स्त्रीकी जाति, कैसी अशुद्ध है न तो इनके उपवीतसंस्कार है न गुरुके समीप वास है न तप है न जप है न आत्माका विचारहै न पवित्रताहै न सुकर्म है॥४२॥ तो भी योगीश्वरोंके ईश्वर परपुरुष श्रीकृष्णभगवान्में जैसी इन अबलाओंकी अचल भक्ति है ऐसी हम स्नान सन्ध्या-जप तप करनेवालोंकी भी नहीं तो धिक्कार है हमारे इस संस्कार और यज्ञव्यवहारको ॥ ४३ ॥ हम लोग कुछ भी अपने अर्थको नहीं पहिचानते घरके व्यवहारमें भूल रहेहैं और ऐसे अचेत हैं कि आगे पीछेकी कुछ भी सुधि नहीं, महात्माओंके आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ॥ न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥ ४२ ॥ अथापि उत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्करादिमतामपि ॥ ४३ ॥ ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ॥ अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः॥ ४४ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः ॥ ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडंबनम् ॥ ४६ ॥ हित्वाऽन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् ॥ आत्मदोषापवर्गेण यद्याच्ञा जनमोहिनी॥४६॥ देशः कालः पृथग् द्रव्यं मंत्रतंत्रर्त्विजोऽग्नयः॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥४७॥ स एष भगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥ जातो यदुष्वित्यश्शृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे॥ ४८ ॥

भगवान्ने गोपोंके वचनोंसे हमें सचेत किया हाय ! तो भी हम मूर्ख न चेते इसमें किसीका कुछ दोष नहीं यह सब हमारे कर्मोंका फल है ॥ ४४ ॥ पूर्ण जिनका मनोरथ मोक्षादिक सब मनोरथोंके अधीश्वर श्रीकृष्णभगवान् उनको हमसे मायाके वशीभूत पामर जीवोंसे क्या प्रयोजन था ? केवल भातका मांगना तो ईश्वरका कौतुक था ॥ ४५ ॥ देखो ! त्रिभुवनेश्वरी लक्ष्मी ब्रह्मादिक देवता और सब संसारको छोड़कर चरणारविन्दके स्पर्शकी चाहना करके अपना चंचलपना और दोष दूर करनेके लिये जिनका दिन रात भजन करती हैं उन श्रीकृष्णका माँगना केवल हम लोगोंको मोहका उत्पन्न करनेवाला है ॥४६॥ देश काल अलग अलग चरुपुरोडाशादिक द्रव्य, मंत्र, तंत्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ, धर्म, यह

सब श्रीकृष्णका रूप है। सो साक्षात् श्रीकृष्णभगवान् विष्णु योगेश्वरोंके ईश्वरने यदुकुलमें आनकर जन्म लियाहै, यह बात हमने पण्डितलोगोंके मुखसे सुनी थी, परन्तु तो भी हम जान बूझकर मूर्ख अज्ञानी होगये ॥४७॥४८॥ कोई कोई ब्राह्मण कहनेलगे कि, अहो हम बड़े धन्यहैं क्योंकि हमारी ऐसी भक्तिमती स्त्री हुई कि, जिनकी भक्तिके प्रभावसे कृष्ण भगवान्में हमारी भी दृढ़ भक्ति हुई ॥ ४९ ॥ अकुण्ठ बुद्धि जो आप श्रीकृष्ण भगवान् हैं, सो आपके लिये बारम्बार नमस्कार है, जिसकी मायासे मोहितबुद्धि हो हम कर्म मार्गमें भटकते फिरते हैं ॥ ५० संसारकी मायासे जो हमारा चित्त मोहित हो रहाहै और आपकी महिमाको हम नहीं जानते, ऐसे जो हम अज्ञनी लोगहैं सो हे दीनदयालु ! हमारा अपराध क्षमा

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ॥ भक्त्या यासां मतिर्जाता ह्यस्माकं निश्चला हरौ ॥ ४९ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥५०॥ स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम्॥ अविज्ञातानुभावानां क्षंतुमर्हत्यतिक्रमम् ॥५१॥ इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः॥ दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाऽचलन् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भाग०म० द० पू० यज्ञपत्न्युद्धरणदीक्षितानुतापनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥ अपश्यन्निवसन्गोपानिंद्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपि भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥

कीजै ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् के अपराधी जो ब्राह्मण हैं, उनको अपने अपराधको स्मरण करके कृष्ण, बलदेवके दर्शनकी इच्छा हुई परन्तु कंसके भयके मारे नही जासके ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा—चौविसवें अध्यायमें, इन्द्र यज्ञको त्याग । गोवर्द्धन पूजन कियो, सबन सहित अनुराग ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान् अपने बड़ेभाई बलदेवजी सहित सुखसे रहते थे कि, इन्द्रके यज्ञकी तय्यारी होती देखते भये ॥ १ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा भगवान् सर्वव्यापक सब बतोंके जाननेवाले, जानते भी थे कि, इन्द्रके यज्ञका प्रबंध होरहा है तो भी नंदरानीसे बूझने

लगे कि, माताजी ! आज क्या है ? जो घर घर पकवान मिठाई बन रही है और तुम भी बडी धूमधाममें हो ? मुझे समझाकर कहो कि, यह क्या भेद है ? जो मेरे मनका संशय मिटै ? यशोदा बोलीं कि, पुत्र ! इस समय मुझको सावकाश नहीं यह सब वृत्तान्त तुम अपने पितासे जाकर बूझो वह तुम्हारा सब सन्देह दूर करदेंगे, यह सुन नन्दजीके पास जाकर श्रीकृष्ण बोले ॥ २ ॥ कि, पिता ! आज क्या है ? जो सब ब्रजमें कड़ाही खड़क रही है और अनेक अनेक प्रकारके व्यंजन बन रहे हैं, सब ठौर ठौर कोलाहल मचरहा है और ग्वालबाल चारों ओर भागे भागे फिरते हैं, क्या उत्सव है ? किस देवताके नामका यज्ञ है ? क्या इसका फल है ? कौनसे देवताका पूजन है ? क्या क्या उसमें गुण हैं ? कौन इसका अधिकारी है ? किस किस वस्तुसे यज्ञ होताहै ॥ ३ ॥ हे पिता ! मुझे इस बातके सुननेकी बड़ी अभिलाषा है. सज्जनपुरुष सब प्राणियोंमें और स्थानोंमें आत्माको

कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः ॥ किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥ एतद्ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ॥ न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥ अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥ उदासीनोऽरिवद्वर्ज्य आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ॥ विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ॥ अथ वा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥

देखते हैं उनसे कोई कर्म छिपा नही है और छिपानेके योग्य भी नहीं है ॥ ४ ॥ साधु पुरुष अपना बिराना कुछ नहीं समझते उनकी समदृष्टि है, मित्र उदासीन ! वा वैरी भी उनका कोई नहीं होता, उदासीन तो शत्रुकी सदृश वर्जित है, सुहृद् आत्माकी समान मानना चाहिये, इससे उसको अवश्य सम्मतिमें साथ करले ॥ ५ ॥ यह प्राणी जानकर भी कर्म करता है और बिना जाने भी कर्म करता है परंतु जानकर जो करता है उसका फल तत्काल मिलता है और जो बिना जाने कर्म करता है उसका कार्य किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता ॥ ६ ॥ आपने जो यह यज्ञका अनुष्ठान कर रक्खा है सो शास्त्रकी रीतिसे किया है, अथवा लोकरीतिसे किया है और यह रीति आपके यहाँ परम्परासे चली आई है वा आज

किसीने नई बताई है, यह आपसे मेरा निवेदन है कि, आप कृपाकर मुझसे कहो ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णके गम्भीर वचन सुनकर नन्दरायजी बोले कि, बेटा ! क्या यह वृत्तान्त तुमने आजतक नहीं सुना ! मेघरूप भगवान् इन्द्र हैं और मेघही उनकी प्यारी मूर्ति है यही प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला है और संतोष देनेवाले जलकी वर्षा करता है ॥ ८ ॥ मेघोंका राजा भगवान् इन्द्र है उसको हम भी और संसारके दूसरे पुरुषभी उसी मेघपतिके वरसाये जलसे उत्पन्न हुवा जो अन्न है उसीसे यह यजन करते हैं, उसके करनेसे देवता, पितृ, प्रसन्न होते हैं. अनेक प्रकारकी ऋद्धि सिद्धि उत्पन्न होती है वन उपवन फूलतेहैं, तृण, घास उत्पन्न होताहै, उससे सब पशु, पक्षी, जीव, जन्तु आनन्द पातेहैं और उस यजन कर्मके उपरान्त जो

नंद उवाच ॥ पर्जन्यो भगवानिंद्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ॥ तेऽभिवर्षंति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ॥ द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ॥ पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥ य एवं विसृजेद्धर्मं पारंपर्यागतं नरः ॥ कामाद्द्वेषाद्भयाल्लोभात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य नन्दस्य तथाऽन्येषां व्रजौकसाम् ॥ इन्द्राय मन्युं जनयन्पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा जायते जंतुः कर्मणैव विलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥

शेषान्न रहजाता है उसीकी प्राप्तिके लिये अपनी जीविका करके धर्म करते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ हे पुत्र ! यह इन्द्रयज्ञकी रीति हमारे यहाँ परम्परासे चली आई है, कुछ आज ही किसी पण्डितने नई नहीं बनाई, जो धर्म परम्परासे चला आयाहै और जो मनुष्य काम, लोभ, भय, द्रोहसे उसको छोड़ देते हैं उन पुरुषोंका कभी कल्यान नहीं होता ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित ! नंदराय और वृद्ध वृद्ध व्रजवासियोंके ऐसे वचन सुनकर इन्द्रके ऊपर अत्यन्त क्रोधकरके उसका मान घटानेके लिये श्रीकृष्णभगवानने अपने पिता नन्दजीसे कहा ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पिताजी ! कर्महीसे प्राणी जन्म लेताहै और कर्महीसे देहका त्याग करताहै, दुःख, सुख, भय, कल्यान,

कुशल यह सब कर्महीके अधीन हैं ॥१३॥ कोई कोई मतवाले ऐसा कहते हैं कि, ईश्वर प्राणियोंके किये हुए कर्मोंके फलका देनेवाला है इससे तो यह सिद्ध हुवा कि, ईश्वर कर्मोंके वशीभूत है जैसा कर्म जिसने किया वैसाही फल मिला ईश्वर अपनी ओरसे कुछ नहीं करसक्ता, इस बातसे यह निश्चय हुवा कि, फलकी सिद्धि देनेवाला कर्मही प्रधान रहा, इसलिये कर्मही जब मुख्य पर ठहरा तो फिर ईश्वर क्या वस्तु है ? उसे तो ऐसा समझो कि, जैसे बकरीके कण्ठके स्तन ॥१४॥ जब कर्मही प्रधान ठहरा, तो इन्द्रसे क्या प्रयोजन ? जब सब प्राणी अपने अपने कर्मोंके अनुसार भोग भोगते हैं, पूर्वजन्मके संस्कारजन्य जो कर्म हैं उनको इन्द्रभी किसीप्रकार नहीं घटा बढ़ा सक्ता ॥ १५ ॥ प्राणी स्वभावहीके वशीभूत हैं और स्वभावहीको वर्तें हैं देवता, असुर, मनुष्य यह सब स्वभावहीके वशमें हैं और कर्मकी प्रवृत्ति भी स्वभावके अधीन है तो फिर उस प्रवृत्तिमें ईश्वरकी

अस्तिचेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् ॥ कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४ ॥ किमिंद्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ॥ अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतंत्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ॥ स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥ देहानुच्चावचाञ्जंतुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥ तस्मात्संपूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ॥ अंजसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥ आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ॥ न तस्माद्विंदते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥

कुछ आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ यह जीव कर्महीसे छोटे बड़े देहको पाता है और त्यागता है. कर्मही शत्रु है, कर्मही मित्र है, कर्मही गुरु है, कर्मही ईश्वर है ॥ १७ ॥ इस लिये स्वभावमें स्थित होकर अपने कर्मोंका अनुष्ठान करे. यही मुख्य है. यद्यपि देवताके नामसे यज्ञ, व्रत, पूजन, हवन, किया बस उस करनेहीका नाम कर्म है. यद्यपि तुमको यह सन्देह हो कि, बिना देवताके हमारा कार्य सिद्ध नहीं होसक्ता, देवताही हमारा कार्य करता है, तो भी देवता कर्मकेही अधीन ठहरा, देखो ! तुम किसी देवताका नाम लेकर अग्निपर दूधका पात्र रखदो, वह दूध औटजायगा और देवताका नाम नहीं भी लो तो भी औटजायगा, परंतु बिना अग्निपर धरे किसी प्रकार नहीं औट सक्ता, तो मुख्य कर्मही ठहरा, क्योंकि बिना कर्म कुछ नहीं होसक्ता अनायास पूर्वक कर्मकी पूजाकरै और जिससे जिस पुरुषका निर्वाह हो वही उसका देवता है ॥ १८ ॥ जो पुरुष एक पदार्थका सेवन

करके दूसरे पदार्थका सेवन करते हैं, वह पुरुष कभी कल्याणको नहीं पाते. जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषका सेवन करके कल्याणको नहीं
पाती ॥ १९ ॥ हे पिता ! चारो वर्णोंको चाहिये कि, अपने अपने धर्मपर आरूढ़ रहैं. ब्राह्मणको चाहिये वेद पढ़ै और उसीसे अपनी आजीविका
करै. क्षत्रियको चाहिये कि, पृथ्वीकी रक्षा करै. वैश्य व्यापारादिकसे अपना उदर पूर्ण करै और शूद्रको चाहिये कि. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा करके
अपना प्रतिपाल करै ॥ २० ॥ खेती, वाणिज्य, गोरक्षा और व्याजलेना यह चार प्रकारकी वैश्यकी जीविका है. इन चारोंमें हमारे तो सदा
गायोसेही जीविका है ॥ २१ ॥ हे पिता ! ऐसा कभी मत समझना कि हमारी गायोंकी वृद्धि और आजीवका इन्द्रहीके अधीन है, क्योंकि सत्त्व
गुण, रजोगुण, तमोगुण इन्हीं तीन गुणोसे विश्वका पालन उत्पत्ति नाश होता है. इस रजोगुणसे स्त्री पुरुषसे मिलके त्रिविध जगत उत्पन्न होता

वर्त्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ॥ वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षा
कुसीदं तुर्यमुच्यते ॥ वार्त्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥
रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥ २२ ॥ रजसा चोदिता मेघा वर्षंत्यंबूनि सर्वतः॥ प्रजास्तैरेव सिद्ध्यंति महेंद्रः
किं करिष्यति ॥ २३ ॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥
तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ॥ य इंद्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥ पच्यंतां विविधाः
पाकाः सूपांताः पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥

है ॥ २२ ॥ रजोगुणकी प्रेरणासे मेघ सर्वत्र स्थानोंपर जल वर्षाते हैं, उसी जलसे प्रजाका जीवन होता है, इन्द्र इसमें क्या करसक्ता है ॥ २३ ॥
हमारे तो पुर, देश, नगर, ग्राम, घर कुछ भी नहीं है, हे तात ! केवल वनही हमारा घर है और सदा वन और पर्वतोंमें हमारा वास है
॥ २४ ॥ इसलिये गौ, ब्राह्मणकी सेवा करनी उचित है और पर्वतोंका पूजन करना चाहिये जिससे हमारी गायोंका और हमारा पालन पोषण
हो, सो हमारे समीप सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोवर्द्धनपर्वत है उसीके यज्ञका प्रारम्भ करो, जो इन्द्रके यज्ञके लिये सामग्री इकट्ठी करी है उसी सामग्रीसे
गोवर्द्धनके यज्ञका प्रारम्भ करो ॥ २५ ॥ खीरसे आदि लेके दालतक अनेक अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाओ, गेहूंकी पूरी, कचौरी, उडद,

मूंगकी दाल, कढ़ी, पकौरी, रायता, चुनौरी, शाक, वासमतीके चावलोंका भात, दूध, दही, रबड़ी, मलाई और सब गायोंका दूध इकट्ठा करो ॥ २६ ॥ वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर हवनकी सामग्री मँगाकर, अग्निमें होम कराओ और उन ब्राह्मणोंको भाँति भाँतिके अन्न, गोदान, दक्षिणा और अलंकार पहिराओ ॥ २७ ॥ और जो दीन भिखारी, कुत्ते चांडालसे आदि लेकर पतिततक हैं, सबको यथायोग्य भोजन कराओ गायोंको घास दो, गोवर्द्धनपर्वतको बलिदान दो ॥ २८ ॥ अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण पहिर चन्दनका तिलक लगाय, नये नये वस्त्र धारण करके, शृंगार बनाओ. गौ, ब्राह्मण, अग्नि; पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ हे पिता ! मेरा तो यह मत है, आगे आपकी इच्छा हो सो कीजै यह गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धनपर्वतका यज्ञ मुझको तो अत्यन्त प्रिय है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इन्द्रका गर्व दूर करनेके

हूयंतामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाऽऽश्वचां
डालपतितेभ्यो यथार्हतः ॥ यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥ स्वलंकृता भुक्तवंतः स्वनुलिप्ताः सुवा
ससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्राऽनलपर्वतान् ॥ २९ ॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणा
द्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्पजिघांसया ॥ प्रोक्तं निशम्य नंदा
द्याः साध्वगृह्णंत तद्वचः ॥ ३१ ॥ तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान्
॥ ३२ ॥ उपहृत्य बलीन्सर्वानादृता यवसं गवाम् ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥

लिये कालरूप भगवान्का बचन सुनकर नन्दादिक गोपोने और सब ब्रजवासियोंने परस्पर कहा कि, हे पुत्र ! मैं तेरा वचन किसीप्रकार नहीं फेरसक्ता और, न कोई और फेर सकै जो बात तुझको अच्छी लगे हम सब उसीमें प्रसन्न हैं. इस बातको सुनकर बड़े बड़े जो वृद्ध गोप थे, वह कहने लगे कि, कृष्ण सत्य कहता है, हमारा इन्द्रसे क्या प्रयोजन है ? हमको तो नदी, पहाड, वन सदा बने रहैं ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा उसीप्रकार सब ब्रजवासी स्वस्तिवाचन वचायके संपूर्ण इन्द्रके यज्ञकी सामग्री करते भये ॥ ३२ ॥ पर्वत और द्विजोंको आदर युक्त यथाविधि सन्मान करके सब ब्रजवासी गौवोंको आगे करके गोवर्द्धन पर्वतराजकी परिक्रमा करते भये ॥ ३३ ॥

फिर धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, अक्षत, पान, सुपारी गिरिराजके आगे धर आरतीकर मिठाईके ढेरके ढेर चढाने लगे, इतनी मिठाई चढी कि, सम्पूर्ण पर्वत ढकगया और दूध, दही, घृत इतना चढाया कि, नदियें बहने लगीं और जहाँ तहाँ अनेक रंगके थानके थान तान दिये, उससमय गिरिराज ऐसे शोभायमान जान पडते थे मानो भगवान् विराट श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलनेको आये हैं, उस अद्भुत शोभाको देखकर व्रजवासी प्रसन्न हो होकर ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणोंका आशीश लेते भये वहाँ व्रजवासियोंके प्रतीति करानेके लिये श्रीकृष्णने नया कौतुक एक और किया, अपना दूसरा रूप और प्रगट किया कि, मैंही हूं गोवर्द्धन पर्वत, अतिशय बृहत् शरीर बडी लम्बी लम्बी भुजायें बडा चौडा लम्बा मुख, अखण्ड प्रकाश, महास्थूल जंघा और जानू और शैलके शिखरकी समान शीश, रत्नजटित मुकुट धरे, आभूषण पहिरे, कण्ठमें वनमाला पीताम्बर धारण किये

अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः ॥ गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायंत्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रंभणं गतः ॥ शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥ तस्मै नमो ब्रजजनैः स चक्रे आत्मना ऽऽत्मने ॥ अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥ एषोऽवजानतो मर्त्यान्कामरूपी वनौकसः ॥ हंति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥ ३७ ॥

गिरिराजकी कन्दरामेंसे निकलकर बोले ॥ ३५ ॥ फिर तो सब गोप गोपी भोजनके थाल और परातें उठा उठा गिरिराजको पकडाते जाते थे और वह प्रसन्न हो हो खाते थे और प्रत्येक भोजनकी प्रशंसा भी करतेथे, निदान जो कुछ पकवान मिठाई नन्दादिक व्रजवासी लेगये थे, उस सबको निर्वार प्रसादमात्र छोड दी, तब तो श्रीकृष्णचन्द्र सबसे पुकारकर कहनेलगे कि, हे पिता ! हे भ्रातृगण ! देखो गिरिराजने आज कैसा प्रत्यक्ष रूपसे दर्शन दिया और तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, देखा आपने गिरिराजका कौतुक कभी इन्द्रनेभी इस प्रकार प्रगट होकर दर्शन दिया था ? और अपने हाथसे इसप्रकार भोजन किया था ? सबने उस गिरिराजको नमस्कार करना ॥ ३६ ॥ यह गोवर्द्धननाथ अपने पूजनेवालोंपर सदा दयादृष्टि रखते हैं और जो कोई वनवासी इनका तिरस्कार करनेवाले हैं उनको सिंह सर्पादिक रूपसे कालकौर करलेते हैं, इसलिये

अपने और गायोंके मंगलार्थ इनको वारम्बार नमस्कार और दण्डवत करो ॥ ३७ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण गोप वासुदेव भगवान्‌की आज्ञासे भलेप्रकार यज्ञ करके श्रीकृष्णचन्द्रको सङ्ग लेके गोवर्धनसे व्रजको आवत भये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां इन्द्रमखभंगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ दोहा–पच्चिसमें व्रजपर चढो, इन्द्र खाय कर खार। हरि व्रजकी रक्षा करी, करपर गिरिवर धार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्। इन्द्रने अपनी पूजाका लोप देखकर श्रीकृष्ण भगवान्‌ही

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥ यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः॥३८॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० इन्द्रमखभंगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥ गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥ गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चांतकारिणाम् ॥ इंद्रः प्राचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥

जिनके नाथ हैं उन नंदादिक व्रजवासियोंको अपना शत्रु समझ अत्यंत कोप किया कि क्या कारण मेरी पूजा छोडकर गोवर्द्धनकी पूजा की ❀ ॥ उसी समय प्रलय करनेवालोंमें मुख्य सांवर्तक नाम गणको बुलाकर आज्ञादी (मैंहीं इन्द्र हूं) ऐसे अभिमानी इन्द्रने महाक्रोध करके अत्यन्त कठोर वचन कहा ॥ २ ॥ अहो बड़े आश्चर्यकी बात है, वनके रहनेवाले, गँवार गायोंको चरानेवाले जातिके ग्वालियोंको लक्ष्मीका कैसा मद हुआहै जिन्होंने मनुष्य कृष्णका आश्रय लेकर (मैं सुराधीश इन्द्र हूँ) मेरा अपराध किया और कुछ आगा पीछा न विचारा, सत्यहै मूर्ख कहीं

* शंका–इन्द्रकी विनयसे भगवान्‌ने पृथ्वीमें अवतार लिया था सो इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों की ?

उत्तर–भगवान्‌की प्रिया जो देवी थी उसका अनादर इन्द्र अपने अभिमान और अज्ञानसे नित्य किया करता था, उस अपने इन्द्रके किये अनादरको देवीने स्मरण करके और अपना पक्षपाती श्रीकृष्णको समझकर प्रथम इन्द्रका उपद्रव देवीने नहीं किया, उससमय तो सहन करलिया फिर पीछे श्रीकृष्णका पक्षपात कर देवीने इन्द्रको मोहित कर लिया, मोहको प्राप्त होकर इन्द्र उन्मत्त हो भगवान्‌को भूल गया और व्रजके ऊपर प्रलयके करनेवाले मेघोंको भेजकर मूसलधार जल वर्षाया यह कारण था ॥

ज्ञान सिखानेसे ज्ञानी हो सक्ता है ? ॥ ३ ॥ जो अदृढ़ नौकाकी सदृश यह कर्ममय यज्ञ है, इससे आत्माका कल्याण जिससे होता है, उस आत्म विद्याको छोड़कर हठकी करनीपर बैठ इस संसारसमुद्रके पार होना सहजमें ही चाहता है ॥ ४ ॥ वह वाचाल, मूर्ख, अज्ञानी किसीकी बातको नहीं मानता और अपने आपको बड़ा पण्डित और ज्ञानी जानता है, और ऊंच नीचको कुछ नहीं पहिचानता. ऐसे छोटी अवस्थावाले मूर्ख मनुष्य श्रीकृष्णका आश्रय ले उन गँवार ग्वालिनियोंने सब संसारमें मेरी अवज्ञा की ॥ ५ ॥ लक्ष्मीके मदके मतवाले गोप कृष्णके सिखाने बुझानेसे हमें इन गँवारोंने कुछ न समझा और हमारा तिरस्कार करके यज्ञभाग पर्वतको दिया, उस नाचनेवाले कृष्णका भरोसा करके अपने प्राणोंकी कुशल चाहते हैं तो तुम उनके सबके गर्वका और गायोंका नाश करो ॥ ६ ॥ और ठौर वर्षनेका कुछ काम नहीं केवल चौरासीकोस ब्रजपरही ऐसी वर्षा करो कि गोवर्द्धन पहाड़का खोजमात्र भी न रहै अरु गाय बछडोंका तो ऐसा विनाश करना कि, उनका कोई नाम लेवा और पानी

यथाऽदृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नाम नौनिभैः ॥ विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पंडितमानिनम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ येषां श्रियाऽवलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ॥ धुनुत श्रीमदस्तंभं पशून्नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥ अहं चैरावतं नागमरुह्यानुव्रजे व्रजम् ॥ मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबंधनाः ॥ नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनंतः स्तनयित्नुभिः ॥ तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥

देवा भी न रहै, लाख वह हाय हाय करैं परन्तु तुम कुछ दया चित्तमें मत लाना, क्योंकि जैसा उन्होंने किया है उस अपनी करनीका फल तो भोगैं, तुम किसीप्रकारका संदेह मत करना मैंभी तुम्हारे पीछे पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़ देवताओंकी सेना समेत और सब प्रलय करनेवाले मेघोंको और उञ्चास (४९) मरुद्गण पवनोंको भी साथ लाऊँगा ब्रजतो क्या ? वहांकी भूमितक बहादूंगा फिर देखूं जगत्में किसकी सामर्थ्य है जो ब्रजवासियोंकी रक्षा करै ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! मेघोंने इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाय मुक्तबंधन हो नंदरायके गोकुलपर बलते बडी वर्षा करने लगे ॥ ८ ॥ चारों ओरसे घटा घिर आईं, बिजली चमकने लगीं, बादलोंके गर्जनेका गम्भीर शब्द होनेलगा; तीव्र मरुद्गणोंने मेघोंको चलायमानकर ओलोंकी झडी लगादी और मूशलधार वर्षा होने लगी ॥ ९ ॥

वर्षाकी धारा हाथीके शुण्डकी समान मोटी बादलोंमेंसे अखण्ड गिरती थी, जिससे समस्त व्रजमण्डल जलमें डूबगया और चारोंओरसे बादलोंके समूहके समूह उमडते चले आते थे, ऊंचे नीचे गाढ़ गढौले और पृथ्वी कहीं नहीं दिखाई देतीथी॥१०॥बड़े वेगकी वर्षासे और महाप्रचण्ड पवनसे पशु सब थर थर काँपने लगे और गोपी गोप जाड़ेके मारे अत्यन्त दुःखी हो,हाय हाय ! करतीं थर थर काँपतीं श्रीगोविन्द कृष्णकी शरणमें जाती भई॥११॥मूसलधार जो जल वर्षा तो उससे पीड़ित होकर गायें अपना शिर नीचे किये बछड़ोंको नीचे लिये, थर थर काँपती थीं और गोपियें गिरती पड़ती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट जाकर बोलीं ॥१२॥ हे कृष्ण हे कृष्ण ! हे महाभाग!हेसामर्थ्यवान् ! हे भक्तहितकारी ! हे गोकुलनाथ ! इस महाक्रोधी इन्द्रसे इस अपने गोकुलकी और हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ जब बड़ी बड़ी शिलायें ओलोंकी आकाशसे गिरनेलगीं उनसे बेसुधि

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुंचत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ॥ जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥१०॥ अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ॥ गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविंदं शरणं ययुः ॥११॥ शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ॥ वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥ कृष्णकृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ॥ त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥ शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ॥ निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेंद्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ॥ स्वयागे निहतेऽस्माभिरिंद्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ॥ लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥ न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ॥ मत्तोऽसतां मानभंगः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥

और व्याकुल गोकुलवासियोंको देखा, तब सबके दुःख दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जाना कि, यह सब कौतुक उसी महाक्रोधी इन्द्रका है ॥ १४ ॥ विना वर्षाऋतुके जो यह महाभयानक शिलाओंकी वर्षा हो रहीहै और महाप्रलयकेसा प्रचण्ड पवन चल रहाहै, केवल इसका यही कारण है कि, मैंने जो इसके यज्ञको भंग करदिया और इसकी पूजा व्रजसे उठा दी, इसीसे इन्द्र हमारे विनाशके लिये मूसलधार पानी वर्षा रहा है ॥ १५ ॥ इसकारण अबमैं अपनी सामर्थ्यसे इस महाघोर वर्षाका उपाय करूंगा और उन अज्ञानी लोकपाल और अभिमानी इन्द्रादिक देवताओंको जो लक्ष्मीका मद होगया है उस मदको हरूंगा ॥ १६ ॥ मेरी भक्ति अथवा सत्त्वगुण जिन देवताओंके हृदयमें व्याप रहाहै और मैंहीं उनका

ईश्वरहूं इसलिये उन देवताओंको अपने पराक्रम और बलका गर्व किसी प्रकार होना नहीं चाहिये, क्योंकि अभिमानमें भक्ति और प्रेम कहाँ ? इसलिये जबतक उन अभिमानियोंका मानखण्डन न होगा तबतक वह मेरा मान न करेंगे और मेरा मान किये विना उनका कल्याण कहाँ ? ॥ १७ ॥ इससे वह उपाय करूं जो वह मेरी शरण आवे क्योंकि मेरा नाम गोकुलनाथ है जब मैंहीं गोकुलका नाथ होकर गोकुलकी रक्षा न करूंगा तो और कौन रक्षा करने आवेगा ? क्योंकि सब गोकुलवासी मुझहीको अपना प्राण आधार समझते हैं मुझहीको अपना तन,मन,धन जानते हैं, यह सब मेरेही दर्शनकी अभिलाषा करते रहते हैं मेरे समान और किसी दूसरेको नहीं मानते ॥ १८ ॥ यह कह नटवर रूपधर लीलामात्र एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड बायें करकी कन अंगुली पर धर, ऊपरको उठा व्रजमण्डलपर छत्रीकी समान तान दिया, जैसे कोई बालक

यस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ॥ गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ॥ दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥ १९ ॥ अथाह भगवान् गोपान् हेऽब तात व्रजौकसः ॥ यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥ २० ॥ न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ॥ वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥ तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ॥ यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२ ॥

छत्राकको उखाड़कर ऊपरको उठालेताहै (यह वह छत्राक है जिसको बालक साँपकी छत्रीकहते हैं) ॥ १९ ॥ जब भगवानने पर्वतको उठा लिया, तब पीछे गोपोंसे कहा कि, हे भैया ! हे पिता ! हे व्रजवासियो ! अपनी २ गाय बछड़े बाल बच्चों समेत सुखसे इस पर्वतके नीचे आजाओ ॥ २० ॥ हे व्रजवासियो ! अपने मनमें यह मत समझना कि, कृष्णके हाथसे गिरि गिरजायगा, यह सब बाबा नन्दका प्रभाव है, इसमें मेरा कुछ पराक्रम नहीं है, यहाँ पवन पानीका कुछ खटका नहीं अपने मनमें पूर्ण विश्वास करके गिरिकी छायामें चले आओ, मैंने तुम लोगोंकी रक्षाकरनेके लिये गोवर्द्धनको हाथपर उठा लिया है, जबलों बहुत वर्षा होय तबलों इसके नीचे सुखसे वास करो ॥ २१ ॥ जिन लोगोंको श्रीकृष्णके बलवीर्यका पूरा भरोसा था इन्होंने गाय बछड़े गाड़ी पुरोहितादिक जिसको पाया उसको नन्द उपनन्द अपने संग ले आनन्दपूर्वक पर्वतके

नीचे गढ़ेलमें घुसगये; उससमय सब श्रीकृष्णके मुखकी ओरको निहार रहे थे, न किसीको भूख थी न प्यास थी ॥ २२ ॥ उस दिनसे ब्रजवासी भूख प्यास तज चकोरकी नाईं श्रीकृष्णचन्द्रके चन्द्रमुखकोही देखतेरहे और श्यामसुन्दर भी सातदिन तक पर्वतको धारण किये एकही ठौर जहाँके तहाँ खड़े रहे, एक तिलभरभी चरणको नहीं सरकाया ॥ २३ ॥ और मेघ उसीप्रकार मूशलधार जल बरसातारहा ओले पडते रहे चपला चमकती रही परन्तु ब्रजका कुछ नाश नहीं हुआ, यह बात सुन इन्द्र चकित होगया और कृष्णके योगबलका प्रभाव देख अपने मनमें बड़ा आश्चर्य मानने लगा और अपनी प्रतिज्ञाकी अवज्ञा देख अत्यन्त व्याकुल हुवा और सब अज्ञान अभिमान धूलमें मिलगया, मेघोंको वर्जने

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ॥ वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥२३॥ कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येंद्रोऽतिविस्मितः ॥ निस्तंभो भ्रष्टसंकल्पः स्वान्मेघान्स न्यवारयत् ॥ २४ ॥ खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ॥ निशाम्योपरतं गोपान् गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ॥ उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वंस्वमादाय गोधनम् ॥ शकटोढोपकरणस्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ १८ ॥

लगा कि अब तुम्हारा बल यहां नहीं चलैगा॥२४ ॥जब आकाशमें बादल छिन्न भिन्न होगये सूर्यनारायण उदय हुए भयानक वर्षा और पवन चलनेसे बन्द होगई, तब गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णमुरारीने गोपोंसे कहा कि ॥ २५ ॥ हे गोपो ! स्त्री, बालक, गाय, बछडोंको लेकर तुम इस पर्वतके नीचेसे बाहर निकलो डरो मत. अब पवन वर्षा थमगई, नदियोंका जल भी उतरगया ॥ २६॥ तब बांकेविहारीकी मधुरवाणी सुन सब गोप अपने अपने बाल बच्चे और गायोंके समूहोंको लेलेकर और गाड़ियोंमें सब वस्तु धर धरकर स्त्री, बालक, वृद्ध सब सहज सहजमें निकले ॥ २७ ॥ सर्व समर्थवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सब ब्रजवासियोंके सन्मुख पर्वतको जहांका तहां रखदिया ॥ २८ ॥

प्रेममें प्रफुल्लित हो सब व्रजवासी परस्पर आनकर यथायोग्य मिलने लगे और स्नेहभरी गोपियें आनन्दपूर्वक दही, अक्षत, जलसे पूजनकर मांगलिक आशिषें देने लगीं ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी, नन्दराय और बलियोंमें बलवान् श्रीबलदेवजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर, स्नेहमें मग्न होकर बारम्बार आशीर्वाद देतेथे ॥ ३० इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! अन्तरिक्षमें देवताओंके समूह, साध्यगण, सिद्ध, गंधर्व, चारण सन्तुष्ट हो हो, स्तुति पढ़ पढ़ फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजन ! स्वर्गमें देवता शंख और दुन्दुभि बजानेलगे, तुम्बुरू आदि गन्धर्वपति श्रीमुकुन्दभगवान्‌के गुणानुवाद गानेलगे ॥ ३२ ॥ नंद उपनन्द बलराम सहित मनमोहनप्यारे मित्रोंको

तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरंभणादिभिः ॥ गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदा रोहिणी नंदो रामश्च बलिनां वरः ॥ कृष्णमालिंग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ३० ॥ दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगंधर्वचारणाः ॥ तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ॥ जगुर्गंधर्वपतयस्तुंबुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥ ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स्वगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ॥ तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायंत्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० गोवर्द्धनोद्धरणं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥ अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ॥ कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥

संगले व्रजमें आये और गोपी परमानंद देनेवाली वनमाली श्रीकृष्णकी मनोहर मनोहर लीला गाती चली आती थी, इसप्रकार आनंद सहित सब अपने अपने घर आये ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोवर्द्धनोद्धरणंनाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ दोहा—छब्बिसमें हरिके चरित, विस्मय युक्त निहार । नन्द गर्गके वचन कह, वरणें यश विस्तार ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! गोपोंने गोवर्द्धन उठाना और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अनेक कर्म और प्रभाव देख बड़ा आश्चर्य मान नन्दरायजीके पास आनकर कहने लगे॥ १॥ कि, इस बालकके बड़े अद्भुत चरित्र हैं, इन्हें देखकर हमको संदेह होताहै कि, अपने स्वरूपके और इस ग्रामके रहनेवाले पुरुषोंमें इनका जन्म

होना कैसे संभवहै ? ॥ २ ॥ क्योंकि जो सातवर्षके बालकने एक हाथसे लीलापूर्वक जिसप्रकार हाथी कमलको उठा लेता है, उसीप्रकार पर्वतको उठालिया ॥ ३ ॥ और नेत्र मूंदे हुए अति छोटी अवस्थामें इस बालकने बडे वेगवाली पूतनाके स्तनोंको प्राण सहित पान किया था, जैसे काल यौवन अथवा आयुर्बलको पीताहै ॥ ४ ॥ देखो ! तीन महीनेके होके गाडियोंके नीचे पालनेमें सोतेहुए रोते रोते जो इस बालकने ऊपरको पाँव उछाले, तो चरणकी ठोकर लगकर गाड़ी उलटकर कैसी गिरी थी ? ॥ ५ ॥ और देखो ! जब एकही वर्षका कृष्ण आँगनमें बैठा खेल रहा था, तब आकाशमें दैत्य तृणावर्त्त इसे हरकर लेगया, उस दैत्यका गला घोटकर इसने कैसा मारा ? ॥ ६ ॥ और देखो ! कभी

यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ॥ कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३ ॥ तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ॥ पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४ ॥ हिन्वतोऽधःशयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ॥ अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥ एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ॥ दैत्येन यस्तृणावर्तमहन्कंठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ कचिद्धैयंगवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ॥ गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७ ॥ वने संचारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः ॥ हंतुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥ वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशंतं जिघांसया ॥ हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया ॥ ९ ॥ हत्वा रासभदैतेय तद्बंधूंश्च बलान्वितः ॥ चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलंबं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ॥ अमोचयद्व्रजपशून्गोपांश्चाऽरण्यवह्नितः ॥ ११ ॥

जब कृष्णने माखन चुराया था, तब यशोदाजीने इसे ऊखलसे बाँध दिया इसके उपरान्त इसने वृक्षोंके बीच में आय, हाथोंसे उनको कैसा उखाड़ डाला ? ॥ ७ ॥ और देखो ! जब वनमें बलदेवजी सहित बछडे चराते थे उस समय बकासुर इनके मारनेको आया, उसको दोनों हाथोंसे चोंच पकड कैसे चीरडाला ? ॥ ८ ॥ देखो बछड़ोंमें बछडेका रूप धरकर मारनेकी इच्छासे आये हुए वत्सासुरको मार उसकी देहको लीलापूर्वक कैथके वृक्षपर कैसा पटका था ? और लीलासेही वह वृक्षपरसे फल भी गिरगये ॥ ९ ॥ इसकेउपरान्त बलदेवजी सहित धेनुकासुरको मार और उसके संगियोंको भी मार फल जिनमें पक रहे, उन तालोंको निर्भय कर दिया ॥ १० ॥ फिर महाबलवान् बलदेवजीसे अत्यन्त

भयानक प्रलम्बासुर दैत्यको मरवाय और व्रजमें जो अग्नि लगी थी, उससे पशु तथा गोपोंको छुड़ादिया ॥ ११ ॥ फिर देखो ! इसी कृष्णने अति भयानक विषवाले कालीनागको दंड दे, उसके मदको दूरकर बलात्कार दहमें से निकाल यमुनाको निर्विष करदिया ॥ १२ ॥ नंद ! हम सब व्रजवासियोंका इनमें बड़ा अनुराग है. अर्थात् इतना प्यार होगया है कि, छुटायेसे छूटना अत्यन्त कठिन है और इन श्रीकृष्णका भी हममें स्वाभाविक प्यार है अर्थात् यह श्रीकृष्ण सबकी आत्मा हैं, यह शंका होती है ॥ १३ ॥ क्योंकि सातवर्षका बालक इतना बडाभारी पर्वत उठावे ? इसलिये हे व्रजनाथ ! तुम्हारे पुत्रमें हमको शंका उत्पन्न होती है कि, कदाचित् परमेश्वर न हों ? इसकारण हम इसका विचार करेंगे कि, तुम्हारे

आशीविषतमाहींद्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ॥ प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥ दुस्त्यजश्चानुरागो ऽस्मिन्सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ॥ नंद ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥१३ ॥ क सप्तहायनो बालः क महा द्रिविधारणम् ॥ ततो नो जायते शंका व्रजनाथ तवात्मजे ॥१४॥ नंद उवाच ॥ श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शंका च वोऽर्भके ॥ एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥१५॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन्गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १७ ॥ बहूनि संति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥

कैसा पुत्र हुआ है ॥ १४ ॥ इसप्रकार गोपोंकी बातें सुनकर नंदजी बोले कि, संदेह करनेकी कुछ बात नहीं है, मैं इस बालककी जन्मपत्री लाताहूँ, जो कि, गर्गाचार्यने बनाई है, यह कहकर जन्मपत्री ले आये और बोले कि हे गोपो ! मेरी बात सुनो, जिससे इस बालकमेंसे तुम्हारी शंका मिट जायगी, गर्गाचार्यने इस बालकका नाम धरकर मुझे जो जो गुण बताये हैं, सो श्रवण करो ॥ १५ ॥ इस बालकके तीन वर्ण हैं और युगयुगमें देह धारण करता है, प्रथम इसका श्वेतवर्णथा, फिर रक्त और श्यामवर्ण हुआ और अब इसने कृष्णरूप धारण किया है ॥ १६ ॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहाँ जन्म लिया है, इसलिये जाननेवाले इसको श्रीमान् वासुदेव कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके नाम और रूप बहुत हैं,

इसलिये जैसे जैसे इसमें गुण होंगे वैसे वैसे कर्म करेगा और उन्हींके अनुसार नाम होंगे ॥ १८ ॥ यह तुम्हारा कल्याण करेंगे और गोप तथा गायोंको आनंद देंगे, अधिक क्या कहैं ? इस कृष्णकी सहायतासे तुम संपूर्ण कष्टोंसे सहजमेंही छूट जाओगे ❋ ॥ १९ ॥ हे व्रजराज ! पहले तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्णने राजारहित पृथ्वीमें चोरोंसे पीडित साधुओंकी रक्षा की थी, तब साधुओंने वृद्धिको प्राप्त हो चोरोंको जीत लिया था ॥२०॥

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनंदनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिस्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ २० ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नंदात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्या नुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णम क्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥

जो बडभागी पुरुष इन श्रीकृष्णमें प्रीति करते हैं, उनको वैरी नहीं सन्ताप देते ! जिस प्रकार विष्णु भगवान्से रक्षित देवताओंको असुर नहीं सता सके ॥२१॥ इस कारण हे नंद ! तुम्हारा यह पुत्र गुण, शोभा, कीर्ति, प्रभाव इत्यादिमें नारायणके समान है इसके कर्मोंमें आश्चर्य मत मानना ॥ २२ ॥ इसप्रकार साक्षात् गर्गाचार्य मुझसे कहकर अपने घरको चले गये, उसी दिनसे बडे बडे कार्य करनेवालोंमें श्रीकृष्णको मैं नारायणका

❋ शंका—नन्दजीसे गर्गमुनिने कहा कि, श्रीकृष्णके कर्मको हम जानते हैं ससारमें और कोई भी नहीं जानता, यह बडे सन्देहकी वातहै इससे यह ज्ञात होता है कि, गर्गमुनि तो परमज्ञानी थे इनके सिवाय और जो ऋषि मुनि थे वह सब ब्राह्मण नहीं थे, गर्गमुनिकी वातोंसे ऐसा जान पडता है ।

उत्तर—सब ऋषि मुनियोंका निरादर करके गर्गमुनि ऐसी बात कभी नहीं कहसक्ते गर्गमुनिने (अह) पदका यह अर्थ किया कि, हमारी जाति जितनी है ससारमें मुनि, ऋषि, गृहस्थ, किशान, सब श्रीकृष्ण भगवान्के कर्मको जानते हैं यह अर्थ अहपद का किया, कुछ अपने अकेलेके लिये नहीं कहा ॥

अंश मानताहूँ ॥ २३ ॥ इसप्रकार ब्रजवासियोंने गर्गाचार्यका वचन नंदरायजीसे सुन प्रसन्न हो नंदजीकी पूजा करी और श्रीकृष्णचंद्रमेंसे उनकी
शंका दूर होगई ॥ २४ ॥ यज्ञके नाशसे क्रोधित हो इन्द्रने सात दिन रात जब ब्रजपर मूशलधार वर्षा की उस समय ब्रज पत्थर पवनसे पीडित,
ग्वाल बाल पशु और स्त्रियोंको अपनी शरण आये देख जिन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको दया आगई और मुसकाकर जिसप्रकार बालक सर्पकी

इति नंदवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ॥ दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ॥ मुदिता नंदमानर्चुः कृष्णं च गत
विस्मयाः ॥ २४ ॥ देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मवर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकंप्युत्स्मयन् ॥
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलींध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेंद्रमदभित्प्रीयान्न इंद्रो गवाम् ॥ २५ ॥ इति
श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे गर्गगीतनिरूपणं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

छत्रीको उखाड डालता है, उसीप्रकार एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़ धारणकर 'ब्रजकी रक्षा की' वही इन्द्रके मदको दूर करनेवाले गौवोंके
इन्द्र भगवान् वासुदेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों ❁ ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गर्गगीतनिरूपणं नाम
षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

* शंका–सौ १०० यज्ञ करनेवाले राजा इन्द्रका तिरस्कार करके सुरभी जो गायें हैं उन्होंने अपना इन्द्र श्रीकृष्णको क्यों किया, इन्द्र तो तीनलोकमें एकही है हमने आजतक दूसरा इन्द्र सुना नहीं
फिर उन्होंने दूसरा इन्द्र क्यों किया ?

उत्तर–इन्द्रने गायोंका नाश करनेके लिये गोकुलमें बडी वर्षा की गायोंको मारना विचारा, इसलिये इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका विनाश होगया, इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका नाश होनेसे सुरभियोंने अपना
इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बनाया क्योंकि गायोंने विचारा कि, इन्द्र ऐसा चाण्डाल है कि, जिसने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये अधर्म नहीं देखा और गोहत्यासे भी नहीं डरा, तो और दूसरे कामसे क्या
डरेगा अबकी वार तो श्रीकृष्णचन्द्रने बचालिया यह दुष्ट ऐसा कर्म फिर कभी करैगा तो हमारी बछिया बछरे सब विध्वंस हो जायँगे और वंशका नाश होजायगा, इसलिये कृष्णभगवान्‌को अपना इन्द्र बनाया॥

दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, लखि श्रीकृष्ण प्रभाव। गायइन्द्र अभिषेक पुनि, वरणों सहज स्वभाव ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर जो ब्रजकी रक्षाकी थी,सो देवराज इंद्रने जाकर सब बात कमलयोनि ब्रह्माजीको सुनाई, तब ब्रह्माजी बोले कि, इंद्र! तैंने बडा अपराध किया, पहले मैं भी उनके गोप, ग्वाल, बछडे इत्यादि हरकर अपनी बूढी दाढीपर धूल डाल चुकाहूं, इसके उपरान्त स्वर्गलोकसे सुरभी गौ और इन्द्रलोकसे इन्द्र आये॥१॥और अपराध करनेके कारण अत्यंत लज्जित हो इन्द्रने एकान्तमें आय सूर्यके समान तेजवाले किरीटको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंसे लगाया॥२॥अमिततेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव जिस प्रकार कानोंसे श्रवण किया था,उसी प्रकार नेत्रोंसे देखा और उस समय "त्रिलोकीका ईश्वर मैं हूं" यह मद भी जातारहा, तब देवराज इन्द्र हाथ जोडकर बोले॥३॥इन्द्रने

श्रीशुक उवाच ॥ गोवर्धने धृते शैले असाराद्रक्षिते व्रजे ॥ गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥ विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ॥ पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥ नष्टत्रिलोकेशमद इंद्र आह कृतांजलिः ॥ ३ ॥ इंद्र उवाच ॥ विशुद्धसत्त्वं तव धाम शांतं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ॥ मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥ कुतो न तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिंगभावाः ॥ तथाऽपि दंडं भगवान्बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदंडः ॥ हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥

कहा कि, तुम्हारा स्वरूप शुद्ध सत्त्वगुणी है,अर्थात् एक रूप है,शांत सर्वज्ञ है,रजोगुण तमोगुणसे रहित है और मायाका जो कार्य्य अज्ञानसे जीवोंको लगरहा है, सो संसार है, यह तुम्हारे स्वरूपमें नहीं है ॥ ४ ॥ हे ईश! देहसंबंध तुमको नहीं है तो उस देह बंधसे करेहुए और अन्य देहके कारण जो काम लोभादिक हैं सो कहाँसे होंगे बहुधा ऐसे काम लोभादिक तो अज्ञानी पुरुषोंको होते हैं, तुम्हारे काम लोभादिक तो नहीं हैं, परन्तु तोभी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका मद दूर करनेके लिये तुम दंड देते हो ॥ ५ ॥ तुम जगत्के पिता, गुरु और ईश्वर हो, नाश रहित, दंडके ग्रहण करनेवाले कालरूप हो, जीवोंका हित करनेके लिये और अपनेको ईश्वर माननेवालोंका मान दूर करनेके लिये अपनी इच्छापूर्वक रूप धरकर

लीला करते हो, तुम्हारी लीलामेंही हमारे मान दूर हो जाते हैं, लोकोंकी वाहवाहमें जीवोंका सत्यानाश हो जाताहै ॥ ६ ॥ जो मुझ सरीखे अज्ञानी भी आपको जगत्का ईश्वर मानते हैं, वे भयके समय भी निर्भय आपका दर्शन कर शीघ्र ही ईश्वरत्वका मद त्याग करदेते हैं और गर्वको छोडकर सत्पुरुषोंकी और तुम्हारी भक्तिको करते हैं, तुम्हारी सहजकी चेष्टा जो है, सोई दुष्टोंको दण्डरूप है ॥ ७ ॥ हे समर्थ ! ऐश्वर्यके मदमें डूबेहुए तुम्हारे प्रभावको न जान तुम्हारा अपराध करनेवाले मूढचित्त मेरे ऊपर क्षमाकरो, हे ईश्वर ! फिर मेरी ऐसी बुद्धि न हो; यही मैं प्रार्थना करताहूं ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज ! इससंसारमें तुम्हारा अवतार और बडा भार जिनसे हो ऐसे सैन्यपालन करनेवाले मुख्य सेनापति

ये मद्विधाऽज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ॥ हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजंत्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ॥ क्षंतुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ॥ चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥ स्वच्छंदोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥ मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायाऽऽसारवायुभिः ॥ चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥ त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तंभो हतोद्यमः ॥ ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥

ष्टोंको मारनेके कारण और तुम्हारे चरणोंका सेवन करनेवाले भक्तोंका कल्याण करनेके लिये है ॥ ९ ॥ ऐसे जो तुम भगवान् महात्मापुरुष हो, सो तुम्हारे लिये नमस्कार है, शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक भक्तोंके रक्षक, वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १० ॥ अपने भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये देह धरनेवाले और शुद्ध ज्ञानमूर्ति सर्वरूप सबके कारण सब प्राणियोंके अत्मा तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जब मेरा यज्ञ नाशको प्राप्त हुवा तब बडा क्रोध कर मुझ अज्ञानी अभिमानीने ब्रजका नाश करनेके लिये वर्षा और पवन चलाकर करनेके अयोग्य कार्य किये ॥ १२ ॥ यह आपने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया जो मेरा गर्व दूर कर दिया, उद्यम भी वृथा गया,

तुम सबके ईश्वर आत्मा हो, इसलिये मैं तुम्हारी शरण प्राप्त हुवा हूं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,इस प्रकार जब देवराज इन्द्रने स्तुति करी,तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर मेघके समान गंभीरवाणीसे इन्द्रसे बोले ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे इन्द्र ! मैंने तेरे ऊपर अनुग्रह करनेहीके लिये यज्ञका विध्वंस किया है, क्योंकि तुम देवताओंका राज्य पाकर अचेत हो गये थे, सो अपना स्मरण करानेके लिये यह मैंने किया ॥ १५॥ क्योंकि ऐश्वर्यमद और धनमदसे अंधे हुये पुरुष दण्ड हाथमें लिये मुझे नहीं देखते और जिसके ऊपर मैं कृपा करनेकी इच्छा करताहूं, उस पुरुषकी प्रथम संपत्ति हरलेताहूं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, अहंकार त्यागकर मेरी आंज्ञाका पालन करना और साव

श्रीशु उवाच ॥ एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ॥ मेघगंभीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ मया तेऽकारि मघवन् मखभंगोऽनुगृह्णता ॥ मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येंद्रश्रिया भृशम् ॥ १५ ॥
मामैश्वर्यश्रीमदांधो दंडपाणिं न पश्यति ॥ तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां शक्र
भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ॥ स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तंभवर्जितैः ॥ १७ ॥ अथाह सुरभिः कृष्णम
भिवाद्य मनस्विनी ॥ स्वसंतानैरुपामंत्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्णकृष्ण महायोगिन्
विश्वात्मन् विश्वसंभव ॥ भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इंद्रो जगत्पते ॥
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥ इंद्रं नस्त्वाऽभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा चोदिता वयम् ॥ अवतीर्णोऽसि
विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥

धान होकर, अपने अधिकार पर रहना ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त जब इन्द्र स्तुति कर चुका तब उदारचित्त सुरभी गौने अपनी संतान सहित आकर गोपरूपी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार और संबोधन देकर कहा कि, ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वको उत्पन्न करनेवाले ! हे अच्युत ! हे अखण्डरूप ! इन्द्रने तो हमें माराही था परन्तु हे लोकोंके नाथ ! आपने बचाया ॥१९॥ हे जगत्पति ! तुम हमारे श्रेष्ठ देवता हो और तुम्हीं गौ ब्राह्मणके देवताहो और जो साधु हैं उनके कल्याणार्थ हमारे इन्द्र होओ॥२०॥ब्रह्माजीकी हमें आज्ञा हुई है, इसकारण

इन्द्रपदवी देनेके लिये हम तुम्हारा अभिषेक करेंगी। हे विश्वके आत्मा! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तुमने अवतार लिया है ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्! इसप्रकार कहकर श्रीकृष्णचन्द्रका; यह कामधेनु अपने दुग्धसे अभिषेक करनेलगी और ऐरावत हाथीकी सूंडसे लाये आकाशगंगाके जलसे अभिषेक किया ॥ २२ ॥ और इन्द्रने भी देवमाताओंकी प्रेरणासे देवर्षियोंके सहित भगवान्का अभिषेक किया और गोविन्द नाम धरा ॥२३॥ और दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उस समय तुंबुरु, नारदादि, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण आनकर लोकोंके पापोंको दूर करनेके लिये भगवान्का यश गाने लगे और अति आनंदित होकर देवांगनायें नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृष्णमुपामंन्त्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ॥ जलैराकाशगंगाया ऐरावतकरोद्धतैः ॥ २२ ॥ इंद्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ॥ अभ्यषिंचत दाशार्हं गोविंद इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुंबुरुनारदादयो गंधर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुरांगनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥ तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ॥ लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन्पयोद्रुताम् ॥ २५ ॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन्मधुस्रवाः ॥ अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनंदन ॥ निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥

इसके उपरान्त देवताओंमें मुख्य देवता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति और अद्भुत फूलोंकी वर्षा करनेलगे, उस समय तीनोंलोक परम आनंदको प्राप्त होगये। फिर गौ दूधसे पृथ्वीको भिजोने लगीं ॥ २५ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविंदाभिषेक किया, उस समय नदियें अनेक प्रकारके रसोंकी बहनेवाली होगईं और वृक्षोंमेंसे मदकी धारा चूने लगी, बिना जोते खेत भी आपही पकने लगे और पर्वतोंने अपनी गुफाओंमेंसे मणियोंको बाहर निकालकर धर दिया ॥ २६ ॥ हे कुरुकुलके आनंददाता परीक्षित्! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक हुआ, उस समय

क्रूरस्वभाववाले सिंहादिक जीवोंका भी वैरभाव दूर होगया ॥ २७ ॥ इसप्रकार गोकुलके रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको गोविंदाभिषेक कर वह इन्द्र देवताओंको संग ले स्वर्गको चलागया ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोविंदाभिषेको नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ दोहा–अट्ठाइसमें नन्दको, लाये कृष्ण छुटाय ॥ गोपोंको वैकुण्ठ सब, हितकारि दियो दिखाय ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजन्! नन्दजीने एकादशीका निराहार व्रत करके भगवान्का पूजन किया, दूसरे दिन द्वादशी दो घड़ी थी उस समय पारण करनेके लिये अरुणोदयसे पहले

इति गोगोकुलपतिं गोविंदमभिषिच्य सः ॥ अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥२८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० इंद्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ स्नातुं नंदस्तु कालिंद्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोंतिकम् ॥ अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥ चुक्रुशुस्तमपश्यंतः कृष्ण रामेति गोपकाः ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ ३ ॥ तदंतिकं गतो राजन्स्वानामभयदो विभुः ॥ प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ॥ महत्या पूजयित्वाऽथ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥

रात्रिमें धर्मसत्रके बलसे स्नान करनेके कारण यमुनाको गये, तब नंदरायजीने आसुरीवेलाको न जानकर यमुनाजीमें प्रवेश किया * ॥ १ ॥ इसलिये वरुणका एक दैत्य सेवक उन्हें पकड़ वरुणके पास लेगया ॥२॥ नंदरायजीको न देख जो गोप संग गयेथे वह हे कृष्ण ! हे राम ! इस प्रकार पुकारनेलगे, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, पिताको वरुण लेगया यह बात सुन अपने भक्तोंको अभयके देनेवाले वरुणके पास गये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेसे बडा आनंद पाय लोकोंके पालन करनेवाले वरुणजीने इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आये देख, बड़ी

* शंका–भागवतमें लिखा है कि, नन्दजी एकादशीका व्रत करके जब चार घड़ी पिछलीरात रही तब भगवान्की पूजा करके यमुनामें स्नान करने गये, इसमें यह शका होती है कि, विना स्नान किये भगवान्का पूजन कैसे किया क्योंकि जो प्राणी विना स्नान किये भगवान्का पूजन करताहैं तो महादोष होताहै ?

उत्तर–महात्मा पुरुष भगवान्का पूजन ऐसे नहीं करते, मानसिक पूजन करते हैं, मानसिक पूजनमें भगवान् प्रसन्न भी होते हैं, इसलिये नन्दजी मानसिक पूजन भगवान्का करके पीछेसे स्नानको गये ॥

पूजाकी सामग्रियोंसे पूजा करके कहा ॥ ४ ॥ वरुणजी बोले कि, आज तुम्हारे दर्शन करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ और आजही मेरे मनोरथ भी सफल हुये, हे भगवन्! तुम्हारे चरणारविन्दोंका जो भजन करते हैं, वह संसारके पार हो मोक्षको प्राप्त होजाते हैं ॥ ५ ॥ परिपूर्णरूप, संपूर्ण जीवोंके साक्षी जिनके समान किसीका ऐश्वर्य नहीं, ऐसे भगवान्‌को नमस्कारहै और जिनके स्वरूपमें लोकोंकी रचना करनेवाली माया नहीं सुनी जाती ॥ ६ ॥ धर्मकी महिमा और कार्यको नहीं जाननेवाला मूढ मेरा अनुचर तुम्हारे पिताको ले आया, सो अपराध क्षमा करो ॥७॥ हे श्रीकृष्ण! मेरे ऊपर तुम अनुग्रह करनेके योग्य हो, गोविंद! हे पितृवत्सल! अपने पिताको तुम ले जाओ ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ

वरुण उवाच ॥ अद्य मे निभृतो देह अद्यार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः॥५॥ नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ॥ न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥ अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना॥ आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥ ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ॥ गोविंद नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ॥ आदायागात्स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥ नंदस्त्वतींद्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ॥ कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत्॥ ॥ १० ॥ ते त्वौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ॥ अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इति स्वानां स भगवान्विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ॥ संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिंतयत् ॥ १२ ॥

परीक्षित्! इसप्रकार ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जब वरुणजीने प्रसन्न किया, तब अपने पिता और बंधु बांधवोंको आनंद देते वहाँसे चले ॥ ९ ॥ जो प्रथम कभी देखनमें न आया, ऐसा वरुणका ऐश्वर्य और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी प्रीति देख नन्दरायजी अति आश्चर्य मान अपनी जातिके गोपोंसे कहने लगे कि, प्रथम मुझे ले जाकर एक कोनेमें बैठाय दिया, इसके उपरान्त यह कृष्ण गया, तब इसे देख वरुणने नमस्कार करके पूजा की ॥ १० ॥ हे राजन्! उत्कण्ठायुक्त बुद्धिसे ब्रजवासी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ईश्वर मान विचार कर कहने लगे कि, श्रीकृष्णचंद्र क्या हमको वैकुण्ठधाम प्राप्त करेंगे? ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करावेंगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार सबके देखनेवाले भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रजवासियोंका मनोरथ जान उसे पूर्ण करनेके लिये कृपाकरके यह विचार करनेलगे ॥१२॥ कि,इस संसारमें प्राणी देहमें अहंकार काम, कर्म इत्यादिसे देवता, पशु, पक्षी आदि जो जो योनि हैं, उनमें भटकता फिरता है और अपना स्वरूप नहीं जानता॥१३॥ इस प्रकार करुणा निधान भगवान्‌ने विचारकर गोपादि सब ब्रजवासियोंको ब्रह्मरूप दिखाया और इसके उपरान्त मायासे परे जो वैकुण्ठधाम है उसका दर्शन कराया ॥१४॥ अब ब्रह्म स्वरूपका वर्णन करते हैं, सत्य अर्थात् बाधारहित ज्ञानस्वरूप है, अनंत अर्थात् गननेमें न आवे, ज्योति अर्थात् स्वयं प्रकाश है, गुणोंके निषेधमें सावधान मुनीश्वर उस रूपको देखते हैं ॥१५॥ वह संपूर्ण ब्रजवासी ब्रह्मस्वरूप देहमें प्राप्त होते ही मग्न होगये, फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कृपा कर वहाँसे निकाल वैकुण्ठलोक दिखाया,जहाँ प्रथम महात्मा अक्रूरजी गये थे,यहाँ शंका है कि,ब्रह्ममें डूबे को वैकुण्ठलोकका

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः॥उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन्॥१३॥ इति संचिंत्य भगवान्महाकारुणिको हरिः ॥ दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्॥१४॥ सत्यं ज्ञानमनंतं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्॥यद्धि पश्यंति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥१५॥ ते तु ब्रह्महदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ॥ ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राऽक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥ नंदादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानंदनिर्वृताः ॥ कृष्णं च तत्र च्छंदोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥ इति श्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दानयनवैकुण्ठप्रदर्शनं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥ वीक्ष्य रंतुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥१॥

दर्शन नहीं बनता तो इसके उत्तरमें कहतेहैं कि,जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे पहले अक्रूरजीने दर्शन किया था, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे इन लोगोंने दर्शन किया, क्योंकि अचिन्त्य ऐश्वर्यमान भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें कुछ यह बात अनुचित नहीं है ॥१६॥ हे नृप। वहाँ वेदोंसे होती हुई श्रीकृष्णचन्द्रभगवान्‌की स्तुति देख और नंदादि सब ब्रजवासियोंने वैकुण्ठ धामका दर्शन कर परमानंदसे सुखी हो बडा आनन्द प्राप्त किया ॥१७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां नन्दानयनवैकुण्ठप्रदर्शनं नामाष्टविंशोऽध्यायः॥ २८ ॥ दोहा--उनतिसमें हरिने कियो, रास विलास बनाय। अन्तर्धान भये तुरत, सबन वहीं छिटकाय ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित्। गोपकन्याओंसे जिन

रात्रियोंकी प्रतिज्ञा की थी जब वही शरदृतु आनकर उपस्थित हुई कि जहाँ तहाँ चमेली खिलरहीं थीं उन रात्रियोंको देख योगमायाका आश्रय ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रमण करनेका मनोरथ करने लगे ॥ १ ॥ और उसी समय सुखदायक किरणोंसे पूर्वदिशाके मुखको अरुण करते भगवान् चन्द्रमा उदय हुये, जैसे परदेशसे बहुत दिनोंमें पुरुष आकर अपनी प्यारीके मुखको केशर लगाकर लाल करता है ॥ २ ॥ परिपूर्ण मंडल और लक्ष्मीके मुखके समान कांति नवीन केशरकी तुल्य अरुण चन्द्रमाको देख और राकाकी कोमल किरणोंसे रंगे वृन्दावनको देख भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र स्त्रियोके मनहरण करनेवाले कलरवसे गीत गानेलगे, इस कलरवमेंसेही बीजमंत्र 'क्लीं' निकलता है ॥३॥ प्रेमात्मक कामको बढ़ानेवाले गीतको श्रवणकर श्रीकृष्णचन्द्रनें जिनके मन हर लिये हैं वह स्त्रियें जहाँ पति श्रीकृष्णचन्द्र थे वहाँ आई और अरी किशोरी वहां चलैगी, इस प्रकार परस्पर

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिंपन्नरुणेन शंतमैः ॥ स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घ दर्शनः ॥२॥ दृष्ट्वा कुमुद्वंतमखंडमंडलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ॥ वनं च तत्कोमलगोभिरंजितं जगौ कलं वाम दृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनंगवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ॥ आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्य माः स यत्र कांतो जवलोलकुंडलाः ॥ ४ ॥ दुहंत्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः ॥ पयोऽधिश्रित्य संयाव मनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥ परिवेषयंत्यस्तद्धित्वा पाययंत्यः शिशून्पयः ॥ शुश्रूषंत्यः पतीन् काश्चिदश्नंत्योऽपास्य भो जनम् ॥ ६ ॥ लिंपंत्यः प्रमृजंत्योऽन्या अंजंत्यः काश्च लोचने ॥ व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णांतिकं ययुः ॥ ७ ॥

कह अत्यन्त शीघ्रतासे चलीं, चलती समय उनके कानोंके कुण्डल हिलते जाते थे ॥ ४ ॥ कितनीहीं गोपियें उत्कण्ठाके मारे दूहतीहुई गायोंको छोडकर चली आईं और दूसरी चूल्हे पर चढेहुए दूधको वैसाही छोडकर चलीं, बहुत गोपियें गेहूंका पकाहुआ पदार्थ चूल्हेपरही छोडकर चलदीं॥५॥ कितनीही एक पत्तल परोसती थीं सो वंशीकी ध्वनि सुनतेही छोडकर चलीं आईं और कितनी एक गोपी अपने देवर जेठके बालकोंको दूध पिलातीथी, उनको छोड आई, कोई कोई गोपी अपने पतिकी सेवा करनेसेही चलीं और कोई कोई भोजन करनेसेही चली आईं ॥ ६ ॥ कोई २ गोपी घरोंको लीपतीं, कोई नेत्रोंमें अंजन लगाती, कोई पाँवोंके गहने हाथोंमें पहर और हाथोंके पावोंमें पहर, लहँगा ओढ़, ओढ़नी पहर, भगवान्

मुरली मनोहरके पास आई ॥ ७ ॥ "यद्यपि गोपियोंके शृंगार उलटे पुलटे थे, परन्तु तोभी योगमायाने सुधार दिये थे" ❀ यद्यपि पति, पिता, माता, भ्राता और जातियोंने मनेभी किया परन्तु तो भी भगवान् केशवमूर्तिने जिनके मन हरलिये थे, उन गोपियोंने किसीका कहना नहीं माना ॥ ८ ॥ किसी गोपीको उनके पुरुषोंने घरमें बन्द करदिया, जब निकलनेका मार्ग न मिला तब उनने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इच्छाकर आँखें मूँद उनका ध्यान किया ॥ ९ ॥ सहन न किया जाय, ऐसे प्यारेके विरहरूप तापसे पाप जिनके दूर होगये और ध्यानमें प्राप्त हुए भगवान्

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ॥ गोविंदापहृतात्मानो न न्यवर्तंत मोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ॥ कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥ दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ॥ ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमंगलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ॥ जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णं विदुः परं कांतं न तु ब्रह्मतया मुने ॥ गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करके, सुखके पुण्यसे बंधन उनके दूर होगये, ऐसे अत्यन्त विरहके दुःख और श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्राप्तिके भोगसे एक संगही सब प्रारब्धकर्म क्षीण होजानेसे मुक्त हुईं ॥ १० ॥ जारबुद्धिसे परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको पाय बंधन जिनके कटगये, ऐसी गोपियोंने गुणोंके बने देहको तत्कालही त्याग दिया और दिव्य देह धारण कर सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं ॥ ११ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे महाराज ! वह गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको केवल जार मानतीथीं, ब्रह्मपनसे उनको किंचित् भी भाव नहीं था, फिर

* दृष्टान्त–जैसे आठ छल शैर करनेको निकले बागमें जाकर कहा कि, भांग बनावो, सो मीठीही छानी और मिठाईके लालचसे तीन २ लोटे गडगप्प करगये अर्थात् पीगये, एक मित्र उनमें चतुर था, तो इसने मनमें विचार किया कि, अभ्यास तो है नहीं और तीन तीन लोटे चढागये हैं, जब यह बेसुधि होजायँगे तो इन्हें कौन सँभालेगा ? उसने एक चुल्लूभरही पी थी, अब चढा जो नशा तो किसीकी तो पाग गिरगई किसीका पटका खुलगया, किसीकी धोती खुलगई और जिस्को नशा नहीं था उसने सबको सँभाल लिया इसी प्रकार योगमायाने सबको सुधार दिया ॥

गुणमय बुद्धिवाली उन गोपियोंके गुणोंका प्रवाह संसारसे कैसे छूटगया ? ॥१२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह बात मैंने आपसे प्रथमही वर्णन की थी कि, जब शिशुपाल, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे शत्रुभाव रखता हुआ भी मुक्तिको प्राप्त हुआ, तब प्रीति करनेवाली गोपियोंके तरनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥१३॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियन्ता श्रीकृष्णचन्द्रका जो प्रगट होना है, सो पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये है, इस कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जीवके समान कहना संभव नहीं ॥ १४ ॥ काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकभाव

श्रीशुक उवाच ॥ उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ॥ द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ॥ अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ॥ नित्यं हरौ विदधतो यांति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ॥ योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वांतिकमायाता भगवान्व्रजयोषितः ॥ अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ॥ व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥

सौहृद जो पुरुष नित्य भगवान् वासुदेवमें करते हैं, वह पुरुष तन्मय होजाते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! अजन्मा योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें तुम आश्चर्य मत करो, क्योंकि उनमें प्रेम करनेसे स्थावरभी संसारसे छूट जाते हैं ॥ १६ ॥ * बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजकी स्त्रियोंको अपने पास आया देख वाणियोंके विलाससे मोहित करके कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे बड़भागिनियो ! भली आईं आओ मैं तुम्हारा क्या आदर करूं ? व्रजमें तो कुशल है और यहां कैसे आईं इसका कारण कहो ॥ १८ ॥

* दृष्टांत–प्रेमसे भावसहित श्रीनारायणकी कथा सुन ले, कहीं श्रीमद्भागवतकी कथा बैठी थी, किसीने कहा लालाजी सुननेको चलो लालाजीने उत्तर दिया कि, जब दशमस्कन्ध प्रारम्भ होगा तब चलेंगे, फिर जब दशम होने लगा तो लालाने कहा कि, पचाध्यायीमें चलैंगे जहाँ श्रीकृष्णने, लाखों गोपी बुलाकर उनके सग विहार किया, हम भी वैसाही करैंगे, जैसे वीर पुरुष कडखे सुनकर आगे बढते हैं, उसीप्रकार विषयी विषयसे और जगह जो भाव बिगडे तो ठिकाना लग भी जाय और जो साक्षात् कृष्णकांता त्रैलोक्य जननीमें भाव बिगडा तो उसका सत्यानाशही हो जाता है ॥

क्योंकि यह भयानक रात्रि है, सिंह, व्याघ्रादि घोर प्राणी यहाँ फिरते हैं, इसकारण तुम अपने घरको जाओ, हे सुमध्यमे! स्त्री जाति होकर यहाँ मति रहो ॥ १९ ॥ देखो तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भ्राता, पति तुमको विना देखे ढूँढ़ते होगे इसलिये वन्धुओंको घबराहट मत करो ॥ २० ॥ क्योंकि फुलवार जिसमें फूल रही चन्द्रमाकी किरणोंसे रँगाहुआ यमुनासे लग मंद पवनसे हिलनेवाले वृक्षोंके पातसे शोभायमान वन तुमने भली भाँति देख लिया ॥ २१ ॥ इस कारण तुम व्रजमें जाओ, अव विलम्ब मत करो, तुम पतिव्रता हो पतियोंकी सेवा करो, क्योंकि वहाँ बछड़े रम्भाते होंगे, बालक रोते होंगे, जाओ! बालकोंको दूध पिलावो और गायोंको दुहो ॥२२॥ अथवा मेरे स्नेहसे वशीभूत अंतःकरणसे तुम आईं, सो तुमको

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ॥ प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ॥ विचिन्वंति ह्यपश्यंतो मा कृध्वं बंधुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररंजितम् ॥ यमुनाऽनिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः ॥ क्रंदंति वत्सा बालाश्च तान्पाययत दुह्यत ॥ २२ ॥ अथवा मदभिस्नेहाद्भवंत्यो यंत्रिताशयाः ॥ आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयंते मयि जंतवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥ तद्बंधूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ॥ पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ॥ जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियः ॥ २६ ॥

योग्यही है, क्योंकि सब जीव मुझमें प्यार करते हैं ॥ २३ ॥ हे मंगलरूपिणियो! निष्कपट होकर पतियोंकी सेवा करो, देवरोंकी सेवा करो, और पुत्रोंका पोषण करो, यही स्त्रियोंका परम धर्म है ॥ २४॥ यदि कदाचित् अपना पति खोटे स्वभावयुक्त हो, दुर्भाग्य हो अथवा वृद्ध हो, मूर्ख हो, रोगी हो, दरिद्री हो तोभी स्वर्गकी जिनको चाहना है, ऐसी स्त्रियोंको त्यागने योग्य नहीं है और जो पतित हो तो त्यागने योग्य है ॥ २५ ॥ कलियुगकी स्त्रियोंको उपपतिके सेवन करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता बरन यश जाता है, इसलिये उपपतिका सेवन तुच्छ है, दुःखका देनेवालाहै और

सर्वत्र निंदाके योग्य है ॥ २६ ॥ जिसप्रकार भाव मुझमें श्रवण दर्शन ध्यान कीर्त्तनसे रहता है, वैसा पास रहनेसे नहीं होता इसलिये अपने घरको जाओ ❋ श्रीकृष्णचन्द्रने इसकारण गोपियोंसे जाओ जाओ कहा कि, जो मैं इनसे कहूंगा तुम मेरे साथ विहार करो तो यह गालियें देंगी और निकट भी न आवेंगी इससे प्रथमही इनके मानखंडन करूं तो फिर यह आपही मेरा पल्ला पकडेंगी+ ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! इसप्रकार गोपिये गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अत्यन्त दुःखित हुईं और मनोरथके सिद्ध न होनेसे बड़ी चिन्ता करनेलगीं ॥ २८॥ चिन्ताके

श्रवणाद्दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविंदभाषितम् ॥ विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्बिंबाधराणि चरणेन भुवं लिखंत्यः ॥ अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजंत्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ॥ नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्संरंभगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥

श्वाससे कुंदुरूके फलके समान उनके अरुण होठ सूख गये और अपने अपने मुखोंको नीचाकर चरणके अँगूठेसे धरतीपै लिखने लगीं और रुदनके कारण नेत्रोंसे कज्जलसहित जो आँसू निकलरहे थे उनसे कुचोंकी केशर धुलगई, तब अति दुःखके बोझसे गोपी चुपचाप होकर खड़ी होगईं ॥ २९ ॥ जिनके लिये गोपियोंने सब घरबार छोड़दिये, उन अपने परमप्रीतम श्रीकृष्णचन्द्रके कठोर वचन सुन प्रेमभरी गोपियें रोनेके कारण

---

* दृष्टान्त–देखो स्त्रियोंको पतिव्रताधर्म पालन करना चाहिये, पतिव्रताओंकी बडी महिमा है। एक स्त्रीका गोदीमें उसका पति शिर धरे सो रहाथा, उसका बालक खेलते खेलते अग्निमें जा पडा स्त्रीने यह देख पतिकी निद्रा भग न हो, यह विचार अपना धुटुआ न उठाया और अग्नि पतिव्रताके शापके भयसे शीतल होगई

श्लोक–सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता ॥ अभूत्तदानीं व्रतंभगशकया हुताशनश्चदनपकशीतल ॥ १ ॥ इस कारण हे सखियो! अपने पतियोंके पास जाओ ॥

+ दृष्टान्त–श्रीकृष्णने वशी बजाते तो बजाही और जब लाखों गोपियोंने आनकर घेरलिया, तब बुद्धि विहारी होगई, जैसे किसीके बालक घरमें रुईका फोहा जलाते हैं और फिर प्रसन्न होते हैं, सो बाजारमें किसी साहूकारकी दूकानमें लाख रुपयेकी रुईका ढेर लगा देख उन्होंने मनमें विचार किया कि, इसमें बडा तमाशा होगा सो ढेरमें आग लगा दी जब वह ढेर थोडा२ जला तबतक तो ताली बजाते रहे और जिस समय आग भडककर ऊची ऊचीं लपटें निकलीं तब घबरागये, इसीप्रकार श्रीकृष्णकी दशा हुई, जब एकाध गोपीको कहीं देखपाते, तब तो प्रसन्न होते अब लाखों गोपियोंको देख घबराकर घर जानेको कहा॥

आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंको पोंछ कुछेक क्रोधित हो गद्गद कंठसे बोलीं ॥ ३० ॥ कि, हे समर्थ ! "जाओ जाओ" ऐसे कठोर वचन मत कहो, क्योंकि हम सब विषयोंको त्यागकर केवल तुम्हारेही चरणोंका सेवन करती हैं. हे दुराग्रही ! हमको मत त्यागो, जैसे आदिपुरुष भगवान्की शरण सर्व त्याग नकर मुमुक्षुलोग जाते हैं मुमुक्षु पुरुषोंको वह भजतेहैं. उसीप्रकार तुम्हारे लिये सर्वस्व त्यागकर हम आई हैं. इसलिये हमारा सेवन करो, त्यागो मत ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण धर्मवेत्ता ! तुमने कहा, पति पुत्र सुतोंकी सेवा करो, यह स्त्रियोंका परमधर्म है जो कहा, सो हमारी धर्म सुननेकी इच्छा नहीं है क्योंकि हमें चाहना नहीं है, तुम धर्मके उपदेश करनेवाले नहीं हो किन्तु देहधारियोंके प्यारे हो आपने कहा पति आदिकोंकी सेवा करना धर्म है, सो आत्मासहित पति आदिक प्रिय लगते हैं स्त्रीको पति प्यारा लगता है. आत्मासे लगता है सो आत्मा जब निकल जाता है, पीछे इस देहको

गोप्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ॥ भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ॥ अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनभृतां किल बंधुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वंति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥ तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिंद्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविंदनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ॥ पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४ ॥

बांधकर लेजाते हैं और जला देते हैं, सो सबके आत्मा तुम हो, तुम्हारे सेवन करनेसे हमें सब धर्म स्वयं प्राप्त होजायँगे, क्योंकि सब उपदेशवाक्य ईश्वरकी सेवा करनाही परमधर्म बताते हैं, इसकारण तुम सब जीवोंके आत्मा होनेसे परमबंधु ईश्वर हो तुमसे जो जीव बहिर्मुख हैं सो दग्ध होनेके योग्य हैं ॥ ३२ ॥ अपने आत्मा नित्य प्यारे तुम हो तिनमें विवेकीपुरुष प्रीति करते हैं, दुःखके देनेवाले पति पुत्रादिकोंसे क्या प्रयोजन है ? इसकारण तुम हमपर प्रसन्न हो. हे ईश्वर कमलदललोचन ! बहुत दिनोंसे तुममें आशारूपी लता लगाई है, उसे "जाओ जाओ" ऐसे कुठाररूप वचनसे कैसे काटते हो ? देखो ! विषके वृक्षको भी आप बढ़ाकर विवेकी नहीं काटते हैं ॥ ३३ ॥ तुमने कहा, जाओ सो हम कैसे

जायँ ? क्योंकि जो चित्त सुखपूर्वक घरमें लगरहा था, सो तुमने हर लिया और जिन हाथोंसे घरका काम करती थीं, सो तुमने हर लिये, तब श्रीकृष्ण चन्द्रने कहा कि, हे गोपियो ! अब तुम जाओ, परसोंके दिन तुम सबके चित्त विचार कर देंगे, तो गोपियोंने कहा कि, तुम्हारे चरण छोडकर हमारे पॉव एक पग भी नहीं चलसक्ते व्रजमें कैसे जायँ ? और जाकर हम क्या करैं ? ॥ ३४ ॥ हे सखे ! आपके हास्य, दर्शन और मधुरगीतसे उत्पन्नहुई हमारी कामाग्निको तुम अपने अधरामृतरूप पिचकारीसे शान्तकरो, नहीं तो हम एक तो कामकी अग्नि और दूसरी विरहकी अग्नि इन दोनोंसे दग्ध

सिंचांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ॥ नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥ यर्ह्यंबुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमंग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥ श्रीर्यत्पदांबुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ॥ यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

शरीर हो योगीजनोंकी नाईं तुम्हारे ध्यानसेही तुम्हारे चरणोंके निकट पहुँच जायँगी * ॥३५॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, तुम अपने पतियोंके पास जाओ, वही तुम्हारी कामाग्नि बुझावेंगे, इसके उत्तरमें गोपी कहती हैं कि, हे कमलदललोचन ! वनवासी जिन्हें प्रिय हैं, ऐसे तुम हो और लक्ष्मीजीको किसीसमयही जिनकी सेवा प्राप्त होतीहै, ऐसे तुम्हारे चरणोंके तलुए हमने जबसे स्पर्श किये, उसी दिनसे उनका सुख अनुभव किया और उसी दिनसे औरके सन्मुख भी खडी नही होसक्तीं ॥ ३६ ॥ यद्यपि लक्ष्मीजी सदा वक्षस्थलमें रहती हैं परन्तु तो भी जिसका भक्तलोग सेवन

---

* शंका—जैसे कामदेवसे पीडित होकर मनुष्योंकी स्त्री ओष्ठ चुम्बन करनेके लिये मनुष्योंकी विनती करती हैं और गोपी तो मोक्षका रूप थीं परन्तु कामकी शांति करनेकी पूर्ण ब्रह्म सरीखे जो श्रीकृष्ण हैं उनसे ओष्ठ चुम्बन करनेके लिये याचना क्यों की ?

उत्तर—गोपियोंने विचार किया कि, हम कुछ पढी नहीं और श्रीकृष्णकी जैसे विद्वान लोग स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति हम भी किया चाहती हैं, परन्तु विना विद्या हम कैसे स्तोत्रोंसे स्तुति करैं ? परन्तु हमने ऐसा भी सुना है कि, श्रीकृष्णके ओष्ठोंमें सरस्वतीका वास है जो हमारे सबके ओष्ठोंसे श्रीकृष्णके ओष्ठ छुइ जायँ तो हम सब विद्यावान् होजायँगी, तब अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भगवान्‌की स्तुति हम भी विद्वानोंकी सदृश किया करैंगी, कामदेवकी पीडासे कृष्णके ओष्ठोंका चुम्बन करना नहीं चाहती थीं ॥

करते हैं, ऐसी तुम्हारे चरणकी रेणुको तुलसीने सौत सहित चाहना की, जिस लक्ष्मीजीकी चितवनके लिये और देवता तप करके परिश्रम करते हैं उन्हीं लक्ष्मीकी समान हम भी तुम्हारे चरणकी रजको प्राप्त हुई हैं, अर्थात् शरण ली है ॥३७॥ हे दुःखके काटनेवाले ! तुम्हारे भजनेमें आशा लगाये हम घर छोडकर तुम्हारे चरणोंके पास आई हैं तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होओ, तुम्हारी सुन्दर मुसकान चितवनसे बढे कामदेवसे तपित देह हमको अपनी दासी करके स्थान दीजिये ॥ ३८ ॥ अलकावली जिसपर छूट रहीं और कुण्डलोंकी कान्तिसे युक्त कपोल अमृतभरे ओष्ठमें हास्य सहित चितवनवाले तुम्हारे मुखको देख और भक्तोंके अभयदान देनेवाले तुम्हारे दोनों भुजदण्डोंको देखकर लक्ष्मीको एकही प्रीतिके उपजानेवाले तुम्हारे

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेंघ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ॥ त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुपभूषण देहि दास्यम् ॥३८॥ वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ॥ दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥ का स्त्र्यंग ते कलपदायतवेणुगीतसंमोहिताऽऽर्य चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ॥ त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ॥ तन्नो निधेहि करपंकजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥

वक्षस्थलको देख हम तुम्हारी दासी होती हैं, हे कृष्ण ! मनोहर पदवाले बड़े बाँसुरीके गीतसे मोहित होकर त्रिलोकीमें ऐसी कौन स्त्री है जो अपने धर्मसे चलायमान न हो, त्रिलोकीमें सुन्दर इस तुम्हारे रूपको देख गौ, पक्षी, मृग यह भी रोमांचित होजाते हैं, फिर हम इस मनमोहनरूपसे मोहित होगई तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? तुम्हारा प्रकाशक शब्द सुनकर भी अपना धर्म त्यागना उचित है और तुम्हारे रूपके अनुभवसे त्याग करनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और आपने निश्चय व्रजके भय पीड़ा दूर करनेके लिये अवतार लिया है जैसे आदिपुरुष श्रीनारायण स्वर्गकी रक्षा करते हैं, इस कारण हे दीनबंधु ! हम तुम्हारी दासी हैं, हमारे कामदेवसे तप्त स्तन और शिरोंपर अपने हस्तकमलको धरो ॥ ४१ ॥

गोपियोंका विलाप सुन हँसकर दयाको प्राप्त हो,आत्मा
श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित्! इसप्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके सहित उदार
राम भी हैं, तो भी गोपियोंके संग रमण करनेलगे ॥ ४२ ॥ प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवनसे प्रफुल्लितमुखवाली इकट्ठी हुईं सहित चन्द्रमा
जिनकी चेष्टा और उदार जिनकी हँसनि दाँतोंमें कुंदकलीकी समान कान्तिवाले श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे शोभायमान लगनेलगे जैसे तारागण स्वयं गान करते
शोभायमान लगताहै ॥ ४३ ॥ गोपियें जिनका गान करैं और स्त्रियोंके सैकडों यूथका पालन करैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

॥४२॥ ताभिः
श्रीशुक उवाच॥ इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ॥ प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत्
समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणांक इवोडुभिर्वृतः ॥
॥ ४३ ॥ उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः ॥ मालां बिभ्रद्वैजयंतीं व्यचरन्मंडयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः
पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुक ॥ रेमे तत्तरलानंदकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनी
वीस्तनाऽऽलभननर्मनखाग्रपातैः ॥ क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुंदरीणामुत्तंभयन्रतिपतिं रमयांचकार ॥ ४६ ॥ एवं
भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥

आकर रमण
वैजयन्ती माला पहरे, वनको शोभायमान करते विहार करनेलगे ॥४४॥ शीतल वालूके बिछौनेवाले यमुनाजीके पुलिनमें गोपियोंसहित आलिंगन
करनेलगे, वहाँ यमुनाजीकी लहरका आनन्द और कमलोंकी सुगंधसनी वायुसे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ४५ ॥ भुजाओंका पसारना, व्रजसुन्दरियोंको
करना कर, अलक, ऊरू, नीवी, स्तन इनका स्पर्श करना, परिहासके वचन कहना, नखोंके चिह्न, क्रीडा, चितवन और हँसियोंसे मानवती होकर
भगवान् काम उद्दीपन कराय रमण करनेलगे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार महात्मा श्रीकृष्णचंद्रसे मान जिन्होंने प्राप्त किया ऐसी गोपियें

पृथ्वीकी स्त्रियोंमें अपनेको अधिक मानने लगीं ॥४७॥ ब्रह्मा और महादेवको वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनगोपियोंको सौभाग्यके मदके अधीन देख; उनका गर्व दूर और कृपा करनेके लिये उस रासमंडलमेंही अंतर्धान होगये, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि, अभी तो कुछ रासका प्रारंभही हुआ है सेरमें पौन भी नहीं और इन्हें मान हुआ, जो ऐसे लाखों गोपियोंके पांव पडता फिरूँ तो वर्षों लगजाय. फिर रास कैसे होगा ? इसकारण उनका मानभंग करनेको अंतर्धान होगये, अथवा जो प्यारी थी, उसका मानघटने लगा कि, देखो हमकोभी कृष्ण सबकी बराबरही देखते हैं और साधारणको मान बढ़ा कि प्यारी गोपी हमारे अधीन है, सो दोनोंका मान समान करनेको भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अंतर्धान होगये ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां कृष्णान्तर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥ प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवांतरधीयत ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णांतर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंतर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगनाः ॥ अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥ गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ॥ आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ॥ असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

दोहा–तीस माहिं सब ग्वालिनी, भईं हाल बेहाल । वन वन फिरत विरह दही, कहाँ गये नँदलाल ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! जिससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रासमंडलमेंसे अंतर्धान होगये,उससमय तत्कालही व्रजकी स्त्रियें तथा गोपियें उनके देखे विना ऐसी अत्यन्त व्याकुल होगईं कि, ॥ १ ॥ जिसप्रकार हाथीके देखे विना हाथिनियें व्याकुल हो जाती हैं, श्रीकृष्णचन्द्रकी चलनि, स्नेहभरी मुसकान, विलासपूर्वक चितवन, मधुर बोलनेकी क्रीडाओंमें मन जिनके पकड़े गये; ऐसी गोपियें तन्मय होगईं, उनकी लीलाका अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका गमन, हास्यभरी चितवन और मधुर वाणियोंके विहारकर प्यारेमें आरूढ हो श्रीकृष्णचन्द्रका रूप बनकर कहने लगीं कि, "मैं

कृष्ण हू, मैं कृष्ण हूं" इसप्रकार चेष्टा करने लगीं ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपियें मिल श्रीकृष्णचन्द्रका ऊंचे स्वरसे गान करती मतवालेकी समान वन वनमें ढूंढ़ने लगीं सब प्राणियोंमें आकाशकी तुल्य व्यापक जो श्रीकृष्णचन्द्र हैं, उनको वृक्षोंसे पूँछने लगीं ॥ ४ ॥ हे पीपरके वृक्ष ! हे वटके वृक्ष ! नंदका पुत्र श्रीकृष्ण प्रेमभरी चितवन और हँसी करके हमारा चित्त चुराकर ले गया है, यदि आपने देखाहो तो हमको अत्यन्त दुःखी जान कृपापूर्वक बता दो, कोई बोली, अरी ! यह क्या बतावेंगे, यह तो अश्वत्थ है, इनकी जो जड़ थोड़ीसी ऊपर रही है, सो यह ऐसी चिन्ता किया करते हैं कि कहीं ऐसी पवन न आजाय जो हमें उखाड़कर फेंकदे, कोई बोली अरी ! यह पीपल नारायणका रूप है, नारायण भक्तोंके कार्यमें मग्न

गायंत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ॥ पप्रच्छुराकाशवदंतरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ॥ ४ ॥ दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ॥ नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥ ॥ कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः ॥ रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥ कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये ॥ सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥

रहते हैं, सो हमें क्या बतावेंगे ? न्यग्रोध शिवका रूप है सो यह योगमें मग्न रहते हैं, हमको क्या बतावेंगे * ॥ ५ ॥ हे कुरबक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे केशर ! हे चम्पे ! हे मालती ! गर्व हरनेवाली जिसकी मुसकान ऐसा बलरामका छोटा भाई (कृष्ण) कहीं तुमने देखा ? फिर रामानुजियोंसे कहा कि, कहीं बडे भाईका प्रसाद भाँगके चुल्लूमें तो न पीगये ? जो हमारी यह रक्षा करते फिरते, कोई बोली अशोकसे क्या पूँछती हो यह तो आप अशोच है, सो पराये शोचको क्या जाने ॥ ६ ॥ कोई वनमें कहतीं हैं कि, हे तुलसी ! कल्याणरूपिणी ! गोविंदके चरणोंकी अत्यन्त

* शंका–वृक्षोंसे गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रजीको बूझा और वृक्ष जानते थे कि, इसी मार्ग होकर श्रीकृष्णचन्द्र गये हैं, फिर वृक्षोंने गोपियोंसे क्यों नहीं कहा कि, हमने श्रीकृष्णको देखा अथवा नहीं देखा चुप क्यों होगये ? उत्तर–जैसे कृष्णके प्रेममें गोपी उन्मत्त हो रही थीं, ऐसे ही कृष्णके ध्यानमें वृक्ष भी मतवाले हो रहे थे, वृक्षोंको तो अपनी देहका अथवा और किसी दूसरी वस्तुका ध्यान भी नहीं था और कुछ स्मरण भी नहीं था, भगवान्में मन लगा रहे थे, इसलिये उत्तर नहीं दिया, दूसरे वृक्षोंमें बोलनेकी शक्तिभी नहीं होती ॥

प्यारी और भौंरे जिसमें गुंजार करें, सो तुम्हारी मालाको पहरे, तुमने अपने अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको कहीं देखा होय तो बता दो ॥ ७ ॥ हे मालती! मल्लिके हे यूथिके! हे जाति! क्या आपने कहीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा? क्या हाथके छूनेसे तुम्हारी प्रीति उत्पन्न करते, इसी मार्गसे गये हों ॥ ८ ॥ हे आम! हे चिरौंजी! हे कटहर! हे विजयसार! हे कचनार! हे जामुन! हे वेल! हे मौलसिरी! हे सफरी! हे आम्र! और हे लोटन कदम्ब! तुम परोपकारी यमुनातीरवासी हो इसकारण हमें बता दो कि, तुमने कहीं श्रीकृष्णचन्द्रको जाते देखा? ॥ ९ ॥ जब किसीने उत्तर न दिया तो एक गोपी बोली कि, पृथ्वीसे बूझो कि, हे पृथ्वी! ऐसा तैंने क्या तप किया, जो केशवभगवान्का चरणस्पर्श हुवा, जिससे तुझे आनंद सहित रोमांच हुवे हैं, जिसके कारण तू सुन्दर लगती है, यह आनन्द प्यारेका चरण लगनेके कारण हुआ है,

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ॥ प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूतप्रियालपनसाऽसनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदंबनीपाः॥येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः॥ ९ ॥ किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवांघ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकितांगरुहैर्विभासि ॥ अप्यंघ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरंभणेन ॥ १० ॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ॥ कांतांगसंगकुचकुंकुमरंजितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदांधैः ॥ अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किंवाऽभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥

अथवा वामनजीने तुझे तीन पैग नापी है, अथवा उससे पहले वाराहजी तुझे दाढ़पर रखकर ले आये हैं, तबका आनन्द है, परन्तु वह आनंद तो पुराने पड़गये, अभी प्यारेका चरणारविन्द तैंने स्पर्श किया है और तैंने उन्हें निश्चय देखा है सो हमें बता दे ॥ १० ॥ हे सखी, हरिणकी स्त्री! अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीको संग लिये अपने अंगोसे तुम्हारी दृष्टिको आनंद देते यहाँ आये हैं? क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रकी प्यारी जो अंगके संग है, इसीकारण कुचोंकी केशरसे रँगीहुई कुन्दकी मालाकी सुगंध यहाँ आतीहै. "हे मृगनयनी! हमारी बातका ऐसा अनादर? कि, इस ओरसे दृष्टिभी फेर ली, फिर बोली कि, तुम्हारा कुछ अपराध नहीं, जब विधाता वाम होता है तो सब ठौर अपमानही अपमान होता है" ॥ ११ ॥ आगे बढ़कर वृक्षोंसे कहने लगी कि हे वृक्षो! प्यारीके कंधेपर भुजाको धारण किये और दूसरे हाथमें कमल लिये यहां फिरते

तुलसी संबंधी मदोन्मत्त भौंरे जिनके पीछे जाया करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्नेहभरी चितवनसे क्या तुम्हारी दण्डवत् यहाँ आनकर करली है ॥ १२ ॥ कोई बोली कि, हे वीर ! यह लतायें श्रीकृष्णचन्द्रसे अवश्य मिली होंगी, क्योंकि यह अपने पति वृक्षकी शाखारूप बाँहोंका आश्रय कर रही हैं इससे ज्ञात होता है कि, अवश्य हमारे प्यारे श्रीकृष्णचंद्रके नख इनमें लगेहैं,इसी कारण रोमांच हो आये हैं, हेवृक्षो ! वृक्षोंके समागममें ऐसे रोमांच नहीं होते ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार मतवालेकी भाँति पूछतीं श्रीकृष्णमें तन्मय और उनके ढूँढनेसे विह्वल होकर गोपियां भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ ❋ इसके उपरान्त कोई गोपी पूतना बनी

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ॥ नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ॥ लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥ कस्याश्चित्पूतनायंत्याः कृष्णायंत्य पिबत्स्तनम् ॥ तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वाजहारान्यामेकां कृष्णार्भ भावनाम् ॥ रिंगयामास काऽप्यंघ्री कर्षती घोषनिस्स्वनैः ॥ १६ ॥ कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायंत्यश्च काश्चन ॥ वत्सायंतीं हंति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥

कोई गोपी कृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी और कोई गोपी बालक बन रोती हुई शकटासुर बनी वह जो कोई गोपीहै उसको पावकी ठोकर मारनेलगी ॥ १५ ॥ एक गोपी तृणावर्त्त दैत्य बनकर कृष्णके बालक रूपको धरे जो और गोपी है उसे दूसरी दैत्यरूप बन हरकर लेगई और एक गोपी घुंघरू बाँध पाँवोंको घसीटती घुटुओं चलने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियाँ कृष्ण बलदेव बनीं और कोई गोपी गोप बनी और कोई

* दृष्टान्त–एक बडा गवैया था, सो वह अपनी खुशीसे गाता और किसीके कहनेसे नहीं गाता था एक भले आदमीका मन उसका गाना सुननेको चाहा, तो उसने क्या चतुराई करी कि, उसीकी तानमें गाऊं क्योंकि मुझसे ठीक बनैगी नहीं, इस कारण वह अपनी तान सुधारनेको आपही गावैगा, सो गाने लगा तो तान वैसी न आई, तब गवैये ने अपने मनमें कहा कि, यह मेरी तान गा रहा है परन्तु बिगडी जाती है, तब आप भी गाने लगा और उससे कहा कि ऐसे गावो, इसी प्रकार गोपियोंने विचारा कि, हम श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला करैं सो हमसे ठीक बनैगी तो हैही नहीं, इसकारण उसके बतानेको श्रीकृष्ण स्वयही आजायँगे ॥

वत्सासुर बन उसको मारनेलगीं, एक गोपी बकासुर बनी, उसे और गोपीने मारदिया ॥१७॥ जैसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र दूर चरतीहुई गायोंको बुलातेथे, उसीप्रकार एक गोपी गायोंको बुलाय श्रीकृष्णका अनुकरण करनेलगी. बाँसुरीको बजाकर क्रीडा करती थीं और गोपियें धन्यवाद देती थीं ॥ १८ ॥ एक गोपी गोपीके कंधेपर हाथ धरकर कहनेलगी कि,मेरी मनोहर नृत्यलीलाको तुम देखो, इसप्रक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जाकर उनका मन लगगया ॥१९॥ कोई गोपी पवन वर्षासे भय मतकरो "मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा"इसप्रकार कह एक हाथसे यत्नकर जैसे गोवर्द्धन पर्वत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उठाया था, उसी प्रकार अपनी ओढनीको ऊंचा उठालिया ॥ २० ॥ हे नृप ! एक गोपी और गोपीके ऊपर चढ पाँव शिर ऊपर धर एक गोपीसे कहने लगी कि,"हे दुष्टसर्प ! तू यहाँसे निकलजा,क्योंकि मैं दुष्टोंका दण्ड देनेवाला उत्पन्न हुआहूं॥२१॥उससम एकगोपी

आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ॥ वेणुं कणंतीं क्रीडन्तीमन्याः शंसंति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यांचित्स्वभुजं न्यस्य चलंत्याहापरा ननु ॥ कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥ मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहि मया ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतंत्युन्निदधेंबरम् ॥ २० ॥ आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहाऽपरां नृप ॥ दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दंडधृक् ॥ २१ ॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ॥ चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममंजसा ॥ २२ ॥ बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ॥ भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीति विडंबनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ॥ व्यचक्षत बनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥ पदानि व्यक्तमेतानि नंदसूनोर्महात्मनः ॥ लक्ष्यंते हि ध्वजांभोजवज्रांकुशयवादिभिः ॥ २५ ॥

बोली कि, हे गोपियो ! इस वनमें अत्यन्त भयानक अग्नि लगी है,इसे देखो और शीघ्र नेत्र बन्द करलो मैं इस अग्निको बुझाऊंगी,तथा अनायास देखे बिना कल्याण करूंगी॥२२॥कोई एक दुबल अंगकी गोपी मालासे ऊखलमें बाँध दी;तब वह डरकर सुन्दर नेत्रवाले मुखको ढक डरनेका अनुकरण करनेलगी, जब लीला करते करते रासलीला करनेलगीं,तब ज्योंही श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तर्द्धान होनेकी लीला आई,तभी श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरणकर व्याकुलहृदय हो ढूंढने लगीं ॥२३॥ इसप्रकार वृन्दावनकी लता और वृक्षोंसे पूँछती पूँछती आगे वनमें जाकर परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका खोज देखा ॥२४॥ ध्वजा,कमल, वज्र, अंकुश, आदि इन चिह्नोंसे महातमा नंदजीके बेटेका यह चरण निश्चयहै, इसप्रकार खोज लगताहै ॥२५॥

इसप्रकार अबला गोपी चरणोंके खोजसे श्रीकृष्णचन्द्रके जानेका मार्ग ढूँढने लगीं, आगे जाय श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके खोजमें प्यारीके चरणोंका खोज देख दुःखी हो यह कहने लगीं ॥ २६ ॥ कि, श्रीकृष्णचन्द्रके संग यह कौन गई है, यह किसके चरण हैं जिसने श्रीकृष्णके कन्धेपर अपना हाथ धराहै जिसप्रकार हाथी हाथिनियोके ऊपर सून्ड धर लेताहै ॥२७॥ निश्चय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका इसने आराधन किया है जिस कारण हम सबको त्याग प्रसन्न हो श्रीगोविंद इसे एकान्तमें लेगये ॥ २८ ॥ हे सखियो ! यह गोविन्दकी चरणरेणुको ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी, संपूर्ण अपने पाप दूर करनेके लिये माथेपर चढ़ाते हैं, यह रज बड़ी धन्य है, जो इसे शिरपर धारण करोगी तो भगवान् मिलजायँगे ॥२९॥ उस प्यारीके पाँवके

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छंत्योऽग्रतोऽबलाः ॥ वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि याताया नंदसूनुना ॥ अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥ अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥२८॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दांघ्र्यब्जरेणवः॥ यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥ तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वंत्युच्चैः पदानि यत् ॥ यैकाऽपहृत्य गोपीनां रहो भुंक्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यंते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ॥ खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥ (इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ॥ गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः॥अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना॥) अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ॥ प्रपदाक्रमणे एते पश्यताऽसकले पदे ॥ ३२ ॥

खोज हमको अत्यन्त व्याकुल करते हैं देखो ! हम सबको त्याग अकेली एकान्तमें ले जाय श्रीकृष्णचन्द्रका अधरामृत भोग करती है ॥ ३० ॥ आगे बढकर बोलीं कि, यहाँ तो उसके चरण नहीं दिखाई देते, परन्तु इसका कारण यह विदित होताहै कि, जब तृणके अंकुरोंसे उसका कोमल चरण तल पीडित होगये हैं, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी प्रियतमाको कंधेपर चढाया ॥ ३१ ॥ (हे वीर ! जिससमय श्रीकृष्णने प्यारीको उठाया, तो उन कामके रसिया श्रीकृष्णचन्द्रके चरण पृथ्वीमें धसगये. देखो ! यह फूलोंके लिये अवश्य सखीको उठायाहै) हे सखी ! यह देखो ! प्यारेने प्यारीके कारण फूल तोडे हैं, इस स्थानमें चरणोंको उचकाकर खडे होनेसे थोडा चिह्न दिखाई देताहै ॥ ३२ ॥

कामासक्त श्रीकृष्णचन्द्रने कामिनीके इस स्थानमें केश गुह कर सुधारे हैं, फिर प्यारीको बैठाय केश गुहे, जो प्यारा है सो इस स्थानमें निश्चय बैठा होगा ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र आत्मरत आत्माराम स्त्रियोंके विलासोंसे अखण्डित हैं, परन्तु तोभी उन्होंने कामी मनुष्योंकी दीनता और स्त्रियोंका दुष्टपन दिखलानेके लिये उनके साथ रमण किया ॥ ३४ ॥ इसप्रकार वह सब गोपियें अचेत हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ढूँढनेका विचार करने लगीं, अब श्रीकृष्णचन्द्र और स्त्रियोंको वनमें त्याग जिस स्त्रीको संग लेगयेथे ॥३५॥ वह गोपी सब स्त्रियोंमें अपने आपको श्रेष्ठ मानने लगी कि, देखो चाहना करनेवाली गोपियोंको छोड श्रीकृष्णचन्द्र मेरा सेवन करतेहैं ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त वह गोपी गर्वित होकर केशव श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगी कि, मुझपै चला नहीं जाता, जहाँ तुम्हारा मनहो वहाँ लेचलो, तब

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कांतामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमे तया चात्मरत आत्मारामोप्यखंडितः ॥ कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवं दर्शयंत्य स्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ॥ यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ३५ ॥ सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्व योषिताम् ॥ हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥ ३६ ॥ ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ॥ न पार येऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७ ॥ एवमुक्तः प्रियामाह स्कंधमारुह्यतामिति ॥ ततश्चांतर्दधे कृष्णः सा वधूरन्व तप्यत ॥ ३८ ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ॥ दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्विच्छंत्यो भगवतो मार्गं गोप्यो विदूरतः ॥ ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४० ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, प्यारी ! दश पैग और चलो किशोरीजी बोलीं, हांजी जैसे तुम चार पहर गायोंके पीछे फिरते हो उसी प्रकार सबको जानते हो, हम तो कभी महलके बाहर भी नहीं निकलीं. सो कैसे चलैं ॥ ३७ ॥ इसप्रकार जब प्यारीने कहा तब श्रीकृष्णचन्द्रने अपने कंधेपर चढनेको कहा। यह सुनकर ज्योंही राधिका चढने लगी त्योंही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान होगये, तब तो वह अत्यन्त घबराई ॥ ३८ ॥ और कहनेलगी कि, हा नाथ ! हे रमणकरानेवाले ! हे महाभुज ! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो ? हे सखे ! तुम्हारी ऐसी कृपण मैं दासीं हूं, इसकारण समीप आनकर मुझे अपना दर्शन दो ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उन सब इकट्ठी गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दूरसे मार्ग ढूँढते ढूँढते

प्यारेके वियोगमें मोहित और अति दुःखित इस स्त्रीको देखा ॥ ४० ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रथम मान मिला फिर गर्व होनेसे अपमान मिला, यह बात उस स्त्रीके मुखसे श्रवण कर सब गोपियाँ बडे आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥४१॥ और निशानाथ चन्द्रमाकी चाँदनीका प्रकाश जहाँतक था, वहाँतक तो गोपियोंने वनमें ढूँढा, आगे वृक्षोंकी छायाका अँधेरा देखकर लौट आईं ॥ ४२ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये कृष्ण संबंधी बातें और उन्हींकी लीला करतीं तन्मय हो उन्हींके गुण गानकर रहींथीं कि, कृष्णवियोगमें उन्हें अपने घरकी भी सुधि न रही ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त सब लौट यमुनाजीके पुलिनमें आय भगवान्में जिनकी भावना लग रही, उनके आनेका पैंडा देख सम्पूर्ण गोपियाँ मिलकर

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ॥ अपमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥ ४१ ॥ ततोऽविशन्वनं चंद्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ॥ तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टा स्तदात्मिकाः ॥ तद्गुणानेव गायंत्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४३॥ पुनः पुलिनमागत्य कालिंद्याः कृष्णभावनाः ॥ समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिताः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भाग० महापु० दशम० पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः ॥ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि ॥ दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥ सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके गुण गानेलगीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां भगवदन्वेषणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥ दोहा–इकतिस माहिं निराश हो, बहुरि यमुन तट आय। करत प्रार्थना प्रेम सों, प्रगट होहु यदुराय ॥ १ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपी कहने लगीं कि, हे प्रीतम! तुम्हारे जन्म लेनेसे यह व्रज अत्यन्त शोभायमान लगता है और आपके प्रगट होनेके कारण यहां लक्ष्मीजी सदा वास करती हैं, इसप्रकार सब व्रजमें आनन्द होरहा है. हे प्यारे! तुम्हारेही लिये प्राण धारण किये तुह्मारी दासियाँ तुम्हें ढूँढ़ती फिरतीहैं ॥ १ ॥ हे सुरतनाथ! शरदृतुके सरोवरोंमें भलीप्रकार उपजे श्रेष्ठ कमलके भीतरकी शोभाको चुरानेवाली तुह्मारी दृष्टिहै, उससे विना मोलकी जो हम दासी हैं

सो उनको तुम क्यों मारते हो, यदि तुम कहो कि, हम क्या मारते हैं ? तो क्या शस्त्रहीसे मारते हैं, दृष्टिसे नहीं मारते ? क्या इसीसे तुमने दृष्टिसे हमारे-प्राण हर लिये हैं,उनके देनेके कारण शीघ्र हमें दर्शन दो ॥ २ ॥ हे लाल ! आपने वारम्वार मृत्युसे रक्षा करी अब क्यों कामदेवको भेजकर दृष्टिसे मारते हो ? क्योंकि विषके जलसे मृत्यु थी, उससे रक्षा करी, फिर अघासुरसे बचाया, इन्द्रने महाघोर वर्षा और पवन चलाया उससे रक्षाकी, बिजलीकी आग तथा वृषासुरसे बचाया, मयके पुत्र व्योमासुरसे और समस्त भयसे बचाया, फिर अब किसलिये हमको छोडते हो ॥ ३ ॥ तुम यशोदाके पुत्र नहीं हो, क्योकि यशोदाके पुत्र होते तो ' मापर पूत पितापर घोडा । बहुत नहीं तो थोडा थोडा ' कुछ तो अपनी जातिका पक्ष आता, सब देहधारियोंकी बुद्धिके साक्षी हो, ब्रह्माने विश्वकी रक्षाकी जब प्रार्थना करी तब हे कृष्ण ! तुम यादवोंके कुलमें प्रगट हुए

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ॥ वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥ न खलु गोपिकानंदनो भवानखिलदेहिनामंतरात्मदृक् ॥ विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्त्वतां कुले ॥ ४ ॥ विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ॥ करसरोरुहं कांत कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥ व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥ भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥ फणिफणार्पितं ते पदांबुजं कृणु कुचेषु नः कृंधि हृच्छयम् ॥ ७ ॥

और जब ब्रह्माजीने आपको रक्षा करनेके लिये कहा तब आपने यह कह दिया होगा कि, सबकी तो रक्षा करनी और गोपियोंको जला जलाकर मारना सो ब्रह्मा तो ब्राह्मण है इसकारण वह ऐसा अधर्म क्यों बतावेगा ? ॥ ४ ॥ हे यादवश्रेष्ठ कान्त ! संसारके भयसे तुम्हारे चरणसेवन करने वाले जो पुरुष हैं, उनको अभयदाता कामनाओंके देनेवाला और लक्ष्मीका हाथ पकड़नेवाला जो तुह्मारा हस्तकमल है, सो हमारे माथेपर धरो ॥ ५ ॥ हे सखे ! हे वीर ! हे व्रजवासियोंके दुःख हरनेवाले ! अपने जनोंका गर्व दूर करनेवाली तुम्हारी मुसकानकी हम दासी हैं, उनका सेवन करो, क्योंकि पहली स्त्रियां हम हैं, उनको अपना मुखकमल दिखाओ ॥ ६ ॥ प्रणत अर्थात् नम्र देहधारियोके पापोंको दूर करनेवाले

गायोंके पीछे पीछे चलनेवाले शोभाके स्थान, कालियके फणपर नृत्य करनेवाले आपके चरणकमल हैं, उनको कृपापूर्वक हमारे कुचोंपर धरकर कामकी व्यथा दूर करो * ॥ ७ ॥ हे कमलदललोचन ! हे वीर ! सुन्दरवाक्यवाली गम्भीर वाणीसे मोहित हुई हम दासियोंको अधरामृत पिलाकर जीवदान दो ॥ ८ ॥ आपके विरहमें हमारे प्राण जाचुके हैं परन्तु तुम्हारे कथामृतको पान करतेहुए सुकृती जनोंने हमें बचालिया, क्योंकि संसारमें तप्त पुरुषको जिलानेवाले ब्रह्मादिक जिसकी स्तुति करैं, ऐसे पापोंको दूर करनेवाले मंगलरूप शान्त तुम्हारी कथारूप

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥ विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥८॥ तव कथाऽमृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥ श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणंति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥ प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ॥ रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयंति हि ॥ १० ॥ चलसि यद् व्रजाच्चारयन्पशून् नलिनसुदरं नाथ ते पदम् ॥ शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कांत गच्छति ॥ ११ ॥

अमृतको जो पुरुष पृथ्वीमें कहते हैं वह बड़े दाता हैं, जब तुम्हारी कथा कहनेवाले धन्य हैं, तो जो तुम्हारा दर्शन करते हैं, उनका तो कहनाही क्या है? इससे अब दया करके दर्शन दो ॥ ९ ॥ हे सौम्य ! हे कपटी ! तेरा मुसकानसहित मुख, प्रेमभरी चितवन और ध्यानमें मंगलरूप तुम्हारा विहार, हृदयको स्पर्श करनेवाली एकान्तकी बातैं हमारे मनको क्षोभ करती हैं ॥ १० ॥ हे नाथ ! जिससमय गौ चरानेको

* शंका–स्त्रियोंके स्तनोंको पुरुष हाथसे स्पर्श करता है तो स्त्रीको सुख होता है, कुछ पुरुषके चरणस्पर्शसे सुख नहीं होता ? तब गोपियोंने कृष्णके चरण अपने स्तनपर स्पर्श होनेकी क्यों याचना की महाराज, आप अपने चरण हमारे सबके स्तनोंपर अर्पण करो, जो कोई कहै गोपी प्रेममें आतुर थीं उनको पदका और हाथका स्मरण न रहा ? इसलिये चरणकी याचना की थी, तो फिर कृष्णके दूसरे अंग की याचना क्यों नहीं की ? अकेले चरणोंहीकी सब देहमें याचना क्यों की ?

उत्तर–गोपियोंने सुना था और देखा भी था कि, श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शसे कालियनागका जहर नष्ट होगया, कालियनाग निर्विष होगया इससे जो हमारे सबके स्तनोंपर श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श हो जाय तो हम सबके कामदेवका नाश हो जाय. क्योंकि कालियके गरलसे काम बडा नहीं है. कामदेवका नाश होनेसे सब संसारकी बाधासे छूट जायँगी इसलिये गोपियोंने श्रीकृष्णके चरणोंको अपने स्तनोंसे स्पर्श करनेकी याचना की थी, क्योंकि गोपी तो वेदोंकी ऋचा हैं ॥

आप व्रजसे जाते हो, तब तुम्हारे कमलके तुल्य सुन्दर चरण काँकरी, तृण, अंकुर लगकर कष्ट पातेहैं, इसलिये हे कान्त ! हमारा मन चंचल होताहै, सो इसप्रकार प्रेम रखनेवाली दासियोंपरभी आप दया नहीं करते ? ॥ ११ ॥ संध्यासमय नील केशसे ढके गोरजसे धूसरित कमलके समान मुखको धारणकर बेर बेर दिखाके, हे वीर ! हमारे मनमें कामदेवको उत्पन्न करते हो, परन्तु संग नहीं देते यही तुम्हारा निश्चय कपट है ॥ १२ ॥ नम्र देह धारियोंको कामनाओंके देनेवाले, जिनका ब्रह्माजीने पूजन किया, पृथ्वीको शोभायमान करनेवाले आपत्तिमें ध्यानसेही पीडा दूर करनेवाले, सेवामें सुखरूप, ऐसे अपने चरणकमलोंको, हे कामकी पीड़ाको दूर करनेवाले ! हमारे कुचोंपर धरो ॥ १३ ॥ हे वीर ! कामको बढ़ानेवाला, शोकको दूर

दिनपरिक्षये नीलकुंतलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ॥ घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमंडनं ध्येयमापदि ॥ चरणपंकजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाऽधिहन् ॥ १३ ॥ सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुंबितम् ॥ इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥ अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥ कुटिलकुंतलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥

करनेवाला, स्वरभरी बजतीहुई बाँसुरी भलेप्रकार चुम्बित, मनुष्योंके चक्रवर्ती आदि सुखका भुलानेवाला सुखदायक तुम्हारा अधरामृत है सो हमारे रोग शान्त करनेको दीजिये. हे कृष्ण ! यह औषधि मिलनेसे हम भली होजावेंगी और यदि जो तुम दवाका मोल माँगो तो दमड़ीकी बाँसकी वंशी, जिसे दिन रात मुखपर धरे रहते हो, वह तुम्हें क्या मोल देती है ? और जो तुम कहो कि, तुम कुपथ्य करो हो कुपथ्यको दवा न देनी चाहिये तुम अभी गैय्या मैय्या, भाई और पत्यादिकोंकी वासनाका कुपथ्य करती हो सो प्यारे ! तुम्हारी औषधी यह सब दूर कर देगी, तुम हमें पिलाओ तो सही ॥ १४ ॥ जब तुम दिनके समय वनमें जाते हो तब तुम्हारे देखे विना आधा क्षण युगकी समान व्यतीत होता है,

यह तो बिना देखेका दुःख कहा और जब घूमघूमारे केशोंसे युक्त तुम्हारे मुखकमलका दर्शन करती हैं, उससमय पलकोंका बनानेवाला ब्रह्मा हमें मूर्ख विदित होता है, क्योंकि पलकोंसे दर्शनमें बाधा होती है, यह दर्शनमें दुःख है और छःवर्षकी हमारी ननँद जब अपनी मासे जाकर कहती है कि, देखरी मा! भाबी उस नंदके पुत्रको देखने गई है, तब सास त्रास दिखाती है, दूसरे ब्रह्मा वैरी पडा है, अपनी आठ आँखें बनाईं, हमारी दोही और उसपरभी पलक लगादिये हैं ॥ ॥ पति, पुत्र और वंशके बंधु बांधवोंको त्याग, तुम्हारे गीतसे मोहित होकर हम तुम्हारे पास आई थीं और गानेकी गतोंको और हमारे आगमनको जाननेवाले, हे अच्युत! हम तुम्हारे निकट आई हैं, सो हे कपटी! रात्रिमें

पतिसुतान्वयभ्रातृबांधवानतिविलंध्य तेंत्यच्युता। ॥ गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥ बृहदुरश्श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहंत्र्यलं विश्वमंगलम् ॥ त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥

आई स्त्रियोंको तुम बिना ऐसा कौन है जो त्यागेगा ? ॥ १६ ॥ कामदेवका प्रगट करनेवाला एकान्तका संकेत देख और हँसी सहित मुख तथा प्रेमकी चितवन देख और लक्ष्मीके रहनेका स्थान तुम्हारा वक्षस्थल देखकर हमको बड़ी चाहना हुई है एवं हमारा मन भी मोहित होगया है ॥ ॥ १७ ॥ अंग अर्थात् हे श्रीकृष्ण! तुम्हारा प्रगट होना व्रजवासी और वनवासियोंके दुःखका दूर करनेवालाहै तथा अतिशय करके विश्वका मंगल रूप है, इसकारण तुम्हारे दर्शन विना व्याकुल अपने भक्तजनोंके मनकी पीड़ा दूर करनेवाली गुप्त औषधि दो कृपणता, मतकरो यह हम

जानती हैं कि, इस औषधिको तुमही जानते हो ॥ १८ ॥ कठोर स्तनोंपर तुम्हारे चरणकमलोंको हम भयसे, धीरे धीरे धारणकरती हैं, क्योंकि, कहीं कोमल चरणोंमें गढ़े न पड़जांय और तुम उन चरणोंको वनमें उठा उठाकर फिरते हो, क्या चरणोंमें कॉटे कंकड़ी लगकर खेद नहीं होता ? जब यह विचार करती हैं, तो तुम्हें अपना जीवनधन माननेवाली हमारी बुद्धि मोहित होजातीहै, परन्तु अब पुकारकर इतना तो कह दो कि, अरी गोपियो ! तुम कहां हो मैं तो पुलिनमें लताओंके नीचे सुखपूर्वक बैठा हूँ ॥ १९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ दोहा—बत्तिस विरह वियोगते, द्रवीभूत भयो हीय । प्रगट भये तुरतहि हरी

यत् ते सुजातचरणांबुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥ तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे गोपिकागीतं नामैक त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति गोप्यः प्रगायंत्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा ॥ रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्श नलालसाः ॥ १ ॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः ॥ पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥ तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोबलाः ॥ उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥ काचित् करांबुजं शौरेर्जगृहेंजलिना मुदा ॥ काचिद् दधार तद्बाहुमंसे चंदनभूषितम् ॥ ४ ॥

अति प्रसन्न भई तीय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! इसप्रकार गान और चित्रविचित्र विलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी इच्छासे वह गोपियें बड़े स्वरसे रोदन करने लगीं ॥ १ ॥ उसी समय मुसकानयुक्त मुखकमल, पीताम्बर धारण किये वनमाला पहरे साक्षात् कामदेवका मन मोहित करनेवाले दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके बीचमें प्रगट होगये ॥ २ ॥ तब प्रीतिपूर्वक प्रसन्न और प्रफुल्लित संपूर्ण अबलायें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया देखकर इसप्रकार उठकर खड़ी होगई कि, जैसे देहमें प्राण आनेसे हाथ पाँव एक संग उठते हैं ॥ ३ ॥ और किसी गोपीने तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका बड़े आनन्दपूर्वक हस्तकमल पकडलिया

और कोई चन्द्रनसे शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंको कंधेपरही धरने लगीं ❋ ॥४॥ और किसी कृश अंगवाली गोपीने श्रीकृष्णचन्द्रके मुखमेंसे तांबूलका बीडा अपने हाथमें लेलिया और कामसे कम्पायमान कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमल अपने स्तनोंपर

काचिदंजलिनाऽगृह्णात्तन्वी तांबूलचर्वितम् ॥ एका तदंघ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥
एका भ्रूकुटिमाबध्य प्रेमसंरंभविह्वला ॥ घ्नंतीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥
अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखांबुजम् ॥ आपीतमपि नातृप्यत्संतस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥

धरनेलगी ॥५॥ एक गोपी अपनी भौंहैं चढ़ाय कोपके आवेशसे विकल हो अपने ओष्ठोंको दाँतोंसे दाब कटाक्षरूपी बाणोंसे मारतीसी देखनेलगी ॥६॥ हे राजन् ! और गोपियें निमेषरहित दृष्टिसे श्रीकृष्णचन्द्रका मुखकमल भले प्रकार देखती भी हैं, परन्तु तौ भी बेर बेर देखकर

* ''काचित्करावुज'' यहा शुकदेवजीने ''काचित्'' कहा, नाम नहीं लिया, इसका कारण यह है कि, नाम श्रीशुकदेवजीका परम इष्ट है, दो अक्षर मन्त्ररूप हैं, सो जपमन्त्रका प्रकाश करना भला नहीं, अथवा भगवान् महादेवजीने शुकदेवजीसे तत्त्वज्ञान कहा, परन्तु नामके दो अक्षर प्रकाश नहीं किये, रा रा कहा करते हैं, दूसरा अक्षर नहीं कहते, कदाचित् कोई चुराकर लेजाय ? एकबार तो तत्त्वज्ञान खोया जिसकी कथा वर्णन करते हैं । एकसमय नारदजीने कैलासपर आनकर विचारा कि, यहाँ कुछ आग लगानी चाहिये, सो पार्वतीजीसे कहा तुम्हें महादेवजी कुछ प्यार भी करते हैं ? पार्वती वोली कि, कुछ अंतर नहीं रखते तब नारदजी वोले तो तुम यह पूछियो कि, आपके गलेमें मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है यह कह नारदजी चलेगये. जब वर्ष दिन पीछे महादेवजी समाधिसे जागे तो पार्वतीजी बोलीं कि, महाराज यह मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है ? बताओ, यह सुनकर शिवजी वोले कि, जब तुम्हारा शरीर छूट जाताहै, तब धारण कर लेताहूँ पार्वती बोलीं—मेरे तो सैकडों जन्म हुए, और तुमने ऐसी क्या अमरौती खाई है, जो तुम अमर हो ! शिवजीने अपने मनमें कहा कि, किसीने भली आग लगाई, फिर बोले मुझे तत्त्वज्ञान है, पार्वतीने कहा, वह तत्त्वज्ञान मुझे बताओ । अब शिवजीने स्नेह हटाय एक चुटकी बजाई, कि उसस्थानके सब पक्षी उडगये, फिर एक चुटकी बजाई बच्चोंके पख जमिआये, फिर बजाई, सब बच्चे उडादिये, उसी समय शुकीके गर्भमें शुकदेवजी आये थे, सो एक चुटकीसे बाहर आये दूसरीसे अंडा फूटा और तीसरीसे पर निकले, सो एक वृक्षकी डालीपर जा बैठे, तब महादेवजी पार्वतीसे तत्त्वज्ञान कहने लगे, पार्वती हुकार देती सोगई, यह तोता हूहू करनेलगा, और महादेवजी ब्रह्मानन्दमें मग्न नेत्र मीचे सपूर्ण कथा कहगये, जब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती सोगई और हूहू तोतेने करी, यह जान झट उसके मारनेको त्रिशूल चलाया, और पीछे दौडे, तोता भागा सो व्यासजीकी स्त्री कोठेपर खडीथी उसने जो जमाई ली, सो शुकदेवजी उसके उदरमें प्रवेश करगये, शिवजीने व्यासजीसे कहा कि, तुम्हारी स्त्रीमें हमारा चोर है, उसे निकालो, व्यासजी वोले कि, आपके पास है क्या ? जो इसने चुराया है शिवजी वोले कि, तत्त्वज्ञान, जिससे अमर होते हैं, वह इसने चुराया है व्यासजी वोले कि, इसीसे आप भोलानाथ कहलातेहो. भला विचारो तो सही कि, जिसने तत्त्वज्ञान सुना, वह त्रिशूलसे कैसे मरैगा ! महादेवजी हँसकर कैलासको चलेगये, और उसीदिनसे रा रा कहते हैं, पूरा नाम नहीं लेते, शुकदेवजी सपूर्णही गुप्त रखते हैं, इसी कारण राधिकाका कहीं नाम नहीं लिया ॥

तृप्त नहीं हुई, जिसप्रकार साधुपुरुष श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेसे तृप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ और कोई गोपी नेत्रोंके छिद्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयमें लेजाय नेत्रमूँद उन्हें आलिंगनकर रोमांचित शरीर हो योगिजनोंके समान महान् आनन्दमें मग्न होगई ॥ ८ ॥ और केशवमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करके आनन्दसे सुखी हो संपूर्ण गोपियोंने विरहके तापको त्यागदिया, जैसे ईश्वरको पाकर मुमुक्षुजन ताप छोड देतेहैं, अथवा सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीको पाकर जाग्रतरूप अवस्थावान् जीव जैसे तापको छोडदेतेहैं ॥ ९ ॥ हे परीक्षित! उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन दुःखरहित गोपियोंके मध्यमें इसप्रकार शोभायमान लगनेलगे जैसे परमात्मा सब शक्तियोंसे और उपासक

तं काचिन्नेत्ररंध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च॥ पुलकांग्युपगुह्यास्ते योगीवानंदसंप्लुता ॥ ८॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमो त्सवनिर्वृताः ॥ जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ॥ व्यरोचताधिकं तात पुरुषश्शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥ ताः समादाय कालिंद्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ॥ विकसत्कुंदमंदारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥ शरच्चंद्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ॥ कृष्णाया हस्ततरलाऽऽचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥ तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथांतं श्रुतयो यथा ययुः ॥ स्वैरुत्तरीयैः कुचकुंकुमांकितैरचीकॢपन्नासनमात्मबंधवे ॥ १३ ॥

पुरुष ज्ञान बल वीर्यादि जो शक्ति हैं, उनसे शोभायमान लगताहै ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन गोपियोंको संग ले फूलेहुए कुंद और मंदारकी सुगंधयुक्त पवनके कारण जहां भौंरे गुंजार कर रहेथे, ऐसे यमुनाके पुलिनमें सबको लेगये ॥ ११ ॥ कैसे पुलिन हैं कि, शरदृतुके चन्द्रमाकी किरणोके समूहसे रात्रिका अंधकार जिनमेंसे दूर होगयाहै और यमुनाजीका भी उसीके समान तरंगोंसे कोमल बालूके बिछौने जिसमें बिछ रहे हैं ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण आनंदपूर्वक हृदयके रोग दूरकर गोपियाँ अपने मनोरथोंके अंतको प्राप्त हुई अर्थात् उनके मनोरथ पूर्ण हुए, जैसे ज्ञानकाण्डमें श्रुति परमेश्वरको देख आनंदसे परिपूर्ण हो कामके सम्पूर्ण बंधनोंका त्याग करतीहैं और

कुचोंकी केशरयुक्त अपनी ओढनियोको उतार उतारकर गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रके बैठनेकी तकियां बनाने लगीं * ॥ १३ ॥ योगेश्वरोंके भीतर जिनका कल्पित आसन है, वह ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तीनलोककी शोभाका एकही स्थान क्या तीनों लोककी शोभा जिसमें आरही उसी प्रकार रूप धारण कर उस आसनपर बैठ गोपियोंसे पूजित हो, उनकी सभामें शोभायमान लगने लगे॥ १४ ॥कामदेवके बढ़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रकी हासलीलापूर्वक चितवनसे चलायमान भ्रुकुटीसे सत्कार कर गोदमें धरेहुए श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंको हाथोंसे दाबतीं और स्तुति करतीं कुछेक

तत्रोपविष्टो भगवान्स ईश्वरो योगेश्वरांतर्हृदिकल्पितासनः ॥ चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४॥ सभाजयित्वा तमनंगदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमद्भ्रुवा ॥ संस्पर्शनेनांककृतांघ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ भजतोऽनुभजंत्येक एक एतद्विपर्ययम् ॥ नोभयांश्च भजंत्यन्य एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मिथो भजंति ये सख्यः स्वार्थैकांतोद्यमा हि ते॥ न तत्र सौहृद धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥ १७ ॥ भजंत्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा ॥ धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥

क्रोधसे गोपियां बोलीं ॥१५॥ सब गोपी बोलीं कि, महाराज! एक पुरुष तो भजतेहुएको भजता है, वह कौन है? और एक ऐसे हैं कि, जो नहीं भजता उसको भजते हैं, वह कौन है? एक भजतोंको और न भजतोको दोनोंको नहीं भजते हैं, वह कौन है? सो हे कृष्ण! यह हमारे आगे भली प्रकार समझा कर कहो ॥ १६ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे सखियो! जो पुरुष परस्पर भजतेहैं अर्थात् जितना वह उनको चाहैं, उतनाही वह उनको चाहैं, वह पुरुष तो अपस्वार्थी हैं, उस भजनमें स्नेह, सुख धर्म कुछ भी नहीं है वह तो केवल अपनाही भजन है ॥१७॥और जो नहीं भजतोंको

*शंका—जिन गोपियोंके मित्र श्रीकृष्ण सो सब गोपी अपने पहिरेहुये वस्त्रोंका आसन श्रीकृष्णके बैठनेको क्यों देती थीं? क्या गोपी दरिद्रिनी थीं? नया वस्त्र मँगाकर भगवान्के बैठनेको आसन क्यों नहीं दिया? उत्तर—जो प्राणी अपने काममें उन्मत्त होजाता है, उसको कुछ नहीं जानपडता कि, यह काम अच्छा है यह काम बुरा है, इसीप्रकारसे कृष्णके चरणोंमें गोपी उन्मत्त होरहीं थीं, उनको ज्ञात न हुवा कि वस्त्र हमारा पहिरा हुवा है वा विना पहिरा है इस लिये गोपीं भगवान्को अपने पहिरे वस्त्रका बैठनेको आसन देने लगीं ॥

भजतेहैं, वह पुरुष दो प्रकारके हैं, एक तो करुणावान् दूसरे स्नेही जैसे माता पिताको पुत्र नहीं चाहताहै, परन्तु वह उसके ऊपर कृपा करतेहैं और इस भजनमें निर्दोष धर्म है,हे सुमध्यमाओ!दयालु होकर भजनमें सत्य धर्म है और स्नेहसे भजनमें सत्य प्रेमहै॥ १८॥"पर भजन विश्वाससेही करना योग्यहै" इसमें एक दृष्टान्त ❋ कहतेहैं कि, विश्वासमेंही भगवान्हैं और कहीं नहीं और जो पुरुष भजतोंहीको नहीं भजते तो अभजतोंको कहांसे भजेंगे, वे चार प्रकारके हैं, एक तो आत्मामेंही रमण कररहेहैं और एक पूर्णमनोरथ हैं जिनको किसी बातकी चाहना नहीं है और एक अकृतज्ञ हैं, जो उपकारको नहीं

भजतोऽपि न वै केचिद्भजंत्यभजतः कुतः ॥ आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जंतून्भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ॥ यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिंतयाऽन्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ॥ मया परोक्षं भजतां तिरोहितं माऽसूयितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

समझते और एक गुरुद्रोही हैं, अर्थात् जो उपकार करे उसीसे द्रोह करतेहैं ॥१९॥श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे सखियो ! मैं इनमेंसे कोई नहीं, केवल दयालु और स्नेही हूं, जो कोई प्राणी मेरा भजन करता है, उसको अपनी ओर ध्यान लगानेके लिये मैं नहीं भजता हूँ जैसे दरिद्री पुरुषको धन मिले और वह धन जाता रहै, तब वह उसी चिन्ताका मारा भूंख प्यास नहीं जानता॥ २० ॥ हे बालाओ ! मेरे लियेही लोकमर्यादा वेदमर्यादा पति पुत्रा

❋दृष्टान्त–एक मनुष्य किसी कार्यवश भगवान्का पूजन करता था, परन्तु मनमें यही विचारता था कि, यह पत्थरकी मूर्ति हमारा कार्य कैसे साधन कर सकेगी ? इसप्रकार चलविश्वास होनेसे उसका कार्य नहीं हुआ, तब किसीने उससे कहा कि, तू भगवती दुर्गादेवीका पूजन कर तुरन्त काम सिद्ध होगा, वह मनुष्य ऊपरके आलेमें श्री ठाकुरजीकी मूर्तिरख नीचे दुर्गादेवीका पूजन करनेलगा, एकदिन धूप देतेसमय मनमें विचारा कि, सीधी ऊपरहीको जाती है सो नारायणको पहुँचती है इस कारण दुर्गादेवीको पीछे मिलनेसे वह प्रसन्न नहीं होती, इसका यत्न करूं, यह विचार रुई ढूँढ भगवन्मूर्तिकी नाकमें भरने लगा जिससे कि, सुगन्ध न जाय, भगवान् तत्कालही मूर्तिमें प्रसन्नहोकर और हँसकर बोलेकि, माई रुई मत ठूसे वर माग क्या चाहिये, यह बोला कि, महाराज ! मुझे क्या खबर थी कि, आप रुई ठूसनेसे प्रसन्न होते हैं, यह विधि किसी पद्धतीमें भी नहीं लिखी, भगवान् बोले पहिले तुझे विश्वास नहीं था, मूर्तिको पाषाण अर्थात् पत्थर जानता था, आज वह बात जाती रही आज ईश्वरही जाना, नहीं तो पत्थरमें सूघनेकी शक्ति कहा, आज तेरा विश्वास ईश्वररूपका था॥

दिक तुमने त्यागदिये,सो तुम्हारी चितवृत्ति लगानेके लिये तुमको देखनेके लिये नही आया, तुम्हारे पासही छिपरहा था,कुछ दूर नहीं गया था. हे प्रियाओ ! यह कृष्ण बुराहै, ऐसे मुझमें दोष मत लगाओ ॥ २१ ॥ तुम निर्दूपित तुम्हारे संग उपकारका बदला मुझपर यदि देवताओंकी समान अवस्था हो, तो भी नहीं होसक्ता,क्योंकि जो छोड़ी न जायँ ऐसी घररूप बेडियोंको काटकर तुमने मेरी सेवा की, इसलिये तुम्हीं कहदो कि, कृष्ण हमारा ऋणीया नहीहै. तो मेरा छुटकाराहै, मुझपै तुम्रारे उपकारका बदला नहीं होसक्ता ॥२२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ दोहा–नारिमण्डलीके विषे, ठाढ़े श्रीयदुराय। करत विहार प्रियान सँग, तेंतिसवें अध्याय ॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार उन श्रीकृष्णचन्द्रके हस्त चरण आदि अंग स्पर्शकर मनोरथ पाय गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका

न पारयेहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ॥ या माऽभजन्दुर्जयगेहश्रृंखलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दश० पूर्वार्द्धे हरिकृतविरहितगोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥ जहुर्विरहजं तापं तदंगोपचिताशिषः ॥ १ ॥ तत्रारभत गोविंदो रासक्रीडामनुव्रतैः ॥ स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥ रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ॥ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥ प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥ यं मन्येरन्नभस्तावद् विमानशतसंकुलम् ॥ दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥

अति कोमल वचन श्रवण कर विरहके तापको छोड़ दिया ॥ १ ॥ और इसके उपरान्त गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँ अपनी आज्ञा करनेवाली प्रसन्नमन, परस्परमें हाथ पकडे खडीहुई स्त्रियोंमें रत्न गोपियोंको संग ले रासक्रीडाका आरंभ करनेलगे ॥ २ ॥ फिर गोपियोंके समूहसे शोभायमान रासका उत्सव योगके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र रचने लगे और मण्डलाकार खडीहुईं दो दो गोपियोंके बीचमें अपने अनेक रूप धारणकर कण्ठमें गलबाहीं डाल गान करते श्रीकृष्ण आपभी खडे हुए ॥ ३ ॥ हे राजन् ! जिन श्रीकृष्णचन्द्रको, सब गोपियें प्यारा मेरे पास है, कोई बोलीं मेरे पास है, इसप्रकार अपने अपने पास जानने लगीं और रासदेखनेकी इच्छासे देवतालोगभी अपनी अपनी स्त्रियोंको लेकर आये, उनके विमानोंसे

आकाश छा रहा था॥४॥देवताओंके आने उपरान्त नगाडे बजनेलगे, फूलोंकी वर्षा होनेलगी और मुख्य मुख्य गन्धर्व अपनी अपनी स्त्रियोंको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका निर्मल यश गाने लगे ॥ ५ ॥ और प्यारे श्रीकृष्णचंद्रके संग जो स्त्रियें थीं, उनके कंकण नूपुर तथा किंकिणियोंका रासमण्डलमें बडा झनकार शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ जैसे दो दो मणियोंके बीचमें एक एक नीलमणि सुन्दर लगती है, उसीप्रकार उस रासमंडलमें दो दो गोपियोंके बीचमें एक एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ७ ॥ पाँवका धरना, भुजाओंका हलना, मुसकानसहित भ्रुकुटियोंका चढना, कमरका लचकना, कुचों और वस्त्रोंका हिलना, कपोलोंपर कुण्डलोंकी हलन, उनसे जिनके मुखपर पसीना आगया, चोटियोंके नारोंकी गाँठि जिनकी खुलगईं, ऐसी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी वधू गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रके गुणानुवाद गान करतीं, जैसे मेघमण्डलमें बिजली

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ जगुर्गंधर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५॥ वलयानां नूपुराणां किंकीणीनां च योषिताम् ॥ सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ॥ मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥७॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिःसस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलै र्गंडलोलैः ॥ स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥ उच्चैजगुर्नृत्यमाना रक्तकंठ्यो रतिप्रियाः ॥ कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ॥ उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधुसाध्विति ॥ तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात॥१०॥

शोभायमान लगती है, उसी प्रकार शोभायमान लगने लगीं ॥८॥ अनेक प्रकारके रंगोंसे कण्ठ जिनके रँगरहे, रतिही जिनको प्यारी और श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श जिनको हो उससे बडा आनन्द जिनको, वह गोपियें नृत्य करते ऊँचे स्वरसे गाने लगीं, जिनका गीत इस विश्वमें छारहा है ॥ ९ ॥ और कोई गोपी मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रके संग उच्चस्वरोंके अलापोंकी गतिको उठाने लगीं, कैसे स्वरोकी जाति ली कि, श्रीकृष्णचन्द्रने जो स्वर उठाया, उनमें मिलतीथी. तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो धन्य है, धन्य है, इस प्रकार बडाई करने लगे इसलिये जिन स्वरोकी जाति ली थी उनको ध्रुवतालमें बाँधकर गातीहुई गोपियें प्रशंसा करनेलगीं तब गोपियोंको श्रीकृष्णचंद्रने बहुत मान दिया ॥ १०

कोई गोपी रासमें श्रमित हो गदा धारण करनेवाले पासमें खडे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके कंधेको हाथसे पकडने लगी, चूरी तथा फूलोंके हार जिनके शिथिल होगये. यहाँ गदा वंशीकोही जानना. क्योंकि गोपियोंके हृदयको चूर करती है ॥ ११ ॥ इसके उपरांत एक गोपीने रोमांच जिसके होआये कमलोंकी समान सुगंधवाली चन्दनसे चर्चित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको अपने कंधेपर धरकर चुम्बन किया ॥ १२ ॥ और फिर नृत्यसे चलायमान कपोलोंको श्रीकृष्णके कपोलोंपर लगाती हुई गोपीको श्रीकृष्णचन्द्रने बीरीका जूँठन दिया ॥ १३ ॥ और किसी गोपीने नूपुर करधनी जिसके बजैं

काचिद्रासपरिश्रांता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ॥ जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ॥ चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ १२ ॥ कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमंडितम् ॥ गण्डे गण्ड सन्दधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥ १३ ॥ नृत्यन्ती गायती काऽपि कूजन्नूपुरमेखला ॥ पार्श्वस्थाऽच्युतहस्ताब्जं श्रांताऽधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कांतं श्रिय एकांतवल्लभम् ॥ गृहीतकंठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटंककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ॥ गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥

नृत्य व गान करतेहुए श्रम पाय पास खड़े हुए मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हस्तकमल अपने स्तनोंपर धारण किया * ॥ १४ ॥ लक्ष्मीके अत्यन्त प्यारे अच्युत श्रीकृष्णको सुंदर पति पाय उनकी भुजाओंसे कंठमें गलबाहीं डाल गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रको गाती विहार करने लगीं ॥ १५ ॥ उस रासमण्डलमें स्त्रियों सहित गंधर्व और किन्नरादिक जो बाजे बजारहे थे, तथा गवैये बनकर गा रहेथे, वह सब रासरसमें मोहित होकर नृत्य करने

* शंका–गोपीने श्रीकृष्णका हाथ अपने हाथसे पकडकर अपने स्तनोंपर क्यों रक्खा ? जैसे मनुष्यकी स्त्री कर्म करती हैं, ऐसा कर्म क्यों किया ?
उत्तर–गोपीने विचार किया कि, इनहीं श्रीकृष्णभगवान्ने अपने हस्तकमलोंको प्रह्लादके और ध्रुवके मस्तकपर रक्खा था तव प्रह्लाद और ध्रुव ससारके दु खसे छूटकर भगवानके भजनमें मग्न होगये, इसलिये मैं भी अपने कुचोंपर भगवान्का हाथ धरके इन दोनोंको भक्तजन वनाऊंगी क्योंकि कामदेव जव कुपित होकर पुष्पधनुष सधान कर मेरे ऊपरको चढता है, तो स्तनोंमें अधिक वाधा होती है, अव जो यह भक्त होजायँ तो ससारके सव दु खोंसे निवृत्त होजाऊगी और कामदेव भी मुझको नहीं सतावेगा उसकी वाधासे भी छूट जाऊगी, पुरुपकी ममता शिरपर वहुत होती है और स्त्रीकी ममता स्तनोंपर अधिक रहती है ऐसा विचार करके गोपीने कृष्णका हाथ अपने कुचपर रक्खा ॥

लगे, उससमय कंकण और नूपुर बाजेका कार्य और भौंरे गवैयोंका काम कररहे थे, रास मण्डलमें व्रजवनिता कृष्णके संग नृत्य करतीहुई अत्यन्त शोभा पारही थीं, उनके कानोंके कमल अलकोंसे युक्त कपोल और पसीनेके बूँदोंकी शोभा मुखपर छा रहीथी और नृत्य समयमें जो फूलोंकी माला गिरती थीं; उनसे ऐसी शोभा होरही थी कि, मानों तालोंकी गतिसे प्रसन्न होकर केश शिर हिलाय चरणोंपर फूलोंकी वर्षा कररहेहैं॥१६॥ इसप्रकार लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आलिंगन, हाथोंका स्पर्श, स्नेह भरी चितवन और बड़े विलास हास्यसे,जैसे बालक अपनी परछाहींसे खेलताहै, उसी प्रकार व्रजसुंदरिओंके संग रमण करनेलगे ॥ १७ ॥ हे कुरुकुलको आनन्द देनेवाले राजा परीक्षित् ! उससमय श्रीकृष्णके अंगमें जो आनन्द उससे जिनकी इन्द्रियें विवश होरहीं और जिन व्रजकी स्त्रियोंके माला गहने खिसक रहेथे, वह अपने केश, शरीर, कुच और वस्त्रोंके सम्हारनेको

एवं परिष्वंगकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ॥ रेमे रमेशो व्रजसुंदरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमः॥१७॥ तदंगसंगप्रमुदाकुलेंद्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा ॥॥ नांजः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ॥ कामार्दिताः शशांकश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥ कृत्वा तावंतमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ॥ रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामतिविहारेण श्रांतानां वदनानि सः ॥ प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शंतमेनांग पाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुंडलकुंतलत्विड्गण्ड श्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ॥ मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥

भी समर्थ न हुईं ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी रासक्रीडा देख आकाशमें देवांगनायें भी कामसे पीडित होकर मोहित होगईं और तारागण सहित निशानाथ चन्द्रमा भी आश्चर्य मानकर चलना भूल गया,तब और ग्रह भी जहाँके तहाँ हर गये,उससे राति जो बढ़ गई उससे सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ १९ ॥ जितनी गोपोंकी स्त्रियें थीं; उतनेही अपने रूपधर आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंके संग लीला करने लगे ॥ २० ॥ फिर अत्यंत विहारसे जिनको श्रम प्राप्त हुआ ऐसी गोपियोंके मुखका पसीना देख करुणाको प्राप्त हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे उनका मुख पोंछने लगे ॥ २१ ॥ वे मानवती गोपियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हस्तकमल नख स्पर्शसे

महासुख पाय प्रकाशमान सुवर्णके कुण्डलसे कान्तिमान कपोल तथा रसभरी चितवन और मुसकान युक्त श्रेष्ठ गुणभरे श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके सुन्दर चरित्र गाने लगीं ॥ २२॥ मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब रास विलास करते करते थकगये, तब उन गोपियोंको संगले श्रम दूर करनेके लिये जलमें घुसे, कुचोंकी केशर जिसमें लगी अंग अंगसे रगड़ी मालाकी सुगंधसे गंधर्वोंके समान भौंरे गातेहुए उनके पीछे चले जाते थे, जैसे हथिनियोंको संग लेकर हाथी जलविहार करनेको जाते हैं ॥ २३ ॥ हे अंग ! इधर उधरसे जलमें स्त्रियोंको छींटी देते हैं, जिस समय जलविहार करते समय व्यंग वचन बोल और प्रेमपूर्वक कृष्णको देखकर हँसती हैं और भगवान्‌को जलसे भिजोती हैं विमानोंपर बैठे देवता स्तुति और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं, हाथीके समान जिनकी लीला, ऐसे आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तहाँ जलमें

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमंगसंगघृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरंजितायाः ॥ गंधर्वपाऽलिभिरनुद्रुत आविशद् वाः श्रांतो गजी भिरिभराडिव भिन्नसेतुः॥ २३ ॥ सोंभस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोंग ॥ वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेंद्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगंधानिलजुष्ट दिक्तटे ॥ चचार भृंगप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजिता निशः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ॥ सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ॥ अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥

अथवा गोपियोंके मंडलमें क्रीडा करनेलगे ॥ २४ ॥ जलक्रीडा करनेके उपरान्त जल स्थलके पुष्पोंकी सुगंधभरी पवन जिसके सब दिशाओंमें व्याप्त होरही है, ऐसे जो यमुनाजीके बागमें भौंरे रूप गोपियोंके संग श्रीकृष्णचन्द्र विहार करनेलगे, जैसे मदस्रावी हाथी हथिनियोंके संग विहार करताहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार सत्यसंकल्प भगवान् चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभायमान उस शरदकी रात्रियोंमें साहित्य काव्योंमें जो करनेकी विधि लिखी है, उसीप्रकार वह स्नेहभरी गोपियोंके संग वीर्यको धारणकर करनेलगे, और जितनी गोपी उतनेहीं श्याम उतनीहीं कुंजोंमें फूलोंकी शय्यापर लेटे हँसते हँसाते कोमल बातें करते थे ॥ २६ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे श्रीशुकदेवजी ! धर्मके स्थापन

और अधर्मका नाश करनेके लिये जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने परिपूर्ण रूपसे अवतार लियाहै ॥ २७ ॥ फिर धर्मकी मर्यादाके रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने पराई स्त्रीका स्पर्श करना, यह अधर्म क्यों किया ? ॥ २८ ॥ पूर्णकाम यादवोंके पति श्रीकृष्णने यह निंदित कर्म कैसे किया ? इसका क्या अभिप्राय है ? हे सुन्दर व्रतवाले शुकदेवजी ! यह हमारा संदेह शमन करो ॥ २९ ॥ यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! सामर्थ्यवानोंको धर्मका उलांघना और साहस भी देखाहै, जैसे अग्निमें भली बुरी वस्तु डालदो, उसको भस्म करदे और उसे

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता ॥ प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ २८ ॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ॥ किमभिप्राय एतं नः संशयं छिंधि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः ॥ विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथाऽरुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ ३१ ॥ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ॥ तेषां यत्स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ ३२ ॥

दोष नहीं लगता, उसी प्रकार सामर्थ्यवान तेजस्वी पुरुषोंको भी दोष नहीं लगता, कहा भी है, "समरथको नहिं दोष गुसाँई" ॥३०॥ बड़ोंकी रीति न करै उसमें पीछे पछताना पडताहै * सामर्थ्यवार पुरुषोंके करे कर्मको मनसे भी न करै और जो कदाचित् अज्ञानसे करै तो माराजाय, जैसे रुद्र (शिव) के विना और कोई समुद्रके विषको पान नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ ईश्वरके वचनोंकोही सत्यमानै और उनके आचरणोंको भी सत्यमानै, जैसा उन्होंने कहाहै, उसीके अनुसार बुद्धिमान पुरुष करै। राम-कृष्ण दोनों अवतार हुए हैं श्रीरामचन्द्रजीने जैसा कहा वैसाही किया,

* दृष्टान्त-एक राजा रानीने सम्मति करी कि हमारे यहाँ भी अनेक युद्ध हुए हैं इसकारण ऐसा महाभारत वनाना चाहिये, यह विचार पंडितोंको बुलायकर कहा कि, एक हमारे नामका भी महाभारत वनाओ परन्तु वह व्यासजीके महाभारतसे किसीप्रकार न्यून न हो चाहे वढती हो, नहीं तो तुम्हें देशसे निकालदूंगा ब्राह्मण आपसमें सम्मति कर राजाके पास आनकर कहने लगे कि महाराज ! महाभारत वनानेकी सामग्री सव प्रस्तुतहै सव वातें अधिकही करैंगे पर एक वात आप वताइये राजाने कहा क्या? ब्राह्मण वोले महाभारतमें द्रौपदीके पाच पति थे, आपकी रानीके उससे अधिक कितने लिखैं सो वताइये और उनके नाम वर्णन कीजिये ? सुनतेही राजाकी बुद्धि लोप होगई और घवराकर वोला महाराज क्षमा करो, मुझे महाभारत लिखानेकी सामर्थ्य नहीं, इसलिये वडोंके चारित्र पै शका नहीं करनी चाहिये ॥

इस लियेउनका कहना करना दोनों करै और श्रीकृष्णचन्द्रने जो गीतामें कहाहै,उसे करै और जो उन्होंने लीला करीहैं उनको नकरै किन्तु ध्यान करै ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! इस संसारमें जिनको अहंकार नहीं है, ऐसे सामर्थ्यवान पुरुष जो अच्छा कर्म करैं उससे उनको पुण्य और निकृष्ट कर्म करनेसे पाप नहीं होताहै, क्योंकि पुण्य पापतो देहमें अहंकारके वशसे लगेहैं, इसकारण अहंकार रहित पुरुषको कुछ दोष नहीं है ॥ ३२ ॥ जब और महात्माओंको भी पाप पुण्य नहीं लगता तब समस्तप्राणी, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता, जीव, इनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पाप पुण्य नहीं लगताहै, इसमें कहनाही क्याहै ? ॥ ३४ ॥ जिनके चरणारविन्दका पराग अर्थात् मकरंदका सेवन करनेसे तृप्तहोकर भक्तजन और योगप्रभावसे संपूर्ण कर्मबंधन दूरकर मुनीश्वर ज्ञानी बंधनोंसे रहित हो अपनी इच्छापूर्वक विचरतेहैं, तो इच्छासे शरीरके धारण करनेवाले

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ॥ विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥ ३३ ॥ किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ॥ ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥ यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ॥ स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३५ ॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ योंतश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ॥ भजते तादृशीः क्रीडा याः स्मृत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥ नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ॥ मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ॥ अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बंधन कहांसे हो ? ॥ ३५ ॥ गोपी और उनके पतियोंके व संपूर्ण देहधारियोंके साक्षीरूप होकर जो देहके भीतर रहते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रने क्रीडा करनेके लिये देह धारण किया है, इसकारण उनमें कुछ दोष नहीं होसक्ता, क्योंकि सर्वत्र वही रमण करते हैं, और बाहर भीतर व्याप्त हैं ॥ ३६ ॥ संपूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्य देह धारण करके ऐसी मनुष्य लीला करीहैं कि,जिन लीलाओंको श्रवण करनेसे मनुष्य कृष्णपरायण होजाताहै ॥ ३७ ॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित व्रजवासियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको कुछ दोष नहीं लगाया और अपनी अपनी स्त्रियोंको अपने अपने पास जाना ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्म मुहूर्त अर्थात् चार घड़ी रात रहे, श्रीकृष्णचन्द्रकी

आज्ञानुसार घर आनेको जिनकी इच्छा नहीं ऐसी प्यारी गोपियें अपने अपने घर आईं ॥३९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका परम कौतुक जो व्रजवधू गोपियोंके संग रासलीलाहै इसे जो पुरुष श्रद्धा सहित श्रवण और कथन करतेहैं ❀ वह पुरुष भगवान्में परमभक्ति प्राप्तकर थोडेही दिनोंमें धीर होकर शीघ्रही हृदयके कामरूप रोगोंका त्यागकर देतेहैं॥४०॥इति श्रीभा०महा०दश० पू०भाषाटीकायां रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३ ॥
दोहा--चौंतिसमें नँदरायको, निगल गयो इक नाग। शंखासुरको वध कियो, कृष्ण सकल भय त्याग ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्!

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ॥ भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रय
स्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेंऽ
बिकावनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ॥ आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेंऽबिकाम् ॥ २ ॥
गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥ ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं
प्राश्य धृतव्रताः ॥ रजनीं तां महाभागा नन्दसुनंदकादयः ॥ ४ ॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन्विपिनेऽतिबुभुक्षितः ॥
यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥

एकसमय अत्यन्त उत्साहसे सब व्रजवासी देवीकी यात्रा करनेके लिये बैलोंको जोत गाडियोंपर बैठकर देवीके वनमें गये ॥१॥ हे राजन्! वहाँ पहुँच सरस्वती नदीमें स्नान कर फिर महादेवजीका भली भाँति पूजनकर अम्बिका देवीका पूजनकिया ॥ २ ॥ संपूर्ण व्रजवासी, महादेव हमारे ऊपर प्रसन्नहों, इसलिये मधुयुक्त मधुर अन्न और गौ, ब्राह्मणोंको दान किया॥३॥ और बडे भाग्यवान् नन्दादिक और सब व्रजवासियोंने उसदिन रात्रिको जलका आचमन कर तथा तीर्थ व्रत करके सरस्वतीके किनारेही वास किया ॥ ४ ॥ हे नृप ! उस वनमें कोई अत्यन्त भूखा सर्प रहताथा, उसने

* दृष्टान्त—एक बुढिया बडी कहा सुनीसे कथा सुनने गई पीछेसे कटोरा जाता रहा दूसरे दिन कथामें न आई, लुगाइयोंने कहा, बुढिया तू कथा सुननेको न आई बोली कि, भैना ! खर्चे बहुत पडता है पहले दिनगई तो कटोरा गया अबकी सुनगीं तो थाली लोटे परात सब खो बैठूंगी इसकारण मेरा तो कथाको दूरसेही दण्डवत् है ।

अकस्मात् आनकर नन्दरायजीको ग्रसा * ॥५॥ सर्पसे ग्रसित होकर नन्दजी पुकारने लगे कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह अत्यन्त भयानक सर्प मुझको निगले जाता है, हे पुत्र ! मैं तेरी शरण हूँ, तू मुझे छुड़ा ॥ ६ ॥ इसप्रकार नन्दजीकी पुकार सुन घबराहटसे ब्रजवासी शीघ्रही उठे, देखाकि, नंदजीको सर्प निगले जाताहै तो सुलगती लकड़ियोंसे उसको मारने लगे ॥७॥ यद्यपि ब्रजवासियोंने सुलगती लकड़ियोंसे उसे मारा परन्तु तोभी उस सर्पने नंदजीको न छोड़ा, तब भक्तोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस सर्पको अपने चरणकी ठोकर मारी ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी ठोकर लगतेही उसके सब पाप दूर होगये और उस सर्पने सर्पदेहको त्यागकर विद्याधर जिसका पूजन करें, ऐसे स्वरूपको धारण किया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त प्रकाशमान रूप धारण किये सुवर्णकी मालापहिरे उस खड़ेहुए पुरुषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूछने लगे कि ॥१०॥ परम शोभायमान अद्भुतदर्शन तुम कौन हो ? और विवश होकर यह सर्पकी योनि तुमको कैसी मिली॥११॥यह सुनकर वह सर्प बोला कि, महाराज !

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्णकृष्ण महानयम् ॥ सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्य चाक्रंदितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ॥ ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्हन्यमानोऽपि नामुंचत्तमुरंगमः ॥ तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ८ ॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ॥ भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ॥ दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ ॥ १० ॥ को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ॥ कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः ॥ श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरन्दिशः ॥ १२ ॥

* शंका—सब सर्प प्राणियोंको काटते हैं परन्तु अपनी भूखकी शान्तिके लिये नहीं काटते केवल प्राणियोंको डसना (काटना) सर्पोंका स्वभाव है, भागवतमें लिखा है कि, भूखे सर्पने नन्दजीको दश लिया ऐसा क्यों लिखा ?

उत्तर—जिस सर्पका भागवतमें इतिहास है, वह सर्प पूर्वजन्मका देवता था, जब मुनीश्वरने उसको शाप दिया था तब इससे कह दिया था कि, जिससमय श्रीकृष्णका चरण तेरी देहसे छू जायगा तब तेरी मोक्ष होगी, उस सर्पको वही आशारूपी क्षुधा थी, उसीसे दुःखी होकर सर्पने नन्दजीको काटा ॥

मैं सुदर्शन नाम करके विख्यात कोई गंधर्व था, संपत्ति और शरीरकी सुन्दरतासे गर्वित हो विमानमें बैठकर दिशाओंमें विचरता था ॥ १२ ॥ तब एक समय मैंने रूपके मदसे मत्त होकर कुरूप अंगिरसादि ऋषियोंकी हँसी करी, तब उन्होंने मुझे शाप दिया, जिससे मेरी सर्पयोनि होगई ॥ १३ ॥ करुणावान् ऋषीश्वरोंने कृपा करनेहीके लिये मुझे शाप दिया था, जिसकारण त्रिलोकीके गुरु आपके चरणारविन्द स्पर्श करनेसे सब पाप छूटगये, और यदि वे शाप न देते तो तुम्हारे चरण मेरे कैसे लगते ? ॥ १४ ॥ संसारसे डरकर शरण आये पुरुषका भय दूर करनेवाले आप हैं, सो मुझसे क्या पूछते हो; हे पापनाशक ! तुम्हारे चरण स्पर्शसे मेरे सब पाप दूर होगये ॥ १५ ॥ हे महायोगिन् ! हे महापुरुष ! हे महासाधुओंके पति ! हे प्रकाशमान ! हे सबलोकोंके ईश्वर ! हे इश्वरके ईश्वर ! तुम्हारी मैं शरण आया हूँ, सो मुझे आज्ञादो ॥ १६ ॥ हे अच्युत ! तुम्हारा दर्शनकरके मैं शीघ्रही ब्राह्मणोंके

ऋषीन्विरूपानंगिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ॥ तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥ शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ॥ यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४ ॥ तं त्वाऽहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ॥ आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५ ॥ प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन्महापुरुष सत्पते ॥ अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥ ब्रह्मदंडाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् ॥ यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥ १७ ॥ सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवंद्य च ॥ सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नंदश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ॥ समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं नृपाऽऽययुस्तत्कथयन्त आदृताः ॥ १९ ॥ कदाचिदथ गोविंदो रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥

शापसे छूट गया, क्योंकि जिनका नामही उच्चारण करके वक्ता और श्रोता अपनेको पवित्र करते हैं ॥ १७ ॥ फिर तुम्हारे चरणोंसे मैं पवित्र हुवा तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा ले, परिक्रमा दे, प्रणाम कर वह सुदर्शन स्वर्गको चलागया और नंदजी कष्टसे छूटगये ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वैभव देख आश्चर्यको प्राप्त हो व्रजवासी तीर्थमें नेमको पूर्ण कर बड़े आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णचंद्रका चारित्र कहतेहुए व्रजमें आये ॥ १९ ॥ किसी समय एक यात्राके उपरान्त गोविंद

और अद्भुत पराक्रमवाले बलराम दोनों भाई वनके बीच रात्रिमें व्रजस्त्रियोंके मध्यमें विहार करते थे॥ २० ॥ स्नेहसे बद्ध होनेके कारण ललित स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णके चरित्र गारहींथीं और दोनों भाई सुन्दर आभूषण धारण किये, केशर चंदन लगाये, वनमाला और निर्मल वस्त्र पहरे ॥ २१ ॥ रात्रिके प्रारम्भ होनेसे तारागण और चन्द्रमाका उदय होरहा था, चमेलीकी सुगन्धसे मत्त होकर भौंरे गुंजार कर रहे थे, फूली कुमोदिनीसे लगकर पवन चल रहाथा ॥ २२ ॥ उसकी सराहना करते सब प्राणियोंके मन और कानोंको आनन्ददायक संगही स्वरके मंडलोंकी मूर्च्छना करते गाने लगे ॥ २३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्ण बलदेवका गाना सुनकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गोपियोंके वस्त्र ढीले पड़गये और

उपगीयगानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः॥ स्वलंकृतानुलिप्तांगौ स्रग्विणौ विरजोंबरौ॥ २१॥ निशामुखं मानयंतावुदितोडुपतारकम्॥ मल्लिकागंधमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना॥ २२॥ जगतुः सर्वभूतानां मनश्श्रवणमंगलम्॥ तौ कल्पयंतौ युगपत् स्वरमंडलमूर्छितम्॥ २३॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन् नृप॥ स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः॥ २४॥ एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत्॥ शंखचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात्॥ ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम्॥ क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशंकितः॥ २६॥ क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम्॥ यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम्॥ २७॥ मा भैष्टेत्यभयाऽऽरावौ शालहस्तौ तरस्विनौ॥ आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम्॥ २८॥

चोटियोंकी गॉठे खुलगई कि, जिनसे फूलोंकी माला गिर गई अधिक क्या कहैं, उन्हें अपने २ आपेकी भी सुधि न रही ॥ २४ ॥ हे नृपोत्तम! इस प्रकार कृष्ण बलदेव दोनों भाई मतवालेके समान क्रीड़ा और गान कररहे थे कि, इतनेमेंही शंखचूड़ नाम कुबेरका टहलुआ आया ॥ २५॥ हे राजा परीक्षित्! कृष्ण बलदेवके देखते निर्भय हो शंखचूड़ जब उन गोपियोंके समूहको जिसके स्वामी कृष्ण बलदेव हैं, लेकर उत्तरकी ओर चला, उस समय वह गोपियें पुकारने लगीं ॥ २६ ॥ जैसे सिंहकी पकड़ी गौ पुकारती है, उसी प्रकार हे कृष्ण बलदेव! इस प्रकार पुकार करती गोपियोंको देख कृष्ण बलदेव दोनों भाई शंखचूडके पीछे दौड़े ॥ २७ ॥ मतडरो ऐसे भयके दूर करनेवाले वचन कह शालका वृक्ष हाथमें

लिये शीघ्रतासे कृष्ण बलदेव दौड़ गुह्यकगणमें अधम शंखचूड़के पीछे गये ॥ २८ ॥ काल मृत्युके समान पीछे दौड़े चले आते श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवको देख, स्त्रियोंको छोड़ मूढ शंखचूड़ अपने प्राण बचानेके लिये भागा ॥ २९ ॥ जहां जहां शंखचूड़ भागकर गया वहाँ वहाँ गोविंद श्रीकृष्णचन्द्र उसके शिरकी मणि लेनेके लिये उसके पीछे दौडे और बलदेवजी स्त्रियोंकी रक्षाके लिये वहीं रहे ॥ ३० ॥ हे राजा परीक्षित् ! थोडी दूर पर जाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दुष्टमनवाले शंखचूडके मुष्टिक मार शिर सहित उसके माथेकी मणि लेली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ॥ विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥ तमन्वधावद् गोविंदो यत्रयत्र स धावति ॥ जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥ अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ॥ जहार मुष्टिनैवांग सह चूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शंखचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥ अग्रजाया ददत् प्रीत्या पश्यंतीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥ कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

चन्द्रने इसप्रकार शंखचूड दैत्यको मार प्रकाशमान् मणि लेकर संपूर्ण स्त्रियोंके देखते प्रसन्नतापूर्वक अपने बडे भाई बलदेवजीको देदी ॥ ३२ ॥ ति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ दोहा—पैंतिसमें हरि वन गये, पीछे गोकुल नारि । वेणु गीतही गायकर, दियो कष्ट सब टारि ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें गये तब श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये गोपियें विरहमें उनकी लीलाको गाय गाय अत्यन्त कष्टसे दिन व्यतीत करनेलगीं ❀ ॥ १ ॥

* शंका—श्रीशुकदेवजीने परीक्षितसे कहा था कि, हे राजन् ! श्रीकृष्ण जिस दिन गौवें चराने जाते थे, तब विना कृष्णको देखे अलग होकर गोपी बहुत दु खसे दिन काटती थीं, इस वचनसे जानपडता है कि सब गोपी गोकुलमें रात्रिके समय श्रीकृष्णके पास सभा बनाकर रहती होंगी ? प्रातःकाल होतेही व्रज विहारी फिर गाय चराने चले जाते होंगे, तब फिर सब गोपी उसीप्रकार व्याकुल हो जाती होंगी ।

गोपियें परस्पर बोलीं कि, हे सखियो ! बाईं भुजापर बायें कपोलको धर भ्रुकुटियोंको चढ़ाय मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी अधरके ऊपर बाँसुरीको धर और अपनी कोमल अँगुलियोंसे उसके छिद्रोंको दाब जिससमय बजाते हैं ॥ २ ॥ उससमय आकाशमें गमन करनेवाली देवताओंकी स्त्रियें अपने पतियों सहित बाँसुरीको सुन प्रथम आश्चर्यमान लाज सहित कामके बाणोंसे परवशहो मन हरजानेके कारण नारोंकी भी जिनको सुधि न रही इसप्रकार मोहको प्राप्त होगईं ॥ ३ ॥ हे अबलाओ ! यह आश्चर्य सुनो हारकी समान निर्मल जिनकी हँसनि, बाँसुरी बजाते समय नीचा मुख करके जो हँसते हैं, तो उनकी हारोंमें प्रकाशित हँसनि होती है, अथवा हारकी तुल्य छातीमें शोभायमान जिसकी हँसनि है और छातीमें बिजु

गोप्य ऊचुः॥ वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्॥कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुंदः
॥ २ ॥ व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥ काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनी
व्यः ॥ ३ ॥ हंत चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत ॥ नंदसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः
॥ ४ ॥ वृंदशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ॥ दंतदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन्
॥ ५ ॥ बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडंबः॥कर्हिचित्सबल आलि सगोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः॥६॥ त
र्हिं भग्नगतयः सरितो वै तत्पदांबुजरजोऽनिलनीतम् ॥ स्पृहयतीर्वयमिवाऽबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

लीकी तुल्य प्रकाशमान स्थिर लक्ष्मी जिसके हृदयमें वास करती है पीड़ितजनोंको सुख देनेवाला यह नंदका पुत्र जिस समय बाँसुरी बजाताहै॥४॥ तब दूरसे बाँसुरीका शब्द सुन हरगये हैं मन जिनके ऐसे गौ, बैल और हिरणोंके समूहके समूह दाँतोंसे कौर काटकर उसे दाबे हुए कानोंको ऊंचाकर सोतेसे चित्र लिखेके समान खड़े होगये. बड़ा आश्चर्य है कि, पशु, पक्षियोंकी यह दशा है ॥ ५॥ हे सखी ! मोरपुच्छ, खडिया गेरू, मनसिल, पात, इनसे मल्लके समान स्वरूपसे कभी बलदेव भाई सहित और गोपियों सहित मुकुन्द जिससमय बाँसुरी बजाकर गौओंको

—उत्तर—व्याकरणके पढनेवाले जो विद्वान्पुरुष हैं वह (निन्युर्दुःखेन वासरान्) इस श्लोकमें वासरका अर्थ दिनका नहीं करते, वास, सब वस्तुके प्रमाणका नाम है उसी वासको जो ग्रहण करे, उसका नाम वासर है, व्याकरणके पढने वाले विद्वानोंने वासरका अर्थ निमिषका किया है, इसी निमिषको गोपी बडे दुःखसे बिताती थीं आँखोंके पडने उघडनेका नाम निमिष है ॥

बुलाते हैं; उससमय बाँसुरीका शब्द सुनकर नदियोंका प्रवाह बहनेसे रुकजाता है और पवनसे उडकर गई उनके चरणोंकी रजको हमारी तुल्य आकांक्षा करती हैं और हमारी तुल्य उनके भी उत्कृष्ट पुण्य नहीं हैं, इसलिये वह नदियोंको नहीं मिलती, प्रेमसे जिनकी लहर काँपती हैं, जल जिनके निश्चल होजाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ गोप, ग्वाल और देवता जिनके निर्मल यशको गाते हैं, नारायणकी तुल्य सदा स्थिर लक्ष्मीवाले वनके विच रनेवाले कृष्ण जिससमय गोवर्द्धन पर्वतके शिखरपरसे चरतीहुई गौओंको बाँसुरी बजाकर बुलाते हैं, उस समय फूल, फल, जिनमें लगे उनके बोझसे शाखा जिनकी झुकरहीं, प्रेमसे हर्षित चित्त, वनके लता, वृक्ष, अपनेमें विष्णुको प्रगट करते मकरंदकी धारा बहाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुन्दरोंमें अतिसुन्दर अथवा सुन्दर देखने योग्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्याम ललाटमें केशरका तिलक लगाये वनमाला पहरे जिसकी दिव्य गंध और

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः॥वनचरो गिरितटेषु चरंतीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥ वन लतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यंजयंत्य इव पुष्पफलाढ्याः ॥ प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥९॥ दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगंधतुलसीमधुमत्तैः ॥ अलिकुलैरलघु गीतमभीष्टमाद्रियन्यर्हि संधितवेणुः ॥ १० ॥ स रसि सारसहंसविहंगाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य ॥ हरिमुपासत ते यतचित्ताः हंत मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥ स हबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥ हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरंभति विश्वम् ॥ १२ ॥ मह दतिक्रमणशंकितचेता मंदमंदमनुगर्जति मेघः ॥ सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥

तुलसीके मकरंदसे मत्त हो, भौंरे उनके उच्च और अनुकूल गानको मान देते हैं, ऐसे भगवान् जब अधरके ऊपर बाँसुरीको धरके बजाते हैं उस समय सरोवरोंमें सारस, हंस और पक्षी गानसे मोहितचित्त हो उस स्थानमें आँखें मूँदे मौन धारण करे चित्त रोके कृष्णके निकट बैठे रहते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे गोपियो ! मालाओंसे कानोंमें कुण्डलसे शोभायमान, आनन्दको प्राप्त बलदेव भाई सहित कृष्ण जब सब विश्वको आनन्द दे बाँसुरीके शब्दसे पूर्ण करते हैं, उससमय इस महान् कृष्णका अपराध न हो, इस प्रकार मेघ मनमें शंका मान मुरलीके शब्दके पीछे मंद मंद गर्जते हैं, और अपने मित्र श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षाकरते हैं, छत्रसे छाया करते हैं, सो वह मेघ इसका सच्चा मित्र है

क्योंकि यह भी साँवरा और वह भी साँवरा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे यशोदा ! अनेक प्रकारके गोपोंके खेलोंमें निपुण तुम्हारा पुत्र अधरके ऊपर बाँसुरी धरकर अपने आपही सीखगये, क्योंकि षड्ज, निषाद, ऋषभ, गांधारादि स्वरोके आलापनेके भेद वह स्वयंही उठालेता है ॥ १४ ॥ उस समय इन्द्र, शिव, ब्रह्मा यह जिनमें मुख्य हैं, ऐसे बुद्धिमान देवता मंद मध्यतारसे बाँसुरीको सुनकर मोहित होगये और नीचेको मुखकरके कौन स्वरको गाते हैं। यह भी निश्चय नहीं करसके ॥१५॥ ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल इनके चित्र विचित्र चिह्नवाले अपने चरणकमलसे व्रजभूमिको गायोंके खुर पडनेसे जो खेद है उसको शांत किया और मतवाले हाथीके समान चलनेवाले श्रीकृष्ण बाँसुरीको बजाकर जिस समय चलते हैं उस

विविधगोपरसेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ॥ तव सुतस्सति यदाऽधरबिंबे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ १४ ॥
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ॥ कवय आनतकंधरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥
निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजांकुशविचित्रललामैः ॥ व्रजभुवश्शमयन्खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥ व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ॥ कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कवरं वसनं वा॥१७॥ मणिधरः क्वचिदागणयन्गा मालया दयितगंधतुलस्याः ॥ प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन्भुजमगायत तत्र ॥ १८ ॥
क्वणितवेणुरववंचितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ॥ गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥
॥ १९ ॥ कुंददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥ नंदसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥
॥ २० ॥ मंदवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन्मलयजस्पर्शेन ॥ वंदिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥

समय विलासपूर्वक चिन्तवनसे कामदेवके वेगमें भरी हमें वृक्षोंकी तुल्य जड होकर चोटी और वस्त्रोंकीभी सुधि नहीं रहती है॥ १६ ॥ १७ ॥ प्यारी सुगंधिवाली तुलसीकी मालाको पहरे मणियोंकी सुमिरणी हाथमें लेकर गायोंको गिनतेहुए प्यारे मित्रके कंधेपर हाथ रखकर जिस समय गाते हैं उस समय बजतीहुई बाँसुरीका शब्द सुन चित्त हरजानेसे हारिणोंकी स्त्रियें हारिणी गुणोंके समुद्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास आनकर गोपियोंकी समान घरकी आशाओंको त्याग सेवन करनेलगीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे यशोदे ! गोपियोंको आनन्द देनेके लिये कुंदकी मालाओंसे आनंदपूर्वक शृंगार

किये स्नेहियोंको आनंद देनेवाला यह तेरा पुत्र नंदकुमार गोप गौओंको संग लिये जिस समय यमुनामें विहार करता है, उससमय चंदनकेसी सुगंधिवाला शीतलस्पर्श पवन श्रीकृष्णका सन्मान करता है । अनुकूल मन्द मन्द चलता है और गंधर्वादि तथा बंदिजनोंकी नाईं बाजे बजाता गाता फूलोंकी वर्षाकरके सेवा करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ देखो व्रजमें गायोंका हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब इन्द्रने वर्षा कीथी तब गोवर्द्धन उठाकर रक्षा करी और बडे बडे ब्रह्मादिक आनकर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं और संध्यासमय जब गायोंको इकट्ठाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बाँसुरी बजाते और मित्रोंसे अपनी कीर्ति श्रवण करते श्रमभरी शोभासे आनन्द देते गायोंकी रज मालामें लग रही चन्द्रमाके समान प्रकाशमान देवकीके गर्भसे उत्पन्नहुए श्रीकृष्णचन्द्र जो हैं सो हमारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ कुछेक मंदमंद नेत्र जिनके

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वंद्यमानचरणः पथि वृद्धैः ॥ कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनांते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥
उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् ॥ दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥
मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ॥ बदरपांडुवदनो मृदुगंडं मंडयन्कनककुंडललक्ष्म्या ॥ २४ ॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनांते ॥ मुदितवक्र उपयाति दुरंतं मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥
॥२५॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीला नु गायतीः ॥ रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥
॥२६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे वृंदावनक्रीडायां गोपिकागीतं नाम पंचात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५॥

घूम रहे अपने स्नेहियोंको मान देनेवाले वनमाला पहरे पके बेरके समान श्याममुख और कुण्डलोंकी कान्तिसे कोमल कपोलोंको शोभायमान करते मतवाले हाथीके समान जिनका विहार प्रसन्न मुख इसप्रकार यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने संध्यासमय जिसप्रकार चन्द्रमा उदय होता है, उसीप्रकार उदय होकर व्रजकी गायरूप हमारा बहुत दिनोंका ताप दूर करदिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमेंही जिनका जीवन और वृद्धिको प्राप्त हुआ उत्सव ऐसी व्रजवालायें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला गा गाकर दिन व्यतीत करने लगीं ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोपिकागीतं नाम पंचात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दोहा—कंस सुनो छत्तीसमें, मरो अरिष्ट विसूर । रामकृष्णके लेनको, भेजो जन अक्रूर ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इसप्रकार देवता गंधर्वादिक जिनका गान और नृत्य करें, बाजे बजाकर फूलोंकी वर्षा करें ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर परम उत्सव हुआ, इसके उपरान्त उसीसमय व्रजमें बैलका रूप बनाकर अत्यन्त विशाल देह और खुरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण और कम्पायमान करताहुआ, अरिष्टासुर आया ॥ १ ॥ अत्यन्त रंभाता, खुरोंसे धरती खोदता, पूंछ उठाता, खेतोंकी मेंडोंको तोडता ॥ २ ॥ बीच बीचमें

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥ महीं महाककुत्कायः कंपयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥ रंभमाणः खरतरं पदा च विलिखन्महीम् ॥ उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥२॥ किंचित्किंचिच्छकृन्मुंचन्मूत्रयंस्तब्धलोचनः ॥ यस्य निर्ह्रादितेनांग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥ पतंत्यकालतो गर्भाः स्रवंति स्म भयेन वै ॥ निर्विशंति घना यस्य ककुद्यचलशंकया ॥४॥ तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्संत्यज्य गोकुलम् ॥५॥ कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविंदं शरणं ययुः ॥ भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥६॥

गोबर और मूत्र करता अत्यन्त भयानक आँखवाला इसप्रकार अरिष्टासुरके रंभानेका शब्द सुनकर गाय और स्त्रियोंके बिना समयही गर्भ गिरगये, जिसके टांटके ऊपर पर्वत जानकर मेघ आन बैठते हैं ❋ ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे परीक्षित् ! इसप्रकार अत्यन्त पैने सींगवाले अरिष्टासुरको देखकर सब गोप और गोपी अत्यन्त भयभीत होगये, पशु खिरकोंको छोडकर डरके मारे भागगये, हेकृष्ण ! हेकृष्ण !! इसप्रकार पुकारनेलगे और संपूर्ण

❋ शंका—वृषभासुरके शब्दसे गायोंका और स्त्रियोंका गर्भ गिरजाता था, ऐसा भागवतमें लिखाहै, तब वह दुष्ट वृषभासुर तो नित्य शब्द करता रहता होगा तब गायोंकी और स्त्रियोंकी सृष्टिका नाश क्यों नहीं हुआ ? गायोंका और मनुष्योंका वंश नष्ट होना चाहिये था, सो क्यों न हुआ ? ऐसी बात न तो हमने आजतक आंखसे देखी न कानोंसे सुनी ॥

उत्तर—वृषभासुरके प्रभावको जानकर भगवान्ने सुवीर्य और सुरपालक दोनों देवताओंको आज्ञा दी कि, जब दुष्ट शब्द करनेलगे तब तुम दोनों उसका कण्ठ रोक लो, ऐसी भगवान्की आज्ञा पाकर वे वृषभासुरके पास रहने लगे जब वृषभासुर गर्जन शब्द करता, तब वह दोनों देवता उसके कण्ठको रोकलेते थे, इसी प्रकार सब अवस्था व्यतीत होगई, वृषभासुरको शब्द नहीं करने दिया, जिसदिन मरनेका समय आया उसदिन महागम्भीर शब्द करके भगवान्के हाथसे मारागया, इसलिये नित्य शब्द करने नहीं पाया ॥

ब्रजवासी गोविंद श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें आये इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, डरके मारे गोकुलवासियोंको भागता देखकर "भय मतकरो" इसप्रकार कहा अरिष्टासुरको निकट बुलाकर कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे मूर्ख ! हे असाधो ! ग्वाल गायोंके डरानेसे तुझे क्या मिलेगा ? मेरे सन्मुख आ, क्योंकि तुझ सरीखे मतवाले दुष्टोंका बल और मद दूर करनेको मैंने अवतार लियाहै॥७॥इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कह,खम्भ ठोंक और अरिष्टासुरको क्रोध उत्पन्न कराय, मित्रके कंधेपर सर्पाकार भुजा पसारकर खडे होगये ॥ ८ ॥इसप्रकार क्रोधको प्राप्तहुआ अरिष्टासुर पूँछ उठाय खुरोंसे धरती खोदताहुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके सन्मुख आया ॥ ९ ॥ सींगोंका अग्रभाग आगे किये पलक विसारे,लाल लाल

मा भैष्टेति गिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ गोपालैः पशुभिर्मंद त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥ बलदर्पहाऽहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ॥ उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ॥ कटाक्षिप्याऽद्रवत्तूर्णमिंद्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वा शृंगयोस्तं च अष्टादश पदानि सः ॥ प्रत्यपोवाह भगवान्गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥ सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः॥ आपतत्स्विन्नसर्वांगो निश्श्वसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२ ॥ तमापतंतं स निगृह्य शृंगयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ॥ निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमंबरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥ असृग् वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन्क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ॥ जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरंतो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥

आँखें किये,अरिष्टासुर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर देवराज इन्द्रके छोडे वज्रसेभी शीघ्र उनके सन्मुख आनकर उपस्थित हुआ ॥ १० ॥ और आतेही उसके सींग पकड जैसे हाथीको हाथी धक्का देताहै,उसीप्रकार उलटे पाँव करके उसे धकियानेलगे॥ ११॥ जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अरिष्टासुरको ढकेल दिया, तब फिर वह उठकर पसीनेमें चुचियाता अत्यन्त क्रोधित हो बडे बडे श्वास लेताहुआ दौडकर आया ॥ १२ ॥ आतेही भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उसके शींग पकडकर पृथ्वीमें दे मारा और पाँवसे छाती दाब कर जैसे गीले कपडेको निचोड़तेहैं. उसीप्रकार उमेठदे, शींग उखाड़ उसका प्राण संहार किया ॥१३॥ उस समय उसके नेत्र चलायमान होगये, रुधिरकी वमन और गोबर करता पाँवों को पटकता अरिष्टासुर मरगया;

तब देवतालोगोंने फूल वर्षाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति की ॥१४॥ इस प्रकार अरिष्टासुरको मार, मित्रोंसे सन्मानित हो, गोपियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र व्रजमें आये ॥१५॥ अद्भुत कर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मार दिया, तब देवताओंके समान देवर्षि नारदजीने सब वृत्तान्त कंससे जाकर कहा ॥ १६॥ कि, हे राजन् ! यशोदाके कन्या हुई और देवकीके कृष्ण हुआथा, बलदेव रोहिणीके पुत्र हैं तुम्हारे भयके मारे वसुदेवजी अपने मित्र नंदजीके घर रातों रात पहुँचा आयेथे और प्रत्यक्ष देखलो कि, जितने दैत्य आपने भेजे वह सब कृष्ण बलदेवने मारडाले;यह वचन नारदजीका श्रवणकर क्रोधके मारे कंस विकलेन्द्रिय होगया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब वसुदेवजीके मारनेके लिये

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः॥विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥१५॥ अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥१६॥ यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ॥ रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥ १७ ॥ न्यस्तौ स्वमित्रे नंदे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ निशम्य तद् भोजपतिः कोपात्प्रचलितेंद्रियः ॥१८॥ निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबंध सह भार्यया ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥ २० ॥ प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥ २१ ॥ अत्मात्यान्हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥ भो भो निशम्यतामेतद् वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥ २२ ॥

कंसने अत्यन्त पैनी तलवार ग्रहण की, परंतु नारदजीने निवारण करदिया, इसके उपरान्त कृष्ण बलदेवसे अपनी मृत्यु जान ॥ १९ ॥ देवकी सहित वसुदेवके पैरोंमें बेड़ी डालदी, नारदजीके चले जानेपर फिर कंसने केशी नाम राक्षसको बुलाकर ॥ २० ॥ कहा कि, तुमही रामकृष्णको मार आओ और फिर मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल, आदि जो मल्ल थे, उन्हें बुलाया ॥ २१ ॥ इसके उपरांत मंत्रियों और हाथियोंके महावतोंको बुलाकर भोजवंशियोंका राजा कंस बोला कि, हे वीर ! हे चाणूर ! हे मुष्टिक ! मेरी बात सुनो ॥ २२ ॥

नंदजीके गोकुलमें वसुदेवके पुत्र जो कृष्ण, बलराम रहते हैं उनहींके हाथसे निश्चय नारदजीने मेरी मृत्यु बताई है ॥ २३ ॥ इसलिये वह जिस समय आवैं उसीसमय पाँवोंसे दाब मल्ललीलाकरके मारडालना और मल्लोंकी जो रंगभूमि है, उसमें अनेक प्रकारके मञ्चान बनाओ ॥ २४ ॥ क्योंकि पुरवासी और देशवासी संपूर्ण उनपर बैठकर मल्लोंकी कुस्ती देखेंगे, इसके उपरान्त मंगल रूप कुवलयापीड हाथीको रंगभूमिके द्वारपर खडा करदो ॥२५॥ बस ज्योंही कृष्ण बलदेव आवैं त्योंहीं उन्हें हाथीसे मरवाडालना और चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुषयज्ञकी तैयारी करो और संपूर्ण कामनाओंके देनेवाले महादेवजीका पूजन करनेके लिये पवित्र पवित्र पशु लाओ ॥२६॥ हे राजन् ! अपने अर्थके तत्त्वको जाननेवाले राजा

नंदव्रजे किलासाते सुतावानकदुंदुभेः ॥ रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ मंचाः क्रियंतां विविधा मल्लरंगपरिश्रिताः ॥ ॥२४॥ पौरा जानपदाः सर्वे पश्यंतु स्वैरसंयुगम् ॥ महामात्र त्वया भद्र रंगद्वार्युपनीयताम् ॥ २५ ॥ द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ आरभ्यतां धनुर्यागश्च तुर्दश्यां यथाविधि ॥ विशसंतु पशून्मेध्यान्भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतंत्रज्ञ आहूय यदुपुंगवम् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥ भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ॥ नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ॥ यथेंद्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद् विभुः ॥२९॥ गच्छ नंदव्रजं तत्र सुतावानकदुंदुभेः ॥ आसाते ताविहानेन रथेनानय माचिरम् ॥३०॥ निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ॥ तावानय समं गोपैर्नंदाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥

कंसने अपने सेवकोंको इसप्रकार आज्ञादी, इसके उपरान्त यादवश्रेष्ठ अक्रूरको बुला हाथ पकडकर कहा ॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूर ! तुम एक हमारी मित्रताका कार्य करो, क्योंकि इससमय भोज और वृष्णि वंशियोंमें तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अतिशय हितकारी कोई नहीं है ॥ २८ ॥ हे साधो ! हे सौम्य ! जैसे इन्द्रने विष्णु भगवान्का आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त किया था, उसीप्रकार अब मैं तुम्हारा आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त हूंगा इसलिये मैंने तुम्हारा आश्रय लियाहै ॥२९॥ अब तुम व्रजमें जाकर वसुदेवात्मज कृष्ण और बलदेवको शीघ्रही रथमें बैठाल कर ले आओ ॥३०॥ क्योंकि विष्णुका आश्रय लेकर देवता लोगोंने मेरे मारनेके कारण कृष्ण बलदेवको उत्पन्न किया है, इसलिये तुम नन्दादिक संपूर्ण व्रजवासियों

साहित कृष्ण बलदेवको यहां ले आओ और मेरी ओरसे कहना कि, चलकर राजा कंसको भेंट दो ॥ ३१ ॥ बस जहॉं कृष्ण बलदेव आये कि, तहॉंहीं कालके समान कुवलयापीड हाथी उन्हें मारडालेगा और यदि हाथोसे भी छूट जायँगे तो बिजलीके समान मेरे मल्ल मारडालेंगे ॥ ३२ ॥ फिर जहां कृष्ण बलदेव मारे गये, तब उसी समय उनके शोकसे व्याकुल वसुदेवादि बंधु बांधुवोंको भी मार डालूंगा और इसके उपरांत वृष्णि, भोज, दाशार्हवंशमें उत्पन्न हुए यादवोंको भी मारूंगा ॥ ३३ ॥ यद्यपि उग्रसेन मेरे वृद्ध पिताहैं, परन्तु तोभी उनकी राज्यकी चाहना विद्यमान है, इसलिये उनको और उनके भ्राता देवकको भी मारूंगा, अधिक कहनेसे क्या, जितने मेरे वैरी हैं, सबकोही मारूंगा ॥ ३४ ॥ हे अक्रूर ! इसके

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ॥ यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् ॥ तद्बंधून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ॥ तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकंटका ॥ जरासंधो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शंबरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ॥ तैरहं सुरपक्षीयान्हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥ एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ॥ धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥ राजन् मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ॥ सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥

उपरांत यह पृथ्वी कंटकरहित होजायगी, फिर जरासन्ध है, सो मेरा श्वशुर है और द्विविद मेरा प्यारा मित्र है ॥ ३५ ॥ शंबरासुर, नरकासुर, बाणासुर इत्यादिकोंने मुझमें स्नेह बढ़ाही रक्खाहै बस इनको संग लेकर जितने देवताओंकी ओरके राजा हैं, सबको मारकर आनन्दपूर्वक पृथ्वीका राज्य करूंगा ॥ ३६ ॥ यह बात अपने मनमें गुप्त रखकर कृष्ण बलदेवको शीघ्रही लिवालाओ और मेरी ओरसे कहना कि, तुम्हारे मामाने धनुषयज्ञ किया है, उसको चलकर देखआओ, इसमें तुम्हें यादवोंकी पुरी मथुराकी शोभा भी देखनेको मिलजायगी ॥ ३७ ॥ यह सुनकर अक्रूरजी बोले कि, हे राजन् ! तुमने भला विचारा, तुम्हारी मृत्युका दूर करनेवाला यही उपाय है, परन्तु होने और न होनेमें मनुष्य समता करे,

क्योंकि जो प्रारब्धहै सोही फलका दाता है ॥३८॥ यह पुरुष बड़े बड़े मनोरथ करताहै, परंतु जब दैव हत कर देताहै तो दुःखी होताहै; जो मनोरथ पूर्ण होजाय तब तो मनमें हर्ष माने और न हो तो शोक करै, इसमेंसे क्या ध्वनि निकली कि, तुम कहते हो कि, कृष्ण बलदेवको मरवाऊंगा. क्या जाने वेही तुम्हैं मार डालैं पर तो भी तुम्हारी आज्ञा करूंगा ॥३९॥ इसप्रकार राजा कंस अक्रूरजीको आज्ञा दे, मंत्रियोंको बिदाकर अपने महलमें चलागया और अक्रूरजी भी अपने घरको चलेगये * ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां अक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥ दोहा–सैंतिस केशी मरणको, नारद कियो बखान ॥ व्योमासुर मारो यथा, सो सब सुनो सुजान ॥३७॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि, हे कुरुकुलभूषण राजा परीक्षित् ! मनसे भी अधिक वेगवान् कंसका भेजा केशी दैत्य बड़े घोड़ेका रूपधर टापुओंसे पृथ्वीको खोदता फुरहरी लेता अपने कंधोंसे इधर उधर विमानोंको चलायमान करता और हींसनेसे संपूर्ण विश्वको डराता हुआ आया ॥ १ ॥

मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ॥ युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥ एवमादिश्य चाक्रूरं मंत्रिणश्च विसृज्य सः ॥ प्रविवेश गृहं कंसस्तथाऽक्रूरः स्वमालयम् ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे अक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥ श्रीशुक उवाच ॥ केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निजरयन्मनोजवः ॥ सटावधूताऽभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥ (विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाघनोपमः ॥ दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नंदस्य जगाम कंपयन्) ॥

* दृष्टान्त–यदि कोई कहे कि, अक्रूरजी कसके पास रहनेसे महात्मा कैसे रहे उसपर यह दृष्टांत है कि, महात्मा कुसगतसे भी महात्मापन नहीं त्यागते। एक बाबाजी आधीरातको कहीं जा रहे थे, मार्गमें चोर मिले चोर बोले कौन, बाबाजी बोले जो तुम सो हम, चोर बोले कहाँ जाते हो ? बाबाजीने कहा जहांको तुम जाते हो, चोरोंने जाना यह चोर है, सग लेलिया बाबाजीने भी जाना कि, यह चोर हैं चोरोंने किसीके घरमें सेंध दिया और चोरी करनेलगे, बाबाजी भी घुसे एक बरतन जो उघाडा तो इमरती रक्खी थीं, बाबाजी सारे दिनके भूखे थे झट ठाकुरजीका बटुआ निकाल ठाकुरजीके सामने भोग रख शख बजाया, शख बजतेही घरके लोग जाग गये और चोरोंके संग बाबाजी भी पकडे गये, बाबाजी तो वृत्तान्त सुनाकर छूटगये चोरोंको दंड हुआ सो साधु पुरुषोंको कुसगतिका फल नहीं व्यापता, इसीप्रकार अक्रूरजीको कुसगत अर्थात् कंसकी सगतका फल न व्यापा चोरोंकी नाईं मरवाया॥

कठोर हींसनेसे गौओंके समूहको बिडराता, पुच्छ हिलाता, बादरोंको चलायमान करता, युद्ध करनेकी इच्छासे, श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़ताहुआ आया, तब केशी दैत्यको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आगे निकल कर अपने पास बुलाया,तब वह दैत्य इनको देख सिंहकी समान गर्जने लगा॥२॥ केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर मुखसे मानो आकाशको पी जायगा, इस प्रकार मुख फाडता और दौडता हुवा सन्मुख आया जो किसीके जीतनेमें न आवै अत्यन्त वेगवान् ऐसा केशीदैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पिछले पाँवोंकी दुलत्ती मारने लगा ॥३॥ जिनमें इंद्रियोंकी पहुँच नहीं ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस दैत्यकी दुलत्ती बचाय अत्यन्त क्रोधित हो, अपने हाथोंसे उसके दोनो हाथ पकड चारों ओर घुमाकर

तं त्रासयंतं भगवान्स्वगोकुलं तद्धेषितैर्बालविघूर्णितांबुदम् ॥ आत्मानमाजौ मृगयंतमग्रणीरुपाह्वयत्स व्यनदन्मृगें द्रवत् ॥ २ ॥ स तं निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ॥ जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चं डजवो दुरत्ययः ॥ ३ ॥ तद्वंचयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ॥ सावज्ञमुत्सृज्य धनुश्शतां तरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ४ ॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽऽपतद्धरिम् ॥ सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ५ ॥ दंता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयः स्पृशो यथा ॥ बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथाऽऽमयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥

जैसे गरुड सर्पको फेंकदेता है उसी प्रकार अवज्ञा करके सौ १०० धनुषपर फेंककर आप खडे रहे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त जब चेत हुवा तब केशी दैत्य फिर उठकर मुख फाडता क्रोधयुक्त दौडकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हँसकर उस दैत्यके मुखमें अपना बायाँ हाथ जैसे सर्प बिलमें घुसता है उसीप्रकार डालदिया ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही केशीके दांत ऐसे गिरगये जैसे तपेहुए लोहके लगनेसे गिरजातेहैं और औषधी न करनेसे जैसे जलंधर रोग उदरमें बढ़ताहै उसीप्रकार केशी दैत्यके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी

भुजा बढने लगी ❋ ॥६॥ बढतीहुई श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजासे उसका श्वास रुकगया, अंगमें पसीना आगया, नेत्रोंके तारे निकल आये, इसप्रकार केशीदैत्य पाँओंको पटकता, लीद करता, प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ ७ ॥ प्राणमुक्त उस दैत्यके "पककर फटीहुई ककडीके समान" शरीरसे महाभुज श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बाँह निकालली, यद्यपि इन्होंने शत्रुको अनायास मारा, परंतु तो भी भगवान्‌ने कुछ गर्व न किया, तब आश्चर्यमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूल वर्षाकर देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरान्त भक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजीने, क्लेशरहित कर्मवाले श्रीकृष्णचंद्रके पास आनकर एकांतमें कहा कि ॥९॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् !

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ॥ प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेंडं विसृजन्क्षितौ व्यसुः ॥ ७ ॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ॥ अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसून वर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥ ८ ॥ देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरो नृप ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्योगेश जगदीश्वर ॥ वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥ त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ॥ गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ ११ ॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ॥ तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥

हे योगके ईश ! हे जगत्‌के ईश्वर ! हे वासुदेव ! हे जगदीश्वर ! हे विश्वके साक्षी ! हे अखिलावास ! हे सात्त्वतांप्रवर ! हे प्रभो ! ॥ १० ॥ तुम जैसे काष्ठमें ज्योति रहती है, उसीप्रकार सब प्राणियोंमें व्यापक गूढ अर्थात् सबमें रहते हो, परंतु उनको दिखाई नहीं देते, क्योकि बुद्धिके परे हो साक्षी हो और आपका स्वरूप देखनमें नहीं आता, महापुरुष ईश्वर हो, इसकारण जीव आपके स्वरूपको नहीं जानसकते ॥ ११ ॥ तुम स्वतंत्र हो.इसलिये तुम्हैं साधनकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि तुम तो अपनी माया शक्तिसेही गुणोंको सृजते हो, व उन्हींसे सत्यसंकल्प ईश्वर आप

शंका–शत्रुके मारनेके लिये शास्त्रमें और लोकमें अनेक उपाय लिखेहै, परंतु केशीको मारनेके लिये सब उपाय त्यागकर श्रीकृष्णने अपनी भुजा केशीके मुखमें क्यों दे दी ।

उत्तर–केशीको ब्रह्माने यह वरदान दिया था कि, हमारे हाथकी बनाई सृष्टिसे तेरी मृत्यु न होगी, जब श्रीकृष्ण अपनी बाहु तेरे मुखमें प्रविष्ट करेंगे तब तेरी मृत्यु होगी, इसलिये केशीके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजा प्रविष्ट करदी थी ॥

इस जगत्को रचते हो, पालते हो और फिर संहार भी करदेते हो ॥१२॥ सो तुमने राजारूप दैत्य और राक्षसोंका नाश करनेके लिये और धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके लिये अवतार लिया है ॥ १३ ॥ यह बहुतही उत्तम हुआ जो इस घोड़ेरूप दैत्यको लीलापूर्वकही आपने मारडाला, जिसके हींसनेका शब्द सुनतेही भयके मारे देवता क्षणमें स्वर्ग त्यागकर भाग जाते थे ॥ १४ ॥ हे विभो ! परसोंको तुम्हारे हाथोंसे चाणूर, मुष्टिक और मल्लोंको तथा कुवलयापीड हाथी व राजा कंसको मराहुआ देखूंगा ॥ १५ ॥ कंसके मारनेके उपरान्त शंखासुर, कालयवन, मुर दैत्य, नरकासुर उनका वध और स्वर्गसे देवराज इन्द्रको जीतकर जो कल्पवृक्ष लाओगे, उसे देखूंगा ॥ १६ ॥ जिनका पुरुषार्थही मूल्य है ऐसी राजकन्याओंका

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ॥ अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥१३॥ दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः ॥ यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजंत्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥ चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ॥ कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १५ ॥ तस्यानु शंखयवनमुराणां नरकस्य च ॥ पारिजातापहरणमिंद्रस्य च पराजयम् ॥ १६ ॥ उद्वाहं वीरकन्यानां वीरशुल्कादिलक्षणम् ॥ नृगस्य मोक्षणं शापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥ १७ ॥ स्यमंतकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १८ ॥ पौंड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् ॥ दंतवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ १९ ॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् ॥ कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २० ॥ अथ ते कालरूपस्य शपयिष्णोरमुष्य वै ॥ अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥

विवाह और जगत्पति ! द्वारकामें जाकर जो नृग राजाको पापसे छुड़ाओगे, सो देखूंगा ॥ १७ ॥ जाम्बवतीके साथ स्यमंतकमणिका पीछे लाना और सांदीपन गुरुके महाकालपुरसे मरेपुत्र सजीव लाकर दोगे, सो देखूंगा ॥ १८ ॥ फिर मिथ्यावासुदेवका मारना, काशीपुरीको जलाना, दंतवक्रका मारना और राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें शिशुपालका मारना देखूंगा ॥ १९ ॥ और भी द्वारकामें वास करके तुम जो जो लीला करोगे, उन लीलाओंका कवि लोग पृथ्वीपर गान करेंगे ॥२०॥ इसके उपरान्त कालरूप तुम इस पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये अर्जुनके सारथी

होकर सेनाओंका संहार करोगे, सो सब हम देखेंगे ॥ २१ ॥ केवल ज्ञानमूर्त्ति अपनी पूर्णानन्द स्थितिसे पूर्णकाम सत्यसंकल्प और अपनी चैतन्यशक्ति अपने तेजसे नित्य मायासे निवृत्त और छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त हम तुम्हारी शरण प्राप्त होतेहैं ॥ २२ ॥ ईश्वर स्वतंत्र अपनी मायासे सब प्रकारके विशेषोंकी कल्पना करनेवाले, क्रीड़ाके लिये अभी मनुष्यदेह धारण करनेवाले, यदु, वृष्णि, सात्त्वतोंमें अग्रणी मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! भक्तोंमें श्रेष्ठ मननशील भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनसे प्रसन्न हो नारदजी इसप्रकार यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर और आज्ञाले चलेगये ॥ २४ ॥ व्रजवासियोंको सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवांछितम् ॥ स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायया गुणप्रवाहं भगवंतमीमहि ॥ २२ ॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ॥ क्रीडार्थमद्याऽऽत्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्त्वताम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ॥ प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥ भगवानपि गोविंदो हत्वा केशिनमाहवे ॥ पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २५ ॥ एकदा ते पशून्पालाश्चारयंतोऽद्रिसानुषु ॥ चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चौरपालापदेशतः ॥ २६ ॥ तत्रासन्कतिचिच्चौराः पालाश्च कतिचिन्नृप ॥ मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ॥ मेषायितानपोवाह प्रायश्चौरायितो बहून् ॥२८॥ गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतंनीतं महासुरः ॥ शिलया पिदधे द्वारं चतुःपंचावशेषिताः ॥ २९ ॥

युद्धमें केशीको मारकर ग्वालबालोंसहित पशुओंका पालन करनेलगे ॥ २५ ॥ एक समय गायोंके पालनकर्त्ता ग्वालबाल गोवर्द्धनपर्वतके शिखरपर गायोंको चराते चौर पालनका मिसकर छिपा छिपी खेल करने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन्! उस खेलमें कितने ही बालक चोर बने और कितनेही रखवाले बने. कितनेही भेड़ बने, इसप्रकार निर्भय होकर खेलने लगे ॥ २७ ॥ इतनेमें मयदैत्यका पुत्र अत्यन्त मायावी व्योमासुरनामक दैत्य ग्वालका रूप धारणकर, चोर बन जो बालक भेड़ बने थे, उनको चुराकर लेजानेलगा ॥ २८ ॥ वह बड़ा दैत्य उनको लेलेजाकर पहाड़की गुफामें डाल शिलासे गुफाका मुँह बन्द करदेता जब केवल चार पाँच ग्वाल शेष रहगये ॥ २९ ॥

तब साधु पुरुषको शरणदेनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें विचार किया कि, हमने तो खेल किया है, यह सच्चाही चोर आनपहुँचा, इसप्रकार उस दुष्टका छल जान गोपोंको लेजाते व्योमासुरको, जैसे सिंह बलपूर्वक व्याघको पकड़ लेता है, इसी प्रकार पकड़ लिया ॥ ३० ॥ इस बलवान् दैत्यने अपना शरीर पर्वतकी समान धारण किया और अपने छुटानेके लिये बहुतेरा यत्न किया परन्तु पकडनेसे आतुर होगया इसलिये कृतकार्य न हुआ ॥ ३१ ॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णने व्योमासुरकी दोनों भुजा पकड पृथ्वीमें पटककर देवताओंके देखते देखते श्वास घोटकर मारडाला ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त गुफाका ढकना तोड गोपोंको कष्टसे बाहर निकाल देवता और गोप जिनकी

तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ॥ गोपान्नयंतं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥ स निजं रूपमास्थाय गिरींद्रसदृशं बली ॥ इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ॥ पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निस्सार्य कृच्छ्रतः ॥ स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भाग॰महा॰ दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे केशिव्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥ उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥ गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यंबुजेक्षणे ॥ भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिंतयन् ॥ २ ॥

किं मया चरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ॥ किं वाऽथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥

स्तुति करें ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोकुलमें आये ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भा॰महापु॰ दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां केशिव्योमासुरवधोनाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ दोहा–अड़तिसमें अक्रूर मन, जैसो कियो विचार । तैसोही अक्रूरको, कियो कृष्ण सत्कार ॥ ३८ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! बडे बुद्धिमान् अक्रूरजीभी उस रात मधुपुरीमें वासकर प्रात होतेही, रथमें चढ़कर नंदजीके गोकुलको चले ॥ १ ॥ महाभाग अक्रूरजी मार्गमें जाते कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त हो यह विचार करनेलगे ॥२॥ कि, मैंने ऐसा कौन मंगल कर्म, अथवा तप, वा सत्पात्रोंको दान किया था, जिसके प्रभावसे ब्रह्मा, महादेवके ईश्वर, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका आज

दर्शन करूंगा ॥३॥ मैं जानताहूँ कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होना अत्यन्त दुर्लभ है, जैसे विषयोंमें मन, शूद्रकुलमें जन्म, ऐसे पुरुषको वेदका उच्चारण दुर्लभ है * ॥ ४ ॥ अथवा ऐसे नहीं मुझ अधमको भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन होजॉय कारण कि, जिसप्रकार नदीमें बहतेहुए तृणसे कदाचित् कोई तीरपर भी पहुँच जाय तैसेही कर्मवशसे कालसे लेजायेहुए जीवोंमेंसे भी कभी कोई तरजाय ॥ ५ ॥ मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिवानेको चलाहूं, इसलिये अब मेरा मंगल हुआ, जन्म सफल हुआ, क्योंकि योगीजन जिनका ध्यान धरतेहैं, उन्हीं भगवान्

ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥ मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ॥ ह्रियमाणः कालनद्या कचित्तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामंगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ॥ यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयांघ्रिपंकजम् ॥ ६ ॥ कंसो बताद्याऽकृत मेत्यनुग्रहं द्रक्ष्येंघ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ॥ कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन् यन्नखमंडलत्विषा ॥७॥ यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्त्वतैः ॥ गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुंकुमांकितम् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंमें आज नमस्कार करूंगा ॥ ६ ॥ अहो ! बडा आश्चर्य है, दुष्ट कंसने आज मेरे ऊपर बडा अनुग्रह किया, जिसके भेजनेसे मुझको अवतार धरेहुए हरि भगवान्का दर्शन होगा । जिनके नखमंडलकी कांतिसे अंबरीष आदि सब दुरत्यय भवसागरको तरगये ॥७॥ जो चरणारविंद ब्रह्मा महादेवादि देवतालोगोंने प्रकाशमान् लक्ष्मी तथा मुनीश्वरोंने और भक्तोंने पूजे हैं और गाय चरानेके लिये जो चरणारविन्द

* शंका–वेदका कीर्त्तन करना, श्रवण करना और पढना शूद्रके लिये वर्जित है, चाहे विरक्त होवे चाहे गृहस्थी होवे, तो फिर अक्रूरने क्यों कहा कि, विषयमें रमित शूद्र उसको वेदका कीर्त्तन आदि महादुर्लभ है, इस वाक्यसे विदित होता है कि गृहस्थ शूद्रके लिये वेदका कीर्त्तन आदि दुर्लभ है तो भी विरक्त शूद्रको दुर्लभ नहीं है, पुण्य है यह भ्रम है ॥

उत्तर–(शूद्रजन्मा) इस शब्दका शूद्र अर्थ कभी भी मत समझना शूद्रजन्मा इसका अर्थ यह है कि, शूद्र सरीखा जिसका जन्महोय उसको शूद्रजन्मा जानना चाहिये, जन्म तो हुवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके कुलमें परन्तु भ्रष्ट लोगोंकी सदृश काम करे, सज्जनो ! जान लेना इस अर्थको में गुप्त लिखू हूँ एक भ्रष्ट दूसरे विषयसे निन्दनीय लक्षणों करके सयुक्त जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, उसको वेदका कीर्त्तन आदि दुर्लभ है, ऐसा अक्रूरजीने कहा था, शूद्रको नहीं कहा था ॥

ग्वालबालोंके संग वनमें फिरे हैं और जिन चरणारविन्दोंमें गोपियोंके कुचोंकी केशर लगी है, उन्हीं चरणारविन्दोंका आज दर्शन करूंगा ॥ ८॥ सुन्दर कपोल, नासिका और मुसकानयुक्त चितवन, लाल डोरे जिनमें आरहे घूंघुरवारे अलकोंसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका आज निश्चय दर्शन करूंगा, क्योंकि हिरण भी मेरे दाहिनी ओर आये हैं ॥ ९ ॥ पृथ्वीका भार उतारनेकेलिये, अपनी इच्छासे अब मनुष्यरूप धारण करने वाले, शोभाके धाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमानरूपका जब दर्शन करूंगा, तब मेरे नेत्र सफल होंगे ॥ १० ॥ तीन लोकके कार्यरूप जगत् और कारणरूप महदादिक तत्त्वको यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चितवनसेही करते हैं परन्तु तो भी उनको अहंकार नहीं है, अपने तेजसे अज्ञानके भेद भ्रमसे रहित हैं, अपने आधीन मायाकी ओर चितवन करके अपने रचे जीव वृन्दावनके वृक्षोंके नीचे और गोपियोंके

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकंजलोचनम् ॥ मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरंति वै मृगाः ॥ ९॥ अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ॥ लावण्यधाम्नो भवितोपलंभनं मह्यं न न स्यात्फलमंजसा दृशः ॥ १० ॥ य ईक्षिताऽहं रहितोऽप्यसत्सतः स्वतेजसाऽपास्ततमोभिदा भ्रमः ॥ स्वमायया़ऽऽत्मन्रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलाऽमीवहभिः सुमंगलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ॥ प्राणंति शुंभंति पुनंति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥ स चावतीर्णः किल सात्त्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ॥ यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो गायंति देवा यदशेषमंगलम् ॥ १३ ॥

घरोंमें लीलापूर्वक वृद्धिसे दिखाई देतेहैं ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके अहंकार नहीं है जो आत्माराम हैं उन्हें लीला करना कैसे संभव है ? तो कहते हैं कि, भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये लीला करते हैं सबके पापोंको दूर करनेवाले सुन्दर मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गुण, जन्म, कर्मसे मिली वाणी जगत्को जिलानेवाली है और शोभायमान करती है,पवित्र करती है और जिन वाणियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला, गुण,जन्म, कर्म नहीं गाये गये हैं उनको जो कहते हैं और श्रवण करते हैं, सो अपवित्र हैं जैसे मृत्युको प्राप्त हुआ शरीर अपवित्र है ॥ १२ ॥ यादवोंके कुलमें जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार लिया है, वह अपनी मर्यादाओंका पालन करनेवाले, लोकपालोंको सुखदेनेवाले लीलापूर्वक यश

विस्तार करते व्रजमें रहते हैं और सबको मंगलकारी, उनके यशको देवतालोग गाते हैं ॥ १३ ॥ महत् पुरुषोंको सुन्दरगति देनेवाले गुरु त्रिलोकीमें सुन्दर नेत्रवाले पुरुषोंको आनंददेनेवाले, लक्ष्मीके निवासस्थान, सुन्दररूप धारण किये श्रीकृष्णचन्द्रका आज मैं निश्चयही दर्शन करूंगा, क्योंकि आज प्रातःकालके समय मुझे श्रेष्ठ शकुन हुए हैं ॥ १४ ॥ दर्शन करने उपरान्त उसीसमय रथमेंसे उतर इन प्रधानपुरुष कृष्ण बलरामके चरणकी जिनका योगीपुरुष भी स्वरूपकी प्राप्तिके लिये केवल बुद्धिसेही ध्यान करते हैं उनको मैं साक्षात् प्रणाम करूंगा और फिर इन सहित व्रजवासी सखाओंको भी प्रणाम करूंगा ॥ १५ ॥ चरणोंमें पड़ेहुए मस्तकपर समर्थवान् भगवान् अपना हाथ धरेंगे, जो हाथ कालरूप सर्पके वेगसे

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकांतं दृशिमन्महोत्सवम् ॥ रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममाऽसन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥ अथावरूढः सपदीशयो रथात्प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ॥ धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन्वनौकसः ॥ १५ ॥ अप्यंघ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपंकजम् ॥ दत्ताभयं कालभुजंगरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥ समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्रयेंद्रताम् ॥ यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगंधिकगंध्यपानुदत् ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ॥ योंतर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥

डरेहुए व शरण चाहनेवाले मनुष्योंको अभयका देनेवाला है ॥ १६ ॥ जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके इन्द्रने इन्द्रता पाई, और ऐसेही राजा बलिने संकल्प करके त्रिलोकीकी इन्द्रता प्राप्त करी और रासकीड़ामें व्रजकी स्त्री गोपियोंके श्रमके पसीनेको श्रीकृष्णने जिस हाथसे पोंछा था और जिन हाथोंमें कमलके समान सुगंधि आतीहै, वही हाथ मेरे मस्तकपर धरेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि मैं राजा कंसका भेजाहुआ दूत हूं, परन्तु तोभी श्रीकृष्णचन्द्र मुझपर यह शत्रुका दूत है, ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे, क्योंकि वह अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र मेरे चित्तकी बाहर भीतरकी चेष्टाको नित्य ज्ञानसे देखते हैं, मैं ऊपरसे तो कंसका भेजाहुआ जाताहूं, परन्तु भीतरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकाही ध्यान लगारहा है इसबातको नित्य

ज्ञानसे भलीभाँति श्रीकृष्णचन्द्र जानतेहैं * ॥ १८ ॥ चरणारविंदमें गिरा, हाथ जोडे मुझे मुसकाकर करुणाभरी दृष्टिसे जिस समय भगवान्
श्रीकृष्णचंद्र देखेंगे, उसी समय पाप और भय दूर होजानेसे आशंकाओंसे रहित हो मैं परमानन्दको प्राप्त हूंगा ॥१९॥ जिनके अत्यन्त हितकारी
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और कोई देवता नहीं, वह भगवान् जिस समय अपनी जाति और कुटुम्बी जान मुझे भुजा पसार छातीसे
लगावेंगे उसी समय यह देह परमपवित्र होजायगा और कर्मरूप बन्धन भी इस देहके छूट जायँगे ॥ २० ॥ जब मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिल
मस्तक झुका हाथ जोड खडा हूँगा, तब हे काका अक्रूर ! इसप्रकार बडे यशस्वी श्रीकृष्ण मुझसे कहेंगे; उस समय हमारा जन्म सफल होगा
अप्यंघ्रिमूलेऽवहितं कृतांजलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ॥ सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीत
विशंक ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥ सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ॥ आत्मा हि तीर्थीक्रियते
तदैव मे बंधश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥ लब्ध्वांगसंगं प्रणतं कृतांजलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ॥ तदा
वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो
द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ तथाऽपि भक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥२२॥ किं चाऽग्रजो माऽवनतं
यदूत्तमः स्मयन्परिष्वज्य गृहीतमंजलौ ॥ गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबंधुषु ॥ २३ ॥
और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिस पुरुषका आदर सन्मान नहीं करते, उस पुरुषको धिक्कार है ॥ २१ ॥ यद्यपि उनको न तो कोई प्रिय है, न
सुहृद है, न कुप्यारा है और न उदासीन है परन्तु तोभी भगवान् भक्तको भजतेहैं, जैसे कल्पवृक्षकी जो सेवा करै, वह उसको फल देताहै ॥२२॥
जब मैं नमस्कारकर, हाथ जोडूंगा, तब मेरी भुजा पकड, हास्यपूर्वक छातीसे लगा, गृहमें लेजाय भलीभाँति आदर सत्कारकर फिर बडे भ्राता

* दृष्टांत–कृष्ण अन्तर्यामी हैं, इसकारण कपट प्रीति सबकी जानते हैं। एक बडे भारी ठगथे सो एकदिन बडी ऐंठमा पाग बाँधकर चले, लोग बोले कहाँ चले ? तो उत्तर दिया कि, सबको तो हमने ठगा परन्तु जो परमेश्वरको ठगकर लावैं, तो हमारा नाम ठगहै, ऐसा कह चले परन्तु थोडीही दूरजाय लौट आये. लोग बोले क्यों भाई ! लौट कैसे आये? यह बोले कि, भाई क्या कहैं ठगते तो सही परन्तु वह तो अन्तर्यामी हैं हमारे मनका कपट जान जांयगे उनपर हमारा छापा नहीं लग सकता ॥

बलरामजी अपने बन्धु यादवोंमें कंसके कर्त्तव्यको पूछेंगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसप्रकार श्वफल्कके पुत्र अक्रूर मार्गमें श्रीकृष्णकी चिन्ताकरते रथमें बैठेहुए गोकुलमें पहुँचे; कि इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ समस्तलोकोंके पालन करनेवाले ब्रह्मादिक देवता अपने मुकुटोंके ऊपर जिनके चरणोंकी रेणुकाको धारण करतेहैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके चिह्न महात्मा अक्रूरजीने व्रजमें देखे, जो पृथ्वीके गहनेरूप थे और जिनमें कमल, यव, अंकुश आदि चिह्न प्रतीत होतेथे ॥ २५ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण चिह्नके दर्शनके आनंदसे संभ्रम और प्रेमसे रोमांच हो आये, नेत्रोंमें आंसू भरिआये, सो अक्रूरजी रथसे उतर अहो ! यह मेरे प्रभुके चरणोंकी

श्रीशुक उवाच ॥ इति संचिंतयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ॥ रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥ ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः ॥ रथादवस्कंद्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंघ्रिरजांस्यहो इति॥ २६ ॥ देहंभृतामियानर्थो हित्वा दंभं भियं शुचम् ॥ संदेशाद्यो हरेर्लिंगदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥ ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ॥ पीतनीलांबरधरौ शरदंबुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥ किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ॥ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥ ध्वजवज्रांकुशांभोजैश्चिह्नितैरंघ्रिभिर्व्रजम् ॥ शोभयंतौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥

रज है, इसप्रकार कहते कहते चरणोंके चिह्नोंमें लोटने लगे ॥ २६ ॥ देहधारियोंका इतनाही पुरुषार्थ है, जो कंसका सन्देशा ले, दंभ,भय, शोच त्याग श्रीकृष्णचंद्रके चिह्न दर्शन व श्रवणादिकसे अक्रूरको प्रेम उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ इसके उपरांत व्रजकी गोशालामें गाय दुहनको [illegible] श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजीको महात्मा अक्रूरजीने देखा, पीताम्बर और नीलाम्बर धारणकर रहेहैं और जिनके शरदृतुके कमलसे नेत्र हैं ॥ २८ ॥ किशोर अवस्था, श्याम और गौर स्वरूप, लक्ष्मीके शोभाके स्थान, लम्बी भुजा,सुंदर मुख,स्वरूपवानोमें अत्यन्त शोभायमान, हाथीके बालकके समान पराक्रमवाले ॥२९॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुशके चिह्नवाले, चरणोंसे व्रजभूमिको शोभायमान करते महात्मा अनुकंपाजन्य जो

मंदमुसकान व चितवन॥३०॥उदार रुचिर जिनकी क्रीडा है,मोतियोंके हार और वनमाला पहरे,पवित्र चंदन और केशर लगाये,स्नान किये निर्मलवस्त्र पहरे ॥३१॥ प्रकृति पुरुषरूप आदिकारण जगत्के पालन करनेवाले पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलराम केशवमूर्त्ति दो रूप धरके अवतार लिये हैं ॥३२॥ हे राजन्! अपने तेजसे दिशाओंका अंधकार दूर करतेहुए, जैसे सुवर्णसे नीलमणिका पर्वत अथवा रूपेका पर्वत जगमगाता है ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीके रूपको निहार ॥३३॥ स्नेहमें विह्वल हो महात्मा अक्रूरजीने शीघ्र रथमेंसे उतर रामकृष्णके चरणोंमें दण्डवत करी ॥३४॥ हे महाराज परीक्षित्! श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनके आनन्दसे आँखोमें आंसू आगये, उत्कण्ठासे अंगमें रोमांच होगये और प्रेम

उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ॥ पुण्यगंधानुलिप्तांगौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥ प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ॥ अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशो वितिमिरा राजन्कुर्वाणौ प्रभया स्वया ॥ यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥ रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ॥ पपात चरणोपांते दंडवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ पुलकाचितांग औत्कंठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगांकितपाणिना ॥ परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ संकर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ॥ प्रक्षाल्य विधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥ निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रांतमादृतः ॥ अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥

के मारे अपना नाम बतानेको भी समर्थ न हुये ॥ ३५ ॥ हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरका अभिप्राय जान, चक्रकी रेखावाले अपने हाथसे पकड प्रसन्न हो छातीसे लगाकर मिले। यहाँ मिलनेका तात्पर्य यह है कि, श्रीकृष्णने कंसके मारनेकी सामर्थ्य जताई ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत उदारमन बलरामजी दंडवत् करतेहुए अक्रूरजीको छातीसे लगाय अपने हाथोंसे उनके दोनों हाथ पकड़ श्रीकृष्णसहित घरमें लिवाकर लेगये ॥ ३७ ॥ और "भले आये" इसप्रकार कुशल पूँछ अक्रूरजीके लिये आसन बिछाय, विधिपूर्वक चरण पखार मधुपर्क (दधि, घृत, मधु,) दे पूजा करनेलगे ॥ ३८ ॥ विधिपूर्वक पूजाकर गौदान अक्रूरजीको दी, फिर मार्गमें परिश्रम पाये अक्रूरजीके चरणारविन्द आदरसहित

दाबके गुणभरी पवित्र अन्नकी सामग्री भोजनार्थ अति श्रद्धासे अक्रूरजीके आगे निवेदन करी ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त जब अक्रूरजी भोजन करचुके तब परमधर्मके जाननेवाले बलदेवजी बीरी, चन्दन, केशर, अतर और फूलोंके हार इत्यादिकोंसे उन्हें प्रसन्न करनेलगे ॥ ४० ॥ सन्मान करनेके पीछे अक्रूरजीसे नंदरायजी कहने लगे कि, निर्दयी कंसके जीते हे अक्रूर ! तुम्हारा जीवन किसप्रकार होता है कसाईके घर रहती भेडके समान तुम कैसे रहते हो ? ॥ ४१ ॥ प्राणोंका पोषण करनेवाले दुष्ट कंसने विलाप करती जब अपनी बहिनकेही पुत्र मारडाले उस दुष्टकी प्रजा तुम हो सो तुम्हारी क्या कुशल पूछें ॥ ४२ इसप्रकार जब मधुर वचनसे पूंछ नंदरायजीने सत्कार किया तब महात्मा अक्रूरजीने मार्गके

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गंधमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥ ४० ॥ पप्रच्छ सत्कृतं नंदः कथं स्थ निरनुग्रहे ॥ कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥ योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान्क्रोशंत्या असुतृप् खलः ॥ किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थं सूनृतया वाचा नंदेन सुसभाजितः ॥ अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दशम० पू० अक्रूरागमनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यंके रामकृष्णोरुमानितः ॥ लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ॥ तथाऽपि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किंचन ॥ २ ॥ सायंतनाशनं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥

श्रमको त्यागदिया ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां अक्रूरागमनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥
दोहा—उनतालिसमें नन्दसुत, मथुरा कियो पयान । यमुनामें अक्रूरने, लखो भवन भगवान ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! शय्याके ऊपर आनन्दपूर्वक विराजमान श्रीकृष्ण बलदेवसे बडा सत्कार पाय, अक्रूरजीने मार्गमें जो जो मनोरथ किये थे सो सो सब पूर्ण हुए ॥१॥ क्योंकि छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त परिपूर्ण शोभाके स्थान भगवान् श्रीकृष्णही जब प्रसन्न होगये तब किस वस्तुकी प्राप्ति न हुई ? हे राजा परीक्षित ! कृष्णपरायण भक्त किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते ॥ २ ॥ इसके उपरान्त देवकीनंदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संध्यासमयका भोजन कर अपने यादवोंसे

जैसा कंसका वर्त्ताव है, सो अक्रूरजीसे पूछने लगे ? और जो कुछ करनेका विचार है, उसको भी पूँछा ॥३॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे सौम्य ! भला तुम्हारा आगमन कुशल क्षेमसे तो हुआ है? तुम्हारा कल्याण ! जातिके बंधु बांधव तो सुखसे और आरोग्य हैं ? किसीको कुछ दुःखतो नहीं है ? ॥४॥ हे अक्रूरजी ! मामा कंस तो हमारे कुलका रोग बढ़ा है, फिर अपने बंधु बांधव और प्रजाकी क्या कुशल पूछें ? ॥ ५ ॥ देखो हमारे निरपराध माता पिताको अत्यन्त कष्ट हुआ, हमारे लिये उनके पुत्र मारेगये और हमारेही लिये वह बन्दीहुये ॥६॥ हे साधु ! बहुत दिनोंसे तुम्हारे दर्शनोंकी अभि

श्रीभगवानुवाच ॥ तात सौम्यागतः कच्चित्स्वागतं भद्रमस्तु वः ॥ अपि स्वज्ञातिबंधूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥ किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ॥ कंसे मातुलनाम्न्यंग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥५॥ अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रो र्वृजिनमार्ययोः ॥ यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बंधनं तयोः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याऽद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य कांक्षितम् ॥ संजातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ॥ वैरानुबंधं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ॥ यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुंदुभेः ॥ ॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ॥ प्रहस्य नंदं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥

लाषा लगरही थी सो आपने आनकर हमको दर्शन दिया, यह बड़ाही अनुग्रह किया, अब यह बताइये कि, आपका आना कैसे हुआ ? ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके इसप्रकार पूँछनेपर महात्मा अक्रूरजीने सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया कि, कंस यादवोंसे शत्रुभाव रखता है और वसुदेवजीके मारनेका भी उद्योग उसने कियाथा ॥ ८ ॥ और जो संदेशा लायेथे, व जिसलिये स्वयं उनको दूत बनाकर भेजा था और देवर्षि नारदजीने जो कहा था कि, श्रीकृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं ! सो सब कह सुनाया ❋ ॥९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बड़े २ शत्रुओंको

❋ शंका—व्रजमें नन्दादिकोंने अक्रूरसे बूझा कि, आप किस कामके लिये व्रजमें आये हो ? तब अक्रूरने कृष्णचन्द्रसे कहा कि आपको और बलदेवजीको मारनेके लिये यज्ञ देखनेके बहानेसे कंसने बुलाया है, ऐसा कहा तब स्वामीका विश्वासघातकपनका पाप अक्रूरको लगेगा क्योंकि वह बात गुप्त करके कंसने अक्रूरका विश्वास मानके कही थी कि, अक्रूर किसीसे नहीं कहेगा और जो कंस सरीखे कपट करके कहें कि, महाराज आपका मामा है और कंस राजा भी है, सो यज्ञका कौतुक देखनेको बुलाया है, तब भगवान्की ओर कपटका पाप भोगैंगे ॥

पराजय करनेवाले बलरामजीने महात्मा अक्रूरजीका वचन श्रवणकर कुछेक मुसकातेहुए नन्दजीसे राजा कंसका संदेशा कहा ॥१०॥ यह सुनतेही उन्होंने गोपलोगोंको आज्ञा दी कि, दही दूध संग लेके हमारे साथ आनेकेवास्ते गाड़ियें जोडो ॥ ११ ॥ कल मथुराको चलकर राजा कंसको गोरस देंगे और बड़ा भारी उत्सव देखेंगे, देखो ! यह सब देशवासी जाते हैं, इस प्रकार नंदजीने गोकुलमें ढंढोरा पिटवा दिया ॥१२॥ इसके उप

गोपान्समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ॥ उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥ यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यांति जानपदाः किल ॥ एवमाघोषयत्क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ॥ स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ॥ नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥

रान्त संपूर्ण गोपियें जिस समय अपने जीवन श्रीकृष्ण बलरामको मथुराको लेजानेको व्रजमें अक्रूर आयेहैं, यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखी हुईं॥१३॥ बहुत गोपियोंकी तो यह दशा हुई कि, उसके सुननेसे जो हृदयमें ताप हुआ उससे गोपियोंके मुख कुम्हलागये और वस्त्र, चूरी, कंकण, केशोंकी ग्रंथि यह सब शिथिल होगईं ॥१४॥ और बहुत स्त्रियोंकी यह दुर्दशा हुई कि, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानसे सब इन्द्रियोंकी वृत्तियें जाती रहीं, व मुक्त

उत्तर–जब श्रीकृष्णने अक्रूरसे बूझा कि, आपका आना व्रजमें कैसे हुआ ? तब अक्रूरने अपने मनमें बडा दुःख माना कैसा दुःख माना ? जैसे एक लकडी दोनों ओरसे जलती हो उस लकडीको कोई पुरुष हाथसे नहीं छूसक्ता, क्योंकि जो उस लकडीको पकडता है तो दोनों हाथ जलते हैं और हाथोंके बचानेका उपाय करता है तो लकडी हाथसे जाती है, ऐसेही अक्रूर होगये, कंसका पक्ष करते हैं तो भगवान्का द्रोही होना पडता है और भगवान्का पक्ष करते हैं तो कंसका द्रोही होना पडता है, तब प्राण त्यागनेका विचार किया फिर श्रीकृष्णभगवान्का ध्यान किया, उस ध्यानमें श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरको आज्ञा दी कि, तुम क्यों इतना कष्ट सहते हो, कंसका कपट हो सो आप प्रगट मत करो, हमारी ओरसे कपटमें तुमको कुछ दोष नहीं होगा, फिर भगवान्ने कहा हमारी ओरसे कपटकी त्रास त्याग दो, क्योंकि हम सब संसारका कर्म जानते हैं, मनुष्योंकी नाईं हम नहीं हैं, इसप्रकार भगवान्की आज्ञा पाकर अक्रूरने कंसके कपटरूप वचन कृष्णसे कहे. भगवान् तो सब जानतेही हैं, फिर क्यों गुप्त रखकर दोषका भागी बनूं, इसलिये कह दिया कि, तुम दोनों जनोंको यज्ञ देखनेके लिये कंसने बुलाया है ॥

होनेपर जैसे देहका भान जाता रहता वैसेही देहका भान भूलगईं ॥ १५ ॥ बहुतसी गोपियें स्नेहसे मुसकाय हृदयको आनन्ददायक चित्रविचित्र बोलनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके वचनोंका स्मरण कर मोहित होगईं ॥ १६ ॥ बहुतसी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मनोहर चलन स्नेह भरी चितवन शोककी दूर करनेवाली बोलन इत्यादि चेष्टा और बड़े बड़े चरित्रोंको स्मरण करनेलगीं ॥ १७ ॥ यह अवश्यही जायँगे इस भयसे विरहमें कातर आँसू बहाती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हजारों गोपियोंके झुण्डके झुण्ड मिलकर संपूर्ण परस्पर यह कहने लगीं ॥१८॥ गोपियें कहने लगीं कि, हे विधाता ! तुझे कुछ भी दया नहीं है, क्योंकि जीवोंका परस्पर मिलाप व प्रेम बँधाय उनके पूरे सुख न भोगनेपर

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ॥ हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥१६॥ गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्ध हासावलोकनम् ॥ शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७ ॥ चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य लीला विरहकातराः ॥ समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥१८॥ गोप्य ऊचुः ॥ अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणये न देहिनः ॥ तांश्चाकृतार्थान्वियुनंक्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुन्दवक्रं सुकपोलमुन्नसम् ॥ शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥२०॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ॥ येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥

भी वृथा वियोग करदेताहै इसीसे तेरी क्रीड़ा बालकोंके समान है अर्थात् तू मूर्ख है ॥ १९ ॥ जो तू श्याम अलकोंसे आच्छादित सुन्दर कपोल ऊंची नासिकावाला शोच मिटानेवाले मंदहास्यके लेशमात्रसे भी शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका एकवार दर्शन कराय पीछे छिपा लेता है हमने तेरा क्या अपराध किया है ? ॥२०॥ दान करके लेता है इसलिये तू बड़ा कठोर है (अक्रूर लिये जाता है मैं तो नहीं लिये जाता यदि विधाता यह कहै तो इसके उत्तरमें गोपियें कहती हैं कि,) अरे विधाता ! निर्दयी अक्रूर नाम धरकर तूही आया है सो अपने दियेहुए कृष्णरूप नेत्र अज्ञानीकी समान हरके लिये जाता है जिस तेरी दी हुई आँखसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके एक एक अंगमें तेरी संपूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता

हम देखती हैं ॥ २१ ॥ अरे ! रे !! क्षणभंग स्नेहवाले नंदके पुत्रकी मुसकानसे मोहित हुईं घरमें बंधु और पुत्र पतियोंको छोड़ हम साक्षात् उनकी दासी हुईं परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है, वह हमारी ओरको दृष्टि उठाकर देखता भी नहीं। जान पड़ता है कि,उसे नित्य प्रति नये नये प्यारे लगते हैं ॥ २२ ॥ मथुराकी स्त्रियोंको इस रातका सबेरा अच्छा होगा, क्योंकि उनके मनोरथ निश्चय सच्चे होंगे। देखो जो स्त्रियें मथुरामें पधारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मुख,कि, जो कटाक्षसे वृद्धिंगत और मुसकानरूप जिसमें रस ऐसे सुन्दर रसका पान करेंगी ॥ २३ ॥ हे बालाओ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि माता पिता आदिके पराधीन हैं और धीर हैं परन्तु तो भी उन स्त्रियोंके मदके समान मीठे भाषणोंसे इनका चित्त

न नन्दसूनुः क्षणभंगसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ॥ विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥२२॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ॥ याः सम्प्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपांगोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥ तासां मुकुन्दो मधुमंजुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि ॥ कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥२४॥ अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजांधकवृष्णिसात्वताम् ॥ महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यंति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥ मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ॥ योसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥ अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ॥ गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥

हरण होजायगा, व उन स्त्रियोंके लजीले मंदहास्य व विलासोंसे भ्रम जायँगे इसलिये जो अपने गाँवकी रहनेवाली हैं उनके निकट पीछे किस प्रकार आवैंगे ॥ २४ ॥ आज तो मथुरामें दाशार्हवंशी, भोजवंशी, यादवोंकी आँखोंको निश्चय आनन्द होगा, क्योंकि लक्ष्मीके संग रमण करनेवाले संपूर्ण गुणयुक्त देवकीनंदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जो पुरुष मार्गमें देखेंगे उनके नेत्रोंको निश्चयही बड़ा आनन्द होगा ॥ २५ ॥ ऐसे क्रूर कर्म करनेवाले निर्दयीका अक्रूरनाम किसने रक्खा है, जो यह निर्दयी बहुत दुःखित हमारे विना पूँछे प्राणोंसे प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हमारी आँखोंसे दूर लियेजाता है ॥ २६ ॥ देखो ! यह कठोरबुद्धि कृष्ण रथमें जाबैठे तिसपर यह अभागे ग्वाल गाड़ीको

शीघ्रही हाँकनेकी चेष्टा करते हैं ऐसी अनीतिको होताहुआ देखकर कोई बडा बूढा भी मने नहीं करता इससमय किसी गोपके विघ्न होजाता तो बुरा शकुन विचारकर श्रीकृष्ण नहीं जाते; हाय ! हाय ! ! आज दैवही हमारे प्रतिकूल चेष्टा करताहै ॥ २७ ॥ फिर गोपियें बोलीं कि, सखी ! हम-सब चलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मने करेंगी और उनके रथके आगे जाय, आडी पडकर कहेंगी कि, यदि आप जातेही हैं तो हमारी छातीपर रथका पहिया उतारकर चले जाओ और हमारे कुलके बड़े बूढे भी क्या करेंगे, क्योंकि जो आधेक्षणको भी नहीं छूट सक्ते, उन्हीं मुकुन्दका वियोगकर दैवने हमारे चित्त दीन कर दिये हैं ॥२८॥ हे गोपियो ! और देखो सखी ! उन्हीं कृष्णकी स्नेहभरी मनोहर मुसकान मनोहर लीलापूर्वक चितवन आलिंगनसे रासकी सभामें अत्यन्त बड़ी रात्रियें एक क्षणके समान बीत गईं थीं, अब विना श्रीकृष्णचन्द्र

निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबान्धवाः ॥ मुकुंदसंगान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥ यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमंत्रलीलावलोकपरिरंभणरासगोष्ठ्याम् ॥ नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरंतम् ॥२९॥ योऽह्नः क्षये व्रजमनंतसखः परीतो गोपैर्विशन्खुररजश्छुरितालकस्रक् ॥ वेणुं क्वणन्स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ॥ विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेवं रुदंतीनामुदिते सवितर्यथ ॥ अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥

आनंदकंदके विरहरूपी दुःखके समुद्रको कैसे तरेंगी ? ॥ २९ ॥ संध्यासमय बलदेवजीके संग ग्वालबालोंसे वेष्टित हो बाँसुरी बजाते जिनके बाल और माला गायोंके खुरोंकी धूरिसे परिपूर्ण रहते थे, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र व्रजमें आनेके समय कुछेक हँसते हुए कटाक्ष सहित दृष्टिसे हमारे चित्तको हरलेतेथे उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना अब हम किसप्रकार जीवन धारण करेंगी ? ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित! इसप्रकार अत्यन्त विरहमें व्याकुल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये, गोपियें लज्जा त्याग हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! इसभाँति पुकार पुकारकर रोनेलगीं ॥३१॥ हे राजन् ! इसप्रकार गोपियें विलाप कर रहीं थीं कि, इतनेहीमें श्रीसूर्यनारायण उदित होगये, इसके उपरान्त महात्मा

अक्रूरजीने संध्योपासनकर रथ हाँका तब गोपियें हाहाकारकर रोतीहुई कहनेलगीं ॥ ३२ ॥ केशवमूर्तिके वियोगमें यशोदा व गोपियें इसप्रकार व्याकुल हो हाहाकर करनेलगीं, इसके उपरान्त नंदादिक संपूर्ण व्रजवासी ग्वालबाल दूध, दही, माखनसे भरे कलशोंको ले गाडियोंमें बैठकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके संग चले ॥३३॥ और श्रीकृष्णमें आसक्त मन गोपियें श्रीकृष्णके पीछे जाय कदाचित् श्रीकृष्ण लौट आवें, इस प्रकार पैंड़ा देखनेलगीं ॥ ३४ ॥ यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चलनेके समय उन गोपियोंको व्याकुल देख "शीघ्रही आऊंगा" ऐसे प्रेम सहित वचन दूतसे कहलाकर शान्त किया ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित ! जहाँतक रथकी ध्वजा देखी, तहाँतक तो रथकी धूल उडती देखी और तब तक गोपियें

गोपास्तमन्वसज्जंत नंदाद्याः शकटैस्ततः ॥ आदायोपायनं भूरि कुंभान्गोरससंभृतान् ॥ ३३ ॥ गोप्यश्च दयितं कृष्ण मनुव्रज्यानुरंजिताः ॥ प्रत्यादेशं भगवता कांक्षंत्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ॥ सांत्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपतस्थिरे ॥३६॥ ता निराशा निववृतुर्गोविंदविनिवर्तने ॥ विशोका अहनी निन्युर्गायंत्यः प्रियचेष्टितम् ॥३७॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥ रथेन वायुवेगेन कालिंदीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ॥ वृक्षखंडमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामंत्र्य निवेश्य च रथोपरि ॥ कालिंद्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥

भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये चित्रकी नाईं लिखीसी खड़ीरहीं ॥ ३६ ॥ परन्तु जब जाना कि, अब मुरलीमनोहर नहीं आवेंगे, तब वह गोपियें अत्यन्त व्याकुल हो लौटीं और शोक प्रकाशकर काल बिताने लगीं ॥ ३७ ॥ पवनकी तुल्य वेगवाले रथमें बैठ बलदेव अक्रूर सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, संपूर्ण पापोंके नाश करनेवाली यमुनाके निकट पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहाँ पहुँच हाथ पांव धो आचमन कर, निर्मल मीठा जल पी, फिर बगीचेमें आनकर बलरामसहित रथमें बैठगये ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महात्मा अक्रूरभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजीको

रथमें बैठाल और उनसे आज्ञा मॉग कालिंदीमें विधिपूर्वक स्नान करनेलगे ॥ ४० ॥ और जलमें गोता मारकर गायत्रीका जप करते २ महात्मा अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको देखा ॥ ४१ ॥ फिर अक्रूरजीको भ्रम हुआ कि, रामकृष्णको तो मैं रथमें बैठालकर आया था, सो यहाँ कैसे आये ? कदाचित् रथमेंसे उतर तो न आये हों, इसलिये निकलकर देखूं, इस प्रकार विचार करने लगे ॥ ४२॥ फिर अक्रूरजीने निकलकर देखा कि, पह लेके समान कृष्ण बलदेव रथमें विराजमान हैं, उससमय अक्रूरजी महाविस्मयको प्राप्त होकर कहने लगे कि, जलके भीतर जो मुझे दर्शन हुवा सो मिथ्या है, इस प्रकार बुद्धिसे निश्चयकर फिर गोता मारा, तो सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता, नर्त्तक, स्तुति कर रहेहैं और भगवान् शेषजी विराजमान

निमज्ज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम् ॥ तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥ तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुंदुभेः ॥ तर्हि स्वित्स्यंदने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥४२ ॥ तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ॥ न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥४३॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहीश्वरम् ॥ सिद्धचारणगंधर्वैरसुरैर्नतकंधरैः ॥४४॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नीलांबरं बिसश्वेतं शृंगैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्संगे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ पुरुषं चतुर्भुजं शांतं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ॥ सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥ प्रलंबपीवरभुजं तुंगांसोरःस्थलश्रियम् ॥ कंबुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥४८॥ बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ॥ चारुजानुयुगं चारुजंघायुगलसंयुतम् ॥४९॥

हैं ऐसा देखा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जिनके सहस्रशिर मुकुटोंसहित सहस्रही फण, नीले वस्त्र धारण किये कमलनाली तुल्य श्वेतवर्ण कैलासके समान प्रकाशमान शेषजीको देखा ॥ ४५ ॥ शेषजीके ऊपर कुण्डलसे विराजमान श्याम और पीतवस्त्रोंको धारण किये चार भुजा शांतस्वरूप पुरुष कमलके पत्तोंके समान अरुण नेत्र ॥ ४६॥ सुन्दर प्रसन्न मुख सुन्दर हास्यभरी चितवन, सुन्दर भ्रुकुटी और शोभायमान नासिका, सुंदर कर्ण सुन्दर कपोल और अरुण ओष्ठ ॥ ४७ ॥ लम्बी मोटी भुजा, विशाल हृदयमें लक्ष्मी विराजमान, गोल शंखसी ग्रीवा, तीन बलि जिसमें पडरहीं शोभायमान जिनकी नाभि पीपलके पत्तेके समान चिकना उदर ॥ ४८ ॥ पतली कमर और बृहत् श्रोणीसे शोभायमान दोनों जंघा ॥ ४९ ॥

लम्बायमान दोनों गुलफ, लाल नखोंके समूहकी कांतिसे वेष्टित, कोमल अंगुली; सुन्दर चरणकमल ॥ ५० ॥ बहुत मोलके मणियोंसे जटित किरीट, कडे, बाजूबन्द और कमर कर्धनी, यज्ञोपवीत, मोतियोंके हार, चरणोंमें नूपुर तथा कानोंमें कुण्डल जो पहर रहे हैं, उनसे अत्यन्तही प्रकाशमान हैं ॥ ५१ ॥ कमल और शंख, चक्र, गदाको धारण किये भृगुलताका चिह्न जिनकी छातीमें प्रकाशमान, कौस्तुभमणिकी जिनके धुकधुकी ॥ ५२ ॥ सुनंद नंद जिनमें मुखिया ऐसे पार्षद, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और ब्रह्मा महादेवादि देवता मरीच्यादि जो ब्राह्मण, प्रह्लाद, नारद,वसु जिनमें मुख्य इसप्रकार उत्तम भक्त अलग अलग भावसे उनकी स्तुति कररहे हैं ॥५३॥५४॥ और श्री, पुष्टि,वाणी, कान्ति, कीर्ति,

तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ॥ नवांगुल्यंगुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजम् ॥ ५० ॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकांगदैः ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥ ५१ ॥ भ्राजमानं पद्मकरं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ६२ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ॥ स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥५४॥ श्रिया पुष्ट्या गिरा कांत्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ॥ विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥५५॥ विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ॥ हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥ गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत्सत्त्वमालंब्य सात्त्वतः ॥ प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृतांजलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भाग० म० द० पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति, माया जिनका निरंतर सेवन करती हैं ॥ ५५ ॥ ऐसे परिपूर्ण रूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो, परमभक्तिको प्राप्त हो, देहमें रोमांच होगये और भक्तिके कारण नेत्रोंमें आँसू भरि आये, ऐसे महात्मा अक्रूरजी मस्तक नवाय प्रमाण कर, सावधान हो, हाथ जोड, धीरेसे सत्त्वगुणका आश्रय ले गद्गदवाणीसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां अक्रूरप्रतियानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

दोहा—चालिसमें अक्रूरने, लख हरि चरित अपार । सगुण निर्गुणकी भक्तिसे, बिनवत वारम्वार ॥ ४० ॥ अक्रूरजी बोले कि, हे कृष्ण ! संपूर्ण कारणोंके कारण नारायण आदिपुरुष अविनाशी जिनकी नाभिमें उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्मा हुए और उस ब्रह्मासे यह लोक उत्पन्न हुआ, तुमको मैं नमस्कार करताहूं ॥१॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, पुरुष, मन, इन्द्रिय, समस्त इन्द्रियोंके लिये विषयसे संपूर्ण देवता यह जो जगतके कारण हैं सो तुम्हारेही अंगसे हुये हैं ॥२॥ ब्रह्मासे आदि लेकर जड जो सम्पूर्ण तत्त्व हैं, सो अपने स्वरूपको नहीं जानते और जीव हैं

अक्रूर उवाच ॥ नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥ यन्नाभिजातादरविंदकोशाद्ब्रह्माऽऽविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियणि ॥ सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोंगभूताः ॥ २ ॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ॥ अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥ त्वां योगिनो यजंत्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ॥ साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४ ॥ त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ॥ यजंते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥ एकेत्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ॥ ज्ञानीनो ज्ञानयज्ञेन यजंति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥

सो तत्त्वोंको जानते हैं, अपने स्वरूपको नहीं जानते, मायाके गुणोंसे बँधेहुए जीव गुणोंसे अलग तुम्हारे स्वरूपको नहींजानते ॥ ३ ॥ ब्रह्माके उपासक महापुरुष ईश्वर तुम हो, तुम्हारी ही पूजा करते हैं और इन्द्रिय, पंचभूत, देवता, इनके साक्षी अन्तर्यामी तुम हो, इसीलिये तुम्हारी साधुलोग पूजा करते हैं, ॥४॥ और कोई एक कर्मोंमें निष्ठावाले, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदसे यज्ञोंका विस्तार करके अनेक रूप देवताओंका नाम लेलेकर पूजा करते हैं ॥ ५ ॥ और कोई कोई ज्ञानी पुरुष संपूर्ण कर्मोंको त्याग, समाधिमें आनकर ज्ञानरूप तुम्हारा पूजन करते हैं * ॥ ६ ॥

* शंका—योगमें बडे चतुर, ऐसे योगीजन सब ससारके सुखको त्यागकर जिस ब्रह्ममें मिल जाते हैं सो श्रीकृष्णचन्द्र हैं, यह शका हमको वारम्बार होतीहै ' उत्तर—जिस ब्रह्मको मुमुक्षु लोग जाते हैं, उस ब्रह्मको योगीजन नहीं जासक्ते, वह ब्रह्म बडा कठिन है, परन्तु ससारमें अपने अपने इष्टको ब्रह्मके स्वरूपकी नाईं बडाई करके सब प्राणी वर्णन करते हैं, इस लिये अक्रूरभी कृष्णको ब्रह्मस्वरूप करके वर्णन करते हैं ॥

और दूसरे पुरुष विष्णुकी दीक्षा लेकर नारदपंचरात्रमें कही पूजाकी विधिसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, इन भेदोंसे बहुत रूप और नारायण रूपसे एकरूप आपकीही पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ और कोई कोई पुरुष शिवजीके कहे शैवमार्ग और पाशुपतमार्गसे शिवरूप तुमको हे भगवन् ! अनेक प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे सर्वदेवतारूप ! हे समर्थ ! जो पुरुष और देवताओंके भक्त हैं और देवताओंमें उनके मन लग रहेहैं वह सबके ईश्वर तुम्हारीही पूजा करते हैं, क्योंकि आप सब देवताओंके रूप हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! जैसे पर्वतोंसे निकली मेघके जलसे परिपूर्ण हो नदियें चारों ओरसे बह बहकर समुद्रमें जा मिलतीहैं उसीप्रकार सब देवताओंके मार्ग अन्तमें तुमहीमें आनकर मिलजाते हैं ॥ १० ॥ सत, रज, तम यह

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते ॥ यजंति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥ त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ॥ बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्समुपासते ॥ ८ ॥ सर्व एव यजंति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ॥ विशंति सर्वतः सिंधुं तद्वत्त्वां गतयोंततः ॥ १० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥ ११ ॥ तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ॥ गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरंघ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौः कं सुरेंद्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ॥ निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥

तुम्हारी प्रकृतिके गुण हैं, इन गुणोंमें ब्रह्म आदि स्थावर तक सब जीव पोयेहुए हैं, वे गुण प्रकृतिमें और प्रकृति तुममें ॥ ११ ॥ संसारमें अलिप्तबुद्धि जिसके आत्मा सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी तुम हो, सो मैं आपको नमस्कार करता हूं आविद्यासे हुआ गुणका प्रभाववाला संसार देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इनकी देहमेंही प्रवृत्त होता है, इसलिये इनमें और आपमें बड़ा अन्तर है ॥ १२ ॥ अग्निमें तुम्हारा मुख है, पृथ्वी तुम्हारा चरण है, सूर्य नेत्र, आकाश नाभि, दिशा कान, स्वर्ग मस्तक, देवता भुजा और समुद्र कोंख है, पवन प्राणरूप तथा बलरूप कल्पना किया है ॥ १३ ॥ वृक्ष औषधि देहमें रोम, मेघ तुम्हारे केश, पर्वत तुम्हारे हाड और नख हैं, रात्रि दिन पलकोंका खोलना तथा बंद करना है, प्रजापति तुम्हारा मेढ्र है

और वर्षाको तुम्हारा वीर्य कहते हैं ॥ १४ ॥ तुम अविनाशी पुरुषमेंही लोकपालोंसहित लोक स्थित हैं और वह बहुत जीवोंसे व्याप्त हैं, छोटे कीडे चलते हैं, गूलरमें भुनगे उडते हैं उसीप्रकार मनकी वृत्तिसे जाननेमें आओ जो तुम हो तिनमें अनंत ब्रह्माण्ड फिरतेहैं ॥ १५ ॥ इस संसारमें लीला करनेके लिये आप जो जो रूप धारण करतेहो उनसे शोक दूरकर लोग आनन्दसे तुम्हारे यशको गातेहैं ॥ १६ ॥ सत्यव्रतको माया दिखानेके लिये मत्स्यरूप धरकर प्रलयके समुद्रमें विचरनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, मधुकैटभ दैत्यको मारनेके लिये हयग्रीवरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ मंदराचल पर्वतके धारण करनेवाले बड़े कच्छपरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है । पृथ्वी लानेके

त्वय्यव्ययात्मन्पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ॥ यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुंबरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥ यानियानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ॥ तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायंति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ॥ हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मंदरधारिणे ॥ क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥ १८ ॥ नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं क्रांतत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ॥ नमस्ते रघुवर्याय रावणांतकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्त्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ॥ म्लेच्छप्रायक्षत्रहंत्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥

लिये वाराहरूप आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ साधुपुरुषोका भय दूर करनेवाले अद्भुत नृसिंहरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है । वामनरूप होकर तीनों लोक नापनेवाले तुम्हें नमस्कार है ॥ १९ ॥ गर्वीले क्षत्रियरूप वनको काटनेवाले भृगुवंशियोके पति परशुराम तुमको नमस्कार है । रावणके मारनेवाले रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्ररूप आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ वासुदेवरूप तुमको नमस्कार है, संकर्षणरूप तुमको नमस्कार है, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप तुमको नमस्कार है, भक्तोंके पति तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ दैत्य दानवोके मोहित करनेवाले शुद्धबुद्धरूप तुमको नमस्कार है। म्लेच्छ क्षत्रियोको मारनेवाले कल्कीरूप तुमको नमस्कार है ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! यह जीव तुम्हारी मायासे मोहित हो अहंता ममतारूप दुराग्रहसे कर्ममार्गोंमें भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ हे विभो ! मैंभी स्वप्नके समान आत्मा, पुत्र, घर, स्त्री, धन, भाई, बन्धु इत्यादिमें मूर्खतासे सत्यबुद्धि कर भ्रमण करताहूं ॥ २४ ॥ अनित्य आत्मा दुःखरूप है उनको नित्य आत्मा सुखरूप जानताहूं और सुखदुःखमें क्रीडा करनेवाला अज्ञानसे भरा मैं अपने प्रिय तुमको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सिवारसों ढके जलको छोड सूर्यकी किरणोंसे बालू चमकते जलके लिये जातेहैं ॥ उसी प्रकार मायासे ढके तुमको त्याग देहादिकोंमें मेरा मन लगरहाहै ॥ २६ ॥ कृपणबुद्धि अर्थात् विषयोंमें बुद्धि लगनेसे काम्य कर्मसे क्षुभितहुए मनको रोकनेमें असमर्थ नहीं हूं परन्तु बलवान्

भगवञ्जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ॥ भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ॥ द्वंद्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वाऽऽत्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥ यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ॥ अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाऽहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ॥ रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोऽहं तवांघ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं यच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ॥ पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्यक्षहेतवे ॥ पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ २९ ॥

इन्द्रियें मनको इधर उधर चलायमान कर देतीहैं ॥ २७ ॥ हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! विषयीपुरुषोंको दुर्लभ मैं आपके चरणारविन्दोंकी शरण आया हूं और तुम्हारी शरण आना, यह भी आपकेही अनुग्रहसे हुआहै ऐसे मानताहूं, क्योंकि जब पुरुषका संसार छूटनहार होताहै, तब हे कमलनाभ ! साधुओंकी सेवा करतेहैं उस सेवासे तुममें आनकर बुद्धि लगती है परन्तु तुम्हारी कृपा विना साधुओंकी सेवा भी नहीं बनती और तुममें बुद्धि भी नहीं लगसक्ती है ॥ २८ ॥ विज्ञानमूर्ति समस्त ज्ञानके कारण पुरुष, काल, माया इनरूप ब्रह्म तुम हो, इसलिये हे

अनन्तशक्ति ! मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ २९ ॥ हे समर्थ ! हे इन्द्रियोंके प्रेरनेवाले ! चित्तके अधिष्ठाता सब प्राणियोंके आश्रय ! तुमको मैं नमस्कार करताहूं तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुए मेरी रक्षा करो ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां अक्रूरस्तुति र्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ दोहा–इकतालिस अध्यायमें, मथुरा कियो प्रवेश। रजकवधो माली दियो, शुभ वरदान व्रजेश ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्तुति करते हुए अक्रूरजीको जलके भीतर अपना स्वरूप दिखलाकर फिर जैसे नट अपने स्वांगको दिखलाकर समेट लेताहै, उसी प्रकार समेट लिया ॥ १ ॥ अक्रूरजी भी श्रीकृष्णचन्द्रको जलमेंसे अन्तर्धान हुआ देख

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे अक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्तुवतस्तस्य भगवान्द र्शयित्वा जले वपुः ॥ भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥ सोपि चांतर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूर उवाच ॥ अद्भुतानीह यावंति भूमौ वियति वा जले ॥ त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥ यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ॥ तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन्किं मे दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ ५ ॥

अत्यन्त शीघ्रतासहित जलमेंसे निकल सम्पूर्ण सन्ध्योपासन कर आश्चर्य मान रथके निकट आये ॥२॥ इनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे अक्रूर ! पृथ्वीमें, जलमें, आकाशमें तुमने ऐसी आश्चर्य वस्तु क्या देखी है, क्योंकि तुम आश्चर्यरूप चकितसे दिखाई देतेहो ॥३॥ तब अक्रूरजी बोले कि, इस संसारमें, पृथ्वीमें, जलमें, जितने आश्चर्य हैं वह सब आश्चर्य विश्वरूप आपमें विद्यमान हैं, सो तुम्हारा मैंने दर्शन किया ॥४॥ जो तुममें सब आश्चर्य भरे हैं जब तुम्हारा दर्शन मैंने कर लिया फिर हे परमेश्वर ! पृथ्वी, आकाश और इस संसारमें क्या आश्चर्य देखना शेष रहगया? ॥५॥

ऐसे कह गांदिनीके पुत्र महात्मा अक्रूरजीने रथ हांका और तीसरेही पहरतक मथुरापुरीमें राम कृष्णको पहुँचादिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मार्गोंमें ग्रामोंके मनुष्य जहाँ तहाँ इकट्ठे हो कृष्णबलदेवका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके रूपमेंसे अपनी दृष्टिके हटानेको भी समर्थ न हुए॥ ७ ॥ हे महाराज ! इसी बीचमें नन्दादिक समस्त व्रजवासी आगे आनकर मथुराके बागमें कृष्ण बलदेवके आनेका पैंड़ा देखनेलगे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन व्रजवासियोके पास आय, नम्र हो कुछेक मुसकान सहित अक्रूरसे कहा कि ॥ ९ ॥ हे अक्रूर ! तुम आगे रथको लेजाय पुरीमें प्रवेश करो और अपने घर जाओ, हम यहां कुछ देर विश्राम लेकर मथुरापुरीको देखेंगे ॥ १० ॥ तब अक्रूरजी बोले

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यंदनं गांदिनीसुतः ॥ मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥ ६ ॥ मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः ॥ वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाऽऽददुः ॥ ७ ॥ तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ॥ पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षंतोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान्प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ॥ वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूर उवाच ॥ नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ॥ त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥ आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज ॥ सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥ पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ॥ यच्छौचेनानुतृप्यंति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥ अवनिज्यांघ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो बलिर्महान् ॥ ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकांतिनां तु या ॥ १४ ॥

कि, हे प्रभो ! तुम बिन अकेला मैं मथुरा पुरीमें नहीं जाऊंगा, हे नाथ ! हे भक्तोंपर हित करनेवाले ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, इसलिये मुझे मत त्यागो ॥ ११ ॥ तुम आओ हम तुम घर चलैं, हे अधोक्षज ! हे सुहृदोत्तम ! आज अपने बड़े भाई बलदेवजी और ग्वालबालों सहित मेरे घर चलकर मुझे सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणोंकी रजसे मुझ गृहस्थके घरको पवित्र करो और तुम्हारे चरणोंकी धोवनसेही मेरे पितृ, अग्नि, देवता, तृप्त होजायँगे ॥ १३ ॥ देखो ! तुम्हारे युगल चरण धोनेसे राजा बलिका कैसा पवित्र यश हुआ कि, जिससे अत्यन्त दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्तहुआ

और अनन्य भक्तोंको जो गति मिलतीहै, वही गति उसने पाई ॥१४॥ हे भगवान्! तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर त्रिलोकीको पवित्र करता है उसी जलको शिवजीने अपने मस्तकपर धारण किया है और उसी जलके स्पर्शसे साठहजार सगरके पुत्र स्वर्गको चले गये॥१५॥ हे देवदेव! हे जगन्नाथ! तुम्हारी कथा श्रवण और गुणकथनसे भक्त पवित्र हो जाते हैं, ऐसे तुम पवित्र गुणयुक्त हो, सो हे नारायण! आपको नमस्कार है ॥१६॥ तब श्रीभगवान् बोले कि यादवोंसे द्रोह करनेवाले कंसको मार सुहृदोंका प्रिय करूंगा, इसके उपरान्त बडे भाई बलदेवजीको संग ले मैं तुम्हारे घर आऊंगा ॥१७॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अक्रूरजी विमन हो पुरीमें जाय कंससे "राम कृष्णको ले

आपस्तेंऽघ्र्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् ॥ शिरसाऽधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥ देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते॥१६॥श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्ये भवतो गेहमहमार्यस मन्वितः ॥ यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ॥ पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्माऽऽवेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्णे भगवान्कृष्णः संकर्षणाऽन्वितः ॥ मथुरां प्राविशद्गोपै र्दिदृक्षुः परिवारितः ॥१९॥ ददर्श तां स्फाटिकतुंगगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ॥ ताम्राऽऽरकोष्ठां परिखादुरासदामु द्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णश्रृंगाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ॥ वैदूर्यवज्राऽमलनी लविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥

आया" ऐसे कह अपने घरको चले गये ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त तीसरे पहरके समय बडे भाई बलराम सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोप ग्वालोंको संग ले मथुरापुरी देखनेके लिये चले ॥ १९ ॥ उस पुरीकी कैसी शोभा है कि, स्फटिक मणियोंके ऊंचे शहरपनाहके और घरोंके द्वार बन रहेहैं, उनमें बडे बडे सोनेके किंवाड चढ़ रहे हैं और ठौर ठौर बन्दनवारें टॅग रही हैं, अन्न भरनेके लिये तॉबे तथा पीतलके कोठे बने हैं चारों ओर चौडी खाई बन रही हैं, उद्यान और उपवन आदिसे यह पुरी अत्यन्त शोभायमान हो रही है ॥ २० ॥ सुवर्णके चारों ओर मार्ग, साहूकारोंके महल और बडे २ कारीगर मनुष्योंके मकानोंसे यह पुरी शोभायमान हो रहीहै, वैदूर्यमणि, हीरे, निर्मल नीलमणि, मूंगे, मोती इनके काम जिनमें हो रहे

ऐसे शोभायमान छज्जे हैं ॥ २१ ॥ जाली झरोखोंमें बैठेहुए मोर जहाँ तहाँ शोर कर रहे हैं राजमार्ग व गलियोंमें छिडकाव हो रहा है,उनमें पुष्पोंकी माला अंकुर धानकी खीलें और चावल यह मंगल द्रव्य फैल रहा है ॥ २२ ॥ चंदन दहीसे छिडके फूल जिनपर धरे, ऊपर दीपकोंकी पंक्ति धरी आमकी डाल जिन पर धरी ध्वजा जिनपर फहरा रही दरियाईके कपडे जिनकी नारिसे बँधे गहिर सहित केले व सुपारीके वृक्ष जिनके निकट लग रहे जलके भरे कलश दरवाजोंपर रक्खे हैं, जिनसे वह पुरी बहुतही शोभायमान होरही है ॥ २३ ॥ बराबरके मित्रोंको संग ले मथुरा पुरीके बीच बाजारमें हो जिस समय वसुदेवनन्दन कृष्ण बलदेव निकले, उस समय इनको देखनेके लिये पुरीकी बहुत स्त्रियें दौड आईं और

जुष्टेषु जालामुखरंध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ॥ संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतंडुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भैर्दधिचंदनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ॥ सवृंदरंभाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तां संप्रविष्टौ वसुदेवनंदनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः परस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ॥ कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नांक्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम्॥ २५ ॥ अश्नंत्य एकास्तदपास्य भोजनमभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ॥ स्वपंत्य उत्थाय निशम्य निस्स्वनं प्रपाययंत्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविंदलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः ॥ जहार मत्तद्विरदेंद्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥

बहुतसारी स्त्रियें देखनेकी इच्छासे महलोंपर चढ गईं ॥ २४ ॥ कोई कोई स्त्री उतावलके मारे ओढ़नियोंको पहर, लहँगेको ओढ, हाथोंके गहने पांवोंमें पहर कर चली आईं, कोई एक स्त्री एक हाथ और एक पांवमेंही गहना पहरकर चली आई और कोई स्त्री एक कानमें कर्णफूल व एक पॉवमें पायजेब पहरकर चली आई , कोई स्त्री एकही आँखमें काजल लगाकर चली आई ॥ २५ ॥ कोई कोई स्त्री भोजन करतेहीसे चली आई और कोई स्त्री अंगनमें तेल मलरही थी, वह विनाही स्नान किये चली आई, कोई सोतेसेही चली आई कोई स्त्री अपने बालकोंको दूध पिलारही थी, सो सुना कि, कृष्ण बलदेव आये हैं, सो बालकोंको रोताही छोडकर चली आई ॥ २६ ॥ मतवाले हाथीके समान

पराक्रमवाले कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही हँसनी चितवनीसे उन स्त्रियोंका मन चुरालिया और लक्ष्मीको रमण कराने वाले अपने रूपसे उन स्त्रियोंकी आखोंको आनन्द देनेलगे ॥ २७ ॥ वारंवार बातें सुनकर उन कृष्णमें लगे हैं चित्त जिनके और उनकी चितवन मुसकानरूपी अमृतका जो सींचना है उससे सत्कार पानेसे रोमांच हो आये, ऐसी स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देख, नेत्र द्वारा हृदयमें लेजाय आनंद रूप श्रीकृष्णको आलिंगनकर हे काम लोभादिकोंके दंड देनेवाले राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्णके विना मिलेही कामकी पीडाको त्यागदिया ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त प्रफुल्लित नेत्रवाली स्त्रियें महलोंके शिखरपर चढीं कृष्ण बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा करके कहनेलगीं ॥ २९ ॥ इसप्रकार परस्पर

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ॥ आनंदमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनंतमरिंदमाधिम् ॥ २८ ॥ प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखांबुजाः ॥ अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गंधैरभ्युपायनैः ॥ तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्रतत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् ॥ या ह्येतावनुपश्यंति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥ रजकं कंचिदायांतं रंगकारं गदाग्रजः ॥ दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥३२॥ देह्यावयोः समुचितान्यंग वासांसि चार्हतोः ॥ भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥३३॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ॥ साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥

कहने लगीं, फिर दही, अक्षत, जलके भरे पात्र और माला चंदन भेंट लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रसन्न होकर कृष्ण बलदेवका पूजन करने लगे ॥ ॥ ३० ॥ और संपूर्ण मथुरावासी अत्यन्त आश्चर्यमान यह कहने लगे कि, गोपियोंने ऐसा क्या उत्कृष्ट तप किया है, जो गोपी मनुष्य लोकको बड़े उत्सवरूप श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करती हैं ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वस्त्रोंका धोनेवाला और रँगनेवाला मार्गमें आताहुआ एक धोबी देखा और अतिनम्रता सहित उससे अति उत्तम धुलेहुए वस्त्र माँगे ॥३२॥ और कहा कि, हे धोबी! हमको हमारे योग्य वस्त्र दे, कारण कि, हम इन वस्त्रोंके योग्य हैं और हमें वस्त्र देनेसे तेरा कल्याण होगा इसमें संदेह नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन्! जब इस प्रकार सब ओरसे

परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धोबीसे वस्त्र माँगे तब अत्यन्त क्रोधित हो,कंसका सेवक अति घमण्डी डांटकर बोला कि ॥३४॥ नित्य पर्वत और वनके फिरनेवाले ऐसेही कपड़े पहरते हो, हे उद्धत! तुम राजाके वस्त्रोंपर क्यों मन ललचाते हो ॥ ३५ ॥ हे मूर्खो ! यदि अपना जीना चाहो तो तुम शीघ्रही यहाँसे निकल जाओ, फिर मत माँगना क्योंकि राजा कंसके बहुत सेवक फिरते हैं और जो धूम मचाता है, उसे वह मारते हैं, लूटते हैं, बांधते हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने महाक्रोधित हो इसप्रकार बकवाद करतेहुए उस धोबीका शिर अपने हाथकी थापसे काट

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ॥ परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा ॥ बध्नंति घ्नंति लुंपंति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥ एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ॥ रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान्विसृज्य वै ॥ दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा ॥ शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ॥ विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥

डाला ॥ ३७ ॥ जब मुख्य धोबी मारागया, तब उसके टहलुए धोबी वस्त्रोंको पटक पटक चारों ओरको भागगये, उस समय श्रीकृष्ण और बलरामजीने मनमानते वस्त्रोंको पहिर बाकी जो रहे सो गोप ग्वालोंको देदिये और जो रहे सो वहीं छोड दिये ❀ ॥ ३८ ॥३९॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और ग्वालबाल सब वस्त्र पहरकर चले, उसी समय प्रसन्नमन एक दर्जी आया उसने आतेही रामकृष्णके लाल, हरे, पीले, जो वस्त्र थे उनके माला, चंपकली बाजूबंद और अनेक प्रकारके आभूषण बनाकर शोभायमान पोशाक बनाई ॥ ४० ॥

❀ शंका–तीन लोकके पति भगवान् दूसरे दुष्टजीवोंका उच्छिष्ट अर्थात् पहिरा कपड़ा आप क्यों पहिरतेहुए, यह बड़ी शंका है ॥
उत्तर–धर्मशास्त्रमें यह लिखा है कि, मामाका पहिरा वस्त्र, तथा कुमारी लड़कीका पहिरा वस्त्र, तथा ब्रह्मचारीका पहिरा वस्त्र, इनके पहिरेहुए वस्त्रोको कोई पहिर लो उनका कीसीको दोष नहीं और कटिभागसे नीचेका पहिरा वस्त्र मामा, कन्या, ब्रह्मचारीका भी धारण न करना और दूसरे पुरुषकी तो क्या बात है ! श्रीकृष्णने अपने मामाका वस्त्र जानकर उच्छिष्ट वस्त्र धारण किया ॥

इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी दोनों भाई अनेक प्रकारसे दर्जीके बनाये वस्त्रोंके आभूषणोंसे ऐसे शोभायमान लगनेलगे, जैसे पर्वमें साँवरे गोरे शृंगार किये हाथीके छौना शोभायमान लगते हैं ॥ ४१ ॥ फिर उस दर्जीके ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी सारूप्य मुक्ति दी और इसलोकमें सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य, स्मरण तथा हाथ, पाँव, नाक, कान, आँख अच्छे बने रहें, इनकी चतुराई दी ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम सुदामा मालीके घर गये, इनको देखतेही उसने पृथ्वीमें शिर लगाय प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ और आसन दिया पाद्यार्घ्य इत्यादि पूजाकी सामाग्रियोंसे दोनों भाइयोंका पूजन किया, फिर पीछे पानकी बीड़ी और चन्दन इत्यादि अर्पण

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः॥स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥४१॥ तस्य प्रसन्नो भगवान्प्रादात्सारूप्यमात्मनः ॥ श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतींद्रियम् ॥ ४२ ॥ ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ॥ तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यं चार्थार्हणादिभिः ॥ पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ॥ पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ॥ ४५ ॥ भवंतौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ॥ अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥ ४६ ॥ न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ॥ समयोः सर्वभूतेषु भजंतं भजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ॥ पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभिप्रेत्य राजेंद्र सुदामा प्रीतमानसः ॥ शस्तैस्सुगंधैः कुसुमैर्मालां विरचितां ददौ ॥ ४९ ॥

किया ॥४४॥ फिर माली बोला कि, हे प्रभो ! आज तुम्हारे आनेसे हमारा जन्म सफल तथा कुल पवित्र हुआ और हमारे पितृ देवता ऋषिभी संतुष्ट होगये ॥ ४५ ॥ तुम निश्चय इस संसारके परमकारण हो और जगत्के कल्याण और वृद्धिके लियेही आपने अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ ॥ ४६ ॥ जगत्के हितकारी आत्मा तुमहीं हो, तुम्हारी विषमदृष्टि नहीं है, सब प्राणियोंमें समवर्ती हो और जो तुम्हारा भजन करता है उसको तुम भी भजते हो ॥ ४७ ॥ अब तुम दासको आज्ञा करो मैं तुम्हारी क्या पूजा करूं ? क्योंकि पुरुषोंको जो तुम्हारा दर्शन होता है यही बड़ा अनुग्रह है ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्नमन सुदामा मालीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शोभायमान सुगंधित फूलोंकी माला समर्प्पण करी ॥ ४९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस मालाको पहर मित्रोंसहित प्रसन्न हो सुदामा मालीको वरदान दिया ॥ ५० ॥ और सुदामा मालीने भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यही वर माँगा कि, सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति रहै और तुम्हारे भक्तोंमें स्नेह और जीवमात्रमें दया रहै ॥५१॥इसप्रकार उस मालीको मनवांछित वरदान दे और उसके वंशमें सदा रहनेवाली सम्पत्ति दे, तथा बल, आयु, यश, शोभा दे, बलदेवजीको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके घरमेंसे निकले ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां मथुरापुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

दोहा–कुब्जाको सीधी कियो, कियो शरासन भंग। देखो परमोत्सव तहाँ, बयालीस भूरंग ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे कि, कुरुकुलभूषण परीक्षित् !

ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ॥ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥ सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ॥ तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥ इति तस्मै वरान्दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥ बलमायुर्यशः कांतिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० पुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ व्रजन्राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीतांगविलेपभाजनाम् ॥ विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यांतीं प्रहसन्रतिप्रदः ॥ १ ॥ का त्वं वरोर्वेतदुहानुलेपनं कस्यांगने वा कथयस्व साधु नः ॥ देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्तेन चिराद्भविष्यति ॥ २ ॥ सैरंध्र्युवाच ॥ दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ॥ मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥ रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ॥ धर्षितात्मा ददौ सांद्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥

इसके उपरान्त सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजमार्ग बाजारमें आयकर ग्रहण किये चन्दनका पात्र, शोभायमान मुखवाली सामने आती हुई तरुण कुबरी स्त्रीको देख हँसकर पूंछा ॥ १ ॥ कि, हे सुन्दर जंघावाली! तू कौन है ? और यह चन्दन किसका है हमारे सन्मुख भली प्रकार समझाकर कहो, क्योंकि जो यह उत्तम चन्दन हमको दो तो तुम्हारा अभी कल्याण होगा ॥ २ ॥ यह सुनकर कुबरी बोली कि, हे सुन्दर ! मेरा नाम कुबरी है और कंसकी दासी हूं और नित्यप्रति चंदन घिसना यही मेरा काम है, क्योंकि मेरा घिसा चंदन राजा कंसको अच्छा लगता है, परन्तु अब तुम्हारे बिना इस चन्दनके लगानेका कोई पात्र नहीं है ॥ ३ ॥ इसप्रकार सुन्दर रूप सुकुमार और रसिकता, हँसनि, बोलनि तथा

चितवनसे मोहित हो कुबरीने श्रीकृष्ण बलदेवके चन्दन लगाया ॥ ४ ॥ केशर मिलाहुआ चन्दन साँवरे अंगमें जिससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने
लगाया और कस्तूरी मिलाहुआ चन्दन गोरे अंगमें जिससमय बलदेवजीने लगाया, उससमय दोनों भाई अत्यन्तही शोभायमान लगनेलगे
॥५॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न हो अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये सुन्दरमुखी तीन स्थानसे टेढी कुबरीको
सूधी करनेका विचार किया ॥ ६ ॥ और फिर कुबरीके पाँवोंको अपने चरणोंसे दाब दो अँगुली जिसमें ऊंची करी, ऐसे हाथको ठोडीके नीचे
लगाय, श्रीकृष्णने कुब्जाके देहको सूधा करदिया ॥ ७ ॥ उससमय सूधे बराबर हैं अंग जिसके, बड़े नितम्ब और स्तनवाली, ऐसी कुब्जा भगवान्

ततस्तावंगरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ॥ संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरंजितौ ॥५॥ प्रसन्नो भगवान्कुब्जां त्रिवक्रां रुचि
राननाम् ॥ ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन्दर्शने फलम् ॥ ६ ॥ पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यंगुल्युत्तानपाणिना ॥ प्रगृह्य चिबुके
ऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥ सा तदर्जुसमानांगी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ॥ मुकुंदस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा
॥ ८ ॥ ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् ॥ उत्तरीयांतमाकृष्य स्मयंती जातहृच्छया ॥ ९ ॥ एहि वीर गृहं या
मो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥ १० ॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य
पश्यतः ॥ मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥ एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ॥ साधिता
र्थोऽगृहाणां नः पांथानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके हाथका स्पर्श होनेसे एक सुन्दर स्त्री होगयी ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त आपही रूप, गुण, उदारता यह सब कुब्जामें आगये, तब
कामदेवसे पीडित हो, वह कुब्जा दुपट्टेका छोर पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगी ॥ ९ ॥ कि, हे वीर ! हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम मेरे संग चलकर
मेरा भवन पवित्र करो, क्योंकि अब मैं तुम्हें छोड नहीं सक्ती और तुमने मेरा मन चलायमान किया है इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ॥ १० ॥
हे महाराज परीक्षित ! इसप्रकार जब कुब्जाने कहा, तब उसीसमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी और अपने मित्रोंका मुख देख कुछेक मुस
कातेहुए कुब्जासे बोले ॥ ११ ॥ कि, हे सुन्दरभ्रुकुटियोंवाली ! तुम्हारी भ्रुकुटी हमारे मनको खैंचती है, तुम हमारा दुपट्टा क्यों खैंचतीहो, मैं कंसको

मार, अपने सुहृदोंका कार्य सिद्धकर मनका दुःख दूर करनेवाले तुम्हारे घर आऊंगा ॥ क्योंकि मैं तो बाल ब्रह्मचारी हूं, किसीसे जान पहिचान नहीं और हमारा यहाँ घर भी नहीं, हमें तो केवल तुम्हाराही आश्रय है, जब तुम्हारे ही यहाँ न आवेंगे तो और जायँगे कहाँ?॥१२॥इस प्रकार मीठे मीठे वचन कह और कुब्जाको वहीं छोड़ आगे चले. तब बनियोंने पान, माला, चन्दन इत्यादि भेंट ले बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ ॥ १३ ॥ हे महाराज ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके कारण उत्पन्न हुए कामदेवके क्षोभसे स्त्रियोंने अपनेकोभी नहीं जाना, वस्त्र खुलगये,

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे वणिक्पथैः ॥ नानोपायनतांबूलस्रग्गंधैः साग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनस्म रक्षोभादात्मानं नाविदन्स्त्रियः ॥ विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥ १४ ॥ ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ॥ तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ॥ वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥ करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ॥ नृणां विकृष्य प्रबभंज मध्यतो यथेक्षुदंडं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥

चोटी खुलगई, चूडी खिसलआई और जैसे कोई चित्र खैंचकर खड़ाकर देता है, उसीप्रकार खड़ी रहगई * ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त अच्युत भगवान् कृष्णचन्द्र मथुरावासियोंसे पूँछते पूँछते धनुषशालामें गये और वहाँ जाकर इन्द्रके धनुषकी समान धराहुवा धनुष देखा ॥ १५ ॥ हे महाराज ! यद्यपि बड़े बड़े बलवान् पुरुष उसकी रक्षा कर रहे थे पूजा हो रही थी, अत्यन्त जिसकी शोभा थी, परन्तु तो भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लोगोंके मने करनेपर भी उसे उठाया ॥ १६ ॥ और लीलापूर्वकही एक हाथसे उठाय पलभरमें मनुष्योंके देखते देखते बीचमेंसे खैंच जैसे मतवाला

* शंका—बडे आश्चर्यकी बात हैं कि, मथुराकी स्त्रियाँ कृष्णको देखकर कामदेवसे विह्वल होगई और ऐसी विह्वल होगई कि, तन मनकी और अपने शरीरकी कुछ भी सुधि बुधि न रही, परन्तु परपुरुषको देखकर विह्वल होजाना यह गृहस्थस्त्रियोंका धर्म नहीं, यह धर्म तो व्यभिचारिणी स्त्रियोंका है ।
उत्तर—व्रजमें कृष्णने गोवर्द्धनको उठाया उस सरीखे और बहुत काम किये उन सब कामोंको सुनकर स्मरण करके त्रास मानकर विह्वल हुईं कामदेव करके विह्वल नहीं हुईं, मथुराकी स्त्रियाँ ऐसी नहीं जो पर पुरुषको देखकर कामदेवसे विह्वल हो जातीं ॥

हाथी गन्नेको तोड़डालता है उसीप्रकार तोड डाला ॥ १७ ॥ हे राजन् ! जिस समय धनुष टूटा उस समय महागम्भीर शब्द हुआ उस शब्दसे पृथ्वी, आकाश स्वर्ग और सब दिशायें व्याप्त होगईं और उस शब्दको सुनकर कंसका हृदयभी अत्यन्त भयभीत हुआ ॥ १८ ॥ इसके पीछे उस धनुषके रक्षकोंने अत्यन्त क्रोधित हो अपने २ अनुचरोंसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको "पकड़लो पकड़लो" इसप्रकार कहते चारों ओरसे घेर लिया ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी इन असुरोंको अपने मारनेके लिये देख क्रोधित हो धनुषका एक २ टुकडा हाथमें ले इन पुरुषोंको मारने लगे ॥ २०॥ फिर कंसकी भेजीहुई संपूर्ण सेना मार धनुषशालासे बाहर निकल मथुरापुरीकी सम्पदा देख

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ॥ पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥१८॥ तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः॥ ग्रहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां बध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथ तान्दुरभिप्रायान्विलोक्य बलकेशवौ ॥ क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥ बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ॥ निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥ २१ ॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशम्य पुरवासिनः ॥ तेजःप्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ॥ कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥२३॥ गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ॥ संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥ २४ ॥ अवनिक्तांघ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ॥ ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥

हर्षित होकर घूमनेलगे ॥ २१॥ मथुरावासी नरनारियोंने भगवान् कृष्ण बलदेवका अद्भुत कर्म, धृष्टता और पराक्रम देख अपने मनमें जाना कि, यह कोई उत्तम देवता हैं ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित ! इसप्रकार कृष्ण बलदेव विचररहे थे कि, इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्त होगये और सन्ध्या होगई तब भगवान् श्रीकृष्ण बलदेव गोपों सहित मथुरापुरीसे बाहर निकले और जहाँ गाडियें छूटीथीं वहाँ पहुँचे॥२३॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीको व्रजसे चलती समय गोपियोंने विरहमें व्याकुल होकर जो जो बातें कहींथीं,वह सबही श्रीकृष्णचन्द्रके अंगकी शोभा देख मथुरा वासियोने सत्य जानी, क्योकि लक्ष्मीजी भी अपने भजनेवाले ब्रह्मादिकोंको छोड इसी रूपकी चाहना करतीहैं ॥ २४॥ इसके उपरान्त चरण धो

राम कृष्ण दूधभातका भोजन कर कंसका विचार जान उस रात्रिको सुखपूर्वक वहीं रहे ॥२५ ॥ कंस धनुषका टूटना, रक्षकोंका मरना और अपनी सेनाका वध सुनकर कि, यह कृष्णका केवल खेल है,कुछ पराक्रम नहींहै ॥२६॥ ऐसा विचारकर मारे भयके उसे नींद नहीं आई महाभयभीत हुआ तब वह दुष्टबुद्धि कंस मृत्युके जतानेवाले जागतेमें सोतेमें बहुतसे खोटे स्वप्न देखने लगा॥२७॥दर्पण और जलमें मुख देखनेपर भी उसको अपना शिर नहीं दीखे, चन्द्रमा सूर्य दो दो रूप नहींहैं परन्तु उसे दोदो दिखाई दिये॥२८॥अपनी परछाहीमें छिद्र दीखे, अँगुली देकर कानमें देखा तो घूं घूं शब्द भी सुनाई नहीं आया,वृक्ष सोनेके दिखाई देने लगे और कीच व रेतमें अपने पाँवके चिह्न भी न देखे॥२९॥इसके उपरान्त यह स्वप्न देखा कि,भूत

कंसस्तु धनुषो भंगं रक्षिणां स्वबलस्य च ॥ वधं निशम्य गोविंदरामविक्रीडितं परम् ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ॥ बहून्याचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥ २७ ॥ अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि ॥ असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥ २८ ॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ॥ स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्ने प्रेतपरिष्वंगः खरयानं विषादनम् ॥ यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥ ३० ॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ॥ पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिंतया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ॥ कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥ तानर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ मंचाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ॥ यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४ ॥

प्रेत छातीसे लगालगाकर मिलतेहैं और गधेपर चढ़ा, गुडहरके फूलोंकी माला पहरे अकेला,तेलमें भीजा जहर खाता,नग्न वेष किये दक्षिणदिशाको चला जा रहाहूँ॥३०॥ इसप्रकार स्वप्नमें और जागतेमें खोटे खोटे शकुन देख मृत्युसे डरे कंसको रातभर चिंताके मारे नींद न आई॥३१॥ हे कुरुवंशोत्पन्न राजा परीक्षित! इसभाँति ज्यों त्यों कर वह रात्रि व्यतीत हुई,प्रातःकाल हुआ जलमेंसे सूर्य निकला, उससमय राजा कंसने मल्लोंकी कुश्तीलडवानेके लिये बडा उत्सव कराया॥३२॥पुरुष रंगभूमिकी पूजा करनेलगे,उसीसमय भेरी बजनेलगीं, माला,पताका और वस्त्रोंकी बन्दनवारोसे मंचान सजायेगये॥३३॥ और उन मंचानोंके ऊपर ब्राह्मण,क्षत्रिय आदि जिनमें मुख्य मुख्य पुरवासी तथा देशवासी थे,सुखपूर्वक आनकर बैठगये ॥ ३४॥

इसके उपरान्त राजा कंस भी अपने प्रधानमंत्रीको संग ले, अखण्डमण्डलवाले राजोंके बीचमें एक राजमंचान था, उसके ऊपर आन बैठा, परन्तु भयके मारे हृदय कॉप रहा था ॥३५॥ नगारोंके बजतेही झटपट मल्ल खम्भ ठोंक जॉघिये पहर, सिंदूरकी बिंदी लगा, धूरी मल, छोटीछोटी चुटियें, बड़ेगर्व भरे, अपने अपने उस्तादोंको संग लेकर रङ्गभूमिमें आये ॥३६॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल-यह अखाड़ेमें आये और मनोहर बाजोंका शब्द सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त कंसके बुलाये नंद आदिक संपूर्ण गोप भी राजा कंसको भेंट दे, एक मंचानपर आनकर बैठगये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां मल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ दोहा—मार

कंसस्तु संवृतोऽमात्यै राजमंच उपाविशत ॥ मंडलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्ल तालोत्तरेषु च ॥ मल्लाः स्वलंकृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समागताः ॥ ३६ ॥ चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ॥ त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नंदगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥ निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मंच आविशन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० कुब्जोन्नमनादिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ॥ मल्लदुंदुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः॥१॥ रंगद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ॥ अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोंबष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥ बद्धा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ॥ उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥

कुवलयापीड गज, रंगभूमि हरि जाय ॥ वचन कहे चाणूरसों, तैंतालिस अध्याय ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्ण भगवान्ने विचार किया कि, यद्यपि हमने धोबीको मार धनुष तोड़, अपना ऐश्वर्य जताया, परन्तु तोभी हमारे माता पिताको नहीं छोडता और हमको मारना चाहता है, इसलिये इस मामाके मारनेमें हमें कुछ दोष नहीं है, इसप्रकार दोषके दूर करनेका विचार कर कृष्ण बलदेव दोनों भाई जहाँ मल्ल खम्भ ठोक रहेथे नगाड़े बजरहेथे, उनका शब्द सुन देखनेको गये ॥ १ ॥ फिर श्रीकृष्णने रङ्गभूमिके द्वारपर जाकर देखा कि, कुवलयापीड हाथी खडा है और महावत उसे आगेको पेल रहा है ॥ २ ॥ यह देखतेही शूरवंशोत्पन्न भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्र फेंट बाँध, मुखपर छुटीहुई कुटिल अलकोंको सँभाल गलेकी लम्बी मालाको जनेऊकी समान कंधेपर डाल मेघकी तुल्य गर्जकर, अत्यन्त गंभीरवाणीसे बोले ॥३॥ कि, हे महावत ! हे महावत ! ! हाथीको हटाकर हमको शीघ्र मार्ग दे, और जो नहीं हटावेगा तो अभी हाथी सहित तुझको मार यमलोकको भेजदूंगा ॥ ४ ॥ हे महाराज ! यह सुनतेही कालमृत्युके समान क्रोधित हो महावतने हाथीको भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रके ऊपर हूल दिया ॥५॥ हाथीने अत्यन्त शीघ्रतासे आतेही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी सूंडमें पकड़ लिया, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्र भी उसकी सूंड़मेंसे खिसल और उसके मस्तकमें मुष्टिक मार पिछले पाँवोंमें छिपगये॥६॥ और फिर जिससमय श्रीकृष्णको देख, क्रोधित हो सूंघा साँघीकी दृष्टिवाले हाथीने इनकेपकड़नेको सूंडचलाई, उससमय सूंड़ पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके पिछले पाँवोंमेंसे निकलगये॥७॥ अत्यन्त

अंबष्ठांबष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ॥ नो चेत् सकुंजरं त्वाद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥ एवं निर्भर्त्सितोंबष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ॥ चोदयामास कृष्णाय कालांतकयमोपमम् ॥ ५ ॥ करींद्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् ॥ कराद् विगलितः सोऽमुं निहत्यांघ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ॥ परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥ पुच्छे प्रगृह्याऽतिबलं धनुषः पंचविंशतिम् ॥ विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ॥ ८ ॥ स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ॥ बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥९॥ ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ॥ प्रद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदेपदे ॥ १० ॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ॥ तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दंताभ्यां सोऽहनत् क्षितिम् ॥ ११ ॥

बलवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हाथीकी पूँछपकड़ जैसे गरुड़ सर्पको घसीटताहै, उसीप्रकार पचीस धनुषतक लीलापूर्वकही घसीटा ॥ ८ ॥ पूँछ पकड़े श्रीकृष्णचन्द्रको पकड़नेके लिये जब दाहिनी ओर हाथी आता, तब श्रीकृष्ण उसे बाँईओर लेजाते और बाँईओर आता तो दाहिनी ओर लेजाते, अधिक क्या कहैं, जैसे गायोंके बछड़ोंके संग बालक फिरतेहैं, उसीप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हाथीके पीछे फिर रहेथे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सन्मुख आय थप्पड मार, दौडकर उस हाथीको पटक दिया ॥ १० ॥ जब उसे गिरा दिया, श्रीकृष्णचन्द्र भी लीलापूर्वक पृथ्वीपर गिरके अत्यन्त शीघ्रतासे खडे होगये, तब श्रीकृष्णचन्द्रको गिरा जान वह हाथी दाँतोंसे

पृथ्वीको खोदने लगा ॥ ११॥ हे नृपश्रेष्ठ! जब हाथीका बल घटगया तब हाथीको महा क्रोध उत्पन्न हुआ, और महावतने जिससमय उसके अंकुश मारा , तब वह हाथी श्रीकृष्णचन्द्रपर झपटा ॥ १२ ॥ मधुदैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सन्मुख आते हाथीकी सूंड पकड़ पृथ्वीमें पटक दिया ॥ १३ ॥ और सिंहके समान गर्जतेहुए हाथीको पाँवोंके नीचे दाब लीलापूर्वक उसके दाँत उखाड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन दाँतोंसे महावतको मारा ॥ १४ ॥ जब हाथी मरगया, तब श्रीकृष्ण बलदेव उसे वहीं छोड़ हाथमें हाथीके दाँत ले कंधेपर धारणकर वहाँसे आगे चले,

स्वविक्रमे प्रतिहते कुंजरेंद्रोऽत्यमर्षितः ॥ चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥ तमापतंतमासाद्य भगवान्मधुसूदनः ॥ निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेंद्र इव लीलया ॥ दंतमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दंतपाणिः समाविशत् ॥ अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिंदुभिरंकितः ॥ विरूढस्वेदकणिकावदनांबुरुहो बभौ ॥ १५ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ॥ रंगं विविशतू राजन्गजदंतवरायुधौ ॥ १६ ॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥ मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥ १७ ॥

उससमय रुधिर और मदकी बूंदें उनके लग रहीं थी ❀ ॥ १५ ॥ और कुछेक पसीनाभी उनके मुखकमलपर आ रहा था । इसप्रकार शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपग्वालोंको संग लिये हाथीदाँतके शोभायमान शस्त्र धारण किये कृष्ण बलदेव दोनो भाई हे राजन्! रंगभूमिमें पहुँचे ॥ १६ ॥ उससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मल्लोंको मल्लोंकी समान दृष्टि आये, मनुष्योंको अत्यन्त सुन्दर जानपड़े और स्त्रियोंने साक्षात् कामदेवस्वरूप समझा, गोपोंको स्वजन जानपडे दुष्टराजाओंको कालके समान दिखाई दिये, वसुदेव देवकीने पुत्रके समान देखा, भोजपति कंसने

❀ शंका—जो कोई दरिद्री भी राजाकी सभामें जाता है, तब अपने वित्तानुसार वस्त्राभूषण पहिर जाता है और शास्त्रमें तथा लोकमें इसको भी बहुत निन्दित कर्म कहतेहैं कि, रक्त देहमें लगाकर राजाकी सभामें जाना, सो श्रीकृष्ण जगत्के ईश्वर होकर अपने देहमें रक्तके विन्दु लगाकर कंसकी सभामें क्यों आये ? ॥

उत्तर—सत्य है जिसके शरीरमें रक्त लगारहता है, उस पुरुषको लोकमें, शास्त्रमें और वेदमें भ्रष्ट कहते हैं परन्तु श्रीकृष्ण कंसका नाश करनेके लिये विचारकर उन्मत्त प्रमत्तकी नाईं मथुराको चलेगये और शूरवीरोंको शरीरमें रक्त लगाकर सभामें जाना कुछ दोष नहीं है, इसलिये जगदीश्वर शरीरमें रक्त लगाकर सभामें गये ॥

तो यही देखा कि, साक्षात् मेरी मृत्यु चली आती है अज्ञानियोंको भयंकर रूप दृष्टि पडे और ज्ञानियोंको परमतत्त्व रूप दृष्टि आये, यादवोंको परम देवतारूप जानपडे, अधिक क्या कहैं जैसी जिसकी भावना थी उसे उसीप्रकार दिखाई दिये ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीको संग लेकर रंगभूमिमें पहुँचे ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कुवलयापीड हाथीको मरा देख जो किसीके जीतनेमें न आवैं, ऐसे कृष्ण बलदेवको देख अत्यन्त धैर्यवान् राजा कंस भी डर गया ॥ १८ ॥ बडी भुजा विचित्र वेष आभूषण माला इत्यादि वस्त्रोंको धारण किये भगवान् कृष्ण बलदेव रंगभूमिमें जाकर ऐसे शोभायमान लगनेलगे, जैसे उत्तमरूप धारण करनेवाला नट शोभायमान लगता है । इसप्रकार अपनी कान्तिसे देखनेवाले

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ॥ कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥ १८ ॥ तौ रेजतू रंगगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगंबरौ ॥ यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपतौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मंचस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ ॥ २० ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां श्लिष्यंत इव बाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥ २२ ॥ एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ॥ अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ ॥

पुरुषोंके मनको चुरातेथे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! मंचानोंके ऊपर बैठे पुरवासी देशवासी जन पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलदेवको देख आनंदके वेगसे प्रफुल्लित मुख होगये और अपने नेत्रोंसे उनके मुखकी शोभा देखकर तृप्त न हुए ॥ २० ॥ इस प्रकार नेत्र चलानेलगे कि, मानों रूपको पीजायँगे, जीभ ऐसी चलातेथे मानों चाट जायँगे, नासिका ऐसी चलावैं मानों सूंघलेंगे भुजा ऐसी चलावैं, मानों लिपटजायँगे । जैसा श्रीकृष्णचन्द्रका रूप कानोंसे सुनाथा उसीप्रकार आँखोंसे देखकर उनके रूप गुण माधुर्य्य ढिठाईसे बुद्धि जिनकी होगई ऐसे पुरुष जैसा सुना वैसाही आपसमें कहनेलगे ॥ २१ ॥ ॥२२॥ कि, यह जो कृष्ण बलदेव हैं सो साक्षात् भगवान् हरि नारायण हैं और अपने अंशसहित इस संसारमें वसुदेवके घर अवतार लियाहै ॥ २३ ॥

देखो यह जो साँवरा बालक है, इसने देवकीसे जन्म लिया था. अब तक छिपा रहा, क्योंकि पिताने गोकुलमें पहुँचादिया था, इसलिये नन्दजीके घर वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इसी कृष्णने पूतना मारी और बगलेका स्वरूप धरेहुए बकासुर दैत्यको मारा, यमलार्जुन वृक्ष उखाड़े और केशी अघासुर इत्यादिक बहुतसे दानव मारे ॥ २५ ॥ देखो जब वनमें अग्नि लगी थी, तब इसी कृष्णने गौ, ग्वाल बचाये थे, काली सर्पको दंड दिया और इन्द्रका मद दूर किया ॥ २६ ॥ यही सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको हाथमें लिये रहा, वर्षा, पवन, वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा करी ॥ २७ ॥ गोपियें इस कृष्णका नित्य प्रसन्न हँसन चितवन युक्त श्रमरहित मुख देखकर अनेक तापोंको दूर करतीं थीं ॥ २८ ॥

एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ॥ कालमेतं वसन्गूढो ववृधे नंदवेश्मनि ॥ २४ ॥ पूतनाऽनेन नीतांतं चक्रवातश्च दानवः ॥ अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥२५॥ गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ॥ कालियो दमितः सर्प इंद्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ॥ वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥ २७ ॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ॥ पश्यंत्यो विविधांस्तापांस्तरंति स्मा ऽऽश्रमं मुदा ॥ २८ ॥ वदंत्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ॥ श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥ अयं चास्याग्रजः श्रीमान्रामः कमललोचनः ॥ प्रलंबो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ॥ कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

अधिक क्या कहैं, इस कृष्णसे यह यदुवंश बहुत विख्यात हो, सम्पत्ति, यश बडाई पावैगा और इसी कृष्णसे रक्षा होगी इस प्रकार वे मनुष्य परस्पर बात चीत करनेलगे ॥ २९ ॥ कमलके समान नेत्र स्वरूपवान् इस कृष्णके बडे भाई बलरामजीने प्रलम्बासुर धेनुकासुर मारे, क्योंजी ! मारे तो कृष्णने बलदेवका नाम क्यों लेते हो ? देखी सुनी बातोंमें भी भेद होजाताहै ॥ ३० ॥ हे महाराज ! सब मनुष्य इस प्रकार कहही रहे थे और नगाडे बजही रहे थे कि, इतनेमें चाणूर नामक बलवान् श्रीकृष्ण बलदेवको संबोधन देकर बोला ॥ ३१ ॥

कि हे नंदके पुत्र ! हे राम ! तुममें बल अधिक है और कुश्ती लडनी भी भलीप्रकार जानते हो, यही सुनकर राजा कंसने तुम्हें बुलायाहै ॥ ३२ ॥ क्योंकि प्रजा मन कर्म वचनसे राजाका प्रिय करै तो कल्याण प्राप्त होताहै और जो विपरीत करतेहैं उनका कल्याण नहीं होता ॥ ३३ ॥ और यह बात भी प्रगट है कि, प्रतिदिन बछडोंके चरानेवाले गोप प्रसन्न होकर व्रजमें कुश्तीका खेल करके गाय चरातेहैं ॥ ३४ ॥ इसकारण हम तुम कुश्ती लडकर राजा कंसका प्रिय करैं तो राजा कंस प्रसन्न होंगे और फिर सब प्राणी हमारे ऊपर प्रसन्न होंगे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र चाणूरका वचन सुनकर और कुश्ती लड़ना अपने योग्य जान बडाई करके उस समयके उचित वाक्य कहने लगे ॥ ३६ ॥ कि, जिस

हे नंदसूनो हे राम भवंतौ वीरसंमतौ ॥ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥ प्रियं राज्ञः प्रकुर्वंत्यश्श्रेयो विंदंति वै प्रजाः ॥ मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ॥ वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडंतश्चारयंति गाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे ॥ भूतानि नः प्रसीदंति सर्व भूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥ तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः ॥ नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनंद्य च ॥ ३६ ॥ प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ॥ करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बाला वयं तुल्य बलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ॥ भवेन्नियुद्धं माऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ३८ ॥ चाणूर उवाच ॥ न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ॥ लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ ३९ ॥

कंसकी तुम प्रजा हो उसी कंसकी हम वनमें रहनेवाली प्रजा हैं इसलिये राजा कंसका नित्य प्रिय करैं इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ परन्तु देखो हम बालक हैं इसलिये हम अपने समानके बालकोंसे कुश्ती लडैंगे जैसा उचित हो उसी रीतिसे कुश्ती लड़ो, क्योंकि मल्लोंकी सभामें अधर्म न हो ॥ ३८ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चाणूर बोला कि, तुम बालक नहीं हो और बलियोंमें बलवान् बल देव भी बालक नहीं है, किशोर नहीं हो क्योंकि, हजार हाथियोंका बल रखनेवाला कुवलयापीड़ हाथी तुमने लीलापूर्वकही मारडाला ॥ ३९ ॥

• द.पू. १६३॥

इसलिये हमारे संग तुम कुस्ती लड़ो, यह अनीति नहीं है, हे वृष्णिवंशमें जन्मे कृष्ण ! मेरी तुम्हारी और बलराम मुष्टिककी कुस्ती हो ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कुवलयापीडवधोनाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ दोहा—कंसादिकको वध कियो, मॉइन ज्ञान बताय। दर्श कियो पितु मातुको, चौंवालिस अध्याय ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित् ! इसप्रकार निश्चय संकल्प कर नीलाम्बर पीतांबरके कच्छे बाँध खंभे ठोंककर खड़े होगये.इसके उपरान्त मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण तो चाणूरके सन्मुख हुये और रोहिणीनन्दन बलरामजी मुष्टिकसे जुटे ॥ १ ॥ हाथोंसे हाथ, पॉवोंसे पॉव मिलाय परस्पर जीतनेकी इच्छासे एक एकको

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै ॥ मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं चर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः ॥ आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्धा पद्भ्यामेव च पादयोः ॥ विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ॥ शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरंभावपातनैः ॥ उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुंधताम् ॥ ४ ॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ॥ परस्परं जिगीषंतावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ॥ ऊचुः परस्परं राजन्सानुकंपा वरूथशः ॥ ६ ॥

बलात्कार खैंचनेलगे ॥ २ ॥ अरत्निमें[1] अरत्नि मिलाय घुटुओंसे घुटुएँ मिलाय, शिरसे शिर, छातीसे छाती मिलाकर कृष्ण और चाणूर दोनों परस्पर कुस्ती लड़नेलगे ॥ ३ ॥ चारोंओर घुमाना, धक्का देना, परिरम्भण अर्थात् हाथसे विडारना, अवपातन अर्थात् नीचे पटक देना, उत्सर्पण अर्थात् छोडकर पीछेसे आगे तक जाना, अपसर्पण अर्थात् पीछे जाकर खड़ा होना इस प्रकार दांव पेंच कर करके लडनेलगे ॥ ४ ॥ उत्थापन अर्थात् पॉव और घुटुएँ मिलाकर गिरतेहैं, उनका उखाडदेना चालन अर्थात् बँधे दॉवको दूर करना, स्थापन अर्थात् हाथ पाँव पकडकर मिलादेना इसप्रकार परस्पर देहको पीडा देने लगे ॥ ५ ॥ इसप्रकार इनका युद्ध देखकर वहांकी बैठी हुई स्त्रियें परस्पर कहने लगीं कि, देखो !

१ अरत्नि—सवुष्टिहस्त अर्थात् कोहनीसे बीचकी अगुलीतक ।

यह कृष्ण तो निर्बल है और चाणूर सबल है, यह विचार वह स्त्रियें अत्यन्त दयाको प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥ इन राजसभामें बैठनेवालोंकोभी महाअधर्म होगा क्योंकि राजाके देखनेको कहीं निर्बल सबलकी कुस्ती कराई जाती है ॥ ७ ॥ भला विचारो तो सही कि, कहां तो वज्रसे कठोर अंगवाले पर्वतके समान ऊँचे ऊँचे सब मल्ल और कहाँ अतिसुकुमार कोमल अंग जिनकी यौवन अवस्था भी अभी प्राप्त नहीं हुई ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र ॥ ८ ॥ इस सभामें इस समय निश्चय धर्मनाश होरहा है इसकारण इस सभामें बैठना उचित नहीं, क्योंकि जहाँ धर्मका नाश हो वहां कभी न बैठे

महानयं बताऽधर्म एषां राजसभासदाम् ॥ ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छंति पश्यतः ॥ ७ ॥ क वज्रसारसर्वांगौ मल्लौ शैलेंद्रसन्निभौ ॥ क्वचातिसुकुमारांगौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥८॥ धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ॥ यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥ न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनांबुजम् ॥ वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवांबुभिः ॥ ११ ॥

॥ ९ ॥ विवेकी पुरुषको ऐसी सभामें जाना योग्य नहीं है क्योंकि दोषोंको स्मरणकर बातको जानकर जो चुप बैठा रहे तो दोष लगै और किसीकी झूंठी सच्ची कहै तो दोष लगै, अथवा हम किसीकी भली जाने न बुरी ऐसे कहै तो दोषका भागी हो इसकारण सभामें जाना योग्य नहीं है ॥ १० ॥ " सत्य बोलनेवालेको दुःख नहीं होता सत्ययुक्त पुरुषको कोई विघ्न दोष नहीं सता सके". * शत्रुके चारों ओर

* दृष्टान्त—एक राजाने एक बाजार बनवाया और कहा कि जो वस्तु यहाँ बेचनेको लावेगा और सन्ध्यातक न बिकैगी, उसे मैं स्वयं ले लूंगा इसप्रकार वह बाजार विख्यात होगया, एक दिन एक लुहार लोहेकी शनैश्चरकी मूर्त्ति बनाकर लाया, एक लाख रुपया उसका मोल मागा और कहा कि,जिसके यहा यह मूर्त्ति रहेगी उसके यहाँ द्रव्यादि कुछ न रहेगा, अब उस अनिष्टकारक मूर्त्तिको किसीने न लिया,सन्ध्यासमय राजाने देखा कि बडी भीड होरही है, कारण पूछतेही राजाने विचारकर उस मूर्त्तिको ले लिया और लाखरुपये उसे देदिये, जब राजाने घरमें मूर्त्ति रक्खी तो पहले लक्ष्मी राजासे बोली महाराज! मैं जातीहूं राजा बोला क्यों? लक्ष्मीजी बोलीं जहाँ शनैश्चर देव रहैं वहाँ हमारा क्या काम? राजाने कहा जाओ इसीप्रकार नीति, साम, दाम, दण्ड, भेद, सब रूप धरकर आये और राजाने जाने दिया पीछेसे जब सत्यदेव आये और राजासे कहकर जानेलगे तब राजाने हाथ पकडकर कहा कि, आपके रखनेको तो हम शनैश्चर देवको लाये हैं, तुम कैसे जाते हो? सत्यदेवसे कुछ उत्तर न बन पडा, और रहगये सत्यके रहनेसे नीति लक्ष्मी आदि सब लौट आये और सत्यके प्रभावसे शनैश्चर राजाका कुछ न कर सके ॥

दौड धूप करते श्रीकृष्णके मुखकी शोभा देखो, कुश्तीमें जोर करनेसे इनके मुखपर पसीनेकी बून्दें आय रहीहैं, जैसे कमलकोशके ऊपर ओसकी बून्दें पडतीहैं ॥ ११ ॥ अरुण नेत्र बलदेवजीके मुखकी शोभा देखो मुष्टिकके ऊपर क्रोध आय रहाहै, तो भी मुसकानसहित हैं, इसलिये सुन्दर लगतेहैं॥१२॥भूमिमें व्रजभूमि परमपवित्र है, क्योंकि जिसके वनके चित्रविचित्र फूलोंको धारण किये पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित मनुष्यरूपमें छिपकर गौओंको चराती समय बांसुरी बजाते खेलते फिरतेहैं, जिनके चरणोंका महादेव और लक्ष्मीजी भी पूजन करती हैं ॥ १३ ॥ बडा आश्चर्य है कि, गोपियोंने ऐसा क्या तप किया है जिसकारण इनसे श्रेष्ठ कोई नहीं और जिनकी समान कोई नहीं; इनसे अधिक

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ॥ मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरंभशोभितम् ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो य दयं नृलिंगगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ॥ गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयांचति गिरित्ररमार्चितांघ्रिः ॥ १३ ॥ गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ॥ दृग्भिः पिबंत्यनुसवाभिनवं दुरा पमेकांतधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥ या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेंखेंखनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ॥ गायंति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकंठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥ प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं गोभिस्समं क्वणयतोस्य निशम्य वेणुम् ॥ निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यंति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥

कोई नहीं देखा, जो आभूषण वस्त्र विनाही सुंदर लगताहै, यश लक्ष्मी ऐश्वर्य इनको एकान्त स्थान, अर्थात् सर्वदा जिनमें वास करें ऐसे प्यारेके स्वरूपको दृष्टिसे देखतेहैं ॥ १४ ॥ हे सखियो ! व्रजबालायें धन्य हैं, जो गोपी गाय दुहानेके समय, धान्य छरती समय, दूध विलोती समय, बालकोंको झुलाती समय, और चुपाती समय, घरोंका कामकाज करती समय, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त होकर उनके गुण गाती हैं, उससमय उनका मन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमेंही लगजाता है, और प्रेमानन्दसे उनके नेत्रोंमें आंसू आजातेहैं ॥ १५ ॥ प्रातःकाल जब व्रजसे गौ चरानेको जातेहैं और संध्यासमय जब गायोंको ले बांसुरी बजातेहुए आतेहैं,उससमय वह महाभाग गोपियें बांसुरीका शब्द सुन शीघ्र

अपने घरसे निकल, मार्गमें आय सुंदर मुसकान दयापूर्वक चितवनयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका दर्शन करती हैं ॥ १६ ॥ हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इधर तो स्त्रियें परस्पर इस प्रकार बातें कर रही थीं, और उधर योगके ईश्वर सबका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शत्रुओंके मारनेका विचार करनेलगे ॥ १७॥ भयसहित स्त्रियोंकी बातें सुनकर, पुत्रोंमें स्नेहके शोकसे व्याकुल,और पुत्रोंके बलको नहीं जाननेवाले माता पिता वसुदेव देवकी अत्यन्त दुःखित हुए ❋॥१८॥ अनेकप्रकार कुश्तीके दॉव पेंचोंसे जैसे श्रीकृष्ण और चाणूर लडतेथे उसीप्रकार महात्मा बलदेव और मुष्टिक लडनेलगे ॥ १९॥ वज्रपातके समान कठोर भगवान्के अंगके प्रहारसे, चाणूरका अंग चुरकुट होगया, जिससे वह बहुत दुःखित

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ॥ शत्रुं हंतुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभायाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ॥ पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ॥ युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९ ॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ॥ चाणूरो भज्यमानांगो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥ २० ॥ स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्यकरावुभौ ॥ भगवंतं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यऽबाधत ॥ २१ ॥ नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ॥ बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन्हरिः ॥ २२ ॥

हुआ ॥ २० ॥ इसके उपरान्त शिकरेके वेगके समान चाणूरने दोनों हाथकी मुष्टि बॉध, क्रोधमें भर ऊपरको उछल भगवान् वासुदेवकी छातीमें एक घूसा मारा ॥ २१ ॥ हे महाराज जिसप्रकार हाथी फूलोंकी मालाके लगनेसे नहीं चलायमान होता, वैसेही श्रीकृष्णचन्द्र उसके मुष्टिकसे चलायमान न हुए, इसके उपरान्त अत्यन्त क्रोधित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चाणूरके दोनों हाथ पकड, बहुत घुमाय बडे वेगसे पृथ्वीमें पटकदिया, गिरतेही उसके प्राण निकलगये और गहने, केश, माला इत्यादि सब बिखरगये गिरते समय ऐसा शब्द

❋ शंका–जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रगटहुये उसी समय वसुदेव देवकीको ज्ञान दिया और वसुदेव देवकी श्रीकृष्णके समुद्र सरीखे चरित्र और कर्मोको जानते थे और सुन भी रक्खा था, फिर वसुदेव देवकी जानबूझकर क्यों अज्ञानी होगये?

उत्तर–श्रीकृष्णके माता पिता अज्ञानी नहीं हुए, पुत्रके मोहमें व्याकुल होगये, पुत्रकी मोहरूप अग्निसे भस्म होगये, इसलिये अज्ञानियोंकी नाई होगये, क्योंकि ससारमें पुत्रका मोह बडा भारी है पुत्रके मोहमें बुद्धि ठिकाने नहीं रहती ॥

हुआ कि, मानो इन्द्रध्वज गिरा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसीप्रकार मुष्टिक कि, जिसने पहले बलदेवजीके मुष्टिप्रहार किया था, उसे बलदेवजीने थाप मारकर गिरादिया ॥ २४ ॥ मुष्टिक कंपित हो, मुखसे रुधिर वमन करता, पीड़ित हो प्राण निकल जानेसे जैसे पवनका मारा वृक्ष उखडकर गिरपडता है उसीप्रकार गिरगया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरान्त दौडतेहुए कूट मल्लको मारनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने लीलापूर्वक तिरस्कार कर बांई मुष्टिसे मारडाला ॥ २६ ॥ शल, तोशलने अपने मनमें विचार किया कि, दण्डवत्के बहाने चरण पकडकर पटक देंगे परन्तु भगवान् तो सबके बाहर भीतरकी जाननेवाले हैं, यह जिससमय दण्डवत् करनेको आये उससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने

विस्रस्ताऽऽकल्पकेशस्रगिंद्रध्वज इवापतत् ॥२३॥ तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ॥ बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ॥ व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवांघ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तो रामः प्रहरतां वरः ॥ अवधील्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥२६॥ तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ॥ द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः॥२७॥चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ॥ शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥२८॥ गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गंतौ धुतनूपुरौ ॥२९॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ॥ ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति ॥ ३० ॥ हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ॥ न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥

एक लात ऐसी मारी जिसके लगनेसे शिर फटगया, इसप्रकार शल तोशल दोनों दो खण्ड विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिरगये ॥ २७ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल इत्यादि मुख्य मल्ल जब मारेगये, तब वहाँ और जो मल्ल उपस्थित थे, वह अपना प्राण बचानेके लिये भागगये ॥ २८ ॥ बराबरके गोपोंको अखाडेमें खैंच श्रीकृष्णबलदेव उनके संग विहार करनेलगे । उससमय बाजे बज रहेथे और श्रीकृष्णचन्द्रके नूपुर नृत्य करनेसे परम सुहावन बज रहेथे ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके चरित्र देख कंसके विना सब मथुरावासी प्रसन्न होगये, मुख्य मुख्य ब्राह्मण तथा सज्जनपुरुष "साधु साधु" ऐसे कह कह स्तुति करनेलगे ॥ ३० ॥ जब बड़े बड़े मल्ल मरगये कितनेई भागगये तब भोजवं

शियोंके राजा कंसने नगारे थमादिये और क्रोधित होकर कहने लगा ॥ ३१ ॥ कि, कुटिलकर्मा वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे बाहर निकाल दो और गोपोंका धन छीनलो, कुटिलबुद्धि नन्दको बाँध लो ॥ ३२ ॥ खोटीबुद्धिवाले वसुदेवको जल्दी मारो और इसके उपरान्त शत्रुसे मिलनेवाले पिता उग्रसेनको भी अनुचरोंसहित बाँधलो ॥३३॥ इसप्रकार जब राजा कंस बकने लगा तब अत्यन्त क्रोधित हो अव्यय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र धीरेसे उछल ऊंचे मंचानपर चढ़ गये ॥३४॥ तब धीरजवान् अत्यन्त अभिमानी राजा कंसने अपनी मृत्युको आता हुआ देख आसनसे उठकर ढाल तलवार ग्रहण की ॥३५॥ तलवार हाथमें ले आकाशमें जैसे शिकरा पक्षी फिरताहै, उसीप्रकार दाईं बाईं ओर जल्दी जल्दी फिरनेवाले कंसको असह्य और

निस्सारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ॥ धनं हरत गोपानां नं बध्नीत दुर्मतिम् ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ॥ उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ॥ लघिम्नोत्पत्य तरसा मंचमुत्तुंगमारुहत् ॥ ३४ ॥ तमाविशंतमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ॥ मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥ तं खड्गपाणिं विचरंतमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमंबरे ॥ समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥ प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रंगोपरि तुंगमंचात् ॥ तस्योपरिष्टात्स्वय मब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतंत्रः ॥ ३७ ॥ (कंसोपि कृष्णेन जगत्त्रयैकनिवासभूतेन निपात्य सोधः ॥ तेनात्मतन्त्रेण निपीडितोसुं तत्याज राजन्निमिषान्तरेण ॥) तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ॥ हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेंद्र ॥ ३८ ॥

उग्रतेजवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, तार्क्ष्यका पुत्र गरुड़ जैसे सर्पको पकडलेता है उसीप्रकार पकडलिया ॥ ३६ ॥ फिर उसकी फेंट तथा केश पकड ऊंचे मंचानपरसे रंगभूमिमें पटक दिया और इसके ऊपर सर्व जगतके आश्रय और स्वतंत्र कमलनाभ भगवान् स्वयं कूदपडे, केश पकडनेका कारण यह है कि, कंसने देवकीके केश पकडेथे इसलिये उसका बदला लिया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त सिंह जैसे हाथीको खैंचताहै उसीप्रकार सब जगतके देखते मृतकहुए कंसको पृथ्वीमें घसीटनेलगे. हे नरेन्द्र ! उस समय समस्त प्रजामें बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३८ ॥

कंस प्रतिदिन चलायमान चित्तसे जल पीते, बात कहते, चलते, सोते और श्वास लेते चक्र आयुधवाले भगवान्काही शत्रुभावसे ध्यान करता था इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त उस कंसके कंक, न्यग्रोधसे आदि लेकर छोटे आठ भाई अत्यन्त क्रोधित हो कंसका बदला लेनेके लिये दौडकर आये ॥ ४० ॥ उसी समय रोहिणीके सुत बलरामजीने क्रोधित हुए हाथोंमें शस्त्र लेकर आयेहुए कंसके भाइयोको सिंह जैसे पशुओको मारता है, उसी प्रकार परिघ उठाकर मारडाला ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें नगारे बजनेलगे और भगवान्की विभूति जो ब्रह्मा महादेवादिक देवता हैं, सो प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोकी वर्षा करनेलगे, स्त्रियें नृत्य

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपञ्श्वसन् ॥ ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतो तदेव रूपं दुर वापमाप ॥३९॥ तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कंकन्यग्रोधकादयः ॥ अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥ तथाऽतिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः ॥ अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥४१॥ नेदुर्दुंदुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ॥ पुष्पैः किरंतस्तं प्रीत्या शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ॥ तत्राभीयुर्विनिघ्नंत्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिंग्य शोचतीः ॥ विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजंत्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथ वत्सल ॥ त्वया हतेन निहता वयं ते सगृह प्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ॥ न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमंगला ॥ ४६ ॥

करनेलगीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त पतिके मरणसे अत्यन्त दुःखित हो नेत्रोमें ऑसू भर कंसकी स्त्रियें शिर पीटती जहॉ उसकी लोथ पडी थी, वहॉ आईं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यामें पड़े पतिको आलिंगनकर शोकातुर स्त्रियें वारंवार नेत्रोंसे ऑ बहाय बहाय पुकार पुकार कर विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ हा नाथ ! हे प्राणपति ! हे धर्मके जाननेवाले ! हे करुणानाथ ! हा दीनवत्सल ! तुम आप मरकर घरबार सहित और बालकों सहित हमको क्यो मारगये ? ॥ ४५ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम विना हम विधवा होकर शोभायमान नही लगतीं उसी प्रकार तुम्हारे

विना मथुरापुरी भी शोभा नहीं पाती क्योंकि संपूर्ण मंगल उत्सव इसमेंसे दूर होगये ॥ ४६ ॥ निरपराध प्राणियोंसे तुमने बड़ा द्रोह किया, इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई जो मरे पड़ेहो, प्राणियोंसे वैर करके कौन पुरुष सुख पाता है ॥ ४७ ॥ क्योंकि इन संसारमें समस्त प्राणियोंके उत्पत्ति, पालन और नाशकर्त्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रही हैं, इसलिये जो इनकी अवज्ञा करता है, वह कभी सुख नहीं पाता ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा कंसकी स्त्रियोंको समाधान कर कंसकी दाहादिक क्रिया कराई ॥४९॥ इसके उपरान्त माता, पिता देवकी वसुदेवको कंसके बंदीखानेसे छुडाया और राम कृष्ण दोनों भाइयोंने माता पिताके चरणोंमें

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् ॥ तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ॥ गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित्सुखमेधते ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ॥ यमाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बंधनात् ॥ कृष्णरामौ ववंदाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥ देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥ कृतसंवंदनौ पुत्रौ सस्वजाते न शंकितौ ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥ मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥ उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्त्वतर्षभः ॥ प्रश्रयावनतः प्रीणन्नंब तातेति सादरम् ॥ २ ॥

शिर लगाकर प्रणाम किया ॥ ५० ॥ माता, पिता, देवकी वसुदेव, प्रणाम करते पुत्रोंको जगतके ईश्वर जान, भयभीत होकर उनसे नहीं मिले ॥५१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ दोहा–पितुनंदादिक शान्तकर, उग्रसेन दियो राज। बहुरि गये गुरुके भवन, पैंतालिस सुखसाज ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने माता पिताको ज्ञान प्राप्तहुआ जान विचारा कि, यह ज्ञान अभी ठीक नहीं इसलिये सब लोगोंको मोहित करनेवाली अपनी माया फैलाई ॥ १ ॥ यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीको संग लेकर माता, पिताके पास आये और विनयपूर्वक नम्र हो,

हे मातु ! हे पिता ! इस प्रकार आदरपूर्वक प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ २ ॥ हे पिता ! सर्वदा तुम्हें चाहनाही बनीरही और हम पुत्रोंसे बाल्य अवस्था पौगण्ड अवस्था तथा किशोर अवस्थाका सुख कभी तुमको न हुआ ॥ ३ ॥ दैवके मारे हम तुम्हारे निकट वासभी न कर सके, पिताके घर बालक रहते हैं और उनका लालन पालन होताहैं, आनन्द पातेहैं हमको कुछभी प्राप्त न हुआ ॥४॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पदार्थ जिससे हों ऐसा यह देह जिस माताने उत्पन्न किया उनकी यह मरणधर्मा मनुष्य सौवर्षतक सेवा करे परन्तु तोभी उनसे उऋण नहीं होसक्ता ॥५॥ जो पुत्र समर्थ होकर

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कंठितयोरपि ॥ बाल्यपौगंडकैशोराः पुत्राभ्यामभवन्कचित् ॥ ३ ॥ न लब्धो दैवहतयो र्वासो नौ भवदंतिके ॥ यां बालाः पितृगेहस्था विंदंते लालिता मुदम् ॥४॥ सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ॥ न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्पमात्मना च धनेन च ॥ वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयंति हि ॥ ६ ॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ॥ गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वस न्मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ॥ मोघमेते व्यतिक्रांता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥

देहसे अथवा धनसे माता पिताको जीविका नहीं देते, उसे परलोकमें यमके दूत उसका मांस उसेही काट काटकर भक्षण कराते हैं॥६॥ माता पिता, वृद्ध, सुशीला स्त्री, पुत्र बालक गुरु, ब्राह्मण अथवा और जो कोई शरण आवै इनका जो मनुष्य भरण पोषण न करे, तो वह मृतकके समान है ❋ ॥ ७ ॥ असमर्थ और कंसके भयके मारे नित्य चंचल मन होनेके कारण तुम्हारी सेवा विना किये हमारे इतने दिन व्यर्थ बीतगये ॥ ८ ॥

---

* शंका–श्रीकृष्णने कहा कि, वृद्ध पिताका सेवन करना चाहिये, परंतु शास्त्रमें ऐसा नियम कहा नहीं है कि, वृद्ध पिताकी सेवा करना और युवा पिताकी सेवा न करना, श्रीकृष्णके वचनसे ऐसा जान पडता है कि, समर्थ भी होवै तौभी युवा पिताकी सेवा न करना, समर्थ होवे वा असमर्थ होवे तब वृद्ध पिताका सेवन करना ऐसा भगवान्‌के वचनसे विदित होताहै फिर भगवान्‌ने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर–"मातर पितर वृद्धम्" इस श्लोकमें वृद्धका अर्थ बूढेपनका नहीं है वृद्ध बूढेका नाम है वृद्धका अर्थ श्रीकृष्णने ऐसा किया है कि, सर्वधर्मसे पिता वृद्ध कहिये श्रेष्ठ, अथवा पण्डित और धर्मशास्त्र भी सब धर्मोंसे पिताको बडा कहते हैं, पितासे माता बडी है, ऐसा धर्मशास्त्रका मत जानकर श्रीकृष्णचन्द्रने वृद्ध पिताका पूजन करनेके लिये कहाथा यह नहीं कहा था कि, बूढे पिताका सेवन करना और युवा पिताका सेवन न करना ॥

हे पिता ! हे मातु ! पराये अधीन होनेके कारण हमसे तुम्हारी सेवा न बनी और दुष्टहृदय कंससे अत्यन्त दुःखित रहे, इसलिये अब हमपर तुम क्षमा करनेके योग्य हो सो क्षमा कीजिये ॥ ९ ॥ इसप्रकार मायासे मनुष्यरूपधारी विश्वके आत्मा हरिके वचनसे मोहित होकर देवकी, वसुदेव पुत्रोंको गोदमें बैठाय परमानन्दको प्राप्तहुए ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! स्नेहके पाशसे बँधे मोहित देवकी वसुदेव ऑसुओकी धारोंसे कृष्ण बलदेवको भिजोते कुछभी न बोले ॥ ११ ॥ देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार माता पिताको सावधान कर नाना उग्रसेनको यादवोंका राजा बनाया ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे महाराज ! हम तुम्हारी प्रजा हैं सो हमें तुम आज्ञा करनेके

तत्क्षंतुमर्हथस्तात मातर्नौ परतंत्रयोः ॥ अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति माया
मनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ॥ मोहितावंकमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिंचंतावश्रुधराभिः स्नेहपाशेन
चावृतौ ॥ न किंचिदूचतू राजन्बाष्पकंठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः ॥ मातामहं
तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥ आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ॥ ययातिशापाद्यदुभिर्नाऽऽसितव्यं
नृपासने ॥ १३ ॥ मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ॥ बलिं हरंत्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४ ॥
सर्वान्स्वज्ञातिसंबंधान्दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ॥ यदुवृष्ण्यंधकमधुदाशार्हकुकुरादिक ॥ १५ ॥ सभाजितान्स
माश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ॥ न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥

योग्य हो और यदुवंशियोंको ययातिका शाप है, इसकारण यादवोंका सिंहासनपर बैठना और राज्य करना योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ मैं सेवकके समान तुम्हारे निकट सदा उपस्थित रहूंगा, बड़े बड़े देवादिक तुमको भेंट देंगे और राजा देंगे इसमें तो कहनाही क्या है ? ॥ १४ ॥ और कंसके डरके मारे जो अपनी जातिके यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह, कुकुरादिक भागगये थे ॥ १५ ॥ उनको बुलाकर और विदेशमें वसनेके कारण जो यादव कृश हो रहे थे, उनका सत्कारकर बहुतसा धन दे तृप्तकर सब विश्वके कर्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने

अपने अपने घरोंमें बसाया ॥ १६ ॥ कृष्ण बलदेवकी भुजासे रक्षित हो, पूर्ण मनोरथ पाय पापको दूर कर, वह यादव घरोंमें रमण करनेलगे
॥ १७ ॥ और नित्य आनंदसे पूर्ण शोभायुक्त दयासहित मंदहास्यपूर्वक चितवन युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलका दर्शन करके परमानंद
होते थे ॥ १८ ॥ भगवान् मुकुन्दके मुखकमलके अमृतको पीकर उस समय वृद्ध भी तरुणावस्थाको प्राप्त हो अत्यन्त बलवान् होगये ॥ १९ ॥
हे राजन् ! इसके उपरान्त भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी नन्दरायजीके पास आय मिल यह वचन बोले ॥ २० ॥ हे पिता ! तुम
स्नेहियोने हमारा पोषण किया बहुत लाड लडाया, अधिक क्या कहैं, माता पिताको अपने पुत्रोंमें अधिक प्रीति होती है, सो तुमने उससेभी अधिक

कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ॥ गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षंतोऽहरहः प्रीता
मुकुन्दवदनांबुजम् ॥ नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥ तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः ॥
पिबंतोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखांबुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथ नंदं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः ॥ संकर्षणश्च राजेंद्र परिष्व
ज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ॥ पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि
हि ॥ २१ ॥ स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ॥ शिशून्बंधुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥
यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ॥ ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥ एवं सांत्वय्य भगवा
न्नंदं सव्रजमच्युतः ॥ वासोऽलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नंदः प्रणयविह्वलः ॥ पूर
यन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥

प्रीति करी ॥ २१ ॥ वही पिता है, वही माता है, जो पराये पुत्रको अपने पुत्रके समान पोषण करै और पोषण करनेमें जिनकी सामर्थ्य न हुई ऐसे
हमारे माता पिताने हमको बालकपनसेही छोड दिया ॥ २२ ॥ हे पिता ! अब तुम व्रजको जाओ हमभी बन्धु बांधवोंका प्रिय करके स्नेहसे दुःखी
जातिवाले और तुम्हारे देखनेको पीछेसे आवेंगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजवासियों सहित नंदरायजीको समझाकर
और अनेक भाँतिके वस्त्र, आभूषण तथा सोने चांदीके बर्त्तन देकर बडे आदरपूर्वक उनका पूजन किया ॥२४॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णका वचन

सुन, नंदरायजी कृष्ण बलदेवको छातीसे लगा, प्रेमसे व्याकुल हो नेत्रोंमें आँसू भर, संपूर्ण व्रजवासियोंको संग ले व्रजको चले ॥२५॥ इसके उपरान्त हे राजन्! शूरसेनके पुत्र वसुदेवजीने ब्राह्मण पुरोहितको बुलाय पुत्रोंका यथायोग्य द्विजन्म संस्कार कराया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त शृंगार करी हुई रेशमी झूल व सुवर्णकी माला पहिरे अनेक गायें बछडों सहित ब्राह्मणोंको दान करीं ॥ २७ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने रामकृष्णके जन्मन क्षत्रके समय जिन गायोंका मनमें संकल्प किया था और कंसने अधर्मसे हरली थीं, उतनीही गौ स्मरण करके ब्राह्मणोको दान करीं ॥२८॥ इसके उपरान्त सुव्रती कृष्ण बलदेव द्विजन्मा संस्कार पाय यदुकुलके पुरोहित गर्गाचार्यसे गायत्रीका उपदेश ले ब्रह्मचर्य व्रतमें रहनेलगे ॥ २९ ॥ यद्यपि

अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः ॥ स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥ या कृष्णरामजन्मर्क्षे मनो दत्ता महामतिः ॥ ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ॥ गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छंतावुपजग्मतुः ॥ काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवंतिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥ यथोपसाद्य तौ दांतौ गुरौ वृत्तिमनिंदिताम् ॥ ग्राहयंतावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच वेदानखिलान्सांगोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥ सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ॥ तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥

संपूर्ण विद्या जाननेवाले सर्वज्ञ अर्थात् सब बातके जाननेवाले कृष्ण बलदेव सब जगत्‌के ईश्वर थे परन्तु तौभी स्वतः सिद्धि निर्मल ज्ञानको मनुष्योंके समान चेष्टा करनेके कारण गुप्त रखते थे ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त कृष्ण बलदेव गुरुकुलमें वास करनेकी इच्छासे कश्यपगोत्री उज्जैनपुरीके वासी सांदीपनि गुरुके पास गये. जो काश्यनामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ ३१ ॥ जितेन्द्रिय कृष्ण बलदेव भले प्रकार गुरुके पास आय, बडे आदरसत्कारसे भक्तिपूर्वक जैसे नारायणकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार गुरुकी सेवा करनेलगे ॥३२॥ शुद्ध भक्तिपूर्वक सेवासे संतुष्ट हुए द्विजन्माओंमें श्रेष्ठ गुरुजीने श्रीकृष्णबलदेवको शिक्षादिक छः अंग और उपनिषदों सहित समस्त वेद पढाये ॥ ३३ ॥ इसके उपरांत मंत्र और देवताके ज्ञानसहित शस्त्र चलाना,

धनुर्वेद और धर्मशास्त्र, राजनीति, मीमांसादिक, तर्कविद्या तथा शत्रुसे मिलापकरना, युद्धकरना, उसके ऊपर चढ़जाना, निकट जाकर रहना, अपनी ओर तोडलेना, मेल करना, यह छः प्रकारकी राजनीति पढ़ाई ॥ ३४ ॥ सब मनुष्योंमें तथा उत्तमोंमें उत्तम सब विद्याओंके चलानेवाले सावधान कृष्ण वलदे वने हे राजन् ! गुरुके विना बतायेही संपूर्ण विद्या सीख लीं ॥ ३५ ॥ चौंसठ रात्रियोंमें गाना, बजाना, नृत्य करना, आदि चौंसठ कला सीखीं, जब विद्या पढ़ चुके तब हे राजन् ! कृष्ण बलदेव दोनों भाई गुरुजीसे गुरुदक्षिणाकी आज्ञा करो इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३६ ॥ तब सांदीपनिने कृष्ण बलदेवकी अद्भुत महिमा देख कि, मनुष्योंमें ऐसी चमत्कारी कहां ? स्त्रीसे परामर्शकर प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें डूबकर जो पुत्र मरगया था सो स्त्रीके कहनेसे उसेही

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ॥ सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयतौ तावतीः कलाः ॥ गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छंदयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥ द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ॥ संमंत्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयांबभूव ह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ॥ वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिंधुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ॥ योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥ ३९ ॥ समुद्र उवाच ॥ नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पंचजनो महान् ॥ अंतर्जलचरः कृष्ण शंखरूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥ आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ॥ जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥ तदंगप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ॥ ततः संयमिनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥ ४२ ॥

मांगा ॥ ३७ ॥ तथास्तु, इस प्रकार कह अत्यन्त पराक्रमी, बडे रथी, कृष्ण बलदेव रथमें बैठ प्रभासक्षेत्रमें पहुँच समुद्रके किनारे जाय एक क्षण बैठगये, तब समुद्र कृष्ण बलदेवको आया जान उनकी पूजा लेकर आया ॥ ३८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस समुद्रसे कहनेलगे कि, जो हमारे गुरुके बालक तैंने यहां बडी लहरोंसे डुबा लिये हैं वे गुरुके पुत्र लादे ॥ ३९ ॥ तब समुद्र बोला कि देव ! मैंने तो तुम्हारे गुरुके पुत्र नहीं डुबाये, बरन् मेरे भीतर रहनेवाला शंखरूप धारणकिये एक बड़ा दैत्य है, वह हर लेगया है और निश्चय उसके पास है, यह सुनतेही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शीघ्रतासे जलमें घुस पंचजन दैत्यको मारडाला परन्तु उसके पेटमें बालक नहीं देखा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इसके उपरांत

उस दैत्यके अंगमेंसे शंख ले, श्रीकृष्णचन्द्र रथपर आये और वहाँसे यमराजकी अति प्यारी संयमनीपुरीमें आये ॥ ४२ ॥ और वहाँ जाकर बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शंख बजाया, तब प्रजाका दण्ड देनेवाला धर्मराज शंखका शब्द सुन ॥ ४३ ॥ कृष्ण बलदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेलगा और सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे हाथ जोडकर बोला कि, हे विष्णु भगवान् लीलापूर्वक आपने मनुष्यका रूप धारण किया है; सो तुम्हारी क्या सेवा करूं ? ॥४४॥तब श्रीभगवान् बोले कि,हे महाराज ! यहाँ जो आप गुरुपुत्रले आयेहैं सो लादीजिये,तब यमराजने कहा कि, वह अपने कर्मोसे बँधे पडे हैं कैसे लाऊं ? तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि उन्हें मेरी आज्ञा हुई है कुछ मेरी आज्ञासे

गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ शंखनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ ४३ ॥ तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ॥ लीलामनुष्ययोर्विष्णवोर्युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबंधनम् ॥ आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥ तथेति तेनोपनीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ॥ दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥ सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ॥ कोनु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥ ४७ ॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४८ ॥ गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ॥ आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥

कर्म बलवान् नहीं है ॥ ४५ ॥ तब " जो आज्ञा" ऐसा कहकर यमराजने गुरुपुत्र लादिया, इसके पीछे यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्ण बलदेव उसको ले अपने गुरुको देकर बोले कि, और वर मांगो ॥ ४६ ॥ तब गुरु कहने लगे कि, हे पुत्र ! तुमने गुरुसेवा भलीभांति करी और तुमसरीखोंका जब मैं गुरु हुआ तब मेरे कौन बातकी चाहना शेष रही ? ॥ ४७ ॥ हे वीर ! अब तुम अपने घरको जाओ इस लोक और परलोकमें तुम्हारी पवित्र कीर्त्ति होवे, तुम्हारे वेद नवीन पढेहुए स्मरण बने रहैं ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार गुरुसे आज्ञा पाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव

दोनों भाई पवनके समान शीघ्रगामी मेघकी तुल्य गर्जनेवाले रथमें बैठ अपने घरको आये ॥ ४९ ॥ बहुत दिनोंसे नहीं देखनेके कारण रामकृष्णका दर्शनकर प्रजा बडे आनन्दको प्राप्त हुइ जैसे गयाहुआ धन मिलनेसे आनन्द होताहै ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गुरुकुलवासो नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ दोहा–छियालीस अध्यायमें; उद्धव व्रजहि पठाय । शोक यशोदा नन्दको, मेटो ज्ञान सिखाय ॥४६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णके प्रिय मंत्री सखा अर्थात् बृहस्पतिके शिष्य बुद्धिमानों में श्रेष्ठ जो उद्धवजी थे ॥१॥ उन्हें शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एकान्तमें बुला हाथ पकडकर कहा ॥ २ ॥ हे उद्धव !

समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ अपश्यंत्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥ इति श्रीमद्भाग०म०द०पू० नन्दादिसान्त्वनोग्रसेनाभिषेकगुरुकुलवासकरणं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृष्णीनां प्रवरो मंत्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥ शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥ तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकांतिनं क्वचित् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥ गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ॥ गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥ ३ ॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ॥ ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ॥ स्मरंत्योंग विमुह्यंति विरहौत्कंठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥

हे साधु ! तुम व्रजको जाओ हमारे माता पिताको प्रसन्न करो और गोपियोंको जो मेरे बिछुडनेमें कष्ट हुआ है सो मेरा संदेशा लेजाकर दूर करो ॥३॥ मुझमें जिनके मन और प्राण लग रहे हैं मेरेलिये पति पुत्रादि त्याग दिये हैं मैंही प्यारा जिनके आत्मा हूं जो मुझमें मन लगाकर रहती हैं मेरेलिये जिन्होंने इस लोक तथा परलोकके जितने सुखके उपाय हैं सब त्याग दिये हैं. उनको मैं सुख देताहूं ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! उनका प्यारा मैं जबसे दूर आयाहूं तबसे वह गोकुलकी स्त्रियें मेरी सुधि करके विरहसे मेरी चाहके कारण विवश हो मोहित होजातीहैं * ॥ ५ ॥

* शका–व्रजसे और गोकुलसे मथुरापुरीका चारकोशका अन्तर है और मथुरासे व्रजभी चारही कोश है, परन्तु व्रजको श्रीकृष्ण कभी नहीं गये और गोपीभी मथुराको कभी नहीं गई गोपियें दही छाँछ, माखन वेचनेको भी मथुरापुरीको कभी नहीं गईं, छाँछ वेचनेको आतीं तो भी मोहन प्यारेकी मुलाकात होजाती, हे स्वामिन् ! परस्पर मित्रसे मिलनेके लिये स्त्री, वा पुरुष हजारों कोश चले जाते हैं और कृष्ण–

क्योंकि जब मैंने उनसे कह दियाथा कि मैं शीघ्रही आऊंगा इस कारणसे किसी प्रकार वे गोपियें प्राण धारण किये रहीं सो भी महाकष्टसे यदि उनका आत्मा उनके शरीरमें रहता तो दग्ध होजाता वह तो मुझमें लीन है इसीलिये वह प्राण धारण कररहीं हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब उद्धवजी बड़े आदरपूर्वक स्वामीके संदेशेको ले रथमें बैठ नंदरायजीके गोकुलको चले ॥ ७ ॥ और सूर्यके छिपतेही शोभायमान नंदरायजीके गोकुलमें पहुँचे तब संध्यासमय आतीहुई गायोंके खुरोंकी रेणुसे उद्धवजीका रथ ढक गया ॥ ८ ॥

धारयंत्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथंचन ॥ प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त उद्धवो राजन्संदेशं भर्तुरादृतः ॥ आदाय रथमारुह्य प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ ७ ॥ प्राप्तो नंदव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ ॥ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ॥ धावंतीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥ इतस्ततो विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मंडितं सितैः ॥ गोदोहशब्दाभिरवैर्वेणूनां निस्स्वनेन च ॥१०॥ गायंतीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ॥ स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥११॥

पुष्पवती गायोंके लिये चारों ओरसे मतवाले बैलोंके युद्धका शब्द वहाँ होरहाथा और ऐनोंके भारसे व्याईहुई गायें दौड दौडकर अपने बछडोंके पास आतीथीं ॥९॥ जहाँ तहाँ सफेद गायें गायोंके बछड़े कूदते फाँदते फिरतेहैं गायोंके दुहनेका शब्द जहाँ तहाँ होरहाहै कोई कहता था "लाओ" कोई कहताथा "देओ" ऐसा कोलाहल जहाँ तहाँ मचरहाथा और बाँसुरी बजनेका भी शोर होरहाथा ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और

—और गोपियोंकी ऐसी परम मित्रता थी फिर चार कोशके अन्तर मिले भटे क्यों नहीं इसका क्या कारण ? इधर तो कृष्णके मनमें मोहकी ज्वाला भलकरही थी और उधर गोपियोंके हृदयमें मोहकी ज्वाला जलरही थी, फिर क्या कारण जो कोई न तो मथुरासे गया, न कोई गोकुलसे आया ? यह बडा सन्देह है ।

उत्तर—श्रीकृष्ण लोकनिन्दासे डरे व्रजमें जो लीला हमने करी तब हम बालक थे अब हमारी युवा अवस्था हुई जो गोपी व्रजसे हमारे पास आवेंगी अथवा व्रजको हम जायँगे तो पहिलेके समान चरित्र मथुरामें तथा व्रजमें करने पडेंगे और वह चरित्र हम यहाँ करें तो ससारमें हमारी निन्दा होगी, इस बातका डर करके मायासे गोपियोंको मोहित कर दिया जब गोपी मोहको प्राप्त होगई तो मनही मनमें विना कृष्ण प्यारेके मनमें परिताप तो किया परन्तु मथुराकी ओरको पाँव न रक्खा और भगवान् लोकलाजसे गोकुलको नहीं गये ॥

बलदेवजीके मंगलरूप कर्मोंको बनी ठनी गोपियें गातीहुई अत्यन्त शोभायमान लगतींथीं ॥११॥ अग्नि, सूर्य, अभ्यागत, गौ, ब्राह्मण, पितर, देवता इनके पूजनकी सामग्री जहाँ तहाँ धरी थीं, धूप होरहीथी दीपक बलरहे थे, फूल धरेथे, गोपोंके घरोंमें पूजा होनेसे यह व्रज मनोहर होरहा था ॥ ॥ १२ ॥ सब ओरसे फुलवारी फूल रहींथीं, पक्षी बोलरहे थे भौंरे गुंज रहेथे राजहंस और कारंडवपक्षी जहां बैठेथे, ऐसे कमलोंके समूहसे वह व्रज शोभायमान होरहा था ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्रियमित्र उद्धवजीको आया जान नन्दरायजी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मिले और श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे आये हैं, यह जानकर ईश्वर बुद्धिसे पूजन किया ॥ १४ इसके उपरान्त अत्यन्त श्रेष्ठ सामग्रियोंका भोजन कराय, शय्यापर सुख

अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ॥ धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥ सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णैः पद्मखंडैश्च मंडितम् ॥ १३ ॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ॥ नंदः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽऽर्चयत् ॥ १४ ॥ भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ॥ गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥ कच्चिदंग महाभाग सखा नः शूरनंदनः ॥ आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥ १६ ॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ॥ साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७ ॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ॥ गोपान्व्रजं चात्मनाथं गावो वृंदावनं गिरिम् ॥ १८ ॥ अप्यायास्यति गोविंदः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ॥ तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥

पूर्वक पौढ़ाय, चरण दाब, मार्गका खेद मिटाय, उद्धवजीसे नन्दरायजी बोले ॥१५॥ हे बडभागी उद्धव! कहो शूरसेनके पुत्र हमारे सखा वासुदेवजी पुत्रोंसहित कुशलपूर्वक हैं ? कंसके बंदीखानेसे छूटे हैं? भाई बन्धु हितकारियोंसहित प्रसन्न हैं ? ॥ १६ ॥ और पापी कंस समस्त सेवकोंसहित मारा गया. यह बड़ाही मंगल हुवा क्योंकि वह कंस धर्मस्वभाववाले यादवोंसे सदा वैर करताथा ॥ १७ ॥ हे उद्धवजी ! और यह भी कहो कि, वह कृष्णचन्द्रभी कभी हमारी और अपनी माताकी सुधि करते हैं, तथा सुहृद सखा गोपोंकी सुधि करते हैं ? और जिसके आपही रक्षक हैं ऐसे व्रजकी भी कभी सुधि करते हैं, और गौ, ब्राह्मण, गोवर्द्धन पर्वतकी भी कभी सुधि करते हैं ? ॥ १८ ॥ गायोंका हित करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र, जब कभी

अपने भाई बंधुके देखनेके लिये आवैंगे तब सुंदर नासिका सुंदर मुसकान चितवनयुक्त उनके मुखका दर्शन करेंगे ॥ १९ ॥ दावाग्निसे, पवनसे, इन्द्रकी वर्षासे, विषयुक्त सर्पसे, अघासुरसे और बडी बडी मृत्युओंसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने हमारी रक्षा करी ॥ २० ॥ हे उद्धवजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रम और लीलापूर्वक कटाक्षभरी चितवन, हँसन और बोलनेकी सुधि करतेहैं, तब हमारी संपूर्ण क्रिया शिथिल होजातीहैं ॥२१॥ मुकुन्दके चरणोंके चिह्न पर्वत, नदी, वनके स्थान और उनके खेलनेके स्थानोंको जब देखते हैं, तब हमारा मन कृष्णमय होजाता है ॥ २२ ॥ देवताओंका कार्य करनेके लिये इस संसारमें कृष्ण अवतार लेकर आये हैं उन्हें मैं देवताओंमें उत्तम मानताहूँ और मैंने बडा गंभीर गर्गाचार्यका

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ॥ दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापांगनिरीक्षितम् ॥ हसितं भाषितं चांग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुंदपदभूषितान् ॥ आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥ मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ॥ सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ॥ अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ॥ बभंजैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥ प्रलंबो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ॥ दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य नंदः कृष्णानुरक्तधीः ॥ अत्युत्कंठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥

वचनभी ऐसेही सुना है ॥२३॥ दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाले कंस और मल्लोंको वैसेही कुवलयापीड हाथीको, सिंह जैसे पशुओंको मारता है उसीप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही मारडाला ॥ २४ ॥ फिर बडा भारी तीन तालके समान धनुष एक हाथसे उठाकर जैसे हाथी लठियाको तोडताहै उसीप्रकार तोडडाला और सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको बायें हाथकी अँगुलीपर धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, तृणावर्त्त, बकासुर आदि और भी जो सुर असुरोंके जीतनेवाले दैत्य थे, सो श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही मारडाले ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कृष्णमें प्रेमबुद्धिवाले नन्दरायजी इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सुधि करके, आँखोंमें आँसू भर गद्गद कण्ठ प्रेमके

भावमें व्याकुल होकर चुप होगये ॥ २७ ॥ यशोदाने जो ऐसे वर्णन कियेजाते श्रीकृष्णके सुन्दर चरित्र श्रवणकिये, तो स्नेहसे स्तनोंमें दूध उमडि आया और नेत्रोंसे आंसू बहने लगे ॥ २८ ॥ इस प्रकार नन्दराय और यशोदाका भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परम अनुराग देखकर उद्धवजी नन्दजीसे बोले ॥ २९ ॥ उद्धवजी बोले कि, मानदेनेवाले नंदजी ! इस संसारमें देहधारियोंके मध्यमें निश्चय तुम प्रशंसाके योग्य हो, क्योंकि जो सबके गुरु नारायण हैं, उनमें ऐसी बुद्धि लगाई है ॥ ३० ॥ यह जो कृष्ण बलदेव हैं, सो विश्वके लियें उपादान कारण हैं इसीसे पुरुषप्रकृतिरूप हैं, सब प्राणियोंमें प्रवेश करके अनेक प्राणियोंके अनेक प्रकारके ज्ञानके साक्षी और अनादि हैं ॥ ३१ ॥ प्राण छूटती समय

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ॥ शृण्वंत्यश्रूण्यवस्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥२८॥ तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ॥ वीक्ष्यानुरागं परमं नंदमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ॥ नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुंदः पुरुषः प्रधानम् ॥ अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् ॥ निर्हृत्य कामाशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्भवंतावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ॥ भावं विधत्तां नितरां महात्मन्किं वाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ॥ प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ ३४ ॥ हत्वा कंसं रगमध्ये प्रतीपं सर्वसात्त्वताम् ॥ यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥

यह पुरुष क्षणभर शुद्ध मनको जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लगा शीघ्रही कर्मोंकी वासनाओंको छोड सूर्यके समान प्रकाशमान ब्रह्मरूप होकर परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥ जब सबके आत्मा कार्य और कारणसे मनुष्यरूप धरे परिपूर्ण नारायणमें अतिशय करके तुम भक्ति करतेहो तो फिर तुमको क्या करना शेष रहा ॥ ३३ ॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रही व्रजको आवेंगे क्योंकि वह भक्तोंका पालन करनेवाले हैं इसलिये तुम्हें और यशोदाको वह थोडेही दिनोंमें आनकर आनन्द देंगे ॥ ३४ ॥ सब यादवोंके वैरी कंसको रंगभूमिमें मार तुम्हारे पास आनकर

श्रीकृष्णचन्द्रने जो वचन कहा था, उसे अवश्य सत्य करैंगे ॥ ३५ ॥ हे बडभागियो ! अब तुम कुछ खेद मत करो, कृष्णको अपने पासही देखोगे, क्योंकि जैसे लकडीमें ज्योति रहतीहै उसी प्रकार सब प्राणियोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रहतेहैं ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको न कोई प्यारा है न कोई कुप्यारा है, न कोई उत्तम है, न कोई अधम है, न कोई समान है, न कोई विषम है और न उन्हें अभिमान है, वह तो समदृष्टिहैं ॥ ३७ ॥ न उनके माता है, न पिता है, न स्त्री है, न पुत्रादिक हैं, न उनके देह है और उनका जन्म भी नहीं है ॥ ३८ ॥ इन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्मभी नहीं हैं क्योंकि वह तो संसारमें देवादिक, मनुष्यादिक, नृसिंहादिकोंकी जो योनि हैं, उनमें खेलनेके लिये और साधुपुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमंतिके ॥ अंतर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः ॥ नोत्तमो नाधमो वाऽपि समोनास्यासमोऽपि वा ॥३७॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ॥ नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥ न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ क्रीडार्थं सोपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ॥ क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हंत्यजः ॥ ४० ॥ यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ॥ चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः ॥ सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ॥ विनाऽच्युताद्वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥

प्रगट होतेहैं ॥३९॥ निर्गुण भगवान् सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, इन तीन मायाके गुणोंको अंगीकार करतेहैं और निर्गुणसे अलग अजन्मा भगवान् क्रीडा करके विश्वको उत्पन्न, पालन तथा संहार करतेहैं ॥ ४० ॥ जैसे बालक चाँई माँई फिरताहै तब उसकी दृष्टि फिरती है और उससे पृथ्वी फिरतीसी दिखलाई देती है, इसी प्रकार चित्त जो कर्त्ता है, उसमें अहंकारसे आत्मा भी कर्तासा दिखाई देताहै ॥४१॥ यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारेही पुत्र नहीं हैं, बरन सबके पुत्र हैं, आत्मा हैं, पिता हैं, माता हैं और ईश्वरोंके ईश्वर हैं ॥ ४२ ॥ जो कुछ दीखता है और जो कुछ

होचुका और जो होता है और जो होगा और जो स्थावर जंगम हैं, जो कुछ बड़ा छोटा है, सो सब श्रीकृष्णचन्द्रके विना अतिशय करके कहनेके योग्य नहीं है. परमार्थ रूप श्रीकृष्ण हैं सोई सर्वरूप हैं ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इसी प्रकार वार्ता करते करते सब रात्रि बीतगई और गोपियें प्रातःकालको उठ, दीवे बाल, देहलियोंका पूजनकर, दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥ दीवोंसे प्रकाशमान मणियोंके जड़ाऊ गहनोंसे उस समय वह गोपियें अत्यन्त शोभायमान लगनेलगीं, नेतियोंके खैंचनेसे भुजाओंके चूरी कंकण हिल रहे हैं, नितम्ब हिलते जाते हैं, स्तनोंपर हार भी हिलता है, कुण्डलोंसे प्रकाशमान कपोल और अरुण केशरकी खौर मुखपर लगी है ॥ ४५ ॥ कमलदललोचन भगवान्

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नंदस्य कृष्णानुचरस्य राजन्॥गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्वास्तून्समभ्यर्च्य दधीन्य मंथन् ॥ ४४ ॥ ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकंकणस्रजः ॥ चलन्नितंबस्तनहारकुंडलत्विषत्कपोलारुणकुंकुमाननाः ॥ ४५ ॥ उद्गायतीनामरविंदलोचनं व्रजांगनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ॥ दध्नश्च निर्मंथनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममंगलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदिते सूर्ये नंदद्वारि व्रजौकसः ॥ दृष्ट्वा रथं शातकौंभं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥ अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ॥ येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रका चारित्र जब व्रजबालाओंने गाया, तब वह गीत स्वर्गतक पहुँचा और दहीके मथनेका शब्द भी उस गीतमें मिल रहा था, उन गोपियोंके गीतोंसे दिशाओंके सब अमंगल दूर होजातेहैं ॥ ४६ ॥ भगवान् सूर्यके उदय होनेपर नंदरायजीके दरवाजेपर सुनहरी साजका रथ खड़ा देखकर "यह किसका रथ है" इसप्रकार कहते व्रजवासी नर नारी कहने लगे ॥ ४७ ॥ कि, क्या कंसके कार्यका साधक अक्रूर आया है ? जो कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मथुरा लेगयाहै फिर अपने स्वामीको मरवाकर अब क्यों आया ? अब क्या हमें लेजाकर हमारे मांसके पिंड

बनाकर देगा । इस प्रकार गोपियें आपसमें बातें करही रहीथीं कि, इननेहीमें उद्धवजी संध्योपासनादि नित्यकर्म करके आये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ दोहा–उद्धव सैंतालीसमें, पाय कृष्ण आदेश। गोपिनको जाके दियो, तत्त्वज्ञान उपदेश ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! लम्बी भुजा, नवीन कमलसे नेत्र, पीताम्बर पहरे कमलकी माला धारण किये, प्रकाशमान मुखारविन्द स्वच्छ कानोंमें कुण्डल पहरे कृष्णके अनुचर उद्धवजीको देख व्रजकी स्त्रियोंको परम आश्चर्य प्राप्त हुआ और परस्पर कहने लगीं ॥१॥ कि, सुन्दर रूप यह कौन है, कहाँसे आया है ? भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकेसा वेष है, वैसेही गहने पहर रहा है, इसप्रकार

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् ॥ इति स्त्रीणां वदंतीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः॥४९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे नंदशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ श्रीशुक उवाच॥ तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलंबबाहुं नवकंजलोचनम्॥ पीतांबरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविंदं परिमृष्टकुंडलम् ॥ १ ॥ शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ॥ इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदांबुजाश्रयम् ॥ २ ॥ तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ॥ रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ॥ भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान्प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥ अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ॥ स्नेहानुबंधो बंधूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥

सब गोपियोंने श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविन्दका भक्त जान उद्धवजीको चारों ओरसे घेरलिया ॥ २ ॥ और अत्यन्त आधीनतासे नम्र हो, लाजभरी हँसन, चितवन तथा मीठी वाणीसे सत्कारकर एकान्त आसनपर बैठे उद्धवजीको श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे संदेशा लेकर आये जान, वह गोपियें पूंछने लगीं ॥ ३ ॥ कि, हमें जान पड़ता है तुम श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक हो और माता पिताके प्रसन्न करनेको तुम्हें श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है ॥ ४ ॥ क्योंकि इस व्रजमें और कोई ऐसा नहीं है, जो उन्हें स्मरण आवे और माता पिताका तो स्नेह बड़े वैराग्यवान् पुरुषपर भी नहीं छूट सकता

जैसे पुरुष स्त्रियोंसे प्यार करता है और भौंरा
इसीकारण औरोंसे यहाँ अपने कार्यके लिये मित्रता जनाई, जबतक काम पडा, तबतक मित्रता रक्खी, यद्यपि उन श्रीकृष्णचन्द्रने हमसे प्रीति करी थी, परन्तु तौभी दरिद्रीपुरुषको जैसे
फूलोसे प्यार रखता है, यह स्वार्थहीकी प्रीति है ॥ ५ ॥ ६ ॥ यद्यपि उन श्रीकृष्णचन्द्रने हमसे प्रीति करी थी, परन्तु तौभी दरिद्रीपुरुषको जैसे यजमानको त्याग देता है ॥ ७ ॥ पक्षी जैसे फलरहित
वेश्या त्याग देती है, प्रजा असमर्थ राजाको त्यागदेती है और दक्षिणापाकर पुरोहित जैसे यजमानको त्याग देता है ॥ ७ ॥ पक्षी जैसे फलरहित
वृक्षको छोड देते हैं, अभ्यागत भोजन करके जैसे गृहको त्याग देतेहैं, जारपुरुष भोग करके जैसे स्त्रीको त्यागदेताहै, उसीप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण
चन्द्र हमको त्यागकर चलेगये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दूत उद्धवजी जिस समय व्रजमें

पुंभिः स्त्रीषु कृतां यद्वत्सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥ निस्स्वं त्यजंति गणिका

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडंबनम् ॥ पुंभिः स्त्रीषु कृतां यद्वत्सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥ निस्स्वं त्यजंति गणिका
अकल्पं नृपतिं प्रजाः ॥ अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥७॥ खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ॥
दग्धं मृगास्तथाऽरण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥ इति गोप्यो हि गोविंदे गतवाक्कायमानसाः ॥ कृष्णदूते व्रजं याते
उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥९॥ गायंत्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ॥ तस्य संस्मृत्यसंस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥
॥ १० ॥ काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायंती कृष्णसंगमम् ॥ प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ गोप्युवाच ॥
मधुप कितवबंधो मा स्पृशांघ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः ॥ वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडंब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

आये, उसीसमय गोपियोंकी वाणी, देह, मन, इत्यादि गोविंदमें जायलगे, अधिक क्या कहैं, लौकिकव्यवहार खानपानादिक भी सब छूटगये ॥ ९ ॥
उनको याद कर, लाज त्याग,
अपने प्यारेके कर्मोंको गानेलगीं और भगवान् केशवमूर्ति बाल अवस्था तथा तरुण अवस्थाके जो चरित्र थे, उनको याद कर, लाज त्याग,
रोतीहुई उद्धवजीसे पूछनेलगीं और कोई एक गोपी उद्धवजीका स्वरूप देख, श्रीकृष्णके संगका ध्यान कर भौंरेको देख, उसे प्यारेका भेजाहुआ
दूत जान वक्ष्यमाण वचन कहनेलगीं, अर्थात् भौंरेके बहाने उद्धवजीसे कहने लगीं ॥ १० ॥ ११ ॥ गोपी बोली कि, हे मधुप ! हे कपटी
मित्र ! हमारे चरणोंका स्पर्श मत करे, क्योंकि भौंरेका देह तो काला और मुख पीला होताहै और तेरे तो सौतके कुचोंसे मीठी पुष्पोंकी

मालाकी केशर डाढी मूछोंमें लगीहै, जो तू स्पर्श करेगा तो हमें स्नान करना पड़ैगा, यदि कहो कि, मुझे तो तुम्हारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचन्द्रने भेजाहै, सो तुम जाकर मथुराकीही स्त्रियोंको प्रसन्न करो, जैसे तू हमारे पास आया है, इसी प्रकार यादवोंकी स्त्रियोंके पास भी गयाहोगा, परन्तु यादवोंकी सभामें इस बातकी हँसी हुई होगी कि, कृष्णका दूत ऐसा निर्लज्ज है ॥१२॥ जैसा तू है, वैसाही तेरा स्वामी है, जैसे तू फूलोंकी सुगंधिले उसी समय उनको छोड़देताहै, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी मोहित करनेवाला अपने अधरोंका अमृत एकबार पिलाय हमको त्यागन करदिया, परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि, लक्ष्मी उनके चरण कमलका कैसे सेवन करतीहै, अनुमान होता है कि, श्रीकृष्णके मीठे मीठे वचनोंसे उसका चित्त हरगया होगा, इसीलिये वह पड़ी रहती है ॥ १३ ॥ हे भ्रमर ! तू हमारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचरित्र क्यों गाता है,

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवादृक् ॥ परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह बहु षडंघ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ॥ विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयंतीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृंभस्य यास्स्युः ॥ चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥ विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुंदात् ॥ स्वकृत इव विसृष्टापत्यपत्यन्यलोकाः व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन् ॥ १६ ॥

क्योंकि हमनें तो घर इत्यादि भी त्याग दियाहै, श्रीकृष्णकी सखी मथुराकी जो स्त्रियें हैं, उनके आगे उनका प्रसंग गा, जिनकी कामाग्नि वह शान्त करतेहैं, वह प्यारी सखियें तुझे रीझकर कुछ देंगी ॥ १४ ॥ हे कपटी कपटभरी रुचिर हाँसीवाले श्रीकृष्णचन्द्रकी भ्रुकुटीकी मरोर ऐसी है कि, स्वर्ग, पृथ्वी और पातालकी स्त्रियें भी उन्हें दुर्लभ नहीं हैं, लक्ष्मीजी जिनके चरणरजकी सेवा करती हैं, वहाँ हमारी क्या चलसक्ती है, परन्तु तौभी हमने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उत्तमश्लोक नाम सुनाहै, सो जब हम गरीबनियोंकी सुधि लेंगे, तब वह नाम रहेगा, नहीं तो जाता रहेगा ॥ १५ ॥ अपने शिरको मेरे पाँवोंमेंसे उठाले, क्योंकि मैं तेरी संपूर्ण बातें जानतीहूं, तू मुकुंद श्रीकृष्णचन्द्रसे दूतकर्म सीखकर

अब उससे
चतुर होगया है, देखो हमने इस संसारमें श्रीकृष्णचन्द्रकेलिये पति, पुत्र, लोक, परलोक सब छोड़ दिया और वह हमें छोड़कर चलेगये, अब उससे
हमें क्या मिलाप करना ? इस प्रकार गोपियें कहनेलगीं ॥ १६ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पहले कर्मोंकी सुधि करके कहनेलगीं कि हम
को श्रीकृष्णसे भय लगता है क्योंकि पहले अयोध्यामें राजा दशरथके पुत्र रामचन्द्र हुये, तो सुग्रीवकी ओर होकर वधिक समान वालिको मारा;
व्याध तो मांस खानेके लिये मारै है परन्तु इन्होंने तो व्यर्थही मारा, बंदरका कोई मांस नहीं खाताहै, दूर्वादलश्यामके सुन्दर रूपपर रीझकर राव
णकी बहन शूर्पणखा आई, तो लक्ष्मणको सिखा, स्त्रीके वश हो उसके नाक कान काटलिये फिर वामन अवतार लेकर काकके समान आचरण
कर राजा बलिकी भेंट पूजा ले उसीको बाँधदिया इस कारण हम इस कालेकी मित्रतासे अघायगईं, अब कभी भूलकर भी कालोंसे मित्रता न करेंगी

मृगयुरिव कपींद्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ॥ बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टय
ध्वांक्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथाऽर्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वंद्वधर्मा
विनष्टाः ॥ सपदि गृहकुटुंबं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहंगा भिक्षुचर्यां चरंति ॥ १८ ॥ वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं
श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥ ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमंत्रिन्भ
ण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥

तब उद्धवजी बोले कि, मैं जिस समयसे आयाहूं तुम उनकीही बातें कररही हो, तो गोपी बोलीं कि, जैसे उनमें और गुण हैं उसी प्रकार यह अवगुण
है यद्यपि उनको दुःखदायी जानती हैं, परन्तु तौ भी उनकी बातोंका छूटना तो हमसे महाकठिन है ॥ १७ ॥ जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके
लीलाचरित्ररूपी अमृतका कानोंमें एक कणका भी स्वाद लेलियाहै, वह राग, द्वेष, त्याग असत्यके तुल्य हो दुःखरूप पुत्र पौत्रादिकोंको त्याग
भोगोंको छोड़ पक्षीके समान घर घर भीख माँगते फिरते हैं ॥ १८ ॥ जैसे अज्ञानी कृष्णसार हरिणकी स्त्री हारिणी वधिकके गीतसे मोहित होकर
घायल होजाती है उसी प्रकार हमने कपटी श्रीकृष्णका वचन सत्य मानकर यह देखा, जिनके नखोंके स्पर्शसे हमें भी कामदेवकी पीड़ा उत्पन्न हुई,

इसलिये हे दूत ! उस कपटीकी बात जानेदे और बात कहु ॥ १९ ॥ हे प्यारेके सखा ! क्या तू फिर आया, तुझे प्यारे कृष्णने भेजा है, इस कारण हे दूत ! तू पूजा करनेके योग्य है और जो तुझे इच्छा हो सो वर माँग, क्या लक्ष्मीका संग न छोड़नेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास हमें लेचलना चाहता है पर न्तु कैसे लेजायगा, क्योंकि उनके वक्षस्थलमें तो लक्ष्मीजी संगही रहती हैं इसलिये हमारा क्या प्रयोजन है ॥ २० ॥ हे सौम्य ! भला श्रीकृष्णचन्द्र तो अभी मथुरामें वास करते हैं, कभी उन्हें अपने माता पिता नन्द यशोदा आदिकका भी स्मरण आता है और कभी अपने बंधु बांधवोंकीभी याद करते हैं, कभी गोपोंका भी स्मरण करते हैं और कभी हमारी बात भी चलाते हैं; अगरके समान सुगंधवाली भुजा कभी हमारे शिरपर भी आनकर

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेंग ॥ नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वंद्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥ अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बंधूंश्च गोपान् ॥ क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते भुजमगुरुसुगंधं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ॥ सांत्वयन्प्रियसंदेशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥ उद्धव उवाच ॥ अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ॥ भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥

धरेंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहना गोपियोंकी सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके संदेशेको समझानेलगे ॥ २२ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे गोपियो ! तुमने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाया है इस लिये तुम निश्चय कृतार्थ होगई और संपूर्ण लोकोंमें तुम्हारा यश होगा ॥ २३ ॥ क्योंकि दान, व्रत, तप, होम, जप, यज्ञ, वेदपाठ, इन्द्रियोंका रोकना और अनेक प्रकारके कल्याणके उपाय सब करनेका फल यही है, जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति हो ॥ २४ ॥ बड़े मुनीश्वरोंको दुर्लभ भक्ति तुमने

उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें करी, यह बड़ा मंगल है ❀ ॥ २५ ॥ पति, पुत्र, देह, भाई, बंधु और अपने घरोंको त्याग परमपुरुष भगवान्
श्रीकृष्णचन्द्रको तुमने अपना पति करा, यह बहुत बड़ा मंगल हुआ ॥२६॥ हे बडभागियो ! इन्द्रियोंकी जिनमें गम नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें
विरहसे एकान्त भक्ति तुम्हें उत्पन्न हुई, यह तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया ॥ २७॥ हे मंगलरूपिणियो ! तुमको सुख देनेवाले प्यारेका संदेशा
कहता हूँ सो सुनो, श्रीकृष्णचन्द्रके रहस्यकार्यके करनेवाले संदेशेको लेकर मैं आया हूँ ॥ २८ ॥ उद्धवजी गोपियोंसे भगवान्ने श्रीमुखसे जो

दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानि च ॥ हित्वाऽवृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥ सर्वा
त्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ॥ विरहेण महाभागामहान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥ श्रूयतां प्रियसंदेशो भवतीनां
सुखावहः ॥ यमादायागतो भद्रा अहं भर्त्तू रहस्करः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना
क्वचित् ॥ यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥ तथाऽहं च मनः प्राणभूतेंद्रियगुणात्मना ॥ २९ ॥ आत्मन्ये
वात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ॥ आत्ममायानुभावेन भूतेंद्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥

वचन कहे थे, सो कहने लगे, श्रीभगवान्ने उपदेश किया है कि, सबका उपादान कारण मैं हूँ सो मुझसे तुम कभी दूर नहीं हो जैसे आकाश,
पवन, जल, पृथ्वी, तेज ये पंचतत्त्व समस्त प्राणियोंकी देहमें रहते हैं ॥ २९॥ उसी प्रकार मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय और गुण इनका आश्रय हूं,
अपनेमें अपनेसे अपनेको उत्पन्न करता हूं और अपनी मायाके प्रभावसे पंचभूत इन्द्रियें तीनोंगुण इनरूप जो अपनपो है, इसीलिये सृष्टिको

❀ शंका—गोपियोंने क्यां वडी भक्ति कृष्णमें की थी कि, जिस भक्तिकी प्रशंसा उद्धवजीने करी क्या ऐसी भक्ति योगीलोग नहीं करसक्ते यद्यपि कोई कहैं कि, पति आदि सब परिवारसे कपट करके भग
वान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रीति गोपियोंने करी, तो कुटुम्बसे कपट करना यह कौनसा उत्तम कर्म है, कपटको तो मुनि लोग क्या सबही लोग बुरा कहते हैं ॥
उत्तर—कपट करके जो ऊपरसे नवधा भक्ति भी करै सो भक्ति नहीं वह तो धर्मके फाटनेके लिये कतरनी है मनुष्यके ऊपर तो भक्तिका लक्षण एक भी नहीं दीखपडै और मनमें सब भक्तिके लक्षण होंय वह
भक्ति मुक्तिकी देनेवाली है गोपियोंने ऊपरसे तो निन्दारूप कर्म किये और मनमें भक्तिका सब लक्षण करती थीं, इसलिये उद्धवने कहा कि गोपियोंने जो भक्ति भगवान्की की है सो भक्ति मुनिजनोंको दुर्लभ है ॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ॥ सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥३१॥ येनेंद्रियार्थान्ध्यायेत मृषास्वप्नवदुत्थितः ॥ तन्निरुंध्यादिंद्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥ एतदंतः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ॥ त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रांता इवापगाः ॥ ३३ ॥ यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ॥ मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥ यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ॥ स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥३५॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ॥ अनुस्मरंत्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ या मया क्रीडता रात्र्या वनेऽस्मिन्व्रज आस्थिताः ॥ अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिंतया ॥ ३७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ॥ ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्संदेशाऽऽगतस्मृतीः ॥ ३८ ॥

उत्पन्न पालन और नाश करता हूं ॥ ३० ॥ यहाँ यह शंका है कि, आत्मा पंचभूत रूप होय तो उसे पंचभूतोंके संग दोष लगता है, इसका उतर देते हैं कि, आत्मा तो शुद्ध है, क्योंकि मायाके गुणोंमें जाता है सबसे अलग और ज्ञानरूप है, अहंकारके कारण जाननेमें नहीं आता, आत्माकी न्यारी अवस्था है, शुद्धता कैसे ? तो कहते हैं सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् यह जो मनकी वृत्ति हैं, उनसे प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ जैसे जागताहुआ मनुष्य स्वप्नको झूंठाही जानताहै, उसीप्रकार पण्डितजन जिनको झूंठा मानते हैं, ऐसे विषयोंका जिनसे चिंतवन कियाजाता है और चिंतवन करते इन्द्रियों पर असर होता है, उस मनको आलस्य त्यागकर रोकना चाहिये ॥३२॥ जब जिस मनुष्यका मन रुक जाता है तब वह पुरुष कृतार्थ होताहै और यह कहते हैं कि, वेद पढ़नेका, अष्टांगयोग करनेका अनात्माके विचार करनेका त्याग, सब इन्द्रियोंका जीतना सत्य बोलना, इत्यादि कर्मोंसे विवेकी पुरुषोंसे मन रुकता है, यही फल है जैसे नदियोंका अंत समुद्रमें होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जैसे दूर रहे प्यारेमें स्त्रीका मन लगा रहताहै और जो सदा नेत्रोंके आगे रहे उसमें चित्त नहीं रहता ॥३५॥ यदि संपूर्णवृत्ति त्याग मनको मुझ (कृष्ण) में लगाये नित्य मेरा ध्यान करती रहोगी तो शीघ्र मुझे प्राप्त होगी ॥३६॥ हे मंगलरूपिणियो ! जिस समय मैंने रात्रिके समय वृन्दावनमें रासक्रीड़ा करी थी, उस समय जिन गोपियोंको उनके स्वामियोंने रोकलिया था और इसी कारण वह रासक्रीड़ामें न आ सकीं तब वह मेरी लीलाओंका ध्यान करके मुझेही प्राप्तहुई ॥३७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार अपने प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उपदेशको सुनकर व्रजकी गोपियें प्रसन्न हो उनका स्मरण कर उद्धवजीसे बोलीं ॥ ३८॥

सब गोपियें कहनेलगी कि, यादवोंका दुःख देनेवाला अपने भृत्योंसहित राजा कंस मारागया, यह बडा मंगल हुआ और पूर्ण मनोरथको प्राप्त हो अपना हित करनेवालोंसहित श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हैं, यह भी बडा मंगल है ॥ ३९ ॥ हे साधु उद्धव ! रामका छोटा भाई कृष्ण हमसे जो प्रीति करता था, सो प्रीति क्या अब मथुराकी स्त्रियोंसे करताहै ? वह लाजभरी हँसनि और उदार भरी चितवनिसे उनका सत्कार करते हैं ? ॥ ४० ॥ रतिविशेषके जाननेवाले प्यारे कृष्ण मथुराकी स्त्रियोंके वचनोंसे विलासोंसे सब सत्कार करेंगी, तब कैसे न बँधेंगे ॥ ४१ ॥ हे साधु उद्धव! भगवान् गोविंद प्रसंग पाय मथुराकी स्त्रियोंकी सभामें बैठ जब कभी बातें करतेहैं, तब ग्रामकी स्त्रियें हमारा भी कभी स्मरण करतेहैं ? ॥ ४२ ॥ हे उद्धवजी !

गोप्य ऊचुः ॥ दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ॥ दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ॥३९॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ॥ प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ॥ नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४१ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविंदः प्रस्तुते क्वचित् ॥ गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथांतरे ॥ ४२ ॥ ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृंदावने कुमुदकुन्दशशांकरम्ये ॥ रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ॥ संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेंद्रो वनमंबुदैः ॥ ४४ ॥ कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ॥ नरेंद्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कभी उन रात्रियोंका भी स्मरण आता है कि, जिनमें कुमोदिनी कुंद फूलरहेथे और चन्द्रमाकी चाँदनीसे रमणीय वृन्दावनमें पाँवोमें नूपुर बजते जाते थे और हमारे संग रमण करते थे और हमने उनकी स्तुति की अब वह कभी हमें याद करतेहैं या नहीं ? ॥ ४३ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतुसे दग्ध वनके सींचनेको इन्द्र आता है, उसीप्रकार उन कृष्णके दिये शोकसे जलीहुई हमको हाथके स्पर्शसे जीवन देते दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र कभी यहाँ आवेंगे, या नहीं ? ॥ ४४ ॥ अब श्रीकृष्णचन्द्र यहां क्यों आवेंगे, क्योंकि अब उन्हें राज्य मिलगया, शत्रु मारेगये राजा

ओंकी कन्या व्याहलीं सब मित्र उनके पास हैं, इसलिये वह वहाँही प्रसन्न हैं यहाँ आनकर क्या करेंगे ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीके पति पूर्णकाम श्रीकृष्णको वनकी रहनेवाली हमसे और राजाओंकी कन्याओंसे क्या प्रयोजन है॥४६॥ आशाका त्यागही बडा सुखहै; यह पिंगलावेश्याने (एकादशस्कन्धमें) कहा है कि, निराशाके समान सुख नहीं है, यद्यपि यह जानती हैं, परन्तु तोभी हमारी आशा छूटनी अत्यन्त कठिन है ॥ ४७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एकान्तकी बातें त्यागनेको कौन समर्थ है, यद्यपि उनके रखनेकी इच्छा नहीं, परन्तु तौभी लक्ष्मी अंगसे अलग नहीं होती है ॥४८॥ हे उद्धव ! बलदेवजीके संग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिनमें विचरण करते थे, वह नदियें, पर्वत, वनके प्रदेश, गौ, बाँसुरीका शब्द ॥ ४९ ॥

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ॥ श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेताऽर्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिंगला ॥ तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाऽप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ॥ अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरंगान्न च्यवते क्वचित् ॥ ४८ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ॥ संकर्षणसहायेन कृष्णेनाऽऽचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥ पुनःपुनः स्मारयंति नंदगोपसुतं बत ॥ श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५० ॥ गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ॥ माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तद्विस्मरामहे ॥ ५१ ॥ हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ॥ मग्नमुद्धर गोविंद गोकुलं वृजिनार्णवे ॥ ५२ ॥

यह सब बेर बेर श्रीकृष्णके चरित्रोंकी याद दिलाते हैं, लक्ष्मीके आस्पद उनके चरणचिह्न देख हमभी विस्मरण नहीं करसक्तीं ॥ ५० ॥ मनोहर चलन, उदार हँसनि, लीलापूर्वक चितवनि, मनोहर वचन इनसे जिन्होंने हमारी बुद्धि हरली; उन श्रीकृष्णचन्द्रको हम कैसे भूलसक्ती हैं ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त वे सब गोपियें मथुराकी ओरको हाथ उठाय पुकारनेलगीं कि, हे रमानाथ हे व्रजनाथ ! हे दुःख हरनेवाले ! हे गोविन्द ! यह नाम तो गायोंका पालन करोगे तभी रहेगा, नहीं तो इस नामसे हाथ धोबैठो और आपको स्मरण होगा कि, इन्द्रने जब वर्षा करी थी, तो तुमने संकल्प किया था कि मैं अपने व्रजकी रक्षा करूंगा, सो अब तो तुम्हारेही विरहरूपी समुद्रमें संपूर्ण गोकुल डूब जाता है, इसका

शीघ्र आनकर उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! श्रीकृष्णके संदेशसे विरह ताप मिटाय उन गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको परमेश्वर जान और परमेश्वरको अपना आत्मा निश्चय कर उद्धवजीकी पूजा करी ॥ ५३ ॥ गोपियोंका शोक दूर करनेके लिये कितनेही मास उद्धवजीने व्रजमें वास किया और श्रीकृष्णकी लीला कथाओंको गाय गाय व्रजवासियोंको परमानन्द दिया ॥ ५४ ॥ जितने दिनोंतक उद्धवजीने व्रजमें वास किया, वह दिन व्रजवासियोंको श्रीकृष्णकी लीलासे क्षणके समान बीतिगये ॥ ५५ ॥ नदी, पर्वत, वन, गुफा, पुष्पित वृक्ष इत्यादिकोंको देख हरिदास उद्धवजी व्रजवासियोंको श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण करानेलगे ॥ ५६ ॥ गोपियोंके चित्तको इस प्रकार श्रीकृष्णमें लीन होनेसे व्याकुल देख

श्रीशुक उवाच ॥ ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः ॥ उद्धवं पूजयांचक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ५३ ॥ उवास कतिचिन्मासान्गोपीनां विनुदञ्छुचः ॥ कृष्णलीलाकथां गायन्रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ यावंत्यहानि नंदस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः ॥ व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् ॥ कृष्णं संस्मारयन्रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णाऽऽवेशात्मविक्लवम् ॥ उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविंद एव निखिलात्मनि रूढभावाः ॥ वांछंति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्म जन्मभिरनंतकथारसस्य ॥ ५८ ॥ क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ॥ नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥

परमप्रसन्न हो गोपियोंको दण्डवत् करके कहनेलगे ॥ ५७ ॥ इन गोपोंकी स्त्रियोंका पृथ्वीपर जन्म सफल है क्योंकि सबके आत्मा गोविन्दमें इनका अत्यन्त प्रेम हुआ है जिस प्रेमको संसारसे भयभीत मुमुक्षु पुरुष और मुक्त और हम भक्त इच्छा करते हैं अनंत श्रीकृष्णचन्द्रकी कथामें जिसका अनुराग है उसे ब्रह्मजन्मसे क्या प्रयोजन है, अथवा एक तो शुद्ध माता पितासे, द्वितीय गायत्री उपदेशसे, तृतीय यज्ञदीक्षासे जो ब्राह्मणके तीन जन्म हैं, उनसे क्या प्रयोजन है ॥ ५८ ॥ वृंदावनकी विचरनेवाली व्यभिचार दृष्टिसे दूषित गोपस्त्रियें कहाँ और परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें

आरूढ़भाववाले मन कहाँ क्योंकि निरंतर भगवान्‌को स्मरण कर अज्ञानी पुरुष भी कल्याण प्राप्त करता है, जैसे अमृतका सेवन करनेवाला पुरुष अमर होजाताहै ॥५९॥ सर्वकाल अंगमें रहनेवाली लक्ष्मीपरभी यह प्रसन्नता न हुई और कमलके गन्धकीसी कान्तिवाली देवांगनाओंको भी जो प्रसाद नहीं मिला; सो रातके उत्सवमें श्रीकृष्णचन्द्रके भुजदण्डोंमें गलबाहीं डाल व्रजसुन्दरियोंको मिला ॥ ६० ॥ इन गोपियोंके चरणरजका सेवन करनेवाले वृंदावनमें गुल्म, लता औषधियोंमें कुछेक मेरा जन्म हो, जो गोपियें दुस्त्यज अपने भाई, बंधु बडोंके मार्गको त्याग वेदगम्य मुकुंद श्रीकृष्णचन्द्रके मार्गका सेवन करती हैं ॥ ६१ ॥ जिन्होंने लक्ष्मीसे पूजित पूर्णकाम ब्रह्मादिक देवता और योगेश्वर अपने हृदयमें

नायं श्रियोंग उ नितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोऽन्याः ॥ रासोत्सवेऽस्य भुजदंडगृहीतकंठलब्धा शिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥ या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥६१॥ या वै श्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामै योंगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविंदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ॥ ६२ ॥ वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ॥ यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नंदमेव च ॥ गोपानामंत्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥ तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ॥ नंदादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥

जिनका चिंतवन करते उन श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंको रासभामें स्तनोंके ऊपर धर आलिंगन करके इन गोपियोंने तापको दूर किया॥ ६२॥ नंदके व्रजकी स्त्रियोंके चरणकी रजको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं, जिन गोपियोंकी गाई हरिकथा तीनों लोकोंको पवित्र करती है ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरान्त उद्धवजी गोपियोंसे, यशोदासे और नंद आदिक सब व्रजवासियोंसे आज्ञा माँग गमनसमय अपने रथमें जा बैठे ॥ ६४ ॥ उद्धवजीके विदा होनेके समय नंद आदिक सब व्रजवासी अनेक प्रकारकी भेंट हाथमें ले उद्धवजीके पास आय स्नेहसे नेत्रोंमें आँसूभर कहने ॥ ६५ ॥

कि, हमारे मनकी वृत्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लगी है और हमारी वाणी उनका नाम लिया करती है और हमारा शरीर उन श्रीकृष्ण चन्द्रको प्रणाम करता है ॥ ६६ ॥ अपने कर्मानुसार ईश्वरेच्छासे जिस किसी योनिमें हम जायँ, तो जो कुछ हमने मंगलरूप कर्म करे हैं अथवा दान करेहैं उनका फल यही माँगती हैं कि, श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति बनी रहै ॥ ६७ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार गोपियोंने श्रीकृष्णकी भक्तिसे उद्धव जीका सत्कार किया, तब उद्धवजी उनसे बिदा हो कृष्णपालित मथुरापुरीमें आये ॥ ६८ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम कर व्रजवासि

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादांबुजाश्रयाः ॥ वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥ कर्मभिर्भ्राम्य माणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ॥ मंगलाचरितैर्दानैर्मतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नरा धिप ॥ उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥ वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० दश० पूर्वा० उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोध्यायः ॥४७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ सैरंध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥

योंकी भक्तिकी अधिकता वर्णन करी, इसके उपरान्त वसुदेव और बलदेवजीको प्रणाम करके राजा उग्रसेनको भेंट दी ॥ ६९ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामुद्धवप्रतियानवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ दोहा—अड़तालिस अध्याय हरि, कुबरी रमण कराय ❋ ॥ हस्तिनपुर अक्रूरको, दीन्हों कृष्ण पठाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके उपरान्त सबके आत्मा और

❋ शंका—कुबरी और कृष्णका रमण सुनि हमारे मनमें बडा भ्रम हुआ, क्या कारण जो जगत्के ईश्वर होकर कुब्जाके सग रमण किया ?

उत्तर—सन्यासी होवै, ब्रह्मचारी होवै, वानप्रस्थ होवै, गृहस्थ होवै ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य, चाहै स्त्री पतित होवै, चाहै नपुसक होवै चाहै सब कर्ममें भ्रष्ट होवै चाहै पुरुष होवै परन्तु भगवान्‌की सेवा करै वही भगवान्‌को प्यारा है, सब कर्ममें नीच होवै तो कुछ भगवान् बुरा नहीं मानते और बडा उत्तम होवै और भगवान्‌की प्रीति न करे तो उसको भगवान् शत्रुसमान मानते हैं, भगवान् भक्तजनोंकी प्रेमरूप रस्सीमें बँधेहुए हैं जैसा भक्तजन भगवान्‌को नाच नाचते हैं, वैसा नाच भगवान् नाचते हैं, जैसे काष्ठकी पुतली नचानेवाले पुरुषके आधीन है, ऐसेही भगवान् भी भक्तोंके आधीन हैं और जैसे बैलकी नाकमें नाथ डालके मनुष्य जहाँको चाहै वहाँको लेजाताहै और वेदरूप कृष्ण, वेदकी ऋचारूप कुब्जा भगवान्‌की दासी, इसलिये जैसी कुब्जाने इच्छा करी वैसी भगवान्‌ने उसकी अभिलाषा पूर्ण करी ॥ कहीं ऐसा भी

सबके देखनेवाले छः प्रकारके ऐश्वर्य युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कामसे पीड़ित कुब्जाका प्रिय करनेके लिये उसके घर गये ॥ १ ॥ कैसा वह घर है कि जहाँ अनेक प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुयें धरी हैं कामके उद्दीपन करनेवाले जिसमें चित्र लिखे हैं, मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं, पताकायें फहरा रही हैं, चंदोवे तन रहे हैं, शय्या तथा शोभायमान आसन बिछ रहे हैं, सुगंधकी धूप लगरही हैं, दीपक प्रज्वलित हो रहेहैं, और माला, अतर, अरगजा आदिसे वह घर अत्यन्त शोभायमान हो रहा है ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने घरमें आया देख कुब्जा अति

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ॥ मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनादिभिः ॥ धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गंधैरपि मंडितम् ॥ २ ॥ गृहं तमायांतमवेक्ष्य साऽऽसनात्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा ॥ यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥ तथोद्धवः साधु तयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ॥ कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गंधतांबूलसुधासवादिभिः ॥ प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥

शीघ्रतासे आसनपरसे उठ, घबराहटको प्राप्त हो सखियोंको सँगलिये श्रीकृष्णचन्द्रके पास आय सुन्दर आसन बिछाय चरण धो सत्कार करने लगी ॥ ३ ॥ उसी प्रकार भली भाँति पूजित हो उद्धवजी आसन स्पर्शकर पृथ्वीमें बैठ गये और लौकिक लीलाओंके करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रतासे सुन्दर बिछीहुई शय्यापर पहुँचे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त कुब्जा भी स्नान कर, चन्दन लगाय, वस्त्र पहर गहने, माला अतर, अरगजा,

—लिखा है, कि पुष्पांगी नाम एक वेश्या थी परन्तु भगवान्की बडी भक्तिनी थी, उसने यह सुना कि, रामचन्द्र वनको गये पीछे पीछ यह भी चलदी, वनमें जाकर उसको भगवान्का दर्शन हुआ और देखकर मोहित होगई और यह चाहा कि, रामचन्द्रके साथ रमण करू एकसमय रामचन्द्रको अकेला पाकर उनकी कुटीमें जा बैठी, पीछेसे सीता भी वहा आगई और उस वेश्याको वहाँपर बैठी देखा तो बडा क्रोधकर सीताने शाप दिया कि, अगले जन्ममें तेरे सब अग भग होंगे, और तू कुबरी होगी, और राक्षसकी दासी होगी तब श्रीरामचन्द्रजीने वेश्यासे कहा कि, जब मैं कृष्णावतार लूगा तो तेरा मनोरथ पूर्ण करूगा, अब तू जा तब तो उस पुष्पागी वेश्याने शापके भयसे बडी स्तुति की, तब भगवान्ने वर दिया कि, जिस समय मेरा दर्शन तुझको होगा, उसी समय तेरा देह परमोत्तम होजायगा और एक दिन तेरे घरमें वास करूगा, उस समय तेरी सब मनोकामना पूरी होगी ॥

ताम्बूल और अमृतके समान मादकवस्तुसे अपनेको बनाय, ठनाय लाजभरी लीला पूर्वक मुसकान, कटाक्षभरी चितवनसे मोहितहुई श्रीकृष्णचन्द्रके पास आई ॥५॥ नवीन समागमकी लज्जासे शंकासहित कुब्जाको बुलाकर कंकणसे शोभायमान हाथको पकड शय्यापर बैठाय भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र उसके साथ रमण करनेलगे, अहो ! कुब्जाका भाग्य जिसने चंदन लगानेके अतिरिक्त दूसरा कोई पुण्य नहीं किया था ॥ ६ ॥ कामदेवसे पीड़ित कुच और छाती तथा नेत्रोंके तापको अनन्त श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें लगाय और उन चरणारविन्दको सूँघि स्तनोंके मध्यमें प्राप्तहुए सुन्दर आनन्दमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रको भुजाओंसे आलिंगनकर बहुत दिनोंसे बढे तापको त्याग दिया ॥ ७ ॥ चन्दनके अर्पण करनेसे मोक्षके देनेवाले दुर्लभ

आहूय कांतां नवसंगमह्रिया विशंकितां कंकणभूषिते करे॥प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया॥६॥ सानंगतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रंत्यनंतचरणेन रुजो मृजंती ॥ दोर्भ्यां स्तनांतरगतं परिरभ्य कांतमानंदमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥७॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ॥ अंगरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥ आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ॥ रमस्व नोत्सहे त्युक्तं संगं तेंबुरुहेक्षण ॥ ९ ॥ तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः ॥ सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदर्चितः ॥ १० ॥ दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ॥ किंचिच्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबांधवान् ॥ प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनंद्य च ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रको पाय अभागिनी कुब्जाने यह मांगा ॥ ८ ॥ अहो प्यारे ! कुछ दिनों रहकर मेरे संग रमण करो हे कमलनेत्र ! मैं तुम्हें त्याग नहीं सक्ती ॥ ९ ॥ "एकबार तुम्हारे यहाँ नित्य आया करूंगा" इस प्रकार कुब्जाको कामवर दे उसका सन्मानकर, मान देनेवाले, ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥ १० ॥ संपूर्ण ईश्वरोंके ईश्वर, दुःखसे आराधन करनेमें आवैं ऐसे विष्णु भगवान्को प्रसन्न करके जो पुरुष विषयोंका वर मांगे वह बड़ा कुबुद्धि है, क्योंकि विषय तुच्छ हैं ॥ ११ ॥ बलदेव उद्धवजी संग लेकर समर्थ श्रीकृष्णचन्द्र कुछ कार्य करानेके लिये और अक्रूरका भला करनेके लिये उसके घर आये ॥ १२ ॥ अक्रूरजी मनुष्योंमें श्रेष्ठ अपने बंधु श्रीकृष्ण, बलदेवको

दूरसे आते देख प्रसन्न हो मिलकर अत्यानंदको प्राप्तहुए ॥ १३ ॥ तव कृष्ण बलदेव और उद्धवजीने उन्हें नमस्कार किया, इसके उपरांत अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको प्रणाम कर और आसन पर बैठाय उनकी पूजा करी ॥ १४ ॥ हे राजन् ! फिर कृष्ण बलदेवके चरणोंको धोकर उस जलको अपने मस्तकपर चढ़ाया और दिव्य, चंदन, माला, वस्त्राभूषण इत्यादि भेंट दे नमस्कार किया और गोदमें चरणोंको धरके दाबनेलगे, इसके उपरांत आधीनतापूर्वक नम्र हो अक्रूरजी कृष्ण बलदेवसे कहनेलगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ कि, मंत्रियोंसहित पापी कंसको मार बड़े कष्टसे तुमने

ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ॥ पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापो धार
यञ्छिरसा नृप ॥ अर्हणेनांबरैर्दिव्यैर्गंधस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसाऽऽनम्य पादावंकगतौ मृजन् ॥ प्रश्र
यावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥ दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ॥ भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ
द्दुरंताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ भवद्भ्यां न विना किंचित्परमस्ति न चापरम् ॥
॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ॥ ईयते बहुधा ब्रह्मञ्छुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥ यथा हि
भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भांति नाना ॥ एवं भवान्केवल आत्मयोनिष्वात्मात्मतंत्रो बहुधा विभाति ॥
॥ २० ॥ सृजस्यथो लुंपसि पासि विश्वं रजस्तमस्सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ॥ न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते
क्व च बंधहेतुः ॥ २१ ॥

इस अपने कुलका उद्धार किया और कुलकी वृद्धिका, यह बडाही मंगल हुआ ॥ १७ ॥ तुम प्रकृतिरूप हो जगत्के कारण हो, जगन्मय हो, तुमसे पृथक् कुछ कार्य कारण नहीं है ॥ १८ ॥ तुम अपने विश्वमें अपनी शक्तियों सहित प्रवेश करके हे ब्रह्मन् ! श्रवण करनेमें देखनेमें बहुत प्रकारके प्रतीत होतेहो ॥ १९ ॥ जैसे स्थावर, जंगम देहमें पृथ्वी आदि पंचभूत हैं, उनमें अनेक प्रकारसे प्रकाशते हो, उसी प्रकार अपने आधीन अकेले तुम आपही अपने कार्य पंचभूत और पंचभूतोंके बने देहमें बहुत रूपसे प्रकाशतेहो ॥ २० ॥ रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण तुम्हारी

शक्ति हैं, उनकेही द्वारा विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करते हो, गुण और उत्पत्त्यादिक कर्मोंसे बँधे नहीं हो, ज्ञानरूप हो, तुम्हें बाँधनेवाली कोई अविद्या नहीं है ॥ २१ ॥ तुम्हारे तो बंधनकी शंका संभवही कहाँ ? पर विद्योपाधि जीवात्माके भी वस्तुतः जन्म तथा जन्ममूलक भेद नहीं है क्योंकि देहादि उपायका किसीप्रकार निरूपण होना संभवही नहीं, अविद्यारहित होनेसे न तो आपके बंधन है और न मोक्ष है, जो बंध हमें मोक्ष दिखाई देते हैं, वह केवल हमारे अज्ञानसेही हैं ॥ २२ ॥ जगत्का कल्याण करनेके लिये तुम्हारा कहा सनातन वेदमार्ग जिस समय असाधुओंके पाखण्डमार्गसे बाधित होता है, उस समय सगुणरूपको धारण करते हो ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! तुमने इस संसारमें

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् ॥ अतो न बंधस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदायदा वेदपथः पुराणः ॥ बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥ स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ॥ अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ॥ यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः पंडितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात ॥ सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥

पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंश बलदेवसहित वसुदेवजीके घर जन्म लिया है, जिससे दैत्योंके अंशरूप राजाओंकी अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करोगे और यदुकुलके यशको बढ़ाओगे ॥ २४ ॥ हे ईश ! आज हमारा घर निश्चय बड़भागी है, सब देवता, पितृ, मनुष्य प्राणी देवरूप तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर तीनों लोकोंको पवित्र करता है सो तुम जगत्के गुरु अधोक्षज भगवान् हमारे घरमें आये हो इसलिये हमारा घर बड़भागी है ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! आप भक्तवत्सल, सत्यवक्ता सबके हितकारी, कृतके जाननेवाले उनको त्यागकर कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो औरकी शरण ले, भजन करनेवालेको तुम संपूर्ण कामना देतेहो और अपना आत्मातक भी

देते हो और तुम्हारे यह उत्तम है, यह नीच है, यह भेद नहीं है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! आपने मेरे घर आनकर दर्शन दिया यह बड़ा मंगल हुआ योगेश्वर और देवता भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते हैं पुत्र, स्त्री, धन, हितकारी और देहादिकोंमें मोहकी रस्सीरूप जो तुम्हारी माया है सो हमें लिपट रही है, इससे शीघ्रही काटो ॥ २७ ॥ भक्त अक्रूरने इस प्रकार जब पूजन और स्तुति करी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वाणीसे मोहित करतेहुये मुसकाकर बोले ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, आप हमारे गुरु हो, इस कारण नित्य स्तुति करनेयोग्य हो बन्धु हो, हम तुम्हारे लडके बाले हैं, हमरी रक्षा करो, पोषण करो और हमपर कृपा करो ॥ २९ ॥ हे पूज्योंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारे समान बड़भागी कल्याणकी इच्छा करनेवाले

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ॥ छिंध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥ इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान्हरिः ॥ अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच॥त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बंधुश्च नित्यदा ॥ वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकंप्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ॥ श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ॥ ३० ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥३१॥ स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयाञ्छ्रेयश्चिकीर्षया ॥ जिज्ञासार्थं पांडवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ॥ आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसंत इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥

मनुष्योंकी नित्य सेवा करने योग्य हो, देवता आपस्वार्थी हैं, साधु महात्मा आपस्वार्थी नहीं होते ॥ ३० ॥ कहीं जलमय तीर्थ नहीं हैं ? और मृत्तिका शिलाके देवता नहीं हैं ? किंतु वह सब बहुत दिनतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और साधुपुरुष तो दर्शनसेही पवित्र करतेहैं ॥ ३१ ॥ हे अक्रूरजी ! तुम हमारे सुहृदोंमें उत्तम हो इस कारण पाण्डवोंका कल्याण करनेके लिये हस्तिनापुरको जाओ ॥ ३२ ॥ पिता पाण्डुके मरनेके पीछे माता कुन्तीसहित दुःखित पाण्डव बालकोंको धृतराष्ट्र अपने पुरमें लेआया है, वह उसके पास रहते हैं ॥ ३३ ॥

लुब्धबुद्धि अम्बिकाका पुत्र राजा धृतराष्ट्र भाईके पुत्र पाण्डवोंमें समता नहीं रखता और दुष्ट दुर्योधनादिके वशमें होरहाहै और उसकी दृष्टि भी अन्धेरी होरही है ॥ ३४ ॥ इसलिये तुम अब हस्तिनापुरको जाओ और बुरी भली उनकी सब खबर लाओ, जब हमें वहाँका भेद विदित होजायगा, तो जिसमें पाण्डवोंको सुख होगा, वही उपाय करेंगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अक्रूरजीसे कह छःप्रकारके ऐश्वर्य्ययुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव और उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामक्रूरप्रेषणं नामाष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥ दोहा–उनञ्चास अक्रूरजी, हस्तिनपुरमें जाय । विषमदृष्टि लखि भ्रातृ सुत, फिरे धरो नहिं पाँय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

तेषु राजांबिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ॥ समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोंधदृक् ॥३४॥ गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ॥ विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ॥ संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे कुब्जारमणादिनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेंद्रयशोंकितम् ॥ ददर्श तत्रांबिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥ सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ॥ कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पांडवान्सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसंगम्य बंधुभिर्गांदिनीसुतः ॥ संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥३॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञो वृत्तविवित्सया ॥ दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छंदानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

कि, हे राजन् ! पुरुवंशी राजाओके यशसे शोभायमान हस्तिनापुरमें जाकर अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको अक्रूरजीने देखा और भीष्मपितामह विदुर, कुन्ती, तथा सोमदत्त, पुत्र सहित बाह्लीक, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाँचों पाण्डव और भी जो सुहृद थे उन सबको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ गांदिनीके पुत्र अक्रूरजी बन्धु बांधवोंके संग यथायोग्य मिलकर, वे बन्धु सुहृदोंकी वार्त्ता अक्रूरजीसे पूँछनेलगे और अक्रूरजी भी उनसे कुशल क्षेम पूँछनेलगे ॥ ३ ॥ दुष्ट पुत्र और अल्पबुद्धि दुष्ट कर्णादिकोंके कहनेमें रहनेवाले धीरतारहित राजा धृतराष्ट्रका

वृत्तान्त जाननेके लिये कितने एक महीनेतक अक्रूरजीने वहाँ वास किया ॥ ४ ॥ तेज अर्थात् प्रभाव ओजोवल, अर्थात् शस्त्र चलानेकी निपुणत वीर्य अर्थात् शूरता पाण्डवोंमें प्रजाका स्नेह वीरता आदि जो अच्छे गुण हैं उन्हें न सहकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी और जो कुछ आगे करनेकी इच्छा है उसे ॥ ५ ॥ और धृतराष्ट्रके पुत्रोंने विष देना आदि जो कुछ अन्याय किया था, सो सम्पूर्ण वार्त्ता विदुरजीने अक्रूरजीसे कहदी ॥ ६ ॥

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ॥ प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतं च धार्तराष्ट्रैर्य द्गरदानाद्यपेशलम् ॥ आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥ पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ॥ उवाच जन्मनिलयं स्मरंत्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७ ॥ अपि स्मरंति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ॥ भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ पैतृष्वसेयान्स्मरति रामश्चांबुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥

कुन्ती भाई अक्रूरको आया सुन मिलकर और अपने जन्मस्थानका स्मरण कर नेत्रोंसे आँसू बहाती अक्रूरजीसे बोली * ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! मेरे माता पिता कभी मेरा स्मरण करते हैं ? और मेरे भाई, बहन, भतीजे स्त्री, सखी यह सब कभी मेरी सुधि करते हैं ? ॥ ८ ॥ शरणागतोंके पालक, भक्तोंके हितकारी भाईके पुत्र श्रीकृष्ण कभी अपनी फूफीके पुत्रोंकी भी सुधि करते हैं ? कमलके समान नेत्रवाले बलरामजी भी

* शंका—बडे आश्चर्यकी बात है, वसुदेवजी वन्दीगृहसे छूटगये और अनेक प्रकारके मगल वसुदेवजीके घर हुए, तो भी कुंतीको न बुलाया, लोकशास्त्रकी रीति है बहिन अथवा लडकीको माता, पिता भाई अपने घर वर्ष दोवर्षमें बुलाते रहते हैं परन्तु अपने घर उत्सवमें अथवा उसके दुःखमें तो अवश्यही बुलाते हैं, वा आप जाकर लेआते हैं क्योंकि पिताके घर आनेसे बेटीका चित्त सावधान होजाता है, फिर वसुदेवजीके घर उत्सव भी हुआ और पुत्रभी हुआ और वन्दीसे छूटे फिर वसुदेवजीने कुन्तीको अपने घर क्यों नहीं बुलाया इसका क्या कारण ?

उत्तर—कुन्ती सातद्वीपके राजा पाण्डुकी स्त्री थी और पतिके वियोगसे महादुःखी थी तो भी कुन्तीको वसुदेवजी अपने घर लेआनेको समर्थ न हुए, क्योंकि वसुदेवजी दीन और द्रव्यहीन थे और वह कुन्ती दुःखी भी थी तो भी सात द्वीपके नरेशकी रानी थी इसलिये वसुदेव कुन्तीको अपने घर न लाये क्योंकि हजारों तो दासी उसके सग आतीं और सेनाका तो ठिकानाही क्या था, फिर कुन्तीको अपने घर रखनेकी

कभी हमारा स्मरण (याद) करते हैं ? ॥ ९ ॥ मैं तो जैसे व्याघ्रोंके बीचमें हारिणी घिर जाती है, उसी प्रकार वैरियोंके बीचमें गिरकर शोच करती हूं, सो क्या मुझे और पिताहीन मेरे बालकोंको श्रीकृष्ण तुम्हारे वचनोंसे क्या समझावेंगे ? ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वके आत्मा ! हे सबके अंतर्यामी ! हे विश्वके पालनकर्त्ता ! हे गोविन्द ! बालकोंके सहित दुःखित होकर मैं तुम्हारी शरण आई हूं सो मेरी रक्षा करो ॥११॥ मृत्युरूपी संसारसे भयभीत मनुष्योंके ईश्वर तुम हो और मोक्षको देनेवाले तुम्हारे चरणकमलके विना मुझे और कोई शरण देनेवाला नहीं दीखता ॥ १२ ॥ शुद्ध अर्थात धर्मात्मा ब्रह्म अपरिच्छिन्न अर्थात् ढकनेमें नही आवे, परमात्मा अर्थात् जीवके सखा, योगेश्वर

सपत्नमध्ये शोचंतीं वृकाणां हरिणीमिव ॥ सांत्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥ कृष्णकृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ॥ प्रपन्नां पाहि गोविंद शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥११॥ नान्यत्तव पदांभोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ॥ बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्याऽऽपवर्गिकात् ॥ १२ ॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ॥ प्रारुदद्दुःखिता राजन्भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥ समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः ॥ सांत्वयामासतुः कुंतीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ॥ अवदत्सुहृदां मध्ये बंधुभिः सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥

अर्थात् अणिमादिक शक्तियुक्त योग अर्थात् ज्ञानरूप ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र तुम हो, सो तुम्हें नमस्कार है और तुम्हारीही मैंने शरण ली है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ ! परीक्षित् ! इसप्रकार जगत्के ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णकी याद करके तुम्हारी, परदादी कुन्ती दुःखित होकर रोनेलगी ॥ १४ ॥ अक्रूर और बड़े यशवान् विदुर कुन्तीको समझाने लगे कि, तुम्हारे पुत्र धर्म, पवन, इन्द्र इत्यादिकोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, तुम इतना शोच क्यो करती हो, इसप्रकार समझाने लगे ॥ १५ ॥ चलते समय अपने पुत्रोंमें स्नेह और भतीजोंमें विषमता

करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर सुहृदोंके बीचमें जो रामकृष्णने वचन कहे थे वह अक्रूरजी कहने लगे ॥ १६ ॥ अक्रूरजी बोले कि, हे धृतराष्ट्र ! कौरवोंकी कीर्तिके बढ़ानेवाले भाई पाण्डुके मारनेके उपरान्त अब तुम राजसिंहासनपर बैठे हो ॥ १७ ॥ अच्छा ! बहुत उत्तम राज्य करो, धर्मसे पृथ्वीका पालन करो, क्योंकि अपनी प्रजाको सुखपूर्वक आनंद रक्खोगे, अपने बांधवोंमें समान दृष्टि रक्खोगे तो तुम्हारा कल्याण और जगत्में यश होगा ॥१८॥ और जो विषमता रक्खोगे तो संसारमें निन्दा होगी और अंतमें नरकको जाओगे, इस कारण पांडवोंमें और अपने पुत्रोंमें समता रक्खो ॥ १९ ॥ हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस संसारमें सदा किसीका सत्संग नहीं रहता है और अपना देहभी सदा नहीं रहता, विचार

अक्रूर उवाच ॥ भोभो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ॥ भ्रातर्युपरते पांडावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रंजयन् ॥ वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि॥ १८॥ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ॥ तस्मात्समत्वे वर्तस्व पांडवेष्वात्मजेषु च॥ १९ ॥ नेह चात्यंतसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह ॥ राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥ २० ॥ एकः प्रसूयते जंतुरेक एव प्रलीयते ॥ एकोनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरंत्यन्येऽल्पमेधसः ॥ संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २६ ॥ पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपंडितम् ॥ तेऽकृतार्थं प्रहिण्वंति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ॥ असिद्धार्थो विशत्यंधं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥

करके देखो कि, स्त्री पुत्र यह सदा नहीं रहेंगे ॥ २० ॥ जीव अकेलाही जन्म लेता है और अकेलाही मृत्युको प्राप्त होता है अकेलाही पुण्यके फल सुखको भोगता है और अकेलाही पापका फल दुःख भोग करता है ॥ २१ ॥ अज्ञानीपुरुषोंनें जो पापकरके धनसंचय किया है, उसे स्त्री, पुरुष, भाई, बंधु होकर लेते हैं, जैसे जलकी रहनेवाली मछलियोंका जीवन जल है और जब उसको उसके पुत्र पीलेते हैं तब उसे कष्ट होता है ॥ २२ ॥ पाप करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है और जिन्हें अपना समझ अधर्मसे पोषण करता है, वह प्राण, धन और पुत्रादिक उस पोषण करनेवाले मूर्ख पुरुषको भोगका सुख प्राप्त न हुआ हो, तब उसे पहलेही त्याग देतेहैं ॥ २३ ॥ जब स्त्री पुत्रादिक इसको त्याग

देते हैं, तब यह सच्चे स्वार्थको न जानकर और प्रयोजन नष्ट होनेसे निजधर्मसे विमुख हो, सबके पापको अपने शिरपर धर वही पुणे नरकमें गिरताहै ॥ २४ ॥ इस कारण हे समर्थ राजा धृतराष्ट्र ! स्वप्न और बाजीगरकी माया तथा मनका विचार यह सब तुमको मिथ्याभूत दिखाई देता है, उसीप्रकार इस संसारको मिथ्याभूत समझ आपभी अपने मनको रोककर समता रक्खो और शान्त हो ॥ २५ ॥ तब राजा धृतराष्ट्र बोले कि, हे अक्रूर ! यह जो तुमने कल्याणकारक श्रेष्ठ वचन कहे उनको श्रवण करते करते मेरा मन तृप्त नहीं हुआ, जैसे मनुष्य अमृत पीनेसे तृप्त नहीं होता ॥ २६ ॥ परन्तु तो भी हे अक्रूर ! मेरा चंचल पुरुषोंमें स्नेह है, इसलिये विषमहृदयमें तुम्हारी प्यारी बात नहीं ठहरती जैसे स्फटिकमणिके

तस्माल्लोकमिमं राजन्स्वप्नमायामनोरथम् ॥ वीक्ष्याऽऽयम्यात्मनात्मानं समः शांतो भव प्रभो ॥ २५॥ धृतराष्ट्र उवाच॥ यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ॥ तथाऽनया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम् ॥ २६ ॥ तथाऽपि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ॥ पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ॥ भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं दृष्ट्वा गुणान्विभजते तदनुप्रविष्टः ॥ तस्मै नमो दुरवबोधविहारतंत्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ॥ सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात ॥ ३० ॥

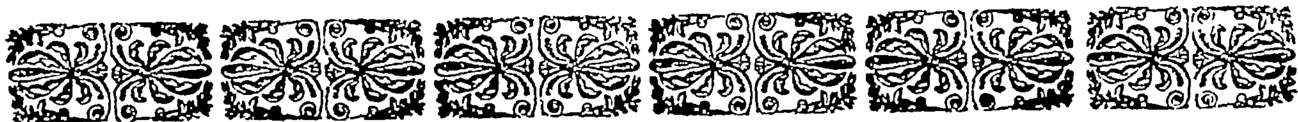
सुदामापर्वतपर बिजली चमककर स्थिर नहीं रहती ॥ २७ ॥ भगवान्‌की इच्छाको कौन पुरुष खंडन करसक्ता है, अर्थात् उसकी इच्छाके प्रतिकूल कुछ नहीं होता, सब उसकी इच्छानुसारही होता है जिस ईश्वरने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण यदुकुलमें आनकर अवतार लिया है ॥ २८ ॥ जो ईश्वर विचारनेमें न आवे, ऐसी अपनी मायासे इस विश्वको उत्पन्न कर और उसमें प्रवेश कर कर्म तथा कर्मोंके फलको अलग अलग कर जीवोंको देते हैं जाननेमें न आवे ऐसी लीलाओंसे रचेहुए संसारचक्रके घुमानेवाले उस परमेश्वरको मैं बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इसप्रकार यदुवंशोत्पन्न अक्रूरजी धृतराष्ट्रका अभिप्राय जान सुहृदोंसे आज्ञा ले मथुरापुरीमें

आये ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! बलदेव श्रीकृष्णने आप जिस कारण अक्रूरजीको पाण्डवोके पास भेजा था सो अक्रूरजीने· सब धृतराष्ट्रजीको कही

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥ पांडवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कंधे पूर्वार्धे पाण्डववृत्तनिरूपणं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ समाप्तोऽयं दशमस्कंधपूर्वार्धः ॥ ❀ ॥

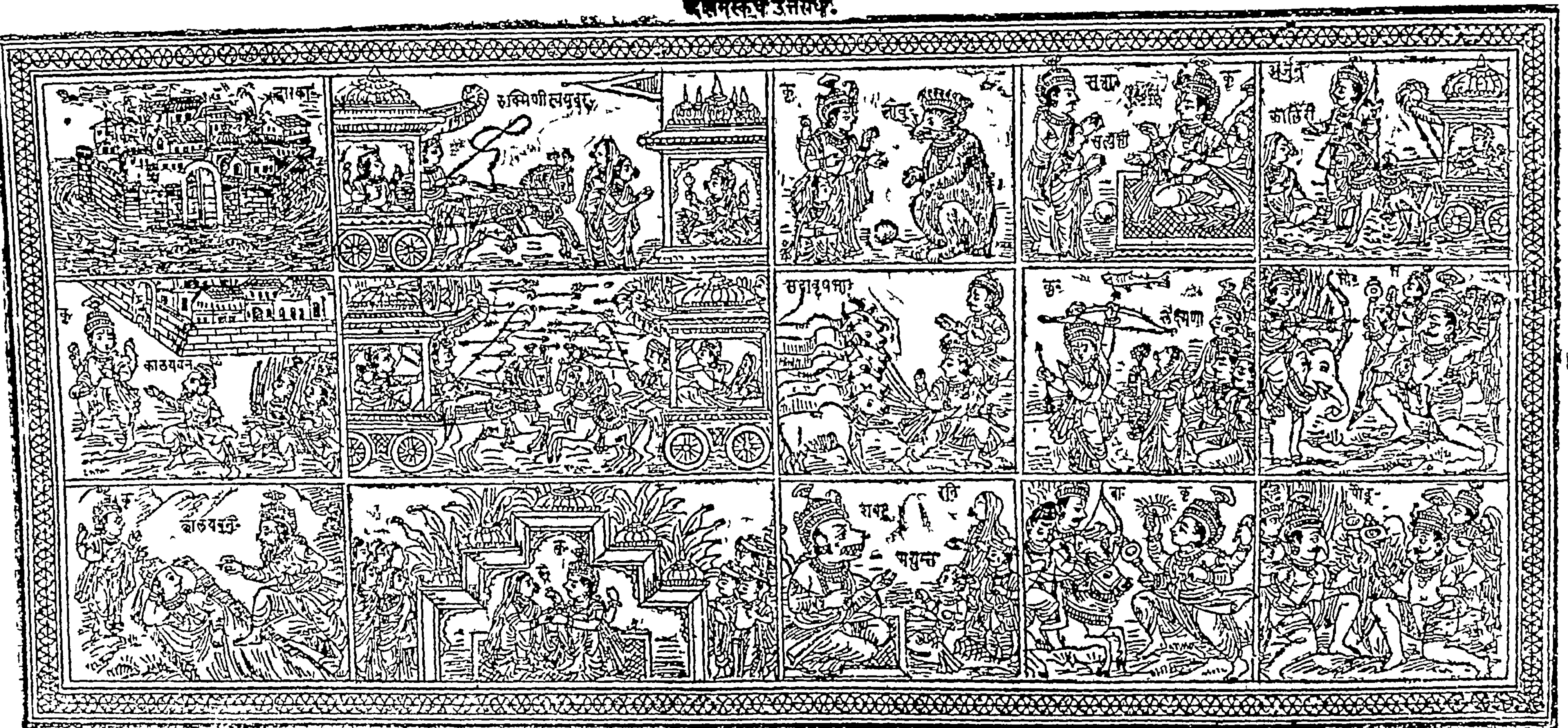
वार्त्ताका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीसे कह दिया ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥ ७ ॥ समाप्तोऽयं भाषाटीकासहितः दशमस्कन्धपूर्वार्धः ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ७ ॥

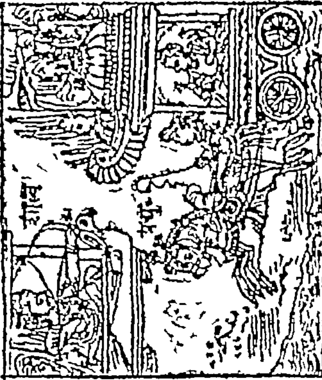


इदं पुस्तकं क्षेमराज--श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालैन)
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।
संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धपूर्वार्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकासहिते दशमस्कन्धोत्तरार्धप्रारम्भः ॥


रुक्मिणीस्वयंवर
कालयवन
रति
प्रद्युम्न











श्रीः ॥ दशमस्कंधोत्तरार्द्धम् ॥ दोहा—उत्तरार्द्ध प्रारम्भमें, व्रजपति चरित ललाम। कह्यो पचाशाऽध्यायमें, जरासन्ध संग्राम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! अब पूर्वार्द्धके उपरान्त इकतालीस (४१) अध्यायमें जो कथा है, सो हम वर्णन करते हैं कि, जरासन्धके भयसेही मानो समुद्रमें किला बनाकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको उसमें लेगये, व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! अस्ति और प्राप्ति यह दोनों कंसकी रानी अपने पति कंसके मरनेसे अत्यन्त दुःखी होकर अपने पिताके घर चलीगई ॥१॥ अपने स्वामीके मरनेसे शोकाकुल अस्ति, प्राप्ति दोनों बहनोंने अपने पिता मगधदेशके राजा जरासंधसे जाकर सब वृत्तान्त कहा ॥ २ ॥ हे राजा परीक्षित्! यह बात सुनतेही जरासन्ध अतिक्रोध कर अपने जामाताका शोक न सह पृथ्वीको यादवरहित करनेका उपाय करनेलगा ॥ ३ ॥ और तेईश अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥ मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासंधाय दुःखिते ॥ वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ॥ अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ॥ यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत्सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ॥ स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥ चिंतयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः ॥ तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ॥ मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥

जरासंधने यादवोंकी राजधानी मथुरापुरीको चारोंओरसे घेरलिया ॥४ ॥ जिसप्रकार अपनी मर्यादा त्यागकर समुद्र उमडता चला आता है, उसी प्रकार जरासन्धकी सेनाको आतीहुई देखकर और सेनासे मथुरापुरीको ग्रसित जान, अपने सुहृद् यादवोंको व्याकुल देख ॥ ५ ॥ दुःखोंके नाशक भूभार उतारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उस समय देशकालके योग्य अपने अवतारका कारण देखकर विचार करनेलगे ॥ ६ ॥ कि, पहिले इस समस्त सेनाका संहार करूं, या जरासन्धको वधकर इसकी सब सेना अपने अधीन करूं अथवा सैन्यसहित जरासंधका प्राण संहार करूं, ऐसे तीन प्रकारके मनमें संकल्प विकल्प कर प्रथमविचार सैन्यवधका निश्चय किया, क्योंकि पृथ्वीका भाररूप यह सेनाही है, इसलिये प्रथम इसकाही

मारना उचित है और इस समय यह सम्पूर्ण राजाओंकी सेनाओंको इकट्ठाकर लेआया है, फिर बारम्बार ऐसा अवसर नहीं मिलेगा ॥ ७ ॥ पहिले पैदल, अश्व, हस्ती और चतुरंगिणी अनेक अक्षौहिणी * सेनाकोही मारना योग्य है, जरासंधका मारना योग्य नहीं, क्योंकि इससे अभी बहुत कार्य सिद्ध होगा, यह सम्पूर्ण राक्षसोंको समेट कर ले आवेगा, मैं कहाँ कहाँ ढूंढता फिरूंगा ॥ ८ ॥ भूमिका भार उतार साधुपुरुषोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाश करनेके लियेही मैंने अवतार लिया है ॥ ९ ॥ जब पृथ्वीपर अधर्म बढ़ता है, तब तबही उस अधर्मके नष्ट करने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये मै अवतार लेताहूं ॥ १० ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विचार करही रहे थे कि, उसी समय सूर्यके समान

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुंजरैः ॥ मागधस्तु न हंतव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥ एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ॥ संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥ अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ॥ विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥ एवं ध्यायति गोविंद आकाशात्सूर्यवर्चसौ ॥ रथावुदस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११॥ आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ॥ दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत ॥ १२ ॥ पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ॥ एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर ॥ एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ॥ एवं संमंत्र्य दशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात ॥ १५ ॥

ध्वजा कवचसे सुसज्जित, सारथी सहित दो रथ शीघ्रही आकाशसे उतरे ॥ ११ ॥ तब अकस्मात् आये दिव्य शस्त्र देखकर हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदेवजीसे बोले कि॥१२॥हे आर्य ! हे श्रेष्ठ ! तुम जिनकी रक्षा करते हो, आज उन्हीं यादवोंको आनकर दुःख उपस्थित हुआहै और इसीलिये यह रथ और वीरघाती शस्त्र आयेहैं ॥१३॥ रथमें बैठ, सब सेनाका संहार कर अपने यादवोंका कष्ट दूर करो, हे ईश ! साधुलोगोंके कल्याणार्थही संसारमें आपका जन्म हुआ है ॥ १४ ॥ तेईस अक्षौहिणी सेना आनकर उपस्थित हुई है और इसीका पृथ्वीपर बोझ है, इसको दूर

* अक्षौहिणीका प्रमाण । इक्कीससहस्र आठसौ सत्तर २१८७० रथ, इक्कीसहस्र आठसौ सत्तर २१८७० गजपति, पैसठ महस्र छ सौदश ६५६१० अश्वपति, एक लाख नौसहस्र तीनसौ पचास १०९३५० पैदल, इसका नाम एक " अक्षौहिणी " है ॥

करो, इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीने विचारकर, कवच पहर, सुन्दर शस्त्रोंको ले और कुछ थोड़ीसी सेनाके साथ, पुरके बाहर निकल दारुक सारथीको लिये शंखध्वनि करी ॥१५॥१६॥ इसके उपरान्त जरासन्धकी सेनाके हृदय भयभीत हो कम्पायमान होने लगे, तब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीको रणभूमिमें खड़ा देख, जरासन्ध कहनेलगा ॥ १७ ॥ हे अधम ! मुझे तेरे साथ युद्ध करनेमें अत्यन्त लाज आती है, क्योंकि तू बालक है इसलिये तेरे संग युद्ध नहीं करूंगा हे मूर्ख ! तू गुप्त रहनेवाला अत्यन्त छली है, इस कारण तेरे साथ युद्ध करना उचित नहीं ॥ १८॥ हे राम ! जो तुझमें सामर्थ्य होय तो धीरज धरके युद्ध कर और मेरे बाणोंसे कटेहुए देहको त्याग स्वर्गको जा, या संग्रामके बीचमें मेरा

निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽवृतौ ॥ शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत्पर सैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥ १७ ॥ न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ॥ गुप्तेन हि त्वया मंद न योत्स्ये याहि बंधुहन् ॥ १८ ॥ तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ॥ हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयंत्येव पौरुषम् ॥ न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥२०॥ श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसाऽऽवृणोत् ॥ ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयंत्यो हरिरामयोर्मृधे ॥ स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥

प्राण ले ॥१९॥ परीक्षित् ! ऐसे जरासन्धके वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे जरासन्ध ! शूरवीर व्यर्थ बकवाद न कर अपने पुरुषार्थको दिखाते हैं और तुम्हारी मृत्यु निकट आई है, इसलिये मैं तुम्हारे वचनोंपर अधिक ध्यान नहीं देताहूं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जैसे पवन, बादल, धूरि, यह सूर्य और अग्निको घेर लेतेहैं, इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र व बलदेवजीके निकट जाकर जरासन्धने उनको अपनी बलवान् सेना प्यादे, रथ, ध्वजा, घोड़े और रथवानों सहित घेर लिया ॥ २१॥ जब गरुड और तालकी ध्वजाके चिह्नवाले रामकृष्णके

रथ युद्धमें नहीं दीखे, तब पुरीकी नारी अटारी, महल और द्वारोंपर खड़ी हुई शोकसे व्याकुल हो मोह करने लगीं ॥ २२ ॥ शत्रुकी सेनारूप बादलों मेंसे वारम्वार बाणोंकी भयंकर वर्षासे अपनी सेनाको पीड़ित देखकर श्रीकृष्णचन्द्र देवता व असुरोंसे पूजित उत्तम शार्ङ्गधनुषमें टंकार करने लगे ॥ २३ ॥ तरकससे तीर निकालकर शीघ्र प्रत्यंचामें लगाय प्रत्यंचाको खैंचकर तीक्ष्णबाणोंके समूहोंसे रथ, घोडे, हाथी, पैदल मारकर जैसे सुलगती लकडीके घुमानेसे चक्र बँधजाता है उसी प्रकार बाणोंके पीछे बाण मारनेलगे ॥ २४ ॥ मस्तक कटनेसे हजारों हाथी, नारी कटनेसे घोडे पृथ्वीपर गिरने लगे, रथोंकी ध्वजा कटगई और रथवान् गिरगये भुजा, नाडी कटनेसे पैदल गिरगये ॥ २५ ॥ युद्धमें पैदल, हाथी, कटकर गिरने

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्वणवर्षपीडितम् ॥ स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २३ ॥ गृह्णन्निषंगादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुंचञ्छितबाणपूगान् ॥ निघ्नन्रथान्कुंजरवाजिपत्तीन्निरंतरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकुंभाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकंधराः ॥ रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकंधराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामंगप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ॥ भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरंगायुधगुल्मसंकुलाः ॥ अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥ प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरी परस्परम् ॥ विनिघ्नताऽरीन्मुसलेन दुर्मदान्संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २८ ॥

लगे, तब उनके शरीरसे लोहूकी नदियें बहने लगीं, जिनमें भुजाएँ सर्पकी सदृश दृष्टि आती थीं, मनुष्योंके शिर कच्छपसे जान पड़ते थे मृत्युको प्राप्तहुए हाथी टापूके समान दीखते थे और रुधिरकी नदीमे घोडे ग्राहसे पड़ेथे ॥ २६ ॥ भुजा व उरू मछलीके समान मनुष्योके केश सिवारके समान थे और नदीमे जो तरंगे उठती हैं, वही रुधिरकी नदीमे धनुष तरंगके समान हैं । नदीमें झाड़ झंकाड़ होते हैं रुधिरकी नदियोमें शस्त्र हैं सोई झाड़ झंकाडके समान है, नदीमें भँवर पडते हैं, तिनसे अति भयंकर होकर रुधिरकी नदियोंमें ढालें मानो भयंकर भँवर पडते हैं, नदियोंमें कंकर पत्थर इत्यादि होते हैं रुधिरकी नदियोंमें मणि गहने कंकर पत्थरके तुल्य हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! महातेजस्वी बलदेवजीने संग्रामके बीच

मतवाले शत्रुओंको मुसलायुधसे मार मारकर रुधिरकी नदियें बहाईं, जो कि कायर पुरुषोंको भयकी देनेवाली और वीर पुरुषोंको आनन्दकी देनेवाली हैं ॥ २८ ॥ हे परीक्षित् दुर्मद वैरियोको मुसलसे मार सागरके समान दुस्तर और भयंकर उस जरासन्धपालित सेनाका महापराक्रमी श्रीकृष्ण बलदेवने मार मार कर नाश करदिया, वसुदेवके पुत्र जगत्के ईश्वर कृष्ण बलदेवको सेनाका नाश करना एक साधारण बात है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥ २९ ॥ अनंतगुण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीलासेही तीनों लोकोंको उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको जरासन्धकी सेनाका मारना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं हैं, तो भी मनुष्योंके अनुकरण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म आश्चर्यमय तुमसे वर्णन करता हूं ॥ ३० ॥ सेनाके नष्ट होने और रथ टूट जानेसे जब प्राणमात्रही अवशेष रहे, तब बलवान् जरासन्धको जैसे सिंह सिंहको पकड़ता है,

बलं तदंगार्णवदुर्गभैरवं दुरंतपारं मगधेंद्रपालितम् ॥ क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २९ ॥ स्थित्युद्भवांतं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनंतगुणः स्वलीलया ॥ न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राह विरथं रामो जरासंधं महाबलम् ॥ हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ॥ वारयामास गोविंदस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः ॥ तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ॥ स्वकर्मबंधप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३४ ॥

उसीप्रकार बलपूर्वक बलदेवजी पकड़कर ॥३१॥ शत्रुओंके मारनेवाले जरासन्धको वरुणपाश और मनुष्यपाशसे जब (बलदेवजी) बांधनेलगे, तब श्रीकृष्णचन्द्रजीने उसको छुडादिया और कहा कि, अभी जरासन्धसे और कुछ काम लेना है ॥ ३२ ॥ शूरवीरोंके माननीय जरासन्धको त्रिलोकी नाथ श्रीकृष्ण बलदेवने जिस समय छोड़दिया, तब यह मनमें लज्जित होकर विचार करने लगा कि, वनमें जाकर तप करना उचित है, घर जाकर क्या करूंगा तब मार्गमें जातेहुए राजाओंने निवारण किया ॥ ३३ ॥ धर्मके उपदेश करनेवाले पदयुक्त नीतिके तुष्टिकारक वचन कहकर जरासन्धको समझाने लगे कि, हे राजन्! कोई तुम्हारा बड़ाही दुष्कर्म आनकर प्राप्त हुआ जो तुच्छ यादवोंने तुम्हें परास्त किया अब तुम कुछ

लाज मत करो ॥ ३४ ॥ जिस समय समस्त सेना नष्ट होगई और श्रीकृष्णचन्द्रने छोड़ दिया, तब वह बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध अत्यन्त उदास होकर मगध देशको चलागया ॥ ३५ ॥ शत्रुकी सेनारूप सागरसे तरकर और अपनी अक्षत सेना संग लिये जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने मथुरापुरीमें प्रवेश किया, तब देवताओंने आकाशसे फूल वर्षाये और प्रशंसापूर्वक उनकी स्तुति करी ॥ ३६ ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्र अपनी मथुरापुरीमें आकर खेदरहित प्रसन्नमन पुरवासियोंसे मिले. सूत, मागध, बन्दीजन, उनकी विजयके यश गान करनेलगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरीमें आये तब शंख, नगारे, अनेक भेरी, तुरही, वीणा, बाँसुरी और मृदंग यह सब बाजे बजनेलगे ॥ ३८ ॥

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ॥ उपेक्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ॥ ३५ ॥ मुकुंदोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ॥ विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ॥ उपगीयमानविजयः सूतमागधवंदिभिः ॥ ३७ ॥ शंखदुंदुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदंगानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥३८॥ सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ॥ निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३९ ॥ निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षतांकुरैः ॥ निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वित्तमनंतं वीरभूषणम् ॥ यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ॥ युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥

मार्गमें छिरकाव हो रहा है, पताकायें लगाई गई हैं और वेदध्वनिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके शुभागमनसे घर घर बन्दनवारोंसे परिपूर्ण इसप्रकार मथुरापुरीकी शोभा हुई ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर स्त्री, पुरुष, पुष्प, दधि, अक्षत और अंकुरोंकी वर्षा करनेलगे, स्त्रियें स्नेहसे प्रफुल्लित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखनेलगीं ॥ ४० ॥ शूरवीर राजाओंकी शोभा करनेवाले, रणभूमिमें पड़े बहुत धन लाकर श्रीकृष्णचन्द्रने यादवराज उग्रसेनको देदिया ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार जरासन्ध उतनीही अक्षौहिणी साथ लेलेकर सत्रहबार चढि आया और श्रीकृष्णसे रक्षित यादवोंसे उसने युद्ध

किया ॥ ४२ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यादवगण श्रीकृष्णचन्द्रके तेजसे जरासन्धकी समस्त सेनाका संहार करनेलगे, सम्पूर्ण सेना जब कटगई शत्रुने छोड़ दिया, तब जरासन्ध फिर अपने देशको चलागया ❋ ॥ ४३ ॥ अठारहवीं बार जिरासन्ध तो आनेवाला थाही, उसके बीचमेंही देवर्षि नारदजीका भेजा वीर कालयवन आनकर दिखाई दिया ॥ ४४ ॥ संसारमें जिसके समान कोई योद्धा नहीं, ऐसा कालयवन यादवोंको अपने समान

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ॥ हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥
अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदंतरा ॥ नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥
रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ॥ नृलोके चाप्रतिद्वंद्वो वृष्णीञ्छ्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥

जान, उसने तीन करोड़ महाम्लेच्छ अतिभयावने इकट्ठे किये ऐसे कि जिनके मोटे भुजा, बड़े गले, मैले दाँत, भूरे वेष, घूँघचीसे नयन लाल तिन्हें साथ ले डंका दे, मथुरापुरी पर चढ़ आया चारोंओरसे घेरलिया, क्योंकि देवर्षि नारदजीने इससे कहा था कि, यादवलोग तुम्हारे समान हैं, इसलिये उनसे युद्ध करो ॥ ४५ ॥

❋शंका—तेईस अक्षौहिणी सेनाको जरासन्ध अपने संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये चढि आया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनाको मारडाला, वडे आश्चर्यकी वात है कि, इतनी सेना जरासन्ध कहाँसे लेआया ? पृथ्वीपर सेना तो बहुत थी परन्तु दुष्ट सेना इतनी किधर थी जिसको जरासन्ध सत्रह १७ वार बटोर बटोर कर लेआया और तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना सत्रहवार श्रीकृष्णने मारडाली, सब जोडकर तीनसहस्र आठसौ ग्यारह ३८११ अक्षौहिणी हुए, परन्तु वडे अचम्भेकी बात है,कि इतनी सेनामें कोई भी शूरवीर नहीं था ? जब श्रीकृष्णने मारा तो क्याजान पडा क्योंकि श्रीकृष्णके सामने शूरवीरोंकी क्या सामर्थ्य थी और मर्यादा पालन करनेवाले श्रीकृष्णका अवतार भी हुवा फिर वीरोंकी मर्यादा क्यों विनाश करी ?

उत्तर—जरानामक राक्षसीने जरासन्धको वरदान दिया था कि, तू जितनी सेना बनाया चाहैगा, उतनी सेना बनालेगा इसलिये जरासन्ध तेईस, तेईस, अक्षौहिणी सेना बनायके श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये लेआया, मर्यादापुरुषोत्तम मर्यादाके पालन करनेवाले श्रीकृष्णने विचार लिया कि, इस सेनामें शूरवीर नहीं है, इसलिये जरासन्धकी सनाका विनाश किया, मर्यादाका नाश नहीं किया ॥

उस समय श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित इस दुरात्मा कालयवनको आयाहुआ देखकर विचार करने लगे कि, यादवोंको दोनों ओरसे कष्ट आनकर उपस्थित हुआहै, बड़ेही आश्चर्यकी बात है ॥ ४६ ॥ क्योंकि अब तो यह महाबली कालयवन हमको घेर रहाहै और फिर जरासन्ध आज या कल अथवा परसोंतक अवश्यही आवेगा ॥ ४७॥ यदि इस समय हम इससे युद्ध करैं और बीचमें जरासन्ध आगया तो अवश्यही हमारे बांधवोंका प्राण संहार करेगा और जो न मारेगा तो बांधकर अपने पुरमें लेही जायगा, क्योंकि वह बलवान् है ॥ ४८॥ इसलिये जहाँ मनुष्य न प्रवेश करसके ऐसा एक किला बनाय, उसमें अपने जातिके यादवोंको रख फिर कालयवनका वध करूं ॥४९ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इसप्रकार मनमें

तं दृष्ट्वाऽचिंतयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् ॥ अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४६ ॥ यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ॥ मागधोऽप्यद्य वा श्वोवा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥ ४७ ॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागंता जरासुतः ॥ बंधून्वधिष्यत्यथ वा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४८ ॥ तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ॥ तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४९ ॥ इति संमंत्र्य भगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम् ॥ अंतस्समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥ ५० ॥दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ॥ रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥ ५१ ॥ सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ॥ हेमशृंगैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजताऽऽरकटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलंकृतैः ॥ रत्नकूटैर्गृहैर्हेमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥

विचारकर अड़तालीस कोश (बारह योजन) का समुद्रके बीचमें एक दुर्ग (किला) और उस किलेके बीचमें एक महाअद्भुत आश्चर्यमय नगर बनाया ॥५०॥ इस नगरीमें सब विश्वकर्माकी कारीगरी दिखाई देती है, राजाओंके जाने योग्य बड़े बड़े बाजार गली और चौक बन रहेहैं॥५१॥ बीचबीचमें स्थान बनानेके लिये जगह छोड दीगई है, कल्पवृक्ष और लतावाले फूलोंके बगीचे, चित्र विचित्र फुलवारी, सुवर्णके शिखरसे आकाशको स्पर्श करनेवाले ऊँचे ऊँचे स्फटिकमणिके अटा बनरहेहैं और ऊँचे ऊँचे किलेके द्वार बनरहेहैं ॥५२॥ घोड़ोके बाँधने और अन्न भरनेके लिये लोहे और पीतलके स्थान बनेहैं तिनके ऊपर सुवर्णके कलश विराजमान हैं, जिनसे इस नगरकी अत्यन्तही मनोहर शोभा होरहीहै, जिनके पद्मरागमणिके

शिखर और महामरकतमणिकी जिसमें पृथ्वी, इसप्रकार शोभायमान सुवर्णके गृह जहाँ तहाँ बनरहे हैं ॥ ५३ ॥ देवताओंके मन्दिर और चित्रविचित्र चित्रसारी बन रही हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह वर्ण जिसमें वास करते हैं यादव और देवराज उग्रसेनके महल तो अत्यन्तही शोभायमान हैं ॥ ५४ ॥ देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष भेजे, जो मनुष्य इस सभामें वास करता है, उसको भूख, प्यास, शीत, गरमी, शोक और मोह इत्यादि कुछ नहीं सताते ॥ ५५ ॥ श्यामकर्ण श्वेतवर्ण मनके समान वेगवान् वरुणजीने घोड़े भेजे, पालन करनेवाले कुबेरजीने पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, कुन्द, नील, मुकुन्द, शंख, खर्व यह आठ विभूति भेजीं ॥५६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुश्रेष्ठ परीक्षित् ! ! भगवान् वासुदेवने इन देवतालोगोंको अपने अपने अधिकारकी सिद्धिके लिये जो कुछ सम्पदायें दी थीं, वह सब वस्तु

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ॥ चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मां पारिजातं च महेंद्रः प्राहिणोद्धरेः ॥ यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥ ५५ ॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयाञ्छुक्लान्मनोजवान् ॥ अष्टौ निधिपतिः कोशाँल्लोकपालो निजोदयान् ॥ ५६ ॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ॥ सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५७ ॥ तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ॥ प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमंत्रितः ॥ निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं विलोक्य विनिष्क्रांतमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥ दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥

जिससमय श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीपर आये, उन्होंने लाकर अर्पण करदीं ॥ ५७ ॥ उस द्वारकापुरीमें योगके प्रभावसे सब यदुवंशियोंको पहुँचाकर श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीसे कहनेलगे कि, हे वीर ! तुम यहाँ मथुरापुरीमें रहकर शेष प्रजाकी रक्षा करो, इस प्रकार बलदेवजीसे आज्ञाकर कमलनयन भगवान् कमलोंकी माला धारणकिये शस्त्ररहित मथुरापुरीके दरवाजेसे बाहर निकले ॥५८॥इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां दुर्गनिवेशनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ दोहा–कालयवन मुचुकुन्दकी, दृष्टि परत भो छार । जब हरिकी विनती करी, फिर इक्यावनबार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! जिससमय श्रीकृष्णचन्द्रजी रेशमी वस्त्र पहरे, पुरसे बाहर निकले, तो

उनकी ऐसी शोभा हुई कि, मानो निशानाथचन्द्रमा उदय हुए ॥१॥ छातीमें भृगुलताका चिह्न, कण्ठमें कौस्तुभमणि धारणकिये, चतुर्भुज, नवीन कमलके समान अरुण नेत्र ॥२॥ नित्य प्रसन्न, शोभायमान और सुन्दर मुसकान, मकराकृत कुण्डलसे देदीप्यमान मुखारविन्द ॥ ३॥ इस प्रकार मनोहर मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रकी देखकर कालयवन अपने मनमें विचार करनेलगा कि, ठीक यही श्रीकृष्ण है ॥ ४ ॥ क्योंकि देवर्षि नारदजीने

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभाऽऽमुक्तकंधरम् ॥ पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकंजारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ मुखारविंदं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवो ह्ययमिति पुमाञ्श्रीवत्सलांछनः ॥ चतुर्भुजोऽरविंदाक्षो वनमाल्यतिसुंदरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ॥ निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवंतं पराङ्मुखम् ॥ अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥ हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदेपदे ॥ नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकंदरम् ॥ ७ ॥

जो जो लक्षण बताये थे, सो सब इसमें पायेजाते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई वासुदेव नहीं है और यह अकेला शस्त्ररहित चला जाता है, इसलिये मैं भी शस्त्ररहित पैदलहोकर इसके संग युद्ध करूं ॥५ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार कालयवन मनमें निश्चयकरके पराङ्मुख होकर भागते हुए, योगीजनोंके भी हाथ न आवें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रके पकडनेको पीछे दौडा * ॥ ६ ॥ पग पगपर " अब पकडा " " अब पकड़ा "

---

* शंका–यवनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान् क्यों भाग गये, इसका क्या कारण !

उत्तर–एक समय यदुवशी अपनी सभामें अपने कुलकी कन्याके वचनोंको स्मरणकर गर्गाचार्यको हँसनेलगे, गर्गाचार्य तो श्रीभगवान्के पूजनमें रात दिन रहतेथे और स्त्रीसे प्रीति कम रखतेथे इससे उनकी स्त्रीने अपने यादवोंसे कहा कि गर्गमुनि नपुसक हैं इससे यदुवशी उक्त मुनिकी हँसी किया करते थे इसलिये गर्गने यादवोंका नाश करनेके लिये एक पुत्र उत्पन्न करके उसी पुत्रको वरदान दिया कि, हे पुत्र ! युद्धमें यदुवंशी तेरे कुलके सामने अथवा तेरे सामने जो खडे होंगे तो उसी समय भागजायँगे श्रीकृष्ण इस बातको जानकर भाग गये ॥

ऐसे अपने आपको दिखाते दिखाते म्लेच्छराज कालयवनको श्रीकृष्णचन्द्र बड़ी दूर पर्वतकी गुफामें लेगये ॥ ७ ॥ यादवोंके कुलमें तू जन्मा है, इसलिये तेरा भागना उचित नहीं है, इसप्रकार आक्षेप करताहुआ महावेगसे दौडनेलगा, परन्तु पापी होनेके कारण श्रीकृष्णको न पकड सका, क्योंकि विना पाप नष्टहुये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ ८ ॥ हे परीक्षित् ! जब म्लेच्छराज कालयवनने श्रीकृष्णचन्द्रपर दुर्वाक्यरूपी बाणोंका आक्षेप किया, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफामें घुसगये, कालयवन भी दौडता हाँफता इनके पीछे पीछे उस गुफामें घुसगया, वहाँ एक पुरुष और सोरहा था, उसे देख कालयवन विचार करनेलगा ॥ ९ ॥ कि यह दुष्ट मुझे इतनी दूर लाकर यहाँ साधुकी

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ॥ इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥ ८ ॥ एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्रावि
शद्गिरिकंदरम् ॥ सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ॥
इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥ स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ दिशो विलोकयन्पा
र्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ॥ देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥
॥१२॥ राजोवाच ॥ को नाम स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्य एव च ॥ कस्माद्गुहां गतः शिश्ये किं तेजो यवनार्दनः ॥१३॥

नाई शयन कर रहाहै, इसप्रकार कालयवनने निश्चय कर, उस सोतेहुये पुरुषको कृष्ण जानकर एक लात मारी ॥१०॥ वह पुरुष बहुत दिनोंका सोया हुआ था, इसलिये धीरे धीरे नेत्र खोल, चारों ओरको देख, कालयवनको देखा ॥ ११ ॥ हे भारतवंशी राजा परीक्षित् ! उसी समय क्रोधी मुचुकुन्दके देखनेसे कालयवनके शरीरसे ऐसी अग्नि प्रगटहुई कि, जिससे उसका शरीर क्षणभरमें जलभुनकर भस्म होगया ॥ १२ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् पूँछने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! जिसने अपनी क्रोधाग्निसे कालयवनका प्राण संहार किया, उसका क्या नाम और वह कौन पुरुष है ? किसके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, क्या उनका प्रभावहै, किनके पुत्र हैं ? और किसलिये इस गुफामें सोते थे ! सो सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझे सुनाइये ॥१३ ॥

तब श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित् ! इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न मान्धाताका पुत्र गुणवान् ब्राह्मणोंका भक्त मुचुकुन्दनाम राजा था ॥ १४॥ एक समय असुरोंसे भयभीत होकर इन्द्रादिक देवताओंने अपनी रक्षा करनेके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की तो इन्होंने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा की ॥ १५॥ इसके उपरान्त स्वर्गके पालन करनेवाले स्वामिकार्तिकजीको आयाहुआ देखकर सब देवता इनसे कहने लगे कि, हे राजा मुचुकुन्द ! हमारी रक्षा करनेमें जो कुछ कष्ट आपको हुवा है इससे निवृत्त होकर आराम करो ॥ १६ ॥ हे वीर ! तुमने मनुष्य लोकके निष्कंटक राज्यको त्यागकर हमारी रक्षा की है, इससे तुम्हारे विषयके भोग छूटे ॥ १७ ॥ और तुम्हारे पुत्र रानी, जातिके बन्धु बांधव,

श्रीशुक उवाच ॥ स इक्ष्वाकुकुले जातो मांधातृतनयो महान् ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ १४॥ स याचितः सुरगणैरिंद्राद्यैरात्मरक्षणे ॥ असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ॥ राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६ ॥ नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकंटकम् ॥ अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७ ॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमंत्रिणः ॥ प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना संति कालिताः ॥ १८ ॥ कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ॥ एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ ॥ २० ॥ एवमुक्तः स वै देवानभिवंद्य महायशाः ॥ निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्शितः ॥ २१ ॥ यः कश्चिन्मम निद्राया भंगं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥ स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्चसुरैस्तदा ॥ २२ ॥

प्रधान, दीवान, मंत्री, राज्यकी प्रजा; इनमेंसे अब कोई शेष नहीं है, सबका कालने संहार करदिया ॥ १८ ॥ काल बलवान्से बलवान् है, भगवान्की शक्ति है समर्थ अविनाशी है और जिस प्रकार पशुओंका पालन करनेवाला ग्वालिया पशुओंको चलाता है, उसीप्रकार आप क्रीड़ा करके सब प्रजाको इधर उधर चलाता है ॥ १९ ॥ सब देवता कहने लगे कि, हे राजा मुचुकुन्द ! तुम्हारा कल्याण हो, मोक्षके अतिरिक्त और जो इच्छा हो सो वर मांगो क्योंकि मोक्षके दाता तो केवल एक विष्णु भगवान् ही हैं ॥ २० ॥ हे परीक्षित ! जब इस प्रकार देवता लोगोंने कहा, तब महायशस्वी राजा मुचुकुन्दने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा करनेसे श्रमित होनेके कारण यह वर मांगा कि, मैं सोताही रहूं और जो कोई

मेरी निद्रा भंग करे, वह उसीसमय भस्म होजाय, यह वर माँगा, देवताओंने कहा कि ऐसाही होगा, तब राजा मुचुकुन्द देवताओंकी आज्ञा पाय पर्वतकी गुफामें जाकर सो रहा ॥ २१ ॥ २२ ॥ इससे देवताओंने कह दिया था कि,जो तुम्हारी निद्रा भंग करेगा, वह तत्कालही जलके भस्म होजायगा॥२३॥जब कालयवन जलके भस्म होगया, तब चतुर्भुजरूप होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया॥२४॥ मेघके समान श्यामवर्ण पीतवस्त्रधारणकिये हृदयमें प्रकाशमान भृगुलताका चिह्न और कौस्तुभमणि धारण करनेसे अत्यन्तही देदीप्यमान होरहे थे ॥ २५ ॥ चतुर्भुज, वैजयन्ती मालासे सुशोभित और दमकते हुये मकराकृत कुण्डलोंसे शोभायमान होरहे थे ॥ २६ ॥ देखनेयोग्य प्रेमभरी

अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः ॥ स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मी भवतु तत्क्षणात् ॥ २३ ॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्त्वतर्षभः ॥ आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२४॥ तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २५ ॥ चतुर्भुजं रोचमानं वैजयंत्या च मालया ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ २६ ॥ प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ॥ अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २७ ॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ शंकितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥ २८ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकंटके॥ ॥ २९ ॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः ॥ सूर्यः सोमो महेंद्रो वा लोकपालोऽपरोपि वा ॥ ३० ॥

मुसकान सहित विलक्षण और नवीन अवस्था युक्त मतवाले सिंहके समान पराक्रमी ॥ २७ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका तेज देखतेही भयभीत होकर राजा मुचुकुन्द धीरे धीरे पूँछनेलगा ॥ २८ ॥ राजा मुचुकुन्द बोला कि, हे पुरुषश्रेष्ठ । तुम कौन हो ? कमलके समान आपके कोमल चरण हैं और इस पर्वतकी गुफामें किसलिये आयेहो ? जो काँटोंके वनमें विचरते फिरोहो ॥ २९ ॥ क्या आप तेजवान् भगवान् अग्नि हैं वा सूर्य हैं, अथवा चन्द्रमा हैं, या इन्द्र हैं ? किंवा समस्त लोकपालोंके कर्त्ता या देवता हैं ? ॥ ३० ॥

अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन तीनों देवताओंमेंसे कोई हो ! मुझे जान पडता है कि, आप विष्णु भगवान् हैं, क्योंकि जैसे दीपक अपने प्रकाशसे अंधकारका नाश कर देता है; वैसेही आपने अपने तेजसे इस गुफाका अंधकार नाश करदिया ॥ ३१ ॥ यह कहकर फिर मुचुकुंद बोले कि, हे नर पुंगव हमें आपका जन्म, कर्म व गोत्र सुननेकी अत्यन्त अभिलाषा है, सो प्रसन्नतापूर्वक हमें सुनाइये ॥ ३२ ॥ हे पुरुषसिंह ! मैं तो इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआहूं, मान्धाताका पुत्र और मुचुकुन्द मेरा नाम है ॥ ॥ ३३ ॥ मैं बहुत दिनोंमें जागाहूं इसलिये मुझे खेद प्राप्त हुआ है और नींदके मारे मेरी इन्द्रियें चलायमान होरहींहै, क्योंकि मैं इच्छानुसार इस वनमें सो रहाथा और अभी किसीने आकर जगादिया ॥ ३४ ॥ और जिसने मुझे

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ॥ यद्बाधसे गुहाध्वांतं प्रदीपः प्रभया यथा ॥३१॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुंगव ॥ स्वजन्मकर्मगोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३२ ॥ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबंधवः ॥ मुचुकुंद इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥३३॥ चिरप्रजागरश्रांतो निद्रयापहतेंद्रियः ॥ शयेऽस्मिन्विजने कामं केनाप्युत्थापितो ऽधुना ॥ ३४ ॥ सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ॥ अनंतरं भवाञ्श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥ तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥ हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥३६॥ एवं संभाषितो राज्ञा भगवान्भूतभावनः ॥ प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि संति मेंग सहस्रशः ॥ न शक्यंतेऽनुसंख्यातुमनंतत्वान्मयापि हि ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुज न्मभिः ॥ गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३९ ॥

आनकर जगाया, वह पुरुष उसीसमय जलकर भस्म होगया उसके पीछे आपके दर्शन हुए ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा असह्य तेज बहुत काल तक हम नहीं देख सक्ते, क्योंकि आप देहधारियोंके माननीय हैं ॥३६॥ इसप्रकार जब राजा मुचुकुन्दने प्रार्थना करी, तब संपूर्ण प्राणियोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहनेलगे ॥ ३७ ॥ कि, हे मुचुकुन्द ! मेरे जन्म, कर्म और नामका अंत नहीं है इसलिये मैं भी उनकी गणना नहीं करसक्ता ॥ ३८ ॥ अनेक जन्म धारण करके कदाचित मनुष्य पृथ्वीके रजकणोंकी तो गणना करसक्ता है,

परन्तु मेरे गुण, कर्म, जन्म, नामकी गिनती नहीं करसक्ता ॥ ३९ ॥ हे राजा मुचुकुन्द ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान, मेरे जन्मोंकी गणना करते करते बडे बडे ऋषि, मुनि भी पार न पासके ॥ ४० ॥ तोभी हे अंग ! अभीके जो मेरे नाम कर्म हैं सो मैं कहताहूं, तुम श्रवण करो. पृथ्वीका भार उतारने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्रथम कमलयोनि ब्रह्माजीने मेरी प्रार्थना की थी ॥४१॥ इस कारण यदुवंशमें वसुदेवके गृह मैंने जन्म लिया, और इसीलिये मेरा नाम वासुदेव प्रसिद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ हे मुचुकुन्द ! साधुद्वेषी कालनेमि, कंस इत्यादिका मैंने वध किया और यह जो कालयवन

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ॥ अनुक्रमंतो नैवांतं गच्छंति परमर्षयः ॥ ४० ॥ तथाप्यद्यतनान्यंग शृणुष्व गदतो मम ॥ विज्ञापितो विरिंचेन पुराऽहं धर्मगुप्तये ॥ भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥४१॥ अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुंदुभेः ॥ वदंति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतः कंसः प्रलंबाद्याश्च सद्द्विषः ॥ अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४३ ॥ सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ॥ प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाऽहं भक्तवत्सलः ॥ ४४ ॥ वरान्वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते ॥ मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तं प्राणम्याह मुचुकुंदो मुदान्वितः ॥ ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४६ ॥ मुचुकुंद उवाच ॥ विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ॥ सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः ॥ ४७ ॥

है, सो तुम्हारी तीक्ष्णदृष्टिसे भस्म होगया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! पहले तुमने मेरी प्रार्थना की थी इसलिये मैं तुमपर अनुग्रह करनेके लिये इस गुफामें आयाहूं ॥४४॥ हे मुचुकुन्द ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूं वर माँगो, क्योंकि मेरी शरण आनेसे मनुष्यको फिर किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब प्रसन्न हो गर्गाचार्यके वचन स्मरणकर उन्हें साक्षात् परिपूर्ण भगवान् जान प्रणाम करके राजा मुचुकुन्द बोलनेलगा ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्दने कहा कि, हे ईश ! तुम्हारी मायासे यह

लोग मोहित होकर अनर्थ (जगत्) की ओर दृष्टि लगाय, सुखके लिये दुःखके दुःखमूल घरोंमें रहकर क्या स्त्री क्या पुरुष सभी ठगकर मोहित होजातेहैं ॥ ४७ ॥ इस मृत्युलोकमें जन्म लेकर जो मनुष्य आपके चरणोंका ध्यान नहीं करता है सो पशु समझना ऐसा है तो भी शरीरका मैंने इतना अभिमान किया है कि, रथ, घोड़े, हाथी, पैदल, सेना और मुख्य मुख्य सेनाध्यक्षको साथ लेकर पृथ्वीपर विचारतारहा, परंतु कालरूप तुम्हारा स्मरण कभी न किया इसलिये मेरा इतना समय व्यर्थ गया और पशुकी नाईं गृहान्धकूपमें पडगया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कच्चे घटके समान इस देहको राजा मान अभिमानसे हम रथ, हाथी, घोडे, पदातिके संग पृथ्वीपर भ्रमण करते हुए आपका हमने बहुत अनादर किया ऐसे

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथंचिदव्यंगमयत्नतोऽनघ ॥ पादारविंद न भजत्यसन्मतिर्गृहांधकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४८ ॥ ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ॥ मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरंतचिंतया ॥ ४९ ॥ कलेवरेऽस्मिन्घटकुडयसन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ॥ वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वाऽगणयन्सुदुर्मदः ॥ ५० ॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमंतकः ॥ ५१ ॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ॥ स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५२ ॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवंदितः ॥ गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पुरुष ईश नीयते ॥ ५३ ॥

मनुष्यको मुखसे जिसप्रकार गलाफू चाटता सर्प उंदर (मूँसा) को पकड लेता है, उसी प्रकार अप्रमत्त (सावधान) कालस्वरूप आप झटपट लेतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मनुष्यदेव अर्थात् राजा यह नाम धरकर जो सुवर्णके बने रथोंपर बैठकर चलते हैं, सो देह दुरत्ययकाल करके मेरे पीछे कुत्ते सियार यदि भक्षण करलें तो विष्ठा होजाय, पड़ा रहे तो कृमि पड़ जॉय और अग्निसे जला दिया सो भस्म होजाय, इस प्रकार तीन नामोंको धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ हे भगवन् ! जिस पुरुषने सम्पूर्ण दिशाओंको जीतलिया है, जिसको संग्राममें कोई शत्रु शेष नहीं रहा और जिसे सब बराबरके राजा प्रणाम करते हैं, ऐसे उत्तम सिंहासनपर विराजमान चक्रवर्त्ती राजा भी मैथुन करनेके लिये घरोंमें क्रीड़ामृगके समान स्त्रियोंसे

नाच नचाये जाते हैं, जैसे बाजीगर बंदरको नचाता है ॥५३॥प्रथम यह पुरुष सब विषयोंको त्यागके, तपमें बड़ी श्रद्धाकर पृथ्वीमें शयन करताहै और ब्रह्मचर्य रहकर विषयभोगनेके लिये दान पुण्य करता है और फिर विचार करताहै कि,इस जन्ममें तपकर चक्रवर्ती राजा हो, तपस्याके प्रभावसे फिर इन्द्र होजाऊंगा, इसप्रकार तृष्णाके बढ़नेसे उस पुरुषको कभी सुख नहीं होता ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! इस संसारमें जन्म मरण प्राप्तहुए जीवको जिस समय तुम्हारे अनुग्रहसे संसारका अंत होताहै; उस समय तुम्हारे भक्तोंका सत्संग हो तो सब संगको त्यागकर कार्य कारणके नियन्ता आपमें भक्ति करते हैं, वह संसारके बंधनोंसे छूट जाते हैं ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर ! यह आपने बड़ाही अनुग्रह किया, जो मैं अकस्मात् राज्यबंधनोंसे

करोति कर्माणि तपस्सु निष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाऽऽददत् ॥ पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५४ ॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत तत्समागमः ॥ सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥५५॥ मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबंधापगमो यदृच्छया ॥ यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्या वनं विविक्षद्भिरखंडभूमिपैः ॥ ५६ ॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ॥ आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबंधनम् ॥ ५७ ॥ तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमस्सत्त्वगुणानुबंधनाः ॥ निरंजनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशांतिः कथंचित् ॥ शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽपन्नमीश ॥ ५९ ॥

छूटगया, यह मैं मानताहूं, राज्य छूटनेके लिये अकेला होकर वनमें जानेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्ती राजा भी प्रार्थना करते हैं कि हमारा किसीप्रकार राज्यबंधन छूटजाय, जिससे स्वाधीन होकर वनमें जा बैठें ॥ ५६ ॥ हे समर्थ ! निष्किंचन साधुसे पूजित, तुम्हारे चरणारविन्दोंका सेवन करनेसे मैं और किसी वरकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि साक्षात् मोक्षका देनेवाला तुम्हारा आराधन करके ऐसा कौन विवेकी पुरुष है, जो आत्माका बंधनरूप वर मांगेगा ? ॥ ५७ ॥ हे ईश ! इसीलिये सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इनके बंधन और ऐश्वर्य, अथवा शत्रुका विनाश और धर्मादिक मनोरथ त्याग ज्ञानघन, निरंजन, उपाधिरहित, निर्गुण, अद्वैत, ईश्वर मैं आपकी शरण आयाहूं ॥ ५८ ॥ हे अच्युत ! मैं इस संसारमें

बहुत दिनोंसे कर्म फलोंके कारण दुःखी हूं और कर्मोंकी वासनाओंसे पीड़ित हूं और तृष्णा सहित जो यह छः इन्द्रियरूप शत्रु मेरे पीछे पड़रहे हैं, इसलिये मुझे किसी प्रकारसे शांति नहीं है, अब मैं जैसे तैसे शोकरहित भयके दूर करनेवाले तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण आगया हूं, सो मेरी रक्षा करो ॥ ५९॥ तब श्रीभगवान् बोले कि,हे राजन्! तुम्हारी बुद्धि बड़ी निर्मल और उदार है,क्योंकि मैंने वर देनेके लिये कहकर तुम्हें लोभ उत्पन्न किया, तो भी कामना करके तुम्हारी बुद्धि चलायमान न हुई ॥ ६० ॥ मैंने वर देनेके लिये कहकर जो लोभ उत्पन्न किया, सो तुझे सचेत किया है, और हे राजन ! यह तू निश्चय जान कि, मेरे भक्तोंको कदाचित् दुःख आनकर प्राप्त हो तो भी उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होती है

श्रीभगवानुवाच ॥ सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ॥ वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ६० ॥ प्रलोभितो वरैर्यस्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ॥ न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित ॥ ६१ ॥ युंजानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ॥ अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६२ ॥ विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ॥ अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥ क्षात्रधर्मे स्थितो जंतून्यवधीर्मृगयादिभिः ॥ समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६४ ॥ जन्मन्यनंतरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥ भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

॥ ६१ ॥ हे मुचुकुन्द ! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वह प्राणायामादि साधनासे मनको वश करते हैं, तो भी उनका मन विषयोंके लोभमें जाताहुआ दीखता है, क्योंकि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई ॥ ६२ ॥ हे वीर ! मुझमें मन लगाकर जहाँ आपकी इच्छा हो, तहाँ विचरण करो, और तुम्हारी भक्ति नित्यप्रति मुझमें होवे ॥ ६३ ॥ क्षत्रिय वंशमें रह शिकार खेलकर जो तैंने जीवोंकी हिंसा की है, सो अब सावधान होकर मेरा आश्रय लेकर तप कर, जिससे तेरे सब पाप छूट जायँ ॥ ६४ ॥ हे राजा मुचुकुन्द ! दूसरे जन्ममें सब प्राणियोंके हित करनेवाले द्विजरूप तुममुझे प्राप्त होगे ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दोहा—बवनवें अध्यायमें, रुक्मिणिको संदेश। द्विजवर लेगयो द्वारका, जहँ श्रीकृष्ण व्रजेश ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित इसप्रकार कृष्णसे अनुगृहीत होकर इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुन्द श्रीकृष्णकी परिक्रमा दे, नमस्कार कर गुफासे बाहर निकल आये ॥ १ ॥ राजा मुचुकुन्द मनुष्य, पशु लतादिक और छोटे छोटे वृक्षोंको देखकर "अब कलियुग आगया" इसप्रकार निश्चय कर उत्तर दिशाको चलेगये * ॥ २ ॥ वहाँसे फिर श्रद्धापूर्वक सब संग त्याग, संदेह रहित हो राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाय गंधमादनपर्वतपर चले गये ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम!

॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सोऽनुगृहीतोंग कृष्णेनेक्ष्वाकुनंदनः ॥ तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥ स वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ॥ मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतो धीरो निस्संगो मुक्तसंशयः ॥ समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गंधमादनम् ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ॥ सर्वद्वंद्वसहः शांतस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ॥ हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥

फिर नरनायणके स्थान बद्रिकाश्रममें जाकर समस्त द्वन्द्व अर्थात सुख दुःख, भूख प्यास, शीत उष्णादि सहकर शान्त स्वरूप मुचुकुन्द तप करके भगवान् वासुदेवकी आराधना करनेलगा ॥ ४ ॥ फिर इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्रने म्लेच्छोंसे घिरी मथुरापुरीमें आकर म्लेच्छोंकी सब सेनाका संहार किया और उनका सब धन लेकर द्वारकापुरीको भेज दिया ॥ ५ ॥

* शंका—श्रीकृष्णजी मर्त्यलोकमें विराजते थे, फिर उनके सामने पृथ्वीपर मनुष्य, पशु, वृक्ष, पर्वत आदि लेके जो सब वस्तु प्रथम बडी बडी थी, सो वस्तु छोटी छोटी क्यों होगई ? यह बडा आश्चर्य है ? क्योंकि कृष्ण भगवान् मृत्युलोकसे वैकुण्ठको चले जाते तब बडी बडी वस्तु छोटी छोटी हो जातीं, तो शंका न होती श्रीकृष्णके सामने विपरीत होनेका क्या कारण ? उत्तर—द्वापरयुगमें जैसी प्रजा ब्रह्माने बनाई थी, वैसीही प्रजा मर्त्यलोकमें उससमय थी, न तो तिलसमान कम और न तिलसमान अधिक, परन्तु राजा मुचुकुन्दने श्रीकृष्णके दर्शनकी प्रीतिसे प्रसन्न होके पर्वतको भी छोटा समझा और पदार्थोंकी तो क्या बात है इसका यह अर्थ है कि, कृष्णके दर्शनसे सब वस्तुको राजाने छोटा समझा, एक कृष्णके स्नेहहीको बडा समझा ॥

श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पातेही मनुष्य बैलोंके ऊपर धन लादकर जब ले चले; तब जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर फिर चढिआया ॥६॥ श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी शत्रुकी सेनाको देख मनुष्यावतारके कारण शीघ्रही उठकर भागे ॥ ७ ॥ यद्यपि इन्हें किसीका डर नहीं था, तौ भी बहुत भयभीत होगये; इसलिये बहुतसे धनको मार्गमें छोड़ कमलसे कोमल चरणोंसे बहुत दूर तक कोशों भागे चलेगये ॥ ८॥ मगध देशका राजा जरासन्ध कृष्ण बलदेवको भागता हुआ देख हँसकर आप भी उनके पीछे दौड़ने लगा ॥ ९ ॥ बहुत दूरतक भागनेके कारण श्रमित होकर श्रीकृ

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ॥ आजगाम जरासंधस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ॥ मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥ पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ॥ अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्य दूरं संश्रांतौ तुंगमारुहतां गिरिम् ॥ प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥ गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पद नृप ॥ ददाह गिरिमेधोभिः समंतादग्निमुत्सृजन् ॥ ११॥ तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ॥ दशैकयोजनोत्तुंगान्निपेततुरधो भुवि ॥१२॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ॥ स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥

ष्णचन्द्र और बलरामजी प्रवर्षणनाम पर्वतपर चढगये, जिसपर देवराज इन्द्र नित्य जल वर्षाते रहते थे ॥ १०॥ हे राजा परीक्षित् । जरासन्धने कृष्ण बलरामको पर्वतपर चढ़ा जान उनको बहुत ढूँढ़ा परन्तु कहीं पता न लगा, तब उस पर्वतके चारोंओर आग लगादी ॥ ११ ॥ हे राजन् । जब पर्वत जलने लगा, तब श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव दोनों भ्राता उस ४४ चवालीस कोश ऊँचे पर्वतके शिखरसे उछलकर पृथ्वीपर कूद पड़े ॥ १२ ॥ हे महाराज ! सेवकोंसहित जरासन्धसे अलक्षित यादवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण बलराम समुद्रकी खाईंसे युक्त द्वारकापुरीमें आये ॥ १३ ॥

हे राजन् ! जब समस्त पर्वत जलकर भस्म होगया, तब मगधदेशके राजा जरासन्धने विचारा कि, कृष्ण बलदेव भी इसके संगही भस्म होगये, इसलिये अपनी सब सेना साथ लेकर मगधदेशको चलागया ॥ १४ ॥ यद्यपि अब श्रीकृष्णचन्द्रके विवाहकी कथा कहनेके लिये प्रथम (नवमस्कन्ध) में बलदेवजीके विवाहकी कथा वर्णनकर आये हैं, तो भी फिर एक श्लोकमें वर्णन करते हैं, हे परीक्षित्! आनर्त्तदेशके राजा रैवतने, कमलयोनि ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी पुत्री रेवतीका बलदेवजीसे विवाह कर दिया, यह पहले कहचुके हैं ॥ १५ ॥ हे भारतवंशावतंस परीक्षित् ! भगवान् वसुदेव भी स्वयंवरमें जाकर लक्ष्मीजीके अंशसे विदर्भदेशमें उत्पन्न हुई भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको विवाह लाये ॥ १६ ॥ शाल्व

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ॥ बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥१४॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान्रैवतो रेवतीं सुताम् ॥ ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥ भगवानपि गोविंद उपयेमे कुरूद्वह ॥ वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ॥ पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ॥ राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ १८ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ॥ यथा मागधशाल्वादीञ्जित्वा कन्यामुपाहरत ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्यामाध्वीर्लोकमलापहाः ॥ को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥

और शिशुपालादिक राजाओंकी सेनाको जीत, सब लोकोंके देखतेहुये जैसे देवताओंको जीतकर गरुडजी अमृत ले आते हैं उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीजीको लेआये ॥ १७ ॥ इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अत्यन्त स्वरूपवान् राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको युद्धमेंसे हरके राक्षसविधिसे श्रीकृष्णचन्द्रने ब्याहा, यह वार्त्ता हमने आपकेही मुखसे सुनी है ॥ १८ ॥ हे व्यासनंदन ! जरासन्ध शाल्व इत्यादि राजाओंको जीतकर जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीको लाये, वह चरित्र सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है, सो प्रसन्नता पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णचन्द्रकी कथा अत्यन्त पवित्र और मनोहर है और समस्त लोकोंके पापोंका नाश करनेवाली हैं,

नित्य नवीन सुननेके सारको जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है, जो ऐसी कथायें सुनकर तृप्त हो ! ॥ २० ॥ जब राजाने यह वचन कहे, तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! विदर्भदेशका पालन करनेवाला, महायशस्वी भीष्मक नाम राजा था, इसके पाँच पुत्र और परमस्वरूपवान् एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ इन पुत्रोंमें सबसे बड़ा रुक्मी, इससे छोटा रुक्मरथ, इससे छोटा रुक्मबाहु, इससे छोटा रुक्मकेश और रुक्मकेशसे छोटा रुक्ममाली, यह पांच पुत्र उत्पन्न हुये और पाँचोंकी बहन परमसुशीला पतिव्रता रुक्मिणी हुई ॥ २२ ॥ घरमें आये हुये देवर्षि नारदजीके मुखसे श्रीकृष्णचन्द्रका गुणानुवाद सुनकर श्रीरुक्मिणीजीने अपने समान जान, विवाह करनेके लिये मनमें प्रतिज्ञा की ॥ २३ ॥ और इधर सुन्दर बुद्धि, उदारता, रूप, पराक्रम, शोभायुक्त रुक्मिणीके गुण सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने

श्रीशुक उवाच ॥ राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ॥ तस्य पंचाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥ रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनंतरः ॥ रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥ सोपश्रुत्य मुकुंदस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ॥ गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २३ ॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम्॥ कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥२४॥ बंधूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ॥ ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥ २५ ॥ तदवेत्यासितापांगी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ॥ विचिंत्याऽऽप्तं द्विजं कंचित्कृष्णाय प्राहिणोद्द्रुतम् ॥ २६ ॥ द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं कांचनासने ॥ २७ ॥

समान स्त्रीके व्याहनेका अभिलाष किया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! माता, पिता, भ्राता, आदि सबकी यही इच्छा थी कि, रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णचन्द्रसे करेंगे, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रका शत्रु रुक्म " हम अपनी बहनका विवाह कृष्णके साथ नहीं करेंगे " इस प्रकार निषेधकर " रुक्मिणीके योग्यवर शिशुपाल है" यह मनमें निश्चय किया ॥ २५ ॥ ॥ सुन्दर नील कटाक्षवाली विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीने सुना कि, श्रीकृष्णके साथ मेरा भाई व्याहनेको निषेध करता है, यह जान बहुत उदास होकर उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाय श्रीकृष्णचन्द्रके लिवालानेके लिये भेजा ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह ब्राह्मण जिस समय द्वारकापुरीमें पहुंचा, उसी समय द्वारपालोंने इसे भीतर पहुँचाया, वहाँ इसने

सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान आदि पुरुष भगवान् वासुदेवके दर्शन किये ॥ २७ ॥ गौ ब्राह्मणोंका पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उसब्राह्मणको देखतेही सिंहासनपरसे उतरपड़े और ब्राह्मणको सिंहासनपर बिठाय, जिस प्रकार कोई अपने देवताकी पूजा करता है उसी प्रकार पूजा करनेलगे ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित ! जब ब्राह्मण भोजन करचुका और मार्गकी थकावट दूर होगई, तब सत्पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके निकट जा अपने हाथोंसे उसके चरण दाबते दाबते यह पूँछा ॥ २९ ॥ कि, हे द्विजश्रेष्ठ ! वृद्धसंमत तुम्हारा धर्म बहुत कठिनतापूर्वक तो

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ॥ उपवेश्यार्हयांचक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥ तं भुक्तवंतं विश्रांतमुपगम्य सतां गतिः ॥ पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥ कच्चिद्द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः ॥ वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥ संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ॥ अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥ असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ॥ अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वांगविज्वरः ॥ ३२ ॥

नहीं चलता है ? सदा तुम्हारे मनमें संतोष तो वर्त्तमान है ? ॥३०॥ जिस किसी प्रकारके ब्राह्मण संतोष होकर वर्त्ते अर्थात् जो वस्तु मिले उसीमें संतोष रक्खे, स्वधर्मसे च्युत न हो तो यही उसको समस्त फलके देनेवाले हैं ॥ ३१ ॥ और जिसके मनमें संतोष नहीं है वह ब्राह्मणयद्यपि इन्द्र हो जाय तौ भी सब लोकोंमें घूमता फिरता है, तृष्णाकेमारे एक स्थानपर स्थिर नहीं रहता, हे ब्राह्मण ! प्रारब्धही तो मनुष्यको राजा रंक करताहै * और जिसके पास कुछ भी नहीं है और मनमें सन्तोष है, वह ब्राह्मण सब खेदको त्यागकर आनन्दपूर्वक सोता है ॥ ३२ ॥

* दृष्टान्त—एक घोडोंके व्यापारीके घोडेसे राजाके पुत्रका कोई रोग जाता रहा, राजाने व्यापारीसे कहा कि, इस घोडेकी कीमत लेलो, व्यापारीने कहा, महाराज ! यहघोड़ा कुमारके चढनेको मैंने वैसेही दिया और मुझे द्रव्यकी इच्छा नहीं, जब उसने ऐसा कहा, तब राजाने उसका बहुत आदर सन्मानकर विदा किया और कहा कि, यहाँ आते जाते रहियो अब कुछ वर्ष उपरान्त व्यापारीका प्रारब्ध विगड धन सब चोरी होगया, घोड मरगये और जब कुछ उपाय न चला तो राजाके पास आया, राजाने यह समाचार सुन, उसे एक मकानमें टिका दिया और कुछदिन पीछे उससे भेंट कर पूछा कि, तुमको क्या बनाना आता है ? व्यापारी बोला कि, मैं चाबुक बनाना जानताहूं, राजाने उसी समय पाँच रुपये देकर कहा कि, इसके चाबुक बनाओ और बेंचो, रहनेके लिये मकान तुम्हें देही दिया है, तो व्यापारी चाबुक बनानेलगा, कुछ दिन उपरान्त उनमें भी घाटा हुआ और पाँचों रुपये व्यय होगये, तो राजाने फिर पाँच रुपये देदिये और फिर घटगये, इसी प्रकार पाँच पाँच रुपये, सात वर्षतक राजाने दिये परन्तु जमा घटतीही—

जो द्विज आपही मिली वस्तुमें सन्तोष करता है, अपने धर्ममें निष्ठ है और समस्त जीवोंकी रक्षा करता है शान्तस्वभाव अहंकार रहित है उसको मैं भी वारम्वार नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस राजाके देशमें तुम वास करते हो, वह राजा तो तुम पर प्रसन्न है ? क्योंकि जिस राजाके देशमें भली भाँति गौ ब्राह्मणका पालन होता है, वह राजा मुझे अत्यन्त प्यारा लगता है ॥३४॥ हे द्विजोत्तम ! समुद्रको उल्लंघन कर जिस

विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ॥ निरहंकारिणः शांतान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥ ३३ ॥ कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः ॥ सुखं वसंति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ॥ सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥ ३५ ॥ एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ॥ लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वा गुणान्भुवनसुंदर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोंगतापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥

कार्य करनेकी इच्छासे आप यहाँपर आये हैं, जो कहने योग्य वार्त्ता होय तो हमारे सन्मुख कहो, जिससे उस कार्यके करनेका उपाय कियाजाय ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! श्रेष्ठ आसनपर विराजमान, लीलासेही जिन्होंने मनुष्य देह धारण किया है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पूछनेपर वह ब्राह्मण बोला कि ॥ ३६ ॥ हे मधुसूदन ! रुक्मिणीने आपको एकान्तमें

—गई, जब आठवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तो एक रुपया वढा अर्थात् पाँच रुपयेके छः रुपये होगये तव यह देखकर राजाने दश रुपये दिये, फिर अधिक उन्नति हुई और द्रव्य वढनेही लगा । राजाने फिर घोडे लिवादिये उसमें वहुत द्रव्य उपार्जन किया, जव पहलेके समान द्रव्य होगया, तव व्यापारीने विचारा कि, जितना कुछ राजाका द्रव्य हमने लिया है, सो देदेना चाहिये, यह अपने मनमें निश्चय कर राजासे मिलने गया उस दिन राजाने उसका वहुत सत्कार किया और कहा कि, मेरा आधा राज्य तू लेले, तव व्यापारी क्रोध करके बोला कि जब मेरे पास कुछ नहीं था तो पाँच रुपयेसे अधिक नहीं दिये, न मुझसे अच्छी प्रकार मिले और अब आधा राज्य देतेहो, तव राजा वोले कि उस समय तेरा प्रारब्ध विगड रहाथा यदि मैं अपना सारा राज्य भी तुझको देदेता, परन्तु तौभी तेरे पास कुछ नहीं रहता, इसलिये थोडेही द्रव्यसे तेरा ग्रह टाल दिया, प्रारब्धके वली होनेसे और वलहीन होजातेहैं ॥

यह पत्री दीहै, तब श्रीकृष्णचन्द्रजीकी आज्ञासे उस प्रेमके चिह्नवाली पत्रीको खोलकर वह ब्राह्मण सुनाने लगा, रुक्मिणीने लिखा है कि, हे त्रिलोकीमें सुन्दर ! हे अच्युत अर्थात् अखण्डरूप जबसे श्रवण करनेवाले पुरुषोंके कर्णोंके छिद्रों द्वारा, हृदयमें प्रवेश कर शोकसन्ताप दूर करनेवाले आपके गुण और दृष्टिवालोंकी दृष्टिके सकल मनोरथोंका लाभरूप श्रीमान्का रूप सुना है, तभीसे मेरा मन आपमें लग रहाहै ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द ! हे पुरुषशार्दूल ! कौन बलवान् उदार गुणयुक्त धैर्यवान् कन्या तुम्हें जो कि, मनुष्य लोकके अतिप्रिय कुल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, धन, घर इन सबमें तुम्हारी ही समान हो, तिन्हें विवाहके समयमें पति स्वीकार न करे ॥ ३८ ॥ हे समर्थ !

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम् ॥ ३८ ॥ तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरंग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ॥ मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमंबुजाक्ष ॥ ३९ ॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ॥ आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥ श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेंद्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥

इसकारण मैंने अपना पति आपको वरण किया है और अपनी देह अर्पण करदी है, मुझे अपनी दासी अर्थात् भार्या बनाओ. हे कमलदललोचन ! मैं आपका भाग हूँ, उसे जैसे सिंहके भागको सियार ग्रहण नहीं करसक्ता, इसी प्रकार शिशुपाल आनकर मुझे स्पर्श न करै ॥ ३९ ॥ बावली, कुआँ, तालाव, बाग, यज्ञ, दान, नियम, तीर्थ, देवता, ब्राह्मण, गुरु इनकी पूजा करनेसे भगवान् वासुदेव प्रसन्न होते हों तो श्रीकृष्णचन्द्र मेरा हाथ पकडके लेजाँय और शिशुपालादि कोई राजा न आने पावैं ॥ ४० ॥ हे अजित ! कलहही विवाहका दिन है, इसलिये तुम गुप्तवेषसे विदर्भदेशमें आओ, परन्तु अकेले मत आना, पीछे सेना भी साथमें लेतेआना शिशुपाल और मगधदेशके राजा जरासन्धकी

सब सेनाको मथनकर उस पराक्रमके मोलमें मुझ अपनी दासीके संग आसुरविधिसे विवाह करलो॥४१॥कदाचित् कहो कि,तुम तो अंतःपुरके भीतर रहती हो, तुम्हारे बंधु बांधवोंके मारे विना कैसे विवाह करूं यह सन्देह मनमें कभी मत करो, क्योंकि हमारे कुलमें विवाहसे प्रथम दिन बड़ी कुल देवी अम्बिकाकी यात्रा होती है, सो यात्रा करनेके लिये और देवीकी पूजा करनेको नववधू कन्या बाहर जाती हैं, वहांसे मेरा लेजाना अतिसहज है, जैसे पार्वतीको महादेवजी लेगये ॥ ४२ ॥ जिनके चरणारविन्दोंकी रजसे स्नान करनेको बडे बडे साधु महात्मा अपना महान् अज्ञान दूर करनेके लिये इच्छा करते हैं, हे कमलदललोचन ! जो तुम मेरे ऊपर प्रसन्न न होगे, तो व्रत करके प्राण त्यागन करदूंगी, यदि कहो कि, प्राण त्यागनेसे क्या होगा; तो उत्तर यह है कि, वारम्वार त्यागन करूंगी तो सौ जन्ममें तो प्रसन्न होगे ? ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोला कि, हे द्वारकानाथ !

अंतःपुरांतरचरीमनिहत्य बंधूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां वहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥ यस्यांघ्रिपंकजरजस्स्नपनं महांतो वांछंत्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ॥ यर्ह्यंबुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशाञ्शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाऽऽहृताः ॥ विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनंतरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दश० उत्तरा० कृष्णं प्रति रुक्मिणीसंदेशप्रेषणं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥श्रीशुक उवाच॥वैदर्भ्या स तु संदेशं निशम्य यदुनंदनः ॥ प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ॥ वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥

यह जो मैं गुप्त संदेशा लेकर आया हूं यदि यह करने योग्य कार्य होय तो शीघ्रता करनी चाहिये, विलम्ब करना उचित नहीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिण्युद्वाहे द्विपचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ दोहा–तिरपनमें निज प्रियाहित, हरि विदर्भ पग दीन ॥ छीन लीन वैरीनसों, अपनी प्रिया प्रवीन ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यदुवंशियोंको आनन्दके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीका इस प्रकार संदेशा सुनकर ब्राह्मणका हाथ हाथमें पकड़कर कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, जैसा रुक्मिणीका चित्त मुझमें लगा है, ऐसाही मेरा चित्त भी रुक्मिणीमें लगरहाहै और चिन्ताके मारे रातको नींद भी नहीं आती

मैं जानता हूं कि रुक्मने द्वेष करके मेरे विवाहको मने कर दियाहै ॥ २ ॥ दुष्ट राजाओंको जीतकर दोष रहित अंगवाली अनन्यगति रुक्मिणीको जिस प्रकार काष्ठके मथनेसे मनुष्य अग्नि निकाल लेतेहैं, वैसेही लेआऊंगा ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! मुर दैत्यके मारनेवाले भगवान् रुक्मिणीके विवाहका नक्षत्र जान रथवान्से बोले कि, रथवान्! शीघ्रही रथ जोतकर लाओ ॥ ४ ॥ शैव्य, सुग्रीव, मेघ पुष्प, बलाहक नामक घोडोंको रथमें जोत श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख ला सारथी हाथ जोडकर कहने लगा, रथ उपस्थित है ॥ ५ ॥ रथको देखतेही शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र प्रथम ब्राह्मणको चढाय पीछे आप चढ़ शीघ्रगामी, घोड़ोंके द्वारा आनर्त्तदेशसे चलकर एकही रातमें विदर्भदेश

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ॥ मत्परामनवद्यांगीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ॥ रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स चाश्वैः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्रांजलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्य स्यंदनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ॥ आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥ राजा स कुंडिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ॥ शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ॥ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥ स्रग्गंधमाल्याभरणैर्विरजोंवरभूषितैः ॥ जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥

पहुँचे ॥ ६ ॥ अपने पुत्र रुक्मके स्नेहवश होकर और उसकी आज्ञानुसार चलनेवाला कुंडिनपुरका राजा भीष्मक शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये पुरकी शोभा और पितृ, देवताओंके पूजनादिकर्म करानेलगा ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त राजा भीष्मकने अपने पुरको शोभायमान करनेके लिये राजमार्गमें झाडू बुहारी दिलवाकर छिड़काव कराया, चित्र विचित्र ध्वजा पताका और वन्दनवारोंसे अपने पुरको अत्यन्त शोभायमान किया ॥ ८ ॥ माला, चन्दन, फूलोंके गहने और स्वच्छ वस्त्रोंसे. शोभायमान स्त्री, पुरुष धाराप्रवाहकी भाँति इधर उधर फिर रहे थेऔर सब मन्दि अगरकी सुगन्धसे सुगंधित थे ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! पितृ, देवताओंका पूजन करके और विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन जिमाय राजा भीष्मकने रुक्मिणीका यथावत् स्वस्तिवाचन कराया ॥ १० ॥ ॥ फिर कन्याको भलीप्रकार स्नान कराय; कौतुकसे उसके हाथमें विवाहका कंकण बाँध उत्तम नवीन वस्त्र पहराय अनेक अलंकारोंसे सुशोभित किया ॥ ११ ॥ तब द्विजोत्तम ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंको पढकर श्रीरुक्मिणीजीकी रक्षा करनेलगे और अथर्व वेदके मंत्रोंको जाननेवाले पुरोहितने सूर्यादि नवग्रहोंकी शान्ति करनेके लिये होम किया ॥ १२ ॥ हे राजन् ! विधि जाननेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको सुवर्णरूपी वस्त्र और तिल मिलाकर गुड़ वा दूधवाली बहुतसी गायोंका दान दिया ॥ १३ ॥

पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ॥ भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मंगलम् ॥ १० ॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमंगलाम् ॥ अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥ चक्रुः सामर्ग्यजुर्मंत्रैर्बद्ध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ॥ पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशांतये ॥ १२ ॥ हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ॥ प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १३ ॥ एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ॥ कारयामास मंत्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४ ॥ मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यंदनैर्हेममालिभिः ॥ पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुंडिनं ययौ ॥ १५ ॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ॥ निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥ तत्र शाल्वो जरासंधो दंतवक्रो विदूरथः ॥ आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौंड्रकाद्याः सहस्रशः ॥ १७ ॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ॥ यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥

जिस प्रकार राजा भीष्मकने अपनी कन्याका मंगल कराया उसी प्रकार चंदेलीके राजा दमघोषने अपने पुत्र शिशुपालके सब मंगलकर्म मंत्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे कराये ॥ १४ ॥ मतवाले हाथियोंका समूह, रथ, पैदल, घोड़े इत्यादि चतुरंगिणी सेनाको साथ लेकर राजा दमघोष कुंडिनपुरमें पहुँचा ॥ १५ ॥ समाचार सुनतेही विदर्भदेशके राजा भीष्मकने अगौनीकर एक सजेहुये स्थानमें उन्हें जनवासा दिया ॥ १६ ॥ तहाँ शाल्व, जरासंध, दंतवक्र, विदूरथ और पौंड्रक आदि सहस्रों राजा शिशुपालकी ओरके आये ॥ १७ ॥ यह समस्त कृष्णबलदेवके शत्रु

सजकर शिशुपालको कन्या दिलानेके लिये आये थे, और मनमें प्रथमही निश्चय करलिया था कि, कदाचित् बलदेव व समस्त यदुवंशियोंको साथ ले कृष्ण आनकर रुक्मिणीको हरेगा तो उसके संग युद्ध करैंगे इस प्रकार मनमें विचार अच्छे २ बलवान् सिपाही घोड़े हाथियोंको संग लेकर संपूर्ण राजा आये ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलदेवजी भी शत्रु शिशुपालकी ओरके राजाओंका साहस सुनकर कहने लगे कि, "रुक्मिणीके लेनेके लिये भाई श्रीकृष्ण अकेला गया है इस कारण लड़ाई अवश्य होगी" यह मनमें निश्चय कर श्रीकृष्णके स्नेहसे हाथी, घोडे, रथ, प्यादे इत्यादि समस्त चतुरंगिणी सेनाको लेकर कुंडिनपुर पहुँचे ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठ जंघाओंवाली भीष्मककी कन्या रुक्मिणी श्रीमोहनप्यारेका

योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ॥ आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ॥ कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशंकितः ॥ २० ॥ बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ॥ त्वरितः कुंडिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥२१॥ भीष्मकन्या वरारोहा कांक्षंत्यागमनं हरेः ॥ प्रत्यापत्तिमपश्यंती द्विज स्याचिंतयत्तदा ॥२२॥ अहो त्रियामांतरित उद्वहो मेऽल्पराधसः ॥ नागच्छत्यरविंदाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २३ ॥ सोपि नवर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ॥ अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचिज्जुगुप्सितम् ॥ मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥२४ ॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ॥ देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ २५ ॥

पैंड़ा देख देख "ब्राह्मण पत्रीलेकर गया है वह अभी लौटकर नहीं आया" इस प्रकार चिन्ता करनेलगी ॥ २२ ॥ मुझ मंदभागिनीके विवाहमें अब एकही रात्रि शेष रही है और कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अभीतक न आये ॥ २३ ॥ और ब्राह्मण जो मेरा सन्देशा लेगया है, वह भी अभीतक लौट नहीं आया नहीं जान पडता है कि, इसका क्या कारण है ? ॥ फिर कहने लगी कि, निर्दोष श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे-पाणिग्रहणका उपाय तो निश्चय किया होगा परन्तु "कन्या अभीसे पत्री लिख लिखकर भेजती है" यह दोष विचारकर नहीं आये ॥ २४ ॥ मुझ अभागिनीको विधाता

ईश्वर और देवी पार्वती अनुकूल नहीं हैं ॥२५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके न आनेसे दुःखी मन समयकी जाननेवाली रुक्मिणी आँसुओंसे व्याकुल हुए नेत्रोंको बंदकरके बैठगई॥२६॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके आनेका मार्ग जोहती जोहती रुक्मिणीके बायें अंग, ऊरू, भुजा और नेत्र यह अंग फड़कनेलगे, क्योंकि स्त्रियोंके बायें अंग फड़कनेसे शुभदायक और प्यारी बातके जतानेवाले हैं॥२७॥इसके उपरान्त श्रीकृष्ण चन्द्रने कहा कि हे द्विजोत्तम तुम आगे जाकर खबर करो, श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे ब्राह्मणने अंतःपुरमें व्याकुलतासे दौडतीहुई राजकुमारी रुक्मिणीको देखा ॥२८॥ पतिव्रता रुक्मिणी प्रसन्नवदन और स्वस्थरीतिसे ब्राह्मणको आताहुआ देखकर अपने मनमें "यह कार्य कर आया है" ऐसा निश्चय

एवं चिंतयती बाला गोविंदहृतमानसा ॥ न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥ एवं वध्वः प्रतीक्षत्या गोविंदागमनं नृप ॥ वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिादष्टः स एव द्विजसत्तमः ॥ अंतःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ॥ आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञ समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनंदनम् ॥ उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ॥ न पश्यंती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ॥ अभ्यायात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥

कर और उसके लक्षणोसे पहँचान पूँछनेलगी ॥२९॥ हे राजन् ! तब रुक्मिणीजीसे "श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं" यह ब्राह्मणने कहा और श्रीकृष्णचन्द्रने जो कहा था कि "राजाओंको जीतकर रुक्मिणीको लेआऊंगा" यह भी सब वृत्तान्त उनको सुनाया ॥३०॥ श्रीकृष्णचन्द्रको आयाहुआ जान हर्षित मनसे राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी विचार करनेलगी कि, इस समय ब्राह्मणको सर्वस्व दूं, तौ भी थोडा है जब ब्राह्मणके देनेयोग्य कोई वस्तु न देखी, तब केवल प्रणाम करके बहुतसा धन्यवाद दिया ❊ ॥ ३१ ॥ कन्याका विवाह देखनेके लिये श्रीकृष्ण बलदेवको आया सुन नगाड़े

❊ शंका–ब्राह्मणको देनेके योग्य कोई वस्तु त्रिलोकीमें रुक्मिणीने नहीं देखी कि, यह वस्तु ब्राह्मणको देनी चाहिये, इसीलिये हार मानकर केवल नमस्कारही किया, यह बडी शंका है, क्योंकि वह ब्राह्मण मुनि तो थाही नहीं उसको तो जो वस्तु देती सो लेलेता फिर क्यों नहीं दी ? उस ब्राह्मणको तो धनादिक लेके जो वस्तु संसारमें है, सब वस्तुके लेनेकी इच्छा थी, फिर रुक्मिणीने धनादिक वस्तु क्यों नहीं दी, कोरा नमस्कार क्यों किया ?

बजाता हुआ और बहुतसी पूजाकी सामग्री लेकर राजा भीष्मक श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख गया ॥ ३२ ॥ मधुपर्क लाकर आगे धर सुन्दरवस्त्र और अनेक प्रकारकी भेंट देकर विधिपूर्वक राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवका पूजन करनेलगा ॥ ३३ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवको उत्तम स्थानमें टिकाय सेना सेवको सहित यथायोग्य आतिथ्य करनेलगा ॥ ३४ ॥ इसप्रकार जो राजा इकट्ठे हुएथे उनमें जैसा जिसका पराक्रम, अवस्था, बल और धनके अनुसार सब राजाओंका सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भनगरके पुरवासी श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुनकर

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः ॥ उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ॥ ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ॥ यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ॥ आगत्य नेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपंकजम् ॥३६॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ॥ असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥ ३७ ॥ किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ॥ अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥ एवं प्रेमकलाबद्धा वदंति स्म पुरौकसः ॥ कन्या चांतःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्तांबिकालयम् ॥ ३९ ॥

नेत्ररूप अंजलियोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलको पान करने लगे ॥ ३६ ॥ और सब नर नारी विचार करनेलगे कि, दोषरहित रुक्मिणी श्रीकृष्णचन्द्रकेही योग्य है, एवं श्रीकृष्णचन्द्र भी रुक्मिणीके पति होनेयोग्य हैं इसप्रकार परस्पर कहनेलगे ॥ ३७ ॥ कि, जो कुछ हमने पुण्य किये हैं उसके प्रभावसे प्रसन्न होकर ईश्वर हमारे ऊपर अनुग्रह करैं कि, जिससे श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीका पाणिग्रहण करैं ॥३८॥ हे राजन् ! इस प्रकार

उत्तर—लक्ष्मीका पिता जो समुद्र था उसको ब्राह्मणने पान करलिया (पीलिया) और लक्ष्मीका पति जो भगवान् उनको ब्राह्मणने लातसे मारा, और लक्ष्मीका छोटाभाई कमल, उसको ब्राह्मणोंने देवताओंके पूजनेके लिये तोडलिया, ब्राह्मणोंका ऐसा कुकर्म देखके लक्ष्मी ब्राह्मणोंसे रुष्ट होगई, ब्राह्मणोंको धनादिक वस्तु नहीं देती हैं इसलिये लक्ष्मीका रूप रुमिणीने ब्राह्मणको धन नहीं दिया, कोरा नमस्कार किया है ॥

प्रेममें मग्न होकर जिससमय सब पुरवासी कहनेलगे, उसी समय बहुतसी सखियोंके साथ श्रीरुक्मिणीजी पुरसे बाहर अम्बिकादेवीका पूजन करनेके लिये चलीं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका भले प्रकार ध्यान करते करते श्रीरुक्मिणीजी अम्बिकादेवीका दर्शन करनेके लिये पैरोंही गईं॥ ४० ॥ हे परीक्षित् ! श्रीरुक्मिणीजीके संग मौन धारण किये पुरोहितानी और सखी सहेली जिस समय चलीं, उसी समय कवच पहर पहर और अस्त्र हाथोंमें ले महाबलवान् राजाके सिपाही उसकी रक्षाके लिये संग होलिये और उस समय मृदंग, शंख, ढोल, तुरही, भेरी, रणसिंहादिक अनेक प्रकारके बाजे बजनेलगे ॥ ४१ ॥ संगीत विद्यामें अतिनिपुण सहस्रों वेश्या संगमें नाचती हुई चली जाती थीं और माला चन्दन वस्त्र

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ॥ सा चाऽनुध्यायती सम्यङ्मुकुंदचरणांबुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥ गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ मृदंगशंखपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥४१॥ नानोपहार बलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ॥ स्रग्गंधवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥ ४२ ॥ गायन्तश्च स्तुवंतश्च गायका वाद्य वादकाः ॥ परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवंदिनः॥४३॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकरांबुजा॥ उपस्पृश्य शुचिः शांता प्रविवेशांबिकांतिकम् ॥ ४४ ॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ॥ भवानीं वंदयांचक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥ ॥ ४५ ॥ नमस्ये त्वांबिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम् ॥ भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥

आभूषणोंसे शृंगार करके और अनेक प्रकारकी सामग्री भेंट लेके ब्राह्मणोंकी स्त्रियें संग गईं ॥ ४२ ॥ गाने और बजानेवाले सूत, बन्दीजन श्रीरुक्मिणीजीको बीचमें करके, चले जारहे थे ॥ ४३ ॥ हाथ पॉव धोय, आचमन कर, पवित्र हो, देवीके मन्दिरमें जाय रुक्मिणी अम्बिकादेवीके निकट गईं ॥ ४४ ॥ विधिपूर्वक वृद्ध ब्राह्मणोंकी स्त्रियें रुक्मिणीजीसे महादेवजीसहित भवानीकी पूजा करानेलगीं ॥ ४५ ॥ जब पूजा कर चुकीं, तब रुक्मिणीजीने मनमें कहा कि, हे अंबिका पार्वती ! तुम्हारे सन्तानसमेत मंगलरूपिणी तुम्हें वारम्वार प्रणाम करके यही वर माँगती हूं कि, श्रीकृष्णचन्द्र

मेरे पति हों, इस प्रकार मस्तक नवायकर रुक्मिणीजीने प्रार्थना की ॥ ४६ ॥ हे राजन्! इसके उपरान्त जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, फल, आभूषण और अनेक प्रकारकी भेंटसे अलग अलग दीपकोंकी पंक्तियोंसे देवकी पूजा करनेलगीं ॥४७॥ इसके पीछे उसी प्रकार रुक्मिणी नमकीन पूए, पान, लावा, सुपारी गन्ने आदिसे सौभाग्यवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका पूजन करनेलगीं ॥ ४८ ॥ फिर श्रीरुक्मिणीने अम्बिकादेवी और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको नमस्कार कर उनसे प्रसाद और आशीर्वाद लिया ॥ ४९ ॥ फिर मौन व्रतको त्याग, जडाऊ मुँदरीसे शोभायमान श्रीरुक्मिणीजी अपनी दासीका हाथ पकड़ मंदिरसे वाहर निकलीं ॥ ५० ॥ ईश्वरकी मायाकी तुल्य वड़े वड़े शूरवीर राजाओंको मोहित करनेवाली, सुन्दर कटिवाली,

अद्भिर्गंधाक्षतैर्धूपैर्वासस्स्रङ्माल्यभूषणैः ॥ नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥ ४७ ॥ विप्रस्त्रियः पतिमती स्तथा तैः समपूजयत् ॥ लवणापूपतांबूलकंठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ॥ ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामांबिकागृहात् ॥ प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुंडलमंडिताननाम् ॥ श्यामां नितंबार्पितरत्नमेखलां व्यंजत्स्तनीं कुंतलशंकितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥ शुचिस्मितां बिंबफलाधरद्युतिशोणायमानद्विजकुंदकुड्मलाम् ॥ पदा चलंतीं कलहंसगामिनीं शिंजत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ५३ ॥ यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ॥ पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ ५४ ॥

कुण्डलोंसे शोभायमान मुखवाली रुक्मिणी रत्नजडित जड़ाऊ, करधनी नितम्बोंमें पहरे स्तनोंकी प्रगटता और केशोंकी शंकासे चलायमान नेत्रवाली ॥ ५१ ॥ सुन्दर मुसकान, कुन्दरूके फलकी तुल्य अव्रण और होठोंकी कान्तिसे कुन्दकी कलीके समान दंत पाँतिपर अरुणाई छाईहुई राजहंसके समान गतिसे और झनकारशब्द करते, नूपुरोंकी प्रभासे शोभित चरणोंसे गमन करती हुई, रुक्मिणीको देख, संगमें जो वडे वडे तेजस्वी शूरवीर योद्धा आये थे, वह सबके सब कामदेवसे पीडित हो मोहित होगये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित !

उन रुक्मिणीजीकी उदार हँसनि और लज्जापूर्वक चितवनसे समस्त राजाओंके मन हरेगये और वह अस्त्रशस्त्रोंको छोड़कर रथ घोड़े इत्यादिसे मूढ़ होकर पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार चलायमान कमलकोशके समान कोमल चरणोसे धीरे धीरे चली, उस समय श्रीकृष्ण चन्द्रके आनेका मार्ग देखतीहुई रुक्मिणीजीने बायें हाथके नखोंसे अलकोंको हटाय सब आयेहुये राजाओंको देख सन्मुख खड़े हुये वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दको देखा ॥ ५५ ॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित ! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी ज्योंही रथपर चढ़ने लगी, त्योंही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे हरण कर अपने गरुड़चिह्नवाले रथमें चढ़ाय क्षत्रियोंकी सेनाका तिरस्कारकर उसे इस प्रकार निकालकर

सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥ उत्सार्य वामकरजैरलकानपांगैः प्राप्तान्ह्रियैक्ष त नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ॥५५॥ तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ॥ रथं समारोप्य सुपर्ण लक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥ ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तं मानि नः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥ अहो धिगस्मान् यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुरणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

लेगये कि, जैसे सियारोंके बीचमें अपने भागको लेकर सिंह बेधड़क होकर चला जाता है, फिर बलरामादि सब यदुवंशियोंसहित रुक्मिणीको लेके धीरे धीरे चलनेलगे ॥ ५६ ॥ हे नृपोत्तम ! महाअभिमानी जरासन्धादि राजा यशका नाश करनेवाला यह अपना अपमान न सहसके और बोले कि, अहो ! हमको धिक्कार है, जिसप्रकार केशरीके भागको कुत्ता चुराकर लेजाता है, वैसेही हम धनुषधारियोके यशका नाश कर यह गँवार ग्वालिया राजकुमारी रुक्मिणीको चुराकर लिये जाता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

दोहा—चौवनमें रिपुपक्षके, सब राजनको जीति । रुक्मिणिको लै द्वारका, करी व्याहकी रीति ॥ १ ॥ श्रीशुकदेजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सब राजा अत्यन्त क्रोधित होकर कवच पहर, अपने अपने वाहनोंपर चढ़कर श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे दौड़े ॥ १॥ हे परीक्षित् ! जब यादवोंके सेनाध्यक्षने इनकी सेनाको आता हुआ देखा, तो वह लोग भी अपने धनुषकी टंकार करके उनके सन्मुख उपस्थित हुए ॥ २ ॥ युद्धविद्यामें अत्यन्त प्रवीण वह राजा लोग घोड़े, हाथी और रथोंपर बैठकर जिस प्रकार मेघ पर्वतोंपर जल वर्षाते हैं, उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे

श्रीशुक उवाच ॥ इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥ स्वैःस्वैर्बलैः परिक्रांता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥ तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ॥ तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥ २ ॥ अश्वपृष्ठे गजस्कंधे रथोपस्थे च कोविदाः ॥ मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ॥ सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ॥ विनंक्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ॥ अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ सुन्दर कटिभागवाली रुक्मिणी अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रकी सब सेनाको बाणोंसे ढकाहुआ देख, अतिभयभीत और विह्वलनेत्र हो लाज सहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुख देखनेलगी * ॥४॥ तब भगवान् वासुदेव रुक्मिणीको डराहुआ जान कहनेलगे कि, हे वामलोचने! हे सुनयनी! तुम कुछ भय मतकरो, क्योकि हमारे ओरके यादव इनकी समस्त सेनाको क्षणभरमें विध्वंस करदेंगे । हे राजन् ! गद, संकर्षणादि शूरवीर उन राजाओंका पराक्रम न सहसके और उनके घोड़े, हाथी और रथोंको महातीक्ष्ण बाणोसे नाश करनेलगे ॥ ५ ॥ ६ ॥

* शंका—श्रीकृष्णकी स्त्री रुक्मिणी श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाली फिर रुक्मिणी युद्ध देखकर दु.खी क्यों हुई ? यह वडे अचम्भेकी वात है ।
उत्तर—युद्धमें वडे वडे शूरमाओंका और वीरलोगोंका नाश हुवा, यह कलक अपने ऊपर विचार कर रुक्मिणी वहुत दु'खी हुई कि, यह कलक मुझको जन्म जन्मको लगा और ससारके लोग कहेंगे कि, रुक्मिणीके विवाहमें वहुतसे शूरवीर मारगये ॥

रथी, घुड़चढे और हाथियोंपर विराजमान योद्धाओंके पगड़ियोंसहित सहस्रों शिर कटकट गिरने लगे ॥ ७ ॥ तलवार गदा और धनुषसे हाथ कट कटकर गिरने और करभके समान जंघायें कट कटकर गिरनेलगीं, अनेक घोड़े, खच्चर, हाथी, गधे, मनुष्य इनके शिर कटकर पृथ्वीमें गिरगये ॥८॥ हे भारत ! जीतनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंने जब इस प्रकार शत्रुसेनाका संहार किया तब अत्यन्त डरकर जरासन्धादि राजा रण छोड़कर भागगये ॥९॥ जब स्त्रीके हरजानेसे व्याकुल तेजहीन, उत्साहरहित शिशुपालका मलीनमुख होगया, तब सब राजा उसके पास आनकर समझाने लगे ॥१०॥ कि हे पुरुषसिंह ! तुम अपने मनकी उदासीको छोड़दो क्योंकि, देह धारण करनेवालोंको सुख और दुःख सर्वदा नहीं रहते हैं ॥११॥

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ॥ सकुंडलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥ हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोंघ्रयः ॥ अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥८ ॥ हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकांक्षिभिः ॥ राजानो विमुखा जग्मुर्जरासंधपुरस्सराः ॥ ९ ॥ शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ॥ नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥ भो भो पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ॥ न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ॥ एवमीश्वरतंत्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ॥ त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्ये एकमहं परम् ॥१३॥ तथाऽप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ॥ कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥ अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ॥ पराजिताः फल्गुतंत्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः॥१५॥रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ॥ तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥

जिस प्रकार काठकी पुतली नचानेवालेकी इच्छासे नाचती है ऐसेही ईश्वरके आधीन जीवको सुख दुःख होता है ॥ १२ ॥ जरासन्ध बोला कि, हे शिशुपाल ! देखो ! इसी कृष्णसे मैंने सत्रह बार तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध किया, परन्तु मेरी हारही हुई और कुछ शोच न हुआ, केवल एक बार जीता, उसका कुछ हर्षभी न हुआ, दैवके वश कालने समस्त जगत् चलायमान किया है, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यद्यपि बड़े बडे शूरवीर यूथनाथोंके पतियोंके भी हम पालन करनेवाले थे, तोभी थोडी सेनावाले कृष्णपालित यदुवंशियोंसे हारगये ॥ १५ ॥ जानपडता है कि, इस समय उनके दिन अच्छे हैं, इसी कारण उन्होंने हम ऐसे बलवान् शत्रुओंको जीतलिया, जब हमारे

दिन भले आवेंगे तो हम भी जीतेंगे ॥ १६ ॥ हे महाराज ! जब इसी प्रकार अनेक राजाओंने शिशुपालको समझाया तब अपने बचे बचाये नौकर चाकर और सेनाको लेकर शिशुपाल अपने देशको चला गया और मरनेसे बचे बचाये राजाभी अपने अपने स्थानोंको चलेगये ॥ १७ ॥ इधर एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्णका शत्रु रुक्मी अपनी बहनके हरनेका अपराध न सहकर श्रीकृष्णके पीछे दौडा ॥ १८ ॥ और अत्यन्त क्रोधित हो कवच पहर, धनुष ग्रहण कर, सब राजाओंके सुनानेको महाबलवान् रुक्मीने यह प्रतिज्ञा की ॥ १९ ॥ कि, युद्धमें श्रीकृष्णके मारे विना और रुक्मिणीको लाये विना सत्य है कि, मैं कुंडिनपुरमें न आऊंगा ॥ २० ॥ इसप्रकार रुक्मी प्रतिज्ञा कर और रथमें चढ सारथीसे बोला

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ॥ हतशेषाः पुनस्तेपि ययुः स्वंस्वं पुरं नृप ॥ १७ ॥ रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ॥ पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥ रुक्म्यमर्षि सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥ १९ ॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ॥ कुंडिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ॥ चोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ॥ नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२ ॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ॥ रथेनैकेन गोविंदं तिष्ठतिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥ धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ॥ आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥ २४ ॥

कि, जहाँ कृष्ण हैं वहाँ शीघ्रही घोडोंको हांक कर ले चलो क्योंकि, मुझे उससे युद्ध करना है ॥ २१ ॥ मैं आज उस मन्दबुद्धि ग्वालके पराक्रमका मद अपने तीक्ष्ण बाणोंसे चूर्ण करूंगा, जो मेरी बहन रुक्मिणीको बलात्कार हरके लेगया है ॥ २२ ॥ खोटी बुद्धिवाला रुक्मी, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके बलको न जान कटुवाक्य कहता हुआ अकेला रथ दौडाकर " खडा रहु खडा रहु " इस प्रकार भगवान् वासुदेवको पुकारने लगा ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त अपने दृढ धनुषको खैंचकर रुक्मीने श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा कि, हे यादवकुलकलंक ! एक क्षणमात्र

खड़ा होकर मुझसे युद्धकर ॥ २४ ॥ अरे दुष्टबुद्धि ! जिसप्रकार होमकी सामग्रीको कौवा लेजाता है इसी प्रकार तू मेरी बहनको कहाँ चुराकर लिये जाता है ? अरे कपटयुद्ध करनेवाले छली ! तेरे घमंडको मैं अभी चूर्ण करता हूँ ॥ २५ ॥ और तेरे भले दिन हैं तो मेरे बाणोंसे पीडित होकर युद्धक्षेत्रमें मत सोवे और रुक्मिणीको छोड़कर जहाँ तेरे सींग समायँ वहाँ चलाजा, तब श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें मुसकाय, उसके धनुषको काट छः बाणोंसे रुक्मीको छेदन किया ॥ २६ ॥ आठ बाणोंसे रथके घोड़ोंको, दो बाणोंसे रथवान्को वींधडाला और तीन बाणोंसे ध्वजा काटडाली कि, इतनेहीमें रुक्मने और धनुष लेकर पाँच बाण श्रीकृष्णके शरीरमें मारे ॥ २७ ॥ तब भगवान् वासुदेवने उसका वह धनुषभी

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वांक्षवद्धविः ॥ हरिष्येऽद्य मदं मंद मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुंच दारिकाम् ॥ स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥ अष्टभिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ॥ स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पंचभिः ॥ २७ ॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ॥ पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ॥ यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९ ॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतंग इव पावकम् ॥ ३० ॥ तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ॥ भित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हंतुमुद्यतः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ॥ पतित्वा पदयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥

काट डाला, फिर रुक्म और धनुष ले आया, उसकोभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय काट दिया ॥ २८ ॥ रुक्मने जो जो परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल, तलवार, बरछी, भाले हाथमें लिये वह सब भगवान् देवकीनन्दनने काट गिराये ॥ २९ ॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त रथसे कूदकर और हाथमें तलवार लेकर मारनेकी इच्छासे, जिस प्रकार पतंग अग्निके सन्मुख झपटताहै, उसी प्रकार रुक्म श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर झपटा ॥ ३० ॥ झपटते हुए उस रुक्मकी ढाल तलवारको तिल तिलभर बाणोंसे काटकर पैनी धारकी तलवार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मका प्राण संहार करनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ भाईके मारनेकी इच्छा देख भयसे व्याकुल होकर पतिव्रता रुक्मिणी नेत्रोंसे आँसू भरके श्रीकृष्णचन्द्रके

चरणोंपर गिर यह करुणाभरे वचन कहने लगी ॥ ३२ ॥ कि, हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे देवदेव ! हे जगत्पालक श्रीकृष्णचन्द्र ! हे महाभुज ! मेरे भाईको तुम मत मारो, क्योंकि यह तुम्हारे मारनेयोग्य नहीं है ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! त्राससे कम्पायमान सब अंग, शुष्क मुख, गद्गद कण्ठ कि जिसकी व्याकुलतासे सुवर्णकी माला गिरी जातीं थीं, इस प्रकार रुक्मिणीको अपने चरणोंपर गिरीहुई देख करुणावश हो श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंमें जल भर आया ॥३४॥ उन्होंने उस दुष्ट कर्म करनेवाले रुक्मको वस्त्रसे बाँध और मूछों सहित शिर मूंड, अभद्र कर अपने रथके पीछे बाँधलिया कि, इस बीचमें ही यदुवंशियों सहित बलराम सुखधामने रुक्मकी सेनाको जिस प्रकार हाथी कमलिनियोंको मर्दन करता है, उसी प्रकार मर्दन किया ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त रुक्मकी समस्त सेनाका संहार कर बलदेवजीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आनकर रुक्मको देखा कि, उसका शिर मुड़गया है और मृतकके समान रथके पीछे बँधाहुआ देखकर सामर्थ्यवान् बलभद्रजीने उसे छोड़ दिया ॥ ३६ ॥ और अत्यन्त झुँझलाकर कहा कि, हे कृष्ण ! आपने यह बड़ा निन्दित कर्म किया, जो सालेको पकड बाँधा, हमारी इसमें बहुत निन्दा होगी, क्योंकि शिर, मूंछ, दाढी मुड़वाकर विरूप करदेना यही अपने नातेदारका मारना है ॥ ३७ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि, हे सुशीले ! तुम्हारे भाईके कुरूप होनेमें हमारा कुछ दोष नहीं है, क्योंकि यह पुरुष अपने कर्मोंका फल भोगता है, सुख दुःखका देनेवाला और

योगेश्वराप्रमेयात्मन्देवदेव जगत्पते ॥ हंतुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तया परित्रासविकंपितांगया शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकंठया ॥ कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥३४॥ चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत्॥ तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५ ॥ कृष्णांतिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ॥ तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः ॥ विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत ॥ ३६ ॥ असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ॥ वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ ३७ ॥ मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिंतया॥सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक्पुमान् ॥ ३८ ॥

कोई नहीं है ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त बलदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको समझानेलगे कि, हे भाई ! अपने नातेदारका मारना अपराध करनेपर भी उचित नहीं, उसको अपराधी जानकर छोडदे, क्योंकि वह तो अपने पहलेही दोषोंसे मररहा है, फिर उसके मारनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले हे सुमुखि ! क्षत्रियोंका यही धर्म विधाताने बनाया है कि, जिस धर्मके कारण भाई भाईका प्राणसंहार कर देताहै, फिर साले श्वशुरोंकी तो बातही क्या है , इसलिये हमारा क्या दोष है ? ॥ ४० ॥ तिसके पीछे श्रीकृष्णसे बोले कि, हे कृष्ण ! राज्य, पृथ्वी, धन, स्त्री, प्रतिष्ठा, तेज और वस्तुके हेतु श्रीमदान्ध अभिमानी राजा लड़ते हैं परन्तु हमको यह बात उचित नहीं ॥ ४१ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि, सब प्राणियोंमें दुष्टहृदय, अर्थात् सब बातका बुरा विचारनेवाला जो शिशुपाल उसका बुरा और अपने भाईका भला चाहती हो, यह बात तुमको

बंधुर्वधार्हदोषोऽपि न बंधोर्वधमर्हति ॥ त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥ भ्राताऽपि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्ततः ॥ ४० ॥ राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः ॥ मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदांधाः क्षिपंति हि ॥ ४१ ॥ तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ॥ यन्मन्यसे सदाऽभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्पते देवमायया ॥ सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥४३॥ एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥४४॥ देह आद्यंतवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ॥ आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥

उचित नहीं, हे रुक्मिणी ! तुम्हारी विषम बुद्धि है, जैसी कि, अज्ञानी पुरुषोकी होती है इसलिये तुम्हारा भाई जो सब जीवोंका शत्रुरूप है, उसका तुम अज्ञानी पुरुषोंके समान भला चाहती हो, सो यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है, क्योंकि उसका भला चाहनेसे और सम्बंधियोंका बुरा होगा ॥४२॥ यह हमारा मित्र, यह शत्रु और यह समान है, इस प्रकार देहाभिमानी पुरुषोको मोह उत्पन्न हो जाताहै ॥४३॥ जैसे जलभरे घड़ेमें एकही सूर्यके अनेन प्रतिबिम्ब दीखते हैं, आकाश एकही है, परन्तु तो भी घट आदिमें बहुतसे दीखतेहैं उसी प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंमें एकही शुद्ध आत्मा है, उसीको अज्ञानी पुरुष अनेक रूपसे मानते हैं ॥ ४४ ॥ यह जो द्रव्य अर्थात् अधिभूत, प्राण, इन्द्रिय और अध्यात्मक गुण, अधिदेव

इतने स्वरूप आत्माके अविद्याने रचे हैं, वह देहधारियोंको संसारमें भटकाते हैं ॥ ४५ ॥ हे पतिव्रता रुक्मिणी! मिथ्या देहसे आत्माका संयोग नहीं है, और इस देहसे वियोग भी नहीं है, यदि कोई कहे कि, देह मिथ्या कैसे ?-तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाशक सूर्य है, उसी प्रकार देहका प्रकाश आत्मासे होताहै ॥४६॥ जन्म मरणादि छः विकार देहके हैं, आत्माके कदाचित् नहीं, जैसे चन्द्रमाकी कला घटती बढती है, चन्द्रमा कभी नहीं घटता बढ़ता, क्योंकि वह तो पूर्णरूप है और जैसे अमावास्याके दिन चन्द्रमाकी कला घटनेसे चन्द्रमाका नाश मानते हैं, उसी प्रकार देहके नाश तिरोभावसे आत्माका नाश कहनेमें आता है ॥ ॥ ४७ ॥ जैसे स्वप्नावस्थामें पुरुष अपने आपको विषयके भोगनेके सुखको मिथ्याभोग करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष संसारको प्राप्त होता है ॥४८॥ हे सुहासिनी! इसलिये तुम अज्ञानसे उत्पन्नहुये

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति ॥ तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ॥ कलानामिव नैवेंदोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥ यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ॥ अनुभुंक्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥ तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ॥ तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ॥ वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥ प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः ॥ स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥ ५१ ॥ अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ॥ कुंडिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥ भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ॥ पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥

आत्माको शोष और मोह देनेवाले शोकका तत्त्वज्ञानसे त्यागन करो और स्वस्थ होओ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! इस प्रकार भगवान् बलदेवजीने जब समझाया, तब सुकुमारी श्रीरुक्मिणीजीने मनकी उदासी त्याग बुद्धिसे मनको सावधान किया ॥ ५० ॥ हे राजन्! शत्रुसे छूटा, हतसैन्य, केवल प्राणही जिसके शेष रहेहैं, प्रभाव और मनोरथ हीन, मुण्डित शिर, दुष्टबुद्धि रुक्म विचार करनेलगा कि, मैं प्रतिज्ञा करके आया था कि, कृष्णको विना मारे और विना रुक्मिणीको लाये कुंडिनपुर नहीं आऊंगा, सो अब क्या करूं? यह विचार वहाँही भोजकटपुर बसाकर रहनेलगा ॥५१॥५२॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार समस्त राजाओंको जीतकर राजा

भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीको द्वारकापुरीमें लाकर विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ५३ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! उस समय द्वारकापुरीमें घर घर बडा उत्सव होने लगा, क्योंकि यदु वंशियोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी अनन्यभक्ति थी ॥५४॥ आनन्दमें मग्न, उज्वल उज्वल मणियोंके जडाऊ गहने पहरेहुये स्त्री पुरुष चित्र विचित्र वस्त्र धारणकिये कृष्ण रुक्मिणीके देनेके लिये सुन्दर सुन्दर वस्तु लानेलगे ॥५५॥ ऊँची ऊँची ध्वजा और चित्र विचित्र माला,वस्त्र रत्नोंकी बन्दनमालाओंसे और द्वार द्वारपर धानकी खीलें, अंकुर, फूल और जलके भरे कलश और अगर व धूप दीप इत्यादिकोंसे द्वारकापुरी अत्यन्त शोभायमान होनेलगी ॥५६॥ स्थान स्थानपर छिडकाव होरहाहै, दरवाजोंपर केले सुपारियोंके घने वृक्ष लग रहेहैं और जो सुहृद्

तदा महोत्सवो नणां यदुपुर्यां गृहेगृहे ॥ अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥ नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्ट मणिकुण्डलाः ॥ पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥५५॥ सा वृष्णिपुर्युत्तभितेंद्रकेतुभिर्विचित्रमाल्यांवररत्नतोरणैः ॥ बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमंगलैरापूर्णकुंभाऽगुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥ सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ॥ गजैर्द्वाःषु परामृष्टरंभापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥ कुरुसृंजयकैकेया विदर्भयदुकुंतयः ॥ मिथो मुमुदिरे तस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ॥ ५८ ॥ रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ॥ राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥ द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ॥ रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवो नाम चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

राजा बुलायेगयेहैं, उनके मद झरते हाथियोंसे ऊंचे उठाये सुपारी और केलोंके वृक्षोंसे बड़ी शोभा होरही है ॥ ५७ ॥ अत्यन्त प्रसन्नताके मारे द्वारकावासी दौड़े दौड़े फिरते हैं और उनके बीचमें कुरुदेश, सृंजय देश, केकयदेश और विदर्भ देशके राजा भी विवाहमें मिलकर आनन्द प्राप्त करने लगे ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार जहाँ तहाँ रुक्मिणी हरके ले जानेके चरित्रको श्रवण कर राजा और राजाओंकी कन्या बडा आश्चर्य मानने लगीं ॥ ५९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! द्वारकापुरीमें पुरवासियोंको लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रके लक्ष्मी सहित दर्शन कर बडा आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीविवाहोत्सववर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दोहा—पचपनमें प्रद्युम्नको, भयो जन्म उत्साह। शंबरासुर हरले गयो, ताहि मारि किय व्याह ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! वासुदेवका अंश जो कामदेव सो प्रथम महादेवजीके क्रोधसे भस्म होगया था, वही अब फिर देह पानेके लिये वासुदेवके यहाँ आया ॥ १ ॥ और वही कामदेव श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें जन्म ले प्रद्युम्ननामसे विख्यात हुआ, जो कि अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रसे किसी प्रकार न्यून नहीं था ॥ २ ॥ हे राजन्! एक शंबरनाम दैत्य उसे अपना वैरी जान दशदिनके भीतर कुमार प्रद्युम्नको हरण कर समुद्रमें डाल अपने घरको चलागया * ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ॥ देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥२॥ तं शंबरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ॥ स विदित्वाऽऽत्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥ ३ ॥ तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ॥ वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तं शंबराय कैवर्ता उपजह्रुरुपायनम् ॥ सूदा महानसं नीत्वाऽवद्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शंकितचेतसः ॥ बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

एक बडा बलवान् मत्स्य इस बालकको निगलगया, उस मत्स्यको धीमरोंने बडा जाल डालकर और मछलियों सहित पकड़ा ॥ ४ ॥ उस बडे मत्स्यको लाकर धीमरोंने शंबरासुरको भेंट किया और शंबरासुरने रसोई बनानेवालोंको दिया उन्होंने रसोईमें लाकर छूरीसे इस अद्भुत मत्स्यका हृदय विदीर्ण किया ॥ ५ ॥ तो उस मत्स्यके पेटमे बालकको निहार उन्होंने मायावतीको देदिया तब मायावतीको अत्यन्त शंका हुई तब देवर्षि

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रकी वसाई हुई द्वारकापुरीमें कपट करके कोई प्राणी वहाँ नहींजासक्ता और कपटवेषधारी जो कोई द्वारकाके भीतर चलाभी जाय तो वह उसी समय भस्म होजाय है, क्योंकि क्षण क्षणमें द्वारकापुरीके चारों ओर सुदर्शनचक्र घूमता रहता है, वही द्वारकापुरीकी रात दिन रक्षा करता रहता है, ऐसी कठिन द्वारकापुरीमें शंबरनाम दैत्य कैसे चलागया। और भगवान्के पुत्रको कैसे हर लेगया यह महा आश्चर्यकी बात है।

उत्तर—जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको वसाया था उस समय यह आज्ञा दी थी कि हे सुदर्शनचक्र! तुम रात दिन द्वारकापुरीके चारों ओर घूमते रहना और रक्षा करते रहना, परन्तु ब्राह्मण वश चाहे तो उसको पुरीमें जानेके लिये मत रोकना और ब्राह्मण कपट रूप धारण करके आवे तो उसको भी मत रोकना इसप्रकारकी श्रीकृष्णकी आज्ञाको शम्बरासुर जानके ब्राह्मणका रूप बनाकर द्वारकापुरीमें चलागया और श्रीकृष्णके पुत्रको चुराकर ले आया ॥

नारदजीने आनकर उससे सब वृत्तान्त कहा कि,यह बालक तेरा स्वामी कामदेव है और श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें उत्पन्न हुआ है, इसप्रकार
उत्पत्ति और शंबरासुर जैसे समुद्रमें डाल आया था वहाँ जिस प्रकार इसे मत्स्य निगलगया सो सब कह सुनाया ॥ ६ ॥"शिवजीने जब कामदेवको
भस्म किया था, तब रतिके विलाप करनेपर उसे समझाकर कहाथा कि, तू शंबरासुरके यहाँ जाकर वास कर वहाँ तेरा पति तुझे रसोईघरमें मिलेगा,
तू उसे पाल लीजियो मछलीके उदरसे प्राप्त होगा, तबसे रति रूप छिपाये वहाँ रहती थी" वह जो कामदेवकी स्त्री थी, सो बड़ी पतिव्रता और उसका
नाम रति था, अपने पति कामदेवका जो देह भस्म होगया था; सो उसके उत्पन्न होनेके लिये प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ वह मायावती कामदेवकी

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ॥ पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शंबरेण सा सूपौदनसाधने ॥ कामदेवं शिशुं बुद्धा चक्रे स्नेहं तदाऽर्भके ॥ ८ ॥ नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः ॥ जनयामास नारीणां वीक्षंतीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥ सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलंबबाहुं नरलोकसुंदरम् ॥ सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरंग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ॥ मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नारायणसुतः शंबरेणाहृतो गृहात् ॥ अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥

स्त्रीको शंबरासुरने मूँग भात करनेके लिये अपने पास रक्खा था, सो वह उस बालकको कामदेव जान उससे अत्यन्त स्नेह करनेलगी ॥८॥हे राजा
परीक्षित् ! थोड़ेही दिनोंमें यौवन अवस्थाको प्राप्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका पुत्र प्रद्युम्न देखनेवाली स्त्रियोंको मोह उत्पन्न करनेलगा ॥ ९ ॥ कमल
दलसे बड़े नेत्र, लम्बी भुजायें, मृत्युलोकमें सुन्दर ऐसे अपने पति प्रद्युम्नको लाजभरी मुसकान और उठी भ्रुकुटीसे देख प्रीति करके सुरतसम्बन्धी
जो भाव हैं,उनसे वह रती सेवन करनेलगी ॥ १० ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीने कहा कि हे माता ! जान पड़ता है कि, तुम्हारी मति और
प्रकारकी होगई है, इसीलिये मातृभावको त्यागकर स्त्रीके समान आचरण करती हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर रतिने कहा कि, तुम भगवान् वासुदे

वके पुत्र हो, शंवरासुर तुम्हें चुराकर ले आया है मैं तुम्हारी स्त्रीहूं रति मेरा नाम है, आप कामदेव हो ॥ १२ ॥ तुम जब दशदिनके भी नहीं थे, तब शंवरासुर समुद्रमें डाल आया था और वहाँ तुम्हें एक मत्स्य निगलगया, हे प्रभो ! यहाँ आप मत्स्यके पेटमेंसे आये हैं ॥ १३ ॥ तुम्हारा शत्रु शंवरासुर बडा मायावी है, सैकडों माया जानता है इसलिये असह्य और दुर्जय है उसको मोहनादि मायासे आप मारिये ॥ १४ ॥ क्योंकि तुम्हारे ढूंढनेके लिये स्नेहसे अति व्याकुल परम दीन तुम्हारी माता टिटिहरीके समान शोच कर रही है और विना वछडेके गौकी समान आतुर है॥ १५॥ इस प्रकार मायावती स्त्रीने कह सब मायाओंको नाश करनेवाली महामाया महात्मा प्रद्युम्नजीको दी ॥ १६ ॥ तब प्रद्युम्नजीने शंवरासुरके पास

एष त्वाऽनिर्दशं सिंधावाक्षिपच्छंवरोऽसुरः ॥ मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिह प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ॥ मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४ ॥ परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ॥ पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥ १५ ॥ प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम्॥१६॥स च शंवरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत ॥ अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन्कलिम्॥१७॥ सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदा हत इवोरगः ॥ निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥ गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्न य महात्मने ॥ प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥ तामापतंतीं भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ॥ अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २० ॥

आकर और उसका असह्य वचनोंसे तिरस्कार कर कलह उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये बुलाया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! खोटे वचनोंसे तिरस्कार पाय शंवरासुर जिस प्रकार ठोकर लगनेसे सर्प फुंकार मारता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधित हो लाल लाल नेत्र किये और गदा हाथमें लेकर निकला ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त शंवरासुरने गदाको फिराय महात्मा प्रद्युम्नजीके ऊपर डालकर वज्रपातके समान कठोर शब्द किया ॥१९॥ हे परीक्षित् ! भगवान् प्रद्युम्नजीने अपने ऊपर आतीहुई उस गदाको चूर्णकर और महाक्रोधित हो एक गदा शंवरासुरको मारी ॥ २० ॥

तब शंबरासुर मयदैत्यकी बताई मायाका आश्रय ले आकाशमें जाकर श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करनेलगा ॥ २१ ॥ इसके उन पत्थरोंकी वर्षासे पीडित होकर कृष्ण कुमार प्रद्युम्नजीने सब मायाओका नाश करनेवाली अपनी सत्त्वगुणी मायाको बुलाया ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त शंबरासुरने गुह्यक, गंधर्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंकी सहस्रों माया छोड़ीं परन्तु कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने उसी समय सब मायाओको नाश कर दिया ॥२३॥ हे राजा परीक्षित् ! महात्मा प्रद्युम्नजीने महातीक्ष्ण पैनी धारकी तलवार लेकर कुण्डल, किरीट और दाढी मूछों सहित शंबरासुरका मस्तक काट लिया ॥ २४ ॥ तब आकाशसे देवतालोगोने फूल वर्षाये और स्तुति करी और फिर आकाशमें विचरनेवाली स्त्रियोंने

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ॥ मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ॥ सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥ ततो गौह्यकगांधर्वपैशाचौरगराक्षसीः ॥ प्रायुंक्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २२ ॥ निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुंडलम् ॥ शंबरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्र्वंजसाऽहरत् ॥ २३ ॥ आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ॥ भार्ययांबरचारिण्या पुरीं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥ अंतःपुरवरं राजॅल्ललनाशतसंकुलम् ॥ विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ प्रलंबबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखांभोजं नीलवक्रालकालिभिः ॥ कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्रतत्र ह ॥ २८ ॥ अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ॥ उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥

आकाशमार्गमें होकर महात्मा प्रद्युम्नजीको द्वारकापुरीमें पहुँचादिया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! सहस्रों स्त्रियोंसे सुशोभित अंतःपुरमें आकाशसे उतरकर बिजली सहित जैसे मेघ आता है, उसी प्रकार आये ॥ २६ ॥ वर्षाकी घटाओंके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीतवस्त्र धारण किये लम्बी भुजा अरुण नेत्र, सुन्दर मुसकान मनोहर मुख, नीली टेढ़ी अलकावलीसे शोभायमान मुखारविन्दवाले प्रद्युम्नजीको देखकर "श्रीकृष्ण आये" यह जान स्त्रियें लज्जित होकर जहाँ तहाँ छिपगईं ॥ २७ ॥ २८ ॥ और कुछ एक स्त्री कोई न्यूनाधिक बात देखकर "यह कृष्ण नहीं हैं" यह निश्चयकर

प्रसन्न हो आश्चर्य मान स्त्रियोंमें श्रेष्ठ रतिसहित कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीके पास आईं ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त स्नेहसे जिसके स्तनोंसे दूध चुवे, नीले कटाक्ष और मनोहर वचनवाली, राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी अपने नष्ट हुये पुत्रको स्मरणकरके कहनेलगी ॥ ३० ॥ कि, मनुष्योंमें श्रेष्ठ कमलकी समान नेत्रवाला यह बालक किसका है? और किस स्त्रीने इसे गर्भमें धारण किया है? और इसे यह स्त्री कौनसी मिली है? ॥ ३१ ॥ मेरा भी पुत्र नष्ट होगया है और सूतिकागृहमेंसेही उसे कोई लेगया है, जो कदाचित् जीवित होगा तो इसीके समान बड़ा और ऐसाही उसका स्वरूप होगा ॥ ३२ ॥ परन्तु बड़ा आश्चर्य है कि (शार्ङ्ग) धनुषधारी श्रीकृष्णचन्द्रके समान रूप इसने पाया इसका स्वरूप और हाथ

अथ तत्रासितापांगी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ॥ अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ को न्वयं नरवैडूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ॥ धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥ मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ॥ एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ॥ आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ३३ ॥ स एववा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ॥ अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥ ३४ ॥ एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ॥ देवक्याऽऽनकदुंदुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपि भगवान्तूष्णीमासीज्जनार्दनः ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं शंबराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥

पाँवका चलाना, बोलना, हँसना चितवन इत्यादि भी सब श्रीकृष्णचन्द्रकेही समान हैं ॥३३॥ जान पड़ताहै कि, जो बालक मैंने गर्भमें धारण किया था, वह निश्चय यही है, क्योंकि प्रतिक्षण इसमें मेरी प्रीति बढ़तीही जाती है और मेरी बाँई भुजा भी फड़क रही है ॥३४॥ हे राजा परीक्षित्! विदर्भदेशके राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी बैठीहुई इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि, इतनेहीमें उत्तम यशवाले, भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वसुदेव देवकीको संग लेकर वहाँ आये ॥ ३५ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र यह स्वयं जानते थे कि, पत्नीसहित पुत्र आया है, परन्तु तो भी चुपचाप रहे, इतनेहीमें देवर्षि नारदजीने आनकर जिस प्रकार इनको शंबरासुर चुराकर लेगया और समुद्रमें डाल आया, वहाँ मछली निगलगई वह

सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ३६ कृष्णके अंतःपुरमें वास करनेवाली स्त्रियें बहुत कालके पीछे जैसे मृतकशरीरमें प्राण आते हैं-उसी प्रकार प्रद्युम्नजीको आयाहुआ श्रवण कर बडा आश्चर्य मान उनकी बडाई करने लगीं ॥ ३७॥ हे परीक्षित! वसुदेव देवकी और कृष्ण बलदेव तथा रुक्मिणीजी और स्त्री पुरुष प्रद्युम्नजीसे मिलकर आनन्दमें मग्न होगये ॥ ३८ ॥ उस समय सब द्वारकावासी प्रद्युम्नको आयाहुआ सुन "अहो! बडा आश्चर्य है मृतककी तुल्य यह बालक आया है," इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३९ ॥ अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रके समान स्वरूपवान्, प्रद्युम्नजी हमारे पुत्र हैं यह विचार एकान्तमें अत्यन्त प्रेमसे प्रद्युम्नजीकी माता रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी रानी भ्रान्त हो प्रद्युम्नजीकी सेवा करने लगीं सो यह कुछ आश्चर्यकी

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णांतःपुरयोषितः ॥ अभ्यनंदन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ॥ दंपती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥ ३८॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ॥ अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥ ३९ ॥ यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन्रहरूढ भावाः ॥ चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिंबबिंबे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महा पुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे समुद्रक्षिप्तप्रद्युम्नप्रत्यागमनं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥ स्यमंतकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

बात नहीं है, क्योंकि लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र कामदेवका स्मरण करतेही मन चलायमान होजाता है, फिर साक्षात् मूर्त्तिका दर्शन करतेही यदि स्त्रियें सेवा करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? ॥ ४०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ दोहा—छप्पनमें हरिको वृथा, मणिको लगो कलंक। सत्राजितको मणि दई, लई सुता सुमयंक ॥ १ ॥ इसके उपरान्त श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित! अब सत्राजित्की कथा वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर श्रवण कीजिये

कि, प्रथम अपराध करके सत्राजित्ने अपने पापकी निवृत्तिके लिये पीछे अपनी कन्याको स्यमंतकमणिके साथ श्रीकृष्णचन्द्रको देनेका उपाय किया था ॥ १ ॥ तब राजा परीक्षित् कहने लगे कि, हे योगीश्वर शुकदेवजी ! सत्राजित्ने श्रीकृष्णचन्द्रका क्या अपराध किया और स्यमंतकमणि उसने कहाँसे पाई ? और पीछे किसलिये अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्रको दी, यह सब हमारे आगे विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! सत्राजित् भगवान् सूर्यनारायणका परमभक्त और मित्र था, इसलिये प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने सत्राजित्को स्यमंतकमणि दी ॥३॥ हे महाराज ! सत्राजित् उस मणिको कण्ठमें पहर सूर्यके समान प्रकाशमान् हो द्वारकापुरीमें आया उस समय उसके तेजसे

राजोवाच ॥ सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम् ॥ स्यमंतकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ॥ प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमंतकम् ॥ ३ ॥ स तं बिभ्रन्मणिं कंठे भ्राजमानो यथा रविः ॥ प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ॥ दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशंकिताः ॥ ५ ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु शंखचक्रगदाधर ॥ दामोदरारविंदाक्ष गोविंद यदुनंदन ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ॥ मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७ ॥ नन्वन्विच्छंति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ॥ ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥

यह भी ज्ञात नहीं होता था कि, यह सत्राजित् आरहा है ॥ ४ ॥ तेजकी चकचौंधीके कारण दृष्टि चौंध जानेसे मनुष्य सत्राजित्को दूरसे आताहुआ देखकर उग्रसेनकी सभामें चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे "यह सूर्यभगवान् आरहे हैं" इस प्रकार कहनेलगे ॥५॥ हे नारायण ! हे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र ! हे गोविन्द ! हे यादवोंके आनन्ददायक ! आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे जगत्पति ! तुम्हारे दर्शन करनेके लिये सूर्य भगवान् अपनी तीक्ष्ण किरणोंके समूहसे मनुष्योंके नेत्रोंको चुरातेहुए चले आते हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो! त्रिलोकीके देवताओंमें श्रेष्ठ देवताभी आपका मार्ग ढूँढते हैं और इसीलिये यादवोंमें छिपा जान आपके ढूँढनेको सूर्य भगवान् आरहे हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कमलदलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अज्ञानी पुरुषोंकी यह बात सुन हँसकर कहनेलगे कि, यह
सूर्यदेव नहीं हैं, मणि करके प्रकाशमान सत्राजित् आरहा है ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त सत्राजित्ने अपने घरमें मांगलिक कर्म करवाय और देवम
न्दिरमें ब्राह्मणोंसे पूजा कराय वहां उस मणिको स्थापित किया ❀ ॥ १०॥ हे भारत ! वह मणि नित्यप्रति चार मनका भार आठ भार सुवर्ण उगलती
थी, उस मणिमें एक यह भी प्रभाव था कि, जहाँ वह मणि है, उस देशमें कभी दुर्भिक्ष न पड़े, अकालमृत्यु तथा अरिष्ट न हो, सर्प नहीं काटे,

श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य बालवचनं प्रहस्यांबुजलोचनः ॥ प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥ स
त्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमंगलम् ॥ प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥ दिनेदिने स्वर्णभारान
ष्टौ स सृजति प्रभो ॥ दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ॥ न संति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥
॥ ११ ॥ स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ॥ नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभंगमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेक
दा मणिं कंठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ॥ प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥

मनुष्यके देहमें दुःख न हो अशुभ दृष्टि न आवे और मायावी पुरुष अर्थात् माया जाननेवाले भी उस देशमें वास नहीं करसक्ते हैं ॥ ११ ॥ एक
समय श्रीकृष्णचन्द्रने वह मणि राजा उग्रसेनके लिये सत्राजित्से माँगी परन्तु सत्राजित्ने लोभके वश होकर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रको नहीं दी,
और अपने मनमें "श्रीकृष्णचन्द्रको कैसे मना करूं" यह भी विचार न किया॥१२॥इसके उपरान्त कुछ समय व्यतीत होनेपर सत्राजित्का भाई

❀ शंका–सत्राजित् यादव देवताके मंदिरमें ब्राह्मणोंसे मणिको क्यों स्थापन कराया ? देवमंदिरमें उस मणिको आपही आप क्यों स्थापन नहीं किया ?
उत्तर–सूर्यने सत्राजितको मणिदेके पीछेसे सत्राजित्से कहा कि, इस मणिको रात दिन धारण मत करना जो तुम्हारी अग्निहोत्र कोठरी है उसमें इस मणिको रखदेना,सत्राजित सूर्यका ऐसा वचन सुनके अपने घरको आया और विचार किया कि, विना दूसरा स्नान किये देवमंदिरमें कैसे जाऊ ऐसा विचार करके जबतक स्नान करनेकी तैयारी की, तबतक ऋषिलोगोंसे मणिको रखायके आप स्नान करके तब अग्नि होत्रकी कोठरीमें होम करनेके लिये गया इसलिये देवमंदिरमें ब्राह्मणों करके सत्राजित्ने मणिको स्थापन कराया ॥

प्रसेन उस महाप्रकाशवाली मणिको कण्ठमें पहर घोडेपर चढकर वनमें शिकार खेलनेको गया॥१३॥ कि, इतनेहीमें एक सिंह घोडेसहित प्रसेनको मार मणि लेकर पर्वतकी कन्दरामें जानेलगा, उसी समय मणि लेनेकी इच्छासे जाम्बवान् ऋच्छने उसे मारडाला ॥ १४ ॥ और अपने बिलमें जाकर उस मणिको पुत्रका खिलौना किया, इधर सत्राजित् अपने भाई प्रसेनको शिकार खेलकर वनसे न आयाहुआ जान चिन्ता करने लगा ॥ १५॥ कि, मणि कण्ठमें धारण करके मेरा भाई वनमें शिकार खेलनेको गयाहै और उस मणिपर कृष्णका दाँत है इसलिये जान पडताहै कि,भाईको श्रीकृष्णने

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ॥ गिरिं विशञ्जांबवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥ सोपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ॥ अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ १५ ॥ प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ॥ भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णेकर्णेऽजपञ्जनाः ॥ १६ ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ मार्ष्टुं प्रसेनपदवी मन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ॥ तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलं भीममंधेन तामसा वृतम् ॥ एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥

मारडाला, इस बातको सत्रजित्ने अपनी स्त्रीसे कहा उसके मुखसे सुनकर मनुष्य गुप्त रीतिसे बातें करनेलगे ❋ ॥ १६ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र यह यशका नाश करनेवाला कलंक लगा सुन और बहुतसे द्वारकावासियोंको संग ले प्रसेनके ढूँढ़नेको चले ॥१७॥ हे राजन् ! वनमें सिंहसे मारे प्रसेन व घोडेको देख और आगे पर्वतके ऊपर ऋच्छसे मरेहुये सिंहको सब द्वारकावासी देखनेलगे ॥ १८ ॥ बडी अँधेरी भयानक ऋच्छराज जाम्बवा

❋ दृष्टान्त–सत्राजित्ने स्त्रीसे कहा कि घरकी बात किसी स्त्रीसे नहीं कहना (दृष्टान्त) एक बनियाँ था सो दिशाको गया, वहा उसने दोनों चोंटोंके बीचमें नीचे कौवेका पख पड़ा था देखकर यह बहम हुआ कि, यह हमारे पेटसे निकला है, सो घर आय अपनी घरवालीसे बोले कि, आज हमारे पेटसे कौवेका पख निकला, जाने क्या रोग हुआ, उसने टहलनियोंसे कही, टहलनियें औरके घर जाकर बोलीं कि, फलाने साहजीके पेटमेंसे पाच कौवे निकले ! यह हमने अपनी आंखोंसे देखा, उस स्त्रीने औरसे कहा कि, साहजीके पेटमेंसे पचास कौवे रोज निकले करेहैं उसने औरसे पाचासौ कहे कहाँतक कहैं, जब वह लाला बाहर निकले, तो लोग कहने लगे कि, जब यह लाला दिशाको जाते हैं तो इनके पेटमेंसे दो हजार कौवे निकलते हैं स्त्रीसे बात कहनेमें यह दोष है कि, निकली होठों चढगई कोठों ॥

नूके बिलपर सब प्रजाको बाहर खडा करके आप अकेलेही उसके भीतर गये ॥१९॥ तहाँ उस मणिसे बालकको खेलताहुआ देख मणि लेनेकी इच्छासे आप भी बालकके समीपही खडे होगये ॥२०॥ प्रथम कभी न देखनेके कारण मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर डरपोककी नाईं धाई पुकारनेलगी तब महाबलवान् जाम्बवान् धाईका पुकारना सुन क्रोधित हो सामने दौड़कर आया ॥ २१ ॥ क्रोधी जाम्बवान् श्रीकृष्णके प्रभावको न जान और उनको साधारण पुरुष जान, अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेलगा ॥ २२ ॥ परस्पर जीतनेकी इच्छासे, श्रीकृष्ण और जाम्बवान्का शस्त्र, पत्थर, वृक्ष और भुजाओंसे महाघोर संग्राम होनेलगा,जिसप्रकार मांसके लिये दो शिकारी पक्षी लडतेहैं ॥२३॥ वज्रपातके समान कठोर दृष्टिसे खेदरहित

तत्र दृष्ट्वा मणिं श्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ॥ हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकांतिके ॥ २० ॥ तमपूर्वनरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥ तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जांबवान्बलिनां वरः ॥ २१ ॥ स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनाऽऽत्मनः ॥ पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥२२॥ द्वंद्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ॥ आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ॥ वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टांगोरुबंधनः ॥ क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः॥२५॥जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ॥ विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ॥ कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम् ॥ २७ ॥

अट्ठाईस दिनरात परस्पर युद्धहुआ ॥२४॥ जब श्रीकृष्णके मुष्टिकके प्रहारसे उसके सब अंग शिथिल होगये, बल घटगया और पसीना आगया, तब जांबवान् महा आश्चर्य मानकर कहने लगा॥२५॥कि, समस्त प्राणियोंके प्राणमें जो बल है और सहोबल अर्थात्, इन्द्रिय, हृदय,देह इत्यादिकोंका बल आपही हो और विष्णुभगवान् पुराणपुरुष कृपालु सबके ईश्वर आपही हो ॥२६॥ विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकके तुम निश्चय निमित्तकारण हो और उत्पत्तिके योग्य पदार्थके उपादानकारण हो और समस्त प्रेरणाव,लोके ईश्वर तुम कालरूप हो, तथा आत्मा जीवके उत्कृष्ट आत्मा हो ॥२७॥

विष्णु पुराण हो, इसीलिये मेरे इष्टदेव रघुनाथ हो, जिन रघुनाथजीके कुछेक क्रोधसे भ्रूके कटाक्षपातसे मगर और बडे बड़े ग्राह दुःखित होगये, तब समुद्रने मार्ग दिया और जिन श्रीरामचन्द्रजीने अपना यश प्रगट करनेके लिये पुल बाँधा, लंका जलाई, महातीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काटकर पृथ्वीमें डाले, सो मुझे निश्चय विदित होता है, कि आप मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं॥२८॥ हे परीक्षित्! जब इसप्रकार जाम्बवानको ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उससे कहने लगे ॥ २९ ॥ कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्र सुखके देनेवाले अपना हाथ परमकृपाकर अपने भक्तजाम्बवान्के ऊपर धर प्रेमगर्भित वाणीसे कहनेलगे ॥ ३० ॥ हे ऋच्छराज जाम्बवान्! हम मणि लेनेके लिये यहाँ तेरे

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिंगिलोऽब्धिः॥ सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लंका रक्षश्शिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥२८॥ इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः॥ व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविंदाक्षः पाणिना शंकरेण तम्॥ कृपया परया भक्तं प्रेमगंभीरया गिरा ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम्॥ मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनाऽमुना ॥३१॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जांबवतीं मुदा॥अर्हणार्थं समणिना कृष्णायोपजहार ह ॥३२॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः॥ प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥ निशम्य देवकीदेवी रुक्मिण्यानकदुंदुभिः ॥ सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितं शपंतस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ॥ उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥

बिलमें आये हैं, क्योंकि हमें एक मिथ्या कलंक लगा है, उसे मणि लेजाकर दूर करेंगे ॥ ३१ ॥ यह वचन सुनतेही जाम्बवान्ने बड़े आनन्दपूर्वक मणिसहित अपनी कन्या जाम्बवती सेवा करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ ३२ ॥ हे राजन्! जिन द्वारकावासियोंको श्रीकृष्णचन्द्र बिलके बाहर खड़ा कर गयेथे, उन्हें श्रीकृष्णका मार्ग देखते जब बारह दिन होगये, तब उन्होंने जाना कि, श्रीकृष्ण अब नहीं निकलेंगे इसलिये सब दुःखित होकर द्वारकापुरीको चलेगये ॥ ३३ ॥ बिलमेंसे श्रीकृष्णचन्द्र नहीं निकले, यह बात द्वारकावासियोंके मुखसे श्रवण कर देवकी, रुक्मिणी, वसुदेव और सुहृद्रजन तथा जातिके मनुष्य सबही अत्यन्त चिन्ता करनेलगे ॥ ३४ ॥ और सब द्वारकावासी दुःखित

होकर सत्राजित्‌को दुर्वाक्य कहते श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनेकेलिये महामाया दुर्गादेवीकी पूजा करनेलगे ॥३५॥ जब देवीकी पूजा करनेसे "श्रीकृष्णको देखोगे" इसप्रकार द्वारकावासियोंको देवीने आशीर्वाद दिया तब उसी समय सिद्धमनोरथ श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकावासियोंको आनन्द देते स्त्री सहित आये ॥ ३६ ॥ हे राजन्! जिसप्रकार कोई मृतक पुरुष फिर लौट आवे, उसी प्रकार मणि पहरे स्त्रीको लिये श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख समस्त द्वारकावासी परमआनंदित हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त सभामें राजा उग्रसेनके पास सत्राजितको बुलाकर "जाम्बवान् ऋच्छ से मणि लाये हैं" यह कहकर वह मणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्‌को दे दी ॥ ३८ ॥ सत्राजित् मणि ले अत्यन्त लज्जित हो और मुख नीचाकर पछताताहुआ घरको चलागया ॥ ३९ ॥ महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे विरोध हुआ जान व्याकुल हो, सत्राजित् अपने पूर्व अपराधको वारंवार

तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च ॥ प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ॥ सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥ सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ॥ प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥ स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वाऽवाङ्मुखस्ततः ॥ अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ॥ कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽच्युतः कथम् ॥ ४० ॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ॥ अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१ ॥ दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ॥ उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शांतिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥

स्मरण करके यह पाप कैसे दूर हो ? और भगवान श्रीकृष्णचन्द्र कैसे प्रसन्न हों ? इस प्रकार चिन्ता करनेलगा ॥ ४० ॥ अब मैं क्या कर्म करूं कि, जिससे कल्याण हो ! क्योंकि, मैंने विना विचारे श्रीकृष्णचन्द्रको दोष लगाया है, मैं अत्यन्त कृपण मंदबुद्धि और द्रव्यका लोभी हूं इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि, जिससे मनुष्य मुझे बुरा न कहें ॥ ४१॥ हे भरतवंशावतंस ! इसप्रकार सत्राजित्‌ने विचार करके यह निश्चय किया कि, श्रीकृष्णचन्द्रको मैं अपनी कन्या दूंगा और पीछेसे दहेजमें मणि भी देदूंगा यही अच्छा उपाय है, इसके अतिरिक्त और उपायसे मेरा अपराध दूर न होगा; इस प्रकार बुद्धिसे स्थिर करके सत्राजित्‌ने मंगलरूप अपनी कन्या और मणिको स्वयंही उपाय करके

श्रीकृष्णचन्द्रके अर्पण करी ॥ ४२॥४३॥ श्रीकृष्णचन्द्रने भी सुन्दर स्वभाव रूप उदारतादि गुणयुक्त सत्यभामाका पाणिग्रहण किया, जिसको पहले कृतवर्मादि कई यादव माँग चुके थे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! तब श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजितसे कहा कि, यह मणि हमको नहीं चाहिये क्योंकि तुम सूर्यके भक्त हो, इसलिये यह मणि तुम्हारेही पास रहेगी और इससे जो सुवर्ण होगा सो हमारे यहाँ भिजवादेना कारण कि, तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है इस कारण तुम्हारा जो धन है सो हमाराही है, यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गूढ अभिप्राय था॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां स्यमंतकमणिहरणं नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥ दोहा—शतधन्वाके हतनको

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ॥ मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४३ ॥ तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ॥ बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥ तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे जाम्बवती विवाहो नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विज्ञातार्थोऽपि गोविंदो दग्धानाकर्ण्य पांडवान् ॥ कुंतीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गांधारीं द्रोणमेव च ॥ तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥ लब्ध्वैतदंतरं राजञ्शतधन्वानमूचतुः ॥ अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥

जो कुछ लगो कलंक । मणि मँगाय अक्रूरसे, मेटो सतवन अंक ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ ! यद्यपि पांडवगण बिलमें होकर लाक्षाभ वनसे बाहर निकल गये, यह बात आप भली प्रकार जानते थे, परन्तु तोभी पांडव और कुन्तीको जला हुआ सुन कुलोचित व्यवहार करनेके लिये बलरामजीको संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्र कुरुदेशको गये ॥ १ ॥ भीष्म पितामह, विदुर सहित कृपाचार्य, गान्धारी द्रोणाचार्य इनसे श्रीकृष्णचन्द्र कहनेलगे कि, हाय ! पांडव जलगये और बडाही कष्ट उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ हे राजन् कुछ दिनोंके पीछे अक्रूर और कृतवर्मा यह दोनों अवसर पाय शतधन्वासे कहनेलगे कि, इस समय सत्राजितसे मणि क्यो नहीं छीन लेता, क्योंकि जिस सत्राजितने अपनी कन्यारत्न हमको देनी स्वीकार

कर फिर कृष्णको व्यादही, वह सत्राजित् अपने भाई प्रसेनके पीछे क्यों न जाय अर्थात् मरै क्यों नहीं ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसप्रकार अक्रूर और
कृतवर्माके बहँकानेसे बुद्धिहीन और क्षीणजीवन हो, पापी असाधु शतधन्वाने शयन करते हुए, सत्राजित्का शिर काटलिया ॥ ५ ॥ कसाई जिस
प्रकार पशुका वध करता है, ऐसेही सत्राजित्को जब शतधन्वा मारकर चलागया तब सत्राजित्की स्त्री अनाथके समान पुकार पुकार कर रोदन
करने लगी ॥ ६ ॥ इसके पीछे अपने पिता सत्राजित्को माराहुआ देख सत्यभामा "हाय पिता ! हाय पिता ! !" कहकर अत्यन्त विलाप
करनेलगी ॥ ७ ॥ फिर मृतक पिताकी देहको तेलकी कोठरीमें रखकर सत्यभामा हस्तिनापुरको चलीगई, यद्यपि शतधन्वासे सत्राजितको

योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः ॥ कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवं भिन्नम
तिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ॥ शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥ ५ ॥ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रंदंतीं
नामनाथवत् ॥ हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचाऽर्पिता ॥
व्यलपत्तातताततेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ॥ कृष्णाय विदितार्थाय
तप्ताऽऽचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥ तदाकर्ण्येश्वरो राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यास्राक्षो विलेपतुः
॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ॥ शतधन्वानमारेभे हंतुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि
कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

मारा है यह बात अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने प्रथमही जानली थी परन्तु तोभी सत्यभामा "मेरे पिताको शतधन्वाने मारा है" यह बात
दुःखित होकर कहने गई ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी सत्राजित्का मरना
सुन और अपने मनुष्यावतारका कारण जान "हमको महाकष्ट उपस्थित हुआहै" इसप्रकार कह और आँखोंमें आँसू भरकर विलाप करने
लगे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त सत्यभामा और अपने भाई बलदेवजीको साथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरसे द्वारकापुरीमें आनकर शतधन्वाके
मारने और उससे मणि लेनेका उपाय करनेलगे ॥ १० ॥ यहाँ शतधन्वाने सुना कि, श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे मारनेका उपाय किया तब वह

अत्यन्त भयभीत होकर प्राण बचानेके लिये कृतवर्मासे सहायके निमित्त कहा, तब कृतवर्माने उत्तर दिया ॥ ११ ॥ कि, भाई ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवजीका अपराध मैं कभी न करूंगा, क्योंकि उनका अपराध करके किसका कल्याण होगा ॥ १२ ॥ देखो इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे द्वेष करके कंस लक्ष्मीसे भ्रष्ट होकर अपने भाइयों सहित मारागया और मगध देशके राजा जरासन्धने तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रहवार युद्ध किया परन्तु युद्धमें हार अंतको विरथ होकर चलागया ॥ १३ ॥ जब कृतवर्मासे कोरा जवाब पाया तब यह निपट उदास हो, अक्रूरजीके पास जाकर कहने लगा तब अक्रूरजीने कहा कि, भाई ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पराक्रम जान लेनेपर कौन पुरुष उनसे विरोध

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ कोनु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ॥ जरासंधः सप्तदश संयुगान्विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ॥ सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हंति च ॥ चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥ यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल उच्छिलींध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥ अनंतायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ॥ अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन्गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥

करेगा ? ॥१४॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करता है, उसकी मायासे मोहित होकर उसकी चेष्टाको ब्रह्मादिक भी नहीं जानते ॥१५॥ देखो ! सातवर्षकीही अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वतको उखाडकर जिस प्रकार बालक छत्राकको उठाताहै उसी प्रकार उठालिया ॥१६॥ उन्हीं अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये नमस्कार है और जो सबके आदिकारण, निर्विकार सबके आत्मा हैं, उन्हें हम केवल नमस्कार करते हैं ॥१७॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार जब अक्रूरजीने भी सूखा उत्तर दिया, तब शतधन्वा अति घबराय मणि अक्रूरके पास रख, चारसौ कोस चलनेवाले घोडेपर चढकर भागगया ॥१८॥ हे राजन् ! जब इसप्रकार शतधन्वा भागा, तब रामकृष्ण गरुड़

ध्वजावाले रथमें बैठ शीघ्रगामी घोडोंसे श्वशुरके मारनेवाले शतधन्वाके पीछे दौडे ॥ १९ ॥ जब शतयोजनसे अधिक घोडेसे न चलागया और मिथिलापुरीके बागमें गिरपडा, तब शतधन्वा उस घोडेको छोड भयभीत हो पाँव प्यादे भागनेलगा और श्रीकृष्ण भी अत्यन्त क्रोधित होकर उसके पीछे दौडनेलगे ॥ २० ॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्र शतधन्वाको पकड और अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले चक्रसे उसका शिर काट वस्त्रोंमें मणि ढूँढनेलगे ॥ २१ ॥ जब शतधन्वाके वस्त्रोंमें मणि न निकली, तब श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसे आनकर कहा कि, देखो भाई ! शतधन्वाको वृथाही मारा उसपर मणि न निकली ॥ २२ ॥ इसके पीछे बलदेवजी कहनेलगे कि, शतधन्वा और किसीके पास मणि धर आया है, इस कारण उस पुरुषको ढूँढनेके लिये तुम द्वारका जाओ ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र सब बातको जानतेहैं परन्तु तोभी "मणिका मुझसे छिपाव किया है

मिथिलाया उपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्यामधावन्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाऽग्रजांतिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ॥ कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनंदनः ॥२४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मथिलः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ॥२५॥ मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥ ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६ ॥

यह मनमें निश्चयकर बलदेवजी क्रोधकरके कहने लगे, तात्पर्य यह है कि, द्रव्य ऐसा निषिद्ध पदार्थ है, जिसके लिये कृष्ण बलदेवका भी मन बिगड़गया, फिर मनुष्योंकी तो बातही क्या है ?" कि, मेरा परमप्यारा विदेहदेशका राजा बहुलाश्व है, उसके देखनेको मेरा चित्त बहुत भटक रहा है,इसलिये मैं वहाँ जाऊंगा, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रसे कह यादवोंके आनंददायक महात्मा बलदेवजीने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥ प्रसन्न मन मिथिलापुरीका राजा बलदेवजीको आयाहुआ देख शीघ्र उठ, पूजन करनेके योग्य बलदेवजीकी पूजन करनेकी सामग्रियोंसे पूजा करनैलगा, तब सामर्थ्यवान् बलदेवजी कितने एक वर्षतक वहाँ रहे ॥ २५ ॥ प्रीतियुक्त महात्मा जनकजीसे सत्कार पाय धृतराष्ट्रका पुत्र

दुर्योधन वहाँ आय महात्मा बलदेवजीसे गदा चलानेकी विद्या सीखनेलगा ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त प्रियकार्य करनेवाले सामर्थ्यवान् भगवान् केशवमूर्तिने द्वारकापुरीमें आनकर शतधन्वाका नाश और मणिका न मिलना अपनी प्यारी भार्या सत्यभामासे कहा ॥ २७ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने सुहृदोंको संग लेकर मृतक सत्राजितके परलोकसाधनकी क्रिया कराने लगे ॥ २८ ॥ सत्राजित्से मणि छीन लेनेकी शिक्षा देनेवाले अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वाका मरना सुन श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त भयभीत होकर भागगये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! जब द्वारकापुरीसे अक्रूरजी चलेगये तब द्वारकावासीमनुष्योंके मनमें ताप और अरिष्ट बारम्बार होनेलगे ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कितने

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ॥ अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥ ततः स कारयामास
क्रियां बंधोर्हतस्य वै ॥ साकं सुहृद्भिर्भगवान्यायाः स्युः सांपरायिकाः ॥ २८ अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्व
धम् ॥ व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ॥ शारीरा मान
सास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥ इत्यंगोपदिशंत्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ॥ मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्श
नम् ॥ ३१ ॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ॥ स्वसुतां गांदिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥
तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्रयत्र ह ॥ देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥ ३३ ॥

एक ऋषि जिन्होंने प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमा वर्णन की है, वह श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूलकर ऐसा कहते हैं, क्योंकि मुनियोंके निवास श्रीकृष्णचन्द्रके विद्यमान रहते अरिष्ट किस प्रकार होसक्ते हैं ? ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दूषित करके फिर और ऋषियोंका मत वर्णन करते हैं, कोई कोई ऋषि कहते हैं कि, एक समय जब इन्द्रने जल नहीं वर्षाया, तब काशीके राजाने अपनी कन्या गांदिनी पुरीमें आयेहुए श्वफल्कको दी, तब काशीके सम्पूर्ण देशोंमें खूब वर्षा हुई ॥ ३२ ॥ पिता श्वफल्कके समान प्रभावशाली अक्रूरजी जहाँ वास करते हैं,

उस देशमें खूब वर्षा होती है और महामारी इत्यादि किसी प्रकारका खेद प्राणियोंको नहीं होता है ❁ ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वृद्ध पुरुषोंका वचन सुनकर, "केवल अक्रूरही यहाँसे गया है और मणिकोभी वही लेगया है" यह बात निश्चय करके अक्रूरको काशीसे बुलानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ ३४ ॥ उसके पीछे आपही अक्रूरकी पूजा कर हे काका अक्रूर ! इस प्रकार सम्बोधन देकर प्यारी प्यारी बात कह सब

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ॥ इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५ ॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ॥ स्यमंतको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः ॥ ३६ ॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ॥ दायं निनीयाऽपः पिंडान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ॥ किं तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥

विश्वके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरके मनकी बात जान मुसकराकर कहने लगे ॥ ३५ ॥ कि, हे दाननके पति अक्रूर ! हम निश्चय जानते हैं कि, स्यमंतकमणि शतधन्वा तुम्हारे पास रखगया है और वह तुम्हारे पास है ॥ ३६ ॥ सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उसे पिंड जल दान और ऋण चुकाकर जो शेष धन रहेगा, उसे शास्त्रानुसार उसकी कन्याके पुत्र लेंगे ॥ ३७ ॥ हे अक्रूर ! यद्यपि तुम हमसे कहो मत, परन्तु

शंका–बडे बडे आश्चर्यकी बातें भागवतमें सुनी जाती हैं कि, जिस जिस गाँवमें अक्रूर वास करता है, उसी उसी गाँवमें इन्द्र जलकी वर्षा करता है फिर उस गाँवमें महामारीकी बीमारी नहीं होती, तब अक्रूर तो मथुरामें जन्में मथुरा छोडके दूसरे गाँवको नहीं गये, फिर मथुरा छोडके द्वारकामें वास किया दूसरे गाँवमें वास नहीं किया, फिर सातद्वीपमें तो अक्रूर नहीं है, तब सात द्वीपमें इन्द्र जलको वर्षा क्योंकरताहै ?

उत्तर–अक्रूरकी माता गान्दिनीने ब्रह्माका तप करके ब्रह्मासे यह वरदान लिया कि, जिस स्थानपर तू (गान्दिनी) वा तेरा पति, अथवा तेरा पुत्र निवास करेगा और अपने मनमें जब वर्षनेकी इच्छा करेगा उसी समय जिस स्थानपर चाहेगा वर्षा बहुत होगी और जब अपने मनमें अभिमान करके प्रजाकी बुराई विचारेगा, वर्षा होनेकी इच्छा नहीं करेगा उसी समय तुम्हारा प्राण छूट जायगा, इसलिये बुद्धिमान् अक्रूर रात दिन प्रजाको सुख देनेके लिये अपने मनमें रात दिन वर्षा होनेकी इच्छा करते थे ॥

तो भी हम जानते हैं कि, मणि तुम्हारे अतिरिक्त और किसीपर नहीं रह सक्ती, क्योंकि आप सुन्दर व्रत धारण करनेवाले हैं, तब अक्रूरजीने कहा कि, अच्छा मेरेही पास सही. तुम्हें क्या प्रयोजन है; यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, बड़े भाई बलदेवजी इस मणिके पीछे मेरा विश्वास नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥ हे बड़भागी अक्रूर ! तुम मणि दिखाकर शीघ्रही मेरे भाईको शान्त करो और मेरे पास मणि नहीं है यह मत कहो, यदि कदाचित् मणि तुम्हारे पास न होती तो सुवर्णकी वेदी बनाकर काशीमें जाकर अखण्ड यज्ञ काहेसे करते ? ॥ ३९ ॥ जब इस प्रकार साम भेदन कर समझाया, तब अक्रूरजीने सूर्यके समान तेजवाली, वस्त्रसे ढकीहुई वह मणि निकालकर श्रीकृष्णचन्द्रको देदी ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्यमंतकमणि अक्रूरजीसे लेकर जातिके बन्धु बांधवोंको दिखाय अपना मिथ्या कलंक दूरकर फिर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीको समर्पण

दर्शयस्व महाभाग बंधूनां शांतिमावह ॥ अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तंते रुक्मवेदयः ॥३९॥ एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ॥ आदाय वाससा छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमंतकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ॥ विसृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमंगलं च ॥ आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शांतिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे स्यमंतकोपाख्यानं नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा पांडवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ॥ इंद्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥

करदी ॥ ४१ ॥ परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका कहाहुआ मनुष्योंके दुःखोंका हरनेवाला, सुन्दर मंगलरूप इस स्यमंतक मणिके प्रसंगको जो कोई पुरुष पढ़े वा श्रवण करे अथवा स्मरण करे वह कुत्सित पापोंके कलंकको दूर कर कल्याणको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां स्यमंतकोपाख्याने सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ दोहा—[illegible] भद्रा, लक्ष्मणा, मित्रविन्दका लिन्द । अट्ठावन अध्यायमें, वरीं सकल गोविन्द ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! [illegible] पाण्डव जलगये यह बात होने पर फिर द्रुपदराजाके यहाँ पीछे दिखाईदिये, इस प्रकार पाण्डवोंकी खबर पाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग ले

एक समय इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥ सबके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखतेही, जिस प्रकार मृतकशरीरमें प्राण आनेसे इंद्रिय चैतन्य होजाती हैं, उसी प्रकार बलवान् पाण्डव उठ खड़ेहुये ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलकर पापरहित होनेके कारण वीर पाण्डव स्नेहभरी मुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द देखकर परमानन्दको प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्र बड़े युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें नमस्कार करके फिर अपने समान अर्जुनसे मिले इसके उपरान्त छोटे नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार किया ॥ ४ ॥ फिर इसके उपरान्त श्रेष्ठ आसनपर विराजमान श्रीकृष्णचन्द्रको नवविवाहिता, निन्दारहित, लज्जावती द्रौपदीने आनकर धीरे धीरे प्रणाम किया ॥ ५ ॥ ॥ उसी प्रकार सात्यकीको भी

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुंदमखिलेश्वरम् ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणं मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतं वीरा
अगसंगहतैनसः ॥ सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ॥
फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवंदितः ॥४॥ परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिंदिता ॥ नवोढा व्रीडिता किंचि
च्छनैरेत्याभ्यवंदत ॥ ॥ ५ ॥ तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवंदितः ॥ निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासिताः ॥
॥ ६ ॥ पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरंभितः ॥ आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं
परिपृष्टबांधवः ॥ ७ ॥ तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकंठाश्रुलोचना ॥ स्मरंती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥
तदैव कुशलं नोऽभूत्सनाथास्ते कृता वयम् ॥ ज्ञातीन्नः स्मरतां कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥

पांडवोंने आकर पूजन कर आसनपर बैठाला फिर और मनुष्योका भी आदर सन्मान किया ॥ ६ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्रने कुन्तीके पास आकर प्रणाम किया तो कुन्तीने भी स्नेहभरीचितवनसे आलिंगन किया, फिर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता व बहनकी कुशल कुन्तीसे पूछी और इसके उपरान्त कुन्ती श्रीकृष्णचन्द्रसे भाइयोकी कुशल पूछने लगी ॥ ७ ॥ प्रेमकी व्याकुलतासे गद्गद कण्ठ हो नेत्रोंमें आँसू भर कौरवोंके दिये कष्टकी सुधि करके कुन्ती भक्तोंके क्लेशोंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगी ॥ ८ ॥ कि, हे कृष्ण ! जाति बन्धु हमको स्मरण करके जिस समय तुमने मेरे

भाई अक्रूरको खवर लेने भेजा, उस समय हमारी सव कुशल होगई और तुमने हमको सनाथ करदिया ॥ ९ ॥ यद्यपि सब विश्वके हितकारी आत्मा
तुम "यह अपना है, यह पराया है" इस भ्रमसे रहित हो परन्तु तो भी जो कोई तुम्हारा सर्वदा स्मरण करता है, तुम उसके हृदयमें स्थित होकर
समस्त क्लेशोंका नाश कर देतेहो ॥ १० ॥ राजा युधिष्ठिर कहनेलगे कि, हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! नहीं ज्ञात होता कि, मैंने क्या कल्याणकारी
कार्य किया है, क्योंकि योगेश्वरोंको जिनका दर्शन होना महाकठिन है, उनको हम सरीखे कुमतियोंको दर्शन हुआ ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले
कि, हे राजन् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिरके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थ निवासियोंके नेत्रोंको आनन्द देते वर्षाकालतक वहीं विराजे॥

न तेऽस्ति स्वपरभ्रांतिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ॥ तथाऽपि स्मरतां शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर
उवाच ॥ किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वरः ॥ योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥ इति वै वार्षि
कान्मासान्राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ॥ जनयन्नयनानंदमिंद्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥ एकदा रथमारुह्य विजयो
वानरध्वजम् ॥ गांडीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं गहनं वनम् ॥ बहुव्याल
मृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून् ॥ शरभान्गवयान्खड्गान्ह
रिणाञ्शशशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किंकरा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते ॥ तृट्परीतः परिश्रांतो बीभत्सुर्य
मुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ॥ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरंतीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ एक समय महाबलवान् शत्रुओंका मारनेवाला अर्जुन कपिध्वजावाले रथमें चढ़कर, गांडीव धनुष और बाणोंसे भरा तरकसले, कवच
पहर बहुत सर्प और मृगवाले बड़े वनमें श्रीकृष्णचन्दके संग शिकार खेलनेको गया ॥ १३ ॥ १४ ॥ और उस वनमें पहुँचकर व्याघ्र,
सूकर, भैंसा, रुरु अर्थात् हरिण, शरभ, रोझ, गैंड़ा मृग और खरहा, इनको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे छेदन करने लगा ॥ १५ ॥ हे राजन् !
पूर्णमासी पर्व जब आनकर प्राप्त हुये तब सेवकलोग पवित्र पशु राजा युधिष्ठिरके पास लाये और जब अर्जुनको प्यास लगी तो थका हुआ
यमुनाजीपर आया ॥ १६ ॥ महारथी अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाके निर्मल जलका आचमन कर और जल पीकर जब खड़े हुये, तब

इन्होंने एक सुन्दर कन्या बैठी देखी ॥१७॥ सुंदर जंघा, श्रेष्ठ दाँत, मनोहर मुख, ऐसी प्रमदा कन्याके पास श्रीकृष्णका भेजा अर्जुन आनकर पूँछने लगा ॥ १८ ॥ कि, हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो ? और किसकी पुत्री हो, कहाँसे आई हो, और तुम्हारे मनमें क्या करनेकी इच्छा है ? सो सब वृत्तान्त कहो, मुझे निश्चय जान पड़ता है कि तुम्हारी पति करनेकी इच्छा है ॥ १९ ॥ इतना पूँछनेपर कलिन्दीने कहा कि, मैं सूर्यदेवकी पुत्री हूँ कालिन्दी मेरा नाम है और वरके देनेवाले विष्णुभगवान्‌को पति करनेकी इच्छासे तप कर रही हूँ ॥ २० ॥ हे वीर ! अत्यन्त स्वरूपवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और किसीको मैं नहीं वरूगी, वह अनाथके आश्रय मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ मैं कालिन्दी नामसे विख्यात हूँ और

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ॥ पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ॥ मन्ये त्वां पतिमिच्छंतीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९ ॥ कालिंद्युवाच ॥ अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ॥ विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥ २० ॥ नान्यं प्रतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ॥ तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिंदीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ॥ निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ॥ रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ॥ कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ अग्नये खांडवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥

मेरे पिता सूर्यदेवने यमुनाजलमें स्थान बना दिया है, इसलिये जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन न होगा, तबलों यहाँ वास करूंगी ॥२२॥ यह सुन अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके पास [illegible] कालिन्दीके सब वचन कहे, कालिन्दी मेरे लिये तप करती है, यह बात जान श्रीकृष्णचन्द्र कालिन्दीको रथमें बैठाय धर्मराज [illegible] के पास आये ॥ २३ ॥ उस समय पाण्डवोंकी आज्ञासे श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके कारीगर विश्वकर्मासे कहकर पाण्डवोंके लिये [illegible] अद्भुत नगर बनवाये ॥ २४ ॥ पाण्डवोंका भला चाहनेके लिये इन्द्रप्रस्थमें वास करनेवाले

श्रीकृष्णभगवान् अग्निको खांडववन चरानेके लिये अर्जुनके सारथी हुए ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! तब उस अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको धनुष, श्वेत घोड़े, तीरोंसे भरा तरकस और जो अस्त्रवालोंसे भी न कटे, ऐसा एक कवच दिया ॥ २६ ॥ और वहाँ इन्होंने अग्निसे मयनाम दैत्यको बचाया, इसलिये उसने प्रसन्न होकर पाण्डवोंको एक सभा दी, जिस सभामें जलमें थल और स्थलमें जल इस प्रकार देखकर दुर्योधनकी दृष्टिमें भ्रम हुआ ॥ २७ ॥ राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा पाय और सुहृदोंमें बड़ाई पाय श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी यादवोंको संग लेकर फिर द्वारका

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्श्वेतान्रथं नृप ॥ अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ॥ यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशि भ्रमः ॥ २७ ॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ॥ आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ २८ ॥ अथोपयेमे कालिंदीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते ॥ वितन्वन्परमानंदं स्वानां परममंगलम् ॥ २९ ॥ विंदानुविंदावावंत्यौ दुर्योधनवशानुगौ ॥ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविंदां पितृष्वसुः ॥ प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ ॥ ३१ ॥ नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद्राजातिधार्मिकः ॥ तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥ ३२ ॥

पुरीमें आये ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त सुन्दर पवित्र ऋतु नक्षत्रमें कालिन्दीका पाणिग्रहण किया और फिर अनेक प्रकारसे परमरूप श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको सुख देनेलगे ॥ २९ ॥ उज्जैनपुरीके रहनेवाले राजा विन्द और अनुविन्दकी बहनने श्रीकृष्णचन्द्रको स्वयंवरमें वरनेकी इच्छा की परन्तु उन दोनों भाइयोंने मने किया, क्योंकि वह दुर्योधनके आधीन थे ॥ ३० ॥ हे राजन् वासुदेवकी बहन राजाधिदेवीकी पुत्री मित्रविन्दाको श्रीकृष्णचन्द्र सब राजाओंके देखते बलपूर्वक हरण करके लेगये * ॥ ३१ ॥ हे राजा परीक्षित् ! अयोध्या पुरीका पालन करनेवाला बडा धर्मात्मा

* शंका–धर्मशास्त्रमें लिखा है कि फूफीकी लडकी बहिन होती है फिर श्रीकृष्णने फूफीकी लडकीके साथ विवाह क्यों किया ?

उत्तर–पूर्व जन्ममें वसुदेवजी तप करते थे, तब वसुदेवजीकी जो दासी थीं सो सब वसुदेवजीकी सेवामें लग रही थीं जब भगवान्ने वसुदेवको वरदान दिया कि, तुम्हारे पुत्र होगा, तब लक्ष्मीजी भी वसुदेवजीने दासियोंको वरदान दिया कि, हे दासियो ! तुम्हारी सबकी हम बहुतसी कन्या होवेंगी, इस प्रकार भगवान् और लक्ष्मीके वचनसे प्रथमकी जो, वासुदेवजीकी दासी थीं सो सब इस जन्ममें वसुदेवजीकी

राजा नग्नजित् नामसे विख्यात था, उस राजाके प्रकाशमान सत्या नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई कि, जिसका उपनाम नाग्नजिती भी प्रसिद्ध था ॥ ३२ ॥ राजाने यह प्रतिज्ञा करी कि, जो वीरपुरुषकी गंध भी न सहसकें ऐसे दुष्ट, तीखे सींगोंवाले, अति दुर्धर्ष सात बैलोंको जीते वह मेरी पुत्रीसे विवाह करेगा, अनेक राजा मार खाकर फिर गये परन्तु कोई भी जीतनेको समर्थ न हुआ ॥३३॥ यहाँ यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुना कि, जो बैलोंको जीते, उससे कन्या विवाह करे, यह बात सुनकर बड़ी भारी सेनाको संग लेकर अयोध्यापुरीमें आये ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! राजा नग्नजितने देखा कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं, इसलिये अत्यन्त प्रसन्न हो उठकर "भले आये महाराज" इस प्रकार प्रशंसा करके सुन्दर

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ॥ तीक्ष्णशृंगान्सुदुर्धर्षान्वीरगंधासहान्खलान् ॥ ३३ ॥ तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥ ३४ ॥ स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ अर्हणेनापि गुरुणापूजयत्प्रतिनंदितः ॥ ३५ ॥ वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेंद्रकन्या चकमे रमापतिम् ॥ भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥ ३६ ॥ यत्पादपंकजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः ॥ लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः काले दधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥

आसन बिछाय चरण धोकर पूजाकी सामग्रियोंसे उनका पूजन करनेलगा ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्रको आया हुआ देख और अपने योग्य वर जान, इनकी इच्छा करके कहनेलगी कि, जो मैंने श्रद्धासहित व्रत किये हैं, तो कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों और मेरा मनोरथ सत्य हो ॥ ३६ ॥ जिन भगवान्के चरणकमलकी रजको लक्ष्मी और कमलयोनि ब्रह्मा वा महादेव और लोकपाल संपूर्ण शिरपर धारण करते हैं और जो अपनी बँधीहुई मर्यादा पालनेकी इच्छासे समयानुसार लीलापूर्वक नृसिंहादि अवतार धारण करते हैं, वह

—बहिनें हुईं, उन वसुदेवकी बहिनकी पुत्री लक्ष्मी हुई, अपने वचनके प्रमाणसे, लक्ष्मीरूप जो वसुदेवकी बहिनकी लड़की उनका भगवान् विना दूसरा पुरुष कैसे विवाह करेगा ? इसलिये भगवान्ने जाना कि, हमारी बहिन है इनको हम विवाह करेंगे तो बड़ा पाप होगा ऐसा जानते थे तो भी विवाह किया ।

भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त भलीभाँति विधिपूर्वक पूजा करके राजा नग्नजित् कहनेलगे कि, हे नारायण ! हे जगत्पते ! हे आनन्दसे पूर्ण ! आपकी मैं तुच्छ क्या पूजा करूं ? ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षि त् ।सनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुसकातेहुए मेघके समान गंभीर वाणीसे राजा नग्नजितके प्रति कहा ॥ ३९ ॥ हे राजन् नग्नजित् ! विद्वान् पुरुष कहते हैं कि, मांगना अत्यन्त बुरा है, तोभी स्नेहके वश होकर मैं आपकी कन्या मागता हूं; कुछ मूल्यके देनेवाले हम नहीं हैं ॥ ४० ॥ राजा नग्नजितने कहा कि, हे नाथ ! सब गुण जिनमें विद्यमान और लक्ष्मी सदा जिनके अंगमें वास करै ऐसे सर्वगुणालंकृत तुमसे अधिक संसारमें कौन वर है, जिसको

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ॥ आत्मानंदेन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाह भगवान्हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ॥ मेघगंभीरया वाचा सस्मितं कुरुनंदन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नरेंद्र याञ्चा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबंधोर्निजधर्मवर्तिनः ॥ तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥४०॥ राजोवाच ॥ कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ॥ गुणैकधाम्नो यस्यांगे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥ किं त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्त्वतर्षभ ॥ पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥ सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ॥ एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः॥४३॥यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनंदन ॥ वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते॥४४॥ एवं समयमाकर्ण्य बद्धा परिकरं प्रभुः ॥ आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥४५॥

मैं अपनी कन्या दूंगा ? ॥ ४१ ॥ हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! पुरुषोंमें पराक्रमकी परीक्षा लेनेके कारण और कन्याके वरकी परीक्षाके लिये हमने प्रथम एक प्रतिज्ञा करी है ॥ ४२ ॥ हे वीर कृष्ण ! इन शिक्षा रहित और पकड़नेमें न आवैं, ऐसे बैलोंको जो जीतै, वह कन्याको वरै, यह बात सुन बहुतसे राजपुत्र यहाँ आये परन्तु इनसे अपना शरीर जर्जरितही कराकर चलेगये ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन ! हे लक्ष्मीपति ! जो तुम इन बैलोंको जीतलो, तो निश्चय मेरी कन्याका विवाह करो ॥ ४४ ॥ सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजा नग्नजित्का वचन

सुनकर फेंट बाँध अपने सात रूप धारणकर लीलापूर्वकही बैलोंको पकडनेलगे ॥ ४५ ॥ गर्व और शक्ति नाश करके उन बैलोंको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र रस्सियोंसे बाँधकर, जैसे बालक काष्ठके बैलको खैंचता है, ऐसेही खैंचने लगे ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त आश्चर्यमान राजा नग्नजित् प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी कन्या देनेका उद्योग करनेलगा और सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने समान कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ४७ ॥ राजा नग्नजित्की रानी अपनी कन्याके प्रियपति श्रीकृष्णचन्द्रको वर पाकर परमआनन्दित हुई और बड़ा उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी, नगारे बजने लगे, गीतोंका शब्द सुनाई दिया, ब्राह्मणोंने अनेक आशीर्वाद दिये और सुन्दर वस्त्र मालाओंसे

बद्धा तान्दामभिः शौरिर्हतदर्पान्हतौजसः ॥ व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ॥ लेभिरे परमानदं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शखभेर्यानकाः नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ॥ नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासस्स्रगलंकृताः ॥ ४९ ॥ दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः ॥ युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥ ५० ॥ नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान्रथान् ॥ रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥ ॥ ५१ ॥ दंपती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ॥ स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयंतं पथि कन्यकाम् ॥ भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५३ ॥

शोभायमान सब नर नारी प्रसन्न होगये ॥ ४९ ॥ सामर्थ्यवान् राजा नग्नजित्ने यौतुकमें दशहजार गौवें दीं और धुकधुकी कंठमें पहरे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान तीनहजार दासियें दीं ॥ ५० ॥ नौहजार हाथी और हाथियोंसे सौगुणे अर्थात् नौलाख रथ, रथोंसे सौगुणे अर्थात् नौ करोड घोड़े दिये और घोडोंसे सौगुण अर्थात् एक अर्ब मनुष्य दिये ॥ ५१ ॥ स्नेहसे व्याप्त हृदय कौशलदेशका राजा नग्नजित् अपनी कन्या सहित श्रीकृष्णको रथमें बैठाल और बहुतसी सेना संग लेकर पहुँचाने चला ॥ ५२ ॥ जिनका पुरुषार्थ प्रथम यादव और बैलोंसे भंग होगया

था वह राजा यह बात सुनकर न सहसके और कन्याको लेजातेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मार्गमें रोकलिया ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णके प्यार करने वाले गांडीव धनुषधारी अर्जुनने बाण चलाकर समस्त राजाओंको क्षणभरमें सिंह जैसे वनके छोटे छोटे जीव व मृगोंको भगादेता है उसी प्रकार भगादिया ॥ ५४ ॥ इसप्रकार यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दहेज लेकर द्वारकापुरीमें आय सत्यारानीसे रमण करनेलगे ॥ ५५ ॥ वसुदेवकी बहन श्रुतिकीर्तिकी पुत्री केकयदेशोत्पन्न भद्राको संतर्दनादि भाइयोंके देनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने ब्याहा ॥ ५६ ॥ सुन्दर लक्षणवाली मद्रदेशके राजाकी कन्या लक्ष्मणाको गरुड जैसे अमृत लाते हैं, उसी प्रकार अकेले श्रीकृष्णचन्द्र हरकर ले आये ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा

तानस्यतः शरव्रातान्बंधुप्रियकृदर्जुनः ॥ गांडीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ॥ रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ॥ कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥ सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ॥ स्वयंवरे जहारैकः ससुपर्णः सुधामिव ॥ ५७ ॥ अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ॥ भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ राजोवाच ॥ यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रेण हृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबंधुना ॥ हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥ २ ॥

परीक्षित् ! श्रीकृष्णकी भौमासुरके बन्दीखानेसे छुडाईहुई सुन्दर स्वरूपवान् हजारों स्त्री और भी थीं॥५८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामष्टमहिष्युद्वा हो नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥ दोहा–उनसठवें अध्यायमें, भौमासुरको मार । इन्द्र पराभव कर हरी, कन्या वरीं हजार ॥१॥ राजा परीक्षित्‌ने कहा कि, हे व्यासपुत्र शुकदेवजी ! श्रीकृष्णचन्द्रने जिस प्रकार भौमासुरको मारा और जैसे भौमासुरने स्त्रियें रोकीं यह सम्पूर्ण कथा और शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पराक्रम हमारे सन्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! जब देवराज इन्द्रने श्रीकृष्णचन्द्रसे आनकर कहा कि, हे भगवन् ! मेरा छत्र अदितिके कुण्डल भौमासुर हरकर

लेगया और अमराद्रि सुमेरुके मणिपर्वत स्थानमें उसने अपना अधिकार करलिया है और हमें अत्यन्तही दुःखित कर दिया है, देवराजकी यह बात सुनकर ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र पक्षिराज गरुडपर सवार हो सत्यभामा रानीको संग ले प्राग्ज्योतिषनामक भौमासुरके नगरमें गये जहाँ पर्वत, शस्त्र, जल, अग्नि और पवनके किले थे, जिनमें कोई प्रवेश न करसके ऐसा भयानक गढ़ और मुरदैत्यकी हजारों दृढ़ फाँसियों करके चारों ओरसे व्याप्त था ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने गदासे गिरिदुर्ग तोडा, शस्त्रदुर्ग बाणोंसे, चक्रसे अग्निदुर्ग तोडा, इसके उपरान्त जलदुर्ग और पवनदुर्गको तोड, इसीप्रकार मुरदैत्यकी फाँसियोंको काटडाला ॥ ४ ॥ शंख बजनेके शब्दसे अनेक युद्धके यंत्र उलटे चलनेलगे और

सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ गिरिदुर्गैश्शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ॥ मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत्र आवृ तम् ॥३॥ गदया निर्बिभेदाद्रीञ्शस्त्रदुर्गाणि सायकैः ॥ चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥ शंखनादेन यंत्रा णि हृदयानि मनस्विनाम् ॥ प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥ ५ ॥ पांचजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगांताशनिभी षणम् ॥ मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पंचशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगांतसूर्यानलरोचिरु ल्बणः ॥ ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पंचभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥ आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्रै र्व्यनयत्स पंचभिः ॥ स रोदसी सर्वदिशोंबरं महानापूरयन्नंडकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥

शूरवीरोंके हृदय व मन थरथर काँपनेलगे, तब गदाधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बडी गदासे भौमासुरकी नगरीके कोटको तोडडाला ॥ ५ ॥ प्रलयकालीन वज्रके शब्दके समान भयंकर शब्दवाले पांचजन्य शंखका शब्द सुनकर पाँच मुखवाला मुरदैत्य जो जलके भीतर सो रहा था, सो उठा ॥ ६ ॥ अति खोटी दृष्टि प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान तेज, भयंकर रूपवाला मुरदैत्य त्रिशूल हाथमें ले पाँचों मुख फाड़कर, मानों त्रिलोकीको निगल जायगा इस प्रकार दौड़ताहुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आया जैसे गरुड़ सर्पोंके सन्मुख जाता है ॥ ७ ॥ और बडे जोरसे त्रिशूलको फिराय गरुड़पर चला पाँचों मुख फाडकर महाघोर शब्द किया, उस शब्दका नाद अंतरिक्ष, पृथ्वी, सम्पूर्ण दिशओंमें

फैलकर ब्रह्माण्डमें व्याप्त होगया ॥ ८ ॥ उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने गरुडके ऊपर त्रिशूल आता देखकर अपने बाणोंसे तीन टुकड़े करदिये और मुर दैत्यके पाँचों मुखोंमें पाँच बाण मारे, तब मुरदैत्य अत्यन्त क्रोधित होकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर गदा चलानेलगा ॥ ९॥ तब भगवान्‌ने संग्राममें आतीहुई उस गदाके हजारों टुकडे करडाले, उस समय भुजाओंको उठाय दौडकर सन्मुख आये हुये मुरदैत्यका शिर श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक अपने चक्रसे काटलिया ॥ १० ॥ जिस प्रकार इन्द्रके वज्रसे पर्वतका शिखर कटकर गिर पडता है, उसी प्रकार मस्तक कटनेपर प्राणमुक्त हो वह जलमें गिरगया, उसके जो अति बलवान् सात पुत्र थे, वह पिताके दुःखसे अत्यन्त दुखी हो, महाक्रोधकर बदला लेनेके लिये आये ॥ ११ ॥

तदा पतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्रिधौजसा ॥ मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥ तामापतंतीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ॥ उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ १० ॥ व्यसुः पपातांभसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृंगोऽद्रिरिवेंद्रतेजसा ॥ तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥ ताम्रोंतरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ॥ पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुंजतासाद्य शरानसीन्गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ॥ तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥ तान्पीठमुख्याननयद्यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजांघ्रिवर्मणः ॥ स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥ १४ ॥

ताम्र, अंतरिक्ष, श्रवण, पिभाँवसु, वसुं, नभस्वान् और सातवां अरुंण यह सब पीठनाम सेनापतिको आगे कर भौमासुरकी प्रेरणासे शस्त्र लेलेकर रणभूमिमें आये ॥ १२ ॥ अत्यन्त क्रोध करके भयानक मुरदैत्यके पुत्र आकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर बाण, तलवार, गदा, बर्छी, गुर्ज और त्रिशूल इत्यादि शस्त्र चलानेलगे, तब महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बाणोंसे उनके चलायेहुये शस्त्रोंको क्षणभरमें तिलके समान काट डाला ॥ १३ ॥ पीठ आदि मुरदैत्यके पुत्रोंके शिर, ऊरू, भुजा, पाँव, कवच इत्यादि काट और उनको मारकर श्रीकृष्णचन्द्रने यमलोक भेज

दिया, तब पृथ्वीका पुत्र नरकासुर श्रीकृष्णचन्द्रके चक्र और बाणोंसे अपने सब सेनापतियोंका नाश देखकर ॥ १४ ॥ महाक्रोधित हो समुद्रसे प्रगटहुए मद झरते हाथियोंकी सेना लेकर बाहर निकला सूर्यके ऊपर जिसप्रकार बिजली सहित मेघ आता है, उसी प्रकार गरुड़के ऊपर सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रको विराजमान देख भौमासुर बरछी चलानेलगा और सम्पूर्ण योद्धा भी प्रहार करनेलगे ॥ १५ ॥ गदके बड़े भाई श्रीकृष्णचन्द्रने चित्र विचित्र पंखवाले बाणोंसे भौमासुरकी सेनाको काट फिर क्षणमात्रमें तीखे बाणोंसे भुजा, ऊरू, गर्दन और अंग काट हाथी घोड़ोंको मार छिन्न भिन्न करदिया ॥१६॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित् ! जो जो शस्त्र योद्धाओंने चलाये, उन सबको भगवान् श्रीकृष्ण

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा ॥ कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यं भगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोंघ्रिविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुंजरम् ॥ १६ ॥ यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ॥ हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ॥ गरुत्मता हन्यमानास्तुंडपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्त्ता नरको युध्ययुध्यत ॥ दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥ तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ नाकंपत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥ २० ॥

चन्द्रने तीक्ष्ण तीन तीन बाणोंसे एक एक टूककर काटडाला ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णको अपने ऊपर चढायेहुये गरुड़जीने भी अपनी चोंच और पंखोंसे हाथियोंको मार मारकर व्याकुल कर दिया ॥ १८ ॥ और वह अत्यन्त पीड़ित होकर पुरमें प्रवेश करगये, तब नरकासुरने युद्ध करतेहुए गरुडसे पीडित अपनी सेनाको भागीहुई देखा ॥ १९ ॥ भौमासुरने महापैनी धारवाली गरुड़जीको बरछी मारी, जिससे वज्र रुकगया था, परन्तु जैसे मालाके प्रहारको हाथी कुछ नहीं गिनता, उसी प्रकार गरुड़जी उसके प्रहारसे कुछ भी व्यथित नहीं हुये ॥ २० ॥

तब भौमासुरने अपना उद्यम वृथा देख श्रीकृष्णके मारनेको त्रिशूल हाथमें लिया, परन्तु हे परीक्षित् ! उस शूलको छोडनेसे प्रथमही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने चक्रसे हाथीपर बैठेहुये भौमासुरका शिर काट डाला ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जिस समय कुण्डलों सहित मनोहर किरीटसे शोभायमान भौमासुरका शिर कटकर पृथ्वीमें सुशोभित हुआ, उस समय दैत्योंने हाहाकार किया और ऋषि, देवता धन्य धन्य कहते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षाकर स्तुति करनेलगे ॥२२॥ भौमासुरके मरने उपरान्त पृथ्वीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर तपायमान सुवर्णमें जडे रत्नोंसे प्रकाशमान कुण्डल वैजयन्ती माला और प्रचेताका छत्र तथा महामणि दिये॥२३॥हे नृपोत्तम ! उस समय पृथ्वी विश्वके ईश्वर देवताओंमें

शूलं भौमोऽच्युतं हंतुमाददे वितथोद्यमः ॥ तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥ अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥ सकुंडलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ॥ हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुंदं विकिरंत ईडिरे ॥२२॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुंडले प्रतप्तजांबूनदरत्नभास्वरे ॥ सवैं जयंत्या वनमालया ऽऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ॥ प्रांजलिः प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ॥ भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ॥ पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥

श्रेष्ठ ब्रह्मादिकोंमे पूजित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख दोनों हाथ जोड नम्र हो, भक्ति और श्रद्धासहित स्तुति करनेलगी ॥ २४ ॥ पृथ्वीने पुत्रके लिये तपस्या की थी,तब देवताओंने प्रसन्न होकर पुत्र होनेका वर दिया उसी वरके प्रभावसे भौमासुर उत्पन्न हुआ, पृथ्वीने कहा कि, हे देव देव ! हे शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी ! हे परमात्मन् ! भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये साकार रूप धारण करनेवाले.आपको नमस्कार है ॥२५॥ जिनकी नाभिमें कमल, कमलकी माला धारण करनेवाले कमलनेत्र और कमलके समान चरण रखनेवाले आपको नमस्कार है॥२६॥भगवान् वासुदेव सम्पूर्ण

प्राणी जिनमें वास करें, विष्णु अर्थात् सबके हृदयमें व्यापक, समस्त कार्योंके आदिकारण पूर्णज्ञानस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥ आप जन्म
रहित हो, इस विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हो, ब्रह्म हो, इसीलिये अजन्मा हो, अनन्तशक्ति हो, इसीसे विश्वके उत्पत्ति कर्त्ता हो, यदि कोई कहे कि, पित्रादि
तो पुत्रादिकोंके उत्पत्तिकर्त्ता हैं और पित्रादिकोंके उत्पत्ति कर्त्ता उनके पूर्वपुरुष हैं और पूर्व पुरुषोंके उत्पत्तिकर्त्ता पंचभूतहैं और पंचभूतोंका अपने
कर्मद्वारा जीव है, मैं क्या करूं इसके उत्तरमें पृथ्वी कहैहै कि, हे कार्यकारणरूप ! हे संपूर्ण प्राणियोंके आत्मा ! हे परमात्मन् ! तुम सर्वरूप हो, इसलिये
तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २८॥ यहाँ यह शंकाहै कि, तीन गुणोंसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करतेहैं और तीनों गुण मायाके अधीनहैं
और मायाका क्षोभ करनेवाला पुरुष है काल निमित्त है और यह बात प्रसिद्ध है, फिर मैं क्या करताहूं इसके उत्तरमें पृथ्वी कहतीहै कि, तुम आवरण

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणऽनतशक्तये ॥ परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ त्वं वै सिसृक्षू रज
उत्कटं प्रभो तमोनिरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ॥ स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भगवान्परः ॥ २९॥
अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इंद्रियाणि ॥ कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं
भ्रमः ॥३०॥ तस्यात्मजोऽयं तव पादपंकजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ॥ तत्पालयैनं कुरु हस्तपंकजं शिरस्यमुष्या
खिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥

रहित हो, हे समर्थ ! जिस समय आप विश्वके रचनेकी इच्छा करते हो, तब रजोगुणको धारण करते हो और हे जगत्पति।जगत्के पालन करनेको
सतोगुण धारण करते हो तथा नाशकरनेके लिये तमोगुणको धारण करतेहो, कालरूपहो, पुरुषरूप और सबसे परे हो इसलिये सबके उत्पन्नकर्त्ता
तुमही हो ॥ २९ ॥ हे ईश ! मुझे (पृथ्वी) जल, ज्योति, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध, देवता, मन, इन्द्रियाँ, अहंकार, तत्त्व और
समस्त स्थावर जंगम आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमसे भासते हैं ॥ ३० ॥ हे शरणागतोंके दुःखहर्त्ता ! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीतहोकर
तुम्हारे चरणोंमें आनकर पड़ा है सो तुम इसका पालन करो और सब क्लेशोंका शमन करनेवाला अपना हस्तकमल इसके मस्तकपर रक्खो ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि भक्तिपूर्वक नम्र हो मधुरवाणीसे पृथ्वीने,जब इस प्रकार स्तुति और प्रार्थना की,तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे अभयदान दे, सर्व सम्पत्तियुक्त भौमासुरके स्थानपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर श्रीकृष्णचन्द्रने सोलह हजार एक सौ कन्या भौमासुरके मंदिरमें देखीं, जिन्हें भौमासुर अपने पराक्रमसे बलत्कार हरलाया था ❋ ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख सम्पूर्ण स्त्रियें मोहित हो

शुक उवाच ॥ इति भूम्याऽर्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ॥ दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ॥ ३२ ॥ तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ॥ भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥ तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ॥ मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं देवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ॥ इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदय दधुः ॥ ३५ ॥ ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजांबराः ॥ नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महत् ॥ ३६ ॥

कर दैवसे प्राप्त हुए मनोवांछित श्रीकृष्णचन्द्रको मनसे पति वरण करनेलगीं ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! इन्हें ऐसी अनुमति दो कि, यह हमारे पति हों इस प्रकार सबकन्याओंने भक्तिभावसहित अपना अपना मन श्रीकृष्णचन्द्रमें लगाया ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें उज्ज्वल व

❋ शंका–भौमासुर तो बडा बुद्धिमान् था, फिर कुमारी कन्याओंको क्यों हर हर इकट्ठा किया ? वह तो सब लडकियें थीं, उनका विवाह नहीं हुआ था, उनको राक्षसकर्म करनेके लिये हरकर ले आया उत्तर–राजाओंका अभिमान भजन करनेके लिये सब राजाओंकी कन्याओंको हरकर वह अपना विवाह करनेके लिये लाया था और राजालोग उसका कुछ भी नहीं करसके, तब नारदमुनिने विचारा कि, यह सब कन्या तो भगवान्की स्त्री होंगी, ऐसा विचारके भौमासुरसे मने करदिया कि, हे भौमासुर विना हमारी आज्ञा लिये इन कन्याओंके सग अपना विवाह मत करना, ऐसे कहकर भौमासुरको विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी, इन लडकियोंके सग भौमासुर विवाह करताही करता श्रीकृष्णने उसको मारडाला, कन्याओंको अपने आप वर लिया, इसलिये भौमासुरने राजकन्याओंको हरण किया था ॥

स्वच्छ वस्त्र पहराय पालकियोंमें बैठाय द्वारकापुरीको भेजदिया और साथही बड़े बड़े खजाने, रथ, घोडोंको भी भजे ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त चार चार दाँतके श्वेतरंग, शीघ्रगामी, चौंसठ ऐरावतकुलके हाथी श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीमें भेजे ॥ ३७ ॥ इसके पीछे जब भगवान् वासुदेवने इन्द्रलोकमें जाकर अदितिको कुण्डल दिये, तब इन्द्राणीसहित देवराज इन्द्रने सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रकी विधि पूर्वक पूजा करी ॥३८॥ सत्यभामाके कहनेसे श्रीकृष्णचन्द्र कल्पवृक्षको उखाड़,गरुडके ऊपर रख और इन्द्रसहित समस्त देवताओंको जीत द्वारकापुरीमें लेआये॥ ३९ ॥ और सत्यभामाके बगीचेको शोभायमान करनेके लिये कल्पवृक्ष उसके बगीचेमें लगाया, उसकी सुगन्धके मदके लोभी भौंरे स्वर्गसे पीछे पीछे

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दतांस्तरस्विनः ॥ पांडुरांश्च चतुष्षष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥ ३७ ॥ गत्वा सुरेंद्रभवनं दत्त्वा ऽदित्यै च कुंडले ॥ पूजितस्त्रिदशेंद्रेण सहेंद्राण्या च स प्रियः ॥ ३८ ॥ चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ॥ आरोप्य सेंद्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ॥ अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गंधासवलंपटाः ॥ ४० ॥ यया च आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ॥ सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ॥ यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥ गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ॥ रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥

चलेआये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! प्रथम तो देवराज इन्द्रने कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने किरीटोंके अग्रभाग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगा नमस्कार करके उनकी प्रार्थना की और कार्य सिद्ध होनेपर भगवान्से विरोध किया, अहो ! देवताओंको बड़ा क्रोध आता है,धनिकताकोही धिक्कार है ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त एक मुहूर्तमात्रमें सोलह हजार एक सौ आठ महलमें सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जितनी स्त्रियें थीं उनकेही स्वरूप धारण कर सबका यथायोग्य पाणिग्रहण किया ॥ ४२ ॥ जिनके घरके समान और कोई घर नहीं है, इस प्रकार उन रानियोंके घरोंमें सदा पूर्ण आनन्द स्वरूप रहते भी औरोंके समान गृहस्थधर्म करते अचिन्त्य कार्य करते अविनाशी भगवान् लक्ष्मीका अंशरूप स्त्रियोंके

साथ विहार करते थे ॥४३॥ हे परीक्षित! ब्रह्मादिक देवता जिनको मार्गके नहीं जानते, उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको पति पाय वह स्त्रियें उनका निरंतर बढीहुई प्रीति और स्नेहभरे हास्यपूर्वक अवलोकन करती थीं और आनन्दपूर्वक नवीन२संगम भाषण और लज्जाका सेवन करती थीं॥४४॥ यद्यपि एक एक रानीके पास सौ सौ दासी हाथ जोड़े खडी रहतीथीं, परन्तु तो भी सामने जाकर लिवालाना, आसनको बिछाना, सुन्दर पूजा करनी चरण धोना, बीरा लगाना, चरण दाबने, पंखा करना, अतर लगाना, फूल चढ़ाना, केशोंका सँभालना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना यह सेवा भलीप्रकार आपही करती थीं ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमजल्पलज्जाः ॥४४॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगंधमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नरकवधपारिजातहरणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्॥पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥ यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ॥ स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥ तस्मिन्नंतर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलंबिना ॥ विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ॥ जालरंध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चंद्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥

दोहा—साठ हँसीसे कुछ कही, हरि रुक्मिणिसों बात। रूठ गई तब रुक्मिणी, कृष्णमनावत जात॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! किसी समय सुखपूर्वक एक शय्यापर बैठे हुए जगत्गुरु अपने पति श्रीकृष्णचंद्रकी रुक्मिणीसखियों सहित चमर करके सेवा करनेलगीं ॥ १ ॥ जो जन्म रहित भगवान् लीला पूर्वक इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करतेहैं, वही भगवान् अपनी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें आनकर प्रगट हुए॥२॥ वहाँ गहोंके भीतर अत्यन्त देदीप्यमान मालायें लटक रही थीं, अत्यन्त शोभायमान छत बँधी थीं, और मणिमय दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३ ॥ मधुमल्लिकाके पुष्पोंकी मालाओंपर भौरोंके झुण्डके झुण्ड गूजरहे थे और झरोखोंकी जालियोंमें होकर चंद्रमाकी निर्मल किरणें

झिलमिला रही थीं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्षके वनकी सुगंधिलिये उद्यानसे सुगंधसनी वायु चलीआती थी, हे महाराज ! झरोंखे जालियोंमें अगर तगरके धूपका धुआँ निकल रहा था ॥ ५ ॥ उस मंदिरके भीतर शय्या बिछी थी उसपर दूधके फेनके समान कोमल श्वेत बिछौना बिछ रहा था, उसके ऊपर सुखपूर्वक बैठेहुये जगत्के ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी रुक्मिणी सेवा करती थी ॥ ६ ॥ हीरेकी दंडीवाला चमर सखीके हाथमेंसे लेकर उससे पवन करती रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी ओरको देख रही थी ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट मणियोंके जड़ाऊ नूपुरोंका शब्द करती अत्यन्त शोभायमान लगतीथीं, कैसी रुक्मिणी हैं, उँगलियोंमें मुँदरी पहरे, कलाइयोंमें चूड़ी व कंकण पहरे और हाथोंमें बीजना ले रही हैं

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ॥ धूपैरगुरुजै राजञ्जालरंध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयःफेननिभे शुभ्रपर्यंके कशिपूत्तमे ॥ उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥६॥ वालव्यजनमादाय रत्नदंडं सखीकरात ॥ तेन वीजयती देवी उपासांचक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतं कणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेंगुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ॥ वस्त्रांतगूढकुचकुंकुमशोणहारभासा नितंबधृतया च परार्ध्यकांच्या ॥ ८ ॥ तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ॥ प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककंठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ॥ महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१० ॥ तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ॥ दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥

सारीके छोरसे ढके जो स्तन तिनकी केशरसे रँगाहुआ अरुण जो मोतियोंका हार और कटिमें पहरे हुये जो अमूल्य मेखला उससे शोभायमान होरही थीं ॥ ८ ॥ लीलापूर्वक देह धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रकेही योग्य जिसका रूप है और श्रीकृष्णके विना जिसका कोई आश्रय नहीं है, ऐसी रूपवती साक्षात् लक्ष्मीके समान रुक्मिणीजीको देखकर कि, जिसकी अलकें कुण्डल धुकधुकी युक्त कंठसे शोभायमान मुखारविन्दमें मंद मुसका अमृत झलक रहाथा, उसे देख प्रसन्न हो हँसकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ९ ॥ कि, हे राजपुत्री ! लोकपालोंके समान ऐश्वर्यवाले महानुभाव रूप, उदारता और बलसे बढे हुए राजा तुम्हारी चाहना करते थे ॥ १० ॥ और कामदेवके मदसे व्याकुल शिशुपालादि [illegible]जा तुम्हारे

श्रीकृ[illegible]
बातपर रुक्मि[illegible]
कोई भी बड़ा धर्म नह[illegible]

लेनेकेलिये आये, जिन्हें तुम्हारे पिता दे भी चुके थे फिर तुमने किस कारण उन्हें छोड़कर हमें जो तुम्हारी बराबरके भी नहीं हैं, वरण किया ? ॥ ११ ॥ हे सुन्दरभ्रुकुटियोवाली ! बहुधा राजाओंसे डरकर तो हमने समुद्रकी शरण लीहै और बलवानोंके साथ विरोध होनेसेही हमने राजगद्दी त्यागन कररक्खीहै ॥ १२ ॥ हे सुभ्रु ! जिनके आचरणकी खबर नहीं, और जो स्त्रियोंके कहेमें न चलें, जिनका मार्ग जगत्से निरालाहै ऐसे पुरुषोंका जो स्त्रियें अनुसरण करती हैं, वह बहुधा क्लेश और कष्ट पाती हैं ॥१३॥ और हम निष्किंचन हैं, जो निष्किंचन है वह जन हमें अत्यन्त प्रिय हैं, इसलिये हे सुमध्यमे ! धनवान् पुरुष कहते हैं कि, हम दरिद्री हो जांयगे, इस भयसे बहुधा मेरा भजन नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनके

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ॥ बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ॥ आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदंति योषितः ॥१३॥ निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचनजनप्रियाः॥ तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजंति सुमध्यमे ॥१४॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ॥ तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥ वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया ॥ वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ॥ येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥

बराबर धन, बराबर जन्म, बराबर ऐश्वर्य, और बराबरकी रूप जाति हैं और सदा जिनका एकसा निर्वाह होताहै, उन्हीका विवाह और मित्रता होतीहै, छोटे बड़ोंकी कदापि नहीं होसकती ॥ १५ ॥ हे राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी ! तुमने कुछ विचार न किया और बराबरका संबंध होता है, यह बात जानेविना गुणहीन हमको भिक्षुकके सराहनेसे भूलकर वर लिया ॥ १६॥ हे सुन्दरी ! अब भी तुम अपनी बराबरीका क्षत्रिय देखकर उसका हाथ पकड़लो, उस क्षत्रियसे इस लोक और परलोकके मनोरथोंको प्राप्त होगी ❀ ॥ १७ ॥

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने रुक्मिणीसे कहा कि, तुम हमको छोड़कर और कोई दूसरा पति करलो ऐसा मूर्खों और अज्ञानियोंकी नाईं कुवाच्य भगवान् तो अपने मुखसे लक्ष्मीको कभी नहीं कह सक्ते, न कभी कहा, फिर इस अवतारमें क्यों कहा ? जो कोई कहे कि, रुक्मिणीका मानभग करनेके लिये यह वचन श्रीकृष्णने कहा तो भी कृष्णके सामने तो रुक्मिणीने कभी मान भी नहीं किया, फिर ऐसा खोटा वाक्य भगवान्ने रुक्मिणीसे क्यों कहा ।

तब रुक्मिणीने कहा कि, आप मुझे क्यों ले आये ? श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हे वामोरु ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दंतवक्रादि समस्त राजा हमसे शत्रुता रखतेहैं और तेरा भाई रुक्मीभी वैर करताहै ॥ १८ ॥ हे मंगलरूपिणी ! पराक्रमके मदसे अंधे गर्ववन्त राजाओंका गर्व दूर करनेके लिये और दुष्टोंका तेज हरण करनेके लिये मैं तुम्हें हरलाया था ॥ १९॥ हम घर और देहमें उदासीन हैं, हमको स्त्री पुत्रोंकी चाहना नहीं है, क्योंकि आत्माके आनन्दसे सदा परिपूर्ण हैं और ज्योतिके समान साक्षीमात्र कियारहित वर्ततेहैं ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् !

चैद्यशाल्वजरासंधदंतवक्रादयो नृपाः ॥ मम द्विषंति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदांधानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ॥ आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः॥ आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ॥ मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत ॥ २१ ॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ॥ आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिंतां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥

रुक्मिणीका मन हरनेवाले और जो आपसे कभी अलग न होय, इसलिये आपको अपना प्राणवल्लभ जाननेवाली रुक्मिणीका गर्व दूर करनेके लिये इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चुप होगये॥२१॥ इसप्रकार त्रिलोकीके ईश्वरोंका पालन करनेवाले अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रका जो पहले कभी न सुना था, ऐसा कटुवाक्य सुनकर हृदयमें रुक्मिणीजी कांपने लगीं और भयभीत हो रुदन करके बड़ी चिन्ता करने लगीं ॥२२॥

उत्तर–श्रीकृष्णने समझा कि, कलियुगका राज्य थोडेही दिनोंमें आनेवाला है, यह जानकर संसारके कल्याणार्थ और कलियुगकी स्त्रियोंके मानभंग करनेके लिये रुक्मिणीसे ऐसा अनुचित वाक्य श्रीकृष्णने कहा कि, स्त्रीका अभिमान भजन करनेवाले मेरे इस वचनको कलियुगमें जो कोई स्त्री पुरुष सुनेंगे वह स्त्रीभी डरेगी और वह पुरुष भी डरेगा और कहेंगे स्त्री पुरुषका प्रेम सबसे बडा है देखो तुच्छ बातपर रुक्मिणीको भगवान्ने त्यागनेके लिये हँसी की थी. तो भी रुक्मिणी प्राण त्यागनेके लिये उपस्थित हुई, ऐसा विचार करके स्त्री तो अपने पतिसे प्रेम करे और पुरुष स्त्रीसे प्रेम करे, इस धर्मसे दूसरा कोई भी बडा धर्म नहींहै कलियुगके जीव ऐसा मानलेंगे. इसलिये कृष्णावतारमें लक्ष्मीको कुवाक्य श्रीकृष्णने कहा कुछ छलसे नहीं कहा ॥

नखकी अरुण कांतिवाले सुकुमार चरणोंसे पृथ्वी लिखनेलगीं, आखोंमें अंजन लगनेके कारण श्याम आँसू बहने लगे, उनसे केशरयुक्त स्तनोंको भिजाती, नीचेको मुख किये अत्यन्त दुःखित हो वाणी रुकनेसे रुक्मिणी व्याकुल होकर चुप होगईं ॥ २३ ॥ अप्रियवचन सुननेके कारण अत्यन्त दुःख और त्याग करनेकी आशंकाके शोकसे बुद्धिरहित होकर रुक्मिणी व्याकुल होगईं, तब उनके हाथसे पंखा गिरगया, कंकण शिथिल हो गिरने लगे और महाव्याकुलतासे मोहित हो पवनसे गिराईहुई कदलीके समान रुक्मिणी मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़ीं और उससमय उनके केश भी खुलगये ॥ २४ ॥ हास्यकी गंभीरता न जाननेवाली अपनी प्यारी रुक्मिणीका प्रेमबंधन देख करुणाकर श्रीकृष्णचन्द्र द्रवीभूत होगये ॥ २५ ॥

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखंत्यश्रुभिरंजनासितैः ॥ आसिंचती कुंकुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ॥ देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्रंभेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबंधनम् ॥ हास्यप्रौढिमजानंत्याः करुणः सोन्वकंपत ॥ २५ ॥ पर्यंकादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ॥ केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६ ॥ प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ॥ आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥ सांत्वयामास सांत्वज्ञः कृपयाऽकृपणां प्रभुः ॥ हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा मां वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ॥ त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमंगने ॥ २९ ॥

और चार भुजा धारणकर शीघ्र पलँगसे नीचे उतर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठाय एक हाथसे उसके केशोंको सँभालकर, कमलके समान मुखको कोमल कमलसी भुजासे पोछने लगे ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! आँसू भरे नेत्र और शोकसे ताडित स्तनोंको पोंछ अनन्य आश्रय पतिव्रता रुक्मिणीको भुजाओंसे आलिंगन कर ॥ २७ ॥ हंसीसे चलायमान चित्त और कठोर हँसीके अयोग्य दीन रुक्मिणीको साधु पुरुषोंकी गति सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र समझाने लगे ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे रुक्मिणी ! तुम मुझसे ईर्षा मत करो और यह बात मैं निश्चय जानताहूं कि, मेरे अतिरिक्त तुम और किसीको नहीं जानती हो, हे सुन्दरी ! तुम क्या कहोगी, यह जाननेके लिये मैंने हँसी करी थी ॥ २९ ॥

स्नेहके कोपसे फडके हैं अधर जिसमें और चलायमान अरुण कटाक्षसे टेढ़ी भ्रुकुटिवाले मुखकी शोभा देखनेके लिये हँसी करीथी ॥ ३० ॥ हे भीरु प्रिये ! अपनी प्राणप्यारीके संग हँसी करके समय व्यतीत करना गृहस्थियोंको घरमें यही लाभ है ॥ ३१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब शांत करी, तब रुक्मिणीने "प्यारेने मुझसे हँसी करी है" यह बात जानकर त्यागनेके भयको छोडदिया॥३२॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! लाजभरी मधुर मुसकान और शोभायमान स्निग्ध, कटाक्षोंसे सुन्दर मुख देखतीहुई रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रसे कहने लगी ॥ ३३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि, तुम हमारे समान नहीं हो, फिर हमारा हाथ क्यों पकडा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणी

मुखं च प्रेमसंरंभस्फुरिताधरमीक्षितुम् ॥ कटाक्षेपारुणापांगं सुंदरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसांत्विता ॥ ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥ बभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षंती भगवन्मुखम् ॥ सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापांगेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ नन्वेवमेतदरविंदविलोचनाऽऽह यद्वै भवान्भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ॥ क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥ सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमांतः शेते समुद्र उपलंभनमात्र आत्मा ॥ नित्यं कदिंद्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोंधम् ॥ ३५ ॥

बोली कि,हे कमलदललोचन ! तुम्हारे समान मैं नहीं हूं, छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त आपकी बात सत्य है अपनी महिमासे आप आवृत तीनों ब्रह्मादिकोंके ईश्वर, आप कहाँ ? और सकाम पुरुषोंने जिसके चरण पकडे ऐसी सत्त्वगुणी तमोगुणी रूपवाली, मैं माया कहाँ, मुझमें और आपमें बडा अन्तर है ॥ ३४ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि, राजाओंके डरके मारे समुद्रमें आनकर रहे हैं, उसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, हे उरुक्रम ! यह सत्य है, सत, रज और तम यह तीन गुणही राजा हैं उनके भयसेही मानो सागरके समान अगाध विषयोंसे अक्षोभित हृदयमें चैतन्यघन तुम निश्चलतासे प्रकाश करतेहो, और बलवानोंसे हमने वैर किया है, यह बात जो आपने कही, सो भी सत्य है; क्योंकि विषयमें

जिनकी इन्द्रियें लगरही हैं ऐसे पुरुषोंने तुमसे विरोध किया है, सो उनमें तुम्हारी अप्रीति है और जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि, हमको राज्याधिकार नहीं है उसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, महा अविवेकका स्थान राज्य है, इसलिये तुम्हारे सेवकलोग भी उसको छोड़ देते हैं, फिर आपने छोड़ दिया तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि, हमारा मार्ग जाननेमें नहीं आता और मैं स्त्रीके वशमें नहीं हूँ इसके उत्तरमें रुक्मिणीने यह कहा कि, तुम्हारे चरणारविन्दमकरन्दका सेवन करनेवाले मुनि लोगोंका आचरणभी पशुतुल्य मनुष्योंकी समझमें नहीं आता, यदि तुम्हारा मार्ग जाननेमें न आवे तो इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि तुम्हारे अनुवर्ती भक्तोंकी और तुम्हारी चेष्टा अलग है फिर इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥३६॥ और निष्किंचन पुरुषोंके हम प्रिय हैं और धनवान् पुरुष यह समझकर हम दरिद्री होजायँगे,इस डरके मारे

त्वत्पादपद्ममकरंदजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ॥ यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवंतम् ॥ ३६ ॥ निष्किंचनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किंचिद्यस्मै बलिं बलिभुजोपि हरंत्यजाद्याः ॥ न त्वा विदंत्यसुतृपोन्तकमाढ्यतांधाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥ त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वांछया सुमतयो विसृजंति कृत्स्नम् ॥ तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्नः ॥ ३८ ॥

हमारा भजन नहीं करते, यह वार्त्ता जो श्रीकृष्णचन्द्रने कही थी, उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, आपसे भिन्न कुछ नहीं, इस लिये तुम निष्किंचन हो, दरिद्रतारूपी निष्किंचनता तुमसे नहीं बनती है, प्रजा लोगोंसे भेंट लेनेवाले ब्रह्मादिक देवता आपको भेंट देते हैं और जो तुमने कहा कि, हम निष्किंचनोंके प्यारे हैं और वे मुझको प्रिय हैं, सो भी सत्य है क्योंकि जिनको किंचित भी देहाभिमान नहीं है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मादिकोंको आप प्यारे हैं, वे आपके प्रिय हैं और जो आपने कहा कि, धनवान् लोग हमारा भजन नहीं करते यह बात भी सत्यहै, क्योंकि धन पात्रताके अभिमानसे अंधे लोग कालस्वरूप आपको नहीं जानते, इसलिये वह इन्द्रियोंको तृप्त करतेहैं आपका भजन नहीं करते ॥ ३७ ॥ जिनका बराबरका जन्म है, उनका विवाह और मित्रता होती है यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था, सो इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहने लगी कि, हे पूर्ण

स्वरूप ! तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थ और परमानन्दरूप हो सुन्दर बुद्धिवाले मनुष्य तुम्हारी प्राप्तिके लिये सब वस्तु त्याग देते हैं, प्रभो ! उन पुरुषोंका और तुम्हारा सेव्यसेवकभाव है, सुख दुःखसे व्याकुल और परस्पर प्रीतिकी ग्रंथि बाँधेहुए पामर स्त्री पुरुषोंको योग्य नहीं ॥ ३८ ॥ और भिक्षुकोंने झूंठी बडाई करी है, यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था, उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, सबको अभयदान देकर संन्यासी और मुनिजन आपकी सराहना करते हैं और यह जो आपने कहा कि, तुमने विनाजाने हमैं वरा, सो यह ऐसे नहीं है, क्योंकि आपको जिसके लिये सब वस्तु प्रिय लगती हैं, उस जगत्के आत्मारूप और अपना स्वरूप देनेवाले आप हो, इसलिये आपको वरा और भूलकर वरा, यह भी आपका कथन ठीक नहीं औरोकी तो बातही क्याहै ? ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवताओंको भी कि, जिनका आपकी भ्रुकुटिसे प्रेरित कालके वेगसे सुखका नाश होताहै, यह

त्वं न्यस्तदंडमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ॥ हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकाल वेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम्॥ सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥ यद्वांछया नृपशिखामणयोंग वैन्यजायंतनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ॥ राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमंबुजाक्ष सीदंति तेऽनु पदवीं त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥

विचार उन्हें छोड़ मैंने आपको वरण किया, इस कारण जो आपने मुझपर अविचारताका दोष लगाया, सो ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित ! अपने अज्ञानको दूर करके और पुरुषोंकी बड़ाईसे क्रोधित हो श्रीकृष्णचन्द्रसे रुक्मिणी कहनेलगी कि, हे गदाग्रज ! तुमने शार्ङ्ग धनुषके शब्दसे जरासन्धादि राजाओंको भगाकर जिसप्रकार सिंह पशुओंको भगाकर अपना बलि लाते हैं, इसीप्रकार आप अपना भागरूप मुझे ले आये इसलिये तिन राजाओंसे डरकर हम समुद्रमें आनकर रहे हैं, यह भी आपका कहना नहीं बनता ॥ ४० ॥ आपने कहा कि, जो हमारे चरणोंमें पडतेहैं वह दुःख पातेहैं, सो भी नहीं बनता, हे कमलदललोचन ! तुम्हारे भजनकी इच्छासे राजाओंके मुकुटमणि राजा अंग, पृथु, भरत, ययाति

और गय आदि चक्रवर्ती राजा राज्यको त्यागन कर वनको चलेगये, तुम्हारा भजन करनेवाले राजाओंको कहाँ दुःख हुआ है ? किन्तु सुखही हुआ और वैकुण्ठ धामकी प्राप्ति हुइ है ॥ ४१ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि, समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड़ लो, इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, साधुओंसे वर्णित जनोंको मोक्षका देनेवाला और लक्ष्मी जिसका सेवन करे, ऐसे गुणोंकी खानि तुम्हारे चरणारविन्दको सूँघकर फिर त्यागसकै मरणधर्मिणी कौन विवेकिनी स्त्री है, जो सदा मृत्युसे डरनेवाले पुरुषकी सेवा करेगी ? इसीलिये मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है ॥४२॥ हे जगदीश्वर ! आत्मारूप भजन करनेवालोंको इस लोक और परलोकमें कामनाओंके पूर्ण करनेवाले अपने योग्य तुम्हाराही मैंने सेवन किया है, चाहै अनेक प्रकारकी योनियोमें मेरा जन्म होय परन्तु उन जन्मोंमें भी मिथ्या संसारके भयका नाश करनेवाले और भक्तोंको अप

काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगंधमाघ्राय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गम् ॥ लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ॥ स्यान्मे तवांघ्रिररणं श्रुतिभिर्भ्रमंत्या यो वै भजंतमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३ ॥ तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ॥ यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिंचसभासु गीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमंतर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ॥ जीवच्छवं भजति कांतमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरंदमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥

नानेवाले तुम्हारे चरणोंकी शरण मुझे प्राप्तहो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४३ ॥ हे शत्रुदमन ! हे अखण्डरूप ! आपने कहा कि, बडे बड़े वैभववाले राजा आपकी इच्छा करतेथे सो उन्हें किसलिये छोड़ दिया, यह आपका कहना असंगत है, क्योंकि आपने जो राजा बताये हैं वह कैसे हैं कि, जो स्त्रियोंके गृहोंमें गधेके समान केवल भार उठानेवाले, बैलके तुल्य सर्वदा क्लेश उठानेवाले, श्वानकी नाईं अपमान पानेवाले, बिड़ालके समान कृपण और क्रूर और सेवककी भाँति पराधीन हैं, वह तो उस मंदभागिनी स्त्रीको पति मिलने चाहिये कि जिसके कानमें शंकर और ब्रह्माजीकी सभाओंमें गाईजाती आपकी कथा न आई हो, अर्थात् जिसने तुम्हारे गुण न सुने हो, वह तो कदाचित् भूल जाय, परन्तु मैंने तो प्रथमही आपके गुणानुवाद सुन लियेथे ॥ ४४ ॥ और जिस स्त्रीने तुम्हारे चरणारविंदकी सुगंधि नहीं

मूँधी है वह स्त्री जीवितही मृतक पुरुषको पति मानकर भजै जो, कि, बाहर तो चर्म, रोम, नख और केश इनसे ढका है और भीतर मांस, हाड, रुधिर, कीडे, विष्ठा, कफ और वात पित्तसे भरा है उसे अपना पति मानकर कौन सेवन करै ? ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हम घर और देहमें उदासीन हैं, रुक्मिणीने कहा कि, हे कमलदललोचन ! तुम अपने स्वरूपमें रमण करतेहो और मुझमें आसक्त नहींहै, दृष्टि जिनकी अर्थात् मेरी चाहना नहींहै, तौभी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें मेरा स्नेह हो, तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, स्नेह होनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणीजीने कहा कि, तुम्हारे चरणारविन्दोंमें अनुराग होनाही बडा लाभ है, और जिससमय इस विश्वको बढ़ानेके लिये गुणको ग्रहणकर मुझ मायाकी ओर देखोगे, वही बड़ा अनुग्रह है ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो

अस्त्वबुंजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन्रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ॥ यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमाऽनुकंपा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ॥ अंबाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥ व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवंनवम् ॥ बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलंभिता ॥ मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥ यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ॥ संति ह्येकांतभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥ ५० ॥

बातें कही, इन सबका यथायोग्य उत्तर देकर रुक्मिणी बोली कि, हे मधुसूदन ! "आपने कहा कि, अपने समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड़लो" यह मैं झूंठ नहीं मानती, जैसे काशीके राजाकी पुत्री अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका इन तीनों कन्याओंमेंसे अम्बा कन्याकी शाल्वराजासे जैसी प्रीति हुई, उसीप्रकार मेरी प्रीति आपमें हुई है ॥ ४७ ॥ और हे अच्युत ! विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्रीके मन नवीन पुरुषोंमें जाते हैं, ऐसी बहुत कथा हैं, विवेकी पुरुष इस प्रकारकी खोटी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं रखते हैं, यदि रक्खें भी तो इस लोक और परलोकसे भ्रष्ट होजायँ ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे रुक्मिणी ! तुम्हारी बात सुननेके लिये मैंने ऐसी ऐसी बातें कही थीं और मेरे वचनका जो जो उत्तर तुमने दिया सो सब सत्य है ॥ ४९ ॥ हे भामिनी ! हे मंगलरूपिणि ! जिस जिस वस्तुकी तुम चाहना करती हो, सो सो मुझमें एकान्त भक्ति होनेसे तुमको प्राप्तही हैं हे

कल्याणी ! मुक्तिपर्यन्त तुम्हारे सब मनोरथ प्राप्त होंगे ॥ ५० ॥ हे निष्कलंक रुक्मिणी ! तुम्हारा पतिपर प्रेम और पतिव्रतापन हमने भलीप्रकार जानलिया, क्योंकि हमने यद्यपि वचन कहकर तुमको चलायमानभी किया, परन्तु तोभी तुम्हारी बुद्धि मुझसे चलायमान न हुई ॥ ५१ ॥ विषयोंमें आत्मा और मन लगाये जो पुरुष तपस्या और ब्रह्मचर्य करके स्त्री पुरुष भोगार्थ सुखके लिये मेरा भजन करते हैं, वह मेरी मायासे मोहित होकर भूलरहेहैं ॥ ५२ ॥ हे भामिनी ! मोक्षसहित सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका दाता मुझे पाकर भी जो विषयोंकी चाहना करतेहैं, और मेरी चाहना नहीं करते, वह पुरुष अभागी हैं, क्योंकि विषयोंका सुख तो कुत्ते और शूकरोंकी योनिमें भी मिलजाताहै, विषयोंमें मन रहनेसे नरक

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ॥ यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मां भजंति दांपत्ये तपसा व्रतचर्यया ॥ कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वांछंति ये संपद एव तत्पतिम् ॥ ते मंदभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥ ५३ ॥ दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ॥ सुदुष्कराऽसौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुंभराया निकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥ न त्वा दृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ॥ प्राप्तान्नृपानविगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥ भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ॥ दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥

होताहै ॥ ५३ ॥ हे घरकी महारानी ! संसारको छुडानेवाली चाहना रहित मनकी वृत्ति तैंने मुझमें लगाई, यह भली बात है, खोटे अभिप्राय और अपने प्राणोंका भरण पोषण कर औरको ठगनेवाली स्त्रीके मनकी वृत्ति मुझमें नहीं लगतीहै ॥ ५४ ॥ हे प्राणेश्वरी ! सोलह हजार एकसौ आठ महलोंमें तुम्हारे समान प्यार करनेवाली मैं और स्त्री नहीं देखता, क्योंकि विवाहके समय आयेहुये राजाओंको त्यागकर मेरी ओर देख पाती लिखकर मेरे पास ब्राह्मणको भेजा ॥ ५५ ॥ युद्धमें तुम्हारे भाईको जीत उसका शिर मुँडकर विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहमें चौपड़ खेलते खेलते उसे मारडाला, यह भाईका दुःख हमारे त्यागनेके भयसे तुमने सहज करलिया और मुझसे कुछ न कहा, ऐसी

तुम्हारी बातोंने हमको वश करलिया है ॥ ५६ ॥ हे प्राणवल्लभे ! मेरे बुलानेके लिये सबसे छिपाकर दूतको मेरे पास भेजा और जब मुझे आनेमें विलम्ब हुआ तब इस विश्वको शून्य मानकर " और राजा मेरे योग्य नहीं हैं " यह निश्चय कर शरीर त्यागनेकी इच्छा करने लगी, यह बात तुम्हारे अतिरिक्त और किससे होसक्तीहै, हम तुम्हारी क्या प्रशंसा करें ? ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित ! इस प्रकार जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मनुष्यलोककी लीलाका अनुकरण कर हास्यकी बातें करके रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ रमण करते थे ॥ ५८ ॥ सामर्थ्यवान् सम्पूर्ण लोकोंके गुरु सबका दुःख हरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र इसीप्रकार और रानियोंके महलोंमें भी रहकर

दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमंत्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ॥ मत्वा जिहास इदमंगमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनंदयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौरतसंलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडंबयन् ॥ ५८ ॥ तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥ आस्थितो गृहमेधीयान्धर्माँल्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दशदशाबलाः ॥ अजीजनन्ननवमात्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥ गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ॥ प्रेष्ठं न्यमंसत स्वंस्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥ चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ॥ संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभूम्नः ॥३॥

गृहस्थाश्रमकैसा धर्म सिखाते थे ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीसंवादोनाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ दोहा—इकसठमें परिवार हरी, वरणौं सब सन्तान । विवाहमें अनिरुद्धके, हनो रुक्म बलवान् ॥ ६१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एक एक रानीने श्रीकृष्णचन्द्रकेही समान रूप, गुणवाले दश दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ घरसे कहीं बाहर न जायँ अपने पास ही रहैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर राजाओंकी पुत्री " श्रीकृष्ण आत्माराम हैं " इस बातको न जान अपना अपना प्यारा मानने लगीं ॥ २ ॥ व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने कमलकोशके समान सुकुमार मुख, बड़ी भुजा, बडे

नेत्र और प्रेमसहित मन्द मुसकान, रसभरी चितवन, मनोहर वाणी इत्यादिकोंसे मोहित होकर जो स्त्री अपने अपने अनेक विलासोंसे पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रका मन मोहित करनेको समर्थ नहीं हुई ॥ ३ ॥ गूढ हास्ययुक्त कटाक्षसे जताये अभिप्रायसे मनके हरनेवाले भ्रुकुटीरूप मण्डलप्रेरित जो सुरत सम्बन्धी विचार उनमें प्रगल्भ जो मन्मथ (कामदेव) के बाण और दूसरे भी कामशास्त्रमें प्रसिद्ध जो उपाय, उनसे यह सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियें भी भगवान् वासुदेवका मन वश करनेको समर्थ न हुई ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक देवता भी जिनके मार्गको नहीं जानते, ऐसे लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको इसप्रकार पति पाकर यह स्त्रियें निरन्तर बडे आनन्दसे स्नेहभरी हँसनि, चितवन और हास्य चितवनपूर्वक नवीन संगम उन नवीन संगममें बोलना इत्यादि विलाससमूहोंका सेवन करतीथीं ॥ ५ ॥ यद्यपि एक एक रानीके सन्मुख सौ सौ दासी हाथ

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमंत्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः॥४॥इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगंधमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥६॥ तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ॥ अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥ ७ ॥ चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ॥ सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः॥८॥ चारुचंद्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः॥ प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥९॥

जोड़े खडी रहती थीं, परन्तु तोभी सम्मुख जाकर लिवालाना, आसन बिछाना, पूजन करना, चरण धोना, बीरा लगाना, चरण दाबना, पंखा करना, अतर लगाना, पुष्प चढ़ाना, केश सुधारना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना इत्यादि यह श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा आपही करती थीं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! दश दश पुत्रोंवाली श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियें थीं, उनमें आठ पटरानी प्रथम वर्णन कर आये हैं उनके प्रद्युम्नादि पुत्रोंके नाम तुमसे वर्णन करता हूं ॥ ७ ॥ यथा–प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण बलवान् चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु ॥ ८ ॥ चारुचन्द्र, विचारु और चारु, यह दश पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रके रुक्मिणीसे उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु ॥ १० ॥ श्रीभानु और प्रतिभानु, यह दश पुत्र सत्यभामाने उत्पन्न किये और साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतंजित, सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड़ और क्रतु, यह साम्बसे आदि लेकर श्रीकृष्ण चन्द्रके समान गुणवाले दश पुत्र जाम्बवतीके उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ और वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्र, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, शोभायमान वसु और कुंति यह दश नाग्नजितीके पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और इन सबसे छोटा सोमक यह दश पुत्र कालिन्दीके हुए ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित इन दश पुत्रोंने

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ॥ चंद्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥१०॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ॥ सांबः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ॥ जांबवत्याः सुता ह्येते सांबाद्याः पितृसंमताः ॥ १२ ॥ वीरश्चंद्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान्वृषः ॥ आमः शंकुर्वसुः श्रीमान्कुंतिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ॥ शांतिर्दर्शः पूर्णमासः कालिंद्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ॥ माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥ वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च ॥ महाशः पावनो वह्निर्मित्रविंदात्मजाः क्षुधिः ॥१६॥ संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित ॥ जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ॥ प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥ १८ ॥

लक्ष्मणासे जन्मग्रहण किया ॥ १५ ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, उन्नाद, महाश, पवन, वह्नि और क्षुधि, यह दश पुत्र मित्रविन्दासे जन्मे ॥ ॥ १६ ॥ संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दश पुत्र भद्रा नाम रानीसे उत्पन्न हुए, ॥ १७ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित ! यह भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी आठ रानियोंके पुत्रोंका वर्णन किया अब बलदेवजीकी रानी रेवतीके दीप्तिमान् ताम्रतप्तादि पुत्र उत्पन्न हुए. भोजकटपुरवासी रुक्मकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नजीसे महाबलवान् अनिरुद्धनाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥

हे परीक्षित् ! यह जो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र और उनके पुत्र और नाती करोड़ों हुए और श्रीकृष्णचन्द्रसे उत्पन्नहुए पुत्रोंकी सोलह हजार माता हुई ॥ १९ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि, हे भगवन् ! रुक्मीने अपने वैरीके पुत्रको अपनी कन्या कैसे व्याही ? वह तो युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे पराजित होकर उनके मारनेका उपाय देख रहा था, हे विद्वन् ! इन दोनों शत्रुओंके बीचमें विवाहका सम्बन्ध कैसे हुआ ? यह विस्तार सहित हमारे आगे वर्णन कीजिये ॥ २० ॥ कदाचित् आप कहें कि, हम इस बातको क्या जानें इसका उत्तर यह है कि, योगीश्वर तो भूत, भविष्य, वर्त्तमान, इंद्रियोंसे अगम्य दूर अथवा किसीके ओटमें हो उसे भी भलीप्रकार जानते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत

पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥ मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि ॥ कृष्णेन परिभूतस्तं हंतुं रंध्रं प्रतीक्षते ॥ २० ॥ एतदाख्याहि मे विद्वन्द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥ अनागतमतीतं च वर्तमानमतींद्रियम् ॥ विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यंति योगिनः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः स्वयंवरे साक्षादनंगोंगयुतस्तया ॥ राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥ २२ ॥ यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ॥ व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥ २३ ॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ॥ उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ॥ रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबंधनः ॥ २५ ॥

परीक्षित् ! रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीने साक्षात् मूर्त्तिमान् कामदेवका अवतार प्रद्युम्नको स्वयंवरमें वरलिया, तो वह युद्धमें इकट्ठे हुए राजाओंको एकही रथमें जीत उसे हरण करके लेगये ॥ २२ ॥ यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णचन्द्रके तिरस्कारका वैर स्मरण रखता था परन्तु तो भी बहनको प्रसन्न करनेके लिये भानजेको अपनी कन्या दी ॥ २३ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! सुन्दरबुद्धि, विशालनेत्रवाली रुक्मिणीकी चारुमती पुत्रीका बलवान् कृतवर्माके पुत्रने पाणिग्रहण किया ॥ २४ ॥ यद्यपि रुक्मी वैर बांध रहा था परन्तु तोभी अपनी बहनको राजी करनेके लिये श्रीकृष्णके

नाती अपने दौहिते अनिरुद्धको अपनी पोती रोचना नामक कन्या दी, शत्रुके साथ सम्बन्ध करना अयोग्य है, इस बातको स्वयं रुक्मी जानता था परन्तु स्नेहके पाशसे बँधकर विवाह करदिया * ॥२५॥ हे राजा परीक्षित् ! उस अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, श्रीकृष्ण, बलदेव और साम्ब प्रद्युम्नको आदि लेकर सब यादव भोजकटपुरको बरातमें गये ॥ २६ ॥ जब विवाह होचुका, तब कलिंगदेशके राजाको आदिले घमंडी राजा

तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ ॥ पुरं भोजकटं जग्मुः सांबप्रद्युम्नकादयः ॥ २६ ॥ तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिंगप्रमुखाः नृपाः ॥ दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ॥ इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ॥ तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिंगः प्राहसद्बलम् ॥ दंतान्संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥ २९ ॥

रुक्मीसे कहनेलगे कि, हे रुक्मी ! बलदेवजीको जुएमें जीतलो ॥ २७ ॥ हे राजा रुक्मी ! यह बलदेव पाँसेका खेल नहीं जानता, परन्तु इनको खेलनेका व्यसन बड़ा है, यह सुन्तेही रुक्मी बलदेवजीको बुलाय उनके संग जुआ खेलनेलगा ॥ २८ ॥ बलरामजीने वहाँ प्रथम सौ, फिर हजार, इसके पीछे दशहजार रुपयेका दाँव लगाया, परन्तु वह दाँव रुक्मीही धाँधलबाजी करके जीतगया उस समय कलिंगदेशका राजा दाँत दिखाकर

* शंका–भागवतमें लिखा है कि, राजा रुक्मी जानता था कि, फूफीकी लडकीके साथ विवाह करनेका तथा मामाकी लडकीके साथ विवाह करनेका महादोप है, इस धर्मको विना जाने जो विवाह करेगा तो पाप होगा और जो जानबूझके करेगा तो उसको महापाप होगा, फिर जानबूझकर अपने पुत्रकी लडकीको अनिरुद्धके सग क्यों विवाहदी ? क्योंकि वह कन्या अनिरुद्धके मामाकी थी और जो कोई कहे कि, रुक्मीने, श्रीकृष्णचन्द्रजीके स्नेह करके भी अधर्मरूप कन्यादान किया है तोभी यह बात ठीक है, परन्तु जिस स्नेहसे ससारमें निन्दा होय और मृत्यु होनेके पीछे प्राणीको रौरवनरकमें जानापडे, ऐसे स्नेहकी मुनिलोग प्रशंसा नहीं करते ॥

उत्तर–राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मैं अपने लडकेकी लडकीको श्रीकृष्णके पोतेको विवाह दूगा तो श्रीकृष्ण मेरे ऊपर बहुत प्रसन्न होवेंगे, ऐसा विचारके अपने ऊपर श्रीकृष्णका स्नेह समझकर अधर्मरूप विवाह किया और लोककी निन्दा और नरककी त्रास दोनोंको त्यागकर अपनी पोतीका विवाह श्रीकृष्णके पोतेके सग करदिया, राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मेरे ऊपर कृष्ण प्रसन्न रहेंगे तब लोकमें मेरी निन्दा कौन कर सक्ता है ? और नरकमें भी कृष्णके सामने मुझे कौन डाल सक्ता है । ऐसा विचारके रुक्मीने अधर्मरूप विवाह किया था ॥

बलदेवजीकी बहुत हँसी करके कहने लगा कि, रे ! जुँवाका खेल और पाशोंकी सार तुम गँवार क्या जानोगे, क्योंकि, जुँवा खेलना और युद्ध करना तो राजाओंका काम है तुम गोपग्वाल तो गौवोंको पहचानते हो ऐसे सुन तब बलरामजी उस हँसीको सहन न करसके ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दाव लगाया, उसे बलदेवजी जीते, परन्तु उस समय कपट करके " मैंने जीता " इस प्रकार रुक्मी कहने लगा ॥ ३० ॥ जिस प्रकार अमावस व पूर्णमासीको समुद्र क्षोभयुक्त होताहै, उसी प्रकार श्रीमान् बलदेवजी अत्यन्त क्रोधसे क्षुभित होगये और स्वभावहीसे जिनके अरुण नेत्र हैं ऐसे बलरामजीने अति क्रोधकर दश करोड़का दाँव लगादिया ॥ ३१ ॥ और वास्तवमें बलदेवजी वह दाँव जीतगये तब फिर रुक्मीने कपट करके कहा कि मैं जीताहूं, इस विषयमें यह जो सभासद उपस्थित हैं, इनसे बूझलो

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद् ग्लहं तत्राजयद्बलः ॥ जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युना क्षुभितः श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि ॥ जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान्रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः ॥ रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ॥ धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ॥ संकर्षणं परिहसन्बभाषे कालचोदितः ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ॥ अक्षैर्दीव्यंति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥ ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ॥ क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कलिंगराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ॥ दंतानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार बलदेवजी और रुक्मीका विवाद हो रहा था कि, इतनेहीमें आकाशवाणी हुई कि बलदेवजी जीते हैं और रुक्मीका वचन मिथ्या है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय आकाशवाणीका निरादर करके दुष्ट राजाओंका सिखाया रुक्मी, महात्मा बलदेवजीकी हँसी करता कालसे प्रेरित होकर यह वचन कहनेलगा कि, ॥ ३४ ॥ गौओंके चरानेवाले तुम पाँसे खेलना नहीं जानते, पाँसोंसे और बाणोंसे तो राजालोग खेलतेहैं, आपसरीखे पाँसे खेलना क्या जाने ? ॥३५॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार रुक्मीने अनादर और राजाओंने हँसी करी, तब महाबलवान् बलरामजीने अत्यन्त क्रोधित हो, परिघ उठाय मंगल सभामें रुक्मीका संहार किया और कहा ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! जब बलरामजीने सब राजोंके देखते २

रुक्मीको मारडाला उस समय कालिंगदेशका राजा अत्यन्त भयभीत होकर भागा, तब झुझलाकर बलरामजीने उसे दशही पगपर पकड लिया और जौनसे दाँत फाडकर वह हँसा था, वह दाँत तोड़दिये ॥ ३७ ॥ और राजा भी बलदेवजीके परिघसे पीड़ित हो, डरकर भागगये, जिनके हाथ, जंघा और शिर टूट गये थे और रुधिरसे उनका शरीर भीज रहा था ॥ ३८ ॥ हे परीक्षित् ! जब श्रीकृष्णका साला रुक्मी मारागया, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने न तो अच्छा कहा, न बुरा कहा क्योंकि, जो अच्छा कहते, तो रुक्मिणी अप्रसन्न होती और बुरा कहते, तो बलदेवजी अत्यन्त बुरा मानते, इसलिये कुछ न कहा चुप चाप रहे ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त दुलहिनके साथ अनिरुद्धजीको रथमें बिठाय बलरामादि सब यादव भग

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ॥ राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ रुक्मिणीबलयो राजन्स्नेहभंगभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥ रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० दशमस्कंधे उत्त० अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ राजोवाच ॥ बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥ तत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥ एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ॥ येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥२॥

वान् श्रीकृष्णचन्द्रका आश्रय पाय सब मनोरथ सिद्धकर भोजकटपुरसे चल द्वारकापुरीमें आये ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायामनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ दोहा—बासठवें अध्यायमें, बाणासुर बलवान् । बाँधिलियो अनिरुद्धको, सो सब कहौ बखान ॥ ६२ ॥ राजा परीक्षित् पूँछनेलगे कि, हे योगिन् ! बाणासुरकी पुत्री ऊषाने अनिरुद्धके साथ विवाह किया, इसमें श्रीकृष्णका और महादेवजीका बडा युद्ध हुआ उस कथाको कहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! भगवान् विष्णुने जब वाम

नरूप धारण करके राजा बलिसे पृथ्वी माँगी तब सब पृथ्वी जिनने दान करदी ॥ २ ॥ ऐसे महात्मा राजा बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें ज्येष्ठ पुत्र भगवान् महादेवजीका अत्यन्त भक्त सबका मान्य, ज्ञानवान् बुद्धिवान्, सत्यसंकल्प, दृढव्रत, बाणासुर नामसे प्रसिद्ध था ॥ ३ ॥ और शोणितनाम रमणीकपुरमें राज्य करता था उस बाणासुरके सन्मुख भगवान्, महादेवजीकी कृपासे संपूर्ण देवता सेवकोंकी भाँति खड़े रहते थे, एक समय तांडव नृत्यमें हजार भुजाओंसे बाजे-बजाय भोलानाथको बाणासुरने प्रसन्न किया, तब सब प्राणियोंके ईश्वर भक्तवत्सल भगवान् महादेवजी बाणासुरको वर देनेकी इच्छा करने लगे, तब शिवजीसे "मेरे पुरकी तुम रक्षा करो" यह बाणासुरने वर माँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ पराक्रमके दुर्म

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ॥ मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधो दृढव्रतः ॥ ३ ॥ शोणिताख्यपुरे रम्ये सराज्यमकरोत्पुरा ॥ तस्य शंभोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन तांडवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥ भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ वरेण छंदयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥ स एकदाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ॥ किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदांबुजम् ॥ ६ ॥ नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ॥ पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामरांघ्रिपम् ॥७॥ दोस्सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ॥ त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥ कंडूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ॥ आद्याऽयां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥

दसे बाणासुर अपने पास रहनेवाले शिवजीके चरणारविन्दोंको सूर्यके तेजके समान किरीटसे स्पर्श करके एक समय कहनेलगा ॥ ६ ॥ कि, हे सब लोकोंके गुरु महादेव ! जिनके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए हैं, तुम उन पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हो इसलिये आपको नमस्कार है ॥७॥ और हे देव ! आपने जो कृपाकरके हजार भुजा मुझे दीं, सो उनका अवतक केवल बोझही हुआ है, इसलिये त्रिलोकीमें तुम्हारे विना और कोई मुझे बराबरका युद्ध करनेवाला नहीं मिलता ॥ ८ ॥ हे आदिपुरुष ! जब मेरी भुजाओंमें बहुत खूजली उठी, तब मैं युद्ध करनेके लिये पर्वतोंको तोडता फोडता दिग्गजोंके पास गया, परन्तु वह भी मेरे भयसे भीत हो दिशाओंको छोड़कर भागगये, इस कारण कृपा करके आप

मुझसे युद्धकर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार बाणासुरका वचन सुन भगवान् महादेवजी अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे कि, मूढ ! जिस समय मेरी दीहुई ध्वजा तेरे महलपरसे टूटकर गिरपडेगी, उस समय तेरी बराबरीके बलवान्से तेरा युद्ध होगा, और तेरा गर्व भी उसी समय चूर्ण होजायगा ॥ १० ॥ हे परीक्षित् ! जब भगवान् भूतनाथ महादेवजीने इस प्रकार कहा, तब कुबुद्धि बाणासुर शिर नवाय अपने घरको चलागया और अपने बल, बुद्धि पराक्रमके नाश करनेवाली महादेवजीकी आज्ञाका पैंडा देखने लगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस बाणासुरके एक ऊषानामक कन्या थी उसका पहले कभी जिसको न देखा और न कभी सुना ऐसे सुन्दर अनिरुद्धके साथ स्वप्नमें

तच्छ्रुत्वा भगवान्क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ॥ त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ १० ॥ इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ॥ प्रतीक्षन्गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः॥ ११ ॥ तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ॥ कन्याऽलभत कांतेन प्रागदृष्टश्रुतेन च ॥ १२ ॥ सा तत्र तमपश्यंती कासि कांतेति वादिनी ॥ सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ १३ ॥ बाणस्य मंत्री कुंभांडश्चित्रलेखा च तत्सुता ॥ सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १४ ॥ कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ॥ हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥ ऊषोवाच ॥ दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ॥ पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥ १६ ॥

समागम हुआ ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त जागनेपर वहाँ अनिरुद्धको न देख अत्यन्त लज्जित हो, हे कंत ! तुम कहाँ गये ? इसप्रकार पुकारती पुकारती विह्वल होकर सखियोंके बीचमें गिरपड़ी ॥ १३ ॥ तब बाणासुरके मंत्री कुंभाण्डकी पुत्री चित्ररेखा आश्चर्य मानकर अपनी प्रिय सखी ऊषासे पूँछनेलगी ॥ १४ ॥ कि, हे सुभ्रु ! हे प्यारी ऊषा ! तू किसे ढूँढ़ती है और तेरा क्या मनोरथ है ? हे राजकुमारि ! अभी तो तेरा विवाह भी नहीं हुआ है, फिर किस प्रकार पति पुकारती फिरती है ? ॥ १५ ॥ इस प्रकार चित्ररेखाका वचन सुनकर ऊषा बोली कि, श्याम

स्वरूप, कमलके समान नेत्र पीताम्बर धारण किये, बडी भुजा और स्त्रियोंके मनको मोहित करनेवाला ऐसा पुरुष मैंने स्वप्नमें देखाहै ॥ १६ ॥ मैं उसी प्रीतमको ढूँढ़ रही हूँ, वह मुझे अधरामृत पिलाय मुझ अभिलाषिणीको दुःखके समुद्रमें पटककर कहीं चला गया ॥ १७ ॥ यह वचन सुनकर चित्ररेखा बोली कि, हे ऊषा ! तेरा दुःख मैं दूर करूँगी, जिस पुरुषने तेरा चित्त चुराया है, यदि वह त्रिलोकीमें कहीं होगा तो ढूँढ़कर ले आऊँगी, परन्तु उसे बता दे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त चित्ररेखा देवता, गंधर्व, सिद्ध, चारण और पन्नग इनके चित्र लिखकर फिर दैत्य, विद्याधर, यक्ष, मनुष्य इन सबके चित्र लिखनेलगी ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें भी वृष्णि और वृष्णिमें भी शूरसेन, वसुदेव, राम, कृष्ण और

तमहं मृगये कांतं पाययित्वाऽधरं मधु ॥ क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ॥ तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा देवगंधर्वसिद्धचारणपन्नगान् ॥ दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च यथाऽलिखत् ॥१९॥ मनुजेषु च सा वृष्णीञ्छूरमानकदुंदुभिम् ॥ व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषाऽवाङ्मुखी ह्रिया ॥ सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ॥ ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यंके प्राद्युम्निं योगमास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥

प्रद्युम्नका चित्र लिखा उसको देखतेही "यह श्वशुर हैं" ऐसा समझकर लज्जित होगई ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पृथ्वीपति ! ऊषा अनिरुद्धका चित्र देखकर अत्यन्त लाजसे नीचेको मुख किये "मेरा चित्तचोर यही है" ऐसे मुसकराकर सखीसे कहने लगी ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! योगकी ज्ञाता चित्ररेखा उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पौत्र जान आकाशमार्गसे, होकर कृष्णपालित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ उस समय अनिरुद्धकुमार पलँगपर शयन कर रहेथे उन्हें योगके बलसे उठाय शोणितपुरमें लेआई और सखीने ऊषाको दर्शन

कराया ❋ ॥ २३ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान् सुन्दर वर अनिरुद्धजीको देख प्रसन्नमुख ऊषा, पुरुषोंके देखनेमें न आवै इस प्रकर अपने घरमें अनिरुद्धके संग रमण करनेलगी ॥ २४ ॥ और बडे मोलके वस्त्र, माला, सुगंधी, धूप, दीप आसन इत्यादि और पीनेकी सामग्री तथा भोजन, भक्ष्य वचनोंसे उनकी पूजा करनेलगी ॥ २५ ॥ अत्यन्त बढ़ा है स्नेह जिसका ऐसी ऊपाने हरी हैं इंद्रियें जिनकी ऐसे अनिरुद्धजीको मोहित होकर

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना ॥ दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुंभी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥ २४ ॥ परार्ध्यवासस्स्रग्गंधधूपदीपासनादिभिः ॥ पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ॥ नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयाऽपहृतेंद्रियः ॥ २६ ॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ॥ हेतुभिर्लक्षयांचक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥ २७ ॥

वास करते कितनेही दिन रात बीतगये, परन्तु उन्हैं कुछ सुधि न हुई ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! यादवोंमें वीर अनिरुद्धजीके भोग करनेसे जिसका कन्यापनेका व्रत दूर होगया तब उस अत्यन्त प्रसन्नमन ऊषाको गुप्त न रहनेवाले लक्षणोंसे पहरेदारोंने पहिचानलिया और उसीसमय बाणासुरसे

* शंका–श्रीकृष्णके तेजसे रचीहुई द्वारकापुरी,जिसके चारोंओर समुद्र, रात दिन सुदर्शनचक्र घूमता रहै,ऐसी अद्भुत द्वारकापुरीमें जो कोई पुरुप कपटवेष धारण करके उस पुरीमें जानेकी इच्छा करना चाहै तो कभी नहीं जासक्ता, जो ब्रह्मदेवके बनाये जीव हैं उनको तो सामर्थ्यही नहीं जो कपट करके द्वारकाके भीतर जासकैं, फिर क्या कारण जो चित्ररेखा रक्षा करनेवाले प्राणियोंकी आज्ञा नहीं ले विना बूझे कपट करके द्वारकामें जाकर सोतेहुए अनिरुद्धकुमारको पलँगसहित उठाय बडे सुखसे लेकर चलीगई, कोई दूसरा यादव नहीं वह स्वय श्रीकृष्णके पोतेहीको हरकर लेगई किसी और दूसरे यादवको लेजाती तो थोडी ही शका होती कि, कोटके बाहर सोताहुआ रहगया होगा वह तो कोटके भीतर इक्कीस ड्योढीवाले मदिरमेंसे अनिरुद्धको लेगई अर किसीको सुधि भी न हुई यह बडा अचमा है ?

उत्तर–बाणासुरकी मृत्युका उपाय भगवान्ने विचारकर और उसकी कन्याके सग अपने पोतेका विवाह विचारकर, सुदर्शनचक्रको आज्ञा दी कि द्वारकापुरीको चित्ररेखा राक्षसी आवैगी, उसको तुम द्वारकाके भीतर जानेसे मत रोकना, एक बार द्वारकासे बाहरको जाय तो चली जाने देना और भीतरसे कोई वस्तु बाहरको लेजाय तो लेजाने देना बर्जना मत, ऐसी भगवान्की आज्ञाको मानकर सुदर्शनचक्रने चित्ररेखाको नहीं वर्जा, इसलिये चित्ररेखा अनिरुद्धको हरकर लेगई ॥

आनकर कहा कि ॥ २७ ॥ हे राजन् जिस प्रकार कुलको कलंक लगै, ऐसी तुम्हारी कन्याकी कुचेष्टा हमको दीख पडती है ॥ २८ ॥ हे समर्थ ! बाणासुर ! ! हम लोग तो घरका अखण्ड पहरा देते हैं और राजकुमारी ऊषाकी रक्षा करते हैं, इसे कोई मनुष्य देख भी नहीं सक्ता इतनेपर भी कन्याको यह दूषण कहाँसे लगगया ? सो हम नहीं जानते ॥ २९ ॥ इस प्रकार कन्याका दोष सुन अत्यन्त दुःखी हो, बाणासुरने शीघ्रही कन्याके घरमें जाकर यादवोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको देखा ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! कामदेवका पुत्र त्रिभुवनमें एक सुन्दर श्यामस्वरूप, पीताम्बर धारण किये, कमलके समान नेत्र, बड़ी भुजा कानोंमें दीप्तिमान् कुण्डल और केशोंकी कान्ति व मुसकानपूर्वक चितवनसे शोभायमान मुख ॥ ३१ ॥ और सब

भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ॥ विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २८ ॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ॥ कन्याया दूषणं पुंभिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥ २९ ॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ॥ त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशंगांबरमंबुजेक्षणम् ॥ बृहद्भुजं कुंडलकुंतलत्विषा स्मितावलोकेन च मंडिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यंतमक्षैः प्रिययाऽभिनृम्णया तदंगसंगस्तनकुंकुमस्रजम् ॥ बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३२ ॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनेकैरवलोक्य माधवः ॥ उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथाऽन्तको दडधरो जिघांसया ॥ ३३ ॥ जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ॥ ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥३४॥

मंगलरूप प्यारीके साथ पाँसोंसे खेलता, उस प्यारीके अंगसंगसे जिसमें स्तनोंकी केशर लगगई थी, ऐसी मनोहर जो वसन्त ऋतुकी मालतीहै, उसके पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण किये कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजीको ऊषाके निकट बैठा देखकर बाणासुर अत्यन्त आश्चर्य करनेलगा ॥ ३२ ॥ शत्रुओंको संगलिये अनेक पैदलोंसहित बाणासुरको मन्दिरमें आता देखकर मधुवंशोत्पन्न अनिरुद्धजी लोहेका परिघ उठाय मारनेके लिये दंड धारण करके कालके समान खड़े होगये ॥ ३३ ॥ पकड़नेके लिये चारोंओरसे चले आते, सूकरोंके यूथका पालन करनेवाले मुख्य सूकर जैसे

कुत्तोंको मारता है, उसी प्रकार मारनेलगे और मार पड़नेके कारण शिर, हाथ, पाँव टूटनेसे वह सिपाही घरमेंसे निकलकर भागगये ॥ ३४ ॥ राजा बलिका पुत्र बली बाणासुरने क्रोध करके अपनी सेनाको मारतेहुए अनिरुद्धकुमारको नागफाँससे बाँधलिया, उस समय अनिरुद्धजीको बँधा देखकर अत्यन्त शोक और खेदसे व्याकुल हो नेत्रोंमें जल भरकर ऊषा रोनेलगी॥३५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामनिरुद्धबन्धनोनाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ दोहा–तिरसठमें यादवन अरु, बाणासुरको युद्ध । सहसभुजातेहि काटि हारि, बरो बहुरि अनिरुद्ध ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! अनिरुद्धजीको देखे विना बंधु बांधवोंको शोच करते वर्षाऋतु चार

तं नागपाशैर्बलिनंदनो बली घ्नंतं स्वसैन्यं कुपितो बबंध ह ॥ ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे अनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बंधूनां च भारत॥ चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च॥ प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः सांबोऽथ सारणः ॥ नंदोपनंदभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥३॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतोदिशम् ॥ रुरुधुर्बाणनगरं समंतात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥

महीने व्यतीत होगये ॥ १ ॥ हे राजन् ! जिस समय सब यदुवंशी शोकसागरमें निमग्न पड़े थे, उसी समय देवर्षि नारदजीने आनकर अनिरुद्धके बँधनेका सब समाचार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा, सुनतेही श्रीकृष्णचन्द्र बहुतसे यादवोंको साथ ले बाणासुरके शोणित पुरको गये ॥ २ ॥ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब, सारण, नंद, उपनन्द और भद्रादि राम कृष्णके आज्ञाकारी मुख्य मुख्य यादवोंको श्रीकृष्णचन्द्रने संगले बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके नगरको चारोओरसे घेरलिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे परीक्षित् ! यादवोंसे अपने पुरके बाग, परकोटे, अटारी, द्वार आदि टूटे देख अत्यन्त क्रोधित हो, बारह अक्षौहिणी सेना लेकर बाणासुर पुरसे बाहर निकला ॥ ५ ॥

इसके उपरान्त अपने भक्त बाणासुर पर विपत् पडी जान, अपने पुत्र स्कंद और बहुतसे भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी इत्यादि साथ ले नंदीश्वरपर चढ़कर कृष्ण बलदेवसे युद्ध करनेके लिये भगवान् महादेवजी रणभूमिमें आनकर सुशोभित हुये ॥ ६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अब वहॉ परस्पर बडा अद्भुत व भयानक जिसको देखतेही रोमाञ्च खड़े होजायँ, इस प्रकार युद्ध होनेलगा, श्रीकृष्णचन्द्र महादेवजीके सम्मुख, प्रद्युम्न स्वामिकार्तिकजीके सम्मुख ॥ ७ ॥ कुंभांड और कूपर्णका युद्ध बलदेवजीसे होनेलगा, साम्बका बाणासुरके पुत्रके संग और बाणासुरका युद्ध सात्यकीके साथ होनेलगा ॥ ८ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक और मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष यह सब विमानोंपर

बाणार्थे भगवान्रुद्रःससुतैः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नंदिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ कृष्णशंकरयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुंभांडकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ॥ सांबस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ॥ गंधर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टु मागमन् ॥ ९ ॥ शंकरानुचराञ्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥ डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान् ॥ द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानि प्रायुंक्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ॥ प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥

चढ़कर युद्ध देखनेकी इच्छासे आये ॥ ९ ॥ उस समय भगवान् भूतेश्वरके अनुचर भूत, प्रेत, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक॥ १०॥ प्रेत, मातृ, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षस इन सबको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र पैनी धारके भालोंसे मार मारकर भगानेलगे ॥ ११ ॥ पिनाक धनुषधारी महादेवजी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर अलगही अस्त्र शस्त्र चलानेलगे, परन्तु आश्चर्यरहित—श्रीकृष्णचन्द्रजीने उन सब अस्त्र शस्त्रोंको शान्त करदिया ॥१२॥श्रीभोलानाथने ब्रह्मास्त्र चलाया उसे श्रीकृष्णचन्द्रजीने ब्रह्मास्त्रसे शान्त करदिया, इसके उपरान्त जब महादेवजीने वायुदेवताका अस्त्र

चलाया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतदेवताक अस्त्र छोड़ा उस समय पर्वतसे रुककर पवन थमगया, इसके पीछे महाक्रोधित हो शिवजीने अग्निदेवताक अस्त्र चलाकर आग लगा दी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय मेघास्त्र छोड़कर क्षणमात्रमें सब अग्निको शान्तकर दिया फिर भगवान् भूत नाथने अपना पाशुपत अस्त्र चलाया, उसको श्रीकृष्णचन्द्रने अपने नारायणास्त्रसे काटडाला ॥१३॥ फिर भगवान् वासुदेवने जृम्भणास्त्र चलागया उससे शिवजी जँभाई लेनेलगे, इस प्रकार उन्हें मोहित करके बाणासुरकी सेनाको तलवार, गदा और बाणोसे, मारनेलगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! प्रद्युम्न जीके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर स्वामिकार्त्तिकजीके अंगोंमेंसे रुधिर बहनेलगा, तब वह समर छोड मोरपर चढ़कर भाग गये ॥ १५ ॥ कुंभांड

मोहयित्वा तु गिरिशं जृंभणास्त्रेण जृंभितम् ॥ बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥ स्कंदः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समंततः ॥ असृग्विमुंचन्गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥ कुंभांडः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ॥दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पंचशतानि वै ॥ एकैकस्मिञ्छरौ द्वौद्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान्धनूंषि युगपद्धरिः ॥ सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ॥ पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥

और कूपकर्ण मूसलके लगनेसे पृथ्वीपर गिरगये, तब स्वामीके मरजानेसे उनकी सम्पूर्ण सेना चारोंओरको भागगई ॥१६॥ हे महाराज ! इस प्रकार अपनी सेनाको जहाँ तहाँ भागता देख बड़ी असहनतासे बाणासुर संग्राममें सात्यकी यादवको छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ १७ ॥ और रणमें बडे गर्वसे बाणासुरने एक संग पाँचसौ धनुष खैंच एक एक धनुषमें दो दो बाण लगाये ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय बाणासुरके वह पाँचसौ धनुष काट डाले फिर सारथी और घोडोंको मार रथको चूर्णकर शंखध्वनि करी ॥ १९ ॥ उस समय कोटरानाम

बाणासुरकी माता अपने बालोंको खोल, नग्न हो, पुत्रके प्राण बचानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आनकर खडी होगई * ॥ २० ॥ हे राजन् ! नंगी स्त्रीको देखना शास्त्रकी आज्ञा नहीं है, इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुख फेर कर खडे होगये, इस बीचमें जिसका रथ टूटगया, धनुष कट गया, ऐसा बाणासुर रणभूमि छोड पुरमें भागगया ॥ २१ ॥ भूतगण जिस समय भागये, तब तीन शिर और तीन पॉवका ज्वर दशों दिशा ओको जलाता शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥२२॥ तब नारायण देव श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीके ज्वरको आया देख अपना शीतज्वर

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ॥ बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥ २१ ॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ॥ अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३ ॥ माहेश्वरः समाक्रंदन्वैष्णवेन बलार्दितः ॥ अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयतांजलिः ॥ २४ ॥ ज्वर उवाच ॥ नमामि त्वाऽनंतशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ॥ विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिंगं प्रशांतम् ॥ २५ ॥

छोडा, इसके उपरान्त शिवजीका ज्वर और भगवान्का ज्वर दोनों परस्पर मिलकर युद्ध करनेलगे ॥ २३ ॥ जब विष्णुके, ज्वरने शिवजीके ज्वरको बलपूर्वक दबालिया, तब अत्यन्त पीडित होकर पुकारने लगा और अपनी रक्षाके लिये कोई निर्भय स्थान न पाय, हाथ जोड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ ज्वर बोला कि, अनन्तशक्ति, ब्रह्मादिकोंके ईश्वर सबके आत्मा शुद्ध; चैतन्यघन जगतकी उत्पत्ति

* शंका—अपने पुत्रकी रक्षा करनेके लिये बाणासुरकी माता नगी होकर श्रीकृष्णके सामने क्यों खडी होगई, नग्न होकर खडी होनेसे क्या जान पडताहै, जैसे किसी कामीके सामने स्त्री नग्न होकर खडी होजाय तो वह कामी स्त्रीको देखकर मोहित होजाय तो स्त्री जो कुछ आज्ञा करै, सो सो आज्ञा वह कामी पुरुष उसे पूर्ण किया करै वही काम बाणासुरकी माताने किया, यह शंका भारी है ॥ उत्तर—ब्रह्माने कोटराको वरदान दिया था कि, हे कोटरे ! तीन लोकमें जो पुरुष हैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव और चौरासी लक्ष योनिके पुरुष मात्र तुमको नगी देखेंगे तब उसी समय भस्म होजायँगे केवल एक तेरा पतिही भस्म न होगा और सब जल्दी भस्म होंगे, कोटराने ऐसा जानकर श्रीकृष्णको भस्म करनेके लिये श्रीकृष्णके सम्मुख खडी हुई

स्थिति और संहारके कारण, वेदसे गम्य, शान्तमूर्ति, ब्रह्म जो आप हैं, सो मैं आपको नमस्कार करताहूं॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म, जीजी स्वभाव, द्रव्य, शरीर, प्राण, अहंकार, विकार और मन अर्थात् ग्यारह इंद्रियें और पंचमहाभूत, अर्थात् पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश इन तत्त्वोंका बना यह देह जैसे बीजसे अंकुर और अंकुरसे फिर बीज होजाताहै, इसीप्रकार कर्मोंसे देह, फिर देहसे कर्म, फिर कर्म देह ऐसे जलकेसा प्रवाह चला जाताहै, बस यही तुम्हारी माया तुम उसके निषेधके अवधि हो इसलिये मैं आपकी शरण आया हूं॥ २६ ॥ यदि कहो कि, मैं देवकीका पुत्र हूँ सो यह मुझसे कैसे बनसक्ताहै इसका उत्तर यह है कि, आप लीलापूर्वक मत्स्यादि अवतार धारण करके देवताओंका पालन और वर्णाश्रमके धर्मकी रक्षा करते हो और धर्म करनेवाले साधुलोगोंका पालन व हिंसासहित पापमार्गका नाश करते हो, इसकारण पृथ्वीका बोझा उतारनेके लिये

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः॥ तत्संघातो बीजरोहैः प्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्य ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूँल्लोकसेतून्बिभर्षि ॥ हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानाञ्जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः॥ २७ ॥ तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शांतोग्रेणात्युल्वणेन ज्वरेण॥ तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशाऽनुबद्धाः॥ २८॥ श्रीभगवानुवाच॥ त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ॥ यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम्॥ २९ ॥ इत्युक्तोच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः॥ बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम्॥ ३०॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ॥ मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥

तुम्हारा जन्म है॥ २७ ॥ आपके उत्पन्न किये दुःसह भयंकर उग्र शीतज्वरसे मैं तपायमान हुआहूं क्योंकि देहधारियोंको तबतकही ताप है जबतक आशा बाँधकर आपके चरणकमलोंका सेवन न करै ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जब इसप्रकार शिवज्वरने भगवान् वासुदेवकी स्तुति करी तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे तीन शिरके ज्वर ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआहूँ और मेरे ज्वरसे जो तुझे भय हुआ है वह डर निवृत्त हो परन्तु जो पुरुषगण इस संवादका स्मरण करैं उनको तू मत व्यापना॥ २९॥ इसप्रकार जब कहा, तो शिवज्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके चलागया, इसके उपरान्त बाणासुर रथमें चढ़ श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आया॥ ३० ॥ हे महाराज ! हजार भुजाओंमें

अनेकप्रकारके शस्त्रोंको धारण कर बाणासुर अत्यन्त क्रोधित हो, चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा ॥ ३१ ॥ निरन्तर शस्त्रोंको चलाते बाणासुरकी भुजाओंको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने छूरीके समान पैंनी धारके चक्रसे जैसे माली वृक्षोंको काटताहै, उसीप्रकार काटडालीं ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! जब बाणासुरकी भुजा कटगईं, तो उस समय भक्त बाणासुरपर कृपा करनेवाले भगवान् भूतनाथ आकर चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करनेलगे ॥ ३३ ॥ महादेवजीने कहा कि, हे परब्रह्म ! आपके विनाजाने इस बाणासुरने युद्ध किया है, इसमें आश्चर्य नहीं, इस कारण वाणीमय वेदमें तुम छिपेहुए परब्रह्म हो और ज्योति सूर्यादिकोंके तुम प्रकाशक हो, इसलिये किसीके जाननेमें नही आते, यदि कहो कि,

तस्याऽस्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ चिच्छेद भगवान्बाहूञ्छाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषु च्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः ॥ भक्तानुकंप्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यंत्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमंबु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरंघ्रिरुर्वी ॥ चंद्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेंद्रः ॥ ३५ ॥ रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिंचो धिषणा विसर्गः ॥ प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥ तवावतारोऽयमकुंठधामन्धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ॥ वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७ ॥

प्रतीत कैसे हो ? इसके उत्तरमें शिवजी कहतेहैं कि, निर्मल मन बुद्धिवाले पुरुष आकाशके समान निर्लेप, निर्गुण तुम्हें देखतेहैं ॥ ३४ ॥ निर्गुण ज्ञानकी बात तो एक ओर है परन्तु तुम्हारी लीलाका आश्रय ब्रह्माण्डभी जाननेमें नहीं आता जैसे गूलर फलके भीतरके जीव गूलरके फलको नहीं जानते उसीप्रकार इस अभिप्रायसे ब्रह्माण्डरूप करके शिवजी स्तुति करतेहैं कि, आकाश आपकी नाभि, अग्नि मुख, जल वीर्य, स्वर्ग मस्तक, दिशा कान, पृथ्वी चरण, चंद्रमा मन, सूर्य नेत्र मैं (शिव) अहंकार, समुद्र उदर, इन्द्र भुजा, औषधी रोम, मेघ केश, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति लिंग और धर्म हृदय है, लोकोंकी कल्पनासे विराट् पुरुष तुम हो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सो हे अखण्डरूप ! यह तुम्हारा अवतार धर्मकी रक्षा और जगत्का

॥ ३७ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन

कल्याण करनेके लिये हुआ है और हम सब लोकपाल आपहीसे रक्षित होकर सब लोकोंका पालन करतेहैं ॥ ३७ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थामें पुरुषके आप कारण हो और शुद्ध हो इसलिये अद्वितीय पुरुष हो और सब विश्वके कारण हो. स्वयं कारण रहित हो परन्तु तोभी संपूर्ण विषय प्रकाश करनेके लिये अपनी मायासे जो देह धारण किया है, उसमें ऐसेही प्रतीत होतेहो ॥ ३८ ॥ जैसे सूर्य अपनी मेघरूपी छायासे ढका हुआ होनेपर भी बादलोको प्रकाशित करता है और बादलोंके बाहर भी रूपको प्रकाशमान करताहै उसी प्रकार हे भूमन् ! स्वयंप्रकाश आप जीवकी दृष्टिमें अपने कार्यरूप अहंकारसे ढकेहुए प्रतीत होनेपरभी सत्त्व, रज, तम, गुण, रूप, उपाधि और उनके जीवोको भी प्रकाशित करते

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ॥ प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै॥३८॥ यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च संचकास्ति ॥ एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ ३९ ॥ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ॥ उन्मज्जंति निमज्जंति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ४० ॥ देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेंद्रियः ॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवंचकः ॥ ४१ ॥ यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ॥ विपर्ययेंद्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥ ४२ ॥ अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनय श्चामलाशयाः ॥ सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥ तं त्वां जगत्स्थित्युदयांतहेतुं समं प्रशांतं सुहृदा त्मदैवम् ॥ अनन्यमेकं जगदात्मकेतुं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४ ॥

हो ॥ ३९ ॥ तुम्हारी मायासे मोहित होकर स्त्री, पुत्र और घरादिमें लगेहुए लोग दुःखमय संसारसागरमें ऊंच, नीच योनियोंको पातेहैं ॥ ४० ॥ भगवान्की दीहुई मनुष्यदेहको पाकर जिसने अपनी इन्द्रियोंको नहीं जीता और जिस पुरुषने तुम्हारे चरणोंका भलीभाँति पूजन न किया उस पुरुषको शोच करने योग्य और आत्माका ठगनेवाला समझना चाहिये ॥ ४१ ॥ प्यारे पुत्रादिकोंके लिये जो पुरुष प्रिय आत्मा आपका त्याग करताहै, वह पुरुष अमृत छोड़कर विष पीता है ॥ ४२ ॥ मैं (शिव) ब्रह्मा और देवता निर्मल अंतःकरणवाले मुनिभी प्रिय ईश्वर और आत्मरूप आपकाही भजन करतेहैं ॥ ४३ ॥ जगत्के उत्पत्ति पालन और नाशके कारण सबमें समान, शान्तस्वरूप, हितकारी आत्मा, ईश्वर, अनन्य और दूसरा

जिनके समान नहीं, बड़ा नहीं, जगत्के आत्मा आश्रय देव तुम हो ! सो तुम्हैं संसार त्यागनेके लिये हम भजते ॥ ४४ ॥ हे प्रकाशमान ! यह बाणासुर मेरा अत्यन्त प्रिय और इष्ट भक्त है इस कारण मैंने इसे अभयदान दियाहै, जैसे आपने प्रह्लादपर दया की, उसीप्रकार इसपरभी दया करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ यह प्रार्थना सुनकर भगवान् वासुदेवने कहा कि, हे भगवन् ! आपने जिसप्रकार कहा मैं वैसेही आपको प्रसन्न करूंगा आपने जिस बातका विचार किया है, मैं उसमें भलीभाँति सम्मति देता हूं ॥ ४६ ॥ विरोचनके पुत्र राजा बलिका बेटा यह बाणासुर है, इसलिये मारने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दियाहै कि, जो तेरे वंशमें उत्पन्न होगा, मैं उसको नहीं मारूंगा ॥ ४७ ॥ अभिमान दूर करनेके लिये

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव ॥ संपाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ॥ भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ॥ प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ॥ सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥ चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यंत्यजरामराः ॥ पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥ इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ॥ प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलंकृतम् ॥ सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥ ५१ ॥

मैंने इसकी सहस्रभुजा काटी हैं और जो पृथ्वीपर भारी बोझ होरहाथा उसको भी मैंने उतारदिया ॥ ४८ ॥ कटनेसे इसकी चार भुजा शेष रहगई हैं, सो अजर अमर होंगी और यह दैत्य बाणासुर भयरहित तुम्हारे पार्षदोमें मुख्य पार्षद होगा ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! इसप्रकार अभय पाकर बाणासुरने श्रीकृष्णचन्द्रको बारंबार प्रणाम करके ऊषा सहित अनिरुद्धको रथमें बैठालकर बिदा करदिया ॥ ५० ॥ और बाणासुरकी दीहुई एक अक्षौहिणी सेना सगलिये सुन्दर वस्त्रालंकारोंसे शोभायमान स्त्री सहित प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको आगेकर शिवजीसे अनुमोदन पाय श्रीकृष्णचन्द्रने वहाँसे पयान किया ॥ ५१ ॥

नगरके मनुष्य, सम्बन्धी और ब्राह्मणोंने बधाये, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रने शंख, आनक, नगारे बजाते तोरण व ध्वजाओंसे शोभायमान मार्गमें जहाँ छिडकाव होगया है, ऐसी अपनी नगरी द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥५२॥ हे राजन् ! यह श्रीकृष्णचन्द्रकी जीत और श्रीकृष्णका शिवजीसे युद्ध जो पुरुष प्रातःकाल उठकर स्मरण करेंगे, उनकी कभी हार नहीं होगी ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मूषाचरित्रवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ दोहा–चौंसठमें श्रीकृष्णने, नृगको शाप छुटाय। ब्रह्म अंशकी लगनको, सब फल दियो दिखाय ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! सांब, प्रद्युम्न, चारुभानु, गद इत्यादि यादवोंके पुत्र विहार करनेके लिये

स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ॥ विवेश शंखानकदुंदुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥ संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बाणनिग्रहो नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥ विहर्तुं सांबप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वंतः पिपासिताः ॥ जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्वमद्भुतम् ॥२॥ कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ॥ तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥ चर्मजैस्तांतवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ॥ नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविंदाक्षो भगवान्विश्वभावनः ॥ वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण सलीलया ॥ ५ ॥

वनको गये ॥ १ ॥ उस वनमें बहुत देरतक क्रीड़ा करते रहे, जब प्याससे पीडित हो यादवोंके पुत्रोंने जलको ढूँढ़ा; तब विना जलके कुएँमें एक अद्भुत जीव पडा देखा ॥ २ ॥ पर्वतके समान करकेटा देख आश्चर्ययुक्त मनसे कृपायुक्त हो यादवोंके बालक उसके निकालनेका यत्न करनेलगे॥३॥हे राजन् ! यह बालक उस करकेटेको चाम और सूतके रस्सोंसे बाँधनेपर भी निकालनेको नहीं समर्थ हुए तब उत्कंठायुक्त बालक श्रीकृष्णचन्द्रसे आनकर कहनेलगे ॥ ४ ॥ तब विश्व उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वहाँ आकर लीलापूर्वकही बायें हाथसे उस करकेटेको निकाललिया॥ ५ ॥

उत्तमश्लोक श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही वह करकेटा रूप त्याग तप्त सुवर्णके समान सुन्दर वर्ण, अद्भुत आभूषण और वस्त्र मालाओंको धारण किये, वह देवस्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि उसके करकेटा होनेका कारण जानते भी थे परन्तु तो भी सबको दिखानेके लिये पूछने लगे कि, हे बडभागी ! सुन्दर स्वरूपवान् आप कौन हो ? मुझे तुम देवताओंमें उत्तम देवता जान पडते हो ॥ ७ ॥ हे मंगलरूप ! इस योग्य तुम नहीं हो, किस अपराधसे तुम्हें यह करकेटेकी योनि प्राप्तहुई, जो हमको कहनेयोग्य समझो तो

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ॥ संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणांबरस्रक् ॥ ६ ॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुंदः ॥ कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ॥ आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्म राजा संस्पृष्टः कृष्णेनानंतमूर्तिना ॥ माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृगो नाम नरेंद्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ॥ दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥ किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ॥ कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥

हमारे सन्मुख अपना सब वृत्तांत वर्णन करो ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जब अनन्तमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पूँछा, तब राजा नृग सूर्यके समान तेजवाला किरीटोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके कहनेलगा ॥ ९ ॥ राजा नृगने कहा कि, हे समर्थ ! मैं इक्ष्वाकुका पुत्र नृग नाम राजा हूं जब कभी दानी राजाओंकी बात चली होगी, तो मेरा नाम भी आपके सुननेमें आया होगा ॥ १० ॥ हे नाथ ! सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी और सर्वांतर्यामी आप हैं सो तुम क्या नहीं जानते ? और कालसे तुम्हारे ज्ञानका नाश नहीं होता, तो भी आपने जो पूँछा है, सो आपकी आज्ञानुसार मैं वर्णन करता हूं ॥ ११ ॥

जितनी वर्षाकी बूँदें हैं उतनीही गायोंका मैंने दान किया है * ॥१२॥
हे भगवन्! जितनी पृथ्वीकी रेणुका और जितने आकाशमें तारे अथवा जितनी वर्षाकी बूँदें हैं उतनीही गायोंका मैंने दान किया है * ॥१२॥
दूध देनेवाली तरुण अवस्था शील स्वभाव रूप गुणसे भरी कपिला और नीतिपूर्वक संचय करी, सुवर्णसे सींग, रूपेसे खुर मढ़े बछडे साथ और

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ॥ यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृंगीः ॥ न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुंबेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ॥ तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुंगवेभ्यः ॥ १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ॥ वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥

वस्त्र, माला, गहने पहराय, ऐसी गायें मैंने दान की थीं ॥ १३ ॥ भलेप्रकार शोभायमान गुण शीलयुक्त, दूध विना दुःखित कुटुम्बी पाखण्डरहित आचारवाले तपस्या करके प्रसिद्ध, वेदपाठी तरुण अवस्थावाले द्विजोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करके दी थीं ॥ १४ ॥ गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, महल,

---

* शंका—जो वचन श्रीकृष्णसे राजा नृगने गोदान देनेवाले कहे थे, उन वचनोंको सुनकर हमारा सबका मन काँपता है, ऐसे मूर्खोंके समान राजा नृगने वचन क्यों कहे? भला रेतेके कणका क्या प्रमाण? एक मूठीभर रेता हाथमें ले तो दश वीस कोटि कण मूठीभर रेतमें होंगे, फिर गगा आदि नदियोंमें अथवा रेतेवाले देशोंमें रेतके सिवाय और दूसरी मृत्तिका नहीं, तहाँ कणकी क्या गणना है, फिर तारा भी गणनासे हीन हैं, वर्षाकी धारा पृथ्वीपर पडती हैं, उनकी गिनती नहीं है, ऐसा वचन वडा अयोग्य है ॥

उत्तर—मेदिनीकोशमें सत्रह १७ श्लोकसे लेकर बयालीस ४२ श्लोकतक भूमिका और द्वीप आदिका पर्वतोंका नाम लिखाहै 'सिकता' सात द्वीपका नाम लिखाहै और 'तारका' वडी वडी नदियोंका नाम लिखा है, 'अदिव' मर्त्यलोकका नाम लिखा है, मर्त्यलोक और भरतखण्डका नाम भी अदिव है, 'वर्ष धार' पर्वतका नाम लिखा है और राजा नृग भरतखण्डमें वसता था इसलिये भरतखण्डकी नदियोंके पर्वतोंके और सात द्वीपोंके वहानेसे गोदान करनेकी गिनती श्रीकृष्णसे गुप्त करके वताई थी कि, सबको प्रगट होनेसे पुण्यका नाश होजाताहै, पचमस्कधके उन्नीसवें अध्यायमें लिखाहै कि मर्त्यलोकमें भरत खण्डमें पर्वतोंमें श्रेष्ठ २७ पर्वत हैं और नदियोंमें श्रेष्ठ नदी ४९ हैं, और पचमस्कधके प्रथम अध्यायमें लिखाहै कि, पृथ्वीमें सात द्वीप हैं इसलिये गुप्त करके श्रीकृष्णसे राजा नृगने कहा था कि, महाराज! जितने भूमिके सिकता कहिये द्वीपहैं उतनी गायें मैंने दीहैं और जितने वर्षधारा कहिये पर्वत मर्त्यलोकके भरत खण्डमें हैं उतनी गायें मैंने ब्राह्मणोंको दीहैं और भरतखण्डमें जितने तारका कहिये गगा आदि वडी वडी नदी हैं उतनी गायें मैंने दीहैं सब गायोंकी सख्या कितनी हुई विद्वान् लोगो विचार लेना, अककी उलटी रीतिसे प्रथम सात ७ दूसरे ४९ तीसरे सत्ताईस सब जोडकर २७४९७ सत्ताईस सहस्र चारसौ सत्तावन गायें देनेको श्रीकृष्णसे राजा नृगने कहा था रेतकी कण, आकाशके तारे, जलवृष्टिके लिये नहीं कहा था ॥

हाथी, घोडे इत्यादि दान करे और दासियोंसहित कन्यादान करीं. तिल, रूपा, शय्या, वस्त्र, रत्न और आच्छादनके श्रेष्ठ वस्त्र और रथोंका दान किया यज्ञ किये, कुआँ, तालाव, सरोवर बनवाये ॥ १५ ॥ ऐसा मैं दानी था, परन्तु मुझे एक संकट आनकर प्राप्तहुआ सो सुनो, किसी एक अयाचक ब्राह्मण की गौ भागकर मेरी गायोंमें मिलगई, वह गाय विना जाने मैंने ब्राह्मणको दान करदी ॥ १६ ॥ उस गौका स्वामी गौको लेजाता देखकर "यह गौ मेरी है" इस प्रकार कहनेलगा, दूसरा ब्राह्मण बोला कि, भाई यह गौ मुझे राजा नृगने दान करके दी है ॥ १७ ॥ हे दीनबन्धु ! इस प्रकार आपसमें विवाद कर अपने अपने प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले वह दोनों ब्राह्मण मेरे निकट आये, तब जिस ब्राह्मणको गाय दान करके दी थी; वह बोला कि हे राजन् ! इस गायके आपही दाता हैं और जिसकी गाय थी वह बोला कि, यह क्यों दाता है, जो पराई गौ दान करता है ? हे भगवन् ! यह बात

कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ॥ संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६॥ तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ॥ ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥ विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ॥ भवान्दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ॥ गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवंतावनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः ॥ समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतंतं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ॥ नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नंतरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ॥ यमेन पृष्टस्तत्राऽहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥

सुनकर मुझे अत्यन्त भ्रम हुआ ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त धर्मसे कंपित मैंने उन दोनों ब्राह्मणोंको बहुत विनती करके कहा कि, महाराज ! इस गौके बदलेमें सुन्दर एक लाख गौ दूँगा, यह गौ देदीजिये ॥१९॥ मैं तुम्हारा दास हूं, मैंने यह नहीं जाना कि यह गौ तुम्हारी है सो मेरे ऊपर अनुग्रह करके घोर नरकमें गिरतेहुए मेरी रक्षा करो ॥२० ॥ तब ब्राह्मण बोला कि, हे राजा नृग ! और तेरी लाख गौकी मुझे आवश्यकता नहीं है जो दान करके दी है, सोई लूंगा; यह कहकर वह ब्राह्मण और जिस ब्राह्मणको गौ दी थी वह उस गौको त्यागकर घरको चलागया ॥ २१ ॥ हे देवदेव ! इसके उपरान्त जब मेरा देहान्त हुआ, तब यमदूत आनकर यमराजके पास मुझे लेगये वहाँ धर्मराजने मुझसे पूँछा कि ॥ २२ ॥

हे राजा नृग ! मैं तुम्हारे दान आर धर्मका लोकके प्रकाशकोंमें अन्त नहीं देखता परन्तु यत्किंचित् तुम्हारा पाप भी है और संपूर्ण शुभ सो प्रथम तुम पाप भोगोगे अथवा पुण्य ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब धर्मराजने कहा तब प्रथम पाप भोगूंगा ऐसा मैंने कहा उसी समय धर्मराजने आज्ञा करी कि, इसको करकेटेकी योनिमें गिरादो हे प्रभो ! तब मैंने गिरतेही अपनेको करकेटेके रूपमें देखा ॥ २४ ॥ हे केशव ! ब्राह्मणोंका भक्त और दाता तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषा अबतक मुझे लगरही थी क्योंकि आपकी कृपासे स्मृतिका नाश नहीं हुआ था ॥ २५ ॥ हे योगेश्वर ! वेदरूप नेत्र करके निर्मल हृदयमें जिनकी भावना करें और इन्द्रियोंकी जिनमें पहुँच नहीं ऐसे परमात्मा तुम अति दुःखोंसे अँधेरी बुद्धिवाले मुझे कैसे दिखाई दिये ?

पूर्वं त्वमशुभं भुंक्षे उताहो नृपते शुभम् ॥ नांतं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वं देवाशुभं भुंज इति प्राह पतेति सः ॥ तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ॥ स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥ स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः ॥ साक्षादधोक्षज उरुव्यसनांधबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य ममापवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेव जगन्नाथ गोविंद पुरुषोत्तम ॥ नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण यांतं देवगतिं प्रभो ॥ यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥ नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥

क्योंकि इस संसारमें जिस मनुष्यका संसार छूटनहार होताहै; उसको ही आपके दर्शन मिलतेहैं ॥ २६ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्के नाथ ! हे गोविन्द ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण ! हे इन्द्रियोंके प्रेरनेवाले ! पवित्रयशी ! श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अखण्डरूप ! हे अविनाशी ! ॥ २७ ॥ हे कृष्ण ! हे समर्थ ! अब मैं स्वर्ग जाऊँ मुझे आज्ञा दो और जहाँ कहीं मैं रहूँ वहाँ मेरा चित्त तुम्हारे चरणोमें लगा रहै ॥ २८ ॥ आप सब कार्योंके उत्पन्न करनेवाले विश्वके कर्त्ता और विकाररहित हो, अनन्त माया शक्तिमान् वासुदेव अर्थात् सब प्राणियोंके आश्रय कृष्ण अर्थात् सर्वदा आनन्दरूप, वेदोंके कहे जो यज्ञादिक कर्म और स्मृतियोंके कहे जो कुआँ, बावली, तालाव इत्यादि कर्मोंके फलदाता आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥

राजा नृग इस प्रकार कह श्रीकृष्णचन्द्रको परिक्रमा दे अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श कर, आज्ञा ले सब प्राणियोंके देखतेही विमानपर बैठ कर स्वर्गको चलागया ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोके भक्त, धर्मात्मा देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र क्षत्रियोंकी शिक्षाके लिये अपने कुटुम्बी यादवोंसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ कि, देखो ! अग्निके समान तेजस्वी पुरुषोंको भी ब्रह्मअंश नही पचता और अपनेको ईश्वर माननेवाले राजाओकी तो बातही क्या है ? ॥ ३२ ॥ मैं विषको हलाहल विष नहीं मानता क्योंकि उसके दूर करनेकी औषधी है परन्तु ब्रह्मअंश विषसे भी अधिक विष है, और इस पृथ्वीमें ब्रह्मअंशके दूरकरनेका कोई उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ विष तो केवल खानेवालेकोही मारता है और अग्नि भी जलसे शान्त होजाती है, व

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ॥ अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥ ३० ॥ कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः ॥ ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥ दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ॥ तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥ नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ॥ ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥ हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ॥ कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हंति त्रिपूरुषम् ॥ प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ३५ ॥ राजानो राजलक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं विचक्षते ॥ निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥

अग्निके जलानेमें जड़ बाकी रहजाती है, परन्तु ब्रह्मअंशरूप लकड़ीमेंसे उत्पन्नहुई अग्नि मूलसहित कुलको भस्म करडालती है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणकी पूर्ण आज्ञा लिये विना उसका धन खायाजाय तो तीनपीढीको नरकमें गिराता है और हठसे वा राजा आदिकी सहायतासे भक्षण किया जाय तो दश प्रथम और दश पीछेकी पीढियोंको और एक अपनी, इस प्रकार इक्कीस पीढीको नरकमें डालता है ॥ ३५ ॥ इसलिये ब्राह्मणका पूजनही करे, (इस कथापर एक दृष्टान्त भी लिखते हैं) ❀ जोकि लक्ष्मीकेसे अंधे हुए राजा हैं, सो अपना नरकमें गिरना नहीं देखते

* दृष्टान्त—एक राजा परदेशी ब्राह्मण जो द्वारपर आता उसे लाख रुपया दिया करते थे, तो एक दरिद्र ब्राह्मणकी स्त्रीने कह सुनकर अपने पतिको इस राजाके नगरमें भेजा, यह चले, राजा शिकार खेलकर आ रहे थे, मार्गमें ब्राह्मणसे भेंट हुई, राजाने कहा कि, महाराज ! आप कहाँसे आये और कहाँ जाओगे ? ब्राह्मणने कुछ उत्तर न दिया, तब राजाने प्रार्थनाकर चरण पकडकर पूछा कि, क्या काम है ? कहो—

और जो पुरुष ब्रह्मअंशपर मन ललचाते हैं, सो नरकमें जानेकी इच्छा करतेहैं ॥ ३६ ॥ कुटुम्बी उदार जीविका हरजानेसे सो ब्राह्मण रुदन करते हैं उनके नेत्रोंसे आँसुवोंकी बूँद गिरकर जितनी पृथ्वीकी रेणुका भीजती हैं, उतने वर्षतक ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले निरंकुश राजा और उनके मंत्री, प्रधान टहलुए हैं, सो सब कुम्भीपाक नरकमें गिरतेहैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जो पुरुष अपनी दान की हुई अथवा औरकी दी हुई ब्राह्मणकी

गृह्णंति यावतः पांसून्क्रंदतामश्रुबिंदवः ॥ विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुंबिनाम् ॥ ३७ ॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः ॥ कुंभीपाकेषु पच्यंते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृध्वाल्पायुषो नराः ॥ पराजिताश्च्युता राज्याद्भवंत्युद्वेजिनोऽहयः ॥४०॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्येत मामकाः ॥ घ्नंतं बहु शपंतं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥

जीविका हरे, वह पुरुष साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाका कीड़ा होता है ॥ ३९ ॥ मेरे घरमें ब्राह्मणका धन न आवे, जिस धनके लोभसे राजा अल्प आयुष्यवाले पराजयको प्राप्त हुए और राज्यसे भ्रष्ट होकर मनुष्योको भय देनेवाले सर्प होजाते हैं ॥ ४० ॥ हे मित्र ! जो ब्राह्मण अपराध करे, मारताही आवै और गालियें भी बहुत दे, ऐसे ब्राह्मणसे भी द्रोह करना उचित नहीं बरन् उसको नित्य प्रति नमस्कारही करनाचाहिये ॥ ४१ ॥

–तो, तब यह बोले हम पण्डित हैं और काशीजीसे आये हैं, इस राजाके शिरपर पनही मार लाख रुपये लेजायँगे. राजाने कहा कि, ब्राह्मण बुरे, जो लाख रुपया लेजायँ और पनही मारै, सो महलोंमें जाकर ड्योढीवानोंसे कहा कि, किसी ब्राह्मणको भीतर मत आनेदो अब उन पण्डितजीकी यहाँतक दशा हुई कि, थाली, कटोरा वेचकर खागये, परन्तु भीतर न घुस सके, तब फिर लौटकर अपने घर जाय सब समाचार सुनाये, यह राजा वैष्णव था और कृष्ण, बलदेवका पूजन करता था, एक दिन अकस्मात् बलदेवजी सिंहासन परसे गिरपडे, यह देख राजा अत्यन्त भयभीत हुआ ? उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाकर पूछा कि, क्या उत्पात होगा ? कोई कुछ कोई कुछ कहनेलगे परन्तु यथार्थ उत्तर कोई न दे सका, तब राजाने ढँढोरा पिटवाया कि, जो समाधान करेगा, उसे बडा द्रव्य मिलेगा, इसके उपरान्त फिर उस ब्राह्मणकी स्त्रीने प्रार्थना करी, तब वही ब्राह्मण राजाके प्रश्नका उत्तर देनेको आये और बोले कि, राजा ! तू कुछ मत डरे, कुछ उत्पात नहीं होगा, जगन्नाथजी गिरते तो उत्पात होनेकी सम्भावना थी और बलदेवजी तो नित्य वारुणी पिये उन्मत्त रहते हैं, इनके गिरनेका क्या आश्चर्य है । तब राजाने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणको लाख रुपये देदिये और कहा कि, ब्राह्मणको आनेसे कोई मत रोकियो यह पनही मार करही द्रव्य लेते हैं यदि यह ब्राह्मण न होते तो मेरे प्रश्नका उत्तर कौन देता ? ॥

जैसे सावधान होकर समय समयपर ब्राह्मणोंको मैं नमस्कार करता हूं, उसी प्रकार तुम भी नमस्कार करो और जो कोई मेरी इस आज्ञाको उल्लंघन करेगा, वह पुरुष मुझसे दण्ड पावेगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणका धन हरनेवाला नरकमें गिराया जाता है, इस बातको कोई मिथ्या मत समझना, क्योंकि जैसे विनाजाने नृग राजाने ब्राह्मणकी गाय यद्यपि ब्राह्मणकोही दान करदी थी, परन्तु तो भी नरकमें गिरा इसी प्रकार और भी जो ब्रह्मअंश लेते हैं, उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन ! सब लोकोंको पवित्र करनेवाले मुकुन्द भगवान् इस प्रकार द्वारकावासी यदुवंशियोंको समझाकर अपने मन्दिरमें चलेगये ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ॥ तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दंडभाक् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ॥ अजानंतमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुंदो द्वारकौकसः ॥ पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमंदिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्त० नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कंठः प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कंठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ॥ रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनंदितः ॥ २ ॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ॥ इत्यारोप्यांकमालिंग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवंदितः ॥ यथावयो यथासख्यं यथासंबंधमात्मनः ॥ ४ ॥

नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥ दोहा–पैंसठमें बलरामने, वृन्दावनमें आय । रास रचो यमुना निकट, सबको ताप मिटाय ॥६५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! एक समय भगवान् बलदेवजी अपने सुहृदोंके देखनेके लिये रथमें चढ़कर गोकुलको गये ॥ १ ॥ और बहुत दिनों के आशा लगाये गोप गोपियोंसे मिले; इसके उपरान्त बलदेवजीने पिता माताको प्रणाम किया, तब उन्होंने इनको आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न ! जगदीश्वर ! छोटे भाई कृष्ण सहित तुम हमारी बहुत कालतक रक्षा करो, इस प्रकार गोदमें बैठाल छातीसे लगा, नेत्रोंके आँसुओंसे बलदेवजीको भिजोनेलगे ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक वृद्ध गोपोंको प्रणाम करके, छोटे गोपोंने इनको प्रणाम किया, इस प्रकार

बलदेवजी जैसी जिसकी अवस्था और जैसी जिससे मित्रता, जैसा जिससे सम्बन्ध था ॥ ४ ॥ उसी प्रकार उनको प्राप्त होकर हास्य और हाथ पकड़ना इत्यादिकोंसे मिलकर जब बलरामजी विश्राम लेचुके, तब सुखपूर्वक बैठे और कुशल पूँछी ॥ ५ ॥ उस समय सब गोप कि जिन्होंने कमल दल लोचन श्रीकृष्णके लिये सब विषय त्याग दिये हैं, वे सब बलदेवजीके निकट आय चारों ओर बैठ गये और प्रेमसे गद्गद वचन हो अपने बंधु यादवोंकी कुशल पूँछने लगे ॥ ६ ॥ कि, हे राम ! हमारे सब बन्धु तो कुशल हैं ? स्त्री और पुत्रसहित तुम हमारी भी कभी सुधि करते हो ? ॥ ७ ॥ यह बड़ी प्रसन्नताकी बात हुई जो महादुराचारी पापी कंस मारागया और यह भी बहुत अच्छा हुआ जो सुहृदलोग बन्दीखानेमे छूटगये, फिर

समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः ॥ विश्रांतं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥ पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ॥ कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नो बांधवा राम सर्वे कुशलमासते ॥ कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ७ ॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ॥ निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्यो हसंत्यः पप्रच्छू रामसंदर्शनादृताः ॥ कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरति वा बंधून्पितरं मातरं च सः ॥ अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥ अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि ॥ यदर्थेऽजहिम दाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥

वैरियोंका नाश कर समुद्रमें द्वारकापुरी बसाई, यह भी अत्यन्त मंगलकी बात है ॥ ८ ॥ बलरामजीके दर्शनसे गोपियें प्रसन्न हो हँसकर पूँछने लगीं कि, जिनको नगरकी स्त्रियें अत्यन्त प्यारी हैं वह श्रीकृष्ण तो अच्छे हैं ॥ ९ ॥ वह श्रीकृष्ण कभी अपने बन्धु बांधवोंकी भी सुधि करते हैं ? क्या अपनी माताका दर्शन करनेको एकबार भी वह यहाँ आवेंगे ? और बड़ी भुजावाले श्रीकृष्णचन्द्र कभी हमारी भी सुधि करते हैं ? ॥ १० ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न समर्थ बलदेवजी ! जिसके कारण हमने दुस्त्यज्य माता, पिता, भाई, पति, पुत्र, बहन और सुहृद यह सब त्याग दिये ॥ ११ ॥

वा हम सबको त्याग वह शीघ्रही चलेगये और स्नेह तोड़दिया परन्तु उनके वैसे मनोहर कहनेपर कौन स्त्री भरोसा न करै ? ॥ १२ ॥ हमें अचम्भा
होता है कि, कृतघ्न और जिसका मन स्थिर नहीं, ऐसे श्रीकृष्णके कहनेको बुद्धिमान् द्वारकाकी स्त्रियें किस प्रकार स्वीकार करतीहोंगी ? परन्तु
हम कल्पना करती हैं कि, चित्र विचित्र कथावाले श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमान हास्यपूर्वक भौंहैं चलानेसे बढा जो कामदेव उससे आतुर हो
स्वीकार करती होंगी ❀ ॥ १३ ॥ और गोपियें बोलीं कि, उनकी बातसे हमें क्या काम ? और बात क्यों नहीं कहती, क्योंकि हमारे विना

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ॥ कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥ कथं नु गृह्णंत्यनव
स्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ॥ गृह्णंति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥
किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ॥ यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं
शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ॥ गतिं प्रेमपरिष्वंगं स्मरंत्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥ संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयं
गमैः ॥ सांत्वयामास भगवान्नानाऽनुनयकोविदः ॥ १६ ॥

जैसे उनका समय व्यतीत होता है उसी प्रकार उनके विना हमारा काल भी व्यतीत होता है. उनका सुखसे बीतै है, हमारा दुःखसे, अन्तर
इतनाही है ॥ १४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी हँसनि बोलनि सुन्दर चितवन शोभायमान चलना और प्रेमपूर्वक आलिंगन इन बातोंका स्मरण
कर सब गोपियें रोनेलगीं ॥ १५ ॥ अनेक प्रकारसे समझानेमें निपुण, भगवान् संकर्षण श्रीकृष्णचन्द्रके संदेशेको कहकर समझाने लगे ॥ १६ ॥

* दृष्टान्त— एक लालाने बिल्ली पाली थी और उसको नित्यप्रति दूध मलाई खिलाते थे, एक दिन लाला कार्यवश गाँवको गये और बिल्लीको डोरीसे खमेमें बाँधगये ओर उसका स्मरण न रहा और कई
दिन लगगये बिल्लीका भूखके मारे प्राणान्त होनेलगा, इसके पीछे घरमें कहीं दलानके कोनेमें एक रुईका गाला धरा था, सो बिल्लीने जाना कि, यह घीका लोंदा है, सो उछल उछलकर बिल्ली उस रुईके गालेपर
जाय परन्तु वह हाथ न आवै, "अब लिया अब लिया" इसी आशामें अठारह दिन व्यतीत होगये इधर लाला अठारह दिनके उपरान्त आनकर कहनेलगे कि, हरे राम बिल्लीकी तो इतिश्री होगई होगी ताला
खोलकर देखै तो अभी जीवित है यह विचार ज्यों उसकी डोरी खोली कि, वह झपटकर रुईके गालेपर गिरी परन्तु वह तो रुईही थी, इसलिये निराश हो झट बिल्लीके प्राण निकलगये इसलिये जीवित है
आशा, मरे निराशा, यह बात सत्य है ॥

इसके उपरान्त भगवान् बलदेवजीने उस व्रजमें गोपियोंको अनेक प्रकार आनन्द देते चैत्र और वैशाख दो महीने तक वास किया ॥ १७ ॥ पूर्ण चन्द्रमाकी कलासे शोभायमान कुमुदिनियोंकी सुगंधयुक्त पवन जहाँ आरही थी इसप्रकार शोभायमान यमुनाजीके बागमें स्त्रियोंको संग लेकर बलदेवजी रमण करनेलगे ॥ १८ ॥ उससमय वरुणजीकी भेजी वारुणी मदिरा वृक्षोंकी खोतरियोंमेंसे गिरकर सब वनको अपनी गंधसे सुगंधित करनेलगी ॥ १९ ॥ पवनसे प्राप्त मधुधाराकी सुगन्ध सूंघकर बलदेवजी वहाँ आय स्त्रियोंके साथ मदिरापान करनेलगे ॥ २० ॥ स्त्री जिनके चरित्र गान कररहीं और हलायुध धारण करनेवाले मतवाले कमलसे विह्वलनेत्र हो बलदेवजी अपने मनमें विचार करनेलगे ॥ २१ ॥ वनमाला

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ॥ रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचंद्रकलामृष्टे कौमुदीगंधवायुना ॥ यमुनोपावने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ॥ पतंती तद्वनं सर्वं स्वगंधेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥ तं गंधं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ॥ आघ्रायोपागतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ॥ वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुंडलो मत्तो वैजयंत्या च मालया ॥ बिभ्रत्स्मितमुखांभोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ॥ निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥ २३ ॥ पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता ॥ नेष्ये त्वां लांगलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २४ ॥

और कानोंमें कुण्डल पहरे मतवाले, वैजयन्तीमाला धारण किये इससे अधिक शोभायमान और पसीनेके बिन्दुसे सुन्दर मंद मंद हास्ययुक्त, कमलरूप मुख धारण किये ॥ २२ ॥ जलक्रीड़ा करनेके लिये सामर्थ्यवान् बलदेवजी यमुनाजीको बुलानेलगे "यह मतवाले हैं" इसलिये बलदेवजीके वचनका अनादर करके यमुना नहीं आई, तब, भगवान् बलरामजीने अत्यन्त क्रोधित हो, हलके अग्रभागसे खैंचलिया ॥ २३ ॥ और बोले कि, रे पापिनि ! मैंने तुझे बुलाया और तू न आई इसलिये स्वच्छन्द फिरनेवाली तुझको मैं हलके अग्रभागसे

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनंदनम् ॥ उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २५ ॥ राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ॥ यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २६ ॥ परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम् ॥ मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततो व्यमुंचद्यमुनां याचितो भगवान्बलः ॥ विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥ कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासितांबरे ॥ भूषणानि महार्हाणि ददौ कांतिः शुभां स्रजम् ॥ २९ ॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य कांचनीम् ॥ रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेंद्र इव वारणः ॥ ३० ॥ अद्यापि दृश्यते राजन्यमुना कृष्टवर्त्मना ॥ बलस्यानंतवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ३१ ॥

खण्डित करदूँगा ❀ ॥ २४ ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार बलदेवजीने कहा तब यमुना अत्यन्त भयभीत और चकित हो उनके चरणोंमें गिरकर कहनेलगी ॥ २५ ॥ हे राम ! हे राम ! ! महाबाहो ! ! ! मैं तुम्हारा पुरुषार्थ नहीं जानती, जिन आपके अंश शेषजीने संपूर्ण पृथ्वीको सहस्र फणोंमेंसे एक फणपर धारण कररक्खा है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! मैं आपके श्रेष्ठ प्रभावको नहीं जानती परन्तु आपकी शरण आई हूँ सो आप क्या मुझे छोडनेको योग्य हो ॥ २७ ॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! जब इस प्रकार प्रार्थना करी तब प्रसन्न होकर भगवान् बलदेवजीने यमुनाको छोडदिया और जिसप्रकार हाथी हथिनियोंके संग विहार करताहै उसी प्रकार यमुनामें गोपियोंके साथ विहार करने लगे ॥ २८ ॥ इच्छापूर्वक विहार करके जब बलदेवजी जलमेंसे बाहर निकले तब लक्ष्मीजीने इनको दो नीलाम्बरी वस्त्र अमूल्य आभूषण और शोभायमान माला दी ॥ २९ ॥ बलरामजी भी नीलवस्त्र पहर और सुवर्णकी माला धारण कर, अच्छी प्रकार चन्दन लगाय इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! महावीर्यवान् भगवान् बलरामजीने यमुनाजीको खैंचा, इस कारण वह स्थान अबतक अनन्त पराक्रम बलरामजीके पराक्रमको जताता हो वैसेही देखनेमें आता है ॥ ३१ ॥

* शंका–शेषावतार बलदेवजीका मुनियोंने वर्णन किया है सो बलदेवजीने बडे कामीकी नाईं यमुनाको क्यों खैंचा ? यमुनाकी मर्यादाका भी नाश किया यह बडी शका है ? उत्तर–श्रीकृष्णने जब यमुनासे कालियनागको बाहर निकालदिया तब यमुना बहुत अभिमान करनेलगी, विनाही वर्षाके अधिक मर्यादाको छोडकर चढनेलगी, मुनिजन मथुराको और वृन्दावनको आते जाते तो रात दिन मरी पाते, नौकाको चलने नहीं दे, इस प्रकार यमुनाको उन्मत्त जानकर जलक्रीडाके मिस करके बलदेवजीने यमुनाको दण्ड दिया ॥

व्रजकी स्त्रियोंके संग विलास करके चलायमान चित्त बलदेवजीको व्रजमें रमण करते एक रात्रिके समान संपूर्ण रात्रियें व्यतीत होगईं ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे भाषाटीकायां बलदेवकृतयमुनाऽकर्षणंनाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ दोहा—छासठ काशी जाय हरि, पौंड्रकनृपको मार । मित्र सुदक्षिण सहित सब, हनो तासु परिवार ॥ ६६ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब बलरामजी नन्दरायके व्रजमें आये तब अज्ञानी करूषदेशके राजा पौंड्रकने " मैं वासुदेव हूँ " इस प्रकार मनमें विचारकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास दूत

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥ रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥ वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥ त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ॥ इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥ दूतं च प्राहिणोन्मंदः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ॥ द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥ दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसंदेशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोहमेक एव न चापरः ॥ भूतानामनुकंपार्थं त्वं तु मिथ्याऽभिधां त्यज ॥ ५ ॥

भेजा ॥ १ ॥ आप जगतपति भगवान् वासुदेव प्रगट हुए हो ऐसे मूर्ख मनुष्योंकी प्रशंसासे उत्साह दिलानेपर उसने अपने आपको वासुदेव समझ लिया ॥ २॥ अचिंत्य मार्गवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास द्वारकापुरीमें अज्ञानी पौड्रकने दूत भेजा, जैसे खेलमें बालक एक बालकको राजा बना देता है और वह अपनेको राजा मानता है, उसी प्रकार अपने आपको पौंड्रक वासुदेव मानने लगा ॥ ३ ॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णचन्द्रको सभामें बैठा देखकर दूत राजा पौंड्रकका संदेशा कहने लगा ॥ ४ ॥ संपूर्ण प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेके लिये मैं एकही

वासुदेव उत्पन्न हुआ हूं दूसरा नहीं है। इस कारण तैंने जो अपना मिथ्या नाम वासुदेव धर रक्खा है उसे त्याग दे ॥ ५ ॥ हे यादवसूद ! तैंने मेरे चिह्न गदा पद्मादि जो धारणकर रक्खे हैं उन्हें शीघ्रही त्यागकर मेरी शरणमें आ और जो इन्हें त्याग न दे और मेरी शरण न आवै तो मुझसे युद्ध करनेके लिये तैयारी कर ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार मंदबुद्धि पौंड्रकका संदेश सुन, उग्रसेनादि सब सभासद इस बातको असत्य जानकर हँसनेलगे ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर दूतसे कहनेलगे कि, हे मूर्ख ! कृत्रिम सुदर्शनादि चिह्नोंसे तू अपनी ऐसी बडाई करता है, उन चिह्नोंको मैं तुझपरसे छुड़ादूंगा ॥ ८ ॥ हे अज्ञानी ! जिस समय तू अपने मुखको

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ॥ त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥ उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ॥ उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखं तदपिधायाज्ञ कंकगृध्रवटैर्वृतः ॥ शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥ इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ॥ कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥ पौंड्रकोपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ॥ ११ ॥ तस्य काशीपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ॥ अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौंड्रकं हरिः ॥ १२ ॥

ढककर और काक, गृध्र बगलोसे घिरकर तू मरके सोवैगा, उस समय तू कुत्तोंकी शरण लेगा, अर्थात् वह तुझको भक्षण करेंगे ॥ ९ ॥ उस समय जो श्रीकृष्णचन्द्रने अनादर करके कहा, सो उसी प्रकार दूतने अपने स्वामी मिथ्या वासुदेवसे जाकर सब कहा और श्रीकृष्णचन्द्र भी रथमें चढ़कर काशीपुरीको गये क्योंकि, उस समय पौंड्रक भी अपने मित्र काशीनरेशके यहाँ आया था, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँ पहुँचे ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस समय महारथी पौंड्रक भी श्रीकृष्णचन्द्रके युद्धका उद्यम जान, दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर शीघ्रही काशीपुरीसे बाहर निकला ॥ ११ ॥ उस पौंड्रकका मित्र काशीनरेश मित्रकी सहायता करनेके लिये पीछेसे आया, तब तीन अक्षौहिणी सेना संगलिये पौंड्रकको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देखा ॥ १२ ॥

शंख, चक्र, तलवार, गदा, धनुष, भृगुलता आदि चिह्नयुक्त और कौस्तुभमणि धारणकिये वनमालासे देदीप्यमान ॥ १३ ॥ रेशमी पीली धोती, उपरना पहरे गरुडध्वज बड़े मोलका मुकुट और आभूषण पहरे मकराकृत कुण्डलोंसे प्रकाशमान हैं ❋ ॥ १४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरत वंशावतंस परीक्षित! जैसे रंगभूमिमें वेष बनाकर नट आता है, उसी प्रकार अपने समान वेष बनाये, मिथ्यावासुदेवको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँसने लगे, क्योंकि नकलीने ज्योंकी त्यों, नकल उतारी थी ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त शत्रुलोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर त्रिशूल, गदा, बेड़े, बर्छी,

शंखार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ॥ अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ १४॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ॥ यथा नटं रंगगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ॥ असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥ कृष्णस्तु तत्पौंड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यंदनवाजिपत्तिमत् ॥ गदासिचक्रेषुभिरार्दय न्भृशं यथा युगांते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥ १७ ॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुंजरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणाऽवखंडितैः ॥ बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥

गुर्ज, नेजा, तलवार, पटा, बाण, आदि शस्त्र चलानेलगे ॥ १६ ॥ जैसे प्रलयाग्नि जरायुज, स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज इन चार प्रकारके प्राणियोंको पीड़ा देती है, उसी प्रकार भगवान् वासुदेव, मिथ्या वासुदेव और काशी नरेश व उनके हाथी, घोड़े, प्यादे इत्यादि संपूर्ण चतुरंगिणी सेनाको गदा, तलवार, चक्र, बाणादिसे पीडा देनेलगे ॥ १७ ॥ हे महाराज! चक्रसे कटेहुए रथ, घोडे, हाथी और प्यादे जिसमें पड़े, वह भूमि उस समय

❋ शंका—योगियोंको बडे दुःखसे प्राप्त होनेयोग्य जो भगवान् वासुदेवका रूप उस रूपको पौंड्रक नाम राजा क्यों प्राप्त हुआ?
उत्तर—पूर्वजन्ममें पौंड्रकनाम राजा भगवान्का बडा भारी तप करता था, जब भगवान् प्रसन्न होकर वर देनेको आये तब उसने यह वरदान मागा कि, आपका स्वरूप बनानेकी बुद्धि मुझको दीजिये, तथा पृथ्वीमें जन्म धारण करके आपके हाथसे मेरी मृत्यु हो तब भगवान्ने यह वरदान दिया, इसलिये पौंड्रकने भगवान्का रूप बनाया था ॥

भगवान् भूतनाथकी क्रीडाभूमिके समान भयंकर लगनेलगी, जिसको देखकर वीर पुरुषोंके हृदयमें अति आनन्द प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ सेना मारने उपरान्त शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधित होकर पौंड्रकसे कहनेलगे कि रे ! रे ! पापिष्ठ, जो तैंने दूतसे कहलाया था, वह शस्त्र अब तुझपरही छोडता हूँ ॥ १९ ॥ अरे अज्ञानी ! जो तैंने हमारा मिथ्यानाम वासुदेव रखलिया है यह तेरा नाम शीघ्रही छूट जायगा और यदि तेरे सम्मुख युद्ध न करूं तो तेरी शरण लूंगा ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तिरस्कार कर अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले बाणोंसे पौंड्रकका रथ तोड जिस प्रकार देवराज इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतका शिखर काटते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथ्यावासुदेव पौंड्रकका शिर काटडाला ॥ २१ ॥

अथाह पौंड्रकं शौरिर्भोभो पौंड्रक यद्भवान् ॥ दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥ त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाऽज्ञ मृषा धृतम् ॥ व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वाशितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौंड्रकम् ॥ शिरोऽवृश्चद्रथांगेन वज्रेणेंद्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ॥ न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौंड्रकं ससखं हरिः ॥ द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथाऽमृतः ॥ २३ ॥ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबंधनः ॥ बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥२४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुंडलम् ॥ किमिदं कस्य वा वक्रमिति संशयिरे जनाः ॥ २५ ॥ राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबांधवाः ॥ पौराश्च हा हता राजन्नाथनाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥

इसके उपरान्त हे परीक्षित् ! काशीनरेशका बाणोंसे शिर उखाड काशीपुरीमें ऐसे पटक दिया कि, जिस प्रकार कमलकोशको पवन पटक देता है ॥ २२ ॥ इसप्रकार मित्रसहित मिथ्यावासुदेवको मार सिद्धोंसे गाईहुई अपनी कीर्त्तिको श्रवण करतेहुए भगवान् वासुदेव द्वारकापुरीमें आये ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सदा भगवान्का ध्यान करनेके कारण कटगये हैं सब बंधन जिसके, ऐसा वह मिथ्या वासुदेव पौंड्रक श्रीकृष्णचन्द्रका रूप धारण किये तद्रूप होगया ॥ २४ ॥ हे महाराज ! काशीके राजद्वारपर कुण्डलोंसहित पड़े शिरको देखकर " यह क्या है ? किसका शिर है ? " इस प्रकार मनुष्य सन्देह करनेलगे ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलकी शोभा ! पीछे काशीपुरीके राजाका शिर जानकर

रानी, पुत्र, भाई और पुरवासी, हे नाथ ! हे नाथ ! हम मरे, इस प्रकार कह रोदन करने लगे. इसपर एक दृष्टान्त है * ॥ २६ ॥ काशीनरेशका सुदक्षिण नाम पुत्र अपने पिताके मरनेसे अत्यन्त शोकाकुल हो पिताके मारनेवाले कृष्णको मारकर पिताका ऋण चुकाऊँगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके उपाध्यायोंसहित सुदक्षिण परमसमाधि लगाकर भगवान् महादेवजीका पूजन करनेलगा ॥ २८ ॥ विशेष करके

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ॥ निहत्य पितृहंतारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥ इत्यात्मनाऽभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ॥ सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥ २८ ॥ प्रीतो विमुक्तो भगवांस्तस्मै वरमदाद्भवः ॥ पितृहंतृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ॥ अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यति संकल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ॥ इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ ३१ ॥

मुक्त भगवान् भूतेश्वर प्रसन्न होकर सुदक्षिणसे " वर माँग " इस प्रकार कहने लगे, तब सुदक्षिणने " पिताके मारनेवालेके मारनेका उपाय बताओ " यह वर माँगा ॥ २९ ॥ तब भगवान् भोलानाथ बोले कि, तू ब्राह्मणोंके संग ऋत्विक्के समान आज्ञाकारी दक्षिणाग्निका मारणकी विधिसे पूजन कर, वह अग्नि प्रमथोंके साथ तेरे सब मनोरथोंको पूर्ण करेगी ॥ ३० ॥ परन्तु यह प्रयोग ब्राह्मणकी भक्तिसे रहित पुरुषपर चला

* दृष्टान्त–एक बनियेने देखा देखी अपनी डंडी तोलनी छोड दी और चोरोंके साथ रह कमर बाँध चोरी करनेलगा, अपने मनमें विचार किया कि, भला रोजगार है, घडीभरमेंही हजारोंका माल मिलजाताहै सो कहीं किसी चोरोंके संग कुमल दे भीतर घुसे तो जाग होगई राजाके सिपाही दौडपडे, सो वह चोर तो सगके सब रफू चक्कर होगये, परन्तु इस बनियेसे न भागागया तब निकटही एक तालावमें तलवार ढाल वह बनियाँ जलमें घुसा अब सिपाहियोंको चोर तो मिले नहीं और प्यास लगी तो वह तालावके निकट आये, सो वहाँ लालाको देखकर पकडा कि, तुम यहाँ कैसे आये? बनियाँ बोला कि, महाराज ! मैं शौचके लिये यहाँ आया था सो चोरोंको देख डरकेमारे तालावमें घुसगया फिर आपसे डरा कि कहीं चोर जानकर मुझे भी न पकडलें और चोरोंको मैंने पहँचान लिया है, जिनके नाम भी आपको बतलाताहूं, परसा, सेहू, रामसहा, फकीरा, ऊधा, लल्ला, बाँके, शकर, सिपाहीलाल, ज्ञानी, बाबू, मुन्नासिंह, चोखे, गौरी, और मक्खन इत्यादि पचास आदमियोंके नाम लिखवाकर सबको पकडवादिया और भी अब बनियेपर गगाराम घूमें इसलिये अपना काम छोडकर पराया काम नहीं करना चाहिये देखो पराया काम करनेसे पौंड्रक मारागया ॥

वेगा, तो तेरा संकल्प सिद्ध होगा, अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रपर चलावेगा तो उलटा पड़ेगा, क्योंकि वह तो ब्राह्मणोंके सेवा करनेवाले और उनके अत्यन्त प्रिय हैं, इसप्रकार आज्ञा पाय, नेम ग्रहण कर सुदक्षिण श्रीकृष्णकी घात और उनके मारनेके लिये जैसे शिवजीने आज्ञा दी थी उसी प्रकार करने लगा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! तब कुण्डमेंसे अत्यन्त भयानक मूर्त्तिमान् अग्नि निकला, जिसकी तप्तता ताम्रके समान शिखा और दाढी मूछें थीं, नेत्र और मुखसे अंगारे उगलता था ॥ ३२ ॥ जिसका मुख, दाढ़ और बड़ी तीक्ष्ण भ्रुकुटी दंडसे विकराल हैं, इसप्रकार अपनी जीभसे होठोंको चाटता नग्न और देदीप्यमान त्रिशूलको घुमाता ॥ ३३ ॥ बड़े तालके समान लम्बे पाँवोंसे पृथ्वीको कम्पायमान और दशों दिशाओंको

ततोऽग्निरुत्थितः कुंडान्मूर्तिमानतिभीषणः ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरंगारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदंडकठोरास्यः स्वजिह्वया ॥ आलिहन्सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन् ॥ ३३ ॥ पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कंपयन्नवनीतलम् ॥ सोऽभ्यधावद् वृतोभूतैर्द्वारकां प्रदहन्दिशः ॥ ३४ ॥ तमाभिचारदहनमायांतं द्वारकौकसः ॥ विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५ ॥ अक्षैः सभायां क्रीडंतं भगवंतं भयातुराः ॥ त्राहित्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ॥ शरण्यः संप्रहस्याह मा भैष्टेत्यविताऽस्म्यहम् ॥ ३७ ॥ सर्वस्यांतर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ॥ विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८ ॥

जलाता, भूत प्रेतोंको संग लिये वह अग्नि द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥ ३४ ॥ वनके जलनेसे मृग जैसा त्रास पातेहैं, ऐसी कृत्याग्निको देखकर उसी प्रकार सब द्वारकावासी लोग त्रास पानेलगे ॥ ३५ ॥ और वह सब भयभीत हो सभामें पाँसोंसे खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कहनेलगे कि, हे त्रिलोकीनाथ ! अग्निसे सब पुरी भस्म हुई जाती है, इसकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ मनुष्योंकी अधिक व्याकुलता सुन और अपने पुरवासियोंकी घबराहट देखकर, शरणागतोंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर "भय मत करो में रक्षा करूंगा" इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३७ ॥ सबके भीतर बाहरके देखनेवाले सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे श्रीमहादेवजीकी कृत्याग्नि जान उसका नाश करनेके लिये समीपही खडेहुये चक्रसे

आज्ञा करने लगे ॥ ३८ ॥ करोड सूर्यके समान तेजस्वी प्रलयकालके, अग्निकी तुल्य कान्तिमान् अपने तेजसे आकाश, दिशा, स्वर्ग और पृथ्वी को प्रकाशमान करता भगवान्का अस्त्र सुदर्शनचक्र उस अग्निको पीडा देनेलगा ॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्णचन्द्रके अस्त्रके तेजसे प्रतिहत और भग्नमुख होकर वह अग्नि पीछेको लौटगई और काशीमें आकर यज्ञ करानेवाले ऋत्विजोसहित सुदक्षिणको जलानेलगी, क्योंकि अपना किया अभिचार है, इसका यही स्वभाव है कि, जो शत्रुपर चलजाय तो चलजाय, नहीं तो जो चलावै उसको भस्म करै, सो सुदक्षिणको क्षणमात्रमें भस्म करदिया ॥ ४० ॥ उस अग्निके पीछे पीछे आय श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रने मंचान सहित सभा, हवेली, दूकान, पुरके दरवाजे और खजाने

तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ॥ स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुंदास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥ ३९ ॥ कृत्यानलः प्रतिहतः स रथांगपाणेरस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ॥ वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥ ४० ॥ चक्रं च विष्णोस्तदनु प्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ॥ सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥ ४१ ॥ दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥ य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥ समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे पौंड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सहित अटारी, कोठे, घोडे, अन्न इनकी शालावाली काशी पुरीको क्षणमात्रमें भस्म करदिया ॥ ४१ ॥ सरलकर्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सुदर्शनचक्र संपूर्ण काशीको भस्म कर फिर निकट आनकर खड़ा होगया ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह पराक्रम जो मनुष्य सावधान होकर श्रवण करतेहैं अथवा औरको श्रवण करातेहैं वह संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां पौंड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दोहा—सरसठमें बलरामजी, रैवत गिरिपर जाय। नारिन सँग क्रीड़ा करत, हनो द्विविद कपिराय ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! अद्भुतकर्मा अनन्त अप्रमेय बलदेवजीने जो जो चरित्र किये उनके सुननेकी फिर मेरी अभिलाषा है, सो कृपाकरके मेरे सन्मुख वर्णन कीजिये॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! नरकासुरका मित्र सुग्रीवका मंत्री और मयंदका भ्राता बडा पराक्रमी कोई वानर द्विविद नामसे प्रसिद्ध था ❀ ॥ २ ॥ सो अपने मित्र नरकासुरका ऋण चुकानेके लिये इस बंदरने पुर, ग्राम, खानि, खिरक, छपरोंका और देशोंका नाश

राजोवाच ॥ ॥ भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ॥ सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥ सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ॥ पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥ क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् ॥ आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४ ॥ क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ॥ देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ॥ अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः ॥ ६ ॥

करदिया ॥ ३ ॥ कभी यह बन्दर पर्वतोंको उठाय, उनसे देशोंका चकनाचूर कर देता और विशेष करके आनर्त्तदेशोंको महाकष्ट देनेलगा, क्योंकि नरकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्ण वहीं विराजते थे ॥ ४ ॥ दशहजार हाथीके बलवाला द्विविद बन्दर समुद्रके बीचमें खडा होकर भुजाओंसे जलको उछालता समुद्रके तटपर जो देश थे, उनको डुबोने लगा ॥ ५ ॥ वह दुष्ट वानर बड़े बडे ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वृक्षोंको

* शंका—द्विविद नाम वानर श्रीकृष्णका बडा प्यारा था, तब सब वानर तो त्रेतामें स्वर्गको चलेगये द्विविदको श्रीराघवजी स्वर्गको क्यों नहीं लेगये ?

उत्तर—रामचन्द्र और रावणका युद्ध होता था, उस समय अर्द्धरात्रि थी द्विविद नाम वानरने रामचन्द्रसे बूझा भी नहीं अपनी सेना लेके रावणके मन्दिरमें घुसगया और बहुतसी रावणकी रानियोंको पकड कर नगी कर दिया और मारा भी, कुछ देर पीछे श्रीमर्यादापुरुषोत्तम जो श्रीरघुनाथजी थे उनको यह खोटा कर्म द्विविदने किया ऐसा जानपडा, तब उसी समय श्रीरघुनाथजीने अपनी सेनासे उसको निकाल दिया द्विविदने पीछेसे अपने मोक्ष होनेके लिये श्रीरघुनाथजीकी विनय की, तब रामचन्द्रजीने कहा द्वापरमें तेरी मुक्ति होगी हे दुष्ट! आजसे हम तेरा मुख नहीं देखेंगे परन्तु शेषजी तुझको द्वापरमें मारेंगे तब तेरी मोक्ष होगी इसलिये द्विविदको बलदेवजीने मारा और त्रेतामें स्वर्गको नहीं गया॥

तोड़, मल, मूत्र करके यज्ञकी अग्निको दूषित करनेलगा ॥ ६ ॥ महाघमण्डी वह बन्दर स्त्री और पुरुषोंको पकड़ पकड़कर पर्वतोंकी गुफा व कंदराओमें रखकर जैसे भ्रमरी कीडेको मूंद देती है उसी प्रकार मूंद देता था ॥ ७ ॥ इस प्रकार वह बंदर देशोंमें उपद्रव करता और कुलकी स्त्रियोंको दोष लगाय, मनोहर गीत सुनकर रैवत नाम पर्वतपर चला गया ॥ ८ ॥ वहाँ जाकर यादवोंके पालन करनेवाले, कमलकी माला धारण किये, सुन्दर अंग स्त्रियोंके बीचमें बैठे बलरामजीको देखा ॥ ९ ॥ वारुणी मदिरा पीकर गान करते, मदसे विह्वल नेत्र मतवाले हाथियोंके समान शरीरसे प्रकाशमान ॥ १० ॥ दुष्ट शाखामृग बन्दर वृक्षोकी शाखाओंपर चढकर उनको हिलाताहुवा आपेको दिखाकर किचिरशब्द करने

पुरुषान्योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ॥ निःक्षिप्य चाप्यधाच्छलैः पेशकारीव कीटकम् ॥ ७ ॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ॥ श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ॥ सुदर्शनीयसर्वांगं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायंतं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ॥ विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ १० ॥ दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कंपयन्द्रुमान् ॥ चक्रे किल किलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्य धाष्टर्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ॥ हास्यप्रिया विजहसुर्बल देवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥ ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः संमुखादिभिः ॥ दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥ १३ ॥ तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ॥ स वंचयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन् ॥ निर्भिद्य कलशं धृष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ॥ १५ ॥

लगा ॥ ११ ॥ उस बन्दरकी धृष्टता देख, स्वभावसे चंचल जो हास्यप्रिय श्रीबलदेवजीके संगकी स्त्रियें भी हँसनेलगीं ॥ १२ ॥ वह बन्दर भ्रुकुटी चढ़ाकर सामने ही घुडककर स्त्रियोंको अपनी गुदा दिखलाय बलदेवजीके देखतेही स्त्रियोंकी अवज्ञा करने लगा ॥ १३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने क्रोधित होकर उस बन्दरको पत्थर मारा परन्तु वह धूर्त बन्दर पत्थरको बचाय, मदिराके कलशको फोड ॥ १४ ॥ उसे लेकर हँसकर बलदेवजीको क्रोध उत्पन्न कराय अवज्ञा करने लगा, इसके पीछे वह धृष्ट बन्दर मदिराके कलशको फोड स्त्रियोके वस्त्रोंको

खैंचकर फाडनेलगा ॥ १५ ॥ बडा बलवान् मदसे उद्धत बन्दर बलदेवजीकीभी कदर्थना करके दुःख देनेलगा ॥ उस बन्दरकी अनम्रता देख और उसके किये देशोंमें उपद्रव देख अत्यन्त क्रोधित हो बलदेवजीने उस वैरीके मारनेके लिये अपने हाथमें हल, मूसल ग्रहण किया ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उस बडे पराक्रमी बंदरने भी हाथसे शालवृक्षको उखाड और शीघ्रतासे निकट आय उस वृक्षकी चोट भगवान् बलरामजीके माथेमें मारी ॥ १७ ॥ पर्वतके समान माथेपर पडतेहुए शालवृक्षको भगवान् बलरामजीने बलपूर्वक पकड लिया, और अपने मूसलको घुमाकर उस बन्दरको मारा ॥ १८ ॥ मूसलसे बन्दरका शिर फूटगया, तब जलप्रवाहके समान रुधिरकी धारा बहने लगी, जिससे वह गेरू निकलतेपर्वतके

कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥ क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥ १६ ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥ अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥ तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतंतमचलो यथा ॥ प्रतिजग्राह भगवान्सुनंदेनाहनच्च तम् ॥ १८ ॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥ गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिंतयन् ॥ १९ ॥ पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥ तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाऽच्छिनत ॥ २० ॥ ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत ॥ एवं युध्यन्भगवता भग्नेभग्ने पुनःपुनः ॥ २१ ॥ आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ ततोऽमुंचच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ॥ तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥ २२ ॥

समान शोभायमान होनेलगा और उस प्रहारको कुछ न विचारकर उस बन्दरने ॥ १९ ॥ अत्यन्त क्रोधसे फिर बलपूर्वक और वृक्षको उखाड उसके सब पत्तोंको छुडाकर बलदेवजीको मारा, बलदेवजीने उसी समय उस वृक्षके टुकडे टुकडे कर दिये इसके उपरान्त इस बंदरने और वृक्षको उखाड महावीर्यवान् बलदेवजीके ऊपर प्रहार किया, परन्तु बलदेवजीने उसके भी सौ खण्ड कर दिये इसप्रकार भगवान् बलदेवजीके साथ युद्ध करके बारम्बार जब वृक्ष कटगये तब यह चारोंओरसे वृक्षोको उखाडकर निर्वृक्ष वन करनेलगा ॥ २० ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त असहनतासे वह बन्दर महात्मा बलदेवजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करनेलगा, तब मूसलधारी बलदेवजीने लीलापूर्वकही बन्दरके वर्षाये पत्थरोंको चूर्ण करदिया ॥ २२ ॥

बन्दरोंके स्वामी इस बन्दरने तालवृक्षके समान बड़ी भुजाओंकी मुट्ठी बाँध, रोहिणीके पुत्र बलरामजीके पास जाकर उनकी छातीमें एक घूँसा मारा ॥२३॥ हे राजन्! यादवोंके इन्द्र बलरामजी भी हल मूसलको छोड और अत्यन्त क्रोधित होकर भुजाओंसे उसके कंठको मर्दन करनेलगे, उससमय वह बन्दर रुधिरको वमन करताहुआ पृथ्वीमें गिरकर मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ २४ ॥ हे कुरुशार्दूल! जिससमय वह बन्दर गिरा तब जैसे जलमें नाव काँपती है, उसीप्रकार टंक और वृक्षोसहित वह पर्वत काँपने लगा ॥ २५ ॥ आकाशमार्गमें देवता, सिद्ध, मुनीश्वर फूलोंकी वर्षा कर जय शब्द और नमःशब्द और भले भले शब्द करने लगे ॥ २६ ॥ इसप्रकार जगत्के नाश करनेवाले बन्दरको मार और जनोंसे स्तुतिको

स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ॥ आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २३ ॥ यादवेंद्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललांगले ॥ जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २४ ॥ चकंपे तेन पतता सटंकः सवनस्पतिः ॥ पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवांभसि ॥ २५ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुसाध्विति चांबरे ॥ सुरसिद्ध मुनींद्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २६ ॥ एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥ संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोध्यायः ॥ ६७ ॥
॥ श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतां राजँल्लक्ष्मणां समितिंजयः ॥ स्वयंवरस्थामहरत्सांबो जांबवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ॥ कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥

प्राप्त होकर ऐसे भगवान् बलदेवजी अपनी पुरी द्वारकामें आये ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे भाषाटीकायां द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ दोहा—अरसठमाहीं साम्बको, कौरव कीन्हो बन्द ॥ हलधर गजपुर उलटकर, लाये सुत निरद्वन्द ॥ ६८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! युद्धमें जीतनेवाला जाम्बवतीका पुत्र साम्ब दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको जब स्वयंवरमेंसे हरलाया उससमय सम्पूर्ण कौरव क्रोधित होकर कहनेलगे कि, यह बालक बडा अनम्र है, क्योकि हमारा अनादर करके इच्छा न

करती हमारी कन्याको बलात्कार हरण किया ॥ १ ॥ २ ॥ इसलिये इस अनम्र बालकको पकडकर बाँधलो, यादव हमारा क्या करैंगे, क्योंकि वह तो हमारीही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुएहैं और हमारी ही दीहुई पृथ्वीका भोग करतेहैं ॥ ३ ॥ यदि इस बालकको बँधा सुनकर जो यहां यादव आवेंगे, तो जैसे प्राणायाम करनेपर इन्द्रियें शान्त होजाती हैं,उसीप्रकार गर्वभंजन होनेपर शान्तिको प्राप्त होवेंगे ॥ ४ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार भीष्मजीकी संमतिसे कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन यह बाँधनेका उपाय करनेलगे ॥ ५ ॥ महारथी साम्ब पीछे आते छः धृतराष्ट्रके अनुयायिओंको देखकर सुन्दर धनुष हाथमें ले सिंहके समान अकेलाही खड़ाहुआ ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त कर्णादि धनुषधारी वीर क्रोधमें भर

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यंति वृष्णयः ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुंजते महीम् ॥ ३ ॥ निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यंतीह वृष्णयः ॥ भग्नदर्पाः शमं यांति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥ इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ॥ सांबमारेभिरे बद्धं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वानुधावतः सांबो धार्तराष्ट्रान्महारथः ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥ तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठतिष्ठेतिभाषिणः ॥ आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥ सोऽपाविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनंदनः ॥ नामृष्यत्तदचिंत्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥ विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ॥ कर्णादीन्षड्रथान्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ॥ रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥

साम्बको पकडनेके लिये " खड़ा रहु, खडा रहु" इसप्रकार कहतेहुए निकट आकर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ७ ॥ हे कुरुकुलभूष यदुवंशियोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र साम्बको जब कौरवोंने बाण मारे तब वह, क्षुद्र पशुओंके पराक्रमको सिंह जैसे सहन नहीं करता है उसी प्रकार साम्ब उनका बल नहीं सहसके ॥ ८ ॥ इसके पीछे वीर साम्बने मनोहर धनुष चढ़ाकर कर्णादिक छः वीरोको, छः बाणोसे एक संग बींधड़ाला ॥ ९ ॥ चार बाणोंसे रथके चारों घोडोंको और एक बाणसे रथवानको बींध डाला, तब बड़े बडे धनुषधारी छः रथी

साम्बके पराक्रमकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १० ॥ उन कौरवोंमेंसे चार जने तो साम्बके चारों घोड़ोंको और एक जनेने रथवान्‌को मारा, एकने धनुषको तोड़दिया इस प्रकार मिलकर साम्बको विरथ करने लगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित् ! कौरववीर युद्धमें बालक साम्बको विरथ कर उन्हें बाँध, जीतके अपनी कन्या ले अपने पुरमें चले गये ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! देवर्षि नारदजीके मुखसे साम्बको बँधा सुन यादव अत्यन्त क्रोधित हो; राजा उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे लडनेका उद्यम करने लगे ॥ १३ ॥ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाले बलदेवजी, कौरव और यादवोका विरोध न हो, यह विचार कवच पहर, हथियार बाँध, यादवोंको समझाय ॥ १४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान रथमें बैठ, ब्राह्मण

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ॥ एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ॥ कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजात मन्यवः ॥ कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥ सांत्वयित्वा तु तान्रामः सन्नद्धान्वृष्णिपुंगवान् ॥ नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ १४ ॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चंद्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥ गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ॥ उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवंद्यांबिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ॥ दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७ ॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ॥ तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मंगलपाणयः ॥ १८ ॥

और कुलवृद्ध पुरुषोंको संग लेकर, जैसे ग्रहों सहित चन्द्रमा जाताहै, उसी प्रकार हस्तिनापुरको चले गये ॥ १५ ॥ हे महाराज ! महाबलवान् बलरामजीने हस्तिनापुरमें पहुँच और पुरके बाहर बगीचेमें ठहरकर कौरवोंका अभिप्राय जाननेके लिये धृतराष्ट्रके पास उद्धवजीको भेजा ॥ १६ ॥ उद्धवजीने अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको प्रणाम कर भीष्मजी और बाह्लीकसहित द्रोणाचार्य व दुर्योधनको विधिपूर्वक प्रणाम करके " बलदेवजी आये हैं " यह कहा ॥ १७ ॥ अत्यन्त हितकारी बलरामजीको आयाहुआ सुन सब कौरव अतिप्रसन्न हो उद्धवजीका पूजनकर और भेंट हाथमें लेले भगवान् बलरामजीके सन्मुख गये ॥ १८ ॥

और संपूर्ण कौरवोंने यथायोग्य बलदेवजीसे मिलकर गौ और धन दिया और उन कौरवोंमें बलरामजीके प्रभावको जाननेवाले इन्हें शिर नवा कर प्रणाम करनेलगे ॥ १९ ॥ समस्त बंधुबांधवोंकी कुशल श्रवणकर, परस्पर कुशल क्षेम पूँछ, इसके पीछे जिसके सुननेसे व्याकुलता उत्पन्न हो, ऐसा वचन बलरामजी कहनेलगे ॥ २० ॥ बलरामजीने कहा कि, सामर्थ्यवान् पृथ्वीके ईश्वर राजा उग्रसेनने जो तुम्हें आज्ञा की है, उसे एकाग्रचित्तसे श्रवणकर शीघ्र उसका पालन करो ॥२१॥ राजा उग्रसेनने यह कहा है कि, तुम बहुत जनोंने जो अधर्म कर उस धर्मात्मा बालकको बाँधलिया है, यह तुम्हारा अपराध, भाइयोंकी परस्पर एकता रहै, विरोध न हो, इसलिये हमने सहन करलिया अब तुम शीघ्र साम्बको लाकर

तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यदेवयन् ॥ तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥ १९ ॥ बंधून्कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ॥ परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥ २० ॥ उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः ॥ तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलंबितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ॥ अबध्नीताथ तन्मृष्ये बंधूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥ वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ॥ कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥ अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ॥ आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥ एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः ॥ वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥ २५ ॥ चामरव्यजने शंखमातपत्रं च पाण्डुरम् ॥ किरीटमासनं शय्यां भुंजंत्यस्मदुपेक्षया ॥ २६ ॥

हमको अर्पण करो ॥ २२ ॥ इसप्रकार पराक्रम, शूरता, बलयुक्त और अपने सामर्थ्यके समान बलरामजीके वचन सुन अत्यन्त कुपित होकर कौरव कहनेलगे ॥ २३ ॥ कि अहो ! बड़े आश्चर्यकी बात है, देखो ! कालकी गति बडी दुरत्यय है जो मुकुटके सेवाकरने योग्य मस्तकपर जूती अपना अधिकार करना चाहती है ॥ २४ ॥ इनके यहाँसे जबसे पृथाको व्याह कर लाये तबसेही यादवोंसे संबन्ध हुआ और हमनेही पलँगपर सुवा, संगबिठा, संग भोजन करा, राज्यसिंहासन दे यादवोंको अपने समान करलिया है ॥ २५ ॥ चमर, पंखा, श्वेतछत्र, किरीट, आसन और

शय्या इत्यादि हमारी दीहुई वस्तु यादवलोग भोग करते हैं जैसे कोई ॥ २६ ॥ सर्पोको दूध पिलाता है और वह पिलानेवालेकोही काटता है, उसी प्रकार इन्होने हमारे साथ वर्त्ताव किया, ऐसे यादव राज्यकी वस्तु छत्र, चामरादिकसे परिपूर्ण हो और हमारीही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुये, अब हमकोही आज्ञा करते हैं, बड़े कष्टकी बात है कि, इन्हें लाज न आई, इसलिये यादव बड़े निर्लज्ज हैं ॥ २७ ॥ भीष्म, द्रोण और अर्जुन आदि कौरवोकी न दीहुई वस्तु क्या इन्द्र भी लेसक्ता है ? कभी नहीं, जिस प्रकार सिंहकी वस्तु उसके दिये विना भेड़ नहीं ग्रहण कर सक्ती ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित ! इस प्रकार जन्म बन्धु और लक्ष्मीसे मदोन्मत्त वह असभ्य कौरव बलरामजीसे दुर्वचन कह

अलं यदूनां नरदेवलांछनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयंत्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७ ॥ कथमिंद्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ॥ अदत्तमवरुंधीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जन्मबंधुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ॥ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः ॥ अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ३० ॥ नूनं नानामदोन्नद्धाः शांतिं नेच्छंत्यसाधवः ॥ तेषां हि प्रशमो दंडः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥ अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः ॥ सांत्वयित्वाऽहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥

कर हस्तिनापुरको चलेगये ॥ २९ ॥ कौरवोंकी दुष्टता देख और न कहने योग्य वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो, देखनेमें न आवें इस प्रकार बलदेवजी वारंवार हँसकर कहनेलगे ॥ ३० ॥ कि, अनेकप्रकारके मदसे मर्यादारहित असाधु कौरव निश्चयही शान्ति नहीं चाहते, पशु जैसे लाठीसेही शान्त होते हैं, उसी प्रकार दुष्टोंके शान्ति करनेका उपाय दण्डही है ॥ ३१ ॥ अत्यन्त क्रोधी यादवोंको धीरे धीरे समझाकर और क्रोधमें भरे श्रीकृष्णको संमझाकर इन कौरवोंका मिलाप करानेके लिये मैं यहाँ आयाहूँ ॥ ३२ ॥

और यह मंदबुद्धि, कलहप्रिय, दुष्ट अभिमानी कौरवोंने मेरा अपमान करके और मुझे निन्दित वचन कहे ॥ ३३ ॥ भोज, वृष्णि, अंधक कुलके ईश्वर, उग्रसेनकी आज्ञाको इन्द्रादि बडे बडे लोकपाल भी मानतेहैं सो क्या वह कौरवोंको आज्ञा करनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रने देवराज इन्द्रकी सभाको पाँवोंसे खूँद और देवताओंका कल्पवृक्ष लाकर अपने महलके बगीचेमें लगाया, वह क्या समर्थ नहीं हैं ? ॥ ३५ ॥ संपूर्ण जगत्की ईश्वरी लक्ष्मी साक्षात् जिनके चरणारविन्दोंका सेवन करें वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र क्या राजाओंकी वस्तुके योग्य नहीं हैं ॥ ३६ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंकी रज, सब लोकोंका पालन करनेवाले ब्रह्मादिक अपने मुकुटयुक्त माथेपर धारण करतेहैं और जो गंगा

त इमे मंदमतयः कलहाभिरताः खलाः ॥ तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किल विभुर्भो जवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥ सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमरांघ्रिपः ॥ आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ॥ स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्यांघ्रिपंकजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ॥ ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ ३७ ॥ भुंजते कुरुभिर्दत्तं भूखंडं वृष्णयः किल ॥ उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ३८ ॥ अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ॥ असंबद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥ ३९ ॥ अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ॥ गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥

तीर्थोंको पवित्र करनेवाली हैं; जिनके अंशके अंश ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी और हम संपूर्ण बहुत दिनोंतक चरणारविन्दकी रजको माथे पर धारण करते हैं उन श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख राजसिंहासन क्या पदार्थ है ? ॥ ३७ ॥ कौरवोंने पृथ्वीके खण्ड कर दिये हैं उसका यादव भोग करते हैं और हम पाँवकी जूती और कौरव शिर ठहरे ॥ ३८ ॥ अहो ! ऐश्वर्यसे मतवालोंके समान अभिमानी कौरवोंके कर्कश टेढ़े वचनोंको सुनकर दण्डका देनेवाला कौन पुरुष सह सकेगा ? ॥ ३९ ॥ इसलिये अब कौरवोंसे रहित पृथ्वी करूंगा; इसप्रकार भगवान्

बलदेवजी मनमें निश्चयकर हल हाथमें ले/ नो त्रिलोकीको भस्म करदेंगे, ऐसे अत्यन्त क्रोधित हो खडे होगये ॥ ४० ॥ असहनतासे बलदेवजीने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको उखाडकर नाश करनेके लिये गंगाजीकी ओर खैंचा * ॥ ४१ ॥ नौकाके समान भ्रमण करते गंगाजीमें गिरते नगरको देख अत्यन्त भ्रमित हो, कौरव लक्ष्मणासहित साम्बको आगे कर, हाथ जोड कुटुम्बसहित जीवनकी इच्छा करके सामर्थ्यवान् भगवान्

लांगलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ॥ विचकर्ष स गंगायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गंगायां नगरं पतत् ॥ आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः ॥ ४२ ॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुंबा जिजीषवः ॥ सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य सांबं प्रांजलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ॥ मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षंतुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ॥ लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदंति हि ॥ ४५ ॥ त्वमेव मूर्ध्नीदमनंत लीलया भूमंडलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ॥ अंते च यः स्वात्मनि रुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥

बलरामजीकी शरण आये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और आनकर कहने लगे कि, हे राम ! हे राम ! हे सबके आश्रय ! हम तुम्हारा प्रभाव नहीं जानते थे, इसलिये हमारे ऊपर तुम क्षमा करनेयोग्य हो ॥ ४४ ॥ स्थिति, उत्पत्ति और नाश इनके तुम निराश्रय कारण हो, हे ईश ! यह लोक तुम्हारी लीला करनेका खिलौना है ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! हे सहस्रमूर्द्धन् ! तुम इस भूमंडलको लीलापूर्वकही मस्तकपर धारण करते हो और

* शंका–हस्तिनापुरमें अनेक प्रकारके प्राणी तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, साधु, सन्यासी, गाय, पशु और अनेक जातिके पशु पक्षी बसते थे, ऐसे हस्तिनापुरको जलमें डुबोनेके लिये बलदेवजी उपस्थित हुए इस पापसे नहीं डरे कि, हस्तिनापुर को जलमें डुबोवेंगे तो असंख्य जीवोंकी हत्या होगी यह विचार क्यों नहीं किया ? अकेले कौरवोंको डुबोनेकी क्यों नहीं इच्छा की सब पुरवासियोंने क्या अपराध किया था अपराध तो कौरवोंने किया था ?

उत्तर–कौरवोंने उग्रसेनकी और यदुवंशियोंकी निन्दा करी, तब बलदेवजी अपने बडोंकी और सब कुलकी निन्दा सुनके बडे क्रोधित हुये उसी क्रोधसे व्याकुल होकर जीवोंकी हत्याको भूलगये ॥

अंतसमय सब विश्वको उदरमें धरकर शेषशय्यापर शयन करते हो, इसलिये आप अद्वितीय ब्रह्म हो ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! सतोगुणी तुम्हारा क्रोध सबकी शिक्षा देनेके लिये है, कुछ द्वेष और मत्सरता नहीं है, हे राम! विश्वकी स्थिति और पालन करना कोपका तात्पर्य है ॥ ४७॥ हे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा ! हे सम्पूर्ण शक्तिके धारण करनेवाले ! आपको नमस्कार है, हे विश्वके धारण करनेवाले, हम आपकी शरण आये हैं ॥ ४८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम! उद्वेगयुक्त शरण आये कौरवोंने कि, जिनका नगर कम्पित हो रहा था, जब इस प्रकारसे भगवान् बलदेवजीको प्रसन्न किया, तब बलरामजीने प्रसन्न होकर उनको, "भय मत करो" यह अभय दान दिया ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त दुर्योधनने अपनी कन्याके

कोपस्तेखिऽलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ॥ बिभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय ॥ विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ॥ प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः पारिबर्हं कुंजरान्षष्टिहायनान् ॥ ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरंगमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ॥ दासीनां निष्ककंठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनंदितः ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बधूननुरक्तचेतसः ॥ शशंस सर्वं यदुपुंगवानां मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ॥ समुन्नतं दक्षिणतो गंगायामनु दृश्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे हस्तिनपुरकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

दहेजमें साठ साठ वर्षकी अवस्थाके बारह सहस्र हाथी और बारह हजार घोड़े दिये ॥ ५० ॥ हे राजन् ! सुवर्णके साजसे शोभायमान, सूर्यके समान चमचमाहट ऐसे छः हजार रथ दिये और पुत्रीपर प्यार अधिक होनेके कारण दुर्योधनने धुकधुकी कंठमें पहरे हजार दासी दीं ॥ ५१ ॥ यादवश्रेष्ठ बलदेवजीने सम्पूर्ण दहेज ग्रहणकर और बेटा बहूको संग ले, कौरवोंका अभिवादन ग्रहणकर वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ५२ ॥ हे नृप ! सम्पूर्ण कौरवोसे बिदा हो हलधारी बलदेवजी अपने पुरमें आय, स्नेह भरे चित्तसे, सब बन्धु बांधवोंसे मिल उत्तम यादवोंकी सभामें बैठ कौरवोने जो जो बातें की थीं, सो सो सब कहने लगे ॥ ५३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसकारण अबतक हस्तिनापुर, बलरामजीके

पराक्रमको सूचना कराता, दक्षिण दिशाकी ओरसे गंगाजीमें झुका दिखाई देताहै ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे भाषाटीकायां संकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोध्यायः ॥६८॥ दोहा—उनहत्तरवें देखकर, घर घर कृष्णविहार ॥ अति विस्मित भये देवऋषि, पुनि सब मिटो विकार ॥ ६९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! नरकासुरका वधकर अकेले भगवान्ने बहुत स्त्रियोंके साथ विवाह किया यह बात सुन देखनेकी इच्छासे देवर्षि नारद द्वारकापुरीमें आये * ॥ १ ॥ नारदजी विचार करनेलगे कि, बडे आश्चर्यकी बात है, एक

श्रीशुक उवाच ॥ नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ॥ कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥ चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ॥ गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥ इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ॥ पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥ उत्फुल्लेंदीवरांभोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥

देहसे एक संग, अलग घरोंमें सोलह सहस्र स्त्रियोंका श्रीकृष्णचन्द्रने एकही साथ पाणिग्रहण किया ॥ २ ॥ इसप्रकार उत्कंठासे नारदजी द्वारकापुरीमें आये, जिस द्वारकापुरीमें फूली फुलवारी और बागमे पक्षी तथा भौरोंके झुण्ड गुंजार रहे थे ॥ ३ ॥ फूलेहुए इंदीवर, अंभोज, कह्लार, कुमुद और उत्पलोंसे सरोवर व्याप्त थे उनमें उच्चस्वरसे हंस सारस बोलते थे, उनका शोर होरहा था ॥ ४ ॥

---

* शंका—मुनीश्वर नारदकी बुद्धि क्यों भ्रष्ट होगई ! त्रिलोकीनाथको षोडश सहस्र १६००० स्त्रियोंके सग क्रीडा सुनके आश्चर्यमानना विना प्रयोजन दुःखी होना यह काम साधुलोगोंका नहीं है, यह काम तो मूर्खोंका है, जो कोई कहै कि, नारदको माया ग्रसित कररहीहै, तो यह बात वृथा है, माया तो वारम्वार ग्रसित नहीं करती है, वारम्वार पाप ग्रसित करता है ॥

उत्तर—जो कोई प्राणी भूलकर थोडासा भी पाप करलेता है, फिर वह पाप करनेसे नहीं डरता ऐसेही बहुतसे जीवोंको विना विचार किये नारदने शाप दिया इसीप्रकार बहुतसे जीवोंको नारदने शाप देकर दु.ख दिया, उन पापोंसे भक्तवत्सल श्रीकृष्ण उन भगवान्में दुष्टबुद्धि करने लगे, पापसे सम्पूर्ण मूर्ख होगये ॥

स्फटिकमणि और महामणियोंसे प्रकाशमान सुवर्ण व रत्नोंकी सामग्रीसे युक्त नौलाख महल बन रहेथे॥५॥ अलग अलग राजमार्ग और गली, कूचे, बाजार, शाला, सभा और देवतालोगोंके मन्दिर बन रहेथे, उनसे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान लगतीथी, मार्ग, आँगन, गली और देहलियोंमें छिडकाव होरहा था, छोटी २ पताका और बड़ी बड़ी ध्वजाओंके फहरानेसे यहाँ धूप नहीं आतीथी ॥६॥ इस द्वारकापुरीमें सम्पूर्ण लोकपालोंसे पूजित श्रीकृष्णचन्द्रके अंतःपुरकी रचनामें विश्वकर्माने अपनी संपूर्ण चतुराई दिखाईथी ॥ ७ ॥ इसप्रकार सोलह हजार महलोसे शोभायमान अंतःपुरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी रानीके एक भवनमें देवर्षि नारदजी गये ॥ ८ ॥ वह भवन कैसा है, जहाँ मूँगोंके खम्भ लगरहे थे और वैदूर्यमणियोके फलकोत्तम

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टं स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलिं पतत्पताकाध्वजवारितातपम् ॥ ६ ॥ तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्टा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्र शोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तंभैर्वैडूर्यफलकोत्तमैः ॥ इंद्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्यां चाऽहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलंबिभिः ॥ दांतैरासनपर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककंठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ॥ पुंभिः सकंचुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥११॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वांतं विचित्रवलभीषु शिखंडिनोऽग ॥ नृत्यंति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यांतमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

अर्थात् खम्भधरनेकी चौकियें बन रही थीं, इन्द्रनीलमणियोंकी भीतें और अत्यन्त शोभायमान नीलमणिकी भूमि वन रही थी ॥ ९ ॥ मोतियोंकी झालर जिनमें लगीं, ऐसे विश्वकर्माके बनाये चँदोवेसे वह भवन अधिक शोभायमान था, मणियोंसे शोभायमान हाथीदाँतकी चौकी और पलँग बिछरहे थे, उनकी अलगही शोभा होरही थी ॥ १० ॥ धुकधुकी कंठमें पहरे सुन्दरवस्त्र धारे दासियोंसे शोभायमान जामा, पगडी, पटका और मणियोंके कुण्डलोंको पहरे पुरुषोंसे शोभायमान था ॥ ११ ॥ हे राजा परीक्षित ! रत्नोंके दीपकोंकी

पंक्ति लग रही थीं उनके प्रकाशसे उस भवनमें अन्धकार नहीं था और घरोंके भीतर अगरकी धूपका धुआँ जाली झरोखोंमें होकर निकल रहा था उसे देख बादल आये जान मोर शब्द करके भवनके चित्र विचित्र छज्जोंके ऊपर नृत्य कर रहे थे ॥ १२ ॥ उस महलमें रूप, गुण, अवस्थामें अपने समान, गहनापहरे सहस्र दासियोंके संग सदा सुवर्णकी दंडीका चमर पंखा लिये रुक्मिणी यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर चॅवर कर रहीथी इस प्रकार नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ १३ ॥ सब धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख, पलँगपरसे शीघ्र उठ किरीटयुक्त शोभायमान शिरसे चरणोंमें नमस्कार कर हाथ जोड़ उन्हें अपने आसनपर

तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वत पतिं परिवीजयंत्या ॥ १३ ॥ तं संनिरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनामयुक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥ संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम् ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ नैवाद्भुतं तव विभोऽखिललोकनाथ मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ॥ निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥

बैठाला ॥ १४ ॥ जगत्के अतिशय गुरु साधुओंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि नारदजीके चरण धो, चरणामृत अपने मस्तकपर चढ़ाया, जिन श्रीकृष्णका चरणोदक गंगा सबको पवित्र करतीहैं उनमें ब्रह्मण्यदेव यह गुणयुक्त नाम ज्योंका त्यों बनता है ॥ १५ ॥ नरके सखा ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण, नारदजीको शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पूजनकर अमृतकी तुल्य प्रमाणीभूत मधुर वाणीसे कहने लगे कि, हे नारदजी ! आपके आनेसे मंगल हुआ हे समर्थ भगवन् ! हम तुम्हारा क्या पूजन करें ? यह कहने लगे ॥१६॥ नारदजी बोले कि, हे समर्थ ! हे उरुगाय ! आप सब जीवोंसे मित्रता रखते हो और दुष्टोंको दण्ड देते हो, सब लोकोंके नाथ तुममें यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जगत्की स्थिति और रक्षासहित कल्याण करनेके लिये

स्फटिकमणि और महामणियोंसे प्रकाशमान सुवर्ण व रत्नोंकी सामग्रीसे युक्त नौलाख महल बन रहेथे॥५॥अलग अलग राजमार्ग और गली,कूचे, बाजार, शाला, सभा और देवतालोगोके मन्दिर बन रहेथे, उनसे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान लगतीथी, मार्ग, आँगन, गली और देहलियोंमें छिडकाव होरहा था, छोटी २ पताका और बड़ी बड़ी ध्वजाओंके फहरानेसे यहाँ धूप नहीं आतीथी ॥६॥ इस द्वारकापुरीमें सम्पूर्ण लोकपालोंसे पूजित श्रीकृष्णचन्द्रके अंतःपुरकी रचनामें विश्वकर्माने अपनी संपूर्ण चतुराई दिखाईथी ॥ ७ ॥ इसप्रकार सोलह हजार महलोंसे शोभायमान अंतःपुरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी रानीके एक भवनमें देवर्षि नारदजी गये ॥ ८ ॥ वह भवन कैसा है, जहाँ मूँगोंके खम्भ लगरहे थे और वैदूर्यमणियोके फलकोत्तम

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलिं पतत्पताकाध्वजवारितातपम् ॥ ६ ॥ तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्टा कात्स्न्र्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्र शोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तंभैर्वैडूर्यफलकोत्तमैः ॥ इंद्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्यां चाऽहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलंबिभिः ॥ दांतैरासनपर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककंठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ॥ पुंभिः सकंचुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥११॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वांतं विचित्रवलभीषु शिखंडिनोऽग॥ नृत्यंति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यांतमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

अर्थात् खम्भधरनेकी चौकियें बन रही थीं, इन्द्रनीलमणियोंकी भीतें और अत्यन्त शोभायमान नीलमणिकी भूमि बन रही थी ॥ ९ ॥ मोतियोंकी झालर जिनमें लगीं, ऐसे विश्वकर्माके बनाये चँदोवेसे वह भवन अधिक शोभायमान था, मणियोंसे शोभायमान हाथीदाँतकी चौकी और पलँग बिछरहे थे, उनकी अलगही शोभा होरही थी ॥ १० ॥ धुकधुकी कंठमें पहरे सुन्दरवस्त्र धारे दासियोंसे शोभायमान जामा, पगडी, पटका और मणियोके कुण्डलोंको पहरे पुरुषोसे शोभायमान था ॥ ११ ॥ हे राजा परीक्षित! रत्नोंके दीपकोंकी

पंक्ति लग रही थीं उनके प्रकाशसे उस भवनमें अन्धकार नहीं था और घरोंके भीतर अगरकी धूपका धुआँ जाली झरोखोंमें होकर निकल रहा था उसे देख बादल आये जान मोर शब्द करके भवनके चित्र विचित्र छज्जोके ऊपर नृत्य कर रहे थे ॥ १२ ॥ उस महलमें रूप, गुण, अवस्थामें अपने समान, गहनापहरे सहस्र दासियोंके संग सदा सुवर्णकी दंडीका चमर पंखा लिये रुक्मिणी यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर चॅवर कर रहीथी इस प्रकार नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ १३ ॥ सब धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख, पलँगपरसे शीघ्र उठ किरीटयुक्त शोभायमान शिरसे चरणोंमें नमस्कार कर हाथ जोड़ उन्हें अपने आसनपर

तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वत पतिं परिवीजयंत्या ॥ १३ ॥ तं संनिरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनामयुक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥ संपूज्य देवऋषिवर्य मृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम् ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ नैवाद्भुतं तव विभोऽखिललोकनाथ मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ॥ निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥

बैठाला ॥ १४ ॥ जगत्के अतिशय गुरु साधुओंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि नारदजीके चरण धो, चरणामृत अपने मस्तकपर चढ़ाया, जिन श्रीकृष्णका चरणोदक गंगा सबको पवित्र करतीहैं उनमें ब्रह्मण्यदेव यह गुणयुक्त नाम ज्योंका त्यों बनता है ॥ १५ ॥ नरके सखा ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण, नारदजीको शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पूजनकर अमृतकी तुल्य प्रमाणीभूत मधुर वाणीसे कहने लगे कि, हे नारदजी ! आपके आनेसे मंगल हुआ हे समर्थ भगवन् ! हम तुम्हारा क्या पूजन करें ? यह कहने लगे ॥१६॥ नारदजी बोले कि, हे समर्थ ! हे उरुगाय ! आप सब जीवोंसे मित्रता रखते हो और दुष्टोंको दण्ड देते हो, सब लोकोंके नाथ तुममें यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जगत्की स्थिति और रक्षासहित कल्याण करनेके लिये

अपनी इच्छानुसार अवतार लेते हो मैं भले प्रकार जानता हूँ कि, दुष्टोंको दण्ड और साधुओंका सत्कार करना, यही तुमको योग्य है ॥ १७ ॥ मनुष्योंको मोक्षके देनेवाले और बड़े ज्ञानी, ब्रह्मादिक देवता जिनका हृदयमें ध्यान धरते हैं, जो संसाररूपी कूपमें पडे जीवोंको निकालनेके आश्रय भूत तुम्हारे चरणारविन्दोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ, अब ऐसी कृपा करो कि, मुझे सदा तुम्हारा स्मरण बना रहै और तुम्हारे चरणारविन्दोंका ध्यान करताहुआ सुखसे विचरूं ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित ! इसप्रकार कह नारदजी योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमाया जाननेकेलिये श्रीकृष्णचन्द्रकी और रानीके महलमें गये ॥ १९ ॥ उस महलमें भी प्यारी सत्यभामाके संग और उद्धवजीके संग चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने

दृष्टं तवांघ्रियुगलं जनताऽपवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८ ॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ॥ योगेश्वरेश्वरस्यांग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥ दीव्यंतमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥ पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति ॥ क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मञ्जन्मैतच्छोभनं कुरु ॥ स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥ २२ ॥ तत्राप्याचष्ट गोविंदं लालयंतं सुताञ्छिशून् ॥ ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥ जुह्वतं च वितानाग्नीन्यजंतं पंचभिर्मखैः ॥ भोजयंतं द्विजान्कापि भुंजानमवशेषितम् ॥ २४ ॥

देखा इनको देखतेही श्रीकृष्णचन्द्र परमभक्तिपूर्वक उठ आसन बिछाय, अर्घ्य देकर पूजन करनेलगे ॥ २० ॥ "तुम कब आये" इस प्रकार अज्ञानीके समान श्रीभगवान् नारदजीसे पूँछने लगे, पूर्ण तुमको हम अपूर्ण क्या पूजन करें ॥२१॥ हे ब्रह्मन् ! हम पूर्ण नहीं हैं, परन्तु तो भी हमसे कुछ आज्ञाकर हमारा जन्म सार्थक करो, यह सुन नारदजी आश्चर्य मानकर वहाँसे और मन्दिरमें गये ॥ २२ ॥ उस महलमें भी छोटे छोटे बालकोको खिलाते श्रीकृष्णचन्द्रजीको देखा, इसके उपरान्त और महलोंमें जाकर देखें तो स्नानका उपाय कररहे हैं ॥ २३ ॥ किसी महलमें श्रीकृष्णचन्द्र अग्निहोत्र कररहे हैं, किसीमें पंचयज्ञ कररहे हैं और किसी महलमें ब्राह्मणोंको भोजन जिमाय उनका बचा प्रसाद आप भोजन

कररहे हैं, इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ २४ ॥ किसी महलमें संध्या और किसीमें मौन होकर गायत्री जप रहे हैं, एक महलमें ढाल तलवार लेकर फिररहे हैं इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ ॥ २५ ॥ किसीमहलमें घोडे, हाथी रथोंपर चढ़कर फिररहे हैं और किसी महलमें शयन कर रहे बन्दीजन स्तुति कररहे हैं, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका नारदजीने दर्शन किया ॥ २६ ॥ किसी महलमें उद्धवादिक मन्त्रियोंके संग विहार करते देखा और किसी महलमें मुख्य मुख्य वारांगना स्त्रियोंके संग जलमे विहार करते श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ २७ ॥ किसी महलमें शृंगार करके ब्राह्मणोंको गौ दान कररहे हैं और किसी महलमें इतिहास, पुराण, मंगलरूपी वाक्य श्रवण करते

क्कापि संध्यामुपासीनं जपंतं ब्रह्म वाग्यतम् ॥ एकत्र चासिचर्मभ्यां चरंतमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥ अश्वैर्गजै रथैः क्कापि विचरंतं गदाग्रजम् ॥ कचिच्छयानं पर्यंके स्तूयमानं च बंदिभिः ॥ २६ ॥ मंत्रयंतं च कस्मिंश्चिन्मंत्रिभिश्चोद्धवादिभिः ॥ जलक्रीडारतं क्कापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥ २७ ॥ कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः ॥ इतिहासपुराणानि शृण्वंतं मंगलानि च ॥ २८ ॥ हसंतं हासकथया कदाचित्प्रियया गृहे ॥ क्कापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥ ध्यायंतमेकमासीनं पूरुषं प्रकृतेः परम् ॥ शुश्रूषंतं गुरून्कापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ३० ॥ कुर्वंतं विग्रहं कैश्चित्संधिं चान्यत्र केशवम् ॥ कुत्रापि सह रामेण चिंतयंतं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥ पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ॥ दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयंतं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन किये ॥ २८ ॥ किसी महलमें हँसीकी बात कहकर श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीके संग हँसरहे हैं, किसी महलमें अपने धर्मकी सेवा करते हैं और किसी महलमें अर्थ और कामका संपादन कररहे हैं ॥ २९ ॥ किसी महलमें मायासे अतीत परब्रह्मका एकासनपर बैठे ध्यान कर रहे हैं और किसी महलमें काम, भोग, पूजन इत्यादिसे गुरुकी शुश्रूषा कररहे हैं ॥ ३० ॥ किसी महलमें वियोग और किसीमें मिलापकी बातें कररहे हैं और किसी महलमें बलदेवजीके संग साधुओंके सुखार्थ यत्न कररहे हैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ ३१ ॥ किसी महलमें पुत्रको, समयपर सदृश स्त्रियोको देखकर विवाह करते हैं और किसी महलमें अपनी कन्याके समान वर देख द्रव्योंकरके विवाह

करतेहैं ॥ ३२ ॥ किसी महलमें कन्या और जमाईको बिदा कर रहे हैं और किसी महलमें पुत्रोंको सुसराल भेजकर उनकी स्त्रियोंको बुलातेहैं, इस प्रकार योगेश्वरोके ईश्वर, श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोका बडा उत्सव देख लोग आश्चर्यको प्राप्त होगये ॥ ३३ ॥ किसी महलमें बड़े यज्ञोंसे अपनी कुल देवताओंका पूजन कररहेहैं और किसी महलमें, अमुक रास्तेमें कुआँ बनाओ, बाग लगाओ और नवीन मंदिर बनवावो, इस प्रकार धर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा ॥ ३४ ॥ किसी महलसे सिंधुदेशके घोडेपर चढ, यादवोंको संग ले शिकार खेलनेको जारहेहैं, वहाँ चित्र विचित्र मेध्य पशुओंको मारते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३५ ॥ किसी महलमें अपना रूप छिपाकर अंतःपुरके भीतर गृहादिमें प्रजाका अभिप्राय

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ॥ वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिष्मिरे ॥ ३३ ॥ यजंतं सकलान्देवान्कापि क्रतुभिरूर्जितैः ॥ पूर्तयंतं कचिद्धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥ ३४ ॥ चरंतं मृगयां कापि हयमारुह्य सैन्धवम् ॥ घ्नंतं ततः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुंगवैः ॥ ३५ ॥ अव्यक्तलिंगं प्रकृतिष्वंतःपुरगृहादिषु ॥ कचिच्चरंतं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥ अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ॥ योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥ ३७ ॥ विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ॥ योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसा प्लुतान् ॥ पर्यटामि तवोद्गायँल्लीलां भुवनपावनीम् ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता ॥ तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥

जाननेके लिये विचरते योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मनुष्यदेहको प्राप्तहुए श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका वैभव देख संपूर्ण लीला देखनेके उपरान्त नारदजी हँसकर कहने लगे ॥ ३७ ॥ कि, हे योगेश्वर ! तुम्हारे चरणारविन्दोकी सेवा करके मेरे मनमें प्रकाशमान तुम्हारी योगमायाही केवल हम जानतेहैं और तुम्हारा सत्यस्वरूप नहीं जानते ॥ ३८ ॥ हे देव ! तुम्हारे यशसे व्याप्त लोकोमें सब लोकोंकी पवित्र करनेवाली तुम्हारी लीला मैं गाता फिरूं, यह आज्ञा तुम मुझे दो इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ३९ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! मैं धर्मका कहनेवाला हूं और दूसरेको धर्म करता देखकर प्रशंसा करताहूं, इस कारण सब लोकोके शिखानेके लिये मैं कर्म करताहूं इसलिये

हे अंग ! तुम अपने मनमें खेद मत करो ॥४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार गृहस्थ पुरुषोंके पवित्र करनेवाले, श्रेष्ठ धर्मके कर्त्ता अकेले श्रीकृष्णचन्द्रको सब घरोंमें नारदजीने देखा ॥ ४१ ॥ अनन्त पराक्रम श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका बडा उदय वारंवार देखकर लीलापूर्वकही नारदजीको बड़ा आश्चर्य प्राप्त हुआ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें श्रद्धासहित मन लगाये श्रीकृष्णचंद्रसे भलीप्रकार पूजित होकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रको मनमें स्मरण करते चलेगये ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार मनुष्योंका मार्ग चलनेवाले, सब जीवोंका कल्याण करनेके लिये अनेक मूर्त्ति धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र सोलह हजार श्रेष्ठ स्त्रियोंके बीचमें लाजभरी

श्रीशुक उवाच ॥ इत्याचरंतं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् ॥ तमेव सर्वगेहेषु संतमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥ कृष्णस्यानंतवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ॥ मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥ इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ॥ सम्यक्सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ॥ रेमेंऽग षोडशसहस्रवरांगनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ॥ यस्त्वंग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० एकोनसप्ततितमोऽध्याः ॥ ६९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजितोऽशपन् ॥ गृहीतकंठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

स्नेहकी चितवन, हँसन इनसे सेवित होकर रमण करनेलगे ॥ ४४ ॥ हे परीक्षित् ! विश्वकी प्रलय और उत्पत्तिके कारण हरि भगवान्के दूसरोंको अगम्य साधारण कर्म, इस संसारमें जो पुरुष गावें अथवा सुनें या बडाई करें, उन पुरुषोंको मोक्षके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ दोहा—सत्तरमें गोविन्दको, भारी परो विचार । इतने आयो दूत एक, उत नारद अविकार ॥७०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! स्वामियोंके गलेमें भुजा डाले हृदयसे चिपटाये श्रीकृष्णकी स्त्रियें प्रातःकालके समय अरुण शिखाओंका (मुर्गोंका) शब्द सुन " श्रीकृष्णचन्द्र जाग उठेंगे " इसप्रकार जानकर

विरहसे आतुर हो उन मुर्गोंसे क्रोध कर कहने लगीं कि, अरे अभागे ! तुम अभीसे बोलनेलगे श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकाल जानकर कहीं उठ न बैठें ? ॥ १ ॥ इसके उपरान्त प्रातःसमय सब पक्षी नींदको त्याग बोलनेलगे और कल्पवृक्षकी पवन सूंघकर भौंरे गुंजार करनेलगे; उनके मनोहर शब्दकी ऐसी शोभा होती थी कि, मानो बंदीजन श्रीकृष्णको जगा रहे हैं ॥ २ ॥ अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंके बीचमें प्राप्त हुई रुक्मिणीने आलिंगनका वियोग देख अति सुन्दर प्रातःकालके समयका सहन न किया ॥३॥ प्रसन्न इंद्रिय मधुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्ममुहूर्त्त अर्थात् सूर्योदयसे दो तीन घड़ी पहले उठ जलका आचमन कर मायासे परे अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे ॥ ४ ॥ कैसे स्वरूपका ध्यान

वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयंतीव वंदिनः ॥ गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मंदारवनवायुभिः ॥ २ ॥ मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ॥ परिरंभणविश्लेषात्प्रियबाह्वंतरं गता ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ॥ दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥ एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ॥ ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतम् ॥ ५ ॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी ॥ चकार संध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥ उपस्थायार्कमुद्यंतं तर्पयित्वात्मनः कलाः ॥ देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनां रुक्मशृंगीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ॥ पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥

किया सो कहते हैं, एक अखण्ड स्वयंज्योतिस्वरूपका उपाधिरहित अविनाशी सर्वकाल अविद्यारहित ब्रह्म विश्वकी उत्पत्ति और नाशके कारण अपनी शक्तिसे देखनेमें आवैं सत्तामात्र आनन्दरूप ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त निर्मल जलमें स्नान कर धोती पहर श्रीकृष्णचन्द्र सन्ध्योपासनादि कर्म और अग्निहोत्र कर मौन हो गायत्रीका जप करने लगे, फिर सूर्यनारायणको अर्घ्य दे अपने अंशके जो देवता, ऋषि, पितृ थे उनका तर्पण करके ज्ञानवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मणोंका पूजन करनेलगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुवर्णसे सींग मढ़े अत्यन्त

सूधी मोतियोंकी माला पडीं दूध देनेवाली और एकही बारकी ब्याई शोभायमान बछडों सहित सुन्दर वस्त्र उढाय ॥ ८ ॥ रूपेसे खुरोंके अग्रभाग मढे ऐसी तेरह हजार चौरासी १३०८४ गौ एक एक महलमेंसे प्रतिदिन शोभायमान सत्पात्र ब्राह्मणोंको रेशमी वस्त्र मृगछाला और तिलसहित दान करते थे ॥ ९ ॥ अपनी विभूति गौ ब्राह्मण देवता और वृद्धोंको नमस्कार करके मंगल वस्तु कपिलादि गौका स्पर्श करते थे ॥ १० ॥ और नरलोकका भूषणरूप अपने शरीरको वस्त्र और चन्दन इत्यादिसे शोभायमान करते थे ॥ ११ ॥ घीमें मुख देख कांच देख गाय, वृषभ अथवा देवतालोगोंका दर्शनकर पीछे नगर व रनिवासी व सब प्रजागणकी अभिलाषा सिद्धकर फिर मंत्री और प्रधानोंका मनोरथ पूर्ण व प्रसन्न कर उनका यथायोग्य

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ॥ अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वंबद्वं दिनेदिने ॥ ९ ॥ गोविप्रदेवतावृद्धगुरून्भूतानि सर्वशः ॥ नमस्कृत्यात्मसंभूतीर्मंगलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥ आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ॥ वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥ अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः ॥ कामांश्च सर्ववर्णानां पौरांतःपुरचारिणाम् ॥ प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनंदत ॥ १२ ॥ स विभज्याग्रतो विप्रान्स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुंक्त ततः स्वयम् ॥ १३ ॥ तावत्सूत उपानीय स्यंदनं परमाद्भुतम् ॥ सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं सारथेस्तमथारुहत् ॥ सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥ १५ ॥ ईक्षितोंऽतःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ॥ कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥ १६ ॥

आदर सत्कार करते थे, फिर कुछ और कार्यको देखते थे ॥ १२ ॥ पहले विप्र फिर मित्र और कार्याधीश व स्त्रियें इनको पान, पुष्प और अरगजा दे, सबसे पीछे उन वस्तुओंको आप अंगीकार करते थे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इतनेहीमें सारथीने सुग्रीवादि घोड़े जोत परम अद्भुत रथ ला प्रणाम करके सन्मुख खडा करदिया ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे रथवान्का हाथ पकड सात्यकी और उद्धवको संग ले जैसे सूर्य नारायण सुमेरुपर्वतके ऊपर चढ़ते हैं, उसी प्रकार रथमें चढ़गये ॥ १५ ॥ लाजभरी प्रेमकी चितवनसे अंःतपुरकी स्त्रियोंके देखनेसे मुसकाते

श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त कष्टसे, उनको छोड और उनके मन हरकर बाहर निकले ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब घरोंसे अलग अलग निकल, पीछे सब एकरूप हो सब यादवोंको साथ ले भगवान् वासुदेव सुधर्मासभामें गये, हे राजन् ! सुधर्मा सभामें बैठेहुये पुरुषोंको क्षुधा, पिपासा, शीत, गर्मी, शोक और मोह इत्यादि बाधा नहीं व्यापती हैं * ॥ १७ ॥ उस सभामें यादवोंसे वेष्टित व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासनपर बैठ अपनी कान्तिसे

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ॥ प्राविशद्यन्निविष्टानां न संत्यंग षड्डूर्मयः ॥ १७ ॥ तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ॥ वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥ १८ ॥ तत्रोपमंत्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ॥ उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्तांडवैः पृथक् ॥ १९ ॥

सब दिशाओंको प्रकाशमान करनेलगे जैसे तारागणोंके बीचमें निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है, उसी प्रकार यादवोंके बीचमें बैठेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा होने लगी ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस सभामें भाट अनेकप्रकारसे हँसीकी बातें कर श्रीकृष्णचंद्रका सेवन करते थे और नटोंमें मुख्य और नृत्यकरनेवाली स्त्रियें अलगही अपने अपने गवैयोंको संग ले सन्मुख खडी हुई ॥ १९ ॥

---

* शंका–सुधर्मासभामें बैठनेवाले जीवोंके हृदयमें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर यह छः वैरी उत्पन्न नहीं होते थे, फिर श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें वही छहों वैरी क्यों उत्पन्न हुये, जिन वैरियोंको ग्रहण करके श्रीकृष्णजीने बडे बडे दुष्टोंको मारा, यह बडी शंका है ?

उत्तर–तीनलोकमें इसलोकका काम तथा परलोकका काम विना काम आदि छहों वैरियोंको सेवन किये नहीं सिद्ध होगा इसलिये कामादिक छ शत्रुओंका सेवन अवश्य करना चाहिये, परन्तु विचारके सेवन करना, क्योंकि यह छ.शत्रु सुन्दर काममें भी हैं, सो सुन्दर काममें छ होंको ग्रहण करना, जैसे सुन्दर कामकी इच्छामें लोभ इसीप्रकारसे जानलेना चाहिये, और बुरे काममें त्यागना चाहिये, सुधर्मा सभामें बुरे कामवाले छ शत्रु नहीं थे सुन्दर कामवाले कामादिक छ.वैरी थे, इसलिये सुन्दर कर्मोंके छहों वैरियोंको श्रीकृष्णचन्द्रने ग्रहण किया और बुरे कामवालोंको त्यागदिया क्योंकि, यह कामादिक छःवैरी सुन्दरकर्ममें सुन्दर फल देते हैं बुरे कर्मसे बुरा फल देते हैं, इसलिये श्रीकृष्णने सुधर्मा सभामें बैठकर छहोंवैरियोंको ग्रहण करके दुष्टोंको जीता और मारा ॥

इसके उपरान्त मृदंग, वीणा, मुरज, बांसुरी, झांझ, शंख इत्यादि बजाकर नृत्य करनेलगे और सूत, मागध, बंदीजन श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख स्तुति करनेलगे ॥२०॥ उस समय कोई चतुर ब्राह्मण वेदकी ऋचा पढ़कर व्याख्या देनेलगे और कोई कोई ब्राह्मण पवित्र वंशवाले राजाओंकी कथा कहने लगे ॥२१॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस समय एक अजान मनुष्य उस स्थानपर कहींसे आया, तब ड्योढीवानोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर खबर दी, श्रीकृष्णने आज्ञा दी कि, जाओ उसे लिवालाओ, तब उस मनुष्यको सभाके भीतर पहुँचाया ॥२२॥ ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख उस पुरुषने हाथ जोड नमस्कार करके जरासन्धके कैद कियेहुये वीसहजार आठसौ राजाओंका दुःख कहा ॥ २३ ॥ जब जरासन्धने दिग्विजय किया था,

मृदंगवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ॥ ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवंदिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ॥ पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥ तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ॥ विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२ ॥ स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ॥ राज्ञामावेदयद्दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः ॥ प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन ॥ वयं त्वां शरणं यामो भवभीतः पृथग्धियः ॥ २५ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥ लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ॥ कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥ २७ ॥

तब उस समय जिन राजाओंने आकर भेंट नहीं दी थी, इसलिये उसने वीसहजार आठसौ राजाओंको पकड गिरिव्रजनाम किलेमें कैदकर दिया है ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे शरणागतका भय काटनेवाले ! इस संसारमें भयभीत तुमसे प्रेम करनेवाले हम आपकी शरण आये हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि यह लोग अतिशय पापकर्ममें लग रहे हैं, सो तुम्हारे बताये कल्याणरूप पूजन सेवनरूप कर्ममें भूल रहेहैं, इस संसारमें जीनेकी आशा काटनेवाले सामर्थ्यवान् कालरूप आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! जगत्के ईश्वर ! तुमने इस संसारमें साधु

पुरुषोंकी रक्षा और दुष्टपुरुषोंको दण्ड देनेकेलिये अपने अंशसे अवतार धारण किया है और आपके विद्यमान रहते भी जरासन्ध सरीखा बलवान् तुम्हारी आज्ञाको नहीं मानता आपकी रक्षामें रहे जीव अपने कर्मजनित दुःखोंको प्राप्त होतेहैं यह किसलिये होते हैं ? सो हम नहीं जानसक्ते ॥२७॥ हे ईश ! यह राज्यके संबन्धका सुख विषयसाध्य है इसीसे परतंत्र है; इसीलिये यह स्वप्नसुखके समान है और यह शरीर भी सदैव भयसे युक्त मृतकके समान है, परन्तु तोभी हम इस शरीरसे केवल भार्या सन्तानादिकी चिन्ता करते रहते हैं, निष्काम भक्त जिस स्वतः सुखको आपसे प्राप्त होतेहैं ; उसे त्याग अत्यन्त कृपण बने आपकी मायासे दुःख पाते हैं, क्योंकि पहले निष्काम हो आपके चरणोंकी शरण न ली ॥ २८ ॥ इसलिये दुःखी पुरुषोंका शोक हरनेवाले जिनके चरणकमल हैं, ऐसे आप हम बँधेहुओंको जरासन्धरूपी कर्मबन्धनसे छुड़ाओ दशहजार

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ॥ हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥ २८ ॥ तन्नो भवान्प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मो बद्धान्वियुंक्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ॥ यो भूभुजोऽयुतमतंगजवीर्यमेको बिभ्रद्रुरोध भवने मृगराडिवाऽवीः ॥ २९ ॥ यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवंतमनंतवीर्यम् ॥ जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥ ३० ॥ दूत उवाच ॥ इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकांक्षिणः ॥ प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ॥ बिभ्रत्पिंगजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥

हाथियोंका बल धारण करनेवाले इस जरासन्धने सिंह जिस प्रकार भेडोंको घेर लेताहै, उसी प्रकार अपने दुर्गमें हम राजाओंको रोक रक्खाहै ॥२९ ॥ हे चक्रधर ! हे कृष्ण ! आपसे अठारह वार जरासन्धने संग्राम किया और सत्रह बार आपने हरादिया परन्तु अठारहवीं बार संग्राममें आप मनुष्यलीला कर रण छोड़गये आपको यह एक बार जीत महागर्वको प्राप्त हुआ है, इसलिये आपकी प्रजा हमको बहुत दुःख देता है अब जो आप उचित समझो सो करो ॥ ३० ॥ दूत बोला कि, इस प्रकार जरासन्धके रोके आपके दर्शनकी अभिलाषा किये राजालोग आपके चरणकमलकी शरण लियेहुए हैं इन दीनोंका बहुत शीघ्र उद्धार करना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार राजाओंका दूत कहही

रहाथा कि, इतनेहीमें श्रेष्ठ कान्तिवाले पीली जटायें धारण किये श्रीमन्नारदजी सूर्यके समान वहां आन प्रगट हुए ॥ ३२ ॥ सब लोकोंके महान् ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र नारदजीको आया देख अपने सभासदोंसहित शिर नवायकर प्रणाम करनेलगे ॥ ३३ ॥ आसनपर विराजमान नारदजीका विधिपूर्वक सत्कार करके श्रद्धासहित मधुर मधुर वचनोंसे भगवान् तृप्त करनेलगे ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, नारदजी ! त्रिलोकीमें कहीं भय तो नहीं है ? तुम्हारे लोकोंमें भ्रमण करनेसे हमें बड़ा लाभ है, क्योंकि घर बैठेही सब समाचार मिल जाते हैं ॥ ३५ ॥ ईश्वरके बनाये लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसको तुम न जानो इसलिये हम तुमसे पूँछते हैं कि, पाण्डवोंकी क्या करनेकी इच्छा है ? ॥ ३६ ॥ यह

तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ववंद उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥ ३३ ॥ सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम् ॥ बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ॥ ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥ ३५ ॥ न हि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ॥ अथ पृच्छामहे युष्मान्पांडवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ नारद उवाच ॥ दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः॥ भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभिर्वह्नेरिव च्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ॥ यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्य यः संसरतोऽविमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ॥ लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥

सुनकर नारदजीने कहा कि, हे समर्थ ! आप अपनी मायासे ब्रह्माको भी मोहित करते और अपनी अचिन्तनीय शक्तिसे प्राणियोंमें अन्तर्यामी रूपसे रहनेपरभी काष्ठमें रहे अग्निके समान गुप्त प्रकाशवाले हो आपकी माया मैंने कई वार अवलोकन की है, इसलिये यह आपका चारित्र कुछ अद्भुत विदित नहीं होता ॥ ३७ ॥ यह संसार जो कि, मिथ्या होनेपर भी आपकी मायासे विद्यमानसा प्रतीत होता है, इसके उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले आपके अभिप्रायको कौन पुरुष भली भाँतिसे जान सक्ता, है ? अर्थात् कोई भी नहीं जान सक्ता, ऐसे अचिन्त्यस्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ जिन आपने बहुत प्रकार जन्म, मरण पाते और विविध अनर्थकारक शरीरसे मुक्त होनेका उपाय न

जाननेवाले जीवोंको अज्ञानीरूपी अंधकारका मिटानेवाला अपना यशरूपी दीपक लीलासे अवतार धारणकर प्रगट किया है, ऐसे आपकी मैं शरण प्राप्त हुआ हूँ ॥ ३९ ॥ परन्तु तो भी हे ब्रह्मन् ! मनुष्यके अनुकरण करनेवाले आपसे आपकी फूफीके पुत्र भक्त राजा युधिष्ठिर जो कुछ करना चाहते हैं, सो मैं कहकर सुनता हूं ॥ ४० ॥ पाण्डुका पुत्र चक्रवर्ती राज्य करनेकी इच्छा करनेवाले राजा युधिष्ठिर यज्ञराट् राजसूययज्ञ करके तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं, यह आप अनुमोदन करो ॥ ४१ ॥ हे देव ! उस यज्ञमें तुम्हारा दर्शन करनेके लिये इन्द्रादिक देवता आवेंगे और बड़े बड़े यशस्वी राजालोग तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे आवेंगे ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर ! ब्रह्मरूप तुम्हारी कथाओंके श्रवण करनेसे और

अथाप्याश्रावये ब्रह्मन्नरलोकविडंबनम् ॥ राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥ ४० ॥ यक्ष्यति त्वां मखेंद्रेण राजसूयेन पांडवः ॥ पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्देव क्रतुवरे भवंतं वै सुरादयः ॥ दिदृक्षवः समेष्यंति राजानश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयंतेऽन्तेवसायिनः ॥ तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥ ४३ ॥ यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमंगल दिग्वितानम् ॥ मंदाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो गंगेति चेह चरणांबु पुनाति विश्वम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया ॥ वाचः पेशैः स्मयन्भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥

तुम्हारा ध्यान करनेसे चाण्डाल भी पवित्र होजाते हैं और जो तुम्हारे दर्शन करनेहीसे पवित्र होजाय तो इसमें कहनेकी बातही क्या है ? ॥ ४३ ॥ हे त्रिलोकीके मंगलरूप ! तुम्हारा निर्मल यश स्वर्ग, रसातल और संपूर्ण पृथ्वीपर फैलरहा है और दिशाओंको चँदोवेके समान शोभायमान कर रहा है, स्वर्गमें मंदाकिनीरूप, पातालमें भोगवतीरूप और इस संसारमें आपका चरणोदक गंगारूप होकर सब विश्वको पवित्र कररहा है, इस लिये तुम्हारे चलतेही यज्ञमें बडा मंगल होगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे भारतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार देवर्षि नारद जीने जब कहा तब उस सभामें अपनी ओरके यादवोंने जरासन्धके जीतनेकी इच्छासे जब यज्ञमें जानेकी अनुमति न दी, तब मनोहर वचनोंसे

कुछेक मुसकातेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हे उद्धव ! तुम हमारे परममित्र और परमहितकारी हो और गुह्य बातोके अभिप्रायको भलीभाँति जानते हो, इसकारण इस विषयमें हमको क्या करना चाहिये सो कहो, उसको हम श्रद्धापूर्वक करेंगे ॥ ४६ ॥ सब बातके जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मानों कुछ नहीं जानते, इस प्रकार अनजानकी समान जब पूछा, तब उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा शिरपर धारणकर बोले ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे भाषाटीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥ दोहा—इकहत्तर उद्धव चतुर, हरिकी सम्मति मान । इन्द्रप्रस्थ गवने तुरत, पाण्डव बुद्धिनिधान ॥ ७१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! इसप्रकार बड़ी बुद्धिवाले उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन और नारदजीकी सम्मति यज्ञमें जानेकी जान

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मंत्रार्थतत्त्ववित ॥ तथाऽत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत्॥४६॥इत्युपामंत्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥ निदेशं शिरसाऽऽधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥४७॥ इति श्रीमद्भा० महा०दशमस्कंधोत्तरार्धे भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ॥ सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ॥ कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥ यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ॥ अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥ अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति ॥ यशश्च तव गोविंद राज्ञो बद्धान्विमुंचतः ॥ ४ ॥

और सभामें बैठनेवाले यादवोंकी सम्मति राजाओंकी रक्षा करनेकी देख और श्रीकृष्णचन्द्रकी इच्छा दोनों कार्य करनेकी देखकर कहनेलगे॥१॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रकाशमान श्रीकृष्ण ! देवर्षि नारदजीने जो कहा कि, राजा युधिष्ठिर तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं, सो उनकीभी सहायता करनी योग्य है और शरणागत राजाओंकी भी रक्षा करनी योग्य है ॥ २ ॥ हे समर्थ ! संपूर्ण दिशाओंके राजाओंका जीतनेवाला राजसूययज्ञ करके पूजन होगा इसकारण जरासन्धको भी अवश्य जीतना पड़ेगा, इसमें दोनों कार्य सिद्ध होजायँगे, यज्ञ भी होजायगा और शरणागत राजाओंकी रक्षा भी होजायगी ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! यज्ञमें आप चलैंगे, तो हमारे मनोरथ इसीसे सिद्ध होजायँगे और हे गोविंद ! बँधे

राजाओंको जो छुड़ाओगे, इसमें आपका बडाही यश होगा ॥ ४ ॥ बडी चाहनासे जरासन्धके मारनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंको देखकर कहते हैं कि, जरासन्धके समान बलवान् भीमसेनके विना दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाला जरासन्ध और राजाओंसे नहीं जीता जायगा, क्योंकि भीमसेनके हाथसेही विधाताने उसकी मृत्यु रची है ॥ ५ ॥ द्वंद्वयुद्धमें राजसन्ध जीता जायगा और सेनाको संग लेकर जो पुरुष उसके जीतनेकी आशा करे सो यह आशा कदापि फलवती न होगी, वह जरासन्ध ब्राह्मणोंका भक्त है, इसकारण भीमसेन ब्राह्मणका रूप धरकर जो उससे द्वंद्वयुद्ध माँगे तो आशा है कि, वह निषेध नहीं करेगा ॥ ६ ॥ वृकनामा अग्नि जिसके उदरमें रहे सो भीमसेन ब्राह्मणका वेष धारणकर जरासन्धसे युद्धकी भिक्षा माँगे कि, तुम्हारे साथ मैं द्वंद्वयुद्ध करूँगा, तुम निकट रहो तो भीमसेन जरासन्धको अवश्य मारेगा, इसमें सन्देह

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ॥ बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥ द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ॥ ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥ ६ ॥ ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ॥ हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव संनिधौ ॥ ७ ॥ निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ॥ हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्या रूपिणस्तव ॥ ८ ॥ गायंति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ॥ गोप्यश्च कुंजरपतेर्ज नकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥ ९ ॥

नहीं ॥ ७ ॥ प्राकृत रूपरहित तुमही तो उत्पन्न, पालन और संहार करते हो, ब्रह्मा और महादेव तो नाममात्र हैं, इसलिये तुमही पास रहकर जरासन्धका संहार करोगे, भीमसेनका तो केवल नामही होगा ॥ ८ ॥ बन्दीहुए राजाओंकी रानियें तुम्हारे निर्मल यशको गाती हैं और जब उनके बालक रोते हैं, तब वह कहती हैं कि, हे पुत्र ! तुम किसलिये रोते हो, जो कोई अनाथ हो सो रोवे, तुम्हारे शिरपर तो द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र विद्यमान हैं, तुम मत रोओ, जैसे गोपी शंखचूडका मारना और अपना छूटना गाती हैं, और गजराजका छूटना व ग्राहकी मृत्यु गाती हैं और जनकनन्दिनी जानकीका छूटना व रावणका मरना जैसे गावे हैं और माता पिताका छूटना, कंसका मरना शरणागत मुनि और हम भक्त गान करतेहैं उसी प्रकार जरासन्धका मरना और अपने पतियोंका छूटना राजाओंकी स्त्रियें वारम्वार गाती हैं ॥ ९ ॥

हे कृष्ण ! जरासन्धके मरनेसे बडा कार्य सिद्ध होगा और फिर शिशुपालादिका मारना भी सहज होजायगा, राजाओंके पुण्यका फल उदय होगा, और यज्ञ हो, यह आपकी इच्छा हैही, राजा युधिष्ठिरके पास जानेसे सब काम बन जायगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब ओरसे मंगलरूप बड़ी युक्ति सहित उद्धवजीका वचन सुन नारदजी बडाई करने लगे, इसके उपरान्त मुख्य यादव और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी प्रशंसा करनेलगे ॥ ११ ॥ इसके पीछे देवकीनन्दन सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चलनेके लिये सेवक दारुक रथवान् और हाथियोंके महावत व वसुदेव इत्यादि यादवोंमे आज्ञा करनेलगे ॥ १२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! पुत्र, दासी, दास और सामग्रियों सहित प्रथम अपनी रानियोको भेज

जरासंधवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते॥ प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धव वचो राजन्सर्वतोभद्रमच्युतम् ॥ देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥ अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः ॥ भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ १२ ॥ निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् ॥ संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ॥ सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥ ततो रथद्विपभटसादिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया ॥ मृदंगभेर्यानकशंखगोमुखैः प्रघोषघोषत्ककुभो निराक्रमत् ॥ १४ ॥ नृवाजिकांचनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ॥ वरांबराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनःकरेणुभिः परिजनवरयोषितः ॥ स्वलंकृताः कटकुटिकंबलांबराद्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ १६ ॥

बलराम और राजा उग्रसेनसे आज्ञा ले, श्रीकृष्णचन्द्र सारथीके लाये गरुडध्वज रथमें चढे ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त रथ, हाथी, प्यादे और महा तीव्र सवारोंकी सेना ले मृदंग, भेरी, नगारे, शंख और रणसिंहोंके शब्दसे शब्दायमान दिशामेंसे भगवान् निकले ॥ १४ ॥ सुन्दर वस्त्र, गहने और चन्दन माला पहरे ढ़ाल, तलवार हाथमें लिये, दोनो ओर सिपाहियोसे रक्षित रथ और पालकियोमें बैठ, पतिव्रता कृष्णकी रानियें अपने पुत्रोको साथ ले अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे चलीं ॥ १५ ॥ नौकरोकी स्त्रियें और वेश्या शृंगारकर चटाइयोंके बने घर तथा कम्बल और

बनातोंके डेरे, तम्बू इत्यादि सब वस्तुको मनुष्य, ऊंट, भैंसे, गधे, खच्चर, गैंड़े व हाथियोंपर लादकर चले ॥ १६ ॥ बड़े शब्दवाली सेना बड़ी बडी ध्वजाओंके वस्त्र, छत्र, चमर और सुन्दर हथियार, गहने, किरीट इत्यादिकोंकी चमकसे और सूर्यकी किरणोंसे, जैसे समुद्र क्षुभितहुए मत्स्यों और कलोलोंसे शोभायमान होताहै, उसीप्रकार शोभा देती थी ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे सत्कार पाय पूजा ले, श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनसे सुखी इन्द्रियहो, नारदमुनि श्रीकृष्णको प्रणामकर, उनके निश्चयको सुन और श्याम स्वरूपको हृदयमें धारणकर आकाशमार्गमें होकर चलेगये ॥ १८ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूतको प्रसन्न करनेके लिये बोले कि, हे दूत ! तुम सब राजाओंसे जाकर कहदो कि,

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ॥ दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथार्णवः क्षुभित तिमिंगिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥ अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा ॥ निशम्य तद्व्यव सितमाहृतार्हणो मुकुंदसंदर्शननिर्वृतेंद्रियः ॥ १८ ॥ राजदूतमुवाचेदं भगवान्प्रीणयन्गिरा ॥ मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥ १९ ॥ इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ॥ तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः ॥ २० ॥ आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ॥ गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुंदोथ सरस्वतीम् ॥ पंचालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम् ॥ अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥ २३ ॥

किसी प्रकारका भय मत करो, क्योंकि मैं शीघ्रही जरासन्धको मार तुम्हारा कल्याण करूंगा ॥ १९ ॥ जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब दूत वहाँसे चल राजाओंके पास आकर कहने लगा कि, किसी प्रकारका भय मत करो श्रीकृष्णचन्द्र आते हैं, तब वह छूटनेकी इच्छासे भगवान्के आनेका पैंडा देखनेलगे ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनर्त्त, सौवीर, मरुदेशको पीछेदे, कुरुक्षेत्र, पर्वत, नदियें, पुर, गाँव, व्रज और खानोंके देशोको लाँघकर दृषद्वती व सरस्वतीके पार उतर पांचाल तथा मत्स्यदेशको छोड इन्द्रप्रस्थ पहुंचे ॥ २१ ॥ २२ ॥ मनुष्योंको जिनका दर्शन दुर्लभ है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुन, प्रसन्न हो, अजातशत्रु राजायुधिष्ठिर उपाध्यायोको संगले पुरके बाहर निकले ॥ २३ ॥

गाते बजाते और भारी वेदध्वनिके साथ राजा युधिष्ठिर जैसे आदरयुक्त इन्द्रिय प्राण लेनेको आवैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख लिवानेको आये ❀ ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकर आर्द्र हृदय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने बहुत दिनोंमें देखे अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको बारम्बार आलिंगन किया ॥ २५ ॥ लक्ष्मीके रहनेका निर्मल स्थान, श्रीकृष्णचन्द्रके अंगको भुजाओंसे आलिंगनकर, पापरहित, प्रसन्न वदन, नेत्रोंमें अश्रु युक्त सब लौकिक व्यवहार विसार राजा युधिष्ठिर अत्यन्त सुख पानेलगे ॥ २६ ॥ मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगनकर; प्रसन्न भीमसेन

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणः प्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पांडवः ॥ चिराद्दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनःपुनः ॥ २५ ॥ दोर्भ्यां परिष्वज्य रमाऽमलालयं मुकुंदगात्रं नृपतिर्हताशुभः ॥ लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६ ॥ तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेंद्रियः ॥ यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ २८ ॥ मानितो मानयामास कुरुसृंजयकेकयान् ॥ सूतमागधगंधर्वान्वंदिनश्चोपमंत्रिणः ॥ २९ ॥

प्रेमके वेगसे आकुलइन्द्रिय होगया, इसके उपरान्त बडे २ नेत्रोंमें आंसूभरे नकुल सहदेव और किरीटधारी अर्जुन यह सब अत्यन्त हितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको आनन्दपूर्वक आलिंगन करनेलगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अर्जुन बराबरका होनेके कारण श्रीकृष्णचन्द्रको छातीसे लगाकर मिला और नकुल सहदेवने नमस्कार किया, पीछे यथायोग्य ब्राह्मण और वृद्धोंको नमस्कार करके ॥ २८ । मानने योग्य कुरुदेश और सृंजयदेशके राजा और

---

* शंका–हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णका और पांडवोंका मिलाप हुआ, तब उस समय शूद्र अन्त्यज चर्मकार आदि और सब नीच जाति तथा म्लेच्छ तमासा देखनेके लिये तथा अनेक प्रकारके संसारिक काम करनेके लिये उस सेनामें रहते थे, इन सबको सुनाकर ब्राह्मणोंने ब्रह्म अर्थात् वेदोच्चारण क्यों किया ?

उत्तर–वेदको श्रवण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके सिवाय दूसरेको नहीं करना चाहिये दूसरा कोई भी दोष नहीं, सो वेदका पाठ कोईभी नहीं उस समय सुनता था, क्योंकि जब श्रीकृष्णचन्द्र और पाण्डवोंका मिलाप हुआ तब ऐसा शब्द मनुष्योंका परस्पर होने लगा कि, उस कुलाहलमें तोपका शब्द तो किसीको सुनाई ही नहीं पडता था तब वेदपाठ कैसे लोगोंको सुनाई देता ? किसीको भी कुछ सुनाई नहीं पडा, इसलिये ब्राह्मणोंने वेदपाठ किया ॥

सूत, मागध, गंधर्व, भाट, बंदीजनोंका सत्कार करनेलगे ॥ २९ ॥ मृदंग, शंख, ढोल, वीणा, नगाड़े बाँसुरी इनको बजाकर ब्राह्मण स्तुति करनेलगे और नाचने गानेलगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार सुहृदोंको संग ले पुण्ययश युधिष्ठिरादिकोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सबसे स्तुति और सत्कार पाय शोभायमान राजा युधिष्ठिरके पुरमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ हाथियोंके मद और सुगन्धयुक्त जलसे जिसमें छिड़काव होरहा ऐसे मार्ग और चित्र विचित्र ध्वजाओंसे सुवर्णके तोरण और जलके पूर्ण कलश तथा नवीन वस्त्र, गहने, माला, केशर, अतर, अरगजा लगाये, स्त्री और पुरुषोंसे शोभाय

मृदंगशंखपटहवीणापणवगोमुखैः ॥ ब्राह्मणाश्चारविंदाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥ ३० ॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥ संस्तूयमानो भगवान्विवेशाऽलंकृतं पुरम् ॥ ३१ ॥ संसिक्तवर्त्म करिणां मदगंधतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुंभैः ॥ मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गंधैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥३२॥ उद्दीप्तदीपवलिभिः प्रतिसद्म जालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम्॥मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृंगैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३३ ॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबंधाः ॥ सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेंद्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ॥ नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥

मान कौरवोंके राजा युधिष्ठिरको देखा ॥ ३२ ॥ कैसा महलहै कि, जहाँ प्रकाशमान दीपकोंकी पंक्ति और महलके झरोखोंमेंसे निकली धूपकी सुगंधसे शोभायमान होरहाहै और प्रकाशमान पताका तथा रूपेके शिखरोंके ऊपर सुवर्णके कलश संयुक्त कौरवराज युधिष्ठिरके महल देखे ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके नेत्रोंका सौंदर्यरूपी अमृत पीनेके पात्र श्रीकृष्णचन्द्रको आया श्रवण कर उत्कंठासे जिनके केश और वस्त्रोंके बंधन ढीले होगये वह स्त्रियें घरोंके कार्योंको शीघ्रत्याग और शय्याओंको ऊपर पतियोंको त्याग देखनेके लिये राजमार्ग बाजारमें आईं ❀ ॥ ३४ ॥ हाथी, घोडे, रथ और

❀ सब लोग उत्सव छोड छोडकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनको दौडे, कहीं विवाहमें अधिक उत्सव तो हैही नहीं तथापि एक कन्याका विवाह था, द्वारपर नौबत बजरहीथी, व भाई बिरादरीके लोग बैठे थे और मंडपके नीचे वर कन्या बैठे थे, ब्राह्मण हवन कररहेथे, सो नौबतवालोंने सुना कि, श्रीकृष्ण बलदेव आयेहैं, सुनतेही नगरको छोडकर भागे और जो भीतर नाई, बारी झगडा कर रहेथे, वह भी सुनतेही भागे, पाधा (पुरोहित) पोथी पटक कृष्णके दर्शनको दौडे, अधिक क्या कहें? बराती भी चले गये, अब दुलहनने सोचा कि, इस चामके दूलहका क्या करना है? जाकर उस दूलहके दर्शन करूं, सो आंचल छुडाकर दुलहन भी पहुँचगयी, पीछे दूलह भी चलागया ॥

पैंदलोंकी भीरसे युक्त राजमार्गमें रानी सहित श्रीकृष्णचन्द्रको देख कोठोंके ऊपर चढी स्त्रियें फूल वर्षाय, मनसे आलिंगन कर मुसकानपूर्वक चितवनसे देखकर " भले आये " इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३५ ॥ जैसे चन्द्रमासहित तारागण, उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके मार्गमें देख " इन रानियोंने क्या पुण्य कियाहै, जिनके नेत्रोंको पुरुषोंमें मुकुट समान श्रीकृष्णचन्द्र उदार हास्य लीलापूर्वक अवलोकनकी कलासे आनन्द देते हैं" इसप्रकार सब स्त्रियें कहनेलगीं ॥ ३६ ॥ पापरहित पुरवासी पान, खुपारी, बतासे और नारियल इन सब मंगल वस्तुओंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करनेलगे ॥ ३७ ॥ प्रफुल्लित नेत्र खुशीके मारे घबराहटसे अंतःपुरके वासियोने प्रीतिपूर्वक सम्मुख आकर जब सत्कार किया

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुंदपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यऽमूभिः ॥ यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥ ३६ ॥ तत्र तत्रोपसंगम्य पौरा मंगलपाणयः ॥ चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३७ ॥ अंतःपुरजनैः प्रीत्या मुकुंदः फुल्ललोचनैः ॥ ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमंदिरम् ॥ ३८ ॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेय कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ प्रीतात्मोत्थाय पर्यंकात्सस्नुषा परिषष्वजे ॥ ३९ ॥ गोविंदं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ॥ पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ॥ स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवंदितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ॥ आनर्च रुक्मिणीं सात्यां भद्रां जांबवतीं तथा ॥ ४२ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राजाके मंदिरमें चलेगये ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीके ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णचन्द्रको देख प्रसन्नमन कुन्ती अपनी बहू द्रौपदीसहित पलंगपरसे उठकर श्रीकृष्णचन्द्रसे मिली ॥ ३९ ॥ देवोंके देव और ब्रह्मादिकोंके ईश्वर गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रजीको घरमें ला आनन्दसे सुधि बिसार राजा युधिष्ठिर पूजा करनेकी विधि भी भूलगये ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! द्रौपदी और बहन सुभद्राके प्रणाम करनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता, वसुदेवकी बहन कुन्ती और बडे पुरुषोंकी स्त्रियोंको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ सास कुन्तीकी आज्ञा पाय द्रौपदी

संपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रकी रानी रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती इत्यादिका पूजन करनेलगीं ॥ ४२ ॥ कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा पतिव्रता और नाग्नजिती इनकी और जो संग आई हैं, उनकी वस्त्र, माला, अतर, अरगजा, चन्दन इत्यादिकोंसे पूजा करनेलगी ॥ ४३ ॥ धर्मराजा युधिष्ठिर भी सेनासस्ति मंत्री तथा सेवक और रानियों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको नित्यप्रति नये सुखमें रखनेलगे ॥ ४४ ॥ अर्जुन सहित श्रीकृष्णचन्द्र खांडववनसे अग्निको तृप्त करके मयनाम दैत्यको बचाया उसने राजा युधिष्ठिरको दिव्य सभा बनाकर अर्पण की ॥ ४५ ॥ रथमें बैठ अर्जुन तथा और योद्धाओंको संगले विहार करते श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये कितनेही दिनतक इन्द्रप्रस्थमें रहे ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते

कालिंदीं मित्रविंदां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् ॥ अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मंडनादिभिः ॥ ४३ ॥ सुखं
निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ॥ ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवंनवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वा खांडवेन वह्निं
फाल्गुनसंयुतः ॥ मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥
विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे एकसप्ततितमो
ऽध्यायः ॥ ७१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च
युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसंबंधिबांधवैः ॥ शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥ युधिष्ठिर
उवाच ॥ क्रतुराजेन गोविंद राजसूयेन पावनीः ॥ यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्संपादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥ दोहा–जरासन्धकी विजय लख, कृष्ण बहत्तर अंक। भीमसेनको सैनदे, करवाये द्वै फंक ॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित ! एक समय मुनीश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भाई, आश्चर्य और कुलमें वृद्ध तथा जातिके सम्बन्धी बांधव इन सहित सभामें बैठेहुए राजा युधिष्ठिर इन सबके सुनते हुए हे कृष्ण ! हे भक्तवत्सल, इस प्रकार संबोधन देकर बोले ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ कि, हे समर्थ ! यज्ञोंका राजा राजसूय यज्ञ करके मैं पवित्र कर्मवाले आपका पूजन करूंगा, इस कारण आप इस कार्यको सिद्ध करो ॥ ३ ॥

अभद्रके नाश करनेवाली तुम्हारी चरणपादुकाका जो पुरुष सेवन, ध्यान और पवित्र होकर वाणीसे नाम लेतेहैं हे कमलनाभ ! वही पुरुष संसारसे छूट जाते हैं और जो चाहना करते हैं, वह मनोरथ भी उनके सिद्ध होजाते हैं और कैसाही चक्रवर्ती क्यों न हो, विना भक्तिके कुछ नहीं होता ॥ ४ ॥ इसकारण हे देवदेव ! यह लोक इस संसारमें तुम्हारे चरणारविन्दकी सेवाके प्रभावको देख, हे समर्थ ! कितनेही कुरु व सृंजय वंशी लोग जोकि कर्मादिकको प्रधान मानकर आपकी भक्तिको उत्तम नहीं समझते, उनका अज्ञान दूर करनेको जो आपका भजन करते हैं और जो नहीं करते उन दोनोंकी स्थिति दिखाओ ॥ ५ ॥ सबके आत्मा, समदर्शी, आत्मसुख, अनुभवरूप ब्रह्म तुम हो, आपके अपना बिराना यह भेद बुद्धि कुछ

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरंति ध्यायंत्यभद्रनशने शुचयो गृणंति ॥ विन्दंति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥ तद्देवदेव भवतश्चरणारविंदसेवाऽनुभावमिह पश्यतु लोक एषः ॥ ये त्वां भजंति न भजंत्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृंजयानाम् ॥ ५ ॥ न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ॥ संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितं राजन्भवता शत्रुकर्शिना ॥ कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥ ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ॥ सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे ॥ संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥

नहीं है, जैसे कल्पवृक्षका जो सेवन करै उसीको फल प्राप्त हो, उसी प्रकार जो तुम्हारा सेवन करै तुम उसी पर प्रसन्न होते हो, जो जैसी सेवा करै, उसे वैसाही फल देतेहो, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजा युधिष्ठिर ! हे शत्रुनाशक ! तुमने यह भला निश्चय किया है, क्योंकि इस यज्ञके करनेसे सब लोकोमें तुम्हारी मंगलरूप कीर्त्ति फैलेगी ॥ ७ ॥ हे समर्थ राजा युधिष्ठिर ! यह संपूर्ण यज्ञोंका राजा राजसूययज्ञ तुमने करना विचारा है, सो ऋषीश्वर और पितृ तथा देवता और सुहृद तथा हम और समस्त प्राणियोको प्यारा है ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण राजाओंको जीत

और संपूर्ण पृथ्वीको वशमें कर और सब सामग्रियें इकट्ठी करके तुम इस यज्ञको करो ॥ ९ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! यह तुम्हारे भाई लोकोंका पालन करनेवाले देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए और दूसरेमेंभी जिनको अजितेन्द्रिय पुरुष कभी वशमें नहीं करसक्ते, तुम्हारे जितेन्द्रियपनसे तुम्हारे वशमें हूँ इसलिये शीघ्रही यज्ञ पूर्ण होगा ॥ १० ॥ मेरे आश्रयवाले पुरुषोंको लोकमें तेज, वैभव, सेनासे कोई देवता भी पराभव नहीं करसक्ते हैं तो राजा क्या करसक्ते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन प्रसन्नतासे प्रफुल्लितवदन राजा युधिष्ठिरने भगवान्के तेजसे बढे हुए अपने भ्राताओंको दिशाओंके जीतनेको भेजा ॥ १२ ॥ सृंजय देशके राजाओंको संग करके दक्षिणदेशके

एते ते भ्रातरो राजँल्लोकपालांशसंभवाः ॥ जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥ १० ॥ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ॥ विभूतिभिर्वाऽभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखांबुजः ॥ भ्रातॄन्दिग्विजयेऽयुंक्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥ सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सह सृंजयैः ॥ दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ॥ प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥ ॥ १३ ॥ ते विजित्य नृपान्वीरा आजह्रुर्दिग्भ्य ओजसा ॥ अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितं जरासंधं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ॥ आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥ भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिंगधरास्त्रयः ॥ जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥

राजाओंको जीतनेके लिये सहदेवको, उसी प्रकार पश्चिम दिशाकी तरफ मत्स्य देशके राजोंसहित नकुलको, केकय राजोंके साथ उदीची तरफ अर्जुनको और पूर्वकी ओर मद्रदेशके राजोंसहित भीमको आज्ञा दी, हे परीक्षित ! सहदेव, अर्जुन, नकुल और भीमसेनने संपूर्ण दिशाओंके राजाओंको बलपूर्वक जीत यज्ञ करनेकी इच्छावाले अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको बहुत द्रव्य लाकर दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ सब दिशाओंके राजा तो जीतगये परन्तु पूर्व दिशाका राजा जरासन्ध जीतनेमें नहीं आया, इस बातको श्रवण कर अतिचिन्ताको प्राप्तहुए राजा युधिष्ठिरसे जो उपाय उद्धवजीने श्रीकृष्णचन्द्रको बताया था, सो उपाय श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ हे राजन ! तब तो भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र

तीनों ब्राह्मणका रूप धारण कर जहाँ बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध गिरिव्रजनाम किलेमें रहता था वहाँ गये ॥ १६ ॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये इन क्षत्रियोंने भिक्षुकोंके आनेके समय ब्रह्मभक्त गृहस्थ घरमें स्थित राजा जरासन्धसे भिक्षाकी प्रार्थना की ॥१७॥ कि, राजा जरासन्ध ! हम बहुत दूरसे अतिथि आये हैं, सो तुम जानो और जिस वस्तुकी हम चाहना करते हैं, वह वस्तु हमको दो, इसमें तुम्हारा कल्याण होगा * ॥ १८ ॥ सहनशीलपुरुष क्या नहीं सह सकते हैं ? और असाधु लोग कौनसा अकृत्य नहीं कर सक्ते ? और दाता लोगोंको कौनसी वस्तु अदेय है ? और समदर्शियोंका कौन शत्रु है ? इसलिये नाम लेनेसे क्या प्रयोजन जो मांगें सो दो ॥ १९ ॥ साधुओंसे गानेयोग्य नित्य यशको जो पुरुष

ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ॥ ब्रह्मण्यं समयाचेरन्राजन्या ब्रह्मलिंगिनः ॥ १७ ॥ राजन्विद्ध्यतिथी न्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ॥ तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥ १८ ॥ किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ॥ किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ॥ नाऽऽचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥ २० ॥ हरिश्चंद्रो रंतिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ॥ व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ॥ राजन्यबंधून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिंतयत् ॥ २२ ॥ राजन्यबंधवो ह्येते ब्रह्मलिंगानि बिभ्रति ॥ ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥२३॥

अनित्य देहसे आप समर्थ होकर नहीं करे, वह पुरुष निन्दा और शोच करनेयोग्य है ॥ २० ॥ राजा हरिश्चन्द्र तथा रंतिदेव और मुद्गल ऋषि, राजा शिबि, तथा बलि, वधिक और कपोत पक्षी और ऐसे बहुत महात्मा वा अनित्य देहसे ध्रुव यशको प्राप्त हुये ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जरासन्ध कर्कश बोलना और स्वरूप तथा धनुषकी प्रत्यंचाके गट्ठेके चिह्नवाले पहुँचोंको देखकर "यह क्षत्रियोंमें नीच हैं" यह जानकर द्रौपदीके स्वयंवरमें मैंने पहले देखे हैं, यह विचार करने लगा ॥ २२ ॥ यद्यपि यह क्षत्रियोंमें नीच हैं, परन्तु तो भी ब्राह्मणोंका वेष

* शंका—श्रीकृष्णने ब्राह्मणका रूप धारणकर जरासन्धसे कहा कि, हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण होगा, फिर उसी समयमें युद्ध करके कुछ दिन पीछे अमंगलरूप मरणको क्यों प्राप्त हुआ ? जब भगवान्ने अपने मुखसे मंगल होना कहा फिर वह एक महीने भी जीता न रहा, यह कैसा मंगल ?

उत्तर—शूरवीर योद्धा युद्धमें मरनेको अशुभ और अमंगल नहीं समझते, युद्धमें मरणहीको अपना बड़ा कल्याण मानते हैं, इसलिये श्रीकृष्णके वाक्यके प्रमाणसे युद्धमें मरणरूप कल्याण जरासन्धको प्राप्तहोगया॥

धारण किया है, इसलिये अदेय अपनी आत्मा भी यदि यह माँगें तो इनको भिक्षा दूंगा ॥ २३ ॥ विष्णु भगवान्‌ने ब्राह्मणका स्वरूप वामन अवतार धर दैत्यराज बलिको ऐश्वर्यभ्रष्ट किया, परन्तु उसकी निर्मल कीर्त्ति पृथ्वीपर अबतक श्रवणगोचर होती है ॥ २४ ॥ देवराज इन्द्रकी शोभा हरनेके लिये ब्राह्मणका रूप धरके आयेहुये विष्णु भगवान्‌को यद्यपि जानता भी था कि, मेरे छलनेके लिये आये हैं और शुक्राचार्यने मने भी किया, परन्तु तोभी दैत्योंके राजा बलिने वामनजीको पृथ्वीका दान दिया ॥ २५ ॥ एक दिन तो अवश्यही यह देह पतित होगा, फिर जीवितही क्षत्रियके देहसे ब्राह्मणके लिये निर्मलयशको न करै तो इस देहसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥ २६ ॥ इसप्रकार निश्चय करके उदारबुद्धि जरासन्ध श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहनेलगा कि, हे ब्राह्मणो ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो तब श्रीकृष्णचन्द्र फिर पक्की करते हैं, कि हे राजन् !

बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्विततता दिक्ष्वऽकल्मषा ॥ ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियं जिहीर्षतेंद्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ॥ जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवताऽब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबंधुना ॥ देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥ इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ॥ हे विप्रा व्रियतां कामो ददास्यात्मशिरोपि वः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धं नो देहि राजेंद्र द्वंद्वशो यदि मन्यसे ॥ युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः ॥२८॥ असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् ॥ अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः ॥ आह चामर्षितो मंदा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥ ३० ॥

हम जो मांगेंगे सो दोगे ? तब जरासन्ध बोला कि, वारंवार क्या कहते हो यदि आपको मेरे शिरकी भी आवश्यकता होगी, तो वह भी काटकर समर्पण करूंगा ॥२७॥ तब तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजाओंके इन्द्र राजन् जरासंध ! यदि तुम्हारे मनमें आवे तो द्वन्द्वयुद्ध हमको दो और युद्धके लियेही हम क्षत्रिय तुम्हारे पास आये हैं, अन्नके लेनेवाले हम ब्राह्मण नहीं हैं ॥ २८ ॥ तब जरासन्धने पूछा तुम कौन हो ? यह सुन श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, वृकनामा अग्नि जिसके उदरमें ऐसा यह भीमसेन है, इसका भाई यह अर्जुन है और इनके मामाका पुत्र तेरा पहला वैरी मैं श्रीकृष्ण हूं, सो मुझे तो तुम भलीभाँति जानतेहोंगे ॥ २९ ॥ इसप्रकार सुनकर मगधदेशका राजा जरासन्ध बहुत हँसा इसके उपरान्त क्रोधमें

भरकर हे मूर्ख ! मैं तुमको युद्ध दूँगा, इसप्रकार कहनेलगा ॥ ३० ॥ अरे डरपोक कृष्ण ! व्याकुलचित्त तेरे संग मैं युद्ध नहीं करूंगा, क्योंकि मेरे डरसे तो तू प्रथम ही मथुरापुरीको त्याग समुद्रमें जाय वसा है ॥ ३१ ॥ अर्जुन मुझसे युद्धमें न्यून है और न मेरे समान बलवान् है, इसलिये अर्जुन योद्धा नहीं है, हां भीमसेन कुछेक मेरे समान बलवान् है, इसके संग युद्ध करूंगा ॥ ३२ ॥ इतनी बात कह जरासन्ध भीमसेनको बड़ी गदा दे और आप दूसरी गदा लेकर पुरसे बाहर निकला ॥३३॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित ! बडा मदवाला भीमसेन और जरासन्ध परस्पर मिलकर रण भूमिमें वज्रके समान गदाका प्रहार करनेलगे ॥ ३४ ॥ रंगभूमिमें प्राप्तहुए नटोंके समान बांयें दांयें विचित्र मंडलमें फिरते इन दोनोंका युद्ध अत्यन्त

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ॥ मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ ३१ ॥ अयं तु वयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ॥ अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ॥ द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥ ३३ ॥ ततः समे खले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ ॥ जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥ मंडलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ॥ चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रंगिणोः ॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ॥ गदयोः क्षिप्तयो राजन्दंतयोरिव दंतिनोः ॥ ३६ ॥ ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योऽन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् ॥ चूर्णी बभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्य्वोः ॥ ३७ ॥ इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम ॥ शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥

शोभायमान लगनेलगा ॥ ३५ ॥ हे महाराज परीक्षित ! दांतवाले हाथियोंका जैसा शब्द होता है उसीप्रकार इनदोनों वीरोंके गदा चलानेका वज्रजैसे पिसे ऐसेही शब्द होनेलगा ॥ ३६ ॥ युद्ध करनेसे बढा है क्रोध जिनका ऐसे हाथियोंकी लडाईमें आकडी जैसे चूर्ण होजाती है, उसी प्रकार भुजाओंके वेगसे आपसमें बडा क्रोधकर लड़नेवाले हाथियोंके शरीरपर पछाड़कर जैसे आककी गुदिया टूट जातीहैं, उसीप्रकार बाँहोंके वेगसे चलायमान गदा, कंधा, कमर, पॉव, हाथ, जंघा इनसे लगकर चूर्ण होगई ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब दोनों वीरोंकी गदा टूटगई, तब

क्रोधी मनुष्योंमें वीर भीमसेन और जरासन्ध लोहेके समान स्पर्शवाले घूंसोंकी मार शरीरमें मारनेलगे, हाथियोंके समान आपसमें मारते जरासन्ध व भीमसेनके प्रहारसे उठा शब्द जैसे विना बादल वज्रपातका शब्द होताहै, उसीप्रकार कठोर होनेलगा ॥ ३८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! नहीं घटा है बल जिनका और बराबर है दॉव, पेंच, बल, प्रभाव जिनका इसी प्रकार घूंसोंकी मारसे भीमसेन और जरासंधका बराबर युद्ध होनेलगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार दिनमें तो युद्ध करे और रातको मित्रके समान एक स्थानपर रहैं ऐसे जरासन्ध और भीमसेन दोनों वीरोंको युद्ध करते सत्ताईस दिन बीत गये ॥ ४० ॥ हे राजा परीक्षित् ! एक समय मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रसे भीमसेनने कहा कि, हे माधव ! युद्धमें जरासन्धको मैं नहीं जीत सक्ता ॥ ४१ ॥ क्योंकि जरासन्धका दो भाग होकर जन्म हुआ है और उन खण्डोंको जरा नाम राक्षसीने जोड़ दिया है,

तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ॥ निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ॥ दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥ एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ॥ न शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधि माधव ॥ ४१ ॥ शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितं च जराकृतम् ॥ पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिंतयद्धरिः ॥ ४२ ॥ संचिंत्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ॥ दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४३ ॥ तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतांवरः ॥ गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४४ ॥ एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ॥ गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥ ४५ ॥

इस कारण यह दो खण्ड होनेसेही मरेगा, इस बातको जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने भीमसेनको अपने तेजसे बढाया और जरासन्धके चीरनेका विचार किया ॥ ४२ ॥ सफलज्ञान श्रीकृष्णचन्द्र वैरी जरासन्धके मारनेका चिंतवन कर तिनुका चीरकर भीमसेनको सैनसे जताया कि, जैसे मैंने तिनुका चीरा उसी प्रकार तू इसको चीरडाल ॥ ४३ ॥ मारनेवालोंमें श्रेष्ठ, महाबलवान भीमसेनने श्रीकृष्णचन्द्रके संकेतको जान वैरी जरासन्धका पॉव पकड़कर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! जैसे बड़ा हाथी वृक्षकी शाखाको पकड़कर चीरड़ालता है, उसी प्रकार अपने पाँवसे उसके एक पॉवको दाब और दूसरे पाँवको भुजाओंसे पकड़ गुदाके बीचसे चीरडाला ॥ ४५ ॥

एक एक पांव, जंघा, अंडकोश, कमर, पीठ, स्तन, कन्धा, एक एक भ्रुकुटी और कान ऐसे दोखण्ड किये सब प्रजाने देखा ॥४६॥ मगधदेशका राजा जरासन्ध जिस समय मारागया, उस समय महा हाहाकार शब्द होनेलगा, इसके पीछे अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र भीमसेनको आलिंगन करके पूजा करनेलगे ॥ ४७॥ अप्रमेयस्वरूप, समर्थ, सब प्राणियोके पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधदेशका राज्यतिलक दिया इसके उपरान्त जरासन्धने जो वीसहजार आठसौ राजाओंको बंदी करलिया था उन्हें भी बंदीखानेसे छुडादिया ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां जरासन्धवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ दोहा—तेहत्तर हरि बंदिसे, सब

एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ॥ एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे सकले ददृशुः प्रजाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ॥ पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥ ४७ ॥ सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ॥ अभ्यषिंचदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ॥ मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे जरासंधवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलाया युधि निर्जितः ॥ ते निर्गता गिरिद्रोण्या मलिना मलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ॥ ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्सांकं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशंखरथांगैरुपलक्षितम् ॥ किरीटहारकटककटिसूत्रांगदाचितम् ॥ ४ ॥

नृप दिये छुटाय। भोग्य योग्य बहु वस्तु दै, दिये घरन पहुँचाय ॥ ७३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि; हे राजा परीक्षित! मलिनरूप, क्षुधासे कृश सूखे मुख, ऐसे वीसहजार आठसौ राजा जो गिरिद्रोणी नाम दुर्गमें कैद थे उन्हें लीलापूर्वकही छुडादिया, तब उन सब राजाओंने बन्दीखानेसे बाहर निकलकर मेघके समान श्यामरूप, पीले वस्त्र धारण कियेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ अब जैसे स्वरूपसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया, सो वर्णन करतेहैं, तुम श्रवण करो। हृदयमें शोभायमान भृगुलताका चिह्न, चार भुजा और कमलके गर्भके समान अरुण नेत्र सुन्दर प्रसन्न मुख और प्रकाशमान मकराकृत कुण्डल धारण किये, कमल हाथमें लिये विराजमान, शंख, चक्र, गदा धारण करे और किरीट, हार, कड़ा,

करधनी व बाजूबन्द पहरे ॥ ३ ॥ ४ ॥ प्रकाशमान सुंदर मणिग्रीवा तथा गलेसे पांवतक वनमालासे शोभायमान इस प्रकार रूपको देखकर राजाओमें लूटसी पडगई और नेत्रोंको ऐसे चलानेलगे, मानो रूपको पीजायँगे ॥ ५ ॥ जीभ ऐसी चलावें मानो चाट जाँयगे, भुजा ऐसी चलावें मानो स्वरूपको आलिंगन करलेंगे, इस प्रकार पाप दूर होनेसे वह राजा मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम करने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इन राजा लोगोंके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण बन्दीखानेके सब क्लेश मिटगये, तब यह सब राजा हाथ जोड़ हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर वाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ ७ ॥ राजा लोग कहनेलगे कि, हे देवदेव ! हे शरणागतका कष्ट हरनेवाले ! अवि

भ्राजद्धारमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ ५॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां रंभंत इव बाहुभिः ॥ प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥ कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ॥ प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्रांजलयो नृपाः ॥ ७ ॥ राजान ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ॥ प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नूनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ॥ अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥ राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विंदते नृपः ॥ त्वन्मायामोहितोनित्या मन्यते संपदोऽचलाः ॥ १० ॥ मृगतृष्णां यथा बाला मन्यंत उदकाशयम् ॥ एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥ ११ ॥ वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयाऽस्या इतरेतरस्पृधः ॥ घ्नंतः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाऽविगणय्य दुर्मदाः ॥ १२ ॥

नाशी ! हे कृष्ण ! हम घोर संसारसे दुःखी हुए और तुम्हारी शरण आये हमारी रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हम लोग जरासन्धको दोष नही लगाते, क्योकि हे प्रभो ! राजाओका जो राज्य भ्रष्ट होवे, यह आपका अनुग्रह समझना चाहिये, राज्यसंबन्धी ऐश्वर्यसे मदमत्त राजा आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य पदार्थोंको स्थिर मानते हैं, और उसीसे कल्याणको प्राप्त नहीं होते ॥ ९ ॥ १० ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सूर्यकी किरणोंसे चमकते हुए वालूको जलका सरोवर मानतेहैं, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष नाना सृष्टि असद्रूपी जो माया है, उसको सत्य मानतेहैं ॥ ११ ॥ हे समर्थ ! हम लक्ष्मीके मदसे अन्धे हो इस पृथ्वीके जीतनेकी इच्छासे परस्पर द्वेष करते और मृत्युके समान शिरपर खड़े कालरूप आपको नहीं

गिनते थे और मदसे उन्मत्त हो, निर्दयीपनसे अपनी प्रजाको महाकष्ट देते थे॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! गंभीर वेग और बड़े पराक्रमशाली तुम्हारी कालमूर्तिने हमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट करदिया, परन्तु अब तुम्हारी कृपासे गर्वरहित होकर आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं * ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त नित्य आयु जिसकी क्षीण हो और एक न एक रोग जिसमें उत्पन्न हो, ऐसे देहसे मृगतृष्णारूप मिथ्या राज्यकी हम अच्छा नहीं करते, केवल राज्यकी इच्छा नहीं करते इतनाही नहीं, वरन् परलोकमें क्रियाके फलरूप कर्णप्रिय स्वर्गादिक भोग भी नहीं चाहते ॥ १४ ॥ और हे भगवन् !

त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरंतवीर्येण विचालिताः श्रिया ॥ कालेन तन्वा भवतोऽनुकंपया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ॥ १३ ॥ अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा ॥ उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥१४॥ तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ॥ स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥ १५ ॥ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ॥ प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमोनमः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तूयमानो भगवान्राजभिर्मुक्तबंधनैः ॥ तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७ ॥

इस संसारमें भूले हम राजा लोग किसी योनिमें भी तुम्हारे चरणारविन्दोंको न भूलें ऐसा उपाय बताओ ॥ १५ ॥ भक्तोंके क्लेशको दूर करनेवाले, शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक हरि परमात्मा और अपने भक्तोंका क्लेश काटनेवाले गोविन्द आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब जरासंधके बंदीखानेसे छूटे राजाओंने इसप्रकार स्तुति करी तब शरणके योग्य करुणावान् भगवान् श्रीकृष्ण

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धका वध करके बीससहस्र २०००० राजाओंको कारागारसे छुटाया तब तो सब राजा भगवान्को हे कृष्ण ! कहिकर क्यों पुकारे ? जैसा कोई मनुष्य अपने बराबर वालेको पुकारते हैं इस प्रकार क्यों पुकारा ? यह बडा अयोग्य वचन कहा । राजाओंको ऐसा वचन कहना नहीं चाहिये था, उनको इसप्रकार कहना चाहिये था कि, हे महाराज ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे दीनपालक ! हे दीनदयालु ! हे करुणासागर ! हे भक्तवत्सल ! ऐसे वाक्योंसे और अनेक प्रकारका दुलार करके श्रीकृष्णको पुकारना चाहिये था ?

उत्तर—राजालोग प्रथम तो अपने २ राज्यसिंहासनपर बैठे थे तब तो अभिमानसे सत्सग किया नहीं इस कारण मूर्ख तथा गँवार होगये, जब जरासन्ध पकडकर लाया और बेडी पहराकर बन्दीगृहमें डालदिया तब दुःखी होकर सुधि बुधि भूलगये, दोनों भाँतिसे उनको बोलनेकी चतुराई न आई, वह विना सींगके पशु हैं इसीलिये उन राजाओंके मुखसे जो वचन निकले सोई अच्छे हैं क्योंकि दुःखी और अभिमानी जो न कहै सो थोडा इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ एक ब्राह्मणको किसी प्रेमीने बडी शुश्रूषासे न्योता और अनेक प्रकारके भोजन उसको जिमाये तब उसका पेट बहुत भरगया तब वह बोला बडे सत्यानाशीके यहां भोजन किया, इससे मूर्खोंके दुर्वाक्योंपर ध्यान न करै ॥

चन्द्रने मनोहर वाणीसे राजाओंसे कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजाओ ! जैसे तुमने चाहना करी उसी प्रकार सबका ईश्वर और आत्मा जो मैं हूं, सो मुझमें तुम्हारी आजसे दृढ़ भक्ति हुई ॥१८॥ हे राजालोगो ! सत्यवादी तुमने मेरा भजन करना, यह भला सत्य संकल्प निश्चय कियाहै, क्योंकि मनुष्य धन और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो इच्छानुसार विचरते देखे जाते हैं॥१९॥कृतवीर्यका पुत्र चक्रवर्ती राजा सहस्रबाहु एकसमय जमदग्नि ऋषिकी गौ हरके ले आया तब उसका परशुरामजीने पुत्रोंसहित संहार किया और राजा नहुष मदोन्मत्त होकर इन्द्राणीके पास जानेके लिये ब्राह्मणोंको पालकीमें जोतकर चला, तब ब्राह्मणोंने उसे ऐश्वर्यभ्रष्ट करके सर्प करदिया और राजा वेनने मदोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंका तिरस्कार किया, तब ब्राह्मणोंने अत्यन्त क्रोधित होकर हुंकार शब्दसे उसका प्राणसंहार किया और राक्षसराज रावणने सीताकी आकांक्षा करी, तब महात्मा श्रीरा

श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ॥ सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥१८॥ दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवंत ऋतभाषिणः ॥ श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥ १९ ॥ हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ॥ श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥ भवंत एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमंतवत् ॥ मां यजंतोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥ २१ ॥ संतन्वंतः प्रजातंतून्सुखं दुःखं भवाभवौ ॥ प्राप्तंप्राप्तं च सेवंतो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥ २२ ॥ उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यङ्मामंते ब्रह्म यास्यथ ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान्भुवनेश्वरः ॥ तेषां न्ययुंक्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥

मचन्द्रजीने उसका वध किया और दैत्यराज नरकासुरने जब अदितिके कुण्डल हरलिये तब उसे मैंनेही मारा और कितनेही देवता और राजा धनके मदसे स्थानभ्रष्ट होगये ॥ २० ॥ और तुम समस्त उत्पन्न देहादिकसे नाश होउगे, यह जान सावधान हो यज्ञ करके मेरा पूजन और प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ और पुत्रादिकोंको उत्पन्न करो, जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख जो प्राप्त होय उसका सेवन करो और मुझमें चित्त लगाकर विचरो ॥ २२ ॥ आत्मामें रमण करते व्रतधारण किये देह और घरोंमें उदासीन होकर भलेप्रकार मुझमें मन लगाओगे तो अंतमें परब्रह्मरूप मुझे प्राप्त होगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! त्रिलोकीके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसप्रकार राजाओंको आज्ञा कर और उनको

उबटन स्नान और क्षौर इत्यादि कर्म करानेके लिये स्त्री पुरुषोंको भेजा ॥ २४ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! राजाओंके स्नान करचुकने पर जरासन्धके पुत्र सहदेवसे राजाओंके योग्य वस्त्र आभूषण माला और चंदनादिसे उनकी पूजा करानेलगे ॥ २५ ॥ सुन्दर स्नान करे वस्त्र आभूषणोंसे शोभित और अनेक प्रकारके भोगोंसे युक्त राजाओंको श्रेष्ठ अन्न भोजन कराय राजाओंके योग्य ताम्बूलादिक देनेलगे ॥ २६ ॥ मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे पूजित और प्रकाशमान कुण्डलोंको पहरे बन्दीखानेके क्लेशसे छुटाये राजा वर्षाऋतुके पीछे आकाशमें तारागणोंके समान शोभायमान लगनेलगे ॥ २७ ॥ मणि और सुवर्णके गहनोंसे शोभायमान राजाओंको सुन्दर घोडे जुते रथोंमें चढ़ाय और मनोहर

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ॥ नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥२५॥ भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलंकृतान् ॥ भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्तांबूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥ ते पूजिता मुकुंदेन राजानो मृष्टकुंडलाः ॥ विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडंते यथा ग्रहाः ॥ २७ ॥ रथान्सदश्वानारोप्य मणिकांचनभूषितान् ॥ प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्यापयत् ॥ २८ ॥ त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना ॥ ययुस्तमेव ध्यायंतः कृतानि च जगत्पतेः ॥ २९ ॥ जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ॥ यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतंद्रिताः ॥ ३० ॥ जरासंधं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ॥ पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥ ३१ ॥

वचनोंसे प्रसन्न कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें अपने देशोंको भेजदिया ॥ २८ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार जगत्पति महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके छुड़ायेहुए कष्टमुक्त राजालोग भगवान्का और उनके चरित्रोंका ध्यान करते अपने अपने नगरको चलेगये ॥ २९ ॥ वह समस्त राजा जैसे महापुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने छुड़ाए थे और जैसे पूजा कराई थी, उसी प्रकार वह सब वृत्तान्त अपनी प्रजाके सन्मुख वर्णन किया और जिसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने शिक्षा दी थी, उसी प्रकार आलस्य छोडकर करनेलगे ॥ ३० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार भीमसेनके हाथसे जरासंधको मरवाय और सहदेवसे अपना पूजन कराय भीम और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ आये ॥ ३१ ॥

दुष्ट हृदय शत्रुओंको दुःख देनेवाले और अपने सुहृदोंको आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण, भीम, अर्जुन यह सब वैरी जरासन्धको मार इन्द्रप्रस्थमें आनकर शंखध्वनि करनेलगे ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित ! शंखका शब्द सुन प्रसन्नमन इन्द्रप्रस्थनिवासी "जरासन्धकी मृत्यु हुई" यह जानगये और धर्मराज राजा युधिष्ठिरके मनोरथ पूर्ण होगये ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त भीम अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रने आय राजा युधिष्ठिरको प्रणाम कर आपने जो कुछ किया सो सब कहा ॥ ३४ ॥ धर्मराजके पुत्र राजा युधिष्ठिर ब्रह्मा महादेवके वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो कार्य किया उसे सुन, नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी धार बहाते, प्रेमसे विह्वल हो कुछ न बोले ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे

गत्वा ते खांडवप्रस्थं शंखान्दध्मुर्जितारयः ॥ हर्षयंतः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इंद्रप्रस्थनिवासिनः ॥ मेनिरे मागधं शांतं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥ अभिवंद्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ॥ सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकंपितम् ॥ आनंदाश्रुकलां मुंचन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधोत्तरार्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं युधिष्ठिरो राजा जरासंधवधं विभोः ॥ कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ॥ वहंति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ स भवानरविंदाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ॥ धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यंतविडंबनम् ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ दोहा—चौहत्तरमें राजसुय, कियो युधिष्ठिर यज्ञ । तबही हनो शिशुपाल नृप, श्रीकृष्ण सर्वज्ञ ॥७४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जरासंधका वध और श्रीकृष्णका प्रभाव सुन अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि ॥ १ ॥ जो पुरुष त्रिलोकीके गुरु हैं सब लोकोंके बड़े ईश्वर हैं, वह भी दुर्लभ मानकर तुम्हारी आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे व्यापक कमलनयन ! आप हम दुःखी और सामर्थ्यपनका अभिमान रखनेवालोंकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हो, यह

विडम्बनामात्र है, वास्तवमें आपको यह बात संभव नहीं हो सक्ती ॥ ३ ॥ एक अद्वितीय अर्थात् कोई जिनकी बराबर नहीं और कोई जिनसे बड़ा नहीं ऐसे परमात्मा तुम हो, आपका तेज परोपकारके लिये कर्मोंसे न्यून भी नहीं होता, जैसे सूर्यका उदय अस्तमें तेज बढ़ताही है, घटता नहीं ॥ ४ ॥ यदि कहो कि, मैं परमेश्वर हूं सो सबकी आज्ञा माननी, यह मंदकर्म करना योग्य नहीं है, सो कहते हैं, कि, हे मधुवंशोत्पन्न ! श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अजित ! जैसे अज्ञानी पुरुषोंके देहमें अहंकार और देहके संगमें समता रहती है, उसी प्रकार तुम्हारे भक्तोंके " तू और तेरा मैं और मेरा" यह बुद्धि नहीं होती है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यह वचन कहे

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥ न वै तेऽजितभक्तानां ममाहमिति माधव ॥ त्वं तवेति च नाना धीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः ॥ कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमंतुर्गौतमोऽसितः ॥ वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥७॥ विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ॥ पैलः पराशरो गर्गो वैशंपायन एव च ॥ ८ ॥ अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ॥ वीतिहोत्रो मधुच्छंदा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ॥ धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ॥ तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥

और उनकी सम्मति ले, यज्ञ करनेके योग्य वसंतादिकालमें वेदके पढ़नेवाले योग्य ब्राह्मणोंको होता, उद्गाता, अध्वर्यु, इत्यादिकोंमें वरण किया ॥ ६ ॥ द्वैपायन, भरद्वाज, सुमंतु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, ॥ ७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनी, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशंपायन ॥ ८ ॥ अथर्व, काश्यप, धौम्य, परशुराम, भार्गव, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्द, वीरसेन, अकृतव्रण ॥ ९ ॥ इसी प्रकार बुलायेहुए द्रोणाचार्य, भीष्मजी तथा कृपाचार्यादि ऋषि आये तब पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र और बड़े बुद्धिमान् विदुरजी भी आनकर सुशोभित हुए ॥ १० ॥ हे राजन् ! और भी यज्ञ देखनेके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व सब राजा और उनके प्रधान दीवान आये ॥ ११ ॥

इसके उपरान्त ब्राह्मण लोग यज्ञ करनेकी भूमिमें सुवर्णका हल चलाय भूमि शोधनकर राजा युधिष्ठिरको यज्ञदीक्षा देनेलगे ॥ १२ ॥ जैसे पहले वरुणके यज्ञमें सुवर्णकी सामग्री और सुवर्णके पात्र थे उसी प्रकार इस यज्ञमें भी थे और ब्रह्मा, महादेव, तथा इन्द्रादिक देवताओंको संग लेकर लोकपाल भी आये ॥ १३ ॥ गणोंसहित सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बड़े बडे सर्प, मुनीश्वर, यक्ष, राक्षस, खग, किन्नर, चारण इनके समूहके समूह आये ॥ १४ ॥ और आयेहुए राजाओंकी सब स्त्रियें, भी पांडुपुत्र राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें आईं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! इस बातको कोई आश्चर्य न करे क्योंकि हरिभक्तकी सब वार्ता सिद्ध हो सकती है इसीलिये इन्होंने युधिष्ठिरके यज्ञमें विस्मय न किया, जैसे देवताओंने वरुणको

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलांगलैः ॥ कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयांचक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥ हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ॥ इंद्रादयो लोकपाला विरिंचभवसंयुताः ॥ १३ ॥ सगणाः सिद्धगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥ १४ ॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ॥ राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पांडुसुतस्य वै ॥ १५ ॥ मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ॥ १६ ॥ राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः ॥ सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् ॥ अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥ सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशंतः सभासदः ॥ नाध्यगच्छन्नैकांत्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥ १८ ॥

यज्ञ कराया था उसी प्रकार देवताओंके समान कान्तिवाले ऋत्विज राजसूययज्ञ करके विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरसे यजन करानेलगे ॥ १६ ॥ अतिशय करके सावधान पृथ्वीका पालन करनेवाले राजा युधिष्ठिरने जिस दिन सोमवल्ली कूटीगई, उस दिन यज्ञकरानेवालोंका तथा बड़भागी जो सभामें मुख्य थे उनका पूजन किया ॥ १७ ॥ सभाके बैठनेवालोंमें प्रथम किसकी पूजा करनी चाहिये ॥ यह विचार करते करते एककी अपेक्षा एक बडा है, इसकारण जब किसीका निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिरके भाई सहदेवने कहा * ॥ १८ ॥

* शंका–पृथ्वीपर युधिष्ठिरनेही कुछ पहिले यज्ञ नहीं किया यज्ञ तो सतयुगसे अनेक राजा करते चले आये हैं फिर युधिष्ठिरकी यज्ञमें पहिले पूजन करनेके लिये देवताका विचार क्यों किया ? कुछ ब्राह्मण भी प्रथम ही यज्ञ करनेके लिये नहीं आये थे, पहिले सतयुगमें ब्राह्मण सहस्रों यज्ञ कराचुके थे, फिर धर्मराजके यज्ञमें इतना विचार क्यों किया ? जो नई बात हो उसका विचार करना चाहिये और सैंकडों वर्षसे जिस बातकी रीति चली आती हो, उस बातमें क्या सन्देह ?

भक्तोंका पालनकरनेवाले अखण्डरूप समस्त देवता देशकाल धनादिकरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रही इस यज्ञमें पूजा करनेके योग्य हैं ॥१९॥ यह सब विश्व कृष्णकाही रूप है और यज्ञादिक भी कृष्णरूपही हैं और अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान, उपासनादि भी सब कृष्णपरायण हैं ॥ २० ॥ हे सभाके बैठनेवालो ! अजन्मा एक अद्वितीय यह कृष्ण हैं सो अपने स्वरूप विश्वको अपने आत्माहीसे दूसरेकी सहायता विना उत्पन्न पालन और नाश कर तेहैं ॥ २१ ॥ सब जनोंके अनुग्रहसे इस संसारमें अनेक प्रकारके तप योगादिक कर्म करके धर्मादिकरूप कल्याणको करतेहैं और अनेक प्रकारके

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतां पतिः ॥ एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥ यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ॥ अग्निराहुतयो मंत्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥२०॥ एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् ॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हंत्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीह कर्माणि जनयन्यदवेक्षया ॥ ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ॥ एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥ सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ॥ देयं शांताय पूर्णाय दत्तस्यानंत्यमिच्छता ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ॥ तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधुसाध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥

सब कर्मोंके फल भी सब कृष्णके आधीनही हैं ॥ २२ ॥ इसलिये सबसे बडे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकीही पहले पूजा करनी योग्य है और इनकी पूजा करनेसे सब प्राणियोंकी पूजा होजायगी ॥ २३ ॥ और जो कोई पूजाके योग्य होगा उसकी भी पूजा होजायगी, इसकारण जो पुरुष पूजाके अनन्तफलकी चाहना करै वह पुरुष सब प्राणियोंके आत्मा, भेदभावरहित और शान्त परिपूर्ण भगवान् वासुदेवकी पूजा करै ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको जाननेवाला सहदेव चुप होगया और उस समय सब श्रेष्ठपुरुष सहदेवका वचन सुनकर "सत्य कहा सत्य

उत्तर—सब ब्राह्मण भगवान्को भूल नहीं गये थे सब जानते थे कि, सब कर्मोंमें और यज्ञमें भगवान्का पूजन करनाचाहिये ऐसा सब जानते थे, परन्तु दैवयोगसे शिशुपालने कालवश मुनियोंको और यज्ञकी सभामें बैठनेवाले प्राणियोंको मोहित करलिया काल करके सब मुनिजन मोहित होगये और सब मनुष्योंने बालक सरीखा काम किया क्योंकि जो यज्ञमें पहिले पूजन करनेयोग्य कौन है ऐसा विवाद न होता तो शिशुपाल श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों करता ? और विना निन्दाकिये भगवान् उसको क्यों मारते ? शिशुपालके काल करके मोहित जो मुनि और सब सभाके बैठनेवाले प्रथम पूजन करनेयोग्यका विचार करनेलगे ॥

कहा" इसप्रकार कहकर बडाई करने लगे ॥ २५ ॥ स्नेहसे विह्वल और प्रसन्न हो राजा युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंके कहे वचन सुन और सभामें बैठे हुए पुरुषोके हृदयका अभिप्राय जान इंद्रियोंको प्रेरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया ॥ २६ ॥ स्त्री, भाई, मंत्री और सब कुटुम्बके पुरुषोंसहित राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंको धोय सब लोकोंके पवित्र करनेवाले चरणारविन्दका धोवन जल अपने मस्तकपर चढ़ाय ॥ २७ ॥ पीले रेशमी वस्त्र और बहुत मोलके आभूषणोंसे भी पूजा कर आँसू भरे नेत्रोंसे राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करनेको समर्थ न हुआ ॥ २८ ॥ इस प्रकार जब राजा युधिष्ठिरने पूजा करी, तब श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर सब जन हाथ जोड नमोनमः और जय २

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ॥ समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥ तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ॥ सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुंबोऽवहन्मुदा ॥ २७ ॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ॥ अर्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्रांजलयो जनाः ॥ नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥ इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः ॥ उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी सश्रावयन्भगवते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥ ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ॥ वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥ यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम् ॥ सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्संमतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥

शब्दसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके फूलोंकी वर्षा वर्षानेलगे ॥ २९ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा हुई, तब उससमय दमघोषका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंका वर्णन सुन अत्यन्त क्रोधित हो, भुजा उठाय ईर्षाकर निर्भय हो श्रीकृष्णचन्द्रको कठोरवचन सुनाकर यह कहने लगा ॥ ३० ॥ नाशरहित श्लाघ्य सामर्थ्यवान् काल बडा प्रबल है, वास्तवमें यह वेदकी श्रुति सत्य है, क्योंकि कालसेही वृद्ध वृद्ध सभामें बैठानेवालोंकी बुद्धि इस बालक सहदेवके कहनेसे चलायमान होगई ॥ ३१ ॥ हे पात्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सभापतियो ! भला यह कृष्ण पूजाके योग्य है ? कदापि नहीं इसकारण इस बालकका वचन मानना उचित नहीं ॥ ३२ ॥

क्योंकि तप करनेवाले विद्यावान्, व्रती, ज्ञानी, पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ और लोकपालोंसे पूजित ब्रह्मर्षि ॥ ३३ ॥ इस सभामें विराजते हैं, इन सबको त्याग गायोंका चरानेवाला और कुलको दोष लगानेवाला पूजाके योग्य कैसे हो सकताहै ? और यज्ञमें देवताओंके योग्य बलि कौआ कैसे ग्रहण करनेके योग्य ॥ ३४ ॥ न जिसका कोई वर्ण, न आश्रम और न कोई कुल है, संपूर्ण धर्मसे बहिष्कृत, जैसे मनमें आवे वैसेही करै गुणहीन, ऐसा कृष्ण कैसे पूजाके योग्य हो सक्ता है ? ॥ ३५ ॥ राजा ययातिने इसके कुलको शाप दिया और सत्पुरुषोंने जातिबहिष्कृत किया और सर्वदा वृथा मदिरापान करनेवाला इसका कुल है, फिर इस कुलमें आज कृष्ण कैसे पूजाके योग्य होताहै ॥ ३६ ॥

तपोविद्याव्रतधराञ्ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ॥ परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्च पूजितान् ॥ ३३ ॥ सदसस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ॥ यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥ ३४ ॥ वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ स्वैर वर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ॥ वृथा पानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान्हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ॥ समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधते दस्यवः प्रजाः ॥ ३७ ॥ एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमंगलः ॥ नोवाच किंचिद्भगवान्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥ ३८ ॥ भगवन्निंदनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ॥ कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपंतश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥ निंदां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ॥ ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥

ब्रह्मर्षिसेवित देशोंको त्याग ब्रह्मतेजरहित समुद्रके किलेका आश्रय लेकर यादवोंमें चोरके समान बाधा देताहै ॥ ३७ ॥ भूपाल ! नष्टमंगल शिशुपाल और भी अनेक प्रकारके अमंगल वचन कहता रहा, परन्तु जैसे सिंह सियारोंके बोलनेपर ध्यान नहीं देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुछ न बोले ॥ ३८ ॥ सभासद दुस्सह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इसप्रकार निन्दा सुन, कर्ण मूँदि अत्यन्त क्रोधित हो शिशुपालको गाली देनेलगे ॥ ३९ ॥ भगवान्की निन्दा सुन अथवा भगवत् परायण पुरुषोंकी निन्दा सुनकर जो पुरुष उस स्थानसे न उठ जायँ वह पुरुष अपने पुण्यसे भ्रष्ट होकर नरकमें गिरते हैं ॥ ४० ॥

इसके उपरान्त हे परीक्षित् ! क्रोधसे पाण्डुके पुत्र और मत्स्यदेश व सृंजय देशके राजा अपने अपने शस्त्रोंको उठाकर शिशुपालके मारनेको उप
स्थित हुए ॥ ४१ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! इसके पीछे घबराहटरहित शिशुपालने श्रीकृष्णचन्द्रके पक्षी राजाओंको मारनेके लिये ढ़ाल और
अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली तलवार ग्रहण की ॥ ४२ ॥ यह मेरा पार्षद है और मेरे समान बलवान् है यह सबको मारैगा इससे मैं ही इसको मारूं,
यह विचार उसी समय उठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी ओरके राजाओंको निवारण करके सम्मुख आते अपने वैरी शिशुपालका शिर क्षुरेके
समान पैनीधारवाले चक्रसे काट लिया ॥ ४३ ॥ उस समय बडा कोलाहल शब्द हुआ और शिशुपालके पिछलगू राजा जीनेकी इच्छा करके

ततः पांडसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ॥ उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥ ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रांतो
जगृहे खड्गचर्मणी ॥ भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान्राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य स्वयं
रुषा ॥ शिरः क्षुरांतचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥ ४३ ॥ शब्दः कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् ॥ तस्यानुया
यिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥४४॥ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ॥ पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि
खाच्च्युता ॥ ४५ ॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ॥ ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥ ४६ ॥
ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ॥ सर्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥

भागगये ॥ ४४ ॥ उस समय शिशुपालके देहमेंसे निकलीहुई ज्योति सब प्राणियोंके देखते श्रीकृष्णचन्द्रमें मिलगई, जिस प्रकार आकाशसे गिरे
तारे पृथ्वीमें मिलजाते हैं ॥ ४५ ॥ पहले जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप हुये, दूसरे जन्ममें रावण, कुम्भकर्ण हुये, तीसरे जन्ममें शिशु
पाल और दन्तवक्र हुये, इस प्रकार तीन जन्मके चले आये वैरसे तन्मय बुद्धिसे रूपका ध्यान करते करते, उसी रूपको प्राप्त हुये, अर्थात्
पार्षद होगये, क्योंकि जैसी जो भावना करता है, वैसाही उसका जन्म होताहै ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिरने यज्ञके कराने
वाले ब्राह्मणोंको और बड़े सभामें बैठनेवालोंको बडी दक्षिणा दी और विधिपूर्वक सबका पूजन करके यज्ञांत स्नान किया ॥ ४७ ॥

योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने राजा युधिष्ठिरका यज्ञ सिद्ध करके और सुहृदोंकी विनयसे कितनेही मास पर्यन्त वहाँ वास किया ॥४८॥ इसके उपरान्त जाने देनेकी इच्छा न करनेवाले राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा माँग सामर्थ्यवान् भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र अपने स्त्री पुत्रोंको संग लेकर द्वारकापुरीमें आये ॥४९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! वैकुण्ठके वास करनेवाले जय, विजय पार्षदोंको सनकादिकका शाप लगा, इसकारण वारम्वार जन्म हुआ, प्रथम यह कथा तुम्हारे आगे विस्तार सहित वर्णन कर चुके हैं ॥ ५० ॥ राजसूययज्ञ कर चुकनेके पीछे स्नानकर राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण और क्षत्रियोंके मध्यमे बैठे इन्द्रके समान सभामें शोभायमान लगने लगे ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरसे सत्कार पाय

साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छंतमपीश्वरः ॥ ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥ ४९ ॥ वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ॥ वैकुंठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥ ५० ॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ॥ ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥ ५१ ॥ राज्ञः सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ॥ कृष्णं क्रतुं च शंसंतः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ॥ यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पांडुसुतस्य ताम् ॥ ५३ ॥ य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥ राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सब देवता और आकाशके विचरनेवाले मनुष्य, प्रमथगण श्रीकृष्णचन्द्र और सभा तथा यज्ञ इनकी प्रशंसा करते आनन्दपूर्वक अपने अपने लोकोंको चलेगये ॥ ५२ ॥ परन्तु कौरवोंके कुलमें कलियुग रूप कुलका नाशक, धर्मद्वेषी दुर्योधन पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिरकी बडी शोभाको देख अपने मनमें बहुत कुढा ॥ ५३ ॥ शिशुपालके वध आदिक जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म वीस हजार आठसौ राजा कैदसे छुटाये और राजा युधिष्ठिरका यज्ञ कराया, इस प्रसंगको जो पुरुष कहैं अथवा सुनैंगे, वह सब पापोंसे छूट जायँगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

दोहा–पिछहत्तर भ्रममें पडो, अवभृथको अस्नान । दुर्योधनको क्षमा विन, भयो मान अपमान ॥ ७५ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी ! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञकी बडी शोभा देखकर जो राजा आये थे, वह सब प्रसन्न हुये ॥ १ ॥ और संपूर्ण देवताओंने भी आनन्द पाया, केवल दुर्योधनही आनन्दसे वंचित रहा, यह हमने आपकेही मुखसे सुना, सो दुर्योधनको आनन्द क्यों न हुआ इसका कारण कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ २॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! महात्मा तुम्हारे दादे राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें सब बन्धु बांधव प्रेमवश होकर सबही टहल करते थे ॥ ३॥ किसने कौन काम किया सो कहतेहैं, भीमसेनको रसोईका अधिष्ठाता,

राजोवाच ॥ अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥ सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ॥ इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ॥ बांधवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबंधनाः ॥ ३ ॥ भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ॥ सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥ गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ॥ परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ॥ बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च संतर्दनादयः ॥ ६ ॥ निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ॥ प्रवर्तंते स्म राजेंद्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥

दुर्योधनको खर्च करनेका स्वामी कोशाध्यक्ष किया, क्योंकि यह हमको शत्रु जानकर बहुत द्रव्य उठावेगा, तो इसमें हमारा यश होगा, सहदेवको आये गयेकी पूजा करनेका काम सौंपा और नकुलको अनेक प्रकारकी सामग्रियोंका सम्पादक बनाया ॥ ४ ॥ साधुओंकी सेवा अर्जुन करताथा, और श्रीकृष्णचन्द्र यज्ञमें आनेवालोंके पॉव धोकर पोंछदेते थे, परोसा परोसीमें द्रौपदी लगरही थी उदारमन कर्ण दान देनेकी टहलमें लग रहाथा ॥ ५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! सात्यकी, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुरादिक, भूरिश्रवादि, बाह्लीक राजाके पुत्र और संतर्दन आदि उस बड़े यज्ञमें अनेक प्रकारके कामोंमें लगा दिये, उस समय वह सब महाराज युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये सब प्रवृत्त होगये ॥६॥ ऋत्विक और सभासद तथा

विवेकी सुहृज्जनोंने सुन्दर मनोहर वचन गहने और दक्षिणासे पूजित होकर शिशुपालको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्राप्ति होनेके उपरान्त स्वर्गनदी गंगामें यज्ञकी समाप्तिका स्नान किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ यज्ञकी समाप्तिके उत्सवमें मृदंग, शंख, ढोलक, खंजरी, नगारे, गोमुख, नरसिंहादिक चित्र विचित्र बाजे बजनेलगे ॥ ९ ॥ नाचनेवालीं नाचनेलगीं और आनन्दपूर्वक गवैयोंके झुण्डके झुण्ड गानेलगे, तिनके वीणा वेणु और हथेलीका शब्द स्वर्गतक व्याप्त होरहा था ॥ १० ॥ चित्र विचित्र छत्र, ध्वजा पताका जिनके ऊपर ढकी, ऐसे बड़े बड़े रथ, हाथी और घोड़ोंपर चढ सुवर्णकी माला पहरे सेनाको संग लेकर राजा निकले ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरको आगे किये यदु सृञ्जय, कांबोज कुरु कैकय और कौशल देशके

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सुसुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ॥ चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥ मृदंगशंखपणवधुंधुर्यानकगोमुखाः ॥ वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥ नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ॥ वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेंद्रस्यंदनार्वभिः ॥ स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥ यदुसृंजयकांबोजकुरुकेकयकोसलाः ॥ कंपयंतो भुवं सैन्यैर्जयमानपुरःसराः ॥ १२ ॥ सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ देवर्षिपितृगंधर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ॥ १३ ॥ स्वलंकृता नरा नार्यो गंधस्रग्भूषणांबरैः ॥ विलिपंत्योऽभिषिंचंत्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥ १४ ॥ तैलगोरसगंधोदहरिद्रासांद्रकुंकुमैः ॥ पुंभिर्लिप्ताः प्रलिपंत्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥ १५ ॥ गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ॥ ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥ १६ ॥

राजा पृथ्वीको कम्पायमान करते सेना सहित चले ॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज तथा ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करते चले और ऋषि, पितृ, गंधर्व, पुष्पोंकी वर्षा कर करके स्तुति करतेथे ॥ १३ ॥ चन्दन, माला, गहने और वस्त्रोंसे शृंगार करे स्त्री पुरुष अनेक प्रकारके दूध, दही आदि रसोंको लेपन और छिरकाव करतेथे ॥ १४ ॥ तेल और माखन सुगंधिके जल हरदी व केशर इत्यादिकोंको लेपन करते और छिडकते परस्पर विहार करते थे ॥ १५ ॥ इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम विमानोंपर बैठकर देवांगना आई हों उसीप्रकार वीर और रावतोंसे रक्षित हो रनवासकी

रानियें रथ और पालकियोंमें बैठकर निकलीं, वह रानियें मामाके पुत्रोंसे और सखियोंसे भिगोयीहुई लाजभरी मुसकान व प्रफुल्लित मुखसे शोभायमान होरहीथीं ॥ १६ ॥ भीजनेसे और शरीरमें चिपटनेसे उन स्त्रियोंके अंग, कुच, जंघा और मध्यभाग स्पष्ट दिखाई देतेथे उत्सुकतासे चोटी शिथिल होनेके कारण उससे फूल बिखर रहेथे देवर और सखीजन उन्हें डोलचियोंसे भिगोरहेथे उनकी लीला देखकर मलीनमन कामीजनोंके चित्त अत्यन्त क्षुभित होतेथे ॥ १७ ॥ सुवर्णकी माला पहरे और सुन्दर घोडे जुते रथमें बैठे राजा युधिष्ठिर जैसे क्रियाओं सहित यज्ञ सुन्दर

ता देवरानुत सखीन्सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नांबरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ॥ औत्सुक्यमुक्तकवराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥ १७ ॥ स सम्राड् रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ॥ व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥१८॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥ आचांतं स्नापयांचक्रुर्गंगायां सह कृष्णया ॥ ॥ १९ ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्नरदुंदुभिभिः समम् ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥ सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ॥ महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥ २१ ॥ अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ॥ ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणांबरैः ॥ २२ ॥

लगता है उसी प्रकार स्त्रियों सहित शोभायमान लगनेलगे * ॥ १८ ॥ ऋत्विजोंने वे पत्नी संयाज और आवभृथ्य नाम दो यज्ञांग करके गंगामें द्रौपदी सहित आचमन कर राजा युधिष्ठिरको स्नान करवाया ॥ १९ ॥ देवता तथा मनुष्योंके नगारे बजनेलगे और देवता ऋषि पितृ मनुष्यादि फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ वर्णयुक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह चारो वर्ण और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन चार आश्रमोंने भी गंगामें स्नान किया; क्योंकि इस गंगामें स्नान करनेसे महापापी पुरुष भी शीघ्र पापसे छूट जातेहैं ॥ २१ ॥ स्नान करने उपरान्त राजा

* शंका–शास्त्रमें और लोकमें भी ऐसा सुना है कि, राजा युधिष्ठिरने एक स्त्रीके सिवाय दूसरी स्त्रीके संग अपना विवाह नहीं किया, क्योंकि राजा युधिष्ठिरके एक स्त्री थी, फिर यज्ञमें बहुत स्त्रियों करके शोभायमान युधिष्ठिर क्यों हुए ?

उत्तर– द्रौपदीने युधिष्ठिरकी सेवा ऐसी की कि, जो सेवा करोडों स्त्रियोंके करनेसे नहीं हो सकती ऐसे, द्रौपदीके पतिव्रतको युधिष्ठिरने देख कर मनमें जाना कि, हमारे करोडों स्त्री हैं, और व्यासजीने भी युधिष्ठिरके मनकी बात जानकर कहा कि, युधिष्ठिर मनकी बहुतसी स्त्रियों करके अपने यज्ञमें शोभित हुए ॥

युधिष्ठिर नवीन रेशमी धोती पहर भलेप्रकार शोभायमान होकर ऋत्विज सभासद और ब्राह्मणादिकोंकी वस्त्रोंसहित पूजन करनेलगे ॥ २२ ॥
युधिष्ठिर नवीन रेशमी धोती पहर भलेप्रकार शोभायमान होकर ऋत्विज सभासद और ब्राह्मणादिकोंकी वस्त्रोंसहित पूजन किया ॥ २३ ॥ देवताओंके
नारायणके आश्रय राजा युधिष्ठिरने भाई बंधु, जातिके राजा मित्र सुहृद् और भी सब मनुष्योंका वारंवार पूजन किया ॥ २३ ॥ देवताओंके
समान कान्तिवाले मणियोंके जडाऊ कुण्डल, माला, पगड़ी, जामा, पटुका और बड़े मोलके हार पहरे पुरुष और दोनों कुण्डल अलकोंके समूहसे
शोभायमान मुखवाली स्त्रियें सुवर्णकी कौंधनी पहरे सब शोभायमान लगतीथीं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! स्नानकरे पीछे राजा युधिष्ठिरसे पूजित
हो शील स्वभाववाले ऋत्विज सभासद वेदपाठी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और राजा ॥ २५ ॥ देवता, ऋषि, पितृ सब प्राणी अनुचरों सहित

बंधुज्ञातिनृपान्मित्रसुहृदोन्यांश्च सर्वशः ॥ अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३ ॥ सर्वे जनाः सुररुचो
मणिकुंडलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ॥ नार्यश्च कुंडलयुगाऽलकवृंदजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥
॥ २४ ॥ अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ॥ ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥ देवर्षि
पितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ॥ पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहो
दयम् ॥ नैवातृप्यन्प्रशंसंतः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ प्रेम्णा निवास
यामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥ २८ ॥ भगवानपि तत्रांग न्यवात्सीत्तत्प्रियंकरः ॥ प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च सांबादींश्च
कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥ इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ॥ सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥ ३० ॥

लोकपाल राजा युधिष्ठिरसे पूजन कराय आज्ञा माँग अपने स्थानको चलेगये ॥ २६ ॥ हरि भगवान्के भक्तोंमें राजर्षि राजा युधिष्ठिरके
राजसूययज्ञको बड़ी शोभाकी प्रशंसा करते करते तृप्त नहीं हुए, जिसप्रकार मनुष्यका चित्त अमृत पीते पीते तृप्त नहीं होता ॥ २७ ॥ सुहृद,
सम्बन्धी, बंधू और श्रीकृष्णचन्द्रके बिछुडनेसे कायरमनहो राजा युधिष्ठिरने प्रेमसे रक्खा ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! उन राजा युधिष्ठिरका प्रिय
करनेके लिये सांब आदि पुत्र और यादवोंमें शूर वीरोंको द्वारकामें भेज आप श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रहनेलगे ॥ २९ ॥ धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरने

दुस्तर मनोरथरूपी बडा समुद्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सहायतासे तरकर सब खेद दूर किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! एक समय भगवद्भक्त राजा युधिष्ठिरके रनवासकी लक्ष्मी व राजसूययज्ञकी महिमा देखकर दुर्योधन संताप करनेलगा ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरका अंतःपुर कि जहाँ मयदैत्यरचित नरपति, दैत्यपति और देवपतियोंकी नाना प्रकारकी विभूतियाँ प्रकाशमान होरही थीं और जहाँ उन विभूतियोंके साथ द्रौपदी अपने स्वामियोंकी सेवा करती थीं उसे देख दुर्योधनका मन अत्यन्त तापको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ राजा युधिष्ठिरके अंतःपुरमें उससमय मधुपति श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके समूह नितम्बोंके भारसे धीरे धीरे चलनेमें बजते नूपुरोंसे शोभित चरण, कुचोंकी केशरसे अरुणहार धारण किये,

एकदांतःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ॥ अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेंद्रदितिजेंद्रसुरेंद्रलक्ष्मीर्नाना विभांति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः ॥ ताभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् ॥ मध्ये सुचारुकुचकुंकुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुंतलाढ्यम् ॥ ३३ ॥ सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ॥ वृतोऽनुजैर्बंधुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः कांचने साक्षादासने मघवानिव ॥ पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च बंदिभिः ॥ ३५ ॥ तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ॥ किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन्रुषा ॥ ३६ ॥ स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रांतं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ॥ जले च स्थलवद्भ्रांत्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥

चंचल कुण्डल और केशपाशसे युक्त सुन्दर मुख, रमणीय कटिसे युक्त श्रीकृष्णकी सहस्रों रानियें वहाँ फिरतीथीं ॥ ३३ ॥ मयदैत्यकी बनाई सभा उसमें किसी समय अपना आज्ञाकारी भाई, बंधुसहित और हित अहितके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसहित धर्मपुत्र राजा चक्रवर्ती युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥ साक्षात् सिंहासनपर जैसे इन्द्र विराजमान होताहै, उसीप्रकार सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान होकर राज्यकी शोभासे सेवित और बन्दीजनोंसे स्तुतिपाय शोभायमान होनेलगे ॥ ३५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उसीसमय भाइयोंको संग ले किरीट धारणकिये, माला पहरे और हाथमें तलवार लिये क्रोधकर द्वारपालोंको डाटताहुआ अभिमानी दुर्योधन सभामें आया ॥ ३६ ॥ वहाँ मयदैत्यकी बनाई सभामें सूखेमें जल दीखे

और जलमें सूखा दीखे, ऐसी मयरचित सभामें मयदैत्यकी मायासे मोहित होकर दुर्योधनने भ्रमसे सूखेमें जल जान अपना जामा उठाया और सूखा जानकर जलमें छोडदिया और जलमें गिरगया ॥ ३७॥ हे राजा परीक्षित् ! दुर्योधनको गिरा देखकर भीमसेन व सब स्त्रियें हँसनेलगीं यह देख राजा युधिष्ठिरने यद्यपि मने भी करा, परन्तु तो भी श्रीकृष्णचन्द्रकी सैन देनेसे पहिले भीमसेन हँसा फिर पीछे सब राजा हँसनेलगे ॥ ३८॥ इन राजाओंको हँसता देख दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हो नीची नारकर क्रोधाग्निसे भभकताहुआ सभासे निकल चुप चाप हस्तिनापुरको चलागया उस समय साधुओंके बीच बड़ा हाहाकार शब्द हुआ और अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर उदास होगये, जिनकी दृष्टिसे सब जगत् भ्रमण करताहै, वह भगवान् तो चुप होकर बैठगये, क्योंकि उनकी इच्छा पृथ्वीका भार उतारनेकी थी कि, किसी न किसी प्रकार यह पृथ्वीका भार उतरै, सो

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ॥ निवार्यमाणा अप्यंग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३८॥ स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूर्ष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ॥ हाहेति शब्दः सुमहानभूत्सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ॥ बभूव तूर्ष्णीं भगवान्भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥ ३९ ॥ एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० दुर्योधनमानभंगो नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥ क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥ शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ॥ यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासंधादयस्तथा ॥ २ ॥

यह समागम सहजमें बनगया प्रथम यही भारतका बीज जमा ॥ ३९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जो आपने प्रश्न किया था कि, राजसूययज्ञमें दुर्योधन कैसे कुढ़ा सो उसका उत्तर मैंने सब आपके सन्मुख वर्णन करदिया ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां दुर्योधनमानभगो नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ दोहा–युद्ध छिहत्तरमें भयो, यादव शाल्व अपार । घूमत गदा प्रहारसे, गये प्रद्युमन हार ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरान्त क्रीडासेही मनुष्य शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके और भी अद्भुत कर्म हैं, जिस प्रकार सौभविमानका पति शाल्वको मारा, सो श्रवण करो ॥ १ ॥ शिशुपालका मित्र शाल्व

रुक्मिणीके विवाहमें आयाथा, तब उसको संग्राममें यादवोंने जीतलिया और उसीप्रकार जरासन्धादि राजा भी जीते ॥ २ ॥ सब राजाओंको सुनाकर राजा शाल्वने यह प्रतिज्ञा करी कि, सम्पूर्ण पृथ्वी यादवकुलरहित करूंगा, अब तुम सब मेरे पराक्रमको देखो ॥ ३ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार मूर्ख शाल्व प्रतिज्ञाकर केवल धूलकी एक मुट्ठी फाँकताहुआ पशुपति शिवजीकी आराधना करनेलगा ॥ ४ ॥ शीघ्र सन्तुष्ट होनेवाले शिवजी श्रीकृष्णके द्वेषी शाल्वको वर देना निष्फल जान शीघ्र प्रगट न हुए, परन्तु शरण आये शाल्वसे एक वर्षके पीछे यह कहने लगे कि, वर माँग ॥ ५ ॥ उस समय देवता असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, इनसे न टूटै और जहाँकी इच्छा हो वहाँ पहुँचावै, यादवोंको भयका

शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥ इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥ आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद्ग्रसन् ॥ ४ ॥ संवत्सरांते भगवानाशुतोष उमापतिः ॥ वरेण च्छंदयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥५॥ देवासुरमनुष्याणां गंधर्वोरगरक्षसाम् ॥ अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥६॥ तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरंजयः ॥ पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥ स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ॥ ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८॥ निरुध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ ॥ पुरीं बभंजोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥ सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ॥ विहारान्स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥ शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ॥ प्रचंडचक्रवातोऽभूद्रजसाऽऽच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥

देनेवाला ऐसा विमान दो, यह वर माँगा ॥ ६ ॥ तब ऐसाही होगा, यह कहकर भगवान् महादेवजीने मयदानवको आज्ञा दी, उसने झट वैरियोंके पुरको जीतनेवाला सौभनाम लोहेका बना विमान शाल्वको दिया ॥ ७ ॥ अन्धकारका घर, दुष्प्राप्य और इच्छानुसार चलनेवाला विमान पाय वह शाल्व कृष्णके वैरका स्मरण करके द्वारकापुरीकी ओरको चला ॥ ८ ॥ हे राजन् ! शाल्व बड़ी सेनासे द्वारकापुरीको घेरकर सम्पूर्ण फूलोंके बाग और उद्यानोंको तोड़नेलगा ॥ ९ ॥ गोपुर, दरवाजे, महल, अटा उनकी भीतें व विहारस्थान तोड़नेलगा और उस उत्तम विमानपरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥ १० ॥ और शिला, वृक्ष, बिजली, सर्प, ओले, वरसनेलगे और प्रचण्ड पवन चलनेके कारण सम्पूर्ण

दिशायें आच्छादित होगईं ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! इसप्रकार सौभविमानसे पीडित श्रीकृष्णचन्द्रकी द्वारकापुरी जैसे त्रिपुरदैत्यसे पृथ्वी दुःखी हुई थीं, उसीप्रकार दुःखी होगई, सुखका कहीं लेश भी न रहा ॥ १२ ॥ बडे यशी महारथी भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजाको दुःखी देखकर "भय मत करो" इसप्रकार कहकर रथमें बैठकर सन्मुख आये ॥ १३ ॥ और सात्यकि, चारुदेष्ण, सांब और छोटे भाई सहित अक्रूर तथा हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुक सारण ॥ १४ ॥ बडे धनुषधारी महारथी योद्धा कवच पहर, रथ, हाथी, घोडे और पैदल इत्यादिकोको संग लेकर निकले ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त हे राजन् ! असुरोंका जैसे देवताओंके संग युद्ध हुआ था उसीप्रकार रोमाञ्चकारक महाभयानक युद्ध शाल्वकी सेनाका यादवोंके संग

इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ॥ नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥ १२ ॥ प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः ॥ मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥ १३ ॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्च सांबोऽक्रूरः सहानुजः ॥ हार्दिक्यो भानुविंदश्च गदश्च शुकसारणौ ॥ १४ ॥ अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ॥ निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥ १५ ॥ ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ॥ यथाऽसुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ॥ क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥ विव्याध पंचविंशत्या स्वर्णपुंखैरयोमुखैः ॥ शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥ शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् ॥ दशभिर्दशभिर्नेतन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥ तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥ २० ॥

होने लगा ॥ १६ ॥ जैसे रात्रिके अन्धकारको भगवान् सूर्य दूर करदेतेहैं, वैसेही रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने सौभविमानके पति शाल्वकी मायाओंका क्षणभरमें नाश करदिया ॥ १७ ॥ सोनेके पुंख लोहेकी भाली और छोटी छोटी गांठवाले पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको शीघ्र वींध डाला ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त भगवान् प्रद्युम्नजीने सौ बाण शाल्वके और एक एक बाण प्यादोंके तथा दश दश बाण सारथी और तीन तीन बाणोंसे घोडे हाथियोंको वींध डाला ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्नजीका यह अद्भुत पराक्रम देखकर अपनी पराई सेनाके योद्धा सबही प्रद्युम्नजीकी

लड़ाई करनेलगे ❀ ॥ २० ॥ मयदैत्यका बनाया वह मायामय विमान कभी तो नानारूपसे और कभी एक रूपसे दिखाई देता, कभी बिलकुल दीखताही नहीं, इसलिये शत्रु जो यादव उनको उसका तर्क करना महाकठिन होगया ॥ २१ ॥ वह विमान कभी भूमिपर, कभी आकाशमार्गमें, कभी पर्वतोंके शिखरपर और कभी जलमें अलातचक्रके समान भ्रमण कर रहा था, इसकारण उसकी व्यवस्थाका ठिकाना लगना अत्यन्त कठिन होगया ॥ २२ ॥ विमान और सेना सहित जहाँ जहाँ शाल्व दिखाई देता था वहाँ वहाँ यादवोंमें मुख्य वीरगण बाणोंको छोड़ते थे ॥ २३ ॥ अग्नि सूर्यके समान गरम स्पर्शवाले विषके तुल्य असह्य वैरियोंके चलाये बाणोंसे शाल्वकी सेना अत्यन्त पीडित होगई और शाल्वभी व्याकुल

बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते ॥ मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥ २१ ॥ क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ॥ अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम् ॥ २२ ॥ यत्रयत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः ॥ शाल्वस्ततस्ततोऽमुंचञ्छरान्सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ॥ पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥ २४ ॥ शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः ॥ न तत्यजू रणं स्वंस्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥ २५ ॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक्प्रपीडितः ॥ आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्बली ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षस्थलमरिंदमम् ॥ अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥

होगया ॥ २४ ॥ शाल्वकी सेनाके शस्त्रोंके समूहसे अत्यन्त पीडित होकर भी लोक परलोकके जीतनेकी इच्छावाले यादव शूरवीरोंने अपनी अपनी युद्धभूमिको नहीं छोडा ॥ २५ ॥ प्रद्युम्नके पहले गदाप्रहारसे पीडित हुआ शाल्वका बली द्युमान् नाम मंत्री लोहेकी गदा छातीमें मारकर पुकारने लगा ॥ २६ ॥ वैरीको शांत करनेवाले प्रद्युम्नजीका वक्षस्थल गदाके लगनेसे विदारित होगया, तब धर्मका जाननेवाला

* शंका–प्रद्युम्नने बाणोंसे शाल्वको और शाल्वकी सेनाको मूर्च्छित करदिया तब प्रद्युम्नके ऐसे पराक्रमको देखकर शाल्वकी सेना और प्रद्युम्नकी सेनाने क्यों आश्चर्य माना ? प्रद्युम्नका क्या यह नवीन कर्तव्य था ऐसा कर्तव्य तो प्रद्युम्नने अनेकबार किया था ॥

उत्तर–शाल्वको ब्रह्माने किसीसमय वर दिया था कि तुमको और तेरी सेनाको सग्राममें श्रीकृष्णजी मूर्च्छित करैंगे और त्रिलोकीमें कोई प्राणी तुझको और तेरी सेनाको दुःखित नहीं कर सकैगा जब प्रद्युम्नने शाल्वको और उसकी सेनाको मूर्च्छित करदिया तब ब्रह्मादिक सब देवता आश्चर्य मानने लगे, उससमय और प्राणियोंने आश्चर्य माना तो क्या बडी बात है ?

दारुकका पुत्र सारथी प्रद्युम्नजीको लेकर रणभूमिसे बाहर निकल आया ॥ २७ ॥ दोघड़ीमें चैतन्य हो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र, प्रद्युम्नजी सा॰ थी
बो कि; अहो रथवान् ! तू रणमेंसे जो मुझे भगाकर ले आया; यह बुराकाम किया ॥ २८ ॥ व्याकुल चित्तवाले तुझ रथवानने मुझे कलंक
लगाय, क्योंकि मुझ विना यादवोंके कुलमें जन्म ले रणमेंसे भागा और किसीको नहीं सुना, परन्तु मेरा इसमें क्या दोष है, यह कलंक तो सारथीने
लगाया ॥ २९ ॥ पिता राम कृष्णसे मिलूंगा तो क्या कहूंगा वह पूछेंगे, तब युद्धमेंसे भागकर निकला हुआ मैं अपनी योग्यताके विषयमें किस
प्रकार निवेदन करूंगा ३० ॥ भाइयोंकी स्त्रियें, भाभी, हे वीर ! युद्धमें शत्रुओंके सन्मुख नपुंसकहो कैसे आज भाग आये, हमसे तो कहो

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ॥ अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥ न यदूनां कुले जातः
श्रूयते रणविच्युतः ॥ विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥ २९ ॥ किं नु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ ॥
युद्धात्सम्यगपक्रांतः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यंति हसंत्यो भ्रातृजामयः ॥ क्लैब्यं कथं
कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ३१ ॥ सारथिरुवाच ॥ धर्मं विजानताऽऽयुष्मन्कृतमेतन्मया विभो ॥ सूतः कृच्छ्रगतं
रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् ॥ उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया
हतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥ नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

इस प्रकार हँसकर मुझसे कहेंगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर रथवान बोला हे चिरंजीवित हे समर्थ ! धर्मका ज्ञाता मैं तुम्हें रणमेंसे निकाल लाया, क्योंकि
धर्ममें ऐसाही कहा है कि, जब रथमें बैठनेवालेको कष्ट आनकर उपस्थित हो तो रथवान् रक्षा करे और सारथीके ऊपर कष्ट आवे तो बैठनेवाला
उसकी रक्षा करे ॥ ३२ ॥ हे वीर ! शत्रुने आपके गदा जो मारी तो आप अति पीडित होकर मूर्च्छित होगये, इसलिये धर्म जानकर मैं तुम्हें रण
मेंसे निकाल लाया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ दोहा—सतहत्तर
अध्यायमें, शाल्ववीरको मार । तोरो सौभ विमान पुनि, यदुपति परम उदार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरान्त

प्रद्युम्नजीने हाथ पाँव धो कवच पहर और धनुष हाथमें लेकर कहा कि, हे रथवान्! वीर द्युमानके पास मुझे लेचल ॥ १ ॥ रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने मुसकाकर अपनी सेनाके योद्धाओंको मारते हुये द्युमानको अत्यन्त तीक्ष्ण आठ बाण मारे ॥ २ ॥ चार बाणोंसे चारों घोडोंको एक बाणसे रथवान्को मारा, दो बाणोंसे धनुष और ध्वजाको काटडाला और एक बाणसे महारथी प्रद्युम्नजीने द्युमानका शिर काटलिया ॥ ३ ॥ गद, सात्यकी और सांब आदि यादव विमानका पालन करनेवाले शाल्वकी सेनाको मारनेलगे और शिर कटनेसे संपूर्ण विमानके बैठनेवाले समुद्रमें गिरगये ॥ ४ ॥ हे नृपोत्तप! इसप्रकार २७ सत्ताइस दिनतक यादव और शाल्वकी सेनाका महाभयानक युद्ध हुआ ॥ ५ ॥

विधमंतं स्वसैन्यानि द्युमंतं रुक्मिणीसुतः ॥ प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्वयम् ॥ २ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान् सूतमेकेन चाहनत् ॥ द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसांबाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ॥ पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकंधराः ॥ ४ ॥ एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥ इंद्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ॥ राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥ कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन्द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥ आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसंगतः ॥ राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥ वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ॥ सौभं च शाल्वराजं च दारुक प्राह केशवः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा परीक्षित्! धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरके बुलाये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें गये थे, वहाँ जब राजसूययज्ञ हो चुका और शिशुपाल मर चुका ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कौरवोंमें वृद्धोंसे और मुनियोंसे और पुत्रों सहित कुन्तीसे आज्ञा माँग मार्गमें कुत्सित शकुन देख द्वारकापुरीको प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ और मार्गमें खोटे शकुन देखकर विचार करनेलगे कि, बड़े भाई बलदेवजी सहित मैं यहाँ यज्ञमें आयाहूं, इससे शिशुपालकी ओरके राजा निश्चय मेरी पुरीका नाश करते होंगे ॥ ८ ॥ अपने यादवोंका कष्ट देख, बलदेवजीसे द्वारका

पुरीकी रक्षा करनेके लिये कहकर सौभविमानमें बैठे हुये शाल्वको देख केशव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्से कहने लगे कि ॥ ९ ॥ हे रथवान्! शीघ्र मेरे रथको शाल्वके समीप पहुँचादे, क्योंकि इस विमानका राजा शाल्व बडा मायावी है, इससे तू घबराना मत ॥ १० ॥ इसप्रकार वचन सुन रथवान् रथपर बैठकर रथको हाँकनेलगा और अपनी पराई सेनाके लोगोंने रथकी ध्वजामें गरुडको आता देखा ॥ ११ ॥ शाल्वकी बहुतसी सेना नाश होगई उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको युद्धमें आया देखकर शाल्वने उनके सारथीपर अत्यन्त भयंकर वेगवाली शक्ति फेंकी ॥ १२ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दिशाओंको प्रकाश करती बडे तारेके समान आकाशमें चली आती बरछीको अपने बाणोंसे सौ खण्ड करदिये ॥ १३ ॥ और

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यांतिकमाशु वै ॥ संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥ १० ॥ इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः ॥ विशंतं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ॥ प्राहरत्कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥ १२ ॥ तामापतंतीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ॥ भासयंतीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाऽच्छिनत् ॥ १३ ॥ तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् ॥ अविध्यच्छरसंदोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥ १४ ॥ शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ॥ बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥ १५ ॥ हाहाकारो महानासीद् भूतानां तत्र पश्यताम् ॥ विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥ यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ॥ प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥ १७ ॥

अत्यन्त कुपित हो सोलह बाणोंसे शाल्वको बींधडाला, फिर आकाशमार्गमें भ्रमण करनेवाले विमानको सूर्यकी किरणोंसे बिंधे हुये आकाशके समान बाणोंके समूहोंसे वेध दिया ॥ १४ ॥ शार्ङ्गधनुषधारी शौरि श्रीकृष्णचन्द्रकी धनुषसहित वाम भुजाको शाल्वने बींध दिया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके हाथसे धनुष गिरगया, यह बडीही आश्चर्यकी बात हुई ॥ १५ ॥ हाथमेंसे धनुष गिर देख प्राणियोंमें बडा हाहाकार शब्द हुआ, और उसी अवसरमें विमानका राजा शाल्व अत्यन्त ऊँचे स्वरसे गर्जना कर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि ॥ १६ ॥ हे मूर्ख! जो तू हमारे भाई अथवा सखा शिशुपालकी

स्त्रीको हमारे देखतेही हरकर लेगया और सभाके बीच असावधान विराजमान तैंने हमारे सखाको मारा ॥ १७ ॥ अपनेको अजित माननेवाले तू जो आज मेरे सन्मुख खडा रहेगा तो निश्चय यमलोक पहुँचा दूंगा ॥ १८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे अधम ! तू वृथा बकवाद करताहै और निकटही जो तेरी मृत्यु उपस्थित है उसे नहीं देखता, शूरवीर बहुत बकते नहीं अपना पुरुषार्थ दिखातेहैं और जो बहुत बकतेहैं, सो वह कुछ पराक्रम नहीं करते ॥ १९ ॥ इसप्रकार कह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बड़े वेगकी गदा क्रोध करके कण्ठके नीचे हाडमें मारी कि; जिसके लगनेसे शाल्व रुधिर वमन करता हुआ काँपने लगा ॥ २० ॥ और तत्कालही शाल्व अंतर्धान होगया, फिर दो घड़ी पीछे एक पुरुष आय शिर

तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ॥ नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृथा त्वं कत्थसे मंद न पश्यस्यंतिकेंऽतकम् ॥ पौरुषं दर्शयंति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा भगवाञ्छाल्वं गदया भीमवेगया ॥ तताड जत्रौ संरब्धः स चकंपे वमन्नसृक् ॥ २० ॥ गदायां संनिवृत्तायां शाल्वस्त्वंतरधीयत॥ ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसाऽच्युतम् ॥ देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥ २१ ॥ कृष्णकृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल॥ बध्वाऽपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥ निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ॥ विमनस्को घृणी स्नेहाद्बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥ कथं राममसंभ्रांतं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः ॥ शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान्विधिः ॥२४॥ इति ब्रुवाणे गोविंदे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ॥ वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥

झुकाय श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर, रोता हुआ "मुझे देवकीने भेजा है" यह वचन कहने लगा ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! हे पिताका हित करनेवाले ! जैसे कसाई पशुको बाँधकर लेजाताहै, उसीप्रकार शाल्व तुम्हारे पिताको बाँधकर लेगया ॥ २२ ॥ ऐसा अप्रियवचन सुन मनुष्य स्वभावमें प्राप्त मन दयावान् श्रीकृष्णचन्द्र विमन होकर प्राकृत मनुष्यके समान कहने लगे ॥ २३ ॥ कि, संभ्रमरहित देवता असुरोंके अजेय बलदेवजीको जीतकर तुच्छ शाल्व मेरे पिताको कैसे बाँधकर लेगया ? विधाता बलवान् है, कदाचित् लेगया होगा ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र इतना कहते हीथे कि, इतनेमें मायाके वसुदेवको लेकर शाल्व आया और श्रीकृष्णचन्द्रसे बोला कि, हे नीच ! यह तेरा उत्पन्न करनेवाला पिता है,

जिसके लिये तू जीवित है, सो अभी तेरे देखते इसे मारूंगा, यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य होय तो इसकी रक्षा कर ❀ ॥२५॥२६॥ मायावी शाल्वने इस
प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको कटुवाक्य कह,तलवारसे वसुदेवजीका मस्तक काटडाला और उस मस्तकको ले आकाशमें स्थित सौभविमानमें पहुँचा ॥
॥२७॥ स्वतःसिद्ध ज्ञानवाले श्रीकृष्णचन्द्र अपने जनोंके संग दो घड़ी तक मनुष्योंके स्वभावसे शोकमें डूबे रहे इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण
चन्द्रने मय दैत्यकी प्रगट करी शाल्वकी चलाई आसुरी मायाको जान लिया ॥२८॥ जब इसप्रकार चेते तो जैसे जागता हुआ पुरुष स्वप्नके पदार्थको

एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ॥ वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ २६ ॥ एवं निर्भर्त्स्य
मायावी खड्गेनानकदुंदुभेः ॥ उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥ ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपाप्लुतः
स्वबोध आस्ते स्वजनानुषंगतः ॥ महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥
न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ॥ स्वाप्नं यथा चांबरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहंतु
मुद्यतः ॥ २९ ॥ एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः केचनान्विताः ॥ यत्स्ववाचो विरुध्येत नूनं तन्नः स्मरंत्युत ॥ ३० ॥

न देखे उसी प्रकार रणभूमिमें श्रीकृष्णचन्द्रने न तो दूतको देखा और न पिताके देहको देखा, बरन् सौभ विमानमें विराजमान आकाशमें भ्रमण
करते हुए शत्रुको देखकर उसके मारनेका उपाय करनेलगे ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहनेलगे कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! पूर्वापरका अनुसंधान न
रखनेवाले कितने एक ऋषिलोग यह कहते हैं, पर वह अपनी वाणीमें, जो विरोध आता है, उसका ध्यान नहीं करते, उन्होंने पहले कहा कि,

* शंका—शाल्वने माया करके वसुदेवजीकी मूर्ति साक्षात् बनाली यह बडी शंका है ? क्या माया रात दिन सबकी बुद्धि भ्रमाती है, क्योंकि राक्षस मायाके द्वारा अनेक प्रकारकी वस्तु बनालेते हैं,
परन्तु शास्त्रोंमें लिखा है कि, वसुदेव सरीखे तपधारी, और श्रीकृष्ण भगवान् भक्त हितकारी वैकुण्ठनायसे जिनके पुत्र, ऐसे धर्मात्माकी मूर्तिको मायासे क्षुद्र राक्षसने बनालिया यह महाआश्चर्यकी बात है !
उत्तर—ब्रह्माने किसी समय शाल्वको वर दियाया कि, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकी मूर्ति तुझसे बनगी नहीं, और त्रिलोकीमें जिसकी मूर्ति बनाना चाहेगा उसकी मूर्ति बना लेगा, और ब्रह्माने वरदानके देते
समय शाल्वसे यह भी कहाथा कि, जब तू वसुदेवकी मूर्ति बनावेगा उसी समय तू मारा जायगा, उस ब्रह्माके वचनको कालवश होकर भूलगया और वसुदेवकी मूर्ति बनाई उसी समय वृन्दावनविहारी श्रीगो
वर्धनधारीने शाल्वको मारडाला । देखो जब मृत्युके दिन आते हैं, तब परमेश्वर वैसाही बनाव बना देता है, इसलिये शाल्वने वसुदेवकी मूर्ति बनाई थी मूर्ति क्या बनाईथी अपना काल बुलायाथा ॥

"बलदेवजीकी आज्ञा ले और उन्हें हस्तिनापुरमें छोड आप इन्द्रप्रस्थ गये" इसके उपरान्त कहते हैं कि, "इन्द्रप्रस्थसे आ, शाल्वको युद्ध करता देख बलदेवजीको द्वारकाकी रक्षा करनेके लिये भेजा, यह उनके वचनमें ही भेद होता है, सो शुकदेवजी कहते हैं कि, हे राजन् ! यह हमारा मत नहीं है, और ऋषियोंका है ॥ ३० ॥ शोक, मोह, स्नेह, भय यह कहाँ ? और अखण्ड विज्ञान ऐश्वर्य देवता जिनकी स्तुति करें ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ ॥३१॥ जिनके चरणारविन्दकी सेवासे पुष्ट हुई, आत्मविद्याके प्रभावसे सज्जन पुरुष अनादिकालकी देहात्मबुद्धिको त्याग अनन्त ईश्वरसम्बन्धी पद आत्माको पाते हैं, उन सर्वोत्तम शरणागतपालक श्रीकृष्णचन्द्रमें कदाचित् मोह नहीं हो सकता ॥३२॥ यही यथार्थ है कि, बड़े पराक्रमी शूरवंशो

क शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः ॥ क चाखंडितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखंडितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितया ऽऽत्मविद्यया हिन्वंत्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ॥ लभंत आत्मीयमनंतमैश्वरं कुतो न मोहः परमस्य सद्गतेः ॥ ३२ ॥ तं शस्त्रपूगैः प्रहरंतमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ॥ विद्धाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥ ३३ ॥ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा ॥ विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामु द्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद् द्रुतम् ॥ ३४ ॥ आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाथ रथांगमद्भुतम् ॥ वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ३५ ॥ जहार तेनैव शिरः सकुंडलं किरीटयुक्तं पुरु मायिनो हरिः ॥ वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरंदरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥ ३६ ॥

त्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने बलपूर्वक शस्त्रोंके प्रहारसे शाल्वको बेध उसका कवच, धनुष और उसके शिरकी मणि काटकर उसके विमानको गदासे चूर्णकर दिया ॥३३॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हाथकी चलाई हुई गदासे हजारों खण्ड होकर वह विमान चूर्णीभूत हो पृथ्वीमें गिर गया, उस समय शाल्व विमान छोड़ गदा हाथमें ले श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपरको दौडा ॥ ३४ ॥ दौडते हुए शाल्वका गदासहित हाथ भालेसे काटकर उसके मारनेके लिये प्रलय कालके सूर्यके समान सुदर्शनचक्रको ग्रहणकर उदयाचल पर्वतपर सूर्यके समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शोभायमान लगनेलगे ॥ ३५ ॥ जैसे देवराज इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरका माथा काटा था, उसी प्रकार अत्यन्त मायावी शाल्वका कुण्डलों सहित शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट

हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! जिससमय गदासे
लिया, उससमय मनुष्योंमें बडा हाहाकार शब्द हुआ ॥ २६ ॥ इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! जिससमय गदासे
विमान टूटा और अत्यन्त पापी दुराचारी शाल्व पृथ्वीमें गिरपड़ा, तब स्वर्गमें देवताओंके नगारे बजने लगे, इसके उपरान्त मित्र शिशुपाल और
शाल्व, तथा पौण्ड्रक इनका ऋण चुकानेके लिये क्रोधित हो दंतवक्र आया ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां
सौभशाल्ववधो नाम सप्तसततितमोऽध्यायः ॥७७॥ दोहा–दन्तवक्र हरि मार पुनि, हनो विदूरथ वीर ॥ रोमहर्षण हलधर वधो, अठहत्तर रणधीर
॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित ! परलोकमें प्राप्तहुए शिशुपाल और शाल्व तथा पौण्ड्रकके परोक्षमें मित्रताका जानने

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥ नेदुर्दुंदुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः ॥ सखीनामपचितिं कुर्वन्दंतवक्रो
रुषाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा०म०द०उ० सौभशाल्ववधोनाम सप्तसप्ततितमोध्यायः ॥७७॥ श्रीशुक उवाच ॥
शिशुपालस्य शाल्वस्य पौंड्रकस्यापि दुर्मतिः ॥ परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो
गदापाणिः प्रकंपयन् ॥ पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥२॥ तं तथाऽऽयांतमालोक्य गदामादाय सत्वरः ॥
अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिंधुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्य कारूषो मुकुंदं प्राह दुर्मदः ॥ दिष्ट्यादिष्ट्या भवा
नद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥ त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्‌ मां जिघांससि ॥ अतस्त्वां गदया मंद हनिष्ये वज्र
कल्पया ॥ ५ ॥ तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ॥ बंधुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

वाला दुष्टबुद्धि दंतवक्र क्रोधकर अकेलाही पांव प्यादा महाबलवान् गदा हाथमें लिये पृथ्वीको कम्पायमान करता अत्यन्त शीघ्रतासे आता हुआ
दिखाई दिया ॥ १ ॥ २ ॥ इसप्रकार दंतवक्रको आता हुआ देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गदा हाथमें ले रथसे उतर समुद्रके जैसे किनारे रोकै
हैं, उसी प्रकार दंतवक्रको रोकदिया ॥३॥ दुर्मद करूषदेशका राजा दंतवक्र मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि, तू जो मेरे
नेत्रोंके सन्मुख आया यह बड़ाही मंगल हुआ ॥ ४ ॥ हे कृष्ण ! तू हमारे मामाका पुत्र और हमारे मित्रका मारनेवाला है और मुझे भी मारना
चाहताहै, इसलिये हे मूर्ख ! वज्रके समान इस गदासे तेरा प्राण संहार करूंगा ॥ ५ ॥ हे अज्ञानी ! देहमें रहे रोगको जिस प्रकार नाश करतेहैं

उसी प्रकार बन्धुरूप वैरी जो तू है, उसे मारूंगा, तब मित्रवत्सल मैं मित्रोंके ऋणसे उऋण हूंगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार कठोर वाक्य कह श्रीकृष्णचन्द्रके माथेमें गदा मारकर सिंहके समान दंतवक्र गर्जनेलगा, जैसे हाथीके अंकुश लगे ऐसेही वह गदालगी ॥ ७ ॥ संग्राममें गदा लगनेसे भी श्रीकृष्णचन्द्र न गिरे, इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी कौमोदकी बडी गदाको ले दंतवक्रकी छातिमें मारी ॥ ८ ॥ अत्यन्त वेगवान् गदा पड़नेके कारण हृदय विदीर्ण होनेसे दंतवक्र मुखसे रुधिरका वमन करता हुआ प्राणोंको छोड केश, हाथ, पाँव, फैलाकर पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥९॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरान्त दंतवक्रके शरीरसे अद्भुत सूक्ष्मज्योति निकलकर सब प्राणियोंके देखते शिशुपालके वधके समान श्रीकृष्णचन्द्रमें प्रवेश करगई

एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् ॥ गदयाऽताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद् व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥ गदयाऽभिहतो
ऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ॥ कृष्णोऽपि तमहन्गुर्व्या कौमोदक्या स्तनांतरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रु
धिरं मुखात् ॥ प्रसार्य केशबाह्वंघ्रीन्धरण्यां न्यपतद् व्यसुः ॥ ९ ॥ ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ॥
पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥१०॥ विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसं
स्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ शिरो जहार राजेंद्र सकिरीटं सकुंडलम् ॥ १२ ॥
एवं सौभं च शाल्वं च दंतवक्रं सहानुजम् ॥ हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥ मुनिभिः सिद्धगंधर्वै
र्विद्याधरमहोरगैः ॥ अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥ १४ ॥

॥१०॥ इसके उपरान्त भाई दंतवक्रके शोकसे व्याकुल विदूरथ ढाल, तलवार ले श्रीकृष्णचन्द्रको मारनेके लिये बडे बडे श्वास लेता हुआ आया ॥११॥ हे परीक्षित् ! विदूरथको इसप्रकार आता हुआ देख मुकुट और कुण्डलोंसहित उसका शिर क्षुरेके समान धारवाले चक्रसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट लिया ॥ १२ ॥ इसप्रकार सौभ विमान और शाल्व तथा भ्राताओंसहित दंतवक्रको जब भगवान् वासुदेव मारचुके, तब देवता और मनुष्य स्तुति करने लगे ॥१३॥ मुनीश्वर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बडे सर्प, अप्सरा, पित्रोंके गण, यक्ष, किन्नर, चारण ॥ १४ ॥

यह सब कोई श्रीकृष्णचन्द्रकी विजय गाय फूल बरसाय कर चले गये, इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्र सब यादवोंको संग ले शोभायमान द्वारकापुरीको
गये ॥ १५ ॥ इसप्रकार योग और जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा जयकोही प्राप्त करते हैं, पशुओंके समान दृष्टिवाले अज्ञानी पुरुषोंको
जरासन्धसे हारे जीते प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ पीडित कौरवोंको एक तुल्य माननेवाले बलदेवजी उनके युद्धका उद्यम सुनकर तीर्थयात्राका बहानाकर
द्वारकासे चलेगये, क्योंकि यहाँ रहनेसे जिसकी ओर न हूंगा वही बुरा मानेगा ॥१७॥ प्रभासतीर्थमें स्नानकर देवता ऋषि, पितृ, मनुष्योंको तर्पणकर
और ब्राह्मणोंको संग ले सरस्वतीके प्रवाहके सन्मुख महात्मा बलदेवजी गये ॥ १८ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित ! पृथूदक, बिंदुसरोवर, त्रित

वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतां पुरीम् ॥ १५ ॥ एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवा
उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ॥ ञ्जगदीश्वरः ॥ ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पांडवैः ॥ तीर्थाभिषे
कव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥ १७ ॥ स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ॥ सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मण
संवृतः ॥ १८ ॥ पृथूदकं बिंदुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ॥ विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९ ॥ यमुनामनु
यान्येव गंगामनु च भारत ॥ जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥ २० ॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥
अभिवंद्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥ २१ ॥ सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ॥ रोमहर्षणमासीनं महर्षेः
ऽशिष्यमैक्षत ॥ २२ ॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणांजलिम् ॥ अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३ ॥

कूप, सुदर्शन तीर्थ, विशालब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती, व यमुनाके तीर्थ गंगाके तीर्थ और जहाँ ऋषि यज्ञ करैं उस नैमिषा
रण्यमें बलदेवजी गये ॥ १९ ॥ २० ॥ बडे यज्ञवाले मुनि बलदेवजीको आयाहुआ देख प्रशंसा करतेहुए शीघ्र उठ प्रणाम कर यथायोग्य उनका
पूजन करने लगे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोसहित पूजापाय और आसनपर बैठ महात्मा बलदेवजीने वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षणको बैठा देखा ॥ २२ ॥
यह सूतजाति होकर उन सब ब्राह्मणोसे ऊँचे आसनपर विराजमान था, न तो इसने प्रत्युत्थान किया और न विनय की और न हाथ जोडकर
स्तुति करी, तब इसको देखकर भगवान् बलरामजीको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥

और अपने मनमें विचार करने लगे कि, यह प्रतिलोम जाति होकर इन ब्राह्मण और धर्मपालक हमसे भी ऊँचे आसनपर विराजमानहै, इस अपराधसे यह दुर्बुद्धि मारडालनेके योग्य है ॥ २४ ॥ क्योंकि भगवान् वेदव्यासजीका शिष्य होकर, इतिहास और पुराणोंसहित धर्मशास्त्र पढकर यह सूत ऐसा आचरण रखता है ॥ २५ ॥ सत्य है जो नटके समान वेष धारण करनेवाले, अजितेन्द्रिय, अजितमन, विनयरहित वृथा पण्डिताभिमानी पुरुषहैं उनको शास्त्राभ्यास भी गुणकारक नहीं होता ॥ २६॥ इसलोकमें मैंने इसलिये अवतार लियाहै कि, ऐसे धर्मध्वजी पुरुषोंका विनाश करना क्योंकि

कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ॥ धर्मपालांस्तथैवास्मान् वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४ ॥ ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ॥ सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ अदांतस्याविनीतस्य वृथापंडितमानिनः ॥ न गुणाय भवंति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥ २६ ॥ एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः॥वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि ॥ भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हाहेति वादिनः सर्व मुनयः खिन्नमानसाः ॥ ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥ अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनंदन॥आयुश्चात्माऽक्लमं तावद् यावत्सत्रं समाप्यते ॥ अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ॥ ३० ॥

वह सबसे अधिक पापी होतेहैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यद्यपि महात्मा बलरामजीने दुष्टोंको मारना छोड़ दिया था, परन्तु तोभी होनी ऐसेही थी, इस कारण इतना कहकर उन्होंने हाथमें स्थित डाभके अग्रसे उसको मारडाला ❋ ॥ २८ ॥ तब उसके मरतेही सब मुनिलोग महा हाहाकर करनेलगे और खेदको प्राप्त होकर बलरामजीसे बोले कि, हे भगवन् ! यह आपने बडा अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! जबतक यज्ञ सम्पूर्ण हो, तबतक

❋ शंका–भावी प्राकृत जीवोंके लिये है उनहीसे भला बुरा कर्म करसक्ती है, कुछ भगवान्के ऊपर भावी नहीं चलसक्ती ! फिर बलदेवजी तो भगवान् शेषजी थे सो भावीके वश कैसे होगये ? जो सूतजी को मारडाला यह बडी शंका है !

उत्तर–ब्रह्मा, विष्णु, महेशके ऊपर भावी कुछ भी नहीं करसक्ती तो भी भावीकी मर्यादा पालन करनेवाले तीनों देव ससारमें भावीके वश होकर अनेक प्रकारका काम करते हैं, इसलिये अनन्त रूप बलदेवजीने मायाके वशीभूत हो सूतको मारडाला ॥

हमारे पास पुराणोंकी कथा कहनेके लिये हम लोगोने इस सूतको ब्रह्मासन दिया था और शरीर खेदित न हो, ऐसी आयु दी थी, परन्तु आपने विना जाने यह ब्रह्महत्याकासा कार्य किया ॥३०॥ हे लोकपावन बलरामजी ! तुम योगेश्वर हो इस कारण आपको वेदमें कही ब्रह्महत्याका निषेध नहीं लगता परन्तु तो भी आप स्वयं इस ब्रह्महत्याके समान पापका प्रायश्चित्त करोगे, तभी संसारकी मर्यादा रहेगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर बलरा जीने कहा जगत्की मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये मैं प्रायश्चित्त करूंगा, इस कारण मुख्य पक्षमें जो नियम होवै सो मुझे बताओ ॥३२॥ इस रोमहर्ष णकी दीर्घ आयु, बल, इन्द्रिय और सामर्थ्य होनेमें जो तुम्हारी अभिलाषा हो सो वर्णन करो; क्योंकि जसी आप आज्ञा करैंगे वैसाही मैं योगमा

योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥ यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ॥ चरिष्यति भवान्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम्॥३२॥दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिंद्रियमेव च ॥ आसादितं यत्तद् ब्रूत साधये योगमायया ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ॥ यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ॥ तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिंद्रियसत्त्ववान् ॥ ३५ ॥ किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ॥ अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिंत्यतां बुधाः ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ॥ स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणिपर्वणि ॥ ३७ ॥

याके प्रभावसे करूंगा ॥ ३३ ॥ तब मुनि बोले कि, हे राम ! जिस प्रकार तुम्हारे अस्त्रकी, पराक्रमकी और मृत्युकी सत्यता हो और तुमने जो वचन हमसे कहा है, वहभी सत्य होजाय उसीप्रकार करो ॥ ३४ ॥ बलरामजी बोले कि, "पिताही पुत्ररूप उत्पन्न होताहै" इस प्रकार वेदकी आज्ञा है, सो इसका पुत्र उग्रश्रवा तुम्हैं पुराण श्रवण करावेगा और आयुष्य इन्द्रियशक्ति व शरीरके बलसे परिपूर्ण होगा ॥ ३५ ॥ हे मुनिजनो ! आपको दूसरी किस बातकी अभिलाषा है ? सो हमसे कहो ? आप जो कहैंगे सो मैं करूंगा ? हे बुधलोगो ! मैं प्रायश्चित्त नहीं जानता, इस कारण उसकाभी विचार करो ॥ ३६ ॥ तब ऋषीश्वर बोले कि, हे राम ! घोररूप इल्वलका पुत्र बल्वल नाम दानव अमावस पूनोंको आनकर हमारे यज्ञको

भ्रष्ट करता है ॥ ३७ ॥ सो हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलदेवजी। पीब, रुधिर, मूत्र, विष्ठा, मदिरा और मांस इनकी वर्षा करनेवाले पापी बल्वलको मारो, यही हमारी सेवाहै ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त सावधान होकर कामक्रोधादिकोको त्याग भरतखण्डकी परिक्रमाकर जब एक वर्षतक तीर्थोंमें स्नान करोगे तब शुद्ध होगे ॥३९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ दोहा–उन्नासी अध्यायमें, बल्वलको वध राम। बहुरि तीर्थयात्रा करी, जहाँ जहाँ शुभधाम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! इसके उपरान्त जब अमावास्याकी पूर्णमासीका पर्व आया तो धूरि वर्षासहित अत्यन्त भयानक प्रचण्ड पवन चलने

तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ॥ पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३८ ॥ ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥ चरित्वा द्वादशमासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भा० दशमस्कंधे उत्तरार्धे बलदेवचरित्रे सूत० बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचंडः पांसुवर्षणः ॥ भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगंधस्तु सर्वशः ॥ १ ॥ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ॥ अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नांजनचयोपमम् ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥ सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ॥ हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ॥ मुसलेनाहनत्क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥

लगा और चारों ओरसे राधकीसी दुर्गन्ध आई ॥ १ ॥ इसके पीछे बल्वल दैत्यकी करी विष्ठा और मूत्रकी वर्षा यज्ञ शालामें होनेलगी, फिर त्रिशूल हाथमें लिये वह बल्वल भी दीखपड़ा ॥ २ ॥ टूटेहुये अंजनके ढेरके समान बडे शरीरवाला तपे ताँबेकेसी लाल शिखाओं दाढ़ी मूंछवाला दाढ और भ्रुकुटीसे डरावने मुखवाले उस दैत्यको देख ॥ ३ ॥ शत्रुकी सेनाके विदीर्ण करनेवाले मूशलको स्मरणकर दैत्योंको मारनेवाले हलका स्मरण किया इसके उपरान्त पार्षदरूप हल मूशल आपही आनकर उपस्थित होगये ॥ ४ ॥ आकाशमें विचरनेवाले बल्वलको हलके अग्रभागसे

खैंच और अत्यन्त क्रोधमें भरकर महात्मा बलदेवजीने ब्रह्मद्रोही बल्वलके माथेमें मुशल मारा ॥ ५ ॥ उसके लगतेही माथेके फूटनेसे बल्वल रुधिरको वमन करता हुआ वज्रके मारे गेरुके पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥६॥ तब मुनीश्वरोंने बलदेवजीकी स्तुतिकर सफल आशीर्वाद दे, जैसे बडभागी देवतालोगोंने वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रका अभिषेक कियाथा, उसी प्रकार बलदेवजीका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ लक्ष्मीके निवास कोमल कमलोंकी वैजयन्ती माला और दिव्य नीलाम्बर धोती उपरना और अनेक प्रकारके आभूषण उन मुनियोंने महात्मा बलदेव

सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक् समुत्सृजन् ॥ मुंचन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥ संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः ॥ अभ्यषिंचन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥ ७ ॥ वैजयंतीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपंकजाम् ॥ रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥ अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ॥ स्नात्वा सरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥९॥ अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ॥ स्नात्वा संतर्प्य देवादीञ्जगाम पुलहाश्रमम् ॥ १० ॥ गोमतीं गंडकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः ॥ गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गंगासागरसंगमे ॥ ११ ॥ उपस्पृश्य महेंद्राद्रौ रामं दृष्ट्वाऽभिवाद्य च ॥ सप्तगोदावरीं वेणां पंपां भीमरथीं ततः ॥ १२ ॥

जीको दिये ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त मुनियोंसे आज्ञा पाय बलदेवजी ब्राह्मणोंको संग ले कौशिकी नदीमें आय स्नानकर जिस सरोवरसे सरयू निकली है, वहां गये ॥ ९ ॥ और सरयूप्रवाहके किनारे किनारे हो प्रयागमें आय स्नान व देवादिकोंका तर्पणकर पुलहऋषिके आश्रम हरिक्षेत्रको गये ॥ १० ॥ वहांसे गोमती और गण्डकी तथा विपाशा व शोणनदीमें स्नानकर बलदेवजी गयातीर्थमें गये और वहांसे पितरोंका पूजन कर गंगा और समुद्रके संगममें पहुँच ❀ ॥११॥ इसके उपरान्त महेंद्राचल पर्वतमें भृगुवंशावतंस परशुरामजीका दर्शन व प्रणामकर सप्तगोदावरी

❀ शंका–बलदेवजी सब तीर्थोंमें गये परन्तु काशीको और उज्जैनको क्यों नहीं गये? और काशी और उज्जैनके जो आसपास तीर्थ थे उनको गये फिर क्या कारण जो दोनों मोक्षदायक तीर्थोंको छोडदिया? ॥ उत्तर–शास्त्रोंमें ऐसा लिखाहै कि विना स्त्रीके जो मनुष्य अकेला इन तीर्थोंमें जाय और उनका दर्शन करै तब उसको आधा फल मिलता है? (शंका) आधे फलमें क्या हानि थी वहाँका तो किंचित्फल परमानन्दका देनेवाला है ? (उत्तर) वहाँ जानेसे सब तीर्थोंका आधाफल रहजाता इसलिये नहीं गये, क्योंकि यह अकेलेही गयेथे, स्त्री संग नहीं थी, बलदेवजीने विचारा कि स्त्रीको संग लेकर आवेंगे उससमय काशी और उज्जैनको दर्शन करैंगे, इसलिये काशी और उज्जैनको नहींगये ॥

तथा वेणा, तथा पंपामें जाकर भीमरथीमें गये ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त स्वामिकार्त्तिकका दर्शनकर जहांपर भगवान् महादेवजी विराजते हैं, ऐसे श्रीशैलपर्वतको गये और द्रविडदेशोंमें परमपवित्र वेंकटपर्वतका दर्शनकर कामकोष्णीपुरीमें गये, फिर कावेरीमें स्नानकर बडे पवित्र और जहां नित्य हरि विराजते हैं, ऐसे श्रीरंगनाम विख्यात स्थानको गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहाँसे ऋषभाद्रि पर्वत हरिक्षेत्रमें आय, दक्षिण मथुरामें जाकर फिर बड़े पापोंके नाश करनेवाले सेतुबंध रामेश्वरको गये ॥१५॥ वहाँ जाकर हलायुध धारण करनेवाले बलदेवजीने दशहजार गायोंका ब्राह्मणोंको दान किया पीछे कृतमाला नदी और ताम्रपर्णी नदियोमें होकर मलयाचल कुलाचल पर्वतोंमें गये ॥ १६ ॥ वहाँ पहुँच विराजमान अगस्त्यमुनिको नमस्कार

स्कंदं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ॥ द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥ १३ ॥ कामकोष्णीं पुरीं कांचीं कावेरीं च सरिद्वराम् ॥ श्रीरंगाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ॥ सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ॥ कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥ १६ ॥ तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ॥ योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ॥ दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥१७॥ ततः फाल्गुनमासाद्य पंचाप्सरसमुत्तमम् ॥ विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद्गवायुतम् ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ॥ गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥१९॥ आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः ॥ तापीं पयोष्णीं निर्विंध्यामुपस्पृश्याथ दंडकम् ॥ २० ॥

पूर्वक स्तुतिकी, फिर अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और आज्ञा पाय बलदेवजीने दक्षिणदेशमें समुद्रके तटपर जाय कन्यानाम दुर्गादेवीका दर्शन किया ॥१७॥ इसके पीछे फाल्गुन अनंतपुरमें जाय जहां विष्णु भगवान् सदा विराजते हैं ऐसे श्रेष्ठ पंचाप्सरस नाम सरमें स्नानकर दशहजार गायोंका संकल्प किया ॥ १८ ॥ वहाँसे चलकर भगवान् बलदेवजी केरल और त्रिगर्तदेशमें हो धूर्जटी शिवसे नित्य सन्निहित गोकर्ण नाम शिवक्षेत्रमें गये ॥ १९ ॥ वहाँसे आर्याद्वीपवासिनी देवीका दर्शनकर शूर्पारक क्षेत्रमें आये, वहांसे तापी और पयोष्णी नदीम हो दण्डकारण्यमें आये ॥२०॥

जहां माहिष्मती पुरी है, वहां पहुँच रेवानदीपर गये फिर मनुतीर्थमें आचमनकर प्रभासक्षेत्रमें आये ॥ २१ ॥ तब कौरव और पाण्डवोंके संग्राममें सब क्षत्रियोंका नाश होगया यह ब्राह्मणोंका वचन सुन बलदेवजीने अपने मनमें जानलिया कि, पृथ्वीका भार उतरगया ॥ २२ ॥ यादवोंको आनन्द देनेवाले बलदेवजी संग्राममें गदाओंसे युद्ध करते भीमसेन और दुर्योधनको समझानेके लिये कुरुक्षेत्रको गये ॥ २३ ॥ राजा युधिष्ठिर नकुल, सहदेव और श्रीकृष्णचन्द्र व अर्जुन बलदेवजीको आया हुआ देख प्रणाम कर पूछनेलगे कि, हे बलदेवजी! आप कहां कहां हो आये? तो यह भयके मारे चुप होगये ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त क्रोधमें भरे एकको एक जीतना चाहे, चित्र विचित्र मण्डलोंमें फिरते भीमसेन और

प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी ॥ मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपांडवसंयुगे ॥ सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥ २२ ॥ स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ॥ वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनंदनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ॥ अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥ २४ ॥ गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ॥ मंडलानि विचित्राणि चरंताविदमब्रवीत् ॥ ॥ २५ ॥ युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन्हे वृकोदर ॥ एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥ २६ ॥ तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ॥ न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥ २७ ॥ न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् ॥ अनुस्मरंतावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥ २८ ॥ दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ॥ उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥

दुर्योधनको देख बलदेवजी कहनेलगे ॥२५॥ कि, हे राजा दुर्योधन! और भीमसेन! तुम दोनों शूरवीर हो और समान तुम्हारा बल है, भीमसेनमें कुछ बल अधिक है, दुर्योधनमें दाव पेंच अधिक हैं, यह मैं जानता हूं ॥२६॥ इसलिये बराबर पराक्रमवाले तुम दोनोंके बीचमें एकको भी जीत हार न होगी, इस कारण इस निष्फल युद्धको शान्त करो ॥२७॥ हे राजन्! परस्पर कुत्सित वचन और कुत्सित कर्मोंको स्मरण कर वैरमें भरे भीमसेन और दुर्योधनने बलरामजीके प्रयोजन भरे वाक्यको नहीं माना ॥२८॥ भीमसेन और दुर्योधनका पिछला कर्म ऐसाही है, यह जानकर

बलदेवजी द्वारकापुरीमें आये और वहां उग्रसेनसे आदिले प्रसन्नमन यादवोंसे मिले ॥ २९ ॥ समस्तविरोधरहित यज्ञमूर्त्ति भगवान् बलदेवजी
फिर नैमिषारण्यमें आये, तब उन्हें आनन्दपूर्वक सब ऋषीश्वरोंने यज्ञोंसे यजन करवाया ॥ ३० ॥ तब सामर्थ्यवान् भगवान् बलदेवजीने उन
ब्राह्मणोंको विशुद्ध ज्ञान दिया जिस ज्ञानसे आत्मामें विश्व और विश्वमें पुरुष आत्माको जानता है ॥ ३१ ॥ यज्ञ करनेके पीछे स्नानकर सुन्दर
वस्त्र आभूषणोंसे अलंकृत ज्ञाति बंधु सुहृदोंको संग ले अपनी चांदनीसे शोभित चन्द्रमाके समान बलदेवजी अपनी स्त्रियोंसहित अत्यन्त
शोभाको प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ बलवान् अनन्त अप्रमेय अर्थात् प्रमाण करनेमें न आवे मायासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले बलदेवजीके अनेक

तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयोजयन्मुदा ॥ क्रत्वंगं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं
भगवान् व्यतरद्विभुः ॥ येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥ स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबंधुसुहृद्वृतः ॥
रेजे स्वज्योत्स्नयेवेंदुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ॥ ३२ ॥ ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य
मायामर्त्यस्य संति हि ॥ ३३॥ योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥ सायं प्रातरनंतस्य विष्णोः स दयितो भवेत
॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥
॥ ७९ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्यानि चान्यानि मुकुंदस्य महात्मनः ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो
॥ १ ॥ को नु श्रुत्वा सकृद् ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ॥ विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥

अनेक लीला और चरित्र हैं ॥ ३३ ॥ हे भारत ! अद्भुत कर्मकारी अनंत बलदेवजीके कर्मोंको जो पुरुष सायंकाल अथवा प्रातःकालके समय
स्मरण करेगा, वह श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त प्यारा होगा ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकोनाशी
तितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ दोहा—अस्सीमें धनलोभसे, विप्र सुदामा रंक । गयो द्वारका कृष्णपै, धोवन हेत कलंक ॥ १ ॥ राजा परिक्षित् श्रीशुकदे
वजीसे बोले कि, हे भगवन् ! समर्थ अनंत पराक्रम मुक्तिके देनेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रमको और भी सुननेकी मेरी अभिलाषा है ॥ १ ॥
हे श्रीशुकदेवजी ! उत्तमयशी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विषयोंमें वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली जो मनोहर कथा है, उसको निरन्तर सुनकर कामके बाणोंसे

खेदितहो त्रासपावे ऐसे सारके जाननेवाले कौन पुरुष हैं जो श्रवण न करैं ? ॥२॥ जिस वाणीमें भगवान्के नाम और गुण निकलैं वही वाणी सफल है और जिन हाथोंमें भगवान् वासुदेवकी सेवा पूजाका कर्म बनैं वही हाथ सफल हैं, और स्थावर जंगम जीवोंमें अन्तर्यामी रूप होकर वसे भगवान्का जो स्मरण करे वही मन सफल है और जिन कानोंसे भगवान् हरिकी पवित्र कथा सुनै वही कान सफल हैं॥ ३ ॥ स्थावर जंगम सब भगवान्के रूप हैं, यह जानकर जो पुरुष शिरसे प्रणाम करै वही शिर धन्य है, जिन नेत्रोंसे देखे,वही नेत्र धन्य हैं और भगवान् अथवा भक्तजनोंके चरणोंका धोवन जल नित्य जिन अंगोंमें लगै वही अंग धन्य है ॥४ ॥ श्रीसूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहनेलगे कि, विष्णुरात राजापरीक्षित्के यह प्रश्न करनेपर

सा वाग् यया तस्य गुणान्गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ॥ स्मरेद्वसंतं स्थिरजंगमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥ शिरस्तु तस्योभयलिंगमानमेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ॥ अंगानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजंति नित्यम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः ॥ वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयो ऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ विरक्त इंद्रियार्थेषु प्रशांतात्मा जितें द्रियः ॥ ६ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ॥ तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा॥ ७ ॥ पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ॥ दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च ॥ ८ ॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षा च्छ्रियः पतिः ॥ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान्सात्त्वतर्षभः ॥ ९ ॥

वासुदेव भगवान्में निमग्नहृदय हो वेदव्यासके पुत्र श्रीशुकदेवजी बोले ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परमभागवत राजा परीक्षित् ! कोई एक ब्राह्मण ब्रह्मके जाननेवालोंमें उत्तम विषयोंमें वैराग्यवान् शांतमन जितेंद्रिय श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र था ॥६॥ गृहस्थाश्रमको वर्त्तै और जो कुछ अनायास पूर्वक प्राप्तहो उसीसे अपना निर्वाह करै,जीर्णवस्त्रको धारण करै,उसीप्रकार उसकी स्त्री भी थी,क्षुधाके मारे पीड़ित होनेसे समस्त अंगोंसे कृशित और जो अन्न प्राप्तहो,उसे पतिको परोस दे,आप भूँखी रहजाय ॥७॥ बहुत दुःखित और भयके मारे थरथर काँपती वह पतिव्रता स्त्री दारिद्री पतिके समीप आनकर बोली हे ब्राह्मण ! साक्षात् लक्ष्मीके पति ब्रह्मभक्त शरणागतके पालक यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे सखा सुनेहैं ॥ ८॥९॥

अहो बड़भागी ! साधुओंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास तुम जाओ, दुःखित कुटुम्बी तुमको वह बहुतसा धन देंगे ॥ १० ॥ भोज, वृष्णि, अंधक यह यादवोंके गोत्र हैं, तिनके ईश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र अब द्वारका पुरीमें विराजते हैं वह अपने चरणकमलोंके स्पर्श करने वालोंको आत्मातक देनेको समर्थ हैं ॥ ११॥ जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भजन करनेवाले अपने भक्तोंको परिणाममें दुःखरूप धन और विषयका देना कुछ बहुत नहीं है,इस प्रकार कोमल वचनोंसे स्त्रीने बहुत प्रार्थना करी॥१२॥तब तो सुदामा ब्राह्मण उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होगा यह बड़ा लाभ है, इस प्रकार मनमें विचारकर जानेकी इच्छा करनेलगा, और स्त्रीसे बोला कि, हे मंगलरूपिणी ! तेरे घरमें कुछ

तमुपेहि महाभाग साधूनां च परायणम् ॥ दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुंबिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ ११ ॥ किं त्वर्थकामान्भजतो नात्यभीष्टाञ्जगद्गुरुः ॥ स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदुः ॥ १२ ॥ अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ इति संचिंत्य मनसा गमनाय मतिं दधे ॥ अप्यस्त्युपायनं किंचिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥ १३ ॥ याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतंडुलान् ॥ चैलखंडेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥ स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल ॥ कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिंतयन् ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ॥ विप्रोऽगम्यांधकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥ गृहं व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ॥ विवेशैकतमं श्रीमद् ब्रह्मानंदं गतो यथा ॥ १७ ॥

भेंट देनेको होय तो ला ॥ १३ ॥ यह सुन सुदामाकी स्त्री किसी पड़ोसी ब्राह्मणके घरसे चार मुट्ठी चावल मांगलाई और सुदामाके कपड़ेमें बांधनेलगी हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको भेट देकर सुदामाको बिदा किया॥ १४॥ हे राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठ सुदामा चावलोंको ले श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन मुझे कैसे होगा ? ऐसे विचार करताहुआ द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥ १५ ॥ सुदामा ब्राह्मण तीन चौकी और तीन ड्योढ़ीवानोंको उल्लंघनकर कृष्णके धर्मधारी और अगम्य अन्धक और वृष्णियोंके घरोंके बीचमें हो ॥ १६ ॥ उन घरोंके बीचमें सोलह हजार

श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके घरमेंसे एक अत्यन्त सुन्दर घरमें सुदामाने प्रवेश किया, उससमय ब्रह्मकी प्राप्तिके समान आनन्द पाया ॥ १७ ॥
हे राजा परीक्षित ! प्यारी रुक्मिणीकी शय्यापर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने द्वारपालके मुखसे यह संदेशा सुन और निकट खड़े अपने
प्राचीन मित्र सुदामाको देख, शीघ्र उठ भुजा पसारके मिले ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! अपने अत्यन्त प्यारे मित्र सुदामा ब्राह्मणके मिलनेसे अति
आनन्दसे प्रसन्नहुए कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंसे आँशुओंकी बूंदें टपकनेलगीं ॥ १९ ॥ हे राजन् ! लोकोंके पवित्र करने
वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामासे मिल और उसको पलँगपर बैठाय, भेंटदे उसके चरणका धोवन जल अपने मस्तकपर चढाया और दिव्य

॥ सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य
तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः ॥ प्रीतो व्यमुंचदब्बिंदून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥१९॥ अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणम् ॥
विप्रर्षेरंगसंगातिनिर्वृतः ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन्भगवान्लोकपावनः ॥ व्यलिंपद्दिव्यगंधेन
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥ प्रदीपावलिभिर्मुदा ॥ अर्चित्वाऽऽवेद्य तांबूलं गां च स्वागतमब्रवीत्
चंदनागुरुकुंकुमैः ॥ २१ ॥ धूपैः सुरभिभिर्मित्रं देवी पर्यचरच्छैव्या चामरव्यजनेन वै ॥२३ ॥ अंतःपुरजनो दृष्ट्वा
॥ २२ ॥ कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ॥ विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥
कृष्णेनामलकीर्तिना ॥

॥ २१ ॥ श्रेष्ठगंधयुक्त धूप दीप, और बराबर दीपक जलाकर धरदिये और बड़े
गंध, अतर चंदन, केशर इत्यादि सुदामाजीके लगाया ॥ २० ॥ इसप्रकार कृष्ण कहनेलगे ॥ २२ ॥ फटे मलीन वस्त्र पहरे और
आनन्दसे मित्र सुदामाकी पूजा कर तांबूल दे सन्मुख खड़े हो "मित्र भले आये" चमर ढोर पंखा इत्यादिसे सेवा करनेलगी ॥ २३ ॥
दुर्बलताके कारण अंगोंकी नसें निकल रहीं, ऐसे सुदामा ब्राह्मणकी साक्षात् देवी रुक्मिणी सब द्वारकावासी जन आश्चर्य
हे राजन् ! इसप्रकार निर्मल कीर्त्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब सत्कार किया, तब अवधूत सुदामाको देख

माननेलगे ❋ ॥ २४ ॥ और कहनेलगे कि, भिक्षा माँगनेवाले दरिद्री निंदित अधम फटे वस्त्र इस सुदामाने ऐसा क्या पुण्य किया है ? ॥ २५ ॥ क्योंकि जैसे बडे भाई बलदेवजीसे मिले उसी प्रकार त्रिलोकीके गुरु लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचन्द्र शय्याके ऊपर बैठी अपनी प्रियतमा रुक्मिणीको त्यागकर इससे मिले ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरान्त सुदामा और श्रीकृष्णचन्द्र दोनों परस्पर हाथ पकड जब गुरुकुलमें वास किया था, तबकी बात कहनेलगे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे धर्मके जाननेवाले ब्राह्मण ! दक्षिणा दे गुरुके पाससे जब हम तुम विद्या पढ कर

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ॥ श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन्गर्हितेनाधमेन च ॥ २५ ॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः ॥ पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥ २६ ॥ कथयांचक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ॥ आत्मनोर्ललिता राजन्करौ गृह्य परस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपि ब्रह्मन्गुरुकुलाद् भवता लब्धद क्षिणात् ॥ समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ २८ ॥ प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ॥ नैवातिप्रीयसे विद्वन्धनेषु विदितं हि मे ॥ २९ ॥ केचित्कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ॥ त्यजंतः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ॥ ३० ॥ कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन्स्मरसि नौ यतः ॥ द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥ ३१ ॥

आये, तबसे तुमने घर आय अपने योग्य स्त्रीसे विवाह किया या नहीं ? ॥२८॥ हे विवेकी मित्र सुदामा ! मैं निश्चय जानताहूं कि, तुम्हारा चित्त विषयोंमें बहुत चलायमान नहीं है और घरमें वस्त्रादिकोंसे भी तुम प्रसन्न नहीं हो विवेकी हो, तुमको ऐसाही योग्य है ॥ २९ ॥ यदि कहो कि, चाहना नहीं तो घरमें रहनेसे क्या प्रयोजन है ? उसके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि जैसे मैं ईश्वरहूं, उसी प्रकार ईश्वरकी मायासे रची विषयवासना त्यागकर कितने एक पुरुष मेरे समान लोकमर्यादाकेलिये विषयोंमें आसक्त न होने पर भी कर्म करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मण ! हम तुम जब गुरुके

❋ शंका–श्रीकृष्ण भगवान्के द्वारपर मूर्ख लोग रहतेथे क्योंकि जो मूर्खलोग पहरा नहीं देते होते तो भगवान्ने सुदामाका पूजन किया तो उन लोगोंने आश्चर्य क्यों माना ? क्योंकि सज्जन लोग तो जानते हैं कि, भगवान् तो सदा ब्राह्मणोंका पूजन करतेथे वह आश्चर्य क्यों मानते ?

उत्तर–श्रीकृष्णके स्थानपर मूर्ख लोग नहीं रहतेथे गोलोकवासी थे, उन लोगोंकी यह प्रतिज्ञा थी कि त्रिलोकीमें श्रीकृष्णसे बडा कोई नहीं है सर्वोपर श्रीकृष्णचन्द्रहीको जानतेथे, ब्रह्मादिक देवताओं को तथा योगियोंको ब्राह्मणोंको भी श्रीकृष्णचन्द्रसे बडा नहीं जानतेथे, इसलिये सुदामाका पूजन जब श्रीकृष्णजीने किया तो सब आश्चर्य माननेलगे कि इनसे बडा यह कौन आया ? जिनका पूजन आप श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् त्रिलोकीनाथ करते हैं ॥

घरमें जाकर रहे थे, तबकी भी कुछ यादहै कि नहीं ? जिन गुरुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जानने योग्य आत्माका स्वरूप जानकर पुरुष संसारसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें तीन गुरुहैं. जन्मदाता पिता, दूसरा यज्ञोपवीतकर वेद पढावे, संध्या गायत्री सुन्दर कर्म सिखानेवाला और तीसरा ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ, संन्यासी इन चारों आश्रमोंको ज्ञान देनेवाला गुरु है, इसमेंसे प्रथम गुरु पूज्य है, दूसरा मेरे बराबर पूज्य है और तीसरा गुरु साक्षत् मेराही स्वरूप है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष मनुष्यरूप धारण करके गुरुरूप मेरे उपदेशसे संसाररूपी समुद्रके पार लगते हैं, हे ब्राह्मण ! वह पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णोंमें और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन चारों आश्रमोंमें चतुर हैं ॥ ३३ ॥ ज्ञानके देनेवाले गुरुसे अधिक और सेवा योग्य कोई नहीं है, इसलिये उन गुरुके भजनसे और कोई अधिक धर्म नहीं है, सब

स वै सत्कर्मणां साक्षाद् द्विजातेरिह संभवः ॥ आद्योंग यत्राश्रमिणां यथाऽहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२ ॥ नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह ॥ ये मया गुरुणा वाचा तरंत्यंजो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च ॥ तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥ अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन्वृत्तं निवसतां गुरौ ॥ गुरुदारैश्चोदितानामिंध नानयने कचित् ॥ ३५ ॥ प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद् द्विज ॥ वातवर्षमभूत् तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तंगतस्तावत्तमसा चावृता दिशः ॥ निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ३७ ॥ वयं भृशं तत्र महानिलांबुभिर्निहन्यमाना मुहुरंबुसंप्लवे ॥ दिशोऽविदंतोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥

प्राणियोंका आत्मा मैं जैसा गुरुकी सेवासे प्रसन्न होताहूं, ऐसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासधर्मसे भी प्रसन्न नहीं होता ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण ! हम और तुम जब गुरुके घर रहा करतेथे उस समय हमें तुम्हें गुरुकी स्त्रीने लकड़ी काटनेको वनमें भेजा, वहां दैवइच्छासे जो कुछ हुआ वह तुम्हें स्मरण है ? ॥३५॥ हे मित्र ! लकडी लेनेको हम तुम एक महावनमें गये यद्यपि वहां वर्षाऋतु नहीं थी परन्तु तो भी महातीव्र पवनके साथ वर्षा होने लगी और अत्यन्त घोर कठोर गर्जना हुई ॥ ३६ ॥ इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्त होगये और सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धेरा छागया, सब स्थलमें जलमें जलहीजल दृष्टि आनेलगा, इसकारण ऊंचा नीचा कुछ दिखाई न दिया ॥ ३७ ॥ जलमय उस वनमें अति प्रचण्ड वायु तथा वर्षासे

हुए तुम दोनों पीडाको प्राप्त हुए दिशाओंकी कुछ सुधी न रही तब आतुर हो आपसमें हाथ पकड मस्तकपर लकड़ीके बोझोंको धरकर फिरने लगे ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मण ! जब गुरुजी को इस बातकी खबरहुई, तब सूर्योदय होतेही सांदीपन गुरु हमें तुम्हें ढूँढ़ते २ आये और आतुर अपने शिष्योंको बैठा देखा ॥ ३९ ॥ और उस समय कृपा करके तीन श्लोक कहे, जिनसे हम कृतार्थ होगये, हे पुत्रो ! तुम हमारे लिये बहुत दुःखित हुये क्योंकि प्राणियोंको देह बहुत प्यारा है, उसका निरादर करके तुमने हमारी सेवा करी ॥ ४० ॥ सत्पात्र शिष्योंको इसीप्रकार गुरुकी सेवा करनी योग्य है, शुद्ध भावना करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थ जिससे प्राप्तहों ऐसे

एतद्विदित्वा ह्युदिते रवौ सांदीपनिर्गुरुः ॥ अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥ अहो हे पुत्रका यमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ॥ आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ॥ यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥ ४१ ॥ तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः संतु मनोरथाः ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४२ ॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ॥ गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णः प्रशांतये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ॥ भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥ ४४ ॥

देहको गुरुके अर्पण करदे ॥४१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ हूं तुम्हारे मनोरथ सब सत्यहों, तुमने मुझसे जो वेद पढे हैं, सो इस लोक और परलोकमें सारभरे नवीन पढे याद बनेरहैं ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि, हे मित्र ! कलियुगमें चेले गुरु दोनों लोभी लालची होते हैं, गुरुके घर जब हम रहते थे, तब के ऐसे अनेक चरित्र हैं, वह आपको याद हैं ? गुरुओंकी कृपासेही मनुष्य पूर्ण मनोरथ होकर शांतिको प्राप्त होता है ❀ ॥ ४३ ॥ तब सुदामा बोले कि, हे देवदेव जगतके गुरु ! सत्यसंकल्प तुम्हारे संग हमारा गुरुके पास वास हुआ था, फिर

* दृष्टान्त–एक चेला गुरूजीके पास आया और सेवा करने लगा, सेवा करनेहीपर माल भी बहुत मिलते हैं, नया जानकर पुराने चेलोंने सब काम धन्धा उसीपर डाल दिया, एक दिन उसने गुरूजीसे कहा कि, महाराज ! एकबात कहताहूँ गुरूजी बोले कह, चेलेने कहा कि, महाराज ! ऐसा भी कोई उपाय है कि, जो मैं गुरू होजाऊँ और तुम्हारे समान गद्दीपर बैठ हलुआपूरी उडाऊ, काम चेलोंसे कराऊं, गुरूजीने सुनतेही क्रोधकर उसे निकाल दिया और फिर अपने यहां न आने दिया, चेलेको तो चाट लगरहीथी एक दिन एक पल्लेदारको बुला दो पैसे दे उससे कहा कि. रेता पल्लेमें भरकर लेचलो, उसने पला भरलिया यह गरूजीके दरवाजेपर पहुँच खबर दी कि चेला आया है, गुरूजी बोले कि, हम दर्शन नहीं देंगे, तब चेलेने कहा महाराज ! एक पल्लेमें कुछ लाया भी है, हम नहीं–

हमको कौन वस्तुकी प्राप्ति न हुई अर्थात् सब वस्तु पाचुके ॥ ४४ ॥ हे समर्थ ! संपूण कल्याणदायक छन्दोमय वेद आपकी मूर्त्ति हैं ऐसे आपने गुरुके यहाँ वास किया, यह तो लीलामात्र है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां सुदाम्नः उपाख्याने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ दोहा–इक्यासी हरि विप्रके, तन्दुल भोग लगाय । किये समर्पण लोक द्वै, तौहू रहे लजाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब प्राणियोंके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्विजोंमें मुख्य सुदामाके संग बातैं करते मुसकाकर बोले ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले साधुपुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रेमभरी चितवनसे देखते और हँसतेहुये ब्राह्मण सुदामासे बोले कि ॥ २ ॥ हे

यस्य च्छंदोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो॥ श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यंतविडंबनम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भा०म०द०उ० अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥ श्रीशुक उवाच॥ स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः॥ सर्वभूतमयोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ॥ प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् ॥ अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥ इत्युक्तोपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ॥ पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ॥ ५ ॥ सर्वभूतात्मदृक् साक्षात्तस्यागमनकारणम् ॥ विज्ञायाचिंतयन्नायं श्रीकामो माभजत्पुरा ॥ ६ ॥

ब्राह्मण ! तुम मेरे लिये क्या भेंट लाये हो ? क्योंकि भक्ति प्रेमपूर्वक जो मुझे थोडीसी भी भेंट देता है, सो बहुत होजाती है और जो भक्ति विना मुझे बहुत भी दे, परन्तु उससे मुझे संतोष नहीं होता ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्ति करके पत्र, पुष्प, फल मुझे देतेहैं, सो भक्तिसे भेंट करनेके कारण मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक भोजन करता हूं ॥ ४ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! इसप्रकार भगवान्ने जब कहा तो भी लज्जाके मारे नीचेको मस्तककर विराजमान सुदामाने लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको तंडुल नहीं दिये ॥ ५ ॥ हे राजन् ! साक्षात् सब प्राणियोंके साक्षी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाके आनेका

—जानते कि, बूरा या खाण्ड है, इससे बुलालो, फिर भगा दीजो, गुरुजी बोले तो फिर बुलालो, चेला सुनते ही बुलाने गया, उसने आतेही आँगनमें पल्ला गिरवाया और गुरुजीकी ओर चरणकर पल्लेको दण्डवत् करी गुरुजी बोले कि मूर्ख यह क्या करताहै ? चेलेने कहा कि महाराज ! मुझे तो यह पल्लाही लाया है यह कहकर भागगया गुरुजी रेता देख अत्यन्त लज्जित हुये, कलियुगमें गुरु चेले बहुधा कुपात्रही हैं ॥

विचार करनेलगे कि, धनकी चाहना करके इस सुदामाने मेरा भजन नहीं किया ॥ ६ ॥ पर अभी अपनी पतिव्रता स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये मेरे पास आया है, इसलिये जो संपत्ति देवताओको भी दुर्लभ है सो इसे दूंगा ॥ ७ ॥ इस प्रकार विचार कर चीरमें बँधे चावलोंको " यह क्याहै " ऐसे कह वह चावल सुदामाके वस्त्रमेंसे आपही ले लिये ॥ ८ ॥ और एक मुट्ठी चावल खाकर केशवमूर्त्ति बोले कि, हे मित्र सुदामा ! यह जो तुम चावल लाये हो सो मुझे अत्यन्त प्यारे लगे हैं, इनको थोड़ा मत जानो, यह चावल मेरे सब विश्वका पेट भरदेंगे ॥ ९ ॥ ऐसे कह एक मुट्ठी चावलोंका भोजनकर और दूसरी मुट्ठी खानेलगे, तबहीं श्रीकृष्णपरायण रुक्मिणी परमेष्ठी श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ पकडकर कहनेलगीं कि,

पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ॥ प्राप्तो मामस्य दास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥ इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ॥ स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतंडुलान् ॥ ८ ॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ॥ तर्पयंत्यंग मां विश्वमेते पृथुकतंडुलाः ॥९॥ इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ॥ तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये ॥ अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमंदिरे ॥ भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेन आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवंदितः ॥ जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नंदितः ॥ १३ ॥

मित्रके घरकी सब वस्तु आपही भोजनकर जाओगे या कुछ हमको भी रहने दोगे ? ॥१०॥ रुक्मिणी बोली कि,हे विश्वके आत्मा ! एक मुट्ठी चावल भोजन करके तो सब विश्वकी संपत्ति इसे दे चुके और दूसरी मुट्ठी भोजन करके क्या मुझे भी दे चुकोगे ? क्योंकि इस लोक और परलोकमें तुम्हारे संतुष्ट होनेसेही संपत्ति प्राप्त होतीहै ॥ ११ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! ब्राह्मण सुदामाने उस रात्रिको श्रीकृष्णचन्द्रके मन्दिरमें रह, भोजन कर जल पी स्वर्गकी प्राप्तिके समान सुखपाया ॥१२॥ जब प्रातःकाल हुआ तो विश्वके पालन करनेवाले आत्माके आनन्दमें मग्न श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाको प्रणामकर मार्गमें पहुँचानेको पीछे पीछे संग आये, और बोले कि, मित्र सुदामा ! तुमने भला दर्शन किया, और इस प्रकार स्वाधीन

वचनोंसे आनंदहो सुदामा अपने घरको चला ॥ १३ ॥ हे नृप ! न तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसे धनदिया और न उसने लाजके मारे मांगा, श्री
कृष्णके दर्शनहीसे सुखपाकर अपने घरकी ओरको चला ॥ १४ ॥ चलते समय चित्तमें शोचनेलगा कि अहो ! ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवालोंके देवत
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति मैंने देखी, क्योंकि लक्ष्मीको छातीमें धारणकरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अतिदरिद्री मुझ सुदामाको छातीसे लगाकर
मिले ॥१५॥ कैसा आश्चर्य है कि दरिद्री पापी ब्राह्मण मैं कहाँ ? और लक्ष्मी जिनके अंगमें वासकरैं ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ ? मुझमें उनमें बड़ा अंतरहै,
सो भुजापसार कर मुझसे मिले ॥ १६ ॥ अपनी प्रिय भार्याके सेवा करनेयोग्य शय्यापर जैसे अपने भ्राता बलदेवजीको बैठालेते थे, उसी प्रकार

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् ॥ स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहो ब्रह्मण्यदे
वस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ॥ यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ काहं दरिद्रः पापीयान्क कृष्णः
श्रीनिकेतनः ॥ ब्रह्मबंधुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरंभितः ॥ १६ ॥ निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यंके भ्रातरो यथा ॥ महिष्या
वीजितः श्रांतो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ॥ पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन
देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥
अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ॥ इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात् ॥ २० ॥ इति तच्चिंतयन्नंतः
प्राप्तो निजगृहांतिकम् ॥ सूर्यानलेंदुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥

मुझे बैठाया और मार्गकी थकावट दूर होनेको श्रीकृष्णचन्द्रकी भार्या रुक्मिणीने चमर हाथमें लेकर मेरे पवन करी ॥ १७ ॥ बड़ी सेवा करके पांवों
का दाबना, धोना, पोंछना, इत्यादि सत्कार करके देवोंके देव ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके समान मेरी पूजा की ॥ १८ ॥ यद्यपि
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी शोभा मनुष्योंको स्वर्ग मोक्ष और पाताल, पृथ्वीकी संपत्ति, तथा सर्व सिद्धियोंका कारणहै, परन्तु तोभी ॥१९॥
दारिद्री सुदामा धनको पाय, बहुत मतवाला होकर मुझे भूल जायगा इसकारण करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुझे यत्किंचित् भी धन न
दिया ॥२०॥ हे महाराज ! इस प्रकार सुदामा मनहीमनमें विचार करता हुआ अपने नगरमें पहुँचा तो क्या देखता है कि, सूर्य, अग्नि, चंद्रमाके समान

प्रकाशमान चारों ओर विमान शोभित होरहेहैं ॥२१॥ चित्र विचित्र बगीचे शोभायमान तिनमें पक्षियोंके झुंडके झुंड बोल रहे हैं और कुमुद अंभोज कह्लार, उत्पलसे शोभायमान सरोवर भर रहेहैं ॥ २२ ॥ शृंगार किये पुरुष और हरिणके तुल्य नेत्रवाली स्त्रियें जहाँ तहाँ फिररही हैं, ऐसी शोभा और विमानोंका प्रकाश देख आश्चर्यमान "यह क्या है ? किसका स्थान है ?" फिर अपने मनमें विचार किया कि यह तो हमारेही रहनेका स्थान है, ऐसा कैसे होगया ॥ २३ ॥ इसप्रकार बड़भागी सुदामाको देवताओंके समान शोभावाले स्त्री पुरुष गाते बजाते सम्मुख लिवानेको आये ॥ २४ ॥ पतिका आगमन सुन आनन्द और घबराहटसे सुदामाकी स्त्री साक्षात् कमलवनमेंसे रूपधरें लक्ष्मीके समान शीघ्रही घरसे बाहर

विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ॥ प्रोत्फुल्लकुमुदांभोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥ जुष्टं स्वलंकृतैः पुंभिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ॥ किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवं मीमांसमानं तं नरा नार्यो ऽमरप्रभाः ॥ प्रत्यगृह्णन्महाभाग गीतवाद्येन भूयसा ॥ २४ ॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा ॥ निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कंठाऽश्रुलोचना ॥ मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरंतीं देवीं वैमानिकीमिव ॥ दासीनां निष्ककंठीनां मध्ये भांतीं स विस्मितः ॥ २७ ॥ प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमंदिरम् ॥ मणिस्तंभशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥ २८ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ पर्यंका हेमदंडानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥

निकली श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गको सुदामाके महलमें लायेथे इसलिये सुदामा और सुदामाकी स्त्री दोनों देवस्वरूप होगये ॥ २५ ॥ प्रेम और उत्कंठासे नेत्रोंमें आंशू भरे पतिव्रता सुदामाकी स्त्रीने पतिको आया देख नेत्र मूँद, बुद्धिसे विचार मनमें आलिंगन कर नमस्कार किया ॥ २६ ॥ जैसे विमानमें बैठी देवी प्रकाशमान होती है, उसी प्रकार धुकधुकी कण्ठमें धारण किये दासियोंके मध्यमें प्रकाशमान अपनी स्त्रीको देख सुदामाजीने बहुत आश्चर्य माना ॥ २७ ॥ और प्रसन्न हो अपनी स्त्रीके साथ अपने घरमें गये, जहाँ सहस्रों मणियोंके खंभ लग रहे थे, मानों इन्द्रभवन है ॥ २८ ॥ दूधके श्वेत झागोंके समान कोमल श्वेत बिछौने बिछरहे, हाथीदाँत व सुवर्णके पलँग जिस मन्दिरमें बिछ रहे और सुवर्णकीही डंडीके

चमर पंखे धरे हैं ॥ २९ ॥ कोमल कोमल पथरनोवाले सुवर्णके सिंहासन और मोतियोंके झालरीदार प्रकाशमान चँदोवे तन रहे थे ॥ ३० ॥ और निर्मल स्फटिक मणियोंकी भीतोंमें महामरकतमणियोंकी तथा स्त्रीसहित मंदिरमें रत्नोंके दीपक प्रकाशमान होरहेथे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उस मंदिरमें संपत्तियोंकी वृद्धि देख स्थिर हो, "अकस्मात् इतनी संपत्ति कहाँसे आई" ऐसे सुदामाजी विचार करने लगे ॥ ३२ ॥ सदाके दारिद्री भाग्य हीन मुझे बड़े ऐश्वर्यमान यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवन विना निश्चय और कोई इस संपत्तिका कारण नहीं है ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार समुद्रको पूर्ण करनेवाला महाउदार मेघ किसी समय अधिक तर वृष्टिको भी सूक्ष्म जानकर मानो लज्जित होता हो ऐसे समक्षमें नहीं वरसता,

धुमंति च ॥ ३० ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नदीपान्भ्राजमानाल्ललनारत्नसंयुतान् ॥ ३१ ॥ विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसंपदाम् ॥ तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहेतुकीम् ॥ ३२ ॥ नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ॥ महाविभूते र्यदुत्तमस्य ॥ ३३ ॥ नन्वब्रुवाणो दिशतेऽसमक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ॥ पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥ किंचित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारि ॥ मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्रीदास्यं पुनर्ज न्मनि जन्मनि स्यात् ॥ महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसंगः ॥ ३६ ॥

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ॥ मुक्तादामविलंबीनि वितानानि

रवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत

उसी प्रकार मेरे सखा पूर्णकाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी भक्तको देनेके रात्रिको नगरके लोगोंके सोजानेपर उनके खेतोंको जलसे पूर्ण करताहै, लिये इन्द्रादिक पदको भी तुच्छ और उसके लिये भजनको अधिक मानकर समक्षमें न कहतेहुये सब सम्पदायें प्रदान करते हैं ॥ ३४ ॥ आप बहुत दें, उसे थोड़ा मानै और सुहृदोके थोड़े दियेको भी बहुत मानते हैं, क्योंकि मैं एक मुट्ठी चावलोंकी लेगया था उसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर लिया ॥ ३५ ॥ मुझे जन्मजन्ममें उन्हींके विषयमें प्रेम हितेच्छुता मैत्री व दासपन प्राप्तहो और महानुभाव व गुणोंके धाम भगवान् वासुदेवमें आसक्त होते उनके भक्तोंका सत्संग प्राप्तहुआ करै यही उनसे विनय है ॥ ३६ ॥

धनी पुरुषोंके धनके अभिमानसे नीच जन्म होते देखकर विवेकसे श्रीकृष्णचन्द्र अपने अज्ञानी भोरे भक्तोंको विचित्र संपदा और राज्यके ऐश्वर्य नहीं देते किन्तु दृढ़ भक्ति देते हैं, मुझे भक्ति नहीं थी, इससे संपदाका सुख मिला परन्तु अब भक्तिहीकी प्रार्थना करताहूं ॥३७॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चयकर श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त भक्त सुदामा विषयोंका धीरे धीरे त्याग करता अति आसक्त न होकर स्त्रीके साथ विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ३८ ॥ देवदेव तथा यज्ञपति इन प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके ब्राह्मणही प्रभु और इष्ट देवता हैं, इन ब्राह्मणोंसे अधिक और कोई देवता नहीं है ॥ ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र वह ब्राह्मण सुदामा उस समय अजित भगवान्को भी भक्तोंके सम्मुख पराजित होते

भक्ताय चित्रा भगवान्हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समद्धयत्यजः ॥ अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥ ३७ ॥ इत्थं व्यवसितो बुद्धया भक्तोऽतीव जनार्दने ॥ विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलंपटः ॥ ३८ ॥ तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ॥ ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥ ३९ ॥ एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ॥ तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबंधनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥ एतद्ब्रह्मण्य देवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥ लब्धभावो भगवति कर्मबंधाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कंधोत्तरार्द्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥ सूर्योप रागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

देखकर उनके ध्यानके वेगसे अहंकार दूरकर शीघ्रही सत्पुरुषोंके शरणरूप श्रीकृष्णचन्द्रके धामको चलागया ॥ ४० ॥ जो पुरुष ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्रकी, ब्राह्मणकी गौरवता प्रतिपादन करनेवाली यह लीला मन लगाकर सुनतेहैं, वह भगवान् वासुदेवकी भक्तिको प्राप्त होकर कर्मबं धनसे छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां सुदाम्न उपाख्याने एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ दोहा—अंकबयासीमें भयो, कुरुक्षेत्र रविपर्व । मिले प्रेम अरु प्रीतिसे, यादव औ नृप सर्व ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसके उपरान्त द्वारकापुरीमें वास करते रामकृष्णको एक समय प्रलयकालके समान बड़ा भारी सूर्यग्रहण आया ॥ १ ॥

हे महाराज ! ज्योतिषियोंसे उस ग्रहणको पहलेही जानकर मनुष्य सब ओरसे दान, पुण्य, स्नान करनेके लिये कुरुक्षेत्रको जाने लगे ॥ २ ॥ जहाँ शस्त्रके धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीसवार निःक्षत्रियकरके राजाओंके रुधिर समूहसे कुण्ड भरदिये थे ॥ ३ ॥ यद्यपि पाप रहित हैं, परन्तु तोभी समर्थ भगवान् परशुरामजी अपने पाप दूर करनेके लिये अज्ञानी पुरुषके समान सब लोकोंको शिक्षा देनेके कारण जाकर कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किये ॥ ४ ॥ बडी तीर्थयात्रामें संपूर्ण भरतखण्डकी प्रजा आई उसीप्रकार वृष्णि, अक्रूर, वसुदेव, राजा उग्रसेनादि यादव ॥ ५ ॥ अपना अपना पाप दूरकरनेके लिये कुरुक्षेत्रमें आये, गद, प्रद्युम्न, सांबादि, श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र आये;

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः ॥ स्यमंतपंचकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥ निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः ॥ नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥ ईजे च भगवान्रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥ लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥ ४॥ महत्यां तीर्थयात्रायां तत्राऽऽगन् भारतीः प्रजाः ॥ वृष्णयश्च तथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ॥ गदप्रद्युम्नसांबाद्याः सुचंद्रशुकसारणैः ॥ ६ ॥ आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥ ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥ ७ ॥ व्यरोचंत महातेजाः पथि कांचनमालिनः ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ ८ ॥ तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासस्स्रग्रुक्ममालिनीः ॥ ९ ॥

परन्तु सुचन्द्र शुक सारण सहित अनिरुद्ध और कृतवर्मा यह दोनों द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये रहगये ॥ ६ ॥ बड़े तेजस्वी सुवर्णकी माला और दिव्य फूलोंकी माला वस्त्र कवच धारणकिये यादव देवताओंके विमानोंके समान प्रकाशमान और जलतरंगके समान चंचल घोडे और बादलोंकीसी कान्ति ऐसे हाथियोंके ऊपर विद्याधरोंकीसी कान्तिवाले सिपाहियोंसहित यादव मार्गमें जातेहुये देवांगनासहित देवताओंके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ बडे भाग्यवान् बहुत सावधान यादवोंने कुरुक्षेत्रमें व्रत स्नानकर वस्त्र और फूल व सुवर्णकी माला पहराय

गौ ब्राह्मणोंको दान करके दीं ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त यादवोंने परशुरामजीके सरोवरोंमें युक्त स्नान कर "श्रीकृष्णचन्द्रमें हमारी भक्ति होवै" यह संकल्प करके ब्राह्मणोंको बहुतसा सुवर्ण दान किया ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा पाय यादव आप यथेच्छ भोजन कर शीतल छायायुक्त वृक्षोंके नीचे बैठगये ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! वहाँ मत्स्य, उशीनर, कौशल्य, विदर्भ, कुरु, सृंजय कांबोज, कैकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त्त व केरल देशके वासी अपने मित्र, बांधव, व राजा और दूसरे भी अपने पक्षके और परपक्षके सैकडों मनुष्य और नंदआदि अपने प्रिय स्नेही ग्वाल

रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥ ददुः स्वर्णं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥ १० ॥ स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायांघ्रिपांघ्रिषु ॥ ११ ॥ तत्रागतास्ते ददृशुः सुहृत्संबंधिनो नृपान् ॥ मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृंजयान् ॥ १२ ॥ कांबोजकेकयान्मद्रान्कुंतीनानर्तकेरलान् ॥ अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान् परांश्च शतशो नृप ॥ नंदादीन्सुहृदो गोपीन्गोपीश्चोत्कंठिताश्चिरम् ॥ १३ ॥ अन्योऽन्यसंदर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ॥ आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १४ ॥ स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापांगदृशोभिरेभिरे ॥ स्तनैः स्तनान्कुंकुमपंकरूषितान्निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १५ ॥ ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान्यविष्टरभिवंदिताः ॥ स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथां मिथः ॥१६॥

व बहुत दिनोंकी उत्कण्ठावाली गोपियें प्रभृति जो आये, उन सबको देखा ॥ १२ ॥ १३ ॥ परस्पर दर्शनसे उत्पन्नहुए आनंदके वेगसे प्रफुल्लित हृदय और कमलमुखसे शोभायमान पुलकित शरीर प्रेमसे रुद्ध कण्ठ नेत्रोंसे जल बहाते परस्पर आलिंगन करते यादव और दूसरे लोग बडे आनंदमें मग्न होगये ॥ १४ ॥ अत्यन्त स्नेहभरी मुसकान निर्मल कटाक्षयुक्त दृष्टि और स्नेहके आँशू नेत्रोंमें भरे स्त्री स्त्रियोंको देख केशरलगे स्तनोंको स्तनोंसे लगाय भुजा पसार परस्पर मिलनेलगीं ॥ १५ ॥ जो छोटी अवस्थावाले बडोंको प्रणाम करचुके तब वह यादव वृद्धोंको प्रणामकर "भले आये" प्रसन्न

हो इसप्रकार कुशल पूछ आपसमें कृष्णकथाओंको पूँछनेलगे ॥ १६ ॥ कुन्ती भाई बहन, भतीजे, माता, पिता और भाइयोंकी बहुओंको देख तथा मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रको देख आपसमें प्रेमकी बात चीतकर नेत्रोंसे आंशू बहानें लगीं ॥ १७ ॥ कुन्ती बोली कि, हे आर्य! मैं अपनेको अपूर्ण मनोरथ मानतीहूँ क्योंकि जब मुझपर विपत्ति पड़ती है, तब जो श्रेष्ठ मेरी बातको स्मरण भी नहीं करते ॥ १८ ॥ जिससे दैव रुष्ट होजाता है, उसको कोई भी संबन्धी अर्थात् जातवाले, पुत्र, भाई, माता, पिता यह स्मरण नहीं करते ॥ १९ ॥ वसुदेवजी बोले कि हे बहन ! दैवके खिलौने

पृथा भ्रातन्स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि ॥ भ्रातृपत्नीर्मुकुंदं च जहौ संकथया शुचः ॥ १७ ॥ कुंत्युवाच ॥ आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ॥ यद् वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १८ ॥ सुहृदो ज्ञातयः पुत्राः भ्रातरः पितरावपि ॥ नानुस्मरंति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥१९॥ वासुदेव उवाच ॥ अंब मास्मानसूयेथा दैवक्रीड नकान्नरान् ॥ ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥ २० ॥ कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशो दश ॥ एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ॥ आसन्नच्युतसंदर्श परमानंदनिर्वृताः॥२२॥भीष्मो द्रोणोंबिकापुत्रो गांधारी ससुता तथा ॥ सदाराः पांडवाः कुन्ती सृंजयो विदुरः कृपः॥२३॥

ऐसे हम मनुष्योंको दोष मत लगावे, क्योंकि लोक ईश्वरके आधीन होकर कर्म करता है और ईश्वरही कर्म कराता है ॥ २० ॥ प्रथम हम कंससे अत्यन्त दुःखित हो सब दिशाओंमें चले गयेथे, दैव इच्छासे अभी अपने स्थानपर आयेहैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! वसुदेव उग्रसेनादिक यादवोंसे पूजित हो व राजा लोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर सुखपूर्वक परमानन्दमें मग्न होगये ॥ २२ ॥ भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य अंबिकाका पुत्र धृतराष्ट्र, पुत्रों सहित गान्धारी, स्त्रियों सहित पांडव, कुंती, संजय, बुद्धिमान् विदुर, कृपाचार्य ॥ २३ ॥

कुन्तिभोज राजाविराट्, भीष्मक और नग्नजित पुरुजित, द्रुपद, शल्य, काशीनरेश, सहित धृष्टकेतु बड़ेनेत्रवाला राजा दमघोष, मिथिलादेशका राजा, मद्रदेशका राजा, कैकयदेशका राजा, युधामन्यु, सुशर्मा, और पुत्रों सहित बाह्लीकादिक हे राजाओंके इन्द्र राजा परीक्षित् ! महाराज युधिष्ठिरके आज्ञाकारी राजा संपूर्ण रानियों सहित अत्यन्त शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका रूप देखकर परम आश्चर्य मानने लगे ❀ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ दर्शन करनेके उपरान्त रामकृष्णसे भलीप्रकार सत्कार पाय राजालोग श्रीकृष्णचंद्रादि यादवोंकी

कुन्तीभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ॥ पुरुजिद्द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः स काशिराट् ॥ २४ ॥ दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ ॥ युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥ २५ ॥ राजानो ये च राजेंद्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ॥ श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २६ ॥ अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः ॥ प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥ २७ ॥ अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ॥ यत्पश्यथासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २८ ॥ यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ॥ भूः कालभर्जितभगापि यदंघ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ २९ ॥

प्रशंसा करनेलगे ॥ २७ ॥ "अहो ! महाराज उग्रसेन ! यहाँ मनुष्योंमें जन्म तो आपहीका सफल है, क्योंकि जिनके दर्शन योगीजनोंको भी दुर्लभ हैं उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आप नित्य प्रति दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ वेद जिनकी स्तुति कीर्त्ति वर्णन करते हैं, उन

शंका—मुनिसत्तम युधिष्ठिरकी आज्ञा करनेवाले राजा श्रीकृष्णचन्द्रको स्त्रीसहित देखकर विस्मयको क्यों प्राप्तहुए ?

उत्तर—सब शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके वचनको राजा लोग मुनियोंके मुखसे सुनतेथे कि भगवान्ने कहा था कि, सब शास्त्रोंमें लिखाहै कि स्त्री सदा नरककी देनेवाली है जो कोई प्राणी मोक्षकी अभिलाषा करै वह स्त्रीकी सगति न करै, फिर स्त्रियों सहित श्रीकृष्णको देखकर राजाओंने कहा कि जिस जिस कामको श्रीकृष्ण बुरा कहते हैं उसी कामको आप करतेहैं, इसप्रकार स्त्रियोंके वश हुये श्रीकृष्णको देखकर राजा लोगोंने बडा सन्देह किया देखो ! प्राणियोंको स्त्रियोंके वश होना मने करते हैं और आप स्त्रियोंके वशीभूत होरहेहैं, इसलिये राजा लोग विस्मयको प्राप्तहुए ।

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका धोवन गंगाजल और मुखारविन्दका वचनरूप वेद इस विश्वको अत्यन्त पवित्र करते हैं और कालसे दग्ध माहात्म्य जाननेवाली पृथ्वी भी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलके स्पर्शसे शक्तिमती हो हमारी चारों ओरसे संपूर्ण कामना पूर्ण करती है ॥ २९ ॥ उन श्रीकृष्ण चन्द्रके संग दर्शन, स्पर्शन, अनुसरण, आसन, गोष्ठी, पलँग, भोजन, विवाह और सपिंडताके संबंधसे बँधे हुए हो और आप यद्यपि नरकके मार्गरूप गृहमें वास करते हो, परन्तु तो भी तुम्हारे घरमें स्वर्ग व मोक्षकी तृष्णा निवृत्त करनेवाले विष्णु भगवान् आपही प्रगट हुए हैं, इसलिये तुम्हारा जन्म सफल है ॥३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! नंदरायजी कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णादि यादवोंका आगमन जान गोपों

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिंडबंधः ॥ येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदस्तत्र यदून्प्राप्तान्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ॥ तत्रागमद्वृतो गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ॥ परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३२ ॥ वासुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः ॥ स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासं च गोकुले ॥ ३३ ॥ कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ॥ नाकिंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकंठौ कुरूद्वह ॥ ३४ ॥ तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥ ३५ ॥

सहित और गाडियोमें लदी वस्तु सहित देखनेके लिये यादवोंके पास आये ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंसे जिनका दर्शन न हुआ ऐसे कायरचित्त यादव नंदरायजीको देख अत्यन्त प्रसन्नहो, जैसे प्राण देहमें आनेसे इन्द्रियें उठकर सम्मुख होती हैं उसी प्रकार सम्मुख जाय चिरकालसे दर्शन न पानेसे उत्कंठित हो गाढ आलिंगनकर परस्पर मिले ॥३२ ॥ वसुदेवजी नंदरायजीसे मिल प्रसन्न हो प्रेममें विह्वल होगये और कंसके दिये कष्टको और गोकुलमें जैसे कृष्णको पहुँचा आये थे, उसका स्मरण किया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! कृष्ण बलदेव माता पिता नंद व यशोदासे मिल प्रणामकर ऐसे प्रेममें विह्वल होगये कि, आँशुओंसे कंठ रुक गये, इसलिये कुछ भी न बोलागया ॥ ३४ ॥ महाभागा यशोदा और नंदजी कृष्ण बलदेवको

अपने आसनपर बैठाय भुजाओंसे आलिंगनकर नेत्रोंसे आँशू बहानेलगे ॥ ३५ ॥ पीछे रोहिणी और देवकी व्रजकी रानी यशोदासे मिल व यशोदाकी करी मित्रताका स्मरण कर आँशू कंठमें भर यह कहनेलगीं ॥ ३६ ॥ कि, हे व्रजकी महारानी ! जिसका बदला न होसके, ऐसी तुम्हारी मित्रताको कौन भूल सकता है ? और देवराज इन्द्रका ऐश्वर्य पाकर भी संसारमें तुम्हारी मित्रताका बदला नहीं होसकता, हे यशोदे ! जिन्होंने अपने माता पिताको नेत्रोंसे नहीं देखा, ऐसे कृष्ण बलदेवको तुम माता पिताके पास रक्खे, तब तुमसे प्यार बढ़ाना पोषण, पालन, लालन पाय निर्भय तुम्हारे पास वास करनेलगे, जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, उसीप्रकार तुमने इनकी रक्षा करी, यह तुमको योग्यही है, क्योंकि, साधुओंको

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ॥ स्मरंत्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकंठ्यौ समूचतुः ॥ ३६ ॥ का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ॥ अवाप्याप्यैंद्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३७ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ॥ प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्रचभयौ न सतां परः स्वः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपंति ॥ दृग्भिर्हृदि कृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ३९ ॥ भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः ॥ आश्लिष्याऽनामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४० ॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ॥ गतांश्चिरायिताञ्शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४१ ॥

यह अपना विराना इसप्रकार बुद्धि नहीं होती है ॥३७॥३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जिनके दर्शनमें पलकोंकी ओट पडनेसे पलकोंके रचनेवाले विधाताको गालियाँ देती हैं, क्योंकि वह अतिप्यारे श्रीकृष्णचन्द्र बहुत दिनोंमें दृष्टिगोचर हुए, इसलिये नेत्रद्वारा उन्हें हृदयमें स्थापितकर समाधिनिष्ठ योगियोंको भी जिसकी प्राप्ति बहुत कठिन है, उन श्रीकृष्णचन्द्रके भाव (अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रके रूपको) उन गोपियोंने प्राप्त किया ॥ ३९ ॥ इसप्रकार प्रेम भरी गोपियोंके पास एकान्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जाय आलिंगनकर कुशल पूँछ मुसकायकर यह वचन बोले कि ॥ ४० ॥ हे सखियो ! हम अपने बाँधवोंका कार्य करनेकी कामनासे गयेथे और वहाँ वैरियोंके पक्षका नाश करनेमें लगगये

जिससे बहुत दिनोंतक रुकगये सो तुमने हमारा भी कभी स्मरण किया ? ॥ ४१ ॥ "यह कृतघ्नी है" क्या ऐसे तुमको हमपर कुछ क्रोध तो नहीं उत्पन्न होताहै? हाँ हमको त्यागकर आप चलेगये, इससे यह बात सत्य है, इस प्रकार गोपियोंकी ओरसे संभावना करके कहते हैं कि, दैवही तो प्राणियोंको मिलाता है और वही वियोग करा देता है ॥ ४२ ॥ जैसे वायु बादलोंके समूहको तृणोंको रुईको और धूरिको उड़ाकर संयोग करता है, फिर वियोग करता है, उसी प्रकार सब प्राणियोंका उत्पत्तिकर्त्ता ईश्वर सबको मिलता है, और फिर अलग अलग कर देता है, इसमें मुझे क्या दोष है ? ॥ ४३ ॥ प्राणियोंकी मुझमें भक्तिही जन्म और मृत्युसे छुडाती है, तुम्हारा मुझमें स्नेह हुआ है, इसलिये मुझे प्राप्त होउगी, यही बड़ा मंगल है ॥ ४४ ॥ कैसे तुम हो जिन्हें स्नेह करके हम पावेंगी ऐसी इच्छा सब गोपियोंकी हुई तो अपना रूप कहते हैं कि, हे गोपियो ! जैसी

अप्यवध्या यथाऽस्मान्स्विदकृतज्ञा विशंकया ॥ नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४२॥ वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ॥ संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४३ ॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४४ ॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरंतोंतरं बहिः ॥ भौतिकानां यथा खं वा भूर्वायुर्ज्योतिरंगनाः ॥४५॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः ॥ उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४६ ॥

पंचभूतोंके बने घटादिकके पृथ्वी जल, तेज, वायु, आकाश यह आदिमें भी हैं, अंतमें भी हैं, इसी प्रकार जरायुज मनुष्य तथा पशु आदि और अण्डोंसे जन्म पानेवाले पक्षी इत्यादिक और पसीनेसे जन्मवाले खटमल जुएँ इत्यादिक और उद्भिज्ज अर्थात् ब्रह्मादिक चारप्रकारके आदिमें भी मैं हूं,और अंतमेंभी मैं हूं,भीतर बाहर होनेके कारण व्यापक हूं ऐसे मुझे तुम प्राप्त हुई हो॥४५॥यहाँ एक शंका है कि, चारप्रकारके प्राणियोंका भोक्ता आत्मा आदि अंतमें है और व्यापक आत्मामें सब प्राणी वास करते हैं, फिर तुम्हारी प्राप्ति हमें कैसे हुई ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, मृत्तिका घटादिकोंके आदिमें भी है और अंतमें भी है ऐसे चार प्रकारके प्राणी अपने कारणसे भूतोंमें वर्त्तमान रहते हैं भोक्ता आत्मामें नहीं रहता है आत्मा देहमें भोक्ता रूपसे व्यापक है, पंचभूतरूप देहरूप भोग करनेयोग्य पदार्थ और भोग करनेवाले आत्मा परिपूर्णरूप मुझमें

प्रकाशित देखो ॥ ४६ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्। इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपका उपदेश कर गोपियोंको समझाया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके स्मरणसे उनके लिंगदेह छूटगये; तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति की ॥ ४७ ॥ गोपी बोली कि, हे कमल नाभ श्रीकृष्ण! बड़े ज्ञानी योगीश्वरोंके ध्यान करने योग्य और संसाररूपी कुएँमें गिरे प्राणियोंके निकलनेका आश्रय तुम्हारे चरणकमल घरमें रहने पर भी सदा हमारे मनमें स्मरण बनारहै, यही वर माँगती हैं ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषा

श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ॥ तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४७ ॥ आहुश्च ते नलिननाभ पदारविंदं योगेश्वरैर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं गेहंजुषामपि मन स्युदियात्सदा नः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमो ऽध्यायः ॥ ८२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥ युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्य यम् ॥ १ ॥ त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ॥ प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥

टीकायां वृष्णिगोपसंगमोनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥८२॥ दोहा—कह्यो नारियोंकी कथा, सकल तिरासी अंक। पाणिग्रह जैसे कियो, श्रीव्रजचन्द निशंक ॥ ८३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशीय राजा परीक्षित्! गोपियोंके गुरु और शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोपियोंपर अनुग्रह करके पीछे राजा युधिष्ठिरसे और सब सुहृदोंसे कुशल पूंछी * ॥ १ ॥ इस प्रकार लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कुशल पूँछने और

* शंका—वेद, शास्त्र, पुराणोंका यह प्रमाण है कि, तीन लोकमें जो चराचर जीव हैं उन सब जीवोंके भगवान् गुरु हैं और गति भी है, फिर व्यासजीने सब जीवोंको त्यागके भगवान्को गोपियोंका गुरु तथा गति क्यों कहा? यह बडा भारी सन्देह है।

उत्तर—"गोपीनां स गुरुर्गतिः" इस श्लोकका अर्थ व्यासजी व्रजकी गोपी जो श्रीकृष्णकी प्यारी थीं उन गोपियोंको गोपी नहीं कहे थे उस श्लोकका अर्थ तो व्यासजीने ऐसे किया है कि, गो शब्दको संसार भी कहते हैं, शास्त्रोंमें ऐसा कहा है गो कहिये चराचर संसार उसका जो पालन करै उसका नाम गोप है गो भगवान् है तथा गोपी भगवान्की माया है सोई मायारूप लक्ष्मीहै ऐसा अर्थ गोपीका श्री व्यास भगवान्ने किया है मायाके और जगदीश्वर जो जगतके पति भगवान् हैं सो श्रीकृष्ण होकर पृथ्वीमें विराजमान रहते थे इसलिये मायाके पति और गुरु भी भगवान् हैं क्योंकि मायारूप संसारहै इसलिये श्रीकृष्णको गोपीपति और गुरु, व्यासजीने कहाया, व्रजवासियोंको—पति गुरु अकेला नहीं कहाया ॥

॥ २ ॥ कि हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्दका रस
सत्कार करनेसे भगवान्के चरणकमलके दर्शनसे पापरहित हो वह सब लोग प्रसन्न होकर कहनेलगे ॥ २ ॥ कि हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्दका रस
जो कि, अभी महात्मालोगोंके मनद्वारा प्रगट हुआ है और जो देहधारण करनेवालोंके देहमें अभिमान उत्पन्न करनेवाली अविद्याको काटता है,
उसे जो कर्णरूप दोनाओंसे पान करते हैं, उन पुरुषोंके अमंगल कहाँ ? ॥ ३ ॥ स्वरूपके प्रकाशसे बुद्धिकृत जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति अवस्था दूर होनेके
कारणसे संपूर्ण आनंदके समूहरूप आवरण रहित, अकुण्ठचैतन्य शक्तिमान् कालसे नष्ट हुए वेदकी रक्षा करनेके लिये योगमायाको अंगीकार कर
मनुष्यदेह धारण करनेवाले और परमहंसकी प्राप्तिके योग्य तुमको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ योगीवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे

पिबंति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृति
कुतोऽशिवं त्वच्चरणांबुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ॥ पिबंति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृति
च्छिदम् ॥३॥ हित्वाऽत्मधामविधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानंदसंप्लवमखंडमकुंठबोधम् ॥ कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोग
मायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्मः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वंधककौ
रवस्त्रियः ॥ समेत्य गोविंदकथा मिथो गृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे
हे जांबवति कौसले ॥ हे सत्यभामे कालिंदि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवा
न्स्वयम् ॥ उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ॥ ७ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजे
यभटशेखरितांघ्रिरेणुः ॥ निन्ये मृगेंद्र इव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥

नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार निर्मलकीर्त्ति पुरुषोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लोग प्रशंसा कर रहेथे कि, इतनेमें अंधक और कौरवोंकी
स्त्रियें एकत्र हो परस्पर भगवान् संबंधी जो बातें करती थीं वही कथा जो त्रिलोकीमें गाई हैं,तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो
॥ ५॥ द्रौपदी बोली कि, हे रुक्मिणि हे भद्रे ! हे जाम्बवति ! हे सत्यभामा ! हे सत्या ! हे कालिंदी ! हे मित्रविंदा ! हे रोहिणी ! हे लक्ष्मणा ! और
हे सोलह सहस्र श्रीकृष्णकी रानियो ! स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी मायासे मनुष्यलीला कर जैसे तुम्हारे साथ विवाह किया सो सब बातें
हमारे सम्मुख कहो ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणी बोली कि, जरासन्धादिक राजाओंके संग जब धनुष उठाय शिशुपाल मुझे व्याहनेके लिये आया तब

अजीत योद्धाओंके मस्तकपर चरणधर जैसे भेंड़ बकारियोंके समूहमेंसे सिंह अपने बलिको बेखटके ले आता है, उसी प्रकार मुझे ले आये, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र लक्ष्मीनिवासके चरणोंकी मैं पूजा करती हूं ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त सत्यभामा अपने विवाहकी बात कहने लगी कि, भ्रातृवधके परितापसे दुःखितहृदय मेरे पिता सत्राजितने मिथ्या कलंक लगाया, उसको मिटानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ऋच्छराज जाम्बवान्को जीत मणि लाकर मेरे पिताको दी तब मिथ्या कलंक लगानेसे मेरे पिताने भयभीत हो अक्रूरादिकको देना स्वीकार करके भी मुझे श्रीकृष्ण चन्द्रकोही दिया ॥ ९ ॥ जाम्बवतीने कहा कि मेरे पिताने इन वासुदेवको "यह अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं" ऐसे न जानकर इनसे सत्ताईस दिनतक संग्राम किया इसके उपरान्त "यह अपने स्वामी साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी हैं" इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय होनेपर मेरे पिताने

सत्यभामोवाच ॥ यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ॥ जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात् स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥ जांबवत्युवाच ॥ प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्ययुध्यत् ॥ ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी ॥ १० ॥ कालिंद्युवाच ॥ तपश्चरंतीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाऽऽशया ॥ सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥ मित्रविंदोवाच ॥ यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः ॥ भ्रातंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्यास्तु मेऽनुभवमंघ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥

चरणोमें गिरकर भेंटकी नाईं मणिसहित मुझे भी अर्पण कर दिया यह सुनकर द्रौपदीने कहा कि तुम बड़ी श्रेष्ठ हो, इसके उत्तरमें जाम्बवती बोली कि, मैं तो इनकी दासी हूं ॥ १० ॥ कालिंदी बोली कि, मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणस्पर्शकी आशासे तप कर रही थी कि, भगवान्ने अर्जुन सहित आनकर मेरा हाथ पकड़ लिया उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं बुहारी देनेवाली हूं ॥ ११ ॥ मित्रविन्दा बोली कि, लक्ष्मीके वक्षनिवास भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयंवरमें जा, राजाओंको जीत और उनका तिरस्कार कर मेरे भाइयोंको भी जीत हाथियोंका शत्रु सिंह जैसे कुत्तोंके बीचमेंसे अपने भक्ष्यको ले आता है उसी प्रकार मुझे अपने पुरमें लेआये, उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरण धोनेकी सेवा मुझे जन्म

जन्ममें प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ १२ ॥ सत्या बोली कि, बड़े बलवान् पराक्रमी बड़े पैने सींगवाले और शूरवीरोंके घमण्डको चूर्ण करनेवाले राजाओंकी परीक्षा लेनेके कारण मेरे पिताके पाले हुये सात बैलोंको पकड जैसे बालक काष्ठकी बकरियोंके बच्चोंको बाँधता है, उसी प्रकार भगवान्ने बाँधलिये ॥ १३ ॥ पराक्रमही है मोल जिसका ऐसी मुझे हाथी, घोडे, प्यादों सहित व दासियों सहित मार्गमें क्षत्रियोंको जीत श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार लाये उनकी मैं सदा दासी रहूं, यही प्रार्थना है ॥१४॥ भद्रा बोली कि, हे द्रौपदी ! मेरा मन श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त जान मेरे पिताने मेरे मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाय मुझे अक्षौहिणी सेना सहित इन्हें देदिया ॥ १५ ॥ अनेक कर्मोंसे भटकनेवाली मुझे जन्म

सत्योवाच ॥ सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृंगान्पित्रा कृतान्क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ॥ तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबंध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥ य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरंगिणीम् ॥ पथि निर्जित्य राजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥ भद्रोवाच ॥ पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् ॥ कृष्णे कृष्णाय तच्चितामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥ १५ ॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच ॥ ममापि राज्ञ्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ॥ चित्तं मुकुंदे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ॥ बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥

जन्ममें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हो, जिन चरणारविन्दके स्पर्शसे मोक्षनाम कल्याण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ १६ ॥ लक्ष्मणा बोली कि, हे रानी द्रौपदी ! वारम्वार देवर्षि नारदजीके गाये हुये भगवान् वासुदेवके जन्म, कर्म, श्रवण कर, आश्चर्य है कि, लक्ष्मीजीने भी लोकपालोंको त्यागकर श्रीकृष्णचन्द्रकोही वरण किया है, इस प्रकार विचारकर मेरा मन भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लगगया ॥ १७ ॥ हे सुशीले द्रौपदी ! पुत्री पै हित करनेवाले बृहत्सेन नाम विख्यात मेरे पिताने मेरे मनकी बात जान श्रीकृष्णचन्द्रके आनेके लिये

उपाय किया ॥ १८ ॥ हे रानी द्रौपदी! जैसे तेरे स्वयम्वरमें अर्जुनके आनेके लिये मत्स्य रचा गया था, उसी प्रकार मेरे पितानेभी मत्स्य रचा यह सुन द्रौपदी बोली कि, फिर अर्जुनने उस मत्स्यको क्यों नहीं वेधा? इसके उत्तरमें लक्ष्मणाने कहा कि, तेरे स्वयम्वरकी मछली बाहर ढकी थी, भीतरसे नहीं ढकीथी इसलिये खंभमें लगाकर ऊपरको दृष्टि करके देखनेसे दिखाई देती थी और मेरे स्वयम्वरकी मछली ऐसी नहीं थी, किन्तु खंभकी जडमें धरे कलशके जलमें केवल परछांई दिखाई देती थी, देखना तो नीचे जलमें और वेधना ऊपर, ऐसी मछलीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना और कौन वेध सक्ता है? ॥ १९ ॥ स्वयम्वर रचा है, यह बात सुनकर संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले उपाध्याय अर्थात् सिखाने

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ॥ अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रा संपूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ॥ आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥ २१ ॥ आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः ॥ आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥ २२ ॥ सज्यं कृत्वाऽपरे वीरा मागधांबष्ठचेदिपाः ॥ भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविदंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥ मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ॥ पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशे परम् ॥ २४ ॥

वालोंको संग ले सहस्रों राजा मेरे पिताके पुरमें आनकर उपस्थित हुये, उस समय जैसा जिसका पराक्रम और जैसी जिसकी अवस्था थी, उसी प्रकार उसका पूजन मेरे पिताने किया, इसके पीछे कोई भी राजा मुझमें मन लगनेके कारण हाथमें धनुष उठाय मत्स्यके वेधनेको सभामें समर्थ न हुआ ॥२०॥२१॥ बहुत राजाओंने तो धनुष हाथमें ले पटक दिया, बहुतसे प्रत्यंचाको खैंच धनुषके चपेटसेही गिरपड़े ॥ २२ ॥ और जो शूर वीर जरासंध, अंबष्ठ, चंदेलीका राजा भीम, दुर्योधन, कर्ण यह लोगभी अपने अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाय "मछली कैसे लगी है"? यह भी जाननेको समर्थ न हुए ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त जलमें मछलीकी-परछाईं देख 'ऐसे मछली लगी है' सो जान उपाय करनेवाले अर्जुनने

बाण चलाया वह बाण मछलीसे स्पश तो होगया परन्तु मछली कटी नहीं ॥ २४ ॥ जब समस्त क्षत्रिय हारकर बैठ रहे, तब अभिमानियोंका अभि
मान दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धनुष हाथमें ले लीलापूर्वकही प्रत्यंचा चढाय धनुषमें बाण लगाय और एकही बार मछलीको जलमें
देख मध्याह्न समय अभिजित् नक्षत्रमें अर्थात् सब कार्य सिद्ध करनेवाले मुहूर्त्तमें मछलीको बाणसे काटकर पटकदिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ उस
समय स्वर्गमें देवताओंके नगारे बजनेलगे पृथ्वीमें "जयहो जयहो" इसप्रकार शब्द होने लगा और देवतालोग आनन्दमें मग्न हो आकाशसे फूलों
की वर्षा करनेलगे ॥ २७ ॥ हे द्रौपदी ! इसके उपरान्त लाजभरी हँसनयुक्त मुख और चोटीमें पुष्पमाला गुहे नवीन रेशमी सुन्दर धोती, चद्दर पहर

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ॥ भगवान् धनुरादाय सज्यं कृत्वाऽथ लीलया ॥ २५ ॥ तस्मिन्संधाय विशिखं
मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ॥ छित्त्वेषुणाऽपातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥ २६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्जयशब्दयुता
भुवि ॥ देवाश्च कुसुमासारान्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रंगमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वल
रत्नमालाम् ॥ नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कवरीधृतस्रक् ॥ २८ ॥ उन्नीय वक्त्रमुरुकुंतल
कुंडलत्विड्गंडस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ॥ राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम्
॥ २९ ॥ तावन्मृदंगपटहाः शंखभेर्यानकादयः ॥ निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायका जगुः ॥ ३० ॥ एवं वृते भगवति
मयेशे नृपयूथपाः ॥ न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥

सुवर्णकी जडी रत्नोंकी माला हाथमें ले और मनोहर नूपुरवाले चरणोंसे मैं रंगभूमिमें आई ॥ २८ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्तहृदय मैं बड़े
केश और कुण्डलोंसे शोभायमान कपोलवाले मुखको उठाय, संतापको दूर करनेवाले हास्य कटाक्षपूर्वक चितवनसे चारों ओरके राजाओंको
देख धीरे धीरे जाकर मुरारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें माला डाली ॥ २९ ॥ उस समय मृदंग, ढोल, शंख, भेरी, नगारे, आदि बाजे
बजने लगे, नट और नृत्यकारी नाचनेलगे और गवैये गानेलगे ॥ ३० ॥ हे यज्ञसेनकी पुत्री द्रौपदी ! इसप्रकार मैंने जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र
को अपने वशमें किया, तब ईर्षा और कामसे आतुर राजाओंके यूथोंने यह बात नहीं सहन की ॥ ३१ ॥

इसके उपरान्त अत्यन्त शोभायमान चार घोडे जुते रथमें उस समय मुझे बैठाय शार्ङ्गधनुषको ले कवच पहर चारभुजायुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र खडे होगये॥३२॥हे रानी द्रौपदी ! तब रथवान्ने सुनहरी साजका रथ हाँकदिया और जैसे मृगोंके देखते सिंह चलाजाता है,उसी प्रकार राजाओंके बीच मेंसे उनके देखतेही चलेगये ॥३३॥ उनको जाता देखकर बडे बडे क्षत्रिय राजा इनके पकडनेके लिये पीछे दौडे और कोई राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके रोकनेको आगेजाय धनुषको ऊंचा उठाय, जैसे सिंहके रोकनेको कुत्ता खडा होताहै, उसी प्रकार मार्गमें सावधान होकर खडे होगये ॥३४॥ शार्ङ्ग धनुषसे छूटेहुए बाणोंके समूहोंसे भुजा, पाँव, नार कटनेसे अनेक क्षत्रिय युद्धमें गिरगये और बहुतसे संग्रामको छोडकर भागगये ॥३५॥ इसके उप

मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ॥ शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामास कांचनोपस्करं रथम् ॥ मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥ ३३ ॥ तेन्वसज्जंत राजन्या निषेद्धुं पथि केचन ॥ संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥ ३४ ॥ ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वंघ्रिकंधराः ॥ निपेतुः प्रधने केचिदेके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ॥ कुशस्थलीं दिवि भुवि चापि संस्तुतां समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पिता मे पूजयामास सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ महार्हवासोलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥ दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटभरथवाजिभिः ॥ आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ॥ सर्वसंगनिवृत्त्याऽद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥

रान्त यादवोंके पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शोभायमान सूर्यकी आवरण करनेवाली ध्वजाके वस्त्रोंसे शोभित,और चित्र विचित्र बन्दनवार माला बँधी स्वर्ग और पृथ्वीमें जिसकी स्तुति हो ऐसी द्वारकापुरीमें अस्ताचलमें सूर्यके समान प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त मेरे पिताने सुहृदयतासे गोत्री और बंधुओंको बडे मोलके वस्त्र, गहने, शय्या, आसन और साजसे पूजन किया ॥ ३७ ॥ संपूर्ण संपत्तिमान् दासी और प्यादे, रथ, हाथी, घोडे और बहुत मोलके शस्त्रों सहित मुझे मेरे पिताने परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रको दिया ॥३८॥ यह आठों हम आत्मामें रमण करनेवाले

है ॥३९॥ इसके उपरान्त सोलह हजार एकसौ रानियाँ कहनेलगीं कि,
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सब संग त्याग अपने धर्मसे साक्षात् घरकी दासीहुई हैं ॥३९॥ इसके उपरान्त सोलह हजार एकसौ रानियाँ कहनेलगीं कि,
भौमासुरने दिग्विजयमें जिन हम राजकन्याओंको जीतकर रोक रक्खा था, उन्हें संसारसे छुडानेवाले अपने चरणारविन्दका स्मरण करतेजान भगवान्
श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं पूर्णकाम रहतेभी संग्राममें भौमासुर और उसके कुटुम्बको मार हमारे साथ विवाह किया ॥ ४० ॥ हे द्रौपदी ! हम चक्रवर्ती
राज्य और इन्द्रपदके भोगका भोगना नहीं चाहती और अणिमादिक सिद्धि ब्रह्मलोक, मोक्ष तथा वैकुण्ठधामकी भी चाहना नहीं करती परन्तु
गदाके धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके लक्ष्मीके कुचोंकी केशर लगे सुन्दरचरणारविन्दोंकी रज अपने माथेके ऊपर चढानेकी चाहना करती हैं
महिष्य ऊचुः ॥ भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ॥ निर्मुच्य संसृ
तिविमोक्षमनुस्मरंतीः पादांबुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥ ४० ॥ न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भोज्यमप्युत ॥
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनंत्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजःश्रियः ॥ कुचकुंकुमगंधाढ्यं
मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥ ४२ ॥ व्रजस्त्रियो यद्वांछंति पुलिंद्यस्तृणवीरुधः ॥ गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥
॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दशमस्कंधोत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वा पृथा सुब
लपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥ कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबंधं सर्वा विसिस्म्युरल
मश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥ इति संभाष्यमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ॥ आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥
॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महात्मा होतेभी गाय चराते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणरजको जैसे गोप, गोपियें, भीलनियें, तृण और लतायें चाहना
करती हैं उसी प्रकार हम भी उनकी चाहना करती हैं ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे भाषाटीकायां स्वयंवरादिवर्णनो नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ दोहा—भयो समागम मुनिनसों, चौरासी अध्याय । संस्कार वसुदेवको, कियो सबनि सुखपाय ॥ ८४ ॥ श्रीशुकदे
वजी बोले कि,हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, सुभद्रा, राजाओंकी स्त्रियें और भक्त गोपियोंने सबके महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें
रानियोंका इसप्रकार प्रेम सुन नेत्रोंमें आँसू भर बडा आश्चर्य माना ॥ १ ॥ उस कुरुक्षेत्रमें इसप्रकार स्त्रियोंके संग स्त्री, पुरुषोंके संग पुरुष, बात चीत

करही रहे थे कि, इतनेहीमें श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करनेको मुनि लोग आये ॥ २ ॥ उनके नाम यह हैं, यथा—वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानंद, भारद्वाज और गौतम ॥ ३ ॥ शिष्यों सहित भगवान् परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति ॥ ४ ॥ द्वित, त्रित, एकत, उसीप्रकार ब्रह्माके पुत्र अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, तथा वामदेवादि और मुनि भी संपूर्ण आये ॥ ५ ॥ विश्वपूजित ऐसे मुनियोंको आये देख राजा आदि जो प्रथम बैठे थे और पांडव अर्थात् राजा युधिष्ठिरादि तथा कृष्ण बल देवने शीघ्र उठकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त इन मुनियोंका यथायोग्य सब जनोंने पूजन किया और बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृ

द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ॥ विश्वामित्रः शतानंदो भारद्वाजोऽथ गौतमः ॥३॥ रामः सशिष्यो भगवान्व सिष्ठो गालवो भृगुः ॥ पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कंडेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥ द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रस्तथांगिराः ॥ अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ॥ पांडवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववंदितान् ॥६॥ तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोर्चयत् ॥ स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥७॥ उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः ॥ सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् ॥ देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किं स्वल्पतपसां नृणाम र्चायां देवचक्षुषाम् ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥

ष्णचन्द्र 'भले आये' इस प्रकार मुनियोंसे कह आसन दे अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप और चन्दन इत्यादिसे पूजा करनेलगे ॥ ७ ॥ चुपचाप हो संपूर्ण जिसमें बैठे ऐसी सभामें धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक बैठे ब्राह्मणोंसे कहनेलगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, अहो ! बडा आश्चर्य है, आज हम सफल जन्म हुए और सब जन्मका साफल्य हमको प्राप्त हुआ, क्योंकि जिनका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है उन योगीश्वरोंका दर्शन हुआ ॥ ९ ॥ केवल तीर्थस्नानादिकोंको तप जानै, प्रतिमाहीको देवतास्वरूप मानै, आपसरीखे मनुष्योंका दर्शन, स्पर्शन व वार्त्तालाप, प्रश्न, नमस्कार व चरणपूजा आदिकी प्राप्ति, कहाँ होसकती है ? अर्थात् नहीं होसकती ॥ १० ॥

जलमय तीर्थ नहीं हैं, सो नहीं हैं, मृत्तिका शिलाओंके देवता नहीं हैं, सो नहीं हैं, क्योंकि जब बहुत दिनोंतक देवताओंकी पूजा करें; तब वह पवित्र करते हैं और साधु महात्मा लोग तो केवल दर्शनहीसे पवित्र कर देतेहैं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, पवन, वाणी, मन यदि इनकी भली भाँतिसे उपासना कीजाय तो भेदबुद्धिके कर्त्ता होनेसे पुरुषके अज्ञानको दूर कर सकते हैं और विवेकी पुरुष तो केवल दो

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥ ११ ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चंद्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ् मनः ॥ उपासिता भेदकृतो हरंत्यघं विपश्चितो घ्नंति मुहूर्त्तसेवया ॥१२॥ यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः॥यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुंठमेधसः ॥ वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः॥१४॥

घड़ी सेवा करतेही अज्ञानको दूर कर देतेहैं ॥ १२ ॥जो पुरुष वात, पित्त, कफमय देहकोही आत्मारूप समझते हैं और स्त्री पुत्रादिकोंकोही अपना मानते हैं वा मूर्त्तिकोही पूज्य समझते हैं और जलहीको तीर्थ जानते हैं, और विवेकी पुरुषोको आत्मारूप अपने व पूज्य तीर्थ इत्यादि नहीं समझते वह गायका चारा ढोनेवाले बैल और गधेके समान हैं ❀ ॥ १३ ॥ "यहाँ साधुओंकी महिमा दिखानेका तात्पर्य है मूर्त्ति तथा तीर्थका

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणोंसे कुरुक्षेत्रमें कहा कि, भौम जो प्रतिमा देवताओंकी होती है, उस प्रतिमामें जो प्राणी देवता मानते है कि, यह प्रतिमामें भगवान् वसे हैं यह प्राणी नहीं है, ऐसा मानने वाले प्राणी बैल वा गधाही हैं, तथा जलमें तीर्थ मानते हैं कि, मैंने इस तीर्थमें स्नान किया मेरी मुक्ति होगी नहीं कभी मोक्ष न होगी वह बैल और गधाही होगा, मुझको यह बडा आश्चर्य है कि, भगवान्ने वेद और शास्त्रके विरुद्ध वचन क्यों कहे ? प्रतिमाकी तथा गंगादिक तीर्थोंकी निंदा क्यों की ? यह बडा भारी सन्देह है ?

उत्तर–वेदमें और शास्त्रमें दो मार्ग हैं, एक कर्ममार्ग, दूसरा मोक्षमार्ग, संसारीजीव दोनों मार्गोंका सेवन करते हैं, जो जीव कर्ममार्गका सेवन करता है जैसे गृहस्थादिक प्राणी प्रतिमामें देवताको मानते हैं, तब सेवन करते हैं वह पुरुष प्रतिमामें देवताको जानते हैं, तथा प्रतिमाका पूजन करेंगे वा जलमें स्नान कियेसे मोक्ष होना मानेंगे तब निश्चयसे कर्म करनेवाले मनुष्यको गिनतीसे हीन सुख होगा और जो प्राणी प्रतिमाको देवस्वरूप और जलको मोक्षरूप मानेंगे तब वह प्राणी बैल गधा हैं, श्रीकृष्णने कर्ममार्ग सेवन करनेवाले जीवके लिये यह वचन नहीं कहा, जो जीव संसारके कर्म त्यागकर ईश्वरका भजन करता उसके लिये यह वचन कहा है, श्रीकृष्णके वचनमें भ्रम नहीं है ।

निषेध नहीं है और विशेष करके यह दिखाया है कि तीर्थको जानेमें बहुतेरा द्रव्य उठावे पूजामें घंटों बैठे, परन्तु महात्मा और हरिभक्तोंको देखतेही दुर्वाक्य कहे उन्हें अन्न तो क्या जल भी न दे, ऐसे भेद बुद्धिवालोंके लिये यह वाक्य है ज्ञानी पुरुष तो सबमेंही उसका प्रकाश देखते हैं, " श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इसप्रकार अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह वचन सुनकर चकित बुद्धि हो वह सब ब्राह्मण चुप होगये ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कर्मोंमें अधिकार बहुत देरतक विचार करके समझा कि, लोकोंको शिक्षा देनेके कारण हमारी स्तुति करते हैं, इस प्रकार मुनीश्वर लोग बुद्धिसे निश्चयकर कुछेक मुसकाय जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले ॥ १५ ॥ कि तत्त्वके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हम और विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक जिनकी मायासे मोहित हुए हैं, क्योंकि जिस मायासे आप मनुष्यलीला करनेको

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ॥ जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयंतस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥ यन्मायया तत्त्व विदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ॥ यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥ अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बुध्यते यथा ॥ भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडंब नम् ॥ १७॥ अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ॥ स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥ १८ ॥ ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥१९॥

गूढ रहकर मुनीश्वरके समान चेष्टा करते हो इसलिये आपकी लीला बड़ी विचित्र है ॥ १६ ॥ चेष्टारहित और एक होकर भी तुम अपने आत्मासे इस विश्वको बहुत प्रकार पालन उत्पत्ति और रक्षा करते हो जैसे पृथ्वी घटादि विकारोंसे बहुत नामकी होती है, यदि तुम कहो कि, मैं कैसे उत्पत्ति पालन व संहार करता हूं मैं तो वसुदेवका पुत्र हूं ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, परिपूर्ण रूप तुमने वसुदेवके घर जन्म लिया है, यह विचित्र लीलामात्र है सत्य नहीं है ॥ १७ ॥ समयपर अपने भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंको दंड देनेके लिये आप शुद्ध सतोगुण रूपको धारण करते हो और अपनी लीलासे सनातन वेदमार्गको प्रवृत्त करते हो यद्यपि तुम किसीके पुत्र नहीं हो, परन्तु तो भी चारवर्ण और चार आश्रमके आत्मा परमपुरुष तुम हो, इसलिये ब्राह्मणोंका बहुत सत्कार करतेहो ॥१८॥ शुद्ध वेद तुम्हारा भीतरका रूप है; क्योंकि तप करना, वेद पढना, इन्द्रियोंको

रोकना इन कार्य और कारण दोनोंसे परे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! वेदके कारण आत्मा तुम हो और अपने बतानेवाले ब्रह्मकुलका पूजन करते हो और इसीलिये ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो ॥ २० ॥ इसकारण ईश्वर होकर जो तुम हमारा सत्कार करते हो, सो पुरुषोंकी शिक्षा करनेके लिये है और हम तुम्हारे संगसे कृतार्थ हुए, साधुओंकी गति आपका संग हुआ, इसलिये हमारा जन्म, विद्या, तप, दृष्टि, यह संपूर्ण सफल हुए, क्योंकि तुम सब कल्याणकी अवधि हो ॥ २१ ॥ अकुंठित बुद्धि और अपनी योगमायासे गूढमहिमावाले परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हम नमस्कार करतेहैं ॥ २२ ॥ मायारूपी चित्रसे ढके, सृष्टि इत्यादिकोंके कारण ईश्वर आत्मा तुमको आपके साथ

तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मञ्शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ॥ सभाजयसि सद्धाम तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ॥ त्वया संगम्य सद्गत्या यदंतः श्रेयसां परः ॥ २१ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ स्वयोगमायया च्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥ २२ ॥ न यं विदंत्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम् ॥ २३ ॥ यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ॥ नाममात्रेंद्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥ २४ ॥ एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विंद्रियेहया ॥ मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्य ते ददृशिमांघ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥ २६ ॥

एकही स्थानमें रहनेवाले यह यादव और राजा लोग नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥ जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें मिथ्या पदार्थको सत्य मानताहै मनसे सिंह व्याघ्रादि रूप आप बन जाता है और जाग्रत् अवस्थाके स्वरूपको नहीं जानता ॥ २४ ॥ उसीप्रकार स्वप्नादि तुल्य विषयपदार्थमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति रूप मायासे चलायमान चित्त पुरुष विवेकके नाशसे आपको नहीं जानता ॥ २५ ॥ पापोंके समूहोंको दूर करनेवाले गंगारूपी तीर्थ जिसमेंसे प्रगट हुआ और दृढ़ योगवाले योगीजनभी जिनका केवल हृदयमें ध्यान करते हैं परन्तु तुम उनको भी दिखाई नहीं दिये और तुम्हारे चरणारविन्दोंका हमने प्रत्यक्ष दर्शन किया, इसलिये हमें भक्ति करनेका अनुग्रह करो । यदि कहो कि, भक्ति करके क्या करोगे ? पहलेके समान तप करजाओ

इसका उत्तर देते हैं कि, वृद्धिको प्राप्त हुई भक्तिसे जिनके लिंगशरीरका नाश होगया है, वही पुरुष तुम्हारे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं और नहीं * ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! इसप्रकार मुनीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और राजा धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिरसे आज्ञा माँग अपने अपने आश्रमोंमें जानेकी इच्छा करनेलगे ॥ २७ ॥ तब महायशवान् वसुदेवजी उन मुनियोंको जाते देखकर उनके समीप आय सावधान

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ॥ राजर्षे स्वाश्रमान्गंतुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥ तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ॥ प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयंत्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ॥ कृष्णं मत्वाऽर्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥

होकर कहनेलगे ॥ २८ ॥ वसुदेवजी बोले कि, संपूर्ण देवतारूप तुम हो सो आपको मैं वारम्वार प्रणाम करताहूँ, हे ऋषीश्वरो ! मेरी एक आपसे प्रार्थना है, सो कृपा करके सुनिये, जिन कर्मोंके करनेसे कर्मोंका नाश होता है, सो हमें बताओ ? ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़कर हमसे कल्याण पूँछने आये हैं इस प्रकार आश्चर्य मान नारदजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! जो वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र जाननेके कारण

* दृष्टान्त–विना गुण जाने वस्तुकी महिमा प्रगट नहीं होती यहाँ एक महात्माने कृष्ण नामकी बहुत प्रशसा करी कि, एकवार नाम लेनेसे अनेक पाप दूर होजाते हैं चेले बोले महाराज ! फिर यह मनुष्य तो दिनरात नामका स्मरण करते हैं, यह क्यों दु ख पाते हैं ? गुरुजी बोले महिमा नहीं जाननेसे यह दशा है, चेला मनमें सदेह करने लगा, तो बाबाजीने अपने पाससे एक अमूल्य रत्न दे चेलेसे कहा कुँजडीसे पूछ, इसका कितना शाक देगी, चेलेने जाकर पूछा, उसने सेरभर शाक देनेको कहा, फिर गुरुजीने सराफपर भेजा, उसने वीस रुपये कहे, फिर गुरुजीने जौहरीके पास भेजा, उसने करोड रुपये कहे फिर गुरुजीने सबसे बडे जौहरीके पास रत्न लेकर भेजा, तब उसने कहा, मेरे यहाँ असख्य द्रव्य है, परन्तु यह तो इसके द्रव्यके व्याजमें है मेरे यहाँ इसका मूल्य देनेको द्रव्य नहीं, यह अमूल्य है, चेलेने गुरुजीसे सब वृत्तान्त कहा, तब गुरुजी बोले इसीप्रकार कृष्ण नामकी महिमा है, जो जानते हैं, वह ससारसागरके पार होजाते हैं और जो नहीं जानते वह कर्म भोगते हैं ॥

अपना कल्याण हमसे पूँछते हैं यह आश्चर्य नहीं है॥ ३० ॥ क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रको बालक मानना अविद्यासे है इस संसारमें मनुष्योंके पास रहनेसे अनादर होता है; जैसे गंगातटका रहनेवाला पुरुष गंगाको छोड शुद्ध होनेके लिये और जलमें स्नान करनेको जाता है॥ ३१ ॥ जिन श्रीकृष्ण चन्द्रका ज्ञान किसी कारणसे भी नष्ट नहीं होता सोई कहते हैं जैसे कालसे काँकरी फटजाती है और इस विश्वको उत्पन्न कर पालन और नाश करनेसे भी तुम्हारा ज्ञान नहीं जाताहै और जैसे बिजली चमक कर बिलाय जातीहै और जिसप्रकार गुणोंसे पूर्वरूपका नाश और रूपान्तरकी प्राप्ति होती है उसी प्रकार नहीं जाय है॥३२॥ ऐसे जो कृष्ण अद्वितीय ईश्वर और अखण्डित ज्ञानस्वरूप हैं उन्हें और मनुष्य जैसे रविमण्डलको बालक राहु

सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् ॥ गांगं हित्वा यथाऽन्यांभस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥ ३१॥ यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनाऽस्य वै ॥ स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥ तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ॥ प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥ अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् ॥ सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः ॥ यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥ चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा ॥ दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥ अयं स्वस्त्ययनः पंथा द्विजातेर्गृहमेधिनः ॥ यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३७ ॥

वा हिमसे आच्छादित माने, उसी प्रकार क्लेश कर्म सुख दुःख गुणोंका प्रवाह और अपने कार्यरूप प्राणादिकसे आच्छादित माने तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥३३॥ हे राजन्! इसके उपरान्त वह मुनि सब राजा और श्रीकृष्ण बलदेवके सुनते वसुदेवजीको संबोधन देकर बोले ॥ ३४॥ मुनि बोले कि, सब यज्ञोंके ईश्वर विष्णु भगवान्का यज्ञोंद्वारा श्रद्धासहित यजन करना यही सर्वोत्कृष्ट कर्मसे कर्म मिटानेका उपाय कहा है ॥३५॥ पण्डितलोगोंने शास्त्ररूप नेत्रोंसे चित्तोपशम और मोक्षका उपाय व शनैःशनैः अंतःकरणको शुद्ध करनेवाला सुगम स्वधर्म भी यही दिखाया है ॥ ३६ ॥ गृहस्थी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको यही कल्याणका मार्ग है कि, निष्काम होकर प्राप्तहुए शुद्ध द्रव्यसे ईश्वरका पूजन करे, क्योंकि महात्मा पुरुषोंका ही

द्रव्य यज्ञादिकोंमें लगताहै और लोभियोंका धन वृथा जाताहै ॥ ३७ ॥ हे वसुदेवजी ! बुद्धिमान्को उचित है कि, धनके फलरूप यज्ञ और दान करके धनकी इच्छाका त्यागन कर घरके भोग भोगकर स्त्री पुत्रकी तृष्णा त्यागे और संसारको नाशवान् जानकर अपनी प्रतिष्ठा और स्वर्गादिककी कामना त्यागे * ॥ ३८ ॥ ग्राममें चाहना त्यागकर समस्त वीरपुरुष तप करनेके लिये वनको गये, हे वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,

वित्तेषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतेषणाम् ॥ आत्मलोकेषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ॥ ३८ ॥ ग्रामे त्यक्तेषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितॄणां प्रभो ॥ यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत् ॥ ३९ ॥ त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ॥ यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव ॥ ४० ॥

देव, ऋषि, पितृ इन तीनों ऋणोंसे इस जन्ममें उद्धार हो यज्ञ करके देवताओंका ऋण और विद्या पढकर ऋषियोंका ऋण तथा पुत्र उत्पन्न करके पितरोंका ऋण चुकावे, इन ऋणोंके चुकाये विना जो कर्मोंका त्याग करै तो वह पुरुष नरकमें गिरता है ॥ ३९ ॥ हे मतिमान् वसुदेव ! अब तुम दो ऋणोंसे तो छूटगये, विद्या पढे, इसलिये ऋषियोंके ऋणसे तो उद्धार होगये और पुत्र होनेके कारण पितरोंके ऋणसे उद्धार होगये, अब यज्ञ

* दृष्टान्त—एक पीपलसाहके छप्पन कोटि द्रव्य था परन्तु रहे बडे सूम, बेटे कहैं पिताजी ! गगा पुष्कर स्नान करनेको चलो पुण्य करो. वह कहैं कि, पुण्य करनेसे कुछ नहीं होताहै, और जो हम चलें तो पीछे घर चोर लूटकर ले जायँगे, रास्तेमें लूट जाओग, बेटोंने कहा हम तो जायँगे, सतोंके दर्शन करैंगे वह बोले तुम मेरा घर लुटानेको फिरते हो, तब बेटे बोले हम भीख माँगते चले जायँगे, यह बोले तो नाम देजाओगे एक काम करो, गहना कपडा सब उतार धरो मैले कपडे पहरो उन्होंने वैसाही किया, सो इन्होंने भोजनमात्र खर्च दिया और कहदिया कि, पुण्य मत कीजो जल्दी आइयो वे सब स्त्री बालक गये पीछे इन्होंने गढा खोद सब गहना द्रव्य गाडदिया जब वे स्नान कर आये, तब यह बोले तुम न्हाने गये पीछे चोरी होगई, अब बनियेसे उधार लेकर खाते हैं, हमारे पास कुछ नहीं रहा ऐसा कह बागमें जा बैठे अब यह विलाप करनेलगे कि, परमेश्वर भले स्नान करनेको गये भोजनसेही "ठरहे सध्यासमयतक रोते रहे, उस समय महादेवजी सैरको आये, और इनको देखकर बोले कि, द्रव्य तो कोठेमें दब रहा है यह कह गये, उन्होंने झट गढा खोद सब धन निकाल लिया और बाँटनेलगे. पीछेसे पीपलसाह बोले अरे दुष्टो ! जल्दी किवाँड खोलो नहीं तो इसी जगह अपना मस्तक फोडकर मरजाऊंगा, इन्होंने किवाडखोलनेमें विलम्ब किया उन्होंने जाना, कि सब धन लूटगया सो शिर फोडकर मरगये ।

करके देवताओंके ऋणसे उद्धार हो, गृहको त्याग संन्यास ग्रहण करो ॥ ४० ॥ और हे वसुदेवजी ! तुमने बड़ी भक्तिसे जगत्के ईश्वर हरि भगवान्का पूजन किया था, इसीलिये स्वयं भगवान् हरिने आनकर तुम्हारे यहाँ अवतार लिया ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उदारमन वसुदेवजी इसप्रकार ब्राह्मणोंका वचन सुन मस्तक नवाय नमस्कार कर उन ऋषियोंसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विक्जनोंका वर्णन करनेलगे ॥ ४२ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! धर्मसे वरणको प्राप्त हो, ऋषि महात्माओंने वसुदेवजीको कुरुक्षेत्रमें उत्तम सामग्रियोंसे यजन कराया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जिस समय वसुदेवजीको यज्ञदीक्षा दीगई, उस समय कमलोंकी माला पहरे यादव स्नानकर शोभायमान वस्त्र धारण कर शृंगार कियेहुए बहुतसे राजा

वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् ॥ जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महात्मनाम् ॥ तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्ना ऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ त एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् ॥ तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ॥ स्नाताः सुवाससो राजन्राजानः सुष्ठ्वलंकृताः ॥ ४४ ॥ तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥ ४५ ॥ नेदुर्मृदंगपटहशंखभेर्यानकादयः ॥ ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ॥ जगुः सुकंठ्यो गंधर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिंचन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ॥ पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुंडलैः ॥ स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥

आये ॥ ४४ ॥ और कंठमें धुकधुकी व सुन्दर वस्त्र पहरे केशर चंदन लगाये राजाओंकी स्त्रियें पूजाकी सामग्री हाथमें लिये यज्ञशालामें आईं ॥ ४५ ॥ मृदंग, ढोल, शंख, भेरी, नगारे आदि बाजे बजनेलगे नट और नृत्य करनेवाली नाचनेलगीं सूत तथा मागध स्तुति करनेलगे और स्वरीले कंठवाली गन्धर्वपत्नियें अपने पति सहित सुन्दर गीत गानेलगीं ॥ ४६ ॥ नेत्रोंमें अंजन लगाये हुए, शरीरमें मक्खन मले वसुदेवजीका विधिपूर्वक अठारह स्त्रियों सहित ऋत्विजोंने अभिषेक किया, जैसे तारागणों सहित चन्द्रमाका अभिषेक करते हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! उस समय

वस्त्र, कंकण, हार, नूपुर, कुंडल पहरे; स्त्रीसहित दीक्षा लिये, मृगछाला ओढे वसुदेवजी अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! रत्नोंके गहने और वस्त्र धारण किये वसुदेवजी यज्ञ करनेवाले तथा, सभामें बैठे पुरुषोंसहित वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रके समान शोभाको प्राप्त हुए ॥४९॥ भगवान् कृष्ण बलदेवजी भी संपूर्ण जीवोंके ईश्वर अपने अपने बांधवोंको संग लिये और अपने अपने पुत्र स्त्रियोंसहित अपने अपने ऐश्वर्यसे सुन्दर लगनेलगे ॥५०॥ यज्ञमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रादि प्रकृति और विकृतिरूप यज्ञ अर्थात् समस्त अंगके ज्योतिष्टोम, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञ और थोड अंगवाले शौर्यसत्रादिक द्रव्य अर्थात् साकल्यमंत्र कर्मसे ईश्वर भगवान्का पूजन करनेलगे ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त वसुदेव

तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ॥ ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥ तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैःस्वैर्बंधुभिरन्वितौ ॥ रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ईजेऽनुयज्ञं विधिना ह्यग्निहोत्रादिलक्षणैः ॥ प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः ॥ स्वलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो गोभूकन्या महाधनाः ॥ ५२ ॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ॥ सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥ ५३ ॥ स्नातोऽलंकारवासांसि बंदिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ॥ ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥ ५४ ॥ बंधून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा ॥ विदर्भकोसलकुरून्काशिकेकयसृञ्जयान् ॥ ५५ ॥

जीने समयपर आभूषणोंसे शोभायमान यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको आभूषणोंसे शोभायमान कर गौ, पृथ्वी, कन्या और बडे धनकी बडी दक्षिणा वेदविधिसे दी ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त पत्नीसंयाजावभृथ्य यज्ञांग कराकर बड़े ऋषि ब्राह्मणोंने यजमान वसुदेवजीको आगे कर रामह्रदमें स्नान कराया ॥ ५३ ॥ स्नानकर वसुदेव और उसीप्रकार उनकी स्त्रीने बंदीजनोंको अपने अंगके आभूषण इत्यादि दिये इसके उपरान्त वसुदेवजीने और आभूषण पहर चारों वर्णोंका दान करके पूजन किया और जीवोंमें श्वानको भी अन्न दिया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त स्त्री पुत्रों सहित अपने बंधुओंकी बहुत द्रव्यसे पूजा की, फिर विदर्भ, कोसल, कुरु, कैकय, इन देशोंके राजा और सभासद, तथा यज्ञ

करनेवाले देवतागण, मनुष्य, भूत, पितर, चारण गणका पूजन किया और फिर सब राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको सम्बोधन दे, यज्ञकी प्रशंसा कर अपने अपने देशोंके जानेकी इच्छा करनेलगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त धृतराष्ट्र, विदुर, पृथाके पुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन भीष्म जी, द्रोणाचार्य, कुंती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासजी और सुहृद, उनसे तथा नाते गोतेवाले बंधु यादव सबसे मिल, स्नेहकर खेदित चित्त विरहके कष्टसे अपने २देशोंको चलेगये और जो मनुष्य वहाँपर थे; वह भी अपने अपने देशोंको चलेगये ॥५७॥५८॥ रामकृष्ण उग्रसेनादिक यादवोंसे बड़ी पूजा और सत्कार पाय गोप ग्वालोंसहित नंदरायजीने बन्धुबान्धवोंके निकट स्नेहके कारण कुछ दिनतक वहीं वास किया ॥ ५९ ॥

सदस्यर्त्विक्सुरगणान् नृभूतपितृचारणान् ॥ श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसंतः प्रययुः क्रतुम् ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्रोनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ॥ नारदो भगवान् व्यासः सुहृत्संबंधिबांधवाः ॥५७॥ बंधून् परिष्वज्य यदून् सौहृदाऽऽक्लिन्न चेतसः ॥ ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥ ५८ ॥ नंदस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ॥ कृष्णरामोग्रसे नाद्यैर्न्यवात्सीद्बंधुवत्सलः ॥ ५९ ॥ वसुदेवोंजसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ॥ सुहृद्वृतः प्रीतमना नंदमाह करे स्पृशन् ॥ ६० ॥ वसुदेव उवाच ॥ भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ॥ तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताऽज्ञेषु सत्तमैः ॥ मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥ ६२ ॥ प्राग कल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि ॥ अधुना श्रीमदांधाक्षा न पश्याम पुरः सतः ॥ ६३ ॥

अनायाससे मनोरथरूप महासागरको पार उतर प्रसन्नचित्त और सम्बन्धी लोगोंसे आवृत्त वसुदेवजी हाथ पकड़ नंदजीसे बोले ॥ ६० ॥ कि, हे भाई नंदजी ! मनुष्योंको स्नेहरूपी फाँसी ईश्वरने रची है, इसकारण इसे शूरवीर बलसे और ज्ञानी ज्ञानसे भी नहीं काट सकते ॥ ६१ ॥ तुमसे महात्माने जो अकृतज्ञ हमारे साथ मित्रता करी है, उसका पलटा हम किसी प्रकार नहीं देसकते, तोभी वह सदा एकरूप बनी रहतीहै कभी निवृत्त नहीं होती ॥ ६२ ॥ हे नंदरायजी ! पहले तो हम असमर्थ थे, इसलिये तुम्हारा कुछ उपकार न करसके और अब धनसे अंधेहो सम्मुख बैठे तुमसे

महात्माओंकी ओरको देखते भी नहीं ॥ ६३ ॥ हे मानदेनेवाले भाई नंदजी ! कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले मनुष्यको राजलक्ष्मी, चाहे न मिलै, क्योंकि इससे अंधा होकर पुरुष अपने आश्रित तथा बंधु बांधवोंको भी नहीं देखता ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसप्रकार स्नेहसे शिथिलचित्त आँसू नेत्रोंमें भरे वसुदेवजी नन्दजीकी मित्रताको स्मरणकर रोनेलगे ॥ ६५ ॥ नन्दरायजी यादवोंसे मान पाकर अपने मित्र वसुदेवजीको प्रसन्न करते भगवान् कृष्ण बलदेवजीके प्रेमसे "आज कल, आज कल" करते तीन महीनेतक वहीं रहे ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त बड़े मोलके आभूषण रेशमीवस्त्र तथा अनेक प्रकारके बड़े मोलकी वस्तुसे व्रजवासियों सहित नंदरायजीको पूर्ण करदिया ॥६७॥

माराज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ॥ स्वजनानुत बंधून् वा न पश्यति ययांधदृक् ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुंदुभिः ॥ रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥ नंदस्तु सख्युः प्रियकृत् प्रेम्णा गोविंदरामयोः ॥ अद्य श्व इति मासांस्त्रीन् यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६ ॥ ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबांधवः ॥ पराद्ध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥६७॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ॥ दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥६८ ॥ नंदो गोपाश्च गोप्यश्च गोविंदचरणांबुजे ॥ मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥ ६९ ॥ बंधुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥ ७० ॥ जनेभ्यः कथयांचक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥ यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

और वसुदेव उग्रसेन तथा कृष्ण बलदेवादि यादवोंकी दी हुई प्रीति सहित सामग्रीको ग्रहण कर, जिससमय नंदरायजी बिदा हुए, उससमय यादवोंने इनके संग एक बडीभारी सेना कर दी थी ॥ ६८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लगे मनको हटानेमें असमर्थ नन्दरायजी व गोप गोपियें मथुराको चले ॥ ६९ ॥ बंधु लोगोंके जानेपर श्रीकृष्णचन्द्र इष्टदेव माननेवाले यादव, वर्षाऋतु निकट आई देख, पीछे द्वारकाको चलेगये ॥ ७० ॥ और जाकर सब यादव वसुदेवजीका यज्ञ और कुरुक्षेत्रकी यात्रामें सुहृदोंका मिलाप यह सब प्रजासे कहा ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां वसुदेवयज्ञसमाप्तिवर्णनो नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

दोहा—विनय पचासीमें करी, कृष्ण और बलराम । मरे पुत्र मातहिदिये, पितुहि ज्ञान सुखधाम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनेके उपरान्त एकसमय वसुदेवजी आय चरणोंमें प्रणाम और रामकृष्णकी प्रशंसा कर प्रीतिपूर्वक कहनेलगे ॥ १ ॥ पुत्रोंके प्रभावको जाननेवाला जो मुनियोंका कहा वचन कि, तुम्हारे पुत्र परमेश्वर हैं, सुनकर श्रीकृष्ण बलदेवका पराक्रम देख विश्वासयुक्त वसुदेवजी संबोधन देकर बोले ॥ २ ॥ कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे राम ! हे महायोगिन् ! हे संकर्षण ! हे सनातन ! इस विश्वके कारण प्रकृति पुरुषके भी कारण साक्षात् ईश्वर तुम हो, यह मैं जानताहूँ ॥ ३ ॥ जिसमें, जिस साधनसे, जिससे, जिस कारणसे, जिसका, जिसके लिये, जिसको, जो, जैसे और जब यह संसार स्थित है और स्थित कियाजाताहै उस सब भोग्य और भोक्ताके नियंता साक्षात् आपहीहो ॥४॥ हे अधोक्षज ! आप जो

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवंदनौ ॥ वसुदेवोऽभिनंद्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥ मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ॥ तद्वीर्यैर्जातविश्रंभः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन् संकर्षण सनातन ॥ जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥३॥ यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ॥ स्यादिदं भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ॥ आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो बिभर्ष्यजः ॥ ५ ॥ प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ॥ पारतंत्र्याद्वै सादृश्याद्द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥

अजन्मा हो, वे अपने रचेहुए इस अनेकप्रकारके जगत्में अपने रूपसे प्रवेश कर क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिरूप होकर उसका पोषण और भरण करतेहो ॥ ५ ॥ पृथक् पृथक् शक्तिवाले प्राणादिक इस विश्वके कारण जाननेमें न आवैं परमेश्वरको कारण रूपसे सर्वरूप कैसे कहतेहो, यह शंका जब हुई तो उसका समाधान यह है कि, प्राणादिकोंमें जो शक्ति है सो ईश्वरके करनेवाले प्राण आदि तत्त्वमें जो शक्तिहै सो परमकारण ईश्वरकी ही है, क्योंकि प्राणादिक ईश्वरके आधीनहैं और जैसे तीरमें वेधनेकी स्वतंत्र शक्ति नहीं है किन्तु पुरुषकी शक्तिसे वेधताहै, उसीप्रकार प्राणादिकोंमें ईश्वरकी शक्ति है, प्राणादिक जड़हैं, और ईश्वर चैतन्य है और जड़पदार्थको चैतन्यकी आधीनता योग्यहै, वहाँ कहतेहैं कि, प्राणादिकोंमें शक्ति

नहीं है तो क्रिया कैसे करते हैं, उसका उत्तर यह है कि, चेष्टा करनेवाले प्राणादिककी चेष्टा यहाँ कुछ शक्ति नहीं है, जैसे पवनकी शक्तिसे तृण हिलतेहैं, उसी प्रकार क्रिया करतेहैं ॥ ६ ॥ चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र, व बिजलियोंकी स्फुरसत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता और पृथ्वीकी आधारता तथा गंध यह संपूर्ण तुम्हारीही शक्तियें हैं ॥ ७ ॥ हे देव ! जल उसकी तृप्ति करनेकी शक्ति जीवित करनेकी शक्ति व उसका रस यह सब तुम्हीं हो हे ईश्वर ! वायुके जो ओज, सह, बल, चेष्टा और गतिहैं यह सब तुम्हारेही रूपहैं ॥ ८ ॥ दिशाओंमें जो खालीपन और दिशाएँ समस्त तुम्हारेही रूपहैं और आकाश तथा आकाशमें शब्द रूप गुण सब तुम्हारेही रूप हैं, वाणी ॐकार और नामरूप कहनेमें न आवै सो सब तुम्हीं हो ॥ ९ ॥ नेत्रोंमें दर्शनशक्ति और कानोंमें श्रवणशक्ति तथा जिह्वामें रसकी ग्रहणशक्ति इत्यादिक इन्द्रियोंमें विषयोंके ग्रहण करनेकी शक्ति तुम्हीं हो और

कांतिस्तेजः प्रभा सत्ता चंद्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् ॥ यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गंधोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥ तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः ॥ ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥८॥ दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ॥ नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥ इंद्रियं त्विंद्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ॥ अवबोधो भवान् बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥ भूतानामसि भूतादिरिंद्रियाणां च तैजसः ॥ वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥ ११ ॥ नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ॥ यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ॥ त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥

इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री देवता तुम्हीं हो देवता इन्द्रियोंको प्रेरणा करतेहैं, यह तुम्हारीही शक्तिहै, बुद्धिमें निश्चय करनेकी शक्ति तुम्हींहो और जीवोंको श्रेष्ठवार्त्ता जो स्मरण रहती है, यह तुम्हारीही शक्ति है ॥ १० ॥ पंचभूतका कारण तामसाहंकार, इन्द्रियोंके देवताओंका कारण सात्त्विकाहंकार, इन्द्रियोंका कारण राजसाहंकार और जीवोंके संसारका कारण प्रधान यह सब तुम्हीं हो ॥ ११ ॥ नाशवान् पदार्थमें जो शेष रहै अर्थात् जिसका नाश न हो सो तुम्हींहो, जैसे मृत्तिका, सुवर्णके बने घड़े; मूँदरी, कड़े इत्यादि सब नाशवान् हैं, मृत्तिका सुवर्णका नाश नहीं होता ॥ १२ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी वृत्ति साक्षात् परब्रह्ममें योगमायासे कल्पित है ॥ १३ ॥

इसीकारण यह पदार्थ आपसे अलग नहीं हैं, जब यह पदार्थ कल्पना कियेजाते हैं तभी प्रतीतिमात्रसे आपमें हैं और आप कारणतासे उनमें अनुगत हो और जब कल्पना नहीं किये जाते, तब निर्विकल्प आप ही अवशेष रहते हो ॥ १४ ॥ यह जो गुणोंका प्रवाहरूप संसार है, उसमें सबके आत्मा तुम्हारी संसारसे अलग गतिको नहीं जाननेवाले अज्ञानी पुरुष देहमें अभिमानसे करे कर्मसे इस संसारमें जन्मे हो ॥ १५ ॥ हे ईश्वर ! शोभायमान हाथ, पाँव, नाक, कान, सब इंद्रिययुक्त बहुत दुर्लभ देहको इस संसारमें कोई एक पुण्यके फलसे पाकर स्वार्थमें भूलकर मैंने अपनी अवस्थामें तुम्हारी मायासे वृथाही गँवाई ॥ १६ ॥ मैं ब्राह्मण हूं, क्षत्रिय हूं, इसप्रकार देहमें अभिमान और इस देहके संबंधी स्त्री पुत्रादिक

तस्मान्न संत्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ॥ त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाऽव्यावहारिकः ॥१४॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ॥ गतिं सूक्ष्मावबोधेन संसरंतीह कर्मभिः ॥ १५ ॥ यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ॥ स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥ १६ ॥ असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ॥ स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥ युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ ॥ भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ॥१८॥ तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविंदमापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ॥ एतावताऽलमलमिंद्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक्त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥ सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ॥ नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥

मेरे हैं इस अभिमानसे स्नेहके रस्सोंमें यह जगत् तुमने बाँध रक्खाहै ॥ १७ ॥ हम तुम्हारे पुत्र हैं तुम क्यों हमारी स्तुति करते हो, उसके उत्तर में वसुदेवजी कहते हैं कि, तुम हमारे पुत्र नहीं हो, किन्तु प्रधानपुरुष ईश्वर हो, और पृथ्वीके भाररूप क्षत्रियोंका नाश करनेको आपने अवतार धारण किया है, क्योंकि आप ऐसे ही हैं ॥ १८ ॥ हे दीनबंधो ! शरण प्राप्तहुए पुरुषके संसारभयको दूर करनेवाले ! मैं तुम्हारे चरणारविन्दकी शरणमें प्राप्त हुआहूं "तुम तो बड़े सुखी हो वृथा क्यों खेद करते हो ऐसे जो कदाचित् श्रीकृष्ण कहें" इसके उत्तरमें वसुदेवजी कहतेहैं कि, विषयकी लालसा इतनीही है कि, मरणधर्मा शरीरको आत्मा माना और तुम परमेश्वरको पुत्र माना ॥ १९ ॥ तुमने सूतिकागृहमेंही हमसे कहा था, कि

"जब तुम सुतपा और पृश्नि व कश्यपजी, अदिति रूप दंपती हुए, तब और अभी वसुदेवजी देवकी रूप दंपती हो में अजन्मा प्रथम निजधर्मकी रक्षाके लिये आपसे प्रगट हुआ, और अब भी प्रगट हुआहूं" आप असंग रहकर भी अनेक अवतार धारण करते हो और छोड़ते , सर्वव्यापक आपकी विभूति रूप मायाको कौन जान सक्ता है? ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इसप्रकार पिताके वचन सुन अधीनतापूर्वक नम्र हो मनोहर वाणीसे कहा॥२१॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पितः! हम पुत्रोंके विषयमें आपने जो तत्त्वसमूहोंका भलीभाँति निरूपण किया सो तुम्हारे वचनको हम यथार्थ मानते हैं ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ पितः! तुम और बडे भ्राता बलदेवजी तथा सब द्वारका

श्रीशुक उवाच ॥ आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ प्रत्याह प्रश्रयाऽऽनम्रः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ॥ यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥ ॥ २२ ॥ अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ॥ सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ॥ आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥ २४ ॥ खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ॥ आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन्वसुदेव उदाहृतः ॥ श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥ २६ ॥ अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ॥ श्रुत्वाऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥ २७ ॥

वासी यादव और स्थावर जंगम जगत्को ब्रह्मरूप जानो ॥ २३॥ यहाँ एक शंका है, नाना विकारवान्को ब्रह्मरूपता कैसे बने? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, आत्मा एक स्वयंप्रकाश नित्य सबसे पृथक् निर्गुण है, अपने रचे सत्त्वगुण रजोगण तमोगुणसे उत्पन्न देहमें बहुत प्रकार प्रतीत हो फिर जैसी देह उसमें वैसाही प्रतीत होता है जैसे आकाश, पवन, ज्योति, जल, पृथ्वी यह पंचभूत घट पटादि पदार्थोंमें कहीं प्रगट कहीं अंतर्द्धान कहीं थोडे कहीं बहुत प्रतीत होय हैं ऐसे एक आत्मा ब्रह्मस्वरूप अनेक रूपसे प्रतीत होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कहा वचन सुन भेदभाव त्याग प्रसन्नमन हो वसुदेवजी चुप होगये ॥२६॥ हे कुरुश्रेष्ठ! फिर अपने

पुत्र, गुरुपुत्रको पीछे ले आये, यह वृत्तान्त सुन अत्यन्त आश्चर्य मान, कंसके मारे पुत्रोंकी सुधि करके सब जगत्की देवतारूप देवकी व्याकुल हो नेत्रोंमें आँशू भर श्रीकृष्ण बलदेवको बतलाकर इसप्रकार दीन वचन कहने लगी ॥ २७ ॥ २८ ॥ देवकी बोली कि, हे राम ! हे राम ! हे अप्रमेय आत्मन् ! हे कृष्ण ! हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! आप विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! और आदिपुरुष हो तुमको मैं जानती हूँ ॥ २९ ॥ कालसे सत्त्वगुणका नाश होनेपर शास्त्रकी मर्यादा त्यागनेवाले पृथ्वीपर भाररूप राजाओंका नाश करनेके लिये तुम मेरे यहाँ आनकर प्रगट हुए हो ॥३० ॥ हे सबके कारण ! हे विश्वके आत्मा ! तुम्हारा अंश पुरुष है, उसकी अंश माया, उस मायाके अंश सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंके परमाणु

कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् ॥ स्मरंती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥ देवक्युवाच ॥ राम रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर ॥ वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ॥ भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥ ३० ॥ यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ॥ भवंति किल विश्वात्मस्तं त्वाऽद्याहं गतिं गता ॥ ३१ ॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ ॥ आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तथा मे कुरु तं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ॥ भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥३३॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संचोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ॥ सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥३४॥

मात्रलेशसे इस विश्वकी उत्पत्ति पालन और प्रलय होती है, ऐसे तुम हो, सो मैं तुम्हारी शरण आई हूं ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वर! चिरकालसे मरेहुये पुत्रको लानेके लिये गुरुने आज्ञा की, तब तुमने यमराजके लोकमेंसे उस पुत्रको लाकर गुरुको गुरुदक्षिणारूप अर्पण किया, उसी प्रकार मेरी कामना भी पूर्ण करो अर्थात् कंसके मारेहुए पुत्रोंको मैं यहाँ लायेहुए देखना चाहती हूं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब माता देवकीने इसप्रकार कहा, तब राम कृष्ण योगमायाका आश्रय ले सुतललोकमें गये ॥ ३४ ॥

वहाँ दैत्यराज बलिने विश्वके आत्मा देवता अपने इष्टदेव कृष्ण बलदेवको सुतललोकमें आया देख और उनके दर्शनसे आनन्द हो, परिपूर्ण अंतःकरणसे परिवार सहित शीघ्र उठकर नमस्कार किया ॥ ३५ ॥ और प्रीतिसहित आसन लाकर उन महात्माओंको आसनपर बैठाया फिर चरण पखार ब्रह्म पर्यन्त जगत्‌को पावन करनेवाला जल, दैत्यराज बलिने और उसके परिवारने अपने मस्तकपर चढ़ाया ॥ ३६ ॥ उत्तम वस्त्र आभूषण, लेपन, तांबूल, दीप और अमृतसे भोजन आदि अनेक वैभवसे उनकी पूजा की और अपना तन, धन, कुटुम्ब सब अर्पण किया ॥ ३७ ॥ हे नृप ! राजा बलि भगवान्‌के चरणारविन्दको बारम्बार मस्तकपर धर प्रेमसे द्रवीभूतहुई बुद्धिसे आनन्दके आँशू नेत्रोंमें भरे पुलकितशरीर हो

तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराट् विश्वात्मदेवं सुतरां तथात्मनः ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥ तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ॥ दधार पादाववनिज्य तज्जलं सवृंद आब्रह्म पुनद्यदंबु ह ॥ ३६ ॥ समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ तांबूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥ स इंद्रसेनो भगवत्पदांबुजं बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ॥ उवाच हाऽऽनंद जलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥ बलिरुवाच ॥ नमोऽनंताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ॥ रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥ ४० ॥ दैत्यदानवगंधर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥

इसप्रकार कहनेलगे ॥ ३८ ॥ राजा बलि बोले कि, समस्त विश्व फणके ऊपर धारण करनेवाले शेषरूप तुमको प्रणाम है और सब जगत्‌के रचनेवाले तुमको नमस्कार है, सांख्यशास्त्र योगशास्त्रके विस्तार करनेवाले ब्रह्म परमात्मा तुमको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ योगीश्वरोंकोभी तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है सो हमको हुआ, यह आश्चर्य नहीं है, यद्यपि प्राणियोंको तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, परन्तु तो भी तुम्हारी कृपासे किसी किसीको सुलभ होजाताहै, इसलिये रजोगुणी, तमोगुणी स्वभाववाले हम असुरोंको अकस्मात् आपने दर्शन दिया ॥ ४० ॥ बडा आश्चर्य है, हम शत्रु सत्त्व

गुणी भक्तोंसे भी बडभागी हैं,दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच भूत और प्रमथोंमें मुख्य हैं ॥ ४१ ॥ हम और हमसे दूसरे लोगोंने शास्त्रकी रक्षा करनेवाले सत्त्वगुणी स्वभाव तुमसे नित्य शत्रुता कररक्खी है, उन्हें भी आपका दर्शन प्राप्त होजाता है ॥ ४२ ॥ कोई एक (शिशुपालादि) वैर भक्तिसे तुमको जैसे पागये, और गोपी आदिकोंने काम भक्तिसे जैसे तुम्हें पाया उसी सत्त्वगुणसे देवता तुमको प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! इसप्रकार तुम्हारी योगमायाको जब योगेश्वर भी नहीं जानते, तो हम असुर क्या जान सकते हैं ? ॥ ४४ ॥ इसलिये हमपर आप ऐसी दया करो कि, जिससे निष्काम पुरुषोंके ढूंढने योग्य तुम्हारे चरणारविन्दका आश्रय ले चरणारविन्दसे अलग घर रूप कुएँसे निक

विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ॥ नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ॥ न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥ इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ॥ न विदंत्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥ ४४ ॥ तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्दधिषणान्यगृहांधकूपात् ॥ निष्क्रम्य विश्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तिः शांतो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥ शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो ॥ पुमान्यच्छ्रद्धया तिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽतरे ॥ देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा ॥ हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥

लकर विश्वकी रक्षा करनेवाले वृक्षकी जड़ोंमें आपहीसे गिरे फल फूलको भोजन कर मैं शान्त चित्त होकर अकेला विचरूं, अथवा सबके सहाय करनेवाले महात्मा पुरुषोंके संग विचरूं ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! सब जीवोंके स्वामी ! हमें शिक्षा देकर पापरहित निष्पाप करो, कि जिस शिक्षाको श्रद्धापूर्वक पालनेसे पुरुषोंके विधिनिषेधरूप बन्धन छूट जाते हैं ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, इस स्वायंभुव मन्वन्तरमें मरीचि प्रजापतिके ऊर्णा स्त्रीमें छः पुत्र हुये एक समय देवतारूप छहों पुत्र अपनी कन्याके पीछे भाजे और ब्रह्माजीको देखकर हँसे ॥ ४७ ॥ इस पापकर्मसे असुरयोनिको प्राप्त हुये, फिर उन्होंने हिरण्य कशिपुसे जन्म लिया, सोई छहोंने हिरण्यकश्यपके यहाँसे योगमायाके प्रेरे ॥ ४८ ॥

देवकीके उदरमें जन्म लिया, जो कंसके हाथसे मारेगये, सो अब वह तुम्हारे पास हैं,इन्हैं देवकी अपने पुत्र मानकर शोच करती है ॥ ४९ ॥ माता देवकीका शोक दूर करनेके लिये यहाँसे इन छहों पुत्रोंको लेजायँगे इसके उपरान्त शापसे छूट खेद रहित होकर यह देवलोकमें जायँगे॥५०॥स्मर उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभुक् और घृणी ये जो छः पुत्र हैं, सो मेरे प्रसादसे मुक्त होजायँगे ॥ ५१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! इसप्रकार जब कहा तब राजा बलिसे पूजित हो, श्रीकृष्ण बलदेव उन पुत्रोंको संगले,द्वारकापुरीमें आय माता देवकीको देदिये ॥ ५२ ॥ पुत्रोंके स्नेहसे स्तनोंमें दूध चुवै, ऐसी

देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः ॥ सा ताञ्छोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽतिके ॥ ४९ ॥ इत एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ॥ ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यंति विज्वराः ॥ ५० ॥ स्मरोद्गीथः परिष्वंगः पतंगः क्षुद्रभृद् घृणी ॥ षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यंति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तान्समादाय इंद्रसेनेन पूजितौ ॥ पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ परिष्वज्यांकमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥ अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ॥ मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वाऽमृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥ नारायणांगसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ ते नमस्कृत्य गोविंदं देवकीं पितरं बलम् ॥ मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥

देवकी उन बालकोंको देख गोदमें बैठाय छातीसे लगाय बारम्बार माथा सूँघनेलगी ॥५३॥ सृष्टिको उत्पन्न करनेवाली विष्णु भगवान्की मायासे मोहित और पुत्रोंको छातीसे लगानेके कारण मग्न देवकी प्रसन्न होकर पुत्रोंको स्तन पिलाने लगी ॥५४॥ गदाके धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पीनेसे बचा अर्थात् भगवान्का प्रसाद वह अमृतरूप देवकीका दुग्ध पानकर और श्रीकृष्णके अंग स्पर्श करनेसे " हम देवता हैं" यह ज्ञान होनेसे वह देवता गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र और देवकी तथा वसुदेवजीको नमस्कारकर सब प्राणियोंके देखते देवताओंके धाम देवलोकमें चलेगये ❋ ॥ ५५॥५६॥

* शंका—देवकीके सब बालकोंको श्रीकृष्णने लादिया, तब वह सब बालक देवकीके स्तनका दूध पीने लगे, श्रीमद्भागवतमें लिखाहै कि, ऐसा देवकीके स्तनोंका दूध था जिसको बालक पीरहये, पहिले तो भगवान्ने देवकीके स्तनोंका दूध पियाथा, जो दूध शेष रहाथा उसको देवकीके और बालकोंने पिया अब यहाँ मुझको यह सन्देह है कि, श्रीकृष्ण तो जन्मलेतेही गोकुलको चलेगये देवकीका दूध नहीं पिया फिर व्यासजी क्यों कहते हैं, देवकीके स्तनोंका दूध भगवान्ने पिया, और जो बाकी रहा उसको और पुत्रोंने पिया ? ॥

हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित ! मरेहुये पुत्रोंका आगमन और फिर गमन देखकर विस्मित देवकीने जानलिया कि, यह सब श्रीकृष्णचन्द्रकी रची हुई माया है ॥ ५७ ॥ अनंतशक्ति परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे ऐसे आश्चर्ययुक्त अनंत चरित्र हैं॥ ५८ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिक ऋषीश्वरो ! व्यासनंदन महात्मा शुकदेवजीके कहेहुए और सब जगत्के पापोंके दूर करनेवाले, भक्तोंके कानोंको आनन्ददायक अमृतरूपी कीर्त्ति मुरारी भगवान्के चरित्रोंको भगवान्में चित्त लगाकर जो पुरुष श्रवण करै अथवा श्रवण करावे, वह पुरुष काल और मायासे रहित भगवान्के

तद्दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ॥ मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥ एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य संत्यनंतानि भारत ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥ जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम॥५९॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे मृताग्रजानयनं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥
राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥ यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ॥ गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥

परमधामको प्राप्त होताहै ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मृताग्रजानयनं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥ दोहा—हरण सुभद्राको कियो, छयासी अर्जुन धीर ॥ कियो सुखी श्रुतदेवको, अरु द्विजको यदुवीर ॥ ८६ ॥ राजा परीक्षित पूंछने लगे कि हे योगीश्वर श्रीशुकदेवजी ! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रकी भगिनी सुभद्रा जो मेरी दादी थी उसके संग अर्जुनने जिसप्रकार विवाह किया, सो मेरी सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! एक समय सामर्थ्यवान् अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये

—उत्तर—शास्त्रमें लोकमें तीन प्रकारका कर्म वर्णन होता है, एक वचनसे कर्म होताहै, दूसरा मनसे कर्म होताहै, तीसरा शरीरसे कर्म होताहै, इन तीनों कर्मोंमें कोई कर्म छोटा नहीं है, अरु कोई कर्म बडा भी नहीं है यह तीनों कर्म समान हैं देवकीके दूधको भगवान् सदा मनसे पीतेरहे, जो मनसे दूध पिया तो वचन तथा शरीरसे दूधका पीना सत्य होगया, इसलिये व्यासजीने देवकीके दूधको कहा ॥

पृथ्वीपर भ्रमण करता करता प्रभासतीर्थमें पहुँचा ॥ २ ॥ वहाँ जाय अपने मामाकी पुत्री सुभद्रा बलदेवजी दुर्योधनको व्याह देंगे और वसुदेवादिकोंकी इसमें सम्मति नहीं है, यह बात सुन उस सुभद्राके लेनेकी इच्छासे अर्जुन संन्यासी बन तीन दंड धारणकर द्वारकापुरीमें आया ॥ ३ ॥ अपने कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छासे अर्जुनने चार महीने वर्षाऋतुके द्वारकापुरीमें बिताये, पर वहाँके मनुष्योंको और बलरामजीको भी इस छलकी खबर न हुई, इस कारण वह उसका नित्यप्रति सन्मान करते थे ॥ ४ ॥ एक दिन संन्यासीभावसे अर्जुनका निमंत्रणकर घरमें बुला श्रद्धापूर्वक बलदेवजीने जो भोजन परोसा सो अर्जुनने भोजन किया ॥ ५ ॥ वहाँ शूरवीरोंके मनको हरनेवाली एक अत्यन्त सुन्दर कन्या अर्जुनने

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ॥ तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदंडी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः ॥ पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥ एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमंत्र्य तम् ॥ श्रद्धयोपाहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥ सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ॥ प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥ सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् ॥ हसंती व्रीडितापांगी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥ तां परं समनुध्यायन्नंतरं प्रेप्सुरर्जुनः ॥ न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ॥ जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चाऽऽरुंधतो भटान् ॥ विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥

देखी, जिसपर दृष्टि पड़तेही उसके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित होगये और रतिके अभिप्रायसे चलायमान मन सुभद्रामें लगगया ॥ ६ ॥ स्त्रियोंका मन हरनेवाले अर्जुनको देख सुभद्राने भी अपना मन अर्जुनमें लगाया और लाजभरे नेत्रोंसे कटाक्षसहित उसकी ओर देखनेलगी ॥ ७ ॥ बड़े बलवान् कामदेवसे चलायमान चित्त अर्जुनने केवल सुभद्राका ध्यान और हरण करनेका अवसर देखते बलदेवजीके किये सन्मानसे कुछ सुख नहीं पाया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त बडी देवीकी यात्रामें रथमें बैठकर निकली सुभद्राको माता, पिता, देवकी, वसुदेव, और श्रीकृष्णकी सम्मतिसे महारथी अर्जुनने हरण किया ॥ ९ ॥ रथमें बैठ धनुष हाथमें ले अर्जुन चारों ओरसे रोंके प्यादोंको भजाय उनके पुकारतेही जैसे सिंह अपने भागको ले

जाताहै, उसी प्रकार लेगया ॥ १० ॥ अर्जुन सुभद्राको लेगया, यह बात श्रवणकर जैसे पूर्णमासीको समुद्र उमडता है, उसीप्रकार क्रोधितहुए बलदेवजीको सुहृदोंसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शान्त किया ॥ ११ ॥ फिर बलदेवजीने अति आनन्दपूर्वक दहेजमें उन दूलह दुलहनके लिये अमूल्य सामान, हाथी, घोडे, रथ, दास, और दासियें आदि भेजे ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे महाराज परीक्षित्! श्रीकृष्णचन्द्रकी एक भक्तिसे पूर्णमनोरथ, शान्तस्वभाव विवेकी विषयोमें अनासक्त एक श्रुतदेव नाम प्रसिद्ध ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था ॥ १३ ॥ विना उपाय करे मिले भोजनहीसे निर्वाह करके अपने कर्मोंको करे, ऐसे गृहस्थी ब्राह्मण विदेहदेशकी मिथिलापुरीमें वास करता था ॥ १४ ॥ जितनेमें शरीरका

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ॥ गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ॥ महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ॥ कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शांतः कविरलंपटः ॥ १३ ॥ स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ॥ अनीहयाऽऽगताऽऽहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ॥ नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः ॥ मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥ तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् ॥ आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥ १७ ॥ नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ॥ अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥ १८ ॥

निर्वाह हो, उतना भोजन प्रतिदिन अकस्मात् उसके लिये आजाता था, और अधिक नहीं, परन्तु उतनेहीमें संतोष करके यथायोग्य संध्योपासनादि कर्म करता था ॥ १५ ॥ हे परीक्षित्! जैसा श्रुतदेव ब्राह्मण भक्त था, उसी प्रकार मिथिलादेशका पालन करनेवाला जनकके वंशमें हुआ निरभिमान बहुलाश्व नामसे विख्यात राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था, ब्राह्मण और राजा यह दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके प्यारे हैं ॥ १६ ॥ उन दोनों भक्तोंके ऊपर प्रसन्न हुए सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्के लाये रथमें बैठ मुनियोंको संगले विदेह देशको चलेगये ॥ १७ ॥ तब नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यासजी, परशुराम, असित, अरुणि मैं (शुकदेवजी) बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन, आदि ऋषि भी संगगये थे ॥ १८ ॥

हे राजन्! मार्गमें मुनियोंको संगलिये श्रीकृष्णचन्द्र जहाँ जहाँ गये तहाँ तहाँ पुरवासी उनके लिये अर्घ्य हाथमें लेकर उनकी स्तुति करतेथे, जैसे ग्रह उदयहोकर सूर्यको अर्घ्य देते हैं ॥ १९ ॥ आनर्त्तदेश, धन्व, कुरु, जांगल, कंक, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, कैकय, कोसल, अर्ण इन देशोंके वासी स्त्री पुरुष उदार हँसनियुक्त स्नेहभरी चितवनवाले श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द दृष्टि भरकर देखनेलगे ॥ २० ॥ अपनी कृपादृष्टिसे अज्ञान दूरकर पुरुषोंकी दृष्टिको कल्याण और तत्त्वज्ञान देते, दिशाओंके अंततक व्याप्त पापनाशक देवता और मनुष्योंसे गाये अपने यशको श्रवण करते

तत्रतत्र तमायांतं पौरा जानपदा नृप ॥ उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥ १९ ॥ आनर्तधन्वकुरुजांगलकंकमत्स्यपांचालकुंतिमधुकेकयकोसलार्णाः ॥ अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥ तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ॥ शृण्वन्दिगंतधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥ तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ॥ अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ॥ कैर्धृतांजलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥ २३ ॥

त्रिलोकीके गुरु श्रीकृष्णचन्द्र धीरे २ विदेहादिक देशोंमें पहुँचे ॥ २१ ॥ हे राजा परीक्षित्! वह संपूर्ण पुरवासी देशवासी जन श्रीकृष्णचन्द्रको आया सुन हर्षितहो पूजाके योग्य सामग्रियोंको हाथमें ले सम्मुख आये ॥ २२ ॥ उत्तमयशी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर प्रफुल्लित मुख और अंतःकरणवाले पुरुष हाथ जोड मस्तक झुकाकर नमस्कार करने लगे और उक्त मुनियोंको भी प्रणाम किया * ॥ २३ ॥

* शंका—मुनीश्वर लोग विदेह राजाके नगरको सदा आते थे और नगरमें कुछ दिन वास करके अपने अपने आश्रमोंको चलेजाते थे, जब कि, जनकपुरमें बडे बडे महात्मा और प्रजागण वसते थे, तब वह पुरवासी प्रजागण और महात्माजन मुनियोंको देखते थे और पहिचानते थे, फिर व्यासजीने क्यों कहा कि, प्रथम जिन मुनियोंको ब्राह्मणने सुन रक्खा था उन मुनियोंका पूजन किया, इस बातसे यह जान पडता है कि, नारदादि मुनि जनकपुरीको कभी भी नहीं गये, नये नये कृष्णके साथ गये हैं, इसलिये व्यासजी कहे हैं कि, जनकपुरवासी प्रजा देखे नहीं थे परन्तु सुने तो थे कि, अमुक अमुक मुनि पृथ्वीपर हैं, यह शका वडी भारी है?

उत्तर—" श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान् " इस श्लोकमें विद्वान् पुरुष सब दिन तथा वर्षको तथा बहुत दिनको बहुत पहिले नहीं मानतेथे बहुत दिन तथा वर्षसे तो पुरवासी प्रजा सब मुनियोंको जानते थे परन्तु जब श्रीकृष्णके साथ सब मुनि आये तब सब मुनियोंको पुरवासी प्रजाने देखा, उससमयसे पहिचाना और पहिलेसे तो सुन रक्खा था, मुनियोंको पुरवासी ऐसा अर्थ है क्योंकि जनकपुरमें बडा कोलाहल मच गयाथा कि श्रीकृष्णचन्द्र जनकपुर को आते हैं, उनके सग अमुक अमुक मुनि लोग भी आतेहैं, ऐसा पुरवासियोंने सुनाया तब जिन जिनके आनेको सुनाया सो सब आगये, उन सबका यथायोग्य पूजन किया " श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान् " का अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है और ऐसा नहीं किया कि कभी देखे नहीं थे सुने ही थे ॥

जगत्‌के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये आये हैं, इसप्रकार बुद्धिसे निश्चयकर मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें आनकर गिरपड़े ॥ २४ ॥ मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेवजी इन दोनोंमें एक संग हाथ जोड़ ब्राह्मणोंसहित श्रीकृष्णचन्द्रका आतिथ्यभाव कर निमंत्रण किया ॥२५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दोनोंका निमंत्रण मान दोनोंका प्रिय करनेके लिये ब्राह्मणोंसहित दो रूप धर दोनोंके घरगये, उससमय राजा और ब्राह्मणोंने यह नहीं जाना कि इन्होंने दो रूप करलिये हैं ॥ २६ ॥ उदारमन बड़ी भक्तिसे हृदयमें हर्ष, नेत्रोंमें आँशूभरे जनकवंशी राजा बहुलाश्व असत् पुरुषोंके सुननेमें भी न आवैं, ऐसे भगवान्‌को अपने घरलाय बिछाये

स्वानुग्रहाय संप्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥ २४ ॥ न्यमंत्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहतांजली ॥ २५ ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ॥ उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥ २६ ॥ श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः स्वगृहागतान् ॥ आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः ॥ २७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ॥ नत्वा तदंघ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥ २८ ॥ सकुटुंबो वहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् ॥ गंधमाल्यांबराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ॥ पादावंकगतौ विष्णोः संस्पृशञ्शनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ॥ अथ नस्त्वत्पदांभोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥ ३१ ॥

आसनपर सुखसे बिठाया, और वह सुखसे यथायोग्य आसनपर बैठे ॥ २७ ॥ इसीप्रकार मुनियोंको नमस्कारकर उनके चरणोंको धोय लोकोंको पवित्र करनेवाला चरणोंका जल ॥ २८ ॥ कुटुम्ब सहित राजा बहुलाश्वने अपने माथेपर चढ़ाय ईश्वर और ईश्वरके समान ब्राह्मणोंका गंध, पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण, दीप, अर्घ्य, गौ, बैल, इन सामग्रियोंसे पूजन किया ॥ २९ ॥ भोजनकर तृप्त हुए उन ब्राह्मणों व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रसन्न करता गोदमें धरे श्रीकृष्णके चरण धीरे धीरे दाबता वह यह कहनेलगा ॥ ३० ॥ राजा बहुलाश्वने कहा कि हे समर्थ ! सब प्राणियोंके

आत्मा साक्षी स्वयंप्रकाश तुम्हीं हो, इसलिये तुम्हारे चरणारविन्दका स्मरण करनेवाले मुझे तुमने दर्शन दिया है ॥ ३१ ॥ "मेरे एकान्त भक्तसे बढ़कर शेषजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माजी भी प्यारे नहीं हैं" यह जो तुमने कहा, सो अपना वचन सत्य करनेके लिये आपने हमको दर्शन दिया ॥ ३२ ॥ भक्त तुम्हें प्रियहैं, इसप्रकार जानकर कौनपुरुष तुम्हारे चरणारविन्दको त्यागन करैगा? निष्किंचन अर्थात् जिनके पास कुछ नहीं है, शान्त शीलस्वभाव मुनियोंको तुम अपने पद दे चुके हो ॥ ३३ ॥ ऐसे तुम यदुवंशमें अवतार लेकर संसारी जीवोंके संसार छुडानेके लिये त्रिलोकीका दुःख दूर करनेवाले यशका विस्तार करते हो ॥ ३४ ॥ अकुंठबुद्धि शान्त तप करनेवाले नारायण ऋषि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ॥ यदात्थैकांतभक्तान्मे नानंतः श्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥ को नु त्वच्चरणांभोजमे
वंविद्विसृजेत्पुमान् ॥ निष्किंचनानां शांतानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥ योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसार
तामिह ॥ यशो वितेने तच्छांत्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ नारायणाय
ऋषये सुशांतं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥ दिनानि कतिचिद्भूमन्गृहान्नो निवस द्विजैः ॥ समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः
कुलम् ॥ ३६ ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ॥ उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥ ३७ ॥ श्रुत
देवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहान्जनको यथा ॥ नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥ ३८ ॥ तृणपीठबृसीष्वेतानानीते
षूपवेश्य सः ॥ स्वागतेनाभिनंद्यांघ्रीन्सभायाऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥

नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे व्यापक ! सब ब्राह्मणों सहित कुछ काल हमारे घरमें वास कर अपने चरणकमलकी रजसे इस निमिराजाके कुलको पवित्र करो ॥ ३६ ॥ राजा बहुलाश्वने जब इस प्रकार बहुत प्रार्थना की, तब लोकोंके उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथिलापुरीके पुरुष स्त्रियोंका कल्याण करनेके लिये कुछेक दिन तक वास किया ॥ ३७ ॥ जैसे जनकवंशोत्पन्न बहुलाश्व राजाको प्राप्त हुए, इसीप्रकार श्रुतदेव ब्राह्मण भी आया और श्रीकृष्णचन्द्र तथा मुनियोंको नमस्कार कर अत्यन्त हर्षित हो नाचनेलगा ॥ ३८ ॥ तृणपाटा लायकर बिछाय और कुशके आसन पर ब्राह्मणों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको बैठाय "भले आये" इसप्रकार बड़ाई कर स्त्रीसहित श्रुतदेव ब्राह्मण

उनके चरण धोनेलगा ॥ ३९ ॥ और अति प्रसन्नतासे पूर्ण मनोरथ हो बडभागी श्रुतदेव ब्राह्मणने चरणारविन्दके धोवन जलसे आत्मासहित संपूर्ण कुलको पवित्र किया ॥ ४० ॥ आमले आदि फलोंसे और मंगलरूप अमृतके समान मधुर जलसे तथा सुगंध युक्त मृत्तिका तुलसी, कुश और अनायास लब्ध पूजाकी सामग्रीसे, सत्त्वगुणको बढानेवाले शुद्ध अन्नसे श्रुतदेव ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करके आराधना करनेलगा ॥ ४१ ॥ जिनकी चरणरेणु सब तीर्थोंको पवित्र करनेवाली है और श्रीकृष्णचन्द्रके रहनेके स्थान ब्राह्मणोंका संग घररूप कुएँमें पड़े मुझे किसकारणसे प्राप्त हुआ, इस प्रकार ब्राह्मण तर्क करने लगा ॥ ४२ ॥ आतिथ्यकर भलीभाँति विराजमान किये ब्राह्मणोंके निकट स्त्री,

तदंभसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम् ॥ स्नापयांचक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥ फलार्हणोशीरशिवामृतांभसा मृदा सुरभ्या तुलसीकुशांबुजैः ॥ आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनांधसा ॥ ४१ ॥ स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्गृहांधकूपे पतितस्य संगमः ॥ यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥ सूपविष्टान्कृतातिथ्याञ्श्रुतदेव उपस्थितः ॥ सभार्यस्वजनापत्य उवाचांघ्र्यभिमर्शनः ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ॥ यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ॥ सृष्ट्वा लोकं परं स्वात्ममनुविश्यावभासते ॥ ४५ ॥ शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवंदताम् ॥ नृणां संवदतामंतर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥

कुटुम्ब और पुत्रसहित उपस्थितहो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोका स्पर्श करता श्रुतदेव यह वचन कहनेलगा ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव बोला कि, जिससमय शक्तिसे इस विश्वको रचकर अपनी सत्तासे इसमें प्रविष्टहुए, उसीसमय तुम परमपुरुष हमको प्राप्तहुए, परन्तु इस साँवरे स्वरूपका दर्शन अभी प्राप्त हुआ है ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार सोतेहुए पुरुषने अपनी अविद्यासे स्वप्नमें मनहीसे दूसरे शरीरको रचकर उसमें मानो प्रवेश किया हो इसीप्रकार तुमने भी इस संसारको निर्माणकर मानों इसमें घुसेहो, मुझको ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ तुम्हारी कथाओंको श्रवण करै तुम्हारे नामका कीर्त्तन करै, सदा तुम्हारी पूजा करै, तुमको प्रणाम करै, उन शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषोंकोभी आप हृदयमेंही दर्शन देते हो, परन्तु मुझे

तो आपने प्रत्यक्षही दर्शन दिया, इसकारण मुझे जान पडता है कि, मैं सबसे बढ़कर आजदिन सुभाग्य पुरुष हूं ॥ ४६ ॥ कर्मोंसे चलायमान चित्त पुरुषोंके हृदयमें भी स्थित हो, परन्तु अति दूरहो और तुम्हारी कथाको सुनने और तुम्हारे नाम लेनेसे जिनके निर्मल अंतःकरण होगये हैं, उन पुरुषोंके तुम सदा समीप रहतेहो ॥ ४७ ॥ देह और गेहमें अभिमान रहित पुरुषोंको मोक्ष देनेवाले और देह गेहमें अभिमान करनेवाले पुरुषोंको आप संसार देतेहो, कार्य महदादिक कारण माया जो दोनों उपाधि हैं उनको सेवन करतेहो अपनी मायासे आप ढके नहीं हो और जीवोंका ज्ञान मायासे आच्छादन करनेवाले आपको मैं प्रणाम करताहूं, तुम हम भक्तोंको शिक्षा दो, हे प्रकाशमान! हम तुम्हारा क्या पूजन करें? जबतक

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ॥ आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यंत्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ॥ सकारणाकारणलिंगमीयुषे स्वमाययाऽसंवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥ स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे ॥ एतदंतो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् ॥ संचरंति मया लोकान्पुनंतः पादरेणुभिः ॥ ५१ ॥ देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ॥ शनैः पुनंति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥

तुम नेत्रोंके सन्मुख नहीं आतेहो, तबतकही मनुष्यको क्लेश रहता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि; हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित! इसप्रकार श्रुतदेव ब्राह्मणका कहा वचन सुन शरणागतोंका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड हँसकर यह वचन बोले ॥ ५० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्राह्मण! यह मुनिलोग तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये यहाँ आये हैं यह तुम निश्चय जानो, क्योंकि यह पुरुष अपने चरणारविंदकी रजसे मनुष्योंको पवित्र करते मेरे साथ भ्रमण किया करते हैं ॥ ५१ ॥ देवता, क्षेत्र, तीर्थ, इनके दर्शन, स्पर्शन, अर्चन करनेसे

बहुत कालमें धीरे धीरे पवित्र करते हैं, सोभी महात्माओंकी इच्छा होय तो और ब्राह्मण तो शीघ्रही पवित्र करदेते हैं ॥ ५२ ॥ इस संसारमें समस्त प्राणियोंकी अपेक्षासे ब्राह्मण जन्महीसे श्रेष्ठ हैं और जो तप करके श्रेष्ठ होयतो इसमें कहनाही क्या है ? ॥५३॥ यह मेरा चतुर्भुज रूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे विशेष प्यारा नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण सर्व वेदमय हैं और देवतारूप मैं हूं और देवताओंकी सिद्धि वेदके आधीन होनेसे ब्राह्मण मुझे इस रूपसे भी अधिक प्रिय हैं ॥५४॥ खोटीबुद्धि गुणोंमें दोषको देखनेवाले पुरुष भी ब्राह्मण वेदमय हैं, यह न जान गुरुरूप, ब्राह्मणरूप सबके आत्मा मेरा निरादर करते हैं ॥ ५५ ॥ स्थावर,जंगम, यह विश्व और इस विश्वके कारण महदादिक पदार्थ सब ईश्वरही रूपहैं, इसप्रकारसे ब्राह्मण सब

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥ ५३ ॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ॥ गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥ चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ॥ मद्रूपाणीति चेतस्याऽऽधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥ तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय ॥ एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् ॥ आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥ ५८ ॥

और अपनी दृष्टिसे जानते हैं ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मण श्रुतदेव ! जैसी श्रद्धा मुझमें है, इसीप्रकार श्रद्धासहित ब्रह्मऋषियोंका पूजन करो, मुझमें इनमें एकसा भाव करोगे तो मेरी साक्षात् पूजा होजायगी और जो भेदभावसे मेरी बहुतसी संपत्तियोंसे भी पूजा करोगे तो मैं प्रसन्न न हूगा ॥ ५७ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित् ! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाय श्रुतदेव ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रसहित सब ब्राह्मणोंका एकभावसे आराधन कर सुन्दरगतिको प्राप्त हुआ और मिथिलापुरीके राजाने भी सुन्दरगति पाई ॥ ५८ ॥

हे राजन्! इसप्रकार भक्तोंपर प्रीतिकरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने भक्त बहुलाश्व और श्रुतदेवके यहाँ वासकर सन्मार्ग अर्थात् उपासना काण्ड, ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड इन तीनों काण्डोंका उपदेशकर फिर द्वारकापुरीमें आनकर सुशोभित हुए ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रुतदेवानुग्रहो नाम षड्शीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ दोहा–सत्तासी अध्यायमें, नारद हरि सुखधाम। परब्रह्म निश्चय कियो, वेदस्तुतिपरिणाम ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! गत अध्यायके अंतमें भगवान् वेदका मार्ग ब्रह्मपर इसप्रकार उपदेश करके द्वारकाको चलेगये, यह कहा, तहाँ शब्दरूप वेदोंको ब्रह्मपरत्व नहीं बनता, क्योंकि मुख्या, लक्षणा और गौणी इन तीन प्रकारकी वृत्तियोंसे शब्दकी प्रवृत्ति होती है मुख्यावृत्ति भी दो प्रकारकी है, रूढि और योग जो वस्तुस्वरूप जाति अथवा क्रियासे वा गुणसे निर्देश करी जाय, उसमें रूढिकी प्रवृत्ति होती है, जिसका स्वरूप जाति, क्रिया, गुणसे निर्देश न हो, उसमें यह संभव नहीं हो सकता, सो ब्रह्म तो

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ॥ उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥ कथं चरंति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बुद्धींद्रिय मनः प्राणाञ्जनानामसृजत्प्रभुः ॥ मात्राऽर्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥ २ ॥

जाति, गुण, क्रिया, अथवा स्वरूपसे निर्देश नहीं होता, इससे ब्रह्ममें रूढिकी प्रवृत्ति नहीं होसकती, और कार्य कारणसे परे और असंग होनेसे योगवृत्तिका भी संभव नहीं होसकता और लक्षणामें सम्बन्धकी आवश्यकता है, ब्रह्म सब सम्बन्धसे रहित है, इस लक्षणावृत्तिका भी संभव नहीं होसक्ता और जो श्रुति गुणका निरूपण करै, ब्रह्म स्वयं निर्गुणहै, इससे गौणी वृत्तिसे ब्रह्मका निरूपण नहीं होसकता, फिर ब्रह्मको श्रुति किस प्रकारसे प्रतिपादन करतीहै? ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्का यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! नित्यमुक्त सर्वशक्तिमान् ईश्वरने प्रलयकालमें अपनेमें लीनहुए प्राणियोंके विषयभोगरूप अर्थ जन्मसे कर्मपर्यन्त रूप धर्म परलोकमें उनके सुख भोग रूप काम और कल्पना निवृत्तिरूप मोक्ष पुरुषार्थ देनेके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राण इनकी रचना की है, यदि यह न हों तौ अर्थ धर्म कामकी प्राप्ति

नहीं होसक्ती और जो स्वरूपका विचार न हो तो मोक्ष भी नहीं मिलसकतीहै "यःसर्वज्ञः सर्वशक्तिमान्" इस लक्षणक निरूपण करनेवाली श्रुति सगुणब्रह्मका निरूपण करतीहै, और जीवोंका संसारनिवृत्तिके लिये (तत्त्वमसि–वह तूहै) यह वाक्य ईश्वरकी ईश्वरत प्रतिपादन करताहै, इसमें नित्य मुक्त ईश्वरका वाचक (तत्) शब्द संसारी जीवका वाचक त्वं पदका समानाधिकरण्य प्रतीत होताहै, सो यह अजहद् स्वार्थीलक्षणासे अथवा भागत्याग लक्षणासे बन सकै हैं, तत् पद तो सर्वज्ञादि गुणवाले ईश्वरका और त्वंपद अल्पज्ञादि गुणवाले पदार्थका वाचक है, इन परस्पर विरुद्ध गुणवाले शब्दोंमेंसे परस्पर विरुद्ध रूप अंशका त्यागन करनेसे दोनोंमें प्राप्त चैतन्य रूपका समान अंश ग्रहण करके (तत् त्वं) यह दोनों पद ब्रह्मरूप एक अर्थके प्रतिपादक होकर एकताका निरूपणकर शुद्ध ब्रह्मको कथन करतेहैं, और (स्थूलमनणवह्रस्वम्) इत्यादि निषेधका निरूपण करनेवाली श्रुति तत्पदार्थके शोधन करनेमें चारितार्थ हो उपाधिके निषेधसे साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें पर्यवसान होतीहै, उत्पत्ति,

सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ॥ श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥ ३ ॥
अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ॥ नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥
एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ॥ सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥
यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ॥ धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥

पालन और प्रलयकी प्रतिपादक श्रुति भी आवागमनरूप सृष्टिका निरूपण कर उसीसे वैराग्यरूप ज्ञानके साधनोंका उपदेश करती ज्ञानके परम्परा सम्बन्धसे ब्रह्मकोही प्रतिपादन करती है, उपासनाकी निरूपण करनेवाली श्रुति उपासनाद्वारा अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञानसाधनका उपदेश देती ज्ञानद्वारा ब्रह्मकोही प्रतिपादन करती है, इसकारण सर्वथा श्रुति ब्रह्मकोही प्रतिपादन करतीहै, यह अभिप्राय है ॥ २ ॥ यह जो ब्रह्मपर उपनिषद् है, सो प्रथमहुए सनकादिकोंने पहले धारण करे हैं, जो पुरुष निष्किंचन होकर श्रद्धापूर्वक इसे धारण करेंगे, सो मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम! यहाँ तुम्हें नारायणसम्बन्धी गाथा हम सुनातेहैं, जिस गाथामें नारदजी और ऋषि नारायणजीका संवादहै ॥४॥ एक समय भगवान्के प्यारे नारदजी समस्त लोकोंमें फिरते फिरते सनातन ऋषिको देखनेके लिये नारायणके आश्रम बद्रिकाश्रममें आये ॥५॥ जो नारायण भरतखण्डमें

लोकोंके कारण क्षेम और मंगलके लिये धर्मज्ञानसे युक्त तपको कल्पपर्यन्त करतेहैं *॥ ६ ॥ वहाँ कलाप ग्रामके वासी ऋपियोंसहित विराजमान नारायणजीसे नम्र होकर यह पूँछनेलगे॥७॥ उससमय ब्रह्मविचार जनलोकनिवासी सनकादिकोंमें जो हुआथा, सोई भगवान् नव ऋपियोंके श्रवण करते नारदजीके अर्थ कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नारदजी ! पहले जनलोकमें ब्रह्माके मनसे उत्पन्नहुए नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादिक मुनियोंका ब्रह्मसत्र अर्थात् ब्रह्मविद्याका विचार हुआथा ॥९॥ अहो ! यह ब्रह्मसत्र मुझे ज्ञात नहीं,इसपर कहते हैं कि हे नारद ! उस समय श्वेतद्वीपके

तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ॥ परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥ ७ ॥ तस्मै ह्यवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ॥ यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायंभुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा ॥ तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ॥ ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ॥ तत्र हाऽयमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनु पृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः ॥ अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥ ११ ॥ सनंदन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः ॥ तदंते बोधयांचक्रुस्तल्लिंगैः श्रुतयः परम् ॥ १२ ॥

ईश्वर अनिरुद्ध मूर्त्ति देखनेके लिये श्वेतद्वीपमें तुम गये थे तब पीछे ब्रह्मवाद हुआ ब्रह्मवादमें श्रुति भगवान्का प्रतिपादन करती हैं, वहाँ यही प्रश्न हुआ जो तुमने मुझसे पूछाहै॥१०॥यद्यपि श्रवण तप शील शास्त्राभ्यास मित्र, शत्रु, मध्यम इन सबमें सनकादिक समानहैं परन्तु तोभी एकको वक्ता बनाकर संपूर्ण श्रोता होगये ॥ ११॥ सनंदनजी बोले, कि अपने निर्माण किये इस संसारका नाशकर अपनी शक्ति सहित सोये भगवान्को प्रलयके

* शंका—बद्रिकाश्रममें नारायणनाम मुनि मनुष्योंके कल्याण होनेके लिये बहुत युग कल्प कल्पान्तसे तप करते हैं सो उस तप करनेसे मनुष्योंका क्या कल्याण होताहै ?॥ उत्तर—सब जीवोंको इन्द्रियोंको अलग अलग विषय सुख सब लोकमें, है परन्तु नारायणनाम मुनि भरतखण्डमें तप करते हैं, इसलिये मनुष्योंको ज्ञानका सुख तथा मोक्षरूप कल्याण ज्ञानसे होना सिवाय भरतखण्डके दूसरे द्वीप तथा खण्ड तथा और लोकमें ज्ञान नहीहै हे श्रोताओ ! ज्ञानसे दूसरा कल्याण मनुष्योंको कोई भी नहीं है इसलिये मनुष्योंके कल्याण होनेके कारण नारायण मुनि तप करतेहैं ऐसा लिखाहै ॥

अंतसमयमें ब्रह्मके प्रतिपादक वचनोंसे श्रुतियें जगानेलगीं ॥ १२ ॥ जैसे रात्रिके सोये चक्रवर्त्ती राजाको प्रातःकालको राजोपजीवी बंदीजन उठ उसके पराक्रमके सुन्दर यशको वर्णन करके जगाते हैं ॥ १३ ॥ श्रुतियें बोलीं कि; हे सर्वविजयी ईश्वर ! तुम्हारी जय हो, आप अपने वैभवको प्रगट करो और इस घोरनिद्राको त्यागकर हमारा प्रतिपादन करो, जिस प्रकार स्त्री और दूसरे पुरुषको छलनेके लिये अनेक प्रकारके रूप और गुण धारण करतीहै, उसीप्रकार आनन्दादिकका आवरण करनेके लिये गुण ग्रहण करनेवाली स्थावर और जंगम शरीराश्रित जीवोंकी अविद्याका नाश करो, क्योंकि अनादिकालसे यह अविद्या संसारके जीवोंको मोहित करके अनेक अनेक प्रकारके दुःख दिखाती है, और इसीकारण प्राणियोंको अनेक योनि-योंमें जन्म लेना पड़ताहै, यह सब अविद्याहीका प्रभावहै, क्योंकि यह अविद्या महाबलवान है, मनुष्योंकी तो क्या सामर्थ्य है ? देवताओंके मनको भी मोहनेवालीहै, वहभी इसके दूर करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते, आपही इसको दूर कर सक्तेहो, क्योकि आप सर्वान्तर्यामी और मायासे रहित हो,

यथा शयानं सम्राजं बंदिनस्तत्पराक्रमैः ॥ प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयंत्यनुजीविनः ॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः ॥ जयजय जह्यजामजित दोषगृहीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥ अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥ १४ ॥ बृहदुपलब्धमेतदवयंत्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाऽविकृतात् ॥ अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथाभवंति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥ १५ ॥

और इस महागंभीर संसारसागरसे पार उतार मोक्षके देनेवाले आपही हो, इसी लिये वारम्वार आपसे यह निवेदन है, कि आप इन जीवोंपर अनुग्रह करके इस महाप्रबल अविद्याका नाश करो, क्योंकि माया आपके वश होनेसे सब ऐश्वर्य आपको स्वरूपहीसे प्राप्त है इसीकारण अविद्या आपमें किसीप्रकारका दोष नहीं लगासक्ती और आप सनातन धर्म पालनेके और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये जगत्में अनेक अवतार धारण करतेहो, हे सर्व प्राणियोंके बोध करनेवाले परमेश्वर ! सृष्टिकी आदि समयमें माया करके क्रीडा करतेहो और आनन्द देकर अपने आत्मा करके वर्त्तमान जो आप हो सो आपका प्रतिपादन करै है और आपही सम्पूर्ण शक्तियोंके जगानेवाले हो, तुम अखण्ड विभव और ज्ञानशक्तिसे जीवोंका अज्ञान दूर करो हो, इस विषयमें हम (श्रुति) ही प्रमाण हैं ॥ १४ ॥ (१) यदि कहो कि, मंत्रोंमें अग्नि आदि देवताओंका प्रतिपादन देखनेमें

आताहै, वेभी सब तुम्हारेही रूपकेहैं, ऐसा ज्ञानी जानते हैं, क्योंकि यह जो कुछ दृश्यमान है, इसके न होनेपर आपही अवशेष रहतेहो, इस सब जगत्की उत्पत्ति नाश आपहीमें होता है, जैसे घटादिकोंका उदय, अस्त मृत्तिकामें होताहै, मंत्र दृष्टा ऋषियोंके मन और वचनका तात्पर्य तुम्हारे विषय है, अन्यमें नहीं, जैसे मनुष्य अपने चरण मृत्तिका, पाषाण, ईंट, इनके ऊपर धरताहै, परन्तु भूमिसे पृथक् नहीं है, उसी प्रकार जो कुछ विचार है सो सब तुम्हींसे हुआहै, सर्व कारण परमार्थरूप तुम हो इस प्रकार हम (वेद) प्रतिपादन करतेहैं ॥ १५ ॥ (२) ॥ हे त्रिगुण मायामृगीके नचानेवाले ! विवेकी पुरुष तुम्हारे अखिल लोकोंके मल नाश करनेवाले कथारूपी अमृतके समुद्रको सेवन करके पाप और दुःखोंको त्यागदेते हैं जब तुम्हारी कथामात्रसेही पापोंका नाश होजाताहै, तब स्वरूपका स्मरणकर अंतःकरणके गुण रागादिक और कालके गुण जरादिक जिनके निवृत्त होगये हैं इसमें फिर क्या ? और हे प्रभो ! तुम्हारा परम अखण्ड आनंद अनुभव स्वरूपका भजन करके दुःखोंको त्यागे तो इसमें कहनाही क्या है ?

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ॥ किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजंति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ १६ ॥ दृतय इव श्वसंत्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोंऽडमसृजन्यदनुग्रहतः ॥ पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ १७ ॥

॥ १६ ॥ (३) अब जो पुरुष तुम्हारा भजन नहीं करते उनकी निन्दा है, और जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करते हैं, उनका सफल जन्म है, इस प्रकार स्तुति करते हैं, अथवा जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करके श्वासोंको पूर्ण करते हैं वही सफलजन्मा हैं और जो विना भजन करे श्वास लेते हैं, वह लुहारकी धौंकनीके समान वृथा श्वास हैं, तुम्हारे भजनके विना कृतघ्नियोंको फलकी सिद्धि नहीं होती फिर यह कहते कि जिसके अनुग्रहसे महत्तत्त्व अहंकारादिक तत्त्व इस देहको रचते हैं, उस देहमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश जो देह, प्राण, मन, बुद्धि और ज्ञान कहलातेहैं उनमें प्रवेश करके उनही उन आकारोंसे चेतन करनेवाले तुम्हीं हो इसप्रकार वेदने अंतमें वर्णन किया है, अन्नमयादिकों केसा आकारवाला पुरुष अन्नमयादिकोंमें मिल रहा है यद्यपि यह बात सत्य है परन्तु तोभी तुम्हारा असंगत्व नहीं मिटता तो अन्नमयादिकोंके अंतमेंही इसलिये रूपको वर्णन करते हैं, स्थूल सूक्ष्मसे परे हो और इनमें अविशेषरूप हो, इस कारण सत्य हो; शाखाचन्द्रकी तुल्य शुद्ध रूप

दिखानेके लिये अन्नमयादिकोंमें सम्बन्ध कहाहै, जैसे शुद्ध चन्द्रमाके दिखानेको वृक्षकी शाखाका अवलम्बन करतेहैं, इसीप्रकार ब्रह्मके दिखानेको कोशादिका अवलम्बन है॥ १७॥ (४)हे अनन्त ! जो मनुष्य ऋषिवर्त्म अर्थात् वेदोक्त कर्ममार्गमें स्थित होकर वेदके उदररूपी कर्मकी उपासना करते हैं अर्थात् अग्निहोत्र याग करते हैं भगवद्दर्शनमें रुचि नहीं करते वह कूर्पदृश हैं अर्थात् उनके नेत्रोंमें धूरिपडी हुई है, इसलिये सूक्ष्मवस्तुका दर्शन नहीं करसकते "यज्ञो वै विष्णुः" इस श्रुतिके अनुसार वह भी भगवदुपासकही है और योगीजन नाड़ियों द्वारा हृदयमें भगवदुपासना करते हैं, इस लिये वे आरुणी अर्थात् अरुणोदयमें थोडा प्रकाश होजाता है, इसीप्रकार इनकी उपासना है और आपकी प्राप्तिका स्थान सुषुम्ना नाडी जो मूलाधारसे हृदयमें हो ब्रह्मरंध्रतक गई है, जिसको पाकर फिर प्राणी संसारमें नहीं आते इसीका नाम मुक्ति है ॥ १८ ॥ (५) तुम सबके उपादान कारण

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ॥ तत उदगादनंत तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतंति कृतांतमुखे ॥ १८ ॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्त्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः ॥ अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयंत्यभिविपण्यव एकरसम् ॥ १९ ॥ स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरंतरसंवरणं तव पुरुषं वदंत्यखिलशक्तिधृतोंशकृतम् ॥ इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेंघ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥ २० ॥

हो, इसलिये प्रथमही सबसे वर्त्तमान हो, इसीसे तुम्हारे निर्मित किये, ऊंच, नीच, मध्यम देहोंमें तुम्हारा प्रवेश होना संभव नहीं होसकता, तो भी जैसे उनमें प्रवेश किये हो, इसीप्रकारसे देहादिकोंका अनुकरण करते न्यूनाधिक प्रतीत होते हो जैसे अग्नि तारतम्यरहित है परन्तु काष्ठमें व्याप्त होनेसे उसीके समान प्रतीत होती है, इसीप्रकार आपको सब उपाधिसे रहित समान एक रस जानकर दोनों लोकके कर्म फल रहित उज्ज्वल बुद्धिवाले मनुष्य असत्य देहादिमें आपको ही सत्य मानकर तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ १९ ॥ (६) अपने कर्मोंसे प्राप्त हुये नरकादिक देहमें यह जीव भोक्तृत्वसे वर्त्तमान है, वह जीव भीतर बाहर आवरण रहित संपूर्ण शक्तियोंके धारण करनेवाले तुम्हारा अंशहीहैं, इस प्रकार पण्डित जीवकी गतिको विचार वेदोंके उत्पत्ति स्थान और संसारसे छुड़ानेवाले तुम्हारे चरणोंकी उपासना करते हैं, इसप्रकार विश्वास

पूर्वक अर्चन वन्दन करना यही मत्यलोकमें उचित है ॥ २० ॥ (७) हे ईश्वर ! दुर्बोध आत्मतत्त्वके जनानेके लिये अवतार धारण करनेवाले तुम्हारे चरित्ररूपी अमृतसमुद्रमें अवगाहनकर श्रमरहित हो कोई एक तुम्हारे भक्त मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते, और तुम्हारे चरणकमलमें अवगाहन कर हंसकेसमान रमण करते हैं, ऐसे भक्तोंके संगके लिये घर भी उन्होंने त्याग दिये हैं, जब गृहादिका त्यागन कर दिया, तब परलोकके सुखकी क्या कथा है ? इसलिये आपकी भक्ति, मुक्तिसे भी अधिक है ॥ २१ ॥ (८) तुम्हारी सेवाका साधक यह शरीर जब आत्मा सुहृद और प्रियके समान स्वाधीन है, तो भी सन्मुख स्थित हितकारी प्यारे आत्मारूप आपका साक्षात भावसे भजन नहीं करते हैं, और देहादिके लालन पालन करनेमें पडे रहते हैं, यह बडे कष्टकी बात है, मिथ्याभूत देहादिकोंके सेवनसे असत् उपासनामें वासनावाले नीच देहको धारण करनेवाले बडे

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ॥ न परिलषंति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥ त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ॥ न बत रमंत्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥ २२ ॥ निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ॥ स्त्रिय उरगेंद्रभोगभुजदंडविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोंघ्रिसरोजसुधाः ॥ २३ ॥ क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ॥ तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥ २४ ॥

भयरूप संसारमें भ्रमण करते हैं, इसलिये वह आत्मघाती हैं ॥२२॥ (९) प्राण, मन, इन्द्रिय जीतकर दृढ योगके करनेवाले मुनिलोग हृदयमें जिसकी उपासना करतेहैं, वह जिस तत्त्वको योगद्वारा प्राप्त हुये हैं, उसीप्रकार शत्रु भी तुम्हारे स्मरणसे तुमको प्राप्त हुये हैं, तथा शेषके शरीरके तुल्य तुम्हारे भुजदण्डमें आसक्त बुद्धि भी तुमको प्राप्त हुई है, इसी कारण हम कहते हैं कि, आपकी कृपादृष्टि सबपर समान है और हम तुम्हें देश काल परिच्छेद रहित देखते हैं, तुम्हारा प्रताप ऐसा है कि, जो जिस भावसे आपका ध्यान करे, उन सबको तुम्हारे शरीरकी प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥ (१०) हे भगवन् ! इस संसारमें पूर्व सिद्ध तुमको आधुनिक उत्पत्ति विनाशसे युक्त पुरुष कैसे जानेंगे ? अर्थात् नहीं जानेंगे, तुमसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है

ब्रह्माके पीछे अध्यात्मक आधिदैवके देवताओंके गण उत्पन्न हुये, इसके पीछे सब चराचर उत्पन्न हुये; इसलिये इन सबका वृत्तान्त आप तो भलीभाँति जानते हो क्योंकि, आप तो सबसे पूर्व अनादि हैं, फिर आपको पीछे उत्पन्न होनेवाला और नाशवान् कौन मूर्ख कह सक्ता है ? जिस समय तुम संहार करके शयन करते हो, उस समय जीवोंको ज्ञान साधन नहीं है, इसलिये प्रलयके समय स्थूल आकाशादिक नहीं हैं तथा स्थूल सूक्ष्मसे आरब्ध शरीर भी नहीं है और शरीरका कारणरूप कालका विषमभाव भी नहीं है, उस समय इंद्रिय प्राणादिक कुछ नहीं हैं और सबका जाननेवाला पुरुष भी नहीं है केवल तात्पर्य यह है कि, पूर्व कालके पुरुष अपने पीछे हुओंके वृत्तान्तको जानतेहैं परन्तु पीछे उत्पन्नहुये पूर्वजोंका चरित्र नहीं जानसक्ते, जिसप्रकार पिता पुत्रके वृत्तान्तको तो भले प्रकार जानता है, क्योंकि उसके सामने उसका जन्म और सब कार्य हुये, परन्तु पुत्र पिताका वृत्तान्त किसी रीतिसे नहीं जानसक्ता क्योंकि जब उसका जन्म कर्मही उसके आगे नहीं हुवा, फिर उसके

जनिमसतः सतोमृतिमुतात्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मरंत्युपदिशंति त आरुपितैः॥त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥ सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशंत्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः॥ न हि विकृतिं त्यजंति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥ २६ ॥

भेदभावको वह कैसे जानसक्ता है, इसीप्रकार आपके पीछे हुये सब प्राणी आपको नहीं जान सक्ते इससे आपका भजनही करना उचित है ॥ २४ ॥ (११) मिथ्याभूत जगत्की उत्पत्ति है, अर्थात् यह पहले कुछ नहींथा इसप्रकार वैशेषिकादिक आचार्य कहते हैं और जीवोंमें ब्रह्मत्त्व नहीं है, परन्तु योगसाधनसे होजाता है, यह योगशास्त्रवाले कहते हैं और इक्कीस प्रकारके दुःखोंका नाश मोक्ष है, इस प्रकार नैयायिक कहते हैं, और सांख्याचार्य आत्मामें भेदभाव मानतेहैं और कर्मफलके व्यवहारको मीमांसक सत्य कहते हैं, सो संपूर्ण आरोपित भ्रमसे ही उपदेश करते हैं, तत्त्वदृष्टिसे उपदेश नहीं करते, वास्तवमें वह पुरुष त्रिगुणमय हो तो इनका कहना सत्य है, सो नहीं, त्रिगुणमय पुरुष यह भेद तुम्हारे विषे अज्ञानसे किया है, तुम अज्ञानसे परे संगरहित ज्ञानघन हो, इसलिये तुममें अज्ञानका होना संभव नहीं॥२५॥ (१२) जो पुरुष असत् नहीं उपजै और त्रिगुणमय पुरुष नहीं है, तो इससे यह विदित हुवा यहसब प्रपंच और पुरुष संपूर्णतः तुमसे भिन्न नहीं है, सो उनके स्वरूपसे सत्यकी प्रतीति

कैसे संभव है ? मनोमात्रविलसित, त्रिगुणात्मक प्रपंच मिथ्याही है, तो सत्य कैसे प्रतीत हो सक्ता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, तुम अधिष्ठान हो इसकारण तुम्हारी सत्तासे सत्यसा प्रतीत होता है, केवल निषेधसे प्रतीत हुआ है, अर्थात् अभिप्रायसे मनुष्यसे पुरुषकी भिन्न जो सत्ता प्रतीत होती है सो मनमात्रका विलास है, आत्माके जाननेवाले इस भोक्ता और भोग्यरूप जगत्को स्थितहुए आत्माकी सत्तासेही सत्तावाला कहते हैं आत्मासे भिन्नसत्तावाला नहीं मानते आत्माका कार्य है इसलिये भिन्न नहीं है, जैसे स्वर्णके विकार कुण्डलादिक आभूषणोंको स्वर्णके लेनेवाले त्याग नहीं करते हैं, किन्तु स्वर्णही जानकर ग्रहण करते हैं, इसकारणसे अपने किये विश्वमें प्रविष्ट पुरुषरूप जीव भी आत्माही है, यह निश्चय है ॥ २६ ॥ (१३) परमात्माको सर्वत्र जान लेना और भक्ति न करना यह बात नहीं परन्तु उसकी सदा भक्ति करनी, क्योंकि जो आपको संपूर्ण पदार्थोंमें स्थित जानकर तुम्हारी सेवा करते हैं, वे संसारको तिरस्कार कर मृत्युके मस्तकपर चरणधर मुक्त होजाते हैं और जो तुमसे विमुख

तव परि ये चरंत्यखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदाऽऽक्रमंत्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः॥परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनंति न ये विमुखाः ॥ २७॥ त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहंति समदंत्यजयाऽनिमिषाः ॥ वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥ २८ ॥ स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ॥ न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवाऽपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ २९ ॥

हैं और तुम्हारे अभक्त हैं उन्हें पशुओंके समान वाणीसे तुम बाँधते हो और जिनने आपसे प्रेम किया है, वह निश्चय आपको और दूसरोंको पवित्र कर सकते हैं ॥ २७ ॥ (१४) हे प्रभो ! तुम इन्द्रियोंके संबंधसे रहित हो और समस्त प्राणियोंकी इन्द्रियोंकी शक्तियोंको प्रवृत्ति करते हो, अपने स्वरूपसेही प्रकाशमान हो, स्वतःसिद्ध ज्ञानशक्ति होनेसे तुमको इंद्रियोंकी अपेक्षा नहींहै, इसीकारणसे विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक और इन्द्रादिक देवता संपूर्ण माया सहित तुम्हारी पूजा करते हैं और मनुष्योंका दिया द्रव्य कव्यादिक बलि भक्षण करते हैं, जैसे संपूर्ण पृथ्वीके ईश्वर चक्रवर्ती (राजा)को खण्ड मंडलोंके राजा भेट देते हैं और आप अपनी प्रजासे भेंट लेते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मणादिक तुमको भेंट देते हैं और जिन्हें आपने अधिकार दे रक्खाहै, उसी अधिकारको तुम्हारे भयसे पूर्णकरते हैं ॥ २८ ॥ (१५) हे नित्य मुक्त ! जिस समय मायासे

तुम्हारा विहार होता है, उसी समय आपकी दृष्टिसे प्रगटहुए कर्म अथवा कर्मयुक्त लिंग शरीरसे स्थावर, जंगम जातिके जीव उत्पन्न होतेहैं, यदि उत्तम, मध्यम, अधम सृष्टि होनेमें उन जीवोंके पूर्व कर्म निमित्त न मानैं तो मन, वाणीसे परे शून्य भावसे बराबरीके करनेवाले आकाशकी सदृश संपूर्णमें सब भाव और परमदयालु आपमें विषमताका लेश भी नहीं है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टिमें कोई अपना पराया नहीं है, इसलिये आपका भजनही मुख्य है ॥ २९ ॥ (१६) ॥ जो जीव अनंत और रूपसे नित्य हैं और सर्वव्यापी हैं, तो यह पक्ष हमारा नहीं, क्योंकि यदि जीव वास्तवमें अनंत नित्य और उसी रूपसे व्यापक हो तो वह व्यापकतादि गुणोंसे आपके समान होगये जब समान हुए तो आप उनके नियन्ता नहीं होसकते, जो यह न मानैं तो आपसे उनका नियम संभव न हो, क्योंकि जो वस्तु उपाधिसे जिस पदार्थका विकाररूप है, वह पदार्थ उस वस्तुका निश्चय नियन्ता होगा, क्योंकि उसमें अनुस्यूत रहा, वह पदार्थ कारणतासे उस वस्तुका त्याग नहीं करना तुम्हारे स्वरूपसे " यत्" " तत्" शब्दके अतिरिक्त कुछ

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ॥ अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियंतृ भवेत्समर्ममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ ३० ॥ न घटत उद्भवः प्रकृतिपुरुषयोरजयोरुभययुजा भवंत्यसुभृतो जलबुद्बुदवत् ॥ त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥ ३१ ॥

भी कहा जाय, ऐसे नहीं हैं, क्योंकि हम ब्रह्मको जानते हैं, इसप्रकार जो कहते हैं, वह ब्रह्मस्वरूपको कुछ भी नहीं जानते, क्योंकि ब्रह्म किसीका विषय नहीं और जो जाननेमें आता है, वह अनात्म पदार्थ है ॥ ३० ॥ (१७) ॥ प्रकृति और पुरुषका जन्म संभव नहीं क्योंकि प्रकृतिपुरुष अजन्मा हैं, इसलिये प्रकृति पुरुषके संबंधसे जीव जन्म लेता है, जैसे जलमें बबूला केवल जलसे और पवनसे भी नहीं उत्पन्न होता है, किन्तु दोनोंसे उत्पन्न होताहै तुम कारणरूप ईश्वरहो, तुम्हारे विषे अनेक नाम रूप गुण सहित जीव लीन होते हैं, जैसे शहतमें संपूर्ण वनस्पतियोंके रस लीन होते हैं, जैसे मधुमें सम्पूर्ण फूलोंके रस विशेषतासे दृष्टि नहीं आते, परन्तु सामान्य रूपसे दीख सकते हैं, वैसे निद्रामें और प्रलयकालमें आपमें लय हुए जीव विशेषरूपसे नहीं रहते और मोक्ष तो आपके निरुपाधिक रूपमें जो लीन होते हैं, जैसे समुद्रमें सम्पूर्ण नदी लीन होती हैं,

ऐसे वह मुक्तिदशामें आपमें लीन होजाते हैं ॥ ३१ ॥ (१८) जीवोंके विषे तुम्हारी मायासे वारम्वार जन्म, मरण रूप यह भ्रमण यह जानकर सुबुद्धि पुरुष संसारके निवृत्ति करनेवाले तुम्हारे विषे भावना करते हैं और जो तुम्हारी शरण होकर भजन करते हैं, उनको संसारका भय नहीं होता, क्योंकि शीत, उष्ण वर्षानेवाला संवत्सररूपी काल तुम्हारा भ्रूभंगरूप है और जो तुम्हारे शरण नहीं हैं उनके रक्षक नहीं; किन्तु भयकारक हो इसलिये बुद्धिमान् पुरुष तुममें भाव करते हैं ॥ ३२ ॥ (१९) हे अजित! मनके निग्रह करनेसे ऐसा सेवन बनसक्ता है; परमदेव गुरुके चरणकी शरण लिये विना जो इन्द्रिय प्राणोंको जीतकर अति चंचल दुर्जय मनरूपी घोड़ेके जीतनेका यत्न करते हैं, वह उपायसे खेद पाते हैं और विघ्नोंसे व्याकुल होते हैं, क्योंकि, मनका जीतना गुरुकी कृपासेही होताहै, जैसे जो व्यापारी मल्लाहको नहीं

नृषु तव मायया भ्रममभीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम् ॥ कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥३२॥ विजितहृषीकवायुभिरदांतमनस्तुरगं य इह यतंति यंतुमतिलोलमुपायखिदः ॥ व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाऽज संत्यक्तकर्णधरा जलधौ ॥ ३३ ॥ स्वजनसुतात्मदारधनधामधराऽसुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ॥ इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति कोन्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ३४ ॥ भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदांबुजहृदोऽभिदंघ्रिजलाः ॥ दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥

रखते, वह समुद्रमें पड़े दुःख पाते हैं ॥ ३३ ॥ (२०) जो प्राणी आपका आश्रय लेते हैं, उनको सर्व सुखके स्थान आत्मरूप आपके होते सुजन, पुत्र, देह, घर, पृथ्वी, प्राण, रथ, इत्यादि वस्तुसे क्या प्रयोजन है? जो पुरुष आत्माका सेवन करता है, उसको इन तुच्छ पदार्थोंसे क्या प्रयोजन है? सत्य परमार्थ सुखको न जान स्त्री पुरुष मिलकर रतिके लिये विचरते हैं; उनको इस संसारमें तुम्हारे सिवाय कौन सुख है? अर्थात् कोई नहीं, यह संसार आपसे मिथ्याभूत और साररहित है, इसलिये तुम्हाराही भजन करना उचित है ॥ ३४ ॥ (२१) अहंकारको त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दको हृदयमें धारण करना तुम्हारे भक्त ऋषि मुनि कि, जिनके चरणोंका जल स्वतःही पापनाशक है, परन्तु तो भी इस पृथ्वीमें

आपका भजनरूप महापुण्य करनेवाले महात्माजनोंके आश्रमोंका और अतिपावन तीर्थ क्षेत्रोंका सेवन करते हैं, और पुरुषोंके, ज्ञान वैराग्यके नाश
करनेवाले गृहादिकोंका सेवन नहीं करते हैं, जिन्हें गुरुकी कृपासे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति और संसारकी मिथ्या प्रतीत होगई है, वह महात्माओंकी सं
गति करते हैं, क्योंकि जिसे एकबार भी आत्माके सुखका अनुभव हुआ है, वह कदाचित् गृहमें आसक्त नहीं होता, तब उत्तम पुरुष किसप्रकारसे
घरमें आसक्त हो सक्ते हैं ॥३५॥ (२२) यह जगत् सत्यसे उत्पन्न हुआ इसलिये सत्य है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्नहुए कुण्डलादिक सुवर्णही हैं,
इसप्रकार मानोगे तो व्यभिचार प्राप्त होगा, जैसे पितासे पुत्र होता है, सो प्रथम क्यों मरजाता है ? तथा पृथ्वीसे उत्पन्नहुए घटादिक क्यों फूट जाते
हैं इससे यह जगत् मिथ्या है, तो कहते हैं कि, उत्पन्न नाम उपादान कारण नहीं, निमित्त कारण है इससे कुछ दोष नहीं, इसमें दोष देकर समा
धान करते हैं कि, जो वस्तु जिस उपादानसे हुई हो वह वस्तु उस उपादानसे भिन्न नहीं होती है, यह भी नियत नहीं, क्योंकि रज्जुरूप उपादा
नसे हुआ सर्प रज्जुसे पृथक् होता है रज्जु सत्य और सर्प मिथ्या होता है, यदि सर्प सत्य हो तो जिस प्रकार कुण्डलका बाध नहीं होता, इसी

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व मृषा न तथोभययुक् ॥
व्यवहृतये विकल्प इषितोंधपरंपरया भ्रमयति भारतीत उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥

प्रकार सर्पका भी बाध न हो " शंका " रज्जुमें हुए सर्पमें केवल रज्जुही उपादान कारण नहीं, किन्तु अज्ञान भी उपादानका कारण है, इस
प्रकारके उपादान कारणसे हुई वस्तुका मिथ्यापन बनसके और जो केवल सत्य उपादान कारणसे उत्पन्न हो उसको मिथ्यापना सिद्ध नहीं हो
सकता, इसलिये द्वैत असत्य नहीं "उत्तर" यह द्वैत भी सत्यरूप ब्रह्म और उसके साथ अज्ञानरूप उपादान कारणसे हुआ है " शंका " जो
इसप्रकार जगत् नित्य कहा है, तो मिथ्या किस प्रकार है ? " समाधान " कर्मफलको नित्य कहना वेदका तात्पर्य नहीं, किन्तु उन वाक्योंसे
कर्मकी स्तुति की है, यदि वेद कर्मफलको नित्य मानता तो जैसे यहाँ परिश्रमसे उत्पन्न किये पदार्थ कालान्तरमें क्षीण होजाते हैं, उसी
प्रकार परलोकमें पुण्यका सुख कालान्तरमें नष्ट होजाताहै " क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति " इसकारण कर्म श्रद्धाके भारसे जिनकी बुद्धि मंद
होगई है, उन्हें वेद वाणी गौणी और लक्षणा वृत्तिमें डालकर भ्रमयुक्त करदेती है, इससे वह यथार्थ वेदके तात्पर्यको न जानकर कर्मफलको

नित्य मनाते हैं, कर्मसे अंतःकरण शुद्ध होता है, इस बातको नहीं जानते आशय यह है कि, जैसे मकरी अपनेमेंसे तन्तु निकाल फिर आपही ग्रहण करलेती है, उसी प्रकार ईश्वर जगत्को उत्पन्नकर अपनेमें लय कर लेता है, वास्तवमें शुद्ध है, इसलिये अद्वैत सिद्ध है, मिथ्यासे द्वैत भासता है ॥ ३६ ॥ (२३) हम और कारणसे सत्य करेंगे जगत सत्य है, क्योंकि अर्थ क्रियाका करनेवाला है, यदि न हो तो सीपीमें रूपेकी प्रतीत कैसे होती है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, व्यवहारके लिये अर्थ क्रियाके लिये भ्रम इष्ट है;जैसे खोटे रुपयेसे व्यवहार खो जाता है, तो कहते हैं, जो एक ठौर सत्य है, उसको और भ्रम होता है, यह प्रसिद्ध है, अत्यन्त झूंठा प्रपंच होय तो भ्रम न हो, इससे सत्य है, तो कहते हैं, सत्य नहीं है किन्तु अंधपरम्परासे भ्रम किया है, इसकारण सत्य नहीं है, तहाँ वेदकर्मफलकी सत्यताका प्रतिपादन कराहै कि, चातुर्मासके पूजन करनेवालोंको अक्षय पुण्य होताहै और अमृतपान करेंगे इत्यादि वचनसे कर्मफलको यह द्वैत सृष्टिसे पहले भी नही था और आगेको भी न होगा, मध्यमें

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमंतरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ॥ अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयंत्यबुधाः ॥ ३७ ॥ स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ॥ त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ ३८ ॥

आपके शुद्ध अद्वैतरूपमें मिथ्याही प्रतीत होता है, यह निश्चय है, इसी कारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोह आदि पदार्थोंके घट, कुण्डल, परशु आदि निर्माण कियेहुए आकारसे नाममात्रही हैं, उनके कारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोहादि सत्य हैं, इसलिये पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाशादि कार्य नाममात्र हैं, उनका कारण ब्रह्म सत्यहै, इसकारण द्वैतकी सत्यतामें कुछ प्रमाण नहीं इसकारण मनके विलाससे इस मिथ्याभूत द्वैतको जो सत्य मानते हैं,वह अज्ञानी हैं ॥३७॥ (२४) जब द्वैत कोई वस्तु नहीं तो इसमें चैतन्यका संबंध लेशमात्र भी न होना चाहिये, फिर जीव किस अपराधसे जन्म, मरण, सुख, दुःखकी प्राप्ति करते हैं और ईश्वर नित्य मुक्त किसप्रकार है? कर्मकाण्ड किसकारण है? इसपर कहते हैं कि यह जीव मायामें पड़े अविद्याका आलिंगन करते हैं, इसलिये देह इन्द्रियादिकोंका सेवन करते उन्हें अपनाही स्वरूप मानते हैं इसीलिये देह और इन्द्रियोंके धर्मसे युक्तहो आनंदादि गुणोंके आवरणसे जन्म, मरणकी प्राप्ति करते हैं यह सब काण्ड अविद्यायुक्त जीवमें है और

आप तो मायाकी असत्यता जानते हो; जैसे सर्प केंचुली को सत्य नहीं समझता और उसे त्याग देता है, उसी प्रकार आप मायाको त्याग देतेहो, इसकारण तुम नित्य अखण्ड ऐश्वर्ययुक्त अप्रमेय अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यमान् अपनेमें आपही विराजते हो ॥ ३८ ॥ (२५) हे भगवन् ! जो संन्यासी यती अपने हृदयमें स्थित कामकी वासनाओंको नहीं उन्मूलित करते, उन असाधुओंके हृदयमें तुम स्थित होकर भी नहीं मिलते । जैसे स्मृति न रहनेपर कंठस्थित मणि नहीं मिलती उन दुष्ट असाधुओंको आपकी प्राप्ति नहीं होती इतनाही नहीं किन्तु जो इन्द्रियोंके तृप्त करनेवाले हैं उनको इसलोक तथा परलोकमें दुःखही होता है क्योकि लोकोंको प्रसन्न करना, धन संचय करना, भोग करना, गुप्त कार्य करना इत्यादिमें यहाँ दुःख होता है और आपकी प्राप्तिके लिये संन्यास लेनेपर यदि आपकी प्राप्ति न हुई और धर्मका अतिक्रमण किया, तो तुम्हारे दंडरूप

यदि न समुद्धरंति यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदिगतोऽस्मृतकंठमणिः ॥ असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्य सुखं भगवन्नपगतांतकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः ॥ अनुयुगमन्वहं सगुणगीतपरंपरया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥ द्युपतय एव ते न ययुरंतमनंततया त्वमपि यदंडतरांडनिचया ननु सावरणाः ॥ ख इव रजांसि वांति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलंत्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥

नरककी प्राप्ति हुई, इससे परलोकमें भी सुख नहीं, वह दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुए ॥ ३९ ॥ (२६) हे भगवन् ! जिन भक्तोंको तुम्हारा ज्ञान होगया है, वे आपसे प्रगट हुए अपने प्राचीन पुण्य पापोंके फलरूप दुःख सुखके सम्बन्धको कुछ नहीं समझते और देहाभिमानियोंके सम्बन्धी प्रवृत्ति निवृत्तिके करनेवाले विधिनिषेधके वचनोको नहीं सुनते, देहाभिमान रहित होजानेसे कार्याकार्यका सम्बन्ध नहीं रहता, हे ऐश्वर्यवान् ! आप प्रत्येक युगमें अवतार धारण करके सन्मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको जो प्रतिदिन तुम्हारे चरित्र श्रवणकर हृदयमें धारणकरते श्रेष्ठ गति देतेहो, जब ऐसे पुरुषोंको भी किसीप्रकारकी बाधा नहीं रहती तो तत्त्ववेत्ताओंको कर्मकी शंका भी नही होसकती और जो पुरुष कपट प्रबंधकर इन्द्रियोका भोगसे पूजन करते हैं, वह इस लोक और परलोकमें दुःख पाते हैं ॥ ४० ॥ (२७) हे भगवन् ! स्वर्गलोकादिके पति ब्रह्मादिक

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ॥ सनंदनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥ ॥ ४२ ॥ इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः ॥ समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥ ४३ ॥ त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् ॥ धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् ॥ पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाऽमलकीर्तये ॥ यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥ ४६ ॥

तुम्हारे प्रतापके अंतको नहीं पाते और आप भी अपने अंतको नहीं पाते, ब्रह्मादिक आपके अंतको नहीं जानते, इसमें क्या आश्चर्य है ? अपने अन्तको न जाननेसे आपकी सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता नष्ट नहीं होती जैसे शशकके सींग न मिलनेसे सर्वज्ञका सर्वज्ञपन नहीं जाता, क्योंकि शशकके सींग हैंही नहीं फिर मिलें कहाँसे ? इसी प्रकार आपका अंत जब हैही नहीं तो कोई जाने कहाँसे ? क्योंकि तुम्हारे स्वरूपमें, आकाशमें, रजकणके सदृश दशदश गुण उत्तर उत्तर अधिक सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डोंके समूह कालचक्रसे भ्रमण करते हैं इसकारण श्रुति तात्पर्यसे आपकाही प्रतिपादन करती है साक्षात् नहीं कह सकती सगुण स्वरूपके तो गुण अपार हैं और निर्गुणमें वाणीकी गति नहीं इस कारण तुम्हारा संपूर्ण और साक्षात् निरूपण नहीं होता अनात्म पदार्थोंका निषेध कर अंतमें हम श्रुति आपकोही वर्णन करती हैं, क्योंकि अवधिके विना निषेध नहीं हो सकता, इसकारण निषेधके अवधिरूप आपमें ही हम वेदों का तात्पर्य निकलता है ॥ ४१ ॥ (२८) श्रीभगवान् बोले कि, हे नारदजी ! इसप्रकार ब्रह्माके पुत्र सनकादिक वेदोंकी स्तुति सुनकर आत्माकी गति जान सनंदनजीकी पूजा करनेलगे ॥ ४२ ॥ इसप्रकार आकाशमें गमन करनेवाले सृष्टिमें प्रथम उत्पन्न हुये, ऐसे महात्मा सनकादिकोंने समस्त वेद पुराण और उपनिषद्का रस उद्धार किया है ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्माके पुत्र नारदजी ! तुम श्रद्धापूर्वक आत्माके अनुशासनको धारण करके पृथ्वीमें यथेच्छ विचरो, यह आत्मानुशासन मनुष्योंकी विषयवासनाका नाश करनेवाला है ॥ ४४ ॥ इतनी कथा सुनाकर योगीवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! इसप्रकार श्रीनारायणके उपदेशको सुनकर कृतार्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रुतियोंके धारण करनेवाले नारदमुनि कहनेलगे ॥ ४५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, जो भगवान् श्रीकृष्णचंद्र संपूर्ण

भूतोंके कल्याणके लिये सुन्दर अवतार धारण करते हैं, उन निर्मलकीर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्रके अर्थ नमस्कार है ॥ ४६ ॥ उदार मन नारद आदि ऋषि नारायण और उनके शिष्योंको नमस्कार कर मेरे पिता साक्षात् व्यासदेवके आश्रममें चलेगये ॥ ४७ ॥ व्यासदेवजीने सन्मानकर आसन दिया, उसको ग्रहणकर नारदजीने नारायणके मुखसे जो श्रवण किया था वह सब व्यासजीके अर्थ वर्णन करदिया ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तुमने पूछाथा सो हमने वर्णन किया, जैसे अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियें प्रवृत्त होती हैं ॥ ४९ ॥ मायाके दूर करनेवाले भक्तोंके भयनाशक नारायण जो कि अपने स्वरूपमें शयन करते जीवोंके पुरुषार्थ सिद्ध करनेके लिये सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं, जो इस संसारके आदि, मध्य और अंतमें भी रहते हैं, जो प्रकृति पुरुषके भी उपादान कारण हैं और जो इस जगत्को उत्पन्न करके जीवके साथही प्रवेश कररहे हैं, जिन्होंने जीवोंको

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ॥ ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः ॥ तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वर्णितं राजन्यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ॥ यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि श्रुतिश्चरेत् ॥ ४९ ॥ योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनु प्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥ यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥५०॥इति श्रीमद्भा० म०द०उ० नारदनारायणसंवादे वेदस्तुतिर्नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

राजोवाच ॥ देवासुरमनुष्येषु ये भजंत्यशिवं शिवम् ॥ प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥

भोग देनेके लिये पृथक् २ शरीर बनाये हैं, जो जीवोंको अनेक भोग देके शरीरोंका पालन करते हैं और प्रणामादिकसे भक्ति करनेवाले जीव उन्हें प्राप्त होकर जैसे सुषुप्तिमें सोताहुआ शरीरके सम्बन्ध रहित होता है उसी प्रकार देहादिरूप अविद्याको वह भक्त त्यागन करदेते हैं, उन्हीं नारायणका भजन करना चाहिये ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां नारदनारायणसंवादे देवस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ दोहा–विष्णुभक्तिसे मुक्ति है, अन्नदेवसे भोग ॥ अट्ठासी अध्यायमें, कहीं भक्तिके योग ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! देवता, असुर, मनुष्योंमें जो शिवका भजन करतेहैं वह धनवान् होते हैं और लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका

भजन करनेवाले धनी नही होते उसका कारण जाननेकी हमारी इच्छा है शिव और विष्णुके भजन करनेवालोंको संपूर्णतः विरुद्ध फल मिलते हैं क्योकि जो शिवजी विभूति लगा श्मशानमें वास करनेवाले अमंगलरूप हैं जिन शिवजीके कुछ नहीं, उनका जो पुरुष भजन करें, वह लक्ष्मीवान् हों और भोग भोगें और लक्ष्मीपति अच्छे भोग भोगें, सुन्दर वस्त्र पहरें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका जो भजन करें, वह बहुधा दारिद्रीही देखे जाते हैं यह स्वामियोंकी गति और है, सेवकोंकी गति और है उचित तो यह है कि, जैसा स्वामी होय उसी प्रकार सेवक हो ॥१॥२॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत। शिवमें शक्ति रहतीहै,गुणोंके परस्पर जो आपसमें संवर्षणसे तमोगुण तीन प्रकारका है, सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार और

एतद्वेदितुमिच्छामः संदेहोत्र महान्हि नः ॥ विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिंगो गुणसंवृतः ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभवन्षोडशामीषु कंचन ॥ उपधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥ निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ॥ शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥ स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥

तामस अहंकार ऐसे तीन प्रकारके अहंकारके अधिष्ठानसे विष्णु, ब्रह्मा, शिव यह तीन रूप धारण करते हैं ॥ ३ ॥ उस अहंकारसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पंचभूत और दश इंद्रियें तथा एक मन ऐसे सोलह विकार हुए इन विकारोमें कोई एक विकारवान् उपाधिरूप विकारके भजन करनेसे संपत्ति मिलती है और उपाधिवालेका भजन करनेसे उपाधि मिलती है ॥ ४ ॥ निर्गुण साक्षात् मायासे परे सबके देखनेवाले साक्षीभूत हरि भगवान्का जो पुरुष भजन करें वह निर्गुण होतेहैं ॥ ५ ॥ अश्वमेधयज्ञ जब पूर्ण होचुका तब तुम्हारे दादा राजा युधिष्ठिरने वैष्णवधर्मको श्रवणकर पीछे श्रीकृष्णचन्द्रसे यही बात पूँछीथी ॥ ६ ॥ तब मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये यदुकुलमें आप अवतारधारी समर्थ भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरसे कहनेलगे ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जिस पुरुषके ऊपर मैं कृपा करताहूं, उस पुरुषका धन धीरे धीरे हर लेताहूं, इसके उपरान्त जब वह दरिद्री होजाताहै, तब उसे दुःखीके तुल्य और निर्धन जानकर उसे उसके भाई बंधु सब त्याग देते हैं ॥ ८ ॥ यह भक्त, भाई लोगोके आग्रहसे धन उपार्जन करनेका फिर उद्योग भी करै, परन्तु मेरे अनुग्रहसे उसके सब उद्योग व्यर्थ होजाते हैं और जब उसमें प्रबल वैराग्य उत्पन्न होजाता है, तब वह भक्त मेरे और भक्तोंके संग मित्रता करता है, तब उस पुरुषके ऊपर मैं असाधारण अनुग्रह करताहूं ॥ ९ ॥ मेरी कृपासे उस परब्रह्म सूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी नाशरहित आत्माका ज्ञान होता है इसीलिये मेरा आराधन बहुत कठिन है और इसीकारण मुझे त्यागकर वह पुरुष और देवताको भजताहै ॥ १० ॥ सेवन करनेसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले देवताओंसे राज्य और धन

श्रीभगवानुवाच ॥ यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ॥ ततोऽधनं त्यजंत्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ॥ ८ ॥ स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ॥ मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥ तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनंतकम् ॥ अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः ॥ १० ॥ ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ॥ मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरंत्यवजानते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ सद्यः शापप्रसादोंग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥ १२ ॥ अत्र चोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽऽप संकटम् ॥ १३ ॥ वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् ॥ दृष्ट्वाऽऽशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥

प्राप्ति होनेसे उद्धत मतवाले उन्मत्त होकर वे प्राणी वरके देनेवाले देवताओंको भूलकर अवज्ञा करते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे श्रेष्ठ ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादिक देव शाप और अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं, शिव, ब्रह्मा दोनों शीघ्रही प्रसन्न होते हैं और शीघ्रही शाप देते हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र प्रसन्न नहीं होते और जिसपर प्रसन्न होते हैं फिर उसे शाप नहीं देते ॥ १२ ॥ इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, सो वर्णन करते हैं, जैसे शिवजीने वृकासुरको वर देकर कष्ट पाया ॥ १३ ॥ दुष्टबुद्धि शकुनिका पुत्र वृकासुर मार्गमें देवर्षि नारदजीको देख ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इन तीनों देवताओंमें शीघ्र कौन प्रसन्न होता है, यह पूंछने लगा ॥ १४ ॥

तब देवर्षि नारदजीने कहा कि तू भगवान् भूतनाथ महादेवजीकी पूजाकर यह करनेसे शीघ्र तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, क्योंकि शिवजी थोड़ेही गुणोंसे शीघ्र प्रसन्न और थोडेही दोषसे क्रोधित होजाते हैं ॥ १५ ॥ बंदीजनोंके समान स्तुति करनेवाले राक्षसराज रावण और बाणासुरके ऊपर प्रसन्न होकर शिवजीने बडा ऐश्वर्य दे फिर इन असुरोंसे आपहीने कष्ट पाया, रावणने तो कैलास उखाड़लिया और बाणासुरने कहा कि, मेरे पुरकी रक्षा करो ॥ ॥१६॥इसप्रकार जब देवर्षि नारदजीने कहा तो उसी समय वृकासुर अपने देहसे शिवजीका सेवन करनेलगा; इसके उपरान्त केदारतीर्थमें शिवजीके लिये अपने शरीरका मॉस काटकर अग्निमें हवन करनेलगा ॥ १७ ॥ जब महादेवकी प्राप्ति न हुई, इसलिये सातवें दिन तीर्थमें स्नान करनेसे भीजे

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिध्यति ॥ योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥ दशास्य बाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्बंदिनोरिव ॥ ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसंकटम् ॥ १६ ॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः ॥ केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि ॥ शिरो वृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥ तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ॥ निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥ तमाह चांगाऽलमलं वृणीष्व मे यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ॥ प्रीये यतो येन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयाऽऽत्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥ २० ॥ देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् ॥ यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥ २१ ॥

केशवाले शिरको छूरी लेकर काटनेलगा ॥ १८ ॥ उससमय अत्यन्त करुणानिधान शिवजी हेम सरीखे मूर्त्तिमान्, अग्निके समान प्रकाशयुक्त अग्निकुण्डमेंसे निकल,हाथोंसे असुरकी भुजा पकड़ जैसे कोई दुःखके मारे मरनेको आवे उसे मने करते हैं, उसीप्रकार मनेकरने लगे और शिवजीका हाथ लगतेही उसका देह ज्योका त्यों होगया ॥ १९ ॥ वृकासुरसे शिवजी बोले कि, हे वृकासुर ! तू तप करके पूर्ण होगया, अब वर माँग, जो तेरी इच्छा हो,सोही वर दूंगा, क्योंकि जो मनुष्य मेरी शरण आते हैं, उनके ऊपर जलमात्रके चढातेही मैं प्रसन्न होजाताहूं, बडा आश्चर्य है ! तैंने वृथाही अपने शरीरको कष्ट दिया ॥ २० ॥ तब वृकासुरने जिस जिस पुरुषके शिरपर मैं हाथ धरूं, वह पुरुष उसी समय मरजावे इस

प्रकार संपूर्ण प्राणियोंको भयका देनेवाला वर माँगा ॥ २१ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस प्रकार वृकासुरका वचन सुन उदासीनसे हो "अच्छी बातहै" इस प्रकार शिवजीने मुसकाकर सर्पको दूध पिलानेके समान वृकासुरको वर देदिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार सुनतेही जगज्जननी पार्वतीके लेनेकी चाहनासे वह असुर वर मिथ्या है वा सत्य है, यह परीक्षा लेनेके लिये महादेवजीके माथेपर हाथ धरनेका उपाय करनेलगा, उससमय अपने कर्त्तव्यसे भयभीत होकर भगवान् शिवजी भागने लगे ॥ २३॥ असुर जिनके पीछे लगा; ऐसे शिवजी डरकर स्वर्गतक भागे और पृथ्वीका जहाँ

तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो दुर्मना इव भारत ॥ ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः ॥ स तद्वरपरीक्षार्थं शंभोर्मूर्ध्नि किलासुरः ॥ २३ ॥ स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥ तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावत्सवेपथुः ॥ यावदंतं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥ २४ ॥ अजानंतः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः ॥ ततो वैकुंठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ॥ शांतानां न्यस्तदंडानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥ तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः ॥ दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुको योगमायया ॥ २७ ॥ मेखलाजिनदंडाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् ॥ अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥

तक अंत है, तहाँतक भागे, फिर उत्तर दिशामें भागकर गये ॥ २४ ॥ उससमय उपायको न जान संपूर्ण देवता चुप होगये, इसके उपरान्त प्रकाशमान मायासे परे वैकुण्ठधाममें शिवजी गये ॥ २५ ॥ जिस वैकुण्ठधाममें शान्त स्वभाव और कालके दण्ड रहित संन्यासियोंकी परमगति अर्थात् प्राप्त होने योग्य नारायण विराजमान हैं ॥ २६ ॥ दुःखोंके दूर करनेवाले भगवान् नारायण शिवजीके पीछे दौड़े चले आते वृकासुरको दूरसे देख अपनी योगमायासे ॥ २७ ॥ ब्रह्मचारीका वेषधर मूंजकी करधनी मृगछाला दण्ड मालाओंको पहर तेजसे अग्निके समान प्रकाशमान कुश हाथमें

लिये भगवान् नम्र हो अभिवादन कर उससे बोले ❁ ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे शकुनिके पुत्र ! तुझे निश्चय खेद है तू इतनी दूर क्यों आया ? थोड़ी देर विश्राम ले, क्योंकि समस्त कामनाओंका देनेवाला यह देह है इसे पीड़ा मत दे ॥ २९ ॥ हे समर्थ ! जो तुम्हारा अभिप्राय हमारे आगे सुनाने योग्य हो तो कहो, क्योंकि बहुधा दूसरोंकी सहायतासे पुरुष अपना कार्य सिद्ध करसते हैं ॥ ३० श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अमृतरूप वचनसे जब भगवान्ने पूँछा, तब खेद रहित वृकासुरने अपना सब वृत्तान्त सुनादिया ॥ ३१ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, शिवने

श्रीभगवानुवाच ॥ शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रांतः किं दूरमागतः ॥ क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक् ॥ २९ ॥ यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो ॥ भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता पृष्टो वचसामृतवर्षिणा ॥ गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ॥ यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥ ३२ ॥ यदि वस्तत्र विश्रंभो दानवेंद्र जगद्गुरौ ॥ तर्ह्यंगाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥ ३३ ॥ यद्यसत्यं वचः शंभोः कथंचिद्दानवर्षभ ॥ तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥ ३४ ॥

तुमको वर दियाहै तो शिवके वचनको हम सत्य नहीं मान सकते, क्योंकि यह शिव दक्षके शापसे पिशाचोंकी दशाको प्राप्त हुआ है, और प्रेत पिशाचोंका राजा है ॥ ३२ ॥ हे दानवेन्द्र वृकासुर ! यदि इस शिवके वचनमें तुझे विश्वास है तो तू शीघ्र अपने मस्तकपर हाथ धरकर परीक्षा लेले ॥ ३३ ॥ हे दानवश्रेष्ठ ! इस महादेवका वचन कैसे सत्य होगा ? यह तो मिथ्यावादी है, पीछे जो किसी प्रकार भी महादेवका वचन असत्य

* शंका—वृकासुरको छलनेके लिये परमेश्वरने ब्रह्मचारीका स्वरूप क्यों धारण किया ? क्योंकि वेदमें ब्रह्मचारीके लिये झूठ बोलना बुरा लिखा है, इसलिये और अनेकरूप भगवान्के बनाये संसारमें बहुत है दूसरा रूप धारण करके छल करना था, ब्रह्मचारी बनकर क्यों छला ?

उत्तर—वृकासुरको त्रिलोकीमें किसीका विश्वास नहीं था, क्योंकि यह बड़ा धूर्त्त था, और उसको अपने बलका बड़ा घमण्ड था परन्तु त्रिलोकीमें उसको दो जनोंका विश्वास था एक नारदमुनिका और दूसरे ब्रह्मचारी वेषका, भगवान्ने विचारा कि, यह दैत्य नारद मुनिकी आज्ञा मानके यह कर्म किया है, इसलिये ब्रह्मचारीका रूपधर भगवान्ने सब काम किये ।

विदित हो तो महादेवको मार, जो फिर कभी मिथ्या न बोले ॥ ३४ ॥ इस प्रकार मनोहर विचित्र विचित्र भगवान्‌के वचनोंसे भ्रष्टबुद्धि हो कुबुद्धि
वृकासुरने भूलकर अपने शिरपर अपना हाथ रक्खा ॥३५॥ हे महाराज ! शिरपर हाथ धरतेही वज्रके मारेके समान क्षणभरमें शिर फूटनेसे वह वृका
सुर गिरगया, उससमय स्वर्गमें जय जय और नमःनमः तथा साधुशब्द होनेलगा ॥ ३६ ॥ जिससमय पापात्मा वृकासुर मरगया उससमय देवता,
पितृ, ऋषि, गंधर्व फूलोंकी वर्षा करनेलगे और भगवान् महादेवजीको भी कष्टसे छुड़ादिया ॥ ३७ ॥ जब शिवजी कष्टसे छूटगये तब श्रीपुरुषोत्तम
भगवान् बोले कि अहो देव ! महादेव ! यह वृकासुर पापी अपनेही पापसे मराहै ॥ ३८ ॥ ईश्वर और बडोंका अपराध करनेसे कौन पुरुष कल्याण

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ॥ भिन्नधीर्विस्मितः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्न
शिरा वज्राहत इव क्षणात् ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे
वृकासुरे ॥ देवर्षिपितृगंधर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ अहो देव
महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ३८ ॥ हतः को नु महत्स्वीश जंतुर्वै कृतकिल्बिषः ॥ क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे
कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥ गिरित्रमोक्षं कथये
च्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे रुद्रमोक्षणं
नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

को प्राप्त होता है ? देखो विश्वके ईश्वर जगत्‌के गुरू तुम्हारा अपराध करनेसे कदापि भला नहीं होता है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार वाणीके अगोचर
अनन्तशक्ति सबके साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीको कष्टसे छुडाया, यह चरित्र जो पुरुष कहै और सुनै और उनपर भरोसा
करते हैं, वह संसार तथा शत्रुओंसे छूट जातेहैं ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां वृकासुरवधो नामा
ष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

दोहा—तीन देवमें को बडो, सबको यही विचार ॥ भृगु मुनिने सबसे कह्यो, विष्णु जगत आधार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित! एकसमय सरस्वती नदीके तटपर ऋषि यज्ञ कर रहेथे, तहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन तीनों देवताओंमें कौन बडा है? इसप्रकार परस्पर झगड़ा होने लगा ॥ १ ॥ हे राजन्! इनमें कौन बड़ा है, इसकी परीक्षा करनेके लिये भृगुको भेजा, सो भृगु परीक्षाके कारण ब्रह्माकी

श्रीशुक उवाच ॥ सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ॥ वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् १ ॥ तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ॥ तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम् ॥ २ ॥ न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ॥ तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥ स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ॥ अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणाऽऽत्मभूः ॥ ४ ॥

सभामें गये ❀ ॥ २ ॥ भृगुजीने ब्रह्माके स्वभावकी परीक्षा लेनेके लिये स्तुति प्रमाण कुछ भी नहीं किया, तब ब्रह्माजीने अपने क्रोधसे प्रज्वलित हो भृगुके ऊपर अत्यन्त क्रोध किया ॥ ३ ॥ परन्तु ब्रह्मा अपने पुत्रके लिये चित्तमें उठे क्रोधको आपही शान्त करनेलगे, जैसे अपने कारण जलसे अग्नि शान्त होती है और अग्निके शान्त करनेमें जैसे अग्निसे उत्पन्न जल काम आताहै, उसीप्रकार ब्रह्माका क्रोध शान्त करनेमें

❀ शंका—तीनों देवताओंमें बडा देवता कौन है? ब्रह्मा बडे हैं कि, विष्णु बडे हैं कि, शिव बडे हैं, ऐसा विचार मुनि लोगोंने क्यों किया? क्योंकि ऐसा विचार तो बडे बडे अज्ञानी तथा बालक और बडे बडे मूर्ख किया करते हैं, मुनि लोग ऐसा विचार कभी नहीं करते, फिर उन लोगोंने क्यों किया?

उत्तर—सारस्वत मुनिके वंशमें जो जन्म लिये ब्राह्मण हैं सो सब ब्रह्मकर्ममें बडे निपुण होते थे, ऐसा ब्रह्मकर्मका अभिमान करके सब देवताओंका और मुनिजनोंका अनादर करने लगे, वचनोंसे भी किसीका आदर नहीं करते थे, ऐसा सारस्वत ब्राह्मणोंका अभिमान जानकर विचार किया कि, ऐसा अभिमान करके सब सारस्वत ब्राह्मण नरकमें पडेंगे, क्योंकि हमें आदि लेके जितने देवता हैं तथा ब्राह्मण हैं, उन सबको यह ब्राह्मण कुछ भी नहीं जानते, ऐसा भगवान्ने विचार करके उनहीं ब्राह्मणोंकी यज्ञमें कृपाकरके उनही ब्राह्मणोंकी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया, तब उन सब ब्राह्मणोंने ज्ञान त्याग दिया और मूर्ख होगये और उस मूर्खतासे मस्त होने लगे, कुछ कालोपरान्त भगवान्का चरित्र भृगुजीने वर्णन किया, तव सब सारस्वत ब्राह्मण अभिमान रहित होगये, इसलिये सारस्वत ब्राह्मण बुद्धि भ्रष्ट होगये ॥

उन्हींसे उत्पन्न हुए भृगुजी काम आये ॥ ४ ॥ वहाँ से भृगुजी कैलास पर्वतपर शिवजीके पास गये, उस समय शिवजी भाई भृगुसे प्रीतिपूर्वक उठकर मिलनेको उद्यत हुए ॥ ५ ॥ तब भृगुजीने महादेवजीसे मिलनेकी इच्छा न की और कहा तुम कुमार्गमें चलतेहो, हम तुमसे नहीं मिलैंगे. यह सुनतेही महादेवजी क्रोधसे लाल नेत्र कर हाथमें त्रिशूल ले मारनेको प्रस्तुत हुए ॥ ६ ॥ उससमय पार्वती महादेवजीके चरणोंमें गिरकर बोली कि, महाराज ! तुम्हारा भ्राता है, इसे कैसे मारते हो ? इस प्रकार वाणीसे शान्त करनेलगीं, इसके उपरान्त-भृगु वैकुण्ठमें गये जहाँ जनार्दन भगवान् वास करते हैं ॥ ७ ॥ लक्ष्मीकी गोदी शयन करते विष्णु भगवान्के हृदयमें भृगुने जाकर लात मारी, तदनंतर साधुओंकी गति विष्णुभगवान्ने

ततः कैलासमगमत्स तं देवो महेश्वरः ॥ परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ॥ शूलमुद्यम्य तं हंतुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥ पतित्वा पादयोर्देवी सांत्वयामास तं गिरा ॥ अथो जगाम वैकुंठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥ शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत् ॥ तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ॥ ८ ॥ आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् ॥ अजानतामागतान्वः क्षंतुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥ अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ॥ इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० ॥ पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ॥ पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ ११ ॥

लक्ष्मीसहित पलँगपरसे उठ और पृथ्वीमें मस्तक धर भृगुजीको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ और कहनेलगे कि, हे ब्रह्मन् "तुम भले आये" आसन ग्रहण करो. हे समर्थ ! आपके आनेको हमने नहीं जाना, सो अपराध क्षमा करो ॥ ९ ॥ हे तात ! हे महामुनि ! तुम्हारे चरण कोमल हैं और मेरी छाती अत्यन्त कठोर है, तुम्हारे चरणोंमें चोट लगी होगी, इसप्रकार कह अपने हाथोंसे ब्राह्मणके चरण सहलाने लगे ॥ १० ॥ गंगादिक तीर्थोंको पवित्र करनेवाले अपने चरणोंके जलसे मुझे और मुझमें अधिष्ठित लोक और लोकपालोंको पवित्र करो ॥ ११ ॥

है ब्राह्मण ! अब मैं लक्ष्मीके वास करनेका अत्यन्त पात्र हुआ और तुम्हारे चरण स्पर्शसे पाप दूर हुए, इसलिये मेरी छातीमें सदा लक्ष्मी वास करैगी ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार श्रीनारायणकी कही मनोहर वाणीसे तृप्त होकर भक्तिसे आनंदमें मग्न हो भृगुजी नेत्रोंमें आँसू भरकर चुप होगये ॥१३॥ हे राजन् ! भृगुजीने फिर अपने यज्ञमें आय वेदपाठी मुनियोंसे तीनोंकी जो बात देखकर आये थे सो कहदी ॥ १४ ॥ भृगुकी बात सुन आश्चर्यको प्राप्त हो संदेहोंको त्याग मुनियोंने कहा कि इतना उनका अपराध किया, परन्तु क्रोध न आया विष्णु भगवान्मेंही शान्ति है और किसी देवतामें नहीं है, इसलिये सबसे बड़े विष्णुभगवान्ही हैं; यह निश्चय है ॥ १५ ॥ साक्षात् धर्म और धर्मके

अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकांतभाजनम् ॥ वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे वैकुंठे भृगुस्तन्मंद्रया गिरा ॥ निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कंठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥ १४ ॥ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ॥ भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शांतिर्यतोऽभयम् ॥ १५ ॥ धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ॥ ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्य शश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनां न्यस्तदंडानां शांतानां समचेतसाम् ॥ अकिंचनानां साधूनां यमाहुः परमं गतिम् ॥ १७ ॥ सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ॥ भजंत्यनाशिषः शांता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ॥ गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥

लिये ज्ञान तथा वैराग्य और आठ प्रकारके ऐश्वर्य और आत्माके मलोंका दूरकरनेवाला यश यह सब भगवान्मेंही विद्यमान हैं ॥ १६ ॥ कालदंडके भयरहित, शान्त स्वभाव और समान चित्त, निर्किंचन अर्थात् किसी वस्तुकी जिनमें चाहना नहीं, साधु मुनियोंको जिन भगवान्की परमगति कहते हैं ॥ १७ ॥ सत्त्वगुण भगवान्का प्यारा रूप है और ब्राह्मण भगवान्के इष्ट देवता हैं, शांत और निष्काम बड़ी बुद्धिवाले जिनका भजन करते हैं, वही सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ जिन भगवान्ने अपनी मायासे सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी तीन प्रकारके देवता असुर

राक्षस बनाये हैं, सबही उनका रूप हैं परन्तु उनमें सत्त्वगुणी रूप कल्याणका देनेवाला है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार सरस्वतीके तीरवासी ब्राह्मण मनुष्योंका संदेह दूर करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दकी सेवा करके श्रीकृष्णचन्द्रकीही गतिको प्राप्त हुए ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि, ऋषीश्वरो! व्यासदेव मुनिके पुत्र श्रीशुकदेवजीके मुखकमलकी सुगंधि मिला अमृके समान संसारके भयका कटानेवाला श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रका यश कानरूपी दोनोंमें भरकर जो पान करैगा, वह ससारके आवागमनके परिश्रमसे छूट जायगा ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस चरित्रमें श्रीकृष्णचन्द्रका उत्कर्ष कहा अब श्रीकृष्णचन्द्रकाही उत्कर्ष करनेवाला और चरित्र वर्णन करतेहैं

श्रीशुक उवाच ॥ एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ॥ पुरुषस्य पदांभोजसेवया तद्गतिं गताः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगंधपीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः ॥ सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पांथोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ॥ जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥ २२ ॥ विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ॥ इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ॥ क्षत्रबंधोः कर्मदोषात्पंचत्वं मे गतोऽर्भकः ॥ २४ ॥ हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेंद्रियम् ॥ प्रजा भजंत्यः सीदंति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥ २५ ॥ एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ॥ विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥ २६ ॥

हे राजन्! एक समय द्वारकामें एक स्त्रीके पुत्र उत्पन्न होकर पृथ्वीका स्पर्श करतेही मरगया ॥ २२ ॥ वह ब्राह्मण मरे पुत्रको ले राजा उग्रसेनकी डयोढी पर धर विलापकर आतुर दीन मन होकर यह कहनेलगा ॥ २३ ॥ ब्राह्मणोंका द्वेषी शठबुद्धि लोभी विषयोंमें आसक्तमन क्षत्रियोंमें अधम इस राजाके दोषसेही मेरा पुत्र मरा है मेरा कुछ दोष नहीं है ॥ २४ ॥ हिंसा करनेवाले दुःस्वभाव अजितेन्द्रिय राजाके सेवन करनेसे प्रजा दुःखी और दरिद्री होती है ॥ २५ ॥ इसीप्रकार वह ब्राह्मण दूसरे पुत्रको फिर तीसरे पुत्रको लेकर राजाके द्वारपर धरकर यही कहने लगा, कि मेरा कुछ दोष

नहीं है, इस राजाके दोषसे यह सब मेरे पुत्र मरे हैं ॥ २६ ॥ किसीसमय अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके निकट ब्राह्मणकी बात श्रवणकर नवम बालक जब मर चुका, तब ब्राह्मणसे कहने लगा ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मण ! तू किसलिये रुदन करता है, क्या तेरे रहनेके स्थान द्वारकामें धनुपका धारण करने वाला कोई क्षत्रिय नहीं है ? धन, स्त्री और पुत्रोंमें आसक्त यह यादव तो यज्ञमें भोजनको आयेहुए ब्राह्मणोंके समान बैठे हैं ॥ २८ ॥ क्षत्रियोंके जीवित होनेपर भी धन, स्त्री, पुत्र, संयुक्त ब्राह्मण जहाँ शोच करते हैं वे उदरपोषक क्षत्रिय और उनके वेषसे नटही जीते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम दीन हो, इसलिये तुम्हारे पुत्रकी मैं रक्षा करूंगा और जो मुझसे रक्षा न होगी अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होगी तो ब्राह्मणकी

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवांतिके ॥ परेते नवमे बाले ब्राह्मण समभाषत ॥ २७ ॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः ॥ राजन्यबंधुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २८ ॥ धनदारात्मजाऽपृक्ता यत्र शोचाते ब्राह्मणाः ॥ ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवंत्यसुंभराः ॥ २९ ॥ अहं प्रजां वां भगवन्रक्षिष्ये दीनयोरिह ॥ अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥ ३० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥ अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवंति यत् ॥ ३१ ॥ तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ॥ चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥ ३२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नाहं संकर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ॥ अहं वा अर्जुनो नाम गांडीवं यस्य वै धनुः ॥ ३३ ॥

प्रीतिसे पापरहित हो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगा ॥ ३० ॥ ब्राह्मण बोला कि, महाराज ! संकर्षण, वासुदेव और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी तथा जिसके समान कोई योद्धा नहीं ऐसे अनिरुद्ध यह सब भी मेरे बालकोंकी रक्षा करनेको समर्थ न हुए ॥ ३१ ॥ जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी जिस कर्मको न करसके, हे अर्जुन ! उस कर्मको तू कैसे करसकेगा ? तू अज्ञानसे करना चाहताहै इसकारण तेरी बातका मुझे विश्वास नहीं होता ॥ ३२ ॥ अर्जुन बोले कि, हे ब्राह्मण ! मैं संकर्षण, कृष्ण, प्रद्युम्न नहीं हूं, गांडीव धनुषधारी अर्जुन नामक क्षत्रिय हूं ॥ ३३ ॥

हे ब्राह्मण ! तू मेरा अपमान मत करे, महादेवका प्रसन्न करनेवाला मेरा पराक्रम है, हे समर्थ ब्राह्मण ! संग्रामके बीच मृत्युको जीतकर भी तेरे पुत्र ला दूंगा ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इसप्रकार धृष्टताके वचनोंसे विश्वासको प्राप्त हो, वह ब्राह्मण अर्जुनके पराक्रमको श्रवण कर प्रसन्न हो अपने घरको चला आया ॥३५॥ जब स्त्रीके प्रसूतिकालका समय आया, तब ब्राह्मण "मृत्युसे पुत्रकी रक्षाकर" इसप्रकार वारम्वार आतुर हो अर्जुनसे कहने लगा ॥३६॥ उस समय अर्जुनने पवित्र जलका स्पर्श कर हाथ, पाँव धो, आचमनकर, शिवजीको नमस्कार करके दिव्य शस्त्रोंका स्मरण कर प्रत्यंचा चढाय गांडीव धनुषको हाथमें लिया ॥ ३७ ॥ अनेक शस्त्रोंमें मिलाये बाणोंसे सोवरके घरको पिंजरा बना दिया, तिरछे बाण चलाये,

माऽवमंस्था मम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यंबकतोषणम् ॥ मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥ ३४ ॥ एवं विश्रंभितो विप्रः फाल्गुनेन परंतप ॥ जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ॥ पाहिपाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥ ३६ ॥ स उपस्पृश्य शुच्यंभो नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गांडीवमाददे ॥ ३७ ॥ न्यरुणत्सूतिकाऽगारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपंजरम् ॥ ३८ ॥ ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ॥ सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३९ ॥ तदाऽह विप्रो विजयं विनिंदन्कृष्णसन्निधौ ॥ मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ ४० ॥ न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ॥ यस्य शेकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥

ऊपरको चलाये और नीचेको चलाकर घरके ऊपर बाणोंका पिंजरा करदिया ॥३८॥ इसके उपरान्त ब्राह्मणकी स्त्रीके उत्पन्न हुआ बालक बारम्बार रुदनकर शीघ्रही शरीर सहित आकाश मार्गमें होकर चलागया और बार देह पडा रहता था, अबकीबार देह भी न रहा ॥ ३९ ॥ उससमय ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रके निकटही अर्जुनकी निन्दा करके यह कहनेलगा कि, मेरी मूढता देखो, मैंने इस नपुंसक अर्जुनका कहना सत्य माना ॥४०॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलदेवजी और श्रीकृष्णचन्द्र यह सब मिलकर भी जिसकी रक्षा न करसके, उसकी रक्षा करनेको और कौन समर्थ है ? ॥ ४१ ॥

मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है, इस अपनी श्लाघा करनेवाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है, यह दुर्बुद्धि दैवके विनाश किये पदार्थको मूर्खतासे बचाना चाहताहै ॥ ४२ ॥ इसप्रकार जब ब्राह्मणने खोटा वचन कहा, तब अर्जुनने योगविद्याको धारणकर यमराज भगवानकी संयमनीपुरीमें शीघ्र प्रवेश किया ॥४३॥ वहाँ यमराजकी पुरीमें पुत्रोंको न देखा, तब वहाँसे अर्जुन इन्द्रकी पुरीमें गया, फिर अग्निकी पुरीमें गया, वहाँसे कुबेरकी पुरीमें गया वायुकी पुरीमें गया, वरुणकी पुरीमें गया, इसके उपरान्त रसातल और स्वर्गमें गया फिर धनुषको उठाये और स्थानोंको गया ॥ ४४ ॥ स्थान ढूंढे परन्तु कहीं ब्राह्मणके पुत्रका पता न मिला, तब प्रतिज्ञासे अर्जुन अग्निमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेलगा, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे मने करके

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ॥ दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥ ४२ ॥ एवं शपति विप्रर्षौ वि द्यामास्थाय फाल्गुनः ॥ ययौ संयमिनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः ॥ ४३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐंद्रीमगात्पुरी म् ॥ आग्नेयीं नैर्ऋतिं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ॥ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततोऽलब्ध द्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ॥ अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥ ४५ ॥ दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मा नमात्मना ॥ ये ते हि कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयंति नः ॥ ४६ ॥ इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ॥ दिव्य स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत ॥ ४७ ॥ सप्त द्वीपान्सप्त सिंधून्सप्तसप्त गिरीनथ ॥ लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४८ ॥ तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ॥ तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥

बोले ॥ ४५ ॥ कि ब्राह्मणके पुत्रको मैं ला दूंगा, तू अग्निमें मत जलै, इसलिये जो तेरी निन्दा करते हैं वेही तुम्हारी निर्मल कीर्त्तिको हमारे साथ पृथ्वीपर निरन्तर गान करैंगे कि, अंतमें श्रीकृष्णके साथ अर्जुनने ब्राह्मणके पुत्रोंको लादी दिया ॥ ४६ ॥ सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसप्र कार कह और अर्जुनको संग ले अलौकिक अपने रथमें चढ पश्चिमदिशाको चलेगये ॥ ४७ ॥ और सात सात पर्वतके सात द्वीप उल्लंघनकर तथा सात समुद्रोंको और लोकालोक पर्वतोको उल्लंघन कर बडे अंधकारमें घुसगये ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! उस अंधकारमें शैब्य, सुग्रीव,

मेघपुष्प, बलाहक इन रथके घोड़ोंकी गात शिथिल होगई ॥ ४९ ॥ महायोगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने घोड़ोंकी शिथिलगतिको देख हजार सूर्यके तेजवाले अपने सुदर्शन चक्रको रथके आगे चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५० ॥ अति घोर सघन प्रकृतिके परिमाण रूप अंधकारको अपनी उत्कृष्ट कांतिसे विदीर्णकर मनके तुल्य वेगवान् सुदर्शनचक्रने प्रत्यंचासे सेनापर श्रीरामचन्द्रके बाणके समान प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ चक्रके पीछे गमन करके उस अंधकारसे परे वर्त्तमान श्रेष्ठ व्याप्त भगवान्का प्रकाशरूप देख चकाचौंधीसे अर्जुनने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त बड़े पवन चलनेसे उठी लहरोंसे शोभायमान जलमें वह रथ गया, उस जलमें प्रकाशमान् वस्तुमें श्रेष्ठ और दीप्तिमान् सहस्रों मणियोंके खंभ लग रहे हैं, उनसे शोभायमान अद्भुत भवन देखा ॥ ५३ ॥ उस भवनमें बड़ी देहवाले अद्भुत सहस्र मस्तकोंमें मणियोंकी कान्तिसे प्रकाशमान दो सहस्र नेत्रोंसे शोभायमान स्फटिकमणिके श्वेतपर्वतकी तुल्य कांति और श्याम कंठ तथा जिह्वा संयुक्त शेषनागको अर्जुनने देखा ॥ ५४ ॥ उन शेषनागके देहको सुखदायक आसन बनाये बड़े प्रभाववाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ उत्तम भूमा पुरुषको शयनकरते अर्जुनने देखा जिनकी वर्षाऊ मेघके समान कान्ति,सुन्दर पीत वस्त्रोंको धारण किये, मुख प्रसन्न मनोहर और बड़े बड़े नेत्र हैं ॥ ५५ ॥

तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ॥ सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥ ५० ॥ तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ॥ मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः परं परंज्योतिरनंतपारम् ॥ समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षो पिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ॥ तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तंभसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनंतमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ॥ विभ्राजमानं द्विगुणोल्वणेक्षणं सिताचलाभं शितिकंठजिह्वम् ॥ ५४ ॥ ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ॥ सांद्रांबुदाभं सुपिशंगवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥

जिनके केश बड़ी मणियोंसे जड़ित किरीट और कुण्डलोंकी कान्तिसे शोभायमान लंबी सुन्दर आठ भुजा कौस्तुभमणिको धारण करे और भृगुलताके चिह्न संयुक्त वनमाला पहररहे थे ॥ ५६ ॥ सुनंद, नंद, मुख्य अपने पार्षद और मूर्त्तिमान चक्रादि अपने शस्त्र और पुष्टि, श्री, कीर्त्ति, माया तथा समस्त अणिमादिक विभूतियोंसे सेवित ब्रह्मादिकोंके पालन करनेवाले॥५७॥इस प्रकार अनन्तभूमा भगवान्‌के दर्शनकर सब लोकोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपको प्रणाम किया और भयभीत अर्जुनने भी प्रणाम किया, इसके उपरान्त श्रीकृष्ण और अर्जुनको हाथ जोड़े खड़ा देख वह पुरुष गंभीर वाणीसे मुसकातेहुए बोले ॥ ५८ ॥ कि, तुम्हारे देखनेके लिये ब्राह्मणके पुत्रोंको मैं ले आयाहूं, पृथ्वीमें मेरी कलासे अवतीर्णहुए

महामणिव्रातकिरीटकुंडलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुंतलम् ॥ प्रलंबचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्म्या वनमालयावृतम् ॥ ५६ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ॥ पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाऽखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥ ५७ ॥ ववंद आत्मानमनंतमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ॥ तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धांजली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५८ ॥ द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ॥ कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमंति मे ॥ ५९ ॥ पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ॥ धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ॥ ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् ॥ विप्राय ददतुः पुत्रान्यथारूपं यथावयः ॥ ६२ ॥ निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ॥ यत्किंचित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकंपितम् ॥ ६३ ॥

तुम पृथ्वीके ऊपर बोझरूप असुरोंको मार शीघ्र मेरे पास आजाओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों पूर्ण मनोरथ महाश्रेष्ठ नरनारायण ऋषि हो तो भी लोकोंको शिक्षा करनेके लिये धर्म करते हो ॥ ६० ॥ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान भगवान् भूमापुरुषने जब इस प्रकार आज्ञा दी तो श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन भूमापुरुषको प्रणामकर ब्राह्मणके बालकोंको संग ले अपने धाम द्वारकापुरीमें आये और उन्होंने ब्राह्मणको उसी अवस्था और रूप वाले पुत्र देदिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का प्रभाव देख अर्जुनने महाआश्चर्य मानकर पुरुषमें जो कुछ पराक्रम है सो श्रीकृष्णचन्द्रकी

कृपासेही है यह निश्चय किया ॥ ६३ ॥ इसप्रकार अनेक पराक्रम इस संसारमें दिखाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जगत्के विषयोंको भोग किया और बड़े यज्ञोंसे यजन किया ॥ ६४ ॥ समयके अनुसार धर्ममार्गमें स्थित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणसे आदि ले सब प्रजाके मनोरथको जैसे ॥ वर्षासे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं उसीप्रकार पूर्ण किया ॥ ६५ ॥ अधर्मी राजाओंको मारकर और कितनोंको अर्जुन भीमसेनादिकोंके द्वारा घात कराया धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि धार्मिक राजाओंके द्वारा अनायास संसारमें धर्म प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णचरित्रवर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ दोहा—नब्बेके अध्यायमें, यदुकुलको

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ॥ बुभुजे विषयान्ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥ ६४ ॥ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु ॥ यथाकालं यथैवेंद्रो भगवाञ्श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥ ६५ ॥ हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वाऽर्जुनादिभिः ॥ अंजसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे द्विजकुमारानयनं नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियः पतिः ॥ सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥ स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकांतिभिः ॥ कंदुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडंतीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥ नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतंगजैः ॥ स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥ उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ॥ निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायां समंततः ॥ ४ ॥

विस्तार ॥ हरिलीला सक्षेपसे, वरणों बारम्बार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित! संपूर्ण संपत्तियोंसे भरी और श्रेष्ठ यादवोंसे सेवित द्वारकापुरीमें ॥ १ ॥ जहाँ नवयौवनकी शोभासे शोभायमान और विजलीके समान कान्तिवाली स्त्रियें महलोंमें गेंद क्रीड़ा कर रही हैं और शृंगारसे मनोहर वेष धारण कररही हैं ॥ २ ॥ जहाँके मार्गोंमें मद चुवाते हाथी और उत्तम वेषकिये योद्धा घोड़े और सुवर्णसे दीप्तिमान् रथोंकी सदा भीड़ बनी रहती है ॥ ३ ॥ जहाँ फूलसंयुक्त अत्यन्त शोभायमान बगीचे लगरहे हैं, और फूलेहुए वृक्षोंकी पंक्तियोंमें

चारों ओरसे भौंरे और पक्षी निरन्तर गुंजार करते रहते हैं ॥४॥ ऐसी द्वारकापुरीमें सोलह सहस्र पत्नियोंके प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रने जितने स्त्रियोंके जितने सम्पन्न महलहैं, उनमें उतनेही विचित्ररूप धारणकर उनके संग रमण किया ❋ ॥ ५ ॥ इन घरोंमें फूलेहुए उत्पल, कह्लार,

रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ॥ तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गेहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदांभोजरेणुभिः ॥ वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥ विजहार विगाह्यांभो ह्रदिनीषु महोदयः ॥ कुचकुंकुमलिप्तांगः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥ उपगीयमानो गंधर्वैर्मृदंगपणवानकान् ॥ वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवंदिभिः ॥ ८ ॥

कुमुद, अंभोज, परागकी सुगंधियुक्त निर्मल जलवाले सरोवरोंमें पक्षियोंके समूह शब्द कररहे ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके आलिंगनसे कुचोंकी केशर जिनके लगरही, ऐसे महाप्रतापी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सरोवरोंके भीतर विहार करते हैं ॥ ७ ॥ मृदंग, ढोलक आदि बाजे और वीणाओंको गंधर्वगण

❋ **शंका**—श्रीकृष्ण भगवान् अपनी स्त्रियोंके साथ मनुष्योंके समान क्रीडा क्यों करते थे ?

उत्तर—श्रीकृष्णने विचार किया कि, अब कलियुगके आनेके थोडेही दिन और रहे हैं, जब कलियुग आवेगा तो कलियुगमें बडे बडे दुष्ट अधर्मी मनुष्य जन्मैंगे और अपनी स्त्रियोंको छोडकर दूसरी स्त्रियोंसे मन लगावेंगे और उनहींको अनेक २ प्रकारके वस्त्र आभूषण पहिरावेंगे और अपनी स्त्रियोंको भरकर पेट रोटीभी न देंगे और हरेक वस्तुको तरसावेंगे और बात बातोंमें लात और घूसोंसे मार लगावेंगे तब वेदमें जो विवाहिता स्त्री पुरुषोंका धर्म लिखा है सो सब नष्ट हो जायगा तब सनातन धर्म नष्ट हुए पीछे सब प्रजा वर्णसंकर होजायगी, तब पृथ्वी रसातलके जानेकी इच्छा करेगी, तब मुझको अवतार लेना पडेगा ऐसा भगवान् विचारके कलियुगमें जो मनुष्य उत्पन्न होवेंगे उन मनुष्योंको सिखानेके लिये और कलियुगमें स्त्रियोंकी रक्षा करनेकेलिये अपनी स्त्रियोंके साथ अत्यन्त क्रीडा और विहार करते थे श्रीकृष्णने विचारा कि अपनी स्त्रियोंके क्रीडाको कलियुगकें मनुष्य सुनके जारकर्म छोडके अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ इसीप्रकार विहार करेंगे और आदर सत्कार सहित उनका पूजन करेंगे और अपनी स्त्री गृहस्थीमें परमोत्तम हैं, क्योंकि श्रीकृष्णने भी उनके साथ अत्यन्त प्रीति की थी इसीप्रकार हम भी उनसे प्यार करें और जो परमोत्तम न होती तो श्रीकृष्ण अपनी स्त्रियोंका सन्मान क्यों करते इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा की थी कामदेवके वश होकर नहीं की थी ।

बजाय रहेहैं, और सूत, मागध, बंदीजन स्तुति कररहेहैं ॥ ८ ॥ हँसती हुई स्त्रियें अपनी २ पिचकारियोंसे भिजोती और श्रीकृष्णचन्द्र भी स्त्रियों को छिडकते यक्षराज कुबेरके समान क्रीडा करनेलगे ॥ ९ ॥ भीजे वस्त्रोंसे उर, कुच, प्रगटहोने और ढीली चोटियोंमेंसे फूल गिरनेसे स्त्रियें पिचकारीसे बचनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करतेही कामदेवके उत्सवसे प्रकाशमान मुखवाली होगईं और भगवान्को भिजोती शोभा पानेलगीं ॥ १० ॥ स्त्रियोंके स्तनोंकी केशरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी माला भरगई और हाथिनियोंके संग विहार करनेवाले हाथीके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ११ ॥ नट और नाचनेवालियोंको गीत गाने तथा बाजे बजाकर जीविका करनेवालोंको श्रीकृष्णचन्द्र और

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसंतीभिः स्म रेचकैः ॥ प्रतिषिंचन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥ ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिंचंत्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ॥ कांतं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥ कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुंकुमस्रक्क्रीडाभिषंगधुतकुंतलवृंदबंधः ॥ सिंचन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ॥ क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ॥ नर्मक्ष्वेलिपरिष्वंगैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥ १३ ॥ ऊचुर्मुकुंदैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ॥ चिंतयंत्योऽरविंदाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥ वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

उनकी स्त्रियोंने क्रीड़ा करनेके अलंकार और वस्त्र दिये ॥ १२ ॥ इसप्रकार विहार करते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी चलनि, बोलनि मुसकानि और हास्यकी वार्त्ता, क्रीड़ा, आलिंगनसे स्त्रियोंकी बुद्धि हरगईथी ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें बुद्धिवाली एक स्त्रीने पहले चुप होय फिर भगवान् वासुदेवका ध्यानकर, उन्मत्त हो जड़की नाईं जो वचन कहेथे, उन वचनोको मैं वर्णन करताहूं, तुम सुनो ॥ १४ ॥ स्त्रियें बोलीं कि, हे टिटहरी ! संसारमें गुप्तबोध भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो शयन कररहेहैं और तू निद्रारहित हो विलाप करके उनकी नींदमें बाधा देतीहै,

तू शयन नहीं करती, सो यह सत्य नहीं, हे सखी ! क्या हमारीही नाईं कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्रका हास्य लीला पूर्वक चितवनसे तेरा चित्त बँधगया है, इसीसे पुकारतीहै ? ॥ १५ ॥ हे चकवी ! तैंने क्यों नेत्र मूँदलिये हैं, रात्रिमें पतिको न देखनेसे करुणाके मारे रुदन करती है, अथवा दास्यभावमें प्राप्त हुई हमारी समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्रसादी माला अपनी चोटीपर चढ़ानेकी इच्छा करती है, क्या इसीलिये रोती है ? ॥१६॥ हे समुद्र ! निद्राके न आनेसे क्या तुझेभी प्रजागर होगया, जो सदा चिल्लाता रहता है ! अथवा हमारीसी दशा तेरी भी है जैसे भोगसे मुकुन्दने हमारे कुचोंकी केशर लेली है, क्या इसी प्रकार तुझेभी मथकर तुझमेंसे लक्ष्मी और कौस्तुभमणि निकालही है ? ॥ १७ ॥ हे

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबंधुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ॥ दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भोभोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥ किं वा मुकुंदापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥१७॥ त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इंदो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोऽषि ॥ कच्चिन्मुकुंदगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥१८॥ किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ॥ गोविंदापांगनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेंद्रस्य नूनं श्रीवत्सांकं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ॥ अत्युत्कंठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसंगः ॥ २० ॥

चन्द्रमा ! जान पड़ता है कि, तुझे बलिष्ठ क्षयके रोगने ग्रहण करलिया है, इसीकारण क्षीणताको प्राप्त हुआहै, अपनी किरणोंसे अंधकारको दूर नहीं करता, हमारीही समान मुकुन्दकी रहस्य वार्त्ताओंको भूल उसी चिन्ताके मारे क्षीण होगया है और हमें निश्चय है कि तेरी वाणीभी हमारी समान बंद होगई है। ॥१८॥ हे मलयाचलके पवन ! हमने ऐसा क्या तेरा अप्रिय कार्य किया है ? जिससे तू गोविन्दके अंगमें लगकर हमारे हृदयमें कामाग्निको प्रगट करता है ॥१९ ॥ हे मेघ ! हे श्रीमन् ! हम जानती हैं तू यादवोंके इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्यारा मित्र है, इसीलिये जो ताप दूर करनेको भगवान्में गुण है सो तुझमें भी है, सो हमारे समान भगवान्के प्रेममें बँधकर तूभी नारायणका चिंतवन करता है, क्योंकि तेरे हृदयमें जो अति

उत्कंठा है इससे भृगुलताके चिह्नवाले श्रीकृष्णका स्मरणकर हमारे समान अश्रुकी धारा बहाताहै, तेरा हृदय भी श्याम होरहाहै तैने उनके संग मित्रता क्यों करी ? उनका संग तो दुःखदायी ही है ॥ २० ॥ हे शोभायमान कंठवाले कोकिल ! मृतकको जिलानेवाली कोमल वाणीसे प्यारी बातें करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे वचन कहती हैं तेरा मैं क्या प्रिय करूं, सो मुझसे कह ॥२१॥ हे उदारबुद्धे ! हे पर्वत ! तू चलता और बोलताभी नहीं है, और बड़ी चिन्ता करता है, जैसे वसुदेवनंदनके चरण हम अपने हृदयमें धरनेकी चाहना करती हैं, उसी प्रकार तू भी अपने शिखरपर धरनेकी इच्छा करता है, यदि धरेगा तो हमारीसी दशा तेरी भी होगी ॥२२॥ हे समुद्रपत्नियो नदियो ! इस समय ग्रीष्मके आनेसे मेघद्वारा समुद्रका जल न पानेसे दुर्बल, सूखे ह्रद और कमलोंकी शोभासे हीन होगई हो, धारा वर्षाकर तुम्हें आनन्द नहीं देती, यह बडा कष्ट है, इसीसे

प्रियरावपदानि भाषसेऽमृतसंजीविकयाऽनया गिरा ॥ करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकंठ कोकिल ॥ २१ ॥ न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिंतयसे महांतमर्थम् ॥ अपि बत वसुदेवनंदनांघ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥२२॥ शुष्यद्ध्रदाः कृशतरा बत सिंधुपत्न्यः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ॥ यद्वद्वयं यदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥ २३ ॥ हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यंग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ॥ किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥ २४ ॥

तुम्हारे हृदय सूखकर लट गये हैं, जैसे वांछित पति यदुपति श्रीकृष्णचन्द्रकी स्नेहभरी चितवनके पडे विना हमारे हृदय चुरायेजानेसे हम दुर्बल होगई हैं ॥ २३ ॥ अकस्मात् आये हंसको दूत कल्पना करके कहती हैं कि, हे हंस ! आप अच्छे आये ! आओ विराजो, पयपान करो; श्रीकृष्णचन्द्रकी वार्ता कहो, आप दूतबनकर आयेहो सो हमको विदितहै, श्रीकृष्णचन्द्र भलीप्रकार तो हैं ? क्षणिकप्रीति रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आपही हमसे जो कुछ कहगये थे उसका किसी समय स्मरण करते हैं ? हे दूत ! हमारा भगवान् वासुदेवसे क्या अर्थ ? जो हमें कामके सुखके लिये बुलाते हों तो उन्हींको हमारे निकट बुलाकर लेआ, परन्तु यह बात है कि, लक्ष्मी हमसे छलकर श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा करती है, इसकारण लक्ष्मी

रहित श्रीकृष्णचन्द्रकोही बुलाकर ला, कमला एकनिष्ठावाली है, सो उसको किसप्रकार छोड़ा जाय, यदि तेरे मनमें यह बात हो तो क्या स्त्रियोंमें केवल लक्ष्मीही निष्ठावाली है, क्या हम वैसी नहीं ? ॥ २४ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें इसप्रकार भावकर श्रीकृष्णचन्द्रकी स्त्रियें वैष्णवगतिको प्राप्त हुईं ॥ २५ ॥ जो श्रीकृष्णचन्द्रका कीर्त्तन करने और श्रवण करनेसेही स्त्रियोंके मनको हर लेते हैं और जो दर्शन करने वालियोंके मनको हर लें तो क्या आश्चर्य है ? ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जो स्त्री जगत्के गुरु श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पति मान प्रेमपूर्वक उनकी चरण आदि सेवा करती थीं, उनका तप और भाग्य कहाँतक वर्णन करैं ? ॥ २७ ॥ इसप्रकार साधुओंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, वेदविहित धर्मका

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥ २५॥ श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ॥ उरुगायोरुगीतो वा पश्यंतीनां कुतः पुनः ॥ २६ ॥ याः संपर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ॥ जगद्गुरुं भर्तृबुद्धया तासां किं वर्ण्यते तपः ॥ २७ ॥ एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः ॥ गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥ आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ॥ आसन्षोडशसाहस्रं महिष्योष्टशताधिकम् ॥ २९ ॥ तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ॥ रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३० ॥ एकैकस्यां दशदश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ॥ यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ॥ आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥

अनुष्ठानकर घरमें रह धर्म, अर्थ, विषय सेवन करनेवाले संसारी पुरुषोंको बारम्बार दिखाया ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गृहस्थियोंके उत्तम धर्मका पालन करते थे, उस समय भगवान्के सोलह सहस्र एकसौ आठ (१६१०८) रानियें थीं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! स्त्रियोंमें रत्नके समान सोलह हजार एकसौ आठ रानियोंमें रुक्मिणीसे आदिले आठ पटरानी थीं, जिनके पुत्रोंके नाम भी पहले वर्णन कर चुके हैं ॥ ३० ॥ अप्रमेयगति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जितनी भार्या थीं, सो एक एक भार्यामें दश दश पुत्रोंको उत्पन्न किया, वे सब मिलकर एक लाख इकसठ हजार और अस्सी १६१०८० हुये ॥ ३१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उनमें बड़े पराक्रमी उदार और यशस्वी अठारह १८ महारथी हुये, उनके नाम सुनो ॥ ३२ ॥

यथा प्रद्युम्न अनिरुद्ध, दीप्तिमान, भानु, सांब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण ॥३३॥ पुष्कर, वेबाहु, श्रुतदेव, सुनंदन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध॥३४॥हे राजन! मधुदैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सब पुत्रोंमें रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजी श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुणी हुये॥३५॥महारथी प्रद्युम्नजीने रुक्मीकी पुत्रीसे विवाह किया, उन प्रद्युम्नजीसे रुक्मीकी पुत्रीमें दशहजार हाथियोंके बलवाले अनिरुद्ध पुत्र हुये॥३६॥ अनिरुद्धने रुक्मीकी पोती रोचनाको व्याहा उस रोचनामें अनिरुद्धके वज्रनाभ पुत्र हुआ, जो वज्रनाभ प्रभासक्षेत्रकी मुशललीलामें शेष रहा॥३७॥ उस वज्रनाभके प्रतिबाहु पुत्र हुआ, प्रतिबाहुके सुबाहु हुआ, सुबाहुके शांतसेन हुआ और शांतसेनके शतसेन हुआ ॥ ३८ ॥ इस यदुकुलमें धनहीन

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ॥ सांबो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करो देवबाहुश्च श्रुतदेवः सुनंदनः ॥ चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥३४॥ एतेषामपि राजेंद्र तनुजानां मधुद्विषः ॥ प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ॥ तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥३६॥ स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ॥ वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥३७॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चात्मजः ॥ सुबाहोः शांतसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ॥ अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ॥ संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥४०॥ तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ॥ आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥ ४१ ॥संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ॥ यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥

प्रजाहीन किसीने जन्म नहीं लिया और थोड़ी आयु पराक्रम रहित ब्राह्मणोंका भक्तिहीन ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित ! यदुवंशमें उत्पन्नहुये विख्यातकर्मा पुरुषोंकी संख्या दशहजार वर्षोंमें भी कहनेको समर्थ नहीं होसक्ते ॥ ४० ॥ क्योंकि तीन करोड आठ सहस्र आठसौ ३०००८८०० यदुकुलके बालकोंको पढ़ानेवाले आचार्य नियत थे, यह मैंने सुनाहै ॥४१॥ महात्मा यादवोंकी संख्या कौन कर सकता है ? क्योंकि जिस कुलमें हजारोंके दशहजार उनके लाख इतने यादवोंको लेकर द्वारकापुरीमें उग्रसेनने वास किया ॥ ४२ ॥

देवता और असुरोंके युद्धमें मरे दारुण दैत्यही मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्ववंत होकर प्रजाको बाधा देनेलगे थे ॥ ४३ ॥ हे महाभागवत परीक्षित ! उन असुरोंको दंड देनेके लिये हरि भगवान्की आज्ञा पाय देवताओंने यदुकुलमें अवतार लियाथा ॥ ४४ ॥ उन यादवोंकी प्रभुतामें भगवान्ही प्रमाण हुए, उन श्रीकृष्णचन्द्रके आज्ञानुवर्ती सब यादव हो वृद्धिको प्राप्तहुए ॥ ४५ ॥ सोते, बैठते, बोलते, क्रीडा, स्नान, भोजनादि कर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रमें चित्त लगाये यादवोंने अपने आत्माको नहीं जाना॥४६॥उससे प्रथम श्रीगंगाजीही अधिक तीर्थ रही, जब यादवोंमें श्रीकृष्णचन्द्रका यशरूपी तीर्थ प्रगट हुआ तबसे अपने चरणोदकरूप गंगातीर्थको भी न्यून करने लगे और आपही संपूर्ण तीर्थोंके ऊपर विराजनेवाले भगवान्

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ॥ ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥ ४३ ॥ तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ॥ अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४४ ॥ तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ॥ ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ॥ न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजित पराः श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः ॥ यन्नामाऽमंगलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥ जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ॥ स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितः श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने जिन पुरुषोंसे वैर किया और जिसने स्नेह किया वह भी तद्रूपको प्राप्त हुए. देखो ! जिस लक्ष्मीके लिये ब्रह्मादिक उपाय करते हैं, सो किसीको प्राप्त नहीं हुई, वह लक्ष्मी भी श्रीकृष्णचन्द्रको त्यागकर कहीं नहीं जाती, जिन श्रीकृष्णचन्द्रका नाम श्रवण करनेसे अथवा कथन करनेसे सब पापोंका नाश कर देताहै, फिर उनके स्वरूपका तो कहनाही क्या है ! और ऋषियोंके वंशमें धर्म चलाया काल चक्र आयुधधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दुष्टोंका मारना और पृथ्वीका बोझ उतारना, यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ ४७ ॥ सब जीवोंमें अंतर्यामीरूप होकर वास करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा उत्कर्षतापूर्वक विराजमान हैं, देवकीमें जन्म हुआ, यह तो कथनही मात्र है, श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवित इच्छामात्रसे अध

र्मके नाश करनेमें समर्थ है परन्तु तोभी क्रीडाके लिये अपनी भुजाओंसे अधर्मको दूरकर स्थावर, जंगम सब जीवोंका दुःख दूरकर सुन्दर मुसकान युक्त अपने श्रीमुखसे व्रजकी स्त्री गोपिका और पुरी मथुरा द्वारका की स्त्रियोंको कामदेव बढ़ानेवाले सर्वदा विराजमान रहते हैं, ऐसे सर्वोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो ॥ ४८ ॥ अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये मत्स्य कूर्मादिक अवतार धारण करनेवाले, यादवोंमें उत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो रूप धरकर योग्य कर्म कियेथे, उनको सुनकर पुरुष पापकर्मसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ तीनों कालमें बड़ी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभायमान कथाका श्रवण कीर्त्तन और विचार करके पुरुष कालकी गतिरहित भगवान्के धामको प्राप्त होता है, यह श्रवण करके चक्रवर्त्ती राजा भी राज्य त्याग श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्तिके लिये ग्रामके बाहर वनको चलेगये ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादश

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपविडंबनानि ॥ कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥ ४९ ॥ मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुंदश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिंतयैति ॥ तद्धाम दुस्तरकृतांतजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कंधोत्तरार्द्धे कृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ॥ दशमस्कन्धः समाप्तः ॥

साहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णचन्द्रानन्दकन्दचरित्रवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ इति भाषाटीकासमेत दशमस्कन्ध समाप्त ॥ १० ॥ दोहा—श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज गुणग्राम । विद्वत्तम उपकारचित, सकल सुलक्षणधाम ॥ १ ॥ कहाँ होतहैं जगतमें, ऐसे पुरुष उदार । देशदेशमें छै रह्यो, जिनको सुयश प्रचार ॥ २ ॥ कुटुंब सहित रक्षा करें, जिनकी श्रीजगदीश । बार बार यह देत हैं, शालिग्राम अशीश ॥ ३ ॥ भई दशमस्कन्धकी, भाषा पूरण आज । विरची शालिग्राम कवि, सुमिरि श्रीव्रजराज ॥ ४ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धोत्तरार्धं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कंधप्रारम्भः ॥


यादवयुद्ध
राम
श्रीकृष्ण.
व्याध
दारुक
द्वारकावासिनः
कृष्णपरिग्रह
अर्जुन

श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा–जय गणेश वारणवदन, विघ्नहरण सुखमूल । अनुपम भाल विशाल मुख, सोहत हाथ त्रिशूल ॥ १ ॥ जय जगजननी शारदा, सुखदानी गुणखान ॥ शीघ्र पूर्ण हो भागवत, दीजै यह वरदान ॥२॥ जय शिवकाशीनाथ पद, करन अनाथ सनाथ ॥ बारबार वर माँगिहौं, तिन पर धरकर माथ ॥३॥ सो०–जय हरि कृपानिधान, अधम उधारन सुखसदन । भाषत वेद पुरान, अस दयालु नहिं दूसरो ॥ १ ॥ प्रभुपद पोतहिं पाय, अगम अथाह भवाम्बुनिधि । मोसम पतित निकाय, तरन चहत गोपद सरिस ॥ २ ॥ दोहा–गुरुपद रज शिरधर कहौं, एकादशस्कन्ध ॥ हरि उद्धव सम्वाद वर, ज्ञान विराग प्रबन्ध ॥ ३ ॥ कहों प्रथम अध्यायमें, बहु अद्भुत इतिहास ॥ जैसे ऋषिके शापसे, यदुकुल भयो विनाश ॥ ४ ॥ पहले दशमस्कन्धमें भक्तोंका उद्धार और भूमिका भार उतारनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रगट हुए, उनकी लीला कही । अब एकादशस्कन्धमें भक्तोंको आत्मतत्त्वका उपदेश, और पूजामार्ग, भक्तिमार्ग, इनके फल निर्णय करके कहेंगे और सब भक्त पुरुषोंको अपने स्थानपर प्राप्त करैंगे. इसप्रकार इस एकादशस्कन्धमें मुक्तिलीला कहते हैं, तहाँ प्रथम कुरुक्षेत्रमें जैसे वसुदेवजीने नारदजीसे कर्मयोग पूँछा, तब नारदजीने कर्मयोग सब कहा

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥ भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

उससे जब चित्त शुद्ध हुआ तब वसुदेवजीको ज्ञान उत्पन्न हुआ, अर्थात् राम, कृष्ण, यह दोनों साक्षात् ईश्वर हैं और जब यह ज्ञान नहीं रहेगा तो फिर ब्रह्मज्ञान नारदजीसे पूछेंगे, तब नारदजी पाँच अध्यायोमें वर्णन करैंगे सो पहले अध्यायमें वैराग्य उत्पन्न करानेके लिये यदुकुलको ब्रह्मशापके बहानेसे विषयसुखको अनित्य कहते हैं, इसके उपरान्त चार अध्यायोंमें राजा जनक और नवयोगीश्वरोंका संवाद कहैंगे, उसमें परमतत्त्व निरूपण करैंगे, फिर छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण और उद्धवका संगम कहैंगे, इसके पीछे तेईस अध्यायमें उद्धवको श्रीकृष्ण परमतत्त्व निरूपण करैंगे फिर दो अध्यायोंमें यादवोंका संहार कहैंगे, इसीप्रकार इकतीस अध्यायोंमें "एकादशस्कन्ध" वर्णन करैंगे इसलिये पहले पूर्वस्कन्धकी कथा स्मरण करके श्रीशुकदेवजी प्रारंभ करते हैं ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जिसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने और बलदेवजीने मिलकर यादवो सहित शीघ्र कलह उत्पन्न कर संपूर्ण पृथ्वीका भार उतारा, सो हम तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं * ॥ १ ॥

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने त्रिलोकीके स्वामी होकर अनेकप्रकारके पुत्र, पौत्र, परपौत्र उत्पन्न करके फिर उनका विनाश क्यों किया ? जो कोई कहै कि, कृष्णचन्द्रने विचार किया कि, इन यदुवंशियोंको छोडकर परमधामको जायँगे तो यह सब पृथ्वीके मनुष्योंको दु ख देंगे, जो ऐसा कहैं, वे सम्पूर्ण मूर्ख हैं, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र महाराज तो घट घटकी जाननेवाले थे कुछ मनुष्य नहीं थे, जानते थे कि, हम वैकुण्ठधामको

कि, जो पाण्डुके पुत्र शत्रुओंसे बहुत कोपित कियेगये, जुआँ खेलनेसे जिनका राज्य जाता रहा, अवज्ञासे द्रौपदीके केश खैंचेगये, लाक्षाभवनमें पाण्डवोंको बन्द करके आग लगादी गई, जहाँतक होसका वहाँतक कष्टपर कष्ट दिये उन्हींके लिये दोनों पक्षोंमें मिले राजाओंको मार पृथ्वीका भार उतारा, परन्तु तोभी विचारनेलगे ॥ २ ॥ कि, यद्यपि पृथ्वीका भाररूप जो राजाओंकी सेना थी सो अपनी भुजाओंसे पालित यादवोंसे नाश भी

ये कोपिताः सुबहु पांडुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ॥ कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिंतयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ॥ अंतः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तंबस्य वह्निमिव शांतिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥

करवाई, परन्तु तोभी भार न गया, क्योंकि यदुकुल अभी अनन्त शेष है जिसका कि, पृथ्वीपर बडा भारी भार है ॥ ३ ॥ जिसके मैं आश्रय हूँ उसका पराजय तो और किसी दूसरेसे हो नहीं सक्ता, और यह संपूर्ण यादव वैभवसे उद्धत होगये हैं और विना इनका संहार किये किसी प्रकार पृथ्वीका

जायँगे, सर्वान्तर्यामी ईश्वरथे, विचारा कि, यह हमारे अंशसे जो जन्मे यादव हैं सो पृथ्वीको अत्यन्त दु'ख देवेंगे, ऐसा जानते थे तो उन सबको उत्पन्न क्यों किया ? क्योंकि आपही उत्पन्न करके आपही नाश करना यह बडा अयोग्य कर्म है क्योंकि शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, विषके खायेसे प्राणी मरजाते हैं, विष ऐसी बुरी वस्तु है, परन्तु जो अपने हाथसे विषका वृक्ष भी लगाते हैं, अपने हाथसे वह लोग उसको भी नहीं काटते और चेतनस्वरूपको उत्पन्न करके आपसे आपही उसको विनाश करना यह बडा खोटा कर्ममें है, फिर श्रीकृष्णने ऐसा खोटा कर्म क्यों किया ?

उत्तर–श्रीकृष्णने ऐसा विचार किया कि, जिस दिन हम इस लोकसे परलोकको जायँगे उसीदिन कलियुग महाघोर इस मर्त्यलोकका राजा होगा और यह सब यादव हमारे अंशसे जो उत्पन्न हुएहैं और पीछे गर्में जो यह सब एसेही रहैंगे तो अनेक दु ख पावेंगे, इसलिये इन सबका प्रबन्ध ऐसा कर कि, प्रथमही अपने लोकमें भेजकर पीछे हम जायँगे क्योंकि यादवोंके नाश होनेसे दु ख तो होहीगा परन्तु होगा, कैसा ? कि जैसे कोई औषधि खानेके समय कडुवा मुख हो जाता है, परन्तु पीछेसे सुख होता है, फोडेको चीरनेके समय जीव दु.ख मानता है, परन्तु पीछे सुख पाता है, इस बातको पृथ्वीके भारके कारणसे अपने अंश करके जो यादव उत्पन्न किये उन सबको नाश करके अपने अंशको संग लेकर चलेगये, कुछ निर्दयपनसे यादवोंका विनाश नहीं किया ॥

भार उतर नहा सक्ता इसलिय इनमे परस्पर कलह उत्पन्न करा, जैसे बांसोंमें अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार सुलगाय शान्तिको प्राप्त हो पीछे अपने परमधामको जाऊँगा ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार बुद्धिसे निश्चयकर सत्यसंकल्प भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मशापके मिससे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ जिनके समान लोकमे कहीं लावण्यता नहीं और जिनके संबंधसेही लोकोको शोभा मिलती है, इसप्रकार अपनी देहसे पुरुषोंके चित्त हरकर जिमसे चित्त औरको स्मरण न करे और जो चरणारविन्द देखते हैं; उनकी योग और क्रिया चरणोंके देखनेसे हरली, फिर भक्तोकी सब इन्द्रियें वृत्तिमें और अपने संसारी जीवोंका अज्ञानरूपी अँधेरा दूरकर, उनके लिये पृथ्वीमें अतिविमल कीर्त्ति विस्तारकर श्रीकृष्णचन्द्र व

एवं व्यवसितो राजन्सत्य संकल्प ईश्वरः ॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्य निर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यंजसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यंतीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसे विनाम् ॥ विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ॥ कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुंदरसन्निवेशं कर्माऽऽचरन्भुवि सुमंगलमाप्तकामः ॥ आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥

बलरामजी अपने धामको चलेगये ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजा परीक्षित् पूँछने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! यादव तो ब्राह्मणोंके भक्त, अतिदानी और नित्य प्रति वृद्धोंकी सेवा करते थे, इतनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जिनके मन लगरहे थे उन्हें किसलिये ब्राह्मणलोगोंने शाप दिया ? ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! इस शापका क्या कारण है ? क्यों हुआ ? और यह सब लोग एक चित्त थे; उनमें भेद क्यों उत्पन्न हुआ ? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यह सब मुझसे कहो॥९॥ तब श्रीशुकदेवजी कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! प्रथम भक्तोंको सुख देनेके लिये संपूर्ण शोभायमान स्वरूप धारणकर भूमिपर अत्यंत मंगल कर्म किये और यद्यपि आप पूर्णकाम हैं, परन्तु तो भी फिर द्वारकापुरीमें घर बनाय अनेक क्रीड़ाकर सब भक्तोंको सुख दिया, इसका तात्पर्य

दोहा–दुसरेमें वसुदेव अरु, नारद प्रश्न सुस्वाद । योगेश्वर अरु जनक सों, भयो धर्म सम्वाद ॥ १ ॥ दूसरे अध्यायमें भक्तिसे पूँछे वसुदेवजीको नारद जनक और नव योगियोंके संवादसे शुद्ध धर्म कहैंगे श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! गोविन्दकी भुजासे पालित द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें प्रेम करनेवाले नारदजी निरंतर वास करते थे ॥ १ ॥ क्योंकि ऐसा कहा भी है, जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें मुक्त पुरुषोंको भी उत्कंठा होती है, उनको कौन नहीं भजता, सर्वत्र मृत्युसे त्रासित कौन इन्द्रियवन्त भगवान्‌के चरणारविन्दका भजन नहीं करता, जिन चरण कमलोंकी देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक सेवा करते हैं ॥ २ ॥ एक दिन देवर्षि नारदजी वसुदेवजीके घर आये, तब वसुदेवजीने अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाल पूजा और नमस्कार करके पूछा ॥ ३ ॥ कि, हे भगवन् ! जैसे हरिकी प्राप्तिका मार्गरूप महत् पुरुष है, उनका आगमन

श्रीशुक उवाच ॥ गोविंदभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥ अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥ को नु राजन्निंद्रियवान्मुकुंदचरणांबुजम् ॥ न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥ तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ॥ अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ॥ कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥ भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ॥ सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥ भजंति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ॥ छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥६॥

दीनोंका कल्याण करनेके लिये है और जैसे पिताका आना पुत्रादिकोंके सुखके लिये है उसी प्रकार तुम्हारा अगमन सब देहधारियोंके कल्याणार्थ है ॥ ४ ॥ महात्मा लोगोंको देवताओंकी उपमा भी अनुचित है, क्योंकि देवताओंका चरित्र बहुत वृष्टि आदिसे दुःख और सुख दोनों करता है, परन्तु साधुओंका चरित्र तो सदा सुखही करता है, इसकारण तुम सरीखे अच्युत रूप पुरुषोंका आगमन सुखहीके लिये है ॥ ५ ॥ यद्यपि देवतालोग सुख देते हैं, परन्तु तो भी जिसने जितना भजन किया हो उसे उस भजनके अनुसारही सुख देते हैं, क्योंकि जैसे मनुष्य जितना कार्य करै, उतनाही उसकी परछाहीं कार्य करै, ऐसेही मनुष्य जैसा और जितना काम करै, उसे देवतालोग कर्मानुसारही फल देते हैं ... सरीखे साधु पुरुष तो दीनोंके देखतेही ...

हे नारद ! यद्यपि हम तुम्हारे आनेसेही कृतार्थ होगये, परन्तु तो भी आपसे जिन धर्मोंसे भगवान् प्रसन्न हों, सो वैष्णवधर्म पूछते हैं, जिस धर्मको श्रद्धासहित श्रवण करनेसे मनुष्य संसारसे छूट जाता है ॥ ७ ॥ यदि तुम कहो कि, भगवान्‌की प्रसन्नताके पात्र तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं सो इसका उत्तर यह है कि, मुक्तिदाता अनंतभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रथम मैंने पुत्रकामनासे आराधन कियाथा, देवमायासे मोहित हो मोक्षप्राप्तिके लिये आराधन नहीं किया, यह बात सूतिकागृह (सरोवर) में ही श्रीकृष्णचन्द्रने मुझसे कही थी सो मुझे याद है ॥ ८ ॥ हे नारद ! इसलिये अनेक दुःखसंयुक्त सब ओरसे भयदेनेवाले संसारसे जिसमें हम विनाही श्रमके छूट जायँ, वैसाही तुम शिक्षा दो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् !

ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव ॥ याञ्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते विश्वतो भयात् ॥ ७ ॥ अहं किल पुरानंतं प्रजाऽर्थो भुवि मुक्तिदम् ॥ अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतो भयात् ॥ मुच्येम ह्यंजसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ॥ प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्त्वतर्षभ ॥ यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥ श्रुतो नु पठितो ध्यात आदृतो वाऽनुमोदितः ॥ सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥ त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥

इसप्रकार जब अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने पूछा, तब भगवान्‌के गुणोंको स्मरण करानेसे प्रसन्न हो, देवर्षि नारदजी वसुदेवजीसे कहनेलगे ॥ १० ॥ कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ वसुदेवजी तुमने यह भला निश्चय उत्तम प्रश्न किया, क्योंकि, तुमने सबके चित्तको शुद्ध करनेवाला वैष्णवधर्म पूछा ॥ ११ ॥ यह धर्म सुननेसे, स्मरण करनेसे, श्रद्धापूर्वक आदरसे ध्यान करनेसे, सम्मति देनेसे समस्त विश्वके पातकी जनोंको शीघ्र पवित्र करदेताहै, क्योंकि यह भगवत् सम्बन्धी धर्म है ❀ ॥ १२ ॥ हे वसुदेव ! तुमने परमकल्याणरूप जिनके श्रवण और कीर्त्तन अत्यन्त पावन पवित्र

* शंका–ऐसा उत्तम कौनसा धर्म है, जो शीघ्रही दुष्टोंको पवित्र करता है ? कैसे दुष्टोंको ? जो दुष्ट तीन लोककी और देवताओंकी बुराई करते हैं, उनको पवित्र करना महाकठिन है, क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि, जो प्राणी किसी दूसरे प्राणीकी एक भी बुराई करैगा तो वह बुराई करनेवाला पुरुष कभी पवित्र नहीं होगा वह तो चण्डालके सदृश बना रहैगा और जो तीनलोककी तथा तीनलोकके देवताओंकी निन्दा करैगा वह कैसे पवित्र हो सक्ताहै ?

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥ प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य यः ॥ तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥१५॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥ अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥ तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समंततः ॥ कर्मतंत्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥

हैं ऐसे भगवान् नारायणको मुझे स्मरण कराकर मेरा आपने बड़ाही उपकार किया ॥ १३ ॥ अब मैं यहाँ तुमसे एक प्राचीन कथा कहताहूं, जिसमें उदारचित्त राजा जनक और ऋषभदेवके पुत्र नव योगीश्वरोंका संवाद है ॥ १४ ॥ स्वायंभुवमनुका प्रियव्रतनाम एक पुत्र हुआ उसके अग्नीध्र इनके नाभि और नाभिके ऋषभदेवजी हुए ॥ १५ ॥ यह वासुदेवके अंशरूप ऋषभदेवजी मोक्षसंबंधी धर्म कहनेकी कामनासे प्रगट हुएथे, इनके सौ १०० पुत्र हुए सो सब, वेदके जाननेवालेथे ॥ १६ ॥ इनमें नारायण और भरतजी अत्यन्त श्रेष्ठ हुए अधिक कहनेकी अवश्यकता नहीं यह अजनाभखंडही जिनके नामसे भरतखण्ड प्रसिद्ध होगया ॥ १७ ॥ सो राजा भरत पृथ्वीको भली प्रकार भोगकर, अन्तमें पृथ्वीको छोड, तपस्या करनेको चलेगये और भगवान् हरिकी उपासना करते करते तीन जन्ममें हरिकी पदवीको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ शेष निन्नानवे पुत्रोंमें नौ पुत्र इस भरतखण्डके मध्य नवों द्वीपोंके पति हुए और इक्यासी पुत्र कर्ममार्गके प्रवर्तक ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ और जो नौ पुत्र यहाँ भागवतमुनि थे, वह परमार्थके उपदेश करनेवाले आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर दिगंबर

उत्तर–जो धर्म तीनलोक अथवा सब देवताओंकी निन्दा करनेवाले प्राणीको पवित्र करता है, वह धर्म यह है कि, मनमें दया करके भगवान्का भजन करना, यह ऐसा सुन्दर धर्म है कि, सब पापोंका नाश करता हैं, जैसे रूईके ढेरको एक सरसों प्रमाण अग्नि भस्म कर देती है, ऐसाही भगवान्के नामका जप है, थोडाभी करैगा तो अनेक जन्मके पापोंका नाश करदेगा ऐसा लिखा है ।

वेप आत्मविद्यामें निपुण हुए ॥२०॥ उनके नाम यथा—कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभोजन ॥ २१ ॥
यह सब इस विश्वको भगवद्रूपसे देखनेलगे, स्थूल सूक्ष्मको आत्मासे भिन्न देखनेलगे, अधिक क्या कहें, वह सब आत्मरूपहीको देखते संपूर्ण
पृथ्वीमें फिरनेलगे ॥ २२ ॥ अप्रतिहत गतिसे आसक्ति रहित यह योगीश्वर देवता, सिद्ध,, साध्य, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग, मुनि,
चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओके लोकोंमें अपनी इच्छासे विचर रहेथे ॥ २३ ॥ विचरते २ यह सब अपनी इच्छासे एक दिन

कविर्हरिरंतरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ २१ ॥ एते वै भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यंतो व्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगंधर्व यक्षनरकिन्नरनागलोकान् ॥ मुक्ताश्चरंति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥ २३ ॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ॥ वितायमानमृषिभिरजनाभे महात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृप ॥ यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥ विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ॥ प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७ ॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः ॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरंति हि ॥ २८ ॥

[illegible] अजनाभ राजा जनकके यज्ञमें आये ॥ २४ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी परमभागवत इन ऋषियोंको देख यजमान,
[illegible] सब उठकर खड़े होगये ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त राजा जनक उनको नारायणपरायण जान अतिप्रसन्न हो आसन दे यथायोग्य
[illegible] ॥ २६ ॥ [illegible] शोभासंयुक्त सनकादिकोंके समान उन नव योगीश्वरोंको देख, प्रसन्न हो, विनयकर, नम्र होकर पूंछने
लगे ॥ २७ ॥ [illegible] कि, तुम साक्षात् मधुदैत्यके द्वेपी भगवान्के पार्षद हो, जिससे विष्णुभक्त लोगोके पवित्र करनेको सब

ठौर विचरते हो ॥२८॥ मैंने दुर्लभ वस्तु पाई है, इसलिये मेरा बड़ा भाग्य है, क्योंकि ऐसा कहा है कि, देहधारियोंको मनुष्यदेह दुर्लभ है, सो भी क्षणभंगुर है, उसमें भी भगवान्‌के प्रिय भक्तोंका दर्शन तो अत्यन्तही दुर्लभ है ॥२९॥ हे निष्पाप ! इसलिये मैं आपसे पूँछताहूं कि, संसारमें सबसे उत्तम कल्याणका साधन क्या है क्योंकि इससंसारमें अर्द्धक्षणका सत्संग भी मनुष्योंको बड़ी निधि है ॥३०॥ इसकारण यदि आप हमें सुननेका अधिकारी समझो तो हमसे वैष्णवधर्म कहो, जिन धर्मोंसे प्रसन्न होकर भगवान् भक्तोंको अपना आत्मातक भी दे देते हैं ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि, हे वसुदेव ! इसप्रकार जब राजा जनकने पूछा, तब उन महंत ऋषिजोंने सभासदों सहित राजा जनककी स्तुति करके प्रीतिपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठप्रियदर्शनम् ॥२९॥ अत आत्यंतिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ॥ यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥३१॥ नारद उवाच ॥ एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः ॥ प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विज नृपम् ॥ ३२ ॥ कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादांबुजोपासनमत्र नित्यम् ॥ उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥ ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ॥ अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान्हि तान् ॥ ३४ ॥

जनकजीने नौ प्रश्न किये, प्रथम वैष्णवधर्म, दूसरा परमेश्वरकी भक्ति, तीसरे माया, चौथे मायाके तरनेका उपाय, पाँचवॉ ब्रह्म, छठा कर्म, सातवॉ अवतार चरित्र, आठवाँ भक्तिप्राप्ति, नवॉ युग, इन एक एक प्रश्नका उत्तर नवों मुनीश्वरोंने दिया, प्रथम अतिकल्याणरूप धर्म कवि योगेश्वर बोले कि, हरिके चरणारविन्दकी उपासनाही सब प्रकारके भय दूर करती है, जिसके करनेसे देहादि भिन्न पदार्थोंके गर्वसे सदा उद्वेगको प्राप्त होकर यह पुरुष संसारके भयसे छूट जाता है ॥ ३३ ॥ अब वैष्णवधर्मके लक्षण कहते हैं, प्रथम मनु आदि ऋषियोंके मुखसे सब वर्ण आश्रम धर्म कहते हैं कि अतिरहस्यसे अपने मुखसे भगवान्‌ने अज्ञानियोंको सुखपूर्वक आत्मज्ञान पानेके जो उपाय कहे हैं, वह सब वैष्णवधर्म हैं ॥ ३४ ॥

उन धर्मोंका आश्रयकर मनुष्य कभी विघ्नोंसे पीड़ित नहीं होता. हे राजन् ! नेत्र बन्द करके दौडे तो भी नहीं गिरता और यदि वर्ण आश्रम धर्म न बन पड़े तो भी प्रत्यवायी नहीं होता और न फलसे भ्रष्ट होताहै ॥ ३५ ॥ जिस विधिसे बताये शास्त्रोक्त किये कर्महीं नारायणके अर्पण करै, यह नियम नहीं हैं, किन्तु शरीर, वाणी, मन, बुद्धि, अहंकार और अध्याससे मानेहुए ब्राह्मणत्वादिसे भी जो कुछ कर्म करनेमें आवे, वह सब परमेश्वरके अर्पण करनेसे शारीरक क्रिया सब नारायण सम्बन्धी धर्मरूप होजाती हैं ॥ ३६ ॥ परमेश्वरसे विमुख पुरुषको ईश्वरकी मायासे भगवत् स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, बरन् उससे अहंदेह, मैं देहहूं, अभिमान होता है तब दूसरेके अभिनिवेशसे भय होता है, जिस कारण कि, उनकी मायासे भय होता है, इससे गुरुको देवता और इष्ट माननेवाले बुद्धिमान् निश्चय करके भक्तिसहित ईश्वरको ही भजें,

यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुश्रितस्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥३७॥ अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ॥ तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥ शृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ॥ गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः ॥ ३९ ॥

तहाँ पूर्वपक्षमें कहते हैं कि, चित्त तो विषयोंसे चंचल है, फिर निश्चल भक्ति कैसे हो ? और भक्ति न हो तो भय कैसे जाय ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, विषय कुछ वस्तु नहीं है, केवल मनका विलास मात्र है, इसलिये मनको निग्रह करके जो भजन करै तो अभय होय, यद्यपि यह प्रपंच सब ब्रह्मरूपही है, दूसरा कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ परंतु तोभी अविद्यासे द्वैत भासता है, जैसे ध्यान करनेवाले पुरुषको मनसे स्वप्न और मनोरथ दीखते हैं, इसकारण संकल्प विकल्पके कर्त्ता मनको बुद्धिमान् पुरुष रोके, तब निश्चल भक्तिसे भजन करै, तो अभय होवै ॥ ३८ ॥ जो जगदीशके शुभ कर्म जन्म हैं और जो जन्म कर्मसे हुये नाम लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनको लज्जा छोड निस्पृही होकर गाता फिरै ॥ ३९ ॥

इस प्रकार भजन करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तियोगको प्राप्त होनेसे उसकी संसारसे न्यारीही गति होजाती है, ऐसा जिसका आचरण है और भगवान् वासुदेवके नामकीर्तनसे अनुराग बढने और चित्त अतिकोमल होनेसे वह भक्त भगवान्को जीत लेतेहैं, तब उनकी यह दशा होजाती है कि, कभी भगवान्को अपने वशमें जानकर हँसते हैं और कभी इतना समय व्यर्थ गया, यह जानकर रोते हैं, कभी अति उत्कण्ठासे पुकारते हैं, कभी आनंदमें मग्न हो उच्च स्वरसे गाते हैं, अरु कभी नाचते हैं, इस प्रकार अलौकिक उन्मत्तोंकेसी चेष्टा करते हैं, जैसे मतवाले अज्ञानी पुरुष करते हैं ॥ ४० ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ज्योति, सब प्राणी मात्र, दिशा, वृक्ष, नदी सबको हरिहीका शरीर जाने, अनन्य चित्त होकर प्रणाम करै, यह वैष्णवोंके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ यदि कोई कहे कि, यह धर्म तो योगेश्वरोंकोभी दुर्लभ है, अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त नहीं हो

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ॥ हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ॥ ४० ॥ खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सर्वाणि दिशो द्रुमादीन् ॥ सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥ भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवंति वै भागवतस्य राजंस्ततः परं शांतिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ॥ यथा चरति यद्ब्रूते यैर्लिंगैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥

सक्ता, सो एक नाममात्रका कीर्त्तन करनेसे एकही जन्ममें कैसे होसक्ता है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, प्रेमलक्षणा भक्ति और प्रेमाश्रय भगवत स्वरूपकी स्फूर्ति और गृहादिकोंमें वैराग्य, यह तीनों हरि भजनकर्त्ता पुरुषको एकहीसमय होते हैं, जिस प्रकार भोजन करनेसे सुख, पुष्टि, पेट भरना, भूंखकी निवृत्ति यह तीनों एकही कालमें ग्रास विषे होती हैं ॥ ४२ ॥ फिर भगवान्के प्रसादसे कृतार्थ होता है सो कहते हैं, इस प्रकार जब पुरुष हरिचरणारविन्दका नित्य भजन करै, तो उसे प्रेमलक्षणा भक्ति तथा वैराग्य और साक्षात् भगवत् स्वरूप ज्ञान तीनों होते हैं, तब पुरुष परमशान्तिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर राजा जनकने पूछा कि, हे मुनिश्रेष्ठ! वैष्णव मनुष्योंके वीचमें कैसे होते हैं, किस

धर्मकेविषे स्थित, कैसा स्वभाव, कैसा आचरण, कैसा बोलना, और कैसे चिह्न हैं? जिससे भगवान्का प्रिय होता है, सो कृपापूर्वक संपूर्ण मेरे आगे वर्णन करो? ॥ ४४ ॥ इसका उत्तर हरिनामा योगीश्वर तीन श्लोकोंसे देते हैं कि, जो अपनेको सब प्राणीमात्रमें ब्रह्मस्वरूपसे स्थित देखे और ब्रह्मरूप अपनेमें सर्व प्राणीमात्रको देखे, सो उत्तम भागवत है ॥ ४५ ॥ ईश्वरमें प्रेम करे, भगवान्के भक्तोंसे मित्रता करे, मूर्खोंपर कृपाकरे और शत्रुओंकी उपेक्षा करे, वह मध्यम वैष्णव है ॥ ४६ ॥ भेदबुद्धिसे केवल प्रतिमाहीमें श्रद्धा रखता है और जीवोंमें तथा भक्तोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं है, वह प्राकृत भक्त है ॥ ४७ ॥ अब आठ श्लोकों उत्तम वैष्णवोंके लक्षण कहते हैं, जो इन्द्रियोंसे विषयोंको भोग करते हैं, परन्तु न किसीसे द्वेष

हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥ गृहीत्वापींद्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति ॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेंद्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ॥ सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥

है, न प्रीति है, सब वस्तुमात्रको ईश्वरकी मायासे जानते हैं, सो भक्तोंमें उत्तम हैं ॥ ४८ ॥ देहके संसारी धर्म, जन्म, मरण, इन्द्रियोंको कष्ट, प्राणोंको भूँख, मनको भय, बुद्धिको तृष्णा, इन संसारके धर्मोंसे जो मोह न पावैं और निरंतर भगवान् हरिका स्मरण करैं सो वैष्णव भक्तोंमें मुख्य हैं॥४९॥ जिसके मनमें काम, कर्म और वासना न उत्पन्न हो, चित्त केवल भगवान् वासुदेवके स्वरूपमेंही वसता रहै, सो वैष्णवोंमें उत्तम है, इन तीन श्लोकोंमें भक्तोंके आचरणको उत्तम कहा ॥५०॥ जिसके इस देहमें कुल, तप, वर्ण, आश्रम और जातिका अभिमान नहीं है, सो भगवान्का अतिप्यारा भक्त

है ॥ ५१ ॥ जिसके चित्त और आत्मामें अपनी पराई बुद्धि नहीं और सब प्राणीमात्रमें समान दृष्टि होकर शान्त हो सो वैष्णवोंमें उत्तम है ॥५२॥ त्रिलोकीके राज्यके लिये भगवान् वासुदेवमेंही जिनका चित्त है और जो देवताओंसे दुर्लभ भगवान्के चरणकमलके भजन विना अर्द्धक्षण लव मात्र भी नहीं व्यतीत करते, सो वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इनको ऐसा दृढ़ ज्ञान है कि, भगवान् वासुदेवके चरणोंसे अधिक और कुछ सार नहीं ॥ ५३ ॥ यदि विषयके संगसे और कामसे संतापित हुए भक्तोंके मन चंचल होयँ तो क्या ? इसपर कहते हैं कि, हरिसेवामें सुख माननेवालेका तो मन नही चलायमान हो, परन्तु अनंतपराक्रम भगवान् वासुदेवके चरणकी शाखारूप अंगुलियोंके नखरूप मणिकी चन्द्रिकासे सब कामादि ताप दूर

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ॥ सर्वभूतसमः शांतः स वै भागवतोऽत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवे ऽप्यकुंठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ॥ न चलति भगवत्पदारविंदाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥५३॥ भगवत उरुविक्रमांघ्रिशाखानखमणिचंद्रिकया निरस्ततापे ॥ हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चंद्र इवोदितेऽर्क तापः ॥५४॥ विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥ प्रणयरशनया धृतांघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधानउक्तः॥५५॥इति श्रीमद्भाग०म०एका०नारदवसुदेवसंवादांतर्गतनिमिजायंतेयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥ राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामि भगवंतो ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥

होनेसे भक्तके हृदयमें ताप उत्पन्न नहीं होता, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे सूर्यका ताप दूर होजाता है और भी मुख्यलक्षण कहते हैं॥ ५४ ॥ केवल नाम मात्रके लेतेही सम्पूर्ण पापोंके समूहका नाश करनेवाले साक्षात् भगवान् वासुदेवको हृदयमेंसे न त्यागे वही वैष्णवोंमें उत्तम है, क्योंकि इसने प्रेमडोरीसे हरिके चरणकमल हृदयमें बाँध रक्खे हैं ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां निमिजायंतेयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–माया मायासे तरन, ब्रह्म कर्म यह चार ॥ इनको उत्तर देत अब, योगेश्वर सुविचार ॥ १ ॥ माया और मायासे तरनेका उपाय तथा ब्रह्मकर्म इन चार प्रश्नोंका उत्तर ऋषभदेवके पुत्र मुनि तीसरे अध्यायमें कहेंगे, राजा जनकजी बोलेकि, हे भगवन्! परमात्मा ईश्वर विष्णुकी मायाको मैं जानना

चाहताहूं सो कृपापूर्वक तुम मुझसे कहो, जो माया बड़े जाननेवालोंकोभी मोहित करलेती है ॥१॥ यदि तुम कहो कि, उक्त (जिसको प्रथम कह आयेहैं) लक्षणवाला भक्त होकर कृतार्थ होय तो बहुत परिश्रम करके क्या करेंगे ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, मरणधर्ममें संसारके तापसे अत्यन्त ताप होताहै, उस तापकी औषध हरिकथारूप अमृतको तुम्हारे वचनोंद्वारा पीनेसे मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥२॥ यह सुनकर अंतरिक्ष नामा योगेश्वर बोले कि,हे राजन् ! आदिपुरुष भगवान् सब प्राणिमात्रके कारण अपने अंशभूत जीवोंको मोक्षके अर्थ पंचमहाभूतोंकी शक्तिसे,बुद्धि,इन्द्रिय,मन,प्राण और शरीर उत्पन्नकरतेहैं सो शक्ति मायाकारूपहै ॥३॥ इसप्रकार पंचमहाभूतोंसे सृष्टि रच सम्पूर्ण प्राणियोंके मध्यमें भगवान् अंतर्यामी रूपसे प्रविष्ट

नानुतृप्य जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ॥ संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अंतरिक्ष उवाच ॥ ॥ एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पंचधातुभिः ॥ एकधा दशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान्स भुजान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ॥ मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्क फलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥७॥धातूपप्लव आसंन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ॥ अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥८॥ शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भ विष्यत्युल्वणा भुवि ॥ तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥

होकर एकप्रकार मन और दश इन्द्रियरूपसे जीवोंको भिन्न भिन्न विषयभोग कराते हैं ॥४॥ तब जीवात्मा अंतर्यामी से प्रकाशित इन्द्रियोंसे विषयभोग करते मायारचित शरीरको आत्मा मान उसी शरीरमें आसक्त होतेहैं ॥५॥ यह जीव कर्मेन्द्रियोंसे वासनासहित कर्म करते हैं और इन्हीं कर्मोंसे सुख दुःखरूप फलको भोग करते संसारमें भ्रमण करते हैं, परन्तु मोक्ष नहीं होते, यह परमेश्वरकी माया है ॥ ६ ॥ इस भाँति अनेक क्लेशयुक्त कर्ममार्गमें चलते जीवात्मा पराये वश होकर महाप्रलयतक जन्म मरणको प्राप्त होतेहैं ॥ ७॥ अब प्रलय कहते हैं कि, पंचमहाभूतोंके नाशका काल जब निकट आता है, तब आदि अंत रहित कालमें लीन करनेको इस स्थूल सूक्ष्म प्रपंचको खैंचलेतेहैं ॥ ८ ॥ अब नाशका कारण कहते हैं, पहले

पृथ्वीमें सौ १०० वर्षतक अतिदारुण अनावृष्टि होगी, पीछे उस कालमें बड़ी उष्णतासे सूर्य तीनों लोकोंमें तपैगा ॥ ९ ॥ और पाताल तलसे आरंभ होकर जलाताहुआ ऊंचेको शिखाकिये अग्नि, वायुसे प्रेराहुआ चारों दिशाओंमें बढैगा ॥ १० ॥ इसके उपरान्त सांवर्त्तकनाम प्रलयकालके मेघगण सौ १०० वर्षतक हाथीकी सूंड़के समान धारोंसे वर्षेंगे, तब उस जलमें यह ब्रह्माण्ड लीन होजायगा ॥ ११ ॥ हे राजन्! जैसे अग्नि काष्ठ न हो तो शुद्ध अग्निमें मिलजाती है, इसीप्रकार ब्रह्माण्डरूप शरीरवाला विराट्पुरुप ब्राह्माण्डरूप अपने शरीको छोड़ कर सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेश करजाताहै ॥ १२ ॥ पृथ्वीका गुण गंध है, उसको प्रलयाकारकी पवन हरलेती है, तब पृथ्वी गुणरहित होकर जलमें लीन

पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ॥ दहन्नूर्द्धशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥ १०॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिंधन इवानलः ॥ १२ ॥ वायुना हृतगंधा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते॥ इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशंति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यंतकारिणी ॥ त्रिवर्णा वर्णितास्माभिर्भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥

होजाती है, पीछे जलके गुण रसको वही पवन सोख लेता है, तब जल तेजमें लीन होजाता है ॥ १३ ॥ प्रलयकालके अंधकारसे रूपरहित हो तेज वायुमें लीन होजाता है, पीछे आकाशसे स्पर्शगुण हरजानेसे वायु आकाशमें लीन होजाताहै, इसके उपरान्त आकाशके गुण शब्दको कालरूप ईश्वर हरलेते हैं, तब आकाश तामसाहंकारमें लीन होजाता है ॥ १४ ॥ फिर इन्द्रियें और बुद्धि राजसाहंकारमें लीन होती हैं, मन इन्द्रियोंके देवताओं सहित सात्त्विक अहंकारमें लीन होता है; हे राजन्! इसीप्रकार तामस, राजस और सात्विक यह तीनों गुणोंका कार्य इन्द्रियादिक सहित अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होता है और वह महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन होता है ॥ १५ ॥ सात्त्विक, राजस, तामस, तीनों गुणयुक्त उत्पत्ति पालन और

प्रलय करनेवाली यह भगवान्‌की माया है, सो मैंने तुमसे इसका रूप वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले
कि, हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार अतिदयायुक्त मुनिको देख इस संसारकी मायासे तरनेका उपाय राजा जनक पूँछनेलगे, कि यह ईश्वरकी
माया अजितेंद्रियोंको अति दुस्तर है, इसलिये देहाभिमानी भी जिसप्रकार इसे सुखपूर्वक तरसके सो हे महाऋषि ! वोही उपाय तुम मुझे
बताओ ॥ १७ ॥ तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगीश्वर बोले कि, हे राजन् ! भगवान् स्त्री पुरुष मिलकर अपने सुखको और दुःख दूर करनेके कर्मोंका
आरंभ करते हैं, और फिर उन कर्मोंके फलमें दुःखही देखते हैं ॥ १८ ॥ कर्मके साधनसे धनादिक मिलकर भी सुख नहीं देते; इसपर कहते हैं कि,
नित्य दुःखदायी उसपर भी दुर्लभ, अपनी मृत्युकारक धन, गृह, पुत्र, बंधु और पशुओंके पायेसे क्या सिद्धि है ? यह तो सब मिथ्या है ॥ १९ ॥

राजोवाच ॥ अथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ तरंत्यंजः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥ प्रबुद्ध उवाच ॥
कर्मण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन
दुर्लभेनात्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥ १९ ॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ॥ सतु
ल्यातिशयध्वंसं यथा मंडलवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्म
ण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥ तत्र भागवतान्धर्माञ्छिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ॥ अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मप्रदो हरिः ॥ २२ ॥

इसीप्रकार कर्मोंसे उत्पन्न हुए परलोकको भी मिथ्या जानै, जिसमें अपने समानसे ईर्षा, अधिककी निन्दा स्वर्गसे गिरनेका भय, इतने दुःख
स्वर्गके विषे भी हैं, जैसे थोडी भूमिके राजाओंको समान देखकर ईर्षा अधिककी निन्दा और चक्रवर्ती राजासे भय इत्यादि दुःख होतेहैं
॥ २० ॥ इसलिये अपना उत्तम कल्याण चाहे तो भक्तिपूर्वक गुरुकी सेवा करै, गुरुके लक्षण कहते हैं, मुख्य तो वेदका अर्थ अतिश्रेष्ठ जानता
हो, जिससे कि, सब संदेह दूर करसकै और परब्रह्म भगवान्‌के स्वरूपको जानै, जो आप ब्रह्मको न जानै तो औरको कैसे ज्ञान देगा ? अति
शांतरूप हो, क्योंकि ब्रह्मज्ञान उसेही होगा जो पुरुष शांत होगा ॥ २१ ॥ भक्तोंको आत्माके देनेवाले परमात्मा भगवान् हरि जिन वैष्णवधर्मसे
संतुष्ट होतेहैं, उन धर्मोंको गुरुको आत्मा और इष्ट जानकर भक्तजनको गुरुकी निष्कपट सेवा करनी सीखै ॥ २२ ॥

पहले तो संपूर्ण वस्तुओंमें मनको चलायमान न करै, इसके उपरान्त सत्संग करै, फिर सब प्राणियोंमें और दीनोंपर मन वचनसे दयायुक्त चित्तमें सबसे मित्रता करै और उत्तमोंमें नम्रता सीखै ॥२३॥ बाह्य शौच सीखै, (मृत्तिकासे हाथ पाँव आदि धोवै) अन्तर शौच सीखै (मनमें दंभ अहंकार न रखे) धर्मका आचरण, क्षमा यथायोग अध्ययन, ब्रह्मचर्य सीखै, वृथा वार्त्ता न करै कुटिल न रहै, द्रोह न करै, सुख दुःखमें समान बुद्धि रखै ॥२४॥ सब प्राणिमात्रमें समान चैतन्य आनन्दरूपसे ब्रह्मको विचारै, नियंता समझकर ईश्वरको विचारै, एकान्तमें वास करै, गृहादिकोंमें अभिमान न करै; निर्जन मार्गमें पड़ेहुए वस्त्र अथवा वल्कलको पहरै, अधिक क्या कहैं, जो वस्तु प्राप्त हो उसीमें संतोष रक्खै औरकी इच्छा न करै ॥ २५ ॥ जो शास्त्र केवल भगवान्ही बताते हैं, वह भागवत शास्त्र है, इसे सुननेकी श्रद्धा रक्खै औरकी निन्दा भी न करै और मन, वचन, कर्म इन

सर्वतो मनसोऽसंगमादौ संगं च साधुषु ॥ दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥ शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वंद्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ॥ विविक्तचीरवसनं संतोषो येन केनचित् ॥२५॥ श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिंदामन्यत्र चापि हि ॥ मनोवाक्कर्मदंडं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥ श्रवणं कीर्त्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥

तीनोंको दण्ड दे, मनको तो प्राणायाम करके रोकै, वाणीका दण्ड यह है कि, मिथ्या वचन न कहै, कर्मका दण्ड चेष्टा न करै, सत्य वचन सीखै अंतःकरण और सब इन्द्रियोंको निग्रह करै ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् हरिके जन्म कर्म गुणका श्रवण कीर्त्तन तथा ध्यान करै और भी जो कर्म करै सो सब भगवान् वासुदेवमें अर्पण करै ॥ २७ ॥ यज्ञ, दान, तप, सदाचार और आपको जो प्रियवस्तु होय सो सब गंध पुष्पादिक और स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण यह सब परमपुरुष भगवान् वासुदेवको निवेदन करै और यह सब धर्म गुरुके पाससे सीखै ॥ २८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आत्मा माननेवाले मनुष्योंसे मित्रता और स्थावर, जंगम प्राणियोंमें सेवा विशेष करके मनुष्योंकी और उन्में

भी महात्मा तथा साधुओंकी सेवा करै ॥ २९ ॥ इन साधुओंका सत्संग करके भगवान् वासुदेवके पवित्र यशको परस्पर कहना सीखै, फिर ईर्षा छोड़ आपसमें प्रीति, सबसे संतोष, परस्पर सुख समस्त दुःखोंकी निवृत्ति सीखै ॥ ३० ॥ सपूर्ण पापसमूहके नाश करनेवाले भगवान् हरिको आप निरंतर स्मरण करै तथा औरोंको स्मरण करावै तब स्मरण, कीर्तनरूप भक्तिके करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तिसे रोमांच युक्त शरीर होजाता है * ॥ ३१॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवका चिंतवन करनेवाले कभी रोवै हैं, कभी हँसै हैं, कभी आनन्दको प्राप्त होते हैं, कभी बालकोंके समान वचन

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरंतः स्मारयंतश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ॥ भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदंत्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसंति नंदंति वदंत्यलौकिकाः ॥ गायंति नृत्यंत्यनुशीलयंत्यजं भवंति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्मान्शिक्षन्भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो मायामंजस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥

कहते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं, कभी भगवानके स्वरूपकी लीला करते हैं, कभी परमसुखमें मग्न होते हैं, और कभी चुप चाप रहते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यह वैष्णवधर्म सीखकर प्राप्त हुई भक्तिसे नारायणपरायण होकर सुखपूर्वक दुस्तर मायासे तरैं ॥ ३३ ॥ यह सुनकर राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! तुमने कहा कि, नारायणपरायण होकर मायाको तरैं सो नारायणके तो तीन नाम सुने हैं, एक तो नारायण, दूसरा ब्रह्म, तीसरा परमात्मा सो इन तीन नामोंसे निर्विशेष वस्तु कहिये अथवा इनमें कुछ भेद है ? सो विशेष करके मुझसे कहो, क्योंकि

---

* शंका—भक्ति करके उत्पन्न जो भक्ति है,उस भक्तिसे भगवान्के भक्तोंका रोम रोम खड़ा होजाताहै,ऐसी रोमाच हुई देहको धारण करके भक्तजन भगवान्का भजन करते हैं, ऐसी उत्तमभक्ति कौनसी है ?

उत्तर—भगवान्में बडी भक्ति जैसा अम्बरीष आदिकभक्त भक्ति करतेथे ऐसी भक्ति करके भगवान्के चरणकमलमें प्रीति उपन्न होय, उसी प्रीति करनेका नाम भक्तिसे उत्पन्न हुई भक्तिहै, ऐसी भक्ति करके भगवान्का भजन करैगा तब प्राणी मोक्षको प्राप्त होजायगा !

तुम ब्रह्मको भली प्रकार जानते हो ॥ ३४ ॥ तब पांचव पिप्पलायन ऋषि उत्तर देते हैं कि, हे राजा जनक ! जो इस विश्वके उत्पत्ति, पालन तथा प्रलयके कारण हैं और आप कारण रहित हैं, सो नारायण हैं वही परमतत्त्व हैं, जो स्वरूप स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्तिमें एकरस है, सो ब्रह्म है, वही परमतत्त्व है, समाधिमें जिसको मुनीश्वर देखते हैं, उसीको ब्रह्म कहते हैं वही परमतत्त्व है और जिससे देह, इंद्रिय, मन, प्राण, यह सब चैतन्यही कार्यको समर्थ होते हैं सो परमात्मा है वही भगवान्का स्वरूप है इस प्रकार तीनों नामके भेदसे एकही तत्त्व, जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यदि तुम कहो कि, इससे ब्रह्मको विषय तत्त्वता प्राप्त हुई तो इसका निषेध करते कि, इस ब्रह्मको वाणी, नेत्र, बुद्धि, प्राण और सब इंद्रियें स्पर्श नहीं सरसक्ते जैसे छोटी चिनगारी महाभूत अग्निको नहीं प्रकाश करसकती और न जला सक्तीहै, ऐसेही मन आदिजड़ इंद्रियें सृष्टिके प्रकाशक ब्रह्मको क्योंकर ऐसा सकेगी ? तहाँ पूर्वपक्ष करते हैं कि, अहो वेद तो ब्रह्मको बतातेहैं, तो कहते हैं वेद भी प्रगट नहीं कारण यह है कि, वेद स्वयंही कहता है कि, वाणी

पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ॥ देहेंद्रियासुहृदयानि चरंति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेंद्र ॥ ३५ ॥ नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेंद्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ॥ शब्दोपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यहते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेक मादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदंति जीवम् ॥ ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥३७॥

मन आदिसे जो पदार्थ जाने जाते हैं, जो इनके बोध न करनेवाले हैं, वह ब्रह्मको नहीं प्राप्त होसक्ते, इससे यह न समझलेना कि, वेद ब्रह्मको नहीं कहते किन्तु वेद कहते हैं, कि, स्थूल भी ब्रह्म नहीं है, अणु भी ब्रह्म नहीं जो वाणीसे कहा जाय सो भी ब्रह्म नहीं इत्यादि इस निषेधकी जो अवधि है, वही ब्रह्म है, विना अवधिके निषेध नहीं होसक्ता ॥ ३६ ॥ फिर कहते हैं कि, जो सबका प्रमाण जहाँ वेदकी भी गम्य नहीं तो ब्रह्मही न होगा, इसका उत्तर देतेहैं, कि, ब्रह्म नहीं यह नहीं कहा जाता, जो कुछ स्थूल सूक्ष्म देखाजाता है, सो सब ब्रह्मही भासताहै इसलिये सब विश्वके कारण भगवान् वासुदेवही है (यहाँ पूछते हैं कि) एक ब्रह्म बहुविध विश्वका कारण क्यों है (सो कहते हैं कि) ब्रह्मकी शक्ति अनंत सामर्थ्यसे अनंतरूप है, पहले एक रूप होकर पीछे सत, रज, तम मायाके रूप हुये पीछे क्रियाशक्तिसे प्राणरूप हुये, फिर ज्ञानशक्तिसे महत्तत्त्व हुये,

फिर अहंकाररूप हुये, जिसमें जीव बँधा है. इसके उपरान्त इन्द्रियरूप हुये, फिर इन्द्रियोंके देवतारूप हुये, फिर कर्मोंके फल सुख दुःख रूप हुये, इसभाँति सबरूप ब्रह्मही हैं और सर्वरूप आपसे प्रकाशमान ब्रह्मकी स्थापना विषे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं ॥ ३७ ॥ तहाँ पूर्वपक्ष करते हैं, संपूर्ण रूप आपही हैं, तो यह सब विश्व तो मरताहै, फिर उत्पन्न होताहै, इससे ज्ञात होताहै कि, ब्रह्मका भी जन्म मरण होता है, इसके उत्तरमें कहते हैं कि, यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है न बढै है, न क्षीण होता है, इसकारण आगमापाई बालयुवादिक देहोंकी अवस्थाका साक्षी है और साक्षीको यह अवस्था नहीं लगती, केवल ज्ञानरूप है. यदि यहाँ कोई कहै कि, ज्ञान तो एकक्षणमें उत्पन्न होताहै, एकही क्षण रहताहै और एकही क्षणमें नाशको प्राप्त होजाताहै (सो कहते) यह ज्ञान सदा रहताहै, जो कोई कहै कि, नील ज्ञान उत्पन्न हुआ, पीत ज्ञान गया, ऐसे ज्ञानका भी उत्पत्ति और नाश सुना है इसके उत्तरमें कहते हैं कि नील पीत इन्द्रियोंकी वृत्ति उत्पन्न होती हैं और वृत्तियोंकाही नाश होता है, ज्ञान तो एक

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ॥ सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेंद्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥ अंडेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्रतत्र ॥ सन्ने यदिंद्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥

रूप है, यह प्राणके दृष्टान्त कहे गये ॥ ३८ ॥ इन्द्रियादि केवल हरिहीको दिख ती हैं, जैसे पशु, पक्षी, स्वेदज, वृक्षादिकोंमें सर्वत्र जहाँ जहाँ जीव जाताहै, उसी उसी स्थानमें इनके संग प्राण भी जाते हैं, परन्तु प्राण निर्विकार हैं, जैसे आत्मा भी निर्विकार रहताहै, (यहाँ शंका है कि) मनुष्यादिक देहोंमें आत्मा सब विकारसा क्यों दीखता है ? तो कहते हैं कि; जाग्रत्‌में इन्द्रियगणके दोषसे, स्वप्नमें अहंकारसे, सब विकारसा दीखता है, सुषुप्तिमें तो इन्द्रियगण और अहंकारके लयसे निर्विकार आत्मा है, इससे विकारके हेतु लिंगशरीरकी उपाधिका अभाव है (यहाँ शंका है) सब नष्ट होनेसे आत्मा रहता है यह कैसे जानें ? सो इसका उत्तर यह है, कि जब जागताहै, तब जो सुषुप्तिमें आत्माको सुख अनुभव हुआ है उसका स्मरण होता है, आज मैं बहुत सुखसे सोया, यह ज्ञान अनुभवके स्मरण विना नहीं होता, इसलिये सुषुप्तिमें आत्माका

अनुभव निर्विकार होता है, पर विषयका सम्बन्ध नहीं, इसलिये वह अनुभव प्रगट नहीं होताहै ॥ ३९ ॥ फिर पूछते हैं कि, इसका सुस्वप्नमें निर्विकार अनुभव होय तो संसार फिर क्यों होताहै? यदि कहो कि, इसकी अविद्या नहीं गई, उसकी वासनासे संसार होताहै, तो अविद्या कैसे जाय? सो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जब गृह पुत्र धनादिकोंकी वासना छोड़कर केवल भगवान् वासुदेवकी इच्छा करे, ऐसा करनेसे भक्ति बढ़ती है, उस भक्तिसे चित्तके गुणकर्मसे उत्पन्न हुए सब पाप दूर होजाते हैं, तब चित्त शुद्ध होकर प्रगट आत्मतत्त्वको प्राप्त करताहै, जैसे निर्मल दृष्टिके होनेसे सूर्यमण्डलका प्रकाश दीखता है ॥ ४० ॥ राजा जनक बोले कि, भक्ति तो कर्मयोगके अधीन है, इसलिये प्रथम मुखसे कर्मयोग कहो? जिस कर्मके करनेसे शुद्ध होकर फिर कर्मका वेग दूर करके पुरुष निष्कर्म श्रेष्ठ ज्ञान पाताहै जिससे सब कर्म निवृत्ति

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ॥ विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विंदते परम् ॥ ४१ ॥ एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरंतिके ॥ नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारण मुच्यताम् ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र उवाच ॥ कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ॥ वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यंति सूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥

होय सो कर्मयोग कहो ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने पिताके आगे जब सनकादिक आये थे, तब किया था, उन्होंने भी मुझे कुछ उत्तर न दिया इसका क्या कारण है, सो मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ तब आविर्होत्र बोले कि, हे राजन् ! वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है, वह कर्म है, जिसका निषेध है, वह अकर्म है और जिसके करनेकी आज्ञा है, वह न करे तो विकर्म कहाजाताहै, यह तीनों भेद वेदहीको गम्य हैं, इसका निर्णय मनुष्योंको अशक्य है, इससे वेद साक्षात् ईश्वररूप है, पुरुषके वचनमें वक्ताका अर्थ जानना अतिकठिन है, यहाँ पण्डित भी मोहको प्राप्त होतेहैं, तब तुम बालक थे, इसलिये तुमसे न कहा ॥ ४३ ॥ वेदका तात्पर्य क्यों नहीं जानाजाता सो कहते हैं, यह वेद सब परोक्षवाद है, अर्थ तो और भाँति होता हो उसके छिपानेको और भांति कहैं, इसे परोक्षवाद कहते हैं, उसीप्रकार वेदमें कर्म छुटानेका कर्म कहाहै मूर्ख उसी कर्मको

जानता है, यहाँ पूछँते हैं कि, कर्मका तो स्वर्गादिक फल सुना जाता है, फिर कर्मको त्यागकर फल कैसे जाने ? इसका उत्तर कहते हैं कि, यह जो कर्म कारण कहेहैं, सो मूर्खोंकी शिक्षाके लिये है, नहीं तो धर्ममें किसीकी भी प्रवृत्ति नहीं होती; जैसे बालकोंको औषधी खिलानी चाहिये, तब लड्डू दिखाइये, और दीजिये उस लड्डूके लोभसे वह बालक औषधी पीलेगा, तब औषधीका यह फल नहीं, जो लड्डू खायऔषधीका तो यही फलहै कि, आरोग्य कर देगी, उसीप्रकार जीव सब विषयी हैं, लोभीहैं उनको स्वर्गादिकका लोभ दिखाय कर्ममें प्रवृत्ति करते हैं, पीछे इससे भी निवृत्तिका फल उत्तम है, इस ज्ञानसे उन कर्मोंको छुड़ाते हैं, यह वेदका तात्पर्य है ॥४४॥ जो कर्म त्यागनाही मुख्य है, तो पहलेही कर्म त्याग कीजिये तो कहते हैं कि, आप अज्ञ हो, अजितेन्द्रिय हो, जो वेदोक्त कर्म न करै तो कर्मके विना करै अधर्मसे मरकर फिर मृत्युहीको प्राप्त होता है और

नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेंद्रियः ॥ विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥ वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ य आशु हृदयग्रंथिं निर्जिहीर्षुः परमात्मनः ॥ विधिनोपचरेद्देवं तंत्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥ ४८ ॥

सदा कालकेही सुखमें रहता है ॥ ४५ ॥ इसलिये वेदोक्तही कर्म करै, निषिद्ध कर्म न करै, फिर कर्मके फलकी इच्छा न रक्खै, जो कुछ कर्म करै सो सब ईश्वर भगवान् वासुदेवमेंही समर्पण करै तब पुरुष मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्तहो (तहाँ पूर्वपक्ष कहते हैं) कि, अहो, वेद विषे जो फल सुने जाते हैं, जैसे औषध पिलानेके लिये बालकोंको लड्डू देता है, उसी प्रकार कर्म करनेसे फल अवश्य होगा, तो कहते हैं कि, यह मत कहो, कर्मोंमें प्रीति उपजानेका फल सुनाना है, जैसे औषध देनेके समय बालकोंको मीठी चीज दिखाते हैं, अब वैदिककर्म कहकर आगमकी विधि कहतेहैं ॥ ४६ ॥ जो कोई निर्विकार जीवकी अहंकारकी गांठि छुड़ाना चाहै सो आगम और वेदोक्तके प्रकारसे सबकी पूजा करै ॥ ४७ ॥ सो पूजाकी विधि कहते हैं कि, जब इस पुरुषपर ईश्वर अनुग्रह करै, तो सद्गुरु मिलते हैं, फिर उन गुरुओंसे पूजाकी विधि जाने तब आपको जैसी मूर्त्ति रुचे, उसी

प्रकार मूर्त्ति बनाकर भगवान् वासुदेवकी पूजा करै ॥ ४८ ॥ सो विधि कहते हैं कि, पहले तो स्नानादिक करके पवित्र हो और फिर उस मूर्त्तिके सन्मुख बैठ प्राणायाम और भूतशुद्धि कर देहको शुद्ध करै, इसके उपरान्त उत्तम न्यासोंको कर अपनी रक्षाकरके भगवान् हरिकी पूजा करै ॥ ४९ ॥ पुष्पादिक द्रव्यको जंतुआदि शोधन कर, भूमिको संमार्जन और मनको सावधानकर, मूर्त्तिको स्नानादिक कराय आसनको प्रोक्षणकर प्रतिमादिक विषे अथवा हृदयमें यथा प्राप्त उपचारोंसे पूजा करै ॥५०॥ पाद्य, अर्घ्य इत्यादि सब विधिपूर्वक देनेके उपरान्त पहले अपने हृदयमें पूजित भगवान् वासुदेवको संनिधापन मुद्रासे दृढ धर सावधान होकर ध्यान करै, इसके पीछे हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, मंत्र और

शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिंडं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥ अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ॥ द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमंत्रेण चार्चयेत् ॥ ५१ ॥ सांगोपांगां सपार्षदां तांतां मूर्तिं स्वमंत्रतः ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥ गंधमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ॥ सांगं संपूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुवा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥ आत्मानं तन्मय ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः ॥ शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥

मूलमंत्रसे पूजा करै ॥५१॥ इसके उपरान्त अंग हृदयादिक, उपांग, सुदर्शन आदि पार्षद परिवार, देवता सहित उस मूर्त्तिको, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, भूषण, उपचार कर ॥५२॥ गंध, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजा करै; फिर स्तोत्रोंसे स्तुतिकर नमस्कार करै और अक्षत सहित उस मूर्त्तिको तिलक करके पूजे और समय न पूजे क्योंकि अक्षतसे भगवान् हरिकी और केतकीसे महादेवजीकी पूजा निषिद्ध है ॥५३॥ और फिर मूर्त्तिरूप भगवान् सुदेवका ध्यान करके पूजा करै, इसके उपरान्त उस निर्माल्यको मस्तकपर चढा, देवताका स्वरूप हृदयमें धारण कर पूजीहुई मूर्त्तिको विसर्जन करके अपने स्थानमें रक्खे ॥ ५४ ॥

इसप्रकार अग्नि, सूर्य, जल आदिमें स्थित अतिथिमें, हृदयमें, आत्मारूप ईश्वर भगवान् वासुदेवकी जो पुरुष पूजा करेगा सो थोडेही कालमें संसारी बंधनोंसे छूटकर मुक्त हो जायगा, यह आगमकी विधि वर्णन की ॥ ५५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां निमि जायंतेयसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–इस चौथे अध्यायमें, द्रुमिल् नाम योगीश ॥ लीला हरि अवतारकी, कहत धरनधर शीश ॥ १ ॥ राजा जनक बोले कि, हे भगवन् ! आपने प्रथम कहा कि, भगवान् हरिकी मूर्त्तिको जैसा मन मानै वैसी बनाकर पूजा और स्तुति करै, सो हमको

एवमभ्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥ यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते च सः ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छंदजन्मभिः ॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच ॥ यो वा अनंतस्य गुणाननंताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ॥ रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

न तो मूर्त्तिका ज्ञान है, न गुण कर्मका ज्ञान है, जो स्तुति करैं इसलिये तुम उनके अवतार और कर्म कहो कि, भगवान् वासुदेवने जो जो जन्म लिये हैं और जो जो कर्म किये हैं और अब करते हैं और जो आगेको करैंगे सो सब वर्णन कीजिये * ॥ १ ॥ राजा जनकने जब इसप्रकार पूँछा तब द्रुमिल योगीश्वर बोले कि, जो पुरुष अनंतरूप भगवान् वासुदेवके चरित्रको गिनना चाहै, वह अज्ञानी है, क्योंकि पृथ्वीके परमाणुओंको तो बहुत कालतक परिश्रम करके कोई बुद्धिमान् गिन भी सकता है, परतु अनंतशक्तिका आश्रय भगवान् वासुदेवके गुणोंको कोई नहीं गिनसक्ता ॥ २ ॥

---

* शंका–राजा जनक बडे ब्रह्मके जाननेवालेथे, ऐसे ब्रह्मज्ञानी होकर ब्रह्मकी कथाको त्यागकर मुनिराजसे सगुण अवतारकी कथा क्यों बूझी ? क्योंकि ब्रह्मज्ञानी महात्मा पुरुष सगुणमें प्रीति नहीं करते। उत्तर–तीन लोकमें जो चर अचर जीव हैं, उन सबका बीज विना जन्म नहीं होसक्ता, किसीका भी जन्म आजतक बीज विना नहीं, तैसेही ब्रह्मज्ञानका बीज सगुण ब्रह्मका कीर्त्तन है, सगुणके कीर्त्तनसे ब्रह्मज्ञान होता है, इसलिये राजा जनकने ब्रह्मज्ञानी होकर सगुण भगवान् अवतारकी कथा बूझी ।

परन्तु तोभी संक्षेपसे उनके कितने एक गुण वर्णन करताहूं कि, जब स्वयं भगवान् वासुदेव पंचमहाभूत उत्पन्न कर ब्रह्माण्डरूप नगर बनाय उसमें लीलापूर्वक प्रविष्टहुए, इसलिये इनका आदि देव नारायण पुरुष नाम हुआ ॥ ३ ॥ यह तीन लोककी स्थापना जिस पुरुषको देता है और जिसकी इन्द्रियोंसे सब देहधारियोंकी इन्द्रियें होती हैं, जिसके स्वरूपसे भूत सत्त्वगुणसे ज्ञान होता है, प्राणसे देहशक्ति और इन्द्रियशक्ति तथा चेष्टा इत्यादि यह सब होती हैं, इससे ज्ञात होता है कि, विश्वका कर्त्ता भी कोई है ॥ ४ ॥ प्रथम इस विश्वके उत्पन्न करनेको रजोगुणसे ब्रह्मा हुए, सतोगुणसे यज्ञके फलदाता और धर्मके रक्षा करनेवाले विष्णु हुए, तमोगुणसे संहार करनेको रुद्र हुए. इसप्रकार प्रजाओंके बीच जिससे निरंतर जन्म,

भूतैर्यदा पंचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येंद्रियैस्तनुभृतामुभयेंद्रियाणि ॥ ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋषिप्रवरः प्रशांतः ॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ इंद्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुंक्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाप्सरोगणवसंतसुमंदवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥

पालन और नाश होता है, वही आदि पुरुष हैं ॥ ५ ॥ वही आदिदेव दक्षकी बेटी मूर्ति नाम धर्मकी स्त्रीके विषे ऋषियोंमें श्रेष्ठ अतिशान्तस्वरूप नरनारायण अवतार हुआ और जिससे कर्म नष्ट न हो, ऐसा निष्कर्म ज्ञान बनाया और आपने भी उसीके अनुसार कर्म किया, सोही श्रेष्ठ ऋषियोंसे सेवित जिनके चरण सो भगवान् नरनारायणरूपसे बद्रिकाश्रममें आजतक विराजमान हैं ॥ ६ ॥ हे महाराज ! इससमय एक भगवान् वासुदेवके अवतारोंका बतानेवाला परमशक्ति दिखानेवाला इतिहास कहते हैं, सो आप मन लगाकर श्रवण करें. एकसमय नर नारायणको

परमशान्त तप करते देख देवराज इन्द्रने मनमें विचार किया कि, यह मेरा स्थान तप करके लेना चाहते हैं, यह विचार तपस्यामें विघ्न करनेके लिये परिवार सहित कामको भेजा और भगवान् वासुदेवकी महिमाको नहीं जाननेके कारण कामदेव उनके स्थानमें अप्सराओंके गण वसंत और मंद वायुसहित जाकर स्त्रियोके कटाक्षरूप बाणोंसे उनको मारने लगा ॥ ७ ॥ तब गर्वरहित नरनारायण इन्द्रका कियाहुआ अपराध जान शापके भयसे कॉपतेहुए कामादिक देवताओंसे हँसकर बोले कि, हे कामदेव ! हे देवांगनाओ ! भय मत करो, हमरा आतिथ्य ग्रहण करके हमारे आश्रमको सुवास करो, क्योंकि जिस स्थानपर अतिथिका आदर सन्मान नहीं होता वह स्थान शून्य कहलाताहै ॥ ८ ॥ हे राजन् ! अभयके देनेवाले श्रीभगवान् हरिके इसप्रकार कहनेपर लज्जासहित और नम्र शिर हो, कामादिक देवता दयासंयुक्त श्रीनरनारायणसे बोले कि, हे प्रभो ! तुम्हारा

विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ॥ मा भैष्ट भो मदनमारुतदेववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ॥ नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥ त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तराया स्वौको विलंध्य परमं व्रजतां पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्न मूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ॥ क्रोधस्य यांति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जंति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजंति ॥ ११ ॥

इसप्रकार-कहना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि तुम मायासे परे हो, निर्विकार हो, आत्माराम और धीर मुनियोंके समूह तुम्हारे चरण कमलको नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हमारे अपराधका आचरण भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि हमारा स्वभावही ऐसा है, तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष देवताओंके स्थानको उल्लंघनकर आपका जो परमधाम वैकुण्ठ है उसमें जातेहैं, उनको इन्द्रादिक देवता बहुत विघ्न करते हैं तुम्हारी सेवा नहीं करनेवाले दूसरे पुरुष कि, जो यज्ञमें देवताओंको उनके भागरूप कर देते हैं, उनको विघ्न नहीं करते, परन्तु जिसके तुम रक्षक हो, वह तुम्हारा भक्त निश्चय विघ्नोंके माथेपर चरण धरकर तुम्हें प्राप्त होजाता है ॥ १० ॥ अभक्तोंको काम क्रोधादिक सब वशमें करलेते हैं, उनमें जो जो हमारे वश होते हैं,

सो भोग भी करते हैं और जो क्रोधके वश हैं, वह तो अतिमूर्ख क्षुधा, तृष्णा, शर्दी, गर्मी, वर्षा, पवन, जीभका रस और शिश्नका रस ये रूप हैं, उनको लाँघकर जो पुरुष निष्फल क्रोधके वशीभूत होजाते हैं, वह अपार समुद्रको पार उतरकर गायोंके खुरोंके गढोंमें डूब जाते हैं, यह लोग शाप आदि देकर अतिकठिन तपस्याको वृथा छोड़ देते हैं न तो मोक्षके अर्थ न भोगके अर्थ है ॥ ११ ॥ इसप्रकार भगवान् वासुदेवने कामादिककी स्तुति सुन अपने योगबलसे उत्पन्न अद्भुत रूपवाली सेवा करती अभूषणों सहित स्त्रियें कामादिकको दिखाईं॥१२॥वह देवताओंके सेवक मूर्तिमान लक्ष्मीके समान उन स्त्रियोंको देख, उनकी गंधसे मोहित हो, उनके रूप गुण उदारतासे इनकी शोभा दर्प सब जाता रहा॥१३॥ तब देवोंके देव प्रभु भगवान् वासुदेव हास्यकर नम्रहुए कामादिक देवताओंसे बोले कि, इन स्त्रियोंमेंसे किसीको तुम वरो, यह सुनकर देवताओंने कहा कि, हम तुच्छ हैं, कहाँ

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः ॥ दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः ॥ गंधेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥ ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवंदिनः ॥ उर्वशीमप्सरः श्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥ इन्द्रमानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रा स विस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवददच्युत अत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान्पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥

ऐसी स्त्रियें, और कहाँ हम, तब नारायण बोले कि, तुम्हारे समान जो हो उसे ग्रहण करो, तब कमादिक देवताओंने फिर कहा कि, हे महाराज! इनमें हमारे समान एक भी नहीं है तब भगवान्ने कहा कि, एक तो तुम लो तुम्हारे स्वर्गका भूषण होगी ॥ १४ ॥ तब कामादिक देवता भगवान् नर नारायणकी आज्ञा मान अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्व्वशीको ले, प्रभुको नमस्कारकर स्वर्गको चलेगये ॥ १५ ॥ स्वर्गमें जाय देवराज इन्द्रको प्रणामकर सभामें सब देवताओंके सुनते नर नारायणका बल कहा, तब इन्द्र अतिआश्चर्यमान अत्यन्त भयको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ इन्हीं प्रभुने हंसावतार लेकर संपूर्ण आत्मयोग कहा, फिर एक दत्तात्रेय, एक सनकादिक, एक भगवान् ऋषभ

विष्णुरूपही अपने अंशसे जगत्का कल्याण करनेको प्रगट हुए थे और इन्हीं विष्णुने एक समय हयग्रीव अवतार ले, मधुदैत्यको मार वेदोंका उद्धार किया था ॥ १७ ॥ एक समय प्रलयके समुद्रमें मत्स्यरूप धारण कर मनु, पृथ्वी और औषधियोंकी रक्षा की थी, वाराह अवतार ले हिरण्याक्षको मार जलसे पृथ्वीका उद्धार किया, कूर्मावतार ले अमृत मथनेको अपनी पीठपर मंदराचल पर्वत धारण किया, इसके उपरान्त दुःखित होकर शरण आयेहुए गजेन्द्रको ग्राहसे छुडाया ॥ १८ ॥ एक समय वालखिल्य ऋषि कश्यपजीके लिये काष्ठ लेने गयेथे, सो वहाँ गायके खुरके गढेमें पानी भररहाथा उसमें डूबने लगे, तब इन्होंने बहुत स्तुति करी, वहाँसे आत्मविद्यामें तत्पर ऋषियोंको छुड़ाया और वृत्रा

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रोडे हतो दितिज उद्धरतांभसः क्ष्माम् ॥ कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताच्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेंद्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥ देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वांतरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाऽप्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबंध दशवक्त्रमहन्सलंकं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥

सुरके मारनेसे जो ब्रह्महत्या हुई थी, उससे देवराज इन्द्रको छुड़ाया, अनाथ देवताओंकी स्त्रियें असुरोंके घरमें रुक रहीथीं, उन सबको अनेक अवतार लेकर छुड़ाया, फिर नृसिंहरूप धाररणकर भक्तोंको अभयदान देनेके लिये हिरण्यकश्यपका वध किया ॥ १९ ॥ मन्वन्तरोंमें देवता और दैत्योंके संग्राममें देवताओंके लिये अपनी कलासे दैत्यपतियोंका संहार किया, संपूर्ण लोकोंकी रक्षा करी और वामनरूप धरकर राजा बलिसे भीखके मिष इस पृथ्वीको लेकर देवताओंको देदी ॥ २० ॥ परशुरामका अवतार ले इक्कीसबार पृथ्वीको क्षत्रियरहित किया और हैहय कुलके नाशको भृगुवंशमें अग्निरूप प्रगटहुए. उन्होंनेही फिर रामावतार लेकर समुद्र बाँधा और लंकापुरीमें स्थित परिवार समेत राक्षसराज रावणका

वध किया, जिनकी कीर्त्ति संसारके पाप नाश करती है, सोई रघुनाथजी अब विद्यमान हैं ॥ २१ ॥ भूमिका भार उतारनेके लिये अजन्मा आप यादव कुलमें जन्म ले, जो देवताओंसे भी न करे जायँ ऐसे कर्म करेंगे. पीछे जो यज्ञादिक करनेके अयोग्य दैत्योंको बौद्धरूप धर मोहित करेंगे, इसके उपरान्त कलियुगके अंतमें कल्किअवतार लेकर शूद्र जातिके राजाओंको मारेंगे ॥ २२ ॥ हे महाराज ! महाभुज ! इसप्रकार जगत्पति भगवान् वासुदेवके जन्म और कर्म अनंत हैं, मैंने तो संक्षेपसे वर्णन किये ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां निमिजायंतेयसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–पंचम हरिकी भक्तिविन, नरकी गति है कौन । सो सब वर्णन करतहौं, पूजन सेवन जौन ॥ १ ॥ राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जिनकी कामना नहीं छूटीं वह पुरुष बहुधा भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते उनकी क्या गति होगी ? सो

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हाञ्छूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदंते ॥२२॥ एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥२३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ राजोवाच ॥ भगवंतं हरिं प्रायो न भजंत्यात्मवित्तमाः॥तेषामशांतकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥१॥ चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ॥ चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥२॥ य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ॥ न भजंत्यवजानंति स्थानाद्भ्रष्टाः पतंत्यधः ॥ ३ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकंप्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥

कृपापूर्वक आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ तब आठवें चमस ऋषिने उत्तर दिया कि, हे राजन् ! पहले परमपुरुषके मुखद्वारा सतोगुणसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, भुजाओंसे सत रजसे क्षत्रिय हुए, ऊरू द्वारा रजोगुण तमोगुणसे वैश्य हुए, चरणद्वारा केवल तमोगुणसे शूद्र हुए और आश्रमसहित भिन्न २ वर्ण उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ अपना जन्मदाता पुरुष ईश्वरका इन वार्णोंके मध्य जो भजन नहीं करता और जान बूझकर निरादर करता है, वह पुरुष वर्ण आश्रमसे भ्रष्ट होकर अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ कोई एक पुरुष इसप्रकारके हैं, जिनको हरिकथा सुनना बहुत कठिन है, किसी किसीको हरिका कीर्तन बहुत कठिन है, इसप्रकार कितने एक द्विजलोग और स्त्रियें तथा शूद्रादिक कि, जो

भगवान् वासुदेवको न जाननेसे नहीं भजते उनके ऊपर आप सरीखेही कृपा करते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यह यज्ञोपवीतरूप दूसरे जन्मसे और वेदाध्ययनसे हरिभजनके उत्तम अधिकारी हैं परन्तु तो भी वेदके फल स्तुतिके वचनोंमें मोहित होकर जानने पर भी भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते और कर्मोंमें आसक्त होरहे हैं उन अर्द्धदग्ध लोगोंको सुधारनेका उपाय कोई न होनेसे आपसरीखे पुरुषोंको उनकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ कर्म करनेमें अकुशल मूर्ख अपनेको पण्डित माननेवाले, अनम्र, ऐसी मनोहर बातें कहते हैं कि, जिनमें मोह उत्पन्न हो, वह यह है कि यज्ञादिकोंका फल अक्षय होगा, न स्वर्गमें शीत है, न उष्ण है, न मलिनता है, न पराजय है और वचनसे उत्कंठित होकर कहते हैं कि, हम अप्सराओंसे विहार करेंगे, यह कहतेहुए कर्ममें बँधे रहते हैं ॥ ६ ॥ उनको उस फलके भ्रमसे कर्महीमें आदर होता है।

विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदांतिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाऽथापि मुह्यत्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पंडितमानिनः ॥ वदंति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः ॥ दांभिका मानिनः पापा विहसंत्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥ वदंति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यसुखेषु चाशिषः ॥ यजंत्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नंति पशूनतद्विदः ॥ ८ ॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनांधधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यंति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥

उससे काम, क्रोध, मदादिक वृद्धिको प्राप्त होते हैं और यह भी कहा है कि, रजोगुणसे राग द्वेष उत्पन्न होता है, उससे अभिचारके कर्मोंपर मन होता है, तब वह घोरसंकल्पी, महातृष्णावाले सर्पके समान क्रोधी महाअभिमानी दुष्ट स्वभावसे अधजले लोग नारायणके भक्तोंपर हँसते हैं ॥ ७ ॥ सदा स्त्रियोंकीही सेवा करते हैं कि वृद्धोंकी सेवा नहीं करते केवल मैथुनमें ही सुख माननेवाले अतिथिकी पूजारहित घरोंमें रहकर मनके मनोरथवाले लोग कहा करते हैं कि, आज मैंने यह पाया यह मनोरथ फिर प्राप्त करूंगा और जो कदाचित् किसी देवताकी पूजा करें तो अपने स्वार्थके लिये पशुकी हिंसा करते हैं, न कुछ विधि न दक्षिणा, न अन्नदान करैं ऐसे मूर्ख हैं जो हिंसादोषको नहीं जानते ॥ ८ ॥ धन, ऐश्वर्य, कुल, विद्या, दान, रूप, बल और कर्मोंसे उनको गर्व उत्पन्न होता है, इससे मंदबुद्धि दुष्ट ईश्वर सहित साधु परमेश्वरके भक्तोंका निरादर करते हैं ॥ ९ ॥

यह दुष्ट पुरुष वेदके अर्थको नहीं जानते, वेद कहते हैं कि, यद्यपि सब देहधारियोंमें यह आत्मा सदा आकाशकी भाँति व्यापरहा है और अपने प्रिय ईश्वरको फिर वेद प्रगट बताते हैं, परन्तु तोभी यह मूर्ख नहीं सुनते, अपने मनोरथोंकीही बातोंमें वाद विवाद करते हैं ॥ १० ॥ तहाँ पूर्वपक्ष कहते हैं कि, स्त्री संभोग तो कहा है कि, रजस्वला होनेपर मैथुन करै देवताका बचाहुआ भोजन करै, फिर तुम क्यों निन्दा करते हो ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि लोकमें स्त्रीप्रसंग मांस भक्षण और मदिराका सेवन नित्य है और विषयासक्तोंको अनुराग स्वभावहीसे प्राप्त है,

सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां प्रवदंति वार्तया ॥ १० ॥ लोके व्यवायाऽऽमिषमद्यसेवा नित्यास्तु जंतोर्न हि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥ धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशांतिः ॥ गृहेषु युंजंति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यंति दुरंतवीर्यम् ॥ १२ ॥

फिर कुछ विधि नहीं बस एक यही चाहिये और जहाँ विधि कही है तहाँ ऋतुकालके दिन स्त्रीसंग करै, यज्ञहीमें मांस मद्य ग्रहण करै और २ दिन न करै इस नियमसे करै, परन्तु दिनका निषेध किया है, इसे विषयी मूर्खलोग नहीं समझते, जो कामी अरुचिसे अथवा द्वेषसे स्त्री प्रसंगादिक करैं उनका यह नियमहै और जिनके यह कामना नहीं, उनका नियम नहीं। वेदका अभिप्राय तो सब दिन छुडानेकाही है, उसे मूर्ख नहीं समझते * ॥ ११ ॥ धर्म करनाही धर्मका फल है क्योंकि धर्मानुष्ठान करनेसे परोक्ष ज्ञान (नहीं दीखनेवाला ज्ञान) और तत्काल शांतिदायक

* दृष्टान्त—वास्तवमें उसका तात्पर्य यहहैं जैसे किसीका लडका खेलमें अत्यन्त मतवाला हो और वेश्याके घर दिन रात पडा रहताहो और पढनेमें उसकी रुचि न हो, तो उसके पिताको कहना चाहिये कि, तू प्रातःकाल उठकर तो वेश्याके घर जायाकर, फिर एक घंटाभर खेलकर और जो तू प्रातःकाल वेश्यके घर नहीं गया और एक घंटाभर न खेला तो मैं तुमको बहुत मारूगा, क्योंकि इन दोनों कामोंके दो घंटेमें निश्चिंत होकर फिर अपना चित्त कहीं इधर उधर मत भटकाना और जो फिर भटकावेगा तो पिटैगा, यह वाक्य निवृत्तिका निरूपण करता है इसी प्रकार वेद भी निवृत्तिका निरूपण करता हैं प्रवृत्तिका निरूपण नहीं कराता जो मनुष्य समीप आनेपर भी ऋतुस्नात भार्यासे प्रसंग न करै, तो गर्भहत्याका जो महापाप होता है, वही पाप उस मनुष्यको लगता है अनेक श्रुतियोंके वचन तो यह हैं कि, मनमें कामना होनेपर भी स्त्रीके विषे अरुचि अथवा द्वेषादिक होनेसे उसके साथ प्रसंग न करै, ऐसे जानना ?

अपरोक्ष ज्ञान दोनों प्राप्त होजातेहैं, ऐसे सुखदायक धनको यह पुरुष देहादिकके लिये घरोंमें वृथा खो देते हैं, हॉ ! न तो इसका विचार करतेहैं और न शिरपर घूमतीहुई मृत्युकोही देखते हैं ॥ १२ ॥ और वेदका तात्पर्य नहीं जानते कि, ऋतुके दिनभी स्त्रीप्रसंग गर्भाधानहीको कहा है कुछ यथेष्ट कामभोगको नहीं कहा और सुरापान भी नहीं कहाहै, आघ्राण कहाहै, पशुकी हिंसा देवताके लिये करे अपने लोभसे न करे, ऐसे शुद्ध धर्मको विषयकी आसक्तिसे न करे इस बातको यह मूर्ख नहीं जानते ॥ १३ ॥ जो इस धर्मको नहीं जानते सो आसाधु हैं, अनम्र हैं वैसेही अपनेको साधुकरके मानलेते हैं, विश्वाससे पशुओंका वध करते हैं और कहतेहैं कि, इसके करनेसे मनोरथ सिद्ध होगा

यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ॥ एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥१३॥ ये त्वनेवंविदोऽसंतः स्तब्धाः सदभिमानिनः ॥ पशून्द्रुह्यंति विस्रब्धाः प्रेत्य खादंति ते च तान्॥१४॥द्विषंतः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ॥ मृतके सानुबंधेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतंत्यधः ॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ॥ त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयंति ते ॥ १६ ॥ एत आत्महनोऽशांता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ सीदंत्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥

परन्तु ऐसा कहा गया है कि, इस जन्ममें उसका माँस यह खातेहैं, अगले जन्ममें वह इनका माँस भक्षण करैगा इसलिये इसका नाम मांस है ॥१४॥ मृतक समान अपने और पुत्रादिकोंमें स्नेहसे बद्ध हो पराये भी देहोंमें विद्यमान अपने आत्मा ईश्वर हरिसे जो पुरुष द्वेष करते हैं, वह मरनेके पीछे नरकमें पड़तेहैं ॥१५ ॥ जो अज्ञ हैं वह ज्ञानीपुरुषोंकी कृपासे संसारसागरको तरजाते हैं और जो मध्यवर्तीहैं, सो नरकमें गिरते हैं, अधिक क्या कहैं, जो जो तत्त्वज्ञानको प्राप्त नहीं हुए, मूढ़ताहीको प्राप्त हुए और अपने स्वार्थकेही लिये धर्म, अर्थ, कामादिक करे वह, पुरुष वारम्वार जन्म मरणको प्राप्त होतेहैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष आत्मघाती व अशांत हैं, अज्ञानहीको ज्ञान मानते हैं और जो कृतकृत्य नहीं हुए, सो कलासे

१ अत्र मनु –मांसभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।

नष्ट मनोरथ हो दुःखही पातेहैं ॥ १७ ॥ और जो पुरुष भगवान् वासुदेवसे विमुख हैं, वह अतिश्रमसे गृह, पुत्र, मित्र, धन संपूर्णवस्तुको प्राप्त होकर इच्छा न रहनेपरभी नीच योनि अंधतममें पड़ते हैं * ॥ १८ ॥ राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आपनेजो सब त्यागकर केवल भगवान्

हित्वाऽऽत्मायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो विशंत्यनिच्छंतो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ॥ नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥

नारायणकी भक्ति करनेको कहा सो यह भगवान् किस समयमें ? कैसे वर्णके ? कैसी आकृतिके ? कौनसे नामसे ? और किस विधिसे लोकोंमें पूजे जातेहैं सो मुझे भली भाँति समझाकर आप कहिये ॥ १९ ॥ तब करभाजन ऋषीश्वर नौवें प्रश्नका उत्तर देते हैं कि, हे राजन् ! सतयुग, त्रेता, द्वापर,

---

* शंका—राजा जनकने मुनियोंसे भगवान्का भजन और सेवन आदि सब कर्म युग युगके अलग अलग बूझे कि, सतयुगमें किस प्रकारका भजन सेवन होताहै और त्रेतामें और द्वापरमें और कलियुगमें किस किस प्रकारका भजन और सेवन होना चाहिये और मुनि भी चारों युगोंमें भिन्न भिन्न पूजन भजन आदि करतेहैं, यह बडा अनुचित कर्म है, किसलिये कि शास्त्रोंमें भगवान् सर्वव्यापी निरंजन लिखा है भिन्न भिन्न कर्म तो जीवोंके लिये होताहै, ईश्वरके नहीं होता यह बडी शंका है ॥

उत्तर—भगवान् तो भक्तवत्सल और दीनदयालु हैं, और त्रिलोकीमें जो चराचर प्राणी हैं, उन सब प्राणियोंमें भगवान् किसीयुगमें भी भिन्नभाव नहीं रखते, सबको एक समान मानते हैं, ऐसे कृपासिंधु हैं, परन्तु मनुष्योंमें अनेक प्रकारके जीव हैं, जितने मनुष्यके देह हैं, उतनेही जीव हैं, इसलिये सब जीवोंमें भगवान्की भक्ति अलग अलग होतीहै, सब युगोंमें कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है, कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है और भगवान्के नाम और चरित्रोंका भी अन्त नहीं, जिस नामपर जिसप्राणीको भक्ति हुई उसी नामको जपने लगा, युगयुगमें भगवान् उस अपने नाम जपनेवाले प्राणीकी रक्षा कैसे करतेहैं जैसे गाय अपने वत्सकी रक्षा करती है और राजा जनकभी भगवान्के भक्तकी लीला करके उन्मत्त होरहेथे, भगवान्की भक्तिकी वृद्धि होनेके लिये युग युगमें भिन्न भिन्न भगवान्के नाम और सेवन बूझने लगे, कुछ भिन्न भाव मानकर नहीं बूझा।

और कलियुग इन चार युगोंमें नाना वर्ण, नाम, आकारयुक्त भगवान् केशव अनेक विधिसे पूजेजाते हैं ॥ २० ॥ सत्ययुगमें शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, जटा धारण करे, वल्कल वस्त्र पहरे, काले मृगका चर्म यज्ञोपवीत रुद्राक्ष दण्ड कमण्डलु धरे, ब्रह्मचारीके रूपसे दर्शन देतेहैं ॥ २१ ॥ उस युगमें मनुष्य सब शांत, निर्वैर, सुहृदय, समदृष्टि, शम, दम और ध्यानसे देवताको पूजते हैं ॥ २२ ॥ उस कालमें इन नामोंसे भगवान् हरि गाये जाते हैं, हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा ॥ २३ ॥ त्रेतामें आरक्त, चार भुजा, तीन मेखला धारण करे, सुवर्णके समान केशवाले, वेदत्रयीमय मूर्त्ति और स्रुक स्रुवा आदि चिह्नोंको धारण करते हैं ॥ २४ ॥ जो अति धर्मात्मा

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलांबरः ॥ कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दंडकमंडलू ॥ २१ ॥ मनुष्यास्तु तदा शांता निर्वैराः सुहृदः समाः ॥ यजंति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥ हंसः सुपर्णो वैकुंठो धर्मो योगेश्वरो मनुः ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् ॥ यजंति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ ॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृषाकपिर्जयंतश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ॥ श्रीवत्सादिभिरंकैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥ तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ॥ यजंति वेदतंत्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥ २८ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥

वेदके ज्ञाता मनुष्य हैं, व सर्ववेदरूप भगवान् वासुदेवका, तीनों वेदोंके कर्मसे, त्रेतामें पूजन करते हैं ॥ २५ ॥ और विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत, उरुगाय, यह नाम गाये जाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापरमें भगवान् वासुदेव श्याम मूर्त्ति, पीताम्बर धरे, श्रीवत्सादि चिह्न और कौस्तुभादिक लक्षण धारण करतेहैं ॥ २७ ॥ हे राजन्! जो मनुष्य ईश्वरके जाननेकी इच्छा रखतेहैं, वह मनुष्य उससमय महाराजोंके लक्षण संयुक्त उन महापुरुषकी वेदमंत्र और आगमके मंत्रोंसे पूजा करतेहैं ॥ २८ ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप भगवान् तुमको

नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ नारायण ऋषि, पुरुष, महात्मा, विश्वेश्वर, विश्वरूप, सर्वभूतोंके आत्माको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इसप्रकार द्वापरमें भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते हैं, अब नाना आगम मार्गोंसे कलियुगमें भी जैसे पूजे जाते हैं, सो सुनो ॥ ३१ ॥ कलि युगमें कृष्णवर्ण है, कांतिसे अति निर्मल है और जैसे नीलमणि होती है, इसी प्रकार अंग हृदयादि उपांग कौस्तुभ तथा सुदर्शनादिक अस्त्र पार्षद सुनदनादिकनामका कथन और स्तुति आदिक प्रधान पूजासे अतिबुद्धिमान् मनुष्य भगवान् हरिकी पूजा करते हैं ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त स्तुति करते हैं कि, हे प्राणियोंके रक्षक ! हे महापुरुष ! तुम्हारे चरणारविन्दको नमस्कार है, जो चरणारविन्द सदा ध्यान करनेके

नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवंति जगदीश्वरम् ॥ नानातंत्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥ कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम् ॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजंति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिंचिनुतं शरण्यम् ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥ मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ॥ मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥

योग्य है, इन्द्रिय कुटुम्बके संगसे अनिष्टको दूर करते हैं, मनके अभिलाष पूर्ण करते हैं, गंगादिक तीर्थके स्नानभूत हैं, शिव ब्रह्मादिकसे स्तुति किये हुए हैं, और जो दीन होकर शरण जाता है, उसके रक्षक हैं सेवककी पीडाको दूर करतेहैं, और संसार सागरसे तरनेको नौकारूप हैं ॥ ३३ ॥ हे धर्मात्मन् ! हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप जो देवताओंसे भी न त्यागी जाय, देवता जिसकी अभिलाषामेंही रहते हैं, ऐसी राज्यलक्ष्मी पिताकी आज्ञासे छोडकर धर्मकी रक्षा करनेके लिये वनको चलेगये, और प्रिय सीताके प्रेम तथा वचनसे मायामृगके पीछे दौडे उन भक्तप्रिय आपके चरणारविन्दोंको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजा जनक ! इसप्रकार चारोंही युगमें नाम रूप भेदसे उस उस युगके

मनुष्योंसे कल्याणके देनेवाले हरि भगवान् पूजे जातेहैं ॥ ३५ ॥ अब चारों युगोंमें कलियुग श्रेष्ठ है, क्योंकि जो श्रेष्ठ हैं गुणज्ञ सारग्राही हैं, वह कलियुगकी स्तुति करते हैं, और युगोंमें ध्यान, यज्ञ, पूजा आदिसे जो फल होता है, सो सब स्वार्थ कलियुगमें भगवान्‌के भजन कीर्तनमात्रसेही प्राप्त होजातेहैं ॥३६॥ यह प्राणी और देहके अभिमानसे संसारमें भ्रमण करते हैं, उनको इससे परम और लाभ नहीं ॥३७॥ हे राजन् ! सतयुगादि की प्रजा कलियुगमें जन्म पावें, ऐसी इच्छा करती हैं, इसकारण निश्चय ज्ञात होता है कि, कलियुगमें सब जीव नारायणपरायण होंगे ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! कहीं कहीं महाराष्ट्रदेशमें भी भक्त होंगे और द्रविडदेशमें भी बहुत होंगे, जहाँ ताम्रपर्णी नदी, कृतमाला और पयस्विनी है ॥३९॥ कावेरी,

कलिं सभाजयंत्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो विंदेत परमां शांतिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥ कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छंति संभवम् ॥ कलौ खलु भविष्यंति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ कचित्कचिन्महारज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबंति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भविष्यन्ति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥४०॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुंदं परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ॥ विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

प्रतीची आदि परमपवित्र नदियें हैं, इनका जल जो पान करतेहैं, हे मनुजेश्वर ! वह मनुष्य निर्मलचित्त होकर श्रीभगवान् वासुदेवमें बहुधा भक्त हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य सर्वथा भेद छोड़कर केवल शरणदाता मुकुन्द भगवान्‌के शरण जाते हैं, उनपर देवता, ऋषि, भूत, कुटुम्बी मनुष्य और पितरोंका ऋण नहीं रहता, हे राजन् ! इनके लिये पंच यज्ञादिकोंके करनेकी भी प्रबलविधि नहीं, जो सर्वत्र एक हरिकोही देखते हैं ॥ ४१ ॥ यहां यह सन्देह राजा जनकने किया कि, हे महाराज ! जो कि सब कर्म छोड़कर केवल भजन करै तो कर्म छोड़नेका पाप लगेगा ? इसका समाधान यह है कि, जो सब देवादिकोंको छोड़कर एक हरिकेही चरणारविंदोंका भजन करते हैं, उनको विकर्म सर्वथा नहीं होते, जो कदाचित् प्रमादसे हों

तो उसके हृदयमें भगवान् हरि बैठ जाते हैं, यह यमादिकोंके भी नियंता हैं और उसके सब कर्म नाश करते हैं, इससे भगवान्को भक्तही प्यारे हैं ॥ ४२ ॥ इन नौ योगीश्वरोंका संवाद कहकर श्रीनारदजी बोले कि, हे वसुदेव ! इसप्रकार भगवद्धर्म सुन संतुष्ट होकर राजा जनकने अपने गुरुओं सहित जयंतीपुत्र योगीश्वरोंकी पूजा की ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त वह योगीश्वर संपूर्ण मुनि सिद्ध लोगोंके देखते देखते अंतर्धान होगये और राजा जनकभी उन्हीं धर्मोंके करनेसे परमगतिको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि, हे महाभाग वसुदेव ! तुमभी यह वैष्णवधर्म करो, इन धर्मोंमें श्रद्धा करनेसे निःसंग परममंगलको प्राप्त होगे ॥ ४५ ॥ यह तो मैंने शास्त्रादिकोंकी रीतिसे सब तुमसे कहा है, परन्तु हे वसुदेवजी !

नारद उवाच ॥ धर्मान्भागवतान्नित्यं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः ॥ जायंतेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत ॥ ४३ ॥ ततोंतर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥ ४४॥ त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवताञ्छ्रुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसंगो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥ युवयोः खलु दंपत्योर्यशसा पूरितं जगत् ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥४६॥ दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः॥४७॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौंड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ॥ ध्यायंत आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

तुम तो विनाही शास्त्रके क्रम कृतार्थ हो तुम दोनों स्त्री पुरुष परम भागवत हो, तुम्हारे यशसे सब जगत् पूर्ण होरहा है क्योंकि तुम्हारे यहाँ स्वयं भगवान् ईश्वरने आनकर अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ तुमको और लोगोंके समान भ्रान्ति, सर्व कर्म समर्पण आदि वैष्णवधर्मोंसे चित्त शुद्ध करना नहीं पड़ेगा, क्योंकि दर्शन, आलिंगन, आलाप, शयन, आसन, भोजनसे श्रीकृष्णमें पुत्रस्नेह करनेसे तुम्हारा भगवान् ईश्वर, आत्मा पवित्र गहोगया है ॥ ४७ ॥ शिशुपाल पौण्ड्रक तथा शाल्व आदि राजा शय्या आसन आदिमें जिसका वैरसे भी ध्यानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति चिन्तवन आदिसे तदाकार हुई बुद्धिसे सारूप्य मुक्तिको प्राप्त होगये तो जो पुरुष स्नेहसे इनमें चित्त रखते हैं, वह सारूप्य गतिको प्राप्त हों तो इसमें आश्चर्यही क्या है ॥ ४८ ॥

अहो जो पुत्रस्नेह मुक्तिका कारण है, तो सबही मुक्त होने चाहिये ? तो कहते हैं कि, हे वसुदेवजी ! तुम इनपर पुत्रबुद्धि मत रक्खो यह तो सर्वात्मा ईश्वर हैं, मायासे मनुष्याकार दिखाई देते हैं अलौकिक ऐश्वर्य इनका गुप्त है यह श्रीकृष्णचन्द्र अविनाशी परमपुरुष हैं ॥४९॥ यह पृथ्वीका भाररूप राजाओंके मारनेको और साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेको तथा मोक्ष देनेको अवतार लेकर लोकोंमें यश विस्तार करते हैं ॥५०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित् ! यह सुन महाभाग वसुदेव देवकीने अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्तहो अपने आपका मोह स्नेह छोड़दिया ॥५१॥ यह इतिहास अतिपुण्यजनक है, जो पुरुष नेमसे इसे मनमें धरते हैं, सो इसी देहमें मोह दूरकर ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० एका०

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्यपरेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहंतवे गुप्तये सताम् ॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्त्यै यशो लोके वितन्यते ॥५०॥ श्रीशुक उवाच॥एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ॥ देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥ स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा० म० ए० पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ छ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इंद्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ॥ ऋभवोंगिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥ गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां निमिजायंतेयसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा—छठवेंमें ब्रह्मादिकन, विनयकरी करजोरि ॥ मोहिं संग लीजे प्रभू, उद्धव कही निहोरि ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार वसुदेवजीसे नारदजी कहकर चलेगये, इसके उपरान्त द्वारकामें ब्रह्मा, सनकादिक और संपूर्ण देवता मिलकर आये, सृष्टि भूतोंके ईश्वर महादेव भूतगणोंसे मिलकर आये ॥१॥ देवताओंसे मिलकर देवराज इन्द्र आये, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अंगिरा, एकादश रुद्र, विश्वदेव, साध्य ॥२॥ गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर, किन्नर यह सब श्रीकृष्णचन्द्रका

दर्शन करनेको द्वारकामें आये ॥३॥ जिस देहसे भगवान्‌ने मनुष्यलोकमें परमसुन्दर मूर्त्तिसे सब लोगोंका पाप दूर करनेवाले यज्ञका विस्तार किया उसी मूर्त्तिके देखनेको आये ॥ ४ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान धनी पुरुषोंसे अति समृद्ध द्वारकामें आय अतृप्तरूप देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त नंदनवनके फूलोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा और विचित्र पद तथा अर्थयुक्त वाणियोंसे जगदीश्वरकी स्तुति करनेलगे ॥ ६॥ देवता बोले कि, हे नाथ ! जो जीव कर्मरूप बड़े पाशसे छूटनेको बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय, मन, वचनसे भावयुक्त हो जिनका हृदयमें सदा चितवन करते हैं, परन्तु तो भी दर्शन नहीं पाते और हम तुम्हारा प्रगट दर्शन कर रहे हैं, हमारा अहोभाग्य है, इसलिये हम तुम्हारे

द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयंतो यदूत्तमम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नताः स्म ते नाथ पदारविंदं बुद्धींद्रियप्राणमनोवचोभिः ॥ यच्चिंत्यतेंतर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुंपसि तद्गुणस्थः ॥ नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥ शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ॥ सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

चरणारविन्दको वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ तहाँ हरि यह एक तर्क करते हैं कि, मोक्षके लिये मेरे चरणारविन्दका चिंतवन क्यों करते हो ? क्योंकि मैं तो अनेक दुष्ट कर्म करताहूं, मेरा तो कर्म छूटताही नहीं तो तुम्हारे कर्म क्या छुड़ाऊंगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, हे अजित ! तुम ऐसी बात मत कहो, क्योंकि जो औरोंपर मनसे भी न जाने जायँ ऐसे महत्वादि प्रपंचको त्रिगुण अपनी मायासे आपहीमें उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहार करते हो, परन्तु तो भी इन कर्मोंमें लिप्त नहीं होते, तुम मायाके गुणोंमें नियंतास्वरूपसे स्थित हो रागादि रहित हो और नित्य अपने आनंदस्वरूपविषे मग्न रहते हो ॥ ८ ॥ तो मुझको कर्म करनेका क्या प्रयोजन है, मैं तो आत्म

योग्य ! हे परम श्रेष्ठ देव ! विषयी पुरुषोंके चित्त विद्या, श्रवण, अध्ययन, दान, तप और कर्म करनेसे वैसे शुद्ध नहीं होते जैसे साधु पुरुषोंके चित्त तुम्हारे यश श्रवण करनेसे शुद्ध होजाते हैं ॥ ९ ॥ अब प्रार्थना करते हैं कि, तुम्हारे चरणकमल हमारी अशुभ वासना जलानेके लिये अग्निरूप हैं, जिन चरणोंका संपूर्ण मुनि अत्यन्त प्रेमपूर्वक कोमल हृदय हो, मोक्षके कारण ध्यान करते हैं और भक्तजन सारूप्य मुक्तिकी इच्छासे वासुदेव, संकर्षण व प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूहसे तीन कालमें पूजा करते हैं और उनके बीचमें भी जो ज्ञानी है, वे इन्हींसे स्वर्गको उल्लंघन करके वैकुण्ठ जानेके लिये पूजते हैं ॥ १० ॥ हे ईश ! सदा तुमको यज्ञ करनेवाले कर्ममार्गमें हाथ जोड़ यज्ञकी अग्निमें तीनों वेदकी विधिसे हविको लेकर चिंतवन करते हैं और योगिराज अध्यात्मयोगसे तुम्हारी माया अणिमादिक ऐश्वर्य जाननेका चिंत्तवन करते हैं और परम

स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदो ह्यमानः ॥ यः सात्त्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेशहविर्गृहीत्वा ॥ अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ॥ यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥

भक्त सर्वत्र पूजते हैं ॥ ११ ॥ हे विभो ! तुम्हारे सब अंगोंमें व्याप्त जो वनमाला सो उससे भगवती लक्ष्मीजी सौतकी समान ईर्षा रखती हैं और यह वनमाला भक्तोंने अर्पण करी है, इसी कारणसे तुम इसको धारण करते हो, उसी मालासे पूजाको ग्रहण करते हो, तुम्हारे चरण हमारी विषयवासनाके जलानेको अग्नि हैं ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! जब तुम त्रिविक्रमरूप हुए, तब आपने बलिराजाको बाँधा, तब तुम्हारा एक चरण सत्यलोकमें रहा सो वह चरण जैसे विजयपताका हो इसी प्रकार दिखाई देताथा और उसी चरणसे गंगाजीके तीन प्रवाह छूटे, सो पताका हुई चरण ध्वजदण्ड हुवा सो सुर, असुर सबकी सेनाको भय अभयका देनेवाला हुआ देवता और साधुओंको अभयका दाता स्वर्ग दिया असुर दुष्टोंको

भयदायक अधोगति दी वह आपका चरण हम कि, जो भजन कर रहे हैं, उनके पापको दूर करो और हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ यदि कहो कि, युद्धमें देवता, दैत्य परस्पर जीतते हैं, हारते हैं मेरा वहां क्या निमित्त है ? तो कहते हैं कि ब्रह्मासे आदि लेकर देहधारी सब जगत् परस्पर युद्धसे जब पीड़ित होते हैं, तब तुम्हारे वशमें आते हैं इसीलिये कालरूप तुम हो और कालके, अधीन सब हैं, इससे जय पराजय सब आपहीके अधीन है, जैसे नाथके अधीन बैल है, इसीप्रकार सब तुम्हारे अधीन हैं तुम प्रकृति पुरुषसे भी परे हो पुरुषोत्तम हो तुम्हारे चरण हमको सुखकारी हों ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! तुम इस जगत्के उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हो और प्रकृति पुरुष महत्तत्त्वके भी नियंता हो, यह काल संवत्सर है सो चक्ररूप है, इसके ग्रीष्म, वर्षा, शरद् तीन नाम हैं, सबका नाश करनेको प्रवृत्त है, इसका वेग अत्यन्त गंभीर है, सो काल तुम्हाराही रूप है इसलिये

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवंति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ॥ कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्त नोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥ अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥ त्वत्तः पुमान्समधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्ते महांतमिव गर्भममोघवीर्यः ॥ सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आंडकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥ तत्तस्थु षश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ॥ अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

तुम उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥ अब सृष्टिका प्रकार कहते हैं, प्रथम तुमसे सफल वीर्य एक पुरुष उत्पन्न होता है, सो पुरुष तुमसे शक्तिको प्राप्त हो मायासे मिलकर विश्वका गर्भरूप महत्तत्त्व उपन्न करता है और वही महत्तत्त्व मायासे मिल आत्मासे यह स्वर्णमय अण्डकोश बाहरके सात आवरण संयुक्त सृजता है ॥ १६ ॥ इसलिये सब तुमसेही प्रगट हुआ है और इसीकारण इस स्थावर, जंगम, विश्वाधीश तुम हो, हे संपूर्ण इन्द्रियोंके पति ! मायासे उत्पन्न हुई इन्द्रियें वृत्ति करके विषय भोग करते भी तुम निर्लेप रहते हो, यद्यपि योगीश्वर योगसे विषयको छोड़ देते हैं, परन्तु तो भी डरते हैं कि, कदाचित् हमको विषयवासना उत्पन्न न हो; क्योंकि तुम प्रपंचसे मिलरहेहो और विषय सम्बन्ध नहीं, यह म र

विशेष धर्म है ॥ १७ ॥ क्योंकि जो सोलह हजार (१६०००) स्त्रियें अपने मंदहास्य सहित चितवनके कटाक्षसे दिखाये अभिप्रायसे मनको हरनेवाली भ्रूमण्डलसे प्रेरे संभोग मंत्रोंके विषे निपुण, कामके बाण और कामकी कलासे भी वशमें न करसकीं तो तुम विषयोंसे निर्लिप्तही हो ॥ १८ ॥ इस लिये तुम्हारी अमृतरूपी कथा, जलभरी कीर्तिरूपी नदी और तुम्हारे चरणोदकरूपी गंगा, यह दोनों त्रिलोकीका पाप दूर करनेको समर्थ हैं, श्रवणेन्द्रियसे वेदमें गाये तुम्हारे यशके सुननेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं, गंगामें स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं, इसप्रकार जो पुरुष धर्म जानते हैं, सो इन दोनों तीर्थोंका सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि इसप्रकार ब्रह्मा, महादेव सहित देवताओंसे मिल, स्तुति और नमस्कार

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमंत्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येंद्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हंतुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमंगसंगैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशंति ॥ १९ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविंदं प्रणम्यांबरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥ धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसंधेषु वै त्वया ॥ कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ॥ शृण्वंतः कीर्तयंतश्च तरिष्यंत्यंजसा तमः ॥ २४ ॥

कर, आकाशहीमें खड़े भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे बोले ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा कि, हे प्रभो ! हे सर्वान्तर्यामी ! हमने भूमिका भार उतारनेके लिये प्रथम आपसे विनती की थी सो भार तुमने उसी प्रकार दूर किया ॥ २१ ॥ संतोंमें धर्म स्थापन किया, साधुओंमें सत्य रक्खा और सबोंका पाप दूरकर दशोंदिशाओंमें कीर्तिका विस्तार किया ॥ २२ ॥ यदुवंशमें अवतार ले उत्तमरूप धर जगत्का हित करनेके लिये अति उदार चरित्र और कर्म किये ॥ २३ ॥ हे ईश ! जिन कर्मोंको कलियुगमें साधुजन श्रवण कीर्त्तन करके सुखपूर्वक संसार सागरसे तरेंगे ॥ २४ ॥

हे विभो ! हे पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें अवतार लिये तुमको एकसौ पचीस (१२५) वर्ष बीत गये ॥ २५ ॥ हे सर्वाश्रय ! अब तुमको कोई देव कार्य भी करना शेष नहीं है और यह तुम्हारा कुल भी ब्रह्मशापसे नष्ट होरहा है ॥ २६ ॥ इसलिये यदि अब आपकी इच्छा हो तो अपने वैकुण्ठ धामको चलो. हे वैकुण्ठनाथ ! हम तुम्हारे किंकर हैं, लोक सहित लोकपालोंकी रक्षा करो ❀ ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे देव

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीयाय पंचविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥ नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुंठ किंकरान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ॥ कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोवतारितः ॥ २८ ॥ यदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ॥ लोकं जिघृक्षद्रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥

ताओंके ईश्वर ! तुमने जो कहा सो मैंने मनमें धारण किया, तुम्हारा सब काम पूर्ण करदिया और भूमिका भार उतारा ॥ २८ ॥ परन्तु अभी यह यादवकुल बल, शूरता और श्रीसे अतिउद्धत है, लोकको ग्रसा चाहता है, उसे भी महासमुद्रको जैसे वेला (तट) रोक रक्खे, उसीप्रकार

शंका–भगवान्ने अनेक अवतार धारण करके पृथ्वीपर अनेक प्रकारके चरित्र किये, परन्तु पृथ्वीसे भगवान्को वैकुण्ठधामके जानेके लिये किसी अवतारमें ब्रह्माने प्रार्थना नहीं की कि, महाराज ! आप अब परमधामको चलो ! और इन्द्रको तथा ब्राह्मणोंको ब्रह्माने अपने सग लेकर वैकुण्ठको संग चलनेके लिये श्रीकृष्णकी याचना क्यों किया कि, अब आप वैकुण्ठको चलो ॥

उत्तर–ससारको सुख देनेके लिये भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये, ऐसेही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीकृष्णरूप धरकर मर्त्यलोकमें आये. जब श्रीकृष्ण मर्त्यलोकमें आये तब तारकनाम राक्षस वैकुण्ठपुरीको भगवान्से हीन देखकर भगवान्की पुरीको दु.ख देनेका विचार करनेलगा, आज दु:खदें कल दु:खदें, ऐसा विचार करते करते एकेसौ चौवीस १२४ वर्ष, दश १० महीने बीत गये, परन्तु जिस दिन निश्चय करके दुःख देनेको चला, तब कुछ थोडा थोडा उत्पात वैकुण्ठमें हुवा, तब सुदर्शनचक्र तारकके मारनेके लिये उसके पीछे दौडा उस समय सुदर्शनके डरके मारे तारक भाग निकला, तो उसी दिन ब्रह्माने विचार किया कि, आज दुष्ट राक्षसने वैकुण्ठमें उपद्रव कियाहै, न जानिये क्या हो ? ऐसा विचारकर ब्रह्माने श्रीकृष्णसे वैकुण्ठजानेके लिये प्रार्थना की।

मैंने रोक रक्खा है ॥ २९ ॥ जो मैं ऐसे गर्वसे उद्धत यादवोंके विशाल कुलका संहार किये विना अपने लोकको चला जाऊंगा तो यह लोक मर्यादा रहित या यदुकुलसे नष्ट होजायगा ॥ ३० ॥ सो विप्रशापसे इस कुलके नाशका अब आरंभ किया है, हे ब्रह्मा ! इनको संहार करके मैं वैकुण्ठ जाऊंगा, हे निष्पाप ! तुम्हारे घर आऊंगा ॥ ३१ ॥ लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इस प्रकार वाणी सुनकर स्वयंभू देव ब्रह्मा श्रीकृष्णको नमस्कार कर देवताओंसे मिल अपने धामको चलेगये ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त द्वारकापुरीमें बड़े बड़े उत्पात होनेलगे उन्हें देखकर बडे वृद्ध

यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ॥ गंतास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनंक्ष्यति ॥ ३० ॥ इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापजः ॥ यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदंते तवानघ ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् ॥ सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥३२॥ अथ तस्यां महोत्पातान्द्वारवत्या समुत्थितान् ॥ विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता ह्युत्तिष्ठंतीह सर्वतः ॥ शापश्च नः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ॥ प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद् गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥ विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥ वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ॥ भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवतान्धसा ॥ ३७ ॥

यादव इकट्ठे हुए, उन यादवोंको एकत्र देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ३३ ॥ कि, सब ओरसे यहाँ बडे बडे उत्पात उठते हैं और अपने कुलको ब्राह्मणोंका शाप भी हुआ है ॥३४॥ इसलिये हे यादवो ! जो जीनेकी इच्छा है तो हमको यहाँ रहना नहीं चाहिये, अतिपुण्य प्रभासतीर्थको आजही चलो, विलम्ब मत करो ॥ ३५ ॥ जिस तीर्थमें स्नान करके दक्षके शापसे क्षयरोगसे ग्रसा चन्द्रमा पापसे छूटा और तत्काल फिर कलाओंकी वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ हम भी वहाँ स्नान और पितरोंका तर्पण कर अनेक गुणसंयुक्त अन्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करवाय ॥ ३७॥

श्रद्धासहित महान् सत्पात्रों विषे बीज बोय उन दानोंसे पापोंको तरेंगे, जैसे नावमें बैठकर समुद्रको तरते हैं ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी तब सब यादव भगवान्‌की आज्ञा मान चलनेका उद्यम करनेलगे, तीर्थ जानेकी इच्छासे रथ जुतवाने लगे ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! उससमय यादवोंके प्रभासतीर्थ जानेका उद्यम देख और श्रीकृष्णके वचन सुन और घोर उत्पातोंको देख नित्य श्रीकृष्णके निकट रहनेवाले उद्धवजी ॥ ४० ॥ एकांतमें निकट जाय जगत्‌के ईश्वरोंके ईश्वरको माथेसे नमस्कारकर हाथ जोड कहनेलगे ॥ ॥ ४१ ॥ कि, हे देवदेवेश ! योगेश ! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन ! तुम्हारी ऐसी इच्छा जानी जाती है, कि इस कुलका संहारकर निश्चयसे भूलोकको

तेषु दानातिपात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महांति वै ॥ वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनंदन ॥ गंतुं कृतधियस्तीर्थे स्यंदनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥ तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वा भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्त उपसंगम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ प्रांजलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥ उद्धव उवाच ॥ देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥

छोडना चाहतेहो यद्यपि तुम ईश्वर संपूर्ण कार्य करनेको समर्थ हो, परन्तु तोभी विप्रशापको निवारण नहीं किया ॥ ४२ ॥ हे केशव ! हे नाथ ! मैं तुम्हारे चरणकमल छोड़नेको असमर्थ हूं अर्थात् आधे क्षणकोभी नहीं छोड सक्ता, इसलिये मुझे भी अपने धामको ले चलो ॥ ४३ ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी लीला मनुष्योंको परममंगलदायक है, श्रवणेन्द्रियको अमृतरूप है उसका आस्वाद ले मनुष्य औरकी इच्छाको छोडते हैं, हम तुम्हारे दिन रात्रिके सेवक हैं ॥ ४४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्नान, क्रीडा, भोजन आदि और भी क्रियाओंमें सदा संग रहेहैं, सो हम भक्तप्रिय आत्मारूप

तुमको कैसे छोड़ सक्ते हैं ? ॥ ४५ ॥ तुम्हारे समीप तुम्हारे प्रसादकी माला सुगंध चंदन और प्रसाद वस्त्रसे चर्चित होकर बाह्य शुद्ध होते हैं, पीछे तुम्हारे उच्छिष्ट महाप्रसाद भोजनसे अंतर शुद्ध करके तुम्हारी मायाको जीतते हैं ॥ ४६ ॥ हे महायोगिन् ! जो केवल वायु भक्षण करके रहते, वह दिगंबर हैं, शमयुक्त हैं, जितेन्द्रिय हैं, संन्यासी हैं, निर्मल चित्त हैं, आत्मविद्यामें जिसने श्रम किया है, वह ऋषि अनेक क्लेशसे तुम्हारे वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं ॥४७॥ हे महायोगीश्वर ! हम तो तुम्हारे भक्तोंके संग तुम्हारी वार्ता करते सकल कर्मोंमें भ्रमते भी तुम्हारी दुस्तर मायाको तरेंगे ॥ ४८ ॥ मनुष्यलोकको आश्चर्यदायक तुम्हारे कर्म वचन गति हास्य चितवन हास्यकी वार्त्ता और जो कुछ मनुष्यलोकमें लीला करी है, उसका स्मरण

त्वयोपभुक्तस्रग्गंधवासोलंकारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥ वाताशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्द्धमंथिनः ॥ ब्रह्माख्यं धाम ते यांति शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥ वयं त्विह महायोगिन्भ्रमंतः कर्मवर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरंतः कीर्तयंतस्ते कृतानि गदितानि च ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेली यन्नृलोके विडंबनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन्भगवान्देवकीसुतः ॥ एकांतिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० स्कं० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्ववासं मेऽभिकांक्षिणः ॥ १ ॥

कीर्तन, करेंगे इससेही तरजायँगे, मैं यह आपके भयसे प्रार्थना नहीं करताहूं, परन्तु आपका संग नहीं छोडा जाता ॥ ४९ ॥ इतनी कथा कह शुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार उद्धवजीकी विनती सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा निकटवर्त्ति परमप्रिय भक्त उद्धवजीसे बोले ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां ब्रह्मादिस्तुतिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–हरि विवेककी सिद्धिको, वरणो जस इतिहास । सो सप्तम अध्यायमें, वर्णत सहित हुलास ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले कि, हे महाभाग उद्धव ! तुमने जो मुझसे कहा सो सब मुझे करना है, क्योंकि ब्रह्मा, महादेव और लोकपाल यह सब स्वर्ग जानेके लिये मेरी प्रार्थना करगये हैं । १ ॥

मैंने यहाँ वह सब देवकार्य सिद्ध किया, जिसके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे बलदेव सहित मैंने अवतार लियाथा ॥ २ ॥ हमारा कुल शेष रहा है, सो भी विप्रशापसे जल रहा है, इससे निश्चयही परस्परकी लड़ाइयोंसे नष्ट होजायगा और आजसे सातवें दिन इस द्वारकापुरीको समुद्र डुबा देगा ॥ ३ ॥ जिस दिन मैं इस लोकको छोडूंगा उसदिन यह मंगल नष्ट होजायगा. हे उद्धव ! इसके उपरान्त फिर कलियुग भी प्रवृत्त होकर सब धर्मको दूर करेगा और थोड़ेही कालमें इसलोकका निरादर करेगा ॥ ४ ॥ मेरे त्याग किये महीतल विषे तुम मत वास करना, क्योंकि हे

मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ॥ यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥ कुलं वै शापनिर्दग्धं नंक्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात ॥ समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ तर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः ॥ भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः॥ ४ ॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबंधुषु ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक्समदृग्विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ॥ नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥ पुंसो युक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

उद्धव ! कलियुगमें मनुष्योंकी प्रीति अधर्ममें होगी * ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! तुम तो स्वजन, बन्धु और कुटुम्बका स्नेह छोड़ मेरे स्वरूपमें चित्त रख समदृष्टि होकर पृथ्वीमें विचरण करो ॥ ६ ॥ इस संसारमें दृष्टि मत रखना, क्योंकि वचन, नेत्र, श्रवणादिक करके जो ग्रहण किया है, सो सब झूठी मायाका रचा यह मन भी मिथ्या है, ऐसा जानो ॥७॥ विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषको वेदार्थ अनेक प्रकारसे दीखते हैं,सो भ्रमते हैं, गुण दोष

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवसे कहा कि, हम पृथ्वीको त्याग कर परमधामको जायँगे, तब पृथ्वी पर वास मत करना, तब श्रीकृष्णके वैकुण्ठ जानेके पीछे वदरिकाश्रममें उद्धवने वास क्यों किया ? उत्तर–वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, नैमिषारण्य, द्वारका, काशी, वदरिकाश्रम इन सब क्षेत्रोंकी सात द्वीपोंकी पृथ्वीपर गिनती नहीं है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है, यह सब मोक्षभूमि हैं, सात द्वीपकी सदृश भूमि नहीं इसलिये बदरिकाश्रममें उद्धवजीने वास किया।

संयुक्त हो कर्म, अकर्म, विकर्म, भेद गुणदोषबुद्धिवालेको है, समदृष्टि आत्मज्ञानवंतको यह भेद नहीं ॥ ८ ॥ इसलिये इन्द्रियोंके समूहको और चित्तको वश करके इस विशाल जगत्को अपने आपमें देखो, आपको परमेश्वरमें ब्रह्मरूपसे देखो ॥ ९ ॥ यदि कहो कि, विघ्न बहुत हैं, कैसे देखें ? इसका उत्तर यह है कि, वेदके अभिप्रायका निश्चय और उसके अर्थका अनुभव मिलाय आत्माके ज्ञानसेही संतुष्ट और दीनता आदि भी आत्मरूप जानोगे तब कोई विघ्न नहीं करेगा और जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति न हो तबतक वर्णके अनुसार कर्म करै, अनुभव प्राप्त होनेपर विघ्नोंसे कुछ नहीं होता ॥ १० ॥ इससे यह न समझ लेना कि, " ज्ञानी मनुष्य यथेष्ट आचरण करै " क्योंकि जैसे बालक संकल्प विकल्पसे

तस्माद्युक्तेंद्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ॥ आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ आत्मानुभवतुष्टात्मा नांतरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥ दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छांतो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ॥ पश्य न्मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥ उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसंभव ॥ निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥

रहित होनेपर भी कोई कर्म करता है, कोई नहीं करता, इसीप्रकार गुणदोषबुद्धिसे रहित हुआ यह पहले कर्मोंके संस्कारसे विवर्त्त होता है, किन्तु न दोषबुद्धिसे बहुधा विहित कर्मका कर्त्ता है, न गुणबुद्धिसे ॥ ११ ॥ सब प्राणियोंका मित्र हो ज्ञान विज्ञानका निश्चयवाला हो, सब विश्वको मेराही रूप समझकर देखे, वह पुरुष फिर कभी इस संसारमें न आवै ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत राजा परीक्षित् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने समझाया, तब परमभागवत उद्धवजी प्रणामकर तत्त्वज्ञानकी इच्छा कियेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगे ॥ १३ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे योगके फलदाता ! हे योगके आधार ! हे योगरूप ! हे योगके कारण ! मेरे मोक्षके अर्थ यह संन्यास रूपका त्याग मुझसे कहा

सो आपने सहज दयासे कहा, क्योंकि मैं तो ऐसा अधिकारी नहीं था ॥ १४ ॥ हे सर्वव्यापक ! हे सर्वात्मा ! मेरी बुद्धि तो ऐसी है कि, जिन पुरुषोंका मन विषयोंमें लगा हुआ है, उनसे ऐसा त्याग बनना अशक्य है और जो उसमें भी तुम्हारे भक्त नहीं उनको तो बहुतही कठिन है ॥ १५ ॥ और जो मुझसे तुम त्याग कहते हो सो महाराज ! मैं अहंता ममतामे मूढ़मति हूँ तुम्हारी मायासे उत्पन्न हुए पुत्र कलत्र देह आदिमें मग्न हूँ इसलिये हे भगवन् ! जैसे यह सब तुम्हारी आज्ञा विना परिश्रम करसकूं, उसी प्रकार तुम मुझे शिक्षा दो ॥ १६ ॥ तुम समानरूप हो, स्वप्रकाश हो, आत्मा हो, इसलिये हे ईश ! मुझे और ऐसा वक्ता देवताओंमें भी कोई नहीं देखपड़ता है, क्योंकि यह ब्रह्मादिक देहधारी तो तुम्हारी मायासे मोहितबुद्धि

त्यागोऽयं दुष्करो भूमन्कामानां विषयात्मभिः ॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥ १५॥ सोहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबंधे ॥ तत्त्वंजसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्नतु शाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥ सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥ तस्माद्भवंतमनवद्यमनंतपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुंठविकुंठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमुह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरण प्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥ समुद्धरंति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते ॥ २० ॥

हैं और बाहरके विषयोंमें इनकी अर्थबुद्धि है ॥ १७ ॥ कोई एक दुष्टबुद्धि हैं और कोई एक ऐसे हैं जो सेवा करनेपरभी फल देनेके समय नष्ट होजाते हैं, कोई अज्ञानी हैं कोई रक्षाकरनेमें असमर्थ हैं, कोई स्थानभ्रष्ट हैं, इसलिये संसारके दुःखसे अतीत नहीं, मैं अति विरक्तचित्त हूं इसकारण तुम्हारी शरण आया हूं, क्योंकि तुम तो निंदारहित हो, तुम्हारा कालसे अंत और देशसे पार नहीं, सर्वज्ञ हो, ईश्वर हो, तुम्हारा नाशरहित वैकुण्ठ स्थान है, तुम सब जीवोंके आश्रय हो जीवके सखा हो ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जो लोग तत्त्वको अतिश्रेष्ठ जानते हैं, वह मनुष्य बहुधा गुरुविनाही अपने आत्माको संसारसे उद्धार करते हैं, गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥ १९ ॥ अपना गुरु आपही हैं, क्योंकि विशेषकर

पुरुष जो यह प्रत्यक्षसे अथवा अनुमानसे विचारै तो आपहीसे सुख पावै और सहजसेही अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो, पशुओंको अपने हित ज्ञानका कौन गुरु है, आपहीसे अपने हितमें प्रवृत्त होते हैं, इसलिये अपना आपही गुरु, तहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान दिखलाते हैं कि, जब जीव पुरुषजन्म प्राप्त करता है, तब यह ज्ञानमार्गमें निपुण होजाता है ॥ २० ॥ मनुष्यके शरीरमें आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है, यह सांख्य योगमें चतुर बुद्धिवाले धीर पुरुषोंका निश्चय है ॥ २१ ॥ वह शक्तियुक्त मुझे प्रत्यक्ष देखते हैं, मेरे उत्पन्न किये बहुतरूप और बहुत शरीर हैं, कोई एकचरण हैं, कोई अर्द्धचरण हैं, कोई नीचे चरण हैं, कोई चार चरण हैं, कोई बहुत चरण हैं, कोई चरण रहित हैं, परन्तु इन सबोंमें जो पुरुषरूप देह है, सो मुझे अतिप्रिय

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः ॥ आविस्तरां प्रपश्यंति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः ॥ बह्व्यः संति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥ अत्र मां मार्गयंत्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ॥ गृह्यमाणैर्गुणैर्लिंगैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥ अवधूतं द्विजं कंचिच्चरंतमकुतोभयम् ॥ कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥ यदुरुवाच ॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥ यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥ प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥ हेतुनैव समीहंते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥

है ॥ २२ ॥ इस पुरुषदेहमें जो सावधान है, सो अहंकारादिकोंसे रहित मुझे प्रगट ढूँढ़लेते हैं, बुद्धि आदि यत्नोंको एक स्वप्रकाश आत्माविना प्रकाश नहीं होसका ऐसा अनुमान करके मुझे ढूंढ़लेतेहैं ॥ २३ ॥ इस विषयमें एक बड़े तेजस्वी राजा यदु और अवधूतका संवाद रूप प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥ २४ ॥ अवधूत वेष किये महापण्डित और सदा तरुण अवस्थावाले गुरु दत्तात्रेयजी कि जो निर्भय रीतिसे संसारमें घूम रहे थे उन्हें देखकर धर्मके ज्ञाता राजा यदुने इस प्रकार पूँछा ॥ २५ ॥ कि, हे ब्रह्मन् ! अकर्त्ता तुमको ऐसी निपुणमति कहाँसे प्राप्त हुई है, जिसको पाकर अवधूत पण्डित तुम बालकके समान इसलोकमें विचरतेहो ॥ २६ ॥ बहुधा मनुष्य धर्म, अर्थ, कामना

विषे और आत्माके विचार विषे आयुर्दाय कीर्ति और श्रीकी कामनासे प्रवृत्त होते हैं॥ २७ ॥ परन्तु तुम तो कुछ नहीं चाहते हो न कोई कर्म करते हो और जड उन्मत्त पिशाचके समान हो और सब कार्य करनेको समर्थ और पूर्ण ज्ञानवान् हो, अतिप्रवीण हो सुन्दर हो आपकी उत्तम मधुर वाणी है ॥ २८ ॥ मनुष्य काम, लोभरूप दावानलसे जलता है, उसमें तुम उस तापसे संतप्त नहीं हो, जैसे अग्निसे छूटकर गंगामें खडा हाथी उस तापसे तप्त नहीं होता है ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम विषयभोग रहित हो, कलत्र आदिसे शून्य हो, आनंदरूप हो इसलिये हम आपसे पूँछते कि, तुम्हारे आनंदका कारण क्या है ? सो हमसे कहो ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इसप्रकार जब अतिब्रह्मण्य सुबुद्धि राजा यदुने

त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गंगांभःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥ त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानंदकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं नृपम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ संति मे गुरवो राजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ताञ्छृणु ॥३२॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चंद्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिंधुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥

विनयपूर्वक पूजाकर पूँछा, तब महाभाग अवधूतजी राजा यदुसे बोले ॥ ३१ ॥ कि हे राजन् ! अपनी बुद्धि करके मेरे बहुत गुरु हैं, जिनसे मैं बुद्धि पाकर मुक्त हुआ हूँ और इसलोकमें फिरताहूं, उनको सुनो ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, सिंधु, पतंग, मधुकृत, गज ॥ ३३ ॥ मधुहा, मृग, मीन, पिंगला, कुररपक्षी, बालक, कुमारी, कडेंडी (बाणका बनानेवाला) साँप, मकरी और भृंगी ॥ ३४ ॥ हे राजा यदु ! मैंने यह चौबीस गुरु सेवन किये हैं, इनके आचरणसे मैंने अपनी शिक्षा ग्रहण करली है ॥ ३५ ॥

हे ययातिपुत्र, ! हे पुरुषसिंह ! मैंने जहां जातेहुए जो शिक्षाग्रहण की है, सो उसीप्रकार कहताहूं, तुम श्रवण करो ॥३६॥ प्रथम भूमिसे क्षमा सीखी है सो कहते हैं कि, पृथ्वीको सब प्राणी खूँदतेहैं, परन्तु तो भी वह अपने नियमसे चलायमान नहीं होती इसीप्रकार दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट दे तो भी उनके दैवाधीनपनको जाननेवाले उस पुरुषको अपने नियमसे चलायमान होना उचित नहीं, यह पृथ्वीसे सीखा है ॥ ३७॥ पृथ्वी दोप्रकारकी है, एक तो पर्वतरूप, एक वृक्षरूप, यहाँसे जो सीखा है,सो कहतेहैं कि, पर्वतकी जो वस्तु है, वृक्ष, तृण, झरना, फूल, फल, यह सदा पराये अर्थ है और पर्वतका तो केवल जन्म भी पराये ही अर्थ है, अपना स्वार्थ कुछ नहीं, इसीप्रकार अपनी वस्तु और देह सब परोपकारार्थ लगा दीजिये, यह पर्वतरूप भूमिसे सीखा है और वृक्ष भी पराये अधीन हैं, यदि उनको कोई काटे उखाडे तो वह सहलेते हैं और क्षमाको नहीं तजते, इसीप्रकार साधुपुरुष

यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥ तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकांतसंभवः ॥ साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥ प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेंद्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ॥ ४० ॥ पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥ गुणैर्न युज्यते योगी गंधैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥

भी जो अपने संग भलाई बुराई करे तो उसे सहन करलें (१) ॥ ३८॥ वायु भी दो प्रकारकी है, एक तो प्राणरूप है दूसरी बाहर फिरती है, सो प्राण जसे आहार मात्रसे संतुष्ट रहते हैं और इन्द्रियोंके भोग नहीं चाहते इसीप्रकार मुनीश्वरभी रहें आहार जो न मिले तो मन वचन विक्षिप्त होकर ज्ञान सिद्धि न हो इसलिये एक आहारमात्रसेही संतोष मानलें, इससे अधिककी चाहना न करे यह विद्या प्राणवायुसे सीखी है ॥ ३९ ॥ जैसे पवन सब जगह चलताहै, पर कहीं आसक्त नहीं होता, इसीप्रकार योगिराज भी शीत उष्ण आदि नानाधर्मवाले विषयभोग करते भी आसक्त नहीं होते, सबमें गुणदोषरहित मन होय, यह विद्या बाहिरकी वायुसे सीखी है ॥ ४० ॥ और भी एक बात पवनसे सीखी है सो कहते हैं कि,

यद्यपि वायु सुगंधसे मिलीसी चलती है और ऐसाही जाना जाता है, परन्तु तोभी वायु गंधसे मिला नहीं है, गंध कुछ वायुका गुण नहीं है पृथ्वीका गुण है, उसीप्रकार आत्मा पृथ्वीका विकार देहमें प्रविष्ट है देहके धर्मका आश्रय है, पर मिला नहीं है, देहोंसे अलग है, इसप्रकार समझे और स्थानमें आत्माहीको देखै यह विद्या भी पवनसेही सीखी इस लिये वायु गुरु हुआ (२) ॥४१ ॥ अब आकाशसे जो विद्या सीखी है, सो कहते हैं, जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक और बड़ा है परन्तु घटमें छोटा दिखाई देताहै, सो घटसे आकाशका कुछ सम्बन्ध नहीं क्योंकि वह निर्विकार है, तैसेही आत्मा इस देहमें है और यह देहसे मिला है, इसकारण इतनाही है और ठौर नहीं ऐसे न समझे, क्योंकि जो आत्मा देहमें है, सोई सर्वत्र है जैसे आकाश सब ठौर है,वैसेही स्थावर जंगमविषे ब्रह्म व्यापक है,यह एक विद्या आकाशसे सीखी है ॥४२॥द्वितीय वायु कहतेहैं जैसे पवनके

अंतर्हितश्च स्थिरजंगमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसंगमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभून्नृणाम् ॥ मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥ सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुंक्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥

प्रेरेसे तेज, जल, पृथ्वीमय मेघादिक आकाशमें व्याप्त होतेहैं, पर मेघादिकोंसे आकाशका स्पर्श नहीं होता, वह निर्लेप है, वैसेही यह पुरुष कालसे सृजे पंचभूत रूप इस देहसे संयुक्त है, उनका निजके साथ स्पर्श नहीं है, यह धर्मभी आकाशसेही सीखा (३) ॥ ४३ ॥ जैसे स्वभावहीसे जल अति निर्मल है ऐसेही मुनि भी निर्मल हो सबके ऊपर स्नेह करै मीठा बोले जल भी मधुर है जैसे जल तीर्थ स्थान है और मनुष्योंको पापसे छुडाता है इसीप्रकार मुनीश्वरभी दर्शन स्पर्श कीर्त्तनसे सबको पवित्र करें, यह गुण जलसे सीखे हैं (४) ॥ ४४ ॥ अब अग्निसे सीखा सो कहते हैं, जैसे अग्नि अतितेजस्वी है, तेजसे दीप्त है, अति दुःसह है और उसका उदरही पात्र है क्योंकि जो होम करतेहैं, वह अग्निके उदारमेंही डालते हैं, इससे वही पात्र है, जो संपूर्ण वस्तुको भक्षण करतीहै और तोभी पवित्र करनेवाली है, ऐसेही मुनीश्वरभी हों ॥ ४५ ॥ जैसे अग्नि कहीं गुप्त है, कहीं

प्रगट है,जो अपने कल्याणकी चाहना करते हैं, उनको सेव्य है,दाताकी इच्छासे सर्वत्र हविष्य लेती है,उनके भूत, भविष्य, वर्त्तमान पाप सब दूर करतीहै, इसीप्रकार मुनि रहैं ॥४६॥ और भी अग्निसे सीखा है, जैसे अग्नि एकरूप है, बहुत ईंधनसे बहुत भाँति बड़ी दिखाई देती है और जब ईंधन थोडा रहताहै तो छोटी दीख पडती है, ऐसेही जीवात्मा एकरूप है, न छोटा है, न बडा है, अपनी अविद्यासे उपजाये ऊंच नीच भेदसंयुक्त देहमें प्रविष्ट हुआ ऊँच नीच रूपसे दिखाई देता है (५) ॥ ४७ ॥ चन्द्रमासे जो सीखा है, सो कहते हैं, जन्मसे आदिलेकर मरणपर्यन्त धर्म देहकेही हैं आत्माके नहीं, इसमें दृष्टान्त कहते हैं, जैसे चन्द्रमाका मण्डल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय जो देखा जाता है सो कलाओंका है, जितना सूर्यमण्डलसे नित्य अलग पडै है, उतनाही दीखता है और ज्यों ज्यों मण्डलके नीचें दबता है, त्यों त्यों घटता है. इसीप्रकार आत्मा एकरूप है, अप्र

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥ विसर्गाद्याः श्मशानांता भावा देहस्य नात्मनः ॥ कलानामिव चंद्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥ कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुंचति ॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥

गट गति कालसे जन्ममरणादिक भाव देहके होते हैं, आत्माके नहीं, यह ज्ञान चन्द्रमासे पाया है, इससे चन्द्रमा गुरु है (६) ॥ ४८ ॥ अग्नि गुरुकी फिर प्रशंसा करते हैं, जैसा अग्निका स्वरूप है कि, नाश नहीं होता, अग्निकी ज्वालाओंका नाश होता है; परन्तु दीखता नहीं, वैसेही कालनदीके वेगसे जन्ममरण इस देहकोही है, आत्माको नहीं, क्योंकि आत्मा तो नित्य अर्थात् अमर है ॥४९॥ अब सूर्यसे जो सीखाहै सो कहते हैं, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल सोखताहै और फिर वर्षाके समय वही जल छोड देता है, परन्तु उसमें आसक्त नही है. इसीप्रकार योगीजन इन्द्रिय अपेक्षित पदार्थोंका ग्रहण करै और कोई, याचना करै तौ तत्काल देदें, ममता न रक्खें ॥ ५० ॥ जिसप्रकार सूर्य आकाशमें अपने स्वरूपमें रहता है और एकही है, परन्तु जलादिकमें प्रतिबिम्ब पडनेसे अनेकरूप दीखता है, इसी प्रकार आत्मा स्वरूपसे भिन्न नहीं है, देहादिकोंमें व्याप्त

होनेसे स्थूल बुद्धिवालोंको अनेकरूपका प्रतीत होता है (७)॥५१॥ अब कपोतसे जो सीखा है, सो कहते हैं, कहीं किसीसे अधिक स्नेह न करै, किसीसे आसक्त न हो, जो संग करे तो संतापको प्राप्त होता है और दीनमति होती है, जैसे कपोतको हुआ ॥ ५२ ॥ सो कपोतकी कथा कहते हैं, एक कपोत वनमें किसी वृक्षपर अपना घर बनाय कपोतिनी अपनी स्त्रीसे मिलकर कितने वर्षतक दोनोंने वास किया ॥ ५३ ॥ वह दोनों स्त्री पुरुष कपोत कपोतिनी परमस्नेहसे बँधेहुए दृष्टि दृष्टिसे बँधी, हृदय हृदयसे बँधा, अंग अंगसे बँधा, बुद्धि बुद्धिसे बँधी ॥ ५४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्थान, वार्त्ता, क्रीडा, भोजन, सब काम एकही स्थानपर बैठकर करैं, अलग २ होकर कभी न करैं इसप्रकार एक पंगतमें

नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन्विदेत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित्समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्यांगमंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबंधतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यंयं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयंत्यनुकंपिता ॥ तंतं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेंद्रियः ॥ ॥ ५६ ॥ कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥ अंडानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥ तेषु काले व्यजायंत रचितावयवा हरेः ॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दंपती पुत्रवत्सलौ ॥ शृण्वंतौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥

निःशंक हुए फिरा करैं ॥५५॥ इसके उपरान्त वह कपोतिनीने अपने हाव भाव, लावण्य मधुर भाषणसे प्रसन्नकर कपोतसे दीन होकर जो जो वस्तु माँगी, सो सो वह कपोत कष्टसे भी ले आवै, इसभाँति अजितेन्द्रिय उसके अधीन रहा करै ॥ ५६ ॥ एक समय प्रथमही गर्भवती हुई, सो पतिव्रता कपोतिनीने अपने समीपके आये पतिके समीपही अपने घरमें अंडे दिये ॥५७॥ कुछ समय बीतनेपर उन अण्डोंमेंसे अचिन्तनीय हरिकी शक्तियोंसे हाथ पाँव आदि युक्त बच्चे उत्पन्न हुए और उनके कोमल अंगोंमें रूएँ हुए ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त यह दोनों कपोत कपोतिनी प्रसन्न हुये और अपने बच्चोंका यत्नसहित पालन करने लगे; पुत्रोंमें स्नेह बहुत हुआ और दिन दिन अपने बच्चोंका मधुर वचन सुननेसे

उनको बड़ा संतोष प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ उनके पंखोंसे जब आपको स्पर्श हो तब बहुत सुख पावैं प्रसन्न होजायँ, अपने पुत्रोंके मुखकी सुन्दर चेष्टा, उनके वचन और अपने निकट आनेसे परमसुख प्राप्त करनेलगे ॥ ६० ॥ उस स्नेहसे बद्धहृदय हो हरिकी मायासे परस्पर मोहित हुए अतिदीनबुद्धि यह स्त्री पुरुष बच्चोंको पालनेलगे ॥ ६१ ॥ एक दिन यह दोनों कुटुम्बी कपोत वनके चारों ओर बलकोंके अन्नके लिये बड़ी देरतक अभिलाषासे फिरे ॥ ६२ ॥ अपनी इच्छासे वनमें फिरते किसी एक क्रूर वधिकने अपने घोंसलेके निकट चुगते बालकोंको देख जाल रोपकर पकड़लिया ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त यह कपोत कपोतिनी सदा हर्ष संयुक्त, प्रजाका चुग्गा चारा लेनेको गये और लेके अपने घरमें आये ॥ ६४ ॥ तब वह कपोतिनी

तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥ प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ॥ विमोहितौ दीनधियौ शिशून्पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुंबिनौ ॥ परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः ॥ जगृहे जालमातत्य चरतः स्वालयांतिके ॥ ६३ ॥ कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ॥ ६४ ॥ कपोती स्वात्मजान्वीक्ष्य बालकाञ्जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत्क्रोशंती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चावध्यत शिचा बद्धान्पश्यंत्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् ॥ भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥ अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥ अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥

अपने बालकोंको जालमें अतिदुःखित पुकारते देखकर आप भी पुकारती हुई दौड़ी ॥ ६५ ॥ वह कपोतिनी बहुत स्नेहसे बँधी दुःखित चित्त जालमें बँधे बालकोंको देख वहाँ हरिकी मायासे ज्ञानरहित हो आप भी जालमें बँधगई ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त वह कपोत भी आपसे अधिक प्यारे बालकोंको और अपने समान स्त्रीको भी बँधा देख अति दुःखित हो विलाप करनेलगा ॥ ६७ अहो ! देखो मैं अल्प पुण्य हूं, मूर्ख हूं, इन भोगोंमें अब भी तृप्त नहीं हुआ, देखो मैंने कुछ पुण्य नहीं किया, इसीलिये धर्म, अर्थ, काम, साधक मेरा घर नष्ट होगया ॥ ६८ ॥

यह स्त्री मेरे अनुकूल और पतिव्रता थी सो आज मुझे सूने घरमें छोड़कर साधु पुत्रों समेत स्वर्गको जाती है॥६९॥ मेरी स्त्री, पुत्र सब मरे सो मैं दीन हुआ विधुर अर्थात् रँडुआ हुआ, अतिदुःखित हुआ सो अब किसलिये जीनेकी इच्छा करूं, मेरा जीवन दुःखरूप है॥७०॥इसप्रकार वह कपोत विलाप करता उन बालकोंको और अपनी प्रियाको मृत्युसे ग्रसे जालमें, चेष्टा करते देख दीन हो आप भी उस पुरुषके देखते जालमें जा पड़ा ॥ ७१ ॥ इसके उपरान्त उस गृहस्थ कपोतको और कपोतिनी तथा उसके बालकोंको ले कार्य सिद्ध होनेपर वह दुष्ट वधिक अपने घरको चलागया ॥ ७२ ॥ अवधूत बोले कि, हे यदु ! जिस प्रकार कुटुम्बी कपोत अशान्तचित्त हुआ इसीप्रकार यह पुरुष सुखदुःखहीमें रति मान दीन होकर कुटुंबका भरण पोषण

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृतान्वीक्ष्य मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥ एवं कुटुंब्यशांतात्मा द्वंद्वारामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुंबं कृपणः सानुबंधोऽवसीदति ॥ ७३ ॥ यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैंद्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥ देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ १ ॥

करते कुटुम्बसहित दुःखही प्राप्त करते हैं, सुख कभी नहीं पाते किंतु कपोतकी भाँति बँध जाते हैं ॥ ७३ ॥ जो पुरुष मुक्तिका खुला द्वाररूप इस मनुष्यलोकको पाकर कपोतके समान गृहोंमें आसक्त होता है, वह उत्तम गति पाकर भी अधोगतिमें पड़ता है, घरकी आसक्ति पशु पक्षियोंकोभी अनर्थ देती है, वह मनुष्योंको भी दे तो इसमें कहनाही क्या है ? यह विद्या मैंने कपोतसे सीखी इसलिये कपोत गुरु हुआ (८) ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायामवधूतोपाख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा—इस अष्टम अध्यायमें, दत्तात्रेय सुजान ॥ नवमें अजगरकी कथा, सो सब कहों बखान ॥ १ ॥ ब्राह्मण बोले हे राजन् ! प्रारब्धके, कर्मोंका भोग अवश्य करनेसेही छूटता है, इसलिये कर्मोंके उद्यमसे

वृथा आयु न खोवै, तहाँ अजगरकी सीख अवधूतजी कहते हैं कि, हे राजन् ! जिन पुरुषोंको देहाभिमान है, उन्हें इन्द्रियोंका सुख नरकमें भी होता
है, जैसे दुःख विना इच्छाके होता है, ऐसेही सुख भी होता है इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि, सुखकी चाहना न करे ॥ १ ॥ उद्यम विना
अनायाससे जो कुछ प्राप्त हो अथवा विरस हो, थोड़ाहो या बहुतहो, उसे प्रसन्नतापूर्वक करले, सबसे उदासीन रहे, शरीरके निर्वाहमात्रही ग्रहण
करे इस प्रकार अजगर रहताहै ॥ २ ॥ जिसदिन कुछ न प्राप्त हो उस दिन विना भोजन करेही सो रहे, तो अवश्य अजगरके समान ईश्वर देगा,
उद्यम न करे इस प्रकार धैर्यसे रहे ॥ ३ ॥ यद्यपि इन्द्रिय समर्थ हों, मन पुष्ट हो, शरीर पुष्ट हो, परन्तु तो भी कुछ कर्म न करे, जागताही पडा रहे;
किसी वस्तुकी अपेक्षा होय तो भी यत्न न करे, इस भाँति निरपेक्ष होकर रहे (९) ॥ ४ ॥ अब जो समुद्रसे सीखा है सो कहते हैं, जैसे समुद्रजल

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महांतं स्तोकमेव वा ॥ यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥ शयीताहानि भूरीणि
निराहारोऽनुपक्रमः ॥ यदि नोपनमे ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३॥ ओजःसहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥ शयानो
वीतनिद्रश्च नेहेतेंद्रियवानपि ॥ ४ ॥ मुनिः प्रसन्नगंभीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनंतपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद
इवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा
स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेंद्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यंधे तमस्यग्नौ पतंगवत् ॥ ७ ॥

निश्चल है, ऐसेही अंतःकरणमें प्रसन्न रहे, समुद्र महागंभीर है, उसका पार और अंत नहीं जिसको कोई लाँघ न सकै, कोई पकड न सकै; क्षोभ
न कर सकै यह सब गुण समुद्रसे सीखे हैं, यही महात्माओंको उचित है ॥ ॥ ५ ॥ जैसे समुद्र चौमासेमें नदियोंके जलसे चढता नहीं, ग्रीष्ममें
सूखता और घटता नहीं, इसीप्रकार योगिराजोको चाहिये कि,जो कुछ मिलै उसीमें सतोष करे यदि न मिलै तो खेद न करे, केवल एक नारायणके
विषेही तत्पर होकर विषयोंसे दूर रहै (१०) ॥ ६ ॥ इन्द्रियोंके पांच विषय हैं, रूप, गंध, स्पर्श, शब्द, रस इनमें आसक्त होनेसे यह जीव नष्ट
होजाता है, जैसे पतंग,भ्रमर, गज, हरिण, मीन इत्यादिक नाशको प्राप्त होते हैं, इसलिये इन पांच विषयोंमें आसक्त न हो यह बात इन पाँचोंके
पाससे सीखी है, इनमें पहले पतंगसे जो सीखी है सो कहते हैं, जैसे पतंग अग्निका रूप देख भ्रमके वश होकर उसमें जा पडता है ॥ ७ ॥

इसीप्रकार यह स्त्री देवमाया है, सुवर्ण, आवरण और वस्त्रादि मायाविलास देख उसके हावभावसे मोहित होकर अजितेन्द्रिय लोभी पुरुष भोगकी इच्छासे अंधकूपमें जा पडते हैं, इनकी दृष्टि नष्ट होगई है इसलिये अंध कूपको नहीं जानते, रूपको देखतेही उत्तमसे नष्ट होजाते हैं, यह विद्या पतंगसे सीखी (११) ॥ ८ ॥ अब भ्रमरसे जो सीखी है सो कहते हैं, भ्रमर दो प्रकारका होता है, एक शहतकी मक्खी, दूसरा भौंरा जो मुनि हो तो थोडा ग्रासमात्र माँगले जितनेसे देह रहे परन्तु एकही घरसे न माँगै जिससे गृहस्थको पीडा हो जैसे भ्रमर सुगंधिके लोभसे एक कमल ही में वसै तो उसमें बँध जाय, ऐसे ही यह एक ठौर माँगनेसे बँधेजाते हैं ॥ ९ ॥ चतुर मनुष्यको चाहिये कि, सब शास्त्रोंसे सारवस्तु ग्रहण करले शास्त्र छोटे हों अथवा बडे हों, सार सबका लै ले जैसे भ्रमर पुष्पोंमेंसे मकरंदका सार लेलेता है यह बात भ्रमरसे सीखी है ॥ १० ॥ भ्रम

योषिद्धिरण्याभरणांबरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकंस्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्त्तेत यावता ॥ गृहानहिंसन्नातिष्ठेद्वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥१०॥ सायंतन श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ॥ पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११ ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ॥ मक्षिका इव संगृह्णन्सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥ पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अगसंगतः ॥ १३ ॥

रका दूसरा नाम मधुकर है सो मधुकर मधुमक्खियोंहीमें रहता है उन मधुमक्खियोसे जो सीखा है सो कहते हैं मुनि भिक्षाको ले आवे परन्तु साँझको अथवा दूसरे दिनको संग्रह न रक्खै पाणिपात्रमें लेकर उदरपात्र पूर्ण करै मधुमक्खीकी नाईं संग्रह न करै देखो मधुकी मक्खी सब वृक्षोंके पुष्पोंका रस संग्रह करके एक मुहाल बनाती है, वह शहद अनेक रोगोंको दूर करता है ऐसेही मुनि लोगोंको चाहिये कि शास्त्रोंमेंसे ऐसा उत्तम सार निकालैं जो मनुष्योंके मायारूप रोगोंको हरै ॥ ११ ॥ और जो मोहमें फँसकर संग्रह करै तो नष्ट होय, जैसे मधुमक्खी मधु सहित नष्ट होजाती हैं (१२) ॥ १२ ॥ अब हाथीकी सीख कहते हैं, भिक्षुक काष्ठकी स्त्री पूतरीको पाँवसे भी न छुवै और यदि छुवै तो बँधजाय

जैसे हाथी हथिनीके अंग संगसे बँध जाते हैं, यह विद्या मैंने हाथीसे भी सीखी ॥ १३ ॥ जो बुद्धिमान् होय तो कभी स्त्रीके निकट न जाय, जाय तो अवलम्बन करके पिटै, क्योंकि स्त्री आत्माकी मृत्यु है, जैसे और बलवान् हाथियोंसे हाथी माराजाता है (१३) ॥ १४ ॥ जो कोई मधुमक्खियोंके पास जाय, उन्हें छुड़ाय मधु हरकर ले आवै सो मधुहा कहावै, जो मनुष्य लोभी हैं और अनेक दुःखोंसे धनसंचय करते हैं, न दान करते हैं न आप भोग करते हैं, तो उस धनका भोग और ही कोई करैगा, जैसे मक्खी ठौर ठौरसे मधु लाकर संग्रह करती हैं, परन्तु भोग और ही कोई करता है, यह धनके उपाय जानने ॥ १५ ॥ अतिदुःखसे संचय करेहुए धनसे ग्रहण करे मनोरथोंकी चाहना करनेवाले गृहस्थोंके पहले संन्यासी भोजन करता है, जैसे मधुहा मक्खियोंसे प्रथम भोजन करता है, संन्यासी और ब्रह्मचारी रांधे अन्नके स्वामी हैं; इनको पहले दिये विना जो पुरुष

नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥ बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसंचितम् ॥ भुंक्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ १५ ॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः॥ मधुहेवाग्रतो भुंक्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगीतानि जुषन्ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्रीडनको राजन्नृष्यशृंगो मृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ॥ मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥

भोजन कर लेता है, वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है (१४) ॥ १६ ॥ संन्यासी वनमें फिरते हैं, गाँवके गीत प्राकृत कभी नहीं सुनते यदि सुनें तो बंधनमें पड़ैं जैसे मृगगण वधिकके गीत सुनकर मरजाते हैं, यह विद्या हरिणसे सीखी ॥ १७॥ गाँवके गीत, नृत्य, वादित्र सुन और उनके वशमें हो बंधनमें पड़ते हैं, जैसे मृगीके पुत्र ऋष्यशृंगऋषि वेश्याओंके विषयसम्बन्धी नाच वाद्य और गाना सुननेसेही, उन वेश्याओंके खिलौने कैसे बनकर वशमें होगये (१५) ॥ १८॥ मीनसे जो विद्या सीखी सो कहते हैं, यह मूर्ख मनुष्य अतिबलवंत जिह्वाके वश हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, जैसे वंशीके लोहमें माँस लगाते हैं, उसके स्वादसे मछली वंशीको पकड़तीहै, तो मृत्युको प्राप्त होती है ॥ १९ ॥

इंद्रियाणि जयंत्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥ तावज्जितेंद्रियो न स्याद्विजितान्येंद्रियः पुमान् ॥ न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिंगला नाम वेश्यासीद्विदेहनगरे पुरा ॥ तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनंदन ॥ २२ ॥ सा स्वैरिण्येकदा कांतं संकेत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ तान्छुल्कदान्वित्तवतः कांतान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥ आगतेष्वपयातेषु सा संकेतोपजीविनी ॥ अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥ एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलंबती ॥ निर्गच्छंती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥

पण्डितजन आहारको त्यागकर शीघ्र इन्द्रियोंको जीत लेते हैं परन्तु एक रसनेन्द्रियको नहीं जीत सकते हैं, क्योंकि आहार त्यागनेसे जिह्वाका लोभ बढता है ॥२०॥ जिस पुरुषने और इन्द्रिय जीत ली हैं; परन्तु तबतक जितेन्द्रिय नहीं होता है, जबतक जिह्वा न जीते, क्योंकि जो जीभ जीते तो जानो कि, सब जीते. यहाँ अभिप्राय यह है कि, जो आहार छोड़िये तो केवल और इन्द्रियोंकी जय होय रसनेन्द्रिय बढ़े और भोजन करै तो रसकी आसक्तिसे सब इन्द्रियोंको लोभ होय इसलिये रसकी आसक्ति छोड़कर ओषधीके समान अन्न ले (१६) ॥ २१ ॥ अब पिंगलाका उपाख्यान कहते हैं, अवधूतजी बोले कि, हे महाराज ! पिंगला नामक एक वेश्या पहले विदेहनगरमें थी उससे भी मैंने कुछ सीखा है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! एक दिन उस कामचारिणी वेश्याने द्वारेपर नगारे धरकर यह संकेत किया कि, जो पुरुष इस नगाड़ेपर जितने डंके मारे वह रात्रिमें मेरे पास आनकर उतने हजार रुपये देगा, इसप्रकार समस्या बनाई, इतनेहीमें मैंने जाकर उस नगाड़ेपर दश बीस डंडे लगा दिये और सामने जो दूकान खुली पड़ी थी उसमें जा बैठा, तब उस वेश्याने समझा कि, आज कोई बड़ा धनी पुरुष आया, इस आशापर वह कंतको रतिस्थानमें लेजानेकी इच्छासे अत्युत्तम रूप धारण किये सायंकालके समय द्वारपर आनकर स्थित हुई ॥ २३ ॥ उस वेश्याने मार्गमें आतेहुए धनवान् मोलके दाता पुरुषोंको देख अपने मनमें जाना कि, यह भोगके योग्य हैं, क्योंकि उसके तो अधिक अर्थकी ही कामना थी ॥ २४ ॥ उनको आये और गये देखकर और कोई धनवान् मुझे बड़ा दाता प्राप्त होगा, इस आशासे वह संकेतकी जीवनहारी वेश्या द्वारपर बैठी रही ॥ २५ ॥ इसप्रकार दुराशासे जागतेहुए द्वारपर आवै कभी भीतर जाय

इस भाँति अर्द्धरात्रि होगई ॥२६॥ उसका धनकी आशासे चित्त दीन होगया मुख सूखने लगा और चिंतासे परमवैराग्य उत्पन्न होगया उस वैराग्यसे जो कहा सो सुनो * ॥ २७ ॥ उसका धनकी आशासे चित्त दीन हुआ, मुख सूखने लगा, निर्वेद चित्तसे उससमय कामकंदलाने जो गाया सो मैं

तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्राया दीनचेतसः ॥ निर्वेदः परमो जज्ञे चिंताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ॥ निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ न ह्यंगाऽजातनिर्वेदो देहबंधं जिहासति ॥ २८ ॥ पिंगलोवाच ॥ अहो मे मोहविततिं पश्यताऽविजितात्मनः ॥ या कांतादसतः कामं कामये येन बालिशा ॥ २९ ॥

कहताहूं तुम सुनो वह मनमें विचार करे है कि, वैराग्य पुरुषके दुराशापाश काटनेको खड्ग है हे राजन्! जिसको वैराग्य नहीं उस पुरुषके देहके बंधन नहीं छूटते हैं ॥ २८ ॥ पिंगला बोली अहो देखो! मेरे लोभका विस्तार कि, मैंने अपना मन न जीता में विनकर हित हूं, जो ऐसे दुष्टोंका प्रियकर अपना

---

* शंका–ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मुनियोंने अनेक जन्म तप किया और तपस्याही करते करते अनन्तयुग वीत गये, परन्तु ज्ञानकी प्राप्ति मुनियोंको नहीं हुई, ज्ञान ऐसा महा कठिन है और पिंगला वेश्याने कभी भी सुन्दर कर्म नहीं किये कि, जिन कर्मों करके ईश्वर प्रसन्न हो ऐसी पतित महाअपवित्र पिंगला गणिका एक क्षणमात्रमें ज्ञानको कैसे प्राप्त होगई? यह वडे आश्चर्यकी बात है।

उत्तर–जिस काम करनेके लिये ब्रह्माने जिस प्राणीको बनाया है, वह प्राणी उसी कामको करेगा तो उसको किसी प्रकारका दोष नहीं लगनेका. देखो! हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी नौकरी की और मरघटमें मुर्दोंको उससमय फूकने देता था, जब अपना दंड लेलेता था, परन्तु भगवान् उसपै अत्यन्त प्रसन्नहुए और ऐसेही सदना कसाईपर भगवान् प्रसन्न हुए सो अपने कारबारमें किसी प्रकारका दोष नहीं परन्तु अपने कुलका धर्म करके कुछ देर भगवान्का प्रीति सहित ध्यान करेगा तो निस्सन्देह भगवान् उससे प्रसन्न होंगे, ऐसेही ब्रह्माने जिस कर्म करनेके लिये पिंगलाको बनाया था, वही कर्म पिंगला करती थी, क्योंकि जनकपुरीमें सब प्राणी अपने अपने कुलके धर्मको करके पीछे भगवान्में प्रीति करते थे, ईश्वरको नहीं भूलते थे स्त्री पुरुष सब भगवानका नाम जपते थे और पिंगलाभी पुरुषोंके संग रति करके पीछेसे स्नान करके दूसरे वस्त्र पहनकर भगवानका ध्यान करती थी, और ईश्वरकी प्रार्थना करके अपनी देहसे जो पाप होते थे, उनको वारम्वार क्षमा कराती थी उस दिन भगवान्की कृपा होगई जो उसने पापकर्मसे ग्लानि मानी और ज्ञानमें लय होगई, एक क्षणमें पिंगलाको ज्ञान हुआ तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं।

अभिलाषा पूर्ण किया चाहती हूं ॥ २९ ॥ अपना अतिप्रिय निकटही सदा रहता है, अति सुखकारी रतिका दाता धनदाता नित्य प्रियको छोड दुःखित हुई, चिंता शोक मोहके देनेवाले तुच्छ मनुष्योंका मैंने सेवन किया, न तो उनसे मेरा काम पूर्ण होता है, न सुखही होताहै, मैं मूढ हूं ॥ ३० ॥ अहो ! मैंने यह आत्मा वृथा सताया, जिससे अतिनिन्दा संयुक्त शोकसे ग्रसे धन और रतिकी इच्छासे मेरी देह बिकी ॥ ३१ ॥ हाथ पावोंके हाड थूनी पँसलियोंके हाड बाँस और पीठके हाड जहाँ वरेंडा है, ऐसा शरीर रूपधर त्वचा रोम नखसे ढका है, जिसके नौ द्वार स्रवते हैं, सो विष्ठा

संतं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयादिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३० ॥ अहो मयात्मा परितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रैणान्नराद्याऽर्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥ ३१ ॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥ ३२ ॥ विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ याऽन्यमिच्छंत्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥ ॥३३॥ सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ॥ तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३४ ॥ कियत्प्रियं ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः ॥ आद्यंतवंतो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३५ ॥ नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३६ ॥

मूत्रसे पूर्ण नरकरूप कांतको मेरे विना कौन स्त्री सेवैगी ? ॥ ३२ ॥ इस विदेहराजाके नगरमें एक मैंही अति मूढ हूं, क्योंकि जो मैं असाध्वी साक्षात् अच्युत परमात्माको छोड तुच्छ कामभोगकी इच्छा करती हूं, ॥ ३३ ॥ यह ईश्वरही सब देहधारियोका आत्मा और सुहृद है, परमप्रिय नाथ है, क्याकि अपने देहको देकर दूसरेको मोल लेलेता है, इसलिये अब उसीसे लक्ष्मीके समान रमण करूंगी ॥ ३४ ॥ विषय और कामके दाता मनुष्य और देवता यह सब उत्पत्ति मरण संयुक्त हैं, कालसे ग्रसे हैं, वह स्त्रीकी कामना क्या करेंगे ॥ ३५ ॥ अब अपने भाग्यकी सराहना

करती है मुझे जान पड़ता है कि, निश्चय मुझपर भगवान् विष्णु किसी कर्मसे प्रसन्न हुये हैं, जिससे दुष्ट आशासंयुक्त मुझे सुखदायक ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ कदाचित् कहो कि, धनकी प्राप्ति न हुई उसका खेद हुआ, विष्णु क्या प्रसन्न हुये ? तो कहते हैं कि, मंदभागिनीको ऐसे क्लेश वैराग्यके कारण नहीं होते, क्योकि इसीप्रकार और भी पहले दिन होगयेथे जब धनकी प्राप्ति न हुईथी, न कोई पुरुष आयाथा, आज मुझे क्लेशसे वह वैराग्य हुआ है, जिस वैराग्यसे यह पुरुष गृहादिक बंधन छोड़कर शान्तिको प्राप्त होताहै ॥३७॥ ईश्वरने मेरा यह बड़ा उपकार किया है, इस उपकारको मैंने माथेपर चढ़ा लिया और नीच लोगोंके योग्य दुष्ट आशाओंको त्याग मैं उन्हीं जगदीशकी शरण लेतीहूं ॥ ३८ ॥ अब मैं

मैवं स्युर्मंदभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥ येनानुबंधं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३७ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः ॥ त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥ ३८ ॥ संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती ॥ विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ३९ ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४० ॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् ॥ अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कांततर्षजाम् ॥ छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥ ४२ ॥

संतुष्ट हो परमेश्वरमें श्रद्धा करती यथालाभसे जीविका करती, निश्चयसे आत्माकोही रमणकर आनंदसे विहार करूंगी ॥ ३९ ॥ जो पुरुष संसारके कुएँमें पड़ा है, विषयोंसे अंधदृष्टि है, कालस्वरूपसे ग्रस रहा है, ऐसे आत्माकी रक्षा करनेको इस आत्मस्वरूप भगवान् विना और कौन समर्थ है ॥ ४० ॥ जब सबसे यह आत्मा विरक्त हुआ तब अपनी आपही रक्षा करनेको सावधान हुआ, इस जगत्को जो कि, कालस्वरूपसे ग्रसित है, अप्रमत्त होकर देखै ॥४१॥ अवधूत बोले कि, हे महाराज! इसभाँति निश्चय मतिसे धन और विषयभोगकी आशा छोड़, शान्तिको प्राप्त हो

।. ए. ३४ ॥

वह वेश्या शय्यापर सोगई ॥ ४२ ॥ इसमें मैंने फलितार्थ इतना लिया है कि, आशा परमदुःखरूप है, आशाको छोड़बैठनाही परमसुख है, जैसे पिंगला कांतकी आशा छोड़ सुखसे सोई, साधुओंको संग्रह करना उचित नहीं है, इससे दुःख होता है (१७) ❀ ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभगवदुद्धवसंवादे पिंगलोपगीतेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–इस नवमें अध्यायमें, कुररीसों उपदेश ॥ जो पायो सो कहतहौ, सुनहु कृपालु नरेश ॥ १ ॥ अवधूतजी बोले कि, हे यदु ! अब कुरर पक्षीसे जो मैंने सीखा है, सो कहते हैं, मनुष्योंको जो जो वस्तु प्रिय हैं सो सो मुझे दुःखदायी हैं, यह जानकर जो पुरुष संग्रहको छोड़े वह अनंत सुखको प्राप्त होगा ॥ १ ॥ यहाँ एक दृष्टान्त कहते हैं

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ यथा संछिद्य कांताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० एकाद० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥ अनंतं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥ १ ॥ सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ २ ॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिंता गेहपुत्रिणाम् ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥

एक कुरर पक्षीने माँस पाया, तब उससे बलवंत माँसरहित और पक्षी आये, सो उसको मारनेलगे, तब इसने वह माँस डाल दिया, तब यह उसे छोड़ माँसको चिपट गये यह छूटकर अत्यन्त सुखी हुआ, मुनिजनोंको चाहिये कि, संसारके व्यवहारोंको माँसकी नाईं परित्याग करदें (१८) ॥ २ ॥ अब बालककी सीख कहते हैं कि, हे राजन् ! न तो मुझे मान अपमानका सुख दुःख है, न घरकी चिंता है, न पुत्रोंकी चिन्ता है, एक

---

* दृष्टान्त–एक बावाजीने महाकष्टसे पचीस अशरफी संग्रह करीं, जब तब निकाल चुटियामें धरा करते थे, एक दिन किसीने देखलीं, सो बावाजीसे आनकर बोला महाराज ! आपका आज मेरे यहाँ निमन्त्रण है, बाबाजी बोले अच्छा, तब वह घर लिवा लेगया और इतना हलुवा पूरी खिलाया कि, बाबाजीसे उठा न गया, तब उसने खाट बिछादी और अपनी स्त्रीसे कहा कि, इनके चरण खूब दावना और मैं जाताहूं, यह तो सेवा करने लगी और वह पुरुष थोडी देरमें व्याकुलतासे घरमें आय आलेमे ढूंढने लगा, स्त्रीने कहा कि, क्या ढूंढते हो ? तब उसने कहा कि, यहाँ पचीस अशरफी रक्खी थीं सो कहां गईं ? अब बाबाजी सकुचाये, वह स्त्रीको मारनेलगा कि, तैंने बावाजीको देदीहोंगी बाबाजी बोले हमारे कपडे देखलो, दो चार आदमी इकट्ठे होगये, तब इसने बाबाजीकी चुटिया देखी उसमेंसे अशरफी निकलीं बाबाजी बडे लज्जित हुये, धनका धन गँवाया, चोरके चोर हुये, जब बाबाजी चले तो इसने हाथ जोडकर कहा कि, महाराज ! फिर भी दर्शन देना, तब बाबाजी बोले कि, पचीश और करलूंगा तब आऊँगा ।

आत्माहीके संग क्रीड़ा करता यहाँ फिरता हूं जैसे बालक चिन्तासे छूटकर आनन्दमें मग्न होते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दो मनुष्यही चिन्तारहित हो
परमानन्दमें मग्न होते हैं एक तो उद्यमसे रहित अज्ञ बालक दूसरा गुणरहित ईश्वरको प्राप्त होनेवाला * (१९) ॥ ४ ॥ कुमारीसे जो विद्या
सीखी है, सो कहते हैं, कहीं एक कन्या थी उसके भाई बन्धु पिता कहीं गयेथे इसके पीछे कन्याको बिदा करानेके लिये घर पाहुने आये,
तब उनका आतिथ्यभाव उसने आपही किया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! कन्या उनके भोजन करानेके लिये एकान्तमें बैठकर धान कूटनेलगी, तब

द्वावेव चिंतया मुक्तौ परमानंद आप्लुतौ ॥ यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥४॥ कचित्कुमारी त्वात्मानं
वृणानान्गृहमागतान् ॥ स्वयं तानर्हयामास कापि यातेषु बंधुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यवहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिव ॥
अवघ्नंत्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभंजैकैकशः
शंखान्द्वौद्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद्धोषो ह्यवघ्नंत्याः स्म शंखयोः ॥ तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्ना
भवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम ॥ लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां
कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥

उसकी चूडियोंका बडा शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ वह कन्या आप धान कूटना निंदित दरिद्रका कर्म जान क्रमसे एक एक चूड़ी उतारने लगी केवल
हाथमें दो दो चूड़ी रक्खीं ॥७॥ परन्तु धान कूटनेमें दो दो चूडियोंका भी शब्द होनेलगा जब उसने उनमेंसे भी एक एक उतारदी तब एक एक
मेंसे शब्द न हुआ ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशक ! लोकोंको तत्त्व जाननेकी इच्छासे सर्वत्र फिरते मैंने एकदिन कुमारी इसप्रकार धान कूटती देखी तब यह
उपदेश उससे सीखा ॥ ९ ॥ बहुतोंका जहाँ वास होय वहाँ अवश्य कलह होता है, जो दो होयँ तो आपसमें बातें तो भी करें इसलिये अकेला ही

* शंका–उद्धवजीसे श्रीकृष्णने कहा था कि बालकोंके मनमें चिन्ता नहीं रहती इसमें हमको यह शंका है कि, जो बालकोंको चिन्ता न होती तो जन्महीसे क्यों रोते हैं, जिससमय माताके उदरसे
पृथ्वीपर गिरते हैं उसी कालसे राति दिन रोते हैं, जो प्राणी चिन्तासे रहित है उनको रोनेसे क्या प्रयोजन ? और बालकका तो जबतक बालपन रहता है, तबतक रोते हैं ?
* उत्तर–ज्ञानकी वार्त्तामें सज्जन लोग बालकको बालक नहीं कहते पंडित लोग बालक उसको कहते हैं कि, जो प्राणी संसारकी तथा अपने कुलकी लाजको तथा भयको त्यागदे इसप्रकार पण्डितों
के वचनके प्रमाणसे कृष्णचन्द्र भी उसी बालकको कहते हैं कि, चिन्ता नहीं रहती, जन्मलिये बालकको नहीं कहते ।

विचरण करै, जैसे कुमारीका कंकण (२०) ॥ १० ॥ अब बाण बनानेवालेसे जो सीखा है सो कहते हैं, मनको ईश्वरमें स्थिरकर प्राणोंको वशकर आसन जीते, वैराग्यके अभ्याससे मन स्थिरकर सावधान रहे ॥ ११ ॥ गुण और तिनके कार्य रहित यह मन परमानन्दरूप भगवान् विषे जब स्थान पावै, तब शनैःशनैः कर्मवासना छोडै जब इसको सतोगुण बढै, तब रजोगुण, तमोगुणको दूर करके ब्रह्ममें लीन होय, तब ब्रह्मविना और कुछ दृष्टिमें नहीं आता ॥१२॥ इस प्रकार जब आत्मासे चित्त मिलजाय, तब बाहर भीतरका भेद नहीं रहता, सब एकरूपसे दीखते हैं, जैसे बाण बनानेवालेका चित्त बाण बनानेमें ऐसा लगाथा कि, निकट होकर सेनासमेत राजा चलागया परन्तु उसने न जाना, ऐसेही साधुओंको चाहिये

मन एकत्र संयुंज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतंद्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैःशनैर्मुंचति कर्मरेणून् ॥ सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिंधनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किंचिद्बहिरंतरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजंतमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥ एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥ गृहारंभो हि दुःखाय विफलश्च ध्रुवात्मनः ॥ सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १५ ॥ एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥ संहृत्य कालकलया कल्पांत इदमीश्वरः ॥ १६ ॥

कि, ईश्वरमें ऐसा मन लगावें जो और कुछ सुधि न रहे (२१) ॥ १३ ॥ अब सर्पसे जो सीखा है सो कहते हैं जैसा सर्प सब लोकोंसे डरताहुआ इकलाही रहता है, एकही ठौर घर बनाकर नहीं रहता सदा सावधान रहता है, एकान्तहीमें रहता है, दूसरेकी सहायता न चाहै अपनी गति दूसरेसे छिपाये रक्खै है, और विष निर्विष जाननेमें नहीं आता ऐसा रहता है, थोड़ा बोलता है, इसीप्रकार मुनियोंको रहना चाहिये ॥ १४ ॥ यह देह अनित्य है इसके लिये घर न कीजे घर दुःखका रूप है और फल कुछ नहीं है, जैसे साँप परायेघरमें प्रविष्ट होकर सुखसे बैठै वैसे, परन्तु आप घर न करै ॥ १५ ॥ एक नारायण देव ईश्वर आप इस विश्वको अपनी मायासे सृजते हैं, फिर प्रलयमें कालशक्तिसे संहार करके आपही रखते हैं ॥ १६ ॥

तब एक अद्वितीय आत्मा आधार सबोंका आश्रयही आपही एक रहता है, वे अपने इस समतारूप कालसे सतोगुण आदि शक्ति मायामें लीन
करता है वही आदिपुरुष माया और पुरुषके ईश्वर हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्मादिक और मुक्त पुरुषोंके पाने योग्य हैं, मोक्षके रूप केवल अनुभव आनंदके
पात्र निरुपाधि अनन्त हैं ॥ १८ ॥ हे शत्रुनाशक ! जब सृष्टि उत्पन्न करते हैं, तब केवल अपने प्रभावसे त्रिगुण अपनी मायाको क्षोभ उपजाय
उस मायासे पहले सूत्ररूप महत्तत्त्व उपजाते हैं ॥ १९ ॥ उससे त्रिगुणरूप विश्व अहंकार द्वारा होता है, जिस महत्तत्त्वमें यह विश्व बँधा है,
जिस प्राणसूत्रसे पुरुष संसारको प्राप्त होते हैं (२२) ॥ २० ॥ अब मकरीकी शिक्षाका दृष्टान्त कहते हैं, जैसे मकरी अपने हृदयसे उगलकर

एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ॥ कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥ सत्त्वादिष्वादिपुरुषः
प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥ केवलानुभवानंदसंदोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केव
[illegible]त्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥ संक्षोभयन्सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं
सृजतीं विश्वतोमुखम् ॥ यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्त्रतः ॥
तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥ यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ॥ स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि
याति तत्तत्सरूपताम् ॥ २२ ॥ कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यांतेन प्रवेशितः ॥ याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्य
जन् ॥ २३ ॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ॥ स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥

तागा मुखसे निकाल फैलाय उससे क्रीड़ाकर फिर निंगलजाती है, इसीप्रकार ईश्वर स्वयं इस जगतको बनाय फिर संहार करतेहैं
॥ २१ ॥ यह जीव स्नेहसे द्वेषसे अथवा भयसे बुद्धि कर जहाँ जहाँ एकाग्र मन धारण करता है और उसी उसी रूपको प्राप्त होता है,
इसलिये जो ईश्वरका ध्यान करै तो ईश्वररूप होवे इसमें क्या आश्चर्य है (२३) ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जैसे भृंगीने भीतमें रक्खा कीट भृंगीका
ध्यान करते २ उसी देहसे उस रूपको प्राप्त करता है (२४) ॥ २३ ॥ इसप्रकार इतने गुरुओसे मैंने यह मति सीखी परन्तु हे राजन् ! एक बुद्धि अपनी

देहसे सीखी है, सो मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ २४ ॥ देह मेरा गुरु है, क्योंकि इस देहसे मुझे वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ है, यह देह पीड़ा सहित सदा जन्म मरणको धारण करता है, इस देहसे यथार्थ तत्त्वोंका विचार करनेसे मुझे वैराग्य हुआ है, तो भी मैं इसपर प्रीति नहीं करता, क्योंकि यह कुत्ते और स्यारका भक्ष्य है यह निश्चय कर सर्व संग रहित हो विचरताहूं ॥ २५ ॥ जिस देहको प्रसन्न करनेकी इच्छासे स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, गृह, बंधुके समूहोंका पोषण करते हैं और बहुत कष्टसे धन संचय करते हैं; इतनेपर भी अंतमें यह देह आपही नाश होजाता है, फिर देहके जानेपर भी दुःख नहीं जाता, दूसरे देहका कर्मबीज उपजाये जाताहै, उस कर्मसे फिर दुःखरूप देह इसप्रकार उत्पन्न होजाता है, जिस

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततात्युदर्कम् ॥ तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि पारक्य मित्यवसितो विचराम्यसंगः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ॥ स्वांते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः सदेहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥ २६ ॥ जिह्वैकतोमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति ॥ ॥ २७ ॥ सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवांते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यवान्निःश्रेयसायविषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

प्रकार रूख अपना बीज छोड़ता है, उससे फिर रूख उत्पन्न होजाताहै ॥ २६ ॥ और इस देहको एक ओरसे जिह्वा रसके लिये खैंचतीहै, शिश्न स्त्रीसंगके लिये खैंचता है, त्वगिन्द्रिय एक ओरसे स्पर्शके लिये खैंचै है, श्रवण शब्दके लिये खैंचते हैं और घ्राण गंधके लिये खैंचते हैं चंचलदृष्टि रूपके लिये खैंचती है, कहीं कहीं कर्मशक्ति अपने विषयके लिये खैंचती हैं, जैसे बहुत सौत गृहस्थको लूटती हैं, इसीप्रकार यह सब इन्द्रियें देहको लूटती हैं ॥ २७॥ हे देव ! अपनी शक्ति मायासे वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, डांस, मछरी अनेक प्रकारके शरीरोंको उपजाकर ब्रह्मा संतुष्टहृदय न हुए परंतु ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंकी देह रचकर आनन्दको प्राप्त हुए ॥ २८॥ उससे यह अतिदुर्लभ मनुष्यदेह अनेक जन्मों पीछे पाया है

पुरुषार्थका दाता है, पर अनित्य है, यह जानकर शीघ्र मोक्षके लिये जबलों मृत्यु न हो शीघ्र यत्न करै क्योंकि विषय तो इसको सब योनिमें होंगे ॥ २९ ॥ इसप्रकार जब मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ और ज्ञानका प्रकाश हुआ, तब आत्मनिष्ठ हुआ, इसलिये संग और अहंकार छोडकर मैं पृथ्वीपर फिरताहूं ॥ ३० ॥ यदि कहो कि, तुमने बहुत गुरु क्यों किये ? गुरु तो एक करना चाहिये तो कहते हैं कि एक गुरुसे अति निश्चल ज्ञान विस्तारको प्राप्त नहीं होता है,इसलिये अद्वितीय ब्रह्मको ऋषि निश्चल बहुत भाँतिसे कहते हैं, कोई कहते हैं वह प्रपंचरहित है, कोई कहते हैं सप्रपंच है,जिससे भ्रम उत्पन्न होता है, सो भ्रम इन गुरुओंसे निवृत्त होजाता है,परमगुरु, मुख्य ज्ञानका देनेवाला एकही है, परन्तु ज्ञानके लिये पीछे

एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोऽनहंकृतिः ॥ ३० ॥ न ह्यकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतदद्वितीयं हि गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामंत्र्य गभीरधीः ॥ वंदितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥ सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धव संवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अपनी बुद्धिसे उपदेशके अनुकूल दृष्टान्त लेनेसे वह ज्ञान दृढ होजाता है ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इतना वृत्तान्त कह यदुकी आज्ञाले और गंभीर बुद्धिवाले राजासे प्रणामको प्राप्त हो उसको स्वीकार कर प्रसन्न हो अवधूत अपनी इच्छासे जैसे आये थे वैसेही चलेगये ॥ ३२ ॥ यह अवधूत दत्तात्रेय हैं, इनकेही वचन सुन हमारे बडोंके भी बडे राजा यदु सब संग छोड समचित्त होगये, यह सब श्रीभगवान्ने उद्धवजीसे कहा और कपोत, मत्स्य, मृग, कुमारी, हाथी, सर्प, पतंग, कुरर, यह आठ तो त्यागके लिये गुरु किये, भ्रमर, मधुहा, पिंगला यह तीनों त्याज्य और ग्राह्य अर्थके लिये गुरु किये ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां अवधूतोपाख्याने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा—दशवें तनु सम्बन्धसे, है सिगरो संसार ॥ तत्त्वज्ञानसे होत है, साधन और विचार ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! मेरे कहे स्वधर्मोंमें सावधान होकर मेरा आश्रय करै और वर्ण आश्रम कुलका आचरण निष्काम होकर करै ॥ १ ॥ जब अंतःकरण शुद्ध होजाय तब पुरुषको उचित हैं कि, विषयोंमें लगेहुए प्राणी जो विषयोंको निश्चल मानकर उद्योग करते हैं, उनके कार्योंके फल विपरीत होते हैं, उनको विचारता रहै इससे निष्कामता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ जो विषय इन्द्रियोंसे जाने जाते हैं, वह सदा नहीं रहते इसीसे वह अनेक प्रकारके प्रतीत होते हैं और जो अनेक प्रकारके हैं; वह अध्रुव हैं, जिसप्रकार मनसे उत्पन्न हुए स्वप्न और मनोरथ अनेक होनेसे चल हैं, ऐसा अनुमान करनेसे निष्कामता प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ निष्काम कर्म करै सकामका त्याग करै मुझमें तत्पर हो, आत्माके विचारमें रहै, कर्मकी विधिमें

श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥१॥ अन्वीक्षत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ॥ गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारंभविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मदभिज्ञं गुरुं शांतमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥ जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥

आदर करै ॥ ४ ॥ जो मेरे विषे तत्पर होकर आदरपूर्वक सयमोंको सेवै और जब सामर्थ्य होय तो शौचादिक नियमका सेवन करै इससे भी विशेष धर्म यह है कि, सहनशील हो, मेरे स्वरूपको जानताहो शांतहो सो मेराही रूप है ऐसे गुरुकी सेवा करै ॥५॥ अभिमान न रक्खे आलस्य न करै असहनता न करै, स्त्रीपुत्रादिकमें ममता न करै, गुरुओं सुहृदता रक्खे, कर्ममें व्यग्रचित्त न करै, परमार्थ जाननेकी इच्छा करै, किसीकी निन्दा न करै, व्यर्थ बातें न करै ॥ ६ ॥ स्त्री, सम्पत्ति, घर, खेत, स्वजन, धन इत्यादि सबसे उदासीन रहै, क्योंकि सबमें एकही आत्मा है इससे अपनीही भाँति सबोंमें सुखादिक समान देखै ॥ ७ ॥

यह आत्मा स्थूल सूक्ष्म देहसे भिन्न है, सबका द्रष्टा है, व्यापक है, स्वयं ज्ञानवान् है, आकाशवत् है, जैसे अग्नि दाह्य काष्ठके मध्यही रहता है, परन्तु काष्ठसे भिन्न है, प्रकाशक है और काष्ठको दाह कर्ता है ॥ ८ ॥ जैसे काष्ठमें प्रविष्ट अग्नि काष्ठके संगसे उत्पत्ति, नाश, अल्पता, महत्त्व, नानात्व गुणको धारण करती है और जैसे यह आत्मा भी इस देहके संगसे देहके गुणोंको धारण करताहै, पर देहसे आत्मा भिन्न और अमर है ॥ ॥ ९ ॥ यदि कोई कहै कि जो देहसे आत्मा भिन्न है, तो देहके गुण क्यों धारण करता है ? तो उत्तरमें इसके कहते हैं कि, ईश्वरके अधीन मायाके गुणसे पुरुषकाय सूक्ष्म स्थूल शरीर उपजायाहुआ है, जिस देहमें अहं यह अभिमान करनेसे संसारमें गिरता है, जिस देहको मेरा यह संसार काटनेको आत्मविद्या उपाय है ॥ १० इसलिये आपहीमें स्थित देहके भिन्न आत्मा ज्ञानकी इच्छासे आत्मामें चित्त मिलाय क्रमसे स्थूल सूक्ष्म

विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षिता स्वदृक् ॥ यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणु बृहन्नानात्वं तत्कृतान्गुणान् ॥ अंतःप्रविष्ट आधत्त एव देहगुणान्परः ॥ ९ ॥ योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसारस्तन्निबंधोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् ॥ संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादंतेवास्युत्तरारणिः ॥ तत्संधानं प्रवचनं विद्यासंधिः सुखावहः ॥ १२ ॥ वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत्स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः ॥ १३ ॥

देहादिकोंमें आत्मबुद्धिको छोडे ॥ ११ ॥ यह ज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है ? सो कहते हैं, आचार्य रूप नीचेकी अरणी शिष्यरूप ऊपरकी अरणी तथा उपदेशरूप मंथनका काष्ठ इनसे ब्रह्मविद्यारूप परमसुखदायक अग्नि उत्पन्न होती है ॥ १२ ॥ जिस समय बुद्धिमान् गुरुसे चतुर बुद्धिवाला शिष्य यह विद्या पाता है, तब यह विद्या गुणोंका कार्यरूप संसारकी ओर जिनसे निर्मित होकर यह जगत् जीवके संसारका निमित्तरूप होता है, उन गुणोंको भस्मकर काष्ठरहित अग्निके समान आप भी शांत होजाता है, इसीप्रकार कार्य, कारण और विद्याकी एकता होनेसे जीव परमानन्दरूप होता है ॥ १३ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! आत्मा स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप नित्य और एक है इसमें कर्त्ता भोक्ता धर्म देहकी उपाधिसे प्राप्त होते हैं, आत्माके अतिरिक्त और पदार्थ मायारचित हैं, इससे विरक्त हो पुरुष मुक्तिको प्राप्त होता है, परन्तु मीमांसक कहते हैं कि, मैं हूँ ऐसा प्रतीत करनेवाला आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है वही कर्म कर्त्ता और सुख दुःखका भोक्ता है इसका स्वरूपभूत कोई दूसरा निर्विकार परमात्मा नहीं है, भोगके स्थान रूप लोक, भोगका काल भोगरूप कर्मोंका बतानेवाला वेद भोगके साधन और भोग भोगनेवाला आत्मा यह अनित्य होवें तो वैराग्य होना संभव है परन्तु वह सब नित्य हैं, इससे वैराग्य होना संभव नहीं, भोग्य पदाथ बीचमें नष्ट होजाते हैं अथवा मायामय होवें, तोभी वैराग्य होना संभव है ॥ १४ ॥ माला, चन्दन, आदि भोगोंकी स्थिति प्रवाहरूपसे नित्य है और यथार्थ है, इससे वैराग्य होना असंभव है, क्योंकि जिस दशामें यह संसार देखा जाताहै, उस दशामें पहलेभी था इसकारण जगत्का कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं आत्मा स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं है,

अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसे सर्व भावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ॥ तत्तदाकृतिभेदेन जायते विद्यते च धीः ॥ १५ ॥ एवमप्यंग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ॥ कालावयवतः संति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातंत्र्यं च लक्ष्यते ॥ भोक्तुश्च दुःखसुखयोः कोन्वर्थो विवशं भजेत् ॥ १७ ॥

उसमें अनेक ज्ञानका विपर्यास होता है, एक क्षणमें घटका ज्ञान नष्ट होकर पटका ज्ञान होता है, इस प्रकार अनेक ज्ञान उत्पन्न होते रहते हैं, पूर्व ज्ञानसे पृथक् होजाता है, इससे आत्मा नित्य ज्ञानमय नहीं सो कहते हैं कि, ज्ञानका विपर्यास होनेसे क्या आत्मा अनित्य होजाता है? नहीं आशय यह है कि ज्ञानरूप विकार आत्मामें कुछ बाधा नहीं करसक्ता, मुक्तिमें आत्मा इंद्रियरहित है, इससे उसमें ज्ञानका परिणाम न होनेके कारण जड़ता होजायगी इसमें मुक्तिकी प्राप्ति होना पुरुषार्थ रूप नहीं प्रवृत्ति मार्गही इससे श्रेयस्कर है निवृत्ति नहीं ॥ १५ ॥ हे उद्धव! सत्य प्रवृत्ति मार्ग ऐसाही है, परन्तु आगे अनर्थका हेतु है, इन देहियोंको देहके संयोगसे संवत्सररूप कालसे जन्ममरणादि भाव वारम्वार होते हैं ॥ १६ ॥ तुम्हारे मतहीमें कर्मोंके कर्त्ताओंको और सुखदुःखके भोक्ताओंको पराधीनता देखी जाती है, इसलिये ऐसे परवशका जो भजन करता है,

वह क्या सिद्ध है ? और जीव स्वतंत्र हो तो उसे दुष्टकर्म वा दुःखकी प्राप्ति संभव नहीं होसकती ॥ १७ ॥ इस प्रकार इसलोकमें तो सुख कहीं नहीं और लोकोमें भी सुख नहीं सो कहते हैं, ईर्षा, निंदा, नाशहोनेसे स्वर्गादिकमें भी कर्मोंकी विधिके जाननेवाले विद्वान् अभिमानीको किंचित् सुख प्राप्त नहीं होता, उसीप्रकार मूर्खोंको दुःख देखनेमें नहीं आता, जो कहते हैं कि, हम कर्ममें निपुण हैं, इससे सुखी हैं, यह उनका वृथा अहंकार है, इससे श्रेष्ठ कर्म करनेसे सुख मिलता है, यह नियम भी न रहा ॥ १८ ॥ और जो कदाचित् सुखदुःखकी प्राप्ति और विघात अर्थात् नाशको जानते हैं परन्तु इस उपायको वह भी नहीं जानते, जिससे साक्षात् मृत्यु न हो ॥ १९ ॥ क्योंकि जब मृत्यु अपने निकट है, तो अर्थ अथवा कामके प्राप्त होनेसे कौन सुखी होसक्ता है ? जैसे अपराधीको मारनेको लेजाते हैं, उससमय उस पुरुषको अर्थ कामादि सुख नहीं देते ॥ २० ॥

न देहिनां सुखं किंचिद्विद्यते विदुषामपि ॥ तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम् ॥ १८ ॥ यदि प्राप्तिं विघातं च जानंति सुखदुःखयोः ॥ तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥ १९ ॥ कोन्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरंतिके ॥ आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥ श्रुतं च दृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ॥ बह्वंतरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥२१॥ अंतरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ॥ तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥२२॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुंजीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ॥ गंधर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥

इस प्रकार जैसे यहाँ सुख नहीं ऐसेही परलोकमें भी नहीं है, स्वर्गादिकमें भी पराये सुखकी असहनता और ईर्षादिक रहती हैं, इससे यहाँके समान वहाँ भी दोष है, जैसे कृषीके सफल होनेमें अनेक विघ्न होते हैं ऐसेही यजनसे मिलनेवाले स्वर्गमें भी भूल चूकके अनेक विघ्न होते हैं ॥ २१ ॥ इतने पर विघ्नको निवारणकर जो धर्म अच्छी भांति करे; उन धर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्थानोंमें जैसे यह प्राणी जाते हैं, सो सुनो ॥२२॥ इसलोकमें देवताओंको यज्ञसे संतुष्टकर यज्ञके कर्त्ता स्वर्गमें जाते हैं और देवताओंके समान अपने उपार्जन किये हुए दिव्यभोग करते हैं ॥ २३ ॥ और वहाँ अपने पुण्यसे प्राप्तहुए उत्तम विमानमें बैठ सुन्दर वेष धरे, अप्सराओंके विषे विहार करते फिरते हैं, गंधर्व उनकी बडाई करते हैं ॥ २४ ॥

किंकिणि अर्थात् घुँघुँरुओंके समूहसे शोभित और मनकी रुचिके अनुसार चलनेवाले विमानमें बैठ सुखको प्राप्त हो देवताओंके बागोंमें देवस्त्रियोंके संग विहार करते फिरते हैं, परन्तु आत्मपातको नहीं जानते हैं ❀ ॥ २५ ॥ स्वर्गमें वहाँतक सुख करते हैं, जहाँतक पुण्य पूर्ण हो जब पुण्य क्षीण होजाता है, तब कालसे अनचाहत नीचे डालदिये जाते हैं ॥ २६ ॥ यह फल जो सकाम कर्म करता है, उसको है, तहाँ भी जो निषिद्ध प्रकार न करै जब हो, और जो असत् संग करै तो अधर्मी हो, जितेन्द्रिय न हो,स्त्री लंपट हो, कामहीमें चित्त हो,प्राणियोंको दुःख देताहो

स्त्रीभिः कामगयानेन किंकिणीजालमालिना ॥ क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः संगादसतां वाऽजितेंद्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥ पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान्यजन् ॥ नरकानवशो जंतुर्गत्वा यात्युल्वणं तमः ॥ २८ ॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन्देहेन तैः पुनः ॥ देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥ ब्रह्मणोपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥

लोभीहो, कृपण हो ॥ २७ ॥ और जो अविधिसे पशुओंको मारकर भूत प्रेतगणको पूजते हैं, ऐसे जीव परवश हो नरकमें पडे स्थावरके भावको प्राप्त होतेहैं ॥ २८ ॥ उन कर्मोंमें दुःखही फल है, ऐसे कर्मोंको देहसे करते मरे पीछे फिर उन कर्मोंसे दुःख भोगकर वैसाही देह धरते हैं, इसलिये जो मरेगा उसको क्या सुख है ॥ २९ ॥ यद्यपि लोकपाल कल्पपर्यन्त जीते हैं, परन्तु तो भी उनको मुझ कालरूपसे भय रहता है

❀ शंका–श्रीकृष्ण भगवान्ने उद्धवसे कहा था कि, ईर्षा, निन्दा आदि लेकर जो खोटे कर्म हैं, उन खोटे कर्मोंसे वेदोंके वचन नष्ट होगये, इसमें यह शका होती है कि, ईर्षा आदि जो बुरे कर्म सो सत्ययुग त्रेता, द्वापरमें भी थे ?

उत्तर–शास्त्रमें लिखाहै कि, भगवान्की देहमें धर्म और अधर्म दोनों रहते हैं, सत्ययुगमें अथवा और युगोंमें थोडा बुराकर्म भगवान्की देहमें रहता है और किसी युगमें अधिक रहता है, क्योंकि युगोंकी मर्यादा पालन करनेके लिये दूसरी वात मत जानना, इसलिये कृष्णचन्द्रने उद्धवजीसे कहाया ।

और कल्पपर्यंत जीनेवाले लोकपालोंको भी वह भय रहता है, और मेरे भयसे यह सब देवता अपना अपना काम करते हैं, ब्रह्माकी आयु दोही परार्द्ध है, परन्तु उसे भी मौतका डर है ॥ ३० ॥ कर्म कुछ ईश्वर नहीं, ईश्वर नियंता फलका दाता मैं हू परन्तु मुझसे और उन कर्मोंसे सम्बन्ध नहीं कर्मका सम्बन्ध इस देहसे है, सो प्रकार बताते हैं. प्रथम इन्द्रियें कर्मोंसे सृजी हैं, गुण-सतोगुण, राजोगुण, तमोगुण, यह इन्द्रियोंको सृजते हैं, आत्मा कुछ नहीं करता है, पर यह जीव तो इन्द्रियोंके संगसे अहंकर्त्ता अभिमान धारण करता है, इसलिये कर्मोंके फल भोगता है ॥ ३१ ॥ यदि कहो कि, यह आत्मा अनेक क्यों दिखाई देते हैं, आत्मा तो एकही सुना है, तो कहते हैं कि, इन गुणोंके धर्मसे जबतक अहंभाव है तबतक अनेक प्रतीत होते है और जब यह मायाके गुण छूट जायँगे, तब आत्मा एकही दिखाई देगा और जहांतक उसे आत्मा अनेक

गुणाः सृजंति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुंक्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्पारतंत्र्यं तदैव हि ॥ ३२ ॥ यावदस्याऽस्वतंत्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ॥ य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यंति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥ काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धम एव च ॥ इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥ उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥

लगते हैं, तभी लों पराधीन भी हैं ॥ ३२ ॥ जबलों इसे पराधीनता है, तबलों ईश्वरका भय है, इसप्रकार प्रवृत्ति मार्गमें दोष है, इसका जो सेवन करते हैं, सो मोहमें पड़े शोकही युक्त हैं ॥ ३३ ॥ काल, आत्मा, शास्त्र, लोक, स्वभाव, धर्म, यह नाम गुण तो सम्बन्धसे कहे, परन्तु गुणसम्बन्ध छूटनेपर यह मेरेही स्वरूप हैं सब मैं ही हूं, मायाके सम्बन्धसे अनेक रूप दीखते हैं, इससे निवृत्तिमार्गही उत्तम मुक्तिका कारण है ॥ ३४ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन् ! यद्यपि यह आत्मा गुणोंसे मिला हुआ है,परन्तु तोभी गुणका कार्य सुख दुःख कर्मसे बद्ध नहीं है, इसलिये आकाशकी भाँति सर्वत्र व्यापक है और निर्लेप है,आवरणरहित तुम्हारे मतमें आत्मा एकही है,तो वह कैसे बंधनमें आताहै ? कि, जिससे उसे मुक्तिकी अपेक्षा होतीहै

सो कहिये ॥३५॥ और बँधनके पीछे किस प्रकारसे रहे, जब मुक्ति होजाय तब किस प्रकार रहै । सो कहो किस भाँति रहै कैसे आहारविहार करै, किस लक्षणसे जाना जाय ? क्या भोजन करे ? क्या छोड़े ? कहां सोवे ? कैसे बैठे ? कहां जाय ? यह दोनों किन लक्षणोंसे दूसरोंके जाननेमें आवे सो कहो,॥ ३६ ॥ हे अच्युत ! हे विदाम्बर ! इसके उपरान्त मेरे मनमें एक और संदेह है कि, एकही आत्मा शरीरादिकोंके अनादि संबधके कारण अनादिकालसे बद्ध है, इस प्रकार निश्चय करना पड़ता है और इसभाँति निश्चयकर फिर उसको मोक्ष होजाता है इसप्रकार निश्चय करै तो मुक्ति उत्पन्न हुई मुक्ति होनेके कारण मुक्तिमें अनित्यता आजाती है, इसलिये वह आत्मा निरंतर मुक्तही है ऐसा भी मानता पड़ता है तब एकके समयमेंही बद्धत्व और मुक्तत्व यह दोनो एक संग होने कैसे संभव होसकते हैं इस प्रश्नका उत्तर कृपापूर्वक दीजिये ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एका

कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुंजीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ नित्यबद्धो नित्यमुक्त एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥ गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बंधनम् ॥ १ ॥ शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥ विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ॥ मोक्षबंधकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ॥ ३ ॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बंधोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥

दशस्कधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा—इस ग्यारह अध्यामें, बद्ध मुक्तका ज्ञान । साधु संत अरु भक्तिके, लक्षण कहौं बखान ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धवजी ! आत्मा बद्धमुक्त है यह कथन मेरे गुणसंबंधसे है सत्य नहीं गुणका मूल माया है, मैं तो मायाका नियंताहूं इसलिये मुझे न बन्ध है न मोक्ष है ॥ १ ॥ हे उद्धव ! मुझे मोह सुख दुःख देहको प्राप्त यह सब संसारके धर्म मायासे होतेहैं, जैसे स्वप्नसे बुद्धिका विवर्त्तहै इसीप्रकार संसार है सत्य नहीं है ॥ २ ॥ हे उद्धव ! एक विद्या दूसरी अविद्या यह दोनो मेरी मायासे रची हैं मेरी देहरूप शक्ति है अनादि देहधारियोंको मोक्ष और बंधन करती हैं ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धिमान् उद्धव ! यह सब मेराही

एक अंश जीव है उसे अविद्यासे अनादि बंध है विद्यासे मोक्ष है मुझे तो न बंधन है न मोक्ष है ॥ ४ ॥ अब इसका भेद बताते हैं परस्पर आत्मा और परमात्मा विरुद्ध धर्म होकर एकही देहमें स्थित हैं, इनमें एक तो जीव ईश्वरका भेद, दूसरे जीवसे जीवका भेद यह दो भेद हैं एक शरीरमें स्थित जीव ईश्वरमें ईश्वरका धर्म आनंद और जीवका धर्म दुःख है एक नियंता ईश्वर एक जीव है देहाभिमान धरे बद्ध हैं इन दोनोंका भेद दृष्टान्तसे कहते हैं ॥ ५ ॥ दोनों पक्षी हैं चैतन्यरूपसे समान हैं दोनों मित्र हैं, अपनी इच्छासे एक देहरूप वृक्षके ऊपर आन बैठे हैं, इनमें एक तो इस देहके फलको भोग करता है, दूसरा साक्षी हुआ देखता है. भोग नहीं करता, तो भी ज्ञानशक्तिसे अतिबलिष्ठ है, इस भाँति एकही रूपके दोनों विरुद्ध कर्म करते हैं ॥ ६ ॥ जो परमात्मा ईश्वर साक्षी ज्ञाता है वह अपने स्वरूपको और जीवके स्वरूपको भी जानता है और जो जीवात्मा है

अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ॥ विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥५॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥ एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ॥ योऽविद्यया युक्स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥ देहस्थोपि न देहस्थो विद्वान्स्वप्नाद्यथोत्थितः ॥ अदेहस्थोपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥ इंद्रियैरिंद्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान्यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥

सो न आपको जानते हैं न ईश्वरको जानते हैं वह अज्ञ हैं, इसलिये जो अविद्यासे मिलाहैं, सो नित्य बद्ध है, जो विद्यासे संयुक्त है, सो नित्यमुक्त है ॥ ७॥ ज्ञानकी विलक्षणता कहकर स्थितिकी विलक्षणता कहते हैं वही पण्डित हैं जो अपने स्वरूप और परमात्माको जानते हैं, सो यद्यपि देह हीमें हैं परन्तु देहसे न्यारे हैं देहके धर्म उसे व्याप्त नहीं जैसे स्वप्नसे उठेको स्वप्नको देहके धर्म नहीं लगते जो अज्ञानी हैं सो यद्यपि वस्तुसे और देहसे अलगही हैं परन्तु देहके अभिमानसे देहमें स्थित हैं सुख दुःखको भोग करते हैं, जैसे स्वप्नके देहमें स्थित स्वप्नके सुख दुःख भोगते हैं ॥ ८ ॥ और भी विलक्षणता कहते हैं यद्यपि इन्द्रिय अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं परन्तु तोभी रागद्वेषादि रहित मुक्तपुरुषमें इन विषयोंको भोगता हूं ऐसे नहीं मानते हैं इसका कारण यही है कि विषयोंको जो इन्द्रिय स्वीकार करती हैं वह गुणोंके कार्यको गुणही ग्रहण करते हैं ज्ञानी

उससे आपको निर्लेप मानते हैं ॥ ९ ॥ यह देह पूर्वकर्मके अधीन है, उस देहमें स्थित इन्द्रिय अपने विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं तहाँ मैं कर्त्ताहूं, इस अभिमानसे यह आत्मा बँधजाता है, यह अज्ञ है, शयन, आसन, गमन, स्नान, दर्शन, स्पर्शन, आघ्राण, भोजन, श्रवण यह सब इन्द्रियोंके धर्म हैं, मेरे धर्म नहीं वृथा अभिमान करनेसे बँध जाते है ॥ १० ॥ इसप्रकार वैराग्य और विवेक जिसे हो सो वह बद्ध नहीं होसक्ता, क्योंकि वह तो इन्द्रियोंको विषयभोग कराताहै, कुछ आप नहीं करता, इसीलिये बंधनमें नहीं पडता ॥ ११ ॥ यहाँ दृष्टान्त देते हैं कि जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है, पर सबसे निर्लेपहै जैसे सूर्य जलादिकोंमें प्रतिबिम्बित है परन्तु तोभी कम्परूप जलके धर्मसे भिन्न है, जैसे वायु सर्वत्र फिरती है पर तोभी

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा ॥ वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने ॥ दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन्गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः ॥१२॥ वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः ॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३ ॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेंद्रियमनोधियाम् ॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोपि हि तद्गुणैः ॥१४ ॥ यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया ॥ अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥ न स्तुवीत न निंदेत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥ १६ ॥

निर्लेप है, इसीप्रकार आत्मा इस देहमें स्थित हैऔर इन्द्रियोंके स्वभावसे उन उन विषयोंको ग्रहण करता है परन्तु तोभी उनसे भिन्न है ॥ १२ ॥ वैराग्यद्वारा तीक्ष्ण निर्मल ज्ञानसे सब संशय काट अनेक विधिके इस प्रपंचसे निवृत्त होवें जैसे स्वप्नसे जाग स्वप्नके धर्मोंसे निवृत्त होजाते हैं ॥ १३ ॥ जिसके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्ति संकल्प विकल्प रहित होगई हैं सो देहमें स्थित है तोभी देहके धर्मोंसे मुक्त है ॥ १४ ॥ जिसका देह स्वेच्छास दुर्जनसे पीडितहो वा किसीसे पूजितहो तो जिसको इसमें सुख दुःख न हो और कुछ विकार उत्पन्न न हो वही ज्ञानवान् है ॥ १५ ॥ [illegible] रे अथवा बुरा, अच्छा कहै वा खोटा, परन्तु आप कीसीकी निन्दा स्तुति न करे लौकिक व्यवहारसे अलग रहै, और

समान दृष्टि होकर रहै, वही मुनि और मुक्त है ॥ १६ ॥ कर्मादिकोंमें उदासीन रहै, न कुछ करै न कुछ विचारै, भला बुरा मनमें न धरै, एक आत्माहीसे रमता रहै, इस वृत्तिसे जडकीसी नांई मुनि लोग फिरा करते हैं ॥ १७ ॥ मुक्त पुरुषके जो लक्षण हैं, वही मुमुक्षुके साधन हैं जो पुरुष वेदार्थमें निपुणहो वह प्रथम कहे साधनोंसे वेदमें निष्ठा रखकर ईश्वरका ध्यानादिक करैं तो उनका शास्त्र पढा हुआ जैसे बहुत

न कुर्यान्न वदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥
शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥

दिनोंकी प्रसूता गौसे फिर दूध मिलना संभव न हो तो उसके दूधकी आशावाले पुरुषके श्रमका फल केवल श्रमही होता है, इसीप्रकार क्रिया न करनेसे शास्त्राभ्यास व्यर्थ हैं ❋ ॥ १८ ॥

---

* शका–शास्त्रमें और वेदोंमें ऐसा लिखा है कि, गाय चाहै, व्याती हो चाहै न व्यातीहो चाहै व्यानेपरभी दूध न देतीहो, चाहै, लात मारती हो परन्तु गायको तो चारा, मोदक, जल, अन्न और अनेक प्रकारकी वस्तु खिलाकर उसकी सेवा करै और दश, मच्छर, मक्खी आदि अनेक कष्टोंसे उसकी रक्षा करना, दूध देय चाहै दूध न देय, गाय सदा कामधेनु और धर्मकी मूल है, इसका तो सेवनही करना उचित है, तो फिर उद्धवसे श्रीकृष्णने क्यों कहा कि, जो गाय दूध देना बदकर दे अथवा बाँझ हो, जो मनुष्य ऐसी गायका पालन पोषण करैगा वह दुःखसे बडा जो महादुःख है, उसको भोगेगा श्रीकृष्णके मुखका ऐसा वचन सुनके हमको अत्यन्त शका होती है।

उत्तर–‘ गां दुग्धदोहां यो ज्ञात्वा तामरक्षति कुर्वति । स नरो दुःखदुःख वै भुनक्तीति विनिश्चितम्’’ इस श्लोकमें भगवान्ने नीति वर्णन की है सो सुनिये हम कहते हैं श्रीकृष्णभगवान्ने कहा था कि, जो प्राणी गायको ऐसा जानकर कि, यह गाय अब दूध नहीं देती अथवा बाझ है. व्यायगी नहीं, ऐसा समझकर उस गायकी रक्षा करना छोडदेगा अथवा उसको खाने पीनेको नहीं देगा भूखी प्यासी रक्खेगा, तब इस लोकमें तो गायका मूल्य डूब जायगा क्योंकि पालन करता तो फिर व्याती अथवा बाँझ होती तो भी गोबर करती और अन्त समय रौरवनरकका वास होगा, इसी प्रकार जो स्त्री दुष्टा होजाय तो उसका भी पालन करना अवश्य चाहिये क्योंकि जो उसने खोटा कर्म किया तो संसारमें उस प्राणीकी निन्दा होगी और परलोकमें नरक भोगना पडेगा और जो उसका पालन करैगा तो धीरे धीरे चाहैं, ज्ञान उपदेश होनेसे सुधर भी जाय और सन्तान भी उत्पन्न होजाय फिर न जानिये कि, सन्तानमें कैसा महापुरुष निकलै ऐसेही पराधीन देह समझकर हानि मानकर देहका पालन करना नहीं छोडे, क्योंकि उसका पालन न करनेसे उसका नाश होजायगा और जो शरीरका पालन करैगा तो कभी न कभी सुख होहीगा, ऐसेही धनको मानलेवै कि इस धनमेंसे मैं पुण्य नहीं करताहू यह धन किस काम आवैगा, ऐसा जानकर धनकी रक्षा करनी छोडदेगा तो चोर चोरी करके लेजायँगे, और जो धनकी रक्षा करता रहैगा तो कभी न कभी तो पुण्यही होगा ऐसेही वचनसे भगवान्का नाम नहीं लिया, ऐसे खोटे वचन को जानकर सत्सग छोडदिया तो भ्रष्ट होजायगा और जो बिगडे वचनसे सत्सग करैगा और अच्छा प्रवन्ध करैगा तो कभी भगवान्का नाम वचनसे निकलैहीगा ऐसा नीतियुक्त अर्थ भक्त उद्धवके सामने भगवान्ने किया है यह नहीं किया कि, गायका दूध देना वन्दकरदे तो उसकी पालना नहीं करना ।

हे उद्धव ! जिसके दूध दुही गौ, दुष्टा स्त्री, पराधीन देह और दुष्ट प्रजा, पात्र विषे न दिया धन, मेरा नामरहित वचन इतनी बातोंवाले सदा दुःखीही रहते हैं और आगे भी दुःख पावेंगे ॥१९॥ मेरा जिस वाणीमें नाम न हो वह बात न कहै, इस विश्वकी मर्यादा, जन्म, पालन, नाशरूप, पावन मेरे कर्म और लीला अवतारोंके विषे जगत्का प्रिय श्रीरामकृष्णादिक जन्म जिस वाणीमें नाम न हो, उस वाणीको बुद्धिमान् पुरुष धारण न करै ॥२०॥ इसप्रकार निश्चय कर आत्माविषे नानाप्रकारका भ्रम दूर कर विचारसे निर्मल मन मुझ अंतर्यामी विषे स्थिर होकर निवृत्त हो ॥ २१ ॥ जो मुझमें मन निश्चलकरनेको समर्थ न होय तो सब कर्म मुझमें अर्पण करै निरपेक्षहो कर्म करै ॥ २२ ॥ ज्ञानमार्ग कठिनहै, भक्तिमार्गहीसे कृतार्थ होगा, यह कहते हैं कि

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९ ॥ यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्वंध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥ २० ॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ॥ उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥ यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः ॥ गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥ मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥ सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां समुपासिता ॥ स वै मे दर्शितं सद्भिरंजसा विंदते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोकमतः कीदृग्विधः प्रभो ॥ भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥

प्रथम तो श्रद्धासंयुक्त हो, पीछे अतिसुन्दर लोकोंके पवित्र करनेको समर्थ मेरी कथा श्रवण करै, मेरे जन्मकर्म गावै, स्मरण करै, वारम्वार वैसाही लीला करै ॥२३॥ धर्म, अर्थ, काम मेरे लिये करै, विषयभोगार्थ न करै मेराही आश्रय करै, हे उद्धव ! तब सनातन स्वरूप मेरे विषे निश्चल भक्तिको प्राप्त हो ॥२४॥ इसप्रकार सत्संगकर प्राप्त हुई भक्तिसे मेरा सेवन करै तो मेरे स्थानको निश्चय प्राप्त होगा, यह मेरे पानेका मार्ग साधन करि दिखाया है ॥ २५ ॥ तब उद्धवजी साधुके और भक्तिके लक्षण पूँछने लगे कि, हे उत्तमश्लोक ! हे प्रभो ! साधुपुरुष कैसे होते हैं,

उनके चिह्न क्या होते हैं और उनकी कीहुई भक्ति कैसी होती है? जिस भक्तिको आप मानते हैं और साधु आदर करते हैं ॥२६॥ हे पुरुषके नियंता हे जगत्पते! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, अनुरक्त हूँ, आपकी शरण आया हूँ, इसलिये यह सब मुझसे कहिये ॥ २७ ॥ हे भगवन्! तुम साक्षात परब्रह्म प्रगट हुये हो, प्रकृतिसे भी परेहो; पुरुषहो अकाशकी भाँति निर्लेप हो भक्तोंकी इच्छा से रूप धारण करतेहो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! जो पराया दुःख न देखसके और किसीसे द्रोह न करे. क्षमावंतहो, सत्यही बोले, निंदा आदि दोष रहितहो, समदृष्टि हो, सुखदुःखमें समान हो, यथाशक्ति सबका उपकार करे, सब प्राणियोंका अपराध सहै ॥ २९ ॥ काम करके बुद्धि चंचल न होय, बाहरकी इन्द्रिय जीती होंय

एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दांतो मृदुः शुचिरकिंचनः ॥ अनीहो मितभुक् शांतः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ॥ अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान् ॥ धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥

कोमल शुद्ध चित्त होय, परिग्रही न होय, व्यर्थ कार्य न करे, भोजन थोडा करे शांत होय, स्वधर्ममें स्थित हो, मेराही एक आश्रय करे, मेराही स्मरण करे ॥३०॥ सावधान रहै, निर्विकार रहै, धैर्यवन्त होवे, क्षुधा, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु, यह सब जीते होय, अभिमानी न हो दूसरेको मान देनेवाला हो, औरके प्रबोधको समर्थ हो, सबका मित्र हो, सबका भला चाहे, दयावन्त हो, पूर्ण ज्ञानवान् हो ॥३१॥ ऐसेही पुरुष साधु कहातेहैं, मेरे स्वरूपभूत वेदके धर्म करनेसे अंतःकारण शुद्ध होता है, नहीं करनेमें दोष है, यह जाननेपर भी यह धर्म स्वामीके ध्यानमें विक्षेप करनेवाले हैं और जो यह धर्म मैं न करूं तो भक्तिसे ही सिद्ध होजायँगे, इस प्रकार भक्तिकी दृढताके लिये दृढ निश्चय कर अपने धर्मका

अधिकार रुद्ध हो जानेसे उन धर्मोंको छोडकर जो प्राणी मेरा भजन करै वह भी महात्मा है ॥ ३२ ॥ तब जैसे मेरे चरित्र हैं; उसी प्रकार मुझे जान अथवा विना जाने भी जैसे होय तैसे जो कोई अनन्य भावसे मेरा भजन करते हैं, सो मेरे परमभक्त हैं ॥ ३३ ॥ साधुओंके लक्षण कहकर अब भक्तिके लक्षण कहते हैं कि, मेरे चिह्न प्रतिमा आदि ले अनेक भांतिके और मेरे भक्त जनोंका दर्शन, स्पर्शन, पूजा, सेवा, स्तुति, प्रणाम, गुण, कर्म, कीर्त्तन ॥ ३४ ॥ हे उद्धव ! मेरी कथा श्रवण करनेमें श्रद्धा, मेरा ध्यान करै, जो कुछ मिले सो सब मुझे समर्पण करै दास्यभावसे अपनी आत्मा निवेदन करै ॥ ३५ ॥ मेरे जन्म, कर्म, गावै, जन्माष्टमी आदि पर्वमें फूल नैवेद्य आदिसे

ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥ भजंत्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥ मल्लिंगमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥ मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥ सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ॥ गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥ यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ॥ वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमंदिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमंडलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदंभित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि दीपावलोकं मे नोपयुंज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥

मेरी पूजा करै, गीत, नृत्य, वादित्र,गोष्ठीसे मेरे मंदिरमें उत्सव करै ॥३६॥ मेरेलिये यात्रा करै, पुष्पादिकोंसे पूजा करै, भेट समर्पण करै, वर्ष प्रति वर्ष उत्सव करै, वैदिक, तांत्रिक दीक्षा ले रेमे व्रत करै ॥३७॥ और प्रतिमामें श्रद्धा रक्खै आपसे अथवा औरसे मिलकर मेरे लिये फूलोंका बाग, मंदिर, क्रीडास्थल, नगर, गॉवके करनेमें उद्यम करै ॥ ३८ ॥ मेरे मंदिरमें बुहारी देना, लीपना, छिड़काव करना, चौक पूरना और रंगवल्ली आदि चित्रांग करना, इस प्रकार मेरे गृहकी शोभा करै, दासकी भॉति निष्कपट मेरी उपासना करै ॥ ३९ ॥ आप अभिमान तथा दंभ

न करै जो करै सो कहै नहीं । मेरे निवेदित दीपादि वस्तुसे अपने घरका काम न करै ॥ ४० ॥ जो जो वस्तु इस लोकमें आपको अतिप्रिय हो, निषिद्ध न हो सो मुझे अर्पण करै तो वह वस्तु अनंत फलको करेगी ॥ ४१ ॥ अब यह ग्यारह ठौर पूजाके कहते हैं कि, हे उद्धव ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, भूमि, आत्मा इत्यादि सब प्राणीमात्र मेरी पूजाके स्थल हैं ॥ ४२ ॥ अब जिसकी पूजा जिस प्रकार करनी चाहिये सो कहते हैं वेदोक्त विद्यासे सूर्यकी पूजा करै, अग्निमें घृत होमकर मेरी पूजा करै, ब्राह्मणमें आतिथ्य अभ्यागतसे पूजे, गायमें अच्छे सुन्दर तृणादिकसे सेवा करै ॥ ४३ ॥ वैष्णवोंमें अपने बंधुके समान आदरसे मेरी पूजा करै, हृदय आकाशमें ध्यान धरके पूजा

यद्यदिष्टतम लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानंत्याय कल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भूरात्मा सर्वभूतानि भद्रपूजापदानि मे ॥ ४२ ॥ सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ॥ अतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वंग यवासादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बंधुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ॥ वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थंडिले मंत्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शांतं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥ इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ॥ लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥

करै, वायुमें प्राण बुद्धिसे पूजा करै, जलमें तर्पण आदि द्रव्यसे पूजा करै ॥ ४४ ॥ भूमिमें गोप्य मंत्र न्यासकर मेरी पूजा करै, अपने आपमें आत्माकी पूजा भोग करके जो भोग करै सो सब आत्माको समर्पण करदे, सब प्राणीमात्रमें समान दृष्टि रखकर मेरी पूजा करै, मैं अंतर्य्यामी हूं ॥ ४५ ॥ एकाग्र मन हो इन स्थलोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धरे चतुर्भुज शांतरूपका ध्यान कर मेरी पूजा करै ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य ऐसा करते हैं वे पुरुष निश्चयमन होकर यज्ञ, वापी, कूप, तडाग, बागसे मेरी पूजा कर साधुओंकी सेवासे मेरा स्मरण करते, मुझमें परमभक्ति प्राप्त करतेहैं ॥ ४७ ॥ इसप्रकार ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहकर विशेषसे श्रेष्ठ भक्तिमार्गको कहते हैं कि, हे उद्धव ! पहले सत्संग करै कि, जिससे भक्ति उत्पन्न हो संसार

अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनंदन ॥सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० एकाद० भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥ २ ॥ सत्संगेन हि दतेया यातुधाना मृगाः खगाः ॥ गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारण गुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोंत्यजाः ॥ रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे ॥ ६ ॥

सागरसे तरनेका इससे उत्तम उपाय और कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि साधुओंका एक मैंही आश्रयहूं इसलिये अतिश्रष्ट उत्तम वैष्णवोंका सत्संग अतिश्रेष्ठ है ॥४८॥ हे उद्धव । तुम सर्व प्रकारसे मेरे उत्तम सुहृद् सखा हो इसलिये तुमसे कहा है कि, यह जो भक्तियोग गुप्त है सो तुमको सुनानेके लिये कहताहूं ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११॥ दोहा–बारहमें सत्संगकी, महिमा कहौं बखान । कर्म करन अरु त्यागको बरणों आत्मज्ञान ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! योग और तत्त्वोंका विवेक और अहिंसा आदि धर्म विद्याका अध्ययन, तप, त्याग, अग्निहोत्रादिक, वापी, कूप, तड़ाग, दक्षिणा ॥१॥ व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नेम, संयम यह सब मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते, जैंसे श्रेष्ठ विष्णुभक्तिका सत्संग मुझे वश करता है, क्योंकि सत्संग सब कुसंगोंका छुड़ानेवाला है ॥ २॥ दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥ ३ ॥ विद्याधर, मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री यह सब नीच जाति राजस तामस स्वभावयुक्त भी उन उन युगोंमें ॥ ४ ॥ मेरे पदको प्राप्त हुये और भी बहुत हैं वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय, विभीषण ॥ ५ ॥ सुग्रीव, हनुमान्, जांबवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार, व्याध, कुब्जा, गोपी, व्रजमें यज्ञपत्नी ऐसे और भी अनेक

मुझे प्राप्त हुये हैं ॥ ६ ॥ यह दोनों वेदार्थ नहीं पढे थे महत्पुरुषोंकी उपासना नहीं करी थी, व्रत, दान, तप, कुछ नहीं करते थे, एक मेरे संग सेही मुझे प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ गोपी, गाय, यमलार्जुन, मृग और मूढबुद्धि कालीसे आदि ले नाग, सिद्ध अनायास मुझे प्राप्त होगये * ॥ ८ ॥ सांख्य, योग, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, अध्ययन इतने यत्नसे भी जिन्होंने मुझे न पाया, उसे एक भाव मात्रसेही प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ अब

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ॥ अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ॥ येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ॥ ८ ॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोध्वरैः ॥ व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ॥ विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृंदावनगोचरेण ॥ क्षणार्धवत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥

मुख्य उत्तमभाव गोपियोंका कहते हैं इसकारण पहले गोपियोके भावकी स्तुति करते हैं हे उद्धव ! जब अक्रूर आनकर बलदेव सहित हमको मथुरा लेगये, तब दृढप्रीतिसे मुझमें आसक्त चित्तवाली वियोगसे दुःसह चित्त गोपियोंने सुखके लिये मेरे अतिरिक्त और किसीकी ओरको न देखा ॥ १० ॥ हे उद्धव ! वृन्दावनमें फिरते उनको अतिप्रिय मेरे संग जो जो रात्रिय एक क्षणके समान बीतीं हैं सो सो रात्रि मुझ विना उन

* शंका–श्रीकृष्णभगवान्ने उद्धवसे कहा कि, हे उद्धव ! पर्वत, पक्षी, मृग, यह सब सत्सगसे हमारे लोकको गये सो इस बातका हमको बडा सन्देह है कि, सत्सग तो बडे बडे महात्माओंको भी बडा दुर्लभ है सो इन तुच्छ जीवोंको क्योंकर हुआ ?

उत्तर–महात्मा पुरुष तो पर्वतोंपर वसते हैं इसलिये उनको पर्वतोंका सत्संग हुआ और महात्माओंके सन्मुख नित्य राति दिन पक्षी और मृग वसतेथे, महात्माओंका नित्य दर्शन करतेथे कुछ सत्सगकी बात कानोंसे सुनली कुछ भगवान्के पूजन आदिककी सामाग्री नेत्रोंसे देखली इसप्रकार योगियोंसे दुर्लभ जो सत्संग सो पर्वतोंको, पशुओंको तथा मृगोंको प्राप्त हुवा ऐसा कृष्णने कहा था ।

गोपियोंको कल्प समान वीतीं ॥ ११ ॥ मुझमें गोपियोंकी बुद्धि अधिक आसक्त होगईथी, इसलिये उन्हें पति, पुत्रादि तथा देह और परलोकका भी कुछ ध्यान न रहाथा, जैसे समाधिमें मुनियोंको नाम स्वरूपका ध्यान नहीं रहता. अथवा जैसे नदी समुद्रमें मिलजाती हैं, उसी प्रकार गोपियें मेरे स्वरूपमें लीन होगईं ॥ १२ ॥ इस प्रकार केवल मेरी इच्छावाली सहस्रों स्त्रियें यद्यपि मेरे स्वरूपको नहीं जानतीथीं परन्तु तो भी जारबुद्धिसे जाने हुए मुझ परब्रह्मके सत्संगकी महिमासे मुक्त होगईं ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! मेरे भजनका ऐसा प्रभाव है कि, गोपियें जारबुद्धिसे भजन करनेपर भी मुझे प्राप्त हुईं, इसलिये तुम श्रुति स्मृतिके विधिनिषेध छोड़, प्रवृत्ति निवृत्ति धर्म छोड़ सुना सुनाया छोड़ ॥ १४ ॥ सब देहधारियोंका आत्मा जो मैं हूं, इस कारण सबोंमें मेरा भाव रख केवल एक मेरी शरणको प्राप्त होकर तुम निर्भय होगे ॥ १५ ॥ यह सुनकर उद्धवजी बोले कि, हे योगे

ता नाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥ मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ॥ ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ॥ याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर ॥ न निवर्त्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥

श्वरोंके ईश्वर ! तुम्हारी बात सुनकर आत्मा विषयक मेरा संदेह निवृत्त नहीं होता क्योंकि प्रथम तो आपने कहा कि, मेरा भजन करो. अब कहते हो कि, सर्व धर्म छोड़कर हमारी शरण आओ इन दोनोंमें क्या करना उचित है ? त्याग करना चाहिये, अथवा भजन करना चाहिये यह मुझे बड़ा भ्रम है, सो निवारण करो ॥ १६ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! पहले तो यह जीव ईश्वर है, ब्रह्म है, परन्तु अविद्याके संगसे अपना धर्म भूलगयाहै, अविद्याके धर्महीको अपना धर्म समझ अहंकर्त्ता अभिमानसे बँधताहै, जब अविद्याके धर्म दूर होजायँ तब शुद्ध चित्त हो उसके लिये निष्काम कर्म करना कहाहै, जब चित्त शुद्ध हुआ, तब कर्मका त्याग कहा जब विवेक उसको उत्पन्न होगया, तब विवेकसे

सर्वत्र वह मेरा रूप जानता है, अब कर्म और ज्ञानका अधिकार हुआ, इसकारण सब कर्म त्यागकर मेरी शरण आवे, यह उपदेश दिया, अब ईश्वरसे वाणी इन्द्रिय द्वारा जीवके संसारका कारण भूत प्रपंचकी उत्पत्ति कहते हैं सो ईश्वर आधारादि चक्रोंमें प्रगट होते हैं उस प्रगटताको भी कहते हैं, सो ईश्वर नादवन्त परनाम प्राण सहित आधार चक्रोंमें प्रविष्ट होकर मनोमय सूक्ष्मरूप देखें और मध्यमा नाम मणिपूरक और विशुद्धचक्र विषे आनकर मुखमें हूं, स्वरादिक मात्रा, उदात्तादिक स्वर, अकारादिक अक्षर रूप वैखरी नाम अतिस्थूल नानाविध रूप होतेहैं ॥ १७ ॥ जैसे आकाशमें गर्भीरूप अग्निरूप अप्रगट है, बलपूर्वक काष्ठके मथनेसे वायुकी सहायतासे पहले सूक्ष्मरूपसे निकलती है, पीछे हविष्यसे वृद्धिको प्राप्त होती है, इसी प्रकार यह प्राणी मेरे प्रगट होनेके स्थान हैं ॥ १८ ॥ हाथोंका धर्म क्रिया, चरणका धर्म तीर्थगमन करना और गुह्येन्द्रियका

यथाऽनलः खेनिलबंधुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणु प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥ एवं गदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक्स्पर्शः श्रुतिश्च ॥ संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजः सत्त्वतमोविकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तंतुवितानसंस्थः ॥ य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥

धर्म मलादि विसर्जन करना आघ्राण, रस, दर्शन, श्रवण यह सब ज्ञानेन्द्रियोंके धर्म, संकल्प मनका धर्म, विज्ञान और बुद्धि चित्तका धर्म, अभिमान अहंकारका धर्म, सूत्र मायाका धर्म, सत, रज, तम, इन तीन गुणोंका विकार अधिदेव अध्यात्म अधिभूत यह सब मेरे प्रगट होनेके स्थान हैं ॥ १९ ॥ यह आत्मा ब्रह्म है, एकही है, अप्रगट है, कालसे अलगकारि वाणीरूप इन्द्रियोंकी शक्तियोंको अनेक भाँतिसे प्रकाशै है, जिससे आदि है, तीन गुणोंका आश्रय है सृष्टि कमलका कारणभूत है, जैसे बीज खेतको पाकर अनेक भाँति प्रकाशमान होताहै इसीप्रकार यह आदि कारण ईश्वर भी कालकी गतिसे मायाको अंगीकारकर प्रपंचरूप होजाते हैं ॥ २० ॥ इसमें दृष्टान्त कहते हैं, तंतुके विस्तारमें स्थितिमान् पट जैसे

तंतुओंमें ओतप्रोत है और तंतुओंसे पृथक् नहीं है, इसीप्रकार यह सब जगत् ब्रह्ममें विद्यमान है उससे भिन्न नहींहै, ऐसेही समष्टि व्यष्टिरूप अविद्यासे आत्मामें अध्यास कियाहुआ प्रपंचरूप वृक्षही जीवके कर्त्ता भोक्ता आदि संसारका कारण है, इससे जब यथार्थरीतिसे आत्माकी सत्यता और प्रपंचकी अनित्यता जाननेमें आवै उस समय कामादि सबका त्याग करना कहा है यह अनादि कालसे प्रवृत्तिवाला प्रपंचरूप वृक्ष अपने भोगादि रूप पुष्पफलोंको उत्पन्न करताहै ॥ २१ ॥ इसके पाप पुण्य दो बीज हैं. अनेकभाँतिकी वासना इसकी जड है तीनो गुण (रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण) इसकी पीडि है. पांच रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द यह रस हैं, पांच महाभूत इसके स्कंध है, एकादश इंद्रिय शाखा हैं,दो पक्षी जीव और परमात्माका घर है, वात, पित्त, कफ, यह तीनों वल्कल हैं, फल दो दुःख सुख हैं,सूर्यमण्डल तक यह वृक्षहै इससे

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कंधः पंचरसप्रसूतिः॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्के प्रविष्टः ॥ २२ ॥ अदंति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ॥ हंसाय एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥ एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥ विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥ सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥

आगे संसार नहीं ॥ २२ ॥ अब इसके फलके भोक्ताको कहते हैं इसके एकफल दुःखरूपका गृहस्थ ग्रामचारी कामीके समान गीदड भोग करते हैं,दूसरे फलका सुख अरण्यवासी परमहंस सन्यासी भोग करते हैं इसके यह एकही परमात्मा मायामय अनंतरूप है इतना तत्त्वार्थ गुरुद्वारा जिस पुरुषने जान लिया है, उसने सब देह जान लिया ॥ २३ ॥ इसप्रकार धीर सावधान होकर तुमभी गुरुकी सेवा कीजियो और एकान्त भक्तिसे तीक्ष्ण ज्ञानरूप कुठारसे त्रिगुणमय इस लिंगशरीरको काटि परमात्मासे मिले, पीछेसे सब साधन छोड़देना ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा—इस तेरह अध्यायमें, हंसरूप इतिहास ॥ बढे अधिक जब सतोगुण, प्रगटे बुद्धि विलास ॥१३॥ श्रीभागवान् बोले कि, हे उद्धव ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीनों गुण प्रकृतिके हैं आत्माके नहीं

सत्त्वगुणसे नाश करना ॥ १ ॥ इसकारण सतोगुणकी वृद्धिसे रजोगुण तमोगुणकी वृद्धिका नाशकर सत्त्व दयादिरूप सत्त्वगुणका उपशमरूप इसकारण सतोगुणकी वृद्धिसे रजोगुण तमोगुणकी वृद्धिका नाशकर सत्त्व दयादिरूप सत्त्वगुणका उपशमरूप

रजोगुण, तमोगुणके सन्मुख सतोगुण कैसे बढै और जो सतोगुण बढ़े तो मेरी भक्ति लक्षण धर्महो उसीसे रज, तम भी दूर हो ॥ २ ॥ सत्त्वकी वृद्धि इसलिये होतीहै इसकारण भक्ति अतिश्रेष्ठ है रज, तमके दूर होनेपर रज, तम, मूलवाला अधर्म निश्चयसे शीघ्र दूर होता है ॥ ३ ॥ शास्त्र, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र, संस्कार, यह सब गुणके हेतु हैं ॥ ४ । यह भी दश सात्त्विक, राजस, तामस हैं इनके मध्य जिसकी, बडाई करते हैं सो सात्त्विक है; जिसकी निन्दा करते हैं, सो तामस है, और न जिसकी स्तुति करते हैं न निन्दा करते हैं सो राजस है ॥ ५ ॥ सतो गुण बढ़ानेके लिये पुरुषको सात्त्विकवृत्ति शास्त्रका सेवन करना चाहिये प्रवृत्ति मार्गके पाखण्डियोंके शास्त्र न देखे, जल तीर्थहीका सेवन करे,

सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ॥ आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३० ॥ आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ॥ ध्यानं मंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ॥ निंदंति तामसं यत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये ॥ ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥ वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

परन्तु सुगंधित जलका सेवन न करै, संग निवृत्ति मार्गवालोंकाही करै, दुराचारियोंका न करै, देश एकान्तही सेवै चोर, ठग और जुआ खेलनेवा लोंका संग न करै, ध्यानका सेवन काल ब्रह्म मुहूर्त्त आदिमें करै, आधीरातके समय प्रदोष कालका सेवन न करै, कर्म नित्यही करै काम्य और अभिचारादि कर्म न करै, वैदिक तांत्रिक दीक्षारूप जन्मलेना क्षुद्र देवताओंकी दीक्षा न ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकोही गुरु करै, अस्त्रोंका और शत्रुओंका ध्यान न करै, जब प्रणव आदि उत्तम मंत्रको जपै उससमय काम्य मंत्र और क्षुद्र मंत्रको न जपै, जो संसारसे आत्माका शोधक होय सो करै, देह गृहको न करै.इसप्रकार सब सात्त्विक सेवै, तो सतोगुणकी वृद्धि हो और राजस, तामस छूटै, तब भक्तिरूपी तप धर्म होवे, उससे मेरे स्वरूपका ज्ञान हो ॥ ६ ॥ जैसे बाँसोंके वनकी अग्नि आपसमें घिस और प्रज्वलित हो सब अरण्यको जलाय ईंधन घट जानेपर आपही शान्त

होजाती है उसीप्रकार गुणके क्षोभसे उत्पन्न हुवा देह आपही शान्त होजाता है ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! बहुधा सब मनुष्य कहते हैं कि विषय दुःख रूप है उससे दुःख पाते तो फिर क्यों इसीको यह पुरुष कूकर, गर्दभ, बकरेके समान निर्लज्ज हो उसीमें प्रवृत्त होते हैं ॥८॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! जब यह विवेकसे रहित होते हैं, तब इसके हृदयमें अहंभाव बुद्धि सत्यसी होती है,तब सात्त्विक भी मन दुःखरूप राजस धर्मसे व्याप्त होते हैं ॥ ९ ॥ यह पुरुष जब रजोगुणसे व्याप्त होता है तब मनमें संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं और संकल्पसे विषयका जो ध्यान करता है, इससे इस दुष्ट बुद्धि पुरुषको काम उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ इसके उपरांत उनके वश हो रजोगुणके वेगसे मोहित हुवा यह अजितेन्द्रिय

उद्धव उवाच ॥ विदंति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथापि भुंजते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ॥ उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजो
युक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ॥ ततः कामो गुणध्यानाद्दुःसहः स्याद्धि दुर्मतेः ॥१०॥ करोति कामवशगः कर्मा
ण्यविजितेंद्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहितः ॥ ११॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः पुनः ॥ अतं
द्रितो मनो युंजन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२ ॥ अप्रमत्तोऽनुयुंजीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः ॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जित
श्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ॥ सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते
यथा ॥१४॥ उद्धव उवाच ॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ॥ योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५॥

दुःखही फलवाले कर्मोंको करताहै ॥ ११ ॥ इसमें भी जो विवेकी होय सो यद्यपि रजोगुण तमोगुणसे विक्षिप्त मन है सावधान है, परन्तु तो भी मनको खैंच खैंचकर रक्खै, तब वह दोष जानकर विषयमें आसक्त न होगा ॥१२॥ जो विवेकी स्नेहसे मुझमें मन लगाता है और आलस्य छोड़ श्वास रोक आसन दृढकर मुझमें मन स्थिर करताहै ॥ १३ ॥ सो हे उद्धव ! मेरे शिष्य सनकादिकोंने इतनाही योग बतायाहै कि, यह जीव सब ओरसे मन खैंच प्रत्यक्ष मुझमें रक्खै ॥ १४॥ उद्धवजी बोले कि, हे केशव ! सनकादिकोंके रूपसे जिससमय तुमने यह योग कहाथा सो तुम्हारा रूप और वह समय

जाननेकी इच्छा है सो कहिये॥ १५॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! एक समय ब्रह्माके मानसीपुत्र सनकादिक योगकी सूक्ष्म गति ब्रह्मदेवसे पूँछनेलगे ॥ १६ ॥ सनकादिक बोले कि, हे प्रभो ब्रह्माजी ! चित्त अपने स्वभावसेही रागादिकोंके हेतु विषय धर्ममें प्रविष्ट होताहै और अनुभूत विषयवासनारूपसे चित्तमें प्रवेश करते हैं; अब विषयोंका त्याग करनेकी इच्छावाला मुमुक्षु पुरुष परस्पर इनदोनोंको किसप्रकार भिन्न भिन्न करै ? ॥ १७ ॥ इसप्रकार पुत्रोंके पूँछनेपर ब्रह्माजीने जो कुछ कहाथा, वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे कहते हैं कि, इसभाँति जब सनकादिकोंने कहा, तब स्वयंभू ब्रह्मा बड़ेदेव विश्वके पालक विचारने लगे परन्तु प्रश्नका पार न पाया, इससे कर्मसे विक्षिप्त बुद्धि हुई ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकांतिकीं गतिम् ॥ १६ ॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ॥ कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितिर्षिर्षोः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभवानः ॥ ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥ स मामचिंतयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥

तब प्रश्नका उत्तर देनेके लिये ब्रह्माने मेरा चिंतवन किया, तब मैं हंसरूप हो ब्रह्माके निकट आया ॥१९॥ तब मुझे देखतेही सब प्रणामकर ब्रह्माके आगेसे मेरे निकट आये तुम कौन हो ? इसप्रकार पूँछने लगे ॥ २० ॥ हे उद्धव ! तत्त्वके जाननेकी इच्छासे मुनीने जब इसप्रकार मुझसे पूँछा तब मैंने जो उनसे कहा वह तुम सुनो ॥ २१ ॥ यह सुनकर हंसरूप भगवान् सनकादिकोंसे बोले कि, तुम आत्माको आगेकर प्रश्न करते हो वा आत्माके उपाधिस्वरूप भूतसमूहको लेकर प्रश्न करते हो ? जो आत्माका अधिकार प्रश्न करते हो तो परमार्थसे आत्मामें अभेद होनेके कारण तुम कौन हो ? यह प्रश्न करना कि, जो अनेकोंमें एकका निश्चय करनेके लिये है संभव नहीं होसकता और मैं तुम्हें क्या विषय लेकर उत्तर दूं,

आत्मा कोई जाति वा गुणादिरूप हो तो उत्तर दिया जाय कि, मेरी यह जाति और मुझमें यह गुण है, परन्तु आत्मामें कोई बात नहीं इससे तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं बनसकता ॥ २२ ॥ और जो पंचभूत संधानका प्रश्न है वह अनर्थरूप है देवमनुष्यादि देह सब पंचभूतात्मक हैं वस्तुसे सब समान हैं अपने कारणसे न्यारे नहीं, वे सब कारणरूप एकही हैं ब्रह्मरूपही हैं यह नाम रूप अलग अलग धर लिये हैं, सो अज्ञान है इस कारण इसका मैं क्या उत्तर दूं॥२३॥ मन, वचन, दृष्टि और इन्द्रियोंसे जो ग्रहण किये जाते हैं, सो मैं हूं मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है, यह तत्त्वका विचार करके जानलो ॥ २४ ॥ इसप्रकार उनके प्रश्नका खण्डन करनेके बहाने आत्माका स्वरूप कहा, अब ब्रह्माकोभी जो अशक्य उत्तर है, सो देते हैं कि, यह विषय और चित्त दोनों गुँथे हैं, ब्रह्मरूप जीवका देह है, सो उपाधि है कुछ सत्य नहीं है जो पुरुष अपने आपको ब्रह्मरूपसे

पंचात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥ को भवानिति वः प्रश्नो वाचारंभो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपींद्रियैः ॥ अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुद्धयध्वमंजसा ॥२४ ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥ गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ ॥ २७ ॥ यर्हि संसृतिबंधोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥

विषयोंको मिथ्या करके जानते हैं और वैराग्यसे भगवान्का भजन करते हैं वह पुरुष उपाधि छोडकर मुक्त होजाते हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि विषयों कीही सेवा करनेसे और उनकी वासनासे विषयोंमें चित्त प्रविष्ट होता है, इसलिये विषय और चित्त यह दोनों जब मेरा रूप जानें, तब छूटें ॥ २६ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंसे रहित जीव शुद्ध आत्मरूप कैसे हो ? सो कहते हैं कि, यह अवस्था तीन गुणसे होती है सो बुद्धिहीकी वृत्ति अवस्था है, जीव इन अवस्थाओंसे भिन्न है, ऐसा निश्चय किया गया है, इसलिये जीव इन सबका साक्षी है॥२७॥ जो यह साक्षी हुआ तो भिन्न क्यों है ? और " मैं सोया " " मैं जागा " ऐसे क्यों कहता है ? क्योंकि, जब अहंकारके धर्मसे संसारका बन्धन है, तब मैं जागता हूं सोता हूं,

यह बुद्धि है, जब अहंकार देहसे छूटै और आत्माके मध्यमें दृष्टि हो तब यह अवस्था भी सब जाती रहै और विषय तथा चित्तका परस्पर त्याग होय ॥२८॥ यह बन्धन देहके अभिमानसे है, इसीसे आत्माको भी अनर्थ लगता है, इसप्रकार निश्चयकर वैराग्यसे आत्मामें चित्त लगाय संसारकी सब चिन्ताको त्यागन करै ॥ २९ ॥ जबतक इसकी भेद बुद्धि युक्तियोंसे निवृत्त नहीं है, तबतक यह अज्ञानी पुरुष कर्मादिकोंमें जागता अर्थात् जानकर भी स्वप्नमें अपनेको जाग्रत् मानतेहुये मनुष्यके समान स्वप्नकोही देखते हैं, क्योंकि उन्हें यथार्थ ज्ञान नहीं है ॥ ३० ॥ यह सब देह और देहका किया सबसे भेद, वर्ण, आश्रम, स्वर्ग, आदि फल कर्म आत्माके धर्म नहीं हैं, यह देहके धर्म हैं, अविद्यासे उत्पन्न होते हैं, इसकारण मिथ्याहैं,

अहंकारकृतं बंधमात्मनोऽर्थविपर्ययम्॥ विद्वान्निर्विद्य संसारचिंतां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥ यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्त्तेत युक्तिभिः ॥ जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ॥ गतयोहेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्भुंक्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ॥ स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिंद्रियेशः ॥ ३२ ॥ एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ॥ संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥

उत्तम नहीं, जैसे स्वप्न देखनेवालेके सब मनोरथ मिथ्या हैं ॥ ३१ ॥ यह जीव जागतेमें जो विषय भोग करता है, सो वह भोग एक क्षणभरका है, कुछ नित्य नहीं, जैसे बाल्यावस्था और तरुणापन आये और गये जाग्रत्के समान भोग करते हैं और सुषुप्तिमें यह सब धर्म लीन होजाते हैं केवल एक आत्मा ही रहता है, मैंने पहले तो स्वप्न देखा फिर सुखसे सोया, कुछ ज्ञान न रहा, इस अनुभवके स्मरणसे तीनों अवस्था बुद्धिकी हैं, इनका साक्षी एक आत्माही रहता है और सब लीन होजाते हैं, इसकारण आत्मा सब इन्द्रियोंका ईश्वर है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार यह तीनों अवस्था मनके वशमें हैं आत्माके वशमें नहीं, सो मेरी शक्ति अविद्यासे आपको मान लेती है, ऐसा निश्चय कर सब संदेहका स्थान अहंकार है, तिसको विवेकसे

अनुमानसे प्रमाण वचनसे उपजा जो ज्ञानरूपी खड्ग उससे काटकर हृदयमें स्थित मेरा भजन करे ॥ ३३ ॥ अनुमान किसप्रकारका है, सो कहते हैं कि, यह जो जगत् दीखता है, सो सब मनका विलास है, भ्रम और मिथ्या विलास है, यह द्वैत भी भ्रान्तिरूप है क्योंकि यह अति चंचल है और जो चंचल हो, वह अलातचक्रके समान भ्रान्तिरूप है, ब्रह्ममें द्वैतकी अनेक भ्रान्ति होती हैं, इसलिये भ्रान्तिका अधिष्ठान रूप एक ब्रह्मही अनेक प्रकारसा दीखता है और जो यथार्थ विचारसे देखते हैं, तो यह त्रिगुणात्मक मायाका भ्रम स्वप्नके समान है ॥३४॥ इससे हे उद्धव ! ऐसे प्रपंचसे दृष्टि फेर तृष्णा छोड़, आत्मसुखके विचारमें तत्पर हो इन्द्रियोंके सब धर्म छोड़ दे यदि कहो कि, देहवंतसे देहकी चेष्टा कैसे छूट

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥ दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ॥ संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात ॥ ३५ ॥ देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदांधः ॥३६ ॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रति समीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥

सकती है और न छूटनेसे द्वैतही होजायगा तो कहते हैं कि, कहीं ऐसे भी देहकी चेष्टा देखी जाती है, परन्तु वह चेष्टा अलंकाररहितहै, सत्य नहीं जिससे प्रपंचमें उनकी मिथ्याबुद्धि है, जो मिथ्या जानकर छोड़ दिया जाता है, वह फिर मोह उत्पन्न नहीं करता, यह निश्चय है । देहतक कर्मोंका संस्कारहै ॥३५॥ जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष इस विनाशीदेहको दैवगतिसे वा आसन उठा, आसनमें स्थित उठकर खडाहुआ, बाहरको गया अथवा दैवगतिसे फिर आयाहुआ नहीं देखते जैसे मदिरापानसे मत्त हुआ पुरुष पहने वस्त्रको नहीं जानता, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ब्रह्मको प्राप्त हो चुके हैं ॥ ३६ ॥ यहाँ तर्क करते हैं कि, देहको न जाने तो देह क्यों नहीं गिरे तो कहते हैं कि, देह भी दैवके आधीन है और जबतक

इसका प्रारब्ध कर्म है तबतक प्राण इंद्रियोंसहित देह रहता है, इसलिये जो समाधियोगमें आरूढ़ है, परमार्थ वस्तु और आत्मस्वरूपको जानते हैं, वह पुरुष प्रपंचसहित स्वप्नसमान इस देहको नहीं भजते ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! सांख्य और योगमार्गका जो रहस्य था, वह मैंने आपसे वर्णन किया, तुम्हें धर्म और ज्ञानका उपदेश देनेके लिये मैं यज्ञरूप विष्णु आया हूं, ऐसा जानो ॥ ३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! योगसांख्य, सत्यऋत, अर्थात् शास्त्रोक्त धर्म, तेज, प्रभाव, श्री, कीर्ति और इन्द्रियपन इन सब धर्मोंका मैं ही परमार्थ स्थान हूँ यह सब मुझीमें रहते हैं ॥ ३९ ॥ सब गुण मेरेहीमें आश्रय हैं मैं निरपेक्ष हूं, सुहृद् परमप्रिय हूं, सबका आत्मा और सब मुझे समान हैं संग किसीका नहीं, ऐसे गुण

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः ॥ जानीत माऽऽगतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥ मां जयंति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्याऽसंगादयो गुणाः ॥ ४० ॥ इति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः ॥ सभाजयित्वा परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहं पूजितः सम्यक्संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चित्तगुणविश्लेषवर्णनं त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ उद्धव उवाच ॥ वदंति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

मुझीमें हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार मेरे वचन सुन सन्देह निवृत्ति कर सनकादिक मुनियोंने अतिभक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की ॥ ४१ ॥ जब उन ऋषियोंने भलीभाँति स्तुति और पूजा की तब ब्रह्माके देखते २ मैं भी अपने धामको चला आया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—इस चौदह अध्यायमें, सबका यही विचार ॥ सब साधनमें मुख्य है भक्ति मुक्ति दातार ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! जो पुरुष ब्रह्मका विचार करते हैं, वह तो ब्रह्माका साधन बहुत बताते हैं, इन सबोंमें जो एक मुख्य साधन है सो कहो ॥ १ ॥

हे ईश्वर! तुम निरपेक्ष भक्तिही एक मुख्य साधन कहते हो कि, सब संग छोड भक्तियोगसे मुझमें चित्त रक्खे ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! भक्तिही सबसे श्रेष्ठ साधन है और जो अनेक साधन हैं, वह अपनी इच्छानुसार संसारके लोगोंने मूर्खपनसे मुख्य मान रक्खे हैं, वह सब तुच्छ फलके देनेवाले हैं और मुख्य तो यह मेरी वेदरूप वाणी है जो प्रलयकालमें नष्ट होगईथी, यह वह वाणी है कि, जिससे प्राणीका मन मुझमें लगजाय यह पहले मैंने ब्रह्माजीसे कहा था ॥ ३ ॥ ब्रह्माने अपने बड़ेपुत्र मनुसे वह वाणी कही मनुने महर्षि भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, इन सात ब्रह्माके पुत्रोंसे वह वाणी कही ॥ ४ ॥ उनसे उनके पुत्र दैत्य, देवता, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर ॥५॥ चारण, किंदेव, (मनुष्य जातिमें देव

भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः ॥ निरस्य सर्वतः संगं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ॥ मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥ मनुष्याः सिद्धगंधर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥ किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः ॥ बह्व्यस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यंते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवंति हि ॥ ७ ॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यंते मतयो नृणाम् ॥ पारंपर्येण केषांचित्पाखंडमतयोऽपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदंत्यनेकांतं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥

तुल्य) किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुषादिक इन सबोंने वह वाणी ग्रहण की, जिनकी वासना रजोगुण, तमोगुण आदिसे अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥ जिन वासनाओंसे देवतुल्य मनुष्यादिक प्राणियोंके शरीर भिन्न भिन्न होते हैं और उनकी बुद्धियोंमें भी भेद पडता है, इन सबोंने अपनी वासनाके अनुसार भिन्न भिन्न वेदका व्याख्यान किया है ॥ ७ ॥ इस प्रकार प्रकृतिकी विचित्रतासे मनुष्योंकी बुद्धि विचित्र होगई और शास्त्रोंमें भी भेद पड़गये किसी प्राणीके उपदेशकी परंपरासे वेदविरुद्ध पाखण्डबुद्धि हुई ॥ ८॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! मेरी मायासे मोहितबुद्धि पुरुष अनेक प्रकारसे इच्छानुसार कल्याणके

साधन कहते हैं ॥ ९॥ कोई धर्महीको मुख्य कहता है, कोई यशको,कोई कामको, कोई सत्यको, कोई शम दमको कोई ऐश्वर्यको और कोई स्वार्थ हीको मुख्य कहते हैं, कोई दान करो, भोग करो यही कहते हैं कोई यज्ञ, तप, दान, व्रत, नेम, संयम, यह सब साधना कहते हैं ॥१०॥ इन प्राणियोंको अपने कर्मानुसार लोक कर्म फलसे मिलते हैं, वह सब परिणाममें दुःखसे पूर्ण किंचित् आनन्दयुक्त शोकसे व्याप्त आदि अंतवाले हैं ॥ ११ ॥ हे सौम्य ! मुझमें जिन्होंने आत्मसमर्पण किया है, और जो सबसे निरपेक्ष हैं, उनको मेरे परमानन्दस्वरूपकी प्राप्तिसे सुख मिल रहा है, वह सुख विषयोंमें लगे पुरुषोंको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो भक्तोको सुख है वह विषयी पुरुषोंको कहां ? ॥ १२ ॥ जो अकिंचन

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदंति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ १० ॥ केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥ आद्यंतवंत एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥ दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानंदाः शुचार्पिताः ॥ ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनः सौम्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥ मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२॥ अकिंचनस्य दांतस्य शांतस्य समचेतसः ॥ मया संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥ न पारमेष्ठ्यं न महेंद्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥ १४॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ॥ न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शनम् ॥ अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥ निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः शांता महांतोऽखिलजीववत्सलाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषंति यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥

दांत समचित्त वैसेही संतुष्ट मन हैं, उनको सब दिशायेंभी सुखरूप हैं ॥१३॥ जिन्होंने मुझमें आत्मा समर्पण करदिया है, उनको मेरे अतिरिक्त और किसी वस्तुकी चाहना नहीं है एक मैंहीं उन्हें प्रिय हूं, अधिक क्या कहें ब्रह्मलोक, इन्द्रका संपूर्ण राज्य, भूमिका राज्य, पातालका राज्य, अणिमा महिमादिक योग सिद्धि मोक्षतककी भी उनको चाहना नहीं है ॥ १४ ॥ इसलिये भक्तोंके समान मुझे कोई प्यारा नहीं, हे उद्धव ! अब मैं तेरे आगे अधिक क्या कहूं मेरा आत्मा भी मुझे प्रिय नहीं. हे उद्धव ! जैसे तुम मुझे प्यारे हो, वैसे मेरा पुत्र, ब्रह्मा, महादेव, संकर्षण और लक्ष्मीजी भी मुझे प्यारी नहीं हैं, यह अतिसंतोषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥१६॥ उत्तम भक्तोंकी तो कथाही क्या है, जो समान्य भी मेरे

भक्त हैं वह भी कृतार्थ हैं और जो मेरे भक्त विषयोंसे पीडित अजितेन्द्रिय हैं, उनको भी दृढ़भक्ति होनेके कारण विषय पराभव नहीं कर सक्ते ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जिसप्रकार प्रचण्ड अग्नि काष्ठको भस्म कर देतीहै, इसीप्रकार मेरी दृढ़भक्ति सब पापोंका नाश करदेतीहै ॥ १९ ॥ इससे भक्तिविना और कोई उपाय नहीं है, हे उद्धव ! योग, सांख्य, धर्म, पाठ, तप, त्याग, यह कोई मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते हैं जैसी एक दृढ़ भक्ति मुझे वश कर लेती है ॥२०॥ भक्तोंको प्रिय आत्मा रूपमें श्रद्धासे उत्पन्न हुई भक्तिसेही महात्माओंके वश होजाताहूं, यदि मेरी भक्ति, चाण्डाल

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेंद्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥ यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥ भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥ भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भक्त्याऽपेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ॥ विनानंदाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाऽऽशयः ॥ २३ ॥ वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥ विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥

भी करै तो उसके जाति दोष पवित्र होजाते हैं ❋ ॥२१॥ इसपर एक दृष्टान्त है सत्य और दयासंयुक्त धर्म और तपसे संयुक्त विद्या भी उस पुरुषको पवित्र नहीं कर सक्ती, जिसके चित्तमें मेरी भक्ति नहीं ॥२२॥ जिसके रोमांच न हो, द्रवीभूत चित्त न हो, आनंदके आंशू न चलें, उसकी भक्ति कैसे जानी जाय ? और भक्ति विना हृदय कैसे शुद्ध हो ? ॥२३॥ अब भक्तिका लक्षण कहते हैं, जिसकी वाणी गद्गद हो चित्त द्रवीभूत कोमल हो नेत्रोंसे

* दृष्टान्त—एक तिलोक सुनार बडे साधुसेवी थे जो कुछ वस्तु प्राप्त होती, सब साधुओंमें व्यय करदेते थे, एक समय राजाके यहाँसे कुछ आभूषण बनानेको आये, सो इनके यहाँ बहुत साधू आगये, इन्होंने उस राजाके द्रव्यकी भोजनसामग्री मँगाकर साधुओंको खिलादी और आप टालबाल करते रहे, जब राजाके यहाँ व्याहका दिन आया तो यह जंगलको भाग गये, भगवान्ने भक्तकी रक्षा करी और तिलोकका रूप बना गहना लेकर राजाके घर गये वहाँसे अच्छे आभूषण बनानेके कारण पुरस्कार पाया और गहना लिया भगवान् वह पुरस्कारका द्रव्य तिलोकके घर दे जंगलमें जाकर उससे कहने लगे कि, घरको जा, राजाने बहुत द्रव्य दिया है, तिलोक सुनतेही घर आय अत्यन्त प्रसन्नहुए सो ईश्वरके भक्त कभी नष्ट नहीं होते ।

वारंवार आंशू बहैं कभी हँसे, कभी लज्जा छोड़ उच्चस्वरसे गावे, नाचे इस प्रकार जो मेरी भक्तिसे युक्त हो, वही लोकोंको पवित्र करता है ॥२४॥ जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेसे श्यामता छोड़ निर्मल हो अपने रूपको प्राप्त होता है, वैसेही यह आत्मा मेरे भक्तियोगसे कर्म वासना त्यागकर मेरेही स्वरूपको प्राप्त होता है॥२५॥ज्ञान विना अविद्या नहीं जाती, अविद्याके गये विना तुम नहीं मिलते, इसप्रकार कहते हैं कि; यह पुरुष जैसे जैसे मेरी पुण्य कथा श्रावण कीर्त्तन करते हैं वैसेही वैसे शुद्ध चित्त होतेहैं, नेत्र जैसे जैसे अंजनसे सूक्ष्म होते हैं, वैसेही वैसे सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आते हैं ॥ ॥ २६ ॥ यद्यपि विषयके ध्यानमें मन विषयमें रहता है, परन्तु तो भी मेरा ध्यान करनेसे शुद्ध चित्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाता है, क्योंकि

यथाऽग्निना हेममलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम् ॥ आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ २५ ॥ यथायथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथातथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवांजनसंप्रयुक्तम् ॥ २६ ॥ विषयान्ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥ तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथान् ॥ हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥ स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ॥ क्षेमे विविक्त आसीनश्चिंतयेन्मामतंद्रितः ॥ २९ ॥ न तथाऽस्य भवेत्क्लेशो बंधश्चान्यप्रसंगतः ॥ योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३० ॥ उद्धव उवाच ॥ यथा त्वामरविंदाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ॥ ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

मेरी भक्ति विना ज्ञान नहीं होता और मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होनी वही ज्ञान है ॥ २७ ॥ हे उद्धव ! इसलिये स्वप्न मनोरथके समान मिथ्यावस्तुका ध्यान छोड़ मेरी भावनासे चित्त शुद्ध कर मेरे स्वरूपमें रक्खे ॥ २८ ॥ स्त्रियोंका संग और स्त्रियोंके संगियोंका संग दूरसे छोड़ आत्माको जान, धीर हो, एकान्तमें बैठ परमकल्याणरूप मेरा चिंतवन करै ॥ २९ ॥ क्योंकि जैसा स्त्रियोंके संगसे और स्त्रियोंके संगियोंके संगसे इसे क्लेश बंध होता है, ऐसा औरके संगसे नहीं होताहै ॥ ३० ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कमलनयन ! जो मोक्ष चाहै, वह तुम्हारा ध्यान किसप्रकार करै किस

स्वरूपका करै ? यह मुझसे कहो क्योंकि मैं तो आपके दासभावके पुरुषार्थको प्राप्त होचुकाहूं ❋ ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! समान आसनपर बैठ अपनी देह समरख जैसे सुखहो वैसेही बैठ, अपने दोनों हाथ गोदपर रक्खै नासिकाके अग्रपर दृष्टि रक्खै ॥ ३२ ॥ इसप्रकार बैठ प्राणके मार्ग पूरक, कुंभक, रेचक, करके शुद्ध हो, जितेन्द्रिय हो शनैः शनैः प्राणायामका अभ्यास कर रेचक, पूरक, कुंभक, क्रमसे अभ्यास करै ॥ ३३ ॥ प्राणायाम दो प्रकारका है, एक तो प्रणवसहित प्राणसे प्रगट करके ॐकारमें घंटेके शब्दके समान उदात्त नाद स्थित करै ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ॥ हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुंभकरेचकैः ॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेंद्रियः ॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घंटानादं बिसोर्णवत् ॥ प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥ ३४ ॥ एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ॥ दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥ ३५ ॥ हृत्पुंडरीकमंतःस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥

इसप्रकार प्रणवसंयुक्त प्राणके अभ्याससे प्रगट करै और प्रणवमें घटाना, बढाना, साधनका, स्थित अभ्यास करै, दश प्राणायाम तीनों काल करै, इसप्रकार अभ्यास करनेसे एक महीनेमें प्रणवायु वशमें होजाता है ॥ ३५ ॥ इसदेहके भीतर हृदयकमल अधोमुख है, उसकी दंडी ऊपर रहती है, जैसे केलेकी फली होती हैं, ऐसेही कमलकी कली होती है, उसका ध्यान ऐसा करै कि, वह नीचे नालवाला और ऊपर मुखवाला खिलाहुआ

❋ शंका–श्रीकृष्णसे उद्धवने बूझा कि,मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीजन भगवान्का ध्यान कैसे करते हैं? तब श्रीकृष्णने उद्धवकी बातको त्यागकर सगुणरूपका वर्णन किया इसका क्या कारण? उत्तर–श्रीकृष्णचन्द्रने विचार किया कि, ब्रह्मका ध्यान मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीराज करते हैं, सो ध्यान सुननेसे और कहनेसे प्राप्त नहीं होता वह ध्यान तो बहुत दिनोंतक सत्सग करनेसे प्राप्त होता और उद्धवका हृदय ज्ञानमें कच्चा है और हमारी इच्छा परमधामके जानेकी है, जो कुछ अधिक दिन हमको मर्त्यलोकमें रहना होता तो भी उद्धव ब्रह्मज्ञान जाननेमें पका होजाता, ऐसा विचार करके सगुणका ध्यान वर्णन किया कि, धीरे धीरे सगुणका ध्यान करते करते ब्रह्मके ध्यानको उद्धव प्राप्त होजाँयगे, इसलिये ब्रह्मके ध्यानको त्यागकर सगुणका ध्यान श्रीकृष्णचन्द्रने वर्णन किया ।

आठ पखुरीसे युक्त है कर्णिकासहित मनमें चिंतवन करे ॥ ३६ ॥ उस कमलकी कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं, उस अग्निमें मेरे इस रूपका क्रमसे ध्यान करे उसमें प्रथम अग्निके बीचमें वक्ष्यमाण ध्यानके मंगलरूप विषय मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सम अति शान्त सुन्दर मुख दीर्घ सुन्दर चार भुजा धारण करे अतिसुन्दर ग्रीवा, उत्तम गोल कपोल, अति उज्वल मंद मुसकान युक्त ॥ ३८ ॥ समान कानोंमें प्रकाशमान मकराकृत कुण्डल धारण किये पीताम्बर पहरे मेघकी भाँति श्याम सुन्दर श्रीवत्स संयुक्त लक्ष्मीको वक्षस्थलमें धरे ॥ ३९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमालासे भूषित नूपुरोंसे शोभित चरण कमल कौस्तुभ मणिकी कांतिसे सयुक्त ॥ ४० ॥ प्रभावसे दीप्त मुकुट, कंकण,

कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ॥ वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमंगलम् ॥ ३७ ॥ समं प्रशांतं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ॥ सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ हेमांबरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभ प्रभया युतम् ॥ ४० ॥द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदाऽऽयुतम् ॥ सर्वांगसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥४१॥ सुकुमारम भिध्यायेत्सर्वांगेषु मनो दधत् ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ॥ बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिंतयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥ ४३ ॥ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ ४४ ॥

कटिमेखला, बाजूबंद धरे सर्वांगसुन्दर और मनोहर प्रसन्नताके कारण अतिसुन्दर शोभित मुख और नेत्र अति सुकुमार रूपका ध्यान करे, सब अंगोंमें मन दे ॥ ४१ ॥ प्रथम इन्द्रियोंको विषयोंसे खैंच मनमें मिलावै, मनको बुद्धि सारथीसे विषयोंसे निकाल मेरे स्वरूपमें मिलावै ॥ ॥ ४२ ॥ यह चित्त सर्वत्र व्याप्त है, अंग अंगमें फिरता है, उसको उन अंगोंसे निकाल मेरे मुखकी भावनामें रक्खै, मंदहास्य संयुक्त मेरे मुखका बहुत काल तक चिंतवन करै और कुछ मनमें न धरै ॥ ४३ ॥ जब मुखमें मन स्थिर होजाय, तब मुखसे भी खैंचकर सबके मूलभूत साक्षात् मेरे

स्वरूपमें रक्खे, उसे वहाँसे छुडाय साक्षात् शुद्ध ब्रह्मरूप मेरे संपूर्ण स्वरूपमें संलग्न होय, तब और कोई चिंतवन न करे ॥ ४४ ॥ इसप्रकार समाधिमें दृढ मति हो, अपने आत्मामें आत्मरूप मुझे ही देखे, जैसे ज्योतिमें ज्योति मिलजाती है, उसी प्रकार सर्वात्मरूपमें अपने आत्माको मिला देखे ॥ ४५ ॥ इसप्रकार सुदृढ तीक्ष्ण ध्यानसे योगीजन मुझमें मन संयुक्त करें, तब वह द्रव्य ज्ञान क्रियारूप भ्रम शीघ्रही निवृत्त होनेसे शान्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा–प्रथम धारणा अनुसरण, करत विष्णुपद प्रेम ॥ विघ्नरूप सिद्धी सकल, समझ यही दृढ नेम ॥१॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! जो जितेन्द्रिय हो और श्वास जीते चित्त मुझमें रखता हो, योगी हो, स्थिर चित्त हो, उसे यह सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥ तब उद्धवजी बोले कि हे श्रीकृष्ण! कैसी धारणासे यह

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ॥ विचष्टे मयि सर्वात्मञ्ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युंजतो योगिनो मनः ॥ संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥४६॥ इति श्रीमद्भागवते म० एकादशस्कंधे भक्तिध्यानयोर्वर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जितेंद्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठंति सिद्धयः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ कया धारणया कास्वित्कथं वा सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिंद्रियैः ॥ प्राकाश्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥

सिद्धि प्राप्त होती है और सिद्धि कितनी हैं? इनका रूप क्या है? सो सब मुझसे कहो क्योंकि, तुम योगियोंको भी सिद्धियोंके देनेवाले हो ॥ २ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव! धारणा और योगके पारंगतों ने अठारह (१८) सिद्धि कही हैं, उनमें आठ मेरे आश्रय रहती हैं, वह मुझे ही प्राप्त होती हैं, अथवा जो मेरे सारूप्यको प्राप्त हैं उन्हें होती हैं, परन्तु कुछेक न्यून हो और दश सिद्धि गुणोंका कार्य हैं, सतोगुणका उत्कर्ष बढ़ातीहैं ॥ ३ ॥ उनको कहते हैं, अणिमा, महिमा, लघिमा, यह तीनों देहकी सिद्धि हैं प्राप्ति सिद्धि इंद्रियकी हैं इंद्रियोंसे मिल इंद्रियोंके देवताओंका संग होना, परलोक और इस लोकके विषयोंके भोग देखनेकी सामर्थ्य, तथा भूमिके गुप्त पदार्थका ज्ञान होना प्रकाश्य सिद्धि है ईश्वरमें मायाकी

और दूसरोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेकी सामर्थ्यको ईशिता सिद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥ गुणमें असंग हो, विषय भोग करे और संग दोष न लगे; उसे वशिता सिद्धि कहते हैं और जिसकी कामना करें वही प्राप्त हो उसे प्राकाम्य सिद्धि कहते हैं, हे उद्धव ! यह आठ सिद्धियें मेरे आश्रय रहती हैं ॥५॥ क्षुधा पिपासादिक शरीरमें न व्यापै, उसको अनूर्मिमत्व सिद्धि कहते हैं (१) दूरकी सब बातें सुननेमें भले प्रकार आवें, इसका नाम दूरश्रवण सिद्धि है (२) दूरके सब पदार्थ और सर्वत्र स्थान घर बैठे दीखें, उसका नाम दूर दर्शन सिद्धि है (३) जहाँ मन जाय वहॉ देह सहित पहुँचना इसका नाम मनोजव सिद्धिहै (४) जैसा रूप बनाना चाहै उसीप्रकारका रूप होजाय. इसका नाम कामरूप सिद्धि है (५) दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना इसका नाम परकाय प्रवेशन सिद्धि है (६) ॥ ६ ॥ अपनी इच्छानुसार मरना, इसका नाम स्वच्छन्द मृत्यु सिद्धि है (७)

गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् ॥ मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥६॥ स्वच्छंदमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम्॥यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः॥७॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वंद्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टंभोऽपराजयः॥८॥

देवता अप्सराओंके साथ क्रीडा करतेहैं उनको देखनेकी सामर्थ्य इसका नाम देवानांसह क्रीडानुदर्शन सिद्धिहै (८) जो मनमें इच्छा हो, वही वस्तु तत्काल प्राप्तहो, इसका नाम यथासंकल्पसे सिद्धिहै (९) किसी स्थलमें आशाका भंग न हो इसका नाम अप्रतिहताज्ञा सिद्धि है (१०) यह दशसिद्धि सत्त्वगुणकी वृद्धिसे मिलती हैं ॥ ७ ॥ पांच सिद्धि तुच्छ हैं सो कहते हैं, तीन कालका ज्ञान होना, इसका नाम त्रिकालज्ञ सिद्धि है (१) शीत उष्ण कुछ न लगना, इसका नाम अद्वन्द्व सिद्धिहै (२) पराये मनकी बात जानलेना इसका नाम प्रचिताद्यभिज्ञता सिद्धिहै (३) अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिसे देहको किसीप्रकारकी हानि न हो, इसका नाम प्रतिष्टंभ सिद्धिहै (४) और कहीं पराजय न हो, इसका नाम अपराजय सिद्धिहै (५) यह पॉच क्षुद्रसिद्धि हैं ❋ ॥ ८ ॥

शंका—अग्नि, सूर्य, विष, जल, इत्यादि और बडे २पदार्थोंका तेज रोकनेके लिये श्रीकृष्णने सिद्धियें वर्णनकी हैं, ऐसीं सिद्धियोंसे योगीजन अग्नि, सूर्य, विष, -जल, इन सबके सम्पूर्ण तेजको रोक लेतेहैं. इसमें यह शकाहै कि, भगवान् वासुदेवमें जिन योगीश्वरोंका मन लगा है उनको इन सब पदार्थोंके रोकनेसे क्या प्रयोजन ?

हे उद्धव ! यह सब योगधारणाकी सिद्धि मात्र कहीं अब ज्ञान धारणासे सिद्धि जो प्राप्त होती हैं, वह मैं आपके सामने वर्णन करता हूँ सो सुनो ॥ ॥ ९ ॥ सूक्ष्म मेरे रूपमें सूक्ष्म भूत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, सूक्ष्म तन्मात्राके आकारसे इस भूत सूक्ष्म उपाधिमान मेरे स्वरूपमें धारण करनेसे सूक्ष्मरूपका उपासक पुरुष अणिमा सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ ज्ञानशक्ति महत्तत्त्वरूपमें महत्तत्त्वरूप मनमें धारणकरै तो महिमा सिद्धिको प्राप्तहो और भिन्न २ आकाशादिक भूतोंहीके रूपमें मन लगावै तो भूतोंकी महिमा सिद्धिको प्राप्तहो ॥ ११ ॥ पंचभूतोंके परमाणु

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥९॥ भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ॥ अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥ महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ॥ महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक्पृथक् ॥११॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रंजयन् ॥ कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेंद्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥ महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ॥ प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विंदतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥

अतिसूक्ष्म हैं, सो मेरा रूप है, उसमें चित्त अनुरक्त करै, तब योगी परमाणु कालके रूपको प्राप्त होता है; इसीका नाम लघिमा सिद्धि है ॥ १२ ॥ सात्त्विक अहंकार तत्त्वरूप मुझमें एकाग्रमन धरे तो सब इन्द्रियोंका अधिष्ठाता होवे, मुझमेंही मन लगानेके प्रभावसे यह प्राप्तिसिद्धि प्राप्त होतीहै ॥ १३ ॥ प्रकृतिसे क्रियाशक्ति रूप महत्त्व होयहै; सो रूपहै, उसमें मन लगावै, तो सबसे उत्तम प्राकाम्य सिद्धिको प्राप्त हो ॥ १४ ॥

—उत्तर—योगशास्त्रके जाननेवाले मुनिजन दो प्रकारके योगी होते हैं, एक तो गृहस्थ योगी जो घरमें बैठे २ योग करते हैं, जैसे राजा जनक दूसरे विरक्त योगी जो घर त्यागकर योग करते हैं, जैसे भूतनाथ शिव । आठ सिद्धि भी आदिसे चली आती हैं, श्रीकृष्णने गृहस्थ योगियोंके लिये इन सिद्धियोंको कहाया अग्नि, सूर्य, विष, जलका तेज रोकनेके लिये नहीं कहा जो कोई कहै कि, ऐसा भेद नहीं कहा कि, गृहस्थ, योगियोंके लिये यह सिद्धि तो ठीक हैं, भगवान्को वैकुण्ठके जानेकी इच्छाथी इसलिये आतुरतासे योगियोंका नेम नहीं किया ॥

त्रिगुण मायाके नियंता अंतर्यामी कालरूपी व्यापक मेरे स्वरूपमें मन लगावै तौ सब जीव और चर अचर शरीरका नियंता होवे, सो ईशिता सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ विराट् हिरण्यगर्भ और कारणसे चौथे तुरीय ब्रह्म भगवान् नारायणमें जो मन लगावे तो वह योगी मेरे धर्मको प्राप्त होवे, तब वशिता सिद्धिको पावै ॥ १६ ॥ निर्गुण ब्रह्ममें निर्मलमन रखै तो परमानन्दको प्राप्तहो, जहाँ सब कामना समाप्त होती हैं ॥ १७॥ अब गुणहेतु सिद्धि कहते हैं–कि, श्वेतद्वीपके पति शुद्ध धर्ममय मेरे रूपमें मन लगावे तो मनुष्य शुद्धताको प्राप्त हो और उसे क्षुधा पिपासा आदि यह छः ऊर्मी–लहरी नहीं व्यापतीं ॥१८ ॥ आकाश रूप प्राण है, सो मेरा स्वरूप है, उसमें मन लगाकर शब्दका चिंतवन करे तब वह आका

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन्विशदं मनः ॥ परमानंदमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयञ्छ्वेततां याति षडूर्मिरहितो नरः ॥ १८॥ मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ॥ तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥ चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणाऽनुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥२१ ॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ॥ तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ॥ पिंडं हित्वा विशेत्प्राणो वायुभूतः षडंघ्रिवत् ॥ २३ ॥

शमें भूतोंकी वाणी प्रगट दूरहीसे सुनता है ॥ १९ ॥ यह नेत्र सूर्यमें मिलावै मनसे मेरा ध्यान करै तब सूक्ष्म दृष्टि हो विश्वको दूरहीसे देखै ॥२०॥ मन वायुके संग देहको मुझमें संयुक्त करके जो मेरी धारणा करै तो इस धारणाके प्रतापसे जहाँ मन करै वहाँही देह चली जाय ॥ २१ ॥ जब मन मेरे विषे मनकी धारणासे धरै तब मेरे प्रभावसे जैसा रूप करना चाहै वैसाही रूप करै क्योंकि उन्हें मेरे योगबलका आश्रय है ॥ २२ ॥ जो सिद्धि पराई कायामें प्रवेश करना चाहै, सो आत्माका चिंतवन करै, तब अपनी देह छोड प्राणरूप हो बाहरकी वायुमें प्रविष्ट हो

वायुके संग परकायामें प्रविष्ट होते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पसे दूसरे पुष्पमें अनायास चले जाते हैं ॥ २३ ॥ अब स्वच्छंद मृत्युकी क्रिया कहते हैं, योगधारणा करते समय प्रथम ऍडीसे गुदाका द्वार दाबकर रोके, पीछे प्राणको हृदयमें ले आवै फिर हृदयमें वक्षःस्थलमें मिलावै इसके पीछे कण्ठमें ले आवै, माथेमें लावै तब ब्रह्मरंध्रद्वारा इस देहको छोडै और जिस स्थानमें जाना चाहे वहां जाय ॥ २४ ॥ और जो देवताओंके क्रीडा स्थलमें विहार करना चाहे तो मेरी सतोगुणरूपी मूर्त्तिका ध्यान करै तब सतोगुणके अंशसे वहांहीं विमान समेत देवांगना आनकर उपस्थित हो जाती हैं ॥२५ ॥ पुरुष मुझमें विश्वासकर बुद्धिसे मनोरथ करै, तब सत्यसंकल्परूप मेरे रूपमें मन संयुक्त करै तब वैसेही मनोरथको प्राप्तहो यथासंकल्प नाम सिद्धिको पाता है ॥ २६ ॥ मैं सबोंका ईश्वर और नियंताहूं, स्वतंत्र हूं मेरे भावको प्राप्त हुआ पुरुष कहीं प्रतिहत नहीं होता जैसे मेरी

पाष्णर्याऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकंठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरंध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥ विहरिष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ॥ विमानेनोपतिष्ठंति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥ यथा संकल्पयेद्बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ॥ मयि सत्ये मनो युंजंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्म मृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रांतचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥२९ ॥ मद्विभूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्सादिविभूषिताः ॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥

आज्ञा सब मानते हैं, वैसेही उसकी आज्ञाभी सब मानते हैं, कोई उल्लंघन नहीं करसकता, यह पुरुष सब गुण हेतु अप्रतिहताज्ञानाम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥२७॥ अब तुच्छ सिद्धि कहते हैं, मेरी भक्तिसे शुद्ध सत्त्वरूपमय होकर, योगी और त्रिकालके ज्ञाता ईश्वर इसप्रकार मेरी धारणा करै, तब जन्म, मृत्यु सहित तीनों कालका ज्ञान होय और इसीसे दूसरेके चित्तकी सब बात जानी जाती है ॥२८॥ मेरे योगसे जिसका चित्त युक्त हो उसकी देह भोगमय होय सो अग्निसे और अनेक उपाधिसे उपहत नहीं होते हैं, जैसे जलजंतुको जलबाधा नहीं करता, ऐसेही इसको कोई बाधा नहीं करसकता है ॥ २९ ॥ श्रीवत्स, अस्त्र, ध्वज, छत्र, चमरयुक्त मेरी विभूति अवतारका ध्यान करै, तो कभी इसकी पराजय न होय ॥३० ॥

इसप्रकार मेरी उपासना करे. तब मेरी योगधारणा करनेसे पहले कही हुई सब सिद्धि उसके आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं ॥३१॥ अनेक भाँतिकी धारणामें कष्ट बहुत हैं, इसकारण एकही धारण ऐसी करे कि, जिससे सब सिद्धि प्राप्तहों, सो कहते हैं, जितेन्द्रिय होय दांत जित होय, श्वासजित् होय मनजित होय, तुरीय ब्रह्म नारायणस्वरूप जो मैंहूं मेरी धारणा धरनेवाले पुरुषको कौन सिद्धि दुर्लभ है ? । ॥ ३२ ॥ जो मेरे साक्षात् स्वरूपकी धारणा करते हैं, उनको मेरी प्रीति होनेके कारण यह सिद्धि विघ्नकरती हैं, इसलिये इन सिद्धियोंसे व्यर्थ काल न खोवे, अर्थात् इन सिद्धियोंकी चाहना न करे ॥३३॥ एक सिद्धि जन्महीसे होतीहै जैसे देवताओंका सिद्धिसहितही जन्म होताहै, सहितही सिद्धिहैं; एक मंत्रसे, औषधीसे, तपसे जितनी सिद्धि होती हैं, यह सब योगसे पाते हैं परन्तु इनसे स.लोक्यादिक मुक्तिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ इसलिये हे उद्धव ! सब सिद्धियोंका

उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः ॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठंत्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जितेंद्रियस्य दांतस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ॥ मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अंतरायान्वदंत्येता युंजतो योगमुत्तमम् ॥ मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमंत्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ॥ योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्मांतरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥ यथा भूतानि भूतेषु बहिरंतः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥ इति श्रीम० म० एकादशस्कंधेऽष्टादशसिद्धिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यंतमपावृतम् ॥ सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

एक मैंही प्रभु हूँ क्योंकि उनकी उत्पत्ति और पालन में हीं करताहूं सिद्धियोंहीका प्रभु मैं नहीं हूं किन्तु मैं मोक्ष, सांख्य, ज्ञान, धर्म और ब्रह्मके जाननेवालोंका पालक हूँ इसलिये सिद्धियोंकी अपेक्षा नहीं रखकर मुझको प्राप्त होना यही योगका प्रधान फल है ॥ ३५ ॥ मैं सब जीवोंका आत्मा हूं क्योंकि मैं सबका अंतर्यामी हूं सर्वत्र व्यापक हूं जैसे भूतोंमें महाभूत सर्वत्र व्याप्त है और आवरणरहित है ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा—इस सोलह अध्यामें, ज्ञान प्रभाव विचार ॥ वह विभूति वर्णन करौं, देत सदा फल चार ॥१॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! तुम साक्षात् परब्रह्म निरावरण तथा स्वतंत्र हो जिनमें सब भूतमात्रकी

उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और जीवन होताहै ऐसे तुम सबके कारण हो; आदि अंतसे रहित हो ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जो वेदके तत्त्वको जानते हैं सो सर्वत्र ऊँचे नीचे पदार्थोंमें कारणरूप तुमको जान तुम्हारी उपासना करते हैं ❀ ॥ २ ॥ जो आत्मतत्त्वको नहीं जानते हैं, उनके जाननेमें तुम नहीं आते और जिन जिन भावनाविषे ऋषीश्वर भक्ति करके तुम्हारी उपासना करके सिद्धिको प्राप्त होतेहैं, सो मुझसे उन पदार्थोंके नाम कहो ॥ ३ ॥ सब प्राणियोंके मध्यमें गुप्त तुम अंतर्यामी हो, प्राणियोंका कार्य कारण समर्थके दाता तुम्हें सब भूत तुम्हारी मायासे मोहित होकर नहीं देखते हैं ॥ ४॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः॥ उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥ येषुयेषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ॥ उपासीनाः प्रपद्यंते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥ ३ ॥ गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ॥ न त्वां पश्यंति भूतानि पश्यंतं मोहितानि ते ॥ ४ ॥ याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूतेः ॥ ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदांघ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदांवर ॥ युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

जिनमें गुप्त रहतेहो, उन विभूतियोंको पूछते हैं, हे महाविभूतियोंके पति ! जो तुम्हारी विभूति भूमिसे स्वर्ग, पाताल, दिशाओंमें निश्चय करी हैं और जो विभूति तुम्हारे प्रतापसंयुक्त हैं, सो मुझसे कहो, तुम्हारे तीर्थरूप चरणारविन्दोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसीप्रकार उद्धवका प्रश्न सुन अति संतुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे प्रश्नके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ! इसीभाँति शत्रुओंसे

* शंका—भक्तोंके प्यारे भगवान्की पूजन करै, भजन करै ध्यान करे और भगवान्की सेवा है. सो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सबको लिखा है, ऐसा नहीं लिखा है कि, ब्राह्मण अकेला भगवान्का पूजन करै, हे ब्राह्मणोंमें उत्तम कुलभूषण ! तो फिर श्रीकृष्णसे क्यों उद्धवजीने कही कि, हे भगवन् ! जिस विधिसे ब्राह्मण अपने आपको पूजन करते हैं सो विधि कहो हमको यह बडी भारी शका है क्योंकि वेदकी विधिके पूजनमे तो एक विधि है,और शूद्रकी अलग है और भक्तिमार्गमें सबकी एक विधि है सो उद्धव परमभक्त थे भक्तिमार्गकी पूजाका वृत्तान्त बूझा था ॥

उत्तर—उद्धवने ब्राह्मणके शापसे यदुवंशियोंकी क्षय देखकर ब्राह्मणोंने भगवान्को माना क्योंकि श्रीकृष्णके देखते ब्राह्मणोंके शापसे यादवोंका नाश होगया, श्रीकृष्णने कुछ सहाय नहीं की इस वास्ते उद्धवजीने जाना कि ब्राह्मणोंके ऊपर भगवान्का कुछ भी वश नहीं चलता ।

युद्धकरनेकी इच्छावाले अर्जुनने युद्धके समय कुरुक्षेत्रमें प्रश्न कियाथा ॥ ६ ॥ यदि कोई कहे कि, युद्धके समयमें इन प्रश्नका क्या प्रसंगथा, तो इसका उत्तर यह है कि, राज्यके लिये अपने जातिवालोका वध करना अनुचित अतिनिन्दित और अधर्मरूप जानकर कि, मैं इन्हें मारूंगा, यह मरेंगे इससे करुणा व्याप्त बुद्धि होनेसे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन युद्ध करनेसे निवृत्त हो स्थित हुआ ॥ ७ ॥ तब मैंने युक्तिसे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनको समझाया कि, कौन मारताहै ? और कौन मृत्युको प्राप्त होताहै ? उस उपदेशके प्रसंगमें उसने भी इसीप्रकार मुझसे पूँछाथा जैसे अभी तुमने पूँछा और उससे जो मैंने वर्णन किया है, वही मैं तुमसे कहताहूं ॥८॥ सो तुम सुनो हे उद्धव ! इन सब प्राणीमात्रका आत्मा मैं हूं, सुहृद ईश्वर नियंता मैं हूं और सब

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ॥ ततो निवृत्तो हंताऽहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७ ॥ स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥ अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥ अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ॥ गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥ गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भो वेदानां मंत्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छंदसामहम् ॥ १२ ॥ इंद्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ॥ आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ॥ देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥

प्राणिमात्रमें भी मैं हूं, सबकी उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयकर्त्ता भी मैंही हूं ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी जो गति चलती फिरती है, उनका भी योग, मन और कर्म मैंहीं हूं, जो सबको वशमें करते हैं, उनमें मेरा रूप है, अनंत गुण हैं, तिनमें समता गुण मेरा रूप है, गुण संयुक्त पुरुषका स्वाभाविक गुण मैं हूं ॥ १० ॥ गुणवाले पदार्थोंमें क्रियाशक्ति प्रधान जो महत्तत्त्व है, वह मैंही हूं, सूक्ष्मोंमें प्रथम जीव मैं हूं दुर्जयोंमें मन मैं हूं ॥ ११ ॥ देवोंका अध्यापक मैं हूं, मंत्रोंमें प्रणव मैं हूं, अक्षरोंमें अकार मैं हूं, छंदोंमें गायत्री मैं हूं ॥ १२ ॥ सब देवताओमें इन्द्र मैं हूं, आदित्योंमें विष्णु मैं हूं रुद्रोंमें नीललोहित मैं हूं ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षियोंमें भृगु मैं हूं देवर्षियोंमें नारद मैं हूं, राजऋषियोंमें मनु मैं हूं गायोंमें कामधेनु मैं हूं ॥ १४ ॥

सिद्धेश्वरोंमें कपिलदेव मैंहूं पक्षियोंमें गरुड मैंहूं प्रजापतियोंमें दक्षप्रजापति मैंहूं, पितरोंमें अर्यमा मैंहू ॥ १५ ॥ हे उद्धव ! दैत्योंमें दैत्योंका राजा प्रह्लाद मैंहूं, नक्षत्र ओषधियोंका पति प्रभु चंद्रमा मैंहूँ यक्ष राक्षसोंका प्रभु कुबेर मैंहूं॥१६॥गजेन्द्रोंमें ऐरावत मैंहूं,जलजंतुओंमें प्रभु वरुण मैंहूं, प्रतापवानोंमें और दीप्तवंतोंमें सूर्य मैंहूं, मनुष्योंमें नराधिप मैंहूं ॥ १७ ॥ घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा मैंहूं, धातुओंमें सुवर्ण मैंहू दण्डकर्त्ताओंमें यम मैं हूं, सर्पोंमें वासुकी मैंहूं ॥१८॥ नागेन्द्रोंमें अनंत शेषनाग मैंहूं, सींग तथा दाढवालोंमें सिंह मैंहूं, आश्रमोंमें संन्यास मैंहूं हे निष्पाप ! वर्णोंमें ब्राह्मण मैंहूं ॥ १९ ॥ तीर्थ

सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम्॥प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा॥१५॥मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लाद मसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥ ऐरावतं गजेंद्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ॥ तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥ उच्चैःश्रवास्तुरंगाणां धातूनामस्मि कांचनम् ॥ यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥ नागेंद्राणामनंतोऽहं मृगेंद्रः शृंगिदंष्ट्रिणाम् ॥ आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥ तीर्थानां स्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥ धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ औषधीनामहं यवः ॥२१ ॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ॥ स्कंदोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ॥ वाय्वग्न्यर्का म्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मंत्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥

और प्रवाहोंमें गंगारूप मैंहूं. स्थिर जलोंमें समुद्र मैंहूं,आयुधोंमें धनुषमैंहूं, धनुषधारियोंमें त्रिपुरका घाती महारुद्र मैंहूं निवासस्थानमें सुमेरु मैं हूं, दुर्गमस्थलोमें हिमालय मैंहूं वनस्पतियोंमें अश्वत्थ मैंहूं, औषधियोंमें यव मेरा रूपहै ॥२०॥२१॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ मैंहूं वेदार्थज्ञाताओंमें बृहस्पति मैंहूं, सेनापतियोंमें स्वामिकार्तिक मैंहूं उत्तम मार्ग प्रवृत्तियोंमें ब्रह्मा मैंहूं ॥२२॥ यज्ञमें ब्रह्मयज्ञमैंहूं, व्रतमें हिंसारहित व्रत मैंहूं,शोधकोंमें वायु,अग्नि, सूर्य, जल, वाणी,रूप शोधक मैं हूं, यह सदा पवित्रकारीहैं ॥ २३ ॥ योगीजनोंमें समाधि मैं हूं, विजयकी इच्छावालोंका जो विचारहै वह मैं हूं

विवेकियोंमें आत्मा, अनात्माके विवेककारी विद्या मेरा रूपहै, पांच प्रकारके जो व्याख्यादि वादी हैं, वह यह हैं, अख्याति, अन्यथाख्याति, शून्यथाख्याति असत ख्याति और अनीर्वचनीय ख्याति इनमें अनेक प्रकार वादविवाद करनेवालोंका यह इसप्रकारके हैं, वह उस प्रकारके हैं, इस रीतिके जो अनेक विकल्प हैं, वह मैंहूं॥२४॥ स्त्रियोंमें शतरूपा मैंहूं, पुरुषोंमें स्वायंभुवमनु मैंहूं, मुनियोंमें नारायण मुनि मैंहूं ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैं हूं ॥२५॥ धर्मोंमें अभयदान मेराही रूप है, निर्भय स्थानोंमें आत्मनिष्ठा मैंहूं अति रहस्योंमें प्रियवचन और मौन मैंहूं, मिथुन अर्थात स्त्री पुरुषोंमें ब्रह्मा मैं हूं, जिनके दो अर्द्धभागोंसे स्त्री और पुरुष प्रगट हुए हैं ॥२६॥ जो पुरुष धर्ममें सावधान हैं, उनका संवत्सररूपी काल मैंहूं, ऋतुओंमें वसंत मैंहूं, महीनोंमें मार्ग

स्त्रीणां तु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ॥ नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम्॥२५॥धर्माणामस्मि संन्यासः
क्षेमाणामवहिर्मतिः ॥ गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥२६॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवो ॥ मा
सानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाऽभिजित् ॥२७॥ अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ॥ द्वैपायनोऽस्मि व्यासा
नां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ॥ किंपुरुषाणां हनुमान्विद्याध्राणां सु
दर्शनः ॥ २९ ॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ॥ कुशोस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविष्ष्वहम् ॥३०॥
व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ॥ तितिक्षाऽस्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजः सहो
बलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वताम् ॥ सात्त्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परः ॥ ३२ ॥

शिर मैंहूं, और सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें अभिजित मैंहूं ॥२७॥ युगोंमें सतयुग मैंहूं, धीरोंमें असित देवल मैंहूं, वेदके विभाग कर्त्ताओंमें द्वैपायन व्यास मैंहूं, कवियोंमें शुक्राचार्य मैंहूं ॥२८॥ प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलयगति अगति विद्या अविद्याका जाननेवाला वासुदेव मैंहूं हे उद्धव ! वैष्णवोंमें तुम मेरे रूप हो, किंपुरुषोंमें हनुमान मैं हूं, विद्याधरोंमें सुदर्शन मैंहूं ॥२९॥ रत्नोंमें पद्मराग मैं हूं, अति सुन्दर वस्तुओंमें पद्मकोश मैंहूं, दर्भजातियोंमें कुश मैंहूं, घृतोंमें गौका घृत मैं हूं ॥३०॥ उद्यमी पुरुषोंमें लक्ष्मी मेरा रूपहै, धूर्त्तोंमें छल करके जो ग्रहण करना है, वह मेरा रूप है, क्षमावान् पुरुषोंमें क्षमा मैंहूं, सत्यवादियोंमें सत्य मैं हूं ॥३१॥ बलवानोंमें इन्द्रियबल और उछाहबल मैं हूं; भक्तोंमें भक्तिरूप कर्म मैं हूं, नौमूर्त्तिभक्तोंकी पूजाको प्रगट हैं

उन वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वाराह, नृसिंह, ब्रह्मामें आदि मूर्त्ति वासुदेव मैं हूं ॥ ३२ ॥ गंधर्वोंमें विश्वावसु मैं हूं, अप्सराओंमें पूर्वचित्ति मैंहूं, पर्वतोंमें स्थैर्य हिमालय मैं हूं ॥ ३३ ॥ जलोमें उत्तम माधुर्यरस मेराही रूपहै, तेजस्वियोंमें अग्नि मैं हूं, सूर्य चन्द्र और तारोंमें कांति मैंहूं, आकाशमें परानाम शब्द मैं हूं ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणके भक्तोंमें बलिराजा मैं हूं, वीरोमें अर्जुन मैं हूं, हे उद्धव ! निश्चय करके संपूर्ण भूतमात्रकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय मैं हूं ॥ ३५ ॥ चरण, वाणी, गुदा, हस्त, लिंग इन पांच कर्मेन्द्रियोंका गमन, वचन, मलत्याग, आनंद लेना यह कर्म मैं हूं, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, श्रवण, नासिका ज्ञानेन्द्रियोंके स्पर्श, चितवन, आस्वाद, सुनना, आघ्राण कर्म मैं हूं, उन उनके अर्थ ग्रहण करनेकी शक्ति भी मैं हूं ॥ ३६ ॥ विशेष कहकर अब सामान्यसे सब विभूति कहतेहैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच सूक्ष्म मात्राहैं, अहंकार महत्तत्त्व आदि यह सात प्रकृतिके विकार हैं पंच महाभूत और

विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गंधर्वाप्सरसामहम् ॥ भूधराणामहं स्थैर्यं गंधमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥ अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ॥ प्रभा सूर्येंदुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ॥ भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानंदस्पर्शलक्षणम् ॥ आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेंद्रियम् ॥ ३६ ॥ पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ॥ विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ ३७ ॥ अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ॥ मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ॥ सर्वात्मनाऽपि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ॥ न तथा मे विभूतीनां सृजतोंडानि कोटिशः ॥ ३९ ॥

एकादश इन्द्रिय यह सोलह तत्त्व हुए एक पुरुष और प्रकृति, दो यह हुए, इसप्रकार सब पचीस (२५) तत्त्व हुए, रजोगुण सत्त्वगुण, तमोगुण यह तीन गुण, इनसे आगे परब्रह्म सो सब मैंही हूं, इनकी संख्या, इनका लक्षण सहित ज्ञान और उसका फल तत्त्वका निश्चय सब मैंही हूं ॥ ३७ ॥ मैंही सबका ईश्वर हूं सब जीवरूप हूं, मैंही गुणीरूप हूं, मैंही क्षेत्ररूप और क्षेत्रज्ञरूप हूं, इसलिये मुझविना जीव, ईश्वर, गुण, गुणी, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ इत्यादिक भाव कहीं नहीं ॥ ३८ ॥ अहो ! तुम ऐसे संक्षेपसे क्या कहते हो अच्छी भाँति विस्तार सहित समझाकर कहो, तो इसका उत्तर यह देते हैं कि, पृथ्वीके परमाणुकी संख्या कितनेही कालमें मैं करताहूं और करके कहनेको भी समर्थ हूं परन्तु मेरी जो विभूतियें हैं उनकी

संख्या नहीं करीजाती, मैं अनेकु कोटि ब्राह्मण्डोंको सृजता हूं, जब ब्रह्माडोंकी ही संख्या नहीं तब उनमें स्थित मेरी विभूतियोंकी संख्या कौन करसक्ता है ? ॥ ३९ ॥ परन्तु तौभी संक्षेपसे विशेप कर विभूति कहताहूं कि, जहाँ जहाँ तेज, श्री, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, मान और नेत्रोंका आनंद, भाग्य, वीर्य, क्षमा, विज्ञान इत्यादि ये धर्म हैं, सो ये सब मेराही अंश हैं ॥ ४० ॥ ये विभूतियें संक्षेपसे मैंने इसलिये कहीं कि, ये मनका विकार हैं, परमार्थरूप नहीं जैसे आकाशके फूल, आदि वाणीमात्रसे कहीं हैं उनके तुल्य हैं ॥ ४१ ॥ पुरुषको उचित है कि, सतोगुणयुक्त बुद्धिसे वाणीको रोकै मनका नेम करै, प्राणोंको रोकै, इन्द्रियोंको निरोध करके बुद्धिको रोकै तब फिर संसारके मार्गमें न पडै ॥ ४२ ॥ यदि जो पुरुष इंद्रियोंका और बुद्धिका संयम नहीं करै तो दोष उपजै, सो कहते हैं, जो बुद्धिसे भली भाँति वाणी और मनका संयम नहीं करै तो उसके व्रत और ज्ञान सब

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ॥ वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्रयत्र स मेंशकः ॥ ४० ॥ एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ॥ मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेंद्रियाणि च ॥ आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः ॥ तस्य व्रतं तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटांबुवत् ॥ ४३ ॥ तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥ मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकाद० विभूतिव० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥ उद्धव उवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥

क्षीण होजाते हैं, जैसे कच्चे घडेका जल क्षण क्षणमें क्षीण होताहै ॥ ४३ ॥ इसलिये वचन, मन, प्राणको जीत मुझमें तत्पर हो, बुद्धि मेरे विषे युक्त करै, क्योंकि ऐसा करनेसे पुरुष कृत्यकृत्य होजाता है ॥ ४४ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा–इस सत्रह अध्यायमें, साधन भक्ति उपाय ॥ हंसरूप धर जो कही, सो वरणी यदुराय ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कमलदललोचन ! तुमने पहले कहदिया है कि, धर्मरूप कर्म भक्तिका और मोक्षका साधन है, परन्तु इसप्रकार कर्म करनेवालोंको अवश्य भक्ति मिलजाती है, ऐसा नियम देखनेमें नहीं आता, इसकारण वर्ण व आश्रमके आचारवालोंका तथा उस आचारके अधिकारसे रहित संपूर्ण

पुरुषोंका स्वधर्म वर्णन करो कि, वह धर्म जिस भाँति करनेसे पुरुषोंमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हो जाय सो श्रवण करनेकी इच्छा है तुम्हें अवश्य वर्णन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ हे प्रभो ! हे महाभुज ! हे श्रीमाधव ! पहले आपने हंसरूप धारणकर जो धर्म ब्रह्मजीसे कहा था वह परमसुखरूप निश्चय करके कहो ॥ ३ ॥ हे शत्रुनाशक ! बहुधा पहले सिखाया भी धर्म बहुत कालसे अब मनुष्यलोकमें न होगा ॥ ४ ॥ इस धर्मका वक्ता, कर्त्ता, रक्षक, तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा भूमिपर नहीं है, हे अच्युत ! हे प्रभो ! ब्रह्माजीकी सभामें भी तुम्हारे विना और नहीं जहाँ मूर्त्तिवंत वेदादिक हैं ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! सब धर्मके कार्यकर्त्ता, सब धर्मके वक्ता, रक्षक जब तुम इस पृथ्वीको छोड़ोगे, तब नष्टहुए धर्मोंको कौन कहेगा ?

यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ॥ स्वधर्मेणारविंदाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ॥ यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥ स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ॥ न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥ वक्ता कर्ताविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ॥ सभाया मपि वैरिंच्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥ कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन ॥ त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥ तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥ (श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सभृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान्हरिः ॥ प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान्) ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ॥ वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ८ ॥ आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ॥ कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ सो सब धर्मके ज्ञाता तुम हो इससे हे प्रभो ! तुम्हारी भक्ति जिस प्रकार करें; सो सब धर्म जैसे जिसका कर्त्तव्य है, वैसेही मुझसे कहो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! इसप्रकार भक्त उद्धवजीके पूछनेसे भगवान् हरि अतिसंतुष्ट हो मनुष्योंका मरणधर्म दूर करनेवाला सनातन धर्म कहनेलगे, श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! यह तुम्हारा प्रश्न धर्मरूप है और वर्णाश्रमोंके आचारवंत पुरुषोंको भक्ति आनंदकारी है, उसको मैं कहताहूं तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ८ ॥ पहले सतयुगमें मनुष्योंका वर्ण हंसरूप था, तब सब प्रजा जन्महीसे कृत्यकृत्य

थी, इसीसे कृतयुग नाम हुआ, और कर्म भी कुछ कर्त्तव्य था, सो कहते हैं,॥९॥ उससमय प्रणव ओंकारही वेद था,चारों पाँवोंसे वृषभरूप धारण करे धर्मरूप मैं था,यह यज्ञादिक कर्म नहीं हैं,एक तपस्यासेही इन्द्रियोंको स्थिरकर एकाग्रचित्तहो हंसरूप शुद्ध मेरा ध्यान करते थे ॥१०॥ हे महा भाग ! जब त्रेतायुग हुआ तब विराट् मेरे प्राणसे और हृदयसे वेदत्रयीविद्या प्रगट हुई, उससे होता, अध्वर्यु, उद्गाता, सहित त्रिरूप यज्ञ प्रगट हुआ, सो यज्ञ मेरा रूप है ॥११॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह चारों वर्ण विराट् स्वरूपके मुख, बाहु, जंघा और चरणोंसे प्रगट हुए, और भी जो जिसका स्वधर्म था सो प्रगट हुआ ॥१२॥ गृहस्थका तो आश्रम जंघासे प्रगट हुआ, ब्रह्मचर्य्यका धर्म हृदयसे हुआ, वानप्रस्थ वक्षस्थलसे हुआ, संन्यास

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ॥ उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्विषाः ॥ १० ॥ त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी ॥ विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ ११ ॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ॥ वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १२ ॥ गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ॥ वक्षःस्थानाद्वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १३ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ॥ आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥ १४ ॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ॥ मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १५ ॥ तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ॥ स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥ आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदंभो ब्रह्मसेवनम् ॥ अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ॥ तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥

मस्तकसे प्रगट हुआ ॥ १३ ॥ और सब वर्ण आश्रमके स्वभाव भिन्न हुए, जिसने नीचयोनिमें जन्म धारण किया, उसका स्वभाव नीच हुआ, जिसने उत्तम योनिमें जन्म लिया, उसका स्वभाव उत्तम हुआ ॥ १४ ॥ शम, दम, तप, शौच, संतोष, क्षमा, शुद्ध भाव, मेरी भक्ति, दया, सत्य, यह सब ब्राह्मणका स्वभाव है ॥ १५ ॥ तेज, बल, धैर्य, शौर्य्य, क्षमा, उदारता, उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्यता, ऐश्वर्य यह क्षत्रियोंका स्वभाव है ॥१६॥ आस्तिकता, दान, निर्दम्भ ब्राह्मणकी सेवा, द्रव्य संग्रहमें अतृप्ति यह वैश्यका स्वभाव है ॥ १७ ॥ गायोंकी ब्राह्मणोंकी और देवताओंकी

निष्कपट सेवा करै जिससे जो पावै उसीमें संतोष रक्खै, यह शूद्रका स्वभाव है ॥ १८ ॥ अशौच, मिथ्या वाणी, चोरी, नास्तिकता, वृथा कलह, काम, क्रोध, तृष्णा, यह सब नीच जातिके स्वभाव हैं ॥ १९ ॥ हिंसा न करै, सत्य बोले, चोरी न करै, काम, क्रोध, लोभ, न हो, क्योंकि सबसे बडा जातिका धर्म है ॥ २० ॥ अब चार आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचारीका धर्म कहते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके गर्भसे लेकर सब संस्कार हुए हों अर्थात् जन्म धारण करनेके उपरान्त दूसरा जन्म गायत्री उपदेश होनेके पीछे गुरुके घर जायरहै इन्द्रियोंका दम करै, जब गुरू बुलावै तब वेद पढै ॥ २१ ॥ मेखला, मृगचर्म, दंड, रुद्राक्ष माला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, जटा इत्यादि सब धारण कियेरहै तेलसे स्नान न करै, दाँत

अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ॥ कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोंतेवसायिनाम् ॥ १९ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ॥ भूतप्रियहितेहा च धर्मोयं सार्ववर्णिकः ॥ २० ॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ॥ वसन्गुरुकुले दांतो ब्रह्माधीयीत चाऽऽहुतः ॥ २१ ॥ मेखलाजिनदंडाक्षब्रह्मसूत्रकमंडलून् ॥ जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान्दधत् ॥ २२ ॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ॥ न च्छिद्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २३ ॥ रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ॥ अवकीर्णेऽवगाह्याऽप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥२४॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्छुचिः ॥ समाहित उपासीत संध्ये च यतवाग्जपन् ॥ २५ ॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥ न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २६ ॥

धावन न करै; वस्त्र क्षारसे न धोवै आसनको न रंगे दर्भ धारण करै ॥ २२ ॥ स्नान, भोजन, होम, जप, मूत्र, पुरीष जब करै तो मौन रहै, नख, रोम और क्षौरकर्म न करावै, और कॉखके उपस्थके केश दूर न करावै ॥ २३ ॥ वीर्यस्खलन न करै, आप ब्रह्मचर्यको धारण करे रहै और जो प्रमादसे स्वप्नमें वीर्य स्खलितहुआ होय तो जलमें स्नान करके प्राणायाम करके गायत्रीका जप करै ॥ २४॥ अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु; वृद्ध, देवताओंकी पवित्र और एकाग्रचित्तसे उपासना करै और यतवाक् होकर जप करै ॥ २५ ॥ गुरुओंका मनुष्यबुद्धिसे

सेवन न करै,किन्तु मेरा स्वरूप जानकर सेवन करै, कभी अवज्ञा न करै, क्योंकि संपूर्ण देवता गुरुओंमें वास करते हैं ॥ २६ ॥ साँझ सवेरे भिक्षा ले आवै, सो गुरुके आगे धरै,और भी जो कुछ प्राप्त हो, सो सब गुरुके समर्पण करै और जब, गुरुजीकी आज्ञा होय तो संयमसे भोजन करै॥२७॥ जो गुरु कहींको जायँ,तो उनके संग जाय, जब गुरु सोवैं तो उनके चरण दाबै, जब बैठैं, तब सावधान हो हाथ जोड़ बहुत दूर न बैठे,आचार्यका आदर सन्मान करै, अच्छी भाँति सदा उपासना करै ॥ २८ ॥ इसप्रकार विषय भोग रहित होकर गुरुकुलमें वास करै और जबतक विद्या पूर्ण हो तबतक अखण्डित व्रत धारण करे रहै ॥ २९ ॥ यह तो ब्रह्मचारीके आश्रमका सामान्य धर्म कहा, अब जो ब्रह्मलोकके जानेकी इच्छा करै, सो मेरी

सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ॥ यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ २७ ॥ शुश्रूषमाण आचार्य सदोपासीत नीचवत् ॥ यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृतांजलिः ॥ २८ ॥ एवं वृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ॥ विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखंडितम् ॥ २९ ॥ यद्यसौ छंदसां लोकमारोक्ष्यन्ब्रह्मविष्टपम् ॥ गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३० ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ॥ अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३१ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ॥ प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३२॥ शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् ॥ तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याऽभक्ष्याऽसंभाष्यवर्जनम् ॥ ३३ ॥

निष्ठासे ब्रह्मचर्य्य व्रत करै सो कहते हैं कि,जो यह ब्रह्मचारी, जहाँ मूर्त्ति धारण करे वेद रहते हैं, ऐसे ब्रह्मलोकमें जाना चाहै तो गुरुओंहीके पास रहै, वेदाध्ययन करै, निष्काम ब्रह्मचर्य व्रत करै, अधिक क्या कहैं ? अपना देहतक भी गुरुके समर्पण कर दे ॥ ३० ॥ पूजाके स्थल कहते हैं, अग्नि, गुरु, आत्मा सब प्राणीमात्रमें मेरी बुद्धि रक्खे मुझसे भिन्न न जानै, इसप्रकार ब्रह्मतेजयुक्त निष्पाप मेरी उपासना करै ॥ ३१ ॥ स्त्रियोंका दर्शन, उनसे भाषण, परिहास न करै और जो कहीं कोई स्त्री पुरुष इकट्ठे होकर बैठे होयँ तो उनको न देखै, आप गृहमें न रहै ॥ ३२ ॥ यह धर्म सब आश्रमोंका कारण है, शौच मट्टीसे हाथ पाँव धोवै, आचमन करै, स्नान, संध्या, शुद्धभाव तीर्थ सेवन, तप, भिक्षा करै,परन्तु स्पर्श किसीका न

करै, जो असंभाष्य हैं,उन नीचोंका त्याग करै ॥ ३३ ॥ हे कुलनंदन ! सब प्राणीमात्रमें मेरा भाव रक्खै, मन वचन इन्द्रियोंको संयुक्त करै, यह नेम सब आश्रमोका है ॥ ३४॥ इस प्रकार जो व्रत रक्खे सो अग्निके समान तेजस्वी होवै, सब कर्म जला, निर्मल हो, मेरी भक्तिको प्राप्त होवै॥३५॥ यह निष्काम ब्रह्मचारीके लिये मोक्षका प्रकार कहा जो सकाम होय सो वेदार्थ विचार, ब्रह्मचर्य छोड़ गृहस्थके आश्रममें आना चाहे, तो गुरुको दक्षिणा दे, आज्ञा ले तब अभ्यंगादिक करके मेखला, दंड, मौंजी छोड़े (इस कर्मका नाम समावर्त्तन कहते हैं) ॥ ३६ ॥ तहाँ दोनों पक्ष कहते हैं कि, जो विवाहकी इच्छा होय तो गृहस्थ होजाय, निष्काम होय तो वानप्रस्थ आश्रम ले अथवा संन्यास ले, आश्रमसे आश्रममें जाय, आश्रम विना न रहै, ब्राह्मणमें श्रेष्ठ उस आश्रममें मेरी भक्ति करताहुआ विचरै और पिछले आश्रमसे पूर्वमें न आवै, अर्थात् संन्यासी गृहस्थी

सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनंदन ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥ ३४॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः॥ ३५ ॥ अथानंतरमावेक्ष्यन्यथा जिज्ञासितागमः ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद् गुर्वनुमोदितः ॥ ३६ ॥ गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्पर श्चरेत् ॥ ३७ ॥ गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ॥ यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३८ ॥ इज्या ध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्त पस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः ॥ ४० ॥

न हो ॥ ३७ ॥ जो गृहस्थ होना चाहै सो समावर्तन कर्मसे विवाह करै, गृहस्थी होकर लक्षणवंत अपने कुल समान कुलकी कन्या विवाहे, प्रथम तो अपने वर्णकी व्याहै पीछे और भी करना चाहै तो अनुक्रमसे और व्याहै॥ ३८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यह तीन धर्म समान हैं यज्ञ,अध्ययन, दान, यह तीनों वर्णोंको समान हैं, परन्तु प्रतिग्रह, अध्यापन, यज्ञ कराना यह तीनों कर्म ब्राह्मणहीको करने उचित हैं ॥३९॥ प्रतिग्रह लेनेमें जप, यज्ञमें कृपणता आदि दोष जब देखे तो स्वामीसे छोड़े खेतमें पड़े कणसे आजीविका करै अथवा और किसी वस्तुसे आजीविका करै यज्ञ करै करावे अथवा पढ़ावै यह दो वृत्ति करै, जो इनमें भी हीनता दोष देखै तो उंछवृत्तिही करै ॥ ४० ॥

ब्राह्मणका यह देह निश्चयही तपस्याके कष्ट सहनेको उत्पन्न किया है, क्षुद्र कामको न करै, तो परलोकमें अनंत सुख ब्राह्मणको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ जो हाटमें अथवा क्षेत्रोंमें अन्न पड़ा रहै उसको बीन उसीसे निर्वाह करै और उसीसे संतोष रक्खै उत्तम निष्काम धर्म करै, मुझमें चित्त रक्खै घरमें तो रहै परन्तु बहुत आसक्त न हो, इसप्रकार शान्तिको प्राप्त हो ॥ ४२ ॥ दरिद्रीके लिये इसप्रकार निर्वाह करनेको कहाहै, जो सद्द्रव्य है, उसका

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ॥ कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ॥ ४१ ॥ शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचेता धर्मं महांतं विरजं जुषाणः ॥ मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शांतिम् ॥ ४२ ॥ समुद्धरंति ये विप्रं सीदंतं मत्परायणम् ॥ तानुद्धरिष्ये न चिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४३ ॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ॥ आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४४ ॥

प्रकार कहते हैं जो ब्राह्मण दरिद्री होय और मेरी भक्ति करनेमें तत्पर होय उसको जो आपदासे उद्धार करतेहैं, सो हे उद्धव ! उन मनुष्योंको मैं थोडेही कालमें उद्धार करूंगा, जैसे समुद्रमें डूबतेहुओंको नाव पार लगाती है, वैसेही जो मनुष्य अथवा ब्राह्मणका निर्वाह करते हैं, मैं संसाररूपी समुद्रसे उन मनुष्योंको निश्चय पार करूंगा ❋ ॥ ४३ ॥ राजा होय तो उसका आवश्यक धर्म यही है कि, जैसे पिता पुत्रको कष्टसे छुडाता है,

---

❋ शंका—श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि, हमारा भजन करनेवाले ब्राह्मणको दुःख दारिद्र आदि लेके अनेक संकटसे जो कोई छुडाता है, तो उस छुडानेवाले मनुष्यको हम बहुत शीघ्र दुःख दारिद्रसे छुडा देते हैं, इस बातमें यह शका होती है कि, अपने भजन करनेवाले ब्राह्मणको आप दुःख दारिद्रसे क्यों नहीं छुडाते, दूसरेको लोभ क्यों दिखातेहैं, जैसे बनिये आडती लोगोंसे काम करते हैं ऐसा वचन श्रीकृष्णचन्द्रने क्यों कहा ?

उत्तर—बडे बडे पाप ब्राह्मणलोग करते हैं, तो उन बडे पापोंसे दुःख दारिद्र ब्राह्मणोंको होता है और क्षत्रिय, वैश्य शूद्रको थोडेही पापोंसे दुःख होता है, इस बातका भगवान्ने विचार किया कि, हम शीघ्र ब्राह्मणोंको अपना भजन करनेवाला जानकर दुःख दारिद्रसे छुडा सकैंगे तो ब्राह्मण और अभिमान करके पाप करैंगे और जान लेंगे कि, भजनके प्रतापसे दुःखनाश जल्दी होजाताहै फिर ससारका सुख क्यों नहीं भोगै हमारा पाप क्या करैगा ? ऐसा विचार कर ब्राह्मणोंका मान नाश करनेके लिये जब तक ब्राह्मण पापसे नहीं छूटता, तबतक उस ब्राह्मणके दुःख दारिद्रको दूसरे मनुष्यसे दूर कराते हैं कि, ब्राह्मणोंको विदित होजाय कि, हम भगवान्का ऐसा बडा भजन करते हैं तो भी हमको पापी जानकर हमारे दुःख दारिद्रका नाश नहीं किया, जो हमारा पाप हमारे पास न होता तो शीघ्रही भजनके प्रभावसे हमारे दुःखका नाश करदेते, अब पाप कभी नहीं करेंगे ऐसा विचारके ब्राह्मण पापबुद्धिको त्यागदेते इसलिये दूसरेसे ब्राह्मणका दुःख दारिद्रनाश करनेके लिये श्रीकृष्णने कहा ।

तथा जैसे कीचडमें पडे हाथीको हाथी निकालता है, उसी प्रकार संपूर्ण प्रजाको दुःखसे उद्धार करै, इसीप्रकार धैर्यवान् राजाको विपत्तियोंसे अपनी आप रक्षा करनी उचितहै ॥ ४४ ॥ इसप्रकार राजालोग इस लोकमें सब पाप दूर कर सूर्यके समान प्रकाशित विमानमें बैठ इन्द्रके संग आनन्द करते हैं ॥४५॥ यदि ब्राह्मण दरिद्रसे दुःख पाता हो, तो उसको उचित है, कि वाणिज्य वृत्तिकर आपदासे छूटै, परन्तु मदिरा (शराब) और रसादिक न बेचे और इसमें भी जो निर्वाह न हो तो क्षत्रियवृत्ति करै, परन्तु नीच सेवाकी वृत्ति कभी न करै, यह ब्राह्मणका धर्म कहा ॥४६॥ अब क्षत्रियका धर्म कहते हैं, जो आपदा आनकर पड़े तो वैश्यवृत्तिसे जीविका करै, या मृगया करके जीवन धारण करै, वा ब्राह्मणका रूपधर अध्यापनसे जीविका करै परन्तु नीचकी सेवा न करै ॥४७॥ वैश्यको यदि आपदा पडे तो शूद्रकी वृत्तिको करै, उसमें भी आपदा हो तो चतुर

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ॥ विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिंद्रेण सह मोदते ॥ ४५ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ॥ खड्गेन वाऽऽपदाक्रांतो न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४६ ॥ वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि ॥ चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४७ ॥ शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यश्शूद्रः कारुकटक्रियाम् ॥ कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४८ ॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ॥ देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत ॥ ॥ ४९ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ॥ धनेनाऽपीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥ ५० ॥ कुटुंबेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुंब्यपि ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५१ ॥

ताकी क्रियासे जीविका करै, जब अपनी आपदा निवृत्त होजाय तो नीचवृत्ति छोड़दे ॥ ४८ ॥ इसप्रकार सबोंकी वृत्ति कही, अब गृहस्थका आवश्यक पंचयज्ञ कर्त्तव्य कर्म कहते हैं कि,ब्रह्मयज्ञ करके तो ऋषियोंको संतुष्ट करै, श्राद्धमें स्वधासे पितृयज्ञ करै,होममें स्वाहा करके देवताओंका यज्ञ करै,बलिदानसे भूत यज्ञ करै,अन्न जलसे मनुष्योंको तृप्त करै, यथाशक्ति करै सबमें मेरी बुद्धि रक्खै यह कर्म सब अवश्य कर्तव्य हैं॥४९॥ शक्तिके अनुसार कर्त्तव्य कर्म कहते हैं, विनाही उद्यम अथवा उद्यमसे पाया हो और शुद्धहो, तो उस धनसे जिसमें कुटुम्बको पीड़ा न हो, वैसेही न्यायसे यज्ञोको करै ॥ ५० ॥ कुटुम्बमें आसक्त न हो, परन्तु मेरे भजनमें सावधान रहै, इस संसार प्रपंचको मिथ्या जानै स्वर्गको भी मिथ्या

माने, आत्माहीको केवल सत्य जाने ॥ ५१ ॥ पुत्र,स्त्री, कुटुम्बी, बन्धु इत्यादिकोंका संग यात्रा करनेवालोंके संगके समान है, जैसे निद्रामें स्वप्न देखते हैं और जागतेही नष्ट होजाते हैं, ऐसेही देहके नष्ट होनेपर यह सब चले जाते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार घरमें विचार करता अतिथिकी भाँति रहे, यह मेरा घर है, ऐसा अहंकार न रक्खे, क्योकि अहंता और ममता छोडनेसेही पुरुष नहीं बँधता ॥ ५३ ॥ गृहस्थके जो धर्म कहे हैं, उनसे मेरी पूजा करै मुझमें भक्ति करै और गृहस्थाश्रममें रहनेके उपरान्त वानप्रस्थ होकर जो संतान हो तो संन्यास ले ॥ ५४ ॥ जो पुरुष केवल घरमें ही आसक्त हैं, पुत्र वित्तमें प्रीति कर स्त्रीके वशमें रहते हैं, वह महादीन हैं, मूर्ख हैं और अहंता ममतासे बँधे हैं ॥५५॥ मेरी माता और मेरा पिता

पुत्रदाराप्तबंधूनां संगमः पांथसंगमः ॥ अनुदेहं वियंत्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५२ ॥ इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्व तिथिवद्वसन् ॥ न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥ ५३ ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ॥ तिष्ठेद्वनं वोप विशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५४ ॥ यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ॥ स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥ ॥ ५५ ॥ अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः ॥ अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवंति दुःखिताः ॥५६ ॥ एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥ अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोंधं विशते तमः ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० ब्रह्मचर्यादि० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ॥ वन एव वसेच्छांतस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

वृद्ध हैं, स्त्री छोटी है, बालक छोटे हैं, यह मेरे विना कैसे जीवन धारण करैंगे ? हम विना यह दीन अनाथ दुःखी होजायँगे, इस प्रकार जो सोचते हैं ॥ ५६ ॥ और गृहकी आशा करके विक्षिप्तमन हो मति (बुद्धि) मूढ होनेसे स्त्री पुत्रादिकोंका ध्यान करते हैं सो पुरुष कभी तृप्त न होकर मरनेके उपरान्त अत्यन्त तामसी योनिमें पडतेहैं॥५७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा—अष्टादश अध्यायमें, वानप्रस्थ संन्यास ॥ कहूँ दोउनके धर्ममें, करहु यही अभ्यास ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जब आयुका तीसरा भाग आवै, अर्थात् सौ वर्षकी आयुके हिसाबसे पिछत्तर (७५) वर्ष पूरे हों तो पुत्रोंको घर सौंपकर वनमें बसै और यदि स्त्री अपने संग आवे तो वनमें

रक्खै, नहीं तो वह पुत्रके पास रहै आप वनमें शांत होकर रहै ॥ १ ॥ कंद, मूल, फलोंसे आत्माको तृप्त करै वल्कल वस्त्र पहरै तृण, पत्ते और मृगचर्म धारण करै यह सब वनकी वस्तु अतिपवित्र हैं ॥ २ ॥ केश, रोम, नख, दाढी, मूंछ दूर न करावै और इनको धोवै भी नहीं, जलमें तीन काल स्नान करै भूमिमें शयन करै ॥ ३ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तपै, वर्षामें जलवृष्टि सहै जाड़ेमें कंठतक जलमें मग्न रहै इस प्रकार तप करै॥ ॥ ४ ॥ अग्निसे पकाहुआ पदार्थ खाय या समयके पक्व फलादि खाय, ओखली व पत्थरसे कुटी होय वह वस्तु खाय, दाँतसे कुटी वस्तुको भी खाय ॥ ५ ॥ अपनी सब आजीविकाकी वस्तु आपही ले आवै और देशकालका बल देखै दूसरेका लायाहुवा अन्नादिक पदार्थ न ले ॥ ६ ॥ वनकी

कंदमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्दतः ॥ न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थंडिलेशयः ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषाड्जले ॥ आकंठमग्नः शिशिर एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समाश्नीयात्कालपक्वमथापि वा ॥ उलूखलाश्मकुट्टो वा दंतोलूखल एव वा ॥ ५ ॥ स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ॥ देशकालबलाभिज्ञो नाददीताऽन्यदाऽऽहृतम् ॥६ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालचोदितान् ॥ न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥ अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ॥ चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसंततः ॥ मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ॥ कामायाल्पीयसे युंज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥

वस्तुके चरू पुरोडाशनमें देवताओका यज्ञ करै, वनमें आश्रम बनाकर रहै, परन्तु वेदोक्त पशुसे मेरा यजन न करै ॥ ७ ॥ पूर्ववत् नाम गृहस्थाश्रम सरीखे अग्निहोत्र दर्श पूर्णम सेष्टि चातुर्मास्य यज्ञ इतन ही देदने गृहस्थाश्रमोंको अनुष्ठान कहा है ॥ ८ ॥ इसप्रकार जीवन तक तपस्या करनेसे जिसका माँस सूख जानेसे संपूर्ण देहमें नसें दिखाई देने लगे, वह वानप्रस्थ जो कि मैं तपोमय हूं सो मेरा आराधन करनेसे प्रथम ऋषिलोकसे मह र्लोकमें जाय, इसके उपरान्त क्रमसे मुझे भी प्राप्त होगा ॥ ९ ॥ इतने कष्टसे प्राप्त हुई मोक्ष फलदायक तपस्या तुच्छ काममें न लगावै, जो लगावै

तो उससे मूर्ख कौन है ?॥ १० ॥ इसप्रकार संपूर्ण धर्म निष्काम करै, तो निश्चय मोक्ष होजाय और जो आयुके तीसरे भागमें वैराग्य थोड़ासा उत्पन्न हो तो संन्यास ले, यदि शरीरकी सामर्थ्य पहलेही घट जाय तो विरक्त होकर रहै, संन्यास ले और जो विरक्त भी न होसकै उसे क्या करना चाहिये ? तो कहते हैं कि, जब यह धर्मके नेम करनेमें असमर्थ हो वृद्धावस्था हो तो अग्निहोत्रकी अग्नि आपमें रखकर चित्त मुझमें स्थिरकर अग्निमें प्रविष्ट हो शरीरको छोड़दे॥ ११ ॥ और जो विरक्त होय, सो कर्मोंका फल तथा देवताओंके लोकको नरकके समान जानैं, ऐसा करनेसे यह सब

यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥ यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यङ्‌ न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ॥ अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥ विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ॥ विघ्नान्कुर्वंत्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥ १४ ॥ बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दंडपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥ १५ ॥

अग्निहोत्रादिक कर्म छोड़ अच्छी भाँति संन्यास लेय ॥ १२ ॥ संन्यासके आरंभके उपदेशके अनुसार मेरा पूजन करै, ऋत्विजोंको सर्वस्व दे, अग्निहोत्रको अपने प्राणोंमें प्रविष्ट कर, आप निरपेक्ष हो संन्यास लेय ॥ १३ ॥ जब ब्राह्मण संन्यास लेता है, तब देवता, स्त्री पुत्ररूप होकर उसको इसकारण विघ्न करते हैं कि, यह हमारी अवज्ञा करके आगे चलना चाहता है, परन्तु तोभी यह पुरुष उन विघ्नोंको लाँघ संन्यास ग्रहण करै, उनके विघ्न न मानै * ॥ १४ ॥ यदि संन्यासी वस्त्र पहरना चाहै तो जितनेसे कौपीन ढकै उतना वस्त्र पहरै और कुछ धारण न करै,

* शंका–जो ब्राह्मण वैराग्यमें मन लगाकर संन्यास लेनेकी इच्छा करते हैं उनके विघ्नको स्त्री आदि परिवार कैसे करेंगे ! क्योंकि मन कच्चा हो तब तो जो चाहै सो विघ्न करदेवै और जो मन पक्का होकर वैराग्यमें लग गया तो किसीका किया विघ्न नहीं होसक्ता ।

उत्तर–भाई, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बसे उत्पन्न हुई जो फाँसी है उसको सब चर अचर जीवजन्तु काटा चाहैं तो किसीकी काटी नहीं कटसक्ती, जो कोई महात्मा काटनेकी इच्छा करेंगे तो बडी कठिनतासे वह फांसी कटसक्तीहै क्योंकि स्त्री पुत्रके मोहमें पशु पक्षी भी बँधगये हैं फिर मनुष्य बँधगया तो क्या आश्चर्यकी बात है ? इसलिये श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा कि, ब्राह्मणका मन वैराग्यमें लगा है तो भी स्त्री पुत्र आदि परिवार सन्यासमें विघ्न करतेहैं ।

एक दंड धारण करै; एक जल पात्र अर्थात् कमंडलु अपने पास रक्खे और कुछ नहीं रक्खे ॥ १५ ॥ पृथ्वीमें देखकर पांव धरै, वस्त्रसे छना जल पान करै, वचन सत्य बोले और आचरण मनमें विचार जब शुद्ध मन न होय तब करै ॥ १६ ॥ हे उद्धव ! वचनका दंड मौन रहना, देहका दंड सकाम कर्म नहीं करना, चित्तका दंड प्राणायाममें स्थिर करै, जिसके यह दंड नहीं वह बाँसके दंडका संन्यासी कहलाता है ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंमें ही प्रतिग्रह, यजन, अध्ययन, शिलोंच्छवृत्ति यह चार प्रकारके आचार रखते हैं, उनके घर भिक्षा करै और जो निन्दित हो उसके घर भिक्षा न करै यहाँ मुझे यह अलभ्य लाभ होगा इस उद्वेगसे रहित सात घर भिक्षा करै, जो कुछ प्राप्त हो उसीमें संतोष करै ॥ १८ ॥ भिक्षाले जहाँ जलाशय

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥१६॥ मौनाऽनीहानिलायामा दंडा वाग्देहचेतसाम् ॥ न ह्येते यस्य संत्यंग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥ १७ ॥ भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् ॥ सप्ता गारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥ १८ ॥ बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ॥ विभज्य पावितं शेषं भुंजी ताऽशेषमाहृतम् ॥ १९ ॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेंद्रियः ॥ आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ॥ २० ॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ॥ आत्मानं चिंतयेदेकमभेदेन मया मुनिः ॥ २१ ॥ अन्वीक्षेतात्मनो बंधं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ॥ बंध इंद्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरन्मुनिः ॥ विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥

होय वहाँ जाय पाँव धोवै आचमन करै मौन होकर मार्जन करै, मार्गके दोषकी शुद्धि करै, पीछे विभाग कर विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, भूतोंको समर्पण करै थोडा २ अलग अलग करके रक्खै, बाकी सब भोजन करै ॥ १९ ॥ अब एक दूसरी क्रिया और भी है कि, संपूर्ण पृथ्वीमें फिरे, परन्तु संग किसीका न करै. जितेन्द्रिय रहै, आत्माहीमें संतुष्ट धीर और समदृष्टि हो ॥ २० ॥ एकांत निर्भयस्थलमें रहै, मेरी भावनासे चित्त निर्मल रक्खै, आत्मामें और मुझमें भेद नहीं देखै, अभेदसे एक आत्मा विचारै ऐसा विचारशील हो ॥ २१ ॥ ज्ञाननिष्ठासे अपने बंध मोक्षका विचार करै । इन्द्रियोंके विक्षेपको बंध कहते हैं और इन्द्रियोंके संयमको मोक्ष कहतेहैं ॥ २२ ॥ इसलिये इन्द्रियोंको निग्रह करके मुझमें चित्त

रक्खे, तुच्छ कामनाओंसे विरक्त रहै, तब मुनि अतिउत्तम आत्मसुखको प्राप्त हो सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक विचरे ॥ २३॥ नगर, ग्राम, व्रजमें भिक्षाको जाय, जहाँ कहीं बहुतसे मनुष्योंका संग आया हो, या यात्रियोंका संग हो तहाँ भिक्षाको जाय, जो पुण्य देश, नदी, पर्वत, वन, आश्रम हैं, वहाँ पृथ्वीमें फिरे ॥ २४ ॥ वानप्रस्थके आश्रममें जाय नित्य भिक्षा करे, उसका अन्न शुद्ध है, उससे सत्त्व शुद्ध होताहै, तब शीघ्रही सिद्धि मिलती है और मोह संपूर्ण घटजाता है ॥ २५ ॥ गृहस्थके घर उत्तम सामग्री मिष्टान्न पावे, वहाँ भिक्षा छोड़ उंछवृत्तिके अन्नकी भिक्षाको मन कैसे चले ? तो कहते हैं कि, इन मिष्टान्नादिकोंको वस्तु करके न देखे इससे नाशको प्राप्त होता है, इस लोक तथा परलोकमें मन आसक्त न करे मिष्टान्नादिकके लिये उपाय न करे ॥ २६ ॥ जो यह जगत् और शरीर, मन, वचन प्राणसे युक्त हैं, अहंता, ममताके धर्म यह आत्मामें सब

पुरग्रामव्रजान्सार्थान्भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ॥ पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥२४॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलांधसा ॥ २५ ॥ नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति ॥ असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ॥ सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः ॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ॥ वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतो न स्यान्न पाखंडी न हैतुकः ॥ शुष्कवादविवादेन कंचित्पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥

मायामात्र हैं, यथार्थ नहीं, ऐसी युक्तियोंसे आत्मनिष्ठहो फिर देहादिकका स्मरण न करे, क्योंकि स्मरणसे वैराग्यमें प्रतिबंध होता है ॥ २७ ॥ अब परमहंसधर्म कहते हैं; एक वैराग्यसे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पूर्ण ज्ञानी अथवा मुक्तिभी न चाहनेवाले मेरी दृढभक्ति, करनेवाले भक्त दंडादिककी आवश्यकतावाले आश्रमधर्मोंकी आसक्ति त्यागकर जितना अपनेसे होसके उतना आश्रमसम्बन्धी धर्म करे, परन्तु अत्यन्त उसमें लिप्त न हो॥२८॥ विवेकी होनेपर भी बालकके समान फिरते हैं, मान अपमानसे शून्य रहते हैं, अति चतुर हैं परन्तु तोभी जड़की भाँति रहतेहैं, अनुसंधान नहीं रखते हैं, सो बुद्धिमान् हैं परन्तु उन्मत्तके समान वेदके धर्मोंमें निष्ठ हैं, परन्तु कुछ आचारका नेम नहीं है ॥ २९ ॥ कर्मही करना मुख्य

है, ऐसे वेदके वादमें आसक्त न हो, पाखण्डी न हो, केवल तर्कही सब जगह न करै और जहाँ प्रयोजन विना वाद होता हो वहाँ किसीका पक्ष न करै ॥ ३० ॥ किसी मनुष्यसे उद्वेग न करै न मनुष्योंसे आप उद्विग्न हो, अपमान किसीका न करै, आप अपमान सहै, इस देहके लिये पशुके समान किसीसे वैर नहीं करै ॥३१॥ क्योंकि सबमें आत्मा एकही है वैर किससे करै? ऐसे समझकर निवृत्तिहोवै, जैसे जलके पात्र अनेक होते हैं, और उनमें अनेक चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब दीखते हैं परन्तु चन्द्रमा एकही है इसीप्रकार आत्मा भी एकही है, और अनंतसे भासै है ॥ ३२ ॥ और जो समय समयमें भोजन न मिलै तो खेद न करै, पावै तो हर्ष न करै, धैर्य रक्खे क्योंकि प्राप्ति अप्राप्ति दोनों दैवाधीन हैं ॥३३॥ आहार तो अवश्य

नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं नोद्वेजयेन्न तु ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥ देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित् ॥ ३१ ॥ एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ॥ यथेंदुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥ अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ॥ लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतंत्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ॥ तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥ तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥ अन्यांश्च नियमाञ्ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ न हि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ॥ आदेहांतात्क्वचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥ ३७ ॥

चाहिये कि, जिससे जीवन हो, प्राण धारणका तो प्रयोजन यह है कि, जो तत्त्वको विचारै तो मुक्त हो ॥ ३४ ॥ ईश्वरेच्छासे जो कुछ मिलै सो भक्षण करै, भला हो वा बुरा हो इसीप्रकार मुनि भी वस्त्र, शय्या जैसी पावै, उसेही ग्रहण करै ॥ ३५ ॥ जैसे मुझे कुछ चाहना नहीं और जैसे मैं लीलापूर्वक धर्म करताहूं, उसीप्रकार ज्ञानीपुरुष भी आसक्ति छोड़ शौच, आचमन, स्नान और भी नेम करै, विधिके वश होकर न करै, ज्ञान दृष्टि रखकर क ॥ ३६ ॥ ज्ञानीको भेदकी प्रतीति नहीं होती और जो होती है, वह पहलेही मेरे ज्ञानसे नष्ट होजाती है यद्यपि देह गिरनेतक कभी कभी आहारादिकमें भेद प्रतीति देखीजाती है, परन्तु तो भी वह अयथार्थ रूप जानीहुई है, देहके गिरनेपर मुक्ति होजाती है ॥ ३७ ॥

अब केवल वैराग्ययुक्त हो ज्ञानकी इच्छा रखनेवालेका कर्त्तव्य कहते हैं कि, जो यह गृह पुत्र आदि सबको दुःखरूप जान वैराग्य युक्त हो और ज्ञानकी इच्छा करतेहो मेरे धर्म भी कुछ जानता हो, सो उत्तम गुरुका सेवन करे ॥ ३८ ॥ जबतक ब्रह्मज्ञान मिलै तबतक श्रद्धा और भक्ति रखकर ईर्षा छोड़ गुरुको मेराही स्वरूप जान अत्यन्त आदरसत्कारसे उसकी सेवा करे ॥ ३९ ॥ अब अधिकार विना जो संन्यास लेता है, उसकी निन्दा करते हैं जो इंद्रियोंका निग्रह न कियाहो, बुद्धि अति आसक्तहो, ज्ञान वैराग्यसे रहित हो, ऐसा जो संन्यास लेता है सो वह संन्यास जीविकाके अर्थ है, इसीकारण निंदित है ॥ ४० ॥ वह अधर्मी संन्यासी है जिन्होंने देवताओंकी वंचना करी है जो गृहस्थ धर्ममें देवता अतिथि पूजन करता था सो छोड़ दिया संन्यास धर्म भी नहीं करते इससे सबकी अवज्ञाही करते हैं, उनकी वासना दग्ध

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत ॥ ३८ ॥ तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ॥ यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचंडेंद्रियसारथिः ॥ ज्ञान वैराग्यरहितस्त्रिदंडमुपजीवति ॥ ४० ॥ सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ॥ अविपक्ककषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ॥ गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं संतोषो भूतसौहृदम् ॥ गृहस्थस्याप्यृतौ गंतुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् ॥ सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विंदतेऽचिरात् ॥ ४४ ॥

नहीं और आत्मरूप हृदयमें स्थित मेरी भी वंचना करतेहैं इसीलिये इस लोक और परलोकसे नष्ट होजाते हैं ॥ ४१ ॥ संन्यासीका मुख्य धर्म शम और अहिंसा है, वानप्रस्थका मुख्य धर्म तपस्या और विचार है, गृहस्थका मुख्य धर्म प्राणीमात्रकी दया, रक्षा और देवताओंका यज्ञ है और ब्रह्मचारीका धर्म यही है कि, गुरुओंकी सेवा करे ॥ ४२ ॥ यहाँ गृहस्थका और भी धर्म कहते हैं ब्रह्मचर्य, तप, शौच, संतोष, प्राणीमात्रसे सुहृदताई और ऋतुके दिन स्त्रीसंग करे यह गृहस्थके धर्म हैं, मेरी सेवा करनी तो सबकाही धर्म है ॥ ४३ ॥ हे उद्धव ! इसप्रकारके स्वधर्मसे मेरा नित्य भजन करे और स्त्री पुत्रादिकोंमें प्रीति न रक्खे सब प्राणीमात्रमें मेरी भावना रक्खै उस पुरुषको शीघ्रही मेरी भक्ति मिल

जाती है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! ऐसी अव्यभिचारिणी भक्तिसे सब लोकके महेश्वरको जो सबकी उत्पत्ति पालन और प्रलयका कारण ब्रह्मरूप मुझको प्राप्त होजाता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार स्वधर्मसे शुद्धचित्त होनेसे मेरा स्वरूप जाननेमें आता है, विज्ञान और वैराग्य युक्त होकर शीघ्र मुझे प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ अब सबका निर्धार तात्पर्य, कहते हैं कि, वर्णाश्रमवालोंका यह आचाररूप धर्मका फल, पितृलोककी प्राप्ति करानेवाला है, यही धर्ममेंही भक्तिसे मुझे समर्पण करै तो परमफल मोक्षानन्दको प्राप्त हो ॥ ४७ ॥ हे साधो ! यह सब धर्म मैंने तुमसे कहा, जो तुमने मुझसे पूँछाथा जो भक्त स्वधर्म संयुक्त होकर इसे करै तो वह मेरे परब्रह्मरूपको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश

भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥४५॥ इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो न चिरात्समुपैति माम् ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ॥ स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम् ॥ यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ॥४८॥ इति श्रीमद्भा० महापु० एकदशस्कन्धे वनस्थयत्यादिधर्मनिरूपणं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥ मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत ॥१॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः॥ स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥ २ ॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ॥ ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥

स्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभगवदुद्धसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा– उन्निसवें अध्यायमें, पूर्वधर्म निर्वाह ॥ सो सब वर्णन करतहूं, सुनो सहित उत्साह ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जिसको विद्या करके श्रवण करके आत्मतत्त्वका अनुभव तक ज्ञान प्राप्त होगया है, सो प्रपंचकी निवृत्तिका साधन मुझमें मायामात्र जाने, और ज्ञानके साधन सब छोड़ै, उसको विद्वान् संन्यास कहते हैं ॥ १ ॥ ज्ञानीपुरुषका आत्मरूप मैंही प्रिय हूं, उसको और स्वार्थका हेतु कुछ नहीं है, पर स्वार्थका हेतु मुझेही चाहते हैं, इससे स्वर्ग और मोक्ष तथा और भी अर्थ मुझ विना उन्हें प्रिय नहीं, इसकारण उसका न कुछ कर्त्तव्य है और प्राप्त करना है ॥ २ ॥ यहाँ ज्ञानका अनुभव प्रमाण बताते हैं, ज्ञान विज्ञानसे जो सिद्धिको प्राप्त

हुए हैं, वह मेरे श्रेष्ठ स्थानोंको जानते हैं इसकारण मुझे ज्ञानी अतिप्रिय हैं, वह ज्ञानहीसे मुझे हृदयमें धारण करे रहते हैं ॥ ३ ॥ तप, तीर्थ, जप, दान और पवित्र साधन उस सिद्धिको नहीं करते जो सिद्धि ज्ञानके लेशसे होती है* ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! इसलिये तुम ज्ञानके रूपको जान, ज्ञान विज्ञान युक्त होकर भक्तिसे मेरा भजन करो॥ ५ ॥ जो कि, मैं सब यज्ञोंका स्वामी और आत्मा हूं, उसका अपने आपमें ही ज्ञान वा विज्ञान रूप यज्ञसे यजन करके मुनिगण मेरेरूप सिद्धिको पाचुके हैं ॥ ६ ॥ इस लिये तुम भी इसी ज्ञानसे धर्ममें प्रवृत्त हो. हे उद्धव ! जो देह और

तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ॥ नाऽलं कुर्वंति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ॥ सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायांतराऽऽपतति नाद्यपवर्गयो र्यत ॥ जन्मादयोऽस्य यदमी तव यस्य किं स्युराद्यंतयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ॥ आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥

इन्द्रियोंका विकार है, यह सब मायाके हैं कुछ परमार्थ वस्तु नहीं हैं, यह विकार देहसे पहले भी आत्माके नहीं हैं, पीछे भी नहीं, मध्यमें हैं, सो भ्रम जानिये, आत्मा शुद्ध है, जन्मादिक भी जो देखे जाते हैं, यह देहहीके हैं,कुछ आत्माके नहीं हैं, देहको जन्म मरण नहीं देह भी मायारूपी है देहके आदि अंत जो ब्रह्म हैं,सो मध्यमें रहते हैं, जब देहही नहीं तब सब ब्रह्म होते हैं तो फिर देहके जन्ममरण कहाँसे हो सकते हैं ! जब यथार्थसे देहके भी जन्ममरणादिक नहीं, सब ब्रह्मरूप है तो ब्रह्म न जन्मै है न मरै है, निर्विकार ब्रह्महो है, इसमें क्या कहना ? ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि,

* शंका-तप, तीर्थ, जप, दान आदिक जो अनेक अनेक सुन्दर क्रिया हैं, उन सबको त्यागकर अकेले ज्ञानकोही श्रीकृष्णने बडा क्यों कहा ?

उत्तर–जितने ससारमें उत्तम क्रिया कर्म हैं तप तीर्थ आदि,यह सब बहुत जन्ममें फल देते हैं, क्योंकि जप शीघ्र फल नहीं देता,तीर्थमें स्नान करने मात्रसे स्वर्ग नहीं प्राप्त होगा और जिससमय शरीरमें ज्ञान उत्पन्न होजायगा तो उसीसमय अनेक जन्मोंका दुःख दूर होकर शीघ्र सुख प्राप्त होगा और लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने अपना और उद्धवका समागम थोडे दिनोंका समझा इसलिये उद्धव अपने परममित्रको सुख होनेके निमित्त ज्ञानकी उपासना बताई, क्योंकि श्रीकृष्णके वियोगका दुःख जप, तप, तीर्थ करनेसे दूर नहीं हो सक्ता और उस दुःखको ज्ञान बहुत शीघ्र दूर करसक्ता है, इसलिये जप तपको त्यागकर श्रीकृष्णने ज्ञानको श्रेष्ठ कहा ॥

हेविश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्ते ! जिसप्रकार मुझे निश्चय हो,वैसेही वैराग्ययुक्त और विज्ञानयुक्त पुरातन विशुद्ध ज्ञान तुम कहो और जिसको ब्रह्मादिक खोजते हैं, ऐसे भक्तियोगको कहो ॥ ८॥ हे ईश्वर ! इस घोर संसारमार्गमें तीन तापसे तपाहुआ मुझे तुम्हारे चरणद्वंद्वरूप छत्रके अतिरिक्त और शरण नहीं दीखती.यह छत्र केवल छायाही नहीं करताहै, बरन् सब ओरसे अमृत बरसाताहै ॥ ९॥हे महानुभाव!यह पुरुष इस संसारके कुएँमें गिरा हुआहै और वहाँ कालरूपी सर्प इसे काटगया है,तुच्छ सुखोंमें बहुत तृष्णाहै;ऐसे इस जनको कृपापूर्वक उद्धार करो और मोक्षको कहो,ऐसे अपने वचनरूपी अमृतसे सींचो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब इसप्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव !

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ॥ पश्यामि नान्यच्छरणं तवांघ्रिद्वंद्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥
॥ ९ ॥ दष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ॥ समुद्धरैनं कृपयाऽऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्च महानु
भाव ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥ अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृ
ण्वताम् ॥ ११ ॥ निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः ॥ श्रुत्वा धर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहं
तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ॥ ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥ नवैकादश पञ्च त्रीन्भावान्भू
तेषु येन वै ॥ ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥

इसी भाँति पहले राजा युधिष्ठिरने हमारे सबके सामने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहसे पूँछाथा ॥ ११ ॥ भारतयुद्ध निवृत्त होनेके उपरान्त बंधुवधसे व्याकुल हो राजा युधिष्ठिरने पहले बहुत धर्म श्रवण करके फिर मोक्षधर्म सुननेके वास्ते पूँछा ॥ १२॥ वहाँ भीष्मने जो धर्म युधिष्ठिरसे वर्णन किया, वह हमने भी सुना, सोई हम तुमसे कहते हैं. जो ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य,श्रद्धा भक्तिसे संयुक्त है ॥ १३ ॥ यहाँ प्रथम तो ज्ञान कहते हैं, प्रकृति और महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह नौ तत्त्व हुए और एकादश इन्द्रियें, पंचमहाभूत, तीन गुण, यह सब मिलकर अट्ठाईस (२८) तत्त्व हुए, सो यह सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं, ज्ञानसे देखै और इन तत्त्वोंमें भी एक परमात्माको जिस ज्ञानसे

व्याप्त देखे सो निश्चय मेरा ज्ञान है ॥ १४ ॥ जैसे ज्ञानके समय सब पदार्थ देखनेमें आते हैं; वैसे यह पदार्थ देखनेमें नहीं आते, केवल एक परब्रह्म देखनेमें आता है, वही ज्ञान विज्ञान कहाजाता है और उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति होनेसे पदार्थ त्रिगुणात्मक नाशवान् हैं ऐसा देखे ॥ १५ ॥ यदि कोई कहै कि, सब ब्रह्मरूपही हैं तो जन्मादिक क्यों होता है ? उत्पत्ति तथा दूसरे रूपकी प्राप्तिके मध्यमें सबका आश्रय कारण होनेसे जो कार्य और कार्यांतरमें रहता है, जो उत्पत्तिमें व्याप्त होताहै और इनके प्रलयमें जो अवशेष रहता है, सो ब्रह्म है, इसेही देखे ॥ १६ ॥ अब विज्ञान कहकर वैराग्य कहते हैं. वेद, प्रत्यक्ष, परंपराकी प्रसिद्धि और अनुमानसे यह प्रपंच मिथ्या है, अद्वैतही सत्य है, जैसे यह दृश्य ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, क्योंकि ब्रह्मसे उत्पन्न है, जो जिससे उत्पन्न है, वह उससे भिन्न नहीं, जैसे मिट्टीके बने घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं, इसप्रकार

एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावंते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात् ॥ पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत ॥ १६ ॥ श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ॥ प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥ १७ ॥ कर्मणां परिणामित्वादाविरिंचादमंगलम् ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥ श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ॥ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥ आदरः परिचर्यायां सर्वांगैरभिवंदनम् ॥ मद्भक्तपूजाऽभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥

भ्रमरूप द्वैत जानकर विकल्पसे विरक्त होना चाहिये ॥ १७ ॥ कदाचित् स्वर्गादिकमें सुखभोग हैं, वहाँकी इच्छा हो तो विरक्त होना किस प्रकार संभव है ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, ब्रह्मलोकतक स्वर्गादिकका भी सुख इस लोकके समान जो पण्डित हैं सो दुःखरूप मिथ्याही देखते हैं, क्योंकि यह विनाशी कर्मोंके फल हैं ॥ १८ ॥ अब वैराग्य कहकर भक्ति कहते हैं, हे निष्पाप उद्धव ! मैंने भक्तियोग पहले भी तुमसे कहाथा और अब फिर अपनी भक्तिके परमकारणसे प्रीतियुक्त तुमसे कहता हूं ॥ १९ ॥ हे उद्धव ! प्रथम अमृतरूप मेरी कथामें श्रद्धा हो कथाके सुननेमें आदर हो, सुननेके उपरान्त निरंतर मेरा कीर्त्तन करे ॥ २० ॥ मेरी पूजामें तत्पर हो, सर्वांगसे नमस्कार करे, आदरपूर्वक मेरे

भक्तकी अधिक पूजा करै, सब प्राणीमात्रमें मेरी बुद्धि रक्खै ॥ २१ ॥ लौकिक कार्योंको मेरेलिये करै, वचनसे मेरे गुणानुवादको कहै, मन मेरे रूपमेंही अर्पण करै, सब कामनाओंका त्याग करै ॥ २२ ॥ मेरे लिये अर्थका त्याग करै, भोग और सुखका त्याग करै, विषय भोग न करै, यज्ञ, दान, होम, जप, तप, सब मेरेलिये करै ॥ २३ ॥ हे उद्धव ! इसप्रकार धर्मसहित जो मनुष्य मुझमें आत्मा निवेदन करते हैं, उन मनुष्योंको प्रेम लक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है, फिर उनको कुछ करना नहीं रहता ॥ २४ ॥ क्योंकि जब शांत सतोगुणसे बढ़ा चित्त मुझमें लगादिया, तब और सब ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आपहीसे प्रगट होजाते हैं ॥ २५ ॥ और यही चित्त जब गृह कुटुम्बादिमें आसक्त होता है, तब इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें

मदर्थेष्वंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ॥ मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ॥ इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थे यद्व्रतं तपः ॥ २३ ॥ एवं धर्मं मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ॥ मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्याऽवशिष्यते ॥ २४ ॥ यदात्मन्यर्पितं चित्तं शांतं सत्त्वोपबृंहितम् ॥ धर्मज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितं तद्विकल्प इन्द्रियैः परिधावति ॥ रजस्वलं चासनिष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ॥ गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन ॥ कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥ किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ॥ कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥ पुंसः किंस्विद्बलं श्रीमन्भगो लाभश्च केशव ॥ का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥

भ्रमण करता है, जिससे अधर्म, अज्ञान अनुरक्तता और कुभाग्यता प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ धर्म सोई है जो मेरी भक्ति करै, ज्ञान वही है, जिससे आत्माका रूप दीखै, इन्द्रियोंके धर्मोंमें आसक्त न होना वैराग्य और अणिमादिकका होना ऐश्वर्य है ॥ २७ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! हे शत्रुनाशक ! हे कृष्ण ! संयम नियम कै प्रकारके हैं ? शम दम किनको कहतेहैं ? क्षमा, धैर्य क्या है ? ॥२८॥ दान, तप, शौर्य, सत्य, ऋत, त्याग, धन, इष्ट, यज्ञ, दक्षिणा इत्यादि क्या हैं ? ॥ २९ ॥ हे श्रीमन् ! पुरुषका बहुत भाग्य क्या है ? परमविद्या क्या है ? लज्जा, श्री, दुःख, सुख क्या हैं ? ॥३०॥

पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है ? मार्ग उन्मार्ग कौन है ! स्वर्ग नरक कौन है ? बंधु गृह कौन है ? ॥ ३१ ॥ धनी दारिद्री कौन है ? कृपण ईश्वर कौन है ? हे साधुओंके पति ! यह प्रश्न और इससे विरुद्धगुणवाले कौन हैं सो मुझसे समझाकर कहो ॥ ३२ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! जीवमात्रकी हिंसा न करै, सत्य बोले, मनसे भी पराई वस्तुको न चुरावे, आसक्ति कहीं न रक्खे, लज्जा, असंचय, धर्ममें विश्वास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा, यह बारह संयम हैं ॥ ३३ ॥ शौच दो भाँतिके हैं अंतःकरणकी शुद्धि और बाह्यशुद्धि, शौच, तप, जप, होम, श्रद्धा, अतिथि और मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार, संतोष, आचार्यसेवा यह बारह नियम हैं ॥ ३४ ॥ जो यह संयम, नियम

कः पंडितः कश्च मूर्खः कः पंथा उत्पथश्च कः ॥ कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्को बंधुरुत किं गृहम् ॥३१॥ क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ॥ एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ॥ आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ॥३३॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ॥ तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥३४॥ एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ॥ पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहंति हि ॥३५॥ शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इंद्रियसंयमः ॥ तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥३६॥ दंडन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ॥ स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ॥ कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥

नित्य करै तो जो कुछ चाहे सो सब पूर्ण हो ॥ ३५ ॥ अब शम, दम, कहतेहैं कि, मुझमें बुद्धि स्थिर होय सो शम है, केवल शान्तिही शम नहीं कहाती, इन्द्रियोंका संयम दम है, चोर दुष्टका मारना दम नहीं, दुःखका सहना क्षमा है, बहुत भार सहना क्षमा नहीं, जिह्वा और उपस्थवेग सहे सो धैर्य, उद्वेग मनमें न उत्पन्नहो, इतनाही धैर्य नहीं ॥ ३६ ॥ प्राणीमात्रसे द्रोह त्यागनेको दान कहते हैं, धनका त्याग दान नहीं, कामका त्याग तप कहाता है, कृच्छ्रचान्द्रायण तप नहीं, स्वभावको जिसने जीतलिया सोही शूर, पराक्रम शौर्य नहीं, ब्रह्मका दर्शन सत्य है ॥ ३७ ॥ पण्डितोंने सत्य और प्रियवाणीको ऋत कहाहै, कर्मोंकी अनासक्तिको शौच और त्यागको संन्यास कहा है ॥ ३८ ॥

मनुष्योंका श्रेष्ठ धन धर्म है, पशु पुत्रादिक धन नहीं, परमेश्वरही यज्ञ है, मेरी बुद्धिसे यज्ञ करे, कर्मबुद्धिसे न करे, मेरे ज्ञानका उपदेशही उस यज्ञकी दक्षिणा है, सुवर्णादि धन दक्षिणा नहीं, प्राणायामसे मनको वशमें करे, वही परमबल है ॥ ३९ ॥ मेरा ऐश्वर्य सौभाग्यहै, कुछ लौकिक संपत्ति सौभाग्य नहीं. मेरी भक्ति पावे, सोई परमलाभ है, कुछ धनका लाभ नहीं. आत्मामें भेदबुद्धि दूर हो सो विद्या है केवल ज्ञानमात्र विद्या नहीं. कुत्सित कर्मका त्यागही लज्जा है, सो केवल लाज लज्जा नहीं ॥ ४० ॥ गुण अच्छे हों वहीं शोभा है कुछ आभूषण शोभा नहीं. दुःख, सुखका स्मरण करे, वही सुख है, भोग सुख नहीं, बंध मोक्षको जाने सो पण्डित है, केवल शास्त्र पढै पण्डित नहीं, भोग सुखकी इच्छा दुःख है,

धर्म इष्टं धनं नणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ॥ दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ॥ विद्यात्मनि भिदा बाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्या सुख दुःखसुखात्ययः ॥ दुःखं कामसुखापेक्षा पंडितो बंधमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पंथा मन्निगमः स्मृतः ॥ उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥ नरकस्तम उन्नाहो बंधुर्गुरुरहं सखे ॥ गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥४३॥ दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेंद्रियः ॥ गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ४४ ॥

अग्नि दाहादिक दुःख नहीं ॥ ४१ ॥ देहादिकमें जिसके अहंकार हैं सो मूर्ख है, जिस मार्गमें मुझे पावे वही उत्तम मार्ग है; काँटोंसे रहित सन्मार्ग नहीं, जहाँ मन चंचलहो, ससारमें फिर प्रवृत्त होय सो ऐसे मार्गको कुत्सित मार्ग कहते हैं, चोरादिकोंसे व्याप्त उत्पथ मार्ग नहीं, सत्त्वगुण अधिकहो, राजस, तामस, गुण न हो, सोई स्वर्ग है, कुछ इन्द्रलोक स्वर्ग नहीं ॥ ४२ ॥ तमोगुण अधिक होय सोई नरक है और नरक नहीं, और बंधु सब बंधु नहीं परमबंधु गुरु है, सो गुरु मैं हूं,मनुष्यका शरीर गृह है और गृह नहीं, जो गुणसे सम्पन्न है, वही धनी है और धनी नहीं ॥ ४३ ॥ जो सदा असंतोष रक्खै, सो दारिद्री है, धनहीन दरिद्री नहीं, जो इन्द्रियोंको न जीतसकै सोई कृपण है, दीन कृपण नहीं, विषयोंमें

आसक्त न होकर जो स्वाधीन है, सो ईश्वर है, राजा स्वाधीन नहीं, जो गुणमें आसक्त है, वही परवश है॥४४॥श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! यह तुम्हारे सब प्रश्न तुमको अच्छी प्रकार समझाये, अब बहुत क्या वर्णन करैं. गुण दोषका लक्षण इतनाही है, जो सबोंके गुण दोष विचारता रहै, वही दोष है और न गुण देखै न दोष देखै वही गुण है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा–कहूं बीस अध्यायमें, गुण अरु दोषके अर्थ ॥ भक्ति ज्ञान औ कर्म यह, तीनों योग समर्थ ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! विधिनिषेध वेद कहते हैं सो वेद तुम्हारी आज्ञा है, तुम सबोंके ईश्वर हो आपकी आज्ञासे वेद कर्मोंके पुण्य

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥ गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधेऽज्ञानत्यागो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ उद्धव उवाच ॥ विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥ अवेक्षतेऽरविंदाक्ष गुणदोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ॥ द्रव्यदेशवयःकालान्स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥ गुणदोषभिदा दृष्टिमंतरेण वचस्तव ॥ निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ॥ श्रेयस्त्वनुपलब्धेर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्तेन हि स्वतः ॥ निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ॥ ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

पापोंको देखते हैं ॥ १ ॥ उन धर्मोंके अधिकारी उत्तम, मध्यम, हीन तीन प्रकारके हैं सो वह वर्णाश्रम अलग हैं जिनका गुण दोष सब वेद देखते हैं ॥ २ ॥ अब आप कहते हो कि, गुण दोष छोड़कर धर्ममें प्रवृत्त हो सो गुण दोष भेददृष्टि विना विधिनिषेध तुम्हारा वचन मनुष्योंको कैसे फलदायक होसकता है ? ॥ ३ ॥ हे ईश्वर ! पितृदेवता तथा मनुष्योंको तुम्हारा वेदही मोक्ष और स्वर्गादिकोंमें श्रेष्ठ प्रमाण है और साध्य साधन विषे प्रमाण है ॥४॥ और गुण दोषके भेदका ज्ञान तुम्हारे वेदही हैं, आपसे नहीं मानी है, गुण दोषोंपर दृष्टि न रक्खै, यह अब तुम्हीं कहते हो, इसलिये भ्रम होता है ॥ ५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! मनुष्योंके कल्याणार्थ वेदमें भेदसे तीन योग मैंने कहे हैं

ज्ञान, कर्म, भक्ति इनसे परे और उपाय कहीं नहीं ॥ ६ ॥ इनके अधिकारी अलग अलग हैं, एकही नहीं सो कहते हैं इनमें जो कर्मोंसे विरक्त हैं फल कुछ नहीं चाहते उसे ज्ञानयोग कहा है ॥ ७ ॥ यदृच्छासे मेरी कथामें जिसको श्रद्धा हुईहो अतिविरक्त भी न हो अतिआसक्त भी न हो उसे भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है ॥ ८ ॥ प्रथम कर्मयोगको कहते हैं कर्म जहाँतक करै वहाँतक वैराग्य उत्पन्न न हो और मेरी कथा श्रवणादिकमें श्रद्धा न उपजै ॥ ९ ॥ हे उद्धव! अपने स्वधर्ममें स्थित हो फलकी इच्छा छोड निष्काम यज्ञ करै तब उसे न नरक हो न स्वर्ग हो जो और आचरण न करै ॥ १० ॥ इस लोकमें स्वधर्ममें स्थित हो निषेधका त्याग करै ऐसा करनेसे जब मन शुद्धहो, तब विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त करै या यदृच्छासे मेरी

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ॥ तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ ७ ॥ यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ॥ मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीः काम उद्धव ॥ न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत ॥ १० ॥ अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ॥ ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥ स्वर्गिणोप्येनमिच्छंति लोकं निरयिणस्तथा ॥ साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥ १२ ॥ न नरः स्वर्गतिं कांक्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ॥ नेमं लोकं च कांक्षेत देहाऽऽवेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥ एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ॥ अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥

भक्ति पावै ॥ ११ ॥ ज्ञानभक्तिको यह मनुष्यदेह कर्त्ता है इससे मनुष्यदेह उत्तम है सो कहते हैं जो स्वर्गमें हैं और नरकमें हैं वह मनुष्यदेहकी बाधा करतेहैं जिस देहकी ज्ञानभक्ति करनेसे मोक्ष होती है, स्वर्ग और नरकमें भी शरीर है सो मोक्षसाधक नहीं ॥ १२ ॥ चतुर मनुष्य होय सो स्वर्गकी गति न चाहै जैसे मनुष्य नरककी गति नहीं चाहते हैं और यह लोक भी नहीं चाहते, क्योकि देहके आवेशसे प्रमाद होता है ॥ १३ ॥ अर्थसिद्धिके दाता भी मनुष्यदेहको जानकर मृत्युसे पहले सावधान मनुष्य मोक्षका यत्न करै ॥ १४ ॥

जैसे पक्षीने एक रूखपर घर किया, उस वृक्षको कोई निर्दयी पुरुष आनकर काटै, उसे काटता जान अनासक्त होकर घर छोड़ दे तो जियै॥ १५॥ जैसे अहोरात्रसे काल आयुर्बलको काटे है, यह जान भयसे काँपते इस देहकी आसक्ति छोड़ शांत चित्त होकर रहै ॥ १६ ॥ ऐसी देहको जानकर भी जो सावधान नहीं होता उसकी निंदा करते हैं यह मनुष्यदेह अत्यन्त दुर्लभ है, अनेक जन्मके पुण्यसे पाई है, साधन करनेको समर्थ है, संसारसमुद्रसे तरनेको नाव है गुरु नावके चलानेवाले हैं, मैंने अनुकूल पवनसे प्रेरित करी है, ऐसे साधनको पाय जो यह प्राणी संसारसमुद्रसे न तरै तो वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥ यह कर्मयोग तो जो विरक्त न हो उनको कहा, अब जो विरक्त होंय उनको ज्ञान उपजे, पहले जो कुछ

छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ॥ खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलंपटः ॥ १५ ॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः ॥ मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥ नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ॥ मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥ १७॥ यदारंभेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ॥ अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥ १८ ॥ धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् ॥ अतंद्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥१९॥ मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेंद्रियः ॥ सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥ एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ॥ हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥

कर्त्तव्य है सो प्रकार कहते हैं कि, जब कर्मोंमें उद्वेग हो वैराग्य उपजे तब इन्द्रियोंका निग्रह करै स्थिरतासे आत्माके अभ्याससे मनका निग्रह करै, तब यह योगी होय ॥ १८ ॥ मनका निग्रह करै परन्तु तो भी जब चंचल होय तब सावधान हो कुछ मनकी कांक्षा पूर्ण करके फिर मनको वश करै ॥ १९ ॥ मनकी धारणा नहीं छोडै प्राणवायु जीतै, इन्द्रियें जीतै और सतोगुणी बुद्धिमें अपने मनको वशमें करै ॥ २० ॥ यह मनको निग्रह निश्चय उत्तम योग है जैसे सवार दमन करने योग्य घोड़ेकी गतिको अपनी इच्छानुसार चाहताहुआ पहले उसे इच्छानुसार जाने

देता है, फिर लगामको थामकर चलाता है ऐसेही शनैः शनैः मनको वशमें करे ॥ २१ ॥ सब तत्त्वोंके विवेकसे और प्रकृतिसे उत्पत्तिका क्रम विचारे, वह पृथ्वी आदि क्रमसे अनुलोम प्रतिलोमसे लीन होते हैं, ऐसा ध्यान करता रहै, वह ध्यान उस समय तक करै जबतक चित्त प्रसन्न न हो ॥ २२ ॥ जब चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो, तब गुरुके बताये धर्मका विचार करे, श्रमसे यह चित्त देहका अभिमान छोड़देता है ॥ २३ ॥ संयम, नेम आदि योग धारण, आत्मविचार और मेरी प्रतिमाकी सेवा इन उपायोंसे योग्य परमात्माका मनसे स्मरण करै, क्योंकि मेरे स्मरणका इससे अधिक और उपाय नहीं है ॥ २४ ॥ जो प्रमादसे योगी कुछ निंदित कर्म करै, उस योगीको योगाभ्यासहीसे अपने पाप दूर करने

सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ॥ भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ॥ मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिंतितस्यानुचिंतया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ॥ ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ॥ योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥ स्वेस्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः ॥ कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ॥ गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ॥ वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥ ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ॥ जुषमाणश्च तान्कामा न्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥

चाहिये, क्योंकि इसका और प्रायश्चित नहीं है ॥ २५ ॥ अपने अधिकारमें रहनाही गुण है, प्रवृत्तिमार्ग स्वभावहीसे अशुद्ध है तथापि जो सहसा (एकाएकी) न छोड़ाजाय तो प्रवृत्ति संगके छुडानेकी इच्छासे गुण दोष कह इन कर्मोंके संकोचद्वारा निवृत्ति चाहिये, क्योंकि योगीको स्वाभाविक वृत्ति न होनेसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं ॥ २६ ॥ मेरी कथामें श्रद्धा कर्मोंम वैराग्य होनेपर और काम्य कर्मोंको दुःखरूप जाननेपरभी उनका परित्याग न होसकै ॥ २७ ॥ तो प्रीतिपूर्वक श्रद्धायुक्त हो दृढनिश्चयसे मेरा भजन करै विषय भोग करै तो आसक्त न हो, उनकी निंदा करता

रहे, अब भजनका प्रकार कहते हैं ॥ २८ ॥ पहले मैंने भक्तियोग तुमसे कहा है इसरीतिसे जब निरन्तर मुनि मेरा भजन करै तो उसके हृदयमें मेरा वास होनेसे उसकी सब कामना नष्ट होजायँगी ॥ २९ ॥ सबके आत्मा रूपसे जब मुझे देखे तब इसके हृदयकी गाँठि छूट जाती है और सब संदेह मिटकर संपूर्ण कर्म क्षीण होजाते हैं ॥ ३० ॥ इसलिये मेरी भक्ति संयुक्त मुझमें चित्तयुक्त करनेवाले योगीको न तो ज्ञान और न वैराग्य कल्याणका साधन है, किन्तु भक्तियोगही कल्याणका साधक है ॥ ३१ ॥ जो फल कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म और तीर्थ यात्रादिकके साधनसे

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः ॥ कामा हृदय्या नश्यंति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चाऽस्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ॥ न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥ सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेंजसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वांछति ॥ ३३ ॥ न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकांतिनो मम ॥ वांछंत्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ॥ तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥

होता है ॥ ३२ ॥ वही फल केवल मेरी भक्ति करनेसे प्राप्त होजाता है, मेरे भक्त सुखसे मेरा वैकुण्ठधाम पाते हैं, परन्तु मेरे भक्त कुछ चाहना नहीं करते हैं ❋ ॥ ३३ ॥ हे उद्धव ' जो पुरुष बुद्धिमान् हैं उनकी मुझमें अत्यन्त प्रीति है, वह परमसाधु हैं, यद्यपि मैं उनको अनेक विभव देता हूँ परन्तु, तो भी वह कुछ चाहना नहीं करते ॥ ३४ ॥ मेरी निरपेक्ष भक्तिही परमकल्याणरूप है उसमेंभी मेरी निष्काम भक्ति

❋ शंका—पहिले तो श्रीकृष्णने ज्ञानकी प्रशसा की, फिर कुछ कालोपरान्त ज्ञान, वैराग्य, तप, जप, तीर्थ आदि लेकर और जो सुन्दर सुन्दर कर्म हैं उनको मी त्यागकर मक्तिकी प्रशसा की कि सबसे मक्तिही वडी है, यह बडे सन्देह की वात है, किसको श्रेष्ठ मानै और किसको मध्यम मानै मगवान् श्रीकृष्ण तो कमी कुछ कहते हैं कमी कुछ कहतेहैं, ऐसे वचन सुनकर हमको वडा भ्रम होताहै ।

उत्तर—श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि थोडही दिनोंमें कलियुग आवेगा, जप, तप, तीर्थादिक सव सुन्दर सुन्दर कर्मोंका नाश करदेंगे, परन्तु मक्तिका नाश नहीं होसक्ता, इसलिये मगवान्ने मक्तिकी प्रशसा की कि, कलियुगमें मक्तिके सिवाय मनुष्योंसे और कोई दूसरा काम नहीं होगा ।

निष्कामभक्तकोही प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ जो मेरे विषे एकान्त भक्त रागद्वेषादि रहित समचित्त हैं और बुद्धिसे परे ईश्वरको प्राप्त हैं उनको विधिनिषेधके गुणदोषसे उत्पन्न हुए पुण्य पाप नहीं लगते ॥ ३६ ॥ इसप्रकार मेरे कहे मार्गोंमें जो पुरुष चलते हैं, वे परमकल्याणरूप मेरे धामको कि, जिसको परब्रह्म कहते हैं, प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा–इक्किसवें अध्यायमें, कर्म भक्ति औ ज्ञान ॥ सबके गुण अरु दोष में, वरणौं सहित विधान ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी बोले कि, हे उद्धव ! जो पुरुष मेरे बताये मार्ग, भक्ति, ज्ञान, निष्काम कर्मको छोड़कर इन चंचल

न मय्येकांतभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ॥ साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥ एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठंति मे पथः ॥ क्षेमं विंदंति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० योगत्रयभक्त्यादिनि० विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥ क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषंतः संसरंति ते ॥ १ ॥ स्वेस्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ॥ द्रव्यस्य विचिकित्साऽर्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥ धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चाऽनघ ॥ दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥

प्राणोंसे तुच्छ कामनाओंका सेवन करतेहैं, वह संसारको फिर प्राप्त नहीं होतेहैं ॥ १ ॥ जिसप्रकार अग्निका किसीको ताप होना और किसीको न होना संभव नहीं, इसीप्रकार उन्हीं कर्मोंसे किसीके गुण और किसीके दोष होना संभव नहीं, यह संदेह करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि निज निज अधिकारमें निष्ठा रखनेको गुण और निष्ठा न रखनेको दोष कहतेहैं, गुण दोषके विचारका यही निश्चय है ॥ २ ॥ यह शुद्ध है लीजिये यह अशुद्ध है न लीजिये ऐसे संदेहसे स्वाभाविक प्रवृत्तिको निवृत्त करनेके लिये समान वस्तुओंमें भी वेदमें शुद्धि और अशुद्धिका विधान किया है और इसके लिये उनमें गुण दोष माने हैं इसीसे पुण्य और पाप मानते हैं ॥ ३ ॥ हे निष्पाप ! धर्मका भार धारण करनेवाले पुरुषोंको मैंने ही

मनु आदिरूपसे यह आचार दिखाया है, यह शुद्धि और अशुद्धि धर्मव्यवहार तथा निर्वाहके लिये गुण और दोषरूपसे प्रतिपादन किये हैं धर्मके लिये शुद्धिसे धर्म अशुद्धिसे अधर्म, व्यवहारमें अशौचादिसे अशुद्ध भी राजव्यवहारमें न्याय करनेको शुद्ध और दूसरे कार्योंमें अशुद्ध हैं, आपदामें निर्वाहमात्र पदार्थ लेनेसे शुद्धि और अधिक लेनेसे अशुद्धि होती है ॥ ४ ॥ यद्यपि यह सब वस्तु समान हैं, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, ब्रह्म आदि जड़तक सबकी देहके कारण पंचमहाभूत हैं और आत्मा भी सब एकही हैं ॥ ५ ॥ परन्तु तो भी हे उद्धव ! समान भी देहविषे वेदने नाम, रूप, वर्ण, आश्रम संपूर्ण इन जीवोंके स्वार्थ सिद्धिके लिये पृथक् पृथक् किये हैं ॥ ६ ॥ केवल देहमेंही विभाग नहीं, किन्तु देशकाल आदि

भूम्यंब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः ॥ आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥ वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ॥ धातुषूद्धव कल्प्यंत एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ॥ गुण दोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ॥ कृष्णसारोप्यसौवीरकीक टासंस्कृतेरिणम् ॥८॥ कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ॥ यतो निवर्त्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥

संपूर्ण वस्तुओंमें कर्मके संकोचके लिये गुण दोषका विधान किया है, अब शुद्धि अशुद्धिका विषय कहते हैं ॥ ७॥ जिस देशमें काला मृग न हो, वह देश अशुद्ध है और सत्पात्र रहित देश, मार्जन रहित देश, ऊषरदेश, यह अशुद्ध हैं और जहाँ ब्राह्मणोंमें भक्ति न हो वह तो अत्यन्त ही अशुद्ध है, अंग वंग, कलिंगादिक भी देश अशुद्ध हैं, जहाँ काली मृगी और सत्पात्र हो सो अशुद्ध भी देश शुभ है, देशकी शुद्धि अशुद्धि कहकर अब काल समयकी शुद्धि कहते हैं ❋ ॥ ८ ॥ जो काल द्रव्यकी संपत्तिसे कर्मके योग्य है और जो स्वतःही प्रातः पूर्वाह्न, मध्याह्न काल कर्मके योग्य है, सो काल उस

---

* शंका–श्रीकृष्णने कहाथा कि, जिस देशमें काला मृग नहीं होता वह देश भ्रष्ट है यह बडे आश्चर्यकी बात है कि, जिस देशमें गंगा यमुना आदि नदी प्रयाग पुष्कर आदि तीर्थ बदरीनारायण आदि आश्रम हैं, वह भी देश काले मृग विना भ्रष्ट हैं ? तो इस बातसे यह सिद्ध हुवा कि, काला हरिणही सर्वोपरि मुख्य ठहरा यह गंगा और प्रयागादितीर्थ किसीको शुद्ध नहीं करसक्ते ।

उत्तर–श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा सो सब सत्य है, परन्तु विना व्याकरण पढनेसे अर्थ करनेकी शक्ति नहीं होसक्ती वह पुरुष अर्थका अनर्थ कर देते हैं, क्योंकि भागवतमें अकृष्णसारका अर्थ है व्यासजीने–

कर्मको शुद्ध है, जो सूतकादिक काल कर्मके योग्य नहीं है, यद्यपि काल सब एक है, परन्तु तो भी यह भेद किया गया है कि, कर्मके अयोग्य काल अशुद्ध है॥९॥ अब द्रव्यकी शुद्धि कहते हैं, द्रव्यकी शुद्धिअशुद्धि द्रव्य,वचन, संस्कार,बड़ेपन और छोटेपनसे मानी जाती है, द्रव्यको शुद्धि जल करता है सूत्रादिक अशुद्ध करते हैं कि, ब्राह्मणका वचन प्रमाण है वह कहे यह वस्तु शुद्ध है तो वह शुद्धही है, अशुद्ध कहे तो अशुद्धही है, पुरुष सूंघ ले तो अशुद्ध हो जाय, प्रोक्षणादिक संस्कारसे शुद्ध होय, कालसे जलकी शुद्धता. दश दिन हो जानेसे नये जलकी शुद्धि, चातुर्मास्यमें तीन दिनसे, शुद्धता बड़ेपनसे, चाण्डालादिकके स्पर्शसे तालाबका जल बहुत भरा हो तो चाहै कोई भरो वह जल शुद्ध है,छोटेपनसे घटादिका जल चाण्डालादिके स्पर्शसे अशुद्ध होजाता है॥१०॥ अब शक्ति अशक्तिसे शुद्धाशुद्धि कहते हैं, सूर्यग्रहणमें जिसको शक्ति हो, उसे सूतक लगै; स्नान

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ॥ संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथ वा ॥ १० ॥ शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने ॥ अघं कुर्वंति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितंतूनांरसतैजसचर्मणाम् ॥ कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥

दानसे शुद्धि होती है और जो अशक्त हैं उन्हें नहीं, बुद्धिसे पुत्रजन्मादि आशौचकी दशदिनके भीतर जानेसे अशुद्धि उपरान्त शुद्धि समृद्धि होनेके कारण जीर्ण वस्त्र मलिन वस्त्र श्रीमंतको अशुद्ध हैं, दरिद्रीको शुद्ध हैं, सूतकका अन्न समर्थको तो अशुद्ध है, असमर्थको शुद्ध है, यह द्रव्य वचन आदि द्रव्यकी अशुद्धिसे आत्माको पातक लगाते हैं, सो देश काल अवस्थाके अनुसारही लगाते हैं,निर्भय देशमें यही पापदायक चौरादिके उपद्रव युक्त देशमें नहीं, युवावस्थामें यही पापदायक और वृद्धावस्था तथा बालकपनमें शुद्ध है ॥ ११ ॥ इसप्रकार द्रव्यकी शुद्धि द्रव्योंसे कही, वचन शुद्धि एक ही भाँति है, द्रव्यकी शुद्धि बहुत प्रकार है सो कहते हैं अन्न, काष्ठ, हाथीदाँत, सूत्र, रस, तैल, घृतआदि सुवर्ण और मार्गकी कीच,

—ऐसा कहा कि, जिस देशमें काला मृग नहीं होगा वह देह भ्रष्ट होगा जो कोई ऐसे मनुष्य हैं कि संसारको कुधर्मी नहीं मानते इससे कुछ भी सार नहीं है ऐसा जानकरके बड़ी निश्चयसे श्रीकृष्णको सार जानते हैं कि, सब झूठा है श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदका आश्रय सत्य है, ऐसे जाननेवाले पुरुष जिस देशमें नहीं हैं वह देश भ्रष्ट है सो श्रीकृष्णने ऐसा कहाया कुछ ऐसा नहीं कहाया कि, जिस देशमें काला मृग नहीं है वह देश भ्रष्ट है ॥

कलश,ईंट यह सब काल वायु अग्नि जलसे यथायोग्य शुद्ध हैं अर्थात् धान्यकी शुद्धि वायुसे, यज्ञ पात्र तथा काष्ठकी जलसे, हाथी दाँत आदिकी कालसे, तैल घृत सुवर्णादिकी अग्निसे, तंतुओंकी जलसे, चामकी काल और रंगसे, पार्थिव विकार ईंट आदिकी कालसे शुद्धि होती है, कहीं तो यह सब मिलकर शुद्धि करते हैं और कभी अकेले करते हैं तो भी जो काक और चाण्डालादिक नीच जातिका स्पर्शहुआ हो तो इसके देश अवस्था देखकर विचार करै तब शुद्ध हो ॥ १२ ॥ और भी शुद्धि कहते हैं, पीढ़ा पात्र वस्त्र आदिमें जो अपवित्र वस्तु लेपकी लगजाय तो काष्ठ छिलायेसे शुद्ध हो, द्रव्यकी शुद्धि राख और खटाईसे धोवै तब शुद्ध हो, वस्त्र खारसे गंध और लेप छूटनेतक धोवै तब शुद्ध हो, जब दुर्गंध न रहे स्वच्छ होजाय तब शुद्ध है ॥ १३ ॥ अब कर्त्ताकी शुद्धि कहते हैं—स्नान, ध्यान, तप, अवस्था, बाल्य, कौमार, वीर्यसंस्कार, गायत्री उपदेश कर्म,

अमेध्यलिप्तं यद्येन गंधं लेपं व्यपोहति ॥भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोऽवस्था वीर्यसंस्कारकर्मभिः ॥ मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्मांचरेद्द्विजः ॥ १४ ॥ मंत्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ॥ धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोपि दोषः स्याद्दोषोपि विधिना गुणः ॥ गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥

संध्या दीक्षादिक कर्मसे ब्राह्मण जब शुद्ध होय तब कर्म करै और आत्माकी शुद्धि मेरे स्मरणसे होती है और प्रकारसे नहीं, ब्राह्मणादिकके देहकी शुद्धि इन संस्कारोंसे होती है और प्रकार नहीं, देहकी शुद्धि इन संस्कारोंसे होती है, सो भी व्यवहारके लियेही है; उसके निमित्त विहित कर्म करै ॥१४॥ अब मंत्रकी शुद्धि कहते हैं, श्रेष्ठ गुरुके मुखसे सुने, इसके उपरान्त उस मंत्रका अच्छीप्रकार ज्ञान हो तो मंत्रकी शुद्धि हो, जो कुछ कर्म भले अथवा बुरे करै सो सब मुझे समर्पण करे, यह कर्म शुद्धि है, देश काल द्रव्य कर्त्ता मंत्र कर्म इन छःपदार्थोंके शुद्ध होनेसे धर्मकी शुद्धि होती है, यही अशुद्ध हो तो अधर्म होता है ॥ १५ ॥ यह गुण दोषका विभाग यथार्थ नहीं है, कहीं आपदामें प्रतिग्रह लेनेसे दोष गुण होजाता है, धन होनेसे निषेध होनेका कारण कहीं दोष है और कहीं दोष भी विधिसे गुण होजाता है, जैसे कुटुम्बका त्यागना दोष है, परन्तु

विरक्तको कुटुम्ब त्यागना दोष नहीं, गुण दोषके कहनेवाले शास्त्र गुण दोषके बाधक हैं ॥१६॥ दोष भी कहीं दोष नहीं होता, यहाँ एक दृष्टान्त कहते हैं, जो सुरापानसे पतित नहीं हैं, उन पतितोंको सुरापानसे दोष नहीं होता, क्योकि वह जातिकर्ममें पहलेही पतित हैं उनको सुरापान अधिक पातक क्या करेगा ? और जो धर्मशील हैं, उन्हें उसका संगही पातक है, संन्यासी को संगही बंधनमें डाल देता है, सोई गृहस्थका गुण है क्योंकि गृहस्थको संग करना होता है, जैसा कि वेदमें कहा है " ऋतुके दिन स्त्री संग न करै, परन्तु जो पहलेही पृथ्वीपर सोया है, वह नीचे नहीं गिरता" ॥ १७ ॥ इसप्रकार गुण दोष का विचार प्रवृत्तिमार्गमें है निवृत्ति होनेके उपरान्त कुछ नहीं, सो कहते हैं, वेदका यही तात्पर्य नहीं है कि, जो सदा प्रवृत्तिमेंही रहै, वेद प्रवृत्ति छुटाकर निवृत्ति बताते हैं, इस कारण जिस जिस विषयसे निवृत्त हुआ, उससे मुक्त होजाता है, यह

समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ॥ औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७ ॥ यतोयतो निवर्त्तेत विमुच्येत ततस्ततः ॥ एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततो भवेत् ॥ संगात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥ कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्त्तते ॥ तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥ तया विरहितः साधो जंतुः शून्याय कल्पते ॥ ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ॥ वृक्षजीविकया जीवन्व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥

धर्म मनुष्योंको अत्यन्त शुभकारी है और शोक, मोह तथा भयको दूर करनेवाला है ॥ १८ ॥ प्रवृत्तिमार्ग अनर्थरूप है सो कहते हैं कि, जब मनुष्योंको विषयमें इन्द्रियोंका अध्यास होजाताहै, तब आसक्ति उत्पन्न होती है आसक्तिसे काम और कामहीसे कलह उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ कलहसे अतिअसह्य क्रोध होता है, क्रोधसे तम और अज्ञान होता है, अज्ञानसे पुरुषकी चेतना जो सब देहमें व्यापरही है, सो शीघ्रही नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ हे साधो ! जब वह चेतनासे रहित हुआ, तब यह जीव आसाधुके तुल्य हो मूर्च्छित होता है, मूर्च्छा होतेही मृतक समान होनेसे इसके पुरुषार्थकी हानि होती है ॥ २१ ॥ जो मृतक समान है उसका स्वरूप कहते हैं, जो विषयोंमें आसक्त होनेके कारण आत्माको तथा और को भी नहीं जानते, सो वृक्षोंकी जीविका की नाईं वृथा जीते हैं, धौंकनीके समान श्वास लेते भी मृतक समान हैं ॥ २२ ॥

यह जो प्रवृत्तिमार्गकी आज्ञाहै, सो वेदने यहाँ कर्मोंके फल रुचि दिखानेके लिये वर्णन किये हैं, जैसे रोगीको औषधी रुचि उपजाकर पिलाते हैं, तात्पर्य आरोग्यतासे है. सदा औषधी सेवनसे नहीं. इसी प्रकार जब तक ज्ञान न हो तब तक कर्म करनेकी वेद आज्ञा करता है, सब काल कर्म करनेसे तात्पर्य नहीं ॥ २३ ॥ मनुष्य स्वभावहीसे पशु आदिमें और इन्द्रिय, बल वीर्यमें, पुत्रादिकोंमें आसक्तचित्त होजाता है सो सब अपने आपको अनर्थका हेतु है ॥ २४ ॥ इससे स्वार्थ अर्थात् परमसुखको जो पुरुष नहीं जानते, वह अनेक पापरूप मार्गोंकी उन उन योनियोंमें भ्रमण करते हैं, इसके पीछे जड़रूप वृक्ष आदि योनियोंमें प्रविष्ट होते हैं, उनको फिर वेद भी धर्मोंमें नहीं प्रवृत्त करे, जिससे अनिष्ट हो उसीमें वेद प्रवृत्त करे तो हितकारी हो ॥ २५ ॥ कर्ममार्गी कैसे फल बताते हैं, सो कहते हैं, इसप्रकार वेदका अभिप्राय जाने विना कुबुद्धिही लोग वेदमें

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् ॥ श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥ उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च ॥ आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥ २४ ॥ न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ॥ कथं युंज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥ २५ ॥ एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ॥ फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥ कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ॥ अग्निमुग्धा धूमतांताः स्वं लोकं न विदंति ते ॥ २७ ॥ न ते मामंग जानंति हृदिस्थं य इदं यतः ॥ उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥ ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ॥ हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥

कहे हुये सुन्दर फलश्रुतिको सत्य समझतेहैं वह भ्रम है परन्तु जो वेदके तात्पर्यको जानते हैं, वह व्यास आदि ऋषि ऐसा नहीं कहते ॥ २६ ॥ कामीकृपण, लोभी, पुष्परूपी स्वर्गादि सुखरूप अवान्तर फल जो मुख्य माननेवाले अग्निहोत्रादिसे मुग्ध धूम्रयुक्त चित्तवाले अपने सुखदायक लोकको नहीं जानते ॥ २७ ॥ हे उद्धव ! जिससे यह जगत् प्रगट है और जो जगत्‌रूप है, ऐसे मुझ परमात्माको वे हृदयमें स्थित नहीं जानते, कर्मरूप शस्त्रोंसे पशु हिंसाकर बकवत प्राण पुष्ट करते हैं जैसे कुहरेसे कुछ नहीं दीखता, वैसेही अज्ञानसे उनके नेत्र व्याप्त हैं, क्योंकि जो समीपमें स्थित मुझे नहीं जानते ॥ ॥ २८ ॥ इसी कारणसे मेरे वाक्यरूप वेदके गूढ़ तात्पर्यको विषयी नहीं जानते, मेरा मत यह

है कि, यदि मांस भक्षणके लिये हिंसाकी विधिमें वेदकी प्रीति होती तो वेद यज्ञमेंही मांस भक्षणकी विधि नहीं करता, किन्तु सदाके लिये आज्ञा देता मनुष्योंकी मांसमें अधिक प्रवृत्ति देख उनको इससे छुड़ानेके लिये कि, एक संग तो छूट नहीं सकता, इस कारण छुडानेका उपाय प्रतिपादन करता है कि, पशुको यज्ञमेंही मारना और स्थलमें नहीं उसमें भी अमुक पशु मारना, इससे वेदका अभिप्राय पशुहिंसासे निवृत्तिही करनेका है ॥ २९ ॥ हिंसामें जिनके व्यवहार हैं, अपने विषय भोगोंके लिये पशुओंकी हिंसा करके देवता, पितृ, भूतपतियोंका जो पुरुष पूजन करते हैं वह अतिदुष्ट हैं ॥ ३० ॥ स्वप्नके समान कानोंको सुख दायक परलोकको और इस लोककी कामनाओंका मनमें संकल्प करके अपने धनको सकामकर्मोंमें व्यय करते हैं और दोनों लोकसे भ्रष्ट होजाते हैं, जैसे बनियाँ दुस्तर समुद्रके उल्लंघन करनेमें बहुत धन प्राप्तिकी इच्छाकर

हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ॥ यजंते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन्खलाः ॥३०॥ स्वप्नोपममसुं लोकमसंतं श्रवणप्रियम् ॥ आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजत्यर्थान्यथा वणिक् ॥ ३१ ॥ रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः ॥ उपासत इन्द्रमुख्यान्देवादीन्न तथैव माम् ॥ ३२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ॥ तस्यांत इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥ एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ॥ मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्तापि न रोचते ॥ ३४ ॥ वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे ॥ परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥

अपने संचित किये धनको छोड़ दोनोंओरसे भ्रष्ट होजाता है ॥ ३१ ॥ और जो रजो गुण, सतो गुण, तमोगुणसे युक्त होकर जैसे इन्द्रादिक देवताओंकी सेवा करतेहैं, वैसे मेरी सेवा नहीं करते॥३२॥मनमें अनेक मनोरथ करते हैं कि, "यहाँ यज्ञसे देवताओंको सन्तुष्टकर स्वर्गमें जाकर विहार करेंगे और फिर यह भोग भोगकर अंतमें यहाँ आय बड़े बड़े गृह तथा बड़े कुलमें स्थित होंगे" ॥ ३३ ॥ इस प्रकार फूली बातोंसे चंचल चित्त मनुष्य मान अहंकार भरे गृहमें रमे रहते हैं, उनको मेरी वार्त्ता अच्छी मालूम नहीं होती ॥ ३४ ॥ इसकारण वेदका तात्पर्य ब्रह्म विषेहै, निवृत्तिही को बतातेहैं, यद्यपि कर्मयोग, ज्ञानमार्ग, उपासनामार्ग, भिन्न भिन्न कहेहैं परन्तु तोभी तात्पर्य ब्रह्ममेंही है मंत्र और मन्त्रोंके द्रष्टा ऋषि परोक्ष रीतिसेही पदार्थका प्रतिपादन करते हैं, इससे ब्रह्म आत्मामें गूढ होनेके कारण प्रकाशित नहीं परोक्षरीतिसे कहनेका कारण यह है कि, मुझे

परोक्ष प्रियहै जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं वही उसको जान सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते दूसरोंके जाननेमें हित तो दूर रहे; किन्तु कर्मभ्रष्ट होनेकी आपत्ति आनपड़ती है ॥ ३५ ॥ तो कहते हैं कि, जैमिनि आदिऋषि वेदके ज्ञाता थे इन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा ? इसका उत्तर यह है कि, वेदका तत्त्व मुझ विना कोई नहीं जानता है क्योंकि शब्दब्रह्म अति दुर्ज्ञेय है वही सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दो प्रकारका है सूक्ष्मका तो स्वरूप जानना भी अतिकठिन है. क्योंकि प्रथम तो वह परा नामक प्राणमय है, दूसरा पश्यंती नाम मनोमय है, तीसरा मध्यमानाम इन्द्रियमय है, देहमें यह तीनों स्वरूप सूक्ष्मरूपसे रहते हैं, इसलिये इनका जानना कठिन है चौथा वैखरीस्वरूप है जिससे मनुष्यबोलते हैं, समष्टि प्राणमय वेदब्रह्मका देशकालसे परिच्छेद न होनेके कारण उसके पारका अंत नहीं है जिसप्रकार यह वेद ब्रह्मशब्दसे जानना कठिन है, उसी प्रकार अर्थसे भी महागंभीर समुद्रके

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेंद्रियमनोमयम् ॥ अनंतपारं गंभीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥ ३६ ॥ मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनंतशक्तिना ॥ भूतेषु घोषरूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ॥ आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छंदोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ॥ ओंकाराद्व्यंजितस्पर्शस्वरोष्मांतःस्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ॥ अनंतपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥ ४० ॥

समान अवगाह करनेको दुःसाध्य है ॥ ३६ ॥ अनन्तशक्ति व्यापकरूप अन्तर्यामी ब्रह्मसे यह नादवन्त वाणीरूप कमलनालमें तंतुके समान सब प्राणीमात्रमें प्रतीत होता है, इस स्वरूपका विद्वान् पुरुष विचार करते हैं ॥ २७ ॥ जैसे मकरी हृदयसे निकाल मुखद्वारसे जालको प्रगट करती है उसी प्रकार प्राणोपाधि हिरण्यगर्भ प्रभु भगवान् वेदमूर्त्ति अमृतमय नादवंत स्पर्शादिकोंका कर्त्ता और मन करके हृदयाकाशसे वैखरी नाम वाणीको उपजाकर जाते हैं, जो बृहती वा वैखरी नामक वाणी उपजाते हैं फिर आपही संहार करते हैं वह कैसी वाणी है ? कि जिसके अनेक मार्ग हैं ॥ ३८ ॥ हृदयमें प्राप्त अतिसूक्ष्म प्रणवसे प्रगटहुए जो स्पर्श, स्वर, ऊष्मा, अंतस्थसे शोभित ॥ ३९ ॥ अनेक लौकिक भाषाओंसे फैली उत्तरोत्तर चार चार अक्षर जिनमें बढ़ैं ऐसे गायत्री आदिसे छंदोंसे युक्त पारावार रहित है, वह प्राण उसे आपही प्रगट

करके उपसंहार करते हैं ॥ ४० ॥ उनमें कितनेही छन्दोंको दिखाते हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अत्यष्टि, अतिजगती और अतिविराट् इत्यादि छन्द हैं, चार चार अक्षर बढानेसे बनते हैं जैसे चौबीस २४ अक्षरोंका गायत्री छन्द होता है, अट्ठाईश २८ अक्षरका उष्णिक् छन्द होता है, बत्तीस ३२ अक्षरका अनुष्टुप्छन्द होता है, इस प्रकार चार चार अक्षरोंको अधिक करके छन्दोंका लक्षण ज्ञानलेना ॥ ४१ ॥ यह वेदवाणी कर्मकाण्डोंमें विधिवाक्योंसे क्या प्रतिपादन करती है और मंत्रवाक्योंसे देवताकाण्डमें किसका प्रकाश करती है ज्ञान काण्डमें यही वेदवाणी किसका अनुवाद करके विकल्प बताती है इसप्रकार वेदवाणीके तात्पर्यको मेरे अतिरिक्त जाननेकी किसीको सामर्थ्य नहीं ॥ ४२ ॥ वेदवाणी देवतारूप मेराही प्रतिपादन करती है और (उस्से आकाश उत्पन्न हुआ) इत्यादि वाक्योंसे विकल्प कथनकर पीछे

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥ त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छंदो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ४१ ॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ॥ इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥ ४२ ॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ॥ एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥ मायामात्रमनूद्यांते प्रतिषिध्य प्रसीदति॥ ४३॥ इति श्रीभा० म० एका० गुणदोषव० एकविंशोध्यायः॥ २१ ॥ उद्धव उवाच ॥ कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥ नवैकादश पंच त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

निराकरण कहते हैं सोभी मेराही स्वरूप है सब वेदका तात्पर्य यही है कि, परमेश्वर परमार्थरूप है, भेद मायामात्र है, इसप्रकारजो ओंकारमें अर्थ है वही सब काण्डोंमें है, जैसे अंकुरका रस शाखा प्रशाखा फल पुष्पादि सब आजाता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा—बाइसवें अध्यायमें, प्रकृतीपुरुषविचार, तत्त्वोंकी संख्या सकल, अरु अविरोध प्रकार ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि हे भगवन् ! हे विश्वेश्वर ! हे प्रभो ! कितने एक महात्मा तत्त्वोंकी संख्यामें विवाद करते हैं, उन्होंने अपने शास्त्रोंमें तत्त्वोंकी संख्या पृथक् २ की है, आप सब मिलकर तत्त्वोंकी संख्या अट्ठाईस २८ कहते हैं यह आपकेही श्रीमुखसे सुना है ॥ १ ॥

कोई छब्बीस २६ कहता है, कोई पचीस कहता है, कोई सात७कहता है कोई नौ ९ कहताहै, कोई छः ६ कहता है, कोई चार ४ कहता है, कोई ग्यारह ११ कहता है, कोई सत्रह १७ कहता है, कोई सोलह १६ कहताहै कोई तेरह १३ कहताहै ऋषीश्वर जिस प्रयोजनके अर्थ इतनी संख्या भिन्न भिन्न कहते हैं, सो हे चिरंजीव ! यह मुझे समझाकर कहो ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित ! जब इसप्रकार पूँछा तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! ब्राह्मण जो कहते हैं, सो युक्त है, यह तत्त्व सर्वत्र हैं मेरी मायाको अंगीकार करके कहते हैं, जिस मायामें किसी प्रकारका कहना अशक्य नहीं है ॥ ४ ॥ तुम जैसे कहते हो, यह ऐसे नहीं जो मैं कहता हूं सो सत्य है, इसप्रकार उन तत्त्वोंके मूल कार

केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ॥ सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ॥ एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥ गायंति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युक्तं च संति सर्वत्र भाषंते ब्राह्मणा यथा ॥ मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥ नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ॥ एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ॥ प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ॥ पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नपि दृश्यंते प्रविष्टानीतराणि च ॥ पूर्वस्मिन्वाऽपरस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥ पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ॥ यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥ ९ ॥

णमें जो ब्राह्मणोंका विवाद है वह यथार्थरूपसे देखाजाय तो अपने अपने स्वभावके अनुसार परिणाम होनेवाले मायाके सत्त्वादि गुणही विवादका कारण है ॥ ५ ॥ जिन शक्तियोंके क्षोभसे विवाद कर्त्ताओंका भेद आश्रय हुआ है, जब शम प्राप्त होनेसे भेद दूर हो तो भेद जानकर पीछे विवाद शान्त होजाता है ॥ ६ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! तत्त्वोंके परस्पर अनुप्रवेशसे कार्य कारणरूप तत्त्वोंकी संख्या वक्ताकी इच्छानुसार होसकती है ॥ ७ ॥ अब अनुप्रवेशको कहते हैं, एकही तत्त्वमें सब तत्त्व कारणमें अथवा कार्यमें प्रविष्ट दीखते हैं, जैसे मृत्तिकामें घट और घटमें मृत्तिका अन्योन्य प्रविष्ट हैं ॥ ८ ॥ इन तत्त्वोंका कार्यकारणभाव और न्यून आदिक संख्याको वादियोंके मध्य जैसे कहनेकी इच्छासे जैसे कि

जिह्वा जिसप्रकार प्रवृत्त होती है, वह वैसीही सिद्धि करसकती है, हम इस सबको संभव जानते हैं ॥ ९ ॥ जीव ईश्वर जो चैतन्यरूप है, उसके भेद अभेद माननेके कारणको कहताहूं कि, जो जीव अनादि कालसे अविद्यासे संयुक्त है, इसलिये उसे अपने स्वरूपका ज्ञान स्वयं नहीं होसक्ता, उसे ज्ञान दाता सर्वज्ञ ईश्वर पृथक् है, ऐसा जानकर जीव ईश्वरमें भेद माननेवालोंके मतमें चौबीस तत्त्व और पचीसवाँ जीव तथा छब्बीसवाँ तत्त्व है ॥ १० ॥ स्वयं संख्या विषे भेदकल्पना व्यर्थ है, क्योंकि जीव ईश्वर दोनों चैतन्य होनेसे उनमें कुछ भेद नहीं और ऐसा माननेवाले पचीस तत्त्व कहते हैं ज्ञान प्रकृतिका गुण है, इसीसे प्रकृतिमें गिना है, यह एक पक्ष है ॥ ११ ॥ अहो ! ज्ञान तो जीवका धर्म है, प्रकृतिका गुण कैसे है ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, तीनों गुणोंकी समान अवस्था प्रकृति है, गुण प्रकृतिहीके हैं, आत्माके नहीं. सत्व, रज, तम, गुण उत्पत्ति,

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ॥ स्वतो न संभवेदन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ॥ तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥ १२ ॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्मतमोऽज्ञानमिहोच्यते ॥ गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ॥ ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥ श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ॥ वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिः कर्माण्यंगोभयं मनः ॥ १५ ॥ शब्दः स्पर्शो रसो गंधो रूपं चेत्यथजातयः ॥ गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥

पालन और प्रलयके कारण हैं ॥ १२ ॥ सत्त्वमय ज्ञान प्रकृतिका गुण है, कर्म रजोगुणका गुण है, अज्ञान तमोगुणका गुण है और स्वभाव यह महत्तत्त्वका स्वरूप है; काल ईश्वरका स्वरूप है; इसलिये काल स्वभाव भिन्न तत्त्व नहीं हैं, मैंने जो अट्ठाईस तत्त्व कहे हैं, उनमें पूर्वोक्त पचीस और तीनगुण यह सब मिलाकर अट्ठाईस होते हैं ॥ १३ ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वीमें यह मैंने नौ तत्त्व कहे हैं ॥ १४ ॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका, जिह्वा; यह पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं. वाणी, हाथ, पाँव, उपस्थ, गुदा, यह पाँच कर्मेन्द्रिय हैं, हे उद्धव ! ज्ञान और कर्म, रूप, मन यह ग्यारह ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पाँच ज्ञानेन्द्रियके

विषय हैं, गति, वचन, मलत्याग, ग्रहण, आनंद, यह पाँच कर्मेन्द्रियोंके फल हैं, यह सब इन्द्रियोंके फल हैं, भिन्न नहीं. इससे अट्ठाईसके भीतर हैं, तत्त्व नहीं है ॥ १६ ॥ इस विश्वकी आदिमें कार्य कारणरूपिणी प्रकृति सत्त्वादि गुणसे इस विश्वकी उत्पत्ति अंत, आदि अवस्था रखते हैं, निर्विकार पुरुष केवल साक्षी हुआ देखता है, इसकारण विकारयुक्त प्रकृतिसे पुरुष भिन्न है ॥ १७ ॥ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्तत्वादिक धातु विकारको पाकर पुरुषके चितवनसे बल पाय महत्तत्त्वादिक परस्पर मिल प्रकृतिके आश्रयसे ब्रह्माण्डरूप कार्यको उत्पन्न करते हैं इससे संघातको प्राप्त होकर उनके उत्पन्नकिये देहादिक पदार्थ उन्हींके अन्तर्भूत होजाते हैं, इससे देहादिक पृथक् तत्त्व नहीं हैं ॥ १८ ॥ किसीके मतमें आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, यह पाँच पदार्थ और द्रष्टा जीव आकाशादि पदार्थोंका और जीवका आधार आत्मा; यह सात तत्त्व हैं,

सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ॥ सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ॥ लब्धवीर्याः सृजंत्यंडं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥ सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पंच खादयः ॥ ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेंद्रियासवः ॥ १९ ॥ षडित्यत्रापि भूतानि पंच षष्ठः परः पुमान् ॥ तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥ चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः ॥ जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥ ॥ २१ ॥ संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेंद्रियाणि च ॥ पंचपंचैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ॥ भूतेंद्रियाणि पंचैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥

इस मतमें प्रकृति महत्तत्त्व और अहंकार इस कारण तत्त्वोंका आकाशादिमें अन्तर्भाव माना है, इन्हीं सातों देह इन्द्रियादिकी उत्पत्ति मानी है ॥ ॥ १९ ॥ जिनके मतमें छः तत्त्व हैं, वह पाँच तो पंचमहाभूत और छठे परमात्माको मानते हैं, इस मतमें परमात्मा अपनेसे उत्पन्न हुए भूतोंसे जगत्को रचकर उसमें प्रविष्ट है इससे सब पदार्थोंका परमात्मामें अंतर्भाव है ॥ २० ॥ जिनके मतमें चार तत्त्व हैं उनमें आत्मा और आत्मासे प्रादुर्भूत हुए तेज, जल, पृथ्वी, यही चारतत्त्व हैं इससे सब जगत् उत्पन्न हुआ है सब कार्यका उसमें अन्तर्भाव है ॥ २१ ॥ सत्रह तत्त्वके मतमें पंचमहाभूत पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच ज्ञानेन्द्रिय एक मन सत्रहवाँ आत्मा ॥ २२ ॥ सोलह तत्त्वके मतमें आत्माही मन कहा है और

तेरहके मतमें पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेन्द्रिय एक मन, जीवात्मा और परमात्मा यह तेरहहैं ॥ २३ ॥ ग्यारहके मतमें पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेन्द्रिय, एक आत्मा, नौके पक्षमें पांच महाभूत प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार और पुरुषसे यह कहते हैं ॥ २४ ॥ इसप्रकार ऋषियोंने तत्त्वोंकी पृथक् पृथक्संख्या कही है यह सब प्रकृतिसे पुरुषके भिन्न जाननेको हैं, यह सब यथार्थ है क्योंकि विद्वानोंका कहा न्यायसिद्ध है विद्वान् क्या नहीं कह सकते ? ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! प्रकृति और पुरुष जिनमें एक जड़ और एक चैतन्य है यद्यपि यह स्वभावसेही भिन्नहै परन्तु तो भी परस्परका त्याग करते उनकी प्रीति नहीं होती, इससे भेद नहीं देखा जाता ॥ २६ ॥ हे पंकजलोचन ! आत्मा देहमें भासता है,

एकादशत्वमात्मासौ महाभूतेंद्रियाणि च ॥ अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥ इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ॥ सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥२५॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ॥ अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥२६॥ प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥ एवं मे पुंडरीकाक्ष महांतं संशयं हृदि ॥ छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ॥ त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ॥ एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥ ममांग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धिश्च गुणैर्विधत्ते ॥ वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥

देह आत्माको ग्रहण कर प्रतीत होता है "मैं हूं" इस प्रकार दोनोंका अभेद प्रकाशनेसे देहका आत्मासे भेद नहीं देखा जाता है हे सर्वज्ञ मेरे इस संदेहको युक्तिके वचनोंसे दूर करो ॥ २७ ॥ तुम्हारी कृपासेही संसारी जीवोंको ज्ञान प्राप्त होताहै, तुम्हारी मायासेही अज्ञान होता है, आपके अतिरिक्त आपकी मायाकी गति कोई नहीं जानता॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, देह और आत्मामें बहुत विलक्षणता है, गुणोंके क्षोभसे होनेवाला यह देह तो विकारी है, आत्मा विकाररहित है ॥२९ ॥ हे उद्धव ! मेरी गुणमयी मायाने अनेक भाँतिभेद और भेदके ज्ञान रचे हैं, यद्यपि इस

देहमें अनेक भेद हैं परन्तु तो भी तीन प्रकारके कहे हैं, एक अध्यात्मरूप, एक अधिदैवरूप, एक अधिभूत रूप ॥ ३० ॥ दृष्टि अध्यात्म है और अधिभूत नेत्रगोलकमें प्रविष्ट सूर्यका अंश अधिदैव है, नेत्रोंसे रूप जानिये, सो नेत्रोंकी प्रवृत्ति प्रेरणावाले देवता विना नहीं होती, इससे अधिष्ठात्री देवतासे नेत्रोंकी प्रवृत्ति इससे रूपज्ञान होता है, इसप्रकार तीनों परस्पर सिद्ध होते हैं, जो आकाशविषे सूर्य है तो आपसेही सिद्ध है इसलिये आत्मा अध्यात्मादिकोंका कारण है इससे भिन्न है अपने आपसे सिद्ध प्रकाश करके परस्पर प्रकाश करनेवालोंका भी प्रकाशक है. जैसे नेत्रमें तीन प्रकार हैं ऐसेही त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, वायु अधिदैव, श्रवण अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदैव, जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, वरुण अधिदैव, श्रवण अध्यात्म, गंध अधिभूत, अश्विनीकुमार अधिदैव, चित्त अध्यात्म, जिसके चित्तसे जानने ऐसा अधिभूत, वासुदेव अधिदैव,

दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रंध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ॥ आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः ॥ एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥३१॥ योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ॥ अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐंद्रियश्च ॥ ३२ ॥ आत्मापरिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठः ॥ व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो ॥ उच्चावचान्यथा देहान्गृह्णंति विसृजंति च ॥ ३४ ॥

मन अध्यात्म, जिसको मन कीजे सो अधिभूत, चन्द्रमा अधिदैव, बुद्धि अध्यात्म, जो जानिये ऐसेही अधिभूत, ब्रह्मा अधिदैव, अहंकार अध्यात्म अहंकारसे जो कीजिये सो अधिभूत, रुद्र अधिदैव ॥ ३१ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है—सात्विक, राजस, तामस, गुणके क्षोभकर्त्ता कालसे और प्रकृतिसे मूल महत्तत्त्वसे उत्पन्न हुए विकार हैं, यही अधिदैव अध्यात्म अधिभूतरूपी मोहसे देहादिके विकल्पका कारण है, जब देहादि अहंकार मिटजाय तब आत्माकी प्रतीत होसकती है ॥ ३२ ॥ आत्माका न जानना इसका रूप है, यह है यह नहीं ऐसा विवाद मेटके अधर्ममें निष्ठा और यह विवाद व्यर्थ ही है परन्तु तोभी स्वरूपभूत मुझसे विमुख जिनकी बुद्धि है उनको निवृत्ति नहीं होती है परन्तु विवादसे किये कर्मोंसे ऊंच नीच देहमें जन्म, मरणको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! तुमसे जिनकी बुद्धि विमुख है वह अपने करे कर्मोंसे

आपही नीच देहोंको ग्रहण करते हैं, व्यापक आत्माको देहसे और देहमें जाना अकर्त्ताका कर्म और नित्यका जन्म, मरण कैसे संभव होसकता है ? ॥ ३४ ॥ हे गोविन्द ! अजितेन्द्रियोंसे जो जाननेयोग्य है वह मुझसे कहो, क्योंकि लोकमें बहुधा इसके जाननेवाले नहीं हैं और हैं भी तो वह मायासे मोहित हैं * ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! कर्ममय मनुष्योंका मन पाँच इन्द्रियोंके सहित इस लोकसे और लोकमें जाता है और मनसे भिन्न आत्मा अहंता ममतासे मनके पीछे जाता है । लिंगदेहसे यह सब बन सकता है ॥ ३६ ॥ कर्मोंके अधीन मन इस

तन्ममाख्याहि गोविंद दुर्विभाव्यमनात्मभिः ॥ न ह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः संति वंचिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मनः कर्ममयं नृणामिंद्रियैः पंचभिर्युतम् ॥ लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥ ध्यायन्मनोऽनु विषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ ॥ उद्यत्सीदत्कर्मतंत्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत्स्मरेत्पुनः ॥ जंतोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यंतविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ॥ विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथाः ॥ ३९ ॥

लोक और परलोकके विषे ध्यान करता उन विषयोंमें प्रगट होता है और पहले विषयोंमें लीन होजाता है, इसके उपरान्त उसको पहले पिछलेका स्मरण जाता रहता है ॥ ३७ ॥ कर्मोंके द्वारा दूसरे देहमें अत्यन्त अभिनिवेश होनेपर वह देवतादिकका देह हो तो हर्षसे अधम हो, तो शोकके भयसे जीवको प्रथम देहका विस्मरण होना, और उस देहका अहंकार नष्ट होना, यही आत्माका मरण है, कुछ देहके समान उसका मरण नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे दानी ! मनका दूसरे देहके साथ सम्बन्ध होनेपर उसमें अत्यन्त अहंकार प्रादुर्भूत होताहै मनके अध्याससे आत्मामें देहका

* शंका-श्रीकृष्णने उद्धवसे कहाकि, पृथ्वीमें विद्वान् नहीं हैं एक विद्वान् तो वे हैं जो व्याकरण आदि शास्त्रको पढते हैं ऐसे विद्वान् तो पृथ्वीपर बहुत हैं परन्तु उद्धव जिनको विद्वान् कहे वह विद्वान्कोनहैं? उत्तर-शास्त्र पढनेवालेको विद्वान् योगीश्वर लोग नहीं कहते, विद्वान् उसका नाम है कि जो पुरुष मोक्ष विद्याको जानता हो मोक्ष विद्या कैसी है कि, जिस मोक्षविद्याकी प्राप्तिके लिये बड बड चतुर योगीजन अनेक उपाय कर करके हारगये, परन्तु मोक्षविद्या प्राप्त नहीं हुई और जो किसी योगी पुरुषको हो भी गई तो बडि कठिनतासे, ऐसी विद्या जाननेवाले विद्वान् पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये उद्धवजीने कहा । शास्त्र पढनेवाले विद्वानोंके लिये नहीं कहा ।

ममत्व होताहै, यही आत्माका जन्म है ॥ ३९ ॥ जैसे एक स्वप्न देखनेके उपरान्त दूसरा स्वप्न होता है तथा एक मनोरथके उपरान्त दूसरा होता है, तब पहला मनोरथ और स्वप्न विस्मृत होजाता है, इसीप्रकार अत्मा मनके आभ्याससे अपने आपको नवीन उत्पन्न मानता है, इस भॉतिकी दशा होनेसे मनके अभ्यासके कारण एक देहका अभिमान नष्ट होनेपर दूसरे देहका तीव्र अभिमान होनेसे यह अपने पूर्व जन्मको नहीं जानता ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंका आश्रय जो मन और देहके अभिनिवेशसे उत्पत्ति द्वारा आत्मामें उत्तम, मध्यम, नीचता, मिथ्या होनेपर भी प्रकाशित होते हैं, उन्हींके द्वारा आत्मा बाह्य विषयोंको और अंतरमें सुखादिकोंको देखता है, जैसे जीव स्वप्नमें झूठे बहुत देहोंका कर्त्ता देखता बहुत रूप भासे है अथवा जैसे दुष्ट पुत्रका पिता पुत्रके प्रेमसे पुत्रके शत्रु मित्रोंको अपना शत्रु मित्र मान लेता है, इसीप्रकार आत्मा मनके अभिनिवेशसे देहको अपना

स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ॥ तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥ इंद्रियायनसृष्टयेदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ॥ बहिरंतर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥ ४१ ॥ नित्यदा ह्यंग भूतानि भवंति न भवंति च ॥ कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ ४२ ॥ यथाऽर्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ॥ तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥

जानता है ॥ ४१ ॥ जिसकी तीव्र गति जाननेमें नहीं आती, ऐसे कालके लिये यह शरीर क्षण क्षणमें उत्पन्न होते और मरते हैं परन्तु कालकी सूक्ष्मताके कारण अज्ञानी इस जन्म मरणको नहीं जानते ॥ ४२ ॥ नित्य जन्म मरण होता है, यद्यपि इसका प्रमाण कहीं देखनेमें नहीं आताहै परन्तु तो भी अनुमानसे जन्म बताते हैं, जैसे ज्योति पहले कोमल होती है, फिर कुछेक अधिक होती है, इसके उपरान्त अतिक्षीण होजाती है, जैसे वृक्षका फल पहले कच्चा हुआ, फिर कुछेक पीला पड़ा, इसके उपरान्त पकगया जिसप्रकार क्रमसे भिन्न अवस्था कालसे होती है, पर जानी नहीं जाती, ऐसेही इसी अनुमानसे शरीरको भी कालसे नित्य वय अवस्थादिक होती हैं, परन्तु जानी नहीं जाती हैं, प्रथम अवस्थाका त्याग दूसरेका ग्रहण यही जन्म मरण नित्य होता है यही जगत् अवस्थाका भेदवाला है, इसीसे क्षण क्षण में उत्पत्ति और नाशको प्राप्त होता है, अवस्थाके भेदवालोंकी

यही दशा है ॥ ४३ यहां तर्क करते हैं कि, नित्य अवस्थाभेदसे जन्म मरण होनेवालेको ऐसा ज्ञान क्यों होता है ! कि यही देह है, सो यहां दृष्टान्त दिखाकर कहते हैं कि जातियोंके सादृश्यसे यह वही दोष है, ऐसा ज्ञान होता है जिसप्रकार जल क्षण क्षणमें बदलता है परन्तु नया जल आने परभी उन्हें वही जल है, यह भ्रांति होती है,इसीप्रकार शरीर क्षणक्षणमें परिवर्त्तित होता है, परन्तु यह वही शरीर है ऐसी वाणी अज्ञानी पुरुष भ्रांतिसे कहाकरतेहैं॥४४॥अहो!बड़ा आश्चर्यहै जिसको देहाभिमानहै,उसको कर्म जन्म मरण सबहै औरोंको नहीं, सो कैसे संभव होसकताहै!तो उत्तरमें कहतेहैं कि, वस्तुसे देहाध्यासवत्का भी जन्म मरण नहीं, अध्यासवत् पुरुष अपने कर्मबीजसे न उत्पन्न होता न जन्म लेता है भ्रांतिसे अजन्मा होनेपरभी जन्मतासा और अमर होनेपर भी मरतासा प्रतीत होताहै॥४५॥अब देहकी अवस्थाको कहतेहैं, देहका प्रथम तो उदरमें प्रवेश और फिर गर्भवास होत

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ॥ सोयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥ मा स्वस्य कर्म बीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ॥ म्रियते वाऽमरो भ्रांत्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ॥ वयो मध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ॥ गुणसंगादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥ ४७ ॥ आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ॥ न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वाञ्जन्मसंयमौ ॥ तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥

है, पीछे जन्म फिर बाल्य कौमार यौवन मध्यम व्रय, (पैंतालीस वर्षसे पीछे साठ वर्षतक) उपरान्त जरा, पीछे मृत्यु, यह तो देहकी नव अवस्था हैं ॥ ४६ ॥ यह मनोरथमयी अवस्था ऊँच नीच देहको है. सत, रज, तम, गुणके संगसे आपको मान लेते हैं, इनमें कोई एक ईश्वरके अनुग्रहसे भक्त इन अवस्थाओंको बहुत विवेक ज्ञानसे छोड़ देते हैं ॥४७॥ यदि कहो कि, देहके जन्म मरणमें तो वह मूर्छित रहता है, इसे इतना ज्ञान कैसे होसके ? तो सुनो,पिता मरता है, उसकी क्रिया करते हैं, तब देहका नाश देखते हैं, पुत्र जन्म होता है, तब जातकर्म करते हैं. तहाँ देहका जन्म देखते हैं, उस अनुमानसे अपने देहका जन्म मरण जानते हैं, परन्तु जन्म मरण खाली देहको है, द्रष्टाको जन्म मरण नहीं होत ॥४८॥ जैसे धानादिके बीजसे जन्मका और पकानेसे मरणका जाननेवाला जो द्रष्टा है, वह वृक्ष और फलसे भिन्न है. इसीप्रकार देहके जन्म मरण जाननेवाला द्रष्टा

देहसे पृथक् हैं ॥ ४९ ॥ इस भाँति शरीरादिसे आत्माका यथार्थ विचार करना चाहिये. यदि यह विचार न किया जाय तो विषयमोहमें गिरनेके कारण यह मूढ़ प्राणी संसारमें गिरता है ॥ ५० ॥ गुणके भेदसे त्रिविध संसार कहते हैं, तहाँ एक एकके दो दो भेद हैं सो कहते हैं कि, सतो गुणके संगसे ऋषि देवता होते हैं, रजोगुणसे असुर और मनुष्य होते हैं, तमोगुणसे भूत, पशु, पक्षी, इत्यादि सब उत्पन्न होते हैं सो वह अपने कर्मोंसे भ्रमण करते हैं उनहीं उन योनियोंमें पड़े हैं ॥ ५१ ॥ अहो! आत्मा तो कर्त्ता नहीं तो कर्मोंसे क्यों भ्रमण करता है? इसपर कहते हैं कि, जैसे नाचते और गाते पुरुषोंको देखकर यह पुरुष उनमें स्थित गाने और तालको अपने मनमें अनुवर्त्तन करता है इसप्रकार बुद्धि और गुणोंके अवलोकनसे गुणोंकी सामर्थ्यसे अकर्त्ता पुरुष उन्हें अपने आपमें मान लेताहै ॥ ५२ ॥ जैसे जलके हिलनेसे तीरके वृक्ष हिलतेसे दीखते

प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ॥ तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥ सत्त्वसंगादृषीन्देवान्रजसाऽसुरमानुषान् ॥ तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः॥५१॥ नृत्यतो गायतः पश्यन्यथैवानुकरोति तान्॥ एवं बुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथांभसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥ ५३ ॥ यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ॥ स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः॥ ॥ ५४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेपि संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥

हैं जैसे दृष्टिके भ्रमसे पृथ्वी भी भ्रमतीसी दिखाई देतीहै, तो यह धर्म वृक्षमें भूमिमें नहीं यह अपने व्यवधानसे दीखते हैं इसी प्रकार दृश्यका धर्म द्रष्टामें स्फुरण होता है और आनन्दादि आत्माके लक्षण होनेपर भी विषयोंके गुणसे प्रतीत होते हैं ॥ ५३ ॥ यदि कोई कहै कि आत्मा भोग करता है सो भी मिथ्या है, जैसे मनोरथकी बुद्धि मिथ्या है और स्वप्नमें देखी बुद्धि सब मिथ्या है, इसीप्रकार आत्मामें प्रतीत होता हुआ विषयोंका अनुभवरूप संसार भी असत्य है ॥ ५४ ॥ तो निवृत्तिके उपायका प्रयोजन क्या है? इसपर कहते हैं कि, यद्यपि स्वप्न असत्य है परन्तु तो भी उन विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके उन अवस्थामें स्वप्नके दुःख नहीं जाते, इसीप्रकार संसारके मिथ्या होनेपर भी विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके जन्म मरण नहीं जाते ॥ ५५ ॥

हे उद्धव ! इसीलिये तुम इन दुष्ट इन्द्रियोंसे विषय भोग मत करो आत्माके ज्ञान विना यह संसारका भ्रम हुआ है, ऐसा जानो ॥ ५६ ॥ कोई निन्दा करो, कोई अपमान करो; कोई उपहास करो, कोई वंचना करो, कोई ताड़ना करो, कोई रोक रक्खो, वृत्ति छीनलो ॥ ५७ ॥ कोई मूत्र डालो, जूँठन डालो, ब्रह्मनिष्ठा बिगाड़ै परन्तु अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष इतने कष्ट सहै और आत्मासे आत्माका उद्धार करे, क्रोधित होकर अपने धर्मको न खोवै ॥ ५८ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम्हारा वचन हम अच्छीरीतिसे समझ सकैं उसीप्रकार समझाकर कहो कि, नीच अधम पुरुष इसप्रकार पांडित्य करै तो उसका सहन करना महाकठिन है ॥ ५९ ॥ हे विश्वके आत्मरूप ! जो तुम्हारे

तस्मादुद्धव मा भुंक्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः ॥ आत्माऽग्रहणनिर्भातं पश्य वै कल्पितं भ्रमम् ॥५६॥ क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ॥ ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥५७॥ निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकंपितः ॥ श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥ उद्धव उवाच ॥ यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर ॥ सुदुःसहमिमं मन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥ विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥ ऋते त्वद्धर्मनिरताञ्छांतांस्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० तत्त्वसंख्याऽविरोधादिव० द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥ सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ॥ दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥

चरणके आश्रय हैं तुम्हारे धर्ममें तत्पर और शांत हैं उनको छोड़कर अति पंडितको भी ऐसे अपराधोंका सहन होना अतिकठिन है ऐसा मैं मानता हूं, क्योंकि स्वभाव बड़ा बली होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ दोहा–तेइसवें अध्यायमें, सहन भीख अपमान ॥ बुद्धीसे मनको करे, निग्रह मुनि विद्वान ॥ १ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम राजा परीक्षित् ! इसप्रकार भक्तोंमें मुख्य यादवोंमें श्रेष्ठ उद्धवजीके पूँछनेपर मुकुंद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उत्तर देने लगे जिन भगवान्के चरित्र श्रवण करनेमें अत्यन्त सुखकारी हैं ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव ! इस लोकमें

वह साधु नहीं है जो दुष्ट वचनसे खेदयुक्त मनको समाधान न करसके ॥ २ ॥ मर्मस्थानमें लगे बाणोंसे विद्ध पुरुष ऐसा ताप नहीं पाते जैसे मर्ममें लगे दुष्ट वचनसे व्यथा पाते हैं ॥ ३ ॥ तथापि मेरे कहे उपाय करै तो उपाय कहताहूँ; हे उद्धव! इस विषयमें एक अतिपवित्र इतिहास है सो मैं आपसे वर्णन करताहूं तुम भले प्रकार सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ कोई एक भिक्षुक था सो दुर्जनसे पीडित हो धैर्य धारणकर अपने प्रारब्ध कर्मोंका भोग मानकर यह कहने लगा ॥ परन्तु वह भिक्षुक पहिले बड़ा धनवान् और सज्ञान था अत्यन्त दुःखसे जो धन प्राप्त किया था उसके विनाश होजानेसे वह अत्यन्त पीड़ित और संतप्त होगया फिर चित्तमें धैर्य बढाने और वैराग्य आनेसे संन्यास धारणकर भिक्षावृत्तिसे

न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः ॥ यथा तुदंति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥ कथयंति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ॥ तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ॥ स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवंतिषु द्विजः कश्चिदासीदाढयतमः श्रिया ॥ वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ॥ शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यंते पुत्रबांधवाः ॥ दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन्प्रियम् ॥ ८ ॥

अपना निर्वाह करनेलगा परन्तु नगरनिवासी उसको पिछले वैरभावसे अनेक प्रकारके दुःख देनेलगे, तब उस भिक्षुकने एक कथा कही सो उसके चरित्र हम आपके आगे कहते हैं अवन्तिका (उज्जैन) देशमें एक ब्राह्मण लक्ष्मीसे अतिसंपन्न खेती और वाणिज्य करै कामी लोभी महाक्रोधी महाकदर्य था * ॥ ६ ॥ बांधव और अतिथिको वचनसे भी न पूजे धर्म काम करके हीन शून्य देहरूप घरमें भोगोंसे कभी आत्माकी पूजा नहीं की ॥ ७ ॥ ऐसे दुःशील कदर्यके पुत्र, बांधव, स्त्री, बेटी, सेवक इत्यादि सब दुःख पावैं कोई उसे भला न कहै ॥ ८ ॥

* कदर्यका लक्षण स्मृतिमें कहा है आत्माका धर्म कार्य न करना पुत्र स्त्री देवता अतिथि और सेवकोंको दुःख दे सो कदर्य है ॥

फिर वह इसप्रकार दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुआ कि, धर्म, अर्थ, कामसे हीन केवल भूतकी द्रव्यकी रक्षा करता रहै, ऐसे पुरुषपर नित्य कर्तव्य पांच महायज्ञोंके अंशके भागी देवता अत्यन्त क्रोधित हुए देवताओंके तिरस्कार करनेसे पुण्यका विस्तार सब क्षीण होगया, तब अनेक परिश्रमसे युक्त खेती आदि परिश्रमसे कमाया द्रव्य भी नष्ट होगया ॥ ९ ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! कुछेक द्रव्य उसके घरका बांधव लेगये, कितनाही द्रव्य चोर लेगये, कितना एक द्रव्य गृहदाहसे जाता रहा कितनाही जहाँ गाड़ दिया था वहाँसे गया, कुछ द्रव्य अधर्मी

तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः ॥ धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पंच भागिनः ॥ ९ ॥ तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कंधस्य भूरिद ॥ अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥ ज्ञातयो जगृहुः किंचित्किंचिद्दस्यव उद्धव ॥ दैवतः कालतः किंचिद्ब्रह्मबंधोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ॥ उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ॥ खिद्यतो बाष्पकंठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः ॥ न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥

ब्राह्मण और मनुष्य लेगये, कितनाही द्रव्य राजद्वारमें गया ॥ ११ ॥ सो फिर इसप्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे धर्म, अर्थ, कामसे रहित हुआ, स्वजन कुटुम्बी इसका अनादर करने लगे, तब यह अपार चिंताको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ द्रव्य जानेसे वह ब्राह्मण अतिचिन्ता करके उस धनका बहुत ध्यान करता संतप्त हुआ और गद्गद कंठ होकर उसको बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ * ॥ १३ ॥ तब यह कहनेलगा कि, अहो ! यह देखो बडाही कष्ट है,

* शंका—महादुष्ट, खोटी बुद्धि, अत्यन्त कृपण, भगवान्में प्रीति नहीं, ऐसा दुष्ट ब्राह्मण, मुनियों करके बडे दुःखसे प्राप्त होने योग्य जो ज्ञान, उस ज्ञानको क्यों प्राप्त हुवा ? यह भ्रम है। उत्तर—धनका नाश होगया तो ब्राह्मण दुःखी होकर वनमें भ्रमता भ्रमता सन्ध्या होगई तो क्या देखता है ? कि एक गाय गारमें सँदी हुई पडी है और दलदलसे किसी प्रकार निकल नहीं सक्ती, उस गायको देखकर ब्राह्मणको बडी दया आई और यह विचार किया कि, किसी प्रकार यह गाय इस दलदलसे बाहर निकले, उसने हाय हाय शब्द करके बडे परिश्रमसे उस सँदीहुई गायको दलदलसे बाहर खेंच खाँचकर निकाललिया, गाय प्रसन्न हो ब्राह्मणको आशीर्वाद देती हुई धीरे धीरे चली गई, गायकी कृपासे बहुत शीघ्र ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त होगया, वह ज्ञान जो ज्ञान मुनि लोगोंको महाकठिनतासे प्राप्त होताहै, गृहस्थीमें जो खोटे कर्म ब्राह्मणने किये थे उन कर्मोंसे धनका नाश हुवा, अनेक विघ्न हुए परन्तु ज्ञानको पाकर आनन्द होगया, इस उपायसे दुष्ट ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त हुआ था।

इतना बडा भारी मेरा द्रव्यका परिश्रम वृथाही गया जो यह आत्मा संतप्त किया न तो धर्मके अर्थ और न कामार्थ हुआ, सब वृथाही गया ॥ १४ ॥ बहुधा जो कदर्य हैं उनको द्रव्यका सुख कभी नहीं होता, जीवित इस लोकमें आपको सन्ताप होता है और मरनेपर नरक मिलता है ॥ १५ ॥ जो यशस्वी हैं उनका यश अतिनिर्मल है और गुणियोंको गुण है, सो बड़ाईके योग्य है, परन्तु जो थोड़ा भी लोभ होय तो सब गुण-यशको दूर करै जैसे उत्तम रूपको थोड़ा भी कोढ़ दूर कर देता है ॥ १६ ॥ इसलिये द्रव्य सब दुःखरूप है, प्रथम तो साधनमें कष्ट है, इसके उपरान्त सिद्ध होनेपर वह द्रव्य बढ़ाना चाहै, उसमें भी कष्टहै फिर उसकी रक्षा करनी चाहिये भोगमें व्यय होताहै, नाश होताहै, इसप्रकार आदिसे अन्ततक, श्रम, भय,

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ॥ इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥ यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाध्या ये गुणिनां गुणाः ॥ लोभः स्वल्पोऽपि तान्हंति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥ नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥ स्तेयं हिंसाऽनृतं दंभः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥ भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥ एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ॥ तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥ भिद्यंते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥ एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥ त्यजंत्याशुस्पृधो घ्नंति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥

चिन्ता, श्रम, मनुष्योंको रहते हैं, इस कारण कभी अर्थ सुखकारी नहीं है ॥ १७ ॥ और भी दोष कहते हैं चोरी हिंसा दंभ, झूंठ काम, क्रोध धनके साधनमें हैं गर्व, अहंकार, भेद, वैर, अविश्वास, अश्रद्धा, यह छः अनर्थ पाये पीछे होतेहैं और तीन व्यसन, स्त्री, मद्य, जुआ, इसी धनसे होते हैं ॥ ॥ १८ ॥ इसप्रकार पन्द्रह अनर्थ अर्थसे (द्रव्यसे) होते हैं, सुनो उद्धवजी ! इसका नाम तो अर्थ है पर अनर्थरूप है इसलिये जो पुरुष अपना भला चाहै तो वह दूरहीसे अर्थका त्याग करै ॥ १९ ॥ दोष यह कि माता, पिता, भ्राता, स्त्री, संबंधी जो स्नेहके कारण एक चित्त होकर मिले रहते हैं वह भी धनके लिये पृथक् होजाते हैं और काकिणी अर्थात बीस कौड़ीके ऊपर तत्काल वैरी होजाते हैं ॥ २० ॥ यह प्राणी थोड़ेही द्रव्यके लिये

क्षेमको प्राप्त हो महाक्रोध कर श्रद्धासे एक साथ सुहृदता और स्नेह छोडकर परस्पर मारनेलगते हैं ॥ २१ ॥ इस लोकमें जो अनर्थ उठे हैं और जो परलोकमें भी अनर्थ होंगे सो कहते हैं देवताओंके प्रार्थनीय मनुष्य जन्मको पाकर उसमें भी उत्तम ब्राह्मण जन्मको पाय उस जन्मका अनादर कर अपना स्वार्थ खोदेते हैं, वह अधमगतिको प्राप्त होंगे ॥ २२ ॥ इसलिये स्वर्ग और मोक्षका द्वार यह देह पाय, इस अनर्थके घर द्रव्यमें कौन मरणधर्मा पुरुष आसक्त हो ? ॥ २३ ॥ देवता, ऋषि, पितर, भूत, जाति बंधु और जो अंशके भागी हैं इनको और अपनी आत्माको जो न दे सो अधमगतिमें जाय इससे वे भूतकी नाईं द्रव्यके रक्षक हैं ॥ २४ ॥ अब अपनी अवस्था कहता हूँ, मैं व्यर्थ अर्थकी क्रियासे सदा असावधान

लब्ध्वा जन्माऽमरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् ॥ तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नंति यांत्यशुभां गतिम् ॥२२॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान्॥द्रविणे कोनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि॥२३॥देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बंधूंश्च भागिनः॥ असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥ व्यर्थयाऽर्थेहया चित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम्॥ कुशला येन सिध्यंति जरठः किं नु साधये ॥ २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयाऽर्थेहयाऽसकृत् ॥ कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥ किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ॥ मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ॥ येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥

रहा, मेरा द्रव्य व्यर्थही गया और वय क्रम अवस्था भी व्यर्थ गई, जो विवेकी हैं; वह अर्थसे मोक्षके अधिकारी होते हैं, और मेरा बलभी व्यर्थ गया अब मैं वृद्ध होगया हाय ! मैं कुछ भी न कर सका ॥ २५ ॥ यह अर्थकी चेष्टा व्यर्थ होनेपर भी जानबूझकर इसकी तृष्णासे ज्ञानी पुरुष भी क्यों क्लेश पाते हैं ! इससे विदित होता है कि, किसीकी मायासे यह प्राणी अत्यन्त मोहित हो रहे हैं ॥ २६ ॥ यद्यपि धनसे संसारी भोगोंको भोगते हैं, परन्तु जब कि, इस प्राणीके निकट प्रतिदिन मृत्यु चली आती है, तब इसे धनसे, धनके देनेवालेसे, सुखसे, सुखके देनेवालोंसे तथा बारबार जन्मदाता कर्मोंसे क्या सिद्ध है ? ॥ २७ ॥ मेरे ऊपर निश्चयही सर्वदेवरूप भगवान् संतुष्ट हुए जो भगवान्से मैं इस दशाको

प्राप्त हुआ, मुझे वैराग्य उपजा, वैराग्य संसारसमुद्रसे तरनेको नौका है ॥ २८ ॥ अब मेरा जितना समय शेष रहा है, उस कालसे तपस्या करके में अपने अंगोंको क्षीण करूंगा, आत्माहीसे संतोष मान समस्त धर्मोंमें सावधान होकर रहूंगा ॥ २९ ॥ मुझपर त्रिलोकीके ईश्वर तथा देवता अनुग्रह करते हैं, कदाचित् कहो कि, देवताओंके अनुग्रह करनेसे वृद्धहुआ, सो समय थोडा रह गया; अब क्या कर सकूंगा ? तो कहते हैं कि खट्वांग राजा ने एक मुहूर्त्तमें ब्रह्मलोकको साध लिया था ॥३०॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जब अवंती नगरीका ब्राह्मण इसप्रकार मनमें निश्चय कर हृदयकी गाँठ अहंता ममताकी खोल शान्त मन हो संन्यासी होगया ॥ ३१ ॥ इन्द्रिय, वायु, मनको निश्चय करके पृथ्वीपर फिरने लगा, इसके उपरान्त भिक्षाके लिये एक नगरमें आया ॥ ३२ ॥ वहाँ भी कहीं आसक्त नहीं और न किसीको अपनी श्रेष्ठता दिखावे, विचरता रहै कल्याणरूप वह ब्राह्मण अतिवृद्ध भिक्षुक अवधूत वेषसे रहै, इसको देखकर दुष्टजन अनेक प्रकारके तिरस्कारसे दुःख देनेलगे ॥ ३३ ॥ अब सात श्लोकोंमें इसका उत्तर कहतेहैं, किसीने तो उसका त्रिदंड लेलिया और कोई पात्र, आसन, पीढ़ा, माला, कन्था, वस्त्र, लेलेकर चलेगये ॥ ३४ ॥ हे महापुरुष ! पहले इसप्रकार दिखाकर मुनिको देखकर फिर लेलिया और जब भिक्षा माँग अन्नले नदीके तीर भोजन करे ॥ ३५ ॥ तब पापी इसके माथेपर मूत्र

सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्यैंगमात्मनः ॥ अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥ तत्र मामनुमोदेरन्देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावंत्यो द्विजसत्तमः ॥ उन्मुच्य हृदयग्रंथीञ्छांतो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥ स चचार महीमेतां संयतात्मेंद्रियानिलः ॥ भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ॥ दृष्ट्वा पर्यभवन्भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमंडलुम् ॥ पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कंथां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥ प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नं च भैक्ष्यसंपन्नं भुंजानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयंति च पापिष्ठाः ष्ठीवंत्यस्य च मूर्धनि ॥ यतवाचं वाचयंति ताडयंति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥

करदें, फिर वह जो मौन रहें तो बुलावें, यदि न बोले तो मारें, कोई इसप्रकार डरावें कि यह चोरहै, ऐसे वचन कहें ॥ ३६ ॥ कितने एक यह कहने लगे कि इसे बाँधो, ऐसे कहकर उसको रस्सियोंसे बाँधतेथे,कितने एक कहने लगे कि मारोमारो क्योंकि यह धर्मका ढोंग बनानेवाला और लोगोंको ठगनेवालाहै, यह पाखण्डीहै, धूर्तहै, अब द्रव्य तो सब गया स्वजन संबंधियोंने सबने छोड़ दिया अब यह वृत्ति ग्रहण कीहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अहो ! देखो यह बड़ा ढीठ और अतिबली है, क्योंकि पर्वतके समान धैर्यवान मौनसे बकध्यानी होकर अपना स्वार्थ साधरहा है, इसका दृढ़ निश्चय है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार एक तो हँसें, कोई उसके ऊपर अधोवायु छोड़ें, कोई बाँधे, कोई रोक रक्खे जैसा बालकोंका खिलौना ॥ ४० ॥ इस भाँति

तर्जयंत्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ॥ बध्नंति रज्ज्वा तं केचिद्बध्यतांवध्यतामिति ॥ ३७ ॥ क्षिपंत्येकेऽवजानंत एष धर्मध्वजः शठः ॥ क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहो एष महासारो धृतिमान्गिरिराडिव ॥ मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥ इत्येके विहसंत्येनमेके दुर्वातयंति च ॥ तं बबंधुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥४०॥ एवं स भौतिकं दुःखं दैहिकं दैविकं च यत ॥ भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तंप्राप्तमबुध्यत ॥ ४१ ॥ परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ॥ पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥ द्विज उवाच ॥ नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परं कारणमामनंति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ॥ ४३ ॥ मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ॥ शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवंति ॥ ४४ ॥

बहुत दुःख दुर्जनोंने दिया,देहका सुख ज्वरादिकोंने हरलिया, दैवके दुःख शीत, उष्ण, "यह सब अपना प्रारब्ध भोग है" दुःख पाकर उस ब्राह्मणने ऐसे समझलिया ॥४१॥ यद्यपि यह ब्राह्मण नराधम दुर्जनोंसे तिरस्कृत हुआ, परन्तु तोभी सात्त्विक धैर्यसे अपने धर्ममें रहकर इस कथाको गाने लगा ॥४२॥ ब्राह्मण बोला कि यह जन, देवता,आत्मा ग्रह और काल कोई भी मेरे सुख दुःखका कारण नहीं है, मनही केवल कारण है, जो यह संसार चक्रको फिराता है ॥४३॥ सोई कारण कहते हैं,बलवान् मनही गुणकी वृत्ति सृजताहै फिर उन गुणोंसेही सात्त्विक, राजस, तामस भिन्न

भिन्न कर्म होते हैं और इन्हीं कर्मोंसे सात्विक, राजस, तामस देवता मनुष्य पक्षियोंकी जाति होती है ॥ ४४ ॥ अब कहते हैं कि, मनहीका संसार होताहै आत्माका संसार कैसे होसक्ताहै, तो कहतेहैं कि, अविद्या और मनके अभ्याससे आत्माका संसार है, आपसे संसार नहीं इससे वासनासहित मन है उसके संग नियन्ता होकर रहतेहैं, तथापि आत्माके संग नहीं, कर्म भी नहीं क्योंकि वह ज्ञानरूप है, जीवका सखा है और यह जो जीव है, सो मनके धर्मोंको ग्रहणकर अहंकार और गुणके संगसे विषयोंका सेवन करनेसे बँधा है ॥ ४५ ॥ मनका निग्रह किये विना सब व्यर्थ है सो कहतेहैं, दान, स्वधर्म, नेम, आचार, विद्याध्ययन, कर्म, उत्तम व्रत आदि यह सब एक मनके निग्रह करनेके उपाय हैं इससे निश्चय करके परमयोग

अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥ मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामाञ्जुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥४५॥ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि ॥ सर्वे मनोनिग्रहलक्षणांताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥ समाहितं यस्य मनः प्रशांतं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ॥ असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥ मनोवशेऽन्ये ह्यभवन्स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ॥ भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्युंज्याद्वशे तं स हि देवदेवः ॥ ४८ ॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ॥ कुर्वंत्य सद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनारिपून्विमूढाः ॥ ४९ ॥

मनका निग्रहही है ॥ ४६ ॥ जिसका मन स्थिर और शांत है उसे दान आदि करनेसे क्या प्रयोजन है ? मन तो समाधिमें स्थिर हुआ है, और जिसका मन विक्षिप्त है, तथा आलस्ययुक्त है सो उसे दानादिकोंसे और जपसे क्या होगा ? ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि, दान आदि धर्मसे और इंद्रियोंका तो जय होगा, वहाँ उनको जय तो नहीं होता ऐसा कहते हैं और जो देवता, इन्द्रिय यह सब मनके वश हैं कुछ मन उनके वशमें नहीं है, यह मन आपही देव है, महाबलिष्ठ है योगीजनोंको भी महाभयंकर है, इसको जो पुरुष अपने वशमें करलेतेहैं, वह देवको भी देखलेतेहैं ॥ ४८ ॥ अब मनरूप शत्रु दुर्जयहै इसका वेग नहीं सहाजाताहै, सबको पीड़ा करताहै, सबको जीते विना और मनुष्योंसे युद्ध करताहै, इसमें

और भी अनुकूल प्रतिकूल मित्र उदासीन शत्रु करलेते हैं वे मूर्ख हैं ॥ ४९ ॥ और इसीसे संसारमें भ्रमण करते हैं, यह देही एक मनकी वासनासे इस देहको ग्रहण करके यह मेरी देह है, इस ममतासे अहंकारसे अंधबुद्धि मनुष्य "यह मैं, यह तू" इस भ्रमसे अंतपारसे रहित संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ इससे सुख दुःखका कारण मन है और कोई नहीं है यह कहते हैं कि, सुख दुःखका कारण मन है तो आत्माका कारण क्या है? दोनों देह मट्टीके विकार हैं उनको सुख दुःखही कारणता है आत्माका कुछ नहीं लगता है जीव तो देहके अभिमानसे मानलेता है आत्माके मूर्त्ति नहीं, क्रिया नहीं किसको मारे? किसको सुख दे, परमात्मा दोनों जगह एक है, उसको कुछ नहीं लगता तो कहते हैं कि, जैसे अपनी जीभ अपनी दाँतोंसे आप काटै तो क्रोध किसपर करै, इसप्रकार देहसे देहका सुखदुःख मानले तो आत्मा क्या करै? ॥ ५१ ॥ जो सुख दुःखके हेतु देवता हैं

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यंधधियो मनुष्याः ॥ एषोहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरंतपारे तमसि भ्रमंति ॥ ॥ ५० ॥ जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हि भौमयोस्तत् ॥ जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥ दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ॥ यदंगमंगेन निहन्यते क्वचित्क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ॥ न ह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात्क्रुध्येत कस्मै न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥ ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्येव वदंति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४ ॥

तो यह आत्माको क्या? दुःखका कारण तो देवताओंको है और देवता विकारी हैं जैसे अंगसे अंगको मारिये तो पुरुष अपनी देहमें किसपर क्रोध करै जैसे एकके मुखमें हाथ डाले वह काट खाय, तो मुखका देवता अग्नि है, हाथका देवता इन्द्र है उनका किया दुःख है, अविकारी अहंकार रहित आत्माको कुछ नहीं लगता ॥ ५२ ॥ जो आत्माहीको सुख दुःखका कारण मानो तो औरसे क्या है? जिसके ऊपर कोप करै, इस पक्षमें भी औरसे दुःख हुआ, यह कहना संभव नहीं हो सक्ता, क्योंकि वह अपनाही स्वभाव है, आत्मा तो सर्वत्र एकही है आत्मासे और दूसरा नहीं कदाचित कहो कि, जो कुछ यह दीखता है सो मिथ्या है जब अपना आत्मा और दूसरेका आत्मा एकही है तो कोप किसपर करै इससे निमित्त नहीं दुःख भी नहीं ॥ ५३ ॥ जो कहो कि, ग्रह सुख दुःखका निमित्त है तो भी आत्माको क्या? ग्रह तो लगे हैं जिसका जन्म है, जन्म तो देहका है

आत्माका नहीं, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है; जिस लग्नमें देह जन्म लेताहै उस लग्नमें जैसे ग्रह हों, उसीके अनुसार सुख दुःखका निमित्त है, जिसको देहाभिमान है उसको ग्रहहैं इससे ग्रह तो अंतरिक्षमें हैं ग्रह परस्पर दृष्टि पड़नेसे ग्रहको पीड़ा देते हैं, ऐसा ज्योतिषी कहते हैं, परन्तु आत्माको क्या ? आत्मा ग्रह और देहसे भिन्न है, इसलिये पुरुष क्रोध किसपर करै ? ॥ ५४ ॥ जो कर्मही सुख दुःखका हेतु है, तो भी आत्माको क्या ? आत्मा तो कर्मसे भिन्न है, सो कर्म हो तो दुःख होय और कर्मही नहीं तो दुःखका हेतु कहाँसे हो ? सो कहते हैं, कर्म तब होय, जब एक देहहीको जड़रूपता और अजड़रूपता हो, जड़रूपसे तो विकारी हो, अजड़रूपसे हितकारीपन, यह दोनों धर्म आने चाहिये उनमें विकारता जडतावालोंको हो और हितका अनुसंधान जड़तारहितोंको हो और जो कहैं कि, देह कर्म करता है; तो देह जड़ होनेसे उसमें अपने हितका अनुसंधान नहीं और आत्माको भी कम करना नहीं बनसकता क्योंकि वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है; जब सुख दुःखका कारणरूप कर्म सिद्ध

कर्माऽस्तु हेतुः सुखदुःखयोर्वै किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ॥ देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्मसूलम् ॥ ५५ ॥ कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ॥ नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात्क्रुद्ध्येत कस्मै न परस्य द्वंद्वम् ॥ ५६ ॥ न केनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वंद्वोपरागः परतः परस्य ॥ यथाऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥

नहीं तो फिर पुरुष किसपर क्रोध करै ? ॥ ५५ ॥ जो काल सुख दुःखका हेतु है तो भी आत्माको क्या ? क्योंकि आत्मा भी कालरूपही है, काल भी ब्रह्मका अंश आत्मा ब्रह्मही है, अपने अंशको आपसे भय उत्पन्न नहीं होता जिसप्रकार अग्निकी ज्वालाका ताप अग्निको नहीं व्यापता और हिमकण तुषारका शीत हिमको नहीं व्यापता, ऐसेही कालके किये सुख दुःखसे आत्माको सुख दुःख नहीं होता आत्मा असंग है इसकारण उसमें सुख दुःखका द्वंद्व नहीं व्यापता, दुःख सुखका कारण अज्ञान है, आत्मा नहीं ॥ ५६ ॥ इन छः दुःख सुखके कारण विना जो कोई और हेतु कहै, सो ईश्वरकी महिमा जानकर संभव नहीं यह कहते हैं, जो प्रकृतिसे भी परे हैं, उसे किसी भाँति भी सुख दुःखका संबंध नहीं, जैसे अहंकार संसाररूपी है, उसीसे सुख दुःख होता है, जो इसप्रकार समझता है वह किसीसे नहीं डरता, उसको डरही

नहीं, इस भाँति मैं परमात्मामें चित्त रखकर समुद्र तरूंगा ॥ ५७ ॥ पूर्व महर्षियोंकी यह जो परमात्माकी निष्ठा है उस निष्ठाको धारणकर साक्षात् मोक्षके देनेवाले भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंकी सेवा करके पारसे रहित संसारसमुद्रके पार जाऊंगा ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इसप्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे द्रव्यका लेश दूरकर संन्यास लेकर वह ब्राह्मण पृथ्वीपर फिरता रहा, यद्यपि दुष्टोंने उसका बहुत अपमान किया, परन्तु तोभी उसका चित्त अपने स्वधर्मसे चलायमान न हुआ, तब यह गाथा गाई ॥ ५९ ॥ कि, पुरुषको सुख दुःखका दाता मनके भ्रम विना और दूसरा कोई नहीं है, मित्र उदासीन शत्रु यह जो संसार है, सो अज्ञानसे होताहै, तत्त्वविचारसे कुछ नहीं ॥ ६० ॥ हे उद्धव ! इसलिये

एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ॥ अहं तरिष्यामि दुरंतपारं तमो मुकुन्दांघ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ॥ निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकंपितोऽमुं मुनिराह गाथाम् ॥ ५९ ॥ सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ॥ मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ॥ मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥ य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥ धारयेच्छ्रावयेच्छृण्वन्द्वंद्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकाद० भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥ यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥

तुम सब भावसे मुझमें बुद्धि रखकर मनको निग्रह करो इतनाही योगका तात्पर्य है ॥ ६१ ॥ जो कोई यह भिक्षुककी गाई ब्रह्मनिष्ठाको सावधान होकर धारण करैंगे, सुनैंगे अथवा सुनावैंगे, वह सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्मोंसे पराभव नहीं पावेंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा–चौबिसवें अध्यायकी, कथा कर्म आधीन ॥ आत्मासे सब होतहै, आत्माहीमें लीन ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! अब मैं तुमसे कपिलदेव आदि पहले आचार्योंका निश्चय कियाहुआ सांख्य वर्णन करूंगा कि, जिस सांख्यके जाननेसे पुरुष शीघ्र भेदबुद्धिसे उत्पन्नहुई सुख दुःखादिकी भ्रान्तिको त्यागदेता है ॥ १ ॥

महाप्रलयमें द्रष्टा और दृश्य भेदरहित एक ब्रह्ममें लीन होगया, इसके उपरान्त प्रथम सतयुगमें जब सब प्राणी विवेकसे निपुण थे तब भी कुछ भेद न होनेसे सब ईश्वररूपही जानाजाता था भेद नहीं था ॥ २ ॥ पीछे जब बहुत सृष्टिकी इच्छा हुई, तब वह अक्षर ब्रह्म भेदरहित केवल आनन्दमय एकरूप अपने रूपके द्रष्टा और दृश्य भेदरहित दोरूप करदिये, एक मायाका फल रूप वाणी मनको गम्य प्रपंच रूप करदिये, एक सत्य रूप दो हुए ॥ ३ ॥ ब्रह्मसे हुए, उनके मध्य एक कार्यकारणरूपिणी प्रकृति हुई, दूसरे भावसे ज्ञानरूप पुरुष हुआ जो प्रकृतिपुरुष कहाते हैं ॥ ४ ॥ पुरुषरूप मेरे देखनेसे क्षोभित हुई, प्रकृति द्वारा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण प्रगट हुए ॥ ५॥ प्रथम इन तीनों गुणोंसे सूत्र क्रिया शक्तिरूप हुआ

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम् ॥ यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ॥ वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥ ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥ तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ॥ मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥ तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ॥ ततो विकुर्वतो जातोऽहंकारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ॥ तन्मात्रेंद्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिंद्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥ मया संचोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ॥ अंडमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥

पीछे वह सूत्र ज्ञानशक्ति रूप तत्त्व प्रगट हुआ, एकही तत्त्वज्ञान क्रियाभेदसे दोनों रूपहुए, उस महत्तत्त्वसे अहंकार हुआ, जो सबको मोह उत्पन्न करता है और जीवको भ्रमण करारहा है ॥ ६ ॥ सो अहंकार तीन प्रकारका है, सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार, तामस अहंकार यही अहंकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन्द्रिय, मन तथा देवताओंका कारण है, जीव और देहकी ग्रंथिरूप यही है ॥ ७ ॥ अब इस त्रिविध अहंकारसे त्रिविध प्रपंचकी उत्पत्ति हुई है, सो दिखाते हैं इनमें तामसअहंकारसे पहले भूत प्रगट हुए राजसअहंकारसे दश इन्द्रियें और सात्त्विक अहंकारसे ग्यारह देवता उत्पन्नहुईं ॥ ८ ॥ इसके पीछे यह सब उत्पत्ति एकत्र होके कार्य कारणके विभागसे मेरे रहनेका उत्तम स्थान करके

एक अण्ड उत्पन्न करते भये ॥ ९ ॥ पीछे उत्पन्न किये अण्डमें विराट् पुरुषके अन्तर्यामी मेरा उत्तम घर है, जलमें अण्ड हुआ उस अण्डमें श्रीनारायणरूप लीलाशरीरसे मैं स्थित हुआ, वहाँ मेरी नाभिसे कमल उत्पन्न हुवा सब पद्म जगद्रूप तत्त्वात्मक लोकोंका कारणभूत है कमलोंमेंसे ब्रह्म उत्पन्न हुऐ *॥१०॥ उन ब्रह्माजीने विश्वरूप तपस्या करके गुणसे युक्त मेरे अनुग्रहसे लोकपाल समेत तीन लोक भूमि अंतरीक्ष, स्वार्गादिको सृजा, उन लोकोंमेंही चौदह लोक समझलेना, सो भूमि कहनेसे पाताल लोक नीचेके आये, भुवः कहनेसे अंतरिक्ष कहा और स्वर्ग कहनेसे महर्लोकसे लेकर सत्यलोक सब कहे ॥ ११ ॥ लोक सृष्टिका प्रयोजन कहतेहैं, देवताओंका स्थान स्वर्ग हुआ, भूत प्राणियोंका स्थान अंतरिक्ष

तस्मिन्नहं समभवमंडे सलिलसंस्थितौ ॥ मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ॥ लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवस्वारिति त्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ॥ मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ॥ १२ ॥ त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ॥ १३ ॥

हुआ. मनुष्योंका लोक भूमि हुई, जो सिद्ध हैं, और योगसाधना करते हैं, उनका स्थान महर्लोकसे आदि लोक जानलेना महात्मा ब्रह्माजीने नाग तथा असुरोंका निवास स्थान पृथ्वीके नीचे अर्थात् पाताल बनाया है ॥ १२ ॥ त्रिगुणात्मक कर्म करनेसे जो गतियें होती हैं; वह सब त्रिलोकीके मध्यमें हैं, इसप्रकार लोक भिन्न भिन्न रचे हैं ॥ महर्लोक, जनलोक, तप लोक और सत्यलोकमें योग संन्यास ज्ञानसे निर्मल गति होती है वैकुण्ठकी गति मेरी भक्ति विना नहीं होती सो भक्तियोग करनेसे होती है तहाँ वैकुण्ठकी गति विना और सब स्थान चंचल हैं

* शंका—श्रीकृष्णने वारम्वार "मम" ऐसा वचन क्यों कहा। क्योंकि, परमेश्वर होकर अभिमान युक्त वचन कहना यह बडे आश्चर्यकी वात है ? ऐसी बात तो मूर्ख कहते हैं। उत्तर—पहिलेही उद्धवने श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रार्थना की, थी हे महाराज ! मेरे सामने आप किसी दूसरे देवताकी और अपने दूसरे अवतारकी कथा मत कहना और कहना भी तो अपनी एक कथा कहना क्योंकि आपके नामके रसके सुखमें मैं मग्न होगया हू दूसरेका चरित्र मुझको अच्छा नहीं जान पडता, ऐसी उद्धवकी प्रार्थनाको मानकर श्रीकृष्णचन्द्रने मम शब्द कहा था कुछ अभिमानसे नहीं कहा।

स्थिर नहीं, एक स्थिर तो मेरी गति है इससे और ठौर वैराग्य रखना उचित है, में कालरूप परमेश्वर हूं, यह सब जगत् मैंनेही कर्मयुक्त किया है, सो मायाके गुणप्रवाहमें सब विश्व डूबता, उछलता है इस लोकसे और लोकमें जाकर फिर गिरता है, इसलिये इसमें चित्त न लगावे ॥ १३ ॥ १४ ॥ इसको ब्रह्मरूप कहते हैं जो पदार्थ सूक्ष्म है जो बडाहै, जो स्थूलहै, दुर्बलहै सो प्रकृति और पुरुष इन दोनोंसे युक्त है ॥१५॥ जिस कार्यका जो आदि कारण है और जो पीछे भी रहनेका स्थान है सोई इसके मध्यमें है, तो वह इसीका रूप है बीच व्यवहारमें और प्रकार भासे है, जो सुवर्णके भूषणहैं और मट्टीके घडे सरैये हैं, नाम अलग हैं, वस्तुसे सुवर्ण और मिट्टी है इसप्रकार सब समझकर नाम भेदसे जो व्यवहार है, सोई विकार है, सो मिथ्याहै इत नाही समझना चाहिये १६ ॥ यहाँ तर्क करते हैं कि, जो तुम इसप्रकार कार्यको एक रूप कहकर सत्य रूप कहते हो, तो अपने अपने कार्यमें मह

महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १४ ॥ अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो योयो भावः प्रसिद्ध्यति ॥ सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १५ ॥ यस्तु यस्यादिरंतश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ॥ विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १६ ॥ यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम् ॥ आदिरंतो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १७ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥ सतोऽभिव्यंजकः कालो ब्रह्म तत्रितयं त्वहम् ॥ १८ ॥ सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ॥ महान्गुणविसर्गार्थः स्थित्यंतो यावदीक्षणम् ॥ १९ ॥

त्तत्त्व आदि लेके सब तत्त्व आदितत्त्व मध्यमें संयुक्त हैं, तो महत्तत्त्वोंको सत्यता होसक्ती है, तो कहते हैं कि, वे कारणरूप ब्रह्मभाव रूपको अंगीकार करके कार्यको सृजते हैं जैसे मृत्तिकाके पिण्ड निमित्त कारण घटको सृजते हैं, आदि, अंतमें उसके मृत्तिकाही है जो जिसका आदि अन्त है, सो सत्यहै, इससे सबके आदिसे मृत्तिकाको लेकरही सृजते हैं, अंत ब्रह्मही है ॥ १७ ॥ प्रकृति इस जगत्का उपादान कारण है उत्पत्ति स्थान है पुरुष अधार अधिष्ठाता है और काल गुणोंके क्षोभसे उसको प्रगट करनेवाला है सो यह तीनों ब्रह्मरूप मैंहीं हूं, मुझसे यह भिन्न नहीं है, प्रकृति मेरी शक्ति है पुरुष और काल मेरी अवस्था है मेरा रूप होनेसे मैंही अद्वितीय स्वरूप हूं ॥ १८ ॥ अब इस सृष्टिकी अवधि कहतेहैं, जीवोंके भोग देनेके

लिये प्रगट हुई यह मेरी सृष्टि जबलों इसका अंत आवे तबतक पिता पुत्ररूपसे निरंतर चलतीहै और जबतक परमात्माका ईक्षण हो तबतक रहती है इसके उपरान्त प्रलय होजातीहै सो कहते हैं ॥ १९॥ यह ब्रह्माण्ड विराट्रूप जिसमें लोकोंकी कल्पना है, जब इसके निकट मेरा स्वरूप भूतकाल पहुँचने लगताहै, तब मुझसे पीड्यमानहो, सब लोक नाशको प्राप्त होतेहैं जैसे उत्पन्न हुएहैं, उसी क्रमसे तत्त्व भिन्न भिन्न होकर अपने कारणसे मिलकर नष्ट होजाते हैं ॥ २० ॥ यह शरीर अन्नसे हुआ है इसकारण शतवर्ष अनावृष्टिके होनेसे क्षीणहो उस अन्नमें लीन होताहै अन्न बीजमें लीन होताहै, बीज भूमिमें लीन होताहै, जब बोनेसे न उपजे भूमि गंधमें महाप्रलयकी अग्निसे दग्ध हो गंधमात्र रहता है ॥ २१ ॥ गंध जलमें लीन होता

विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ॥ पंचत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २० ॥ अन्ने प्रलीयते मर्त्य मन्नं धानासु लीयते ॥ धाना भूमौ प्रलीयंते भूमिर्गंधे प्रलीयते ॥ २१ ॥ अप्सु प्रलीयते गंध आपश्च स्वगुणे रसे ॥ लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥२२॥ रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चांबरे ॥ अंबरं शब्दतन्मात्रे इंद्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २३ ॥ योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ॥ शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥ २४ ॥ स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ॥ तेऽव्यक्ते संप्रलीयंते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥ २५ ॥ कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ॥ आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २६ ॥

है, जल अपने गुणमें लीन होताहै,रस ज्योतिमें लीन होताहै, ज्योति रूपमें लीन होतीहै॥२२॥ रूप वायुमें लीन होताहै वायुस्पर्शमें लीन होताहै,स्पर्श आकाशमें लीन होताहै और आकाश शब्दमें लीन होजाताहै, इन्द्रियें उत्पत्त्यनुसार उस उस देवतामें लीन होती हैं ॥ २३ ॥ देवता और मन सात्त्विकाहंकारमें और शब्द अहंकारमें लीन होजाताहै त्रिविध अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होजाताहै ॥ २४ ॥ महत्तत्त्व अपने अपने उत्पत्तिके गुणानुसार उस उस गुणमें, त्रिविध गुण प्रकृतिमें और प्रकृति अव्यक्तमें एकत्र होके रहती है ॥ २५ ॥ काल ज्ञानरूप महापुरुषमें लीन होताहै, पुरुष

आत्मारूप जन्म रहित मुझमें लीन होताहै, तब आत्मा एक शुद्ध विकल्प संकल्प रहित अपनेही आनंदमें स्थित होकर रहताहै, इस भाँति सब सृष्टिका प्रकार कहा, अब इसका प्रयोजन कहते हैं ॥ २६ ॥ जब इसप्रकार ज्ञानसे देखै, तब उसके मनका कल्पना कियाहुआ भ्रम क्यों हो ? और हुआ भी भ्रम हृदयमें क्यों रहै ? जैसे आकाशमें सूर्योदयके भयसे अंधकार नहीं रहता है ॥२७॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि, हे उद्धव ! यह सांख्य ज्ञानकी विधि मैंने तुमसे वर्णन करी, इसके जानतेही हृदयकी गाँठ छूटजातीहै और इसीलिये उत्पत्ति तथा प्रलयके प्रकार तुमको समझाकर कहे, क्योंकि मुझे सब ज्ञान पूर्ण है ॥२८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ दोहा–पचिसमें कुछ निर्गुणता, अरु कुछ सत्य विवेक ॥ मनमें प्रगटतहै सदा, सतरज वृत्ति अनेक ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जबतक प्रकृति

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ॥ मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २७ ॥ एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रंथिभेदनः ॥ प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कंधे सांख्यनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ॥ तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥ शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ॥ तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥२॥ काम ईहा मदस्तृष्णा स्तंभ आशीर्भिदा सुखम् ॥ मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥३॥

पुरुषका ज्ञान न हो, तबतक तीनों गुणोंके स्वभाव न जीते हों, तबतक सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्म नहीं जाने जाते, इससे जैसे गुणके स्वभाव जाने जातेहैं उस उपाय करनेको प्रथम गुणके स्वभाव कहते हैं, हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ उद्धव ! तीनों गुण भिन्न भिन्न होतेहैं, जब जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है, सो आप मन लगाकर सुनिये. मैं कहताहूं ॥१॥ जिसका सतोगुणी स्वभाव होय, उसके यह धर्म होतेहैं. शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्य, दया, पहला और पिछला स्मरण, संतोष, त्याग, वैराग्य, आस्तिक्य बुद्धि, अनुचितकर्ममें लज्जा, दान, आत्मासे रति, यह सतोगुणकी वृत्ति कही ॥ २ ॥ अब रजोगुणकी वृत्ति कहते हैं, कामना, चेष्टा, दर्प, तृष्णा, गर्व, देवताओंसे सुखकी आकांक्षा, विषयभोग, बुद्धयादिकोंका उत्साह,

जगमें प्रीति, हास्य, वीर्य बलका उद्यम इत्यादि यह सब रजोगुणकी वृत्ति कही ॥ ३ ॥ अब तमोगुणकी वृत्ति कहते हैं, क्रोध, लोभ, मिथ्या, हिंसा, याच्ञा, दंभ, अनुद्यम, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दुःख, हीनता, निद्रा, आशा, भय यह तमोगुणकी वृत्ति भिन्न भिन्न कही अब जो एक मिली है, वह वृत्ति सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! "अहं मम" यह जो बुद्धि है, इसमें मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन्द्रिय और प्राण यह सात्विक, राजस, तामस हैं, इनसे जो कार्य है, उसे सन्निपात जनित कार्य कहना चाहिये, क्योंकि तीनों गुणोंके मिले कार्य हैं, मैं शान्तहूं, मैं कामीहूं मैं क्रोधीहूं, मुझे शांति है, काम है, क्रोध है इसप्रकार व्यवहार तीनों गुणोंका सन्निपात कहाता है ॥ ६ ॥ जब यह पुरुष धर्म, अर्थ, काममें स्थित हो, तब जान लीजिये कि, तीनों गुणोंकी एकता है, धर्म सात्त्विक, अर्थ राजस, काम तामस, धर्ममें

क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दंभः क्लमः कलिः ॥ शोकमोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥ सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ॥ वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ॥ व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेंद्रियासुभिः ॥ ६ ॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः ॥ गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥ प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे ॥ स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥ पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ॥ कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९ ॥ यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ॥ तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव च ॥ १० ॥

श्रद्धाहो, अर्थसे प्रीति हो, काममें धनहो ॥ ७ ॥ प्रवृत्ति सकाम धर्ममें निष्ठा रक्खै, गृहस्थाश्रम धर्ममें निष्ठा रक्खै यह भी गुणोंके सन्निपातसे होता है, क्योंकि सकाम धर्म रजोगुणमय है, घरमें आसक्ति तमोगुणमय है, नित्य नैमित्तिक धर्ममें निष्ठा है, सो सत्त्वगुणमय है ॥ ८ ॥ इसप्रकार भिन्न भिन्न और मिले गुणोंकी अवस्था कहकर जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है, सो कहते हैं कि, पुरुषके जो शम, दम, क्षमा, दया यह धर्म होते हैं, सो सात्विक जानना, काम अनुरागसे राजस समझ लेना क्रोधादिसे तामस जानना ॥ ९ ॥ और जो भक्तिपूर्वक निरपेक्ष हो स्वकर्मसे मेरा भजन करै, सो पुरुष हो अथवा स्त्री हो, उसका सतोगुणरूपी स्वभाव जानना ॥ १० ॥

जो स्वकर्मसे मेरा भजन करतेहैं और मुझसे कुछ चाहना करते हैं सो रजोगुण स्वभाव जानना और जो किसीके मारनेको मेरा भजन करै उसे तमोगुणी स्वभाववाला जानना ॥ ११ ॥ अब कहते हैं कि, इन गुणोंके वश तो तुम भी देख पडते हो ? और जो नहीं हो तो तुम सेव्य क्यों हुये ? और जीव सेवक क्यों हुआ ? सो कहो इसका उत्तर देते हैं कि, यह तीनों गुण जीवको हैं, कुछ मुझे नहीं हैं, यह सब चित्तके विकारसे होते हैं, जिसमें प्राणी आसक्त होकर बँध जाता है, मैं तो आसक्त नहीं हूँ, नियंताहू और द्रष्टा होरहा हूं इससे बन्धनमें नहीं, इसलिये अपना भजन करनेके लिये वारंवार कहताहूं ॥ १२ ॥ जब एक गुणकी अधिकता होती है, उसका कार्य दिखाते हैं

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ॥ तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे ॥ चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥ यदेतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ॥ तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥१३॥ यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः संगं भिदा बलम् ॥ तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥ यदा जयेद्रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ॥ युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥ यदा चित्तं प्रसीदेत इंद्रियाणां च निर्वृतिः ॥ देहेऽभयं मनोऽसंगं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥१६॥

कि, जब प्रकाशरूप निर्मल शान्त सतोगुण बढ़कर रजोगुणको जीते, तब पुरुष धर्म ज्ञानसे परमसुख युक्त होताहै जब रजोगुण सतोगुण तमोगुणको जीते, तब पुरुष धर्म ज्ञानसे परमसुखयुक्त हो ॥ १३ ॥ जब रजोगुण सत्वगुण और तमोगुणको जीते, तब रजोगुणसे संग हो उस संगसे भेदबुद्धि सर्वत्र हो, उससे प्रवृत्ति मार्गका स्वभाव हो कर्म, यश, श्री और दुःखसे युक्त होता है ॥१४॥ जब तमोगुण सतोगुण और रजोगुणको जीते, तब अज्ञानसे मोहको प्राप्तहो शोक, मोह, निद्रा, हिंसा, आशासे युक्तहो, विवेक तज अनुद्यम रूप जडता होकर रहता है और लय होजाता है ॥ १५ ॥ जब चित्त निर्मल होकर इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्तिहो, देहमें अभयहो, मनकी आसक्ति कहीं न हो, वह सतोगुण मेरी

प्राप्तिका स्थान जानना चहिये ॥ १६ ॥ जब क्रियासे विकारको प्राप्तहो बुद्धिका विक्षेपहो ज्ञानेन्द्रियोंको शान्ति न हो कर्मेंद्रियोंको निश्चलता न हो, मन भ्रमै तब जानलो कि, रजोगुण बहुत बढगया है ॥ १७ ॥ जब चित्त अन्तर्धान होकर लीन होजाय, ज्ञानसे पदार्थ ग्रहणको असमर्थहो. मनमें भी संकल्प विकल्प उपजते रहैं, नष्ट होकर शून्यसा रहै, अज्ञान ग्लानि दुःखहो तब जानिये कि, तमोगुण बढाहै ॥ १८ ॥ हे उद्धव! यदि सतोगुण बढै तो देवताओंका बल बढता है, रजोगुण बढै तो असुरोंका बल बढ़ता है और तमोगुण बढै तो सब राक्षसोंका बल बढ़जाताहै ॥ १९ ॥ सतोगुणसे जाग्रत, रजोगुणसे स्वप्न और तमोगुणसे सुषुप्तिकी अवस्था होती है, इन तीनों अवस्थामें व्याप्त एक चतुर्थ अवस्थारूप आत्मतत्त्व

विकुर्वन्क्रियया चाऽऽधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् ॥ गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रांतं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥ सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ॥ मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८ ॥ एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ॥ असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ॥ प्रस्वापं तमसा जंतोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छंति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ॥ तमसाऽधोऽध आ मुख्याद्रजसांऽतरचारिणः ॥ २१ ॥ सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यांति नरलोकं रजोलयाः ॥ तमोलयास्तु निरयं यांति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ॥ राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥

है सो वह, तुरीय निर्गुण अवस्था है ॥ २० ॥ गुणके उत्कर्षसे कर्म फलको दिखाते हैं, सतोगुणके उत्कर्षसे ब्राह्मण वेदोक्त कर्म कर्त्ता ऊपर ब्रह्मलोक तक जाते हैं, तमोगुणसे नीचेके लोकोंमें जाते है और रजोगुणसे मनुष्यदेहको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ अब जिस गुणकी अधिकतामें मरनेसे जो गति होती है, सो कहते हैं, सतोगुणमें मरै तो स्वर्गमें जाय रजोगुणमें मरै तो मनुष्यलोकमें जाय, तमोगुणमें मरै तो नरकमें जाताहै और निर्गुण हो तो मुझे ही प्राप्त होतेहैं ॥ २२ ॥ जो स्वकर्म करै और उनका फल न चाहै अथवा मुझे अर्पण करै, वह सात्त्विक कर्म है जिस कर्ममें फलकी

याचना है वह राजस है, जिसमें हिंसा अधिक है,सो तामस कर्म है ॥२३॥ अब सब गुण निर्गुण भेदसे ज्ञान और भक्ति भी चार प्रकारकी हैं, सो कहते हैं. केवल आत्मनिष्ठ ज्ञान सात्विक है जो ज्ञान देह इन्द्रियोंके सम्बन्धसे लीन होता है सो राजस और जो बालक गूंगेका ज्ञान है, यह तामस है, केवल शुद्ध पुरुषोत्तम निष्ठ ज्ञान हो सो निर्गुण कहलाता है ॥२४ ॥ वनमें वास है, सो सात्त्विक है, ग्रामका वास राजस है, जएके घरमें वास तामस है और भगवत् मंदिरमें निर्गुण वास है ॥ २५ ॥ आसक्ति विना कर्मका कर्त्ता सात्त्विक कहलाता है आसक्तिसे अंधा होकर कर्म करना राजस है, स्मरणसे रहित कर्त्ता तामस है और केवल एक मेरी शरणको प्राप्तहो, अहंकार छोड़कर कर्म करै सो निर्गुण है ॥२६॥ आत्माकी श्रद्धा

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ॥ प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ वने तु सात्त्विको वासो ग्रामे राजस उच्यते ॥ तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागांधो राजसः स्मृतः ॥ तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी ॥ तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥ पथ्यं पूतमनायस्तमहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाऽशुचि ॥ २८ ॥ सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ॥ तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥ २९ ॥ द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ॥ श्रद्धावस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

सात्त्विकी, कर्मकी श्रद्धा राजसी, अधर्ममें श्रद्धा तामसी और मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण है ॥ २७ ॥ जो आहार भक्ष्य भोज्य वस्तुहो, पवित्रहो, विना श्रम प्राप्त हुईहो सो सात्त्विक कहलाती है और इन्द्रियोंका परमप्रिय मधुर, कटु, अम्ल, लवण, यह सब राजस हैं, जिससे पीड़ा हो अशुद्ध हो उसे तामस कहते हैं और जो वस्तु मुझे निवेदन की हो वह निर्गुण कहलाती है ॥ २८ ॥ आत्माके अनुभवसे हुआ सुख सतोगुण रूपी है, विषय अनुभवसे हुआ सुख राजस है, मोह दीनतासे सुख हो सो तमोगुणी है और केवल मेरे आश्रयका सुख निर्गुण है ॥ २९॥ यह जितने पदार्थ कह आये हैं, द्रव्य, पवित्र वस्तु, देश, वन, ग्राम, फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति, मरण यह सब त्रिगुणमय हैं ॥ ३० ॥

१९१

हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह सब प्रपंचरूप भाव गुणमय जानना; पुरुष और प्रकृतिसे अधिष्ठित है, जितना देखा है सुना है बुद्धिसे ध्यानमें रहता है सो सब गुणमय है ॥ ३१ ॥ यह गुण कर्मसे बँधे पुरुषको संसारकी गति हैं हे सौम्य ! जो जीव चित्तसे उपजे गुण जीतै सो भक्तियोग करके नेष्ठासे मेरे भावको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये विवेकी पुरुष जीतनेहीका उपाय करते हैं, सो कहते हैं ज्ञान विज्ञानकी देनेवाली मनुष्य देह या गुण संगको दूरकर निपुण मेरा भजन करै ॥ ३३ ॥ ज्ञानवान् सावधान जितेंद्रिय पुरुष सब संग छोडकर निस्संग हो मेरा भजन करै सतो गुणकी सेवासे रजो गुण तमो गुणको जीते इसके उपरान्त निरपेक्ष और शान्त बुद्धि हो मुझमें चित्तरखकर सतोगुणको भी जीते ॥३४॥ तब इसप्रकार मुझे प्राप्त

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाऽव्यक्तधिष्ठिताः ॥ दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥ एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबंधनाः ॥ येन मे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ॥ भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥ गुणसंगं विनिर्धूय मां भजंतु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥ निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ॥ रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शांतधीः ॥ ३४ ॥ संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ॥ मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नांतरश्चरेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कन्धे वृत्तिभेदनि० पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

हो सो कहते हैं कि, जब यह जीव गुणोंसे छूटै तब अपने वासना देहको छोड मुझे प्राप्त हो और जब मुझे प्राप्तहुआ फिर उसे संसारका आवागमन नहीं रहता; लिंगशरीरसे और चित्तसे उत्पन्न हुए गुणसे मुक्त हुये अथवा मैं कि जो परब्रह्महूं उसीमें पूर्ण हुआ जीव विषयभोग नहीं करता और विषय भोगोंका स्मरणभी नहीं करता * ॥३५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

---

*शंका—जीव क्या वस्तु है जो जीव छूट जाताहै ।

उत्तर—जीव ब्रह्मका रूप है, अजीव देह हैं जबतक देहके सुखकी इच्छा करता है तबतक दुःख भोगता है और देहसे बँधा भी रहता है और देहके सुखकी इच्छाको जब त्याग देता है, तब देहको भी त्यागके ब्रह्मसुखको प्राप्त होजाताहै यह अर्थ "जीवोऽजीवो विहाय माम्" इस श्लोकमें है ॥

दोहा—छब्बिसमाहिं कुसंगते, होत योगमें भंग ॥ योग भोग पूरण करे, सन्तनको सत्संग ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जिससे मेरा स्वरूप जानाजाय, ऐसा मनुष्य देहको पाकर मेरे धर्ममें स्थित हो सो अपने आत्मामें स्थित आनंदरूप परमात्माको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ ज्ञाननिष्ठाके प्रभावके कारण गुणमय लिंगशरीरसे मुक्त हुआ पुरुष गुणकी जो मायामात्र और वास्तविक रीति प्रतीत हो रही हैं उनमें निवास करनेपर भी इस मिथ्या गुणोंके संगको प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ यद्यपि उसे सर्वत्र वस्तुकी इच्छा नहीं है, परन्तु तो भी दुष्ट संग न करे, जो केवल उपस्थ इन्द्रिय और उदरको तृप्त करनेवाले हैं, ऐसे दुष्टोंका कभी संग न करे, क्योंकि जो एक भी दुष्टजनका संग होय तो भी महाघोर अंधतम नरकमें पड़ता है, जिसप्रकार एक अंधेके पीछे दूसरा अंधा गिरता है और बहुतोंका संग बाधा करता है, इसमें तो कहनाही

श्रीभगवानुवाच ॥ मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥ आनंदं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥ गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ॥ गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥ वर्तमानोऽपि न पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥ संगं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ॥ तस्यानुगस्तमस्यंधे पतत्यंधानुगांधवत् ॥ ३ ॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ॥ उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजंतीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ॥ विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥ ५ ॥ कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ॥ न वेद यांतीर्नायांतीरुर्वश्याऽऽकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥

क्या है ? ॥ ३ ॥ इलाका पुत्र बड़ा यशस्वी राजा पुरूरवा जब प्रथम उर्व्वशीके विरहसे मोहित हुआ था, तब अत्यन्त दुःखसे कातर हो कुरुक्षेत्रमें पहुँचा और वहाँ उर्व्वशीको देख प्रार्थना की तब उर्वसीने उपासना बताई, उसके द्वारा राजा गंधर्वलोकमें प्राप्तहुआ, जब वहाँ उसका शोक निवृत्तहुआ तब उसने यह गाथा गाई ॥ ४ ॥ पुरूरवा राजाको छोडकर जब उर्व्वशी चलीगई, तब उन्मत्तकी नाई नग्न उसके पीछे विलाप करता जाय कि, हे घोरे ! तिष्ठ तिष्ठ, इस प्रकार विह्वल हो उठकर उसके पीछे चला ॥ ५ ॥ पुरूरवा राजा अपनी पहली अवस्था कहता है कि, तुच्छ कामनाओंका सेवन करनेमें मैं अभी तृप्त न हुआ क्योंकि अनेक वर्षोंकी रात्रियें आनकर बीतगईं, परन्तु मैंने नहीं जाना, चित्त उर्व्वशीसे हर रहाथा जब

ज्ञान हुआ, तब जैसे वचन कहे सोकहते हैं ॥ ६ ॥ पहले आठ श्लोकोंमें राजाका पश्चात्ताप कहते हैं, अहो ! देखो मेरे मोहका विस्तार कि, मैंने इतना विषय किया परन्तु तोभी कामसे मलीन चित्तमें उर्व्वशीने मेरे कंठका आलिंगन किया सो इसीमें मेरी इतनी आयु व्यर्थ गई, मैंने कुछ नहीं जानी ॥ ७ ॥ अब अत्यन्त खेदित होकर कहता है कि, देखो ! इस उर्वशीसे मैं वंचित हुआ, सूर्य उदय हुआ वा अस्त हुआ यह भी मैंने न जाना, बहुत वर्षोंके इतने दिन बीतगये, परन्तु मैंने कुछ न जाने ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! वह फिर कहनेलगा अहो मेरे मनको देखो कि, मेरा आत्मा इन स्त्रियोंने खेलनेको हरिण किया मैं राजाओंका राजा हूं सो मैं इसप्रकार पराधीन हुआ ॥ ९ ॥ राज्यादि सहित चक्रवर्ती मुझे. देखो

ऐल उवाच ॥ अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ॥ देव्या गृहीतकंठस्य नायुःखंडा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥ नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमुया ॥ मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥८॥ अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा योषितां कृतः ॥ क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥ सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ॥ यांतीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा ॥ योऽन्वगच्छन्स्त्रियं यांतीं खरव त्पादताडितः ॥ ११ ॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ॥ किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ ॥ १२ ॥ स्वार्थस्याकोविदं धिङ् मां मूर्खं पंडितमानिनम् ॥ योहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥

जो तृणके समान मुझे छोड उठकर चली गई, उस स्त्रीके पीछे नग्न उन्मत्तकी भाँति मैं भी उठ चला ॥ १० ॥ ऐसे मुझे प्रताप, तेज, ऐश्वर्य, कहाँसे हों ? कि, जो मैं चलीजाती हुई स्त्रीके पीछे लगाही चला आया जैसे गधैयाके समान वह तो लातोंसे मारती-जाती है और गधा उसके पीछे जैसे चलाजाता है, ऐसेही मैं चलागया ॥ ११ ॥ जिसका मन स्त्रियोंसे हरगया है, उसको विद्या, तप, दान, अध्ययन, एकान्तवास मौन इन साधनोंसे क्या होता है ॥ १२ ॥ इससे मैंने अपना स्वार्थ न जाना और आपको पण्डित मानलिया,

इसलिये मैं अतिमूर्ख हूं मुझे धिक्कार है कि, जो मैं ऐश्वर्यको प्राप्त होकर भी स्त्रीसे बैल गधेकी भाँति आधीन हुआ ॥ १३ ॥ यद्यपि अनेक वर्षोंके समूहसे मैंने उर्वशीका अधरमधु पिया, परन्तु तोभी यह काम तृप्त नहीं होता है जैसे आहुतियोंसे अग्नि तृप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ इसप्रकार आठ श्लोकोंमें वैराग्य कहा अब दश श्लोकोंमें विवेक कहते हैं कि, जिनके चित्त वेश्याओंने हरलिये हैं, उन्हें छुड़ानेको आत्माराम ईश्वर अधोक्षज भगवान्के विना और कौन समर्थहै ! इसलिये एक परमेश्वरकाही भजन करना उचित है क्योंकि बहुतेरोंने यज्ञोंसे देवता प्रसन्न किये, परन्तु अंतसमयमें दुःखही पाया ॥ १५ ॥ ईश्वरके प्रसादविना मोह निवृत्त नहीं होता, इसलिये उन्हींका भजन करना चाहिये देखो उर्वशीने मुझे उत्तम वाक्योंसे समझयाथा परन्तु तोभी मेरे मनका मोह न गया, मैं अजितेन्द्रिय महामूढ़ हूं ॥ १६ ॥ उर्वशीका अपराध नहीं, यह मेराही अपराध

सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् ॥ न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं कोन्वन्यो मोचितुं प्रभुः ॥ आत्मारामेश्वरमृते भगवंतमधोक्षजम् ॥१५॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ॥ मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ॥ रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ क्वायं मलीमसः कायो दौर्गंध्याद्यात्मकोऽशुचिः ॥ क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः ॥ १८ ॥ पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः ॥ किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते ॥ १९ ॥ तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ॥ अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियाः ॥ २० ॥

है, क्योंकि मैं अपने अजितेन्द्रियपनसेही दुःखी हुआहूं, उसने मेरा क्या अपराध कियाहै ? रस्सीको न जान जैसे रस्सीमें सर्पका भ्रम करे तो विद्यमान रस्सीका क्या अपराध है ॥ १७ ॥ यदि कहो कि, इसने अपने रूप गुणसे मोह उत्पन्न किया, यह दोष इसीका है, यह दोनों दोष मनमें रचे हैं, अज्ञानसे हैं सो कहते हैं, यह अतिमलीन दुर्गंधादिसे भरी देह कहाँ और पुष्पकी सुगंधके तुल्य आत्माके गुण कहाँ, सब ठौर ममत्व अविद्याका किया है, वस्तुतः विचारसे सब मिथ्या है॥१८॥यह देह माताकी है, अथवा स्त्रीकी है, वा स्वामीकी है, वा अग्निकी है, या कूकर गिद्धोंकी है वा आत्माकी है, वा मित्रकी है? किसकी कहनी चाहिये, इतना तो इसका निश्चय होताही नहीं और न होगा ॥ १९ ॥ जैसे अपवित्र तुच्छ देहमें आसक्त

होते हैं, सो कहते हैं कि, देखो तो कैसा सुन्दर मुख है, कैसी सुन्दर नासिका है, कैसा सुन्दर हँसनाहै, यों भूलेहैं और यह तो तव कृमि विष्ठा भस्म रूप है ॥२०॥ त्वचा, मांस, रुधिर, आँतें, मेद, मज्जा, हड्डी संघातरूप देहमें जो आसक्त हैं, उनमें और विष्ठा मूत्र पीवमें जो रमते हैं, उनमें क्या अंतर है कुछ नहीं. में जैसे कृमि, ऐसे वह मनुष्य हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि इसप्रकार स्त्री कदर्यमयी जाने है परन्तु तो भी उनके गुरु स्त्री लंपटोंके निकट जो विवेकी हो तो न जाय, विषय असत् इन्द्रियोके संगसे मन सर्वथा विकारको प्राप्तहो, संग नहो तो न हो इससे दूर रहे ॥ २२ ॥ जो वस्तु देखी सुनी नहीं है, उसमें मनकी इच्छा नहीं होती, इसकारण जो पुरुष इन्द्रियोंको रोकता है, उस पुरुषका मन निश्चल होकर शान्त

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ॥ विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदंतरम् ॥ २१ ॥ अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ॥ विषयेंद्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते ॥ असंप्रयुञ्जतः प्राणाञ्छाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥ तस्मात्संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः ॥ विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं प्रगायन्नरदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय ॥ आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ॥ सन्त एतस्य छिंदंति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥ २६ ॥ सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रणताः समदर्शनाः ॥ निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥

होजाता है ॥ २३ ॥ इससे इन्द्रियोका, स्त्रियोंका और स्त्रीलंपटोंका संग न करे, जो ज्ञानवंत हैं, उनको भी इन इन्द्रियोंका विश्वास करना योग्य नहीं है, मुझ सरीखोंकी तो वातही क्या है ? ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र वोले कि, हे उद्धव ! इस प्रकार गाताहुआ वहर राजाधिराज पुरूरवा उर्वशी लोकको छोड़ अपने आपमें आत्मारूपको जान ज्ञानसे मोह निवृत्ति कर निवृत्त होगया ॥ २५ ॥ इसलिये दुःखदायी संगको छोड़ बुद्धिमान् होकर साधुओंका संग करे, वह अपने वचनसे इसके मनकी गाँठि काट देते हैं ॥ २६ ॥ साधु पुरुष कुछ चाहना नहीं करते हैं, क्योकि वह तो निरपेक्ष हैं, और उनके चित्त मुझमें लग रहे हैं, वह समदृष्टि और ममतारहित हैं, अहंकाररहित शान्त हैं, सुख दुःख परिग्रहहीन हैं ।

इसकारण उनका संगही इन मनुष्योंको तारदेता है ॥ २७ ॥ हे महाभाग ! वह बडे भाग्यवंत हैं जो निरंतर मेरी कथाओंको श्रवण करते हैं, वह कथा मनुष्यके मनके संपूर्ण पाप दूर करतीं हैं ॥ २८ ॥ जो कोई मेरी कथा सुनेंगे, गावेंगे स्तुति करेंगे, अथवा आदर करेंगे, वह मुझमें तात्परहो श्रद्धासहित मेरी भक्तिको प्राप्त होगे ॥ २९ ॥ अनंत गुण पूर्ण आनन्द और अनुभवरूप मुझमें जिस साधुने भक्ति प्राप्त की, फिर उसे और क्या बाकी रहा ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निकी सेवासे अंधकार शीत जाता रहताहै, इसी प्रकार साधु पुरुषोंकी सेवा करनेसे संसारका

तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ॥ संभवंति हिता नृणां जुषतां प्रपुनंत्यघम् ॥ २८ ॥ ता ये शृण्वंति गायंति ह्यनुमोदंति चादृताः ॥ मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विंदंति ते मयि ॥२९॥ भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते॥ मय्यनंतगुणे ब्रह्मण्यानंदानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवंतं विभावसुम् ॥ शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ॥ संतो ब्रह्मविदः शांता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥ अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्तानां शरणं त्वहम् ॥ धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य संतोऽर्वाग्बिभ्यतोऽरणम् ॥ ॥ ३३ ॥ संतो दिशंति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ॥ देवता बांधवाः संतः संत आत्माहमेव च ॥ ३४ ॥

भय जाता रहताहै ॥ ३१ ॥ प्राणी घोर संसाररूपी समुद्रमें डूबते उछलतेहैं उनको ब्रह्मके ज्ञाता साधु शान्तही परमगति हैं जैसे जलमें डूबते पुरुषको दृढ़ नाव परमगति होती है ॥ ३२॥ प्राणियोंका जैसे अन्न प्राणहैं, ऐसेही आर्त्त पुरुषोंकी शरण मैं हूं मनुष्योंको परलोकका धर्मही धन है ऐसेही संसारसे डरे पुरुषको शरण देनेवाले साधु हैं* ॥ ३३ ॥ सूर्य तो भली भाँति उदय होनेपर भी बाहिरी एक चक्षु इन्द्रियकोही देताहै और साधुपुरुष तो सगुण तथा निर्गुण ज्ञानरूप आंतरीय अनेक चक्षुओंको देतेहैं, इस कारण देवता और बन्धुरूप साधु पुरुषहीहैं और आत्मा हैं तथा तद्रूप

* शंका–सब वेद और शास्त्रोंमें लिखाहै कि, भगवान् तीन लोक और १४ भवनके प्राणियोंके स्वामी हैं तो फिर श्रीकृष्णने अपने मुखसे क्यों कहा कि, दुःखी प्राणीकी शरण हम हैं, यह बड़ी शका है? उत्तर–तुम्हारी सबकी बात सत्य है, परन्तु अभिमानी कामी दुष्ट यह सब परमेश्वरको नहीं जानते और दीन रात दिन परमेश्वरको जानते हैं, इसलिये दीन लोग परमेश्वरको प्यारे हैं, अभिमानी द्रोही हैं–इसलिये श्रीकृष्णने कहाया कि, मैं दीनलोगोंका स्वामी हूं ।

भी साधुओंमेंही है ॥३४॥ प्रथम इसका पिता शुद्ध मनसे स्त्रीरूप होकर पार्वतीके वनमें गयाथा, इसलिये उसके पुत्र पुरूरवाका नाम वैतसेन कहा सो उस उर्व्वशीलोकसे इसप्रकार निस्पृह होकर, संग छोड़ आत्मारामहो, इस पृथ्वीमें विचरण करने लगा ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, स्वस्थचित्तकी मूल ॥ सब फलदायक कहत हौं, पूजा हरिअनुकूल ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! अपना आराधनरूप क्रियायोग मुझसे कहो और तुम्हारे भक्त जैसे तुम्हारी पूजा

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिःस्पृहः ॥ मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कन्धे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ उद्धव उवाच ॥ क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥ यस्मात्त्वां ये यथार्चंति सात्त्वताः सात्त्वतर्षभ ॥ १ ॥ एतद्वदंति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥ नारदो भगवान्व्यास आचार्योंगिरसः सुतः ॥ २ ॥ निस्सृतं ते मुखांभोजाद्यदाह भगवानजः ॥ पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान्भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ॥ श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

करते हैं, सो सब कहो ॥ १ ॥ तुम्हारा यह पूजन मनुष्योंको परमश्रेयदायकहै, नारद भगवान्, व्यास और अंगिराके पुत्र बृहस्पति यह सब मुनीश्वर बार बार कहते हैं ॥ २ ॥ जो वाणी तुम्हारे मुखकमलसे निकली वही भगवान् अजन्मा ब्रह्माजीने अपने पुत्र भृगुआदि सबसे कही जो महादेवजीने पार्वती जीसे कहाथा सोई तुमने हमसे कहाहै ॥ ३ ॥ हे मानके दाता ! यह सब वर्ण आश्रमोंका सम्मत है और स्त्री शूद्रोंको परमकल्याणकारी है ❀ ॥ ४ ॥

* शंका–छहों शास्त्रोंका चारों वर्णोंका चारों आश्रमोंका मत यह है कि, स्नान, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नीरांजन और अनेक सामग्री करके ईश्वरका पूजन करना योग्य है परन्तु तीन आश्रम जैसे ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ यह तो तीनों भगवान्का पूजन करना मानते हैं, परन्तु इन तीनोंसे बडे जो सन्यासी लोग हैं, वह भगवान्का पूजन करना क्यों मानेंगे ? उन्होंने तो सब कर्म त्यागदिये हैं तो फिर उद्धवजीने क्यों कहा कि भगवान्का पूजन करना चारों आश्रमोंका मत है ।

उत्तर–मुनिजन पहिले तो बडी २ विधियोंसे वैकुण्ठनायका पूजन करते पीछे सन्यास लेते हैं, सन्यास लिये पर फिर उनका मत यह नहीं है कि अब भी पहलेकी नाईं सामग्री समहकरके भगवान्का पूजन करना, परन्तु जो कोई सज्जन भगवानकी पूजा करनेकी विधि उनसे बूझताहै तो वह उसको बतादेते हैं, इसलिये उद्धवने कहा कि, संन्यासी देहसे पूजन नहीं करते परन्तु मनमें तो जानते हैं कि, पूजनको भूले नहीं जो भूल जाते तो दूसरेको कैसे बताते ? इसलिये चारों आश्रमोंका मत पूजन करनेको उद्धवने कहा ॥

हे कमलदललोचन ! हे विश्वेश्वरोंके ईश्वर ! इस कर्मबंधनका छुडानेवाला पूजाविधान मुझसे कहो क्योंकि मैं तुम्हारा भक्त हूं और तुम्हींमें अनुर क्तहूं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इसप्रकार उद्धवजीने प्रार्थना करी तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! यह कर्मकाण्ड अनंत है इसका पार नहीं इसलिये जैसे है वैसेही क्रमसे संक्षेपसे कहताहूं ॥ ६ ॥ वैदिक, तांत्रिक, मिश्रित, तप यह तीन प्रकारका मेरा पूजन है, इन तीनोंमें जिसकी जो इच्छा हो, उस विधिसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करै ॥ ७ ॥ जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों वर्ण अपनी विधिसे भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करना चाहैं, उसका प्रकार सुनो, प्रथम गर्भसे अष्टमके एकादशके द्वादशके वर्षमें अपने वेदमें कहा गायत्री उपदेश

एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबंधविमोचनम् ॥ भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न ह्यंतोऽनंतपारस्य कर्मकांडस्य चोद्धव ॥ संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तांत्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ॥ त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ॥ यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥ अर्चायां स्थंडिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाऽप्सु हृदि द्विजे ॥ द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥ पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदंतोंगशुद्धये ॥ उभयैरपि च स्नानं मंत्रैर्मृद्ग्रहणादिभिः ॥ १० ॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाऽऽचोदितानि मे ॥ पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम् ॥ ॥ ११ ॥ शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥

पाकर पुरुषको जिसप्रकार भक्तिपूर्वक मेरा भजन करना चाहिये, सो तुम मुझसे श्रवणकरो ॥ ८ ॥ प्रतिमामें पूजा, योग्य भूमिमें, अग्नमें, हृदयमें, सूर्यमें, जलमें, ब्राह्मणमें, द्रव्य करके भक्तिसे निष्कपट होकर अपने गुरुजीकी पूजा करै ॥ ९ ॥ आप प्रथम तो दंतधावन करै और फिर मट्टीले अंगशुद्धिके लिये स्नान करै, इसके उपरान्त वैदिक तांत्रिक मन्त्रोंसे स्नान करै ॥ १० ॥ इसके उपरान्त वेदविहित संध्योपासनादि कर्म सब करै, इसके पीछे उन कर्मों करके कर्मकी दूर करनेवाली मेरी पूजा करै, मनका संकल्प मुझमें रक्खै ॥ ११ ॥ अब प्रतिमाके भेद कहते हैं, शिलाकी,

काष्ठकी, धातुकी, मट्टीकी, चंदनकी, चित्रकी, रेतकी, मानसी, मणिजटितहो यह आठ प्रकारकी प्रतिमा कही हैं ॥ १२ ॥ हे प्यारे उद्धव ! भगवान्‌की मानसी पूजा करना हो तो हृदयमें मनोमयी मूर्तिकी पूजा करनी। प्रतिमा दो प्रकारकी है, एक तो चर, दूसरी अचर तहाँ स्थिर मूर्तिकी पूजामें आवाहन विसर्जन नहीं है ॥ १३ ॥ शालिग्राममें आवाहन विसर्जन न करै और स्थानमें करै स्थिर प्रतिमामेंभी आवाहन विसर्ज्जन है, कहीं नहीं भी है, मिट्टी और चंदनकी प्रतिमामें तथा चित्रकीमें मार्जन मात्र करै, स्नान नहीं करावै ॥ १४ ॥ अब सकाम निष्काम भेदसे विशेष कहते हैं; सकामका प्रसिद्ध द्रव्य पूजामें कहते हैं उनसे मेरी प्रतिमामें पूजा करै, जो भक्त निष्कामहो सो जो

चलाचलेति द्विविधा प्रविष्टा जीवमंदिरम् ॥ उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥ अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थंडिले तु भवेद्द्वयम् ॥ स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥ द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ॥ भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥ स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ॥ स्थंडिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥ सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ॥ श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ गंधो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥ शुचिः संभृतसंभारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ॥ आसीनः प्रागुदग्वार्चेदर्चायामथ संमुखः ॥ १९ ॥

सामग्री यथालाभ पावै सो सब मुझे समर्पण करै, न पावै तो वह हृदयमें भावना करके पूजा करै तो वह पूजा मैं उसके भावसेही स्वीकार करलेताहूं ॥ १५ ॥ स्नान अलंकार यह सब प्रतिमामेंही मुझे प्रिय हैं. हे उद्धव ! स्थंडिलमें मंत्रहीसे अपने स्थानमें उन उन देवताओंका स्थापन है; अग्निमें घृतसयुक्त हविसे होम करै ॥ १६ ॥ सूर्यमें अर्घ्य उपस्थान करै, जलमें तर्पणादि करै, भक्तोंका दिया श्रद्धासे जलमात्र भी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥ सुगंध, फूल, धूप, दीप, अन्नादिक समर्पण करै तो उसकी तो बातही क्याहै ? मेरा भक्त न हो, बहुत समर्पण करै तो मैं उससे संतुष्ट नहीं होता ॥ १८ ॥ अब पूजाका प्रकार कहतेहैं कि, प्रथम तो आप स्नानादिक शौचसे शुद्ध हो, इसके उपरान्त पूजाकी

सब सामग्री शुद्ध करके रक्खै फिर पूर्वमुख वा उत्तरको मुख करके बैठे, पूर्वमुखको अग्र करके, दर्भोंसे आसन बनाय प्रतिमाके सन्मुख स्थिर होकर पूजा करै ॥ १९ ॥प्रथम तो न्यास करै, फिर मूलमंत्रोंसे न्यासकृत मेरी प्रतिमाको हाथसे स्पर्श करै, रातके निर्माल्य फूल पत्र जो कुछ होय तो दूर करे, अपने आगे जल भरा कलश रक्खै और प्रोक्षणी पात्र रक्खै उसे चंदन, तुलसीपत्र तथा पुष्पसे शोधन करै ॥ २० ॥ इसके उपरान्त प्रोक्षणीके जलसे पूजाका स्थान शुद्ध करै उसीसे द्रव्यका और अपने आपका प्रोक्षण करै, फिर पाद्यके लिये उस कलशके जलसे तीन पात्र भरकर रक्खै उनको भी इन वस्तुओंसे शोधन करै, पाद्यके पात्रमें श्यामा, दूब, कमल और विष्णुक्रान्ता आदि पदार्थ डालना, गंध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों यह अर्घ्यके आठ द्रव्य चाहिये. जावित्री, लौंग, कंकोल यह आचमनको चाहिये ॥ २१ ॥ पाद्य, अर्घ्य और आचमनके तीन पात्रोंका हृदय, मस्तक, शिखा, मन्त्रोंसे तथा गायत्रीसे अभिमंत्रण करै ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त देहको कोष्ठगत वायुसे शोधन करै

कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ॥ कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥ तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ॥ प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ २१ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि देशिकः ॥ हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्या चाभिमंत्रयेत् ॥ २२ ॥ पिंडे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ॥ अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादांते सिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥ तयात्मभूतया पिंडे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः ॥ आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्तागं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् ॥ धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥ २५ ॥

मूलाधारमें स्थित अग्निमें जलावे फिर ललाटमें स्थित चन्द्रमण्डल है तहाँ अमृतप्रवाह करके अमृतमय करै, वहाँ हृदयकमलमें स्थित जीव कला श्रीनारायणजीकी मूर्ति है, उसका ध्यान करके प्रणव अक्षरके अकार उकार मकार कि, जिसका सिद्ध ध्यान करते हैं, ध्यान करै ॥ २३ ॥ दीपकके प्रकाशसे घरके समान अपने स्वरूपकी भावनासे जब देह व्याप्तहो, तो प्रथम उस देहहीमें पूजा करके आप तन्मय होय, इसके उपरान्त आवाहन करके प्रतिमामें स्थापन करै, फिर न्यास करनेके पीछे मेरी पूजा करै ॥२४॥ फिर आवाहनसे प्रतिमामें पाद्य, आचमन, अर्घ्यादि सब

उपचार करै, धर्मादिक नव शक्ति हैं, उनसे मुझे आसन दे ॥२५॥ अष्टदल कमल बनावै, केशरसे उज्ज्वल सुन्दर कर्णिकामें वेद आगममें कथित मुक्ति पाने और फलकी सिद्धिके लिये वैदिक तांत्रिक मार्गोंसे मेरी पूजा करै, वह आसन सुखशय्याहै, उसके चार कोनेहैं, चारपावहैं, वहां धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, आग्नेय, नऋत्य, वायव्य, ईशान, इन चारों कोनोंमें रक्खै ॥२६॥ इसके उपरान्त सुदर्शनचक्र, पांचजन्य शंख, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूशल, कौस्तुभ, माला, श्रीवत्सादि आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये, तहाँ सुदर्शन आदि आठ आयुधोंका आठ दिशाओंमें और कौस्तुभ आदि तीनकी वक्षस्थलमें पूजा करै ॥२७॥ नंद, सुनंद, गरुड़, चण्ड, प्रचण्ड, महाबल, कुमुद, कुमुदेक्षण यह आठ पार्षद हैं,इनकी आठों

पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥ उभाभ्यां वेदतंत्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥ सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ॥ मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥ नंदं सुनंदं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च ॥ महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून्सुरान् ॥ स्वेस्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः ॥ सलिलैः स्नापयेन्मंत्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ॥ पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गंधलेपनैः ॥ अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥

दिशाओंमें पूजा करै ॥ २८ ॥ दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेनको कोनोंमें रक्खे, गुरुको वामभागमें रक्खै, देवता, इन्द्र आदि लोकपालोंको पूर्वसे लेकर अपनी अपनी दिशाओंमें ईश्वरके सम्मुख रक्खै, और अर्घ्य, पाद्य, देकर पूजा करै ॥ २९ ॥ चंदन, उशीर, कर्पूर, कंकुम, अगर,इन सुंगधियों करके रक्खै, मंत्रोंके जलसे स्नान करावै, जो वैभव हो तो यह सामग्रियें करै, न हो तो जो होय उससेही करै ॥ ३० ॥ सुवर्णघर्मानुवाक और महापुरुष विद्या, तथा सहस्रशीर्षा और सामवेदोक्त राजनादि सूक्तोंसे मेरी पूजा करै ॥ ३१ ॥ स्नान करनेके उपरान्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, मकराकृत कुण्डल, माला, सुगन्ध लेपन आदि करके शृंगार करै, इस प्रकार प्रेमपूर्वक मेरे भक्तको मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

पाद्य, आचमन, गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, यह सब श्रद्धा सहित मेरे भक्तको मुझे देने चाहिये ॥ ३३ ॥ यदि वैभव हो तो नैवेद्यसे अनेकप्रकारकी सामग्री बनावै, गुड़, मिश्री, खीर आदिक, घृत, पूरी, पूआ, लड्डू, गेहूंकी खीर, दहीको डालके करै ॥ ३४ ॥ पर्वमें, उत्सवमें अथवा नित्य फुलेलसे अभ्यंग, उबटन, दर्पण, दंतधावन, स्नान, अन्नादि पाकसामग्री, गीत, नृत्य यह सब करने चाहिये, यदि सदा न होसके तो पर्वमें वा उत्सवमें तो अवश्यही करै ॥ ३५ ॥ इसप्रकार प्रतिमामें पूजा कही है, अब अग्निमें पूजा कहते हैं, विधिपूर्वक कुंड बनावै, मेखला, गर्त्त और वेदीकर उसमें अग्नि रक्खै, प्रथम हाथमें जब एकत्र करले, तब कुण्डमें रक्खै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त कुशा बिछाकर चारों दिशा छिड़कै

पाद्यमाचमनीयं च गंधं सुमनसोऽक्षतान् ॥ धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ॥ संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत ॥ ३४ ॥ अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदंतधावाभिषेचनम् ॥ अन्नाद्यं गीतनृत्यानि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥ विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः ॥ अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ॥ प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥ तप्तजांबूनदप्रख्यं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ लसच्चतुर्भुजं शांतं पद्मकिंजल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवरांगदम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥ ध्याथन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाऽभिघृतानि च ॥ प्रास्याऽऽज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥

अन्वाधान नाम कर्म समाधिसे होम करै, फिर जल छिड़ककर मेरा ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इसप्रकार मेरे रूपका ध्यान करना चाहिये, सो कहते हैं कि जैसा तप्त सुवर्ण लाल होता है, उसी प्रकारका रूप पीताम्बर पहरे, शान्तरूप, शंख, चक्र, गदा, पद्मसे चारों भुजा शोभायमान ॥ ३८ ॥ प्रकाशित मुकुट, कंकण, मेखला, बाजूबंद, श्रीवत्सका वक्षस्थलमें चिह्न, शोभायुक्त वनमाला धारण किये हुए ॥ ३९ ॥ इसप्रकारके रूपका ध्यान करनेके उपरान्त, घृत, मिठाई, समिध इत्यादिसे होम करै, फिर आज्यभाग और अघोर नामक होम करै और घृतमें बूडी हविष्य ले ॥ ४० ॥

फिर मूलमंत्रके द्वारा सहस्रशीर्षाकी ऋचाओंसे धर्मादिक देवताओंके लिये यथायोग्य स्विष्टकृत् सहित होम करै ॥ ४१ ॥ पार्षदोंको बलि दे, नारायणरूप ब्रह्मका स्मरण कर, देवताओंके समीप बैठ, मूलमंत्र जपै फिर नैवेद्य करके भोजनकी सामग्रियोंका ध्यान करै ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त आचमन दे, और वह बचा हुआ उच्छिष्ट भाग विष्वक्सेनके आगे रख उनकी आज्ञासे आप ग्रहण करै, इसके पीछे मुखवासार्थ सुगंध तांबूल समर्पण करै ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त मेरे चरित्रोंका गान करै, नृत्य, करै, मेरे कर्मोंका अभिनय दिखावै, मेरी कथा मुझे सुनावै और आप भी सुनै; एक मुहूर्त्त भर निश्चल चित्त होकर रहै ॥ ४४ ॥ वेद पुराण तथा प्राकृत भाषाके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करै "हे भगवन् ! प्रसन्न होउ" इस

जुहुयान्मूलमंत्रेण षोडशर्चोऽवदानतः ॥ धर्मादिभ्यो यथान्यायं मंत्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ॥ मूलमंत्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥ दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥ मुखवासं सुरभिमत्तांबूलाद्यमथार्हयेत ॥ ४३ ॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम ॥ मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन्मुहूर्तं क्षणिको भवेत ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ॥ स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वंदेत दंडवत् ॥ ४५ ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥ इति शेषं मया दत्तं शिरस्याधाय सादरम् ॥ उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥ अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥

प्रकार कहकर दण्डवत् प्रणाम करै ॥ ४५ ॥ प्रणाम इसप्रकार करै कि मेरे चरणोंपर शिर रक्खै दोनों हाथ बाँधकर पीठपर रक्खै "अपराधीकी समान तुम्हारी शरणहूं" हे प्रभो ! मुझे शरणमें रखलो, क्योंकि मृत्युरूप जहाँ ग्राह है, ऐसे संसारसमुद्रसे भयभीतहूं ॥ ४६ ॥ इसप्रकार पूजाकरके शेष प्रसाद पुष्प, तुलसीदल मुझे दे, ऐसा ध्यान करै उसको लेकर माथेपर धरे आदरपूर्वक विसर्जन कर ज्योति ज्योतिसे जाकर मिलावै ॥ ४७ ॥ इतने स्थल तथा प्रतिमादिकोंमें कौन मुख्य हैं, इसपर कहते हैं कि, जिसकी जहाँ श्रद्धा हो वहाँ पूजा करै, क्योंकि सर्वभूतोंमें सर्वरूप मैंहीं स्थितहूं और सब भूत मुझमें निवास करते हैं ॥ ४८ ॥

इसप्रकार क्रियायोगके मार्ग तथा वैदिक तांत्रिकके प्रकारसे पूजा करनेवाले पुरुष मुझसे इस लोक और परलोककी वांछित सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके दृढ़ मंदिर बनावे पीछे फूलोंका उत्तम बाग बनावे, जहाँ मेरी यात्राका उत्सव होता है ॥ ५० ॥ नित्य अथवा बड़े पर्वोंमें पूजा सदा चली जाय, उसके लिये क्षेत्र वा पुर ग्राम लगादें, तब मेरे समान ऐश्वर्यको प्राप्तहो ॥ ५१ ॥ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करै तो सब पृथ्वीका राजा होय, मंदिर बनानेवाला त्रिलोकीका राज्य पावे, पूजा आदि यह सब कृत्य करै तो ब्रह्मलोकको प्राप्तहो और तीनों प्रकार करनेसे मनुष्य मेरी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥ इसप्रकार पूजाका फल मुक्ति तक कहा, अब जो निष्काम है उनकी भक्तिका फल कहतेहैं, निरपेक्ष भक्तियोग करके मुझेही पावे सो भक्ति कैसे हो ? तो कहते हैं, भक्ति तब हो जब इस भाँति मेरी पूजा करै ॥ ५३ ॥

एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतांत्रिकैः ॥ अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विंदत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मंदिरं कारयेद्दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाऽऽश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान्दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं दानेन भुवनत्रयम् ॥ पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्समतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विंदति ॥ भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ॥ ५४ ॥ कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥ कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे प्रतिमापूजानि० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

यह दाताका फल कहा, अब जो देकर फिर छीन लेता है, उसका निंदित कर्म कहते हैं कि, जो अपनी दी तथा पराई दी ब्राह्मण देवताकी वृत्तिका हरण करलेता है, सो अयुत वर्षतक विष्ठा भोजन करता है ॥ ५४ ॥ जो फल कर्त्ताको होता है, वही सहाय करनेवालेको भी होता है, प्रेरक अनुमोदनकर्त्ता इन सबोंको परलोकमें फल होता है, कारण यह है कि, यह सब कर्मके विभागी हैं जिसने जितना अधिक किया, उसे उतनाही अधिक फल मिलता है यदि सहाय आदि बहुत कर्म किया होय तो बहुत फल मिलता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभगवदुद्धवसंवादे पुरुषार्चनविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा—अट्ठाइस अध्यायमें, ज्ञान योग विस्तार ॥ अब वरणौं संक्षेप सों, सज्जन लेहु विचार ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! जो मेरी भक्तिमें अथवा पूजामें रहै सो यह ज्ञान निष्ठा करै पराये स्वभाव कर्मोंकी स्तुति और निन्दा न करै संपूर्ण विश्वको प्रकृति पुरुष करके जाने मुक्तिसे भिन्न न जाने ❀ ॥ १ ॥ जो पराये स्वभाव और कर्मकी निन्दा करताहै, अथवा सराहना करता है, सो मिथ्या भूत प्रपंच दृष्टि होकर शीघ्रही ज्ञानसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ २ ॥ जब इन्द्रियगण निद्रासे व्याप्त होतीं हैं, तब मनसे यह जीव स्वप्न देखता है, मायारूप स्वप्नहै पीछे

श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निंदति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्याभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिंडस्थो नष्टचेतनः ॥ मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक्पुमान् ॥ ३ ॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ॥ वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥ छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसंतोऽप्यर्थकारिणः ॥ एवं देहादयो भावा यच्छंत्यामृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥

मन भी लीन होजाता है तब चेतना नष्ट होजाती है, तब मनुष्य मृतक समान सुषुप्ति दशाको प्राप्त होता है, इसलिये जिसकी बुद्धि इस विश्वको नाना प्रकारसे जानती है सो विक्षेप लयको प्राप्त होती है वह स्वप्नमें जो होताहै, सोई भ्रमरूप यह है ॥ ३ ॥ और जो वस्तुही नहीं केवल भ्रम है, उसमें यह भला हुआ यह बुरा हुआ इतना भला, इतना बुरा इसका क्या कहना ? इसका धरा हुआ नाम सब मिथ्या है, मनसे ध्यानकरते हैं और नेत्रोंसे जो देखते हैं, सो सब मिथ्या है तहाँ भला बुरा कहै तो सब अपनाही अज्ञान भ्रम है ॥ ४ ॥ जैसे प्रतिबिम्बकी झांई

शंका—श्रीकृष्णने कहा कि, कोई सुन्दर कर्म करै तो उसकी बड़ाई नहीं करना और जो कोई बुरा कर्म करै तो उसकी निंदाभी नहीं करना, क्योंकि जैसा स्वभाव जिस जीवका होता है, वह वैसाही कर्म करता है तो सुन्दर वचन श्रीकृष्णचन्द्रने किसके लिये कहा ? गृहस्थ किसीकी निन्दा स्तुति न करै कि, विरक्त किसीकी निन्दा स्तुति न करै, यह बात बताओ ?

उत्तर—यह वचन भगवान्‌ने विरक्तोंके लिये कहा है और विरक्तोंमें जो कोई सन्यासी हो तो उसके लिये भी कहा है और सन्यासियोंमें जो कोई परमहंस होजाते हैं उनके लिये तो निश्चयही कहा है यह अर्थ है कि, सब साधु महात्माओंको किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करना चाहिये वह श्रीकृष्णके वचन गृहस्थ लोगोंके लिये नहीं है ।

मीपीमें रूपकी बुद्धि मिथ्याहै, कार्यको करते हुए उसीप्रकार यह देहादिक भाव मरनेतक भय देतेहैं ॥ ५ ॥ वेदमें जो सृष्टि कहीहै सो आपही ब्रह्म विश्वरूप होकर प्रगट होतेहैं आपही उत्पत्ति हो आपही सृजते हैं और आपही रक्षा करें आपही ईश्वर संहार करते हैं, और जिसका संहार करते हैं वह आत्माही है ॥ ६ ॥ आत्मा जो सबसे पृथक् निरूपण कियाहै उससे कोई पदार्थ पृथक् नहीं है यह अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत रूप जो प्रतीत होताहै यह सब मायारचित होनेसे निर्मूल है, यह अध्यात्मादि तीन प्रकारका गुणयुक्त संसार आत्मामें मायाके द्वारा भासता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष यह मेरी कही हुई ज्ञान विज्ञानकी चेष्टाको जानते हैं, वह किसीकी निंदा स्तुति नहीं करते, सूर्यकी भाँति, समान होकर लोकोंमें विचरण करतेहैं ॥ ८ ॥ वह कैसे हो ? सो प्रकार कहते हैं, जो वस्तु आदिअन्तयुक्त है, सो मिथ्याहै यह जानकर प्रत्यक्ष उपजे और नष्ट

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ॥ त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥ तस्मान्न ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ॥निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ॥ न निंदति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥ आद्यंतवदसज्ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ अनात्मसदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ॥ अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥ ११ ॥

हुए जगत्को अनुमान वेद और अपने अनुभवसे ऐसे जाने कि, जो यह दीखता है, सो सब मिथ्या है, यह ज्ञान जब दृढ़ होजाय, तब निःसंग होकर, विचरण करै ॥ ९ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन्! आत्मा स्वयंप्रकाश है, ज्ञानरूप हैं; देह तो जड़ है तो यह संसार किसको लगता है ? हे प्रभो ! यह संसार आत्माका है अथवा देहका है इन्हीका आत्मा द्रष्टा है वही देखता है देह तो जड़ है आत्मा जड नहीं, परन्तु देखनेवाला है ॥ २० आत्मा अव्यय है, सगुण है, शुद्ध है, स्वयंज्योति है, आवरणरहित है और देह तो जड है; परंतु इसका संयोग काष्ठ और अग्निसे है, अग्नि और काष्ठ भिन्न नहीं है; इसीप्रकार आत्मामें एकता है, इन दोनोंमें संसार किसीको भी संभव नहीं और जो संभव है तोभी अग्नि प्रकाशकहै

काष्ठ प्रकाशकहै॥११॥यद्यपि सत्यहै, परन्तु तो भी संसारका अविवेक कारण है, तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जहाँतक देह इन्द्रिय और प्राणसे आत्माका सम्बंधहै, तहाँतक मिथ्या भी संसार भासताहै, यद्यपि आत्माका और इन्द्रियोंका संबंध नहीं परन्तु तोभी अविवेकसे मानलेतेहैं॥१२॥ उद्धवजी बोले कि, देह तो असत्यहै इसको संसार क्यों भासता है ? तो इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि, यद्यपि विषयभोगकी वस्तु पास नहीं परन्तु तो भी संसार नहीं जाता, क्योंकि इसका ध्यान विषयोंमें रहताहै, इससे संसार होता है और स्वप्नमें अनर्थको देखता है ॥ १३॥ अब तर्क करते हैं कि, ध्यानसे जो विषयकी स्फूर्ति है, सो तो जीवन्मुक्तिसे भी निवारण नहीं होती है, तो मोक्ष किसीकी होही नहीं ?

श्रीभगवानुवाच ॥ यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ अहंकारस्य दृश्यंते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानो जीवोंतरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ॥ सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतंत्रः ॥ १६ ॥ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनयाशितेन च्छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥

इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जैसे शोचनेवालेको स्वप्न भी अनर्थ देता है सोई जो जागता रहै; तो जागनेवालेको वह अनर्थ नहीं होते जीवन्मुक्त पुरुषोंको विषयकी स्फूर्ति अनर्थ नहीं करसकती ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, काम, जन्म और मृत्यु यह सब अहंकारसे हैं, आत्माको कुछ यह नहीं लगती है ॥ १५ ॥ देह, इन्द्रिय, प्राण और मनका अभिमान कर यह आत्माही उनके मध्यमें स्थित जीव है, इसीसे गुणकर्ममय मूर्ति है और इन्हीं गुणकर्मसे पुरुष बँधरहा है, इसीकारण ईश्वरके आधीन होकर सब संसारमें दौड़ते फिरते हैं सूत्र और महत्त्व आदि नानारूपसे अनेक प्रकारका कहा है, ॥ १६ ॥ इसप्रकारके अहंकारसे जब यह जीव बँधरहाहै तब ज्ञानसे मुक्ति होती है सो कहते हैं

कि, वचन मन प्राणी में अहंकार निर्मूल है, अज्ञानमें बहुतरूप प्रकाशते हैं, इसलिये गुरुकी सेवा कर तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग हाथमें ले, इस अहंकार बंधनको काट संग छोड, पृथ्वीमें फिरै, इसके कारणका यह उपाय है ॥ १७ ॥ अब वही ज्ञान कहते हैं, जो विवेक ज्ञान उस ज्ञानका साधन करनेवाला वेद है, सो वेदके कहे धर्म करै, तब विवेक उत्पन्न हो तब स्वधर्म अपना अनुभव उपदेश तर्क इतने साधनसे ज्ञान उत्पन्न हो उस ज्ञानका फल कहते हैं, कि, योग तप है और कारण है और जगत्के आदि अंत मध्यमें वही है ॥ १८ ॥ नानाभेदके व्यवहार भी एक ब्रह्म मध्यमेंही होते हैं सो कहते हैं, जैसे सुवर्णके अनेक आभूषण बनते हैं और उनकी उत्पत्ति प्रथम भी और पीछेभी सुवर्णही है, अनेक भाँति होनेके

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ॥ आद्यंतयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमंग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥

उपरान्तभी सुवर्णही रहता है, क्योंकि सुवर्णसे और कोई वस्तु तो नहीं, इसीप्रकार यह विश्व अनेकरूपसे दीखता है सो भी मैंही हूं ऐसा जानना चाहिये ॥ १९ ॥ इसप्रकार विश्वका रूप कहकर इस देह इंद्रियोंमें जिससे प्रकाश होताहै, उसका तद्रूप कहते हैं, इस मनकी तीन अवस्था कारण हैं, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह गुण हैं जो सब कार्य कारण कर्त्ता रूप हैं अध्यात्म कारण कार्य अधिभूत कर्त्ता अधिदैव इसप्रकार त्रिगुण रूप जगत् है, इसप्रकार भी जिससे होता है और जिसके अनुभवसे प्रकाशै है, सो चतुर्थ स्थान ब्रह्म है, इंद्रियादिकके ज्ञान विना जो समाधि आदि विषै हैं, सोई सत्य है ॥ २० ॥ इसप्रकार ज्योतियोंमें भी और भाँति न हो, सो सत्य है, यह कहा अब जो और प्रकार होता है सो

असत्य है; इसप्रकार कहतेहैं कि जो वस्तु प्रथम नहीं और पीछे भी न होगी, मध्यमें भी नहीं केवल नाममात्रही कहनेको है जिससे प्रगट हुई और प्रकाशी सो वही है ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ २१ ॥ प्रपंचका ब्रह्मसे अभेद कहतेहैं कि, यद्यपि प्रथम मैंही हूं, यह रजोगुणसे उत्पत्ति हुआ विकारका समूह ब्रह्मका कार्य है, परन्तु तोभी ब्रह्मके प्रकाशसे भासता है ब्रह्म आप स्वयं ज्योति है इससे इन्द्रिय, विषय, आत्मा, देवता, पंचभूत, यह सब तत्त्व ब्रह्मरूप होकर भासते हैं, यह विचित्रता ब्रह्महीका कार्य है ॥ २२ ॥ इस प्रकार ब्रह्म विवेकके हेतुसे और देहादिकमें, आत्मबुद्धिका त्यागकर गुरुद्वारा अपना संदेह काट, सब कामनाओंसे निवृत्तहो आत्माके आनंदसे संतुष्ट होकर रहै ॥ २३ ॥ जो छोडनी चाहिये उनका स्वरूप कहते हैं, यह देह आत्मा नहीं, यह पृथ्वीका विकार है, इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह सब आत्मा

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः ॥ ब्रह्म स्वयं ज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेंद्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ॥ छित्त्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानंदतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिंद्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ॥ मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम्॥२४॥समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः ॥ विक्षिप्यमाणैरुत किन्नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥ २५ ॥ यथा नभो वाय्वनलांबुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ॥ तथाऽक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

नहीं है, क्योंकि अन्नमात्रके आश्रयसे रहता है, इससे विकारयुक्त है और वायु, जल, अग्नि, आकाश,पृथ्वी, यह पंचभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध प्रकृति यह भी सब आत्मा नहीं, क्योंकि जड हैं ॥ २४ ॥ इसप्रकारके विवेक ज्ञानवंत, ज्ञानी मुक्तपुरुषको इन्द्रियोंका किया गुण दोष नहीं होता सो कहते हैं कि, जो विवेकी ज्ञानवंत हैं जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हैं उन्होंने गुणरूप इन इंद्रियोंका निग्रह किया हो अथवा न किया हो तो भी उसे न तो गुणहै, न दोष है जैसे मेघके आकाशमें आनेसे सूर्यको कुछ दोष नहीं लगता है और मेघ जानेके उपरान्त कुछ गुण भी नहीं लगता है ॥ २५॥ जो निःसंग हैं और ब्रह्मरूप होरहे हैं, उनको किसीसे गुण दोष नहीं लगता जैसे आकाश भूमिमें आते जाते ऋतुके गुण

शीत उष्णादिक और वायु, अग्नि, जलसे, बंध नहीं होते; इसप्रकार अक्षय ब्रह्म सत्त्व, रज, तम यह गुण अहंकारके हैं, संसारका हेतु कारणसे नहीं मिलता, उनसे भिन्न भिन्न है ॥ २६ ॥ तथापि तबतक मायाके गुणोंका संगम करे, जहाँतक मेरी दृढ़भक्ति योग करके यह मनकी विषयोंमें आसक्ति न जाय ॥ २७ ॥ जैसे रोगको भले उपचारोंसे दूर न कियाहो तो वारंवार वह रोग उत्पन्नहोकर दुःख देता है, इसीप्रकार रागादिक और कर्म जिसके दग्ध नहीं हुए तो और सब विषयोंमें आसक्त मनभी योगी पुरुषको फिर बध करता है ॥ २८ ॥ और जो योगसे भ्रष्ट होगयाहो तो फिर उसका क्या उपाय? तो कहते हैं कि, योगीको देवताओंके प्रेरे जो बंधुरूप भ्रष्ट करते हैं योगके भ्रष्ट होनेसे फिर पूर्व अभ्यास बलकरके

मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥ २७ ॥
तथापि संगः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ॥ एवं मनोऽपककषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्व
यथाऽऽमयोऽसाधु चिकित्सितो नृणां पुनःपुनः संतुदति प्ररोहन् ॥ ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युंजंति योगं न तु
संगम् ॥ २८ ॥ कुयोगिनो ये विहतांतरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ॥ न तत्र विद्वान्प्रकृतौ स्थितोऽपि
कर्मतंत्रम् ॥ २९ ॥ करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आ निपातात् ॥ स्वभावमन्यत्किमपीहमान
निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥ तिष्ठंतमासीनमुत व्रजंतं शयानमुक्षंतमदंतमन्नम् ॥ न मन्यते वस्तुतया
मात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदि स्म पश्यत्यसदिंद्रियार्थं नानानुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥
मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥

योग करै, परन्तु कर्ममार्गके धर्म न करै केवल धर्महीकी साधना करै ॥ २९ ॥ जो किसीसे प्रेरितहो तो मरनेतक कर्मोंसे सुख दुःख जाताहै, विकारको पावै, जो विवेकी होय सो देहमें स्थित भी आत्मसुखके अनुभव करके तृष्णासे निवृत्त हुए विकारको प्राप्त नहीं होगा ॥ ३० ॥ जिसकी मति बुद्धि आत्मामें स्थित है, सो खडेहोते, चलते, सोते, मूत्र करते, अन्न भोजन करते और भी स्वभावसे दर्शन आदिक करते देहको नहीं जानते हैं ॥ ३१ ॥ जो इन्द्रियवंत हैं सो विना देखे क्यों रहैं? सो कहते हैं कि, जो विवेक युक्त हैं, सो यद्यपि इन इन्द्रियोंके विषयोंको देखतेहैं,

परन्तु तोभी अनुमानसे विरुद्ध जान आत्मासे और वस्तुसे मानते हैं, वह स्वप्नकी भाँति सब मिथ्या जानते हैं, जैसे जागनेपर स्वप्नके विषय सब आपही अंतर्द्धान होजातेहैं ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! आत्मामें मुक्तावस्थादिमें भी विकार नहीं होता, क्योंकि वृद्धावस्थामें गुण और कर्मोंसे विचित्र अज्ञानके कार्यरूप करो, देहेन्द्रियादि अध्याससे अपने स्वरूपमें मिलेहुए मानेगयेहैं, वही देहेन्द्रियादि मुक्तावस्थामें ज्ञानसे निवृत्त होजातेहैं, यह आत्मा किसीसे त्याग और ग्रहण नहीं कियाजाता, यदि मुक्तिको क्रियाका फल माने तो आत्मामें विकार होताहै इससे मायिक पदार्थोंकी निवृत्तिका होनाही मोक्ष है. बंध मोक्ष अत्माका स्पर्श नहीं करते, इसकारण आत्मा निर्विकार है ॥ ३३ ॥

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमंग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥ यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते ॥ एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरंति ॥ ३५ ॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलंबो न यस्य हि ॥ ३६ ॥

परन्तु प्रथमसेही विद्यमान घटादिक पदार्थोंमें कुछ विकार नहीं करता, इसी प्रकार मेरी अध्यात्मविद्या मनुष्योंके मनके अंधकारको दूर करती है. परन्तु आत्मामें कुछ विकार नहीं होता, आत्मा तो जिस स्थितिमें स्थित है, उसीमें रहता है ॥ ३४ ॥ यह स्वयंप्रकाश जन्मरहित ज्ञान विज्ञानसे भी जाना नहीं जाता, महान् प्रतापयुक्त किसी विकारसे न बढ़े न घटै, सदा एक रूप रहै और सबोंका प्रकाशक एक है, वह दूसरेसे रहित हैं, जिसमें वचनकी गति नहीं, श्रुति भी कहती है कि, जब आगे गम्य नहीं, वहाँसे मन समेत वाणी फिर आती है जिसके प्रेरे वाणी और प्राण कार्य करते हैं ॥ ३५ ॥ केवल भेदरहित आत्माहै, उसमें भेद देखना इतनाही भ्रम मनका है, अपने आत्माके विना इस भेदका

आश्रय हैही नहीं ॥३६॥ और जो भेद मानतेहैं उनका मन दूषित है क्योंकि रूप और नामसे जो वस्तु कही जाती है, सो पंचभूत रूप है, देह इन्द्रिय दूसरा पदार्थ यह मत पण्डित लोगोंका वाद है, तत्त्व जाननेवालोंके लेखे वस्तु विचार कर देखो तो सब मिथ्या है ॥ ३७ ॥ जो कच्चा योगी योग साधै है, उसे उसकी देहसे उठे रागादिक उपद्रव करके योगभ्रष्ट करदेतेहैं उनको मैंने यह आगे लिखी विधि कही है ॥ ३८ ॥ सो कहते हैं कि, योगकी धारणासे चन्द्रमा तथा सूर्यके तापको जीतै आसनसे प्राणवायु और धारण वायुसे वात रोग जीतै.तप, ग्रह, औषधीसे पापग्रहकृत सर्व अशुभ उपसर्गोंको दूर करै ॥ ३९ ॥ चित्तका दोष मेरा ध्यान करके दूर करै, मेरे नाम कीर्त्तन आदिसे कामक्रोधादिकोंको दूर करै और कितनेही योगीश्वरोंकी सेवा

यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पंचवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाऽप्यर्थवादोऽयं द्वयं पंडितमानिनाम् ॥ ३७ ॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युंजतः काय उत्थितैः ॥ उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥३८॥ योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ॥ तपो मंत्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः ॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥४०॥ केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ॥ विधाय विविधोपायैरथ युंजंति सिद्धये ॥४१॥ न हि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ॥ अंतवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् ॥ तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान्योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥

करके सब दंभ अहंकारादिक अशुभोंको शनैः शनैः दूर करै ॥४०॥ कितनेही योगीश्वर इस देहको समर्थ तरुणतामें अनेक उपायोंसे स्थिर करके परकायाप्रवेशकी सिद्धिके लिये योग करते हैं, ज्ञानकी निष्ठा नहीं करते ॥ ४१ ॥ और जो कुशल ज्ञाता हैं, सो उनका आदर नहीं करते, क्योंकि देह अनित्य है, इसकारण निश्चय मनसे योग करके इसके रखनेका श्रम निरर्थक है, जैसे वट वृक्षके फल मिथ्या हैं ॥ ४२ ॥ यद्यपि योगसिद्धिका नित्य सेवन करते करते प्राणायामादिके प्रभावसे शरीरमें होही जाय, परन्तु तो भी बुद्धिमान् मेरे भक्त पुरुषको समाधि त्यागन कर इस

शरीरकी सिद्धिपर विश्वास करना योग्य नहीं है ॥ ४३ ॥ इसलिये योगीजनोंको चाहिये कि, मेरे आश्रयसे यह योग करें तब विघ्न न हो निस्पृह होकर आत्माका अनुभव प्राप्त हो, जब मेरे आश्रयसे सब विघ्न निवृत्त हों तो वह योगी आनन्दसे परिपूर्ण होता है ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे अष्टाविंशोध्यायः ॥ २८ ॥ दोहा–उनतिसवें अध्यायमें, भक्तियोग विस्तार ॥ प्रथम निरूपण करचुके, अब संक्षेप विचार ॥ २९ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! यह तुमने योगकी क्रिया कही सो जिस पुरुषका मन वशमें नहीं उसको तो अति कठिन लगती और जिनका चित्त वशमें नहीं वे अज्ञानी हैं, इसलिये इसको जैसे शीघ्र सिद्ध हो सुगम हो सो उपाय मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे

योगचर्यामिमां योगी विचरन्मदपाश्रयः ॥ नांतरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥४४॥ इति श्रीमद्भा०म०एका० ज्ञानयोगनि०नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ उद्धव उवाच ॥ सुदुष्करामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥ यथांजसा पुमान्सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्यंजसाऽच्युत ॥ १ ॥ प्रायशः पुंडरीकाक्ष युंजंतो योगिनो मनः ॥ विषीदंत्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनंददुघं पदांबुजं हंसाः श्रयेरन्नरविंदलोचन ॥ सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्मायायाऽमी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबंधो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ॥ योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥

मलनेत्र ! बहुधा जो योग करते हैं वह मनका निग्रह करनेमें अत्यन्त क्लेशको प्राप्त होते हैं, परन्तु तोभी मननिग्रह नहीं होता तब थकित हो विषादक्त होते हैं ॥ २ ॥ योगमें अतिक्लेश हैं, जो परमहंस हैं वह सार असारको जानते हैं, हे कमलदललोचन ! जो तुम्हारे चरणारविन्दोंका आश्रयरते हैं तो यह चरणारविन्द उनके आनंदकोही पूर्ण करतेहैं, हे कमलदललोचन ! आप भक्तोंको सुखरूप हो और जो तुम्हारी मायासे मोहित योगीश्वरोगकर्म करके अभिमानको धारण करते हैं, वह सिद्ध नहीं ॥ ३ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे सबके बंधु ! जो अनन्य शरण तुम्हारे दास हैं, उनके तुम्हींश हो यह क्या आश्चर्य है, जैसे नंद यशोदाके घर खेलते फिरे, रामरूप धारण कर बंदरोंसे मित्रताई करी, ब्रह्मा आदि देवताओंके शोभासंयुक्त

मुकुटोंके अग्रने तुम्हारे चरणारविन्दका सिंहासन पीड़ित किया है ऐसे तुम हो ॥ ४ ॥ जो तुम भक्तोंकी सेवा जानतेहो, सबके आत्मा हो इसीकारण अतिप्रिय हो, ईश्वर हो, जो पुरुष केवल तुम्हारेही आश्रय रहतेहैं, उनको सब अर्थ देतेहो, प्रह्लाद आदि भक्तोंमें किया उपकार जान कौन आपको छोड़सकता है तो किस फलके लिये मेरा सेवन करे, तो कहते नहीं और देवता अथवा धर्म ज्ञानादि साधन तो ऐश्वर्यके अर्थ है, फिर मोक्षके लिये कौन भजे ? सो कहते हैं कि,साधन विना मोक्षका फल कैसे होता है ? तो तुम्हारे चरणारविन्दकी रेणुका जो सेवन करते हैं, उनको क्या फल नहीं होता ? जो चहते हैं सो फल होता है ॥ ५॥ अब कहते हैं कि, और भजनकी बात तो दूर रहै, तुम्हारे किये उपकारको तुम्हारे विषे आत्मा निवेदन

तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥ नैवोपयंत्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरंतः ॥ योंतर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्त्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हंत ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमंगलान् ॥ यान्छ्रद्धयाचरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥

करे तभी प्रत्युपकार हो और प्रकारसे नहीं होता सो कहतेहैं, आनंदबद्ध ब्रह्मके ज्ञाता तुम्हारे उपकारको स्मरण करके ब्रह्माकी आयुसे भी तुम्हारे उपकारसे उऋण नहीं होसकते उपकारको कहते हैं कि, जो तुम बाहर गुरुरूप हो और मध्यमें अंतर्यामी रूपसे प्राणियोंकी वासना दूर करतेहो, अपना आनन्द रूप प्रगट करतेहो, हम इसका प्रत्युपकार क्या करें ? ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! जब अनुरक्तचित्त उद्धवने इसप्रकार पूँछा, तब ईश्वरके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि, जो भगवान् सत्व, रज, तम इन शक्तियोंसे ब्रह्मादि तीन मूर्ति धारण करते हैं और जगत् जिनका खिलौना है ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! मैं सुमंगल अपने धर्म तुझसे कहूंगा, जिन धर्मोंको श्रद्धासहित करनेसे यह मनुष्य दुर्जय मृत्युको जीतलेताहै ॥ ८ ॥

मेरा स्मरण करते करते शनैः शनैः सब कर्म करै, वह सब कर्म मेरे लिये करै मुझमें ही मन तथा बुद्धि अर्पण करै तथा धर्मोंहीमें आत्माकी और मनकी प्रीति रक्खै ॥९॥ जहाँ मेरे भक्त साधु पुरुष निवास करते हों उन्हीं पुण्य दर्शनोंमें जाकर वास करै, देव, असुर, मनुष्योंमें जो मेरे भक्त हैं उनके कर्मोंका आश्रय करै ॥ १० ॥ उन भक्तोंसे मिलकर उत्सव करै, अथवा अलग आपही सबकी यात्रा उत्सव करै, नृत्य गीत सब करावे महाराजके छत्र चामरादि उपचारसे सब करावै॥११॥निर्मल चित्त पुरुष सब भूतमात्रमें अपनपेमें भी बाहर भीतर मुझेही देखै, मैं आकाशकी नाईं असंग होनेके कारण सबमें स्थित होकरभी आवरण रहित और बाहर भीतर सदा पूर्ण हू ॥ १२ ॥ जो इस प्रकार ज्ञानमें स्थितहो सब प्राणीमात्रको

कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यान्संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥ पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरंतरपावृतम् ॥ ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥ इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ॥ सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिंगके ॥ अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पंडितो मतः ॥ १४ ॥ नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ॥ स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियंति हि ॥ १५ ॥ विसृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचांडालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ॥ तावदेव मुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

मेराही भाव जानकर पूजै, वही पण्डित है ॥१३॥ ब्राह्मण, नीच जाति, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, अग्निके कणिका यह क्रूरहों अथवा न हों इनमें जो समदृष्टि हो वही पण्डित है ॥ १४ ॥ मनुष्योंमें मेरे भावकी भावना रक्खै तो वेगही पुरुषके ईर्षा, निंदा, तिरस्कार, अहंकार यह सब निश्चयही नष्ट होजांय ॥ १५ ॥ इसलिये अन्तर्यामी ईश्वरकी दृष्टिसे सबको प्रणाम करै, हँसीकरते अपने मित्रोंको छोड़ औरअपनी ऊंच नीच दृष्टि लज्जा छोड़ भूमिको दण्डवत् करै कूकर, चाण्डाल, बैल, खर ऐसे नीचोंको भी मेरी बुद्धिसे प्रणाम करै ॥ १६ ॥ जबतक सब भूतमात्रमें मेरा भाव

न उत्पन्न हो तब तक पुरुषको चाहिये कि, वाणी मन और देहकी प्रवृत्तिसे मेरी उपासना करै ॥ १७ ॥ इस प्रकार उपासना करके उसे सब विश्व ब्रह्मरूपही भासता है, आत्मविद्यासे सर्वत्र ब्रह्महो देखते संदेह सब दूर होजाते हैं और आप सबसे विरक्त होजाता है ॥ १८ ॥ यह सब पक्षोंसे निश्चय किया हुआ मेरा उत्तमपक्ष है जो देह प्राण मनसे सब प्राणीमात्रमें मेरा भाव हो ॥ १९ ॥ हे उद्धवजी ! यदि निष्काम मेरे धर्म करते करते कुछ भूल चूक होजाय तो भी हानि नहीं क्योंकि यह उत्तम धर्म निर्गुणपनकेलिये मैंने निश्चय कियाहै ॥ २० ॥ हे साधुश्रेष्ठ ! जो जो व्यर्थ भी लौकिक परिश्रम करते हैं, सो भी जो मुझे समर्पण करै फल वॉछा विना मेरेलिये करै जैसे भय शोकादिकसे दौड़ना, रोना क्लेश व्यर्थ हैं सो भी मुझे समर्पण

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ॥ परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥ अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥ न ह्यंगोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ॥ मया व्यवसितः सम्यङ्ग निर्गुणत्वादनाशिषः ॥२०॥ योयो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ॥ तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥२१॥ एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ॥ यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः ॥ समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥ अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४॥ सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ॥ सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥

कर देनेसे धर्म होजाते हैं ॥ २१ ॥ वही बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि और चतुरोंकी चतुरताहै जो असत्यरूप इस मनुष्यदेहसे सत्यरूप मुझे इस जन्ममें प्राप्त होवे ॥२२॥ हे उद्धव ! यह ब्रह्मवादका संपूर्ण संग्रह मैंने तुझसे संक्षेप और विस्तारसहित वर्णन किया, जो कि देवताओंको भी दुर्लभथा ॥२३॥ वारम्वार मैंने तुझसे प्रगट करके युक्तियोंसे यह ज्ञान कहा है, क्योंकि यह ब्रह्मवाद रीतिका ज्ञान जानकर पुरुष संदेहसे रहित और मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ जो इसका स्मरण रक्खै, कहै, सुनै, पढै तो भी इसका फल होता है सो कहते हैं, हे उद्धव ! मैंने यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दियाहै इसे जो कोई चित्तमें धारण करेगा वह नित्य वेदमें भी गोप्य परब्रह्मको प्राप्त होजायगा ॥ २५ ॥

जो पुरुष मेरे भक्तोंसे विस्तार सहित यह ज्ञान कहता है उसे मैं अपनी आत्मातक देदेता हूं, क्योंकि वह भक्तोंका दाता है ॥ २६ ॥ जो कोई परममित्र साधकको इस ज्ञानरूपी दीपकसे मेरा दर्शन करावे सो दिन प्रति दिन शुद्ध होता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इसको श्रद्धा सहित नित्य सावधान होकर श्रवण करते हैं, सो मुझमें परमभक्तिको प्राप्त होकर कर्मोंसे बद्ध नहीं होते ॥ २८ ॥ हे उद्धव ! हे मित्र ! तैंने यह ज्ञान अच्छी प्रकार मनमें धर लिया है इसलिये क्या तेरे मनका मोह शोक गया ? ॥ २९ ॥ बुद्धिमान्‌को चाहिये कि यह ज्ञान दंभी नास्तिक, धूर्त्त इत्यादि और जिसके सुननेकी इच्छा न हो उसे कभी न सुनावे ॥३०॥ हे उद्धव ! जो इन दोषोंसे रहित हो, ब्रह्मण्य हो, अतिप्रिय साधु हो, शुद्धहो उससे

य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम्॥ तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ॥ स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥२७॥ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ॥ मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ॥ अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥ नैतत्त्वया दांभिकाय नास्तिकाय शठाय च ॥ अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ॥ साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दंडधारणे ॥ यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

यह ज्ञान कहना चाहिये. जो भक्ति होय तो स्त्री शूद्रसे भी कहै ॥ ३१ ॥ जाननेवालेको इसके जाननेके उपरान्त फिर कुछ जाननेकी आवश्यकता नहीं, जैसे सुस्वाद अमृत पीनेके पीछे और पीनेके योग्य नहीं रहता ॥ ३२ ॥ भक्तोंको और साधना कुछ नहीं चाहिये, क्योंकि भक्तोंका तो केवल सब मैंही हूं, ज्ञानसे मोक्ष होती है, विहित कर्म करनेसे धर्म होता है योग करै, अणिमादि सिद्धि हो, सहजके कर्म करनेसे काम होय, खेती करै, अर्थ होय दण्ड नीति करै, ऐश्वर्य होय और इन साधनाओंसे चारों पुरुषार्थ सिद्धि होते हैं, हे उद्धव ! इस पुरुषार्थरूप तुमको मैंहूं इसलिये

तुमको और कुछ नहीं करना चाहिये, केवल एक मेरी शरण रहो ॥ ३३ ॥ जब यह मनुष्य सब कर्मोंको छोडकर मुझे आत्मा निवेदन कर, तब
मेरे श्रेष्ठ करनेके योग्य होता है, उसीसे फिर मोक्षको प्राप्त होता है और निश्चयही मेरे समान ऐश्वर्यके योग्य होजाता है ॥ ३४ ॥ जब इसप्रकार
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने सफल योगमार्गका स्वरूप दिखाया, तब उत्तमयश श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन, हाथ जोड प्रीतिपूर्वक गद्गद कंठ हो
नेत्रोंसे अश्रुपात करते, गला रुकजानेके कारण उद्धवजी कुछ भी न बोलसके ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत राजा परीक्षित !

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ॥ तदा मृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते
वै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ॥ बद्धांजलिः प्रीत्युपरुद्धकंठो
न किंचिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः ॥ कृतांजलिः प्राह यदुप्र
वीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविंदम् ॥ ३६ ॥ उद्धव उवाच ॥ विद्रावितो मोहमहांधकारो य आश्रितो मे तव सन्नि
धानात् ॥विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवंत्यजाद्य ॥ ३७ ॥

अति स्नेहसे विह्वल चित्तको "धैर्यकर" थामकर, अपनेको कृतार्थ मानने लगे । इसके उपरान्त हाथ जोड माथेसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके
चरणारविन्दका स्पर्शकर उद्धवजी बोले ॥ ३६ ॥ कि हे ब्रह्मादिकोंके उत्पन्नकर्त्ता ! मैंने जो मोहरूपी अंधकारका आश्रय कियाथा सो तुम्हारे
समीपसे जातारहा, जैसे सूर्यके समीप अंधकार, शीत, भय, कहाँ होसकते हैं ? ❀ ॥ ३७ ॥

---

* शंका—श्रीकृष्णसे उद्धवने कहा कि, महाराज ! मेरा मोह अब मेरे शरीरको छोडकर भागगया, मोहसे अब मैं छूटगया, तो फिर यमुनाके तटपर विदुरजीने उद्धवसे श्रीकृष्णका वृत्तान्त बूझा तो
क्यों मोहग्रसित होगये ? श्रीकृष्णका वृत्तान्त भी पूरा नहीं कहसके, हालभी कुछ देर पीछे कहा जो कोई कहे कि, ज्ञान पानेके पीछे फिर मोहने घेरलिया होगा तो सत्य है जो बहुत दिन होगये होंगे होते तो
आश्चर्य नहीं था परन्तु ज्ञान पाकर कृष्णके पाससे दो अथवा तीनही दिन वीतेथे जब विदुरजीका और उद्धवका समागम हुआथा, यह शका है ।
उत्तर—निस्सन्देह उद्धवजीका मोह नाश होगयाथा परन्तु मनुष्यके स्वभाव करके क्षणक्षणमें मोहके वश होकर श्रीकृष्णका स्मरणकर फिर मोहको त्याग दिया और श्रीकृष्णका मोह भी इसलिये किया कि,
श्रीकृष्णही भक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं, इसलिये यमुनाके निकट उद्धवको मोह प्राप्त हुआ कुछ अज्ञानपनसे मोह उत्पन्न नहीं हुआ ।

तुमने अति दयाकरके मुझे सेवकको विज्ञानदीपक दिया, इसकारण कौन तुम्हारे उपकारका ज्ञाता है, अब तुम्हारे चरणारविन्द मूलको छोडकर और मैं किसकी शरण जाऊं? ॥३८॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो! जो सृष्टिकी वृद्धिके लिये तुमने अपनी मायासे मेरा स्नेहरूप पाश दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, सात्वतनमें बढ़ाया था, सो आत्मज्ञान शस्त्रसे मनेही काटकर दूर करदिया ॥ ३९ ॥ हे महायोगिन्! तुमको प्रणाम है, मैं शरणहूं, इतनी शिक्षा दो कि, मेरी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें दृढ़ प्रीति हो ॥ ४० ॥ यह बात उद्धवजीकी अंगीकार करके लोकसंग्रहके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी कि, हे उद्धव! मेरी यह आज्ञा है कि, तुम बदरिकाश्रमको जाओ, क्योंकि वहाँ मेरे चरणतीर्थ गंगाजलसे स्नान आचमन करके

प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकंपिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ॥ हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥३८॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यंधकसात्त्वतेषु ॥ प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥३९॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन्प्रपन्नमनुशाधि माम् ॥ यया त्वच्चरणांभोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥४०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ॥ तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥ ईक्षयालकनंदाया विधूताशेषकल्मषः ॥ वसानो वल्कलान्यंग वन्यभुक्सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥ तितिक्षुर्द्वंद्वमात्राणां सुशीलः संयतेंद्रियः ॥ शांतः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ॥ मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ॥ शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिंचदद्वंद्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥

शुद्ध होग ॥४१॥ हे उद्धव! अलकनंदाके दर्शनसे सफल हो पाप दूरकर वल्कल वस्त्र पहर वनके फल खाय सुखमें निष्ठ होओ ॥ ४२ ॥ वहाँ सब इन्द्रियोंके निग्रहसे शीत, उष्ण, सह सुशील शान्त हो, ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त समाधिमें बुद्धि स्थिर करो ॥ ४३ ॥ और मुझसे तुमने जो सीखा है, तथा अच्छी भाँति विचारा है उसकी भावना करते आवेशयुक्त वचन चित्तसे मेरे धर्ममें तत्पर हो, इन तीन गुणोंकी गतिका अतिक्रम करके आगे मुझे प्राप्त होगे ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कहनेसे उद्धवजी प्रदक्षिणा

लगे, यद्यपि सुखदुःख रहित हुए हैं, परन्तु तोभी चलनेके
कर माथा भगवान्‌के चरणोंमें रख अश्रुपातके जलसे भगवान्‌के चरणको अभिषेक करने लगे, यद्यपि सुखदुःख रहित हुए हैं, परन्तु तोभी चलनेके समर्थ
कारण स्नेहसे कोमल बुद्धि होगये ॥ ४५ ॥ अत्यन्त दुस्त्यज स्नेहके वियोगसे अतिअधीरहो अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके छोडनेको समर्थ
न हुए और इसके उपरान्त अतिकष्ट पाय फिर अपने स्वामोकी पादुका माथेपर धर प्रणाम करके चले, इसप्रकार बारंबार प्रणाम करके चले
॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त अपने अंतः करणमें श्रीकृष्णको धारणकर परम भागवत उद्धव बदरिकाश्रमको चले गये और जगद्बंधु भगवान् श्रीकृष्ण
चन्द्रसे इस भाँति उपदेश पाय, उसी भाँति तपस्याको साध हरिकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनके चरणकमलोंका योगीश्वर सेवन करते

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ॥ कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः
पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमंतर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् ॥ यथोपदिष्टां जगदेकबंधुना तपः समास्थाय
हरेरगाद्गतिम् ॥ ४७ ॥ य एतदानंदसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ॥ कृष्णेन योगेश्वरसेवितांघ्रिणा सच्छ्र
द्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ भवभयमपहंतुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥ अमृतमुदधि
तश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे
भक्तियोगसंग्रहो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

हैं. उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह ज्ञानरूप अमृत आनंद समुद्र परम भागवत उद्धवजीसे कहा, जो पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका सेवन करते हैं,
सो संसारसे मुक्त होजातेहैं ॥ ४८ ॥ जिन वेदकर्त्ता भगवान्‌ने संसारका भय दूर करनेके लिये एक ज्ञानरूप वेदसार अमृतका भ्रमरकी भाँति उद्धार
किया, एक अमृत तो समुद्रमेंसे निकाला था सो तो देवताओंको पिलाया अब दूसरा यह वाणीरूप अमृत अपने सेवक तथा भक्तोंको पिलाया
ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायामे
कोनत्रिंशोध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा—तीसमाहिं वैकुण्ठकी, सुरति करी करतार ॥ मुशलयुद्धमिस सबनको, क्षणमें कियो सँहार ॥ १ ॥ राजापरिक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन् ! परम भागवत उद्धवजीके वन चलेजानेपर विश्वके रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्या किया ? ॥ १ ॥ अपने कुलको ब्रह्मशापसे व्याप्त देख सबके नेत्रोंके परमप्रिय शरीरको यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रने कैसे छोड़दिया ? ॥२ ॥ जिस रूपमें लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियें खैंचनेको समर्थ न हुईं, जो स्वरूप कर्णद्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ और साधु पुरुषोंके मनमें तो लिखासा रहता है, जिस रूपकी शोभा वर्णन करनेसे पण्डितोंकी वाणीसे प्रीति उत्पन्न होती है अर्जुनके रथपर स्थित जिस स्वरूपको देखकर भारतमें मरे युद्ध विषे जो योद्धा हैं, वह सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुए॥३॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी

॥ राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥ द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ॥ प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् ॥ यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं न मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दिवि भुव्यंतरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् ॥ दृष्ट्वासीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ॥ मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुंगवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजंत्वितः ॥ वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ॥ देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥

बोले कि, हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गमें सूर्यके मण्डल आदि भूमिमें कंपादि, अंतरिक्षकी दिशामें दाहादिक उठे बड़े बड़े उत्पातोंको देख सुधर्मा सभामें बैठे यादवोंसे यह कहने लगे ॥४॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! यह घोर मृत्युको बतानेवाले उत्पात उठ रहे हैं, इसलिये अब हमको दो घड़ी भी द्वारकामें वास करना योग्य नहीं है ॥ ५ ॥ इसकारण सब स्त्री, बालक और वृद्ध शंखोद्धारको जाओ और हम प्रभासक्षेत्रको जायँगे, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती है ॥ ६ ॥ वहाँ स्नानसे पवित्र हो, उपवासकर भलीभाँति सावधानतासे स्नान कराय चंदन और पूजाकी सामग्रियोंसे देवताओंका पूजन करेंगे ॥ ७ ॥

बड़े भाग्यवान् ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र और हाथी घोड़े रथोंसे पूजेंगे ॥ ८ ॥ निश्चय करके यह विधि अरिष्टकी नाशकहै और उत्तम मंगलकी आश्रय है प्राणियोंमें देवता, ब्राह्मण, गौकी पूजा कल्याणका हेतुहै ॥ ९ ॥ यादवोंमें सब वृद्ध इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रका वचन सुन "ऐसेही हैं" इस भाँति स्तुतिकर, नावों द्वारा समुद्र उतर सब प्रभास क्षेत्रको चलेगये ॥ १० ॥ यादवोंके देव भगवान्के उपदेशको सब यादव मंगलोंसहित परमभक्तिसे प्रभासक्षेत्रमें करनेलगे ॥११॥ इसके उपरान्त प्रभासक्षेत्रमें दैवसे हतबुद्धि यादवोंने सुरस मदिराका महापान किया, जिस मदिराके रससे बुद्धि भ्रष्ट होजाती है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित मद्यपानसे अतिगर्व

ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् ॥ गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् ॥ देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ॥ तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ॥ चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ॥ दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ॥ कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ॥ धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ॥ मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहञ्छरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥ प्रद्युम्नसांबौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ॥ सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

युक्तचित्त यादवोंका अतिबड़ा कोलाहल हुआ ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त क्रोधितहो वधको उद्यत यादव समुद्रके तटपर धनुष, खड्ग, गदा, तोमर और रिष्टियोंसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ दुर्मद यादव चलायमान ध्वजावाले रथ, हाथी, खच्चर, ऊंट, बैल और भैंसोंसे परस्पर मिलकर बाणोंसे मारनेलगे जैसे वनमें हाथी दाँतोंसे परस्पर हाथियोंको मारते हैं ॥ १५ ॥ असहनताको प्राप्तहो प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर तथा भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित् अतिदारुण होकर गद श्रीकृष्णका भाई, एक श्रीकृष्णका पुत्र सुमित्र और सुरथ यह अति

क्रूर स्वभाववाले मत्सरसे व्याप्त होकर परस्पर घोर युद्ध करनेलगे ॥ १६ ॥ इसीप्रकार और भी निशठ, उल्मुक, सहस्रजित, शतजित, भानु आदि यादव जो भगवान्की इच्छासे मोहित होगयेथे, वह वारुणीके पानसे मत्त और अन्धप्राय हो परस्पर युद्ध करकरके लड़ने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, भोज, सात्वत, मधुके वंशके और अर्बुद मथुरा शूरसेन देशके विसर्जन, कुकुर, कुंति देशके स्नेहको तोड़ परस्पर मारने लगे ॥ १८ ॥ पुत्र पितासे और भाई भानजेसे, धेवतोंसे काकाओंसे, मित्रोंसे, सुहृदोंसे युद्ध करनेलगे, मूर्ख जाति जातियोंहीको

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ॥ अन्योऽन्यमासाद्य मदांधकारिता जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥ दाशार्हवृष्ण्यंधकभोजसात्त्वता मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ॥ विसर्जनाः कुकुराः कुंतयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ॥ मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहन्ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥ शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ॥ शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्नुरेरकाः ॥ २० ॥ ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः ॥ जघ्नुर्द्विषस्ते कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ ॥ २१ ॥ प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ॥ हंतुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनंदन ॥ एरकामुष्टिपरिघौ चरंतौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ॥ स्पर्द्धा क्रोधक्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४ ॥

मारने लगे ॥ १९ ॥ बाणोंसे हीन होनेके उपरान्त धनुषके टूटनेसे, शस्त्रोंके छिन जानेसे पटेरोंको ग्रहण करनेलगे ॥ २० ॥ वह पटेरे यादवोंके हाथमें लेतेही वज्रके समान दुधार खाँड़े होगये, उससे यादव वैरियोंको मारने लगे ॥ २१ ॥ और जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें वर्जा, तब हे परीक्षित ! वह श्रीकृष्ण और बलदेवजीको वैरी मान मारनेकी बुद्धिसे यादव मोहितहो शस्त्र ले सन्मुख आये ॥ २२ ॥ हे कुरुनंद ! इसके उपरान्त दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो खड्गरूप पटेरोंको हाथमें लेकर युद्धमें विचरते मारने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापसे व्याप्त श्रीकृष्णकी मायासे

मोहित आत्मा यादवोंको स्पर्द्धासे उत्पन्न हुए क्रोधने क्षय कर दिया, जैसे बाँसकी अग्नि वनका क्षय कर डालती है ॥ २४ ॥ इसप्रकार अपना सब कुल नाश होजानेके पीछे एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रही केवल अवशेष रहगये तब श्रीकृष्णने जाना कि अब भूमिका भार उतरगया ॥ २५ ॥ महात्मा बलदेवजीने समुद्रके तटपर परमपुरुषके ध्यानरूप योगसे आपको आपमें युक्तकर मनुष्यलोक छोड़ दिया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त श्रीदेवकीजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, बलरामजीका चलना देख पीपलका आश्रय ले मौन होकर भूमितलमें बैठगये ॥ २७ ॥ शोभायमान चतुर्भुजरूप धारण किये अपनी कांतिसे दिशाओंका अन्धकार दूर करते निर्मल अग्निसे दिखाई देने लगे ॥ २८ ॥ अब

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ॥ अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ॥ तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान्देवकीसुतः ॥ निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥ बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ॥ दिशो वितिमिराः कुर्वन्विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ॥ कौशेयांबरयुग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥ २९ ॥ सुंदरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुंतलमंडितम् ॥ पुंडरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकांगदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥ वनमालापरीतांगं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पंकजारुणम् ॥ ३२ ॥ मुसलावशेषायःखंडकृतेषुर्लुब्धको जरा ॥ मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ॥ ३३ ॥

चतुर्भुज रूपका वर्णन करते हैं, श्रीवत्सका चिह्न, मेघके समान श्याम सुवर्णके समान कांतिवाले, पीताम्बर पहरे, परममंगल ॥ २९ ॥ सुन्दर हास्ययुक्त मुखकमल, नील केशसे शोभित, कमलसे सुन्दर नेत्र, देदीप्यमान मकराकृत कुण्डल ॥ ३० ॥ कटिसूत्र, जनेऊ, मुकुट, कंकण, विराजमान हार, नूपुर, मुद्रिका, कौस्तुभसे शोभित ॥ ३१ ॥ वनमालासे व्याप्त अंग मूर्तिवत् अपने आयुधोंसे युक्त, लाल कमलकीसी शोभावाला वामचरण दाहिनी जाँघपर धरकर बैठे ॥ ३२ ॥ मूशलके अवशेष लोहेके खण्डसे जिसने बाण बनायाथा उस

जरा नाम वधिकने मृगके आकारवाले उस चरणको मृगकी शंकासे बींध डाला "यह व्याधा कुछ बहुत समयका नहीं था, यह उसीसमय स्वर्गसे भगवानकी इच्छानुसार अंगद व्याधके रूपमें आया और मोहित हो बाण मार पिताके ऋणसे मुक्त हुआ" * ॥ ३३ ॥ फिर भगवान्के समीप आया चतुर्भुज श्रीभगवान्को देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ इसके उपरान्त वह अपराधी वधिक माथेसे दैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रके

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ॥ भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥ अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ॥ क्षंतुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोकमेऽनघ ॥ ३५ ॥ यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वांतनाशनम् ॥ वदंति तस्य ते विष्णो मयासाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥ तन्माशु जहि वैकुंठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ॥ यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥

चरणोंमें गिरपड़ा ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन ! पाप बुद्धि मैंने यह अपराध अज्ञानसे किया है, हे उत्तमयश ! मुझ निष्पाप पापीको क्षमा करो ॥ ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! जिसका स्मरण मनुष्योंके अज्ञान तमका नाश करता है, उन्हीं तुम विष्णुका मैं अपराधी हूं ॥ ३६ ॥ हे वैकुण्ठनाथ ! इसलिये

* शंका–वधिकको मनुष्यके और मृगके पहँचाननेमें भेद क्यों हुआ ? जिस भ्रमसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारबिंदको मृग समझकर महाराजके चरणमें बाण क्यों मारा ? निशाना लगानेवाले मनुष्य कभी नहीं चूकते छोटी वस्तु होती है तोभी देख दृष्टि से खेलते हैं और त्रिलोकीनाथकी देह तो बडीथी वह वधिक कैसा मूर्ख होगया ? मृग और मनुष्य उसको नहीं जान पडे ? बडे सन्देहकी बात है
उत्तर–अंगद वालिका पुत्र श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंकी सेवा करके स्वर्गको जाने लगा तो रघुनाथजीने अंगदसे कहा कि, जो वरदान तुझको चाहिये सो माग, तब अंगदने कहा कि, हे रघुनन्दन ! हे दीनबन्धु ! मेरे पिताको आपने विना अपराध मारडाला सो उसका बदला आपसे लियाचाहता हूं तब रघुनाथजी बोले कि, हम कुछ युग बीते द्वापरमें कृष्णावतार धारण करेंगे तब तुम्हारे पिताका ऋण तुमको चुकावेंगे और तुम्हारे हाथके बाणसे हम प्राण तजकर परमधामको जायँगे, जिससमयको श्रीरघुनाथजी कहगयेथे वही समय देखकर वीर अंगदने स्वर्गलोकसे उसी वनमें आनकर वधिकका रूप धारणकर लक्ष्मीपति भगवान्के चरणमें बाण मारा इसलिये व्याधेको मनुष्यकी और मृगकी पहँचान नहीं हुई, क्योंकि बहुत दिनका व्याध नहीं था वह तो नया वधिक था केवल पिताका बदला लेनको आयाथा ।

मुझ मृगलोभी पापीको शीघ्र मारो, जिससे फिर कभी साधुओंका ऐसा अपराध न करूं ॥ ३७॥ जब तुम्हारी स्वाधीन मायाकी रचनाको ब्रह्मा और ब्रह्माके पुत्र रुद्रादिक तथा वेदके द्रष्टा भी नहीं जानते उन्हें ब्राह्मणोंके शापका लगना मायासे अंधे हुए पुरुषोसे किसप्रकार कहा जासकता है ? इससे यह बात चाहे कुछ भी हो, परन्तु आप मुझे मारडालिये ॥३८ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे जरा ! तू भय मत करै, उठकर खडा हो, तैंने तो यह मेरी इच्छानुसारही कार्य किया है, इसलिये तू मेरी आज्ञासे पुण्यवानोंके स्थान स्वर्गको जा ॥ ३९ ॥ इच्छा करके शरीरधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाय, वह वधिक श्रीकृष्णकी तीन परिक्रमा दे नमस्कारकर विमानमें बैठ स्वर्गको चलागया ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त दारुक

यस्याऽऽत्मयोगरचितं न विदुर्विरिंचो रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ॥ त्वन्मायया पिहितदृष्टय एतदंजः किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥३८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ॥ याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ॥ त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥४०॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् ॥ वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ॥ स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥४२॥ अपश्यतस्त्वच्चरणांबुजं प्रभो दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा ॥ दिशो न जाने न लभे च शांतिं यथा निशायामुडुपे प्रणष्टे ॥ ४३ ॥ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः ॥ खमुत्पपात राजेंद्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥

मार्गमें भगवानको विनापाये तुलसी चन्दनकी गंध मिली वायुको सूँघता श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आया ॥ ४१ ॥ उस पीपलके वृक्षके नीचे तीक्ष्ण कांतियुक्त आयुधोंसे व्याप्त अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रको बैठा देख स्नेहसे मग्न आत्मा, नेत्रोंमें जलभर दारुक रथसे उतर उनके चरणोंमें गिरा ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्द विना देखे मेरा सब ज्ञान नाशको प्राप्त होगया और मोहमें प्रविष्ट हुआ मैं दिशाओंको भी नहीं जानताहूं, तथा शान्ति भी मुझे नहीं है. जैसे रात्रिमें चंद्रमाके गये पीछे दिशा नहीं जानी जाती हैं ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जब इसप्रकार दारुक सारथीने कहा तब सारथीके देखतेही गरुडचिह्नयुक्त रथ घोड़े ध्वजा सहित आकाशको उडगया ॥ ४४ ॥

इसके उपरान्त विष्णुके दिव्य आयुध चलेगये। इससे विस्मित सारथीसे भगवान् जनार्दन कहने लगे ॥ ४५ ॥ कि, हे सूत ! तू द्वारकाको जा, बांधवोंसे परस्पर जातिका मरण, योगमार्गसे बलदेवजीका प्रस्थान और मेरी दशा जो कुछ तैंने देखी है सो कहना ॥ ४६ ॥ तुम बांधवोंसहित द्वारकामें मत रहना, क्योंकि मुझसे छोड़ीहुई द्वारकाको अब समुद्र बोरेगा ॥ ४७ ॥ इसलिये अपनी सब सामग्री तुम हमारे मातापिताको लेक रके अर्जुनसे रक्षित हो इन्द्रप्रस्थ जाओ, इसप्रकार बांधवोंसे कहो ॥ ४८ ॥ तुम ज्ञाननिष्ठ निस्पृहहो मेरे धर्मसे और यह मेरी मायाकी रचन

तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ॥ तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ॥ संकर्षणस्य निर्याणं बंधुभ्यो याहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः स्वस्व बंधुभिः ॥ मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वंस्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ॥ अर्जुनेनावि ताः सर्व इंद्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ॥ मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनःपुनः ॥ तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तत्रा गमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ॥ महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥

जान शान्तिको प्राप्त होओ ॥ ४९ ॥ जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब दारुक श्रीकृष्णचन्द्रकी वारम्वार परिक्रमा दे माथा नवाय कुलके नाश होनेसे मलीन चित्त हो द्वारकापुरीको चलागया ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां यादव निर्याणं नाम त्रिंशोध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा—इकतिसमें नरलोकते, कृष्ण गये निजधाम ॥ गये देव निज निज भवन, तज द्वारका ललाम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! दारुकसारथीके जाने उपरान्त वहाँ ब्रह्मा, पार्वतीसहित महादेव, इन्द्रादिक देवता, सनकादिक मुनि,

मरीचि आदि प्रजापति ॥ १ ॥ पितर, गंधर्व, विद्याधर, महानाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, पक्षी ॥२॥ भगवान्‌का प्रस्थान देखनेकी इच्छासे, परमउत्कंठित श्रीकृष्णके जन्म कर्म गाते और कहते वहाँ आये ॥ ३ ॥ हे राजन् ! फूलोंकी वर्षा करते, परमभक्तिसे युक्त, विमानोंकी पंक्तिसे आकाशको संकुल करनेलगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त प्रभु सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, ब्रह्मा इन्द्रादिक अपनी विभूतिको देख अपने आपको अपने आपमें संयुक्त कर, अपने लोक लेजानेके लिये आये हुए बहुतसे देवताओंको देख, समाधि लगाकर अपने नेत्रकमल मूँदलिये ॥५॥ जैसे स्वेच्छा मृत्युवाले योगी अपने शरीरको योगधारणासे जलाय लोकोंमें प्रवेश करतेहैं. परन्तु श्रीकृष्णने वैसे नहीं किया. किन्तु उसी शरीरसे अपने

पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥ द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ॥ गायंतश्च गृणंतश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ॥ कुर्वंतः संकुलं राजन्भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥ भगवान्पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ॥ संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम् ॥ योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ॥ सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७॥ देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशंतं स्वधामनि ॥ अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥८॥ सौदामन्या यथाकाशे यांत्या हित्वाऽभ्रमंडलम् ॥ गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

परमधामरूप वैकुण्ठको चलेगये, कारण यह था कि, यदि इस शरीरको योगधारणसे जला देते तो उसमेंका संपूर्ण जगत् भी भस्म होजाता और इस शरीरका ध्यान व धारणा करनेवाले उपासक लोगोंको पीछे उस देहका साक्षात्कार और फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ६॥ जिससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वधाम पधारे, उस समय देवलोकमें नगाडे बाजनेलगे आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे भूमिसे सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्त्ति, लक्ष्मी यह सब चले गये ॥ ७ ॥ परन्तु ब्रह्मादिक देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको स्वधाममें प्रवेश करते न देखा, इस कारण यह अति आश्चर्यको प्राप्त हुए, क्योंकि श्रीकृष्णकी गति किसीने न जानी ॥ ८ ॥ जैसे मेघमण्डलीको छोडकर आकाशमें जाती बिजलीकी गति

मनुष्योंसे नहीं देखी जाती, उसीप्रकार देवताओंमेंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति नहीं देखी गई, उनकी गति उनके पार्षदही जानतेहैं ॥ ९ ॥ सो ब्रह्मा रुद्रादिक देवता श्रीकृष्णचन्द्रकी योगगति देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए और उस गतिकी स्तुति करते अपने अपने लोकोंको चलेगये ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित ! यादवोंमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म धारण करना मायासे अनुकरण मात्र जानना, जैसे नट निर्विकार है परन्तु नानारूपोंसे अनुकरण करता है, इसप्रकार आपही इस जगत्को उत्पन्न कर, और अंतर्यामीभावसे उसमें आवेशकर अंतकालमें संहार करते हैं, परन्तु आप अपनी महिमासे निर्विकार हैं ॥ ११ ॥ तुम और मूर्त्ति मत जानो इसी अवतारमें श्रीकृष्णचन्द्रका प्रताप बहुत बड़ा देखा है, जिन्होंने परलोकसे सांदीपनका पुत्र प्राप्त किया और उसे उसी शरीरसे शरणागतरक्षक श्रीकृष्ण ले आये.

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ॥ विस्मितास्तां प्रशंसंतः स्वंस्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा माया विडंबनमवेहि यथा नटस्य ॥ सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चांते संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ॥ जिग्येंतकांतकमपीशमसावनीशः किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥ तथाऽप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ॥ नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

ब्रह्मास्त्रसे दग्ध तुम्हारी रक्षा करी, फिर कालोंके महाकाल रुद्र भगवान् महादेवजीको बाणसुरके संग्राममें जीतलिया और जरानाम वधिकको देहसहित स्वर्गको भेजदिया, तो वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्या अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे ? ॥ १२ ॥ अहो ! जो श्रीकृष्णचन्द्र समर्थ थे तो कुछ काल अभी यहाँही क्यों न रहे ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, संपूर्ण जगत्के सृष्टि प्रतिपालन और संहारमें आपही कारण हैं औरकी आकांक्षा वह नहीं रखतेहैं अनेक शक्तियोंको धारण करते हैं, यद्यपि ऐसे हैं परन्तु तो भी यादवोंका संहार होजानेसे अपने देहको इसलोकमें रखनेकी इच्छा न की, आपही निजधाममें अपने देहको प्राप्त किया, यहाँ हेतु कहतेहैं, भगवान्ने विचारा कि, अब इस देहका यहाँ क्या

कामहै ? स्वधर्मी आत्मनिष्ठोंकी जो रीतिथी सो दिखाई और भाँति वह आत्मनिष्ठ दिव्य गतिके अनादरसे, योगबलसे देहकी सिद्धि कर कहीं यहाँ हीं क्रीड़ा करनेको मन करै, इसकारण भगवान् आप भी चले गये ॥ १३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर, सावधान मनसे, अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रकी परमगतिको कहैगा, सो परम उत्तमगतिको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ अब वसुदेवादिककी गति कहते हैं, इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे बिछुडाहुवा दारुक नाम सारथी द्वारकामें आय, वसुदेव व उग्रसेनके चरणोंमें पड़, अपने अश्रुजलसे उनके चरणोंको सींचने

य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ॥ प्रयतः कीर्त्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिंचत्कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥ कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ॥ तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥ तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ॥ व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नंत आननम् ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ॥ कृष्णरामावपश्यंतः शोकार्त्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ॥ उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥

लगा ॥ १५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसके पीछे उस सारथीने सब यादवोंके नाश होनेका वृत्तान्त कहा वह सुनकर वसुदेवादिकोंके हृदयमें अत्यन्त उद्वेग हुआ और शोकसे मूर्छितहो ॥१६॥ मुख काटते श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल उतावले वहीं आये, जहाँ बांधव प्राणरहित शयन कररहेथे ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी और वसुदेव, श्रीकृष्ण और बलदेव अपने पुत्रोंके विना देखे शोकसे आतुर हो बेसुधि होगये ॥ १८ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगसे अत्यन्त आतुरहो, वहाँही प्राण छोड़दिये और अपने अपने पतियोंसे मिलकर स्त्रियें चितामें प्रवेश करगईं ॥ १९ ॥

बलदेवजीकी स्त्री बलदेवजीके देहको आलिंगनकर चितामें प्रवेशकरगईं और वसुदेवकी स्त्री वसुदेवसे, श्रीकृष्णकी पुत्रवधू प्रद्युम्न आदि अपने अपने पतियोंसे मिलकर रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी स्त्री श्रीकृष्णमय हो अग्निमें प्रवेश करगईं ॥ २० ॥ अर्जुनने अपने परमप्रिय सखा श्रीकृष्णचन्द्रके विरहसे आतुर होनेपर भी सची मुक्ति देनेवाले भगवान्के वचनोंको स्मरण करके उसने अपने आत्माको सांत्वना दी ॥ २१ ॥ जिनकी संपत्ति नाशको प्राप्त हुई और आपभी नाशको प्राप्त हुए, उन बांधवोंका अर्जुनने पिंडदान, तर्पण आदि कार्य विधिपूर्वक क्रमसे किया ॥ २२ ॥ हे महाराज परीक्षित! इसके उपरान्त श्रीयुत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मंदिरको छोड़कर श्रीकृष्णसे त्यागी संपूर्ण द्वारकाको समुद्रने क्षणभरमें डुबा

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ॥ वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्र प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ॥ कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥ अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ॥ आत्मानं सांत्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बंधूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम् ॥ हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ॥ वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ स्मृत्याऽशेषाशुभहरं सर्वमंगलमंगलम् ॥ २४ ॥ स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान्धनञ्जयः ॥ इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राऽभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ॥ त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥ य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ॥ कीर्त्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

दिया ॥ २३ ॥ मंदिर बचानेका कारण यह है कि, भगवान् मधुसूदन वहाँ नित्य विराजाते हैं और वह मंदिर कैसा है कि, जिसका स्मरणमात्र करनेसेही संपूर्ण अमंगल नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ २४ ॥ मरनेसे बचेहुए स्त्री, बालक वृद्धको अर्जुनने लेकर इन्द्रप्रस्थमें प्रवेश कराय वहाँ वज्रनाभको अभिषेक किया ॥ २५ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परमभागवत परिक्षित्! तुम्हारे पितामह पांडव अर्जुनके मुखसे सुहृदोंका वध सुनकर तुमको वंशधारी समझ महाप्रस्थानको चलेगये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासहित देवदेव भगवान् विष्णुके जन्म और

कर्मोंको सुनेंगे अथवा कहेंगे, वह संपूर्ण पापोंसे छूट जायँगे ॥ २७ ॥ इसप्रकार इस ग्रन्थमें और दूसरे ग्रन्थोंमें वर्णन कियेहुए परममंगल भगवान् वासुदेवके सुन्दर अवतारोंके चरित्र जो मनुष्य कहेंगे सो परमहंसोंके शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त होंगे * ॥ २८ ॥

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ॥ अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदन्तर्द्धानं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तोऽयं श्रीमद्भागवतस्यैकादशः स्कन्धः ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां भाषाटीकायां श्रीकृष्णपरिवारनिर्यापणं नामैकात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

* भजन—जनप्रतिपाल दयाल दयानिधि क्यों चितवत नहिं ओर हमारी । कीजे कृपा जन जान हमपर हे व्रजेश गोपाल मुरारी । जबसे सतशिक्षा हम त्यागी । बुधिबल और सुख सम्पति भागी । पीछे विपति अविद्या लागी । निशिदिन देत रहत दुखभारी ॥ १ ॥ कुमतिकलह घटघटमें छाई । शुभगुण सुमति समूल नशाई । करत परस्पर द्वेष बुराई । हानिलाभ-नहिं तनक विचारी ॥ २ ॥ हम सब तुम्हरी ओर निहारें । त्राहि त्राहि दिन रात पुकारें । तुम विन जाको जाय जुहारें । एसो को भक्तन हितकारी ॥ ३ ॥ वेग जननकी ओर निहारो । कलह कुमतिकी मूल उखारो । दारिद दुर्गुण दुर्ग विदारो । दुष्टदलन दीनन दुखहारी ॥ ४ ॥ नाथ विनय मम स्वीकृत कीजे । विद्यादान दयाकर दीजे । चरण शरणमें हमको लीजे । लागरही दृढ आश तुह्मारी ।

इदं पुस्तकं क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालैन) स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वादशस्कंधप्रारम्भः ॥


परीक्षित्


परीक्षित्


कश्यप
तक्षक


श्रीव्यास


बालमुकुंद


श्रीधरस्वामी

श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा—आदि ब्रह्म अद्वैत अज, अविनाशी अविकार। श्रीमुकुन्द गोविन्दपद भज मन वारम्वार ॥१॥ कवित्त—काहूको सहारोहै भवानी राज रानीको, काहूको सहारो है गिरिजाके प्यारेको। काहूको सहारो है काल विकरालीको, काहूको सहारो भूतनाथ वेलवारेको ॥ काहूको सहारो है भैरों हनुमानूजीको, काहूको सहारो है पूरण नाथद्वारेको। जानै गिरधारो औ उवारो ब्रज शालिग्राम, मोहिं तो सहारो वा नन्दके दुलारेको ॥ १ ॥ काहूकी उमा रमा शारदामें बड़ी प्रीति, काहूको भवानी और लक्ष्मीमें मन है। काहूको गणेश औ महेश माहिं लागो चित्त, काहूको इष्ट देव पानी अरु पवन है ॥ काहूको ध्यान हनुमान और भैरवको, काहूको पूज्य शम्भु पुत्र गजानन है। काहूके शालिग्राम रामनाम अमर मूल, मेरे तो केवल एक राधाही धन है ॥ २ ॥ सोरठा—जय ब्रजचन्द मुकुन्द, आनँदनिधि ऋधि सिधि भवन ॥ जय वृन्दावन चन्द, नन्दसुवन

श्रीकृष्णाय नमः ॥ राजोवाच ॥ स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ॥ कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ योंत्यः पुरंजयो नाम भाव्यो बार्हद्रथो नृप ॥ तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥ प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ॥ २ ॥ विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ नंदिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे ॥ ३ ॥ अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यंति पृथिवीं नृपाः ॥ शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ॥ क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ४ ॥

त्रिभुवनपती ॥ १ ॥ दोहा—अहै प्रथम अध्यायमें, भावी मागध वंश। धरा भोग करि है सविधि, सो वर्णब विनशंस ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने बूझा कि हे मुने! यदुकुलके भूषणरूप श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द जब अपने परमधामको चलेगये, तब पृथ्वीपर आगेको किसका वंश चला? यह मुझको समझाकर कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! बृहद्रथके कुलके अन्तमें पुरंजय नाम राजा होगा, जिसका वर्णन प्रथम नवमस्कन्धमें आपको सुनाचुकाहूं, उसका मंत्री शुनक पुरंजयको मारकर प्रद्योतनाम अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठावेगा, उसके पालक नाम पुत्र होगा ॥ २ ॥ उसके विशाखयूप नाम पुत्र होगा, उसके राजक नाम एक पुत्र होगा, राजकके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा, यह पॉच राजा प्रद्योतन नामसे प्रसिद्ध होंगे ॥ ३ ॥ और एकसौ अड़तीस (१३८) वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे, उनके पीछे शिशुनाग नाम राजा होगा, उसके काकवर्ण

नाम राजा होगा, काकवर्णके क्षेमधर्मा नाम पुत्र होगा, उसके क्षेत्रज्ञ नाम पुत्र होगा ॥ ४ ॥ क्षेत्रज्ञके विधिसार नाम पुत्र उत्पन्न होगा, उसके अजातशत्रु नाम पुत्र होगा, उसके दर्भकनाम पुत्र होगा, उसके अजय नाम पुत्र होगा ॥ ५ ॥ अजयके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा, उसके महानन्द नाम पुत्र होगा, हे कुरुवंशभूषण ! यह शिशुनागादिवंशी दश राजा तीनसौ साठ (३६०) वर्षतक कलियुगमें राज्यभोग करेंगे ॥ ६॥ हे महाराज ! महानन्दका पुत्र शूद्रीके गर्भसे बड़ा तेजस्वी और पराक्रमी ॥ ७ ॥ महापद्म सेनाका पति, नन्दनाम क्षत्रियवंशका विध्वंस करनेवाला होगा, इस नन्दराजासे लेकर आगेको शूद्रके तुल्य अधर्मी राजा होंगे ॥ ८ ॥ सो यह नन्द पृथ्वीपर एक महाछत्रधारी राजा होगा और कोई संसारमें उसकी

विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ॥ दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ५ ॥ नंदिवर्धन आजेयो महानंदिः सुतस्ततः ॥ शिशुनागो दशैवते पष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ६ ॥ समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ॥ महानंदिसुतो राजञ्छूद्रीगर्भोद्भवो वली ॥ ७ ॥ महापद्मपतिः कश्चिन्नंदः क्षत्रविनाशकृत् ॥ ततो नृपा भविष्यंति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ८ ॥ एकच्छत्रां स पृथिवीमनुल्लंघितशासनः ॥ शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ ९ ॥ तस्य चाष्टौ भविष्यंति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ॥ य इमां भोक्ष्यंति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ १० नव नंदान्द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ॥ तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यंति वै कलौ ॥ ११ ॥ स एव चंद्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ तत्पुत्रो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १२ ॥ सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुताः ॥ शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १३ ॥

आज्ञाको उल्लंघन न करैगा, मानो क्षत्रियोंका मानभंग करनेमें दूसरा परशुराम होगा ॥ ९ ॥ उस नन्दराजाके सुमाल्यादिक आठ पुत्र होंगे, वह सब राजा होकर सौ (१००) वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे ॥ १० ॥ अपने अनुगत उन नवो नन्दराजाओंको कोई एक चाणक्य नाम ब्राह्मण मारेगा, तिनके मरणोपरान्त कलियुगमें मौर्य नाम राजा पृथ्वीका राज्य करैगा ॥ ११ ॥ फिर वही नवनंदका मारनेवाला चाणक्य नाम ब्राह्मण चन्द्रगुप्त मौर्यको राज्यसिंहासनपर बैठावेगा, उस चन्द्रगुप्तके वारिसार नाम पुत्र होगा, उसके अशोकवर्धन नाम पुत्र होगा ॥ १२ ॥ अशोकवर्धनके सुयशा

नाम पुत्र होगा, उसके संगतनाम पुत्र उत्पन्न होगा, संगतके शालिशूकनाम पुत्र होगा, उसके सोमशर्मानाम पुत्र होगा ॥ १३ ॥ सोमशर्माके शतधन्वा पुत्र होगा, उसके दूसरा बृहद्रथ पुत्र होगा; यह दश मौर्यवंशी राजा कलियुगमें एकसौ तेत्तीस (१३३) वर्षतक पृथ्वीपर आनन्द भोगेंगे, हे कौरवकुलमार्त्तण्ड ! इन सब मौर्योंमें पहले एकादश रथा नाम मौर्य होगा, यह जाननेयोग्य बात है ॥ १४ ॥ फिर मौर्यवंशका राजा बृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामीको मारकर ाज्य करैगा पौष्पमित्रका पुत्र अग्निमित्र राजा होगा उसका सुज्येष्ठ नाम पुत्र होगा, सुज्येष्ठक पुत्र वसुमित्र होगा, वसुमित्रका भद्रक नाम पुत्र होगा, भद्रकका पुत्र पुलिन्द होगा, पुलिन्दका पुत्र घोष होगा, घोषका पुत्र वज्रमित्र होगा वज्रमित्रका

शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः ॥ मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥ समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कलौ । कुरुकुलोद्वह ॥ १४ ॥ अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिंदो भविता सुतः ॥ ॥ १५ ॥ ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ॥ ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरिति श्रुतः ॥ १६ ॥ शुंगा दशैते भोक्ष्यंति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ ततः काण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप ॥ १७ ॥ शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥ स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥ १८ ॥ तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ॥ काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ शतानि त्रीणि भोक्ष्यंति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ १९ ॥ हत्वा कण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ॥ गां भोक्ष्यत्यंध्रजातीयः कञ्चित्कालमसत्तमः ॥ २० ॥

पुत्र भागवत होगा; भागवतका पुत्र देवभूति होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ यह दश शुंगराजा कहे जायँगे और दशों राजा एकसौबारह ११२ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करैंगे, हे कुरुकुलभूषण ! इन सबमें शुंगा नाम राजा पहिले होगा, हे नरेन्द्र ! फिर यह भूमि अल्पगुणवाले कण्व नाम राजाओंके अधीन रहैगी ॥ १७ ॥ देवभूति नाम शुँगाका मंत्री बडा बुद्धिवान् वसुदेवनामा होगा सो परस्त्रीगामी देवभूति शुंगको मारकर आपही राज्य करैगा, उसके भूमित्र पुत्र होगा ॥ १८ ॥ भूमित्रके नारायण नाम पुत्र होगा । नारायणके सुशर्मा नाम पुत्र होगा यह कण्ववंशी चार राजा कलि युगमें तीनसै पैंतालीस ३४५ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करैंगे ॥ १९ ॥ सुशर्माका कोई चाकर महानीच शूद्र जाति अस

त्तम बली नाम कण्ववंशी सुशर्माको मारकर कुछ वर्षतक आप पृथ्वीका राज्य करैगा ॥२०॥ फिर उसके पीछे उस बली नाम राजाका भ्राता कृष्ण नाम पृथ्वीका पति होगा, उसके श्रीशान्तकर्ण नाम पुत्र होगा, श्रीशान्तकर्णके पौर्णमास नाम पुत्र होगा ॥ २१॥ उसके लम्बोदर नाम पुत्र होगा, लम्बोदरका पुत्र चिविलक होगा, चिविलकके मेघस्वाति नाम पुत्र होगा, उसके अटमान नाम पुत्र होगा ॥ २२ ॥ अटमानके अनिष्टकर्मा नाम पुत्र होगा, उसके हालेय नाम पुत्र होगा, हालेयके तलक नाम पुत्र होगा, तलकके पुरीषभीरु नाम पुत्र होगा उसका सुनन्दन नाम पुत्र होगा ॥२३॥ सुनन्दनके चकोर नाम तनय होगा, चकोरके नवभाशिवस्वाति नाम पुत्र होगा, हे रिपुदमन! उसके गोमती नाम पुत्र होगा, गोमतीके पुरीमान् नाम

कृष्णनामाऽथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ॥ श्रीशांतकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ लंबोदरस्तु तत्पुत्र स्तस्माच्चिविकलो नृपः ॥ मेघस्वातिश्च विकलादटमानस्तु तस्य च ॥ २२ ॥ अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चा त्मजः ॥ पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २३ ॥ चकोरो नवमो यत्र शिवस्वातिररिंदम ॥ तस्यापि गोमती पुत्रः पुरीमान्भविता ततः ॥ २४ ॥ मेदःशिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ॥ विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २५ ॥ एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ॥ षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यंति कुरुनन्दन ॥ २६ ॥ सप्ता भीरा आवभृत्या दशगर्दभिनो नृपाः ॥ कङ्काः षोडश भूपाला भविष्यंति च लोलुपाः ॥ २७ ॥ ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ॥ भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ २८ ॥

पुत्र होगा ॥२४॥ उसके मेदशिरा नाम पुत्र होगा मेदशिराके शिवस्कन्द नाम पुत्र होगा, ताके यज्ञश्रीनाम पुत्र होगा, यज्ञश्रीके विजय नाम पुत्र होगा, उसके चन्द्रविज्ञ नाम पुत्र होगा, और उसके सलोमधिनाम पुत्र होगा ॥ २५ ॥ हे कुरुनन्दन! यह तीस राजा चारसौ छप्पन ४५६ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करैंगे ॥ २६॥ इनके उपरान्त आवभृत्य नामनगरीमें सात आभीर जातिके राजा होंगे, उनके पीछे फिर दश गर्दभ नाम राजा होंगे, उनके उपरान्त कंकजातिके सोलह राजा महालोभी होंगे ॥ २७ ॥ उनके पीछे आठ यवन राजा होंगे, उनके पीछे चौदह तरुष्क (तुरक, तुर किस्तानके वासी) राजा होंगे, फिर दश गुरुण्ड (अंगेरज,इंगलिस्तान निवासी) राजा होंगे, उनके पीछे ग्यारह मौन राजा होंगे ॥ २८ ॥

यह ग्यारह मौन राजाके विना सब राजा एक सहस्र निन्यानवे (१०९९) वर्षतक पृथ्वी पर राज्य करेंगे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! ग्यारह मौन राजा तीनसो ३०० वर्षतक पृथ्वीका भोग करेंगे, उनके मरनेके पीछे किलकिला नगरमें भूतनन्दनाम राजा होगा, उसके पीछे वंगिर नाम राजा होगा ॥ ३० ॥ फिर उसके पीछे उसका भाई शिशुनंदि और शिशुनन्दिके पीछे यशोनंदि यशोनन्दिके पीछे प्रवीरक, यह सब राजा एकसौ छः (१०६) वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ ३१ ॥ उस शिशुनंदिके तेरह पुत्र होंगे और वह सब बाह्लीकही कहलावेंगे और आनन्द पूर्वक पृथ्वीका राज्य करेंगे, फिर और एक दूसरा पुष्पमित्र नाम राजा होगा, उसके दुर्मित्र नाम पुत्र होगा ॥ ३२॥ फिर सात तो

एते भोक्ष्यंति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ॥ नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ २९ ॥ भोक्ष्यंत्यब्दशतान्यंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ॥ किलिकिलायां नृपतयो भूतनंदोऽथ वंगिरिः॥३०॥शिशुनंदिश्च तद्भ्रातायशोनंदिः प्रवीरकः ॥ इत्येते वै वर्षशतं भविष्यंत्यधिकानि षट् ॥ ३१ ॥ तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बा[ ]काः ॥ पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ॥ ३२ ॥ एककाला इमे भूपाः सप्तांध्राः सप्त कौशलाः ॥ विदूरपतयो भाव्या नैषधास्तत एव हि ॥ ३३ ॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः ॥ करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिंदयदुमद्रकान् ॥ ३४ ॥ प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ॥ वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥ अनुगंगामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यंति मेदिनीम् ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्रावंत्याभीराश्च शूद्रा अर्बुदमालवाः ॥ व्रात्या द्विजा भविष्यंति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥ ३६ ॥

अंध, सात कौशल और एक वैदूर्य नगरका नरेश नैषध यह सब खण्ड मण्डलेश्वर राजा एकही समयमें होंगे ॥ ३३ ॥ फिर मगध देशमें विश्वस्फूर्जित पुरंजय नाम राजा होगा, सो बडा पराक्रमी विदुर्मति होगा और ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको धर्मसे भ्रष्ट करके पुलिन्द, यदु और मद्रक म्लेच्छकी तुल्य करदेगा ॥ ३४ ॥ और जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, न हों ऐसी नीच प्रजाको स्थापन करैगा, यह वीर्यवान् पुरंजय क्षत्रियोंका विध्वंस करके पद्मावती नाम पुरीमें बसकर हरिद्वारसे लेकर प्रयागतक राज्य करैगा ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्रदेश, उज्जैन, अभीर, शूद्र, अर्बुद, मालवादेशनिवासी द्विज अर्थात् तीनों वर्ण यज्ञोपवीत क्रिया न करके संस्कार हीन होजायँगे और राजा भी शूद्रके समान

काम करने लगेंगे ॥ ३६ ॥ सिन्धुनदीसे लेकर चन्द्रभागानदीके किनारेतक और कौंतीपुरी काश्मीर आदि सब देशोंमें शूद्र क्रियाहीन म्लेच्छप्राय वेदमर्यादारहित, तेजहीन राजा होंगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह सब एकही कालमें म्लेच्छप्राय अधर्मी, असत्यपरायण, अल्पदाता, महाक्रोधी ॥ ३८ ॥ स्त्री, बालक, गौ, ब्राह्मणको मारनेवाले, परनारी, पराये द्रव्यके, हरनेवाले उत्पन्न होंगे और मारेंगे, अल्पपराक्रम, अल्प आयुर्बलवाले होंगे ॥ ३९ ॥ गर्भाधानआदिक संस्कारोंसे रहित, सन्ध्या तर्पणादि क्रियाओसे हीन, रजोगुण, तमोगुणसे आवृत म्लेच्छ राजाओंका रूप धारण किये प्रजाको अनेक अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले होंगे ॥ ४० ॥ इन पालनेवाले राजाओंके सब देश उन राजाओंके भाव और

सिंधोस्तटं चंद्रभागां कौंतीं काश्मीरमंडलम् ॥ भोक्ष्यंति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३७ ॥ तुल्यकाला इमे राजन्म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ॥ एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ३८ ॥ स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः ॥ उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥३९॥ असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः ॥ प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४० ॥ तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥ अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यंति पीडिताः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वाद० कलौ भाविनृपान्वय० प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥ कालेन बलिना राजन्नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतीः ॥ १ ॥ वित्तमेव कलौ नणां जन्माचारगुणोदयः ॥ धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥

आचरणको और अपवाद करनेवाले लोगोंको परस्पर क्लेशोंसे और राजाओके लिये किये हुए दुष्ट कर्मोंसे दुःखी होकर क्षयको प्राप्त होंगे ॥४१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां राजवंशवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–दुसरे जब कलिकालको, बढै दोष अत्यन्त ॥ तब हरि कल्की रूपधर, मारहिं दुष्ट असन्त ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके उपरान्त फिर महाबलवान् कालके प्रभावसे दिनपर दिन धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल, स्मरण आदि घटता चलाजायगा ॥ १ ॥ कलियुगके विषे जिस पुरुषके पास धन होगा, वही बलवान्, गुणनिधान, आचारवान् और बुद्धिवान् कहलावेगा और जो महाबलवान् होगा, वही धर्माध्यक्ष और न्यायशाली हो

मबको जीतैगा ॥२॥ रीति प्रीति केवल एक स्त्री और पुत्रहीमें रहेगी और सुहृद, मित्र, कुल, गोत्रादिकमें कपट व्यवहार रह जायगा स्त्री पुरुष होनेमें कुछ श्रेष्ठ कुल, आचार विचार न होगा केवल रति करनेमें कुशल देखलेंगे और ब्राह्मणपनमें केवल जनेऊ मात्रही रहजायगा ॥३॥ आश्रम चिह्नमात्रही करके पहिचाने जायँगे, परस्पर स्नेह कहीं नहीं रहैगा, धनहीन न्यायमें नित्य प्रति हारतेही रहा करैंगे;क्योंकि न्यायाध्यक्ष जबतक धनपात्रोसे द्रव्य पाते रहैंगे तबतक धनहीनको हरातेहीरहा करैंगे, और अधिक बोलनेवालेहीको लोग पण्डित कहैंगे ॥ ४ ॥ निर्धनोंका नाम लोग असाधु रक्खेंगे. दम्भवान् और कपटीहीको लोग साधु कहैंगे; विवाह स्वीकार मात्रही समझा जायगा, और स्नानही सब शृंगार मात्र होगा ॥५॥

दांपत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ॥ स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥ लिंगमेवाश्रमख्याताव न्योऽन्यापत्तिकारणम् ॥ अवृत्त्यां न्यायदौर्बल्यं पांडित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥ अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दंभ एव तु ॥ स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्ये केशधारणम् ॥ उदरंभरिता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥ ६ ॥ दाक्ष्यं कुटुंबभरणं यशोर्थं धर्मसेवनम् ॥ एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमंडले ॥ ७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ॥ प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यंति गिरिकाननम् ॥ शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥

जो ताल वा सरोवर दूर होगा, वही तीर्थ माना जायगा, माता पिता और गुरुको कोई तीर्थ नहीं मानेंगे, सब शिरपर बाल रखना यही सुन्दरता कहावेगी, जैसे तैसे पेट भरलना परम चतुरता और पराक्रम गिना जायगा, और ढीठ पुरुषही सत्यवादी कहलावेंगे ॥ ६ ॥ कुटुम्बका उदरपूर्ण करनाही स्थानपन और चतुराईका मूल समझा जायगा धर्मका सेवन केवल इसीलिये किया जायगा जिससे संसारमें यश हो, इसप्रकार जब सर्वत्र भूमण्डल प्रजाओंसे व्याप्त होजायगा ॥ ७॥ तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इनमें जो बली होगा वही भूपाल कहा जायगा लोभी, निर्दयी, लुटेरोसे और राजाओसे ॥ ८ ॥ अपना स्त्री, धन छीन लेनेके भयसे सब प्रजा भागकर पर्वतोंमें, वनोंमें जा छिपैगी और वहाँ शाक, कन्दमूल,

फल, मधु, मांस, पुष्प, बीज, इनसे अपना उदर पूर्ण करैगी ॥९॥ अकाल और राजाओंके दण्डसे कष्टपाकर अनावृष्टि,शीत, वायु,धूप,वर्षा और हिमसे परस्पर अत्यन्त पीड़ित हो क्लेशपाकर सम्पूर्ण नष्ट होजायगा ॥ १० ॥ भूख, प्यास, रोग, संताप और चिन्तासे प्रजा अत्यन्त पीड़ितहो जायगी और मनुष्योंकी पूर्ण अवस्था कलियुगमें बीश २० अथवा तीस ३० वर्षकी हुआ करैगी ॥ ११ ॥ जब कलियुगका महादोष बढेगा तब प्राणी तनु क्षीण और महामलीन होजायँगे ॥ १२ ॥ धर्मके बदलेमें पाखण्डही पाखण्ड रहजायगा, राजा लुटेरे होंगे, वृथा हिंसा और बातबातमें झूठ बोलकर नाना प्रकारकी वृत्तियोंको करैंगे और सदा बुरे कामोंमें निष्ठा रहै गी ॥ १३ ॥ सब वर्णाश्रम शूद्रके सदृश होजायँगे और गायें

अनावृष्ट्या विनंक्ष्यंति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ शीतवातातपप्रावृड्ढिमैरन्योऽन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतापेन च चिंतया ॥ त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥ क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ॥ वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥ पाषंडप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ॥ चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु ॥ गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बंधुषु ॥ १४ ॥ अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ॥ विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥ १५ ॥ इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मणि ॥ धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६ ॥ चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ॥ धर्मत्राणाय साधूनां जन्मकर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥

बकरीके समान छोटी छोटी होंगी, चारों आश्रम गृहस्थप्राय होजायँगे और स्त्रीके भैयोंसे लोग प्यार करैंगे और घरको सम्बन्ध मात्र मानैंगे ॥ १४ ॥ अन्न और औषधियें सब क्षीण होजायँगी, केवल वृक्षोंमें प्रायः शमी के वृक्षही रहजायँगे, वर्षाकालमें बिजली अधिक चमकेगी वर्षा बहुत थोड़ी हुआ करैगी, गृहस्थियोंके घर धर्मकर्मसे शून्य होजायँगे ॥ १५ ॥ इसप्रकार कलियुगमें सब मनुष्य अधर्मी हो गधेके समान होजायँगे और महाभयंकर कलियुगके अंतका समय आवेगा, तब धर्मकी रक्षा करनेके लिये आदि पुरुष भगवान् शुद्ध सतोगुणमूर्ति धारण करके निष्कलंक रूपसे प्रगट होंगे ॥ १६ ॥ चराचरके गुरु सबके आत्मा ईश्वर विष्णुका अवतार महात्मा पुरुषोंके धर्मकी रक्षा और उनके कर्मोंके

प्रचारके लिये होगा ॥ १७ ॥ शंभग्राममें रहनेवाले विष्णुयशा ब्राह्मणके घरमें (चैत्रशुक्ला द्वादशीको) विष्णु भगवान् कल्किअवतार धारण करेंगे शीघ्रगामी देवदत्त नाम घोड़ेपर चढ़कर खड्ग हाथमें ले दुष्टोंके दमनकर्त्ता अणिमादिक अष्टसिद्धियोंसे संयुक्त ॥ १८ ॥ १९ ॥ जगदीश्वर भगवान् अनुपम कान्तिवाले महातेजस्वी कल्किरूपसे राजाओंकेसा वेष धारण किये उस घोडेपर चढ़ करोडों चोरोंका विध्वंस करेंगे ॥ २० ॥ जब सब चोरोंका संहार होजायगा, तब देश, देशान्तरके मनुष्योंके अतिपुण्यरूप सुगन्धयुक्त पवनके लगनेसे उन मनुष्योंके मन उज्ज्वल होजायँगे ॥

शंभलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥ अश्वमाशुग मारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ॥ असिनाऽसाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥ विचरन्नाशुना क्षोण्यां हये नाप्रतिमद्युतिः ॥ नृपलिंगच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥ अथ तेषां भविष्यंति मनांसि विशदानि वै ॥ वासुदेवांगरागातिपुण्यगंधानिलस्पृशाम् ॥ पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥ तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्त्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥ यदाऽवतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ॥ कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥ २३ ॥ यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ॥ एकाराशौ समेष्यं ति तदा भवति तत्कृतम् ॥ २४ ॥ येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यंति च पार्थिवाः ॥ ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सो मसूर्ययोः ॥ २५ ॥ आरभ्य भवतो जन्म यावन्नंदाऽभिषेचनम् ॥ एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम् ॥ २६ ॥

॥ २१ ॥ और उन नगरनिवासियोंके हृदयमें शुद्ध चैन्य सत्त्वमूर्त्ति भगवान् वासुदेव स्थित होंगे, तब उन प्रजानके पुत्रादिक उत्तम और पुष्ट होंगे ॥ २२ ॥ जब धर्मके पालनेवाले कल्किभगवान् प्रगट होंगे तब सतयुग वर्त्तनेलगेगा और प्रजाकी सन्तान सत्विकी होगी ॥ २३ ॥ जब चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति यह सब पुष्यनक्षत्रके योग करके एक राशिमें आवैंगे तब सतयुग होगा ॥ २४ ॥ जो चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी राजा होचुकेहैं और जो ससमय विद्यमान हैं और जो आगेको होंगे, उन सबके नाम संक्षेपसे भिन्न भिन्न मैंने आपको सुनाये ॥ २५ ॥ तुम्हारे जन्मसे लेकर नन्दके

राज्यतक पन्द्रहसौ दश (१५१०) वर्ष बीतगये ॥ २६ ॥ आकाशमें सप्त ऋषियोंके मध्य जो दो तारे पुलह और क्रतु, उदयकालके पहिले दीखते हैं, उन दोनोके मध्यमें रात्रिके समय उन दोनोंके समान एक नक्षत्र देखनेमें आता है ॥ २७॥ वह अरुंधतीके नक्षत्रसहित सप्तऋषि मनुष्योंके सौ (१००) वर्षतक प्रत्येक नक्षत्रपर रहा करते हैं, अर्थात् जैसे चन्द्रमा एक नक्षत्रपर एक दिवस रहता है, इसीप्रकार सप्त ऋषि मनुष्योंके सौ १०० वर्षके अनुमान एक नक्षत्रपर रहते हैं, सो यह सप्तऋषि तुम्हारे जन्मके समय मघा नक्षत्रपर थे और इससमय भी मघा नक्षत्रपर स्थित हैं ॥ २८ ॥ कलियुगके आनेका समय ठीक ठीक इस प्रकार निश्चय कियाहै कि, जब महातेजस्वी शुद्ध सत्यमूर्त्ति श्रीकृष्ण

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ॥ तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥ २७ ॥ तेनैव ऋषयो युक्ता स्तिष्ठंत्यब्दशतानि च ॥ ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८ ॥ विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्यो ऽसौ दिवं गतः ॥ तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥ यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ॥ तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रांतुं न चाशकत् ॥ ३० ॥ यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरंति हि ॥ तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥ यदा मघाभ्यो यास्यंति पूर्वाषाढां महर्षयः ॥ तदा नंदात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥ यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ॥ प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

भगवान् अपने परमधामको सिधारे, उसीसमय कलियुगने इसलोकमें अपना प्रवेश किया, जिस कलियुगके आतेही मनुष्योंके मनकी पापमें रुचिहुई ॥ २९ ॥ हे राजन् ! जबतक रमापति भगवान् अपने चरणारविन्दोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते और इसपर विराजमान रहे, तबतक कलियुग पृथ्वीपर अपना कुछ कर्तव्य न करसका ॥ ३० ॥ जबसे मघा नक्षत्रमें सप्तऋषि वर्त्ते हैं, तबहींसे कलियुग प्रवृत्त होकर देवताओंके बारह सौ १२०० वर्षतक कलियुग रहता है ॥ ३१ ॥ जब सप्तऋषि मघानक्षत्रसे निकले पूर्वाषाढा नक्षत्रपर जायँगे, तब नन्दका राज्य वर्त्तेगा और उसी नन्दके राज्यसे कलियुगका अत्यन्त प्रताप बढेगा ॥ ३२ ॥ जिसदिनसे जिस मुहूर्त्तसे जिस क्षणसे श्रीकृष्ण भगवान् अपने परम

धामको सिधारे उसी दिन और उसीसमय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, ऐसे भूतकालके जाननेवाले ऋषि लोग कहतेहैं ॥ ३३ ॥ जब देवताओंके एक सहस्र १००० वर्ष व्यतीत होजायँगे जो कलियुगका प्रमाण है, फिर पीछे सतयुगका प्रवेश होगा और सतयुगके आनेका यही लक्षण दिखाई देगा कि, मनुष्योंके मनमें आपसे आप आत्माका प्रकाश होजायगा ॥ ३४ ॥ हे राजन्! जिसप्रकार पृथ्वीपर मनुका वंश हुआ और आपसे कहा, उसीप्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंका वंश युग युगमें जाननेको योग्य है ॥ ३५ ॥ जो आजतक नाममात्रसेही जानेजाते हैं, उन जाननेवालोंकी केवल कथामात्रही कहनेको रहगई है; ऐसे महात्मा पुरुषोंकी कीर्त्तिही संसारमें आजतक चली जाती है, वह लोग पृथ्वी

दिव्याब्दानां सहस्रांते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ॥ भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥ इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ॥ तथा विट्छूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगेयुगे ॥ ३५ ॥ एतेषां नामलिंगानां पुरुषाणां महात्मनाम् ॥ कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥ देवापिः शंतनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ॥ कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरंते वासुदेवानुशिक्षितौ ॥ वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्वव त्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्त्तते ॥ ३९ ॥ राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे ॥ भूमौ ममत्वं कृत्वांते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥

पर न रहे इसलिये प्राणियोंको चाहिये कि, राज्य और पुत्रादिककी मोह ममताको त्यागकर अपने धर्म कर्ममें तत्पर रहैं ॥ ३६ ॥ चन्द्रवंशी शन्तनुका भ्राता, देवापी और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ सूर्यवंशी राजा मरु यह दोनों राजा अत्यन्त योगबलके प्रतापसे कलापग्राममें वास करते हैं ॥३७॥ यह दोनों राजा कलियुगके अन्तमें भगवानकी शिक्षा पाकर पहिलेके समान सब वर्णाश्रमके धर्मोंका विस्तार करेंगे ॥ ३८ ॥ सत युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, यह चारों युग इस क्रमसे पृथ्वीपर मनुष्योंके विषे वर्त्तते रहतेहैं ॥ ३९ ॥ हे राजन्! यह जो राजा मैंने आपके आगे वर्णन किये, और इनके सिवाय और भी जो हुए, सो सब इस भूमिमें ममता करके और भूमिको यहीं छोडकर आप रीते हाथों नाशको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

जिस देहका नाम राजाथा उस देहको अन्त समय कृमि, विष्ठा, राख, यह नाम होतेहैं, ऐसे शरीरसे जो कोई शरीरधारी दूसरेसे द्रोह करते हैं, उनका कौनसा स्वार्थ सिद्ध होताहै ? नरकमें वास करनेके सिवाय कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता ॥ ४१ ॥ किसप्रकार इस महाअखण्ड भूमिके हमारे पुरुषाओंने पालीथी और अब किसप्रकार हमारे पुत्र पौत्रके पास और हमारे वंशजोंके पास स्थिर रहैगी ? ॥४२॥ वह मूर्खलोग पंचभूतमय इस देहको अपना मानकर भूमिसे ममता करके अन्तसमय दोनोंको छोडकर आप अकेले चलेगये ॥४३॥ हे राजन् ! जो जो भूपति हुए वे सब अपने पराक्रमसे भूमिका भोग करते रहे,इस महाविकराल कालने उन सबकी कथामात्रही कहनेको रक्खी ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे

कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽन्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥ कथं सेयमखंडा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ॥ मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य च ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाऽबुधाः ॥ महीं ममतया चोभौ हित्वांतेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥ येये भूपतयो राजन्भुंजंति भुवमोजसा ॥ कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वा० कल्क्यवतारादि० द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ॥ अहो मां विजिगीषंति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥ काम एष नरेन्द्राणां मोहः स्याद्विदुषामपि ॥ येन फेनोपमे पिंडे येऽतिविश्रंभिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमंत्रिणः ॥ ततः सचिवपौराप्तकरींद्रानस्य कंटकान् ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां कल्क्यवतारवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–तिसरेमें वसुधा वचन, राज्यदोष गुणग्राम ॥ कुल कलंक कलिकालके, मेटन हरिका नाम ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह पृथ्वी अपने जीतनेका परिश्रम करते हुए राजाओंको देखकर अपने मनही मनमें ठट्ठे मारमारकर हँसती है कि, अहो ! यह सब मृत्युके खिलौने राजा मुझको जीतना चाहते हैं, यह नहीं जानते कि, हमसे अनन्त राजा मरमरकर खपगये ॥१॥ जिस कामनाने बुद्बुदेके समान इस देहके विषे जिन राजाओंको विश्वास उपजाया, उन राजाओंकीभी कामना निष्फल है ॥ २ ॥ मुख्य तो राजाओंका यह विचार है कि, पहले तो पाँचो इंद्रिय और छटे मनको जीतकर, पीछे मंत्री, प्रधान, सचिव, पुरवासी और कुटुम्बादिक

अपने वशमें करके शत्रुओंकी जडको उखाडे, महाव्रत और कटककी ओरसे बेखटकहो राज्य करेंगे ॥ ३॥ और इस रीतिसे समुद्रतककी भूमिको जीतेंगे । इसप्रकार आशावेष्टित हृदयवाले सब अपने २ निकट रात दिन डंका बजानेवाले कालका कुछ ध्यान नहीं करते ॥ ४ ॥ अनेक राजा तो समुद्रके पारतक मुझको अपने पुरुषार्थसे जीतकर अत्यन्त तृष्णासे समुद्रके देशोंमें (द्वीपोंमें). भी प्रवेश करते हैं, इन्द्रिय और मनके जीतनेपर राज्य साधनेकी इच्छा करनी मूर्खता है और आत्मजयका फल तो एक मुक्तिही है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! वसुधा कहती है कि, देखो ! जो मुझको छोड़कर मनु और मनुकी सन्तान मेरे ऊपर जैसे आये वैसेही हाथ पसारे चलेगये, ऐसी मुझ

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥ इत्याशाबद्धहृदया न पश्यंत्यंतिकेंतकम् ॥ ४ ॥ समुद्रावरणां जित्वा मां विशंत्यब्धिमोजसा ॥ कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ॥ गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यंत्यबुद्धयः ॥ ६ ॥ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातणां चापि विग्रहः ॥ जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥ ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ॥ स्पर्धमाना मिथो घ्नंति म्रियंते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥ पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ॥ मांधाता सगरो रामः खट्वांगो धुंधुहा रघुः ॥ ९ ॥ तृणबिंदुर्ययातिश्च शर्यातिः शंतनुर्गयः ॥ भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ॥ नमुचिः शंबरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥

अचलाको यह कुबुद्धी राजा युद्धमें जीतना चाहते हैं ॥६॥ देखो ! राज्यकी ममतामें बँधेहुए असत् राजा मेरेलिये पिता, पुत्र, भ्राता यह सब परस्पर भी क्लेश करते हैं ॥ ७ ॥ हे मूढ़ ! यह वसुधा मेरी है, इसमें तेरी किंचिन्मात्र भी नहीं है, यह कहते कहते और परस्पर स्पर्द्धा करते २ मेरे लिये अनेक राजा युद्धही करते करते मरगये ॥८॥ पृथु, पुरूवा, गाधि, नहुष, भरत, अर्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, धुन्धुमार, रघु ॥९॥ तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलायाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, रावण, नमुचि, शम्बर, नरकासुर,

हिरण्याक्ष, तारक ॥११॥ ऐसे ऐसे अनेक दैत्य और राजा जो कि, बड़े बडे बलवान् और सर्वगुण निधान, योद्धाओंके पराजय करनेवाले, जिन्होंने कहीं भी हार नहीं मानी, सबही अजीत होगये॥१२॥ सो सब मरणधर्मा मेरे विषे अत्यन्त ममता करके वर्त्ततेथे सो सब विनाही मनोरथ पूर्ण किये कालके गालमें चले गये॥ १३॥ और सबकी एक कथाही मात्र रहगई। हे समर्थ! इसप्रकार पृथ्वीने हँसकर कहा कि, हे विभो! लोकोंमें यश विस्तार करके आप तो परलोकको चलेगये। ऐसे बडे बडे राजाओंकी कथा मैंने तुमसे कही, सो केवल, विषयोंकी असारता और विज्ञान और वैराग्यका निरूपणकरनेके लिये सो इसमें केवल वाणीका विलास है, कुछ परमार्थ नहीं ॥१४॥ जिस अमंगलके दूर करनेवाले उत्तमश्लोक भगवान्‌के गुणोंको कवीश्वर लोग सदा

अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ॥ सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मय्यवर्त्तंत कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ॥ कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥ कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ॥ विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः ॥ तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥ राजोवाच॥ केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः ॥ विधमिष्यंत्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥ युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ॥ कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृते प्रवर्त्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ॥ सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥ संतुष्टाः करुणा मैत्राः शांता दांतास्तितिक्षवः ॥ आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

गाते हैं, जो कोई श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी निर्मल भक्तिको चाहै सो निरन्तर उन गुणोंको सुनै॥१५॥राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! हे महामुने! कलियुगके बड़े बड़े दोषोंको कलियुगके मनुष्य कौनसे उपायसे दूरकरसक्ते हैं? सो तुम हमसे कहो॥१६॥पहले तो युगोंके धर्मका और प्रलयकल्प का प्रमाण कहो? फिर महात्मा कालरूप विष्णुभगवान्‌की गति कहो? ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नरेंद्र! सतयुगमें मनुष्योंका धर्म चार चरण करके वर्त्तैहै, एक तो सत्य, दूसरी दया, तीसरा तप, चौथा दान यह धर्मके चार चरणहैं॥१८॥सतयुगके मनुष्य सन्तोषी करुणावान् सब प्रेम प्रीति

रखनेवाले, शांतचित्त, जितेन्द्रिय, सहनशील, आत्माराम, समदृष्टि और परमार्थमें निरालस्य युक्त और परिश्रमी होतेहैं ॥ १९ ॥ त्रेतायुगके विषे झूठ, हिंसा, तृष्णा, विग्रह इन चार अधर्मके चरणोंसे सत्य, दया, तप, दान, यह धर्मके चरण हैं, इनमेंसे धीरे धीरे चौथा भाग क्षीण होता जाता है ॥ २० ॥ हे राजन्! क्रिया तपमें निपुण न तो अतिहिंसक और न अत्यन्त लम्पट, धर्म, अर्थ, काममें निष्ठा वेदत्रयी, धर्मपरायण ब्राह्मण वर्ण जिनमें मुख्य त्रेतायुगकी प्रजा होती है ॥ २१॥ द्वापरयुगमें अधैर्य, हिंसा, झूंठ बोलना और द्रोह इन धर्मके चार चरणोंसे दया, तप, सत्य, दान यह धर्म पाँय आधे २ घटगये ॥२२॥ इससे द्वापरयुगमें यशस्वी, बडे शीलवान्, वेदाध्ययनमें निपुण, अतिऐश्वर्यवाले कुटुंबी, प्रसन्नमुख, ब्राह्मण और क्षत्रिय चारों

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ॥ अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥ २० ॥ तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लंपटाः ॥ त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥ तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ॥ हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥ यशस्विनो महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ॥ आढ्याः कुटुंबिनो हृष्टाः वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥ कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ॥ एधमानैः क्षीयमाणो ह्यंते सोपि विनंक्ष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिँलुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ॥ दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यंते पुरुषे गुणाः ॥ कालसंचोदितास्ते वै परिवर्त्तंत आत्मनि ॥ २६॥ प्रभवंति यदा सत्त्वे मनोबुद्धींद्रियाणि च ॥ तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥ २७ ॥ यदा कार्मसु काम्येषु भक्तिर्भवति देहिनाम् ॥ तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

वर्णोंमें मुख्य मानेजायँगे ॥ २३ ॥ कलियुगमें जब अधर्मकी वृद्धि होगी तब धर्मका एक चरण रहजायगा सोभी शनैः शनैः करके अंतमें नष्ट होजायगा ॥ २४ ॥ कलियुगमें लोग लोभी, दुराचारी, निर्दयी, झूठी लडाई करनेवाले, दुर्भागी, अत्यन्त तृष्णावाले, शूद्र और दास जिनमें मुख्य मानेजायँगे ॥ २५ ॥ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीनों गुण ईश्वरके आधीन हैं, काल करके प्रेरित हैं प्राणियोंमें सदा फिरते दिखाई देते हैं ॥२६॥ जब मन, बुद्धि और इंद्रिय सतोगुणमें स्थित होयँ तब सतयुग समझना चाहिये कि, जिस सतयुगके प्रभावसे ज्ञानमें रुचि होतीहै ॥२७॥ हे बुद्धिमान्

नृप ! जब प्राणियोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें होय तब रजोगुणयुक्त त्रेतायुग जानिये ॥ २८ ॥ जब लोभ, तृष्णा, अभिमान, दम्भ, मत्सरता और काम्य कर्ममें प्रवृत्ति होय तब रजोगुण उत्पन्न करनेवाला मुख्य द्वापर युग समझना चाहिये ॥ २९ ॥ जब मनुष्योंके मनमें कपट, झूंठ, आलस्य, निद्रा हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय, दीनता होय, तब तमोगुणका प्रगट करनेवाला मुख्य कलियुग जानिये ॥ ३० ॥ सो प्राणी कलियुगके हेतुको पाकर मन्दबुद्धि भाग्यहीन बहुत भोजन करनेवाले कामी और निर्धन होंगे और स्त्री असाध्वी और व्यभिचारिणी होंगी ॥ ३१ ॥ देश देशान्तरोंमें चोरोंका बडा भय होगा वेद पाखण्डसे अत्यन्त दूषित होंगे. राजा प्रजाके लूटनेवाले होंगे, ब्राह्मण स्त्रीलम्पट उदरपरायण होंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्म

यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दंभोऽथ मत्सरः ॥ कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥२९॥ यदा मायानृतं तंद्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ॥ शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥३०॥ यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ॥ कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥ दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषंडदूषिताः ॥ राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥ अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुंबिनः ॥ तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥ ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ॥ शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥ पणयिष्यंति वै क्षुद्राः किरिटाः कूटकारिणः ॥ अनापद्यपि मंस्यंते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥ पतिं त्यक्ष्यंति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ॥ भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

चारी व्रत आचार भ्रष्ट होंगे, गृहस्थ भिखारी होंगे, तपस्वी ग्रामवासी होंगे संन्यासी द्रव्यके लोभी होंगे ॥३३॥ कलियुगकी नारी अत्यन्त ठिंगनी और बहुत भोजन करनेवाली काली काली, बहुत सन्तान उपजानेवाली, महानिर्लज्ज, सदा कटुक वचन बोलनेवाली चोर, ढीठ, कपटकी भरी हुई अनेक प्रकारकी मायादिखानेवाली होंगी ॥३४॥ तुच्छ किरातादि कपटी, दुराचारी, म्लेच्छ व्यापारी होंगे, आपदा विनाही सब लोक निन्दित जीविकाको श्रेष्ठ समझेंगे जिस वृत्तिको सत्पुरुष स्वप्नमें भी धिक्कार करतेथे ॥ ३५ ॥ धनहीन उत्तम पतिको भी स्त्री त्यागदेगी, और अपने

स्वामियोंकी नौकरी छोडकर भृत्य औरोंकी नौकरी करेंगे और नौकर रोगी होजायँगे तो स्वामी लोभके मारे नौकरीसे छुटा देंगे, विनादूधकी गायोंको लोग म्लेच्छोंके हाथ बेंचडालेंगे ॥ ३६ ॥ पिता, भ्राता, सुहृद और जातिवालोंको छोडकर स्त्रीके सम्बन्धियोंसे प्यार करेंगे और स्त्रीकी बहिन

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ॥ ननांदृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥

(साली) स्त्रीका भ्राता (शाला) और उसकी स्त्री (सलेहज) के साथ गुप्त मतिकी बातें करेंगे, दीन स्त्री और लम्पट नर कलिमें होंगे; * ॥३७ ॥

* लावनी–धानि कलियुग महाराज आपने लीला अजव दिखाई है। उलटा चलन चला दुनियामें सवकी मति वौराई है ॥ नीति पंथ उठगया कचहरी पापन आन लगाई है। धर्म गया पाताल सवके मनमें बेधरमी छाई है ॥ गुप्त हुए सच्चे वकील झूठोंकी वात सवाई है । सच्चोंकी परतीति नहीं झूठोंने सनद वनाई है ॥ न्याय छोड अन्याय करैं राजोंने नीति गँवाई है। हकदारोंका हकमेट बेहक पर कलम उठाई है ॥ जो जाली फरेववाले उनकीही बनिआई है। उलटा चलन चला दुनियामे सवकी मति वौराई है ॥ ॥ १ ॥ गूजर जाट वने संन्यासी पोथी वगल दवाई है । मूँड मुँडाकर इक धेलेमें कफनी लाल रँगाई है ॥ पन्थचले लाखों पाखण्डी अद्भुत कथा वनाई है ॥ मुँह काला कर लिया किसीने शिरपर जटा रखाई है ॥ हुए नीच कुरसी नसीन ऊँचोंको नही तिपाई है। जुगुनू पहुँचे आसमान पर जाकर दुम चमकाई है ॥ फाके करते सत मिलैं भडुओंको दूध मलाई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सवकी मति वौराई है ॥ २ ॥ सास वहूसे लडै वहू भी ऑख फेर झुँझलाई है। लेकर मूसल हाथ कोस्ती दाँत पीस उठधाई है ॥ खालेको छोड स्त्री कुलकी लाज गँवाई है। निजपतिकी सेवा तजकर परपतिसे प्रीति लगाई है ॥ पुरुष हुए ऐसे व्यभिचारी विषय वासना छाई है। वेश्याओंके फन्देमें पड घरकी तजी लुगाई है। मात पिताकी करैं बुराई नारि परमसुखदाई है ॥ उलटा चलन चला दुनियामें सवकी मति वौराई है ॥ ३ ॥ व्याह बुढापेमें जो करते उनपर गजन खुदाई है। साठ वरसके आप करी कन्याके सग सगाई है ॥ कुछ दिन पीछे आप मरगये करके राँड विठाई है। लगी करने व्यभिचार स्त्री घर घर लोग हँसाई है ॥ पण्डित पाधा करैं दलाली मंत्री जिनका नाई है । शर्म रही नहि वेशर्मोंको वेटी वेचकर खाई है ॥ वहन भानजी त्यागन करके साली न्योति जिमाई है। उलटा चलन चला दुनियाँका सवकी मति वौराई है ॥ ४ ॥ गंगाजल गोरसको छोडकर गाढी भाँग छनाई है। भक्ष्य अभक्ष्य लगे खाने मदिराकी होति छकाई है ॥ श्वशुर वहूको कुदृष्टि देखै अपनी नियत डुलाई है। ठट्ठा अरु मसखरी करै सासुसे ज्वान जमाई है ॥ कहै भतीजा चचासे अपने तू मूरख सौदाई है । हमैं चैन करनेसे मतलव किसकी चाची ताई है ॥ वहिन वहिनसे लडै और लडता भाईसे भाई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सवकी मति वौराई है ॥ ५ ॥ जामा अंगा दिया त्याग अरु पगडी फाड वहाई है। पहन कोट पतलून शीशपर टापी गोल जमाई है ॥ तोड तख्त अरु सिंहासनको लाके वञ्च विछाई है । खीर खाँडको त्यागन करके रोटी डवल पकाई है ॥ तोडके ठाकुरद्वारा मसजित सवकी करी सफाई है। गिरजाघरमें जाकरके ईसाकी करी वडाई है ॥ वात करै सभ अंगरेजी में निज भाषा विसराई है । उलटा चलन चला दुनियाँका सवकी मति वौराई है ॥ ६ ॥ मित्र शत्रुसम हुए प्रीति की डाली तोड जलाई है । विद्याहीन होगये विप्र गायत्री तलक भुलाई है ॥ क्षत्रिय बैठे नारी वनकर ले तरवार छिपाई है ॥ बन आई ना कुछ बनियासे

शूद्र तपस्वियोंका वेष धारण करके जीविका करेंगे और प्रतिग्रह लेंगे और अधर्मी लोग ऊँचे आसनोंपर बैठकर अपने धर्मका उपदेश करेंगे ॥३८॥ हे राजन् ! जब पृथ्वी अन्नहीन होजायगी तब प्राणी अनावृष्टिके भयसे अत्यन्त पीडित और सदा दुर्भिक्ष और राजाओंके करसे क्लेशवान् और अत्यन्त व्याकुल होजायँगे ॥ ३९ ॥ और वसन, भूषण, खान, पान, स्नान, शयन, मैथुन आदिसुखोंसे हीन पिशाचसे दिखाई देंगे, सब प्रजा

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यंति तपोवेषोपजीविनः ॥ धर्मं वक्ष्यंत्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥३९॥ वासोन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ॥ हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यंति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥ कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ॥ त्यक्ष्यंति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यंति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ न रक्षिष्यंति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ॥ पुत्रान्सर्वार्थकुशलान्क्षुद्राः शिश्नोदरंभराः ॥ ४२ ॥ कलौ न राजञ्जगतां परं गुरुं त्रैलोक्यनाथानतपादपंकजम् ॥ प्रायेण मर्त्या भगवंतमच्युतं यक्ष्यंति पाषंडविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥

कलियुगमें इस प्रकार होजायगी ॥४०॥ कलियुगमें बीसकौड़ियोंके लिये मित्रता छोडकर परस्पर लड़ेंगे और उसीको धन समझकर मरने मारनेको उपस्थित होंगे ॥ ४१ ॥ और अपने माता पिताका पालन नहीं करेंगे, सब अर्थोंसे निपुण पुत्रकी भी रक्षा न करेंगे, केवल स्त्रीसंग और उदर पूर्ण करके, सब प्रजा क्षुद्र होजायगी ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! सब सृष्टिके परमगुरु और त्रिभुवनके पति जिनके चरणकमलको ब्रह्मादिक देवता नित्य

माया मुफ्त लुटाई है ॥ शूद्र हुए धनवान ब्राह्मणोंने कीन्ही स्योकाई है । गयावाल और मथुराके चौवोंकी बात बन आई है ॥ चारों युगोंसे कलिने अपनी नई रीति दिखलाई है। उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ७ ॥ अपूज पुजने लगे कहें सब शिरपर देवी आई है । घर घरमें गुल गुले शेख सद्दोंकी चढी कढाई है ॥ परब्रह्मको छोड भूत प्रेतोंकी दई दुहाई है । मूँड हिलाती कहीं मलनियां कहै कुसुम्भी माईहै । बालभोग ठाकुरको नहीं सय्यदके लिये मिठाई है । सन्तको कम्मल नहीं पतुरियाको कुरती सिलवाई है ॥ गुरु हरै चेलोंका धन चेला करता चतुराई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥ ८ ॥ विधवा लग गईँ पान चबाने दें सुर्मा मुसकाई है । नित करती शृंगार देखकर अहिवाती शरमाई है ॥ बैठे ज्वारी और अगामी हुआ जगत अन्यायी है । सब लक्षण विपरीत और घरघरमें होत लडाई है ॥ गायजायँ लाखों मारी करता नहि कोइ सुनाई है । इसीसे पडता काल सृष्टिमें संपति सकल बिलाई है ॥ हो दयालु हे नाथ आज कलियुगकी महिमा गाई है । उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ९ ॥

प्रति नमस्कार करते हैं; ऐसे जगदीश्वर भगवान् अच्युतको कलियुगमें मनुष्य पाखण्डोंसे दूषित हो बहुधा पूजन न करेंगे, कभीरामनवमी, नृसिंह चौदश, जन्माष्टमीको भगवान्की पूजा करलिया करेंगे ॥ ४३ ॥ वा जब मरण समय आतुर होकर अथवा ऊँचेसे गिरकर वा मार्गमें रपटनेके समय विवश होकर कहेंगे कि, हे भगवन् ! परन्तु नाम लेतेही वह मनुष्य कर्मबन्धसे छूटकर परम गतिको प्राप्त होंगे, परन्तु तो भी उन भगवान्का कलियुगमें लोग पूजन नहीं करेंगे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! अब कलिकालके सम्पूर्ण दोषोके दूर करनेका उपाय आपके सामने वर्णन करता हूं, आप अवधान होकर सुनिये, द्रव्य देश शरीरसे उत्पन्नहुए कलियुगके सब दोषोंको पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके चित्तमें स्थित होकर हरलेते हैं ॥ ४५ ॥ जो प्राणी परमेश्वरका श्रवण, कीर्तन, ध्यान और सत्कार करते हैं, भगवान् उन पुरुषोके हृदयमें स्थित होकर

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ॥ विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यंति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥ पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसंभवान् ॥ सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ॥ ४५ ॥ श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोपि वा ॥ नृणां धुनोति भगवान्हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥ यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हंति धातुजम् ॥ एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशुभम् ॥४७॥ विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ॥ नात्यंतशुद्धिं लभतेन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनंते ॥ ४८॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हृदिस्थं कुरु केशवम् ॥ म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

दशसहस्र जन्मके पापोंको दूर करदेतेहैं ॥४६॥ जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होकर और सब धातुओंके मिलेहुए मलिनपनको दूर करदेता है, ऐसेही विष्णु भगवान् हृदयमें स्थित होकर सब अशुभवासनाओंको कलियुगमें दूर करेंगे॥४७॥विद्या अर्थात् आनदेवकी उपासना,तप,प्राणायाम, मित्रता, तीर्थस्नान, व्रत, दान, जप आदिकके करनेसे जैमा मन शुद्ध होता है वैसाही अत्यन्त भगवान् जब हृदयमें वास करें तब शुद्ध होता है ॥४८॥ इस लिये हे राजन् ! आपका मरणसमय निकट आगया है अब तुम सब प्रकारसे सावधान हो वासुदेव भगवान्का हृदयमें ध्यान धरो, तब तुम परमग

तिको प्राप्त होओगे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! मनुष्यको चाहिये कि, जिसकी मृत्यु निकट आजाय, वह सर्वाश्रय सर्वात्मा, सर्वेश्वर भगवान्का ध्यान करनेसे आदिपुरुष अविनाशी परमत्माके विषे लय होजाताहै ॥ ५० ॥ हे राजन् ! यह महाघोर कलियुग अनेक दोषोंकी खानि है परन्तु इसमेंभी एक गुण बड़ा भारी है कि,इस युगमें केवल परमेश्वरके कीर्त्तन करनेहीसे मनुष्य सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूटकर कृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके परमधामको चलाजाताहै ॥ ५१ ॥ सतयुगमें विष्णु भगवान्के ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, त्रेतामें यज्ञोंके करनेसे जो फल होता है, द्वापरमें परिचर्या करनेसे जो फल होता है वह सब फल कलियुगमें केवल हरिके कीर्तनही करनेसे प्राप्त होजातेहैं, ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां कलियुगदोषगुणवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–नैमित्तिक प्राकृतिक अरु, आत्यन्तिक औ नित्य । चौथे चार प्रकारके,

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ॥ आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ॥ कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥ द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० कलिदोषादिव० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

श्रीशुक उवाच ॥ कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्द्धावधिर्नृप ॥ कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युग सहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥ तदंते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता ॥ त्रयो लोका इमे तत्र कल्पंते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

प्रलय कहूँ हरिवित्य ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जो कि, आपने दो प्रश्न किये थे कि, कलियुगका दोष किसउपायसे निवारण हो सक्ता है ? और कलियुगमें कौनसा धर्म मुख्य है जो पालना चाहिये इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर तो मैंने आपसे वर्णन किया, अब प्रलय कालका निरूपण करताहूं, परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्धतक काल और युगोंके प्रमाण मैं तुमसे पहिले कहचुकाहूं, अब कल्प और प्रलय (सृष्टिका अन्त) का प्रमाण सुनो ॥ हे प्रजापालक ! युगोंकी सहस्र चौकड़ीका ब्रह्माका एक दिन होता है उसीको कल्प कहते हैं जिसमें चौदह मनु राज्य करते हैं ॥ २ ॥ फिर अन्तमें चार सहस्र युगवाली ब्रह्माकी रात्रि होती है, उस रातमें इस त्रिलोकीकी प्रलय होजाती है ॥ ३ ॥

इस प्रलयको विद्वान् लोग नैमित्तिक प्रलय कहतेहैं, इस प्रलयमें विश्वास्रष्टा श्रीनारायण ब्रह्मा सहित त्रिलोकीको अपने उदरमें धारण करके
अनन्त भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥ ४ ॥ अब प्राकृतिक प्रलयका वृत्तान्त सुनिये, परमेष्ठी ब्रह्माजीके द्विपरार्द्धका जब अन्त
होता है तब महत्तत्त्व अहंकार और पॉच तन्मात्रा इन सातों प्रकृतियोंकी प्रलय होती है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसलिये इसप्रलयको पण्डितलोग
प्राकृतिक प्रलय कहते हैं, जिस प्रलयमें नाशका कारण प्राप्त होनेसे सातों प्रकृतियॉ और उनके कार्यरूप सब ब्रह्माण्ड भी लय होजाते हैं ॥
॥ ६ ॥ हे राजन् ! जब प्रलय होगा उससमय सौ १०० वर्षतक मेघ नहीं वर्षेगा, तब सब पृथ्वी अन्नरहित होजागी, उस समय सब प्रज

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ॥ शेतेऽनंतासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥ द्विपरार्द्धे त्वति
क्रांते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ तदा प्रकृतयः सप्त कल्पंते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥ एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते ॥
आंडकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥ ६ ॥ पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ॥ तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं
भक्ष्यमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ क्षयं यास्यंति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७ ॥ सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्त्तको
रविः ॥ रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ॥ ८ ॥ ततः संवर्त्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ दहत्यनिलवेगोत्थः
शून्यान्भूविवरानथ ॥ ९ ॥ उपर्यधः समंताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ दह्यमानं विभात्यंडं दग्धगोमयपिंडवत् ॥
॥ १० ॥ ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ परः संवर्तको वाति धूम्रं खं रजसा वृतम् ॥ ११ ॥

क्षुधासे पीड़ितहो एक एकका भक्षण करनेलगेगी, इसप्रकार कालाधीन हो सहज सहजमें सब नाशको प्राप्त होजायगी ॥ ७ ॥ फिर प्रलय
कालका मार्त्तण्ड अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रके और सब शरीरोंके रसोंको खैंचलेगा किंचिन्मात्र भी नहीं छोड़ेगा ॥ ८ ॥ फिर संकर्षण
भगवान्के मुखमें जो स्थित प्रलयका अग्नि वायुके वेगसे भड़ककर इस शून्य मण्डलकको सातों पाताल सहित जलादेगा ॥ ९ ॥ फिर ऊपरनीचे
सब ओर सूर्यकी मित्राग्निसे जलकर ऐसा शोभित होगा जैसे जलताहुवा उपला (सूखाहुवा गोबर) शोभित होताहै ॥ १० फिर इसके पीछे प्रल

यकालकी महाप्रचण्ड पवन सौ १०० वर्षतक चलेगी, उससमय आकाश धूरीसे आवृत होकर धूम्रवर्ण होजायगा ॥ ११ ॥ हे अंग ! फिर पीछे विचित्र वर्णवाले अनेक प्रकारके मेघोंके समूह गम्भीर गर्जन शब्द करते सौ १०० वर्षतक बरसेंगे, फिर पीछे यह ब्रह्माण्डटूट फूटकर सब विश्व जलमय होजायगा ॥ १२ ॥ उस समय भूमिका गन्ध गुण जलग्रस्त हुआ सो पृथ्वी गन्धहीन होकर प्रलयको प्राप्त होगी ॥१३॥ जलके रसको तेजने ग्रस लिया, सो जल निरस होकर प्रलयको प्राप्त होगा, तेजका रूपगुण वायुने ग्रसलिया सो तेज रूपहीन हो पवनमें लीन होगा॥१४॥पवनका स्पर्श गुण आकाशने लिया, सो वायु आकाशमें लीन होगा ॥१५॥ हेराजन् ! फिर आकाशका शब्द गुण उसका तामस अहंकारने ग्रसलिया, सो आकाश गुणहीन होकर अहंकारमें लीन होगा राजस अहंकारने वृत्तियोंसहित इन्द्रियोंको ग्रसलिया सात्विक अहंकारने इन्द्रियोंकेदेवताओंकोग्रस

ततो मेघकुलान्यंग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ शतं वर्षाणि वर्षंति नदंति रभसस्वनैः ॥ १२ ॥ तदा भूमेर्गंधगुणं ग्रसंत्याप उदप्लवे ॥ ग्रस्तगंधा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १३ ॥ अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसः ॥ ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १४ ॥ लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ॥ स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १५ ॥ शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनु लीयते ॥ तैजसश्चेन्द्रियाण्यंग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १६ ॥ महान्ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ॥ ग्रसतेऽव्याकृतं राजन्गुणान्कालेन चोदितम् ॥ १७ ॥ न तस्य कालाव यवैः परिणामादयो गुणाः ॥ अनाद्यनंतमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १८ ॥ न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी ॥ न प्राणबुद्धींद्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ १९ ॥

लिया तब देवता सात्त्विक अहंकारमें लीन होजायँगे ॥१६॥हे राजन् ! तीनों प्रकारके अहंकारको महत्तत्त्वने ग्रसलिया, तब अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होजायगा और महत्तत्त्वको सत्त्वादि गुणोने ग्रसलिया, तब सत्त्वादिक गुणोंको कालकी प्रेरित माया ग्रसलेगी ॥ १७ ॥ इस मायाका काल के वेगसे राति दिन घट बढ़ नहीं होता और यह माया आदि अन्त करके अव्यक्त नित्य है, एकरस है, न स्पष्ट देखनमें आती है सर्वत्र जगत्की कारणरूप है ॥ १८ ॥ जहां वाणी मन सत्त्व रज तम तीनों गुण महत्तत्त्वादिक नहीं हैं और प्राण, बुद्धि इन्द्रियोके देवता विश्वकी रचना भी

नहीं है ॥ १९ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, आकाश, पवन, अग्नि, जल, भूमि और सूय भी वहाँ नहीं हैं सुषुप्ति शून्यकी समान है उसको कविलोग अतर्क्य
मूलपद कहते हैं ॥ २० ॥ प्राकृतिक प्रलय यह आपसे कही, जिस प्रलयके पुरुष प्रकृतिकी शक्ति सब कालसे प्रेरित होकर लीन होजातीहै यह
माया ईश्वरकी शक्ति है, इससे सबके कारणरूप एक परब्रह्म परमेश्वरही हैं,॥ २१ ॥ हे राजन्! अब आपसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं बुद्धि इन्द्रिय
विषयरूप इन सबका आश्रय ज्ञानही भासैहै जिससे अन्वय व्यतिरेक करके जो आदि अन्तवान् हैं, सो सब वस्तुहैं विचार करके देखो तो यही मोक्ष,
आत्यन्तिक प्रलय है, क्योंकि यह मोक्ष आत्मज्ञानसे सब प्रपंचका लयरूप है यहाँपर प्रलय अर्थात् मृत्तिकाके ज्ञानसे जैसे घट वारुणी आदिका
प्रतिरोध होता है इसीप्रकार ब्रह्मज्ञानसे और दूसरे सबका प्रतिरोध समझना, जो आत्माकी सदृश प्रपंच यथार्थ होय तो उसका प्रतिरोध होना

न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ॥ संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनंति ॥ २० ॥
लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ॥ शक्तयः संप्रलीयंते विवशाः कालविद्रुताः॥२१॥बुद्धींद्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति
तदाश्रयम् ॥ दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यंतवदवस्तु यत् ॥२२॥ दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् ॥ एवं धीः
खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २३ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ॥ मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं
प्रत्यगात्मनि ॥२४॥ यथा जलधरा व्योम्नि भवंति न भवन्ति च ॥ ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥२५॥

ठीक नहीं इससे ज्ञात होता है कि, प्रपंच, परब्रह्मसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है यह ब्रह्मसे भिन्न सत्ताको नहीं रखते, इस लिये यह बुद्धि आदि
प्रपंच भी दृश्यपनके हेतु और आदि अन्तवान् होनेके कारण और अपने कारणभूत परब्रह्मसे भिन्न नहीं है इसलिये वास्तविक भी नहीं है ॥ २२ ॥
जैसे दीपक, नेत्र, रूप यह सब ज्योतिसे भिन्न नही हैं ऐसेही बुद्धि, इंद्रिय तन्मात्रा ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ २३ ॥ हे राजन्! जब यह बुद्धि परमा
त्मासे विलग नहीं है, तब उसकी अवस्थारूप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीनों परमात्मासे किसप्रकार विलग होसकती हैं क्योंकि यह तीनों अवस्था
बुद्धिहीकी हैं सब विद्वान् लोग यही कहते हैं कि, तीनों अवस्थाओंके मानके लिये जगत् तैजस और प्राज्ञपन जो आत्मामें मानाजाता है वह केवल
मायामात्रही है ॥ २४ ॥ जैसे किसी समय मेघ आकाशमें नहीं होते और कभी होतेहैं, ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् कभी दीखता है कभी नहीं

दीखता ॥२५॥ हे राजन् ! सब अवयवी जगत्में कारणभूत जो एक अवयव है वही मुख्य है, क्योंकि अवयवी विना भी अवयवकी प्रतीति होती है, इसी प्रकार जगत् विना ब्रह्म भी प्रतीत होताहै इसलिये जगत्का कारण रूप ब्रह्महो है देखो! तंतु विना वस्त्रका ज्ञान नहीं होता, परन्तु वस्त्र तंतुओंसे भिन्न नहीं है, क्योंकि वस्त्र तन्तुरूपही है, इसप्रकार ब्रह्मविना जगत्की प्रतीति नहीं होती, इसलिये जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहींहै ॥ २६ ॥ कार्यकारण मिलके जो कुछ होय सो सब भ्रमसे है, इसलिये आश्रयसे आदि लेकर अन्ततक जो कुछ है सो सब अवस्तु है ॥ २७ ॥ यद्यपि विकारमय यह सब जगत् प्रकाशवान् भी है परन्तु ब्रह्म विना उसका किंचिन्मात्र भी प्रकाश नहीं होसक्ता और जो ब्रह्म विना प्रकाश होय तो उस आत्मासे ब्रह्मरूपही होगा, किसी प्रकार भिन्न होही नहीं सक्ता ॥ २८ ॥ सत्य वस्तुमें अनेक रीति नहीं होसक्तीं और जिसमें अनेक रीति हैं उसमें सत्यता नहीं होसक्ती,

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ॥ विनार्थे न प्रतीयेरन्पटस्येवांग तंतवः ॥ २६ ॥ यत्सामान्यविशेषाभ्यामुप लभ्येत स भ्रमः ॥ अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यंतवदवस्तु यत् ॥ २७ ॥ विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमं तरा ॥ न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥ २८ ॥ न हि सत्यस्य नानात्वमविद्वान्यदि मन्यते ॥ नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ २९ ॥ यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ॥ एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३० ॥

यद्यपि आत्मामें और जीव ब्रह्ममें भेद दृष्टि आताहै, परन्तु यह जीव और ब्रह्मका भेद घटाकाश और महाकाशकी समान है, घटाकाश परिच्छिन्न है और महाकाश अपरिच्छिन्न होनेपर भी जैसे दोनोंके मध्यमें भेद नहीं है इसीप्रकार जीव परिच्छिन्न और जीव अपरिच्छिन्न होनेपर भी जीव ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं जैसे जलके बीचमें सूर्य कम्पायमान विकार सहित और आकाशमें निर्विकार सूर्य होनेपर कुछ भेद नहीं, इसी प्रकार ब्रह्मकी सृष्टि आदि और जीवकी सृष्टि आदि क्रियामें अलग अलग होनेपर कुछ भेद नहीं जानपड़ता, यह सब उपाधिही मात्र भेदहै जीव ब्रह्ममें भेद मानना मूर्खोंका कामहै ॥ २९ ॥ जैसे सुवर्ण मनुष्योंके व्यवहारादिकोंमें मुकुट कुण्डलादि रूपोंसे अनेक प्रकारका दृष्टि आता है इसीप्रकार अहंकाररूप उपाधिवाले मनुष्य ऐसेही भगवान् अधोक्षजकी लौकिक वैदिक वाणियोंसे अनेक अनेक प्रकारकी महिमा वर्णन करतेहैं ॥ ३० ॥

जैसे बादल सूर्यसेही प्रगट हुए और सूर्यहीसे प्रकाशित हुए सूर्यके अंशरूप नेत्रोंकी आवरण करता है, ऐसेही ब्रह्मसे प्रगटहुवा और ब्रह्महीसे प्रकाशित अहंकार ब्रह्मके अंश जीवको उस ब्रह्मके दर्शनका आवरण करता है ॥ ३१ ॥ सूर्यसे उत्पन्न हुवा बादल जब विदीर्ण होजाता है, तब चक्षु सूयको देखै है ऐसेही अहंकाररूप उपाधि जब तत्त्व विचार करके विनष्ट होय, तब यह जीव अपने ब्रह्मस्वरूपको पहँचानता है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार अविवेक रूप खड्गसे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धनको काटकर जब शुद्ध ब्रह्मका अनुभव करके स्थित होय तब उसको कविलोग आत्यन्तिक प्रलय (मोक्ष) कहते हैं ॥ ३३ ॥ हे शत्रुओंके ताप देनेवाले ! सूक्ष्मवेत्ता विद्वान् लोग कहते हैं कि, ब्रह्मा

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ॥ एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मवस्तुनः ॥ ३१ ॥ घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ॥ यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३२ ॥ यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्मबंधनम् ॥ छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यंतिकमंगसंप्लवम् ॥ ३३ ॥ नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप ॥ उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥ ३४ ॥ कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ॥ परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३५ ॥ अनाद्यंतवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ अवस्था नैव दृश्यंते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३६ ॥ नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ॥ आत्यंतिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३७ ॥

दिक सब प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलय क्षण क्षणमें होती रहती है ॥ ३४ ॥ नदीका प्रवाह और दीपककी ज्वाला आदि परिणामी पदार्थोंकी जैसी क्षण क्षणमें लोट पोट होनेसे जो अवस्थायें हैं, वैसीही अवस्थायें कालरूप नदीके वेगसे नित्य आयुर्बल हरे जानेसे देहादिकनकी अवस्था नित्य जन्म मरणके कारणको प्राप्त होती हैं ॥ ३५ ॥ आदि अन्तसे हीन ईश्वरकी मूर्त्ति कालसे प्राणियोंकी सुक्ष्म अवस्था नहीं जानी जाती जैसे आकाशमें नक्षत्रादिकी क्षण क्षणकी चालें दिखाई नहीं देतीं इसीप्रकार कालसे झपटी हुई शरीरादिकोंकी क्षण क्षणकी अवस्थायेंभी दिखाई नहीं देतीं ॥ ॥ ३६ ॥ नित्य, नैमित्तिक प्राकृतिक और आत्यन्तिक यह चार प्रकारकी प्रलय आपसे कही और कालकी गति भी आपसे कही ॥ ३७ ॥

हे कौरवकुलभूषण ! जगतके कर्त्ता और सब प्राणियोंके जीवन आधार श्रीमन्नारायणकी लीला और कथा आपसे संक्षेपमात्र कही और सम्पूर्ण चरित्र कहनेकी तो ब्रह्माको सामर्थ्य नहीं ॥३८॥ जो प्राणी अनेक भाँतिके दुःखरूपी दावाग्निसे कष्ट पाकर इस महादुस्तर संसाररूपी समुद्रके पार

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कात्स्न्र्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३८ ॥ संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ॥ लीलाकथारसनिषेवणमंतरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ३९ ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ॥ नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४० ॥

उतरना चाहैं उनको भगवान् पुरुषोत्तमकी लीला और चरित्रोंकी कथारूपी रसपानके सिवाय इस संसारसागरसे पार होनेसे दूसरा उपाय नहीं विश्वासरूप नौकापर चढ़कर संसाररूपी समुद्रसे तर सक्ता है * ॥ ३९॥ अव्ययरूप श्रीनारायण ऋषिने यह पुराणसंहिता पहिले नारद मुनिसे

---

* दृष्टान्त—एक गूजरी कहीं पण्डितजी की कथा सुननेको गई, पण्डितजी उस समय यह कथा कहरहे थे कि, परमेश्वरके नाम लेनेसे प्राणी ससाररूपी समुद्रके पार होजाता है, गूजरी इस बातको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, क्योंकि उसे प्रतिदिन यमुनाजीके उतरनेमें नाववालेको पैसा देना पडता था, वह विचारनेलगी कि, जब श्रीकृष्णके नामसे समुद्रको तर जायँ हैं, तो क्या यमुनाजी नहीं तरी जायँगी ? बस वह उसी समय श्रीकृष्णका नामले यमुनामें घुसपडी और क्षणमात्रमें पार उतर गई, इसी प्रकार प्रतिदिन यमुना उतर जाने लगी, तब एकदिन गूजरीने अपने मनमें विचार किया कि, पडितजीने मेरे सग बडा उपकार किया जो विनाही नौका यमुनापार हो जाती हूँ, उनको निमंत्रण देना चाहिये, सो उसने पडितजीको निमत्रण दिया और भोजन करानेके लिये पण्डितजीको अपने साथ लेकर घरको चली पडितजी उसको यमुनाजीमें घुसती देख आप भी उसके पीछे पीछे हो लिये और समझा कि, घाट बहुत गहरा न होगा, जब कण्ठतक पानी आगया और पाँवोंके नीचका रेता निकलने लगा, परन्तु उस गूजरीके घुटनेतक न भीजे, तब तो पंडितजीने घबराकर पुकारा कि, अरी ! तू किधरको ले आई मैं तो डबा ? मुझे किसी प्रकार बचा ? गूजरी बोली क्या तुमने श्रीकृष्णका नाम नहीं लिया ? श्रीकृष्णका नाम लेलो क्या तुम उसदिनकी कथाके वृत्तान्तको भूलगये, आपने कहाथा एक श्रीकृष्णके नामसे प्राणी महादुस्तर समुद्रके पार होजाता है, पडितजी बोले क्या यह नदी भी श्रीकृष्णका नाम लेनेसे तरी जाती है ? गूजरीने कहा कि, क्या आप इतना भी नहीं जानते कि, जब समुद्रहीके पार होगये तो क्षुद्र नदी कहाँ रही ? गुजरीने पडितजीका हाथ पकडकर कहा कि, श्रीकृष्णका नाम लो और संग सग चले चलो, देखो ! विश्वासवाली गूजरी इसप्रकार पडितजीको पार उतार अपने घर लेगई और अत्यन्त प्रेम प्रीतिसे पडितजीको भोजन कराया, इसीसे कहते हैं कि, विश्वास करके भक्ति करे तो ससाररूप सागरके पार होय।

कहीथी और नारदमुनिने श्रीवेदव्यासजीसे कही॥४०॥ हे महाराज ! उनआत्मज्ञानी भगवान् वेदव्यासदेवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह सब वेदों
के समान श्रीमद्भागवतसंहिता मुझको पढ़ाई ॥४१॥ हे कुरुकुलभूषण ! नैमिषारण्यमें बड़े यज्ञके करनेवाले शौनकादि ऋषि जब पूँछेंगे तब सूतजी
उन ऋषियोंको यह श्रीद्भागवत पुराण कहेंगे ॥४२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादस्कंधे भाषाटीकायां प्रलयवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
दोहा–पञ्चममें संक्षेप सों, परब्रह्म उपदेश ॥ सर्प डसन भय नृपतिको, काटो शुकदेवेश ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! इस भागवतमें निर
न्तर विश्व आत्महीका वर्णन है जिन भगवान्के रजोगुणसे ब्रह्मा और तमोगुणसे रुद्र हुए ऐसे ब्रह्मा रुद्रादि सब सृष्टिके कर्त्ता भगवान्का गुणानुवाद

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ॥ इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥ ४१ ॥ एतां वक्ष्यत्यसौ सूत
ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥ दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भा०म० द्वादशस्कन्धे प्रलयनि०
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ॥ यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः
क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥ त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ॥ न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नंक्ष्यसि ॥ २ ॥
न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ॥ बीजांकुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥ स्वप्ने यथा शिरश्छेदं
पंचत्वाद्यात्मनः स्वयम् ॥ यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥ घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाशः
स्याद्यथा पुरा ॥ एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः ॥ ५ ॥

जो हितचित्तसे सुनता है उसको किसी प्रकारका भय नहीं ॥ १ ॥ हे राजन् ! हम मरेंगे इस पशुबुद्धिको छोड़ दो, इस देहसे न तो तुम पहिले
उत्पन्न हुए और न नष्ट होओगे यह आत्मा तो अजर अमर अनादि है, यह तो न कभी मरता है न जीता है ॥२॥ यह शरीर बीज और अंकुरकी
नाईं पुत्र पौत्रादिरूप होकर जन्मता मरता रहताहै, कभी बीजसे अकुंर होताहै, कभी अंकुरसे बीज होताहै, ऐसे तुम बीज अंकुरवत् देहादिकोंसे
भिन्न हो, जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न है॥ ३ ॥ जैसे कोई प्राणी स्वप्नमें अपना शिर कटाहुवा देखै, ऐसे ही जाग्रत् अवस्थामें देहके मरणको आप
देखता है, उससे मैं मरूंगा,यह केवल भ्रन्ति है क्योंकि अत्मा तो अजन्मा है ॥४॥ आत्माका जन्म मरणादिक जगतकी भ्रान्ति देहरूप उपाधिके

साथ है, इसलिये उपाधिकी निवृत्ति होनेसे इस जीवकी मुक्ति होजाती है, जैसे घट फूटजानेसे घटाकाशमें जामिलता है, जैसा प्रथम महाकाश रूप था वैसाही फिर होजाता है जब जीवको आत्मज्ञान होजाता है तो फिर वह ब्रह्मका ब्रह्म होजाताहै ॥ ५ ॥ आत्माके देह, गुण और कर्मोंको मनही उत्पन्न करता है और मनको माया उत्पन्न करती है और इसी करके जीवका जन्म मरण होता है और विचार करके देखो तो आत्मा निर्लेप है ॥ ६ ॥ जबतक तेल सरवा बर्त्ती और अग्निका संयोग बनारहता है तबहीतक दीपक कहलाता है, ऐसेही जबतक कर्म मन चैतन्य संसारादिक और इस देहको संयोग है, तबही तक संसार है और जब इन समुदायोंकी निवृत्ति होजाती है, तब यह संसार भी नहीं रहता यह देहही सत्त्वगुण

मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः ॥ तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥ स्नेहाधिष्ठानवत्यग्नि संयोगो यावदीयते ॥ ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ॥ रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥ न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्योऽव्यक्ताव्यक्तयोः परः ॥ आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनंतोपमस्ततः ॥८॥ एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ॥ बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिंतया ॥ ९ ॥ चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ॥ मृत्यवो नोपधक्ष्यंति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥१०॥ अहं ब्रह्म परं ब्रह्म ब्रह्माहं परमं पदम् ॥ एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥ दशंतं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ॥ न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

रजोगुण, तमोगुणसे जन्मता मरता है आत्मा जन्मैं न मरै, इससे स्थूल सूक्ष्म दोनों देहोंसे मरे है और स्वयंप्रकाश देहादिकोंका आश्रय है नित्य है. निर्विकार है, अनन्त है, अनादि है निरुपम है, वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ ७॥ ८ ॥ हे प्रभो! अनुमानयुक्त बुद्धिसे भगवान् वासुदेवका चिन्तवनकरते शरीरमें स्थित शुद्ध आत्माको मनसे विचारकरो॥ ९ ॥ इसप्रकारका विचार करोगे तो ब्राह्मणके वाक्योंसे प्रेषित कियाहुवा तक्षक सर्प तुमको नहीं जलासकेगा, क्योंकि परब्रह्मको मृत्यु भी नहीं जला सक्ती ॥ १० ॥ जो मैं हूँ सो परमधाम रूप ब्रह्म है और जो परमधाम रूप ब्रह्म है, वह मैं हूँ, यह विचार करके निरुपाधि ब्रह्ममें तुम अपने आपको रक्खोगे तो ॥ ११ ॥ विषयुक्त मुखसे अपने चरणमें काटतेहुए तक्षक नागको किसीप्रकार

न देखोगे, न इस देहको देखोगे और न आत्मासे भिन्न विश्वको देखोगे ॥ १२ ॥ हे तात ! हे नृपेन्द्र ! विश्वके आत्मा भगवान्‌का चरित्र जो कुछ तुमने पूँछा वह सब मैंने आपसे कहा । अब आप क्या सुनना चाहते हो सो कहो ? १३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां ब्रह्मोपदेशो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–इस छठवें अध्यायमें, भये परीक्षित् मुक्त ॥ सुनते अहि होमे सकल, इन्द्रासन संयुक्त ॥१॥ सूतजी बोले कि हे शौनकऋषि ! सबकी बुद्धिको जाननेवाले निवृत्तिपरायण व्यासके पुत्र शुकदेवजीके गूढ़ वचन सुनकर, विष्णुरात परीक्षित् शिर झुकाय, चरणारविन्दोंकी वन्दना कर हाथ जोड़कर बोले ॥ १ ॥ हे मुने करुणानिधान ! आपने परम अनुग्रह करके मुझको कृतार्थ किया, जिससे आदि अन्तसे

एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ॥ हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वा० तत्त्वोपदेशेन मृत्युभीतिनिवारणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ॥ तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्धांजलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ॥ श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥ नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ॥ अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥ पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ॥ यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥ भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ॥ प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

हीन साक्षात् भगवान् परब्रह्मका चरित्र मुझको सुनाया, जिसको सुनकर मैं सिद्ध हुआ ॥ २ ॥ आपसे मुक्तरूप सज्जन; इस संसाराग्निके तापोंसे तपेहुए अधम लोगोंका अच्युत भगवान्‌में मन लगानेवाले और उनपर अनुग्रह करना मैं इसबातको कुछ अद्भुत नहीं समझता ॥ ३ ॥ यह पुराणसंहिता आपके मुखारविन्दसे मैंने सुनी, इस श्रीमद्भागवत संहितामें उत्तम यशवाले भगवान्‌का निरन्तर वर्णन है ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! तक्षकादिक मृत्युओंसे अब मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहा क्योंकि आपने जो परमानन्द ब्रह्मरूप मुझे दिखादिया मैं उसीमें लय

होगया ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो मुझको आज्ञा हो तो वाणीको रोककर निष्काम चित्तको भगवान् अधोक्षजमें रखकर प्राणोंका त्यागकर दूं १ ॥ ॥ ६ ॥ ज्ञान विज्ञानकी निष्ठासे मेरा सब अज्ञान निवृत्त होगया, जबसे आपने मंगलरूप भगवान्का परमपद मुझको दिखाया ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! राजा परीक्षित्ने इसप्रकार प्रार्थनाकर श्रीशुकदेवजीका पूजन किया तब भगवान् बादरायणि परीक्षित्की पूजा स्वीकार कर बिदा माँग, मुनियोंसहित वहाँसे पधारे ॥ ८ ॥ पीछे राजऋषि परीक्षित् बुद्धिसे मनको रोक, परब्रह्ममें मन लगा, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानमें मग्न

अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ॥ मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥ अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ॥ भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ॥ जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ॥ समाधाय परं दध्यावस्पंदासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गंगाकूल उदङ्मुखः ॥ ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ॥ हंतुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥ तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

हो, इन्द्रियोंको निश्चलकर, सूखे वृक्षकी नाईं अचल होगया ॥ ९ ॥ गंगाके किनारेपर पूर्व अग्र कुशासनपर बैठ, उत्तर दिशाकी ओरको मुख करके संशयछिन्न निस्संग महायोगी परब्रह्ममें तदाकर होगया ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो ! क्रोधी ब्राह्मणके पुत्रका भेजाहुवा तक्षक राजाके काटनेकी इच्छा करके चला, तब मार्गमें कश्यपजीको देखा ॥ ११ ॥ कि, कश्यपजी राजा परीक्षित्के पासको जातेहैं और यह विषके उतारनेमें चतुर हैं

१ जिसमय तक्षक ब्राह्मणका वेष धारण करके राजा परीक्षित्को काटनेके लिये चला तो मार्गमें उसको कश्यपजी मिले, तक्षकने कश्यपजीसे बूझा कि, आज आप कहाँको चलदिये ? कश्यपजी बोले कि, राजा परीक्षित्को आज सर्प काटैगा, हम उसको अच्छा करनेके लिये जातेहैं तब तक्षकने कहा कि, तक्षकके काटेको आरोग्य करनेकी किसीकी सामर्थ्य नहीं आप तो क्या वस्तु हैं ! कश्यपजी बोले कि यदि वह होता तो हम उसको अपना कर्त्तव्य दिखाते तक्षक बोला कि,मैंही तक्षकहूं,और इस वृक्षको काटता हू अब तुम इसको अच्छा करो ज्योंही वृक्षको डसा त्योंही वह जलकर भस्म होगया,बरन् उस वृक्षपर सूखी—

लिया, तब इच्छारूपी तक्षकने ब्राह्मणका रूप धरके अपने
तब तक्षक ❀ ने उस विषके दूर करनेवाले कश्यपजीको धनसे तृप्तकर जानेसे रोंक
आपको छिपाकर राजा परीक्षित्को जाकर काटा ॥ १२ ॥ ब्रह्मस्वरूप राजऋषि परीक्षितकी देह विषाग्निसे सबके देखते उसी समय जलकर क्षार

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ॥ बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥
हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ॥ विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥

होगई ॥ १३ ॥ उस समय पृथ्वी, आकाश, सब दिशाओंमें बडा हाहाकार शब्द होनेलगा, सब नगरमें कुलाहल मचगया. देवता, असुर,

---

–लकडी तोडनेके लिये एक लकडहारा चढा था वहभी उस वृक्षके सग जलकर भस्म होगया, तब कश्यपजीने सजीवनी मंत्र पढकर दो घडीमें लकडहारेसहित उस वृक्षको यथावत् करदिया, तब तक्षक आश्चर्यमय होकर कहने लगा कि, आप कुछ ज्योतिष विद्या भी जानत हैं ? कश्यपजी बोले हाँ । तब तक्षकने कहा कि, विचारो तो राजाकी अवस्था कितनी और रही है, कश्यपजी बोले कि, हमारे विचारमें ऐसा आता है राजाकी आयुर्बल दो घडी शेष है, तब तक्षकने कहा कि, मत्र अकालमृत्युवालेको जीवित करसक्ता है परन्तु जिसकी मृत्युही निकट आगई होय उसको कोई नहीं बचासक्ता फिर वृथा उपाय करनेसे मान हानि होती है और जो आपको धनकी इच्छा है तो इसी वृक्षके नीचे बहुत गडा है, जितना चाहिये उतना लेजाओ, कश्यपजीको और किसी बातसे प्रयोजन नहीं था अपनी इच्छानुसार धन लेकर अपने आश्रमको लौटगये, तब तक्षक राजाके पास जाकर एक पुष्पमें कीडेका रूप धारणकर घुस बैठा और तक्षकके पुत्रने ब्राह्मणका रूप धरकर वह फल राजाको दिया राजा फलको देखकर कहनेलगे कि, सध्या होगई और तक्षक अभीतक नहीं आया कहीं ब्राह्मणका वचन झूठा न होजाय इस कारण इस कीडेहीसे मस्तकमें कटवालें, ज्यों राजाने कीडेसे कटवाया त्योंहि तक्षकने अपना रूपधर राजाको डसा कि, वह तुरत भस्म होगया और तक्षक उसी समय उडगया, उस लकडहारेने जब सब वृत्तान्त कहा तब जन्मेजयने तक्षकका अपराध विचार सर्पसत्र यज्ञ किया ।

* शंका–द्वादशके पाँचवें अध्यायमें शुकदेवजीने कहा कि, हे राजन् ! ब्राह्मणके शापकी आज्ञाको जिस सर्पने पाया वह सर्प तुमको नहीं डसेगा, भागवतके श्लोकमें "त्वां" शब्द लिखा है सो शुकदेवजीने "त्वां" किसको कहा था परीक्षित्की देहको कहा था कि, जीवको कहाथा ? जो जीवको त्वां कहा तोभी अयोग्य है, क्योंकि जीव किसीके जलानेसे जलनहीं सक्ता, जो कदापि ऐसा देखकर कि, ससारमें शरीरहीकी प्रशंसा है जीवको कोई नहीं जानता, शरीरहीको त्वां कहाथा तो फिर सर्पके काटनेसे शरीर क्यों भस्म होगया ? मुनिने तो कहाथा कि भस्म नहीं होगा । यह शका होती है !

उत्तर–जो प्रश्न तुम लोगोंने किया सो सत्य है,ससारमें शरीरकी प्रशसा देखकर कि देहके सिवाय जीवको कोईभी नहीं जानता इसलिये शुकदेवजीने देहको त्वां कहाथा, अब देह भस्म होनेका कारण सुनो शुकदेवजीका वचन सत्य था कि,राजाका देह सर्पके काटनेसे भस्म नहीं होता परन्तु परीक्षित्ने मरनेके समयमें भगवान्का विचार शुकदेवजीसे भागवत सुनी सात दिनसे पहिले जो मरते हैं,उन प्राणियोंको

मनुष्यादिक सब आश्चर्यमय होगये ॥ १४ ॥ आकाशमें देवताओंके दुन्दुभी बजनेलगे, गन्धर्व गानेलगे, अप्सरा नृत्य करने लगीं और पुष्पोंकी वर्षा होनेलगीं और महात्मा पुरुष वारम्वार धन्यवाद देनेलगे ॥ १५ ॥ राजा जन्मेजय अपने पिता परीक्षित्‌को तक्षकसे डसा सुन कर महाक्रोधित हुआ और ब्राह्मणोंको बुला सर्पसत्र यज्ञमें सर्पोंका होम करानेलगा ॥ १६ ॥ उस यज्ञकी महाप्रचण्ड अग्निमें बड़े बड़े सर्पोंको जलता हुआ देखकर तक्षक डरका मारा अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्रकी शरण गया ॥ १७ ॥ परीक्षित्‌के पुत्र राजा जन्मेजयने जब तक्षकको

देवदुंदुभयो नेदुर्गंधर्वाप्सरसो जगुः ॥ ववर्षुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥ जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ॥ तथा जुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सहद्विजैः ॥ १६ ॥ सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ॥ दृष्ट्वेंद्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ॥ उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तं गोपायति राजेंद्र शक्रः शरणमागतम् ॥ तेन संस्तंभितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ॥ सहेंद्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥

यज्ञमें न देखा तो ब्राह्मणोसे बूझा कि, सर्पोंमें अधम तक्षक यहाँ आनकर क्यों नहीं भस्म हुआ ? ॥ १८ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि, हे नरेन्द्र ! अपनी शरण गये तक्षककी इन्द्र रक्षा करता है और इन्द्रनेही उसको अपने समीप बैठाल रक्खा है, इसीलिये वह अग्निमें आनकर नहीं पड़ा ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर उदार बुद्धिवाला राजा जन्मेजय ब्राह्मणोंसे बोला कि, हे ब्राह्मणो ! इन्द्र सहित उस तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं डाल देते, क्या इतनी सामर्थ्य आपको नहीं है ॥ २० ॥

—नरक होता है भागवतके प्रभावसे अब इसको नरक नहीं होना चाहिये, जो ऐसा करैंगे तो सर्पकी मर्यादा नाश होजायगी, इसलिये भागवतकी, सर्पकी, शुकदेवजीकी इन तीनोंकी मर्यादा रखनेके लिये भगवान्‌ने परीक्षित्‌को तीन कर्म करके तीनोंकी मर्यादा रक्खी, सर्पके काटनेसे मृत्यु होती है तो उस प्राणिको नरकमें जाना पड़ताहै सो श्रीमद्भागवत सुननेके प्रतापसे राजा परीक्षित्‌को भगवान्‌ने नरक बाससे छुटाया और शुकदेवजीका राजा शिष्य था इसलिये वैकुण्ठमें राजाको भेजा सर्पकी मर्यादा रखनेके लिये राजाका देह भस्म किया, इसलिये राजाकी देह भस्म होगई कुछ शुकदेवजीका वाक्य झूठा नहीं था, जो सर्पकी मर्यादा भगवान् । न रखते तो कभी राजाकी देह भस्म न होती ।

जन्मेजयका यह वचन सुनकर सब ब्राह्मण इन्द्रसहित उस तक्षकको आहुतिमंत्र पढ़कर आवाहन करने लगे "हे तक्षक! मरुद्गणाधीश इन्द्रके संग तू
शीघ्र यज्ञाग्निमें आनकर पड़" इसप्रकार आहुतिमंत्रोंसे इन्द्र सहित तक्षकको बुलाया ॥२१॥ ब्राह्मणोंके कठोर वचनोंसे और मंत्रोंके आकर्षणसे तक्षक
सहित इन्द्र अपने स्थानसे चलायमान हो विमान और तक्षक सहित अपने मनमें घबरागया ॥ २२ ॥ इन्द्रको विमान और तक्षक सहित आकाशसे
गिरता हुआ देखकर, अंगिराके पुत्र बृहस्पतिजीने जन्मेजयसे कहा ॥ २३ ॥ हे नरेन्द्र! यह सर्पराज आपके हाथसे वधकरनेयोग्य नहीं है, क्योंकि
इसने अमृतपान किया है, इसलिये यह अमर अजर है ॥ २४ ॥ हे राजन्! तक्षकके डसनेसे पिताका मरण सुनकर आपको इतना क्रोध तक्षकपर

तच्छ्रुत्वा जुहुवुर्विप्राः सहेंद्रं तक्षकं मखे ॥ तक्षकाशु पतस्वेह सहेंद्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थाना
दिंद्रः प्रचालितः ॥ बभूव संभ्रांतमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥ तं पतंतं विमानेन सहतक्षकमंबरात् ॥ विलोक्यां
गिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥ नैष त्वया मनुष्येंद्र वधमर्हति सर्पराट् ॥ अनेन पीतममृतमथ वा अजरा
मरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जंतोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ॥ राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्प
चोराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ॥ पंचत्वमृच्छते जंतुर्भुक्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राज
न्संस्थीयेताभिचारिकम् ॥ सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥२७॥ इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ॥
सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥

करना नहीं चाहिये, क्योंकि जीवोंका जीवन मरण और परलोक अपने कर्मोंहीसे होता है, इसे सुख दुःखका दाता और कोई दूसरा नहीं जान
पड़ता ॥ २५ ॥ हे नरेश! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली, क्षुधा, तृषा, रोगादिकोंसे प्राणी मृत्युको प्राप्त होताहै, सो वह अपने प्रारब्ध और कर्मोंहीके
भोगसे भोगताहै कुछ सर्पादिक स्वतंत्र नहीं हैं, उनको भी प्रारब्ध और कर्मही प्रेरणा करता है ॥ २६ ॥ हे राजन्! यह प्राणी अपने अदृष्टहीका
भोग करै है, इसलिये इस अभिचार हिंसक यज्ञको समाप्तकरो. देखो! इस यज्ञमें अनेक निरपराधी सर्प भस्म होगये, परन्तु उसमें आपकाभी
कुछ दोष नहीं, क्योंकि प्राणी सदा अपने प्रारब्ध और कर्मोंका भोग भोगते रहते हैं ॥ २७ ॥ जब बृहस्पतिजीने इसप्रकारसे वचन कहे तब

राजाने उसीसमय बृहस्पतिजीके वचनोंको सन्मान दे, अभिचार यज्ञसे निवृत्त हो, देवगुरु बृहस्पतिजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ देखिये ! ब्राह्मणके क्रोधसे परीक्षितका मरण हुवा और परीक्षितके पुत्र जन्मेजयने कोप करके करोडों सर्पोंको जलाडाला, सो यह क्रोधरूप मोह ऐसे ऐसे महात्मा पुरुषोंको भी हुवा, इसमें कोई आश्चर्य माननेकी बात नहीं है, क्योंकि विष्णुभगवान्की अलक्षित माया किसीप्रकार किसीसे निवारण न होसकी देखो ! उनहीं विष्णु भगवान्की मायासे विष्णु भगवान्हीके अंशरूप जीव दूसरे जीवोंपर अपनी देहमें तीनों गुणोंकी वृत्ति क्रोधादिकोंसे मोहित हो संसारमें भ्रमते हैं ॥ २९ ॥ यह माया तत्त्ववादी ब्रह्मविचार करनेवालोके सिवाय और सब स्थानोंमें यह माया निर्भय वास करती है और ब्रह्मवादी लोग जब तत्त्वविचार करते हैं तो वह लोग भलीभाँति जानते हैं कि, यह माया बड़ी कपटकारिणी है और लोकोंकी वंचना

सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यया ॥ मुह्यंत्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः॥ २९ ॥ न यत्र दंभीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ॥ न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो मनश्च संकल्पविकल्पवृत्तिमत् ॥ ३० ॥ न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ॥ तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमे त्स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥ परं पदं वैष्णवमामनंति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

करनेवाली है, जिन महात्मापुरुषोंने ऐसा समझ रक्खा है उनके सन्मुख निर्भय होकर माया अपना प्रकाश नहीं करसक्ती, क्योंकि उनसे भय मानती है और मोह ममतादिक कार्योंको नहीं करती, अपने दिन पूरे करती है और जहाँ तत्त्वविचार है माया कारणके अनेक वाद विवाद नहीं है और संकल्प विकल्प वृत्तियोंके युक्त मन भी जहाँ नहीं है ॥ ३० ॥ सृष्टिके करनेवाले सब कारण और कर्मसे सिद्ध हुए फल, इन तीनों सहित अहंकारयुक्त जीव जिस विष्णुमें विघ्न डालनेवाला विघ्नभी जहाँ नहीं रहता, अहंकारादि ऊर्मियोंके त्यागनेवाले मुनिलोग उसी विष्णुपदमें रमण करते हैं ॥ ३१ ॥ और स्थान, सौहृद, दुष्टता और अनात्मपदार्थोंको त्याग नेति नेति कह अहंभावकी निवृत्तिकर सिवाय

परमात्माके और किसीसे स्नेह न रखनेवाले विवेकी पुरुष परमतत्त्व रूपहीको विष्णुका परमपद कहतेहैं, उसीका ध्यानादिक सावधानतासे विज्ञानीलोग हृदयमें धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ विष्णुके परमपदको वही आत्मतत्त्ववेत्ता जानते हैं जिनके देह गेहमें अहंता, ममता, दुर्जनताका मिथ्या अभिमान नहीं है ॥ ३३ ॥ मनुष्यको उचित तो यह है कि, अज्ञानियोंके दुर्वाक्योको सहन करे किसीकी अवज्ञा न करे और इस देहके कारण किसीसे शत्रुता न करे ॥ ३४ ॥ अकुण्ठित बुद्धिवाले भगवान् व्यासदेवजीको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं कि, जिनके चरणकमलके ध्यानसे मैंने यह "श्रीमद्भागवत-संहिता" पढ़ी है॥३५॥शौनकऋषि बोले, हे सौम्य ! व्यासदेवजीके शिष्य ! वेदोंके अचार्य पैलादि महात्मा ऋषियोंने वेदोंका

त एतदधिगच्छंति विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ यत्पादांबुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥ शौनक उवाच ॥ पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः॥ वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ हृदाकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः ॥ द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यांत्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ॥ यत्तल्लिंगं भगवतो ब्राह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ॥ येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

कितनी रीतिसे विभाग किया सो यह वृन्तांत हम बूझतेहैं और पुराणोंकी संहिताओंके विभाग किसप्रकारसे कियेगयेहैं सो जाननेकी हमारी अभिलाषा है॥३६॥ श्रीसूतजी बोले कि, ब्रह्मन् ! एकाग्रमन परमेष्ठी ब्रह्माके हृदय आकाशसे प्रथम एक नाद शब्द उत्पन्न हुवा जो कि, कानोंपर हाथ रखनेसे सुनाई आताहै॥३७॥हे ब्रह्मन् ! जिस नादकी उपासना करके योगी पुरुष अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, इन तीनों मनके मलोंको दूर करके मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ ३८ ॥ उस नादशब्दसे स्वयंप्रकाश हुवा जिसकी उत्पत्ति स्पष्टरीतिसे किसीप्रकार जाननेमें न आवे, ऐसा अव्यक्त तीन अक्षर युक्त ॐकार हुवा जो कि, भगवान् परमात्मा परब्रह्मका जतानेवाला है॥३९॥ इन्द्रिय मनविनाही जो भगवान् है सब शून्य होजानेपर भी आप ज्ञाता होनेसे

कानोंके बन्द करनेपरभी इस अव्यक्त ओंकारको सुनते हैं जीव इन्द्रियोंके अधीन है, इसलिये कान बन्द किये जानेपर भी कुछ नहीं सुनता, हृदयरूप आकाशमें आत्मासे उत्पन्नहुए ओंकारसे वैखरी विस्तृत वाणी प्रगट होतीहै ॥ ४० ॥ अपने आश्रयरूप सर्वव्यापक साक्षात् परमात्मा परब्रह्मका बतानेवाला सब मंत्रोंका रहस्य, वेदोंका बीज, सनातन ओंकार है॥४१॥हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! उस ओंकारसे अकार, उकार, मकार यह तीन वर्ण हुए तीन वर्णसे सत्त्व, रज और तम तीन गुण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद यह तीन वेद, भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक यह तीनों लोक, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीनों अवस्था हुईं ॥ ४२ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इन्हीं वर्णोंसे अक्षरोंके समूह रचे सोलह ॥ १६ ॥ तो स्वर पचीस २५ स्पर्श चार ४ अन्तस्थ, चार ४ ऊष्मा, यह सब ह्रस्व दीर्घ जिह्वामूलीय करके युक्त हैं ॥ ४३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने उन्हीं अक्षरोंसे चारों मुखोंसे

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ॥ स सर्वमंत्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ॥ धार्यंते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥ ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ॥ अंतःस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ॥ सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥ पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ॥ ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ ४५ ॥ ते परंपरया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ॥ चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥ क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ॥ वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७ ॥

ओंकारसहित चारों वेदोंको रचा चातुर्होत्र कर्मोंके लिये अथर्वण, यजुर्वेदी उद्गाथा, सामवेदी होता, ऋग्वेदी ब्रह्मा, आहुतिदेनेवाले रचे ॥ ४४ ॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने वेदोंके उच्चारणादिकोंमें चतुर ब्रह्मर्षि अपने पुत्रोंको वह वेद पढाये और धर्मोंके उपदेष्टा होकर अपने पुत्रादिकोंके पढाने लगे ॥ ४५ ॥ उन सब वेदोंके हृदयमें धारण करनेवाले व्रतधारी शिष्योंकी परंपरा चारों युगोंमें चली आई है, द्वापरके अन्तमें महाऋषियोंने वेदोंके विभाग किये ॥ ४६ ॥ इसका कारण यह है कि भगवान्ने जाना कि, कलियुगमें सब ब्रह्मऋषि कालसे क्षीण, अल्प आयु, वीर्यहीन, अशक्ति और मन्दमति होंगे, यह विचारकर अच्युत भगवान्ने उनके हृदयमें विराजमान होकर प्रेरणा की तब उन ऋषियोंने वेदका विभाग किया ॥ ४७ ॥

हे ब्रह्मन्! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् धर्मकी रक्षाके लिये ब्रह्मा, शिवादिक लोकपालोंकी स्तुति करनेसे ॥ ४८ ॥ विभु भगवान्ने अपने अंशकलाओंसे पराशरमुनिके वीर्य करके सत्यवतीके गर्भमें वेदव्यासरूपसे अवतीर्ण होकर वेदके चार विभाग किये ॥ ४९ ॥ जैसे रत्नपारखी अनेक मणियोंकी राशियोंसे पद्मरागादि मणियोंको छाँटछाँटकर अलग कर लेता है,ऐसेही मंत्रोंके समुदाय एक वेदमेंसे ऋग,यजुर, साम और अथर्वण नामके मंत्रोंको उद्धारके उन मंत्रोंसे चार संहिता श्रीवेदव्यासजीने रची ॥ ५० ॥ हे शौनक! फिर पीछे महामति व्यासजीने

अस्मिन्नप्यंतरे ब्रह्मन्भगवाँल्लोकभावनः ॥ ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ॥ अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥ ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ॥ चतस्रः संहिताश्चक्रे मंत्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥ तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ॥ एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥ पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ॥ वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ॥ ५२ ॥ साम्नां जैमिनये प्राह तथा छंदोगसंहिताम् ॥ अथर्वांगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमंतवे ॥ ५३ ॥ पैलः स्वां संहितामूच इंद्रप्रमितये मुनिः ॥ बाष्कलाय च सोप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ॥ पराशरायाग्निमित्रे इंद्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥

अपने चार शिष्योंको बुलाकर एक एक संहिता देदी ॥ ५१ ॥ पैलनाम शिष्यको बहुत ऋचा होनेसे बह्वृचनाम ऋग्वेदकी संहिता दी, निगदानाम यजुर्वेदकी संहिता वैशंपायनको दी ॥ ५२ ॥ छन्दोगनाम सामवेदकी संहिता जैमिनीको पढाई और अंगिरसनाम अथर्वण वेदकी संहिता अपने शिष्य सुमंतुको पढाई ॥ ५३ ॥ पैलमुनिने अपनी पढीहुई संहिता इन्द्रप्रमित और बाष्कलनाम अपने दोनों शिष्योंको दी ॥ ५४ ॥ हे ब्रह्मन्! बाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग करके बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र, इन चारों अपने शिष्योंको पढाई महात्मा

इन्द्रप्रमितने अपनी संहिता कवि मंडूक ऋषिको पढाई मंडूकने देवमित्रको पढाई देवमित्रने सौभर्यादि ऋषियोंको पढाई ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ मंडूकके पुत्र शाकल्यने अपनी संहिताके पाँच विभाग करके वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य, शिशिरनाम अपने पाँचो शिष्योंको दी ॥ ५७ ॥ शाकल्यके छठे जातूकर्ण्य नाम शिष्यने अपनी संहिताके तीन भाग किये और वैदिक पदार्थोंका व्याख्यानरूप निरुक्त नाम ग्रन्थ रचकर, बलाक, पैज, वैताल और विरज नाम अपने चार शिष्योंको पढाया ॥ ५८ ॥ बाष्कलि, बाष्कलके पुत्रने सब संहिताओंकी शाओंमेंसे बालखिल्यानाम संहिता बनाकर वह संहिता बालायनि, भज्य और कासारनाम अपने तीनों शिष्योंको दीं ॥ ५९ ॥ यह सब ब्रह्मऋषि ऋग्वेदकी बहृचानाम संहिताके

अध्यापयत्संहितां स्वां मांडूकेयमृषिं कविम् ॥ तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥ शाकल्यस्तत्सुतस्तां तु पंचधा व्यस्य संहिताम् ॥ वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७॥ जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ॥ बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥ बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ॥ चक्रे बालायनिर्भज्य काशारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥ बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ॥ श्रुत्वैनं छंदसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥ वैशंपायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ॥ यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ॥ चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥ इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ॥ विप्रावमंत्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥

धारण करनेवाले हुए जो पुरुष इस वेदके विस्तारको सुनेगा वह सब पापोंसे निवृत्त होजायगा ॥ ६० ॥ वैशंपायनके शिष्यने यजुर्वेदसंहिता पढी, इसलिये उन्होंने यज्ञमें अध्वर्युकी पदवी पाई, जब उनके गुरु वैशंपायनको ब्रह्महत्याका पाप लगा तब उस पापके निवारणके लिये अपने गुरुके बदले उन्होंने अपने आप प्रायश्चित्त किया उस दिनसे उनका नाम चरकाध्वर्यु हुआ ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यने ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करानेके समय वैशंपायन अपने गुरुसे कहा कि, हे स्वामिन् ! अल्प दृढतावाले जो और पापके शिष्य हैं, जो आपके पापका प्रायश्चित्त करें तो क्योंकर होगा ? यह महाकठिन प्रायश्चित्त में इकलाही करूंगा ॥ ६२ ॥ याज्ञवल्क्यका यह वचन सुनकर वैशंपायन अत्यन्त कुपित होकर बोले कि, तू मेरे सामनेसे

चलाजा, तू दूसरे ब्राह्मणकी अवज्ञा करनेवाला शिष्य है, इसलिये मुझसे तुझसे कुछ प्रयोजन नहीं तैंने मुझसे जो कुछ पढ़ा है, उसको इसी समय त्यागदे ॥६३॥ गुरुके मुखसे इस प्रकारके कठोर वचन सुनकर देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्यने अभिमानमें आनकर यजुर्वेदके मंत्रोंको उगल वहाँसे चलदिया उस समय मुनिगणोंने यजुर्वेदके अमूल्य मंत्रोंको पड़ा देखा॥६४॥जिन मंत्रोंमें उन मुनियोंकी परम इच्छाथी, उन मंत्रोंको उन मुनियोने तीतर पक्षीका रूप धारण करके याज्ञवल्क्यके वमन कियेहुए यजुर्वेदके मंत्रोंको ग्रहण करलिया, उसी दिनसे उस यजुर्वेदकी तैत्तिरीय नाम शाखा हुई ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन् ! याज्ञवल्क्यजीने गुरुसे भी अधिक वेदविद्या प्राप्त करनेके लिये श्रीसूर्यनारायणकी उपासना करनी आरम्भ की ॥ ६६ ॥

देवरातसुतः सोऽपि छर्दित्वा यजुषां गणम् ॥ ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥ यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः ॥ तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मञ्छन्दांस्यधि गवेषयन् ॥ गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ ॐनमो भगवते आदित्यायाखि लजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतानामंतर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवो पाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकया त्रामनुवहति ॥ ६७ ॥ यदु ह वा व विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृ जिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥

याज्ञवल्क्य बोले कि, हे सूर्यनारायण भगवान् ! आदित्यस्वरूप आपको वारम्वार नमस्कार है, आप ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके समुदाय रूपसहित इस विश्वके हृदयमें निरुपाधि अन्तर्यामीरूप हो और बाहर लव निमेष क्षणके अनेक अवयववाले वर्षोंके समुदायवाले कालरूपसे आकाशकी सदृश उपाधिसे आच्छादित नहीं होते और प्रत्येक वर्षमें पानीके सोखने और वर्षानेसे एकही आप इस जगत्की दिन रात यात्रा करते रहतेहो ऐसे जो आप त्रिलोकीनाथ हो आपको वारम्वार प्रणाम करताहुं ॥ ६७ ॥ हे त्रिभुवनपते ! हे त्रयतापके नशानेवाले ! हे नित्य त्रिकाल वेदविधिसे पूजन करनेवाले ! भक्त जनोंके अखिल पापोंके फल दूपण और बीज अज्ञानके जलानेवाले !

हे सर्व देवताओंमें श्रेष्ठ ! हे सविता भगवन् ! आपका जो यह मण्डल त्रिलोकीमें प्रकाश करता है, ऐसे जो आप निशिवासर जगत्के तपानेवाले हैं सो मैं एकाग्रचित्तसे आपका ध्यान करताहूं ॥६८॥ हे भास्कर ! आपके रहनेके स्थान स्थावर जंगम अनंत समुदायके जडरूप मन इन्द्रिय प्राणोंके समूहोंको आपही अन्तर्यामी आत्मारूप होकर प्रेरणा करतेहो ऐसे तेजरूपको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ ६९ ॥ हे विश्वतमनाशक ! हे कृपानिधे ! महाभयानक मुखवाले अन्धकाररूप अजगरसे ग्रसेहुये मृतकके समान संज्ञारहित अचेतन लोकोंको देखकर परमकरुणानिधान आप दयादृष्टिसे उनको उठाकर नित्य समय समयपर कल्याणरूप स्वधर्मनिष्ठामें प्रवृत्त करते हो और भूपतिकी तुल्य असाधु लोगोंको

य इह वा व स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइंद्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मांतर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥
य एवेमं लोकमतिकरालवदनांधकारसंज्ञाऽजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकंपया परमकारुणिक ईक्ष
यैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्त्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥
परित आशापालैस्तत्रतत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरु
भिर्वंदितमहमयातयामयजुष्काम उपसरामीति ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो हरिः ॥
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥

भय देतेहुये सब ओर घूमते रहते हो, ऐसे जो आप दयालु हो सो आपको वारम्वार प्रणाम करताहूं ॥ ७० ॥ हे सूर्य ! जहाँ तहाँ दिक्पाल देवता कमलकोशयुक्त अंजलियोंसे आपको अर्घ्य देदेकर आराधना करते हैं, ऐसे जो सर्वान्तर्यामी आप हो आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥७१॥ हे भगवन् ! आप ऐसे दीनदयालु हो, त्रिलोकीके अधीश्वरोंसे पूजित आपके चरणारविन्दकी उत्तम यजुर्वेदकी कामनाके लिये मैं शरण आयाहूं ॥७२॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादि ऋषियो ! याज्ञवल्क्यने जब इस प्रकार सूर्यनारायणकी प्रार्थना की, तब उस प्रार्थनाको सुन, सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर अश्वका [illegible] इच्छानुसार सहित यजुर्वेदके मंत्र दिये ॥ ७३ ॥

तब याज्ञवल्क्य मुनिने उस यजुर्वेदकी पन्द्रह १५ शाखा करीं, सूर्यनारायणने अपनी केशावलीसे जो मंत्र निकाले इसलिये यह शाखा वाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई, उन शाखाओंको कण्व और मध्यंदिनादि ऋषियोने ग्रहण किया ॥ ७४ ॥ सामवेदके वेत्ता जैमिनिने सुमन्तु नाम अपने पुत्रको और सुन्वान् नाम अपने नातीको एक एक संहिता पढ़ादी ॥ ७५ ॥ फिर जैमिनिजीका दूसरा शिष्य सुकर्मा नाम द्विज बड़ा चतुरथा उसने सामवेदवृक्षकी सहस्र संहिता बनाकर अलग अलग शाखा रचीं ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, पौष्यंजि और वेदपाठी आवंत्य यह तीन शिष्य सुकर्माके हुये, उन्होंने सहस्रों संहिताओको ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ हिरण्यनाभ, पौष्यंजि और आवंत्यके महाचतुर पांचसौ ५०० शिष्य साम

यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपंच शतैर्विभुः ॥ जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिनादयः ॥ ७४ ॥ जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमंतुस्तनयो मुनिः ॥ सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ॥ सहस्रं संहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥७६॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यंजिश्च सुकर्मणः॥शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवंत्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥ उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पंच शतानि च ॥ पौष्यंज्यावंत्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते॥७८॥लौगाक्षिर्मांगलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ॥ पौष्यंजिशिष्या जागृहुः संहितास्ते शतंशतम् ॥ ७९ ॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ॥ शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवंत्य आत्मवान् ॥ ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादशस्कंधे वेदशाखाविभागनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ अथर्ववित्सुमंतुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकम् ॥ संहिता सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

वेदके गानेवाले उदीच्या नाम (उत्तर दिशानिवासी) हुए, उनमें कोई कोई पूर्वदिशाके वासी कहलाये ॥ ७८ ॥ पौष्यंजिके शिष्य लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुसीद, कुक्षी यह पांच शिष्य और थे, उन्होंने सौ सौ संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ हिरण्यनाभका कृत्तनाम दूसरा और शिष्य था, उसने अपने शिष्योंको चौबीस संहिता पढ़ाई और जो संहितायें अवशेष रहगईथीं वह ज्ञानवान् आवंत्यने अपने शिष्योंको पढ़ादीं ॥ ॥ ८० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां वेदशाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—सप्तममाहिं अथर्वको, कहों संहित विस्तार ॥ फेर पुराणोंके कहौं, लक्षण सकल विचार॥१॥ सूतजी बोले कि, अथर्ववेदपाठी सुमन्तुने अपनी संहिता अपने कबन्ध नाम शिष्यको पढ़ाई

कबन्धने अपनी संहिताके दो भाग करके पथ्य और वेददर्श नामको पढ़ाई ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! वेददर्शने अपनी संहिताके चार भाग किये और शौलकायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि नाम अपने चार शिष्योंको पढ़ाई, और पथ्यने अपनी संहिताके तीन भाग करके कुमुद, शुनक और जाजलि नाम तीन शिष्योंको पढ़ाई ॥२॥ शुनकके बभ्रु और सैन्धवायन नाम दो शिष्योंको अपनी संहिताके दो विभाग करके पढ़ाया सैन्धवायन आदिके सावर्णि आदि शिष्य हुए ॥३॥नक्षत्रकल्प, शान्तिकल्प, कश्यप और आंगिरस आदि शिष्य हुए हे मुनिराज ! यह तो मैंने आपसे अथर्ववेदके आचार्य्य कहे अब मैं आपके सामने पुराणोंके आचार्योंका वर्णन करता हूँ. सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणि,

शौल्कायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ॥ वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ॥ कुमुदः शुनको ब्रह्मञ्जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ॥२॥ बभ्रुः शिष्योऽथांगिरसः सैंधवायन एव च ॥ अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथाऽपरे ॥ ३॥ नक्षत्रकल्पः शांतिश्च कश्यपांगिरसादयः ॥ एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ॥ वैशंपायनहारीतौ षड्वै पौरणिका इमे ॥ ५ ॥ अधीयंत व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ॥ एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥ कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योकृतव्रणः ॥ अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ॥ शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥

कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशंपायन और हारीत यह छः पुराणोंके आचार्य्य हुए ॥ ५ ॥ वेदव्यासजीने पहिले पुराणोंकी छः संहिता रचकर मेरे पिता रोमहर्षणको पढ़ाईथी, फिर रोमहर्षणके मुखसे इन छहों जनोंने छहों संहिताओंको पढ़ा, मैं इन छहों महात्मा जनोंका शिष्य हुवा और सबसे एक एक संहिता पढी ॥ ६ ॥ इनमें जो पुराणोंकी चार संहितायें मूल थीं उनको कश्यप, सावर्णि, परशुरामजीका शिष्य अकृतव्रण और चौथा मैं इन चारों जनोंने व्यासजीके शिष्य मेरे पितासे चारों मूलसंहिताओंको पढ़ा ॥ ७ ॥ हे शौनक ! ब्रह्मऋषियोंने जो पुराणोंके लक्षण वर्णन किये हैं, वेद शास्त्रके

अनुसार उसे हम कहते हैं आप सावधानहो ध्यान लगाकर सुनिये ॥ ८॥ सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, राजाओंके वंश, उन वंशवाले राजाओंके चरित्र, निरोध, मुक्ति, हेतु और अपाश्रय ॥९॥ जिसमें यह दश लक्षण होंय विद्वान् लोग उसको महापुराण कहते हैं और कोई कोई आचार्य लोग पाँच लक्षण (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित्र) वाले ग्रन्थको भी पुराण कहते हैं, यह केवल छोटे बडेकी व्यवस्था है ॥ १० ॥ इस मायाके गुण क्षोभसे महत्तत्त्व, तीन प्रकारका अहंकार, पंचमहाभूत और इन्द्रियगणकी उत्पत्तिको सर्ग कहतेहैं ॥ ११ ॥ ईश्वरके अनुग्रहसे महत्तत्त्व आदिसे प्रगट होता हुवा और बीजमेंसे बीजकी सदृश प्रवाहरूपसे चलतेहुए स्थावर जंगमरूप प्रपंचको विसर्ग कहतेहैं ॥ १२ ॥ जंगम

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षांतराणि च ॥ वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ॥ केचित्पंचविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥ अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ॥ भूतसूक्ष्मेंद्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ॥ विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥ वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ॥ कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ॥ १३ ॥ रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगेयुगे ॥ तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यंते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥ मन्वंतरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ॥ ऋषयोंशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥ राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ॥ वंश्यानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्चये ॥ १६ ॥

प्राणियोंके स्थावर आहार है और जंगमोंकी मांसमें भी साधारण प्रीति है, उनमें मनुष्योंके निमित्त रागसे अथवा शास्त्रवचनोंसे जो आजीविकाका विधान है, वह वृत्ति कहाती है ॥ १३ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवताओंमें भगवान् अवतीर्ण होकर युगयुगमें जो लीला करके विश्वकी रक्षा करते हैं, वही विश्वकी रक्षा कहलाती है और वही अनेक प्रकारके अवतार धारण करके वेदके द्रोही दुष्ट और पाखण्डियोंको मार पृथ्वीकी रक्षा करते हैं वही रक्षा कहलाती है ॥ १४ ॥ मनु, देवता, मनुके पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और हरिके अंशावतार, यह छः मिलकर मन्वन्तर कहलाता है ॥ १५ ॥ ब्रह्मासे उत्पन्न हुए शुद्ध राजाओंकी भूत, भविष्य, वर्त्तमान कालकी सन्तानको वंश कहते हैं, उन राजाओंके वंशको और

उन वंशोंमें हुए चरित्रोंको वंशानुचरित्र कहते हैं॥१६॥नित्य, नैमित्तिक,प्राकृत,आत्यन्तिक,चार प्रकारकी प्रलयको कविजन संस्था (निरोध) कहते हैं ॥१७॥ अविद्याके कारण कर्म कर्त्ता जीव जिसे मुख्यवेत्ता अनुशयी और उपाधिवेत्ता अव्याकृत कहते हैं, उसकी वासना इस जगत्की सृष्टि होनेमें निमित्त है, वह मुक्ति हेतु (ऊति) कहलाती है ॥ १८ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिमें जीवरूपसे वर्तनेवाले ईश्वर मायामें विश्व, तैजस और प्राज्ञमें प्रविष्ट हैं और ममाधिमें उनसे पृथक् हैं;इसलिये वह अपाश्रय कहलाते हैं ॥ १९ ॥ जैसे घटादिक पदार्थमें मृत्तिकादि प्रविष्टहै उनके नाम रूपमें सत्तामात्रही हैं, ऐसेही जन्मसे लेकर मरणतक उन सब अवस्थामें ब्रह्मयुक्तभी है और अलग भी है ॥ २० ॥ जब सत्त्व, रज,

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यंतिको लयः ॥ संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः ॥१७॥ हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ॥ यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥ व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥ पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ॥ बीजादिपंचतां तासु ह्यवस्था सुयुतायुतम् ॥ २० ॥ विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ॥ योगेन वा तदात्मानं वेदेहा या निवर्त्तते ॥ २१ ॥ एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ॥ मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महांति च ॥ २२ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् ॥ नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कांदसंज्ञितम् ॥ २३ ॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कंडेयं सवामनम् ॥ वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्मांडाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥

तम तीनों गुणोंकी वृत्तियोंको त्यागकर पुरुषका चित्त शान्त होय, अथवा योगाभ्यास करके शान्त होय तब यह पुरुष अपने शुद्धरूपको जानकर संसारचेष्टाओंसे छूट जाताहै ॥ २१ ॥ इन छोटे बड़े लक्षणोंसे पुराण पहँचाने जातेहैं, अठारह १८ महापुराण हैं और अठारह १८ लघु पुराण हैं, इसप्रकार बड़े बड़े प्राचीन कविवर कहते हैं ॥२२॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुड़पुरण, नारदीयपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण ॥ २३ ॥ भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण

कूर्म्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, यह अठारह पुराण कहे * ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन् ! वेदव्यासजीने और उनके शिष्योंने और उनके शिष्योंके शिष्योंने जो वेदकी शाखाओंका विस्तार किया है, वह वृत्तान्त मैंने आपको सुनाया क्योंकि वह ब्रह्मतेज और भक्तिका बढ़ानेवाला है ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां पुराणलक्षणवर्णनो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा–मोह मार्कण्डेयको, तपचर्य्या अरु काम॥

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः॥ शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेऽथर्ववेदपुराणलक्षणादिनि० सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥ शौनक उवाच॥ सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर॥ तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १॥ आहुश्चिरायुषमृर्षि मृकंडतनयं जनाः॥ यः कल्पांते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत॥ २॥

इस अष्टमअध्यायमें, हरि स्तुति सुखधाम ॥ १ ॥ शौनकादि मुनि बोले कि, हे साधो ! हे श्रीसूतजी महाराज–वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! इस अपार संसारमें भ्रमनेवाले मनुष्योंको पार लगानेवाले तुम चिरंजीवित रहो ॥ १ ॥ मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेयजीको लोग चिरजीवी कहतेहैं।

---

* शंका–राजा जन्मेजयकी यज्ञमें बृहस्पतिजीने राजा जन्मेजयसे कहा कि, हे राजन्! तक्षकने अमृत पीलिया है अब आपके मारनेसे वह नहीं मरेगा क्योंकि अमृतको जो प्राणी पीलेता है वह किसीके मारनेसे नहीं मरता, इस बातमें यह सन्देह है कि, अमृतका स्वामी इन्द्र, जिसने रातदिन अमृत पिया, वरन् अमृत पीते पीते अनेक युग बीत गये ऐसे इन्द्रको ब्राह्मणोंने तप और मंत्रोंके प्रभावसे राजा जन्मेजयके यज्ञवाले कुण्डमें भस्म करनेके लिये स्वर्गसे गिराकर भस्म करनेकी सामर्थ्य तो ब्राह्मणोमें थी और जिस तक्षकने राईभर अमृत पीलिया क्या वह ब्राह्मणोंके मंत्र और तपके प्रभावसे भस्म नहीं होसक्ता?

उत्तर–जो प्राणी बहुत दु:खी होकर भगवान्का नाम एकवार भी लेताहै उसको असख्यनामके जपनेका फल प्राप्त होता है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है. ऐसा तक्षकने जाना कि, मैं बडे बडे देवताओंके पास गया किसीने भी मेरी सहायता नहीं की ऐसा विचार कर इन्द्रलोकमें गया, महादु:खी हो रहाथा। नेत्रोंसे आँसू चले जाते थे, तब अत्यन्त आतुर होकर हे भगवन्! हे नारायण ! इसप्रकार बडे आदर सत्कारसे वारम्वार भगवान्का नाम जपा, तब वही भगवान्का नाम अमृत होगया उसी भगवन्नाम अमृतको तक्षकने पान किया, इसलिये गुप्त करके बृहस्पतिजीने कहाथा कि, तक्षकने अमृत पीलिया है तुम्हारे मारनेसे नहीं मरेगा, कुछ इन्द्रवाले अमृतको नहीं कहा था ॥

क्योंकि जिस प्रलयमें सब जगत् ग्रस्त हुवा तो उस कल्पांतमें मार्कण्डेयजी किसप्रकार बचरहे ? ॥ २ ॥ जो भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ इसी कल्पमें हमारे वंशमें उत्पन्न हुए, उस दिनसे लेकर आजतक प्राणियोंका प्राकृतिक अथवा नैमित्तिक कोई भी प्रलय नहीं हुवा, फिर उनका प्रलयमें अवशेष रहना क्योंकर संभव हो सकाहै ? ॥ ३ ॥ कोई कोई महात्माजन ऐसा भी कहते हैं कि, मार्कण्डेय ऋषि इकलेही प्रलके समुद्रमें घूम रहेथे और वहाँ उन्होंने वटवृक्षके पत्रके दुप्पेमें एक अद्भुत बालकको सोता हुवा देखा "सो प्रलयकालमें वटका वृक्ष कैसे रहगया" ॥ ४ ॥ हे सूत !

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ॥ न वाऽधुनापि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥ एक एवार्णवे भ्राम्यन्ददर्श पुरुषं किल ॥ वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एष नः संशयो भूयान्सूत कौतूहलं यतः ॥ तं नश्छिन्द्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ॥ नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कंडेयः पितुः क्रमात् ॥ छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥

हे महायोगिन् ! हमको बड़ा सन्देह है और उसका उत्तर सुननेकी अभिलाषा है, सो आप सब पुराणोंके ज्ञाता और परमज्ञानी हो, आप हमारे इस संशयको निवारण करो ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि, हे महापुरुषो ! आपका यह प्रश्न सम्पूर्ण लोकोंके पापोंका दूर करनेवाला है क्योंकि इस प्रश्नमें श्रीनारायणकी कथा कलियुगके दोषोंकी मिटानेवाली है ❋ ॥ ६ ॥ क्रम करके पितासे द्विजन्म संस्कार पाय मार्कण्डेयने

---

* शंका–श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धके अष्टम अध्यायमें लिखा है कि, सूतके मुखसे ब्राह्मणोंने विद्या पढी, तो इसमें यह शका है कि, क्या उस समय ब्राह्मणोंको विद्या पढानेके लिये ब्राह्मण वश नहीं था क्या सब ब्राह्मण नष्ट होगयेथे ? जो ब्राह्मणोंने सूतके मुखसे विद्या पढीं यह बडा आश्चर्य है ?

उत्तर–सूतने व्यासदेवजीकी सेवा बहुतवर्षतक की, तब व्यासजीने सूतको अपना पुत्र मानकर शास्त्र और पुराण पढाये और यज्ञोपवीत कर्म भी सूतका किया क्योंकि व्यासजी साक्षात् भगवान्का अवतार थे, संस्कारकरके सूतको वरदान दिया कि, हे पुत्र सूत ! तुम्हारे मुखसे भगवान्की कथाको जो ब्राह्मण अभिमान त्यागकर सुनैंगे अथवा पढैंगे तब उन सुननेवाले पढनेवाले ब्राह्मणोंको सहस्रगुणा कथाका फल होगा और सहस्र गुणाही विद्या पढनेका फल होगा. इसलिये सब ब्राह्मण और सनकादिकोंने अभिमानको तजकर सूतसे कथा सुनी और विद्या पढी ब्राह्मणोंका वश नष्ट नहीं हुवा था, पुण्यके लोमसे सब ब्राह्मणोंने पढा सुना ॥

विद्याध्ययनयुक्त धर्मपूर्वक वेदोंको पढ़ा ॥ ७ ॥ नैष्ठिक बालब्रह्मचारी, शान्त, वल्कलवस्त्र धारण किये, जटा, दण्ड, कमण्डलु, उपवीत (जनेऊ) पहिरे ॥८॥ कृष्णमृगचर्म, कमलाक्षकी माला, नित्य नैमित्तिक सिद्धिके लिये कुशाओंको धारण किये, अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें दोनों सन्ध्या करके भगवत् आराधना करनेलगे ॥ ९ ॥ साँझ सबेरे भिक्षा लाकर गुरुके सन्मुख रखदेते और जब गुरु आज्ञा देते तब मौन साध एकबार भोजन करलेते और जो गुरु कभी आज्ञा न देते तो उसदिन निराहारही रहजाते ॥ १० ॥ इसप्रकार मार्कण्डेयजीने विद्याध्ययन परायण होकर दश करोड़ (१००००००००) वर्षतक हृषीकेशका आराधन करके तप किया और अतिदुर्जय मृत्युको जीतलिया ॥ ११ ॥ तब तो ब्रह्मा, महादेव, भृगु, दक्ष

बृहद्व्रतधरः शांतो जटिलो वल्कलांबरः ॥ बिभ्रत्कमण्डलुं दंडमुपवीतं समेखलम् ॥८॥ कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ॥ अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥ सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ॥ बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥ एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ॥ आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे ॥ नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥ इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशांतरात्मना ॥१३॥ तस्यैवं युंजतश्चित्तं महायोगेन योगिनः॥ व्यतीयाय महान्कालो मन्वंतरषडात्मकः ॥ १४ ॥ एतत्पुरंदरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलान्तरे ॥ तपोविशंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥ गंधर्वाप्सरसः कामं वसंतमलयानिलौ ॥ मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तदा ॥ ॥ १६ ॥ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ॥ पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

और भी ब्रह्माके अनेक पुत्र, मनुष्य, देवता, पितर, भूत और सम्पूर्ण देहधारियोंको बड़ा आश्चर्य हुवा ॥ १२ ॥ इसप्रकार नैष्ठिकब्रह्मचारी व्रत धारणकर मार्कण्डेययोगी तप अध्ययन संयमों करके क्लेशरहित मनसे अधोक्षज भगवान्का ध्यान करनेलगे ॥ १३ ॥ इसप्रकार भगवान्में मन लगाये उस महायोगी मार्कण्डेयको छः मन्वन्तर बीतगये ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! तब सातवें मन्वन्तरमें मार्कण्डेयके तपको देखकर इन्द्र शंकायुक्त हुवा और उनके तपमें विघ्न डालना चाहा ॥ १५ ॥ तब इन्द्रने उनका तपभंग करनेके लिये गन्धर्व, अप्सरा, मनोभव, वसन्तऋतु, मलयपवन, रजोगुणके मित्र लोभ व मदको मार्कण्डेयमुनिके पास भेजा ॥ १६ ॥ हे विभो ! वह सब मिलकर हिमालयकी उत्तर ओर उन मुनिके आश्रममें गये, जहाँ पुष्प

भद्रानदी और चित्रानाम शिला है ॥१७॥ वह परमपवित्र मार्कंडेयजीका आश्रम जहाँ सुन्दर सुन्दर वृक्ष और लतायें शोभायमान थीं अनेकप्रकारके पक्षियोंके शब्दसे व्याप्त हो रहा था, जहाँ परमविद्वान् ब्राह्मणोंके कुल निवास करतेथे और सरोवरोंमें जहाँ तहाँ निर्मल जल झकोल रहेथे ॥ १८ ॥ मतवाले भ्रमर गुंजार रहे थे, मदोन्मत्त कोकिला कुहू कुहूपुकार रहीथीं, मदमाते मोर जहाँ तहाँ नटोंकी नाच नाचरहेथे और मत्त पक्षियोंके समुदाय अपनी अपनी वाणी बोलरहेथे ॥ १९ ॥ शीतल जलके झरनोंके कनकाओंको लेकर वनपवन पुष्पोंको स्पर्श करती परम सुगन्धवाली कामदेवको बढानेवाली कामदेवको देखकर सबके चित्तको प्रफुल्लित करनेलगी ॥ २० ॥ चन्द्रमाके उदय होनेसे सन्ध्या समयके सुन्दर नवीन पल्लव और

तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलतांचितम् ॥ पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥ वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ॥ सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तंभयन्स्मरम् ॥ २० ॥ उद्यचन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तवकालिभिः ॥ गोपद्रुमलताजालस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥ २१ ॥ अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ॥ अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥ हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः ॥ मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमंतमिवानलम् ॥ २३ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ॥ मृदंगवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥ संदधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ॥ मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकंपयन् ॥ २५ ॥

फूलोंके गुच्छोंके समूह अनेक शाखा और वृक्ष लताओंसे युक्त वसन्तऋतु वहाँ आनकर प्रगट हुई ॥ २१ गीत और वादित्रवाले गन्धर्व और अप्सराओंके समूहोंसे युक्त कामदेव हाथमें धनुषबाण लिये दिखाई दिया ॥ २२ ॥ अग्निहोत्रसे निश्चिंत हो उस आश्रममें ध्यानसे नेत्र मूँदकर ऐसे बैठे थे जैसे मूर्त्तिमान अग्निके समान अनन्ततेजस्वी मार्कण्डेयजीको आसनपर विराजमान देखा ॥ २३ ॥ उस समय मार्कण्डेयजीके सामने अप्सरायें नाचनेलगीं, गन्धर्व गानेलगे, मृदंग, वीणा, ढोलकादि अनेक प्रकारके सुंदर सुन्दर बाजे बजानेलगे ॥ २४ ॥ ऐसा सुन्दर समय पाकर कामदेवने शोषण, दीपन, संमोहन, संतापन, उन्मादन नाम यह पाँच मुखवाले बाण अपने धनुषपर धारण किये और वसन्त लोभादिसे सब इन्द्रके अनुचर

मार्कण्डेयजीके मनको कम्पायमान करनेलगे ॥ २५ ॥ गेंदको उछालती अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करती पुंजिकस्थली नाम अप्सरा स्तनोंके भारसे जिसकी लंक लचक रहीथी कि, जिसके केशपाशसे शिथिल होनेके कारण पुष्प गिररहे थे ॥ २६ ॥ गेंदको उछालती तिरछी चितवनसे चारोंओर को देखती भालती जब वह चंचलचित्तवाली चली तब कटिमेखला टूटजानेसे उसका वस्त्र भी छूटगया, पीछे समीरने उस वीरबालाका सूक्ष्म वस्त्र हरण करलिया ॥ २७ ॥ उससमय पंचशरने मार्कण्डेयजीको अपने वशमें जानकर अपना महातीक्ष्ण शर चलाया, परन्तु उस अवसरमें कामदेवके सब शर उद्यम व्यर्थ होगये, जैसे भाग्यहीनके सब उद्यम निष्फल होजाते हैं ॥ २८ ॥ हे मुने ! इसप्रकार मुनिके तिरस्कार करनेवाले

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कंदुकैः स्तनगौरवात् ॥ भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥ २६ ॥ इतस्ततो भ्रम दृष्टेश्चलंत्या अनुकन्दुकम् ॥ वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७ ॥ विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ॥ सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥ त इत्थमपकुर्वंतो मुनेस्तत्तेजसा मुने ॥ दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ २९ ॥ इतींद्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ॥ यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ॥ श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ ॥ तस्यैवं युञ्जत श्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥ तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ चतु र्भुजौ रौरववल्कलांबरौ ॥ पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥

मन्मथादिक मार्कण्डेयके तेजसे भस्म होनेलगे, तब तो भयभीत होकर वह अभागे भागनेलगे, जैसे बालक सर्पको जगाकर भागता है ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार पुरन्दरके अनुचारोके कियेहुए कर्त्तव्यको वृथा देखकर मार्कण्डेयजीके मनमें किसी प्रकारका अहंकार और विकार नहीं उपजा, सो इस बातका महात्मा पुरुषोमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ ३० ॥ गणोंसमेत कामदेवको निस्तेज देखकर और ब्रह्मर्षिका प्रभाव सुनकर इन्द्र अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुवा ॥ ३१ ॥ इसप्रकार तप, अध्ययन और संयमोसे मनको वशमें रखनेवाले भगवान्में जिनका चित्त लगरहा ऐसे मार्कण्डेयजी पर अनुग्रह करनेके लिये नर नारायण भगवान् वहाँ आनकर प्रगट हुए ॥ ३२ ॥ शुक्ल, श्याम, नवीन कमलसे

. द्वा. २६ ॥

सुंदर नेत्र, चतुर्भुज मृगचर्मवल्कलके वस्त्र, हाथमें कमण्डलु, जनेऊ सूधेबाँसके दण्डको धारण किये ॥ ३३ ॥ कमलकी माला, जीव जन्तु न मरजायँ उनको हटानेके लिये वस्त्रकी झाडू वेदको धरे. गौरवर्ण तेजधारी, बिजलीके समान प्रकाशवान्, सक्षात् मूर्त्तिमान, तपरूप शरीर, परम श्रेष्ठ, देवताओंके पूज्य दोनों ऋषीश्वर आये ॥ ३४ ॥ भगवतरूप नर नरायण ऋषीश्वरोंको देखकर, मार्कण्डेयजीने बहुत आदरपूर्वक उठकर दण्डके समान गिरकर दोनोंको दण्डवत् साष्टांग किया ॥ ३५ ॥ नर नारायणके दर्शनके आनंदसे बुद्धि, इंद्रिय, मनसे शांत हो और अंगमें प्रफुल्लित होनेसे और नेत्रोंमें जलभर आनेसे मार्कण्डेयजी भगवान्‌की ओर देखनेको समर्थ न हुए ॥ ३६ ॥ फिर सँभलकर खड़े हो, हाथ जोड नम्रता

पद्माक्षमालामुत जंतुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ॥ तपत्तडिद्वर्णपिशंगरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥ ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ॥ दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामांगेन दंडवत् ॥ ३५ ॥ स तत्संदर्शनानंदनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ॥ हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ॥ नमोनम इतीशानौ बभाषेगद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ॥ अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥ सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ॥ पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पंदते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ॥ स्पंदंति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजता मसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

और उत्कण्ठासे अलिंगन कर गद्गद वाणीसे केवल नमो नमो शब्द नरनारायणकी ओरको देखकर कहा ॥ ३७ ॥ फिर उन दोनोंको आसनपर बैठार, चरण पखार, अर्घ्यदे, चन्दन, धूप, मालासे पूजन किया ॥ ३८ ॥ सुखपूर्वक आसनपर बैठे प्रसन्नमुख, ऐसे दीनदयालु नर नारायणके चरणारविन्दोंमें मार्कण्डेयजीने फिर दण्डवत् करके यह वचन कहा ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे प्रभो ! मैं आपकी क्या स्तुति करूं? जिस आपकी प्रेरणासे ब्रह्मा, शिवके, सब प्राणीमात्रके और मेरेभी प्राण चेष्टा करतेहैं, उन प्राणोंके पीछे मन, वाणी, इन्द्रियें चेष्टा करतीहैं, तोभी आप अपने भजन करनेवालोंपर अधिक दया करते हो, क्योंकि आप दयाके सागर हैं; पिता आदिक तो इस शरीरकेही बन्धु हैं परन्तु आप सदैव इस आत्माके बन्धु हो ॥ ४० ॥

हे भगवन्! सदासे जैसे इस विश्वकी रक्षाके लिये आप अनेक प्रकारके स्वरूप धारण करते हो इसीप्रकार यह दो स्वरूप भी त्रिलोकीके मंगल करनेके निमित्त, सांसारिक तापोंके दूर करनेके अर्थ और मृत्युको जीतनेके लिये आपने धारण किये हैं, जैसे आप सृष्टिकी रक्षा करनेमें प्रसिद्ध हैं, ऐसेही विश्वके संहार करनेमें भी आप विख्यातहैं जैसे मकरी जालेको रचकर पीछे आपही निगल जातीहै ॥ ४१ ॥ स्थावर जंगमके रक्षा करनेवाले ईश्वर, आपके चरणारविंदोंका मैं भजन करताहूं जिन चरणारविंदके आश्रयसे मनुष्योंको कालकर्म गुणोंके मान्य तपादिकोंको कोई स्पर्श भी नहीं करसक्ते और बड़े बड़े वेदपाठी महात्मालोग जिन चरणारविंदोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ध्यान करतेहैं यजन करतेहैं और दिन रात स्तुति करतेहैं ॥ ४२ ॥ हे ईश अपवर्गमूर्त्ति! जिन प्राणियोंको चोरोंसे भय है उन प्राणियोके लिये आपके चरणकमलकी प्राप्तिसे अधिक मंगल और निर्भय

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ॥ नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥ तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरंघ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः स्पृशंति ॥ यद्वै स्तुवंति निनमंति यजंत्यभीक्ष्णं ध्यायंति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥४२॥ नान्यं तवांघ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितो भिय ईश विद्मः ॥ ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्ध्यधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥ तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ॥ देहाद्यपार्थमसदंत्यमभिज्ञमात्रं विंदेत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबंधो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ॥ लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशांत्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

स्थान हम और कोई दूसरा नहीं समझते, दो परार्द्धकी आयुर्बलवाला ब्रह्मा भी आपकी भृकुटीबंकरूप कालसे अतिशय भयभीत रहता है, उसके सृजेहुए प्राणी भयभीत हों तो इसमें,क्या आश्चर्य है? ॥ ४३ ॥ आत्माके आवरण करनेवाले तुच्छ, नश्वर निष्फल भी हैं, परन्तु सत्यसे दृष्टि आते हैं, ऐसे देहादिकोके भजनको छोडकर सत्य ज्ञान स्वरूप सब जीवोंके नियंता सबसे परे आपके उन चरणारविन्दोंको मैं भजता हूं, जो आपके चरणकमलके भजनेवाले हैं, उनको आपसेही सब अभिलाषा पूर्ण होती हैं ॥ ४४ ॥ हे ईश! सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, यह तीनों गुण आपकी मायाहीसे उत्पन्न हुए हैं और पालन, उत्पत्ति, संहारका कारण विष्णु आदि सब आपहीकी लीलामूर्त्ति हैं,

परन्तु उनमें जो सत्त्वगुणकी मूर्त्ति है वह मनुष्योंके मनको शान्त करनेवाली है और रजो तमो गुणवाली मूर्त्ति मनको शान्त नहीं करती बरन् दुःख, मोह और भय उपजानेवाली है ॥ ४५ ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मादिक देवता और भक्तलोग शुद्ध सत्त्व मूर्त्तिकाही भजन करते हैं और सत्त्व गुणकोही ईश्वर मानते हैं, रजोगुण तमोगुणमें प्रवृत्त नहीं होते और ज्ञानीलोग इसीलिये आपकी इस नरनारायण नाम सत्त्वमूर्त्तिका भजन करते हैं कि, जिस सत्त्वगुणके प्रभावसे पुरुष निर्भय और सुखी होकर तुम्हारे लोककी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ विश्वका गुरु, विश्वरूप सर्वोत्तम पुरुष देव शुद्धस्वरूप, वाणीके नियंता, वेदके प्रवर्त्तक भगवान् नरनारायण ऋषि आपको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ ४७ ॥ कपटरूप इन्द्रियोंके मार्गसे

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजंति ॥ यत्सात्त्वताः पुरुषरूपमुशंति सत्त्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चाऽन्यत् ॥ ४६ ॥ तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै ॥ नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥ यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः संतं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ॥ तन्मायया ऽऽवृतमतिः स उ एव साक्षादाद्यस्त्व तेऽखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥४८ ॥ यद्दर्शनं निगम आत्मरहः प्रकाशं मुह्यंति यत्र कवयोऽजपरा यतंतः ॥ तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वंदे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० मार्कण्डेयोपाख्याने नरनारायणस्तुतिर्नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

विक्षिप्त बुद्धिवाले और आपकी मायासे आवृत मतिवाले प्राणी, अपने हृदय आकाशमें, प्राणोंमें नेत्रोंमें, निरंतर विराजमान हों तोभी आपको नहीं जानते हे भगवन् ! आदि पुरुष अखिलके गुरु ब्रह्माको भी जब आपने अपने प्रकाशे वेद दिये, तब ब्रह्माको भी आपके साक्षात् रूपका ज्ञानहुआ ॥४८॥ रहस्यतत्त्वका प्रकाश करनेवाला आपके दर्शनका ज्ञान एक वेदहीके जाननेसे होताहै, इसीसे सांख्ययोगादिकोंकी रीतिसे यत्नके करनेवाले ब्रह्मादिक कवि सब आपके दर्शनको पाते हैं, निर्गुण, सगुणादिक सबके वचनके अनुकूलस्वभाव और देहादिकके अभिनिवेशसे गूढ तत्त्वज्ञानवाले महापुरुष आपको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां मार्कण्डेयतपोवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा–नववेंमें भगवानकी, माया परम अनूप ॥ बूड़त प्रलय समुद्रमें, देखेउ मुनि हरिरूप ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इस प्रकार स्तुति करनेसे नरके मित्र भगवान् नारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर मार्कण्डेय मुनिसे कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ ! मनकी एकाग्रतासे और तप अध्ययन संयमोंसे और अनपायिनी हमारी भक्तिसे तुम सिद्ध हुएहो ॥ २ ॥ हे मुने ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कर्मसे हम बहुत संतुष्ट हुए, वरदान देनेवालोंके ईश्वर हम तुमको वरदान देनेके लिये आये हैं, तुम मनवांछित वर मांगो, जो तुम्हारी इच्छा हो ! ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे देव ! हे ईश ! हे भक्तभयभंजन ! हे

सूत उवाच ॥ संस्तुतो भगवानित्थं मार्कंडेयेन धीमता ॥ नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भोभो ब्रह्मर्षिवर्योऽसि सिद्ध आत्मसमाधिना ॥ मयि भक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥ वयं ते परितुष्टाः स्म तद्बृहद्व्रतचर्यया ॥ वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जितं ते देव देवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ॥ वरेणैतावताऽलं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥ ४ ॥ गृहीत्वाऽजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ॥ मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षिगोचरः ॥ ५ ॥ अथाप्यंबुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ॥ द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

अच्युत ! आप जो वारम्वार वर देनेके लिये मुझसे कहते हो यह आप अपनी उत्कृष्टता (बड़ाई) प्रगट करतेहो । परन्तु मुझको किसी प्रकारके वरदानकी अभिलाषा नहीं, आपने जो मुझको दर्शन दिया यही महावरदान है, इससे अधिक और क्या वरदान होगा ? ॥ ४ ॥ योगकरके परिपक्व हुए मनसे, आपके स्वभावयुक्त चरणारविन्दके दर्शन पाकर प्राकृत पुरुष भी ब्रह्मादिक देवताओंके सदृश होकर कृतार्थ होतेहैं, सो आप साक्षात् मेरे नेत्रोंके आगे विरजमान हो, क्या इससे भी बढकर कोई और वरदान दोगे ? ॥ ५ ॥ हे कमलदललोचन ! हे पुण्यशिखामणी ! जो आपकी वरदेनेहीकी इच्छा है तो यह वर दीजिये कि, जिस आपकी मायासे लोकोंसहित लोकपाल मोहित होजाते हैं, उस अपनी मायाको

मुझे दिखाओ ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! इसप्रकार मार्कण्डेयसे स्तुति और वरदानका माँगना सुन भगवान् ईश्वर उन मुनिसे पूजित हो, मुसकाकर वही वर दे बद्रिकाश्रमको चलेगये * ॥७॥ तब मार्कण्डेयजी उस मायाके वरदानका चिन्तवन करनेलगे और अपने आश्रममें बैठकर अग्नि, सूर्य, जल, चन्द्रमा, पृथ्वी, पवन, आकाश और मनमें भगवान्का ध्यान करनेलगे ॥ ८ ॥ भावनारूपी द्रव्यसे नित्यप्रति भगवान्का पूजन किया करैं, कभी एक भक्तिके आवेशसे पूजाको भी भूलजाते ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! हे भृगुवंशियोमें श्रेष्ठ ! हे मुने !

सूत उवाच ॥ इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने ॥ तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेव चिंतयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ॥ वसन्नग्न्यर्कसोमांबुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥ ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ॥ क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९ ॥ तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुने ॥ उपासीनस्य संध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥ १० ॥ तं चण्डशब्दं समुदीरयंतं बलाहका अन्वभवन्करालाः ॥ अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनंत उच्चैरभिवर्षधाराः ॥ ११ ॥ ततो व्यदृश्यंत चतुःसमुद्राः समंततः क्ष्मातलमाग्रसंतः ॥ समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्त्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥

हे ब्रह्मन् ! एक दिन सन्ध्यासमय पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेयजी बैठे थे, वहाँ बड़ी भयंकर पवन चलने लगी ॥ १० ॥ महावेगसे प्रचण्ड शब्द होनेलगा, उस पवनके पीछे महाविकराल कालरूप प्रलयकीसी काली काली घटा चारो ओरसे उमड़ने लगीं, बड़े गम्भीर शब्दसे बिजली कड़कड़ाने लगीं, वज्रपात होने लगा, गजशुण्डके समान मोटी जलधारा वर्षने लगी ॥ ११ ॥ पवनके वेगसे पानीमें तरंगें उठने लगीं, पृथ्वी

* शंका–दुष्टलोगोंका लक्षण यह है कि, वात करते करते मुसका देते हैं और जो कोई मनुष्य उन दुष्टोंके स्थानपर जाय तो उनको आतादेखकर हँसते हैं और चलते समय भी वह दुष्ट मनुष्य उनके ठठे उड़ाते हैं, वह दुष्ट उनके घर जाँय तो भी हँसी करै, चलते समयभी हसी करते हैं, यह दुष्ट लोगोंकी पहिचानके लक्षण हैं, मार्कण्डेय मुनिके आश्रमसे नारायण जब अपने आश्रमको चले तब मुसकातेहुये क्यों चले ? बड़े मुनीश्वर होकर ऐसा बुरा कर्म क्यों किया ?

उत्तर–नारायणमुनिने विचार किया कि, मार्कण्डेयजी मायाका प्रभाव देखना चाहते हैं इनके मनमें ऐसा अभिमान है कि, मैंने मायाको तप करके जीत लिया है, ऐसा माया करके इनको मोह उपजाऊगा, जो यह युगानयुग भूलैंगे नहीं, ऐसा विचारके अपने मनमें नारायणमुनि मुसकाये, कुछ दुष्टकर्मसे नहीं मुसकाये।

डूबने लगी, उग्र ग्राह जहाँ तहाँ दिखाई देने लगे, महाभयानक भ्रमर जलमें पड़नेलगे, चारों और समुद्रकेसा अरअराहट होनेलगा ॥ १२ ॥ आकाशके अतिक्रम करनेवाले जलसे और महातीक्ष्ण पवनसे और अत्यंत दमकती हुई दामिनीसे चार प्रकारके जगत्को बाहर भीतरसे व्याकुल देख और पृथ्वीको पानीमें डूबीहुई निहारकर मुनि अपने मनमें घबराने लगे और विस्मय होकर त्रासको प्राप्त हुए ॥१३ ॥ मार्कण्डेय जीके देखतेदेखते तरंगें उठनेसे भयानक पवनसे चलायमान वर्षतेहुए मेघोंसे पूर्ण हो समुद्र सब ओरसे द्वीप, खण्ड, पर्वतोंसहित पृथ्वीको डुबाने लगा ॥ १४॥ भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, नक्षत्र, दिशाओं सहित त्रिलोकी जलमय,होगई, उस समय केवल एक मार्कण्डेयजी अवशेष रहे, सो वह

अंतर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् ॥ चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥ तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः ॥ आपूर्यमाणो वरषद्भिरंबुदैः क्ष्मामप्यधाद्द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥ सक्ष्मांतरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सहदिग्भिराप्लुतम् ॥ स एक एवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटाजडांधवत् ॥१५॥ क्षुत्तृट्परीतैर्मकरैस्तिमिंगिलैरुपद्रुतो वीचिनभस्वता हतः ॥ तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥ क्वचिद्गतो महावर्त्ते तरंगैस्ताडितः क्वचित् ॥ यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योऽन्यघातिभिः ॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ॥ क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८ ॥

इकलेही अपनी बड़ी बड़ी जटाओंको फैलाये, जड़ अन्धकी सदृश जलमें भ्रमने लगे ॥ १५ ॥ भूख और प्याससे पीडित, मकर और तिमिंगिलोंसे भयभीत, महाप्रचण्ड पवनके झकोरोसे और जलकी तीव्र तरंगोके प्रहारसे व्याकुल, अपार अन्धकारमें दिशाओंमें भ्रमण करते हुए, आकाश और पृथ्वीको नहीं जानते भये ॥ १६ ॥ कभी महागम्भीर भँवरोंमें उछलते डूबतेथे; कभी तरंगोंमें आनकर इधर उधर चलेजाते थे, कभी भूखे जल जन्तु उनको खानेके लिये परस्पर लड़ रहेथे ॥ १७ ॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी दुखः, कभी सुख, कभी मरण, कभी जीवन, कभी रोगादिकोंसे ग्रसितहो अनेक प्रकारके क्लेश पातेथे ॥ १८ ॥

नारायणकी मायासे आवृत चित्तवाले मार्कण्डेयजीको उस जलमें भ्रमते भ्रमते अयुतायुत सहस्रों सैकडों अर्थात् एक शंख १००००००००००००००० वर्ष बीत गये ॥ १९ ॥ तब उस महाप्रलयके समुद्रमें भ्रमते भ्रमते एक टापू दिखाई दिया, उस टापूमें फल फूलोंसे अत्यन्त शोभायमान एक वटका वृक्ष दृष्टि आया ॥ २० ॥ उस वृक्षके पूर्व उत्तर (ईशान) की कोणकी शाखाके पत्रके जोड़में सोता अपनी कान्तिसे अन्धकारको दूर करनेवाला एक बालक देखा ॥ २१ ॥ महामरकत मणिके सदृश श्यामवर्ण, अत्यन्त शोभायमान मुखारविन्द, शंखके तुल्य तीन रेखा ओंसे युक्त ग्रीवा, परमविशाल वक्षस्थल, सुन्दर नासिका और सुन्दर भौंहें हैं ॥ २२ ॥ श्वाससे काँपतीहुई अलकोंकी मनोहर छवि,

अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः ॥ न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥ प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ॥ शयानं पर्णपुटके ग्रसंतं प्रभया तमः ॥ २१ ॥ महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपंकजम् ॥ कंबुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुंदरभ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्वासैजदलकाभातं कंबुश्रीकर्णदाडिमम् ॥ विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥ पद्मगर्भारुणापांगं हृद्यहासावलोकनम् ॥ श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥२४॥ चार्वंगुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणांबुजम् ॥ मुखे निधाय विप्रेंद्रो धयंतं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनांबुजः ॥ प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशंकितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

भीतरकी ओरको शंखकी तुल्य आटी खाये हुए शोभित, कानोंमें दाडिमके फूलोंकी कली धरीं, विद्रुमसे अरुण अधरोंकी कान्ति सुधा सरस मन्दमुसकान ॥ २३ ॥ कमलकोशकेसे अरुण नेत्रोंके कोये, सुन्दर हास्ययुक्त चितवन, श्वास लेनेमें चलायमान, त्रिवलीसे शोभित, गम्भीर नाभि अत्यन्त शोभा देरही, पीपलके पत्रके समान सुन्दर उदर ॥ २४ ॥ अपने दोनों हाथोंकी उँगलियोंसे दाहिन चरणके अँगूठेको थाँमेंहुए मुखसे पीरहाथा, उस बालकको देखकर मार्कण्डेयजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २५ ॥ उसके दर्शनके आनन्दसे सब श्रम दूर होगया, हृदयकमल खिलगया, शरीर पुलकायमान होनेलगा इस अद्भुत प्रभावको देख मुनि अति सशंकित होकर बूझनेके लिये उस बालकके समीप गये ॥ २६ ॥

उस समय वह भृगुवंशी मार्कण्डेय मुनि उस बालकके मुखके समीप बूझनेको झुके, इतनेमें बालकने श्वास जो लिया उसके श्वासके संगही मच्छरकी नाईं बालकके मुखके मार्ग होकर उसकें उदरमें पहुँच गये, वहाँभी यह विश्व प्रलयसे पहिलेकी नाईं देखा उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो मोहित होगये ॥ २७ ॥ और वैसाही आकाश, भूमि, स्वर्ग, वृक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, पर्वत, समुद्र, द्वीप, खण्ड, दिशा, देवता, असुर, वन, देश, नदी, पुर, खान, किसानोंके ग्राम, गायोंके खरक, वर्ण, आश्रम और इन सबकी जीविकाको देखा॥२८॥पंच महाभूतोंके रचे प्राणी, युग, अनेक पदार्थ और कल्पोंकी कल्पनाकरानेवाला काल और भी जो जो व्यवहारोंके कारणथे वह सब उस बालककी सत्तासे सत्यसे प्रतीत होते मार्कण्डेयजीने देखे॥२९॥ घूमते

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोंतःशरीरं मशको यथाऽविशत् ॥ तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुराऽमुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७ ॥ खं रोदसी भगणानद्रिसागरान्द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् ॥ वनानि देशान्सरितः पुराकरान्खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥ महांति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ॥ यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं स दिवावभासितम् ॥ २९ ॥ हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत ॥ विश्वं विपश्यञ्छ्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥ तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ॥ तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपांगनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥ अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ॥ अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

घूमते हिमालयमें पहुँचगये, वहाँ पुष्पभद्रा नाम नदी और अपना आश्रम और उसमें रहनेवाले ऋषि और मुनियोंकोभी देखा तब "मार्कण्डेयजीने अपना स्थान जानकर रहनेका विचार किया, परन्तु मनमें यही सन्देह कि, यह क्या मायाहै" मार्कण्डेयजी यह विचार करही रहेथे इतनेमें बालकने ऊर्ध्व श्वास जो लिया तो फिर मुखसे बाहर निकलकर उसी प्रलयरूप समुद्रके जलमें आन पड़े॥३०॥फिर वहाँ वही पृथ्वीका टापू और वही वटका वृक्ष और वही बालक उस वटके पत्तेपर सोताहुवा देखा और उस बालकनेभी प्रेमरूप सुधासरस मन्द मुसकानसहित बाँकीचितवनसे मुनिकी ओरको देखा॥३१॥ तब तो मनको मोहित करनेवाले बालकको दोनों नेत्रोंसे देखकर लज्जितहो अत्यन्त क्लेश मान मार्कण्डेयजी उन अधोक्षज भगवान्‌के

आलिंगन करनेके लिये उनके सन्मुख धाये ॥ ३२ ॥ इतनेमें वह बालरूप साक्षात् योगके ईश्वर सर्वान्तर्यामी भगवान् मार्कण्डेयजीके देखते २ अंतर्धान होगये जैसे हरिविमुखोंकी क्रिया लोप होजाती है ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन्! तब तो उस वटवृक्ष और प्रलयके जलसे लोकोंके डूबनेका चिह्न भी न रहा क्षणमात्रमेंही सब अन्तर्हित होगये और मार्कण्डेयजी पहिलेकी नाईं अपने आश्रममें बैठगये ॥ ३४ ॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–कह दशम अध्यायमें, शिवागमन मुनिधाम ॥ अति प्रसन्न हो वरदिये, शिव अरु शिवकी वाम ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, मार्कण्डेयजी नारायणसे निर्मित योगमायाके वैभवका ऐसा अद्भुत चरित्र देखकर भगवान्‌की शरणमें आये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे ईश्वर! शरणागतोंके अभयदान देनेवाले, आपके चरणारविन्दकी मैं शरण आया हूं देखो! ज्ञानसी प्रकाशमान आपकी मायासे

तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ॥ अंतर्दधे ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥ तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः ॥ तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वादश० वटपत्रे शिशुदर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥ वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ प्रपन्नोऽस्म्यंघ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ॥ यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यंति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ॥ रुद्राण्या भगवानुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ॥ पश्येमं भगवन् विप्रं निभृतात्मेंद्रियाशयम् ॥ ४ ॥ निभृतोदझषव्रातं वातापाये यथार्णवम् ॥ कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥

बड़े बड़े पंडित ज्ञानीभी मोहित होजाते हैं, क्योंकि अपने तप और पुरुषार्थके घमण्डमें आपका भजन नहीं करते वह मेरी समान मायारूप समुद्रमें उछलते डूबते रहतेहैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि, एक दिन बैलपर चढे भवानीको संगलिये भगवान् महादेवजी आकाशमें गणोंमे वेष्टित पर्यटन करते फिरते थे कि, पुष्पभद्रानदीके निकट एकाग्रचित्तवाले मार्कण्डेय मुनिको बैठा देखा ॥ ३ ॥ शैलनन्दिनी भवानी मार्कण्डेयजीको देखकर शिवजीसे बोलीं कि, हे भगवन्! जैसे पवन न चली होय उससमय समुद्रका जल और जलजन्तु आदि निश्चल रहतेहैं, ऐसेही इसके अंग, इन्द्रिय और मन निश्चल होगये हैं, ऐसे इस विप्रको देखो और इसके तपका फल इसको दो, क्योंकि तुम सब सिद्धियोंके दाता हो ॥ ४ ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि, हे पार्वती ! अव्यय अविनाशी आदिपुरुष भगवान्में प्रेमलक्षणा भक्ति होनेसे यह ब्रह्मऋषि मोक्षपर्यन्त
कामनाको भी नहीं चाहता ॥ ६ ॥ तो भी हे भवानी ! इस साधु पुरुषसे कुछ सुख संवाद करेंगे, क्योंकि मनुष्योंमें साधुपुरुषोंका समागम
होना परमलाभदायक है ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! सर्व मुनि और साधुओंकी गति जाननेवाले, सर्वविद्याओंके और सम्पूर्ण जीवोंके
ईश्वर भगवान् शिवजी पार्वतीसे यह बात कहकर मार्कण्डेयजीके सन्निकट गये ॥ ८ ॥ अन्तःकरणकी वृत्तियोंके रोकनेके कारण मार्कण्डेयजीको
अपने आत्मा और विश्वकी ओर कुछ ध्यान नहीं था, इसलिये साक्षात् ईश्वर और विश्वात्मा विश्वनाथ महादेव और पार्वतीके शुभागमनकोभी

श्रीभगवानुवाच ॥ नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ॥ भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥ अथापि
संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ॥ अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तमुपेयाय
भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥ तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ॥
न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरिशो योगमायया ॥ अविशत्तद्गुहाकाशं वायु
श्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥ आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिंगजटाधरम् ॥ त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यंतमिव भास्करम् ॥
॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मांबरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ॥ अक्षमालाडमरुककपालपरशुं सह ॥ बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य
हृदि विस्मितः॥१२॥ किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ॥ १३ ॥

उन्होंने नहीं जाना ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय ऋषिको समाधिनिष्ठ जानकर पवन जैसे छिद्रमें घुस जाता है, ऐसेही कैलासपति भगवान् महादेवजीने योग
माया करके मुनिके हृदयाकाशमें प्रवेश किया ॥१०॥ तीन नेत्र,दश भुजा,ऊँचा शरीर, बिजुली सदृश पीत जटाओंको धारण किये,प्रातःकालके
सूर्यके समान शोभायमान तेजस्वी ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मके वस्त्र पहिने, त्रिशूल, धनुष, बाण, खड्ग, ढाल, डमरू, रुद्राक्ष, कपालमाला और परशु
हाथमें लिये, शिवजीको अकस्मात्ही हृदयमें प्रकाशमान देख अत्यन्त विस्मित होकर बोले ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्य है ! यह कौन हैं ! कहाँसे
आये ! इस विचारही विचारमें मुनिकी समाधि निवृत्त होगई, तब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती और गणोंसहित शिवजी सन्मुख खड़े हैं ॥ १३ ॥

त्रिभुवनका प्रधानगुरु शिवजीको समझकर मार्कण्डेयजीने मस्तक नवाकर नमस्कार किया, भले आये महाराज, यह कह आसन दे, चरणामृतले, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप, दीपादिसे गण और गिरिजासहित शिवजीका पूजन किया ॥ १४ ॥ और फिर कहा कि, हे विभो ! हे ईश ! हे नाथ ! आप तो अपने प्रभावहीसे पूर्णकाम और विश्वके आनन्ददाता हो मैं अपका क्या पूजन करूं ? ॥ १५ ॥ आप निर्गुण शान्त, सत्त्वके अधिष्ठाता सबके परमसुखदाता और रजोगुण तमोगुणके धारण करनेवाले होकर भी अघोर हो, सो मैं आपको वारम्वार नमस्कार करूं हूं ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनिने स्तुति की, तब संतुष्ट हृदयवाले, महात्मा पुरुषोंके शरणरूप आदिदेव

रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ तस्मै सपर्यां व्यदधात्सगणाय सहोमया ॥ स्वागतासनपाद्यार्घगंधस्रग्धूपदीपकैः ॥१४॥ आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ॥ करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥१५॥ नमः शिवाय शांताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ॥ रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे॥१६॥सूत उवाच॥एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः॥परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत॥१७॥श्रीभगवानुवाच॥वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः॥ अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विंदतेऽमृतम्॥ १८ ॥ ब्राह्मणाः साधवः शांता निःसंगा भूतवत्सलाः ॥ एकांतभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ १९ ॥ सलोका लोकपालास्तान्वंदंत्यर्चंत्युपासते ॥ अहं च भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥ २० ॥ न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ॥ नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥ २१ ॥

विश्वनाथ प्रसन्न होकर हास्यपूर्वक मुनिसे कहनेलगे ॥१७॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे मुने ! तुम हमसे मन वांछित वर माँगो ? क्योंकि हम तीनों वरदेनेवालोंके ईश्वर हैं, हमारा दर्शन तीनों देवताओंको अमोघ है, जो जिस कार्यके लिये भजता है उसका कार्य सफल होता है और मरणधर्माओंको मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण, साधु, सन्त, शान्तचित्त, रागरहित सब प्राणियोंपर दया रखनेवाले हमारे पूर्ण भक्त, वैरभावरहित, समदर्शी हैं ॥ १९ ॥ उनका लोकोंसहित लोकपाल और देवता वन्दन करते हैं, पूजते हैं और दिनरात सेवन करते हैं बस इतनाही न समझना. जो सबके अधिष्ठाता विष्णु, ब्रह्मा और हम उनका सेवन करते हैं ॥२०॥ आपकी समान ब्राह्मण हममें, विष्णुमें, ब्रह्मामें अपने आत्मा और लोकोंमें किंचि

न्मात्र भी भेददृष्टि नहींरखते, इसीलिये हम आपका निरन्तर भजन करते हैं ❀ ॥२१॥ जलमें क्या तीर्थ नहीं हैं? क्या मूर्तियोंमें देवता नहीं हैं? निश्चय हैं परन्तु वह तत्काल फल नहीं देते, बहुतकाल करके पवित्र करते हैं और हे महाराज! आपसरीखे महात्मा तो दर्शनहीसे पवित्र करते हैं ॥२२॥ चित्तकी एकाग्रता, तपस्या, स्वाध्याय, संयम, वेदत्रयी, यम, हमारे रूपको जो ब्राह्मण धारण करते हैं, उनको हम भी नमस्कार करते हैं ॥२३॥ जब कि, आपके श्रवण अथवा दर्शनसे महापातकी और चाण्डाल भी शुद्ध और पवित्र होजाते हैं, तब आपके संभाषणसे शुद्ध हो तो उसमें कहनाही क्या है?

न ह्यम्मयानि तिर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २२ ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येस्मद्रूपं त्रयीमयम् ॥ बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २३ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोपि वः ॥ शुध्येरन्नंत्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् ॥ वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २५ ॥ स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ॥ शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत् ॥ २६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ॥ यन्नमंतीशितव्यानि स्तुवंति जगदीश्वराः ॥ २७ ॥

॥२४॥ सूतजी बोले कि, इसप्रकार चन्द्रभाल शिवजीके गूढ धर्ममय अमृतरूप वचनोंको श्रवणद्वारा पान करके मार्कण्डेयजी तृप्त न हुए ॥ २५ ॥ नारायणकी मायासे बहुत दिनतक भ्रमण करते और क्लेशपाते मार्कण्डेयजीने शिवजीकी सुधारूप मधुरवाणीसे सम्पूर्ण क्लेशोंके समुदायसे निवृत्त होकर भवानीपतिसे यह वचन कहा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले अहो! यह विष्णु भगवान्के चारित्र प्राणियोंके जाननेमें आने बहुत कठिन हैं,

---

❀ शंका—मार्कण्डेय मुनिने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवसे बूझा नहीं कि, तुम तीनों देवताओंमें कौन बडा कौन छोटा है। कि तुम तीनों एकसे हो, फिर बिना बूझे शिवजीने क्यों कहा कि, हे मार्कण्डेय! ब्रह्मामें विष्णुमें और मुझमें कुछ भेद नहीं हम तीनों देव एक ही हैं, यह हमको सन्देह है।

उत्तर—मार्कण्डेयजीके मनमें यह सन्देह था कि, तीनों देवोंमें कौन बडा है और कौन छोटा है. परन्तु लज्जाके मारे बूझ नहीं सके थे, तब महादेवजी मार्कण्डेयके हृदयकी शान्ति होनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एक स्वरूपकी कथा कहने लगे।

क्योंकि आप त्रिलोकीके ईश्वर होकर अपनी शरणागत रहनेवाली प्रजागणकी स्तुति करके उनको नमस्कार करते हो ॥ २७ ॥ मुझको तो ऐसा जान पड़ता है कि, ईश्वर भी धर्मके उपदेष्टा होकर धर्मके ग्रहण करानेके लिये प्राणियोंके आचरणोंकी स्तुति और अनुमोदन करते हैं और आप भी उनहीं आचरणोंको करतेहैं ॥ २८ ॥ आप अपनी मायामय वृत्तियोंसे और लोकोंको नमस्कारादि किया करते हैं, इससे आपकी महिमामें किसी प्रकारका दोष नहीं लगता, क्योंकि जैसे नट नाटकके विषे दूसरा रूप धारण करनेके अपने पुत्र, पौत्र और दास दासियोंको दण्डवत् प्रणाम करताहै, और दीन वचन कहताहै, उस दीनता और दण्डवत् करनेसे उसकी महत्तामें किसीप्रकारका लांछन नहीं लगसक्ता ऐसेही आपको भी किसीप्रकारका दोष नहीं लगता ॥ २९ ॥ जो ईश्वर आपही अपने मनसे गुणोंके द्वारा इस सृष्टिको रचकर उसमें आप प्रवेश होकर कर्त्ताके

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ॥ आचरंत्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवंति च ॥ २८ ॥ नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ॥ न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥२९॥ सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ॥ गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तृवत्स्वप्नदृग्यथा ॥ ३० ॥ तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ॥ केवलायाऽद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३१ ॥ कं वृणे नु परं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् ॥ यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥ ३२ ॥ वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् ॥ भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ॥ तमाह भगवाञ्शर्वः शर्वया चाभिनंदितः ॥ ३४ ॥

समान जान पड़ताहै, जैसे स्वप्नमें कोई पुरुष नया नगर बनाकर उसमें आप प्रवेश होकर कर्त्ताहीके सदृश प्रतीत होताहै ॥३०॥ ऐसे त्रिगुणोंके नियन्ता शुद्धरूप अद्वितीय सबके गुरु ब्रह्ममूर्त्ति आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ३१ ॥ हे सर्वोत्तम ! हे भगवन् ! आपका दर्शन मुझको हो गया, अब इससे अधिक और क्या वर है ? जो मैं आपसे माँगू जिस मनुष्यपर आपकी कृपादृष्टि होती है, उस पुरुषके सब काम सत्य और पूर्ण होजाते हैं ॥ ३२ ॥ तोभी जो आप पूर्णकाम और भक्तोंकी कामनाओंको वर्षानेवाले हो तो मैं आपसे इतना वरदान मांगूहूं, सो वह वरदान यह है कि, अच्युत भगवान्में और उनके भक्तोंमें और उसीप्रकार आपके चरणकमलमें मेरी निश्चल भक्ति रहै ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले

कि, जब इस प्रकार शिवजीकी स्तुति और पूजा मार्कंण्डेयजीने की तब भगवान् महादेव और गिरिराजकुमारी अतिप्रसन्न हो मुनिसे कहनेलगे ॥ ३४॥ हे महर्षि ! आपके सब मनोरथ पूर्ण होंगे क्योंकि आप तो पहिलेहीसे अधोक्षज भगवान्‌के भक्तहो, आपका यश और पुण्य कल्प कल्पान्तर अखंड हो और सदा आप अजर अमर रहें ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम त्रिकालज्ञ होहु और विज्ञान सहित पूर्ण वैराग्य होय, ब्रह्मतेजमें पूर्ण और पुराणाचार्य भी होहुगे ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले कि, इसप्रकार मुनिको वर देकर मुनिके पिछले चरित्र जो कुछ भगवान्‌की मायाके वैभव देखेथे सो सब वृत्तान्त त्रिलोचन महादेवजी भवानीसे कहते हुए चले गये ॥३७॥ परमयोगकी महिमाको पाकर विष्णु भगवान्‌की एकान्त भक्तिसे

कामस्तेऽयं महर्षेऽस्तु भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ॥ आकल्पांताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३५ ॥ ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन्विज्ञानं च विरक्तिमत् ॥ ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यताऽस्तु ते ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वरान्स मुनये दत्त्वाऽगात्त्र्यक्ष ईश्वरः ॥ ॥ देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरामुना ॥ ३७ ॥ सोप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ॥ विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकांततां गतः ॥ ३८ ॥ अनुवर्णितमेतत्ते मार्कंडेयस्य धीमतः ॥ अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ३९ ॥ एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः ॥ अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४० ॥

भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अबतक पृथ्वीपर विचरते हैं ॥ ३८ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने भगवान् वासुदेवकी अद्भुत माया वैभव आदि जो देखी सो मार्कण्डेयजीका पवित्र चरित्र आपके सन्मुख वर्णन किया ॥ ३९ ॥ सृष्टिके जो उत्पत्ति प्रलय आदिक होते रहते हैं, वह सब आदि पुरुष भगवान्‌कीही माया है कोई कोई मूर्ख लोग इस बातको नहीं जानते मार्कण्डेयजीने जो यह मायाका वैभव देखा सो केवल भगवदिच्छासे देखनेमें आया, कुछ प्राकृतिक वा नैमित्तिकमेंका यह कोई प्रलय नहीं था और अज्ञानीलोग अबतक उसे अनादि कालके समान सातवारका हुवा नैमित्तिक प्रलयही समझ रहेहैं इसीसे मार्कण्डेयजीकी सात कल्पकी अवस्था संसारमें विख्यात है,परन्तु यह सम्पूर्ण भ्रान्तिहै और जो मायाके वेत्ता हैं

वह उसकालको निमेषमात्र कहते हैं, अर्थात् मायाका कौतुक देखाथा वह सब एक क्षणमात्रका था॥४०॥ हे भृगुवंशियोंमें उत्तम ! भगवान्के प्रभाव युक्त मार्कंडेयका यह चरित्र जो कोई प्रेम प्रीति एकाग्र चित्त हो सुने सुनावेगा उन दोनोंको कर्मवासनायुक्त संसारकी माया न व्यापैगी ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां शिववरदान नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ इस ग्यारह अध्यायमें, महापुरुषका ध्यान ॥ भिन्न भिन्न प्रतिमासमें, व्यूह सूर्य भगवान् ॥ १ ॥ शौनकादिक बोले कि, हे भागवतोंमें श्रेष्ठ महामुनि सूतजी ! आप सर्व तंत्र शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता हो इसलिये हे बहुज्ञाता ! महात्माओंमें मुकुटमणि हम आपसे यह प्रश्न करतेहैं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वतंत्रोंके उपासक

य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथांगपाणेरनुभावभावितम् ॥ संश्रावयेत्संशृणुयादुताप्युभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥४१॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वा० मार्कंडे० शिवदत्तवरदानं० दशमोऽध्यायः ॥१०॥ शौनक उवाच ॥ अथेममर्थं पृच्छामो भवंतं बहुवित्तमम् ॥ समस्ततंत्रराद्धांते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥ तांत्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः ॥ अंगोपांगायुधाकल्पं कल्पयंति यथैव यैः ॥ २ ॥ तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् ॥ येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नमस्कृत्वा गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ॥ याः प्रोक्ता वेदतंत्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥ ४ ॥

केवल हरि भगवान्की परिचर्या विषे अंग अर्थात् पादादिक, उपांग, गरुड़ादिक, आकल्प चक्रादिक, अलंकार कौस्तुभादिक, आभूषणोंकी रचना जिस जिस भाँति कल्पना करते ॥ २ ॥ उस क्रियायोगके जाननेकी हमारी इच्छा है, जिसकी निपुणतासे मरणधर्मा पुरुष अमरत्वको प्राप्त होजॉय, हे सूतजी ! आप उस विद्याके जाननेवाले हैं, सो अनुग्रह करके हमको बतलाइये ? आपका कल्याण होगा ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, गुरुओंको नमस्कार करके विष्णुभगवान्की विभूतियोंका वर्णन करूंगा, जिन विभूतियोंका वर्णन ब्रह्मादिक देवताओंनेभी

वेद और तंत्रोंमें वर्णन कियाहै ❀ ॥ ४ ॥ मायारूप महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच तन्मात्रा इन नौ तत्त्वोंसे ग्यारह इन्द्रिय पंचमहाभूतरूप यह विराट् शरीर ब्रह्माण्ड उत्पन्नहुवा कि,जिस चैतन्यसे अधिष्ठित ब्रह्माण्डमें पृथ्वीआदि सब लोक देखनेमें आतेहैं,इन्ही पृथ्वीआदि लोकोंसे भगवान्‌के अंगोंकी पूजा करनेमें आती है ॥ ५ ॥ इस ब्रह्माण्डको भगवान्‌में कल्पित होनेके कारण भगवान्‌का देहरूप मानकर उसमें पृथ्वीको चरण रूप, स्वर्गको मस्तकरूप, अन्तरिक्षको नाभिरूप, सूर्यको नेत्ररूप, पवनको नासिकारूप, दिशाओंको कानरूप ॥ ६ ॥ प्रजापतिको शिश्नेन्द्रियरूप, मृत्युको गुदेन्द्रियरूप लोकपालोंको भुजारूप, चन्द्रमाको मनरूप, यमको भ्रुकुटीरूप ॥ ७ ॥ लज्जाको ऊपरके ओष्ठरूप, लोभको नीचेके ओष्ठरूप,

मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् ॥ निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥ एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः ॥ नाभिः सूर्योक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥ प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः ॥ तद्बाहवो लोकपाला मनश्चंद्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥ लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दंता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः ॥ रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्द्धजाः ॥ ८ ॥ यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः ॥ तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥ कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ॥ तत्प्रभाव्यापिनी साक्षाच्छ्रीवत्समुरसा विभुः ॥ १० ॥

चाँदनीको दाँतरूप, भ्रान्तिको हास्यरूप, वृक्षोंको रोमरूप और मेघोंको केशरूप कल्पना करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे ब्रह्माण्डरूपका धूप, दीप, चन्दनादिसे पूजन और ध्यान एकबारमें नहीं बनसक्ता; इसलिये पाषाण,धातु आदिकी प्रतिमामें उस विराट् देहकी और अवयवोंकी कल्पना कर उसका पूजन और ध्यान ठीक ठीक करनेमें आता है, इस ब्राह्मण्डरूप पुरुषका जो प्रमाण है जैसी स्थिति है, वह प्रमाण और वह स्थिति भगवान्‌की छोटी मूर्त्तिमें भी जानी जाती है, इसलिये मूर्त्तिमें भगवान्‌का पूजन करते हैं ॥ ९ ॥ मूर्त्तिमें जो प्रभुने कौस्तुभमणि धारण की है, यही शुद्ध चैतन्य धारण

❀ शंका–बडे आश्चर्यकी बातहै कि, सूतजी कहते हैं कि, अब अपने गुरुको दण्डवत् करके विष्णुकी विभूति ऐश्वर्य में वर्णन करता हू यह मुझको सशय है कि, पहिले स्कन्धसे बारहवें स्कन्धके ग्यारह अध्यायतक विष्णुकी विभूतिका वर्णन नहीं हुवा ? फिर किसकी विभूतिका वर्णन पहिले हुवा ? यह सन्देह मेरे मनको स्थिर नहीं होने देता ?

उत्तर–पहिले ऐसा वर्णन हुवा है तीन लोक चौदह भुवन चराचर यह सब ईश्वरका स्वरूपहै, इसलिये विष्णुरूप जो सम्पूर्ण ससार है उनकी विभूतिका वर्णन हुआ है और अब अकेले भगवान्‌की महिमा और चरित्रोंका वर्णन होगा, इसलिये सूतने कहाया कि, अब हम भगवान्‌की विभूतिका वर्णन करतेहैं ।

किया है,ऐसा मान रक्खा है और प्रतिमाके वक्षस्थलमें श्रीका चिह्न है,उनकी प्रभासे व्याप्त जीव है॥ १०॥उनकी मायाही अनेक गुणमयी वनमाला है, और वेदही साक्षात् पीताम्बर है और अकार, उकार मकाररूप त्रिमात्रावाला ओंकारही यज्ञोपवीत है ॥ ११॥ सांख्ययोग और योग यह दोनों मकराकृत कुण्डल हैं, सब लोकोंसे नमस्कृत और अभयदायक ब्रह्मलोक मुकुटमणि है ॥१२॥ वसुधाके आधाररूप शेष भगवान् हैं, वह अनंत नामसे प्रसिद्ध हैं, वही नारायणके विराजनेका कमलासन है और कोई कोई विद्वान् लोग ऐसा भी कहतेहैं, अनेक रंगकी जो परमेश्वरकी माया है, वह मायाही अनंत आसन है; कोई कहते हैं, धर्मज्ञानादिसहित सतोगुण कमलासन है॥ १३ ॥ इन्द्रियोंकी निपुणता, मनका उत्साह,

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ॥ वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥ ११ ॥ बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ॥ मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम् ॥ १२ ॥ अव्याकृतमनंताख्यमासनं यदधिष्ठितः ॥ धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥ ओजःसहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ॥ अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥ नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ॥ कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यंदनम् ॥ तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥ मंडलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः ॥ परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥ भगवान्भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ॥ धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥

शरीरके बल सहित प्राणही विराट्स्वरूपकी गदा है, जलका तत्त्वही शंख है तेजका तत्त्वही सुदर्शनचक्र है ॥ १४ ॥ आकाशही नीलवर्ण बिजली युक्त झमझमाताहुवा खड्ग है आकाशरूप तत्त्व जो अन्धकार है वही ढाल है कालही शार्ंगधनुष है और कर्मही बाणोंसे भराहुवा तूणीर (तरकस) है॥१५॥ इन्द्रियेंही भालवाले बाण हैं, मनही रथ है, तन्मात्राही इस रथकी चाल है, अभयवरदानकी देनेवाली क्रियाही विराट्पुरुषकी मुद्रा है ॥ १६ ॥ सूर्य, अग्नि, चन्द्रमण्डलपर पुरुष भगवान्की पूजा करनेका स्थान है गुरुकी दी हुई जो मंत्रदीक्षा है, वही पूजन करनेवालोंका संस्कार है, भगवान्की परिचर्याही आत्माके पापोंको नाश करनेवाली है ॥ १७ ॥ छःप्रकार भगवत् शब्दका अर्थ लीलाकमल है. धर्म, यश,दोनों

चामर और वीजना हैं ॥१८॥ हे द्विजो ! छत्र धारण करनेका निर्भय धाम वैकुण्ठ है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदही यज्ञपुरुष भगवान्का वाहन गरुड़ है ॥ १९ ॥ साक्षात् भगवती लक्ष्मी जो भगवान्के पार्श्वमें विराजमान हैं, वह हरिकी अनपायिनी शक्ति हैं, पार्षदोंमें अधीश्वर जो मुख्य विष्वक्सेन हैं वही तंत्रशास्त्रकी मूर्त्ति है, अणिमादिक अष्टसिद्धियां जो हैं, वह नंदादिक भगवान् वैकुण्ठविहारीके द्वारपाल हैं ॥२०॥ हे ब्रह्मन् ! वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यही श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी चार मूर्त्ति परमपवित्र हैं ॥ २१ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, चार अवस्थाओंसे और इनके कारण विषय, मन, अज्ञान और ज्ञानसे भगवान् जाने जाते हैं, यही भावना ईश्वरसम्बन्धी है॥२२ ॥ अंग, उपांग, चरणादिक

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाऽकुतोभयम् ॥ त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥ अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ॥ विष्वक्सेनस्तंत्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥ २० ॥ नन्दादयोऽष्टौ द्वास्थाश्च तेऽणिमाद्या हरे र्गुणाः ॥ वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ॥ अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोभिधीयते ॥ २१ ॥ स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ॥ अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ २२ ॥ अंगोपांगायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ॥ बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥ द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत् ॥ सृजति हरति पातीत्याख्ययाऽनावृताक्षो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलक्ष्यः ॥२४॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविंद गोपवनिताव्रजभृत्यगीत तीर्थश्रवः श्रवणमंगल पाहि भृत्यान् ॥२५॥

चार भुजावाली मनोहर मूर्त्ति, गरुड़ादिक, आयुध, आकल्प, अलंकार इन चारोंसे संयुक्त, चतुर्मूर्त्ति भगवान् हरि ईश्वर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय इन चारो अवस्थाओंको धारण करते हैं, जो पुरुष इन चारों मूर्त्तियोंका ध्यान धरते हैं, उनको भगवान् वासुदेव चार फल देतेहैं ॥२३ ॥ हे द्विजोत्तम ! भगवान् वेदके कारण स्वयंद्रष्टा स्वमहिमासे परिपूर्ण, अपनी मायाहीसे सब जगत् उत्पन्न करते हैं, सँभारते हैं और नष्ट करते हैं, क्योंकि ईश्वर सबके अंतर्यामी हैं ॥२४॥ जिन मनोहर मूर्त्तियोंकी उपासना कही अब उनकी सूतजी स्तुति करते हैं। हे श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अर्जुनके प्रिय सखा ! हे यदुकुल

भूषण ! वसुधाके द्रोही राजाओंके वंशके विध्वंस करनेवाले हे अग्निरूप ! एकरस पराक्रमी हे गोविंद ! हे श्रवणमंगल ! हे गोपवनिताओंके समुदाय और नारद भृत्यादिकोंसे पवित्र यश गायेहुये ! तीर्थोंके समान पवित्र कीर्तिवाले ! हे हरि ! हे विश्वभगवान् ! हे वैकुण्ठविहारी ! हमारी इस कालरूप संसारसे रक्षा करो ॥ २५ ॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्त हो महापुरुष भगवान्के इन लक्षणोंको चित्तमें रखकर ध्यान करेगा वह पुरुष सर्व घटवासी वासुदेवभगवान्को अपने हृदयमें विराजमान देखेगा ॥ २६ ॥ शौनकादिक बोले कि, हे सूतजी ! मूर्त्तियोंके विषयमें जो व्यूह आपने कहा उनको सुनकर हमको सूर्यके व्यूह सुननेकी अभिलाषा हुई, और राजा परीक्षित्से श्रीशुकदेवजीने (पंचमस्कन्धमें) वर्णन किया था कि "गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, दैत्य, ऋषि और देवता, इन सात सातका सूर्यसम्बन्धी गण मास मासप्रति कहा है" इन गणोंके नाम

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् ॥ तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥ शौनक उवाच ॥ शुको यदाह भगवान्विष्णुराताय शृण्वते ॥ सौरो गणो मासिमासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७ ॥ तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ॥ निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्त्तते ॥ २९ ॥ एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मा दिक्कृद्धरिः ॥ सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥ ३० ॥ कालो देशः क्रिया कर्ता कारणं कार्यमागमः ॥ द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः ॥ ३१ ॥

और इनके स्वामी सूर्योंके नाम और कर्म हमको सुनाओ। क्योंकि सूर्यनारायणभी नारायणहीका स्वरूप है, इसलिये उनका व्यूह श्रवण करनेकी हमारी श्रद्धा है ॥ २७ ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि, सर्वत्र जीवमात्रकी आत्मा विष्णु भगवान्की माया है, उस अनादि मायासे रचत सब लोकोंकी सीमामें प्रवृत्त करानेवाले यह सूर्यनारायण लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं ॥ २९ ॥ सब लोकोंके आत्मा और आदि कर्त्ता जो विष्णु भगवान् हैं वही प्रगटरूपसे सूर्यनारायण हैं, और यह भगवान्ही सब वेदोंकी क्रियाओंका कारण हैं इसीसे ऋषि लोग उन उन क्रियाओंसे नाना प्रकारका कहते हैं ॥ ३० ॥ हे शौनक ! भगवान्ही सब कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये मायाके संग, काल, देश, क्रिया, कर्त्ता, अनुष्ठान, यजमान, साधन,

यज्ञादिक, मंत्र, हविष्य यह नौ प्रकार हरिकी मायासे इसप्रकार कविलोग कहते हैं ॥ ३१ ॥ कालरूप सूर्य भगवान् चैत्रादिक, बारहों मास लोकोंके कर्मोंके विषे प्रवृत्त करनेको अपने गणोंको साथ लिये अलग अलग द्वादशरूप धारण किये घूमते रहते हैं ॥ ३२ ॥ चैत्रके महीनेमें कृतस्थली नाम अप्सरा, हेतिनाम राक्षस, वासुकी नाग, तुम्बुरू गन्धर्व, रथकृत् यक्ष, पुलस्त्य नाम ऋषि, इनके साथ धातानाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३३ ॥ वैशाखमें पुञ्जिकस्थली नाम अप्सरा, प्रहेति नाम राक्षस, कच्छनीर नाम नाग, नारद नाम गन्धर्व, अथौजा यक्ष, पुलह ऋषि, इनके साथ अर्यमा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठ मासमें मेनका नाम अप्सरा, पौरुषेय नाम राक्षस, तक्षक नाम नाग, हाहा नाम गन्धर्व

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ॥ लोकतंत्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥ ३२ ॥ धाता कृतस्थली हेति र्वासुकी रथकृन्मुने ॥ पुलस्त्यस्तुंबुरुरिति मधुमासं नयंत्यमी ॥ ३३ ॥ अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुंजिकस्थली ॥ नारदः कच्छनीरश्च नयंत्येते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥ मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ॥ रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयंत्यमी ॥ ३५ ॥ वसिष्ठो वरुणो रंभा सहजन्यस्तथा हुहूः ॥ शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयंत्यमी ॥ ३६ ॥ इंद्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथांगिराः ॥ प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयंत्यमी ॥ ३७ ॥ विवस्वा नुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ॥ अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयंत्यमी ॥ ३८ ॥ पूषा धनंजयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा ॥ घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥

रथस्वन यक्ष, अत्रि ऋषि, इनके साथ मित्र नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३५ ॥ आषाढ़ मासमें रम्भा नाम अप्सरा, मित्रस्वन नाम राक्षस, शुक्र नाम नाग, हूहू नाम गन्धर्व, सहजन्य यक्ष, वसिष्ठऋषि इनके साथ वरुण नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३६॥ श्रावण मासमें प्रम्लोचा नाम अप्सरा वर्य नाम राक्षस, एलापत्र नाम नाग, विश्वावसु नाम गन्धर्व, श्रोता यक्ष, अंगिरा नाम ऋषि, इनके साथ इन्द्रनाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३७ ॥ भाद्रपद महीनेमें अनुम्लोचा नाम अप्सरा, व्याघ्र नाम राक्षस, शंखमाल नाम नाग, उग्रसेन नाम गन्धर्व, आसारण यक्ष, भृगु नाम ऋषि, इनके साथ विवस्वान् नाम सूर्य विचरण करताहै ॥ ३८ ॥ आश्विनमासमें घृताची नाम अप्सरा, वात नाम राक्षस, धनंजय नाम नाग, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष

गौतम नाम ऋषि, इनके साथ पूषा नाम सूर्य विचरण करताहै ॥ ३९ ॥ कार्त्तिकके महीनेमें सेनजित् नाम अप्सरा, वर्चा नाम राक्षस, ऐरावत नाम नाग, विश्व नाम गन्धर्व, ऋतु यक्ष, भरद्वाज नाम ऋषि इनके साथ पर्जन्य नाम सूर्य भ्रमण करताहै ॥ ४० ॥ अगहनके महीनेमें उर्वशी नाम अप्सरा विद्युतशत्रु नाम राक्षस, महाशंख नाम नाग, ऋतुसेन नाम गन्धर्व, तार्क्ष्य यक्ष, कश्यप ऋषि, इनके साथ अंशुनाम सूर्य प्रकाश करताहै ॥ ४१ ॥ पौषके महीनेमें पूर्वचित्ती नाम अप्सरा, स्फूर्जरा नाम राक्षस, कर्कोटक नाम नाग, अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्णयक्ष, आयु ऋषि, इनके साथ भग नाम सूर्य विचरण करताहै ॥४२॥ माघमासमें तिलोत्तमा नाम अप्सरा, ब्रह्मपेत नाम राक्षस, कंबल नाम नाग, धृतराष्ट्र नाम गन्धर्व, शतजित् यक्ष, जमदग्नि

ऋतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा॥ विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयंत्यमी॥४०॥ अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी ॥ विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयंत्यमी॥४१॥भगः स्फूर्जोरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पंचमः ॥ कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयंत्यमी॥४२॥त्वष्टा ऋचीकतनयः कंबलश्च तिलोत्तमा ॥ ब्रह्मापेतोथ शतजिद्धृतराष्ट्र इषंभराः॥४३॥ विष्णुरश्वतरो रंभा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ॥ विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयंत्यमी॥४४॥एता भगवतो विष्णो रादित्यस्य विभूतयः ॥ स्मरतां संध्ययोर्नृणां हरंत्यंहो दिनेदिने ॥ ४५ ॥ द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ॥ चरन्समंतात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥ ४६ ॥ सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिंगैर्ऋषयः संस्तुवंत्यमुम् ॥ गंधर्वास्तं प्रगायंति नृत्यंत्यप्सरसोऽग्रतः ॥ ४७ ॥ उन्नह्यंति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ॥ चोदयंति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः॥४८॥

ऋषि, इनके साथ त्वष्टा नाम सूर्य विचरण करताहै ॥ ४३ ॥ फाल्गुनमें रम्भा नाम अप्सरा मखापेत नाम राक्षस, अश्वतर नाम नाग, सूर्यवर्चा गधर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि, इनके साथ विष्णुनाम सूर्य विचारण करता है ॥ ४४ ॥ यह सब सूर्यरूप विष्णु भगवान्की विभूतियोंका जो पुरुष दोनों संध्याकालमें स्मरण करते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप विनष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ यह सूर्यनारायण इन छहोंगण सहित बारहमहीनेमें सब ओर घूमते हैं और लोकोंको इसलोकमें और परलोकमें उत्तम बुद्धि देतेहैं॥४६॥ अप्सरायें सुन्दर शृंगार कर करके सूर्यनारायणके सन्मुख नृत्य करती हैं, बलवान राक्षस रथको पीछेसे ढकेलते हैं, यक्ष रथको जोडते हैं, नाग रथको बाँधते हैं, गन्धर्व सूर्यके आगे यशगान करतेहैं और ऋषीश्वर, मुनीश्वर,

ऋग, यजु, सामवेदके मंत्रोंसे श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं ॥४७॥४८॥ साठसहस्र (६००००) निर्मल वालखिल्य ब्रह्मऋषि अंगुष्ठप्रमाणमात्र स्वरूप सब मिलके स्तोत्रोंसे विभुके सन्मुख होकर पिछले पावोंसे चलते श्रीनारायणकी स्तुति करते हैं ॥ ४९ ॥ आदि अंत रहित अजन्म भगवान् हरि ईश्वर इसप्रकार कल्प कल्पमें आपका सूर्यरूप विभाग करके सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायामादित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा—इस द्वादश अध्यायमें, श्रीभागवत पुराण ॥ वर्णौं सब

वालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ पुरतोभिमुखं यांति स्तुवंति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥ एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ कल्पेकल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कधे आदित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥ एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ॥ भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥

संक्षेपसों, जो शुक किय निर्माण ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, श्रेष्ठधर्मको नमस्कार करके और सृष्टिकर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके अब सब ब्राह्मणोंके चरणोंमें शिरधर इस श्रीमद्भागवत पुराणमें जो जो सनातनधर्म और सब कथाओंकी अनुक्रमणिका है वह मैं आपसे कहताहूं * ॥१॥ हे ब्राह्मणो ! सम्पूर्ण प्राणियोंके सुनने योग्य यह विष्णुभगवान्का अद्भुत चरित्र इसमें जो जो प्रश्न आपने किये उन उनके उत्तर मैंने

* शंका—सूतजीने मुनियोंसे कहा कि, अब हम सनातनधर्म कहते हैं, आप सावधान होकर सुनो, इसमें हमको यह शका है कि, पहिले जो धर्म वर्णन हुवा सो सनातनधर्म नहीं है, क्या ये शीघ्रताके बनाये हैं ?

उत्तर—भागवतमें जो धर्म वर्णन कियेहैं, सो सब सनातन धर्म हैं शीघ्रतासे बनाये हुए कोई भी नहीं हैं परन्तु एक कारण है सो वह भी कहते हैं, मुनियोंने प्रथम इस धर्मको बहुत सक्षेपके साथ वर्णन कियाथा. वारम्वार वर्णन हुवा परन्तु जब हुवा तब सक्षेपसेही हुवा और धर्मका विस्तार बहुत श्लोकोंमें कविलोग वर्णन करतेहैं, इस अध्यायमें बारहस्कन्धोंकी कथाको व्यासजीने थोडेहीमें वर्णन की है, जैसे पहिले मुनिजनोंने थोडे थोडे श्लोकोंमें सम्पूर्ण धर्म वर्णन किये थे, इसलिये सूतजीने कहाया कि, अब मैं सनातनधर्म वर्णन करताहूं, क्योंकि सनातनधर्म—

आपको दिये ॥२॥ इस पुराणमें सब पापोंके विध्वंस करनेवाले भक्तवत्सल हृषीकेश भगवान् हरि नारायणकी साक्षात् महिमा वर्णन की है ॥३॥ अब यहाँसे आगे पहले कही हुई "बारहों स्कन्ध" की कथाको सूतजी शौनकादिकोंको फिर स्मरण करातेहैं, जिसमें जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार, ऐसे परमगुह्य परब्रह्मके यशका गान, और उस परब्रह्मका प्रकाशक विज्ञान और ज्ञानके साधन, इस महापुराणमें कहेहैं ॥ ४ ॥ भक्तियोग और भक्तियोगसे प्रगट होनेवाला वैराग्य भी कहा, नारदजीका आख्यान और परीक्षितका उपाख्यान ॥ ५ ॥ ब्राह्मणके शापसे राज ऋषि परीक्षितका अनशन व्रत धारण करना, उन राजर्षि सहित ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजी महाराजका सम्वाद यह सब प्रथमस्कन्धमें वर्णन किया

अत्र संकीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः ॥ नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ ३ ॥ अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥ भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ॥ पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥ ५ ॥ प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः ॥ शुकस्यैव च ब्रह्मर्षेः संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥ योगधारणयोत्क्रांतिः संवादो नारदाजयोः ॥ अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ॥ ७ ॥ विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ॥ पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥ ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ॥ ततो ब्रह्मांडसंभूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥ कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ॥ भुव उद्धरणेंभोधौ हिरण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ योगधारणासे प्राणका छोड़ना, ब्रह्मा नारदका सम्वाद और अवतारोंका वर्णन, विराट् पुरुषकी उत्पत्ति, यह सब द्वितीयस्कन्धमें वर्णन किया ॥ ७ ॥ विदुर और उद्धवका सम्वाद, फिर विदुर और मैत्रेयका सम्भाषण, पुराणसंहिताके विषयमें प्रश्न; विराट् पुरुषकी रचना ॥ ८ ॥ पहिले मायाके गुणोंसे महत्तत्त्वादिक सातप्रकारकी सृष्टि रची गई, उससे फिर इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, जो कि वैराज पुरुषके रहनेका स्थान है ॥ ९ ॥ स्थूल सूक्ष्म कालकी गति, नाभिसे कमलकी उत्पत्ति, समुद्रसे पृथ्वीका उद्धार, हिरण्याक्ष

तो दोही हैं, जो मुनि लोग थोडे श्लोक करके वर्णन किये थे, वहुत विस्तार तो पीछेसे कविलोगोंने किया है, सूतने ऐसे विचारके नहीं कहाया कि, अबतक सनातन धर्म वर्णन नहीं हुआ, सनातन धर्म अब वर्णन करताहू ॥

का वध ॥१०॥ वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य, इन तीनोंकी सृष्टि, रुद्रकी सृष्टि, ब्रह्माके आधे अंगसे पुरुष और आधे अंगसे नारी (स्त्री) हुई, उनमें पुरुष तो स्वायंभुव मनु और स्त्री शतरूपा हुई, कर्दम प्रजापतिसे धर्मपत्नियोंकी सन्तान कही ॥ ११ ॥१२ ॥ जिन प्रजापति कर्दमजीसे महात्मा भगवान् कपिलदेवजीका अवतार, और उन बुद्धिमान् कपिलदेवजीसे देवहूतीका सम्भाषण, यह तीसरे स्कन्धकी कथा है ॥ १३ ॥ मरीच्यादिक ब्राह्मणोकी सन्तानकी उत्पत्ति, दक्षके यज्ञका विध्वंस, ध्रुवजीका चरित्र, पृथु और प्राचीनबर्हि राजाके चरित्रका वर्णन, यह चौथे स्कन्धकी कथा हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! नारद प्रियव्रतका सम्वाद, फिर राजा प्रियव्रतका चरित्र, नाभिराजाका आख्यान, ऋषभदेवजीका चरित्र,

ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ॥ अर्धनारीनरस्याथ यतः स्वायंभुवो मनुः ॥ ११ ॥ शतरूपा च या स्त्रीणा माद्या प्रकृतिरुत्तमा ॥ संतानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥ अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ॥ देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥ नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ॥ ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥ नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः ॥ नाभेस्ततोऽनुचरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥ ततो द्वीपसमुद्राद्रिवर्षनद्युपवर्णनम् ॥ ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥ दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्त त्पुत्रीणां च संततिः ॥ यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥ १७ ॥ त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ॥ दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥ मन्वंतरानुचरितं गजेंद्रस्य विमोक्षणम् ॥ मन्वंतरावतारश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥ कौर्मं मात्स्यं नारसिंहं वामनं च जगत्पतेः ॥ क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥ २० ॥

राजा भरतका इतिहास ॥ १५ ॥ द्वीप, समुद्र, पर्वत, खण्ड और नदियोंका वर्णन, ज्योतिश्चक्रका स्थापन, पातालकी रचना, नरकोंका वर्णन, यह पञ्चमस्कन्धकी कथा हैं ॥ १६ ॥ प्रचेताओंसे दक्षका जन्म फिर उस दक्षकी पुत्रियोंका वृत्तान्त, जिस सन्तानसे देवता, असुर, नर, पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी आदिकी उत्पत्ति ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! वृत्रासुरका जन्म और दितिके दोनों पुत्रोंकी उत्पत्ति, हिरण्यकशिपुका और महात्मा प्रह्लादका चरित्र, यह षष्ठ और सप्तम स्कन्धकी कथा हैं ॥ १८ ॥ मन्वन्तरोंका वर्णन, गजेंद्रका छुटाना, मन्वन्तरोंमें विष्णुभगवान्के हयग्रीवादिक अवतारोका वर्णन ॥ १९ ॥ उन विष्णुभगवान्के अवतार कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, वामनका उपाख्यान, देवताओंका समुद्रका मथना ॥ २० ॥

देवता, और असुरोंका महाभयकर संग्राम, यह अष्टमस्कन्धकी कथा हैं, राजाओंके वंशोंका वर्णन, राजा इक्ष्वाकुका जन्म और उनके वंशका वर्णन और महात्मा सुद्युम्नका इतिहास ॥ २१ ॥ इला और ताराका आख्यान, शशादादि, नृगादि सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन ॥ २२ ॥ सुकन्याका चारित्र, शर्यातिका चरित्र, बुद्धिमान् कुकुत्स्थका उपाख्यान, खट्वांग, मान्धाता, सौभरि, सगरका चरित्र ॥ २३ ॥ कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी कथा, सब पापोंका नाशक निमिके शरीरका त्यागन, जनकवंशियोंकी उत्पत्ति ॥ २४ ॥ भृगुवंशी परशुरामजीका पृथ्वीको निःक्षत्रिय करना, चन्द्रवंशी ऐलादि ययाति राजा नहुषका वृत्तान्त ॥ २५ ॥ दुष्यन्तका पुत्र राजा भरत, शन्तनु और शन्तनुके पुत्रका चारित्र और राजा ययातिके ज्येष्ठ पुत्र

देवासुरं महायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ॥ इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ॥ सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृगादयः ॥ २२॥ सौकन्यं चाथ शार्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः॥ खट्वांगस्य च मांधातुः सौभारेः सगरस्य च ॥ २३ ॥ रामस्य कोसलेंद्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ॥ निमेरंगपरित्यागो जनकानां च संभवः ॥ २४ ॥ रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः ॥ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नाहुषस्य च ॥२५॥ दौष्यंतेर्भरतस्यापि शंतनोस्तत्सुतस्य च ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोनुकीर्तितः ॥ २६ ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ॥ वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥२७॥ तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ॥ पूतनाऽसुपयःपानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥ २८॥ तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ॥ धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलंबस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥ गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ॥ दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नंदमोक्षणम् ॥ ३० ॥

राजा यदुके वंशका वर्णन, ये नवमस्कन्धकी कथा हैं॥२६॥ जिस यदुके वंशमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जगदीश्वरने अवतार लेकर भूमिका भार उतारा था, वह वृत्तान्त इस भाँति है कि, वसुदेवके घर अवतीर्ण होकर गोकुल गये और वहाँ वृद्धि पाई ॥२७॥ असुरोंके शत्रु श्रीकृष्णजीके अपार चरित्र हमने कहे, बाल अवस्थामें पूतनाके प्राणसहित स्तनोंका पान, लात मारकर शकटका तोडना, तृणावर्त्त और वत्सासुरका मारना, अघासुरका वध, ब्रह्माका वत्स और बालकोंका हरना, धेनुक प्रलम्बासुरका वध ॥ २८ ॥ २९ ॥ सब ओर फैलीहुई दावानलसे गोप गायोंको बचाना,

कालिय सर्पका दमन और महा अजगर सर्पसे नन्दजीको छुटाना॥३०॥व्रजकन्याओंका व्रत करना और उस व्रतसे अच्युत भगवान्‌का प्रसन्न होना, द्विजपत्नियोंपर संतुष्ट होकर ब्राह्मणोंको पश्चात्ताप करना ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धन पर्वतका करपर धरना, सुरभिसहित इन्द्रका किया श्रीकृष्णका अभिषेक और रात्रिके समय व्रजबालाओं सहित श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ा॥३२॥ दुर्बुद्धि शंखचूड़का वध और केशी, अरिष्टका संहार, अक्रू का व्रजमें आना, फिर रामकृष्णका मथुराको प्रस्थान॥३३॥उस समय व्रजयुवतियोंका विलाप, उसके पीछे मथुराका देखना,और मुष्टिक, चाणूर, कंसादिक

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ॥ प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥ ३१ ॥ गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ ॥ यज्ञाभिषेकः कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च सत्रिषु ॥ ३२ ॥ शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ॥ अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥ ३३ ॥ व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ॥ गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥ ३४ ॥ मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सांदीपनेर्गुरोः ॥ मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ॥ ३५ ॥ कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ जरासंधसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ॥ घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥ आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् ॥ रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥ ३७ ॥ हरस्य जृंभणं युद्धे बाणस्य भुजकृंतनम् ॥ प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥

दैत्योंका वध ॥३४॥ सान्दीपन गुरुके मरेहुए पुत्रको फेरकर लादेना, मथुरामें वसकर उद्धव बलदेव सहित मिलकर यादवोंसे स्नेह करना हे ! विप्रो जरासन्धकी लाई हुई सेनाका वारम्वार वध करना और मुचुकुन्द द्वारा कालयवनका मारना और समुद्रके टापूपें द्वारकापुरीका बसाना ॥३५॥३६॥ इन्द्रलोकसे पारिजात और सुधर्मासभाका ले आना और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर रुक्मिणिको हरलाना॥३७॥युद्धमें जृंभास्त्र करके शिवको जँभाई लेना, बाणासुरकी भुजाओंका काटना, नरकासुरका मारना, सोलह सहस्र एकसौआठ कन्याओंका उद्धार ॥ ३८ ॥

शिशुपालका वध, मिथ्यावासुदेवका मारना, शाल्वका संहार, दुर्मति दन्तवक्रका हनन, द्विविदका हनन, पीठासुरका प्राणहरण, मुरका मारण, पंचजनको मारकर कृतार्थ करना॥ काशीका जलाना, दैत्योंका प्रभाव प्रगट करना, पाण्डवोंको निमित्त मात्र बनाकर पृथ्वीका भार उतारना, यह दशमस्कन्धकी कथा हैं ॥३९॥४०॥ ब्राह्मणके शापका बहाना रखकर अपने कुलका संहार करना, वासुदेव और उद्धवका उत्तम सम्वाद ॥ ४१ ॥ जिस संवादमें आत्मतत्त्वका निर्णय और धर्मका निर्णय, फिर अपनी मायाके प्रभावसे मनुष्यलोकका छोड़ना, यह एकादशस्कन्धकी कथा हैं ॥ ४२ ॥ युगोंके लक्षण, उन युगोंमें जीविकाका वर्णन, कलियुगमें मनुष्योंका उपद्रव और चार प्रकारकी प्रलय, मायासे और ब्रह्मासे उत्पन्न होनेवाली तीन प्रकारकी

चैद्यपौंड्रकशाल्वानां दंतवक्रस्य दुर्मतेः ॥ शंबरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥ ३९ ॥ माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् ॥ भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पांडवान् ॥ ४० ॥ विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ॥ उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४१ ॥ यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ॥ ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥ ४२ ॥ युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः ॥ चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥ देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ॥ शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कंडेयस्य सत्कथा ॥ ४४ ॥ महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥ इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोहमिहास्मि वः ॥ लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४५ ॥ पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् ॥ हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥ संकीर्त्यमानो भगवाननंतः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ॥ प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवाऽतिवातः ॥ ४७

उत्पत्ति॥४३॥ बुद्धिमान् राजर्षि विष्णुरातकी देहका त्यागना, व्यासजीसे वेदकी शाखाओंका विस्तार, मार्कण्डेय ऋषिकी सुन्दर कथा॥४४॥ हे द्विजोत्तम! जगत्के आत्मा सूर्यनारायणका मास मासका वर्णन, तुमने जो कुछ हमसे बूझा सो सब कहा, इस भागवत पुराणमें भगवान्की लीलाअवतार सम्बन्धी कर्मोंका यश गायाहै॥४५॥ गिरते, पड़ते, उठते, बैठते, विपत्तिके समय, छींकके, विवशतासे ऊंचे स्वरसे 'हरये नमः' जो पुरुष इसप्रकार कहताहै, वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है॥४६॥ जो पुरुष भगवान्का कीर्त्तन करता है, अथवा उनके गुणोंको गाता है, तो अनन्त भगवान् उनके चित्तमें प्रवेश

करके सब पापोंको दूर करदेतेहैं, जैसे सूर्यनारायण अन्धकारको, पवन मेघोंको दूर करताहै ॥ ४७ ॥ जिस वाणीसे भगवान् अधोक्षजकी सत्कथा नहीं गाई जाती उस वाणीको मिथ्या और विषयवाली समझनी चाहिये, जिसमें भगवान्के नामका गुणानुवादहो, वही वाणी सत्य मंगलरूप और पवित्र करनेवाली है ॥ ४८ ॥ वही वाणी रमणीक और रुचिर नित्य नये २ मनको महाउत्सवरूप मनुष्योंके शोकसमुद्रकी सुखानेवाली है, जिस वाणीसे उत्तमश्लोक भगवान्का यश गाया जाता है ॥ ४९ ॥ जिस वाणीमें चित्र विचित्र पदभी हों और उत्तम रचना भी हो, परन्तु जगत्के पवित्र करनेवाले हरिका यश कुछ नहीं , तो उस वाणीमें काककी तुल्य विषयी रमण करतेहैं, हंसके समान साधुजन उस वाणीसे संतुष्ट नहीं होते, साधुजन उसी

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोऽक्षजः ॥ तदेव सत्यं तदु हैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥ तदेव रम्यं रुचिरं नवंनवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ॥ तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥ ४९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्ध्वांक्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥ स वाग्विसर्गो जनताऽघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनंतस्य यशोंकितानि यच्छृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥ ५१ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥ यशः श्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ॥ अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥

पवित्र वाणीमें रमणकरते हैं, जिस वाणीमें अच्युत भगवान्का वर्णन है ॥ ५० ॥ जिस वाणीमें श्लोक श्लोक विषे उत्तम पदरचना नहीं, केवल हरियश और हरिनामहीका वर्णन है वह वाणी प्राणियोंके पापोंके समूहोंको नाश करनेवाली है, उस वाणीको निर्मल चित्तवाले सब सुनते हैं, गाते हैं और कहतेहैं ॥ ५१ ॥ ब्रह्मका प्रकाश करनेवाला निर्मल ज्ञान भी जो अच्युत भगवान्के भावसे रहित है वह किसी प्रकार शोभित नहीं होता, उत्तम कर्म भी ईश्वरके अर्थ विना अमंगल रूप है सो किसी प्रकार शोभित नहीं होसक्ता ॥ ५२ ॥ वर्णाश्रमके आचार, तप, वेदाध्ययन आदिमें बडे परिश्रमसे केवल यश और ऐश्वर्य प्राप्त होताहै, परन्तु हरिके गुणका कथन और श्रवणादि करनेसे श्रीधर भगवान्के चरणकमलका नित्यप्रति

स्मरण होता है ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्मरण सदा अमंगलका हरनेवाला, मंगलका विस्तार करनेवाला और अंतःकरणको शुद्ध करताहै, परमात्मामें स्नेह बढाता है और ज्ञान विज्ञान सहित वैराग्यको उपजाताहै ॥५४॥ हे द्विजोत्तम ! आप बडे भाग्यवान् हो, जो अखिल लोकोंके आत्मा भगवान् सर्वोत्तम, सर्वान्तर्यामी सर्वहितकारी नारायण देवको निरन्तर हृदयमें धारण करके सदा अखण्ड भावसे भजते रहतेहो ॥५५॥ जब कि, राजा परीक्षित् अन्न पानी त्यागकर गंगाके किनारे जा बैठे, उससमय बडे २ ऋषीश्वर मुनीश्वर श्रीमद्भागवत सुननेको उस सभामें

अविस्मृतिः कृष्णपदारविंदयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च॥ सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ ५४ ॥ यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ॥ नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावा भजताऽऽविवेश्य॥५५॥ अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्रात् ॥ प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥५६॥ एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ॥ माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५७ ॥ य एवं श्रावयेन्नित्यं यामं क्षणमनन्यधीः ॥ श्रद्धावान्योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५८ ॥

विद्यमान थे, वहाँ श्रीशुकदेवजीके मुखसे पहिले मैंने जो कुछ सुनाथा वह आत्मतत्त्वका ज्ञान मुझको आपने स्मरण कराया, यह आपने बडी कृपादृष्टि की ॥ ५६ ॥ हे विप्रो ! जिनके सब कर्म और चरित्र वर्णन करनेके योग्य हैं उन वासुदेव भगवान्का कीर्त्तन और माहात्म्य सब अशुभोंका विनाश करनेवाला है सो मैंने आप लोगोंके सन्मुख वर्णन किया * ॥ ५७ ॥ जो कोई पुरुष अनन्यबुद्धि होकर नित्य

* दृष्टान्त–परन्तु ऐसी कथा नहीं सुननी चाहिये, जसी कथा एक पण्डितजीने कही और बुढिया स्त्रीने सुनी एक पण्डित किसी ठाकुरद्वारेमें कथा कहते थे और एक बुढियाभी कथा सुननेको जाया करती थी और वहाँ बैठकर बहुत रोती, पण्डितजीने समझा कि, यह बुढिया बडी प्रेमिन है, कुछ अधिक दक्षिणा चढावेगी, जब कथा सम्पूर्ण होनेका दिन आया तो बुढिया नहीं आई पण्डितजीने कथामें कुछ विलम्बभी किया बुढिया तोभी न आई अब कथा पूरी हो चुकी, पण्डीतजीने जाना कि बुढियाको कुछ होगया नहीं तो बुढिया अवश्य आती, दूसरे दिन पण्डितजीने कहा कि, बुढियाके घरको चलैं कुछ दक्षिणा प्राप्त होजायगी, यह विचार उसके द्वारेपर पहुँचे और जाकर पुकारा, बुढिया चरखा कातरहीथी बोली पण्डितजी ! आओ बैठ जाओ कैसे कृपा करी ? पण्डितजी बोले बुढिया कैसे हो रही है ? कल कथाभी समाप्त होगई और तू न आई तू तो बडी प्रेमिनथी फिर न आनेका क्या कारण ? तू तो घटोंतक कथामें बैठी रोये करथी ? बुढिया बोली क्या कथाको सुनकर थोडेही रोतीथी, पण्डितजी बोले कि, फिर क्यों रोतीथी ? बुढिया बोली कि जसा तुम्हारी पोथी बांधनेका वस्त्र है ऐसाही मेरी लल्ली मोहिनीके लालाका पाजामाथा सो उसको देखतेही मोहिनीके लाला मुझको याद आ जाते थे इसलिये रोतीथी, पण्डितजी सुनतेही सुन्न होगये और उठकर सीधे अपने घरको चले गये ।

एकपहर, वा एकक्षण इस माहात्म्यको सुने अथवा जो कोई श्रद्धापूर्वक इसको सुनावे, वह प्राणी अपने आपको पवित्र करताहै ॥ ५८ ॥ जो कोई पुरुष एकादशी वा द्वादशीके दिन इस महापुराण भागवतको सुने उसकी आयुर्बल अधिक होतीहै और जो कोई निर्जलव्रत धारण करके एकाग्र चित्त हो इसका पाठ करै वह सब पापोंसे छूटकर निष्पाप होजाता है ॥ ५९ ॥ पुष्कर, मथुरा, द्वारकामें वास करके एकाग्रचित्त हो जो इस संहिताको पढैगा वह सब भयादिकोंसे छूट जायगा ॥ ६० ॥ जो कोई इस महापुराण संहिताको सुनता है, कीर्त्तन करता है, उसको देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनुष्य और राजालोग, यह सब मनोवाँछित मनोरथको देतेहैं ॥ ६१ ॥ द्विजवर्णोंको, ऋग्वेद, यजुर्वेद,

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् ॥ पठत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥ ५९ ॥ पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ॥ उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥ देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः ॥ यच्छंति कामान्गृणतः शृण्वतो यत्र कीर्तनात् ॥ ६१ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोधीत्यानुविंदते ॥ मधुकुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६२ ॥ पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजाः ॥ प्रोक्तं भगवतो यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ॥ वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात् ॥ ६४ ॥ कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ॥ इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥

सामवेदके पढ़नेसे जो शहतकी नदी, घृतकी नदी, दूधकी नदीके पानरूपी फल प्राप्त होता है, सो सब फल इस महापुराण संहिताके पढ़नेसे होताहै ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष पवित्र होकर इस महापुराण संहिताको पढ़ते हैं, वह भगवान् वासुदेवके परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥ इस महापुराणसंहिताको ब्राह्मण पढ़कर उत्तम बुद्धिको प्राप्त होते हैं, क्षत्रिय पढै तो उदय अस्ततक सर्वत्र भूमण्डलका राजा हो, वैश्य पढै तो निधिपति हो और शूद्र पढै तो सब पापोंसे छूटजाय ॥ ६४ ॥ कलिकालके मलके समूहोंका विध्वंस करनेवाले अखिलैश्वर्य वासुदेव भगवान् इसप्रकार और दूसरे शास्त्रोंमें वारम्वार नहीं गायेगये और इस पुराणमें तो कथाओंके प्रसंग

प्रसंगमें पद पदके विषे अशेष मूर्त्ति भगवान् हीके चरित्र गायेगये हैं, इसीसे इस पुराणका नाम महापुराण है ॥ ६५ ॥ जगत्की, उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाली जिनकी शक्ति है और ब्रह्मा इन्द्र शिवादिक देवताओंको जिनकी स्तुति दुर्लभ है, ऐसे अजन्मा अनंत आत्मतत्त्व अच्युत भगवानको नमस्कारहै ॥ ६६ ॥ वृद्धिको प्राप्ति हुई प्रकृति आदि शक्तियोंसे जिसने अपने स्वरूप स्थावर जंगम उत्पन्न कियेहैं ऐसे सबमें व्यापक देवताओमें श्रेष्ठ, अनादि ज्ञानमात्र स्वरूप भगवान्को मैं वारम्वार प्रणाम करता हूं ॥ ६७ ॥ अपने आत्मसुखसेही सम्पूर्ण चित्त होनेसे अन्य पदार्थोंमें भाव न रखनेवाले कि, जिन्होंने अपना मन नारायणकी सुन्दर लीलाओंमें आकर्षित होजानेसे नारायणके तत्त्वका प्रकाशक यह पुराण संसारके उपकारके लिये अनुग्रह करके प्रगट किया है, उन सब जगतके पाप दूर करनेवाले व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी महाराजको प्रणाम करता हूं ॥ ६८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशस्कंधार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा—इस तेरह अध्यायमें, पूरण होत पुराण । संख्या सकल पुराणकी, वरणौ सहित प्रणाम ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और मरुतदेवता दिव्य स्तोत्रोंसे जिन भगवान्की स्तुति करते हैं और सांगोपांग पदक्रम उपनिषद् सहित वेदोंसे सामवेदके गानेवाले जिनका गान किया करतेहैं और ध्यानमें स्थित होकर मन लगाय योगीजन जिनको देखा करते हैं, देवता; असुरगण जिनका आदि अन्त नहीं जानसक्ते ऐसे परमदेवको वारम्वार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥

तमहमजमनंतमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् ॥ द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि॥६६॥ उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मन्युपरचितस्थिरजंगमालयाय ॥भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥ स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ॥ व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि॥६८॥ इति श्रीमद्भा०म० द्वादश० द्वादशस्कन्धार्थसंग्रहो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ यं ब्रह्मा वरुणेंद्ररुद्रमरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः ॥ ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

पीठपर भ्रमते श्रेष्ठ मन्दराचलकी शिलाओंके अग्रसे गात्र खुजानेके समान निद्राका अनुभव करते कच्छपरूप भगवान्‌के श्वासोंकी पवन तुम सबोंकी रक्षा करो, जिस पवन संस्कारके लेश अनुवर्तनके वशसे समुद्रके क्षोभके मिसकरके निरंतर आना जाना बन्द नहीं होता, नित्य घटता बढता रहताहै आजतक विश्राम नहीं लेता, वह तुम्हारी रक्षा करो * ॥ २ ॥ पुराणोंकी संख्याका निरूपण और श्रीभागवतका आश्रय प्रयोजन, दान और दानका माहात्म्य और पाठादिकोंका माहात्म्य अब सावधान होकर हमसे सुनिये ॥३॥ ब्रह्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १००००है पद्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या पचपनसहस्र ५५०००है, विष्णुपुराणके श्लोकोंकी संख्या तेईस सहस्र २३००० है, शिवपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौवीस

पृष्ठे भ्राम्यदमंदमंदरगिरिग्रावाग्रकंडूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पांतु वः ॥ यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनांभसां यातायातमतंद्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥२॥ पुराणसंख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने॥ दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥ ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पंचोनषष्टि च ॥ श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥ दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पंचविंशति ॥ मार्कंडं नव वाह्नं तु दशपंचचतुःशतम् ॥ ५ ॥ चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पंचशतानि च ॥ दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिंगमेकादशैव तु ॥ ६ ॥

सहस्र२४०००है॥४॥श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८०००है,नारदपुराणके श्लोकोंकी संख्या पचीस सहस्र २५०००है,माँर्कण्डेय पुराणके श्लोकोंकी संख्या नव सहस्र९०००है,अग्निपुराणके श्लोकोंकी संख्या पन्द्रह सहस्र चरसौ१५४००है, ॥५॥ भविष्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र पाँचसौ१४५००है,ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकेश्लोकोंकी संख्या अठारहसहस्र१८०००है,लिंगपुराणके श्लोकोंकी संख्या ग्यारहसहस्र११०००है६

* शंका—श्रीमद्भागवतकी समाप्तिमें सूतजीने अपने गुरुको और सब देवताओंको, ब्रह्मा, विष्णु भगवान्‌के सब अवतारोंको, इन सबको त्यागकर कच्छप भगवान्‌को नमस्कार क्यों किया ?

उत्तर—कच्छप भगवान्‌की कृपासे समुद्रको मथकर देवतालोगोंने अमृत पाया अमृत पाकर देवताओंका मनोरथ सिद्ध हुवा तैसे सूतजी कूर्मका स्मरण करके समुद्ररूप भागवतके पार उतरगये,इसलिये सूतजीने अपने नेत्रोंसे प्रेमके आँशू बहाय सबको त्यागकर कूर्मभगवान्‌को नमस्कार किया और भगवान्‌के अवतारोंमें कुछ भेद नहीं समझा ।

वाराहपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौवीससहस्र २४००० है, स्कन्दपुराणके श्लोकोंकी संख्या इक्यासी सहस्र एकसौ ८११०० है, वामनपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है॥७॥ कूर्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या सत्रहसहस्र १७०० है, मत्स्यपुराणके श्लोकोंकी संख्याचौदहसहस्र १४००० है, गरुड़पुराणके श्लोकोंकी संख्या उन्नीससहस्र १९००० है ब्रह्माण्डपुराणके श्लोकोंकी संख्या बारहसहस्र १२००० है ॥८॥ इसप्रकारअठारहपुराणके श्लोकोंकी संख्याका प्रमाण—समाहार चारलाख४००००० श्लोकका है, यह प्रमाण कवीश्वरोंने कहाहै, जिसमें भागवत अठारह सहस्र १८००० है॥९॥ अपनी नाभिकमलमें विराजेहुए संसारमें भयभीत ब्रह्माजीको यह भगवत पुराण भगवान्‌ने सुनायाथा॥१०॥ इस श्रीमद्भागवत महापुराणके आदि मध्य और

चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् ॥ स्कांदं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥ कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश ॥ एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्मांडं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥ एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ॥ तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥९॥ इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे ॥ स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥ १० ॥ आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ॥ हरिलीलाकथाव्रातामृतानंदितसत्सुरम् ॥ ११ ॥ सर्ववेदांतसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ॥ वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ १२॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥ ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥ राजंते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ॥ यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरः ॥ १४ ॥

अन्तमें संपूर्ण वैराग्यकेही उपाख्यान कहेहैं इसपुराणने हरिकी लीला और कथाओंके समूह अमृतसे साधुओंको और देवताओंको आनन्द कर रक्खाहै, ऐसा आनंददायक और अघ ओघ घायक यह श्रीमद्भागवत पुराणही है ॥११॥ सम्पूर्ण वेदान्तका सारभूत, ईश्वर जीवकी एकताको दर्शानेवाला जो यह अद्वितीय पदार्थ(परब्रह्म)है सो इस महापुराणका विषय है और मुख्य प्रयोजन इस महापुराणका केवल कैवल्य अर्थात् मोक्ष है॥१२॥ भादोंसुदी पूर्णमासीके दिन सोनेके सिंहासन सहित जो मनुष्य इस महापुराण श्रीमद्भागवतका दान करै वह परमोत्तम गतिको पाताहै॥१३॥ उसी समयतक और दूसरे पुराण महात्मा पुरुषोंकी मण्डलीमें शोभा पातेहैं, जिस समयतक अमृतके समुद्ररूप यह श्रीमद्भागवत महापुराण सुननेमें नहीं आता॥१४॥

सब उपनिषद् और वेदान्तका सार श्रीमद्भागवतको माना है इसलिये इस पुराणके अमृतरससे जो प्राणी तृप्त होरहेहैं उनकी प्रीति कभी और ठौर नहीं होती ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ मानी हैं देवताओंमें अच्युत भगवान् सर्व सुखदानी हैं वैष्णवोंमें महादेव परमज्ञानी हैं ऐसे पुराणोंमें श्रीमद्भागवत बखानी है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें परमोत्तम काशी है ऐसेही सब पुराणोंमें अत्युत्तम "श्रीमद्भागवत" पुराण है ॥ १७ ॥ परमहंसोंका परमप्रिय निर्मल और श्रेष्ठ ज्ञान जिसमें गायाहै और निर्दोष परब्रह्मका निरूपण करके दरशायाहै, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको एकत्र करके भगवत्तत्त्वको जिसमें झलकायाहै ऐसे श्रीमद्भागवत पुराणको जो कोई भक्तजन भक्तिसे सुने, वा पढै और हित

सर्ववेदांतसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ॥ तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥ निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा ॥ वैष्णवानां यथा शंभुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥ क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ॥ तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्विपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥ कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥ योगींद्राय तदात्मनाऽथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥

चित्तसे विचारे, वह इस संसारसागरसे पार उतरकर परमधामको जाताहै ॥ १८ ॥ प्रथम विष्णु भगवान्ने इस अतुल श्रीमद्भागवतरूप ज्ञान दीपकको करुणा करके ब्रह्माजीके सन्मुख प्रकाशित किया, ब्रह्माजीने ब्रह्मरूप धारण करके नारदजीके आगे प्रकाशित किया, फिर नारदरूप होकर व्यासजीके निकट प्रकाशित किया, फिर वेदव्यासरूपसे परमयोगेश्वर श्रीशुकदेवजीके समीप प्रकाशित किया; अन्तमें श्रीशुकदेव रूप धरकर करुणानिधान भगवान्ने करुणा करके विष्णुरात राजा परीक्षित्के सामने प्रकाशित किया। उन शुद्ध सत्त्व निर्मल, सदा आनन्दमय निरुपाधि

नमस्कार किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९॥४० ॥ और उत्तर कोशलके सब रहनेवाले बहुत कालके पीछे अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको आया हुआ देखकर आनन्दके समुद्रमें स्नान करने लगे और अपने अपने दुपट्टे कँपातेहुये हर्षित हो फूलोंकी मालायें वर्षाय कर नाचे ॥ हे महाराज परीक्षित्! जब महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें आये उसकालमें भरतजीने उनकी खडाऊँ धारण करलीथीं. विभीषण, सुग्रीवने चामर और व्यजन लिया था पवनकुमार हनुमानजी श्वेत छत्र धारण कियेहुए थे शत्रुहनजीने धनुष और तरकश लिया, और जगज्जननी जानकीजीने तीर्थोंके जलसे भराहुआ कमण्डलु ग्रहण कियाथा और युवराज अंगदजी खड्ग और ऋक्षराज जाम्बवान् सुवर्णमय बख्तर ले आये पुष्पकविमानमें जब

तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ धुन्वंतमुत्तरासंगान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ॥ ४१ ॥ उत्तराः कोशला माल्यैः किरंतो ननृतुर्मुदा ॥ पादुके भरतोऽगृह्णाचामरव्यजनोत्तमे ॥ ४२ ॥ विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ धनुर्निषंगाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमंडलुम् ॥ ४३ ॥ अबिभ्रदंगदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण् नृप ॥ पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च बंदिभिः ॥ ४४ ॥ विरेजे भगवान्राजन्ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ भ्रातृभिर्नंदितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् ॥ ४५ ॥ प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ गुरून्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत ॥ ४६ ॥

वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हुए, तब नारियोंने उनकी प्रशंसा की, बन्दीजनोंने यश बखाना ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार शोभायमान होरहेथे कि, जैसे तारागणोंके साथ निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है । अपने भ्राताओंसे सन्मानित होकर श्रीरामचन्द्रजीने उत्सवयुक्त पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ तिसके उपरान्त राजभवनके भीतर जाय कैकेयी आदि गुरुपत्नी, अपनी माता और गुरुजनोंकी पूजा श्रीरामचन्द्रजीने की फिर अपने सखा और छोटे जनोंसे पूजित हो सबका यथोचित सन्मान किया ॥ ४६ ॥

इसके पीछे सीता और लक्ष्मणजी भी जायकर यथानियम इन सब गुरुजनोंसे मिले प्राणोंको पायकर जिस प्रकार देह उठ खड़ी होती हैं उसी प्रकार अपने अपने पुत्रोंको पाय सब मातायें सहसा उठ खडी हुईं। और उनको गोदीमें बिठाय नेत्रजलसे उनका अभिषेक कर अपना शोक सन्ताप दूर करने लगीं ॥४७॥ इसके उपरान्त ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकी जटा छुडवाय कुलवृद्ध पुरुषोंके साथ मिलकर समुद्रके व और सब तीर्थोंके जलसे उनका अभिषेक किया ॥ ४८ ॥ हे महराज परीक्षित्! श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार शिरसे स्नानकर प्रथम शोभायमान वस्त्र धारण किये। फिर हार और अलंकारोंसे सजकर वसन भूषण पहरे, भाइयों और सीताजीके साथ दीप्तिमान् हो विराजमान होने लगे॥४९॥

वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ पुत्रान्स्वमातरस्तांस्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ॥ आरोप्यांकेऽभिषिंचंत्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४७ ॥ जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः ॥ अभ्यषिंचद्यथैवेन्द्रं चतुस्सिंधुजलादिभिः ॥ ४८ ॥ एवं कृतशिरस्स्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ॥ स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ४९ ॥ अग्रहीदासनं भ्राता प्रणिपत्य प्रसादितः ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥ ५० ॥ जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ त्रेतायां वर्त्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥ ५१ ॥ रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिंधवः ॥ ५२ ॥ सर्वे कामदुघा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥ नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥ ५३ ॥

तिसके पीछे महात्मा भरतजीने प्रमाण कर जब श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न किया, तब उन्होने राज्यसिंहासन ग्रहण किया स्वधर्मनिरत और वर्णाश्रम गुणोंसेयुक्त प्रजापुंजको पिताकी समान पालन करने लगे । हे राजा परीक्षित्! सब प्राणियोंको सुखके देनेवाले धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी जब राजा हुए उस समय यद्यपि त्रेतायुग वर्तमान था; तो भी वह काल सत्ययुगकी समान जान पड़नेलगा। समुद्र, नद, नदी, पर्वत, वन, द्वीप, खण्ड सबही प्रजाका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हुए। कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके राजत्वमें राज्यके बीच आधि, व्याधि, जरा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि,

अथवा थकावट कुछभी न रही ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जबतक इच्छा न होती, तबतक मृत्यु किसीको नहीं दबासकती थी श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजी पवित्र और एकपत्नीव्रतधारी होकर सब लोगोंको राजर्षियोंका अनुष्ठान किये हुए गृहमें धैर्य उपदेश करके उसका स्वयंभी पालन करनेलगे * और भावकी जाननेवाली देवी सीताजी अपने स्वामीका आश्रय ले प्रेम, सेवा, शीलता, भय और लाजसे उनके चित्तको हरे लेतीथीं ॥५४ ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां रामचरिते दशमोऽध्यायः ॥१०॥ दोहा–ग्यारहमें

मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥ एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥ ५४ ॥ स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन्स्वयमाचरन् ॥ प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥ धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताऽहरन्मनः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभाग० म० नवमस्कंधे इक्ष्वा० सगरोपाख्याने श्रीरामचरितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ॥ सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥ होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥ आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदंतरा ॥ मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोर्हति निस्स्पृहः ॥ ३ ॥

श्रीरामने, अवधपुरीमें आन ॥ यज्ञ किये भाइन सहित, सो सब कहौ बखान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! तिसके, पीछे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने आचार्य लोगोंके साथ उत्तमोत्तम यज्ञ करके सर्व देवमय परमदेव जो आपहैं, सो अपनीही पूजा करनेलगे ॥ १ ॥ यज्ञके अन्तमें पश्चिमदिशा, होताको और ब्रह्माजीको दक्षिणदिशा, अध्वर्युको पूर्वदिशा, और सामगान करने वालोंको उत्तरदिशा, श्रीरामचन्द्रजीने देदी इन दिशाओंके बीचकी जितनी भूमि थी, "इसको ब्राह्मणही पानेके योग्य हैं" यह विचार निःस्पृह श्रीरामचन्द्रजीने अवशेष पृथ्वी आचार्यको देदी॥२॥३॥

* शंका–रामचन्द्रके राज्यमें जो प्राणी मरनेकी इच्छा आप करता था उसीका मरण होता था और जो अपना मरना नहीं चाहता था, उसका मरण कभी नहीं होता था क्योंकि मृत्युतो सब लोकमें है किसी लोकमें जल्दी, किसी लोकमें देरसे परन्तु ऐसा लोक कोईभी नहीं है कि जिसलोकमें मृत्यु न होवे ? ॥

उत्तर–"अनिच्छता" इस शब्दका अर्थ मरणकी इच्छा करना नहीं होगा इसका यह अर्थ है कि, जो प्राणी रामचन्द्रके चरणारबिन्दके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते वे दिन रात उन्हींके चरणोंमें उन्मत्त रहते थे उन प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती थी ॥

इस प्रकारसे दानशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने जब सब दान करदिया तब केवल उनके पास वसन भूषण बचरहे और राजराजेश्वरी श्रीमती जानकीजीके पास भी केवल वसन भूषणही रहे अर्थात् इसके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्रजीने सब कुछ दान कर दिया * ॥४॥ परन्तु ब्राह्मण देवता श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी वत्सलता देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करके सब वस्तु श्रीरामचन्द्रजीको लौटायदी और बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! हे भुवनेश्वर ! आपने हमको क्या नहीं दिया है ? अर्थात् आपने हमको सब कुछ दिया क्योंकि आपने हम लोगोंके हृदयमें प्रवेश करके अपनी प्रभा

इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः ॥ तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमंगल्यावशेषिता ॥ ४ ॥
ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ॥ प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥
अप्रत्तं नस्त्वया किन्नु भगवन्भुवनेश्वर ॥ यन्नोंतर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुंठमेधसे ॥ उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदंडार्पितांघ्रये ॥ ७ ॥
कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ॥ चरन्वाचोऽशृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥

विस्तार कर हमारे अन्धकारको दूर किया है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! आप ब्राह्मणदेव अकुण्ठ बुद्धिमान् हैं, सो हम आपको नमस्कार करते हैं । हे भगवन् ! आप उत्तम श्लोकोंमें आगे गिने जाने योग्य हैं, मुनिलोगभी अपने अपने चित्तमें आपके दोनों चरणकमलकी सदा चिन्ता करते हैं॥७॥ बहुत दिन गये पीछे किसी समय श्रीरामचन्द्रजी गूढ़ वेष धारण कर यह जाननेके लिये कि, हमारे राज्यमें लोग हमारी निन्दा करते हैं वा स्तुति; रात्रि

---

* शंका—जो कुछ वस्तु रामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको दान करके दी थी, वह वस्तु ब्राह्मणोंने दान लेकर कुछ घडी अथवा कुछ दिन पीछे वही दानवाली वस्तु ब्राह्मणोंने फिर पीछे प्रीतिसहित रामचन्द्रको देदी तब रामचन्द्रने अपनी दान की हुई वस्तु ब्राह्मणोंसे क्यों ली ? क्या कारण यह बडे सन्देहकी बात है ।

उत्तर—ब्राह्मणलोग प्रसन्न होकर अपना प्रसाद तुलसीदल पत्र आदि लेकर तथा तीन लोकका सुखपर्यंत जब क्षत्रियोंको देते हैं तब उसीसमय क्षत्रियलोग ब्राह्मणोंका दिया हुआ प्रसाद प्रीतिपूर्वक ले लेते हैं जब कोई राजा नहीं ले तो शीघ्रही ब्राह्मणलोग उस राजाको शाप दे देते हैं, ऐसा रामचन्द्रने मनमें विचारकर अपनी दी हुई वस्तु प्रसाद समझकर ग्रहण की थी, कुछ लोभ समझकर नहीं ली थी ॥

कालमें गुप्तभावसे घूमने लगे, एकदिन अकेले घूमरहेथे कि, एक पुरुपने अपनी स्त्रीसे कुछ कटुवचन कहे कि, जिनको वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने सुना ॥८॥ वह पुरुष अपनी स्त्रीसे कहरहा था कि, तू पराये घर जाया करती है, तू अतिदुष्टा असती है, मैं अब तुझे खाने पहरनेको नहीं दूंगा, रामचन्द्रजीकाही स्त्रियोंपर अनुराग है कि, पराये घरमें बहुत दिनोंतक रही सीताको फिर अपने घर रख, पालन कररहे हैं। मैं रामचन्द्र नही हूं; चली जा तेरा मुख नहीं देखनेका ॥ ॥ ९ ॥ अज्ञान, अबाध्य, बहुमुख पुरुषके मुँहसे यह वचन सुनतेही श्रीरामचन्द्रजीको अत्यन्त भय हुआ और उन्होंने स्थानपर आय अपनी प्रियतमा जनकनन्दिनी जानकीजीको त्यागदिया। भीत पतिसे त्यागी हुई जानकीजी गर्भावस्थामें महर्षि वाल्मीकि

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ॥ स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥ इति लोकाद्बहुमुखाद्दुराराध्यादसंविदः ॥ पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अंतर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ॥ कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११ ॥ अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ॥ तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुश्श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ॥ गंधर्वान्कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥ १३ ॥ तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥ १४ ॥ हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ॥ १५ ॥

जीके आश्रममें आई ॥ १० ॥ कुछ दिनोंमें जानकीजीके समय पूर्ण होनेपर दो पुत्र उत्पन्न हुये। यह दोनों कुश, लव नामसे विख्यात हुये. महर्षि वाल्मीकिजीने उन दोनों पुत्रोंका जातकर्म और संस्कार किया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित ! इधर अयोध्यापुरीमें वीर्यवान् लक्ष्मणजीके दो पुत्र उत्पन्न हुये। उनका नाम अंगद और चित्रकेतु हुआ। महात्मा भरतजीके भी तक्ष और पुष्कल नामक दो पुत्र हुये ॥ १२ ॥ और शत्रुहनजीके पुत्रोंका नाम सुबाहु और श्रुतसेन हुआ। उसी समय भरतजी दिग्विजय करनेके लिये गये और करोड़ों गन्धर्वोंका संहार किया ॥ १३ ॥ और उनका सब धन लाकर राजाको देदिया। शत्रुहनजीने मधुके पुत्र लवणासुरका प्राणसंहार करके मधुवनमें मथुरापुरी बसाई। जनकनंदिनी जानकीजीका

जब रामचन्द्रजीने त्याग करदिया ॥ १४ ॥ १५ ॥ तब कुछ दिन पीछे अपने पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीको सौंप अपने पति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई पृथ्वीके विवरमें समाय गई यह बात श्रीरामचन्द्रजीने भी सुनी । यद्यपि इन महाराज स्वयं ईश्वरने अपनी बुद्धिके बलसे शोक निवारण किया ॥१६॥ तोभी प्राणप्यारीके गुणगण बारम्बार याद आनेलगे कि, जिनके याद आनेको यह किसी प्रकार न रोकसके हे राजा परीक्षित ! स्त्री पुरुषोंका अनुराग सब कालमें इसीप्रकार भयका देनेवाला है ॥ १७ ॥ जब कि, यह अनुराग अवतारोंकोभी भयदाई हुआ तब गृहस्थीमें चित्त लगाये ग्राम्य पुरुषोंकी तो क्या बात है ? तिसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजी अखण्डित ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अग्निहोत्र करते रहे ॥ १८ ॥

ध्यायंती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्रामो रुंधन्नपि धिया शुचः ॥ १६ ॥ स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ स्त्रीपुंप्रसंग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः ॥ १७ ॥ अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ॥ त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखंडितम् ॥ १८ ॥ स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दंडककंटकैः ॥ स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥ १९ ॥ नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ॥ रक्षो वधो जलधिबंधनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥ यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायंत्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ॥ तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादांबुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

तिसके पीछे दण्डक वनके कॉटोंसे जिनके चरणकमल वींधगये थे उन्हीं चरणोंके स्मरणकारी भक्तजनोंके हृदयमें स्थापित करके अपने धामको चले गये ॥ १९ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रमें पुलबाँधना और अस्त्रसमूहसे राक्षसादिका वधकार्य यद्यपि कवि लोगोंने आश्चर्यमय वर्णन किया है तो भी इन कार्योंसे उनका कुछ यश नहीं हो सक्ता, क्योंकि उनका यश बहुत साम्यसे छुटा हुआ है, सो वैरीको मारनेके समय बन्दर बिचारे क्या उनकी सहायता करसक्ते हैं, इसलिये जिस प्रकार सुग्रीवादिके निकट इन श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय लेना केवल लीला मात्र है । वैसही राक्षसोंका वधादि कार्यभी लीलाही है हे महाराज । आप ऐसा न समझ लेना कि, हमारे यह वचन अयुक्त हैं । देवतालोगोंकी

प्रार्थनासे लीला करनेके लियेही भगवान्ने यह अवतार धारण किया था। अहो! जिनका निर्मल यश दिग् दिगन्तरमें व्याप्त होकर दिक्पाल हस्तियोंका आच्छादनपटस्वरूप हुआ है, इसलिये अबतक जिसको युधिष्ठिरादि नृपतियोंकी सभामें ऋषिलोग निरन्तर गान करतेहैं और जिनके चरणकमल देवता और नृपति लोगोंसे सेवित हैं। हम उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें जातेहैं ॥ २० ॥२१॥ अयोध्या निवासियोंने जिन पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीको स्पर्श किया, वा दर्शन किया, अथवा जिन्होंने उनको बैठाला था, किंवा जो लोग उनके अनुमत हुये थे, वह सब पुण्यात्मा लोग उस स्थानमें गये जहाँ कि, योगीलोग जाया करते हैं ॥ २२ ॥ हे परीक्षित! जो पुरुष श्रवणोंके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके इस आख्यानको धारण करेंगे; वह उपशमनिष्ठ हो निःसंदेह कर्मबंधनसे छूट जायँगे ॥ २३ ॥ तिसके उपरान्त राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे कहने लगे

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोपि वा ॥ कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छंति योगिनः ॥ २२ ॥ पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ॥ आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबंधैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथं स भगवान्रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः ॥ तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथादिशद्दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गां गंधोदैः करिणां मदशीकरैः ॥ स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥

कि, हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं किस प्रकार वर्तमान थे? उन्होंने अपने भ्राताओंसे जो कि,उनके अंशरूपही थे कैसा व्यवहार किया था और साक्षात् परमेश्वरस्वरूप जो श्रीरामचन्द्रजी थे, उनसे उनके भ्राता और प्रजाके लोग कैसा व्यवहार करते थे ॥२४॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक! इस प्रकार राजा परीक्षित्का प्रश्न सुनकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजापरीक्षित्! त्रिभुवनके ईश्वर श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्यामें आय राजसिंहासनपर बैठनेके पीछे अपने भ्राताओंको दिग्विजय करनेके लिये आज्ञादी, फिर अपनी जातिवाले लोगोंके साथ बन्धुत्व, प्रकाशितकर अपने मित्रोंके साथ निरन्तर पुरीकी देखभाल करनेलगे ॥ २५ ॥ जबसे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक हुआ, तबसे अयोध्यापुरीके सब मार्गोंपर बराबर सुगन्धिका जल और हाथियोंके मदका जल छिड़का जाता था, यह अयोध्यापुरी अपने स्वामीको

प्राप्त होकर सब प्रकारसे समृद्धिसंपन्न हुई थी ॥ २६ ॥ वहाँके महल, पुरके द्वार, पत्थरसे बने हुये थे और द्वार द्वारपर जलसे भरे हुए सुवर्णके कलश सदा रक्खे रहते थे, सर्व स्थानोंमें सदाही पताका फहराती थीं, गुच्छोंके साथ सुपारियें, केला और शोभायमान वसन, पाट और कौतुक बनानेके योग्य वस्त्र, माला इत्यादिसे स्थान स्थानमें मंगलके तोरण बनाये गये थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ और जहाँ जहाँपर श्रीरामचन्द्रजी गमन करते थे उसी उसी स्थानमें पुरवासी लोग भेंट साथ लेकर आते थे और यह कहकर आशीर्वाद देते थे कि, हे देव ! आपने प्रथम वराहरूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार किया था, अब इसका आप प्रतिपालन कीजिये ॥ २९ ॥ राज्यकी प्रजा बहुत समयके पीछे अपने राजाके आनेका समाचार पाकर उनके दर्शन करनेकी वासनासे स्त्री पुरुष सबही अपने अपने घर छोड़कर महलोंकी छत्तपर चढे हुए थे और अपरितृप्तलोचनसे

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ॥ विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मंडिताम्॥२७॥ पूगैः सवृंदे रंभाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ॥ आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥ तमुपेयुस्तत्रतत्र पौरा अर्हणपाणयः ॥ आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥२९॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ॥ आरुह्य हर्म्याण्यरविंदलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वजादिभिः ॥ अनंताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥ विद्रुमोदुंबरद्वारैर्वैडूर्यस्तंभपंक्तिभिः ॥ स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्रातं स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥ चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ॥ मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कांतकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥

राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीको अवलोकन करके उनके ऊपर फूल वर्षाय रहे थे ॥ ३० ॥ जिस समय श्रीरामचन्द्रजीने अपने गृहमें प्रवेश किया उस समय श्रीरामचन्द्रजीका धनागार अत्यन्त अखिल रत्नादिसे परिपूर्ण और अनेकानेक महामोलकी सामग्रियोंसे सुशोभित था. यद्यपि इस धनागारको पहले श्रीरामचन्द्रजीके सम्बन्धीलोग भोग करचुके थे ॥ ३१ ॥ परन्तु तोभी यह पूर्ण था वहाँके द्वारोंकी देहलियें मूंगोंकी बनी हुई थीं थम्भ वैदूर्य्यमणिके बने हुए थे, गृहोंके आंगन मरकतमय होनेके कारण अतिस्वच्छ थे और स्फटिकमणिकी बनी हुई भीतें अत्यन्त दीप्तिमान् होरही थीं ॥ ३२ ॥ विचित्र पुष्पोंके हारोंसे श्रेष्ठ पट्टिकाओंसे और वस्त्र व रत्नोंकी किरणोंसे यह भवन दीप्तिमान्

होरहा था और चैतन्यतुल्य उज्ज्वल मुक्ताफलोंसे व कमनीय भोग साधनद्रव्य समूहोंसे यह भवन सबप्रकार सुसज्जित था. सुगन्धित धूपसे सुगन्धित पुष्पमण्डलसे मण्डित और सब अलंकारोंके अलंकारस्वरूप देवताओंकी समान स्त्री पुरुषोंसे यह भवन सेवित हो रहा था ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि अत्माराम मुनिलोगोंके अग्रगण्य थे, तोभी उस भवनमें अपनी प्राणप्यारी श्रीजानकीजीके साथ विहार करते थे. इन रामचन्द्रजीने बहुत वर्षोंतक यथाकालमें सब अभिलषित भोगोंका भोग किया था सब मनुष्य उन श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका ध्यान करते थे उन आत्माराम और धैर्यवान में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कालानुसार धर्मको विना पीड़ादिये रमण किया था ॥३५॥३६॥

धूपदीपैः सुरभिभिर्मंडितं पुष्पमण्डितैः ॥ स्त्रीपुंभिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ॥ रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥ बुभुजे च यथाकामं कामान्धर्ममपीडयन् ॥ वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्यातांघ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० म० नव० इक्ष्वा० सगरचरिते श्रीरामोपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ॥ पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत् ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ॥ ततो बलः स्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २ ॥ खगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ॥ ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीरामचरितवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११ ॥ दोहा–द्वादशमें कुशवंशकी, कहूँ कथा समझाय। पुनि इक्ष्वाकुसुत वंशकी, सकल कथा कहौं गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशजीके अतिथि नामक जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनसे निषध उत्पन्न हुए। निषधका पुत्र नभ, तिसका पुत्र पुंडरीक और तिसका सुत क्षेमधन्वा हुआ ॥ १ ॥ क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, तिसका पुत्र अनीह, अनीहके पारियात्र, पारियात्रका पुत्र बल हुआ, बलका पुत्र स्थल हुआ, स्थलके अर्क हुआ, अर्कके वज्रनाभ उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ वज्रनाभका बेटा खगण और तिसका पुत्र विधृति जन्मा, विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई।

यह हिरण्यनाभ महर्षि जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था ॥ ३ ॥ इसकेही निकट याज्ञवल्क्य ऋषिने उस अध्यात्मयोगको सीखा जिस्से महान् सिद्ध होकर हृदयकी गाँठ खुलजाती है ॥४॥ इस हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य और इस पुष्यसे ध्रुवसंधिकी उत्पत्ति हुई. तिसका पुत्र सुदर्शन, तिसका सुत अग्निवर्ण और अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र उत्पन्न हुआ। इस शीघ्रसे राजा मरु जन्मे ॥ ५ ॥ यह मरु योगमें सिद्धि प्राप्त करके कलापनामक ग्राममें विराजमान हैं ॥ जब यह कलियुगके अंतमें सूर्यवंशका नाश होता हुआ देखेंगे तब यह अपने फिर वंशको उत्पन्न करेंगे * ॥ ६ ॥ इनके पुत्र

शिष्यः कौसल्य अध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः ॥ योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रंथिभेदकम् ॥ ४ ॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसंधिस्ततोऽभवत् ॥ सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५ ॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ॥ कलेरंते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य संधिस्तस्याप्यमर्षणः ॥ सहस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ततः प्रसेनजित् तस्मात्तक्षको भविता पुनः ॥ ७ ॥ ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ॥८॥ बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥

प्रसुश्रुत, तिनके संतानसंधि, तिनका पुत्र अमर्षण, अमर्षणका पुत्र सहस्वान् और सहस्वानके विश्वसाह्व हुआ विश्वसाह्वके प्रसेनजित्। प्रसेनजित्से तक्षक ॥७॥ तक्षकसे बृहद्बल उत्पन्न हुआ कि, जिसका तुम्हारे पिता अभिमन्युने संग्राममें संहार किया था हे परीक्षित् ! ऊपर कहेहुये राजा इक्ष्वाकुवंशमें होगये हैं अब इनका वृत्तान्त सुनो जो कि, आगेको होंगे ॥ ८ ॥ इसके पीछे बृहद्बलके बृहद्रणनामक पुत्र होगा तिसका

* शंका—त्रिलोकीमें जो प्राणी जन्म लेता है उस प्राणीको काल खा लेता है परन्तु राजा मरुको कालने क्यों नहीं खाया ? जो राजा मरु कलियुगके नाश हुए पीछे सूर्यवंशको फिर उत्पन्न करेगा ? उत्तर—राजा मरु बाल्यावस्थासे परमेश्वरका भजन करनेलगा था और भजन करते करते बडा योगी होगया और योगियोंको काल किसी प्रकार नहीं खा सक्ता। क्योंकि काल तो योगियोंका रूप देखकर दूरसेही डरता है इसलिये राजा मरुको कालने नहीं खाया ॥

पुत्र उरुक्रिय होगा उरुक्रियका पुत्र वत्सवृद्ध ॥ ९ ॥ इस वत्सवृद्धसे प्रतिव्योम, तिसके भानु और इस भानुसे सेनापति दिवाकका जन्म होगा. तिसका पुत्र सहदेव, तिसका पुत्र वीरबृहदश्व तिसका पुत्र भानुमान् होगा ॥१०॥ इस भानुमान्का पुत्र प्रतीकाश्व, तिससे सुप्रतीक जन्मग्रहण करेंगे. तिसके मरुदेव,तिसके सुनक्षत्र और सुनक्षत्रसे पुष्करनामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ११ ॥ तिसके अन्तरिक्ष, तिसका पुत्र सुतपा, तिसके पुत्र अमित्रजित् तिसका पुत्र बृहद्राज, बृहद्राजके बर्हि और बर्हिसे कृतञ्जयका जन्म होगा ॥ १२ ॥ कृतञ्जयका पुत्र रणञ्जय और तिससे संजयकी उत्पत्ति होगी। सञ्जयका पुत्र शाक्य, तिसका पुत्र शुद्धोद और तिसका पुत्र लांगल होगा ॥ १३ ॥ लांगलसे प्रसेनजित्, तिससे क्षुद्रक और क्षुद्रकसे रणक और

प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥ १० ॥ प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः॥ ११ ॥ तस्यांतरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित ॥ बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतंजयः ॥ १२ ॥ रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥ तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लांगलस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १३ ॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ रणको भविता तस्मात्सुरथस्त नयस्ततः ॥ १४ ॥ सुमित्रो नाम निष्ठांत एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रांतो भविष्यति ॥ यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुचरिते कुशान्वय वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥ आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग् वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥

रणकसे सुरथ जन्म लेगा ॥१४॥ हे महाराज परीक्षित् । तिसके यहाँ सुमित्र जन्मग्रहण करेगा और यह सब राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे, हे राजन् ! इक्ष्वाकुके वंशमें सुमित्र तक यह सब राजा होंगे। और सबसे पीछे सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश ध्वस्त होजायगा ॥ १५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां कुशान्वयवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–तेरहमें इक्ष्वाकु सुत, निमिका वंश बखान । तिसमें प्रगटे जनकसे, ज्ञानी परम सुजान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञ आरम्भ करके वसिष्ठ महर्षिजीको अपना ऋत्विज वरण किया, तब वसिष्ठजी बोले कि, यज्ञ करनेके लिये देवराज इन्द्र हमको वरण कर चुके हैं ॥ १ ॥

इस कारण बिना इन्द्रका यज्ञ समाप्त कियेहुये हम तुमसे यज्ञ नहीं करा सके हैं जबतक इन्द्रका यज्ञ समाप्त हो तबतक ठहरे रहो। यह सुनकर महाराज निमि कुछ न बोले चुपचाप रहे। और महर्षि वसिष्ठजी देवराज इन्द्रका यज्ञ करने लगे ॥ २ ॥ वसिष्ठजीके जानेपर महाराज निमिने विचारा कि, इस जीवनका क्या ठिकाना है? यदि इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेके प्रथमही हमारी मृत्यु होजाय, तो फिर यज्ञ न हुआ, इसलिये जबतक

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ॥ तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोपींद्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥
निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् ॥ ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥ ३ ॥
शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ॥ अशपत्पततादेहो निमेः पंडितमानिनः ॥ ४ ॥
निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ॥ तवापि पततादेहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥

कुलगुरु वसिष्ठजी न आवें तबतक किसी औरही ऋत्विक्से यज्ञ आरम्भ कराऊं। यह विचार निमिराजाने यज्ञारम्भ किया ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त महर्षि वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ समाप्त कराय राजा निमिके स्थानपर आये, शिष्यका अन्याय देखकर मुनिको क्रोध उत्पन्न हुआ और क्रोधकरके यह शाप दिया कि, पण्डिताभिमानी इस निमिका देह शीघ्र छूट जाय * ॥ ४ ॥ जब कुलगुरु वसिष्ठजीने इस प्रकार अधर्मवर्ती

---

* शंका–राजा निमि बडा ज्ञानी और ध्यानी था वसिष्ठमुनि आदिक मुनियोंमें पूजन करने योग्य बडा महात्मा पुरुष था, उन दोनोंने फिर मूर्खोंकी समान काम क्यों किया ? राजाने मुनिको शाप दिया, मुनिने राजाको शापदिया, यह क्या कारण ?

उत्तर–जब नारदमुनि स्त्रीके लिये मोहित होगये और विवाह करनेकी इच्छा की, बडे कामियोंकी समान संसारमें भ्रमण करते फिरे, तब राजा निमि और वसिष्ठ यह दोनों उनको देखकर बहुत हँसे, तब दोनों जनोंको नारद मुनिने शापदिया कि, हे वसिष्ठमुनि! हे राजा निमि! हम स्त्रीके लिये दुःखी हो रहे हैं, हमारे मनमें विवाह करनेकी इच्छा नहीं है परन्तु भगवान्की मायाने हमको मोहित करलिया है, इसपर भी तुम दोनोंजन हमारी हँसी करते हो, इसलिये तुम दोनोंजने बहुत शीघ्र मायाके फन्दमें फँसकर हमारी समान बडी दुर्गतिको प्राप्त होओगे, इसलिये दोनों जनोंकी बुद्धि भ्रष्ट होगई थी ॥

होकर शाप दिया, तब राजा निमिभी उनको यह शाप देने लगा कि, "तुमने लोभके वश होकर धर्मकी ओरको नहीं देखा इसलिये तुम्हारा देहभी छूटजाय" ॥ ५ ॥ यह कहकर राजा निमिने अपनी देहको छोड़दिया। उसी समय वसिष्ठ ऋत्विक्का भी देह छूटगया, परन्तु कुछ कालके पीछे मित्रावरुणके यज्ञमें उर्वशीके गर्भसे वसिष्ठजीने फिर जन्म लिया, अर्थात् यज्ञ करते करते उर्वशीको देखकर मित्रावरुणजीका जो वीर्य गिरा, उस वीर्यको उन्होंने कलशमें रक्खा था, तिससेही फिर वसिष्ठजी उत्पन्न हुये ॥ ६ ॥ इधर जब यज्ञ करते करते राजा निमिका देह छूटगया, तब मुनि लोगोंने सुगंधित वस्तुमें (उत्तम तेलमें) उनके शरीरको रखदिया; इसके उपरान्त जब यज्ञ समाप्त होगया तो आयेहुये देवता लोगोंसे बोले कि " आप लोग यदि प्रसन्न हो और सामर्थ्य रखते हो तो राजाका यह देह सजीव हो उठे" देवतालोगोंने कहा ऐसाही हो। तब राजा निमिका शरीर गंध वस्तुमेंसे ही बोला कि, हे प्रिय ! हमें कभी देहका बन्धन न होवे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हरिसेवक मुनिलोग वियोगके भयसे कातर हो कदापि देह धारण करनेकी वाञ्छा नहीं करते। वह केवल मुक्तिके लिये भगवान्के चरणकमलकी सदा वन्दना किया करते हैं ॥ ९ ॥ और दुःख, शोक, भयके देनेवाले मनुष्यके शरीरकी मैं इच्छा नहीं करता, क्योंकि इस देहकी सर्वत्र मृत्यु है, जैसे मछलियोंकी जलमें सर्वत्र मृत्यु है ॥ १० ॥ तब देवतालोगोंने कहा कि, यह निमि विनाही देहके सब प्राणियोंके नेत्रोंपर इच्छानुसार वास करै ॥ इसका तात्पर्य यह है कि, ऐसा होनेसे मुनिलोग जिसलिये राजाके जीवनकी प्रार्थना करते हैं; वह प्रार्थना सिद्ध होजायगी और राजाको देहका संबंधभी नहीं होगा. हे राजन् ! इसी वाक्यके अनुसार निमि जीवित हुए थे, नेत्रोंपर पलकका उघड़ना और

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ॥ मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गंधवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ॥ समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥ राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ॥ तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबंधनम् ॥ ८ ॥ यस्य योगं न वांछंति वियोगभयकातराः ॥ भजंति चरणांभोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहं नावरुरुत्सेहं दुःखशोकभयावहम् ॥ सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ॥ उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥

पडना इन्हीं राजा निमिके कियेसे होता है ॥ ११ ॥ परन्तु तिसके पीछे महर्षियोंने विचारा कि, विना राजाके राज्य सदा प्रजाका भय दिलाने वाला है । इसलिये सबने राजकुमारकी कामना करके इन निमिके देहको मथा, मथन करनेसे राजा निमिके मृतक देहसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ उस निमिके पुत्रका असामान्य जन्म होनेके कारण जनक नाम हुआ । इस शब्दका अर्थ उत्पादक है । और विदेहसे जन्म ग्रहण करनेके कारण इनका एक नाम विदेह हुआ और मथनेसे जन्म होनेके कारण एक नाम मिथिल हुआ अथवा मिथिलापुरीके निर्माण कर्ता होनेके कारण मिथिलाधिपति कहलाते थे ॥ १३ ॥ इन जनकके पुत्र उदावसु, इनके पुत्र नन्दिवर्द्धन हुए. नंदिवर्द्धनका पुत्र सुकेत और सुकेतका पुत्र देवरात हुआ ॥ १४ ॥ देवरातसे बृहद्रथका जन्म हुआ, तिसका पुत्र महावीर्य, महावीर्यका पुत्र सुधृति, तिसका सुत धृष्टकेतु,

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः ॥ देहं ममंथुः स्म निमेः कुमारस्समजायत ॥ १२ ॥ जन्मना जनकः सोऽभू द्वैदेहस्तु विदेहजः ॥ मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता॥ १३ ॥ तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नंदिवर्धनः ॥ ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥१४॥ तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यस्सुधृतिपता ॥ सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥ मरोः प्रदीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ॥ देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोथ महाधृतिः ॥ १६ ॥ कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः ॥ स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥ ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ॥ सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ॥ धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥

तिसका पुत्र हर्यश्व और तिससे मरुकी उत्पत्ति हुई ॥ १५ ॥ मरुका बेटा प्रदीकप, तिससे कृतरथने जन्म लिया. तिसका पुत्र देवमीढ और तिससे विश्रुत उत्पन्न हुआ और उससे महाधृतिने जन्म लिया ॥ १६ ॥ महाधृतिका पुत्र कृतरात, तिसका पुत्र महारोमा और महारोमाका बेटा स्वर्णरोमा हुआ तिससे ह्रस्वरोमाने जन्म ग्रहण किया ॥ १७ ॥ तिसके सीरध्वज जन्मा, ह्रस्वरोमा राजा यज्ञके लिये भूमि जोतरहे थे, उसी समय उसकी सीर अर्थात् हलके अग्र भागसे इस पुरुषका जन्म हुआ, इस कारणसे यह सीरध्वज कहलाता था ॥ १८ ॥ सीरध्वजका पुत्र कुशध्वज तिसका पुत्र धर्मध्वज धर्मध्वजके कृतध्वज और मितध्वज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥

अनेकवार चन्द्रमाके निकट गये और उनसे अपनी भार्याको माँगा, परन्तु मदमत्तताके कारण चन्द्रमाने अपनी गुरुभार्याको नहीं त्यागा। बस इसीलिये दैत्य व सुरोंमें महा संग्राम हुआ था ॥ ५ ॥ बृहस्पतिजीसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य डाह रखते थे इसीलिये उन्होंने अपने शिष्य असुर लोगोंके साथ चन्द्रमाको ग्रहण किया अर्थात् चन्द्रमाका पक्ष लिया और भूतेश्वर (महादेव) अंगिराजीके निकट विद्या पानेसे सब भूतोंको साथ ले अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिजीकी ओर हुए ॥६॥ देवराज इन्द्रभी अपने सब देवताओंके संग मिल अपने गुरु बृहस्पतिजीकी ओर गये। तिसके पीछे ताराके लिये सुर और असुरोंका नाशकारी महाघोर संग्राम होनेलगा ॥ ७ ॥ हे राजन्! जब कुछ दिनोंतक युद्ध हुआ। तब देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे जाकर यह सब वृत्तान्त कहा। यह सुन महात्मा ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बुलाकर बहुत डाँटा। और तारा बृहस्पतिजीको

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ॥ हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो महेंद्रो गुरुम
न्वयात् ॥ सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथांगिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ॥ तारां स्वभर्त्रे
प्रायच्छदंतर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥ त्यजत्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ॥ नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सांता
निकः सति ॥ ९ ॥ तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ॥ स्पृहामांगिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥

दिला दी ॥ ८ ॥ बृहस्पतिजी अपनी भार्या ताराको पायकर जानगये कि, यह अवला अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भवती हुई है। इसलिये ताराके ऊपर घृणा प्रकाश करके कहनेलगे। अरे दुर्म्मति रमणि!! हमारे क्षेत्रमें औरका गर्भ धारण किया। इसे शीघ्र गिरादे। अरे असति! तू ऐसा समझकर न डरना कि, गर्भगिरानेके पीछे हम तुझे मार डालेंगे यद्यपि हमारे क्रोधकी अग्नि बहुत भड़क रही है तो भी तुझ स्त्री जातिको हम क्या भस्म करेंगे? और अधिक करके हम सन्तानकी इच्छा करते हैं ॥ ९ ॥ पतिके यह वचन सुनकर तारा अतिलज्जित हुई और अपने गर्भसे तत्कालही कनक प्रभासम सुकुमारको छोड़ दिया। हे राजन्! इस परम कुमारको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंने लेना चाहा ॥ १० ॥

और दोनों परस्पर कहनेलगे कि,यह बालक तुम्हारा नहीं है हमारा है इसलिये इन दोनों जनोंमें बहुत झगडा हुआ, पुत्रके लिये इन दोनोंमें झगड़ा होताहुआ देखकर ऋषि और देवतालोगोने तारासे पूंछा कि, यह वास्तवमें किसका पुत्र है, परन्तु तारा लाजके मारे कुछ भी न कहसकी और चुप होरही ॥११॥ इसलिये वह बालक अलीक लाजसे कोपायमान हो अपनी मातासे बोला "अरी अशुभे ! बोलती क्यों नहीं ? शीघ्र मेरे सामने अपना दोष वर्णन कर" ॥ १२ ॥ तिसके पीछे ब्रह्माजीने एकान्तमें ताराको बुलाय समझाया बुझाया और कहा हे वत्से ! बतलाओ यह किसका पुत्र है ? तब तारा नीचेको शिर झुकाय लाजसहित धीरेसे बोली कि "पुत्र तो यह चन्द्रमाजीका है" ताराके मुखसे यह वचन निकलतेही चन्द्रमाने उस पुत्रको लेलिया ॥ १३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इस बालककी गंभीर बुद्धि देखकर इसका नाम "बुध" रक्खा है. हे राजन् ! चन्द्रमा इस पुत्रको पाकर

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः ॥ प्रपच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥ कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ॥ किं नावोचस्त्व्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाऽऽशु मे ॥ १२ ॥ ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सांत्वयन् ॥ सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥१३॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ॥ बुद्ध्या गंभीरया येन पुत्रेणाऽऽपोडुराण्मुदम् ॥१४॥ ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ ॥ १५,॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणा ॥ तदंतिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥ मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ॥ निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कंदर्पमिव रूपिणम् ॥१७॥ धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदंतिके ॥ स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८ ॥

परम हर्षित हुआ ॥१४॥ इस बुधसे इलाके गर्भमें पुरूरवाका जन्म हुआ यह पुरूरवा अत्यन्त विख्यात हुआ ॥ १५ ॥ एक समय देवर्षि नारदजी देवराज इन्द्रकी सभामें पुरूरवाके रूप, गुण, धन,उदारता, शीलता और विक्रमका गान कररहेथे। देववेश्या उर्वशी यह गुण सुनकर कामके वश होगई और राजाके निकट स्वयंही आई ॥ १६ ॥ हे परीक्षित् ! तुम ऐसी शंका मत करना कि, उर्वशी स्वर्गकी अप्सरा होकर मनुष्यके निकट क्यों गई ? यह अप्सरा मित्रावरुणके शापसे इस समय मनुष्यभावको प्राप्त हुई थी इसलिये पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामदेवकी समान रूपवान् सुनकर यह अधीर हो उनके निकट जाकर खड़ी होगई ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र आनन्दके मारे खिल

राजोवाच ॥ स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ॥ संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥ १९ ॥
उर्वश्युवाच ॥ कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुंदर ॥ यदंगांतरमासाद्य च्यवते न रिरंसया ॥ २० ॥ एतावुरणकौ
राजन्न्यासौ रक्षस्व मानद ॥ संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥ २१ ॥ घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे
त्वाऽन्यत्र मैथुनात् ॥ विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥ २२ ॥ अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ॥ को न
सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥२३॥ तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयंत्या यथार्हतः ॥ रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथा
दिषु ॥ २४ ॥ रममाणस्तया देव्या पद्मकिंजल्कगंधया ॥ तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५ ॥

गये। राजाने पुलकित हो मधुर वचनसे कहा ॥ १८ ॥ हे सुन्दरी! हमारे साथ विहार करो। बहुत वर्षोंतक हमारा दोनोंका परमसुखसे रमण होगा और मैं यही चाहताहूं कि, मेरा तुम्हारा स्नेह ऐसाही बनारहे ॥ १९ ॥ उर्वशी बोली कि. हे सुन्दर! तुम्हारे प्रति किसके नेत्र और मन अनुरागी न होंगे? तुम्हारे हृदयको प्राप्त हो रमण करनेकी इच्छासे कोई इस हृदयसे दूर होनेकी इच्छा न करेगी ॥ २० ॥ तिसके उपरान्त शापके अंतमें प्रतिज्ञाभंग करनेके छलसे जानेके लिये कहनेलगी कि, हे प्रियवर! मैं प्रथमही आपसे यह वचन माँगे लेतीहूं कि, मेरे यह दोनों भेड़ोंके बच्चे तुमको धरोहरकी समान रखनेपडेंगे और हमारे साथ तुम रमण करो। क्योंकि जो पुरुष बडाईके योग्य है उसकोही स्त्रियें वरण करती हैं। इसलिये विजातीय होनेपरभी तुम्हारे वरण करनेमें हमें कोई दोष नहीं है ॥२१॥ हे वीर! परन्तु मैं तुम्हारे निकट रहकर घृतभक्षण करूंगी और मैथुनके अतिरिक्त किसी समय तुमको वस्त्ररहित न देखूं। जबतक इतनी बातें आप मेरी स्वीकार न करलेंगे तबतक मैं आपके संग कदापि प्रसंग न करूंगी. राजा पुरूरवाने उसकी सुन्दरताईपर मोहित होकर यह सब बातें अंगीकार करलीं ॥२२॥ और कहा कि, हे सुन्दरि! तुम्हारा आश्चर्यमय रूप और आश्चर्यमय भाव देखतेही मनुष्यका हृदय मोहित होजाताहै। तुम स्वर्गवासी देवी अपने आप यहाँ आई हो। फिर कौन मनुष्य तुम्हारी सेवा न करेगा? ॥ २३ ॥ हे राजन्! यह कहकर पुरुषप्रधान पुरूरवा उर्वशीके साथ देवतालोगोंके विहार स्थल चैत्ररथादि वनोंमें विहार करनेलगे। और उर्वशीभी यथायोग्य उस नृपालको आनन्द देनेलगी ॥२४॥ इस देवी उर्वशीके शरीरमें कमलके परागकी समान सुगंधि

निकलती थी । उर्व्वशीके साथ विहार करके राजा इसके वदनकी सुगन्धिसे बहुत दिनतक हर्ष पातेरहे॥२५॥इस ओर पुरमें देवराज इन्द्रने उर्वशीका दर्शन न पायकर गन्धर्वोंको अज्ञा दी कि,वह उर्व्वशी जहाँपर हो वहाँसे शीघ्र लेआओ ! क्योंकि विना उर्व्वशीके हमारे स्थानकी शोभा नहीं होती ॥ २६ ॥ आधीरातके समय जब महाअन्धकार हुआ उस समय वह इन्द्रके भेजे गन्धर्व मृत्युलोकमें आये और उन मेढोंको हरण करके चलदिये जिनको धरोहरकी भाँति उर्वशीने पुरूरवाके निकट सौंपाथा ॥ २७ ॥ उन दोनों मेढोंको उर्व्वशी पुत्रके समान मानती थी; जब उन मेढोंको गन्धर्व गण हरण करके लेजानेलगे तब वह अति आर्त्त वाणीसे चिल्लाये । उस चिल्लानेके शब्दको सुन उर्व्वशी देवलोकमें जानेकी वासनासे खेदसहित राजा पुरूरवासे कहने लगी हा; ! मैं इस कुत्सित स्वामीसे मारी पड़ी, इस नपुंसकमें कुछ भी पुरुषार्थता नहीं है । बरन् यह अपने आपको वृथाही वीर

अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समचोदयत् ॥ उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६ ॥ त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ॥ उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ २७ ॥ निशम्याक्रंदितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ॥ हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ २८ ॥ यद्विस्रंभादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ॥ यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९ ॥ इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुंजरः ॥ निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥ ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतंत स्म विद्युतः ॥ आदाय मेषावायांतं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥

जानकर अभिमान करता है । इसके ऊपर विश्वास करनेसे मेरा नाश होगया । हाय ! मेरे पुत्रसमान मेढ़ोंको चोर हरण करके लिये चलेजातेहैं । अरे ! यह पुरुष कैसा ? कि, जो नारीकी समान भीत रहकर दिन रात घरमें पड़ा रहता है, हे राजन् ! जिसप्रकार हाथी अंकुशसे विद्ध होताहै, उसी प्रकार उर्व्वशीके वचन बाणके समान राजाके हृदयमें बिंधगये और उसी समय खड्ग ग्रहण करके क्रोधके मारे वस्त्र रहित मेढोंको हरनेवालोंपर झपटा ॥ २८॥२९॥३०॥ गंन्धर्वोंने देखा कि, राजा हमारे पीछे आता है तब गन्धर्वगणोंने मेढोंको छोड़दिया । और विशेष द्युतिमान होकर वहाँ प्रकाश करनेलगे । तब राजा उन मेढोके बच्चोंको लेकर वहाँ आया, परन्तु उस समय उर्वशीने उनको नग्न देखलिया । हे कुरुश्रेष्ठ ! "मैथुनके

अतिरिक्त नंगा न देख सकूँगी" इस बातको विचार वह अप्सरा वहाँसे चलीगई। इसके उपरान्त राजा पुरूरवा सेजपर उर्व्वशीको न पायकर अत्यन्त विमन हुआ। और उसीमें चित्त लगाय कातरता प्रकट करके शोकके वेगसे उन्मत्तकी नाईं पृथ्वीपर भ्रमण करनेलगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कुछ दिनों पीछे कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तीर वह अप्सरा पाँच सखियोके साथ राजा पुरूरवाको दिखाई दी, तब राजाने सिटपिटायकर हर्षित हो यह वचन कहे ॥ ३३ ॥ हे प्यारी! हे निर्दयी बाला! रहो रहो। हे सुमुखि! मैं अबतक सावधान नहींहूं प्राणेश्वरि! आओ तो दोनों एक स्थानपर बैठकर बात चीत करैं ॥ ३४ ॥ हे देवि! हमारा यह कमनीय शरीर तुमसे दूर कियाहुआ जो यहाँ आया है अभी यहाँ गिरता है और देखो तुम्हारी

ऐलोपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२ ॥ स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ॥ पंच प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३ ॥ अहो जाये तिष्ठतिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४ ॥ सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादंत्येनं वृका गृध्रास्त्व त्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच ॥ मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाऽद्युर्वृका इमे ॥ क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ॥ घ्नंत्यल्पार्थेऽपि विस्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविस्रंभमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ॥ नवंनवमभीप्संत्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८ ॥

प्रसन्नताका पात्र न होनेसे भेडिये और गिद्ध इसको भक्षण कर जायँगे ॥ ३५ ॥ राजाके यह वचन सुनकर उर्व्वशी बोली कि, हे राजन्! मरो नहीं तुम पुरुष हो धैर्य धारण करो। यह भेडिये अथवा प्रसिद्ध इन्द्रियें तुमको भक्षण न करैं अर्थात् तुम इंद्रियोंके वश मत होओ। हे राजन्! कहींभी स्त्रियोंकी मित्रता नहीं स्थिर होती क्योंकि इनका हृदय भेडियेकी समान होताहै ॥ ३६ ॥ स्त्रियोंको स्वभावसेही करुणा नहीं होती, यह क्रूर और शान्तिरहित कहलाती हैं। अपने प्रीतमके लिये साहस करती हैं। थोडीसी बातके लिये यह विश्वासघातिनी पति अथवा भ्राताको प्राणोंसे मार डालती है ॥ ३७ ॥ अधिक करके जो पुँश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी हैं। इच्छानुसार घूमती हैं वह तो सौहार्दको एक साथ ही छोड़ देती हैं। वह अज्ञानी पुरुषके

सामने बाहरी और अलीक प्रेम प्रकट करती हैं ॥ ३८ ॥ जब राजाने बहुत विनती की, तब उर्वशी बोली कि, वर्षके अन्तमें तुम मेरे साथ एक दिन विहार कर सकोगे। और उससे ही तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ३९ ॥ उसके उपरान्त राजा पुरूरवा देवी उर्वशीको गर्भवती देख उसके वचन मान अपने नगरको चला आया परंतु वर्षके व्यतीत होनेपर फिर वहाँपर आया जहाँ कि; पहले उर्वशीसे भेंट हुई थी. वीर प्रसविनी उर्वशीको देखकर राजाको परम हर्ष हुआ । और प्रमुदितचित्तसे उर्वशीके पास एक रात बासकिया ॥ ४० ॥ फिर वियोगके भयसे राजाका चित्त व्याकुल हुआ । उर्वशी दीन राजाको विरहातुर देखकर कृपा करके बोली हे राजन्! हमारे लिये शोक क्यों करते हो ? गंधर्वलोगोकी विनय करो । वह गन्धर्वगण प्रसन्न होकर हमको सदाके लिये तुम्हें देदेंगे ॥ ४१ ॥ हे परीक्षित! उर्वशीके यह वचन

संवत्सरांते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ॥ वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यंत्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंतर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् ॥ पुनस्तत्र गतोऽब्दांते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥ उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तयाऽनिशम् ॥ अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥ गंधर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यंति मामिति ॥ तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥ उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन्वने ॥ ४२ ॥ स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३ ॥ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः ॥ तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥

सुनकर राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी बड़ी स्तुति की कि, जिससे गन्धर्वगण बहुत ही शीघ्र प्रसन्न होगये उन्होने प्रसन्न होकर राजाको अग्नि स्थाली (टोकनी) दी । उसके देनेका तात्पर्य यह था कि, जब इससे अग्निकर्म किया जायगा, तबहीं उर्वशी प्राप्त हो जायगी । परंतु राजा पुरूरवाने उस अग्निस्थालीकोही उर्वशी समझा और उसको काँखमें दबाये वन वनमें घूमता फिरा। परन्तु फिर राजाका भ्रम दूर हो गया, अर्थात् यह समझलिया कि, यह उर्वशी नही किन्तु अग्निस्थाली है ॥ ४२ ॥ उसके उपरान्त इस अग्निस्थालीको वनमें डालकर घर आया और घरमें आय नित्य रात्रिके समय उर्वशीका ध्यान करने लगे। तिससे त्रेतायुगके आरंभके समय राजाके हृदयमें कर्मबोधक तीन वेद उत्पन्न हुये ॥४३॥ उसके पीछे राजा फिर वहींपर गया कि, जहाँ अग्निस्थाली पड़ी थी। और देखा कि, शमीवृक्षके गर्भमें एक चलद्रोणीका पेड

जमा है उसमें अग्निका होना भली भाँतिसे देख उर्वशीलोककी कामनासे उस राजाने उस चलद्रोणीके पेड़से दो अरणी बनाई। और उस अग्निको मथा; हे राजन्! राजा पुरूरवाने किस प्रकारसे अरणियोंसे अग्नि निकाली, सो तुम सुनो। मंत्रके अनुसार नीचेकी अरणीको उर्वशी और उत्तरकी अरणीको आत्मा समझकर और इन दोनोंमें जो काठका टुकड़ा था, उसका यह राजा पुत्रकी भांति ध्यान करने लगे ॥४४॥४५॥ जैसेही वह अरणी मथीगई कि, उनमेंसे अग्नि निकली यह अग्नि साधारण नहीं। इससेही भोज्यधन जन्म लेता है उसके पीछे वह अग्नि त्रयीविद्याकी विधिके अनुसार कहेहुये संस्कारसे त्रिवृत अर्थात् आहवनीयादि त्रिरूप हुई। फिर राजाने उस त्रिवृत अग्निको अपना पुत्र कहकर माना॥४६॥ और उर्वशीलोककी कामना करके उस अग्निसे सर्वदेवमय यज्ञेश भगवान् वासुदेवका यज्ञ इस राजाने किया ॥ ४७ ॥ हे राजन्! पहले सत्ययुगमें सब प्रकारके वाक्योंका बीजभूत

उर्वशीं मंत्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ॥ आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्मंथनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ॥ त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥ तेनायजत यज्ञेशं भगवंतमधोक्षजम् ॥ उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥ एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥ देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥ अग्निना प्रजया राजा लोकं गांधर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० नवमस्कंधे सोमवंशचरिते ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ॥ आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥

ओंकारही एक मात्र वेद था, नारायणही अकेले देवता थे। अग्निही अकेला लौकिक था वर्णभी एकही था और अग्निभी एकही था ॥ ४८ ॥ फिर त्रेतायुगके आरम्भमें पुरूरवासे तीन वेद उत्पन्न हुये। इसलिये इस युगमें यह राजा अग्निरूप प्रजाद्वारा गंधर्वलोकको प्राप्त होकर उर्वशीके साथ विहार करने लगा। सत्ययुगमें सब ही पुरुष सत्त्वगुणप्रधान थे. इसलिये सबही ध्याननिष्ठ हुआ करते थे. उसके पीछे रजोगुणप्रधान त्रेतायुगमें वेदादिके विभागसे कर्ममार्ग प्रकाशित हुआ है ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायाम् ऐलोपाख्यानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा–पुरूवाके वंशमें, भये गाधि गम्भीर ॥ ता दौहित्रके पुत्र भे, परशुराम रणधीर ॥ १ ॥ इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! राजा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे ६ पुत्र उत्पन्न हुये जिनके नाम यह हैं। आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥

इनमें श्रुतायुके वसुमान्, सत्यायुके श्रुतञ्जय हुआ, रयका पुत्र एकनामा हुआ। जयकी संतान अमित हुई ॥ २ ॥ विजयका पुत्र भीम हुआ भीमका पुत्र काञ्चन और काञ्चनके होत्रक जन्मा। इस होत्रकके उन जह्नुका जन्म हुआ कि जिन्होने एकही घूंटमें सब गंगाजीका जल पान कर लियाथा जह्नुके पुरु जन्मा उसका बलाक तिसका बेटा अजक॥३॥अजकके यहाँ कुशने जन्म लिया। कुशके कुशाम्बु, मूर्तय, वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र

श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः ॥ रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ कांचनो होत्रकस्ततः ॥ तस्य जह्नुः सुतो गंगां गंडूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ॥ ३ ॥ ततः कुशः कुशस्यापि कुशांबुर्मूर्तयो वसुः ॥ कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत्कुशांबुजः ॥ ४ ॥ तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ॥ वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चंद्रवर्चसाम् ॥ सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ॥ ६ ॥

हुए उनमेंसे कुशाम्बुके गाधिने जन्म ग्रहण किया ❀ ॥ ४ ॥ इन गाधिके सत्यवती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। ब्राह्मण ऋचीकने राजा गाधिसे उस कन्याको माँग लियाथा। तब राजा गाधिने कन्याके योग्य यह वर न विचार कर निवेदन किया ॥ ५ ॥ हे महाराज! जिनका दाँयाँ अथवा बाँयाँ एक ओरका कान श्यामवर्ण हो और जिनके सब अंगोंमें चन्द्रमाकी समान ज्योति हो ऐसे एक सहस्र घोड़े तुम हमें इस कन्याके मूल्यमें दो

❀ शंका–पुत्र होनेके लिये सब राजा लोग यज्ञ किया करते थे परन्तु राजा गाधिने पुत्र होनेके लिये यज्ञ क्यों नहीं किया ? क्योंकि राजा गाधिकी स्त्रीने पुत्र होनेके लिये अपने जामातृसे याचना की थी, यह सन्देह हमारा निवारण करो ? ॥

उत्तर–राजा गाधि नित्यप्रति यही चिन्ता करते थे कि, किसीसमय पुत्र होनेके लिये यज्ञ करेंगे, यही विचार करते करते बहुत दिन वीतगये, तवतक ऋचीक नाम भृगुवंशमें तपस्वी था. उसके संग राजा गाधिने अपनी सत्यवती कन्याका विवाह करदिया, तब रानी अपने जामातृ (जमाई) को सिद्ध समझकर, और अधिक अवस्था समझकर, पुत्रकी याचना करनेलगी, रानीने अपने मनमें विचारा कि, राजा यज्ञ करनेके लिये अभी विचारही रहाहै परतु अभी यज्ञ करता नहीं, इसलिये रानीने जामातृसे पुत्र होनेकी याचना की, कि राजा यज्ञ करे वा न करे ॥

तब हम तुम्हें यह कन्या दें। कुछ इन हजार घोड़ोंको आप अधिक न समझें, क्योंकि हम कुशिकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! ऋचीक मुनि राजाके ऐसे वचन सुनकर सब अभिप्राय जान वरुणजीके निकट उसीसमय चलेगये और वहाँसे एक हजार घोड़ोंको लाकर उस श्रेष्ठ मुखवाली कन्यासे विवाह किया॥७॥कुछ कालके पीछे ऋचीक मुनिकी भार्या और सासने पुत्रकी कामना करके इन ऋचीकसे प्रार्थना की तब इस ऋषिने अपनी भार्याके लिये ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिये क्षत्रिय मन्त्रसे चरु पकाय स्नान करनेको गये ॥ ८ ॥ उसी सत्यवतीकी माताने मनमें विचारा कि, भार्याके ऊपर पतिका अधिक स्नेह हुआ करताहै जामाता मेरी कन्याके लिये जो चरु बनायकर गयेहैं वह अवश्यही हमारे

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणांतिकम् ॥ आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥ स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ॥ श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥ तावत्सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ॥ श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदत्स्वयम्॥९॥तद्विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ॥ घोरो दंडधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ॥ अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ॥ रेणोः सुतां रेणुकां वै जमग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥

चरुसे श्रेष्ठ होगा। यह सोच विचार इसने अपनी कन्यासे वह चरु माँगा जो कि, ऋषि इस अपनी भार्याके लिये बनागये थे। सत्यवतीने माताकी प्रार्थनासे ब्रह्ममन्त्र युक्त अपना चरु उसको देदिया और आपने क्षत्रिय मंत्रका पढ़ा हुआ चरु भक्षणकिया॥९॥इसके उपरान्त जब मुनिनेआकर यहबात जानली तब अपनी स्त्रीसे बोले। "बडा नीचकर्म किया, चरुका अदल बदल करनेसे तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधारी होगा। और तुम्हारा भ्राता ब्रह्मचारी होगा"॥१०॥यह सुन सत्यवती अत्यन्तभीत हो अनेक भाँतिकी अनुनय विनय कर ऋषिसे बोली कि, महाराज! "ऐसा न हो" तब भार्गव प्रसन्न होकर बोले कि; तुम्हारा पौत्र भयंकर होगा। हे राजन्! तिसके पीछे सत्यवतीके जमदग्नि नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ हे राजन्! उसके वह सत्यवती अबला लोकपावनी महा पुण्यमय कौशिकी नदी होकर बही हैं हे परीक्षित्! इन महर्षि जमदग्निने रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया ॥ १२ ॥

उस रेणुकाके गर्भसे इन ऋषिके वसुमानादि बहुत पुत्र उत्पन्न हुये इनके सब पुत्रोंमें छोटे परशुराम हुए ॥ १३ ॥ प्राचीन कविलोग इनको भगवान् वासुदेवका अंश और हैहय नाम, क्षत्रिय कुलका अन्त करनेवाला कहते हैं । इन परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीसवार क्षत्रियहीन किया था ॥ १४ ॥ पहले क्षत्रियजातिके लोग रजोगुणसे व तमोगुणसे परिपूर्ण हो गर्वकारी और वेदविरुद्धाचारी हुए । इसलिये यह पृथ्वीपर भारकी नाईं होगये थे, यद्यपि अपराध इनका थोड़ा था, तौभी परशुरामजीने इनको मारही डाला ॥ १५ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अजितेन्द्रिय क्षत्रिय जातिने भगवान् परशुरामजीका ऐसा क्या अपराध किया था कि, जिससे उनका क्रोधानल बारम्बार

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ॥ यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलांतकम् ॥ त्रिस्सप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४ ॥ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ॥ रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंहसि ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ ॥ किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ॥ कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्त्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्त्रियर्षभः ॥ दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ॥ अव्याहतेंद्रियौजः श्रीस्तेजो वीर्यं यशो बलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ॥ चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥ १९ ॥ स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवांभसि मदोत्कटः ॥ वैजयंतीं स्रजं बिभ्रद् रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥

क्षत्रियकुलके ऊपर पडा था ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षितका प्रश्न सुनकर सहर्ष श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! हैहयोके अधिपति क्षत्रियश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनने सेवाके कर्म्मसे नारायणके अंशके अंश भगवान् दत्तात्रेयकी पूजा करके सहस्र भुजा प्राप्त कीं और इनकेही बलसे यह शत्रुओंपर दुर्द्धर्ष हुए थे। दत्तात्रेयकी सेवासे राजाको अव्याहत इन्द्रियसामर्थ्य, सम्पदा, प्रभाव, वीर्य, बल ॥ १७ ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्व और जिससे अणिमादिगुण विराजमान रहैं ऐसा ऐश्वर्य भी उन्होंने पाया था इसलिये यह राजा पवनकी समान अव्यर्थगतिवाला हो सब लोकोमें विना बाधाके भ्रमण करनेलगा ॥ १९ ॥ एक समय यह सहस्राज्र्जुन वैजयन्ती माला धारणकर बहुतसी

स्त्रियोंके साथ नर्मदानदीके जलमें क्रीडा करने लगा। मदोन्मत्तताके कारण केलि करते करते इसकी हजार बाँहोंसे अचानक नर्मदाकी धार रुकगई ॥ २० ॥ उसी समय राक्षसराज रावण दिग्विजय करनेके लिये बाहर हो माहिष्मतीपुरीके समीप डेरा डाल शिवलिंग स्थापित कर, इस नदीके किनारे उनकी पूजा करता था, जब कार्तवीर्यार्जुनकी भुजाओंसे जलकी धार रुक गई। तब नदीकी धार प्रतिकूल हो नदीके किनारेको डुबाती हुई दूसरी ओरको लौटी। नदीकी धारके जलसे अपने डेरेको डूबता हुआ देखकर अर्जुनके वीर्यको वीर्याभिमानी रावण नहीं सहसका। तब रावणने विहार करतेहुए सहस्रार्जुनको पराजित करनेका उद्योग किया। हे राजन्! जब स्त्रियोंके सामने रावणने इस प्रकारका ढीठपन किया तब सहस्रार्जुनने क्रोधित हो उसको पकड़ लिया और अपने नगरमें बाँधकर ले आया और बंदरकी समान कुछ दिन अपने

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतस्सरिज्जलैः ॥ नामृष्यत्तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ॥ माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२ ॥ स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने ॥ यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३ ॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ॥ ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥ २४ ॥ स वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ॥ तन्नाऽऽद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥२५॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ॥ ते च माहीष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रंदतीं बलात् ॥ २६ ॥

घरमें बाँधा और फिर अवज्ञा कर छोड दिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ जिस प्रकार कार्त्तवीर्यार्जुन अपराधी होकर परशुरामजीके हाथसे मारागया। उसकाभी वर्णन हम करते हैं तुम सुनो। एक समय सहस्राज्र्जुन मृगयाके लिये विजन वनमें घूमता घूमता अकस्मात् जमदग्निजीके आश्रममें आय पहुँचा ॥ २३ ॥ मंत्री, सेना, सामन्त और अश्वादि वाहनसहित इस राजाको अपने आश्रममें आयाहुआ देखकर जमदग्निऋषिने अपनी कामधेनु गायके द्वारा भलीभाँति इनका अतिथिसत्कार किया ॥ २४ ॥ मुनिकी इस धेनुरत्नको अपने ऐश्वर्यमें श्रेष्ठ देखकर इस पहुनईसे सहस्रार्जुनको सन्तोष न हुआ। उसने हैहय लोगोंके साथ परामर्श करके इस गायके ले जानेका अभिलाष किया ॥ २५ ॥ इसलिये दर्प करके अपने पुरुषोंको

आज्ञा दी कि, ऋषिके अग्निहोत्रकी गाय लेलो। यह आज्ञा पाय सहस्रार्जुनके सेवक रोती और डकरातीहुई बच्चे सहित उस गायको बलात्कार (जबरदस्ती) पकडकर माहिष्मती नगरीको लेगये ॥ २६ ॥ जब राजा गायको लेकर माहिष्मती पुरीको चला आया तब जमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी आश्रममें आये। वह इस राजाकी यह दुष्टता सुनकर चोट खायेहुए सर्पकी समान क्रोधाग्निसे जल उठे ॥ २७ ॥ उसी समय परशुरामजी घोर परशा हाथमें ले तूणसहित धनुष बाण ले बख्तर पहरकर महाक्रोधित हो उस राजाके पीछे दौडे जैसे सिंह यूथपति हाथीके ऊपर झपटता है ॥ २८ ॥ हे राजन्! कार्तवीर्यार्जुन जब अग्निहोत्रकी गाय लेकर अपनी माहिष्मती पुरीमें प्रवेश करनाही चाहता था कि, इतनेहीमें उसने देखा कि, भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी मृगचर्म पहरे बाणादि आयुधसहित धनुप धारण किये महावेगसे आयरहेहैं और

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ॥ श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाऽऽहतः ॥ २७ ॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ॥ अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेंद्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥ तमापतंतं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ॥ ऐणेयचर्मांबरकर्मधाममिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९ ॥ अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ॥ अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥ यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोनिलौजाः परचक्रसूदनः ॥ ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥३१॥

सूर्यकी समान प्रकाशमान इनकी जटा इधर उधर छिटकरही हैं ॥ २९ ॥ यह देखकर सहस्रार्जुनने भीतहो अपने बचनेके लिये हाथी, घोडे, रथ, पैदल और गदा, असि, बाण, ऋष्टि (अस्त्रविशेष) शतघ्नी और शक्तिसहित सत्रह अक्षौहिणी भयंकर सेना भेजदी। परन्तु परशुरामजीने अकेलेही उस सब सेनाका संहार करडाला ॥ ३० ॥ महात्मा परशुरामजीका वीर्य और मन पवनकी तुल्य, इस कारण शत्रुसेनाको नाश करनेके लिये वह अग्निकी समान थे वह अपना परशा चलातेहुए जहाँ जहाँ गये उसी उसी स्थानमें शत्रुसेनाके वीरगण छिन्नबाहु, छिन्नजंघ और छिन्नमुण्ड होकर पृथ्वीपर गिरनेलगे। और उनके अश्व सारथि सबही मारेगये ॥ ३१ ॥

हैहयपति अर्जुन रणभूमिमें रुधिरकी धारासे कीच उठी देख और परशुरामजीके कुठार व बाण प्रहारसे वर्म, ध्वजा, धनुष, बाण और शरीर छिन्न भिन्न होनेसे प्रायः सबही सेना युद्धमें गिरपड़ी है यह देख क्रोधित हो सहस्रबाहु आपही संग्राममें चलाआया ॥ ३२ ॥ और परशुरामजीका संहार करनेको अपनी सब भुजाओंसे एकवारही पाँचसौ (५००) धनुष ग्रहण कर पाँचसौ पर पाँचसौ तीक्ष्ण बाण चढाकर चलाने लगा । हे राजन् ! महा तेजस्वी परशुरामजी अस्त्रधारियोंमें आगे गिनने योग्य हैं यद्यपि वह एक धनुप चढा रहे थे, तोभी उसी धनुषसे अगणित बाण चलाकर एक साथ अर्ज्जुनके पांचसौ धनुष काट डाले ॥ ३३ ॥ धनुषोंके कटजानेपर अपनी भुजाओंसे समर करनेके योग्य अनेक अनेक पर्वत और वृक्ष लेकर

दृष्ट्वा स सैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः ॥ विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहयमापत द्रुषा ॥३२॥ अथार्जुनः पंचशतेषु बाहुभिर्धनुष्षु बाणान्युगपत्स संदधे ॥ रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकध न्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥ पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेंघ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ॥ भुजान्कुठारेण क ठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृंगमिवाहरत् ॥ हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ॥ समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६ ॥ स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ॥ वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ रामराम महाबाहो भ वान्पापमकारषीत् ॥ अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥

महावेगसे रणभूमिमें खड़े हुए परशुरामजीके ऊपर दौडा यह देख परशुरामजीने अति पैनी धारवाले कुठारसे सर्पके फणोंकी समान उसकी सब भुजायें काटडालीं ॥३४॥ और पीछेसे पर्वतके शिखरकी समान सहस्रबाहुका मस्तकभी काट दिया । हे राजन् । सहस्रबाहुके मारेजाने पर उस के दश सहस्र पुत्र भयके मारे भाग गये ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त परशुरामजी बछेसहित उस गायको लेकर आश्रममें आये और शत्रुके हाथमें जानेसे क्लेशित हुई उस गायको लाकर अपने पिताजीको सौंपदिया ॥३६॥ परन्तु जिस समय परशुरामजीने अपना कियाहुआ कर्म पिता और भ्राताओंसे वर्णन किया, तब मुनिश्रेष्ठ जमदग्निको संतोष नहीं हुआ, और संमोहित विराग दिखाकर बोले ॥ ३७ ॥ हे राम ! हे महाबाहो !

तुम पापकर आये । कैसी खेदकी बात है? नरदेव राजा सर्वदेवमय स्वरूप है उसको तुमने वृथाही मारडाला ॥३८॥ हे तात ! हम ब्राह्मण क्षमागुणसेही पूजित हुयेहैं । यह गुण साधारण नहीं है । इसी गुणसे ब्रह्माजी लोकगुरु हो परमेष्ठी पदको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! जमदग्नि फिर बोले कि, हे वत्स ! क्षमासेही सूर्यसम्बन्धिनी प्रभाकी समान ब्रह्मसम्बन्धिनी श्री शोभायमान होतीहै ॥ और क्षमाशील पुरुषके ऊपर भगवान् वासुदेव शीघ्रही प्रसन्न होजातेहैं ॥ ४० ॥ हे अंग ! चक्रवर्ती राजाका वध ब्रह्मवधसे भी भारी है । इसलिये तुम भगवान् हरिमें मन लगाय तीर्थसेवा और यम नियमादि द्वारा अपने पापोंका नाशकरो ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां परशुरामचरिते हैहयार्ज्जुनवधो नाम

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ॥ यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमया रोचते लक्ष्मी ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ॥ क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥४०॥ राज्ञो मूर्धाऽवसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ॥ तीर्थसंसेवया चांहो जह्यंगाऽच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० नवमस्कंधे सोमवंशचरिते कार्त्तवीर्यार्जुनवधो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनंदन ॥ संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गंगायां पद्ममालिनम् ॥ गन्धर्वराजं क्रीडंतमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥ विलोकयंती क्रीडंतमुदकार्थं नदीं गता ॥ होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा—सोलहमें जमदग्नि वध, युत सुत कियो हजार ॥ परशुराम तासों करत, क्षत्रिनको संहार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! पिताके उपदेशसे परशुरामजी "बहुत अच्छा" कह वनको चलेगये और एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके आश्रममें लौटआये ॥ १ ॥ किसी समय जमदग्निकी स्त्री रेणुकाने गंगाजीपर जाय वहाँ पद्ममाली गन्धर्वराजाको अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ देखा ॥ २ ॥ रेणुका जल लानेके लिये गंगाजीपर गई थी, विहार करतेहुये गन्धर्वराजाके देखनेसे रेणुकाने उनकी चाहना की और होमका

समय व्यतीत होगया इसको भी रेणुकाने न जाना* ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कालको बीतजाताहुआ देख; मुनिसे शापकी आशंका कर वह अत्यन्त भीत हुई। और शीघ्र आय जलकलशको मुनिके आगे रख खड़ी होगई॥४॥इधर अपनी भार्याके मानसिक व्यभिचारको जान महर्षि जमदग्निको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तीक्ष्ण हो अपने पुत्रोंको पुकारकर यह आज्ञा दी कि, तुम इसी समय अपनी पापिनी माताको मारडालो परन्तु इन पुत्रोंने पिताका वचन नहीं सुना ॥ ५ ॥ परंतु परशुराम अपने पिताकी समाधि और तपस्याके प्रभावको

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशंकिता ॥ आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृतांजलिः ॥ ४
व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ॥ घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥
रामः संबोधितः पित्रा भ्रातन्मात्रा सहावधीत् ॥ प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक्समाधेस्तपसश्च यः ॥ ६ ॥
वरेण च्छंदयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७ ॥

जानते थे, जब इनसे मुनिने कहा कि, तुम अपने इन भाइयोंको और अपनी माताको मारडालो। तब उन्होने विचारा कि, जो पिताकी आज्ञा उल्लंघन कर इनको नहीं मारता, तो पिताजी क्रोधित होकर हमको शाप देदेंगे और जो हम इनको मारडालेंगे तो कदाचित् हमारे ऊपर प्रसन्न हो यह हमारी माता और भ्राताओंको जिलाभी सक्तेहैं। इसलिये जैसेही पिताने आज्ञा दी वैसेही महात्मा परशुरामजीने माताके सहित अपने भ्राताओंका संहार किया ॥ ६ ॥ यह देखकर सत्यवतीके पुत्र जमदग्निमुनि परशुरामजीपर अत्यन्त प्रसन्न हुये। और परशुरामजीसे बोले कि, इच्छानुसार वर

* शंका—रेणुकाकी वृद्धावस्था थी तोभी स्त्रीपुरुषके रतिका आनन्द देखती थी यह बात सन्देह योग्य है? वृद्धावस्थामें विषयकर्मका आनद क्यों देखा?
उत्तर—बाल्यावस्थामें रेणुका अत्यन्त चञ्चल थी और अपने पिताके भवनमें रहती थी तोभी प्रत्येक कार्य चचलपनेके साथ करतीथी, एक दिन बहुतसी सखियोंको सग लेकर स्नान करनेके लिये एक नदीपर गई, एक वृद्ध चिडिया अपने प्रिय पति पक्षीके सग विहार कररही थी उसको देखकर रेणुका बहुत हँसी तव चिडियाने अत्यन्त कुपित होकर शाप दिया कि, हे दुष्टिनी! मैं तो अपने पतिके साथ रमण करती हूँ परतु तू वृद्धावस्थामें और दूसरे पुरुषके संग क्रीडा करेगी, सब क्रीडाओंका मूल आँखोंसे देखना है सो क्रीडा तू करेगी इसलिये रेणुकाने वृद्धवस्थामें पाप किया और कुछ दूसरा अन्याय नहीं किया ॥

माँगो। तब परशुरामजीने यह वरदान चाहा कि, हमारे भ्राता और माता फिर जी जाय ? और यह इस बातको भी भूलजायँ कि, हमने इनको मारा है ॥ ७ ॥ वैसेही जमदग्निमुनिने वर देकर कहा कि " ऐसाही हो " वैसेही इन मरे हुओंमें प्राण आगया और जैसे सोयाहुआ पुरुष नींदसे उठ बैठता है ? वैसेही यह सब उठ बैठे ॥ हे राजन् ! यह शंका मत करना कि, परशुरामने ऐसा निन्दित कर्म क्यों किया ? यह परशुरामजी अपने पिताके तपबलको भलीभाँति जानते थे ! इसीलिये उन्होंने अपने सुहृदोंको मारडाला था ॥ ८ ॥ हे महाराज ! इधर कार्त्तवीर्य्यार्जुनके दश हजार पुत्र परशुरामजीके वीर्यसे पराभव पाय अपने पिताके वधको याद करके कहींभी सुख स्वच्छन्दता पानेकेलिये समर्थ नहीं हुए ॥ ९ ॥ एक समय

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवांजसा ॥ पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥८॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्मरंतः स्वपितुर्वधम् ॥ रामवीर्यपराभूता लेभिरे न शर्म क्वचित् ॥ ९ ॥ एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ॥ वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ॥ भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः ॥ प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबधवः ॥ १२ ॥ रेणुका शोकदुःखार्ता निघ्नंत्यात्मानमात्मना ॥ रामरामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥

परशुरामजी भ्राताओंसहित वनको गये थे। तब कार्तवीयार्ज्जुनके यह सब पुत्र अवसर पाय पिछला वैर लेनेकी इच्छासे परशुरामजीके आश्रममें आये ॥१०॥ इन सबने वहाँ आकर देखा कि, परशुरामजीके पिता जमदग्निमुनि भगवान्‌में चित्त लगाये हुए अग्निशालामें बैठे हुए हैं। यह अवसर पाय इन पापात्माओंने उसी समय इन मुनिको मार डाला ॥ ११ ॥ परशुरामजीकी माता रेणुका अपने पतिको मराहुआ देख अतिदीन हो अपने पतिके प्राणोंकी भिक्षा चाहने लगी परन्तु तोभी इन निठुर क्षत्रियोंको दया न आई और बलपूर्वक रेणुकाके केश पकड़कर ले गये ॥ ॥ १२ ॥ तब परशुरामजीकी माता पतिशोकसे आर्त हो अपनी छाती पीटती हुई "हा राम ! हा राम ! ! हा तात ! हा तात ! ! " कह बड़े जोरसे रोने और

विलाप करने लगी ॥१३॥ दूरसे "हा राम !" की पुकार और आर्त वाणी सुनकर वीर्यवान् परशुरामजी भ्राताओंसहित अति शीघ्र अपने आश्रममें आये और वहां देखा कि, पिता मृतक हुए पडे हैं ॥१४॥ पिताको मृतक देख सब भाइयोंको ऐसा दुःख,शोक, क्रोध, झूँझलाइट और पीडा उत्पन्न हुई कि, सबके वेगसे सब मोहितसे होगये इसके उपरान्त महात्मा परशुरामजी "हा तात ! हा साधो ! हा धार्मिक !" हमको छोड़कर आप स्वर्गको चलेगये ॥ १५॥ इस प्रकार विलाप करनेलगे । और पिताके मृतक देहको अपने भाइयोंके निकट रखकर भयंकर परशा लिये मनमें विचारने लगे कि, अब हम क्षत्रियोंके वंशको ध्वंस करदेंगे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! परशुरामजीने अतिशीघ्र माहिष्मती पुरीमें जाय उसके बीचमें

तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत्स्वनम् ॥ त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥ १४ ॥ तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ॥ हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान्स्वर्गतो भवान् ॥१५ ॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ॥ प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रांताय मनो दधे ॥ १६ ॥ गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नं विहतश्रियम् ॥ तेषां स शीर्षभी राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७ ॥ तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ॥ हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रे मंगलकारिणि ॥ १८ ॥ त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥ स्यमंतपंचके चक्रे शोणितोदान्ह्रदान्नव ॥ १९ ॥ पितुः कायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि ॥ सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥

अर्ज्जुनपुत्रोंके मस्तक काट काटकर एक बडा भारी पर्वत बनाया ॥ १७ ॥ जब वह सहस्राऽर्ज्जुनके पुत्र ब्रह्महत्या कर आये थे ! तबहीं इस माहिष्मती पुरीकी शोभा जाती रही थी । मध्यस्थानमें मुण्डमय पर्वतके होनेसे वह पुरी औरभी भयानक हो गई। फिर तेजस्वी परशुरामजीने उस कार्तवीर्याज्र्जुनके पुत्रोंके रुधिरसे एक नदी उत्पन्न की, वह नदी ब्रह्मद्वेषियोंको अत्यन्त भयकी देनेवाली हुई ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त क्षत्रियजातिको अन्यायके वश हुआ देख पिताके वधका हेतु कर परशुरामजीने *इक्कीसवार पृथ्वीको क्षत्रियहीन किया और स्यमन्तपञ्चकस्थानमें रुधिरके नौ कुण्ड भरदिये ॥ १९ ॥ उसके पीछे परशुरामजीने अपने पिताका शिर उनकी देहसे लगाय, कुशोंके ऊपर रख विविध

* प्रश्न–परशुरामजीने इक्कीसवार क्षत्रियोंको क्यों मारा था. । —उत्तर–रेणुकाने सहस्राऽर्ज्जुनके पुत्रोंकी दुष्टता देख दुःखके मारे इक्कीस वार अपनी छातीको कूटा था इसलिये महात्मा परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियोंका नाश किया ॥

यज्ञोंसे सर्व देवमय आत्मा ईश्वरकी पूजा की ॥ २० ॥ उस यज्ञमें होताको पूर्वदिशा, ब्रह्माको दक्षिणदिशा, अध्वर्य्युको पश्चिमदिशा और उद्गाताको उत्तरदिशा दक्षिणामें देदी । अवान्तर दिशायें और दूसरे ऋत्विक् लोकोंको देदीं मध्यस्थल कश्यपजीको दान करदिया । फिर उपद्रष्टाको आर्यावर्त देश दक्षिणामें देकर सभासदोंकोभी यथायोग्य भूमि दक्षिणामें देदी ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसके पीछे महानदी सरस्वतीमें जाकर यज्ञान्त स्नान कर अनन्तपापोंको दूरकर बादल रहित सूर्यके समान आकाशमें विराजमान होने लगे ॥ २३ ॥ इस ओर महामुनि जमदग्नि परशुरामजीसे पूजित होनेके कारण स्मृतिही जिसका शरीर है ऐसे अपने शरीरको प्राप्तकर सप्तर्षि मण्डलमें जाय सप्तऋषि हुये ॥ २४ ॥ हे राजन्! कमललोचन जमदग्निके

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवांतरदिशः कश्यपाय च मध्यमाम् ॥ आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥ २३ ॥ स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ॥ ऋषीणां मंडले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥ जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ॥ आगामिन्यंतरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेंद्राद्रौ न्यस्तदंडः प्रशांतधीः ॥ उपगीयमानचरितः सिद्धगंधर्वचारणैः ॥ २६ ॥ एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः॥ अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ॥ २७ ॥ गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ॥ तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥

सुत भगवान् परशुरामजीभी आगामी मन्वन्तरमें वेदका प्रचार करेंगे अर्थात् वहभी वेदका प्रचार करनेवाले सप्तर्षियोंमेंसे एक होंगे ॥ २५ ॥ वह परशुरामजी दण्ड छोड शान्त चित्तसे अबतक महेन्द्र पर्वतपर विराजमान हैं। सिद्ध चारण और गंधर्वगण सदा उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं ॥२६॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे भगवान् विश्वात्मा ईश्वर हरिने भृगुकुलमें अवतार ले अनेकवार क्षत्रियोंका संहार कर भूमिका भार उतार दिया ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् । अब आगे सुनो । गाधिके प्रकाशमान अग्नितुल्य महातेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए ।

हे राजन् ! यह तपके प्रभावसे क्षत्रीपन छोड़ ब्राह्मण होगये ॥ २८ ॥ हे महाराज ! इन तेजस्वी विश्वामित्रजीके एक शत पुत्र उत्पन्न हुए तिनमें यद्यपि केवल मध्यमपुत्रका नाम मधुच्छन्द था, तोभी सब पुत्रही मधुच्छन्दस कहे जाते थे ॥ २९ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीने अजीगर्त्तके पुत्र शुनःशेपको भृगुवंशीय देवरात नामक पुत्र करके अपने सब पुत्रोंसे कहा था कि, तुम सब इनको अपना बड़ा भाई समझना ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इस शुनःशेपके पिता अजीगर्त्तने महाराजा हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशु बनानेके लिये मध्यम समझ, ममता छोड़ बेचदिया था परन्तु यह पुरुषपशु (शुनःशेप) प्रजेशादि वरुणादि देवता लोगोकी स्तुति करके पाशबंधनसे छूट गया ॥ ३१ ॥ वह देवतालोगोंको रात (प्रदत्त) होनेसे गाधिवंशमें

विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप ॥ मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छंदस एव ते ॥ २९ ॥ पुत्रं कृत्वा शुनश्शेपं देवरातं च भार्गवम् ॥ आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥ यो वै हरिश्चंद्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ॥ स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबंधनात् ॥ ३१ ॥ यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ॥ देवरात इति ख्यातः शुनश्शेपः स भार्गवः ॥ ३२ ॥ ये मधुच्छंदसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ॥ अशपत्तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥ स होवाच मधुच्छंदाः सार्धं पंचाशता ततः ॥ यन्नो भवान्संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठं मंत्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि ॥ विश्वामित्रः सुतानाह वीरवंतो भविष्यथ ॥ ये मानं मेऽनुगृह्णंतो वीरवंतमकर्त माम् ॥ ३५ ॥

देवरात नामसे प्रसिद्ध हुआ। परन्तु भृगुवंशमें उसका नाम शुनःशेप था ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रके मधुच्छन्द नामक जो पचास पुत्र बड़ेथे, उन्होंने शुनःशेपको बड़ा माननेमें अपना भला न समझा, इसलिये क्रोधित होकर विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोको यह शाप दिया कि, तुम अतिदुर्जन हो आजसे म्लेच्छ होजाओगे ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त मध्यमपुत्र मधुच्छन्दने अपने पचास छोटे भाइयोके साथ पिताके पास आनकर कहा कि "आप हमारे पिता हैं" हमको बडाई अथवा छुटाई जिसकी भी आज्ञा देंगे हम वही स्वीकार करेंगे ॥ ३४ ॥ कहकर इन्होंने मंत्रदर्शी शुनःशेपको अपना बड़ा भ्राता बनाया और सब एकवचन होकर बोले कि "हम सबही तुम्हारे अनुगामी अर्थात् छोटे भाई हुए" यह सुनकर

विश्वामित्रजी प्रसन्न हो अपने इन पुत्रोंसे बोले कि, तुमने हमारे मानको रखकर हमको पुत्रवान् किया इससे हमको बहुत सन्तोष हुआ और हम सन्तुष्ट होकर तुमको यह वर देते हैं कि, तुम लोग पुत्रवान् होगे ॥ ३५ ॥ हे कुशिकगण ! यह देवरात भी तुम्हारा कौशिक गोत्री है; क्योंकि यह हमारा पुत्र हुआ है। इसलिये तुम इसके अनुगामी होओ। हे राजन् ! इन पुत्रोंके अतिरिक्त विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय, क्रतुमदादि औरभी अनेक पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार अनुगृहीत हुए और एक पुरुषको पुत्र मानलेनेसे विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक अनेक प्रकारका होगया अर्थात् कुछ अभिशप्त और कुछेक प्रवरान्त प्राप्त हुए। बस देवरातको सबसे बड़ा माननेहीका यह

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ॥ अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥ एवं कौशिकगोत्रं तु वैश्वामित्रः पृथग्विधम् ॥ प्रवरांतरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे परशुरामकृतक्षत्रवधविश्वामित्रान्वययोर्वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः ॥ नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रंभश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥ अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ॥ क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥ २ ॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत ॥ शुनकश्शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमाः पिता ॥ धन्वंतरिर्दैर्घ्यतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४ ॥

बीज हुआ ॥ ३७ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां परशुरामचारितवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा—सत्रहमें पुरूरवाको, ज्येष्ठ पुत्र भयो आय। ताके पाँचो सुतनको, सकल वंश कहो गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! पुरूरवाके * आयु नामक जो पुत्र हुआथा उसके पाँच पुत्र हुए नहुष,क्षत्रवृद्ध,रजि, रम्भ और अनेना इनके नाम थे। उनमें क्षत्रवृद्धके वंशका वृत्तान्त अब कहताहूं तुम श्रवण करो॥ १ ॥ २ ॥ क्षत्रवृद्धके पुत्र सुहोत्र,सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्समद यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए तिनमेंसे गृत्समदके शुनक उत्पन्न हुआ। उस शुनकसे ऋग्वेदियोमें श्रेष्ठ शौनक मुनि हुए॥ ३ ॥ काश्यका पुत्र काशी,उसका पुत्र राष्ट्र और बेटा तिसका दीर्घतमा, दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरी

* इस स्थानमें श्रीकृष्णावतारका प्रस्ताव करनेके लिये संक्षेपसे वंशका वर्णन किया जाता है। जिसके वंशमें स्वय भगवान् अवतार लेंगे। इस वंशका वर्णन पीछेसे विस्तार सहित किया जायगा। इसलिये पुरूरवाके पाँच पुत्रोंमेंसे छोटे पुत्रका वर्णन करके अब ज्येष्ठके वंशका वर्णन करते हैं ॥

हुए कि, जिन्होंने आयुर्वेदका प्रचार किया यह धन्वन्तरि यज्ञभोगी भगवान्के अंश स्मरण करतेही रोग क्लेशका भय नाश करते हैं इन धन्वन्तरि जीका पुत्र केतुमान, केतुमानका पुत्र भीमरथ ॥ ४ ॥ ५ ॥ उससे दिवोदासकी उत्पत्ति हुई इनके पुत्र द्युमान जो कि, प्रतर्दन भी कहाये जाते थे। और शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व भी यही कहाते थे इस द्युमानके अलर्कादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ उनमेंसे अलर्कने साठ सहस्र साठसौ अर्थात् छासठ (६६०००) सहस्रवर्षतक युवा अवस्था रखकर राज्यभोग किया था। हे राजन् ! अलर्कके अतिरिक्त किसी युवाने इतने कालतक पृथ्वीका भोग नहीं किया ॥ ७ ॥ इस अलर्कसे संतति नामवाले राजाकी उत्पत्ति हुई, उसका पुत्र सुनीथ,

यज्ञभुग्वासुदेवांशस्स्मृतमात्रार्तिनाशनः ॥ तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मा त्प्रतर्दन इति स्मृतः ॥ स एव शत्रुजिद्वत्स कृतध्वज इतीरितः ॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥ नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७ ॥ अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनी थोऽथ सुकेतनः ॥ धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ॥ वीतिहो त्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९ ॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ॥ रंभस्य रभसः पुत्रो गंभीरश्चा क्रियस्ततः ॥ १० ॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ॥ शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥

सुनीथका पुत्र निकेतन, निकेतनका पुत्र धर्मकेतु और धर्मकेतुसे सत्यकेतुने जन्मग्रहण किया ॥ ८ ॥ सत्यकेतुके पुत्र धृष्टकेतु, उसके कुमार उत्पन्न हुए। उनका पुत्र वीतिहोत्र, इनके सुतभर्ग और इनके पुत्र भार्गभूमि हुए ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यह सब नरेश काशिवंशीय हुये यह काशिके परदादा क्षत्रवृद्ध वंशके अनुगामी थे हे परीक्षित् ! अब रम्भके वंशका वर्णन करते हैं आप सावधान हो चित्त लगाय सुनिये। रम्भका पुत्र रभस, उसका पुत्र गम्भीर उससे अक्रियकी उत्पत्ति हुई ॥ १० ॥ अक्रियका पुत्र ब्रह्मवित् हुआ। अब अनेनाके

वंशका वर्णन करते हैं अनेनाका पुत्र शुद्ध हुआ उसके शुचि उत्पन्न हुआ । शुचिके त्रिककुद, उनसे धर्मसारथि ॥ ११ ॥ इसके पुत्र शान्तरय जो कि, बड़े जितेन्द्रिय और ज्ञानी थे । इसलिये उन्होंने कोई पुत्रभी उत्पन्न नहीं किया हे महाराज ! रजिके अत्यन्त बलशाली पांच सौ(५००) पुत्र हुए ॥ १२ एक समय जब देवतालोगोंने प्रार्थना की तब इस रजिने दैत्योंका संहार करके इन्द्रपुरी देवतालोगोंको देदी देवताओंने राजा रजिको पुनः लौटाकर देदी ॥ १३ ॥ राजा रजिकी मृत्यु होनेपर देवराज इन्द्रने जब उनके पुत्रोंसे स्वर्गपुरी मांगी, तब उनके पुत्रोंने नहीं दी । और

ततश्शांतरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ॥ रजेः पंचशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥ देवैरभ्यर्थितो दै
त्यान्हत्वेंद्रायाददाद्दिवम् ॥ इंद्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥१३॥ आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशंकितः॥ पि
तर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः॥१४॥त्रिविष्टपं महेंद्राय यज्ञभागान्समाददुः ॥ गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयात्र
जेः ॥ १५ ॥ अवधीद् भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः॥ कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥ १६ ॥ ततः
कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ॥ सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥

आपही स्वर्गपति होकर यज्ञका भाग लेनेलगे इसीलिये देवगुरु बृहस्पतिजीने रजिके पुत्रोंकी बुद्धिका नाश करनेके लिये अभिचार विधानसे अग्निमें होम किया ॥ १४ ॥ १५ ॥ उससे शीघ्रही रजिके सब पुत्र नीतिमार्गसे भ्रष्ट होगये । और फिर देवराज इन्द्रने सरलतासे उन सबको मारडाला, कोई शेष न रहा * हे राजन् ! क्षत्रवृद्धका पोता कुश, उसका पुत्र प्रति, प्रतिका पुत्र संजय, संजयका पुत्र जय ॥ १६ ॥ जयका पुत्र कृत और उसका पुत्र हर्यवन राजा हुआ हर्यवन राजाका पुत्र सहदेव उसका पुत्र अहीन और अहीनका पुत्र जयसेन हुआ ॥ १७ ॥

* शंका—बृहस्पतिजी अग्निमें किस वस्तुका होम करते थे ? जिस बीजके होमके प्रतापसे रजिराजाके पुत्रोंको इन्द्रने मारडाला ?
उत्तर—रक्षा करनेवाले जो परमरक्षक बृहस्पतिजी थे, सो राजा रजिके पुत्रोंको तेज मन्त्रसे अग्निमें होम करते थे, इसीकारण राजा रजिके तेजहीन होगये, तब राजा रजिके पुत्रोंको इन्द्रने मारडाला ॥

जयसेनका पुत्र संस्कृति उनका पुत्र जय, जयके क्षत्रधर्म और क्षत्रधर्मके महारथ हुआ यह सब भूपाल क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न हुये थे। अब आगे नहुषसे वंशका वृत्तान्त हम तुमसे वर्णन करते हैं तुम चित्त लगाय सावधान होकर श्रवण करो ॥ १८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां क्षत्रवृद्धवंशानुवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा—अट्ठारहमें नहुष सुत, भयो ययाति जुझार। षट पुत्र तिनके भये, तिनमें छोट उदार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! जैसे शरीरके छः इन्द्रियें होती हैं, इसी प्रकारसे नहुष राजाके यति–ययाति–संयाति–आयति–वियति और कृति नामक छः (६) पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ इनमेंसे यति राजाका परिणाम अर्थात् राज्यको अनर्थका हेतु जान गया था। इसलिये पिताके राज्य

संस्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्त्रधर्मा महारथः ॥ क्षत्त्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥ १८ ॥ इति श्रीमद्भा० म० नव० चंद्रवं० क्षत्त्रवृद्धवंशा० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ॥ षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनाम् ॥ १ ॥ राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ॥ यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥ पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद्द्विजैः ॥ प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥ चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन्भ्राता यवीयसः ॥ कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः ॥ राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा दानवेंद्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ॥ सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥

देनेपर इसने राज्यग्रहण नहीं किया, क्योंकि राज्यकार्यमें लगा हुआ पुरुष अपने आत्माको नहीं जानता है ॥ २ ॥ इससे इन्द्राणीके ऊपर ढिठाईका व्यवहार करनेके हेतु पिता (नहुष) के स्वर्गभ्रष्ट और अगस्त्यादि विप्रोंके शापसे अजगर होनेपर मध्यम पुत्र ययातिही राजा हुआ था ॥ ३ ॥ राजा ययातिने राजगद्दीपर बैठ अपने चार छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंमें राज्य करनेकी आज्ञा देदी व आप शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी दो कन्याओंसे विवाह कर पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥ ४ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! भगवान् शुक्राचार्यजी ब्रह्मर्षि और नहुषपुत्र ययाति क्षत्रिय था। सो यह ब्राह्मण क्षत्रियका प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ था? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! ईश्वरकी इच्छासे प्रतिलोम विवाह दोषदायी

नहीं है। एकसमय दानवराज वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नामक कन्या सहस्र सखी और गुरुकी कन्या देवयानीके साथ पुरके समीपही एक उद्यानमें विहार करनेको गई। यह उपवन अत्यन्त मनोहर था। वृक्ष फूलोंके भारसे झुकेहुए थे। और वहाँ निकटही एक नलिनीकी रेतीमें भ्रमरगण कलवाणीसे गान कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ शर्मिष्ठाने सखियोंके साथ घूमते घूमते बागमें एक सरोवर देखा। यह सब कन्यायें किनारेपर अपने वस्त्र उतार परस्पर जलको उड़ायकर एक दूसरेके ऊपर जल डाल खेल करनेलगीं ॥८॥ उसी समय अचानक देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमहादेवजी पार्वतीके साथ नंदीश्वर पर चढे इस ओरको आये। यह इनको देखकर सब कन्यायें अत्यन्त लज्जित हो झटपट सरोवरसे बाहर निकलकर अपने वस्त्र पहरने लगीं ॥९॥

देवायान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले ॥ व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ॥ तीरे न्यस्य दुकूलानि विज॒ः सिंचतीर्मिथः ॥ ८ ॥ वीक्ष्य व्रजतं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ॥ सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ॥ स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥ अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसांप्रतम् ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥११॥ यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ॥ धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पंथाश्च दर्शितः ॥ १२ ॥ यान्वदंत्युपतिष्ठंते लोकनाथाः सुरेश्वराः ॥ भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥ वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥

घबडाहटके मारे भूलमें गुरुकन्याके वस्त्र शर्मिष्ठाने अपने समझकर पहर लिये। यह देख देवयानी अति क्रोधित होकर बोली॥१०॥अरे इस दासीका अन्याय कर्म तो देखो जिस प्रकार कुतिया यज्ञके हविको खाजातीहै। वैसेही इस दुष्टाने मेरे पहरनेके कपडे पहर लिये ॥११॥ देखो जिन ब्राह्मणोंने तपस्या करके इस जगतकी उत्पत्ति की है, जो लोग परमपुरुषके मुख अर्थात् ब्रह्ममुखसे उत्पत्तिके हेतु सर्व श्रेष्ठ हैं। जो कि, ब्रह्मको धारण कियेहुये हैं जिन्होंने वेदका शुभ मार्ग बताया है। और सब लोकोंके नाथ सुरेश्वरगणभी और भगवान् विश्वात्मा पावन श्रीनिवासभी जिनकी पूजा किया करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ वह ब्राह्मणजाति सहजसेही माननीय है। और उनमें फिर हम महाप्रभावशाली भृगुवंशमें उत्पन्न हुई हैं। इस दासीका पिता

जो असुर है। वह भी हमारे पिताका शिष्य है। इस असत्यनकी चाल तो देखो कि, इसने हमारे पहरनेके वस्त्र पहर लिये हैं। जैसे शूद्रजाति वेदोंको धारण करे ॥१४॥ हे राजन्! जब गुरुकन्या देवयानीने इस प्रकार तिरस्कार किया। तब शर्मिष्ठा धर्षित हुई सर्पिणीकी समान बारम्बार लम्बे लम्बे श्वास लेने लगी। और क्रोधके मारे होठ चबाय चबायकर कहने लगी कि ॥ १५ ॥ अरी भिखमंगी! अपने आचरणको विना जानेही कटुवचन कहने लगी। काककी समान क्या तुम हमारे गृहका सुख नहीं देखती रहती हो ? ॥ १६ ॥ हे महाराज परीक्षित! इस प्रकारसे कठोर वचनभी गुरुकन्या देवायानीको कहकर शर्मिष्ठाका क्रोध शान्त नहीं हुआ, बरन् इसके वस्त्र उतार नङ्गीकर एक कुएमें धक्का देदिया ॥१७॥ देवयानीको

एवं शपंतीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ॥ रुषा श्वसंत्युरगीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५॥ आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ॥ किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैः सुपरुषैः शप्त्वाचार्यसुतां सतीम् ॥ शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ॥ प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥१८॥ दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥ तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ॥ राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजय ॥ २० ॥ हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे ॥ एष ईशकृतो वीर संबंधो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥

कुएमें ढ़केलकर शर्मिष्ठा अपने घरपर चली आई। भाग्यसे शिकार खेलकर घूमते घूमते राजा ययातिभी उस वनमें आय पहुँचे और प्यासके मारे जल भरनेके लिये जैसेही इस कुएँके समीप गये कि, वैसेही उन्होंने देवयानीको कुएमें देखा ॥१८॥ शुक्राचार्यकी कन्याको कुएँमें नङ्गी गिरी हुई देखकर राजाको अत्यन्त दया आई और तत्काल अपना दुपट्टा राजाने उसे पहरनेको देदिया और अपने हाथसे उसका हाथ पकडकर उस दयावान् राजाने उसको कुएँसे बाहर निकाल लिया ॥१९॥ देवयानी कुएँसे निकलकर प्रेम भरे वचन राजा ययातिसे बोली हे महाराज! आपने अनुग्रह करके हमारा हाथ पकडा है ॥ २० ॥ अब यही प्रार्थना है कि, जिस हाथको एकबार आपने मेरा पाणिग्रहण किया।

उसको कोई दूसरा ग्रहण न करने पावे ॥ २१ ॥ हे वीर ! यद्यपि प्रतिलोम विवाह ठीक नहीं तोभी मैं कुएमें डूबकर मरती थी इसी अवसरपर आपका दर्शन हुआ तब हमारा दोनों जनोंका यह बानक परमेश्वरने बनाया है । यह किसी पुरुषका बनाया नहीं है और हे नरेश ! ब्राह्मणके साथ मेरा विवाह नही होगा । क्योंकि पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दिया था । तब उन्होंने भी हमको शाप दिया था ॥ २२ ॥ शास्त्रके प्रतिकूल और इच्छानुसार न होनेपरभी भाग्यसे प्राप्त हुआ जान और अपने अन्तःकरणको भी उसके प्रति सकाम देख यह निश्चय करके कि, मेरा मन अधर्ममें नहीं प्रवेश करता देवयानीके वाक्य को राजा ययातिने अंगीकार किया ॥२३॥ इसके उपरान्त जब राजा ययाति चलेगये । तब देवयानी

यदिदं कूपमग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ॥ कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्य मशपं पुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ॥ मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥२३ ॥ गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ॥ न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥ दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ॥ स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ॥ गुरुं प्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥

उस स्थानसे रोती रोती पिताके निकट गई और सब वृत्तान्त निवेदन करदिया । अर्थात् शर्मिष्ठाने जो भिखमंगी कहा था । और कुएमें डालकर जो कुकर्म किया था, यह सब विस्तारपूर्वक इसने अपने पितासे कहा ॥ २४ ॥ यह सुनकर शुक्राचार्यके मनमें बडा दुःख हुआ पुरोहिताईकी निन्दा करते और भिक्षावृत्तिकी प्रशंसा करते यह दैत्यराजकी पुरीसे अपनी कन्यासहित बाहर चले ॥ २५ ॥ यह सुनकर राजा वृषपर्वाने जाना कि, गुरुजी अप्रसन्न होकर देवताओंकी जीतकरेंगे । इसलिये शीघ्रही मार्गमें जायकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा । और शिर नवायकर प्रसन्न

१ इसमें यह दृष्टान्त है कि बृहस्पतिके पुत्र कच जब शुक्राचार्य मुनिके निकट मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करतेथे उस समय एक दिन शुक्रकी पुत्री देवयानीने उनके साथ विवाह करना चाहाथा, तब कच बोले कि "तुम हमारी गुरुकन्या होनेसे पूजने योग्य हो" फिर हम किसप्रकारसे तुम्हारा पाणि ग्रहण करें ! तब देवयानीने कुपित हो यह शाप दिया कि, तुम्हारी विद्या प्रभाहीन होगी, तब कचनेभी यह शाप दिया कि "तुम्हारा ब्राह्मणके साथ विवाह नहीं होगा" इसलिये ब्राह्मण हमसे विवाह नहीं कर सकेगा ॥

करने लगा ॥२६॥ एक क्षणभरमें शुक्राचार्यका आधा क्रोध शान्त होगया और वह शिष्यसे बोले कि, हे राजन्! हमारी कन्या जो कुछ कहै सो इस की अभिलाषको तुम पूर्ण करो। क्योंकि हम इस अपनी कन्याको छोड़कर रह नहीं सक्ते ॥ २७ ॥ गुरुजीके यह वचन सुनकर गुरुकन्याकी प्रसन्नता चाहताहुआ राजा वृषपर्व्वा खड़ा रहा। तब देवयानी अपने मनकी बात प्रकाशित करके बोली कि, हमारे पिता जहाँ हमारा विवाह करैं, यह शर्मिष्ठा तुम्हारी कन्या उसी स्थानमें अपनी सब सखियोंके साथ जायकर हमारी दासी होवे ॥२८॥ वृषपर्व्वाने विचारा कि, गुरुजीके चलेजानेसे हमारे ऊपर घोर संकट आन पड़ेगा। और यहाँ रहनेसे हमारे कार्य सिद्ध होंगे। यह सोच विचार राजा वृषपर्व्वाने गुरुकन्या देवयानीके हाथमें सखियों सहित श र्मिष्ठाको सौंपदिया। जब पिताने शर्मिष्ठाको देदिया, तब यह हजार सखियोंके साथ देवयानीकी सेवा करनेलगी ॥ २९ ॥ इसके पीछे दैत्यगुरु शुक्रा

क्षणार्धमन्युर्भगवाञ्शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः॥ कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७ ॥ तथेत्यव
स्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ॥ पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु॥ २८॥ स्वानां तत्संकटं वीक्ष्य तदर्थ
स्य च गौरवम् ॥ देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः ॥ तमाह
राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥ विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ॥ तमेव वव्रे रहसि
सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥ राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ॥ स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्य
पद्यत ॥ ३२ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥

चार्यजीने शर्मिष्ठासहित देवयानीका राजा ययातिके साथ विवाह करदिया और भली भाँतिसे कहदिया कि, यद्यपि हम अपनी कन्याके साथ शर्मि ष्ठाभी तुमको देते हैं तो भी तुम किसी समय इसको अपनी शय्यापर न ग्रहण कर सकोगे ॥ ३० ॥ हे महाराज परीक्षित्! किसी समय शर्मिष्ठाने देखा कि देवयानीने स्वामीके सहवाससे परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न कियाहै। इसलिये ऋतुकाल आन पहुँचनेपर अपनी सखीके पति ययाति राजाको एकान्तमें बुलाय पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ राजा ययाति अत्यन्त धर्मात्मा थे ऋतुकालमें राजकुमारी शर्मिष्ठासे संतानकेलिये प्रार्थित होकर विचारने लगे कि, इसकी कामना पूरी करनेसे धर्म है। इसलिये शुक्राचार्यजीका वचन स्मरण आनेपरभी उन्होंने दैवप्राप्त पिता ज्ञानसे

शर्मिष्ठाके साथ विहार किया राजा ययातिने धर्म समझकरही शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूर्ण की थी. कुछ कामके वश होकर नहीं की, उसके उपरान्त देवयानीने यदु और तुर्वसु, दो पुत्र उत्पन्न किये और शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु, अनु और पुरु; इन तीन पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अरे महाराज ! अपने स्वामीसे शर्मिष्ठाके गर्भकी उत्पत्ति जानकर देवयानी अभिमानसे परिपूर्ण होगई और क्रोधके मारे मूर्च्छितसी हो तत्काल पिताके घरको चलीगई ॥३४॥ हे राजन् ! राजा ययाति अत्यन्त कामीथे वह प्यारीका क्रोध देखकर विनती करके प्रसन्न करते करते अपनी प्रियभार्याके पीछे पीछे चले गये परन्तु चरण दाबनेसे भी तो वह देवयानीको प्रसन्न न करसके ॥ ३५ ॥ महाराज ! इस ओरका कन्याके मुखसे सब वृत्तान्त जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी महा क्रोधित हो घृणायुक्त वचनोंसे जामाताको पुकारने लगे । तू स्त्रीकामी होकर अन्यायके कर्म करता है अरे

गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ॥ देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमंत्रयन् ॥ न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामाऽनृतपूरुष ॥ त्वां जरा विशतां मंद विरूपकरणी नृणाम् ॥३६॥ ययातिरुवाच ॥ अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते ॥ व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योभिधास्यति ॥ ३७ ॥ इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ॥ यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥ मातामहकृतं वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ॥ वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९ ॥

मतिमन्द ! इस अपराधसे मनुष्योंको विरूप करनेवाली जरा (बुढापा) तेरे शरीरमें प्रवेश करै ॥ ३६ ॥ यह शाप सुनकर राजा ययातिका चित्त अत्यंत दुःखित हुआ । और निवेदन किया कि; ब्रह्मन् ! आपकी बेटीके काम भोगसे हम अबतक भी सब प्रकारसे तृप्त नहीं हुए हैं । तब शुक्राचार्यजी बोले कि, हाँ जो कोई पुरुष तुम्हारी जरा ग्रहण करले तो उसकी वयस अवस्थासे तुम इच्छानुसार काम भोग करसकोगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार राजा ययाति जराके उतरनेकी व्यवस्था पाकर पहले अपने बड़े पुत्र यदुको बुलाकर बोले । हे तात यदो ! हमारी यह जरा अवस्था ग्रहण करके अपनी वयस हमको दो । बेटा ! तुम्हारे नाना शुक्राचार्यने हमको जराग्रस्त किया है । परन्तु हम अबतक विषय भोगसे तृप्त नहीं हुए हैं । इसलिये यह जरा तुम लो । और तुम्हारी युवा अवस्था लेकर कुछ वर्षोंतक मैं विहार करूंगा ॥ ३८ ॥ क्योंकि तेरे नानाकी दीहुई

इस वृद्धावस्थाको मैं सह नहीं सकता इसलिये तुम्हारी दी हुई अवस्थासे मैं विषयोंको भोगकर तृप्त होजाऊँगा ॥ ३९ ॥ यह सुनकर यदु बोले कि, हे पिता ! आप मध्यम समयमें जराको प्राप्त हुये हैं आपको इस जराके लेनेको हमारा चित्त नहीं चाहता । क्योंकि बिना ग्राम्य सुखोंके भोगे कौन पुरुष उससे (काम भोगसे) तृष्णारहित होजाता है ॥४०॥ हे भारत ! तिसके पीछे तुर्वसु और द्रुह्यु इन दो पुत्रोंसे राजाने युवा अवस्था मांगी परन्तु उन्होंनेभी कोरा जवाब दिया । हे राजन् ! इन लोगोंको धर्मज्ञान नहींथा । यह अनित्य पदार्थकोही नित्य मानतेथे । फिर भला इन लोगोंसे पिताकी आज्ञा मानी जानेकी क्या सम्भावना ? ॥ ४१ ॥ परन्तु राजा ययातिका सबसे छोटा पुत्र यद्यपि वयसमें छोटा, तथापि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था सबसे पीछे उसको बुलाकर राजा ययातिने जरालेनेके लिये बोले कि, हे वत्स ! तुम अपने बडे भ्राताओंकी समान "नहीं" हमसे कहनेयोग्य

यदुरुवाच ॥ नोत्सहे जरसा स्थातुमंतरा प्राप्तया तव ॥ अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥
तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ॥ प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं
वयसोनं गुणाधिकम् ॥ न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच ॥ को नु लोके मनुष्येंद्र पितुरा
त्मकृतः पुमान् ॥ प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विंदते परम् ॥ ४३ ॥ उत्तमश्चिंतितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ॥
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चारितं पितुः ॥ ४४ ॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ॥ सोऽपि तद्वयसा कामा
न्यथावज्जुजुषे नृप ॥४५॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक्पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेंद्रियः॥४६॥

नहीं हो ॥ ४२ ॥ जब इसप्रकार राजा ययाति कहा; तब पुरुने कहा कि, हे मनुष्येंद्र ! इसलोकमें कोई पुरुषभी पिताका प्रत्युपकार नहीं करसक्ता है । पिता क्या साधारण पुरुष हैं ? क्योंकि उनसे देहका सम्बन्ध है । और उनकी प्रसन्नतासे पुरुष परम गतिको प्राप्त होजाता है ॥ ४३ ॥ जो पुत्र पिताका विचारा हुआ कार्य अपने आपही करदेता है, वह उत्तम कहलाता है । और जो आज्ञापाकर कार्य करता है, वह मध्यम है और जो आज्ञा पाकरभी उस कार्यको नही करता है, वह पुत्र नहीं किन्तु पिताका विष्ठामात्र है । और नीच कहलाता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कह हर्ष प्रकाश करके उसने पिताकी जरा अवस्था ग्रहण करली । राजा ययातिभी अपने पुत्रकी युवा अवस्था पाकर भली भांति सुख भोगनेलगा ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! राजा ययाति सप्तद्वीपका राजा था । वह भली भांति पुत्रकी समान प्रजाका पालन करने लगा । और इच्छानुसार

विषय भोग भोगने लगा। पुत्रकी युवा अवस्था पानेसे इस राजा ययातिकी सब इन्द्रियें प्रबल और अनिवारित होगईं * ॥ ४६ ॥ और देवयानी भी मन, वचन कायसे व और भी सब भाँति एकान्तमें दिनपर दिन अपने प्राणेश्वरको अत्यन्त प्रसन्न करती रहती थी ॥४७॥ हे राजन्! राजा ययाति भी अनेक अनेक दक्षिणा देकर अनेक यज्ञकर सर्ववेदमय सर्वदेवस्वरूप, यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवका भजन करने लगे ॥ ४८ ॥

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ॥ प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः॥ ४७ ॥
अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥
यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ॥ नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥
तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ॥ नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥

अर्थात् आकाशमण्डलमें जलदावलि (बादरोंकी पंक्ति) की समान जिससे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत् विरचित होकर यावत् इन्द्रियवृत्ति, तावत् विचित्ररूपसे प्रकाश पाताहै और इसी इन्द्रियवृत्तिके उपरममें स्वप्न और मायासहित मनोरथ पाय प्रकाशहीन होतेहैं ॥४९॥ राजा ययातिने विरागी

---

* शंका—राजा ययाति छोटे पुत्रकी अवस्था लेकरके उसी छोटे पुत्रकी माताके संग विहार करताथा, इस बातसे जानपडताहै कि पुत्रनेही अपनी माताके संग रमण किया, क्योंकि राजामें रमणकरनेकी सामर्थ्य होती तो पुत्रकी युवावस्था क्यों लेता ? इसने यह दो महापाप क्यों किये ? जो कोई ऐसा कहे कि, पुत्रको पिताकी आज्ञा करनी चाहिये यह भगवान्की बनाई मर्यादा है और धर्मशास्त्रकाभी यही वाक्य है, सो सत्य है, नि सन्देह वह मर्यादा पूरी करनी चाहिये परन्तु न्याय अन्याय विचारकर कार्य करना चाहिये ? क्योंकि जो पिताकी बुद्धि मलिन होजाय और पिता आज्ञा करे कि, मेरे लिये वेश्या अथवा वारुणी अथवा बुरी वस्तुको लादे और वह अनेक प्रकारकी कुत्सित वस्तुपर दृष्टि करे तो पुत्रको ऐसे पिताकी आज्ञा कभी नहीं माननी चाहिये, फिर पुत्रने ऐसे पिताका वचन क्यों माना ?

उत्तर—शर्मिष्ठाके ओष्ठपान करके ययातिकी बुद्धि भ्रष्ट होगई और दैत्यकी कन्याका पुत्र राजा है इसलिये वह दोनों पापी मिलगये इस कारण महापाप किया ॥

होकर उन्हीं अन्तर्य्यामी परमसूक्ष्मरूप भगवान् वासुदेवके अनेक यज्ञ किये ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार सहस्र वर्ष तक अपराङ्मुख पञ्चइन्द्रिय और छठे मनसे सदा विषयभोग करकेभी सर्वभूमीश्वर राजा ययाति सब भाँतिसे तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा—नृप ययाति निज प्रियाको, अज सम चरित सुनाय। बहुरि मोक्षभागी भया, उन्निसवें अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित् ! राजा ययाति इस प्रकार विषयभोग करते करते अकस्मात् एक दिन अपने आपको स्त्रैण समझकर अपनी आत्माका विकार जान, वैराग्ययुक्त हो, अपनी परमप्यारी देवयानीसे यह वर्णन करने

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ॥ ॥ विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिंद्रियैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० नवमस्कंधे ययातिचरितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमाचरन्कामांस्त्रैणोपह्नवमात्मनः ॥ बुद्ध्या प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ॥ धीरा यस्यानुशोचंति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥ वस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः ॥ ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥ तस्या उद्धरणोपायं वस्तः कामी विचिंतयन् ॥ व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥ सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल ॥ तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्वयोऽजाः कांतकामिनीः ॥ पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ॥ ५ ॥

लगे ॥ १ ॥ कि, हे भार्गवि ! हमारी समान कोई कामी एक गाँवमें रहाता था ! वनवासी वीरगण उसके आचरणोंपर अबतक कभी कभी शोक किया करते हैं । सो उस पुरुषकी अनुष्ठान कीहुई गाथा मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, श्रवण करो ॥२॥ "एक छागनी (पुरुष) वन (संसार) अपने प्रिय विषय को ढूँढते ढूँढते अचानक एक छागीको कर्मके वशसे कुएमें गिरी हुई देखी ॥ ३ ॥ इस अत्यन्तकामी छागने उस बकरीके निकालनेका उपाय सोचा और कुएके किनारे, अपने सींगोंसे मट्टी खोदकर उसके निकलनेका मार्ग कर दिया ॥ ४ ॥ इस मार्गसे वह कान्तियुक्त छागी कुएसे निकल उसी छागका अभिलाष करनेलगी. जब उस बकरीने इस बकरेको वरण करलिया तो और बहुत सारी छागी भी मोटे, ताजे रति करनेमें समर्थ, वीर्यके

सींचनेवाले और मैथुन करनेमें चतुर समझकर इस छागको चाहने लगीं ॥ ५ ॥ इसलिये वह एकही बकरा इन बहुतसी बकरियोंकी रति बढ़ाताहुआ इनके साथ केलि करने लगा वह छाग कामरूप गृहमें ऐसा फँसगया कि, अपनी आत्माको भी न जान सका ॥ ६ ॥ परन्तु जो छागी कुएमें गिरी थी, वह और छागियोंको अपनेसे अधिक प्यारी और उनके साथ अपने प्रियतमको सदा रमण करताहुआ देख अत्यन्त क्रोधित हुई और उस छागका यह कर्म बहुत नहीं सहसकी ॥ ७ ॥ इसलिये वह सुहृदयरूपी, वास्तवमें सुहृदक्षण सौहृद इन्द्रियासक्त और कामुक उस छागको छोड़ दुःखित हो अपने स्वामीके पास चली गई ॥ ८ ॥ यह छाग तो बहुतही स्त्रैण था, इसलिये कातर हो शब्द करता हुआ उसको मनानेके लिये

स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ॥ रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥ तमेव प्रेष्ठतमया रममाणम जाऽन्यया ॥ विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद्वस्तकर्म तत् ॥ ७ ॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ॥ इंद्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८ ॥ सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ॥ कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि संधितुम् ॥ ९ ॥ तस्य तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा ॥ लंबंतं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥ संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ॥ कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥ तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्या प्रेमयंत्रितः ॥ आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥

उसके पीछे २ जानेलगा, परन्तु मार्गमें वह उस बकरीको किसी प्रकारसे भी प्रसन्न न करसका ॥ ९ ॥ उस स्थानमें इस छागीके स्वामी एक ब्राह्मणने क्रोध करके इस छागके दोनों लम्बायमान अण्डकोश काटडाले। अर्थात् उसको भोग करने योग्य न रक्खा। परन्तु वह ब्राह्मण उपायभी जानता था, इसलिये अपनी बकरीके काम भोगार्थ फिर इस छागके अण्ड जोड़ दिये अर्थात् फिर उस छागको मैथुन करनेकी सामर्थ्य देदी ॥ १० ॥ हे भद्रे ! इस प्रकारसे यह छाग सवृद्ध वृषण अर्थात् रतिशक्ति युक्त हो कुएसे निकाली उस छागीके साथ बहुत कालतक विषयभोग करता रहा। परन्तु कामकी सेवासे अबतक उस बकरेको सन्तोष नहीं हुआ" ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु ! इस छागकी समान हमभी तुम्हारे प्रेममें

बँधकर अत्यन्त दीन होगये हैं। तुम्हारी मायासे मोहित होनेके कारण हम अपने आपको भी तो भूल गये हैं ॥ १२ ॥ हे भद्रे! पृथ्वीमें जितना धान्य, सुवर्ण, जितने पशु, जितनी स्त्री और जो जो वस्तु हैं सो यह सब भी कामसे हते हुये पुरुषके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सक्ती हैं ॥ १३ ॥ भोग विलासके, द्वारा कामकी किसीप्रकार शान्ति नहीं होती। वरन् घृतद्वारा अग्निकी समान विषय भोग बढ़ताही जाता है। जैसे घृत डालनेसे अग्नि ॥ १४ ॥ परन्तु जिस समय पुरुष सब प्राणियोंसे अमंगलभाव-अर्थात् राग द्वेषादिकी विषमताका त्याग कर देता है और सबमें समदृष्टि कर लेता है, तब उसको सब दिशा सुखदाई हो जाती हैं ॥ १५ ॥ इसलिये दुर्म्मति पुरुष जिसको नहीं छोड सक्ते और प्राचीन पुरुषके

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ न दुह्यंति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४ ॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमंगलम् ॥ समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ॥ तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥१७॥ पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् ॥ तथाऽपि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥१८॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ॥ निर्द्वंद्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥ दृष्टश्रुतमसद्बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ॥ संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥ २० ॥

पासभी जो पुरानी नही होती और जो दुःखकी राशिके लिये रहती है सुख चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि, उस तृष्णाको शीघ्र छोड़दे ॥ १६ ॥ और स्त्रीका संग तो सब प्रकारसे त्यागना आवश्यकहै. क्योंकि माता, बहन अथवा कन्याके संग इकलेमें एकासन पर बैठना ठीक नहीं। क्योंकि इन्द्रियें अतिशय बलवान् हैं विद्वान् पुरुषको भी खैंच लेती हैं ॥ १७ ॥ हे भद्रे! विचार करके देखो वारम्वार विषयकी सेवा करते हुये इसको पूरे एक सहस्र वर्ष बीतगये तोभी दिन दिन तृष्णा बढ़तीही जातीहै ॥ १८ ॥ इसलिये में पहले तृष्णाको छोडकर फिर ब्रह्ममें मन लगा जाऊंगा। फिर सुख दुःखादि द्वन्द्वरहित और निरहंकार हो मृगगणोंके साथ घूमूँगा ॥ १९ ॥ हे प्रिये! जो पुरुष देखे सुने संसारको भी आत्मनाशक

और असत् जानकर उसका अनुध्यान वा भोग छोड देते हैं । वही देखे सुने विषयके अनुध्यानादिमें पण्डित आत्मदर्शी हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित ! राजा ययातिने इसप्रकार अपनी स्त्रीको समझाय छोटे पुत्र पुरुको उसकी युवा अवस्था लौटाय उससे अपनी जरा अवस्था ग्रहण करली । फिर पीछे राजा ययातिको कुछ चाहना न रही ॥ २१ ॥ पूर्व दिशा द्रुह्युको, दक्षिण दिशा यदुको, पश्चिम दिशा तुर्वसुको और उत्तर दिशा अनुको राजा बनायदी ॥ २२ ॥ फिर सब भूमण्डलका राज्य क्षत्रियोत्तम प्यारे पुत्र पुरुको देकर और बडे बेटोंको इस पुरुकी

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ॥ दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ॥ प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ॥ अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान्षड्वर्गं विषयेषु सः ॥ क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥ स तत्र निर्मुक्तसमस्तसंग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिंगः ॥ परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥

आज्ञामें रखकर आप वनको चलेगये * ॥ २३ ॥ हे राजन् ! राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक शब्दादि विषय समूहमें छै इंद्रियोंके द्वारका सुख भोगा था । परन्तु उसने स्पृहा छोड़ एक क्षणभरमें इंद्रियोंके सुखको छोड़दिया जैसे पंख जम आनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड़ जाते हैं ॥ २४ ॥ राजा ययाति संगको छोड़कर आत्मानुभावसे त्रिगुणात्मक रूप लिंग निस्तर होगया और भली भाँति विख्यात हो निर्मल परब्रह्म

* शंका–राजा ययाति बडे बुद्धिमान् और गुणनिधान थे, तोभी ऐसा बडा अन्याय क्योंकिया ? कि, बडे पुत्रको छोडकर छोटे पुत्रको राज्य दिया, क्या कारण ?

उत्तर–कामी लोभी क्रोधी ऐसे ऐसे जीव पृथ्वीपर हैं परन्तु न्याय अन्यायका विचार नहीं करते, नित्य अपने शरीरका सुख चाहते हैं, न्यायमें दुःख देखेंगे, तब न्यायको त्याग देंगे अन्यायमें सुख देखेंगे तब अन्याय करेंगे, जिसमें शरीरको सुखहो, उसीको पुण्य जानते है, और जिसमें शरीरके कष्टहो उसको पाप समझते हैं, सुकर्म कुकर्म कुछ नहीं देखते इस पापके प्रतापसे ययाति राजाने छोटे बडेका विचार नहीं किया जिसकी देहसे सुखपाया उसीको राज्य दिया ॥

वासुदेवमें शीघ्रही भगवत् गतिको प्राप्त होगया ॥ २५ ॥ स्त्री पुरुषका परस्पर स्नेह हेतु परिहासकी समान जो इतिहास कहागया देवयानी इसको सुनकर अपने प्रस्तोभ अर्थात निवृत्तिमार्गमें उत्साहित हुई ॥ २६ ॥ और वह अबला प्याऊ पर जानेवालोंकी समान ईश्वरपरतंत्र सुहृदगणोंका वास मायाविरचित समझी और स्वप्नकी समान उपमा देकर सबको मिथ्या जान सर्वत्र संग छोड़कर भगवान्‌में मन लगाय अपने शरीरको भी छोड़दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे राजन् ! अब यह बतलाते हैं कि, देवयानीने किस प्रकारसे भगवान् वासुदेवमें अपना मन लगाया था, सो तुम सुनो। भगवन् ! आप विधाता, वासुदेव, सर्वभूतोंके निवासस्थान, परमशान्त और अतिवृहत् हो इसलिये मैं आपको नमस्कार करतीहूँ ॥ २९ ॥

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ॥ स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥ सा सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ॥ विज्ञायेश्वरतंत्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥ २७ ॥ सर्वत्र संगमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ॥ कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिंगमात्मनः ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ सर्वभूताधिवासाय शांताय बृहते नमः ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नव० ययातिविरक्तिवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥ यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥ जन्मेजयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ॥ प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥ तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्माद्बहुगवस्ततः ॥ संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां ययात्युपाख्याने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा–ययाति सुत पुरुवंशमें, भये नृपति दुष्यंत। भरत पुत्र तिनके भये, भक्त शिरोमणि संत ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत! अब पुरुके वंशका वर्णन करते हैं, सो तुम सुनो। इसी वंशमें तुमने जन्म लिया है। अनेक राजर्षि इस पुरुवंशमें उत्पन्न हुये हैं ॥ १ ॥ पुरुसे जन्मेजय उत्पन्न हुये। जन्मेजयका पुत्र प्राचिन्वान् और उससे प्रवीरने जन्म ग्रहण किया, प्रवीरका पुत्र नमस्यु और उससे चारुपदका जन्म हुआ, चारुपदके यहाँ सुद्युने जन्म लिया, उससे बहुगव उत्पन्न हुआ

उसका पुत्र संयाति, संयातिका पुत्र अहंयाति और अहंयातिके यहाँ रौद्राश्व जन्मा ॥२॥३॥ इस रौद्राश्वने घृताची अप्सरासे दश पुत्र उत्पन्न किये,
इनके नाम यह हैं—ऋतेयुं, कक्षेयु, स्थंडलेयुं, कृतेयुं, जलेयुं, सन्ततेयु, धर्मेयुं, सत्येयुं व्रतेयुं और सबसे छोटा अवनेयु, हुआ । हे राजन् ! जिस
प्रकार इन्द्रियगण जगत्के आत्मभूत मुख्य प्राणके वश रहते हैं, वैसेही यह दशपुत्र रौद्राश्वके वशमें रहते थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ इन रौद्राश्वके दश पुत्रों
मेंसे ऋतेयुका रन्तिभार नामक एक पुत्र हुआ । उसके तीन पुत्र हुये. यथा सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ इन तीनोंमेंसे अप्रतिरथके पुत्र कण्व
हुये ॥ ६ ॥ कण्वके मेधातिथि और तिनसे प्रस्कण्वादि द्विजातिगण उत्पन्न हुये । हे राजन् ! रन्तिभार नामका बडा बेटा सुमति और उसका

ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थंडिलेयुः कृतेयुकः ॥ जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयु
श्चावमः स्मृतः ॥ घृताच्यामिंद्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयो रंतिभारोऽभूत्त्रयस्तस्यात्मजा नृप ॥
सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥ तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥ पुत्रोऽभूत्सुमते
रैभ्यो दुष्यंतस्तत्सुतो मतः ॥ ७ ॥ दुष्यंतो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः॥ तत्रासीनां स्वप्रभया मंडयंतीं रमामिव ॥
विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ॥८॥ बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तप
रिश्रमः ॥ ९ ॥ पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे ॥ १० ॥

पुत्र रैभ्य और इन रैभ्यकेही पुत्र राजा दुष्यन्त हुये ॥ ७ ॥ एक समय यह राजा दुष्यन्त आखेट करते करते वनमें प्रवेशकर महर्षि कण्वके
आश्रममें आय पहुँचे, वहांपर एक स्त्री बैठी हुई लक्ष्मीकी समान अपने शरीरकी प्रभासे आश्रमको शोभायमान कररही थी ॥ देवमायाकी
समान उस तरुणीको देखतेही राजा दुष्यन्त मोहित होगया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त कुछ सेनाके सिपाही लेकर निकट जाय उस वरारोहाके
साथ राजाने सम्भाषण किया. हे राजा परीक्षित् ! उस सुन्दरीको देखतेही राजा दुष्यन्तको अनिर्व्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ था । और मानो
उसको देखकर जंगलमें घूमनेसे जो थकावट हुई थी वह भी सब जातीरही ॥ ९ ॥ कामपीडित हो हँसते हँसते मधुर वचनसे राजाने

पूँछा कि, हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? ॥ १० ॥ और इस निर्जन वनमें क्या करनेकी वासना किये हुयेहो ? हे सुमध्यमे ! पुरुवंशीय लोगोंका चित्त कभी अधर्ममें नहीं लगता है. इसलिये स्पष्ट जान पड़ता है कि, तुम किसी क्षत्रिय वंशकी बेटी हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर शकुन्तलाने उत्तर दिया कि, हे राजन् ! मैं विश्वामित्रकी पुत्री हूं मेनका नामक अप्सरा मेरी माता है। स्वर्गमें जानेके समय माता मुझको इस निर्जन वनमें अकेली छोडकर चली गई। इसलिये वास्तवमें मैं क्षत्रियकी कन्या हूं इस बातको भगवान् कण्वऋषि भलीभांति जानते हैं. हे वीर ! हम आपका कौनसा कार्य करें ? सो आज्ञा कीजिये ॥ १२ ॥ हे महाराज ! आसन ग्रहण कीजिये और हमारी

किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ॥ न हि चेतः पौरवाणाम धर्मे रमते क्वचित् ॥ ११ ॥ शकुंतलोवाच ॥ विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ॥ वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं करवाम ते ॥ १२ ॥ आस्यतां ह्यरविंदाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ॥ भुज्यतां संति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १३ ॥ दुष्यंत उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ॥ स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकास्सदृशं वरम् ॥ १४ ॥ ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुंतलाम् ॥ गांधर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥ १५ ॥ अमोघवीर्यो राजर्षि र्महिष्यां वीर्यमादधे ॥ श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १६ ॥

पूजा भी आप अंगीकार करें यहाँ निवारीके चावल हैं भोजन कीजिये और यदि रुचि हो तो रात्रिको भी यहांही रहिये ॥ १३ ॥ राजा दुष्यन्त बोले कि, हे सुन्दरि ! तुमने कुशिकके वंशमें जन्म लिया है वास्तवमें तुम्हारा आचरण ठीक है, क्योंकि राजकन्यायें समान स्वयम् वरको वरण करलेती हैं ॥ १४ ॥ शकुन्तलाने राजाकी यह बात सुनकर कहा कि, 'हां' तब देशकालके जाननेवाले इस राजाने शकुन्तलासे गन्धर्व विवाह किया ॥ १५ ॥ हे भारत ! अमोघवीर्यवान् राजा दुष्यन्त भार्या शकुन्तलामें वीर्याधान करके दूसरेदिन इसके

उपरान्त राजा अपने नगर हस्तिनापुरको चलेगये । तब यथायोग्य समयमें शकुन्तलाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥१६॥ महर्षि कण्वऋषीश्वरने वनमेंही यथायोग्य उस बालककी संस्कारादि क्रिया करदी। हे राजन् ! यह कुमार बालकपनसेही अपने बलसे सिंह पकड़ करके उनके साथ खेला करता था ॥१७॥ इसलिये महाविक्रमशाली देखकर प्रमदोत्तमा शकुन्तला भगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न उस पुत्रको ले अपने स्वामीके निकट गई ॥१८॥ परन्तु राजा दुष्यन्तने अनिन्दित इस स्त्री और पुत्रको ग्रहण नहीं किया। परन्तु जिस समय राजा दुष्यन्तने शकुन्तलाका निरादर किया तब श्रवणकारी सब प्राणियोंके सन्मुख आकाशसे अशरीरिणी वाणी प्रगट हो राजाको पुकारकर बोली कि ॥ १९ ॥ हे राजा दुष्यन्त ! माता भस्त्रा अर्थात्

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुदिताः क्रियाः ॥ बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १७ ॥ तं दुरत्ययविक्रांतमादाय प्रमदोत्तमा ॥ हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरंतिकमागमत् ॥ १८ ॥ यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिंदितौ ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥ १९ ॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुंतलाम् ॥ २० ॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात्। त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुंतला ॥ २१ ॥ पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ॥ महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २२ ॥

चर्मपात्रवत् आधार मात्र पिताकाही पुत्र है। क्योंकि आत्माही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। इसलिये अपने पुत्रको ग्रहण करके पालो और शकुन्तलाका अपमान न करो* ॥ २० ॥ हे नरदेव ! जो पुरुष वीर्य डालता है पुत्र उसकाही यमालयसे निस्तार करता है। और शकुन्तला यह सत्य कहती है तुमनेही इस पुत्रको गर्भमें धारण किया था ॥२१॥ हे भारत ! आकाशवाणीको सुनतेही राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको अंगीकार किया। कुछ कालके पीछे महाराज दुष्यन्त स्वर्गवासी होनेपर राजाके महायशस्वी यही भरतजी सिंहासनपर बैठकर चक्रवर्ती राजा हुए थे. महाराज

* शंका–थोडे ही दिनमें राजा दुष्यन्त अपने चरितको भूल गया, और शकुन्तलाको और अपने पुत्रको भी भूलगया, यह बडे आश्चर्यकी बात है ? क्या पहले पुरुष भोले होते थे ?

उत्तर–बडा बुद्धिमान् राजा दुष्यन्त था और यह भली प्रकार जानता था कि यह हमाराही पुत्र है और यह शकुन्तला हमारी स्त्री है, परन्तु लोकापवादसे डरकर उसको ग्रहण नहीं करता था, आकाशवाणीसे सबको विदित होगया तो राजाने ग्रहण किया ॥

भरत श्रीभगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न हुए थे इसलिये उनकी महिमा समस्त भूमण्डलमें गाई जाती है ॥ २२ ॥ उनके दाहिने हाथमें चक्र और दोनों चरणोंमें पद्मकोषका चिह्न विराजमान था। उन्होंने महाभिषेक कराय राजाधिराज हो गंगाजीके किनारे पर पचपन (५५) अश्वमेध यज्ञ करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा की ॥ २३ ॥ यह राजा भरत ममताके पुत्र मामतेय ऋषिको अपना पुरोहित बनाकर यमुनाके तीर पर अश्वमेध यज्ञके अठत्तर (७८) पवित्र अश्व (घोड़े) यथाक्रमसे बाँधे। इन यज्ञोंके समय राजर्षि भरतजीने बहुतसा धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दिया था ॥२४॥ हे राजन्! श्रेष्ठगुणवाले देशमें महाराज भरतजीकी अग्नि प्रणीत थी। उस अग्निप्रचयन कालमें हजारों ब्राह्मणलोग उन महाराज भरतजीकी दी हुई

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ॥ ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्भिुः ॥ २३ ॥ पंचपंचाशत मेध्यैर्गंगायामनु वाजिभिः ॥ सामंतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥ २४ ॥ अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबंध प्रददद्वसु ॥ भरतस्य हि दौष्यंतेरग्निः साचीगुणे चितः ॥ सहस्रं वद्दशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥ २५ ॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान्बद्धा विस्मापयन्नृपान् ॥ दौष्यंतिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २६ ॥ मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णा न्हिरण्येन परीवृतान् ॥ अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २७ ॥ भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ॥ नैवापुर्नैव प्राप्स्यंति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २८ ॥

गायोंको एक एक वद्दमें भाग करके लेगये थे एक वद्द तेरह सहस्र चौरासी १३०८४ का होता है ॥ २५ ॥ और महाराज भरतजीने एक बारहीमें एक सौ तैंतीस १३३ यज्ञीय घोड़े बाँध राजा लोगोंको विस्मितकर देवतालोगोंके विभवकोभी आक्रमण किया था उनका ऐसा कर्म करना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि वह भगवान् हरिको प्राप्त हुए थे ॥ २६ ॥ इन महाराज भरतने मष्णार नामक कर्ममें श्वेतदन्त और कृष्ण रंगके चौदह लाख १४००००० हाथी सुवर्णसे सजे हुए दान किये ॥ २७ ॥ महाराज भरतजीने जो कर्म किये, उन कर्मोंको पहिले हुए नृपति गणभी प्राप्त नहीं करसके और आगेको जो राजा होंगे वह भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। जैसे भुजाओंके बलसे स्वर्ग प्राप्त नहीं होसक्ता ॥ २८ ॥

इन महाराज भरतजीने दिग्विजय करनेको जाकर किरात, हूण, यवन, पौण्ड्र, कङ्क, खश, शक और दूसरे अब्रह्मण्य राजाओंको और सब
म्लेच्छजातिका संहार करडाला ॥ २९ ॥ पूर्वसमयमें जिन दानवोंने देवतालोगोंको जीतकर जिन रसातलादि स्थानोंमें वास किया था और
यह बली दानव लोग देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भी पातालमें लेगये थे। महात्मा भरतजीने उन सब देवाङ्गनाओंका उद्धार किया था ॥ ३० ॥ हे
महाराज ! महाराज भरतजीके समयमें स्वर्ग और पृथ्वीसे प्रजालोगोंकी सब अभिलाषा पूरी होती थी। इस राजा भरतने सत्ताईस हजार वर्ष
तक राज्य करके सब दिशाओंमें अपनी सेना भेजी थी ॥ ३१ ॥ इसप्रकार राज्य भोग करनेके पीछे महाराज भरतजीने लोकपालोंका विभव

किरातहूणान्यवनानंध्रान्कंकान्खशाञ्छकान् ॥ अब्रह्मण्यान्नृपांश्चाहन्म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् ॥ २९ ॥
जित्वा पुराऽसुरा देवान्ये रसौकांसि भेजिरे ॥ देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३० ॥ सर्वकामान्दुदुहतुः
प्रजानां तस्य रोदसी ॥ समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३१ ॥ स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्
च्छ्रियम् ॥ चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३२ ॥ तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः ॥
जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ॥ ३३ ॥ तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ॥ मरुत्स्तोमेन
मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३४ ॥

अधिराज्यकी सम्पत्ति, अस्खलित सेना और आत्मप्राणादि सबहीको मिथ्या विचार कर विषयसे मुँह मोडा ॥ ३२ ॥ इन भरतजीके विदर्भ देशके
राजाकी वेटी सुसम्मत तीन स्त्रियें थी। एकसमय राजाने कहा कि "यह पुत्र हमारे अनुसार नहीं है" इसलिये यह तीनों ऐसी शंका करने लगीं
कि, वारंवार अनुहारका विचार कर कहीं यह राजा हमपर व्यभिचारकी शंका न कर वैठे और हमको त्यागदे। इसलिये अपनी अपनी संतानको
मारडाला ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वंशके व्यर्थ होनेसे महाराज भरतजीने पुत्रार्थ वायु और सोमका यज्ञ किया। इस यज्ञके मरुद्गणोंने प्रसन्न हो राजाके

हाथमें भरद्वाज नामक एक पुत्र समर्पण किया ॥ ३४ ॥ हे परीक्षित ! अब भरद्वाजके जन्मका वृत्तान्त और समर्प्पणकी कथा कहते हैं । अपने भ्राता उतथ्यकी स्त्री ममतासे एक दिन छिपकर बृहस्पतिजीने भोग करना चाहा था। परन्तु उस समय गर्भके बीच एक और बालक था, फिर उस समय गर्भके मध्य दूसरे गर्भका स्थान कैसे हो ? इसलिये, गर्भके बालकने बृहस्पतिजीको वीर्य डालनेके अर्थ निवारण किया परन्तु बृहस्पतिजी कामान्ध होरहेथे । उन्होंने क्रोधित होकर बालकको यह शाप दिया कि, "तू अंधा होजा" और अपना वीर्य ममताके पेटमें डाला ॥ ३५ ॥ बृह स्पतिजीके शापसे उतथ्य नयनहीन दीर्घतमा हुयेथे परन्तु उन्होंने अपनी एडीके प्रहारसे बृहस्पतिजीके वीर्यको योनिके बाहर निकाल दिया । परन्तु उस भूमिपर गिरेहुये वीर्यसे उसी समय एक कुमार उत्पन्न हुआ । पीछे स्वामी हमको व्यभिचारिणी जानकर छोड़ न दें इस भयसे भीत होकर जब उतथ्यकी स्त्री ममताने उस कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की, तब उस समय देवतालोगोंने बृहस्पति और ममताके विवाद रूप इस

अंतर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ॥ प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३५ ॥
तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम् ॥ नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३६ ॥
मूढे भरद्वाजमिमं भरद्वाजं बृहस्पते ॥ यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३७ ॥

कुमारका नाम धरनेके लिये यह वचन कहे ॥ ३६ ॥ यथा—पुत्रको त्याग करके जाती हुई देख बृहस्पतिजीने ममतासे कहा । अरी मूढ स्त्री ! यह बालक एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे होनेके कारण इसका दो जनोंसे जन्म हुआ । इसलिये यह तुम्हारे स्वामीका भी पुत्रहै । स्वामीसे कुछ भयकी शंका नहीं तुम इस बालकको पालो तब ममताने उत्तर दिया कि, तुमभी इसका पालन पोषण करो । हम दोनों जनोंसे अन्यायके द्वारा यह बालक उत्पन्न हुआ है । सो मैं इकली क्यो इसका पालन पोषण करूंगी ! पिता माता अर्थात् बृहस्पति और ममता इस प्रकार कह झगडा करते करते इस बालकको छोडकर चले गये इसीलिये इसका नाम भरद्वाज हुआ क्योंकि भर (पोषण) और द्वाज (दोनोंसे उत्पन्न) इन दोनों शब्दोंके मिलानेसे भरद्वाज नाम हुआ ॥ ३७ ॥

हे राजा परीक्षित् । देवता लोगोंके इस प्रकार कहते कहते पर भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुये उस बालकको व्यर्थ समझकर उतथ्यकी भार्याने त्याग दिया । तब उस बालकको मरुद्गणोंने लेकर पालन किया था । जब भरत वंशके वितथ होनेका उपक्रम हुआ तब उस समय मरुद्गणोंने इस पुत्रको लेकर महाराजाधिराज भरतजीको देदिया ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां शकुन्तलोपाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा—भरत वंश इक्कीसमें, रंतिदेव अजमीढ । तिनके कुलकी कीर्ति सब, वरणों सहित सपीढ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! वंशके वितथ होनेपर भरतजीको मरुद्गणोंने यह बालक दिया इसलिये इन भरद्वाजका नाम वितथ हुआ । इन वितथका पुत्र मन्यु उनसे बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुये ॥ १ ॥ उनमें नरका पुत्र संकृति हुआ । तिसका पुत्र गुरु और

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥ व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे शकुन्तलोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥ महावीर्यो नरो गर्गस्संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥ गुरुश्च रंतिदेवश्च संकृतेः पांडुनंदन ॥ रंतिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥२॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धंलब्धं बुभुक्षतः ॥ निष्किंचनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३ ॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपि गतः किल ॥ घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ॥ अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥

रन्तिदेव हुआ । हे राजन् ! इन रन्तिदेवकी महिमा इस लोक और परलोक दोनोमें गाई जाती है ॥ २ ॥ इस राजाका चित्त निरन्तर व्ययमें नियुक्त था । वह आप भूखे रहकर भी जो कुछ मिलता तत्काल दान कर देते ? यह धीर नरपति सब कुछ दान करके निष्किञ्चन हो सपरिवार क्षुधाके मारे अत्यन्त व्याकुल होगया ॥ ३ ॥ और विना जल पानकिये राजाको अडतालीस दिन व्यतीत होगये । सब परिवार विना आहारके कष्ट पारहा था और आप भी भूख प्यासके मारे कम्पायमान होरहे थे । उसी समय घृत, खीर और थूली भोजन करनेके लिये राजाको प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ उसको पाय राजा प्रातःकाल भोजन करनेको चले जाते थे । उसी समय कोई ब्राह्मण अतिथि आगया ॥ ५ ॥

तो राजा श्रद्धापूर्वक सर्वदेवमय भगवान् हरिको देखते हुए आदर पूर्वक उस ब्राह्मणको भी उस सब अन्नमेंसे विभाग करके देते हुए। और वह ब्राह्मण भोजन करके चला गया ॥ ६ ॥ तिसके पीछे उस बचे हुये अन्नादिको अपने सब परिवारको बाँट चूंट आप स्वयं भोजन करना चाहते थे कि उस अवसरपर और कोई शूद्र अपनेको अतिथि बताकर आया तो यह रन्तिदेव भगवान् हरिका स्मरण करके उस बचेहुए अन्नमेंसे उस शूद्रकोभी भाग देते हुए ॥ ७ ॥ जब वह एक शूद्र अतिथि आयकर बिदा हो चला गया कि, इतनेहीमें और एक जन बहुत सारे कुत्तोंको साथ लिये अतिथि बनकर वहाँ आया और आनकर बोला कि "मैं इन सब कुत्तोंके साथ बहुतही भूंखा हूँ" सो इस यूथके सहित मुझको तुम आहार दो

तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ॥ हरिं सर्वत्र संपश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥ अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ॥ विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७ ॥ याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ॥ राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८ ॥ स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम् ॥ तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ॥ पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥ १० ॥ तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ॥ कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥ न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ॥ आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामंतःस्थितो येन भवंत्यदुःखाः ॥ १२ ॥

॥ ८ ॥ राजाने उसका बहुतही आदर किया और सन्मान करके वह बचा हुआ अन्न कुत्तोंके यूथको और उनके स्वामिको खानेके लिये देकर उनको नमस्कार किया ॥ ९ ॥ उसके पीछे सब कुछ देकर एक जनकी तृप्तिके योग्य जो जल वहाँ बचा था। उसकेही पीनेका राजाने उद्योग किया कि, इतनेहीमें एक पुल्कस (चाण्डाल) आया और करुणा सहित यह वचन बोला कि, हे महाराज ! मैं बहुत थक गया हूँ ! सो मुझ अशुभ पुरुषको कुछ जल दीजिये ॥ १० ॥ इस चाण्डालके ऐसे करुणायुक्त वचन सुनकर राजा रन्तिदेवको अत्यन्त दया हुई और दुःखित हो यह अमृतमय वचन बोले कि ॥ ११ ॥ हम परमेश्वरसे अणिमादि अष्टसिद्धियुक्त गति अथवा मुक्तिकी भी कामना नहीं

करते। हमारी यही प्रार्थना है कि, हम सम्पूर्ण देहधारियोंके दुःखको भोक्तारूपसे भीतर स्थिर होकर प्राप्त हों। और हमसे सब प्राणियोंका दुःख दूर होजावे ॥ १२ ॥ यह दीन जन जीवन धारण करनेकी वासना करता है। इसके जीवनके लिये जल अर्पणकरतेही हमारी क्षुधा, तृषा, थकावट, अंगोंका घूमना कातरता, क्रान्ति, खेद, विषाद, मोह सबही निवृत्त होगये ॥ १३ ॥ इसप्रकार कहकर स्वभावसेही दयालु महाराज रन्तिदेवने स्वयं प्यासके मारे म्रियमाण होनेपरभी उस चाण्डालको अपने पीनेका जल देदिया ॥ १४ ॥ हे राजन्! त्रिभुवनाधीश जो ब्रह्मादि देवता फलाकांक्षी पुरुषोंको फल दान किया करते हैं यह सब महाराज रन्तिदेवके धैर्य और धर्मकी परीक्षा करनेके लिये विष्णुकी बनाई हुई मायासे

क्षुत्तृट्छ्रमो गात्रपरिभ्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः॥ सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३॥ एवं प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया॥ पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥ तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम्॥ आत्मानं दर्शयांचक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५॥ स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निस्संगो विगतस्पृहः॥ वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे नमः परम् ॥ १६ ॥ ईश्वरालंबनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः॥ माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसंगानुभावेन रंतिदेवानुवर्तिनः॥ अभवन्योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥

अपने अपने स्वरूपको दिखाते हुए ॥ १५ ॥ परन्तु महाराज रन्तिदेवने इन सब देवताओंको नमस्कार किया। और निःसङ्ग व स्पृहा रहित होकर केवल भगवान् वासुदेवको अर्पण कर दिया ॥ १६ ॥ इसलिये उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंसे कुछभी नहीं चाहा। हे राजन्! रन्तिदेवके ईश्वरातिरिक्त और किसी फलकी इच्छा न करनेपर अपने चित्तको ईश्वरावलम्बित करनेसे उनके निकट गुणमयी माया स्वप्नकी समान आत्मामेंही विलीन हुई थी ॥ १७ ॥ उनके अनुगामी जनगण इन राजा रन्तिदेवके संसर्गप्रभावसे सबही नारायणपरायण योगी होगये ॥ १८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! मन्युके पुत्र नरका वंश कहा गया । अब गर्गके वंशका वृत्तान्त कहते हैं सो तुम सुनो । गर्गसे शिनि उत्पन्न हुए । शिनिसे गार्ग्य यह ब्रह्मकुलके प्रवर्तक हुए ॥ १९ ॥ अब महावीर्यके वंशका विवरण सुनो । महावीर्यसे दुरितक्षय उत्पन्न हुआ । उनका पुत्र त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि, यह तीनोंजने क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न होकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुये थे। अब मन्युके पाँच पुत्रोंमेंसे सबसे बड़ेका वंश सुनों । बृहत्क्षेत्रका पुत्र हस्ती हुआ कि, जिसने हस्तिनापुर बसाया ॥२०॥ इस × हस्तीके ❀ अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए.इनसें अजमीढके वंशसे

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत ॥ दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ॥ अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१ ॥ अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ॥ बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥ तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित्समजायत ॥ रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४ ॥ स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ॥ स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥ २५ ॥

प्रियमेधादि ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ और इस अजमीढसे बृहदिषु नाम और एक पुत्र जन्मा, उसका पुत्र बृहद्धनु हुआ । बृहद्धनुकी सन्तान बृहत्काय इसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥ २२ ॥ जयद्रथका पुत्र विशद उसका पुत्र सेनजित्, सेनजित्के रुचिराश्व, दृढ, हनुकाश्य और वत्स यह चार पुत्र हुए ॥२३॥ उनमें रुचिराश्वका पुत्र पार हुआ । उसका पुत्र पृथुसेन हुआ । हे राजन् ! पारका दूसरा पुत्र नीप और नीपके सौ(१००) पुत्र हुए ॥ २४ ॥ और इसी नीपने शुककी कन्या कृत्वीके गर्भसे ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया इस योगी ब्रह्मदत्तने अपनी भार्या सरस्वतीके गर्भसे

+ इसा राजा हस्तीने 'हस्तिनापुर' बसाया था जो अवतक गंगा भागीरथीके किनारे पर उपस्थित है ॥

❀ इसी अजमीढने 'अजमेर' बसाया जो आजकल पुष्करजीके निकट वर्तमान है और वास्तवमें इसका नाम 'अजमेढ' था जो आजकल अजमेर नामसे विख्यात है.

विष्वक्सेन नामक, एक पुत्र उत्पन्न किया ❋ ॥२५॥ जिसने जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्र प्रणयन किया था। इस विष्वक्सेनसे उदक्स्वनने जन्म
लिया। इनसे भल्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२६॥ द्विमीढका पुत्र यवीनर, यवीनरका पुत्र कृतमान उसके यहां सत्यधृति नामक पुत्र जन्मा सत्यधृ
तिका पुत्र दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥२७॥ सुपार्श्वसे सुमतिने जन्म लिया उसका पुत्र सन्नति नाम, उसका पुत्र कृति, जिसने हिरण्य
नामसे योग विद्या सीखकर ॥ २८ ॥ प्राच्य सामकी छः संहिताओंका विभाग करके उनको पढ़ाया इस कृतिके नीप हुआ और नीपसे उग्रायुधकी

जैगीषव्योपदेशेन योगतंत्रं चकार ह ॥ उदक्स्वनस्ततस्तस्माद्भल्लादो वार्हदीषवः ॥ २६ ॥ यवीनरो द्विमीढस्य
कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ॥ नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७ ॥ सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमां
स्ततः ॥ कृती हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८ ॥ संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ॥ तस्य
क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुंजयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ॥ नलिन्यामजमीढस्य नीलः
शांतिस्सुतस्ततः ॥३०॥ शांतेः सुशांतिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ॥ भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पंचाऽऽसन्मुद्गलादयः ॥
॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहदिषुः कांपिल्यः संजयः सुताः ॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पंचानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥

उत्पत्ति हुई. उग्रायुधके क्षेम्य, उसका पुत्र सुवीर, सुवीरका पुत्र रिपुञ्जय ॥२९॥ उसका पुत्र बहुरथ हुआ हस्तीका पुत्र पुरुमीढ निःसन्तान रहा नलिनी
नाम जो भार्या थी उससे नीलनाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ। और नीलका पुत्र शान्ति जन्मा ॥ ३० ॥ शान्तिका बेटा सुशान्ति, सुशान्तिका पुत्र
पुरुज और उससे अर्कने जन्म ग्रहण किया। अर्कका पुत्र भर्म्याश्व और उसके मुद्गलादि पॉच पुत्र उत्पन्न हुए ॥३१॥ अर्थात् मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु

❋ शंका-राजा नीपने क्षत्रिय होकर शुकदेवजी ब्राह्मणकी कन्याके साथ अपना विवाह क्यों किया ? क्षत्रियकी पुत्रीको तो ब्राह्मण सदैव विवाहते रहे परन्तु ब्राह्मणकी कन्याके साथ क्षत्रियका विवाह हमने आजही सुनाहै, कभी देवयानीकी बात तो शापसे होगई, परन्तु यह अबकी हमको बडी शंका है।

उत्तर-तीन लोकमें शुकदेवजीकी कन्या सब ब्रह्मज्ञानियोंमें परम ब्रह्मज्ञानी थी और ब्रह्मज्ञानीही पुरुषको अपना पतिकरना चाहती थी और किसी दूसरे पुरुषको नहीं चाहती थी और राजा नीप बडा ब्रह्मज्ञानी था ऐसा विचारके अपनी इच्छासे राजा नीपको उसने अपना पति बनाया, कुछ संसारकी रीतिसे वह विवाह नहीं हुवा था ॥

काम्पिल्य और संजय यह पांच पुत्र जन्मे। भर्म्याश्वने इन पुत्रोंको देखकर एक समय कहा था कि, हमारे यह पांच पुत्र पांच विषयके रक्षा करनेमें समर्थ हैं ॥ ३२ ॥ वह पांच देशका पालन कर सक्ते हैं। इसी कारण इन पुत्रोंकी पाञ्चाल संज्ञा हुई। और पाञ्चाल देश इनहींके नामसे प्रसिद्ध हुवा और मुद्गलसे मौद्गल्य गोत्री ब्रह्मकुल हुआ ॥३३॥ भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे शुभनरा मिथुनने जन्मलिया। इनमें दिवोदास नर और अहल्या नाम नारी थी। उसी अहल्यामें गौतमजीसे शतानन्दकी उत्पत्ति हुई ॥३४॥ शतानन्दका पुत्र सत्यधृति हुआ। यह धनुर्वेदको भलीभाँतिसे जानता था। उसका पुत्र शरद्वान् कि, जिसका वीर्य उर्वशीके दर्शनसे शरकण्डोंके समूहमें गिरा था। और फिर इसी वीर्यसे एक शुभ जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥३५॥

विषयाणामलमिमे इति पांचालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद्ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानंदस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ॥ शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ॥ ३५ ॥ शरस्तंबेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ तद्दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छंतनुर्मृगयां चरन् ॥ कृपः कुमारः कन्या च द्रौणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० न० भरतरन्तिदेवाजमीढादिचरितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मित्रायुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप ॥ सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जंतुजन्मकृत् ॥ १ ॥ तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुतः ॥ द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥ २ ॥

जब शन्तनु राजा मृगया करनेको गया तब उसने दैवात् इस जोड़ेको देखा। और दयाके वश हो अपने घरपर ले आया उस नर मिथुनमेंसे बालकका नाम कृप और बालिकाका नाम कृपी हुआ जो कि, द्रोणाचार्यकी स्त्री हुई ॥३६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां वंशानुकीर्त्तनं नाम एकाविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा-दिवोदासको वंश कह, ऋक्ष वंश बाईस। जरासन्ध और धर्मसुत, दुर्योधन धनईस ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ! दिवोदासका पुत्र मित्रायु, उसका पुत्र च्यवन, च्यवनका पुत्र सुदास, सुदासका सुत सहदेव और उसकी सन्तान सोमक हुआ. इस सोमकके सौ (१००) पुत्र थे। उनमें जन्तु बड़ा था ॥ १ ॥ और पृषत छोटा हुआ। इस

पृषतके सर्व सम्पद्-युक्त राजा द्रुपदने जन्म लिया। इन्हीं राजा द्रुपदसे द्रौपदीका जन्म हुआ और इनके पुत्र धृष्टद्युम्नादि हुए ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु हुआ। यह सब धर्म्याश्वके पाञ्चाल वंशमे हुए और पंजाबके राजा थे। हे राजा परीक्षित्! अब अजमीढका दूसरा पुत्र जो ऋक्ष था, उसका पुत्र संवरण हुआ ॥ ३ ॥ इस संवरणसे सूर्यकी कन्या तपतीके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति कुरुने जन्म ग्रहण किया, इन कुरुके परीक्षित, सुधनु, ज० और निषधाश्व यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ इनमें सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन और इनके कृती हुआ। कृतीका उप रिचरवसु नाम पुत्र हुआ। उससे बृहद्रथ प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ और पुत्रोंके यह नाम हैं यथा-कुशांब,मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप इत्यादि।

धृष्टद्युम्नाद्धृष्टकेतुर्भार्म्याः पांचालका इमे॥ योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः॥ परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोस्सुताः ॥ ४ ॥ सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती॥ वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥ कुशांबमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ॥ बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभ स्तस्य तत्सुतः ॥ ६ ॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः ॥ अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥ ७ ॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसंधिते॥ जीवजीवेति क्रीडंत्या जरासंधोऽभवत्सुतः ॥ ८ ॥ ततश्च सहदेवोऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः॥ परीक्षिदनपत्योऽभूत्सुरथो नाम जाह्नवः ॥ ९ ॥ ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततोऽभवत्॥ जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥

यह सबही चेदिप अर्थात् चंदेलीके राजा थे बृहद्रथसे कुशाग्रका जन्म हुआ उसका पुत्र ऋषभ, उसका सुत ॥ ६ ॥ सत्यहित सत्यहितका पुत्र पुष्पवान्, तिसका बेटा जहु हुआ। हे राजन्! बृहद्रथकी दूसरी भार्यासे एक पुत्र दो खण्ड होकर जन्मा था ॥ ७ ॥ उसकी माताने उस बालकको ऐसा देखकर बाहर फेंकवादिया। फिर जरा राक्षसीने उसको देख "जीवितहो जीवितहो" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक क्रीडा करते करते उन दोनों खण्डोंको जोड दिया था उससेही यह बालक सर्वावयव सम्पन्न हो जरासंध नाम हुआ ॥८॥ इस जरासन्धका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि,उससे श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई। हे राजन्! कुरुपुत्र परीक्षित्के सन्तान नहीं थी। जहुका पुत्र सुरथ ॥ ९ ॥ इस सुरथसे विदूरथका जन्म

हुआ। उसका पुत्र सार्व्वभौम, उसका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र राधिक, राधिकसे अयुतायुने जन्मलिया ॥ १० ॥ अयुतायुके क्रोधन, क्रोधनके देवातिथि उनके ऋक्ष और ऋक्षसे दिलीपने जन्म ग्रहण किया। और दिलीपके प्रतीप नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ इन प्रतीपके देवापि, शन्तनु और बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए। तिनमें बडा पुत्र देवापि पितृराज्यको छोडकर वनमें चला गया था ॥१२॥ इसलिये मध्यम पुत्र शन्तनु राजा हुए। पूर्व जन्ममें इनका नाम महाभिषक था। यह शन्तनु अपने हाथसे जिस किसी वृद्ध पुरुषको स्पर्श करते वही युवा होजाता ॥ १३ ॥ और शान्ति प्राप्त करलेता था. इस कर्मकेही करनेसे इनका शन्तनु नाम हुआ। इन शन्तनुजीके राजा होनेपर देवराज इन्द्रने जब बारह वर्षतक पानी न वर्षाया ॥१४॥ तब राजाने उद्विग्न होकर ब्राह्मणोंसे इसका कारण पूँछा तब ब्राह्मणोंने इस विषयमें केवल इतनाही कहा कि, महाराज! बड़े भाईके

ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च ॥ ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥११॥ देवापिश्शंतनुस्तस्य वाह्लीक इति चात्मजाः ॥ पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥१२॥ अभवच्छंतनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः ॥ यंयं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥१३॥ शांतिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शंतनुः ॥ समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४ ॥ शंतनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ताऽयमग्रभुक् ॥ राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५ ॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छंदयामास सोऽब्रवीत् ॥ तन्मंत्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥ १६ ॥ वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह ॥ देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥ १७ ॥

रहते जो पुरुष राजसिंहासन पर बैठताहै वह अपनी समान पुरुष होनेपर भी परिवेत्ताही होजाताहै आप परिवेदन दोषसे दूषित हुये हैं. सो इस दोषको दूर करनेके लिये शीघ्र अपने बडे भाईको बुलाकर उनको राज्यभार देदो। तब देवता जल वर्षावेंगे। और पुरराष्ट्रोंकी वृद्धि होगी ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर राजा शन्तनु उसीसमय वनको चलेगये। और "प्रजापालन करनाही राजाका परम धर्म है। आप राज्यको स्वीकार कीजिये" यह कहकर अपने बडे भ्रातासे राज्य ग्रहण करनेके लिये विनय करने लगे। परन्तु इससे पहले शन्तनुके मंत्री अश्ववारने देवापिको पाखण्ड करके राज्यके अयोग्य करनेके लिये उनके पास कुछेक ब्राह्मणोंको भेज दिया था. पाखण्डमतानुयायी ब्राह्मणलोगोंकी कथाके द्वारा जब देवापि वेदमार्गसे

परिभ्रष्ट हुये तब इन्होंने शन्तनुकी प्रार्थना न मानी और वेद शास्त्रकी निन्दा करने लगे तब वेदोंकी निन्दा करनेसे नीचता पानेके कारण राज्यके योग्य देवापि न रहे । फिर उसके उपरान्त शन्तनुके राज्य भोग करनेमें और कोई दोष नहीं रहा । फिर यथाकालमें वर्षा होने लगी तबसे देवापि योगमार्गका अवलम्बनकर कलाप ग्राममें रहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ जब कलियुगमें चन्द्र वंशका नाश होजायगा तब सत्ययुगके पहले यह देवापि फिर चन्द्रवंशको स्थापित करैंगे शन्तनुके पुत्र बाह्लीकसे सोमदत्तकी उत्पत्ति हुई । इस सोमदत्तके भूरि भूरिश्रवा और शल यह तीन पुत्र उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ॥ वाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८ ॥ शलश्च शंतनोरासीद्गंगायां भीष्म आत्मवान् ॥ सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥ वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ॥ शंतनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्रांगदः सुतः ॥ २० ॥ विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्रांगदो हतः ॥ यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥

हे परीक्षित् । इन शन्तनुके गंगाजीके गर्भसे भीष्मजीका जन्म हुवा था । यह भीष्मजी धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाभागवत विद्वान् और वीर गणोंके अगुए थे, उन्होने संग्राममें परशुरामजीको[1] भी प्रसन्न किया था । हे राजन् ! इन शन्तनुसे दाश कान्यामें चित्रांग और विचित्रवीर्यनामक दो पुत्र जन्में[2] ॥ १९ ॥ २० ॥ उनमें छोटा विचित्रवीर्य हुआ बडा पुत्र चित्राङ्गत जिसको चित्रांगद नामक किसी गन्धर्वने मारडाला । शंतनुराजाके ग्रहण करनेसे पहले इस दाशकन्या (सत्यवती)में महर्षि पराशरसे साक्षात् भगवान् हरिके अंशसे कृष्णद्वैपायन मुनि (श्रीव्यासजी) का अवतार हुआ ॥२१॥

---

१ शंका—रामचन्द्रके सामने त्रेतायुगमें परशुरामजी अपना धनुष बाण रखके उत्तर दिशामें तप करनेको चले गयेथे, रामायणमें ऐसा लिखा है, फिर द्वापर युगमें भीष्मजीके सग युद्ध कैसे किया उस समय परशुरामजीके पास धनुष बाण कहासे आया ?

उत्तर—जब परशुरामजीने रामचन्द्रजीके सामने अस्त्रोंका त्याग किया, उस समय कुछ उन्होंने ऐसी शपथ नहीं कीथी कि, आजसे हम कभी अस्त्र ग्रहण न करेंगे, इसलिये अम्बिकाको अत्यन्त दु खी देख कर और अपनी शरण आई जानकर तपके प्रभावसे दूसरा धनुषबाण बनाकर भीष्मके सग युद्ध करने लगे ॥

२ उपरिवसुके वीर्यद्वारा मत्स्यगर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी और केवट लोगोंने उसका पालन पोषण किया था । इसीलिये यह दाश कन्याके नामसे विख्यात हुई वास्तवमें इसका नाम सत्यवती था ॥

हे परीक्षित् ! उनके जन्म होनेसे पहिले समस्त वेद गुप्त होगये थे और उनसेही हमनेभी श्रीमद्भागवत शास्त्र प८, था जो कि, इस समय आपको सुना रहे हैं । इन भगवान् बादरायणके पैलादि अनेक शिष्य थे परन्तु इन्होंने उनका स्वभाव जानकर सब शिष्योंको छोडकर हमारे प्रति परमगुह्य श्रीमद्भागवत शास्त्रकी व्याख्या की क्योंकि मैं उनका शान्त पुत्रथा ॥ २२ ॥ इन विचित्रवीर्यने काशीराजकी दो कन्या अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया,इन दोनों कन्याओंको महाबलवान् भीष्म स्वयंवरमेंसे लडकर छीन लाये थे। इन दोनों स्त्रियोंमें विचित्रवीर्य अत्यन्त अनुराग करतेथे इसलिये अल्प कालमेंही यक्ष्मारोगसे ग्रसित हो मृत्युको प्राप्त हुये ॥ २३ ॥ २४ ॥ इनके कोई सन्तान नहीं हुई तब इनके सहोदर भगवान्

वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ॥ हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥ २२ ॥ मह्यं पुत्राय शांताय परं गुह्यमिदं जगौ ॥ विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥ २३ ॥ स्वयंवरादुपानीते अंबिकांबालिके उभे ॥ तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥ २४ ॥ क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ॥ धृतराष्ट्रं च पांडुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ २५ ॥ गांधार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ॥ तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥ २६ ॥ शापान्मैथुनरुद्धस्य पांडोः कुंत्यां महारथाः ॥ जाता धर्मानिलेंद्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥ २७ ॥

वेदव्यासजीने अपनी सत्यवती माताके कहनेसे अपने भाई विचित्र वीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर यह तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ २५ ॥ इनमें धृतराष्ट्रकी स्त्री गान्धारी हुई इस धृतराष्ट्रके गान्धारीसे सौ (१००) पुत्र जन्मे इन पुत्रोंमें दुर्योधन सबसे बड़ा था और दुःशला नाम एक कन्या हुई ॥ २६ ॥ हे राजन् ! पाण्डु राजा एक समय वनमें शिकार खेलनेको गये थे, वहाँ इन्होंने मैथुन करते हुये एक मृगका वध किया, तब मृगने इनको शाप दिया कि जब तुम मैथुन करोगे तबही तुम्हारी मृत्यु होजायगी । इन राजा पाण्डुकी स्त्री कुन्तीमें धर्म, पवन और इन्द्रके

वीर्यसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन, यह तीन पुत्र महारथी उत्पन्न हुये । और इन्हीं राजाकी माद्री नामक दूसरी भार्यामें अश्विनीकुमारसे नकुल
और सहदेवका जन्म हुआ इन पॉचों पाण्डवोंकी भार्या द्रौपदी हुई । द्रौपदीके गर्भमें युधिष्ठिरादि पॉच पांडवोंसे पॉच पुत्र उत्पन्न हुये, जोकि
तुम्हारे पितृव्य थे ॥२७॥२८॥ अर्थात् युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे श्रुतसेन और अर्जुनसे श्रुतकीर्ति,नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा
उत्पन्न हुआ ॥ हे राजन् ! इन पॉच पांडवोंसे इनकी दूसरी भार्याओंमें इन पुत्रोंके अतिरिक्त (सिवाय) और भी पुत्र उत्पन्न हुयेथे युधिष्ठिरकी
पौरवी नामक जो दूसरी भार्याथी । उससे देवक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ । भीमसेनकी हिडिम्बा नामक वनितामें घटोत्कचने जन्म

नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ॥ द्रौपद्यां पंच पंचभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरात्प्रति
विंध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ॥ अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजञ्छ्रुतकर्मा
तथाऽपरे ॥ युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिंबायां काल्यां सर्वगतस्ततः ॥
सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥ ३१ ॥ करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः ॥ इरावतमुलूप्यां वै सुतायां
बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ॥ सर्वातिरथ
जिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥

ग्रहण किया ॥ २९ ॥ ३० ॥ इन भीमसेनके कालीनामक एक और भी भार्याथी, जिससे सर्वगत नामक एक सन्तानने जन्मलिया सहदेवकी
विजया नामक दूसरी भर्या पर्वतकी बेटीने सुहोत्र नाम एक पुत्र उत्पन्न किया । नकुलकी करेणुमती नामक वनितामें निरमित्र नामक एक पुत्र
उत्पन्न हुआ. हे राजन् ! अर्जुनने नागराजकी कन्या उलूपीके गर्भसे इरावन्त नामक एकपुत्र उत्पन्न किया और मणिपुराधीशकी बेटीमें बभ्रुवाहन
नाम पुत्र उत्पन्न कियाथा । यद्यपि यह अर्जुनका बेटाथा । पर नानाके गोद लेनेसे मणिपुरपतिका पुत्र कहायाथा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इन अर्जुनके
सुभद्रा नामक और एक भर्याथी, उससे तुम्हारे पिता अभिमन्युने जन्म लिया । यह अभिन्यु समस्त अतिरथी वीरोंके जयकारी और

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोंतकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमे
जयपूर्वकाः ॥ श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥३५॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ॥ सर्पान्वै
सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषाऽन्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ॥ समंतात्पृथिवीं सर्वां जित्वा
यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७ ॥ तस्य पुत्रश्शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ॥ अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥
॥ ३८ ॥ सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधकः ॥ असीमकृष्णस्तस्यापि निमिचक्रस्तुतत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये
हृते नद्या कौशांब्यां साधु वत्स्यति ॥ उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥

महावीरथे । हे महाराज परीक्षित् ! उनकेही औरससे उत्तराके गर्भमें आपने जन्म लिया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! अश्वत्थामाके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रके तेजसे कुरुवंशका जब नाश होरहाथा, तब तुमभी उससे नष्ट होते । परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरके प्रभावसे मृत्युके हाथसे तुम छूट गये ॥ ३४॥ हे तात ! तुम्हारे इस समय जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन, और उग्रसेन यह चार पुत्रहैं ॥३५॥ हे परीक्षित्! तुम्हारे इन पुत्रोंमेंसे जनमेजय तक्षक (सर्प) से तुम्हारी मृत्युका होना सुनकर रोषके मारे सर्पसत्र यज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञाग्निमें सब सर्पोंको होम देगा ॥३६॥ और तुम्हारे यह पुत्र समस्त पृथ्वीको जीत अश्वमेध यज्ञ करेंगे और कावषेयवंशके " तुर " नामक ऋषिको पुरोहित बनाकर और भी बहुतसे अश्वमेध यज्ञ करेंगे ॥ ३७ ॥ हे परीक्षित् ! तुम्हारे पुत्र जनमेजयके शतानीक नामक एक पुत्र होगा यह शतानीक याज्ञवल्क्य मुनिसे तीन वेद पढेगा और शौनक मुनिसे ब्रह्मविद्या और आत्मज्ञान सीखेगा और कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेगा ॥ ३८ ॥ शतानीकका पुत्र सहस्रानीक होगा, उससे अश्वध्वजकी उत्पत्ति होगी । उनका पुत्र असीम कृष्ण और उनका पुत्र निमिचक्र होगा ॥ ३९ ॥ इस निमिचक्रके राजकालमें हस्तिनापुर गंगाजीमें डूबेगा । तब यह राजा कौशांबी नगरीमें वास करेगा । इस निमिचक्रके सन्तान चित्ररथ और

उसके कविरथ जन्मेगा ॥ ४० कविरथका पुत्र वृष्टिमान् और उनका पुत्र सुषेण नामक राजा होगा। सुषेणके सुनीथ नामक पुत्र जन्मेगा उसका पुत्र नृचक्षु होगा और उससे सुखीनल जन्म लेगा ॥ ४१ ॥ सुखीनलका पुत्र परिप्लुव होगा उससे सुनय जन्म धारण करेगा उसका पुत्र मेधावी, मेधावीका पुत्र नृपञ्जय और उससे दूर्व्व जन्म लेगा और उसका पुत्र तिमि होगा तिमिसे बृहद्रथकी उत्पत्ति होगी। इसका पुत्र सुदास और सुदाससे शतानीक जन्म धारण करेगा ॥ ४२ ॥ शतानीकका पुत्र दुर्दमन,इसका पुत्र बहीनर, बहीनरका पुत्र दंडपाणि इस दंडपाणिका पुत्र नेमि और इस नेमिसे क्षेमक नाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४३ ॥ हे महाराज परीक्षित्! देवर्षि सत्कृत ब्रह्म क्षत्रियवंश इस क्षेमकको राजा पाकर कलियुगमें

तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ॥ सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥ परिप्लुवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ॥ नृपंजयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥ ॥ ४२ ॥ शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ दंडपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ क्षेमकं प्राप्य राजनं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ ४४ ॥ अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥ भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ ४५ ॥ ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥ सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित ॥ ४६ ॥ ततः सृतंजयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः ॥ ४७ ॥

समाप्तिको प्राप्त होजायगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा सुनाय कर नृपश्रेष्ठ परीक्षित्से बोले कि, हे कुरुवंशावतंस! अब मगध वंशमें जो राजा होंगे उनका वृत्तान्त कहता हूं। आप सचेत हो मन लगायकर सुनिये। बृहद्रथके पुत्र जरासन्धके सहदेव नामक पुत्र होगा सहदेवके मार्ज्जारि और इस मार्जारिसे श्रुतश्रवा जन्म ग्रहण करेगा ॥ ४५ ॥ इसका पुत्र अयुतायु उसकी सन्तान निरमित्र इसका पुत्र सुनक्षत्र, इस सुनक्षत्रसे बृहत्सेनकी उत्पत्ति होगी इस बृहत्सेनका पुत्र कर्मजित् उसके सृतञ्जय और उससे विप्रनाम एक नरेश उत्पन्न होगा। उसका पुत्र शुचि शुचिका

पुत्र क्षेम, उससे सुव्रत जन्मेगा। सुव्रतका पुत्र धर्मसूत्र और इस धर्मसूत्रके शम नाम पुत्र उत्पन्न होगा॥ ४६॥ ४७॥ इस समसे द्युमत्सेनकी उत्पत्ति होगी द्युमत्सेनका पुत्र सुमति होगा। इस सुमतिका पुत्र सुबल उत्पन्न होगा, सुबलका पुत्र सुनीथ, सुनीथका पुत्र सत्यजित, सत्यजितका पुत्र विश्वजित् और विश्वजितका पुत्र रिपुञ्जय उत्पन्न होगा। हे राजा परीक्षित्! हजार वर्षतक यह सब राजा उत्पन्न होंगे और इनके उपरान्त जो समस्त राजा होंगे वह पीछे (द्वादशस्कन्धमें) कहे जायँगे॥४८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

दोहा—ययाति सुत अनुद्रुह्यु पुनि, वरणों तुर्वसु वंश॥ पीछे ज्यामघ राज्य तक, यदुकुल कहौं प्रशंश॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरु

द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः॥ सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुंजयः॥ बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम्॥४८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे दिवोदासर्क्षयोर्वंशवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

श्रीशुक उवाच॥ अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च सुतास्त्रयः॥ सभानरात्कालनरः सृंजयस्तत्सुतस्ततः॥१॥ जनमेजय स्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः॥ उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ॥ शिबिर्वेनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरा त्मजाः॥ २॥ वृषादर्भः सुवीरश्च भद्रः कैकेय आत्मजाः॥ शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः॥ ३॥ ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत्॥ अंगवंगकलिंगाद्याः सुह्मपुंड्रांध्रसंज्ञिताः॥ ४॥ जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते॥ ५॥

कुलभूषण! पुरुका वंशतो आपसे कहा, अब राजा ययातिके चौथे पुत्र अनुके वंशका वर्णन करते हैं अनुके सभानर, चक्षु और परोक्ष यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सभानरका पुत्र कालनर, उसका पुत्र सृंजय॥ १॥ और उसका पुत्र जनमेजय हुआ जनमेजयका पुत्र महाशील महामना नाम हुआ, महामनाके उशीनर और तितिक्षु यह दो पुत्र उत्पन्न हुए, इन दोनोंमें उशीनरके शिबि, वेन, शमि और दक्ष यह चार पुत्र उत्पन्न हुए॥ २॥ इनमें शिबिसे वृषादर्भ, वीर, भद्र, कैकय यह चार पुत्र जन्मे। तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ॥ ३॥ इसका पुत्र हेम, उसका पुत्र सुतपा

और सुपासे बलि नाम पुत्र हुआ, इस बलिके क्षेत्रमें दीर्घतमासे अंग, वंग, कलिङ्गादि और सुह्म, पुंड्र और अन्ध्र नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए इन सबोंने अपने अपने नामोंसे छः जनपद प्राच्य देशमें अंग, वंग, कलिंग, सुह्म और पुण्डरीक और अन्ध्र आदि वसाये ॥ ४ ॥ ५ ॥ अंगसे खनपान नामक जो पुत्र जन्मा उसका पुत्र दिविरथ, उसकी सन्तान धर्मरथ और उससे चित्ररथ जन्मा. चित्ररथके कोई सन्तान नहीं हुई ॥६॥ रोमपाद नाम करके यह राजा विख्यात था, उसके सखा दशरथ राजाने उसको पुत्रार्थ शान्तानामक अपनी कन्या दान करदी थी, इस कन्याका पाणिग्रहण ऋष्यशृंग मुनिने किया ॥ ७॥ हे राजन् ! रोमपाद राजाके राज्यमें किसी कारणसे कुछ कालतक देवता इंद्रने जल नहीं वर्षाया

खनपानोंगतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ॥ ६ ॥ रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ शांतां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृंग उवाह ताम् ॥ ७ ॥ देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः ॥ ८ ॥ स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ॥ ९ ॥ चतुरंगो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुतः ॥ १० ॥ आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥ ११ ॥

तब राजाकी अनुमतिसे वारांगनागण तपोवनमें जाय गीत गाय बाजे बजाय बजाय नाचने लगीं । और हाव भाव कटाक्ष आलिंगन और अर्हण योगसे इन ऋष्यशृंगको ले आईं ॥ ८ ॥ ऋष्यशृंगके आतेही जल वर्षा । इसके उपरान्त इन मुनिने राजाको निःसन्तान देख यज्ञ कराय पुत्रका मुख दिखाया ॥९॥ इन रोमपादसे चतुरंग उत्पन्न हुआ । उसकी सन्तान पृथुलाक्ष पृथुलाक्षसे-बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥१०॥ इनमें बृहद्रथसे बृहन्मना जन्मा, उसका पुत्र जयद्रथ, जयद्रथका पुत्र विजय हुआ । इस विजयकी सम्भूति नामक भार्यासे धृतिने जन्म

ग्रहण किया ॥११॥ धृतिका पुत्र धृतव्रत, उसका पुत्र सत्कर्मा, उससे अधिरथ उत्पन्न हुआ, इस अधिरथने श्रीगंगाजीके किनारेपर क्रीडा करते हुये कुन्तीजीका बहाया सुन्दूकमें एक बालक पाया पर यह अधिरथ सन्तानहीनथा। इसीलिये इसने संदूकसे पाये हुये बालकको अपना पुत्र बनालिया। हे राजन्! इस बालकका नाम कर्ण था और इससेही वृषसेनकी उत्पत्ति हुई॥१२॥१३॥ययाति सुत द्रुह्युका पुत्र बभ्रु हुआ, बभ्रुका पुत्र सेतु,सेतुका पुत्र आरब्ध उसका पुत्र गान्धार, उसका बेटा धर्म और उससे धृत जन्मा ॥१४॥ धृतका पुत्र दुर्मना और उससे प्रचेताकी उत्पत्ति हुई। इस प्रचेताके सौ

ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥ योऽसौ गंगातटे क्रीडन्मंजूषांतर्गतं शिशुम् ॥ १२ ॥ कुंत्यापविद्धं कानी नमनपत्योऽकरोत्सुतम् ॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ॥ १३ ॥ द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मज स्ततः ॥ आरब्धस्तस्य गांधारस्तस्य धर्मसुतो धृतः ॥ १४ ॥ धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ १५ ॥ तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ त्रिभानुस्तत्सुतो ऽस्यापि करंधम उदारधीः ॥ १६ ॥ मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ दुष्यंतः स पुनर्भेजे स्ववंशं राज्यका मुकः ॥ १७ ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥ १८ ॥ यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः ॥ १९ ॥

(१००) पुत्र हुये जो कि, उत्तरदिशामें विराजमान होकर म्लेच्छाधिपति हुये हैं॥१५॥ तुर्वसुका पुत्र वह्नि उसका सुत भर्ग, उससे भानुमान्का जन्म हुवा भानुमान्का पुत्र त्रिभानु उसका पुत्र उदारमति करन्धम जन्मा॥१६॥करन्धमका पुत्र मरुत् इन्होंने पुत्ररहित होनेसे कुरुवंशीय राजा दुष्यन्तको गोद लिया, यह दुष्यन्त राज्याभिलाषी होकर फिर अपने कुरुवंशको प्राप्त हुयेथे ॥१७॥ हे नरश्रेष्ठ! अब राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करते हैं। यह अतिपवित्र वंश मानवमण्डलीके अनन्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १८॥ इस यदुवंशका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्यमात्र

पापोंसे छुटकारा पाते हैं। क्योंकि इसी वंशमें भगवान् वासुदेव नराकारसे अवतीर्ण हुये थे॥ १९॥ यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु यह चार पुत्र उत्पन्न हुये। उनमें सहस्रजित्का पुत्र शतजित् हुआ॥ २०॥ इसके महाहय, रेणुहय और हैहय यह तीन पुत्र हुये इनमें हैहयका पुत्र धर्म, उनका पुत्र नेत्र और नेत्रका पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्तिसे सोहंजि जन्मा, इसका पुत्र महिष्मान् और महिष्मान्का पुत्र भद्रसेन हुआ ॥ २१॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुये। इनमें धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा, यह चार पुत्र उत्पन्न हुये॥ २२॥ इनमें कृतवीर्यका पुत्र

यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः॥ २०॥ महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः॥ धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुंतेः पिता ततः॥ सोहंजिरभवत्कुंतेर्महिष्मान्भद्रसेनकः॥ २१ ॥ दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः॥ कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः॥ २२॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत्॥ दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगमहागुणः॥ २३॥ न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यंति पार्थिवाः॥ यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः॥ २४॥ पंचाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः॥ अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु॥ २५॥ तस्य पुत्रसहस्रेषु पंचैवोर्वरिता मृधे॥ जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः॥ २६॥

अर्जुन हुआ। जो कि, सप्तद्वीपका अधीश्वर था। और जिसने श्रीभगवान्के अंश दत्तात्रेयजीसे योग गुण प्राप्त किया था॥ २३॥ ऐसा जान पड़ता है कि, कोई राजा यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन और शूरता, वीरता व दयादिसे इन महात्मा अर्जुनकी गतिको नहीं प्राप्त होसकता॥ २४॥ इस राजाने अव्याहत पराक्रमसे पचासी हजार (८५०००) वर्षतक अक्षय छः इन्द्रियोंके सुखको भोगा था। इस राजाकी स्मरणशक्ति आश्चर्यमय थी कि, जिससे कदापि वित्तका नाश नहीं होता था॥ २५॥ इन अर्जुनके हजार पुत्र थे, इनमेंसे केवल पाँच परशुरामके संग्राममें मर

नेसे शेष बचे थे। जिनके नाम यह हैं। जयध्वज १ शूरसेन २ वृषभ ३ मधु और ऊर्जित ५ ॥ २६ ॥ इनमें जयध्वजका पुत्र तालजंघ और इस तालजंघके शत पुत्र हुये तालजंघनामवाले इन सबका क्षत्रियोंके संग्राममें सगरने संहार किया था ॥ २७ ॥ जो कुछ भी हो-तालजंघके इन सब पुत्रोंमें बड़ा वीतिहोत्र था। हे राजन् ! महात्मा वृष्णि तो मधुका पुत्र था। इस मधुके शत (१००) पुत्र उत्पन्न हुये थे। यद्यपि वृष्णि और यदुके कारणसे मधुका कुल माधव, वृष्णि और यादव इन तीन नामोंको प्राप्त हुआ था तो भी वृष्णि ही इस कुलमें श्रेष्ठ था। यदुका पुत्र क्रोष्टु उसका

जयध्वजात्तालजंघस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ क्षत्रं यत्तालजंघाख्यमौर्वतेजोपसंहतम् ॥ २७ ॥ तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २८ ॥ माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेति संज्ञिताः ॥ यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥ २९ ॥ श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ॥ शशबिंदुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥ ३० ॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ॥ तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥ ३१ ॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत ॥ तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥ ३२ ॥

पुत्र वृजिनवान् ॥ २८ ॥ २९ ॥ वृजिनवान्का पुत्र श्वाहि, उसका पुत्र रुशेकु, उसका सुत चित्ररथ, उससे महायोगी महाभाग शशबिन्दु की उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥ यह प्रत्येक जातिके श्रेष्ठ चौदह महारत्नोंका (हाथी, घोडे, रथ, स्त्री, बाण, निधि, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, झाल्य, मणि, छत्र और विमानादिका) स्वामी और अपराजित चक्रवर्ती था। हे परीक्षित ! इसके दश हजार (१००००) स्त्रियें थीं ॥ ३१ ॥ इनमेंसे प्रत्येक स्त्रीके लक्षलक्ष (१०००००) पुत्र उत्पन्न हुये। जिससे सब मिलकर दशलाख हजार पुत्र जन्मे अर्थात् एक अर्ब (१०००००००००) इन सब

पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पृथुयशा इत्यादि छः पुत्र विख्यात हुये * ॥ ३२ ॥ इन छः पुत्रोंमें पृथुश्रवाका पुत्र धर्म हुआ कि, जिस धर्मके उशना पुत्रने सौ(१००)अश्वमेध यज्ञ किये उशनाका पुत्र रुचक हुआ। इस रुचकके पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ यह पाँच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३३॥ इनमें ज्यामोघकी भार्या शैब्या थी। इस ज्यामघके कोई सन्तान नहीं थी भार्याके डरसे और विवाह नहीं किया यह एक समय इन्द्र भवनसे भोज्या नामक कन्याको हरण करके लारहाथा ॥ ३४ ॥ कि,इस कन्याको रथपर बैठे देखकर शैब्या अत्यन्त क्रोधित हुई और अपने

धर्मो नामोशनास्तस्य हयमेधशतस्य याट् ॥ तत्सुतो रुचकस्तस्य पंचाशन्नात्मजाः शृणु ॥ पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ॥ ३३ ॥ ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ नाविंदच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्यामहारषीत् ॥३४॥ रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ॥ ३५ ॥ स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयंती पतिमब्रवीत् ॥ अहं वंध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ॥ ३६ ॥

पतिसे बोली कि, यह कौनहै? जिसको मेरे बैठनेके रथपर चढ़ाकर लारहेहो ॥ ३५ ॥ तब ज्यामघने भयके मारे उत्तर दिया कि, यह तेरी पतोहूहै शैब्या विस्मित होकर बोली कि, मैं तो बाँझहूं और मेरे कोई सौत भी नहीं कि, यह कन्या जिसके बेटेकी बहू होवे फिर यह हमारी पतोहू कैसे हुई? ॥ ३६ ॥

---

* शंका–राजा शशविन्दुके दशसहस्र (१००००) स्त्रियोंमें, एक अर्व (१०००००००००) पुत्र हुए, यह कैसे कौतूहलकी बात है कहनेवाले तो महात्मा हैं परन्तु सुननेवालोंको भी लज्जा आतीहै, भला यह बात सत्य हो सक्ती है?

उत्तर–शशविन्दुके दशसहस्र (१००००) स्त्रीथीं,सो मनुष्यका स्वरूप धारण करनेवाली नहींथीं वह तो राजा बडा योगीथा सो दश इन्द्रियोंकी प्रकृति,सहस्र कहिये गिन्तीसे रहित सोई राजाकी स्त्रीथीं उन स्त्रियोंसे सौ कोटि पुत्र हुए सो वह भी मनुष्य नहीं हुए, वह तो योगमें प्रेम सुख आदि असंख्य गुणमान यह पुत्र हुए, व्यासजीने वर्णन तो किया परन्तु गुप्तरीतिसे किया क्योंकि संसारके प्राणियोंकी समझमें ऐसी बात नहीं आती और आती भी है तो देरसे आती है शीघ्र नहीं आती, इसलिये संसारपर घटाकर यह वही किया है।

ज्यामघने कहा कि, प्राणेश्वरी ! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी यह उसकी ही वहू होगी. हे राजन् ! विश्वेदेव और पितृ लोगोंने ज्यामघके इस दीन वचनपर आनन्द प्रकाश किया, क्योंकि, ज्यामघने पहिले उनकी बहुत दिनोंतक पूजा की थी। तो उन्होंने कृपा करके वरदान दिया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त शैब्याके गर्भाधान हुआ और यथायोग्य कालमें इस रानीने एक श्रेष्ठ कुमार उत्पन्न किया, इस कुमारका नाम विदर्भ हुआ फिर कुमार विदर्भने इस पतिव्रता कन्याका पाणिग्रहण किया कि, जिसको पिता हरण करलाये थे। और इसी राजा विदर्भने अपने नामसे विदर्भ देश

जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ अन्वमोदंत तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ॥ ३७ ॥ शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥ स विदर्भ इति प्रोक्तमुपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कंधेऽनुद्रुह्युतुर्वसुयदुवंशानुवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥ तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनंदनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ॥ कुशिक स्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥ क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्वृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ॥ ततो दशार्हो नाम्ना ऽभूत्तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥

बसाया ॥३८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां यदुवंशानुकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा–चौबिस माहिं विद र्भके, भये तीन सुत वीर। राम कृष्ण तक वंश सब, कहों सहित विस्तीर ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कुमार विदर्भने अपनी स्त्रीके गर्भसे कुश और क्रथ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, इनका तीसरा पुत्र रोमपाद हुआ ॥ १ ॥ इस रोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुसे कृतिने जन्म ग्रहण किया। कृतिका पुत्र उशिक, उससे चेदि और चेदिसे दमघोष राजाकी उत्पत्ति हुई ॥ २ ॥ हे राजन् ! विदर्भात्मज क्रथका पुत्र कुंति

हुआ। उसका धृष्टि, धृष्टिका पुत्र निर्वृति उससे दशार्ह नाम पुत्र हुआ दशार्हके व्योम ॥३॥ व्योमका पुत्र जीमूत जीमूतके भीमरथ. इनसे नवरथने जन्म ग्रहण किया इनके पुत्र दशरथ हुए ॥ ४ ॥ इनके शकुनि, शकुनिके करम्भि, करम्भिके देवरात देवरातके देवक्षेत्र, उनके मधु, मधुसे कुरुवंश उत्पन्न हुआ और कुरुवंशका पुत्र अनु ॥ ५ ॥ उसका पुत्र कुरुहोत्र, उसका पुत्र आयु और उससे सात्वतकी उत्पत्ति हुई। हे आर्य! सात्वतके भजमान, भंजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज यह सात पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ६ ॥ इनमें भजमानके दो स्त्रियें हुईं। एक स्त्रीसे

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ॥ ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥ करंभिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ॥ देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ॥ भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोंधकः ॥ ६ ॥ सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ॥ भजमानस्य निम्लोचिः किंकिणो धृष्टिरेव च ॥ ७ ॥ एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ॥ शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥ ८ ॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठंत्यमू ॥ यथैव शृणुमो दूरात्संपश्यामस्तथांतिकात् ॥ ९ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥ येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ॥ महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥

निम्लोचि, किंकिण और धृष्टि, यह तीन और दूसरी स्त्रीमें भी शताजित, सहस्राजित, और अयुताजित् यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे राजन्*। देवावृधकी सन्तान बभ्रु हुआ, इन पिता पुत्रके प्रसंगमें कवि लोग दो श्लोक गाया करते हैं। तिन श्लोकोंका अर्थ यह है। "हम दूरसे जैसा सुनते हैं। निकटसे वैसा देखते भी हैं ॥ ९ ॥ महात्मा बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवावृध राजा देवताकी समान है। इस वंशमें पाँच

* बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयो श्लोकौ पठंत्यमू ॥ यथैव शृणुमो दूरात्संपश्यामस्तथांऽतिकात् ॥ १ ॥ बभ्रु. श्रेष्ठो मनुष्याणा देवैर्देवावृधः समः। पुरुषा. पच ५ पष्टिश्च ६० षट्सहस्राणि ६००० चाष्ट च ८ ॥ २ ॥ अर्थात् ६०७३ छ' सहस्र तिहत्तर ॥

पंक्ति षट्सहस्र और आठ जो यह ६०७६ पुरुष हुये यह सब बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे मोक्षको प्राप्त हुये थे" सात्वतके पुत्र महाभोज अति धर्मात्मा थे। इनके वंशमें भोजगणोंकी उत्पत्ति हुई ॥१०॥११॥ हे परन्तप ! सात्वतके चौथे पुत्र वृष्णिके सुमित्र और युधाजित् नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। उनमें युधाजितके पुत्र शिनि और अनमित्र हुये। उनमें अनमित्रका पुत्र निम्न हुआ ॥ १२ ॥ इस निम्नके सत्राजित और प्रसेन दो पुत्र हुये। हे राजन् ! अनमित्रके शिनि नामक एक दूसरा पुत्र जो था उसके यहाँ सत्यक जन्मा ॥ १३ ॥ सत्यकका पुत्र युयुधान (सात्यकि) युयुधानका पुत्र जय, जयका पुत्र कुणि इस कुणिसे युगंधरका जन्म हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ ! अनमित्रके वृष्णि नामक दूसरे पुत्रसे ॥ १४ ॥

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद् युधाजिच्च परंतप ॥ शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥ सत्राजितः प्रसेनश्च
निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ॥ अनमित्रसुतो योन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥ १३ ॥ युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणि
स्ततः ॥ युगंधरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥ श्वफल्कश्चित्ररथश्च गांदिन्यां च श्वफल्कतः ॥ अक्रूरप्र
मुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसंगः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ॥ धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षो
ऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गंधमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ॥ तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥
देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ॥ पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनंदनाः ॥ १८ ॥ कुकुरो भजमानश्च शुचिः
कंबलबर्हिषः ॥ कुकुरस्यसुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥

श्वफल्क और चित्ररथने जन्म लिया, श्वफल्कसे गांदिनीके गर्भमें अक्रूरजीके सिवाय और भी बारह पुत्र जन्मे जो कि बड़े विख्यात हुये ॥ १५ ॥ यथा—आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुविर्त, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष अरिमर्दन ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न गन्धमाद और प्रतिबाहु यह बारह और अक्रूर मिलकर तेरह पुत्र हुये और इनके सुचीरा नामक एक बहनभी हुई थी ॥ १७ ॥ अक्रूरजीके देववान् और उपदेव दो पुत्र हुये ! चित्ररथका पुत्र पृथु इसके अतिरिक्त विदूरथादि बहुतसे पुत्र हुये ॥१८॥दूसरे कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बल बर्हिष यह चार अन्धकके पुत्र हुये, उनमें कुकुरका

पुत्र वह्नि और वह्निका पुत्र विलोमा॥१९॥उसका पुत्र कपोतरोमा। उसकी सन्तान वह अनु हुआ कि,जिसका सखा तुम्बुरु गन्धर्व था,इस अनुका पुत्र अन्धक उससे दुन्दुभि उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र अरिद्योत और तिसका पुत्र पुनर्वसु हुआ ॥ २० ॥ पुनर्वसुके आहुक पुत्र और आहुकी कन्या हुई आहुकके देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुये। देवकके देववान्, उपदेव, सुदेव, देववर्द्धन यह चार पुत्र उत्पन्न हुये। इन चार पुत्रोंके धृतदेवादि सात बहनें थीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ यथा धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी इन सात कन्याओंके साथ वसुदेवजीने विवाह

कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुंबुरुः ॥ अंधको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥ तस्याहुकश्चाऽऽहुकी च कन्या चैवाऽऽहुकात्मजौ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ॥ तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥ शांतिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥ २३ ॥ कंसः सुनामा न्यग्रोधः कंकः शंकुः सुहुस्तथा ॥ राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥ २४ ॥ कंसा कंसवती कंका शूरभू राष्ट्रपालिका ॥ उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥ शूरो विदूरथादासीद् भजमानः सुतस्ततः ॥ शिनिस्तस्मात्स्वयंभोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥ देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ॥ देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ॥ वसुदेवं भागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥

। ॥ २३ ॥ हे परीक्षित् ! उग्रसेनके पुत्र कंस, सुनामा, न्यग्रोध; कंक, शकु सुहु, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान्, यह नव पुत्र उत्पन्न हुये॥२४॥ कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू, राष्ट्रपालिका यह पांच कन्यायें वसुदेवजीके छोटे भाई जो देवभागादि थे इनकी भार्या हुईं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! ले चित्ररथके बेटे विदूरथका जो वर्णन कर आये हैं, उन विदूरथसे शूर उत्पन्न हुये उसका पुत्र भजमान, उससे शिनिका जन्म हुआ, निका पुत्र भोज और उसका हृदीक नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ उससे देवबाहु शतधनु और कृतवर्मा देवमीढ यह चार पुत्र उत्पन्न

हुये। उनमें देवमीढका पुत्र शूर हुआ, उसके मारिषा नामक एक पत्नी थी। मारिषाके गर्भसे शूरने दश पुत्र उत्पन्न किये! उनके नाम यह हैं, यथा—वसुदेव, देवभाग, देवश्रवस, आनक ॥ २७ ॥ २८ ॥ सृञ्जय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक और वृक हे राजन्! जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुआ उससमय स्वर्गसे देवतालोगोंने नगाड़े और ढोल बजायेथे ✻ ॥२९॥ इसीलिये इन वसुदेवजीका एक नाम आनकदुन्दुभि है क्योंकि

सृंजयं श्यामकं कंकं शमीकं वत्सकं वृकम् ॥ देवदुंदुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥ वसुदेवं हरेः स्थानं वदं त्यानकदुंदुभिम् ॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पंच कन्यकाः ॥ कुंतेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात ॥ ३१ ॥ साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतिं प्रतोषितात् ॥ तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम्॥ ३२ ॥

यह भगवान् हरिकी उत्पत्तिके स्थान थे। शूरसेनके इन पुत्रोंके अतिरिक्त पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा ॥ ३०॥ और राजाधिदेवी नामक पांच कन्या हुईं यह इन दश पुत्रोंकी बहने थीं, राजा शूरसेनने अपने सखा कुन्तिराजको निःसन्तान देखकर अपनी पृथा कन्या उसको देदी ॥ ३१ ॥ किसी समय हे परीक्षित्! दुर्वासा ऋषिके गृहमें आनेपर पृथाने भलीभाँति सेवाकर उनको संतुष्ट किया और दुर्वासा मुनिने प्रसन्न होकर पृथाको

✻ शंका—मृत्युलोकमें मनुष्य जन्म तो लेते हैं परन्तु किसीके जन्म होनेपर देवता दुन्दुभि नहीं बजाते और हमने आजतक कभी सुनामी नहीं कि, मनुष्योंके जन्म लेनेपर देवता दुन्दुभि बजाते है परतु वसुदेवके जन्म होनेपर देवताओंने दुन्दुभि क्यों बजाया ? जो कोई कहै कि, भगवान् वसुदेवके घर जन्मलेंगे इसलिये देवताओंने आगेही हर्ष मानकर बजाये हैं तो दशरथ आदि लेकर बहुत जनोंके भगवान् पुत्र हुए तो दशरथ आदिके जन्म समय देवताओंने दुदुभि क्यों नहीं बजाये!

उत्तर—जो मथुरामें वसुदेवने जन्म लिया तब उससमय दुदुभिके निकट चन्द्रमा खड़ा था, चन्द्रमाने जानलिया कि इस लड़केके पुत्र भगवान् होंगे मेरे वशका प्रकाश करनेवाला यह बालक होगा, ऐसा जानकर चन्द्रमाने दुदुभि बजाया कुछ देवताओंने दुदुभि नहीं बजाया, और दशरथके जन्मके समय सूर्य दुदुभिके समीप नहीं थे और जो होते तो सूर्य भी निश्चय दुदुभि बजाते अपने अपने वशकी वृद्धि देखकर सबको हर्ष होता है ॥

देवाह्वान विद्या शिखा दी। इसके उपरान्त पृथाने उस विद्याके बलकी परीक्षा करनेके लिये सूर्य भगवान्को बुलाया ॥ ३२॥ परन्तु इन सूर्य भगवान्को तत्काल आता हुआ देखकर पृथा अति विस्मित हुई और विनयसहित यह वचन कहने लगी । हे देव ! हमने केवल परीक्षाके लिये मन्त्र पढ़ा था इस समय आपसे कोई विशेष काम नहीं है इसलिये आप क्षमा करें ॥ ३३ ॥ यह सुनकर सूर्यभगवान् बोले कि, देव दर्शन व्यर्थ नहीं होता हम तुममें गर्भाधान करेंगे, पृथा बोली कि, मैं कन्या हूं संसारमें दूषित हूंगी, सूर्यनारायणने कहा कि,तुम कन्या समझकर अपने मनमें कुछ संकोच मत करो हम ऐसा करेंगे कि, जिस प्रकारसे तुम्हारी योनि दुष्ट नहीं होगी ॥३४॥ हे महाराज परीक्षित् ! इसप्रकार गर्भाधान करके सूर्य भगवान् स्वर्गको चलेगये,

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मयमानसा ॥ प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥ अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् ॥ योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥ इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ॥ सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ॥ प्रपितामहस्तामुवाह पांडुर्वै सत्यविक्रमः ॥ ३६ ॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ॥ यस्यामभूद्दन्तवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ३७ ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविंदत ॥ संतर्दनादयस्तस्यां पंचासन्कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥ राजाधिदेव्यामावंत्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ॥ दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९ ॥

उसी समय, दूसरे दिवाकरकी समान पृथाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ तो पृथाने लोकापवादसे डरकर उस पुत्रको सन्दूकमें रखकर नदीमें बहा दिया, इसके उपरान्त पृथाको देखकर तुम्हारे परदादा महाराज सत्यविक्रम पाण्डु विवाह कर लेगये ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! शूरसेनकी कन्या श्रुतदेवा करूषवंशीय वृद्धशर्माकी भार्या हुई । उसमें दितिसुत दन्तवक्रने सनकादि ऋषियोंके शापसे जन्म लिया और केकय वंशीय धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया, उससे सन्तर्दनादि पांच पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ और अवन्तीके राजा

जयसेनने राजाधिदेवीका पाणिग्रहण करके उससे बिन्द, अनुबिंद नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। हे राजा! चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ इसका पुत्र शिशुपाल उत्पन्न हुआ कि, जिसका वृत्तान्त पहले वर्णन करचुके हैं। अब वसुवदेजीके भ्राताओंका वृत्तान्त कहते हैं। देवभागकी भार्या केसाके चित्रकेतु और बृहद्बल यह दो पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ४० ॥ देवश्रवसकी भार्या कंसवतीके गर्भसे सुवीर और इषुमान्ने जन्म ग्रहण किया। आनककी वनिता कंकासे सत्यजित् और पुरजित् यह पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ४१ ॥ सृञ्जयकी भार्या राष्ट्रपालीके गर्भसे वृषदुर्मर्षणादि

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य संभवः ॥ देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥ कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ॥ कंकायामानकाज्जातः सत्यजित्पुरुजित्तथा ॥ ४१ ॥ सृंजयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ॥ हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा ॥ तक्षपुष्करशालादीन्दूर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३ ॥ सुमित्राऽर्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी ॥ कंकश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥ ४४ ॥

उत्पन्न हुये। श्यामककी वनिता शूरभूमिसे हरिकेश और हिरण्याक्षने जन्म लिया ॥ ४२ ॥ वत्सकने मिश्रकेशीनामक अप्सरामें वृकादि पुत्र उत्पन्न किये। वृककी पत्नी दूर्वाक्षीसे तक्ष, पुष्करशाल, प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ शमीक वनिता सुदामिनीने शमीकसे सुमित्र, अर्ज्जुन और पाल इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये। आनकने अपनी स्त्री कर्णिकाके गर्भसे ऋतुधामा और जयनामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४४ ॥

हे महाराज परीक्षित् ! वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि अनेक पत्निये थीं ॥ ४५ ॥ इन स्त्रियोंमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥ पौरवीसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूतादि बारह पुत्र जन्मे। मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक और शूरादि पुत्र उत्पन्न हुए। भद्राने कुलका आनन्द देनेवाला केवल केशी

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ॥ देवकीप्रमुखा आसन्पत्न्य आनकदुंदुभेः ॥ ४५ ॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विमलं ध्रुवम् ॥ वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत ॥ ४६ ॥ सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च ॥ पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाऽभवन् ॥ ४७ ॥ नंदोपनंदकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ॥ कौसल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनंदनम् ॥ ४८ ॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमांगदादयः ॥ इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९ ॥ विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुंदुभेः ॥ शांतिदेवात्मजा राजञ्छमप्रतिश्रुतादयः ॥ ५० ॥ राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ॥ वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१ ॥

नामक एकही पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमांगद, प्रभृति जन्मे और इलामें उरुवल्कसे आदि लेके यदु जिनमें मुख्य ऐसे पुत्र हुए ॥४९॥ धृतदेवाके वसुदेवसे विपृष्ठने जन्म ग्रहण किया शान्तिदेवामें शम प्रतिश्रुत प्रभृति पुत्र उत्पन्न किये ॥५०॥ इसीप्रकार उपदेवासे कल्प वर्षादि दशपुत्र उत्पन्न हुए। श्रीदेवाके वसु, हंस, सुवंशादि छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥

देवरक्षिताके गद प्रभृति नव पुत्र उत्पन्न हुए जसे साक्षात् धर्मने आठ वसु उपजाये वैसेही वसुदेवजीने सहदेवासे पुरुविश्रुतप्रभृति आठ पुत्र उत्पन्न किये । इस प्रकार उनके देवकीमें आठ पुत्र उत्पन्न हुये । यथा कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजुं, सम्मर्दन, भद्र और अहीश्वर संकर्षण, यह सात पुत्र और ॥५२॥५३॥५४॥ हे परीक्षित् । वसुदेव देवकीके अष्टम पुत्र स्वयं विष्णुभगवान् (श्रीकृष्ण)हुए । और तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्राजी भी उनसेही उत्पन्न हुई ॥५५॥ अधिक क्या कहें ? जिस जिस समय धर्मका क्षय और अधर्मकी वृद्धि होती है उसी समयमें भगवान् वासुदेव अपना अवतार

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ॥ वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव ॥ वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥ कीर्तिमंतं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ॥ ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥५४॥ अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल ॥ सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥ ॥ ५५ ॥ यदायदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ॥ तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६ ॥ न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ॥ आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७ ॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ॥ अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥

लिया करते हैं ॥५६॥ नहीं तो जो मायाके नियन्ता, संगविहीन, सर्वसाक्षी और सर्वगत ईश्वर हैं उनका मायाविनोदके अतिरिक्त (सिवाय) जन्म अथवा कर्मका और क्या हेतु होसक्ता है ? ॥ ५७ ॥ जिसकी माया चेष्टा जीवकेलिये अनुग्रह स्वरूप है, क्योंकि यह मायाही सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी निदान है. इसलिये जो सर्व जीवोंके अनुग्राहक हैं । फिर उनको कर्मादिके वश पडकर जन्मादि संबंधकी क्या सम्भावना ? इनके मायाचेष्टित श्रूयमाण होनेपर उसके द्वारा सृष्टि प्रभृतिकी निवृत्ति होनेपर वही जीवके मोक्ष होनेका कारण होते हैं ॥ ५८ ॥

हे परीक्षित्! बहुतसी अक्षौहिणीके राजा नृपरूपी असुरगण जब पृथ्वीका आक्रमण करते हैं और अपने बोझसे पृथ्वीको दबालेते हैं। तब भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान्का यह अवतार होता है। क्योंकि जिन कर्मोंको सुरेश्वर लोग मनके द्वारा तर्क करके भी नहीं करसक्ते भगवान् मधुसूदन संकर्षणके साथ उन सब कर्मोंको लीलाहीसे कर डालते हैं॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राजन्! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं यद्यपि वह संकल्पही करके पृथ्वीके भारको हरण करनेमें समर्थ थे, परन्तु तो भी कलियुगमें जो भक्त होंगे, उनके प्रति अनुग्रह प्रगट करनेके लिये दुःख, शोक और तमोगु

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलांछनैः ॥ भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥ कर्माण्यपरिमेयानि मनसाऽपि सुरेश्वरैः ॥ सह संकर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद् यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ॥ श्रोत्रांजलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकैः ॥ श्लाघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृंजयपांडुभिः ॥ ६३ ॥ स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ॥ नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वांगरम्यया ॥ ६४ ॥

णका नाशक यह पुण्य यश भगवान्ने विस्तारित किया है यह श्रेष्ठयश साधुपुरुषोंकेलिये कर्णामृत और श्रेष्ठ तीर्थस्वरूप है केवल एकबार कर्णरूप अञ्जलिसे पान करनेपर पुरुष कर्मवासना त्याग देनेको समर्थ होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसलिये भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पाण्डुवंशीय सब मनुष्यगण भगवान्के चरित्रकी बड़ाई किया करते हैं ॥ ६३ ॥ उन्हीं भगवान्ने सुन्दर मनोहर मुसकानके दर्शन, उदार वचन, विक्रमलीला, समस्त रमणीक मूर्तिके द्वारा सब मनुष्य लोकको प्रमुदित किया था ॥ ६४ ॥

मकराकार कुण्डल, मनोहर कर्ण, चमकते दमकते हुए कपोल, इन सबसे श्रीभगवान्का वदन अनुपम शोभायमान था, विलासयुक्त मुसकान मानों उसमें लगी हुई थीं, इसलिये मानो सदाही उत्सव होता. उस वदनको दृष्टिके द्वारा पान करके नर नारी परितृप्त नहीं हुए। वह सब आनन्दित तो हुए थे परन्तु नेत्रोंके बारंबार पलक मारनेको न सहकर निमेषके बनानेवाले राजा निमिके ऊपर बारंबार कोप करते थे॥६५॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रआनन्दकन्दने अपने रूपसे जन्म ग्रहण किया, उसके पीछे मनुष्याकार हो पिताजीके घरसे व्रजको चले गये। वहाँपर शत्रुओंका नाश कर व्रजवासियोंकी अभिलाष पूर्ण कर धन संपत्तिको बढ़ाया। फिर बहुतसी

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं सुविलासहासम्॥ नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबंत्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमश्च ॥ ६५ ॥ जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः ॥ उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीज आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥ ६६ ॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामंतस्समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः॥ दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशविदर्भान्वयानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ समाप्तोऽयं नवमस्कन्धः ॥

सुन्दरियोंसे विवाह कर उनसे सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये। फिर लोकसमाजमें स्वकृत वेदमार्गका विस्तार करके अनेक यज्ञोंको कर, आपने अपनीही पूजा की ॥ ६६ ॥ फिर उन्होंने कौरव और पाण्डवोंमें द्वेष उपजाय पृथ्वीका भारी भार उतार दिया। और दृष्टिसेही युद्धभूमिमें खड़े हुए राजाओंको कम्पायमान कर दिया, फिर जब अर्ज्जुनने रणमें जय पाई तब उसकी कीर्तिका विकास कर उद्धवजीको परमतत्त्वका उपदेश किया। और अन्त समय अपने उसी स्वरूपसे परमधामको चले गये ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां विदर्भवंशवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इदं पुस्तकं क्षेमराज--श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालैन)
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्।
संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कंधसमाप्तिः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धप्रारम्भः ॥

सवैया–जाकी कृपा शुक ज्ञानी भये, अतिदानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी ॥ जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये व्यास पुराणनके अधिकारी ॥ जाकी कृपाते त्रिलोकधनी, सुकहावत श्रीव्रजचन्द विहारी ॥ मेरेहूँ काज करैगी सोई, श्रीकृष्णप्रिया वृषभानु दुलारी ॥ १॥ कबित्त–काहूको भरोसोहै गणेश शेष शारदको, काहूको भरोसोहै कालिका मशानीको ॥ काहूको भरोसो उमा रमा सिया लक्ष्मीको, काहूको भरोसो महादेव ब्रह्मज्ञानीको ॥ काहूको भरोसो गंग यमुना हनुमानजीको, काहूको भरोसो सिंहवाहिनी भवानीको ॥ तनसे औ मनसे कहै बार बार शालिग्राम, मोको तो भरोसो एक राधा महरानीको ॥ १ ॥ दोहा–हे मुकुन्द गोविंद हरि, नन्दनन्दन घनश्याम । चरणशरण मोहिं राखिये, कृपासिन्धु सुखधाम ॥ १ ॥ पूरण दशमस्कंधमें

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥ राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ॥ तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥

कियो कृष्ण यश गान ॥ सोनब्बे अध्याय करि, कीन्हद्यों सकल बखान ॥ २ ॥ तहां प्रथम अध्यायमें, कंस आपनो काल । सुनि देवकि संभूत तब हने तासु षट बाल ॥१॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि, हे दीनदयालु ! आपने प्रथम नवमस्कन्धमें चन्द्रवंश और सूर्यवंशमें जो जो नामी राजा हुये उन दोनों वंशोंके सब राजाओंका अति विचित्र चरित्र विस्तारसहित वर्णन किया * ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! धर्मशील महाराज यदुका वंशभी विस्तारपूर्वक आपने अच्छी रीतिसे कहा परन्तु अब दयाकरके वह कथा कहो, जो, महाराज यदुके वंशमें बलरामजीके साथ परिपूर्ण रूपसे अवतार धारण करके संसारके सुख देनेको जो जो अद्भुत लीला भगवान् वासुदेवने की, उनको विस्तार सहित हमारे सामने वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

---

* शंका–सूर्यवंशसे चद्रवंश हुवा है और राजा परीक्षित्के प्रश्नवाले श्लोकसे प्रथम सोमवंशका नाम हैं, सो पीछे सूर्यवंश क्यों वर्णन किया । सूर्यवंश तो प्रथम वर्णन करना चाहिये ? यह वडे संदेहकी बात हैं, प्रथमवालेको पीछे वर्णन करना और पीछे वालेको प्रथम यह क्या कारणहै यहा कोई छन्दमें नहीं जो आगे पीछे छन्दभ्रष्ट होजानेके कारण लिखदिया.

उत्तर–राजा परीक्षित्ने चद्रवंशमें श्रीकृष्णका जन्म सुनकर और अपनेभी कुलका सन्मान करनेके लिये श्लोकमें प्रथम चद्रमाका कीर्त्तन किया ॥

सब प्राणियोंके प्रतिपालक भगवान् भूतभावनने यदुकुलमें जन्म लेकर जो जो आश्चर्ययुक्त चारित्र किये वह भी सब यथावत् हमारे आगे कथन करो ॥ ३ ॥ इस संसारमें तीन प्रकारके पुरुष हैं–एक तो ज्ञानी, दूसरे मुमुक्षु, तीसरे विषयी, इन तीनों प्रकारके मनुष्योंको उत्तमश्लोक भगवान्‌के चारित्र परमप्रिय हैं, सो दिन रात उनको गाते रहते हैं और ज्ञानी लोगोंको परमेश्वरके चारित्र सुननेसे संसारकी सब वासना छूटनेका उत्तम उपाय दिखाई देताहै और जिन मुमुक्षु जनोंको मोक्षकी इच्छा है ऐसे नारद, उद्धवादिकोंको संसाररूपी रोगोंके दूर करनेको सजीवन मूल औषधिहै और विषयमें जिनका मन है ऐसे मनुष्योंके मनको और कानोंको परमानन्दका देनेवाला यही विषय है, सिवाय आत्मघातीके और पशुघातीके ऐसा कौनसा मनुष्य है जो परमेश्वरके गुणानुवादको सुनकर आनन्दित न होगा ? ॥४॥ चाहे कुछ हो परन्तु हमको तो वृन्दावनविहारी भक्तिहितकारीका गुण

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः ॥ कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहा मे समरेऽमरंजयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिंगिलैः ॥ दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥ द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदंगं संतानबीजं कुरुपांडवानाम् ॥ जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः॥६॥

दिन रात गाना और उनके उत्तम उत्तम चारित्रोंकी कथा नित्य प्रति सुननी, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र तो हमारे कुलपूज्यही थे, संग्राममें देवताओंकोभी पराजय करनेवाले पितामह भीष्म और दुर्योधन आदि महारथी रूप जिसमें वडवानल सौबल और दुःशासन रूप महागम्भीर नीर, भारी भारी वीर और योद्धाओंकी जहाँ तहाँ घूम रही थी वही उसमें तरंगें, शल्य, द्रोण, कर्ण आदिक महारथी रूप ग्राह थे, मर्यादारूप राजाओंकी कतार थी उस कौरवरूपी अत्यन्त गम्भीर समुद्रने जो द्रौपदीका चीर हरा वही उस समुद्रका विस्तार था, ऐसे दुस्तर महासागरको मेरे पितामह युधिष्ठिर आदिकोंने भक्तिरूप नौकाका आश्रय लेके बछड़ेके खुरकी सदृश समझकर बेखटक पार उतर गये ॥ ५ ॥ इतनाही मत समझना कि, भगवान्‌ने कृष्ण अवतार केवल पाण्डवोंकीही सहायताके लिये धारण किया था, मेरे भी प्राणोंकी रक्षा श्रीकृष्णजीनेही की थी, कौरव और

पाण्डवोंकी सन्तानका बीजरूप जो मेरा देह अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध होनेको था, उसी समय मेरी माता उत्तराने महादुःखी हो श्रीकृष्णकी शरण ली, उत्तराको दुःखी जानकर भगवान्‌ने चक्र ग्रहण कर मेरी माताकी कुक्षिमें प्रवेश करके मेरे तनुकी रक्षा करी ॥ ६ ॥ हे विद्वन् ! सब जगत्‌के प्रकाश करनेवाले प्राणियोंमें परमपुरुष कालरूप, संसारको मोक्ष देनेवाले और उसीरूपसे दुरात्मा लोगोंको मृत्युके देनेवाले, जिन्होंने भक्तोंके ऊपर दया करके नरशरीर धारण किया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला हमारे आगे कहो, हमको उनके पराक्रमोंके सुननेकी बड़ी लालसा है ॥ ७ ॥ संकर्षण बलदेवको आपने पहिले तो देवकीका पुत्र कहा था अब दूसरी बार रोहिणीका पुत्र कहा, यह बडे आश्चर्यकी बात है कि दो माताओंसे एक पुत्र कैसे उत्पन्न हुवा ॥ ८ ॥ भक्तभावन भगवान् अपने माता पिता वसुदेव देवकीका घर छोड़कर व्रजमें नन्द यशोदाके घर

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामंतर्बहिः पूरुषकालरूपैः ॥ प्रयच्छतो मृत्युमुताऽमृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ॥ देवक्या गर्भसंबंधः कुतो देहांतरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ॥ क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ॥ भ्रातरं चावधीत् कंस मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ॥ यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ॥ वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥

क्यों गये ? और भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी जातिवालोंको संग लेकर कहाँ निवास किया ? ॥ ९ ॥ गोपसखाओंके संग नन्दकुमार भगवान्‌ने व्रजमें नन्द यशोदाके घर रहकर कौन कौनसे उदार चारित्र किये ? और मथुरामें जाकर अपने मामा कंसको अपने हाथसे कैसे मारा ? मामाको मारना किसी प्रकार योग्य नहीं फिर उसका वध क्यों किया ? ॥ १० ॥ हे प्रभो ! मनुष्यदेह धारण करके भगवान् वासुदेवने यादवोंके साथ मथुरापुरीमें कितने दिनतक वास किया ? और श्रीकृष्ण महाराजके कितनी स्त्री थीं ॥ ११ ॥ हे सर्वज्ञ ! जो जो प्रथम मैंने आपसे बूझा उसके सिवाय और जो कुछ चारित्र मेरे बूझनेसे शेष रहगये हैं वह सब मेरे सामने वर्णन करना चाहिये क्योंकि मेरा चित्त श्रीकृष्णके गुणानुवाद

सुननेको अधिक चाहताहै और इस विषयमें मेरी बड़ी श्रद्धा है ॥ १२॥ हे मुनिवर! यद्यपि यह क्षुधा पिपासा जगत्में परम दुःसहहै, तोभी मैंने उसको त्याग दिया, परन्तु आपके मुखारविन्दसे जो भगवान्की अमृतरूपी कथाका अमृत टपकताहै उसको पीता हूं. उसीके पीनेसे मुझको भूख प्यासकी कुछ बाधा नहीं ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि, हे भृगुनन्दन शौनकजी! इसप्रकार भागवतोंमें मुख्य श्रीशुकदेवजी महाराजने यह उत्तम प्रश्न सुनके राजा परीक्षितकी प्रशंसा करके कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका चारित्र कहना आरम्भ किया ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजऋषियोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित्! आपकी बुद्धिने अच्छा निश्चय कियाहै कि, जिस बुद्धिसे आपकी कृष्णकथामें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रीति हुई है ॥ १५ ॥

नैषातिदुस्सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ॥ पिबंतं त्वन्मुखांभोजच्युतं हरिकथाऽमृतम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भृगुनंदन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ॥ प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ॥ वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ॥ वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ॥ आक्रांता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥ गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रंदंती करुणं विभोः ॥ उपस्थितांतिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥ १८ ॥ ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ॥ जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥

भगवान् वासुदेवकी कथा तीन जनोंको पवित्र करै है, श्रोताको, वक्ताको और प्रश्न कर्ताको, जैसे श्रीगंगाजीका जल तीन जनोंको पावन करै है, पुरोहितको, यजमानको और ग्रहण करनेवालेको ॥ १६ ॥ हे राजन्! अभिमानी राजा जिनका सदा दैत्योंकेसा स्वभाव उनकी अधिक सेनाओंके भारसे पृथ्वी अत्यन्त दुःखी होकर गायका रूपधर ब्रह्माजीके निकट गई ॥ १७ ॥ हे राजन्! शरीर जिसका क्षीण मन मलीन जिसको देखकर सबके मनमें दया उपजे, इस प्रकार रंभाती डकराती आँखोंसे आंसू बहाती हुई ब्रह्माजीके समीप जाकर खड़ी हुई और अपना सब दुःख उनसे कहा ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी पृथ्वीका दुःख सुनकर सब देवताओंको और शिवजीको अपने संग लेकर क्षीरसागरके समीप गये, वहाँ विष्णुभगवान् शेषशय्यापर

शयन कररहे थे ॥१९॥ वहाँ जाय समाधि लगाय, जगदीश्वर भगवान् सम्पूर्ण अर्थियोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले देवोंके देव विष्णु भगवान्की पुरुष सूक्तके इन षोडश मंत्रोंसे "सहस्रशीर्षा पुरुषः"स्तुति करने लगे ॥२०॥समाधिहीमें ब्रह्माजीको आकाशवाणीहुई, उस वाणीको सुनकर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि,हे देवताओ ! मुझको श्रीनारायणकी आज्ञा हुई है उसको तुम सब लोग सुनो और सुनकर विलम्ब मत करो शीघ्र वैसेही करो॥२१॥ हमारी प्रार्थनासे पहिलेही भगवान्ने इस पृथ्वीका दुःख दूर करनेका विचार करलिया है, अब जबतक सब देवपति भगवान् अपनी काल शक्तिसे वसुंधराका भार उतारनेके लिये धरणीपर मनुज अवतार धारण न करैं, तबतक तुम सब अपने अपने अंशोंसे यदुकुलमें जाकर जन्म लो ॥ २२ ॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ॥ गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव माचिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ॥ स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥२२॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ॥ जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवंतु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलाऽनंतः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् ॥ आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥

वसुदेव देवकीके भवनमें साक्षात् आदिपुरुष भगवान् आनकर प्रगट होंगे उनके संग विहार करनेके लिये और हितके हेतु देवपत्नीभी व्रजमें जन्म धारण करैं ॥२३॥ और सहस्र मुखवाले स्वयंप्रकाश विष्णु भगवान्की अनंत कलासे शेषनागजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रके संग लीला करनेके लिये बलभद्र नामसे प्रथमही वसुदेवजीके घर जन्म धारण करेंगे ॥२४॥ फिर देवकीके गर्भको खैंचनेके लिये और यशोदाको मोह करनेके लिये परमेश्वरकी माया सब संसारके मनको मोहनेवाली, वह भी भगवान्की आज्ञाको मानकर अपने अशोंसहित यशोदाके भवनमें उत्पन्न होगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने देवताओंको आज्ञा दी और पृथ्वीको समझाय बुझाय आप अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥२६॥

यदुपति शूरसेन पहले मथुरापुरीमें बसता हुआ माथुर शूरसेन आदि देशोंको भोगता भया ॥ २७ ॥ यह मथुरापुरी सदासे यदुवंशियोंकी राजधानी थी और इसी मथुरा पुरीमें श्रीकृष्णभगवान् सदा विराजमान रहतेथे ॥२८॥ कंसकी अनीतिसे उग्रसेन अत्यन्त दुःखी रहतेथे और उग्रसेनका भ्राता जो देवक था उसकी कन्या देवकी जब विवाहने योग्य हुई, तब उसने उग्रसेन और कंससे बूझा इस लड़कीका विवाह किसके साथ करें? कंस बोला आजकल यदुवंशियोंमें शूरसेन बड़ा तेजस्वी और प्रतापी राजा है उनके पुत्र वसुदेवके साथ इसका विवाह कर दो तो अच्छा है, देवकने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाय शुभ लग्न ठहराय राजा शूरसेनके घर टीका भेजदिया, शूरसेन बड़ी धूमधामसे बरात सजाय सब देशके नरेश संग ले सब यदुवंशी मिल मथुरा पुरीमें वसुदेवजीको विवाहनेके लिये गये, जब बरात मथुरासमीप आई तब उग्रसेन देवक और कंस अपनी सेना संग

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम् ॥ माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साऽभूत्स र्वयादवभूभुजाम् ॥ मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ॥ देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः॥३०॥चतुश्शतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ॥ अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥३१॥

ले आगे बढे और आदरसत्कारसे अगौनी कर बरातको नगरमें लाये और सुन्दर जनवासा दिया, फिर सब जनोंको अच्छे अच्छे भोजन जिमाय मंडपमें बैठाय वेदविधिसे देवकने वसुदेवको कन्यादान दिया और बरातको विदाकिया; शूरसेनका पुत्र वसुदेव अपनी विवाहिता स्त्री देवकीके साथ अपने घर जानेको रथपर बैठे ॥२९॥ और उग्रसेनका पुत्र कंस अपनी भगिनी देवकीको प्रसन्न करनेके लिये घोड़ोंकी राश पकड़कर रथ हांकनेको बैठा, उसके संग सैकडों रथ रत्नजटित स्वर्णके औरभी थे ॥ ३० ॥ अपनी कन्यापर अत्यन्त प्रीति करनेवाले देवकने देवकीको बिदाके समय स्वर्णकी माला और रत्नजटित अम्बारीवाले ४०० हाथी, पन्द्रहसहस्र १५००० घोड़े, अठारहसौ १८०० रथ ॥ ३१ ॥

और शृंगारसहित सुंदर सुकुमार दोसौ दासी वर कन्याकी सेवाके लिये दीं ॥ ३२॥ दूलह दुलहनकी यात्राके समय मंगलके लिये, शंख भेरी मृदंग दुंदुभि आदि सब बाजे बरातके बजने लगे और शूरसेन देवक आदि सब बरातके पहुँचानेको संगचले॥३३॥जब मथुरासे थोडी दूर बाहर बरात निकली और देवकीके रथके घोड़ोंकी बागडोर पकड़े जो कंस हाँक रहाथा उस समय कंसको आकाशवाणी हुई अरे मूर्ख ! जिसको हर्ष सहित तू पहुँचाने जाता है इसी देवकीके आठवें गर्भमें तेरा मारनेवाला उत्पन्न होगा॥३४॥इसप्रकार वाणीको सुन वह अधम पापी भोजवंशियोंके कुलको कलंक लगानेवाला कंस बहनको मारनेके लिये उपस्थित हुवा और खड्ग हाथमें ले केश पकड़ देवकीको रथसे नीचे खैंच ली और क्रोधसे दाँत चबाय चबाय होठोंको काट काट कहने लगा कि, जिस वृक्षको जड़सेही उखाड़ डाले तो फिर उसमें फल फूल क्यों लगेगा ? इसलिये इसीको

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलङ्कृते ॥ दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शंखतूर्यमृदंगाश्च नेदुर्दुंदुभयः समम् ॥ प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमंगलम् ॥ ३३ ॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाऽशरीरवाक् ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हंता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ॥ भगिनीं हंतुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥ तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ वसुदेवो महाभाग उवाच परिसांत्वयन् ॥ ॥ ३६ ॥ वसुदेव उवाच ॥ श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ॥ स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ॥ अद्य वाऽब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥

न मारूं जो पुत्र होनेकी संशय ही न रहै, फिर निर्भय होकर अपना निष्कंटक राज्य करूं ॥ ३५ ॥ यह गति देख, उस निन्दनीय कर्म करनेवाले महामूर्ख निर्लज्ज कंसको बड़े ऐश्वर्यवान् वसुदेवजी स्तुति और युक्तियों और करुणा भरे मधुर वचनोंसे शान्त करके बोले कि, हे कंस ! तुम बड़े शूरवीर और योद्धाओंमें प्रशंसनीय गुणज्ञ और भोजवंशका सुयश फैलानेवाले हो देखो ! इस समय, एक तो विवाहका उत्साह, दूसरे यह सीधी साध्वी जाति स्त्री अबला, तीसरे तुम्हारी प्यारी बहन, फिर इस बिचारी दीन अबलाको मारना कौन धर्म है बली कभी अबलापर हाथ नही डालते क्योंकि स्त्रियोंके मारनेका शास्त्रमें महापाप लिखा है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो मृत्युके भयसे इस बिचारी दीनको मारो हो तो मृत्यु तो किसी

प्रकार मिटतीही नहीं क्योंकि मृत्यु तो जन्मधारी मनुष्योंके संगही लग रहीहै, जिस दिन मनुष्यका जन्म होता है, उसी दिन मृत्यु भी संग जन्मतीहै और जो अधिक जीवनके लिये इसको मारते हो तो मृत्यु आज अथवा सौ (१००) वर्षके अनंतर देह धारीका मरण निःसन्देह होगा ॥ ३८ ॥ और मनुष्यको उस समय पाप करना भी उचित है, जो यह शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण करना न पड़े, सो यह कदापि होना नहीं क्योंकि मरण समय भी यह प्राणी अपने वशमें नहीं होता, वहाँभी कर्मोंके अनुसार प्रथम दूसरे शरीरको प्राप्त कर लेता है तब पीछे इस शरीरको त्यागे है ॥ ३९ ॥ जैसे चलनेके समय मनुष्य अपना अगला पाँव सँभालकर रखलेता है तब पिछले पाँवको उठाता है जैसे जोंक चलते समय पहिले अगले तृणको पकड़ लेती है तब पिछले तृणको छोड़ती है ऐसेही यह देह जिसमें अनेक प्रकारके संस्कार लग रहे हैं जीवात्मा दूसरे शरीरको प्रथम ग्रहण

देहे पंचत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ॥ देहांतरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ॥ यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ ४० ॥ स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ॥ दृष्टश्रुताभ्यां मनसाऽनुचिंतयन्प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥ यतोयतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पंचसु ॥ गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥

करलेता है पीछे पिछली देहको छोड़ता है ॥ ४० ॥ स्वप्नमें मनुष्य जैसे देखेहुए और सुनेहुए देह जिसमें अनेक प्रकारके संस्कार लग रहे हैं और मन उनके वशमें है वह मन उसीमें बस देहका चिन्तवन करता रहताहै और वह मनुष्य स्वप्नमेंभी वैसाही देखता है और उसी देहको अपनी समझकर कहता है, मैं हूं 'यह मेरा देह दुःखी है, ऐसे अपने आपको राजा और इन्द्रादिककी समान मानकर अभिमान करता है और जाग्रत देहकी सम्पूर्ण स्मृति भूलजाता है, फिर उसी संस्कारवाले मनसे मनोरथ देहको भूलकर जाग्रत्‌मेंभी उसी प्रकारके देहको देखता है और थोड़ी देरमें कहने लगता है 'मैं हूं यह शरीर मेरा है' ऐसा मानता है और स्वप्नके देहकी स्मृति कुछभी नहीं रहती. इसी प्रकार कर्मोंके अधीन होकर पूर्वदेहको छोडदेताहै और वैसाही और देह प्राप्त कर लेता है ॥ ४१ ॥ फलके देनेवाले कर्मोंसे प्रेरित विकारोंसे भराहुवा जो मन है, सो मायारचित महापंच

भूतोंके बनेहुए मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादिक जो शरीरहैं, जिस जिसकी ओरको दौडताहै और अभिमानको बाँधताहै, उस उस शरीरमें जीवको संग लेकर जन्म लेताहै, यद मनही सब बातका कर्ता हर्ता ठहरा तो मनहीको जन्म लेना चाहिये. परंतु अकर्ता आत्मा क्यों जन्मताहै ? आत्मा उस मनको यह करके मानताहै कि, 'मैं हूं' इसकारण आत्मा उस मनके साथ जन्म लेताहै॥४२॥जैसे सूर्य चन्द्रमादिकोंकी ज्योति जलके भरे घटादिक पात्रोंमें प्रतिबिम्बरूप होकर पवनके वेगसे कंपायमान प्रतीत होते हैं, ऐसेही पुरुष अपनी अविद्यारचित देहमें रागके कारण प्रविष्ट आत्मा अभिमान करके मोहको प्राप्त होताहै, आत्मामें देहादिककी भ्रान्ति होनेसे जैसे सूक्ष्म और स्थूल देहादिकके धर्म आत्मामें दिखाई देतेहैं, वैसेही देहादिकमें आत्माकी भ्रांति होनेसे प्रेमपात्रत्व आदि आत्माके धर्म देहादिकमें प्रतीत होतेहैं, इसलिये इन्द्र और गर्दभादिके तनुमें प्रीति समान होनेसे मृत्युसे बचनेका

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ॥ एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥४३॥ तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः ॥ आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४ ॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्तिकोपमा ॥ हंतुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः॥४५॥श्रीशुक उवाच ॥ एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोपि दारुणः ॥ न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥४६॥ निर्बंधं तस्य तं ज्ञात्वा विचिंत्यानकदुंदुभिः ॥ प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

प्रयत्न करना वृथा है ॥ ४३ ॥ इसलिये अपने आत्माका कल्याण करनेवाले प्राणीको चाहिये किसीसे शत्रुभाव न रक्खै, क्योंकि शत्रुता करनेवाले पुरुषको दूसरे शत्रु और यमसे भी भय होता है ॥ ४४ ॥ इसलिये हे राजन् ! यह तुम्हारी छोटी बहिन है और अभी बालक है, दीन है, अबला है, देखो काठकी पुतलीकी नाईं तुम्हारे आगे खड़ी है और तुमको परमेश्वरने दीनहितकारी और स्वजनभयहारी बनाया है, यह मंगलरूपिणी आपके मारने योग्य नहीं, क्योंकि दीनको और पराधीनको मारनेका बडा दोष है ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशी राजा परीक्षित ! ऐसे प्रियवचन कहकर वसुदेवजीने साम और भेदसे समझाया, तो भी एक तो आपही दुष्ट, दूसरे राक्षसोंका साथी, तीसरे आकाशवाणीका भय, उस महाक्रूर कंसने वसुदेवजीकी बात एक भी न मानी ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने समझा कि, यह हठीला अपनी हठको कभी नहीं छोडेगा, ऐसा

विचारकर और देवकीकी मृत्यु निकट आई जानकर, समय बितानेके लिये अपने मनमें यह विचारने लगा ॥ ४७ ॥ चतुर लोगोंको उचित है कि, जहांतक अपना बल, विद्या, बुद्धि पहुँचै वहाँतक मृत्युको दूर करनेका उपाय करै, जब इतने प्रयत्नोंसेभी मृत्युसे न बचै तो फिर पुरुषका कुछ दोष नहीं है ॥ ४८ ॥ इसलिये पहिले तो इस मृत्युरूप कंसको देवकीके जो पुत्र होंगे उनके देनेका वचन बन्धकर किसी प्रकार पहिले तो इस दीन देवकीके प्राण बचाऊ, कदाचित् कोई कहे कि, पुत्र देके देवकीके प्राण बचाये यह तो बड़ी अनीति है ? नहीं, समयका टालदेना बड़े चतुरोंका काम है, जब देवकीके पुत्र होगा उस समय देखा जायगा, अब तो किसी प्रकार यह जीती बचै, न जानिये बालकके जन्मनेसे पहिले यह दुष्ट

मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद् बुद्धिबलोदयम् ॥ यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥ प्रादाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् ॥ सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ ॥ विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया ॥ उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ॥ एवं हि जंतोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥ एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ॥ पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरस्सरम् ॥ ५२ ॥

कंसही मरजाय तो फिर कुछ किसी बातका खटकाही न रहै, कदाचित् इसके पुत्रही न होय और जो पुत्र होय ही और कंस दया करके उसको न मारे, तो अवश्यंही मेरा पुत्र कंसको मारैगा और जो यह उलटी बात न होय और कोई कहे कि, तुम्हारा पुत्र बालक इस तरुण कंसको कैसे मारसक्ता है? तो आप ही वसुदेवजी अपने वचनका समाधान करते हैं कि, विधाताकी गति किसीके जाननेमें नहीं आती, जो प्राणी मरनेके योग्य हैं वह नहीं मरते और जो मरनेके योग्य नहीं हैं वह मरजाते हैं ॥ ४९॥५० ॥ देखो जब वनमें आग लगती है तो जो वृक्ष जलनहार नहीं हैं वह समीपके बच जाते हैं और जो जलनहार दूरके होते हैं वह जल जाते हैं जैसे गाँवमें अग्निके पासके घर जलनेसे रहजाते हैं और दूरके जल जाते हैं

✽ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जहाँतक अपनी बुद्धि पहुँची वहाँतक वसुदेवजीने विचार करके बड़े प्यारसे कंसका आदर सत्कार किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ कंसको विश्वास दिखानेके लिये वसुदेवजी लोकरीतिकी सदृश प्रफुल्लित मुख कमलसे, महाक्रूर निर्लज्ज कंसके सामने मुसकराकर बोले, परन्तु मन तो अत्यन्त ही दुःखी था ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे सौम्य ! जो भय आपके चित्तमें आकाशवाणीने

प्रसार्य वदनांभोजं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत ॥ ५३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वि साऽऽहाऽशरीरवाक् ॥ पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित ॥ वसुदेवोपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥

उत्पन्न किया है वह भय तुम किंचिन्मात्रभी मत मानो, क्योंकि देवकीसे आपको कुछ भय है ही नहीं, परन्तु इसके पुत्रोंसे कुछ भय है सो वह भय मैं आपका दूर करे देताहूं, जो पुत्र इसके होगा उसको मैं उसी समय आपको समर्पण कर दूंगा ॥५४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! वसुदेवजीके वचनको सत्य मानकर कंसने अपनी बहिनको मारनेसे छोड दिया और वसुदेवजीभी प्रसन्न हो कंसकी बडाई करके बरात

* इस बातपर एक मनोहर दृष्टान्त है ॥ एक सेठजी मन्दिरमें बैठे हनुमान्‌जीकी पूजा कररहे थे, उसी समय नगरमें आग लगी और सैकडों घरोंको फूकती फांकती सेठजीके घरके निकट पहुँच गई, तब तो सब लोगोंने सेठजीसे जाकर कहा कि, आग आपके घरके समीप आगई शीघ्र पूजा छोड छाडके चलो कुयेंसे पानीके दश बीश घडे भरकर रखलो जब घरपर आग आगई तो पानी कहां! सेठजी बोले कि, जिसकी हम पूजा करते हैं क्या आग वह नहीं बुझा सक्ता? और वह हमारे घरको नहीं बचा सक्ता ! हमको कुछ प्रयोजन नहीं, जिसका घर होगा वह आप बुझालेगा, जब उसका, नाम पवनपुत्र है तो क्या अपने पिताको नहीं समझा सक्ता ! जिसके लिये हम बरसोंसे तन मन लगा रहे हैं क्या वह एक घडीको भी हमारा काम नहीं करसक्ता मुझको पूर्ण विश्वास है कि, वह मेरा कार्य सिद्ध करैगा—

कवित्त—लंकाको जरायो और सीताको बचाय दियो, आँच नाहिं आई विभीषणके मकानको । लगतेही शक्ति जब लखन गिरे पृथ्वी पर, औषधिको भेजो राम हनुमत् बलवानको ॥ मिली ना सजीवन जब पर्वत उठाय लाये, लखनको जिवायो शिरनायो भगवानको ॥ दुष्टनके भक्षक और रक्षक हरि भक्तनके, मोको तो भरोसो उन वीर हनुमानको ॥ १ ॥

उसी समय पुरवाई पवनसे पछा दिया पवन होगई और सेठजीका घर छोडकर पवन पीछेको लौटी और सेठजीका घर छोडकर और सैकडों घर फूकदिये, देखो किस किसकी आशा थी और कौन कौनसे घर जल गये, ऐसेही प्राणियोंके जन्म मरणका कारण भी विचारमें नहीं आता ॥

समेत देवकीको लेकर अपने घर आये ॥५५ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान्की पूजनेवाली देवकीने समय पाकर आठ पुत्र और एक कन्या एक एक वर्षके उपरान्त उत्पन्न किये ॥५६॥ प्रथम कीर्तिमान् पुत्र हुआ, उसको वसुदेवजी वड़े कष्टसे कंसके पास लेगये, क्योंकि मिथ्या बोलनेसे वसुदेवजी बहुत डरते थे ॥ ५७ ॥ अपने वचनोंका निर्वाह करनेवाले पुरुष ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका सहन नहीं करसक्ते, देखो वसुदेवजीने अपने पुत्रको अपने हाथसे मृत्युके मुखमें देदिया एक परमेश्वरके सिवाय कोई पदार्थ सत्य नहीं है, ऐसे समझनेवाले मनुष्योंको किसी बातकी अभिलाषा नहीं रहती, इसलिये वसुदेवजीने पुत्रके लाड प्यारको पहिलेसे पहिलेही त्याग दिया क्योंकि विद्वान् पुरुषोंको सिवाय सत्यके और किस वस्तुकी अपेक्षाहै और वसुदेवजीने यह भी नहीं समझा था कि, में पुत्रको आप ले जाऊंगा तो कंस दयाकरके न मारेगा, यह बात

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ॥ पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्तिमंतं प्रथमजं कंसायानकदुंदुभिः ॥ अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥ किं दुस्सहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ॥ किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ॥ कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ॥ अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युम विहितः किल ॥ ६० ॥ तथेति सुतमादाय ययावानकदुंदुभिः ॥ नाभ्यनंदत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१ ॥

वसुदेवजीके मनमें सैकड़ों कोसतकभी नहीं थी, क्योंकि दुष्टजन कौनसी बात नहीं कर सक्ता? कंससे दुष्टके मनमें दया कब आसक्ती है. कोई कहै पहिली पहिलका तुरतका जन्मा पुत्र देवकीने कैसे दे दिया? देवकीने समझा कि,जिसका काल नहीं उसको मारनेवाला कोई नहीं और जो मारभी डाले तो ऐसे पुत्र बहुत होंगे.मेरे सच्चे पुत्रतो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वैकुण्ठविहारी भक्तहितकारी हैं, यह समझकर कंसको देदिया ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! वसुदेवजीकी समता और सत्यता देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे कंस बोला कि, ॥ ५९ ॥ इस बालकको अपने घर फेरकर ले जाओ, क्योंकि इससे मुझको कुछ भय नहीं है तुम्हारे आठवें पुत्रसे मेरी मृत्यु निश्चय रची है ॥ ६० ॥ ऐसाही होगा वसुदेवजी यह कह पुत्रको लेकर

अपने घरको चलदिये, परन्तु कंसके वचनका कुछ विश्वास नहीं किया, क्योंकि कंस क्षणिकबुद्धि है उसका मन उसके वशमें नहीं है, अब फेरदिया है थोड़ी देरमें फिर मँगाले, जब यह बात नारदजीने सुनी कि, वसुदेवजीका पुत्र कंसने फेरदिया, उसी समय कंससे आनकर कहा ॥ ६१ ॥ व्रजमें नन्दजीसे आदि लेकर जो गोप ग्वाल हैं और वसुदेवजीसे आदि लेकर वृष्णि यादव और देवकीसे आदि लेकर यादवोंकी स्त्री ॥ ६२ यह जो तुम्हारे समीपवर्ती हैं सो हे कंस ! यह सम्पूर्ण वसुदेवजी और नन्दजीके वंशमें, जाति, बन्धु, सुहृद्, यह सब देवताही आनकर प्रगट हुये हैं ॥६३॥ पृथ्वीपर जो दैत्यलोगोंका भार बढ़ा है, उसके उद्धारके लिये भगवान्ने अवतार लेनेके लिये यह उपाय रचा है, सो तू जान ले, फिर आठ लकीरें पृथ्वीपर खैंचकर दिखाईं इधरसे गिनी तो आठ आईं और उधरसे गिनी तो आठ आईं और बीचमेंसे गिनी तो आठ आईं तब नारदजी बोले कि, आठवाँ

नंदाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ॥ वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ॥ ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसाय भगवाञ्शशंसाभ्येत्य नारदः ॥ भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ॥ देवक्या गर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥ ६५ ॥ देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ॥ जातंजातमहन्पुत्रं तयोरजनशंकया ॥ ६६ ॥ मातरं पितरं भ्रातन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ घ्नंति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥ आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ॥ महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥

गर्भ इनमें कौनसा समझना चाहिये ॥६४॥ इसप्रकार समझा बुझाकर नारदजी तो चले गये, तब कंसने यादवोंको देवता समझकर और देवकीके आठवें गर्भमें विष्णु भगवान् अवतार धारण करके, मुझको मारेंगे यह निश्चय समझके॥६५॥ देवकी और वसुदेवको बन्दीघरमें बंदकर पांवोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकडी डालदीं और जो जो इनके पुत्र हुये विष्णु भगवान्की शंका मान मँगवा मँगवाकर मारता रहा ॥६६॥ संसारमें अपने प्राणोंकी रक्षा करनेवाले अभिमानी घातकी और लोभी राजा, माता, पिता, भ्राता और मित्रोंकोभी मारडालते हैं ॥६७॥ और कंस यह भी जानता था कि; मैं पहिले जन्ममें कालनेमिनाम एक बडा राक्षस था और विष्णुने मुझको अपने हाथसे मारा था, सो अब मैं इस जन्ममें कंस हुवा हूं, यही

समझकर उसने यादवोंसे वैर किया ॥ ६८॥ यदुवंशी, भोजवंशी,अन्धक वंशियोंके राजा उग्रसेन अपने पिताको कारागारमें डालकर महाबली कंस आपही शूरसेन देशका राज्य करने लगा ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां कंसजन्मचारित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥दोहा–इस द्वितीय अध्यायमें, कंसहतनहितदेव । गर्भान्तर्गतदेवकी,विनवत विष्णु अभेव॥१॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! प्रलम्बासुर, बक, चाणूर,तृणावर्त,अघासुर, मुष्टिक,अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशि,धेनुकासुर॥१॥असुरोंके राजा बाणासुर और भौमासुरको संग लेकर मगध देशके राजा जरासंध आदि अपने सम्बन्धियोंकी सहायतासे महाबली कंस यादवोंको अत्यन्त दुःख देने लगा॥२॥यादवलोग कंसके भयसे दुःखित

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजांधकाधिपम् स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे श्रीकृष्णावतारहेत्वादिनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रलंबबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥ मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ॥ यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपांचालकैकयान् ॥ शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥ ३ ॥ एके तमनुरुंधाना ज्ञातयः पर्युपासत ॥ हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनंतं प्रचक्षते ॥ गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ॥ यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

होकर कुरुदेश, पांचाल, केकय,शाल्व, विदर्भ, निषध,विदेह, कोसलादि देशोंमें जा जाकर वास करनेलगे॥३॥और बहुतसे अक्रूरादिक यादव कंसके आज्ञाकारी बन दिन रात उसकी सेवा करने लगे, जब कंसने देवकीके छः बालक मार डाले ॥४॥ तब विष्णु भगवान्‌की कला शेषजी जिनका नाम कहतेहैं सो देवकीके गर्भमें स्थितहुये, यह गर्भ देवकीको हर्ष और शोकका बढानेवाला हुआ क्योंकि आनन्दरूप भगवान्‌का अवतार होगा इस बातका तो हर्ष और पहिलेके बालकोंकी समान इस बालकको भी कंस मार डालेगा इस बातका शोक दिन रात रहताथा ॥५॥ तब विश्वभावन भगवान्‌ने जाना

कि, मेरे प्रिय यादवोंको कंस बहुत दुःख देताहै उस समय अपने नेत्रोंसे योगमायाको प्रगट करके उसको आज्ञा की ॥६॥ कि, हे भद्रे! हे देवि! हे कल्याणरूपिणि! जो ग्वाल और गौवोसे शोभित व्रजभूमि है, तू वहाँ जाकर वसुदेवकी स्त्री रोहिणी नन्दरायजीके घर गोकुलमें है और दूसरी वसुदेवजीकी स्त्रियें कंसके भयसे गुप्त स्थानमें वास करती हैं ॥ ७ ॥ और देवकीके उदरमें मेरी कलारूप शेषनागजीने प्रवेश किया है, उनको वहाँसे निकालकर रोहिणीके उदरमें पहुंचादे कि, इस बातको कोई दूसरा न जाने और सब लोक तेरा यश बखानेंगे ॥८॥ हे मंगलरूपिणि! जब तु गर्भको खैंचेगी तो पीछे मैं परिपूर्णरूपसे देवकीके पुत्रभावको प्राप्त हूंगा और तू नंदरायजीकी भार्या यशोदाके उदरमें उत्पन्न हो ॥ ९ ॥ हे कल्याणि!

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ॥ रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नंदगोकुले ॥ अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसंति हि ॥ ७ ॥ देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥ ८ ॥ अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ॥ प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नंदपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥ अर्चिष्यंति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ॥ धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥ नामधेयानि कुर्वंति स्थानानि च नरा भुवि ॥ दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥११॥ कुमुदा चंडिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ॥ माया नारायणीशानी शारदेत्यंबिकेति च ॥ १२ ॥ गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ॥ रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ॥ प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत् ॥ १४ ॥

तू पुत्रादिकोंकी कामना करनेवाले मनुष्योंकी सब मनोकामना पूर्ण करनेवाली है और सब संसारके मनुष्य धूप, दीप, फल, फूलादि सामग्री और बलिदान, भेंटकर कलियुगमें तेरा पूजन करेंगे और तू उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करेगी ॥१०॥ पृथ्वीपर मनुष्य तेरे स्थान, भवन औरसुन्दर सुन्दर मन्दिर बनावेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी ॥ ११ ॥ कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका यह नाम धरेंगे ॥ १२ ॥ गर्भके खैंचनेसे संसारके लोग उस बालकका नाम 'संकर्षण' कहेंगे और जगत्को रमानेसे उसको 'राम' कहेंगे और महाबलशाली होनेसे उनको 'बलभद्र' कहेंगे ॥१३॥ इस प्रकार भगवान्की आज्ञा पातेही उनकी परिक्रमा दे, वचनोंको स्वीकार

करके पृथ्वीपर आनकर वही कार्य किया और मोहनीरूप वन मथुरामें वसुदेवके घर आई " और जो गर्भ छिपाकर लाई थी वह रोहिणीके उदरमें प्रवेश किया" और सब गोकुलवासियोंने यही जाना कि, पहिलाही आधान है, योग मायाका भेद किसीको प्रगट न हुवा, जब पूरे दिन हुए तो श्रावण सुदी चौदस बुधवारको बलदेवजीने गोकुलमें जन्म लिया और योगमायाने वसुदेव देवकीको स्वप्न दिया कि, मैंने तुम्हारे पुत्रको गर्भसे लेजाकर रोहिणीको देदियाहै अब तुम किसी बातकी चिन्ता मत करना, यह बात सुनतेही अचानक वसुदेव, देवकी चौंककर सोतेसे जाग उठे और देवकी अपने पतिसे कहने लगी कि, यह काम तो भगवान्ने बहुत अच्छा करदिया, परन्तु कंसको इसी समय जाकर जतादेना चाहिये, न जानिये कि, पीछे वह

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया॥ अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥
भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ॥ आविवेशांशभावेन मन आनकदुंदुभेः ॥ १६ ॥

दुष्ट क्या उपद्रव मचावे, यह सोच समझकर रखवालोंको बुला सब वृत्तान्त कह दिया; उन्होंने ज्योंका त्यों कंसको जा सुनाया कि, हे महाराज ! आज देवकीका गर्भ पतित होगया, बालक पूरा नहीं हुवा यह बात सुनतेही कंस अकुलाकर बोला कि, जो कुछ हुवा सो हुवा परन्तु अब आगेको तुम आठवें गर्भको अच्छी चौकसी रखना, क्योंकि मुझको आठवेंही गर्भका बडा खटकाहै ॥१४॥ और वह योगमाया देवकीके उदरसे बालकको ले रोहिणीके उदरमें रख आई, तब सब पुरवासी मनुष्य पुकार पुकार कर कहनेलगे कि, अबकी बार कंसने अपनी बहिन देवकीको ऐसा धमकाया कि, उसका गर्भ अधूराही गिरगया; बालक पूरा नहीं होने पाया❀ ॥ १५ ॥ अपने भक्तोंको अभयदान देनेवाले विश्वात्मा भक्तभावन भगवान्

❀शंका–रोहिणी और वसुदेवजीकी रीति प्रीति कुछ बहुत दिनोंसे नहीं थी और बलभद्र रोहिणीके गर्भसे जन्मे, तब लोकमें निन्दा और दुर्नामता वसुदेव और रोहिणीकी क्यों नहीं हुई ? और जो कोई कहे कि, योगमायाने सब काम किया, यह बात बहुत ठीक है, परन्तु संसारमें तो भगवान्के चरित्रको कोई नहीं जानता और योगमायाकी बातको तो करोडों मनुष्योंमें एक दो जानते हैं, फिर संसारके लोगोंका सन्देह कैसे दूर हो ?

उत्तर–एक समय पुष्करजीके स्नान करनेके लिये सब संसारके मनुष्य गये,तब कंसभी सब यदुवंशियोंको संग लेकर पुष्करजीको गया कंसके संग वसुदेवजीभी पुष्करको गये और नन्दादिक गोपोंकी रक्षा सहित रोहिणीभी गई थी वहाँ सबकी रीति प्रीति सबसे हुई, परन्तु वसुदेव और रोहिणीकी भेंट कंसके भयसे नहीं हुई. परन्तु संसारके सब लोगोंने जान लिया कि, पुष्करमें वसुदेवजीसे रोहिणीकी भेंट होगई इसलिये बलदेवजीके जन्मनेपर कोईभी वसुदेव और रोहिणीकी निंदा नहीं करसका ॥

अपने परिपूर्ण रूपसे वसुदेव देवकीके मनमें आनकर प्रगट हुए ॥ १६ ॥ जब वसुदेवजीके मनमें भगवान् आनकर उपस्थितहुए, तब सूर्यके तेजकी समान वसुदेवजीमें तेज होगया, उस समय कोई मनुष्य तेजके प्रकाशके मारे वसुदेवजीके सन्मुख न आवै, ऐसे तेजवान् वसुदेवजी होगये ॥ १७ ॥ फिर विश्वके कर्ता सर्वात्मा मूर्तिमान् भगवान् जो कि देवकीमें पहिलेहीसे विराजमान थे, उनको वसुदेवजीने अपने मनसे देवकीके मनमें विराजमान किया, तब देवकीने भगवान्को भले प्रकार अपने मनसे अपने शरीरमें धारण करलिया जैसे पूर्वदिशा सर्वसुखदायक चन्द्रमाको परमप्रेमसे अपने हृदयमें धारण करती है ॥ १८ ॥ जैसे घटके भीतर छिपेहुए दीपकका प्रकाश नहीं होता और ज्ञानवंचक पुरुषोंमें छिपी हुई विद्या दूसरे लोगोंको आनन्द नहीं देसक्ती ऐसे भगवान् अपनी कांतिसंयुक्त देवकीके उदरमें निरन्तर आनन्द देतेथे परंतु वैसेही देवकी शोभाको

स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ॥ दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मंगलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ॥ दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽनंदकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे ॥ भोजेंद्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाऽजितांतरां विरोचयंतीं भवनं शुचिस्मिताम् ॥ आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी॥ ॥ २० ॥ किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतंत्रो न विहंति विक्रमम् ॥ स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हंत्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥

प्राप्त न होती थी ॥ १९ ॥ अजित भगवान्के देवकीके उदरमें रहनेसे कुछ २ कांति झलकी, उस कांतिने बन्दीगृहको प्रकाशवान् करदिया और सुन्दर रूपवाली देवकी मन्द मन्द मुसकराकर वसुदेवजीसे कुछ कह रहीथी उसी समय वहाँ कंस आपहुँचा और गर्भका प्रकाश देखकर कंस अपने मनमें कहने लगा कि, मेरे प्राणोंका हरनेवाला हरिरूप सिंह निश्चय इसी उदर रूप यमगुफामें आनकर बैठा है- क्योंकि पहिले इस देवकीका इतना तेज नहीं था ॥ २० ॥ फिर तो कंस अपने मनमें अनेक प्रकारके विचार करने लगा कि, अब मैं शीघ्र इसके लिये क्या उपाय करूं ? यह तो देवताओंका कार्य करनेको आही पहुँचा, अब सब प्रकारसे मुझको निश्चय होता है कि, यह अवश्य मुझको मारेगा, अब जो इस समय देवकीको

मैं मारता हूं तो संसारमें बडा अपयश होगा, क्योंकि एक तो स्त्रीकी जाति, दूसरे मेरी बहिन और उसपरभी फिर गर्भिणी, जो मैंने इसको मार डाला तो सब संसारमें मेरी अपकीर्ति होगी, दूसरे लक्ष्मी और आयुका नाश होजायगा. महात्माओंके मुखसे मैंने ऐसा सुना है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य संसारमें दुष्टता करता है, वह जीतेही जी मृतककी समान है और उनके सन्मुखही लोग बुरा कहते हैं और वारम्वार धिक्कार देते हैं, निश्चय वह मनुष्य घोर नरकमें जाता है ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवसे वैर बांधकर पापरूप कंस आप मरनेको समर्थ था तोभी इस घोरतम भावसे आपही निवृत्त हो भगवान्के जन्मकी बाट देखता रहा ॥ २३ ॥ जब बैठते, उठते सोते, जागते, भोजन करते और पृथ्वीपर विचरते, इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान्हीकी चिन्तामें रहताथा और सब जगत्को भगवत् रूपही देखता था ॥ २४ ॥ इतनेमें ब्रह्मा, महादेव, नारदादिक

स एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यंतनृशंसितेन ॥ देहे मृते तं मनुजाः शपंति गंता तमोंधं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥२२॥ इति घोरतमाद्भावात्संनिवृत्तः स्वयं प्रभुः ॥ आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबंधकृत् ॥२३॥ आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुंजानः पर्यटन्महीम् ॥ चिंतयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ॥ देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ २५ ॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ॥ सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पंचविधः षडात्मा ॥ सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥

मुनि और ऋषियोंसमेत देवता और गन्धर्व लोग वहाँ आनकर गर्भहीमें सर्व कामनाओंके पूर्ण करनेवाले भगवान् वासुदेवकी मधुर वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ आप सत्यसंकल्प और सत्य परायण हो, भूत भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें पृथ्वी, जल, तेज, पवन, आकाश इन पञ्चभूतोंके कारणरूप हो और पञ्चभूतोंके विनाश होनेके समय आपही अवशिष्ट रहते हो, समदृष्टि और मनोहर वाणीप्रवर्तक और ज्ञानियोके प्रेरणा करनेवाले सत्यरूप आपही हो, सो हे नाथ ! हम सब आपकी शरण आयेहैं, ॥ २६ ॥ यह देह ब्रह्माण्डरूप आदि वृक्ष आपकी मायासे उत्पन्न होकर आपहीके आश्रय रहताहै और इसकी रक्षाके लिये आप अनेकरूप धारण करतेहैं, उस वृक्षका आधार एक मायाहै। उसमें दो फलहैं, सुख और दुःख। उसकी तीन जड़हैं, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण। उसमें चार रसहैं–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । उसमें पांच

अंकुर हैं,जिनसे ज्ञान होता है, नेत्र, जिह्वा, नाक, कान, त्वक् । उसके छैं स्वभाव हैं, राग, द्वेष, क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह । उसमें सात प्रकारकी छाल हैं;लोहित,मेद, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा; रेत । उसकी आठ शाखा हैं. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, उसमें नौ खखोडल अर्थात् छिद्रहैं. नेत्र, मुख, कान, नाक उपस्थ और गुदा । उसमें दश पत्ते हैं, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग,कूर्म्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय । उसपर दो पक्षी रहतेहैं. जीव और ईश्वर यह देहरूप वृक्ष है, कभी उपजै है, कभी कटै है, ऐसेही यह देह कभी जन्मे है, कभी मरै है ॥२७॥ इस संसारके उत्पत्ति, पालन, संहार, करनेवाले आपही हो यह जगत् आपसे भिन्न नहीं है, आपकी मायाके वशीभूत हो जिनके चित्त भूल रहे हैं, वह लोग जगत्को आपसे भिन्न देखते हैं और आपको नानाप्रकारका जानते हैं और जो ज्ञानी पुरुष हैं वह आपको एकही रूप

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं संनिधानं त्वमनुग्रहश्च ॥ त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यंति नाना न विपश्चितो ये ॥ ॥ २८ ॥ बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ॥ सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥ त्वय्यंबुजाक्षाखिलसत्त्वधामनि समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ॥ त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वंति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥ स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ॥ भवत्पदांभोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥

मानतेहैं ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! एक रूप जो आप हो, सो ब्रह्मा बनकर जगतको उत्पन्न करतेहो, विष्णु बनकर रक्षा करते हो और शिव बनकर संहार करते हो, सत्त्वगुणसे संयुक्त सत्पुरुषोंको सुख देते हो और अधार्मियोंको दण्ड देनेवाले जो रूपहैं उनके लिये उनको धारण करते हो ॥ २९ ॥ हे कमलदल लोचन ! समस्त जीवोंके जीवन आधार आपही हो, इसीसे आपके विषे ज्ञानी पुरुष समाधिद्वारा चित्तको लगाकर महत्पुरुषोंकी सिद्ध करी हुई आपके चरणकमलरूप नौकाके आश्रयसे इस संसाररूप महासागरको अवगाहन करके बछड़ेके खुरकी समान समझकर पार उतर जाते हैं ॥३० ॥ हे स्वयप्रकाश ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं इस महाभयंकर दुस्तर संसारसमुद्रको पार उतरनेके लिये, भजन भावना और सम्प्रदाय यह जो आपके चरणकमलरूपी नौका है, उसको और दूसरे महात्माओंके पार उतरनेको छोडगये और आपभी पार उतरगये, हे प्रभो ! आप अपने भक्तोंके

ऊपर दया करनेवाले हो ॥३१ हे कमलनयन ! जो ज्ञानी पुरुष अपने आपको जीवनमुक्त मानते हैं वह आपके चरणारविन्दके विषे भावना नहीं रखते. उसीसे अशुद्ध बुद्धि बने रहते हैं और बड़े बड़े कष्ट सहकर उच्च पदको प्राप्त होते हैं, सो वह उच्चपद किसको समझते हैं? उत्तम कुलमें जन्म होना और परिश्रम करके शास्त्रोंका पढ़ना, इनहीको उच्चपद जानतेहैं, आपके चरणारविन्दकी भक्तिका निरादर करतेहैं ! और फिर पीछे विघ्नोंसे पराभव होकर नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं ॥३२॥ हे माधव ! जो पुरुष आपहीके चरणोंमें प्रीति रखते हैं, और आपके दास कहलाते हैं, इन लोगोंको उन उच्चपद कहने वालोंकी नाईं किसी प्रकारका विघ्न नहीं होता. वरन्‌ हे प्रभु ! आपके भक्त निर्भय होकर बड़ेर भारी भयंकर विघ्नोंके माथेपर पाँव धरकर

येऽन्येऽरविंदाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतंत्यधोऽनादृतयुष्मदंघ्रयः ॥ ३२ ॥ तथा न ते माधव तावकाः कचिद्भ्रश्यंति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ॥ त्वयाभिगुप्ता विचरंति निर्भया विनयाकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥ सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान्स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ॥ वेदक्रियायोगतपस्समाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदाऽपमार्जनम् ॥ गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥

सदा संसारमें घूमते रहते हैं ॥३३॥ हे प्रभु ! आप विश्वकी रक्षा करनेके समय सब प्राणियोंके पालनके लिये और शुभकर्मोंके फल देनेके लिये शुद्ध सत्त्वगुणस्वरूप धारण करते हो. जिस स्वरूपसे ब्रह्मचारी वेदपाठसे, गृहस्थी कर्म योगसे, वानप्रस्थ तपस्यासे, संन्यासी समाधिसे, सब अपनी अपनी प्रीतिसे आपका पूजन करते हैं. हे प्रभु ! जो आप संसारमें अवतार न लेते तो आपका पूजन बननाभी कठिन था. क्योंकि आपके सुन्दर स्वरूपकी मूर्तिमें भक्तोंका मन लगा रहता है ॥३४॥ हे विधाता ! आपका सत्त्वगुण मूर्तिमान्‌ सुन्दर स्वरूप प्रगट न होता तो अज्ञानका नाशक विज्ञान जो आपका प्रेरणा किया हुवा बुद्ध्यादिक गुणोंको प्रकाशे है और आपही सब प्रकारसे उन गुणोंके साक्षी हैं और ऐसेही इन्द्रियोंके प्रकाश

१ कवित्त–बनेहैं आचारी कोई कर्मधुरधारी ध्रुव कोई उपकारी बढे कोई निर्विकारी हैं ॥ कोई बढे पण्डित विरागसे न खण्डित अदण्डित अवनिमें उदण्डित विचारी हैं ॥ कोई षट शास्त्र पढे वाद औ विवाद बढे कोई कुलकाव्य गढे दया मढे भारी हैं ॥ छाके नाहिं सीके पीके प्रेमरस पीके नीके कहा किये जीके जीके फीके सुगकारी हैं ॥

आपके स्वरूपका अनुमान होता है, परन्तु आपका स्वरूप नेत्रोंके द्वारा प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशमान ! इस विश्वके परिपूर्ण साक्षी आपही हो और आपके नाम, गुण, कर्म, जन्म, वर्णन करनेमें नहीं आते, मन वाणीके निरूपणसे आपके स्वरूपका वर्णन नहीं होता. हे प्रभु ! तो भी जो आपके भक्तजनहैं सो ध्यान और उपासनामें आपके मनोहर स्वरूपका साक्षात् दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे मंगलरूप ! आपके जो मंगलरूप नाम हैं उनको कानोंसे सुनते हैं जिह्वासे उच्चारण करते हैं और दूसरे मनुष्योंको सुन्दर सुन्दर आपकी कथा सुनाते हैं, स्मरण करते हैं और पूजनादिक क्रियाओंमें और आपके चरणारविन्दोंमें जिन मनुष्योंका मन लग रहा है फिर संसारमें उनका जन्म मरण नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे ईश ! आपको अवतार लेनेसे और आपके चरणारविन्द पृथ्वीपर रखनेसे भूमिका भार सब एक बारही दूर हो जायगा, यह बड़े आनन्दकी बातहै कि,

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ॥ मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियंत्यथापि हि ॥ ३६ ॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिंतयन्नामानि रूपाणि च मंगलानि ते ॥ क्रियासु यस्त्वच्चरणारविंदयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥ दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ॥ दिष्ट्यांकितां त्वत्पदकैस्सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकंपिताम् ॥ ३८ ॥ न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ॥ भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयाऽऽत्मनि ॥ ३९ ॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥ त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वंदनं ते ॥ ४० ॥

आपके छोटे छोटे चरणारविन्द पृथ्वीपर जब पड़ेंगे और उनका हम दर्शन करेंगे तो आप अपने वैकुण्ठधामको जानकर पृथ्वी और स्वर्गपर कृपा दृष्टि करोगे और उसको हम अपने नेत्रोंसे देखेंगे उस समय महामंगल होगा ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! आप जो जन्मरहित हो; सो आपके जन्म लेनेका कारण सिवाय क्रीड़ा और विनोदके दूसरा और कोई हमारी समझमें नहीं आता. हे नित्यमुक्तिद ! प्राणियोंका भी जन्म मरण और पालन केवल आपके स्वरूपको न जाननेसे होताहै, यह अविद्याही जन्म मरणका मुख्य कारणहै ॥ ३९ ॥ हे भक्तवत्सल ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम वामनादिरूप धरकर आपने जिस प्रकार त्रिलोकीकी और हम लोगोंकी पहिले रक्षा की थी; उसी प्रकार अब

सब पृथ्वीका भार उतारो. हे वैकुण्ठविहारी ! हमारा आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४० ॥ अब सब देव देवकीसे कहते हैं, कि, हे माता ! हमारा कल्याण करनेके लिये साक्षात् परमपुरुष भगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे तुम्हारी कोखमें आये हैं, यह बड़ा आनन्द हुआ, अब कंसभी इनहीके हाथसे मारा जायगा, हमको निश्चय है, तुम किसी प्रकार मत डरो तुम्हारा पुत्र सब यादववंशकी रक्षा करनेवाला होगा ❋ ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेव जी बोले कि, हे राजन् ! जिनका स्वरूप कहनेमें नहीं आवे ऐसे जो परमपुरुष भगवान् हैं, उनकी इस प्रकार यथावत् स्तुति करके ब्रह्माजी और महादेवजीको आगे करके सब देवता स्वर्गको चले गये ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां गर्भस्तुतिवर्णनं नाम

दिष्ट्यांब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ॥ मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥ ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे ब्रह्मादिकृतगर्भगतविष्णुस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥ यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शांतर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशः प्रसे दुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ॥ मही मंगलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा—इस तृतीय अध्यायमें, प्रगट भये व्रजचन्द । हरिको ले वसुदेवजी, गे गोकुल·गृहनन्द ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके प्रगट होनेका समय आया, वह समय सर्वगुणसम्पन्न परमशोभायमान होगया और सुधा कर रोहिणी नक्षत्रपर आगया, शान्तयुक्त शुभ ग्रह तारागण होगये ॥ १ ॥ दशों दिशा प्रसन्न होगईं आकाश निर्मल होगया समस्त तारागण उज्ज्वल उदित हुए, पृथ्वी परममंगलरूपिणी होगई. पुर, नगर, ग्राम, व्रज, आकर, वनवाटिका, अत्यन्त रमणीक शोभायमान दृष्टि आनेलगे ॥ २ ॥

* कवित्त—फेर देवकीसे सबै देव अस बोले वैन, आदिपुरुष विश्वात्मा धाम है अशोकको ॥ जगत्को निवास सो निवास तेरी कुक्षीमाहिं, त्रास नाशवेको सब देवनके थोकको ॥ जननी जगत मातु धैर्य धरो धैर्य धरो, कसकाल आयगयो कामनाहीं शोकको ॥ यदुवंशपालक रु दुष्टकुलघालक सो, है है तुव बालक जो मालिक त्रिलोकीको ॥

नद नदियोंका जल स्वच्छ और शीतल होगया, तालोंमें कमल कमलिनी खिलने लगे, भ्रमर उन सुन्दर सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंकी सुगन्धि सूंघ सूंघकर उन्मत्त हो गुंजारने लगे, वृक्षोंकी शाखाओंपर पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियें बोलने लगे ॥ ३ ॥ सुखदायक शीतल, मंद, सुगन्ध सनी पवन बहने लगी, ब्राह्मणोंके होमकी अग्नि शान्त प्रज्वलित होगई ॥ ४ ॥ सिवाय कंसादिक राक्षसोंके सब महात्माओंके मन प्रसन्न होगये, स्वर्गमें भगवान्के अवतारसूचक दुन्दुभी बजने लगी ॥ ५ ॥ किन्नर, गंधर्व, भगवान्का यश गान करने लगे, सिद्ध, चारण, स्तुति करने लगे, विद्याधरोंकी स्त्रियें और अप्सरा नृत्य करने लगी ॥ ६ ॥ मुनि और देवता व्रजपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे. समुद्र आनन्दमें भरकर लहरें लेने

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ॥ द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः ॥ ३ ॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगंधवहः शुचिः ॥ अग्नयश्च द्विजातीनां शांतास्तत्र समिंधत ॥ ४ ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ॥ जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुंदुभयो दिवि ॥ ५ ॥ जगुः किन्नरगंधर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ॥ मंदंमंदं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥ निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशींदुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतं बालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदायुदायुधम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीतांबरं सांद्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुंडलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुंतलम् ॥ उद्दामकांच्यंगदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥

लगा मेघ मन्दमन्द शब्दसे गर्जने लगे, चपला क्षण क्षण मात्रमें चमकने लगी ॥ ७ ॥ इस प्रकार भादों वदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें आधी रातके समय देवरूपिणी देवकीके कोखमें सर्वान्तर्यामी भक्तभावन भगवान् साक्षात् अपनेरूपसे प्रगट हुए जैसे आधीरातके समय पूर्वदिशामें पूर्णमासीका चन्द्रमा उदय होता है ॥८॥ कमलसदृश नेत्रोंवाले, चार भुजा धारण किये; शंख; चक्र, गदा, आयुध उठाये; श्रीवत्सचिह्न धारण किये; गलसे शोभावाली कौस्तुभ मणि धारण किये; पीताम्बरधारण किये, सघन श्याम मेघके सदृश ॥ ९ ॥ महँगे मूल्यकी वैदूर्यमणिसे जटित मुकुट

कुंडलोंकी कांतिकरके देदीप्यमान केश धारण किये, सुन्दर कांची बाजूबन्द कंकण आदिकों करके शोभायमान, ऐसे अद्भुत बालक श्रीकृष्णको वसुदेवजी देखते भये ॥ १० ॥ विष्णु भगवान्‌को अपना पुत्र जान आश्चर्यसे वसुदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित होगये और मनमें धैर्यधर, उसी समय दशसहस्र गो दानकी मानसिक संकल्प ब्राह्मणोंको देनेके लिये किया ॥ ११ ॥ हे भारत ! हे अभिमन्युकुमार ! उस बालककी कांतिसे प्रसूतिकागार ऐसा प्रकाशमान हो रहा था कि किंचिन्मात्र भी अन्धकार नहीं रहा तो वसुदेवजीने पुत्रको परब्रह्म परमात्मा समझकर उनके प्रभावको देख शुद्ध बुद्धिसे हाथ जोड शिर झुका, निर्भय होकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १२॥ हे भगवन्! आपको मैंने भलीभाँति जाना, आप मायासे परे साक्षात् परमपुरुष हो केवल अनुभव और आनन्दही आपका स्वरूप है और सम्पूर्ण जनोंकी बुद्धिके द्रष्टा हो॥ १३॥ मैं भलीभाँति जानताहूं कि आप वही हैं

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुंदुभिस्तदा ॥ कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजभ्यो ऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥ अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नतांगः कृतधीः कृतांजलिः ॥ स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयंतं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ केवलानुभवानंदस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ॥ तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४ ॥ यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ॥ नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयंति हि ॥ १५ ॥ सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यंतेऽनुगता इव ॥ प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥ १६ ॥

जो पहिले अपनी मायासे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण रूप यह विश्व रचा है, आप उसमें प्रविष्ट नहीं होते और सद्रूपसे प्रवेशसदृश देखनेमें आते हो ॥ १४ ॥ जैसे महत्तत्त्व, अंहकार, पंचतन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह सातों पदार्थ, पंच ज्ञानेन्द्रिय, और पंचकर्मेन्द्रिय ग्यारहवाँ मन पंचमहाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश; इन सोलह विकारोंके संग मिलकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको रचतेहैं और पृथक् पृथक् ब्रह्माण्डको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते॥ १५॥ और उत्पन्न होनेके उपरान्त ब्रह्माण्डमें प्रविष्टहोकर जैसे जाननेमें आतेहैं यथार्थ रीतिसे और प्रथम कारण रूपसे प्रविष्टही थे इसकारण उत्पन्न हुए कार्यमें उनका पीछेसे प्रवेश होना सम्भव नहीं होसक्ता तैसेही आपका प्रवेश पीछेसे सम्भव नहीं ॥ १६॥

ऐसेही आपके रूप बुद्ध्यादिक इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आते,विषयोंमें अपार हो परन्तु विषयोंके साथ आप ग्रहण करनेमें नहीं आते जैसे एक दूधमें शब्द,स्पर्श,यह पांचोंवस्तु हैं परन्तु नेत्रोंसे रूपही देखनेमें आता है रसका ज्ञान नेत्रोंसे किसीप्रकार नहीं होसक्ता, ऐसे विषयोंके ग्रहणमें आपका ग्रहण नहीं हो सक्ता, अपरिच्छिन्न पक्षीका घोसलेमें प्रवेश होताहै, आप अपरिच्छिन्न हैं इसलिये आपके स्वरूपमें बाहिर भीतरका भेद नहींहै, गर्भमें आप कब रह सक्ते हो, आवरण करके रहित हो, सर्वस्वरूप हो, सर्वात्मा हो, सर्वव्यापक हो और परमार्थ वस्तुरूप हो ॥ १७ ॥ आत्माके जो दृश्य गुण देहादिक हैं उनको आत्माके विना जो पुरुष सत्य मानते हैं वह निरे अज्ञानी हैं, विचारके देखो तो कथनमात्र विना देहादिक सब झूंठही

एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैस्सन्नपि तद्गुणाऽग्रहः ॥ अनावृतत्वाद्बहिरंतरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥ य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ॥ विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥ त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदंत्यनीहादगुणादविक्रियात् ॥ त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥ स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ॥ सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्य विश्वस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाऽखिलेश्वर ॥ राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥

हैं,इसलिये झूँठे देहादिकोंको जो पुरुष सत्य मानते हैं वह अज्ञानी हैं ॥१८॥ हे विभो ! निरीह,निर्गुण, निर्विकार, आपही हो,आपहीसे इस विश्वकी उत्पत्ति,पालन, संहार होताहै, आपही ईश्वर और ब्रह्मस्वरूप हो,इसीलिये आपमें कुछ विरोध नहीं है, आपका आश्रय लेकर तीनों गुणही विश्वको रचते हैं इसीलिये आपका नाम कर्त्ता है ॥ १९ ॥ आप अपनी मायासे सृष्टिके पालनके लिये सत्त्वगुणी शुक्लवर्ण विष्णुरूप धारण करते हो और जगत्की उत्पत्तिके समय रजोगुणी रक्तवर्ण ब्रह्मारूप धारण करते हो और विश्वके संहारके समय तमोगुणी कृष्णवर्ण रुद्ररूप धारण करते हो ॥ २० ॥ हे सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण ! हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर आप इस विश्वका पालन करनेके लिये मेरे घरमें उत्पन्न हुए हो और

क्षत्री जिनका नाम, ऐसे करोडों असुरोंके समूह जहां तहां चलायमान हो रहे हैं उनका विध्वंस करोगे ॥ २१ ॥ हे देवेश ! उस दुष्ट कंसने तुम्हारे जन्मका वृत्तान्त हमारे घरमें सुनके आपके बहुत भ्राता मारडाले हैं अभी जो कोई मनुष्य उस दुष्टसे कहदेगा कि,आपका अवतार हुआ तो वह सुनतेही शस्त्र हाथमें लेकर यहाँ चला आवेगा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब इस प्रकार वसुदेवजी स्तुति करचुके तब पीछे देवकी पुत्रमें महापुरुष भगवान्के सब लक्षण जानकर और मधुर मुसकानदेख, कंसके भयसे धीरे धीरे पुत्रकी स्तुति करनेलगी ॥ २३ ॥ अनादि व्यापक ज्योतिस्वरूप निर्गुण निर्विकार सत्तामात्र दिव्यगुणराशि निर्विशेष और चेष्टारहित जो तुम हो सो वह स्वरूप किसीके जाननेमें नही

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ॥ स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैनमात्मजं वीक्ष्यमहापुरुषलक्षणम् ॥ देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥ २३ ॥ देवक्युवाच ॥ रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ॥ सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥ नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ॥ व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥ योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबंधो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ॥ निमेषादिर्वत्सरांतो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्सर्वाँल्लोकान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ॥ त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥

आता, वेद आपके स्वरूपका वर्णन करते हैं, सो तुम ज्ञानके प्रकाश करनेवाले साक्षात् विष्णु भगवान् हो ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माजीकी सौ (१००) वर्षकी अवस्था होती हैं उस समय प्रलयकालमें सब लोक नष्ट हो जाते हैं. पंचमहाभूत अपनी अपनी तन्मात्राओमें मिल जाते हैं और तन्मात्रा प्रधानमें लय हो जाती है,प्रधानके जाननेवाले उस समय केवल एक आपही अजन्मा अवशिष्ट रहजाते हो ॥ २५ ॥ हे मायाप्रेरक ! यह जो काल है इसको आपकी माया वर्णन करै है, इसी कालसे विश्व होता है,पलसे आदि लेके जिसकी वर्षतक गणना है यह परार्द्ध रूपसे बडा है ऐसे आप निर्भयरूप हो, सो मैं आपकी शरणागत हूं ॥२६॥ हे आदिपुरुष ! सब मनुष्य मृत्युरूपी सर्पके भयसे सब लोकोंमें भागे भागे

फिरते हैं और उनको बैठनेके लिये निर्भय स्थान कहीं नहीं मिलता, जब किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे आपके चरणारविन्दका आश्रय मिल जाता है तब उस निर्भय स्थानको प्राप्तकरके निर्भय होकर सोरहता है, फिर मृत्युभी उसके निकट नहीं आती, दूरसे दूर भागती है ॥ २७ ॥ महा भयानकस्वरूपवाला उग्रसेनका पुत्र जो कंस है, उससे हम अत्यन्त भयभीत हैं, सो उस दुष्टसे आप हमारी रक्षा करो, भक्तोके भय दूर करने वाले और जाननेवाले ध्यान करनेके योग्य आप भगवान् स्वरूप हो अब आप इस श्यामसुन्दर स्वरूपको चर्मचक्षुवालोंको मत दिखाओ ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन ! आपका जन्म जो मेरे यहां हुवा है यह मत जानो, क्योंकि अधीरचित्तवाली स्त्री जाति जो मैं हूं सो आपके कारण उस कंसके भयसे अत्यन्त भयभीत हूं ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् ! शंख, चक्र, गदा, पद्मसे शोभायमान जो यह आपका चतुर्भुज और

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान्भृत्यवित्रासहाऽसि॥रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥ जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ॥ समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥ विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशांते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ॥ बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडंबनं हि तत् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति ॥ तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ॥सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु॥ सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥

अद्भुत स्वरूप है इसको छिपा लो ॥ ३० ॥ यह जो जगत् प्रत्यक्ष कालमें दृष्टि आता है प्रलयकालके समय विना परिश्रमही सब सृष्टिको अपने उदरमें धारण कर लेते हो, सो आप मेरे गर्भमें प्राप्त हुए हो, यह बड़े हास्यकी बात है ॥ ३१ ॥ यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र मुसकराकर बोले कि, अहो मातः ! तुमको अपने पूर्वजन्मकी सुधि नही है सो सुनो स्वायंभुव मन्वंतरमें पहिले तुम पृश्नि नाम थीं और वसुदेवजी उस समय पापरहित सुतपा प्रजापति थे ॥ ३२ ॥ तब तुम दोनोंको ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी, तब आपने इन्द्रियोंको रोककर बड़ा भारी तप किया ॥ ३३ ॥ वर्षा, वायु, धूप, गर्मी, शीत इन सब कालोंके गुणोंका ग्रहण किया और श्वास रोककर मनके मैलको दूर कर दिया ॥ ३४ ॥

सुखे पत्र और पवनका भोजन करके वर्षोंतक रहे और मुझसे वरदान प्राप्त करनेके मनोरथसे, आप शान्तचित्त हो मेरी आराधना करने लगे ॥ ३५ ॥ हे मातः ! तुम दोनों जनोंने मुझसे चित्त लगाकर बड़ा भारी तप किया, तप करते करते देवताओंके बारह सहस्र वर्ष बीतगये ॥ ॥ ३६ ॥ हे निष्पाप ! जब तुमने तप करनेके समय श्रद्धा भक्तिसे हृदयमें मेरा ध्यान किया, उसी समय इस देहसे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुवा ॥३७॥ तुम दोनोंके मनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये मैं उसी समय इसी शरीरसे आपके सन्मुख आनकर प्रगट हुवा और आपसे कहा कि, 'वर मांगो' 'वर मांगो' 'वर मांगो' तब आपने यह वर मांगा हे भगवन् ! जो आपके मनमें वर देनेकी इच्छा है और हमपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजे कि,

शीर्णपर्णानिलाहारावुपशांतेन चेतसा ॥ मत्तः कामानभीप्संतौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषाऽनघे ॥ तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥ प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दंपती ॥ न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥ गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान्भोगानभुंजाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात ॥ उपेंद्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥

तुम्हारे समान हमारे पुत्र होय ॥ ३८ ॥ संसारके विषयसुख आपने नहीं भोगे और कोई सन्तानभी नहीं, सो आपने मेरी मायासे मोहित होकर मुक्ति नहीं मांगी ॥ ३९ ॥ उस समय मैंने तुमको मनवांछित वर दिया कि, तुम्हारे मेरीही समान पुत्र होगा. यह वर देकर में अन्तर्धान होगया और तुम अपना मनोरथ करके विषयोंका सुखभोग भोगने लगे ॥ ४० ॥ जब मैंने शील उदारता इन गुणोंयुक्त अपनी सदृश दूसरा कोई पुरुष कहीं नहीं देखा, तब पृश्निगर्भ नामसे विख्यात होकर मैंही आपका पुत्र हुआ॥४१॥ फिर पीछे दूसरे जन्ममें आप कश्यप और अदिति हुए, वहांभी मैंने उपेंद्र नामसे आपहीके घर आनकर फिर जन्म लिया. हे जननि ! उस अवतारमें मेरा शरीर बहुत छोटा था, इसलिये मेरा नाम वामन विख्यात हुवा॥४२॥

फिर अब तीसरीबार उसीरूपसे आपके घरमें जन्म लिया हैं, हे मातः ! मेरा वचन सत्य मानो देखो तुमने एक बार वर मांगा मैंने तुम्हारे घर
तीनबार जन्म लिया ॥ ४३ ॥ पहिले जन्मका स्मरण करानेके लिये मैंने तुमको यह रूप दिखाया हैं जो और प्रकार मनुष्यके बालकका
रूप धर कर प्रगट होता तो तुम क्या जानते ? और तुमको कैसे विदित होता कि, परमेश्वरने हमारे घर आनकर अवतार लिया ॥ ४४ ॥
अब आपकी इच्छा है चाहे पुत्र भावसे मेरा सन्मान करो, चाहे ईश्वर जानकर मेरा ध्यान करो, मुझसे स्नेह करोगे तो परमभक्तिको प्राप्त होगे ॥४५॥
और जो तुमको कंसका यह भय है कि, मेरे इस पुत्रकोभी वह दुष्ट मार डालेगा, तो तुम मुझको गोकुलमें नन्दरायजीके घर पहुँचा दो और यशोदाके

तृतीयेऽस्मिन्भवेऽहं वै तेनैव वपुषाऽथ वाम् ॥ जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं
रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिंगेन जायते॥४४॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्॥
चिंतयंतौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥ ४५ ॥ यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु
त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥४६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ॥ पित्रोः संपश्यतोः
सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥ ४७ ॥ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ॥ यदा बहिर्गंतुमियेष
तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नंदजायया ॥ ४८ ॥ तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वास्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ॥ द्वारस्तु
सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृंखलैः ॥ ४९ ॥

गर्भमें प्रगट हुई मेरी योगमाया है उसको इसी समय अपने घरको लेआओ ॥ ४६ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे
राजन् ! यह सब बातें समझाकर भगवान् चुप होगये और अपनी मायासे माता पिताके देखते देखते साधारण बालक होगये ॥ ४७ ॥
भगवत्की प्रेरणासे वसुदेवजीने प्रसूतिका घरमेंसे पुत्रको लेकर बाहिर निकलनेकी इच्छा की उसी समय गोकुलमें नन्दरायजीकी स्त्री
यशोदाके उदरसे योगामायाने जन्म लिया ॥ ४८ ॥ उस समय योगमायाने सब पुरवासी और द्वारपालोंका ज्ञान हरलिया, उसी
समय सब निद्राके वशीभूत होगये पावोंकी बेड़ी गिरपड़ी, जब श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी चले तब द्वारोंके बड़े बड़े जो किवॉड़ थे

उनमें जो लोहेकी भारी भारी संकलें पड़ी थीं और ताले लगरहे थे, वह सब आपसे आप खुलगये जैसे सूर्य नारायणके उदय होनेसे सर्वत्र अन्धकार दूर हो जाताहै ॥ और मन्द मन्द शब्दसे मेघ गर्ज गर्ज कर बरसने लगे आधीरात सायँ सायँ कररही थी अँधेरी झुक रहीथी मार्ग देखनेमें नहीं आता था, कभी कभी बीच बीचमें बिजली चमक जातीथी उसके आश्रयसे धीरे धीरे चले जाते थे, परन्तु वर्षा इनके ऊपर नहीं होती थी क्योंकि, पीछे पीछे शेषजी महाराज फणरूप छत्रछायासे जलका निवारण करते थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उस समय मेघोंके वर्षनेसे यमुना ऐसी चढरही

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्तंत यथा तमो रवेः ॥ ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ५० ॥ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गंभीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ॥ भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिंधुरिव श्रियः पतेः ॥ ५१ ॥ नंदव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ॥ सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात ॥ ५२ ॥

थी कि, कोसोंतक जल ही जल दिखाई देता था पवनके वेगसे जलमें ऊंची ऊंची तरंगें उठती थीं और जलके घरघराहटका शब्द दूर तक सुनाई आताथा उस गम्भीर नीरमें महा भयानक सैकडों भँवर पडते थे परंतु जैसे लंकाकी चढाईके समय श्रीरामचन्द्र महाराजको समुद्रने मार्ग दियाथा उसी प्रकार यमुनाने वसुदेवजीको मार्ग दिया ❀ ॥ ५१ ॥ जैसे तैसे कर वसुदेवजी गोकुलमें पहुँचे और नन्दजीके द्वारपर जाकर देखा तो किवाँड

* शंका–श्रीशुकदेवजीमुनिने राजा परीक्षित्‌से कहा कि, श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी जब गोकुलको चले तब भगवान्‌को समुद्रने बडे सुखसे मार्ग दिया था उसी प्रकार यमुनाने वसुदेवजीको बडे सुखसे मार्ग दिया, हम बूझते हैं भला किस स्थानपर भगवान्‌को समुद्रने सुखसे मार्ग दिया ? यह बडी शंका है जो कोई कहै कि, लंकाको जानेके समय रामचन्द्रको समुद्रने सुखसे मार्ग दिया तो यह बात व्यर्थ है क्योंकि रामचन्द्रने बहुत दु:ख सहकर समुद्रके शोषनेके लिये अग्निबाण धनुषपर चढाया, तो त्रास मानकर आन मिला, तो भी रामचन्द्र पुल बाँधकर समुद्रके पार गये सुखसे तो समुद्रने नहीं जाने दिया ॥

उत्तर–इस स्थानपर भगवान्‌को सुखसे मार्ग देना यह है कि, राजा बलिको दर्शन देनेके लिये वामनजी नित्यप्रति सुतल लोकको जाते हैं तब पातालके जानेका एकही मार्ग है दूसरा और कोई मार्ग नहीं है भगवान् वामनजीको समुद्र सुखकर मार्ग देता है इसवास्ते भगवान् व्यासजीने सुखसे समुद्रको पथ देनेके लिये कहा ॥

खुले पड़े हैं भीतर घुसकर देखा तो सब नींदमें मतवाले पड़े हैं और यशोदा मायाके मोहसे ऐसी बेसुधि पड़ीथी कि, उसको कन्याके उत्पन्न होने काभी ध्यान नहीं था उसको सोती देखकर वसुदेवजीने श्रीकृष्णको तो यशोदाकी शय्यापर सुलादिया और उसकी कन्याको उठाकर अपनी राह ली ॥ ५२ ॥ और उसी बन्दीगृहमें आनकर कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और आपने उसी प्रकार पांवोंमें बेडी और हाथोमें हथकड़ी पहन ली और उसी भांति बैठगये ॥५३॥ वसुदेवजीको देख देवकी बूझने लगी कि, स्वामी ! कुशलपूर्वक गोकुलमें पहुँचे पुत्र तो आनन्दमेंहै ? वसुदेवजीने कहा सब नारायणकी कृपा है, उसी समय यहां गोकुलमें नन्दरायके घर यशोदाजीके मनसे जब माया हटी तो जाना कि,मेरे कुछ बालक हुवा, परन्तु कुछ परिश्रम और कष्ट न पडा, क्योंकि योगमायाने पहिलेही स्मृति भुलाकर नींदके वश करदियाथा और यहभी कुछ ज्ञान नहीं रहा

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ॥ प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५३ ॥ यशोदा नंदपत्नी च जातं परमबुध्यत ॥ न तल्लिंगं परिश्रांता निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे श्रीकृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बहिरंतःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥१॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ॥ आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥२॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ॥ सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥

कि, मेरे पुत्रहुवा या कन्या ॥५४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णजन्मनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

दोहा–चौथे चण्डीवचन सुन, अतिसभीत भयो कंस । मंत्रिन सहित विचारकर, कियो बालविध्वंस ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! बाहिर भीतरके द्वार उसीप्रकार बन्द होगये, कन्या रो उठी बालकका रोना सुन सब रखवाले सावधान हो तोप छोडने लगे; हाथी चिंघाडने लगे, सिंह दहाडनें लगे भादोंकी अँधेरी झुकरहीथी, मेघ बरस रहा था सब चौकीदार और द्वारपाल पुकारते हुए उसी समय कंसके पास दौड़गये और जाते ही देवकीके बालक होनेका समाचार सुनाया, जो कंस उद्विग्न मनसे इसी आठवें गर्भका मार्ग जोहरहा था ॥१॥ २ ॥ सुनतेही कंस घबराकर यह कहता उठ खडा हुवा क्या मेरा कालरूप बालक उत्पन्न होगया ? खुलेबाल; गिरता पडता, ठोकरें खाता, कांपता हुवा खड्ग हाथमें ले प्रसूतिका

भवनकी ओरको दौडताहुवा बहनके पास गया ॥३॥ देवकी कंसको देख दीन होकर करुणा वचन बोली कि, जिसके सुननेसे सबके मनमें अत्यन्त दया उत्पन्न हो, हे भ्राता ! हे कल्याणरूप ! यह पुत्र नहीं है, यह देवीरूप कन्याहै, इसको मत मार, क्योंकि यह तेरी भानजी है और जो कदाचित यह जीती रहेगी तो मैं तेरेही पुत्रके संग इसका विवाह कर दूंगी ॥ ४ ॥ हे भ्राता ! अग्निके समान तेजवाले मेरे सात पुत्र जो तैंने मारे हैं, वह ताप मेरे हृदयसे अभी नहीं गया. परन्तु उसमें तेराभी क्या दोष है दैवने तेरी बुद्धिभी वैसेही करदी. अब यह कन्या तो मेरा हृदय ठण्डा करनेको मुझे छोडदे ॥ ५ ॥ हे सामर्थ्यवान् ! तैंने बहुत पुत्र मेरे मारे, अब दयाकर मैं तेरी छोटी बहन हूं, महादीन हूं, मन्दभागिनी हूं, यह मेरीअन्तकी पेटपोछनी कन्याहै इसको तू मुझे अपनी करके देदे जो मेरा थोडा बहुत धैर्य बँधारहे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! देवकी इस प्रकार कंससे

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ॥ स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हंतुमर्हसि ॥४॥ बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ॥ त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥ नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ॥ दातुमर्हसि मंदाया अंगेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपगुह्यात्मजामेवं रुदंत्या दीनदीनवत् ॥ याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७॥ तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ॥ अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥ सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यंबरं गता ॥ अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥ दिव्यस्रगंबरालेपरत्नाभरणभूषिता ॥ धनुःशूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥

विनतीकर, कन्याको छातीसे लगाकर अति दीनकी नांई रुदन करने लगी. देवकी दीन तो नहीं थी, क्योंकि मनमें अत्यन्त प्रसन्न थी कि, मेरा पुत्र तो और स्थानपर पहुँचही गया और यह कन्या योगमायाहै यह इस दुष्टसे किसी प्रकार मरही नहीं सक्ती, तोभी देवकीके हाथसे उस दुष्टने कन्याको छीन ही लिया, देवकीने नम्र होकर बहुतेरी प्रार्थना की परन्तु उस दुष्टने न माना और कहा कि, इस कन्याको मैं कभी जीता न छोडूंगा, जो इस कन्याके साथ विवाह करेगा वह मुझको मारेगा ॥ ७ ॥ यह कह अपने स्वार्थके सिद्ध करनेके लिये तुरन्तकी उत्पन्न हुई अपनी भगिनीकी कन्याका चरण पकड घुमाकर शिलापर ज्योंहीं पटकनेको हुवा ॥ ८ ॥ उसी समय वह कन्या कंसके हाथसे छूट उसके माथेपर पांवधर उछलकर आकाशको चली गई और वहां प्रत्यक्ष देवीका दिव्यस्वरूप देखनेमें आया ॥ ९ ॥ अतिविशाल लाल लाल नेत्र, ललाटपर चन्दनका तिलक, कण्ठमें

पुष्पोंकी माला, सुन्दर शोभायमान वस्त्र,रत्नजटित आभूषण,आठ भुजा जिनमें धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, कृपाण, गदा, पद्म, शंख, चक्र आयुध लिये॥१०॥सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर,और नाग यह बारम्बार बलिदान देतेथे और प्रर्थना करते थे ॥११॥ अरे अधम कंस ! मेरे मारनेसे तेरे हाथ क्या आया ? तेरे पूर्व जन्मका वैरी जो कि, तेरा मारनेवालाहै वह पहिलेही और कहीं दूसरे स्थानमें जन्म लेचुका, अरे मूर्ख ! बालकोंको मारकर और मुझको पटककर वृथा तैंने अपने शिरपर पापका भार धरा, तेरा मारनेवाला सर्पकी समानहै और तू दादुरकी सदृशहै, दादुरको इतनी सामर्थ्य कहाँ है जो सर्पको निगलनेकी इच्छा करे अब तू सावधान रहना अब वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर भूमिका भार उतारैगा॥१२॥इसप्रकार भगवान् की देवी योगमाया कंससे कहकर बहुत स्थानोंमें दुर्गा, भद्रकाली, भगवती, भवानी, महामाया नामसे संसारमें विख्यात हुई ॥१३॥ इसप्रकार योग

सिद्धचारणगंधर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ॥ उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ ॥ किं मया हतया मंद जातः खलु तवांतकृत् ॥ यत्र क वाऽपूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ॥ १२ ॥ इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ॥ बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥ तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ॥ देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥ अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना॥ पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥१५॥ स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ॥ कांल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ देवमप्यन्ृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ॥ यद्विस्रंभादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्शिशून् ॥ १७ ॥

मायाका वचन सुनकर कंस अत्यन्त विस्मित हुवा और वसुदेव देवकीको कारागारसे उसीसमय छोडदिया और बेडी हथकडी उनके हाथ पांवोंसे निकलवादीं और विनय करके बहन बहनोईसे बोला कि॥१४॥अहो भगिनी ! अहो भाम ! मैं आपका बडा अपराधी हूं मुझ पापी अधर्मीने तुम्हारे संग बडा अनर्थ किया और अपने शरीरके सुखके लिये तुम्हारे छःबालक मारे जैसे कोई राक्षस अपने पुत्रोंको अपने हाथसे मारे है और मेरा मनोरथभी पूरा नहीं हुवा॥१५॥देखो ! मैं कैसा निर्दयी और हत्यारा हूं, अपने जातिवाले हितकारी और सम्बन्धियोंका संग मैंने छोड दिया,हाय ! मैं महापापी नीचबुद्धि न जानिये कौनसे नरकमें जाऊंगा,ब्रह्मघातीकी नांई मैं जीताही मृतककी समान हूं यह कलंक मेरा कैसे छूटेगा औरमैं किस जन्ममें उद्धरूंगा॥१६॥कोई कहै कि,मनुष्यही झूंठ बोलतेहैं, परन्तु देवताभी झूंठ बोलते हैं जिन्होंने कहाथा कि, देवकीके आठवें गर्भमें पुत्र होगा

सो कन्या उत्पन्न हुई; हाय ! मैंने झूँठी आकाशवाणीके कहनेसे अपनी बहनके बालक मारे मेरी क्या गति होगी ? ॥ १७ ॥ हे महाभागियो ! तुम अपने पुत्रोंके मारनेका शोक मत करो, यह प्राणी अपने किये हुए कर्मोंका भोग भोगते हैं और दैवाधीन हैं सर्वदा एकत्र नहीं रहसक्ते. तुम समझना कि, हमारे पुत्रोंकी आयु इतनीही थी॥ १८॥जैसे पृथ्वीके विकार घटपट इत्यादिक पदार्थ उत्पन्न होतेहैं,और फूटजाते हैं,इनके होनेमें पृथ्वीका विकार नहीं आता, ऐसेही यह देह जन्मता और मरताहै कुछ इसके संग आत्मा नहीं मरता जीता ॥१९॥ मूर्ख लोग ऐसे नहीं जानते वह देहकोही आत्मा मानतेहैं और देहको आत्मा माननेसे "मैं हूं "तू है"यह अनेक प्रकारके बुद्धि भेद उत्पन्न होतेहैं, इस भेदसे पुत्रादिकके देहसे योगवियोग होताहै

मा शोचतं महाभागावात्मजान्स्वकृतंभुजः ॥ जंतवो न सदैकत्र दैवाधीनाः सहासते ॥ १८॥ भुवि भौमानि भूतानि यथा यांत्यपयांति च ॥ नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥ यथाऽनेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ॥ देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ॥ माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विंदतेऽवशः ॥ २१ ॥ यावद्धतोऽस्मि हंतास्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् ॥ तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्य बाधकतामियात ॥ २२ ॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ॥ इत्युक्त्वाऽश्रुमुखः पादौ श्यालस्स्वस्रोरथा ग्रहीत ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विस्रब्धः कन्यकागिरा ॥ देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥

इसीसे उनके अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती ॥ २० हे मंगलरूपिणी ! मैंने तेरे पुत्रोंको माराहै तो भी तू उनका शोक संताप मत कर, क्योंकि सब प्राणियोको परतंत्रतासे अपने अपने किये हुए कर्मोंका भोग भोगना पडताहै ॥२१॥जब तक प्राणी अपने स्वरूपको नहीं जानै और यह कहै कि, मैं मारता हूं और मैं मरता हूं, तब तक वह देहाभिमानी अज्ञान पुरुष मरता है और मारता है॥२२॥हे दीनदयालु ! हे सत्यवक्ताओ ! अब आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये,क्योंकि साधुजन दीनोंपर सदा दयाही करते हैं, यह कह आँखोंमें आँसू भरकर कंस वसुदेव देवकीके चरणोंमें गिरपड़ा ॥२३॥ और योग मायाने जो यह वचन कहा था कि, तेरा मारनेवाला कहीं उत्पन्न होगया इस वाणीपर विश्वास लाकर वसुदेव और देवकीके

पॉवोंकी बेड़ी कटवादी और सुहृदता और मित्रता अपनी जतानेलगा ॥ २४ ॥ हे देवकी! अब मेरा अपराध क्षमाकर, देवकी अपने भ्राता कंसका अत्यन्त व्याकुल देखकर बोली कि,हे भय्या! मैंने तेरा सब अपराध क्षमा किया तू मत डरै, यह कह उसकी आखोंसे आंसू पोंछने लगी और वसुदेवजीभी उससे शत्रुता तजकर मुसकराकर बोले ॥२५॥ हे महाभाग कंस! जैसे तुम कहते हो वैसेही है,देहधारियोंको अज्ञानसे अहंकार होता है, इसी अहंकारने मेरा तुम्हारा परस्पर भेद करदिया ॥२६॥ शोक, हर्ष, भय,द्वेष, लोभ, मोह, मद जिनको लगरहे हैं वह मनुष्य इनचारोंसे आपही मरते हैं, उनको कौन मारता है, वह उन्मत्त पुरुष यह नहीं जानते कि, परमेश्वरही पदार्थोंसे पदार्थोंका परस्पर नाश करताहै और उस परमात्माको नहीं देखते और अज्ञानी पुरुष मैं मरताहूं, मैं मारताहूं, ऐसे मानते हैं ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार प्रसन्न हो शुद्ध

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षांत्वा रोषं च देवकी ॥ व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥ एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेतिभिदा यतः ॥ २६ ॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ॥ मिथो घ्नंतं न पश्यंति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ॥ देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥ रात्र्यां तस्यां व्यतीतायां कंस आहूय मंत्रिणः ॥ तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥ आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ॥ देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥ एवं चेत्तर्हि भोजेंद्र पुरग्रामव्रजादिषु ॥ अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥

अंतःकरणवाले वसुदेव देवकीसे आज्ञा लेकर कंस अपने राजभवनको गया ॥ २८ ॥ और जैसे तैसे करके रात काटी प्रातःकाल होतेही कंसने अपने सब मंत्रियोंको बुलाया और जो कुछ योगमायाने कहा था कि, तेरा मारनेवाला उत्पन्न होगया है, यह सब वृत्तान्त मंत्रियोंके सामने ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥ २९ ॥ कंसके वचन सुनकर देवताओंके शत्रु अविवेकी, देवताओंपर क्रुद्ध होनेवाले जो अघासुर, तृणावर्त आदिक मंत्री थे वह कंससे बोले कि ॥ ३० ॥ हे यादवेन्द्र! जो ऐसा भी है तो क्या चिन्ताहै? आप कुछ सन्देह न कीजे केवल इतना काम करो कि–पुर, ग्राम, खिरक इत्यादि जितने स्थान हैं, उनमें दश पांच दिनके भीतर जो बालक उत्पन्न हुएहैं उनको मारनेकी हमको आज्ञा देदीजै हम आजही सब

बालकोंको बीन बीन कर मारआवेंगे उनमें जो आपका शत्रु होगा वहभी मारा जायगा ॥ ३१ ॥ और जो देवता संग्रामके नामसे थरथर काँपते हैं वह आपके सामने क्या पराक्रम करेंगे ? आपके धनुषकी टंकारही सुनकर निरन्तर व्याकुल रहते हैं ॥३२॥ जिस समय आप धनुषपर बाण चढा कर चारों ओरको प्रहार करते हो उस समय देवता अपने अपने प्राणोंको लेकर रणस्थलसे भाग जाते हैं और भाग जानाही उनका अच्छा है ॥३३॥ उनमें कोई कोई तो शस्त्र त्याग, दीन बन,हाथ जोडकर खड़ा होजाताहै और कोई निकच्छ होकर शरणमें आ कहता है कि, हम हारगये २ हमको मत मारो ॥ ३४ ॥ आपके सामने रथ जिनके टूटगये, शस्त्र हाथोंमेंसे छूटगये,भयभीत हो भाग गये, युद्धसे विमुख धनुष जिनके हाथोंसे गिरगये और जो संग्राम छोड़कर बैठरहे उनको तो आप मारते ही नहीं हो ॥३५॥ जहाँ कोई शूरवीर और युद्ध करनेवाले योद्धा नहीं होते उस निर्भय स्थानमें

किमुद्यमैः करिष्यंति देवाः समरभीरवः ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समंततः ॥ जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥ केचित्प्रांजलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ॥ मुक्तकच्छशिखाः केचिद् केचिद्भीताः स्म वादिनः ॥ ३४ ॥ न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ॥ हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ॥ रहोजुषा किं हरिणा शंभुना वा वनौकसा ॥ ३६ ॥ किमिंद्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ॥ ततस्तन्मूलखनने नियुंक्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥

बैठकर झूठा बकवाद करनेवाले देवताओंसे और जो क्षीरसागरमें शेषशय्यापर पड़ा दिन रात लक्ष्मीसे भोगविलास करता रहता है उसीके ध्यानमें नित्य मतवाला हो आलस्यके मारे कोई काम नहीं करता उससे युद्ध कब होसक्ताहै जो आपके डरसे क्षीर समुद्रमें छिपाहुआ पड़ा है उस लक्ष्मीकी आशा करनेवाले विष्णुसे, इलावृतखण्डका रहनेवाला ज जातेही पुरुष स्त्री होजाय, दिन रात पार्वतीके संग क्रीड़ा करनी और उसीके मोहजालमें मग्न रहनेवाला विषके पीनेसे जिसका चित्त नित्य उद्विग्न रहै ऐसे बावले बहुरंगे शिवसे, ॥ ३६ ॥ तुच्छ पराक्रमी, किंचिन्मात्र विपत्ति पड़नेसे देवताओंको साथ ले भगवान्के पास जाकर पुकार मचावे. आपने सुनाही होगा कि, हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु और रावणादिक अनेक असुरोंने उसकी कैसी २ दुर्दशा की और बताओ आजतक किसको जीता, सदा घर बैठाही वज्र घुमाता

रहताहै और ऐसे असमर्थ इन्द्रसे, रहा ब्रह्मा वह दिन रात पूजा पाठमें लगा रहताहै उसको अपनेही कामोंसे पलभरको सावकाश नहीं ? फिर बताओ कि, इन लोगोंसे हमको क्या भय है और कौन इनमें हमसे युद्ध कर सक्ता है परन्तु तोभी वैरीही हैं न जानिये कलको क्या उपद्रव कर उठावें, क्योंकि शत्रुको और सर्पको छोटा न समझै, इसलिये इन लोगोंका छोडना अच्छा नहीं, इस समय तो इनकी जड उखाडनेको हम उपस्थित हैं, हम लोगोंको आज्ञा दीजिये ॥३७॥ जैसे विना उपाय किये शरीरका रोग जड पकड जाता है फिर पीछे उपाय करनेसे कुछ नहीं होसक्ता, जैसे योगी जन पहिले इंद्रियोंसे विषयभोग करके फिर पीछे उनको रोकना चाहैं तो फिर वह नहीं रुकसक्तीं, ऐसेही शत्रुको छोटा समझकर जो छोड देते हैं, फिर पीछे प्रबल होकर वह शत्रु जीतनेमें नहीं आता और जो कदाचित् जीत भी लिया तो बडी विपत्ति उठानी पडती है और बहुत दाँत

यथाऽऽमयोंगे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ॥ यथेंद्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥ मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ॥ तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥ विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ॥ श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ॥ तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ॥ अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं दुर्मंत्रिभिः कंसः सह संमंत्र्य दुर्मतिः ॥ ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशवृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

खट्टे होते हैं ॥ ३८ ॥ सब देवताओंकी जड विष्णु है और विष्णुकी जड सनातन धर्म है और सनातनधर्मकी मूल गौ, ब्राह्मण, तप, यज्ञ और दक्षिणा है ॥ ३९ ॥ हे राजन् कंस ! इसलिये वेदपाठी, तपस्वी, याज्ञिक, ब्राह्मण, यज्ञके उपयोगी और दूध देनेवाली गायोंको हम अवश्य मारेंगे ॥ ४० ॥ गौ, ब्राह्मण, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और यज्ञ यह सब विष्णु भगवान्‌के अंग हैं ॥ ४१ ॥ वह विष्णु सब देवताओंमें मुख्य, दैत्योंका द्रोही और सबके हृदयमें वास करनेवाला और ब्रह्मा, महादेव, सब देवता और ऋषियोंका मूलभी वही है, इसलिये ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंका मारना, यही विष्णुके मारनेका ठीक उपाय है ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् !

दुष्टबुद्धि कंस कालके फन्दमें फँसे हुयेने इस प्रकार दुष्ट मंत्रियोंके साथ, सम्मतिकरके ब्राह्मणोंको मारकर अपना कल्याण चाहा ॥ ४३ ॥ ❀ महा पुरुषोंका कष्ट जिनको प्रिय, इच्छापूर्वक रूप धारण करनेवाले असुरोंको सब देश विदेशोंमें साधु संतोंके मारनेके लिये आज्ञा देकर भेज दिया और आप अपने राज्यमंदिरको चलागया ॥ ४४॥ राजस, तामस स्वभाववाले दुर्बुद्धि, आज्ञानसे जिनका अन्तःकरण आच्छादित होरहा, मृत्यु जिनके शिरपर खेल रही, ऐसे ऐसे दैत्य साधुओंके विद्रोही होकर उनसे वैर करनेलगे ॥ ४५ ॥ सत्पुरुषोंसे द्वेष रखनेवाले पुरुषकी आयु,धन, यश,

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ॥ कामरूपधरान्दिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ ते वै रजःप्रकृतयस्त मसा मूढचेतसः ॥ सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥ आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥ हंति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० कंसाज्ञप्तकृतबालादिहिंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ॥ आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ॥ कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥

धर्म, परलोकसुख, महात्माओंका आशीर्वाद और मंगल इन सबका नाश होजाताहै ॥४६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां कंसस्यानीतिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ दोहा–पंचममें उत्सव अधिक, भयो नन्दके भौन । मथुराको वसुदेवने; कियो मिलन हित गौन ॥१॥ हे राजन् ! पुत्रका जन्म होनेसे आनन्द सहित उदारचित्त नन्दरायजीने उसी समय स्नान कर पवित्र हो पीताम्बर पहन, शृंगार कर, आसनपर जा

* शंका–कसने राक्षसोंसे जिस ब्रह्मका वन्धन कराकर अपना कल्याण माना वह ब्रह्म कौन है ? क्योंकि सर्वव्यापी, अजर, अमर, चैतन्यकारक, ऐसा जो ब्रह्म है वह कभीभी किसीके वन्धनमें नहीं आसक्ता और किसीके मारनेसे नहीं मर सक्ता, वह मरनेवाला ब्रह्म किसीके मारनेको नहीं है । जो राक्षसोंके मारनेसे मरगया ।

उत्तर–अजर, अमर, सर्वव्यापी ब्रह्म है सो "ब्रह्महत्याहित" मैंने इस श्लोकका अर्थ नहीं किया, इसश्लोकका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि, यज्ञादि, दानादि, स्नानादि, नारायणके पूजनादि, अनुराग अपने हृदयमें कोमलता, दया इनको आदिलेकर और अनेक प्रकारके कर्म सोई ब्रह्म हैं, उनका नाश कराकर कंस अपना हित मानताथा, ऐसा अर्थ व्यासजीने किया है ॥

विराजे ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुलाय मोतियोसे चौक पुराय उसपै सुवर्णका कलश स्थापन कर, गणेश, गौरी, वरुण इत्यादि देवता, पितृ, लोकपाल दिक्पाल इन सबका संस्थापन करके स्वस्तिवाचन कराय और पूजन कर पुत्रका जातिकर्म संस्कार कराय ॥ १ ॥ २ ॥ उसीसमय भूषित करी दोलाख गौवें और तिलोंके सातपर्वत बनाय ऊपरसे सुनहरी रंगका वस्त्र उढ़ाय उनके भीतर मणि, माणिक, मोती, हीरे और अनेक अनेक प्रकारके रत्न भर भरके ब्राह्मणोको दान कर दिये ॥ ३ ॥ कालसे तो पृथ्वी पदार्थ शुद्ध होता है, स्नान करनेसे शरीरशुद्धि होती है; धानेसे वस्त्रादिक शुद्ध होता है, संस्कारसे गर्भादिक शुद्ध होता है, तप करनेसे इंद्रियोंकी शुद्धि होती है, यज्ञ करनेसे ब्राह्मणोंकी शुद्धि होती है, दानकरनेसे धनकी शुद्धि होती है, सन्तोपसे मनकी शुद्धि होती है और आत्मविद्यासे आत्माकी शुद्धि होती है. यह विचार नन्दरायजीने अनेक

धेनूनां नियुतं प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते ॥ तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौंभांबरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नान शौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ॥ शुध्यंति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ॥ ४ ॥ सौमंगल्यगिरो विप्राः सूतमागधवंदिनः ॥ गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुंदुभयो मुहुः ॥ ५ ॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहांतरः ॥ चित्रध्वज पताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥

प्रकारके दान दिये ॥ ४ ॥ ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़ने लगे, पुराणवक्ता पुराण बॉचने लगे, गायक वंशावली बखानने लगे, भाट बन्दीजन यश वर्णन करने लगे, गायक गुण गाने लगे और भेरी नगाडे जहां तहां बजने लगे ॥ ५ ॥ व्रजमें द्वार द्वार आंगन आंगन घर घर सब झाड बुहार रहे हैं और बजारोंमें गलियोंमें घाटोंमें बाटोमें, रजबाहोंमें, चौराहोंमें बुहारी लगाकर गुलाबके जलसे, केवडेके जलसे, केतकीके जलसे सेवतीके जलसे, खसके जलसे, चन्दनके जलसे, छिरकने लगे. सब गोकुल और महावन नन्दगॉव सुगन्धसे सुगन्धित कर दिया । सबने अपनें अपनें भवनोंकी शोभा निराले ही निराले ढंगकी बनादी सुन्दर स्फटिक मणिके द्वार सुवर्णके किवॉड, वैडूर्यकी देहरी, मूंगोंकी चौखट, जिनमें पुष्प बिखररहे, आमके पत्ते और फूलोंकी बन्दनवारें जहां तहां लटकरहीं, सुवर्णके कलश कलशियें द्वार द्वार पर विज्जुच्छटासी चमक रहीं, ध्वजास्तंभ

गड़रहे हैं, जिनमें चित्र विचित्र रंग ध्वजापताका फहराय रही हैं मोतियोंकी माला जहां तहां लटक रहीं हैं; मानो भवन भवनमें पुत्रजन्मोत्सव हो रहा है ॥ ६ ॥ जबहीं ग्वालिये गाय बछडोंको लेलेकर वनको चले, उसी समय एक गोप वृक्षपर चढकर पिछौरिया घुमाकर बोला, अरे भैया ! आज कोई व्रजवासी वनको मत जाना हमारे नन्दरायजीके पुत्रका जन्म हुवा है, यह बात सुनके सब ग्वाल बाल आनन्दमें मग्न होगये और सब अपनी अपनी गायोंका शृंगार बनाने लगे, पहिले तो छोटी छोटी गाय, बछड़े, बछियाओंको हलदी तेल लगाकर उबटन किया. फिर गेरू, मेंहदी, लाख, हरतालसे रँगा और बीच बीचमें हलदी और रोलीके थापे लगाये, जंगाल और सिंगरफसे उनके सींगरंगे और मोरछल जिनमें लटक रहे ऐसी शोभायमान झूलें उढायदीं, मोरछलकी कलगी न्यारी ही पहिराय दीं, गलेमें घण्टोंकी मालाका शब्द निराला ही सुनाई आता था और कोई कोई गोप अपने अपने घरोंसे सुनहरी आभूषणोंके डिब्बे और उत्तम उत्तम वस्त्रोंकी गठरी उठालाये, मोहनमाला, चन्दनहार, हमेल, पचलडी, चम्पाकली, धुकधुकी, बछडे बछियाओंके गलेमें डाल दिये, पाँवोंमें पावटे, घुंघरू, कडे झाँझन, पहराय दीं और ऊपरसे शाल

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ॥ विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकांचनमालिनः ॥ ७ ॥
महार्हवस्त्राभरणाः कंचुकोष्णीषभूषिताः ॥ गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥

दुसाले जरीकी ओढनी उढायदीं, इसप्रकार सबने अपनी अपनी गायोंका शृंगार किया ॥ ७ ॥ सब गोप ग्वाल सुन्दर सुन्दर सूही, बैंजनी ऐंठदार पागें बांध बांध और दोचार पेंच गलेमें डाल सुन्दर सुन्दर जामें पहरलिये, किसी किसीने काछ बांध लिये किसीकी लटकवां धोती, रेशमी दुपट्टे ओढ लिये और भाँति भाँतिके आभूषण सज सुन्दर शृंगार बनाये यमुनाकी रज मस्तकपर चढ़ाये, कन्धोंपर तलवारें धरे, कानोंमें फूलोंके तुर्रे उरसे हुए, शिरमें मोरके पंखोंकी कलँगी धरे, भारी भारी लड्डु लिये, पानसे मुख लाल करे थालोंमें भेंटें लिये गायोंको आगे आगे नचाते कुदाते गाते बजाते हँसते हँसाते, नन्दरायजीको बधाई देनेके लिये चले उस समय नन्दजीके द्वारपर बडी भारी भीर हुई उस छविको देख छविभी लज्जाकी मारी एक कोनेमें छिपी हुई, उस आनन्दको देख रही थी. इस उत्सवको देखनेके लिये स्वर्गसे ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक अनेक देवता अपनी अपनी स्त्रियोंको संगलिये मनुष्यरूप धारण किये गोपग्वालोंमें आनमिले और सब नन्दके द्वारपर पुकार पुकार बार बार यह कहते थे कि, आज नन्दघर बधाई है. उस समय नन्दजी ऐसे मग्न थे कि, अंगमें फूले नहीं समाते थे, और सबके हाथ पकड पकड अत्यन्त

आदर सत्कारसे कुशलक्षेम बूझ बूझ मखमलके बिछौनोंपर बिठाते जाते थे और बारबार सबको पान मिठाई दे देकर यह कहते थे कि, सब आप हीका प्रताप है दूसरे दिन यह शुभ संवाद समीप समीपके सब ग्रामोंमें भी पहुँच गया कि, नन्दजीके पुत्रका जन्महुआ. यह शुभ समाचार सुन सब व्रजवासी परमानन्द हो होकर इन इन ग्रामोंसे इथौरा, रीठा, कारब, रावल, लौहवन, महावन, राधाकुण्ड, बरसाना, गोपालपुर, विसौली, जसौली, विजौली, रसौली, मांठ,आंट, आढस, सुनर, वसई, छटीकरा, नरी, सेमरी, परासौली, कोठवन, मधुवन,बढैन, करहैला, नन्दीश्वर, नन्दगांव, बनेई,ऊंचागांव, चिकसौली, सुमहरा, कामवन, वृन्दावन, दीघम,होली,इत्यादि और अनेक गांवोंसे भेंटे ले ले कर चले तो वृद्ध वृद्ध जो गोप थे उन्होंनें भी अपना अपना शृंगार किया और युवा बालकोंका तो कहनाही क्या है, सुवर्णके थालोंमें हीरे, मणि,रत्न,पन्ना, पुखराज,हंसली, खंडुवे, कण्ठी, माला, कुरते टोपी, रोली, चन्दन, पान, मिठाई,मेवा,श्रीफल, घर घर कर सब व्रजवासी ड़फ,ढोल, झांझ,मृदंग, चंग, मुहचंग,उपंग, बजाते और गीत गाते धूम धाम मचाते नन्दरायजीके द्वारपर आये और उनको दण्डवत प्रणाम कर करके भेंटें उनके आगे धरीं उस समय नन्द

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ॥ आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राऽऽकल्पांजनादिभिः ॥ ९ ॥

नवकुंकुमकिंजल्कमुखपंकजभूतयः ॥ बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥

रायं उनको देख देख प्रसन्न हो हो बड़े बड़े गोपोंसे मिल मिल सबको आदर सन्मानसे आसन दे देकर बैठालते थे, सब गोप बोले कि, नन्दरायजी हम आपके भाग्यकी बडाई नहीं कर सक्ते आज आपका पूर्व पुण्य उदय हुआ, तुम बडे धन्य भागी हो, तुमने हमारे मनके मनोरथ सिद्ध किये और आज हमारे मनकेसा समाज सजा है, नन्दरायजी बोले कि, भैया ! यह सब तुमही लोगोंके पुण्यका प्रभाव है, नहीं तो बुढापेमें मेरा ऐसा भाग्य कहांथा जो यह परमानन्द प्राप्त हुआ । कोई केवडा छिडक रहा है, कोई गुलाब छिडक रहा है, कोई पुष्पोंकी माला पहिरावै है, कोई केशर और चन्दन लगावे है, मानो त्रिलोकीका आनन्द नन्दकेही घर छाय रहा है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब व्रजबालाओंने सुना कि, हमारी व्रजेश्वरीके पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब सब गोपियोंने सुन्दर सुन्दर शृंगार बनाय, मेहँदी, महावर, रचाय नवीन नवीन केशर कस्तूरी मिलाय, मस्तकपर तिलक लगाये, फिर पीछे रेशमी वस्त्र आभूषण पहन, नेत्रोंमें अंजन आंज नखशिखसे अलंकृत हुई ॥ ९ ॥ केशर मुखारविन्दपर मली हुई हैं, कटि लचकरही है नितम्ब जिनकेपुष्ट हैं, कुच चलायमान हैं भेंटें लेले कर नन्दरायजीके

मन्दिरको चलनेकी सब सुन्दरी अभिलाषा कर रहीं थी ॥१०॥ उज्वल मणियोंके जडाऊ कुण्डल कानोंमें शोभायमान हैं, अति सुन्दर मुक्ताओंके हार कुचोंके बीचमें लटक रहे हैं, मानो दोपर्वतोंके बीचमें गंगाकी धार बह रही है. हाथोंमें कंकण, चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये, कमलसेभी कोमल जिनके चरण उनमें अनवट, बिछुवे, नूपुर पगपान, पहिनरहीं, जब एक संग सब मिलकर पग उठावें उस समय पायल और नूपुरोंकी झनकार इस प्रकार हो मानो आनन्दमय घन गर्जें है, उस शब्दसे दशों दिशाओंका अमंगल दूर होता चला जाता है और क्षीणकटिकी लचकसे जो शरीर कम्पायमान होताथा तो जुड़ेसे मालती और मदनबाणके फूलोंके हार खसिखसिकर उनके चरणोंमें गिरते थे सो वह हार आपसे आप नहीं गिरते थे केश उन चरणोंकी अद्भुत शोभा देख देखकर रीझते थे और बार बार प्रसन्न हो होकर पुष्पोंके हार उनपर चढाते थे और दूसरा प्रयोजन यह भी था कि, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ थे यही हमको श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करानेके लिये चलते हैं, ऐसी ऐसी गोपियोंके झुण्डके झुण्ड नन्दजीके घरको चले

गोप्यः सुमृष्टमणिकुंडलनिष्ककंठ्यश्चित्रांबराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ॥ नंदालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोल कुंडलपयोधरहारशोभाः ॥११॥ ता आशिषः प्रयुंजानाश्चिरं पाहीति बालके ॥ हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिंचंत्यो जनमुज्जगुः ॥ १२ ॥ अवाद्यंत विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ॥ कृष्णे विश्वेश्वरेऽनंते नंदस्य व्रजमागते ॥ १३ ॥

जाते हैं, उस समयकी शोभाको कौन कवि वर्णन करसक्ता है ॥११॥ तब सब गोपिका नन्दरायजीके आँगनमें आनकर श्रीकृष्ण चन्द्रको आशीर्वाद देने लगीं. हे कृष्ण ! तुम चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो और हमारी बहुत दिनोंतक रक्षा करो. इस प्रकार बालकको आशिष देकर हलदीके चूर्णमें तैल और पानी मिलाय परस्पर छिड़कती छिड़काती गीत गाती आँगनमें केशर और चन्दनके रंगकी झारी और पिचकारी लिये धूम धाम मचारहीं थी ॥ १२ ॥ विश्वेश्वर विश्वभावन भगवान्के व्रजमें आतेही मनुष्योंके मनमें परमोत्सव बढा और मन्दिर मन्दिरमें भाँति भाँतिके बाजे बजने लगे, सब गोपिका श्यामसुन्दरका मुखारविन्द देख देख आनन्द हो हो न्यौछावर कर नन्दरानीसे कह रहीं थी कि, हे यशोदा ! तेरे पुत्रके तो चक्रवर्तीकेसे लक्षण हैं, चक्रादिक चिह्नोंके छिपानेके लिये अपने हाथोंकी मुट्ठी बांधली है तैने पूर्व जन्ममें भगवान्की बड़ी सेवा करी है जो ऐसा मनोहर पुत्र पाया है. यशोदा सबके पाओं पड़ पड़ कर कहती थी कि, इसमें मेरा क्या है यह सब

तुम्हाराही पुण्य हैं, सब गोपी आशिष देतीहैं कि, सदा सुहागन रहु और तेरा पुत्र युग युग जिये ॥ १३ ॥ व्रजवासियोंने उस दिन अत्यन्त प्रसन्न हो होकर घी, दूध, दही, माखन, जल, हलदी, मिला मिलाकर दधिकांदोंका प्रबन्ध किया, प्रथम नन्दरायको बुलाकर उनके ऊपर छिड़का फिर परस्पर ऐसा खेल मचा कि, जहां देखो तहां दधि माखनहीकी रेल पेल होरही थी, इस आनन्दको देवता विमानोंपर बैठे देख देखकर कहरहे थे कि, गोकुलवासियोंका धन्य भाग्य है, जिन परमपुरुष परमात्माका दर्शन शिव सनकादिकके ध्यानमें महा कठिनतासे आता है वह नन्दके घर जन्म लेकर व्रजवासियोंको आनन्द दिखारहे हैं और देवांगना पछिताय पछिताय कहरहीं थीं कि, हाय आज हम नन्दरायके घरकी दासीभी न हुई जो इस उत्सवके सुखको समीपसे देखकर अपने मनको प्रसन्नकरतीं, इसप्रकार दधिकांदोंके उत्सवमें सब व्रजवासी विह्वल होरहे थे ॥ १४ ॥ अतिउदारचित्त नन्दरायजीने सूत, मागध, बन्दीजन और जो जो गुणीजन गानेबजानेवालेथे सबको वस्त्र, आभूषण, गाय द्रव्य दानदिया और नन्दरा

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृतांबुभिः ॥ आसिंचंतो विलिंपंतो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥
नंदो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् ॥ सूतमागधबंदिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥ विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६ ॥

यसे सब वृद्धवृद्ध जनोंने कहा हे मित्र नन्द आज तो नाचनेका दिन है हमारे संग नाचलो, सो सबने नन्दजीका हाथ पकडकर इनको उठाया और सब व्रजवासी मग्न हो होकर नन्दकेसंग नाचने लगे और गोपियें बाजे बजाय बजाय गीत गाने लगी उस समयकी शोभाको देखकर सरस्वती हकी चकीसी हो चित्रकी समान होगई, फिर और कवियोंका क्या सामर्थ्य है जो उस मनभावनी सुहावनी शोभाका वर्णन करसकें ? ॥ १५ ॥ नन्दरायजी उदारचित्त पुत्रके कल्याणके लिये विष्णु भगवान्‌की आराधना करते थे और बारंबार यह वरदान मांगतेथे कि हे नाथ ! मुझपर प्रसन्नहोओ और यह मेरा बालक चिरंजीव रहै, इसीलिये नन्दजीके समीप जो जो गुणीजन आन आन कर जिस जिस वस्तुकी कामना करते थे, उनको वही वस्तु देंदेकर उनकी अभिलाषा पूर्ण करते थे और यथायोग्य उनका पूजनभी करते थे ॥ १६ ॥

नन्दरायजीके घर सब व्रजकी बहू और बेटी आईं परन्तु रोहिणीजी नहीं आईं क्योंकि इनके पति मथुरामें थे. लिखा है कि, जिस स्त्रीका पति परदेशमें हो उसको शृंगार करना नहीं चाहिये और पराये घर न जाय; इसलिये नन्दजीके घर न गईं तब नन्दजीने रोहिणीसे जाकर कहा कि तुमही तो बड़भागिनी ठहरी सोई हमारे घर न आईं हमारे घर बधाई होरही है तुमको अवश्य चलना पडेगा, वह घर तो आपहीका है तुम हमको ऊपरी मत समझो, वह तो सोवरमें बैठी है, केवल एक सुनन्दा है उसको ऊपरहीके काम बहुत हैं, आई गई गोपियोंका आदर सत्कार कौन करै, रोहिणी बोलीं कि, इतने तुम चलो तुम्हारे भतीजेको दूधपिलाकर मैंभी आऊं हूं, तब नन्दराय बोले कि, मेरें संगही तुमको चलना पड़ेगा क्योंकि वहां कामका कारीधारी सिवाय आपके कोई दृष्टि नहीं आता नन्दजीकी आज्ञानुसार सुन्दर सुन्दर वस्त्र, आभूषण, मुक्तामाला, कण्ठाभरण, पहन बलदेवजीको गोदमें ले प्रसन्न होती हुई नन्दजीके संग चली और दासीके हाथमें पान फूल मेवा मिठाईकी थाली देदी और यशोदाके समीप आय कृष्णका

रोहिणी च महाभागा नंदगोपाभिनंदिता ॥ व्यचरद्दिव्यवासस्स्रक्कंठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥
तत आरभ्य नंदस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ॥ हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥
गोपान्गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ॥ नंदः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥

मुख देख नौछावर कर नायनको दी और आंगनमें जो जो गोपी कुरता टोपी लिये बैठी थीं उनके हाथसे लेकर मन्दिरमें धरने लगीं और यथायोग्य उनका आदर सन्मान करने लगीं और सब गोपी यह आशिष देती थीं कि, सदा नन्दालयमें ऐसाही उत्सव बना रहे ॥ १७ ॥ जिस दिनसे व्रजमें कृष्णजन्म हुआ उस दिनसे सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे नंदजी परिपूर्ण होगये, नंदरायजी नित खजानेको लुटाते थे परन्तु फिर भाण्डागारको जैसेका तैसाही भरा पाते थे, क्योंकि वैकुण्ठनाथकी भार्या लक्ष्मी सो व्रजमें आय मालिनीका वेष बनाय द्वारद्वार बन्दनवार बांधती फिरती थी तहां और सम्पत्तियोंकी क्या गिनती है ! ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलदीपक ! एक दिन नंदरायजीने गोकुलकी रक्षा करनेके लिये बहुतसे गोपोंको सब प्रकारसे नियुक्त किया और आप कुछ ग्वालोंको संग ले और दूध, दही, माखन, मटकियोंमें भरभर कर गाडियोंमें लाद

और वार्षिक कर लेकर मथुराको कंसकी भटके लिये लेगये ॥ १९ ॥ अपने परमहितकारी नन्दरायजीका आगमन सुनकर वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए कि, आज हमारे मित्र नन्दजी कंसकी बरसौडी देनेके लिये आये हैं, जब नंदजी कंसको कर दे चुके और किसी स्थानपर आनकर विश्राम किया, उस समय वसुदेवजी कुछ भोजनादिक लेकर नन्दजीसे मिलनेको गये ॥ २० ॥ जैसे मृतक देहमें प्राण आनेसे देह उठ खड़ा होताहै ऐसेही वसुदेवजीको आये देख नन्दजी अकुलाकर शीघ्र खड़ेहोगये और अपने प्यारे सुहृदका हाथ पकडकर प्रेममें विह्वलहो हृदयसे लगाकर मिलनेलगे ॥२१॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नंदमागतम् ॥ ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥२०॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम्॥प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः ॥ प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ॥ प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥ २३ ॥ दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः ॥ उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥

हे राजन्! नन्दजीका वसुदेवजी पूजनकर सुखपूर्वक आसनपर वैठाय कुशल क्षेम बूझने लगे और अपने परम पियारे पुत्रोंमें जिनका मन अत्यन्त लगरहा था सो वसुदेवजी आदर सत्कार कर वोले॥२२॥अहो भ्राता नन्दजी तुम्हारे सन्तान नहीं होती थी और आपने पुत्र होनेकी आशाभी छोड़ दी थी क्योंकि बहुत वृद्धावस्था होगई थी, सो परमेश्वरकी कृपासे अव आपके पुत्र हुआ, यह सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए *॥ २३ ॥ इस संसारमें रहकर पुनर्जन्मकी नाईं आपका मिलना हुआ यह बड़े आनन्दका दिन है, सब मिलते हैं परन्तु संसारमें मित्रका मिलना बहुत दुर्लभ है ॥ २४ ॥

---

* शंका–वसुदेवजी ऐसे महात्मा होकर फिर उन्होंने अपने परममित्र नन्दजीके सग कपट क्यों किया ? जो सत्य वोलते कि, हमारे दो पुत्र आपके पास हैं आप रक्षा करो, क्योंकि विपत्तिमें सिवाय मित्रके और कोई दूसरा सहाय नहीं करसक्ता, ऐसा कहनेपर क्या श्रीकृष्णकी रक्षा नन्दजी न करते. कपटका क्या काम था ?

उत्तर–त्रिलोकीमें जो प्राणीहैं सो मायासे उन्मत्त हो रहे हैं, उसी प्रकार वसुदेवजीभी उन्मत्त होगये, जो कोई यह कहै कि विना कारण माया किसीको नहीं मोह करती, यह सव सत्य है, परन्तु वसुदेवजीको मोह होनेका क्या कारण था ? पहिले किसी समय नन्द और यशोदाको भगवान्ने यह वरदान दिया था कि हम जन्म तो दूसरेके यहां लेंगे परन्तु वाललीला तुम्हारे यहा करेंगे, इसलिये भगवान्ने मायासे मोहित करके कपट कराया, जो वसुदेव सत्य वोलते तो नन्दजी कृष्णकी पालना करते तो सही परन्तु कुछ भेददृष्टि रहती कि, दूसरेके पुत्र हैं इसलिये नन्दसे वसुदेवजीने कपट किया भावसे कपट नहीं किया ॥

अहो प्यारे ! नदीके प्रवाहसे काष्ठ और तृणादिक बहते हैं कभी स्थिर होते हैं परन्तु एक स्थानपर संगम नहीं होता. ऐसेही जो अपने प्यारे सुहृद् हैं उनका एक स्थानपर रहना नहीं होता ॥२५॥ हे नन्दजी ! बहुत जल, तृण और गुल्मलतायुक्त पशुओंका हितकारी जो अत्यन्त रमणीक महावन है तहां अपने सम्बंधियों सहित आप निवास करते हो वह महावन निरोग तो है ? इस वचनसे यह ध्वनि निकली कि, हमारे पुत्र जो आपके निवास स्थानपर वास करते हैं वह तो अच्छे हैं ? जहाँ जल, तृण अधिक होगा तो वहां गायोंकी अच्छी उदरपूर्ति होगी और दूधभी अधिक होगा और निरोग होगा तो उस दूधको हमारे पुत्र पियेंगे तो वह भी निरोग रहेंगे ॥ २६ ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे मित्र ! मेरा पुत्र अपनी जननीके संग आपके व्रजमें रहताहै और आपहीको अपना पिता समझताहै और आपही उस बालकके प्रतिपालकहैं, सो वह अपनी मातासहित प्रसन्न है ?

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ॥ ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५ ॥ कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यंबुतृणवीरुधम् ॥ बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥२६॥ भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ॥ तातं भवंतं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ॥ न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥ नंद उवाच ॥ अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ॥ एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ २९ ॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ॥ अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥

जो पुरुष अपने प्रियतम प्यारोंको संग लेकर धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पदार्थोंको करतेहैं और जो अपने प्यारे स्नेहियोंको छोडकर अकेले धर्म करते हैं, वा द्रव्यका भोग भोगतेहैं, अथवा काम विषयका भोग करते हैं तो यह त्रिवर्ग उनको सुखदायक नहीं होते॥२७॥२८॥वसुदेवजीके मधुर वचन सुनकर नन्दजी बोले कि अहो मित्र ! सब व्रजमें परमेश्वरकी कृपा है और आपके पुत्र बलरामजी भी अच्छे हैं उनके उत्पन्न होनेके पीछे मेरेभी एक पुत्र उत्पन्न हुआ है वहभी आपकी कृपासे अच्छा है, परन्तु आपकी ओरका हमको बडा दुःख बना रहता है ॥ २९ हे मित्र ! प्रारब्धही सर्वोपरि है, जिस समय पुत्रादिकोंका देनेवाला भाग्य हीन होजाता है उस समय वह पुत्रादिक भी नहीं होतेहैं, सब विछुड जातेहैं, और जब प्रारब्ध

अच्छा होताहै तो फिर सब आन मिलते हैं. हे भ्राता ! प्रारब्धही सुखका देनेवाला है और प्रारब्धही दुःखका देनेवाला है जो पुरुष इस प्रकार जानते हैं वह कभी मोहको प्राप्त नहीं होते. इस वचनसे यह सूचित किया कि, अहो वसुदेव ! अपने मनमें पुत्रोंका सोच संकोच मत करो किसी समय आपके पुत्रोंकाभी संयोग होजायगा,हमसे वियोग हो जायगा ॥ ३० ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे नन्दरायजी ! विधाताने जो हमारे भाग्यमें लिखा है उसको कोई नहीं मेटसक्ता और इस संसारमें आनकर ऐसा कौनहै जो कष्ट नहीं भोगता ? और आपकी समान अपना मित्र हम किसीको नहीं देखते. देखो हमने कंसके भयसे अपनी गर्भवती स्त्रीको आपके यहां निःसन्देह भेज दिया और जब उसके पुत्र हुआ तो आपने अपने पुत्रकी समान उसका लालन पालन किया, यह परमोपकार आपका मैं कैसे भूल सक्ता हूं ? जन्म जन्मांतरभी आपकी सेवा करूं तोभी उऋण नहीं हो सक्ता. जब सुना कि, आपके यहां पुत्रका जन्म हुवा तो मैंने परमसुख माना. हे मित्र ! मैं अपने पुत्रोंमें और आपके पुत्रोंमें कुछ भेद नहीं समझता

वसुदेव उवाच ॥ करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ॥ नेह स्थेयं बहुतिथं संत्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ इति नंदादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० नंदवसुदेवसंगमो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिंतयन् ॥ हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशंकितः ॥ १ ॥

परन्तु इन दिनों कंसने बडा उपद्रव मचा रक्खाहै छोटे छोटे बालकोंको मारनेकी आज्ञा देरक्खी है और आज एक पूतनानाम राक्षसीको गोकुल मेंभी भेजा है,अब तुम वार्षिककर कंसको देचुके और हमसे भी मिल चुके, अब यहाँ रहना तुम्हारा बहुत दिनतक अच्छा नहीं, न जानिये गोकुलमें पूतनाने क्या उत्पात मचाया होगा ? ॥३१॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीके वचन सुन नन्द रायने सब गोपोंको आज्ञा दी कि, शीघ्र गाडी जोतो ! यह कह वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर नन्दजी मथुरा पुरीसे गोकुलको चल दिये ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां कृष्णजन्मोत्सववर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥ दोहा—छठयेमें नंदरायजी,शोच करत मन जाहिं । मरी परी इक राक्षसी, देखी मारगमाहिं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! नन्दरायजी मार्गमें यह विचार करते हुए जारहे

थे कि वसुदेवका वचन तो मिथ्या होही नहीं सक्ता उत्पातके भयसे भगवान्का स्मरण करने लगे कि, हे जनप्रतिपालक ! जो यह दो बालक आपने दियेहैं तो इनकी रक्षाभी आपहीको करनी पड़ैगी ॥ १ ॥ महाघोर रूपवाली बालघातिनी पूतना नाम राक्षसी कंसकी पठाई हुई, जितने व्रजमें पुर ग्रामादिक थे सबमें बालकोंको मारती फिरती थी ॥२॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्के मनमें शंका हुई तो श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, वह पूतना नन्दजीके मन्दिरमें गई वा नहीं गई ? और गई तो क्या किया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! चिन्ता मत करो जहाँ परमेश्वरका यश और यज्ञादिक कर्म नहीं होते वहीं राक्षसी जा सक्ती है और अपना पुरुषार्थ करती है, और जिन स्थानोंमें भगवान्का स्मरण कीर्तन होता रहता है वहाँ राक्षसलोग क्या कर सक्ते हैं ? और नन्दजीके भवनमें तो साक्षात् अनन्त भगवान् विराजमान हैं फिर वहाँ पूतना बिचारी क्या कर सक्ती है ? आपही मारी जायगी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! अनेक राक्षस गांव गांवमें बालकोंको मारनेके लिये फिरते थे परन्तु तो भी कंसके मनमें धैर्य नहीं था और

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ॥ शिशूंश्चचार निघ्नंती पुरग्रामव्रजादिषु ॥२॥ न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ॥ कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥ सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नंदगोकुलम् ॥ योषित्वा माययाऽऽत्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥ ४ ॥ तां केशबंधव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितंबस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ॥ सुवाससं कंपितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुंतलभूषिताननाम् ॥ ५ ॥

आठोंपहर इसी सोचमें व्याकुल रहता था कि, उसी अवसरमें पूतना नाम राक्षसीको बुलाकर अपना सब वृत्तान्त कहा कि और किसीसे तो हमारा कार्य पूरा न हुवा परन्तु मुझको विश्वासहै कि, तुझसे हमारा काम सिद्ध होगा और बालकोंका तो मुझको थोडाही खटका है परन्तु गोकुलमें नन्दके जो पुत्र हुवा है उसका मुझको बडा भय है सो तू गोकुलमें जा और उसको किसी प्रकारसे मारके आ, मैं तुझको पूरा पारितोषिक दूंगा. यह बात सुनतेही पूतना कंसकी आज्ञा शिरपर धारणकर गोकुलको चलदी और मार्गमें यह विचार करती जाती थी की किसप्रकार नन्दकुमारको मारना चाहिये? फिर सोचा कि और किसीप्रकारसे यह कर्म नहीं होगा, गोपीका वेष बनाकर बधाई देनेके मिष नन्दके घर जाऊं और छलबल कर उस बालकको मार आऊँ ऐसा विचार, बन ठन गोकुलमें पहुँची॥४॥उसकी चोटीमें मालतीके फूल गुँथे हुये थे, बडे२ नितम्ब और छोटे छोटे स्तनोंके भारसे कटि जिसकी

नीचेको झुकी जातीथी, सुन्दर सुन्दर वस्त्र धारण कररहीथी, कानोंमें कर्णफूल, कुण्डलोंकी छवि शशिको लज्जित कररहीथी और केशोंसे जिसका मुख शोभायमान होरहा था॥५॥मन्द मन्द मुसकान और बाँकी चितवन व्रजवासियोंके मनको मोहित करनेवाली, बेखटक राजभवनमें चली गई और द्वार पालोंपर ऐसी मोहिनी डाली कि, किसीने उसको नहीं रोका और उसके हाथमें एक कमलका फूलथा उसको देखकर सब गोपियोंने कहा कि, यह लक्ष्मी अपने पति नारायणके दर्शनके लिये आई हैं और यशोदा रोहिणीनेभी यही जाना॥६॥बालकोंको ग्रहरूप जो पूतनाहै सो छोटे २ बालकोंको खोजती हुई नन्दजीके मंदिरमें आई जहां दुष्टोंके मारनेवाले भगवान्, भस्ममें दबी हुई अग्निके समान बालकरूपमें अपने तेजको छिपाये शय्यापर पड़े सोरहे थे उनको देखा॥७॥स्थावर जंगम प्राणियोंके अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने उस बालघातिनी पूतनाको देखकर आंखें मीचली और हँसकर चुप होरहे, उस दुष्टा

वल्गुस्मितापांगविसर्गवीक्षितैर्मनो हरंतीं वनितां व्रजौकसाम् ॥ अमंसतांभोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नंदगृहेऽसदंतकम् ॥ बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥७॥ विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः ॥अनंतमारोपयदंकमंतकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥ तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यांतरा कोशपरिच्छदासिवत् ॥ वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम्॥९॥ तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्वणं घोरांकमादाय शिशोर्ददावथ॥ गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥

ने आतेही कालरूप भगवान्को गोदीमें उठालिया, जैसे कोई अज्ञानी पुरुष रस्सी समझकर सोते हुये साँपको उठालेता है॥८॥जैसे मखमलके म्यानकी तलवार ऊपरसे मनोहर और भीतरसे महातीव्र तीक्ष्णधारावाली होती है, ऐसी पूतनाको देख चकित होकर रोहिणी और यशोदा देखती रही मुखसे कुछ न कहा, तब एक गोपी बोली कि, तू कौनहै ? तब उस कपटिन पूतनाने कहा कि, मैं देवांगना हूं तुम्हारे यहां बधाई देने आई हूं इस मनोहर बालकको देखकर जी खिलानेको चाहा इसलिये गोदमें लेलिया; परमेश्वर करै यह बालक करोड़ वर्ष जीता रहै ॥९॥ ऐसी रीति प्रीति भरी बात चीतकर उस कपटरूप पूतनाने चुमकारके कृष्णको गोदमें ले लिया और भयानक विष लगा हुआ अपना स्तन उनके मुख कमलमें दे दिया,

तब तो कुपित होकर कृष्णचन्द्रने दोनों हाथोंसे स्तन उसका पकड़के प्राण सहित स्तनको औषधि समझकर पीगये ॥ १० ॥ तब पूतना बोली,अरे लाला!छोडदे छोडदे मेरे प्राण चले बस रहनेदे मेरा अपराध क्षमाकर मेरे शरीरमें अत्यन्त पीडा होतीहै,जब नेत्र फटने लगे तो पुकारी अरी यशोदा!अरी यशोदा! अपने लालसे मुझको छुटा, मैं मरी,यह तेरा बालक मनुष्य नहीहै,यह तेरी कोखमें कोई महाबलवान् देवता उत्पन्न हुवा है यह कहतीही कहती हाथ पांव पीटकर मरगई ॥ ११ ॥ महा गम्भीर पूतनाके शब्दसे पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पायमान होगई, ग्रहतारागणसहित सब आकाशमण्डल चलायमान होगया,रसातल और दिशाओंमें घोर शब्द पूरित होगया, इन्द्रवज्रपातहोनेकी शंकासे मनुष्य पछाड़ खाखाकर पृथ्वीपर

सा मुंचमुंचालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाऽखिलजीवमर्मणि॥ विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा ॥ रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ॥१२॥ निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ॥ प्रसार्य गोष्ठे निज रूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥१३॥ पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यंतरद्रुमान् ॥ चूर्णयामास राजेंद्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥ ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकंदरनासिकम् ॥ गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥

गिरगये. ❋ ॥ १२ स्तनोंकी व्यथासे प्राण जिसके निकलगये और मरती समय कपटरूप जिसने अपना त्याग दिया,राक्षसीरूप प्रगट करलिया जैसे मरनेके समय वृत्रासुर कपट तजकर भूतलपरगिरा था, इसीप्रकार पूतनाभी हाथ पांव पसारके पृथ्वीपर गिरी ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जिस समय पूतना मरकर पृथ्वीपर गिरी उस समय छह कोशके बीचमें जो वृक्ष थे उनका चूर्ण होगया ॥ १४ ॥ उस महाभयानक रूपवाली पूतनाके मुँखमें हलकी समान दाढें और पहाड़की कन्दराकी समान जिसकी नाक, पर्वतके शृंगकी सदृश जिसके स्तन और महाभयंकर

* शंका—कंसकी भेजी हुई पूतनाने मरते समय ऐसा गम्भीर शब्द किया कि, तीन लोक कम्पायमान होगये, बड़ा आश्चर्य माळूम पडता है, हम लोगोंने तो कभी नहीं सुना, राक्षसीके शब्दसे तीनों लोक कांप उठे ?

उत्तर—जब पूतनाने मरतेसमय शब्द किया उस समय गुप्त होकर तीन लोकमें स्थित जो प्रजा थी सो सब श्रीकृष्णके दर्शनके लिये व्रजमें आये थे सो सब प्रजागण पूतनाके शब्दको सुनके शीघ्र काँपने लगे इसलिये तीन लोकका नाम व्यासजीने कहा था, क्योंकि लोक प्रजाका भी नाम है लोकमें और प्रजामें कुछ भेद शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता.

लोहित रंगके जिसके बिखरे हुए केश थे ॥१५॥ अन्धकूपकी नाई गम्भीर गम्भीर जिसके नेत्र, जैसे पुल बँधा होय तैसे हाथ पांव जंघा जिसके, सूखे सरोवरके समान जिसका उदर है ॥ १६ ॥ ऐसा महाभयानक पूतनाका देह देखकर गोप गोपी अत्यन्त भयभीत हुए. क्योंकि उसके गम्भीर शब्दसे पहिलेही उनके हृदय, कान, मस्तक, फटगये थे ॥ १७ ॥ उस पूतनाकी छातीपर निःशंक श्रीकृष्णचन्द्र क्रीडा कर रहे थे, सब गोपी जो हड़बड़ाई हुई व्याकुल फिरती थीं झटपट उस राक्षसीके ऊपरसे उठाकर हृदयसे लगालिया ॥१८॥ सबगोपी और यशोदा रोहिणी ब्रजनन्दनके गायकी पूँछसे झाडा देकर फूंक मारने लगीं और अनेक विधियोंसे रक्षाकर उतारे उतारे ॥ १९ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेको गोमूत्रसे स्नान कराय

अंधकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ॥ बद्धसेतुभुजोर्वंघ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ॥ पूर्वं तु तन्निस्स्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥ बालं च तस्या उरसि क्रीडंतमकुतोभयम् ॥ गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ॥ रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥१९॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम् ॥ रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः ॥ २० ॥ गोप्यः संस्पृष्टसलिला अंगेषु करयोः पृथक् ॥ न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥ अव्यादजोंघ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ॥ हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तुकंठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥

गोरजमें लुटाय गोबर लगाय द्वादश अंगोंमें केशवादिक द्वादश नामोंसे रक्षा करने लगीं ॥२०॥ सब गोपियोंका मन जो व्याकुल होरहाथा इसलिये पहिले कुछ श्रेष्ठ उपाय न करसकीं. फिर सावधान हो स्वस्थ चित्त कर सब गोपी स्नानकर आचमन ले अपने अंगोंमें तथा करोंमें पृथक् पृथक् अंगन्यास और करन्यास करके फिर नन्दनन्दनके शरीरमें बीजन्यास किया ॥२१॥ हे यशोदानन्दन! अजन्मा भगवान् तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करैं, अणिमान् भगवान् तुम्हारे उरुओंकी रक्षा करैं, यज्ञ भगवान् तुम्हारी जंघाओंकी रक्षा करैं, अच्युत भगवान् तुम्हारी कटिकी रक्षाकरैं, हयग्रीव भगवान् तुम्हारे उदरकी रक्षा करैं, केशव भगवान् तुम्हारे हृदयकी रक्षाकरैं, विष्णु भगवान् तुम्हारी भुजाओंकीरक्षा करैं, उरुक्रम भगवान् तुम्हारे मुखारविन्दकी

रक्षा करें, ईश्वर भगवान् तुम्हारे माथेकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी भगवान् तुम्हारे अग्रभागकी रक्षा करें, गदाधर भगवान् तुम्हारे पश्चाद्भागकी रक्षा करें, धनुषधारी मधुनामदैत्यके हन्ता भगवान् और खड्गधारी अजन्मा भगवान् यह दोनों तुम्हारे दाहिने और बायें पार्श्वकी रक्षा करें, शंखधारी उरुगाय भगवान् चारों कोनोंकी रक्षा करें, उपेन्द्र भगवान् तुम्हारे ऊपरकी रक्षा करें, तार्क्ष्य भगवान् नीचे पृथ्वीमें रक्षा करें, हलधर भगवान् सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें ॥ २३ ॥ हृषीकेश भगवान् तुम्हारी इन्द्रियोकी रक्षा करें, नारायण भगवान् तुम्हारे प्राणोकी रक्षा करें, श्वेतद्वीपाधिपति भगवान् तुम्हारे चित्तकी रक्षा करें, योगेश्वर भगवान् तुम्हारे मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ भगवान् तुम्हारी बुद्धिकी रक्षा करें, पर भगवान् तुम्हारे आत्माकी रक्षा करें, विहारके समय गोविन्द भगवान् तुम्हारी रक्षा करें, शयनके समय माधव भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥ २५ ॥ वैकुण्ठनाथ भगवान्

चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ॥ कोणेषु शंख उरुगाय उपर्युपेंद्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समंतात् ॥ २३ ॥ इंद्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ॥ श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भश्च ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः क्रीडंतं पातु गोविंदः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥ व्रजंतमव्याद्वैकुंठ आसीनं त्वां श्रियःपतिः ॥ भुंजानं यज्ञभुक्पातु सर्वग्रहभयंकरः ॥ २६ ॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्मांडा येऽर्भकग्रहाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥ कोटरारेवतीज्येष्ठापूतनामातृकादयः ॥ उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेंद्रियद्रुहः ॥ २८ ॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये सर्वे नश्यंतु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ॥ पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥

चलने फिरनेके समय तुम्हारी रक्षा करें, लक्ष्मीपति भगवान् बैठनेके समय तुम्हारी रक्षा करें और सर्व ग्रहोंके भयसे दूर करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥ २६ ॥ डाकिनी, शाकिनी, यातुधान, कूष्माण्ड, बालग्रह भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायकगण ॥ २७ ॥ कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृकादिक जो राक्षसी हैं सो और उन्माद, अपस्मारादिक जो जो रोगके करनेवाले देह, प्राण, इन्द्रियोंके द्रोही हैं ॥ २८ ॥ और जो जो स्वप्नमें देखनेके उत्पात हैं वृद्ध ग्रह, बाल ग्रह, योगिनी, वेताल, जो समस्त विष्णु भगवान्के नाम लेनेसे डरतेहैं सो सब नष्ट होजॉय ॥ २९ इस प्रकार हाथ जोड गोपियोने विष्णुभगवान्की प्रार्थनासे रक्षा करके श्रीयशोदानन्दनको यशोदाको सौंपदिया

तब यशोदाजीने मनमोहनप्यारेको दूध पियाय घरमें छिपायके शय्यापर सुवायदिया ॥ ३० ॥ उसी अवसरमें नन्दादिक व्रजवासीभी मथुरासे आगये, तब मार्गमें मरीहुई पूतनाको पडी देखकर बड़ा आश्चर्य माना ॥ ३१ ॥ नन्दजी कहनेलगे कि, वसुदेवजी तो निश्चय कोई ऋषि वा योगेश्वर जान पड़ते हैं, क्योंकि जो कुछ उन्होंने हमसे कहा था वही हुवा. हमसे कहा था कि, तुम शीघ्र मथुरासे गोकुलको जाओ वहां कोई नया उत्पात होनेवाला है, सो आतेही नेत्रोंसे देखलिया ॥ ३२ ॥ पीछे सब गोकुलवासियोंने पूतनाके देहको कुल्हाडोंसे काट काटकर घरोंसे दूर लेजाकर चितामें धर उसको फूँकदिया ॥ ३३ ॥ जिस समय पूतनाका शरीर जलने लगा तो उसकी चितामेंसे अगरकीसी सुगंधिका धुवाँ निकलने लगा

तावन्नंदादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ॥ विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥ नूनं वतर्षिः संजातो योगे
शो वा समास सः ॥ स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ॥ दूरे
क्षिप्त्वाऽवयवशो न्यदहन्काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ॥ उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्य
हतपाप्मनः ॥ ३४ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ॥ जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽऽप सद्गतिम् ॥ ३५ ॥
किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ॥ यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥ पाद्भ्यां भक्तहृ
दिस्थाभ्यां वंद्याभ्यां लोकवंदितैः ॥ अंगं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम् ॥ ३७ ॥ यातुधान्यपि सा स्वर्ग
मवाप जननीगतिम् ॥ कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने उसके स्तन जो पान किये थे इससे सब पाप उसके दूर होगये ॥ ३४ ॥ जगतके बालकोंकी मारनेवाली और रुधिरकी प्यासी पूतनाने भगवान्को स्तन पिलाकर मारनेकी इच्छा की परन्तु भगवान्ने तोभी उसको मोक्ष दिया ॥ ३५ ॥ फिर श्रद्धा और भक्तिकरके श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्को माता अत्यन्त प्रिय पदार्थोंकी देनेवाली मुक्तिको पावै तो क्या आश्चर्यकी बात है ? ॥ ३६ ॥ अपने जनोंके हृदयमें वास करनेवाले और लोकवन्दित देवताओंके भी पूजनीय ऐसे जो देवताधिपति ब्रह्मा जिनको प्रणाम करैं ऐसे चरणारविन्दोंसे पूतनाका अंग दाबकर श्रीकृष्णचन्द्रने स्तन पान किया ॥ ३७ ॥ माताकी गति स्वर्ग है उस गतिको पूतना राक्षसीने प्राप्त किया और जिन गायों, गोपियोंका दूध

श्रीकृष्णचंद्रने पिया है जो वह सुन्दर गतिको प्राप्त होयँ तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३८ ॥ मोक्षको आदिलेकर समस्त पदार्थोंके देनेवाले देवकीके पुत्र भगवान्ने पुत्रके स्नेहसे गाय और गोपियोंका दूध परिपूर्ण होकर पिया ॥ ३९ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रमें पुत्रभाव माननेवाली उन माता और गोपियोंको अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला संसार न होगा ॥४०॥ व्रजवासी लोग पूतनाकी चिताके धुयेंकी सुगंधि सूँघकर परस्पर कहने लगे कियह आज क्या है ? और यह सुगन्धि कहांसे आती है ? यह कहतेहुए नन्दादिक गोकुलमें आये ॥४१॥ तब ग्वालबालोंके मुखसे पूतनाका आना और उसका मरना और कुशलपूर्वक बालकका बचना सुनकर नन्दादिक व्रजवासी बड़ा आश्चर्य माननेलगे ॥४२॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! उदारबुद्धि नन्दजी मथुरासे आनकर पुत्रको गोदमें लेकर परमानन्दको प्राप्त हुए और बारंबार उसके शिरको सूंघ सूंघ मनही मनमें प्रसन्न

पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ॥ भगवान्देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥ तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ॥ न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसंभवः ॥ ४० ॥ कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ॥ किमिदं कुत एवेति वदंतो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ॥ श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥ नंदः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३ ॥ य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविंदे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० पूतनामोक्षो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

होते थे और चूम चूमकर प्यार करते थे ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्ने बूझा कि, हे भगवन्! यह पूर्वजन्ममें पूतना कौन थी ? जिसको श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने ऐसी उत्तम गति दी ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, प्रथम जन्ममें यह राजा बलिकी कन्या थी और रत्नमाला इसका नाम था, जिस समय वामनजीके स्वरूपको इसने देखा तो मनहीमनमें यह कामना करी कि, जो ऐसा सुन्दर सुत मैं पाऊं तो हृदयपर रखकर स्तनपान कराऊं. श्रीभगवान् वासुदेव सर्व घटघटके वासी उसके हृदयकी गति जानकर उससे कहा कि, कृष्णावतारमें तेरी मनोकामना पूर्ण करूंगा. दैत्यकुलमें जो इसका जन्म था इसलिये तामसी देहके कारण राक्षसकेही घरमें जन्म लिया और पूतना नाम हुवा ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, शकटासुरहि गिराय। माताको मुखमें दिये, तीनों लोक दिखाय॥ १॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे प्रभो! छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सब प्राणियोंके दुःखोंके दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जिन जिन अवतारोंको धारण करके जो जो लीला करी हैं वह सब मेरे कानोंको और मेरे मनको प्रिय लगती हैं ॥१॥ जो मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्रोंकी कथा दिन रात सुनतेहैं उनके मनकी ग्लानि जाती रहती है और अनेक प्रकारकी तृष्णाभी दूर हो जाती हैं, शीघ्रही सम्पूर्ण अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है, भगवान्में भक्ति और प्रेम बढताहै और हरिभक्तोंसे मित्रता होतीहै इसलिये अनुग्रह करके श्रीकृष्णके मनोहर चरित्र मुझको सुनाओ ॥ २ ॥ और अनन्त मनुष्य देह धारणकर मनुष्योंकीसी लीला

राजोवाच ॥ येनयेनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥ करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ॥ मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुंधतः ॥ ३॥ श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ॥ वादित्रगीतद्विजमंत्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥ नंदस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ॥ अन्नाद्यवासस्स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः॥ ॥ ५ ॥ औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः ॥ नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥

करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रका मनोहर अद्भुत बालचरित्र हमारे सामने वर्णन करो ॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब बहुत दिन व्यतीत हुए तो श्रीकृष्णकी वर्षगाँठके उत्सवका दिन आया और उसी दिन जन्मनक्षत्रका योगभी आगया तो उस दिन महामंगल हुवा और सब गोपिकाभी बधाई लेलेकर आईं. नन्दरानी यशोदाजीने बाजे बजवाये, गीतगवाये, ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन पढवाये और श्रीकृष्णचन्द्रको अभिषेक स्नान कराने लगीं ॥४॥ जब स्नान करवाया तो बालमुकुन्दके नेत्रोंमें निद्रा आगई, तब सहजसे श्रीकृष्णको गाड़ेके नीचे पालनेमें व्रजरानीने थपकोरके सुलादिया ॥ ५॥ भगवान्की बधाई लेनेसे जिनके मनमें अत्यन्त हर्ष बढ़रहा था, वह यशोदारानी उदारचित्त घर आईहुई गोपियोंका आदर

सन्मान कररही थी और ऐसी मग्न होरही थी कि, अपने पुत्रके रोनेका शब्दभी नहीं सुनसकीं, कृष्णको भूख लगी तो दूध पीनेकी इच्छा हुई, तब रोते २ पॉव ऊपरको उठा लिये ॥६॥ गाड़ेके नीचे पालनेमें सोतेहुए श्रीकृष्णके अति छोटे २ कोमल कमलसे जो चरणारविन्द लाल लाल मूंगोंके रंगथे, उन चरणोंकी ठोकरसे गाडा गिरपडा और अनेक प्रकारसे रसोंसे भरे तांबे, पीतलके बासन गिरपड़े, पहिये न्यारे न्यारे उखडकर गिरगये, धुरी निकलगई, जुआ टूटगया ॥७॥ यशोदा आदि लेकर जो जो व्रजकी स्त्रियें थीं और जो जो भेंटें लेकर वसुदेवके घर उत्सवमें आई थीं, और नन्दजीसे आदि लेकर जो जो व्रजवासी थे, सो सब उस आश्चर्यको देखके व्याकुल होगये कि, आपसे आप गाडा किस प्रकार टूट पडा ॥८॥ कोई कुछ कोई कुछ परस्पर विवाद करके कहने लगे और मनही मनमें व्याकुल थे परन्तु किसीको कुछ निश्चय नहीं हुआ तब नन्द यशोदासे समीपके खेलनेवा

अधश्शयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वंघ्रिहतं व्यवर्तत ॥ विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्न कूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ॥ नंदादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥ (इति ब्रुवंतोऽतिविवादमोहिता जनाः समंतात्परिवव्रुरार्तवत्) ॥ ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः ॥ रुदताऽनेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बाल भाषितमित्युत ॥ अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥ रुदंतं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ॥ कृतस्व स्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥

ले बालकोंने कहा कि, तुम किसी बातका सन्देह क्यों करते हो, हमने अपनी आँखोंसे देखा कि, रोते रोते श्रीकृष्णने पॉवकी ठोकर मारी इससे यह शकट उलटकर गिर पड़ा, इसमें किंचिन्मात्रभी सन्देह नहीं ॥९॥ बालक समझकर श्रीकृष्णके अनन्त बलको किसीने नहीं जाना, इसलिये उन बालकोंकी बातका किसीने विश्वास नहीं माना और कहने लगे कि, कहां श्रीकृष्णके कोमल कमलसे चरण और कहां यह महा कठोर शकट, छोटेसे बालककी ठोकरसे कैसे टूट सक्ता है ? भाई हमको तो किसी प्रकार विश्वास नहीं आता ॥ १० ॥ यशोदाने रोते हुये अपने पुत्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया और कहने लगी आज कोई बडा खोटा ग्रह हमारे ऊपर आगया था परन्तु तुम

पंचोंके प्रतापसे मेरा बालक बचा. उसीसमय ब्राह्मणोंको बुलाय बहुतसा दान पुण्य कर स्वस्तिवाचन पढवाकर व्रजभूषण प्यारेको दूध पिलाया और बारबार यही विचार करती रही कि, कहीं डर न गया हो ॥ ११ ॥ परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको न जाना और ब्राह्मणोंके कहनेसे आठों दिशाओंमें बलिदान करके और सम्पूर्ण वस्तु धरके गाड़ा रख दिया और ब्राह्मणोंने नवग्रहादिकोंका पूजन होम कराय; दधि, अक्षत, फल, फूल, कुश, चन्दन मँगाय जलसे गाडेका पूजन किया, देखो ! प्रेमी व्रजवासियोंका धान्य खाखाकर व्रजके ब्राह्मणभी प्रेमी हो गये जो गाड़ेका पूजन किया ॥ १२ ॥ निन्दा, झूंठ, पाखण्ड, ईर्षा, हिंसा,अभिमान नहीं है जिन पुरुषोंके उन सत्यवादी ब्राह्मणोंका अशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ॥ ॥ १३ ॥ यह बात मनमें विचारकर नन्दरायजी श्रीकृष्णको गोदमें लेकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंसे शुद्ध और पवित्र

पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ॥ विप्रा हुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशांबुभिः ॥ १२ ॥ येऽसूयानृतदंभेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ॥ न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥१३॥ इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः॥ जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नंदगोपः समाहितः ॥ हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥ गावः सर्वगुणोपेता वासस्स्रग्रुक्ममालिनीः ॥ आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्व जत ॥ १६ ॥ विप्रा मंत्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ॥ ता निष्फला भविष्यंति न कदाचिदपि स्फुटम्॥ ॥ १७ ॥ एकदाऽऽरोहमारूढं लालयंती सुतं सती ॥ गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥

औषधियोंके पानीसे पुत्रका अभिषेककरातेभये॥१४॥फिर स्वस्तिवाचन और अग्निमें होम करातेभये नन्दरायजी और सब गोप गोपियोंने सावधान होकर श्रेष्ठ गुणकारी अन्नका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥ १५ ॥ सर्वगुणवाली गायोंको सुन्दर सुन्दर वस्त्रोंकी झूलें उढाय, स्वर्ण, चांदी और पुष्पोंकी माला आभूषण पहिराय, कञ्चनसे सींग मढाय पुत्रके कल्याणके लिये दीं और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लिया ॥ १६ ॥ वेद मंत्रोंके जाननेवाले योग्य ब्राह्मणोंने जो जो आशीर्वाद दिये सो उसी प्रकार होंगे. क्योंकि ब्रह्मवाक्य किसी समय निष्फल नहीं होते, यह बात शास्त्र और पुराणोंसे प्रकट है ॥ १७ ॥ एक दिन नन्दरानी श्रीकृष्णको लाड लडा लडाकर प्यार कर रही थी, उसी ससय श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतके समान अपने

शरीरका भार बढाया कि, वह भारी भार यशोदाजीसे सम्हारा न गया, बोझ बढानेका कारण यह है कि, श्रीकृष्णने जाना कि, जो मैं माताकी गोदमें रहा तो यह जो मेरे सन्मुख तृणावर्त्त उपस्थित है सो यह मेरी मातासहित मुझको उठाकर ले जायगा, इसलिये मुझको कष्ट होय तो होय परंतु मेरे कारण मेरी माताको कष्ट न होय ॥ १८ ॥ यशोदाने श्रीकृष्णमें भारी भार समझकर बड़ा आश्चर्य माना और बोझसे अति पीडित होकर त्रिलोकीनाथको पृथ्वीपर बैठालकर परमेश्वरका ध्यान करने लगी और मनही मनमें विचार करने लगी कि, आज मेरे कन्हैयामें इस प्रकार बोझ क्यों होगया ? इसी शोच विचारमें घरके कार्यमें लगगई ॥ १९॥ कंसका अनुचर जो तृणावर्त्त महाबलशाली था, कंसने

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ॥ महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥ दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ॥ चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ॥ ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥ २१ ॥ मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसातमसा वृतम् ॥ सुतं यशोदा नापश्य त्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥ नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ॥ तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ ॥ २३ ॥ इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ॥ अतिकरुणमनुस्मरंत्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४ ॥

कृष्णके मारनेके लिये उसको भेजा, वह पवनके बवूलेका रूप धरकर आया और पृथ्वीपर खेलते हुए कृष्णको उड़ाकर लेगया ॥ २० ॥ सब गोकुल धूरिसे आच्छादित होगया और ऐसी धूरि उडी कि सबकी आँखें मिचगईं और अन्धकार हो गया, उसके घोरशब्दसे दिशा विदिशाओंमें सन्नाटा होने लगा ॥ २१ ॥ दो घडी तक गोकुलमें अन्धकार छायरहा, यशोदा व्रजभूषणके उठानेको आँगनमें दौडी आई, देखा तो वहाँ कृष्णका पता भी नहीं ॥ २२॥ तृणावर्तने कंकरी,ठीकरियोंकी बडी भारी वर्षा करी जिससे सब गोकुलवासी मोहको प्राप्त होकर अपनेही आपको न देखसके फिर दूसरेका देखना तो महाकठिन था ॥२३॥ इस प्रकार महाकठिन धूरिकी वर्षा होनेसे और आँधीके चलनेसे यशोदाने ढूँढते ढूँढते

कहीं भी व्रजभूषण प्यारेको नहीं पाया, तब अत्यन्त व्याकुल हो मरेहुए बछड़ेवाली गायकी नाईं निर्बल होकर पृथ्वीपर गिरपड़ी और करुणा भरे वचन कह कहकर शोच करने लगी ॥ २४ ॥ उस समय यशोदाका रुदन सुनकर पशुपक्षियोंकाभी हृदय विदीर्ण होताथा, अत्यन्त पीड़ित और महाव्याकुल हुई नेत्रोंमें आंसू भरे गोपियें श्रीकृष्णके विना देखे रोरोकर प्राण त्यागनेको प्रस्तुत थीं ॥ २५॥ इतनेमें धूलिबर्षा, ऑधी तो थमगई और बबूलेका रूप धरनेवाले तृणावर्त्त दैत्यका वेग, सब धरणीके धारण करनेवाले विश्वनाथ भगवान्के उठा लेजानेसे आकाशको न उडागया तो शान्त होगया, इसी कारण उस दैत्यसे अधिक भारी भार लेकर ऊपरको न उडागया * ॥ २६ ॥ जब तृणावर्त्तको

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ॥ रुरुदुरनुपलभ्य नंदसूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥ ॥ २५ ॥ तृणावर्तः शांतरयो वात्यारूपधरो हरन् ॥ कृष्णं नभो गतो गंतुं नाशक्नोद्भूरिभारभूत ॥ २६ ॥ तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ॥ गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ॥ अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥ तमंतरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ॥ पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदंत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥

बहुत बोझ ज्ञात होने लगा तब यह जाना कि, मैं किसी बडे पत्थरको उठालायाहूं, क्या कोई वज्र मेरे हाथमें है ! यह कह श्रीकृष्णसे छूटनेकी इच्छा करने लगा, परंतु श्रीकृष्णने उसका कण्ठ ऐसा गहिकर पकडा था कि, वह किसी प्रकार न छूट सके ॥ २७ ॥ कण्ठके घुटनेसे उसकी चेष्टा हत होगई, नेत्र निकलपडे, मुखसे शब्द न निकल सका, प्राणहीन होकर वह तृणावर्त दैत्य श्रीकृष्णसमेत गोकुलमें गिरा ॥२८॥ जैसे महादेवके बाणका मारा त्रिपुरासुर पृथ्वीपर गिरा था, ऐसेही आकाशसे वह विकराल दैत्य शिलाके ऊपर गिरा, जिसके सब अंग टूटकर चूर होगये, यह महा

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द मुनिमनरञ्जन भक्तभयभञ्जन भगवान्का नाम है, फिर कृष्णचन्द्रने अपनी माताको और व्रजवासियोंको दु खी करके और अपनी माताको रुवायके अपनी देहमें भारको बढाया तो जब तृणावर्त्त हरिको हरिके ले चला तब भगवान्ने अपनी देहमें भार क्यो नहीं बढाया, जो राक्षसके उठानेसे न उठते तो सबको कष्ट क्यों होता ?

उत्तर–ब्रह्माने पहिले तृणावर्त्तको वरदान दिया था, तेरे किये दु.खकरके यशोदाकी आँखोंसे आंसू गिरेंगे तब तेरी मृत्यु होगी इसलिये श्रीकृष्णने अपनी देहमें भार नहीं बढाया ॥

भयानकरूप उस तृणावर्तका रोती हुई व्रजबालाओंने देखा ॥ २९ ॥ उस तृणावर्तकी छातीके ऊपर निर्भय खेलता हुवा श्रीकृष्णको भी देखा, सो तुरंत गोपियोंने दौडकर श्रीकृष्णको उठा, यशोदाकी गोदमें दे दिया और बड़ा आश्चर्य मानकर सब गोपी यह कहने लगीं कि, बालकको उठाकर यह राक्षस आकाशमें लेगयाथा, सो यह बालक मृत्युके मुखमेंसे फिर निकलकर आया है ॥ ३० ॥ नंदादिक गोप और गोपिका श्रीकृष्णको पाकर परमानंदको प्राप्त हुए और परस्पर कहने लगे कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि, देखो इस राक्षसने इस बालकके मारनेमें कुछभी कसर नहीं रक्खी, परंतु भगवान्नें इसको बचाया और यह दुष्ट अपने पापसे आपही मरगया और यह बालक साधुकी समान है, इसलिये इस दुष्टके हाथसे छूट आया, साधु पुरुष अपनी समताके भयसे छूटजाते हैं ॥ ३१ ॥ देखो हमने ऐसा कौनसा भारी तप किया है ? क्या भगवान् वासुदेवका पूजन

आदाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लंबमानम् ॥ तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ गोप्यश्च गोपाः किल नंदमुख्या लब्धाशिषः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥ अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ॥ हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ॥ यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबंधून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नंदगोपो बृहद्वने ॥ वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥ एकदार्भकमादाय स्वांकमारोप्य भामिनी ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥

कियाहै ? क्या कुआँ, बावडी, ताल, खुदवाये हैं ? क्या पंचयज्ञ कियेहैं ? क्या कोई बड़ाभारी दान किया है ! अथवा भूखे नंगे प्राणियोंपर दया करी है ? जिन पुण्योंके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हुवा हमारा बालक अपने माता पिता बन्धुओंके सुख देनेके लिये लौटकर आगया ॥ ३२ ॥ नंदजीने गोकुलमें बहुतसे उत्पातोंको देखकर अपने मनमें बड़ा आश्चर्य माना, हमसे मथुरामें वसुदेवजीने पहिलेही कह दिया था कि, गोकुलमें बड़ाभारी उत्पात होगा, सो आज हमको वसुदेवजीके वचनका पूरा विश्वास हुवा ॥ ३३ ॥ एक समय यशोदाजी मनमोहन प्यारेको अपनी गोदमें बैठालकर मोहमें अतिनिमग्न होकर जिन स्तनोंसे दूध टपकता था सो स्तन पिलाने लगी, देखो यशोदाके कैसे उत्तम भाग्य हैं ॥ ३४ ॥

कुछ एक स्तन पिया पीछे यशोदाजी अपनी मन्दमुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दके ऊपर अँगुली धरकर दूध पिलाने लगीं, इतनेहीमें हे राजन्! श्रीकृष्णने जम्भाई ली उस समय उनके मुखमें यह सब संसार देखा ॥ ३५ ॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारागण, दिशा, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, स्थावर, जंगम, जीव इन सबको देखा ॥ ३६ ॥ हे राजन्! सब विश्वको तत्काल यशोदा श्रीकृष्णके मुखमें

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ॥ मुखं लालायती राजञ्जृंभतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥ खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येंदुवह्निश्वसनांबुधींश्च ॥ द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजंगमानि ॥ ३६ ॥ सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥ संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कंधे पू० शकटतृणावर्तभंजनविश्वप्रदर्शनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ॥ व्रजं जगाम नंदस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

देखकर डरके मारे कम्पायमान होकर अपने मृगकेसे नेत्र बन्द करलिये और बड़ा आश्चर्य माना कि, इस बालकके मुखमें मैंने क्या जाल जंजाल देखा ❀ ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां तृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा—अष्टममें श्रीगर्गमुनि नन्दराय गृह आय। नामकरण उत्सव कियो, मुखमें विश्व दिखाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! बड़े तपस्वी और यादवोंके पुरोहित

❀ राजा परीक्षित् बोले कि हे प्रभो! पूर्वजन्ममें यह तृणावर्त्त कौन था, जो इसने राक्षसका शरीर पाया, यह सब कथा मुझको समझाकर कहो। श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यह तृणावर्त्त पाण्डुदेशका राजा था और विश्वविजय इसका नाम था दुर्वासा ऋषिके शापसे यह राक्षस होगया, परीक्षित्ने बूझा कि, क्या ऐसा खोटा कर्म उसने किया जो यह शाप दुर्वासाने दिया? श्रीशुकदेवजी बोले कि, पाण्डुदेशका नरेश विश्वविजय था और एक सहस्र इसकी स्त्री थीं, एक दिन उन सब स्त्रियों समेत वनविहारके हेतु वनको गया वहा ऊंचे ऊंचे वृक्ष आकाशसे बातें कररहे, सुन्दर सुन्दर फल फूल खिलरहे, मोर कीर कोकिला, बोलरहे, एक ओरको गन्धमादन पर्वत निरालाही शोभा देरहा, उसके नीचे पुष्पभद्रानदी न्यारीही लहरें देती चली जाती थी ऐसा शोभायमान निर्जन वन देखकर उसी नदीमें स्त्री और आप नंगा होकर जलक्रीडा करनेलगा, मद पीपी कर स्त्री और राजा ऐसा मतवाला होगया कि, सम्पूर्ण लज्जा त्याग निर्लज्ज बन जलविहार करनेलगा, उसी समय एकलाख शिष्योंको साथ लिये दुर्वासा ऋषि भी उसी आश्रममें आगये, देखा तो सब स्त्रियोंके संग राजा नंगा केलि कर रहा है, मुनिने कोपकरके शाप दे दिया कि रे दुष्ट! मेरे वचनके प्रतापसे तू असुर होजा, और भारतखण्डमें एक लाख वर्षतक भ्रमता फिर, जब व्रजमें श्रीकृष्णचन्द्र अवतार लेंगे तू उनके हाथसे मृत्यु पावेगा तब तेरी मोक्ष होगी, राजा यह शाप सुन बहुत उदास हुवा और अग्निकुण्ड बनाय सब स्त्रियों सहित अपना शरीर भस्म कर दिया ॥

श्रीगर्गाचार्य वसुदेवजीके भेजेहुए मथुरा पुरीसे गोकुलमें नन्दरायजीके घर आये ॥१॥ गर्गाचार्यको देखकर नन्दजी बहुत प्रसन्न हुये और उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और भगवान्‌की समान जानकर पूजन किया ॥ २ ॥ गर्गाचार्यजीको सुंदर आसनपर बैठालकर षट्‌रस भोजन कराया और मधुर वाणीसे नन्दरायजी बोले कि, अहो ब्रह्मन् ! आप तो परिपूर्ण हो आपका पूजन हम किस प्रकार करसक्तेहैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! दीन गृहस्थ लोगोंके कल्याण करनेके लिये आपसरीखे महात्मा अपने आश्रमसे गृहस्थोंके घर जातेहैं और उनसे अपना कुछ प्रयोजन नहीं रखते ॥ ४ ॥ और जो देखने और सुननेमें नहीं आता उस ज्ञानका प्रगट करनेवाला और सूर्य चन्द्र नक्षत्रादिकोंका प्रतिपादन करनेवाला ज्योतिषशास्त्र साक्षात

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृतांजलिः ॥ आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरस्सरम् ॥ २ ॥ सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ॥ नंदयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ॥ निश्श्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतींद्रियम् ॥ प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥ ५ ॥ त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ॥ बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ॥ सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

आपने कथन कियाहै, जिसके पढ़नेसे पुरुष भूत, भविष्य, वर्तमान कालका वृत्तान्त जान सक्ताहै ॥ ५ ॥ उस ज्योतिष शास्त्रके कर्त्ता और वेदवादियोंमेंभी आप परिपूर्ण हो, इसलिये तुम हमारे दोनों पुत्रोंका नामकरण और संस्कार करो. तब गर्गाचार्यजीने कहा कि, जो तुम्हारे गुरु आचार्य होयँ उनसे नामकरण क्यों नहीं करालेते. तब नन्दजी बोले कि, हेमहाराज ! आपके सन्मुख और कौन है ! क्योंकि ब्राह्मण जन्मसेही सबके गुरु हैं ॥ ६ ॥ फिर गर्गाचार्यने कहा कि मैं यादवोंका पुरोहित हूं और सब जगत्‌में विख्यात हूं, जो मैं तुम्हारे पुत्रोंका नामकरण और संस्कार करूंगा तो वह दुष्टात्मा कंस इन बालकोंको देवकीके पुत्र समझेगा ❋ ॥ ७ ॥

* शंका—गर्गाचार्यने नन्दजीके सग कपट क्यों किया ? हम श्रीकृष्णका नाम नहीं धरेंगे यह क्यों कहा ? इसलिये तो गये ही थे' झूंठ वचन एक क्षणमें ब्राह्मणोंके सब तपका नाश कर देताहै, जान बूझकर क्यों झूठ बोले ?

और आपकी और वसुदेवजीकी परम मित्रता है यह बात भी कंस भले प्रकार जानता है और दूसरे कंसको यहभी सन्देह है कि, देवकीके
गर्भमें कन्या न होनी चाहिये, कहीं अपने पुत्रको पहुँचा न दिया हो यह समझे. क्योंकि कंस दिन रात सैकडों विचार किया करता है ॥८॥
और अब तो उसने देवकीके गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई समझही रक्खीहै और जो दूसरी यह बात सुनेगा कि, गर्गाचार्यने नन्दजीके घर
जाकर बालकोका नाम रक्खा है, इससे निश्चय यह जानेगा कि यह वसुदेवजीके पुत्र हैं और कंस तो विनाही जाने इन बालकोंके मारनेका उपाय

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ॥ देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ इति संचितयञ्छुत्वा
देवक्या दारिकावचः ॥ अपि हंताऽऽगताशंकस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥ नंद उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसि
मामकैरपि गोव्रजे ॥ कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सम्प्रार्थितो विप्रः
स्वचिकीर्षितमेव तत् ॥ चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥ गर्ग उवाच ॥ अयं हि रोहिणीपुत्रो रमय
न्सुहृदो गुणैः ॥ आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ॥ यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशंत्युत ॥ १२ ॥

कर रहाहै और जो सत्य समझकर इन बालकोको मरवादिया तो बडा अनर्थ होगा ॥ ९ ॥ नन्दजी बोले कि, हे गर्गाचार्यजी ! वह उपाय करो जो
हमारे साथी व्रजवासीभी नहीं जानै. इसप्रकार एकान्त स्थान जहाँ गायोंका खिरक था वहां बैठकर स्वस्तिवाचन पढकर दोनों बालकोंका संस्कार
किया. जोकि–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको करना योग्य है॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार नन्दरायजीनेजब प्रार्थना करी तो
एकान्तमें गर्गाचार्यजीने छिपकर नामकरण किया. क्योंकि नामकरण करनेकी इच्छासे तो गर्गाचार्यजी आयेही थे ॥११॥ गर्गमुनि बोले कि, यह

उत्तर–गर्ग मुनिने अपने मनमें विचारा कि, जो हम नदसे सत्य बोलेंगे और प्रत्यक्ष कृष्णका नाम धरेंगे तो बडे उत्साहसे बाजे बजायके अनेक हर्षसे आनन्द करेंगे तब कसादिक दैत्य जान जायँगे कि,
यह बालक किसी यदुवशीका है तो बडाभारी उत्पात होगा, इसलिये झूँठ बोले कि, विना कपट किये नन्दजी गुप्त नाम न धराते बडा उत्साह करते और शास्त्रमें ऐसा भी लिखा हैं पराये उपकारके लिये
झूँट बोलनेका कुछ दोष नहीं होता ॥

रोहिणीका पुत्र अपने गुणोंसे सुहृदोंको रमण करावेगा, इसलिये इसका नाम राम रखना चाहिये और बल अधिकहोग इसलिये इसका नाम बलदेव रखना चाहिये और बिछुरे यादवोंको मिलावेगा इसलिये इसका नाम संकर्षण होगा ॥ १२ ॥ और यह जो तुम्हारा दूसरा पुत्र है सो यह युग युगमें अवतार धारण करता है और इसके तीन रंग हुए श्वेत, लाल, पीला, सो सत्ययुगमें शुक्लवर्ण हुवा, त्रेतामें लाल वर्ण हुवा और द्वापरमें पीतवर्ण हुवा. अब इन्द्रनीलमणिकी सदृश श्यामसुन्दररूप धारणकिया है, इसलिये 'कृष्ण' नाम रखना चाहिये ॥ १३ ॥ किसी समय यह तुम्हारा महाभाग पुत्र वसुदेवजीके घर जन्मा था, इसलिये ज्ञानीपुरुष इसका नाम वासुदेव भी कहेंगे। तुम्हारे पुत्रके गुणकर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं और रूपभी अनेक हैं, उनको मैं नहीं जानता और कोई दूसरा पुरुषभी नहीं जानता, क्योंकि यह बालक परब्रह्म परमेश्वरका अवतार है, इसलिये इसका भेद ब्रह्मा,

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः॥ १५॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नंदात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्त्याऽनुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥ १९ ॥

शिव, सनकादिकभी नहीं जानसक्ते ॥ १४ ॥ गाय, गोप, गोपी और तुमको आनन्द देनेवाला यह तुम्हारा पुत्र होगा और नन्दरायजी तुम्हारे ऊपर बडे बडे कष्ट आनकर प्राप्तहोंगे, उन कष्टोंको इनकी कृपासे सहजमें तर जाओगे ॥१५॥१६॥ हे व्रजराज ! पहिले जब कोई राजा नहीं था, तब इस बालकने पृथ्वीपर सब दुष्ट चोरोंको पीडितकर महात्माओंकी रक्षा करी और चोरोंको पराजय किया॥१७॥ और जो महात्मा पुरुष इस तुम्हारे पुत्रसे स्नेह रखते हैं उनका शत्रुलोग तिरस्कार नहीं कर सक्ते. जिसप्रकार विष्णुके सहायक रहनेसे देवताओंका दैत्यलोग कुछ नहीं करसक्ते ॥ १८ ॥ हे नन्दरायजी ! यह तुम्हारा पुत्र गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और प्रतापमें विष्णु भगवान्की समान जानपडताहै, सावधान होकर तुम इसकी रक्षा करना ॥ १९॥

शुकदेवजी बोले कि, हे व्रजनाथ ! इसीराधाके साथ आपके पुत्रका विवाह होगा और यही राधा तुम्हारे कुलकी बाधा हरनेवाली होगी, यह कह सबको आशीर्वाद दे गर्गाचार्य बिदा होकर चलदिये, पीछे नन्दजीने परमानन्द हो अपने मनोरथको सब प्रकारसे परिपूर्ण समझा ॥ २० ॥ जब कुछ और थोडे दिन व्यतीत हुए तब बलदेवजी और श्रीकृष्ण दोनों भैया हाथ टेक२ कर घुटनो चलने लगे ॥ जिस समय कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई व्रजकी कीचमें विचरते थे उससमय उनके पावोंकी पैंजनी और कटिकी किंकिणीकी झनकारका सुन्दर शब्द सुनकर यशोदा और रोहिणी मनहीं मनमें आनन्द होती थीं और जो पथिक मार्गमें जाते उनहीके पीछे घुटनों२ थोड़ी दूर चले जाते, जब वह पुरुष इनकी ओरको देखते तब डरकर अपनी माताके पासको भागते ॥२१॥२२॥ तब माता यशोदा और रोहिणी अपने पुत्रको उठाय हृदयसे लगाय उनके अंगोंको देखैं हैं, कहीं तो व्रजकी कीचमें लिपट रहेहैं और कहीं

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ नंदः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥ कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ ॥ जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिंगमाणौ विजह्रतुः ॥ २१ ॥ तावंघ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपंतौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ॥ तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरंति मात्रोः ॥ २२ ॥ तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवंत्यौ पंकांगरागरुचिरावुपगह्य दोर्भ्याम् ॥ दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मितालपदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२३॥ यर्ह्यंगनादर्शनीयकुमारलीलावंतर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ॥ वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षंत्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसंत्यः ॥२४॥ शृंग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकंटकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ॥ गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥

प्रमादकी केशर अंगमें लगी हुई है, जिनके स्तन दूधसे खसि आये हैं उनको खिलाय खिलाय दूध पिलाय पिलाय उनकी ओरको देख २ प्रेममें मग्न होरही हैं और उनके मुखकी भोली भोली मुसक्यान और छोटी २ दँतुरियोंकी छबि निहार निहार बारंबार प्रसन्न होती थीं॥२३॥ जिस समय व्रजमें गोपियोंके देखनेके योग्य श्रीकृष्ण और बलराम बाललीलाओंको करने लगे और दौड दौडकर बछरोंकी पूँछ पकड पकडकर खैंचें, जब बछडे भागते तो यह उनके पीछे पीछे खिंचे चले जाते थे, इस प्रकारकी लीला वह गोपी देख देख घरोंके कामको छोड छोड हँस हँसकर हर्षको प्राप्त होती थीं ॥२४॥ माता यशोदा और रोहिणी, अति चंचल खेलमें लगेहुये श्रीकृष्ण बलदेवको देखकर गाय बैल डाढवाले जीव, बन्दर,

अग्नि, जल, सांप पक्षी कांटोंसे रोक रोक बचाती फिराकरती थीं और घरके काम धन्धे सब छोडदियेथे,जब रोहिणी और यशोदा फिरती फिरती हार जातीं तब श्रीकृष्ण बलभद्र माताओंके मनकी गति जानकर ऑगनमें खेलने लगते॥२५॥ हे राजन्! व्रजमें रामकृष्ण दोनों भाई थोड़ेही दिनों पीछे घुटनोंहीके बल नहीं बरन् चरणोंसे अनायासपूर्वक चलने लगे ॥ कभी घरमें जाते कभी बाहर आते कभी भुजा उठा उठा कर बालकोंको बुलाते कभी धौरी, धूमरी, गौरी, काली नाम लेलेकर गायोंको गुहराते कभी माखन मिश्री मातासे माँग माँगके खाते, कभी मुकुरमें जो अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता तो उससे कहते ले भैया तू भी माखन खाले,जब वह प्रतिबिम्ब न लेता तो दोनो हाथोसे आधा आधा कर एक भाग उसको देते, जब माखन पृथ्वीपर गिर जाता तो कहते कि, भैया अब क्यों नहीं लेते वह बातभी बताओ इन अद्भुत चरित्रोंको यशोदा मैया छिप छिपकर देखती और अपने मनही मनमें प्रसन्न होती और झट पट आनकर गोदमे उठाय मुख चूम लेती, उस परमानन्दके सुखको कौन वर्णन करसक्ता

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ॥ अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरंजसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ॥ सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥ २७ ॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ॥ शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥ वत्सान्मुंचन्क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ॥ मर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भांडं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥

है ॥२६॥ एक दिन मदनमोहन व्रजवासियोंके बालकोंके संग अपनी सिंहपौंर पर खेल रहे थे, सबकी एक अवस्था भोली भोली सूरत, कृष्णकी प्रीतिमें मतवाले अनेक अनेक प्रकारकी लीला कर रहेथे, कभी गाते,कभी हँसते,कभी किलकारी मारते,कभी अपनी माताको पुकारते, धन्य यशोदाके भाग्यको,मदनमोहनकी उस मनोहर छविको देख २ व्रजवासी लोग स्त्री पुरुष मनहीं मनमें कहतेथे कि,कोटि कामदेवभी इस शोभाकी समताको नहीं पासक्के,देखो बलराम और घनश्याम अपनी समान अवस्थावाले व्रजवासियोंके बालकोंको संग लेकर नई नई क्रीडा कर हमलोगोंको कैसा कैसा आनन्द देते हैं ॥२७॥ गोपी श्रीकृष्णचन्द्रकी बाललीलाकी चपलता देखकर सब जुड मिलकर आईं और श्रीकृष्णकी माता यशोदाको सुनासुनाकर यह कहनेलगीं ॥ २८ ॥ अहो यशोदा! तुम अपने पुत्रको वर्जलेना हमारे घरोमें आनकर द्वन्द्व मचावै है, हम तो गायोंको

दुहने नहीं पातीं वह पहिलेसे पहिले बछडोंको खोलदेते हैं, बछडे दूध पीजाते हैं, दुहनेवाले ग्वालियें शिरमार मारकर चले जाते हैं, यशोदा बोली, अरी तुम्हारे घर जब यह जाय तो इसको डाट दिया करो, यशोदाजीका वचन सुनकर गोपिका कहने लगीं कि, जब हम इसको डाटें हैं तब यह हँस देता है, इसकी हँसी देखकर हमकोभी हँसी आजाती है और यह चोरी उपाय करके दूध दही और जो कुछ मीठे मीठे पदार्थ हमारे घरोंमें रक्खे होते हैं उनको स्वादसे चुरा चुराकर खा जाता है और जो कुछ बचरहता है उसको बन्दरोंको खिला देता है जो बन्दरभी नहीं खाते तो जान बूझकर दूध दही घीके चिकने बासनोंको फोड डालता है और जो कदाचित् माखन दूध इसके हाथ नहीं लगता तो क्रोध करके गालियें देता है और यह कहता है कि, इनके घरोंमें आग लग जाओ फिर पालनेमें सोते हुए हमारे बालकोंको रुआकर भाग जाताहै ॥२९॥ और ऊंचे २ छींकोंपर धरती हैं कि, जो इसके हाथ न आवे, तब पीढा, पट्टा, ऊखली इत्यादि धरकर चोरीका उपाय करता है और किसी किसी छीकेके बासनमें छेदकरदेता है और नीचे सब

हस्ताऽग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभांडेषु तद्वित् ॥ ध्वांतागारे धृतमणिगणं स्वांगमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥ एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ॥ इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥

बालक मुख लगाकर सब गोरस पी जाते हैं और जो मीठा दही होता है तब तो खाजाते हैं और जो खट्टा होताहै तो गिरा देते हैं और जो मेवा मिष्टान्न होताहै उसको बालकोंके कन्धेपर चढ़कर खा लेताहै और जो हम अन्धेरेमें घरमें दही माखन कहीं छिपाकरभी धरें हैं, तो इसके आभूषणोंमें जो रत्न, मणि, माणिक, हीरे जडेहैं, उनका प्रकाश हो जाताहै, दूसरे इसका जो चन्द्रमासा मुख है उसकी उजियालीका चांदना होजाताहै तब हमारा धरा ढका सब निकाल लावे है, तबतक हम घरमें बैठी रहे हैं उस समय आवे है तो हमको देखकर भाग जाताहै और जब हम अपने घरके काम धन्धेमें लग जाती हैं उस समय घरमें आन घुसताहै ॥ ३० ॥ और जब कभी हम आनकर इसको देख पाती हैं और कहती हैं कि, अरे चोर! तो यह लौटकर कहता है कि, तुमहीं चोर हो मैं तो घरका स्वामीहूं, ऐसे हँसीकी बातोंमें बातको टाल देताहै, हमारे लिपे पुते घरोंको बिगाड़ देताहै, सब दिन सखाओंको संग लिये

चोरीकी चिंतामें फिरता रहाता है, यह कन्हैया तुम्हारा बड़ा ढीठहै और पेटमें इसके सैकडों छल भरेहैं, परन्तु मुँहका मीठाहै, जो तुमको विश्वास न आवे तो हम पकडके दिखावें कभी किसीके कपड़े फाडताहै कभी किसीको मारताहै, सब व्रजमें धूम धाम मचारक्खी है ॥ अब देखो ! तुम्हारे आगे कैसा भोला भाला बना खडाहै मानो कुछ जानताही नहीं। इसप्रकार जब गोपियोंने डराया तो उससमय भयसंयुक्त नेत्र उनमें श्रीमुखकी शोभा देखनेके लिये श्रीयशोदाजीसे आनके गोपियोंने उलाहना दिया तब श्रीयशोदाजी हँसके मनमोहन प्यारेको गोदीमें उठालिया और पुत्रसे कुछ कहा नहीं ॥३१॥ एक समय बलभद्रादिक गोपियोंके बालकोंमें क्रीड़ा कररहे थे, वहां श्रीकृष्णचन्द्र मट्टी खाने लगे, तब सब बालकोंने कहा आज कृष्णको कृष्णकी मातासे पिटवावेंगे, और जाकर यह कहेंगे कि, आज श्यामसुन्दरने मट्टी खाई है, तब यह विचार कर सब बालक और श्रीदामा यशोदाजीके पास

एकदा क्रीडमाणास्ते रामाद्या गोपदारकाः ॥ कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥ सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैहिणी ॥ यशोदा भयसंभ्रांतप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३ ॥ कस्मान्मृदमदांतात्मन्भवान्भक्षितवा न्रहः ॥ वदंति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥ नाहं भक्षितवानंब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ॥ यदि सत्य गिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥

गये और जाकर कहा कि, आज श्रीकृष्णने मट्टी खाई है ॥ ३२ ॥ तब परमहितकी करनेवाली श्रीकृष्णकी माता यशोदाने क्रोधितहो श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर धमकाया और भययुक्त चंचल नेत्र मोहन प्यारेसे यह कहा ॥ ३३ ॥ हे चपलगात चंचल ! तैंने अकेलेमें जाकर मट्टी क्यों खाई अरे अन्याई ! जो यह बात गॉवके लोग सुनेंगे तो घर घर यह जवाब होगा कि, नंदरानी ऐसी जोडा (कंजूस) हुई है कि, अपने बालकको पेटभर रोटीभी नहीं देती, इसलिये वह मट्टी खाखाकर दिन पूरे करैहै. यह बात सुनकर श्यामसुन्दर डरते काँपते बोले कि. हे माता ! यह झूँठबात तुझसे किसने कही ? कदाचित् कोई बालक तेरे पास आकर मुझको झूंठा कलंक लगा दे तो उसमें मेरा क्या अपराध है ? तब यशोदाने कहा कि, तेरे मित्र श्रीदामाने मुझसे कही है और तेरे ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊने कही है ॥ ३४ ॥ हे मैया ! मैंने मट्टी नहीं खाई और श्रीदामाकी ओरको खडी दृष्टिसे देखकर बोले क्योंरे श्रीदामा ! मैंने तेरे सामने मट्टी कब खाई थी ? श्रीदामा बोला मैंने तेरी मातासे कुछ नहीं कहा, तब यशोदाने छडी लेकर कहा सचबता ?

श्रीकृष्ण बोले कि, मैय्या ! जो तुझको विश्वास नहीं हो तो मेरा मुख देखले ॥ ३५ ॥ यह बात सुनकर यशोदा बोली मुझको तेरी झूँठी बातोंका किसी प्रकार विश्वास नहीं आता, जो तू सच्चा है तो अपना मुख फैलाकर दिखलादे ? यशोदाकी यह बात सुन, अनेक दुःखोंके दूरकनेवाले अखण्ड ऐश्वर्यवान् भगवान् क्रीड़ा करनेके लिये मनुजतनुधारी बालकरूप श्रीकृष्णचद्रने अपना मुखारविन्द फैलाकर यशोदाको दिखला दिया ॥ ३६ ॥ तब यशोदाजीने श्रीकृष्णके मुखमें स्थावर जंगम, विश्व; अन्तरिक्ष, दिशा, पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूगोल प्रवाह, वायु, अग्नि, चन्द्रमा, तारागण ॥३७॥ ज्योतिषचक्र, जल, तेज, आकाश, इन्द्रियोंके देवता, इन्द्रिय, मन, शब्दादिक और इनके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह पांचों–सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ॥ ३८ ॥ जीव, काल, स्वभाव, कर्म, अन्तःकरण और उसके होनेवाले चराचर और सम्पूर्ण प्राणियोंके भेद सहित चित्र

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ॥ व्यादत्ताऽव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सा तत्र दहशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः ॥ साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नींदुतारकम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ॥ वैकारिकाणींद्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ॥ सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शंकाम् ॥ ३९ ॥ किं स्वप्न एतदुत देवमाया किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ॥ अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥

विचित्र संसारको श्रीकृष्णचंद्रके मुखमें देखा और उसमेंही व्रजभूमि और अपने देहको देख यशोदाके मनमें भ्रम उत्पन्न हुवा ॥ ३९ ॥ और अपने मनहीं मनमें कहने लगी कि, मैं जो देखरही हूं क्या यह स्वप्न है ? नहीं नहीं, यह स्वप्न नहीं है, क्योंकि स्वप्न तो सोतेमें दिखाई देता है, तो क्या फिर परमेश्वरकी माया है ? नहीं नहीं, यह माया भी नहीं है, क्योंकि माया होती तो और लोग भी देखते, क्या जैसे मुकुरमें मुख दीखता है ऐसे दिखाई दिया ? क्या यह मेरी बुद्धिकाही भ्रमजाल है ? नहीं नहीं, ऐसा भी नहीं हो सक्ता, क्योंकि ऐसा होता तो दर्पण में जैसे दर्पण दृष्टि नहीं आता तैसे इस पुत्रके मुखमें यह पुत्र भी दीखना अनुचित है और बाहर तथा भीतर एकरूपसे जगत्की प्रतीति किसी प्रकार न होनी चाहिये,

अथवा मेरे पुत्र श्रीकृष्णका यह स्वाभाविक ऐश्वर्य है ? ॥ ४० ॥ जो ध्यान करके देखाजाय तो यह अंतिम पक्षही बलवान् जान पड़ता है, क्योंकि यह संसार जो किंचित्, मन वाणी और वचनसे अनायासपूर्वक भले प्रकार विचारमें नहीं आसक्ता, वह किसके आश्रय है और किस रीतिसे प्रतीत हो सक्ता है ? उस अचिन्तनीय स्वरूपको मैं बारंबार नमस्कार करती हूं ॥ ४१ ॥ इन व्रजराजके सम्पूर्ण धनकी अधिष्ठाता मैं हूं यह व्रजनाथ नन्दजी मेरे स्वामी हैं यह श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है और यह सब गोप गोपिका तथा गाय बछड़े मेरे हैं, मायासे जिनकी ऐसी कुबुद्धि होरही है, सो अब हे भगवन् ! तुम्हारी शरण हूं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यशोदाजीको कृष्णमें ईश्वरकी बुद्धि होगई तब

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरंजसा ॥ यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥ ४१ ॥ अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ॥ गोप्यश्च गोपाः सह गोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ॥ वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥ सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्याऽऽरोहमात्मजम् ॥ प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद्यथा पुरा ॥ ४४ ॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ॥ उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ नंदः किमकरोद्ब्रह्मञ्श्रेय एवं महोदयम् ॥ यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्णने विचार किया कि, माता तो परमगतिको पहुँची अब मेरा लालन पालन कौन करेगा. तब पुत्रने स्नेहरूपा अपनी वैष्णवी माया यशोदापर फैलादी ॥ ४३ ॥ उस समय यशोदाजीके मनसे श्रीकृष्णचन्द्रकी ईश्वरबुद्धि अलग करदी और पुत्रभाव मानिके श्रीकृष्णको गोदमें बैठाल प्रेममें मग्न होकर पहिलेकी समान वात्सल्यभाव करनेलगी ॥ ४४ ॥ ऋग्, यजु, साम, यह तीनों वेद, सांख्य योग समस्त निरन्तर जिन वासुदेव भगवान्की महिमाको रातदिन गाते हैं उन श्रीकृष्णको यशोदा पुत्रभावसे मानती है ॥ ४५ ॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदे

वजीसे बूझा कि, हे ब्रह्मन्! नन्दरायजीने ऐसा क्या पुण्य किया था जिसके प्रभावसे उनका ऐसा भाग्य उदय हुवा? और यशोदाजीने ऐसा कौनसा श्रेष्ठ पुण्य किया था जिससे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दनें उनका स्तन पान किया ॥ ४६ ॥ और सब लोकोंके पापका दूर करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका बालचरित्र आजतक जिसे कवीश्वरलोग वर्णन करतेहैं सो उस बाललीलाका सुख देवकी और वसुदेवजीको प्राप्त नहीं हुवा और नन्दयशोदाको प्राप्त हुवा इसका क्या कारण? ॥ ४७ ॥ यह गूढ वचन राजापरीक्षित्का सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! आठ वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण नाम वसुने अपनी धरा नाम स्त्रीको साथ लेकर ब्रह्माजीकी आज्ञा शीशपर धारणकर परमेश्वरका तप किया, तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर चतुरा

पितरौ नान्वविंदेतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ॥ गायंत्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच॥ द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ॥ करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ॥ भक्तिः स्यात्परमा लोके ययांजो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥ अस्त्वित्युक्तः स भगवान्व्रजे द्रोणो महायशाः ॥ जज्ञे नंद इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत् ॥ ५० ॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ॥ दंपत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

ननसे कहा कि, मेरे भक्त जो वर मांगें सो देना. ब्रह्मानें इन दोनोंके सन्मुख आनकर कहा कि, वर माँगो, तब वह स्त्री पुरुष बोले कि, हे प्रभो! जो हमपर प्रसन्न हो तो यह वर दो ॥ ४८ ॥ हमारे जन्म मृत्युलोकमें होयँ परन्तु विश्वेश्वर देवोंके देव हरि भगवान्में हमारी भक्ति बनी रहै; जिससे अनायास इस संसारसागरसे पार उतर जॉय ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीने वर दिया कि, जाओ पृथ्वीहीमें तुम्हारा जन्म होगा और तुमको भगवानकी भक्तिभी होगी, तब तो बड़े यशस्वी और तेजस्वी द्रोण वसु व्रजमें जन्म धारण कर नन्दनामसे प्रसिद्ध हुए और वह धरा यशोदा नामसे विख्यात हुई ॥ ५० ॥ हे भारत! जितने गोप गोपी थे सबमें भगवान्की भक्ति थी, परन्तु नन्द यशोदामें अधिकही भक्ति थी; जिनके घर पुत्र होकर वास

योगिराज उनका ध्यान करनेवाले भी उनकी गतिको नहीं पहुँचसक्ते और तप करके तपस्वियोंका मन जिनकी गतिको नहीं जान सका, फिर यशोदा उनको कैसे पकड सक्ती थीं ॥९॥ मनमोहनके पीछे यशोदाजीकी गति नितम्बके भारसे शिथिल होगई दौडनेसे शीशके केशोंके बन्धन खुलगये और चोटीमें जो मालतीके फूल गुँथे रहे थे वह पुष्प आगे आगे गिरते जाते थे और यशोदा उनपर पाँव धरती चली जाती थी, क्योंकि पुष्पोंकी सुगंधसे चित्त व्याकुल नहीं होता, इस प्रकार यशोदाने महाकठिनतासे श्यामसुन्दरको पकडा ॥ १० ॥ अपराधी तो थे ही पकडतेही विह्वल होगये, रोरोकर काजल लगेहुये नेत्रोंको मलने लगे और हाहाकार कर यशोदासे कहने लगे कि, मया मुझे छोडदे, मैं नहीं जानता दही मही किसनें गिराया तोभी कृष्णका हाथ पकड छडी उठाकर यशोदाने धमकाया और कहा कि, सिवाय तेरे और दधिमाखनका चोर मेरे घर कौन

अन्वंचमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रांतगतिस्सुमध्यमा ॥ जवेनविस्रंसितकेशबंधनच्युतप्रसूनाऽनुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसं तं प्ररुदंतमक्षिणी कर्षंतमंजन्मषिणी स्वपाणिना ॥ उदीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयंत्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ॥ इयेष किलतं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥१२॥ न चांतर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ॥ पूर्वापरं बहिश्चांतर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥ तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम् ॥ गोपिकोलूखले दाम्ना बबंध प्राकृतं यथा ॥ १४ ॥ तद्दामबध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ॥ व्द्यंगुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥

आगया ॥ ११ ॥ पुत्र पर हित करनेवाली और भगवत्की गति न जाननेवाली यशोदाने मनमोहन प्यारेको व्याकुल समझकर छडी हाथमेंसे डालदी और पुत्रके पराक्रमको न समझकर रस्सीसे बाँधनेको प्रस्तुत हुई॥ १२ ॥ जिस आदि पुरुष अविनाशीके बाहर, भीतर, आगे, पीछे कुछभी नहीं है और जो पूर्ण अवतार है, जगत्के अन्तर, बाहर, तथा आगे, पीछे रहता और जो जगत्रूप है ॥ १३ ॥ इंद्रियोकी जिनमें गति नहीं ऐसे अव्यक्त भगवान्को पुत्र मानकर यशोदाजी रस्सी लेकर उलूखलसे बाँधने लगी; जैसे कोई साधारण बालकको बाँधताहै॥ १४ ॥ अपराधी समझकर जब यशोदा अपने मनमोहन प्यारेको बाँधने लगी, उस समय वह रस्सी दो अंगुल ओछी रहगई, तब यशोदाने उसमें दूसरी रस्सी

और जोडी ॥ १५ ॥ जो उसमें और रस्सी जोडी थी वह भी दो अंगुल ओछी रहगई, तब तीसरी और जोडी तो वह भी दो अंगुल ओछी होगई इस प्रकार जितनी रस्सी जोड़ी परन्तु पूरा न पडसका ॥ १६ ॥ तब तो यशोदाने सब घर भरकी रस्सी इकट्ठी करके जोडी और श्यामसुन्दर न बँधे, तब तो सब गोपी आश्चर्यमान हँसने लगीं और मुसकराकर यशोदा भी विस्मित होनेलगी ॥ १७ ॥ सब शरीर पसीनेमें डूबगया माला कण्ठसे टूटपडी, शिखासे शीशफूल खिसकगया तब यशोदाको श्रमित देखकर करुणामय श्रीकृष्णचन्द्र आपही कृपाकरके बन्धनमें बँधगये

यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे ॥ तदपि द्व्यंगुलं न्यूनं यद्यदादत्त बंधनम् ॥ १६ ॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ॥ गोपीनामुत्स्मयंतीनां स्मयंती विस्मिताऽभवत् ॥ १७ ॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ॥ दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबंधने ॥ १८ ॥ एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भक्तवश्यता ॥ स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ १९ ॥ नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया॥प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात्॥२०॥

॥ १८ ॥ हे राजन् ! ऐसे कष्ट हरनेवाले भगवान् ब्रह्मासहित सर्व विश्व जिनके अधीन है, उन श्रीकृष्णचन्द्रने अपने भक्तोंको भक्त वश होना दिखाया कि, जो मेरे भक्त मुझको बाँधना चाहे तो बँधभी जाताहूं, मैं इस प्रकार भक्तोंके वशमें हूं * ॥ १९ ॥ हे राजन् भक्तिके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्से पुत्रके सम्बन्धसे जो प्रसाद गोपियोंने पाया सो प्रसाद ब्रह्माको न मिला और शिवजी जो भगवान्की आत्मा हैं उनकोभी प्राप्त न हुवा और लक्ष्मी सदा हृदयमें विराजमान और भार्या है, तोभी उनको यह प्रसाद हाथ न आया, जो प्रसाद

---

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने यशोदा माताको पहिले तो बहुत दुःखी किया फिर पीछे रस्सीसे बँधगये और पहिले अनेक उपायोंसे नहीं बँधे इसका क्या कारण ?

उत्तर—जब श्रीकृष्ण भक्तभयहारी, जगत् हितकारीने मृत्युलोकके आनेकी इच्छा की, तब सब गोलोककी गायें श्रीकृष्णके सग व्रजको आने लगीं, तब गोलोककी सेवा करनेवाली दासी रस्सी बनकर गायोंके गलोंमें और कण्ठमें बँध कर चली आई, भगवान्ने विचारा कि, गोलोककी गायोंकी सेवा करनेवाली तो नन्दबाबाके घर आगई अब नन्दकी गायोंकी दासी जो यहापर रस्सी बनगई हैं इनको गोलोकमें भेजना चाहिये, ऐसा विचारके उन गायोंकी दासियोंको ससारसे मुक्त करनेके लिये फिर गोलोकको भेजनेके लिये एक रस्सीसे नहीं बँधे,एक रस्सीसे बँधे जाते तो यशोदा सब घरभरकी रस्सी क्यों इकट्ठी करके ले आती॥

यशोदाने ले रक्खा है ॥ २० ॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् जैसे भक्तोंको सहजमें प्राप्त होते हैं, ऐसे देहाभिमानी तपस्वी आदिकोंको और देहाभिमानरहित आत्मज्ञानियोंको सहज नहीं मिल सक्ते ॥ २१ ॥ इनको बाँध यशोदा तो घरके काम धन्धेमें लगगई इतनेमें सर्वसामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्, कुबेरके पुत्र जो प्रथम जन्ममें गुह्यक थे और अब आनकर यमलार्जुन वृक्ष हुए, उनका समय जान भगवान्ने उनकी ओरको देखा ॥ २२ ॥ प्रथम यह दोनों अत्यन्त शोभायमान नलकूबर, मणिग्रीव, नामसे विख्यात थे, कुबेरके पुत्र प्रथम जन्मके मदसे नारदके शापसे वृक्षयोनिको प्राप्तहुए ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ॥ ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥ कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ॥ अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥ नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥ इति श्रीभागव०म०दशम०पू० दामबन्धने कृष्णप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥ यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ॥ कैलासोपवने रम्ये मंदाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ॥ स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥ अंतः प्रविश्य गंगायामंभोजवनराजिनि ॥ चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥ ४ ॥

यमला अर्जुन वृक्ष दोउ दीन्हे कृष्ण गिराय। प्रगटे देव शरीर धर, परे चरणमें जाय ॥ १ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! नलकूबर, मणिग्रीवके शापकी कथा वर्णन कीजिये कि. उन दोनोंने ऐसा क्या निन्दित कर्म किया था कि, जिससे नारदजीके मनमें क्रोध उत्पन्न हुवा और उन दोनोंको ऐसा कठिन शाप दिया? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, शिवजीके अनुचर यह दोनों अत्यन्त अभिमानी मद पीनेसे मतवाले कुबेरके पुत्र, मन्दाकिनीके तटपर कैलासकी पुष्पवाटिकामें घूम रहेथे, ॥ २ ॥ वारुणी मदिराको पान करनेसे उनके नेत्र मदसे चलायमान होरहे थे और उपवनमें विचर रहे थे, उनके पीछे पीछे परमसुन्दरी स्त्रियें भी फिर रहीं थी ॥ ३ ॥ और कमलोंके समूहोंसे

सुशोभित श्रीगंगाजीके मध्यमें जाकर स्त्रियोंको संग लेकर विहार करने लगे जैसे हथिनियोंके संग हाथी विहार कर रहे थे * ॥४॥ हे कुरुकुल भूषण ! अनायासपूर्वक देवर्षि भगवान् नारदजी भी वहाँ आगये और उनको अत्यन्त क्रीडा करतादेखकर मतवाला समझा ॥ ५ ॥ नंगी स्त्रियोंने नारदजीको देखकर लज्जा मानी और शापके भयसे काँपने लगीं उसी समय शीघ्रतासे अपने अपने वस्त्रोंके समीपको झपटीं परन्तु नलकूबर, मणि ग्रीवने वस्त्र नहीं पहिरे, नंगे ही खडेरहे ॥ ६ ॥ तब नारदजी कुबेरके पुत्रोंको मतवाला देखकर मद उनका दूर करनेके लिये और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके दर्शनके निमित्त शाप देतेहुए गान करने लगे ॥ ७ ॥ तब नारदजीने कहा कि, प्रिय विषयोंके भोग करनेवाले पुरुषकी बुद्धिको धन मदके विना हास्य हर्षणादिके कुलीनता पण्डिताई आदिसे हुवा मद अथवा रजोगुण नाश नहीं करसक्ता, परन्तु धनका मदही बुद्धिभ्रष्ट करदेताहै, क्योंकि लक्ष्मीका मद जिसको होताहै तो वह स्त्रीप्रसंग करता है अथवा जुआँ खेलता है और वारुणीका पान करता है ॥ ८ ॥ इस क्षणभंगुर शरीरको लक्ष्मीके मदसे अजर और अमर माननेवाले अजितेन्द्रिय मनुष्य निर्दयी होकर पशुओंको मारते हैं ॥ ९ ॥ राजाके देहकीभी मरनेके पीछे

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ॥ अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशंकिताः ॥ वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥६॥ तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदांधौ सुरात्मजौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ॥ श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यंते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ॥ मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यंते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥

* शंका—किसी नदी में भी कमलोंका वन होता हैं ? हमने शास्त्रोंमें ऐसा कहीं नहीं सुना और न आजतक किसी नदीमें हमने अपनी आँखसे कमलका वन देखा ? फिर दोनों यक्षोंने नदीके जलमें प्रवेश करके कमलके वनमें स्त्रियोंके सग विहार कैसे किया ?

उत्तर—"अंमोजवनराजिनि" इस श्लोकमें अमोजवनराजिनिका अर्थ व्यासजीने कमलका वन नहीं किया. इसका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि, अमोज जो कमल हैं उसके वनको राजि कहिये प्रकाश करनेवाला जो सूर्य है तिसको साक्षी करके नदीमें स्त्रियोंके सग यक्षलोग क्रीडा कर रहे थे साँझ या दिनमें क्रीडाकरी यह अर्थ व्यासजीने किया है कमलवनका नहीं किया ॥

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव वा ॥ मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ॥ को विद्वानात्मसात्कृत्वा हंति जंतूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदांधस्य दारिद्र्यं परमांजनम् ॥ आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥ यथा कंटकविद्धांगो जंतोर्नेच्छति तां व्यथाम् ॥ जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाऽविद्धकंटकः ॥ १४ ॥

तीन गति होती हैं गाड़नेसे अथवा पृथ्वीपर डालनेसे कृमि होजाते हैं, जो पशु आदिक खाजाते हैं तो विष्ठा होजाताहै और अग्निमें जलनेसे भस्म होजाती है इस कारण इस तुच्छ शरीरके लिये प्राणियोंसे विरोध करना अच्छा नहीं है क्योंकि जीवोंके द्रोहसे तो नरकही प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ फिर यह देह किसका कहना चाहिये ? क्योंकि जो अन्न देकर इसका पालन पोषण करता है वह पुरुष कहता है कि, यह मेरा है उसका कहनाभी सत्य है माता पिता कहते हैं कि, हमारा है, हमारे वीर्यसे और हमारे उदरसे उत्पन्न हुआ है उनका कहना भी सत्य है, नाना कहता है कि, यह मेरा दौहित्र है मेरी कन्याके पेटसे उत्पन्न हुआ है इसका दिया पानी और इसका किया श्राद्ध मुझको प्राप्त हो सक्ता है मेरा पुत्र न होनेके पीछे मेरे धनका अधिकारी यही है, इस रीतिसे नानाका कहनाभी सत्य है, मोल लेनेवाला कहता है कि, मेरा है, उसका कहना भी किसी प्रकार असत्य नहीं है, कोई बलवान् पुरुष अपना दास वा चाकर बनाकर रक्खे और यह कहै कि, मेरा है तो उसका कहना भी वृथा नहीं, अग्नि कहै है कि, यह मेरा है क्योंकि मेरेही तेजसे यह सब काम करता है, उसका कहना भी सत्य है, पृथ्वी आदिक कहते हैं कि, हमाराहै अन्त समय हमारे सिवाय और कहीं जाही नहीं सक्ता, उनके कहने में भी कुछ संशय नहीं और श्वानादिक कहते हैं हमारा है एक दिन हम इसको खायँगे, उनका कहना भी झूँठ नहीं ॥ ११ ॥ इस प्रकार यह तुच्छ शरीर मायाहीसे उत्पन्न होता है और मायाही में लय हो जाता है और पाँच सात विवादी उसमें विवाद करैं कि, यह हमारा है, ऐसे झगडेके देहको पाकर केवल अज्ञानियोंके सिवाय ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो जीवोंकी हिंसा करै ! ॥ १२ ॥ जो अज्ञानी पुरुष धनके मदसे अन्धे होजाते हैं उनके लिये दरिद्रही श्रेष्ठ अंजन है दरिद्री पुरुष सब प्राणियोंको दुःख सुखमें अपनी समान देखता है, क्योकि अपने मनमें निर्धन विचार लेता है कि, मुझको दुःखने इस प्रकार बाधा करी थी, ऐसेही औरोंको भी बाधा करता होगा, जैसे मुझको सुख होता है ऐसे औरोंकोभी सुख होता है ॥ १३ ॥ जिस पुरुषके पाँवमें काँटा लगेहै वह पुरुष दूसरेके

पाँवमें भी काँटा लगना नहीं चाहता, वह अपने मनमें विचार करताहै कि, जैसे मुझको काँटा लगनेसे पीडा हुईहै ऐसेही सबको होती होगी और जिसके काँटा लगा नहीं वह काँटेकी पीडाको कैसे जान सक्ताहै कि, काँटा लगनेसे इतना कष्ट होताहै ॥१४॥ इस बातपर एक दृष्टान्तहै * दरिद्री

दारिद्रो निरहंस्तंभो मुक्तः सर्वमदैरिह ॥ कृच्छ्रं यदृच्छयाऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥

पुरुपका अहंकार, मद और सम्पूर्ण प्रकारका अभिमान नष्ट होजाताहै और जो कष्ट आनकर प्राप्त होताहै तो वह कष्टही उसको तपस्याकी समान होजाता है; तपमें व्रत हो जाता है, क्योंकि दरिद्री अन्नके विना भूखा प्यासा रहता है, जब दरिद्रीको अन्न न मिले तो निःसन्देह वह भूखा प्यासा

---

* एक राजा था उसका पुत्र गुरुके पास विद्या पढता था, जब राजाकी अवस्था अधिक हुई तो राजाने विचार किया कि, अब इस मोह ममताको त्यागकर तप करना चाहिये और मंत्रियोंको बुलाकर सब राज्यका प्रबन्ध करदिया और राज्यसिंहासनका अधिकार पुत्रको देना चाहा यह चर्चा उन गुरुके कानमें भी पडी जो उनके पुत्रको पढाते थे गुरुने अपने मनमें विचार किया कि, मैंने राजकुमारको सब विद्या पढादीं, परन्तु अभीतक इसको दु ख सुखका ज्ञान नहीं हुआ, दु ख किसे कहते हैं और सुख किसे कहते हैं, ऐसी विद्या इसको अभी नहीं सिखाई अभी तो यह मेरे वशमें है मैं सब कुछ करसक्ताहूं और जब यह अपने वशमें होगया तो मैं कुछ नहीं करसक्ता और जो यह ऐसाही रहा तो न जानिये किस किसको दु.ख दे, यह शोच समझ उसको अपने पास बुलाकर पाँच सात साँटी ऐसी शक्तिसे मारीं कि, शरीरकी सब खाल उडगई और रुधिर बहने लगा, इतने पर भी एक कोठरीमें बन्द करलिया जो तात्काल उपायभी न हो सके और जब यह रोगा तो रोनेतक भी न दिया दोपहरतक बन्द रहा तब उसको खोल दिया और चार लडकोंके साथ राजकुमारको राज्यभवनमें राजाके पास भेजदिया, राजकुमारने अपने पितासे सब वृत्तान्त कहा कि, विना अपराध गुरुने मुझको मारा और अपना सब शरीर दिखाया, राजाने देखा तो साँटी जहाँ की तहां उछल रही हैं, रक्त बहरहाहै, राजकुमारकी यह दशा देखकर उसके पिताको बडा क्रोध आया और कोतवालको आज्ञा दी कि, उस ब्राह्मणको अभी पकडकर शूली देदो कि, उस निर्दयीने विना अपराध राजकुमारको मारा है, राजाकी आज्ञानुसार कोतवालने पकडकर वधिकोंको सौंप दिया कि, इसको शूली देदो, वधिक जिस समय उस ब्राह्मणको शूली देनेको लेचले, तब उस ब्राह्मणने कहा कि, मैं कुछ बात राजासे कहना चाहताहूं ' वधिक बोले चलो, ब्राह्मणने राजासे कहा कि, मुझको शूलीकी आज्ञा किसलिये हुई ? आपने मुझको राजकुमारके पढानेके लिये नियत किया था या शूली देनेके लिये ? राजाने कहा कि, क्या हमने विना अपराध मारनेके लिये कह दिया था, ब्राह्मण बोला कि, मैं नहीं मारा, राजाने राजकुमारका सब शरीर दिखाया और कहा यह क्या है ? ब्राह्मणने कहा कि यह भी एक प्रकारकी विद्या है, राजा बोला कि, यह कैसी विद्या है ? ब्राह्मण बोला कि मैंने सुना कि, प्रात काल राजकुमार राज्यसिंहासनपर बैठेंगे और अभीतक यह नहीं जानते दुःख कैसा होता है और जो मैंने इनको दुःख न दिखाया तो यह हजारों मनुष्योंको दु ख देंगे, अब इन्होंने दुःखका भेद जान लिया तो अब किसीको विना अपराध दु ख न देंगे अब इनको भले प्रकार दु खका रूप दरशा दिया, राजा ब्राह्मणकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुवा और दशगाँव और अनेक प्रकारके आभूषण उसको पारितोषिकमें दे हाथ जोडकर कहा कि, मेरा अपराध क्षमा करना मैं आपकी गुप्त विद्याको नहीं समझा था, ब्राह्मण राजाको और कुँवरको आशीर्वाद देकर चलागया देखो ! पहिले ब्राह्मण कैसे चतुर होतेथे ॥

रहेगा तो वही व्रत होजायगा ॥१५॥ अन्नकी आकांक्षा करनेवाले दारिद्रीके घर नित्य कडाके होतेहैं.इससे उसका शरीर सूख जाताहै,इन्द्रियें शिथिल होजाती हैं,फिर उससे हिंसाभी नहीं होती,जो आपही मरताहै वह दूसरेको कैसे मारसक्ता है ? ॥ १६ ॥ दारिद्री मनुष्य सबको समान देखताहै और दारिद्रीको साधु महात्मा पुरुषभी मिलजातेहैं,जिस समय दारिद्री क्षुधित होकर अन्न अन्न पुकारता है, तब साधु महात्मा उससे कहते हैं कि, अरे ! कृष्ण कृष्ण पुकार जो सब संसारका पालन पोषण करनहाराहै. इसप्रकार वह साधु महात्मा लोग उसके अन्नकी तृष्णाको दूर करदेतेहैं, तब शीघ्र उसका संताप छूटजाता है ॥ १७ ॥ समचित्त और परमेश्वरके चरणानुरागी साधु महात्मा पुरुषोंको दारिद्रीही प्यारा होता है,उनको लक्ष्मीके मदसे

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः ॥ इंद्रियाण्यनुशुष्यंति हिंसापि विनिवर्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यंते साधवः समदर्शिनः ॥ सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुंदचरणैषिणाम् ॥ उपेक्ष्यैः किं धनस्तंभैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदांधयोः ॥ तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥ यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ॥ न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ॥ ॥२०॥ अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ॥ स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥ वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ॥वृत्ते स्वलोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥

उन्मत्त दुष्ट लोगोंसे प्रयोजनही क्या? ॥१८॥ इसलिये मैं इन दोनोंको जोकि वारुणीके मदसे मतवाले, लक्ष्मीके मदसे अन्धे, स्त्रियोंके लम्पट और अजितेन्द्रिय हैं, इनसे अज्ञान हुए मदको मैं दूर करूंगा, क्योंकि इस समय यह अन्धे, होरहेहैं ॥१९॥ देखो ! यह कुबेरके पुत्र होकर अज्ञानमें डूबरहे हैं, यह नहीं जानते कि हम नंगे हैं,इनको कुछ भी अपने तनुकी सुधि नहीं अत्यन्त मतवाले होरहे हैं ॥ २० ॥ इसलिये यह दोनों स्थावर होनेके योग्य हैं जो फिर आगेको इन्हें ऐसा मद न होय और वृक्षयोनिमें भी मेरी कृपासे इनको सुधि बनीरहे ॥ २१ ॥ और भगवान् वासुदेवका दर्शन पाकर पीछे फिर स्वर्गमें जाकर देवता होयँ, परन्तु पहिले देवताओंके सौ (१००) वर्ष वृक्षयोनि भोगनी पडेगी, तदनन्तर

इनको भक्ति प्राप्तहोगी ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! देवर्षि नारदजी इसप्रकार कहकर नारायणके आश्रमको चलेगये, अब
नलकूबर, मणिग्रीव, दोनों यमलार्जुन वृक्ष हुए ॥ २३ ॥ अपने भक्तोंमें मुख्य श्रीनारदजीके वचन सत्यकरनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र महाराज
यमलार्जुनवृक्षोंके निकट हौले हौले चलेगये ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें विचार किया कि, श्रीनारदजी मेरे प्रिय भक्त हैं
और यह कुबेरके दोनों पुत्र हैं सो नारद महात्माने इनके विषयमें जो कुछ कहाहै सो सब सत्य करूंगा ॥ २५ ॥ इसप्रकार विचार करके
यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें होकर निकले और वृक्षोंके बीचमें आनकर उलूखल को तिरछा करदिया ॥ २६ ॥ रस्सीसे उदरमें बँधे हुए उलूखलको

श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ॥ नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भा
गवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ॥ जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ
धनदात्मजौ ॥ तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥ इत्यंतरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ॥ आत्म
निवेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलितांघ्रिबंधौ ॥
निष्पेततुः परमविक्रमिताऽतिवेपस्कंधप्रवालविटपौ कृतचंडशब्दौ ॥ २७ ॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरंतौ सिद्धा
वुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ॥ कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धांजली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥
कृष्णकृष्ण महायोगिस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ॥ व्यक्ताऽव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥

बालकरूप श्रीकृष्ण दामोदरने झटका मारकर खींचा, उस समय दोनोंवृक्ष जडसे उखड़कर पृथ्वीपर गिरपडे, श्रीकृष्णके पराक्रमसे गुद्दे, शाखा,
डाली और पत्ते, सब कॉपने लगे बडा भारी शब्द हुवा ॥ २७ ॥ जैसे संघर्षणके होनेसे अग्नि निकले, ऐसेही अतिशोभायमान दशों दिशा
ओंको प्रकाशमान करते दो पुरुष निकले, तब भगवान् त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको शिर झुकाकर प्रणाम किया और मदको त्यागा हाथ
जोड़ इसप्रकार प्रार्थना करनेलगे ॥२८॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! तुम बालक नहीं हो, परम कारणरूप हो और स्थूलसूक्ष्मरूप जो आपहो

उस रूपको ब्रह्मवेत्ता जानते हैं ॥ २९ ॥ सब प्राणियोंके देह, प्राण, इन्द्रिय, अहंकारके आपही एक ईश्वर हो और सम्पूर्णमें व्यापक भगवान् कालरूप आपही हो ॥३०॥ आपही महान्‌रूप हो रजोगुण, तमोगुण सत्त्वगुण और सूक्ष्म मायारूप सब तुमही हो, देहोंके विकारके जाननेवाले साक्षीपुरुष आपही हो ॥ ३१ ॥ आप प्रकृतिके गुण, बुद्धि, अहंकार इन्द्रियादिकसे ग्रहणकरनेमें नहीं आते हो उत्पत्तिसे पहिलेही स्वयंप्रकाश जो आप हो तिनको कारण गुण आच्छादित जीव कैसे जानसक्ताहै ॥ ३२ ॥ वासुदेव, सर्वके कर्त्ता और स्वयंप्रकाशित किये हुए गुणोंसे जिनकी महिमा ढकरही है ऐसे जो आप ज्ञानस्वरूप हैं सो हम आपको बारंबार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! आप सबके शरीरोंमें

त्वमेकः सर्वभूतानां देहोऽस्वात्मेंद्रियेश्वरः ॥ त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥ त्वं महान्प्रकृतिः साक्षाद्रजस्सत्त्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतै र्गुणैः ॥ कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥ तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ आत्मद्योतगुणै श्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥ यस्यावतारा ज्ञायंते शरीरेष्वशरीरिणः ॥ तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ॥ ३४ ॥ स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ॥ अवतीर्णोंशभागेन सांप्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमः परम कल्याण नमः परममंगल ॥ वासुदेवाय शांताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥ अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ ॥ दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥

रहकरभी शरीरके सम्बन्धसे रहित हो और यद्यपि आपका शरीरभी नहीं है परंतु जब अवतार धारण करते हो तब और प्राणियोंसे न होनेवाले जिनकी तुल्य वा अधिक कोई नहीं करसक्ता, ऐसे ऐसे चारित्रोंसे आपके अवतार जाने जाते हैं ॥ ३४ ॥ सब लोकोंके ऐश्वर्य और मोक्षके लिये निरन्तर परिपूर्ण रूप होकर अपने अंशोंसहित प्रगट हुए हो ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप ! हे मंगलरूप ! आपको नमस्कार है, आपके शान्त रूपको नमस्कार है. हेवासुदेव ! यदुकुलके रक्षा करनेवाले आपको बारंबार नमस्कार है ॥३६॥ हे परिपूर्ण भगवन् ! हम आपके दासोंके दास हैं, हमने भगवान् नारदजी महाराजकी कृपासे आपका दर्शन पायाहै और आपको परिपूर्ण रीतिसे जाना अब हमको आप आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥

हमारी वाणी आपके गुणानुवादोंको निरन्तर गाया करै कान आपकी कथाओंको सदा सुनते रहैं, हाथ आपकी सेवा और पूजनमें लगेरहैं हमारा मन सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगारहै, हमारा मस्तक आपके निवासरूप जगत्को प्रणाम करतारहै, और हमारी दृष्टि तुम्हारी साधु मूर्तियोंका नित्यप्रति दर्शन किया करे, हे दीनबन्धु ! हम बारंबार आपसे यह वर मांगते हैं ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब इसप्रकार नलकूबर, मणिग्रीवने गोकुलनाथ भगवान्‌की स्तुतिकरी, तब रस्सीसे उलूखल जिनके उदरमें बँधरहा ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्द मुसकराकर बोले ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे यक्षो ! करुणामय श्रीनारदजीने लक्ष्मीके मदसे तुमको अन्धा देखकर शाप दिया और तुमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट करके तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, इस सब इतिहासको मैं पहिलेहीसे जानता था ॥ ४० ॥ समानचित्त, ब्रह्मज्ञानी, सनातन धर्ममें तत्पर,

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ॥ स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सकीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः ॥ दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ॥ यच्छ्रीमदांधयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ॥ दर्शनान्नो भवेद्बंधः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबरसादनम् ॥ संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ बद्धोलूखलमामंत्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे यमलार्जुनयोः नारदशापमोचनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

उनमें भी मुझमें निरन्तर मन लगानेवाले महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे ऐसे पुरुषोंका बन्धन कटजाता है जैसे सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंका अन्धकार दूर होजाता है ॥ ४१ ॥ हे नलकूबर ! हे मणिग्रीव ! तुम मेरे भक्त होकर अपने स्थानको जाओ, तुम्हारी मेरेविषे सर्वदा भावना रहेगी और तुम्हारा जन्म मरण रूप संसार मुझमें प्रेम करनेसे छूट गया ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुनकर नलकूबर, मणिग्रीव बारंबार परिक्रमा करके प्रणाम करने लगे और उलूखलसे बँधेहुए श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा लेकर उत्तर दिशाको चले गये ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां यमलाऽर्जुनयोः नारदशापमोचनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा—ग्यारहमें बछरन सहित, वृन्दावन हरि आय । वत्सासुर अरु बकासुर, हने कहूं सो गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, हे कुरुकुलभूषण ! वृक्षोंके गिरानेका शब्द सुन यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौड़ी और जिस उलूखलसे कृष्णको बाँधा था वहां न तो कृष्णको पाया और न उलूखलको देखा, तब तो एकाएकी घबराकर हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! हा मोहनप्यारे ! कह कहकर चिल्ला चिल्ला रोने लगीं, यशोदाकी चिल्लाहट सुनकर नन्दादिक समस्त गोप कहने लगे कि, यह कोई वज्र गिरा वा कोई और नया उत्पात हुवा ! इस भयसे भयभीत हो सब गोप वहाँ आये जहां वृक्ष गिरे थे॥१॥ देखा तो पृथ्वीपर यमलार्जुन वृक्ष उखड़ा हुवा पड़ाहै, गिरनेका कारण विद्यमान है, परन्तु गोपोंके मनमें भ्रम हुवा कि, आंधीभी नहीं आई वज्रभी नहीं टूटा, फिर यह वृक्ष आपसेआप कैसे उखड़पडे ॥ २ ॥ रस्सीसे बँधे बालक श्रीकृष्णको उलूखल खेंचते देखा तो भी व्रजवासियोंने न

श्रीशुक उवाच ॥ गोपा नंदादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥ तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशंकिताः ॥ १ ॥ भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ॥ बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥ उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं च बालकम् ॥ कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ॥ बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ॥ विलोक्य नंदः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥

जाना और परस्पर कहने लगे कि, यह किस राक्षसका कामहै कहांसे यह आश्चर्यरूप उत्पात हुवा, ऐसे कह व्रजवासी डरने लगे ॥ ३ ॥ वहां जो छोटे छोटे बालक खेल रहे थे उन्होंने कहा कि, यह श्रीकृष्ण उलूखलको खैंचे वृक्षोंके बीचमें आगया, तब यह उलूखल तिरछा होकर इन दोनों वृक्षोंके बीचमें अड़गया, तब इसने झटका मारकर खींचा, इससे यह दोनों वृक्ष गिरपड़े इनमेंसे दिव्यरूप दो पुरुष निकले उनको भी हमने देखा ॥ ४ ॥ बालकोंकी बातका किसी किसी व्रजवासीने तो विश्वास न माना और परस्पर कहने लगे कि, तनकसे बालकने इतने इतने बड़े वृक्षोंको कैसे उखाड़ डाला ? और कोई कोई व्रजवासी कहने लगे कि, इस बालकने जन्मसेही ऐसे औटपाय कियेहैं, जब बहुतही छोटा सा था तो पूतनाको मारा, तृणावर्त्तको मारा और गाड़ा पटकदिया, फिर यह, दो वृक्ष उखाड़ डाले तो क्या अचम्भा है ॥ ५ ॥ उलूखलको उदरमें बँधा देखकर

नन्दरायजी बोले कि, तुझको उलूखलसे किसने बाँधा है ! तब श्यामसुन्दरने कहा कि, मेरी प्यारी मैयाने, कृष्णके तुतलाते मधुरवचन सुन नन्दरायने उलूखलसे खोल हृदयसे लगालिया और हँसके बोले कि, चल बेटा तेरी मैयाको मारेंगे, श्रीकृष्ण बोले पिताजी ! मेरी मातासे कुछ मत कहना, क्योंकि उसका कुछ दोष नहीं सब अपराध मेराही है * ॥६॥ तब गोपियें बोलीं कि, हे मनमोहन प्यारे! हम तो ताली बजावें और तुम नाचो हम तुमको बहु तसा माखन खिलावैंगी, यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कभी बालककी नाईं नाचतेथे और कभी भोले बनकर गातेथे, जैसे काठकी पुतली बाजीगरके हाथमें

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ॥ उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयंत्रवत् ॥ ७॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ॥ बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥८॥ दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ॥ व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥ गृह्णीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ॥ फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ १० ॥

होतीहै और जिधरको फेरताहै, उधरको फिरतीहै ऐसेही गोपियोके प्रेमके वशमें परब्रह्म परमेश्वर होरहेहैं ॥७॥ कभी यशोदाजी कहैं हैं कि, हे बेटा ! पीढ़ा लेआव, कभी कहती बाबाकी खड़ाऊं ले आव, तब तुरन्तही पीढ़ा ले आवैं और तुरन्तही खड़ाऊं ले आवैं और जब कोई वस्तु नहीं उठती तब माता माता पुकारतेहैं, इसप्रकार व्रजवासियोंको लीलाकरके आनंद देतेहैं ॥८॥ संसारमें पण्डित लोगोंके दिखानेको कि, "मैं इसप्रकार भक्त लोगोंके वशमें हूं" जस नचातेहैं वैसे नाचता हूं, इसप्रकार बाललीला करके व्रजवासियोंको प्रसन्न करतेहैं और व्रजवासी आनन्दित होतेहैं ॥९॥ (एकसमय फल लो ! ऐसा

---

* शंका—अपने पुत्र श्रीकृष्णको बहुत रोता देखकर और कमरमें बहुत कसके रस्सीमें बँधा देखकर और वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर, कभी श्रीकृष्णके ऊपर न गिरगया हो परन्तु श्रीकृष्णकी देहमें कहीं चोट नहीं लगी, परमेश्वरने शरीरकी रक्षा की, ऐसे अपने पुत्रको देखकर नन्दजी क्यों हँसे ? बालकको दुःखी देखकर तो ऊपरी लोगभी शोच करने लगते हैं और श्रीकृष्ण नन्दजीके पुत्र ठहरे फिर नन्दजीने शोच किस लिये नहीं किया ?

उत्तर—नन्दजी गर्गाचार्यके वचनोंको स्मरण करके हँसे क्योंकि गर्गाचार्य नन्दजीसे पहिलेही कह गये ये श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् नारायणका स्वरूपहैं श्रीकृष्णके जन्मसे नन्दजीने अपने भाग्यको लक्ष्मीके प्राणपति जगत्के स्वामी ऐसे श्रीकृष्णको वारवार नमस्कार करके और अपने आपको धन्य जानकर मनमें परमानन्द होकर नन्दजी हँसेथे कि, देखो ? आज मेरे भाग्यकी बड़ाई शिव, सनकादिक भी नहीं कर सक्ते ॥

मालिनीका शब्द सुनकर, सम्पूर्ण फलोंके देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् धान्य लेकर फल लेनेको चले॥ १०॥ मालिनीने उनके धान्य डाल देनेके उपरान्त मनमोहन प्यारेकी परमप्यारी छवि देख उनके दोनों हाथ फलोंसे भर दिये. तब व्रजरत्नने उसकी डलिया रत्नोंसे भरदी ॥११॥ यमलार्जुन वृक्षोंको उखाडके श्रीकृष्ण यमुनाके तीरपर बालकोंके संग बलभद्रसहित खेल रहे थे, इनको रोहिणीजीने पुकारा दोनों भाई खेलमें ऐसे मग्न हो रहे थे कि, रोहिणीके बुलानेसे भी न आये, तब पुत्रसे प्रेम करनेवाली यशोदाजींको रोहिणीने बुलानेकेलिये भेजा ॥१२॥१३॥ १४ ॥ बालकोंके संग कृष्ण बलदेवके खेलते खेलते जब बहुत दिन चढ़ गया, तब यशोदाके पुत्रके स्नेहसे स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा तब यशोदाजी श्रीमनमोहन प्यारेको बुलाने लगीं

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् ॥ फलैरपूरयद्रत्नैः फलभांडमपूरि च ॥ ११ ॥ सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ॥ (रामं च रोहिणी देवी क्रीडंतं बालकैर्भृशम्) ॥ जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १२ ॥ पश्यपश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ॥ त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १३ ॥ नोपेयातां यदाहूता क्रीडासंगेन पुत्रकौ ॥ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥१४॥ इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ॥ हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ १५ ॥ क्रीडंतं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ॥ यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी॥१६॥ कृष्णकृष्णारविंदाक्ष तात एहि स्तनं पिब ॥ अलं विहारैः क्षुत्क्षांतः क्रीडाश्रांतोऽसि पुत्रक॥१७॥ हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनंदन ॥ प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान्भोक्तुमर्हति ॥१८॥ प्रतीक्षते त्वां दाशार्हो भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ॥ एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान्यात बालकाः ॥ १९ ॥

॥ १५ ॥ १६ ॥ हे कृष्ण ! हे कमलदललोचन ! हे प्यारे पुत्र ! स्तनपान करले, तू खेलते खेलते थकगया होगा. हे तात ! तुझको भूख बहुत लगी होगी अब खेलको रहनेदे, संध्याको फिर खेलना ॥ १७ ॥ हे राम ! हे मोहन ! हे नंदलाल ! हे कुलभूषण ! शीघ्र छोटे भाईको अपने साथ लेकर घरको आवो प्रातःकालही कलेऊ कर लिया है अब आनकर भोजन करले ॥ १८ ॥ अरे खेलके मतवाले ! व्रजनाथ तुझ विना भोजन करनेको बैठे हैं, तेरे आनेकी बाट देखरहे हैं, तुझको बूढे बाबाकी दया नहीं आती, तू आनकर हमको प्रसन्न कर, इस बातको सुनकर कृष्ण आये तब बालक बोले कि,

जैसे तैसे करके तो खेल जमा है अब श्रीकृष्ण जाते हैं, इसको कभी नहीं खिलानेके, यह बात सुनकर श्रीकृष्ण फिर खेलने लगे, तब यशोदा
बोली कि, अरे बालको ! तुम्हारे घरबारहै कि नही, क्यों नहीं अपने घरोंको जाते ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब व्रजमें बडे बडे
उत्पात होने लगे तब नन्दादिक वृद्ध वृद्ध व्रजवासियोंने विचार किया कि, महावनमें तो नित नये उत्पात होते हैं. अब गोकुलके हितका कोई
विचार करना चाहिये ॥ २० ॥ जोकि, ज्ञान और अवस्था करके अधिक देश कालके तत्त्वको जाननेवाले और बलभद्र व कृष्णचन्द्रके
अतिहित करनेवाले उपनन्द नाम गोप तहाँ बोले ॥ २१ ॥ गोकुलके हितकी इच्छा करके उपनन्द कहने लगे कि, हम यहाँसे उठके
और स्थानपर वास करेंगे, यहां बालकोंके विघ्न करनेवाले बहुतसे उत्पात होतेहैं ॥ २२ ॥ बालकोकी घातिक पूतना राक्षसीके हाथसे जैसे

श्रीशुक उवाच ॥ गोपवृद्धा महोत्पातानुभूय बृहद्वने ॥ नंदादयः समागम्य व्रजकार्यममंत्रयन् ॥ २० ॥ तत्रोपनंद
नामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ॥ देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २१ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुल
स्य हितैषिभिः ॥ आयांत्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २२ ॥ मुक्तः कथंचिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको
ह्यसौ ॥ हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥ २३ ॥ चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ॥ शिलायां पतितस्तत्र
परित्रातः सुरेश्वरैः ॥२४॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरंतरं प्राप्य बालकः ॥ असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २५ ॥
यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ॥ तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २६ ॥ वनं वृंदावनं
नाम पशव्यं नवकाननम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २७ ॥

तैसे कर यह बालक बचा और एक समय शकट इसके ऊपर गिरा उस विपत्तिसेभी भगवान्‌की कृपासे बचा ॥ २३ ॥ एक समय तृणावर्त
बवूलेका रूप धरके इस बालकको आकाशमें उडाकर लेगया और वहाँसे उसने शिलाके ऊपर पटक दिया, वहाँभी देवताओंने इसकी
रक्षा करी ॥ २४ ॥ यह बालक उलूखलमें बँधाहुआ दोनों वृक्षोंके बीचमें फँसगया और मरनेसे बचा, वहाँ उस समय और बालक भी कोई
नही था, वहाँ भी इस बालककी परमात्माने रक्षा करी ॥ २५ ॥ अब परमेश्वर और कोई दूसरा उत्पात व्रजमें न खडा करदे, इससे पहिलेही
बालकोको यहांसे लेकर और दूसरी ठौर कहीं चल बसें ॥२६॥ पशुओंका हितकारी और नये बाग बगीचे और पुष्पवाटिकावाला श्रीवृन्दावन

नाम वन है और वहीं अतीव उत्तम गोप गोपी, गायोंके रहने योग्य स्थान हैं और महापवित्र जहाँ गोवर्धन पर्वत है, यमुनाजीका किनारा है वहाँ तृण, जल, लता और उत्तम उत्तम सब प्रकारके वृक्ष हैं ॥ २७ ॥ उस वृन्दावनका वास सदैव अच्छा है, आपकी इच्छा हो तो गाडोंको जोतो और गायोंको आगे हाँकलो, अब विलम्ब करनेका समय नहीं है इस प्रकार उपनन्द गोपने नन्दजीसे कहा ॥ २८ ॥ उपनन्द गोपके वचन सुनकर सब वृद्धजनोंने कहा धन्य है आपकी बुद्धिको आपने बहुत अच्छा कहा . हे व्रजराज ! उपनन्दका कहना बहुत ठीकहै, हमारी भी सम्मति यहीहै वृंदावनमें वास कीजिये नन्दजीने कहा हमारीभी यही इच्छा थी परन्तु आपके कहनेसे और पक्की बात होगई. नन्दजीकी बात सुन

तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युंक्त माचिरम् ॥ गोधनान्यग्रतो यांतु भवतां यदि रोचते ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वै कधियो गोपाः साधुसाध्विति वादिनः ॥ व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥ २९ ॥ वृद्धान्बालान्स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च ॥ अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ ३० ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृंगाण्यापूर्य सर्वतः ॥ तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३१ ॥ गोप्यो रूढरथा नूतकुचकुंकुमकांतयः ॥ कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ ३२ ॥ तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ॥ रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३३ ॥

सबने अपनी अपनी गाडियोंको जोत घरकी सब सामग्री लादकर चलदिये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित ! प्रथम सब समानको गाडियोंमें भरकर ऊपर वृद्ध, बालक, स्त्रियोंको बैठालकर, धनुष बाण हाथोंमें लेलेकर ॥ ३० ॥ सब व्रजवासी सावधान हो गायोंको आगे कर, चारोओर बडे बड़े रणसिंग बजाते और तुरहीका शब्द करते पुरोहितको संग लेकर सब गोकुलवासी वृन्दावनको चलदिये ॥ ३१ ॥ गाडियोमें बैठी गोपी नवीन केशर कुचाओमें लगाये कठला, धुकधुकी कण्ठमें पहिरे, रथ और गाडियोंमें बैठीं कृष्णकी लीला गाती जाती थीं ॥ ३२ ॥ उसी प्रकार रोहिणी और यशोदा भी एक गाडीमें श्रीकृष्ण और बलदेवजीको साथ लिये बैठी थीं और

उनकी लीला और चारित्रोंको सुन सुनकर आनन्दको प्राप्त होती थीं ॥ ३३ ॥ सर्वानन्दको देनेवाले वृन्दावनमें आनकर गाडियोंको बराबर
खडा करके अर्द्धचन्द्रमाकी समान गायोंके रहनेके लिये एक खिरक बनाया ॥ ३४ ॥ हे राजन्! वृन्दावन, गोवर्द्धन और यमुनाजीका अत्यन्त
रमणीक तट देखकर श्रीकृष्ण और बलराम बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥ इसप्रकार बाललीला और तोतली मधुरवाणीसे व्रजवासियोंको आनन्द
देने लगे और जब दोनों भाई बछरे चरावने योग्य हुए तब वत्सपालक कहलाये ॥ ३६ ॥ व्रजभूमिके निकटही गोपालोंके बालकोंको संग लेके
श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई बछरोंको चराने लगे और भाँति भाँतिकी क्रीडा नित्य प्रति करने लगे ॥ ३७ ॥ कभी बाँसुरी बजाते थे और कभी
आमलोंको गोफनमें धरधरकर चलाते थे कभी पावोंमें घूँघुरू बाँधकर ऐसा नाच नचातेथे कि,अप्सराओंको लजाते थे.कभी परस्पर युद्ध करते

वृंदावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ॥ तत्र चक्रुर्व्रजाऽऽवासं शकटैरर्धचंद्रवत् ॥ ३४ ॥ वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापु
लिनानि च ॥ वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥ ३५ ॥ एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छंतौ बालचेष्टितैः ॥ कलवा
क्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३६ ॥ अविदूरे व्रजभुवः सहगोपालदारकैः ॥ चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडा
परिच्छदौ ॥ ३७॥ क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ॥ क्वचित्पादैः किंकिणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः॥ ३८ ॥
वृषायमाणौ नर्दंतौ युयुधाते परस्परम् ॥ अनुकृत्य रुतैर्जंतूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ ३९ ॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सां
श्चारयतोः स्वकैः ॥ वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४० ॥

थे, कभी कम्बल उढाय कृष्ण बलदेव दोनों भैया ग्वालोंको बैल बनाते थे और इनके संग आप भी बैल बनकर गम्भीर शब्द करते थे ॥३८॥ कभी
पक्षियोंकी बोली बोल बोलकर कहतेहैं कि, हम हंस हैं कोई कहते हम मोर हैं, जैसे प्राकृत बालक खेल खेलतेहैं वैसेही दोनों भाई वनमें जाकर गोपोंके
संग नये नये खेल खेलते थे॥३९॥ एक समय यमुनाजीके तीरपर श्रीकृष्ण और बलराम बछरे चरानेको गये और वहाँ कंसने सुना कि, नन्दादिक
गोप गोकुल छोडकर वृन्दावनमें जा बसे हैं,तब कंसने अपने साथी वत्सासुरको बुलाकर विनयपूर्वक अपने दुःखका सब वृत्तान्त कहाकि,भाई! नन्दके
पुत्रने मुझको बडा दुःख देरक्खाहै, कोई ऐसा उपाय करो जो वह बालक माराजाय. कंसकी यह बात सुन बत्सासुर बछरेका रूप बनाकर वृन्दावनमें

गया ॥ ४० ॥ और जो बछरे कृष्ण और बलराम चराते थे उनहीं बछरोंमें मिलकर यह भी चरने लगा और भयानकरूप देख सब बछरे डरकर जहाँ तहाँको भागगये. तब श्यामसुन्दरने उस राक्षसको पहँचानकर ऑखकी सैनसे बलदेवजीको जताया कि, देखो भाई ! यह दुष्ट राक्षस कंसका भेजाहुवा बछरेका रूप धरकर मेरे मारनेके लिये यहां आया है, तुम भी इसका ध्यान रखना ॥ ४१ ॥ वत्सासुर भी घूमता घामता अपनी घात लगाताहुवा धीरे धीरे वृन्दावनविहारीके समीप आ पहुँचा, तब श्रीकृष्णचन्द्रने उसका पिछला पैर पकड़कर एक कैथाके पेड़की जडमें घुमाकर ऐसा मारा कि, उसका प्राण निकलकर परमधामको सिधारा, बड़े भारी शरीरवाला वत्सासुर दैत्य कैथाके वृक्षसहित पृथ्वीपर गिरा ॥ ४२ ॥ उसको गिरा देखकर सब बालक अत्यन्त विस्मित हो धन्य धन्य कहने लगे और अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंने आकाशसे फूल बरसाये ॥४३॥ समस्त

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ॥ दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥ ४१ ॥ गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलांगूलमच्युतः ॥ भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ॥ स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४२ ॥ तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ देवाश्च परिसंतुष्टाः बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४३ ॥ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ॥ सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयंतौ विचेरतुः ॥४४॥स्वंस्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यंत एकदा॥ गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥ ४५ ॥

बालकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भ्राता बछरोंके वत्सपाल होकर प्रातः कालका कलेवा लेकर वनमें जाय बछरोंको चराते और अनेक अनेक प्रकारकी लीला विहार करते थे ॥ ४४ ॥ जब कंसने वत्सासुरके मारे जानेका वृत्तान्त सुना तो बडा शोच किया ? और उसके भाई बकासुरसे जाकर कहा कि, तू अपने भाईका बदला ले और उस दुष्ट कृष्णको मारकर मेरी छाती ठण्ढी कर. यह बात सुनकर बकासुर बगलेका रूप धारण कर वृन्दावनमें आया और कालिन्दीके किनारे पर्वताकार हो, मुंह फैलाकर इस घातमें जा बैठा कि, श्याम सुन्दर यहाँ आवे तो निगल जाऊँ उस दिन सब बालक अपने अपने बछरोके समूहोंको यमुनाजीके निकट जल पिलानेके लिये गये, वहाँ जाय बछरोंको जल

पिलाया और आप भी पिया ॥ ४५ ॥ और वहाँ उन बालकोंने वज्रसे टूटे गिरे पर्वतके शिखरके तुल्य बड़े मुखवाला एक पक्षी देखा और उसको
देखकर अत्यन्त भयभीत हुए ॥ ४६ ॥ यह महाबली तीक्ष्णचोंचवाला बगलेका रूप धारणकिये बकासुरनाम दैत्य था. वह बकासुर बलवान् आन
कर श्रीकृष्णको शीघ्रही निगल गया और कहा कि, मैंने आज अपने बत्सासुरका बदला ले लिया ॥ ४७ ॥ जब श्रीकृष्णको बकासुर लीलगया
तब बलदेवादिक सब बालक विना प्राणोंके इन्द्रियकी समान अचेत होगये और रोरोकर कहने लगे कि, हाय ! हम सब यशोदाको जाकर क्या
उत्तर देंगे ? जिसने अपना प्यारा पुत्र हमको सौंपदिया था, सब दौडे हुए बलदेवजीके पास आये और वृत्तान्त सुनाया कि, हमने बहुतेरा वर्जा
परन्तु श्यामसुन्दरने हमारा कहना एक न माना, अब हम क्या करें और क्या न करें ? बलदेवजी बोले कि, तुम घबराओ मत, उस दैत्यको मार

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ॥ तत्रसुवज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृंगमिव च्युतम् ॥ ४६ ॥ स वै बको नाम महान
सुरो बकरूपधृक् ॥ आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुंडोऽग्रसद्बली ॥ ४७ ॥ कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ॥
बभूवुरिंद्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४८ ॥ तं तालुमूलं प्रदहंतमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ॥ चच्छर्द
सद्योऽतिरुषाऽक्षतं बकस्तुंडेन हंतुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ४९ ॥ तमापतंतं स निगृह्य तुंडयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां
पतिः ॥ पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ५० ॥ तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समा
किरन्नंदनमल्लिकादिभिः ॥ समीडिरे चानकशंखसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥ ५१ ॥

कर मनमोहन प्यारे अभी आते हैं, उसी समय गायनके पालनकरनहारे, नन्दके दुलारे, ग्वाल बालोंके प्यारे, यशोदाके नेत्रोंके तारे, जगत्के गुरु,
ब्रह्माके पिता, श्रीकृष्णचन्द्रने अग्निके अंगारकी समान उसके तालूको जलाना आरम्भ किया, उस बकासुरने कृष्णको तुरन्तही उगलदिया और
उनके शरीरमें कुछ भी कष्ट न हुवा, तब तो अत्यन्त क्रोध करके फिर बकासुर व्रजविहारीके ऊपरको धाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ सज्जनोंके सहायक,
देवताओंके आनन्ददायक, श्रीकृष्ण यदुनायक, कंसके सखा बकासुरको फिर आता देख दोनों हाथसे उसकी चोंच पकडके सब बालकोंके देखते
देखतेही तृणकी समान चीरकर बगेल दिया ॥ ५० ॥ उस समय सुरपुरनिवासी देवताओंने बकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके

ऊपर नन्दनवनके मालतीके पुष्पोंकी वर्षा करके दुंदुभि और शंख बजाय बजाय उनकी स्तुति करने लगे. इस कौतुकको देख देखकर ग्वाल बाल आश्चर्य मानते थे ॥५१॥ जैसे इंद्रियें प्राण आनेसे आनन्दित होतीं हैं तैसे बलभद्रादिक सब बालक बकासुरके मुखसे निकलेहुए श्यामसुन्दर प्यारेको देखकर आनन्दितहुए और छातीसे लगाकर सब बालक उनसे मिले और सब बछरोंको इकट्ठा करके बारंबार प्रशंसा करने लगे ॥ ५२ ॥ यह सुनतेही गोप और गोपी बहुत संशय करने लगे और गोप गोपी बडे आदर सत्कारसे श्रीकृष्णको देखनेलगे जैसे कोई मृतक होकर घर आजाताहै और सब कुटुम्बियोंका चित्त उनको देखते २ तृप्त नहीं होता ॥५३॥ सब गोप कहने लगे कि, इस बालकके ऊपर बडी बडी विपत्तियें पडी, परन्तु जो मारनेको आया वह आपही मारागया, क्योंकि पहिले उन्होंने औरोंको भय दिखाया ॥ ५४ ॥ महाभयंकर रूप धर धरकर अनेक असुर और राक्षस कृष्णके

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवेंद्रियो गणः ॥ स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान्व्रजमेत्य तज्जगुः ॥ ५२॥ श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः॥ प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षंत तृषितेक्षणाः ॥५३॥ अहो बताऽस्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ॥ अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५४॥ अथाप्यभिभवंत्येनं नैवते घोरदर्शनाः ॥ जिघांसयैनमासाद्य नश्यंत्यग्नौ पतंगवत् ॥ ५५ ॥ अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः संति कर्हिचित् ॥ गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥ ५६ इति नंदादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ॥ कुर्वंतो रममाणाश्च नाविंदन्भववेदनाम् ॥ ५७ ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागव० महापुराणे दशमस्कंधे पू० वत्सबकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मारनेको आये, परन्तु परमेश्वरकी दयासे इनका कुछ कर न सके, आपही मरनेके लिये इसके पास आये जैसे अग्निमें आकर पतंग जल जाते हैं तैसे आपही आनकर मरजातेहैं ॥ ५५ ॥ अहो ! वेदवादियोंकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती जो जो बातें गर्गाचार्य कहगये थे, वह सब बातें अब सत्य होती जाती हैं ॥ ५६ ॥ इस प्रकार कृष्ण बलरामकी रसभरी बातें कह कहकर आनन्दित होते थे और सुख पातेथे, जिन्होंने भवसागरकी वेदनाको कुछ न समझा इस प्रकार आँखमिचौनी, पुल बांधने, बन्दरोंकी समान कूदना, यह कौमार अवस्थाके खेल कर करके श्रीकृष्ण बलराम कौमार अवस्था व्यतीत करते थे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां वत्सबकवधो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! श्रीकृष्णने
दोहा—द्वादशमें धारि सर्प वपु, निगले ग्वाल रु बाल। तासुं अघासुरको हनो, कृपासिंधु गोपाल ॥१॥ बच्छरोंको आगेकर
एक दिन वनमें भोजन करनेके विचारसे प्रातःकाल उठकर सुन्दर शृंगी बजाकर अपने प्यारे ग्वालबालोंको जगाया और कलेवा बाँध
श्रीकृष्णचन्द्र घरसे निकले ॥१॥ उन श्रीकृष्णके संग स्नेही ग्वालोके सहस्रों बालक उत्तम उत्तम छींके, बेत शृंगी और बाँसुरी लेलेकर सहस्रसे भी
अधिक संख्यावाले अपने अपने बछरोंके समूहोंको आगे करके आनन्द सहित घरसे चले ॥२॥ असंख्यात श्रीकृष्णके बछरोंमें मिलाकर चराते
चराते बाललीला करकरके यह बालक जहाँ तहाँ विहार करते थे ॥३॥ मणियोंसे जडाऊ सुवर्णके गहने पहने हुए थे, तोभी वनमें जाकर फलोंके कोंप

श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥ प्रबोधयञ्छृगरवेण चारुणा विनि
गतो वत्सपुरस्सरो हरिः ॥१॥ तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ॥ स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसं
ख्ययान्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ॥ चारयंतोर्भलीला
भिर्विजह्रुस्तत्रतत्र ह ॥३॥ फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः ॥ काचगुंजामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥
मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीञ्ज्ञातानाराच्च चि क्षिपुः ॥ तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसंतश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरं गतः
कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥ केचिद्वेणून्वादयंतो ध्मांतः शृंगाणि
केचन ॥ केचिद्भृंगैः प्रगायंतः कूजंतः कोकिलैः परे ॥ ७ ॥

लोंके, चौटलियोंके, गुच्छोंके, फूलोंके, मोरपुच्छके और खड़ियामट्टी. गेरूके तिलक लगा लगाकर अपना अपना शृंगार कररहे थे ॥ ४ ॥ परस्प
र छींका बेत आदि चुराते, जब जान लेते तो दूसरे बालकके पासको फेंक देते थे, वह बालक फिर औरके पासको फेंक देते थे तब वह छींकेवाले बालक
रोने लगते, तब श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर उनके छींके बेत दिला देते थे ॥ ५ ॥ सुन्दर वनकी शोभा देखनेके लिये जब श्रीकृष्ण दूर चले जाते तब बा
लक परस्पर होड बदबदकर दौड़ते थे और कहते थे कि, पहिले मैं छुऊं, वह कहते थे कि, पहिले मैं छुऊं, इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको छूते थे और
आनन्दित हो होकर खेलते थे ॥६॥ कोई बालक बाँसुरी बजाते थे, कोई शृंगीका शब्द सुनाते थे, कोई २ बालक भौरोंके संग गाते थे.

और कोई कोई कोकिलाकी वाणीमें वाणी मिलाते थे ॥७॥ और कोई आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके संग दौडते। कोई बालक हंसोंके संग धीरे धीरे चलते कोई बालक बगलोंकी पॉतिके पास चुपके चुपके जा बैठते और कोई बालक मोरोंके संग नाचते थे ॥ ८ ॥ कोई बालक बन्दरोंकी पूँछ पकड पकड कर खींचते थे, कोई पूंछ पकडेही पकड़े उनके संग कूदकर वृक्षोंपर चढ जाते थे और कोई बालक अपने कान दबा कर आंखे फैलाकर बन्दरोंके सन्मुख खडे हो घुडकी बताते थे कोई वृक्षोंपर चढ चढ नीचेको कूदते थे ॥ ९ ॥ कोई कोई मेंढकोंके संग फुदकते थे, जब वह पानीमें डुबकी मारें तब आप भी उसके संग डुबकी (गोता) मारते हैं कोई बालक अपनी परछाई पानीमें देखकर उसकी हँसी करते थे कोई बालक कुएँ बावड़ीमें अपनी प्रतिध्वनिको सुन उनको गाली देते थे ॥ १० ॥ ब्रह्मज्ञानियोंको ब्रह्मस्वरूप करके जाननेमें

विच्छायाभिः प्रधावंतो गच्छंतः साधुः हंसकैः ॥ वकैरुपविशंतश्च नृत्यंतश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥ विकर्षंतः कीशबालानारोहंतश्च तैर्द्रुमान् ॥ विकुर्वंतश्च तैः साकं प्लवंतश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलंघंतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः ॥ विहसंतः प्रतिच्छायाः शपंतश्च प्रतिस्वनान् ॥१०॥ इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ॥ मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुंजाः ॥ ११ ॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः ॥ स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥ १२ ॥

आते हैं दासभावके करनेवाले भक्त जिनको परम दैवतरूप स्वामी जानते हैं और मायासे मोहित हुए पुरुष उनको मनुष्यका बालक मानते हैं जिनकी जैसी भावना है उनको वैसेही दिखाई देते . धन्य भाग्य है ग्वाल बालोंका, देखो ब्रह्मज्ञानियोंको केवल भगवान्का अनुभवही होताहै, भक्तोंके केवल भजनही सर्वानन्द है, परन्तु ग्वालबालोंकी ओरको देखिये कि, उन्होंने कैसे कैसे उग्र तप किये हैं कि दिनरात भगवान् वासुदेव जिनके संग आहार विहार करते हैं, देखो यह सखाभावका प्रभाव है ॥११॥ योगिजनोंको भी अनेक जन्म महाकष्ट सहकर तप करनेसे जिनके चरणारविन्दकी धूरी मिलनी अत्यन्त दुर्लभ है, सो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी वासुदेव भगवान् जिनके सन्मुख प्रत्यक्ष विराजमान रहैं

उन व्रजवासियोंके भाग्यकी कहाँतक बडाई करें ॥ १२ ॥ इन ग्वालबालोंकी सुखपूर्वक लीलाको न सहन करके वह अघासुरनाम दैत्य उस वनमें आया कि, अमृत पान करनेवाले देवताभी अपने जीनेकी इच्छासे नित्य प्रति जिसके मरनेकी राह देखते थे ॥१३॥ कंसका भेजाहुवा, पूतना और बकासुरका छोटा भ्राता, वह अघासुर कृष्णादिक छोटे छोटे बालकोंको देखकर मनमें विचार करने लगा कि, इसी कृष्णने मेरे भाई और बहिनको मारा है, उन दोनोके बदले आज ग्वालबाल बछडें और बलदेव समेत इस कृष्णको मारूंगा ॥ १४ ॥ और अपने भैया बहनको भी इन बालकोंके संगही तिलांजलि दूंगा, तब सब व्रजवासी मृतक समान होजायँगे; प्राण गये पीछे देहोंकी क्या चिन्ता है ? क्योकि प्राणधारी पुरुषोंके तो पुत्रही

अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ॥ नित्यं यदंतर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ॥ अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥ एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापःकृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः॥ प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिंता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ॥ धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथिव्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥१६॥ धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननांतो गिरिशृंगदंष्ट्रः ॥ ध्वांतांतरास्यो विततध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७ ॥

जीवन प्राण हैं ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर चार कोश लम्बा पर्वतकी समान मोटा अजगर साँपका अद्भुत रूप धारणकर गुफाकी सदृश मुख पसार बछरे और बालकोंके निगलनेके लिये मार्गमें बैठगया ॥ १६ ॥ नीचेका होठ तो पृथ्वीपर और ऊपरका होठ बादलतक फैला रक्खा था पर्वतकी गुफाके समान जिसका मुख पहाडके शिखरकी सदृश जिसकी दाढें, गूढ कन्दराकी तुल्य मुखमें अन्धकार, बडे लम्बे चौडे मार्गकी नाईं, जिसकी जीभ, कठोर पवनके समान जिसका श्वास और अग्निकी तुल्य जिसकी दृष्टि थी * ॥ १७ ॥

* शंका—अघासुर राक्षसके दोनों होठोंकी लम्बाई सुनकर हमारे सबके मनको बडा सन्देह है और हमारा हृदय कांपता है. क्योंकि ऐसी होठोंकी लम्बाई रावणकी तारककी और अनेक राक्षसोंकी भी न थी यह महिमा हमने आज तक कहीं नहीं सुनी, होठ थे या कोट थे ?

सब बालक उस अजगरको देखकर वृन्दावनकी शोभा समझकर खेलते खेलते फैले हुए उस अजगरके मुखकी लीलासेही उत्प्रेक्षा करने लगे ॥ १८ ॥ और परस्पर कहते थे कि, अहो मित्रो ! यह तो कहो कि, यह जो हमारे सन्मुख दिखाई देता है कोई पक्षी है वा मुनुष्य है ? हमारे निगलनेके लिये सर्पकी समान मुख पसार रहा है कि नहीं ॥ १९ ॥ सत्य है सूर्यके किरणोंसे लाल लाल बादल ऐसे दृष्टि आतेहैं मानो सर्पका ऊपरवाला होठ है और सूर्यकी परछाईंसे सब पृथ्वी ऐसी लाल लाल दिखाई देती है मानो सर्पके नीचेकी ठोड़ी है ॥ २० ॥ इधर उधर पर्वतकी

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ॥ व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षंते स्म लीलया ॥ १८ ॥ अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् ॥ अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुंडायते न वा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् ॥ अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययाऽरुणम् ॥ २० ॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ॥ तुङ्गशृङ्गाऽऽलयोप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥ आस्तृताऽऽयाममार्गोयं रसनां प्रति गर्जति ॥ एषामंतर्गतं ध्वांतमेतदप्यंतराननम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत ॥ तद्दग्धसत्त्वदुर्गंधोऽप्यंतरामिषगंधवत् ॥ २३ ॥

कंदरासी महागम्भीर अँधियारी ऐसी जान पडती है मानो सर्पके मुखका अन्त है ऊंचे ऊंचे पर्वतके शिखरसे हमको ऐसे दिखाई देतेहैं मानो साक्षात सर्प अजगरकी डाढैंहैं, तुम ध्यान करके देखो ॥ २१ ॥ यह लम्बा चौडा मार्ग हमको ऐसा दृष्टि आता है मानो साँपकी जिह्वा है और इन शिखरोंके भीतर हमको ऐसा अन्धकार दीखता है मानो सर्पके मुखके भीतरका भाग है ॥ २२ ॥ दावानलसे उष्ण उष्ण महातीक्ष्ण पवन ऐसा

उत्तर—अघासुरका पूर्वजन्मका पुण्य था, सो श्रीकृष्णका दर्शन करके बडे मुखसे अपने सन्मुख वर्द्धित होकर स्वर्गको चलागया, परन्तु अपने तेजसे ऊपरके होठको सगही लेतागया और इस जन्ममें जो पाप किया था वह श्रीकृष्णको देखकर डरकर भागा और पातालमें जानेकी इच्छाकी भूमिको भेद अघासुरका पाप रसातलको चला गया, परन्तु अघासुर नीचेके होठको खींचकर अपने सग लेतागया, पहिले अघासुरने श्रीकृष्ण महाराजके शरीरको स्पर्श किया तब उसके पुण्य पाप दोनों नष्ट होगये, तब अघासुर कृष्णकी देहमें मिलगया, पाप पुण्य नाश होनेका कारण यह है जबतक प्राणीके पुण्य रहेंगे तबतक वह स्वर्ग प्राणी भोगेगा और पाप रहेगा तो नरक भोगेगा, जब दोनों नष्ट होजायगे तब ईश्वरमें मिलेगा इसलिये आकाश और भूमिमें अघासुरके होठोंकी वृद्धि हुई ॥

लगता है मानो महाविषवाले सर्पका श्वास है और यह विचारकर देखो कि, अग्निमें जैसे जीव जलते हैं ऐसी दुर्गन्धि आती है यह सर्पके डसे हुए
सानों मांसकी दुर्गन्धि है ? ॥ २३ ॥ इस सर्पके मुखमें जो हम घुस भी गये तो क्या यह हमको निगल जायगा ? और जो यह हमको निगल भी
गया तो श्रीकृष्ण इसको बकासुरकी नाईं क्षणभरमें मार सक्ते हैं वा नहीं ? इस प्रकार परस्पर कहते सुनते बकासुरके विध्वंस करनेहारे श्रीकृष्णका
सुन्दर मुखारविन्द देख हँसते हँसाते ताली बजाते सब ग्वालबाल आगेको चले, "ताली बजानेका कारण यह था कि, जो सर्प होगा तो सरक जायगा
और जो वृन्दावनकी यह अद्भुत शोभा होगी तो खेलैंगे" ॥२४॥ श्रीवृन्दावनविहारी भक्तहितकारीने विचारा कि, वास्तवमें तो यह सर्पही है और सर्पका
देह धारण किये हुए कोई दैत्य है और हमारे साथी बालकोंने इसे वृन्दावनकी शोभा समझकर फिर सर्पके भी सब लक्षण वर्णन किये यह अजान हैं

अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनंक्ष्यति ॥ क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसंतः करता
डनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिंत्येत्य मृषा मृषायते ॥ रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृ
त्स्थितः स्वानां निरोद्धं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥ तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरांतरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ॥ प्रती
क्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकांतस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वक
रादवच्युतान् ॥ दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७ ॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य
जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ॥ द्वयं कथं स्यादिति संविचिंत्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुंडमशेषदृग्घरिः ॥ २८ ॥

और परस्पर भूलसे बातें कर रहे हैं, ऐसा समझ सब प्राणियोंके हृदयमें वास करनेवाले भगवान्ने उन भोले बालकोंके वचन सुनकर जबतक
उनके निषेध करनेको चाहा कि, इसमें मत घुसो कि, ॥ २५ ॥ इतनेमें वह सब बालक बछरों समेत उस अघासुर दैत्यके मुखमें घुसगये परन्तु
अघासुरने अपने मरेहुए भाई बहनकी सुधि करके उन बालकोंको निगला नहीं, क्योंकि मनमें विचार किया कि, बकासुरका मारनेवाला मेरा वैरी
कृष्ण तो अभी आयाही नहीं ॥ २६ ॥ सबके अभयदाता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अनाथकी समान दीन बालकोंको अपने हाथसे छूटे हुए जान
और अघासुरके उदरमें घासकी सदृश देखकर दयासे पीडित हुये और आश्चर्यसे कहने लगे कि, कैसी अद्भुत गति है ॥ २७ ॥ अब इस समय

दैवकी क्या उपाय करना चाहिये कि, यह दुष्ट तो माराजाय और मेरे जीवन प्राण परम प्रिय ग्वाल बाल बच जायँ, यह दोनों बातें एक बारमें कैसे होयँ ? यह विचारकरके सब संसारके द्रष्टा भगवान्ने अघासुरके मुखमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटमें खडे होकर देवता हाहाकार करने लगे और नैर्ऋतवंशी अघासुरके भाई बन्धु तथा कंसादिक राक्षसोंको परमानन्द हुवा ॥ २९ ॥ अविनाशी श्रीकृष्ण भगवान् देवताओंका हाहाकार शब्द सुनकर ग्वाल बाल बछरों समेत अपनेको चूर्ण करनेकी इच्छा करनेवाले उस अघासुरके कण्ठमें बढे ॥ ३० ॥ तब उस बड़े शरीरवाले राक्षसका घट घिरगया आँखें बाहरको निकल आईं इधर उधर छटपटाने लगा, देहमें श्वास

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ॥ जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबांधवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ॥ चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ॥ पूर्णांतरंगे पवनो निरुद्धो मूर्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥ तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ॥ दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुंदो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ॥ प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ॥ गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिस्स्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥

रुकगया, बाहर निकलनेको मार्ग नहीं मिला, पवन उसके ब्रह्मरन्धको छेदन करके बाहर निकलगया ॥ ३१ ॥ अघासुरके श्वासके संगही प्राण बाहर सटक गये, तब सब बालक और बछरोंको मरा देखकर अपनी सजीवन दृष्टिसे अमृतकी वृष्टिकरके जिलादिया और उनको साथ लेकर फिर श्रीमुकुन्द भगवान् अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२ ॥ उस दुष्ट अघासुरके देहमेंसे बड़ी अद्भुत ज्योति निकलके अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करके आकाशमें स्थित हो श्रीकृष्णचन्द्रके बाहर निकलनेका पन्थ जोहती रही, जब श्रीकृष्ण उसके मुखसे बाहर निकले तब सब देवताओंके देखतेही देखते श्रीकृष्णके शरीरमें प्रविष्ट होगयी ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओने प्रसन्नहोकर आकाशसे फूल

वर्षाकर श्रीकृष्णकी पूजा करी, अप्सराओंने नृत्य किया, गन्धर्व गानेलगे, बाजेवाले बाजे बजाने लगे, ब्राह्मण जय जय शब्द करके स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ वह अद्भुत स्तोत्र और गीत, वाद्य, जय आदिक अनेक उत्सव मंगल शब्दोंको सुनकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे शीघ्रही चले आये और श्रीकृष्णकी महिमा देखकर आश्चर्यमय हुये ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! उस अजगरका सूखा हुवा अद्भुत खखोड़ल वृन्दावनमें बहुत दिनतक व्रजवासियोंके बालकोंके खेलनेके लिये एक गुफा होगई, मुखके मार्गको घुसें और नेत्रोंके मार्गसे निकल आवें, नेत्रोंके मार्गको घुसें तो मुखके मार्गको निकल आवें, इस प्रकार दिनरात विहार करते रहें ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्ने बालकोंको और अपने आपको मृत्युसे छुडाना और अघासुरकी मोक्षका करना यह सब पांच वर्षकी अवस्थाका कर्म आश्चर्य मानके सब बालक व्रजमें श्रीकृष्णकी पौगंड अवस्था

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान् ॥ श्रुत्वा स्वधाम्नोंत्यज आगतोऽचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृंदावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाऽऽक्रीडगह्वरम् ॥ ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ॥ मृत्योः पौगंडके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥ नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ॥ अघोपि यत्स्पर्शनधौतपातकः पापात्मसात्म्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥ सकृद्यदंगप्रतिमांतराहिता मनोमयीं भागवतीं ददौ गतिम् ॥ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोंतर्गतो हि किं पुनः ॥ ३९ ॥

अर्थात् पांचवर्षके व्यतीत होने उपरान्त छठे वर्षके मध्यमें कहते भये ॥ ३७ ॥ मायासे मनुष्य बालकँ रूप धारण कियेहुए सम्पूर्ण स्थावर जंगमके आदिकारण परमात्मा श्रीकृष्णभगवान्के स्पर्शसे महापापी अघासुर पवित्र होगया, जो बात असत्पुरुषोंको महादुर्लभहै ऐसे भगवद्रूपमें वह लय होगया, यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है ॥३८॥ क्योंकि जिसकी मनोहर मूर्ति प्रह्लादादिक भक्तोंने एक बारहीं बलात्कारसे मनमें धारणकी और उसीके प्रभावसे उन लोगोंने मोक्ष पाई तो सदैव अपने आत्मानन्दके अनुभवसे और माया करके रहित श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के शरीरमें अघासुरका प्रवेश होनेसे उसकी मुक्ति हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है ॥ ३९ ॥

शौनकादिक ऋषीश्वरोंसे सूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार अपनी माताके गर्भमें यदुकुलके देव श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित हुए राजा परीक्षित् अपनी रक्षाकरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके विचित्र पवित्र चारित्र सुनकर व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीसे फिर उसी प्रसंग सम्बन्धी प्रश्न किया, क्योकि उन चारित्रोंके सुननेसे राजा परीक्षित्का मन परीक्षित्के वशमें होगया ॥ ४० ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्ण महाराजने कुमार अवस्थामें जो लीला करी वह बालकोंने पौगंड अवस्थामें गाई, यह एक वर्षका अन्तर बीचमें कैसे पडगया ? ॥ ४१ ॥ हे बड़े योगिराज ! हे गुरो ! यह बात मुझको समझाकर कहो, मेरे मनमें वडा आश्चर्य है ? क्योंकि यह निश्चय भगवान्कीही माया है और कुछ नहीं है ॥ ४२ ॥ हे गुरो !

सूत उवाच ॥ ॥ इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ॥ पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कालांतरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ॥ यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगंडकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥ तद्ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो ॥ नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥ वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबंधवः ॥ यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानंतहृताखिलेंद्रियः ॥ कृच्छ्रात्पुनर्लब्धवहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० दशम० पू० अघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥

हम क्षत्रियवंशी संसारमें अतिशय धन्य हैं, जिससे कि, तुमसे वारंबार कृष्णकथारूप अमृतपान करते हैं ॥ ४३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे हरिभक्तो ! इस प्रकार राजाने प्रश्न करके अपनी श्रद्धा दिखाई, दूसरे हरिका स्मरण करतेही प्रथम तो श्रीशुकदेवजीकी समस्त इन्द्रियें नारायणमें लय होगईं तब व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने बडे कष्टसे फिर नेत्र खोलकर भक्तोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित्से कहा ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायाम् अघासुरवधोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा—तेरहमें अज मोहवश, हरे ग्वाल अरु बाल। उसी रूपके कृष्णने, रचे बहुरि ततकाल ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! हे वड़भागी ! हे भक्तिभूषण ! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया, क्योंकि

ईश्वरकी कथाको श्रद्धासहित बारंबार सुनो हो इससे तुम परमश्रेष्ठ हो ॥ १ ॥ सारवस्तुके ग्रहण करनेवाले सज्जनोंका यही स्वभावहै, क्योंकि जिन पुरुषोंकी वाणी, कान और मन, यह सब भगवान्‌की कथामें लगे रहते हैं, उस वाणीसे कृष्णचन्द्रके गुणवर्णन करते हैं, कानोंसे नित्य नयी कथा सुनते रहते हैं, मनसे श्यामसुन्दरके स्वरूपका ध्यान करते रहते हैं ॥ इस प्रकार भगवान्‌की वार्त्तामें क्षण क्षण प्रति ध्यान लगाये रहते हैं और वह कथायें ऐसी प्रिय लगती हैं, मानो कभी नहीं सुनी हैं, जैसे विषयी पुरुषोंको स्त्रियोंकी बातें प्यारी लगती हैं ॥ २ ॥ हे राजापरीक्षित् ! यह कथा परमगूढ है तो भी मैं आपसे कहता हूँ, क्योंकि कैसीही गुप्त वार्त्ता हो गुरुको चाहिये कि, अपने प्यारे शिष्यके सामने सब कहै, सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥ अघासुरके मुखमेंसे मृतक बालक और बछरोंको जिवायकर यमुनाके किनारे अत्यन्त रमणीक रेतीमें उनको लायकर श्रीकृष्ण

सताम्अयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ॥ प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता ॥ २ ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥३॥ तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ॥ सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छबालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगंधहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्‌द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवाऽऽरूढं क्षुधार्दितैः ॥ वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरंतु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेति पाययित्वांभो वत्सानारुध्य शाद्वले ॥ मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥

भगवान् यह कहने लगे ॥४॥ हे परमप्यारे मित्रों ! यह अत्यन्त रमणीक रेती है और विहार करनेके लिये परमश्रेष्ठ और शोभायमान स्थान है, देखो कैसे सुन्दर और स्वच्छ बालूके कोमलकोमल बिछौने बिछरहेहैं, रंग रंगके कमल फूल रहे हैं, उनपर सुगन्धके लोभसे भौंरे गुंजार रहे हैं और जल पक्षियोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे चारों ओरके वृक्ष शब्दायमान होरहे हैं ॥५॥ यहाँ बैठकर कलेवा करलो, दिन भी बहुत चढ गया है और भूख भी अधिक लग रही है, बछरोंको भी जल पिलाकर यहीं चरनेके लिये छोड दो, सहज सहजमें घास चरते रहेंगे ॥६॥ सब बालकोंने; श्रीकृष्णके वचनोंको मान बछरोंको पानी पिला हरी हरी घासमें चरनेको छोड दिया और सब अपने अपने छींकोंको खोल खोल छाक परोस परोस

श्रीकृष्णके सग भोजन करनेको बैठे ॥ ७ ॥ व्रजवासियोंके बालक श्रीकृष्णचन्द्रके चारों ओर अनेक पंक्तियोंकी मण्डली बनाकर एकसाथ बैठ यदुनाथके सन्मुख मुख करनेसे जिनकी दृष्टि प्रफुल्लित हो रही थी, जैसे कमलकी कलीके चारों ओर पखुरियोंकी छवि दिखाई देती है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र तो कलीकी समान थे और ग्वाल बाल पखुरीकी समान, इसप्रकार यमुनाकी रेतीमें शोभायमान जान पडते थे ॥ ८ ॥ किसी बालकने फूलोंकी पत्तल बनाई, किसीने पखुरियोंकी पत्तल बनाई किसीने पत्तोंकी पत्तल बनाई किसीने अंकुरोंकी पत्तल बनाई और किसीने फलोंकी पत्तल बनाई और किसीने वृक्षोंकी छाल छीलकर पत्तलें बनाईं और उनपर भाँति भाँतिके भोजन परोसे, किसी किसीने छींकेहीमें भोजन करनेकी ठहरादी कोई शिलाहीपर अपना भोजन परोसकर खानेको बैठ गया ॥ ९ ॥ सब बालक अपने अपने भोजन पृथक् पृथक् प्रकारके

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमंडलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ॥ सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथांभोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरंकुरैः फलैः ॥ शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥ सर्वे मिथो दर्शयंतः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ॥ हसंतो हासयंतश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥

आप खाते अरु औरोंको स्वाद दिखाते और चखाते परस्पर हँसते हँसाते ठट्ठे उडाते श्रीकृष्णके साथ भोजन कर रहे थे ॥ १० ॥ फेंटमें बाँसुरी उरझ रहे थे शृंगीबेतकी छड़ियोंको काँखमें दाब रहेथे, दही भातसे लिपटाहुवा ग्रास बाँयें हाथमें ले रहेथे और बेर, आमले, नींबु, आम जामुनादि फल अँगुलियोंमें धर लिये थे, यज्ञभोक्ता भगवान् चारोंओर अपनी मित्रमण्डलीमें बैठे उनसे हँसीकी बातें कह कह कर उनको हँसाते जाते थे और धीरे२ भोजन खाते जाते थे इस बालचरित्रको स्वर्गमें देवता देख देखकर आश्चर्यमय हो मनही मन कहते थे कि, देखो यज्ञ भोक्ता भगवान् किस प्रकार आनन्दित हो होकर व्रजवासियों के बालकोंकी जूंठन छीन छीन कर खारहे हैं, पूर्वजन्ममें इन्होंने पूर्ण पुण्य किये हैं ॥ ११ ॥

हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इसप्रकार श्रीकृष्णमें मन लगाये ग्वालबाल भोजन कररहे थे और बछरे हरी हरी घासके लोभसे बहुत दूर वनके
भीतर चले गये ॥ १२ ॥ जब बछरे दूर चले गये तब सब बालक अपने मनमें घबराये, उस समय उनकी घबराहट दूर करनेके लिये भगवान्
भयहारी उनसे बोले कि, हे मित्रो ! तुम भोजन करते रहो उठो मत क्योंकि ऐसी सुन्दर मण्डली फिर न बँधेगी, मैं अभी बछरोंको लिये आताहूं
॥ १३ ॥ इसप्रकार सबका धैर्य बँधाय दही भातका ग्रास हाथमें लिये श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफाओंमें, वनमें, कुंजोंमें, गह्वर स्थानोंमें अपने बछ

भारतैवं वत्सपेषु भुंजानेष्वच्युतात्मसु ॥ वत्सास्त्वंतर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ॥ मित्राण्याशान्मा विरमतेहाऽऽनेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाद्रिदरीकुंजगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ॥ विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥ १४ ॥ अंभोजन्मजनिस्तदंतरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मंजु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ॥ नीत्वान्यत्र कुरूद्वहांतरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥ ततो वत्सानदृष्ट्वेत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ॥ उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समंततः ॥ १६ ॥

रोंको ढूँढ़ते ढूँढ़ते दूर चले गये ॥ १४ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! उसी अवसरमें कमलोद्भव ब्रह्माजी जो कि, प्रथम मायासे बालकरूप श्रीकृष्णका किया
अघासुरका मोक्ष होना देखकर, अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो आकाशमें खडे खड़े देखरहे थे अब वह फिर श्रीकृष्णकी यह दूसरी माया देखनेके
लिये यहांसे तो बालकोंको और वनमेंसे बछरोंको चुराकर दूसरे स्थानमें लेजाय अन्तर्धान होगये ❀ ॥ १५ ॥ जब वनमें बछरोंको न देखा तब

❀ शंका–भगवान्के अनेक अवतार हुए परन्तु किसी अवतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न नहीं हुवा यह बात शास्त्र और पुराणोंके वक्ता और आचार्यलोगोंसे सुनरक्खी है, परन्तु कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह क्यों उत्पन्न हुवा ?

उत्तर–ब्रह्माने नारदजीको मायामें ग्रसित हुवा देखकर उनकी हँसी करी, तब नारदने ब्रह्माको शाप दिया कि, हे पिताजी ! आपको भी माया ग्रसित करेगी, किसीदिन श्रीकृष्णको भोजन करते देखकर उनकी मायामें ग्रसित होओगे, हे पिताजी ! श्रीनारायणकी माया सर्वोपरि बलवती है, इस नारदके शापसे कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न हुवा ॥

लौटकर फिर यमुनातीरपर आये तो यहाँ वालकोंको भी न पाया, उस समय वालकोंको और वछरोंको वनमें चारों ओर ढूँढ़ते फिरे ॥ १६॥ जब वनमें कहीं बछरोंको और बालकोंको न पाया तब विश्वभावन भगवान् सब विश्वकी गतिके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें जान लिया कि यह सब ब्रह्माका कौतुक है ॥ १७ ॥ यह समझ जगदीश्वर भगवान्ने विचार किया कि जो मैं चुप होकर वैठ रहा तो बालकोंकी माता रोवेंगी और, जो ब्रह्माके पाससे छीनकर ले आऊंगा तो ब्रह्मा अपने मनमें लज्जित होगा और उसके मनका मोह दूर न होगा, बालकोंकी माताओंको आनन्द देनेके लिये और ब्रह्माको मोह बढ़ानेके लिये विश्वके सृजनहार श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने अपने ही अनेक रूप बनाये, बछरे भी आपही बने और ग्वालबालभी आपही बने ॥ १८ ॥ जैसा जिसके बछरोंका और बालकोंका छोटा अथवा वड़ा शरीर और जैसे जिनके हाथ पॉव थे, किसीके छै अंगुली थीं,

क्वाप्यदृष्ट्वांतर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ॥ सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥ १७ ॥ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ॥ उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषांवरम् ॥ यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोंगवदजः सर्वस्वरूपो वभौ ॥ १९ ॥ स्वयमात्मात्मगो वत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ॥ क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २० ॥ तत्तद्वत्सान्पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ॥ तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयस्सुधाऽऽसवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥

जैसी जैसी उनके पास छड़ी, शृंगी, बॉसुरी, छींके थे, जैसे जिसके आभूषण वस्त्र, कुसुम्भी, हरी, पीली, गुलाबी, पगड़ी, थी, जैसा जिसका स्वभाव था वैसाही स्वभाव, रूप, गुण, नाम, अवस्था, आहार, व्योहार और लक्षण सर्वात्मा भगवान् आप वने ॥ १९ ॥ सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् आपही बछरे बने, आपही उनको घेर घेर कर अपने खेलोंसे खेलने लगे, उसीप्रकारका विहार करते हुए आपही व्रजमें पधारे ॥ २० ॥ हे राजन्! जिन जिन व्रजवासियोंके बछरे थे समूहमेंसे अलग अलग होकर उन उनके खिरकोंमें घुसगये और जिन जिन व्रजवासियोंके बालक थे वह अपने अपने घरोंको चले गये ॥ २१ ॥ उन बालकोंकी माता बॉसुरियोंका शब्द सुनकर शीघ्रतासे उठ उठकर अपने अपने घरोंसे

स्तनोंमें दूध भर आया, वही अमृतकी तुल्य स्वादका दूध परब्रह्म
बाहर निकलकर बालकोंके हाथ पकड़ पकड़ कर हृदयसे लगाने लगीं स्नेहसे
श्रीकृष्णचन्द्रको अपने २ पुत्र मानकर पिलाने लगीं ॥ २२ ॥ फिर पीछे उबटन करके मज्जन स्नान कराया चन्दन केशर लगाय गहने पहराने लगीं;
फिर मस्तकपर तिलक लगाय भोजन कराया। इस प्रकार सब गोपी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड़ लड़ातीथीं और वृन्दावनविहारी अपने सुन्दर सुन्दर
चरित्र दिखाकर उनको आनन्द देते थे, उस समय खेलका नियम साधकर सन्ध्याकाल व्रजमें आते थे ॥२३॥ इस प्रकार गोपियोंका मोह कहकर
अब गौओंका मोह करते हैं, गायें दौड दौडकर रम्भाय रम्भाय व्रजमें आती हैं और अपने अपने बछरोंको बुलाती हैं जब बछरे आते हैं तब अपने
अपने बछरोंको प्रेमसे अपनमें संचित हुये दूधको उन्हें, पिलावें हैं बारंबार हित मानकर उनको चाटती जाती हैं ॥ २४ ॥ इस कृष्ण चन्द्रमें

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ॥ संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन
माधवः ॥ २३ ॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ॥ स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहु
र्लिहंत्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृतास्मिन्सर्वा स्नेहर्धिकां विना ॥ पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता
मायया विना ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याऽऽब्दमन्वहम् ॥ शनैर्निस्सीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत्॥२६॥
इत्थमात्मात्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः ॥ पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदा चारयन्व
त्सान्स रामो वनमाविशत् ॥ पंचषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥

भी
सब गोप गोपियोंकी मैत्री भाव पहिले केसी नाईं होगया, परन्तु पहिले इतना हित नहीं था अब पहिलेसे अधिक स्नेह बढ़गया गोपियोंमें भी
श्रीकृष्णकी बालभावना पहिलेकी समान रीति प्रीति होगई परन्तु मैं इसका पुत्र हूँ और यह मेरी माता है यह मोह नहीं रहा ॥ २५ ॥ व्रजवासि
योंकी अपने बालकोंमें स्नेहरूपी लता एक वर्षतक धीरे धीरे ऐसी बढी जिसकी वृद्धिका पारावार नहीं जैसे पहिले देवकीनन्दनमें बढी थी ॥२६॥
इस प्रकार सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बछरे और बालकोंके बहानेसे आपरूप बछरोंके आपरूप ग्वालोंको बनाय बछरे चराकर वनमें
व्रजमें एक वर्षतक क्रीड़ा करते रहे ॥ २७ ॥ जब कि, एक वर्ष पूरा होनेमें पांच सात दिन शेष रहगये तब एक दिन भगवान् बलभद्र भैयाको

संग लेकर वनमें बछरे चरानेको गये थे वहाँ बलभद्रजीको ऐसा कुछ देखनेमें आया ॥ २८ ॥ बहुत दूर जो गायें गोवर्धन पर्वतके ऊपर चर रही थीं उन्होंने व्रजके निकट अपने बछरोंको चरता देखा ॥ २९ ॥ बछरोंको देखतेही प्रेमके वश हो, अपने तन मनकी सब सुधि भूल गईं और उनके थनोंसे दूध टपकने लगा, गोपोंके निवारण करने और विषम मार्गका कुछ भी ध्यान नहीं किया और ऐसी भागीं मानो दोहीं पाओंसे चल रही हैं, मुख और पूँछ ऊपरको उठाये बड़े वेगसे हुंकार शब्द करती बछरोंके समीप पहुँची ॥ ३० ॥ यद्यपि इन गायोंके और छोटे छोटे दूसरे बछरे भी थे तो भी वह गायें गोवर्द्धनपर्वतसे नीचे आय इन बछरोंसे मिल, उन बछरोंको दूध पिलाने लगीं और ऐसे उनके शरीरको चाटने लगीं मानो

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ॥ गोवर्धनाद्रिशिरसि चरंत्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाऽथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ॥ द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥ ३० ॥ समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ॥ गिलंत्य इव चांगागि लिहंत्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ॥ दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२॥ तदीक्षणप्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ॥ उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ॥ कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥

निगल जायँगी ॥ ३१ ॥ अब गोपोंका मोह कहते हैं, जब गोपोंने गायोंको घेरा तब गायें नहीं घिरीं तब लज्जित हो अपने मनहीं मनमें कहने लगे कि, हम बानेत गोप कहलाते हैं, परन्तु आज हमसे गायेंभी नहीं रुकीं, तब अपने मनमें बडा क्रोध करने लगे और उन कठिन कठिन मार्गोंमें बडी कठिनतासे नीचे आये, वहां बलदेवजीके संग बछरोंको लिये अपने पुत्रोंको देखा ॥ ३२ ॥ उनको देखतेही वह गोप अत्यन्तही प्रेमरसमें मग्न होगये, इससे सब क्रोध शान्त हुवा और प्रेम बढा. तब तो बालकोंको हाथ उठा उठाकर हृदयसे लगालिया और उनके माथेको सूंघकर व्रजवासी बडे आनन्दित हुये ॥ ३३ ॥ फिर पीछे वृद्ध वृद्ध गोप बालकोंको हृदयसे लगाकर बडे प्रसन्न हुये और महाकठिनतासे सहज सहजमें बालकोंको छोडके

बहार निकले बालकोंकी सुधिसे उनके नेत्रोंमें जल भरआया ॥ ३४ ॥ यद्यपि उन बालकों ने दूध पीना छोड़ दिया था और बड़े भी होगये थे, तोभी उन बालकोंमें व्रजवासियोंके प्रेमकी ऐसी वृद्धि देख और उसके कारणको न समझकर बलरामजी अपने मनमें विचार करने लगे ॥ ३५ ॥ कि, सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर जैसा प्रेम प्रथम था वैसाही अपूर्व प्रेम अब बालकोंपर भी बढता जाता है और यही नही मेरे हृदयमें भी वत्स और बालकोंपर क्षण क्षणमें अधिक प्रेमकी वृद्धि होती चली जाती है; यह बडी अद्भुत बात है न जानिये यह क्या कारण है ? ॥३६॥ यह क्या है ? देवताओंकी मायाहै, वा मनुष्योंकी मायाहै, अथवा राक्षसी मायाहै, ? मैं नहीं जानसक्ता यह कहाँसे आई और कैसी अलौकिक माया है ? क्योंकि इसने मुझको भी मोहित करलिया, इससे मुझको यह जान पडता है कि, जो यह माया मेरे स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी हो तो आश्चर्य

व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धेर्वीक्ष्यौत्कंठ्यमनुक्षणम् ॥ मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिंतयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥ व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥ केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युताऽऽसुरी ॥ प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति संचिंत्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ॥ सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥ नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाऽऽश्रयेऽपि ॥ सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥

नहीं ? क्योंकि और दूसरेकी माया मेरे मनको मोहित नहीं करसक्ती ॥३७॥ इसप्रकार शोच विचारकर दाशार्हवंशोद्भव बलदेवजीने अपनी ज्ञानदृष्टिसे देखा तो सब बछरे और बालक सर्वात्मा श्रीकृष्णरूपमें दिखाई दिये ॥३८॥ कि सब देवता ग्वाल बाल बने हैं और ऋषि मुनियोंने बछरोंका रूप धारण किया है, यह मैं जानता हूँ, परन्तु यह बालक अब तो देवता नहीं है और यह बछरे ऋषिभी नहीं हैं, अब तो मुझको सबमें श्रीकृष्ण दृष्टि आते हैं, जब यह भ्रम हुवा तो श्रीकृष्णसे बूझा कि, हे प्रभु ! इस भेदको प्रकाशो यह क्या भेद है ? सो तुम सम्पूर्ण भेद भिन्न भिन्न संक्षेपसे समझाकर कहो ? जो मेरे मनका सन्देह दूर हो ? जब इसप्रकार बलदेवजीने श्रीकृष्णसे कहा तब श्रीकृष्णने सब वृत्तान्त समझाकर कहा कि, हे भैया ! तुमको आज सुधि हुई है, जब ब्रह्माको मोह हुवा और बछरे और बालकोंको चुराकर लेगया तब मैंने बालक और बछरोंक

वैसाही रूप धारण किया और उनके कुटुम्बियोंको क्लेश न होने दिया. इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेसे बलदेवजीने सब भेद जाना ॥३९॥ देखो यहां तो एकवर्ष बीत गया, परन्तु ब्रह्माका एक पल ही बीता था तब ब्रह्माने फिर आनकर देखा तो पहिले केसी नाईं बछरे और बालकोंको संगलिये श्रीवृन्दावनविहारी नये नये ढंगके खेल खेल रहेहैं ॥४०॥ यह अद्भुत कौतुक देख ब्रह्माजी अपने मनमें विचार करने लगे कि, गोकुलमें जितने बछरे और बालक हैं वह सब मेरी मायारूपी शयनमें पडे सोरहे हैं और अभीतक उठे नहीं ॥ ४१ ॥ फिर यह मेरी मायासे अलग जो ग्वालबाल और बछरे चररहे हैं और अनेक प्रकारके विहार कर रहेहैं,सो यह यहां कैसे आगये ! जितने मैं हरकर लेगयाहूं उतनेही उसीस्थानपर यहॉ वर्षदिनसे भगवान्‌के संग विहार कररहेहैं ॥४२॥ आपही मोहित हो ब्रह्माजी बहुत देरतक विचार करते रहे कि, इनमें कौनसे बालक और बछरे सत्यहैं और कौनसे

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ॥ पुरोवदब्दं क्रीडंतं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥ यावंतो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ॥ मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥४१॥ इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ॥ तावंत एव तत्राब्दं क्रीडंतो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥ एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मनि ॥ सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥ ४३ ॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ॥ स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥ ताभ्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ॥ महतीतरमायैश्यं निहंत्यात्मनि युंजतः ॥ ४५ ॥

असत्य हैं ? मैं जो हरकर लेगया वे सत्य हैं वा यह जो ब्रजविहारीके संग विहार कर रहेहैं ये सत्य हैं, दोनों एकसे दिखाई देतेहैं, क्या करूं मैं किसी प्रकार इस भेदको नहीं जानसक्ता ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हेराजन् ! कभी वनमें कभी ब्रह्मलोकमें एक वर्षतक चकईके समान ब्रह्मा दिन रात घूमते फि ! देखो ! इस प्रकार ब्रह्माजी विश्वके मोह करनेवाले और आप मोहरहित विष्णुभगवान्‌को अपनी मायासे मोहित करना चाहते थे परन्तु आपही मोहित होगये ॥ ४४ ॥ जैसे अँधेरी रातमें कुहर अन्धकारसे अपना पृथक् आवरण नहीं करसक्ता. क्योंकि उसी अन्धकारमें आप भी लय होजाता है. जैसे दिनमें खद्योत (पटबीजना) अपना प्रकाश पृथक् नहीं कर सक्ता, ऐसेही ऐश्वर्यवान् पुरुषोंपर कोई साधारण पुरुष अपनी माया करना चाहै तो उस अधमकी माया उत्तमपुरुषका कुछभी नहीं करसक्ती, बरन् चलाने

वालेहीकी सामर्थ्यका विनाश करतीहै ॥ ४५॥ देखो ! ब्रह्माके देखतेही देखते क्षणमात्रमें और एक अद्भुत आश्चर्य हुआ. सब बछरे और बालक मेघवत् श्यामवर्ण, पीताम्बर पहिरे ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजरूप धारे, हाथमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये मस्तकपर किरीट, मुकुट, धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, कण्ठमें मोतियोंके हार और वनमाला पहिरे ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सकी कान्तिसे शोभायमान भुजाओंमें भुजबन्द पहिरे रत्नजटित शंखके समान तीन रेखावाले कंकण करमें धारण किये नूपुर, कटक कमरमें तगड़ी और मुन्दरियोंके धारण करनेसे शोभायमान ॥ ४८ ॥ बडे पुण्यवान् सज्जनोंसे समर्पण की हुई तुलसीकी नवीन और कोमल मालाओंसे शिरसे पाँवोंतक परिपूर्ण ॥ ४९ ॥

तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ॥ व्यदृश्यंत घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सांगददोरत्नकंबुकंकणपाणयः ॥ नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥ ४८ ॥ आंघ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥ कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥ चंद्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः ॥ स्वकार्थानामिव रजस्सत्त्वाभ्यां स्रष्टपालकाः ॥५०॥ आत्मादिस्तंबपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ॥ नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ॥ चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिः ॥ ५२ ॥ कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ॥ स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥

चन्द्रिकाकी सदृश स्वच्छ मन्दहास्यसे मानो अपने दासोंको सत्त्वगुणसे पालन करते और अरुणाईयुक्त कटाक्षभरी चितवनसे अपने भक्तोंके मनोरथोंको मानो रजोगुणसे उत्पन्न करते विदित होतेथे ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे आदि लेके तृणपर्यन्त स्थावर जंगम समस्त प्राणी मूर्तिमान् होकर एक एक बछरेके सन्मुख नाच और गान आदिक अनेक अनेक प्रकारसे उनकी पूजा और शिष्टाचार करते थे ॥ ५१ ॥ और अणिमादिक अष्ट सिद्धि, मायासे लेकर महदादिक विभूति चौबीस तत्त्व, चारों ओर देदीप्यमान थे ॥ ५२ ॥ काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म, सत्त्वगुण, रजोगुण

तमोगुण यह रूप धारण कर प्रत्येककी सेवा करते थे. इन सबकी स्वतंत्रता श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमाके आगे नष्ट होगई थी॥५३॥ सत्यज्ञानरूप आनन्दमात्र एकरस जो ब्रह्ममूर्तिवाले तथा जिनकी चक्षु आत्मज्ञान हैं ऐसे महात्मा पुरुषभी जिनकी महिमाके माहात्म्यको नहीं जान सक्ते, ऐसा रूप ब्रह्माजीने सबका देखा ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ समस्त बछरे और बालकोंको परब्रह्ममय देखा जिसपर ब्रह्मकी कान्तिसे सम्पूर्ण स्थावर, जंगम और यह विश्व प्रकाशमान होरहा है ॥ ५५ ॥ उसके पीछे फिर बड़े आश्चर्यसे ब्रह्माजीकी सब इंद्रियें शिथिल होगईं और उनके तेजसे ब्रह्माजी चुप होगये जैसे ग्रामकी रक्षा करनेवाली पुतलीके आगे चार मुखकी सुवर्णकी प्रतिमा खड़ी होय इस प्रकार खडा हुआ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सरस्वतीके स्वामी तर्कना रहित, स्वप्रकाश सुखनिधान प्रकृतिसे परे और ब्रह्मसे पृथक् वस्तुके मिथ्या जिनका

सत्यज्ञानानंतानंदमात्रैकरसमूर्तयः ॥ अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥ एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ॥ यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशद्रियः ॥ तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यंतीव पुत्तिका ॥ ५६ ॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ॥ अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७ ॥ ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ॥ कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥ ५८ ॥ सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ॥ वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥ ५९ ॥ यत्र नसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः ॥ मित्राणीवाऽजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥ ६० ॥

ज्ञान प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदोंसे होसक्ता है उस अलौकिक रूपको देखकर और उस महिमाको विचार कर यह क्या है ऐसे शोचतेहुए ब्रह्मा जो मोहित होगये और उनकी अवलोकन करनेकी शक्ति भी जाती रही. तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्माजीकी यह दशा देखकर मायाका आवरण उनके हृदयसे दूर कर दिया ॥ ५७ ॥ तब तो ब्रह्माजीकी सब इंद्रियें चैतन्य होगईं जैसे मृतक पुरुष जी उठै है ऐसे बड़े कष्टसे नेत्रोंको खोलकर अपनी आत्मासहित ब्रह्माजीने जगत्को देखा ॥ ५८ ॥ जब ब्रह्माजीने चारों ओरको दृष्टि उठाकर देखा तो सन्मुखही चारों ओर प्रियपदार्थोंसे परिपूर्ण और मनुष्योंकी जीविकाके लिये वृक्षोंसे भरापुरा वृन्दावन है ॥ ५९ ॥ जिस वृन्दावनमें स्वाभाविक वैर करनेवाले सिंह

मृग और मनुष्य परस्पर परममित्रके समान रहते हैं, श्रीवृन्दावनविहारीके संग रहनेसे सब प्राणियोंका क्रोध और तृष्णा दूर होगई है ॥ ६० ॥ उस वृन्दावनमे गोपालवंशके बालकपनका आचरण करनेवाले अनन्त अगाध ज्ञानस्वरूप बछरे और ग्वालबालोंको पहिलेकी समान ढूंढते फिरते थे और हाथमें दहीभातका ग्रास लिये अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरका दर्शन ब्रह्माको हुआ ॥ ६१ ॥ इसप्रकार वृन्दावन विहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको देख उसी समय ब्रह्माजी अपने वाहन हंससे नीचे उतर कञ्चनके दण्डकी तुल्य अपनी देहसे साष्टांगकर चारों मुकुटोंका अग्रभाग चरणारविन्दोंसे लगाय दण्डवत् कर आनन्दरूप आंसुओंके जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक किया ॥ ६२ ॥ प्रथम जो भगवान्की अद्भुत महिमा देखी थी उसको वारंवार स्मरण कर करके श्रीगोविन्द भगवान्के चरणारविन्दोंमेंसे उठे और फिर गिरपड़े इस प्रकार

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनंतमगाधबोधम् ॥ वत्सान्सखीनिव पुरः परितो विचिन्वदेकं सपा णिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदंडमिवातिपात्य ॥ स्पृष्ट्वा चतुर्मु कुटकोटिभिरंघ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥ उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ॥ आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वास्मृत्वा पुनःपुनः ॥ ६३ ॥ शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुंदमुद्वीक्ष्य विनम्रकंधरः ॥ कृतांजलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥ इति श्रीभाग० म० दशम० पू० ब्रह्ममोहनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदंबराय गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥ वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥ १ ॥

वडी देरतक ब्रह्मा पाओंमें पडेरहे ॥ ६३ ॥ फिर पीछे कुछ कालोपरान्त सहज सहजमें उठ आंसू पोंछ भगवान्की ओर निहार लज्जाके मारे नीची नार कर हाथ जोड शरीर कम्पायमान मुखसे कुछ कुछ अक्षर निकले इसप्रकार गद्गद वाणीसे ब्रह्माजी स्तुति करनेलगे कि, हे नाथ ! ॥ ६४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां ब्रह्ममोहवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा–चौदहमें हरिके चरित, अद्भुत अलख लखाय । हरि अस्तुति अज ज्यों करी कहौं कथा सो गाय ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे स्तुति करने योग्य ! श्यामघटाकी समान तुम्हारा शरीर, विजलीसम पीताम्बर धारण किये, गुंजाओंके कर्णभूषण, मयूरपुच्छके मुकुटसे शोभायमान मस्तक, कण्ठमें वनमाल पहिरे, दहीभातका

हे अच्युत ! हे अखंडरूप ! मैंने रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण आपके स्वरूपको नहीं जाना आपसे भिन्नहीं भगवान्‌को जाना मै अजन्मा जगत्‌का कर्ता हूं इस अभिमानसे अंधा होरहाहूं आप मेरे स्वामी हो मुझे अपना दास जानकर कृपा करिये. क्योंकि मैं आपकी कृपाके योग्य हूं ॥ १० ॥ यदि आप मुझको ब्रह्मांडका नाम कहो तो हे भगवन् ! माया, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वीसे बने ब्रह्मांडमें सात विला दिकी देह वाला मैं कहां और आपके रोमकूपरूप झरोखोंमें ऐसे अनंत ब्रह्मांडरूप परमाणु घूमते फिरते रहते हैं, ऐसी आपकी अद्भुत महिमा कहां ? मुझमें और आपमें बड़ा अंतर है, इसलिये मुझको अत्यन्त तुच्छ जानकर मुझपर अनुग्रह कीजिये और यह भी समझना चाहिये कि, यह ब्रह्मा यद्यपि और लोकका अधिष्ठाता है तो भी हमारा अनुचरही है ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज (इन्द्रियोंसे जाननेमें न आवे) जो अनजान बालक अपनी

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ॥ अजावलेपांधतमोंधचक्षुष एषोऽनुकंप्यो मयि नाथवा निति॥१०॥ काहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टितांडघटसप्तवितस्तिकायः ॥क्वेदृग्विधाऽविगणितांडपराणुचर्या वाताध्व रोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥ उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ॥ किमस्तिनास्तिव्य पदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनंतः ॥ १२ ॥ जगत्रयांतोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ॥ विनिर्गतो ऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥

माताकी गोदमें बैठकर पॉव उछाले अथवा लात मारे तो क्या माता उसको अपराधी माने ?" कोई कहै कि ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता कैसे कहा ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता इस प्रकार कहा" कि स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणरूप सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें विद्यमान है जो शब्दसे कहनेमें नहीं आता जब सब विश्व आपके उदरमें ठहरा, तो विश्वमें रहनेसे मैंभी आपके उदरमें हुवा, इसलिये मुझे अपना पुत्र समझकर मेरा अपराध क्षमा करो ॥ १२ ॥ हे नारायण ! प्रलयकालमें जब भूर्लोक, भुवर्लोक स्वर्लोक इन तीनों लोकोंका नाश हो जाता है तब चारों ओरसे समुद्रका जल उमड़े है, उस जलके भीतर नारायणकी नाभिसे एक कमल उपजे है, उस कमलनालसे ब्रह्मा उत्पन्न होता है, क्या यह बात झूंठ है ? क्या यह देववाणी नहीं है ? क्या मैं आपसे उत्पन्न नहीं हूं ? क्या तो कह दो यह बात झूंठ है और जो कहो कि झूंठ नहीं है तो मैं आपका पुत्रही हूं तो मेरा अपराध सब

प्रकारसे क्षमा करना चाहिये ॥ १३ ॥ क्या तुम नारायण नहीं हो ? नहीं ! तुमही नारायण हो और तुमहीं सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा हो हे अधीश ! सबके प्रेरणा करनेवाले समस्त लोकोंको साक्षात् देखोहो. नार जो जीवसमूह और जल जो आपका अयन (वास, आश्रय) है, इस लिये नारायण नाम आपका प्रसिद्ध है सो आपकी मूर्ति है और जो विचार करके देखिये तो यह भी सत्य नहींहै क्योंकि मुझको सब मायारूपही जान पडते हो ॥ १४ ॥ हे जगदीश्वर ! जगत्का आश्रयभूत आपका रूप जलके भीतर सत्य है तो जिस समय मैंने कमलनालके भीतर बैठकर सौ (१००) वर्षतक आपको ढूंढ़ा तब आप क्यों नही दिखाई दिये ? और हृदयमें भी क्यों नहीं प्रगट हुए फिर तप करनेसे तुरंतही क्यों आपका रूप दिखाई दिया ? इसलिये यह सब आपकी मायाही है, तुम्हारी मूर्तिमें किसी देश कालका परिच्छेद नहीं बनसक्ता ॥ १५ ॥ हे मायाके करनहारे

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽखिललोकसाक्षी ॥ नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥ तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ॥ किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किन्नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥ अत्रैव मायाधमनाऽवतारे ह्यस्य प्रपंचस्य बहिः स्फुटस्य ॥ कृत्स्नस्य चांतर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥ यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ॥ तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ १७ ॥ अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ॥ तावंतोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावंत्येव जगंत्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥ १८ ॥

बाहर भीतर समस्त विश्वके प्रकाश करनेवाले यदि यह जलादि प्रपञ्च तुमसे पृथक् होय तो इससे तुम्हारा परिच्छेद होना सम्भवहै परंतु यह मायासे उत्पन्न है यह बात आपने इस अवतारमें यशोदा मैयाको अपने उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दिखाकर प्रत्यक्ष कर दिया, इससे यह प्रपञ्च मायाहीका कियाहुवाहै ॥ १६ ॥ जिस प्रकार आपके उदरके भीतर आप समेत यह विश्व प्रकाशमानहै और तुम्हारे साथ इसका प्रकाश होना मायाके विनाही बनसक्ता है जो बाहरके जगत्का तुममें प्रतिबिम्ब पडे तो यह बाहरकी वस्तु उलटी दीखनी चाहिये और यदि आपको दर्पणस्थानमें माना जाय तो आपका दर्शन उसमें नहीं होना चाहिये, इस कारण यह सब मायाही है ॥ १७ ॥ केवल आपके विना यह सब संसार मायारूप है,

क्या यह मायाही दिखाई है ? क्योंकि, प्रथम आप अकेले थे, पीछे सम्पूर्ण व्रजके बछरे और ग्वालरूप हो गये, फिर कुछ कालोपरान्त सबके सब चतुर्भुजरूप होगये, फिर एक एक रूपके आगे मैं (ब्रह्मा) शिव, इन्द्र सहस्रों दृष्टि आये और एक एकने एक एक रूपकी स्तुति करी फिर आप ब्रह्मरूप होगये, फिर पीछे प्रणाम करनेमें भी नहीं आये, इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्मरूप अवशेष रहगये ॥१८॥ सर्वव्यापक आपके स्वरूपको मायामें स्थित हुये जो प्राणी नहीं जानते हैं उन पुरुषोंके ऊपर मायाको फैलाकर स्वतंत्रतासे आप प्रकाशो हो जगत्के उत्पन्न करनेके समय ब्रह्माका रूप धारण करलेते हो, पालनके समय विष्णुरूप धारण करलेते हो और संहारके समय तीन नेत्रवाले रुद्ररूप बन जाते हो ॥१९॥ हे ईश ! हे प्रभु ! हे जन्मरहित विधाता ! देवता, ऋषीश्वर, मनुष्य, पशु, पक्षी, और जलके जीवोंमें आप साधु लोगोंपर कृपा करनेके लिये और दुष्टोंके

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम्॥सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोंत इव त्रिनेत्रः ॥१९॥ सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य॥जन्माऽसतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥ २० ॥ कोवेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ॥ क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥ तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ॥ त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनंते माया त उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयं ज्योतिरनंत आद्यः ॥ नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरंजनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥

अभिमान हरनेके लिये जन्म लेते हो ॥२०॥ हेव्यापक ! हेभगवन् ! हेपरमात्मन् ! हेयोगेश्वर ! आप जो अपनी योगमायाको विस्तार करके जिस समय विहार करते हो उन लीलाओंको त्रिलोकीमें कौन जाननेवाला है ? कि कहाँ हैं, कैसी हैं, कौन हैं और कितनी हैं ॥ २१ ॥ इस लिये यह मिथ्या स्वरूप स्वप्नकी समान प्रकाशमान दुःखरूप सब संसार केवल आपके नित्यसुख चैतन्यमय अनन्तस्वरूपमें मायासे उत्पन्न होनेके कारण नित्यसुख और चैतन्यस्वरूपके समान भासै है परन्तु वास्तविकतासे असत्स्वरूप, स्वप्नतुल्य प्रतिभास रहित, कष्टसेभी अधिक कष्टरूप मानो कष्टमयही है ॥ २२ ॥ केवल सत्यस्वरूप तो एक आपही हो, क्योंकि आत्मा हो जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, जहाँतक मन जाता है

इसलिये सत्य है आपमें कोई विकार नहीं इसलिये सत्यस्वरूप हो आप सबके कारण स्वरूप हो, सबके व्यापक
वह सब मायाहै, आत्मा दृश्य नहीं. इसलिये सत्य है आपमें कोई विकार नहीं इसलिये आपका कभी विनाश नहीं होता, तुम अनंत और होनेसे पुरुष कहलाते हो तुम सदा पूर्ण हो, नित्य सुखस्वरूप हो अक्षर हो अमृतहो, इसलिये ज्ञानके साधनसे आपकी प्राप्ति नहीं होती, अद्वैत हो इसलिये आपके देश कालका परिच्छेद नहीं, आप स्वयंप्रकाश उपाधिरहित असंग हो, इसलिये आप सदा आप निरञ्जन हो, इसलिये आपके स्वरूपमें किसी प्रकारका संस्कार भी नहीं है, आप नित्यमुक्तरूप हो अमृत हो ॥ २३ ॥ इसलिये आप सदा आत्मारूप हो और समस्त जीवोंके आत्मा हो, जिन पुरुषोने सूर्यरूप गुरुसे उपनिषद्के ज्ञानरूप नेत्र प्राप्त किये हैं वह महात्मा आत्माहीसे आपका दर्शन करके संसारसागरके पार हो जाते हैं ॥ २४ ॥ जबतक प्राणी आपके आत्मस्वरूपको आत्मरूप नहीं जानते तबतक उनको अज्ञानसे यह

गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा ये ते तरंतीव भवान्तृतां
एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ॥ ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते
बुधिम् ॥ २४ ॥ अत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपंचितम् ॥ अजस्रचित्या
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥ २५ ॥ अज्ञानसंज्ञौ भवबंधमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ॥ आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य
त्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥ त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ॥
अहोऽज्ञजनताऽज्ञता ॥ २७ ॥

सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रगट भासता रहता है और वही प्रपञ्च आत्मरूपको जाननेसे लय होजाताहै, जबतक अज्ञान है तबतक रज्जु सर्परूप भासे है; जब ज्ञान होजाता है तबरज्जु रज्जुही जाननेमें आतीहैं, अज्ञानसे रज्जुमें सर्प जानना अध्यासहै और ज्ञानसे रज्जुही जानना अपवादहै ॥२५॥ संसारमें बन्धन और मोक्ष केवल अज्ञानसे हैं सत्य ज्ञानरूप आत्मासे भिन्न नहीं है निरन्तर चैतन्यरूप आत्मा परमेश्वर आपही हो ऐसा विचार करनेसे आत्मामें अज्ञान वा बन्धन कुछ भी नहीं है. जैसे सूर्यके सन्मुख रात दिन नही है, सदा प्रकाशही रहताहै ॥ २६ ॥ आत्मस्वरूप परब्रह्म आपको देह मानकर और देहादिकको आत्म मानकर यही खोयेहुए आत्मरूपी पदार्थको बाहर खोजना देखो ! यह मूर्खोंकी कैसी मूर्खता है, क्योंकि घरकी

खोई वस्तु कोई वनमें खोजने नहीं जाता ॥ २७॥ विना जाने झूँठ भी सत्यहीकी समान विदित होता है इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ * हे अनन्त ! ज्ञानीपुरुष तो इस देहमेंही आपको खोजते हैं, "यह भी आत्मा नहीं यह भी आत्मा नहीं" ऐसे जड़ पदार्थोंका त्याग करते हैं, क्योंकि

अंतर्भवेऽनंत भवंतमेव ह्यतत्त्यजंतो मृगयंति संतः ॥ असंतमप्यंत्यहिमंतरेण संतं गुणं तं किमु यंति संतः ॥ २८ ॥

अपने निकट यद्यपि सर्प नहीं भी है परन्तु उसका निषेध किये विना सत्य रज्जु जाननेका ज्ञान नहीं होता सर्पके निषेध होनेके उपरान्त रज्जु

* दृष्टांत–किसी राजाके यहाँ एक कुपठ (बे पढा) पुरोहित था परन्तु बोलचालमें महाधूर्त और पाखण्डी था, उसने राजाको " शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये " इस श्लोकके अर्थ दहीवडेके बतला रक्खे थे कि, दही सफेद उसमें लिपटा होय है वही शुक्ल वस्त्र है और वेष्टीति विष्णु विशेष लिपटा होनेसे विष्णुहै, गोल गोल चन्द्रमाके समान मुख है और चतुर्भुजम् अर्थात् चतुर पुरुषोंके भोजन योग्य है ध्यान करतेही प्रसन्न मुख होजाता है और भोजन करनेसे सब विघ्न शात हो जाते हैं. राजा इस श्लोकके यह अर्थ सत्य समझकर और उसको महात्मा जानकर उसका बडा आदर सन्मान करता था, जो विद्वान् आवे, राजा उसीसे उस श्लोकका अर्थ बूझै, सब पंडित लोग विष्णु भगवान्हीका अर्थ करै, राजा कहै यह अर्थ इस श्लोकका नहीं इसी प्रकार अनेक पंडितोंका तिरस्कार होता था, तब एक पंडित और आये उन्होंने रुपयेका अर्थ किया, देखो ! यह रुपया श्वेतवर्णहै और चार चौअन्नी जो हैं यही उसकी चार भुजा हैं देखतेही मुख प्रसन्न होजाताहै और सब विघ्नोंका शात करनेवालाहै, इस अर्थको सुनकर राजाने कहा और पंडितोंसे तुम अच्छे हो दशांश पारितोषिकके योग्य हो, परन्तु सत्य अर्थ इसका आपभी नहीं जानते, उस महात्मा पंडितने विचारा कि, यह राजा किसी मूर्खका बहँकाया हुवाहै और यह राजा भी मूर्खहै, यह महात्मा पंडित राजाके पुरोहितके घर जाने लगे और उनसे बडी मित्रता करली और मिसरानीकोभी एक बडी चिकनपटकी तीयल बनादी और आभूषण भी अनेक अनेक प्रकारके बनादिये और अत्यन्त प्रेमसे उनकी सेवा करने लगे और दिन रात माताही माता कहते मुख सूखे । एक दिन उस ब्राह्मणीने कहा कि, इतने दिनोंसे तू हमारे यहा रहताहै तैंने कुछ अपना अभिप्राय नहीं कहा कि, तेरा क्या मनोरथहै ? ब्राह्मण बोला कि हे माता ! मेरा तो नाम न लेना परन्तु (शुक्लाम्बर) इस श्लोकका अर्थ अपने पतिसे बूझदो तो बहुत अच्छा है, वह बोली आजही लो, जैसे पुरोहितजी घर आये उसी समय बूझा कि, हे स्वामिन (शुक्लाम्बर) इस श्लोकका क्या अर्थ है ? परन्तु पुरोहितजीने बहुतेरी तीन पाचकी "नारि विवश नर सकल गुसाईं । नाचहिं नट मर्कट की नाईं" मिसराणीने एक न मानी निदान बतानाही पडा, मिसराणीने अगले दिन उन महात्माजीको बतादिया, महात्माजी अच्छे वस्त्र पहन काँखमें पोथी दबा, राजाकी सभामें गये और बडी धूमधामके साथ राजाको उस श्लोकका वही दहीवडेवाला अर्थ सुनाया, राजा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा तुम बडे विद्वान् हो, हमारे पास रहा करो और बहुत कुछ धन भी उनको दिया, पुरोहितजी इस बातको सुनकर शून्य होगये और अपने मनमें कहनेलगे कि, परमेश्वरने आज हमारी आजीविका यहाँसे बन्द करदी और महात्माजीने कहा यह राजा मूर्ख और मूर्खके समीप रहना किसी प्रकार अच्छा नहीं, यातो इसको पढाना चाहिये और जो यह न पढे तो यहाँसे सिधारना अच्छा है, पण्डितजीने राजासे कहा आप कुछ पढा करैं तो अच्छा है, राजाने स्वीकार किया और पण्डितजीने राजाको पढाना आरम्भ किया, व्याकरणके पढनेसे राजाको पद पदान्तका बोध होगया तो एकदिन उस श्लोकको विचारनेलगा तो कहीं भी दही बडेका अर्थ न पाया, तब राजा चकित हो पण्डितजी–

जाननेमें आती है ॥ २८ ॥ हे देव ! जब ज्ञानसेही मुक्ति हो जाती है तो मुक्तिकी क्यों बड़ाई की. ब्रह्मा कहैं हैं यद्यपि ज्ञान प्राप्त होना बहुत सुगम है
तो आपके चरणारविन्दोंके प्रसादके कणिकाके कणिकाका अनुग्रह जिसपर होगया वही तुम्हरी महिमाके स्वरूपको जानता है और जिसपर

अथापि ते देव पदांबुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ॥ जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तु मे नाथ स भूरि भागो भवेऽत्र वाऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम् ॥ येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥

तुम्हारे चरणाविन्दोंकी कृपाही नहीं है चाहे वह कितनाही विचार किया करै और वर्षोंतक ढूंढ़ा करे तोभी आपकी महिमाको नहीं जान सक्ता
शुद्धभक्तिसेही आपकी महिमा जानीजाती है ॥ २९ ॥ इस बातपर एक दृष्टान्त है * हे नाथ ! इस ब्रह्माके जन्ममें, अथवा और कोई जन्म होय

—और पुरोहितजीको बुला भेजा और आतेही राजाने उससे क्रोधकरके कहा कि, पुरोहितजी ? तुमने मुझे बड़ा धोखादिया, बताओ इसमें दहीबडेका अर्थ कहा है ? पुरोहितजीके तो छक्के छूट गये, पण्डित जीने कहा मैंनेहीं क्या सबही पण्डितोंने शुद्ध अर्थ किया था, जब आपने क्यों न माना ? तब राजा बोला उस समय मै अज्ञानी था, पंडित बोले विना पढे यह ज्ञान कभी नहीं होता अब ज्ञान होनेसे आप समझे, ऐसेही यह प्राणी मायाके वशमें हो उलटाही समझै है ॥

* दृष्टांत—एक राजानेअपने मन्त्रीसे कहा कोई ऐसी औषधी भी है कि, जिसके खानेसे परमेश्वरका दर्शन होजाय ? मन्त्रीने कहा हमारे दादा परदेशसे साढेतीनलाख रुपैये देकर एक ऐसीही पुडिया लायें हैं सो घर धरी है, राजा बोला मुझको लादो मै खाऊगा मन्त्री अपने घर जाकर चूल्हेकी राखकी पुडिया बाँधलाये और राजासे कहा इलायची, वंशलोचन इसमें मिलाकर शहतमें चाटो, परन्तु इसका पथ्य अवश्य करना और जो पथ्य न करोगे तो औषधि क्या गुण करेगी, विना पथ्य साढेतीनलाख रुपैयेकी औषधि वृथा जायगी विचार देखो जो रोगी पथ्यको करे तो रोगको जीत लेहै और कुपथ्य करे तो रोग औषधिको जीत लेहै इससे पथ्यकी पुडिया खाओ तो मनमें झूँठ मतलाना और झूँठ मनमें लाओगेतो परमेश्वरका दर्शन न होगा, यह कह मन्त्री तो अपने घरको चले गये और प्रात काल होतेही राजाने पुडिया खाई सो औषधि मनमें झूँठ जानपडी सो औषधि धर चित्तको सावधान कर दोघडी पीछे फिर वह औषधि खाई, सो झूँठ फिर आँखों आगे आगया औषधि फिर रखदी, ऐसेही शोच विचारमें तीन पहर बीतगये, कहा अब कल खाँयगे, सन्ध्याको मन्त्री आया उसने बूझा औषधी खाई कि नहीं खाई ? राजा बोला झूँठ तो मनसे हटताही नहीं खांय कैसे ? मन्त्री बोला कि, यही उपाय भगवान्के मिलनेका है जो मनसे सब दुर्वासना निकलगई और मन शुद्ध होगया तब भगवान्का दर्शन होगया और तनक भी अन्तर रहगया तो भगवान् नहीं मिलते ॥

उसमें अथवा पशुपक्षियोंमें जन्म होय तो मैं अपना बड़ा भाग्य मानूंगा जब तुम्हारे व्रजवासियोंमेंसे किसीके चरणारविन्दकी सेवा करूंगा ॥ ३० ॥ देवताके जन्मसे अथवा और किसीके जन्मसे जिसमें आपकी भक्ति होय वही जन्म श्रेष्ठ है, इस प्रकार उत्कण्ठापूर्वक सात श्लोकसे स्तुति करते हैं अहो आश्चर्य ! व्रजकी गाय गोपी धन्यहैं. हे प्रभु ! जिन गोपियोंके स्तनोंका दूधरूप अमृत बछरे बन आपने आनन्दसे पेट भरकर पिया, आपकी तृप्तिके लिये अबतक यज्ञ भी पूर्ण नहीं हुये क्या यज्ञोंमें भी आपका पेट नहीं भरता है ? भगवान्‌के सखाओंकी महिमा किसीके कहनेमें और जान नेमें नहीं आती ॥३१॥ ब्रह्माजी बोले कि, नन्दरायजीके व्रजवासियोंका आश्चर्य रूप अहो भाग्य है परमानन्द पूर्णब्रह्म सनातन जिन व्रजवासियोंका सर्वदा मित्र होरहा है ॥ ३२ है इन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कहनेको किसकी सामर्थ्य है, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता यज्ञदेवता महादेव बुद्धिके

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ॥ यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥ अहो भाग्यमहो भाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम् ॥ यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३२॥ एषां तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ॥ एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोंऽघ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥ ३३ ॥ तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोभिषेकम् ॥ यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुंदस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥

अधिष्ठाता में (ब्रह्मा) ऐसे ग्यारह देवता महादेवसे आदि लेकर हम सब बड़ भागी हैं, कोई व्रजवासी इंद्रियरूप दोनोंसे आपके चरणारविन्दका मकरन्द अमृतकी तुल्य मधुर २ पीते हैं, जिस समय व्रजवासी तुम्हारा दर्शन नेत्रोंसे करते हैं, उस समय नेत्रोंका अधिष्ठाता सूर्य कृतार्थ होजाता है और कानोंसे तुम्हारी बात सुनते हैं, तब कानोंके देवता दिशा कृतार्थ होजाती हैं नाकसे तुम्हारा प्रसाद तुलसीपत्र सूंघेंहैं, तब नासिकाके देवता अश्विनीकुमार कृतार्थ होजाते हैं, जब हाथोंसे तुम्हारी सेवा करतेहैं तब हाथोंके देवता कृतार्थ होजातेहैं, इसी प्रकार सब इन्द्रियोंके सेवनसे सब देवता कृतार्थ होजाते हैं, सम्पूर्ण पदार्थोंके सेवा करनेवाले व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कैसे कही जाय ॥ ३३ ॥ इस लोकमें कदाचित मेरा जन्म होय तो वृन्दावनमें होय उसपरभी गोकुलमें, यह मैं नहीं कहता मनुष्यही योनिमें हो जो चाहे जिस योनिमें हो, परन्तु गोकुलमें हो, तो मैं

पूर्ण भाग्यशाली होऊं और मेरे धन्य भाग्य होयँ तब श्रीकृष्ण बोले कि, हे ब्रह्माजी ! सत्यलोकको छोड़कर यहाँ जन्म लेनेसे तुमको क्या लाभ होगा तब ब्रह्मा बोले, जिस जन्ममें व्रजवासियोंके चरणारविन्दकी रज मेरे मस्तकपर पडेगी वही मुझको परम लाभ होगा, तब श्रीकृष्ण बोले कि, व्रजवासी लोग काहेसे धन्य हैं ! तब ब्रह्मा बोले कि, इन व्रजवासियोंका पूर्ण जीवन व्रज है, क्योंकि जहां श्रीमुकुन्दपरायण हैं जिनके चरणारविन्दकी रजको नित्यप्रति वेद खोजते रहते हैं उस वृन्दावनकी रजका मिलना अहोभाग्य है ॥ ३४ ॥ इन व्रजवासियोंकी कृतार्थताका क्या वर्णन करूं ? जिनकी भक्तिसे तुम भी ऋणीसे होरहे हो ? तब श्रीकृष्णचन्द्र कहैं हैं कि, मैं किस वस्तुके देनेमें असमर्थ हूं ? जो ऋणी रहूं तहाँ ब्रह्माजी बोले कि, हे देव ! जगत्‌में प्रकाशमान समस्त फलरूप तुम हो इसलिये और फल व्रजवासियोंको क्या दोगे ! यह जब विचार करताहूं तब मेरा मन मोहित हो जाताहै, तब श्रीकृष्ण बोले, में अपने आपका ऋणी होजाऊंगा. तब ब्रह्माजी बोले कि, नहीं माताका स्वरूप धर कर पापिनी पूतना आई थी उसको आपनें

एषां घोषनिवासिनामुत भवान्किं देवरातेति नश्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ॥
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवाऽऽपिता यद्धोमार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥
तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् ॥ तावन्मोहोंघ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥

सर्वस्व अपनपा दिया, तब श्रीकृष्ण बोले व्रजवासियोंको परिवार सहित सर्वस्व और अपनपा दूंगा, तब ब्रह्माजी बोले कि, पूतनाका कुटुम्ब अघासुर बकासुरको आपने सर्वस्व और अपनपा दिया तब कृष्ण बोले कि, मेरे पास तो यही पदार्थ देनेको है तब ब्रह्माजी बोले कि, जिन व्रजवासियोंने धाम, धन, सुहृद्, प्रिय, देह, पुत्र, प्राण और अन्तःकरण आपमें अर्पणकर रक्खा हैं फिर क्या ऐसे व्रजवासियोंको और वैरियोंको क्या बराबरही रक्खोगे ! आप परमेश्वर हैं तो क्याहै ? परन्तु आपके यहां न्याय नहीं कहां बापुरी पूतना ? और कहां परमहितकारी व्रजवासी ! आपको अपनेही मनमें न्याय करना चाहिये ॥३५॥ हे कृष्ण ! जबतक रागादिक चोर इस शरीरमें उपस्थित हैं तबतक घराकारागार (बन्दीखाना) रूप है मोह भी तबहीतक पाओंकी बेडी है जबतक प्राणी तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण नहीं आता, आपकी शरण लिये पीछे रागादिक जो चोर हैं

वह भी चोरसे साह होजाते हैं और जो घर हैं वह भी सुन्दर मन्दिर होजाते हैं और सम्पूर्ण मोह दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! तुम संसाररहित हो तो भी संसारमें शरणागत भक्तोंको आनन्द देनेके लिये संसारमें वारम्वार अवतार धारण करो हो ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! हे प्रभो ! जो पुरुष आपको जानते हैं वह जानते होंगे, परन्तु में वहुत क्या कहूं । मनसे, वचनसे देहसे, आपका वैभव मेरे जाननेमें किसी प्रकारसे नहीं आसक्ता ? ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! अब मुझपै अनुग्रह करके मुझको सत्यलोकके जानेकी आज्ञा दीजे, आप सब जानते हो, अर्थात् अपनी अपार महिमा मेरा ज्ञान, बल, पराक्रम, सबके देखनेवाले हो, आपही इस जगत्के अधिष्ठाता हो, मैंने ऐसा ब्रह्मापना छोडा यह जगत् आपहीकी भेंट है ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! यदुकुलकमलपर स्नेह करनेवाले (दिवाकरकी सदृश)इसमें सूर्यकी उपमादी है. हे पृथ्वीके देवता ! ब्राह्मण, पशु, समुद्र, इनके वृद्धि करनेवाले

प्रपंचं निष्प्रपंचोऽपि विडंबयसि भूतले ॥ प्रपन्नजननाऽऽनंदसंदोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७ ॥ जानंत एव जानंतु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ॥ मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ॥ त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ॥ उद्धर्म शार्वरहरक्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ॥ नत्वाऽभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥ ततोनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ॥ वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥

(सुधाकरकी समान) इसमें चन्द्रमाकी उपमा दी. हे पाखण्डरूप अन्धकारके विनाश करनेवाले, इसमें सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी उपमा आई पृथ्वीपर कंसादिक राक्षसोंके मारनेवाले, इसमें फिर सूर्यकी उपमा आई, हे सूर्य ! हे अर्हन् ! सबके पूज्य भगवान् ! अर्थात् छःप्रकारके ऐश्वर्यमे परिपूर्ण तुमको मेरा दण्डवत् है और नमस्कार हैं ॥ ४० इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हेराजा परीक्षित् ! इस प्रकार सर्वव्यापक श्रीकृष्ण चन्द्रकी स्तुति कर, कल्पपर्यन्त तीन प्रदक्षिणादे, चरणारविन्दोंको नमस्कार कर जगत्के विधाता ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोकको चलेगये ❀ ॥ ४१ ॥ तब पीछे श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार बछरे और बालकोंको ले आये, प्रथमकी समान ग्वालमण्डलीको उसी यमुनाकी रेतीमें ले आये जहाँ पहिले

❀ शंका—जब श्रीकृष्णकी स्तुति करके ब्रह्माजी अपने लोकको गये परन्तु श्रीकृष्ण भगवान् ब्रह्मासे क्यों नहीं बोले ? जब स्थानोंपर देवताओंसे भगवान् बोलते हैं और आदर सत्कार करते हैं, फिर यहां भगवान्ने ब्रह्मका निरादर क्यों किया ?

बैठे भोजन कररहेथे और इस भेदको किसीने न जाना यह बात सुनकर राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, इतने दिनतक बालक कैसे यमुनाके किनारेपर बैठे रहे और भोजनपान कुछ न किया ? ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! जब अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्र विना एक वर्ष बीत गया, तो भी भगवान्की मायासे मोहित हुए उन बालकोंको वह समय आधे पलकी समान जान पडा ॥४३॥ भगवान्की मायासे मोहितचित्तवाला पुरुष इस संसारमें क्या क्या नहीं भूलसक्ता ? सो सम्पूर्ण जगत भगवत्की मायासे मोहित होकर बारंबार अपने आत्माको भूल रहाहै ॥४४॥ सब ग्वालबालोंने

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चांतरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन्क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥ किंकिं न विस्मरंतीह मायामोहितचेतसः ॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ॥ नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥४५॥ ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ॥ दर्शयंश्चर्माऽऽजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रितांगः प्रोद्दामवेणुदलशृंगरवोत्सवाढ्यः ॥ वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥ अद्यानेन महाव्यालो यशोदानंदसूनुना ॥ हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्परोद्भव कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् ॥ यो भूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा कि, भय्या!तुम तो बहुत शीघ्र आये, हमने तो तुम बिना एक ग्रास भी अभी नहीं खायाथा, अब आओ पहिले शीघ्रतासे भोजन कर लो ॥४५॥सब इन्द्रियोंके प्रेरणा करनेवाले श्रीकृष्णभगवान् बालकोंकी बात सुनकर हँसे और बालकोंकेसंग भोजन करके मार्गमें जो सूखा हुआ अघासुरका देह पडा था उसको दिखाते वनसे लौटकर व्रजमें आये ॥४६॥४७॥ वनसे आनकर सब बालक अपने माता पिताओंसे कहने लगे कि, आज यशोदानंदने वनमें एक बडा भारी सर्प मारा और उससे हमारी रक्षा करी॥४८॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्!व्रजवासियोंका इतना प्रेम

उत्तर—अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना मूर्खोंका काम है कि मैं ऐसा सज्जन हू, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णब्रह्म, सर्व विश्वके नाथ ब्रह्मासे कीहुई स्तुतिको सुनकर लज्जायमानहुये ब्रह्मासे कुछ भी नहीं बोले और विचार किया कि, हमने वृथा ब्रह्माके किये हुये चरित्रको नहीं माना क्योंकि जब ब्रह्मा वत्स बालकोंको हरिकर लेगया था तो हमको ब्रह्माजीकी स्तुति करके लेआना चाहिये था, ऐसे दयालु भगवान् लज्जासे नहीं बोले ॥

श्रीकृष्णमें कैसे हुआ ? जो कि पराया पुत्र था, अपने पुत्रोंमें इतना प्रेम पहिले नहीं था यह बात मुझे समझाकर कहो ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! श्रीकृष्णका नाम सर्वात्माहै, इसलिये श्रीकृष्ण सब प्राणियोंके साक्षात् आत्मा ठहरे,फिर सब प्राणियोंको अपना आत्माही परमप्रिय

श्रीशुक उवाच ॥ सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैकवल्लभः ॥ इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥

है, इसलिये श्रीकृष्णमें सन्तानसे बढकर अधिक प्रेम था, स्त्री, पुत्र, धन आदिक और जो पदार्थ हैं सो सब आत्माहीके सुखके लियेहैं ❋ ॥५० ॥

❋ दृष्टान्त–किसी नगरमें एक ब्राह्मण था, उसके सन्तान नहीं होती थी, प्रथम तो उसने यन्त्रमन्त्रादिकके बहुतसे उपाय किये परन्तु कुछ न हुआ, फिर वैद्यलोगोंकी भी बहुतसी औषधियें की और ज्योतिषियोंने भी अनेक प्रकारके दान पुण्य कराये, परन्तु किसी प्रयत्नसे भी उसने पुत्रका मुख नहीं देखा. एक दिन वह वनमें पूजाके लिये फल फूल लेनेको गया, वहा उसको उदास देखकर एक महात्मा पुरुष उससे बूझने लगे कि, हे ब्राह्मण ! तू क्यों इतना उदास है ? ब्राह्मण बोला कि, हे स्वामिन् ! मेरे सन्तान नहीं इस बातका मुझको बडा क्लेशहै. महात्माने कहा तू सन्तानगोपालका पाठकर तेरे पुत्र होगा. ब्राह्मणने वैसाही किया और भगवत्की कृपासे उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ. जब वह बडा होगया तो साधु सन्तोंके धोरे बहुत बैठता और इकलौता बेटा समझकर उसके माता पिता भी उसपर लाड प्यार करते थे और वह भी अपने माता पितासे अत्यन्त प्रेम रखता था, एक दिन कोई साधु गीताका पाठ कर रहे थे उसमें यह श्लोक आया:–

श्लोक–अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

श्लोकार्थ–माता पिता सुहृद बन्धु कोई किसीका नहीं, यह सब केशवी माया है, इन लोगोंके लिये कभी शोच करना नहीं चाहिये.तुम बुद्धिहीनोंकी नाई उनके लिये शोक करते हो और कभी बुद्धिमानोंकी नाई बात करते हो परन्तु ज्ञानी लोग मरने जीनेका कुछ शोक नहीं करते, वह लडका बोला. महाराज ! मेरे माता पिता तो मेरे ऊपर प्राण खोनेको उपस्थित हैं और मुझको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहतेहैं साधु बोले, यह बात सब झूँठ है, लडकेने कहा मेरी बात झूँठ हो सक्ती है ? साधु बोले कि, अच्छा आज तू घर जाकर बीमार बनकर पड रह फिर तू सबकी परीक्षा कर लेना और तुझको झूँठ सत्य सब प्रत्यक्ष दिखादेंगे. उस द्विजपुत्रने वैसाही किया, तब तो वैद्योंके उपाय और अनेकप्रकारके यत्र मत्र बडे बडे दान पुण्य होनेलगे, तब तो ब्राह्मणके बेटेने कहा कि, अब उन महात्मा पुरुषको बुलाना चाहिये जो कहते थे कि,न कोई माता है, न पिता है तब उसने उन महात्माको बुलाया और जैसे रुपैयोंको कैंकरीकर दिया था वह सब दिखाया कि देखो मेरे माता पिता कितना रुपैया खर्च कर रहेहैं. साधु बोले कि, यह लडका मरजायगा तब उसके माता पिता बोले कि, किसी प्रकार यह अच्छा भी होगा ! साधु बोले कि, एक उपाय है तीनवार इसके ऊपर दूध उतारा जाय जो उसको पियेगा वह तो मरजायगा परन्तु यह अच्छा हो जायगा । तुम आपसमें सम्मत करलो कि, उस दूधको कौन पियेगा, अब तो सबको दिनमें तारे दीखने लगे और एककी ओरको एक देखने लगा परन्तु किसीने इस बातको अंगीकार न किया कि दूध मैं पिऊंगा और सबने अपने अपने प्राणोंकी रक्षा करनी चाही तब बाबाजीने कहा कि, बच्चा ! देख कोई नहीं पीता तो इस दूधको हम पियेंगे ससारमें कोई किसीका नहीं सब अपने अपने प्राणोंके रक्षक हैं ॥

इसलिये हे राजा परीक्षित् ! देहधारियोंको जितना अपने आत्मामें प्यारहै उतना ममताके स्थान अपने पुत्र, धन, घर आदि लेकर जो वस्तुहैं उनमें नहीं है ॥ ५१॥ हे क्षत्रिवंशोत्तम राजा परीक्षित् ! जो पुरुष देहको आत्मा कहतेहैं उनको भी देह अत्यन्त प्रिय है और जो देहके अनुवर्ती स्त्री पुत्र धन आदिक हैं वह देहकी समान प्यारे नहीं लगते ॥ ५२ ॥ और देहको भी इस प्रकार मान ले कि, यह मेरा देह है, अर्थात् यह देह, जब ममताका स्थान होजाता है तब यह देह आत्माकी समान प्यारा नहीं रहता. क्योंकि जिस समय यह देह जीर्ण होजाता है अर्थात् अब यह देह किसी प्रकार

तद्राजेंद्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ॥ न तथा ममतालंबिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ॥ यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥ देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मव त्प्रियः ॥ यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिञ्जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेव सकलं जगच्चैतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ॥ जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ भगवद्रूपमखिलं नान्य द्वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥

स्थिर न रहैगा तौ भी जीनेकी आशा बलवान् रहती है कि, किसी उपायसे दोचार दिन और बच रहूँ ॥ ५३ ॥ इस बातसे यह निश्चय होताहै कि, सब देहधारियोंको अपना आत्माही अधिक प्यारा है, उस आत्माहीके लिये, सब स्थावर जंगम आदि संसारपर जो प्रीति होती है सो सब आत्माहीका कारण है ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! सब प्राणियोंके आत्मा जगत्के कल्याण करनेके लिये मनुष्य देह धारण कर अपनी मायासे प्रकाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दही हैं, इस कारण उनपर प्रेम होना सम्भव है ॥ ५५ ॥ यही न समझना कि, श्रीकृष्णचन्द्र केवल

देहधारियोंहीके आत्मा हैं, नहीं वह सब जड पदार्थोंके भी आत्मा हैं वास्तवमें इस सब विश्वके आदिकारण श्रीकृष्णचन्द्रहीहैं, इस प्रकार माननें वाले पुरुषोंको सब स्थावर जंगममें भगवान्‌काही रूप भासै है कोई वस्तु इस संसारमें भगवान्‌से भिन्न नहीं है ॥ ५६ ॥ समस्त पदार्थोंको परमार्थरूपसे विचारकर देखिये तो कोई भी वस्तु अपने अपने कारणोंसे पृथक् नहीं है और जो जो कारण हैं वह भगवान्‌से पृथक् नहीं, इससे सिद्ध हुआ कि, कारणोंके भी मुख्य कारण श्रीकृष्णभगवान् हैं फिर कौनसी वस्तु श्रीकृष्णसे पृथक् रही तुमही बताओ ! ॥ ५७ ॥ पवित्र वंश निर्मल कीर्तिवाले श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरण कमल रूप नौका जो परमप्रेमी सज्जनोंका आश्रय है जो पुरुष उन चरणारविन्दरूपी नौकाका आश्रय

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ॥ तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ॥ भवांबुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥ ५८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ यत्कौमारे हरिकृतं पौगंडे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारे रघार्दनं शाद्वलजेमनं च ॥ व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन्गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥

करते हैं, उनको संसाररूपी समुद्र बछरेके खुरके जलकी समान है और परम धामका उनको वास मिलता है कभी कोई विपत्ति नहीं होती ॥५८॥ जो जो लीला भगवान् ब्रजविहारीने पांच वर्षकी अवस्थामेंकी; सो बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें अपने अपने घर आन कही, उसका कारण जो तुमने हमसे बूझा सो सम्पूर्ण हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ५९ ॥ मुर नाम दैत्यके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रने मित्रोंके संग यह चरित्र किया अघासुरको मारा यमुनाकी रेतीमें ग्वालबालोंके साथ भोजन किया जड़ प्रपञ्चसे भिन्न शुद्ध सत्त्वगुणीरूप ब्रह्माको दिखाया बछरे और ग्वालबालोंका तद्वतरूप धारण किया ब्रह्माने प्रेममय हो बड़ी स्तुति की, इस अद्भुत चरित्रको जो कोई मनुष्य कहेगा अथवा सुनेगा उस पुरुषके सब पुरुषार्थ सफल होंगे और,

श्रीकृष्णचन्द्रमें पूर्ण भक्ति होगी ॥ ६० इस प्रकार आँखमिचौनीके खेलमें ठौर ठौर छिपना, नदियोंके पुल बाँधने, बन्दरकी समान वृक्षोंपर चढना
और कूदना और अनेक अनेक प्रकारके बाल्यावस्थाके और कौमार अवस्थाके श्रीकृष्ण और बलदेवजीने विहारकरके कौमार अवस्था पूर्ण करी॥६१॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा–पन्द्रहमें धेनुक हनो, लीनी गाय
बचाय। मित्रनको आनँद दियो, धन धन श्रीयदुराय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब कौमार अवस्था व्यतीत हुई और पौगण्ड
अवस्थाका आरम्भ हुआ तब व्रजमें गाय चरानेके योग्य कृष्ण बलदेव दोनों भाई हुए.तब ग्वाल बालोंको साथ ले श्रीव्रजनाथने वृन्दावनको अपने
कोमल चरण कमलसे अत्यन्त पवित्र किया ॥१॥ मधुवंशके प्रकट होनेवाले श्रीश्यामसुन्दर बाँके विहारी कृष्णचन्द्र अपने यश गानेवाले ग्वाल

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥६१॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे
दशमस्कंधे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ
पशुपालसंमतौ ॥ गाश्चारयंतौ सखिभिः समं पदैर्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो गोपै
र्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥ पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥ तन्मंजुघोषालिमृग
द्विजाकुलं महन्मनःप्रख्यपयस्सरस्वता ॥ वातेन जुष्टं शतपत्रगंधिना निरीक्ष्य रंतुं भगवान्मनो दधे ॥ ३ ॥ स तत्र त
त्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ॥ स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥४॥

बालोंको संग लेकर बलदेव भ्राता सहित बाँसुरी बजाते, बछरोंको कुदाते गायोंको आगे आगे कर, क्रीड़ा करनेके मनोरथसे पशुहितकारी अनेक
प्रकारकी फुलवारी जहां फूल रहीं उस वृन्दावनमें विहार करनेके लिये गये सो वृन्दावन कैसा है ॥२॥ मधुर मधुर वाणीवाले भौंरे, मृग, अनेक प्रका
रके पक्षी जहाँ वास करैं, महत्पुरुषोंके मनकी सदृश निर्मल जलसे सुंदर सरोवर भरेहुए,जिनका स्पर्श करके कमल कमलिनी नित्य प्रफुल्लित रहतेहैं
उनकी सुगन्धयुक्त पवन दिनरात चलती रहतीहै,ऐसे मनोहर वृन्दावनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान्ने विहार करनेकी इच्छाकी॥३॥जहाँ तहाँ अरुण
वर्णके पल्लव निकल रहेहैं उनकी अद्भुत शोभा होरहीहै फल फूलोंके भारसे झुकके जिनकी शाखाओंके अग्रभाग चरणोंमें लग रहेथे ऐसे ऐसे सुन्दर

वृक्षोंको देखकर परमानन्दितहो मुसकायके आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बडे भ्राता बलदेवजीसे कहा ॥४॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे देवताओंमें श्रेष्ठ बलदेवजी ! देखो यह बडा आश्चर्यहै!यह वृन्दावनके वृक्षदेवताओंके पूजने योग्य अपने पापोंके नाश करनेकेलिये मौन साध आपके चरणारविन्दोंको फल फूल भेंटले लेकर अपनी शाखाओंसे झुक झुक कर प्रमाण करतेहैं किसलिये कि,जिस अज्ञानसे हमारा वृक्षजन्म हुवाहै वह अज्ञान दूर होजाय इसलिये झुकेहैं ॥५॥ हे आदिपुरुष ! सब लोकोंका पवित्र करने वाला आपका यशहै उसको निरन्तर यह भौंरे गान कर करके आपका भजन करतेहैं.ऐसा जान पडता है कि, यह भौंरे आपके मुख्य भक्त मुनिजन हैं ? हे पापरहित ! आप अपने देवतरूपको छिपाये मनुजवेष बनाये

श्रीभगवानुवाच ॥ अहो अमी देववरामरार्चितं पादांबुजं ते सुमनःफलार्हणम् ॥ नमंत्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायंत आदिपुरुषानुपदं भजंते ॥ प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥ नृत्यंत्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ॥ सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान्हि सतां निसर्गः ॥ ७ ॥ धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ॥ नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योंतरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥

इन ग्वालबालोंमें क्रीडा कर रहेहो तो यह मुनि भी भौंरेके रूपसे गुप्त होकर आपकी सेवा और भजन करतेहैं.हे सर्वात्मन्!इन्होंने यहां भी आपका पीछा नहीं छोडा ॥ ६॥ हे स्तुतिकरनेयोग्य ! देखो ? यह मोर आपके समीप कैसा सुन्दर नृत्य कररहेहैं और यह हारिणी गोपियोंकी नाईं चितवनसे भोली-भोली सूरत बनाये आपके ऊपर कैसा प्यार कररही हैं और देखो यह कोकिलाओंके समूह कैसी कैसी मधुरवाणीसे शुश्रूषा कररहे हैं यह वनवासी भी धन्य हैं क्योंकि अच्छे पुरुषोंका यही स्वभाव है जो कोई अतिथि अपने घर आवे तो जो कुछ अपने पास फल फूल होय सो उनकी भेंट करै ॥ ७ ॥ आज यह भूमि, तृण, लता आपके चरणारविन्दोंको स्पर्श करके आनन्दपावे है, धन्य हैं नदी, पर्वत, पक्षी वनके

पशु भी धन्य हैं जो आप दयापूर्वक चितवन करें हैं जिस वक्षस्थलकी लक्ष्मी इच्छा करती हैं उसका स्पर्श गोपियोंको होता है, इसलिये यह भी धन्य हैं ॥ ८ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलमुकुटमणि! ऐसी अद्भुतवृन्दावनकी शोभा देख प्रसन्नमन श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतके समीप यमुना नदीके तीरपर गायनको चराते ग्वालबालोंके संग विहार करते थे ॥ ९ ॥ मदोन्मत्त भौंरे जिस समय गुंजार करते थे, तब वनमाल पहिरे बलदेवजीके साथ श्रीकृष्ण आप भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाते थे ॥१०॥ कभी राजहंसोंकी मधुरवाणी सुन उनके संग वैसी ही मधुरवाणी बोलते थे, कभी अपने साथी मित्रोंको हँसानेके लिये मोरोंको नाचता देखकर उनके सन्मुख आप भी जामा फैलायके नाचते थे ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृंदावनं श्रीमत्प्रीतः प्रीतमनाः पशून् ॥ रेमे संचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥ क्वचिद्गायति गायत्सु मदांधालिष्वनुव्रतैः ॥ उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् ॥ अभिनृत्यति नृत्यंतं बर्हिणं हासयन्क्वचित ॥ ११ ॥ मेघगंभीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ॥ क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ॥ अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित्क्रीडापरिश्रांतं गोपोत्संगोपबर्हणम् ॥ स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ॥ गृहीतहस्तौ गोपालान्हसंतौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥

कभी जो कोई गाय चरती २ दूर निकलजाय तो मेघकी समान गम्भीर शब्दसे प्रसन्न हो उनके नाम लेलेकर बुलाते थे ॥ १२ ॥ कभी चकयी, चकोर, क्रौञ्च, चकवा, भारद्वाज चातक, कीर, कपोत, सारिका, मोर उनके शब्द सुन आप भी उसी प्रकारका शब्द उच्चारण करते थे कभी व्याघ्र, सिंहको देख डरकर और पशु भागते, वैसेही गायोंको देख भयभीत हो आप भी भागतेथे ॥ १३ ॥ किसी समय खेलते खेलते बलदेवजीको परिश्रम होजाता तब किसी मित्रकी गोदीमें शिरधर उसकी जंघाका तकिया बनाकर सो जाते, तब श्रीकृष्णचन्द्र आप उनके चरण दबाय पंखा करके उनकी थकावट दूर करते थे * ॥ १४ ॥ किसी समय कृष्ण बलदेव परस्पर अद्भुत रीतिसे नृत्य करते, गाते,

* शंका—श्रीकृष्णने विष्णु भगवान् होकर अपने अंश शेषजीको अपनेसे बडा क्यों किया ? उलटा श्रीकृष्णका बलदेवजीको सेवन करना पडा ?

कूदते, लडते, भिडते और फिर ग्वालबालोंकी भुजा पकड हँसकर कृष्ण बलदेव दोनों भाई कहते देखो कैसा नाच नाचा कैसा गाना गाया, इस प्रकार अपनी अपनी बड़ाई करतेथे ॥ १५ ॥ किसी समय मल्लयुद्ध करते करते जब हार जाते तव श्रीकृष्ण वृक्षकी जडके सहारेसे, पत्तोंकी शय्यापर गोपोंकी गोदीका तकिया बनाकर सो जाते थे ॥ १६ ॥ हे राजन्! कोई ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण दाबते, कोई पापरहित ग्वाल बाल पत्तोंके और पुष्पोंके पंखे बनाकर श्यामसुन्दरके बयार करते थे ॥ १७ ॥ कोई ग्वाल स्नेहभरी बुद्धिसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी नींद किसी प्रकार न

क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ॥ वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपवर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनं चक्रुः क्वचित्तस्य महात्मनः ॥ अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ॥ गायंति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥ एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडंवयन् ॥ रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥१९॥ श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ॥ सुबल स्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥ रामराम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिवर्हण ॥ इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥ २१ ॥

उचट जाय इससे ऐसे ऐसे मनोहर मलारोके पद सहज सहजमें गातेथे ॥१८॥ इसप्रकार अपनी मायासे अपना ईश्वररूप छिपाये नई २ लीला करके गोपोंके बालकोंको अनुकरण करते; लक्ष्मी जिनके चरणोंमें लोटें वह श्रीकृष्ण सुखधाम ग्रामके रहने वाले व्रजवासियोंके संग उनकी इच्छानुसार खेल खेलतेथे-बीच बीचमें कभी ईश्वरपनकीभी लीला दिखला देते थे ॥१९॥ बलराम और श्याम सुंदरके मित्र श्रीदामा नाम गोप, सुबल, स्तोक, कृष्णादिक गोप प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे ॥ २० ॥ हे राम! हे राम! हे दीर्घबाहो! दुष्टोंके दलन करने हारे! हे श्रीकृष्ण! यहांसे थोड़ीसी दूर पर तालके

उत्तर–त्रेतामें लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत सेवा की थी और विना रामचन्द्रकी आज्ञा लक्ष्मणजीने कोई कार्य नहीं किया, तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मणको वरदान दिया कि, हे भैया लक्ष्मण! द्वापरमें हम तुमको अपना बडा भाई बनाकर हम तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम्हारा नाम बलदेव होगा और हमारा नाम विपिनविहारी होगा, इसलिये शेषजी विष्णुसे वडे हुए ॥

वृक्षोंका एक बडा गम्भीर वन है ॥ २१ ॥ उस तालवनमें बहुतसे तालनके फल वृक्षोंके नीचे टूटे पडे हैं और भी टूट टूटकर बहुतसे गिरते हैं परन्तु धेनुकासुर दैत्य वहां रहता है उसने वह फल वहां रोक रक्खे हैं, न वह आप खाताहै और न किसी दूसरेको खाने देता है ॥२२॥ हे राम हे कृष्ण वह दैत्य बडा पराक्रमी और बलशाली है सदा गधेका रूप धारण किये रहता है और उसके समीप उसीके समान बडे बडे योद्धा उसीकी जातिके बहुतसे असुर उसके संग रहते हैं और उनके बीचमें वह मंडली बनाये बैठा रहता है ॥ २३ ॥ हे दुष्टदमन ! वह दुष्ट जहां कहीं मनुष्यको देखताहै उसको खाजाता है, इस डरसे कोई मनुष्य उस वनमें नहीं जाता और पशु पक्षियोंने भी उसके भयके मारे वह वन छोडदिया है ॥ २४ ॥

फलानि तत्र भूरीणि पतितानि पतंति च ॥ संति किं त्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥ २२ ॥ सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ॥ आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् ॥ न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यंतेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ॥ एष वै सुरभिर्गंधो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गंधलोभितचेतसाम् ॥ वांछास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥ ॥ २६ ॥ एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ॥ प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७ ॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्संपरिकंपयन् ॥ फलानि पातयामास मतंगज इवौजसा ॥ २८ ॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुर रासभः ॥ अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकंपयन् ॥ २९ ॥

आजतक किसीने नहीं खाये ऐसे सुगन्धित और मधुर फल वहां हैं, न मानो तो चारों ओर उनकी सुगंध फैल रही है सूंघके देखलो ॥ २५ ॥ हे कृष्णचन्द्र ! उनकी सुगंधसे हमारे मन लुभायगये हैं तुम वह फल लाकर हमको दो उन फलोंके खानेकी हमारी बडी इच्छा है, जो आपकी भी इच्छा हो तो उस वनको चलैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार मित्रोंके वचन सुन उनको प्रसन्न करनेके लिये सब मित्रोंको अपने संग ले दोनों भाई हँसकर ताल वनको चलदिये ॥ २७ ॥ वहां जाकर बलदेवजीने ताल बजाकर हाथसे तालके वृक्षोंको हिलाया तो फलोंके ढेरके ढेर पृथ्वी पर हो गये, जैसे मतवाला हाथी वृक्षोंको हिलाकर फलों के ढेरके ढेर नीचे डाल देता है ॥ २८ ॥ पृथ्वीपर फलोंके गिरनेका शब्द सुनकर

वह गर्दभरूप धेनुकासुर पर्वतोंसमेत पृथ्वीको कम्पायमान करता दौडकर बलरामजीके सन्मुख आया ॥ २९ ॥ उस महाबलवान् धेनुकासुरने शीघ्रतासे आनकर दोनों पिछले पावोंसे बलदेवजीके हृदयमें एक दुलत्ती मारी और गम्भीर शब्दसे रैंकने लगा ॥ ३० ॥ हे राजन्! क्रोधमें भरकर धेनुकासुरने फिर आनकर मुख फेर बलदेवजीके पिछले पावोंकी एक दुलत्ती और मारी ॥ ३१ ॥ तब तो बलदेवजीने उसकी दोनों टॉगे एक हाथसे पकड कर ऐसे घुमाया जैसे लडके गोफना घुमाते हैं जब उसके प्राण निकल गये तो फिर फिराकर एक तालके वृक्षके ऊपर फेंक दिया ॥ ३२ ॥ हे राजन्! जब धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उसके फेंकनेसे वह अत्यन्त भारी तालका वृक्ष टूटकर पृथ्वीपर गिरगया, उसके गिरनेसे

समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ॥ निहत्योरसि काशब्दं मुंचन्पर्यसरत्खलः ॥ ३० ॥ पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक्स्थितः ॥ चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥ स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ॥ चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाऽऽहतो महातालो वेपमानो महाशिराः ॥ पार्श्वस्थं कंपयन्भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ॥ तालाश्चकंपिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनंते जगदीश्वरे ॥ ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तंतुष्वंग यथा पटः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ॥ क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबांधवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया ॥ गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥

चारों ओरके वृक्ष टूट टूट कर पृथ्वीपर गिर गये, एकको चपेटसे एक, इस प्रकार अनेक वृक्षोंका चूरा होगया ॥ ३३ ॥ बलदेवजीने लीला करके जो धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उस गर्दभ देहकी चपेटसे सर्वत्र ताल वनके वृक्ष कॉपने लगे, जैसे महावेगकी आँधीसे सब पृथ्वी तलके वृक्ष कम्पायमान हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ बलदेवजीके इस पराक्रम करनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि वह अनन्त और जगदीश्वर हैं और यह विश्व उनमें ओतप्रोत होता रहता हैं जैसे वस्त्रके तानेबानेमें ओतप्रोत होता रहता है ॥ ३५ ॥ जब धेनुकासुर मरगया, तब उसके भाई बन्धु जातिवाले सब गधे क्रोधित होकर श्रीकृष्ण बलदेवके ऊपरको झपटे ॥३६॥ हे राजन्! श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भाइयोंके सामने जो जो गधे आये,

उनकी टाँगें पकड़ पकड़ घुमाय घुमाय वृक्षोंके ऊपर फेंक दिये ॥३७॥ उस कालमें लाल लाल तालके फलोंके समूहसे, श्वेत श्वेत मरेहुए गधोंकी लोथोंसे, हरी हरी तालके वृक्षोंकी शाखाओंसे और काली काली उन वृक्षोंकी जडोंसे, पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी, जैसे लाल, श्वेत, हरी, काली घटाओंसे आकाश शोभायमान दिखाई देता है ॥ ३८ ॥ ऐसे २ अद्भुत चरित्र कृष्ण बलदेवके देख देख देवतालोग प्रसन्न हो होकर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करतेथे और अनेक प्रकारके बाजे बजाय बजाय स्तोत्र पढ़तेथे ॥ ३९ ॥ जब धेनुकासुर मारागया तो फिर मनुष्य निःसन्देह होकर उन तालवृक्षोंके फलोंको खाने लगे और गायेंभी निर्भय होकर घास चरने लगीं ॥ ४० ॥ और अनुचर गोप जिनकी स्तुति करते कमलपत्रसे जिनके विशाल नेत्रोंको देखते और परमपवित्र जिनकी कथा और चारित्रोंको सुनते, सब ग्वाल बाल श्रीकृष्ण बलदेव सहित व्रजमें

फलप्रकरसंकीर्णा दैत्यदेहैर्गतासुभिः ॥ रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥ तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य विबुधादयः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥ कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥ तं गोरजश्छुरितकुंतलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ॥ वेणुं क्वणंतमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृंगैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ॥ तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपांगमोक्षम् ॥ ४३ ॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ॥ यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥

आये ॥ ४१ ॥ गायोंके खुरोंकी जो धूरि उड़ती थी उसके पड़नेसे जिनके केश धूसर वर्ण हो रहे हैं, मोरपुच्छोंके मुकुट शीशपर धारण कर रहेहैं, वनके पुष्पोंके तुर्रे कानोंमें लटक रहे हैं, तिरछी चितवनसे मनोहर मुसकानसे, इधर उधरको देखते, बाँसुरी बजाते, ग्वालबाल जिनका यश गाते, उन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दके देखनेके लिये सब गोपी जुड़ मिलकर आईं ॥ ४२ ॥ व्रजबालाओंने नेत्ररूपी भौरोंकी श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलके रससे दिन दिनकी तृष्णा और श्यामसुंदरके विरहकी तापको शान्त करके लाज भरी मुसकानसे और कटाक्ष भरी चितवनसे जो आदर सन्मान किया उसको स्वीकार करके व्रजमें आये ॥ ४३ ॥ पुत्रोंमें जिनका परमस्नेह वह यशोदा और रोहिणी अपने

पुत्रोंकी इच्छानुसार सब पदार्थ उपस्थित रखती थीं ॥ ४४ ॥ व्रजविहारीने व्रजमें आनकर उवटन स्नान किया तो मार्गका सब श्रम दूर होगया उस समय दोनों भाइयोंने सुन्दर सुन्दर पीताम्बर पहिर सुगन्धित पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण कर चन्दन चोवा लगाकर ॥ ४५॥ जो निश्चिंत हुए तो बड़े प्रेम प्रीतिसे माता माखन, मिश्री, मिष्टान्न और षड्रस भोजन परोसकर लाई, उसको बड़ी प्रीतिसे भोग लगाया और आनन्दपूर्वक सुन्दर शय्यापर जाकर शयन करने लगे ॥ ४६ ॥ हे राजन्! इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तनहितकारी श्रीकृष्णभगवान् नित्य प्रति वृन्दावनमें विहार किया करते थे. एक दिन विना वलरामको संग लिये अकेलेही ग्वाल वालोंको साथ ले यमुनाके तीरपर धेनु चराने

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ॥ नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गंधमंडितौ ॥ ४५ ॥ जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ॥ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥ एवं स भगवान्कृष्णो वृंदावनचरः क्वचित् ॥ ययौ राममृते राजन्कालिंदीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥ अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टं जलं पपुस्तस्या स्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥ विषांभस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ॥ निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलांते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत ॥ ५० ॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलांतिकात् ॥ आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥

गये ॥ ४७ ॥ मार्गमें ग्रीष्मकी धूपसे अत्यन्त व्याकुल होकर गाय और ग्वालवाल बहुत तृषित हुए, तब सब प्यासके मारे कालीदहमें जाय विषसे दूषित यमुनाजीका जल पिया ॥ ४८ ॥ हे राजन्! उस जहरीले जलके पीनेसे ऐसे अचेत हुये कि, तन मनकी कुछ सुधि बुद्धि न रही, मृतककी समान निष्प्राण हो, मुरझाकर यमुनाके किनारे पर गिरगये ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने मित्र ग्वाल वाल और गायोंको मूर्छित देख, अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर सबको जिला दिया ॥ ५० ॥ जब सब गायें और ग्वालवाल जी उठे और श्रीकृष्णको अपने सन्मुख खड़ा देखा, और बडे आश्चर्यसे परस्पर देखने लगे ॥ ५१ ॥

और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी पूर्णानुकंपासे फिर जीवित हुये जान परमानन्द मानने लगे ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्व. धें भाषाटीकायां धेनुकासुरवधो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा—इस सोरह अध्यायमें, कालीदहमें जाय ॥ नाथो कालीनागको, पीछे करी सहाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कालिन्दीको कालियसर्पके विषसे बिगरी देखकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके जलको शुद्ध करनेके लिये उस कालिय सर्पको वहाँसे निकालदिया ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने बूझा कि, हे ब्रह्मन् ! भगवान्ने महागम्भीर जलके भीतर कैसे कालिय नागको दण्ड दिया और वह किसकारण कालिन्दीके महागम्भीर जलमें वास करता था सो कृपाकर विस्तार सहित वर्णन

अन्वमंसत तद्राजन्गोविंदानुग्रहेक्षितम् ॥ पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० दशमस्कंधे पू० धेनुकासुरवधो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ॥ तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ कथमंतर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् ॥ स वै बहुयुगावासं यथाऽऽसीद्विप्र कथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छंदवर्तिनः ॥ गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालिंद्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद्विषाग्निना ॥ श्रप्यमाणपया यस्मिन्पतंत्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥ विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ॥ म्रियंते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥ ५ ॥

कीजिये ! ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी जो अपने भक्तोंको दिखाने के लिये अनेक अनेक प्रकारके चरित्र करते हैं सो उन भक्तभावन भगवान् गोपालनादिक परमोदार प्राणाधार चरित्रामृतके श्रवणद्वारा पान करनेसे कौन पुरुष तृप्त हो सक्ता है ? ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, कालिन्दी (यमुना) में कालीनागका एक कुण्ड था, जिसमें विषकी अग्निसे नित्य जल औटता रहता था और आकाशके उड़नेवाले पक्षी उस गरलकी तापसे जलकर उस जलमें गिर पड़ते थे ॥ ४ ॥ और उस विषैले जलकी लहरोंके जलकणोंसे मिली पवन जो चलतीथी उसके लगनेसे किनारेके वृक्ष और घास सूख जाती थी और जो जीव उस कुण्डके तटपर भूलसे चले जाते तो उसीसमय उस जलकी

झलसे जलकर तड़फ तड़फ मरजाते थे ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें कहा कि, इस कुण्डमें ऐसे विषशाली सर्पका रहना अत्यन्त दुःखदायक है, क्योंकि जो कोई पशु पक्षी वा पुरुष इस जलको पीताहै वह एक क्षणभरभी नहीं जीता, उसीसमय अकुलाकर मर जाताहै और दूसरे यमुनाके जलको दोष लगाता है, इसलिये ऐसा दुष्टका यहाँसे निकालनाही अच्छाहै, क्योंकि जो यह यहां रहा तो लाखों जीवोंकी हत्या करेगा, जिसके विषकी लपटसे चार कोशतक जल भडकता रहता है, ऐसा कोई सामर्थ्यवान् नहीं जो उस कुण्डके पास जासके जब इस प्रकार श्रीकृष्ण विचार विषके अभिमानी कालिय नागको देखकर और उसके विषसे बिगडीहुई यमुनाको देखकर, दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये जिन्होंने अवतार लिया है, वे श्रीकृष्ण महाराज कॉछ बॉध पीताम्बरसे कमर कस, उस महाऊँचे कदम्बके रूखसे ताल ठोंककर कालियकुण्डमें कूदपडे ॥ ६ ॥

तं चंडवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ॥ कृष्णः कदंबमधिरुह्य ततोऽतितुंगमास्फोटयगाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसितांबुराशिः ॥ पर्यक्प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावधन्नुश्शतमनंतबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदंडघूर्णवार्घोषमंग वरवारणविक्रमस्य ॥ आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुश्श्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुंदरास्यम् ॥ क्रीडंतमप्रतिभयं कमलोदरांघ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चच्छाद ॥९ ॥

पुरुषोत्तम भगवान् जिस समय जलमें कूदे उस समय उनके भारके झटकेसे और सर्पके गरलकी गर्मीसे कालियदहका जल बहुत ऊपरको उछला और विषकी लपटोंके प्रभावसे अत्यन्त खारी और महाभयानक तरलतरंगें जलमें उठने लगीं और चारों ओरसे यमुनाका जल सौ सौ धनुषतक फैलगया, भगवान्का अनन्त बल है, इस कार्यमें को ई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! महाबलवान् हाथीके समान जिनका पुरुषार्थ जिस समय कालियदहमे जाकर गिरे, उस समय बलशाली भगवान्के भुजदण्डसे ताडित जल शब्दको सुनकर और श्रीकृष्णसे अपने घरका विनाश समझकर कालीनाग अपने मनमें कहने लगा कि, ऐसा कौन बलवान् है जो मेरे घरमें आनकर धूम मचा रहाहै, जब उससे न सहागया तब झट झपट श्रीकृष्णके सन्मुख धाया ॥ ८ ॥ दर्शन करनेके योग्य, सुन्दरस्वरूप, सुकुमार अवस्था, मेघवर्ण, हृदयमें भृगुलताका चिह्न

विराजमान, पीतवसन धारण किये, मन्दहास्य सहित जिनका मुखारविन्द, निर्मल खिलेहुये कमलसे जिनके पदपंकज, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्‌को
निश्शंक उस विषैले जलमें विहार करता देख,अत्यन्त क्रोधित हो बक्षस्थलमें डसनेको दौडा परन्तु उस मोहनीमूर्तिको निहारकर मोहित होगया ॥
॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके देहमें सर्प लिपटाहुआ देखकर सब प्यारे मित्र ग्वालबालक सब दुःखित हुये तथा श्रीकृष्णचन्द्रमें देह मित्र, धन, स्त्री समस्त
कामना जिनमें अर्पण करदी और दुःख शोक भयसे सुधि बुद्धि बिसार वे गोप पृथ्वीमें पछार खायके गिरतेभये ॥ १० ॥ गाय, बैल,
वत्स, छोटी छोटी बछियें, महा दुःखी होकर रम्भाने लगीं और टकटकी बाँधकर मनमोहन प्यारेकी ओर देखने लगीं और डरके मारे ऐसे सुस्त

तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ॥ कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशो
कभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥ गावो वृषा वत्सतर्यः क्रंदमानाः सुदुःखिताः ॥ कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदंत्य इव
तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ॥ उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥
तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नंदपुरोगमाः ॥ विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं
मत्वा प्राप्तमतद्विदः ॥ तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वेग पशुवृत्तयः ॥
निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥

होरहे थे मानों रोरहे हैं ॥ ११ ॥ अनन्तर व्रजमें बडे २ तीन प्रकारके उत्पात हुये जैसे धरती कँपनेलगी, आकाशसे तारे छूटने लगे पुरुषोंकी
बाईं भुजा और बाईं आँख फडकने लगे ऐसे शीघ्र भय जतानेवाले उत्पात होनेलगे ॥ १२ ॥ नन्दप्रभृति उन उत्पातोंको देखकर अत्यन्त
भयभीत हुये कि, आज विना बलदेवको संग लिये कृष्ण अकेले गायें चरानेको गयेहैं ॥१३॥ उन खोटे उत्पातोंसे श्रीकृष्णका निधन मानकर और
उनके प्रभावको कुछ न जानकर श्रीकृष्णमें जिनका तन, मन, धन लग रहा था, वह इन कठिन उत्पातोंके भयसे अत्यन्त पीडित हो ऐसे कहने लगे
॥१४॥ उस समय नन्द यशोदादिक सब व्रजवासी बाल, वृद्ध, स्त्री, अत्यन्त व्याकुल हो रोते पीटते पशुकी नाईं राम कृष्णके खोजनेको गोकुलसे

बाहर निकले,क्योंकि पूर्ण प्रेमसे जिनके मन श्रीकृष्णमें लग रहेथे ॥ १५ ॥ मधुवंशमें उत्पन्न हुये भगवान् बलदेवजी व्रजवासिनको व्याकुल देखके कुछ हँसे और अपने छोटे भैया श्रीकृष्णचन्द्रके अद्भुत प्रभावको जानतेथे। इनके हँसनेसे सबके प्राणबचे, क्योंकि, जिसके बडे भैया हँसरहेहैं तब समझगये कि कुछ कुशल है ॥ १६ ॥ वह सब व्रजवासी कृष्णप्यारेको ढूँढते ढूँढते मार्गमें कृष्णचन्द्रके चरणचिह्न देखे, उन चरण चिह्नोंको देखकर सब पुकार कर कहने लगे कि, देखो भाई और ग्वाल बालोंकेभी चरणचिह्न पृथ्वीपर लग रहेहैं और गाय बछडे भी उनके संगहैं, विदित होताहै कि यमुनाके ओरको गये हैं, यह कह सब व्रजवासियोंने कुछ कुछ धैर्य धारण किया ॥१७॥ हेराजन्! वह लोग गायोंके मार्गमें और

तांस्तथाकातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः ॥ प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ॥ भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥ ते तत्रतत्राब्जयवांकुशाशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ॥ मार्गे गवामन्यपदांतरांतरे निरीक्षमाणा ययुरंगसत्वराः ॥ १८ ॥ अंतर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयांते ॥ गोपांश्च मूढधिषाणान्परितः पशूंश्च संक्रंदतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनंते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरंत्यः ॥ ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥

ग्वालोंके पदोंके बीचमें श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् जगदीश्वरके चरणोंके चिह्न कमल, यव,अंकुश,वज्र,ध्वजाकी रेखा देखते देखते बहुत शीघ्र चले॥१८॥ सब स्त्री, पुरुष कालीदहके किनारे पहुँचे जाकर देखा तो दहके भीतर कालीनाग श्यामसुंदरके शरीरमें लिपट रहा है और उनकी चेष्टा विहीन हो रही है, किनारे पर जडबुद्धिहुए ग्वाल बाल पछाड खाये पडे हैं, चारों ओर गाय बछड़े रम्भाते फिरैंहैं, उन सबकी यह दशा देखकर सब महादुःखी हुए ॥ १९ ॥ जिन गोपियोंका मन अनन्त भगवान्में लय हो रहाहै वह गोपी मनमोहनमें मन लगानेवाली श्रीकृष्णचन्द्रका प्यार, मन्दमुसकान तिरछी चितवन, मधुर वचनोंकी सुधि करके अतिशय प्यारे श्यामसुंदरको सर्पसे ग्सितहुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल होगई और तीनोलोक सूने

तब गोपियां उन्हें पकड़ अति दुःखित होके आंखोंमें ऑसू
दिखाई देने लगे ॥ २० ॥ पुत्र श्रीकृष्णको दहमें देख यशोदा माता जलमें गिरने चली, तब गोपियां उन्हें पकड़ अति दुःखित होके आंखोंमें ऑसू बहातीं यशोदाकी समान दुःख करतीं, व्रजमें करी हुई भगवान्‌की प्यारी लीला उनका वर्णन करतीं भगवान्‌के मुखकी ओर दृष्टि देकर गोपियां मृतकके समान होगईं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रमें प्राण लगाये कालिंदीके दहमें पुत्रशोकसे नन्द आदि व्रजवासियोंको दहमें गिरता देख श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले भगवान् बलदेवजी रोकते भये ॥ २२ ॥ इस प्रकार गोकुलवासियोकी अनन्य गति देख और उनको कोई छुडानेवाला नहीं यह समझके तथा स्त्री बालकों सहित गोकुलवासी मेरे लिये बहुत दुःखित हैं यह विचारके मनुष्यकी तुल्य लीला करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र

ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवंत्यः ॥ तास्ताः प्रियव्रजकथाः कथयंत्य आसन्कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशंतो नंदादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् ॥ प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥२२॥ इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ॥ आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरंगबंधात् ॥२३॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान्भुजंगः ॥ तस्थौ श्वसञ्छ्वसनरंध्रविषांबरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः॥२४॥ तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम्॥क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेंद्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥२५॥

दो घडीतक उस सर्पके कुंडलीमें रहके फिर उसके बाहर निकलते भये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णने अपना इतना देह बढाया कि, उसके अंगके सब बन्द बन्द ढीले होगये, नस नस दुखनेलगीं हड्डियोंके जोड़ जोड़ टूटने लगे, तब तो वह नाग कृष्णचन्द्रको छोड़ महाक्रोधकर फणोंको उठा उठाकर लम्बे लम्बे श्वास लेनेलगा और नथनोंमेंसे विषकी झलैं निकलनेलगीं, ऑखोंके पलक खुलेके खुले रहगये और मुखसे विषानलकी ज्वाला भडकनेलगीं, लकडी की नाईं कृष्णकी ओरको देख रहाथा ॥ २४॥ दो दो फॉकवाली जिह्वाओंसे अधरोंको क्षण क्षणमें चाट चाटकर क्रोध करता था; उस विकराल विषानलभरी चितवनवाले कालीनागके चारों ओर फिर फिर कर व्रजविहारी विहार करते फिरते थे जैसे गरुड सर्पके चारों ओर फिरताहै और वह

काली भी अपना अवसर देखता हुआ भगवान्के चारों ओर घूमता फिरता था, श्रीकृष्ण अपना दाँव विचारते थे, काली अपना दाँव विचारता था, श्रीकृष्णकी इच्छा तो यह कि, मेरा दाँव लगै तो कालीके फणोंपर चढ़कर नृत्य करूँ और कालीके मनमें यह विचार कि, किसीप्रकार एक बार तो वनमाली को फिर लिपट जाऊँ दोनों अपना २ दाँव तक रहेथे ॥२५॥ जब फिरते फिरते कालीका पराक्रम घट गया तब कालीके ऊपरको उठेहुये फणोंको नीचे नवाय श्रीकृष्णने झट झपट कर उसका फण पकड चरणतले दाब उसकी नाकमें नाथ डालदी और उसके शीशपर जा चढे और नाचनेलगे॥२६॥ जिस समय नटनागर नटवरवेष धरकर कालीके फणोंपर नाचनेको खडे हुए, उसको देखनेके लिये गन्धर्व, सिद्ध सुरगण चारण, देवांगना यह सब अत्यन्त प्रसन्न होकर मृदंग ढोलक नगाड़े आदि अनेक प्रकारके बाजे बजाते गीत गाते, पुष्प वर्षाते, भेंटें ले लेकर आये और भगवान्की स्तुति करने

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरस्स्वधिरूढ आद्यः ॥ तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादांबुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥ तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगंधर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ॥ प्रीत्या मृदंगपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥ यद्यच्छिरो न नमतेंग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्द खलदंडधरोंघ्रिपातैः ॥ क्षीणायुषो भ्रमत उल्वणमास्यतोऽसृग्नस्तो वमन्परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निश्श्वसतोरुषोच्चैः ॥ नृत्यन्पदाऽनुनमयन्दमयांबभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः॥२९॥

लगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! जिस कालीके एक सौ एक मस्तक थे, उसने जो मस्तक ऊपरको उठाया उसको दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रने उसीसमय पाँवकी ठोकरसे नीचेको दबादिया और जब वह क्षीण अवस्थावाला इधर उधर घूमने लगा तब मुखसे नासिकासे रुधिरकी धारा निकलने लगीं, शरीरके बन्द ढीले होगये, इस प्रकार कालीको दुष्टदमन भगवान्ने मर्दन किया ॥२८॥ तोभी उस काली नागने महाक्रोध करके लम्बे लम्बे श्वास लिये और मुखसे विष उगला और फिर शिर ऊपरको उठाये परन्तु भगवान् शत्रुदमननें नृत्य कर करके चरणोंकी ठोकरोंसे उसके मस्तकोंको नीचेको झुकादिया, उस समय गन्धर्व और देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर, शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले नारायणकी समान जानकर

यशोदानन्दन भगवान्‌की पुष्पोंसे पूजा करी. उससमय व्रजवासियोंको आदिपुरुषकासा दर्शन हुवा ॥ २९॥ हे राजन्! नटनागर भगवान्‌ने जो चित्र विचित्र ताण्डव नृत्य किया उससे कालीके फणरूपी छत्र टूट गये और सब शरीरकी नस नस ढीली होगई, मुखसे रुधिर बहनेलगा, तब श्रीकृष्णको स्थावर जंगमका गुरु पुराणपुरुष नारायण समझकर मनसे उनकी शरण ली ॥ ३० ॥ समस्त ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें विराजमान हैं ऐसे विश्वभावन भगवान् मुरलीधरने त्रिलोकीका भार अपने देहमें धारणकर कालीके मस्तकपर मुरली बजाय बजाय उछल उछलकर ताण्डवनृत्य किया, उस समय मुरलीमनोहरका कौतुक देखनेके लिये देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरादिक अपने अपने विमानोंपर बैठकर आये और अनेक प्रकारके बाजे बजाबजाकर श्रीवैकुण्ठविहारीके उत्तम उत्तम चरित्र गाने लगे, अप्सरायें भाँति भाँतिके नृत्य करने लगीं, देवता आकाशसे पुष्प वर्षाने लगे, उस समय देवता गन्धर्व, जो ताल स्वर सहित गाते थे, उसीमें मुरली मनोहर अपनी मुरलीकी तान मिलाते थे और जब कालीके शिरोंपर ठुमक ठुमक पग

तच्चित्रतांडवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरुवमन्नृप भग्नगात्रः ॥ स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥ कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ॥ दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबंधाः ॥ ३१ ॥ तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ॥ साध्व्यः कृतांजलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥

धरते थे और नूपुरोंका शब्द सब बाजोंमें मिल रहा था उन नूपुरोंकी झनकारकी ध्वनि सुनकर पवन पानी भी बहनेसे बन्द होगये, उससमयका आनन्द वर्णन करनेमें ब्रह्मादिक देवताभी चकित होते हैं, फिर और किसी दूसरेकी क्या सामर्थ्य है जो उस आनन्दका वर्णन करसके, जब त्रिभुवनपतिने त्रिभुवनका भार कालीके शिरपर रक्खा तब उसके सब अंग शिथिल होगये, मुखोंसे रक्तकी फुहारें निकलने लगीं देह थककर जब मृतक समान होगया और सब अभिमान जाता रहा, उस समय अपने जीवनकी आशा छोड फणोंको पृथ्वीपर पटकने लगा. मस्तक २ पर चरणारविन्दोंके चिह्न होगये, उससमय कालीकी दुर्दशा देख कर वस्त्र आभूषण जिनके अस्तव्यस्त होगये, केश खुलगये, ऐसी कालीकी पत्नियें पतिके शीशोंको छत्रकी समान टूटते देखकर हृदयमें कराघात करती नारायणकी शरण आईं ॥३१॥ अत्यन्त व्याकुल जिनके मन अपने अपने छोटे छोटे बच्चोंको

आगे करके नागकी पतिव्रता स्त्रियें अत्यन्त पीडित हो प्रथम पृथ्वीपर पडकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और अपने पतिके पापछुटानेके लिये श्रीकृष्ण भगवान्के चरण शरणमें आईं ॥ ३२ ॥ नागपत्नियें बोलीं, कि हे नाथ ! इस अपराधीको आपने दण्डदिया सो अच्छा किया. क्योंकि आपका अवतार दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये है शत्रु और मित्रको आप एकसा समझते हो, इसीलिये आपका नाम समदर्शी है, दुष्टको विचारकर दण्ड देतेहो और मित्र समझकर उनपर अनुग्रह करते हो, दुष्टोंको दण्ड देते हो यह आपकी कुछ विषमता नहीं है ॥ ३३ ॥ इस सर्पको आपने दण्ड दिया सो इसके ऊपर बडा अनुग्रह किया क्योंकि आपके दण्ड देनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं, जिस अपराधसे इसकी सर्प

नागपत्न्य ऊचुः ॥ न्याय्यो हि दंडः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ॥ रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयं भवता कृतो हि नो दंडोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ॥ यद्दंदशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥ ३४ ॥ तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ॥ धर्मोऽथवा सर्वजनानुकंपया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥ ३५ ॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवांघ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ॥ यद्वांछया श्रीर्ललनाऽचरत्तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥ न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा बांछंति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

योनि हुई वह अपराध दूर होगया, इसलिये आपका क्रोध भी कृपारूपी है ॥ ३४ ॥ इस हमारे पतिने पूर्व जन्ममें ऐसा क्या तप किया है। जिससे सब प्राण दानदेनेवाले आप इसपर संतुष्ट हुए हो, इस मानरहित हमारे पतिने अपना मान तजकर औरोंका मान किया और सब लोगों पर दयाही करता रहा, नहीं तो ऐसे क्रूर बुद्धि सर्पपर आप क्यों अनुग्रह करते ? ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशवान् ! यह सर्प आपके चरणारविन्दकी रजके स्पर्श करनेका अधिकारी हुवा, सो कौनसी तपस्याका ऐसा श्रेष्ठ फल है ? यह हम नहीं जानतीं, जिन चरणारविन्दके स्पर्शके लिये लक्ष्मीजीसी उत्तम स्त्रीने सब कामनाओंको तजकर व्रतको धारण करके बहुतबरसों तक तप किया ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषोंने आपके चरणरविन्दकी रजकी शरण

ली है, वह पुरुष न तो स्वर्गकी न चक्रवर्ती राज्यकी, न शिवलोककी न इन्द्रलोककी, न ब्रह्म लोककी न पातालकी, न योगकी, न सिद्धियोंकी और न मोक्षकी चाहना करतेहैं ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! लक्ष्मीसे आदि लेकर बड़े बड़े ऋषि मुनियोंको आपके चरणारविन्दकी रज महादुर्लभ है, उस रजको, क्रोधके वश तमोगुणसे उत्पन्न विषवाले सर्पोंका राजा काली विना उपायही प्राप्त होगया क्योंकि अपने कर्मोंके वशसे संसारचक्रमें भ्रमते तुम्हारे चरणारविन्दके रजकी शरण चाहनेवाले शरीरधारियोंको मनमानी सम्पत्ति मिलती है ॥ ३८ ॥ छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त सर्व देहोंमें अन्त र्यामी रूप करके रहित उनमें विराजमान रहते हो, तोभी उनमें छिप नहीं जाते हो. पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश, इन पंचभूतोंके आश्रयरूप, सबके आदि कारण, आप कारणसे रहित, ऐसे परमकारण परमात्माको हम वारंबार नमस्कार करतीहैं ॥ ३९ ॥ आप ज्ञान विज्ञान कहिये चैतन्य

तदेष नाथाऽऽप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ॥ संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञान निधये ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥ ४० ॥ कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ॥ विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेंद्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥ त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनंताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ॥ नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये॥४३॥

शक्ति करिके परिपूर्ण हो, व्यापक हो अनन्त शक्तिमान, निर्गुण निर्विकार मायाके प्रवर्त्तक हम वारंबार आपको नमस्कार करतीहैं ॥ ४० ॥ आप कालरूप हो, कालशक्तिके आश्रय हो, कालके अंगोंके देखनेवाले हो, विश्वरूप हो, विश्वके देखनेवाले हो और विश्वके कर्त्ता हो और विश्वके कारण हो, तुमको बारंबार नमस्कारहै ॥४१॥ पृथ्वी, जल, वायु, शब्द, आकाश, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और दश इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि चित्त इनके रूपहो, त्रिगुण अहंकारसे अपने अंशरूप जीवोंके स्वरूपका आच्छादन करनेवाले आपको बारंबार नमस्कारहै ॥ ४२ ॥ आप अहंकारसे आच्छादित नहीं, इससे अनन्त हो, दृष्टिगोचर नहीं इससे सूक्ष्म हो, उपाधियोंका विकार नहीं इससे निर्विकार हो, कोई कहता है सर्वज्ञ हो, कोई

कहता है सर्वज्ञ नहीं हो, कोई कहताहै हो, कोई कहताहै अचिन्तनीय हो, कोई कहताहै बद्ध हो, कोई कहताहै मुक्तहो कोई कहताहै एक हो कोई कहताहै अनेक हो इत्यादिक जो अनेक प्रकारके झगडेहैं तिनमें मायासे जो जैसे कहैहैं उस समय वैसेही होजाते हो, नाम नामी यह जो शक्तिका भेद इससे अनेकरूप करके प्रतीक्षा करने योग्य जो तुम हो ऐसे आपको बारंबार हमारा नमस्कार है ॥४३॥ आप नेत्रोंसे आदि लेकर सब इन्द्रियोंके प्रकाश करनेवाले हो, स्वतःसिद्ध ज्ञानके विषयी हो, वेदके कारण हो, वेद आपके श्वासोंसे हुए हैं प्रवृत्तिके प्रतिपादक वेदरूप आपको हम नमस्कार करतीहैं ॥ ४४ ॥ शुद्ध अंतःकरणके प्रकाश करनेवाले भक्तोंके रक्षक रामकृष्णरूप वसुदेवतनय, प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्ध रूप आपको

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमोनमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥ नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ॥ गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

हमारा नमस्कार है ॥ ४५ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणके प्रकाशक, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके प्रकाश करनेवाले अर्थात् इनके अधिष्ठाता हो, इसीसे चाररूप हो, तीनगुणोंसे उपासनाको चित्र विचित्र फल देनेके लिये अपने आत्माको ढककर अनेक रूपसे भासो हो. मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारसे चैतन्य निश्चयको आदि लेकर वृत्तिसे जाननेमें आओ हो. मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके साक्षी व अगोचर आपको नमस्कार करती हैं ॥ ❀ ॥ ४६ ॥

❀ दृष्टान्त–एक धनाढ्य ब्राह्मण कृष्णके बडेभक्त थे, परन्तु भोले भाले भी बहुत थे, लोगोंने धोखा दे दिलाकर और कुछ धन लेकर उनका एक चाण्डालकी कन्याके साथ विवाह कर दिया, एक दिन वह कन्या खिडकीमें बैठी थीं अकस्मात् उसके देशके चाण्डाल वहॉं आ निकले, वह देखकर बोले कि, अरी नत्थनकी बेटी ! तू यहां कैसे आगई ? लोगोंने बूझा कि, तुम इसको क्या जानों ? वह बोले कि, हमारे गांवकी जाई जन्मी, हमारे सामने छोटीसे बडी हुई, नत्थन भंगीकी बेटी है, तब तो वह ब्राह्मण बहुत घबराये, पण्डितको बुलाकर बूझा कि, हमको क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ? ब्राह्मणोंने कहा कि, सूखे हुए पीपलके वृक्षके खखोडलमें जलो तो पाप छूटे, ब्राह्मण पीपलका खखोडल मँगाय उसमें माला लेकर बैठगये और लोगोंने उसमें आग लगादी, जब सब पीपलकी लकडी जलकर भस्म होगई ब्राह्मण बैठे माला फेरते रहे तब सब लोग उन ब्राह्मण देवताको दण्डवत् प्रणाम कर बोले कि, उठो अब प्रायश्चित हो चुका, ब्राह्मण बोले कि, अब वह स्त्री क्या करै ? लोग बोले कि, उसकी बिरादरीको देदो, ब्राह्मणने चाण्डालोंसे कहा कि, स्त्री को तुम लेजाओ, चाण्डाल बोले कि, जब यह ब्राह्मणके घरमें रही तो अब हमारे किसकाम की है ? लोगोंने कहा तुमही रहने दो, ब्राह्मण बोले तुम मुझसे फिर प्रायश्चित कराओगे, लोग बोले नहीं–

आपकी महिमा विचारनेमें नहीं आती परन्तु सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति प्रकाश करनेके कारण जाननेमें आते हो, इन्द्रियोंके प्रेरक आत्मामें रमण करनेवाले सत्स्वभाव आपको हम बारंबार नमस्कार करती हैं ॥ ४७ ॥ स्थूल सूक्ष्म सबकी गतिके जाननेवाले हो सम्पूर्ण विश्वके साक्षीहो, विश्व आपके स्वरूपमें नहीं और विश्वके स्वरूपमें आप नहीं आप विश्वके निषेधकी अवधिहो जैसे सर्पके प्रकाशका आश्रय रस्सी आप विश्वप्रकाशनेके आश्रय हो, अरोप और निषेधके साक्षी आप हो; विश्वका आरोप और निषेधके ज्ञान अज्ञानके कारण हो, जहाँतक ज्ञान हैं वहाँतक विश्व माननेमें आवैहै अर्थात् विद्यासे और अविद्यासे अपवाद और अध्यासके हेतु आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! आप

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ॥ हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥ अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक् ॥ तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥ तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शांता अशांता उत मूढयोनयः ॥ शांताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥

चेष्टासे रहित हो। कालशक्तिको धारण करके सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन, संहार करोहो हे अमोघविहार अर्थात् सफलविहार क्रीड़ावाले अपनी इच्छासे उन उन संस्काररूपसे रहे स्वभावोंको प्रतिबोधन करतेहुए क्रीडा करते हो ॥ ४९ ॥ त्रिलोकीमें शांतस्वभाव, अशान्तस्वभाव, घोरस्वभाव, मूढस्वभाव, इस प्रकार सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुणकी प्रधानतासे तीन स्वभावके प्राणी आपके खेलनेके लिये खिलौना हैं। साधुओंकी रक्षा करनेके लिये कटिबद्ध होकर अवतार धारण करते हो, इसलिये आपको शांत स्वभावही

—अलग एक कोठरीमें रखदेना दो रोटी दूसे दे दिया करना दैवयोगसे चाण्डालिनीका देह छूट गया, तब वह ब्राह्मण चाण्डालोंसे बोले कि इसको उठाओ, चाण्डाल बोले इसे उठानेसे हमको बिरादरीमें रोटीदेनी पडेगी, हम इसको नहीं उठानेके तुमही उठाओ, ब्राह्मण बोला मुझे प्रायश्चित्त करना पडैगा, ऐसेही शोच विचार करते दो घडी दिन रह गया, तब ब्राह्मणही उसको उठाने चले, उसका वस्त्र उघाड कर देखा तो उसके समीप फूल बहुतसे पडे हैं और पार्षदोंके पदोंके चिह्न लगरहे हैं, वहा न कोई चाण्डालिनी न कोई मृतक है बस वह नि संदेह परमधामको चली गई, सत्सङ्गतिकी ऐसी उत्तम महिमा है ॥

प्राणी प्रियहैं; क्योंकि सज्जनोंके धर्म पालनकी इच्छासे प्रवृत्ति करते आपने अभी उनकी रक्षाके लिये अवतार लिया है ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! अब हम अबलाओंपर कृपाकीजिये नहीं तो यह काली सर्प प्राण छोड़े देता है, सत्पुरुषोंके शोचनीय हम दीन अबलाओंपर अनुग्रह करके पतिरूप प्राणदान दीजिये ॥ ५१ ॥ स्वामीका यही धर्म है कि एकबार जो अपनी प्रजासे अपराध होजाय उस अपराधको क्षमा करदें, हे शान्तस्वरूप !

अनुगृह्णीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः ॥ स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५१ ॥ अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ॥ क्षंतुमर्हसि शांतात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५२ ॥ विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ॥ यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्सम भिष्टुतः ॥ मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जांघ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥

अनजान इस अज्ञान कालीके अपराध अब क्षमा करो * ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं कुछ आज्ञा करनी हो सो आज्ञा कीजिये, हम आपकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक करेंगी हे नाथ ! जो आपकी आज्ञाको हितचित्तसे करतेहैं उनके सम्पूर्ण भय छूट जातेहैं ॥५३॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी

---

* दृष्टान्त—जैसे एक राजाने किया, कैसे ? आधी रातके समय वेष बदलकर नगरकी सैरको निकला कि देखें कोतवाल और चौकीदार रात पहरा देते हैं वा नहीं देते चौकीदार ने बूझा कौन ! राजाने कुछ उत्तर न दिया, तब चौकीदारने पकडलिया और उनकी पगडी उतारकर उसीसे उनके हाथ बाँध लिये और बहुत मारा, परन्तु राजा तोभी न बोले, चौकीदारने और मारा और कहा कि, अरे दुष्ट ! तूही रोज चोरी करके लेजाता था आज बहुत दिनोंमें पकडा है, राजा तोभी न बोले कि चौकीदारने हवालातमें पकडकर बैठाल दिया, जब दिन निकला और लोग इधर उधरसे आने जानेलगे देखें तो राजा हवालातमें बैठे हैं, तब तो लोगोंने बडा आश्चर्य माना कि यह क्या बात हैं ! चौकीदारने सब वृत्तान्त सुनाया और राजाके चरणोंमें गिर गया कि मेरा अपराध क्षमा कीजे और राजाके हाथ पाव खोल दिये परन्तु मनमें डरता रहा, न जाने राजा मुझको क्या दड दें राजा चुप चाप उठकर मदिरमें चले गये और स्नान पूजाकर राज्य दर्वारमें आये और चोवदारसे कहा कि जो चौकीदार रातको गोपालगजमें पहरा देता था उसको इसी समय हमारे पास लाओ, चौकीदार डरता कापता राजाके सन्मुख आया राजाने प्रसन्न होकर सौ (१००) अशरफी पारितोषिकमें उसे दी और एक गाव उसकी सन्तानके वास्ते दिया. मन्त्रीने हाथ जोडकर बूझा कि इसकी क्या वीरता लिखी जायगी राजाने अपना देह उघाडकर दिखाया और रातका सब वृत्तान्त सुनाया, मन्त्रीने कहा कि इसको तो शूली देनी चाहिये थी राजा बोला आप नहीं समझे यह अपने काममें बहुत सावधान है क्योंकि जो मुझसेही न चूका फिर यह औरसे कभी न चूकेगा अपने काममें सावधान रहनेवालेको सदा परमानन्द प्राप्त होता है ।

बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जब इसप्रकार नागपत्नियोंने श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी स्तुतिकी, तब भगवान्‌ने मूर्छित पड़ेहुए उस भग्नमस्तक काली नागको चरणकी ठोकरसे प्रहार कर छोड़दिया ॥५४॥ सहज सहजमें वह दीन काली सचेत होकर लम्बे लम्बे श्वास लेने लगा, और हाथ जोड़कर भगवान्‌से निवेदन करनेलगा॥५५॥ हे नाथ ! जबसे हम उत्पन्न हुए हैं तबसेही हम दुष्टहैं तामसी हमारा स्वभावहै,बड़ा भारी हमारा क्रोध है,लोगोंका खोटा आग्रहरूप स्वभाव नहीं छूटता ॥५६॥ हे सम्पूर्ण जगत्‌के रचनेवाले ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे अनेक प्रकारका विश्व आपने रचा है और जिसके स्वभाव, शक्ति, बल, योनि, बीज संस्कार और आवृत्तियें, यह सबकी पृथक् पृथक् प्रकारकीहैं, यह विश्व आपहीका रचाहुआ है ॥५७॥ हे

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ॥ कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राह कृतांजलिः ॥ ५५ ॥ कालिय उवाच ॥ वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ॥ स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥ त्वया सृष्ट मिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ॥ नानास्वभाववीर्यौजो योनिबीजाशयाकृति ॥ ५७॥ वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवः ॥ कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भवान्हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः ॥ नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥ ६० ॥

भगवन् ! इस विश्वमें हमें सर्प बनाये.जन्मसेही हमारे हृदयमें अधिक क्रोध बढ़ा और हम आपहीकी मायासे मोहित होरहेहैं सो आपसे मोहित हुए हम आपकी मायाको कैसे छोड़ सक्तेहैं ॥ ५८ ॥ सम्पूर्ण भेदोंको जानने वाले जगत्‌के ईश्वर आपही हो, सो आपही मायाके छुटानेके कारणहो, जो काम आपने हमको सौंपा, उसपै हम ऐसे दुष्ट रहे सो आपसे भी न चूके यह मानकर चाहै हमारे ऊपर कृपा करो, चाहे दण्ड दो आप परमेश्वर हो, सब काम करने योग्य हो हे राजन् ! जब दीनदयालु दीनानाथने व्यालको अत्यन्त बेहाल देखा. तब उसका श्रम दूर कर चतुर्भुज रूप दर्शन दिया ॥ ५९ ॥ और भगवान्‌ने कहा कि, मैंने तेरे मस्तकसे अपने चरणसरोज छुवादिये अब तुझको किसीप्रकारका शोक सन्ताप न होगा परन्तु

अब तू इस कुण्डका वास छोडकर रमणकद्वीपको चलाजा ॥ ६० ॥ और अपनी जातिके सर्प और बाल बच्चे स्त्रियोंको भी साथ लेजा, क्योंकि अब मैं यहाँ जलक्रीडा किया करूंगा और गाय बछड़े और ग्वालबाल यहाँका जल पिया करैंगे आजसे इसका नाम कालीकुण्ड हुआ, जो पुरुष प्रातःकाल उठकर अथवा संध्यासमय इस चरित्रका पाठ करेगा उसको सर्पका भय न होगा ॥६१॥ यह कालीदह स्थान मेरे विहार करनेका है जो पुरुष इसमें स्नानकर इस जलसे पितृदेवताका तर्प्पण करेगा वा व्रत और मेरा पूजन करेगा उसको अश्वमेध यज्ञका पुण्य होगा और अन्तसमय परमधामको जायगा, फिर इस असार संसारमें जन्म न लेगा ॥ ६२ ॥ जिस गरुडके भयसे रमणद्वीपको छोडके तू इस

स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ॥ य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ ६१ ॥ कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ॥ ६२ ॥ उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ॥ यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलांछितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच॥ एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥ दिव्यांबरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः ॥ दिव्यगंधानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥६५॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ततः प्रीतोभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवाद्य तम् ॥ ६६ ॥

दहमें आयके वास कियाहै गरुड तुझको अब न खायगा, क्योंकि तेरे मस्तकपर मेरा चरणचिह्न है ॥ ६३ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि अद्भुत लीलावाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने जब यह बात कही, तब नाग और नागकी स्त्रियें अत्यन्त आनन्द सहित श्रीकृष्ण भगवान्की पूजा करनेलगीं ॥ ६४ ॥ दिव्यवस्त्र, माला मणि, अमूल्य आभूषण और दिव्य सुंगध, केशर, कस्तूरी, चन्दन, आदिका लेपन और बड़ी बड़ी कमलकी मालाओंसे ॥६५॥ गरुडध्वज भगवान्की पूजा करी और कालीसर्पने भगवान्की आज्ञामान उसी समय परिक्रमा दे दण्डवत् प्रणाम कर

अपने कुटुम्ब समेत अपने उरगद्वीपको चलागया ॥ ६६ ॥ वृन्दावनविहारी, विहारकरनेके लिये मनुजरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे यमुनाजीका जल अमृतके समान निर्मल होगया लेशमात्र भी विष न रहा ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां कालियमर्दनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा–सत्रह काली नागको, भेजो रमणकद्वीप। बंधु बचाये अग्नितें, सो तुम सुनहु महीप ॥ १ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित्‌ने पूँछा कि, हे भगवन्! ऐसे परमोत्तम रमणकद्वीपको छोडकर, कालीनाग यमुनामें क्यों आया ? और क्या कारण जो अकेले कालीहीने गरुडका अपराध किया, इसका सब वृत्तान्त विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाबाहु !

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ॥ तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् ॥ अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू०कालियदमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमंजसम् ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपहार्यैः सर्पजनैर्मासिमासीह यो बलिः ॥ वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥ २ ॥ स्वंस्वं भागं प्रयच्छंति नागाः पर्वणिपर्वणि ॥ गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ॥ कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः ॥ विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

राजा परीक्षित्! गरुड़ नित्यप्रति रमणकद्वीपमें सर्पोंको भक्षण करनेको आता था तब संपूर्ण सर्पोंने आपसमें विचार कर मासमासको अपना दुःख निवृत्त करनेके लिये वृक्षकी जडमें एकांत गरुडकी भेंट रखनेका निश्चय करदिया ॥ २ ॥ सब सर्प अपनी अपनी बारीसे पीपलके वृक्षपर गरुडजीकी भेंट रखदिया करतेथे कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत होगये ॥ ३ ॥ अपने विषके और पराक्रमके घमण्डमें अभिमानी कद्रूका पुत्र काली, गरुडको कुछ वस्तु न समझकर सर्प्पान्न गरुडके भागको एक दिन आपही खागया ॥ ४ ॥ हे राजन्! भगवान्‌के प्यारे भाग्यवान् गरुडजीने जब यह बात सुनी कि, हमारे भागका भोजन कालीनाग खागया, उसी समय क्रोधित होकर कालीके मारनेके लिये

अत्यन्त वेगसे कालीके पीछे झपटे ॥ ५ ॥ विषही जिसके शस्त्र वह कालीनाग ऊपरको फण उठा दौडकर गरुडजीके सन्मुख आया, दन्तआयुध भयानक जीभ, पलक जिनमें लगें नहीं ऐसे भयंकर नेत्रोंवाला काली दाँतोंसे गरुडको काटने लगा ॥६॥ तब तो वासुदेव भगवान्के वाहन तार्क्ष्य गरुडजीने बडे क्रोधसे अपने अंगसे छुटाया और सुवर्णकेसे प्रकाशवाले अपने पंखोंसे और चोंचसे कद्रूके पुत्र कालीको मार कर गिरा दिया ॥ ७ ॥ गरुडजी जिस समय पंख प्रहार करतेथे तब पंखोंमेंसे वेदोंके स्वरोंकी ध्वनि निकलतीथी, उनके प्रहारसे और स्वरोंकी गुंजारसे सर्प व्याकुल होते चले जातेथे और काली भी अत्यन्त व्याकुल होगया तो मनमें विचार करने लगा कि, अब गरुडसे मैं किसी प्रकार न जीतूंगा, हारकर यह शोचा कि; अब वहाँ चलना चाहिये जहाँ सौभरि ऋषिने गरुड़को शाप देरक्खा है कि, 'यहाँ गरुड़ न आसके' दूसरे जलमें गरुडका पराक्रम भी न चल सकै, इस प्रकार अ

तमापतंतं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ॥ दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥ तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्प्रचंडवेगो मधुसूदनासनः ॥ पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ॥ ह्रदं विवेश कालिंद्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ॥ निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोहरत् ॥ ९ ॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति॥ सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥ तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ॥ अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥

पना बचाव समझकर वृन्दावनके निकट यमुनाके कुण्डमें जाकर निवास किया ॥ ८ ॥ क्योंकि उस दहमें एक समय गरुड़जी मछलियाँ खानेकी इच्छासे आये, तब सौभरिऋषिनें गरुड़को रोका कि, भाई यह हमारे तपस्या करनेंका स्थानहै यहाँ मछली मत मारो, परन्तु क्षुधार्थी गरुड़नें ऋषीश्वरका वचन न माना॥९॥जब मछलियोंका पति एक बडा मत्स्य गरुड़जीने मारा तब मछलियोंको दीन और व्याकुल देखकर उनके बचानेके लिये सौभरि ऋषिने महाक्रोधित होकर यह शाप गरुड़को दिया ॥१०॥ कि, 'इस दहमें गरुड आनकर जो मछलियोंको खायगा तो उसीसयय गरुड़का देहान्त हो जायगा' यह बात मैं सत्य कहूँहूं इस प्रकार प्राणीमात्रकी रक्षाकरनेवाले सौभरिऋषिने गरुड़को यह शाप दिया ॥ ११ ॥ यह बात काली

भली भाँति जानता था और किसीको यह सुधि नहीं थी कि, गरुडको सौभरिऋषिका शाप है, इस भयसे उस कुण्डमें काली वास करता था, सो
श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुण्डसे निकाल कर उसके प्राचीन स्थान रमणकद्वीपको भेज दिया * ॥१२॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन
कण्ठमें सुन्दरमाला पहरे, केशर चन्दन चर्चित वस्त्र धारण किये, मणि रत्नोंसे दीप्त सुवर्णके गहने पहने दहमेंसे निकले ॥ १३॥ तब व्रज
विहारीको देखकर सब व्रजवासी खड़े होगये जैसे मृतक शरीरमें प्राण आनेसे सब इन्द्रियें चैतन्य होजाती हैं उसप्रकार आनन्दसे पूर्णचित्त
हो दौडकर सब व्रजवासी हृदयसे लगा लगा कर मिले और विरहानलकी जो ताप हृदयमें भड़क रही थी वह सब शान्त होगई ॥ १४ ॥

कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रांतं दिव्यस्रग्गंधवाससम् ॥ महामणिगणाकीर्णं जांबूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः
सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ॥ प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे ॥ १४ ॥ यशोदा रोहिणी नंदो गोप्यो गो
पाश्च कौरव ॥ कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिंग्य जहासास्यानुभाववित् ॥
नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥ नंदं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ॥ ऊचुस्ते कालियग्रस्तो
दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥

हे कुरुवंशावतंस राजा परीक्षित् ! यशोदाजी, रोहिणीजी, नन्दजी तथा गोप गोपियोंको श्रीकृष्णचन्द्रको आये हुये देखिके ऐसा अनन्द हुआ कि
मानो गये हुए प्राण फिर चले आये ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेंवाले बलरामजी घनश्यामकों छातीसे लगाकर हँसकर मिले और गाय,
बछरे,बैलोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुये और जो वृक्ष सूख गयेथे वह सब हरे होगये तब सब व्रजवासी बोले कि, भाई बलराम ! तुम भी अपने वचनके
पूरेही निकले जो तुमने कहा था वैसाही हुवा अब घर चलनेकी क्या इच्छा है ? ॥१६॥ उसी समय गुरु, पुरोहित, ब्राह्मण, अपनी २ पत्नियों

* शंका—क्या उस कुण्डको कालीही नाग जानताथा और कोई दूसरा सर्प उस कुण्डको क्यों नहीं जानता था ? इसका क्या कारण ?
उत्तर—कालीनाग नारदजीका चेलाथा, इसलिये नारदजीने कालीको कुण्ड बताया था कि, तुझको कभी विपत्तिकाल पडे तो तू यमुनाके कुडमें चले जाना, उस कुण्डमें गरुडका बल नहीं चल सकेगा,
इसलिये केवल कालीकोही उस कुण्डका वृत्तान्त विदित था ॥

सहित नन्दरायजीसे आनकर कहने लगे कि परमेश्वरने बड़ा अनुग्रह किया जो कालीनागका डसाहुवा तुम्हारा पुत्र बचगया, यह बडे मंगलका समय है ॥ १७ ॥ इनके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको मणि रत्न आभूषण सहित गोदान दीजिये उससमयकी बधाईमें नन्दरायजीनें प्रसन्न होकर हे राजन् ! गायें और सुवर्णका दान ब्रह्मणोंको दिया ॥१८॥ धर्मशीला यशोदा भी बड़ी भाग्यवती है जिसका पुत्र कालके गालमें जाकर लौट आया वह अपने पुत्रको पाय हृदयसे लगाय गोदमें बैठाय बारंबार नेत्रोंसे आंशू बहाने लगी ॥१९॥ हे राजन् परीक्षित!भूख प्यास करके पीडित व्रजवासी नष्टभये पुत्रको पायके गौवों समेत संपूर्ण दिनरात यमुनाजीके किनारे वास करते भये ॥ २० ॥ गरमीकी ऋतु थी आधी रातका समय था ठण्ढी ठण्ढी पवन जो लगी तो सब व्रजवासी पडके सोगये, तब सूखेवनको उस दावानल दैत्यने अग्निरूप बनकर जलाना आरम्भ कर दिया ॥२१॥सब

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ॥ नंदः प्रीतमना राजन्गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् ॥ १८॥ यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ॥ परिष्वज्यांकमारोप्य मुमोचाश्रुकला मुहुः ॥ १९ ॥ तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्शिताः ॥ ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिंद्या उपकूलतः ॥ २० ॥ तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ॥ सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥ तत उत्थाय संभ्रांता दह्यमाना व्रजौकसः ॥ कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥ कृष्णकृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ॥ एष घोरतमो वह्निस्तावकान्ग्रसते हि नः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ॥ न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥

पृथ्वी और आकाश लाल लाल दीखने लगा,पशु पक्षी व्याकुल होकर भागने लगे जब महा कुलाहलपडा तो सब व्रजवासी घबराकर जाग उठे और पुकार पुकार कर श्रीकृष्णचन्द्रके शरण आगये और कहने लगे ॥ २२ ॥ हेकृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे राम ! हे अत्यन्त पराक्रमी ! आप शीघ्र हमारी सहाय कीजे यह महाभयानक कृशानु हमको भस्म करे डालता है हे संकटमोचन ! शीघ्र हमारी सहाय कीजे जब जब हमलोगों पर भारी भीर पडती है तब तब तुमहीं सहाय किया करते हो. तृणावर्त, शकटासुर, बकासुर, अघासुरको मार हमारी रक्षा करी वैसेही अब भी हमारी रक्षा करो, हम सब आपहीके हैं ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! इस महाघोर कालरूप अग्निसे हम लोगोंको बचाओ. हे मित्र ! हम इस भयंकर अग्निमें

जलनेसे भी नहीं डरते केवल आपके चरणारविन्दके वियोगसे डरतेहैं, सो आपके निर्भय पदको हम नहीं त्याग सक्ते ॥ २४॥ इस प्रकार विश्वके ईश्वर और अनंतशक्तियोंके धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अपने व्रजवासियोंको व्याकुल देख उस भयानक अग्निको पान करते भये ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां दावानलमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–अष्टादशमें ग्रीष्मसे, लक्षित सुखद वसंत । हरिकी पाय सहाय कछु, हत्यो प्रलम्ब अनंत ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे नरेन्द्र ! फिर श्रीवृन्दावनविहारी मनमें प्रसन्न होकर अपनी जातिके सब व्रजवासियोंको साथ लिये, अग्निका पान किये, पीछेपीछे व्रजवासी जिनके चरित्र गाते चले आतेथे, ऐसे श्यामसुन्दर गायोंके समूहोंसे शोभित व्रजकी ओरको पधारे ॥ १ ॥ गायोंके चरानेके बहानेसे अनेक प्रकारकी माया करके दोनों भाई व्रजमें विहार करतेथे

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥ तमग्निमपिबत्तीव्रमनंतोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० दशमस्कंधे पू० कालियनिर्यापणदावाग्निपानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥ अनुगीयमानोन्यविशद्व्रजं गोकुलमंडितम् ॥ १ ॥ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ॥ ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥ स च वृन्दावनगुणैर्वसंत इव लक्षितः ॥ यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ॥ शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममंडलमंडितम् ॥ ४ ॥

उसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आई वह समय देहधारियोंके लिये सुखदायक नहीं था ॥ २ ॥ परन्तु वह ग्रीष्मऋतु भी वृन्दावनके गुणोंसे वसंत ऋतुकी समान जान पड़ती थी क्योंकि जहाँ साक्षात् श्रीवृन्दावनविहारी कृष्णचन्द्र भगवान् बलरामजीके साथ विराजते थे फिर भी वहाँ वसन्त न रहै ? बड़े आश्चर्यकी बात है ? वहाँ तो सदा वसन्त रहना चाहिये, वृक्षोंपर बारहोंमास फल फूल खिलते रहैं, त्रिविध बयारी झकोलती रहैं आमोंकी डालियोंपर कोकिला कूकती रहैं भाँतिभाँति के पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियें बोलते रहैं, मोर शोर कर कर चारोंओर झिंगारते रहैं और अनेक अनेक प्रकारकी शोभा नित्यप्रति बनीरहै तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि जहाँ त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी विहार करैं वहाँ भी यह शोभा न हो तो फिर कहां हो ? ॥३॥ जहाँ जलके झरनोंका ऐसा गम्भीर शब्द हो रहाथा उस शब्दके सामने झींगरोंका शब्द सुनाई नहीं

देताथा और सदा झरनोंकी छींटोंसे हरे हरे वृक्षोंके समूहोंसे वृन्दावन अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ॥ ४ ॥ वहाँ हरी हरी घास ऐसी शोभायमान जान पडती थी मानों हरी मखमलका बिछौना बिछ रहाहै, उस वृन्दावनमें कह्लार, कंज और उत्पल यह जो भाँतिभाँतिके कमल हैं उनकी सुगन्धयुक्त नदी,सरोवर, झरनोंसे स्पर्श करके जो ठण्ढी ठण्ढी पवन आती थी इससे वृन्दावनवासियोंको ग्रीष्मकी अग्नि और मार्त्तण्डकी प्रचण्ड ताप नहीं सतातीथी ॥५॥ जहाँ अनेक नदियें हैं जिनके तट पर पहुँचतेही जलकी तरंगोंसे टापुओंकी और किनारोंकी भूमिमें सजलताई आती है, उस पृथ्वीकी सजलताई और हरियालीको विषकी समान भयंकर सूर्यकी किरणें नहीं सुखा सक्तीं ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके फूल जहाँ तहाँ फूल रहे

सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकंजोत्पलरेणुहारिणा ॥ न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्नयर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समंततः ॥ न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्वणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ॥ गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः ॥ वेणुं विरणयन्गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥ प्रवालबर्हस्तवकस्रग्धातुकृतभूषणाः ॥ रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ॥ वेणुपाणितलैः शृंगैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः ॥ ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥

हैं, नाना प्रकारके जीव जन्तु, पक्षी मीठी मीठी बोलियें बोल रहेहैं॥७॥ उस अनुपम वनमें श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बलदेवजीको और ग्वालबालोंको साथ लेकर बाँसुरी बजाते विहार करनेकेलिये गाय बछड़ों सहित वृन्दावनको चले ॥ ८ ॥ बलराम श्रीकृष्णादिक ग्वालबाल, पत्र, मोरपुच्छ, गुच्छक, माला, धातु अर्थात गेरू खडिया, मनशिल, हरतालसे शृंगार करके कभी नाचतेथे, कभी गातेथे और कभी परस्पर युद्ध मचातेथे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र जब युद्ध करतेथे और नृत्य करतेथे, उस समय कितने बाँसुरीं करताल और शृंगी बजातेथे और कितने नई नई राग रागिनी गातेथे, कितने उनके नाचकी बडाई करतेथे ॥१०॥ हे राजन् ! देवता लोग गुप्त हो गोपोंका रूप धारणकरकर श्रीकृष्ण और

बलरामकी बारम्बार इसप्रकार प्रशंसा करतेथे जैसे नट नटकी बड़ाई करते हैं ॥ ११ ॥ सब शिरपर बाल धारणकिये श्रीकृष्ण बलराम दोनों
भाई कभी चाईंमाईं खेलते, कभी कूदते, कभी धक्का मुक्की करते, कभी खम्भ ठोंकते कभी खैंचातानी करते और कभी मल्लयुद्ध करते, इस प्रकार
एकसे एक अद्भुत लीला करतेथे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! कभी और दूसरे ग्वालबाल नाचतेथे तो कृष्ण बलदेव दोनों भाई आप गातेथे और बाँसुरी
बजाते थे और फिर उनकी प्रशंसा करते थे कि, तुमने भला नृत्य किया ॥१३॥ कभी बेलके फल हाथमें लेकर दो दो चार चार एक साथही उछालते
कभी कुंभीवृक्षके फलोंको फेंकते थे. कभी आँवलेके फल मुरलीनमें रख रखके बगेलते थे, कभी छोटे छोटे फल हाथमें लेकर बूझतेथे जो बतलादेते
तो फल लेलेते और जो नही बतला सक्ते थे तो वह फल हार जाते थे ॥ पहिले तो बलरामने श्यामसुंदरके नेत्र बन्द किये, सब सखा भागकर चारों

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ॥ शशंसतुर्महाराज साधुसाध्विति वादिनौ ॥ १३ ॥ क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुंभैः क्वचामलकमुष्टिभिः ॥ अस्पृश्यनेत्रबंधाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ॥ कदाचित्स्पंदोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुंजेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥

(Above, as printed line by line:)

भ्रामणैर्लंघनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ॥ चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२॥

मीचते ओर छिपगये. तब बलदेवजीने कृष्णको छोडदिया और उनकी आँखें खोलदी. जिसको कृष्ण पकडकर लाते थे बलदेवजी उनहीकी आँखें
थे. कभी कुरंगके संग दौडते. कभी विहंगके ढंग पर चलते ॥ १४ ॥ कभी सारिताओंके सोतोंमें मेंढककी नाईं कूदते और जो कोई कूदनेके समय
पानीमें रपटकर गिर पडता तो सब सखा मिलके उसका हास्य करते थे. कभी वृक्षोंकी शाखाओंको पकड़ पकड़कर झूलते थे और सुंदर सुंदर
पुष्पोंके आभूषण बना बनाकर पहनते थे, कोई कोई सखा कहते भाई ! हमारी तो यह इच्छा है कि, बलरामको तो राजा बनावें और घनश्यामको
मंत्री बनावें और हम सब प्रजागण बनें और श्रीदामादिक ग्वालबालोंको सिपाही बनावें और जो ग्वालिनी इस मार्गको दधि लेकर
निकले उनसे दान लें ॥ १५ ॥ इसप्रकार राम कृष्ण दोनों भाई जगत्में जो जो खेल विख्यात हैं उन उन खेलोंको खेलकर प्रसन्न होते थे.

कभी यमुनाजी न्हाते, कभी गोवर्द्धनकी कन्दराओंमें घुसजाते कभी कुञ्जोंमें विचरते फिरते, कभी काननमें आनन ढक ढक कर विचरते, कभी सरोवरोंमें जलविहार करते और कभी कमल कुमोदिनीके फूल तोड़ तोड़ कानोंमें धरते थे ॥ १६ ॥ इसप्रकार दोनों भाई ग्वाल वालोंके संग वृन्दावनमें गायें चराते थे. तहाँ कृष्ण बलदेवके हरनेके लिये कंसने प्रलम्बासुरको भेजा उसने इनको सखाओंके साथ खेलताहुवा देख अपना रूप भी गोपहीका बनाकर उन ग्वालोंमें आन मिला ॥ १७ ॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जानलिया कि, यह असुर आया और

पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ॥ गोपरूपी प्रलंबोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः ॥ अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिंतयन् ॥ १८ ॥ तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् ॥ हे गोपा विहरिष्यामो द्वंद्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ॥ कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ॥ यत्रारोहंति जेतारो वहंति च पराजिताः ॥ २१ ॥

अपने मनमें उसके मारनेका विचारभी किया परन्तु तोभी उसको मित्र बनाकर उसकी प्रशंसा की और कहा कि, मित्र ! आप भले खेलके समय आगये * ॥ १८ ॥ आप तो सब खेल जानतेही हो ? फिर सब सखाओंको बुलाकर कहा कि, हे मित्रो ! हम बराबरकी दो टोली बनाकर खेल खेलेंगे ॥ १९ ॥ बलराम और घनश्यामको दोनों टोलियोंका मुखिया बनाया और सबको यह वचन पुकारकर सुनादिया कि, जो जीतै सो हारेकी पीठ पर चढ़े और हाराहुवा उसको अपनी पीठपर चढ़ाकर, वटभाण्डीरतक उसी समय पहुँचादे ॥ २० ॥ इस प्रकार चढने चढ़ानेवाले

* शंका–रावणादिक अनेक राक्षसोंको भगवान्ने मारा, परन्तु किसी राक्षसके मारनेमें ऐसी चिन्ता नहीं की जैसे छोटेसे प्रलम्बासुरके मारनेमें चिन्ता की. सो क्या कारण जो उसके मारनेमें इतनी चिन्ता की ? उत्तर *प्रलम्बासुरकी मृत्यु ब्रह्माने शेषजीके हाथसे लिखी थी कि, तू शेषके हाथसे मरेगा और किसी दूसरेके हाथसे नहीं मरेगा, इस वातको भगवान् भले प्रकार जानतेथे और यह भी जानतेथे कि, शेषके मनमें बडी दयाहै और उनके हृदयमें नम्रताहै कभी दया करके शेषजी उसको न मारें और इस दुष्टका मारना अवश्य है क्योंकि जो यह बचगया तो ग्वालबालोंको बहुत दु.ख देगा इसलिये अधिक चिन्ता की ॥

कई खेलोंका प्रारम्भ किया और परस्पर दोनोंने स्वीकार कर लिया ॥ २१ ॥ इस प्रकार चढ़ते चढ़ाते गायोंको चराते श्रीकृष्ण अपने थोकको लेकर वटभाण्डीरकमें पहुँचे ॥ २२ हे राजन् ! जब बलरामजीकी ओर श्रीदामा और वृषभादिक जीतगये तब श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरके उनको अपनी पीठपर चढ़ाकर लेगये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब हारे तब श्रीदामाको अपनी पीठपर चढ़ाया भद्रसेनने वृषभको चढ़ाया और प्रलम्बासुरने रोहिणीनन्दन बलरामजीको अपनी पीठपर चढ़ालिया ॥ २४ ॥ जब कि, उस प्रलम्बासुरने भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रको बलवान् समझा तो बलदेवहीको लेकर वटभाण्डीरक वनकी ओरको अत्यन्त शीघ्रता सहित झपटा चलागया ॥ २५ ॥ जब उस असुरसे पर्वतके

वहंतो वाह्यमानाश्च चारयंतश्च गोधनम् ॥ भांडीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनो यर्हि श्री दामवृषभादयः ॥ क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूचुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवाञ्छ्रीदामानं पराजितः ॥ वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलंबो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुंगवः ॥ वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहण तः परम् ॥ २५ ॥ तमुद्वहन्धरणिधरेंद्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ॥ स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडि द्द्युमानुडुपतिवाडिवांबुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य तद्वपुरलमंबरे चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ॥ ज्वलच्छिखं कट ककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत ॥ २७ ॥

समान बलदेवजीका भारी भार न उठसका और पराक्रम उसका शिथिल होगया तब इसने अपना असुरदेह धारण करलिया, उस समय वह दैत्य सुवर्णके गहने पहने ऐसा शोभायमान दिखाई देता था जैसे चन्द्रमासहित बादलमें बिजली दमक जाती है और बलदेवजी उस दैत्यके काले शरीरपर कैसे दिखाई देते थे जैसे कालीघटामें चन्द्रमा, बलदेवजीके कानोके कुंडल कभी कभी दामिनीके समान दमक जाते थे, गलेका दुपट्टा जो झटका खाकर नीचेको लटक गया था वह ऐसा जान पडता था मानो इन्द्रका धनुष तन रहा है, गरमीके मारे उसकी देहसे प्रस्वेद जो टपकता था वह ऐसा ज्ञात होता था मानो आकाशसे बुन्दधारा पड़रही है ॥ २६ ॥ आकाशतक प्रकाशमान ऊंचा महाविकराल जिसका शरीर लाल लाल

नेत्र मानो तत्कालही ज्वालाको उगलेंगे महाभयंकर दाढें मानो बाढें धरीहुई बरछी बाल ताँबेके सदृश लाल लाल भयकारी दोनों भुजदण्ड मानो ब्रह्माण्डके तोडनेवाले हैं कानोंमें कनककुण्डल मस्तकपर मुकुटकी अद्भुत शोभा और उस असुरकी मनोहर कान्ति देखकर हल, मूशलके धारण करनेवाले बलदेवजी अपने मनमें कहने लगे कि, यह कैसा गोप ? मेरा जी डरता है ॥ २७॥ पहिले तो कुछ भय माना परन्तु पीछे सुधि आगई कि, यह तो असुर है, फिर तो भय त्याग बलदेवजीने जाना कि, हमारे गोपोंको छुटाकर बलात्कार हमको लिये जाता है; तब तो अविनाशीने महाक्रोध करके उसके शीशमें एक मुष्टिक मारा जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतको मारता है ॥ २८ ॥ मुष्टिकके लगतेही उसका शिर फूटकी नाईं फूट गया, दाँत टूट गये,

अथाऽऽगतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहायसाऽर्थमिव हरंतमात्मनः ॥ रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ॥ महारवं व्यसुरपतत्समीरयन्गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रलंबं निहतं बलेन बलशालिना ॥ गोपाः सुविस्मिता आसन्साधुसाध्विति वादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोऽभिगृणंतस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ॥ प्रेत्यागतमिवालिंग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥

मुखसे रक्तका वमन होने लगा, मानो रुधिरकी धारा बहरही है जिह्वा और नयन निकलकर बाहर आपड़े हाथ पाँव पसार दिये और बड़ा घोर शब्द कर मुख फैलाय पृथ्वीपर गिरा, जैसे इन्द्रके वज्रके मारे पहाड पृथ्वीपर गिरते हैं ॥ २९ ॥ महाबलवान् बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरको माराहुवा देखकर विस्मितहो ग्वालबाल कहनेलगे कि, भाई ! तुम दोनों बड़े वीरहो हमसे तुम्हारी बडाई नहीं हो सक्ती जहां जहां हमपर विपत्ति पडती है वहीं वहीं आप सहाय करतेहैं जैसे जो भाई तुम इससमय न होते तो यह एकनएक लडकेको पकडकर अवश्य लेजाता॥३०॥इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीबोले कि, उस समय सब ग्वालबाल और नंदलाल मिलकर बलदेवजीको आशीर्वाद देनेलगे कि, चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो, फिर प्रशंसा योग्य बलदेवजीकी

प्रशंसा करने लगे और जैसे कोई मरकर लौट आता है ऐसे बलदेवजीसे मिलकर प्रेममें मग्न होगये ॥३१॥ पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवताओंको
बड़ा आनन्द हुवा बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और धन्यवाद देने लगे ॥३२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां
प्रलम्बासुरवधो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, मुञ्ज विपिनमें जाय । गोप गाय सब अग्निसे, क्षणमें लिये बचाय ॥१॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब सब ग्वालबाल खेलमें लगगये तब उनकी गायें बछरे अपनी इच्छासे चरते २ हरी हरी घासके लालचमें

पापे प्रलंबे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥ अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधुसाध्विति ॥३२॥ इति श्रीमद्भाग० म०द०
पू० प्रलंबासुरवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥ स्वैरं
चरंत्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशंत्यो वनाद्वनम् ॥ इषीकाटवीं विविशुः क्रंदंत्यो
दावतर्षिताः ॥ २ ॥ तेऽपश्यंतः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ॥ जातानुतापा न विदुर्विचिन्वंतो गवां गतिम् ॥
॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरंकितैर्गवाम् ॥ मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाऽऽजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥

आनकर सघन वनमें चले गये ॥ १ ॥ वह अजा अर्थात् ओसर गायें भैंसे उस वनसे चरती चरती आगे धेनुकवनमें चलीगईं उसके आगे महाघोर
मुंज है तहाँ चलीगईं क्योकि वनमें चारोंओर दवँ जो लगरही थी उसकी गर्मीसे प्यासकी मारी घबरा रहीं थीं * ॥ २ ॥ जब बलराम कृष्णादिक
ग्वालबालोंने पशुओंको नहीं देखा तो मनमें अत्यन्त दुःखी हुये और जहाँ तहाँ खोजने लगे परन्तु पता कहीं नहीं लगा ॥ ३ ॥ फिर परस्पर
विचार सब ग्वालबाल गायोंके खुरोके चिह्नोंको और जो गायोंके दांतोंसे कटा हुवा घास था, उसको देखते देखते जहाँ जहाँ होकर गायें

* शंका–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको बकरीका पालन तथा भैंसका पालन अयोग्य है और शास्त्रमें भी इनका पालन अनुचित है, फिर श्रीकृष्णने बकरी और भैंसें क्यों पाली ?
उत्तर–पण्डित लोग बकरीका नाम अजा कहते है परन्तु अजा गायकी बछियाको भी कहते हैं और ओसरभी कहते हैं और मुनियोंने अजाका ऐसा अर्थ किया है कि, बालक जिसमें न हों उसका नाम
अजा है और महिषी नाम वृद्ध गायका है और जो युवा गाय हो उसका नाम गाय है, श्रीकृष्ण भगवान् सब बछिया और वृद्ध युवा गायोंका पालन किया करतेथे बकरी भैंसोका पालन करना तो गडरियोंका
काम है, श्रीकृष्णचन्द्रने बकरी भैंसें नहीं पालीं ॥

गई थीं वहाँ पहुँचे ॥४॥ मुंजवनमें घुसगये वहां जाकर मार्ग भूलगये, सीधा मार्ग अग्निसे रुकगया था, तब दुःखित हुईं कुछ थोड़ीसी गायोंके समूहोंको देखा, भूखे और प्यासे ढूँढ़नेके खेदसे और भी घबरारहे, वे हारे थके अपनी गायोंको घेरकर पीछे को लौटे ॥ ५ ॥ जो गायें इधर उधर रहगईं और दूर दूर चरती थीं, उनको मेघकी समान गम्भीर वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उनका नाम लेलेकर बुलाईं ॥ ६ ॥ तब सब गायें अपने अपने नाम सुनकर, हर्षित होकर रम्भाईं, इससे यह सूचित किया कि, हम तुम्हारी मनोहर वाणीको, सुनती तो हैं परंतु मार्गमें आग जो लगी है इसलिये तुम्हारे समीप आ नहीं सक्तीं मार्ग बड़ा विकट है ॥ ७॥ वहाँ बडी धूमधामसे धूमध्वजावाला अग्नि चारोंओर वनवासी जीवोंका जलानेवाला लगरहा था और पवनके वेगसे प्रचण्ड होरहा था और महाप्रबल लपटोंसे चराचरको भस्म करता चला जाता था और धुयेंके

मुंजाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रंदमानं स्वगोधनम् ॥ संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥५॥ ता आहूता भगवता मेघगंभीरया गिरा ॥ स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समंताद्दनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत्क्षयकृद्वनौकसाम् ॥ समीरितः सारथिनोल्वणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजंगमान्महान् ॥ ७ ॥ तमापतंतं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ॥ ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥ कृष्णकृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम ॥ दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हंत्यवसादितुम् ॥ वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपणं बंधूनां भगवान्हरिः ॥ निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥

धुन्धकारसे सर्वत्र वनमें महाघोर अन्धकार छागया. जीव, जन्तु, पशु, पक्षी धुयेंसे अन्धे हो २ जहाँके तहाँ जल जलकर रहजाते थे कोई किसीको बूझै नहीं था. तब सब ग्वाल मृत्युके भयसे दुःखित हो बलदेवजीसहित श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर विनय करने लगे ॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबलवान् ! हे राम ! हे अनंतपराक्रमवाले ! यह वनकी अग्नि हमको भस्म करे डालती है, अब शरणागतोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हम तुम्हारे मित्र हैं हमको ऐसा कठिन कष्ट दिखाना नहीं चाहिये, क्योंकि हम इतने कष्ट सहने योग्य नहीं हैं. आपही हमारे अधिष्ठाता हो और आपहीका हमको आश्रय है ॥ १० श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मित्रोंके

दीनवचन सुनकर कहने लगे कि, हे मित्रो भयभीत मतहो, अपनी अपनी आँखें मीचलो ॥ ११॥ उसीसमय श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार सबने अपने २ नेत्र मूँद लिये तब योगेश्वर भगवान्ने उस महाभयंकर अग्निको पानकर अपने प्यारे मित्रोंको महाकष्टसे बचाया ॥ १२ ॥ जब उन्होंने नेत्र खोले तो फिर भाण्डीरवनमें आगये और अपने आपको और गायोंको अग्निसे छुटा देखकर बहुत विस्मित हुए कि, यह क्षणमात्रमेंही, क्या अचम्भा होगया ॥ १३ ॥ योगमायाका प्रभाव प्रगट दिखानेवाले अग्निसे बचानेसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको देखकर सब गोप कहने लगे कि, श्रीकृष्ण हमारे समान मनुष्य नहीं हैं यह देवता जान पडतेहैं॥ १४॥जब जाना कि,सन्ध्यासमय हुई तब बलरामजी सहित श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्द मन्द

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ॥ पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥ ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भांडीरमापिताः ॥ निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥१३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायाऽनुभावितम् ॥ दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ॥ वेणुं विरणयन्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपीनां परमानंद आसीद्गोविंददर्शने ॥ क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत् ॥१६॥ इति श्रीमद्भाग०महापुराणे दशम०पूर्वार्धे श्रीकृष्णकृतदावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलंबवधमेव च ॥ १ ॥

मन्द चालसे गायोंको लिये बाँसुरी बजाते गोपोंसे स्तुति कराते व्रजमें आये ॥ १५॥ जब ग्रामके समीप आगये तब मुरलीधरने मुरली बजाई; मुरलीकी ध्वनि सुनतेही सब व्रजनारी अपने अपने घरोंका काम तजकर मार्गमें आन खड़ी हुईं और गोपीवल्लभका दर्शन करतेही गोपियोंको परमानन्द प्राप्त हुवा और हृदयमें ठण्ढक होगई.क्योंकि विना श्यामसुन्दरके देखे एक एक क्षण सौ सौ युगकी समान व्यतीत होताथा ॥ १६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम०पू०भाषाटीकायां दावाग्निपानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥दोहा–कहौं बीस अध्यायमें, पावस शरदानन्द। जो जो कुछ लीलाकरी, राम गोप नँदनन्द॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र बलरामने अग्निसे जो सब ग्वालबालोंको बचाया और प्रलम्बासुरको मारा,यह

अद्भुतकर्म गोपोंने स्त्रियोंसे कहा ॥ १ ॥ और बडे बडे वृद्ध गोप, गोपी, यह बात सुनकर आश्चर्य करने लगे और श्रीकृष्णको मुख्य देवता समझा ॥ २ ॥ जब ग्रीष्मऋतुने संसारके जीवोंको अधिक सताया. तब संसारी जीवोंको दुःखी देख पावस प्रचण्ड अपने बलके घमंडमें भरा, मार्त्तण्डके प्रकाशको दबाता, चारोंओर धूमधाम मचाता मेघोंका धौंसा वजाता, बादलका दल संग लिये, युद्धका सामान किये चढि आया तथा आकाशमें गड़गड़ाहट शब्द होने लगा ॥३॥ दामिनी दमकने लगी, बादल गर्जनेलगे. घनमें श्यामघटा छागई, सूर्य चन्द्रमा तारागणोंका प्रकाश आच्छादित होगया; उस समय आकाश ऐसा शोभायमान जानपडता था जैसे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जीव आच्छादित होरहाहै यह त्यागनेके योग्य दृष्टान्त है, प्राणीको ऐसा नहीं चाहिये कि, जो गुणोंसे आवृत होजाय ॥ ४ ॥ जैसे आठ महीने तक पृथ्वीका जलरूप द्रव्य सूर्यनारायण अपनी

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥ ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ॥ विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥ सांद्रनीलांबुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥ अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ॥ स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥ तडित्वंतो महामेघाश्चंडश्वसनवेपिताः ॥ प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥ तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही ॥ यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥

किरणोसे सोखै है और वर्षाऋतु आनेपर वरसावै है ऐसेही राजाको भी चाहिये कि, सुकालमें प्रजासे कर लेवै और अकालमें उनको अन्न धन देकर पालन करै यह ग्रहण करने योग्य दृष्टांत है, राजाको ऐसाही करना योग्यहै ॥ ५ ॥ जैसे प्रबल पवनकी झकोरसे बडे बडे मेघ बिजली जिनमें चमके विश्वको तप्त देख पुष्ट करनेवाले जीवन (जल) वरसानेलगे जैसे दयावान् पुरुष दुःखी जनोंको देखकर उनको सुखी करनेके लिये दया करके अपने प्राणतक देतेहैं, तैसेही बडे मेघ अपने बिजली रूप नेत्रोंसे संतप्त विश्वको देखकर पवनसे चलायमान हो जल बरसाते हैं, यह ग्रहण करने योग्य दृष्टान्त है महात्मा पुरुषोको ऐसाही करना चाहिये ॥६॥ पृथ्वी ग्रीष्मऋतुकी धूपसे अत्यन्त तप्त होकर जो सूख गई थी, इन्द्रने जल वर्षाकर जब उसको सींचा तो फिर वर्षाऋतुमें फूली और वृक्षोंपर भाँति भाँतिके फूल खिले और फल लगे ऐसेही सकामपुरुष धनकी अथवा

पुत्रकी इच्छा करके तप करता है, तब पहिले तो उसका देह दुर्बल होजाता है फिर तपका फल मिलनेसे उसका शरीर जैसेका तैसा होजाताहै, यह त्यागने योग्य दृष्टान्त है. पुरुषको उचित है कि, सकाम तप न करै ॥ ७ ॥ वर्षाऋतुमें सन्ध्या समय खद्योत (पटबीजने) प्रकाश करतेहैं तारागण प्रकाश नहीं करते जैसे कलियुगमें पापके प्रभावसे पाखण्डमार्ग चमकते रहतेहैं और वेदमार्ग अस्त होजाते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्तहै, चतुर पुरुषोंको ऐसा नहीं चाहिये जो पाखण्ड मार्गमें प्रवृत्त हों॥ ८ ॥वर्षाऋतुमें मेघका गर्जना सुनकर मेढ़क बोलने लगते हैं; जैसे विद्यार्थी गुरुके सम्मुख मुख बन्द किये चुप बैठे रहतेहैं. जब गुरु नित्य नैमित्तिक कर्मसे निश्चित होकर बोलतेहैं, तब आपभी शिष्य अपना पाठ लेकर बैठतेहैं. यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, विद्यार्थियोंको यही चाहिये कि, गुरु जब अपने कार्यसे निश्चिन्त होजायँ और वह कहैं तब आप अपना पाठ पढ़ें ॥ ९ ॥ क्षुद्रनदी जिनका

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांति न ग्रहाः ॥ यथा पापेन पाखंडा न हि वेदाः कलौ युगे ॥ ८॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मंडूका व्यसृजन्गिरः ॥ तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्यो ऽनुशुष्यतीः ॥ पुंसो यथाऽस्वतंत्रस्य देहद्रविणसंपदः ॥ १० ॥ हरिता हरिभिः शष्पैरिंद्रगोपैश्च लोहिता ॥ उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभृत् ॥ ११ ॥

जल थोडेही दिनोंमें सूखजाताहै वर्षाऋतुमें जब अधिक जल वर्षताहै तब अपनी मर्यादाको छोड छोडकर चारों ओरको उफनने लगती हैं, जैसे अजितेन्द्रिय पुरुषका मन धन और ऐश्वर्य पाकर खोटे मार्गोंकी ओरको चलता है और सब ठौरको पॉव फैलाता है, यह त्याज्य दृष्टान्तहै ऐसा नहीं चाहिये जो मार्गमें अपने मनको चलावै ॥ १० ॥ वर्षाऋतुमें हरी हरी घास उत्पन्न होनेसे, लाल लाल बीरबहूटियोंके फिरनेसे, उच्छिलीन्ध्र (छत्रिका, जो चौमासेमें छत्रके आकार पृथ्वीमें उत्पन्न होती है, बालक उनको सॉपकी छत्री कहा करते हैं) उनके फूलनेसे और सुन्दर सुन्दर वृक्षोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़तीथी जैसे राजाकी सेना चित्र विचित्र रंगसे सजी हुई छत्र छायावाली दिखाई देती है यह ग्राह्य दृष्टान्त है, राजाओंको ऐसाही चाहिये; जो हरे लाल मखमलके नये नये बिछौने बिछावें और श्वेत श्वेत डेरे तम्बू तान दें ॥ ११ ॥

वर्षाऋतुमें हरे हरे धानोंके खेतोंको देख देख कर किसानोंका चित्त आनन्दित होता था और लाभ हानि दैवाधीन है, इस बातको असत्य समझकर जिन लोगोंने अन्न संग्रह किया था, उनको क्लेश हुआ, यह त्याज्य दृष्टान्त है, ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये जिसमें सबका बुरा चिन्तवन करना पडे ॥ १२ ॥ वर्षाऋतुमें जैसे जलाशयके रहनेवाले मनुष्य नये जलके सेवनकरनेसे सुन्दर स्वरूपवान् होजाते हैं, जैसे हरि भगवान्का सेवनकरनेसे हरिजन सुन्दर स्वरूपको पाते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, मनुष्यको ऐसाही चाहिये ॥ १३ ॥ वर्षाऋतुमें समुद्रमें नदी आनकर मिली और पवनके चलनेसे तरंगें उठने लगीं उस समय समुद्रका जल चलायमान होगया, जैसे चित्त विषय वासनामें और काममें चलायमान हो जाता है. यह त्याज्य दृष्टान्तहै योगियोंको ऐसा नहीं चाहिये जो विषयवासनामें चलायमान होजायँ ॥ १४ ॥ वर्षाऋतुमें मेघोंकी बुन्दधार

क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ॥ धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥ १२॥ जलस्थलौकसः सर्वे नववा रिनिषेवया ॥ अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३ सरिद्भिः संगतः सिंधुश्चक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ॥ अपक्वयोगिन श्चित्तं कामार्क्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ॥ अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचे तसः ॥ १५ ॥ मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ॥ नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ १६ ॥

पडनेसे पर्वत किञ्चिन्मात्र भी दुःख नहीं मानते बरन् धुल धुल कर उनकी शिलायें स्वच्छ और उज्ज्वल होजाती हैं, जैसे जिन मनुष्योंके मन भगवान्में लग रहे हैं उनके ऊपर कैसाही कष्ट पडे अर्थात् पुत्र मरजाय, धन लुटजाय, तनु दुर्बल होजाय, परन्तु वह कष्टको कुछ नहीं मानते, बरन् यह कहते हैं कि, विपक्षियोंसे पीछा छुटा, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, मनुष्यको चाहिये कि, विपत्तिमें व्याकुल न होय ॥ १५ ॥ वर्षाऋतुमें तृण और घासके बढ जानेसे मार्ग ढकगये और संदिग्ध (सन्देह युक्त) होगये यह न जान पडता था कि, किस ग्रामका कौनसा मार्ग है, जैसे, ब्राह्मण एकबार वेद पढ़के पुस्तक बांधकर रखदेते हैं और उसका अभ्यास छोड देते हैं, फिर बहुत दिन उपरान्त पुस्तकको खोलकर देखते हैं तो उनको अनेक प्रकारके सन्देह उत्पन्न होते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्तहै कि, ब्राह्मणोंको ऐसा नहीं चाहिये जो पढ़नेका अभ्यास छोडदें, नहीं

प्रातःकाल उठकर अपना नित्यकर्म करें ॥ १६ ॥ लोगोंके परमहितकारी मेघ हैं उनमें चलायमान चपला क्षणमात्रको स्थिर नहीं रहती, कभी किसी बादलमें जा चमकै है, कभी किसी बादलमें जा चमकै है जैसे ज्ञानी पुरुषोंमें व्यभिचारिणी स्त्री स्थिर होकर नहीं बैठती, कभी किसीके घर कभी किसीके घर एक पुरुषके घर नहीं ठहरती, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, कभी भूलकर भी व्यभिचारिणी स्त्रीका विश्वास न करै * ॥ १७ ॥ वर्षाऋतुमें गर्जन शब्दके गडगडाहटवाले बादल आकाशमें प्रत्यञ्चा (रोदा) विना इन्द्रका धनुष शोभायमान दिखाई देता है, जैसे गुणोंके गम्भीर शब्दवाले प्रपञ्चमें आत्मा निर्गुण है, तोभी अत्यन्त शोभायमान जानपडे है, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, पुरुषको चाहिये कि,

लोकबंधुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ॥ स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्वियति माहेंद्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ॥ व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥ न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ॥ अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनंदञ्शिखंडिनः ॥ गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनाऽऽगमे ॥ २० ॥

ऐसे सुन्दर निर्गुण पुरुषका ध्यानकरै ॥ १८ ॥ वर्षाऋतुमें अपनी चांदनीसे प्रकाशमान जो मेघ हैं, उनसे आवृत होकर चन्द्रमा शोभायमान नहीं दीखाता, मलीनसा दिखाई देता है, जैसे आत्मासे प्रकाशमान अभिमानसे आच्छादित पुरुष अपने मनमें कहता है कि, मैंहीं ज्ञानी हूं, मैंहीं दानी हूं, मैंहीं शूरवीर हूं, मैंहीं रणधीर हूं मैंहीं पण्डित हूं मैंही सर्वज्ञ हूं, वही उसमें मलिनता है, यह त्याज्य दृष्टान्त है, पुरुषको चाहिये कि, अहंकार न करै ॥ १९ ॥ वर्षाऋतुमें ग्रीष्मके तपेहुये जो मोर मेघोंका शुभागमन देख, उनकी प्रशंसामें मनोहर शब्द करतेहैं. जैसे घरमें संतप्त हुये वैराग्यवान् पुरुष महात्मा पुरुषोंके आनेसे हर्षित हो मनोहर वाणीसे उनका आदर सत्कार करतेहैं. यह नहीं कि, हमही भूखे मरेहैं, इनके

---

* शंका–ससारमें जो गुणी जन हैं, सो सव अपनी स्त्रियोंके सग दु ख सुख गृहस्थीमें भोगते हैं परन्तु ऐसा किसी गुणीको नहीं सुना कि, उसकी स्त्रीने उसको त्याग दिया हो ? फिर शुकदेवजीने क्यों कहा कि, गुणी प्राणीमें स्त्री वहुत समयतक नहीं ठहरती, जैसे आकाशमें विजुली अधिक कालतक नहीं ठहरती यह शका है ?

उत्तर–"स्थैर्य न चक्रु कामिन्य " इस श्लोकमें शास्त्रके जाननेवाले मुनियोंने कामिनीका स्त्री अर्थ नहीं किया, ससारके सुखकी तृष्णा है कि जो अधिक प्रीति है सोई कामिनी है सो तृष्णाकी वहुत प्रीतिरूप कामिनी गुणी पुरुषोंमें वहुत कालतक नहीं ठहरती, वहुत कालतक मूर्खोंमें ठहरतीहै ऐसा अर्थ श्रीशुकदेवजीने कियाहै ॥

लिये कहाँसे लावैं॥ २० ॥ वर्षाऋतुमें गरमीसे तपेहुये देवतालोग वृक्षरूप धारण किये अपनी मूलसे जल पीपीकर प्रफुल्लित हो, हरे हरे लाल लाल नवीन पल्लवोंसे समृद्धिमान् होरहे हैं जैसे तपस्या करनेसे मनुष्योंका देह प्रथम तो दुर्बल होजाता है फिर सुन्दर सुन्दर सुख भोग करनेसे और पुष्टकारक भोजन मिलनेसे उनका शरीर लाल होजाता है, यह त्याज्य दृष्टान्त है. मनुष्योंको चाहिये कि, खाने पीनेके लिये तप न करैं ॥ २१ ॥ वर्षाऋतुमें काँटे और कीचमें संयुक्त किनारेवाले सरोवरोंमें चकवी चकवे और सारस वासकरते थे, जैसे अनेक प्रकारके कर्म करनेकी पीड़ासे घरोंमें विषयी पुरुष वास करते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्त है, मनुष्यको ऐसा नहीं चाहिये कि, जो सदा घरहीमें शिर दिये पड़ारहै, नहीं कुछ कुछ भगवान् वासुदेवका भी भजन करै, जिसमें लोक और परलोक दोनों सुधरें ॥ २२ ॥ वर्षाऋतुमें जैसे इन्द्रके जल बरसानेसे नदियोंके जलका प्रवाह पुलोंको तोड़ता फोड़ता चलाजाता है और खेतोंकी मर्य्यादा भी टूटगई, जैसे पाखण्डियोंके शब्द सुनके कलियुगमें वेदमार्ग टूट

पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ॥ प्राक्क्षामास्तपसा श्रांता यथा कामानुसेवया ॥ २१ ॥ सरस्वशांतरोधस्सु न्यूषुरंगापि सारसाः ॥ गृहेष्वशांतकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यंत सेतवो वर्षतीश्वरे ॥ पाखंडिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥ व्यमुचन्वायुनिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ॥ यथाऽऽशिषो विश्पतयः कालेकाले द्विजेरिताः ॥२४॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ॥ गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥

जातेहैं और धर्म कर्म दूर हो जाते हैं यह त्याज्य दृष्टान्त है मनुष्य पाखण्डियोंके शब्द सुनकर वेदमार्गको न त्यागदे ॥ २३ ॥ वर्षाऋतुमें मेघगण पवनकी प्रेरणासे प्राणियोंपर अमृतकी तुल्य जल वर्ष रहे थे, जैसे समय समयपर राजा पुरोहितकी प्रेरणासे दान पुण्य करते रहते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, पुरोहित गुरुजनोंको ऐसाही चाहिये कि, जो प्रेरणाकरके यजमान और शिष्योंसे दान करावे और दीनपुरुषोंको दिलावें ॥ २४ ॥ इस प्रकार जहाँ चारोंओर आम, जामुन, खजूर जिस वृन्दावनमें पकरहे थे और उनकी शाखायें पृथ्वीकी ओर ऐसी झुकरही थीं जैसे परोपकारी पुरुष धन पाकर नीचेको झुकते हैं और फूल जो टपक टपक कर सुधासम वसुधापर गिरते थे, ऐसा जान पडता था मानो दानी द्रव्यका दान कर रहे हैं और खजूरके वृक्ष ऊँचे ऊँचे ऐसे विदित होते थे जैसे रणभूमिमें शूर खड़े हैं, ऐसे शोभायमान वनकी शोभा देखकर श्रीकृष्ण बलरामसमेत

ग्वाल बालोंको संग ले उस वनमें गायें चरानेके लिये गये ॥ २५॥ बड़े बड़े अयनोंके भारी भारी भारसे हौले हौले चलनेवाली गायें जब श्रीकृष्ण चन्द्रने नाम लेलेकर प्रीतिसे बुलाईं, तब स्तनोंसे जिसके दूध टपकरहा वह सब गायें दौड़ दौड़कर वृन्दावनविहारीके सन्मुख आनकर खड़ी होगईं ॥ २६ ॥ वनवासियोंको श्रीकृष्णने देखा, मधु और मकरन्द टपकनेवाली वृक्षोंकी लताओंसे रस टपकता था, गोवर्द्धन पर्वतसे जलकी धारायें बहतीं थीं, कहीं कहीं झरनोंसे पानी जो गिरता था उस पानीके शब्दसे ऐसा ज्ञात होता था मानों वृक्ष परस्पर बातें कररहेहैं, निकटही गुफायें थीं उनको देख देख ग्वालबाल और नंदलाल प्रसन्न होते थे ॥ २७ ॥ कहीं कहीं ऐसी वृक्षोंकी खखोडल और पर्वतकी कन्दरा थीं कि, जिनमें पानीकी बूँदभी नहीं जाती थी, जब भारी वर्षा होती थी तो उनहीमें घुसकर बैठ जाते थे और वनके फल फूल खा खाकर प्रसन्न होतेथे ॥ २८॥ इतनेमें यशोदाने

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ॥ ययुर्भगवताऽहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः॥२६॥वनौकसः प्रमुदिता वनराजी र्मधुच्युतः ॥ जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७॥ क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ॥ निर्विश्य भगवान्रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥ २८ ॥ दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलांतिके ॥ संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः ॥२९॥ शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ॥ तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥

दुपहरका समय देख अपने मनमें समझा कि, मोहन प्यारेको भूख लगी होगी, यह विचार कई एक ग्वालिनियोंके हाथ दही, भात, माखन, मिश्री और अनेक प्रकारके व्यञ्जन थालोमें धर धरकर श्रीकृष्ण बलरामके पास भेज दिये, सो श्रीकृष्ण सखाओ समेत यमुनाके निकट ऐसे रमणीक घाट पर गये जहाँ शिलाके ऊपरही भात धरकर भोजन करनेयोग्य गोपोंको और बलदेवजीको संग लेकर भोजन करनेलगे और उसके स्वादकी सराहना कर करके कभी सखाओंको देते थे और कभी उनके हाथमेंसे लेलेते थे ॥ २९ ॥ उस समय बैल बछरे पेट भरजानेसे हरी हरी घासपर बैठे आँखैं मीचे जुगाल कर रहे थे और गायें भी दूधके भारसे थक कर बैठी जुगाल कर रही थीं. राम कृष्ण उन गायोंको देख देखकर प्रसन्न होते थे और भोजन करते जाते थे और बारंबार परस्पर कहते थे कि, पावसकी समान संसारमें सुख देनेवाली और दूसरी ऋतु नहीं है ॥ ३० ॥

सब प्राणियोंकी आनन्दकारी और प्रेम प्रीतिकी बढ़ानेहारी पावसमें वृन्दावनकी शोभा और अपनी शक्तिसे युक्त वर्षा ऋतुको देखकर वृन्दावनविहा
वृन्दावनकी प्रशंसा करने लगे कि, देखो! वृन्दावनमें वर्षाऋतु कैसी अनुपम शोभा दे रही है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार व्रजमें श्यामसुन्दर और बलरामके
वास करते करते बादलोंसे रहित निर्मल जल बहानेवाली और मन्द मन्द त्रिविध पवन चलानेंवाली परम सुखदाई शरद्दतु आई ॥ ३२ ॥ शरद्दतुमें
कमल उत्पन्न होनेसे जल निर्मल और शीतल होगया, जैसे योगीजनोंके चित्त भ्रष्ट होकर फिर योगका अभ्यास करनेसे शुद्ध होजाते हैं यह ग्राह्य
दृष्टान्त कि, योगियोंको यही चाहिये कि, चित्तको शुद्ध करके योगाभ्यास करें ३३ ॥ वर्षाऋतुमें आकाशमें मेघ रात दिन गर्जते रहते हैं,
शरद्दतुमें सब उनका गर्जना बंद हो गया, वर्षाऋतुमें बहुतसे मनुष्य मिलकर एक स्थानमें रहते हैं, शरद्दतुमें सब अलग अलग होगये, वर्षाऋतुमें
ठौर ठौर कीच होती है, शरद्दतुमें सब भूमि सुहावनी होगई, वर्षाऋतुमें जल गदला और मैला होजाता है. शरद्दतुमें जल स्वच्छ और शीतल होगया

प्रावृट्छ्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदा वहाम् ॥ भगवान्पूजयांचक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवं निवसतो स्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत्समभवव्द्यभ्रा स्वच्छाम्ब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥ शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ॥ भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥ व्योम्नोऽब्दं भूतशावल्यं भुवः पंकमपां मलम् ॥ शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥

जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमोंके भगवान्की भक्ति होनेसे सब क्लेश दूर होजाते हैं. ब्रह्मचारियोंके लिये शिष्य
तबहीं तक जल भरा करते हैं, जबलों भक्ति प्राप्त नहीं होती भक्ति होनेके पीछे जल भरनेका परिश्रम नहीं रहता. जब शिष्यको भक्ति प्राप्त हो
जाती है, तब उससे गुरुभी सेवा नहीं कराते. इसप्रकार बादलका गर्जना शरद्दतुमें बन्द होगया. गृहस्थके हृदयमें जबतक भक्ति उदय नहीं होती
तबलों अपनी सन्तानादिकमें मोह ममता रखता है. भक्ति होनेके पीछे एकान्त वास करनेकी इच्छा करता है और सबका संग छोड़ देता है.
ऐसेही प्राणियोंका एक स्थानपर वास है, सो छूट गया. वानप्रस्थको जबतक भक्ति प्रकट नहीं होती तबलों उसका मन मलिन रहता है. भक्ति
होनेके पीछे जै उसकी मलिनता दूर होजाती है ऐसे पृथ्वीकी कीच सूख गई और सुहावनी होगई. संन्यासीका कामवासनारूप मल श्रीकृष्ण

वासुदेवमें भक्ति होनेसे दूर होजाता है, ऐसेही शरदमें जलका मल दूर हो गया ॥ ३४ ॥ शरदृतुमें मेघ अपना सर्वस्व त्याग श्वेत श्वेत रुईकेसे पहल दिखाई देते हैं. जैसे धन, दारा, पुत्र और विषय वासनाके दूर होनेसे शान्त स्वभाव मुनीश्वरलोग शोभायमान जान पडते हैं. यह ग्राह्य दृष्टांत है, मुनिलोगोंको यही चाहिये कि; सब वासनाओंको दूर करैं ॥ ३५ ॥ पर्वत अपना कल्याणरूप निर्मलजल कहीं कहीं को तो झरनोंसे बहाते हैं और कहीं कहींको नहीं भी बहाते, जैसे ज्ञानीपुरुष समय समय पर अपना ज्ञानरूप अमृत सुपात्रको देखकर देते हैं और कुपात्रको नहीं देते. यह ग्राह्य दृष्टांत है कि, विवेकी पुरुषको यही चाहिये कि, सुपात्र कुपात्रको देखकर उपदेशकरें ॥ ३६ ॥ शरदृतुमें सरोवरोंमें थोड़े जलके रहनेवाले जीव जन्तु नित्य नित्य घटते जलको नहीं जान सके, जैसे अज्ञानी कुटुम्बी पुरुष घरोंमें रहकर अपनी नित्य

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः सुभ्रवर्चसः ॥ यथा त्यक्तैषणाः शांता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥ गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ॥ यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥ नैवाविदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः॥ यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविंदञ्शरदर्कजम् ॥ यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेंद्रियः ॥ ३८ ॥ शनैश्शनैर्जहुः पंकं स्थलान्यामं च वीरुधः ॥ यथाहंममतां धीराः ॥ शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलांबुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ॥ आत्मन्युपरते सम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥

क्षीण होतीहुई आयुर्बलको नही जानते. यह त्याज्य दृष्टान्त है कि, कुटुम्बीलोगोंको चाहिये कि, अचेत न हो कुछ परमेश्वरकी ओरका भी चिन्तवन करैं ॥ ३७ ॥ शरदृतुमें थोड़े जलके रहनेवाले जलचर सूर्यके तेजसे जल गरम होनेसे दुःखी होगये, जैसे कुटुम्बी पुरुष इन्द्रियोंको वशमें न करनेसे दरिद्रता और कृपणतामें रहकर कष्ट भोगते हैं. यह त्याज्य दृष्टांत है जो घरमें क्लेश होय तो उस घरको त्याग दे ॥ ३८ ॥ शरदृतुमें सहज सहजमें सब स्थानोंकी कीच सूख गई, लताओंका सब कच्चापन जाता रहा, जैसे मिथ्या देह गेहमें सज्जनपुरुष सहज सहजमें मायाकृत अहंता ममताको त्याग देते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, ज्ञानी पुरुषको यही चाहिये कि अभिमानका त्याग कर दें ॥ ३९ ॥ शरदृतुके आनेसे समुद्रका जल निर्मल होगया, जैसे आत्मज्ञान होनेसे महात्मा मुनियोंका पढना लिखना सब छूट जाताहै. यह ग्राह्य

दृष्टान्त है, आत्माके जाननेके पीछे लिखने पढनेका क्या प्रयोजन ? ॥ ४० ॥ शरदृतुमें खेतवाले किसान लोंगोंने जहाँ तहाँ भारी भारी मेंडे बाँध बाँधकर पानी रोंक लिया है जैसे योगिराज इंद्रियरूप द्वारसे जातेहुये ज्ञानको रोकलेतेहैं, इंद्रियोंको रोककर फिर मनको रोकते हैं. यह ग्राह्य दृष्टान्त है, योगियोंको यही चाहिये कि, ज्ञानको हृदयसे निकलने नही दें इन्द्रियोंको रोककर रक्खें ॥ ४१ ॥ शरदृतुमें सूर्यकी किरणोंके तापको रात्रिके समय चन्द्रमाने उदय होकर दूर कर दिया, जैसे ज्ञान होनेके पीछे देहके अभिमानरूप तापको शान्तरूप चन्द्रमा उदय होकर हरलेता है, ऐसेही व्रजवासियोंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र मुकुन्दने दूर कर दिया ॥ ४२ ॥ शरदृतुमें मेघ दूर होगये आकाश निर्मल होगया, तारागणोंके प्रकाशसे आकाश शोभा पाने लगा, जैसे वेदके अर्थको दिखानेवाले सत्त्वगुणी चित्त शोभायमान जान

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्कर्षका दृढसेतुभिः ॥ यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापा
न्भूतानामुडुपोऽहरत् ॥ देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ॥
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥ अखंडमंडलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ॥ यथा यदुपतिः कृष्णो
वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ॥ जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः
॥ ४५ ॥ गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् ॥ अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥

पडते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है वही चित्त सुन्दर और शोभायमान है जिसमें वेदके अर्थका ज्ञान है ॥ ४३ ॥ शरदृतुमें समस्त मण्डलसे चन्द्रमा आकाशमें तारागणसहित शोभा देताहै, जैसे पृथ्वीमें यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र यादवोंसमेत शोभायमान जान पडेहै यह ग्राह्य दृष्टान्त है. मनुष्यको चाहिये कि, जैसे चन्द्रमा आकाशमण्डलको प्रकाशित करताहै ऐसेही शान्तरूप चन्द्रमासे हृदयको प्रकाशित करै॥ ४४ ॥ शरदृतुमें पुष्पवाटिकाओंके पुष्पोंका स्पर्श करके जो पवन चलता हैं उसके स्पर्श करनेसे सब प्राणियोंके तनुका ताप दूर होजाता है, जैसे गोपिकाओंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके स्पर्शसे दूर होजाताहै, यह ग्राह्य दृष्टान्त है. मनुष्यको यही चाहिये कि; भगवान्का स्पर्श करके सांसारिक तापोंको त्याग दें ॥ ४५ ॥ शरदृतुमें गायें, हरिणी पक्षिणी और स्त्रियें पुष्पवती हुई, उनके पति उनके पीछे पीछे कामातुरहो

फिर रहे थे जैसे ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये पुरुष योग, यज्ञ, जप, तप करतेहैं, उनके पीछे फल आपसे आप लगे फिरते हैं ॥ ४६ ॥ शरदृतुमें कुमुदिनीके सिवाय और सब प्रकारके कमल सरोवरोमें फूलते हैं जैसे चोरोंके सिवाय सब प्रजागण राजाके उदय होनेसे प्रफुल्लित रहते हैं यह ग्राह्य दृष्टान्त है. ऐसा कौनसा मनुष्य है जो अपने स्वामीको देखकर प्रसन्न न हो ॥ ४७ ॥ शरदृतुमें ग्राम और नगरोंमें नवी न अन्नके भोजनका वैदिक उत्सवसे और इंद्रियोंके पुष्टिका कारक विवाहादिक लौकिक उत्सवसे और अन्न पकनेसे और श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके क्रीड़ा करनेसे पृथ्वी अत्यन्त शोभायमान दृष्टि आती थी ॥ ४८ ॥ वर्षाऋतुके थँभनेसे वणिक्, मुनीश्वर, राजा, ब्रह्मचारी यह शरदृतुमें अपने अपने कार्यमें लगगये. बनिये अपने अपने व्यवहारके लिये देश देशांतरोंको जाने लगे. साधु संन्यासी तीर्थयात्राओंके जानेका प्रबन्ध करने लगे. राजा लोग

उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ॥ राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामे त्वाग्रयणैरैंद्रियैश्च महोत्सवैः ॥ बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ॥ वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिंडान्काल आगते ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० म० दश० पू० प्रावृट्शरद्वर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ॥ न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरस्सरिन्महीध्रम् ॥ मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

अपनी चतुरंगिनी सेना ले शत्रुओंके विजय करनेको चलदिये. ब्रह्मचारी विद्या पढ़नेके लिये पाठशालाओंको चलने लगे. जैसे मंत्र और योगादिसे सिद्ध महात्मा, आयुके बन्धनसे रुकरहे हों; वह समय आनेपर दिव्यदेह पाते हैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां प्रावृट्शरदृतुवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा–इक्किसमें वृन्दाविपिन, गये श्याम सुखधाम। वेणु गीत गोपीनको, वर्णत शालिग्राम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज! शरदृतुमें निर्मल कमलोंकी सुगन्धयुक्त पवनवाले वृन्दावनमें गाय बछड़े और ग्वालबालोंको संग ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनमें गये॥ १॥ फूलीहुई वनकी पंक्तियोंके सौरभसे मतवाले भौंरे और पक्षियोंके समूहके शब्दसे, सरोवर नदी

पर्वत, गूँजरहे थे, ऐसे सुन्दर मनोहर वृन्दावनमें बलराम और ग्वालबालोंसहित जाकर मुरली बजाने लगे और गायें बछरे चरनेको छोड़ दिये प्रमदात्मक कामका प्रकाश करनेवाला वंशीका शब्द सुनके कई एक व्रजवाला श्रीकृष्णके पीछे अपनी सखियोंके सामने उनकी प्रशंसा करने लगीं ॥ २ ॥ ३ ॥ हे महाराज ! जिस समय कुछ कहनेका प्रारम्भ किया, उसीसमय मन मोहिनी मनमोहनकी छविका स्मरण होगया, उस छविका स्मरण होतेही कामदेवने उनके मन व्याकुल करदिये, इसलिये उनसे श्यामसुन्दरकी कान्तिका कुछ वर्णन नहीं होसका ॥ ४ ॥ मोरपुच्छोंका मुकुट शीशपर धरके काछनी काछके कानोंमें कनेरके पुष्प धारण करके, सुवर्णकी सदृश पीतपट ओढ़कर कण्ठमें वैयजन्ती और वनमाल धारणकर नटवररूप बनाकर बाँसुरीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे पूर्ण करते गोपोंके समूह जिनकी कीर्ति वर्णन करें, वह श्रीवृन्दावनविहारी अपने

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ॥ काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥ तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरंत्यः कृष्णचेष्टितम् ॥ नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयंतीं च मालाम् ॥ रंध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दैर्वृंदारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥ इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम् ॥ श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयंतोऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥

चरणारविन्दोंके चिह्नसे रमणीक वृन्दावनमें गये, नटवर वेष बनानेका आशय यह है कि, तुमको नृत्य दिखानेके लिये मैंने यह वेप बनायाहै और कनेरपुष्प कानमें धरनेका कारण यह है कि, जब गोपियोंकी बात कानमें सुनाई न आवे तो कानोंमें अत्यन्त सन्ताप होगा तब कानोंको शीतल करनेके लिये पुष्प धारण किये हैं और पीताम्बर धारण करनेका कारण यह है कि, राधा प्यारीका शरीर ऐसाही पीतवर्ण है इसको देखकर प्रीतमप्यारीके शरीकी सुधि आती रहेगी दूसरे प्यारीकेसा पीतरंग मेरे हृदयसे लगा रहेगा और वैजयन्ती और वनमाल हृदयपर पडी रहनेका अभिप्राय यह है कि प्यारीके वियोगकी जो विरहानल है उसे शान्त करती रहें गोपियोंके चरणचिह्नयुक्त मनोहर वृन्दावन जानकर वृन्दावनमें प्रवेश किया ऐसा सुन्दर मनमोहनका मनमोहन रूप देख धैर्य धर जैसे तैसे कर एकसे एक कहने लगीं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार सब जीवोंके

मनकी मोहनेवाली मनमोहनकी बॉसुरीकी टेर सुनकर व्रजबाला परस्पर उसकी प्रशंसा करने लगीं, प्रशंसा करती ही करती परमानन्द रूपके
सागरमें मग्न हो मुरलीमनोहरका मनसे अलिंगन करती थीं ॥६॥ गोपी कहने लगीं हे सखियो ! उनहीं नेत्रवान् पुरुषोंके नेत्र संसारमें धन्य हैं और
हम दूसरेको धन्यवाद नहीं देसक्तीं, जिन्होंने सखाओंसमेत गायोंको चराते मुरलीबजाते, प्रेम भरे कटाक्ष चलाते श्रीकृष्ण बलदेवका मुखारविन्द
देखाहै वही धन्य हैं ॥७॥ दूसरी सखी बोली कि, आमकी पल्लव मोरपुच्छ फूलोंके गुच्छे उत्पल कमलोंकी मालाओंसे देदीप्यमान नीलाम्बर पीता
म्बरोंसे चित्र विचित्र वेप धारण किये, श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई ग्वाल मण्डलीमें गाते हुए ऐसे शोभायमान जान पडते थे जैसे रंगभूमिमें दो नट
नाटक कर रहे हैं ॥८॥ तीसरी गोपी बोली कि, हे सखियो ! इस बाँसुरीने ऐसा कौनसा तप किया है कि, जिसके पुण्यके प्रभावसे हमारे पीने योग्य

गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ॥ वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालाऽनुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ॥ मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रंगे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ॥ भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥ ९ ॥ वृंदावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदांबुजलब्धलक्ष्मि ॥ गोविंदवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥

अधरामृतके रसको यह आपही अपनी इच्छापूर्वक पीरही है जिन सरोवरोंके जलसे इस बॉसुरीके बॉसोंको सींचा है उन सरोवरोंमें कमल नहीं फूलते
मानो आनन्दसे रोमांच होआये हैं और जिन वृक्षोंके वंशमें इस बॉसुरीके बॉस उत्पन्न हुए हैं उन वृक्षोंमें मद नहीं टपकता मानो आनन्दके आंसू
बहाते हैं क्यों ? वह अपने आपको धन्यवाद देते हैं कि, धन्य हमारे भाग्य जो हमारे वंशके बाँसोंमें ऐसी बॉसुरी उत्पन्न हुई कि, जो आठों पहर
श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके मुखारविन्दसे लगी रहती है, जैसे श्रेष्ठ मनुष्य अपने कुलमें सुपुत्रको भगवान्का भक्त देखकर आनन्दमान नेत्रोंसे
ऑसू बहाते हैं ॥९॥ चौथी सखी बोली कि, हे आली ! यह वृन्दावन सुरपुरसे भी अधिक पृथ्वीका यश विस्तार कर रहा है, धन्य है यह पृथ्वी जिस

पर ऐसा परमानन्ददायक वृन्दावन परमधाम है, जिसमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविन्द धरनेसे जिसको और भी अधिक शोभा प्राप्त हुई और इस वृन्दावनमें जिस समय मुरलीमनोहरकी मुरलीका शब्द होता है, उसको मन्द गर्जनेवाली श्याम घटा जानके मोर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं, उनका अनुपम नाच देखकर सब जीव जन्तु निश्चल होकर बैठ जाते हैं, ऐसा परमानन्द किसी और दूसरे लोकमें भी सुना है ? कहीं नहीं यह पूर्णानन्द वृन्दावनमें ही है ॥ १० ॥ पांचवीं सखी बोली कि, हे सजनी ! यह पशु जाति मूर्ख हरिणी भी धन्य हैं कि, जो मुरलीका शब्द सुन अपने पतिको संग लिये विचित्र वेप किये, वृन्दावनविहारीका स्नेहकी चितवनसे सन्मान करै हैं और हमारे पति तो ऐसे निर्दयी हो गये कि, हमको उनका दर्शन भी नहीं करने देते ॥ ११ ॥ छठी सखी बोली कि, हे प्यारी ! यह तो अद्भुत बात सुनो ! स्त्रियोंको आनन्दका

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नंदनंदनमुपात्तविचित्रवेषम् ॥ आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपवेषं श्रुत्वा च तत्कणितवेणुविचित्रगीतम् ॥ देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्त भितकर्णपुटैः पिबंत्यः ॥ शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशंत्यः ॥ १३ ॥ प्रायो बतांब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ॥ आरुह्य ये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवाला ञ्शृण्वंत्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥

देनेवाला श्यामसुन्दरका मनोहर रूप देखकर और उनकी बजाई बाँसुरीकी मनोहर ध्वनि सुनकर विमानोंमें बैठ गमन करती हुई देवताओंकी स्त्रियें यद्यपि अपने पतियोंकी गोदीमें बैठी हैं, तो भी कामदेवके बाणोंके लगनेसे ऐसी व्याकुल होगईं कि, उनके शिरके बालोंमेंसे पुष्प गिरे जाते हैं, और नीवी खुली जाती हैं, जब देवांगनाही मनमोहनके स्वरूपको देखकर मोहित होगईं तो फिर हम मोहित होगईं तो क्या आश्चर्यकी बात है ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णप्यारेके मुखसे निकलते हुए बाँसुरीके गीतरूप अमृतको गायें बछड़े कानरूप पात्रोंसे ऊपरको उठा उठाकर पीते हैं और श्रीकृष्णचन्द्रको दृष्टिसे आलिंगन करते, प्रेमके आँसू बहाते चित्रकी समान लिखेसे खडे हैं बछड़ोंके मुखमें दूधके थन और गायोंके मुखमें घास के तृण मुखके मुखमेंही रह जाते हैं ॥ १३ ॥ हे माता ! इस वनमें जो पक्षी हैं सो सब मुनीश्वर हैं, जो मनोहर पत्रवाले वृक्षकी शाखाओंपर बैठकर

नेत्रोंको मूँद, मौन साध, श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेका दर्शन करें हैं और बॉसुरीके मनोहर गीतोंको सुनें हैं, क्योंकि मुनिलोग भी भगवान्के दर्शनके लिये काम कर्मको त्याग वेदकी शाखाओंके आश्रित हो, उनके विशालरूप कर्मोंका गुण ग्रहण कर सुखीहो मौन साध भगवान्के गुणानुवाद सुना करते हैं, इससे उसकी समतावाले यह पक्षी भी मुनिजनहीं जान पडते हैं ॥ १४ ॥ चैतन्य जीवोंकी दशा जो कुछ थी सो तो थी ही, परन्तु मुकुन्द भगवान्की बॉसुरीकीटेर सुनकर नदियोंमेंभी भ्रमर पड़ते हैं. उनसे यह सूचित होता है कि, यह भ्रमर नहीं पडते, हमारे हृदयमें

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ॥ आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णंति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून्सह रामगोपैः संचारयंतमनुवेणुमुदीरयंतम् ॥ प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्स्ववपुषांबुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥

कामदेवके गढे पडते हैं, मानो जल स्तम्भित हो आलिंगन करके आच्छादनकरता है. ऐसेही लहर रूप हाथोंसे कमलके पुष्प भेटें लेलेके मुरारी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दको समर्पण करें हैं ❀ ॥ १५ ॥ बलदेवजीको और ग्वालबालोंको संग लेकर धूपमें व्रजकी गायोंको चराते,मुरली बजाते अपने प्यारे मित्र घनश्यामको देख श्यामघन उनपर छत्र छाया कर नन्ही नन्ही बूँदोंकी वर्षा करने लगे, क्योंकि सच्चा मित्र

* दृष्टात–चार भंगेडी नशेमें चूर होकर आपसमे कहने कि, राजाके आदमी कितेने होंगे ? एक रणधीर सिंह बोला फलाने परगनेमें राजाके आदमी एक लाख हैं, दूसरा व्रजपालसिंह बोला फलाने परगनेमें पन्द्रह लाख आदमी हैं, तीसरा सरदारसिंह बोला कि, फलाने परगनेमें राजाके पच्चीस लाख आदमी हैं चौथा बलवन्तसिंह बोला फलाने परगनेमें पचास लाख आदमी हैंऔर नौलाख यहांहैं,सब एक करोड १०००००० हुये अब इसका खर्च विचारो कि, सालभरमें कुछ खजानेमें बचता वा नहीं एक बोला पचास लाख तो फौजका खर्च है, दूसरा बोला पचीसलाख महलमें उठें हैं तीसरा बोला दश लाख इमारतमें उठे है, चौथा बोला पन्द्रहलाख वस्त्र आभूषणमें उठें हैं, इस हिसावसे खजानेमें कुछ नहीं पडता ? यह बात राजाके दूत सुन रहेथे, राजकाजकी बाते सुन राजाको परचा लिख दिया, राजाने मन्त्रीको बुलाकर खर्चका हिसाव बूझा तो सब उन्हींके कहनेके अनुसार ठीक निकला राजाने उन चारों भगेडियोंको बुलाकर बूझा कि, हमारे घरकी बात तुमने कैसे जानी ? हमको ऐसा मालूम पडता है कि तुम हमारे खजांचीसे मिले हुए हो ! भगेडी बोले कि न हम चोर और न हम आपके भडारीसे मिले हुए हम तो भगके नशेमें अपनी बातें कर रहेथे सो आपही विधि मिलगई होगी देखो चार कौडीकी भगके नशेमें राजाके घरका बन्दोबस्त बाँध दिया । और गोपी तो अमोल श्रीकृष्णका प्रेमामृत पी रही थी जो कृष्णरूपका प्रबंध बाँध दिया तो क्या बडी बात है ।

श्यामसुंदरका मेघही है, देखो कृष्णकाभी श्याम रंगऔर मेघोंका भी श्याम रंग, कृष्णके भी पीत वस्त्र और मेघोंके पीत विजली, कृष्णके सुक्तामाल और मेघोंके बगपाँति, कृष्णकी मुरली-गजैं और मेघ आपही गजैं, कृष्ण अमृतकी वर्षा करैं और मेघ जलकी वर्षा करैं, कृष्ण वनमें घूमै और मेघ आकाशमें घूमैं कृष्णपर भौंहोंके धनुष हैं मेघोंपर इन्द्रका धनुष है, कृष्णके मेघके सब लक्षण एकसे मिलते हैं॥ १६ ॥ और सखी बोली आली ! हमसे तो यह वनकी भीलनी भी धन्य हैं, क्योंकि प्रियाके स्तनोंमें जो कि, चर्चित केशर, कस्तूरी जब रतिके समय कृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगी और वह चरण अरुणाई लिये जब वनमें विहार करते समय घासमें लगे हैं, उनको देख कामातुर भीलनी उस केशर और कस्तूरीको घासपरसे लेलेकर अपने मुख और स्तनोंपर लगा लगाकर कामाग्निकी तापको शान्त करती हैं, हे सखी ! हमारे भाग्यमें तो

पूर्णाः पुलिंद्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन दयितास्तनमंडितेन ॥ तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आनन कुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥ हंतायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ॥ मानं तनोति सहगो गणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकन्दरकंदमूलैः ॥ १८ ॥ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥ अस्पंदनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

इतनाभी नहीं जो किसी प्रकार अपनी कामाग्निको शान्त करलें ॥ १७ ॥ एक गोपी और बोली कि, हे अबलाओ ! हे सहेलियो ! यह गोवर्द्धन पर्वत भगवान्के भक्तोंमें कोई परमभक्त जान पडताहै ? क्योंकि इसके ऊपर बलराम और घनश्यामके चरणारविन्द लगनेसे तृणादिक जो उप जते हैं वह तृणादिक नहीं होते, मेरी समझमें ऐसा आता है कि, उसके रोम खडे हो रहे हैं और अपने आनंदमें मग्न है, कृष्ण बलरामको अपने ऊपर आता देख, उनको शीतल जल हरी घास, कंद, मूल, फल भेंट करके उनका आदर सत्कार करता है ॥ १८ ॥ एक और बोली हे सखियो ! ग्वालबालोंको संग लेकर कृष्णचन्द्र बलराम जब वृन्दावनमें गायें चरातेहैं और सब त्रिलोकीके मोहनवालीको मधुर ध्वनिसे बजाते हैं

तब उस मनोहर बाँसुरीका शब्द सुनके सब जंगम स्थावरकी नाईं स्थिर होजाते हैं अर्थात् जहाँके तहाँ खड़ेकेखडे रहजाते हैं और अपने आनन्दमें मग्न हैं और वृक्षोंकी जंगमोंकेसी गति है, अर्थात् उनके रोमांच होजाते हैं. हे सखी ! यह अद्भुत आश्चर्य है न आजतक कहीं आखोंसे देखा और न कानोंसे सुना, परंतु इतने परभी बलराम और नन्दलाल अपना ग्वालपन दर्शा रहे हैं कैसे ? गायदोहनके समय गायोंके बाँधनेकी रस्सी शिरसे बाँध रहे हैं और पांशी कन्धेपर धर रहे हैं उस समयकी कुंजविहारीलालकी शोभा वर्णन करनेकी किसको सामर्थ्य है ॥ १९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! इसप्रकार वृन्दावनमें विहार करनेवाले वृन्दावनविहारीके चरित्रोंको गोपी परस्पर वर्णन करती करती कृष्णमय होगई ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भापाटीकायां वेणुगीतवर्णनं नाम एकविंशो

एवंविधा भगवतो या वृंदावनचारिणः ॥ वर्णयंत्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥ इति श्रीभाग०महा० दशमस्कंधे पू०श्रीकृष्णवेणुगीतवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हेमंते प्रथमे मासि नंद व्रजकुमारिकाः ॥ चेरुर्हविष्यं भुंजानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्यांभसि कालिंद्या जलांते चोदितेऽरुणे ॥ कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥२॥ गंधैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफल तंडुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नंदगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ ४ ॥

ऽध्यायः ॥२१॥ दोहा--बाइसवें अध्यायमें, वरणों चीरचरित्र । गोपिनकों वरदान दै, कीन्हो यज्ञ पवित्र ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजन् ! हेमंतऋतुमें पहिला जो अगहन है उसमें सोलहसहस्र गोपकुमारी कन्याओंने मूंगभातका भोजन करके कात्यायनीदेवीका व्रत करना आरंभ किया ॥ १ ॥ और व्रत करके सूर्योदयके समय यमुनाजलमें स्नानकर तटपर बैठ, बालूकी कल्याणीदेवीकी प्रतिमा बनाकर ॥ २ ॥ चन्दन, सुगंध, फूल, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत और छोटी बड़ी सामग्रियोंसे देवीकी पूजा किया करती थीं ॥३॥ हे कात्यायनी देवी ! हे महामाये ! हे महायोगिनी ! हे अधीश्वरी ! हे देवी ! नन्दरायगोपके सुतको हमारा पति बना, हम बारंबार तुमको नमस्कार करती हैं ॥ ४ ॥

वह सब गोपकुमारिका इस मंत्रका जप करके पूजा किया करतीं इसी प्रकार उनको पूजन करते करते एक महीना व्यतीत होगया श्रीमनमोहनमें उनका मन दिनरात लगा रहता था ॥ ५ ॥ और नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर यही वर माँगती थीं कि, हमको नन्दकुमार श्यामसुन्दर वर मिलैं. इसप्रकार एक एकका नाम ले पुकार पुकारकर परस्पर हाथ पकड़ पकड़कर ॥ ६ ॥ उच्चस्वरसे अपने प्राणप्यारे यशोदानन्दनका नाम लेतीं और गुणानुवाद गातीं यमुनाजीपर स्नान करनेको जाया करतीं ॥ ७ ॥ एक दिन पहिले केसीनाई यमुनाके किनारेपर अपने अपने वस्त्र उतारकर सबने धर दिये और श्रीकृष्णचन्द्रके गुणगान कर करके यमुना जलमें विहार करने लगीं, तब योगेश्वरोके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके

इति मंत्रं जपंत्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥ ५ ॥ भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नंदसुतः पतिः ॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ॥ ६ ॥ कृष्णमुच्चैर्जगुर्यांत्यः कालिंद्यां स्नातुमन्वहम् ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ॥ ७ ॥ वासांसि कृष्णं गायंत्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ८ ॥ वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ॥ ९ ॥ हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ अत्रागत्याबलाः कामं स्वंस्वं वासः प्रगृह्यताम् ॥ १० ॥ सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥ ११ ॥ एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥ तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥ १२ ॥

मनका मनोरथ जानकर ॥ ८ ॥ अपनी मण्डलीके सखाओंको संग लेकर उनकी मनोकामना सिद्ध करानेके लिये यमुनाके किनारेपर पहुँचे और उन कन्याओंके वस्त्र लेकर झटपट कदम्बपर चढ़गये ॥ ९ ॥ और बालकों समेत आप ठट्ठेमारमारकर हँसने लगे और अनेक प्रकारकी मसखरीकी बातें करने लगे कि, हे अबलाओ ! हमारे समीप आओ और अपने वस्त्र लेजाओ ॥ १० ॥ इस समय मैं ठठोलीसे नहीं कहता. सत्य कहताहूं तुम व्रत करनेसे बहुत दुर्बल होगई हो इस बातको मेरे सखा सब प्रकारसे जानते हैं ॥ ११ ॥ मुझे कुछ दुर्भाव और आग्रह नहीं है, तुम

एक एक मेरे सन्मुख आती जाओ और अपने अपने वस्त्र लेतीजाओ, चाहे सब मिलकर एकबार लेजाओ और जबतक तुम ऐसा न करोगी मुझे अपने बाबानन्दकी सौगन्दहै तुम्हारे वस्त्र कभी न दूंगा ॥ १२ ॥ मनमोहनप्यारेकी मीठी मीठी बातें सुनकर परस्पर देख लज्जित हो, गोपियोंने जान लिया कि, ये परिहास करतेहैं यह शोच विचार कण्ठतक शीतल जलमें जाड़ेकी मारी खड़ी काँपतीं रहीं थीं जब बहुत देर होगई तब गोपिका बोलीं ॥ १३ ॥ हे कृष्णचन्द्र ! अन्यायकी वार्ता न करो तुम नंदजीके प्यारे पुत्र हो यह हम जानती हैं हे प्यारे ! शीतसे दुःखित हम सब कांपरही हैं इस

व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योऽन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ एवं ब्रुवति गोविंदे नर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः ॥ आकंठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥ माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नंपगोपसुतं प्रियम् ॥ जानीमोंग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४ ॥ श्यामसुंदर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ॥ अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छंतु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततो जलाशयात्सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ॥ पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥

लिये हमारे वस्त्र देओ ॥ १४ ॥ हे श्यामसुन्दर प्यारे ! हम तुम्हारी दासी हैं, जो तुम कहोगे सोई करैंगी, परन्तु हमारी लाजके ग्राहक मत बनो जब लाजही जाती रही तो फिर शेष क्या रहा ? हम आपके सामने निर्लज्ज होना नहीं चाहतीं, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, हे धर्मज्ञ ! वस्त्र हमारे देदो नहीं तो हम राजा कंससे जाकर कहैंगी ॥ १५ ॥ गोपियोंकी रोष भरी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि, जो तुम मेरी दासी हो और मेरा कहना तुमको अंगीकार है तो हे मन्दमुसकानवालियो ! तुम यहाँ आनकर अपने वस्त्र लेजाओ ॥ १६ ॥ जब कुछ उपाय न चलसका तब हारकर शरदीकी

मारी काँपती हुई संकोच करती सम्पूर्ण गोपिका दोनों हाथोंसे अपने कुच और योनिको ढक जलसे बाहरको आईं, तब श्यामसुंदर बोले कि, दोनों हाथ जोडकर सूर्यनारायणको प्रणाम करो ॥ १७ ॥ उनके शुद्धभावको देख श्रीकृष्णमहाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको शुद्धकन्या कुमारी देखकर उनके वस्त्र कन्धोंपर धरे मन्दमन्द मुसकाय प्रीति पूर्वक बोले ॥ १८ ॥ कि, हे शशिवदनियो ! तुमने जो व्रत करके नंगी हो यमुनाजलमें स्नान किया यह वरुणदेवताका अपराध हुवा, उस पापके दूर करनेके लिये हाथ जोड़ माथेसे लगाय पृथ्वीमें प्रणाम करके अपने अपने वस्त्र पहन लो ॥ १९ ॥ व्रजबालाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी यह बातें सुन वस्त्र त्यागके नग्न स्नान करना व्रतखण्डकरनेवाला मानके उसके

भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ॥ स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥१८॥ यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ॥ बद्धांजलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंहसः कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्वा विवस्त्राऽऽप्लवनं व्रतच्युतिम् ॥ तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरव द्यमृग्यतः ॥ २० ॥ तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥ दृढं प्रलब्धा त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ॥ वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन् प्रिय संगनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः ॥ गृहीतचित्ता नोचेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥

पूर्ण करनेके लिये व्रतके और सब कर्मोंके फलदायक श्रीकृष्णभगवान्‌को नमस्कार किया क्योंकि वह सब पापोंके दूर करनेवाले हैं ॥ २० ॥ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अधीनता करनेवाली गोपियोंको देखकर उनके वस्त्र देदिये ॥ २१ ॥ उनके संग बहुत छल किया, लाज उनकी छुटाई हँसी उनकी करी, खिलौनेंकी नाईं उन्हें खिलाया वस्त्र उनके चुरालिये, तौ भी उन गोपियोंने कृष्णको दोष नहीं दिया, क्योंकि उनको अपना प्राणनाथ समझकर उनके संग परमानंद मान रही थीं, ॥ २२ ॥ अपने अपने वस्त्र पहिर प्यारेके संग ऐसी वशीभूत होगईं और उनके चित्त हरगये, श्रीकृष्णकी ओर खड़ी खड़ी देखतीही देखती ऐसी विह्वल होगईं कि, वहांसे चलने तककी सामर्थ्य न रही ॥ २३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र सर्वान्तर्यामी भगवान् दामोदरने उन अबलाओंके व्रतका संकल्प जानलिया कि, इन गोपिकाओंने मेरे चरणस्पर्शकी चाहनासे यह व्रत कियाहै ॥ २४ ॥ तब श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे सुशीलाओ ! जिसलिये तुमने मेरा व्रत किया है उस मनोरथको लाजकी मारी तुम नहीं कहतीं, परन्तु तौ भी मैंने तुम्हारे मनोरथको जानलिया और मैंने तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन किया, इसलिये तुम्हारा मनोरथ सत्य होगा ॥ २५ ॥ हे मनोरंजिनी ! तुम अपने अपने घर जाओ, मुझ में मन लगानेवालोंकी कामना विषय भोगके लिये नही होती, जैसे भुनाहुआ अन्न दूसरी बार उपजनेके योग्य नहीं रहता ॥ २६ ॥ हे पूर्णव्रत करनेवालियो ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा. हे पतिव्रताओ ! जिस प्रयोजनके लिये तुमने यह व्रत किया और कात्यायनीदेवीकी आराधना की सो मैंने जाना; अब जब शरदृतुकी रात्रि आवैंगी तब तुम सब मेरे संग विहार

तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया ॥ धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥ संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ॥ मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥२५॥ न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ॥ भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ २६॥ याताऽबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः॥ यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥ २७ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ॥ ध्यायंत्यस्तत्पदांभोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥ २८ ॥ अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः ॥ वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ॥ २९ ॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ॥ आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण हे अंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन ॥ विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥

कीजियो, अब तुम इस समय अपने २ घरको जाओ ॥ २७ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, जिन गोपियोंकी मनोकामना पूर्ण होगई वह गोपी भगवान्‌की आज्ञा मान और उनके चरणकमलका ध्यान करती हुई अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने अपने घरोंको चली गई और उसी दिनसे आठोपहर यही मानती थीं कि, वनमालीके संग परमसुख देनेवाली शरदृतु कब आवेगी ॥ २८ ॥ तब देवकीनन्दन श्रीकृष्णभी ग्वालबालोंको संग ले गायें चराते बलदेवजी सहित वृन्दावनसे भी और आगे बढगये ॥ २९ ॥ बडी तीक्ष्ण ग्रीष्मकी धूपमें अपनी छायासे छाया करनेवाले सघनवृक्षोंको देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मित्रोंसे कहा कि ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण ! हे अंशो ! हे श्रीमन् ! हे अर्जुन !

हे विशाल! हे ऋषभ! हे तेजस्विन्! हे देवप्रस्थ! हे वरूथप! ॥ ३१ इन बडभागी वृक्षोंको देखो तो यह कैसे भाग्यशाली हैं और सदा परोपकारके लिये एकान्तमें वास करते हैं, पवन, वर्षा, शीत, घाम आप सहते हैं और हमको इनसे बचाते हैं॥ ३२ ॥ अहो इन वृक्षोंका जन्म धन्य है, जिनसे हम सब लोग सुख पातेहैं और इनसे प्राणियोंकी जीविकाहै जैसे किसी मनुष्यके पाससे याचक विमुख नहीं जाता ऐसेही इन वृक्षोंके समीप आनकर प्राणी विमुख नहीं जाता ॥ ३३ ॥ इस संसारमें यह पत्र, फल, फूल, छाया, जड़, वल्कल, लकड़ी, सुगन्ध, गोंद, भस्म, कोयला कोंपल, आदिसे सब प्राणियोंकी मनोकामना पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ इस संसारमें उन्हीं देहधारियोंका जन्म सफल है, जोकि प्राण, धन, बुद्धि

पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकांतजीवितान् ॥ वातवर्षातपहिमान्सहंतो वारयंति नः ॥ ३२ ॥ अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ॥ सुजनस्यैव येषां वै विमुखा यांति नार्थिनः ॥ ३३ ॥ पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ॥ गंधनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते ॥ ३४॥ एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ॥ प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ॥ ३५ ॥ इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ॥ तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥ ३६ ॥ तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ॥ ततो नृप स्वयं गोपा कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्या उपवने कामं चारयंतः पशून्नृप ॥ कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥३८॥ इति श्रीमाद्भगवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे श्रीकृष्णकृतगोपीवस्त्रापहरणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

और वाणीसे परायेका भलाही करते रहते हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकार हरे हरे पात, गुच्छ, फल, फूल, कोंपलोंके समूहोंसे जिनकी शाखा झुँकरही हैं उन वृक्षोंके बीचमें होकर श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाकी ओरको गये ॥ ३६ ॥ हे राजन्! उस यमुनाके तीर ग्वालबालोंने निर्मल जल मंगलरूप गायोंको पिलाया और आप भी पिया ॥ ३७ ॥ हे महाराज! उस यमुना महारानीके किनारे पर गायोंको चराते हुए ग्वालबालोंको जब क्षुधा लगी तब घनश्याम बलरामजीके पास आनकर यह बात कहने लगे ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां चीरहरणलीलावर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा–तेइसवें अध्यायमें, माँगो हरि यज्ञ अन्न । विप्रोंनने दीनों नहीं, दियो नारि ते धन्न ॥ हे राम ! हे राम ! हे महापराक्रमी !
हे कृष्ण ! हे दुष्टोंके संहारकरनेवाले ! यह भूख हमको बहुत सताती है आप इसके शान्त करनेका कोई उपाय करो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी
बोले कि, हे राजन् ! गोपोंने जब श्रीकृष्णसे इसप्रकारकी प्रार्थना की तब देवकीनन्दन भगवान्ने अपनी भक्तिवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके ऊपर
प्रसन्न होकर यह कहा ॥ २ ॥ हे सखाओ ! वेदके पढ़नेवाले मथुरावासी ब्राह्मण स्वर्गकी इच्छा करनेके लिये आंगिरसनाम यज्ञ कररहे हैं,
देवताओंका पूजन जहाँ होरहाहै वहाँ जाओ ॥ ३ ॥ हे गोपो ! वहाँ उस यज्ञमें जाकर भात माँग लाओ और जो तुमको भात माँगते लज्जा

गोपा ऊचुः ॥ रामराम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः ॥ भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ सत्रमांगिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥ तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ॥ कीर्तयंतो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचंत ते तथा ॥ कृतांजलिपुटा विप्रान् दंडवत् पतिता भुवि ॥ ५ ॥ हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ॥ प्राप्ताञ्जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयंतावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ॥ तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥

हैं॥ ४ ॥ इसप्रकार
लगती हो तो तुम मेरा और मेरे भाई बलरामका नाम लेना कि, उनके भेजे हुए हम तुम्हारे पास भोजन माँगने आये हैं॥ ४ ॥ इसप्रकार
श्रीकृष्ण भगवान्की आज्ञा मानकर वह गोपलोग वैसेही भोजन माँगनेलगे और ब्राह्मणोंको हाथ जोड़ पृथ्वीमें पडकर दण्डवत्कर कहा ॥ ५ ॥
भूमिदेव ! हमारी बात सुनो ? श्रीकृष्णमहाराजकी कृपासे सदा आपके यहाँ ऐसाही मंगल होता रहै, हम श्रीकृष्णके आज्ञाकारी हैं और
जातिके गोप (अहीर) हैं श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार बलदेवजीके भेजेहुए हम आपके पास आये हैं सो आप उनको जानतेही होंगे ॥ ६ ॥
श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई गायें चरानेको आपके निकटही आये हैं और इस समय उनको भोजनकी इच्छाहै और अधिक

भूखेहैं; इसलिये आपसे भातकी चाहनाहै हे ब्राह्मणो! हे धर्म के जानने वालोंमें उत्तम! तुम्हारे यहां भातहै, यदि आपकी श्रद्धा हो तो माँगनेवाले कृष्ण बलरामको भोजन देदीजे ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठब्राह्मणो! तुम चुप क्यों होरहे? जो तुम कहो कि, हम यज्ञके करनेवाले दीक्षित हैं उनको हमारा भोजन करना नही चाहिये तो वहाँ यह विचारहै कि, दीक्षाके आरम्भसे लेकर पशुके हिंसने पहिले सौत्रामण्य यज्ञसे और ठौर दीक्षावालेके अन्न खानेसे कुछ दोष नहीं लगता. सो पशुका हिंसन तुम्हारे यहाँ हो चुका है, सौत्रामण्य यज्ञ आपके हैही नहीं, सो आपके अन्न भोजनमें हमको किसी प्रकार दोष नही है ॥ ८ ॥ इस प्रकार गोपोंने उनको शास्त्रानुसार समझाया भी, परन्तु तो भी वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी बातको सुनी अनसुनी करगये क्योकि वह ब्राह्मण क्षुद्रफल वाले स्वर्गके जानेकी इच्छा कर रहे थे, वह क्लेशकारी कर्ममें अपनी

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ॥ अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥ इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वंतोऽपि न शुश्रुवुः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥ देशः कालः पृथग् द्रव्यं मंत्र तंत्र र्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुधर्मश्च यन्मयः ॥ १० ॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवंतमधोक्षजम् ॥ मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥ ११ ॥ न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परंतप ॥ गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्ण रामयोः ॥ १२ ॥ तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥

मूर्खतासे लग रहेथे और अपने आपको बड़ा ज्ञानी और महात्मा जानतेथे ॥ ९ ॥ देश काल अलग अलग, चरु पुरोडाशादिक सामग्री मंत्र, तंत्र, ऋत्विज्, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ, धर्मफल, यह सब कृष्णमय हैं ॥ १० ॥ सो इंद्रियोंसे परे साक्षात् परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको उन कुत्सित बुद्धिवाले मूर्ख देहाभिमानी देहकोही आत्मा माननेवाले ब्राह्मणोने अज्ञानवश हो उनको कुछ भी नहीं पहिचाना मनुष्यही जानके अवज्ञा करी ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परंतप! उन ब्राह्मणोने चुप साध ली, न तो अपने मुखसे हां की और न ना की, तब गोपनिराश होकर लौट आये और श्रीकृष्ण, बलरामके पास आनकर कहा कि भले ब्राह्मणोके पास भेजा, उन्होने कुछ भी नहीं दिया, देखो हमारा अपमान भी हुआ और भोजन भी नही मिला, अब क्या उपाय करें? भूखके मारे तो प्राण निकले जाते हैं ॥ १२ ॥ जगदीश्वर श्रीकृष्णभगवान् इस बातको सुनकर हँसे और फिर गोपोमें कहा कि, कार्यवालेको निराश होना नहीं चाहिये और माँगनेवालेको

मान कहाँ ? क्योंकि उसका मान तो सदैवही भंग रहता है । लौकिकरीति दिखलानेके लिये फिर श्रीकृष्णचन्द्रने गोपौंसे कहा कि ॥ १३ ॥ अब तुम फिर जाओ और उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोसे कहो कि, कृष्ण बलदेव दोनों भाई गायें चराते चराते यहाँ आगये हैं और भूखे हैं वह तुमको मुँह माँगा भोजन देकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करैंगी, क्योकि वह शरीरसे तो घरमें वास करैहैं, परन्तु उनका मन मुझमेंही लग रहा है, इसीसे मुझमें उनका बड़ा प्यार है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर ग्वाल फिर गये, देखा तो पत्नीशालामें सब ब्राह्मणी शृंगार किये बैठी थीं उनके पास जाकर गोपोंने नमस्कार कर अधीनतासे यह वचन कहा ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणकी भार्याओ ! तुमको नमस्कार है, तुम हमारी एक बात सुनो, श्रीकृष्णचन्द्र आपके समीपही आगये हैं, उन्होंने हमको तुम्हारे पास भेजाहै ॥ १६ ॥ ग्वाल बाल और बलदेवजीको संगलेके गायें चराते चराते

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ॥ दास्यंति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथ पत्नी
शालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृताः ॥ नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबो
धत वचांसि नः ॥ इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन् स गोपालैः स रामो दूरमागतः ॥ बुभु
क्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ श्रुत्वाऽच्युतमुपायांतं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ तत्कथाक्षिप्तमनसो
बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ॥ अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९॥

इतनी दूर चले आये हैं, इस समय भूखे हैं और उनके मित्र हम भी भूखे हैं, सो कुछ भोजन चाहते हैं तुम कृपा करके हमको दो ॥ १७ ॥ नित्य श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहनावाली और कृष्णचन्द्रकी कथामें तन, मन, धन, लगानेवाली, वह ब्राह्मणोंकी स्त्रियें ब्रजभूषणका आना सुनकर अत्यन्त हर्षमानहुई, क्योंकि उनका मन तो पहिलेही श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लग रहा था ॥ १८ ॥ बड़े बड़े थालोंमें सुन्दर सुगन्ध युक्त चारप्रकारका भोजन भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य (चने, चबैना, रोटी, पूरी यह भक्ष्य) (दाल, भात, इत्यादि भोज्य) (कढी, क्षीर, इत्यादि लेह्य)(ऊख, आम, नींबू, इत्यादि चोष्य) सब ब्राह्मणोंकी स्त्रियें अपने मनमोहनप्यारेके लिये भोजन लेलेकर ऐसे धाईं जैसे नदियें

समुद्रमें को जाती हैं ॥ १९ ॥ उनके पति, भाई, बन्धु, पुत्रोंने बहुतेरा रोका परंतु वह न रुकीं. क्योंकि उनके मन तो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें बरसोंसे लग रहे थे तब उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने ॥ २० ॥ उसी अशोक वृक्षके नवपल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके निकट उपवनमें ग्वालवालोंको संग लिये भाई बलराम समेत मनमोहनप्यारेको फिरते देखा ॥ २१ ॥ श्यामस्वरूप, पीतवसन धारन किये, वनमाला पहिरे; मोरपुच्छका मुकुट शीशपर धरे, खरिया, गेरूके छाप लगाये, धातु मूँगा पहिरे, नटवर वेप बनाये, सखाके कण्ठमें भुजा डाले, दूसरे हाथमें कमलके फूलको घुमाते, कानोमें कमलके फूल लटकाये, कपोलोंपर अलकें छिटकाये, मन्दमन्द मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जैसे जैसे गुण कृष्ण प्यारेके अपने कानोंसे सुनके देखनेकी अत्यन्त अभिलापा थी वैसेही प्रत्यक्ष जाकर अपने नेत्रोंसे देखे

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बंधुभिः सुतैः ॥ भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥ यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमंडिते ॥ विचरंतं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ॥ विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥ प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरंध्रैः ॥ अंतः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाभिमतयोर्विजहुर्नरेंद्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ॥ विज्ञायाखिलदृग् द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ॥ यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥

और अपने आपको परमबडभागी समझकर उस व्रजराजके अनूप स्वरूपको नेत्रोंके द्वारा हृदयमें लेजाकर बहुत देरतक आलिंगन किया और मनमोहनप्यारेको वहीं रहनेको स्थान दे सर्वत्र तापको त्याग दिया, जैसे अहंकार वृत्तियाँ सुपुति अवस्थाकी साक्षी हैं उनको आलिंगन करके और उनहींमें लीन होकर सब तापको त्याग देती हैं ॥ २३ ॥ पुत्रादिक गृहादिककी सब आश छोडकर मेरा दर्शन करनेके लिये आई हैं उन ब्रह्मपत्नियोंको देखकर सबकी बुद्धिकी परीक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र मुसकाके बोले ॥ २४ ॥ कि, हे बडभगिनीयो ! तुमने बहुत अच्छा किया जो यहाँ आईं आओ आओ हमारे समीप बैठो । इस समय हम तुम्हारी क्या शुश्रुषा करें ? हमारे लिये क्या आज्ञाहै ? हमारा

दर्शन करनेके लिये आई हो सो तुमको योग्य है, तुम हमको भूखा समझकर इस महानिर्जन वनमें भोजन लेकर आई, इससे अधिक और कुछ
दया है ? इसके बदलेमें हम तुम्हें क्या दें ? जो इस समय हमारा घर भी धोरे होता तो कुछ पान फूल तुम्हारे आगे धरते सो वृन्दावनभी हमारा
यहाँसे बहुत दूर है, हमसे आपकी कुछ भी सेवा न बन पडी, इस बातका बड़ा पछतावाहै और हमारा मुख नही जो आपके प्रेमकी और परिश्रमकी
प्रशंसा करसकें, इस समय हम सब प्रकारसे लाचार हैं ॥ २५ ॥ अपने स्वार्थके देखनेवाले ज्ञानी पुरुष आत्मारूप प्रिय जो मैं हूँ, सो मुझमें फलकी
बुद्धि अनिच्छा करके निरन्तर यथार्थ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु आत्मा सबसे अधिक प्रिय है. विचार लो प्राण, बुद्धि, मन, तनु,
धन, स्त्री, पुत्र, आदिक सब वस्तु जिस आत्माके सम्बन्धसे प्रिय लगते हैं फिर भला उस आत्मासे बढ़कर और कौनसी वस्तु प्रिय है ॥ २७ ॥

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ॥ अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥ प्राणबुद्धिमनस्स्वा
त्मदारापत्यधनादयः ॥ यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः कोन्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥ तद् यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः॥
स्वसत्रं पारयिष्यंति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व
निगमं तव पादमूलम् ॥ प्राप्ता वयं तुलसिदामपदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलंघ्य समस्तबंधून् ॥ २९ ॥

इसलिये हे सुशीलाओ ! अब तुम अपनी यज्ञशालामें जाओ तुम कृतार्थ होगई पति तुम्हारे गृहस्थ हैं, जबतक तुम न जाओगी तबतक यज्ञ पूर्ण
न होगा,क्योंकि,विना स्त्रीके यज्ञ पूरा नहीं होता इसलिये वह लोग यज्ञको तुम्हारे साथही पूरा करेंगे॥२८॥विप्रपत्नियोंने कहा कि,हे नाथ ! आपको
अपने कोमल मुखारविन्दसे ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिये, क्योंकि आपहीने गीतामें कहा है, (न मे भक्तः प्रणश्यति) अर्थात् मेरे भक्तोंका
नाश नहीं होता (न स पुनरावर्तते) अर्थात मुझमें प्राप्त होकर फिर लौट नहीं आता, यह आपहीकी आज्ञा है, फिर अपनी प्रतिज्ञाको सत्य क्यों
नहीं करते ? इधर उधर क्या देख रहे हो ? तुमने अपने चरणसे जो तुलसीकी माला ठुकरादी है उसको बड़े आदर सत्कारसे शिरपर चढ़ानेके
लिये अर्थात् आपके चरणारविन्दकी सेवा करनेके लिये आपकी शरण आई हैं, अब सब बन्धुजनोंको त्यागकर आपके चरण शरण हैं ॥ २९ ॥

हे दीनदयालु ! हम यही चाहती हैं कि, आपहीके चरणारविन्दमें हमारे देह पडे रहैं, स्वर्गादिकका सुखभोग हम नहीं चाहतीं, हमको तो अपना दासभावही अच्छा है ॥ ३० ॥ द्विजपत्नियोंकी प्रेम प्रीति भरी मधुर वाणी सुनकर मनहरण प्यारे स्नेहयुक्त मनोहर वचन बोले कि, तुम निःसन्देह अपने घर जाओ, तुम्हारे पति, पिता, तात, माता, भ्राता, पुत्र, तुम्हारी कुछ निंदा न करेंगे और संसारमें भी कोई मनुष्य तुमको दोष न लगावेगा, देवताओंको साक्षात् दिखलाकर कहा कि, सब देवता और मनुष्यों को मेरा कहना स्वीकार है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें शरीरके स्पर्श होनेसे प्रीति नहीं रहती और अनुराग भी नहीं बढ़ता, इसलिये, तुम घरमें रहकर मुझमें मन लगाओ तो बहुत शीघ्र मुझको पाओगी ॥ ३२ ॥ (मेरा स्मरण, दर्शन, ध्यान, कीर्त्तन करनेसे जैसा भाव मुझमें होता है वैसा समीप रहनेसे नहीं होता, इसलिये तुमको उचित है कि, शीघ्र अपने

गृह्णंति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबंधुसुहृदः कुत एव चान्ये ॥ तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिमरिंदम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः ॥ लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यंगसंगो नृणामिह ॥ तन्मनो मयि युंजाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥ (स्मरणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥) श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ॥ ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३३ ॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवंतं यथाश्रुतम् ॥ हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबंधनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविंदस्तेनैवान्नेन गोपकान् ॥ चतुर्विधेनाऽऽशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥

मखभवनको जाओ) ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इसप्रकार जब श्रीकृष्णने द्विजपत्नियोंको समझाया तब वह द्विजांगना यज्ञशालामें पहुँची और उन ब्राह्मणोंने कुछ अपराध उनको न लगाया, निर्दोष समझकर अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्दपूर्वक यज्ञ समाप्त किया ॥ ३३ ॥ जिस समय सब स्त्रियें श्रीकृष्णके पासको भोजन लेकर चलीं उस समय एक स्त्रीके पतिने अपनी स्त्रीको जानेसे रोक लियाथा, उसने जैसा श्रीकृष्णका रूप, रंग, स्वभाव कानोंसे सुन रक्खाथा उसी रूपका ध्यानकर हृदयमें आलिंगन करके कर्मोंके अधीन जो देह था उसको त्यागकर चैतन्यस्वरूप भगवद्रूपमें लय होगई ॥ ३४ ॥ और जो जो पक्वान्न मिठाई द्विजपत्नियोंने लाइ थीं उन चारप्रकारके व्यंजनोंको यमुनाके निकट

कुंजोंकी छायामें बैठ, अतिप्रसन्न हो श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी अपने हाथसे भोजन करातेथे और सब सखा उन भोजनोंकी प्रशंसा कर करके
प्रेमसे भोग लगारहे थे. जब सब सखा भोजन कर चुके तो पीछे अपने आप भी भोजन करके ब्राह्मणियोंकी बड़ी सराहना की ॥ ३५ ॥
इस प्रकार मनुष्यरूप धारण कर लीला करके लोगोंकी सदृश गोप गोपियोंको आनंददेके आपभी उनके साथ रमण करते भये ॥ ३६ ॥
इसके उपरान्त वह ब्राह्मण अपने भोजन न देनेके अपराधको स्मरण करके दुःख पाते भये क्योंकि श्रीकृष्ण और बलदेवको सामान्य मनुष्य
समझके अन्न नहीं दिया॥३७॥उन अपनी पत्नियोंकी श्रीकृष्ण भगवान्में अलौकिक प्रीति देखकर और अपने आपको भक्तिहीन समझकर

एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ॥ रेमे गोगोपगोपीनां रमयन्रूपवाक्कृतैः ॥ ३६ ॥ अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वत
प्यन् कृतागसः ॥ यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडंबयोः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ॥
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हन् ॥ ३८ ॥ धिग् जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ॥ धिक्
कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ॥ यद्वयं गुरवो
नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४० ॥ अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ॥ दुरंतभावं योऽविध्य
न्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४१ ॥

अत्यन्त दुःखी हो बारम्बार अपने आपको धिक्कार दे देकर अपनी निन्दा करते थे ॥ ३८ ॥ शुद्ध माता पितासे, सावित्री यज्ञोपवीतहुएसे,
यज्ञकी दीक्षा लियेसे यह तीन प्रकारका हमारा जन्म है इसको हमारी विद्याको हमारे कर्मको और हमारी चतुराईको बारम्बार धिक्कार है
हमारे व्रत करनेको धिक्कार है हमारे अनेक शास्त्रके पढ़नेको धिक्कार हमारे कुलको और क्रिया दक्षताको भी धिक्कार है,
क्योंकि जिससे जगदीश्वर भगवान्से विमुख हुए इसलिये हमको धिक्कार है और इस हमारी अधम बुद्धिको धिक्कार है ॥ ३९ ॥ निश्चय है
कि, भगवान् वासुदेवकी माया योगियोंको मोह उपजानेवाली है, इस मायासे मनुष्योंमें गुरु ब्राह्मण जो हम हैं सो स्वार्थमें मोहित

होरहेहैं हाय अहो बड़े आश्चर्यकी बातहै देखो! जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रमें स्त्रियोंकी कैसी अलौकिक भक्तिहै देखो! जिस भक्तिने गृहरूप मृत्युकी, फाँसियोंको काट दिया॥४०॥४१॥ तो विचारतो करो यह स्त्रीकी जाति, कैसी अशुद्ध है न तो इनके उपवीतसंस्कार है न गुरुके समीप वास है:न तप है न जप है न आत्माका विचारहै न पवित्रताहै न सुकर्म है॥४२॥ तो भी योगीश्वरोंके ईश्वर परपुरुष श्रीकृष्णभगवान्में जैसी इन अबलाओंकी अचल भक्ति है ऐसी हम स्नान सन्ध्या-जप तप करनेवालोंकी भी नहीं तो धिक्कार है हमारे इस संस्कार और यज्ञव्यवहारको ॥ ४३ ॥ हम लोग कुछ भी अपने अर्थको नहीं पहिचानते घरके व्यवहारमें भूल रहेहैं और ऐसे अचेत हैं कि आगे पीछेकी कुछ भी सुधि नहीं, महात्माओंके आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ॥ न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥ ४२ ॥ अथापि उत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्करादिमतामपि ॥ ४३ ॥ ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ॥ अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः॥ ४४ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः ॥ ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडंबनम् ॥ ४६ ॥ हित्वाऽन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् ॥ आत्मदोषापवर्गेण यद्याच्ञा जनमोहिनी॥४६॥देशः कालः पृथग् द्रव्यं मंत्रतंत्रर्त्विजोऽग्नयः॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥४७॥ स एष भगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥ जातो यदुष्वित्यश्शृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे॥ ४८ ॥

भगवान्ने गोपोंके वचनोंसे हमैं सचेत किया हाय ! तो भी हम मूर्ख न चेते इसमें किसीका कुछ दोष नहीं यह सब हमारे कर्मोंका फल है ॥ ४४ ॥ पूर्ण जिनका मनोरथ मोक्षादिक सब मनोरथोंके अधीश्वर श्रीकृष्णभगवान् उनको हमसे मायाके वशीभूत पामर जीवोंसे क्या प्रयोजन था ? केवल भातका मांगना तो ईश्वरका कौतुक था ॥ ४५ ॥ देखो ! त्रिभुवनेश्वरी लक्ष्मी ब्रह्मादिक देवता और सब संसारको छोड़कर चरणारविन्दके स्पर्शकी चाहना करके अपना चंचलपना और दोष दूर करनेके लिये जिनका दिन रात भजन करती हैं उन श्रीकृष्णका माँगना केवल हम लोगोंको मोहका उत्पन्न करनेवाला है ॥४६॥ देश काल अलग अलग चरुपुरोडाशादिक द्रव्य, मंत्र, तंत्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ, धर्म, यह

सब श्रीकृष्णका रूप है। सो साक्षात् श्रीकृष्णभगवान् विष्णु योगेश्वरोंके ईश्वरने यदुकुलमें आनकर जन्म लियाहै, यह बात हमने पण्डितलोगोंके मुखसे सुनी थी, परन्तु तो भी हम जान बूझकर मूर्ख अज्ञानी होगये ॥४७॥४८॥ कोई कोई ब्राह्मण कहनेलगे कि, अहो हम बड़े धन्यहैं क्योंकि हमारी ऐसी भक्तिमती स्त्री हुई कि, जिनकी भक्तिके प्रभावसे कृष्ण भगवान्‌में हमारी भी दृढ़ भक्ति हुई॥ ४९ ॥ अकुण्ठ बुद्धि जो आप श्रीकृष्ण भगवान् हैं, सो आपके लिये बारम्बार नमस्कार है, जिसकी मायासे मोहितबुद्धि हो हम कर्म मार्गमें भटकते फिरते हैं॥ ५० संसारकी मायासे जो हमारा चित्त मोहित हो रहाहै और आपकी महिमाको हम नहीं जानते, ऐसे जो हम अज्ञनी लोगहैं सो हे दीनदयालु ! हमारा अपराध क्षमा

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ॥ भक्त्या यासां मतिर्जाता ह्यस्माकं निश्चला हरौ ॥ ४९ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥५०॥स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम्॥ अविज्ञातानुभावानां क्षंतुमर्हत्यतिक्रमम् ॥५१॥ इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः॥ दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाऽचलन्॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भाग०म० द० पू० यज्ञपत्न्युद्धरणदीक्षितानुतापनं नाम त्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥ अपश्यन्निवसन्गोपानिंद्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपि भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥

कीजै ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् के अपराधी जो ब्राह्मण हैं, उनको अपने अपराधको स्मरण करके कृष्ण, बलदेवके दर्शनकी इच्छा हुई परन्तु कंसके भयके मारे नही जासके ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा–चौविसवें अध्यायमें, इन्द्र यज्ञको त्याग । गोवर्द्धन पूजन कियो, सबन सहित अनुराग ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान् अपने बड़ेभाई बलदेवजी सहित सुखसे रहते थे कि, इन्द्रके यज्ञकी तय्यारी होती देखते भये ॥ १ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा भगवान् सर्वव्यापक सब बतोंके जाननेवाले, जानते भी थे कि, इन्द्रके यज्ञका प्रबंध होरहा है तो भी नंदरानीसे बूझने

लगे कि, माताजी ! आज क्या है ? जो घर घर पकवान मिठाई बन रही है और तुम भी बडी धूमधाममें हो ? मुझे समझाकर कहो कि, यह क्या भेद है ? जो मेरे मनका संशय मिटै ? यशोदा बोली कि, पुत्र ! इस समय मुझको सावकाश नहीं यह सब वृत्तान्त तुम अपने पितासे जाकर बूझो वह तुम्हारा सब सन्देह दूर करदेंगे, यह सुन नन्दजीके पास जाकर श्रीकृष्ण बोले ॥ २ ॥ कि, पिता ! आज क्या है ? जो सब व्रजमें कड़ाही खड़क रही है और अनेक अनेक प्रकारके व्यंजन बन रहे हैं, सब ठौर ठौर कोलाहल मचरहा है और ग्वालबाल चारों ओर भागे भागे फिरते हैं, क्या उत्सव है ? किस देवताके नामका यज्ञ है ? क्या इसका फल है ? कौनसे देवताका पूजन है ? क्या क्या उसमें गुण हैं ? कौन इसका अधिकारी है ? किस किस वस्तुसे यज्ञ होताहै ॥ ३ ॥ हे पिता ! मुझे इस बातके सुननेकी बड़ी अभिलाषा है. सज्जनपुरुष सब प्राणियोंमें और स्थानोंमें आत्माको

कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः ॥ किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥ एतद्ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ॥ न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥ अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥ उदासीनोऽरिवद्वर्ज्य आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ॥ विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ॥ अथ वा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥

देखते हैं उनसे कोई कर्म छिपा नही है और छिपानेके योग्य भी नहीं है ॥ ४ ॥ साधु पुरुष अपना बिराना कुछ नहीं समझते उनकी समदृष्टि है, मित्र उदासीन ! वा वैरी भी उनका कोई नहीं होता, उदासीन तो शत्रुकी सदृश वर्जित है, सुहृद् आत्माकी समान मानना चाहिये, इससे उसको अवश्य सम्मतिमें साथ करले ॥ ५ ॥ यह प्राणी जानकर भी कर्म करता है और बिना जाने भी कर्म करता है परंतु जानकर जो करता है उसका फल तत्काल मिलता है और जो बिना जाने कर्म करता है उसका कार्य किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता ॥ ६ ॥ आपने जो यह यज्ञका अनुष्ठान कर रक्खा है सो शास्त्रकी रीतिसे किया है, अथवा लोकरीतिसे किया है और यह रीति आपके यहाँ परम्परासे चली आई है वा आज

किसीने नई बताई है, यह आपसे मेरा निवेदन है कि, आप कृपाकर मुझसे कहो ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णके गम्भीर वचन सुनकर नन्दरायजी बोले कि, बेटा ! क्या यह वृत्तान्त तुमने आजतक नहीं सुना ? मेघरूप भगवान् इन्द्र हैं और मेघही उनकी प्यारी मूर्ति है यही प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला है और संतोष देनेवाले जलकी वर्षा करता है ॥ ८ ॥ मेघोंका राजा भगवान् इन्द्र है उसको हम भी और संसारके दूसरे पुरुषभी उसी मेघपतिके बरसाये जलसे उत्पन्न हुवा जो अन्न है उसीसे यह यजन करते हैं, उसके करनेसे देवता, पितृ, प्रसन्न होते हैं. अनेक प्रकारकी ऋद्धि सिद्धि उत्पन्न होती है वन उपवन फूलतेहैं, तृण, घास उत्पन्न होताहै, उससे सब पशु, पक्षी, जीव, जन्तु आनन्द पातेहैं और उस यजन कर्मके उपरान्त जो

नंद उवाच ॥ पर्जन्यो भगवानिंद्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ॥ तेऽभिवर्षंति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ॥ द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ॥ पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥ य एवं विसृजेद्धर्मं पारंपर्यागतं नरः ॥ कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य नन्दस्य तथाऽन्येषां व्रजौकसाम् ॥ इन्द्राय मन्युं जनयन्पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा जायते जंतुः कर्मणैव विलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥

शेषान्न रहजाता है उसीकी प्राप्तिके लिये अपनी जीविका करके धर्म करते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ हे पुत्र ! यह इन्द्रयज्ञकी रीति हमारे यहाँ परम्परासे चली आई है, कुछ आज ही किसी पण्डितने नई नहीं बनाई, जो धर्म परम्परासे चला आयाहै और जो मनुष्य काम, लोभ, भय, द्रोहसे उसको छोड़ देते हैं उन पुरुषोंका कभी कल्यान नहीं होता ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित ! नंदराय और वृद्ध वृद्ध व्रजवासियोंके ऐसे वचन सुनकर इन्द्रके ऊपर अत्यन्त क्रोधकरके उसका मान घटानेके लिये श्रीकृष्णभगवानने अपने पिता नन्दजीसे कहा ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पिताजी ! कर्महीसे प्राणी जन्म लेताहै और कर्महीसे देहका त्याग करताहै, दुःख, सुख, भय, कल्यान,

कुशल यह सब कर्महीके अधीन हैं ॥१३॥ कोई कोई मतवाले ऐसा कहते हैं कि, ईश्वर प्राणियोंके किये हुए कर्मोंके फलका देनेवाला है इससे तो यह सिद्ध हुवा कि, ईश्वर कर्मोंके वशीभूत है जैसा कर्म जिसने किया वैसाही फल मिला ईश्वर अपनी ओरसे कुछ नहीं करसक्ता, इस बातसे यह निश्चय हुवा कि, फलकी सिद्धि देनेवाला कर्महीं प्रधान रहा, इसलिये कर्मही जब मुख्य पर ठहरा तो फिर ईश्वर क्या वस्तु है ? उसे तो ऐसा समझो कि, जैसे बकरीके कण्ठके स्तन ॥१४॥ जब कर्मही प्रधान ठहरा, तो इन्द्रसे क्या प्रयोजन ? जब सब प्राणी अपने अपने कर्मोंके अनुसार भोग भोगते हैं, पूर्वजन्मके संस्कारजन्य जो कर्म हैं उनको इन्द्रभी किसीप्रकार नहीं घटा बढ़ा सक्ता ॥ १५ ॥ प्राणी स्वभावहीके वशीभूत हैं और स्वभावहीको वर्तें हैं देवता, असुर, मनुष्य यह सब स्वभावहीके वशमें हैं और कर्मकी प्रवृत्ति भी स्वभावके अधीन है तो फिर उस प्रवृत्तिमें ईश्वरकी

अस्तिचेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् ॥ कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४ ॥ किमिंद्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ॥ अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतंत्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ॥ स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥ देहानुच्चावचाञ्जंतुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥ तस्मात्संपूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ॥ अंजसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥ आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ॥ न तस्माद्विंदते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥

कुछ आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ यह जीव कर्महीसे छोटे बड़े देहको पाता है और त्यागता है. कर्मही शत्रु है, कर्मही मित्र है, कर्मही गुरु है, कर्मही ईश्वर है ॥ १७ ॥ इस लिये स्वभावमें स्थित होकर अपने कर्मोंका अनुष्ठान करे. यही मुख्य है. यद्यपि देवताके नामसे यज्ञ, व्रत, पूजन, हवन, किया बस उस करनेहीका नाम कर्म है. यद्यपि तुमको यह सन्देह हो कि, बिना देवताके हमारा कार्य सिद्ध नहीं होसक्ता, देवताही हमारा कार्य करता है, तो भी देवता कर्मकेही अधीन ठहरा, देखो ? तुम किसी देवताका नाम लेकर अग्निपर दूधका पात्र रखदो, वह दूध औटजायगा और देवताका नाम नहीं भी लो तो भी औटजायगा, परंतु बिना अग्निपर धरे किसी प्रकार नहीं औट सक्ता, तो मुख्य कर्मही ठहरा, क्योंकि बिना कर्म कुछ नहीं होसक्ता अनायास पूर्वक कर्मकी पूजाकरै और जिससे जिस पुरुषका निर्वाह हो वही उसका देवता है ॥ १८ ॥ जो पुरुष एक पदार्थका सेवन

करके दूसरे पदार्थका सेवन करते हैं, वह पुरुष कभी कल्याणको नहीं पाते. जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषका सेवन करके कल्याणको नहीं
पाती ॥ १९ ॥ हे पिता ! चारो वर्णोंको चाहिये कि, अपने अपने धर्मपर आरूढ रहैं. ब्राह्मणको चाहिये वेद पढ़ै और उसीसे अपनी आजीविका
करै. क्षत्रियको चाहिये कि,पृथ्वीकी रक्षा करै.वैश्य व्यापारादिकसे अपना उदर पूर्ण करै और शूद्रको चाहिये कि. ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्यकी सेवा करके
अपना प्रतिपाल करै ॥ २० ॥ खेती, वाणिज्य, गोरक्षा और व्याजलेना यह चार प्रकारकी वैश्यकी जीविका है. इन चारोंमें हमारे तो सदा
गायोसेही जीविका है ॥ २१ ॥ हे पिता ! ऐसा कभी मत समझना कि हमारी गायोंकी वृद्धि और आजीवका इन्द्रहीके अधीन है, क्योंकि सत्त्व
गुण, रजोगुण, तमोगुण इन्हीं तीन गुणोसे विश्वका पालन उत्पत्ति नाश होता है. इस रजोगुणसे स्त्री पुरुषसे मिलके त्रिविध जगत् उत्पन्न होता

वर्त्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ॥ वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षा
कुसीदं तुर्यमुच्यते ॥ वार्त्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥
रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥ २२ ॥ रजसा चोदिता मेघा वर्षंत्यंबूनि सर्वतः॥ प्रजास्तैरेव सिद्ध्यंति महेंद्रः
किं करिष्यति ॥ २३ ॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥
तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ॥ य इंद्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥ पच्यंतां विविधाः
पाकाः सूपांताः पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥

है ॥ २२ ॥ रजोगुणकी प्रेरणासे मेघ सर्वत्र स्थानोंपर जल वर्षाते हैं, उसी जलसे प्रजाका जीवन होता है, इन्द्र इसमें क्या करसक्ता है ॥ २३ ॥
हमारे तो पुर, देश, नगर, ग्राम, घर कुछ भी नहीं है, हे तात ! केवल वनही हमारा घर है और सदा वन और पर्वतोंमें हमारा वास है
॥ २४ ॥ इसलिये गौ, ब्राह्मणकी सेवा करनी उचित है और पर्वतोंका पूजन करना चाहिये जिससे हमारी गायोंका और हमारा पालन पोषण
हो, सो हमारे समीप सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोवर्द्धनपर्वत है उसीके यज्ञका प्रारम्भ करो, जो इन्द्रके यज्ञके लिये सामग्री इकट्ठी करी है उसी सामग्रीसे
गोवर्द्धनके यज्ञका प्रारम्भ करो ॥ २५ ॥ खीरसे आदि लेके दालतक अनेक अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाओ, गेहूंकी पूरी, कचौरी, उडद,

मूंगकी दाल, कढी, पकौरी, रायता, चुनौरी, शाक, वासमतीके चावलोंका भात, दूध, दही, रबड़ी, मलाई और सब गायोंका दूध इकट्ठा करो ॥ २६ ॥ वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर हवनकी सामग्री मँगाकर, अग्निमें होम कराओ और उन ब्राह्मणोंको भाँति भाँतिके अन्न, गोदान, दक्षिणा और अलंकार पहिराओ ॥ २७ ॥ और जो दीन भिखारी, कुत्ते चांडालसे आदि लेकर पतिततक हैं, सबको यथायोग्य भोजन कराओ गायोंको घास दो, गोवर्द्धनपर्वतको बलिदान दो ॥ २८ ॥ अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण पहिर चन्दनका तिलक लगाय, नये नये वस्त्र धारण करके, शृंगार बनाओ. गौ, ब्राह्मण, अग्नि; पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ हे पिता ! मेरा तो यह मत है, आगे आपकी इच्छा हो सो कीजे यह गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धनपर्वतका यज्ञ मुझको तो अत्यन्त प्रिय है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इन्द्रका गर्व दूर करनेके

हूयंतामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाऽऽश्वचांडालपतितेभ्यो यथार्हतः ॥ यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥ स्वलंकृता भुक्तवंतः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्राऽनलपर्वतान् ॥ २९ ॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्पजिघांसया ॥ प्रोक्तं निशम्य नंदाद्याः साध्वगृह्णंत तद्वचः ॥ ३१ ॥ तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥ उपहृत्य बलीन्सर्वानादृता यवसं गवाम् ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥

लिये कालरूप भगवान्का बचन सुनकर नन्दादिक गोपोंने और सब व्रजवासियोंने परस्पर कहा कि, हे पुत्र ! मैं तेरा वचन किसीप्रकार नहीं फेरसक्ता और न कोई और फेर सकै जो बात तुझको अच्छी लगे हम सब उसीमें प्रसन्न हैं. इस बातको सुनकर बड़े बड़े जो वृद्ध गोप थे, वह कहने लगे कि, कृष्ण सत्य कहता है, हमारा इन्द्रसे क्या प्रयोजन है ? हमको तो नदी, पहाड, वन सदा बने रहैं ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा उसीप्रकार सब व्रजवासी स्वस्तिवाचन वचायके संपूर्ण इन्द्रके यज्ञकी सामग्री करते भये ॥ ३२ ॥ पर्वत और द्विजोंको आदर युक्त यथाविधि सन्मान करके सब व्रजवासी गौवोंको आगे करके गोवर्द्धन पर्वतराजकी परिक्रमा करते भये ॥ ३३ ॥

फिर धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, अक्षत, पान, सुपारी गिरिराजके आगे धर आरतीकर निदानक ढेरके ढेर चढाने लगे, इतनी मिठाई चढी कि, सम्पूर्ण पर्वत ढकगया और दूध, दही, घृत इतना चढाया कि, नदियें बहने लगीं और जहाँ तहाँ अनेक रंगके थानके थान तान दिये, उससमय गिरिराज ऐसे शोभायमान जान पडते थे मानो भगवान् विराट् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलनेको आये हैं, उस अद्भुत शोभाको देखकर व्रजवासी प्रसन्न हो होकर ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणोंका आशीश लेते भये वहाँ व्रजवासियोंके प्रतीति करानेके लिये श्रीकृष्णने नया कौतुक एक और किया, अपना दूसरा रूप और प्रगट किया कि, मैंही हूं गोवर्द्धन पर्वत, अतिशय बृहत् शरीर बडी लम्बी लम्बी भुजायें बडा चौडा लम्बा मुख, अखण्ड प्रकाश, महास्थूल जंघा और जानू और शैलके शिखरकी समान शीश, रत्नजटित मुकुट धरे, आभूषण पहिरे, कण्ठमें वनमाला पीताम्बर धारण किये

अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः ॥ गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायंत्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रंभणं गतः ॥ शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥ तस्मै नमो व्रजजनैः स चक्रे आत्मनाऽऽत्मने ॥ अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥ एषोऽवजानतो मर्त्यान्कामरूपी वनौकसः ॥ हंति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥ ३७ ॥

गिरिराजकी कन्दरामेंसे निकलकर बोले ॥ ३८ ॥ फिर तो सब गोप गोपी भोजनके थाल और परातें उठा उठा गिरिराजको पकडाते जाते थे और वह प्रसन्न हो हो खाते थे और प्रत्येक भोजनकी प्रशंसा भी करतेथे, निदान जो कुछ पकवान मिठाई नन्दादिक व्रजवासी लेगये थे, उस सबको निर्वार प्रसादमात्र छोड दी, तब तो श्रीकृष्णचन्द्र सबसे पुकारकर कहनेलगे कि, हे पिता ! हे भ्रातृगण ! देखो गिरिराजने आज कैसा प्रत्यक्ष रूपसे दर्शन दिया और तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, देखा आपने गिरिराजका कौतुक कभी इन्द्रनेभी इस प्रकार प्रगट होकर दर्शन दिया था ? और अपने हाथसे इसप्रकार भोजन किया था ? सबने उस गिरिराजको नमस्कार करना ॥ ३६ ॥ यह गोवर्द्धननाथ अपने पूजनेवालोंपर सदा दयादृष्टि रखते हैं और जो कोई वनवासी इनका तिरस्कार करनेवाले हैं उनको सिंह सर्पादिक रूपसे कालकौर करलेते हैं, इसलिये

अपने और गायोंके मंगलार्थ इनको वारम्बार नमस्कार और दण्डवत करो ॥ ३७ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण गोप वासुदेव भगवान्की आज्ञासे भलेप्रकार यज्ञ करके श्रीकृष्णचन्द्रको सङ्ग लेके गोवर्धनसे व्रजको आवत भये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां इन्द्रमखभंगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ दोहा–पच्चिसमें व्रजपर चढो, इन्द्र खाय कर खार। हरि व्रजकी रक्षा करी, करपर गिरिवर धार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इन्द्रने अपनी पूजाका लोप देखकर श्रीकृष्ण भगवान्ही

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥ यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः॥३८॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० इन्द्रमखभंगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥ गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥ गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चांतकारिणाम् ॥ इंद्रः प्राचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥

जिनके नाथ हैं उन नंदादिक व्रजवासियोंको अपना शत्रु समझ अत्यंत कोप किया कि क्या कारण मेरी पूजा छोडकर गोवर्द्धनकी पूजा की * ॥ उसी समय प्रलय करनेवालोंमें मुख्य सांवर्तक नाम गणको बुलाकर आज्ञादी (मैंहीं इन्द्र हूं) ऐसे अभिमानी इन्द्रने महाक्रोध करके अत्यन्त कठोर वचन कहा ॥ २ ॥ अहो बड़े आश्चर्यकी बात है, वनके रहनेवाले, गँवार गायोंको चरानेवाले जातिके ग्वालियोंको लक्ष्मीका कैसा मद हुआहै जिन्होंने मनुष्य कृष्णका आश्रय लेकर (मैं सुराधीश इन्द्र हूँ) मेरा अपराध किया और कुछ आगा पीछा न विचारा, सत्यहै मूर्ख कहीं

* शंका–इन्द्रकी विनयसे भगवान्ने पृथ्वीमें अवतार लिया था सो इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों की ?

उत्तर–भगवान्की प्रिया जो देवी थी उसका अनादर इन्द्र अपने अभिमान और अज्ञानसे नित्य किया करता था, उस अपने इन्द्रके किये अनादरको देवीने स्मरण करके और अपना पक्षपाती श्रीकृष्णको समझकर प्रथम इन्द्रका उपद्रव देवीने नहीं किया, उससमय तो सहन करलिया फिर पीछे श्रीकृष्णका पक्षपात कर देवीने इन्द्रको मोहित कर लिया, मोहको प्राप्त होकर इन्द्र उन्मत्त हो भगवान्को भूल गया और व्रजके ऊपर प्रलयके करनेवाले मेघोंको भेजकर मूसलधार जल वर्षाया यह कारण था ॥

ज्ञान सिखानेसे ज्ञानी हो सक्ता है ? ॥ ३ ॥ जो अदृढ़ नौकाकी सदृश यह कर्ममय यज्ञ है, इससे आत्माका कल्याण जिससे होता है, उस आत्म
विद्याको छोड़कर हठकी करनीपर बैठ इस संसारसमुद्रके पार होना सहजमें ही चाहता है ॥ ४ ॥ वह वाचाल, मूर्ख, अज्ञानी किसीकी बातको
नहीं मानता और अपने आपको बड़ा पण्डित और ज्ञानी जानता है, और ऊंच नीचको कुछ नहीं पहिचानता. ऐसे छोटी अवस्थावाले मूर्ख मनुष्य
श्रीकृष्णका आश्रय ले उन गँवार ग्वालिनियोंने सब संसारमें मेरी अवज्ञा की ॥ ५ ॥ लक्ष्मीके मदके मतवाले गोप कृष्णके सिखाने बुझानेसे
हमैं इन गँवारोंने कुछ न समझा और हमारा तिरस्कार करके यज्ञभाग पर्वतको दिया, उस नाचनेवाले कृष्णका भरोसा करके अपने प्राणोंकी
कुशल चाहते हैं तो तुम उनके सबके गर्वका और गायोंका नाश करो ॥ ६ ॥ और ठौर वर्षनेका कुछ काम नहीं केवल चौरासीकोस ब्रजपरही
ऐसी वर्षा करो कि गोवर्द्धन पहाड़का खोजमात्र भी न रहै अरु गाय बछडोंका तो ऐसा विनाश करना कि, उनका कोई नाम लेवा और पानी

यथाऽदृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नाम नौनिभैः ॥ विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं बालिशं
स्तब्धमज्ञं पंडितमानिनम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ येषां श्रियाऽवलिप्तानां कृष्णेनाध्मापि
तात्मनाम् ॥ धुनुत श्रीमदस्तंभं पशून्नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥ अहं चैरावतं नागमरुह्यानुव्रजे व्रजम् ॥ मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नं
दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबंधनाः ॥ नन्दगोकुलमासारैः पीडया
मासुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनंतः स्तनयित्नुभिः ॥ तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥

देवा भी न रहै, लाख वह हाय हाय करैं परन्तु तुम कुछ दया चित्तमें मत लाना, क्योंकि जैसा उन्होंने किया है उस अपनी करनीका फल तो
भोगैं, तुम किसीप्रकारका संदेह मत करना मैंभी तुम्हारे पीछे पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़ देवताओंकी सेना समेत और सब प्रलय करनेवाले मेघोंको
और उञ्चास (४९) मरुद्गण पवनोंको भी साथ लाऊँगा ब्रजतो क्या ? वहांकी भूमितक बहादूंगा फिर देखूं जगत्में किसकी सामर्थ्य है जो ब्रजवा
सियोंकी रक्षा करै ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! मेघोंने इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाय मुक्तबंधन हो नंदरायके गोकुलपर बलते
बडी वर्षा करने लगे ॥ ८ ॥ चारों ओरसे घटा घिर आई, बिजली चमकने लगीं, बादलोंके गर्जनेका गम्भीर शब्द होनेलगा; तीव्र मरुद्गणोंने
मेघोंको चलायमानकर ओलोंकी झडी लगादी और मूशलधार वर्षा होने लगी ॥ ९ ॥

वर्षाकी धारा हाथीके शुण्डकी समान मोटी बादलोंमेंसे अखण्ड गिरती थी, जिससे समस्त व्रजमण्डल जलमें डूबगया और चारोंओरसे बादलोंके समूहके समूह उमडते चले आते थे, ऊंचे नीचे गाढ़ गढौले और पृथ्वी कहीं नहीं दिखाई देतीथी॥१०॥बड़े वेगकी वर्षासे और महाप्रचण्ड पवनसे पशु सब थर थर काँपने लगे और गोपी गोप जाड़ेके मारे अत्यन्त दुःखी हो,हाय हाय ! करतीं थर थर काँपतीं श्रीगोविन्द कृष्णकी शरणमें जाती भई॥११॥मूसलधार जो जल वर्षा तो उससे पीड़ित होकर गायें अपना शिर नीचे किये बछड़ोंको नीचे लिये, थर थर काँपती थीं और गोपियें गि रती पड़ती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट जाकर बोलीं ॥१२॥ हे कृष्ण हे कृष्ण ! हे महाभाग!हेसामर्थ्यवान् ! हे भक्तहितकारी ! हे गोकुलनाथ ! इस महाक्रोधी इन्द्रसे इस अपने गोकुलकी और हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ जब बड़ी बड़ी शिलायें ओलोंकी आकाशसे गिरनेलगीं उनसे बेसुधि

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुंचत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ॥ जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥१० ॥ अत्यासारातिवा
तेन पशवो जातवेपनाः ॥ गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविंदं शरणं ययुः ॥११॥ शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडि
ताः ॥ वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥ कृष्णकृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ॥ त्रातुमर्हसि देवान्नः
कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥ शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ॥ निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेंद्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥
अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ॥ स्वयागे निहतेऽस्माभिरिंद्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्य
गात्मयोगेन साधये ॥ लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥ न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीश
विस्मयः ॥ मत्तोऽसतां मानभंगः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥

और व्याकुल गोकुलवासियोंको देखा, तब सबके दुःख दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जाना कि, यह सब कौतुक उसी महाक्रोधी इन्द्रका है ॥ १४ ॥ विना वर्षाऋतुके जो यह महाभयानक शिलाओंकी वर्षा हो रहीहै और महाप्रलयकेसा प्रचण्ड पवन चल रहाहै, केवल इसका यही कारण है कि, मैंने जो इसके यज्ञको भंग करदिया और इसकी पूजा व्रजसे उठा दी, इसीसे इन्द्र हमारे विनाशके लिये मूसलधार पानी वर्षा रहा है ॥ १५ ॥ इसकारण अबमैं अपनी सामर्थ्यसे इस महाघोर वर्षाका उपाय करूंगा और उन अज्ञानी लोकपाल और अभिमानी इन्द्रादिक देवता ओंको जो लक्ष्मीका मद होगया है उस मदको हरूंगा ॥ १६ ॥ मेरी भक्ति अथवा सत्त्वगुण जिन देवताओंके हृदयमें व्याप रहाहै और मैंहीं उनका

ईश्वरहूं इसलिये उन देवताओंको अपने पराक्रम और बलका गर्व किसी प्रकार होना नहीं चाहिये, क्योंकि अभिमानमें भक्ति और प्रेम कहाँ ? इसलिये जबतक उन अभिमानियोंका मानखण्डन न होगा तबतक वह मेरा मान न करेंगे और मेरा मान किये विना उनका कल्याण कहाँ ? ॥ १७ ॥ इससे वह उपाय करूं जो वह मेरी शरण आवे क्योंकि मेरा नाम गोकुलनाथ है जब मैंहीं गोकुलका नाथ होकर गोकुलकी रक्षा न करूंगा तो और कौन रक्षा करने आवेगा ? क्योंकि सब गोकुलवासी मुझहीको अपना प्राण आधार समझते हैं मुझहीको अपना तन,मन,धन जानते हैं, यह सब मेरेही दर्शनकी अभिलाषा करते रहते हैं मेरे समान और किसी दूसरेको नहीं मानते ॥ १८ ॥ यह कह नटवर रूपधर लीलामात्र एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड बायें करकी कन अंगुली पर धर, ऊपरको उठा व्रजमण्डलपर छत्रीकी समान तान दिया, जैसे कोई बालक

यस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ॥ गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ॥ दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥ १९ ॥ अथाह भगवान् गोपान् हेऽब तात व्रजौकसः ॥ यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥ २० ॥ न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ॥ वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥ तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ॥ यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२ ॥

छत्राकको उखाड़कर ऊपरको उठालेताहै (यह वह छत्राक है जिसको बालक साँपकी छत्रीकहते हैं) ॥ १९ ॥ जब भगवानने पर्वतको उठा लिया तब पीछे गोपोंसे कहा कि, हे भैया ! हे पिता ! हे व्रजवासियो ! अपनी २ गाय बछड़े बाल बच्चों समेत सुखसे इस पर्वतके नीचे आजाओ ॥ २० ॥ हे व्रजवासियो ! अपने मनमें यह मत समझना कि, कृष्णके हाथसे गिरि गिरजायगा, यह सब बाबा नन्दका प्रभाव है, इसमें मेरा कुछ पराक्रम नहीं है, यहाँ पवन पानीका कुछ खटका नहीं अपने मनमें पूर्ण विश्वास करके गिरिकी छायामें चले आओ, मैंने तुम लोगोंकी रक्षाकरनेके लिये गोवर्द्धनको हाथपर उठा लिया है, जबलों बहुत वर्षा होय तबलों इसके नीचे सुखसे वास करो ॥ २१ ॥ जिन लोगोंको श्रीकृष्णके बलवीर्यका पूरा भरोसा था इन्होंने गाय बछड़े गाड़ी पुरोहितादिक जिसको पाया उसको नन्द उपनन्द अपने संग ले आनन्दपूर्वक पर्वतके

नीचे गढ़ेलेमें घुसगये; उससमय सब श्रीकृष्णके मुखकी ओरको निहार रहे थे, न किसीको भूख थी न प्यास थी ॥ २२ ॥ उस दिनसे ब्रजवासीं भूख प्यास तज चकोरकी नाईं श्रीकृष्णचन्द्रके चन्द्रमुखकोही देखतेरहे और श्यामसुन्दर भी सातदिन तक पर्वतको धारण किये एकही ठौर जहाँके तहाँ खड़े रहे, एक तिलभरभी चरणको नहीं सरकाया ॥ २३ ॥ और मेघ उसीप्रकार मूशलधार जल बरसातारहा ओले पडते रहे चपला चमकती रही परन्तु ब्रजका कुछ नाश नहीं हुआ, यह बात सुन इन्द्र चकित होगया और कृष्णके योगबलका प्रभाव देख अपने मनमें बडा आश्चर्य मानने लगा और अपनी प्रतिज्ञाकी अवज्ञा देख अत्यन्त व्याकुल हुवा और सब अज्ञान अभिमान धूलमें मिलगया, मेघोंको वर्जने

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ॥ वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥२३॥ कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येंद्रोऽतिविस्मितः ॥ निस्तंभो भ्रष्टसंकल्पः स्वान्मेघान्स न्यवारयत् ॥ २४ ॥ खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ॥ निशाम्योपरतं गोपान् गोवर्धनधरोऽब्रवीत ॥ २५ ॥ निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ॥ उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वंस्वमादाय गोधनम् ॥ शकटोढोपकरणस्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७॥ भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ १८ ॥

लगा कि अब तुम्हारा बल यहां नहीं चलैगा॥२४ ॥जब आकाशमें बादल छिन्न भिन्न होगये सूर्यनारायण उदय हुए भयानक वर्षा और पवन चलनेसे बन्द होगई, तब गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णमुरारीने गोपोंसे कहा कि ॥ २५ ॥ हे गोपो ! स्त्री, बालक, गाय, बछडोंको लेकर तुम इस पर्वतके नीचेसे बाहर निकलो डरो मत. अब पवन वर्षा थमगई, नदियोंका जल भी उतरगया ॥ २६॥ तब बांकेविहारीकी मधुरवाणी सुन सब गोप अपने अपने बाल बच्चे और गायोंके समूहोंको लेलेकर और गाड़ियोंमें सब वस्तु धर धरकर स्त्री, बालक, वृद्ध सब सहज सहजमें निकले ॥ २७ ॥ सर्व समर्थवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सब ब्रजवासियोंके सन्मुख पर्वतको जहांका तहां रखदिया ॥ २८ ॥

प्रेममें प्रफुल्लित हो सब ब्रजवासी परस्पर आनकर यथायोग्य मिलने लगे और स्नेहभरी गोपियें आनन्दपूर्वक दही, अक्षत, जलसे पूजनकर मांगलिक आशिषें देने लगीं ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी, नन्दराय और बलियोंमें बलवान् श्रीबलदेवजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर, स्नेहमें मग्न होकर बारम्बार आशीर्वाद देतेथे ॥ ३० इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! अन्तरिक्षमें देवताओंके समूह, साध्यगण, सिद्ध, गंधर्व, चारण सन्तुष्ट हो हो, स्तुति पढ़ पढ़ फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३१ ॥ हे राजन ! स्वर्गमें देवता शंख और दुन्दुभि बजानेलगे, तुम्बुरू आदि गन्धर्वपति श्रीमुकुन्दभगवान्के गुणानुवाद गानेलगे ॥ ३२ ॥ नंद उपनन्द बलराम सहित मनमोहनप्यारे मित्रोंको

तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरंभणादिभिः ॥ गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदा रोहिणी नंदो रामश्च बलिनां वरः ॥ कृष्णमालिंग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ३० ॥ दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगंधर्वचारणाः ॥ तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ॥ जगुर्गंधर्वपतयस्तुंबुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥ ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स्वगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ॥ तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायंत्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० गोवर्द्धनोद्धरणं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥ अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ॥ कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥

संगले ब्रजमें आये और गोपी परमानंद देनेवाली वनमाली श्रीकृष्णकी मनोहर मनोहर लीला गाती चली आती थी, इसप्रकार आनंद सहित सब अपने अपने घर आये ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोवर्द्धनोद्धरणं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा–छब्बिसमें हरिके चरित, विस्मय युक्त निहार। नन्द गर्गके वचन कह, वरणे यश विस्तार ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! गोपोंने गोवर्द्धन उठाना और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अनेक कर्म और प्रभाव देख बड़ा आश्चर्य मान नन्दरायजीके पास आनकर कहने लगे॥ १॥ कि, इस बालकके बड़े अद्भुत चरित्र हैं, इन्हें देखकर हमको संदेह होताहै कि, अपने स्वरूपके और इस ग्रामके रहनेवाले पुरुषोंमें इनका जन्म

होना कैसे संभवहै ? ॥ २ ॥ क्योंकि जो सातवर्षके बालकने एक हाथसे लीलापूर्वक जिसप्रकार हाथी कमलको उठा लेता है, उसीप्रकार पर्वतको उठालिया ॥ ३ ॥ और नेत्र मूंदे हुए अति छोटी अवस्थामें इस बालकने बडे वेगवाली पूतनाके स्तनोंको प्राण सहित पान किया था, जैसे काल यौवन अथवा आयुर्बलको पीताहै ॥ ४ ॥ देखो ! तीन महीनेके होके गाडियोंके नीचे पालनेमें सोतेहुए रोते रोते जो इस बालकने ऊपरको पाँव उछाले, तो चरणकी ठोकर लगकर गाड़ी उलटकर कैसी गिरी थी ? ॥ ५ ॥ और देखो ! जब एकही वर्षका कृष्ण आँगनमें बैठा खेल रहा था, तब आकाशमें दैत्य तृणावर्त्त इसे हरकर लेगया, उस दैत्यका गला घोटकर इसने कैसा मारा ? ॥ ६ ॥ और देखो ! कभी

यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ॥ कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३ ॥ तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ॥ पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४ ॥ हिन्वतोऽधःशयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ॥ अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥ एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ॥ दैत्येन यस्तृणावर्तमहन्कंठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ कचिद्धैयंगवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ॥ गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७ ॥ वने संचारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः ॥ हंतुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥ वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशंतं जिघांसया ॥ हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया ॥९॥ हत्वा रासभदतेय तद्बंधूंश्च बलान्वितः ॥ चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्कफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलंबं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ॥ अमोचयद्व्रजपशून्गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥ ११ ॥

जब कृष्णने माखन चुराया था, तब यशोदाजीने इसे ऊखलसे बाँध दिया इसके उपरान्त इसने वृक्षोंके बीच में आय, हाथोंसे उनको कैसा उखाड़ डाला ? ॥ ७ ॥ और देखो ! जब वनमें बलदेवजी सहित बछडे चराते थे उस समय बकासुर इनके मारनेको आया, उसको दोनों हाथोंसे चोंच पकड कैसे चीरडाला ? ॥ ८ ॥ देखो बछड़ोंमें बछडेका रूप धरकर मारनेकी इच्छासे आये हुए वत्सासुरको मार उसकी देहको लीलापूर्वक कैथके वृक्षपर कैसा पटका था ? और लीलासेही वह वृक्षपरसे फल भी गिरगये ॥ ९ ॥ इसकेउपरान्त बलदेवजी सहित धेनुकासुरको मार और उसके संगियोंको भी मार फल जिनमें पक रहे, उन तालोंको निर्भय कर दिया ॥ १० ॥ फिर महाबलवान् बलदेवजीसे अत्यन्त

भयानक प्रलम्बासुर दैत्यको मरवाय और ब्रजमें जो अग्नि लगी थी, उससे पशु तथा गोपोंको छुड़ादिया ॥ ११ ॥ फिर देखो ! इसी कृष्णने अति भयानक विषवाले कालीनागको दंड दे, उसके मदको दूरकर बलात्कार दहमें से निकाल यमुनाको निर्विष करदिया ॥ १२ ॥ नंद ! हम सब व्रजवासियोंका इनमें बड़ा अनुराग है. अर्थात् इतना प्यार होगया है कि, छुटायेसे छूटना अत्यन्त कठिन है और इन श्रीकृष्णका भी हममें स्वाभाविक प्यार है अर्थात् यह श्रीकृष्ण सबकी आत्मा हैं, यह शंका होती है ॥ १३ ॥ क्योंकि सातवर्षका बालक इतना बडाभारी पर्वत उठावे ? इसलिये हे व्रजनाथ ! तुम्हारे पुत्रमें हमको शंका उत्पन्न होती है कि, कदाचित् परमेश्वर न हों ? इसकारण हम इसका विचार करेंगे कि, तुम्हारे

आशीविषतमाहींद्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ॥ प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥ दुस्त्यजश्चानुरागो ऽस्मिन्सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ॥ नंद ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥१३ ॥ क सप्तहायनो बालः क महा द्रिविधारणम् ॥ ततो नो जायते शंका व्रजनाथ तवात्मजे ॥१४॥ नंद उवाच ॥ श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शंका च वोऽर्भके ॥ एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥१५॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन्गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य कचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १७ ॥ बहूनि संति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥

कैसा पुत्र हुआ है ॥ १४ ॥ इसप्रकार गोपोंकी बातें सुनकर नंदजी बोले कि, संदेह करनेकी कुछ बात नहीं है, मैं इस बालककी जन्मपत्री लाताहूँ, जो कि, गर्गाचार्यने बनाई है, यह कहकर जन्मपत्री ले आये और बोले कि हे गोपो ! मेरी बात सुनो, जिससे इस बालकमेंसे तुम्हारी शंका मिट जायगी, गर्गाचार्यने इस बालकका नाम धरकर मुझे जो जो गुण बताये हैं, सो श्रवण करो ॥ १५ ॥ इस बालकके तीन वर्ण हैं और युगयुगमें देह धारण करता है, प्रथम इसका श्वेतवर्णथा, फिर रक्त और श्यामवर्ण हुआ और अब इसने कृष्णरूप धारण किया है ॥ १६ ॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहाँ जन्म लिया है, इसलिये जाननेवाले इसको श्रीमान् वासुदेव कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके नाम और रूप बहुत हैं,

इसलिये जैसे जैसे इसमें गुण होंगे वैसे वैसे कर्म करेगा और उन्हींके अनुसार नाम होंगे ॥ १८ ॥ यह तुम्हारा कल्याण करेंगे और गोप तथा गायोंको आनंद देंगे, अधिक क्या कहैं ? इस कृष्णकी सहायतासे तुम संपूर्ण कष्टोंसे सहजमेंही छूट जाओगे ❋ ॥ १९ ॥ हे व्रजराज ! पहले तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्णने राजारहित पृथ्वीमें चोरोंसे पीडित साधुओंकी रक्षा की थी, तब साधुओंने वृद्धिको प्राप्त हो चोरोंको जीत लिया था ॥२०॥

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनंदनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिस्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ २० ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नंदात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्या नुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णम क्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥

जो बडभागी पुरुष इन श्रीकृष्णमें प्रीति करते हैं, उनको वैरी नहीं सन्ताप देते ! जिस प्रकार विष्णु भगवान्‌से रक्षित देवताओंको असुर नहीं सता सके ॥२१॥ इस कारण हे नंद ! तुम्हारा यह पुत्र गुण, शोभा, कीर्ति, प्रभाव इत्यादिमें नारायणके समान है इसके कर्मोंमें आश्चर्य मत मानना ॥ २२ ॥ इसप्रकार साक्षात् गर्गाचार्य मुझसे कहकर अपने घरको चले गये, उसी दिनसे बडे बडे कार्य करनेवालोंमें श्रीकृष्णको मैं नारायणका

* शंका–नन्दजीसे गर्गमुनिने कहा कि, श्रीकृष्णके कर्मको हम जानते हैं ससारमें और कोई भी नहीं जानता, यह बडे सन्देहकी बातहे इससे यह ज्ञात होता है कि, गर्गमुनि तो परमज्ञानी थे इनके सिवाय और जो ऋषि मुनि थे यह सब ब्राह्मण नहीं थे, गर्गमुनिकी बातोंसे ऐसा जान पडता है ।
उत्तर–सब ऋषि मुनियोंका निरादर करके गर्गमुनि ऐसी बात कभी नहीं कहसक्ते गर्गमुनिने (अह) पदका यह अर्थ किया कि, हमारी जाति जितनी है ससारमें मुनि, ऋषि, गृहस्थ, किशान, सब श्रीकृष्ण भगवान्‌के कर्मको जानते हैं यह अर्थ अहपद का किया, कुछ अपने अकेलेके लिये नहीं कहा ॥

अंश मानताहूँ ॥ २३ ॥ इसप्रकार व्रजवासियोंने गर्गाचार्यका वचन नंदरायजीसे सुन प्रसन्न हो नंदजीकी पूजा करी और श्रीकृष्णचंद्रमेंसे उनकी
शंका दूर होगई ॥ २४ ॥ यज्ञके नाशसे क्रोधित हो इन्द्रने सात दिन रात जब व्रजपर मूशलधार वर्षा की उस समय व्रज पत्थर पवनसे पीडित,
ग्वाल बाल पशु और स्त्रियोंको अपनी शरण आये देख जिन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको दया आगई और मुसकाकर जिसप्रकार बालक सर्पकी

इति नंदवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ॥ दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ॥ मुदिता नंदमानर्चुः कृष्णं च गत
विस्मयाः ॥ २४ ॥ देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मवर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकंप्युत्स्मयन् ॥
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलींध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेंद्रमदभित्प्रीयान्न इंद्रो गवाम् ॥ २५ ॥ इति
श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे गर्गगीतनिरूपणं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

छत्रीको उखाड डालता है, उसीप्रकार एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़ धारणकर 'व्रजकी रक्षा की' वही इन्द्रके मदको दूर करनेवाले गौवोंके
इन्द्र भगवान् वासुदेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों * ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गर्गगीतनिरूपणं नाम
षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

* शंका—सौ १०० यज्ञ करनेवाले राजा इन्द्रका तिरस्कार करके सुरभी जो गायें हैं उन्होंने अपना इन्द्र श्रीकृष्णको क्यों किया, इन्द्र तो तीनलोकमें एकही है हमने आजतक दूसरा इन्द्र सुना नहीं
फिर उन्होंने दूसरा इन्द्र क्यों किया ?
उत्तर—इन्द्रने गायोंका नाश करनेके लिये गोकुलमें बडी वर्षा की गायोंको मारना विचारा, इसलिये इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका विनाश होगया, इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका नाश होनेसे सुरभियोंने अपना
इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बनाया क्योंकि गायोंने विचारा कि, इन्द्र ऐसा चाण्डाल है कि, जिसने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये अधर्म नहीं देखा और गोहत्यासे भी नहीं डरा, तो और दूसरे कामसे क्या
डरेगा अबकी वार तो श्रीकृष्णचन्द्रने बचालिया यह दुष्ट ऐसा कर्म फिर कभी करैगा तो हमारी बछिया बछरे सब विध्वस हो जायँगे और वंशका नाश होजायगा, इसलिये कृष्णभगवान्को अपना इन्द्र बनाया॥

दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, लखि श्रीकृष्ण प्रभाव । गायइन्द्र अभिषेक पुनि, वरणों सहज स्वभाव ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर जो ब्रजकी रक्षाकी थी,सो देवराज इंद्रने जाकर सब बात कमलयोनि ब्रह्माजीको सुनाई, तब ब्रह्माजी बोले कि, इंद्र ! तैंने बडा अपराध किया, पहले मैं भी उनके गोप, ग्वाल, बछडे इत्यादि हरकर अपनी बूढी दाढीपर धूल डाल चुकाहूं, इसके उपरान्त स्वर्गलोकसे सुरभी गौ और इन्द्रलोकसे इन्द्र आये॥१॥और अपराध करनेके कारण अत्यंत लज्जित हो इन्द्रने एकान्तमें आय सूर्यके समान तेजवाले किरीटको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंसे लगाया॥२॥अमिततेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव जिस प्रकार कानोंसे श्रवण किया था,उसी प्रकार नेत्रोंसे देखा और उस समय "त्रिलोकीका ईश्वर मैं हूं" यह मद भी जातारहा, तब देवराज इन्द्र हाथ जोडकर बोले॥३॥इन्द्रने

श्रीशुक उवाच ॥ गोवर्धने धृते शैले असाराद्रक्षिते व्रजे ॥ गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥ विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ॥ पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥ नष्टत्रिलोकेशमद इंद्र आह कृतांजलिः ॥ ३ ॥ इंद्र उवाच ॥ विशुद्धसत्त्वं तव धाम शांतं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ॥ मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥ कुतो न तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिंगभावाः ॥ तथाऽपि दंडं भगवान्बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदंडः ॥ हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥

कहा कि, तुम्हारा स्वरूप शुद्ध सत्त्वगुणी है,अर्थात् एक रूप है,शांत सर्वज्ञ है,रजोगुण तमोगुणसे रहित है और मायाका जो कार्य्य अज्ञानसे जीवोंको लगरहा है, सो संसार है, यह तुम्हारे स्वरूपमें नहीं है ॥ ४ ॥ हे ईश ! देहसंबंध तुमको नहीं है तो उस देह बंधसे करेहुए और अन्य देहके कारण जो काम लोभादिक हैं सो कहाँसे होंगे बहुधा ऐसे काम लोभादिक तो अज्ञानी पुरुषोंको होते हैं, तुम्हारे काम लोभादिक तो नहीं हैं, परन्तु तोभी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका मद दूर करनेके लिये तुम दंड देते हो ॥ ५ ॥ तुम जगत्के पिता, गुरु और ईश्वर हो, नाश रहित, दंडके ग्रहण करनेवाले कालरूप हो, जीवोंका हित करनेके लिये और अपनेको ईश्वर माननेवालोंका मान दूर करनेके लिये अपनी इच्छापूर्वक रूप धरकर

लीला करते हो, तुम्हारी लीलामेंही हमारे मान दूर हो जाते हैं, लोकोंकी वाहवाहमें जीवोंका सत्यानाश हो जाताहै ॥ ६ ॥ जो मुझ सरीखे अज्ञानी भी आपको जगत्का ईश्वर मानते हैं, वे भयके समय भी निर्भय आपका दर्शन कर शीघ्र ही ईश्वरत्वका मद त्याग करदेते हैं और गर्वको छोडकर सत्पुरुषोंकी और तुम्हारी भक्तिको करते हैं, तुम्हारी सहजकी चेष्टा जो है, सोई दुष्टोंको दण्डरूप है ॥ ७ ॥ हे समर्थ ! ऐश्वर्यके मदमें डूबेहुए तुम्हारे प्रभावको न जान तुम्हारा अपराध करनेवाले मूढचित्त मेरे ऊपर क्षमाकरो, हे ईश्वर ! फिर मेरी ऐसी बुद्धि न हो; यही मैं प्रार्थना करताहूं ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज ! इससंसारमें तुम्हारा अवतार और बडा भार जिनसे हो ऐसे सैन्यपालन करनेवाले मुख्य सेनापति

ये मद्विधाऽज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ॥ हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजंत्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ॥ क्षंतुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ॥ चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥ स्वच्छंदोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥ मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायाऽऽसारवायुभिः ॥ चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥ त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तंभो हतोद्यमः ॥ ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥

योंको मारनेके कारण और तुम्हारे चरणोंका सेवन करनेवाले भक्तोंका कल्याण करनेके लिये है ॥ ९ ॥ ऐसे जो तुम भगवान् महात्मापुरुष हो, सो तुम्हारे लिये नमस्कार है, शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक भक्तोंके रक्षक, वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १० ॥ अपने भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये देह धरनेवाले और शुद्ध ज्ञानमूर्ति सर्वरूप सबके कारण सब प्राणियोंके अत्मा तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जब मेरा यज्ञ नाशको प्राप्त हुवा तब बडा क्रोध कर मुझ अज्ञानी अभिमानीने ब्रजका नाश करनेके लिये वर्षा और पवन चलाकर करनेके अयोग्य कार्य किये ॥ १२ ॥ यह आपने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया जो मेरा गर्व दूर कर दिया, उद्यम भी वृथा गया,

तुम सबके ईश्वर आतमा हो, इसलिये मैं तुम्हारी शरण प्राप्त हुवा हूं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,इस प्रकार जब देवराज इन्द्रने स्तुति करी,तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर मेघके समान गंभीरवाणीसे इन्द्रसे बोले ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे इन्द्र ! मैंने तेरे ऊपर अनुग्रह करनेहीके लिये यज्ञका विध्वंस किया है, क्योंकि तुम देवताओंका राज्य पाकर अचेत हो गये थे, सो अपना स्मरण करानेके लिये यह मैंने किया ॥ १५॥ क्योंकि ऐश्वर्यमद और धनमदसे अंधे हुये पुरुष दण्ड हाथमें लिये मुझे नहीं देखते और जिसके ऊपर मैं कृपा करनेकी इच्छा करताहूं, उस पुरुषकी प्रथम संपत्ति हरलेताहूं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, अहंकार त्यागकर मेरी आज्ञाका पालन करना और साव

श्रीशु उवाच ॥ एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ॥ मेघगंभीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ मया तेऽकारि मघवन् मखभंगोऽनुगृह्णता ॥ मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येंद्रश्रिया भृशम् ॥ १५ ॥
मामैश्वर्यश्रीमदांधो दंडपाणिं न पश्यति ॥ तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां शक्र
भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ॥ स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तंभवर्जितैः ॥ १७ ॥ अथाह सुरभिः कृष्णम
भिवाद्य मनस्विनी ॥ स्वसंतानैरुपामंत्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्णकृष्ण महायोगिन्
विश्वात्मन् विश्वसंभव ॥ भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इंद्रो जगत्पते ॥
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥ इंद्रं नस्त्वाऽभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा चोदिता वयम् ॥ अवतीर्णोऽसि
विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥

धान होकर, अपने अधिकार पर रहना ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त जब इन्द्र स्तुति कर चुका तब उदारचित्त सुरभी गौने अपनी संतान सहित आकर गोपरूपी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार और संबोधन देकर कहा कि, ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वको उत्पन्न करनेवाले ! हे अच्युत ! हे अखण्डरूप ! इन्द्रने तो हमें माराही था परन्तु हे लोकोंके नाथ ! आपने बचाया ॥ १९॥ हे जगत्पति ! तुम हमारे श्रेष्ठ देवता हो और तुम्हीं गौ ब्राह्मणके देवताहो और जो साधु हैं उनके कल्याणार्थ हमारे इन्द्र होओ॥२०॥ब्रह्माजीकी हमें आज्ञा हुई है, इसकारण

इन्द्रपदवी देनेके लिये हम तुम्हारा अभिषेक करेंगी। हे विश्वके आत्मा! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तुमने अवतार लिया है ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्! इसप्रकार कहकर श्रीकृष्णचन्द्रका; यह कामधेनु अपने दुग्धसे अभिषेक करनेलगी और ऐरावत हाथीकी सूंडसे लाये आकाशगंगाके जलसे अभिषेक किया ॥ २२ ॥ और इन्द्रने भी देवमाताओंकी प्रेरणासे देवर्षियोंके सहित भगवान्का अभिषेक किया और गोविन्द नाम धरा ॥२३॥ और दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उस समय तुंबुरु, नारदादि, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण आनकर लोकोंके पापोंको दूर करनेके लिये भगवान्का यश गाने लगे और अति आनंदित होकर देवांगनायें नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृष्णमुपामंत्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ॥ जलैराकाशगंगाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥ २२ ॥ इंद्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ॥ अभ्यषिंचत दाशार्हं गोविंद इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुंबुरुनारदादयो गंधर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुरांगनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥ तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ॥ लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन्पयोद्रुताम् ॥ २५ ॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन्मधुस्रवाः ॥ अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनंदन ॥ निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥

इसके उपरान्त देवताओंमें मुख्य देवता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति और अद्भुत फूलोंकी वर्षा करनेलगे, उस समय तीनोंलोक परम आनंदको प्राप्त होगये। फिर गौ दूधसे पृथ्वीको भिजोने लगीं ॥ २५ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविंदाभिषेक किया, उस समय नदियें अनेक प्रकारके रसोंकी बहनेवाली होगईं और वृक्षोंमेंसे मदकी धारा चूने लगी, बिना जोते खेत भी आपही पकने लगे और पर्वतोंने अपनी गुफाओंमेंसे मणियोंको बाहर निकालकर धर दिया ॥ २६ ॥ हे कुरुकुलके आनंददाता परीक्षित्! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक हुआ, उस समय

क्रूरस्वभाववाले सिंहादिक जीवोंका भी वैरभाव दूर होगया ॥ २७ ॥ इसप्रकार गोकुलके रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको गोविंदाभिषेक कर वह इन्द्र देवताओंको संग ले स्वर्गको चलागया ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोविंदाभिषेको नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ दोहा-अट्ठाइसमें नन्दको, लाये कृष्ण छुटाय ॥ गोपोंको वैकुण्ठ सब, हितकरि दियो दिखाय ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजन्! नन्दजीने एकादशीका निराहार व्रत करके भगवान्का पूजन किया, दूसरे दिन द्वादशी दो घड़ी थी उस समय पारण करनेके लिये अरुणोदयसे पहले

इति गोगोकुलपतिं गोविंदमभिषिच्य सः ॥ अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥२८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० इंद्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ स्नातुं नंदस्तु कालिंद्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोंतिकम् ॥ अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥ चुक्रुशुस्तमपश्यंतः कृष्ण रामेति गोपकाः ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ ३ ॥ तदंतिकं गतो राजन्स्वानामभयदो विभुः ॥ प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ॥ महत्या पूजयित्वाऽथ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥

रात्रिमें धर्मसत्रके बलसे स्नान करनेके कारण यमुनाको गये, तब नंदरायजीने आसुरीवेलाको न जानकर यमुनाजीमें प्रवेश किया * ॥ १ ॥ इसलिये वरुणका एक दैत्य सेवक उन्हें पकड़ वरुणके पास लेगया ॥२॥ नंदरायजीको न देख जो गोप संग गयेथे वह हे कृष्ण! हे राम! इस प्रकार पुकारनेलगे, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, पिताको वरुण लेगया यह बात सुन अपने भक्तोंको अभयके देनेवाले वरुणके पास गये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेसे बडा आनंद पाय लोकोंके पालन करनेवाले वरुणजीने इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आये देख, बड़ी

* शंका-भागवतमें लिखा है कि, नन्दजी एकादशीका व्रत करके जब चार घडी पिछलीरात रही तब भगवान्की पूजा करके यमुनामें स्नान करने गये, इसमें यह शका होती है कि, विना स्नान किये भगवान्का पूजन कैसे किया क्योंकि जो प्राणी विना स्नान किये भगवान्का पूजन करताहैं तो महादोष होताहै ?

उत्तर-महात्मा पुरुष भगवान्का पूजन ऐसे नहीं करते, मानसिक पूजन करते हैं, मानसिक पूजनमें भगवान् प्रसन्न भी होते हैं, इसलिये नन्दजी मानसिक पूजन भगवान्का करके पीछेसे स्नानको गये ॥

पूजाकी सामग्रियोंसे पूजा करके कहा ॥ ४ ॥ वरुणजी बोले कि, आज तुम्हारे दर्शन करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ और आजही मेरे मनोरथ भी सफल हुये, हे भगवन् ! तुम्हारे चरणारविन्दोंका जो भजन करते हैं,वह संसारके पार हो मोक्षको प्राप्त होजाते हैं ॥ ५ ॥ परिपूर्णरूप, संपूर्ण जीवोंके साक्षी जिनके समान किसीका ऐश्वर्य नहीं, ऐसे भगवान्को नमस्कारहै और जिनके स्वरूपमें लोकोंकी रचना करनेवाली माया नहीं सुनी जाती ॥ ६ ॥ धर्मकी महिमा और कार्यको नहीं जाननेवाला मूढ मेरा अनुचर तुम्हारे पिताको ले आया, सो अपराध क्षमा करो ॥७॥हे श्रीकृष्ण! मेरे ऊपर तुम अनुग्रह करनेके योग्य हो, गोविंद ! हे पितृवत्सल ! अपने पिताको तुम ले जाओ ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ

वरुण उवाच ॥ अद्य मे निभृतो देह अद्यार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः॥५॥नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ॥ न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥ अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना॥ आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥ ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ॥ गोविंद नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ॥ आदायागात्स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥ नंदस्त्वतींद्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ॥ कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत्॥ ॥ १० ॥ ते त्वौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ॥ अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इति स्वानां स भगवान्विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ॥ संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिंतयत् ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! इसप्रकार ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जब वरुणजीने प्रसन्न किया,तब अपने पिता और बंधु बांधवोंको आनंद देते वहाँसे चले ॥ ९ ॥ जो प्रथम कभी देखनमें न आया,ऐसा वरुणका ऐश्वर्य और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी प्रीति देख नन्दरायजी अति आश्चर्य मान अपनी जातिके गोपोंसे कहने लगे कि,प्रथम मुझे ले जाकर एक कोनेमें बैठाय दिया, इसके उपरान्त यह कृष्ण गया,तब इसे देख वरुणने नमस्कार करके पूजा की ॥ १० ॥ हे राजन् ! उत्कण्ठायुक्त बुद्धिसे ब्रजवासी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ईश्वर मान विचार कर कहने लगे कि, श्रीकृष्णचंद्र क्या हमको वैकुण्ठधाम प्राप्त करेंगे ? ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करावेंगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार सबके देखनेवाले भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्र अपने व्रजवासियोंका मनोरथ जान उसे पूर्ण करनेके लिये कृपाकरके यह विचार करनेलगे ॥१२॥ कि,इस संसारमें प्राणी देहमें अहंकार काम, कर्म इत्यादिसे देवता, पशु, पक्षी आदि जो जो योनि हैं, उनमें भटकता फिरता है और अपना स्वरूप नहीं जानता॥१३॥ इस प्रकार करुणा निधान भगवान्ने विचारकर गोपादि सब व्रजवासियोंको ब्रह्मरूप दिखाया और इसके उपरान्त मायासे परे जो वैकुण्ठधाम है उसका दर्शन कराया ॥१४॥ अब ब्रह्म स्वरूपका वर्णन करते हैं, सत्य अर्थात् बाधारहित ज्ञानस्वरूप है, अनंत अर्थात् गननेमें न आवे, ज्योति अर्थात् स्वयं प्रकाश है, गुणोंके निषेधमें सावधान मुनीश्वर उस रूपको देखते हैं ॥१५॥ वह संपूर्ण व्रजवासी ब्रह्मस्वरूप देहमें प्राप्त होते ही मग्न होगये, फिर भग वान् श्रीकृष्णचन्द्रने कृपा कर वहाँसे निकाल वैकुण्ठलोक दिखाया,जहाँ प्रथम महात्मा अक्रूरजी गये थे,यहाँ शंका है कि,ब्रह्ममें डूबे को वैकुण्ठलोकका

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः॥उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन्॥१३॥ इति संचिंत्य भगवान्महा कारुणिको हरिः ॥ दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्॥१४॥ सत्यं ज्ञानमनंतं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्॥यद्धि पश्यंति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥१५॥ ते तु ब्रह्महदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ॥ ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राऽक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥ नंदादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानंदनिर्वृताः ॥ कृष्णं च तत्र च्छंदोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥ इति श्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दानयनवैकुण्ठप्रदर्शनं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥ वीक्ष्य रंतुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥१॥

दर्शन नहीं बनता तो इसके उत्तरमें कहतेहैं कि,जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे पहले अक्रूरजीने दर्शन किया था, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे इन लोगोंने दर्शन किया, क्योंकि अचिन्त्य ऐश्वर्यमान भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें कुछ यह बात अनुचित नहीं है ॥१६॥ हे नृप ! वहाँ वेदोंसे होती हुई श्रीकृष्णचन्द्रभगवान्की स्तुति देख और नंदादि सब व्रजवासियोंने वैकुण्ठ धामका दर्शन कर परमानंदसे सुखी हो बड़ा आनन्द प्राप्त किया ॥१७॥ इति श्रीमद्भागवते महारापुणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां नन्दानयनवैकुण्ठप्रदर्शनं नामाष्टविंशोऽध्यायः॥ २८ ॥ दोहा--उनतिसमें हरिने कियो, रास विलास बनाय । अन्तर्धान भये तुरत, सबन वहीं छिटकाय ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! गोपकन्याओंसे जिन

रात्रियोंकी प्रतिज्ञा की थी जब वही शरदृतु आनकर उपस्थित हुई कि जहाँ तहाँ चमेली खिलरहीं थीं उन रात्रियोंको देख योगमायाका आश्रय ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रमण करनेका मनोरथ करने लगे ॥ १ ॥ और उसी समय सुखदायक किरणोंसे पूर्वदिशाके मुखको अरुण करते भगवान् चन्द्रमा उदय हुये, जैसे परदेशसे बहुत दिनोंमें पुरुष आकर अपनी प्यारीके मुखको केशर लगाकर लाल करता है ॥ २ ॥ परिपूर्ण मंडल और लक्ष्मीके मुखके समान कांति नवीन केशरकी तुल्य अरुण चन्द्रमाको देख और राकाकी कोमल किरणोंसे रंगे वृन्दावनको देख भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र स्त्रियोके मनहरण करनेवाले कलरवसे गीत गानेलगे, इस कलरवमेंसेही बीजमंत्र 'क्लीं' निकलता है ॥३॥ प्रेमात्मक कामको बढ़ानेवाले गीतको श्रवणकर श्रीकृष्णचन्द्रनें जिनके मन हर लिये हैं वह स्त्रियें जहाँ पति श्रीकृष्णचन्द्र थे वहाँ आईं और अरी किशोरी वहां चलैगी, इस प्रकार परस्पर

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिंपन्नरुणेन शंतमैः ॥ स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घ दर्शनः ॥२॥ दृष्ट्वा कुमुद्वंतमखंडमंडलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ॥ वनं च तत्कोमलगोभिरंजितं जगौ कलं वाम दृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनंगवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ॥ आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्य माः स यत्र कांतो जवलोलकुंडलाः ॥ ४ ॥ दुहंत्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः ॥ पयोऽधिश्रित्य संयाव मनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥ परिवेषयंत्यस्तद्धित्वा पाययंत्यः शिशून्पयः ॥ शुश्रूषंत्यः पतीन् काश्चिदश्नंत्योऽपास्य भो जनम् ॥ ६ ॥ लिंपंत्यः प्रमृजंत्योऽन्या अंजंत्यः काश्च लोचने ॥ व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णांतिकं ययुः ॥ ७ ॥

कह अत्यन्त शीघ्रतासे चलीं, चलती समय उनके कानोंके कुण्डल हिलते जाते थे ॥ ४ ॥ कितनीहीं गोपियें उत्कण्ठाके मारे दूहतीहुई गायोंको छोडकर चली आईं और दूसरी चूल्हे पर चढेहुए दूधको वैसाही छोडकर चलीं, बहुत गोपियें गेहूंका पकाहुआ पदार्थ चूल्हेपरही छोडकर चलदीं॥५ ॥ कितनीही एक पत्तल परोसती थीं सो वंशीकी ध्वनि सुनतेही छोडकर चलीं आईं और कितनी एक गोपी अपने देवर जेठके बालकोंको दूध पिलातीथी, उनको छोड आई, कोई कोई गोपी अपने पतिकी सेवा करनेसेही चलीं और कोई कोई भोजन करनेसेही चली आईं ॥ ६ ॥ कोई २ गोपी घरोंको लीपतीं, कोई नेत्रोंमें अंजन लगाती, कोई पाँवोंके गहने हाथोंमें पहर और हाथोंके पावोंमें पहर, लहँगा ओढ़, ओढ़नी पहर, भगवान्

मुरली मनोहरके पास आई ॥ ७ ॥ "यद्यपि गोपियोंके शृंगार उलटे पुलटे थे, परन्तु तोभी योगमायाने सुधार दिये थे" * यद्यपि पति, पिता, माता, भ्राता और जातियोंने मनेभी किया परन्तु तो भी भगवान् केशवमूर्तिने जिनके मन हरलिये थे, उन गोपियोंने किसीका कहना नहीं माना ॥ ८ ॥ किसी गोपीको उनके पुरुषोंने घरमें बन्द करदिया, जब निकलनेका मार्ग न मिला तब उनने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इच्छाकर आँखें मूँद उनका ध्यान किया ॥ ९ ॥ सहन न किया जाय, ऐसे प्यारेके विरहरूप तापसे पाप जिनके दूर होगये और ध्यानमें प्राप्त हुए भगवान्

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ॥ गोविंदापहृतात्मानो न न्यवर्तंत मोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ॥ कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥ दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ॥ ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमंगलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ॥ जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णं विदुः परं कांतं न तु ब्रह्मतया मुने ॥ गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करके, सुखके पुण्यसे बंधन उनके दूर होगये, ऐसे अत्यन्त विरहके दुःख और श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्राप्तिके भोगसे एक संगही सब प्रारब्धकर्म क्षीण होजानेसे मुक्त हुईं ॥ १० ॥ जारबुद्धिसे परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको पाय बंधन जिनके कटगये, ऐसी गोपियोंने गुणोंके बने देहको तत्कालही त्याग दिया और दिव्य देह धारण कर सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं ॥ ११ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे महाराज ! वह गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको केवल जार मानतीथीं, ब्रह्मपनसे उनको किंचित् भी भाव नहीं था, फिर

* दृष्टान्त-जैसे आठ छल शैर करनेको निकले बागमें जाकर कहा कि, भांग बनावो, सो मीठीही छानी और मिठाईके लालचसे तीन २ लोटे गडगप्प करगये अर्थात् पीगये, एक मित्र उनमें चतुर था, तो इसने मनमें विचार किया कि, अभ्यास तो है नहीं और तीन तीन लोटे चढागये हैं, जब यह वेसुधि होजायँगे तो इन्हें कौन सँभालेगा ? उसने एक चुल्लूमरही पी थी, अब चढा जो नशा तो किसीकी तो पाग गिरगई किसीका पटका खुलगया, किसीकी धोती खुलगई और जिस्को नशा नहीं था उसने सबको सँभाल लिया इसी प्रकार योगमायाने सबको सुधार दिया ॥

गुणमय बुद्धिवाली उन गोपियोंके गुणोंका प्रवाह संसारसे कैसे छूटगया ? ॥१२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह बात मैंने आपसे प्रथमही वर्णन की थी कि, जब शिशुपाल, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे शत्रुभाव रखता हुआ भी मुक्तिको प्राप्त हुआ, तब प्रीति करनेवाली गोपियोंके तरनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥१३॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियन्ता श्रीकृष्णचन्द्रका जो प्रगट होना है, सो पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये है, इस कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जीवके समान कहना संभव नहीं ॥ १४ ॥ काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकभाव

श्रीशुक उवाच ॥ उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ॥ द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ॥ अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ॥ नित्यं हरौ विदधतो यांति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ॥ योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वांतिकमायाता भगवान्व्रजयोषितः ॥ अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ॥ व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥

सौहृद जो पुरुष नित्य भगवान् वासुदेवमें करते हैं, वह पुरुष तन्मय होजाते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! अजन्मा योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें तुम आश्चर्य मत करो, क्योंकि उनमें प्रेम करनेसे स्थावरभी संसारसे छूट जाते हैं ॥ १६ ॥ * बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजकी स्त्रियोंको अपने पास आया देख वाणियोंके विलाससे मोहित करके कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे बड़भागिनियो ! भली आईं आओ मैं तुम्हारा क्या आदर करूं ? व्रजमें तो कुशल है और यहां कैसे आईं इसका कारण कहो ॥ १८ ॥

* दृष्टांत–प्रेमसे भावसहित श्रीनारायणकी कथा सुन ले, कहीं श्रीमद्भागवतकी कथा बैठी थी, किसीने कहा लालाजी सुननेको चलो लालाजीने उत्तर दिया कि, जब दशमस्कन्ध प्रारम्भ होगा तब चलेंगे, फिर जब दशम होने लगा तो लालाने कहा कि, पचाध्यायीमें चलैंगे जहाँ श्रीकृष्णने, लाखों गोपी बुलाकर उनके संग विहार किया, हम भी वैसाही करैंगे, जैसे वीर पुरुष कडखे सुनकर आगे बढते हैं, उसीप्रकार विषयी विषयसे और जगह जो मात्र बिगडे तो ठिकाना लग भी जाय और जो साक्षात् कृष्णकांता त्रैलोक्य जननीमें भाव बिगडा तो उसका सत्यानाशही हो जाता है ॥

क्योंकि यह भयानक रात्रि है, सिंह, व्याघ्रादि घोर प्राणी यहाँ फिरते हैं, इसकारण तुम अपने घरको जाओ, हे सुमध्यमे ! स्त्री जाति होकर यहाँ मति रहो ॥ १९ ॥ देखो तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भ्राता, पति तुमको विना देखे ढूँढ़ते होगे इसलिये बन्धुओंको घबराहट मत करो ॥ २० ॥ क्योंकि फुलवार जिसमें फूल रही चन्द्रमाकी किरणोंसे रँगाहुआ यमुनासे लग मंद पवनसे हिलनेवाले वृक्षोंके पातसे शोभायमान वन तुमने भली भाँति देख लिया ॥ २१ ॥ इस कारण तुम व्रजमें जाओ, अब विलम्ब मत करो, तुम पतिव्रता हो पतियोंकी सेवा करो, क्योंकि वहाँ बछड़े रम्भाते होंगे, बालक रोते होंगे, जाओ ! बालकोंको दूध पिलावो और गायोंको दुहो ॥२२॥ अथवा मेरे स्नेहसे वशीभूत अंतःकरणसे तुम आईं, सो तुमको

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ॥ प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ॥ विचिन्वंति ह्यपश्यंतो मा कृध्वं बंधुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररंजितम् ॥ यमुनाऽनिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः ॥ क्रंदंति वत्सा बालाश्च तान्पाययत दुह्यत ॥ २२ ॥ अथवा मदभिस्नेहाद्भवंत्यो यंत्रिताशयाः ॥ आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयंते मयि जंतवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥ तद्बंधूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ॥ पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ॥ जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियः ॥ २६ ॥

योग्यही है, क्योंकि सब जीव मुझमें प्यार करते हैं ॥ २३ ॥ हे मंगलरूपिणियो ! निष्कपट होकर पतियोंकी सेवा करो, देवरोंकी सेवा करो, और पुत्रोंका पोषण करो, यही स्त्रियोंका परम धर्म है ॥ २४॥ यदि कदाचित् अपना पति खोटे स्वभावयुक्त हो, दुर्भाग्य हो अथवा वृद्ध हो, मूर्ख हो, रोगी हो, दरिद्री हो तोभी स्वर्गकी जिनको चाहना है, ऐसी स्त्रियोंको त्यागने योग्य नहीं है और जो पतित हो तो त्यागने योग्य है ॥ २५ ॥ कलियुगकी स्त्रियोंको उपपतिके सेवन करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता बरन यश जाता है, इसलिये उपपतिका सेवन तुच्छ है, दुःखका देनेवालाहै और

सर्वत्र निंदाके योग्य है ॥ २६ ॥ जिसप्रकार भाव मुझमें श्रवण दर्शन ध्यान कीर्त्तनसे रहता है, वैसा पास रहनेसे नहीं होता इसलिये अपने घरको जाओ ❀ श्रीकृष्णचन्द्रने इसकारण गोपियोंसे जाओ जाओ कहा कि, जो मैं इनसे कहूंगा तुम मेरे साथ विहार करो तो यह गालियें देंगी और निकट भी न आवेंगी इससे प्रथमही इनके मानखंडन करूं तो फिर यह आपही मेरा पल्ला पकडेंगी+ ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! इसप्रकार गोपिये गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अत्यन्त दुःखित हुईं और मनोरथके सिद्ध न होनेसे बड़ी चिन्ता करनेलगीं ॥ २८॥ चिन्ताके

श्रवणाद्दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविंदभाषितम् ॥ विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्बिंबाधराणि चरणेन भुवं लिखंत्यः ॥ अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजंत्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ॥ नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्संरंभगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥

श्वाससे कुंदुरूके फलके समान उनके अरुण होठ सूख गये और अपने अपने मुखोंको नीचाकर चरणके अँगूठेसे धरतीपै लिखने लगीं और रुदनके कारण नेत्रोंसे कज्जलसहित जो आँसू निकलरहे थे उनसे कुचोंकी केशर धुलगई, तब अति दुःखके बोझसे गोपी चुपचाप होकर खड़ी होगईं ॥ २९ ॥ जिनके लिये गोपियोंने सब घरबार छोड़दिये, उन अपने परमप्रीतम श्रीकृष्णचन्द्रके कठोर वचन सुन प्रेमभरी गोपियें रोनेके कारण

* दृष्टान्त–देखो स्त्रियोंको पतिव्रताधर्म पालन करना चाहिये, पतिव्रताओंकी बडी महिमा है। एक स्त्रीका गोदीमें उसका पति शिर धरे सो रहाथा, उसका बालक खेलते खेलते अग्निमें जा पडा स्त्रीने यह देख पतिकी निद्रा भग न हो, यह विचार अपना धुटुआ न उठाया और अग्नि पतिव्रताके शापके भयसे शीतल होगई

श्लोक–सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता ॥ अभूत्तदानीं व्रतभंगशंकया हुताशनश्चंदनपंकशीतलः ॥ १ ॥ इस कारण हे सखियो! अपने पतियोंके पास जाओ ॥

+ दृष्टान्त–श्रीकृष्णने वंशी बजाते तो बजादी और जब लाखों गोपियोंने आनकर घेरलिया, तब बुद्धि विहारी होगई, जैसे किसीके बालक घरमें रुईका फोहा जलाते हैं और फिर प्रसन्न होते हैं, सो बाजारमें किसी साहूकारकी दूकानमें लाख रुपयेकी रुईका ढेर लगा देख उन्होंने मनमें विचार किया कि, इसमें बडा तमाशा होगा सो ढेरमें आग लगा दी जब वह ढेर थोडा२ जला तबतक तो ताली बजाते रहे और जिस समय आग भडककर ऊची ऊची लपटें निकलीं तब घबरागये, इसीप्रकार श्रीकृष्णकी दशा हुई, जब एकाधु गोपीको कहीं देखपाते, तब तो प्रसन्न होते अब लाखों गोपियोंको देख घबराकर घर जानेको कहा॥

आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंको पोंछ कुछेक क्रोधित हो गद्गद कंठसे बोलीं ॥ ३० ॥ कि, हे समर्थ ! "जाओ जाओ" ऐसे कठोर वचन मत कहो, क्योंकि हम सब विषयोंको त्यागकर केवल तुम्हारेही चरणोंका सेवन करती हैं. हे दुराग्रही ! हमको मत त्यागो, जैसे आदिपुरुष भगवान्‌की शरण सर्व त्याग नकर मुमुक्षुलोग जाते हैं मुमुक्षु पुरुषोंको वह भजतेहैं. उसीप्रकार तुम्हारे लिये सर्वस्व त्यागकर हम आई हैं. इसलिये हमारा सेवन करो, त्यागो मत ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण धर्मवेत्ता ! तुमने कहा, पति पुत्र सुतोंकी सेवा करो, यह स्त्रियोंका परमधर्म है जो कहा, सो हमारी धर्म सुननेकी इच्छा नहीं है क्योंकि हमें चाहना नहीं है, तुम धर्मके उपदेश करनेवाले नहीं हो किन्तु देहधारियोंके प्यारे हो आपने कहा पति आदिकोंकी सेवा करना धर्म है, सो आत्मासहित पति आदिक प्रिय लगते हैं स्त्रीको पति प्यारा लगता है. आत्मासे लगता है सो आत्मा जब निकल जाता है, पीछे इस देहको

गोप्य ऊचुः ॥ मैवं विभोर्हति भवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ॥ भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ॥ अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनभृतां किल बंधुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वंति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥ तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिंद्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविंदनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ॥ पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४ ॥

बांधकर लेजाते हैं और जला देते हैं, सो सबके आत्मा तुम हो, तुम्हारे सेवन करनेसे हमें सब धर्म स्वयं प्राप्त होजायँगे, क्योंकि सब उपदेशवाक्य ईश्वरकी सेवा करनाही परमधर्म बताते हैं, इसकारण तुम सब जीवोंके आत्मा होनेसे परमबंधु ईश्वर हो तुमसे जो जीव बहिर्मुख हैं सो दग्ध होनेके योग्य हैं ॥ ३२ ॥ अपने आत्मा नित्य प्यारे तुम हो तिनमें विवेकीपुरुष प्रीति करते हैं, दुःखके देनेवाले पति पुत्रादिकोंसे क्या प्रयोजन है ? इसकारण तुम हमपर प्रसन्न हो. हे ईश्वर कमलदललोचन ! बहुत दिनोंसे तुममें आशारूपी लता लगाई है, उसे "जाओ जाओ" ऐसे कुठाररूप वचनसे कैसे काटते हो ? देखो ! विषके वृक्षको भी आप बढ़ाकर विवेकी नहीं काटते हैं ॥ ३३ ॥ तुमने कहा, जाओ सो हम कैसे

जायँ ? क्योंकि जो चित्त सुखपूर्वक घरमें लगरहा था, सो तुमने हर लिया और जिन हाथोंसे घरका काम करती थीं, सो तुमने हर लिये, तब श्रीकृष्ण चन्द्रने कहा कि, हे गोपियो ! अब तुम जाओ, परसोंके दिन तुम सबके चित्त विचार कर देंगे, तो गोपियोंने कहा कि, तुम्हारे चरण छोडकर हमारे पाँव एक पग भी नहीं चलसक्ते व्रजमें कैसे जायँ ? और जाकर हम क्या करें ? ॥ ३४ ॥ हे सखे ! आपके हास्य, दर्शन और मधुरगीतसे उत्पन्नहुई हमारी कामाग्निको तुम अपने अधरामृतरूप पिचकारीसे शान्तकरो, नहीं तो हम एक तो कामकी अग्नि और दूसरी विरहकी अग्नि इन दोनोंसे दग्ध

सिंचांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ॥ नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥ यर्ह्यंबुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमंग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥ श्रीर्यत्पदांबुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ॥ यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

शरीर हो योगीजनोंकी नाईं तुम्हारे ध्यानसेही तुम्हारे चरणोंके निकट पहुँच जायँगी * ॥३५॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, तुम अपने पतियोंके पास जाओ, वही तुम्हारी कामाग्नि बुझावेंगे, इसके उत्तरमें गोपी कहती हैं कि, हे कमलदललोचन ! वनवासी जिन्हें प्रिय हैं, ऐसे तुम हो और लक्ष्मीजीको किसीसमयही जिनकी सेवा प्राप्त होतीहै, ऐसे तुम्हारे चरणोंके तलुए हमने जबसे स्पर्श किये, उसी दिनसे उनका सुख अनुभव किया और उसी दिनसे औरके सन्मुख भी खडी नही होसक्तीं ॥ ३६ ॥ यद्यपि लक्ष्मीजी सदा वक्षस्थलमें रहती हैं परन्तु तो भी जिसका भक्तलोग सेवन

---

* शंका—जैसे कामदेवसे पीडित होकर मनुष्योंकी स्त्री ओष्ठ चुम्बन करनेके लिये मनुष्योंकी विनती करती हैं और गोपी तो मोक्षका रूप थीं परन्तु कामकी शांति करनेकी पूर्ण ब्रह्म सरीखे जो श्रीकृष्ण हैं उनसे ओष्ठ चुम्बन करनेके लिये याचना क्यों की ?

उत्तर—गोपियोंने विचार किया कि, हम कुछ पढी नहीं और श्रीकृष्णकी जैसे विद्वान लोग स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति हम भी किया चाहती हैं, परन्तु विना विद्या हम कैसे स्तोत्रोंसे स्तुति करें ? परन्तु हमने ऐसा भी सुना है कि, श्रीकृष्णके ओष्ठोंमें सरस्वतीका वास है जो हमारे सबके ओष्ठोंसे श्रीकृष्णके ओष्ठ छुइ जायँ तो हम सब विद्यावान् होजायँगी, तब अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भगवान्‌की स्तुति हम भी विद्वानोंकी सदृश किया करेंगी, कामदेवकी पीडासे कृष्णके ओष्ठोंका चुम्बन करना नहीं चाहती थीं ॥

करते हैं, ऐसी तुम्हारे चरणकी रेणुको तुलसीने सौत सहित चाहना की, जिस लक्ष्मीजीकी चितवनके लिये और देवता तप करके परिश्रम करते हैं उन्हीं लक्ष्मीकी समान हम भी तुम्हारे चरणकी रजको प्राप्त हुई हैं, अर्थात् शरण ली है ॥३७॥ हे दुःखके काटनेवाले ! तुम्हारे भजनेमें आशा लगाये हम घर छोडकर तुम्हारे चरणोंके पास आई हैं तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होओ, तुम्हारी सुन्दर मुसकान चितवनसे बढे कामदेवसे तपित देह हमको अपनी दासी करके स्थान दीजिये ॥ ३८ ॥ अलकावली जिसपर छूट रहीं और कुण्डलोंकी कान्तिसे युक्त कपोल अमृतभरे ओष्ठमें हास्य सहित चितवनवाले तुम्हारे मुखको देख और भक्तोंके अभयदान देनेवाले तुम्हारे दोनों भुजदण्डोंको देखकर लक्ष्मीको एकही प्रीतिके उपजानेवाले तुम्हारे

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेंऽघ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ॥ त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥३८॥ वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ॥ दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥ का स्त्र्यंग ते कलपदायतवेणुगीतसंमोहिताऽऽर्य चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ॥ त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ॥ तन्नो निधेहि करपंकजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥

वक्षस्थलको देख हम तुम्हारी दासी होती हैं, हे कृष्ण ! मनोहर पदवाले बड़े बाँसुरीके गीतसे मोहित होकर त्रिलोकीमें ऐसी कौन स्त्री है जो अपने धर्मसे चलायमान न हो, त्रिलोकीमें सुन्दर इस तुम्हारे रूपको देख गौ, पक्षी, मृग यह भी रोमांचित होजाते हैं, फिर हम इस मनमोहनरूपसे मोहित होगईं तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? तुम्हारा प्रकाशक शब्द सुनकर भी अपना धर्म त्यागना उचित है और तुम्हारे रूपके अनुभवसे त्याग करनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और आपने निश्चय व्रजके भय पीड़ा दूर करनेके लिये अवतार लिया है जैसे आदिपुरुष श्रीनारायण स्वर्गकी रक्षा करते हैं, इस कारण हे दीनबंधु ! हम तुम्हारी दासी हैं, हमारे कामदेवसे तप्त स्तन और शिरोंपर अपने हस्तकमलको धरो ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित! इसप्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंका विलाप सुन हँसकर दयाको प्राप्त हो,आत्मा
राम भी हैं, तो भी गोपियोंके संग रमण करनेलगे ॥ ४२ ॥ प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवनसे प्रफुल्लितमुखवाली इकट्ठी हुईं गोपियोंके सहित उदार
जिनकी चेष्टा और उदार जिनकी हँसनि दाँतोंमें कुंदकलीकी समान कान्तिवाले श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे शोभायमान लगनेलगे जैसे तारागण सहित चन्द्रमा
शोभायमान लगताहै ॥ ४३ ॥ गोपियें जिनका गान करैं और स्त्रियोंके सैकडों यूथका पालन करैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं गान करते

श्रीशुक उवाच॥ इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ॥ प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥४२॥ ताभिः
समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणांक इवोडुभिर्वृतः ॥
॥ ४३ ॥ उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः ॥ मालां बिभ्रद्वैजयंतीं व्यचरन्मंडयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः
पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकं ॥ रेमे तत्तरलानंदकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनी
वीस्तनाऽऽलभननर्मनखाग्रपातैः ॥ क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुंदरीणामुत्तंभयन्रतिपतिं रमयांचकार ॥ ४६ ॥ एवं
भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥

वैजयन्ती माला पहरे, वनको शोभायमान करते विहार करनेलगे ॥४४॥ शीतल वालूके बिछौनेवाले यमुनाजीके पुलिनमें गोपियोंसहित आकर रमण
करनेलगे, वहाँ यमुनाजीकी लहरका आनन्द और कमलोंकी सुगंधसनी वायुसे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ४५ ॥ भुजाओंका पसारना, आलिंगन
करना कर, अलक, ऊरू, नीवी, स्तन इनका स्पर्श करना, परिहासके वचन कहना, नखोंके चिह्न, क्रीडा, चितवन और हँसियोंसे ब्रजसुन्दरियोंको
भगवान् काम उद्दीपन कराय रमण करनेलगे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार महात्मा श्रीकृष्णचंद्रसे मान जिन्होंने प्राप्त किया ऐसी गोपियें मानवती होकर

पृथ्वीकी स्त्रियोंमें अपनेको अधिक मानने लगीं ॥४७॥ ब्रह्मा और महादेवको वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनगोपियोंको सौभाग्यके मदके अधीन देख; उनका गर्व दूर और कृपा करनेके लिये उस रासमंडलमेंही अंतर्धान होगये, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि, अभी तो कुछ रासका प्रारंभही हुआ है सेरमें पौन भी नहीं और इन्हें मान हुआ, जो ऐसे लाखों गोपियोंके पांव पडता फिरूँ तो वर्षों लगजाय. फिर रास कैसे होगा ? इसकारण उनका मानभंग करनेको अंतर्धान होगये, अथवा जो प्यारी थी, उसका मानघटने लगा कि, देखो हमकोभी कृष्ण सबकी बराबरही देखते हैं और साधारणको मान बढ़ा कि प्यारी गोपी हमारे अधीन है, सो दोनोंका मान समान करनेको भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अंतर्धान होगये ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां कृष्णान्तर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥ प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवांतरधीयत ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णांतर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंतर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगनाः ॥ अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥ गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ॥ आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ॥ असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

दोहा–तीस माहिं सब ग्वालिनी, भई हाल बेहाल । वन वन फिरत विरह दही, कहाँ गये नँदलाल ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! जिससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रासमंडलमेंसे अंतर्धान होगये,उससमय तत्कालही व्रजकी स्त्रियें तथा गोपियें उनके देखे विना ऐसी अत्यन्त व्याकुल होगईं कि, ॥ १ ॥ जिसप्रकार हाथीके देखे विना हाथिनियें व्याकुल हो जाती हैं, श्रीकृष्णचन्द्रकी चलनि, स्नेहभरी मुसकान, विलासपूर्वक चितवन, मधुर बोलनेकी क्रीडाओंमें मन जिनके पकड़े गये; ऐसी गोपियें तन्मय होगईं, उनकी लीलाका अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका गमन, हास्यभरी चितवन और मधुर वाणियोंके विहारकर प्यारेमें आरूढ़ हो श्रीकृष्णचन्द्रका रूप बनकर कहने लगीं कि, "मैं

कृष्ण हू, मैं कृष्ण हूं" इसप्रकार चेष्टा करने लगीं ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपियें मिल श्रीकृष्णचन्द्रका ऊंचे स्वरसे गान करती मतवालेकी समान वन वनमें ढूंढ़ने लगीं सब प्राणियोंमें आकाशकी तुल्य व्यापक जो श्रीकृष्णचन्द्र हैं, उनको वृक्षोंसे पूँछने लगीं ॥ ४ ॥ हे पीपरके वृक्ष ! हे वटके वृक्ष ! नंदका पुत्र श्रीकृष्ण प्रेमभरी चितवन और हँसी करके हमारा चित्त चुराकर ले गया है, यदि आपने देखाहो तो हमको अत्यन्त दुःखी जान कृपापूर्वक बता दो, कोई बोली, अरी ! यह क्या बतावेंगे, यह तो अश्वत्थ है, इनकी जो जड़ थोड़ीसी ऊपर रही है, सो यह ऐसी चिन्ता किया करते हैं कि कहीं ऐसी पवन न आजाय जो हमें उखाड़कर फेंकदे, कोई बोली अरी ! यह पीपल नारायणका रूप है, नारायण भक्तोंके कार्यमें मग्न

गायंत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ॥ पप्रच्छुराकाशवदंतरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ॥ ४ ॥ दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ॥ नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥ ॥ कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः ॥ रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥ कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये ॥ सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥

रहते हैं, सो हमें क्या बतावेंगे ? न्यग्रोध शिवका रूप है सो यह योगमें मग्न रहते हैं, हमको क्या बतावेंगे ❋ ॥ ५ ॥ हे कुरबक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे केशर ! हे चम्पे ! हे मालती ! गर्व हरनेवाली जिसकी मुसकान ऐसा बलरामका छोटा भाई (कृष्ण) कहीं तुमने देखा ? फिर रामानुजियोंसे कहा कि, कहीं बडे भाईका प्रसाद भाँगके चुल्लूमें तो न पीगये ? जो हमारी यह रक्षा करते फिरते, कोई बोली अशोकसे क्या पूँछती हो यह तो आप अशोच है, सो पराये शोचको क्या जाने ॥ ६ ॥ कोई वनमें कहतीं हैं कि, हे तुलसी ! कल्याणरूपिणी ! गोविंदके चरणोंकी अत्यन्त

❋ शंका–वृक्षोंसे गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रजीको बूझा और वृक्ष जानते थे कि, इसी मार्ग होकर श्रीकृष्णचन्द्र गये हैं, फिर वृक्षोंने गोपियोंसे क्यों नहीं कहा कि, हमने श्रीकृष्णको देखा अथवा नहीं देखा चुप क्यों होगये ? उत्तर–जैसे कृष्णके प्रेममें गोपी उन्मत्त हो रही थीं, ऐसे ही कृष्णके ध्यानमें वृक्ष भी मतवाले हो रहे थे, वृक्षोंको तो अपनी देहका अथवा और किसी दूसरी वस्तुका ध्यान भी नहीं था और कुछ स्मरण भी नहीं था, भगवान्में मन लगा रहे थे, इसलिये उत्तर नहीं दिया, दूसरे वृक्षोंमें बोलनेकी शक्तिभी नहीं होती ॥

प्यारी और भौंरे जिसमें गुंजार करैं, सो तुम्हारी मालाको पहरे, तुमने अपने अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको कहीं देखा होय तो बता दो ॥ ७ ॥ हे मालती ! मल्लिके हे यूथिके ! हे जाति ! क्या आपने कहीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ? क्या हाथके छूनेसे तुम्हारी प्रीति उत्पन्न करते, इसी मार्गसे गये हों ॥ ८ ॥ हे आम ! हे चिरौंजी ! हे कटहर ! हे विजयसार ! हे कचनार ! हे जामुन ! हे वेल ! हे मौलसिरी ! हे सफरी ! हे आम्र ! और हे लोटन कदम्ब ! तुम परोपकारी यमुनातीरवासी हो इसकारण हमें बता दो कि, तुमने कहीं श्रीकृष्णचन्द्रको जाते देखा ? ॥ ९ ॥ जब किसीने उत्तर न दिया तो एक गोपी बोली कि, पृथ्वीसे बूझो कि, हे पृथ्वी ! ऐसा तैंने क्या तप किया, जो केशवभगवान्‌का चरणस्पर्श हुवा, जिससे तुझे आनंद सहित रोमांच हुवे हैं, जिसके कारण तू सुन्दर लगती है, यह आनन्द प्यारेका चरण लगनेके कारण हुआ है,

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ॥ प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूतप्रियालपनसाऽसनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदंबनीपाः॥येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः॥ ९ ॥ किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवांघ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकितांगरुहैर्विभासि ॥ अप्यंघ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरंभणेन ॥ १० ॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ॥ कांतांगसंगकुचकुंकुमरंजितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुज स्तुलसिकालिकुलैर्मदांधैः ॥ अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किंवाऽभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥

अथवा वामनजीने तुझे तीन पैग नापी है, अथवा उससे पहले वाराहजी तुझे दाढ़पर रखकर ले आये हैं, तबका आनन्द है, परन्तु वह आनंद तो पुराने पड़गये, अभी प्यारेका चरणारविन्द तैंने स्पर्श किया है और तैंने उन्हें निश्चय देखा है सो हमें बता दे ॥ १० ॥ हे सखी, हरिणकी स्त्री ! अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीको संग लिये अपने अंगोसे तुम्हारी दृष्टिको आनंद देते यहाँ आये हैं ? क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रकी प्यारी जो अंगके संग है, इसीकारण कुचोंकी केशरसे रँगीहुई कुन्दकी मालाकी सुगंध यहाँ आतीहै. " हे मृगनयनी ! हमारी बातका ऐसा अनादर ? कि, इस ओरसे दृष्टिभी फेर ली, फिर बोली कि, तुम्हारा कुछ अपराध नहीं, जब विधाता वाम होता है तो सब ठौर अपमानही अपमान होता है" ॥ ११ ॥ आगे बढ़कर वृक्षोंसे कहने लगी कि हे वृक्षो ! प्यारीके कंधेपर भुजाको धारण किये और दूसरे हाथमें कमल लिये यहां फिरते

तुलसी संबंधी मदोन्मत्त भौरे जिनके पीछे जाया करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्नेहभरी चितवनसे क्या तुम्हारी दण्डवत् यहाँ आनकर करली है ॥ १२ ॥ कोई बोली कि, हे वीर ! यह लतायें श्रीकृष्णचन्द्रसे अवश्य मिली होंगी, क्योंकि यह अपने पति वृक्षकी शाखारूप बाँहोंका आश्रय कर रही हैं इससे ज्ञात होता है कि, अवश्य हमारे प्यारे श्रीकृष्णचंद्रके नख इनमें लगेहैं,इसी कारण रोमांच हो आये हैं, हेवृक्षो ! वृक्षोंके समागममें ऐसे रोमांच नहीं होते ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार मतवालेकी भाँति पूछतीं श्रीकृष्णमें तन्मय और उनके ढूँढनेसे विह्वल होकर गोपियां भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ * इसके उपरान्त कोई गोपी पूतना बनी

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ॥ नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ॥ लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥ कस्याश्चित्पूतनायंत्याः कृष्णायंत्य पिबत्स्तनम् ॥ तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वाजहारान्यामेकां कृष्णार्भ भावनाम् ॥ रिंगयामास काऽप्यंघ्री कर्षती घोषनिस्स्वनैः ॥ १६ ॥ कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायंत्यश्च काश्चन ॥ वत्सायंतीं हंति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥

कोई गोपी कृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी और कोई गोपी बालक बन रोती हुई शकटासुर बनी वह जो कोई गोपीहै उसको पावकी ठोकर मारनेलगी ॥ १५ ॥ एक गोपी तृणावर्त्त दैत्य बनकर कृष्णके बालक रूपको धरे जो और गोपी है उसे दूसरी दैत्यरूप बन हरकर लेगई और एक गोपी घुंघरू बाँध पाँवोंको घसीटती घुटुओं चलने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियाँ कृष्ण बलदेव बनीं और कोई गोपी गोप बनी और कोई

* दृष्टान्त—एक बड़ा गवैया था, सो वह अपनी खुशीसे गाता और किसीके कहनेसे नहीं गाता था एक भले आदमीका मन उसका गाना सुननेको चाहा, तो उसने क्या चतुराई करी कि, उसीकी तानमें गाऊं क्योंकि मुझसे ठीक बनैगी नहीं, इस कारण वह अपनी तान सुधारनेको आपही गावैगा, सो गाने लगा तो तान वैसी न आई, तब गवैये ने अपने मनमें कहा कि, यह मेरी तान गा रहा है परन्तु बिगडी जाती है, तब आप भी गाने लगा और उससे कहा कि ऐसे गावो, इसी प्रकार गोपियोंने विचारा कि, हम श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला करें सो हमसे ठीक बनैगी तो हैही नहीं, इसकारण उसके बतानेको श्रीकृष्ण स्वयही आजायँगे ॥

वत्सासुर बन उसको मारनेलगीं, एक गोपी बकासुर बनी, उसे और गोपीने मारदिया ॥१७॥ जैसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र दूर चरतीहुई गायोंको बुलातेथे, उसीप्रकार एक गोपी गायोंको बुलाय श्रीकृष्णका अनुकरण करनेलगी. बाँसुरीको बजाकर क्रीडा करती थीं और गोपियें धन्यवाद देती थीं ॥ १८ ॥ एक गोपी गोपीके कंधेपर हाथ धरकर कहनेलगी कि,मेरी मनोहर नृत्यलीलाको तुम देखो, इसप्रक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जाकर उनका मन लगगया ॥१९॥ कोई गोपी पवन वर्षासे भय मतकरो "मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा" इसप्रकार कह एक हाथसे यत्नकर जैसे गोवर्द्धन पर्वत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उठाया था, उसी प्रकार अपनी ओढनीको ऊंचा उठालिया ॥ २० ॥ हे नृप ! एक गोपी और गोपीके ऊपर चढ पाँव शिर ऊपर धर एक गोपीसे कहने लगी कि, हे दुष्टसर्प ! तू यहाँसे निकलजा,क्योंकि मैं दुष्टोंका दण्ड देनेवाला उत्पन्न हुआहूं॥२१॥उससम एकगोपी

आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ॥ वेणुं कणंतीं क्रीडन्तीमन्याः शंसंति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यांचित्स्वभुजं न्यस्य चलंत्याहापरा ननु ॥ कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥ मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहि मया ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतंत्युन्निदधेंबरम् ॥ २० ॥ आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहाऽपरां नृप ॥ दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दंडधृक् ॥ २१ ॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ॥ चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममंजसा ॥ २२ ॥ बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ॥ भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडंबनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ॥ व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥ पदानि व्यक्तमेतानि नंदसूनोर्महात्मनः ॥ लक्ष्यंते हि ध्वजांभोजवज्रांकुशयवादिभिः ॥ २५ ॥

बोली कि, हे गोपियो ! इस वनमें अत्यन्त भयानक अग्नि लगी है,इसे देखो और शीघ्र नेत्र बन्द करलो मैं इस अग्निको बुझाऊंगी,तथा अनायास देखे बिना कल्याण करूंगी॥२२॥कोई एक दुबल अंगकी गोपी मालासे ऊखलमें बाँध दी;तब वह डरकर सुन्दर नेत्रवाले मुखको ढक डरनेका अनुकरण करनेलगी, जब लीला करते करते रासलीला करनेलगीं,तब ज्योंही श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तर्द्धान होनेकी लीला आई,तभी श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरणकर व्याकुलहृदय हो ढूंढने लगीं ॥२३॥ इसप्रकार वृन्दावनकी लता और वृक्षोंसे पूँछती पूँछती आगे वनमें जाकर परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका खोज देखा ॥२४॥ ध्वजा,कमल, वज्र, अंकुश, आदि इन चिह्नोंसे महातमा नंदजीके बेटेका यह चरण निश्चयहै, इसप्रकार खोज लगताहै ॥२५॥

इसप्रकार अबला गोपी चरणोंके खोजसे श्रीकृष्णचन्द्रके जानेका मार्ग ढूँढने लगीं, आगे जाय श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके खोजमें प्यारीके चरणोंका खोज देख दुःखी हो यह कहने लगीं ॥ २६ ॥ कि, श्रीकृष्णचन्द्रके संग यह कौन गई है, यह किसके चरण हैं जिसने श्रीकृष्णके कन्धेपर अपना हाथ धराहै जिसप्रकार हाथी हाथिनियोके ऊपर सून्ड धर लेताहै ॥२७॥ निश्चय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका इसने आराधन किया है जिस कारण हम सबको त्याग प्रसन्न हो श्रीगोविंद इसे एकान्तमें लेगये ॥ २८ ॥ हे सखियो ! यह गोविन्दकी चरणरेणुको ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी, संपूर्ण अपने पाप दूर करनेके लिये माथेपर चढ़ाते हैं, यह रज बड़ी धन्य है, जो इसे शिरपर धारण करोगी तो भगवान् मिलजायँगे ॥२९॥ उस प्यारीके पाँवके

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छंत्योऽग्रतोऽबलाः ॥ वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि याताया नंदसूनुना ॥ अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥ अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥२८॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दांघ्र्यब्जरेणवः॥ यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥ तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वंत्युच्चैः पदानि यत् ॥ यैकाऽपहृत्य गोपीनां रहो भुंक्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यंते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ॥ खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥(इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ॥ गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः॥अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना॥) अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ॥ प्रपदाक्रमणे एते पश्यताऽसकले पदे ॥ ३२ ॥

खोज हमको अत्यन्त व्याकुल करते हैं देखो ! हम सबको त्याग अकेली एकान्तमें ले जाय श्रीकृष्णचन्द्रका अधरामृत भोग करती है ॥ ३० ॥ आगे बढकर बोलीं कि, यहाँ तो उसके चरण नहीं दिखाई देते, परन्तु इसका कारण यह विदित होताहै कि, जब तृणके अंकुरोंसे उसका कोमल चरण तल पीडित होगये हैं, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी प्रियतमाको कंधेपर चढाया ॥ ३१ ॥ (हे वीर ! जिससमय श्रीकृष्णने प्यारीको उठाया, तो उन कामके रसिया श्रीकृष्णचन्द्रके चरण पृथ्वीमें धसगये. देखो ! यह फूलोंके लिये अवश्य सखीको उठायाहै) हे सखी ! यह देखो ! प्यारेने प्यारीके कारण फूल तोडे हैं, इस स्थानमें चरणोंको उचकाकर खडे होनेसे थोडा चिह्न दिखाई देताहै ॥ ३२ ॥

कामासक्त श्रीकृष्णचन्द्रने कामिनीके इस स्थानमें केश गुह कर सुधारे हैं, फिर प्यारीको बैठाय केश गुहे, जो प्यारा है सो इस स्थानमें निश्चय बैठा होगा ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र आत्मरत आत्माराम स्त्रियोंके विलासोंसे अखण्डित हैं. परन्तु तोभी उन्होंने कामी मनुष्योंकी दीनता और स्त्रियोंका दुष्टपन दिखलानेके लिये उनके साथ रमण किया ॥ ३४ ॥ इसप्रकार वह सब गोपियें अचेत हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ढूँढनेका विचार करने लगीं, अब श्रीकृष्णचन्द्र और स्त्रियोंको वनमें त्याग जिस स्त्रीको संग लेगयेथे ॥३५॥ वह गोपी सब स्त्रियोंमें अपने आपको श्रेष्ठ मानने लगी कि, देखो चाहना करनेवाली गोपियोंको छोड श्रीकृष्णचन्द्र मेरा सेवन करतेहैं ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त वह गोपी गर्वित होकर केशव श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगी कि, मुझपै चला नहीं जाता, जहाँ तुम्हारा मनहो वहाँ लेचलो, तब

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कांतामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमे तया चात्मरत आत्मारामोप्यखंडितः ॥ कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवं दर्शयंत्य स्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ॥ यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ३५ ॥ सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्व योषिताम् ॥ हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥ ३६ ॥ ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ॥ न पार येऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७ ॥ एवमुक्तः प्रियामाह स्कंधमारुह्यतामिति ॥ ततश्चांतर्दधे कृष्णः सा वधूरन्व तप्यत ॥ ३८ ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ॥ दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्विच्छंत्यो भगवतो मार्गं गोप्यो विदूरतः ॥ ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४० ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, प्यारी ! दश पैग और चलो किशोरीजी बोलीं, हांजी जैसे तुम चार पहर गायोंके पीछे फिरते हो उसी प्रकार सबको जानते हो, हम तो कभी महलके बाहर भी नहीं निकलीं. सो कैसे चलैं ॥ ३७ ॥ इसप्रकार जब प्यारीने कहा तब श्रीकृष्णचन्द्रने अपने कंधेपर चढनेको कहा। यह सुनकर ज्योंही राधिका चढने लगी त्योंही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान होगये, तब तो वह अत्यन्त घबराई ॥ ३८ ॥ और कहनेलगी कि, हा नाथ ! हे रमणकरानेवाले ! हे महाभुज ! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो ? हे सखे ! तुम्हारी ऐसी कृपण मैं दासी हूं, इसकारण समीप आनकर मुझे अपना दर्शन दो ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उन सब इकट्ठी गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दूरसे मार्ग ढूँढते ढूँढते

प्यारेके वियोगमें मोहित और अति दुःखित इस स्त्रीको देखा ॥ ४० ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रथम मान मिला फिर गर्व होनेसे अपमान मिला, यह बात उस स्त्रीके मुखसे श्रवण कर सब गोपियाँ बडे आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥४१॥ और निशानाथ चन्द्रमाकी चाँदनीका प्रकाश जहाँतक था, वहाँतक तो गोपियोंने वनमें ढूँढा, आगे वृक्षोंकी छायाका अँधेरा देखकर लौट आईं ॥ ४२ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये कृष्ण संबंधी बातें और उन्हींकी लीला करतीं तन्मय हो उन्हींके गुण गानकर रहींथीं कि, कृष्णवियोगमें उन्हें अपने घरकी भी सुधि न रही ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त सब लौट यमुनाजीके पुलिनमें आय भगवान्में जिनकी भावना लग रही, उनके आनेका पैंडा देख सम्पूर्ण गोपियाँ मिलकर

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ॥ अपमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥ ४१ ॥ ततोऽविशन्वनं चंद्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ॥ तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टा स्तदात्मिकाः ॥ तद्गुणानेव गायंत्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४३॥ पुनः पुलिनमागत्य कालिंद्याः कृष्णभावनाः ॥ समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिताः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भाग० महापु० दशम० पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः ॥ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि ॥ दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥ सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके गुण गानेलगीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां भगवदन्वेषणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥ दोहा–इकतिस माहिं निराश हो, बहुरि यमुन तट आय। करत प्रार्थना प्रेम सों, प्रगट होहु यदुराय ॥ १ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपी कहने लगीं कि, हे प्रीतम! तुम्हारे जन्म लेनेसे यह व्रज अत्यन्त शोभायमान लगता है और आपके प्रगट होनेके कारण यहां लक्ष्मीजी सदा वास करती हैं, इसप्रकार सब व्रजमें आनन्द होरहा है. हे प्यारे! तुम्हारेही लिये प्राण धारण किये तुम्हारी दासियाँ तुम्हें ढूँढ़ती फिरतीहैं ॥ १ ॥ हे सुरतनाथ! शरदृतुके सरोवरोंमें भलीप्रकार उपजे श्रेष्ठ कमलके भीतरकी शोभाको चुरानेवाली तुम्हारी दृष्टिहै, उससे विना मोलकी जो हम दासी हैं

सो उनको तुम क्यों मारते हो, यदि तुम कहो कि, हम क्या मारते हैं ? तो क्या शस्त्रहीसे मारते हैं, दृष्टिसे नहीं मारते ? क्या इसीसे तुमने दृष्टिसे हमारे-प्राण हर लिये हैं,उनके देनेके कारण शीघ्र हमें दर्शन दो ॥ २ ॥ हे लाल ! आपने वारम्वार मृत्युसे रक्षा करी अब क्यों कामदेवको भेजकर दृष्टिसे मारते हो ? क्योंकि विषके जलसे मृत्यु थी, उससे रक्षा करी, फिर अघासुरसे बचाया, इन्द्रने महाघोर वर्षा और पवन चलाया उससे रक्षाकी, बिजलीकी आग तथा वृषासुरसे बचाया, मयके पुत्र व्योमासुरसे और समस्त भयसे बचाया, फिर अब किसलिये हमको छोडते हो ॥ ३ ॥ तुम यशोदाके पुत्र नहीं हो, क्योकि यशोदाके पुत्र होते तो ' मापर पूत पितापर घोडा । बहुत नहीं तो थोडा थोडा ' कुछ तो अपनी जातिका पक्ष आता, सब देहधारियोंकी बुद्धिके साक्षी हो, ब्रह्माने विश्वकी रक्षाकी जब प्रार्थना करी तब हे कृष्ण ! तुम यादवोंके कुलमें प्रगट हुए

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ॥ वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥ न खलु गोपिकानंदनो भवानखिलदेहिनामंतरात्मदृक् ॥ विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्त्वतां कुले ॥ ४ ॥ विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ॥ करसरोरुहं कांत कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥ व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥ भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥ फणिफणार्पितं ते पदांबुजं कृणु कुचेषु नः कृंधि हृच्छयम् ॥ ७ ॥

और जब ब्रह्माजीने आपको रक्षा करनेके लिये कहा तब आपने यह कह दिया होगा कि, सबकी तो रक्षा करनी और गोपियोंको जला जलाकर मारना सो ब्रह्मा तो ब्राह्मण है इसकारण वह ऐसा अधर्म क्यों बतावेगा ? ॥ ४ ॥ हे यादवश्रेष्ठ कान्त ! संसारके भयसे तुम्हारे चरणसेवन करने वाले जो पुरुष हैं, उनको अभयदाता कामनाओंके देनेवाला और लक्ष्मीका हाथ पकड़नेवाला जो तुह्मारा हस्तकमल है, सो हमारे माथेपर धरो ॥ ५ ॥ हे सखे ! हे वीर ! हे व्रजवासियोंके दुःख हरनेवाले ! अपने जनोंका गर्व दूर करनेवाली तुम्हारी मुसकानकी हम दासी हैं, उनका सेवन करो, क्योंकि पहली स्त्रियां हम हैं, उनको अपना मुखकमल दिखाओ ॥ ६ ॥ प्रणत अर्थात् नम्र देहधारियोके पापोंको दूर करनेवाले

गायोंके पीछे पीछे चलनेवाले शोभाके स्थान, कालियके फणपर नृत्य करनेवाले आपके चरणकमल हैं, उनको कृपापूर्वक हमारे कुचोंपर धरके कामकी व्यथा दूर करो * ॥ ७ ॥ हे कमलदललोचन ! हे वीर ! सुन्दरवाक्यवाली गम्भीर वाणीसे मोहित हुई हम दासियोंको अधरामृत पिलाकर जीवदान दो ॥ ८ ॥ आपके विरहमें हमारे प्राण जाचुके हैं परन्तु तुम्हारे कथामृतको पान करतेहुए सुकृती जनोंने हमें बचालिया, क्योंकि संसारमें तप्त पुरुषको जिलानेवाले ब्रह्मादिक जिसकी स्तुति करैं, ऐसे पापोंको दूर करनेवाले मंगलरूप शान्त तुम्हारी कथारूप

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥ विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥८॥
तव कथाऽमृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥ श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणंति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥
प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ॥ रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयंति हि
॥ १० ॥ चलसि यद् व्रजाच्चारयन्पशून् नलिनसुदरं नाथ ते पदम् ॥ शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां
मनः कांत गच्छति ॥ ११ ॥

अमृतको जो पुरुष पृथ्वीमें कहते हैं वह बड़े दाता हैं, जब तुम्हारी कथा कहनेवाले धन्य हैं, तो जो तुम्हारा दर्शन करते हैं, उनका तो कहनाही क्या है? इससे अब दया करके दर्शन दो ॥ ९ ॥ हे सौम्य ! हे कपटी ! तेरा मुसकानसहित मुख, प्रेमभरी चितवन और ध्यानमें मंगलरूप तुम्हारा विहार, हृदयको स्पर्श करनेवाली एकान्तकी बातैं हमारे मनको क्षोभ करती हैं ॥ १० ॥ हे नाथ ! जिससमय गौ चरानेको

* शंका—स्त्रियोंके स्तनोंको पुरुष हाथसे स्पर्श करता है तो स्त्रीको सुख होता है, कुछ पुरुषके चरणस्पर्शसे सुख नहीं होता ? तब गोपियोंने कृष्णके चरण अपने स्तनपर स्पर्श होनेकी क्यों याचना की महाराज, आप अपने चरण हमारे सबके स्तनोंपर अर्पण करो, जो कोई कहै गोपी प्रेममें आतुर थीं उनको पदका और हाथका स्मरण न रहा ? इसलिये चरणकी याचना की थी, तो फिर कृष्णके दूसरे अंग की याचना क्यों नहीं की ? अकेले चरणोंहीकी सब देहमें याचना क्यों की ?

उत्तर—गोपियोंने सुना था और देखा भी था कि, श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शसे कालियनागका जहर नष्ट होगया, कालियनाग निर्विष होगया इससे जो हमारे सबके स्तनोंपर श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श हो जाय तो हम सबके कामदेवका नाश हो जाय. क्योंकि कालियके गरलसे काम बडा नहीं है. कामदेवका नाश होनेसे सब संसारकी बाधासे छूट जायँगी इसलिये गोपियोंने श्रीकृष्णके चरणोंको अपने स्तनोंसे स्पर्श करनेकी याचना की थी, क्योंकि गोपी तो वेदोंकी ऋचा हैं ॥

आप व्रजसे जाते हो, तब तुम्हारे कमलके तुल्य सुन्दर चरण काँकरी, तृण, अंकुर लगकर कष्ट पातेहैं, इसलिये हे कान्त ! हमारा मन चंचल होताहै, सो इसप्रकार प्रेम रखनेवाली दासियोंपरभी आप दया नहीं करते ? ॥ ११ ॥ संध्यासमय नील केशसे ढके गोरजसे धूसरित कमलके समान मुखको धारणकर बेर बेर दिखाके, हे वीर ! हमारे मनमें कामदेवको उत्पन्न करते हो, परन्तु संग नहीं देते यही तुम्हारा निश्चय कपट है ॥ १२ ॥ नम्र देह धारियोंको कामनाओंके देनेवाले, जिनका ब्रह्माजीने पूजन किया, पृथ्वीको शोभायमान करनेवाले आपत्तिमें ध्यानसेही पीडा दूर करनेवाले,सेवामें सुखरूप, ऐसे अपने चरणकमलोंको, हे कामकी पीड़ाको दूर करनेवाले ! हमारे कुचोंपर धरो ॥ १३ ॥ हे वीर ! कामको बढ़ानेवाला, शोकको दूर

दिनपरिक्षये नीलकुंतलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ॥ घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमंडनं ध्येयमापदि ॥ चरणपंकजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाऽऽधिहन् ॥ १३ ॥ सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुंबितम् ॥ इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥ अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥ कुटिलकुंतलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥

करनेवाला, स्वरभरी बजतीहुई बाँसुरी भलेप्रकार चुम्बित, मनुष्योंके चक्रवर्ती आदि सुखका भुलानेवाला सुखदायक तुम्हारा अधरामृत है सो हमारे रोग शान्त करनेको दीजिये. हे कृष्ण ! यह औषधि मिलनेसे हम भली होजावेंगी और यदि जो तुम दवाका मोल माँगो तो दमड़ीकी बाँसकी वंशी, जिसे दिन रात मुखपर धरे रहते हो, वह तुम्हें क्या मोल देती है ? और जो तुम कहो कि, तुम कुपथ्य करो हो कुपथ्यको दवा न देनी चाहिये तुम अभी गैय्या मैय्या, भाई और पत्यादिकोंकी वासनाका कुपथ्य करती हो सो प्यारे ! तुम्हारी औषधी यह सब दूर कर देगी, तुम हमें पिलाओ तो सही ॥ १४ ॥ जब तुम दिनके समय वनमें जाते हो तब तुम्हारे देखे विना आधा क्षण युगकी समान व्यतीत होता है

यह तो बिना देखेका दुःख कहा और जब घूमघूमारे केशोंसे युक्त तुम्हारे मुखकमलका दर्शन करती हैं, उससमय पलकोंका बनानेवाला ब्रह्मा हमें मूर्ख विदित होता है, क्योंकि पलकोंसे दर्शनमें बाधा होती है, यह दर्शनमें दुःख है और छःवर्षकी हमारी ननँद जब अपनी मासे जाकर कहती है कि, देखरी मा ! भावी उस नंदके पुत्रको देखने गई है, तब सास त्रास दिखाती है, दूसरे ब्रह्मा वैरी पडा है, अपनी आठ आँखें बनाईं, हमारी दोही और उसपरभी पलक लगादिये हैं ॥ ॥ पति, पुत्र और वंशके बंधु बांधवोंको त्याग, तुम्हारे गीतसे मोहित होकर हम तुम्हारे पास आई थीं और गानेकी गतोंको और हमारे आगमनको जाननेवाले, हे अच्युत ! हम तुम्हारे निकट आई हैं, सो हे कपटी ! रात्रिमें

पतिसुतान्वयभ्रातृबांधवानतिविलंध्य तेंत्यच्युता । ॥ गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥ बृहदुरश्श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहंत्र्यलं विश्वमंगलम् ॥ त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥

आई स्त्रियोंको तुम बिना ऐसा कौन है जो त्यागेगा ? ॥ १६ ॥ कामदेवका प्रगट करनेवाला एकान्तका संकेत देख और हँसी सहित मुख तथा प्रेमकी चितवन देख और लक्ष्मीके रहनेका स्थान तुम्हारा वक्षस्थल देखकर हमको बड़ी चाहना हुई है एवं हमारा मन भी मोहित होगया है ॥ ॥ १७ ॥ अंग अर्थात् हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारा प्रगट होना व्रजवासी और वनवासियोंके दुःखका दूर करनेवालाहै तथा अतिशय करके विश्वका मंगल रूप है, इसकारण तुम्हारे दर्शन विना व्याकुल अपने भक्तजनोंके मनकी पीड़ा दूर करनेवाली गुप्त औषधि दो कृपणता, मतकरो यह हम

जानती हैं कि, इस औषधिको तुमही जानते हो ॥ १८ ॥ कठोर स्तनोंपर तुम्हारे चरणकमलोंको हम भयसे, धीरे धीरे धारणकरती हैं, क्योंकि, कहीं कोमल चरणोंमें गढ़े न पड़जांय और तुम उन चरणोंको वनमें उठा उठाकर फिरते हो, क्या चरणोंमें काँटे कंकड़ी लगकर खेद नहीं होता ? जब यह विचार करती हैं, तो तुम्हें अपना जीवनधन माननेवाली हमारी बुद्धि मोहित होजातीहै, परन्तु अब पुकारकर इतना तो कह दो कि, अरी गोपियो ! तुम कहां हो मैं तो पुलिनमें लताओंके नीचे सुखपूर्वक बैठा हूँ ॥ १९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ दोहा–बत्तिस विरह वियोगते, द्रवीभूत भयो हीय । प्रगट भये तुरतहि हरी

यत् ते सुजातचरणांबुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥ तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे गोपिकागीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति गोप्यः प्रगायंत्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा ॥ रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः ॥ पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥ तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोबलाः ॥ उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥ काचित् करांबुजं शौरेर्जगृहेंजलिना मुदा ॥ काचिद् दधार तद्बाहुमंसे चंदनभूषितम् ॥ ४ ॥

अति प्रसन्न भई तीय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! इसप्रकार गान और चित्रविचित्र विलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी इच्छासे वह गोपियें बड़े स्वरसे रोदन करने लगीं ॥ १ ॥ उसी समय मुसकानयुक्त मुखकमल, पीताम्बर धारण किये वनमाला पहरे साक्षात् कामदेवका मन मोहित करनेवाले दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके बीचमें प्रगट होगये ॥ २ ॥ तब प्रीतिपूर्वक प्रसन्न और प्रफुल्लित संपूर्ण अबलायें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया देखकर इसप्रकार उठकर खड़ी होगई कि, जैसे देहमें प्राण आनेसे हाथ पाँव एक संग उठते हैं ॥ ३ ॥ और किसी गोपीने तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका बड़े आनन्दपूर्वक हस्तकमल पकडलिया

और कोई चन्द्रनसे शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंको कंधेपरही धरने लगीं ❀ ॥४॥ और किसी कृश अंगवाली गोपीने श्रीकृष्णचन्द्रके मुखमेंसे तांबूलका बीडा अपने हाथमें लेलिया और कामसे कम्पायमान कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमल अपने स्तनोंपर

काचिदंजलिनाऽगृह्णात्तन्वी तांबूलचर्वितम् ॥ एका तदंघ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥

एका भृकुटिमाबध्य प्रेमसंरंभविह्वला ॥ घ्नंतीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥

अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखांबुजम् ॥ आपीतमपि नातृप्यत्संतस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥

धरनेलगी ॥५॥ एक गोपी अपनी भौंहैं चढ़ाय कोपके आवेशसे विकल हो अपने ओष्ठोंको दाँतोंसे दाब कटाक्षरूपी बाणोंसे मारतीसी देखनेलगी ॥६॥ हे राजन् ! और गोपियें निमेषरहित दृष्टिसे श्रीकृष्णचन्द्रका मुखकमल भले प्रकार देखती भी हैं, परन्तु तौ भी बेर बेर देखकर

* "काचित्करांबुज" यहा शुकदेवजीने "काचित्" कहा, नाम नहीं लिया, इसका कारण यह है कि, नाम श्रीशुकदेवजीका परम इष्ट है, दो अक्षर मन्त्ररूप हैं, सो जपमन्त्रका प्रकाश करना भला नहीं, अथवा भगवान् महादेवजीने शुकदेवजीसे तत्त्वज्ञान कहा, परन्तु नामके दो अक्षर प्रकाश नहीं किये, रा रा कहा करते हैं, दूसरा अक्षर नहीं कहते, कदाचित् कोई चुराकर लेजाय ? एकवार तो तत्त्वज्ञान खोया जिसकी कथा वर्णन करते हैं । एकसमय नारदजीने कैलासपर आनकर विचारा कि, यहाँ कुछ आग लगानी चाहिये, सो पार्वतीजीसे कहा तुम्हें महादेवजी कुछ प्यार भी करते हैं ? पार्वती बोली कि, कुछ अंतर नहीं रखते तब नारदजी बोले तो तुम यह पूछियो कि, आपके गलेमें मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है यह कह नारदजी चलेगये. जब वर्ष दिन पीछे महादेवजी समाधिसे जागे तो पार्वतीजी बोलीं कि, महाराज यह मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है ? बताओ, यह सुनकर शिवजी बोले कि, जब तुम्हारा शरीर छूट जाताहै, तब धारण कर लेताहूँ पार्वती बोलीं—मेरे तो सैकडों जन्म हुए, और तुमने ऐसी क्या अमरौती खाई है, जो तुम अमर हो ! शिवजीने अपने मनमें कहा कि, किसीने भली आग लगाई, फिर बोले मुझे तत्त्वज्ञान है, पार्वतीने कहा, वह तत्त्वज्ञान मुझे बताओ । अब शिवजीने स्नेह हटाय एक चुटकी बजाई, कि उसस्थानके सब पक्षी उडगये, फिर एक चुटकी बजाई बच्चोंके पख जमिआये, फिर बजाई, सब बच्चे उडादिये, उसी समय शुकीके गर्भमें शुकदेवजी आये थे, सो एक चुटकीसे बाहर आये दूसरीसे अंडा फूटा और तीसरीसे पर निकले, सो एक वृक्षकी डालीपर जा बैठे, तब महादेवजी पार्वतीसे तत्त्वज्ञान कहने लगे, पार्वती हुंकार देती सोगई, यह तोता हूहू करनेलगा, और महादेवजी ब्रह्मानन्दमें मग्न नेत्र मीचे सपूर्ण कथा कहगये, जब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती सोगई और हूहू तोतेने करी, यह जान झट उसके मारनेको त्रिशूल चलाया, और पीछे दौडे, तोता भागा सो व्यासजीकी स्त्री कोठेपर खडीथी उसने जो जमाई ली, सो शुकदेवजी उसके उदरमें प्रवेश करगये, शिवजीने व्यासजीसे कहा कि, तुम्हारी स्त्रीमें हमारा चोर है, उसे निकालो, व्यासजी बोले कि, आपके पास है क्या ? जो इसने चुराया है शिवजी बोले कि, तत्त्वज्ञान, जिससे अमर होते हैं, वह इसने चुराया है व्यासजी बोले कि, इसीसे आप भोलानाथ कहलातेहो. भला विचारो तो सही कि, जिसने तत्त्वज्ञान सुना, वह त्रिशूलसे कैसे मरेगा ! महादेवजी हँसकर कैलासको चलेगये, और उसीदिनसे रा रा कहते हैं, पूरा नाम नहीं लेते, शुकदेवजी सपूर्णही गुप्त रखते हैं, इसी कारण राधिकाका कहीं नाम नहीं लिया ॥

तृप्त नहीं हुई, जिसप्रकार साधुपुरुष श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेसे तृप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ और कोई गोपी नेत्रोंके छिद्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयमें लेजाय नेत्रमूँद उन्हें आलिंगनकर रोमांचित शरीर हो योगिजनोंके समान महान् आनन्दमें मग्न होगई ॥ ८ ॥ और केशवमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करके आनन्दसे सुखी हो संपूर्ण गोपियोंने विरहके तापको त्यागदिया, जैसे ईश्वरको पाकर मुमुक्षुजन ताप छोड देतेहैं, अथवा सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीको पाकर जाग्रतरूप अवस्थावान् जीव जैसे तापको छोडदेतेहैं ॥ ९ ॥ हे परीक्षित् ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन दुःखरहित गोपियोंके मध्यमें इसप्रकार शोभायमान लगनेलगे जैसे परमात्मा सब शक्तियोंसे और उपासक

तं काचिन्नेत्ररंध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च ॥ पुलकांग्युपगुह्यास्ते योगीवानंदसंप्लुता ॥ ८॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमो त्सवनिर्वृताः ॥ जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ॥ व्यरोचता धिकं तात पुरुषश्शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥ ताः समादाय कालिंद्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ॥ विकसत्कुंदमंदारसुरभ्यनिल षट्पदम् ॥११॥ शरच्चंद्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ॥ कृष्णाया हस्ततरलाऽऽचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥ तद्दर्श नाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथांतं श्रुतयो यथा ययुः ॥ स्वैरुत्तरीयैः कुचकुंकुमांकितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबंधवे ॥ १३ ॥

पुरुष ज्ञान बल वीर्यादि जो शक्ति हैं, उनसे शोभायमान लगताहै ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन गोपियोंको संग ले फूलेहुए कुंद और मंदारकी सुगंधयुक्त पवनके कारण जहां भौंरे गुंजार कर रहेथे, ऐसे यमुनाके पुलिनमें सबको लेगये ॥ ११ ॥ कैसे पुलिन हैं कि, शरदृतुके चन्द्रमाकी किरणोंके समूहसे रात्रिका अंधकार जिनमेंसे दूर होगयाहै और यमुनाजीका भी उसीके समान तरंगोंसे कोमल बालूके बिछौने जिसमें बिछ रहे हैं ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण आनंदपूर्वक हृदयके रोग दूरकर गोपियाँ अपने मनोरथोंके अंतको प्राप्त हुईं अर्थात् उनके मनोरथ पूर्ण हुए, जैसे ज्ञानकाण्डमें श्रुति परमेश्वरको देख आनंदसे परिपूर्ण हो कामके सम्पूर्ण बंधनोंका त्याग करतीहैं और

कुचोंकी केशरयुक्त अपनी ओढनियोको उतार उतारकर गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रके बैठनेकी तकियां बनाने लगीं * ॥ १३ ॥ योगेश्वरोंके भीतर जिनका कल्पित आसन है, वह ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तीनलोककी शोभाका एकही स्थान क्या तीनों लोककी शोभा जिसमें आरही उसी प्रकार रूप धारण कर उस आसनपर बैठ गोपियोंसे पूजित हो, उनकी सभामें शोभायमान लगने लगे॥ १४ ॥कामदेवके बढ़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रकी हासलीलापूर्वक चितवनसे चलायमान भ्रुकुटीसे सत्कार कर गोदमें धरेहुए श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंको हाथोंसे दाबतीं और स्तुति करतीं कुछेक

तत्रोपविष्टो भगवान्स ईश्वरो योगेश्वरांतर्हृदिकल्पितासनः ॥ चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४॥ सभाजयित्वा तमनंगदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमद्भ्रुवा ॥ संस्पर्शनेनांककृतांघ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ भजतोऽनुभजंत्येक एक एतद्विपर्ययम् ॥ नोभयांश्च भजंत्यन्य एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मिथो भजंति ये सख्यः स्वार्थैकांतोद्यमा हि ते॥ न तत्र सौहृद धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥ १७ ॥ भजंत्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा ॥ धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥

क्रोधसे गोपियां बोलीं ॥१५॥ सब गोपी बोलीं कि, महाराज ! एक पुरुष तो भजतेहुएको भजता है, वह कौन है ? और एक ऐसे हैं कि, जो नहीं भजता उसको भजते हैं, वह कौन है ? एक भजतोंको और न भजतोको दोनोंको नहीं भजते हैं, वह कौन है ? सो हे कृष्ण ! यह हमारे आगे भली प्रकार समझा कर कहो ॥ १६ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे सखियो ! जो पुरुष परस्पर भजतेहैं अर्थात् जितना वह उनको चाहैं, उतनाही वह उनको चाहैं, वह पुरुष तो अपस्वार्थी हैं, उस भजनमें स्नेह, सुख धर्म कुछ भी नहीं है वह तो केवल अपनाही भजन है ॥१७॥और जो नहीं भजतोंको

*शंका–जिन गोपियोंके मित्र श्रीकृष्ण सो सब गोपी अपने पहिरेहुये वस्त्रोंका आसन श्रीकृष्णके बैठनेको क्यों देती थीं ? क्या गोपी दरिद्रिनी थीं ? नया वस्त्र मँगाकर भगवान्के बैठनेको आसन क्यों नहीं दिया? उत्तर–जो प्राणी अपने काममें उन्मत्त होजाता है, उसको कुछ नहीं जानपडता कि, यह काम अच्छा है यह काम बुरा है, इसीप्रकारसे कृष्णके चरणोंमें गोपी उन्मत्त होरहीं थीं, उनको ज्ञात न हुवा कि वस्त्र हमारा पहिरा हुवा है वा विना पहिरा है इस लिये गोपीं भगवान्को अपने पहिरे वस्त्रका बैठनेको आसन देने लगीं ॥

भजतेहैं, वह पुरुष दो प्रकारके हैं, एक तो करुणावान् दूसरे स्नेही जैसे माता पिताको पुत्र नहीं चाहताहै, परन्तु वह उसके ऊपर कृपा करतेहैं और इस भजनमें निर्दोष धर्म है, हे सुमध्यमाओ! दयालु होकर भजनमें सत्य धर्म है और स्नेहसे भजनमें सत्य प्रेमहै॥ १८॥ "पर भजन विश्वाससेही करना योग्यहै" इसमें एक दृष्टान्त ❋ कहतेहैं कि, विश्वासमेंही भगवान् हैं और कहीं नहीं और जो पुरुष भजतोंहीको नहीं भजते तो अभजतोंको कहांसे भजेंगे, वे चार प्रकारके हैं, एक तो आत्मामेंही रमण कररहेहैं और एक पूर्णमनोरथ हैं जिनको किसी बातकी चाहना नहीं है और एक अकृतज्ञ हैं, जो उपकारको नहीं

भजतोऽपि न वै केचिद्भजंत्यभजतः कुतः ॥ आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जंतून्भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ॥ यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिंतयाऽन्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ॥ मया परोक्षं भजतां तिरोहितं माऽसूयितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

समझते और एक गुरुद्रोही हैं, अर्थात् जो उपकार करे उसीसे द्रोह करतेहैं ॥१९॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे सखियो ! मैं इनमेंसे कोई नहीं, केवल दयालु और स्नेही हूं, जो कोई प्राणी मेरा भजन करता है, उसको अपनी ओर ध्यान लगानेके लिये मैं नहीं भजता हूँ जैसे दरिद्री पुरुषको धन मिले और वह धन जाता रहै, तब वह उसी चिन्ताका मारा भूंख प्यास नहीं जानता॥ २० ॥ हे बालाओ ! मेरे लियेही लोकमर्यादा वेदमर्यादा पति पुत्रा

❋दृष्टान्त–एक मनुष्य किसी कार्यवश भगवान्का पूजन करता था, परन्तु मनमें यही विचारता था कि, यह पत्थरकी मूर्ति हमारा कार्य कैसे साधन कर सकेगी ? इसप्रकार चलविश्वास होनेसे उसका कार्य नहीं हुआ, तब किसीने उससे कहा कि, तू भगवती दुर्गादेवीका पूजन कर तुरन्त काम सिद्ध होगा, वह मनुष्य ऊपरके आलेमें श्री ठाकुरजीकी मूर्तिरख नीचे दुर्गादेवीका पूजन करनेलगा, एकदिन धूप देतेसमय मनमें विचारा कि, सीधी ऊपरको जाती है सो नारायणको पहुँचती है इस कारण दुर्गादेवीको पीछे मिलनेसे वह प्रसन्न नहीं होती, इसका यत्न करूं, यह विचार रुई ढूँढ भगवन्मूर्तिकी नाकमें भरने लगा जिससे कि, सुगन्ध न जाय, भगवान् तत्कालही मूर्तिमें प्रसन्नहोकर और हँसकर बोलेकि, माई रुई मत ठूंसे वर माग क्या चाहिये, यह बोला कि, महाराज ! मुझे क्या खबर थी कि, आप रुई ठूसनेसे प्रसन्न होते हैं, यह विधि किसी पद्धतीमें भी नहीं लिखी, भगवान् बोले पहिले तुझे विश्वास नहीं था, मूर्तिको पाषाण अर्थात् पत्थर जानता था, आज वह बात जाती रही आज ईश्वरही जाना, नहीं तो पत्थरमें सूघनेकी शक्ति कहा, आज तेरा विश्वास ईश्वररूपका था॥

दिक तुमने त्यागदिये,सो तुम्हारी चितवृत्ति लगानेके लिये तुमको देखनेके लिये नही आया, तुम्हारे पासही छिपरहा था,कुछ दूर नहीं गया था. हे प्रियाओ ! यह कृष्ण बुराहै, ऐसे मुझमें दोष मत लगाओ ॥ २१ ॥ तुम निर्दूषित तुम्हारे संग उपकारका बदला मुझपर यदि देवताओंकी समान अवस्था हो, तो भी नहीं होसक्ता,क्योंकि जो छोड़ी न जायँ ऐसी घररूप बेडियोंको काटकर तुमने मेरी सेवा की, इसलिये तुम्हीं कहदो कि, कृष्ण हमारा ऋणीया नहीहै. तो मेरा छुटकाराहै, मुझपै तुम्रारे उपकारका बदला नहीं होसक्ता ॥२२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ दोहा—नारिमण्डलीके विषे, ठाढ़े श्रीयदुराय। करत विहार प्रियान सँग, तेंतिसवें अध्याय ॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार उन श्रीकृष्णचन्द्रके हस्त चरण आदि अंग स्पर्शकर मनोरथ पाय गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका

न पारयेहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ॥ या माऽभजन्दुर्जयगेहशृंखलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दश० पूर्वार्द्धे हरिकृतविरहितगोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥ जहुर्विरहजं तापं तदंगोपचिताशिषः ॥ १ ॥ तत्रारभत गोविंदो रासक्रीडामनुव्रतैः ॥ स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥ रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपी मण्डलमण्डितः ॥ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥ प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥ यं मन्येरन्नभस्तावद् विमानशतसंकुलम् ॥ दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥

अति कोमल वचन श्रवण कर विरहके तापको छोड़ दिया ॥ १ ॥ और इसके उपरान्त गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँ अपनी आज्ञा करनेवाली प्रसन्नमन, परस्परमें हाथ पकडे खडीहुई स्त्रियोंमें रत्न गोपियोंको संग ले रासक्रीडाका आरंभ करनेलगे ॥ २ ॥ फिर गोपियोंके समूहसे शोभायमान रासका उत्सव योगके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र रचने लगे और मण्डलाकार खडीहुईं दो दो गोपियोंके बीचमें अपने अनेक रूप धारणकर कण्ठमें गलबाहीं डाल गान करते श्रीकृष्ण आपभी खडे हुए ॥ ३ ॥ हे राजन् ! जिन श्रीकृष्णचन्द्रको, सब गोपियें प्यारा मेरे पास है, कोई बोलीं मेरे पास है, इसप्रकार अपने अपने पास जानने लगीं और रासदेखनेकी इच्छासे देवतालोगभी अपनी अपनी स्त्रियोंको लेकर आये, उनके विमानोंसे

आकाश छा रहा था॥४॥देवताओंके आने उपरान्त नगाडे बजनेलगे, फूलोंकी वर्षा होनेलगी और मुख्य मुख्य गन्धर्व अपनी अपनी स्त्रियोंको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका निर्मल यश गाने लगे ॥ ५ ॥ और प्यारे श्रीकृष्णचंद्रके संग जो स्त्रियें थीं, उनके कंकण नूपुर तथा किंकिणियोंका रासमण्डलमें बडा झनकार शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ जैसे दो दो मणियोंके बीचमें एक एक नीलमणि सुन्दर लगती है, उसीप्रकार उस रासमंडलमें दो दो गोपियोंके बीचमें एक एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ७ ॥ पाँवका धरना,भुजाओंका हलना,मुसकानसहित भ्रुकुटियोंका चढना, कमरका लचकना, कुचों और वस्त्रोंका हिलना,कपोलोंपर कुण्डलोंकी हलन, उनसे जिनके मुखपर पसीना आगया, चोटियोंके नारोंकी गाँठि जिनकी खुलगईं, ऐसी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी वधू गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रके गुणानुवाद गान करतीं, जैसे मेघमण्डलमें बिजली

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ जगुर्गंधर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५॥ वलयानां नूपुराणां किंकीणीनां च योषिताम् ॥ सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ॥ मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥७॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिःसस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गंडलोलैः ॥ स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥ उच्चैजगुर्नृत्यमाना रक्तकंठ्यो रतिप्रियाः ॥ कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ॥ उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधुसाध्विति ॥ तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात्॥१०॥

शोभायमान लगती है, उसी प्रकार शोभायमान लगने लगीं ॥८॥ अनेक प्रकारके रंगोंसे कण्ठ जिनके रँगरहे,रतिही जिनको प्यारी और श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श जिनको हो उससे बडा आनन्द जिनको, वह गोपियें नृत्य करते ऊँचे स्वरसे गाने लगीं, जिनका गीत इस विश्वमें छारहा है ॥ ९ ॥ और कोई गोपी मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रके संग उच्चस्वरोंके अलापोंकी गतिको उठाने लगीं, कैसे स्वरोकी जाति ली कि, श्रीकृष्णचन्द्रने जो स्वर उठाया, उनमें मिलतीथी. तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो धन्य है, धन्य है, इस प्रकार बडाई करने लगे इसलिये जिन स्वरोकी जाति ली थी उनको ध्रुवतालमें बाँधकर गातीहुई गोपियें प्रशंसा करनेलगीं तब गोपियोंको श्रीकृष्णचंद्रने बहुत मान दिया ॥ १०

कोई गोपी रासमें श्रमित हो गदा धारण करनेवाले पासमें खडे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके कंधेको हाथसे पकडने लगी, चूरी तथा फूलोंके हार जिनके शिथिल होगये. यहाँ गदा वंशीकोही जानना. क्योंकि गोपियोंके हृदयको चूर करती है ॥ ११ ॥ इसके उपरांत एक गोपीने रोमांच जिसके होआये कमलोंकी समान सुगंधवाली चन्दनसे चर्चित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको अपने कंधेपर धरकर चुम्बन किया ॥ १२ ॥ और फिर नृत्यसे चलायमान कपोलोंको श्रीकृष्णके कपोलोंपर लगाती हुई गोपीको श्रीकृष्णचन्द्रने बीरीका जूँठन दिया ॥ १३ ॥ और किसी गोपीने नूपुर करधनी जिसके बजैं

काचिद्रासपरिश्रांता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ॥ जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ॥ चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ १२ ॥ कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमंडितम् ॥ गण्डे गण्ड सन्दधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥१३॥ नृत्यन्ती गायती काऽपि कूजन्नूपुरमेखला ॥ पार्श्वस्थाऽच्युतहस्ताब्जं श्रांताऽधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कांतं श्रिय एकांतवल्लभम् ॥ गृहीतकंठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटंककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ॥ गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥

नृत्य व गान करतेहुए श्रम पाय पास खड़े हुए मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हस्तकमल अपने स्तनोंपर धारण किया * ॥ १४ ॥ लक्ष्मीके अत्यन्त प्यारे अच्युत श्रीकृष्णको सुंदर पति पाय उनकी भुजाओंसे कंठमें गलबाहीं डाल गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रको गाती विहार करने लगीं ॥१५॥ उस रासमण्डलमें स्त्रियों सहित गंधर्व और किन्नरादिक जो बाजे बजारहे थे, तथा गवैये बनकर गा रहेथे, वह सब रासरसमें मोहित होकर नृत्य करने

* शंका–गोपीने श्रीकृष्णका हाथ अपने हाथसे पकडकर अपने स्तनोंपर क्यों रक्खा ? जैसे मनुष्यकी स्त्री कर्म करती हैं, ऐसा कर्म क्यों किया ? उत्तर–गोपीने विचार किया कि, इनहीं श्रीकृष्णभगवान्ने अपने हस्तकमलोंको प्रह्लादके और ध्रुवके मस्तकपर रक्खा था तब प्रह्लाद और ध्रुव ससारके दु खसे छूटकर भगवानके भजनमें मग्न होगये, इसलिये मैं भी अपने कुचोंपर भगवान्का हाथ धरके इन दोनोंको भक्तजन बनाऊंगी क्योंकि कामदेव जब कुपित होकर पुष्पधनुष सधान कर मेरे ऊपरको चढता है, तो स्तनोंमें अधिक बाधा होती है, अब जो यह भक्त होजायँ तो ससारके सब दु खोंसे निवृत्त होजाऊगी और कामदेव भी मुझको नहीं सतावेगा उसकी बाधासे भी छूट जाऊगी, पुरुषकी ममता शिरपर बहुत होती है और स्त्रीकी ममता स्तनोंपर अधिक रहती है ऐसा विचार करके गोपीने कृष्णका हाथ अपने कुचपर रक्खा ॥

लगे, उससमय कंकण और नूपुर बाजेका कार्य और भौंरे गवैयोंका काम कररहे थे, रास मण्डलमें व्रजवनिता कृष्णके संग नृत्य करतीहुई अत्यन्त शोभा पारही थीं, उनके कानोंके कमल अलकोंसे युक्त कपोल और पसीनेके बूँदोंकी शोभा मुखपर छा रहीथी और नृत्य समयमें जो फूलोंकी माला गिरती थीं; उनसे ऐसी शोभा होरही थी कि, मानों तालोंकी गतिसे प्रसन्न होकर केश शिर हिलाय चरणोंपर फूलोंकी वर्षा कररहेहैं॥ १६ ॥ इसप्रकार लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आलिंगन, हाथोंका स्पर्श, स्नेह भरी चितवन और बड़े विलास हास्यसे, जैसे बालक अपनी परछाहींसे खेलताहै, उसी प्रकार व्रजसुंदरिओंके संग रमण करनेलगे ॥ १७ ॥ हे कुरुकुलको आनन्द देनेवाले राजा परीक्षित् ! उससमय श्रीकृष्णके अंगमें जो आनन्द उससे जिनकी इन्द्रियें विवश होरहीं और जिन व्रजकी स्त्रियोंके माला गहने खिसक रहेथे, वह अपने केश, शरीर, कुच और वस्त्रोंके सम्हारनेको

एवं परिष्वंगकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ॥ रेमे रमेशो व्रजसुंदरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमः ॥१७॥ तदंगसंगप्रमुदाकुलेंद्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा ॥ नांजः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ॥ कामार्दिताः शशांकश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥ कृत्वा तावंतमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ॥ रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामतिविहारेण श्रांतानां वदनानि सः ॥ प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शंतमेनांग पाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुंडलकुंतलत्विङ्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ॥ मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥

भी समर्थ न हुई ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी रासक्रीडा देख आकाशमें देवांगनायें भी कामसे पीडित होकर मोहित होगई और तारागण सहित निशानाथ चन्द्रमा भी आश्चर्य मानकर चलना भूल गया, तब और ग्रह भी जहाँके तहाँ हर गये, उससे राति जो बढ़ गई उससे सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ १९ ॥ जितनी गोपोंकी स्त्रियें थीं; उतनेही अपने रूपधर आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंके संग लीला करने लगे ॥ २० ॥ फिर अत्यंत विहारसे जिनको श्रम प्राप्त हुआ ऐसी गोपियोंके मुखका पसीना देख करुणाको प्राप्त हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे उनका मुख पोंछने लगे ॥ २१ ॥ वे मानवती गोपियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हस्तकमल नख स्पर्शसे

महासुख पाय प्रकाशमान सुवर्णके कुण्डलसे कान्तिमान कपोल तथा रसभरी चितवन और मुसकान युक्त श्रेष्ठ गुणभरे श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके सुन्दर चरित्र गाने लगीं ॥ २२ ॥ मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब रास विलास करते करते थकगये, तब उन गोपियोंको संगले श्रम दूर करनेके लिये जलमें घुसे, कुचोंकी केशर जिसमें लगी अंग अंगसे रगड़ी मालाकी सुगंधसे गंधर्वोंके समान भौंरे गातेहुए उनके पीछे चले जाते थे, जैसे हथिनियोंको संग लेकर हाथी जलविहार करनेको जाते हैं ॥ २३ ॥ हे अंग ! इधर उधरसे जलमें स्त्रियोंको छींटी देते हैं, जिस समय जलविहार करते समय व्यंग वचन बोल और प्रेमपूर्वक कृष्णको देखकर हँसती हैं और भगवान्‌को जलसे भिजोती हैं विमानोंपर बैठे देवता स्तुति और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं, हाथीके समान जिनकी लीला, ऐसे आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तहाँ जलमें

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमंगसंगघृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरंजितायाः ॥ गंधर्वपाऽलिभिरनुद्रुत आविशद् वाः श्रांतो गजी भिरिभराडिव भिन्नसेतुः॥ २३ ॥ सोंऽभस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोंग ॥ वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेंद्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगंधानिलजुष्ट दिक्तटे ॥ चचार भृंगप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजिता निशः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ॥ सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ॥ अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥

अथवा गोपियोंके मंडलमें क्रीडा करनेलगे ॥ २४ ॥ जलक्रीडा करनेके उपरान्त जल स्थलके पुष्पोंकी सुगंधभरी पवन जिसके सब दिशाओंमें व्याप्त होरही है, ऐसे जो यमुनाजीके बागमें भौंरे रूप गोपियोंके संग श्रीकृष्णचन्द्र विहार करनेलगे, जैसे मदस्रावी हाथी हथिनियोंके संग विहार करताहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार सत्यसंकल्प भगवान् चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभायमान उस शरदकी रात्रियोंमें साहित्य काव्योंमें जो करनेकी विधि लिखी है, उसीप्रकार वह स्नेहभरी गोपियोंके संग वीर्यको धारणकर करनेलगे, और जितनी गोपी उतनेहीं श्याम उतनीहीं कुंजोंमें फूलोंकी शय्यापर लेटे हँसते हँसाते कोमल बातें करते थे ॥ २६ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे श्रीशुकदेवजी ! धर्मके स्थापन

और अधर्मका नाश करनेके लिये जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने परिपूर्ण रूपसे अवतार लियाहै ॥ २७ ॥ फिर धर्मकी मर्यादाके रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने पराई स्त्रीका स्पर्श करना, यह अधर्म क्यों किया ? ॥ २८ ॥ पूर्णकाम यादवोंके पति श्रीकृष्णने यह निंदित कर्म कैसे किया ? इसका क्या अभिप्राय है ? हे सुन्दर व्रतवाले शुकदेवजी ! यह हमारा संदेह शमन करो ॥ २९ ॥ यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! सामर्थ्यवानोंको धर्मका उलांघना और साहस भी देखाहै, जैसे अग्निमें भली बुरी वस्तु डालदो, उसको भस्म करदे और उसे

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता ॥ प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ २८ ॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ॥ किमभिप्राय एतं नः संशयं छिंधि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः ॥ विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथाऽरुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ ३१ ॥ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ॥ तेषां यत्स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ ३२ ॥

दोष नहीं लगता, उसी प्रकार सामर्थ्यवान तेजस्वी पुरुषोंको भी दोष नहीं लगता, कहा भी है, "समरथको नहिं दोष गुसाँई" ॥३०॥ बड़ोंकी रीति न करै उसमें पीछे पछताना पडताहै ❀ सामर्थ्यवान पुरुषोंके करे कर्मको मनसे भी न करै और जो कदाचित् अज्ञानसे करै तो माराजाय, जैसे रुद्र (शिव) के विना और कोई समुद्रके विषको पान नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ ईश्वरके वचनोंकोही सत्यमानै और उनके आचरणोंको भी सत्यमानै, जैसा उन्होंने कहाहै, उसीके अनुसार बुद्धिमान पुरुष करै। राम-कृष्ण दोनों अवतार हुए हैं श्रीरामचन्द्रजीने जैसा कहा वैसाही किया,

* दृष्टान्त-एक राजा रानीने सम्मति करी कि हमारे यहाँ भी अनेक युद्ध हुए हैं इसकारण ऐसा महाभारत बनाना चाहिये, यह विचार पंडितोंको बुलायकर कहा कि, एक हमारे नामका भी महाभारत बनाओ परन्तु वह व्यासजीके महाभारतसे किसीप्रकार न्यून न हो चाहे बढती हो, नहीं तो तुम्हें देशसे निकालदूंगा ब्राह्मण आपसमें सम्मति कर राजाके पास आनकर कहने लगे कि महाराज ! महाभारत बनानेकी सामग्री सब प्रस्तुतहै सब बातें अधिकही करैंगे पर एक बात आप बताइये राजाने कहा क्या? ब्राह्मण बोले महाभारतमें द्रौपदीके पांच पति थे, आपकी रानीके उससे अधिक कितने लिखैं सो बताइये और उनके नाम वर्णन कीजिये? सुनतेही राजाकी बुद्धि लोप होगई और घबराकर बोला महाराज क्षमा करो, मुझे महाभारत लिखानेकी सामर्थ्य नहीं, इसलिये बडोंके चरित्र पै शका नहीं करनी चाहिये ॥

इस लियेउनका कहना करना दोनों करै और श्रीकृष्णचन्द्रने जो गीतामें कहाहै,उसे करै और जो उन्होंने लीला करीहैं उनको नकरै किन्तु ध्यान करै ॥ ३२ ॥ हे प्रभो! इस संसारमें जिनको अहंकार नहीं है, ऐसे सामर्थ्यवान पुरुष जो अच्छा कर्म करैं उससे उनको पुण्य और निकृष्ट कर्म करनेसे पाप नहीं होताहै, क्योंकि पुण्य पापतो देहमें अहंकारके वशसे लगेहैं, इसकारण अहंकार रहित पुरुषको कुछ दोष नहीं है ॥ ३३ ॥ जब और महात्माओंको भी पाप पुण्य नहीं लगता तब समस्तप्राणी, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता, जीव, इनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पाप पुण्य नहीं लगताहै, इसमें कहनाही क्याहै ? ॥ ३४ ॥ जिनके चरणारविन्दका पराग अर्थात् मकरंदका सेवन करनेसे तृप्तहोकर भक्तजन और योगप्रभावसे संपूर्ण कर्मबंधन दूरकर मुनीश्वर ज्ञानी बंधनोंसे रहित हो अपनी इच्छापूर्वक विचरतेहैं, तो इच्छासे शरीरके धारण करनेवाले

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ॥ विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥ ३३ ॥ किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ॥ ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४॥ यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ॥ स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥३५॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ योंतश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ॥ भजते तादृशीः क्रीडा याः स्मृत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥ नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ॥ मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ॥ अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बंधन कहाँसे हो ? ॥ ३५ ॥ गोपी और उनके पतियोंके व संपूर्ण देहधारियोंके साक्षीरूप होकर जो देहके भीतर रहते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रने क्रीडा करनेके लिये देह धारण किया है, इसकारण उनमें कुछ दोष नहीं होसक्ता, क्योंकि सर्वत्र वही रमण करते हैं, और बाहर भीतर व्याप्त हैं ॥३६॥ संपूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्य देह धारण करके ऐसी मनुष्य लीला करीहैं कि,जिन लीलाओंको श्रवण करनेसे मनुष्य कृष्णपरायण होजाताहै ॥ ३७ ॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित ब्रजवासियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको कुछ दोष नहीं लगाया और अपनी अपनी स्त्रियोंको अपने अपने पास जाना ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्म मुहूर्त अर्थात् चार घड़ी रात रहे, श्रीकृष्णचन्द्रकी

आज्ञानुसार घर आनेको जिनकी इच्छा नहीं ऐसी प्यारी गोपियें अपने अपने घर आईं ॥३९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका परम कौतुक जो व्रजवधू गोपियोंके संग रासलीलाहै इसे जो पुरुष श्रद्धा सहित श्रवण और कथन करतेहैं* वह पुरुष भगवान्में परमभक्ति प्राप्तकर थोडेही दिनोंमें धीर होकर शीघ्रही हृदयके कामरूप रोगोंका त्यागकर देतेहैं॥४०॥इति श्रीभा०महा०दश० पू०भाषाटीकायां रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३ ॥
दोहा--चौंतिसमें नँदरायको, निगल गयो इक नाग । शंखासुरको वध कियो, कृष्ण सकल भय त्याग ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्!

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ॥ भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेंऽबिकावनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ॥ आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेंऽबिकाम् ॥ २ ॥ गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥ ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः ॥ रजनीं तां महाभागा नन्दसुनंदकादयः ॥ ४ ॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन्विपिनेऽतिबुभुक्षितः ॥ यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥

एकसमय अत्यन्त उत्साहसे सब व्रजवासी देवीकी यात्रा करनेके लिये बैलोंको जोत गाडियोंपर बैठकर देवीके वनमें गये ॥१॥ हे राजन्! वहाँ पहुँच सरस्वती नदीमें स्नान कर फिर महादेवजीका भली भाँति पूजनकर अम्बिका देवीका पूजनकिया ॥ २ ॥ संपूर्ण व्रजवासी, महादेव हमारे ऊपर प्रसन्नहों,इसलिये मधुयुक्त मधुर अन्न और गौ, ब्राह्मणोंको दान किया॥३॥ और बडे भाग्यवान् नन्दादिक और सब व्रजवासियोंने उसदिन रात्रिको जलका आचमन कर तथा तीर्थ व्रत करके सरस्वतीके किनारेही वास किया ॥ ४ ॥ हे नृप ! उस वनमें कोई अत्यन्त भूखा सर्प रहताथा, उसने

* दृष्टान्त—एक बुढिया बडी कहा सुनीसे कथा सुनने गई पीछेसे कटोरा जाता रहा दूसरे दिन कथामें न आई, लुगाइयोंने कहा, बुढिया तू कथा सुननेको न आई बोली कि, भैना ! खर्चे बहुत पडता है पहले दिनगई तो कटोरा गया अबकी सुनूँगी तो थाली लोटे परात सब खो बैठूँगी इसकारण मेरा तो कथाको दूरसेही दण्डवत् है ।

अकस्मात् आनकर नन्दरायजीको ग्रसा* ॥५॥ सर्पसे ग्रसित होकर नन्दजी पुकारने लगे कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह अत्यन्त भयानक सर्प मुझको निगले जाता है, हे पुत्र ! मैं तेरी शरण हूँ, तू मुझे छुड़ा ॥ ६ ॥ इसप्रकार नन्दजीकी पुकार सुन घबराहटसे ब्रजवासी शीघ्रही उठे, देखाकि, नंदजीको सर्प निगले जाताहै तो सुलगती लकड़ियोंसे उसको मारने लगे ॥७॥ यद्यपि ब्रजवासियोंने सुलगती लकड़ियोंसे उसे मारा परन्तु तोभी उस सर्पने नंदजीको न छोड़ा, तब भक्तोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस सर्पको अपने चरणकी ठोकर मारी ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी ठोकर लगतेही उसके सब पाप दूर होगये और उस सर्पने सर्पदेहको त्यागकर विद्याधर जिसका पूजन करैं, ऐसे स्वरूपको धारण किया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त प्रकाशमान रूप धारण किये सुवर्णकी मालापहिरे उस खड़ेहुए पुरुषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूछने लगे कि ॥१०॥ परम शोभायमान अद्भुतदर्शन तुम कौन हो ? और विवश होकर यह सर्पकी योनि तुमको कैसी मिली॥११॥यह सुनकर वह सर्प बोला कि, महाराज !

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्णकृष्ण महानयम् ॥ सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्य चाक्रंदितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ॥ ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुंचत्तमुरंगमः ॥ तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ८ ॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ॥ भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ॥ दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ ॥ १० ॥ को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ॥ कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः ॥ श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरन्दिशः ॥ १२ ॥

* शंका–सब सर्प प्राणियोंको काटते हैं परन्तु अपनी भूखकी शान्तिके लिये नहीं काटते केवल प्राणियोंको डसना (काटना) सर्पोंका स्वभाव है, भागवतमें लिखा है कि, भूखे सर्पने नन्दजीको डश लिया ऐसा क्यों लिखा ?

उत्तर–जिस सर्पका भागवतमें इतिहास है, वह सर्प पूर्वजन्मका देवता था, जब मुनीश्वरने उसको शाप दिया था तब इससे कह दिया था कि, जिससमय श्रीकृष्णका चरण तेरी देहसे छू जायगा तब तेरी मोक्ष होगी, उस सर्पको वही आशारूपी क्षुधा थी, उसीसे दुःखी होकर सर्पने नन्दजीको काटा ॥

मैं सुदर्शन नाम करके विख्यात कोई गंधर्व था, संपत्ति और शरीरकी सुन्दरतासे गर्वित हो विमानमें बैठकर दिशाओंमें विचरता था ॥ १२ ॥ तब एक समय मैंने रूपके मदसे मत्त होकर कुरूप अंगिरसादि ऋषियोंकी हँसी करी, तब उन्होंने मुझे शाप दिया, जिससे मेरी सर्पयोनि होगई ॥ १३ ॥ करुणावान् ऋषीश्वरोंने कृपा करनेहीके लिये मुझे शाप दिया था, जिसकारण त्रिलोकीके गुरु आपके चरणारविन्द स्पर्श करनेसे सब पाप छूटगये, और यदि वे शाप न देते तो तुम्हारे चरण मेरे कैसे लगते ? ॥ १४ ॥ संसारसे डरकर शरण आये पुरुषका भय दूर करनेवाले आप हैं, सो मुझसे क्या पूछते हो; हे पापनाशक ! तुम्हारे चरण स्पर्शसे मेरे सब पाप दूर होगये ॥ १५ ॥ हे महायोगिन् ! हे महापुरुष ! हे महासाधुओंके पति ! हे प्रकाशमान ! हे सबलोकोंके ईश्वर ! हे ईश्वरके ईश्वर ! तुम्हारी मैं शरण आया हूँ, सो मुझे आज्ञादो ॥ १६ ॥ हे अच्युत ! तुम्हारा दर्शनकरके मैं शीघ्रही ब्राह्मणोंके

ऋषीन्विरूपानंगिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ॥ तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥ शापो मे ऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ॥ यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४ ॥ तं त्वाऽहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ॥ आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५ ॥ प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन्महापुरुष सत्पते ॥ अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥ ब्रह्मदंडाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् ॥ यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥ १७ ॥ सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवंद्य च ॥ सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नंदश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतस स्ततः ॥ समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं नृपाऽऽययुस्तत्कथयन्त आदृताः ॥ १९ ॥ कदाचिदथ गोविंदो रामश्चाद्भुत विक्रमः ॥ विजहतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥

शापसे छूट गया, क्योंकि जिनका नामही उच्चारण करके वक्ता और श्रोता अपनेको पवित्र करते हैं ॥ १७ ॥ फिर तुम्हारे चरणोंसे मैं पवित्र हुवा तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा ले, परिक्रमा दे, प्रणाम कर वह सुदर्शन स्वर्ग को चलागया और नंदजी कष्टसे छूटगये ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वैभव देख आश्चर्यको प्राप्त हो व्रजवासी तीर्थमें नेमको पूर्ण कर बड़े आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णचंद्रका चारित्र कहतेहुए व्रजमें आये ॥ १९ ॥ किसी समय एक यात्राके उपरान्त गोविंद

और अद्भुत पराक्रमवाले बलराम दोनों भाई वनके बीच रात्रिमें व्रजस्त्रियोंके मध्यमें विहार करते थे॥ २० ॥ स्नेहसे बद्ध होनेके कारण ललित स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णके चरित्र गारहींथीं और दोनों भाई सुन्दर आभूषण धारण किये, केशर चंदन लगाये, वनमाला और निर्मल वस्त्र पहरे ॥ २१ ॥ रात्रिके प्रारम्भ होनेसे तारागण और चन्द्रमाका उदय होरहा था, चमेलीकी सुगन्धसे मत्त होकर भौंरे गुंजार कर रहे थे, फूली कुमोदिनीसे लगकर पवन चल रहाथा ॥ २२ ॥ उसकी सराहना करते सब प्राणियोंके मन और कानोंको आनन्ददायक संगही स्वरके मंडलोंकी मूर्च्छना करते गाने लगे ॥ २३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्ण बलदेवका गाना सुनकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गोपियोंके वस्त्र ढीले पड़गये और

उपगीयगानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः॥ स्वलंकृतानुलिप्तांगौ स्रग्विणौ विरजोंबरौ॥ २१॥ निशामुखं मानयंतावुदितोडुपतारकम्॥ मल्लिकागंधमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना॥ २२॥ जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमंगलम्॥ तौ कल्पयंतौ युगपत् स्वरमंडलमूर्छितम्॥ २३॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन् नृप॥ स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः॥ २४॥ एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत्॥ शंखचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात्॥ ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम्॥ क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशंकितः॥ २६॥ क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम्॥ यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम्॥ २७॥ मा भैष्टेत्यभयाऽऽरावौ शालहस्तौ तरस्विनौ॥ आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम्॥ २८॥

चोटियोंकी गॉठे खुलगई कि, जिनसे फूलोंकी माला गिर गई अधिक क्या कहैं, उन्हें अपने २ आपेकी भी सुधि न रही॥ २४ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार कृष्ण बलदेव दोनों भाई मतवालेके समान क्रीड़ा और गान कररहे थे कि, इतनेमेंही शंखचूड़ नाम कुबेरका टहलुआ आया ॥ २५॥ हे राजा परीक्षित् ! कृष्ण बलदेवके देखते निर्भय हो शंखचूड़ जब उन गोपियोंके समूहको जिसके स्वामी कृष्ण बलदेव हैं, लेकर उत्तरकी ओर चला, उस समय वह गोपियें पुकारने लगीं ॥ २६ ॥ जैसे सिंहकी पकड़ी गौ पुकारती है, उसी प्रकार हे कृष्ण बलदेव ! इस प्रकार पुकार करती गोपियोंको देख कृष्ण बलदेव दोनों भाई शंखचूडके पीछे दौड़े ॥ २७ ॥ मतडरो ऐसे भयके दूर करनेवाले वचन कह शालका वृक्ष हाथमें

लिये शीघ्रतासे कृष्ण बलदेव दौड़ गुह्यकगणमें अधम शंखचूड़के पीछे गये ॥ २८ ॥ काल मृत्युके समान पीछे दौड़े चले आते श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवको देख, स्त्रियोंको छोड़ मूढ शंखचूड़ अपने प्राण बचानेके लिये भागा ॥ २९ ॥ जहां जहां शंखचूड़ भागकर गया वहाँ वहाँ गोविंद श्रीकृष्णचन्द्र उसके शिरकी मणि लेनेके लिये उसके पीछे दौडे और बलदेवजी स्त्रियोंकी रक्षाके लिये वहीं रहे ॥ ३० ॥ हे राजा परीक्षित् ! थोडी दूर पर जाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दुष्टमनवाले शंखचूडके मुष्टिक मार शिर सहित उसके माथेकी मणि लेली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ॥ विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥ तमन्वधावद् गोविंदो यत्रयत्र स धावति ॥ जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥ अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ॥ जहार मुष्टिनैवांग सह चूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शंखचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥ अग्रजाया ददत् प्रीत्या पश्यंतीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥ कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

चन्द्रने इसप्रकार शंखचूड दैत्यको मार प्रकाशमान् मणि लेकर संपूर्ण स्त्रियोंके देखते प्रसन्नतापूर्वक अपने बडे भाई बलदेवजीको देदी ॥ ३२ ॥ ति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ दोहा–पैंतिसमें हरि वन गये, पीछे गोकुल नारि । वेणु गीतही गायकर, दियो कष्ट सब टारि ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें गये तब श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये गोपियें विरहमें उनकी लीलाको गाय गाय अत्यन्त कष्टसे दिन व्यतीत करनेलगीं ❀ ॥ १ ॥

❀ शंका–श्रीशुकदेवजीने परीक्षितसे कहा था कि, हे राजन् ! श्रीकृष्ण जिस दिन गौवें चराने जाते थे, तब विना कृष्णको देखे अलग होकर गोपी बहुत दुःखसे दिन काटती थीं, इस वचनसे जानपडता है कि सब गोपी गोकुलमें रात्रिके समय श्रीकृष्णके पास सभा बनाकर रहती होंगी ? प्रातःकाल होतेही व्रज विहारी फिर गाय चराने चले जाते होंगे, तब फिर सब गोपी उसीप्रकार व्याकुल हो जाती होंगी ।

गोपियें परस्पर बोलीं कि, हे सखियो ! बाईं भुजापर बायें कपोलको धर भ्रुकुटियोंको चढ़ाय मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी अधरके ऊपर बाँसुरीको धर और अपनी कोमल अँगुलियोंसे उसके छिद्रोंको दाब जिससमय बजाते हैं ॥ २ ॥ उससमय आकाशमें गमन करनेवाली देवताओंकी स्त्रियें अपने पतियों सहित बाँसुरीको सुन प्रथम आश्चर्यमान लाज सहित कामके बाणोंसे परवशहो मन हरजानेके कारण नारोंकी भी जिनको सुधि न रही इसप्रकार मोहको प्राप्त होगईं ॥ ३ ॥ हे अबलाओ ! यह आश्चर्य सुनो हारकी समान निर्मल जिनकी हँसनि, बाँसुरी बजाते समय नीचा मुख करके जो हँसते हैं, तो उनकी हारोंमें प्रकाशित हँसनि होती है, अथवा हारकी तुल्य छातीमें शोभायमान जिसकी हँसनि है और छातीमें बिजु

गोप्य ऊचुः॥ वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्॥कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुंदः
॥ २ ॥ व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥ काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनी
व्यः ॥ ३ ॥ हंत चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत ॥ नंदसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः
॥ ४ ॥ वृंदशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ॥ दंतदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन्
॥ ५ ॥ बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडंबः॥कर्हिचित्सबल आलि सगोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः॥६॥ त
र्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदांबुजरजोऽनिलनीतम् ॥ स्पृहयतीर्वयमिवाऽबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

लीकी तुल्य प्रकाशमान स्थिर लक्ष्मी जिसके हृदयमें वास करती है पीड़ितजनोंको सुख देनेवाला यह नंदका पुत्र जिस समय बाँसुरी बजाताहै॥४॥ तब दूरसे बाँसुरीका शब्द सुन हरगये हैं मन जिनके ऐसे गौ, बैल और हिरणोंके समूहके समूह दाँतोंसे कौर काटकर उसे दाबे हुए कानोंको ऊंचाकर सोतेसे चित्र लिखेके समान खड़े होगये. बड़ा आश्चर्य है कि, पशु, पक्षियोंकी यह दशा है ॥ ५॥ हे सखी ! मोरपुच्छ, खड़िया गेरू, मनसिल, पात, इनसे मल्लके समान स्वरूपसे कभी बलदेव भाई सहित और गोपियों सहित मुकुन्द जिससमय बाँसुरी बजाकर गौओंको

—उत्तर—व्याकरणके पढनेवाले जो विद्वान्पुरुष हैं यह (निन्युर्दु:खेन वासरान्) इस श्लोकमें वासरका अर्थ दिनका नहीं करते, वास, सब वस्तुके प्रमाणका नाम है उसी वासको जो ग्रहण करे, उसका नाम वासर है, व्याकरणके पढने वाले विद्वानोंने वासरका अर्थ निमिषका किया है, इसी निमिषको गोपी बडे दु खसे बिताती थीं आँखोंके पडने उघडनेका नाम निमिष है ॥

बुलाते हैं; उससमय बाँसुरीका शब्द सुनकर नदियोंका प्रवाह बहनेसे रुकजाता है और पवनसे उडकर गई उनके चरणोंकी रजको हमारी तुल्य
आकांक्षा करती हैं और हमारी तुल्य उनके भी उत्कृष्ट पुण्य नहीं हैं, इसलिये वह नदियोंको नहीं मिलती, प्रेमसे जिनकी लहर काँपती हैं, जल
जिनके निश्चल होजाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ गोप, ग्वाल और देवता जिनके निर्मल यशको गाते हैं, नारायणकी तुल्य सदा स्थिर लक्ष्मीवाले वनके विच
रनेवाले कृष्ण जिससमय गोवर्द्धन पर्वतके शिखरपरसे चरतीहुई गौओंको बाँसुरी बजाकर बुलाते हैं, उस समय फूल, फल, जिनमें लगे उनके
बोझसे शाखा जिनकी झुकरहीं, प्रेमसे हर्षित चित्त, वनके लता, वृक्ष, अपनेमें विष्णुको प्रगट करते मकरंदकी धारा बहाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुन्दरोंमें
अतिसुन्दर अथवा सुन्दर देखने योग्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्याम ललाटमें केशरका तिलक लगाये वनमाला पहरे जिसकी दिव्य गंध और

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः॥वनचरो गिरितटेषु चरंतीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥ वन
लतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यंजयंत्य इव पुष्पफलाढ्याः ॥ प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥९॥
दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगंधतुलसीमधुमत्तैः ॥ अलिकुलैरलघु गीतमभीष्टमाद्रियन्यर्हि संधितवेणुः ॥ १० ॥ स
रसि सारसहंसविहंगाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य ॥ हरिमुपासत ते यतचित्ताः हंत मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥ स
हबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥ हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरंभति विश्वम् ॥ १२ ॥ मह
दतिक्रमणशंकितचेता मंदमंदमनुगर्जति मेघः ॥ सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥

तुलसीके मकरंदसे मत्त हो, भौंरे उनके उच्च और अनुकूल गानको मान देते हैं, ऐसे भगवान् जब अधरके ऊपर बाँसुरीको धरके बजाते हैं उस
समय सरोवरोंमें सारस, हंस और पक्षी गानसे मोहितचित्त हो उस स्थानमें आँखें मूँदे मौन धारण करे चित्त रोके कृष्णके निकट बैठे रहते हैं
॥ १० ॥ ११ ॥ हे गोपियो ! मालाओंसे कानोंमें कुण्डलसे शोभायमान, आनन्दको प्राप्त बलदेव भाई सहित कृष्ण जब सब विश्वको
आनन्द दे बाँसुरीके शब्दसे पूर्ण करते हैं, उससमय इस महान् कृष्णका अपराध न हो, इस प्रकार मेघ मनमें शंका मान मुरलीके शब्दके
पीछे मंद मंद गर्जते हैं, और अपने मित्र श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षाकरते हैं, छत्रसे छाया करते हैं, सो वह मेघ इसका सच्चा मित्र है

क्योंकि यह भी साँवरा और वह भी साँवरा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे यशोदा ! अनेक प्रकारके गोपोंके खेलोंमें निपुण तुम्हारा पुत्र अधरके ऊपर बाँसुरी धरकर अपने आपही सीखगये, क्योंकि षड्ज, निषाद, ऋषभ, गांधारादि स्वरोके आलापनेके भेद वह स्वयंही उठालेता है ॥ १४ ॥ उस समय इन्द्र, शिव, ब्रह्मा यह जिनमें मुख्य हैं, ऐसे बुद्धिमान देवता मंद मध्यतारसे बाँसुरीको सुनकर मोहित होगये और नीचेको मुखकरके कौन स्वरको गाते हैं । यह भी निश्चय नहीं करसके ॥१५॥ ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल इनके चित्र विचित्र चिह्नवाले अपने चरणकमलसे व्रजभूमिको गायोंके खुर पडनेसे जो खेद है उसको शांत किया और मतवाले हाथीके समान चलनेवाले श्रीकृष्ण बाँसुरीको बजाकर जिस समय चलते हैं उस

विविधगोपरसेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ॥ तव सुतस्सति यदाऽधरबिंबे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ १४ ॥ सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ॥ कवय आनतकंधरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥ निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजांकुशविचित्रललामैः ॥ व्रजभुवश्शमयन्खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥ व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ॥ कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कवरं वसनं वा॥१७॥ मणिधरः क्वचिदागणयन्गा मालया दयितगंधतुलस्याः ॥ प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन्भुजमगायत तत्र ॥ १८ ॥ कणितवेणुरववंचितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ॥ गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ ॥ १९ ॥ कुंददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥ नंदसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥ ॥ २० ॥ मंदवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन्मलयजस्पर्शेन ॥ वंदिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥

समय विलासपूर्वक चिन्तवनसे कामदेवके वेगमें भरी हमें वृक्षोंकी तुल्य जड होकर चोटी और वस्त्रोंकीभी सुधि नहीं रहती है॥ १६ ॥ १७ ॥ प्यारी सुगंधिवाली तुलसीकी मालाको पहरे मणियोंकी सुमिरणी हाथमें लेकर गायोंको गिनतेहुए प्यारे मित्रके कंधेपर हाथ रखकर जिस समय गाते हैं उस समय बजतीहुई बाँसुरीका शब्द सुन चित्त हरजानेसे हारिणोंकी स्त्रियें हरिणी गुणोंके समुद्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास आनकर गोपियोंकी समान घरकी आशाओंको त्याग सेवन करनेलगीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे यशोदे ! गोपियोंको आनन्द देनेके लिये कुंदकी मालाओंसे आनंदपूर्वक शृंगार

किये स्नेहियोंको आनंद देनेवाला यह तेरा पुत्र नंदकुमार गोप गौओंको संग लिये जिस समय यमुनामें विहार करता है, उससमय चंदनकेसी सुगंधिवाला शीतलस्पर्श पवन श्रीकृष्णका सन्मान करता है । अनुकूल मन्द मन्द चलता है और गंधर्वादि तथा बंदिजनोंकी नाईं बाजे बजाता गाता फूलोंकी वर्षाकरके सेवा करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ देखो व्रजमें गायोंका हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब इन्द्रने वर्षा कीथी तब गोवर्द्धन उठाकर रक्षा करी और बडे बडे ब्रह्मादिक आनकर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं और संध्यासमय जब गायोंको इकट्ठाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बाँसुरी बजाते और मित्रोंसे अपनी कीर्ति श्रवण करते श्रमभरी शोभासे आनन्द देते गायोंकी रज मालामें लग रही चन्द्रमाके समान प्रकाशमान देवकीके गर्भसे उत्पन्नहुए श्रीकृष्णचन्द्र जो हैं सो हमारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ कुछेक मंदमंद नेत्र जिनके

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वंद्यमानचरणः पथि वृद्धैः ॥ कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनांते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥
उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् ॥ दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥
मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ॥ बदरपांडुवदनो मृदुगंडं मंडयन्कनककुंडललक्ष्म्या ॥ २४ ॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनांते ॥ मुदितवक्त्र उपयाति दुरंतं मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥
॥२५॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीला नु गायतीः ॥ रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥
॥२६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे वृंदावनक्रीडायां गोपिकागीतं नाम पंचात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५॥

घूम रहे अपने स्नेहियोंको मान देनेवाले वनमाला पहरे पके बेरके समान श्याममुख और कुण्डलोंकी कान्तिसे कोमल कपोलोंको शोभायमान करते मतवाले हाथीके समान जिनका विहार प्रसन्न मुख इसप्रकार यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने संध्यासमय जिसप्रकार चन्द्रमा उदय होता है, उसीप्रकार उदय होकर व्रजकी गायरूप हमारा बहुत दिनोंका ताप दूर करदिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमेंही जिनका जीवन और वृद्धिको प्राप्त हुआ उत्सव ऐसी व्रजवालायें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला गा गाकर दिन व्यतीत करने लगीं ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोपिकागीतं नाम पंचात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दोहा–कंस सुनो छत्तीसमें, मरो अरिष्ट विसूर। रामकृष्णके लेनको, भेजो जन अक्रूर ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! इसप्रकार देवता गंधर्वादिक जिनका गान और नृत्य करें, बाजे बजाकर फूलोंकी वर्षा करें ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर परम उत्सव हुआ, इसके उपरान्त उसीसमय व्रजमें बैलका रूप बनाकर अत्यन्त विशाल देह और खुरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण और कम्पायमान करताहुआ, अरिष्टासुर आया ॥ १ ॥ अत्यन्त रंभाता, खुरोंसे धरती खोदता, पूंछ उठाता, खेतोंकी मेंडोंको तोडता ॥ २ ॥ बीच बीचमें

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥ महीं महाककुत्कायः कंपयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥ रंभमाणः खरतरं पदा च विलिखन्महीम् ॥ उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥२॥ किंचित्किंचिच्छकृन्मुंचन्मूत्रयंस्तब्धलोचनः ॥ यस्य निर्ह्रादितेनांग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥ पतंत्यकालतो गर्भाः स्रवंति स्म भयेन वै ॥ निर्विशंति घना यस्य ककुद्यचलशंकया ॥४॥ तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्संत्यज्य गोकुलम् ॥५॥ कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविंदं शरणं ययुः ॥ भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥६॥

गोबर और मूत्र करता अत्यन्त भयानक आँखवाला इसप्रकार अरिष्टासुरके रंभानेका शब्द सुनकर गाय और स्त्रियोंके बिना समयही गर्भ गिरगये, जिसके टांटके ऊपर पर्वत जानकर मेघ आन बैठते हैं ❋ ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे परीक्षित्! इसप्रकार अत्यन्त पैने सींगवाले अरिष्टासुरको देखकर सब गोप और गोपी अत्यन्त भयभीत होगये, पशु खिरकोंको छोडकर डरके मारे भागगये, हेकृष्ण! हेकृष्ण!! इसप्रकार पुकारनेलगे और संपूर्ण

❋ शंका–वृषभासुरके शब्दसे गायोंका और स्त्रियोंका गर्भ गिरजाता था, ऐसा भागवतमें लिखाहै, तब वह दुष्ट वृषभासुर तो नित्य शब्द करता रहता होगा तब गायोंकी और स्त्रियोंकी सृष्टिका नाश क्यों नहीं हुआ? गायोंका और मनुष्योंका वंश नष्ट होना चाहिये था, सो क्यों न हुआ? ऐसी बात न तो हमने आजतक आंखसे देखी न कानोंसे सुनी ॥

उत्तर–वृषभासुरके प्रभावको जानकर भगवान्ने सुवीर्य और सुरपालक दोनों देवताओंको आज्ञा दी कि, जब दुष्ट शब्द करनेलगे तब तुम दोनों उसका कण्ठ रोक लो, ऐसी भगवान्की आज्ञा पाकर वे वृषभासुरके पास रहने लगे जब वृषभासुर गर्जन शब्द करता, तब वह दोनों देवता उसके कण्ठको रोकलेते थे, इसी प्रकार सब अवस्था व्यतीत होगई, वृषभासुरको शब्द नहीं करने दिया, जिसदिन मरनेका समय आया उसदिन महागम्भीर शब्द करके भगवान्के हाथसे मारागया, इसलिये नित्य शब्द करने नहीं पाया ॥

ब्रजवासी गोविंद श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें आये इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, डरके मारे गोकुलवासियोंको भागता देखकर "भय मतकरो" इसप्रकार कहा अरिष्टासुरको निकट बुलाकर कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे मूर्ख ! हे असाधो ! ग्वाल गायोंके डरानेसे तुझे क्या मिलेगा ? मेरे सन्मुख आ, क्योंकि तुझ सरीखे मतवाले दुष्टोंका बल और मद दूर करनेको मैंने अवतार लियाहै॥७॥इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कह,खम्भ ठोंक और अरिष्टासुरको क्रोध उत्पन्न कराय, मित्रके कंधेपर सर्पाकार भुजा पसारकर खडे होगये ॥ ८ ॥इसप्रकार क्रोधको प्राप्तहुआ अरिष्टासुर पूँछ उठाय खुरोंसे धरती खोदताहुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके सन्मुख आया ॥ ९ ॥ सींगोंका अग्रभाग आगे किये पलक विसारे,लाल लाल

मा भैष्टेति गिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ गोपालैः पशुभिर्मंद त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥ बलदर्पहाऽहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ॥ उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ॥ कटाक्षिप्याऽद्रवत्तूर्णमिंद्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वा शृंगयोस्तं च अष्टादश पदानि सः ॥ प्रत्यपोवाह भगवान्गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥ सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः॥ आपतत्स्विन्नसर्वांगो निश्श्वसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२ ॥ तमापतंतं स निगृह्य शृंगयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ॥ निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमंबरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥ असृग् वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन्क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ॥ जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरंतो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥

आँखें किये,अरिष्टासुर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर देवराज इन्द्रके छोडे वज्रसेभी शीघ्र उनके सन्मुख आनकर उपस्थित हुआ ॥ १० ॥ और आतेही उसके सींग पकड जैसे हाथीको हाथी धक्का देताहै,उसीप्रकार उलटे पाँव करके उसे धकियानेलगे॥११॥ जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अरिष्टासुरको ढकेल दिया, तब फिर वह उठकर पसीनेमें चुचियाता अत्यन्त क्रोधित हो बडे बडे श्वास लेताहुआ दौडकर आया ॥ १२ ॥ आतेही भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उसके शींग पकडकर पृथ्वीमें दे मारा और पाँवसे छाती दाब कर जैसे गीले कपडेको निचोड़तेहैं. उसीप्रकार उमेठदे, शींग उखाड़ उसका प्राण संहार किया ॥१३॥ उस समय उसके नेत्र चलायमान होगये, रुधिरकी वमन और गोबर करता पाँवों को पटकता अरिष्टासुर मरगया;

तब देवतालोगोंने फूल वर्षाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति की ॥१४॥ इस प्रकार अरिष्टासुरको मार, मित्रोंसे सन्मानित हो, गोपियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्रजमें आये ॥१५॥ अद्भुत कर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मार दिया, तब देवताओंके समान देवर्षि नारदजीने सब वृत्तान्त कंससे जाकर कहा ॥ १६॥ कि, हे राजन् ! यशोदाके कन्या हुई और देवकीके कृष्ण हुआथा, बलदेव रोहिणीके पुत्र हैं तुम्हारे भयके मारे वसुदेवजी अपने मित्र नंदजीके घर रातों रात पहुँचा आयेथे और प्रत्यक्ष देखलो कि, जितने दैत्य आपने भेजे वह सब कृष्ण बलदेवने मारडाले;यह वचन नारदजीका श्रवणकर क्रोधके मारे कंस विकलेन्द्रिय होगया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब वसुदेवजीके मारनेके लिये

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः॥विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥१५॥ अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णे नाद्भुतकर्मणा ॥ कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥१६॥ यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ॥ रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥ १७ ॥ न्यस्तौ स्वमित्रे नंदे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ निशम्य तद् भोजपतिः कोपात्प्रचलितेंद्रियः ॥१८॥ निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबंध सह भार्यया ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥ २० ॥ प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥ २१ ॥ अत्मात्यान्हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥ भो भो निशम्यतामेतद् वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥ २२ ॥

कंसने अत्यन्त पैनी तलवार ग्रहण की, परंतु नारदजीने निवारण करदिया, इसके उपरान्त कृष्ण बलदेवसे अपनी मृत्यु जान ॥ १९ ॥ देवकी सहित वसुदेवके पैरोंमें बेड़ी डालदी, नारदजीके चले जानेपर फिर कंसने केशी नाम राक्षसको बुलाकर ॥ २० ॥ कहा कि, तुमही रामकृष्णको मार आओ और फिर मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल, आदि जो मल्ल थे, उन्हें बुलाया ॥ २१ ॥ इसके उपरांत मंत्रियों और हाथियोंके महावतोंको बुलाकर भोजवंशियोंका राजा कंस बोला कि, हे वीर ! हे चाणूर ! हे मुष्टिक ! मेरी बात सुनो ॥ २२ ॥

नंदजीके गोकुलमें वसुदेवके पुत्र जो कृष्ण, बलराम रहते हैं उनहींके हाथसे निश्चय नारदजीने मेरी मृत्यु बताई है ॥ २३ ॥ इसलिये वह जिस समय आवैं उसीसमय पाँवोंसे दाब मल्ललीलाकरके मारडालना और मल्लोंकी जो रंगभूमि है, उसमें अनेक प्रकारके मञ्चान बनाओ ॥ २४ ॥ क्योंकि पुरवासी और देशवासी संपूर्ण उनपर बैठकर मल्लोंकी कुस्ती देखेंगे, इसके उपरान्त मंगल रूप कुवलयापीड हाथीको रंगभूमिके द्वारपर खडा करदो ॥२५॥ बस ज्योंही कृष्ण बलदेव आवैं त्योंहीं उन्हें हाथीसे मरवाडालना और चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुषयज्ञकी तैयारी करो और संपूर्ण कामनाओंके देनेवाले महादेवजीका पूजन करनेके लिये पवित्र पवित्र पशु लाओ ॥२६॥ हे राजन् ! अपने अर्थके तत्त्वको जाननेवाले राजा

नंदव्रजे किलासाते सुतावानकदुंदुभेः ॥ रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ मंचाः क्रियंतां विविधा मल्लरंगपरिश्रिताः ॥ ॥२४॥ पौरा जानपदाः सर्वे पश्यंतु स्वैरसंयुगम् ॥ महामात्र त्वया भद्र रंगद्वार्युपनीयताम् ॥ २५ ॥ द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ आरभ्यतां धनुर्यागश्च तुर्दश्यां यथाविधि ॥ विशसंतु पशून्मेध्यान्भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतंत्रज्ञ आहूय यदुपुंगवम् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥ भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ॥ नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ॥ यथेंद्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद् विभुः ॥२९॥ गच्छ नंदव्रजं तत्र सुतावानकदुंदुभेः ॥ आसाते ताविहानेन रथेनानय माचिरम् ॥३०॥ निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ॥ तावानय समं गोपैर्नंदाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥

कंसने अपने सेवकोंको इसप्रकार आज्ञादी, इसके उपरान्त यादवश्रेष्ठ अक्रूरको बुला हाथ पकडकर कहा ॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूर ! तुम एक हमारी मित्रताका कार्य करो, क्योंकि इससमय भोज और वृष्णि वंशियोंमें तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अतिशय हितकारी कोई नहीं है ॥ २८ ॥ हे साधो ! हे सौम्य ! जैसे इन्द्रने विष्णु भगवान्का आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त किया था, उसीप्रकार अब मैं तुम्हारा आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त हूंगा इसलिये मैंने तुम्हारा आश्रय लियाहै ॥२९॥ अब तुम व्रजमें जाकर वसुदेवात्मज कृष्ण और बलदेवको शीघ्रही रथमें बैठाल कर ले आओ ॥३०॥ क्योंकि विष्णुका आश्रय लेकर देवता लोगोंने मेरे मारनेके कारण कृष्ण बलदेवको उत्पन्न किया है, इसलिये तुम नन्दादिक संपूर्ण व्रजवासियों

साहित कृष्ण बलदेवको यहां ले आओ और मेरी ओरसे कहना कि, चलकर राजा कंसको भेंट दो ॥ ३१ ॥ बस जहाँ कृष्ण बलदेव आये कि, तहाँहीं कालके समान कुवलयापीड हाथी उन्हें मारडालेगा और यदि हाथोसे भी छूट जायँगे तो बिजलीके समान मेरे मल्ल मारडालेंगे ॥ ३२ ॥ फिर जहां कृष्ण बलदेव मारे गये, तब उसी समय उनके शोकसे व्याकुल वसुदेवादि बंधु बांधुवोंको भी मार डालूंगा और इसके उपरांत वृष्णि, भोज, दाशार्हवंशमें उत्पन्न हुए यादवोंको भी मारूंगा ॥ ३३ ॥ यद्यपि उग्रसेन मेरे वृद्ध पिताहैं, परन्तु तोभी उनकी राज्यकी चाहना विद्यमान है, इसलिये उनको और उनके भ्राता देवकको भी मारूंगा, अधिक कहनेसे क्या, जितने मेरे वैरी हैं, सबकोही मारूंगा ॥ ३४ ॥ हे अक्रूर ! इसके

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ॥ यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् ॥ तद्बंधून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ॥ तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकंटका ॥ जरासंधो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शंबरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ॥ तैरहं सुरपक्षीयान्हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥ एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ॥ धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥ राजन् मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ॥ सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥

उपरांत यह पृथ्वी कंटकरहित होजायगी, फिर जरासन्ध है, सो मेरा श्वशुर है और द्विविद मेरा प्यारा मित्र है ॥ ३५ ॥ शंबरासुर, नरकासुर, बाणासुर इत्यादिकोंने मुझमें स्नेह बढ़ाही रक्खाहै बस इनको संग लेकर जितने देवताओंकी ओरके राजा हैं, सबको मारकर आनन्दपूर्वक पृथ्वीका राज्य करूंगा ॥ ३६ ॥ यह बात अपने मनमें गुप्त रखकर कृष्ण बलदेवको शीघ्रही लिवालाओ और मेरी ओरसे कहना कि, तुम्हारे मामाने धनुषयज्ञ किया है, उसको चलकर देखआओ, इसमें तुम्हें यादवोंकी पुरी मथुराकी शोभा भी देखनेको मिलजायगी ॥ ३७ ॥ यह सुनकर अक्रूरजी बोले कि, हे राजन् ! तुमने भला विचारा, तुम्हारी मृत्युका दूर करनेवाला यही उपाय है, परन्तु होने और न होनेमें मनुष्य समता करै,

क्योंकि जो प्रारब्धहै सोही फलका दाता है ॥३८॥ यह पुरुष बड़े बड़े मनोरथ करताहै, परंतु जब दैव हत कर देताहै तो दुःखी होताहै; जो मनोरथ
पूर्ण होजाय तब तो मनमें हर्ष माने और न हो तो शोक करै, इसमेंसे क्या ध्वनि निकली कि, तुम कहते हो कि, कृष्ण बलदेवको मरवाऊंगा. क्या
जाने वेही तुम्हैं मार डालैं पर तो भी तुम्हारी आज्ञा करूंगा ॥३९॥ इसप्रकार राजा कंस अक्रूरजीको आज्ञा दे, मंत्रियोंको बिदाकर अपने महलमें
चलागया और अक्रूरजी भी अपने घरको चलेगये * ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भा॰ महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां अक्रूरसंप्रेषणं

मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ॥ युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥ एवमादिश्य चाक्रूरं
मंत्रिणश्च विसृज्य सः ॥ प्रविवेश गृहं कंसस्तथाऽक्रूरः स्वमालयम् ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे
पूर्वार्द्धे अक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥ श्रीशुक उवाच ॥ केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निज
रयन्मनोजवः ॥ सटावधूताऽभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥ (विशालनेत्रो विकटास्यको
टरो बृहद्गलो नीलमहाघनोपमः ॥ दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नंदस्य जगाम कंपयन्) ॥

नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥दोहा–सैंतिस केशी मरणको, नारद कियो बखान ॥ व्योमासुर मारो यथा, सो सब सुनो सुजान॥३७॥ श्रीशुकदेवजी
बोले, कि, हे कुरुकुलभूषण राजा परीक्षित् ! मनसे भी अधिक वेगवान् कंसका भेजा केशी दैत्य बड़े घोड़ेका रूपधर टापुओंसे पृथ्वीको
खोदता फुरहरी लेता अपने कंधोंसे इधर उधर विमानोंको चलायमान करता और हींसनेसे संपूर्ण विश्वको डराता हुआ आया ॥ १ ॥

* दृष्टान्त–यदि कोई कहे कि, अक्रूरजी कंसके पास रहनेसे महात्मा कैसे रहे उसपर यह दृष्टांत है कि, महात्मा कुसंगतसे भी महात्मापन नहीं त्यागते। एक बाबाजी आधीरातको कहीं जा रहे थे, मार्गमें चोर
मिले चोर बोले कौन, बाबाजी बोले जो तुम सो हम, चोर बोले कहाँ जाते हो? बाबाजीने कहा जहांको तुम जाते हो, चोरोंने जाना यह चोर है, संग लेलिया बाबाजीने भी जाना कि, यह चोर हैं
चोरोंने किसीके घरमें सेंध दिया और चोरी करनेलगे, बाबाजी भी घुसे एक बरतन जो उघाड़ा तो इमरती रक्खी थीं, बाबाजी सारे दिनके भूखे थे झट ठाकुरजीका बटुआ निकाल ठाकुरजीके सामने
भोग रख शंख बजाया, शंख बजतेही घरके लोग जाग गये और चोरोंके संग बाबाजी भी पकड़े गये, बाबाजी तो वृत्तान्त सुनाकर छूटगये चोरोंको दंड हुआ सो साधु पुरुषोंको कुसंगतिका फल नहीं
व्यापता, इसीप्रकार अक्रूरजीको कुसंगत अर्थात् कंसकी संगतका फल न व्यापा चोरोंकी नाईं मरवाया ॥

कठोर हींसनेसे गौओंके समूहको बिडराता, पुच्छ हिलाता, बादरोंको चलायमान करता, युद्ध करनेकी इच्छासे, श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़ताहुआ आया, तब केशी दैत्यको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आगे निकल कर अपने पास बुलाया, तब वह दैत्य इनको देख सिंहकी समान गर्जने लगा॥२॥ केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर मुखसे मानो आकाशको पी जायगा, इस प्रकार मुख फाडता और दौडता हुवा सन्मुख आया जो किसीके जीतनेमें न आवै अत्यन्त वेगवान् ऐसा केशीदैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पिछले पाँवोंकी दुलत्ती मारने लगा ॥३॥ जिनमें इंद्रियोंकी पहुँच नहीं ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस दैत्यकी दुलत्ती बचाय अत्यन्त क्रोधित हो, अपने हाथोंसे उसके दोनो हाथ पकड चारों ओर घुमाकर

तं त्रासयंतं भगवान्स्वगोकुलं तद्धेषितैर्वालविघूर्णितांबुदम् ॥ आत्मानमाजौ मृगयंतमग्रणीरुपाह्वयत्स व्यनदन्मृगें द्रवत् ॥ २ ॥ स तं निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ॥ जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चं डजवो दुरत्ययः ॥ ३ ॥ तद्वंचयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ॥ सावज्ञमुत्सृज्य धनुश्शतां तरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ४ ॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽऽपतद्धरिम् ॥ सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ५ ॥ दंता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयः स्पृशो यथा ॥ बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथाऽऽमयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥

जैसे गरुड सर्पको फेंकदेता है उसी प्रकार अवज्ञा करके सौ १०० धनुषपर फेंककर आप खडे रहे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त जब चेत हुवा तब केशी दैत्य फिर उठकर मुख फाडता क्रोधयुक्त दौडकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हँसकर उस दैत्यके मुखमें अपना बायाँ हाथ जैसे सर्प बिलमें घुसता है उसीप्रकार डालदिया ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही केशीके दांत ऐसे गिरगये जैसे तपेहुए लोहके लगनेसे गिरजातेहैं और औषधी न करनेसे जैसे जलंधर रोग उदरमें बढ़ताहै उसीप्रकार केशी दैत्यके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी

भुजा बढने लगी ❋ ॥६॥ बढतीहुई श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजासे उसका श्वास रुकगया, अंगमें पसीना आगया, नेत्रोंके तारे निकल आये, इसप्रकार केशीदैत्य पाँओंको पटकता, लीद करता, प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ ७ ॥ प्राणमुक्त उस दैत्यके "पककर फटीहुई ककडीके समान" शरीरसे महाभुज श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बाँह निकालली, यद्यपि इन्होंने शत्रुको अनायास मारा, परंतु तो भी भगवान्‌ने कुछ गर्व न किया, तब आश्चर्यमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूल वर्षाकर देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरान्त भक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजीने, क्लेशरहित कर्मवाले श्रीकृष्णचंद्रके पास आनकर एकांतमें कहा कि ॥९॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् !

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ॥ प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेंडं विसृजन्क्षितौ व्यसुः ॥ ७ ॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ॥ अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसून वर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥ ८ ॥ देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरो नृप ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्योगेश जगदीश्वर ॥ वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥ त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ॥ गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ ११ ॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ॥ तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥

हे योगके ईश ! हे जगत्‌के ईश्वर ! हे वासुदेव ! हे जगदीश्वर ! हे विश्वके साक्षी ! हे अखिलावास ! हे सात्त्वतांप्रवर ! हे प्रभो ! ॥ १० ॥ तुम जैसे काष्ठमें ज्योति रहती है, उसीप्रकार सब प्राणियोंमें व्यापक गूढ अर्थात् सबमें रहते हो, परंतु उनको दिखाई नहीं देते, क्योंकि बुद्धिके परे हो साक्षी हो और आपका स्वरूप देखनमें नहीं आता, महापुरुष ईश्वर हो, इसकारण जीव आपके स्वरूपको नहीं जानसकते ॥ ११ ॥ तुम स्वतंत्र हो.इसलिये तुम्हैं साधनकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि तुम तो अपनी माया शक्तिसेही गुणोंको सृजते हो, व उन्हींसे सत्यसंकल्प ईश्वर आप

शंका—शत्रुके मारनेके लिये शास्त्रमें और लोकमें अनेक उपाय लिखेहै, परंतु केशीको मारनेके लिये सब उपाय त्यागकर श्रीकृष्णने अपनी भुजा केशीके मुखमें क्यों दे दी ।
उत्तर—केशीको ब्रह्माने यह वरदान दिया था कि, हमारे हाथकी बनाई सृष्टिसे तेरी मृत्यु न होगी, जब श्रीकृष्ण अपनी बाहु तेरे मुखमें प्रविष्ट करेंगे तब तेरी मृत्यु होगी, इसलिये केशीके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजा प्रविष्ट करदी थी ॥

इस जगत्को रचते हो, पालते हो और फिर संहार भी करदेते हो ॥१२॥ सो तुमने राजारूप दैत्य और राक्षसोंका नाश करनेके लिये और धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके लिये अवतार लिया है ॥ १३ ॥ यह बहुतही उत्तम हुआ जो इस घोड़ेरूप दैत्यको लीलापूर्वकही आपने मारडाला, जिसके हींसनेका शब्द सुनतेही भयके मारे देवता क्षणमें स्वर्ग त्यागकर भाग जाते थे ॥ १४ ॥ हे विभो ! परसोंको तुम्हारे हाथोंसे चाणूर, मुष्टिक और मल्लोंको तथा कुवलयापीड हाथी व राजा कंसको मराहुआ देखूंगा ॥ १५ ॥ कंसके मारनेके उपरान्त शंखासुर, कालयवन, मुर दैत्य, नरकासुर उनका वध और स्वर्गसे देवराज इन्द्रको जीतकर जो कल्पवृक्ष लाओगे, उसे देखूंगा ॥ १६ ॥ जिनका पुरुषार्थही मूल्य है ऐसी राजकन्याओंका

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ॥ अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥१३॥ दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः ॥ यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजंत्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥ चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ॥ कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १५ ॥ तस्यानु शंखयवनमुराणां नरकस्य च ॥ पारिजातापहरणमिंद्रस्य च पराजयम् ॥ १६ ॥ उद्वाहं वीरकन्यानां वीरशुल्कादिलक्षणम् ॥ नृगस्य मोक्षणं शापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥ १७ ॥ स्यमंतकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १८ ॥ पौंड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् ॥ दंतवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ १९ ॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् ॥ कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २० ॥ अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ॥ अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥

विवाह और जगत्पति ! द्वारकामें जाकर जो नृग राजाको पापसे छुड़ाओगे, सो देखूंगा ॥ १७ ॥ जाम्बवतीके साथ स्यमंतकमणिका पीछे लाना और सांदीपन गुरुके महाकालपुरसे मरेपुत्र सजीव लाकर दोगे, सो देखूंगा ॥ १८ ॥ फिर मिथ्यावासुदेवका मारना, काशीपुरीको जलाना, दंतवक्रका मारना और राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें शिशुपालका मारना देखूंगा ॥ १९ ॥ और भी द्वारकामें वास करके तुम जो जो लीला करोगे, उन लीलाओंका कवि लोग पृथ्वीपर गान करेंगे ॥२०॥ इसके उपरान्त कालरूप तुम इस पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये अर्जुनके सारथी

होकर सेनाओंका संहार करोगे, सो सब हम देखेंगे ॥ २१ ॥ केवल ज्ञानमूर्त्ति अपनी पूर्णानन्द स्थितिसे पूर्णकाम सत्यसंकल्प और अपनी चैतन्यशक्ति अपने तेजसे नित्य मायासे निवृत्त और छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त हम तुम्हारी शरण प्राप्त होतेहैं ॥ २२ ॥ ईश्वर स्वतंत्र अपनी मायासे सब प्रकारके विशेषोंकी कल्पना करनेवाले, क्रीड़ाके लिये अभी मनुष्यदेह धारण करनेवाले, यदु, वृष्णि, सात्त्वतोंमें अग्रणी मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! भक्तोंमें श्रेष्ठ मननशील भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनसे प्रसन्न हो नारदजी इसप्रकार यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर और आज्ञाले चलेगये ॥ २४ ॥ व्रजवासियोंको सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवांछितम् ॥ स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायया गुणप्रवाहं भगवंतमीमहि
॥ २२ ॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ॥ क्रीडार्थमद्याऽऽत्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि
धुर्यं यदुवृष्णिसात्त्वताम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ॥ प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो
ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥ भगवानपि गोविंदो हत्वा केशिनमाहवे ॥ पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः
॥ २५ ॥ एकदा ते पशून्पालाश्चारयंतोऽद्रिसानुषु ॥ चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चौरपालापदेशतः ॥ २६ ॥ तत्रासन्कतिचि
च्चौराः पालाश्च कतिचिन्नृप ॥ मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपाल
वेषधृक् ॥ मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥२८॥ गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतंनीतं महासुरः ॥ शिलया पिदधे
द्वारं चतुःपंचावशेषिताः ॥ २९ ॥

युद्धमें केशीको मारकर ग्वालबालोंसहित पशुओंका पालन करनेलगे ॥ २५ ॥ एक समय गायोंके पालनकर्त्ता ग्वालबाल गोवर्द्धनपर्वतके शिखरपर गायोंको चराते चौर पालनका मिसकर छिपा छिपी खेल करने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन्! उस खेलमें कितने ही बालक चोर बने और कितनेही रखवाले बने. कितनेही भेड़ बने, इसप्रकार निर्भय होकर खेलने लगे ॥ २७ ॥ इतनेमें मयदैत्यका पुत्र अत्यन्त मायावी व्योमासुरनामक दैत्य ग्वालका रूप धारणकर, चोर बन जो बालक भेड़ बने थे, उनको चुराकर लेजानेलगा ॥ २८ ॥ वह बड़ा दैत्य उनको लेलेजाकर पहाड़की गुफामें डाल शिलासे गुफाका मुँह बन्द करदेता जब केवल चार पाँच ग्वाल शेष रहगये ॥ २९ ॥

तब साधु पुरुषको शरणदेनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें विचार किया कि, हमने तो खेल किया है, यह सच्चाही चोर आनपहुँचा, इसप्रकार उस दुष्टका छल जान गोपोंको लेजाते व्योमासुरको, जैसे सिंह बलपूर्वक व्याघको पकड़ लेता है, इसी प्रकार पकड़ लिया ॥ ३० ॥ इस बलवान् दैत्यने अपना शरीर पर्वतकी समान धारण किया और अपने छुटानेके लिये बहुतेरा यत्न किया परन्तु पकडनेसे आतुर होगया इसलिये कृतकार्य न हुआ ॥ ३१ ॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णने व्योमासुरकी दोनों भुजा पकड पृथ्वीमें पटककर देवताओंके देखते देखते श्वास घोटकर मारडाला ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त गुफाका ढकना तोड गोपोंको कष्टसे बाहर निकाल देवता और गोप जिनकी

तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ॥ गोपान्नयंतं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥ स निजं रूपमा स्थाय गिरींद्रसदृशं बली ॥ इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पात यित्वा महीतले ॥ पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निस्सार्य कृच्छ्रतः ॥ स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भाग०महा० दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे केशिव्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥ उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥ गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यंबुजेक्षणे ॥ भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिंतयत् ॥ २ ॥

किं मया चरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ॥ किं वाऽथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥

स्तुति करें ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोकुलमें आये ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भा०महापु० दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां केशिव्योमासुरवधोनाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ दोहा–अडतिसमें अक्रूर मन, जैसो कियो विचार । तैसोही अक्रूरको, कियो कृष्ण सत्कार ॥ ३८ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! बडे बुद्धिमान् अक्रूरजीभी उस रात मधुपुरीमें वासकर प्रात होतेही, रथमें चढकर नंदजीके गोकुलको चले ॥ १ ॥ महाभाग अक्रूरजी मार्गमें जाते कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त हो यह विचार करनेलगे ॥२॥ कि, मैंने ऐसा कौन मंगल कर्म, अथवा तप, वा सत्पात्रोंको दान किया था, जिसके प्रभावसे ब्रह्मा, महादेवके ईश्वर, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका आज

दर्शन करूंगा ॥३॥ मैं जानताहूँ कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होना अत्यन्त दुर्लभ है, जैसे विषयोंमें मन, शूद्रकुलमें जन्म, ऐसे पुरुषको वेदका उच्चारण दुर्लभ है * ॥ ४ ॥ अथवा ऐसे नहीं मुझ अधमको भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन होजॉय कारण कि, जिसप्रकार नदीमें बहतेहुए तृणसे कदाचित् कोई तीरपर भी पहुँच जाय तैसेही कर्मवशसे कालसे लेजायेहुए जीवोंमेंसे भी कभी कोई तरजाय ॥ ५ ॥ मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिवानेको चलाहूं, इसलिये अब मेरा मंगल हुआ, जन्म सफल हुआ, क्योंकि योगीजन जिनका ध्यान धरतेहैं, उन्हीं भगवान्

ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥ मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ॥ ह्रियमाणः कालनद्या कचित्तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामंगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ॥ यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयांघ्रिपंकजम् ॥ ६ ॥ कंसो बताद्याऽकृत मेत्यनुग्रहं द्रक्ष्येंघ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ॥ कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन् यन्नखमंडलत्विषा ॥७॥ यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्त्वतैः ॥ गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुंकुमांकितम् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंमें आज नमस्कार करूंगा ॥ ६ ॥ अहो ! बडा आश्चर्य है, दुष्ट कंसने आज मेरे ऊपर बडा अनुग्रह किया, जिसके भेजनेसे मुझको अवतार धरेहुए हरि भगवान्का दर्शन होगा। जिनके नखमंडलकी कांतिसे अंबरीष आदि सब दुरत्यय भवसागरको तरगये ॥७॥ जो चरणारविंद ब्रह्मा महादेवादि देवतालोगोंने प्रकाशमान् लक्ष्मी तथा मुनीश्वरोंने और भक्तोंने पूजे हैं और गाय चरानेके लिये जो चरणारविन्द

* शंका–वेदका कीर्त्तन करना, श्रवण करना और पढना शूद्रके लिये वर्जित है, चाहे विरक्त होवे चाहे गृहस्थी होवे, तो फिर अक्रूरने क्यों कहा कि, विषयमें रमित शूद्र उसको वेदका कीर्त्तन आदि महादुर्लभ है, इस वाक्यसे विदित होता है कि गृहस्थ शूद्रके लिये वेदका कीर्त्तन आदि दुर्लभ है तो भी विरक्त शूद्रको दुर्लभ नहीं है, पुण्य है यह भ्रम है ॥

उत्तर–(शूद्रजन्मा) इस शब्दका शूद्र अर्थ कभी भी मत समझना शूद्रजन्मा इसका अर्थ यह है कि, शूद्र सरीखा जिसका जन्महोय उसको शूद्रजन्मा जानना चाहिये, जन्म तो हुवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके कुलमें परन्तु भ्रष्ट लोगोंकी सदृश काम करे, सज्जनो ! जान लेना इस अर्थको मैं गुप्त लिखू हूँ एक भ्रष्ट दूसरे विषयसे निन्दनीय लक्षणों करके सयुक्त जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, उसको वेदका कीर्त्तन आदि दुर्लभ है, ऐसा अक्रूरजीने कहा था, शूद्रको नहीं कहा था ॥

ग्वालबालोंके संग वनमें फिरे हैं और जिन चरणारविन्दोंमें गोपियोंके कुचोंकी केशर लगी है, उन्हीं चरणारविन्दोंका आज दर्शन करूंगा ॥ ८॥ सुन्दर कपोल, नासिका और मुसकानयुक्त चितवन, लाल डोरे जिनमें आरहे घूंघुरवारे अलकोंसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका आज निश्चय दर्शन करूंगा, क्योंकि हिरण भी मेरे दाहिनी ओर आये हैं ॥ ९ ॥ पृथ्वीका भार उतारनेकेलिये, अपनी इच्छासे अब मनुष्यरूप धारण करने वाले, शोभाके धाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमानरूपका जब दर्शन करूंगा, तब मेरे नेत्र सफल होंगे ॥ १० ॥ तीन लोकके कार्यरूप जगत् और कारणरूप महदादिक तत्त्वको यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चितवनसेही करते हैं परन्तु तो भी उनको अहंकार नहीं है, अपने तेजसे अज्ञानके भेद भ्रमसे रहित हैं, अपने आधीन मायाकी ओर चितवन करके अपने रचे जीव वृन्दावनके वृक्षोंके नीचे और गोपियोंके

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकंजलोचनम् ॥ मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरंति वै मृगाः ॥ ९॥ अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ॥ लावण्यधाम्नो भवितोपलंभनं मह्यं न न स्यात्फलमंजसा दृशः ॥ १० ॥ य ईक्षिताऽहं रहितोऽप्यसत्सतः स्वतेजसाऽपास्ततमोभिदा भ्रमः ॥ स्वमाययाऽऽत्मन्रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलाऽमीवहभिः सुमंगलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ॥ प्राणंति शुंभंति पुनंति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥ स चावतीर्णः किल सात्त्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ॥ यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो गायंति देवा यदशेषमंगलम् ॥ १३ ॥

घरोंमें लीलापूर्वक वृद्धिसे दिखाई देतेहैं ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके अहंकार नहीं है जो आत्माराम हैं उन्हें लीला करना कैसे संभव है ? तो कहते हैं कि, भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये लीला करते हैं सबके पापोंको दूर करनेवाले सुन्दर मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गुण, जन्म, कर्मसे मिली वाणी जगत्को जिलानेवाली है और शोभायमान करती है,पवित्र करती है और जिन वाणियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला, गुण,जन्म, कर्म नहीं गाये गये हैं उनको जो कहते हैं और श्रवण करते हैं, सो अपवित्र हैं जैसे मृत्युको प्राप्त हुआ शरीर अपवित्र है ॥ १२ ॥ यादवोंके कुलमें जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार लिया है, वह अपनी मर्यादाओंका पालन करनेवाले, लोकपालोंको सुखदेनेवाले लीलापूर्वक यश

विस्तार करते व्रजमें रहते हैं और सबको मंगलकारी, उनके यशको देवतालोग गाते हैं ॥ १३ ॥ महत् पुरुषोंको सुन्दरगति देनेवाले गुरु त्रिलोकीमें सुन्दर नेत्रवाले पुरुषोंको आनंददेनेवाले, लक्ष्मीके निवासस्थान, सुन्दररूप धारण किये श्रीकृष्णचन्द्रका आज मैं निश्चयही दर्शन करूंगा, क्योंकि आज प्रातःकालके समय मुझे श्रेष्ठ शकुन हुए हैं ॥ १४ ॥ दर्शन करने उपरान्त उसीसमय रथमेंसे उतर इन प्रधानपुरुष कृष्ण बलरामके चरणकी जिनका योगीपुरुष भी स्वरूपकी प्राप्तिके लिये केवल बुद्धिसेही ध्यान करते हैं उनको मैं साक्षात् प्रणाम करूंगा और फिर इन सहित व्रजवासी सखाओंको भी प्रणाम करूंगा ॥ १५ ॥ चरणोंमें पड़ेहुए मस्तकपर समर्थवान् भगवान् अपना हाथ धरेंगे, जो हाथ कालरूप सर्पके वेगसे

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकांतं दृशिमन्महोत्सवम् ॥ रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममाऽसन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥ अथावरूढः सपदीशयो रथात्प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ॥ धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन्वनौकसः ॥ १५ ॥ अप्यंघ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपंकजम् ॥ दत्ताभयं कालभुजंगरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥ समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्रयेंद्रताम् ॥ यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगंधिकगंध्यपानुदत् ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ॥ योंतर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥

डरेहुए व शरण चाहनेवाले मनुष्योंको अभयका देनेवाला है ॥ १६ ॥ जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके इन्द्रने इन्द्रता पाई, और ऐसेही राजा बलिने संकल्प करके त्रिलोकीकी इन्द्रता प्राप्त करी और रासक्रीड़ामें व्रजकी स्त्री गोपियोंके श्रमके पसीनेको श्रीकृष्णने जिस हाथसे पोंछा था और जिन हाथोंमें कमलके समान सुगंधि आतीहै, वही हाथ मेरे मस्तकपर धरेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि मैं राजा कंसका भेजाहुआ दूत हूं, परन्तु तोभी श्रीकृष्णचन्द्र मुझपर यह शत्रुका दूत है, ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे, क्योंकि वह अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र मेरे चित्तकी बाहर भीतरकी चेष्टाको नित्य ज्ञानसे देखते हैं, मैं ऊपरसे तो कंसका भेजाहुआ जाताहूं, परन्तु भीतरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकाही ध्यान लगारहा है इसबातको नित्य

ज्ञानसे भलीभाँति श्रीकृष्णचन्द्र जानतेहैं ❀ ॥ १८ ॥ चरणारविंदमें गिरा, हाथ जोडे मुझे मुसकाकर करुणाभरी दृष्टिसे जिस समय भगवान्
श्रीकृष्णचंद्र देखेंगे, उसी समय पाप और भय दूर होजानेसे आशंकाओंसे रहित हो मैं परमानन्दको प्राप्त हूंगा ॥१९॥ जिनके अत्यन्त हितकारी
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और कोई देवता नहीं, वह भगवान् जिस समय अपनी जाति और कुटुम्बी जान मुझे भुजा पसार छातीसे
लगावैंगे उसी समय यह देह परमपवित्र होजायगा और कर्मरूप बन्धन भी इस देहके छूट जायँगे ॥ २० ॥ जब मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिल
मस्तक झुका हाथ जोड खडा हूँगा, तब हे काका अक्रूर ! इसप्रकार बडे यशस्वी श्रीकृष्ण मुझसे कहैंगे; उस समय हमारा जन्म सफल होगा

अप्यंघ्रिमूलेऽवहितं कृतांजलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ॥ सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीत
विशंक ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥ सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ॥ आत्मा हि तीर्थीक्रियते
तदैव मे बंधश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥ लब्ध्वांगसंगं प्रणतं कृतांजलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ॥ तदा
वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो
द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ तथाऽपि भक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥२२॥ किं चाऽग्रजो माऽवनतं
यदूत्तमः स्मयन्परिष्वज्य गृहीतमंजलौ ॥ गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबंधुषु ॥ २३ ॥

और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिस पुरुषका आदर सन्मान नहीं करते, उस पुरुषको धिक्कार है ॥ २१ ॥ यद्यपि उनको न तो कोई प्रिय है, न
सुहृद है, न कुप्यारा है और न उदासीन है परन्तु तोभी भगवान् भक्तको भजतेहैं, जैसे कल्पवृक्षकी जो सेवा करै, वह उसको फल देताहै ॥२२॥
जब मैं नमस्कारकर, हाथ जोडूंगा, तब मेरी भुजा पकड, हास्यपूर्वक छातीसे लगा, गृहमें लेजाय भलीभाँति आदर सत्कारकर फिर बडे भ्राता

* दृष्टांत–कृष्ण अन्तर्यामी हैं, इसकारण कपट प्रीति सबकी जानते हैं। एक बडे भारी ठगथे सो एकदिन बडी ऐंठमा पाग बाँधकर चले, लोग बोले कहाँ चले ? तो उत्तर दिया कि, सबको तो हमने ठगा परन्तु जो परमेश्वरको ठगकर लावैं, तो हमारा नाम ठगहै, ऐसा कह चले परन्तु थोडीही दूरजाय लौट आये. लोग बोले क्यों भाई ! लौट कैसे आये? यह बोले कि, भाई क्या कहैं ठगते तो सही परन्तु वह तो अन्तर्यामी हैं हमारे मनका कपट जान जांयगे उनपर हमारा छापा नहीं लग सकता ॥

बलरामजी अपने बन्धु यादवोंमें कंसके कर्त्तव्यको पूछेंगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसप्रकार श्वफलकके पुत्र अक्रूर मार्गमें श्रीकृष्णकी चिन्ताकरते रथमें बैठेहुए गोकुलमें पहुँचे; कि इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ समस्तलोकोंके पालन करनेवाले ब्रह्मादिक देवता अपने मुकुटोंके ऊपर जिनके चरणोंकी रेणुकाको धारण करतेहैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके चिह्न महात्मा अक्रूरजीने व्रजमें देखे, जो पृथ्वीके गहनेरूप थे और जिनमें कमल, यव, अंकुश आदि चिह्न प्रतीत होतेथे ॥ २५ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण चिह्नके दर्शनके आनंदसे संभ्रम और प्रेमसे रोमांच हो आये, नेत्रोंमें आंसू भरिआये, सो अक्रूरजी रथसे उतर अहो ! यह मेरे प्रभुके चरणोंकी

श्रीशुक उवाच ॥ इति संचिंतयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ॥ रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥ ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः ॥ रथादवस्कंद्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंघ्रिरजां स्यहो इति॥ २६ ॥ देहंभृतामियानर्थो हित्वा दंभं भियं शुचम् ॥ संदेशाद्यो हरेर्लिंगदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥ ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ॥ पीतनीलांबरधरौ शरदंबुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥ किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ॥ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९॥ ध्वजवज्रांकुशांभोजैश्चिह्नितैरंघ्रिभिर्व्रजम् ॥ शोभयंतौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३०॥

रज है, इसप्रकार कहते कहते चरणोंके चिह्नोंमें लोटने लगे ॥ २६ ॥ देहधारियोंका इतनाही पुरुषार्थ है, जो [illegible] का सन्देशा ले, दंभ,भय, शोच त्याग श्रीकृष्णचंद्रके चिह्न दर्शन व श्रवणादिकसे अक्रूरको प्रेम उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ इसके उपरांत व्रजकी गोशालामें गाय दुहनको [illegible] श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजीको महात्मा अक्रूरजीने देखा, पीताम्बर और नीलाम्बर धारणकर रहेहैं और जिनके शरदृऋतुके कमलसे नेत्र हैं ॥ २८ ॥ किशोर अवस्था, श्याम और गौर स्वरूप, लक्ष्मीके शोभाके स्थान, लम्बी भुजा,सुंदर मुख,स्वरूपवानोमें अत्यन्त शोभायमान, हाथीके बालकके समान पराक्रमवाले ॥२९॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुशके चिह्नवाले, चरणोंसे व्रजभूमिको शोभायमान करते महात्मा अनुकंपाजन्य जो

मंदमुसकान व चितवन॥३०॥उदार रुचिर जिनकी क्रीडा है,मोतियोंके हार और वनमाला पहरे,पवित्र चंदन और केशर लगाये,स्नान किये निर्मलवस्त्र पहरे॥३१॥प्रकृति पुरुषरूप आदिकारण जगत्‌के पालन करनेवाले पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलराम केशवमूर्त्ति दो रूप धरके अवतार लिये हैं॥३२॥ हे राजन्! अपने तेजसे दिशाओंका अंधकार दूर करतेहुए, जैसे सुवर्णसे नीलमणिका पर्वत अथवा रूपेका पर्वत जगमगाता है॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीके रूपको निहार॥३३॥ स्नेहमें विह्वल हो महात्मा अक्रूरजीने शीघ्र रथमेंसे उतर रामकृष्णके चरणोंमें दण्डवत करी॥३४॥ हे महाराज परीक्षित्! श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनके आनन्दसे आँखोमें आंसू आगये, उत्कण्ठासे अंगमें रोमांच होगये और प्रेम

उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ॥ पुण्यगंधानुलिप्तांगौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥ प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ॥ अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशो वितिमिरा राजन्कुर्वाणौ प्रभया स्वया ॥ यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥ रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ॥ पपात चरणोपांते दंडवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ पुलकाचितांग औत्कंठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगांकितपाणिना ॥ परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ संकर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ॥ प्रक्षाल्य विधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥ निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रांतमादृतः ॥ अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥

के मारे अपना नाम बतानेको भी समर्थ न हुये ॥ ३५ ॥ हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरका अभिप्राय जान, चक्रकी रेखावाले अपने हाथसे पकड प्रसन्न हो छातीसे लगाकर मिले। यहाँ मिलनेका तात्पर्य यह है कि, श्रीकृष्णने कंसके मारनेकी सामर्थ्य जताई ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत उदारमन बलरामजी दंडवत् करतेहुए अक्रूरजीको छातीसे लगाय अपने हाथोंसे उनके दोनों हाथ पकड़ श्रीकृष्णसहित घरमें लिवाकर लेगये ॥ ३७ ॥ और "भले आये" इसप्रकार कुशल पूँछ अक्रूरजीके लिये आसन बिछाय, विधिपूर्वक चरण पखार मधुपर्क (दधि, घृत, मधु,) दे पूजा करनेलगे ॥ ३८ ॥ विधिपूर्वक पूजाकर गौदान अक्रूरजीको दी, फिर मार्गमें परिश्रम पाये अक्रूरजीके चरणारविन्द आदरसहित

दाबके गुणभरी पवित्र अन्नकी सामग्री भोजनार्थ अति श्रद्धासे अक्रूरजीके आगे निवेदन करी ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त जब अक्रूरजी भोजन करचुके तब परमधर्मके जाननेवाले बलदेवजी बीरी, चन्दन, केशर, अतर और फूलोंके हार इत्यादिकोंसे उन्हें प्रसन्न करनेलगे ॥ ४० ॥ सन्मान करनेके पीछे अक्रूरजीसे नंदरायजी कहने लगे कि, निर्दयी कंसके जीते हे अक्रूर ! तुम्हारा जीवन किसप्रकार होता है कसाईके घर रहती भेडके समान तुम कैसे रहते हो ? ॥ ४१ ॥ प्राणोंका पोषण करनेवाले दुष्ट कंसने विलाप करती जब अपनी बहिनकेही पुत्र मारडाले उस दुष्टकी प्रजा तुम हो सो तुम्हारी क्या कुशल पूछें ॥ ४२ इसप्रकार जब मधुर वचनसे पूंछ नंदरायजीने सत्कार किया तब महात्मा अक्रूरजीने मार्गके

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गंधमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥ ४० ॥ पप्रच्छ सत्कृतं नंदः कथं स्थ निरनुग्रहे ॥ कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥ योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान्क्रोशंत्या असुतृप् खलः ॥ किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थं सूनृतया वाचा नंदेन सुसभाजितः ॥ अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दशम० पू० अक्रूरागमनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यंके रामकृष्णोरुमानितः ॥ लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ॥ तथाऽपि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किंचन ॥ २ ॥ सायंतनाशनं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥

श्रमको त्यागदिया ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां अक्रूरागमनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ दोहा—उनतालिसमें नन्दसुत, मथुरा कियो पयान। यमुनामें अक्रूरने, लखो भवन भगवान् ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! शय्याके ऊपर आनन्दपूर्वक विराजमान श्रीकृष्ण बलदेवसे बडा सत्कार पाय, अक्रूरजीने मार्गमें जो जो मनोरथ किये थे सो सो सब पूर्ण हुए ॥ १ ॥ क्योंकि छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त परिपूर्ण शोभाके स्थान भगवान् श्रीकृष्णही जब प्रसन्न होगये तब किस वस्तुकी प्राप्ति न हुई ? हे राजा परीक्षित ! कृष्णपरायण भक्त किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते ॥ २ ॥ इसके उपरान्त देवकीनंदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संध्यासमयका भोजन कर अपने यादवोंसे

जैसा कंसका वर्त्ताव है, सो अक्रूरजीसे पूछने लगे ? और जो कुछ करनेका विचार है, उसको भी पूँछा ॥३॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे सौम्य ! भला तुम्हारा आगमन कुशल क्षेमसे तो हुआ है? तुम्हारा कल्याण ! जातिके बंधु बांधव तो सुखसे और आरोग्य हैं ? किसीको कुछ दुःखतो नहीं है ? ॥४॥ हे अक्रूरजी ! मामा कंस तो हमारे कुलका रोग बढ़ा है, फिर अपने बंधु बांधव और प्रजाकी क्या कुशल पूछें ? ॥ ५ ॥ देखो हमारे निरपराध माता पिताको अत्यन्त कष्ट हुआ, हमारे लिये उनके पुत्र मारेगये और हमारेही लिये वह बन्दीहुये ॥६॥ हे साधु ! बहुत दिनोंसे तुम्हारे दर्शनोंकी अभि

श्रीभगवानुवाच ॥ तात सौम्यागतः कच्चित्स्वागतं भद्रमस्तु वः ॥ अपि स्वज्ञातिबंधूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥ किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ॥ कंसे मातुलनाम्न्यंग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥५॥ अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रो र्वृजिनमार्ययोः ॥ यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बंधनं तयोः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याऽद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य कांक्षितम् ॥ संजातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ॥ वैरानुबंधं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ॥ यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुंदुभेः ॥ ॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ॥ प्रहस्य नंदं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥

लाषा लगरही थी सो आपने आनकर हमको दर्शन दिया, यह बड़ाही अनुग्रह किया, अब यह बताइये कि, आपका आना कैसे हुआ ? ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके इसप्रकार पूँछनेपर महात्मा अक्रूरजीने सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया कि, कंस यादवोंसे शत्रुभाव रखता है और वसुदेवजीके मारनेका भी उद्योग उसने कियाथा ॥ ८ ॥ और जो संदेशा लायेथे, व जिसलिये स्वयं उनको दूत बनाकर भेजा था और देवर्षि नारदजीने जो कहा था कि, श्रीकृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं ! सो सब कह सुनाया ❋ ॥९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बड़े २ शत्रुओंको

❋ शंका–व्रजमें नन्दादिकोंने अक्रूरसे बूझा कि, आप किस कामके लिये व्रजमें आये हो ? तब अक्रूरने कृष्णचन्द्रसे कहा कि आपको और बलदेवजीको मारनेके लिये यज्ञ देखनेके बहानेसे कंसने बुलाया है, ऐसा कहा तब स्वामीका विश्वासघातकपनका पाप अक्रूरको लगेगा क्योंकि वह बात गुप्त करके कंसने अक्रूरका विश्वास मानके कही थी कि, अक्रूर किसीसे नहीं कहेगा और जो कंस सरीखे कपट करके कहैं कि, महाराज आपका मामा है और कंस राजा भी है, सो यज्ञका कौतुक देखनेको बुलाया है, तब भगवान्की ओर कपटका पाप भोगैंगे ॥

पराजय करनेवाले बलरामजीने महात्मा अक्रूरजीका वचन श्रवणकर कुछेक मुसकातेहुए नन्दजीसे राजा कंसका संदेशा कहा ॥१०॥ यह सुनतेही उन्होंने गोपलोगोंको आज्ञा दी कि, दही दूध संग लेके हमारे साथ आनेकेवास्ते गाड़ियें जोडो ॥ ११ ॥ कल मथुराको चलकर राजा कंसको गोरस देंगे और बड़ा भारी उत्सव देखेंगे, देखो ! यह सब देशवासी जाते हैं, इस प्रकार नंदजीने गोकुलमें ढंढोरा पिटवा दिया ॥१२॥ इसके उप

गोपान्समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ॥ उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥ यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यांति जानपदाः किल ॥ एवमाघोषयत्क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ॥ स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ॥ नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥

रान्त संपूर्ण गोपियें जिस समय अपने जीवन श्रीकृष्ण बलरामको मथुराको लेजानेको व्रजमें अक्रूर आयेहैं, यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखी हुईं॥१३॥ बहुत गोपियोंकी तो यह दशा हुई कि, उसके सुननेसे जो हृदयमें ताप हुआ उससे गोपियोंके मुख कुम्हलागये और वस्त्र, चूरी, कंकण, केशोंकी ग्रंथि यह सब शिथिल होगईं ॥१४॥ और बहुत स्त्रियोंकी यह दुर्दशा हुई कि, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानसे सब इन्द्रियोंकी वृत्तियें जाती रहीं, व मुक्त

उत्तर–जब श्रीकृष्णने अक्रूरसे बूझा कि, आपका आना व्रजमें कैसे हुआ? तब अक्रूरने अपने मनमें बडा दुःख माना कैसा दुःख माना? जैसे एक लकडी दोनों ओरसे जलती हो उस लकडीको कोई पुरुष हाथसे नहीं छूसक्ता, क्योंकि जो उस लकडीको पकडता है तो दोनों हाथ जलते हैं और हाथोंके बचानेका उपाय करता है तो लकडी हाथसे जाती है, ऐसेही अक्रूर होगये, कंसका पक्ष करते हैं तो भगवान्का द्रोही होना पडता है और भगवान्का पक्ष करते हैं तो कंसका द्रोही होना पडता है, तब प्राण त्यागनेका विचार किया फिर श्रीकृष्णभगवान्का ध्यान किया, उस ध्यानमें श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरको आज्ञा दी कि, तुम क्यों इतना कष्ट सहते हो, कंसका कपट हो सो आप प्रगट मत करो, हमारी ओरसे कपटमें तुमको कुछ दोष नहीं होगा, फिर भगवान्ने कहा हमारी ओरसे कपटकी त्रास त्याग दो, क्योंकि हम सब संसारका कर्म जानते हैं, मनुष्योंकी नाईं हम नहीं हैं, इसप्रकार भगवान्की आज्ञा पाकर अक्रूरने कंसके कपटरूप वचन कृष्णसे कहे. भगवान् तो सब जानतेही हैं, फिर क्यों गुप्त रखकर दोषका भागी बनूं, इसलिये कह दिया कि, तुम दोनों जनोंको यज्ञ देखनेके लिये कंसने बुलाया है ॥

होनेपर जैसे देहका भान जाता रहता वैसेही देहका भान भूलगईं ॥ १५ ॥ बहुतसी गोपियें स्नेहसे मुसकाय हृदयको आनन्ददायक चित्रविचित्र बोलनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके वचनोंका स्मरण कर मोहित होगईं ॥ १६ ॥ बहुतसी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मनोहर चलन स्नेह भरी चितवन शोककी दूर करनेवाली बोलन इत्यादि चेष्टा और बड़े बड़े चरित्रोंको स्मरण करनेलगीं ॥ १७ ॥ यह अवश्यही जायँगे इस भयसे विरहमें कातर आँसू बहाती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हजारों गोपियोंके झुण्डके झुण्ड मिलकर संपूर्ण परस्पर यह कहने लगीं ॥१८॥ गोपियें कहने लगीं कि, हे विधाता ! तुझे कुछ भी दया नहीं है, क्योंकि जीवोंका परस्पर मिलाप व प्रेम बँधाय उनके पूरे सुख न भोगनेपर

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ॥ हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥१६॥ गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ॥ शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७ ॥ चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य लीला विरहकातराः ॥ समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥१८॥ गोप्य ऊचुः ॥ अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ॥ तांश्चाकृतार्थान्वियुनंक्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ॥ शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥२०॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ॥ येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥

भी वृथा वियोग करदेताहै इसीसे तेरी क्रीड़ा बालकोंके समान है अर्थात् तू मूर्ख है ॥ १९ ॥ जो तू श्याम अलकोंसे आच्छादित सुन्दर कपोल ऊंची नासिकावाला शोच मिटानेवाले मंदहास्यके लेशमात्रसे भी शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका एकवार दर्शन कराय पीछे छिपा लेता है हमने तेरा क्या अपराध किया है ? ॥२०॥ दान करके लेता है इसलिये तू बड़ा कठोर है (अक्रूर लिये जाता है मैं तो नहीं लिये जाता यदि विधाता यह कहै तो इसके उत्तरमें गोपियें कहती हैं कि,) अरे विधाता ! निर्दयी अक्रूर नाम धरकर तूही आया है सो अपने दियेहुए कृष्णरूप नेत्र अज्ञानीकी समान हरके लिये जाता है जिस तेरी दी हुई आँखसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके एक एक अंगमें तेरी संपूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता

हम देखती हैं ॥ २१ ॥ अरे ! रे !! क्षणभंग स्नेहवाले नंदके पुत्रकी मुसकानसे मोहित हुईं घरमें बंधु और पुत्र पतियोंको छोड़ हम साक्षात् उनकी दासी हुईं परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है, वह हमारी ओरको दृष्टि उठाकर देखता भी नहीं। जान पड़ता है कि,उसे नित्य प्रति नये नये प्यारे लगते हैं ॥ २२ ॥ मथुराकी स्त्रियोंको इस रातका सबेरा अच्छा होगा, क्योंकि उनके मनोरथ निश्चय सच्चे होंगे। देखो जो स्त्रियें मथुरामें पधारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मुख, कि, जो कटाक्षसे वृद्धिंगत और मुसकानरूप जिसमें रस ऐसे सुन्दर रसका पान करेंगी ॥ २३ ॥ हे बालाओ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि माता पिता आदिके पराधीन हैं और धीर हैं परन्तु तो भी उन स्त्रियोंके मदके समान मीठे भाषणोंसे इनका चित्त

न नन्दसूनुः क्षणभंगसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ॥ विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥२२॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ॥ याः सम्प्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपांगोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥ तासां मुकुन्दो मधुमंजुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि ॥ कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥२४॥ अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजांधकवृष्णिसात्वताम् ॥ महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यंति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥ मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ॥ योसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥ अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ॥ गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥

हरण होजायगा, व उन स्त्रियोंके लजीले मंदहास्य व विलासोंसे भ्रम जायँगे इसलिये जो अपने गाँवकी रहनेवाली हैं उनके निकट पीछे किस प्रकार आवैंगे ॥ २४ ॥ आज तो मथुरामें दाशार्हवंशी, भोजवंशी, यादवोंकी आँखोंको निश्चय आनन्द होगा, क्योंकि लक्ष्मीके संग रमण करने वाले संपूर्ण गुणयुक्त देवकीनंदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जो पुरुष मार्गमें देखेंगे उनके नेत्रोंको निश्चयही बड़ा आनन्द होगा ॥ २५ ॥ ऐसे क्रूर कर्म करनेवाले निर्दयीका अक्रूरनाम किसने रक्खा है, जो यह निर्दयी बहुत दुःखित हमारे विना पूँछे प्राणोंसे प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हमारी आँखोंसे दूर लियेजाता है ॥ २६ ॥ देखो ! यह कठोरबुद्धि कृष्ण रथमें जाबैठे तिसपर यह अभागे ग्वाल गाड़ीको

शीघ्रही हाँकनेकी चेष्टा करते हैं ऐसी अनीतिको होताहुआ देखकर कोई बडा बूढ़ा भी मने नहीं करता इससमय किसी गोपके विघ्न होजाता तो बुरा शकुन विचारकर श्रीकृष्ण नहीं जाते; हाय ! हाय ! ! आज दैवही हमारे प्रतिकूल चेष्टा करताहै ॥ २७ ॥ फिर गोपियें बोलीं कि, सखी ! हम सब चलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मने करेंगी और उनके रथके आगे जाय, आडी पडकर कहेंगी कि, यदि आप जातेही हैं तो हमारी छातीपर रथका पहिया उतारकर चले जाओ और हमारे कुलके बड़े बूढे भी क्या करेंगे, क्योंकि जो आधेक्षणको भी नहीं छूट सक्ते, उन्हीं मुकुन्दका वियोगकर दैवने हमारे चित्त दीन कर दिये हैं ॥२८॥ हे गोपियो ! और देखो सखी ! उन्हीं कृष्णकी स्नेहभरी मनोहर मुसकान मनोहर लीलापूर्वक चितवन आलिंगनसे रासकी सभामें अत्यन्त बड़ी रात्रियें एक क्षणके समान बीत गईं थीं, अब विना श्रीकृष्णचन्द्र

निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबान्धवाः ॥ मुकुंदसंगान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥ यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमंत्रलीलावलोकपरिरंभणरासगोष्ठ्याम् ॥ नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरंतम् ॥२९॥ योऽह्नः क्षये व्रजमनंतसखः परीतो गोपैर्विशन्खुररजश्छुरितालकस्रक् ॥ वेणुं क्वणन्स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ॥ विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेवं रुदंतीनामुदिते सवितर्यथ ॥ अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥

आनंदकंदके विरहरूपी दुःखके समुद्रको कैसे तरेंगी ? ॥ २९ ॥ संध्यासमय बलदेवजीके संग ग्वालबालोंसे वेष्टित हो बाँसुरी बजाते जिनके बाल और माला गायोंके खुरोंकी धूरिसे परिपूर्ण रहते थे, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्रजमें आनेके समय कुछेक हँसते हुए कटाक्ष सहित दृष्टिसे हमारे चित्तको हरलेतेथे उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना अब हम किसप्रकार जीवन धारण करेंगी ? ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित्! इसप्रकार अत्यन्त विरहमें व्याकुल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये, गोपियें लज्जा त्याग हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! इसभाँति पुकार पुकारकर रोनेलगीं ॥३१॥ हे राजन् ! इसप्रकार गोपियें विलाप कर रहीं थीं कि, इतनेहीमें श्रीसूर्यनारायण उदित होगये, इसके उपरान्त महात्मा

अक्रूरजीने संध्योपासनकर रथ हाँका तब गोपियें हाहाकारकर रोतीहुई कहनेलगीं॥ ३२ ॥ केशवमूर्तिके वियोगमें यशोदा व गोपियें इसप्रकार व्याकुल हो हाहाकर करनेलगीं, इसके उपरान्त नंदादिक संपूर्ण व्रजवासी ग्वालबाल दूध, दही, माखनसे भरे कलशोंको ले गाडियोंमें बैठकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके संग चले ॥३३॥ और श्रीकृष्णमें आसक्त मन गोपियें श्रीकृष्णके पीछे जाय कदाचित् श्रीकृष्ण लौट आवें, इस प्रकार पैंडा देखनेलगीं ॥ ३४ ॥ यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चलनेके समय उन गोपियोंको व्याकुल देख "शीघ्रही आऊंगा" ऐसे प्रेम सहित वचन दूतसे कहलाकर शान्त किया ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् ! जहाँतक रथकी ध्वजा देखी, तहाँतक तो रथकी धूल उडती देखी और तब तक गोपियें

गोपास्तमन्वसज्जंत नंदाद्याः शकटैस्ततः ॥ आदायोपायनं भूरि कुंभान्गोरससंभृतान् ॥ ३३ ॥ गोप्यश्च दयितं कृष्ण मनुव्रज्यानुरंजिताः ॥ प्रत्यादेशं भगवता कांक्षंत्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ॥ सांत्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपतस्थिरे ॥३६॥ ता निराशा निववृतुर्गोविंदविनिवर्तने ॥ विशोका अहनी निन्युर्गायंत्यः प्रियचेष्टितम् ॥३७॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥ रथेन वायुवेगेन कालिंदीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ॥ वृक्षखंडमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामंत्र्य निवेश्य च रथोपरि ॥ कालिंद्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥

भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये चित्रकी नाईं लिखीसी खड़ीरहीं ॥ ३६ ॥ परन्तु जब जाना कि, अब मुरलीमनोहर नहीं आवेंगे, तब वह गोपियें अत्यन्त व्याकुल हो लौटीं और शोक प्रकाशकर काल बिताने लगीं ॥ ३७ ॥ पवनकी तुल्य वेगवाले रथमें बैठ बलदेव अक्रूर सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, संपूर्ण पापोंके नाश करनेवाली यमुनाके निकट पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहाँ पहुँच हाथ पांव धो आचमन कर, निर्मल मीठा जल पी, फिर बगीचेमें आनकर बलरामसहित रथमें बैठगये ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महात्मा अक्रूरभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजीको

रथमें बैठाल और उनसे आज्ञा माँग कालिंदीमें विधिपूर्वक स्नान करनेलगे ॥ ४० ॥ और जलमें गोता मारकर गायत्रीका जप करते २ महात्मा अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको देखा ॥ ४१ ॥ फिर अक्रूरजीको भ्रम हुआ कि, रामकृष्णको तो मैं रथमें बैठालकर आया था, सो यहाँ कैसे आये ? कदाचित् रथमेंसे उतर तो न आये हों, इसलिये निकलकर देखूं, इस प्रकार विचार करने लगे ॥ ४२॥ फिर अक्रूरजीने निकलकर देखा कि, पहलेके समान कृष्ण बलदेव रथमें विराजमान हैं, उससमय अक्रूरजी महाविस्मयको प्राप्त होकर कहने लगे कि, जलके भीतर जो मुझे दर्शन हुवा सो मिथ्या है, इस प्रकार बुद्धिसे निश्चयकर फिर गोता मारा, तो सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता, नर्त्तक, स्तुति कर रहेहैं और भगवान् शेषजी विराजमान

निमज्ज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम् ॥ तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥ तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुंदुभेः ॥ तर्हि स्वित्स्यंदने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥४२ ॥ तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ॥ न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥४३॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहीश्वरम् ॥ सिद्धचारणगंधर्वैरसुरैर्नतकंधरैः ॥४४॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नीलांबरं बिसश्वेतं शृंगैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्संगे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ पुरुषं चतुर्भुजं शांतं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ॥ सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७॥ प्रलंबपीवरभुजं तुंगांसोरःस्थलश्रियम् ॥ कंबुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥४८॥ बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ॥ चारुजानुयुगं चारुजंघायुगलसंयुतम् ॥४९॥

हैं ऐसा देखा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जिनके सहस्रशिर मुकुटोंसहित सहस्रही फण, नीले वस्त्र धारण किये कमलनाली तुल्य श्वेतवर्ण कैलासके समान प्रकाशमान शेषजीको देखा ॥ ४५ ॥ शेषजीके ऊपर कुण्डलसे विराजमान श्याम और पीतवस्त्रोंको धारण किये चार भुजा शांतस्वरूप पुरुष कमलके पत्तोंके समान अरुण नेत्र ॥ ४६॥ सुन्दर प्रसन्न मुख सुन्दर हास्यभरी चितवन, सुन्दर भ्रुकुटी और शोभायमान नासिका, सुंदर कर्ण सुन्दर कपोल और अरुण ओष्ठ ॥ ४७ ॥ लम्बी मोटी भुजा, विशाल हृदयमें लक्ष्मी विराजमान, गोल शंखसी ग्रीवा, तीन बलि जिसमें पडरहीं शोभायमान जिनकी नाभि पीपलके पत्तेके समान चिकना उदर ॥ ४८ ॥ पतली कमर और बृहत् श्रोणीसे शोभायमान दोनों जंघा ॥ ४९ ॥

लम्बायमान दोनों गुल्फ, लाल नखोंके समूहकी कांतिसे वेष्टित, कोमल अंगुली; सुन्दर चरणकमल ॥ ५० ॥ बहुत मोलके मणियोंसे जटित किरीट, कडे, बाजूबन्द और कमर कर्धनी, यज्ञोपवीत, मोतियोंके हार, चरणोंमें नूपुर तथा कानोंमें कुण्डल जो पहर रहे हैं, उनसे अत्यन्तही प्रकाशमान हैं ॥ ५१ ॥ कमल और शंख, चक्र, गदाको धारण किये भृगुलताका चिह्न जिनकी छातीमें प्रकाशमान, कौस्तुभमणिकी जिनके धुकधुकी ॥ ५२ ॥ सुनंद नंद जिनमें मुखिया ऐसे पार्षद, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और ब्रह्मा महादेवादि देवता मरीच्यादि जो ब्राह्मण, प्रह्लाद, नारद, वसु जिनमें मुख्य इसप्रकार उत्तम भक्त अलग अलग भावसे उनकी स्तुति कररहे हैं ॥५३॥५४॥ और श्री, पुष्टि, वाणी, कान्ति, कीर्ति,

तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ॥ नवांगुल्यंगुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजम् ॥ ५० ॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकांगदैः ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥ ५१ ॥ भ्राजमानं पद्मकरं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ६२ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ॥ स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥५४॥ श्रिया पुष्ट्या गिरा कांत्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ॥ विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥५५॥ विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ॥ हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥ गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत्सत्त्वमालंब्य सात्त्वतः ॥ प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृतांजलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भाग० म० द० पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति, माया जिनका निरंतर सेवन करती हैं ॥ ५५ ॥ ऐसे परिपूर्ण रूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो, परमभक्तिको प्राप्त हो, देहमें रोमांच होगये और भक्तिके कारण नेत्रोंमें आँसू भरि आये, ऐसे महात्मा अक्रूरजी मस्तक नवाय प्रमाण कर, सावधान हो, हाथ जोड, धीरेसे सत्त्वगुणका आश्रय ले गद्गदवाणीसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां अक्रूरप्रतियानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

दोहा–चालिसमें अक्रूरने, लख हरि चरित अपार । सगुण निगुणकी भक्तिसे, बिनवत वारम्बार ॥ ४० ॥ अक्रूरजी बोले कि, हे कृष्ण ! संपूर्ण
कारणोंके कारण नारायण आदिपुरुष अविनाशी जिनकी नाभिमें उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्मा हुए और उस ब्रह्मासे यह लोक उत्पन्न हुआ, तुमको मैं
नमस्कार करताहूं ॥१॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, पुरुष, मन, इन्द्रिय, समस्त इन्द्रियोंके लिये विषयसे संपूर्ण देवता
यह जो जगतके कारण हैं सो तुम्हारेही अंगसे हुये हैं ॥२॥ ब्रह्मासे आदि लेकर जड जो सम्पूर्ण तत्त्व हैं, सो अपने स्वरूपको नहीं जानते और जीव हैं

अक्रूर उवाच ॥ नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥ यन्नाभिजातादरविंदकोशाद्ब्रह्माऽऽवि
रासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियणि ॥ सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये
हेतवस्ते जगतोंगभूताः ॥ २ ॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ॥ अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया
गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥ त्वां योगिनो यजंत्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ॥ साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं
च साधवः ॥ ४ ॥ त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ॥ यजंते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥
एकेत्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ॥ ज्ञानीनो ज्ञानयज्ञेन यजंति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥

सो तत्त्वोंको जानते हैं, अपने स्वरूपको नहीं जानते, मायाके गुणोंसे बँधेहुए जीव गुणोंसे अलग तुम्हारे स्वरूपको नहींजानते ॥ ३ ॥ ब्रह्माके उपासक
महापुरुष ईश्वर तुम हो, तुम्हारी ही पूजा करते हैं और इन्द्रिय, पंचभूत, देवता, इनके साक्षी अन्तर्यामी तुम हो, इसीलिये तुम्हारी साधुलोग पूजा करते
हैं,॥४॥ और कोई एक कर्मोंमें निष्ठावाले, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदसे यज्ञोंका विस्तार करके अनेक रूप देवताओंका नाम
लेलेकर पूजा करते हैं ॥ ५ ॥ और कोई कोई ज्ञानी पुरुष संपूर्ण कर्मोंको त्याग, समाधिमें आनकर ज्ञानरूप तुम्हारा पूजन करते हैं * ॥ ६ ॥

* शंका–योगमें बडे चतुर, ऐसे योगीजन सब संसारके सुखको त्यागकर जिस ब्रह्ममें मिल जाते हैं सो श्रीकृष्णचन्द्र हैं, यह शंका हमको वारम्बार होतीहै ?
उत्तर–जिस ब्रह्मको मुमुक्षु लोग जाते हैं, उस ब्रह्मको योगीजन नहीं जासक्ते, वह ब्रह्म बडा कठिन है, परन्तु संसारमें अपने अपने इष्टको ब्रह्मके स्वरूपकी नाईं बडाई करके सब प्राणी वर्णन करते हैं,
इस लिये अक्रूरभी कृष्णको ब्रह्मस्वरूप करके वर्णन करते हैं ॥

और दूसरे पुरुष विष्णुकी दीक्षा लेकर नारदपंचरात्रमें कही पूजाकी विधिसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, इन भेदोंसे बहुत रूप और नारायण रूपसे एकरूप आपकीही पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ और कोई कोई पुरुष शिवजीके कहे शैवमार्ग और पाशुपतमार्गसे शिवरूप तुमको हे भगवन्! अनेक प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे सर्वदेवतारूप! हे समर्थ! जो पुरुष और देवताओंके भक्त हैं और देवताओंमें उनके मन लग रहेहैं वह सबके ईश्वर तुम्हारीही पूजा करते हैं, क्योंकि आप सब देवताओंके रूप हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो! जैसे पर्वतोंसे निकली मेघके जलसे परिपूर्ण हो नदियें चारों ओरसे बह बहकर समुद्रमें जा मिलतीहैं उसीप्रकार सब देवताओंके मार्ग अन्तमें तुमहीमें आनकर मिलजाते हैं ॥ १० ॥ सत, रज, तम यह

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते ॥ यजंति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥ त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ॥ बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्समुपासते ॥ ८ ॥ सर्व एव यजंति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ॥ विशंति सर्वतः सिंधुं तद्वत्त्वां गतयोंततः ॥ १० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥ ११ ॥ तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ॥ गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरंघ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौः कं सुरेंद्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ॥ निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेंढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥

तुम्हारी प्रकृतिके गुण हैं, इन गुणोंमें ब्रह्म आदि स्थावर तक सब जीव पोयेहुए हैं, वे गुण प्रकृतिमें और प्रकृति तुममें ॥ ११ ॥ संसारमें अलिप्तबुद्धि जिसके आत्मा सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी तुम हो, सो मैं आपको नमस्कार करता हूं आविद्यासे हुआ गुणका प्रभाववाला संसार देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इनकी देहमेंही प्रवृत्त होता है, इसलिये इनमें और आपमें बड़ा अन्तर है ॥ १२ ॥ अग्निमें तुम्हारा मुख है, पृथ्वी तुम्हारा चरण है, सूर्य नेत्र, आकाश नाभि, दिशा कान, स्वर्ग मस्तक, देवता भुजा और समुद्र कोंख है, पवन प्राणरूप तथा बलरूप कल्पना किया है ॥ १३ ॥ वृक्ष औषधि देहमें रोम, मेघ तुम्हारे केश, पर्वत तुम्हारे हाड और नख हैं, रात्रि दिन पलकोंका खोलना तथा बंद करना है, प्रजापति तुम्हारा मेढ्र है

और वर्षाको तुम्हारा वीर्य कहते हैं ॥ १४ ॥ तुम अविनाशी पुरुषमेंही लोकपालोंसहित लोक स्थित हैं और वह बहुत जीवोंसे व्याप्त हैं, छोटे कीडे चलते हैं, गूलरमें भुनगे उडते हैं उसीप्रकार मनकी वृत्तिसे जाननेमें आओ जो तुम हो तिनमें अनंत ब्रह्माण्ड फिरतेहैं ॥ १५ ॥ इस संसारमें लीला करनेके लिये आप जो जो रूप धारण करतेहो उनसे शोक दूरकर लोग आनन्दसे तुम्हारे यशको गातेहैं ॥ १६ ॥ सत्यव्रतको माया दिखानेके लिये मत्स्यरूप धरकर प्रलयके समुद्रमें विचरनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, मधुकैटभ दैत्यको मारनेके लिये हयग्रीवरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ मंदराचल पर्वतके धारण करनेवाले बड़े कच्छपरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है । पृथ्वी लानेके

त्वय्यव्ययात्मन्पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ॥ यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुंबरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥ यानियानीह रूपाणि क्रीडनार्थं विभर्षि हि ॥ तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायंति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ॥ हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मंदरधारिणे ॥ क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥ १८ ॥ नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं क्रांतत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ॥ नमस्ते रघुवर्याय रावणांतकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्त्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ॥ म्लेच्छप्रायक्षत्रहंत्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥

लिये वाराहरूप आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ साधुपुरुषोका भय दूर करनेवाले अद्भुत नृसिंहरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है । वामनरूप होकर तीनों लोक नापनेवाले तुम्हें नमस्कार है ॥ १९ ॥ गर्वीले क्षत्रियरूप वनको काटनेवाले भृगुवंशियोके पति परशुराम तुमको नमस्कार है । रावणके मारनेवाले रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्ररूप आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ वासुदेवरूप तुमको नमस्कार है, संकर्षणरूप तुमको नमस्कार है, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप तुमको नमस्कार है, भक्तोंके पति तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ दैत्य दानवोके मोहित करनेवाले शुद्धबुद्धरूप तुमको नमस्कार है । म्लेच्छ क्षत्रियोको मारनेवाले कल्कीरूप तुमको नमस्कार है ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! यह जीव तुम्हारी मायासे मोहित हो अहंता ममतारूप दुराग्रहसे कर्ममार्गोंमें भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ हे विभो ! मैंभी स्वप्नके समान आत्मा, पुत्र, घर, स्त्री, धन, भाई, बन्धु इत्यादिमें मूर्खतासे सत्यबुद्धि कर भ्रमण करताहूं ॥ २४ ॥ अनित्य आत्मा दुःखरूप है उनको नित्य आत्मा सुखरूप जानताहूं और सुखदुःखमें क्रीडा करनेवाला अज्ञानसे भरा मैं अपने प्रिय तुमको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सिवारसों ढके जलको छोड सूर्यकी किरणोंसे बालू चमकते जलके लिये जातेहैं ॥ उसी प्रकार मायासे ढके तुमको त्याग देहादिकोंमें मेरा मन लगरहाहै ॥ २६ ॥ कृपणबुद्धि अर्थात् विषयोंमें बुद्धि लगनेसे काम्य कर्मसे क्षुभितहुए मनको रोकनेमें असमर्थ नहीं हूं परन्तु बलवान्

भगवञ्जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ॥ भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ॥ द्वंद्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वाऽऽत्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥ यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ॥ अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाऽहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ॥ रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोऽहं तवांघ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं यच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ॥ पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्यक्षहेतवे ॥ पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ २९ ॥

इन्द्रियें मनको इधर उधर चलायमान कर देतीहैं ॥ २७ ॥ हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! विषयीपुरुषोंको दुर्लभ मैं आपके चरणारविन्दोंकी शरण आया हूं और तुम्हारी शरण आना, यह भी आपकेही अनुग्रहसे हुआहै ऐसे मानताहूं, क्योंकि जब पुरुषका संसार छूटनहार होताहै, तब हे कमलनाभ ! साधुओंकी सेवा करतेहैं उस सेवासे तुममें आनकर बुद्धि लगती है परन्तु तुम्हारी कृपा विना साधुओंकी सेवा भी नहीं बनती और तुममें बुद्धि भी नहीं लगसक्ती है ॥ २८ ॥ विज्ञानमूर्ति समस्त ज्ञानके कारण पुरुष, काल, माया इनरूप ब्रह्म तुम हो, इसलिये हे

अनन्तशक्ति ! मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ २९ ॥ हे समर्थ ! हे इन्द्रियोंके प्रेरनेवाले ! चित्तके अधिष्ठाता सब प्राणियोंके आश्रय ! तुमको मैं नमस्कार करताहूं तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुए मेरी रक्षा करो ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां अक्रूरस्तुति र्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ दोहा–इकतालिस अध्यायमें, मथुरा कियो प्रवेश । रजकवधो माली दियो, शुभ वरदान व्रजेश ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्तुति करते हुए अक्रूरजीको जलके भीतर अपना स्वरूप दिखलाकर फिर जैसे नट अपने स्वांगको दिखलाकर समेट लेताहै, उसी प्रकार समेट लिया ॥ १ ॥ अक्रूरजी भी श्रीकृष्णचन्द्रको जलमेंसे अन्तर्धान हुआ देख

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे अक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्तुवतस्तस्य भगवान्दर्शयित्वा जले वपुः ॥ भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥ सोपि चांतर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूर उवाच ॥ अद्भुतानीह यावंति भूमौ वियति वा जले ॥ त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥ यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ॥ तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन्किं मे दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ ५ ॥

अत्यन्त शीघ्रतासहित जलमेंसे निकल सम्पूर्ण सन्ध्योपासन कर आश्चर्य मान रथके निकट आये ॥२॥ इनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे अक्रूर ! पृथ्वीमें, जलमें, आकाशमें तुमने ऐसी आश्चर्य वस्तु क्या देखी है, क्योंकि तुम आश्चर्यरूप चकितसे दिखाई देतेहो॥३॥ तब अक्रूरजी बोले कि, इस संसारमें, पृथ्वीमें, जलमें, जितने आश्चर्य हैं वह सब आश्चर्य विश्वरूप आपमें विद्यमान हैं, सो तुम्हारा मैंने दर्शन किया॥४॥ जो तुममें सब आश्चर्य भरे हैं जब तुम्हारा दर्शन मैंने कर लिया फिर हे परमेश्वर ! पृथ्वी, आकाश और इस संसारमें क्या आश्चर्य देखना शेष रहगया? ॥५॥

ऐसे कह गांदिनीके पुत्र महात्मा अक्रूरजीने रथ हांका और तीसरेही पहरतक मथुरापुरीमें राम कृष्णको पहुँचादिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मार्गोंमें ग्रामोंके मनुष्य जहाँ तहाँ इकट्ठे हो कृष्णबलदेवका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके रूपमेंसे अपनी दृष्टिके हटानेको भी समर्थ न हुए॥ ७ ॥ हे महाराज ! इसी बीचमें नन्दादिक समस्त व्रजवासी आगे आनकर मथुराके बागमें कृष्ण बलदेवके आनेका पैंड़ा देखनेलगे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन व्रजवासियोके पास आय, नम्र हो कुछेक मुसकान सहित अक्रूरसे कहा कि ॥ ९ ॥ हे अक्रूर ! तुम आगे रथको लेजाय पुरीमें प्रवेश करो और अपने घर जाओ, हम यहां कुछ देर विश्राम लेकर मथुरापुरीको देखेंगे ॥ १० ॥ तब अक्रूरजी बोले

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यंदनं गांदिनीसुतः ॥ मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥ ६ ॥ मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः ॥ वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाऽऽददुः ॥ ७ ॥ तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ॥ पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षंतोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान्प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ॥ वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूर उवाच ॥ नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ॥ त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥ आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज ॥ सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥ पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ॥ यच्छौचेनानुतृप्यंति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥ अवनिज्यांघ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो बलिर्महान् ॥ ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकांतिनां तु या ॥ १४ ॥

कि, हे प्रभो ! तुम बिन अकेला मैं मथुरा पुरीमें नहीं जाऊंगा, हे नाथ ! हे भक्तोंपर हित करनेवाले ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, इसलिये मुझे मत त्यागो ॥ ११ ॥ तुम आओ हम तुम घर चलैं, हे अधोक्षज ! हे सुहृदोत्तम ! आज अपने बड़े भाई बलदेवजी और ग्वालबालों सहित मेरे घर चलकर मुझे सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणोंकी रजसे मुझ गृहस्थके घरको पवित्र करो और तुम्हारे चरणोंकी धोवनसेही मेरे पितृ, अग्नि, देवता, तृप्त होजायँगे ॥ १३ ॥ देखो ! तुम्हारे युगल चरण धोनेसे राजा बलिका कैसा पवित्र यश हुआ कि, जिससे अत्यन्त दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्तहुआ

और अनन्य भक्तोंको जो गति मिलतीहै, वही गति उसने पाई ॥१४॥ हे भगवान्! तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर त्रिलोकीको पवित्र करता है उसी जलको शिवजीने अपने मस्तकपर धारण किया है और उसी जलके स्पर्शसे साठहजार सगरके पुत्र स्वर्गको चले गये॥१५॥ हे देवदेव! हे जगन्नाथ! तुम्हारी कथा श्रवण और गुणकथनसे भक्त पवित्र हो जाते हैं, ऐसे तुम पवित्र गुणयुक्त हो, सो हे नारायण! आपको नमस्कार है ॥१६॥ तब श्रीभगवान् बोले कि यादवोंसे द्रोह करनेवाले कंसको मार सुहृदोंका प्रिय करूंगा,इसके उपरान्त बडे भाई बलदेवजीको संग ले मैं तुम्हारे घर आऊंगा ॥१७॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अक्रूरजी विमन हो पुरीमें जाय कंससे "राम कृष्णको ले

आपस्तेंऽघ्र्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् ॥ शिरसाऽधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥ देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते॥१६॥श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ॥ यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ॥ पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्माऽऽवेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्णे भगवान्कृष्णः संकर्षणाऽन्वितः ॥ मथुरां प्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥१९॥ ददर्श तां स्फाटिकतुंगगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ॥ ताम्राऽऽरकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णशृंगाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ॥ वैदूर्यवज्राऽमलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥

आया" ऐसे कह अपने घरको चले गये ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त तीसरे पहरके समय बडे भाई बलराम सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोप ग्वालोंको संग ले मथुरापुरी देखनेके लिये चले ॥ १९ ॥ उस पुरीकी कैसी शोभा है कि, स्फटिक मणियोंके ऊंचे शहरपनाहके और घरोंके द्वार बन रहेहैं, उनमें बडे बडे सोनेके किंवाड चढ़ रहे हैं और ठौर ठौर बन्दनवारें टॅग रही हैं, अन्न भरनेके लिये तॉबे तथा पीतलके कोठे बने हैं चारों ओर चौडी खाई बन रही हैं, उद्यान और उपवन आदिसे यह पुरी अत्यन्त शोभायमान हो रही है ॥ २० ॥ सुवर्णके चारों ओर मार्ग, साहूकारोंके महल और बडे २ कारीगर मनुष्योंके मकानोंसे यह पुरी शोभायमान हो रहीहै, वैदूर्यमणि, हीरे, निर्मल नीलमणि,मूंगे, मोती इनके काम जिनमें हो रहे

ऐसे शोभायमान छज्जे हैं ॥ २१ ॥ जाली झरोखोंमें बैठेहुए मोर जहाँ तहाँ शोर कर रहे हैं राजमार्ग व गलियोंमें छिडकाव हो रहा है, उनमें पुष्पोंकी माला अंकुर धानकी खीलें और चावल यह मंगल द्रव्य फैल रहा है ॥ २२ ॥ चंदन दहीसे छिडके फूल जिनपर धरे, ऊपर दीपकोंकी पंक्ति धरी आमकी डाल जिन पर धरी ध्वजा जिनपर फहरा रही दारियाईके कपडे जिनकी नारिसे बँधे गहिर सहित केले व सुपारीके वृक्ष जिनके निकट लग रहे जलके भरे कलश दरवाजोंपर रक्खे हैं, जिनसे वह पुरी बहुतही शोभायमान होरही है ॥ २३ ॥ बराबरके मित्रोंको संग ले मथुरा पुरीके बीच बाजारमें हो जिस समय वसुदेवनन्दन कृष्ण बलदेव निकले, उस समय इनको देखनेके लिये पुरीकी बहुत स्त्रियें दौड आईं और

जुष्टेषु जालामुखरंध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ॥ संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतंडुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भैर्दधिचंदनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ॥ सवृंदरंभाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तां संप्रविष्टौ वसुदेवनंदनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः परस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ॥ कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नांक्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥ २५ ॥ अश्नंत्य एकास्तदपास्य भोजनमभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ॥ स्वपंत्य उत्थाय निशम्य निस्स्वनं प्रपाययंत्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविंदलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः ॥ जहार मत्तद्विरदेंद्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥

बहुतसारी स्त्रियें देखनेकी इच्छासे महलोंपर चढ गईं ॥ २४ ॥ कोई कोई स्त्री उतावलके मारे ओढ़नियोंको पहर, लहँगेको ओढ, हाथोंके गहने पांवोंमें पहर कर चली आईं, कोई एक स्त्री एक हाथ और एक पांवमेंही गहना पहरकर चली आई और कोई स्त्री एक कानमें कर्णफूल व एक पाँवमें पायजेब पहरकर चली आई, कोई स्त्री एकही आँखमें काजल लगाकर चली आई ॥ २५ ॥ कोई कोई स्त्री भोजन करतेहीसे चली आईं और कोई स्त्री अंगनमें तेल मलरही थी, वह विनाही स्नान किये चली आई, कोई सोतेसेही चली आई कोई स्त्री अपने बालकोंको दूध पिलारही थी, सो सुना कि, कृष्ण बलदेव आये हैं, सो बालकोंको रोताही छोडकर चली आई ॥ २६ ॥ मतवाले हाथीके समान

पराक्रमवाले कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही हँसनी चितवनीसे उन स्त्रियोंका मन चुरालिया और लक्ष्मीको रमण कराने वाले अपने रूपसे उन स्त्रियोंकी आखोंको आनन्द देनेलगे ॥ २७ ॥ वारंवार बातें सुनकर उन कृष्णमें लगे हैं चित्त जिनके और उनकी चितवन मुसकानरूपी अमृतका जो सींचना है उससे सत्कार पानेसे रोमांच हो आये,ऐसी स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देख,नेत्र द्वारा हृदयमें लेजाय आनंद रूप श्रीकृष्णको आलिंगनकर हे काम लोभादिकोंके दंड देनेवाले राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्णके विना मिलेही कामकी पीडाको त्यागदिया ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त प्रफुल्लित नेत्रवाली स्त्रियें महलोंके शिखरपर चढीं कृष्ण बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा करके कहनेलगीं ॥ २९ ॥ इसप्रकार परस्पर

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ॥ आनंदमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनंतमरिंदमाधिम् ॥ २८ ॥ प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखांबुजाः ॥ अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गंधैरभ्युपायनैः ॥ तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्रतत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् ॥ या ह्येतावनुपश्यंति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥ रजकं कंचिदायांतं रंगकारं गदाग्रजः ॥ दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥३२॥ देह्यावयोः समुचितान्यंग वासांसि चार्हतोः ॥ भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥३३॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ॥ साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥

कहने लगीं,फिर दही, अक्षत, जलके भरे पात्र और माला चंदन भेंट लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रसन्न होकर कृष्ण बलदेवका पूजन करने लगे ॥ ॥ ३० ॥ और संपूर्ण मथुरावासी अत्यन्त आश्चर्यमान यह कहने लगे कि, गोपियोंने ऐसा क्या उत्कृष्ट तप किया है, जो गोपी मनुष्य लोकको बड़े उत्सवरूप श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करती हैं ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वस्त्रोंका धोनेवाला और रँगनेवाला मार्गमें आताहुआ एक धोबी देखा और अतिनम्रता सहित उससे अति उत्तम धुलेहुए वस्त्र माँगे ॥३२॥ और कहा कि, हे धोबी ! हमको हमारे योग्य वस्त्र दे, कारण कि, हम इन वस्त्रोंके योग्य हैं और हमें वस्त्र देनेसे तेरा कल्याण होगा इसमें संदेह नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार सब ओरसे

परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धोबीसे वस्त्र माँगे तब अत्यन्त क्रोधित हो, कंसका सेवक अति घमण्डी डांटकर बोला कि ॥३४॥ नित्य पर्वत और वनके फिरनेवाले ऐसेही कपड़े पहरते हो, हे उद्धत! तुम राजाके वस्त्रोंपर क्यों मन ललचाते हो ॥ ३५ ॥ हे मूर्खो! यदि अपना जीना चाहो तो तुम शीघ्रही यहाँसे निकल जाओ, फिर मत माँगना क्योंकि राजा कंसके बहुत सेवक फिरते हैं और जो धूम मचाता है, उसे वह मारते हैं, लूटते हैं, बांधते हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने महाक्रोधित हो इसप्रकार बकवाद करतेहुए उस धोबीका शिर अपने हाथकी थापसे काट

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ॥ परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा ॥ बध्नंति घ्नंति लुंपंति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥ एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ॥ रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान्विसृज्य वै ॥ दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा ॥ शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ॥ विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥

डाला ॥ ३७ ॥ जब मुख्य धोबी मारागया, तब उसके टहलुए धोबी वस्त्रोंको पटक पटक चारों ओरको भागगये, उस समय श्रीकृष्ण और बलरामजीने मनमानते वस्त्रोंको पहिर बाकी जो रहे सो गोप ग्वालोंको देदिये और जो रहे सो वहीं छोड दिये ❀ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे महाराज! इसके उपरान्त जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और ग्वालबाल सब वस्त्र पहरकर चले, उसी समय प्रसन्नमन एक दर्जी आया उसने आतेही रामकृष्णके लाल, हरे, पीले, जो वस्त्र थे उनके माला, चंपकली बाजूबंद और अनेक प्रकारके आभूषण बनाकर शोभायमान पोशाक बनाई ॥ ४० ॥

* शंका–तीन लोकके पति भगवान् दूसरे दुष्टजीवोंका उच्छिष्ट अर्थात् पहिरा कपड़ा आप क्यों पहिरतेहुए, यह बड़ी शंका है ॥

उत्तर–धर्मशास्त्रमें यह लिखा है कि, मामाका पहिरा वस्त्र, तथा कुमारी लड़कीका पहिरा वस्त्र, तथा ब्रह्मचारीका पहिरा वस्त्र, इनके पहिरेहुए वस्त्रोको कोई पहिर ले उनका कीसीको दोष नहीं और कटिभागसे नीचेका पहिरा वस्त्र मामा, कन्या, ब्रह्मचारीका भी धारण न करना और दूसरे पुरुषकी तो क्या बात है। श्रीकृष्णने अपने मामाका वस्त्र जानकर उच्छिष्ट वस्त्र धारण किया ॥

इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी दोनों भाई अनेक प्रकारसे दर्जीके बनाये वस्त्रोंके आभूषणोंसे ऐसे शोभायमान लगनेलगे, जैसे पर्वमें साँवरे गोरे शृंगार किये हाथीके छौना शोभायमान लगते हैं ॥ ४१ ॥ फिर उस दर्जीके ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी सारूप्य मुक्ति दी और इसलोकमें सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य, स्मरण तथा हाथ, पाँव, नाक, कान, आँख अच्छे बने रहें, इनकी चतुराई दी ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम सुदामा मालीके घर गये, इनको देखतेही उसने पृथ्वीमें शिर लगाय प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ और आसन दिया पाद्यार्घ्य इत्यादि पूजाकी सामाग्रियोंसे दोनों भाइयोंका पूजन किया, फिर पीछे पानकी बीड़ी और चन्दन इत्यादि अर्पण

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः॥स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥४१॥ तस्य प्रसन्नो भगवान्प्रादात्सारूप्यमात्मनः ॥ श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतींद्रियम् ॥ ४२ ॥ ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ॥ तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यं चार्थार्हणादिभिः ॥ पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ॥ पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ॥ ४५ ॥ भवंतौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ॥ अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥ ४६ ॥ न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ॥ समयोः सर्वभूतेषु भजंतं भजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ॥ पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभिप्रेत्य राजेंद्र सुदामा प्रीतमानसः ॥ शस्तैस्सुगंधैः कुसुमैर्मालां विरचितां ददौ ॥ ४९ ॥

किया ॥४४॥ फिर माली बोला कि, हे प्रभो ! आज तुम्हारे आनेसे हमारा जन्म सफल तथा कुल पवित्र हुआ और हमारे पितृ देवता ऋषिभी संतुष्ट होगये ॥ ४५ ॥ तुम निश्चय इस संसारके परमकारण हो और जगत्के कल्याण और वृद्धिके लियेही आपने अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ ॥ ४६ ॥ जगत्के हितकारी आत्मा तुमहीं हो, तुम्हारी विषमदृष्टि नहीं है, सब प्राणियोंमें समवर्ती हो और जो तुम्हारा भजन करता है उसको तुम भी भजते हो ॥ ४७ ॥ अब तुम दासको आज्ञा करो मैं तुम्हारी क्या पूजा करूं ? क्योंकि पुरुषोंको जो तुम्हारा दर्शन होता है यही बड़ा अनुग्रह है ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्नमन सुदामा मालीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शोभायमान सुगंधित फूलोंकी माला समर्पण करी ॥ ४९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस मालाको पहर मित्रोंसहित प्रसन्न हो सुदामा मालीको वरदान दिया ॥ ५० ॥ और सुदामा मालीने भी भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रसे यही वर माँगा कि, सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति रहै और तुम्हारे भक्तोंमें स्नेह और जीवमात्रमें दया रहै ॥५१॥इसप्रकार उस मालीको मनवांछित वरदान दे और उसके वंशमें सदा रहनेवाली सम्पत्ति दे, तथा बल, आयु, यश, शोभा दे, बलदेवजीको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके घरमेंसे निकले ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां मथुरापुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

दोहा—कुब्जाको सीधी कियो, कियो शरासन भंग। देखो परमोत्सव तहाँ, बयालीस भूरंग ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे कि, कुरुकुलभूषण परीक्षित् !

ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ॥ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥ सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ॥ तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥ इति तस्मै वरान्दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥ बलमायुर्यशः कांतिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० पुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ व्रजन्राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीतांगविलेपभाजनाम् ॥ विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यांतीं प्रहसन्रतिप्रदः ॥ १ ॥ का त्वं वरोर्वेतदुहानुलेपनं कस्यांगने वा कथयस्व साधु नः ॥ देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्तेन चिराद्भविष्यति ॥ २ ॥ सैरंध्र्युवाच ॥ दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ॥ मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥ रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ॥ धर्षितात्मा ददौ सांद्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥

इसके उपरान्त सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजमार्ग बाजारमें आयकर ग्रहण किये चन्दनका पात्र, शोभायमान मुखवाली सामने आती हुई तरुण कुबरी स्त्रीको देख हँसकर पूंछा ॥ १ ॥ कि, हे सुन्दर जंघावाली! तू कौन है ? और यह चन्दन किसका है हमारे सन्मुख भली प्रकार समझाकर कहो, क्योंकि जो यह उत्तम चन्दन हमको दो तो तुम्हारा अभी कल्याण होगा ॥ २ ॥ यह सुनकर कुबरी बोली कि, हे सुन्दर ! मेरा नाम कुबरी है और कंसकी दासी हूं और नित्यप्रति चंदन घिसना यही मेरा काम है, क्योंकि मेरा घिसा चंदन राजा कंसको अच्छा लगता है, परन्तु अब तुम्हारे बिना इस चन्दनके लगानेका कोई पात्र नहीं है ॥ ३ ॥ इसप्रकार सुन्दर रूप सुकुमार और रसिकता, हँसनि, बोलनि तथा

चितवनसे मोहित हो कुबरीने श्रीकृष्ण बलदेवके चन्दन लगाया ॥ ४ ॥ केशर मिलाहुआ चन्दन साँवरे अंगमें जिससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लगाया और कस्तूरी मिलाहुआ चन्दन गोरे अंगमें जिससमय बलदेवजीने लगाया, उससमय दोनों भाई अत्यन्तही शोभायमान लगनेलगे ॥५॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न हो अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये सुन्दरमुखी तीन स्थानसे टेढी कुबरीको सूधी करनेका विचार किया ॥ ६ ॥ और फिर कुबरीके पाँवोंको अपने चरणोंसे दाब दो ॲगुली जिसमें ऊंची करी, ऐसे हाथको ठोडीके नीचे लगाय, श्रीकृष्णने कुब्जाके देहको सूधा करदिया ॥ ७ ॥ उससमय सूधे बराबर हैं अंग जिसके, बड़े नितम्ब और स्तनवाली, ऐसी कुब्जा भगवान्

ततस्तावंगरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ॥ संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरंजितौ ॥५॥ प्रसन्नो भगवान्कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ॥ ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन्दर्शने फलम् ॥ ६ ॥ पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यंगुल्युत्तानपाणिना ॥ प्रगृह्य चिबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥ सा तदर्जुसमानांगी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ॥ मुकुंदस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ ८ ॥ ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् ॥ उत्तरीयांतमाकृष्य स्मयंती जातहृच्छया ॥ ९ ॥ एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥ १० ॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः ॥ मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥ एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ॥ साधितार्थोऽगृहाणां नः पांथानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके हाथका स्पर्श होनेसे एक सुन्दर स्त्री होगयी ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त आपही रूप, गुण, उदारता यह सब कुब्जामें आगये, तब कामदेवसे पीडित हो, वह कुब्जा दुपट्टेका छोर पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगी ॥ ९ ॥ कि, हे वीर ! हे पुरुषश्रेष्ठ । तुम मेरे संग चलकर मेरा भवन पवित्र करो, क्योंकि अब मैं तुम्हें छोड नहीं सक्ती और तुमने मेरा मन चलायमान किया है इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ॥ १० ॥ हे महाराज परीक्षित ! इसप्रकार जब कुब्जाने कहा, तब उसीसमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी और अपने मित्रोंका मुख देख कुछेक मुसकातेहुए कुब्जासे बोले ॥ ११ ॥ कि, हे सुन्दरभ्रुकुटियोंवाली ! तुम्हारी भ्रुकुटी हमारे मनको खैंचती है, तुम हमारा दुपट्टा क्यों खैंचतीहो, मैं कंसको

मार, अपने सुहृदोंका कार्य सिद्धकर मनका दुःख दूर करनेवाले तुम्हारे घर आऊंगा ॥ क्योंकि मैं तो बाल ब्रह्मचारी हूं, किसीसे जान पहिचान नहीं और हमारा यहाँ घर भी नहीं, हमें तो केवल तुम्हाराही आश्रय है, जब तुम्हारे ही यहाँ न आवेंगे तो और जायँगे कहाँ?॥१२॥इस प्रकार मीठे मीठे वचन कह और कुब्जाको वहीं छोड़ आगे चले. तब बनियोंने पान, माला, चन्दन इत्यादि भेंट ले बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ ॥ १३ ॥ हे महाराज ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके कारण उत्पन्न हुए कामदेवके क्षोभसे स्त्रियोंने अपनेकोभी नहीं जाना, वस्त्र खुलगये,

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे वणिक्पथैः ॥ नानोपायनतांबूलस्रग्गंधैः साग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनस्म रक्षोभादात्मानं नाविदन्स्त्रियः ॥ विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥ १४ ॥ ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ॥ तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ॥ वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥ करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ॥ नृणां विकृष्य प्रबभंज मध्यतो यथेक्षुदंडं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥

चोटी खुलगई, चूडी खिसलआई और जैसे कोई चित्र खैंचकर खड़ाकर देता है, उसीप्रकार खड़ी रहगई ❀ ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त अच्युत भगवान् कृष्णचन्द्र मथुरावासियोंसे पूँछते पूँछते धनुषशालामें गये और वहाँ जाकर इन्द्रके धनुषकी समान धराहुवा धनुष देखा ॥ १५ ॥ हे महाराज । यद्यपि बड़े बड़े बलवान् पुरुष उसकी रक्षा कर रहे थे पूजा हो रही थी, अत्यन्त जिसकी शोभा थी, परन्तु तो भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लोगोंके मने करनेपर भी उसे उठाया ॥ १६ ॥ और लीलापूर्वकही एक हाथसे उठाय पलभरमें मनुष्योंके देखते देखते बीचमेंसे खैंच जैसे मतवाला

❀ शंका–बडे आश्चर्यकी बात हैं कि, मथुराकी स्त्रियाँ कृष्णको देखकर कामदेवसे विह्वल होगई और ऐसी विह्वल होगई कि, तन मनकी और अपने शरीरकी कुछ भी सुधि बुधि न रही, परन्तु परपुरुषको देखकर विह्वल होजाना यह गृहस्थस्त्रियोंका धर्म नहीं, यह धर्म तो व्यभिचारिणी स्त्रियोंका है ।

उत्तर–व्रजमें कृष्णने गोवर्द्धनको उठाया उस सरीखे और बहुत काम किये उन सब कामोंको सुनकर स्मरण करके त्रास मानकर विह्वल हुई कामदेव करके विह्वल नहीं हुई, मथुराकी स्त्रियाँ ऐसी नहीं जो पर पुरुषको देखकर कामदेवसे विह्वल हो जातीं ॥

हाथी गन्नेको तोड़डालता है उसीप्रकार तोड डाला ॥ १७ ॥ हे राजन् । जिस समय धनुष टूटा उस समय महागम्भीर शब्द हुआ उस शब्दसे पृथ्वी, आकाश स्वर्ग और सब दिशायें व्याप्त होगईं और उस शब्दको सुनकर कंसका हृदयभी अत्यन्त भयभीत हुआ ॥ १८ ॥ इसके पीछे उस धनुषके रक्षकोंने अत्यन्त क्रोधित हो अपने २ अनुचरोंसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको "पकड़लो पकड़लो" इसप्रकार कहते चारों ओरसे घेर लिया ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी इन असुरोंको अपने मारनेके लिये देख क्रोधित हो धनुषका एक २ टुकडा हाथमें ले इन पुरुषोंको मारने लगे ॥ २०॥ फिर कंसकी भेजीहुई संपूर्ण सेना मार धनुषशालासे बाहर निकल मथुरापुरीकी सम्पदा देख

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ॥ पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥१८॥ तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः॥ ग्रहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां बध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथ तान्दुरभिप्रायान्विलोक्य बलकेशवौ ॥ क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥ बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ॥ निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥ २१ ॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशम्य पुरवासिनः ॥ तेजःप्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ॥ कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥२३॥ गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ॥ संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥ २४ ॥ अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ॥ ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥

हर्षित होकर घूमनेलगे ॥ २१॥ मथुरावासी नरनारियोने भगवान् कृष्ण बलदेवका अद्भुत कर्म, धृष्टता और पराक्रम देख अपने मनमें जाना कि, यह कोई उत्तम देवता हैं ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित ! इसप्रकार कृष्ण बलदेव विचररहे थे कि, इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्त होगये और सन्ध्या होगई तब भगवान् श्रीकृष्ण बलदेव गोपों सहित मथुरापुरीसे बाहर निकले और जहाँ गाडियें छूटीथीं वहाँ पहुँचे॥२३॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीको व्रजसे चलती समय गोपियोंने विरहमें व्याकुल होकर जो जो बातें कहींथीं,वह सबही श्रीकृष्णचन्द्रके अंगकी शोभा देख मथुरा वासियोने सत्य जानी, क्योंकि लक्ष्मीजी भी अपने भजनेवाले ब्रह्मादिकोंको छोड इसी रूपकी चाहना करतीहैं ॥ २४॥ इसके उपरान्त चरण धो

राम कृष्ण दूधभातका भोजन कर कंसका विचार जान उस रात्रिको सुखपूर्वक वहीं रहे ॥२५॥ कंस धनुषका टूटना, रक्षकोंका मरना और अपनी
सेनाका वध सुनकर कि, यह कृष्णका केवल खेल है,कुछ पराक्रम नहींहै ॥२६॥ ऐसा विचारकर मारे भयके उसे नींद नहीं आई महाभयभीत हुआ
तब वह दुष्टबुद्धि कंस मृत्युके जतानेवाले जागतेमें सोतेमें बहुतसे खोटे स्वप्न देखने लगा॥२७॥दर्पण और जलमें मुख देखनेपर भी उसको अपना
शिर नहीं दीखे, चन्द्रमा सूर्य दो दो रूप नहींहैं परन्तु उसे दोदो दिखाई दिये॥२८॥अपनी परछाहीमें छिद्र दीखे, अँगुली देकर कानमें देखा तो घूं
घूं शब्द भी सुनाई नहीं आया,वृक्ष सोनेके दिखाई देने लगे और कीच व रेतमें अपने पाँवके चिह्न भी न देखे॥२९॥इसके उपरान्त यह स्वप्न देखा कि,भूत

कंसस्तु धनुषो भंगं रक्षिणां स्वबलस्य च ॥ वधं निशम्य गोविंदरामविक्रीडितं परम् ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ॥ बहून्याचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥ २७ ॥ अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि ॥ असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥ २८ ॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ॥ स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्ने प्रेतपरिष्वंगः खरयानं विषादनम् ॥ यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥ ३० ॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ॥ पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिंतया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ॥ कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥ तानर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ मंचाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ॥ यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४ ॥

प्रेत छातीसे लगालगाकर मिलतेहैं और गधेपर चढ़ा, गुडहरके फूलोंकी माला पहरे अकेला,तेलमें भीजा जहर खाता,नग्न वेष किये दक्षिणदिशाको
चला जा रहाहूँ॥३०॥ इसप्रकार स्वप्नमें और जागतेमें खोटे खोटे शकुन देख मृत्युसे डरे कंसको रातभर चिंताके मारे नींद न आई॥३१॥ हे कुरुवंशो
त्पन्न राजा परीक्षित! इसभाँति ज्यों त्यों कर वह रात्रि व्यतीत हुई,प्रातःकाल हुआ जलमेंसे सूर्य निकला, उससमय राजा कंसने मल्लोंकी कुश्तीलडवाने
के लिये बडा उत्सव कराया॥३२॥पुरुष रंगभूमिकी पूजा करनेलगे,उसीसमय भेरी बजनेलगीं, माला,पताका और वस्त्रोंकी बन्दनवारोसे मंचान स
जायेगये॥३३॥ और उन मंचानोंके ऊपर ब्राह्मण,क्षत्रिय आदि जिनमें मुख्य मुख्य पुरवासी तथा देशवासी थे,सुखपूर्वक आनकर बैठगये ॥ ३४॥

इसके उपरान्त राजा कंस भी अपने प्रधानमंत्रीको संग ले, अखण्डमण्डलवाले राजोंके बीचमें एक राजमंचान था, उसके ऊपर आन बैठा, परन्तु भयके मारे हृदय काँप रहा था ॥३५॥ नगारोंके बजतेही झटपट मल्ल खम्भ ठोंक जाँघिये पहर, सिंदूरकी बिंदी लगा, धूरी मल, छोटीछोटी चुटियें, बड़ेगर्व भरे, अपने अपने उस्तादोंको संग लेकर रङ्गभूमिमें आये ॥३६॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल-यह अखाड़ेमें आये और मनोहर बाजोंका शब्द सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त कंसके बुलाये नंद आदिक संपूर्ण गोप भी राजा कंसको भेंट दे, एक मंचानपर आनकर बैठगये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां मल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ दोहा–मार

कंसस्तु संवृतोऽमात्यै राजमंच उपाविशत ॥ मंडलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्ल तालोत्तरेषु च ॥ मल्लाः स्वलंकृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समागताः ॥ ३६ ॥ चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ॥ त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नंदगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥ निवेदितोपायनास्ते एक स्मिन्मंच आविशन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० कुब्जोन्नमनादिवर्णनं नाम द्विचत्वारिं शोऽध्यायः॥४२॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ॥ मल्लदुंदुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः॥१॥ रंगद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ॥ अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोंबष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥ बद्धा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ॥ उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥

कुवलयापीड गज, रंगभूमि द्वारि जाय ॥ वचन कहे चाणूरसों, तेंतालिस अध्याय ॥ ४३ ॥ श्रीशुदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्ण भगवान्ने विचार किया कि, यद्यपि हमने धोबीको मार धनुष तोड़, अपना ऐश्वर्य जताया, परन्तु तोभी हमारे माता पिताको नहीं छोडता और हमको मारना चाहता है, इसलिये इस मामाके मारनेमें हमें कुछ दोष नहीं है, इसप्रकार दोषके दूर करनेका विचार कर कृष्ण बलदेव दोनों भाई जहाँ मल्ल खम्भ ठोक रहेथे नगाड़े बजरहेथे, उनका शब्द सुन देखनेको गये ॥ १ ॥ फिर श्रीकृष्णने रङ्गभूमिके द्वारपर जाकर देखा कि, कुवलयापीड हाथी खडा है और महावत उसे आगेको पेल रहा है ॥ २ ॥ यह देखतेही शूरवंशोत्पन्न भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्र फेंट बाँध, मुखपर छुटीहुई कुटिल अलकोंको सँभाल गलेकी लम्बी मालाको जनेऊकी समान कंधेपर डाल मेघकी तुल्य गर्जकर, अत्यन्त गंभीरवाणीसे बोले ॥३॥ कि, हे महावत! हे महावत!! हाथीको हटाकर हमको शीघ्र मार्ग दे, और जो नहीं हटावेगा तो अभी हाथी सहित तुझको मार यमलोकको भेजदूंगा ॥ ४ ॥ हे महाराज! यह सुनतेही कालमृत्युके समान क्रोधित हो महावतने हाथीको भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रके ऊपर हूल दिया ॥५॥ हाथीने अत्यन्त शीघ्रतासे आतेही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी सूंडमें पकड़ लिया, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्र भी उसकी सूंड़मेंसे खिसल और उसके मस्तकमें मुष्टिक मार पिछले पाँवोंमें छिपगये॥६॥ और फिर जिससमय श्रीकृष्णको देख, क्रोधित हो सूंघा साँघीकी दृष्टिवाले हाथीने इनकेपकड़नेको सूंडचलाई, उससमय सूंड़ पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके पिछले पाँवोंमेंसे निकलगये॥७॥ अत्यन्त

अंबष्ठांबष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ॥ नो चेत् सकुंजरं त्वाद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥ एवं निर्भर्त्सितोंबष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ॥ चोदयामास कृष्णाय कालांतकयमोपमम् ॥ ५ ॥ करींद्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् ॥ कराद् विगलितः सोऽमुं निहत्यांघ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ॥ परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥ पुच्छे प्रगृह्याऽतिबलं धनुषः पंचविंशतिम् ॥ विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ॥ ८ ॥ स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ॥ बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥९॥ ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ॥ प्रद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदेपदे ॥ १० ॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ॥ तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दंताभ्यां सोऽहनत् क्षितिम् ॥ ११ ॥

बलवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हाथीकी पूँछपकड़ जैसे गरुड़ सर्पको घसीटताहै, उसीप्रकार पचीस धनुषतक लीलापूर्वकही घसीटा ॥ ८ ॥ पूँछ पकड़े श्रीकृष्णचन्द्रको पकड़नेके लिये जब दाहिनी ओर हाथी आता, तब श्रीकृष्ण उसे बाँईओर लेजाते और बाँईओर आता तो दाहिनी ओर लेजाते, अधिक क्या कहैं, जैसे गायोंके बछड़ोंके संग बालक फिरतेहैं, उसीप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हाथीके पीछे फिर रहेथे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सन्मुख आय थप्पड मार, दौडकर उस हाथीको पटक दिया ॥ १० ॥ जब उसे गिरा दिया, श्रीकृष्णचन्द्र भी लीलापूर्वक पृथ्वीपर गिरके अत्यन्त शीघ्रतासे खडे होगये, तब श्रीकृष्णचन्द्रको गिरा जान वह हाथी दाँतोंसे

पृथ्वीको खोदने लगा ॥ ११॥ हे नृपश्रेष्ठ! जब हाथीका बल घटगया तब हाथीको महा क्रोध उत्पन्न हुआ, और महावतने जिससमय उसके अंकुश मारा, तब वह हाथी श्रीकृष्णचन्द्रपर झपटा ॥ १२ ॥ मधुदैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सन्मुख आते हाथीकी सूंड पकड़ पृथ्वीमें पटक दिया ॥ १३ ॥ और सिंहके समान गर्जतेहुए हाथीको पाँवोंके नीचे दाब लीलापूर्वक उसके दाँत उखाड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन दाँतोंसे महावतको मारा ॥ १४ ॥ जब हाथी मरगया, तब श्रीकृष्ण बलदेव उसे वहीं छोड़ हाथमें हाथीके दाँत ले कंधेपर धारणकर वहाँसे आगे चले,

स्वविक्रमे प्रतिहते कुंजरेंद्रोऽत्यमर्षितः ॥ चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥ तमापतंतमासाद्य भगवा न्मधुसूदनः ॥ निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेंद्र इव लीलया ॥ दंतमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दंतपाणिः समाविशत् ॥ अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदविंदुभि रंकितः ॥ विरूढस्वेदकणिकावदनांबुरुहो बभौ ॥ १५ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ॥ रंगं विविशतू राजन्ग 'जदंतवरायुधौ ॥ १६ ॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥ मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥ १७॥

उससमय रुधिर और मदकी बूंदें उनके लग रहीं थी ❀ ॥ १५ ॥ और कुछेक पसीनाभी उनके मुखकमलपर आ रहा था। इसप्रकार शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपग्वालोंको संग लिये हाथीदाँतके शोभायमान शस्त्र धारण किये कृष्ण बलदेव दोनो भाई हे राजन्! रंगभूमिमें पहुँचे ॥ १६ ॥ उससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मल्लोंको मल्लोंकी समान दृष्टि आये, मनुष्योंको अत्यन्त सुन्दर जानपड़े और स्त्रियोंने साक्षात् काम देवस्वरूप समझा, गोपोंको स्वजन जानपडे दुष्टराजाओंको कालके समान दिखाई दिये, वसुदेव देवकीने पुत्रके समान देखा, भोजपति कंसने

---

* शंका—जो कोई दरिद्री भी राजाकी सभामें जाता है, तब अपने वित्तानुसार वस्त्राभूषण पहिर जाता है और शास्त्रमें तथा लोकमें इसको भी बहुत निन्दित कर्म कहतेहैं कि, रक्त देहमें लगाकर राजाकी सभामें जाना, सो श्रीकृष्ण जगत्के ईश्वर होकर अपने देहमें रक्तके विन्दु लगाकर कंसकी सभामें क्यों आये ? ॥

उत्तर—सत्य है जिसके शरीरमें रक्त लगारहता है, उस पुरुषको लोकमें, शास्त्रमें और वेदमें भ्रष्ट कहते हैं परन्तु श्रीकृष्ण कंसका नाश करनेके लिये विचारकर उन्मत्त प्रमत्तकी नाईं मथुराको चलेगये और शूरवीरोंको शरीरमें रक्त लगाकर सभामें जाना कुछ दोष नहीं है, इसलिये जगदीश्वर शरीरमें रक्त लगाकर सभामें गये ॥

तो यही देखा कि, साक्षात् मेरी मृत्यु चली आती है अज्ञानियोंको भयंकर रूप दृष्टि पडे और ज्ञानियोंको परमतत्त्व रूप दृष्टि आये, यादवोंको परम देवतारूप जानपडे, अधिक क्या कहैं जैसी जिसकी भावना थी उसे उसीप्रकार दिखाई दिये॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीको संग लेकर रंगभूमिमें पहुँचे ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कुवलयापीड हाथीको मरा देख जो किसीके जीतनेमें न आवैं, ऐसे कृष्ण बलदेवको देख अत्यन्त धैर्यवान् राजा कंस भी डर गया ॥ १८ ॥ बडी भुजा विचित्र वेष आभूषण माला इत्यादि वस्त्रोंको धारण किये भगवान् कृष्ण बलदेव रंगभूमिमें जाकर ऐसे शोभायमान लगनेलगे, जैसे उत्तमरूप धारण करनेवाला नट शोभायमान लगता है। इसप्रकार अपनी कान्तिसे देखनेवाले

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ॥ कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥ १८ ॥ तौ रेजतू रंगगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगंबरौ ॥ यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपतौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मंचस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ ॥ २० ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां श्लिष्यंत इव बाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥ २२ ॥ एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ॥ अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ ॥

पुरुषोंके मनको चुरातेथे॥ १९ ॥ हे राजन्! मंचानोंके ऊपर बैठे पुरवासी देशवासी जन पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलदेवको देख आनंदके वेगसे प्रफुल्लित मुख होगये और अपने नेत्रोंसे उनके मुखकी शोभा देखकर तृप्त न हुए ॥ २० ॥ इस प्रकार नेत्र चलानेलगे कि, मानों रूपको पीजायँगे, जीभ ऐसी चलातेथे मानों चाट जायँगे, नासिका ऐसी चलावैं मानों सूंघलेंगे भुजा ऐसी चलावैं, मानों लिपटजायँगे। जैसा श्रीकृष्णचन्द्रका रूप कानोंसे सुनाथा उसीप्रकार आँखोंसे देखकर उनके रूप गुण माधुर्य्य ढिठाईसे बुद्धि जिनकी होगई ऐसे पुरुष जैसा सुना वैसाही आपसमें कहनेलगे ॥ २१ ॥ ॥२२॥ कि, यह जो कृष्ण बलदेव हैं सो साक्षात् भगवान् हरि नारायण हैं और अपने अंशसहित इस संसारमें वसुदेवके घर अवतार लियाहै ॥ २३ ॥

देखो यह जो साँवरा बालक है, इसने देवकीसे जन्म लिया था. अब तक छिपा रहा, क्योंकि पिताने गोकुलमें पहुँचादिया था, इसलिये नन्दजीके घर वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इसी कृष्णने पूतना मारी और बगलेका स्वरूप धरेहुए बकासुर दैत्यको मारा, यमलार्जुन वृक्ष उखाड़े और केशी अघासुर इत्यादिक बहुतसे दानव मारे ॥ २५ ॥ देखो जब वनमें अग्नि लगी थी, तब इसी कृष्णने गौ, ग्वाल बचाये थे, काली सर्पको दंड दिया और इन्द्रका मद दूर किया ॥ २६ ॥ यही सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको हाथमें लिये रहा, वर्षा, पवन, वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा करी ॥ २७ ॥ गोपियें इस कृष्णका नित्य प्रसन्न हँसन चितवन युक्त श्रमरहित मुख देखकर अनेक तापोंको दूर करतीं थीं ॥ २८ ॥

एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ॥ कालमेतं वसन्गूढो ववृधे नंदवेश्मनि ॥ २४ ॥ पूतनाऽनेन नीतांतं चक्रवातश्च दानवः ॥ अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥२५॥ गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ॥ कालियो दमितः सर्प इंद्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ॥ वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥ २७ ॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ॥ पश्यंत्यो विविधांस्तापांस्तरंति स्माऽश्रमं मुदा ॥ २८ ॥ वदंत्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ॥ श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥ अयं चास्याग्रजः श्रीमान्रामः कमललोचनः ॥ प्रलंबो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ॥ कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

अधिक क्या कहैं, इस कृष्णसे यह यदुवंश बहुत विख्यात हो, सम्पत्ति, यश बडाई पावैगा और इसी कृष्णसे रक्षा होगी इस प्रकार वे मनुष्य परस्पर बात चीत करनेलगे ॥ २९ ॥ कमलके समान नेत्र स्वरूपवान् इस कृष्णके बडे भाई बलरामजीने प्रलम्बासुर धेनुकासुर मारे, क्योंजी ! मारे तो कृष्णने बलदेवका नाम क्यों लेते हो ? देखी सुनी बातोंमें भी भेद होजाताहै ॥ ३० ॥ हे महाराज ! सब मनुष्य इस प्रकार कहही रहे थे और नगाडे बजही रहे थे कि, इतनेमें चाणूर नामक बलवान् श्रीकृष्ण बलदेवको संबोधन देकर बोला ॥ ३१ ॥

कि हे नंदके पुत्र ! हे राम ! तुममें बल अधिक है और कुश्ती लडनी भी भलीप्रकार जानते हो, यही सुनकर राजा कंसने तुम्हें बुलायाहै ॥ ३२ ॥ क्योंकि प्रजा मन कर्म वचनसे राजाका प्रिय करै तो कल्याण प्राप्त होताहै और जो विपरीत करतेहैं उनका कल्याण नहीं होता ॥ ३३ ॥ और यह बात भी प्रगट है कि, प्रतिदिन बछडोंके चरानेवाले गोप प्रसन्न होकर व्रजमें कुश्तीका खेल करके गाय चरातेहैं ॥ ३४ ॥ इसकारण हम तुम कुश्ती लडकर राजा कंसका प्रिय करें तो राजा कंस प्रसन्न होंगे और फिर सब प्राणी हमारे ऊपर प्रसन्न होंगे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चाणूरका वचन सुनकर और कुश्ती लड़ना अपने योग्य जान बडाई करके उस समयके उचित वाक्य कहने लगे ॥ ३६ ॥ कि, जिस

हे नंदसूनो हे राम भवंतौ वीरसंमतौ ॥ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥ प्रियं राज्ञः प्रकुर्वंत्यश्श्रेयो विंदंति वै प्रजाः ॥ मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ॥ वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडंतश्चारयंति गाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे ॥ भूतानि नः प्रसीदंति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥ तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः ॥ नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनंद्य च ॥ ३६ ॥ प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ॥ करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ॥ भवेन्नियुद्धं माऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ३८ ॥ चाणूर उवाच ॥ न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ॥ लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ ३९ ॥

कंसकी तुम प्रजा हो उसी कंसकी हम वनमें रहनेवाली प्रजा हैं इसलिये राजा कंसका नित्य प्रिय करैं इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ परन्तु देखो हम बालक हैं इसलिये हम अपने समानके बालकोंसे कुश्ती लडैंगे जैसा उचित हो उसी रीतिसे कुश्ती लड़ो, क्योंकि मल्लोंकी सभामें अधर्म न हो ॥ ३८ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चाणूर बोला कि, तुम बालक नहीं हो और बलियोंमें बलवान् बलदेव भी बालक नहीं है, किशोर नहीं हो क्योंकि, हजार हाथियोंका बल रखनेवाला कुवलयापीड़ हाथी तुमने लीलापूर्वकही मारडाला ॥ ३९ ॥

इसलिये हमारे संग तुम कुस्ती लड़ो, यह अनीति नहीं है, हे वृष्णिवंशमें जन्मे कृष्ण ! मेरी तुम्हारी और बलराम मुष्टिककी कुस्ती हो ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कुवलयापीडवधोनाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३॥ दोहा–कंसादिकको वध कियो, मॉइन ज्ञान बताय। दर्श कियो पितु मातुको, चौंवालिस अध्याय ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित ! इसप्रकार निश्चय संकल्प कर नीलाम्बर पीतांबरके कच्छे बाँध खंभे ठोंककर खड़े होगये.इसके उपरान्त मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण तो चाणूरके सन्मुख हुये और रोहिणीनन्दन बलरामजी मुष्टिकसे जुटे ॥ १ ॥ हाथोंसे हाथ, पाँवोंसे पाँव मिलाय परस्पर जीतनेकी इच्छासे एक एकको

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै ॥ मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं चर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः ॥ आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ॥ विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ॥ शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरंभावपातनैः ॥ उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुंधताम् ॥ ४ ॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ॥ परस्परं जिगीषंतावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ॥ ऊचुः परस्परं राजन्सानुकंपा वरूथशः ॥ ६ ॥

बलात्कार खैंचनेलगे ॥ २ ॥ अरत्निमें[1] अरत्नि मिलाय घुटुओंसे घुटुएँ मिलाय, शिरसे शिर, छातीसे छाती मिलाकर कृष्ण और चाणूर दोनों परस्पर कुस्ती लड़नेलगे ॥ ३ ॥ चारोंओर घुमाना, धक्का देना, परिरम्भण अर्थात् हाथसे विडारना, अवपातन अर्थात् नीचे पटक देना, उत्सर्पण अर्थात् छोडकर पीछेसे आगे तक जाना, अपसर्पण अर्थात् पीछे जाकर खड़ा होना इस प्रकार दांव पेंच कर करके लडनेलगे ॥ ४ ॥ उत्थापन अर्थात् पाँव और घुटुएँ मिलाकर गिरतेहैं, उनका उखाडदेना चालन अर्थात् बँधे दाँवको दूर करना, स्थापन अर्थात् हाथ पाँव पकडकर मिलादेना इसप्रकार परस्पर देहको पीडा देने लगे ॥ ५ ॥ इसप्रकार इनका युद्ध देखकर वहांकी बैठी हुई स्त्रियें परस्पर कहने लगीं कि, देखो !

१ अरत्नि–सयुष्टिहस्त अर्थात् कोहनीसे बीचकी अगुलीतक ।

यह कृष्ण तो निर्बल है और चाणूर सबल है, यह विचार वह स्त्रियें अत्यन्त दयाको प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥ इन राजसभामें बैठनेवालोंकोभी महाअधर्म होगा क्योंकि राजाके देखनेको कहीं निर्बल सबलकी कुस्ती कराई जाती है ॥ ७ ॥ भला विचारो तो सही कि, कहां तो वज्रसे कठोर अंगवाले पर्वतके समान ऊँचे ऊँचे सब मल्ल और कहाँ अतिसुकुमार कोमल अंग जिनकी यौवन अवस्था भी अभी प्राप्त नहीं हुई ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र ॥ ८ ॥ इस सभामें इस समय निश्चय धर्मनाश होरहा है इसकारण इस सभामें बैठना उचित नहीं, क्योंकि जहाँ धर्मका नाश हो वहां कभी न बैठे

महानयं बताऽधर्म एषां राजसभासदाम् ॥ ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छंति पश्यतः ॥ ७ ॥ क्व वज्रसारसर्वांगौ मल्लौ शैलेंद्रसन्निभौ ॥ क्वचातिसुकुमारांगौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥८॥ धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ॥ यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥ न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनांबुजम् ॥ वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवांबुभिः ॥ ११ ॥

॥ ९ ॥ विवेकी पुरुषको ऐसी सभामें जाना योग्य नहीं है क्योंकि दोषोंको स्मरणकर बातको जानकर जो चुप बैठा रहै तो दोष लगै और किसीकी झूंठी सच्ची कहै तो दोष लगै, अथवा हम किसीकी भली जाने न बुरी ऐसे कहै तो दोषका भागी हो इसकारण सभामें जाना योग्य नहीं है ॥ १० ॥ " सत्य बोलनेवालेको दुःख नहीं होता सत्ययुक्त पुरुषको कोई विघ्न दोष नहीं सता सके"• * शत्रुके चारों ओर

* दृष्टान्त–एक राजाने एक बाजार बनवाया और कहा कि जो वस्तु यहाँ बेचनेको लावेगा और सन्ध्यातक न बिकैगी, उसे मैं स्वयं ले लूगा इसप्रकार वह बाजार विख्यात होगया, एक दिन एक लुहार लोहेकी शनैश्चरकी मूर्त्ति बनाकर लाया, एक लाख रुपया उसका मोल मागा और कहा कि,जिसके यहा यह मूर्त्ति रहेगी उसके यहाँ द्रव्यादि कुछ न रहेगा, अब उस अनिष्टकारक मूर्त्तिको किसीने न लिया,सन्ध्यासमय राजाने देखा कि बडी भीड होरही है, कारण पूछतेही राजाने विचारकर उस मूर्त्तिको ले लिया और लाखरुपये उसे देदिये, जब राजाने घरमें मूर्त्ति रक्खी तो पहले लक्ष्मी राजासे बोली महाराज ! मैं जातीहू राजा बोला क्यों ? लक्ष्मीजी बोलीं जहाँ शनैश्चर देव रहैं वहाँ हमारा क्या काम ? राजाने कहा जाओ इसीप्रकार नीति, साम, दाम, दण्ड, भेद, सब रूप धरकर आये और राजाने जाने दिया पीछेसे जब सत्यदेव आये और राजासे कहकर जानेलगे तब राजाने हाथ पकडकर कहा कि, आपके रखनेको तो हम शनैश्चर देवको लाये हैं, तुम कैसे जाते हो ? सत्यदेवसे कुछ उत्तर न बनपडा और रहगये सत्यके रहनेसे नीति लक्ष्मी आदि सब लौट आये और सत्यके प्रभावसे शनैश्चर राजाका कुछ न कर सके ॥

दौड धूप करते श्रीकृष्णके मुखकी शोभा देखो, कुश्तीमें जोर करनेसे इनके मुखपर पसीनेकी बून्दें आय रहीहैं, जैसे कमलकोशके ऊपर ओसकी बून्दें पडतीहैं ॥ ११ ॥ अरुण नेत्र बलदेवजीके मुखकी शोभा देखो मुष्टिकके ऊपर क्रोध आय रहाहै, तो भी मुसकानसहित हैं, इसलिये सुन्दर लगतेहैं॥१२॥भूमिमें व्रजभूमि परमपवित्र है, क्योंकि जिसके वनके चित्रविचित्र फूलोंको धारण किये पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित मनुष्यरूपमें छिपकर गौओंको चराती समय बांसुरी बजाते खेलते फिरतेहैं, जिनके चरणोंका महादेव और लक्ष्मीजी भी पूजन करती हैं ॥ १३ ॥ बडा आश्चर्य है कि, गोपियोंने ऐसा क्या तप किया है जिसकारण इनसे श्रेष्ठ कोई नहीं और जिनकी समान कोई नहीं; इनसे अधिक

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ॥ मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरंभशोभितम् ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो य दयं नृलिंगगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ॥ गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयांचति गिरित्ररमार्चितांघ्रिः ॥ १३ ॥ गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ॥ दृग्भिः पिबंत्यनुसवाभिनवं दुरा पमेकांतधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥ या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेंखेंखनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ॥ गायंति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकंठयो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥ प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं गोभिस्समं क्वणयतोस्य निशम्य वेणुम् ॥ निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यंति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥

कोई नहीं देखा, जो आभूषण वस्त्र विनाही सुंदर लगताहै, यश लक्ष्मी ऐश्वर्य इनको एकान्त स्थान, अर्थात् सर्वदा जिनमें वास करें ऐसे प्यारेके स्वरूपको दृष्टिसे देखतेहैं ॥ १४ ॥ हे सखियो ! व्रजबालायें धन्य हैं, जो गोपी गाय दुहानेके समय, धान्य छरती समय, दूध विलोती समय, बालकोंको झुलाती समय, और चुपाती समय, घरोंका कामकाज करती समय, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त होकर उनके गुण गाती हैं, उससमय उनका मन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमेंही लगजाता है, और प्रेमानन्दसे उनके नेत्रोंमें आंसू आजातेहैं ॥ १५ ॥ प्रातःकाल जब व्रजसे गौ चरानेको जातेहैं और संध्यासमय जब गायोंको ले बांसुरी बजातेहुए आतेहैं,उससमय वह महाभाग गोपियें बांसुरीका शब्द सुन शीघ्र

अपने घरसे निकल, मार्गमें आय सुंदर मुसकान दयापूर्वक चितवनयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका दर्शन करती हैं ॥ १६ ॥ हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इधर तो स्त्रियें परस्पर इस प्रकार बातें कर रही थीं, और उधर योगके ईश्वर सबका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शत्रुओंके मारनेका विचार करनेलगे ॥ १७॥ भयसहित स्त्रियोंकी बातें सुनकर, पुत्रोंमें स्नेहके शोकसे व्याकुल,और पुत्रोंके बलको नहीं जाननेवाले माता पिता वसुदेव देवकी अत्यन्त दुःखित हुए ❋॥१८॥ अनेकप्रकार कुश्तीके दाॅव पेंचोंसे जैसे श्रीकृष्ण और चाणूर लडतेथे उसीप्रकार महात्मा बलदेव और मुष्टिक लडनेलगे ॥ १९॥ वज्रपातके समान कठोर भगवान्‌के अंगके प्रहारसे, चाणूरका अंग चुरकुट होगया, जिससे वह बहुत दुःखित

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ॥ शत्रुं हंतुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभायाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ॥ पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ॥ युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९ ॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ॥ चाणूरो भज्यमानांगो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥ २० ॥ स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्यकरावुभौ ॥ भगवंतं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यऽबाधत ॥ २१ ॥ नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ॥ बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन्हरिः ॥ २२ ॥

हुआ ॥ २० ॥ इसके उपरान्त शिकरेके वेगके समान चाणूरने दोनों हाथकी मुष्टि बाॅध, क्रोधमें भर ऊपरको उछल भगवान् वासुदेवकी छातीमें एक घूसा मारा ॥ २१ ॥ हे महाराज जिसप्रकार हाथी फूलोंकी मालाके लगनेसे नहीं चलायमान होता, वैसेही श्रीकृष्णचन्द्र उसके मुष्टिकसे चलायमान न हुए, इसके उपरान्त अत्यन्त क्रोधित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चाणूरके दोनों हाथ पकड, बहुत घुमाय बडे वेगसे पृथ्वीमें पटकदिया, गिरतेही उसके प्राण निकलगये और गहने, केश, माला इत्यादि सब बिखरगये गिरते समय ऐसा शब्द

❋ शंका–जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रगटहुये उसी समय वसुदेव देवकीको ज्ञान दिया और वसुदेव देवकी श्रीकृष्णके समुद्र सरीखे चरित्र और कर्मोको जानते थे और सुन भी रक्खा था, फिर वसुदेव देवकी जानबूझकर क्यों अज्ञानी होगये ?

उत्तर–श्रीकृष्णके माता पिता अज्ञानी नहीं हुए, पुत्रके मोहमें व्याकुल होगये, पुत्रकी मोहरूप अग्निसे भस्म होगये, इसलिये अज्ञानियोंकी नाईं होगये, क्योंकि संसारमें पुत्रका मोह बडा भारी है पुत्रके मोहमें बुद्धि ठिकाने नहीं रहती ॥

हुआ कि, मानो इन्द्रध्वज गिरा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसीप्रकार मुष्टिक कि, जिसने पहले बलदेवजीके मुष्टिप्रहार किया था, उसे बलदेवजीने थाप मारकर गिरादिया ॥ २४ ॥ मुष्टिक कंपित हो, मुखसे रुधिर वमन करता, पीड़ित हो प्राण निकल जानेसे जैसे पवनका मारा वृक्ष उखडकर गिरपडता है उसीप्रकार गिरगया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरान्त दौडतेहुए कूट मल्लको मारनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने लीलापूर्वक तिरस्कार कर बांई मुष्टिसे मारडाला ॥ २६ ॥ शल, तोशलने अपने मनमें विचार किया कि, दण्डवत्के बहाने चरण पकडकर पटक देंगे परन्तु भगवान् तो सबके बाहर भीतरकी जाननेवाले हैं, यह जिससमय दण्डवत् करनेको आये उससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने

भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ॥ विस्रस्ताऽऽकल्पकेशस्रगिंद्रध्वज इवापतत् ॥२३॥ तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ॥ बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ॥ व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवांघ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तो रामः प्रहरतां वरः ॥ अवधीद्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥२६॥ तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ॥ द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः॥२७॥चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ॥ शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥२८॥ गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गंतौ धुतनूपुरौ ॥२९॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ॥ ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति ॥ ३० ॥ हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ॥ न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥

एक लात ऐसी मारी जिसके लगनेसे शिर फटगया, इसप्रकार शल तोशल दोनों दो खण्ड विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिरगये ॥ २७ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल इत्यादि मुख्य मल्ल जब मारेगये, तब वहाँ और जो मल्ल उपस्थित थे, वह अपना प्राण बचानेके लिये भागगये ॥ २८ ॥ बराबरके गोपोंको अखाडेमें खैंच श्रीकृष्णबलदेव उनके संग विहार करनेलगे। उससमय बाजे बज रहेथे और श्रीकृष्णचन्द्रके नूपुर नृत्य करनेसे परम सुहावन बज रहेथे ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके चरित्र देख कंसके विना सब मथुरावासी प्रसन्न होगये, मुख्य मुख्य ब्राह्मण तथा सज्जनपुरुष "साधु साधु" ऐसे कह कह स्तुति करनेलगे ॥ ३० ॥ जब बड़े बड़े मल्ल मरगये कितनेई भागगये तब भोजवं

शियोंके राजा कंसने नगारे थमादिये और क्रोधित होकर कहने लगा ॥ ३१ ॥ कि, कुटिलकर्मा वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे बाहर निकाल दो और
गोपोंका धन छीनलो, कुटिलबुद्धि नन्दको बाँध लो ॥ ३२ ॥ खोटीबुद्धिवाले वसुदेवको जल्दी मारो और इसके उपरान्त शत्रुसे मिलनेवाले पिता
उग्रसेनको भी अनुचरोंसहित बाँधलो ॥३३॥ इसप्रकार जब राजा कंस बकने लगा तब अत्यन्त क्रोधित हो अव्यय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र धीरेसे
उछल ऊंचे मंचानपर चढ़ गये ॥३४॥ तब धीरजवान् अत्यन्त अभिमानी राजा कंसने अपनी मृत्युको आता हुआ देख आसनसे उठकर ढाल तल
वार ग्रहण की ॥३५॥ तलवार हाथमें ले आकाशमें जैसे शिकरा पक्षी फिरताहै, उसीप्रकार दाईं बाईं ओर जल्दी जल्दी फिरनेवाले कंसको असह्य और

निस्सारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ॥ धनं हरत गोपानां नं बध्नीत दुर्मतिम् ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा
हन्यतामाश्वसत्तमः ॥ उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ॥
लघिम्नोत्पत्य तरसा मंचमुत्तुंगमारुहत् ॥ ३४ ॥ तमाविशंतमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ॥ मनस्वी सहसोत्थाय
जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥ तं खड्गपाणिं विचरंतमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमंबरे ॥ समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजा
यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥ प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रंगोपरि तुंगमंचात् ॥ तस्योपरिष्टात्स्वय
मब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतंत्रः ॥ ३७ ॥ (कंसोपि कृष्णेन जगत्त्रयैकनिवासभूतेन निपात्य सोधः ॥ तेना
त्मतन्त्रेण निपीडितोसुं तत्याज राजन्निमिषान्तरेण ॥) तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ॥
हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेंद्र ॥ ३८ ॥

उग्रतेजवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, तार्क्ष्यका पुत्र गरुड़ जैसे सर्पको पकडलेता है उसीप्रकार पकडलिया ॥ ३६ ॥ फिर उसकी फेंट तथा केश
पकड ऊंचे मंचानपरसे रंगभूमिमें पटक दिया और इसके ऊपर सर्व जगतके आश्रय और स्वतंत्र कमलनाभ भगवान् स्वयं कूदपडे, केश पकड
नेका कारण यह है कि, कंसने देवकीके केश पकडेथे इसलिये उसका बदला लिया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त सिंह जैसे हाथीको खैंचताहै उसीप्रकार
सब जगत्के देखते मृतकहुए कंसको पृथ्वीमें घसीटनेलगे. हे नरेन्द्र ! उस समय समस्त प्रजामें बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३८ ॥

कंस प्रतिदिन चलायमान चित्तसे जल पीतें, बात कहते, चलते, सोते और श्वास लेते चक्र आयुधवाले भगवान्‌काही शत्रुभावसे ध्यान करता था इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त उस कंसके कंक, न्यग्रोधसे आदि लेकर छोटे आठ भाई अत्यन्त क्रोधित हो कंसका बदला लेनेके लिये दौडकर आये ॥ ४० ॥ उसी समय रोहिणीके सुत बलरामजीने क्रोधित हुए हाथोंमें शस्त्र लेकर आयेहुए कंसके भाइयोको सिंह जैसे पशुओको मारता है, उसी प्रकार परिघ उठाकर मारडाला ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें नगारे बजनेलगे और भगवान्‌की विभूति जो ब्रह्मा महादेवादिक देवता हैं, सो प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोकी वर्षा करनेलगे, स्त्रियें नृत्य

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपञ्श्वसन् ॥ ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतो तदेव रूपं दुर
वापमाप ॥३९॥ तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कंकन्यग्रोधकादयः ॥ अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥
तथाऽतिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः ॥ अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥४१॥ नेदुर्दुंदुभयो व्योम्नि ब्रह्मे
शाद्या विभूतयः ॥ पुष्पैः किरंतस्तं प्रीत्या शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ॥
तत्राभीयुर्विनिघ्नंत्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिंग्य शोचतीः ॥ विलेपुः सुस्वरं
नार्यो विसृजंत्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथ वत्सल ॥ त्वया हतेन निहता वयं ते सगृह
प्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ॥ न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमंगला ॥ ४६ ॥

करनेलगीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त पतिके मरणसे अत्यन्त दुःखित हो नेत्रोमें आँसू भर कंसकी स्त्रियें शिर पीटती जहाँ उसकी लोथ पडी थी, वहाँ आईं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यामें पड़े पतिको आलिंगनकर शोकातुर स्त्रियें वारंवार नेत्रोंसे आँ बहाय बहाय पुकार पुकार कर विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ हा नाथ ! हे प्राणपति ! हे धर्मके जाननेवाले ! हे करुणानाथ ! हा दीनवत्सल ! तुम आप मरकर घरबार सहित और बालकों सहित हमको क्यो मारगये ? ॥ ४५ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम विना हम विधवा होकर शोभायमान नही लगतीं उसी प्रकार तुम्हारे

विना मथुरापुरी भी शोभा नहीं पाती क्योंकि संपूर्ण मंगल उत्सव इसमेंसे दूर होगये ॥ ४६ ॥ निरपराध प्राणियोंसे तुमने बड़ा द्रोह किया, इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई जो मरे पड़ेहो, प्राणियोंसे वैर करके कौन पुरुष सुख पाता है ॥ ४७ ॥ क्योंकि इन संसारमें समस्त प्राणियोंके उत्पत्ति, पालन और नाशकर्त्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रही हैं, इसलिये जो इनकी अवज्ञा करता है, वह कभी सुख नहीं पाता ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा कंसकी स्त्रियोंको समाधान कर कंसकी दाहादिक क्रिया कराई ॥४९॥ इसके उपरान्त माता, पिता देवकी वसुदेवको कंसके बंदीखानेसे छुडाया और राम कृष्ण दोनों भाइयोंने माता पिताके चरणोंमें

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् ॥ तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ॥ गोप्ता च तदवध्यायी न कचित्सुखमेधते ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ॥ यमाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बंधनात् ॥ कृष्णरामौ ववंदाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥ देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥ कृतसंवंदनौ पुत्रौ सस्वजाते न शंकितौ ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥ मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥ उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्त्वतर्षभः ॥ प्रश्रयावनतः प्रीणन्नंब तातेति सादरम् ॥ २ ॥

शिर लगाकर प्रणाम किया ॥ ५० ॥ माता, पिता, देवकी वसुदेव, प्रणाम करते पुत्रोंको जगतके ईश्वर जान, भयभीत होकर उनसे नहीं मिले ॥५१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ दोहा–पितुनंदादिक शान्तकर, उग्रसेन दियो राज । बहुरि गये गुरुके भवन, पैंतालिस सुखसाज ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने माता पिताको ज्ञान प्राप्तहुआ जान विचारा कि, यह ज्ञान अभी ठीक नहीं इसलिये सब लोगोंको मोहित करनेवाली अपनी माया फैलाई ॥ १ ॥ यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीको संग लेकर माता, पिताके पास आये और विनयपूर्वक नम्र हो,

हे मातु ! हे पिता ! इस प्रकार आदरपूर्वक प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ २ ॥ हे पिता ! सर्वदा तुम्हें चाहनाही बनीरही और हम पुत्रोंसे बाल्य अवस्था पौगण्ड अवस्था तथा किशोर अवस्थाका सुख कभी तुमको न हुआ ॥ ३ ॥ दैवके मारे हम तुम्हारे निकट वासभी न कर सके, पिताके घर बालक रहते हैं और उनका लालन पालन होताहैं,आनन्द पातेहैं हमको कुछभी प्राप्त न हुआ ॥४॥ धर्म, अर्थ,काम,मोक्ष सर्व पदार्थ जिससे हों ऐसा यह देह जिस माताने उत्पन्न किया उनकी यह मरणधर्मा मनुष्य सौवर्षतक सेवा करै परन्तु तोभी उनसे उऋण नहीं होसक्ता ॥५॥ जो पुत्र समर्थ होकर

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कंठितयोरपि ॥ बाल्यपौगंडकैशोराः पुत्राभ्यामभवन्कचित् ॥ ३ ॥ न लब्धो दैवहतयो र्वासो नौ भवदंतिके ॥ यां बालाः पितृगेहस्था विंदंते लालिता मुदम् ॥४॥ सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ॥ न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्पमात्मना च धनेन च ॥ वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयंति हि ॥ ६ ॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ॥ गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽविभ्रच्छ्वस न्मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ॥ मोघमेते व्यतिक्रांता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥

देहसे अथवा धनसे माता पिताको जीविका नहीं देते,उसे परलोकमें यमके दूत उसका मांस उसेही काट काटकर भक्षण कराते हैं॥६॥माता पिता, वृद्ध, सुशीला स्त्री, पुत्र बालक गुरु, ब्राह्मण अथवा और जो कोई शरण आवै इनका जो मनुष्य भरण पोषण न करै, तो वह मृतकके समान है ❋ ॥ ७ ॥ असमर्थ और कंसके भयके मारे नित्य चंचल मन होनेके कारण तुम्हारी सेवा विना किये हमारे इतने दिन व्यर्थ बीतगये ॥ ८ ॥

* शंका–श्रीकृष्णने कहा कि, वृद्ध पिताका सेवन करना चाहिये, परंतु शास्त्रमें ऐसा नियम कहा नहीं है कि, वृद्ध पिताकी सेवा करना और युवा पिताकी सेवा न करना, श्रीकृष्णके वचनसे ऐसा जान पडता है कि, समर्थ भी होवै तौभी युवा पिताकी सेवा न करना, समर्थ होवे वा असमर्थ होवे तब वृद्ध पिताका सेवन करना ऐसा भगवान्‌के वचनसे विदित होताहै फिर भगवान्‌ने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर–"मातर पितर वृद्धम्" इस श्लोकमें वृद्धका अर्थ बूढेपनका नहीं है वृद्ध बूढेका नाम है वृद्धका अर्थ श्रीकृष्णने ऐसा किया है कि, सर्वधर्मसे पिता वृद्ध कहिये श्रेष्ठ, अथवा पण्डित और धर्मशास्त्र भी सब धर्मोंसे पिताको वडा कहते हैं, पितासे माता वडी है, ऐसा धर्मशास्त्रका मत जानकर श्रीकृष्णचन्द्रने वृद्ध पिताका पूजन करनेके लिये कहाथा यह नहीं कहा था कि, बूढे पिताका सेवन करना और युवा पिताका सेवन न करना ॥

हे पिता ! हे मातु ! पराये अधीन होनेके कारण हमसे तुम्हारी सेवा न बनी और दुष्टहृदय कंससे अत्यन्त दुःखित रहे, इसलिये अब हमपर तुम क्षमा करनेके योग्य हो सो क्षमा कीजिये ॥ ९ ॥ इसप्रकार मायासे मनुष्यरूपधारी विश्वके आत्मा हरिके वचनसे मोहित होकर देवकी, वसुदेव पुत्रोंको गोदमें बैठाय परमानन्दको प्राप्तहुए ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! स्नेहके पाशसे बँधे मोहित देवकी वसुदेव आँसुओकी धारोंसे कृष्ण बलदेवको भिजोते कुछभी न बोले ॥ ११ ॥ देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार माता पिताको सावधान कर नाना उग्रसेनको यादवोंका राजा बनाया ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे महाराज ! हम तुम्हारी प्रजा हैं सो हमें तुम आज्ञा करनेके

तत्क्षंतुमर्हथस्तात मातर्नौ परतंत्रयोः ॥ अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति माया मनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ॥ मोहितावंकमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिंचंतावश्रुधराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ॥ न किंचिदूचतू राजन्बाष्पकंठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः ॥ मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥ आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ॥ ययातिशापाद्यदुभिर्नाऽऽसितव्यं नृपासने ॥ १३ ॥ मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ॥ बलिं हरंत्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४ ॥ सर्वान्स्वज्ञातिसंबंधान्दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ॥ यदुवृष्ण्यंधकमधुदाशार्हकुकुरादिक ॥ १५ ॥ सभाजितान्स माश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ॥ न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥

योग्य हो और यदुवंशियोंको ययातिका शाप है, इसकारण यादवोंका सिंहासनपर बैठना और राज्य करना योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ मैं सेवकके समान तुम्हारे निकट सदा उपस्थित रहूंगा, बड़े बड़े देवादिक तुमको भेंट देंगे और राजा देंगे इसमें तो कहनाही क्या है ? ॥ १४ ॥ और कंसके डरके मारे जो अपनी जातिके यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह, कुकुरादिक भागगये थे ॥ १५ ॥ उनको बुलाकर और विदेशमें वसनेके कारण जो यादव कृश हो रहे थे, उनका सत्कारकर बहुतसा धन दे तृप्तकर सब विश्वके कर्त्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने

अपने अपने घरोंमें बसाया ॥ १६ ॥ कृष्ण बलदेवकी भुजासे रक्षित हो, पूर्ण मनोरथ पाय पापको दूर कर, वह यादव घरोंमें रमण करनेलगे
॥ १७ ॥ और नित्य आनंदसे पूर्ण शोभायुक्त दयासहित मंदहास्यपूर्वक चितवन युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलका दर्शन करके परमानंद
होते थे ॥ १८ ॥ भगवान् मुकुन्दके मुखकमलके अमृतको पीकर उस समय वृद्ध भी तरुणावस्थाको प्राप्त हो अत्यन्त बलवान् होगये ॥ १९ ॥
हे राजन् ! इसके उपरान्त भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी नन्दरायजीके पास आय मिल यह वचन बोले ॥ २० ॥ हे पिता ! तुम
स्नेहियोने हमारा पोषण किया बहुत लाड लडाया, अधिक क्या कहैं, माता पिताको अपने पुत्रोंमें अधिक प्रीति होती है, सो तुमने उससेभी अधिक

कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ॥ गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षंतोऽहरहः प्रीता
मुकुन्दवदनांबुजम् ॥ नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥ तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः ॥
पिबंतोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखांबुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथ नंदं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः ॥ संकर्षणश्च राजेंद्र परिष्व
ज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ॥ पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि
हि ॥ २१ ॥ स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ॥ शिशून्बंधुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥
यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ॥ ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥ एवं सांत्वय्य भगवा
न्नंदं सव्रजमच्युतः ॥ वासोऽलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नंदः प्रणयविह्वलः ॥ पूर
यन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥

प्रीति करी ॥ २१ ॥ वही पिता है, वही माता है, जो पराये पुत्रको अपने पुत्रके समान पोषण करै और पोषण करनेमें जिनकी सामर्थ्य न हुई ऐसे
हमारे माता पिताने हमको बालकपनसेही छोड दिया ॥ २२ ॥ हे पिता ! अब तुम व्रजको जाओ हमभी बन्धु बांधवोंका प्रिय करके स्नेहसे दुःखी
जातिवाले और तुम्हारे देखनेको पीछेसे आवेंगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजवासियों सहित नंदरायजीको समझाकर
और अनेक भाँतिके वस्त्र, आभूषण तथा सोने चांदीके बर्त्तन देकर बडे आदरपूर्वक उनका पूजन किया ॥२४॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णका वचन

सुन, नंदरायजी कृष्ण बलदेवको छातीसे लगा, प्रेमसे व्याकुल हो नेत्रोंमें आँसू भर, संपूर्ण व्रजवासियोंको संग ले व्रजको चले ॥२५॥ इसके उपरान्त हे राजन् ! शूरसेनके पुत्र वसुदेवजीने ब्राह्मण पुरोहितको बुलाय पुत्रोंका यथायोग्य द्विजन्म संस्कार कराया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त शृंगार करी हुई रेशमी झूल व सुवर्णकी माला पहिरे अनेक गायें बछडों सहित ब्राह्मणोंको दान कीं ॥ २७ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने रामकृष्णके जन्मनक्षत्रके समय जिन गायोंका मनमें संकल्प किया था और कंसने अधर्मसे हरली थीं, उतनीही गौ स्मरण करके ब्राह्मणोको दान करीं ॥२८॥ इसके उपरान्त सुव्रती कृष्ण बलदेव द्विजन्मा संस्कार पाय यदुकुलके पुरोहित गर्गाचार्यसे गायत्रीका उपदेश ले ब्रह्मचर्य व्रतमें रहनेलगे ॥ २९ ॥ यद्यपि

अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्द्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः ॥ स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥ या कृष्णरामजन्मर्क्षे मनो दत्ता महामतिः ॥ ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ॥ गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छंतावुपजग्मतुः ॥ काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवंतिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥ यथोपसाद्य तौ दांतौ गुरौ वृत्तिमनिंदिताम् ॥ ग्राहयंतावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच वेदानखिलान्सांगोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥ सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ॥ तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥

संपूर्ण विद्या जाननेवाले सर्वज्ञ अर्थात् सब बातके जाननेवाले कृष्ण बलदेव सब जगत्के ईश्वर थे परन्तु तौभी स्वतः सिद्धि निर्मल ज्ञानको मनुष्योंके समान चेष्टा करनेके कारण गुप्त रखते थे ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त कृष्ण बलदेव गुरुकुलमें वास करनेकी इच्छासे कश्यपगोत्री उज्जैनपुरीके वासी सांदीपनि गुरुके पास गये. जो काश्यनामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ ३१ ॥ जितेन्द्रिय कृष्ण बलदेव भले प्रकार गुरुके पास आय, बडे आदरसत्कारसे भक्तिपूर्वक जैसे नारायणकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार गुरुकी सेवा करनेलगे ॥३२॥ शुद्ध भक्तिपूर्वक सेवासे संतुष्ट हुए द्विजन्माओंमें श्रेष्ठ गुरुजीने श्रीकृष्णबलदेवको शिक्षादिक छः अंग और उपनिषदों सहित समस्त वेद पढाये ॥ ३३ ॥ इसके उपरांत मंत्र और देवताके ज्ञानसहित शस्त्र चलाना,

धनुर्वेद और धर्मशास्त्र, राजनीति, मीमांसादिक, तर्कविद्या तथा शत्रुसे मिलापकरना, युद्धकरना, उसके ऊपर चढ़जाना, निकट जाकर रहना, अपनी ओर तोडलेना, मेल करना, यह छः प्रकारकी राजनीति पढ़ाई ॥ ३४ ॥ सब मनुष्योंमें तथा उत्तमोंमें उत्तम सब विद्याओंके चलानेवाले सावधान कृष्ण बलदेवने हे राजन्! गुरुके विना बतायेही संपूर्ण विद्या सीख लीं ॥ ३५ ॥ चौंसठ रात्रियोंमें गाना, बजाना, नृत्य करना, आदि चौंसठ कला सीखीं, जब विद्या पढ़ चुके तब हे राजन्! कृष्ण बलदेव दोनों भाई गुरुजीसे गुरुदक्षिणाकी आज्ञा करो इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३६ ॥ तब सांदीपनिने कृष्ण बलदेवकी अद्भुत महिमा देख कि, मनुष्योंमें ऐसी चमत्कारी कहां? स्त्रीसे परामर्शकर प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें डूबकर जो पुत्र मरगया था सो स्त्रीके कहनेसे उसेही

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ॥ सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः
कलाः ॥ गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छंदयामासतुर्नृप ॥३६॥ द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम्॥
संमंत्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयांबभूव ह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुर
न्तविक्रमौ ॥ वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिंधुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयता
म्॥योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥३९॥ समुद्र उवाच॥नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पंचजनो महान् ॥ अंत
र्जलचरः कृष्ण शंखरूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥ आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ॥ जलमाविश्य तं हत्वा नापश्य
दुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥ तदंगप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ॥ ततः संयमिनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥ ४२ ॥

मांगा ॥ ३७ ॥ तथास्तु, इस प्रकार कह अत्यन्त पराक्रमी, बडे रथी, कृष्ण बलदेव रथमें बैठ प्रभासक्षेत्रमें पहुँच समुद्रके किनारे जाय एक क्षण बैठगये, तब समुद्र कृष्ण बलदेवको आया जान उनकी पूजा लेकर आया ॥ ३८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस समुद्रसे कहनेलगे कि, जो हमारे गुरुके बालक तैंने यहां बडी लहरोंसे डुबा लिये हैं वे गुरुके पुत्र लादे ॥ ३९ ॥ तब समुद्र बोला कि देव! मैंने तो तुम्हारे गुरुके पुत्र नहीं डुबाये, वरन् मेरे भीतर रहनेवाला शंखरूप धारणकिये एक बड़ा दैत्य है, वह हर लेगया है और निश्चय उसके पास है, यह सुनतेही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शीघ्रतासे जलमें घुस पंचजन दैत्यको मारडाला परन्तु उसके पेटमें बालक नहीं देखा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इसके उपरांत

उस दैत्यके अंगमेंसे शंख ले, श्रीकृष्णचन्द्र रथपर आये और वहाँसे यमराजकी अति प्यारी संयमनीपुरीमें आये ॥ ४२ ॥ और वहाँ जाकर बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शंख बजाया, तब प्रजाका दण्ड देनेवाला धर्मराज शंखका शब्द सुन ॥ ४३ ॥ कृष्ण बलदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेलगा और सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे हाथ जोडकर बोला कि, हे विष्णु भगवान् लीलापूर्वक आपने मनुष्यका रूप धारण किया है; सो तुम्हारी क्या सेवा करूं ? ॥४४॥तब श्रीभगवान् बोले कि,हे महाराज ! यहाँ जो आप गुरुपुत्रले आयेहैं सो लादीजिये,तब यमराजने कहा कि, वह अपने कर्मोंसे बँधे पडे हैं कैसे लाऊं ? तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि उन्हें मेरी आज्ञा हुई है कुछ मेरी आज्ञासे

गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ शंखनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ ४३ ॥ तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ॥ लीलामनुष्ययोर्विष्णवोर्युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबंधनम् ॥ आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥ तथेति तेनोपनीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ॥ दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥ सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ॥ कोनु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥ ४७ ॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४८ ॥ गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ॥ आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥

कर्म बलवान् नहीं है ॥ ४५ ॥ तब " जो आज्ञा" ऐसा कहकर यमराजने गुरुपुत्र लादिया, इसके पीछे यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्ण बलदेव उसको ले अपने गुरुको देकर बोले कि, और वर मांगो ॥ ४६ ॥ तब गुरु कहने लगे कि, हे पुत्र ! तुमने गुरुसेवा भलीभांति करी और तुमसरीखोंका जब मैं गुरु हुआ तब मेरे कौन बातकी चाहना शेष रही ? ॥ ४७ ॥ हे वीर ! अब तुम अपने घरको जाओ इस लोक और परलोकमें तुम्हारी पवित्र कीर्त्ति होवे, तुम्हारे वेद नवीन पढेहुए स्मरण बने रहैं ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार गुरुसे आज्ञा पाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव

दोनों भाई पवनके समान शीघ्रगामी मेघकी तुल्य गर्जनेवाले रथमें बैठ अपने घरको आये ॥ ४९ ॥ बहुत दिनोंसे नहीं देखनेके कारण रामकृष्णका
दर्शनकर प्रजा बडे आनन्दको प्राप्त हुइ जैसे गयाहुआ धन मिलनेसे आनन्द होताहै ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे
भाषाटीकायां गुरुकुलवासो नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ दोहा–छियालीस अध्यायमें; उद्धव व्रजहि पठाय। शोक यशोदा नन्दको, मेटो
ज्ञान सिखाय ॥४६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णके प्रिय मंत्री सखा अर्थात् बृहस्पतिके शिष्य बुद्धिमानों
में श्रेष्ठ जो उद्धवजी थे ॥१॥ उन्हें शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एकान्तमें बुला हाथ पकडकर कहा ॥ २ ॥ हे उद्धव !

समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ अपश्यंत्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥ इति श्रीमद्भाग०म०द०पू०
नन्दादिसान्त्वनोग्रसेनाभिषेकगुरुकुलवासकरणं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच॥ वृष्णीनां प्रवरो
मंत्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥ शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥ तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकांतिनं
क्वचित् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥ गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ॥ गोपीनां
मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥ ३ ॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ॥ ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे
तान्बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ॥ स्मरंत्योंग विमुह्यंति विरहोत्कंठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥

हे साधु ! तुम व्रजको जाओ हमारे माता पिताको प्रसन्न करो और गोपियोंको जो मेरे बिछुडनेमें कष्ट हुआ है सो मेरा संदेशा लेजाकर दूर करो
॥३॥ मुझमें जिनके मन और प्राण लग रहे हैं मेरेलिये पति पुत्रादि त्याग दिये हैं मैंही प्यारा जिनके आत्मा हूं जो मुझमें मन लगाकर रहती
हैं मेरेलिये जिन्होंने इस लोक तथा परलोकके जितने सुखके उपाय हैं सब त्याग दिये हैं, उनको मैं सुख देताहूं ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! उनका
प्यारा मैं जबसे दूर आयाहूं तबसे वह गोकुलकी स्त्रियें मेरी सुधि करके विरहसे मेरी चाहके कारण विवश हो मोहित होजातीहैं * ॥ ५ ॥

* शका–व्रजसे और गोकुलसे मथुरापुरीका चारकोशका अन्तर है और मथुरासे व्रजभी चारही कोश है, परन्तु व्रजको श्रीकृष्ण कभी नहीं गये और गोपीभी मथुराको कभी नहीं गई गोपियें दही छाँछ, माखन वेचनेको भी मथुरापुरीको कभी नहीं गईं, छाँछ वेचनेको आतीं तो भी मोहन प्यारेकी मुलाकात होजाती, हे स्वामिन् ! परस्पर मित्रसे मिलनेके लिये स्त्री, वा पुरुष हजारों कोश चले जाते हैं और कृष्ण–

क्योंकि जब मैंने उनसे कह दियाथा कि मैं शीघ्रही आऊंगा इस कारणसे किसी प्रकार वे गोपियें प्राण धारण किये रहीं सो भी महाकष्टसे यदि उनका आत्मा उनके शरीरमें रहता तो दग्ध होजाता वह तो मुझमें लीन है इसीलिये वह प्राण धारण कररहीं हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब उद्धवजी बड़े आदरपूर्वक स्वामीके संदेशेको ले रथमें बैठ नंदरायजीके गोकुलको चले ॥ ७ ॥ और सूर्यके छिपतेही शोभायमान नंदरायजीके गोकुलमें पहुँचे तब संध्यासमय आतीहुई गायोंके खुरोंकी रेणुसे उद्धवजीका रथ ढक गया ॥ ८ ॥

धारयंत्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथंचन ॥ प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त उद्धवो राजन्संदेशं भर्तुरादृतः ॥ आदाय रथमारुह्य प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ ७ ॥ प्राप्तो नंदव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ ॥ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ॥ धावंतीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥ इतस्ततो विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मंडितं सितैः ॥ गोदोहशब्दाभिरवैर्वेणूनां निस्स्वनेन च ॥ १० ॥ गायंतीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ॥ स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥ ११ ॥

पुष्पवती गायोंके लिये चारों ओरसे मतवाले बैलोंके युद्धका शब्द वहाँ होरहाथा और ऐनोंके भारसे व्याईहुई गायें दौड दौडकर अपने बछडोंके पास आतीथीं ॥ ९ ॥ जहाँ तहाँ सफेद गायें गायोंके बछड़े कूदते फाँदते फिरतेहैं गायोंके दुहनेका शब्द जहाँ तहाँ होरहाहै कोई कहता था "लाओ" कोई कहताथा "देओ" ऐसा कोलाहल जहाँ तहाँ मचरहाथा और बाँसुरी बजनेका भी शोर होरहाथा ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और

—और गोपियोंकी ऐसी परम मित्रता थी फिर चार कोशके अन्तर मिले भटे क्यों नहीं इसका क्या कारण ? इधर तो कृष्णके मनमें मोहकी ज्वाला भलकरही थी और उधर गोपियोंके हृदयमें मोहकी ज्वाला जलरही थी, फिर क्या कारण जो कोई न तो मथुरासे गया, न कोई गोकुलसे आया ? यह बडा सन्देह है ।

उत्तर—श्रीकृष्ण लोकनिन्दासे डरे व्रजमें जो लीला हमने करी तब हम बालक थे अब हमारी युवा अवस्था हुई जो गोपी व्रजसे हमारे पास आवेंगी अथवा व्रजको हम जायँगे तो पहिलेके समान चरित्र मथुरामें तथा व्रजमें करने पडेंगे और वह चरित्र हम यहाँ करें तो ससारमें हमारी निन्दा होगी, इस बातका डर करके मायासे गोपियोंको मोहित कर दिया जब गोपी मोहको प्राप्त होगईं तो मनही मनमें विना कृष्ण प्यारेके मनमें परिताप तो किया परन्तु मथुराकी ओरको पाँव न रक्खा और भगवान् लोकलाजसे गोकुलको नहीं गये ॥

बलदेवजीके मंगलरूप कर्मोंको बनी ठनी गोपियें गातीहुई अत्यन्त शोभायमान लगतींथीं ॥११॥ अग्नि, सूर्य, अभ्यागत, गौ, ब्राह्मण, पितर, देवता इनके पूजनकी सामग्री जहाँ तहाँ धरी थीं, धूप होरहीथी दीपक बलरहे थे, फूल धरेथे, गोपोंके घरोंमें पूजा होनेसे यह व्रज मनोहर होरहा था ॥ ॥ १२ ॥ सब ओरसे फुलवारी फूल रहींथीं, पक्षी बोलरहे थे भौंरे गुंज रहेथे राजहंस और कारंडवपक्षी जहां बैठेथे, ऐसे कमलोंके समूहसे वह व्रज शोभायमान होरहा था ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्रियमित्र उद्धवजीको आया जान नन्दरायजी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मिले और श्रीकृष्ण चन्द्रके पाससे आये हैं, यह जानकर ईश्वर बुद्धिसे पूजन किया ॥ १४ इसके उपरान्त अत्यन्त श्रेष्ठ सामग्रियोंका भोजन कराय, शय्यापर सुख

अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ॥ धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥ सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णैः पद्मखंडैश्च मंडितम् ॥ १३ ॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ॥ नंदः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽऽर्चयत् ॥ १४ ॥ भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ॥ गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥ कच्चिदंग महाभाग सखा नः शूरनंदनः ॥ आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥ १६ ॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ॥ साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७ ॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ॥ गोपान्व्रजं चात्मनाथं गावो वृंदावनं गिरिम् ॥ १८ ॥ अप्यायास्यति गोविंदः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ॥ तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥

पूर्वक पौढ़ाय, चरण दाब, मार्गका खेद मिटाय, उद्धवजीसे नन्दरायजी बोले ॥१५॥ हे बडभागी उद्धव! कहो शूरसेनके पुत्र हमारे सखा वासुदेवजी पुत्रोंसहित कुशलपूर्वक हैं? कंसके बंदीखानेसे छूटे हैं? भाई बन्धु हितकारियोंसहित प्रसन्न हैं? ॥ १६ ॥ और पापी कंस समस्त सेवकोंसहित मारा गया. यह बड़ाही मंगल हुवा क्योंकि वह कंस धर्मस्वभाववाले यादवोंसे सदा वैर करताथा ॥ १७ ॥ हे उद्धवजी! और यह भी कहो कि, वह कृष्णचन्द्रभी कभी हमारी और अपनी माताकी सुधि करते हैं, तथा सुहृद सखा गोपोंकी सुधि करते हैं? और जिसके आपही रक्षक हैं ऐसे ब्रजकी भी कभी सुधि करते हैं, और गौ, ब्राह्मण, गोवर्द्धन पर्वतकी भी कभी सुधि करते हैं? ॥ १८ ॥ गायोंका हित करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र, जब कभी

अपने भाई बंधुके देखनेके लिये आवैंगे तब सुंदर नासिका सुंदर मुसकान चितवनयुक्त उनके मुखका दर्शन करेंगे ॥ १९ ॥ दावाग्निसे, पवनसे, इन्द्रकी वर्षासे, विषयुक्त सर्पसे, अघासुरसे और वडी बडी मृत्युओंसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने हमारी रक्षा करी ॥ २० ॥ हे उद्धवजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रम और लीलापूर्वक कटाक्षभरी चितवन, हँसन और बोलनेकी सुधि करतेहैं, तब हमारी संपूर्ण क्रिया शिथिल होजातीहैं ॥२१॥ मुकुन्दके चरणोंके चिह्न पर्वत, नदी, वनके स्थान और उनके खेलनेके स्थानोंको जब देखते हैं, तब हमारा मन कृष्णमय होजाता है ॥ २२ ॥ देवताओंका कार्य करनेके लिये इस संसारमें कृष्ण अवतार लेकर आये हैं उन्हें मैं देवताओंमें उत्तम मानताहूँ और मैंने बडा गंभीर गर्गाचार्यका

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ॥ दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापांगनिरीक्षितम् ॥ हसितं भाषितं चांग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुंदपदभूषितान् ॥ आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥ मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ॥ सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ॥ अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ॥ बभंजैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥ प्रलंबो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ॥ दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य नंदः कृष्णानु[illegible]धीः ॥ अत्युत्कंठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥

वचनभी ऐसेही सुना है ॥२३॥ दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाले कंस और मल्लोंको वैसेही कुवलयापीड हाथीको, सिंह जैसे पशुओंको मारता है उसीप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही मारडाला ॥ २४ ॥ फिर वडा भारी तीन तालके समान धनुष एक हाथसे उठाकर जैसे हाथी लठियाको तोडताहै उसीप्रकार तोडडाला और सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको बायें हाथकी अँगुलीपर धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, तृणावर्त्त, बकासुर आदि और भी जो सुर असुरोंके जीतनेवाले दैत्य थे, सो श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही मारडाले ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कृष्णमें प्रेमबुद्धिवाले नन्दरायजी इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सुधि करके, आँखोमें आँसू भर गद्गद कण्ठ प्रेमके

भावमें व्याकुल होकर चुप होगये ॥ २७ ॥ यशोदाने जो ऐसे वर्णन कियेजाते श्रीकृष्णके सुन्दर चरित्र श्रवणकिये, तो स्नेहसें स्तनोंमें दूध उमडि आया और नेत्रोंसे आंसू बहने लगे ॥ २८ ॥ इस प्रकार नन्दराय और यशोदाका भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परम अनुराग देखकर उद्धवजी नन्दजीसे बोले ॥ २९ ॥ उद्धवजी बोले कि, मानदेनेवाले नंदजी! इस संसारमें देहधारियोंके मध्यमें निश्चय तुम प्रशंसाके योग्य हो, क्योंकि जो सबके गुरु नारायण हैं, उनमें ऐसी बुद्धि लगाई है ॥ ३० ॥ यह जो कृष्ण बलदेव हैं, सो विश्वके लिये उपादान कारण हैं इसीसे पुरुषप्रकृतिरूप हैं, सब प्राणियोंमें प्रवेश करके अनेक प्राणियोंके अनेक प्रकारके ज्ञानके साक्षी और अनादि हैं ॥ ३१ ॥ प्राण छूटती समय

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ॥ शृण्वंत्यश्रूण्यवस्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥२८॥ तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ॥ वीक्ष्यानुरागं परमं नंदमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ॥ नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुंदः पुरुषः प्रधानम् ॥ अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् ॥ निर्हृत्य कामाशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्भवंतावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ॥ भावं विधत्तां नितरां महात्मन्किं वाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ॥ प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ३४ ॥ हत्वा कंसं रंगमध्ये प्रतीपं सर्वसात्त्वताम् ॥ यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥

यह पुरुष क्षणभर शुद्ध मनको जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लगा शीघ्रही कर्मोंकी वासनाओंको छोड सूर्यके समान प्रकाशमान ब्रह्मरूप होकर परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥ जब सबके आत्मा कार्य और कारणसे मनुष्यरूप धरे परिपूर्ण नारायणमें अतिशय करके तुम भक्ति करतेहो तो फिर तुमको क्या करना शेष रहा ॥ ३३ ॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रही व्रजको आवेंगे क्योंकि वह भक्तोंका पालन करनेवाले हैं इसलिये तुम्हें और यशोदाको वह थोडेही दिनोंमें आनकर आनन्द देंगे ॥ ३४ ॥ सब यादवोंके वैरी कंसको रंगभूमिमें मार तुम्हारे पास आनकर

श्रीकृष्णचन्द्रने जो वचन कहा था, उसे अवश्य सत्य करैंगे ॥ ३५ ॥ हे बडभागियो ! अब तुम कुछ खेद मत करो, कृष्णको अपने पासही देखोगे, क्योंकि जैसे लकडीमें ज्योति रहतीहै उसी प्रकार सब प्राणियोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रहतेहैं ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको न कोई प्यारा है न कोई कुप्यारा है, न कोई उत्तम है, न कोई अधम है, न कोई समान है, न कोई विषम है और न उन्हें अभिमान है, वह तो समदृष्टिहैं ॥ ३७ ॥ न उनके माता है, न पिता है, न स्त्री है, न पुत्रादिक हैं, न उनके देह है और उनका जन्म भी नहीं है ॥ ३८ ॥ इन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्मभी नहीं हैं क्योंकि वह तो संसारमें देवादिक, मनुष्यादिक, नृसिंहादिकोंकी जो योनि हैं, उनमें खेलनेके लिये और साधुपुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमंतिके ॥ अंतर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः ॥ नोत्तमो नाधमो वाऽपि समोनास्यासमोऽपि वा ॥३७॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ॥ नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥ न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ क्रीडार्थं सोपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ॥ क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हंत्यजः ॥ ४० ॥ यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ॥ चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः ॥ सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ॥ विनाऽच्युताद्वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥

प्रगट होतेहैं ॥३९॥ निर्गुण भगवान् सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, इन तीन मायाके गुणोंको अंगीकार करतेहैं और निर्गुणसे अलग अजन्मा भगवान् क्रीडा करके विश्वको उत्पन्न, पालन तथा संहार करतेहैं ॥ ४० ॥ जैसे बालक चाँई मांई फिरताहै तब उसकी दृष्टि फिरती है और उससे पृथ्वी फिरतीसी दिखलाई देती है, इसी प्रकार चित्त जो कर्त्ता है, उसमें अहंकारसे आत्मा भी कर्तासा दिखाई देताहै ॥४१॥ यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारेही पुत्र नहीं हैं, बरन सबके पुत्र हैं, आत्मा हैं, पिता हैं, माता हैं और ईश्वरोंके ईश्वर हैं ॥ ४२ ॥ जो कुछ दीखता है और जो कुछ

होचुका और जो होता है और जो होगा और जो स्थावर जंगम हैं, जो कुछ बड़ा छोटा है, सो सब श्रीकृष्णचन्द्रके विना अतिशय करके कहनेके योग्य नहीं है. परमार्थ रूप श्रीकृष्ण हैं सोई सर्वरूप हैं ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इसी प्रकार वार्ता करते करते सब रात्रि बीतगई और गोपियें प्रातःकालको उठ, दीवे बाल, देहलियोंका पूजनकर, दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥ दीवोंसे प्रकाशमान मणियोंके जड़ाऊ गहनोंसे उस समय वह गोपियें अत्यन्त शोभायमान लगनेलगीं, नेतियोंके खैंचनेसे भुजाओंके चूरी कंकण हिल रहे हैं, नितम्ब हिलते जाते हैं, स्तनोंपर हार भी हिलता है, कुण्डलोंसे प्रकाशमान कपोल और अरुण केशरकी खौर मुखपर लगी है॥ ४५ ॥ कमलदललोचन भगवान्

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नंदस्य कृष्णानुचरस्य राजन्॥गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्वास्तून्समभ्यर्च्य दधीन्य मंथन् ॥ ४४ ॥ ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकंकणस्रजः ॥ चलन्नितंबस्तनहारकुंडलत्विषत्कपोलारुणकुंकुमाननाः ॥ ४५ ॥ उद्गायतीनामरविंदलोचनं व्रजांगनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ॥ दध्नश्च निर्मंथनशब्द मिश्रितो निरस्यते येन दिशाममंगलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदिते सूर्ये नंदद्वारि व्रजौकसः ॥ दृष्ट्वा रथं शातकौंभं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥ अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ॥ येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रका चारित्र जब व्रजबालाओंने गाया, तब वह गीत स्वर्गतक पहुँचा और दहीके मथनेका शब्द भी उस गीतमें मिल रहा था, उन गोपियोंके गीतोंसे दिशाओंके सब अमंगल दूर होजातेहैं ॥ ४६ ॥ भगवान् सूर्यके उदय होनेपर नंदरायजीके दरवाजेपर सुनहरी साजका रथ खड़ा देखकर "यह किसका रथ है" इसप्रकार कहते व्रजवासी नर नारी कहने लगे ॥ ४७ ॥ कि, क्या कंसके कार्यका साधक अक्रूर आया है ? जो कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मथुरा लेगयाहै फिर अपने स्वामीको मरवाकर अब क्यों आया ? अब क्या हमें लेजाकर हमारे मांसके पिंड

बनाकर देगा। इस प्रकार गोपियें आपसमें बातें करही रहीथीं कि, इननेहीमें उद्धवजी संध्योपासनादि नित्यकर्म करके आये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ दोहा–उद्धव सैंतालीसमें, पाय कृष्ण आदेश। गोपिनको जाके दियो, तत्त्वज्ञान उपदेश ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित! लम्बी भुजा, नवीन कमलसे नेत्र, पीताम्बर पहरे कमलकी माला धारण किये, प्रकाशमान मुखारविन्द स्वच्छ कानोंमें कुण्डल पहरे कृष्णके अनुचर उद्धवजीको देख व्रजकी स्त्रियोंको परम आश्चर्य प्राप्त हुआ और परस्पर कहने लगीं ॥१॥ कि, सुन्दर रूप यह कौन है, कहाँसे आया है? भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकेसा वेष है, वैसेही गहने पहर रहा है, इसप्रकार

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् ॥ इति स्त्रीणां वदंतीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः॥४९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे नंदशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ श्रीशुक उवाच॥ तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलंबबाहुं नवकंजलोचनम्॥ पीतांबरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविंदं परिमृष्टकुंडलम् ॥ १ ॥ शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ॥ इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदांबुजाश्रयम् ॥ २ ॥ तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ॥ रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ॥ भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान्प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥ अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ॥ स्नेहानुबंधो बंधूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥

सब गोपियोंने श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविन्दका भक्त जान उद्धवजीको चारों ओरसे घेरलिया ॥ २ ॥ और अत्यन्त आधीनतासे नम्र हो, लाजभरी हँसन, चितवन तथा मीठी वाणीसे सत्कारकर एकान्त आसनपर बैठे उद्धवजीको श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे संदेशा लेकर आये जान, वह गोपियें पूंछने लगीं ॥ ३ ॥ कि, हमें जान पड़ता है तुम श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक हो और माता पिताके प्रसन्न करनेको तुम्हें श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है ॥ ४ ॥ क्योंकि इस व्रजमें और कोई ऐसा नहीं है, जो उन्हें स्मरण आवे और माता पिताका तो स्नेह बड़े वैराग्यवान् पुरुषपर भी नहीं छूट सक्त

इसीकारण औरोंसे यहाँ अपने कार्यके लिये मित्रता जनाई, जबतक काम पडा, तबतक मित्रता रक्खी, जैसे पुरुष स्त्रियोंसे प्यार करता है और भौंरा फूलोंसे प्यार रखता है, यह स्वार्थहीकी प्रीति है ॥ ५ ॥ ६ ॥ यद्यपि उन श्रीकृष्णचन्द्रने हमसे प्रीति करी थी, परन्तु तौभी दरिद्रीपुरुषको जैसे वेश्या त्याग देती है, प्रजा असमर्थ राजाको त्यागदेती है और दक्षिणापाकर पुरोहित जैसे यजमानको त्याग देता है ॥ ७ ॥ पक्षी जैसे फलरहित वृक्षको छोड देते हैं, अभ्यागत भोजन करके जैसे गृहको त्याग देतेहैं, जारपुरुष भोग करके जैसे स्त्रीको त्यागदेताहै, उसीप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र हमको त्यागकर चलेगये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दूत उद्धवजी जिस समय व्रजमें

पुंभिः स्त्रीषु कृतां यद्वत्सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥ निस्स्वं त्यजंति गणिका
अकल्पं नृपतिं प्रजाः ॥ अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥७॥ खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ॥
दग्धं मृगास्तथाऽरण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥ इति गोप्यो हि गोविंदे गतवाक्कायमानसाः ॥ कृष्णदूते व्रजं याते
उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥९॥ गायंत्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ॥ तस्य संस्मृत्यसंस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥
॥ १० ॥ काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायंती कृष्णसंगमम् ॥ प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ गोप्युवाच ॥
मधुप कितवबंधो मा स्पृशांघ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः ॥ वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडंब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

आये, उसीसमय गोपियोंकी वाणी, देह, मन, इत्यादि गोविंदमें जायलगे, अधिक क्या कहें, लौकिकव्यवहार खानपानादिक भी सब छूटगये ॥ ९ ॥ अपने प्यारेके कर्मोंकी गानेलगीं और भगवान् केशवमूर्ति बाल अवस्था तथा तरुण अवस्थाके जो चरित्र थे, उनको याद कर, लाज त्याग, रोतीहुई उद्धवजीसे पूछनेलगीं और कोई एक गोपी उद्धवजीका स्वरूप देख, श्रीकृष्णके संगका ध्यान कर भौंरेको देख, उसे प्यारेका भेजाहुआ दूत जान वक्ष्यमाण वचन कहनेलगीं, अर्थात् भौंरेके बहाने उद्धवजीसे कहने लगीं ॥ १० ॥ ११ ॥ गोपी बोली कि, हे मधुप! हे कपटी मित्र! हमारे चरणोंका स्पर्श मत करे, क्योंकि भौंरेका देह तो काला और मुख पीला होताहै और तेरे तो सौतके कुचोंसे मीठी पुष्पोंकी

मालाकी केशर डाढी मूछोंमें लगीहै, जो तू स्पर्श करेगा तो हमें स्नान करना पड़ैगा, यदि कहो कि, मुझे तो तुम्हारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचन्द्रने भेजाहै, सो तुम जाकर मथुराकीही स्त्रियोंको प्रसन्न करो, जैसे तू हमारे पास आया है, इसी प्रकार यादवोंकी स्त्रियोंके पास भी गयाहोगा, परन्तु यादवोंकी सभामें इस बातकी हँसी हुई होगी कि, कृष्णका दूत ऐसा निर्लज्ज है ॥ १२॥ जैसा तू है, वैसाही तेरा स्वामी है, जैसे तू फूलोंकी सुगंधिले उसी समय उनको छोड़देताहै, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी मोहित करनेवाला अपने अधरोंका अमृत एकबार पिलाय हमको त्यागन करदिया, परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि, लक्ष्मी उनके चरण कमलका कैसे सेवन करतीहै, अनुमान होता है कि, श्रीकृष्णके मीठे मीठे वचनोंसे उसका चित्त हरगया होगा, इसीलिये वह पड़ी रहती है ॥ १३ ॥ हे भ्रमर ! तू हमारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचरित्र क्यों गाता है,

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवादृक् ॥ परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह बहु षडंघ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ॥ विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयंतीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृंभस्य यास्स्युः ॥ चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥ विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुंदात् ॥ स्वकृत इव विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन् ॥ १६ ॥

क्योंकि हमनें तो घर इत्यादि भी त्याग दियाहै, श्रीकृष्णकी सखी मथुराकी जो स्त्रियें हैं, उनके आगे उनका प्रसंग गा, जिनकी कामाग्नि वह शान्त करतेहैं, वह प्यारी सखियें तुझे रीझकर कुछ देंगी ॥ १४ ॥ हे कपटी कपटभरी रुचिर हाँसीवाले श्रीकृष्णचन्द्रकी भ्रुकुटीकी मरोर ऐसी है कि, स्वर्ग, पृथ्वी और पातालकी स्त्रियें भी उन्हें दुर्लभ नहीं हैं, लक्ष्मीजी जिनके चरणरजकी सेवा करती हैं, वहाँ हमारी क्या चलसक्ती है, परन्तु तौभी हमने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उत्तमश्लोक नाम सुनाहै, सो जब हम गरीबनियोंकी सुधि लेंगे, तब वह नाम रहेगा, नहीं तो जाता रहेगा ॥ १५ ॥ अपने शिरको मेरे पाँवोंमेंसे उठाले, क्योंकि मैं तेरी संपूर्ण बातें जानतीहूं, तू मुकुंद श्रीकृष्णचन्द्रसे दूतकर्म सीखकर

चतुर होगया है, देखो हमने इस संसारमें श्रीकृष्णचन्द्रकेलिये पति, पुत्र, लोक, परलोक सब छोड़ दिया और वह हमें छोड़कर चलेगये, अब उससे
हमें क्या मिलाप करना ? इस प्रकार गोपियें कहनेलगीं ॥ १६ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पहले कर्मोंकी सुधि करके कहनेलगीं कि हम
को श्रीकृष्णसे भय लगता है क्योंकि पहले अयोध्यामें राजा दशरथके पुत्र रामचन्द्र हुये, तो सुग्रीवकी ओर होकर वधिक समान वालिको मारा;
व्याध तो मांस खानेके लिये मारै है परन्तु इन्होंने तो व्यर्थही मारा, बंदरका कोई मांस नहीं खाताहै, दूर्वादलश्यामके सुन्दर रूपपर रीझकर राव
णकी बहन शूर्पणखा आई, तो लक्ष्मणको सिखा, स्त्रीके वश हो उसके नाक कान काटलिये फिर वामन अवतार लेकर काकके समान आचरण
कर राजा बलिकी भेंट पूजा ले उसीको बाँधदिया इस कारण हम इस कालेकी मित्रतासे अघायगईं, अब कभी भूलकर भी कालोंसे मित्रता न करेंगी

मृगयुरिव कपींद्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ॥ बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टय
ध्वांक्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथाऽर्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वंद्वधर्मा
विनष्टाः ॥ सपदि गृहकुटुंबं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहंगा भिक्षुचर्यां चरंति ॥ १८ ॥ वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं
श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥ ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमंत्रिन्भ
ण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥

तब उद्धवजी बोले कि, मैं जिस समयसे आयाहूं तुम उनकीही बातें कररही हो, तो गोपी बोलीं कि, जैसे उनमें और गुण हैं उसी प्रकार यह अवगुण
है यद्यपि उनको दुःखदायी जानती हैं, परन्तु तौ भी उनकी बातोंका छूटना तो हमसे महाकठिन है ॥ १७ ॥ जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके
लीलाचरित्ररूपी अमृतका कानोंमें एक कणका भी स्वाद लेलियाहै, वह राग, द्वेष, त्याग असत्यके तुल्य हो दुःखरूप पुत्र पौत्रादिकोंको त्याग
भोगोंको छोड़ पक्षीके समान घर घर भीख माँगते फिरते हैं ॥ १८ ॥ जैसे अज्ञानी कृष्णसार हरिणकी स्त्री हारिणी वधिकके गीतसे मोहित होकर
घायल होजाती है उसी प्रकार हमने कपटी श्रीकृष्णका वचन सत्य मानकर यह देखा, जिनके नखोंके स्पर्शसे हमें भी कामदेवकी पीड़ा उत्पन्न हुई,

इसलिये हे दूत! उस कपटीकी बात जानेदे और बात कहु ॥ १९ ॥ हे प्यारेके सखा! क्या तू फिर आया, तुझे प्यारे कृष्णने भेजा है, इस कारण हे दूत! तू पूजा करनेके योग्य है और जो तुझे इच्छा हो सो वर माँग, क्या लक्ष्मीका संग न छोड़नेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास हमें लेचलना चाहता है परन्तु कैसे लेजायगा, क्योंकि उनके वक्षस्थलमें तो लक्ष्मीजी संगही रहती हैं इसलिये हमारा क्या प्रयोजन है॥ २० ॥ हे सौम्य! भला श्रीकृष्णचन्द्र तो अभी मथुरामें वास करते हैं, कभी उन्हें अपने माता पिता नन्द यशोदा आदिकका भी स्मरण आता है और कभी अपने बंधु बांधवोंकीभी याद करते हैं, कभी गोपोंका भी स्मरण करते हैं और कभी हमारी बात भी चलाते हैं; अगरके समान सुगंधवाली भुजा कभी हमारे शिरपर भी आनकर

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेंग ॥ नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वंद्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥ अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बंधूंश्च गोपान् ॥ क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते भुजमगुरुसुगंधं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ॥ सांत्वयन्प्रियसंदेशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥ उद्धव उवाच ॥ अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ॥ भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥

धरेंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित! इस प्रकार उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहना गोपियोंकी सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके संदेशेको समझानेलगे ॥ २२ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे गोपियो! तुमने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाया है इस लिये तुम निश्चय कृतार्थ होगई और संपूर्ण लोकोंमें तुम्हारा यश होगा ॥ २३ ॥ क्योंकि दान, व्रत, तप, होम, जप, यज्ञ, वेदपाठ, इन्द्रियोंका रोकना और अनेक प्रकारके कल्याणके उपाय सब करनेका फल यही है, जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति हो ॥ २४ ॥ बड़े मुनीश्वरोंको दुर्लभ भक्ति तुमने

उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें करी, यह बड़ा मंगल है ❀ ॥ २५ ॥ पति, पुत्र, देह, भाई, बंधु और अपने घरोंको त्याग परमपुरुष भगवान्
श्रीकृष्णचन्द्रको तुमने अपना पति करा, यह बहुत बड़ा मंगल हुआ ॥२६॥ हे बडभागियो ! इन्द्रियोंकी जिनमें गम नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें
विरहसे एकान्त भक्ति तुम्हें उत्पन्न हुई, यह तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया ॥ २७ ॥ हे मंगलरूपिणियो ! तुमको सुख देनेवाले प्यारेका संदेशा
कहता हूँ सो सुनो, श्रीकृष्णचन्द्रके रहस्यकार्यके करनेवाले संदेशेको लेकर मैं आया हूँ ॥ २८ ॥ उद्धवजी गोपियोंसे भगवान्ने श्रीमुखसे जो

सर्वा
दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानि च ॥ हित्वाऽवृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥
त्ममावोधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ॥ विरहेण महाभागामहान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥ श्रूयतां प्रियसंदेशो भवतीनां
सुखावहः ॥ यमादायागतो भद्रा अहं भर्त्तू रहस्करः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना
क्वचित् ॥ यथा भूतानि भूतेषु ख वाय्वग्निर्जलं मही ॥ तथाऽहं च मनः प्राणभूतेंद्रियगुणात्मना ॥ २९ ॥ आत्मन्ये
वात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ॥ आत्ममायानुभावेन भूतेंद्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥

वचन कहे थे, सो कहने लगे, श्रीभगवान्ने उपदेश किया है कि, सबका उपादान कारण मैं हूँ सो मुझसे तुम कभी दूर नहीं हो जैसे आकाश,
पवन, जल, पृथ्वी, तेज ये पंचतत्त्व समस्त प्राणियोंकी देहमें रहते हैं ॥ २९ ॥ उसी प्रकार मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय और गुण इनका आश्रय हूं,
अपनेमें अपनेसे अपनेको उत्पन्न करता हूं और अपनी मायाके प्रभावसे पंचभूत इन्द्रियें तीनोंगुण इनरूप जो अपनपो है, इसीलिये सृष्टिको

❀ शंका—गोपियोंने क्या, बडी भक्ति कृष्णमें की थी कि, जिस भक्तिकी प्रशंसा उद्धवजीने करी क्या ऐसी भक्ति योगीलोग नहीं करसक्ते यद्यपि कोई कहें कि, पति आदि सब परिवारसे कपट करके भग
वान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रीति गोपियोंने करी, तो कुटुम्बसे कपट करना यह कौनसा उत्तम कर्म है, कपटको तो मुनि लोग क्या सबही लोग बुरा कहते हैं ॥
उत्तर—कपट करके जो ऊपरसे नवधा भक्ति भी करै सो भक्ति नहीं वह तो धर्मके फाटनेके लिये कतरनी है मनुष्यके ऊपर तो भक्तिका लक्षण एक भी नहीं दीखपडे और मनमें सब भक्तिके लक्षण होंय वह
भक्ति मुक्तिकी देनेवाली है गोपियोंने ऊपरसे तो निन्दारूप कर्म किये और मनमें भक्तिका सब लक्षण करती थीं, इसलिये उद्धवने कहा कि गोपियोंने जो भक्ति भगवान्की की है सो भक्ति मुनिजनोंको दुर्लभ है ॥

उत्पन्न पालन और नाश करता हूं ॥ ३० ॥ यहाँ यह शंका है कि, आत्मा पंचभूत रूप होय तो उसे पंचभूतोंके संग दोष लगता है, इसका उत्तर देते हैं कि, आत्मा तो शुद्ध है, क्योंकि मायाके गुणोंमें जाता है सबसे अलग और ज्ञानरूप है, अहंकारके कारण जाननेमें नहीं आता, आत्माकी न्यारी अवस्था है, शुद्धता कैसे ? तो कहते हैं सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् यह जो मनकी वृत्ति हैं, उनसे प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ जैसे जागताहुआ मनुष्य स्वप्नको झूंठाही जानताहै, उसीप्रकार पण्डितजन जिनको झूंठा मानते हैं, ऐसे विषयोंका जिनसे चिंतवन कियाजाता है और चिंतवन करते इन्द्रियों पर असर होता है, उस मनको आलस्य त्यागकर रोकना चाहिये ॥३२॥ जब जिस मनुष्यका मन रुक जाता है तब वह पुरुष कृतार्थ होताहै और यह कहते हैं कि, वेद पढ़नेका, अष्टांगयोग करनेका अनात्माके विचार करनेका त्याग, सब इन्द्रियोंका जीतना सत्य बोलना, इत्यादि कर्मोंसे विवेकी

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ॥ सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥३१॥ येनेंद्रियार्थान्ध्यायेत मृषास्वप्नवदुत्थितः ॥ तन्निरुंध्यादिंद्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥ एतदंतः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ॥ त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रांता इवापगाः ॥ ३३ ॥ यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ॥ मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥ यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ॥ स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥३५॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ॥ अनुस्मरंत्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ या मया क्रीडता रात्र्या वनेऽस्मिन्व्रज आस्थिताः ॥ अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिंतया ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ॥ ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्संदेशाऽऽगतस्मृतीः ॥ ३८ ॥

पुरुषोंसे मन रुकता है, यही फल है जैसे नदियोंका अंत समुद्रमें होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जैसे दूर रहे प्यारेमें स्त्रीका मन लगा रहताहै और जो सदा नेत्रोंके आगे रहे उसमें चित्त नहीं रहता ॥३५॥ यदि संपूर्णवृत्ति त्याग मनको मुझ (कृष्ण) में लगाये नित्य मेरा ध्यान करती रहोगी तो शीघ्र मुझे प्राप्त होगी ॥३६॥ हे मंगलरूपिणियो ! जिस समय मैंने रात्रिके समय वृन्दावनमें रासक्रीड़ा करी थी, उस समय जिन गोपियोंको उनके स्वामियोंने रोकलिया था और इसी कारण वह रासक्रीड़ामें न आ सकीं तब वह मेरी लीलाओंका ध्यान करके मुझेही प्राप्तहुईं ॥३७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार अपने प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उपदेशको सुनकर व्रजकी गोपियें प्रसन्न हो उनका स्मरण कर उद्धवजीसे बोलीं ॥ ३८ ॥

सब गोपियें कहनेलगी कि, यादवोंका दुःख देनेवाला अपने भृत्योंसहित राजा कंस मारागया, यह बडा मंगल हुआ और पूर्ण मनोरथको प्राप्त हो अपना हित करनेवालोंसहित श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हैं, यह भी बडा मंगल है ॥ ३९ ॥ हे साधु उद्धव ! रामका छोटा भाई कृष्ण हमसे जो प्रीति करता था, सो प्रीति क्या अब मथुराकी स्त्रियोंसे करताहै ? वह लाजभरी हँसनि और उदार भरी चितवनिसे उनका सत्कार करते हैं ? ॥ ४० ॥ रतिविशेषके जाननेवाले प्यारे कृष्ण मथुराकी स्त्रियोंके वचनोंसे विलासोंसे सब सत्कार करेंगी, तब कैसे न बँधेंगे ॥ ४१ ॥ हे साधु उद्धव ! भगवान् गोविंद प्रसंग पाय मथुराकी स्त्रियोंकी सभामें बैठ जब कभी बातें करतेहैं, तब ग्रामकी स्त्रियें हमारा भी कभी स्मरण करतेहैं ? ॥ ४२ ॥ हे उद्धवजी !

गोप्य ऊचुः ॥ दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ॥ दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ॥३९॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ॥ प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ॥ नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४१ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविंदः प्रस्तुते क्वचित् ॥ गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथांतरे ॥ ४२ ॥ ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृंदावने कुमुदकुन्दशशांकरम्ये ॥ रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ॥ संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेंद्रो वनमंबुदैः ॥ ४४ ॥ कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ॥ नरेंद्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कभी उन रात्रियोंका भी स्मरण आता है कि, जिनमें कुमोदिनी कुंद फूलरहेथे और चन्द्रमाकी चाँदनीसे रमणीय वृन्दावनमें पाँवोमें नूपुर बजते जाते थे और हमारे संग रमण करते थे और हमने उनकी स्तुति की अब वह कभी हमें याद करतेहैं या नहीं ? ॥ ४३ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतुसे दग्ध वनके सींचनेको इन्द्र आता है, उसीप्रकार उन कृष्णके दिये शोकसे जलीहुई हमको हाथके स्पर्शसे जीवन देते दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र कभी यहाँ आवेंगे, या नहीं ? ॥ ४४ ॥ अब श्रीकृष्णचन्द्र यहां क्यों आवेंगे, क्योंकि अब उन्हें राज्य मिलगया, शत्रु मारेगये राजा

ओंकी कन्या व्याहलीं सब मित्र उनके पास हैं, इसलिये वह वहाँही प्रसन्न हैं यहाँ आनकर क्या करैंगे ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीके पति पूर्णकाम श्रीकृष्णको वनकी रहनेवाली हमसे और राजाओंकी कन्याओंसे क्या प्रयोजन है॥४६॥ आशाका त्यागही बडा सुखहै; यह पिंगलावेश्याने (एकादशस्कन्धमें) कहा है कि, निराशाके समान सुख नहीं है, यद्यपि यह जानती हैं, परन्तु तोभी हमारी आशा छूटनी अत्यन्त कठिन है ॥ ४७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एकान्तकी बातें त्यागनेको कौन समर्थ है, यद्यपि उनके रखनेकी इच्छा नहीं, परन्तु तौभी लक्ष्मी अंगसे अलग नहीं होती है ॥४८॥ हे उद्धव ! बलदेवजीके संग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिनमें विचरण करते थे, वह नदियें, पर्वत, वनके प्रदेश, गौ, बाँसुरीका शब्द ॥ ४९ ॥

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ॥ श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेताऽर्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिंगला ॥ तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाऽप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ॥ अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरंगान्न च्यवते कचित् ॥ ४८ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ॥ संकर्षणसहायेन कृष्णेनाऽऽचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥ पुनःपुनः स्मारयंति नंदगोपसुतं बत ॥ श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५० ॥ गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ॥ माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तद्विस्मरामहे ॥ ५१ ॥ हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ॥ मग्नमुद्धर गोविंद गोकुलं वृजिनार्णवे ॥ ५२ ॥

यह सब बेर बेर श्रीकृष्णके चरित्रोंकी याद दिलाते हैं, लक्ष्मीके आस्पद उनके चरणचिह्न देख हमभी विस्मरण नहीं करसक्तीं ॥ ५० ॥ मनोहर चलन, उदार हँसनि, लीलापूर्वक चितवनि, मनोहर वचन इनसे जिन्होंने हमारी बुद्धि हरली; उन श्रीकृष्णचन्द्रको हम कैसे भूलसक्ती हैं ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त वे सब गोपियें मथुराकी ओरको हाथ उठाय पुकारनेलगीं कि, हे रमानाथ हे व्रजनाथ ! हे दुःख हरनेवाले ! हे गोविन्द ! यह नाम तो गायोंका पालन करोगे तभी रहेगा, नहीं तो इस नामसे हाथ धोबैठो और आपको स्मरण होगा कि, इन्द्रने जब वर्षा करी थी, तो तुमने संकल्प किया था कि मैं अपने व्रजकी रक्षा करूंगा, सो अब तो तुम्हारेही विरहरूपी समुद्रमें संपूर्ण गोकुल डूब जाता है, इसका

शीघ्र आनकर उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! श्रीकृष्णके संदेशसे विरह ताप मिटाय इन गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको परमेश्वर जान और परमेश्वरको अपना आत्मा निश्चय कर उद्धवजीकी पूजा करी ॥ ५३ ॥ गोपियोंका शोक दूर करनेके लिये कितनेही मास उद्धवजीने व्रजमें वास किया और श्रीकृष्णकी लीला कथाओंको गाय गाय व्रजवासियोंको परमानन्द दिया ॥ ५४ ॥ जितने दिनोंतक उद्धवजीने व्रजमें वास किया, वह दिन व्रजवासियोंको श्रीकृष्णकी लीलासे क्षणके समान बीतिगये ॥ ५५ ॥ नदी, पर्वत, वन, गुफा, पुष्पित वृक्ष इत्यादिकोंको देख हरिदास उद्धवजी व्रजवासियोंको श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण करानेलगे ॥ ५६ ॥ गोपियोंके चित्तको इस प्रकार श्रीकृष्णमें लीन होनेसे व्याकुल देख

श्रीशुक उवाच ॥ ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः ॥ उद्धवं पूजयांचक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ५३ ॥ उवास कतिचिन्मासान्गोपीनां विनुदञ्छुचः ॥ कृष्णलीलाकथां गायन्रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ यावंत्यहानि नंदस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः ॥ व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् ॥ कृष्णं संस्मारयन्रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णाऽऽवेशात्मविक्लवम् ॥ उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविंद एव निखिलात्मनि रूढभावाः ॥ वांछंति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्म जन्मभिरनंतकथारसस्य ॥ ५८ ॥ क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ॥ नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥

परमप्रसन्न हो गोपियोको दण्डवत् करके कहनेलगे ॥ ५७ ॥ इन गोपोंकी स्त्रियोंका पृथ्वीपर जन्म सफल है क्योंकि सबके आत्मा गोविन्दमें इनका अत्यन्त प्रेम हुआ है जिस प्रेमको संसारसे भयभीत मुमुक्षु पुरुष और मुक्त और हम भक्त इच्छा करते हैं अनंत श्रीकृष्णचन्द्रकी कथामें जिसका अनुराग है उसे ब्रह्मजन्मसे क्या प्रयोजन है, अथवा एक तो शुद्ध माता पितासे, द्वितीय गायत्री उपदेशसे, तृतीय यज्ञदीक्षासे जो ब्राह्मणके तीन जन्म हैं, उनसे क्या प्रयोजन है ॥ ५८ ॥ वृंदावनकी विचरनेवाली व्यभिचार दृष्टिसे दूषित गोपस्त्रियें कहाँ और परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें

आरूढ़भाववाले मन कहाँ क्योंकि निरंतर भगवान्‌को स्मरण कर अज्ञानी पुरुष भी कल्याण प्राप्त करता है, जैसे अमृतका सेवन करनेवाला पुरुष अमर होजाताहै ॥५९॥ सर्वकाल अंगमें रहनेवाली लक्ष्मीपरभी यह प्रसन्नता न हुई और कमलके गन्धकीसी कान्तिवाली देवांगनाओंको भी जो प्रसाद नहीं मिला; सो रातके उत्सवमें श्रीकृष्णचन्द्रके भुजदण्डोंमें गलबाहीं डाल व्रजसुन्दरियोंको मिला ॥ ६० ॥ इन गोपियोंके चरणरजका सेवन करनेवाले वृंदावनमें गुल्म, लता औषधियोंमें कुछेक मेरा जन्म हो, जो गोपियें दुस्त्यज अपने भाई, बंधु बडोंके मार्गको त्याग वेदगम्य मुकुंद श्रीकृष्णचन्द्रके मार्गका सेवन करती हैं ॥ ६१ ॥ जिन्होंने लक्ष्मीसे पूजित पूर्णकाम ब्रह्मादिक देवता और योगेश्वर अपने हृदयमें

नायं श्रियोंग उ नितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोऽन्याः ॥ रासोत्सवेऽस्य भुजदंडगृहीतकंठलब्धा शिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥ या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥६१॥ या वै श्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामै र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविंदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ॥ ६२ ॥ वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ॥ यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नंदमेव च ॥ गोपानामंत्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥ तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ॥ नंदादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥

जिनका चिंतवन करते उन श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंको रासस‌भामें स्तनोंके ऊपर धर आलिंगन करके इन गोपियोंने तापको दूर किया॥ ६२॥ नंदके व्रजकी स्त्रियोंके चरणकी रजको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं, जिन गोपियोंकी गाई हरिकथा तीनों लोकोंको पवित्र करती है ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरान्त उद्धवजी गोपियोंसे, यशोदासे और नंद आदिक सब व्रजवासियोंसे आज्ञा मॉग गमनसमय अपने रथमें जा बैठे ॥ ६४ ॥ उद्धवजीके विदा होनेके समय नंद आदिक सब व्रजवासी अनेक प्रकारकी भेंट हाथमें ले उद्धवजीके पास आय स्नेहसे नेत्रोंमें ऑसूभर कहने ॥ ६५ ॥

कि, हमारे मनकी वृत्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लगी है और हमारी वाणी उनका नाम लिया करती है और हमारा शरीर उन श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करता है ॥ ६६ ॥ अपने कर्मानुसार ईश्वरेच्छासे जिस किसी योनिमें हम जायँ, तो जो कुछ हमने मंगलरूप कर्म करे हैं अथवा दान करेहैं उनका फल यही माँगती हैं कि, श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति बनी रहै ॥ ६७ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार गोपियोंने श्रीकृष्णकी भक्तिसे उद्धवजीका सत्कार किया, तब उद्धवजी उनसे बिदा हो कृष्णपालित मथुरापुरीमें आये ॥ ६८ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम कर व्रजवासि

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादांबुजाश्रयाः ॥ वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ॥ मंगलाचरितैर्दानैर्मतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ॥ उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥ वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० दश० पूर्वा० उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोध्यायः ॥४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ सैरंध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥

योंकी भक्तिकी अधिकता वर्णन करी, इसके उपरान्त वसुदेव और बलदेवजीको प्रणाम करके राजा उग्रसेनको भेंट दी ॥ ६९ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामुद्धवप्रतियानवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ दोहा—अड़तालिस अध्याय हरि, कुबरी रमण कराय ❋ ॥ हस्तिनपुर अक्रूरको, दीन्हों कृष्ण पठाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके उपरान्त सबके आत्मा और

* शंका—कुबरी और कृष्णका रमण सुनि हमारे मनमें बडा भ्रम हुआ, क्या कारण जो जगत्के ईश्वर होकर कुब्जाके संग रमण किया ?

उत्तर—सन्यासी होवै, ब्रह्मचारी होवै, वानप्रस्थ होवै, गृहस्थ होवै ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य, चाहे स्त्री पतित होवै, चाहे नपुंसक होवै चाहे सब कर्ममें भ्रष्ट होवै चाहे पुरुष होवै परन्तु भगवान्की सेवा करै वही भगवान्को प्यारा है, सत्र कर्ममें नीच होवै तो कुछ भगवान् बुरा नहीं मानते और बडा उत्तम होवै और भगवान्की प्रीति न करे तो उसको भगवान् शत्रुसमान मानते हैं, भगवान् भक्तजनोंकी प्रेमरूप रस्सीमें बँधेहुए हैं जैसा भक्तजन भगवान्को नाच नाचते हैं, वैसा नाच भगवान् नाचते हैं, जैसे काष्ठकी पुतली नचानेवाले पुरुषके आधीन है, ऐसेही भगवान् भी भक्तोंके आधीन हैं और जैसे बैलकी नाकमें नाथ डालके मनुष्य जहाँको चाहे वहाँको लेजाताहै और वेदरूप कृष्ण, वेदकी ऋचारूप कुब्जा भगवान्की दासी, इसलिये जैसी कुब्जाने इच्छा करी वैसी भगवान्ने उसकी अभिलाषा पूर्ण करी ॥ कहीं ऐसा भी

सबके देखनेवाले छः प्रकारके ऐश्वर्य युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कामसे पीड़ित कुब्जाका प्रिय करनेके लिये उसके घर गये ॥ १ ॥ कैसा वह घर है कि जहाँ अनेक प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुयें धरी हैं कामके उद्दीपन करनेवाले जिसमें चित्र लिखे हैं, मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं, पताकायें फहरा रही हैं, चंदोवे तन रहे हैं, शय्या तथा शोभायमान आसन बिछ रहे हैं, सुगंधकी धूप लगरही हैं, दीपक प्रज्वलित हो रहेहैं, और माला, अतर, अरगजा आदिसे वह घर अत्यन्त शोभायमान हो रहा है ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने घरमें आया देख कुब्जा अति

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ॥ मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनादिभिः ॥ धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गंधैरपि मंडितम् ॥ २ ॥ गृहं तमायांतमवेक्ष्य साऽऽसनात्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा ॥ यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥ तथोद्धवः साधु तयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ॥ कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचारितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गंधतांबूलसुधासवादिभिः ॥ प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥

शीघ्रतासे आसनपरसे उठ, घबराहटको प्राप्त हो सखियोंको सँगलिये श्रीकृष्णचन्द्रके पास आय सुन्दर आसन बिछाय चरण धो सत्कार करने लगी ॥ ३ ॥ उसी प्रकार भली भाँति पूजित हो उद्धवजी आसन स्पर्शकर पृथ्वीमें बैठ गये और लौकिक लीलाओंके करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रतासे सुन्दर बिछीहुई शय्यापर पहुँचे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त कुब्जा भी स्नान कर, चन्दन लगाय, वस्त्र पहर गहने, माला अतर, अरगजा,

—लिखा है, कि पुष्पांगी नाम एक वेश्या थी परन्तु भगवान्की बडी भक्तिनी थी, उसने यह सुना कि, रामचन्द्र वनको गये पीछे पीछ यह भी चलदी, वनमें जाकर उसको भगवान्का दर्शन हुआ और देखकर मोहित होगई और यह चाहा कि, रामचन्द्रके साथ रमण करू एकसमय रामचन्द्रको अकेला पाकर उनकी कुटीमें जा बैठी, पीछेसे सीता भी वहा आगई और उस वेश्याको वहाँपर बैठी देखा तो बडा क्रोधकर सीताने शाप दिया कि, अगले जन्ममें तेरे सब अग भग होंगे, और तू कुबरी होगी, और राक्षसकी दासी होगी तब श्रीरामचन्द्रजीने वेश्यासे कहा कि, जब मैं कृष्णावतार लूगा तो तेरा मनोरथ पूर्ण करूगा, अब तू जा तब तो उस पुष्पागी वेश्याने शापके भयसे बडी स्तुति की, तब भगवान्ने वर दिया कि, जिस समय मेरा दर्शन तुझको होगा, उसी समय तेरा देह परमोत्तम होजायगा और एक दिन तेरे घरमें वास करूगा, उस समय तेरी सब मनोकामना पूरी होगी ॥

ताम्बूल और अमृतके समान मादकवस्तुसे अपनेको बनाय, ठनाय लाजभरी लीला पूर्वक मुसकान, कटाक्षभरी चितवनसे मोहितहुई श्रीकृष्णचन्द्रके
पास आई ॥५॥ नवीन समागमकी लज्जासे शंकासहित कुब्जाको बुलाकर कंकणसे शोभायमान हाथको पकड शय्यापर बैठाय भगवान् श्रीकृष्ण
चन्द्र उसके साथ रमण करनेलगे, अहो ! कुब्जाका भाग्य जिसने चंदन लगानेके अतिरिक्त दूसरा कोई पुण्य नहीं किया था ॥ ६ ॥ कामदेवसे पीड़ित
कुच और छाती तथा नेत्रोंके तापको अनन्त श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें लगाय और उन चरणारविन्दको सूँघि स्तनोंके मध्यमें प्राप्तहुए सुन्दर
आनन्दमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रको भुजाओंसे आलिंगनकर बहुत दिनोंसे बढे तापको त्याग दिया ॥ ७ ॥ चन्दनके अर्पण करनेसे मोक्षके देनेवाले दुर्लभ

आहूय कांतां नवसंगमह्रिया विशंकितां कंकणभूषिते करे॥प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया॥६॥
सानंगतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रंत्यनंतचरणेन रुजो मृजंती ॥ दोर्भ्यां स्तनांतरगतं परिरभ्य कांतमानंदमूर्तिमज
हादतिदीर्घतापम् ॥७॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ॥ अंगरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥ आहो
ष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ॥ रमस्व नोत्सहे त्युक्तं संगं तेंबुरुहेक्षण ॥ ९ ॥ तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा
च मानदः ॥ सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदर्चितः ॥ १० ॥ दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ यो वृणीते
मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ॥ किंचिच्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रिय
काम्यया ॥ १२ ॥ स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबांधवान् ॥ प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनंद्य च ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रको पाय अभागिनी कुब्जाने यह मांगा ॥ ८ ॥ अहो प्यारे ! कुछ दिनों रहकर मेरे संग रमण करो हे कमलनेत्र ! मैं तुम्हैं त्याग नहीं
सक्ती ॥ ९ ॥ "एकबार तुम्हारे यहाँ नित्य आया करूंगा" इस प्रकार कुब्जाको कामवर दे उसका सन्मानकर, मान देनेवाले, ब्रह्मादिकोंके ईश्वर
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥ १० ॥ संपूर्ण ईश्वरोंके ईश्वर, दुःखसे आराधन करनेमें आवैं ऐसे विष्णु भगवान्को
प्रसन्न करके जो पुरुष विषयोंका वर मांगे वह बड़ा कुबुद्धि है, क्योंकि विषय तुच्छ हैं ॥ ११ ॥ बलदेव उद्धवजी संग लेकर समर्थ श्रीकृष्णचन्द्र
कुछ कार्य करानेके लिये और अक्रूरका भला करनेके लिये उसके घर आये ॥ १२ ॥ अक्रूरजी मनुष्योंमें श्रेष्ठ अपने बंधु श्रीकृष्ण, बलदेवको

दूरसे आते देख प्रसन्न हो मिलकर अत्यानंदको प्राप्तहुए ॥ १३ ॥ तब कृष्ण बलदेव और उद्धवजीने उन्हें नमस्कार किया, इसके उपरांत अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको प्रणाम कर और आसन पर बैठाय उनकी पूजा करी ॥ १४ ॥ हे राजन्! फिर कृष्ण बलदेवके चरणोंको धोकर उस जलको अपने मस्तकपर चढ़ाया और दिव्य, चंदन, माला, वस्त्राभूषण इत्यादि भेंट दे नमस्कार किया और गोदमें चरणोंको धरके दाबनेलगे, इसके उपरांत आधीनतापूर्वक नम्र हो अक्रूरजी कृष्ण बलदेवसे कहनेलगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ कि, मंत्रियोंसहित पापी कंसको मार बड़े कष्टसे तुमने

ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ॥ पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापो धारयञ्छिरसा नृप ॥ अर्हणेनांबरैर्दिव्यैर्गंधस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसाऽऽनम्य पादावंकगतौ मृजन् ॥ प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥ दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ॥ भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्रदुरंताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ भवद्भ्यां न विना किंचित्परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ॥ ईयते बहुधा ब्रह्मञ्छ्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥ यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भांति नाना ॥ एवं भवान्केवल आत्मयोनिष्वात्मात्मतंत्रो बहुधा विभाति ॥ २० ॥ सृजस्यथो लुंपसि पासि विश्वं रजस्तमस्सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ॥ न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बंधहेतुः ॥ २१ ॥

इस अपने कुलका उद्धार किया और कुलकी वृद्धिका, यह बडाही मंगल हुआ ॥ १७ ॥ तुम प्रकृतिरूप हो जगत्के कारण हो, जगन्मय हो, तुमसे पृथक् कुछ कार्य कारण नहीं है ॥ १८ ॥ तुम अपने विश्वमें अपनी शक्तियों सहित प्रवेश करके हे ब्रह्मन्! श्रवण करनेमें देखनेमें बहुत प्रकारके प्रतीत होतेहो ॥ १९ ॥ जैसे स्थावर, जंगम देहमें पृथ्वी आदि पंचभूत हैं, उनमें अनेक प्रकारसे प्रकाशते हो, उसी प्रकार अपने आधीन अकेले तुम आपही अपने कार्य पंचभूत और पंचभूतोंके बने देहमें बहुत रूपसे प्रकाशतेहो ॥ २० ॥ रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण तुम्हारी

शक्ति हैं, उनकेही द्वारा विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करते हो, गुण और उत्पत्त्यादिक कर्मोंसे बँधे नहीं हो, ज्ञानरूप हो, तुम्हें बाँधनेवाली कोई अविद्या नहीं है ॥ २१ ॥ तुम्हारे तो बंधनकी शंका संभवही कहाँ ? पर विद्योपाधि जीवात्माके भी वस्तुतः जन्म तथा जन्ममूलक भेद नहीं है क्योंकि देहादि उपायका किसीप्रकार निरूपण होना संभवही नहीं, अविद्यारहित होनेसे न तो आपके बंधन है और न मोक्ष है, जो बंध हमें मोक्ष दिखाई देते हैं, वह केवल हमारे अज्ञानसेही हैं ॥ २२ ॥ जगत्का कल्याण करनेके लिये तुम्हारा कहा सनातन वेदमार्ग जिस समय असाधुओंके पाखण्डमार्गसे बाधित होता है, उस समय सगुणरूपको धारण करते हो ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! तुमने इस संसारमें

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् ॥ अतो न बंधस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदायदा वेदपथः पुराणः ॥ बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥ स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ॥ अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ॥ यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः पंडितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात ॥ सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥

पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंश बलदेवसहित वसुदेवजीके घर जन्म लिया है, जिससे दैत्योंके अंशरूप राजाओंकी अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करोगे और यदुकुलके यशको बढ़ाओगे ॥ २४ ॥ हे ईश ! आज हमारा घर निश्चय बड़भागी है, सब देवता, पितृ, मनुष्य प्राणी देवरूप तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर तीनों लोकोंको पवित्र करता है सो तुम जगत्के गुरु अधोक्षज भगवान् हमारे घरमें आये हो इसलिये हमारा घर बड़भागी है ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! आप भक्तवत्सल, सत्यवक्ता सबके हितकारी, कृतके जाननेवाले उनको त्यागकर कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो औरकी शरण ले, भजन करनेवालेको तुम संपूर्ण कामना देतेहो और अपना आत्मातक भी

देते हो और तुम्हारे यह उत्तम है, यह नीच है, यह भेद नहीं है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! आपने मेरे घर आनकर दर्शन दिया यह बड़ा मंगल हुआ योगेश्वर और देवता भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते हैं पुत्र, स्त्री, धन, हितकारी और देहादिकोंमें मोहकी रस्सीरूप जो तुम्हारी माया है सो हमें लिपट रही है, इससे शीघ्रही काटो ॥ २७ ॥ भक्त अक्रूरने इस प्रकार जब पूजन और स्तुति करी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वाणीसे मोहित करतेहुये मुसकाकर बोले ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, आप हमारे गुरु हो, इस कारण नित्य स्तुति करनेयोग्य हो बन्धु हो, हम तुम्हारे लडके बाले हैं, हमरी रक्षा करो, पोषण करो और हमपर कृपा करो ॥ २९ ॥ हे पूज्योंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारे समान बड़भागी कल्याणकी इच्छा करनेवाले

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ॥ छिंध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥ इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान्हरिः ॥ अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच॥त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बंधुश्च नित्यदा ॥ वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकंप्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ॥ श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ॥ ३० ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥३१॥ स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयाञ्छ्रेयश्चिकीर्षया ॥ जिज्ञासार्थं पांडवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ॥ आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसंत इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥

मनुष्योंकी नित्य सेवा करने योग्य हो, देवता आपस्वार्थी हैं, साधु महात्मा आपस्वार्थी नहीं होते ॥ ३० ॥ कहीं जलमय तीर्थ नहीं हैं ? और मृत्तिका शिलाके देवता नहीं हैं ? किंतु वह सब बहुत दिनतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और साधुपुरुष तो दर्शनसेही पवित्र करतेहैं ॥ ३१ ॥ हे अक्रूरजी ! तुम हमारे सुहृदोंमें उत्तम हो इस कारण पाण्डवोंका कल्याण करनेके लिये हस्तिनापुरको जाओ ॥ ३२ ॥ पिता पाण्डुके मरनेके पीछे माता कुन्तीसहित दुःखित पाण्डव बालकोंको धृतराष्ट्र अपने पुरमें लेआया है, वह उसके पास रहते हैं ॥ ३३ ॥

लुब्धबुद्धि अम्बिकाका पुत्र राजा धृतराष्ट्र भाईके पुत्र पाण्डवोंमें समता नहीं रखता और दुष्ट दुर्योधनादिके वशमें होरहाहै और उसकी दृष्टि भी अन्धेरी होरही है ॥ ३४ ॥ इसलिये तुम अब हस्तिनापुरको जाओ और बुरी भली उनकी सब खबर लाओ, जब हमें वहाँका भेद विदित होजायगा, तो जिसमें पाण्डवोंको सुख होगा, वही उपाय करेंगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अक्रूरजीसे कह छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव और उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामक्रूरप्रेषणं नामाष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥ दोहा—उनचास अक्रूरजी, हस्तिनपुरमें जाय । विषमदृष्टि लखि भ्रातृ सुत, फिरे धरो नहिं पाँय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

तेषु राजांबिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ॥ समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोंधदृक् ॥३४॥ गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ॥ विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ॥ संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे कुब्जारमणादिनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेंद्रयशोंकितम् ॥ ददर्श तत्रांबिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥ सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ॥ कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पांडवान्सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसंगम्य बंधुभिर्गांदिनीसुतः ॥ संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥३॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञो वृत्तविवित्सया ॥ दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छंदानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

कि, हे राजन् ! पुरुवंशी राजाओके यशसे शोभायमान हस्तिनापुरमें जाकर अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको अक्रूरजीने देखा और भीष्मपितामह' विदुर, कुन्ती, तथा सोमदत्त, पुत्र सहित बाह्लीक, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाँचों पाण्डव और भी जो सुहृद् थे उन सबको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ गांदिनीके पुत्र अक्रूरजी बन्धु बांधवोंके संग यथायोग्य मिलकर, वे बन्धु सुहृदोंकी वार्त्ता अक्रूरजीसे पूँछनेलगे और अक्रूरजी भी उनसे कुशल क्षेम पूँछनेलगे ॥ ३ ॥ दुष्ट पुत्र और अल्पबुद्धि दुष्ट कर्णादिकोंके कहनेमें रहनेवाले धीरतारहित राजा धृतराष्ट्रका

वृत्तान्त जाननेके लिये कितने एक महीनेतक अक्रूरजीने वहाँ वास किया ॥ ४ ॥ तेज अर्थात् प्रभाव ओजोबल, अर्थात् शस्त्र चलानेकी निपुणत वीर्य अर्थात् शूरता पाण्डवोंमें प्रजाका स्नेह वीरता आदि जो अच्छे गुण हैं उन्हें न सहकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी और जो कुछ आगे करनेकी इच्छा है उसे ॥ ५ ॥ और धृतराष्ट्रके पुत्रोंने विष देना आदि जो कुछ अन्याय किया था, सो सम्पूर्ण वार्त्ता विदुरजीने अक्रूरजीसे कहदी ॥ ६ ॥

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ॥ प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतं च धार्तराष्ट्रैर्य द्गरदानाद्यपेशलम् ॥ आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥ पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ॥ उवाच जन्मनिलयं स्मरंत्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७ ॥ अपि स्मरंति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ॥ भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ पैतृष्वसेयान्स्मरति रामश्चांबुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥

कुन्ती भाई अक्रूरको आया सुन मिलकर और अपने जन्मस्थानका स्मरण कर नेत्रोंसे आँसू बहाती अक्रूरजीसे बोली * ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! मेरे माता पिता कभी मेरा स्मरण करते हैं ? और मेरे भाई, बहन, भतीजे स्त्री, सखी यह सब कभी मेरी सुधि करते हैं ? ॥ ८ ॥ शरणागतोंके पालक, भक्तोंके हितकारी भाईके पुत्र श्रीकृष्ण कभी अपनी फूफीके पुत्रोंकी भी सुधि करते हैं ? कमलके समान नेत्रवाले बलरामजी भी

* शंका—बडे आश्चर्यकी बात है, वसुदेवजी वन्दीगृहसे छूटगये और अनेक प्रकारके मंगल वसुदेवजीके घर हुए, तो भी कुंतीको न बुलाया, लोकशास्त्रकी रीति है बहिन अथवा लडकीको माता, पिता भाई अपने घर वर्ष दोवर्षमें बुलाते रहते हैं परन्तु अपने घर उत्सवमें अथवा उसके दुःखमें तो अवश्यही बुलाते हैं, वा आप जाकर लेआते हैं क्योंकि पिताके घर आनेसे बेटीका चित्त सावधान होजाता है, फिर वसुदेवजीके घर उत्सव भी हुआ और पुत्रभी हुआ और वन्दीसे छूटे फिर वसुदेवजीने कुन्तीको अपने घर क्यों नहीं बुलाया इसका क्या कारण ?

उत्तर—कुन्ती सातद्वीपके राजा पाण्डुकी स्त्री थी और पतिके वियोगसे महादुःखी थी तो भी कुन्तीको वसुदेवजी अपने घर लेआनेको समर्थ न हुए, क्योंकि वसुदेवजी दीन और द्रव्यहीन थे और वह कुन्ती दुःखी भी थी तो भी सात द्वीपके नरेशकी रानी थी, इसलिये वसुदेव कुन्तीको अपने घर न लाये क्योंकि हजारों तो दासी उसके संग आतीं और सेनाका तो ठिकानाही क्या था, फिर कुन्तीको अपने घर रखनेकी

कभी हमारा स्मरण (याद) करते हैं ? ॥ ९ ॥ मैं तो जैसे व्याघ्रोंके बीचमें हारिणी घिर जाती है, उसी प्रकार वैरियोंके बीचमें गिरकर शोच करती हूं, सो क्या मुझे और पिताहीन मेरे बालकोंको श्रीकृष्ण तुम्हारे वचनोंसे क्या समझावेंगे ? ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वके आत्मा ! हे सबके अंतर्यामी ! हे विश्वके पालनकर्त्ता ! हे गोविन्द ! बालकोंके सहित दुःखित होकर मैं तुम्हारी शरण आई हूं सो मेरी रक्षा करो ॥११॥ मृत्युरूपी संसारसे भयभीत मनुष्योंके ईश्वर तुम हो और मोक्षको देनेवाले तुम्हारे चरणकमलके विना मुझे और कोई शरण देनेवाला नहीं दीखता ॥ १२ ॥ शुद्ध अर्थात धर्मात्मा ब्रह्म अपरिच्छिन्न अर्थात् ढकनेमें नही आवे, परमात्मा अर्थात् जीवके सखा, योगेश्वर

सपत्नमध्ये शोचंतीं वृकाणां हरिणीमिव ॥ सांत्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥ कृष्णकृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ॥ प्रपन्नां पाहि गोविंद शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥११॥ नान्यत्तव पदांभोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ॥ बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्याऽऽपवर्गिकात् ॥ १२ ॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ॥ प्रारुदद्दुःखिता राजन्भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥ समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः ॥ सांत्वयामासतुः कुंतीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ॥ अवदत्सुहृदां मध्ये बंधुभिः सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥

अर्थात् अणिमादिक शक्तियुक्त योग अर्थात् ज्ञानरूप ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र तुम हो, सो तुम्हें नमस्कार है और तुम्हारीही मैंने शरण ली है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ ! परीक्षित् ! इसप्रकार जगत्के ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णकी याद करके तुम्हारी, परदादी कुन्ती दुःखित होकर रोनेलगी ॥ १४ ॥ अक्रूर और बड़े यशवान् विदुर कुन्तीको समझाने लगे कि, तुम्हारे पुत्र धर्म, पवन, इन्द्र इत्यादिकोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, तुम इतना शोच क्यो करती हो, इसप्रकार समझाने लगे ॥ १५ ॥ चलते समय अपने पुत्रोंमें स्नेह और भतीजोंमें विषमता

करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर सुहृदोंके बीचमें जो रामकृष्णने वचन कहे थे वह अक्रूरजी कहने लगे ॥ १६ ॥ अक्रूरजी बोले कि, हे धृतराष्ट्र ! कौरवोंकी कीर्तिके बढ़ानेवाले भाई पाण्डुके मारनेके उपरान्त अब तुम राजसिंहासनपर बैठे हो ॥ १७ ॥ अच्छा ! बहुत उत्तम राज्य करो, धर्मसे पृथ्वीका पालन करो, क्योंकि अपनी प्रजाको सुखपूर्वक आनंद रक्खोगे, अपने बांधवोंमें समान दृष्टि रक्खोगे तो तुम्हारा कल्याण और जगत्में यश होगा ॥१८॥ और जो विषमता रक्खोगे तो संसारमें निन्दा होगी और अंतमें नरकको जाओगे, इस कारण पांडवोंमें और अपने पुत्रोंमें समता रक्खो ॥ १९ ॥ हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस संसारमें सदा किसीका सत्संग नहीं रहता है और अपना देहभी सदा नहीं रहता, विचार

अक्रूर उवाच ॥ भोभो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ॥ भ्रातर्युपरते पांडावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रंजयन् ॥ वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि॥ १८॥ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ॥ तस्मात्समत्वे वर्तस्व पांडवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥ नेह चात्यंतसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह ॥ राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥ २० ॥ एकः प्रसूयते जंतुरेक एव प्रलीयते ॥ एकोनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरंत्यन्येऽल्पमेधसः ॥ संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपंडितम् ॥ तेऽकृतार्थं प्रहिण्वंति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ॥ असिद्धार्थो विशत्यंधं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥

करके देखो कि, स्त्री पुत्र यह सदा नहीं रहैंगे ॥ २० ॥ जीव अकेलाही जन्म लेता है और अकेलाही मृत्युको प्राप्त होता है अकेलाही पुण्यके फल सुखको भोगता है और अकेलाही पापका फल दुःख भोग करता है ॥ २१ ॥ अज्ञानीपुरुषोंनें जो पापकरके धनसंचय किया है, उसे स्त्री, पुरुष, भाई, बंधु होकर लेते हैं, जैसे जलकी रहनेवाली मछलियोंका जीवन जल है और जब उसको उसके पुत्र पीलेते हैं तब उसे कष्ट होता है ॥ २२ ॥ पाप करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है और जिन्हें अपना समझ अधर्मसे पोषण करता है, वह प्राण, धन और पुत्रादिक उस पोषण करनेवाले मूर्ख पुरुषको भोगका सुख प्राप्त न हुआ हो, तब उसे पहलेही त्याग देतेहैं ॥ २३ ॥ जब स्त्री पुत्रादिक इसको त्याग

देते हैं, तब यह सच्चे स्वार्थको न जानकर और प्रयोजन नष्ट होनेसे निजधर्मसे विमुख हो, सबके पापको अपने शिरपर धर वही पुणे नरकमें गिरताहै ॥ २४ ॥ इस कारण हे समर्थ राजा धृतराष्ट्र ! स्वप्न और बाजीगरकी माया तथा मनका विचार यह सब तुमको मिथ्याभूत दिखाई देता है, उसीप्रकार इस संसारको मिथ्याभूत समझ आपभी अपने मनको रोककर समता रक्खो और शान्त हो ॥ २५ ॥ तब राजा धृतराष्ट्र बोले कि, हे अक्रूर ! यह जो तुमने कल्याणकारक श्रेष्ठ वचन कहे उनको श्रवण करते करते मेरा मन तृप्त नहीं हुआ, जैसे मनुष्य अमृत पीनेसे तृप्त नहीं होता ॥ २६ ॥ परन्तु तो भी हे अक्रूर ! मेरा चंचल पुरुषोंमें स्नेह है, इसलिये विषमहृदयमें तुम्हारी प्यारी बात नहीं ठहरती जैसे स्फटिकमणिके

तस्माल्लोकमिमं राजन्स्वप्नमायामनोरथम् ॥ वीक्ष्याऽऽयम्यात्मनात्मानं समः शांतो भव प्रभो ॥ २५॥ धृतराष्ट्र उवाच॥ यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ॥ तथाऽनया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम् ॥ २६ ॥ तथाऽपि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ॥ पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ॥ भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं सृष्ट्वा गुणान्विभजते तदनुप्रविष्टः ॥ तस्मै नमो दुरवबोधविहारतंत्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ॥ सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात ॥ ३० ॥

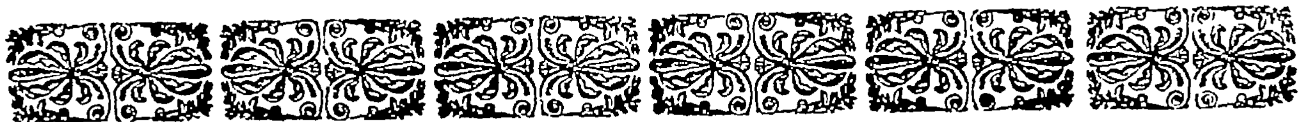
सुदामापर्वतपर बिजली चमककर स्थिर नहीं रहती ॥ २७ ॥ भगवान्‌की इच्छाको कौन पुरुष खंडन करसक्ता है, अर्थात उसकी इच्छाके प्रतिकूल कुछ नहीं होता, सब उसकी इच्छानुसारही होता है जिस ईश्वरने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण यदुकुलमें आनकर अवतार लिया है ॥ २८ ॥ जो ईश्वर विचारनेमें न आवे, ऐसी अपनी मायासे इस विश्वको उत्पन्न कर और उसमें प्रवेश कर कर्म तथा कर्मोंके फलको अलग अलग कर जीवोंको देते हैं जाननेमें न आवे ऐसी लीलाओंसे रचेहुए संसारचक्रके घुमानेवाले उस परमेश्वरको मैं बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इसप्रकार यदुवंशोत्पन्न अक्रूरजी धृतराष्ट्रका अभिप्राय जान सुहृदोंसे आज्ञा ले मथुरापुरीमें

आये ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! बलदेव श्रीकृष्णने आप जिस कारण अक्रूरजीको पाण्डवोके पास भेजा था सो अक्रूरजीने· सब धृतराष्ट्रजीको कही

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥ पांडवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कंधे पूर्वार्धे पाण्डववृत्तनिरूपणं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

॥ ❋ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ समाप्तोऽयं दशमस्कंधपूर्वार्धः ॥ ❋ ॥

वार्त्ताका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीसे कह दिया ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥ छ ॥ समाप्तोऽयं भाषाटीकासहितः दशमस्कन्धपूर्वार्धः ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

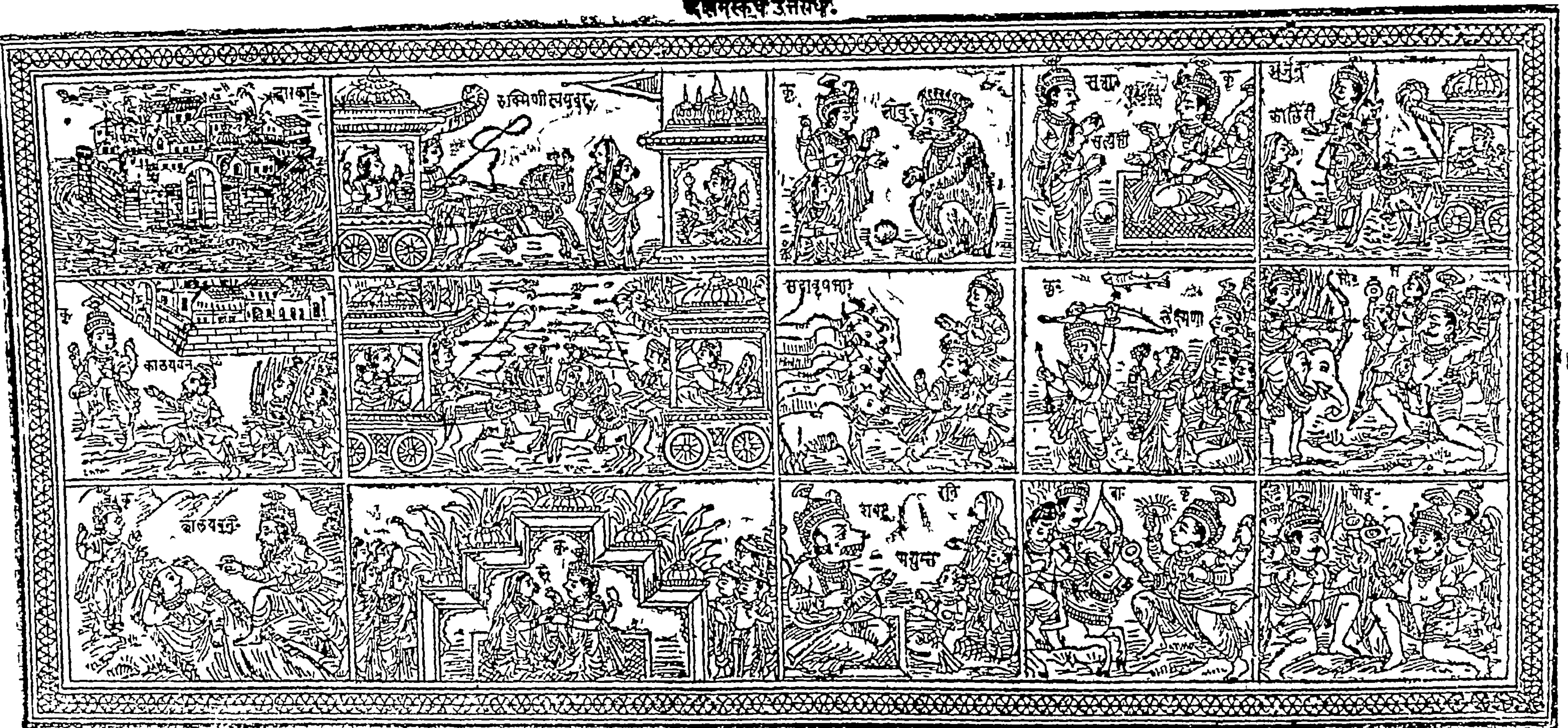


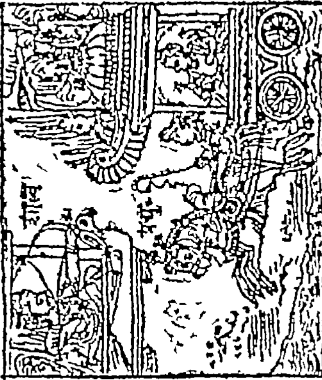
इदं पुस्तकं क्षेमराज--श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालैन)
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।
संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धपूर्वार्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकासहिते दशमस्कन्धोत्तरार्धप्रारम्भः ॥

दशमस्कंध उत्तरार्ध.













श्रीः ॥ दशमस्कंधोत्तरार्द्धम् ॥ दोहा—उत्तरार्द्ध प्रारम्भमें, व्रजपति चरित ललाम। कह्यो पचाशाऽध्यायमें, जरासन्ध संग्राम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अब पूर्वार्द्धके उपरान्त इकतालीस (४१) अध्यायमें जो कथा है, सो हम वर्णन करते हैं कि, जरासन्धके भयसेही मानो समुद्रमें किला बनाकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको उसमें लेगये, व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! अस्ति और प्राप्ति यह दोनों कंसकी रानी अपने पति कंसके मरनेसे अत्यन्त दुःखी होकर अपने पिताके घर चलीगई ॥१॥ अपने स्वामीके मरनेसे शोकाकुल अस्ति, प्राप्ति दोनों बहनोंने अपने पिता मगधदेशके राजा जरासंधसे जाकर सब वृत्तान्त कहा ॥ २ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यह बात सुनतेही जरासन्ध अतिक्रोध कर अपने जामाताका शोक न सह पृथ्वीको यादवरहित करनेका उपाय करनेलगा ॥ ३ ॥ और तेईश अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥ मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासंधाय दुःखिते ॥ वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ॥ अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ॥ यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत्सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ॥ स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥ चिंतयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः ॥ तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ॥ मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥

जरासंधने यादवोंकी राजधानी मथुरापुरीको चारोंओरसे घेरलिया ॥४ ॥ जिसप्रकार अपनी मर्यादा त्यागकर समुद्र उमडता चला आता है, उसी प्रकार जरासन्धकी सेनाको आतीहुई देखकर और सेनासे मथुरापुरीको ग्रसित जान, अपने सुहृद् यादवोंको व्याकुल देख ॥ ५ ॥ दुःखोंके नाशक भूभार उतारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उस समय देशकालके योग्य अपने अवतारका कारण देखकर विचार करनेलगे ॥ ६ ॥ कि, पहिले इस समस्त सेनाका संहार करूं, या जरासन्धको वधकर इसकी सब सेना अपने अधीन करूं अथवा सैन्यसहित जरासंधका प्राण संहार करूं, ऐसे तीन प्रकारके मनमें संकल्प विकल्प कर प्रथमविचार सैन्यवधका निश्चय किया, क्योंकि पृथ्वीका भाररूप यह सेनाही है, इसलिये प्रथम इसकाही

मारना उचित है और इस समय यह सम्पूर्ण राजाओंकी सेनाओंको इकट्ठाकर लेआया है, फिर बारम्बार ऐसा अवसर नहीं मिलेगा ॥ ७ ॥ पहिले पैदल, अश्व, हस्ती और चतुरंगिणी अनेक अक्षौहिणी * सेनाकोही मारना योग्य है, जरासंधका मारना योग्य नहीं, क्योंकि इससे अभी बहुत कार्य सिद्ध होगा, यह सम्पूर्ण राक्षसोंको समेट कर ले आवेगा, मैं कहाँ कहाँ ढूँढता फिरूंगा ॥ ८ ॥ भूमिका भार उतार साधुपुरुषोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाश करनेके लियेही मैंने अवतार लिया है ॥ ९ ॥ जब पृथ्वीपर अधर्म बढ़ता है, तब तबही उस अधर्मके नष्ट करने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये मै अवतार लेताहूं ॥ १० ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विचार करही रहे थे कि, उसी समय सूर्यके समान

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुंजरैः ॥ मागधस्तु न हंतव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥ एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ॥ संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥ अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ॥ विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥ एवं ध्यायति गोविंद आकाशात्सूर्यवर्चसौ ॥ रथावुदस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥ आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ॥ दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ॥ एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर ॥ एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ॥ एवं संमंत्र्य दशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥ १५ ॥

ध्वजा कवचसे सुसज्जित, सारथी सहित दो रथ शीघ्रही आकाशसे उतरे ॥ ११ ॥ तब अकस्मात् आये दिव्य शस्त्र देखकर हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदेवजीसे बोले कि॥१२॥हे आर्य! हे श्रेष्ठ! तुम जिनकी रक्षा करते हो, आज उन्हीं यादवोंको आनकर दुःख उपस्थित हुआहै और इसीलिये यह रथ और वीरघाती शस्त्र आयेहैं ॥१३॥ रथमें बैठ, सब सेनाका संहार कर अपने यादवोंका कष्ट दूर करो, हे ईश! साधुलोगोंके कल्याणार्थही संसारमें आपका जन्म हुआ है ॥ १४ ॥ तेईस अक्षौहिणी सेना आनकर उपस्थित हुई हैं और इसीका पृथ्वीपर बोझ है, इसको दूर

* अक्षौहिणीका प्रमाण । इक्कीससहस्र आठसौ सत्तर २१८७० रथ, इक्कीसहस्र आठसौ सत्तर २१८७० गजपति, पैंसठ महस्र छ सौदश ६५६१० अश्वपति, एक लाख नौसहस्र तीनसौ पचास १०९३५० पैदल, इसका नाम एक "अक्षौहिणी" है ॥

करो, इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीने विचारकर, कवच पहर, सुन्दर शस्त्रोंको ले और कुछ थोड़ीसी सेनाके साथ, पुरके बाहर निकल दारुक सारथीको लिये शंखध्वनि करी ॥१५॥१६॥ इसके उपरान्त जरासन्धकी सेनाके हृदय भयभीत हो कम्पायमान होने लगे, तब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीको रणभूमिमें खड़ा देख, जरासन्ध कहनेलगा ॥ १७ ॥ हे अधम ! मुझे तेरे साथ युद्ध करनेमें अत्यन्त लाज आती है, क्योंकि तू बालक है इसलिये तेरे संग युद्ध नहीं करूंगा हे मूर्ख ! तू गुप्त रहनेवाला अत्यन्त छली है, इस कारण तेरे साथ युद्ध करना उचित नहीं ॥ १८॥ हे राम ! जो तुझमें सामर्थ्य होय तो धीरज धरके युद्ध कर और मेरे बाणोंसे कटेहुए देहको त्याग स्वर्गको जा, या संग्रामके बीचमें मेरा

निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽवृतौ ॥ शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत्पर सैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥ १७ ॥ न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ॥ गुप्तेन हि त्वया मंद न योत्स्ये याहि बंधुहन् ॥ १८ ॥ तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ॥ हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयंत्येव पौरुषम् ॥ न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥२०॥ श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसाऽऽवृणोत् ॥ ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयंत्यो हरिरामयोर्मृधे ॥ स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥

प्राण ले ॥१९॥ परीक्षित् ! ऐसे जरासन्धके वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे जरासन्ध ! शूरवीर व्यर्थ बकवाद न कर अपने पुरुषार्थको दिखाते हैं और तुम्हारी मृत्यु निकट आई है, इसलिये मैं तुम्हारे वचनोंपर अधिक ध्यान नहीं देताहूं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जैसे पवन, बादल, धूरि, यह सूर्य और अग्निको घेर लेतेहैं, इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र व बलदेवजीके निकट जाकर जरासन्धने उनको अपनी बलवान् सेना प्यादे, रथ, ध्वजा, घोड़े और रथवानों सहित घेर लिया ॥ २१॥ जब गरुड और तालकी ध्वजाके चिह्नवाले रामकृष्णके

रथ युद्धमें नहीं दीखे, तब पुरीकी नारी अटारी, महल और द्वारोंपर खड़ी हुई शोकसे व्याकुल हो मोह करने लगीं ॥ २२ ॥ शत्रुकी सेनारूप बादलों मेंसे वारम्वार बाणोंकी भयंकर वर्षासे अपनी सेनाको पीड़ित देखकर श्रीकृष्णचन्द्र देवता व असुरोंसे पूजित उत्तम शार्ङ्गधनुषमें टंकार करने लगे ॥ २३ ॥ तरकससे तीर निकालकर शीघ्र प्रत्यंचामें लगाय प्रत्यंचाको खैंचकर तीक्ष्णबाणोंके समूहोंसे रथ, घोडे, हाथी, पैदल मारकर जैसे सुलगती लकडीके घुमानेसे चक्र बँधजाता है उसी प्रकार बाणोंके पीछे बाण मारनेलगे ॥ २४ ॥ मस्तक कटनेसे हजारों हाथी, नारी कटनेसे घोडे पृथ्वीपर गिरने लगे, रथोंकी ध्वजा कटगईं और रथवान् गिरगये भुजा, नाडी कटनेसे पैदल गिरगये ॥ २५ ॥ युद्धमें पैदल, हाथी, कटकर गिरने

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्वणवर्षपीडितम् ॥ स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २३ ॥ गृह्णन्निषंगादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुंचन्शितबाणपूगान् ॥ निघ्नन्रथान्कुंजरवाजिपत्तीन्निरंतरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकुंभाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकंधराः ॥ रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकंधराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामंगप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ॥ भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरंगायुधगुल्मसंकुलाः ॥ अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥ प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरी परस्परम् ॥ विनिघ्नताऽरीन्मुसलेन दुर्मदान्संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २८ ॥

लगे, तब उनके शरीरसे लोहूकी नदियें बहने लगीं, जिनमें भुजाएँ सर्पकी सदृश दृष्टि आती थीं, मनुष्योंके शिर कच्छपसे जान पड़ते थे मृत्युको प्राप्तहुए हाथी टापूके समान दीखते थे और रुधिरकी नदीमे घोडे ग्राहसे पड़ेथे ॥ २६ ॥ भुजा व उरू मछलीके समान मनुष्योके केश सिवारके समान थे और नदीमे जो तरंगे उठती हैं, वही रुधिरकी नदीमे धनुप तरंगके समान हैं । नदीमें झाड़ झंकाड़ होते हैं रुधिरकी नदियोमें शस्त्र हैं सोई झाड़ झंकाडके समान है, नदीमें भँवर पडते हैं, तिनसे अति भयंकर होकर रुधिरकी नदियोंमें ढालें मानो भयंकर भँवर पडते हैं, नदियोंमें कंकर पत्थर इत्यादि होते हैं रुधिरकी नदियोंमें मणि गहने कंकर पत्थरके तुल्य हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! महातेजस्वी बलदेवजीने संग्रामके बीच

मतवाले शत्रुओंको मुसलायुधसे मार मारकर रुधिरकी नदियें बहाईं, जो कि कायर पुरुषोंको भयकी देनेवाली और वीर पुरुषोंको आनन्दकी देनेवाली हैं ॥ २८ ॥ हे परीक्षित् दुर्मद वैरियोको मुसलसे मार सागरके समान दुस्तर और भयंकर उस जरासन्धपालित सेनाका महापराक्रमी श्रीकृष्ण बलदेवने मार मार कर नाश करदिया, वसुदेवके पुत्र जगत्के ईश्वर कृष्ण बलदेवको सेनाका नाश करना एक साधारण बात है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥ २९ ॥ अनंतगुण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीलासेही तीनों लोकोंको उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको जरासन्धकी सेनाका मारना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं हैं, तो भी मनुष्योंके अनुकरण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म आश्चर्यमय तुमसे वर्णन करता हूं ॥ ३० ॥ सेनाके नष्ट होने और रथ टूट जानेसे जब प्राणमात्रही अवशेष रहे, तब बलवान् जरासन्धको जैसे सिंह सिंहको पकड़ता है,

बलं तदंगार्णवदुर्गभैरवं दुरंतपारं मगधेंद्रपालितम् ॥ क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २९ ॥ स्थित्युद्भवांतं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनंतगुणः स्वलीलया ॥ न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राह विरथं रामो जरासंधं महाबलम् ॥ हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ॥ वारयामास गोविंदस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः ॥ तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ॥ स्वकर्मबंधप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३४ ॥

उसीप्रकार बलपूर्वक बलदेवजी पकड़कर ॥३१॥ शत्रुओंके मारनेवाले जरासन्धको वरुणपाश और मनुष्यपाशसे जब (बलदेवजी) बांधनेलगे, तब श्रीकृष्णचन्द्रजीने उसको छुडादिया और कहा कि, अभी जरासन्धसे और कुछ काम लेना है ॥ ३२ ॥ शूरवीरोंके माननीय जरासन्धको त्रिलोकी नाथ श्रीकृष्ण बलदेवने जिस समय छोड़दिया, तब यह मनमें लज्जित होकर विचार करने लगा कि, वनमें जाकर तप करना उचित है, घर जाकर क्या करूंगा तब मार्गमें जातेहुए राजाओंने निवारण किया ॥ ३३ ॥ धर्मके उपदेश करनेवाले पदयुक्त नीतिके तुष्टिकारक वचन कहकर जरासन्धको समझाने लगे कि, हे राजन्! कोई तुम्हारा बड़ाही दुष्कर्म आनकर प्राप्त हुआ जो तुच्छ यादवोंने तुम्हें परास्त किया अब तुम कुछ

लाज मत करो ॥ ३४ ॥ जिस समय समस्त सेना नष्ट होगई और श्रीकृष्णचन्द्रने छोड़ दिया, तब वह बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध अत्यन्त उदास होकर मगध देशको चलागया ॥ ३५ ॥ शत्रुकी सेनारूप सागरसे तरकर और अपनी अक्षत सेना संग लिये जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने मथुरापुरीमें प्रवेश किया, तब देवताओंने आकाशसे फूल वर्षाये और प्रशंसापूर्वक उनकी स्तुति करी ॥ ३६ ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्र अपनी मथुरापुरीमें आकर खेदरहित प्रसन्नमन पुरवासियोंसे मिले. सूत, मागध, बन्दीजन, उनकी विजयके यश गान करनेलगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरीमें आये तब शंख, नगारे, अनेक भेरी, तुरही, वीणा, बाँसुरी और मृदंग यह सब बाजे बजनेलगे ॥ ३८ ॥

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ॥ उपेक्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ॥ ३५ ॥ मुकुंदोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ॥ विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ॥ उपगीयमानविजयः सूतमागधवंदिभिः ॥ ३७ ॥ शंखदुंदुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदंगानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥३८॥ सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ॥ निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३९ ॥ निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षतांकुरैः ॥ निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वित्तमनंतं वीरभूषणम् ॥ यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ॥ युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥

मार्गमें छिरकाव हो रहा है, पताकायें लगाई गई हैं और वेदध्वनिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके शुभागमनसे घर घर बन्दनवारोंसे परिपूर्ण इसप्रकार मथुरापुरीकी शोभा हुई ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर स्त्री, पुरुष, पुष्प, दधि, अक्षत और अंकुरोंकी वर्षा करनेलगे, स्त्रियें स्नेहसे प्रफुल्लित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखनेलगीं ॥ ४० ॥ शूरवीर राजाओंकी शोभा करनेवाले, रणभूमिमें पड़े बहुत धन लाकर श्रीकृष्णचन्द्रने यादवराज उग्रसेनको देदिया ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार जरासन्ध उतनीही अक्षौहिणी साथ लेलेकर सत्रहवार चढि आया और श्रीकृष्णसे रक्षित यादवोंसे उसने युद्ध

किया ॥ ४२ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यादवगण श्रीकृष्णचन्द्रके तेजसे जरासन्धकी समस्त सेनाका संहार करनेलगे, सम्पूर्ण सेना जब कटगई शत्रुने छोड़ दिया, तब जरासन्ध फिर अपने देशको चलागया ❀ ॥ ४३ ॥ अठारहवीं बार जिरासन्ध तो आनेवाला थाही, उसके बीचमेंही देवर्षि नारदजीका भेजा वीर कालयवन आनकर दिखाई दिया ॥ ४४ ॥ संसारमें जिसके समान कोई योद्धा नहीं, ऐसा कालयवन यादवोंको अपने समान

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ॥ हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥
अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदंतरा ॥ नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥
रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ॥ नृलोके चाप्रतिद्वंद्वो वृष्णीञ्छ्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥

जान, उसने तीन करोड़ महाम्लेच्छ अतिभयावने इकट्ठे किये ऐसे कि जिनके मोटे भुजा, बड़े गले, मैले दाँत, भूरे वेष, घूँघचीसे नयन लाल तिन्हें साथ ले डंका दे, मथुरापुरी पर चढ़ आया चारोंओरसे घेरलिया, क्योंकि देवर्षि नारदजीने इससे कहा था कि, यादवलोग तुम्हारे समान हैं, इसलिये उनसे युद्ध करो ॥ ४५ ॥

❀शंका–तेईस अक्षौहिणी सेनाको जरासन्ध अपने संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये चढि आया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनाको मारडाला, बडे आश्चर्यकी बात है कि, इतनी सेना जरासन्ध कहाँसे लेआया ? पृथ्वीपर सेना तो बहुत थी परन्तु दुष्ट सेना इतनी किधर थी जिसको जरासन्ध सत्रह १७ बार बटोर बटोर कर लेआया और तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना सत्रहवार श्रीकृष्णने मारडाली, सब जोडकर तीनसहस्र आठसौ ग्यारह ३८११ अक्षौहिणी हुए, परन्तु बडे अचम्भेकी बात है,कि इतनी सेनामें कोई भी शूरवीर नहीं था ? जब श्रीकृष्णने मारा तो क्याजान पडा क्योंकि श्रीकृष्णके सामने शूरवीरोंकी क्या सामर्थ्य थी और मर्यादा पालन करनेवाले श्रीकृष्णका अवतार भी हुवा फिर वीरोंकी मर्यादा क्यों विनाश करी ?

उत्तर–जरानामक राक्षसीने जरासन्धको वरदान दिया था कि, तू जितनी सेना बनाया चाहैगा, उतनी सेना बनालेगा इसलिये जरासन्ध तेईस, तेईस, अक्षौहिणी सेना बनायके श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये लेआया, मर्यादापुरुषोत्तम मर्यादाके पालन करनेवाले श्रीकृष्णने विचार लिया कि, इस सेनामें शूरवीर नहीं है, इसलिये जरासन्धकी सनाका विनाश किया, मर्यादाका नाश नहीं किया ॥

उस समय श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित इस दुरात्मा कालयवनको आयाहुआ देखकर विचार करने लगे कि, यादवोंको दोनों ओरसे कष्ट आनकर उपस्थित हुआहै, बड़ेही आश्चर्यकी बात है ॥ ४६ ॥ क्योंकि अब तो यह महाबली कालयवन हमको घेर रहाहै और फिर जरासन्ध आज या कल अथवा परसोंतक अवश्यही आवेगा ॥ ४७॥ यदि इस समय हम इससे युद्ध करैं और बीचमें जरासन्ध आगया तो अवश्यही हमारे बांधवोंका प्राण संहार करेगा और जो न मारेगा तो बांधकर अपने पुरमें लेही जायगा, क्योंकि वह बलवान् है ॥ ४८॥ इसलिये जहाँ मनुष्य न प्रवेश करसके ऐसा एक किला बनाय, उसमें अपने जातिके यादवोंको रख फिर कालयवनका वध करूं ॥४९ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इसप्रकार मनमें

तं दृष्ट्वाऽचिंतयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् ॥ अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४६ ॥ यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ॥ मागधोऽप्यद्य वा श्वोवा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥ ४७ ॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागंता जरासुतः ॥ बंधून्वधिष्यत्यथ वा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४८ ॥ तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ॥ तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४९ ॥ इति संमंत्र्य भगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम् ॥ अंतस्समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥ ५० ॥दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ॥ रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥ ५१ ॥ सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ॥ हेमशृंगैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजताऽऽरकटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलंकृतैः ॥ रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥

विचारकर अड़तालीस कोश (बारह योजन) का समुद्रके बीचमें एक दुर्ग (किला) और उस किलेके बीचमें एक महाअद्भुत आश्चर्यमय नगर बनाया ॥५०॥ इस नगरीमें सब विश्वकर्माकी कारीगरी दिखाई देती है, राजाओंके जाने योग्य बड़े बड़े बाजार गली और चौक बन रहेहैं॥५१॥ बीचबीचमें स्थान बनानेके लिये जगह छोड दीगई है, कल्पवृक्ष और लतावाले फूलोंके बगीचे, चित्र विचित्र फुलवारी, सुवर्णके शिखरसे आकाशको स्पर्श करनेवाले ऊँचे ऊँचे स्फटिकमणिके अटा बनरहेहैं और ऊँचे ऊँचे किलेके द्वार बनरहेहैं ॥५२॥ घोड़ोके बाँधने और अन्न भरनेके लिये लोहे और पीतलके स्थान बनेहैं तिनके ऊपर सुवर्णके कलश विराजमान हैं, जिनसे इस नगरकी अत्यन्तही मनोहर शोभा होरहीहै, जिनके पद्मरागमणिके

शिखर और महामरकतमणिकी जिसमें पृथ्वी, इसप्रकार शोभायमान सुवर्णके गृह जहाँ तहाँ बनरहे हैं ॥ ५३ ॥ देवताओंके मन्दिर और चित्रविचित्र चित्रसारी बन रही हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह वर्ण जिसमें वास करते हैं यादव और देवराज उग्रसेनके महल तो अत्यन्तही शोभायमान हैं ॥ ५४ ॥ देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष भेजे, जो मनुष्य इस सभामें वास करता है, उसको भूख, प्यास, शीत, गरमी, शोक और मोह इत्यादि कुछ नहीं सताते ॥ ५५ ॥ श्यामकर्ण श्वेतवर्ण मनके समान वेगवान् वरुणजीने घोड़े भेजे, पालन करनेवाले कुबेरजीने पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, कुन्द, नील, मुकुन्द, शंख, खर्व यह आठ विभूति भेजीं ॥५६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुश्रेष्ठ परीक्षित् ! ! भगवान् वासुदेवने इन देवतालोगोंको अपने अपने अधिकारकी सिद्धिके लिये जो कुछ सम्पदायें दी थीं, वह सब वस्तु

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ॥ चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मां पारिजातं च महेंद्रः प्राहिणोद्धरेः ॥ यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥ ५५ ॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयाञ्छुक्लान्मनोजवान् ॥ अष्टौ निधिपतिः कोशाँल्लोकपालो निजोदयान् ॥ ५६ ॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ॥ सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५७ ॥ तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ॥ प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमंत्रितः ॥ निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं विलोक्य विनिष्क्रांतमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥ दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥

जिससमय श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीपर आये, उन्होंने लाकर अर्पण करदीं ॥ ५७ ॥ उस द्वारकापुरीमें योगके प्रभावसे सब यदुवंशियोंको पहुँचाकर श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीसे कहनेलगे कि, हे वीर ! तुम यहाँ मथुरापुरीमें रहकर शेष प्रजाकी रक्षा करो, इस प्रकार बलदेवजीसे आज्ञाकर कमलनयन भगवान् कमलोंकी माला धारणकिये शस्त्ररहित मथुरापुरीके दरवाजेसे बाहर निकले ॥५८॥इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां दुर्गनिवेशनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ दोहा—कालयवन मुचुकुन्दकी, दृष्टि परत भो छार । जब हरिकी विनती करी, फिर इक्यावनबार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! जिससमय श्रीकृष्णचन्द्रजी रेशमी वस्त्र पहरे, पुरसे बाहर निकले, तो

उनकी ऐसी शोभा हुई कि, मानो निशानाथचन्द्रमा उदय हुए ॥१॥छातीमें भृगुलताका चिह्न, कण्ठमें कौस्तुभमणि धारणकिये, चतुर्भुज, नवीन कमलके समान अरुण नेत्र ॥२॥ नित्य प्रसन्न, शोभायमान और सुन्दर मुसकान, मकराकृत कुण्डलसे देदीप्यमान मुखारविन्द ॥ ३॥ इस प्रकार मनोहर मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रकी देखकर कालयवन अपने मनमें विचार करनेलगा कि, ठीक यही श्रीकृष्ण है ॥ ४ ॥ क्योंकि देवर्षि नारदजीने

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभाऽऽमुक्तकंधरम् ॥ पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकंजारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ मुखारविंदं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवो ह्ययमिति पुमाञ्श्रीवत्सलांछनः ॥ चतुर्भुजोऽरविंदाक्षो वनमाल्यतिसुंदरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ॥ निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवंतं पराङ्मुखम् ॥ अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥ हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदेपदे ॥ नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकंदरम् ॥ ७ ॥

जो जो लक्षण बताये थे, सो सब इसमें पायेजाते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई वासुदेव नहीं है और यह अकेला शस्त्ररहित चला जाता है, इसलिये मैं भी शस्त्ररहित पैदलहोकर इसके संग युद्ध करूं ॥५ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार कालयवन मनमें निश्चयकरके पराङ्मुख होकर भागते हुए, योगीजनोंके भी हाथ न आवें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रके पकडनेको पीछे दौडा * ॥ ६ ॥ पग पगपर " अब पकडा " " अब पकड़ा "

---

* शंका—यवनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान् क्यों भाग गये, इसका क्या कारण !

उत्तर—एक समय यदुवशी अपनी सभामें अपने कुलकी कन्याके वचनोंको स्मरणकर गर्गाचार्यको ँसनेलगे, गर्गाचार्य तो श्रीभगवान्के पूजनमें रात दिन रहतेथे और स्त्रीसे प्रीति कम रखतेथे इससे उनकी स्त्रीने अपने यादवोंसे कहा कि गर्गमुनि नपुसक हैं इससे यदुवशी उक्त मुनिकी हँसी किया करते थे इसलिये गर्गने यादवोंका नाश करनेके लिये एक पुत्र उत्पन्न करके उसी पुत्रको वरदान दिया कि, हे पुत्र ! युद्धमें यदुवंशी तेरे कुलके सामने अथवा तेरे सामने जो खडे होंगे तो उसी समय भागजायँगे श्रीकृष्ण इस बातको जानकर भाग गये ॥

ऐसे अपने आपको दिखाते दिखाते म्लेच्छराज कालयवनको श्रीकृष्णचन्द्र बड़ी दूर पर्वतकी गुफामें लेगये ॥ ७ ॥ यादवोंके कुलमें तू जन्मा है, इसलिये तेरा भागना उचित नहीं है, इसप्रकार आक्षेप करताहुआ महावेगसे दौडनेलगा, परन्तु पापी होनेके कारण श्रीकृष्णको न पकड सका, क्योंकि विना पाप नष्टहुये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ ८ ॥ हे परीक्षित् ! जब म्लेच्छराज कालयवनने श्रीकृष्णचन्द्रपर दुर्वाक्यरूपी बाणोंका आक्षेप किया, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफामें घुसगये, कालयवन भी दौडता हाँफता इनके पीछे पीछे उस गुफामें घुसगया, वहाँ एक पुरुष और सोरहा था, उसे देख कालयवन विचार करनेलगा ॥ ९ ॥ कि यह दुष्ट मुझे इतनी दूर लाकर यहाँ साधुकी

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ॥ इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥ ८ ॥ एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकंदरम् ॥ सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ॥ इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥ स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ॥ देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ ॥१२॥ राजोवाच ॥ को नाम स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्य एव च ॥ कस्माद्गुहां गतः शिश्ये किं तेजो यवनार्दनः ॥१३॥

नाई शयन कर रहाहै, इसप्रकार कालयवनने निश्चय कर, उस सोतेहुये पुरुषको कृष्ण जानकर एक लात मारी ॥१०॥ वह पुरुष बहुत दिनोंका सोया हुआ था, इसलिये धीरे धीरे नेत्र खोल, चारों ओरको देख, कालयवनको देखा ॥ ११ ॥ हे भारतवंशी राजा परीक्षित् ! उसी समय क्रोधी मुचुकुन्दके देखनेसे कालयवनके शरीरसे ऐसी अग्नि प्रगटहुई कि, जिससे उसका शरीर क्षणभरमें जलभुनकर भस्म होगया ॥ १२ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् पूँछने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! जिसने अपनी क्रोधाग्निसे कालयवनका प्राण संहार किया, उसका क्या नाम और वह कौन पुरुष है ? किसके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, क्या उनका प्रभावहै, किनके पुत्र हैं ? और किसलिये इस गुफामें सोते थे ! सो सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझे सुनाइये ॥१३ ॥

तब श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित् ! इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न मान्धाताका पुत्र गुणवान् ब्राह्मणोंका भक्त मुचुकुन्दनाम राजा था ॥ १४॥ एक समय असुरोंसे भयभीत होकर इन्द्रादिक देवताओंने अपनी रक्षा करनेके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की तो इन्होंने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा की ॥ १५॥ इसके उपरान्त स्वर्गके पालन करनेवाले स्वामिकार्तिकजीको आयाहुआ देखकर सब देवता इनसे कहने लगे कि, हे राजा मुचुकुन्द ! हमारी रक्षा करनेमें जो कुछ कष्ट आपको हुवा है इससे निवृत्त होकर आराम करो ॥ १६ ॥ हे वीर ! तुमने मनुष्य लोकके निष्कंटक राज्यको त्यागकर हमारी रक्षा की है, इससे तुम्हारे विषयके भोग छूटे ॥ १७ ॥ और तुम्हारे पुत्र रानी, जातिके बन्धु बांधव,

श्रीशुक उवाच ॥ स इक्ष्वाकुकुले जातो मांधातृतनयो महान् ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ १४॥ स याचितः सुरगणैरिंद्राद्यैरात्मरक्षणे ॥ असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ॥ राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६ ॥ नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकंटकम् ॥ अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७ ॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमंत्रिणः ॥ प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना संति कालिताः ॥ १८ ॥ कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ॥ एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ ॥ २० ॥ एवमुक्तः स वै देवानभिवंद्य महायशाः ॥ निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्शितः ॥ २१ ॥ यः कश्चिन्मम निद्राया भंगं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥ स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ॥ २२ ॥

प्रधान, दीवान, मंत्री, राज्यकी प्रजा; इनमेंसे अब कोई शेष नहीं है, सबका कालने संहार करदिया ॥ १८ ॥ काल बलवान्से बलवान् है, भगवान्की शक्ति है समर्थ अविनाशी है और जिस प्रकार पशुओंका पालन करनेवाला ग्वालिया पशुओंको चलाता है, उसीप्रकार आप क्रीड़ा करके सब प्रजाको इधर उधर चलाता है ॥ १९ ॥ सब देवता कहने लगे कि, हे राजा मुचुकुन्द ! तुम्हारा कल्याण हो, मोक्षके अतिरिक्त और जो इच्छा हो सो वर मांगो क्योंकि मोक्षके दाता तो केवल एक विष्णु भगवान् ही हैं ॥ २० ॥ हे परीक्षित ! जब इस प्रकार देवता लोगोंने कहा, तब महायशस्वी राजा मुचुकुन्दने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा करनेसे श्रमित होनेके कारण यह वर मांगा कि, मैं सोताही रहूं और जो कोई

मेरी निद्रा भंग करे, वह उसीसमय भस्म होजाय, यह वर माँगा, देवताओंने कहा कि ऐसाही होगा, तब राजा मुचुकुन्द देवताओंकी आज्ञा पाय पर्वतकी गुफामें जाकर सो रहा ॥ २१ ॥ २२ ॥ इससे देवताओंने कह दिया था कि,जो तुम्हारी निद्रा भंग करेगा, वह तत्कालही जलके भस्म होजायगा॥२३॥जब कालयवन जलके भस्म होगया, तब चतुर्भुजरूप होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया॥२४॥ मेघके समान श्यामवर्ण पीतवस्त्रधारणकिये हृदयमें प्रकाशमान भृगुलताका चिह्न और कौस्तुभमणि धारण करनेसे अत्यन्तही देदीप्यमान होरहे थे ॥ २५ ॥ चतुर्भुज, वैजयन्ती मालासे सुशोभित और दमकते हुये मकराकृत कुण्डलोंसे शोभायमान होरहे थे ॥ २६ ॥ देखनेयोग्य प्रेमभरी

अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः ॥ स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मी भवतु तत्क्षणात् ॥ २३ ॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्त्वतर्षभः ॥ आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते॥२४॥ त मालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २५ ॥ चतुर्भुजं रोचमानं वै जयंत्या च मालया ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ २६ ॥ प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ॥ अपी च्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २७ ॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ शंकितः शनकै राजा दुर्धर्षमि व तेजसा ॥ २८ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकंटके॥ ॥ २९ ॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः ॥ सूर्यः सोमो महेंद्रो वा लोकपालोऽपरोपि वा ॥ ३० ॥

मुसकान सहित विलक्षण और नवीन अवस्था युक्त मतवाले सिंहके समान पराक्रमी ॥ २७ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका तेज देखतेही भयभीत होकर राजा मुचुकुन्द धीरे धीरे पूँछनेलगा ॥ २८ ॥ राजा मुचुकुन्द बोला कि, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौन हो ? कमलके समान आपके कोमल चरण हैं और इस पर्वतकी गुफामें किसलिये आयेहो ? जो काँटोंके वनमें विचरते फिरोहो ॥ २९ ॥ क्या आप तेजवान् भगवान् अग्नि हैं वा सूर्य हैं, अथवा चन्द्रमा हैं, या इन्द्र हैं ? किंवा समस्त लोकपालोंके कर्त्ता या देवता हैं ? ॥ ३० ॥

अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन तीनों देवताओंमेंसे कोई हो ! मुझे जान पडता है कि, आप विष्णु भगवान् हैं, क्योंकि जैसे दीपक अपने प्रकाशसे अंधकारका नाश कर देता है; वैसेही आपने अपने तेजसे इस गुफाका अंधकार नाश करदिया ॥ ३१ ॥ यह कहकर फिर मुचुकुंद बोले कि, हे नर पुंगव हमें आपका जन्म, कर्म व गोत्र सुननेकी अत्यन्त अभिलाषा है, सो प्रसन्नतापूर्वक हमें सुनाइये ॥ ३२ ॥ हे पुरुषसिंह ! मैं तो इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआहूं, मान्धाताका पुत्र और मुचुकुन्द मेरा नाम है ॥ ॥ ३३ ॥ मैं बहुत दिनोंमें जागाहूं इसलिये मुझे खेद प्राप्त हुआ है और नींदके मारे मेरी इन्द्रियें चलायमान होरहींहै, क्योंकि मैं इच्छानुसार इस वनमें सो रहाथा और अभी किसीने आकर जगादिया ॥ ३४ ॥ और जिसने मुझे

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ॥ यद्बाधसे गुहाध्वांतं प्रदीपः प्रभया यथा ॥३१॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुंगव ॥ स्वजन्मकर्मगोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३२ ॥ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबंधवः ॥ मुचुकुंद इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥३३॥ चिरप्रजागरश्रांतो निद्रयापहतेंद्रियः ॥ शयेऽस्मिन्विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३४ ॥ सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ॥ अनंतरं भवाञ्श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥ तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥ हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥३६॥ एवं संभाषितो राज्ञा भगवान्भूतभावनः ॥ प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि संति मेंग सहस्रशः ॥ न शक्यंतेऽनुसंख्यातुमनंतत्वान्मयापि हि ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ॥ गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३९ ॥

आनकर जगाया, वह पुरुष उसीसमय जलकर भस्म होगया उसके पीछे आपके दर्शन हुए ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा असह्य तेज बहुत काल तक हम नहीं देख सक्ते, क्योंकि आप देहधारियोंके माननीय हैं ॥३६॥ इसप्रकार जब राजा मुचुकुन्दने प्रार्थना करी, तब संपूर्ण प्राणियोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहनेलगे ॥ ३७ ॥ कि, हे मुचुकुन्द ! मेरे जन्म, कर्म और नामका अंत नहीं है इसलिये मैं भी उनकी गणना नहीं करसक्ता ॥ ३८ ॥ अनेक जन्म धारण करके कदाचित मनुष्य पृथ्वीके रजकणोंकी तो गणना करसक्ता है,

परन्तु मेरे गुण, कर्म, जन्म, नामकी गिनती नहीं करसक्ता ॥ ३९ ॥ हे राजा मुचुकुन्द ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान, मेरे जन्मोंकी गणना करते करते बडे बडे ऋषि, मुनि भी पार न पासके ॥ ४० ॥ तोभी हे अंग ! अभीके जो मेरे नाम कर्म हैं सो मैं कहताहूं, तुम श्रवण करो. पृथ्वीका भार उतारने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्रथम कमलयोनि ब्रह्माजीने मेरी प्रार्थना की थी ॥४१॥ इस कारण यदुवंशमें वसुदेवके गृह मैंने जन्म लिया, और इसीलिये मेरा नाम वासुदेव प्रसिद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ हे मुचुकुन्द ! साधुद्वेषी कालनेमि, कंस इत्यादिका मैंने वध किया और यह जो कालयवन

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ॥ अनुक्रमंतो नैवांतं गच्छंति परमर्षयः ॥ ४० ॥ तथाप्यद्यतनान्यंग शृणुष्व गदतो मम ॥ विज्ञापितो विरिंचेन पुराऽहं धर्मगुप्तये ॥ भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥४१॥ अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुंदुभेः ॥ वदंति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतः कंसः प्रलंबाद्याश्च सद्द्विषः ॥ अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४३ ॥ सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ॥ प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाऽहं भक्तवत्सलः ॥ ४४ ॥ वरान्वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते ॥ मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुंदो मुदान्वितः ॥ ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४६ ॥ मुचुकुंद उवाच ॥ विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ॥ सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः ॥ ४७ ॥

है, सो तुम्हारी तीक्ष्णदृष्टिसे भस्म होगया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! पहले तुमने मेरी प्रार्थना की थी इसलिये मैं तुमपर अनुग्रह करनेके लिये इस गुफामें आयाहूं ॥४४॥ हे मुचुकुन्द ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूं वर मांगो, क्योंकि मेरी शरण आनेसे मनुष्यको फिर किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब प्रसन्न हो गर्गाचार्यके वचन स्मरणकर उन्हें साक्षात् परिपूर्ण भगवान् जान प्रणाम करके राजा मुचुकुन्द बोलनेलगा ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्दने कहा कि, हे ईश ! तुम्हारी मायासे यह

लोग मोहित होकर अनर्थ (जगत्) की ओर दृष्टि लगाय, सुखके लिये दुःखके दुःखमूल घरोंमें रहकर क्या स्त्री क्या पुरुष सभी ठगकर मोहित होजातेहैं ॥ ४७ ॥ इस मृत्युलोकमें जन्म लेकर जो मनुष्य आपके चरणोंका ध्यान नहीं करता है सो पशु समझना ऐसा है तो भी शरीरका मैंने इतना अभिमान किया है कि, रथ, घोड़े, हाथी, पैदल, सेना और मुख्य मुख्य सेनाध्यक्षको साथ लेकर पृथ्वीपर विचारतारहा, परंतु कालरूप तुम्हारा स्मरण कभी न किया इसलिये मेरा इतना समय व्यर्थ गया और पशुकी नाई गृहान्धकूपमें पडगया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कच्चे घटके समान इस देहको राजा मान अभिमानसे हम रथ, हाथी, घोडे, पदातिके संग पृथ्वीपर भ्रमण करते हुए आपका हमने बहुत अनादर किया ऐसे

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथंचिदव्यंगमयत्नतोऽनघ ॥ पादारविंद न भजत्यसन्मतिर्गृहांधकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४८ ॥ ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ॥ मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरंतचिंतया ॥ ४९ ॥ कलेवरेऽस्मिन्घटकुडयसन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ॥ वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वाऽगणयन्सुदुर्मदः ॥ ५० ॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमंतकः ॥ ५१ ॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ॥ स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५२ ॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवंदितः ॥ गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पुरुष ईश नीयते ॥ ५३ ॥

मनुष्यको मुखसे जिसप्रकार गलाफू चाटता सर्प उंदर (मूँसा) को पकड लेता है, उसी प्रकार अप्रमत्त (सावधान) कालस्वरूप आप झटपट लेतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मनुष्यदेव अर्थात् राजा यह नाम धरकर जो सुवर्णके बने रथोंपर बैठकर चलते हैं, सो देह दुरत्ययकाल करके मेरे पीछे कुत्ते सियार यदि भक्षण करलें तो विष्ठा होजाय, पड़ा रहे तो कृमि पड़ जाँय और अग्निसे जला दिया सो भस्म होजाय, इस प्रकार तीन नामोंको धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ हे भगवन् ! जिस पुरुषने सम्पूर्ण दिशाओंको जीतलिया है, जिसको संग्राममें कोई शत्रु शेष नहीं रहा और जिसे सब बराबरके राजा प्रणाम करते हैं, ऐसे उत्तम सिंहासनपर विराजमान चक्रवर्त्ती राजा भी मैथुन करनेके लिये घरोंमें क्रीड़ामृगके समान स्त्रियोंसे

करोति कर्माणि तपस्सु निष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाऽऽददत् ॥ पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५४ ॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत तत्समागमः ॥ सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥५५॥ मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबंधापगमो यदृच्छया ॥ यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्या वनं विविक्षद्भिरखंडभूमिपैः ॥ ५६ ॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ॥ आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबंधनम् ॥ ५७ ॥ तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमस्सत्त्वगुणानुबंधनाः ॥ निरंजनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशांतिः कथंचित् ॥ शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽपन्नमीश ॥ ५९ ॥

नाच नचाये जाते हैं, जैसे बाजीगर बंदरको नचाता है ॥५३॥ प्रथम यह पुरुष सब विषयोंको त्यागके, तपमें बड़ी श्रद्धाकर पृथ्वीमें शयन करताहै और ब्रह्मचर्य रहकर विषयभोगनेके लिये दान पुण्य करता है और फिर विचार करताहै कि, इस जन्ममें तपकर चक्रवर्ती राजा हो, तपस्याके प्रभावसे फिर इन्द्र होजाऊंगा, इसप्रकार तृष्णाके बढ़नेसे उस पुरुषको कभी सुख नहीं होता ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! इस संसारमें जन्म मरण प्राप्तहुए जीवको जिस समय तुम्हारे अनुग्रहसे संसारका अंत होताहै; उस समय तुम्हारे भक्तोंका सत्संग हो तो सब संगको त्यागकर कार्य कारणके नियन्ता आपमें भक्ति करते हैं, वह संसारके बंधनोंसे छूट जाते हैं ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर ! यह आपने बड़ाही अनुग्रह किया, जो मैं अकस्मात् राज्यबंधनोंसे छूटगया, यह मैं मानताहूं, राज्य छूटनेके लिये अकेला होकर वनमें जानेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्ती राजा भी प्रार्थना करते हैं कि हमारा किसीप्रकार राज्यबंधन छूटजाय, जिससे स्वाधीन होकर वनमें जा बैठें ॥ ५६ ॥ हे समर्थ ! निष्किंचन साधुसे पूजित, तुम्हारे चरणारविन्दोंका सेवन करनेसे मैं और किसी वरकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि साक्षात् मोक्षला देनेवाला तुम्हारा आराधन करके ऐसा कौन विवेकी पुरुष है, जो आत्माका बंधनरूप वर मांगेगा ? ॥ ५७ ॥ हे ईश ! इसीलिये सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इनके बंधन और ऐश्वर्य, अथवा शत्रुका विनाश और धर्मादिक मनोरथ त्याग ज्ञानघन, निरंजन, उपाधिरहित, निर्गुण, अद्वैत, ईश्वर मैं आपकी शरण आयाहूं ॥ ५८ ॥ हे अच्युत ! मैं इस संसारमें

बहुत दिनोंसे कर्म फलोंके कारण दुःखी हूं और कर्मोंकी वासनाओंसे पीड़ित हूं और तृष्णा सहित जो यह छः इन्द्रियरूप शत्रु मेरे पीछे पड़रहे हैं, इसलिये मुझे किसी प्रकारसे शांति नहीं है, अब मैं जैसे तैसे शोकरहित भयके दूर करनेवाले तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण आगया हूं, सो मेरी रक्षा करो ॥ ५९॥ तब श्रीभगवान् बोले कि,हे राजन्! तुम्हारी बुद्धि बड़ी निर्मल और उदार है,क्योंकि मैंने वर देनेके लिये कहकर तुम्हें लोभ उत्पन्न किया, तो भी कामना करके तुम्हारी बुद्धि चलायमान न हुई ॥ ६० ॥ मैंने वर देनेके लिये कहकर जो लोभ उत्पन्न किया, सो तुझे सचेत किया है, और हे राजन् ! यह तू निश्चय जान कि, मेरे भक्तोंको कदाचित् दुःख आनकर प्राप्त हो तो भी उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होती है

श्रीभगवानुवाच ॥ सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ॥ वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ६० ॥ प्रलोभितो वरैर्यस्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ॥ न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते कचित ॥ ६१ ॥ युंजानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ॥ अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६२ ॥ विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ॥ अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥ क्षात्रधर्मे स्थितो जंतून्व्यवधीर्मृगयादिभिः ॥ समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६४ ॥ जन्मन्यनंतरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥ भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

॥ ६१ ॥ हे मुचुकुन्द ! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वह प्राणायामादि साधनासे मनको वश करते हैं, तो भी उनका मन विषयोंके लोभमें जाताहुआ दीखता है, क्योंकि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई ॥ ६२ ॥ हे वीर ! मुझमें मन लगाकर जहाँ आपकी इच्छा हो, तहाँ विचरण करो, और तुम्हारी भक्ति नित्यप्रति मुझमें होवे ॥ ६३ ॥ क्षत्रिय वंशमें रह शिकार खेलकर जो तैंने जीवोंकी हिंसा की है, सो अब सावधान होकर मेरा आश्रय लेकर तप कर, जिससे तेरे सब पाप छूट जायँ ॥ ६४ ॥ हे राजा मुचुकुन्द ! दूसरे जन्ममें सब प्राणियोंके हित करनेवाले द्विजरूप तुममुझे प्राप्त होगे ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दोहा—ब वनवें अध्यायमें, रुक्मिणिको संदेश। द्विजवर लेगयो द्वारका, जहँ श्रीकृष्ण व्रजेश ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूपण परीक्षित इसप्रकार कृष्णसे अनुगृहीत होकर इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुन्द श्रीकृष्णकी परिक्रमा दे, नमस्कार कर गुफासे बाहर निकल आये ॥ १ ॥ राजा मुचुकुन्द मनुष्य, पशु लतादिक और छोटे छोटे वृक्षोंको देखकर "अब कलियुग आगया" इसप्रकार निश्चय कर उत्तर दिशाको चलेगये * ॥ २ ॥ वहाँसे फिर श्रद्धापूर्वक सब संग त्याग, संदेह रहित हो राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाय गंधमादनपर्वतपर चले गये ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम!

॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सोऽनुगृहीतोंग कृष्णेनेक्ष्वाकुनंदनः ॥ तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात्॥ १ ॥ स वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ॥ मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतो धीरो निस्संगो मुक्तसंशयः ॥ समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गंधमादनम् ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ॥ सर्वद्वंद्वसहः शांतस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ॥ हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥

फिर नरनायणके स्थान बद्रिकाश्रममें जाकर समस्त द्वन्द्व अर्थात सुख दुःख, भूख प्यास, शीत उष्णादि सहकर शान्त स्वरूप मुचुकुन्द तप करके भगवान् वासुदेवकी आराधना करनेलगा ॥ ४ ॥ फिर इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्रने म्लेच्छोंसे घिरी मथुरापुरीमें आकर म्लेच्छोंकी सब सेनाका संहार किया और उनका सब धन लेकर द्वारकापुरीको भेज दिया ॥ ५ ॥

* शंका—श्रीकृष्णजी मर्त्यलोकमें विराजते थे, फिर उनके सामने पृथ्वीपर मनुष्य, पशु, वृक्ष, पर्वत आदि लेके जो सब वस्तु प्रथम बडी बडी थी, सो वस्तु छोटी छोटी क्यों होगई ? यह बडा आश्चर्य है ? क्योंकि कृष्ण भगवान् मृत्युलोकसे वैकुण्ठको चले जाते तब बडी बडी वस्तु छोटी छोटी हो जातीं, तो शंका न होती श्रीकृष्णके सामने विपरीत होनेका क्या कारण ?
उत्तर—द्वापरयुगमें जैसी प्रजा ब्रह्माने बनाई थी, वैसीही प्रजा मर्त्यलोकमें उससमय थी, न तो तिलसमान कम और न तिलसमान अधिक, परन्तु राजा मुचुकुन्दने श्रीकृष्णके दर्शनकी प्रीतिसे प्रसन्न होके पर्वतको भी छोटा समझा और पदार्थोंकी तो क्या बात है इसका यह अर्थ है कि, कृष्णके दर्शनसे सब वस्तुको राजाने छोटा समझा, एक कृष्णके स्नेहहीको बडा समझा ॥

श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पातेही मनुष्य बैलोंके ऊपर धन लादकर जब ले चले; तब जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर फिर चढिआया ॥६॥ श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी शत्रुकी सेनाको देख मनुष्यावतारके कारण शीघ्रही उठकर भागे ॥ ७ ॥ यद्यपि इन्हैं किसीका डर नहीं था, तौ भी बहुत भयभीत होगये; इसलिये बहुतसे धनको मार्गमें छोड़ कमलसे कोमल चरणोंसे बहुत दूर तक कोशों भागे चलेगये ॥ ८॥ मगध देशका राजा जरासन्ध कृष्ण बलदेवको भागता हुआ देख हँसकर आप भी उनके पीछे दौड़ने लगा ॥ ९ ॥ बहुत दूरतक भागनेके कारण श्रमित होकर श्रीकृ

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ॥ आजगाम जरासंधस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ॥ मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥ पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ॥ अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्य दूरं संश्रांतौ तुंगमारुहतां गिरिम् ॥ प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥ गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप ॥ ददाह गिरिमेधोभिः समंतादग्निमुत्सृजन् ॥ ११॥ तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ॥ दशैकयोजनोत्तुंगान्निपेततुरधो भुवि ॥१२॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ॥ स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥

ष्णचन्द्र और बलरामजी प्रवर्षणनाम पर्वतपर चढगये, जिसपर देवराज इन्द्र नित्य जल वर्षाते रहते थे ॥ १०॥ हे राजा परीक्षित् ! जरासन्धने कृष्ण बलरामको पर्वतपर चढ़ा जान उनको बहुत ढूँढ़ा परन्तु कहीं पता न लगा, तब उस पर्वतके चारोंओर आग लगादी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब पर्वत जलने लगा, तब श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव दोनों भ्राता उस ४४ चवालीस कोश ऊँचे पर्वतके शिखरसे उछलकर पृथ्वीपर कूद पड़े ॥ १२ ॥ हे महाराज ! सेवकोंसहित जरासन्धसे अलक्षित यादवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण बलराम समुद्रकी खाईंसे युक्त द्वारकापुरीमें आये ॥ १३ ॥

हे राजन् ! जब समस्त पर्वत जलकर भस्म होगया, तब मगधदेशके राजा जरासन्धने विचारा कि, कृष्ण बलदेव भी इसके संगही भस्म होगये, इसलिये अपनी सब सेना साथ लेकर मगधदेशको चलागया ॥ १४ ॥ यद्यपि अब श्रीकृष्णचन्द्रके विवाहकी कथा कहनेके लिये प्रथम (नवमस्कन्ध) में बलदेवजीके विवाहकी कथा वर्णनकर आये हैं, तो भी फिर एक श्लोकमें वर्णन करते हैं, हे परीक्षित्! आनर्त्तदेशके राजा रैवतने, कमलयोनि ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी पुत्री रेवतीका बलदेवजीसे विवाह कर दिया, यह पहले कहचुके हैं॥ १५ ॥ हे भारतवंशावतंस परीक्षित् ! भगवान् वसुदेव भी स्वयंवरमें जाकर लक्ष्मीजीके अंशसे विदर्भदेशमें उत्पन्न हुई भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको विवाह लाये ॥ १६ ॥ शाल्व

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ॥ बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥१४॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान्रैवतो रेवतीं सुताम् ॥ ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥ भगवानपि गोविंद उपयेमे कुरूद्वह ॥ वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ॥ पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ॥ राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ १८ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ॥ यथा मागधशाल्वादीञ्जित्वा कन्यामुपाहरत ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्यामाध्वीर्लोकमलापहाः ॥ को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥

और शिशुपालादिक राजाओंकी सेनाको जीत, सब लोकोंके देखतेहुये जैसे देवताओंको जीतकर गरुडजी अमृत ले आते हैं उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीजीको लेआये ॥ १७ ॥ इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अत्यन्त स्वरूपवान् राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको युद्धमेंसे हरके राक्षसविधिसे श्रीकृष्णचन्द्रने व्याहा, यह वार्त्ता हमने आपकेही मुखसे सुनी है ॥ १८ ॥ हे व्यासनंदन ! जरासन्ध शाल्व इत्यादि राजाओंको जीतकर जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीको लाये, वह चरित्र सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है, सो प्रसन्नता पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णचन्द्रकी कथा अत्यन्त पवित्र और मनोहर है और समस्त लोकोंके पापोंका नाश करनेवाली है,

नित्य नवीन सुननेके सारको जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है, जो ऐसी कथायें सुनकर तृप्त हो ! ॥ २० ॥ जब राजाने यह वचन कहे, तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! विदर्भदेशका पालन करनेवाला, महायशस्वी भीष्मक नाम राजा था, इसके पाँच पुत्र और परमस्वरूपवान् एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ इन पुत्रोंमें सबसे बड़ा रुक्मी, इससे छोटा रुक्मरथ, इससे छोटा रुक्मबाहु, इससे छोटा रुक्मकेश और रुक्मकेशसे छोटा रुक्ममाली, यह पांच पुत्र उत्पन्न हुये और पाँचोंकी बहन परमसुशीला पतिव्रता रुक्मिणी हुई ॥ २२ ॥ घरमें आये हुये देवर्षि नारदजीके मुखसे श्रीकृष्णचन्द्रका गुणानुवाद सुनकर श्रीरुक्मिणीजीने अपने समान जान, विवाह करनेके लिये मनमें प्रतिज्ञा की ॥ २३ ॥ और इधर सुन्दर बुद्धि, उदारता, रूप, पराक्रम, शोभायुक्त रुक्मिणीके गुण सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने

श्रीशुक उवाच ॥ राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ॥ तस्य पंचाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥ रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनंतरः ॥ रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥ सोपश्रुत्य मुकुंदस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ॥ गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २३ ॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम्॥ कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥२४॥ बंधूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ॥ ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥ २५ ॥ तदवेत्यासितापांगी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ॥ विचिंत्याऽऽप्तं द्विजं कंचित्कृष्णाय प्राहिणोद्द्रुतम् ॥ २६ ॥ द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं कांचनासने ॥ २७ ॥

समान स्त्रीके व्याहनेका अभिलाष किया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! माता, पिता, भ्राता, आदि सबकी यही इच्छा थी कि, रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णचन्द्रसे करेंगे, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रका शत्रु रुक्म " हम अपनी बहनका विवाह कृष्णके साथ नहीं करेंगे " इस प्रकार निषेधकर " रुक्मिणीके योग्यवर शिशुपाल है" यह मनमें निश्चय किया ॥ २५ ॥ ॥ सुन्दर नील कटाक्षवाली विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीने सुना कि, श्रीकृष्णके साथ मेरा भाई व्याहनेको निषेध करता है, यह जान बहुत उदास होकर उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाय श्रीकृष्णचन्द्रके लिवालानेके लिये भेजा ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह ब्राह्मण जिस समय द्वारकापुरीमें पहुंचा, उसी समय द्वारपालोंने इसे भीतर पहुँचाया, वहाँ इसने

सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान आदि पुरुष भगवान् वासुदेवके दर्शन किये ॥ २७ ॥ गौ ब्राह्मणोंका पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उसब्राह्मणको देखतेही सिंहासनपरसे उतरपड़े और ब्राह्मणको सिंहासनपर बिठाय, जिस प्रकार कोई अपने देवताकी पूजा करता है उसी प्रकार पूजा करनेलगे ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित ! जब ब्राह्मण भोजन करचुका और मार्गकी थकावट दूर होगई, तब सत्पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके निकट जा अपने हाथोंसे उसके चरण दाबते दाबते यह पूँछा ॥ २९ ॥ कि, हे द्विजश्रेष्ठ ! वृद्धसंमत तुम्हारा धर्म बहुत कठिनतापूर्वक तो

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ॥ उपवेश्यार्हयांचक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥ तं भुक्तवंतं विश्रांतमुपगम्य सतां गतिः ॥ पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥ कच्चिद्द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः ॥ वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥ संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ॥ अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥ असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ॥ अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वांगविज्वरः ॥ ३२ ॥

नहीं चलता है ? सदा तुम्हारे मनमें संतोष तो वर्त्तमान है ? ॥३०॥ जिस किसी प्रकारके ब्राह्मण संतोष होकर वर्त्ते अर्थात् जो वस्तु मिले उसीमें संतोष रक्खे, स्वधर्मसे च्युत न हो तो यही उसको समस्त फलके देनेवाले हैं ॥ ३१ ॥ और जिसके मनमें संतोष नहीं है वह ब्राह्मणयद्यपि इन्द्र हो जाय तौ भी सब लोकोंमें घूमता फिरता है, तृष्णाकेमारे एक स्थानपर स्थिर नहीं रहता, हे ब्राह्मण ! प्रारब्धही तो मनुष्यको, राजा रंक करताहै * और जिसके पास कुछ भी नहीं है और मनमें सन्तोष है, वह ब्राह्मण सब खेदको त्यागकर आनन्दपूर्वक सोता है ॥ ३२ ॥

* दृष्टान्त—एक घोडोंके व्यापारीके घोडेसे राजाके पुत्रका कोई रोग जाता रहा, राजाने व्यापारीसे कहा कि, इस घोडेकी कीमत लेलो, व्यापारीने कहा, महाराज ! यहघोडा कुमारके चढनेको मैंने वैसेही दिया और मुझे द्रव्यकी इच्छा नहीं, जब उसने ऐसा कहा, तब राजाने उसका बहुत आदर सन्मानकर विदा किया और कहा कि, यहाँ आते जाते रहियो अब कुछ वर्ष उपरान्त व्यापारीका प्रारब्ध विगड धन सब चोरी होगया, घोड मरगये और जब कुछ उपाय न चला तो राजाके पास आया, राजाने यह समाचार सुन, उसे एक मकानमें टिका दिया और कुछदिन पीछे उससे भेंट कर पूछा कि, तुमको क्या बनाना आता है ? व्यापारी बोला कि, मैं चाबुक बनाना जानताहूं, राजाने उसी समय पाँच रुपये देकर कहा कि, इसके चाबुक बनाओ और बेंचो, रहनेके लिये मकान तुम्हें देही दिया है, तो व्यापारी चाबुक बनानेलगा, कुछ दिन उपरान्त उनमें भी घाटा हुआ और पाँचों रुपये व्यय होगये, तो राजाने फिर पाँच रुपये देदिये और फिर घटगये, इसी प्रकार पाँच पाँच रुपये, सात वर्षतक राजाने दिये परन्तु जमा घटतीही—

जो द्विज आपही मिली वस्तुमें सन्तोष करता है, अपने धर्ममें निष्ठ है और समस्त जीवोंकी रक्षा करता है शान्तस्वभाव अहंकार रहित है उसको मैं भी वारम्वार नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस राजाके देशमें तुम वास करते हो, वह राजा तो तुम पर प्रसन्न है ? क्योंकि जिस राजाके देशमें भली भाँति गौ ब्राह्मणका पालन होता है, वह राजा मुझे अत्यन्त प्यारा लगता है ॥३४॥ हे द्विजोत्तम ! समुद्रको उल्लंघन कर जिस

विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ॥ निरहंकारिणः शांतान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥ ३३ ॥ कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः ॥ सुखं वसंति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ॥ सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥ ३५ ॥ एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ॥ लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वा गुणान्भुवनसुंदर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोंगतापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥

कार्य करनेकी इच्छासे आप यहाँपर आये हैं, जो कहने योग्य वार्त्ता होय तो हमारे सन्मुख कहो, जिससे उस कार्यके करनेका उपाय कियाजाय ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! श्रेष्ठ आसनपर विराजमान, लीलासेही जिन्होंने मनुष्य देह धारण किया है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पूछनेपर वह ब्राह्मण बोला कि ॥ ३६ ॥ हे मधुसूदन ! रुक्मिणीने आपको एकान्तमें

—गई, जब आठवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तो एक रुपया वढा अर्थात् पाँच रुपयेके छः रुपये होगये तब यह देखकर राजाने दश रुपये दिये, फिर अधिक उन्नति हुई और द्रव्य वढनेही लगा । राजाने फिर घोडे लिवादिये उसमें वहुत द्रव्य उपार्जन किया, जब पहलेके समान द्रव्य होगया, तब व्यापारीने विचारा कि, जितना कुछ राजाका द्रव्य हमने लिया है, सो देदेना चाहिये, यह अपने मनमें निश्चय कर राजासे मिलने गया उस दिन राजाने उसका वहुत सत्कार किया और कहा कि, मेरा आधा राज्य तू लेले, तब व्यापारी क्रोध करके बोला कि जब मेरे पास कुछ नहीं था तो पाँच रुपयेसे अधिक नहीं दिये, न मुझसे अच्छी प्रकार मिले और अब आधा राज्य देतेहो, तब राजा बोले कि उस समय तेरा प्रारब्ध विगड रहाथा यदि मैं अपना सारा राज्य भी तुझको देदेता, परन्तु तौभी तेरे पास कुछ नहीं रहता, इसलिये थोडेही द्रव्यसे तेरा ग्रह टाल दिया, प्रारब्धके वली होनेसे और वलहीन होजातेहैं ॥

यह पत्री दीहै, तब श्रीकृष्णचन्द्रजीकी आज्ञासे उस प्रेमके चिह्नवाली पत्रीको खोलकर वह ब्राह्मण सुनाने लगा, रुक्मिणीने लिखा है कि, हे त्रिलोकीमें सुन्दर! हे अच्युत अर्थात् अखण्डरूप जबसे श्रवण करनेवाले पुरुषोंके कर्णोंके छिद्रों द्वारा, हृदयमें प्रवेश कर शोकसन्ताप दूर करनेवाले आपके गुण और दृष्टिवालोंकी दृष्टिके सकल मनोरथोंका लाभरूप श्रीमान्का रूप सुना है, तभीसे मेरा मन आपमें लग रहाहै ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द! हे पुरुषशार्दूल! कौन बलवान् उदार गुणयुक्त धैर्यवान् कन्या तुम्हें जो कि, मनुष्य लोकके अतिप्रिय कुल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, धन, घर इन सबमें तुम्हारी ही समान हो, तिन्हें विवाहके समयमें पति स्वीकार न करे ॥ ३८ ॥ हे समर्थ!

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम् ॥ ३८ ॥ तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरंग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ॥ मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमंबुजाक्ष ॥ ३९ ॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ॥ आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥ श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेंद्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥

इसकारण मैंने अपना पति आपको वरण किया है और अपनी देह अर्पण करदी है, मुझे अपनी दासी अर्थात् भार्या बनाओ. हे कमलदललोचन! मैं आपका भाग हूँ, उसे जैसे सिंहके भागको सियार ग्रहण नहीं करसक्ता, इसी प्रकार शिशुपाल आनकर मुझे स्पर्श न करे ॥ ३९ ॥ बावली, कुआँ, तालाव, बाग, यज्ञ, दान, नियम, तीर्थ, देवता, ब्राह्मण, गुरु इनकी पूजा करनेसे भगवान् वासुदेव प्रसन्न होते हों तो श्रीकृष्णचन्द्र मेरा हाथ पकडके लेजाँय और शिशुपालादि कोई राजा न आने पावें ॥ ४० ॥ हे अजित! कलहही विवाहका दिन है, इसलिये तुम गुप्तवेषसे विदर्भदेशमें आओ, परन्तु अकेले मत आना, पीछे सेना भी साथमें लेतेआना शिशुपाल और मगधदेशके राजा जरासन्धकी

सब सेनाको मथनकर उस पराक्रमके मोलमें मुझ अपनी दासीके संग आसुरविधिसे विवाह करलो॥४१॥कदाचित् कहो कि,तुम तो अंतःपुरके भीतर रहती हो, तुम्हारे बंधु बांधवोंके मारे विना कैसे विवाह करूं यह सन्देह मनमें कभी मत करो, क्योंकि हमारे कुलमें विवाहसे प्रथम दिन बड़ी कुल देवी अम्बिकाकी यात्रा होती है, सो यात्रा करनेके लिये और देवीकी पूजा करनेको नववधू कन्या बाहर जाती हैं, वहाँसे मेरा लेजाना अतिसहज है, जैसे पार्वतीको महादेवजी लेगये ॥ ४२ ॥ जिनके चरणारविन्दोंकी रजसे स्नान करनेको बडे बडे साधु महात्मा अपना महान् अज्ञान दूर करनेके लिये इच्छा करते हैं, हे कमलदललोचन ! जो तुम मेरे ऊपर प्रसन्न न होगे, तो व्रत करके प्राण त्यागन करदूँगी, यदि कहो कि, प्राण त्यागनेसे क्या होगा; तो उत्तर यह है कि, वारम्वार त्यागन करूंगी तो सौ जन्ममें तो प्रसन्न होगे ? ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोला कि, हे द्वारकानाथ !

अंतःपुरांतरचरीमनिहत्य बंधूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२॥ यस्यांघ्रिपंकजरजस्स्नपनं महांतो वांछंत्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ॥ यर्ह्यंबुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशाञ्शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाऽऽहृताः ॥ विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनंतरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भाग०महा०दश०उत्तरा०कृष्णं प्रति रुक्मिणीसंदेशप्रेषणं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥श्रीशुक उवाच॥वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनंदनः ॥ प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ॥ वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥

यह जो मैं गुप्त संदेशा लेकर आया हूं यदि यह करने योग्य कार्य होय तो शीघ्रता करनी चाहिये, विलम्ब करना उचित नहीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिण्युद्वाहे द्विपचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ दोहा–तिरपनमें निज प्रियाहित, हरि विदर्भ पग दीन ॥ छीन लीन वैरीनसों, अपनी प्रिया प्रवीन ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यदुवंशियोंको आनन्दके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीका इस प्रकार संदेशा सुनकर ब्राह्मणका हाथ हाथमें पकड़कर कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, जैसा रुक्मिणीका चित्त मुझमें लगा है, ऐसाही मेरा चित्त भी रुक्मिणीमें लगरहाहै और चिन्ताके मारे रातको नींद भी नहीं आती

मैं जानता हूं कि रुक्मने द्वेष करके मेरे विवाहको मने कर दियाहै ॥ २ ॥ दुष्ट राजाओंको जीतकर दोष रहित अंगवाली अनन्यगति रुक्मिणीको जिस प्रकार काष्ठके मथनेसे मनुष्य अग्नि निकाल लेतेहैं, वैसेही लेआऊंगा ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! मुर दैत्यके मारनेवाले भगवान् रुक्मिणीके विवाहका नक्षत्र जान रथवान्से बोले कि, रथवान्! शीघ्रही रथ जोतकर लाओ ॥ ४ ॥ शैव्य, सुग्रीव, मेघ पुष्प, बलाहक नामक घोडोंको रथमें जोत श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख ला सारथी हाथ जोडकर कहने लगा, रथ उपस्थित है ॥ ५ ॥ रथको देखतेही शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र प्रथम ब्राह्मणको चढाय पीछे आप चढ़ शीघ्रगामी, घोड़ोंके द्वारा आनर्त्तदेशसे चलकर एकही रातमें विदर्भदेश

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ॥ मत्परामनवद्यांगीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ॥ रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स चाश्वैः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः ॥ युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्रांजलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्य स्यंदनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ॥ आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥ राजा स कुंडिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ॥ शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ॥ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥ स्रग्गंधमाल्याभरणैर्विरजोंवरभूषितैः ॥ जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥

पहुँचे ॥ ६ ॥ अपने पुत्र रुक्मके स्नेहवश होकर और उसकी आज्ञानुसार चलनेवाला कुंडिनपुरका राजा भीष्मक शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये पुरकी शोभा और पितृ, देवताओंके पूजनादिकर्म करानेलगा ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त राजा भीष्मकने अपने पुरको शोभायमान करनेके लिये राजमार्गमें झाडू बुहारी दिलवाकर छिड़काव कराया, चित्र विचित्र ध्वजा पताका और वन्दनवारोंसे अपने पुरको अत्यन्त शोभायमान किया ॥ ८ ॥ माला, चन्दन, फूलोंके गहने और स्वच्छ वस्त्रोंसे. शोभायमान स्त्री, पुरुष धाराप्रवाहकी भाँति इधर उधर फिर रहे थे और सब मन्दि अगरकी सुगन्धसे सुगंधित थे ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! पितृ, देवताओंका पूजन करके और विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन जिमाय राजा भीष्मकने रुक्मिणीका यथावत् स्वस्तिवाचन कराया ॥ १० ॥ ॥ फिर कन्याको भलीप्रकार स्नान कराय; कौतुकसे उसके हाथमें विवाहका कंकण बाँध उत्तम नवीन वस्त्र पहराय अनेक अलंकारोंसे सुशोभित किया ॥ ११ ॥ तब द्विजोत्तम ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंको पढकर श्रीरुक्मिणीजीकी रक्षा करनेलगे और अथर्व वेदके मंत्रोंको जाननेवाले पुरोहितने सूर्यादि नवग्रहोंकी शान्ति करनेके लिये होम किया ॥ १२ ॥ हे राजन्! विधि जाननेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको सुवर्णरूपी वस्त्र और तिल मिलाकर गुड़ वा दूधवाली बहुतसी गायोंका दान दिया ॥ १३ ॥

पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ॥ भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मंगलम् ॥ १० ॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमंगलाम् ॥ अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥ चक्रुः सामर्ग्यजुर्मंत्रैर्बद्ध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ॥ पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशांतये ॥ १२ ॥ हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ॥ प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १३ ॥ एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ॥ कारयामास मंत्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४ ॥ मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यंदनैर्हेममालिभिः ॥ पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुंडिनं ययौ ॥ १५ ॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ॥ निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥ तत्र शाल्वो जरासंधो दंतवक्रो विदूरथः ॥ आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौंड्रकाद्याः सहस्रशः ॥ १७ ॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ॥ यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥

जिस प्रकार राजा भीष्मकने अपनी कन्याका मंगल कराया उसी प्रकार चंदेलीके राजा दमघोषने अपने पुत्र शिशुपालके सब मंगलकर्म मंत्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे कराये ॥ १४ ॥ मतवाले हाथियोंका समूह, रथ, पैदल, घोड़े इत्यादि चतुरंगिणी सेनाको साथ लेकर राजा दमघोष कुंडिनपुरमें पहुँचा ॥ १५ ॥ समाचार सुनतेही विदर्भदेशके राजा भीष्मकने अगोनीकर एक सजेहुये स्थानमें उन्हें जनवासा दिया ॥ १६ ॥ तहाँ शाल्व, जरासंध, दंतवक्र, विदूरथ और पौंड्रक आदि सहस्रों राजा शिशुपालकी ओरके आये ॥ १७ ॥ यह समस्त कृष्णबलदेवके शत्रु

सजकर शिशुपालको कन्या दिलानेके लिये आये थे, और मनमें प्रथमही निश्चय करलिया था कि, कदाचित् बलदेव व समस्त यदुवंशियोंको साथ ले कृष्ण आनकर रुक्मिणीको हरेगा तो उसके संग युद्ध करैंगे इस प्रकार मनमें विचार अच्छे २ बलवान् सिपाही घोड़े हाथियोंको संग लेकर संपूर्ण राजा आये ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलदेवजी भी शत्रु शिशुपालकी ओरके राजाओंका साहस सुनकर कहने लगे कि, "रुक्मिणीके लेनेके लिये भाई श्रीकृष्ण अकेला गया है इस कारण लड़ाई अवश्य होगी" यह मनमें निश्चय कर श्रीकृष्णके स्नेहसे हाथी, घोडे, रथ, प्यादे इत्यादि समस्त चतुरंगिणी सेनाको लेकर कुंडिनपुर पहुँचे ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठ जंघाओंवाली भीष्मककी कन्या रुक्मिणी श्रीमोहनप्यारेका

योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ॥ आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ॥ कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशंकितः ॥ २० ॥ बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ॥ त्वरितः कुंडिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥२१॥ भीष्मकन्या वरारोहा कांक्षंत्यागमनं हरेः ॥ प्रत्यापत्तिमपश्यंती द्विज स्याचिंतयत्तदा ॥२२॥ अहो त्रियामांतरित उद्वहो मेऽल्पराधसः ॥ नागच्छत्यरविंदाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २३ ॥ सोपि नवर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ॥ अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचिज्जुगुप्सितम् ॥ मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥२४ ॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ॥ देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ २५ ॥

पैंड़ा देख देख "ब्राह्मण पत्रीलेकर गया है वह अभी लौटकर नहीं आया" इस प्रकार चिन्ता करनेलगी ॥ २२ ॥ मुझ मंदभागिनीके विवाहमें अब एकही रात्रि शेष रही है और कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अभीतक न आये ॥ २३ ॥ और ब्राह्मण जो मेरा सन्देशा लेगया है, वह भी अभीतक लौट नहीं आया नहीं जान पडता है कि, इसका क्या कारण है ? ॥ फिर कहने लगी कि, निर्दोष श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे पाणिग्रहणका उपाय तो निश्चय किया होगा परन्तु "कन्या अभीसे पत्री लिख लिखकर भेजती है" यह दोष विचारकर नहीं आये ॥ २४ ॥ मुझ अभागिनीको विधाता

ईश्वर और देवी पार्वती अनुकूल नहीं हैं ॥२५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके न आनेसे दुःखी मन समयकी जाननेवाली रुक्मिणी आँसुओंसे व्याकुल हुए नेत्रोंको बंदकरके बैठगई॥२६॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके आनेका मार्ग जोहती जोहती रुक्मिणीके बायें अंग, ऊरू, भुजा और नेत्र यह अंग फड़कनेलगे, क्योंकि स्त्रियोंके बायें अंग फड़कनेसे शुभदायक और प्यारी बातके जतानेवाले हैं॥२७॥इसके उपरान्त श्रीकृष्ण चन्द्रने कहा कि हे द्विजोत्तम तुम आगे जाकर खबर करो, श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे ब्राह्मणने अंतःपुरमें व्याकुलतासे दौडतीहुई राजकुमारी रुक्मिणीको देखा ॥२८॥ पतिव्रता रुक्मिणी प्रसन्नवदन और स्वस्थरीतिसे ब्राह्मणको आताहुआ देखकर अपने मनमें "यह कार्य कर आया है" ऐसा निश्चय

एवं चिंतयती बाला गोविंदहृतमानसा ॥ न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥ एवं वध्वः प्रतीक्षत्या गोविंदागमनं नृप ॥ वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ॥ अंतःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ॥ आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञ समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनंदनम् ॥ उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ॥ न पश्यंती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ॥ अभ्यायात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥

कर और उसके लक्षणोसे पहँचान पूँछनेलगी ॥२९॥ हे राजन् ! तब रुक्मिणीजीसे "श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं" यह ब्राह्मणने कहा और श्रीकृष्णचन्द्रने जो कहा था कि "राजाओंको जीतकर रुक्मिणीको लेआऊंगा" यह भी सब वृत्तान्त उनको सुनाया ॥३०॥ श्रीकृष्णचन्द्रको आयाहुआ जान हर्षित मनसे राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी विचार करनेलगी कि, इस समय ब्राह्मणको सर्वस्व दूं, तौ भी थोडा है जब ब्राह्मणके देनेयोग्य कोई वस्तु न देखी, तब केवल प्रणाम करके बहुतसा धन्यवाद दिया * ॥ ३१ ॥ कन्याका विवाह देखनेके लिये श्रीकृष्ण बलदेवको आया सुन नगाड़े

* शंका—ब्राह्मणको देनेके योग्य कोई वस्तु त्रिलोकीमें रुक्मिणीने नहीं देखी कि, यह वस्तु ब्राह्मणको देनी चाहिये, इसीलिये हार मानकर केवल नमस्कारही किया, यह बडी शंका है, क्योंकि वह ब्राह्मण मुनि तो थाही नहीं उसको तो जो वस्तु देती सो लेलेता फिर क्यों नहीं दी ? उस ब्राह्मणको तो धनादिक लेके जो वस्तु संसारमें है, सब वस्तुके लेनेकी इच्छा थी, फिर रुक्मिणीने धनादिक वस्तु क्यों नहीं दी, कोरा नमस्कार क्यों किया ?

बजाता हुआ और बहुतसी पूजाकी सामग्री लेकर राजा भीष्मक श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख गया ॥ ३२ ॥ मधुपर्क लाकर आगे धर सुन्दरवस्त्र और अनेक प्रकारकी भेंट देकर विधिपूर्वक राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवका पूजन करनेलगा ॥ ३३ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवको उत्तम स्थानमें टिकाय सेना सेवको सहित यथायोग्य आतिथ्य करनेलगा ॥ ३४ ॥ इसप्रकार जो राजा इकट्ठे हुएथे उनमें जैसा जिसका पराक्रम, अवस्था, बल और धनके अनुसार सब राजाओंका सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भनगरके पुरवासी श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुनकर

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः ॥ उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ॥ ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ॥ यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ॥ आगत्य नेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपंकजम् ॥३६॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ॥ असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥ ३७ ॥ किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ॥ अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥ एवं प्रेमकलाबद्धा वदंति स्म पुरौकसः ॥ कन्या चांतःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्तांबिकालयम् ॥ ३९ ॥

नेत्ररूप अंजलियोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलको पान करने लगे ॥ ३६ ॥ और सब नर नारी विचार करनेलगे कि, दोषरहित रुक्मिणी श्रीकृष्णचन्द्रकेही योग्य है, एवं श्रीकृष्णचन्द्र भी रुक्मिणीके पति होनेयोग्य हैं इसप्रकार परस्पर कहनेलगे ॥ ३७ ॥ कि, जो कुछ हमने पुण्य किये हैं उसके प्रभावसे प्रसन्न होकर ईश्वर हमारे ऊपर अनुग्रह करैं कि, जिससे श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीका पाणिग्रहण करैं ॥३८॥ हे राजन् ! इस प्रकार

उत्तर–लक्ष्मीका पिता जो समुद्र था उसको ब्राह्मणने पान करलिया (पीलिया) और लक्ष्मीका पति जो भगवान् उनको ब्राह्मणने लातसे मारा, और लक्ष्मीका छोटाभाई कमल, उसको ब्राह्मणोंने देवताओंके पूजनेके लिये तोडलिया, ब्राह्मणोंका ऐसा कुकर्म देखके लक्ष्मी ब्राह्मणोंसे रुष्ट होगई, ब्राह्मणोंको धनादिक वस्तु नहीं देती हैं इसलिये लक्ष्मीका रूप रुमिणीने ब्राह्मणको धन नहीं दिया, कोरा नमस्कार किया है ॥

प्रेममें मग्न होकर जिससमय सब पुरवासी कहनेलगे, उसी समय बहुतसी सखियोंके साथ श्रीरुक्मिणीजी पुरसे बाहर अम्बिकादेवीका पूजन करनेके लिये चलीं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका भले प्रकार ध्यान करते करते श्रीरुक्मिणीजी अम्बिकादेवीका दर्शन करनेके लिये पैरोंही गईं ॥ ४० ॥ हे परीक्षित् ! श्रीरुक्मिणीजीके संग मौन धारण किये पुरोहितानी और सखी सहेली जिस समय चलीं, उसी समय कवच पहर पहर और अस्त्र हाथोंमें ले महाबलवान् राजाके सिपाही उसकी रक्षाके लिये संग होलिये और उस समय मृदंग, शंख, ढोल, तुरही, भेरी, रणसिंहादिक अनेक प्रकारके बाजे बजनेलगे ॥ ४१ ॥ संगीत विद्यामें अतिनिपुण सहस्रों वेश्या संगमें नाचती हुई चली जाती थीं और माला चन्दन वस्त्र

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ॥ सा चाऽनुध्यायती सम्यङ्मुकुंदचरणांबुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥ गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ मृदंगशंखपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥४१॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ॥ स्रग्गंधवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥ ४२ ॥ गायन्तश्च स्तुवंतश्च गायका वाद्यवादकाः ॥ परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवंदिनः ॥४३॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकरांबुजा ॥ उपस्पृश्य शुचिः शांता प्रविवेशांबिकांतिकम् ॥ ४४ ॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ॥ भवानीं वंदयांचक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥ ॥ ४५ ॥ नमस्ये त्वांबिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम् ॥ भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥

आभूषणोंसे शृंगार करके और अनेक प्रकारकी सामग्री भेंट लेके ब्राह्मणोंकी स्त्रियें संग गईं ॥ ४२ ॥ गाने और बजानेवाले सूत, बन्दीजन श्रीरुक्मिणीजीको बीचमें करके, चले जारहे थे ॥ ४३ ॥ हाथ पाँव धोय, आचमन कर, पवित्र हो, देवीके मन्दिरमें जाय रुक्मिणी अम्बिकादेवीके निकट गईं ॥ ४४ ॥ विधिपूर्वक वृद्ध ब्राह्मणोंकी स्त्रियें रुक्मिणीजीसे महादेवजीसहित भवानीकी पूजा करानेलगीं ॥ ४५ ॥ जब पूजा कर चुकीं, तब रुक्मिणीजीने मनमें कहा कि, हे अंबिका पार्वती ! तुम्हारे सन्तानसमेत मंगलरूपिणी तुम्हें वारम्वार प्रणाम करके यही वर माँगती हूं कि, श्रीकृष्णचन्द्र

मेरे पति हों, इस प्रकार मस्तक नवायकर रुक्मिणीजीने प्रार्थना की ॥ ४६ ॥ हे राजन्! इसके उपरान्त जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, फल, आभूषण और अनेक प्रकारकी भेंटसे अलग अलग दीपकोकी पङ्क्तियोंसे देवकी पूजा करनेलगीं ॥४७॥ इसके पीछे उसी प्रकार रुक्मिणी नमकीन पूऐ, पान, लावा, सुपारी गन्ने आदिसे सौभाग्यवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका पूजन करनेलगीं ॥ ४८ ॥ फिर श्रीरुक्मिणीने अम्बिकादेवी और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको नमस्कार कर उनसे प्रसाद और आशीर्वाद लिया ॥ ४९ ॥ फिर मौन व्रतको त्याग, जडाऊ मुँदरीसे शोभायमान श्रीरुक्मिणीजी अपनी दासीका हाथ पकड़ मंदिरसे वाहर निकलीं ॥ ५० ॥ ईश्वरकी मायाकी तुल्य वड़े वड़े शूरवीर राजाओंको मोहित करनेवाली, सुन्दर कटिवाली,

अद्भिर्गंधाक्षतैर्धूपैर्वासस्स्रङ्माल्यभूषणैः ॥ नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥ ४७ ॥ विप्रस्त्रियः पतिमती स्तथा तैः समपूजयत् ॥ लवणापूपतांबूलकंठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ॥ ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामांबिकागृहात् ॥ प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुंडलमंडिताननाम् ॥ श्यामां नितंबार्पितरत्नमेखलां व्यंजत्स्तनीं कुंतलशंकितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥ शुचिस्मितां बिंबफलाधरद्युतिशोणायमानद्विजकुंदकुड्मलाम् ॥ पदा चलंतीं कलहंसगामिनीं शिंजत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ५३ ॥ यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ॥ पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ ५४ ॥

कुण्डलोंसे शोभायमान मुखवाली रुक्मिणी रत्नजडित जड़ाऊ, करधनी नितम्बोंमें पहरे स्तनोंकी प्रगटता और केशोंकी शंकासे चलायमान नेत्रवाली ॥ ५१ ॥ सुन्दर मुसकान, कुन्दरूके फलकी तुल्य अव्रण और होठोंकी कान्तिसे कुन्दकी कलीके समान दंत पाँतिपर अरुणाई छाईहुई राजहंसके समान गतिसे और झनकारशब्द करते, नूपुरोंकी प्रभासे शोभित चरणोंसे गमन करती हुई, रुक्मिणीको देख, संगमें जो वडे वडे तेजस्वी शूरवीर योद्धा आये थे, वह सबके सब कामदेवसे पीडित हो मोहित होगये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् !

उन रुक्मिणीजीकी उदार हँसनि और लज्जापूर्वक चितवनसे समस्त राजाओंके मन हरेगये और वह अस्त्रशस्त्रोंको छोड़कर रथ घोड़े इत्यादिसे मूढ़ होकर पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार चलायमान कमलकोशके समान कोमल चरणोसे धीरे धीरे चली, उस समय श्रीकृष्णचन्द्रके आनेका मार्ग देखतीहुई रुक्मिणीजीने बायें हाथके नखोंसे अलकोंको हठाय सब आयेहुये राजाओंको देख सन्मुख खड़े हुये वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दको देखा ॥ ५५ ॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित ! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी ज्योंही रथपर चढ़ने लगी,त्योंही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे हरण कर अपने गरुड़चिह्नवाले रथमें चढ़ाय क्षत्रियोंकी सेनाका तिरस्कारकर उसे इस प्रकार निकालकर

सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥ उत्सार्य वामकरजैरलकानपांगैः प्राप्तान्हियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ॥५५॥ तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ॥ रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥ ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥ अहो धिगस्मान् यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुरणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

लेगये कि, जैसे सियारोंके बीचमें अपने भागको लेकर सिंह बेधड़क होकर चला जाता है, फिर बलरामादि सब यदुवंशियोंसहित रुक्मिणीको लेके धीरे धीरे चलनेलगे ॥ ५६ ॥ हे नृपोत्तम ! महाअभिमानी जरासन्धादि राजा यशका नाश करनेवाला यह अपना अपमान न सहसके और बोले कि, अहो ! हमको धिक्कार है, जिसप्रकार केशरीके भागको कुत्ता चुराकर लेजाता है, वैसेही हम धनुषधारियोके यशका नाश कर यह गँवार ग्वालिया राजकुमारी रुक्मिणीको चुराकर लिये जाता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

दोहा—यौवनमें रिपुपक्षके, सब राजनको जीति । रुक्मिणिको लै द्वारका, करी व्याहकी रीति ॥ १ ॥ श्रीशुकदेजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार सब राजा अत्यन्त क्रोधित होकर कवच पहर, अपने अपने वाहनोंपर चढ़कर श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे दौड़े ॥ १॥ हे परीक्षित् ! जब यादवोंके सेनाध्यक्षने इनकी सेनाको आता हुआ देखा, तो वह लोग भी अपने धनुषकी टंकार करके उनके सन्मुख उपस्थित हुए ॥ २ ॥ युद्धविद्यामें अत्यन्त प्रवीण वह राजा लोग घोड़े, हाथी और रथोंपर बैठकर जिस प्रकार मेघ पर्वतोंपर जल वर्षाते हैं, उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे

श्रीशुक उवाच ॥ इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥ स्वैःस्वैर्बलैः परिक्रांता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥ तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ॥ तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥ २ ॥ अश्वपृष्ठे गजस्कंधे रथोपस्थे च कोविदाः ॥ मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ॥ सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ॥ विनंक्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ॥ अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ सुन्दर कटिभागवाली रुक्मिणी अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रकी सब सेनाको बाणोंसे ढकाहुआ देख, अतिभयभीत और विह्वलनेत्र हो लाज सहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुख देखनेलगी ❋ ॥४॥ तब भगवान् वासुदेव रुक्मिणीको डराहुआ जान कहनेलगे कि, हे वामलोचने! हे सुनयनी! तुम कुछ भय मतकरो, क्योकि हमारे ओरके यादव इनकी समस्त सेनाको क्षणभरमें विध्वंस करदेंगे । हे राजन् ! गद, संकर्षणादि शूरवीर उन राजाओंका पराक्रम न सहसके और उनके घोड़े, हाथी और रथोंको महातीक्ष्ण बाणोसे नाश करनेलगे ॥ ५ ॥ ६ ॥

* शंका—श्रीकृष्णकी स्त्री रुक्मिणी श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाली फिर रुक्मिणी युद्ध देखकर दु:खी क्यों हुई ? यह बडे अचम्भेकी बात है ।
उत्तर—युद्धमें बडे बडे शूरमाओंका और वीरलोगोंका नाश हुवा, यह कलंक अपने ऊपर विचार कर रुक्मिणी बहुत दु:खी हुई कि, यह कलंक मुझको जन्म जन्मको लगा और संसारके लोग कहेंगे कि, रुक्मिणीके विवाहमें बहुतसे शूरवीर मारेगये ॥

रथी, घुड़चढे और हाथियोंपर विराजमान योद्धाओंके पगड़ियोंसहित सहस्रों शिर कटकट गिरने लगे ॥ ७ ॥ तलवार गदा और धनुपसे हाथ
कट कटकर गिरने और करभके समान जंघायें कट कटकर गिरनेलगीं, अनेक घोड़े, खच्चर, हाथी, गधे, मनुष्य इनके शिर कटकर पृथ्वीमें गिरगये
॥८॥ हे भारत ! जीतनेकी इच्छा करनेवाले यादवोने जब इस प्रकार शत्रुसेनाका संहार किया तब अत्यन्त डरकर जरासन्धादि राजा रण छोड़कर
भागगये ॥९॥ जब स्त्रीके हरजानेसे व्याकुल तेजहीन, उत्साहरहित शिशुपालका मलीनमुख होगया, तब सब राजा उसके पास आनकर समझाने
लगे ॥१०॥ कि हे पुरुषसिंह ! तुम अपने मनकी उदासीको छोड़दो क्योंकि, देह धारण करनेवालोंको सुख और दुःख सर्वदा नहीं रहते हैं ॥११॥

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ॥ सकुंडलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥ हस्ताः सासिगदेष्वा
साः करभा ऊरवोंघ्रयः ॥ अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥८ ॥ हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकांक्षिभिः ॥
राजानो विमुखा जग्मुर्जरासंधपुरस्सराः ॥ ९ ॥ शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ॥ नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्य
द्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥ भो भो पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ॥ न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥
यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ॥ एवमीश्वरतंत्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगा
नि पराजितः ॥ त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥१३॥ तथाऽप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ॥
कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥ अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ॥ पराजिताः फल्गुतंत्रैर्यदुभिः
कृष्णपालितैः॥१५॥रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ॥ तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥

जिस प्रकार काठकी पुतली नचानेवालेकी इच्छासे नाचती है ऐसेही ईश्वरके आधीन जीवको सुख दुःख होता है ॥ १२ ॥ जरासन्ध बोला कि,
हे शिशुपाल ! देखो ! इसी कृष्णसे मैंने सत्रह बार तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध किया, परन्तु मेरी हारही हुई और कुछ शोच न हुआ,
केवल एक बार जीता, उसका कुछ हर्षभी न हुआ, दैवके वश कालने समस्त जगत् चलायमान किया है, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे
राजन् ! यद्यपि बड़े बडे शूरवीर यूथनाथोंके पतियोंके भी हम पालन करनेवाले थे, तोभी थोडी सेनावाले कृष्णपालित यदुवंशियोंसे हारगये
॥ १५ ॥ जानपडता है कि, इस समय उनके दिन अच्छे हैं, इसी कारण उन्होंने हम ऐसे बलवान् शत्रुओंको जीतलिया, जब हमारे

दिन भले आवेंगे तो हम भी जीतेंगे ॥ १६ ॥ हे महाराज ! जब इसी प्रकार अनेक राजाओंने शिशुपालको समझाया तब अपने बचे बचाये नौकर चाकर और सेनाको लेकर शिशुपाल अपने देशको चला गया और मरनेसे बचे बचाये राजाभी अपने अपने स्थानोंको चलेगये ॥ १७ ॥ इधर एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्णका शत्रु रुक्मी अपनी बहनके हरनेका अपराध न सहकर श्रीकृष्णके पीछे दौडा ॥ १८ ॥ और अत्यन्त क्रोधित हो कवच पहर, धनुष ग्रहण कर, सब राजाओंके सुनानेको महाबलवान् रुक्मीने यह प्रतिज्ञा की ॥ १९ ॥ कि, युद्धमें श्रीकृष्णके मारे विना और रुक्मिणीको लाये विना सत्य है कि, मैं कुंडिनपुरमें न आऊंगा ॥ २० ॥ इसप्रकार रुक्मी प्रतिज्ञा कर और रथमें चढ सारथीसे बोला

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ॥ हतशेषाः पुनस्तेपि ययुः स्वंस्वं पुरं नृप ॥ १७ ॥ रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ॥ पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥ रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥ १९ ॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ॥ कुंडिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ॥ चोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ॥ नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२ ॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ॥ रथेनैकेन गोविंदं तिष्ठतिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥ धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ॥ आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥ २४ ॥

कि, जहाँ कृष्ण हैं वहाँ शीघ्रही घोडोंको हांक कर ले चलो क्योंकि, मुझे उससे युद्ध करना है ॥ २१ ॥ मैं आज उस मन्दबुद्धि ग्वालके पराक्रमका मद अपने तीक्ष्ण बाणोंसे चूर्ण करूंगा, जो मेरी बहन रुक्मिणीको बलात्कार हरके लेगया है ॥ २२ ॥ खोटी बुद्धिवाला रुक्मी, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके बलको न जान कटुवाक्य कहता हुआ अकेला रथ दौडाकर " खडा रहु खडा रहु " इस प्रकार भगवान् वासुदेवको पुकारने लगा ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त अपने दृढ धनुषको खैंचकर रुक्मने श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा कि, हे यादवकुलकलंक ! एक क्षणमात्र

खड़ा होकर मुझसे युद्धकर ॥ २४ ॥ अरे दुष्टबुद्धि ! जिसप्रकार होमकी सामग्रीको कौवा लेजाता है इसी प्रकार तू मेरी बहनको कहाँ चुराकर लिये जाता है ? अरे कपटयुद्ध करनेवाले छली ! तेरे घमंडको मैं अभी चूर्ण करता हूँ ॥ २५ ॥ और तेरे भले दिन हैं तो मेरे बाणोंसे पीडित होकर युद्धक्षेत्रमें मत सोवे और रुक्मिणीको छोड़कर जहाँ तेरे सींग समायँ वहाँ चलाजा, तब श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें मुसकाय, उसके धनुषको काट छः बाणोंसे रुक्मीको छेदन किया ॥ २६ ॥ आठ बाणोंसे रथके घोड़ोंको, दो बाणोंसे रथवानको बींधडाला और तीन बाणोंसे ध्वजा काटडाली कि, इतनेहीमें रुक्मने और धनुष लेकर पाँच बाण श्रीकृष्णके शरीरमें मारे ॥ २७ ॥ तब भगवान् वासुदेवने उसका वह धनुषभी

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वांक्षवद्धविः ॥ हरिष्येऽद्य मदं मंद मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुंच दारिकाम् ॥ स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥ अष्टभिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ॥ स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पंचभिः ॥ २७ ॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ॥ पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ॥ यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९ ॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतंग इव पावकम् ॥ ३० ॥ तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ॥ छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हंतुमुद्यतः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ॥ पतित्वा पदयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥

काट डाला, फिर रुक्म और धनुष ले आया, उसकोभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय काट दिया ॥ २८ ॥ रुक्मने जो जो परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल, तलवार, बरछी, भाले हाथमें लिये वह सब भगवान् देवकीनन्दनने काट गिराये ॥ २९ ॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त रथसे कूदकर और हाथमें तलवार लेकर मारनेकी इच्छासे, जिस प्रकार पतंग अग्निके सन्मुख झपटताहै, उसी प्रकार रुक्म श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर झपटा ॥ ३० ॥ झपटते हुए उस रुक्मकी ढाल तलवारको तिल तिलभर बाणोंसे काटकर पैनी धारकी तलवार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मका प्राण संहार करनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ भाईके मारनेकी इच्छा देख भयसे व्याकुल होकर पतिव्रता रुक्मिणी नेत्रोंसे आँसू भरके श्रीकृष्णचन्द्रके

चरणोंपर गिर यह करुणाभरे वचन कहने लगी ॥ ३२ ॥ कि, हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे देवदेव ! हे जगत्पालक श्रीकृष्णचन्द्र ! हे महाभुज ! मेरे भाईको तुम मत मारो, क्योंकि यह तुम्हारे मारनेयोग्य नहीं है ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! त्राससे कम्पायमान सब अंग, शुष्क मुख, गद्गद कण्ठ कि जिसकी व्याकुलतासे सुवर्णकी माला गिरी जातीं थीं, इस प्रकार रुक्मिणीको अपने चरणोंपर गिरीहुई देख करुणावश हो श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंमें जल भर आया ॥३४॥ उन्होंने उस दुष्ट कर्म करनेवाले रुक्मको वस्त्रसे बाँध और मूछों सहित शिर मूंड, अभद्र कर अपने रथके पीछे बाँधलिया कि, इस बीचमें ही यदुवंशियों सहित बलराम सुखधामने रुक्मकी सेनाको जिस प्रकार हाथी कमलिनियोंको मर्दन करता है, उसी प्रकार मर्दन किया ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त रुक्मकी समस्त सेनाका संहार कर बलदेवजीने श्रीकृष्ण

योगेश्वराप्रमेयात्मन्देवदेव जगत्पते ॥ हंतुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तया परित्रासविकंपितांगया शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकंठया ॥ कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥३४॥ चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत्॥ तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५ ॥ कृष्णांतिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ॥ तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः ॥ विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत ॥ ३६ ॥ असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ॥ वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ ३७ ॥ मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिंतया॥सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक्पुमान् ॥ ३८ ॥

चन्द्रके पास आनकर रुक्मको देखा कि, उसका शिर मुड़गया है और मृतकके समान रथके पीछे बँधाहुआ देखकर सामर्थ्यवान् बलभद्रजीने उसे छोड़ दिया ॥ ३६ ॥ और अत्यन्त झुँझलाकर कहा कि, हे कृष्ण ! आपने यह बड़ा निन्दित कर्म किया, जो सालेको पकड बाँधा, हमारी इसमें बहुत निन्दा होगी, क्योंकि शिर, मूंछ, दाढी मुड़वाकर विरूप करदेना यही अपने नातेदारका मारना है ॥ ३७ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि, हे सुशीले ! तुम्हारे भाईके कुरूप होनेमें हमारा कुछ दोष नहीं है, क्योंकि यह पुरुष अपने कर्मोंका फल भोगता है, सुख दुःखका देनेवाला और

कोई नहीं है ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त बलदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको समझानेलगे कि, हे भाई ! अपने नातेदारका मारना अपराध करनेपर भी उचित नहीं, उसको अपराधी जानकर छोडदे, क्योंकि वह तो अपने पहलेही दोषोंसे मररहा है, फिर उसके मारनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले हे सुमुखि ! क्षत्रियोंका यही धर्म विधाताने बनाया है कि, जिस धर्मके कारण भाई भाईका प्राणसंहार कर देताहै, फिर साले श्वशुरोंकी तो बातही क्या है , इसलिये हमारा क्या दोष है ? ॥ ४० ॥ तिसके पीछे श्रीकृष्णसे बोले कि, हे कृष्ण ! राज्य, पृथ्वी, धन, स्त्री, प्रतिष्ठा, तेज और वस्तुके हेतु श्रीमदान्ध अभिमानी राजा लड़ते हैं परन्तु हमको यह बात उचित नहीं ॥ ४१ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि, सब प्राणियोंमें दुष्टहृदय, अर्थात् सब बातका बुरा विचारनेवाला जो शिशुपाल उसका बुरा और अपने भाईका भला चाहती हो, यह बात तुमको

बंधुर्वधार्हदोषोऽपि न बंधोर्वधमर्हति ॥ त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥ भ्राताऽपि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्ततः ॥ ४० ॥ राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः ॥ मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदांधाः क्षिपंति हि ॥ ४१ ॥ तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ॥ यन्मन्यसे सदाऽभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्पते देवमायया ॥ सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥४३॥ एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥४४॥ देह आद्यंतवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ॥ आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥

उचित नहीं, हे रुक्मिणी ! तुम्हारी विषम बुद्धि है, जैसी कि, अज्ञानी पुरुषोकी होती है इसलिये तुम्हारा भाई जो सब जीवोंका शत्रुरूप है, उसका तुम अज्ञानी पुरुषोंके समान भला चाहती हो, सो यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है, क्योंकि उसका भला चाहनेसे और सम्बंधियोंका बुरा होगा ॥४२॥ यह हमारा मित्र, यह शत्रु और यह समान है, इस प्रकार देहाभिमानी पुरुषोको मोह उत्पन्न हो जाताहै ॥४३॥ जैसे जलभरे घड़ेमें एकही सूर्यके अनेन प्रतिबिम्ब दीखते हैं, आकाश एकही है, परन्तु तो भी घट आदिमें बहुतसे दीखतेहैं उसी प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंमें एकही शुद्ध आत्मा है, उसीको अज्ञानी पुरुष अनेक रूपसे मानते हैं ॥ ४४ ॥ यह जो द्रव्य अर्थात् अधिभूत, प्राण, इन्द्रिय और अध्यात्मक गुण, अधिदेव

इतने स्वरूप आत्माके अविद्याने रचे हैं, वह देहधारियोंको संसारमें भटकाते हैं ॥ ४५ ॥ हे पतिव्रता रुक्मिणी ! मिथ्या देहसे आत्माका संयोग नहीं है, और इस देहसे वियोग भी नहीं है, यदि कोई कहे कि, देह मिथ्या कैसे ?-तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाशक सूर्य है, उसी प्रकार देहका प्रकाश आत्मासे होताहै ॥४६॥ जन्म मरणादि छः विकार देहके हैं, आत्माके कदाचित् नहीं, जैसे चन्द्रमाकी कला घटती बढती है, चन्द्रमा कभी नहीं घटता बढ़ता, क्योंकि वह तो पूर्णरूप है और जैसे अमावास्याके दिन चन्द्रमाकी कला घटनेसे चन्द्रमाका नाश मानते हैं, उसी प्रकार देहके नाश तिरोभावसे आत्माका नाश कहनेमें आता है ॥ ॥ ४७ ॥ जैसे स्वप्नावस्थामें पुरुष अपने आपको विषयके भोगनेके सुखको मिथ्याभोग करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष संसारको प्राप्त होता है ॥४८॥ हे सुहासिनी ! इसलिये तुम अज्ञानसे उत्पन्नहुये

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति ॥ तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ॥ कलानामिव नैवेंदोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥ यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ॥ अनुभुंक्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥ तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ॥ तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ॥ वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥ प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः ॥ स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥ ५१ ॥ अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्राप्य यवीयसीम् ॥ कुंडिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥ भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ॥ पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥

आत्माको शोष और मोह देनेवाले शोकका तत्त्वज्ञानसे त्यागन करो और स्वस्थ होओ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! इस प्रकार भगवान् बलदेवजीने जब समझाया, तब सुकुमारी श्रीरुक्मिणीजीने मनकी उदासी त्याग बुद्धिसे मनको सावधान किया ॥ ५० ॥ हे राजन् ! शत्रुसे छूटा, हतसैन्य, केवल प्राणही जिसके शेष रहेहैं, प्रभाव और मनोरथ हीन, मुण्डित शिर, दुष्टबुद्धि रुक्म विचार करनेलगा कि, मैं प्रतिज्ञा करके आया था कि, कृष्णको विना मारे और विना रुक्मिणीको लाये कुंडिनपुर नहीं आऊंगा, सो अब क्या करूं ? यह विचार वहाँही भोजकट पुर बसाकर रहनेलगा ॥५१॥५२॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार समस्त राजाओंको जीतकर राजा

भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीको द्वारकापुरीमें लाकर विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ५३ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! उस समय द्वारकापुरीमें घर घर बडा उत्सव होने लगा, क्योंकि यदुवंशियोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी अनन्यभक्ति थी ॥५४॥ आनन्दमें मग्न, उज्वल उज्वल मणियोंके जडाऊ गहने पहरेहुये स्त्री पुरुष चित्र विचित्र वस्त्र धारणकिये कृष्ण रुक्मिणीके देनेके लिये सुन्दर सुन्दर वस्तु लानेलगे ॥५५॥ ऊँची ऊँची ध्वजा और चित्र विचित्र माला, वस्त्र रत्नोंकी बन्दनमालाओंसे और द्वार द्वारपर धानकी खीलें, अंकुर, फूल और जलके भरे कलश और अगर व धूप दीप इत्यादिकोंसे द्वारकापुरी अत्यन्त शोभायमान होनेलगी ॥५६॥ स्थान स्थानपर छिडकाव होरहाहै, दरवाजोंपर केले सुपारियोंके घने वृक्ष लग रहेहैं और जो सुहृद्

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहेगृहे ॥ अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥ नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्ट मणिकुण्डलाः ॥ पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥५५॥ सा वृष्णिपुर्युत्तभितेंद्रकेतुभिर्विचित्रमाल्यांबररत्नतोरणैः ॥ बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमंगलैरापूर्णकुंभाऽगुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥ सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ॥ गजैर्द्वार्षु परामृष्टरंभापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥ कुरुसृंजयकैकेया विदर्भयदुकुंतयः ॥ मिथो मुमुदिरे तस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ॥ ५८ ॥ रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ॥ राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥ द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ॥ रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवो नाम चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

राजा बुलायेगयेहैं, उनके मद झरते हाथियोंसे ऊंचे उठाये सुपारी और केलोंके वृक्षोंसे बड़ी शोभा होरही है ॥ ५७ ॥ अत्यन्त प्रसन्नताके मारे द्वारकावासी दौड़े दौड़े फिरते हैं और उनके बीचमें कुरुदेश, सृंजय देश, केकयदेश और विदर्भ देशके राजा भी विवाहमें मिलकर आनन्द प्राप्त करने लगे ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार जहाँ तहाँ रुक्मिणी हरके ले जानेके चरित्रको श्रवण कर राजा और राजाओंकी कन्या बडा आश्चर्य मानने लगीं ॥ ५९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! द्वारकापुरीमें पुरवासियोंको लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रके लक्ष्मी सहित दर्शन कर बडा आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीविवाहोत्सववर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दोहा—पचपनमें प्रद्युम्नको, भयो जन्म उत्साह। शंबरासुर हरले गयो, ताहि मारि किय व्याह ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! वासुदेवका अंश जो कामदेव सो प्रथम महादेवजीके क्रोधसे भस्म होगया था, वही अब फिर देह पानेके लिये वासुदेवके यहाँ आया ॥ १ ॥ और वही कामदेव श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें जन्म ले प्रद्युम्ननामसे विख्यात हुआ, जो कि अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रसे किसी प्रकार न्यून नहीं था ॥ २ ॥ हे राजन्! एक शंबरनाम दैत्य उसे अपना वैरी जान दशदिनके भीतर कुमार प्रद्युम्नको हरण कर समुद्रमें डाल अपने घरको चलागया * ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ॥ देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥२॥ तं शंबरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ॥ स विदित्वाऽऽत्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥ ३ ॥ तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ॥ वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तं शंबराय कैवर्ता उपजह्रुरुपायनम् ॥ सूदा महानसं नीत्वाऽवद्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शंकितचेतसः ॥ बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

एक बडा बलवान् मत्स्य इस बालकको निगलगया, उस मत्स्यको धीमरोंने बडा जाल डालकर और मछलियों सहित पकड़ा ॥ ४ ॥ उस बडे मत्स्यको लाकर धीमरोंने शंबरासुरको भेंट किया और शंबरासुरने रसोई बनानेवालोंको दिया उन्होंने रसोईमें लाकर छूरीसे इस अद्भुत मत्स्यका हृदय विदीर्ण किया ॥ ५ ॥ तो उस मत्स्यके पेटमे बालकको निहार उन्होंने मायावतीको देदिया तब मायावतीको अत्यन्त शंका हुई तब देवर्षि

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रकी वसाई हुई द्वारकापुरीमें कपट करके कोई प्राणी वहाँ नहींजासक्ता और कपटवेषधारी जो कोई द्वारकाके भीतर चलाभी जाय तो वह उसी समय भस्म होजाय है, क्योंकि क्षण क्षणमें द्वारकापुरीके चारों ओर सुदर्शनचक्र घूमता रहता है, वही द्वारकापुरीकी रात दिन रक्षा करता रहता है, ऐसी कठिन द्वारकापुरीमें शंबरनाम दैत्य कैसे चलागया। और भगवान्के पुत्रको कैसे हर लेगया यह महा आश्चर्यकी वात है।

उत्तर—जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको वसाया था उस समय यह आज्ञा दी थी कि हे सुदर्शनचक्र! तुम रात दिन द्वारकापुरीके चारों ओर घूमते रहना और रक्षा करते रहना, परन्तु ब्राह्मण वश चाहे तो उसको पुरीमें जानेके लिये मत रोकना और ब्राह्मण कपट रूप धारण करके आवे तो उसको भी मत रोकना इसप्रकारकी श्रीकृष्णकी आज्ञाको शम्बरासुर जानके ब्राह्मणका रूप बनाकर द्वारकापुरीमें चलागया और श्रीकृष्णके पुत्रको चुराकर ले आया ॥

नारदजीने आनकर उससे सब वृत्तान्त कहा कि,यह बालक तेरा स्वामी कामदेव है और श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें उत्पन्न हुआ है, इसप्रकार उत्पत्ति और शंबरासुर जैसे समुद्रमें डाल आया था वहाँ जिस प्रकार इसे मत्स्य निगलगया सो सब कह सुनाया ॥ ६ ॥"शिवजीने जब कामदेवको भस्म किया था, तब रतिके विलाप करनेपर उसे समझाकर कहाथा कि, तू शंबरासुरके यहाँ जाकर वास कर वहाँ तेरा पति तुझे रसोईंघरमें मिलेगा, तू उसे पाल लीजियो मछलीके उदरसे प्राप्त होगा, तबसे रति रूप छिपाये वहाँ रहती थी" वह जो कामदेवकी स्त्री थी, सो बड़ी पतिव्रता और उसका नाम रति था, अपने पति कामदेवका जो देह भस्म होगया था; सो उसके उत्पन्न होनेके लिये प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ वह मायावती कामदेवकी

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ॥ पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शंबरेण सा सूपौदनसाधने ॥ कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदाऽर्भके ॥ ८ ॥ नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः ॥ जनयामास नारीणां वीक्षंतीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥ सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलंबबाहुं नरलोकसुंदरम् ॥ सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरंग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ॥ मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नारायणसुतः शंबरेणाहृतो गृहात् ॥ अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥

स्त्रीको शंबरासुरने मूँग भात करनेके लिये अपने पास रक्खा था, सो वह उस बालकको कामदेव जान उससे अत्यन्त स्नेह करनेलगी ॥८॥हे राजा परीक्षित् ! थोड़ेही दिनोंमें यौवन अवस्थाको प्राप्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका पुत्र प्रद्युम्न देखनेवाली स्त्रियोंको मोह उत्पन्न करनेलगा ॥ ९ ॥ कमलदलसे बड़े नेत्र, लम्बी भुजायें, मृत्युलोकमें सुन्दर ऐसे अपने पति प्रद्युम्नको लाजभरी मुसकान और उठी भ्रुकुटीसे देख प्रीति करके सुरतसम्बन्धी जो भाव हैं,उनसे वह रती सेवन करनेलगी ॥ १० ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीने कहा कि हे माता ! जान पड़ता है कि, तुम्हारी मति और प्रकारकी होगई है, इसीलिये मातृभावको त्यागकर स्त्रीके समान आचरण करती हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर रतिने कहा कि, तुम भगवान् वासुदे

वके पुत्र हो, शंवरासुर तुम्हें चुराकर ले आया है मैं तुम्हारी स्त्रीहूं रति मेरा नाम है, आप कामदेव हो ॥ १२ ॥ तुम जब दशदिनके भी नहीं थे, तब शंवरासुर समुद्रमें डाल आया था और वहाँ तुम्हें एक मत्स्य निगलगया, हे प्रभो ! यहाँ आप मत्स्यके पेटमेंसे आये हैं ॥ १३ ॥ तुम्हारा शत्रु शंवरासुर वडा मायावी है, सैकडों माया जानता है इसलिये असह्य और दुर्जय है उसको मोहनादि मायासे आप मारिये ॥ १४ ॥ क्योंकि तुम्हारे ढूंढनेके लिये स्नेहसे अति व्याकुल परम दीन तुम्हारी माता टिटिहरीके समान शोच कर रही है और विना वछडेके गौकी समान आतुर है॥१५॥ इस प्रकार मायावती स्त्रीने कह सब मायाओंको नाश करनेवाली महामाया महात्मा प्रद्युम्नजीको दी ॥ १६ ॥ तब प्रद्युम्नजीने शंवरासुरके पास

एष त्वाऽनिर्दशं सिंधावाक्षिपच्छंवरोऽसुरः ॥ मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिह प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ॥ मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४ ॥ परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ॥ पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥ १५ ॥ प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम्॥१६॥स च शंवरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत ॥ अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन्कलिम्॥१७॥ सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदा हत इवोरगः॥ निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥ गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्न य महात्मने ॥ प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥ तामापतंतीं भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ॥ अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २० ॥

आकर और उसका असह्य वचनोंसे तिरस्कार कर कलह उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये बुलाया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! खोटे वचनोंसे तिरस्कार पाय शंवरासुर जिस प्रकार ठोकर लगनेसे सर्प फुंकार मारता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधित हो लाल लाल नेत्र किये और गदा हाथमें लेकर निकला ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त शंवरासुरने गदाको फिराय महात्मा प्रद्युम्नजीके ऊपर डालकर वज्रपातके समान कठोर शब्द किया ॥१९॥ हे परीक्षित् ! भगवान् प्रद्युम्नजीने अपने ऊपर आतीहुई उस गदाको चूर्णकर और महाक्रोधित हो एक गदा शंवरासुरको मारी ॥ २० ॥

तब शंबरासुर मयदैत्यकी बताई मायाका आश्रय ले आकाशमें जाकर श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करनेलगा ॥ २१ ॥ इसके उन पत्थरोंकी वर्षासे पीडित होकर कृष्ण कुमार प्रद्युम्नजीने सब मायाओंका नाश करनेवाली अपनी सत्त्वगुणी मायाको बुलाया ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त शंबरासुरने गुह्यक, गंधर्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंकी सहस्रों माया छोड़ीं परन्तु कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने उसी समय सब मायाओंको नाश कर दिया ॥२३॥ हे राजा परीक्षित् ! महात्मा प्रद्युम्नजीने महातीक्ष्ण पैनी धारकी तलवार लेकर कुण्डल, किरीट और दाढी मूछों सहित शंबरासुरका मस्तक काट लिया ॥ २४ ॥ तब आकाशसे देवतालोगोने फूल वर्षाये और स्तुति करी और फिर आकाशमें विचरनेवाली स्त्रियोंने

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ॥ मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ॥ सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥ ततो गौह्यकगांधर्वपैशाचौरगराक्षसीः ॥ प्रायुंक्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २२ ॥ निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुंडलम् ॥ शंबरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्र्वंजसाऽहरत् ॥ २३ ॥ आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ॥ भार्ययांबरचारिण्या पुरीं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥ अंतःपुरवरं राजॅल्ललनाशतसंकुलम् ॥ विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ प्रलंबबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखांभोजं नीलवक्रालकालिभिः ॥ कृष्णं मत्वा स्त्रियो हीता निलिल्युस्तत्रतत्र ह ॥ २८ ॥ अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ॥ उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥

आकाशमार्गमें होकर महात्मा प्रद्युम्नजीको द्वारकापुरीमें पहुँचादिया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! सहस्रों स्त्रियोंसे सुशोभित अंतःपुरमें आकाशसे उतरकर बिजली सहित जैसे मेघ आता है, उसी प्रकार आये ॥ २६ ॥ वर्षाकी घटाओंके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीतवस्त्र धारण किये लम्बी भुजा अरुण नेत्र, सुन्दर मुसकान मनोहर मुख, नीली टेढ़ी अलकावलीसे शोभायमान मुखारविन्दवाले प्रद्युम्नजीको देखकर "श्रीकृष्ण आये" यह जान स्त्रियें लज्जित होकर जहाँ तहाँ छिपगईं ॥ २७ ॥ २८ ॥ और कुछ एक स्त्री कोई न्यूनाधिक बात देखकर "यह कृष्ण नहीं हैं" यह निश्चयकर

प्रसन्न हो आश्चर्य मान स्त्रियोंमें श्रेष्ठ रतिसहित कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीके पास आई ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त स्नेहसे जिसके स्तनोंसे दूध चुवे, नीले कटाक्ष और मनोहर वचनवाली, राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी अपने नष्ट हुये पुत्रको स्मरणकरके कहनेलगी ॥ ३० ॥ कि, मनुष्योंमें श्रेष्ठ कमलकी समान नेत्रवाला यह बालक किसका है? और किस स्त्रीने इसे गर्भमें धारण किया है? और इसे यह स्त्री कौनसी मिली है? ॥ ३१ ॥ मेरा भी पुत्र नष्ट होगया है और सूतिकागृहमेंसेही उसे कोई लेगया है, जो कदाचित् जीवित होगा तो इसीके समान बड़ा और ऐसाही उसका स्वरूप होगा ॥ ३२ ॥ परन्तु बड़ा आश्चर्य है कि (शार्ङ्ग) धनुषधारी श्रीकृष्णचन्द्रके समान रूप इसने पाया इसका स्वरूप और हाथ

अथ तत्रासितापांगी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ॥ अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ को न्वयं नरवैडूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ॥ धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥ मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ॥ एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ॥ आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ३३ ॥ स एववा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ॥ अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥ ३४ ॥ एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ॥ देवक्याऽऽनकदुंदुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपि भगवान्तूष्णीमासीज्जनार्दनः ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं शंबराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥

पाँवका चलाना, बोलना, हँसना चितवन इत्यादि भी सब श्रीकृष्णचन्द्रकेही समान हैं ॥ ३३ ॥ जान पड़ताहै कि, जो बालक मैंने गर्भमें धारण किया था, वह निश्चय यही है, क्योंकि प्रतिक्षण इसमें मेरी प्रीति बढ़तीही जाती है और मेरी बॉई भुजा भी फड़क रही है ॥ ३४ ॥ हे राजा परीक्षित्! विदर्भदेशके राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी बैठीहुई इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि, इतनेहीमें उत्तम यशवाले, भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वसुदेव देवकीको संग लेकर वहाँ आये ॥ ३५ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र यह स्वयं जानते थे कि, पत्नीसहित पुत्र आया है, परन्तु तो भी चुपचाप रहे, इतनेहीमें देवर्षि नारदजीने आनकर जिस प्रकार इनको शंबरासुर चुराकर लेगया और समुद्रमें डाल आया, वहाँ मछली निगलगई वह

सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ३६ कृष्णके अंतःपुरमें वास करनेवाली स्त्रियें बहुत कालके पीछे जैसे मृतकशरीरमें प्राण आते हैं-उसी प्रकार प्रद्युम्नजीको आयाहुआ श्रवण कर बडा आश्चर्य मान उनकी बडाई करने लगीं ॥ ३७॥ हे परीक्षित! वसुदेव देवकी और कृष्ण बलदेव तथा रुक्मिणीजी और स्त्री पुरुष प्रद्युम्नजीसे मिलकर आनन्दमें मग्न होगये ॥ ३८ ॥ उस समय सब द्वारकावासी प्रद्युम्नको आयाहुआ सुन "अहो! बडा आश्चर्य है मृतककी तुल्य यह बालक आया है," इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३९ ॥ अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रके समान स्वरूपवान्, प्रद्युम्नजी हमारे पुत्र हैं यह विचार एकान्तमें अत्यन्त प्रेमसे प्रद्युम्नजीकी माता रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी रानी भ्रान्त हो प्रद्युम्नजीकी सेवा करने लगीं सो यह कुछ आश्चर्यकी

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णांतःपुरयोषितः ॥ अभ्यनंदन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ॥ दंपती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥ ३८॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ॥ अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥ ३९ ॥ यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन्रहरूढ भावाः ॥ चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिंबबिंबे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महा पुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे समुद्रक्षिप्तप्रद्युम्नप्रत्यागमनं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥ स्यमंतकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

बात नहीं है, क्योंकि लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र कामदेवका स्मरण करतेही मन चलायमान होजाता है, फिर साक्षात् मूर्त्तिका दर्शन करतेही यदि स्त्रियें सेवा करैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? ॥ ४०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ दोहा–छप्पनमें हरिको वृथा, मणिको लगो कलंक। सत्राजितको मणि दई, लई सुता सुमयंक ॥ १ ॥ इसके उपरान्त श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित! अब सत्राजित्की कथा वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर श्रवण कीजिये

कि, प्रथम अपराध करके सत्राजित्ने अपने पापकी निवृत्तिके लिये पीछे अपनी कन्याको स्यमंतकमणिके साथ श्रीकृष्णचन्द्रको देनेका उपाय किया था ॥ १ ॥ तब राजा परीक्षित् कहने लगे कि, हे योगीश्वर शुकदेवजी ! सत्राजित्ने श्रीकृष्णचन्द्रका क्या अपराध किया और स्यमंतकमणि उसने कहाँसे पाई ? और पीछे किसलिये अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्रको दी, यह सब हमारे आगे विस्तारसहित वर्ण करो ॥ २ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! सत्राजित् भगवान् सूर्यनारायणका परमभक्त और मित्र था, इसलिये प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने सत्राजित्को स्यमंतकमणि दी ॥३॥ हे महाराज ! सत्राजित् उस मणिको कण्ठमें पहर सूर्यके समान प्रकाशमान् हो द्वारकापुरीमें आया उस समय उसके तेजसे

राजोवाच ॥ सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम् ॥ स्यमंतकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ॥ प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमंतकम् ॥ ३ ॥ स तं बिभ्रन्मणिं कंठे भ्राजमानो यथा रविः ॥ प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ॥ दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशंकिताः ॥ ५ ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु शंखचक्रगदाधर ॥ दामोदरारविंदाक्ष गोविंद यदुनंदन ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ॥ मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७ ॥ नन्वन्विच्छंति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ॥ ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥

यह भी ज्ञात नहीं होता था कि, यह सत्राजित् आरहा है ॥ ४ ॥ तेजकी चकचौंधीके कारण दृष्टि चौंध जानेसे मनुष्य सत्राजित्को दूरसे आताहुआ देखकर उग्रसेनकी सभामें चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे "यह सूर्यभगवान् आरहे हैं" इस प्रकार कहनेलगे ॥५॥ हे नारायण ! हे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र ! हे गोविन्द ! हे यादवोंके आनन्ददायक ! आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे जगत्पति ! तुम्हारे दर्शन करनेके लिये सूर्य भगवान् अपनी तीक्ष्ण किरणोंके समूहसे मनुष्योंके नेत्रोंको चुरातेहुए चले आते हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! त्रिलोकीके देवताओंमें श्रेष्ठ देवताभी आपका मार्ग ढूँढते हैं और इसीलिये यादवोंमें छिपा जान आपके ढूँढनेको सूर्य भगवान् आरहे हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कमलदलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अज्ञानी पुरुषोंकी यह बात सुन हँसकर कहनेलगे कि, यह
सूर्यदेव नहीं हैं, मणि करके प्रकाशमान सत्राजित् आरहा है ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त सत्राजित्ने अपने घरमें मांगलिक कर्म करवाय और देवम
न्दिरमें ब्राह्मणोंसे पूजा कराय वहां उस मणिको स्थापित किया ❀ ॥ १० ॥ हे भारत ! वह मणि नित्यप्रति चार मनका भार आठ भार सुवर्ण उगलती
थी, उस मणिमें एक यह भी प्रभाव था कि, जहाँ वह मणि है, उस देशमें कभी दुर्भिक्ष न पड़े, अकालमृत्यु तथा अरिष्ट न हो, सर्प नहीं काटे,

श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य बालवचनं प्रहस्यांबुजलोचनः ॥ प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥ स
त्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमंगलम् ॥ प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥ दिनेदिने स्वर्णभारान
ष्टौ स सृजति प्रभो ॥ दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ॥ न संति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥
॥ ११ ॥ स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ॥ नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभंगमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेक
दा मणिं कंठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ॥ प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥

मनुष्यके देहमें दुःख न हो अशुभ दृष्टि न आवै और मायावी पुरुष अर्थात् माया जाननेवाले भी उस देशमें वास नहीं करसक्ते हैं ॥ ११ ॥ एक
समय श्रीकृष्णचन्द्रने वह मणि राजा उग्रसेनके लिये सत्राजित्से माँगी परन्तु सत्राजित्ने लोभके वश होकर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रको नहीं दी,
और अपने मनमें "श्रीकृष्णचन्द्रको कैसे मना करूं" यह भी विचार न किया॥ १२ ॥ इसके उपरान्त कुछ समय व्यतीत होनेपर सत्राजित्का भाई

शंका–सत्राजित् यादव देवताके मंदिरमें ब्राह्मणोंसे मणिको क्यों स्थापन कराया ? देवमंदिरमें उस मणिको आपही आप क्यों स्थापन नहीं किया ?
उत्तर–सूर्यने सत्राजितको मणिदेके पीछेसे सत्राजित्से कहा कि, इस मणिको रात दिन धारण मत करना जो तुम्हारी अग्निहोत्र कोठरी है उसमें इस मणिको रखदेना, सत्राजित सूर्यका ऐसा वचन सुनके अपने
घरको आया और विचार किया कि, विना दूसरा स्नान किये देवमंदिरमें कैसे जाऊं ऐसा विचार करके जबतक स्नान करनेकी तैयारी की, तबतक ऋषिलोगोंसे मणिको रखायके आप स्नान करके तब अग्नि
होत्रकी कोठरीमें होम करनेके लिये गया इसलिये देवमंदिरमें ब्राह्मणों करके सत्राजित्ने मणिको स्थापन कराया ॥

प्रसेन उस महाप्रकाशवाली मणिको कण्ठमें पहर घोडेपर चढकर वनमें शिकार खेलनेको गया ॥१३॥ कि, इतनेहीमें एक सिंह घोडेसहित प्रसेनको मार मणि लेकर पर्वतकी कन्दरामें जानेलगा, उसी समय मणि लेनेकी इच्छासे जाम्बवान् ऋच्छने उसे मारडाला ॥ १४ ॥ और अपने बिलमें जाकर उस मणिको पुत्रका खिलौना किया, इधर सत्राजित् अपने भाई प्रसेनको शिकार खेलकर वनसे न आयाहुआ जान चिन्ता करने लगा ॥ १५॥ कि, मणि कण्ठमें धारण करके मेरा भाई वनमें शिकार खेलनेको गयाहै और उस मणिपर कृष्णका दाँत है इसलिये जान पडताहै कि, भाईको श्रीकृष्णने

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ॥ गिरिं विशञ्जांबवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥ सोपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ॥ अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ १५ ॥ प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ॥ भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णेकर्णेऽजपञ्जनाः ॥ १६ ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ॥ तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलं भीममंधेन तामसा वृतम् ॥ एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥

मारडाला, इस बातको सत्रजित्ने अपनी स्त्रीसे कहा उसके मुखसे सुनकर मनुष्य गुप्त रीतिसे बातें करनेलगे ❋ ॥ १६ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र यह यशका नाश करनेवाला कलंक लगा सुन और बहुतसे द्वारकावासियोंको संग ले प्रसेनके ढूँढ़नेको चले ॥१७॥ हे राजन् ! वनमें सिंहसे मारे प्रसेन व घोडेको देख और आगे पर्वतके ऊपर ऋच्छसे मरेहुये सिंहको सब द्वारकावासी देखनेलगे ॥ १८ ॥ बडी अँधेरी भयानक ऋच्छराज जाम्बवा

❋ दृष्टान्त–सत्राजित्ने स्त्रीसे कहा कि घरकी बात किसी स्त्रीसे नहीं कहना (दृष्टान्त) एक वनियाँ था सो दिशाको गया, वहा उसने दोनों चोंटोंके बीचमें नीचे कौवेका पख पड़ा था देखकर यह बहम हुआ कि, यह हमारे पेटसे निकला है, सो घर आय अपनी घरवालीसे बोले कि, आज हमारे पेटसे कौवेका पख निकला, जाने क्या रोग हुआ, उसने टहलनियोंसे कही, टहलनियें औरके घर जाकर बोलीं कि, फलाने साहजीके पेटमेंसे पाच कौवे निकले ! यह हमने अपनी आंखोंसे देखा, उस स्त्रीने औरसे कहा कि, साहजीके पेटमेंसे पचास कौवे रोज निकले करेहैं उसने औरसे पाचासौ कहे कहाँतक कहैं, जब वह लाला वाहर निकले, तो लोग कहने लगे कि, जब यह लाला दिशाको जाते हैं तो इनके पेटमेंसे दो हजार कौवे निकलते हैं स्त्रीसे बात कहनेमें यह दोष है कि, निकली होठों चढगई कोठों ॥

न्‌के बिलपर सब प्रजाको बाहर खडा करके आप अकेलेही उसके भीतर गये ॥१९॥ तहाँ उस मणिसे बालकको खेलताहुआ देख मणि लेनेकी इच्छासे आप भी बालकके समीपही खडे होगये ॥२०॥ प्रथम कभी न देखनेके कारण मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर डरपोककी नाईं धाई पुकारनेलगी तब महाबलवान् जाम्बवान् धाईका पुकारना सुन क्रोधित हो सामने दौड़कर आया ॥ २१ ॥ क्रोधी जाम्बवान् श्रीकृष्णके प्रभावको न जान और उनको साधारण पुरुष जान, अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेलगा ॥ २२ ॥ परस्पर जीतनेकी इच्छासे, श्रीकृष्ण और जाम्बवान्‌का शस्त्र, पत्थर, वृक्ष और भुजाओंसे महाघोर संग्राम होनेलगा,जिसप्रकार मांसके लिये दो शिकारी पक्षी लडतेहैं ॥२३॥ वज्रपातके समान कठोर दृष्टिसे खेदरहित

तत्र दृष्ट्वा मणिं श्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ॥ हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकांतिके ॥ २० ॥ तमपूर्वनरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥ तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जांबवान्बलिनां वरः ॥ २१ ॥ स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनाऽऽत्मनः ॥ पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥२२॥ द्वंद्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ॥ आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ॥ वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टांगोरुबंधनः ॥ क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः॥२५॥जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ॥ विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ॥ कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम् ॥ २७ ॥

अट्ठाईस दिनरात परस्पर युद्धहुआ ॥२४॥ जब श्रीकृष्णके मुष्टिकके प्रहारसे उसके सब अंग शिथिल होगये, बल घटगया और पसीना आगया, तब जांबवान् महा आश्चर्य मानकर कहने लगा॥२५॥कि, समस्त प्राणियोंके प्राणमें जो बल है और सहोबल अर्थात्, इन्द्रिय, हृदय,देह इत्यादिकोंका बल आपही हो और विष्णुभगवान् पुराणपुरुष कृपालु सबके ईश्वर आपही हो ॥२६॥ विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकके तुम निश्चय निमित्तकारण हो और उत्पत्तिके योग्य पदार्थके उपादानकारण हो और समस्त प्रेरणाव,लोके ईश्वर तुम कालरूप हो, तथा आत्मा जीवके उत्कृष्ट आत्मा हो ॥२७॥

विष्णु पुराण हो, इसीलिये मेरे इष्टदेव रघुनाथ हो, जिन रघुनाथजीके कुछेक क्रोधसे भ्रूके कटाक्षपातसे मगर और बडे बड़े ग्राह दुःखित होगये, तब समुद्रने मार्ग दिया और जिन श्रीरामचन्द्रजीने अपना यश प्रगट करनेके लिये पुल बाँधा, लंका जलाई, महातीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काटकर पृथ्वीमें डाले, सो मुझे निश्चय विदित होता है, कि आप मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥२८॥ हे परीक्षित् ! जब इसप्रकार जाम्बवानको ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उससे कहने लगे ॥ २९ ॥ कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्र सुखके देनेवाले अपना हाथ परमकृपाकर अपने भक्तजाम्बवान्के ऊपर धर प्रेमगर्भित वाणीसे कहनेलगे ॥ ३० ॥ हे ऋच्छराज जाम्बवान् ! हम मणि लेनेके लिये यहाँ तेरे

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिंगिलोऽब्धिः ॥ सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लंका रक्षश्शिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥२८॥ इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ॥ व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविंदाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ॥ कृपया परया भक्तं प्रेमगंभीरया गिरा ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥ मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनाऽमुना ॥३१॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जांबवतीं मुदा॥अर्हणार्थं समणिना कृष्णायोपजहार ह ॥३२॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः॥ प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥ निशम्य देवकीदेवी रुक्मिण्यानकदुंदुभिः ॥ सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितं शपंतस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ॥ उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥

बिलमें आये हैं, क्योंकि हमें एक मिथ्या कलंक लगा है, उसे मणि लेजाकर दूर करेंगे ॥ ३१ ॥ यह वचन सुनतेही जाम्बवान्ने बड़े आनन्दपूर्वक मणिसहित अपनी कन्या जाम्बवती सेवा करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जिन द्वारकावासियोंको श्रीकृष्णचन्द्र बिलके बाहर खड़ा कर गयेथे, उन्हें श्रीकृष्णका मार्ग देखते जब बारह दिन होगये, तब उन्होंने जाना कि, श्रीकृष्ण अब नहीं निकलेंगे इसलिये सब दुःखित होकर द्वारकापुरीको चलेगये ॥ ३३ ॥ बिलमेंसे श्रीकृष्णचन्द्र नहीं निकले, यह बात द्वारकावासियोंके मुखसे श्रवण कर देवकी, रुक्मिणी, वसुदेव और सुहृद्जन तथा जातिके मनुष्य सबही अत्यन्त चिन्ता करनेलगे ॥ ३४ ॥ और सब द्वारकावासी दुःखित

होकर सत्राजित्को दुर्वाक्य कहते श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनेकेलिये महामाया दुर्गादेवीकी पूजा करनेलगे ॥३५॥ जब देवीकी पूजा करनेसे "श्रीकृष्णको देखोगे" इसप्रकार द्वारकावासियोंको देवीने आशीर्वाद दिया तब उसी समय सिद्धमनोरथ श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकावासियोंको आनन्द देते स्त्री सहित आये ॥ ३६ ॥ हे राजन्! जिसप्रकार कोई मृतक पुरुष फिर लौट आवे, उसी प्रकार मणि पहरे स्त्रीको लिये श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख समस्त द्वारकावासी परमआनंदित हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त सभामें राजा उग्रसेनके पास सत्राजितको बुलाकर "जाम्बवान् ऋच्छ से मणि लाये हैं" यह कहकर वह मणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्को दे दी ॥ ३८ ॥ सत्राजित् मणि ले अत्यन्त लज्जित हो और मुख नीचाकर पछताताहुआ घरको चलागया ॥ ३९ ॥ महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे विरोध हुआ जान व्याकुल हो, सत्राजित् अपने पूर्व अपराधको वारंवार

तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च ॥ प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ॥ सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥ सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ॥ प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥ स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वाऽवाङ्मुखस्ततः ॥ अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ॥ कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽच्युतः कथम् ॥ ४० ॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ॥ अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१॥ दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ॥ उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शांतिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥

स्मरण करके यह पाप कैसे दूर हो ? और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कैसे प्रसन्न हों ? इस प्रकार चिन्ता करनेलगा ॥ ४० ॥ अब मैं क्या कर्म करूं कि, जिससे कल्याण हो ! क्योंकि, मैंने विना विचारे श्रीकृष्णचन्द्रको दोष लगाया है, मैं अत्यन्त कृपण मंदबुद्धि और द्रव्यका लोभी हूं इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि, जिससे मनुष्य मुझे बुरा न कहैं ॥ ४१॥ हे भरतवंशावतंस ! इसप्रकार सत्राजित्ने विचार करके यह निश्चय किया कि, श्रीकृष्णचन्द्रको मैं अपनी कन्या दूंगा और पीछेसे दहेजमें मणि भी देदूंगा यही अच्छा उपाय है, इसके अतिरिक्त और उपायसे मेरा अपराध दूर न होगा; इस प्रकार बुद्धिसे स्थिर करके सत्राजित्ने मंगलरूप अपनी कन्या और मणिको स्वयंही उपाय करके

श्रीकृष्णचन्द्रके अर्पण करी ॥ ४२॥४३॥ श्रीकृष्णचन्द्रने भी सुन्दर स्वभाव रूप उदारतादि गुणयुक्त सत्यभामाका पाणिग्रहण किया, जिसको पहले कृतवर्मादि कई यादव माँग चुके थे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि. हे महाराज परीक्षित् ! तब श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजितसे कहा कि, यह मणि हमको नहीं चाहिये क्योंकि तुम सूर्यके भक्त हो, इसलिये यह मणि तुम्हारेही पास रहेगी और इससे जो सुवर्ण होगा सो हमारे यहाँ भिजवादेना कारण कि, तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है इस कारण तुम्हारा जो धन है सो हमाराही है, यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गूढ़ अभिप्राय था॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां स्यमंतकमणिहरणं नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥ दोहा–शतधन्वाके हतनको

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ॥ मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४३ ॥ तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ॥ बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥ तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे जाम्बवती विवाहो नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विज्ञातार्थोऽपि गोविंदो दग्धानाकर्ण्य पांडवान् ॥ कुंतीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गांधारीं द्रोणमेव च ॥ तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥ लब्ध्वैतदंतरं राजञ्शतधन्वानमूचतुः ॥ अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥

जो कुछ लगो कलंक । मणि मँगाय अक्रूरसे, मेटो सतवन अंक ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ ! यद्यपि पांडवगण बिलमें होकर लाक्षाभवनसे बाहर निकल गये, यह बात आप भली प्रकार जानते थे, परन्तु तोभी पांडव और कुन्तीको जला हुआ सुन कुलोचित व्यवहार करनेके लिये बलरामजीको संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्र कुरुदेशको गये ॥ १ ॥ भीष्म पितामह, विदुर सहित कृपाचार्य, गान्धारी द्रोणाचार्य इनसे श्रीकृष्णचन्द्र कहनेलगे कि, हाय ! पांडव जलगये और बडाही कष्ट उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ हे राजन् कुछ दिनोंके पीछे अक्रूर और कृतवर्मा यह दोनों अवसर पाय शतधन्वासे कहनेलगे कि, इस समय सत्राजितसे मणि क्यो नहीं छीन लेता, क्योंकि जिस सत्राजितने अपनी कन्यारत्न हमको देनी स्वीकार

और कर फिर कृष्णको व्यादही, वह सत्राजित् अपने भाई प्रसेनके पीछे क्यों न जाय अर्थात् मरै क्यों नहीं ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसप्रकार अक्रूर और
कृतवर्माके बहॅकानेसे बुद्धिहीन और क्षीणजीवन हो, पापी असाधु शतधन्वाने शयन करते हुए, सत्राजित्का शिर काटलिया ॥ ५ ॥ कसाई जिस
प्रकार पशुका वध करता है, ऐसेही सत्राजित्को जब शतधन्वा मारकर चलागया तब सत्राजित्की स्त्री अनाथके समान पुकार पुकार कर रोदन
करने लगी ॥ ६ ॥ इसके पीछे अपने पिता सत्राजित्को माराहुआ देख सत्यभामा " हाय पिता ! हाय पिता ! ! " कहकर अत्यन्त विलाप
करनेलगी ॥ ७ ॥ फिर मृतक पिताकी देहको तेलकी कोठरीमें रखकर सत्यभामा हस्तिनापुरको चलीगई, यद्यपि शतधन्वासे सत्राजितको

योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः ॥ कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ॥ शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥ ५ ॥ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रंदंतीनामनाथवत् ॥ हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचाऽर्पिता ॥ व्यलपत्ताततातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ॥ कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽऽचख्यौ पितुर्वधम् ॥८॥ तदाकर्ण्येश्वरो राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यास्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ॥ शतधन्वानमारेभे हंतुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

मारा है यह बात अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने प्रथमही जानली थी परन्तु तोभी सत्यभामा " मेरे पिताको शतधन्वाने मारा है " यह बात
दुःखित होकर कहने गई ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी सत्राजित्का मरना
सुन और अपने मनुष्यावतारका कारण जान " हमको महाकष्ट उपस्थित हुआहै " इसप्रकार कह और आँखोंमें आँसू भरकर विलाप करने
लगे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त सत्यभामा और अपने भाई बलदेवजीको साथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरसे द्वारकापुरीमें आनकर शतधन्वाके
मारने और उससे मणि लेनेका उपाय करनेलगे ॥ १० ॥ यहाँ शतधन्वाने सुना कि, श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे मारनेका उपाय किया तब वह

अत्यन्त भयभीत होकर प्राण बचानेके लिये कृतवर्मासे सहायके निमित्त कहा, तब कृतवर्माने उत्तर दिया ॥ ११ ॥ कि, भाई ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवजीका अपराध मैं कभी न करूंगा, क्योंकि उनका अपराध करके किसका कल्याण होगा ॥ १२ ॥ देखो इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे द्वेष करके कंस लक्ष्मीसे भ्रष्ट होकर अपने भाइयों सहित मारागया और मगध देशके राजा जरासन्धने तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रहवार युद्ध किया परन्तु युद्धमें हार अंतको विरथ होकर चलागया ॥ १३ ॥ जब कृतवर्मासे कोरा जवाब पाया तब यह निपट उदास हो, अक्रूरजीके पास जाकर कहने लगा तब अक्रूरजीने कहा कि, भाई ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पराक्रम जान लेनेपर कौन पुरुष उनसे विरोध

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ कोनु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ॥ जरासंधः सप्तदश संयुगान्विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ॥ सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हंति च ॥ चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥ यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल उच्छिलींध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥ अनंतायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ॥ अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन्गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥

करेगा ? ॥१४॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करता है, उसकी मायासे मोहित होकर उसकी चेष्टाको ब्रह्मादिक भी नहीं जानते ॥१५॥ देखो ! सातवर्षकीही अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वतको उखाडकर जिस प्रकार बालक छत्राकको उठाताहै उसी प्रकार उठालिया ॥१६॥ उन्हीं अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये नमस्कार है और जो सबके आदिकारण, निर्विकार सबके आत्मा हैं, उन्हें हम केवल नमस्कार करते हैं ॥१७॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार जब अक्रूरजीने भी सूखा उत्तर दिया, तब शतधन्वा अति घबराय मणि अक्रूरके पास रख, चारसौ कोस चलनेवाले घोडेपर चढकर भागगया ॥१८॥ हे राजन् ! जब इसप्रकार शतधन्वा भागा, तब रामकृष्ण गरुड़

ध्वजावाले रथमें बैठ शीघ्रगामी घोडोंसे श्वशुरके मारनेवाले शतधन्वाके पीछे दौडे ॥ १९ ॥ जब शतयोजनसे अधिक घोडेसे न चलागया और मिथिलापुरीके बागमें गिरपडा, तब शतधन्वा उस घोडेको छोड भयभीत हो पाँव प्यादे भागनेलगा और श्रीकृष्ण भी अत्यन्त क्रोधित होकर उसके पीछे दौडनेलगे ॥ २० ॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्र शतधन्वाको पकड और अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले चक्रसे उसका शिर काट वस्त्रोंमें मणि ढूँढनेलगे ॥ २१ ॥ जब शतधन्वाके वस्त्रोंमें मणि न निकली, तब श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसे आनकर कहा कि, देखो भाई ! शतधन्वाको वृथाही मारा उसपर मणि न निकली ॥ २२ ॥ इसके पीछे बलदेवजी कहनेलगे कि, शतधन्वा और किसीके पास मणि धर आया है, इस कारण उस पुरुषको ढूँढनेके लिये तुम द्वारका जाओ ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र सब बातको जानतेहैं परन्तु तोभी "मणिका मुझसे छिपाव किया है

मिथिलाया उपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्यामधावन्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाऽग्रजांतिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ॥ कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनंदनः ॥२४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मथिलः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ॥२५॥ मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥ ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६ ॥

यह मनमें निश्चयकर बलदेवजी क्रोधकरके कहने लगे, तात्पर्य यह है कि, द्रव्य ऐसा निषिद्ध पदार्थ है, जिसके लिये कृष्ण बलदेवका भी मन बिगड़गया, फिर मनुष्योंकी तो बातही क्या है ? " कि, मेरा परमप्यारा विदेहदेशका राजा बहुलाश्व है, उसके देखनेको मेरा चित्त बहुत भटक रहा है,इसलिये मैं वहाँ जाऊंगा, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रसे कह यादवोंके आनंददायक महात्मा बलदेवजीने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥ प्रसन्न मन मिथिलापुरीका राजा बलदेवजीको आयाहुआ देख शीघ्र उठ, पूजन करनेके योग्य बलदेवजीकी पूजन करनेकी सामग्रियोंसे पूजा करनेलगा, तब सामर्थ्यवान् बलदेवजी कितने एक वर्षतक वहाँ रहे ॥ २५ ॥ प्रीतियुक्त महात्मा जनकजीसे सत्कार पाय धृतराष्ट्रका पुत्र

दुर्योधन वहाँ आय महात्मा बलदेवजीसे गदा चलानेकी विद्या सीखनेलगा ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त प्रियकार्य करनेवाले सामर्थ्यवान् भगवान् केशवमूर्तिने द्वारकापुरीमें आनकर शतधन्वाका नाश और मणिका न मिलना अपनी प्यारी भार्या सत्यभामासे कहा ॥ २७ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने सुहृदोंको संग लेकर मृतक सत्राजितके परलोकसाधनकी क्रिया कराने लगे ॥ २८ ॥ सत्राजित्से मणि छीन लेनेकी शिक्षा देनेवाले अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वाका मरना सुन श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त भयभीत होकर भागगये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! जब द्वारकापुरीसे अक्रूरजी चलेगये तब द्वारकावासीमनुष्योंके मनमें ताप और अरिष्ट बारम्बार होनेलगे ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कितने

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ॥ अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥ ततः स कारयामास क्रियां बंधोर्हतस्य वै ॥ साकं सुहृद्भिर्भगवान्यायाः स्युः सांपरायिकाः ॥ २८ अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ॥ व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ॥ शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥ इत्यंगोपदिशंत्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ॥ मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ॥ स्वसुतां गांदिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्रयत्र ह ॥ देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥ ३३ ॥

एक ऋषि जिन्होंने प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमा वर्णन की है, वह श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूलकर ऐसा कहते हैं, क्योंकि मुनियोंके निवास श्रीकृष्णचन्द्रके विद्यमान रहते अरिष्ट किस प्रकार होसक्ते हैं ? ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दूषित करके फिर और ऋषियोंका मत वर्णन करते हैं, कोई कोई ऋषि कहते हैं कि, एक समय जब इन्द्रने जल नहीं वर्षाया, तब काशीके राजाने अपनी कन्या गांदिनी पुरीमें आयेहुए श्वफल्कको दी, तब काशीके सम्पूर्ण देशोंमें खूब वर्षा हुई ॥ ३२ ॥ पिता श्वफल्कके समान प्रभावशाली अक्रूरजी जहाँ वास करते हैं,

उस देशमें खूब वर्षा होती है और महामारी इत्यादि किसी प्रकारका खेद प्राणियोंको नहीं होता है ❀ ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वृद्ध पुरुषोंका वचन सुनकर, "केवल अक्रूरही यहाँसे गया है और मणिकोभी वही लेगया है" यह बात निश्चय करके अक्रूरको काशीसे बुलानेके लिये श्रीकृष्ण चन्द्रने कहा ॥ ३४ ॥ उसके पीछे आपही अक्रूरकी पूजा कर हे काका अक्रूर ! इस प्रकार सम्बोधन देकर प्यारी प्यारी बात कह सब

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ॥ इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५ ॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ॥ स्यमंतको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः ॥ ३६ ॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ॥ दायं निनीयाऽपः पिंडान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ॥ किं तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥

विश्वके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरके मनकी बात जान मुसकराकर कहने लगे ॥ ३५ ॥ कि, हे दाननके पति अक्रूर ! हम निश्चय जानते हैं कि, स्यमंतकमणि शतधन्वा तुम्हारे पास रखगया है और वह तुम्हारे पास है ॥ ३६ ॥ सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उसे पिंड जल दान और ऋण चुकाकर जो शेष धन रहेगा, उसे शास्त्रानुसार उसकी कन्याके पुत्र लेंगे ॥ ३७ ॥ हे अक्रूर ! यद्यपि तुम हमसे कहो मत, परन्तु

शंका–बडे बडे आश्चर्यकी बातें भागवतमें सुनी जाती हैं कि, जिस जिस गाँवमें अक्रूर वास करता है, उसी उसी गाँवमें इन्द्र जलकी वर्षा करता है फिर उस गाँवमें महामारीकी बीमारी नहीं होती, तब अक्रूर तो मथुरामें जन्में मथुरा छोडके दूसरे गाँवको नहीं गये, फिर मथुरा छोडके द्वारकामें वास किया दूसरे गाँवमें वास नहीं किया, फिर सातद्वीपमें तो अक्रूर नहीं है, तब सात द्वीपमें इन्द्र जलको वर्षा क्योंकरताहै ?

उत्तर–अक्रूरकी माता गान्दिनीने ब्रह्माका तप करके ब्रह्मासे यह वरदान लिया कि, जिस स्थानपर तू (गान्दिनी) वा तेरा पति, अथवा तेरा पुत्र निवास करेगा और अपने मनमें जब वर्षनेकी इच्छा करेगा उसी समय जिस स्थानपर चाहेगा वर्षा बहुत होगी और जब अपने मनमें अभिमान करके प्रजाकी बुराई विचारेगा, वर्षा होनेकी इच्छा नहीं करेगा उसी समय तुम्हारा प्राण छूट जायगा, इसलिये बुद्धिमान् अक्रूर रात दिन प्रजाको सुख देनेके लिये अपने मनमें रात दिन वर्षा होनेकी इच्छा करते थे ॥

तो भी हम जानते हैं कि, मणि तुम्हारे अतिरिक्त और किसीपर नहीं रह सक्ती, क्योंकि आप सुन्दर व्रत धारण करनेवाले हैं, तब अक्रूरजीने कहा कि, अच्छा मेरेही पास सही. तुम्हें क्या प्रयोजन है; यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, बड़े भाई बलदेवजी इस मणिके पीछे मेरा विश्वास नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥ हे बड़भागी अक्रूर ! तुम मणि दिखाकर शीघ्रही मेरे भाईको शान्त करो और मेरे पास मणि नहीं है यह मत कहो, यदि कदाचित् मणि तुम्हारे पास न होती तो सुवर्णकी वेदी बनाकर काशीमें जाकर अखण्ड यज्ञ काहेसे करते ? ॥ ३९ ॥ जब इस प्रकार साम भेदन कर समझाया, तब अक्रूरजीने सूर्यके समान तेजवाली, वस्त्रसे ढकीहुई वह मणि निकालकर श्रीकृष्णचन्द्रको देदी ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्यमंतकमणि अक्रूरजीसे लेकर जातिके बन्धु बांधवोको दिखाय अपना मिथ्या कलंक दूरकर फिर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीको समर्पण

दर्शयस्व महाभाग बंधूनां शांतिमावह ॥ अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तंते रुक्मवेदयः ॥३९॥ एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ॥ आदाय वाससा छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमंतकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ॥ विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमंगलं च ॥ आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शांतिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे स्यमंतकोपाख्यानं नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा पांडवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ॥ इंद्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥

करदी ॥ ४१ ॥ परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका कहाहुआ मनुष्योंके दुःखोंका हरनेवाला, सुन्दर मंगलरूप इस स्यमंतक मणिके प्रसंगको जो कोई पुरुष पढ़े वा श्रवण करै अथवा स्मरण करै वह कुत्सित पापोंके कलंकको दूर कर कल्याणको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां स्यमंतकोपाख्याने सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ दोहा—[illegible] भद्रा, लक्ष्मणा, मित्रविन्दका लिन्द । अट्ठावन अध्यायमें, वरीं सकल गोविन्द ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! [illegible] पाण्डव जलगये यह बात होने पर फिर द्रुपदराजाके यहाँ पीछे दिखाईदिये, इस प्रकार पाण्डवोंकी खबर पाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सातयकी आदि यादवोंको संग ले

एक समय इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥ सबके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखतेही, जिस प्रकार मृतकशरीरमें प्राण आनेसे इंद्रिय चैतन्य होजाती हैं, उसी प्रकार बलवान् पाण्डव उठ खड़ेहुये ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलकर पापरहित होनेके कारण वीर पाण्डव स्नेहभरी मुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द देखकर परमानन्दको प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्र बड़े युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें नमस्कार करके फिर अपने समान अर्जुनसे मिले इसके उपरान्त छोटे नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार किया ॥ ४ ॥ फिर इसके उपरान्त श्रेष्ठ आसनपर विराजमान श्रीकृष्णचन्द्रको नवविवाहिता, निन्दारहित, लज्जावती द्रौपदीने आनकर धीरे धीरे प्रणाम किया ॥ ५ ॥ ॥ उसी प्रकार सात्यकीको भी

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुंदमखिलेश्वरम् ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणं मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतं वीरा अगसंगहतैनसः ॥ सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ॥ फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवंदितः ॥४॥ परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिंदिता ॥ नवोढा व्रीडिता किंचिच्छनैरेत्याभ्यवंदत ॥ ॥ ५ ॥ तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवंदितः ॥ निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासिताः ॥ ॥ ६ ॥ पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरंभितः ॥ आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्टबांधवः ॥ ७ ॥ तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकंठाश्रुलोचना ॥ स्मरंती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥ तदैव कुशलं नोऽभूत्सनाथास्ते कृता वयम् ॥ ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥

पांडवोंने आकर पूजन कर आसनपर बैठाला फिर और मनुष्योका भी आदर सन्मान किया ॥ ६ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्रने कुन्तीके पास आकर प्रणाम किया तो कुन्तीने भी स्नेहभरीचितवनसे आलिंगन किया, फिर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता व बहनकी कुशल कुन्तीसे पूछी और इसके उपरान्त कुन्ती श्रीकृष्णचन्द्रसे भाइयोकी कुशल पूछने लगी ॥ ७ ॥ प्रेमकी व्याकुलतासे गद्गद कण्ठ हो नेत्रोंमें आँसू भर कौरवोंके दिये कष्टकी सुधि करके कुन्ती भक्तोंके क्लेशोंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगी ॥ ८ ॥ कि, हे कृष्ण ! जाति बन्धु हमको स्मरण करके जिस समय तुमने मेरे

भाई अक्रूरको खबर लेने भेजा, उस समय हमारी सब कुशल होगई और तुमने हमको सनाथ करदिया ॥ ९ ॥ यद्यपि सब विश्वके हितकारी आत्मा
तुम "यह अपना है, यह पराया है" इस भ्रमसे रहित हो परन्तु तो भी जो कोई तुम्हारा सर्वदा स्मरण करता है, तुम उसके हृदयमें स्थित होकर
समस्त क्लेशोंका नाश कर देतेहो ॥ १० ॥ राजा युधिष्ठिर कहनेलगे कि, हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! नहीं ज्ञात होता कि, मैंने क्या कल्याणकारी
कार्य किया है, क्योंकि योगेश्वरोंको जिनका दर्शन होना महाकठिन है, उनको हम सरीखे कुमतियोंको दर्शन हुआ ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले
कि, हे राजन् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिरके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थ निवासियोंके नेत्रोंको आनन्द देते वर्षाकालतक वहीं विराजे॥

न तेऽस्ति स्वपरभ्रांतिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ॥ तथाऽपि स्मरतां शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर
उवाच ॥ किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वरः ॥ योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥ इति वै वार्षि
कान्मासान्राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ॥ जनयन्नयनानंदमिंद्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥ एकदा रथमारुह्य विजयो
वानरध्वजम् ॥ गांडीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं गहनं वनम् ॥ बहुव्याल
मृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून् ॥ शरभान्गवयान्खड्गान्ह
रिणाञ्शशशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किंकरा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते ॥ तृट्परीतः परिश्रांतो बीभत्सुर्य
मुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ॥ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरंतीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ एक समय महाबलवान् शत्रुओंका मारनेवाला अर्जुन कपिध्वजावाले रथमें चढ़कर, गांडीव धनुष और बाणोंसे भरा तरकसले, कवच
पहर बहुत सर्प और मृगवाले बड़े वनमें श्रीकृष्णचन्दके संग शिकार खेलनेको गया ॥ १३ ॥ १४ ॥ और उस वनमें पहुँचकर व्याघ्र,
सूकर, भैंसा, रुरु अर्थात् हरिण, शरभ, रोझ, गैंड़ा मृग और खरहा, इनको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे छेदन करने लगा ॥ १५ ॥ हे राजन् !
पूर्णमासी पर्व जब आनकर प्राप्त हुये तब सेवकलोग पवित्र पशु राजा युधिष्ठिरके पास लाये और जब अर्जुनको प्यास लगी तो थका हुआ
यमुनाजीपर आया ॥ १६ ॥ महारथी अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाके निर्मल जलका आचमन कर और जल पीकर जब खड़े हुये, तब

इन्होंने एक सुन्दर कन्या बैठी देखी ॥१७॥ सुंदर जंघा, श्रेष्ठ दाँत, मनोहर मुख, ऐसी प्रमदा कन्याके पास श्रीकृष्णका भेजा अर्जुन आनकर पूँछने लगा ॥ १८ ॥ कि, हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो ? और किसकी पुत्री हो, कहाँसे आई हो, और तुम्हारे मनमें क्या करनेकी इच्छा है ? सो सब वृत्तान्त कहो, मुझे निश्चय जान पड़ता है कि तुम्हारी पति करनेकी इच्छा है ॥ १९ ॥ इतना पूँछनेपर कलिन्दीने कहा कि, मैं सूर्यदेवकी पुत्री हूँ कालिन्दी मेरा नाम है और वरके देनेवाले विष्णुभगवान्‌को पति करनेकी इच्छासे तप कर रही हूँ ॥ २० ॥ हे वीर ! अत्यन्त स्वरूपवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और किसीको मैं नहीं वरूंगी, वह अनाथके आश्रय मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ मैं कालिन्दी नामसे विख्यात हूँ और

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ॥ पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ॥ मन्ये त्वां पतिमिच्छंतीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९ ॥ कालिंद्युवाच ॥ अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ॥ विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥ २० ॥ नान्यं प्रतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ॥ तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिंदीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ॥ निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ॥ रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ॥ कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ अग्नये खांडवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥

मेरे पिता सूर्यदेवने यमुनाजलमें स्थान बना दिया है, इसलिये जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन न होगा, तबलों यहाँ वास करूंगी ॥२२॥ यह सुन अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके पास [illegible] कालिन्दीके सब वचन कहे, कालिन्दी मेरे लिये तप करती है, यह बात जान श्रीकृष्णचन्द्र कालिन्दीको रथमें बैठाय धर्मराज [illegible] क पास आये ॥ २३ ॥ उस समय पाण्डवोंकी आज्ञासे श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके कारीगर विश्वकर्मासे कहकर पाण्डवोंके लिये [illegible] अद्भुत नगर बनवाये ॥ २४ ॥ पाण्डवोंका भला चाहनेके लिये इन्द्रप्रस्थमें वास करनेवाले

श्रीकृष्णभगवान् अग्निको खांडववन चरानेके लिये अर्जुनके सारथी हुए ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! तब उस अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको धनुष, श्वेत घोड़े, तीरोंसे भरा तरकस और जो अस्त्रवालोंसे भी न कटे, ऐसा एक कवच दिया ॥ २६ ॥ और वहाँ इन्होंने अग्निसे मयनाम दैत्यको बचाया, इसलिये उसने प्रसन्न होकर पाण्डवोंको एक सभा दी, जिस सभामें जलमें थल और स्थलमें जल इस प्रकार देखकर दुर्योधनकी दृष्टिमें भ्रम हुआ ॥ २७ ॥ राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा पाय और सुहृदोंमें बड़ाई पाय श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी यादवोंको संग लेकर फिर द्वारका

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्श्वेतान्रथं नृप ॥ अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ॥ यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशि भ्रमः ॥ २७ ॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ॥ आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ २८ ॥ अथोपयेमे कालिंदीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते ॥ वितन्वन्परमानंदं स्वानां परममंगलम् ॥ २९ ॥ विंदानुविंदावावंत्यौ दुर्योधनवशानुगौ ॥ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविंदां पितृष्वसुः ॥ प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ ॥ ३१ ॥ नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद्राजातिधार्मिकः ॥ तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥ ३२ ॥

पुरीमें आये ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त सुन्दर पवित्र ऋतु नक्षत्रमें कालिन्दीका पाणिग्रहण किया और फिर अनेक प्रकारसे परमरूप श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको सुख देनेलगे ॥ २९ ॥ उज्जैनपुरीके रहनेवाले राजा विन्द और अनुविन्दकी बहनने श्रीकृष्णचन्द्रको स्वयंवरमें वरनेकी इच्छा की परन्तु उन दोनों भाइयोंने मने किया, क्योंकि वह दुर्योधनके आधीन थे ॥ ३० ॥ हे राजन् वासुदेवकी बहन राजाधिदेवीकी पुत्री मित्रविन्दाको श्रीकृष्णचन्द्र सब राजाओंके देखते बलपूर्वक हरण करके लेगये ❀ ॥ ३१ ॥ हे राजा परीक्षित् ! अयोध्या पुरीका पालन करनेवाला बडा धर्मात्मा

* शंका–धर्मशास्त्रमें लिखा है कि फूफीकी लडकी बहिन होती है फिर श्रीकृष्णने फूफीकी लडकीके साथ विवाह क्यों किया ?

उत्तर–पूर्व जन्ममें वसुदेवजी तप करते थे, तब वसुदेवजीकी जो दासी थीं सो सब वसुदेवजीकी सेवामें लग रही थीं जब भगवान्ने वसुदेवको वरदान दिया कि, तुम्हारे पुत्र होगा, तब लक्ष्मीजी भी वसुदेवजीने दासियोंको वरदान दिया कि, हे दासियो ! तुम्हारी सबकी हम बहुतसी कन्या होवेंगी, इस प्रकार भगवान् और लक्ष्मीके वचनसे प्रथमकी जो, वासुदेवजीकी दासी थीं सो सब इस जन्ममें वसुदेवजीकी

राजा नग्नजित् नामसे विख्यात था, उस राजाके प्रकाशमान सत्या नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई कि, जिसका उपनाम नाग्नजिती भी प्रसिद्ध था ॥ ३२ ॥ राजाने यह प्रतिज्ञा करी कि, जो वीरपुरुषकी गंध भी न सहसकें ऐसे दुष्ट, तीखे सींगोंवाले, अति दुर्धर्ष सात बैलोंको जीते वह मेरी पुत्रीसे विवाह करेगा, अनेक राजा मार खाकर फिर गये परन्तु कोई भी जीतनेको समर्थ न हुआ ॥ ३३ ॥ यहाँ यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुना कि, जो बैलोंको जीते, उससे कन्या विवाह करे, यह बात सुनकर बड़ी भारी सेनाको संग लेकर अयोध्यापुरीमें आये ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! राजा नग्नजितने देखा कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं, इसलिये अत्यन्त प्रसन्न हो उठकर "भले आये महाराज" इस प्रकार प्रशंसा करके सुन्दर

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ॥ तीक्ष्णशृंगान्सुदुर्धर्षान्वीरगंधासहान्खलान् ॥ ३३ ॥ तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥ ३४ ॥ स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ अर्हणेनापि गुरुणापूजयत्प्रतिनंदितः ॥ ३५ ॥ वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेंद्रकन्या चकमे रमापतिम् ॥ भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥ ३६ ॥ यत्पादपंकजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः ॥ लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः काले दधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥

आसन बिछाय चरण धोकर पूजाकी सामग्रियोंसे उनका पूजन करनेलगा ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्रको आया हुआ देख और अपने योग्य वर जान, इनकी इच्छा करके कहनेलगी कि, जो मैंने श्रद्धासहित व्रत किये हैं, तो कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों और मेरा मनोरथ सत्य हो ॥ ३६ ॥ जिन भगवान्के चरणकमलकी रजको लक्ष्मी और कमलयोनि ब्रह्मा वा महादेव और लोकपाल संपूर्ण शिरपर धारण करते हैं और जो अपनी बँधीहुई मर्यादा पालनेकी इच्छासे समयानुसार लीलापूर्वक नृसिंहादि अवतार धारण करते हैं, वह

—बहिनें हुईं, उन वसुदेवकी बहिनकी पुत्री लक्ष्मी हुई, अपने वचनके प्रमाणसे, लक्ष्मीरूप जो वसुदेवकी बहिनकी लड़की उनका भगवान् विना दूसरा पुरुष कैसे विवाह करेगा ? इसलिये भगवान्ने जाना कि, हमारी बहिन है इनको हम विवाह लेवेंगे तो बड़ा पाप होगा ऐसा जानते थे तो भी विवाह किया ।

भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त भलीभाँति विधिपूर्वक पूजा करके राजा नग्नजित् कहनेलगे कि, हे नारायण ! हे जगत्पते ! हे आनन्दसे पूर्ण ! आपकी मैं तुच्छ क्या पूजा करूं ? ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षि त् ासनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुसकातेहुए मेघके समान गंभीर वाणीसे राजा नग्नजितके प्रति कहा ॥ ३९ ॥ हे राजन् नग्नजित् ! विद्वान् पुरुष कहते हैं कि, मांगना अत्यन्त बुरा है, तोभी स्नेहके वश होकर मैं आपकी कन्या मागता हूं; कुछ मूल्यके देनेवाले हम नहीं है ॥ ४० ॥ राजा नग्नजितने कहा कि, हे नाथ ! सब गुण जिनमें विद्यमान और लक्ष्मी सदा जिनके अंगमें वास करै ऐसे सर्वगुणालंकृत तुमसे अधिक संसारमें कौन वर है, जिसको

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ॥ आत्मानंदेन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाह भगवान्हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ॥ मेघगंभीरया वाचा सस्मितं कुरुनंदन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नरेंद्र याञ्चा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबंधोर्निजधर्मवर्तिनः ॥ तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥४०॥ राजोवाच ॥ कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ॥ गुणैकधाम्नो यस्यांगे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥ किं त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्त्वतर्षभ ॥ पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥ सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ॥ एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः॥४३॥यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनंदन ॥ वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते॥४४॥ एवं समयमाकर्ण्य बद्धा परिकरं प्रभुः ॥ आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥४५॥

मैं अपनी कन्या दूंगा ? ॥ ४१ ॥ हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! पुरुषोंमें पराक्रमकी परीक्षा लेनेके कारण और कन्याके वरकी परीक्षाके लिये हमने प्रथम एक प्रतिज्ञा करी है ॥ ४२ ॥ हे वीर कृष्ण ! इन शिक्षा रहित और पकड़नेमें न आवैं, ऐसे बैलोंको जो जीते, वह कन्याको वरै, यह बात सुन बहुतसे राजपुत्र यहाँ आये परन्तु इनसे अपना शरीर जर्जरितही कराकर चलेगये ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन ! हे लक्ष्मीपति ! जो तुम इन बैलोंको जीतलो, तो निश्चय मेरी कन्याका विवाह करो ॥ ४४ ॥ सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजा नग्नजित्का वचन

सुनकर फेंट बाँध अपने सात रूप धारणकर लीलापूर्वकही बैलोंको पकडनेलगे ॥ ४५ ॥ गर्व और शक्ति नाश करके उन बैलोंको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र रस्सियोंसे बाँधकर, जैसे बालक काष्ठके बैलको खैंचता है, ऐसेही खैंचने लगे ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त आश्चर्यमान राजा नग्नजित् प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी कन्या देनेका उद्योग करनेलगा और सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने समान कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ४७ ॥ राजा नग्नजित्की रानी अपनी कन्याके प्रियपति श्रीकृष्णचन्द्रको वर पाकर परमआनन्दित हुई और बड़ा उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी, नगारे बजने लगे, गीतोंका शब्द सुनाई दिया, ब्राह्मणोंने अनेक आशीर्वाद दिये और सुन्दर वस्त्र मालाओंसे

बद्धा तान्दामभिः शौरिर्हतदर्पान्हतौजसः ॥ व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ॥ लेभिरे परमानदं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शङ्खभेर्यानकाः नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ॥ नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासस्स्रगलंकृताः ॥ ४९ ॥ दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः ॥ युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥ ५० ॥ नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान्रथान् ॥ रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥ ॥ ५१ ॥ दंपती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ॥ स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयंतं पथि कन्यकाम् ॥ भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५३ ॥

शोभायमान सब नर नारी प्रसन्न होगये ॥ ४९ ॥ सामर्थ्यवान् राजा नग्नजित्ने यौतुकमें दशहजार गौवें दीं और धुकधुकी कंठमें पहरे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान तीनहजार दासियें दीं ॥ ५० ॥ नौहजार हाथी और हाथियोंसे सौगुणे अर्थात् नौलाख रथ, रथोंसे सौगुणे अर्थात् नौ करोड घोड़े दिये और घोडोंसे सौगुण अर्थात् एक अर्ब मनुष्य दिये ॥ ५१ ॥ स्नेहसे व्याप्त हृदय कौशलदेशका राजा नग्नजित् अपनी कन्या सहित श्रीकृष्णको रथमें बैठाल और बहुतसी सेना संग लेकर पहुँचाने चला ॥ ५२ ॥ जिनका पुरुषार्थ प्रथम यादव और बैलोंसे भंग होगया

था वह राजा यह बात सुनकर न सहसके और कन्याको लेजातेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मार्गमें रोकलिया ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णके प्यार करने वाले गांडीव धनुषधारी अर्जुनने बाण चलाकर समस्त राजाओंको क्षणभरमें सिंह जैसे वनके छोटे छोटे जीव व मृगोंको भगादेता है उसी प्रकार भगादिया ॥ ५४ ॥ इसप्रकार यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दहेज लेकर द्वारकापुरीमें आय सत्यारानीसे रमण करनेलगे ॥ ५५ ॥ वसुदेवकी बहन श्रुतिकीर्तिकी पुत्री केकयदेशोत्पन्न भद्राको संतर्दनादि भाइयोंके देनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने व्याहा ॥ ५६ ॥ सुन्दर लक्षणवाली मद्रदेशके राजाकी कन्या लक्ष्मणाको गरुड जैसे अमृत लाते हैं, उसी प्रकार अकेले श्रीकृष्णचन्द्र हरकर ले आये ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा

तानस्यतः शरव्रातान्बंधुप्रियकृदर्जुनः ॥ गांडीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ॥ रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ॥ कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥ सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ॥ स्वयंवरे जहारैकः ससुपर्णः सुधामिव ॥ ५७ ॥ अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ॥ भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ राजोवाच ॥ यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रेण हृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबंधुना ॥ हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥ २ ॥

परीक्षित् । श्रीकृष्णकी भौमासुरके बन्दीखानेसे छुडाईहुई सुन्दर स्वरूपवान् हजारों स्त्री और भी थीं॥५८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामष्टमहिष्युद्वा हो नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥ दोहा–उनसठवें अध्यायमें, भौमासुरको मार । इन्द्र पराभव कर हरी, कन्या वरीं हजार ॥१॥ राजा परीक्षित्ने कहा कि, हे व्यासपुत्र शुकदेवजी ! श्रीकृष्णचन्द्रने जिस प्रकार भौमासुरको मारा और जैसे भौमासुरने स्त्रियें रोकीं यह सम्पूर्ण कथा और शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पराक्रम हमारे सन्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! जब देवराज इन्द्रने श्रीकृष्णचन्द्रसे आनकर कहा कि, हे भगवन् ! मेरा छत्र अदितिके कुण्डल भौमासुर हरकर

लेगया और अमराद्रि सुमेरुके मणिपर्वत स्थानमें उसने अपना अधिकार करलिया है और हमें अत्यन्तही दुःखित कर दिया है, देवराजकी यह बात सुनकर ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र पक्षिराज गरुडपर सवार हो सत्यभामा रानीको संग ले प्राग्ज्योतिषनामक भौमासुरके नगरमें गये जहाँ पर्वत, शस्त्र, जल, अग्नि और पवनके किले थे, जिनमें कोई प्रवेश न करसके ऐसा भयानक गढ़ और मुरदैत्यकी हजारों दृढ़ फाँसियों करके चारों ओरसे व्याप्त था ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने गदासे गिरिदुर्ग तोडा, शस्त्रदुर्ग बाणोंसे, चक्रसे अग्निदुर्ग तोडा, इसके उपरान्त जलदुर्ग और पवनदुर्गको तोड, इसीप्रकार मुरदैत्यकी फॉसियोंको काटडाला ॥ ४ ॥ शंख बजनेके शब्दसे अनेक युद्धके यंत्र उलटे चलनेलगे और

सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ गिरिदुर्गैश्शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ॥ मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत्र आवृतम् ॥३॥ गदया निर्बिभेदाद्रीञ्शस्त्रदुर्गाणि सायकैः॥ चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥ शंखनादेन यंत्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ॥ प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥ ५ ॥ पांचजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगांताशनिभीषणम् ॥ मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पंचशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगांतसूर्यानलरोचिरुल्बणः ॥ ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पंचभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥ आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पंचभिः ॥ स रोदसी सर्वदिशोंबरं महानापूरयन्नंडकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥

शूरवीरोंके हृदय व मन थरथर कॉपनेलगे, तब गदाधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बडी गदासे भौमासुरकी नगरीके कोटको तोडडाला ॥ ५ ॥ प्रलयकालीन वज्रके शब्दके समान भयंकर शब्दवाले पांचजन्य शंखका शब्द सुनकर पाँच मुखवाला मुरदैत्य जो जलके भीतर सो रहा था, सो उठा ॥ ६ ॥ अति खोटी दृष्टि प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान तेज, भयंकर रूपवाला मुरदैत्य त्रिशूल हाथमें ले पॉचों मुख फाड़कर, मानों त्रिलोकीको निगल जायगा इस प्रकार दौड़ताहुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आया जैसे गरुड़ सर्पोंके सन्मुख जाता है ॥ ७ ॥ और बडे जोरसे त्रिशूलको फिराय गरुड़पर चला पॉचों मुख फाडकर महाघोर शब्द किया, उस शब्दका नाद अंतरिक्ष, पृथ्वी, सम्पूर्ण दिशओंमें

फैलकर ब्रह्माण्डमें व्याप्त होगया ॥ ८ ॥ उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने गरुडके ऊपर त्रिशूल आता देखकर अपने बाणोंसे तीन टुकड़े करदिये और मुर दैत्यके पाँचों मुखोंमें पाँच बाण मारे, तब मुरदैत्य अत्यन्त क्रोधित होकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर गदा चलानेलगा ॥ ९॥ तब भगवान्‌ने संग्राममें आतीहुई उस गदाके हजारों टुकडे करडाले, उस समय भुजाओंको उठाय दौडकर सन्मुख आये हुये मुरदैत्यका शिर श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक अपने चक्रसे काटलिया ॥ १० ॥ जिस प्रकार इन्द्रके वज्रसे पर्वतका शिखर कटकर गिर पडता है, उसी प्रकार मस्तक कटनेपर प्राणमुक्त हो वह जलमें गिरगया, उसके जो अति बलवान् सात पुत्र थे, वह पिताके दुःखसे अत्यन्त दुखी हो, महाक्रोधकर बदला लेनेके लिये आये ॥ ११ ॥

तदा पतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्याममिनत्रिधौजसा ॥ मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥ तामापतंतीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ॥ उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ १० ॥ व्यसुः पपातांभसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृंगोऽद्रिरिवेंद्रतेजसा ॥ तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥ ताम्रोंतरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ॥ पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुंजतासाद्य शरानसीन्गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ॥ तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥ तान्पीठमुख्याननयद्यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजांघ्रिवर्मणः ॥ स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥ १४ ॥

ताम्र, अंतरिक्ष, श्रवण, पिभाँवसु, वसुं, नभस्वांन् और सातवां अरुंण यह सब पीठनाम सेनापतिको आगे कर भौमासुरकी प्रेरणासे शस्त्र लेलेकर रणभूमिमें आये ॥ १२ ॥ अत्यन्त क्रोध करके भयानक मुरदैत्यके पुत्र आकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर बाण, तलवार, गदा, बर्छी, गुर्ज और त्रिशूल इत्यादि शस्त्र चलानेलगे, तब महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बाणोंसे उनके चलायेहुये शस्त्रोंको क्षणभरमें तिलके समान काट डाला ॥ १३ ॥ पीठ आदि मुरदैत्यके पुत्रोके शिर, ऊरू, भुजा, पाँव, कवच इत्यादि काट और उनको मारकर श्रीकृष्णचन्द्रने यमलोक भेज

दिया, तब पृथ्वीका पुत्र नरकासुर श्रीकृष्णचन्द्रके चक्र और बाणोंसे अपने सब सेनापतियोंका नाश देखकर ॥ १४ ॥ महाक्रोधित हो समुद्रसे प्रगटहुए मद झरते हाथियोंकी सेना लेकर बाहर निकला सूर्यके ऊपर जिसप्रकार बिजली सहित मेघ आता है, उसी प्रकार गरुड़के ऊपर सत्य भामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रको विराजमान देख भौमासुर बरछी चलानेलगा और सम्पूर्ण योद्धा भी प्रहार करनेलगे ॥ १५ ॥ गदके बड़े भाई श्रीकृष्णचन्द्रने चित्र विचित्र पंखवाले बाणोंसे भौमासुरकी सेनाको काट फिर क्षणमात्रमें तीखे बाणोंसे भुजा, ऊरू, गर्दन और अंग काट हाथी घोड़ोंको मार छिन्न भिन्न करदिया ॥१६॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित् ! जो जो शस्त्र योद्धाओंने चलाये, उन सबको भगवान् श्रीकृष्ण

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा ॥ कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यं भगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुंजरम् ॥ १६ ॥ यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ॥ हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ॥ गरुत्मता हन्यमानास्तुंडपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्त्ता नरको युध्ययुध्यत ॥ दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥ तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ नाकंपत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥ २० ॥

चन्द्रने तीक्ष्ण तीन तीन बाणोंसे एक एक टूककर काटडाला ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णको अपने ऊपर चढायेहुये गरुड़जीने भी अपनी चोंच और पंखोंसे हाथियोंको मार मारकर व्याकुल कर दिया ॥ १८ ॥ और वह अत्यन्त पीड़ित होकर पुरमें प्रवेश करगये, तब नरकासुरने युद्ध करतेहुए गरुडसे पीडित अपनी सेनाको भागीहुई देखा ॥ १९ ॥ भौमासुरने महापैनी धारवाली गरुड़जीको बरछी मारी, जिससे वज्र रुकगया था, परन्तु जैसे मालाके प्रहारको हाथी कुछ नहीं गिनता, उसी प्रकार गरुड़जी उसके प्रहारसे कुछ भी व्यथित नहीं हुये ॥ २० ॥

तब भौमासुरने अपना उद्यम वृथा देख श्रीकृष्णके मारनेको त्रिशूल हाथमें लिया, परन्तु हे परीक्षित् ! उस शूलको छोडनेसे प्रथमही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने चक्रसे हाथीपर बैठेहुये भौमासुरका शिर काट डाला ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जिस समय कुण्डलों सहित मनोहर किरीटसे शोभायमान भौमासुरका शिर कटकर पृथ्वीमें सुशोभित हुआ, उस समय दैत्योंने हाहाकार किया और ऋषि, देवता धन्य धन्य कहते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षाकर स्तुति करनेलगे ॥२२॥ भौमासुरके मरने उपरान्त पृथ्वीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर तपायमान सुवर्णमें जडे रत्नोंसे प्रकाशमान कुण्डल वैजयन्ती माला और प्रचेताका छत्र तथा महामणि दिये॥२३॥हे नृपोत्तम ! उस समय पृथ्वी विश्वके ईश्वर देवताओंमें

शूलं भौमोऽच्युतं हंतुमाददे वितथोद्यमः ॥ तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥ अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥ सकुंडलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ॥ हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुंदं विकिरंत ईडिरे ॥२२॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुंडले प्रतप्तजांबूनदरत्नभास्वरे ॥ सवैजयंत्या वनमाल याऽऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ॥ प्रांजलिः प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ॥ भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ॥ पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥

श्रेष्ठ ब्रह्मादिकोंमे पूजित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख दोनों हाथ जोड नम्र हो, भक्ति और श्रद्धासहित स्तुति करनेलगी ॥ २४ ॥ पृथ्वीने पुत्रके लिये तपस्या की थी,तब देवताओंने प्रसन्न होकर पुत्र होनेका वर दिया उसी वरके प्रभावसे भौमासुर उत्पन्न हुआ, पृथ्वीने कहा कि, हे देवदेव ! हे शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी ! हे परमात्मन् ! भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये साकार रूप धारण करनेवाले.आपको नमस्कार है ॥२५॥ जिनकी नाभिमें कमल, कमलकी माला धारण करनेवाले कमलनेत्र और कमलके समान चरण रखनेवाले आपको नमस्कार है॥२६॥भगवान् वासुदेव सम्पूर्ण

प्राणी जिनमें वास करें, विष्णु अर्थात् सबके हृदयमें व्यापक, समस्त कार्योंके आदिकारण पूर्णज्ञानस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥ आप जन्म रहित हो, इस विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हो, ब्रह्म हो, इसीलिये अजन्मा हो, अनन्तशक्ति हो, इसीसे विश्वके उत्पत्ति कर्त्ता हो, यदि कोई कहे कि, पित्रादि तो पुत्रादिकोंके उत्पत्तिकर्त्ता हैं और पित्रादिकोंके उत्पत्ति कर्त्ता उनके पूर्वपुरुष हैं और पूर्व पुरुषोंके उत्पत्तिकर्त्ता पंचभूतहैं और पंचभूतोंका अपने कर्मद्वारा जीव है, मैं क्या करूं इसके उत्तरमें पृथ्वी कहैहै कि, हे कार्यकारणरूप ! हे संपूर्ण प्राणियोंके आत्मा ! हे परमात्मन् ! तुम सर्वरूप हो, इसलिये तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २८॥ यहाँ यह शंकाहै कि, तीन गुणोंसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करतेहैं और तीनों गुण मायाके अधीनहैं और मायाका क्षोभ करनेवाला पुरुष है काल निमित्त है और यह बात प्रसिद्ध है, फिर मैं क्या करताहूं इसके उत्तरमें पृथ्वी कहतीहै कि, तुम आवरण

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणऽनतशक्तये ॥ परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ त्वं वै सिसृक्षू रज
उत्कटं प्रभो तमोनिरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ॥ स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भगवान्परः ॥ २९॥
अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इंद्रियाणि ॥ कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं
भ्रमः ॥३०॥ तस्यात्मजोऽयं तव पादपंकजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ॥ तत्पालयैनं कुरु हस्तपंकजं शिरस्यमुष्या
खिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥

रहित हो, हे समर्थ ! जिस समय आप विश्वके रचनेकी इच्छा करते हो, तब रजोगुणको धारण करते हो और हे जगत्पति ! जगत्के पालन करनेको सतोगुण धारण करते हो तथा नाशकरनेके लिये तमोगुणको धारण करतेहो, कालरूपहो, पुरुषरूप और सबसे परे हो इसलिये सबके उत्पन्नकर्त्ता तुमही हो ॥ २९ ॥ हे ईश ! मुझे (पृथ्वी) जल, ज्योति, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध, देवता, मन, इन्द्रियॉ, अहंकार, तत्त्व और समस्त स्थावर जंगम आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमसे भासते हैं ॥ ३० ॥ हे शरणागतोंके दुःखहर्त्ता ! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीतहोकर तुम्हारे चरणोंमें आनकर पड़ा है सो तुम इसका पालन करो और सब क्लेशोंका शमन करनेवाला अपना हस्तकमल इसके मस्तकपर रक्खो ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि भक्तिपूर्वक नम्र हो मधुरवाणीसे पृथ्वीने,जब इस प्रकार स्तुति और प्रार्थना की,तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे अभयदान दे, सर्व सम्पत्तियुक्त भौमासुरके स्थानपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर श्रीकृष्णचन्द्रने सोलह हजार एक सौ कन्या भौमासुरके मंदिरमें देखीं, जिन्हें भौमासुर अपने पराक्रमसे बलत्कार हरलाया था ❋ ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख सम्पूर्ण स्त्रियें मोहित हो

शुक उवाच ॥ इति भूम्याऽर्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ॥ दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ॥ ३२ ॥ तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ॥ भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥ तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ॥ मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ॥ इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ३५ ॥ ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजांबराः ॥ नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महत् ॥ ३६ ॥

कर दैवसे प्राप्त हुए मनोवांछित श्रीकृष्णचन्द्रको मनसे पति वरण करनेलगीं ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! इन्हें ऐसी अनुमति दो कि, यह हमारे पति हों इस प्रकार सबकन्याओंने भक्तिभावसहित अपना अपना मन श्रीकृष्णचन्द्रमें लगाया ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें उज्ज्वल व

❋ शंका–भौमासुर तो वडा बुद्धिमान् था, फिर कुमारी कन्याओंको क्यों हर हर इकट्ठा किया ? वह तो सब लडकियें थीं, उनका विवाह नहीं हुआ था, उनको राक्षसकर्म करनेके लिये हरकर ले आया उत्तर–राजाओंका अभिमान भजन करनेके लिये सब राजाओंकी कन्याओंको हरकर वह अपना विवाह करनेके लिये लाया था और राजालोग उसका कुछ भी नहीं करसके, तब नारदमुनिने विचारा कि, यह सब कन्या तो भगवान्की स्त्री होंगी, ऐसा विचारके भौमासुरसे मने करदिया कि, हे भौमासुर बिना हमारी आज्ञा लिये इन कन्याओंके सग अपना विवाह मत करना, ऐसे कहकर भौमासुरको विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी, इन लडकियोंके सग भौमासुर विवाह करताही करता श्रीकृष्णने उसको मारडाला, कन्याओंको अपने आप वर लिया, इसलिये भौमासुरने राजकन्याओंको हरण किया था ॥

स्वच्छ वस्त्र पहराय पालकियोंमें बैठाय द्वारकापुरीको भेजदिया और साथही बड़े बड़े खजाने, रथ, घोडोंको भी भजे ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त चार चार दाँतके श्वेतरंग, शीघ्रगामी, चौंसठ ऐरावतकुलके हाथी श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीमें भेजे ॥ ३७ ॥ इसके पीछे जब भगवान् वासुदेवने इन्द्रलोकमें जाकर अदितिको कुण्डल दिये, तब इन्द्राणीसहित देवराज इन्द्रने सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रकी विधि पूर्वक पूजा करी ॥३८॥ सत्यभामाके कहनेसे श्रीकृष्णचन्द्र कल्पवृक्षको उखाड़,गरुडके ऊपर रख और इन्द्रसहित समस्त देवताओंको जीत द्वारकापुरीमें लेआये॥ ३९ ॥ और सत्यभामाके बगीचेको शोभायमान करनेके लिये कल्पवृक्ष उसके बगीचेमें लगाया, उसकी सुगन्धके मदके लोभी भौंरे स्वर्गसे पीछे पीछे

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दंतांस्तरस्विनः ॥ पांडुरांश्च चतुष्षष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥ ३७ ॥ गत्वा सुरेंद्रभवनं दत्त्वा ऽदित्यै च कुंडले ॥ पूजितस्त्रिदशेंद्रेण सहेंद्राण्या च स प्रियः ॥ ३८ ॥ चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ॥ आरोप्य सेंद्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ॥ अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गंधासवलंपटाः ॥ ४० ॥ यया च आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ॥ सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ॥ यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥ गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ॥ रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥

चलेआये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! प्रथम तो देवराज इन्द्रने कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने किरीटोंके अग्रभाग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगा नमस्कार करके उनकी प्रार्थना की और कार्य सिद्ध होनेपर भगवान्से विरोध किया, अहो ! देवताओंको बड़ा क्रोध आता है,धनिकताकोही धिक्कार है ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त एक मुहूर्तमात्रमें सोलह हजार एक सौ आठ महलमें सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जितनी स्त्रियें थीं उनकेही स्वरूप धारण कर सबका यथायोग्य पाणिग्रहण किया ॥ ४२ ॥ जिनके घरके समान और कोई घर नहीं है, इस प्रकार उन रानियोंके घरोंमें सदा पूर्ण आनन्द स्वरूप रहते भी औरोंके समान गृहस्थधर्म करते अचिन्त्य कार्य करते अविनाशी भगवान् लक्ष्मीका अंशरूप स्त्रियोंके

साथ विहार करते थे ॥४३॥ हे परीक्षित् ! ब्रह्मादिक देवता जिनको मार्गके नहीं जानते, उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको पति पाय वह स्त्रियें उनका निरंतर बढीहुई प्रीति और स्नेहभरे हास्यपूर्वक अवलोकन करती थीं और आनन्दपूर्वक नवीन२संगम भाषण और लज्जाका सेवन करती थीं॥४४॥ यद्यपि एक एक रानीके पास सौ सौ दासी हाथ जोड़े खडी रहतीथीं, परन्तु तो भी सामने जाकर लिवालाना, आसनको बिछाना, सुन्दर पूजा करनी चरण धोना, बीरा लगाना, चरण दाबने, पंखा करना, अतर लगाना, फूल चढ़ाना, केशोंका सँभालना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना यह सेवा भलीप्रकार आपही करती थीं ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकोनषष्टितमोध्यायः ॥५९॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमजल्पलज्जाः ॥४४॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगंधमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नरकवधपारिजातहरणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्॥पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥ यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ॥ स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥ तस्मिन्नंतर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलंबिना ॥ विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ॥ जालरंध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥

दोहा—शठ हँसीसे कुछ कही, हरि रुक्मिणिसों बात । रूठ गई तब रुक्मिणी, कृष्णमनावत जात॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! किसी समय सुखपूर्वक एक शय्यापर बैठे हुए जगत्गुरु अपने पति श्रीकृष्णचंद्रकी रुक्मिणीसखियों सहित चमर करके सेवा करनेलगीं ॥ १ ॥ जो जन्म रहित भगवान् लीला पूर्वक इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करतेहैं, वही भगवान् अपनी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें आनकर प्रगट हुए॥२॥ वहाँ गहोंके भीतर अत्यन्त देदीप्यमान मालायें लटक रही थीं, अत्यन्त शोभायमान छत बँधी थीं, और मणिमय दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३ ॥ मधुमल्लिकाके पुष्पोंकी मालाओंपर भौरोंके झुण्डके झुण्ड गूजरहे थे और झरोखोंकी जालियोंमें होकर चंद्रमाकी निर्मल किरणें

झिलमिला रही थीं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्षके वनकी सुगंधिलिये उद्यानसे सुगंधसनी वायु चलीआती थी, हे महाराज ! झरोखे जालियोंमें अगर तगरके धूपका धुआँ निकल रहा था ॥ ५ ॥ उस मंदिरके भीतर शय्या बिछी थी उसपर दूधके फेनके समान कोमल श्वेत बिछौना बिछ रहा था, उसके ऊपर सुखपूर्वक बैठेहुये जगत्‌के ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी रुक्मिणी सेवा करती थी ॥ ६ ॥ हीरेकी दंडीवाला चमर सखीके हाथमेंसे लेकर उससे पवन करती रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी ओरको देख रही थी ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट मणियोंके जड़ाऊ नूपुरोंका शब्द करती अत्यन्त शोभायमान लगतीथीं, कैसी रुक्मिणी हैं, उँगलियोंमें मुँदरी पहरे, कलाइयोंमें चूड़ी व कंकण पहरे और हाथोंमें बीजना ले रही हैं

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ॥ धूपैरगुरुजे राजञ्जालरंध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयःफेननिभे शुभ्रपर्यंके कशिपूत्तमे ॥ उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥६॥ वालव्यजनमादाय रत्नदंडं सखीकरात ॥ तेन वीजयती देवी उपासांचक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेंगुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ॥ वस्त्रांतगूढकुचकुंकुमशोणहारभासा नितंबधृतया च परार्ध्यकांच्या ॥ ८ ॥ तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ॥ प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककंठवक्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ॥ महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१०॥ तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ॥ दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥

सारीके छोरसे ढके जो स्तन तिनकी केशरसे रँगाहुआ अरुण जो मोतियोंका हार और कटिमें पहरे हुये जो अमूल्य मेखला उससे शोभायमान होरही थीं ॥ ८ ॥ लीलापूर्वक देह धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रकेही योग्य जिसका रूप है और श्रीकृष्णके विना जिसका कोई आश्रय नहीं है, ऐसी रूपवती साक्षात् लक्ष्मीके समान रुक्मिणीजीको देखकर कि, जिसकी अलकैं कुण्डल धुकधुकी युक्त कंठसे शोभायमान मुखारविन्दमें मंद मुसका अथवा झलक रहाथा, उसे देख प्रसन्न हो हँसकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ९ ॥ कि, हे राजपुत्री ! लोकपालोके समान ऐश्वर्यवाले महानुभाव रूप, उदारता और बलसे बढे हुए राजा तुम्हारी चाहना करते थे ॥ १० ॥ और कामदेवके मदसे व्याकुल शिशुपालादि राजा तुम्हारे

श्रीकृ... बातपर रुक्मि... कोई भी बड़ा धर्म नह...

लेनेकेलिये आये, जिन्हें तुम्हारे पिता दे भी चुके थे फिर तुमने किस कारण उन्हें छोड़कर हमें जो तुम्हारी बराबरके भी नहीं हैं, वरण किया ? ॥ ११ ॥ हे सुन्दरभ्रुकुटियोवाली ! बहुधा राजाओंसे डरकर तो हमने समुद्रकी शरण लीहै और बलवानोंके साथ विरोध होनेसेही हमने राजगद्दी त्यागन कररक्खीहै ॥ १२ ॥ हे सुभ्रु ! जिनके आचरणकी खबर नहीं, और जो स्त्रियोंके कहेमें न चलैं, जिनका मार्ग जगत्से निरालाहै ऐसे पुरुषोंका जो स्त्रियें अनुसरण करती हैं, वह बहुधा क्लेश और कष्ट पाती हैं ॥१३॥ और हम निष्किंचन हैं, जो निष्किंचन है वह जन हमें अत्यन्त प्रिय हैं, इसलिये हे सुमध्यमे ! धनवान् पुरुष कहते हैं कि, हम दरिद्री हो जांयगे, इस भयसे बहुधा मेरा भजन नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनके

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ॥ बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ॥ आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदंति योषितः ॥१३॥ निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचनजनप्रियाः॥ तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजंति सुमध्यमे ॥१४॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ॥ तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥ वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया ॥ वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ॥ येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥

बराबर धन, बराबर जन्म, बराबर ऐश्वर्य, और बराबरकी रूप जाति हैं और सदा जिनका एकसा निर्वाह होताहै, उन्हींका विवाह और मित्रता होतीहै, छोटे बड़ोंकी कदापि नहीं होसकती ॥ १५ ॥ हे राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी ! तुमने कुछ विचार न किया और बराबरका संबंध होता है, यह बात जानेविना गुणहीन हमको भिक्षुकके सराहनेसे भूलकर वर लिया ॥ १६॥ हे सुन्दरी ! अब भी तुम अपनी बराबरीका क्षत्रिय देखकर उसका हाथ पकड़लो, उस क्षत्रियसे इस लोक और परलोकके मनोरथोंको प्राप्त होगी ❀ ॥ १७ ॥

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने रुक्मिणीसे कहा कि, तुम हमको छोड़कर और कोई दूसरा पति करलो ऐसा मूर्खों और अज्ञानियोंकी नाईं कुवाच्य भगवान् तो अपने मुखसे लक्ष्मीको कभी नहीं कह सक्ते, न कभी कहा, फिर इस अवतारमें क्यों कहा ? जो कोई कहे कि, रुक्मिणीका मानभग करनेके लिये यह वचन श्रीकृष्णने कहा तो भी कृष्णके सामने तो रुक्मिणीने कभी मान भी नहीं किया, फिर ऐसा खोटा वाक्य भगवान्ने रुक्मिणीसे क्यों कहा ।

तब रुक्मिणीने कहा कि, आप मुझे क्यों ले आये ? श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हे वामोरु ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दंतवक्रादि समस्त राजा हमसे शत्रुता रखतेहैं और तेरा भाई रुक्मीभी वैर करताहै ॥ १८ ॥ हे मंगलरूपिणी ! पराक्रमके मदसे अंधे गर्ववन्त राजाओंका गर्व दूर करनेके लिये और दुष्टोंका तेज हरण करनेके लिये मैं तुम्हें हरलाया था ॥ १९॥ हम घर और देहमें उदासीन हैं, हमको स्त्री पुत्रोंकी चाहना नहीं है, क्योंकि आत्माके आनन्दसे सदा परिपूर्ण हैं और ज्योतिके समान साक्षीमात्र क्रियारहित वर्ततेहैं ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् !

चैद्यशाल्वजरासंधदंतवक्रादयो नृपाः ॥ मम द्विषंति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदांधानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ॥ आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ॥ आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ॥ मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत ॥ २१ ॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ॥ आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिंतां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥

रुक्मिणीका मन हरनेवाले और जो आपसे कभी अलग न होय, इसलिये आपको अपना प्राणवल्लभ जाननेवाली रुक्मिणीका गर्व दूर करनेके लिये इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चुप होगये॥२१॥ इसप्रकार त्रिलोकीके ईश्वरोंका पालन करनेवाले अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रका जो पहले कभी न सुना था, ऐसा कटुवाक्य सुनकर हृदयमें रुक्मिणीजी कांपने लगीं और भयभीत हो रुदन करके बड़ी चिन्ता करने लगीं ॥२२॥

उत्तर–श्रीकृष्णने समझा कि, कलियुगका राज्य थोडेही दिनोंमें आनेवाला है, यह जानकर संसारके कल्याणार्थ और कलियुगकी स्त्रियोंके मानभंग करनेके लिये रुक्मिणीसे ऐसा अनुचित वाक्य श्रीकृष्णने कहा कि, स्त्रीका अभिमान भजन करनेवाले मेरे इस वचनको कलियुगमें जो कोई स्त्री पुरुष सुनेंगे वह स्त्रीभी डरेगी और वह पुरुष भी डरेगा और कहेंगे स्त्री पुरुषका प्रेम सबसे बडा है देखो तुच्छ बातपर रुक्मिणीको भगवान्‌ने त्यागनेके लिये हँसी की थी. तो भी रुक्मिणी प्राण त्यागनेके लिये उपस्थित हुई, ऐसा विचार करके स्त्री तो अपने पतिसे प्रेम करे और पुरुष स्त्रीसे प्रेम करे, इस धर्मसे दूसरा कोई भी बडा धर्म नहींहै कलियुगके जीव ऐसा मानलेंगे. इसलिये कृष्णावतारमें लक्ष्मीको कुवाक्य श्रीकृष्णने कहा कुछ छलसे नहीं कहा ॥

नखकी अरुण कांतिवाले सुकुमार चरणोंसे पृथ्वी लिखनेलगीं, आखोंमें अंजन लगनेके कारण श्याम आँसू बहने लगे, उनसे केशरयुक्त स्तनोंको भिजाती, नीचेको मुख किये अत्यन्त दुःखित हो वाणी रुकनेसे रुक्मिणी व्याकुल होकर चुप होगईं ॥ २३ ॥ अप्रियवचन सुननेके कारण अत्यन्त दुःख और त्याग करनेकी आशंकाके शोकसे बुद्धिरहित होकर रुक्मिणी व्याकुल होगईं, तब उनके हाथसे पंखा गिरगया, कंकण शिथिल हो गिरने लगे और महाव्याकुलतासे मोहित हो पवनसे गिराईहुई कदलीके समान रुक्मिणी मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़ीं और उससमय उनके केश भी खुलगये ॥ २४ ॥ हास्यकी गंभीरता न जाननेवाली अपनी प्यारी रुक्मिणीका प्रेमबंधन देख करुणाकर श्रीकृष्णचन्द्र द्रवीभूत होगये ॥ २५ ॥

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखंत्यश्रुभिरंजनासितैः ॥ आसिंचती कुंकुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःख रुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ॥ देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्रंभेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबंधनम् ॥ हास्यप्रौढि मजानंत्याः करुणः सोन्वकंपत ॥ २५ ॥ पर्यंकादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ॥ केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्प द्मपाणिना ॥ २६ ॥ प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ॥ आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥ सांत्वयामास सांत्वज्ञः कृपयाऽकृपणां प्रभुः ॥ हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा मां वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ॥ त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमंगने ॥ २९ ॥

और चार भुजा धारणकर शीघ्र पलँगसे नीचे उतर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठाय एक हाथसे उसके केशोंको सँभालकर, कमलके समान मुखको कोमल कमलसी भुजासे पोंछने लगे ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! आँसू भरे नेत्र और शोकसे ताडित स्तनोंको पोंछ अनन्य आश्रय पतिव्रता रुक्मिणीको भुजाओंसे आलिंगन कर ॥ २७ ॥ हंसीसे चलायमान चित्त और कठोर हँसीके अयोग्य दीन रुक्मिणीको साधु पुरुषोंकी गति सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र समझाने लगे ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे रुक्मिणी ! तुम मुझसे ईर्षा मत करो और यह बात मैं निश्चय जानताहूं कि, मेरे अतिरिक्त तुम और किसीको नहीं जानती हो, हे सुन्दरी ! तुम क्या कहोगी, यह जाननेके लिये मैंने हँसी करी थी ॥ २९ ॥

स्नेहके कोपसे फडके हैं अधर जिसमें और चलायमान अरुण कटाक्षसे टेढ़ी भ्रुकुटिवाले मुखकी शोभा देखनेके लिये हँसी करीथी ॥ ३० ॥ हे भीरु प्रिये ! अपनी प्राणप्यारीके संग हँसी करके समय व्यतीत करना गृहस्थियोंको घरमें यही लाभ है ॥ ३१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब शांत करी, तब रुक्मिणीने "प्यारेने मुझसे हँसी करी है" यह बात जानकर त्यागनेके भयको छोडदिया॥३२॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! लाजभरी मधुर मुसकान और शोभायमान स्निग्ध, कटाक्षोंसे सुन्दर मुख देखतीहुई रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रसे कहने लगी ॥ ३३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि, तुम हमारे समान नहीं हो, फिर हमारा हाथ क्यों पकडा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणी

मुखं च प्रेमसंरंभस्फुरिताधरमीक्षितुम् ॥ कटाक्षेपारुणापांगं सुंदरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसांत्विता ॥ ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥ बभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षंती भगवन्मुखम् ॥ सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापांगेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ नन्वेवमेतदरविंदविलोचनाऽऽह यद्वै भवान्भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ॥ क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥ सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमांतः शेते समुद्र उपलंभनमात्र आत्मा ॥ नित्यं कदिंद्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोंधम् ॥ ३५ ॥

बोली कि, हे कमलदललोचन ! तुम्हारे समान मैं नहीं हूं, छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त आपकी बात सत्य है अपनी महिमासे आप आवृत तीनों ब्रह्मादिकोंके ईश्वर, आप कहाँ ? और सकाम पुरुषोंने जिसके चरण पकडे ऐसी सत्त्वगुणी तमोगुणी रूपवाली, मैं माया कहाँ, मुझमें और आपमें बडा अन्तर है ॥ ३४ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि, राजाओंके डरके मारे समुद्रमें आनकर रहे हैं, उसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, हे उरुक्रम ! यह सत्य है, सत, रज और तम यह तीन गुणही राजा हैं उनके भयसेही मानो सागरके समान अगाध विषयोंसे अक्षोभित हृदयमें चैतन्यघन तुम निश्चलतासे प्रकाश करतेहो, और बलवानोंसे हमने वैर किया है, यह बात जो आपने कही, सो भी सत्य है; क्योंकि विषयमें

जिनकी इन्द्रियें लगरही हैं ऐसे पुरुषोंने तुमसे विरोध किया है, सो उनमें तुम्हारी अप्रीति है और जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि, हमको राज्याधिकार नहीं है उसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, महा अविवेकका स्थान राज्य है, इसलिये तुम्हारे सेवकलोग भी उसको छोड़ देते हैं, फिर आपने छोड़ दिया तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि, हमारा मार्ग जाननेमें नहीं आता और मैं स्त्रीके वशमें नहीं हूँ इसके उत्तरमें रुक्मिणीने यह कहा कि, तुम्हारे चरणारविन्दमकरन्दका सेवन करनेवाले मुनि लोगोंका आचरणभी पशुतुल्य मनुष्योंकी समझमें नहीं आता, यदि तुम्हारा मार्ग जाननेमें न आवे तो इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि तुम्हारे अनुवर्ती भक्तोंकी और तुम्हारी चेष्टा अलग है फिर इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥३६॥ और निष्किंचन पुरुषोंके हम प्रिय हैं और धनवान् पुरुष यह समझकर हम दरिद्री होजायँगे, इस डरके मारे

त्वत्पादपद्ममकरंदजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ॥ यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवंतम् ॥ ३६ ॥ निष्किंचनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किंचिद्यस्मै बलिं बलिभुजोपि हरंत्यजाद्याः ॥ न त्वा विदंत्यसुतृपोन्तकमाढ्यतांधाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥ त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वांछया सुमतयो विसृजंति कृत्स्नम् ॥ तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्नः ॥ ३८ ॥

हमारा भजन नहीं करते, यह वार्त्ता जो श्रीकृष्णचन्द्रने कही थी, उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, आपसे भिन्न कुछ नहीं, इस लिये तुम निष्किंचन हो, दरिद्रतारूपी निष्किंचनता तुमसे नहीं बनती है, प्रजा लोगोंसे भेंट लेनेवाले ब्रह्मादिक देवता आपको भेंट देते हैं और जो तुमने कहा कि, हम निष्किंचनोंके प्यारे हैं और वे मुझको प्रिय हैं, सो भी सत्य है क्योंकि जिनको किंचित भी देहाभिमान नहीं है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मादिकोंको आप प्यारे हैं, वे आपके प्रिय हैं और जो आपने कहा कि, धनवान् लोग हमारा भजन नहीं करते यह बात भी सत्यहै, क्योंकि धनपात्रताके अभिमानसे अंधे लोग कालस्वरूप आपको नहीं जानते, इसलिये वह इन्द्रियोंको तृप्त करतेहैं आपका भजन नहीं करते ॥ ३७ ॥ जिनका बराबरका जन्म है, उनका विवाह और मित्रता होती है यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था, सो इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहने लगी कि, हे पूर्ण

स्वरूप ! तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थ और परमानन्दरूप हो सुन्दर बुद्धिवाले मनुष्य तुम्हारी प्राप्तिके लिये सब वस्तु त्याग देते हैं, प्रभो ! उन पुरुषोंका और तुम्हारा सेव्यसेवकभाव है, सुख दुःखसे व्याकुल और परस्पर प्रीतिकी ग्रंथि बाँधेहुए पामर स्त्री पुरुषोंको योग्य नहीं ॥ ३८ ॥ और भिक्षुकोंने झूंठी बडाई करी है, यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था, उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, सबको अभयदान देकर संन्यासी और मुनिजन आपकी सराहना करते हैं और यह जो आपने कहा कि, तुमने विनाजाने हमें वरा, सो यह ऐसे नहीं है, क्योंकि आपको जिसके लिये सब वस्तु प्रिय लगती हैं,उस जगत्के आत्मारूप और अपना स्वरूप देनेवाले आप हो, इसलिये आपको वरा और भूलकर वरा, यह भी आपका कथन ठीक नहीं औरोकी तो बातही क्याहै ? ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवताओंको भी कि, जिनका आपकी भ्रुकुटिसे प्रेरित कालके वेगसे सुखका नाश होताहै, यह

त्वं न्यस्तदंडमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ॥ हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकाल वेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम्॥ सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥ यद्वांछया नृपशिखामणयोंग वैन्यजायंतनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ॥ राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमंबुजाक्ष सीदंति तेऽनु पदवीं त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥

विचार उन्हें छोड़ मैंने आपको वरण किया, इस कारण जो आपने मुझपर अविचारताका दोष लगाया, सो ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित ! अपने अज्ञानको दूर करके और पुरुषोंकी बड़ाईसे क्रोधित हो श्रीकृष्णचन्द्रसे रुक्मिणी कहनेलगी कि, हे गदाग्रज ! तुमने शार्ङ्ग धनुषके शब्दसे जरासन्धादि राजाओंको भगाकर जिसप्रकार सिंह पशुओंको भगाकर अपना बलि लाते हैं, इसीप्रकार आप अपना भागरूप मुझे ले आये इसलिये तिन राजाओंसे डरकर हम समुद्रमें आनकर रहे हैं, यह भी आपका कहना नहीं बनता ॥ ४० ॥ आपने कहा कि, जो हमारे चरणोंमें पडतेहैं वह दुःख पातेहैं, सो भी नहीं बनता, हे कमलदललोचन ! तुम्हारे भजनकी इच्छासे राजाओंके मुकुटमणि राजा अंग, पृथु, भरत, ययाति

और गय आदि चक्रवर्ती राजा राज्यको त्यागन कर वनको चलेगये, तुम्हारा भजन करनेवाले राजाओंको कहाँ दुःख हुआ है ? किन्तु सुखही हुआ और वैकुण्ठ धामकी प्राप्ति हुइ है ॥ ४१ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि, समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड़ लो, इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, साधुओंसे वर्णित जनोंको मोक्षका देनेवाला और लक्ष्मी जिसका सेवन करे, ऐसे गुणोंकी खानि तुम्हारे चरणारविन्दको सूँघकर फिर त्यागसके मरणधर्मिणी कौन विवेकिनी स्त्री है, जो सदा मृत्युसे डरनेवाले पुरुषकी सेवा करेगी ? इसीलिये मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है ॥४२॥ हे जगदीश्वर ! आत्मारूप भजन करनेवालोंको इस लोक और परलोकमें कामनाओंके पूर्ण करनेवाले अपने योग्य तुम्हाराही मैंने सेवन किया है, चाहे अनेक प्रकारकी योनियोमें मेरा जन्म होय परन्तु उन जन्मोंमें भी मिथ्या संसारके भयका नाश करनेवाले और भक्तोंको अप

काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगंधमाघ्राय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गम् ॥ लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ॥ स्यान्मे तवांघ्रिररणं श्रुतिभिर्भ्रमंत्या यो वै भजंतमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३ ॥ तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वविडालभृत्याः ॥ यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिंचसभासु गीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमंतर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ॥ जीवच्छवं भजति कांतमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरंदमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥

नानेवाले तुम्हारे चरणोंकी शरण मुझे प्राप्तहो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४३ ॥ हे शत्रुदमन ! हे अखण्डरूप ! आपने कहा कि, बडे बड़े वैभववाले राजा आपकी इच्छा करतेथे सो उन्हें किसलिये छोड़ दिया, यह आपका कहना असंगत है, क्योंकि आपने जो राजा बताये हैं वह कैसे हैं कि, जो स्त्रियोंके गृहोंमें गधेके समान केवल भार उठानेवाले, बैलके तुल्य सर्वदा क्लेश उठानेवाले, श्वानकी नाईं अपमान पानेवाले, बिड़ालके समान कृपण और क्रूर और सेवककी भाँति पराधीन हैं, वह तो उस मंदभागिनी स्त्रीको पति मिलने चाहिये कि जिसके कानमें शंकर और ब्रह्माजीकी सभाओंमें गाईजाती आपकी कथा न आई हो, अर्थात् जिसने तुम्हारे गुण न सुने हो, वह तो कदाचित् भूल जाय, परन्तु मैंने तो प्रथमही आपके गुणानुवाद सुन लियेथे ॥ ४४ ॥ और जिस स्त्रीने तुम्हारे चरणारविंदकी सुगंधि नहीं

मूँधी है वह स्त्री जीवितही मृतक पुरुषको पति मानकर भजै जो, कि, बाहर तो चर्म, रोम, नख और केश इनसे ढका है और भीतर मांस, हाड, रुधिर, कीडे, विष्ठा, कफ और वात पित्तसे भरा है उसे अपना पति मानकर कौन सेवन करै ? ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हम घर और देहमें उदासीन हैं, रुक्मिणीने कहा कि, हे कमलदललोचन ! तुम अपने स्वरूपमें रमण करतेहो और मुझमें आसक्त नहींहै, दृष्टि जिनकी अर्थात् मेरी चाहना नहींहै, तौभी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें मेरा स्नेह हो, तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, स्नेह होनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणीजीने कहा कि, तुम्हारे चरणारविन्दोंमें अनुराग होनाही बडा लाभ है, और जिससमय इस विश्वको बढ़ानेके लिये गुणको ग्रहणकर मुझ मायाकी ओर देखोगे, वही बड़ा अनुग्रह है ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो

अस्त्वंबुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन्रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ॥ यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमाऽनुकंपा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ॥ अंबाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥ व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवंनवम् ॥ बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलंभिता ॥ मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥ यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ॥ संति ह्येकांतभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥ ५० ॥

बातें कही, इन सबका यथायोग्य उत्तर देकर रुक्मिणी बोली कि,हे मधुसुदन ! "आपने कहा कि, अपने समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड़लो" यह मैं झूंठ नहीं मानती, जैसे काशीके राजाकी पुत्री अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका इन तीनों कन्याओंमेंसे अम्बा कन्याकी शाल्वराजासे जैसी प्रीति हुई,उसीप्रकार मेरी प्रीति आपमें हुई है ॥ ४७ ॥ और हे अच्युत ! विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्रीके मन नवीन पुरुषोंमें जाते हैं, ऐसी बहुत कथा हैं, विवेकी पुरुष इस प्रकारकी खोटी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं रखते हैं, यदि रक्खें भी तो इस लोक और परलोकसे भ्रष्ट होजायँ ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे रुक्मिणी ! तुम्हारी बात सुननेके लिये मैंने ऐसी ऐसी बातें कही थीं और मेरे वचनका जो जो उत्तर तुमने दिया सो सब सत्य है ॥ ४९ ॥ हे भामिनी ! हे मंगलरूपिणि ! जिस जिस वस्तुकी तुम चाहना करती हो, सो सो मुझमें एकान्त भक्ति होनेसे तुमको प्राप्तही हैं हे

कल्याणी ! मुक्तिपर्यन्त तुम्हारे सब मनोरथ प्राप्त होंगे ॥ ५० ॥ हे निष्कलंक रुक्मिणी ! तुम्हारा पतिपर प्रेम और पतिव्रतापन हमने भलीप्रकार जानलिया, क्योंकि हमने यद्यपि वचन कहकर तुमको चलायमानभी किया, परन्तु तोभी तुम्हारी बुद्धि मुझसे चलायमान न हुई ॥ ५१ ॥ विषयोंमें आत्मा और मन लगाये जो पुरुष तपस्या और ब्रह्मचर्य करके स्त्री पुरुष भोगार्थ सुखके लिये मेरा भजन करते हैं, वह मेरी मायासे मोहित होकर भूलरहेहैं ॥ ५२ ॥ हे भामिनी ! मोक्षसहित सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका दाता मुझे पाकर भी जो विषयोंकी चाहना करतेहैं, और मेरी चाहना नहीं करते, वह पुरुष अभागी हैं, क्योंकि विषयोंका सुख तो कुत्ते और शूकरोंकी योनिमें भी मिलजाताहै, विषयोंमें मन रहनेसे नरक

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ॥ यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मां भजंति दांपत्ये तपसा व्रतचर्यया ॥ कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वांछंति ये संपद एव तत्पतिम् ॥ ते मंदभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥ ५३ ॥ दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ॥ सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुंभराया निकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥ न त्वा दृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ॥ प्राप्तान्नृपानविगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥ भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ॥ दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥

होताहै ॥ ५३ ॥ हे घरकी महारानी ! संसारको छुडानेवाली चाहना रहित मनकी वृत्ति तैंने मुझमें लगाई, यह भली बात है, खोटे अभिप्राय और अपने प्राणोंका भरण पोषण कर औरको ठगनेवाली स्त्रीके मनकी वृत्ति मुझमें नहीं लगतीहै ॥ ५४ ॥ हे प्राणेश्वरी ! सोलह हजार एकसौ आठ महलोंमें तुम्हारे समान प्यार करनेवाली मैं और स्त्री नहीं देखता, क्योंकि विवाहके समय आयेहुये राजाओंको त्यागकर मेरी ओर देख पाती लिखकर मेरे पास ब्राह्मणको भेजा ॥ ५५ ॥ युद्धमें तुम्हारे भाईको जीत उसका शिर मुँडकर विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहमें चौपड़ खेलते खेलते उसे मारडाला, यह भाईका दुःख हमारे त्यागनेके भयसे तुमने सहज करलिया और मुझसे कुछ न कहा, ऐसी

तुम्हारी बातोंने हमको वश करलिया है ॥ ५६ ॥ हे प्राणवल्लभे ! मेरे बुलानेके लिये सबसे छिपाकर दूतको मेरे पास भेजा और जब मुझे आनेमें विलम्ब हुआ तब इस विश्वको शून्य मानकर " और राजा मेरे योग्य नहीं हैं " यह निश्चय कर शरीर त्यागनेकी इच्छा करने लगी, यह बात तुम्हारे अतिरिक्त और किससे होसक्तीहै, हम तुम्हारी क्या प्रशंसा करें ? ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मनुष्यलोककी लीलाका अनुकरण कर हास्यकी बातें करके रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ रमण करते थे ॥ ५८ ॥ सामर्थ्यवान् सम्पूर्ण लोकोंके गुरु सबका दुःख हरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र इसीप्रकार और रानियोंके महलोंमें भी रहकर

दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमंत्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ॥ मत्वा जिहास इदमंगमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनंदयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौरतसंलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडंबयन् ॥ ५८ ॥ तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥ आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मांल्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दशदशाबलाः ॥ अजीजनन्ननवमात्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥ गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ॥ प्रेष्ठं न्यमंसत स्वंस्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥ चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ॥ संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभून्मः ॥३॥

गृहस्थाश्रमकैसा धर्म सिखाते थे ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीसंवादोनाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ दोहा—इकसठमें परिवार हरी, वरणौं सब सन्तान । विवाहमें अनिरुद्धके, हनो रुक्म बलवान् ॥ ६१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एकएक रानीने श्रीकृष्णचन्द्रकेही समान रूप, गुणवाले दश दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ घरसे कहीं बाहर न जायँ अपने पास ही रहैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर राजाओंकी पुत्री " श्रीकृष्ण आत्माराम हैं " इस बातको न जान अपना अपना प्यारा मानने लगीं ॥ २ ॥ व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने कमलकोशके समान सुकुमार मुख, बड़ी भुजा, बड़े

नेत्र और प्रेमसहित मन्द मुसकान, रसभरी चितवन, मनोहर वाणी इत्यादिकोंसे मोहित होकर जो स्त्री अपने अपने अनेक विलासोंसे पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रका मन मोहित करनेको समर्थ नहीं हुई ॥ ३ ॥ गूढ हास्ययुक्त कटाक्षसे जताये अभिप्रायसे मनके हरनेवाले भ्रुकुटीरूप मण्डलप्रेरित जो सुरत सम्बन्धी विचार उनमें प्रगल्भ जो मन्मथ (कामदेव) के बाण और दूसरे भी कामशास्त्रमें प्रसिद्ध जो उपाय, उनसे यह सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियें भी भगवान् वासुदेवका मन वश करनेको समर्थ न हुईं ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक देवता भी जिनके मार्गको नहीं जानते, ऐसे लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको इसप्रकार पति पाकर यह स्त्रियें निरन्तर बडे आनन्दसे स्नेहभरी हँसनि, चितवन और हास्य चितवनपूर्वक नवीन संगम उन नवीन संगममें बोलना इत्यादि विलाससमूहोंका सेवन करतीथीं ॥ ५ ॥ यद्यपि एक एक रानीके सन्मुख सौ सौ दासी हाथ

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमंत्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः॥४॥इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगंधमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥६॥ तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ॥ अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥ ७ ॥ चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ॥ सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः॥८॥ चारुचंद्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः॥ प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥९॥

जोड़े खडी रहती थीं, परन्तु तोभी सम्मुख जाकर लिवालाना, आसन बिछाना, पूजन करना, चरण धोना, बीरा लगाना, चरण दाबना, पंखा करना, अतर लगाना, पुष्प चढ़ाना, केश सुधारना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना इत्यादि यह श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा आपही करती थीं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! दश दश पुत्रोंवाली श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियें थीं, उनमें आठ पटरानी प्रथम वर्णन कर आये हैं उनके प्रद्युम्नादि पुत्रोंके नाम तुमसे वर्णन करता हूं ॥ ७ ॥ यथा–प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण बलवान् चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु ॥ ८ ॥ चारुचन्द्र, विचारु और चारु, यह दश पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रके रुक्मिणीसे उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु ॥ १० ॥ श्रीभानु और प्रतिभानु, यह दश पुत्र सत्यभामाने उत्पन्न किये और साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतजित, सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड़ और क्रतु, यह साम्बसे आदि लेकर श्रीकृष्ण चन्द्रके समान गुणवाले दश पुत्र जाम्बवतीके उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ और वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्र, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, शोभायमान वसु और कुंति यह दश नाग्नजितीके पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और इन सबसे छोटा सोमक यह दश पुत्र कालिन्दीके हुए ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित इन दश पुत्रोंने

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ॥ चंद्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥१०॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ॥ सांबः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ॥ जांबवत्याः सुता ह्येते सांबाद्याः पितृसंमताः ॥ १२ ॥ वीरश्चंद्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान्वृषः ॥ आमः शंकुर्वसुः श्रीमान्कुंतिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ॥ शांतिर्दर्शः पूर्णमासः कालिंद्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रवल ऊर्ध्वगः ॥ माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥ वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च ॥ महाशः पावनो वह्निर्मित्रविंदात्मजाः क्षुधिः ॥१६॥ संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित ॥ जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ॥ प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥ १८ ॥

लक्ष्मणासे जन्मग्रहण किया ॥ १५ ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, उन्नाद, महाश, पवन, वह्नि और क्षुधि, यह दश पुत्र मित्रविन्दासे जन्मे ॥ ॥ १६ ॥ संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दश पुत्र भद्रा नाम रानीसे उत्पन्न हुए, ॥ १७ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! यह भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी आठ रानियोंके पुत्रोंका वर्णन किया अब बलदेवजीकी रानी रेवतीके दीप्तिमान् ताम्रतप्तादि पुत्र उत्पन्न हुए. भोजकटपुरवासी रुक्मकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नजीसे महाबलवान् अनिरुद्धनाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥

हे परीक्षित् ! यह जो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र और उनके पुत्र और नाती करोड़ों हुए और श्रीकृष्णचन्द्रसे उत्पन्नहुए पुत्रोंकी सोलह हजार माता हुई ॥ १९ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि, हे भगवन्! रुक्मीने अपने वैरीके पुत्रको अपनी कन्या कैसे व्याही? वह तो युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे पराजित होकर उनके मारनेका उपाय देख रहा था, हे विद्वन् ! इन दोनों शत्रुओंके बीचमें विवाहका सम्बन्ध कैसे हुआ ? यह विस्तार सहित हमारे आगे वर्णन कीजिये ॥ २० ॥ कदाचित् आप कहें कि, हम इस बातको क्या जानें इसका उत्तर यह है कि, योगीश्वर तो भूत, भविष्य, वर्त्तमान, इंद्रियोंसे अगम्य दूर अथवा किसीके ओटमें हो उसे भी भलीप्रकार जानते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत

पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥ मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि ॥ कृष्णेन परिभूतस्तं हंतुं रंध्रं प्रतीक्षते ॥ २० ॥ एतदाख्याहि मे विद्वन्द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥ अनागतमतीतं च वर्तमानमतींद्रियम् ॥ विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यंति योगिनः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः स्वयंवरे साक्षादनंगोंगयुतस्तया ॥ राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥ २२ ॥ यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ॥ व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥ २२ ॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ॥ उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ॥ रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबंधनः ॥ २५ ॥

परीक्षि ! रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीने साक्षात् मूर्त्तिमान् कामदेवका अवतार प्रद्युम्नको स्वयंवरमें वरलिया, तो वह युद्धमें इकट्ठे हुए राजाओंको एकही रथमें जीत उसे हरण करके लेगये ॥ २२ ॥ यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णचन्द्रके तिरस्कारका वैर स्मरण रखता था परन्तु तो भी बहनको प्रसन्न करनेके लिये भानजेको अपनी कन्या दी ॥ २३ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! सुन्दरबुद्धि, विशालनेत्रवाली रुक्मिणीकी चारुमती पुत्रीका बलवान् कृतवर्माके पुत्रने पाणिग्रहण किया ॥ २४ ॥ यद्यपि रुक्मी वैर बांध रहा था परन्तु तोभी अपनी बहनको राजी करनेके लिये श्रीकृष्णके

नाती अपने दौहिते अनिरुद्धको अपनी पोती रोचना नामक कन्या दी, शत्रुके साथ सम्बन्ध करना अयोग्य है, इस बातको स्वयं रुक्मी जानता था परन्तु स्नेहके पाशसे बँधकर विवाह करदिया * ॥२५॥ हे राजा परीक्षित् ! उस अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, श्रीकृष्ण, बलदेव और साम्ब प्रद्युम्नको आदि लेकर सब यादव भोजकटपुरको बरातमें गये ॥ २६ ॥ जब विवाह होचुका, तब कलिंगदेशके राजाको आदिले घमंडी राजा

तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ ॥ पुरं भोजकटं जग्मुः सांबप्रद्युम्नकादयः ॥ २६ ॥ तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिंगप्रमुखाः नृपाः ॥ दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ॥ इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ॥ तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिंगः प्राहसद्बलम् ॥ दंतान्संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥ २९ ॥

रुक्मीसे कहनेलगे कि, हे रुक्मी ! बलदेवजीको जुएमें जीतलो ॥ २७ ॥ हे राजा रुक्मी ! यह बलदेव पाँसेका खेल नहीं जानता, परन्तु इनको खेलनेका व्यसन बड़ा है, यह सुन्तेही रुक्मी बलदेवजीको बुलाय उनके संग जुआ खेलनेलगा ॥ २८ ॥ बलरामजीने वहाँ प्रथम सौ, फिर हजार, इसके पीछे दशहजार रुपयेका दाँव लगाया, परन्तु वह दाँव रुक्मीही धाँधलबाजी करके जीतगया उस समय कलिंगदेशका राजा दाँत दिखाकर

---

* शंका–भागवतमें लिखा है कि, राजा रुक्मी जानता था कि, फूफीकी लडकीके साथ विवाह करनेका तथा मामाकी लडकीके साथ विवाह करनेका महादोष है, इस धर्मको विना जाने जो विवाह करेगा तो पाप होगा और जो जानबूझके करेगा तो उसको महापाप होगा, फिर जानबूझकर अपने पुत्रकी लडकीको अनिरुद्धके सग क्यों विवाहदी ? क्योंकि वह कन्या अनिरुद्धके मामाकी थी और जो कोई कहे कि, रुक्मीने, श्रीकृष्णचन्द्रजीके स्नेह करके भी अधर्मरूप कन्यादान किया है तोभी यह बात ठीक है, परन्तु जिस स्नेहसे ससारमें निन्दा होय और मृत्यु होनेके पीछे प्राणीको रौरवनरकमें जानापडे, ऐसे स्नेहकी मुनिलोग प्रशंसा नहीं करते ॥

उत्तर–राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मैं अपने लडकेकी लडकीको श्रीकृष्णके पोतेको विवाह दूगा तो श्रीकृष्ण मेरे ऊपर बहुत प्रसन्न होवेंगे, ऐसा विचारके अपने ऊपर श्रीकृष्णका स्नेह समझकर अधर्मरूप विवाह किया और लोककी निन्दा और नरककी त्रास दोनोंको त्यागकर अपनी पोतीका विवाह श्रीकृष्णके पोतेके सग करदिया, राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मेरे ऊपर कृष्ण प्रसन्न रहेंगे तव लोकमें मेरी निन्दा कौन कर सक्ता है ? और नरकमें भी कृष्णके सामने मुझे कौन डाल सक्ता है । ऐसा विचारके रुक्मीने अधर्मरूप विवाह किया था ॥

बलदेवजीकी बहुत हँसी करके कहने लगा कि, रे! जुँवाका खेल और पाशोंकी सार तुम गँवार क्या जानोगे, क्योंकि, जुँवा खेलना और युद्ध करना तो राजाओंका काम है तुम गोपग्वाल तो गौवोंको पहचानते हो ऐसे सुन तब बलरामजी उस हँसीको सहन न करसके ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दाव लगाया, उसे बलदेवजी जीते, परन्तु उस समय कपट करके "मैंने जीता" इस प्रकार रुक्मी कहने लगा ॥ ३० ॥ जिस प्रकार अमावस व पूर्णमासीको समुद्र क्षोभयुक्त होताहै, उसी प्रकार श्रीमान् बलदेवजी अत्यन्त क्रोधसे क्षुभित होगये और स्वभावहीसे जिनके अरुण नेत्र हैं ऐसे बलरामजीने अति क्रोधकर दश करोड़का दाँव लगादिया ॥ ३१ ॥ और वास्तवमें बलदेवजी वह दाँव जीतगये तब फिर रुक्मीने कपट करके कहा कि मैं जीताहूं, इस विषयमें यह जो सभासद उपस्थित हैं, इनसे बूझलो

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद् ग्लहं तत्राजयद्बलः ॥ जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युना क्षुभितः श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि ॥ जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान्रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः ॥ रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ॥ धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ॥ संकर्षणं परिहसन्बभाषे कालचोदितः ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ॥ अक्षैर्दीव्यंति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥ ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ॥ क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कलिंगराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ॥ दंतानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार बलदेवजी और रुक्मीका विवाद हो रहा था कि, इतनेहीमें आकाशवाणी हुई कि बलदेवजी जीते हैं और रुक्मीका वचन मिथ्या है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय आकाशवाणीका निरादर करके दुष्ट राजाओंका सिखाया रुक्मी, महात्मा बलदेवजीकी हँसी करता कालसे प्रेरित होकर यह वचन कहनेलगा कि, ॥ ३४ ॥ गौओंके चरानेवाले तुम पाँसे खेलना नहीं जानते, पाँसोंसे और बाणोंसे तो राजालोग खेलतेहैं, आपसरीखे पाँसे खेलना क्या जाने? ॥३५॥ हे परीक्षित्! जब इस प्रकार रुक्मीने अनादर और राजाओंने हँसी करी, तब महाबलवान् बलरामजीने अत्यन्त क्रोधित हो, परिघ उठाय मंगल सभामें रुक्मीका संहार किया और कहा ॥ ३६ ॥ हे राजन्! जब बलरामजीने सब राजोंके देखते २

रुक्मीको मारडाला उस समय कालिंगदेशका राजा अत्यन्त भयभीत होकर भागा, तब झुझलाकर बलरामजीने उसे दशही पगपर पकड लिया और जौनसे दाँत फाडकर वह हँसा था, वह दाँत तोड़दिये ॥ ३७ ॥ और राजा भी बलदेवजीके परिघसे पीड़ित हो, डरकर भागगये, जिनके हाथ, जंघा और शिर टूट गये थे और रुधिरसे उनका शरीर भीज रहा था ॥ ३८ ॥ हे परीक्षित्! जब श्रीकृष्णका साला रुक्मी मारागया, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने न तो अच्छा कहा, न बुरा कहा क्योंकि, जो अच्छा कहते, तो रुक्मिणी अप्रसन्न होती और बुरा कहते, तो बलदेवजी अत्यन्त बुरा मानते, इसलिये कुछ न कहा चुप चाप रहे ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त दुलहिनके साथ अनिरुद्धजीको रथमें बिठाय बलरामादि सब यादव भग

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ॥ राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ रुक्मिणीबलयो राजन्स्नेहभंगभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥ रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० दशमस्कंधे उत्त० अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ राजोवाच ॥ बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥ तत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥ एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्व मर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ॥ येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥२॥

वान् श्रीकृष्णचन्द्रका आश्रय पाय सब मनोरथ सिद्धकर भोजकटपुरसे चल द्वारकापुरीमें आये ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायामनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ दोहा–बासठवें अध्यायमें, बाणासुर बलवान्। बाँधिलियो अनिरुद्धको, सो सब कहौ बखान ॥ ६२ ॥ राजा परीक्षित् पूँछनेलगे कि, हे योगिन्! बाणासुरकी पुत्री ऊषाने अनिरुद्धके साथ विवाह किया, इसमें श्रीकृष्णका और महादेवजीका बडा युद्ध हुआ उस कथाको कहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! भगवान् विष्णुने जब वाम

नरूप धारण करके राजा बलिसे पृथ्वी माँगी तब सब पृथ्वी जिनने दान करदी ॥ २ ॥ ऐसे महात्मा राजा बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें ज्येष्ठ पुत्र भगवान् महादेवजीका अत्यन्त भक्त सबका मान्य, ज्ञानवान् बुद्धिवान्, सत्यसंकल्प, दृढव्रत, बाणासुर नामसे प्रसिद्ध था ॥ ३ ॥ और शोणितनाम रमणीकपुरमें राज्य करता था उस बाणासुरके सन्मुख भगवान्, महादेवजीकी कृपासे संपूर्ण देवता सेवकोंकी भाँति खड़े रहते थे, एक समय तांडव नृत्यमें हजार भुजाओंसे बाजे-बजाय भोलानाथको बाणासुरने प्रसन्न किया, तब सब प्राणियोंके ईश्वर भक्तवत्सल भगवान् महादेवजी बाणासुरको वर देनेकी इच्छा करने लगे, तब शिवजीसे " मेरे पुरकी तुम रक्षा करो " यह बाणासुरने वर माँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ पराक्रमके दुर्म

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ॥ मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधो दृढव्रतः ॥ ३ ॥ शोणिताख्यपुरे रम्ये सराज्यमकरोत्पुरा ॥ तस्य शंभोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन तांडवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥ भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ वरेण छंदयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥ स एकदाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ॥ किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदांबुजम् ॥ ६ ॥ नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ॥ पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामरांघ्रिपम् ॥७॥ दोस्सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ॥ त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥ कंडूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ॥ आद्याऽयां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥

दसे बाणासुर अपने पास रहनेवाले शिवजीके चरणारविन्दोंको सूर्यके तेजके समान किरीटसे स्पर्श करके एक समय कहनेलगा ॥ ६ ॥ कि, हे सब लोकोंके गुरु महादेव ! जिनके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए हैं, तुम उन पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हो इसलिये आपको नमस्कार है ॥७॥ और हे देव ! आपने जो कृपाकरके हजार भुजा मुझे दीं, सो उनका अवतक केवल बोझही हुआ है, इसलिये त्रिलोकीमें तुम्हारे विना और कोई मुझे बराबरका युद्ध करनेवाला नहीं मिलता ॥ ८ ॥ हे आदिपुरुष ! जब मेरी भुजाओंमें बहुत खूजली उठी, तब मैं युद्ध करनेके लिये पर्वतोंको तोडता फोडता दिग्गजोंके पास गया, परन्तु वह भी मेरे भयसे भीत हो दिशाओंको छोड़कर भागगये, इस कारण कृपा करके आप

मुझसे युद्धकर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार बाणासुरका वचन सुन भगवान् महादेवजी अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे कि, मूढ ! जिस समय मेरी दीहुई ध्वजा तेरे महलपरसे टूटकर गिरपडेगी, उस समय तेरी बराबरीके बलवान्से तेरा युद्ध होगा, और तेरा गर्व भी उसी समय चूर्ण होजायगा ॥ १० ॥ हे परीक्षित् ! जब भगवान् भूतनाथ महादेवजीने इस प्रकार कहा, तब कुबुद्धि बाणासुर शिर नवाय अपने घरको चलागया और अपने बल, बुद्धि पराक्रमके नाश करनेवाली महादेवजीकी आज्ञाका पैंडा देखने लगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस बाणासुरके एक ऊषानामक कन्या थी उसका पहले कभी जिसको न देखा और न कभी सुना ऐसे सुन्दर अनिरुद्धके साथ स्वप्नमें

तच्छ्रुत्वा भगवान्क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ॥ त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ १० ॥ इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ॥ प्रतीक्षन्गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः॥ ११ ॥ तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ॥ कन्याऽलभत कांतेन प्रागदृष्टश्रुतेन च ॥ १२ ॥ सा तत्र तमपश्यंती कासि कांतेति वादिनी ॥ सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ १३ ॥ बाणस्य मंत्री कुंभांडश्चित्रलेखा च तत्सुता ॥ सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १४ ॥ कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ॥ हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥ ऊषोवाच ॥ दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ॥ पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥ १६ ॥

समागम हुआ ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त जागनेपर वहाँ अनिरुद्धको न देख अत्यन्त लज्जित हो, हे कंत ! तुम कहाँ गये ? इसप्रकार पुकारती पुकारती विह्वल होकर सखियोंके बीचमें गिरपड़ी ॥ १३ ॥ तब बाणासुरके मंत्री कुंभाण्डकी पुत्री चित्ररेखा आश्चर्य मानकर अपनी प्रिय सखी ऊषासे पूँछनेलगी ॥ १४ ॥ कि, हे सुभ्रु ! हे प्यारी ऊषा ! तू किसे ढूँढ़ती है और तेरा क्या मनोरथ है ? हे राजकुमारि ! अभी तो तेरा विवाह भी नहीं हुआ है, फिर किस प्रकार पति पुकारती फिरती है ? ॥ १५ ॥ इस प्रकार चित्ररेखाका वचन सुनकर ऊषा बोली कि, श्याम

स्वरूप, कमलके समान नेत्र पीताम्बर धारण किये, बडी भुजा और स्त्रियोंके मनको मोहित करनेवाला ऐसा पुरुष मैंने स्वप्नमें देखाहै ॥ १६ ॥ मैं उसी प्रीतमको ढूँढ़ रही हूँ, वह मुझे अधरामृत पिलाय मुझ अभिलाषिणीको दुःखके समुद्रमें पटककर कहीं चला गया ॥ १७ ॥ यह वचन सुनकर चित्ररेखा बोली कि, हे ऊषा ! तेरा दुःख मैं दूर करूँगी, जिस पुरुषने तेरा चित्त चुराया है, यदि वह त्रिलोकीमें कहीं होगा तो ढूँढ़कर ले आऊँगी, परन्तु उसे बता दे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त चित्ररेखा देवता, गंधर्व, सिद्ध, चारण और पन्नग इनके चित्र लिखकर फिर दैत्य, विद्याधर, यक्ष, मनुष्य इन सबके चित्र लिखनेलगी ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें भी वृष्णि और वृष्णिमें भी शूरसेन, वसुदेव, राम, कृष्ण और

तमहं मृगये कांतं पाययित्वाऽधरं मधु ॥ क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ॥ तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा देवगंधर्वसिद्धचारणपन्नगान् ॥ दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च यथाऽलिखत् ॥१९॥ मनुजेषु च सा वृष्णीञ्छूरमानकदुंदुभिम् ॥ व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषाऽवाङ्मुखी ह्रिया ॥ सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ॥ ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यंके प्राद्युम्निं योगमास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥

प्रद्युम्नका चित्र लिखा उसको देखतेही "यह श्वशुर हैं" ऐसा समझकर लज्जित होगई ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पृथ्वीपति ! ऊषा अनिरुद्धका चित्र देखकर अत्यन्त लाजसे नीचेको मुख किये " मेरा चित्तचोर यही है " ऐसे मुसकराकर सखीसे कहने लगी ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! योगकी ज्ञाता चित्ररेखा उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पौत्र जान आकाशमार्गसे, होकर कृष्णपालित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ उस समय अनिरुद्धकुमार पलँगपर शयन कर रहेथे उन्हें योगके बलसे उठाय शोणितपुरमें लेआई और सखीने ऊषाको दर्शन

कराया ❋ ॥ २३ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान् सुन्दर वर अनिरुद्धजीको देख प्रसन्नमुख ऊषा, पुरुषोंके देखनेमें न आवै इस प्रकर अपने घरमें अनिरुद्धके संग रमण करनेलगी ॥ २४ ॥ और बडे मोलके वस्त्र, माला, सुगंधी, धूप, दीप आसन इत्यादि और पीनेकी सामग्री तथा भोजन, भक्ष्य वचनोंसे उनकी पूजा करनेलगी ॥ २५ ॥ अत्यन्त बढ़ा है स्नेह जिसका ऐसी ऊपाने हरी हैं इंद्रियें जिनकी ऐसे अनिरुद्धजीको मोहित होकर

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना ॥ दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुंभी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥ २४ ॥ परार्ध्यवासस्स्रग्गंधधूपदीपासनादिभिः ॥ पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ॥ नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयाऽपहृतेंद्रियः ॥ २६ ॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ॥ हेतुभिर्लक्षयांचक्रुरापीतां दुरवच्छदैः ॥ २७ ॥

वास करते कितनेही दिन रात बीतगये, परन्तु उन्हैं कुछ सुधि न हुई ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! यादवोंमें वीर अनिरुद्धजीके भोग करनेसे जिसका कन्यापनेका व्रत दूर होगया तब उस अत्यन्त प्रसन्नमन ऊषाको गुप्त न रहनेवाले लक्षणोंसे पहरेदारोंने पहिचानलिया और उसीसमय बाणासुरसे

---

* शंका–श्रीकृष्णके तेजसे रचीहुई द्वारकापुरी,जिसके चारोंओर समुद्र, रात दिन सुदर्शनचक्र घूमता रहै,ऐसी अद्भुत द्वारकापुरीमें जो कोई पुरुष कपटवेष धारण करके उस पुरीमें जानेकी इच्छा करना चाहै तो कभी नहीं जासक्ता, जो ब्रह्मदेवके बनाये जीव हैं उनको तो सामर्थ्यही नहीं जो कपट करके द्वारकाके भीतर जासकैं, फिर क्या कारण जो चित्ररेखा रक्षा करनेवाले प्राणियोंकी आज्ञा नहीं लेके विना बूझे कपट करके द्वारकामें जाकर सोतेहुए अनिरुद्धकुमारको पलँगसहित उठाय बडे सुखसे लेकर चलीगई, कोई दूसरा यादव नहीं वह स्वय श्रीकृष्णके पोतेहीको हरकर लेगई किसी और दूसरे यादवको लेजाती तो थोडी ही शका होती कि, कोटके बाहर सोताहुआ रहगया होगा वह तो कोटके भीतर इक्कीस ड्योढीवाले मदिरमेंसे अनिरुद्धको लेगई अर किसीको सुधि भी न हुई यह बडा अचमा है ?

उत्तर–बाणासुरकी मृत्युका उपाय भगवान्ने विचारकर और उसकी कन्याके सग अपने पोतेका विवाह विचारकर, सुदर्शनचक्रको आज्ञा दी कि द्वारकापुरीको चित्ररेखा राक्षसी आवेगी, उसको तुम द्वारकाके भीतर जानेसे मत रोकना, एक बार द्वारकासे बाहरको जाय तो चली जाने देना और भीतरसे कोई वस्तु बाहरको लेजाय तो लेजाने देना बर्जना मत, ऐसी भगवान्की आज्ञाको मानकर सुदर्शनचक्रने चित्ररेखाको नहीं वर्जा, इसलिये चित्ररेखा अनिरुद्धको हरकर लेगई ॥

आनकर कहा कि ॥ २७ ॥ हे राजन् जिस प्रकार कुलको कलंक लगै, ऐसी तुम्हारी कन्याकी कुचेष्टा हमको दीख पडती है ॥ २८ ॥ हे समर्थ ! बाणासुर ! ! हम लोग तो घरका अखण्ड पहरा देते हैं और राजकुमारी ऊषाकी रक्षा करते हैं, इसे कोई मनुष्य देख भी नहीं सक्ता इतनेपर भी कन्याको यह दूषण कहाँसे लगगया ? सो हम नहीं जानते ॥ २९ ॥ इस प्रकार कन्याका दोष सुन अत्यन्त दुःखी हो, बाणासुरने शीघ्रही कन्याके घरमें जाकर यादवोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको देखा ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! कामदेवका पुत्र त्रिभुवनमें एक सुन्दर श्यामस्वरूप, पीताम्बर धारण किये, कमलके समान नेत्र, बड़ी भुजा कानोंमें दीप्तिमान् कुण्डल और केशोंकी कान्ति व मुसकानपूर्वक चितवनसे शोभायमान मुख ॥ ३१ ॥ और सब

भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ॥ विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २८ ॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ॥ कन्याया दूषणं पुंभिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥ २९ ॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ॥ त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशंगांबरमंबुजेक्षणम् ॥ बृहद्भुजं कुंडलकुंतलत्विषा स्मितावलोकेन च मंडिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यंतमक्षैः प्रिययाऽभिन्नृम्णया तदंगसंगस्तनकुंकुमस्रजम् ॥ बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३२ ॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनेकैरवलोक्य माधवः ॥ उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथाऽन्तको दंडधरो जिघांसया ॥ ३३ ॥ जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ॥ ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥३४॥

मंगलरूप प्यारीके साथ पाँसोंसे खेलता, उस प्यारीके अंगसंगसे जिसमें स्तनोंकी केशर लगगई थी, ऐसी मनोहर जो वसन्त ऋतुकी मालतीहै, उसके पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण किये कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजीको ऊषाके निकट बैठा देखकर बाणासुर अत्यन्त आश्चर्य करनेलगा ॥ ३२ ॥ शत्रुओंको संगलिये अनेक पैदलोंसहित बाणासुरको मन्दिरमें आता देखकर मधुवंशोत्पन्न अनिरुद्धजी लोहेका परिघ उठाय मारनेके लिये दंड धारण करके कालके समान खड़े होगये ॥ ३३ ॥ पकड़नेके लिये चारोंओरसे चले आते, सूकरोंके यूथका पालन करनेवाले मुख्य सूकर जैसे

कुत्तोंको मारता है, उसी प्रकार मारनेलगे और मार पड़नेके कारण शिर, हाथ, पाँव टूटनेसे वह सिपाही घरमेंसे निकलकर भागगये ॥ ३४ ॥ राजा बलिका पुत्र बली बाणासुरने क्रोध करके अपनी सेनाको मारतेहुए अनिरुद्धकुमारको नागफाँससे बाँधलिया, उस समय अनिरुद्धजीको बँधा देखकर अत्यन्त शोक और खेदसे व्याकुल हो नेत्रोंमें जल भरकर ऊषा रोनेलगी॥३५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामनिरुद्धबन्धनोनाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ दोहा—तिरसठमें यादवन अरु, बाणासुरको युद्ध । सहसभुजातेहि काटि हरि, बरो बहुरि अनिरुद्ध ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! अनिरुद्धजीको देखे विना बंधु बांधवोंको शोच करते वर्षाऋतु चार

तं नागपाशैर्बलिनंदनो बली घ्नंतं स्वसैन्यं कुपितो बबंध ह ॥ ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे अनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बंधूनां च भारत॥ चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च॥ प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः सांबोऽथ सारणः ॥ नंदोपनंदभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥३॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतोदिशम् ॥ रुरुधुर्बाणनगरं समंतात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥

महीने व्यतीत होगये ॥ १ ॥ हे राजन् ! जिस समय सब यदुवंशी शोकसागरमें निमग्न पड़े थे, उसी समय देवर्षि नारदजीने आनकर अनिरुद्धके बँधनेका सब समाचार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा, सुनतेही श्रीकृष्णचन्द्र बहुतसे यादवोको साथ ले बाणासुरके शोणित पुरको गये ॥ २ ॥ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब, सारण, नंद, उपनन्द और भद्रादि राम कृष्णके आज्ञाकारी मुख्य मुख्य यादवोको श्रीकृष्णचन्द्रने संगले बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके नगरको चारोओरसे घेरलिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे परीक्षित् ! यादवोंसे अपने पुरके बाग, परकोटे, अटारी, द्वार आदि टूटे देख अत्यन्त क्रोधित हो, बारह अक्षौहिणी सेना लेकर बाणासुर पुरसे बाहर निकला ॥ ५ ॥

इसके उपरान्त अपने भक्त बाणासुर पर विपत् पडी जान, अपने पुत्र स्कंद और बहुतसे भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी इत्यादि साथ ले नंदीश्वरपर चढ़कर कृष्ण बलदेवसे युद्ध करनेके लिये भगवान् महादेवजी रणभूमिमें आनकर सुशोभित हुये ॥ ६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अब वहाँ परस्पर बडा अद्भुत व भयानक जिसको देखतेही रोमाञ्च खड़े होजायँ, इस प्रकार युद्ध होनेलगा, श्रीकृष्णचन्द्र महादेवजीके सम्मुख, प्रद्युम्न स्वामिकार्तिकजीके सम्मुख ॥ ७ ॥ कुंभांड और कूपर्णका युद्ध बलदेवजीसे होनेलगा, साम्बका बाणासुरके पुत्रके संग और बाणासुरका युद्ध सात्यकीके साथ होनेलगा ॥ ८ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक और मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष यह सब विमानोंपर

बाणार्थे भगवान्रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नंदिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ कृष्णशंकरयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुंभांडकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ॥ सांबस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ॥ गंधर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टु मागमन् ॥ ९ ॥ शंकरानुचराञ्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥ डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान् ॥ द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानि प्रायुंक्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ॥ प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥

चढ़कर युद्ध देखनेकी इच्छासे आये ॥ ९ ॥ उस समय भगवान् भूतेश्वरके अनुचर भूत, प्रेत, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक॥१०॥ प्रेत, मातृ, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षस इन सबको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र पैनी धारके भालोंसे मार मारकर भगानेलगे ॥ ११ ॥ पिनाक धनुषधारी महादेवजी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर अलगही अस्त्र शस्त्र चलानेलगे, परन्तु आश्चर्यरहित—श्रीकृष्णचन्द्रजीने उन सब अस्त्र शस्त्रोंको शान्त करदिया ॥१२॥श्रीभोलानाथने ब्रह्मास्त्र चलाया उसे श्रीकृष्णचन्द्रजीने ब्रह्मास्त्रसे शान्त करदिया, इसके उपरान्त जब महादेवजीने वायुदेवताका अस्त्र

चलाया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतदेवताक अस्त्र छोड़ा उस समय पर्वतसे रुककर पवन थमगया, इसके पीछे महाक्रोधित हो शिवजीने अग्निदेवताक अस्त्र चलाकर आग लगा दी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय मेघास्त्र छोड़कर क्षणमात्रमें सब अग्निको शान्तकर दिया फिर भगवान् भूतनाथने अपना पाशुपत अस्त्र चलाया, उसको श्रीकृष्णचन्द्रने अपने नारायणास्त्रसे काटडाला ॥१३॥ फिर भगवान् वासुदेवने जृम्भणास्त्र चलागया उससे शिवजी जँभाई लेनेलगे, इस प्रकार उन्हें मोहित करके बाणासुरकी सेनाको तलवार, गदा और बाणोसे, मारनेलगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! प्रद्युम्नजीके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर स्वामिकार्त्तिकजीके अंगोंमेंसे रुधिर बहनेलगा, तब वह समर छोड मोरपर चढ़कर भाग गये ॥ १५ ॥ कुंभांड

मोहयित्वा तु गिरिशं जृंभणास्त्रेण जृंभितम् ॥ बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥ स्कंदः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समंततः ॥ असृग्विमुंचन्गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥ कुंभांडः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ॥दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पंचशतानि वै ॥ एकैकस्मिञ्छरौ द्वौद्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान्धनूंपि युगपद्धरिः ॥ सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ॥ पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥

और कूपकर्ण मूसलके लगनेसे पृथ्वीपर गिरगये, तब स्वामीके मरजानेसे उनकी सम्पूर्ण सेना चारोंओरको भागगई ॥१६॥ हे महाराज ! इस प्रकार अपनी सेनाको जहाँ तहाँ भागता देख बड़ी असहनतासे बाणासुर संग्राममें सात्यकी यादवको छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ १७ ॥ और रणमें बडे गर्वसे बाणासुरने एक संग पाँचसौ धनुष खैंच एक एक धनुषमें दो दो बाण लगाये ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय बाणासुरके वह पाँचसौ धनुष काट डाले फिर सारथी और घोडोंको मार रथको चूर्णकर शंखध्वनि करी ॥ १९ ॥ उस समय कोटरानाम

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ॥ बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥ २१ ॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ॥ अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३ ॥ माहेश्वरः समाक्रंदन्वैष्णवेन बलार्दितः ॥ अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयतांजलिः ॥ २४ ॥ ज्वर उवाच ॥ नमामि त्वाऽनंतशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ॥ विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिंगं प्रशांतम् ॥ २५ ॥

बाणासुरकी माता अपने बालोंको खोल, नग्न हो, पुत्रके प्राण बचानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आनकर खडी होगई * ॥ २० ॥ हे राजन् ! नंगी स्त्रीको देखना शास्त्रकी आज्ञा नहीं है, इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुख फेर कर खडे होगये, इस बीचमें जिसका रथ टूटगया, धनुष कटगया, ऐसा बाणासुर रणभूमि छोड पुरमें भागगया ॥ २१ ॥ भूतगण जिस समय भागये, तब तीन शिर और तीन पाँवका ज्वर दशों दिशाओंको जलाता शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥२२॥ तब नारायण देव श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीके ज्वरको आया देख अपना शीतज्वर छोडा, इसके उपरान्त शिवजीका ज्वर और भगवान्का ज्वर दोनों परस्पर मिलकर युद्ध करनेलगे ॥ २३ ॥ जब विष्णुके, ज्वरने शिवजीके ज्वरको बलपूर्वक दबालिया, तब अत्यन्त पीडित होकर पुकारने लगा और अपनी रक्षाके लिये कोई निर्भय स्थान न पाय, हाथ जोड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ ज्वर बोला कि, अनन्तशक्ति, ब्रह्मादिकोंके ईश्वर सबके आत्मा शुद्ध; चैतन्यघन जगत्की उत्पत्ति

---

* शंका—अपने पुत्रकी रक्षा करनेके लिये बाणासुरकी माता नगी होकर श्रीकृष्णके सामने क्यों खडी होगई, नग्न होकर खडी होनेसे क्या जान पडताहै, जैसे किसी कामीके सामने स्त्री नग्न होकर खडी होजाय तो वह कामी स्त्रीको देखकर मोहित होजाय तो स्त्री जो कुछ आज्ञा करे, सो सो आज्ञा वह कामी पुरुष उसे पूर्ण किया करे वही काम बाणासुरकी माताने किया, यह शंका भारी है ॥ उत्तर—ब्रह्माने कोटराको वरदान दिया था कि, हे कोटरे ! तीन लोकमें जो पुरुष हैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव और चौरासी लक्ष योनिके पुरुष मात्र तुमको नगी देखेंगे तब उसी समय भस्म होजायँगे केवल एक तेरा पतिही भस्म न होगा और सब जल्दी भस्म होंगे, कोटराने ऐसा जानकर श्रीकृष्णको भस्म करनेके लिये श्रीकृष्णके सम्मुख खडी हुई

स्थिति और संहारके कारण, वेदसे गम्य, शान्तमूर्ति, ब्रह्म जो आप हैं, सो मैं आपको नमस्कार करताहूं॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म, जीजी स्वभाव, द्रव्य, शरीर, प्राण, अहंकार, विकार और मन अर्थात् ग्यारह इंद्रियें और पंचमहाभूत, अर्थात् पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश इन तत्त्वोंका बना यह देह जैसे बीजसे अंकुर और अंकुरसे फिर बीज होजाताहै, इसीप्रकार कर्मोंसे देह, फिर देहसे कर्म, फिर कर्म देह ऐसे जलकेसा प्रवाह चला जाताहै, बस यही तुम्हारी माया तुम उसके निषेधके अवधि हो इसलिये मैं आपकी शरण आया हूं ॥ २६ ॥ यदि कहो कि, मैं देवकीका पुत्र हूँ सो यह मुझसे कैसे बनसक्ताहै इसका उत्तर यह है कि, आप लीलापूर्वक मत्स्यादि अवतार धारण करके देवताओंका पालन और वर्णाश्रमके धर्मकी रक्षा करते हो और धर्म करनेवाले साधुलोगोंका पालन व हिंसासहित पापमार्गका नाश करते हो, इसकारण पृथ्वीका बोझा उतारनेके लिये

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ॥ तत्संघातो बीजरोहैः प्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रप द्य ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूँल्लोकसेतून्बिभर्षि ॥ हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानाञ्जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥ २७ ॥ तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शांतोग्रेणात्युल्वणेन ज्वरेण ॥ तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशाऽनुबद्धाः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ॥ यो नौ स्म रति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तोच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्यो त्स्यञ्जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ॥ मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥

तुम्हारा जन्म है ॥ २७ ॥ आपके उत्पन्न किये दुःसह भयंकर उग्र शीतज्वरसे मैं तपायमान हुआहूं क्योंकि देहधारियोंको तबतकही ताप है जबतक आशा बाँधकर आपके चरणकमलोंका सेवन न करै ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जब इसप्रकार शिवज्वरने भगवान् वासुदेवकी स्तुति करी तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे तीन शिरके ज्वर ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआहूँ और मेरे ज्वरसे जो तुझे भय हुआ है वह डर निवृत्त हो परन्तु जो पुरुषगण इस संवादका स्मरण करें उनको तू मत व्यापना ॥ २९ ॥ इसप्रकार जब कहा, तो शिवज्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके चलागया, इसके उपरान्त बाणासुर रथमें चढ़ श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आया ॥ ३० ॥ हे महाराज ! हजार भुजाओंमें

अनेकप्रकारके शस्त्रोंको धारण कर बाणासुर अत्यन्त क्रोधित हो, चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा ॥ ३१ ॥ निरन्तर शस्त्रोंको चलाते बाणासुरकी भुजाओंको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने छूरीके समान पैंनी धारके चक्रसे जैसे माली वृक्षोंको काटताहै, उसीप्रकार काटडालीं ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! जब बाणासुरकी भुजा कटगईं, तो उस समय भक्त बाणासुरपर कृपा करनेवाले भगवान् भूतनाथ आकर चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करनेलगे ॥ ३३ ॥ महादेवजीने कहा कि, हे परब्रह्म ! आपके विनाजाने इस बाणासुरने युद्ध किया है, इसमें आश्चर्य नहीं, इस कारण वाणीमय वेदमें तुम छिपेहुए परब्रह्म हो और ज्योति सूर्यादिकोंके तुम प्रकाशक हो, इसलिये किसीके जाननेमें नही आते, यदि कहो कि,

तस्याऽस्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ चिच्छेद भगवान्बाहूञ्छाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषु च्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः ॥ भक्तानुकंप्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यंत्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोग्निर्मुखमंबु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरंघ्रिरुर्वी ॥ चंद्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेंद्रः ॥ ३५ ॥ रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिंचो धिषणा विसर्गः ॥ प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥ तवावतारोऽयमकुंठधामन्धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ॥ वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७ ॥

प्रतीत कैसे हो ? इसके उत्तरमें शिवजी कहतेहैं कि, निर्मल मन बुद्धिवाले पुरुष आकाशके समान निर्लेप, निर्गुण तुम्हें देखतेहैं ॥ ३४ ॥ निर्गुण ज्ञानकी बात तो एक और है परन्तु तुम्हारी लीलाका आश्रय ब्रह्माण्डभी जाननेमें नहीं आता जैसे गूलर फलके भीतरके जीव गूलरके फलको नहीं जानते उसीप्रकार इस अभिप्रायसे ब्रह्माण्डरूप करके शिवजी स्तुति करतेहैं कि, आकाश आपकी नाभि, अग्नि मुख, जल वीर्य, स्वर्ग मस्तक, दिशा कान, पृथ्वी चरण, चंद्रमा मन, सूर्य नेत्र मैं (शिव) अहंकार, समुद्र उदर, इन्द्र भुजा, औषधी रोम, मेघ केश, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति लिंग और धर्म हृदय है, लोकोंकी कल्पनासे विराट् पुरुष तुम हो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सो हे अखण्डरूप ! यह तुम्हारा अवतार धर्मकी रक्षा और जगत्का

करतेहैं ॥ ३७ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन
कल्याण करनेके लिये हुआ है और हम सब लोकपाल आपहीसे रक्षित होकर सब लोकोंका पालन
अवस्थामें पुरुषके आप कारण हो और शुद्ध हो इसलिये अद्वितीय पुरुष हो और सब विश्वके कारण हो. स्वयं कारण रहित हो परन्तु तोभी संपूर्ण
विषय प्रकाश करनेके लिये अपनी मायासे जो देह धारण किया है, उसमें ऐसेही प्रतीत होतेहो ॥ ३८ ॥ जैसे सूर्य अपनी मेघरूपी छायासे ढका
हुआ होनेपर भी बादलोको प्रकाशित करता है और बादलोंके बाहर भी रूपको प्रकाशमान करताहै उसी प्रकार हे भूमन् ! स्वयंप्रकाश आप
जीवकी दृष्टिमें अपने कार्यरूप अहंकारसे ढकेहुए प्रतीत होनेपरभी सत्त्व, रज, तम, गुण, रूप, उपाधि और उनके जीवोको भी प्रकाशित करते

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ॥ प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै॥३८॥
यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च संचकास्ति ॥ एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो
गुणिनश्च भूमन् ॥ ३९ ॥ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ॥ उन्मज्जंति निमज्जंति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ४० ॥
देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेंद्रियः ॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवंचकः ॥ ४१ ॥ यस्त्वां
विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ॥ विपर्ययेंद्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥ ४२ ॥ अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनय
श्चामलाशयाः ॥ सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥ तं त्वां जगत्स्थित्युदयांतहेतुं समं प्रशांतं सुहृदा
त्मदैवम् ॥ अनन्यमेकं जगदात्मकेतुं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४ ॥

हो ॥ ३९ ॥ तुम्हारी मायासे मोहित होकर स्त्री, पुत्र और घरादिमें लगेहुए लोग दुःखमय संसारसागरमें ऊंच, नीच योनियोंको पातेहैं ॥ ४० ॥ भगवान्की
दीहुई मनुष्यदेहको पाकर जिसने अपनी इन्द्रियोंको नहीं जीता और जिस पुरुषने तुम्हारे चरणोंका भलीभाँति पूजन न किया उस पुरुषको शोच
करने योग्य और आत्माका ठगनेवाला समझना चाहिये ॥ ४१ ॥ प्यारे पुत्रादिकोंके लिये जो पुरुष प्रिय आत्मा आपका त्याग करताहै, वह
पुरुप अमृत छोड़कर विष पीता है ॥ ४२ ॥ मैं (शिव) ब्रह्मा और देवता निर्मल अंतःकरणवाले मुनिभी प्रिय ईश्वर और आत्मरूप आपकाही
भजन करतेहैं ॥ ४३ ॥ जगत्के उत्पत्ति पालन और नाशके कारण सबमें समान, शान्तस्वरूप, हितकारी आत्मा, ईश्वर, अनन्य और दूसरा

जिनके समान नहीं, बड़ा नहीं, जगत्के आत्मा आश्रय देव तुम हो ! सो तुम्हें संसार त्यागनेके लिये हम भजते ॥ ४४ ॥ हे प्रकाशमान ! यह बाणासुर मेरा अत्यन्त प्रिय और इष्ट भक्त है इस कारण मैंने इसे अभयदान दियाहै, जैसे आपने प्रह्लादपर दया की, उसीप्रकार इसपरभी दया करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ यह प्रार्थना सुनकर भगवान् वासुदेवने कहा कि, हे भगवन् ! आपने जिसप्रकार कहा मैं वैसेही आपको प्रसन्न करूंगा आपने जिस बातका विचार किया है, मैं उसमें भलीभाँति सम्मति देता हूं ॥ ४६ ॥ विरोचनके पुत्र राजा बलिका बेटा यह बाणासुर है, इसलिये मारने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दियाहै कि, जो तेरे वंशमें उत्पन्न होगा, मैं उसको नहीं मारूंगा ॥ ४७ ॥ अभिमान दूर करनेके लिये

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव ॥ संपाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ॥ भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ॥ प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ॥ सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥ चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यंत्यजरामराः ॥ पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥ इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ॥ प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलंकृतम् ॥ सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥ ५१ ॥

मैंने इसकी सहस्रभुजा काटी हैं और जो पृथ्वीपर भारी बोझ होरहाथा उसको भी मैंने उतारदिया ॥ ४८ ॥ कटनेसे इसकी चार भुजा शेष रहगई हैं, सो अजर अमर होंगी और यह दैत्य बाणासुर भयरहित तुम्हारे पार्षदोंमें मुख्य पार्षद होगा ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! इसप्रकार अभय पाकर बाणासुरने श्रीकृष्णचन्द्रको बारंबार प्रणाम करके ऊषा सहित अनिरुद्धको रथमें बैठालकर बिदा करदिया ॥ ५० ॥ और बाणासुरकी दीहुई एक अक्षौहिणी सेना सगलिये सुन्दर वस्त्रालंकारोंसे शोभायमान स्त्री सहित प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको आगेकर शिवजीसे अनुमोदन पाय श्रीकृष्णचन्द्रने वहाँसे पयान किया ॥ ५१ ॥

नगरके मनुष्य, सम्बन्धी और ब्राह्मणोंने बधाये, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रने शंख, आनक, नगारे बजाते तोरण व ध्वजाओंसे शोभायमान मार्गमें जहाँ छिडकाव होगया है, ऐसी अपनी नगरी द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥५२॥ हे राजन् ! यह श्रीकृष्णचन्द्रकी जीत और श्रीकृष्णका शिवजीसे युद्ध जो पुरुष प्रातःकाल उठकर स्मरण करेंगे, उनकी कभी हार नहीं होगी ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मूषाचरित्रवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ दोहा—चौंसठमें श्रीकृष्णने, नृगको शाप छुटाय। ब्रह्म अंशकी लगनको, सब फल दियो दिखाय ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! सांब, प्रद्युम्न, चारुभानु, गद इत्यादि यादवोंके पुत्र विहार करनेके लिये

स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ॥ विवेश शंखानकदुंदुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥ संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बाणनिग्रहो नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥ विहर्तुं सांबप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वंतः पिपासिताः ॥ जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्वमद्भुतम् ॥२॥ कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ॥ तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥ चर्मजैस्तांतवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ॥ नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविंदाक्षो भगवान्विश्वभावनः ॥ वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण सलीलया ॥ ५ ॥

वनको गये ॥ १ ॥ उस वनमें बहुत देरतक क्रीड़ा करते रहे, जब प्याससे पीडित हो यादवोंके पुत्रोंने जलको ढूँढ़ा; तब विना जलके कुएँमें एक अद्भुत जीव पडा देखा ॥ २ ॥ पर्वतके समान करकेटा देख आश्चर्ययुक्त मनसे कृपायुक्त हो यादवोंके बालक उसके निकालनेका यत्न करनेलगे॥३॥हे राजन् ! यह बालक उस करकेटेको चाम और सूतके रस्सोंसे बाँधनेपर भी निकालनेको नहीं समर्थ हुए तब उत्कंठायुक्त बालक श्रीकृष्णचन्द्रसे आनकर कहनेलगे ॥ ४ ॥ तब विश्व उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वहाँ आकर लीलापूर्वकही बायें हाथसे उस करकेटेको निकाललिया॥ ५ ॥

उत्तमश्लोक श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही वह करकेटा रूप त्याग तप्त सुवर्णके समान सुन्दर वर्ण, अद्भुत आभूषण और वस्त्र मालाओंको धारण किये, वह देवस्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि उसके करकेटा होनेका कारण जानते भी थे परन्तु तो भी सबको दिखानेके लिये पूछने लगे कि, हे बडभागी ! सुन्दर स्वरूपवान् आप कौन हो ? मुझे तुम देवताओंमें उत्तम देवता जान पडते हो ॥ ७ ॥ हे मंगलरूप ! इस योग्य तुम नहीं हो, किस अपराधसे तुम्हें यह करकेटेकी योनि प्राप्तहुई, जो हमको कहनेयोग्य समझो तो

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ॥ संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणांबरस्रक् ॥ ६ ॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुंदः ॥ कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ॥ आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्म राजा संस्पृष्टः कृष्णेनानंतमूर्तिना ॥ माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृगो नाम नरेंद्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ॥ दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥ किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ॥ कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥

हमारे सन्मुख अपना सब वृत्तांत वर्णन करो ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जब अनन्तमूर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पूँछा, तब राजा नृग सूर्यके समान तेजवाला किरीटोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके कहनेलगा ॥ ९ ॥ राजा नृगने कहा कि, हे समर्थ ! मैं इक्ष्वाकुका पुत्र नृग नाम राजा हूं जब कभी दानी राजाओंकी बात चली होगी, तो मेरा नाम भी आपके सुननेमें आया होगा ॥ १० ॥ हे नाथ ! सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी और सर्वांतर्यामी आप हैं सो तुम क्या नहीं जानते ? और कालसे तुम्हारे ज्ञानका नाश नहीं होता, तो भी आपने जो पूँछा है, सो आपकी आज्ञानुसार में वर्णन करता हूं ॥ ११ ॥

मैंने दान किया है * ॥१२॥ हे भगवन्! जितनी पृथ्वीकी रेणुका और जितने आकाशमें तारे अथवा जितनी वर्षाकी बूँदें हैं उतनीही गायोंका

दूध देनेवाली तरुण अवस्था शील स्वभाव रूप गुणसे भरी कपिला और नीतिपूर्वक संचय करी, सुवर्णसे सींग, रूपेसे खुर मढे बछडे साथ और

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ॥ यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः

शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृंगीः ॥ न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥

स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुंबेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ॥ तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुंग

वेभ्यः ॥ १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ॥ वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथा

निष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥

वस्त्र, माला, गहने पहराय, ऐसी गायें मैंने दान की थीं ॥ १३ ॥ भलेप्रकार शोभायमान गुण शीलयुक्त, दूध विना दुःखित कुटुम्बी पाखण्डरहित

आचारवाले तपस्या करके प्रसिद्ध, वेदपाठी तरुण अवस्थावाले द्विजोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करके दी थीं ॥ १४ ॥ गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, महल,

---

* शंका–जो वचन श्रीकृष्णसे राजा नृगने गोदान देनेवाले कहे थे, उन वचनोंको सुनकर हमारा सबका मन काँपता है, ऐसे मूर्खोंके समान राजा नृगने वचन क्यों कहे? भला रेतेके कणका क्या प्रमाण? एक मूठीभर रेता हाथमें ले तो दश वीस कोटि कण मूठीभर रेतमें होंगे, फिर गगा आदि नदियोंमें अथवा रेतेवाले देशोंमें रेतके सिवाय और दूसरी मृत्तिका नहीं, तहाँ कणकी क्या गणना है, फिर तारा भी गणनासे हीन हैं, वर्षाकी धारा पृथ्वीपर पडती हैं, उनकी गिनती नहीं है, ऐसा वचन वडा अयोग्य है ॥

उत्तर–मेदिनीकोशमें सत्रह १७ श्लोकसे लेकर बयालीस ४२ श्लोकतक भूमिका और द्वीप आदिका पर्वतोंका नाम लिखाहै 'सिकता' सात द्वीपका नाम लिखाहै और 'तारका' वडी वडी नदियोंका नाम लिखा हे, 'अदिव' मर्त्यलोकका नाम लिखा है, मर्त्यलोक और भरतखण्डका नाम भी अदिव है, 'वर्ष धार' पर्वतका नाम लिखा है और राजा नृग भरतखण्डमें बसता था इसलिये भरतखण्डकी नदियोंके पर्वतोंके और सात द्वीपोंके वहानेसे गोदान करनेकी गिनती श्रीकृष्णसे गुप्त करके वताई थी कि, सवको प्रगट होनेसे पुण्यका नाश होजाताहै, पचमस्कधके उन्नीसवें अध्यायमें लिखाहै कि मर्त्यलोकमें भरत खण्डमें पर्वतोंमें श्रेष्ठ २७ पर्वत हैं और नदियोंमें श्रेष्ठ नदी ४९ हैं, और पचमस्कधके प्रथम अध्यायमें लिखाहै कि, पृथ्वीमें सात द्वीप हैं इसलिये गुप्त करके श्रीकृष्णसे राजा नृगने कहा था कि, महाराज! जितने भूमिके सिकता कहिये द्वीपहैं उतनी गायें मैंने दीहैं और भरतखण्डमें जितने तारका कहिये गगा आदि वडी वडी नदी हैं उतनी गायें मैंने दीहैं और जितने वर्षधारा कहिये पर्वत मर्त्यलोकके भरत खण्डमें हैं उतनी गायें मैंने ब्राह्मणोंको दीहैं सब गायोंकी सख्या कितनी हुई विद्वान् लोगो विचार लेना, अककी उलटी रीतिसे प्रथम सात ७ दूसरे ४९ तीसरे सत्ताईस सब जोडकर २७४९७ सत्ताईस सहस्र चारसौ सत्तावन गायें देनेको श्रीकृष्णसे राजा नृगने कहा था रेतकी कण, आकाशके तारे, जलवृष्टिके लिये नहीं कहा था ॥

हाथी, घोडे इत्यादि दान करे और दासियोंसहित कन्यादान करीं. तिल, रूपा, शय्या, वस्त्र, रत्न और आच्छादनके श्रेष्ठ वस्त्र और रथोंका दान किया यज्ञ किये, कुआँ, तालाव, सरोवर वनवाये ॥ १५ ॥ ऐसा मैं दानी था, परन्तु मुझे एक संकट आनकर प्राप्तहुआ सो सुनो, किसी एक अयाचक ब्राह्मण की गौ भागकर मेरी गायोंमें मिलगई, वह गाय विना जाने मैंने ब्राह्मणको दान करदी ॥ १६ ॥ उस गौका स्वामी गौको लेजाता देखकर "यह गौ मेरी है" इस प्रकार कहनेलगा, दूसरा ब्राह्मण बोला कि, भाई यह गौ मुझे राजा नृगने दान करके दी है ॥ १७ ॥ हे दीनबन्धु ! इस प्रकार आपसमें विवाद कर अपने अपने प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले वह दोनों ब्राह्मण मेरे निकट आये, तब जिस ब्राह्मणको गाय दान करके दी थी; वह बोला कि हे राजन् ! इस गायके आपही दाता हैं और जिसकी गाय थी वह बोला कि, यह क्यों दाता है, जो पराई गौ दान करता है ? हे भगवन् ! यह बात

कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ॥ संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६॥ तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ॥ ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥ विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ॥ भवान्दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ॥ गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवंतावनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः ॥ समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतंतं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ॥ नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नंतरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ॥ यमेन पृष्टस्तत्राऽहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥

सुनकर मुझे अत्यन्त भ्रम हुआ ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त धर्मसे कष्टित मैंने उन दोनों ब्राह्मणोंको बहुत विनती करके कहा कि, महाराज ! इस गौके बदलेमें सुन्दर एक लाख गौ दूँगा, यह गौ देदीजिये ॥१९॥ मैं तुम्हारा दास हूं, मैंने यह नहीं जाना कि यह गौ तुम्हारी है सो मेरे ऊपर अनुग्रह करके घोर नरकमें गिरतेहुए मेरी रक्षा करो ॥२० ॥ तब ब्राह्मण बोला कि, हे राजा नृग ! और तेरी लाख गौकी मुझे आवश्यकता नहीं है जो दान करके दी है, सोई लूंगा; यह कहकर वह ब्राह्मण और जिस ब्राह्मणको गौ दी थी वह उस गौको त्यागकर घरको चलागया ॥ २१ ॥ हे देवदेव ! इसके उपरान्त जब मेरा देहान्त हुआ, तब यमदूत आनकर यमराजके पास मुझे लेगये वहाँ धर्मराजने मुझसे पूँछा कि ॥ २२ ॥

हे राजा नृग ! मैं तुम्हारे दान और धर्मका लोकके प्रकाशकोंमें अन्त नहीं देखता परन्तु यत्किंचित् तुम्हारा पाप भी है और संपूर्ण शुभ सो प्रथम तुम पाप भोगोगे अथवा पुण्य ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब धर्मराजने कहा तब प्रथम पाप भोगूंगा ऐसा मैंने कहा उसी समय धर्मराजने आज्ञा करी कि, इसको करकेटेकी योनिमें गिरादो हे प्रभो ! तब मैंने गिरतेही अपनेको करकेटेके रूपमें देखा ॥ २४ ॥ हे केशव ! ब्राह्मणोंका भक्त और दाता तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषा अबतक मुझे लगरही थी क्योंकि आपकी कृपासे स्मृतिका नाश नहीं हुआ था ॥ २५ ॥ हे योगेश्वर ! वेदरूप नेत्र करके निर्मल हृदयमें जिनकी भावना करें और इन्द्रियोंकी जिनमें पहुँच नहीं ऐसे परमात्मा तुम अति दुःखोंसे अँधेरी बुद्धिवाले मुझे कैसे दिखाई दिये ?

पूर्वं त्वमशुभं भुंक्षे उताहो नृपते शुभम् ॥ नांतं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वं देवाशुभं भुंज इति प्राह पतेति सः ॥ तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ॥ स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥ स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः ॥ साक्षादधोक्षज उरुव्यसनांधबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य ममापवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेव जगन्नाथ गोविंद पुरुषोत्तम ॥ नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण यांतं देवगतिं प्रभो ॥ यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥ नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥

क्योंकि इस संसारमें जिस मनुष्यका संसार छूटनहार होताहै; उसको ही आपके दर्शन मिलतेहैं ॥ २६ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्के नाथ ! हे गोविन्द ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण ! हे इन्द्रियोंके प्रेरनेवाले ! पवित्रयशी ! श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अखण्डरूप ! हे अविनाशी ! ॥ २७ ॥ हे कृष्ण ! हे समर्थ ! अब मैं स्वर्ग जाऊँ मुझे आज्ञा दो और जहाँ कहीं मैं रहूँ वहाँ मेरा चित्त तुम्हारे चरणोमें लगा रहे ॥ २८ ॥ आप सब कार्योंके उत्पन्न करनेवाले विश्वके कर्त्ता और विकाररहित हो, अनन्त माया शक्तिमान् वासुदेव अर्थात् सब प्राणियोंके आश्रय कृष्ण अर्थात् सर्वदा आनन्दरूप, वेदोंके कहे जो यज्ञादिक कर्म और स्मृतियोंके कहे जो कुआँ, बावली, तालाव इत्यादि कर्मोंके फलदाता आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥

राजा नृग इस प्रकार कह श्रीकृष्णचन्द्रको परिक्रमा दे अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श कर, आज्ञा ले सव प्राणियोंके देखतेही विमानपर बैठ कर स्वर्गको चलागया ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोके भक्त, धर्मात्मा देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र क्षत्रियोंकी शिक्षाके लिये अपने कुटुम्बी यादवोंसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ कि, देखो ! अग्निके समान तेजस्वी पुरुषोंको भी ब्रह्मअंश नही पचता और अपनेको ईश्वर माननेवाले राजाओकी तो वातही क्या है ? ॥ ३२ ॥ मैं विषको हलाहल विष नहीं मानता क्योंकि उसके दूर करनेकी औषधी है परन्तु ब्रह्मअंश विषसे भी अधिक विष है, और इस पृथ्वीमें ब्रह्मअंशके दूरकरनेका कोई उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ विष तो केवल खानेवालेकोही मारता है और अग्नि भी जलसे शान्त होजाती है, व

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ॥ अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥ ३० ॥ कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः ॥ ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥ दुर्जरं वत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ॥ तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥ नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ॥ ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥ हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ॥ कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणि पावकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हंति त्रिपूरुषम् ॥ प्रसह्य तु वलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ३५ ॥ राजानो राजलक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं विचक्षते ॥ निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु वालिशाः ॥ ३६ ॥

अग्निके जलानेमें जड़ बाकी रहजाती है, परन्तु ब्रह्मअंशरूप लकड़ीमेंसे उत्पन्नहुई अग्नि मूलसहित कुलको भस्म करडालती है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणकी पूर्ण आज्ञा लिये विना उसका धन खायाजाय तो तीनपीढीको नरकमें गिराता है और हठसे वा राजा आदिकी सहायतासे भक्षण किया जाय तो दश प्रथम और दश पीछेकी पीढियोंको और एक अपनी, इस प्रकार इक्कीस पीढीको नरकमें डालता है ॥ ३५ ॥ इसलिये ब्राह्मणका पूजनही करे, (इस कथापर एक दृष्टान्त भी लिखते हैं) * जोकि लक्ष्मीकेसे अंधे हुए राजा हैं, सो अपना नरकमें गिरना नहीं देखते

* दृष्टान्त—एक राजा परदेशी ब्राह्मण जो द्वारपर आता उसे लाख रुपया दिया करते थे, तो एक दरिद्र ब्राह्मणकी स्त्रीने यह सुनकर अपने पतिको इस राजाके नगरमें भेजा, यह चले, राजा शिकार खेलकर आ रहे थे, मार्गमें ब्राह्मणसे भेंट हुई, राजाने कहा कि, महाराज ! आप कहाँसे आये और कहाँ जाओगे ? ब्राह्मणने कुछ उत्तर न दिया, तव राजाने प्रार्थनाकर चरण पकडकर पूछा कि, क्या काम है ? कहो—

और जो पुरुष ब्रह्मअंशपर मन ललचाते हैं, सो नरकमें जानेकी इच्छा करतेहैं ॥ ३६ ॥ कुटुम्बी उदार जीविका हरजानेसे सो ब्राह्मण रुदन करते हैं उनके नेत्रोंसे आँसुवोंकी बूँद गिरकर जितनी पृथ्वीकी रेणुका भीजती हैं, उतने वर्षतक ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले निरंकुश राजा और उनके मंत्री, प्रधान टहलुए हैं, सो सब कुम्भीपाक नरकमें गिरतेहैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जो पुरुष अपनी दान की हुई अथवा औरकी दी हुई ब्राह्मणकी

गृह्णंति यावतः पांसून्क्रंदतामश्रुबिंदवः ॥ विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुंबिनाम् ॥ ३७ ॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः ॥ कुंभीपाकेषु पच्यंते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृद्ध्वाल्पायुषो नराः ॥ पराजिताश्च्युता राज्याद्भवंत्युद्वेजिनोऽहयः ॥४०॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्येत मामकाः ॥ घ्नंतं बहु शपंतं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥

जीविका हरे, वह पुरुष साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाका कीड़ा होता है ॥ ३९ ॥ मेरे घरमें ब्राह्मणका धन न आवे, जिस धनके लोभसे राजा अल्प आयुष्यवाले पराजयको प्राप्त हुए और राज्यसे भ्रष्ट होकर मनुष्योको भय देनेवाले सर्प होजाते हैं ॥ ४० ॥ हे मित्र ! जो ब्राह्मण अपराध करे, मारताही आवे और गालियें भी बहुत दे, ऐसे ब्राह्मणसे भी द्रोह करना उचित नहीं बरन् उसको नित्य प्रति नमस्कारही करनाचाहिये ॥ ४१ ॥

—तो, तब यह बोले हम पण्डित हैं और काशीजीसे आये हैं, इस राजाके शिरपर पनही मार लाख रुपये लेजायँगे. राजाने कहा कि, ब्राह्मण बुरे, जो लाख रुपया लेजायँ और पनही मारे, सो महलोंमें जाकर ड्योढीवानोंसे कहा कि, किसी ब्राह्मणको भीतर मत आनेदो अब उन पण्डितजीकी यहाँतक दशा हुई कि, थाली, कटोरा वेचकर खागये, परन्तु भीतर न घुस सके, तब फिर लौटकर अपने घर जाय सब समाचार सुनाये, यह राजा वैष्णव था और कृष्ण, बलदेवका पूजन करता था, एक दिन अकस्मात् बलदेवजी सिंहासन परसे गिरपडे, यह देख राजा अत्यन्त भयभीत हुआ ? उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाकर पूछा कि, क्या उत्पात होगा ? कोई कुछ कोई कुछ कहनेलगे परन्तु यथार्थ उत्तर कोई न दे सका, तब राजाने ढँढोरा पिटवाया कि, जो समाधान करेगा, उसे बडा द्रव्य मिलेगा, इसके उपरान्त फिर उस ब्राह्मणकी स्त्रीने प्रार्थना करी, तब वही ब्राह्मण राजाके प्रश्नका उत्तर देनेको आये और बोले कि, राजा ! तू कुछ मत डरे, कुछ उत्पात नहीं होगा, जगन्नाथजी गिरते तो उत्पात होनेकी सम्भावना थी और बलदेवजी तो नित्य वारुणी पिये उन्मत्त रहते हैं, इनके गिरनेका क्या आश्चर्य है । तब राजाने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणको लाख रुपये देदिये और कहा कि, ब्राह्मणको आनेसे कोई मत रोकियो यह पनही मार करही द्रव्य लेते हैं यदि यह ब्राह्मण न होते तो मेरे प्रश्नका उत्तर कौन देता ? ॥

जैसे सावधान होकर समय समयपर ब्राह्मणोंको मैं नमस्कार करता हूं, उसी प्रकार तुम भी नमस्कार करो और जो कोई मेरी इस आज्ञाको उल्लंघन करेगा, वह पुरुष मुझसे दण्ड पावेगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणका धन हरनेवाला नरकमें गिराया जाता है, इस बातको कोई मिथ्या मत समझना, क्योंकि जैसे विनाजाने नृग राजाने ब्राह्मणकी गाय यद्यपि ब्राह्मणकोही दान करदी थी,परन्तु तो भी नरकमें गिरा इसी प्रकार और भी जो ब्रह्मअंश लेते हैं, उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन! सब लोकोंको पवित्र करनेवाले मुकुन्द भगवान् इस प्रकार द्वारकावासी यदुवंशियोंको समझाकर अपने मन्दिरमें चलेगये ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ॥ तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दंडभाक् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ॥ अजानंतमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुंदो द्वारकौकसः ॥ पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमंदिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्त० नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कंठः प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कंठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ॥ रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनंदितः ॥ २ ॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ॥ इत्यारोप्यांकमालिंग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवंदितः ॥ यथावयो यथासख्यं यथासंबंधमात्मनः ॥ ४ ॥

नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥ दोहा–पैंसठमें बलरामने, वृन्दावनमें आय। रास रचो यमुना निकट, सबको ताप मिटाय ॥६५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! एक समय भगवान् बलदेवजी अपने सुहृदोंके देखनेके लिये रथमें चढ़कर गोकुलको गये ॥ १ ॥ और बहुत दिनोंके आशा लगाये गोप गोपियोंसे मिले; इसके उपरान्त बलदेवजीने पिता माताको प्रणाम किया, तब उन्होंने इनको आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न! जगदीश्वर! छोटे भाई कृष्ण सहित तुम हमारी बहुत कालतक रक्षा करो, इस प्रकार गोदमें बैठाल छातीसे लगा, नेत्रोंके आँसुओंसे बलदेवजीको भिजोनेलगे ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक वृद्ध गोपोंको प्रणाम करके, छोटे गोपोंने इनको प्रणाम किया, इस प्रकार

बलदेवजी जैसी जिसकी अवस्था और जैसी जिससे मित्रता, जैसा जिससे सम्बन्ध था ॥ ४ ॥ उसी प्रकार उनको प्राप्त होकर हास्य और हाथ पकड़ना इत्यादिकोंसे मिलकर जब बलरामजी विश्राम लेचुके, तब सुखपूर्वक बैठे और कुशल पूँछी ॥ ५ ॥ उस समय सब गोप कि जिन्होंने कमल दल लोचन श्रीकृष्णके लिये सब विषय त्याग दिये हैं, वे सब बलदेवजीके निकट आय चारों ओर बैठ गये और प्रेमसे गद्गद वचन हो अपने बंधु यादवोंकी कुशल पूँछने लगे ॥ ६ ॥ कि, हे राम ! हमारे सब बन्धु तो कुशल हैं ? स्त्री और पुत्रसहित तुम हमारी भी कभी सुधि करते हो ? ॥ ७ ॥ यह बड़ी प्रसन्नताकी बात हुई जो महादुराचारी पापी कंस मारागया और यह भी बहुत अच्छा हुआ जो सुहृदलोग बन्दीखानेमे छूटगये, फिर

समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः ॥ विश्रांतं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥ पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ॥ कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नो बांधवा राम सर्वे कुशलमासते ॥ कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ७ ॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ॥ निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्यो हसंत्यः पप्रच्छू रामसंदर्शनादृताः ॥ कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरति वा बंधून्पितरं मातरं च सः ॥ अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥ अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि ॥ यदर्थेऽजहिम दाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥

वैरियोंका नाश कर समुद्रमें द्वारकापुरी बसाई, यह भी अत्यन्त मंगलकी बात है ॥ ८ ॥ बलरामजीके दर्शनसे गोपियें प्रसन्न हो हँसकर पूँछने लगीं कि, जिनको नगरकी स्त्रियें अत्यन्त प्यारी हैं वह श्रीकृष्ण तो अच्छे हैं ॥ ९ ॥ वह श्रीकृष्ण कभी अपने बन्धु बांधवोंकी भी सुधि करते हैं ? क्या अपनी माताका दर्शन करनेको एकबार भी वह यहाँ आवेंगे ? और बड़ी भुजावाले श्रीकृष्णचन्द्र कभी हमारी भी सुधि करते हैं ? ॥ १० ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न समर्थ बलदेवजी ! जिसके कारण हमने दुस्त्यज्य माता, पिता, भाई, पति, पुत्र, बहन और सुहृद यह सब त्याग दिये ॥ ११ ॥

वा हम सबको त्याग वह शीघ्रही चलेगये और स्नेह तोड़दिया परन्तु उनके वैसे मनोहर कहनेपर कौन स्त्री भरोसा न करै ? ॥ १२ ॥ हमें अचम्भा होता है कि, कृतघ्न और जिसका मन स्थिर नहीं, ऐसे श्रीकृष्णके कहनेको बुद्धिमान् द्वारकाकी स्त्रियें किस प्रकार स्वीकार करतीहोंगी ? परन्तु हम कल्पना करती हैं कि, चित्र विचित्र कथावाले श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमान हास्यपूर्वक भौंहैं चलानेसे बढा जो कामदेव उससे आतुर हो स्वीकार करती होंगी ❋ ॥ १३ ॥ और गोपियें बोलीं कि, उनकी बातसे हमें क्या काम ? और बात क्यों नहीं कहती. क्योंकि हमारे विना

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ॥ कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥ कथं नु गृह्णंत्यनव
स्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ॥ गृह्णंति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥
किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ॥ यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं
शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ॥ गतिं प्रेमपरिष्वंगं स्मरंत्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥ संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयं
गमैः ॥ सांत्वयामास भगवान्नानाऽनुनयकोविदः ॥ १६ ॥

जैसे उनका समय व्यतीत होता है उसी प्रकार उनके विना हमारा काल भी व्यतीत होता है. उनका सुखसे बीतै है, हमारा दुःखसे, अन्तर इतनाही है ॥ १४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी हँसनि बोलनि सुन्दर चितवन शोभायमान चलना और प्रेमपूर्वक आलिंगन इन बातोंका स्मरण कर सब गोपियें रोनेलगीं ॥ १५ ॥ अनेक प्रकारसे समझानेमें निपुण, भगवान् संकर्षण श्रीकृष्णचन्द्रके संदेशेको कहकर समझाने लगे ॥ १६ ॥

* दृष्टान्त– एक लालाने बिल्ली पाली थी और उसको नित्यप्रति दूध मलाई खिलाते थे, एक दिन लाला कार्यवश गाँवको गये और बिल्लीको डोरीसे खमेमें बाँधगये और उसका स्मरण न रहा और कई दिन लगगये बिल्लीका भूखके मारे प्राणान्त होनेलगा, इसके पीछे घरमें कहीं दलानके कोनेमें एक रुईका गाला धरा था, सो बिल्लीने जाना कि, यह घीका लोंदा है, सो उछल उछलकर बिल्ली उस रुईके गालेपर जाय परन्तु वह हाथ न आवै, "अब लिया अब लिया" इसी आशामें अठारह दिन व्यतीत होगये इधर लाला अठारह दिनके उपरान्त आनकर कहनेलगे कि, हरे राम बिल्लीकी तो इतिश्री होगई होगी ताला खोलकर देखै तो अभी जीवित है यह विचार ज्यों उसकी डोरी खोली कि, वह झपटकर रुईके गालेपर गिरी परन्तु वह तो रुईही थी, इसलिये निराश हो झट बिल्लीके प्राण निकलगये इसलिये जीवित है आशा, मरे निराशा, यह बात सत्य है ॥

इसके उपरान्त भगवान् बलदेवजीने उस व्रजमें गोपियोंको अनेक प्रकार आनन्द देते चैत्र और वैशाख दो महीने तक वास किया ॥ १७ ॥ पूर्ण चन्द्रमाकी कलासे शोभायमान कुमुदिनियोंकी सुगंधयुक्त पवन जहाँ आरही थी इसप्रकार शोभायमान यमुनाजीके बागमें स्त्रियोंको संग लेकर बलदेवजी रमण करनेलगे ॥ १८ ॥ उससमय वरुणजीकी भेजी वारुणी मदिरा वृक्षोंकी खोतरियोंमेंसे गिरकर सब वनको अपनी गंधसे सुगंधित करनेलगी ॥ १९ ॥ पवनसे प्राप्त मधुधाराकी सुगन्ध सूंघकर बलदेवजी वहाँ आय स्त्रियोंके साथ मदिरापान करनेलगे ॥ २० ॥ स्त्री जिनके चरित्र गान कररहीं और हलायुध धारण करनेवाले मतवाले कमलसे विह्वलनेत्र हो बलदेवजी अपने मनमें विचार करनेलगे ॥ २१ ॥ वनमाला

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ॥ रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचंद्रकलामृष्टे कौमुदीगंधवायुना ॥ यमुनोपावने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ॥ पतंती तद्वनं सर्वं स्वगंधेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥ तं गंधं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ॥ आघ्रायोपागतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ॥ वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुंडलो मत्तो वैजयंत्या च मालया ॥ बिभ्रत्स्मितमुखांभोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ॥ निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥ २३ ॥ पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता ॥ नेष्ये त्वां लांगलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २४ ॥

और कानोंमें कुण्डल पहरे मतवाले, वैजयन्तीमाला धारण किये इससे अधिक शोभायमान और पसीनेके बिन्दुसे सुन्दर मंद मंद हास्ययुक्त, कमलरूप मुख धारण किये ॥ २२ ॥ जलक्रीड़ा करनेके लिये सामर्थ्यवान् बलदेवजी यमुनाजीको बुलानेलगे "यह मतवाले हैं" इसलिये बलदेवजीके वचनका अनादर करके यमुना नहीं आई, तब, भगवान् बलरामजीने अत्यन्त क्रोधित हो, हलके अग्रभागसे खैंचलिया ॥ २३ ॥ और बोले कि, रे पापिनि ! मैंने तुझे बुलाया और तू न आई इसलिये स्वच्छन्द फिरनेवाली तुझको मैं हलके अग्रभागसे

खण्डित करदूँगा * ॥ २४ ॥ हे परीक्षित ! जब इस प्रकार बलदेवजीने कहा तब यमुना अत्यन्त भयभीत और चकित हो उनके चरणोंमें गिरकर कहनेलगी ॥ २५ ॥ हे राम ! हे राम !! महाबाहो !!! मैं तुम्हारा पुरुषार्थ नहीं जानती, जिन आपके अंश शेषजीने संपूर्ण पृथ्वीको सहस्र फणोंमेंसे एक फणपर धारण कररक्खा है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! मैं आपके श्रेष्ठ प्रभावको नहीं जानती परन्तु आपकी शरण आई हूँ सो आप क्या मुझे छोड नेको योग्य हो ॥ २७ ॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित ! जब इस प्रकार प्रार्थना करी तब प्रसन्न होकर भगवान् बलदेवजीने यमुनाको छोडदिया और जिसप्रकार हाथी हथिनियोंके संग विहार करताहै उसी प्रकार यमुनामें गोपियोंके साथ विहार करने लगे ॥ २८ ॥ इच्छापूर्वक विहार करके जब

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनंदनम् ॥ उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २५ ॥ राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ॥ यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २६ ॥ परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम् ॥ मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततो व्यमुंचद्यमुनां याचितो भगवान्बलः ॥ विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥ कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासितांबरे ॥ भूषणानि महार्हाणि ददौ कांतिः शुभां स्रजम् ॥ २९ ॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य कांचनीम् ॥ रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेंद्र इव वारणः ॥ ३० ॥ अद्यापि दृश्यते राजन्यमुना कृष्टवर्त्मना ॥ बलस्यानंतवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ३१ ॥

बलदेवजी जलमेंसे बाहर निकले तब लक्ष्मीजीने इनको दो नीलाम्बरी वस्त्र अमूल्य आभूषण और शोभायमान माला दी ॥ २९ ॥ बलरामजी भी नीलवस्त्र पहर और सुवर्णकी माला धारण कर, अच्छी प्रकार चन्दन लगाय इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! महावीर्यवान् भगवान् बलरामजीने यमुनाजीको खैंचा, इस कारण वह स्थान अबतक अनन्त पराक्रम बलरामजीके पराक्रमको जताता हो वैसेही देखनेमें आता है ॥ ३१ ॥

* शंका–शेषावतार बलदेवजीका मुनियोंने वर्णन किया है सो बलदेवजीने बडे कामीकी नाईं यमुनाको क्यों खैंचा ? यमुनाकी मर्यादाका भी नाश किया यह बडी शका है ? उत्तर–श्रीकृष्णने जब यमुनासे कालियनागको बाहर निकालदिया तब यमुना बहुत अभिमान करनेलगी, बिनाही वर्षाके अधिक मर्यादाको छोडकर चढनेलगी, मुनिजन मथुराको और वृन्दावनको आते जाते तो रात दिन मरी पाते, नौकाको चलने नहीं दे, इस प्रकार यमुनाको उन्मत्त जानकर जलक्रीडाके मिस करके बलदेवजीने यमुनाको दण्ड दिया ॥

व्रजकी स्त्रियोंके संग विलास करके चलायमान चित्त बलदेवजीको व्रजमें रमण करते एक रात्रिके समान संपूर्ण रात्रियें व्यतीत होगईं ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे भाषाटीकायां बलदेवकृतयमुनाऽकर्पणंनाम पञ्चपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ दोहा—छासठ काशी जाय हरि, पौंड्रकनृपको मार। मित्र सुदक्षिण सहित सब, हनो तासु परिवार ॥ ६६ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब बलरामजी नन्दरायके व्रजमें आये तब अज्ञानी करूषदेशके राजा पौंड्रकने "मैं वासुदेव हूँ" इस प्रकार मनमें विचारकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास दूत

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥ रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥ वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥ त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ॥ इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥ दूतं च प्राहिणोन्मंदः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ॥ द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥ दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसंदेशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोहमेक एव न चापरः ॥ भूतानामनुकंपार्थं त्वं तु मिथ्याऽभिधां त्यज ॥ ५ ॥

भेजा ॥ १ ॥ आप जगतपति भगवान् वासुदेव प्रगट हुए हो ऐसे मूर्ख मनुष्योंकी प्रशंसासे उत्साह दिलानेपर उसने अपने आपको वासुदेव समझ लिया ॥ २॥ अचिंत्य मार्गवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास द्वारकापुरीमें अज्ञानी पाड्रकने दूत भेजा, जैसे खेलमें बालक एक बालकको राजा बना देता है और वह अपनेको राजा मानता है, उसी प्रकार अपने आपको पौंड्रक वासुदेव मानने लगा ॥ ३ ॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णचन्द्रको सभामें बैठा देखकर दूत राजा पौंड्रकका संदेशा कहने लगा ॥ ४ ॥ संपूर्ण प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेके लिये मैं एकही

वासुदेव उत्पन्न हुआ हूं दूसरा नहीं है । इस कारण तैंने जो अपना मिथ्या नाम वासुदेव धर रक्खा है उसे त्याग दे ॥ ५ ॥ हे यादवसूढ ! तैंने मेरे चिह्न गदा पद्मादि जो धारणकर रक्खे हैं उन्हें शीघ्रही त्यागकर मेरी शरणमें आ और जो इन्हें त्याग न दे और मेरी शरण न आवै तो मुझसे युद्ध करनेके लिये तैयारी कर ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार मंदबुद्धि पौंड्रकका संदेश सुन, उग्रसेनादि सब सभासद इस बातको असत्य जानकर हँसनेलगे ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर दूतसे कहनेलगे कि, हे मूर्ख ! कृत्रिम सुदर्शनादि चिह्नोंसे तू अपनी ऐसी बडाई करता है, उन चिह्नोंको मैं तुझपरसे छुड़ादूंगा ॥ ८ ॥ हे अज्ञानी ! जिस समय तू अपने मुखको

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ॥ त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥ उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ॥ उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखं तदपिधायाज्ञ कंकगृध्रवटैर्वृतः ॥ शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥ इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ॥ कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥ पौंड्रकोपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ॥ ११ ॥ तस्य काशीपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ॥ अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौंड्रकं हरिः ॥ १२ ॥

ढ़ककर और काक, गृध्र बगलोसे घिरकर तू मरके सोवैगा, उस समय तू कुत्तोंकी शरण लेगा, अर्थात् वह तुझको भक्षण करेंगे ॥ ९ ॥ उस समय जो श्रीकृष्णचन्द्रने अनादर करके कहा, सो उसी प्रकार दूतने अपने स्वामी मिथ्या वासुदेवसे जाकर सब कहा और श्रीकृष्णचन्द्र भी रथमें चढ़कर काशीपुरीको गये क्योंकि, उस समय पौंड्रक भी अपने मित्र काशीनरेशके यहाँ आया था, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँ पहुँचे ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस समय महारथी पौंड्रक भी श्रीकृष्णचन्द्रके युद्धका उद्यम जान, दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर शीघ्रही काशीपुरीसे बाहर निकला ॥ ११ ॥ उस पौंड्रकका मित्र काशीनरेश मित्रकी सहायता करनेके लिये पीछेसे आया, तब तीन अक्षौहिणी सेना संगलिये पौंड्रकको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देखा ॥ १२ ॥

शंख, चक्र, तलवार, गदा, धनुष, भृगुलता आदि चिह्नयुक्त और कौस्तुभमणि धारणकिये वनमालासे देदीप्यमान ॥ १३ ॥ रेशमी पीली धोती, उपरना पहरे गरुडध्वज बड़े मोलका मुकुट और आभूषण पहरे मकराकृत कुण्डलोंसे प्रकाशमान हैं * ॥ १४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरत वंशावतंस परीक्षित! जैसे रंगभूमिमें वेष बनाकर नट आता है, उसी प्रकार अपने समान वेष बनाये, मिथ्यावासुदेवको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँसने लगे, क्योंकि नकलीने ज्योंकी त्यों, नकल उतारी थी ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त शत्रुलोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर त्रिशूल, गदा, बेड़े, बर्छी,

शंखार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ॥ अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ॥ यथा नटं रंगगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ॥ असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥ कृष्णस्तु तत्पौंड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यंदनवाजिपत्तिमत् ॥ गदासिचक्रेषुभिरार्दय न्भृशं यथा युगांते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥ १७ ॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुंजरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणाऽवखंडितैः ॥ बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥

गुर्ज, नेजा, तलवार, पटा, बाण, आदि शस्त्र चलानेलगे ॥ १६ ॥ जैसे प्रलयाग्नि जरायुज, स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज इन चार प्रकारके प्राणियोंको पीड़ा देती है, उसी प्रकार भगवान् वासुदेव, मिथ्या वासुदेव और काशी नरेश व उनके हाथी, घोड़े, प्यादे इत्यादि संपूर्ण चतुरंगिणी सेनाको गदा, तलवार, चक्र, बाणादिसे पीडा देनेलगे ॥ १७ ॥ हे महाराज! चक्रसे कटेहुए रथ, घोडे, हाथी और प्यादे जिसमें पड़े, वह भूमि उस समय

---

* शंका–योगियोंको बड़े दु:खसे प्राप्त होनेयोग्य जो भगवान् वासुदेवका रूप उस रूपको पौंड्रक नाम राजा क्यों प्राप्त हुआ ? उत्तर–पूर्वजन्ममें पौंड्रकनाम राजा भगवान्का बडा भारी तप करता था, जब भगवान् प्रसन्न होकर वर देनेको आये तब उसने यह वरदान मागा कि, आपका स्वरूप बनानेकी बुद्धि मुझको दीजिये, तथा पृथ्वीमें जन्म धारण करके आपके हाथसे मेरी मृत्यु हो तब भगवान्ने यह वरदान दिया, इसलिये पौंड्रकने भगवान्का रूप बनाया था ॥

भगवान् भूतनाथकी क्रीडाभूमिके समान भयंकर लगनेलगी, जिसको देखकर वीर पुरुषोंके हृदयमें अति आनन्द प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ सेना मारने उपरान्त शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधित होकर पौंड्रकसे कहनेलगे कि रे ! रे ! पापिष्ठ, जो तैंने दूतसे कहलाया था, वह शस्त्र अब तुझपरही छोडता हूँ ॥ १९ ॥ अरे अज्ञानी ! जो तैंने हमारा मिथ्यानाम वासुदेव रखलिया है यह तेरा नाम शीघ्रही छूट जायगा और यदि तेरे सम्मुख युद्ध न करूं तो तेरी शरण लूंगा ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तिरस्कार कर अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले बाणोंसे पौंड्रकका रथ तोड जिस प्रकार देवराज इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतका शिखर काटते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथ्यावासुदेव पौंड्रकका शिर काटडाला ॥ २१ ॥

अथाह पौंड्रकं शौरिर्भोभो पौंड्रक यद्भवान् ॥ दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥ त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाऽज्ञ मृषा धृतम् ॥ व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वाशितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौंड्रकम् ॥ शिरोऽवृश्चद्रथांगेन वज्रेणेंद्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ॥ न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौंड्रकं ससखं हरिः ॥ द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथाऽमृतः ॥ २३ ॥ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबंधनः ॥ बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥२४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुंडलम् ॥ किमिदं कस्य वा वक्रमिति संशयिरे जनाः ॥ २५ ॥ राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबांधवाः ॥ पौराश्च हा हता राजन्नाथनाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥

इसके उपरान्त हे परीक्षित् ! काशीनरेशका बाणोंसे शिर उखाड काशीपुरीमें ऐसे पटक दिया कि, जिस प्रकार कमलकोशको पवन पटक देता है ॥ २२ ॥ इसप्रकार मित्रसहित मिथ्यावासुदेवको मार सिद्धोंसे गाईहुई अपनी कीर्त्तिको श्रवण करतेहुए भगवान् वासुदेव द्वारकापुरीमें आये ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सदा भगवान्का ध्यान करनेके कारण कटगये हैं सब बंधन जिसके, ऐसा वह मिथ्या वासुदेव पौंड्रक श्रीकृष्णचन्द्रका रूप धारण किये तद्रूप होगया ॥ २४ ॥ हे महाराज ! काशीके राजद्वारपर कुण्डलोंसहित पड़े शिरको देखकर "यह क्या है ? किसका शिर है ?" इस प्रकार मनुष्य सन्देह करनेलगे ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलकी शोभा ! पीछे काशीपुरीके राजाका शिर जानकर

रानी, पुत्र, भाई और पुरवासी, हे नाथ ! हे नाथ ! हम मरे, इस प्रकार कह रोदन करने लगे. इसपर एक दृष्टान्त है * ॥ २६ ॥ काशीनरेशका सुदक्षिण नाम पुत्र अपने पिताके मरनेसे अत्यन्त शोकाकुल हो पिताके मारनेवाले कृष्णको मारकर पिताका ऋण चुकाऊँगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके उपाध्यायोंसहित सुदक्षिण परमसमाधि लगाकर भगवान् महादेवजीका पूजन करनेलगा ॥ २८ ॥ विशेष करके

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ॥ निहत्य पितृहंतारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥ इत्यात्मनाऽभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ॥ सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥ २८ ॥ प्रीतो विमुक्तो भगवांस्तस्मै वरमदाद्भवः ॥ पितृहंतृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ॥ अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यति संकल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ॥ इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ ३१ ॥

मुक्त भगवान् भूतेश्वर प्रसन्न होकर सुदक्षिणसे " वर माँग " इस प्रकार कहने लगे, तब सुदक्षिणने " पिताके मारनेवालेके मारनेका उपाय बताओ " यह वर माँगा ॥ २९ ॥ तब भगवान् भोलानाथ बोले कि, तू ब्राह्मणोंके संग ऋत्विक्के समान आज्ञाकारी दक्षिणाग्निका मारणकी विधिसे पूजन कर, वह अग्नि प्रमथोंके साथ तेरे सब मनोरथोंको पूर्ण करेगी ॥ ३० ॥ परन्तु यह प्रयोग ब्राह्मणकी भक्तिसे रहित पुरुषपर चला

---

* दृष्टान्त—एक बनियेने देखा देखी अपनी डण्डी तोलनी छोड दी और चोरोंके साथ रह कमर बाँध चोरी करनेलगा, अपने मनमें विचार किया कि, भला रोजगार है, घडीभरमेंही हजारोंका माल मिलजाताहै सो कहीं किसी चोरोंके संग कुमल दे भीतर घुसे तो जाग होगई राजाके सिपाही दौडपडे, सो वह चोर तो सगके सब रफू चक्कर होगये, परन्तु इस बनियेसे न भागागया तब निकटही एक तालावमें तलवार डाल वह बनियाँ जलमें घुसा अब सिपाहियोंको चोर तो मिले नहीं और प्यास लगी तो वह तालावके निकट आये, सो वहाँ लालाको देखकर पकडा कि, तुम यहाँ कैसे आये? बनियाँ बोला कि, महाराज ! मैं शोचके लिये यहाँ आया था सो चोरोंको देख डरकेमारे तालावमें घुसगया फिर आपसे डरा कि कहीं चोर जानकर मुझे भी न पकडलें और चोरोंको मैंने पहँचान लिया है, जिनके नाम भी आपको बतलाताहूं, परसा, सेढू, रामसहा, फकीरा, ऊधा, ल्हा, बाँके, शकर, सिपाहीलाल, ज्ञानी, बाबू, मुन्नासिंह, चोखे, गौरी, और मक्खन इत्यादि पचास आदमियोंके नाम लिखवाकर सबको पकडवादिया और भी अब बनियेपर गंगाराम घूमे इसलिये अपना काम छोडकर पराया काम नहीं करना चाहिये देखो पराया काम करनेसे पौंड्रक मारागया ॥

वेगा, तो तेरा संकल्प सिद्ध होगा, अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रपर चलावेगा तो उलटा पड़ेगा, क्योंकि वह तो ब्राह्मणोंके सेवा करनेवाले और उनके अत्यन्त प्रिय हैं, इसप्रकार आज्ञा पाय, नेम ग्रहण कर सुदक्षिण श्रीकृष्णकी घात और उनके मारनेके लिये जैसे शिवजीने आज्ञा दी थी उसी प्रकार करने लगा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! तब कुण्डमेंसे अत्यन्त भयानक मूर्त्तिमान् अग्नि निकला, जिसकी तप्तता ताम्रके समान शिखा और दाढी मूछें थीं, नेत्र और मुखसे अंगारे उगलता था ॥ ३२ ॥ जिसका मुख, दाढ़ और बड़ी तीक्ष्ण भ्रुकुटी दंडसे विकराल हैं, इसप्रकार अपनी जीभसे होठोंको चाटता नग्न और देदीप्यमान त्रिशूलको घुमाता ॥ ३३ ॥ बड़े तालके समान लम्बे पाँवोंसे पृथ्वीको कम्पायमान और दशों दिशाओंको

ततोऽग्निरुत्थितः कुंडान्मूर्तिमानतिभीषणः ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरंगारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदंडकठोरास्यः स्वजिह्वया ॥ आलिहन्सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन् ॥ ३३ ॥ पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कंपयन्नवनीतलम् ॥ सोऽभ्यधावद्वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन्दिशः ॥ ३४ ॥ तमाभिचारदहनमायांतं द्वारकौकसः ॥ विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५ ॥ अक्षैः सभायां क्रीडंतं भगवंतं भयातुराः ॥ त्राहित्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ॥ शरण्यः संप्रहस्याह मा भैष्टेत्यविताऽस्म्यहम् ॥ ३७ ॥ सर्वस्यांतर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ॥ विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८ ॥

जलाता, भूत प्रेतोंको संग लिये वह अग्नि द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥ ३४ ॥ वनके जलनेसे मृग जैसा त्रास पातेहैं, ऐसी कृत्याग्निको देखकर उसी प्रकार सब द्वारकावासी लोग त्रास पानेलगे ॥ ३५ ॥ और वह सब भयभीत हो सभामें पाँसोंसे खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कहनेलगे कि, हे त्रिलोकीनाथ ! अग्निसे सब पुरी भस्म हुई जाती है, इसकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ मनुष्योंकी अधिक व्याकुलता सुन और अपने पुरवासियोंकी घबराहट देखकर, शरणागतोंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर "भय मत करो में रक्षा करूंगा" इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३७ ॥ सबके भीतर बाहरके देखनेवाले सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे श्रीमहादेवजीकी कृत्याग्नि जान उसका नाश करनेके लिये समीपही खडेहुये चक्रसे

आज्ञा करने लगे ॥ ३८ ॥ करोड सूर्यके समान तेजस्वी प्रलयकालके, अग्निकी तुल्य कान्तिमान् अपने तेजसे आकाश, दिशा, स्वर्ग और पृथ्वी को प्रकाशमान करता भगवान्का अस्त्र सुदर्शनचक्र उस अग्निको पीडा देनेलगा ॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्णचन्द्रके अस्त्रके तेजसे प्रतिहत और भग्नमुख होकर वह अग्नि पीछेको लौटगई और काशीमें आकर यज्ञ करानेवाले ऋत्विजोसहित सुदक्षिणको जलानेलगी, क्योंकि अपना किया अभिचार है, इसका यही स्वभाव है कि, जो शत्रुपर चलजाय तो चलजाय, नहीं तो जो चलावै उसको भस्म करै, सो सुदक्षिणको क्षणमात्रमें भस्म करदिया ॥ ४० ॥ उस अग्निके पीछे पीछे आय श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रने मंचान सहित सभा, हवेली, दूकान, पुरके दरवाजे और खजाने

तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ॥ स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुंदास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥ ३९ ॥ कृत्यानलः प्रतिहतः स रथांगपाणेरस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ॥ वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥ ४० ॥ चक्रं च विष्णोस्तदनु प्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ॥ सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥ ४१ ॥ दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥ य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥ समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे पौंड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सहित अटारी, कोठे, घोडे, अन्न इनकी शालावाली काशी पुरीको क्षणमात्रमें भस्म करदिया ॥ ४१ ॥ सरलकर्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सुदर्शनचक्र संपूर्ण काशीको भस्म कर फिर निकट आनकर खड़ा होगया ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह पराक्रम जो मनुष्य सावधान होकर श्रवण करतेहैं अथवा औरको श्रवण करातेहैं वह संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां पौंड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दोहा—सरसठमें बलरामजी, रैवत गिरिपर जाय। नारिन सँग क्रीड़ा करत, हनो द्विविद कपिराय ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! अद्भुतकर्मा अनन्त अप्रमेय बलदेवजीने जो जो चरित्र किये उनके सुननेकी फिर मेरी अभिलाषा है, सो कृपाकरके मेरे सन्मुख वर्णन कीजिये॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! नरकासुरका मित्र सुग्रीवका मंत्री और मयंदका भ्राता बडा पराक्रमी कोई वानर द्विविद नामसे प्रसिद्ध था ❀ ॥ २ ॥ सो अपने मित्र नरकासुरका ऋण चुकानेके लिये इस बंदरने पुर, ग्राम, खानि, खिरक, छपरोंका और देशोंका नाश

राजोवाच ॥ ॥ भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ॥ सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥ सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ॥ पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥ क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् ॥ आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४ ॥ क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ॥ देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ॥ अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः ॥ ६ ॥

करदिया ॥ ३ ॥ कभी यह बन्दर पर्वतोंको उठाय, उनसे देशोंका चकनाचूर कर देता और विशेष करके आनर्त्तदेशोंको महाकष्ट देनेलगा, क्योंकि नरकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्ण वहीं विराजते थे ॥ ४ ॥ दशहजार हाथीके बलवाला द्विविद बन्दर समुद्रके बीचमें खडा होकर भुजाओंसे जलको उछालता समुद्रके तटपर जो देश थे, उनको डुबोने लगा ॥ ५ ॥ वह दुष्ट वानर बड़े बडे ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वृक्षोंको

* शंका—द्विविद नाम वानर श्रीकृष्णका बडा प्यारा था, तब सब वानर तो त्रेतामें स्वर्गको चलेगये द्विविदको श्रीराघवजी स्वर्गको क्यों नहीं लेगये ?

उत्तर—रामचन्द्र और रावणका युद्ध होता था, उस समय अर्द्धरात्रि थी द्विविद नाम वानरने रामचन्द्रसे बूझा भी नहीं अपनी सेना लेके रावणके मंदिरमें घुसगया और बहुतसी रावणकी रानियोंको पकड कर नगी कर दिया और मारा भी, कुछ देर पीछे श्रीमर्यादापुरुषोत्तम जो श्रीरघुनाथजी थे उनको यह खोटा कर्म द्विविदने किया ऐसा जानपडा, तब उसी समय श्रीरघुनाथजीने अपनी सेनासे उसको निकाल दिया द्विविदने पीछेसे अपने मोक्ष होनेके लिये श्रीरघुनाथजीकी विनय की, तब रामचन्द्रजीने कहा द्वापरमें तेरी मुक्ति होगी हे दुष्ट! आजसे हम तेरा मुख नहीं देखेंगे परन्तु शेषजी तुझको द्वापरमें मारेंगे तब तेरी मोक्ष होगी इसलिये द्विविदको बलदेवजीने मारा और त्रेतामें स्वर्गको नहीं गया ॥

तोड़, मल, मूत्र करके यज्ञकी अग्निको दूषित करनेलगा ॥ ६ ॥ महाघमण्डी वह बन्दर स्त्री और पुरुषोंको पकड़ पकड़कर पर्वतोंकी गुफा व कंदराओंमें रखकर जैसे भ्रमरी कीडेको मूंद देती है उसी प्रकार मूंद देता था ॥ ७ ॥ इस प्रकार वह बंदर देशोंमें उपद्रव करता और कुलकी स्त्रियोंको दोष लगाय, मनोहर गीत सुनकर रैवत नाम पर्वतपर चला गया ॥ ८ ॥ वहाँ जाकर यादवोंके पालन करनेवाले, कमलकी माला धारण किये, सुन्दर अंग स्त्रियोंके बीचमें बैठे बलरामजीको देखा ॥ ९ ॥ वारुणी मदिरा पीकर गान करते, मदसे विह्वल नेत्र मतवाले हाथियोंके समान शरीरसे प्रकाशमान ॥ १० ॥ दुष्ट शाखामृग बन्दर वृक्षोकी शाखाओंपर चढकर उनको हिलाताहुवा आपेको दिखाकर किचिरशब्द करने

पुरुषान्योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ॥ निःक्षिप्य चाप्यधाच्छलैः पेशकारीव कीटकम् ॥ ७ ॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ॥ श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ॥ सुदर्शनीयसर्वांगं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायंतं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ॥ विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ १० ॥ दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कंपयन्द्रुमान् ॥ चक्रे किल किलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्य धाष्टर्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ॥ हास्यप्रिया विजहसुर्बल देवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥ ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः संमुखादिभिः ॥ दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥ १३ ॥ तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ॥ स वंचयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन् ॥ निर्भिद्य कलशं धृष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ॥ १५ ॥

लगा ॥ ११ ॥ उस बन्दरकी धृष्टता देख, स्वभावसे चंचल जो हास्यप्रिय श्रीबलदेवजीके संगकी स्त्रियें भी हँसनेलगीं ॥ १२ ॥ वह बन्दर भ्रुकुटी चढ़ाकर सामने ही घुडककर स्त्रियोंको अपनी गुदा दिखलाय बलदेवजीके देखतेही स्त्रियोंकी अवज्ञा करने लगा ॥ १३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने क्रोधित होकर उस बन्दरको पत्थर मारा परन्तु वह धूर्त बन्दर पत्थरको बचाय, मदिराके कलशको फोड ॥ १४ ॥ उसे लेकर हँसकर बलदेवजीको क्रोध उत्पन्न कराय अवज्ञा करने लगा, इसके पीछे वह धृष्ट बन्दर मदिराके कलशको फोड स्त्रियोके वस्त्रोंको

खैंचकर फाडनेलगा ॥ १५ ॥ बडा बलवान् मदसे उद्धत बन्दर बलदेवजीकीभी कदर्थना करके दुःख देनेलगा ॥ उस बन्दरकी अनम्रता देख और उसके किये देशोंमें उपद्रव देख अत्यन्त क्रोधित हो बलदेवजीने उस वैरीके मारनेके लिये अपने हाथमें हल, मूसल ग्रहण किया ॥ १६ ॥ हे राजन्! उस बडे पराक्रमी बंदरने भी हाथसे शालवृक्षको उखाड और शीघ्रतासे निकट आय उस वृक्षकी चोट भगवान् बलरामजीके माथेमें मारी ॥ १७ ॥ पर्वतके समान माथेपर पडतेहुए शालवृक्षको भगवान् बलरामजीने बलपूर्वक पकड लिया, और अपने मूसलको घुमाकर उस बन्दरको मारा ॥ १८ ॥ मूसलसे बन्दरका शिर फूटगया, तब जलप्रवाहके समान रुधिरकी धारा बहने लगी, जिससे वह गेरू निकलतेपर्वतके

कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥ क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥ १६ ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥ अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥ तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतंतमचलो यथा ॥ प्रतिजग्राह भगवान्सुनंदेनाहनच्च तम् ॥ १८ ॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥ गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिंतयन् ॥ १९ ॥ पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥ तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत् ॥ एवं युध्यन्भगवता भग्नेभग्ने पुनःपुनः ॥ २१ ॥ आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ ततोऽमुंचच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ॥ तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥ २२ ॥

समान शोभायमान होनेलगा और उस प्रहारको कुछ न विचारकर उस बन्दरने ॥ १९ ॥ अत्यन्त क्रोधसे फिर बलपूर्वक और वृक्षको उखाड उसके सब पत्तोंको छुडाकर बलदेवजीको मारा, बलदेवजीने उसी समय उस वृक्षके टुकडे टुकडे कर दिये इसके उपरान्त इस बंदरने और वृक्षको उखाड महावीर्यवान् बलदेवजीके ऊपर प्रहार किया, परन्तु बलदेवजीने उसके भी सौ खण्ड कर दिये इसप्रकार भगवान् बलदेवजीके साथ युद्ध करके बारम्बार जब वृक्ष कटगये तब यह चारोंओरसे वृक्षोको उखाडकर निर्वृक्ष वन करनेलगा ॥ २० ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त असहनतासे वह बन्दर महात्मा बलदेवजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करनेलगा, तब मूसलधारी बलदेवजीने लीलापूर्वकही बन्दरके वर्षाये पत्थरोंको चूर्ण करदिया ॥ २२ ॥

बन्दरोंके स्वामी इस बन्दरने तालवृक्षके समान बड़ी भुजाओंकी मुट्टी बाँध, रोहिणीके पुत्र बलरामजीके पास जाकर उनकी छातीमें एक घूँसा मारा ॥२३॥ हे राजन् ! यादवोंके इन्द्र बलरामजी भी हल मूसलको छोड और अत्यन्त क्रोधित होकर भुजाओंसे उसके कंठको मर्दन करनेलगे, उससमय वह बन्दर रुधिरको वमन करताहुआ पृथ्वीमें गिरकर मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ २४ ॥ हे कुरुशार्दूल ! जिससमय वह बन्दर गिरा तब जैसे जलमें नाव कॉपती है, उसीप्रकार टंक और वृक्षोसहित वह पर्वत कॉपने लगा ॥ २५ ॥ आकाशमार्गमें देवता, सिद्ध, मुनीश्वर फूलोंकी वर्षा कर जय शब्द और नमःशब्द और भले भले शब्द करने लगे ॥ २६ ॥ इसप्रकार जगत्के नाश करनेवाले बन्दरको मार और जनोंसे स्तुतिको

स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ॥ आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २३ ॥ यादवेंद्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललांगले ॥ जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २४ ॥ चकंपे तेन पतता सटंकः सवनस्पतिः ॥ पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवांभसि ॥ २५ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुसाध्विति चांबरे ॥ सुरसिद्ध मुनींद्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २६ ॥ एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥ संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुर माविशत् ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोध्यायः ॥ ६७ ॥
॥ श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतां राजँल्लक्ष्मणां समितिंजयः ॥ स्वयंवरस्थामहरत्सांबो जांबवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ॥ कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥

प्राप्त होकर ऐसे भगवान् बलदेवजी अपनी पुरी द्वारकामें आये ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे भाषाटीकायां द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ दोहा—अरसठमाहीं साम्बको, कौरव कीन्हो बन्द ॥ हलधर गजपुर उलटकर, लाये सुत निर्द्वन्द ॥ ६८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! युद्धमें जीतनेवाला जाम्बवतीका पुत्र साम्ब दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको जब स्वयंवरमेंसे हरलाया उससमय सम्पूर्ण कौरव क्रोधित होकर कहनेलगे कि, यह बालक बडा अनम्र है, क्योकि हमारा अनादर, करके इच्छा न

करती हमारी कन्याको बलात्कार हरण किया ॥ १ ॥ २ ॥ इसलिये इस अनम्र बालकको पकडकर बाँधलो, यादव हमारा क्या करैंगे, क्योंकि वह तो हमारीही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुएहैं और हमारी ही दीहुई पृथ्वीका भोग करतेहैं ॥ ३ ॥ यदि इस बालकको बँधा सुनकर जो यहां यादव आवेंगे, तो जैसे प्राणायाम करनेपर इन्द्रियें शान्त होजाती हैं, उसीप्रकार गर्वभंजन होनेपर शान्तिको प्राप्त होवेंगे ॥ ४ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार भीष्मजीकी संमतिसे कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन यह बाँधनेका उपाय करनेलगे ॥ ५ ॥ महारथी साम्ब पीछे आते छः धृतराष्ट्रके अनुयायिओंको देखकर सुन्दर धनुष हाथमें ले सिंहके समान अकेलाही खड़ाहुआ ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त कर्णादि धनुषधारी वीर क्रोधमें भर

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यंति वृष्णयः ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुंजते महीम् ॥ ३ ॥ निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यंतीह वृष्णयः ॥ भग्नदर्पाः शमं यांति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥ इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ॥ सांबमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वानुधावतः सांबो धार्तराष्ट्रान्महारथः ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥ तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठतिष्ठेतिभाषिणः ॥ आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥ सोऽपाविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनंदनः ॥ नामृष्यत्तदचिंत्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥ विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ॥ कर्णादीन्षड्रथान्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ॥ रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥

साम्बको पकडनेके लिये " खड़ा रहु, खडा रहु" इसप्रकार कहतेहुए निकट आकर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ७ ॥ हे कुरुकुलभूष यदुवंशियोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र साम्बको जब कौरवोंने बाण मारे तब वह, क्षुद्र पशुओंके पराक्रमको सिंह जैसे सहन नहीं करता है उसी प्रकार साम्ब उनका बल नहीं सहसके ॥ ८ ॥ इसके पीछे वीर साम्बने मनोहर धनुष चढ़ाकर कर्णादिक छः वीरोको, छः बाणोसे एक संग बींधड़ाला ॥ ९ ॥ चार बाणोंसे रथके चारों घोडोंको और एक बाणसे रथवानको बींध ड़ाला, तब बड़े बडे धनुषधारी छः रथी

साम्बके पराक्रमकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १० ॥ उन कौरवोंमेंसे चार जने तो साम्बके चारों घोड़ोंको और एक जनेने रथवान्‌को मारा, एकने धनुषको तोड़दिया इस प्रकार मिलकर साम्बको विरथ करने लगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित् ! कौरववीर युद्धमें बालक साम्बको विरथ कर उन्हें बाँध, जीतके अपनी कन्या ले अपने पुरमें चले गये ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! देवर्षि नारदजीके मुखसे साम्बको बँधा सुन यादव अत्यन्त क्रोधित हो; राजा उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे लडनेका उद्यम करने लगे ॥ १३ ॥ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाले बलदेवजी, कौरव और यादवोका विरोध न हो, यह विचार कवच पहर, हथियार बाँध, यादवोंको समझाय ॥ १४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान रथमें बैठ, ब्राह्मण

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ॥ एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ॥ कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजातमन्यवः ॥ कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥ सांत्वयित्वा तु तान्रामः सन्नद्धान्वृष्णिपुंगवान् ॥ नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ १४ ॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चंद्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥ गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ॥ उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवंद्यांबिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ॥ दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७ ॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ॥ तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मंगलपाणयः ॥ १८ ॥

और कुलवृद्ध पुरुषोंको संग लेकर, जैसे ग्रहों सहित चन्द्रमा जाताहै, उसी प्रकार हस्तिनापुरको चले गये ॥ १५ ॥ हे महाराज ! महाबलवान् बलरामजीने हस्तिनापुरमें पहुँच और पुरके बाहर बगीचेमें ठहरकर कौरवोंका अभिप्राय जाननेके लिये धृतराष्ट्रके पास उद्धवजीको भेजा ॥ १६ ॥ उद्धवजीने अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको प्रणाम कर भीष्मजी और बाह्लीकसहित द्रोणाचार्य व दुर्योधनको विधिपूर्वक प्रणाम करके "बलदेवजी आये हैं" यह कहा ॥ १७ ॥ अत्यन्त हितकारी बलरामजीको आयाहुआ सुन सब कौरव अतिप्रसन्न हो उद्धवजीका पूजनकर और भेंट हाथमें लेले भगवान् बलरामजीके सन्मुख गये ॥ १८ ॥

और संपूर्ण कौरवोंने यथायोग्य बलदेवजीसे मिलकर गौ और धन दिया और उन कौरवोंमें बलरामजीके प्रभावको जाननेवाले इन्हैं शिर नवा कर प्रणाम करनेलगे ॥ १९ ॥ समस्त बंधुबांधवोंकी कुशल श्रवणकर, परस्पर कुशल क्षेम पूँछ, इसके पीछे जिसके सुननेसे व्याकुलता उत्पन्न हो, ऐसा वचन बलरामजी कहनेलगे ॥ २० ॥ बलरामजीने कहा कि, सामर्थ्यवान् पृथ्वीके ईश्वर राजा उग्रसेनने जो तुम्हैं आज्ञा की है, उसे एकाग्रचित्तसे श्रवणकर शीघ्र उसका पालन करो ॥२१॥ राजा उग्रसेनने यह कहा है कि, तुम बहुत जनोंने जो अधर्म कर उस धर्मात्मा बालकको बाँधलिया है, यह तुम्हारा अपराध, भाइयोंकी परस्पर एकता रहै, विरोध न हो, इसलिये हमने सहन करलिया अब तुम शीघ्र साम्बको लाकर

तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यदेवयन् ॥ तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥ १९ ॥ बंधून्कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ॥ परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥ २० ॥ उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः ॥ तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलंबितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ॥ अबध्नीताथ तन्मृष्ये बंधूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥ वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ॥ कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥ अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ॥ आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥ एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः ॥ वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥ २५ ॥ चामरव्यजने शंखमातपत्रं च पाण्डुरम् ॥ किरीटमासनं शय्यां भुंजंत्यस्मदुपेक्षया ॥ २६ ॥

हमको अर्पण करो ॥ २२ ॥ इसप्रकार पराक्रम, शूरता, बलयुक्त और अपने सामर्थ्यके समान बलरामजीके वचन सुन अत्यन्त कुपित होकर कौरव कहनेलगे ॥ २३ ॥ कि अहो ! बड़े आश्चर्यकी बात है, देखो ! कालकी गति बडी दुरत्यय है जो मुकुटके सेवाकरने योग्य मस्तकपर जूती अपना अधिकार करना चाहती है ॥ २४ ॥ इनके यहाँसे जबसे पृथाको व्याह कर लाये तबसेही यादवोंसे संबन्ध हुआ और हमनेही पलँगपर सुवा, संगबिठा, संग भोजन करा, राज्यसिंहासन दे यादवोंको अपने समान करलिया है ॥ २५ ॥ चमर, पंखा, श्वेतछत्र, किरीट, आसन और

शय्या इत्यादि हमारी दीहुई वस्तु यादवलोग भोग करते हैं जैसे कोई ॥ २६ ॥ सर्पोंको दूध पिलाता है और वह पिलानेवालेकोही काटता है, उसी प्रकार इन्होने हमारे साथ वर्त्ताव किया, ऐसे यादव राज्यकी वस्तु छत्र, चामरादिकसे परिपूर्ण हो और हमारीही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुये, अब हमकोही आज्ञा करते हैं, बड़े कष्टकी बात है कि, इन्हें लाज न आई, इसलिये यादव बड़े निर्लज्ज हैं ॥ २७ ॥ भीष्म, द्रोण और अर्जुन आदि कौरवोकी न दीहुई वस्तु क्या इन्द्र भी लेसक्ता है ? कभी नहीं, जिस प्रकार सिंहकी वस्तु उसके दिये विना भेड़ नहीं ग्रहण कर सक्ती ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित ! इस प्रकार जन्म बन्धु और लक्ष्मीसे मदोन्मत्त वह असभ्य कौरव बलरामजीसे दुर्वचन कह

अलं यदूनां नरदेवलांछनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयंत्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७ ॥ कथमिंद्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ॥ अदत्तमवरुंधीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जन्मबंधुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ॥ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः ॥ अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ३० ॥ नूनं नानामदोन्नद्धाः शांतिं नेच्छंत्यसाधवः ॥ तेषां हि प्रशमो दंडः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥ अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः ॥ सांत्वयित्वाऽहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥

कर हस्तिनापुरको चलेगये ॥ २९ ॥ कौरवोंकी दुष्टता देख और न कहने योग्य वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो, देखनेमें न आवें इस प्रकार बलदेवजी वारंवार हँसकर कहनेलगे ॥ ३० ॥ कि, अनेकप्रकारके मदसे मर्यादारहित असाधु कौरव निश्चयही शान्ति नहीं चाहते, पशु जैसे लाठीसेही शान्त होते हैं, उसी प्रकार दुष्टोंके शान्ति करनेका उपाय दण्डही है ॥ ३१ ॥ अत्यन्त क्रोधी यादवोंको धीरे धीरे समझाकर और क्रोधमें भरे श्रीकृष्णको संमझाकर इन कौरवोंका मिलाप करानेके लिये मैं यहाँ आयाहूँ ॥ ३२ ॥

और यह मंदबुद्धि, कलहप्रिय, दुष्ट अभिमानी कौरवोंने मेरा अपमान करके और मुझे निन्दित वचन कहे ॥ ३३ ॥ भोज, वृष्णि, अंधक कुलके ईश्वर, उग्रसेनकी आज्ञाको इन्द्रादि बडे बडे लोकपाल भी मानतेहैं सो क्या वह कौरवोंको आज्ञा करनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रने देवराज इन्द्रकी सभाको पाँवोंसे खूँद और देवताओंका कल्पवृक्ष लाकर अपने महलके बगीचेमें लगाया, वह क्या समर्थ नहीं हैं ? ॥ ३५ ॥ संपूर्ण जगत्की ईश्वरी लक्ष्मी साक्षात् जिनके चरणारविन्दोंका सेवन करें वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र क्या राजाओंकी वस्तुके योग्य नहीं हैं ॥ ३६ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंकी रज, सब लोकोंका पालन करनेवाले ब्रह्मादिक अपने मुकुटयुक्त माथेपर धारण करतेहैं और जो गंगा

त इमे मंदमतयः कलहाभिरताः खलाः ॥ तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥ सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजाताऽमरांघ्रिपः ॥ आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ॥ स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्यांघ्रिपंकजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ॥ ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ ३७ ॥ भुंजते कुरुभिर्दत्तं भूखंडं वृष्णयः किल ॥ उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ३८ ॥ अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ॥ असंबद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥ ३९ ॥ अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ॥ गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥

तीर्थोंको पवित्र करनेवाली हैं; जिनके अंशके अंश ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी और हम संपूर्ण बहुत दिनोंतक चरणारविन्दकी रजको माथे पर धारण करते हैं उन श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख राजसिंहासन क्या पदार्थ है ? ॥ ३७ ॥ कौरवोंने पृथ्वीके खण्ड कर दिये हैं उसका यादव भोग करते हैं और हम पाँवकी जूती और कौरव शिर ठहरे ॥ ३८ ॥ अहो ! ऐश्वर्यसे मतवालोंके समान अभिमानी कौरवोंके कर्कश टेढ़े वचनोंको सुनकर दण्डका देनेवाला कौन पुरुष सह सकेगा ? ॥ ३९ ॥ इसलिये अब कौरवोंसे रहित पृथ्वी करूंगा; इसप्रकार भगवान्

बलदेवजी मनमें निश्चयकर हल हाथमें ले। जो त्रिलोकीको भस्म करदेंगे, ऐसे अत्यन्त क्रोधित हो खड़े होगये ॥ ४० ॥ असहनतासे बलदेवजीने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको उखाडकर नाश करनेके लिये गंगाजीकी ओर खैंचा * ॥ ४१ ॥ नौकाके समान भ्रमण करते गंगाजीमें गिरते नगरको देख अत्यन्त भ्रमित हो, कौरव लक्ष्मणासहित साम्बको आगे कर, हाथ जोड कुटुम्बसहित जीवनकी इच्छा करके सामर्थ्यवान् भगवान्

लांगलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ॥ विचकर्ष स गंगायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गंगायां नगरं पतत् ॥ आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः ॥ ४२ ॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुंबा जिजीषवः ॥ सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य सांबं प्रांजलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ॥ मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षंतुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ॥ लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदंति हि ॥ ४५ ॥ त्वमेव मूर्ध्नीदमनंत लीलया भूमंडलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ॥ अंते च यः स्वात्मनि रुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥

बलरामजीकी शरण आये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और आनकर कहने लगे कि, हे राम ! हे राम ! हे सबके आश्रय ! हम तुम्हारा प्रभाव नहीं जानते थे, इसलिये हमारे ऊपर तुम क्षमा करनेयोग्य हो ॥ ४४ ॥ स्थिति, उत्पत्ति और नाश इनके तुम निराश्रय कारण हो, हे ईश ! यह लोक तुम्हारी लीला करनेका खिलौना है ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! हे सहस्रमूर्द्धन् ! तुम इस भूमंडलको लीलापूर्वकही मस्तकपर धारण करते हो और

---

* शंका—हस्तिनापुरमें अनेक प्रकारके प्राणी तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, साधु, सन्यासी, गाय, पशु और अनेक जातिके पशु पक्षी बसते थे, ऐसे हस्तिनापुरको जलमें डुबोनेके लिये बलदेवजी उपस्थित हुए इस पापसे नहीं डरे कि, हस्तिनापुर को जलमें डुबोवेंगे तो असंख्य जीवोंकी हत्या होगी यह विचार क्यों नहीं किया ? अकेले कौरवोंको डुबोनेकी क्यों नहीं इच्छा की सब पुरवासियोंने क्या अपराध किया था अपराध तो कौरवोंने किया था ?

उत्तर—कौरवोंने उग्रसेनकी और यदुवंशियोंकी निन्दा करी, तब बलदेवजी अपने बडोंकी और सब कुलकी निन्दा सुनके बडे क्रोधित हुये उसी क्रोधसे व्याकुल होकर जीवोंकी हत्याको भूलगये ॥

अंतसमय सब विश्वको उदरमें धरकर शेषशय्यापर शयन करते हो, इसलिये आप अद्वितीय ब्रह्म हो ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! सतोगुणी तुम्हारा क्रोध सबकी शिक्षा देनेके लिये है, कुछ द्वेष और मत्सरता नहीं है, हे राम! विश्वकी स्थिति और पालन करना कोपका तात्पर्य है ॥ ४७ ॥ हे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा ! हे सम्पूर्ण शक्तिके धारण करनेवाले ! आपको नमस्कार है, हे विश्वके धारण करनेवाले, हम आपकी शरण आये हैं ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम! उद्वेगयुक्त शरण आये कौरवोंने कि, जिनका नगर कम्पित हो रहा था, जब इस प्रकारसे भगवान् बलदेवजीको प्रसन्न किया, तब बलरामजीने प्रसन्न होकर उनको, "भय मत करो" यह अभय दान दिया ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त दुर्योधनने अपनी कन्याके

कोपस्तेखिऽलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ॥ बिभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराऽव्यय ॥ विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ॥ प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः पारिबर्हं कुंजरान्षष्टिहाय नान् ॥ ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरंगमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ॥ दासीनां निष्ककंठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिर भिनंदितः ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बधूननुरक्तचेतसः ॥ शशंस सर्वं यदुपुंगवानां मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ॥ समुन्नतं दक्षिणतो गंगायामनु दृश्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे हस्तिनपुरकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

दहेजमें साठ साठ वर्षकी अवस्थाके बारह सहस्र हाथी और बारह हजार घोड़े दिये ॥ ५० ॥ हे राजन् ! सुवर्णके साजसे शोभायमान, सूर्यके समान चमचमाहट ऐसे छः हजार रथ दिये और पुत्रीपर प्यार अधिक होनेके कारण दुर्योधनने धुकधुकी कंठमें पहरे हजार दासी दीं ॥ ५१ ॥ यादवश्रेष्ठ बलदेवजीने सम्पूर्ण दहेज ग्रहणकर और बेटा बहूको संग ले, कौरवोंका अभिवादन ग्रहणकर वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ५२ ॥ हे नृप ! सम्पूर्ण कौरवोसे बिदा हो हलधारी बलदेवजी अपने पुरमें आय, स्नेह भरे चित्तसे, सब बन्धु बांधवोंसे मिल उत्तम यादवोंकी सभामें बैठ कौरवोने जो जो बातें की थीं, सो सो सब कहने लगे ॥ ५३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसकारण अबतक हस्तिनापुर, बलरामजीके

पराक्रमको सूचना कराता, दक्षिण दिशाकी ओरसे गंगाजीमें झुका दिखाई देताहै ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे भाषाटीकायां संकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोध्यायः ॥६८॥ दोहा–उनहत्तरवें देखकर, घर घर कृष्णविहार ॥ अति विस्मित भये देवऋषि, पुनि सब मिटो विकार ॥ ६९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! नरकासुरका वधकर अकेले भगवान्‌ने बहुत स्त्रियोंके साथ विवाह किया यह बात सुन देखनेकी इच्छासे देवर्षि नारद द्वारकापुरीमें आये ✻ ॥ १ ॥ नारदजी विचार करनेलगे कि, बडे आश्चर्यकी बात है, एक

श्रीशुक उवाच ॥ नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ॥ कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥ चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ॥ गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥ इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ॥ पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥ उत्फुल्लेंदीवरांभोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥

देहसे एक संग, अलग घरोंमें सोलह सहस्र स्त्रियोंका श्रीकृष्णचन्द्रने एकही साथ पाणिग्रहण किया ॥ २ ॥ इसप्रकार उत्कंठासे नारदजी द्वारकापुरीमें आये, जिस द्वारकापुरीमें फूली फुलवारी और बागमे पक्षी तथा भौरोंके झुण्ड गुंजार रहे थे ॥ ३ ॥ फूलेहुए इंदीवर, अंभोज, कह्लार, कुमुद और उत्पलोंसे सरोवर व्याप्त थे उनमें उच्चस्वरसे हंस सारस बोलते थे, उनका शोर होरहा था ॥ ४ ॥

✻ शंका–मुनीश्वर नारदकी बुद्धि क्यों भ्रष्ट होगई ? त्रिलोकीनाथको षोडश सहस्र १६००० स्त्रियोंके सग क्रीडा सुनके आश्चर्यमानना विना प्रयोजन दुःखी होना यह काम साधुलोगोंका नहीं है, यह काम तो मूर्खोंका है, जो कोई कहै कि, नारदको माया ग्रसित कररहीहै, तो यह बात वृथा है, माया तो वारम्वार ग्रसित नहीं करती है, वारम्वार पाप ग्रसित करता है ॥

उत्तर–जो कोई प्राणी भूलकर थोडासा भी पाप करलेता है, फिर वह पाप करनेसे नहीं डरता ऐसेही बहुतसे जीवोंको विना विचार किये नारदने शाप दिया इसीप्रकार बहुतसे जीवोंको नारदने शाप देकर दु.ख दिया, उन पापोंसे भक्तवत्सल श्रीकृष्ण उन भगवान्‌में दुष्टबुद्धि करने लगे, पापसे सम्पूर्ण मूर्ख होगये ॥

स्फटिकमणि और महामणियोंसे प्रकाशमान सुवर्ण व रत्नोंकी सामग्रीसे युक्त नौलाख महल बन रहेथे॥५॥अलग अलग राजमार्ग और गली,कूचे, बाजार, शाला, सभा और देवतालोगोंके मन्दिर बन रहेथे, उनसे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान लगतीथी, मार्ग, आँगन, गली और देहलियोंमें छिडकाव होरहा था, छोटी २ पताका और बड़ी बड़ी ध्वजाओंके फहरानेसे यहाँ धूप नहीं आतीथी ॥६॥ इस द्वारकापुरीमें सम्पूर्ण लोकपालोंसे पूजित श्रीकृष्णचन्द्रके अंतःपुरकी रचनामें विश्वकर्माने अपनी संपूर्ण चतुराई दिखाईथी ॥ ७ ॥ इसप्रकार सोलह हजार महलोसे शोभायमान अंतःपुरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी रानीके एक भवनमें देवर्षि नारदजी गये ॥ ८ ॥ वह भवन कैसा है, जहाँ मूँगोंके खम्भ लगरहे थे और वैदूर्यमणियोके फलकोत्तम

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलिं पतत्पताकाध्वजवारितातपम् ॥ ६ ॥ तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्टा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तंभैर्वैडूर्यफलकोत्तमैः ॥ इंद्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्यां चाऽहतत्विषा॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलंबिभिः ॥ दांतैरासनपर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककंठीभिः सुवासोभिरलंकृतम्॥ पुंभिः सकंचुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥११॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वांतं विचित्रवलभीषु शिखंडिनोऽग॥ नृत्यंति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यांतमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

अर्थात् खम्भधरनेकी चौकियें बन रही थीं, इन्द्रनीलमणियोंकी भीतें और अत्यन्त शोभायमान नीलमणिकी भूमि बन रही थी ॥ ९ ॥ मोतियोंकी झालर जिनमें लगीं, ऐसे विश्वकर्माके बनाये चँदोवेसे वह भवन अधिक शोभायमान था, मणियोंसे शोभायमान हाथीदाँतकी चौकी और पलँग बिछरहे थे, उनकी अलगही शोभा होरही थी ॥ १० ॥ धुकधुकी कंठमें पहरे सुन्दरवस्त्र धारे दासियोंसे शोभायमान जामा, पगडी, पटका और मणियोंके कुण्डलोंको पहरे पुरुषोंसे शोभायमान था ॥ ११ ॥ हे राजा परीक्षित ! रत्नोंके दीपकोंकी

पंक्ति लग रही थीं उनके प्रकाशसे उस भवनमें अन्धकार नहीं था और घरोंके भीतर अगरकी धूपका धुआँ जाली झरोखोंमें होकर निकल रहा था उसे देख बादल आये जान मोर शब्द करके भवनके चित्र विचित्र छज्जोंके ऊपर नृत्य कर रहे थे ॥ १२ ॥ उस महलमें रूप, गुण, अवस्थामें अपने समान, गहनापहरे सहस्र दासियोंके संग सदा सुवर्णकी दंडीका चमर पंखा लिये रुक्मिणी यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर चँवर कर रहीथी इस प्रकार नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ १३ ॥ सब धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख, पलँगपरसे शीघ्र उठ किरीटयुक्त शोभायमान शिरसे चरणोंमें नमस्कार कर हाथ जोड़ उन्हें अपने आसनपर

तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वत पतिं परिवीजयंत्या ॥ १३ ॥ तं संनिरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनामयुक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥ संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम् ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ नैवाद्भुतं तव विभोऽखिललोकनाथ मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ॥ निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥

बैठाला ॥ १४ ॥ जगत्के अतिशय गुरु साधुओंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि नारदजीके चरण धो, चरणामृत अपने मस्तकपर चढ़ाया, जिन श्रीकृष्णका चरणोदक गंगा सबको पवित्र करतीहैं उनमें ब्रह्मण्यदेव यह गुणयुक्त नाम ज्योंका त्यों बनता है ॥ १५ ॥ नरके सखा ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण, नारदजीको शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पूजनकर अमृतकी तुल्य प्रमाणीभूत मधुर वाणीसे कहने लगे कि, हे नारदजी ! आपके आनेसे मंगल हुआ हे समर्थ भगवन् ! हम तुम्हारा क्या पूजन करैं ? यह कहने लगे ॥१६॥ नारदजी बोले कि, हे समर्थ ! हे उरुगाय ! आप सब जीवोंसे मित्रता रखते हो और दुष्टोंको दण्ड देते हो, सब लोकोंके नाथ तुममें यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जगत्की स्थिति और रक्षासहित कल्याण करनेके लिये

स्फटिकमणि और महामणियोंसे प्रकाशमान सुवर्ण व रत्नोंकी सामग्रीसे युक्त नौलाख महल बन रहेथे॥५॥अलग अलग राजमार्ग और गली,कूचे, बाजार, शाला, सभा और देवतालोगोके मन्दिर बन रहेथे, उनसे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान लगतीथी, मार्ग, आँगन, गली और देहलियोंमें छिडकाव होरहा था, छोटी २ पताका और बड़ी बड़ी ध्वजाओंके फहरानेसे यहाँ धूप नहीं आतीथी॥६॥ इस द्वारकापुरीमें सम्पूर्ण लोकपालोंसे पूजित श्रीकृष्णचन्द्रके अंतःपुरकी रचनामें विश्वकर्माने अपनी संपूर्ण चतुराई दिखाईथी॥ ७ ॥ इसप्रकार सोलह हजार महलोंसे शोभायमान अंतःपुरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी रानीके एक भवनमें देवर्षि नारदजी गये॥ ८ ॥ वह भवन कैसा है, जहाँ मूँगोंके खम्भ लगरहे थे और वैदूर्यमणियोके फलकोत्तम

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलिं पतत्पताकाध्वजवारितातपम् ॥ ६ ॥ तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्टा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्र शोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तंभैर्वैडूर्यफलकोत्तमैः ॥ इंद्रनीलमयैः कुड्यै र्जगत्यां चाऽहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलंबिभिः ॥ दांतैरासनपर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककंठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ॥ पुंभिः सकंचुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥११॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वांतं विचित्रवलभीषु शिखंडिनोऽग॥ नृत्यंति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यांतमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

अर्थात् खम्भधरनेकी चौकियें बन रही थीं, इन्द्रनीलमणियोंकी भीतें और अत्यन्त शोभायमान नीलमणिकी भूमि बन रही थी॥ ९ ॥ मोतियोंकी झालर जिनमें लगीं, ऐसे विश्वकर्माके बनाये चँदोवेसे वह भवन अधिक शोभायमान था, मणियोंसे शोभायमान हाथीदाँतकी चौकी और पलँग बिछरहे थे, उनकी अलगही शोभा होरही थी॥ १० ॥ धुकधुकी कंठमें पहरे सुन्दरवस्त्र धारे दासियोंसे शोभायमान जामा, पगडी, पटका और मणियोके कुण्डलोंको पहरे पुरुषोसे शोभायमान था॥ ११ ॥ हे राजा परीक्षित! रत्नोंके दीपकोंकी

पंक्ति लग रही थीं उनके प्रकाशसे उस भवनमें अन्धकार नहीं था और घरोंके भीतर अगरकी धूपका धुआँ जाली झरोखोंमें होकर निकल रहा था उसे देख बादल आये जान मोर शब्द करके भवनके चित्र विचित्र छज्जोके ऊपर नृत्य कर रहे थे ॥ १२ ॥ उस महलमें रूप, गुण, अवस्थामें अपने समान, गहनापहरे सहस्र दासियोंके संग सदा सुवर्णकी दंडीका चमर पंखा लिये रुक्मिणी यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर चँवर कर रहीथी इस प्रकार नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ १३ ॥ सब धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख, पलँगपरसे शीघ्र उठ किरीटयुक्त शोभायमान शिरसे चरणोंमें नमस्कार कर हाथ जोड़ उन्हें अपने आसनपर

तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वत पतिं परिवीजयंत्या ॥ १३ ॥ तं संनिरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनामयुक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥ संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम् ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ नैवाद्भुतं तव विभोऽखिललोकनाथ मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ॥ निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥

बैठाला ॥ १४ ॥ जगत्के अतिशय गुरु साधुओंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि नारदजीके चरण धो, चरणामृत अपने मस्तकपर चढ़ाया, जिन श्रीकृष्णका चरणोदक गंगा सबको पवित्र करतीहैं उनमें ब्रह्मण्यदेव यह गुणयुक्त नाम ज्योंका त्यों बनता है ॥ १५ ॥ नरके सखा ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण, नारदजीको शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पूजनकर अमृतकी तुल्य प्रमाणीभूत मधुर वाणीसे कहने लगे कि, हे नारदजी ! आपके आनेसे मंगल हुआ हे समर्थ भगवन् ! हम तुम्हारा क्या पूजन करें ? यह कहने लगे ॥१६॥ नारदजी बोले कि, हे समर्थ ! हे उरुगाय ! आप सब जीवोंसे मित्रता रखते हो और दुष्टोंको दण्ड देते हो, सब लोकोंके नाथ तुममें यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जगत्की स्थिति और रक्षासहित कल्याण करनेके लिये

अपनी इच्छानुसार अवतार लेते हो मैं भले प्रकार जानता हूँ कि, दुष्टोंको दण्ड और साधुओंका सत्कार करना, यही तुमको योग्य है ॥ १७ ॥ मनुष्योंको मोक्षके देनेवाले और बड़े ज्ञानी, ब्रह्मादिक देवता जिनका हृदयमें ध्यान धरते हैं, जो संसाररूपी कूपमें पडे जीवोंको निकालनेके आश्रयभूत तुम्हारे चरणारविन्दोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ, अब ऐसी कृपा करो कि, मुझे सदा तुम्हारा स्मरण बना रहै और तुम्हारे चरणारविन्दोंका ध्यान करताहुआ सुखसे विचरूं ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित ! इसप्रकार कह नारदजी योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमाया जाननेकेलिये श्रीकृष्णचन्द्रकी और रानीके महलमें गये ॥ १९ ॥ उस महलमें भी प्यारी सत्यभामाके संग और उद्धवजीके संग चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने

दृष्टं तवांघ्रियुगलं जनताऽपवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८ ॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ॥ योगेश्वरेश्वरस्यांग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥ दीव्यंतमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥ पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति ॥ क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मञ्जन्मैतच्छोभनं कुरु ॥ स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥ २२ ॥ तत्राप्याचष्ट गोविंदं लालयंतं सुतान्छिशून् ॥ ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥ जुह्वतं च वितानाग्नीन्यजंतं पंचभिर्मखैः ॥ भोजयंतं द्विजान्क्वापि भुंजानमवशेषितम् ॥ २४ ॥

देखा इनको देखतेही श्रीकृष्णचन्द्र परमभक्तिपूर्वक उठ आसन बिछाय, अर्घ्य देकर पूजन करनेलगे ॥ २० ॥ "तुम कब आये" इस प्रकार अज्ञानीके समान श्रीभगवान् नारदजीसे पूँछने लगे, पूर्ण तुमको हम अपूर्ण क्या पूजन करें ॥२१॥ हे ब्रह्मन् ! हम पूर्ण नहीं हैं, परन्तु तो भी हमसे कुछ आज्ञाकर हमारा जन्म सार्थक करो, यह सुन नारदजी आश्चर्य मानकर वहाँसे और मन्दिरमें गये ॥ २२ ॥ उस महलमें भी छोटे छोटे बालकोको खिलाते श्रीकृष्णचन्द्रजीको देखा, इसके उपरान्त और महलोंमें जाकर देखें तो स्नानका उपाय कररहे हैं ॥ २३ ॥ किसी महलमें श्रीकृष्णचन्द्र अग्निहोत्र कररहे हैं, किसीमें पंचयज्ञ कररहे हैं और किसी महलमें ब्राह्मणोंको भोजन जिमाय उनका बचा प्रसाद आप भोजन

कररहे हैं, इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ २४ ॥ किसी महलमें संध्या और किसीमें मौन होकर गायत्री जप रहे हैं, एक महलमें ढाल तलवार लेकर फिररहे हैं इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ ॥ २५ ॥ किसीमहलमें घोडे, हाथी रथोंपर चढ़कर फिररहे हैं और किसी महलमें शयन कर रहे बन्दीजन स्तुति कररहे हैं, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका नारदजीने दर्शन किया ॥ २६ ॥ किसी महलमें उद्धवादिक मन्त्रियोंके संग विहार करते देखा और किसी महलमें मुख्य मुख्य वारांगना स्त्रियोके संग जलमे विहार करते श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ २७ ॥ किसी महलमें शृंगार करके ब्राह्मणोंको गौ दान कररहे हैं और किसी महलमें इतिहास, पुराण, मंगलरूपी वाक्य श्रवण करते

क्वापि संध्यामुपासीनं जपंतं ब्रह्म वाग्यतम् ॥ एकत्र चासिचर्मभ्यां चरंतमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥ अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरंतं गदाग्रजम् ॥ कचिच्छयानं पर्यंके स्तूयमानं च बंदिभिः ॥ २६ ॥ मंत्रयंतं च कस्मिंश्चिन्मंत्रिभिश्चोद्धवादिभिः ॥ जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥ २७ ॥ कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः ॥ इतिहास पुराणानि शृण्वंतं मंगलानि च ॥ २८ ॥ हसंतं हासकथया कदाचित्प्रियया गृहे ॥ क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥ ध्यायंतमेकमासीनं पूरुषं प्रकृतेः परम् ॥ शुश्रूषंतं गुरून्क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ३० ॥ कुर्वंतं विग्रहं कैश्चित्संधिं चान्यत्र केशवम् ॥ कुत्रापि सह रामेण चिंतयंतं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥ पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ॥ दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयंतं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन किये ॥ २८ ॥ किसी महलमें हँसीकी बात कहकर श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीके संग हँसरहे हैं, किसी महलमें अपने धर्मकी सेवा करते हैं और किसी महलमें अर्थ और कामका संपादन कररहे हैं ॥ २९ ॥ किसी महलमें मायासे अतीत परब्रह्मका एकासनपर बैठे ध्यान कर रहे हैं और किसी महलमें काम, भोग, पूजन इत्यादिसे गुरुकी शुश्रूषा कररहे हैं ॥ ३० ॥ किसी महलमें वियोग और किसीमें मिलापकी बातें कररहे हैं और किसी महलमें बलदेवजीके संग साधुओंके सुखार्थ यत्न कररहे हैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ ३१ ॥ किसी महलमें पुत्रको, समयपर सदृश स्त्रियोको देखकर विवाह करते हैं और किसी महलमें अपनी कन्याके समान वर देख द्रव्योंकरके विवाह

करतेहैं ॥ ३२ ॥ किसी महलमें कन्या और जमाईको बिदा कर रहे हैं और किसी महलमें पुत्रोंको सुसराल भेजकर उनकी स्त्रियोंको बुलातेहैं, इस प्रकार योगेश्वरोके ईश्वर, श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोका बडा उत्सव देख लोग आश्चर्यको प्राप्त होगये ॥ ३३ ॥ किसी महलमें बड़े यज्ञोंसे अपनी कुल देवताओंका पूजन कररहेहैं और किसी महलमें, अमुक रास्तेमें कुआँ बनाओ, बाग लगाओ और नवीन मंदिर बनवावो, इस प्रकार धर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा ॥ ३४ ॥ किसी महलसे सिंधुदेशके घोडेपर चढ, यादवोंको संग ले शिकार खेलनेको जारहेहैं, वहाँ चित्र विचित्र मेध्य पशुओंको मारते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३५ ॥ किसी महलमें अपना रूप छिपाकर अंतःपुरके भीतर गृहादिमें प्रजाका अभिप्राय

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ॥ वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिष्मिरे ॥ ३३ ॥ यजंतं सकलान्देवान्कापि क्रतुभिरूर्जितैः ॥ पूर्तयंतं कचिद्धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥ ३४ ॥ चरंतं मृगयां कापि हयमारुह्य सैन्धवम् ॥ घ्नंतं ततः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुंगवैः ॥ ३५ ॥ अव्यक्तलिंगं प्रकृतिष्वंतःपुरगृहादिषु ॥ कचिच्चरंतं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥ अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ॥ योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥ ३७ ॥ विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ॥ योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसा प्लुतान् ॥ पर्यटामि तवोद्गायँल्लीलां भुवनपावनीम् ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता ॥ तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥

जाननेके लिये विचरते योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मनुष्यदेहको प्राप्तहुए श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका वैभव देख संपूर्ण लीला देखनेके उपरान्त नारदजी हँसकर कहने लगे ॥ ३७ ॥ कि, हे योगेश्वर ! तुम्हारे चरणारविन्दोकी सेवा करके मेरे मनमें प्रकाशमान तुम्हारी योगमायाही केवल हम जानतेहैं और तुम्हारा सत्यस्वरूप नहीं जानते ॥ ३८ ॥ हे देव ! तुम्हारे यशसे व्याप्त लोकोमें सब लोकोंकी पवित्र करनेवाली तुम्हारी लीला में गाता फिरूं, यह आज्ञा तुम मुझे दो इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ३९ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! मैं धर्मका कहनेवाला हूं और दूसरेको धर्म करता देखकर प्रशंसा करताहूं, इस कारण सब लोकोके शिखानेके लिये मैं कर्म करताहूं इसलिये

हे अंग ! तुम अपने मनमें खेद मत करो ॥४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार गृहस्थ पुरुषोंके पवित्र करनेवाले, श्रेष्ठ धर्मके कर्त्ता अकेले श्रीकृष्णचन्द्रको सब घरोंमें नारदजीने देखा ॥ ४१ ॥ अनन्त पराक्रम श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका बडा उदय वारंवार देखकर लीलापूर्वकही नारदजीको बड़ा आश्चर्य प्राप्त हुआ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें श्रद्धासहित मन लगाये श्रीकृष्णचंद्रसे भलीप्रकार पूजित होकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रको मनमें स्मरण करते चलेगये ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार मनुष्योंका मार्ग चलनेवाले, सब जीवोंका कल्याण करनेके लिये अनेक मूर्त्ति धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र सोलह हजार श्रेष्ठ स्त्रियोंके बीचमें लाजभरी

श्रीशुक उवाच ॥ इत्याचरंतं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् ॥ तमेव सर्वगेहेषु संतमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥ कृष्णस्यानंतवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ॥ मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥ इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ॥ सम्यक्सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ॥ रेमेंऽग षोडशसहस्रवरांगनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ॥ यस्त्वंग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजितोऽशपन् ॥ गृहीतकंठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

स्नेहकी चितवन, हँसन इनसे सेवित होकर रमण करनेलगे ॥ ४४ ॥ हे परीक्षित् ! विश्वकी प्रलय और उत्पत्तिके कारण हरि भगवान्के दूसरोंको अगम्य साधारण कर्म, इस संसारमें जो पुरुष गावें अथवा सुनें या बडाई करें, उन पुरुषोंको मोक्षके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ दोहा–सत्तरमें गोविन्दको, भारी परो विचार । इतने आयो दूत एक, उत नारद अविकार ॥७०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! स्वामियोंके गलेमें भुजा डाले हृदयसे चिपटाये श्रीकृष्णकी स्त्रियें प्रातःकालके समय अरुण शिखाओंका (मुर्गोंका) शब्द सुन " श्रीकृष्णचन्द्र जाग उठेंगे " इसप्रकार जानकर

विरहसे आतुर हो उन मुर्गोंसे क्रोध कर कहने लगीं कि, अरे अभागे ! तुम अभीसे बोलनेलगे श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकाल जानकर कहीं उठ न बैठें ? ॥ १ ॥ इसके उपरान्त प्रातःसमय सब पक्षी नींदको त्याग बोलनेलगे और कल्पवृक्षकी पवन सूंघकर भौंरे गुंजार करनेलगे; उनके मनोहर शब्दकी ऐसी शोभा होती थी कि, मानो बंदीजन श्रीकृष्णको जगा रहे हैं ॥ २ ॥ अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंके बीचमें प्राप्त हुई रुक्मिणीने आलिंगनका वियोग देख अति सुन्दर प्रातःकालके समयका सहन न किया ॥३॥ प्रसन्न इंद्रिय मधुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्ममुहूर्त्त अर्थात् सूर्योदयसे दो तीन घड़ी पहले उठ जलका आचमन कर मायासे परे अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे ॥ ४ ॥ कैसे स्वरूपका ध्यान

वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयंतीव वंदिनः ॥ गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मंदारवनवायुभिः ॥ २ ॥ मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ॥ परिरंभणविश्लेषात्प्रियबाह्वंतरं गता ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ॥ दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥ एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ॥ ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतम् ॥ ५ ॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी ॥ चकार संध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥ उपस्थायार्कमुद्यंतं तर्पयित्वात्मनः कलाः ॥ देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनां रुक्मशृंगीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ॥ पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥

किया सो कहते हैं, एक अखण्ड स्वयंज्योतिस्वरूपका उपाधिरहित अविनाशी सर्वकाल अविद्यारहित ब्रह्म विश्वकी उत्पत्ति और नाशके कारण अपनी शक्तिसे देखनेमें आवैं सत्तामात्र आनन्दरूप ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त निर्मल जलमें स्नान कर धोती पहर श्रीकृष्णचन्द्र सन्ध्योपासनादि कर्म और अग्निहोत्र कर मौन हो गायत्रीका जप करने लगे, फिर सूर्यनारायणको अर्घ्य दे अपने अंशके जो देवता, ऋषि, पितृ थे उनका तर्पण करके ज्ञानवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मणोंका पूजन करनेलगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुवर्णसे सींग मढे अत्यन्त

सूधी मोतियोंकी माला पडीं दूध देनेवाली और एकही बारकी ब्याईं शोभायमान बछडों सहित सुन्दर वस्त्र उढाय ॥ ८ ॥ रूपेसे खुरोंके अग्रभाग मढे ऐसी तेरह हजार चौरासी १३०८४ गौ एक एक महलमेंसे प्रतिदिन शोभायमान सत्पात्र ब्राह्मणोंको रेशमी वस्त्र मृगछाला और तिलसहित दान करते थे ॥ ९ ॥ अपनी विभूति गौ ब्राह्मण देवता और वृद्धोंको नमस्कार करके मंगल वस्तु कपिलादि गौका स्पर्श करते थे ॥१०॥ और नरलोकका भूषणरूप अपने शरीरको वस्त्र और चन्दन इत्यादिसे शोभायमान करते थे ॥११॥ घीमें मुख देख कांच देख गाय, वृषभ अथवा देवतालोगोंका दर्शनकर पीछे नगर व रनिवासी व सब प्रजागणकी अभिलाषा सिद्धकर फिर मंत्री और प्रधानोंका मनोरथ पूर्ण व प्रसन्न कर उनका यथायोग्य

दर्दौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ॥ अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वंबद्वं दिनेदिने ॥ ९ ॥ गोविप्रदेवतावृद्धगुरून्भूतानि सर्वशः ॥ नमस्कृत्यात्मसंभूतीर्मंगलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥ आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ॥ वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥ अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः ॥ कामांश्च सर्ववर्णानां पौरांतःपुरचारिणाम् ॥ प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनंदत ॥ १२ ॥ स विभज्याग्रतो विप्रान्स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुंक्त ततः स्वयम् ॥ १३ ॥ तावत्सूत उपानीय स्यंदनं परमाद्भुतम् ॥ सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं सारथेस्तमथारुहत् ॥ सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥१५॥ ईक्षितोऽतःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ॥ कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥ १६ ॥

आदर सत्कार करते थे, फिर कुछ और कार्यको देखते थे ॥ १२ ॥ पहले विप्र फिर मित्र और कार्याधीश व स्त्रियें इनको पान, पुष्प और अरगजा दे, सबसे पीछे उन वस्तुओंको आप अंगीकार करते थे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इतनेहीमें सारथीने सुग्रीवादि घोड़े जोत परम अद्भुत रथ ला प्रणाम करके सन्मुख खडा करदिया ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे रथवान्का हाथ पकड सात्यकी और उद्धवको संग ले जैसे सूर्य नारायण सुमेरुपर्वतके ऊपर चढ़ते हैं, उसी प्रकार रथमें चढ़गये ॥ १५ ॥ लाजभरी प्रेमकी चितवनसे अंःतपुरकी स्त्रियोंके देखनेसे मुसकाते

श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त कष्टसे, उनको छोड और उनके मन हरकर बाहर निकले ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब घरोंसे अलग अलग निकल, पीछे सब एकरूप हो सब यादवोंको साथ ले भगवान् वासुदेव सुधर्मासभामें गये, हे राजन् ! सुधर्मा सभामें बैठेहुये पुरुषोंको क्षुधा, पिपासा, शीत, गर्मी, शोक और मोह इत्यादि बाधा नहीं व्यापती हैं ❋ ॥ १७ ॥ उस सभामें यादवोंसे वेष्टित व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासनपर बैठ अपनी कान्तिसे

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ॥ प्राविशद्यन्निविष्टानां न संत्यंग षडूर्मयः ॥ १७ ॥ तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ॥ वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥ ॥ १८ ॥ तत्रोपमंत्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ॥ उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्तांडवैः पृथक् ॥ १९ ॥

सब दिशाओंको प्रकाशमान करनेलगे जैसे तारागणोंके बीचमें निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है, उसी प्रकार यादवोंके बीचमें बैठेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा होने लगी ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस सभामें भाट अनेकप्रकारसे हँसीकी बातें कर श्रीकृष्णचंद्रका सेवन करते थे और नटोंमें मुख्य और नृत्यकरनेवाली स्त्रियें अलगही अपने अपने गवैयोंको संग ले सन्मुख खडी हुईं ॥ १९ ॥

---

* शंका—सुधर्मासभामें बैठनेवाले जीवोंके हृदयमें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर यह छः वैरी उत्पन्न नहीं होते थे, फिर श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें वही छहों वैरी क्यों उत्पन्न हुये, जिन वैरियोंको ग्रहण करके श्रीकृष्णजीने बडे बडे दुष्टोंको मारा, यह बडी शका है ?

उत्तर—तीनलोकमें इसलोकका काम तथा परलोकका काम विना काम आदि छहों वैरियोंको सेवन किये नहीं सिद्ध होगा इसलिये कामादिक छ शत्रुओंका सेवन अवश्य करना चाहिये, परन्तु विचारके सेवन करना, क्योंकि यह छ.शत्रु सुन्दर काममें भी हैं, सो सुन्दर काममें छ होंको ग्रहण करना, जैसे सुन्दर कामकी इच्छामें लोभ इसीप्रकारसे जानलेना चाहिये, और बुरे काममें त्यागना चाहिये, सुधर्मा सभामें बुरे कामवाले छ शत्रु नहीं थे सुन्दर कामवाले कामादिक छ.वैरी थे, इसलिये सुन्दर कर्मोंके छहों वैरियोंको श्रीकृष्णचन्द्रने ग्रहण किया और बुरे कामवालोंको त्यागदिया क्योंकि, यह कामादिक छःवैरी सुन्दरकर्ममें सुन्दर फल देते हैं बुरे कर्मसे बुरा फल देते हैं, इसलिये श्रीकृष्णने सुधर्मा सभामें बैठकर छहोंवैरियोंको ग्रहण करके दुष्टोंको जीता और मारा ॥

इसके उपरान्त मृदंग, वीणा, मुरज, बांसुरी, झांझ, शंख इत्यादि बजाकर नृत्य करनेलगे और सूत, मागध, बंदीजन श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख स्तुति करनेलगे ॥२०॥ उस समय कोई चतुर ब्राह्मण वेदकी ऋचा पढ़कर व्याख्या देनेलगे और कोई कोई ब्राह्मण पवित्र वंशवाले राजाओंकी कथा कहने लगे ॥२१॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस समय एक अजान मनुष्य उस स्थानपर कहींसे आया, तब डयोढीवानोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर खबर दी, श्रीकृष्णने आज्ञा दी कि, जाओ उसे लिवालाओ, तब उस मनुष्यको सभाके भीतर पहुँचाया ॥२२॥ ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख उस पुरुषने हाथ जोड नमस्कार करके जरासन्धके कैद कियेहुये वीसहजार आठसौ राजाओंका दुःख कहा ॥ २३ ॥ जब जरासन्धने दिग्विजय किया था,

मृदंगवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ॥ ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवंदिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ॥ पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥ तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ॥ विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२ ॥ स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ॥ राज्ञामावेदयद्दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः ॥ प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन ॥ वयं त्वां शरणं यामो भवभीतः पृथग्धियः ॥ २५ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥ लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ॥ कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥ २७ ॥

तब उस समय जिन राजाओंने आकर भेंट नहीं दी थी, इसलिये उसने वीसहजार आठसौ राजाओंको पकड गिरिव्रजनाम किलेमें कैदकर दिया है ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे शरणागतका भय काटनेवाले ! इस संसारमें भयभीत तुमसे प्रेम करनेवाले हम आपकी शरण आये हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि यह लोग अतिशय पापकर्ममें लग रहे हैं, सो तुम्हारे बताये कल्याणरूप पूजन सेवनरूप कर्ममें भूल रहेहैं, इस संसारमें जीनेकी आशा काटनेवाले सामर्थ्यवान् कालरूप आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! जगत्के ईश्वर ! तुमने इस संसारमें साधु

पुरुषोंकी रक्षा और दुष्टपुरुषोंको दण्ड देनेकेलिये अपने अंशसे अवतार धारण किया है और आपके विद्यमान रहते भी जरासन्ध सरीखा बलवान् तुम्हारी आज्ञाको नहीं मानता आपकी रक्षामें रहे जीव अपने कर्मजनित दुःखोंको प्राप्त होतेहैं यह किसलिये होते हैं ? सो हम नहीं जानसक्ते ॥२७॥ हे ईश ! यह राज्यके संबन्धका सुख विषयसाध्य है इसीसे परतंत्र है; इसीलिये यह स्वप्नसुखके समान है और यह शरीर भी सदैव भयसे युक्त मृतकके समान है, परन्तु तोभी हम इस शरीरसे केवल भार्या सन्तानादिकी चिन्ता करते रहते हैं, निष्काम भक्त जिस स्वतः सुखको आपसे प्राप्त होतेहैं ; उसे त्याग अत्यन्त कृपण बने आपकी मायासे दुःख पाते हैं, क्योंकि पहले निष्काम हो आपके चरणोंकी शरण न ली ॥ २८ ॥ इसलिये दुःखी पुरुषोंका शोक हरनेवाले जिनके चरणकमल हैं, ऐसे आप हम बँधेहुओंको जरासन्धरूपी कर्मबन्धनसे छुड़ाओ दशहजार

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ॥ हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥ २८ ॥ तन्नो भवान्प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मो बद्धान्वियुंक्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ॥ यो भूभुजोऽयुतमतंगजवीर्यमेको बिभ्रद्रुरोध भवने मृगराडिवाऽवीः ॥ २९ ॥ यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवंतमनंतवीर्यम् ॥ जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥ ३० ॥ दूत उवाच ॥ इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकांक्षिणः ॥ प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ॥ बिभ्रत्पिंगजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥

हाथियोंका बल धारण करनेवाले इस जरासन्धने सिंह जिस प्रकार भेडोंको घेर लेताहै, उसी प्रकार अपने दुर्गमें हम राजाओंको रोक रक्खाहै ॥२९ ॥ हे चक्रधर ! हे कृष्ण ! आपसे अठारह वार जरासन्धने संग्राम किया और सत्रह बार आपने हरादिया परन्तु अठारहवीं बार संग्राममें आप मनुष्यलीला कर रण छोड़गये आपको यह एक बार जीत महागर्वको प्राप्त हुआ है, इसलिये आपकी प्रजा हमको बहुत दुःख देता है अब जो आप उचित समझो सो करो ॥ ३० ॥ दूत बोला कि, इस प्रकार जरासन्धके रोके आपके दर्शनकी अभिलाषा किये राजालोग आपके चरणकमलकी शरण लियेहुए हैं इन दीनोंका बहुत शीघ्र उद्धार करना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार राजाओंका दूत कहही

रहाथा कि, इतनेहीमें श्रेष्ठ कान्तिवाले पीली जटायें धारण किये श्रीमन्नारदजी सूर्यके समान वहां आन प्रगट हुए ॥ ३२ ॥ सब लोकोंके महान् ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र नारदजीको आया देख अपने सभासदोंसहित शिर नवायकर प्रणाम करनेलगे ॥ ३३ ॥ आसनपर विराजमान नारदजीका विधिपूर्वक सत्कार करके श्रद्धासहित मधुर मधुर वचनोंसे भगवान् तृप्त करनेलगे ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, नारदजी ! त्रिलोकीमें कहीं भय तो नहीं है ? तुम्हारे लोकोंमें भ्रमण करनेसे हमें बड़ा लाभ है, क्योंकि घर बैठेही सब समाचार मिल जाते हैं ॥ ३५ ॥ ईश्वरके बनाये लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसको तुम न जानो इसलिये हम तुमसे पूँछते हैं कि, पाण्डवोंकी क्या करनेकी इच्छा है ? ॥ ३६ ॥ यह

तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ववंद उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥ ३३ ॥ सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम् ॥ बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ॥ ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥ ३५ ॥ न हि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ॥ अथ पृच्छामहे युष्मान्पांडवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ नारद उवाच ॥ दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः ॥ भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभिर्वह्नेरिव च्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ॥ यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्य यः संसरतोऽविमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ॥ लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥

सुनकर नारदजीने कहा कि, हे समर्थ ! आप अपनी मायासे ब्रह्माको भी मोहित करते और अपनी अचिन्तनीय शक्तिसे प्राणियोंमें अन्तर्यामी रूपसे रहनेपरभी काष्ठमें रहे अग्निके समान गुप्त प्रकाशवाले हो आपकी माया मैंने कई वार अवलोकन की है, इसलिये यह आपका चारित्र कुछ अद्भुत विदित नहीं होता ॥ ३७ ॥ यह संसार जो कि, मिथ्या होनेपर भी आपकी मायासे विद्यमानसा प्रतीत होता है, इसके उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले आपके अभिप्रायको कौन पुरुष भली भाँतिसे जान सक्ता, है ? अर्थात् कोई भी नहीं जान सक्ता, ऐसे अचिन्त्यस्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ जिन आपने बहुत प्रकार जन्म, मरण पाते और विविध अनर्थकारक शरीरसे मुक्त होनेका उपाय न

जाननेवाले जीवोंको अज्ञानीरूपी अंधकारका मिटानेवाला अपना यशरूपी दीपक लीलासे अवतार धारणकर प्रगट किया है, ऐसे आपकी मैं शरण प्राप्त हुआ हूँ ॥ ३९ ॥ परन्तु तो भी हे ब्रह्मन्! मनुष्यके अनुकरण करनेवाले आपसे आपकी फूफीके पुत्र भक्त राजा युधिष्ठिर जो कुछ करना चाहते हैं, सो मैं कहकर सुनता हूं ॥ ४० ॥ पाण्डुका पुत्र चक्रवर्ती राज्य करनेकी इच्छा करनेवाले राजा युधिष्ठिर यज्ञराट् राजसूययज्ञ करके तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं, यह आप अनुमोदन करो ॥ ४१ ॥ हे देव! उस यज्ञमें तुम्हारा दर्शन करनेके लिये इन्द्रादिक देवता आवेंगे और बड़े बड़े यशस्वी राजालोग तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे आवेंगे ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर! ब्रह्मरूप तुम्हारी कथाओंके श्रवण करनेसे और

अथाप्याश्रावये ब्रह्मन्नरलोकविडंबनम् ॥ राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥ ४० ॥ यक्ष्यति त्वां मखेंद्रेण राजसूयेन पांडवः ॥ पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्देव क्रतुवरे भवंतं वै सुरादयः ॥ दिदृक्षवः समेष्यंति राजानश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयंतेऽन्तेवसायिनः ॥ तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥ ४३ ॥ यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमंगल दिग्विता नम् ॥ मंदाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो गंगेति चेह चरणांबु पुनाति विश्वम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया ॥ वाचः पेशैः स्मयन्भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥

तुम्हारा ध्यान करनेसे चाण्डाल भी पवित्र होजाते हैं और जो तुम्हारे दर्शन करनेहीसे पवित्र होजाय तो इसमें कहनेकी बातही क्या है? ॥ ४३ ॥ हे त्रिलोकीके मंगलरूप! तुम्हारा निर्मल यश स्वर्ग, रसातल और संपूर्ण पृथ्वीपर फैलरहा है और दिशाओंको चँदोवेके समान शोभायमान कर रहा है, स्वर्गमें मंदाकिनीरूप, पातालमें भोगवतीरूप और इस संसारमें आपका चरणोदक गंगारूप होकर सब विश्वको पवित्र कररहा है, इस लिये तुम्हारे चलतेही यज्ञमें बडा मंगल होगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे भारतवंशावतंस परीक्षित्! इस प्रकार देवर्षि नारद जीने जब कहा तब उस सभामें अपनी ओरके यादवोंने जरासन्धके जीतनेकी इच्छासे जब यज्ञमें जानेकी अनुमति न दी, तब मनोहर वचनोंसे

कुछेक मुसकातेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हे उद्धव ! तुम हमारे परममित्र और परमहितकारी हो और गुह्य बातोके अभिप्रायको भलीभाँति जानते हो, इसकारण इस विषयमें हमको क्या करना चाहिये सो कहो, उसको हम श्रद्धापूर्वक करेंगे ॥ ४६ ॥ सब बातके जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मानों कुछ नहीं जानते, इस प्रकार अनजानकी समान जब पूछा, तब उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा शिरपर धारणकर बोले ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे भाषाटीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥ दोहा—इकहत्तर उद्धव चतुर, हरिकी सम्मति मान । इन्द्रप्रस्थ गवने तुरत, पाण्डव बुद्धिनिधान ॥ ७१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि. हे राजा परीक्षित ! इसप्रकार बड़ी बुद्धिवाले उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन और नारदजीकी सम्मति यज्ञमें जानेकी जान

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मंत्रार्थतत्त्ववित ॥ तथाऽत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत॥४६॥इत्युपामंत्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥ निदेशं शिरसाऽऽधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥४७॥ इति श्रीमद्भा० महा०दशमस्कंधोत्तरार्धे भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ॥ सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ॥ कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥ यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ॥ अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥ अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति ॥ यशश्च तव गोविंद राज्ञो बद्धान्विमुंचतः ॥ ४ ॥

और सभामें बैठनेवाले यादवोंकी सम्मति राजाओंकी रक्षा करनेकी देख और श्रीकृष्णचन्द्रकी इच्छा दोनों कार्य करनेकी देखकर कहनेलगे॥१॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रकाशमान श्रीकृष्ण ! देवर्षि नारदजीने जो कहा कि, राजा युधिष्ठिर तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं, सो उनकीभी सहायता करनी योग्य है और शरणागत राजाओंकी भी रक्षा करनी योग्य है ॥ २ ॥ हे समर्थ ! संपूर्ण दिशाओंके राजाओंका जीतनेवाला राजसूययज्ञ करके पूजन होगा इसकारण जरासन्धको भी अवश्य जीतना पड़ेगा, इसमें दोनों कार्य सिद्ध होजायँगे, यज्ञ भी होजायगा और शरणागत राजाओंकी रक्षा भी होजायगी ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! यज्ञमें आप चलेंगे, तो हमारे मनोरथ इसीसे सिद्ध होजायँगे और हे गोविंद ! बँधे

राजाओंको जो छुड़ाओगे, इसमें आपका बडाही यश होगा ॥ ४ ॥ बडी चाहनासे जरासन्धके मारनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंको देखकर कहते हैं कि, जरासन्धके समान बलवान् भीमसेनके विना दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाला जरासन्ध और राजाओंसे नहीं जीता जायगा, क्योंकि भीमसेनके हाथसेही विधाताने उसकी मृत्यु रची है ॥ ५ ॥ द्वंद्वयुद्धमें राजसन्ध जीता जायगा और सेनाको संग लेकर जो पुरुष उसके जीतनेकी आशा करे सो यह आशा कदापि फलवती न होगी, वह जरासन्ध ब्राह्मणोंका भक्त है, इसकारण भीमसेन ब्राह्मणका रूप धरकर जो उससे द्वंद्वयुद्ध माँगे तो आशा है कि, वह निषेध नहीं करेगा ॥ ६ ॥ वृकनामा अग्नि जिसके उदरमें रहे सो भीमसेन ब्राह्मणका वेष धारणकर जरासन्धसे युद्धकी भिक्षा माँगे कि, तुम्हारे साथ मैं द्वंद्वयुद्ध करूँगा, तुम निकट रहो तो भीमसेन जरासन्धको अवश्य मारेगा, इसमें सन्देह

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ॥ बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥ द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ॥ ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥ ६ ॥ ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ॥ हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव संनिधौ ॥ ७ ॥ निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ॥ हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्या रूपिणस्तव ॥ ८ ॥ गायंति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ॥ गोप्यश्च कुंजरपतेर्ज नकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥ ९ ॥

नहीं ॥ ७ ॥ प्राकृत रूपरहित तुमही तो उत्पन्न, पालन और संहार करते हो, ब्रह्मा और महादेव तो नाममात्र हैं, इसलिये तुमही पास रहकर जरासन्धका संहार करोगे, भीमसेनका तो केवल नामही होगा ॥ ८ ॥ बन्दीहुए राजाओंकी रानियें तुम्हारे निर्मल यशको गाती हैं और जब उनके बालक रोते हैं, तब वह कहती हैं कि, हे पुत्र ! तुम किसलिये रोते हो, जो कोई अनाथ हो सो रोवै, तुम्हारे शिरपर तो द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र विद्यमान हैं, तुम मत रोओ, जैसे गोपी शंखचूडका मारना और अपना छूटना गाती हैं, और गजराजका छूटना व ग्राहकी मृत्यु गाती हैं और जनकनन्दिनी जानकीका छूटना व रावणका मरना जैसे गावै हैं और माता पिताका छूटना, कंसका मरना शरणागत मुनि और हम भक्त गान करतेहैं उसी प्रकार जरासन्धका मरना और अपने पतियोंका छूटना राजाओंकी स्त्रियें वारम्वार गाती हैं ॥ ९ ॥

हे कृष्ण ! जरासन्धके मरनेसे बडा कार्य सिद्ध होगा और फिर शिशुपालादिका मारना भी सहज होजायगा, राजाओंके पुण्यका फल उदय होगा, और यज्ञ हो, यह आपकी इच्छा हैही, राजा युधिष्ठिरके पास जानेसे सब काम बन जायगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब ओरसे मंगलरूप बड़ी युक्ति सहित उद्धवजीका वचन सुन नारदजी बडाई करने लगे, इसके उपरान्त मुख्य यादव और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी प्रशंसा करनेलगे ॥ ११ ॥ इसके पीछे देवकीनन्दन सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चलनेके लिये सेवक दारुक रथवान् और हाथियोंके महावत व वसुदेव इत्यादि यादवोंमे आज्ञा करनेलगे ॥ १२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! पुत्र, दासी, दास और सामग्रियों सहित प्रथम अपनी रानियोको भेज

जरासंधवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ॥ प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धव वचो राजन्सर्वतोभद्रमच्युतम् ॥ देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥ अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः ॥ भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ १२ ॥ निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् ॥ संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ॥ सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥ ततो रथद्विपभटसादिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया ॥ मृदंगभेर्यानकशंखगोमुखैः प्रघोषघोषत्ककुभो निराक्रमत् ॥ १४ ॥ नृवाजिकांचनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ॥ वरांबराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनःकरेणुभिः परिजनवरयोषितः ॥ स्वलंकृताः कटकुटिकंबलांबराद्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ १६ ॥

बलराम और राजा उग्रसेनसे आज्ञा ले, श्रीकृष्णचन्द्र सारथीके लाये गरुडध्वज रथमें चढे ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त रथ, हाथी, प्यादे और महा तीव्र सवारोंकी सेना ले मृदंग, भेरी, नगारे, शंख और रणसिंहोंके शब्दसे शब्दायमान दिशामेंसे भगवान् निकले ॥ १४ ॥ सुन्दर वस्त्र, गहने और चन्दन माला पहरे ढाल, तलवार हाथमें लिये, दोनो ओर सिपाहियोसे रक्षित रथ और पालकियोमें बैठ, पतिव्रता कृष्णकी रानियें अपने पुत्रोको साथ ले अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे चलीं ॥ १५ ॥ नौकरोकी स्त्रियें और वेश्या शृंगारकर चटाइयोंके बने घर तथा कम्बल और

बनातोंके डेरे, तम्बू इत्यादि सब वस्तुको मनुष्य, ऊंट, भैंसे, गधे, खच्चर, गैंडे व हाथियोंपर लादकर चले ॥ १६ ॥ बड़े शब्दवाली सेना बड़ी बडी ध्वजाओंके वस्त्र, छत्र, चमर और सुन्दर हथियार, गहने, किरीट इत्यादिकोंकी चमकसे और सूर्यकी किरणोंसे, जैसे समुद्र क्षुभितहुए मत्स्यों और कलोलोंसे शोभायमान होताहै, उसीप्रकार शोभा देती थी ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे सत्कार पाय पूजा ले, श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनसे सुखी इन्द्रियहो, नारदमुनि श्रीकृष्णको प्रणामकर, उनके निश्चयको सुन और श्याम स्वरूपको हृदयमें धारणकर आकाशमार्गमें होकर चलेगये ॥ १८ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूतको प्रसन्न करनेके लिये बोले कि, हे दूत ! तुम सब राजाओंसे जाकर कहदो कि,

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ॥ दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथार्णवः क्षुभिततिमिंगिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥ अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा ॥ निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो मुकुंदसंदर्शननिर्वृतेंद्रियः ॥ १८ ॥ राजदूतमुवाचेदं भगवान्प्रीणयन्गिरा ॥ मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥ १९ ॥ इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ॥ तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः ॥ २० ॥ आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ॥ गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुंदोथ सरस्वतीम् ॥ पंचालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम् ॥ अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥ २३ ॥

किसी प्रकारका भय मत करो, क्योंकि मैं शीघ्रही जरासन्धको मार तुम्हारा कल्याण करूंगा ॥१९॥ जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब दूत वहाँसे चल राजाओंके पास आकर कहने लगा कि, किसी प्रकारका भय मत करो श्रीकृष्णचन्द्र आते हैं, तब वह छूटनेकी इच्छासे भगवान्के आनेका पैंडा देखनेलगे ॥२०॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनर्त्त, सौवीर, मरुदेशको पीछेदे, कुरुक्षेत्र, पर्वत, नदियें, पुर, गाँव, व्रज और खानोंके देशोंको लाँघकर दृषद्वती व सरस्वतीके पार उतर पांचाल तथा मत्स्यदेशको छोड इन्द्रप्रस्थ पहुंचे ॥ २१ ॥ २२ ॥ मनुष्योंको जिनका दर्शन दुर्लभ है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुन, प्रसन्न हो, अजातशत्रु राजायुधिष्ठिर उपाध्यायोको संगले पुरके बाहर निकले ॥ २३ ॥

गाते बजाते और भारी वेदध्वनिके साथ राजा युधिष्ठिर जैसे आदरयुक्त इन्द्रिय प्राण लेनेको आवैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख लिवानेको आये * ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकर आर्द्र हृदय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने बहुत दिनोंमें देखे अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको बारम्बार आलिंगन किया ॥ २५ ॥ लक्ष्मीके रहनेका निर्मल स्थान, श्रीकृष्णचन्द्रके अंगको भुजाओंसे आलिंगनकर, पापरहित, प्रसन्न वदन, नेत्रोंमें अश्रु युक्त सब लौकिक व्यवहार विसार राजा युधिष्ठिर अत्यन्त सुख पानेलगे ॥ २६ ॥ मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगनकर; प्रसन्न भीमसेन

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणः प्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पांडवः ॥ चिराद्दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनःपुनः ॥ २५ ॥ दोर्भ्यां परिष्वज्य रमाऽमलालयं मुकुंदगात्रं नृपतिर्हताशुभः ॥ लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६ ॥ तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेंद्रियः ॥ यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ २८ ॥ मानितो मानयामास कुरुसृंजयकेकयान् ॥ सूतमागधगंधर्वान्वंदिनश्चोपमंत्रिणः ॥ २९ ॥

प्रेमके वेगसे आकुलइन्द्रिय होगया, इसके उपरान्त बडे २ नेत्रोंमें आंसूभरे नकुल सहदेव और किरीटधारी अर्जुन यह सब अत्यन्त हितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको आनन्दपूर्वक आलिंगन करनेलगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अर्जुन बराबरका होनेके कारण श्रीकृष्णचन्द्रको छातीसे लगाकर मिला और नकुल सहदेवने नमस्कार किया, पीछे यथायोग्य ब्राह्मण और वृद्धोंको नमस्कार करके ॥ २८ । मानने योग्य कुरुदेश और सृंजयदेशके राजा और

* शंका–हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णका और पांडवोंका मिलाप हुआ, तब उस समय शूद्र अन्त्यज चर्मकार आदि और सब नीच जाति तथा म्लेच्छ तमासा देखनेके लिये तथा अनेक प्रकारके ससारिक काम करनेके लिये उस सेनामें रहते थे, इन सबको सुनाकर ब्राह्मणोंने ब्रह्म अर्थात् वेदोच्चारण क्यों किया ?

उत्तर–वेदको श्रवण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके सिवाय दूसरेको नहीं करना चाहिये दूसरा कोई भी दोष नहीं, सो वेदका पाठ कोईभी नहीं उस समय सुनता था, क्योंकि जब श्रीकृष्णचन्द्र और पाण्डवोंका मिलाप हुआ तब ऐसा शब्द मनुष्योंका परस्पर होने लगा कि, उस कुलाहलमें तोपका शब्द तो किसीको सुनाई ही नहीं पडता था तब वेदपाठ कैसे लोगोंको सुनाई देता ! किसीको भी कुछ सुनाई नहीं पड़ा, इसलिये ब्राह्मणोंने वेदपाठ किया ॥

सूत, मागध, गंधर्व, भाट, बंदीजनोंका सत्कार करनेलगे ॥ २९ ॥ मृदंग, शंख, ढोल, वीणा, नगाड़े बाँसुरी इनको बजाकर ब्राह्मण स्तुति करनेलगे और नाचने गानेलगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार सुहृदोंको संग ले पुण्ययश युधिष्ठिरादिकोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सबसे स्तुति और सत्कार पाय शोभायमान राजा युधिष्ठिरके पुरमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ हाथियोंके मद और सुगन्धयुक्त जलसे जिसमें छिड़काव होरहा ऐसे मार्ग और चित्र विचित्र ध्वजाओंसे सुवर्णके तोरण और जलके पूर्ण कलश तथा नवीन वस्त्र, गहने, माला, केशर, अतर, अरगजा लगाये, स्त्री और पुरुषोंसे शोभाय

मृदंगशंखपटहवीणापणवगोमुखैः ॥ ब्राह्मणाश्चारविंदाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥ ३० ॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥ संस्तूयमानो भगवान्विवेशाऽलंकृतं पुरम् ॥ ३१ ॥ संसिक्तवर्त्म करिणां मदगंधतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुंभैः ॥ मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गंधैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥ ३२ ॥ उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् ॥ मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृंगैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३३ ॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबंधाः ॥ सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेंद्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ॥ नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥

मान कौरवोंके राजा युधिष्ठिरको देखा ॥ ३२ ॥ कैसा महलहै कि, जहाँ प्रकाशमान दीपकोंकी पंक्ति और महलके झरोखोंमेंसे निकली धूपकी सुंगधसे शोभायमान होरहाहै और प्रकाशमान पताका तथा रूपेके शिखरोंके ऊपर सुवर्णके कलश संयुक्त कौरवराज युधिष्ठिरके महल देखे ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके नेत्रोंका सौंदर्यरूपी अमृत पीनेके पात्र श्रीकृष्णचन्द्रको आया श्रवण कर उत्कंठासे जिनके केश और वस्त्रोंके बंधन ढीले होगये वह स्त्रियें घरोंके कार्योंको शीघ्रत्याग और शय्याओंको ऊपर पतियोंको त्याग देखनेके लिये राजमार्ग बाजारमें आईं ❀ ॥ ३४ ॥ हाथी, घोडे, रथ और

* सब लोग उत्सव छोड छोडकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनको दौडे, कहीं विवाहमे अधिक उत्सव सो हैही नहीं तथापि एक कन्याका विवाह था, द्वारेपर नौबत बजरहीथी, व माई बिरादरीके लोग बैठे थे और मंडपके नीचे वर कन्या बैठे थे, ब्राह्मण हवन कररहेथे, सो नौबतवालोंने सुना कि, श्रीकृष्ण बलदेव आयेहैं, सुनतेही नगरको छोडकर भागे और जो भीतर नाई, बारी झगडा कर रहेथे, वह भी सुनतेही भागे, पाधा (पुरोहित) पोथी पटक कृष्णके दर्शनको दौडे, अधिक क्या कहैं? बराती भी चले गये, अब दुलहनने सोचा कि, इस चामके दूलहका क्या करना है? जाकर उस दूलहके दर्शन करूं, सो आंचल छुडाकर दुलहन भी पहुँचगयी, पीछे दूलह भी चलागया ॥

पैंदलोंकी भीरसे युक्त राजमार्गमें रानी सहित श्रीकृष्णचन्द्रको देख कोठोंके ऊपर चढ़ी स्त्रियें फूल वर्षाय, मनसे आलिंगन कर मुसकानपूर्वक चित वनसे देखकर " भले आये " इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३५ ॥ जैसे चन्द्रमासहित तारागण, उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके मार्गमें देख " इन रानियोंने क्या पुण्य कियाहै, जिनके नेत्रोंको पुरुषोंमें मुकुट समान श्रीकृष्णचन्द्र उदार हास्य लीलापूर्वक अवलोकनकी कलासे आनन्द देते हैं" इसप्रकार सब स्त्रियें कहनेलगीं ॥ ३६ ॥ पापरहित पुरवासी पान, सुपारी, बतासे और नारियल इन सब मंगल वस्तुओंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करनेलगे ॥ ३७ ॥ प्रफुल्लित नेत्र खुशीके मारे घबराहटसे अंतःपुरके वासियोने प्रीतिपूर्वक सम्मुख आकर जब सत्कार किया

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुंदपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यऽमूभिः ॥ यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥ ३६ ॥ तत्र तत्रोपसंगम्य पौरा मंगलपाणयः ॥ चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३७ ॥ अंतःपुरजनैः प्रीत्या मुकुंदः फुल्ललोचनैः ॥ ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमंदिरम् ॥ ३८ ॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ प्रीतात्मोत्थाय पर्यंकात्सस्नुषा परिषष्वजे ॥ ३९ ॥ गोविंदं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ॥ पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ॥ स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवंदितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ॥ आनर्च रुक्मिणीं सात्यां भद्रां जांबवतीं तथा ॥ ४२ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राजाके मंदिरमें चलेगये ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीके ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णचन्द्रको देख प्रसन्नमन कुन्ती अपनी बहू द्रौपदीसहित पलंगपरसे उठकर श्रीकृष्णचन्द्रसे मिली ॥ ३९ ॥ देवोंके देव और ब्रह्मादिकोंके ईश्वर गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रजीको घरमें ला आनन्दसे सुधि बिसार राजा युधिष्ठिर पूजा करनेकी विधि भी भूलगये ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! द्रौपदी और बहन सुभद्राके प्रणाम करनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता, वसुदेवकी बहन कुन्ती और बडे पुरुषोंकी स्त्रियोंको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ सास कुन्तीकी आज्ञा पाय द्रौपदी

संपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रकी रानी रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती इत्यादिका पूजन करनेलगीं ॥ ४२ ॥ कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा पतिव्रता और नाग्नजिती इनकी और जो संग आई हैं, उनकी वस्त्र, माला, अतर, अरगजा, चन्दन इत्यादिकोंसे पूजा करनेलगी ॥ ४३ ॥ धर्मराजा युधिष्ठिर भी सेनासस्ति मंत्री तथा सेवक और रानियों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको नित्यप्रति नये सुखमें रखनेलगे ॥ ४४ ॥ अर्जुन सहित श्रीकृष्णचन्द्र खांडववनसे अग्निको तृप्त करके मयनाम दैत्यको बचाया उसने राजा युधिष्ठिरको दिव्य सभा बनाकर अर्पण की ॥ ४५ ॥ रथमें बैठ अर्जुन तथा और योद्धाओंको संगले विहार करते श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये कितनेही दिनतक इन्द्रप्रस्थमें रहे ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते

कालिंदीं मित्रविंदां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् ॥ अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मंडनादिभिः ॥ ४३ ॥ सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ॥ ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवंनवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वा खांडवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥ मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसंबंधिबांधवैः ॥ शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ क्रतुराजेन गोविंद राजसूयेन पावनीः ॥ यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्संपादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकसततितमोऽध्यायः ॥७१॥ दोहा–जरासन्धकी विजय लख, कृष्ण बहत्तर अंक। भीमसेनको सैनदे, करवाये द्वै फंक ॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित ! एक समय मुनीश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भाई, आश्चर्य और कुलमें वृद्ध तथा जातिके सम्बन्धी बांधव इन सहित सभामें बैठेहुए राजा युधिष्ठिर इन सबके सुनते हुए हे कृष्ण ! हे भक्तवत्सल, इस प्रकार संबोधन देकर बोले ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ कि, हे समर्थ ! यज्ञोंका राजा राजसूय यज्ञ करके मैं पवित्र कर्मवाले आपका पूजन करूंगा, इस कारण आप इस कार्यको सिद्ध करो ॥ ३ ॥

अभद्रके नाश करनेवाली तुम्हारी चरणपादुकाका जो पुरुष सेवन, ध्यान और पवित्र होकर वाणीसे नाम लेतेहैं हे कमलनाभ ! वही पुरुष संसारसे छूट जाते हैं और जो चाहना करते हैं, वह मनोरथ भी उनके सिद्ध होजाते हैं और कैसाही चक्रवर्ती क्यों न हो, विना भक्तिके कुछ नहीं होता ॥ ४ ॥ इसकारण हे देवदेव ! यह लोक इस संसारमें तुम्हारे चरणारविन्दकी सेवाके प्रभावको देख, हे समर्थ ! कितनेही कुरु व सृंजय वंशी लोग जोकि कर्मादिकको प्रधान मानकर आपकी भक्तिको उत्तम नहीं समझते, उनका अज्ञान दूर करनेको जो आपका भजन करते हैं और जो नहीं करते उन दोनोंकी स्थिति दिखाओ ॥ ५ ॥ सबके आत्मा, समदर्शी, आत्मसुख, अनुभवरूप ब्रह्म तुम हो, आपके अपना बिराना यह भेद बुद्धि कुछ

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरंति ध्यायंत्यभद्रनशने शुचयो गृणंति ॥ विन्दंति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥ तद्देवदेव भवतश्चरणारविंदसेवाऽनुभावमिह पश्यतु लोक एषः ॥ ये त्वां भजंति न भजंत्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृंजयानाम् ॥ ५ ॥ न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ॥ संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितं राजन्भवता शत्रुकर्शिना ॥ कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥ ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ॥ सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे ॥ संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥

नहीं है, जैसे कल्पवृक्षका जो सेवन करै उसीको फल प्राप्त हो, उसी प्रकार जो तुम्हारा सेवन करै तुम उसी पर प्रसन्न होते हो, जो जैसी सेवा करै, उसे वैसाही फल देतेहो, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजा युधिष्ठिर ! हे शत्रुनाशक ! तुमने यह भला निश्चय किया है, क्योंकि इस यज्ञके करनेसे सब लोकोमें तुम्हारी मंगलरूप कीर्त्ति फैलेगी ॥ ७ ॥ हे समर्थ राजा युधिष्ठिर ! यह संपूर्ण यज्ञोंका राजा राजसूययज्ञ तुमने करना विचारा है, सो ऋषीश्वर और पितृ तथा देवता और सुहृद तथा हम और समस्त प्राणियोको प्यारा है ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण राजाओंको जीत

और संपूर्ण पृथ्वीको वशमें कर और सब सामग्रियें इकट्ठी करके तुम इस यज्ञको करो ॥ ९ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! यह तुम्हारे भाई लोकोंका पालन करनेवाले देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए और दूसरेमेंभी जिनको अजितेन्द्रिय पुरुष कभी वशमें नहीं करसक्ते, तुम्हारे जितेन्द्रियपनसे तुम्हारे वशमें हूं इसलिय शीघ्रही यज्ञ पूर्ण होगा ॥ १० ॥ मेरे आश्रयवाले पुरुषोंको लोकमें तेज, वैभव, सेनासे कोई देवता भी पराभव नहीं करसक्ते हैं तो राजा क्या करसक्ते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन प्रसन्नतासे प्रफुल्लितवदन राजा युधिष्ठिरने भगवान्के तेजसे बढे हुए अपने भ्राताओंको दिशाओंके जीतनेको भेजा ॥ १२ ॥ सृंजय देशके राजाओंको संग करके दक्षिणदेशके

एते ते भ्रातरो राजँल्लोकपालांशसंभवाः ॥ जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥ १० ॥ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ॥ विभूतिभिर्वाऽभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखांबुजः ॥ भ्रातॄन्दिग्विजयेऽयुंक्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥ सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सह सृंजयैः ॥ दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ॥ प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥ ॥ १३ ॥ ते विजित्य नृपान्वीरा आजह्रुर्दिग्भ्य ओजसा ॥ अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितं जरासंधं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ॥ आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥ भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिंगधरास्त्रयः ॥ जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥

राजाओंको जीतनेके लिये सहदेवको, उसी प्रकार पश्चिम दिशाकी तरफ मत्स्य देशके राजोंसहित नकुलको, केकय राजोंके साथ उदीची तरफ अर्जुनको और पूर्वकी ओर मद्रदेशके राजोंसहित भीमको आज्ञा दी, हे परीक्षित ! सहदेव, अर्जुन, नकुल और भीमसेनने संपूर्ण दिशाओंके राजाओंको बलपूर्वक जीत यज्ञ करनेकी इच्छावाले अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको बहुत द्रव्य लाकर दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ सब दिशाओंके राजा तो जीतगये परन्तु पूर्व दिशाका राजा जरासन्ध जीतनेमें नहीं आया, इस बातको श्रवण कर अतिचिन्ताको प्राप्तहुए राजा युधिष्ठिरसे जो उपाय उद्धवजीने श्रीकृष्णचन्द्रको बताया था, सो उपाय श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ हे राजन ! तब तो भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र

तीनों ब्राह्मणका रूप धारण कर जहाँ बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध गिरिव्रजनाम किलेमें रहता था वहाँ गये ॥ १६ ॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये इन क्षत्रियोंने भिक्षुकोके आनेके समय ब्रह्मभक्त गृहस्थ घरमें स्थित राजा जरासन्धसे भिक्षाकी प्रार्थना की ॥१७॥ कि, राजा जरासन्ध ! हम बहुत दूरसे अतिथि आये हैं, सो तुम जानो और जिस वस्तुकी हम चाहना करते हैं, वह वस्तु हमको दो, इसमें तुम्हारा कल्याण होगा * ॥ १८ ॥ सहनशीलपुरुष क्या नहीं सह सकते हैं ? और असाधु लोग कौनसा अकृत्य नहीं कर सक्ते ? और दाता लोगोंको कौनसी वस्तु अदेय है ? और समदर्शियोंका कौन शत्रु है ? इसलिये नाम लेनेसे क्या प्रयोजन जो माँगैं सो दो ॥ १९ ॥ साधुओंसे गानेयोग्य नित्य यशको जो पुरुष

ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ॥ ब्रह्मण्यं समयाचेरन्राजन्या ब्रह्मलिंगिनः ॥ १७ ॥ राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ॥ तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥ १८ ॥ किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ॥ किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ॥ नाऽऽचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥ २० ॥ हरिश्चंद्रो रंतिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ॥ व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ॥ राजन्यबंधून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिंतयत् ॥ २२ ॥ राजन्यबंधवो ह्येते ब्रह्मलिंगानि बिभ्रति ॥ ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥२३॥

अनित्य देहमे आप समर्थ होकर नहीं करे, वह पुरुष निन्दा और शोच करनेयोग्य है ॥ २० ॥ राजा हरिश्चन्द्र तथा रंतिदेव और मुद्गल ऋषि, राजा शिबि, तथा बलि, वधिक और कपोत पक्षी और ऐसे बहुत महात्मा वा अनित्य देहसे ध्रुव यशको प्राप्त हुये ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जरासन्ध कर्कश बोलना और स्वरूप तथा धनुषकी प्रत्यंचाके गट्ठेके चिह्नवाले पहुँचोंको देखकर "यह क्षत्रियोंमें नीच हैं" यह जानकर द्रौपदीके स्वयंवरमें मैंने पहले देखे हैं, यह विचार करने लगा ॥ २२ ॥ यद्यपि यह क्षत्रियोंमें नीच हैं, परन्तु तो भी ब्राह्मणोंका वेष

* शंका–श्रीकृष्णने ब्राह्मणका रूप धारणकर जरासन्धसे कहा कि, हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण होगा, फिर उसी समयमें युद्ध करके कुछ दिन पीछे अमंगलरूप मरणको क्यों प्राप्त हुआ ? जब भगवान्ने अपने मुखसे मंगल होना कहा फिर वह एक महीने भी जीता न रहा, यह कैसा मंगल ?

उत्तर–शूरवीर योद्धा युद्धमें मरनेको अशुभ और अमंगल नहीं समझते, युद्धमें मरणहीको अपना बडा कल्याण मानते है, इसलिये श्रीकृष्णके वाक्यके प्रमाणसे युद्धमें मरणरूप कल्याण जरासन्धको प्राप्तहोगया॥

धारण किया है, इसलिये अदेय अपनी आत्मा भी यदि यह मांगैं तो इनको भिक्षा दूंगा ॥ २३ ॥ विष्णु भगवान्‌ने ब्राह्मणका स्वरूप वामन अव
तार धर दैत्यराज बलिको ऐश्वर्यभ्रष्ट किया, परन्तु उसकी निर्मल कीर्त्ति पृथ्वीपर अबतक श्रवणगोचर होती है ॥ २४ ॥ देवराज इन्द्रकी शोभा
हरनेके लिये ब्राह्मणका रूप धरके आयेहुये विष्णु भगवान्‌को यद्यपि जानता भी था कि, मेरे छलनेके लिये आये हैं और शुक्राचार्यने मने भी
किया, परन्तु तोभी दैत्योंके राजा बलिने वामनजीको पृथ्वीका दान दिया ॥ २५ ॥ एक दिन तो अवश्यही यह देह पतित होगा, फिर जीवितही
क्षत्रियके देहसे ब्राह्मणके लिये निर्मलयशको न करै तो इस देहसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥ २६ ॥ इसप्रकार निश्चय करके उदारबुद्धि जरासन्ध
श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहनेलगा कि, हे ब्राह्मणो ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो तब श्रीकृष्णचन्द्र फिर पक्की करते हैं, कि हे राजन् !

बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्वितता दिक्ष्वऽकल्मषा ॥ ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियं जिहीर्षतें
द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ॥ जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवताऽब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः
क्षत्रबंधुना ॥ देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥ इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ॥ हे विप्रा व्रियतां
कामो ददाम्यात्मशिरोपि वः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धं नो देहि राजेंद्र द्वंद्वशो यदि मन्यसे ॥ युद्धार्थिनो वयं
प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः ॥२८॥ असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् ॥ अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि
ते रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः ॥ आह चामर्षितो मंदा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥ ३० ॥

हम जो मांगेंगे सो दोगे ? तब जरासन्ध बोला कि, वारंवार क्या कहते हो यदि आपको मेरे शिरकी भी आवश्यकता होगी, तो वह भी काटकर
समर्पण करूंगा ॥२७॥ तब तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजाओंके इन्द्र राजन् जरासंध ! यदि तुम्हारे मनमें आवै तो द्वन्द्वयुद्ध हमको
दो और युद्धके लियेही हम क्षत्रिय तुम्हारे पास आये हैं, अन्नके लेनेवाले हम ब्राह्मण नहीं हैं ॥ २८ ॥ तब जरासन्धने पूछा तुम कौन हो ? यह सुन
श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, वृकनामा अग्नि जिसके उदरमें ऐसा यह भीमसेन है, इसका भाई यह अर्जुन है और इनके मामाका पुत्र तेरा पहला वैरी
मैं श्रीकृष्ण हूं, सो मुझे तो तुम भलीभाँति जानतेहोंगे ॥ २९ ॥ इसप्रकार सुनकर मगधदेशका राजा जरासन्ध बहुत हँसा इसके उपरान्त क्रोधमें

भरकर हे मूर्ख ! मैं तुमको युद्ध दूँगा, इसप्रकार कहनेलगा ॥ ३० ॥ अरे डरपोक कृष्ण ! व्याकुलचित्त तेरे संग मैं युद्ध नहीं करूंगा, क्योंकि मेरे डरसे तो तू प्रथम ही मथुरापुरीको त्याग समुद्रमें जाय वसा है ॥ ३१ ॥ अर्जुन मुझसे युद्धमें न्यून है और न मेरे समान बलवान् है, इसलिये अर्जुन योद्धा नहीं है, हां भीमसेन कुछेक मेरे समान बलवान् है, इसके संग युद्ध करूंगा ॥ ३२ ॥ इतनी बात कह जरासन्ध भीमसेनको बड़ी गदा दे और आप दूसरी गदा लेकर पुरसे बाहर निकला ॥३३॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित ! बडा मदवाला भीमसेन और जरासन्ध परस्पर मिलकर रण भूमिमें वज्रके समान गदाका प्रहार करनेलगे ॥ ३४ ॥ रंगभूमिमें प्राप्तहुए नटोंके समान बांयें दांयें विचित्र मंडलमें फिरते इन दोनोंका युद्ध अत्यन्त

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ॥ मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ ३१ ॥ अयं तु वयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ॥ अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ॥ द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥ ३३ ॥ ततः समे खले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ ॥ जघ्नतुर्वज्रक ल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥ मंडलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ॥ चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रंगिणोः ॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ॥ गदयोः क्षिप्तयो राजन्दंतयोरिव दंतिनोः ॥ ३६ ॥ ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योऽन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् ॥ चूर्णी बभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे संयुध्यतोर्द्वि रदयोरिव दीप्तमन्य्वोः ॥ ३७ ॥ इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम् ॥ शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥

शोभायमान लगनेलगा ॥ ३५ ॥ हे महाराज परीक्षित ! दांतवाले हाथियोंका जैसा शब्द होता है उसीप्रकार इनदोनों वीरोंके गदा चलानेका वज्रजैसे पिसे ऐसेही शब्द होनेलगा ॥ ३६ ॥ युद्ध करनेसे बढा है क्रोध जिनका ऐसे हाथियोंकी लडाईमें आकडी जैसे चूर्ण होजाती है, उसी प्रकार भुजाओंके वेगसे आपसमें बडा क्रोधकर लड़नेवाले हाथियोंके शरीरपर पछाड़कर जैसे आककी गुदिया टूट जातीहैं, उसीप्रकार बाँहोंके वेगसे चलायमान गदा, कंधा, कमर, पॉव, हाथ, जंघा इनसे लगकर चूर्ण होगई ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब दोनों वीरोंकी गदा टूटगई, तब

क्रोधी मनुष्योंमें वीर भीमसेन और जरासन्ध लोहेके समान स्पर्शवाले घूंसोंकी मार शरीरमें मारनेलगे, हाथियोंके समान आपसमें मारते जरासन्ध व भीमसेनके प्रहारसे उठा शब्द जैसे विना बादल वज्रपातका शब्द होताहै, उसीप्रकार कठोर होनेलगा ॥ ३८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! नहीं घटा है बल जिनका और बराबर है दॉव, पेंच, बल, प्रभाव जिनका इसी प्रकार घूंसोंकी मारसे भीमसेन और जरासंधका बराबर युद्ध होनेलगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार दिनमें तो युद्ध करे और रातको मित्रके समान एक स्थानपर रहें ऐसे जरासन्ध और भीमसेन दोनों वीरोंको युद्ध करते सत्ताईस दिन बीत गये ॥ ४० ॥ हे राजा परीक्षित् ! एक समय मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रसे भीमसेनने कहा कि, हे माधव ! युद्धमें जरासन्धको मैं नहीं जीत सक्ता ॥ ४१ ॥ क्योंकि जरासन्धका दो भाग होकर जन्म हुआ है और उन खण्डोंको जरा नाम राक्षसीने जोड़ दिया है,

तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ॥ निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ॥ दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥ एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ॥ न शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधि माधव ॥ ४१ ॥ शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितं च जराकृतम् ॥ पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिंतयद्धरिः ॥ ४२ ॥ संचिंत्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ॥ दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४३ ॥ तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतांवरः ॥ गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४४ ॥ एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ॥ गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥ ४५ ॥

इस कारण यह दो खण्ड होनेसेही मरेगा, इस बातको जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने भीमसेनको अपने तेजसे बढाया और जरासन्धके चीरनेका विचार किया ॥ ४२ ॥ सफलज्ञान श्रीकृष्णचन्द्र वैरी जरासन्धके मारनेका चिंतवन कर तिनुका चीरकर भीमसेनको सैनसे जताया कि, जैसे मैंने तिनुका चीरा उसी प्रकार तू इसको चीरडाल ॥ ४३ ॥ मारनेवालोंमें श्रेष्ठ, महाबलवान भीमसेनने श्रीकृष्णचन्द्रके संकेतको जान वैरी जरासन्धका पॉव पकड़कर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! जैसे बड़ा हाथी वृक्षकी शाखाको पकड़कर चीरड़ालता है, उसी प्रकार अपने पाँवसे उसके एक पॉवको दाब और दूसरे पाँवको भुजाओंसे पकड़ गुदाके बीचसे चीरडाला ॥ ४५ ॥

एक एक पांव, जंघा, अंडकोश, कमर, पीठ, स्तन, कन्धा, एक एक भ्रुकुटी और कान ऐसे दोखण्ड किये सब प्रजाने देखा ॥४६॥ मगधदेशका राजा जरासन्ध जिस समय मारागया, उस समय महा हाहाकार शब्द होनेलगा, इसके पीछे अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र भीमसेनको आलिंगन करके पूजा करनेलगे ॥ ४७॥ अप्रमेयस्वरूप, समर्थ, सब प्राणियोके पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधदेशका राज्यतिलक दिया इसके उपरान्त जरासन्धने जो वीसहजार आठसौ राजाओंको बंदी करलिया था उन्हें भी बंदीखानेसे छुडादिया ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां जरासन्धवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ दोहा--तेहत्तर हरि बंदिसे, सब

एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ॥ एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे सकले ददृशुः प्रजाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ॥ पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥ ४७ ॥ सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ॥ अभ्यषिंचदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ॥ मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे जरासंधवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलाया युधि निर्जितः ॥ ते निर्गता गिरिद्रोण्या मलिना मलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ॥ ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्सांकं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशंखरथांगैरुपलक्षितम् ॥ किरीटहारकटककटिसूत्रांगदांचितम् ॥ ४ ॥

नृप दिये छुटाय। भोग्य योग्य बहु वस्तु दै, दिये घरन पहुँचाय ॥ ७३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि; हे राजा परीक्षित! मलिनरूप, क्षुधासे कृश सूखे मुख, ऐसे वीसहजार आठसौ राजा जो गिरिद्रोणी नाम दुर्गमें कैद थे उन्हें लीलापूर्वकही छुडादिया, तब उन सब राजाओंने बन्दीखानेसे बाहर निकलकर मेघके समान श्यामरूप, पीले वस्त्र धारण कियेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ अब जैसे स्वरूपसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया, सो वर्णन करतेहैं, तुम श्रवण करो। हृदयमें शोभायमान भृगुलताका चिह्न, चार भुजा और कमलके गर्भके समान अरुण नेत्र सुन्दर प्रसन्न मुख और प्रकाशमान मकराकृत कुण्डल धारण किये, कमल हाथमें लिये विराजमान, शंख, चक्र, गदा धारण करे और किरीट, हार, कड़ा,

करधनी व बाजूबन्द पहरे ॥ ३ ॥ ४ ॥ प्रकाशमान सुंदर मणिग्रीवा तथा गलेसे पांवतक वनमालासे शोभायमान इस प्रकार रूपको देखकर राजाओमें लूटसी पडगई और नेत्रोंको ऐसे चलानेलगे, मानो रूपको पीजायँगे ॥ ५ ॥ जीभ ऐसी चलावैं मानो चाट जाँयगे, भुजा ऐसी चलावैं मानो स्वरूपको आलिंगन करलेंगे, इस प्रकार पाप दूर होनेसे वह राजा मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम करने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इन राजा लोगोंके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण बन्दीखानेके सब क्लेश मिटगये, तब यह सब राजा हाथ जोड़ हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर वाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ ७ ॥ राजा लोग कहनेलगे कि, हे देवदेव ! हे शरणागतका कष्ट हरनेवाले ! अवि

भ्राजद्वारमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ ५॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां रंभंत इव बाहुभिः ॥ प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥ कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ॥ प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्रांजलयो नृपाः ॥ ७ ॥ राजान ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ॥ प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नूनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ॥ अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥ राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विंदते नृपः ॥ त्वन्मायामोहितोनित्या मन्यते संपदोऽचलाः ॥ १० ॥ मृगतृष्णां यथा बाला मन्यंत उदकाशयम् ॥ एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥ ११ ॥ वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयाऽस्या इतरेतरस्पृधः ॥ घ्नंतः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाऽविगणय्य दुर्मदाः ॥ १२ ॥

नाशी ! हे कृष्ण ! हम घोर संसारसे दुःखी हुए और तुम्हारी शरण आये हमारी रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हम लोग जरासन्धको दोष नही लगाते, क्योकि हे प्रभो ! राजाओका जो राज्य भ्रष्ट होवे, यह आपका अनुग्रह समझना चाहिये, राज्यसंबन्धी ऐश्वर्यसे मदमत्त राजा आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य पदार्थोंको स्थिर मानते हैं, और उसीसे कल्याणको प्राप्त नहीं होते ॥ ९ ॥ १० ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सूर्यकी किरणोंसे चमकते हुए वालूको जलका सरोवर मानतेहैं, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष नाना सृष्टि असद्रूपी जो माया है, उसको सत्य मानतेहैं ॥ ११ ॥ हे समर्थ ! हम लक्ष्मीके मदसे अन्धे हो इस पृथ्वीके जीतनेकी इच्छासे परस्पर द्वेष करते और मृत्युके समान शिरपर खड़े कालरूप आपको नहीं

गिनते थे और मदसे उन्मत्त हो, निर्दयीपनसे अपनी प्रजाको महाकष्ट देते थे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! गंभीर वेग और बड़े पराक्रमशाली तुम्हारी कालमूर्तिने हमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट करदिया, परन्तु अब तुम्हारी कृपासे गर्वरहित होकर आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं * ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त नित्य आयु जिमकी क्षीण हो और एक न एक रोग जिममें उत्पन्न हो, ऐसे देहसे मृगतृष्णारूप मिथ्या राज्यकी हम अच्छा नहीं करते, केवल राज्यकी इच्छा नहीं करते इतनाही नहीं, वरन् परलोकमें क्रियाके फलरूप कर्णप्रिय स्वर्गादिक भोग भी नहीं चाहते ॥ १४ ॥ और हे भगवन् !

त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरंतवीर्येण विचालिताः श्रिया ॥ कालेन तन्वा भवतोऽनुकंपया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ॥ १३ ॥ अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा ॥ उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥ १४ ॥ तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ॥ स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥ १५ ॥ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ॥ प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमोनमः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तूयमानो भगवान्राजभिर्मुक्तबंधनैः ॥ तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७ ॥

इस संमारमें भूले हम राजा लोग किसी योनिमें भी तुम्हारे चरणारविन्दोंको न भूलें ऐसा उपाय बताओ ॥ १५ ॥ भक्तोंके क्लेशको दूर करनेवाले, शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक हरि परमात्मा और अपने भक्तोंका क्लेश काटनेवाले गोविन्द आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब जरासंधके बंदीखानेसे छूटे राजाओने इसप्रकार स्तुति करी तब शरणके योग्य करुणावान् भगवान् श्रीकृष्ण

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धका वध करके बीससहस्र २०००० राजाओंको कारागारसे छुटाया तब तो सब राजा भगवान्को हे कृष्ण ! कहिकर क्यों पुकारे ? जैसा कोई मनुष्य अपने बराबर वालेको पुकारते हैं इस प्रकार क्यों पुकारा ? यह बडा अयोग्य वचन कहा । राजाओंको ऐसा वचन कहना नहीं चाहिये था, उनको इसप्रकार कहना चाहिये था कि, हे महाराज ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे दीनपालक ! हे दीनदयालु ! हे करुणासागर ! हे भक्तवत्सल ! ऐसे वाक्योंसे और अनेक प्रकारका दुलार करके श्रीकृष्णको पुकारना चाहिये था ?

उत्तर—राजालोग प्रथम तो अपने २ राज्यसिंहासनपर बैठे थे तब तो अभिमानसे सत्सग किया नहीं इस कारण मूर्ख तथा गँवार होगये, जब जरासन्ध पकड़कर लाया और बेड़ी पहराकर बन्दीगृहमें डालदिया तब दुःखी होकर सुधि बुधि भूलगये, दोनों भाँतिसे उनको बोलनेकी चतुराई न आई, वह बिना सींगके पशु हैं इसीलिये उन राजाओंके मुखसे जो वचन निकले सोई अच्छे हैं क्योंकि दुःखी और अभिमानी जो न कहै सो थोडा इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ एक ब्राह्मणको किसी प्रेमीने बडी शुश्रूषासे न्योता और अनेक प्रकारके भोजन उसको जिमाये तब उसका पेट बहुत भरगया तब वह बोला बडे सत्यानाशीके यहां भोजन किया, इससे मूर्खोंके दुर्वाक्योंपर ध्यान न करै ॥

चन्द्रने मनोहर वाणीसे राजाओंसे कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजाओ ! जैसे तुमने चाहना करी उसी प्रकार सबका ईश्वर और आत्मा जो मैं हूं, सो मुझमें तुम्हारी आजसे दृढ़ भक्ति हुई ॥१८॥ हे राजालोगो ! सत्यवादी तुमने मेरा भजन करना, यह भला सत्य संकल्प निश्चय कियाहै, क्योंकि मनुष्य धन और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो इच्छानुसार विचरते देखे जाते हैं॥१९॥कृतवीर्यका पुत्र चक्रवर्ती राजा सहस्रबाहु एकसमय जमदग्नि ऋषिकी गौ हरके ले आया तब उसका परशुरामजीने पुत्रोंसहित संहार किया और राजा नहुष मदोन्मत्त होकर इन्द्राणीके पास जानेके लिये ब्राह्मणोंको पालकीमें जोतकर चला, तब ब्राह्मणोंने उसे ऐश्वर्यभ्रष्ट करके सर्प करदिया और राजा वेनने मदोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंका तिरस्कार किया, तब ब्राह्मणोंने अत्यन्त क्रोधित होकर हुंकार शब्दसे उसका प्राणसंहार किया और राक्षसराज रावणने सीताकी आकांक्षा करी, तब महात्मा श्रीरा

श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ॥ सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥१८॥ दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवंत ऋतभाषिणः ॥ श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥ १९ ॥ हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ॥ श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥ भवंत एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमंतवत् ॥ मां यजंतोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥ २१ ॥ संतन्वंतः प्रजातंतून्सुखं दुःखं भवाभवौ ॥ प्राप्तंप्राप्तं च सेवंतो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥ २२ ॥ उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यङ्मामंते ब्रह्म यास्यथ ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान्भुवनेश्वरः ॥ तेषां न्ययुंक्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥

मचन्द्रजीने उसका वध किया और दैत्यराज नरकासुरने जब अदितिके कुण्डल हरलिये तब उसे मैंनेही मारा और कितनेही देवता और राजा धनके मदसे स्थानभ्रष्ट होगये ॥ २० ॥ और तुम समस्त उत्पन्न देहादिकसे नाश होउगे, यह जान सावधान हो यज्ञ करके मेरा पूजन और प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ और पुत्रादिकोंको उत्पन्न करो, जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख जो प्राप्त होय उसका सेवन करो और मुझमें चित्त लगाकर विचरो ॥ २२ ॥ आत्मामें रमण करते व्रतधारण किये देह और घरोंमें उदासीन होकर भलेप्रकार मुझमें मन लगाओगे तो अंतमें परब्रह्मरूप मुझे प्राप्त होगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! त्रिलोकीके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसप्रकार राजाओंको आज्ञा कर और उनको

उबटन स्नान और क्षौर इत्यादि कर्म करानेके लिये स्त्री पुरुषोंको भेजा ॥ २४ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! राजाओंके स्नान करचुकने पर जरासन्धके पुत्र सहदेवसे राजाओंके योग्य वस्त्र आभूषण माला और चंदनादिसे उनकी पूजा करानेलगे ॥ २५ ॥ सुन्दर स्नान करे वस्त्र आभूषणोंसे शोभित और अनेक प्रकारके भोगोंसे युक्त राजाओंको श्रेष्ठ अन्न भोजन कराय राजाओंके योग्य ताम्बूलादिक देनेलगे ॥ २६ ॥ मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे पूजित और प्रकाशमान कुण्डलोंको पहरे बन्दीखानेके क्लेशसे छुटाये राजा वर्षाऋतुके पीछे आकाशमें तारागणोंके समान शोभायमान लगनेलगे ॥ २७ ॥ मणि और सुवर्णके गहनोंसे शोभायमान राजाओंको सुन्दर घोडे जुते रथोंमें चढ़ाय और मनोहर

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ॥ नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥२५॥ भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलंकृतान् ॥ भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्तांबूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥ ते पूजिता मुकुंदेन राजानो मृष्टकुंडलाः ॥ विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडंते यथा ग्रहाः ॥ २७ ॥ रथान्सदश्वानारोप्य मणिकांचनभूषितान् ॥ प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्यापयत् ॥ २८ ॥ त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना ॥ ययुस्तमेव ध्यायंतः कृतानि च जगत्पतेः ॥ २९ ॥ जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ॥ यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतंद्रिताः ॥ ३० ॥ जरासंधं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ॥ पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥ ३१ ॥

वचनोंसे प्रसन्न कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें अपने देशोंको भेजदिया ॥ २८ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार जगत्पति महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके छुड़ायेहुए कष्टमुक्त राजालोग भगवान्का और उनके चरित्रोंका ध्यान करते अपने अपने नगरको चलेगये ॥ २९ ॥ वह समस्त राजा जैसे महापुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने छुड़ाए थे और जैसे पूजा कराई थी, उसी प्रकार वह सब वृत्तान्त अपनी प्रजाके सन्मुख वर्णन किया और जिसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने शिक्षा दी थी, उसी प्रकार आलस्य छोडकर करनेलगे ॥ ३० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार भीमसेनके हाथसे जरासंधको मरवाय और सहदेवसे अपना पूजन कराय भीम और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ आये ॥ ३१ ॥

दुष्ट हृदय शत्रुओंको दुःख देनेवाले और अपने सुहृदोंको आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण, भीम, अर्जुन यह सब वैरी जरासन्धको मार इन्द्रप्रस्थमें आनकर शंखध्वनि करनेलगे ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! शंखका शब्द सुन प्रसन्नमन इन्द्रप्रस्थनिवासी "जरासन्धकी मृत्यु हुई" यह जानगये और धर्मराज राजा युधिष्ठिरके मनोरथ पूर्ण होगये ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त भीम अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रने आय राजा युधिष्ठिरको प्रणाम कर आपने जो कुछ किया सो सब कहा ॥ ३४ ॥ धर्मराजके पुत्र राजा युधिष्ठिर ब्रह्मा महादेवके वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो कार्य किया उसे सुन, नेत्रोंसे आनन्दके ऑसुओंकी धार बहाते, प्रेमसे विह्वल हो कुछ न बोले ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे

गत्वा ते खांडवप्रस्थं शंखान्दध्मुर्जितारयः ॥ हर्षयंतः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इंद्रप्रस्थनिवासिनः ॥ मेनिरे मागधं शांतं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥ अभिवंद्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ॥ सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकंपितम् ॥ आनंदाश्रुकलां मुंचन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधोत्तरार्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं युधिष्ठिरो राजा जरासंधवधं विभोः ॥ कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ॥ वहंति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ स भवानरविंदाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ॥ धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यंतविडंबनम् ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ दोहा—चौहत्तरमें राजसुय, कियो युधिष्ठिर यज्ञ । तबही हनो शिशुपाल नृप, श्रीकृष्ण सर्वज्ञ ॥७४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जरासंधका वध और श्रीकृष्णका प्रभाव सुन अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि ॥ १ ॥ जो पुरुष त्रिलोकीके गुरु हैं सब लोकोंके बड़े ईश्वर हैं, वह भी दुर्लभ मानकर तुम्हारी आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे व्यापक कमलनयन ! आप हम दुःखी और सामर्थ्यपनका अभिमान रखनेवालोंकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हो, यह

विडम्बनामात्र है, वास्तवमें आपको यह बात संभव नहीं हो सकी ॥ ३ ॥ एक अद्वितीय अर्थात् कोई जिनकी बराबर नहीं और कोई जिनसे बड़ा नहीं ऐसे परमात्मा तुम हो, आपका तेज परोपकारके लिये कर्मोंसे न्यून भी नहीं होता, जैसे सूर्यका उदय अस्तमें तेज बढ़ताही है, घटता नहीं ॥ ४ ॥ यदि कहो कि, मैं परमेश्वर हूं सो सबकी आज्ञा माननी, यह मंदकर्म करना योग्य नहीं है, सो कहते हैं, कि, हे मधुवंशोत्पन्न ! श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अजित ! जैसे अज्ञानी पुरुषोंके देहमें अहंकार और देहके संगमें समता रहती है, उसी प्रकार तुम्हारे भक्तोंके " तू और तेरा मैं और मेरा" यह बुद्धि नहीं होती है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यह वचन कहे

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥ न वै तेऽजितभक्तानां ममाहमिति माधव ॥ त्वं तवेति च नाना धीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः ॥ कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमंतुर्गौतमोऽसितः ॥ वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥७॥ विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ॥ पैलः पराशरो गर्गो वैशंपायन एव च ॥ ८ ॥ अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ॥ वीतिहोत्रो मधुच्छंदा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ॥ धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ॥ तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥

और उनकी सम्मति ले, यज्ञ करनेके योग्य वसंतादिकालमें वेदके पढ़नेवाले योग्य ब्राह्मणोंको होता, उद्गाता, अध्वर्यु, इत्यादिकोंमें वरण किया ॥ ६ ॥ द्वैपायन, भरद्वाज, सुमंतु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, ॥ ७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनी, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशंपायन ॥ ८ ॥ अथर्व, काश्यप, धौम्य, परशुराम, भार्गव, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुछन्द, वीरसेन, अकृतव्रण ॥ ९ ॥ इसी प्रकार बुलायेहुए द्रोणाचार्य, भीष्मजी तथा कृपाचार्यादि ऋषि आये तब पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र और बडे बुद्धिमान् विदुरजी भी आनकर सुशोभित हुए ॥ १० ॥ हे राजन् ! और भी यज्ञ देखनेके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व सब राजा और उनके प्रधान दीवान आये ॥ ११ ॥

इसके उपरान्त ब्राह्मण लोग यज्ञ करनेकी भूमिमें सुवर्णका हल चलाय भूमि शोधनकर राजा युधिष्ठिरको यज्ञदीक्षा देनेलगे ॥ १२ ॥ जैसे पहले वरुणके यज्ञमें सुवर्णकी सामग्री और सुवर्णके पात्र थे उसी प्रकार इस यज्ञमें भी थे और ब्रह्मा, महादेव, तथा इन्द्रादिक देवताओंको संग लेकर लोकपाल भी आये ॥ १३ ॥ गणोंसहित सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बड़े बडे सर्प, मुनीश्वर, यक्ष, राक्षस, खग, किन्नर, चारण इनके समूहके समूह आये ॥ १४ ॥ और आयेहुए राजाओंकी सब स्त्रियें, भी पांडुपुत्र राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें आईं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! इस बातको कोई आश्चर्य न करै क्योंकि हरिभक्तकी सब वार्त्ता सिद्ध हो सकती है इसीलिये इन्होंने युधिष्ठिरके यज्ञमें विस्मय न किया, जैसे देवताओंने वरुणको

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलांगलैः ॥ कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयांचक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥ हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ॥ इंद्रादयो लोकपाला विरिंचिभवसंयुताः ॥ १३ ॥ सगणाः सिद्धगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥ १४ ॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ॥ राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पांडुसुतस्य वै ॥ १५ ॥ मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ॥ १६ ॥ राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः ॥ सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् ॥ अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥ सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशंतः सभासदः ॥ नाध्यगच्छन्नैकांत्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥ १८ ॥

यज्ञ कराया था उसी प्रकार देवताओंके समान कान्तिवाले ऋत्विज राजसूययज्ञ करके विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरसे यजन करानेलगे ॥ १६ ॥ अतिशय करके सावधान पृथ्वीका पालन करनेवाले राजा युधिष्ठिरने जिस दिन सोमवल्ली कूटीगई, उस दिन यज्ञकरानेवालोंका तथा बड़भागी जो सभामें मुख्य थे उनका पूजन किया ॥ १७ ॥ सभाके बैठनेवालोंमें प्रथम किसकी पूजा करनी चाहिये ॥ यह विचार करते करते एककी अपेक्षा एक बडा है, इसकारण जब किसीका निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिरके भाई सहदेवने कहा * ॥ १८ ॥

* शंका—पृथ्वीपर युधिष्ठिरनेही कुछ पहिले यज्ञ नहीं किया यज्ञ तो सतयुगसे अनेक राजा करते चले आये हैं फिर युधिष्ठिरकी यज्ञमें पहिले पूजन करनेके लिये देवताका विचार क्यों किया ? कुछ ब्राह्मण भी प्रथम ही यज्ञ करनेके लिये नहीं आये थे, पहिले सतयुगमें ब्राह्मण सहस्रों यज्ञ कराचुके थे, फिर धर्मराजके यज्ञमें इतना विचार क्यों किया ? जो नई बात हो उसका विचार करना चाहिये और सैंकडों वर्षसे जिस बातकी रीति चली आती हो, उस बातमें क्या सन्देह ?

भक्तोंका पालनकरनेवाले अखण्डरूप समस्त देवता देशकाल धनादिकरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रही इस यज्ञमें पूजा करनेके योग्य हैं ॥१९॥ यह सब विश्व कृष्णकाही रूप है और यज्ञादिक भी कृष्णरूपही हैं और अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान, उपासनादि भी सब कृष्णपरायण हैं ॥ २० ॥ हे सभाके बैठनेवालो ! अजन्मा एक अद्वितीय यह कृष्ण हैं सो अपने स्वरूप विश्वको अपने आत्माहीसे दूसरेकी सहायता विना उत्पन्न पालन और नाश करतेहैं ॥ २१ ॥ सब जनोंके अनुग्रहसे इस संसारमें अनेक प्रकारके तप योगादिक कर्म करके धर्मादिकरूप कल्याणको करतेहैं और अनेक प्रकारके

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतां पतिः ॥ एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥ यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ॥ अग्निराहुतयो मंत्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥२०॥ एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् ॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हंत्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीह कर्माणि जनयन्यदवेक्षया ॥ ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ॥ एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥ सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ॥ देयं शांताय पूर्णाय दत्तस्यानंत्यमिच्छता ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ॥ तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधुसाध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥

सब कर्मोंके फल भी सब कृष्णके आधीनही हैं ॥ २२ ॥ इसलिये सबसे बडे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकीही पहले पूजा करनी योग्य है और इनकी पूजा करनेसे सब प्राणियोंकी पूजा होजायगी ॥ २३ ॥ और जो कोई पूजाके योग्य होगा उसकी भी पूजा होजायगी, इसकारण जो पुरुष पूजाके अनन्तफलकी चाहना करै वह पुरुष सब प्राणियोंके आत्मा, भेदभावरहित और शान्त परिपूर्ण भगवान् वासुदेवकी पूजा करै ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको जाननेवाला सहदेव चुप होगया और उस समय सब श्रेष्ठपुरुष सहदेवका वचन सुनकर "सत्य कहा सत्य

उत्तर–सब ब्राह्मण भगवान्को भूल नहीं गये थे सब जानते थे कि, सब कर्मोंमें और यज्ञमें भगवान्का पूजन करनाचाहिये ऐसा सब जानते थे, परन्तु दैवयोगसे शिशुपालने कालवश मुनियोंको और यज्ञकी सभामें बैठनेवाले प्राणियोंको मोहित करलिया काल करके सब मुनिजन मोहित होगये और सब मनुष्योंने बालक सरीखा काम किया क्योंकि जो यज्ञमें पहिले पूजन करनेयोग्य कौन है ऐसा विवाद न होता तो शिशुपाल श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों करता ? और विना निन्दाकिये भगवान् उसको क्यों मारते ? शिशुपालके काल करके मोहित जो मुनि और सब सभाके बैठनेवाले प्रथम पूजन करनेयोग्यका विचार करनेलगे ॥

कहा" इसप्रकार कहकर बडाई करने लगे ॥ २५ ॥ स्नेहसे विह्वल और प्रसन्न हो राजा युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंके कहे वचन सुन और सभामें बैठे हुए पुरुषोके हृदयका अभिप्राय जान इंद्रियोंको प्रेरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया ॥ २६ ॥ स्त्री, भाई, मंत्री और सब कुटुम्बके पुरुषोंसहित राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंको धोय सब लोकोंके पवित्र करनेवाले चरणारविन्दका धोवन जल अपने मस्तकपर चढ़ाय ॥ २७ ॥ पीले रेशमी वस्त्र और बहुत मोलके आभूषणोंसे भी पूजा कर आँसू भरे नेत्रोंसे राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करनेको समर्थ न हुआ ॥ २८ ॥ इस प्रकार जब राजा युधिष्ठिरने पूजा करी, तब श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर सब जन हाथ जोड नमोनमः और जय २

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ॥ समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥ तत्पादाववनिज्याप: शिरसा लोकपावनीः ॥ सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुंबोऽवहन्मुदा ॥ २७ ॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ॥ अर्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्रांजलयो जनाः ॥ नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥ इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः ॥ उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी सश्रावयन्भगवते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥ ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ॥ वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥ यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम् ॥ सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्संमतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥

शब्दसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके फूलोंकी वर्षा वर्षानेलगे ॥ २९ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा हुई, तब उससमय दमघोषका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंका वर्णन सुन अत्यन्त क्रोधित हो, भुजा उठाय ईर्षाकर निर्भय हो श्रीकृष्णचन्द्रको कठोरवचन सुनाकर यह कहने लगा ॥ ३० ॥ नाशरहित श्लाघ्य सामर्थ्यवान् काल बडा प्रबल है, वास्तवमें यह वेदकी श्रुति सत्य है, क्योंकि कालसेही वृद्ध वृद्ध सभामें बैठानेवालोंकी बुद्धि इस बालक सहदेवके कहनेसे चलायमान होगई ॥ ३१ ॥ हे पात्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सभापतियो ! भला यह कृष्ण पूजाके योग्य है ? कदापि नहीं इसकारण इस बालकका वचन मानना उचित नहीं ॥ ३२ ॥

क्योंकि तप करनेवाले विद्यावान्, व्रती, ज्ञानी, पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ और लोकपालोंसे पूजित ब्रह्मर्षि ॥ ३३ ॥ इस सभामें विराजते हैं, इन सबको त्याग गायोंका चरानेवाला और कुलको दोष लगानेवाला पूजाके योग्य कैसे हो सकताहै ? और यज्ञमें देवताओंके योग्य बलि कौआ कैसे ग्रहण करनेके योग्य ॥ ३४ ॥ न जिसका कोई वर्ण, न आश्रम और न कोई कुल है, संपूर्ण धर्मसे बहिष्कृत, जैसे मनमें आवे वैसेही करै गुणहीन, ऐसा कृष्ण कैसे पूजाके योग्य हो सक्ता है ? ॥ ३५ ॥ राजा ययातिने इसके कुलको शाप दिया और सत्पुरुषोंने जातिबहिष्कृत किया और सर्वदा वृथा मदिरापान करनेवाला इसका कुल है, फिर इस कुलमें आज कृष्ण कैसे पूजाके योग्य होताहै ॥ ३६ ॥

तपोविद्याव्रतधराञ्ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ॥ परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्च पूजितान् ॥ ३३ ॥ सदसस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ॥ यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥ ३४ ॥ वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ॥ वृथा पानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान्हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ॥ समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधते दस्यवः प्रजाः ॥ ३७ ॥ एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमंगलः ॥ नोवाच किंचिद्भगवान्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥ ३८ ॥ भगवन्निंदनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ॥ कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपंतश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥ निंदां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ॥ ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥

ब्रह्मर्षिसेवित देशोंको त्याग ब्रह्मतेजरहित समुद्रके किलेका आश्रय लेकर यादवोंमें चोरके समान बाधा देताहै ॥ ३७ ॥ भूपाल ! नष्टमंगल शिशुपाल और भी अनेक प्रकारके अमंगल वचन कहता रहा, परन्तु जैसे सिंह सियारोंके बोलनेपर ध्यान नहीं देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुछ न बोले ॥ ३८ ॥ सभासद दुस्सह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इसप्रकार निन्दा सुन, कर्ण मूँदि अत्यन्त क्रोधित हो शिशुपालको गाली देनेलगे ॥ ३९ ॥ भगवान्की निन्दा सुन अथवा भगवत् परायण पुरुषोंकी निन्दा सुनकर जो पुरुष उस स्थानसे न उठ जायँ वह पुरुष अपने पुण्यसे भ्रष्ट होकर नरकमें गिरते हैं ॥ ४० ॥

इसके उपरान्त हे परीक्षित ! क्रोधसे पाण्डुके पुत्र और मत्स्यदेश व सृंजय देशके राजा अपने अपने शस्त्रोंको उठाकर शिशुपालके मारनेको उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित ! इसके पीछे घबराहटरहित शिशुपालने श्रीकृष्णचन्द्रके पक्षी राजाओंको मारनेके लिये ढाल और अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली तलवार ग्रहण की ॥ ४२ ॥ यह मेरा पार्षद है और मेरे समान बलवान् है यह सबको मारैगा इससे मैं ही इसको मारूं, यह विचार उसी समय उठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी ओरके राजाओंको निवारण करके सम्मुख आते अपने वैरी शिशुपालका शिर क्षुरेके समान पैनीधारवाले चक्रसे काट लिया ॥ ४३ ॥ उस समय बडा कोलाहल शब्द हुआ और शिशुपालके पिछलगू राजा जीनेकी इच्छा करके

ततः पांडसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ॥ उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥ ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रांतो जगृहे खङ्गचर्मणी ॥ भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान्राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य स्वयं रुषा ॥ शिरः क्षुरांतचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥ ४३ ॥ शब्दः कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् ॥ तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥४४॥ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ॥ पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥ ४५ ॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ॥ ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥ ४६ ॥ ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ॥ सर्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥

भागगये ॥ ४४ ॥ उस समय शिशुपालके देहमेंसे निकलीहुई ज्योति सब प्राणियोंके देखते श्रीकृष्णचन्द्रमें मिलगई, जिस प्रकार आकाशसे गिरे तारे पृथ्वीमें मिलजाते हैं ॥ ४५ ॥ पहले जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप हुये, दूसरे जन्ममें रावण, कुम्भकर्ण हुये, तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दन्तवक्र हुये, इस प्रकार तीन जन्मके चले आये वैरसे तन्मय बुद्धिसे रूपका ध्यान करते करते, उसी रूपको प्राप्त हुये, अर्थात् पार्षद होगये, क्योंकि जैसी जो भावना करता है, वैसाही उसका जन्म होताहै ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिरने यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणोंको और बड़े सभामें बैठनेवालोंको बडी दक्षिणा दी और विधिपूर्वक सबका पूजन करके यज्ञांत स्नान किया ॥ ४७ ॥

योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने राजा युधिष्ठिरका यज्ञ सिद्ध करके और सुहृदोंकी विनयसे कितनेही मास पर्यन्त वहाँ वास किया ॥४८॥ इसके उपरान्त जाने देनेकी इच्छा न करनेवाले राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा माँग सामर्थ्यवान् भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र अपने स्त्री पुत्रोंको संग लेकर द्वारकापुरीमें आये ॥४९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! वैकुण्ठके वास करनेवाले जय, विजय पार्षदोंको सनकादिकका शाप लगा, इसकारण वारम्वार जन्म हुआ, प्रथम यह कथा तुम्हारे आगे विस्तार सहित वर्णन कर चुके हैं ॥ ५० ॥ राजसूययज्ञ कर चुकनेके पीछे स्नानकर राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण और क्षत्रियोंके मध्यमे बैठे इन्द्रके समान सभामें शोभायमान लगने लगे ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरसे सत्कार पाय

साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छंतमपीश्वरः ॥ ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥ ४९ ॥ वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ॥ वैकुंठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥ ५० ॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ॥ ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥ ५१ ॥ राज्ञः सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ॥ कृष्णं क्रतुं च शंसंतः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ॥ यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पांडुसुतस्य ताम् ॥ ५३ ॥ य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥ राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सब देवता और आकाशके विचरनेवाले मनुष्य, प्रमथगण श्रीकृष्णचन्द्र और सभा तथा यज्ञ इनकी प्रशंसा करते आनन्दपूर्वक अपने अपने लोकोंको चलेगये ॥ ५२ ॥ परन्तु कौरवोंके कुलमें कलियुग रूप कुलका नाशक, धर्मद्वेषी दुर्योधन पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिरकी बडी शोभाको देख अपने मनमें बहुत कुढा ॥ ५३ ॥ शिशुपालके वध आदिक जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म वीस हजार आठसौ राजा कैदसे छुटाये और राजा युधिष्ठिरका यज्ञ कराया, इस प्रसंगको जो पुरुष कहैं अथवा सुनैंगे, वह सब पापोंसे छूट जायँगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

दोहा–पिछहत्तर भ्रममें पडो, अवभृथको अस्नान। दुर्योधनको क्षमा विन, भयो मान अपमान ॥ ७५ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञकी बडी शोभा देखकर जो राजा आये थे, वह सब प्रसन्न हुये ॥ १ ॥ और संपूर्ण देवताओंने भी आनन्द पाया, केवल दुर्योधनही आनन्दसे वंचित रहा, यह हमने आपकेही मुखसे सुना, सो दुर्योधनको आनन्द क्यों न हुआ इसका कारण कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ २॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! महात्मा तुम्हारे दादे राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें सब बन्धु बांधव प्रेमवश होकर सबही टहल करते थे ॥ ३॥ किसने कौन काम किया सो कहतेहैं, भीमसेनको रसोईका अधिष्ठाता,

राजोवाच ॥ अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥ सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ॥ इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ॥ बांधवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबंधनाः ॥ ३ ॥ भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ॥ सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥ गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ॥ परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ॥ बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च संतर्दनादयः ॥ ६ ॥ निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ॥ प्रवर्तंते स्म राजेंद्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥

दुर्योधनको खर्च करनेका स्वामी कोशाध्यक्ष किया, क्योंकि यह हमको शत्रु जानकर बहुत द्रव्य उठावेगा, तो इसमें हमारा यश होगा, सहदेवको आये गयेकी पूजा करनेका काम सौंपा और नकुलको अनेक प्रकारकी सामग्रियोंका सम्पादक बनाया ॥ ४ ॥ साधुओंकी सेवा अर्जुन करताथा, और श्रीकृष्णचन्द्र यज्ञमें आनेवालोंके पॉव धोकर पोंछदेते थे, परोसा परोसीमें द्रौपदी लगरही थी उदारमन कर्ण दान देनेकी टहलमें लग रहाथा ॥ ५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! सात्यकी, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुरादिक, भूरिश्रवादि, बाह्लीक राजाके पुत्र और संतर्दन आदि उस बड़े यज्ञमें अनेक प्रकारके कामोंमें लगा दिये, उस समय वह सब महाराज युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये सब प्रवृत्त होगये ॥६॥ ऋत्विक और सभासद तथा

विवेकी सुहृज्जनोंने सुन्दर मनोहर वचन गहने और दक्षिणासे पूजित होकर शिशुपालको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्राप्ति होनेके उपरान्त स्वर्गनदी गंगामें यज्ञकी समाप्तिका स्नान किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ यज्ञकी समाप्तिके उत्सवमें मृदंग, शंख, ढोलक, खंजरी, नगारे, गोमुख, नरसिंहादिक चित्र विचित्र बाजे बजनेलगे ॥ ९ ॥ नाचनेवालीं नाचनेलगीं और आनन्दपूर्वक गवैयोंके झुण्डके झुण्ड गानेलगे, तिनके वीणा वेणु और हथेलीका शब्द स्वर्गतक व्याप्त होरहा था ॥ १० ॥ चित्र विचित्र छत्र, ध्वजा पताका जिनके ऊपर ढकी, ऐसे बड़े बड़े रथ, हाथी और घोड़ोंपर चढ सुवर्णकी माला पहरे सेनाको संग लेकर राजा निकले ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरको आगे किये यदु सृञ्जय, कांबोज कुरु कैकय और कौशल देशके

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सुसुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ॥ चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥ मृदंगशंखपणवधुंधुर्यानकगोमुखाः ॥ वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥ नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ॥ वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेंद्रस्यंदनार्वभिः ॥ स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥ यदुसृंजयकांबोजकुरुकेकयकोसलाः ॥ कंपयंतो भुवं सैन्यैर्जयमानपुरःसराः ॥ १२ ॥ सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ देवर्षिपितृगंधर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ॥ १३ ॥ स्वलंकृता नरा नार्यो गंधस्रग्भूषणांबरैः ॥ विलिंपंत्योऽभिषिंचंत्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥ १४ ॥ तैलगोरसगंधोदहरिद्रासांद्रकुंकुमैः ॥ पुंभिर्लिप्ताः प्रलिंपंत्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥ १५ ॥ गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ॥ ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥ १६ ॥

राजा पृथ्वीको कम्पायमान करते सेना सहित चले ॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज तथा ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करते चले और ऋषि, पितृ, गंधर्व, पुष्पोंकी वर्षा कर करके स्तुति करतेथे ॥ १३ ॥ चन्दन, माला, गहने और वस्त्रोंसे शृंगार करे स्त्री पुरुष अनेक प्रकारके दूध, दही आदि रसोंको लेपन और छिरकाव करतेथे ॥ १४ ॥ तेल और माखन सुगंधिके जल हरदी व केशर इत्यादिकोंको लेपन करते और छिडकते परस्पर विहार करते थे ॥ १५ ॥ इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम विमानोंपर बैठकर देवांगना आई हों उसीप्रकार वीर और रावतोंसे रक्षित हो रनवासकी

रानियें रथ और पालकियोंमें बैठकर निकलीं, वह रानियें मामाके पुत्रोंसे और सखियोंसे भिगोयीहुई लाजभरी मुसकान व प्रफुल्लित मुखसे शोभा यमान होरहीथीं ॥ १६ ॥ भीजनेसे और शरीरमें चिपटनेसे उन स्त्रियोंके अंग, कुच, जंघा और मध्यभाग स्पष्ट दिखाई देतेथे उत्सुकतासे चोटी शिथिल होनेके कारण उससे फूल बिखर रहेथे देवर और सखीजन उन्हें डोलचियोंसे भिगोरहेथे उनकी लीला देखकर मलीनमन कामीजनोंके चित्त अत्यन्त क्षुभित होतेथे ॥ १७ ॥ सुवर्णकी माला पहरे और सुन्दर घोडे जुते रथमें बैठे राजा युधिष्ठिर जैसे क्रियाओं सहित यज्ञ सुन्दर

ता देवरानुत सखीन्सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नांबरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ॥ औत्सुक्यमुक्तकवराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥ १७ ॥ स सम्राड् रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ॥ व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥१८॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥ आचांतं स्नापयांचक्रुर्गंगायां सह कृष्णया ॥ ॥ १९ ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्नरदुंदुभिभिः समम् ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥ सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ॥ महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥ २१ ॥ अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ॥ ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणांवरैः ॥ २२ ॥

लगता है उसी प्रकार स्त्रियो सहित शोभायमान लगनेलगे ❀ ॥ १८ ॥ ऋत्विजोने ने पत्नी संयाज और आवभृथ्य नाम दो यज्ञांग करके गंगामें द्रौपदी सहित आचमन कर राजा युधिष्ठिरको स्नान करवाया ॥ १९ ॥ देवता तथा मनुष्योंके नगारे बजनेलगे और देवता ऋषि पितृ मनुष्यादि फूलोकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ वर्णयुक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह चारो वर्ण और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन चार आश्रमोने भी गंगामें स्नान किया; क्योंकि इस गंगामें स्नान करनेसे महापापी पुरुष भी शीघ्र पापसे छूट जातेहैं ॥ २१ ॥ स्नान करने उपरान्त राजा

* शंका–शास्त्रमें और लोकमें भी ऐसा सुना है कि, राजा युधिष्ठिरने एक स्त्रीके सिवाय दूसरी स्त्रीके सग अपना विवाह नहीं किया, क्योंकि राजा युधिष्ठिरके एक स्त्री थी, फिर यज्ञमें बहुत स्त्रियों करके शोभायमान युधिष्ठिर क्यों हुए ?

उत्तर– द्रौपदीने युधिष्ठिरकी सेवा ऐसी की कि, जो सेवा करोडों स्त्रियोंके करनेसे नहीं हो सक्ती ऐसे, द्रौपदीके पतिव्रतको युधिष्ठिरने देख कर मनमें जाना कि, हमारे करोडों स्त्री हैं, और व्यासजीने भी युधिष्ठिरके मनकी बात जानकर कहा कि, युधिष्ठिर मनकी बहुतसी स्त्रियों करके अपने यज्ञमें शोभित हुए ॥

युधिष्ठिर नवीन रेशमी धोती पहर भलेप्रकार शोभायमान होकर ऋत्विज सभासद और ब्राह्मणादिकोंकी वस्त्रोंसहित पूजन करनेलगे ॥ २२ ॥ नारायणके आश्रय राजा युधिष्ठिरने भाई बंधु, जातिके राजा मित्र सुहृद् और भी सब मनुष्योंका वारंवार पूजन किया ॥ २३ ॥ देवताओंके समान कान्तिवाले मणियोंके जडाऊ कुण्डल, माला, पगड़ी, जामा, पटुका और बड़े मोलके हार पहरे पुरुष और दोनों कुण्डल अलकोंके समूहसे शोभायमान मुखवाली स्त्रियें सुवर्णकी कौंधनी पहरे सब शोभायमान लगतीथीं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! स्नानकरे पीछे राजा युधिष्ठिरसे पूजित हो शील स्वभाववाले ऋत्विज सभासद वेदपाठी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और राजा ॥ २५ ॥ देवता, ऋषि, पितृ सब प्राणी अनुचरों सहित

बंधुज्ञातिनृपान्मित्रसुहृदोन्यांश्च सर्वशः ॥ अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३ ॥ सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुंडलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ॥ नार्यश्च कुंडलयुगाऽलकवृंदजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ ॥ २४ ॥ अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ॥ ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥ देवर्षि पितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ॥ पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ॥ नैवातृप्यन्प्रशंसंतः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥ २८ ॥ भगवानपि तत्रांग न्यवात्सीत्तत्प्रियंकरः ॥ प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च सांबादींश्च कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥ इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ॥ सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥ ३० ॥

लोकपाल राजा युधिष्ठिरसे पूजन कराय आज्ञा माँग अपने स्थानको चलेगये ॥ २६ ॥ हरि भगवान्के भक्तोंमें राजर्षि राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञको बड़ी शोभाकी प्रशंसा करते करते तृप्त नहीं हुए, जिसप्रकार मनुष्यका चित्त अमृत पीते पीते तृप्त नहीं होता ॥ २७ ॥ सुहृद, सम्बन्धी, बंधू और श्रीकृष्णचन्द्रके बिछुडनेसे कायरमनहो राजा युधिष्ठिरने प्रेमसे रक्खा ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! उन राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये सांब आदि पुत्र और यादवोंमें शूर वीरोंको द्वारकामें भेज आप श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रहनेलगे ॥ २९ ॥ धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरने

दुस्तर मनोरथरूपी बडा समुद्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सहायतासे तरकर सब खेद दूर किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! एक समय भगवद्भक्त राजा युधिष्ठिरके रनवासकी लक्ष्मी व राजसूययज्ञकी महिमा देखकर दुर्योधन संताप करनेलगा ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरका अंतःपुर कि जहाँ मयदैत्यरचित नरपति, दैत्यपति और देवपतियोंकी नाना प्रकारकी विभूतियाँ प्रकाशमान होरही थीं और जहाँ उन विभूतियोंके साथ द्रौपदी अपने स्वामियोंकी सेवा करती थीं उसे देख दुर्योधनका मन अत्यन्त तापको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ राजा युधिष्ठिरके अंतःपुरमें उससमय मधुपति श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके समूह नितम्बोंके भारसे धीरे धीरे चलनेमें बजते नूपुरोंसे शोभित चरण, कुचोंकी केशरसे अरुणहार धारण किये,

एकदांतःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ॥ अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेंद्रदितिजेंद्रसुरेंद्रलक्ष्मीर्नाना विभांति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः ॥ ताभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् ॥ मध्ये सुचारुकुचकुंकुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुंतलाढ्यम् ॥ ३३ ॥ सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ॥ वृतोऽनुजैर्बंधुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः कांचने साक्षादासने मघवानिव ॥ पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च बंदिभिः ॥ ३५ ॥ तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ॥ किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन्रुषा ॥ ३६ ॥ स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रांतं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ॥ जले च स्थलवद्भ्रांत्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥

चंचल कुण्डल और केशपाशसे युक्त सुन्दर मुख, रमणीय कटिसे युक्त श्रीकृष्णकी सहस्रों रानियें वहाँ फिरतीथीं ॥ ३३ ॥ मयदैत्यकी बनाई सभा उसमें किसी समय अपना आज्ञाकारी भाई, बंधुसहित और हित अहितके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसहित धर्मपुत्र राजा चक्रवर्ती युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥ साक्षात् सिंहासनपर जैसे इन्द्र विराजमान होताहै, उसीप्रकार सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान होकर राज्यकी शोभासे सेवित और बन्दीजनोंसे स्तुतिपाय शोभायमान होनेलगे ॥ ३५ ॥ हे राजा परीक्षित ! उसीसमय भाइयोंको संग ले किरीट धारणकिये, माला पहरे और हाथमें तलवार लिये क्रोधकर द्वारपालोंको डाटताहुआ अभिमानी दुर्योधन सभामें आया ॥ ३६ ॥ वहाँ मयदैत्यकी बनाई सभामें सूखेमें जल दीखे

और जलमें सूखा दीखे, ऐसी मयरचित सभामें मयदैत्यकी मायासे मोहित होकर दुर्योधनने भ्रमसे सूखेमें जल जान अपना जामा उठाया और सूखा जानकर जलमें छोडदिया और जलमें गिरगया ॥ ३७॥ हे राजा परीक्षित्! दुर्योधनको गिरा देखकर भीमसेन व सब स्त्रियें हँसनेलगीं यह देख राजा युधिष्ठिरने यद्यपि मने भी करा, परन्तु तो भी श्रीकृष्णचन्द्रकी सैन देनेसे पहिले भीमसेन हँसा फिर पीछे सब राजा हँसनेलगे ॥ ३८॥ इन राजाओंको हँसता देख दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हो नीची नारकर क्रोधाग्निसे भभकताहुआ सभासे निकल चुप चाप हस्तिनापुरको चलागया उस समय साधुओंके बीच बड़ा हाहाकार शब्द हुआ और अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर उदास होगये, जिनकी दृष्टिसे सब जगत् भ्रमण करताहै, वह भगवान् तो चुप होकर बैठगये, क्योंकि उनकी इच्छा पृथ्वीका भार उतारनेकी थी कि, किसी न किसी प्रकार यह पृथ्वीका भार उतरै, सो

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ॥ निवार्यमाणा अप्यंग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३८॥ स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ॥ हाहेति शब्दः सुमहानभूत्सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ॥ बभूव तूष्णीं भगवान्भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥ ३९ ॥ एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० दुर्योधनमानभंगो नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥ क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥ शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ॥ यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासंधादयस्तथा ॥ २॥

यह समागम सहजमें बनगया प्रथम यही भारतका बीज जमा ॥ ३९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! जो आपने प्रश्न किया था कि, राजसूययज्ञमें दुर्योधन कैसे कुढ़ा सो उसका उत्तर मैंने सब आपके सन्मुख वर्णन करदिया ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां दुर्योधनमानभगो नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ दोहा–युद्ध छिहत्तरमें भयो, यादव शाल्व अपार। घूमत गदा प्रहारसे, गये प्रद्युमन हार ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इसके उपरान्त क्रीडासेही मनुष्य शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके और भी अद्भुत कर्म हैं, जिस प्रकार सौभविमानका पति शाल्वको मारा, सो श्रवण करो ॥ १ ॥ शिशुपालका मित्र शाल्व

रुक्मिणीके विवाहमें आयाथा, तब उसको संग्राममें यादवोंने जीतलिया और उसीप्रकार जरासन्धादि राजा भी जीते ॥ २ ॥ सब राजाओंको सुनाकर राजा शाल्वने यह प्रतिज्ञा करी कि, सम्पूर्ण पृथ्वी यादवकुलरहित करूंगा, अब तुम सब मेरे पराक्रमको देखो ॥ ३ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार मूर्ख शाल्व प्रतिज्ञाकर केवल धूलकी एक मुट्ठी फाँकताहुआ पशुपति शिवजीकी आराधना करनेलगा ॥ ४ ॥ शीघ्र सन्तुष्ट होनेवाले शिवजी श्रीकृष्णके द्वेषी शाल्वको वर देना निष्फल जान शीघ्र प्रगट न हुए, परन्तु शरण आये शाल्वसे एक वर्षके पीछे यह कहने लगे कि, वर माँग ॥ ५ ॥ उस समय देवता असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, इनसे न टूटै और जहाँकी इच्छा हो वहाँ पहुँचावै, यादवोंको भयका

शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥ इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥ आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद्ग्रसन् ॥ ४ ॥ संवत्सरांते भगवानाशुतोष उमापतिः ॥ वरेण च्छंदयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥५॥ देवासुरमनुष्याणां गंधर्वोरगरक्षसाम् ॥ अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥६॥ तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरंजयः ॥ पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥ स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ॥ ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८॥ निरुध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ ॥ पुरीं बभंजोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥ सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ॥ विहारान्स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥ शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ॥ प्रचंडचक्रवातोऽभूद्रजसाऽऽच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥

देनेवाला ऐसा विमान दो, यह वर माँगा ॥ ६ ॥ तब ऐसाही होगा, यह कहकर भगवान् महादेवजीने मयदानवको आज्ञा दी, उसने झट वैरियोंके पुरको जीतनेवाला सौभनाम लोहेका बना विमान शाल्वको दिया ॥ ७ ॥ अन्धकारका घर, दुष्प्राप्य और इच्छानुसार चलनेवाला विमान पाय वह शाल्व कृष्णके वैरका स्मरण करके द्वारकापुरीकी ओरको चला ॥ ८ ॥ हे राजन् ! शाल्व बड़ी सेनासे द्वारकापुरीको घेरकर सम्पूर्ण फूलोंके बाग और उद्यानोंको तोड़नेलगा ॥ ९ ॥ गोपुर, दरवाजे, महल, अटा उनकी भीतें व विहारस्थान तोड़नेलगा और उस उत्तम विमानपरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥ १० ॥ और शिला, वृक्ष, बिजली, सर्प, ओले, बरसनेलगे और प्रचण्ड पवन चलनेके कारण सम्पूर्ण

दिशायें आच्छादित होगईं ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! इसप्रकार सौभविमानसे पीडित श्रीकृष्णचन्द्रकी द्वारकापुरी जैसे त्रिपुरदैत्यसे पृथ्वी दुःखी
हुई थीं, उसीप्रकार दुःखी होगई, सुखका कहीं लेश भी न रहा ॥ १२ ॥ बडे यशी महारथी भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजाको दुःखी देखकर "भय मत
करो" इसप्रकार कहकर रथमें बैठकर सन्मुख आये ॥ १३ ॥ और सात्यकि, चारुदेष्ण, सांब और छोटे भाई सहित अक्रूर तथा हार्दिक्य, भानुविन्द,
गद, शुक सारण ॥ १४ ॥ बडे धनुषधारी महारथी योद्धा कवच पहर, रथ, हाथी, घोडे और पैदल इत्यादिकोको संग लेकर निकले ॥ १५ ॥ इसके
उपरान्त हे राजन् ! असुरोंका जैसे देवताओंके संग युद्ध हुआ था उसीप्रकार रोमाञ्चकारक महाभयानक युद्ध शाल्वकी सेनाका यादवोंके संग

इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ॥ नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥ १२ ॥ प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य
बाध्यमाना निजाः प्रजाः ॥ मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥ १३ ॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्च सांबोऽक्रूरः
सहानुजः ॥ हार्दिक्यो भानुविंदश्च गदश्च शुकसारणौ ॥ १४ ॥ अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ॥ निर्ययुर्दंशि
ता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥ १५ ॥ ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह॥ यथाऽसुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्ष
णम् ॥ १६ ॥ ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ॥ क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥
विव्याध पंचविंशत्या स्वर्णपुंखैरयोमुखैः ॥ शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥ शतेनाताडयच्छाल्व
मेकैकेनास्य सैनिकान् ॥ दशभिर्दशभिर्नेतन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥ तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥
दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥ २० ॥

होने लगा ॥ १६ ॥ जैसे रात्रिके अन्धकारको भगवान् सूर्य दूर करदेतेहैं, वैसेही रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने सौभविमानके पति शाल्वकी माया
ओंका क्षणभरमें नाश करदिया ॥ १७ ॥ सोनेके पुंख लोहेकी भाली और छोटी छोटी गांठवाले पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको शीघ्र वींध
डाला ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त भगवान् प्रद्युम्नजीने सौ बाण शाल्वके और एक एक बाण प्यादोंके तथा दश दश बाण सारथी और तीन तीन
बाणोंसे घोडे हाथियोंको वींध डाला ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्नजीका यह अद्भुत पराक्रम देखकर अपनी पराई सेनाके योद्धा सबही प्रद्युम्नजीकी

लड़ाई करनेलगे * ॥ २० ॥ मयदैत्यका बनाया वह मायामय विमान कभी तो नानारूपसे और कभी एक रूपसे दिखाई देता, कभी बिलकुल दीखताही नहीं, इसलिये शत्रु जो यादव उनको उसका तर्क करना महाकठिन होगया ॥ २१ ॥ वह विमान कभी भूमिपर, कभी आकाशमार्गमें, कभी पर्वतोंके शिखरपर और कभी जलमें अलातचक्रके समान भ्रमण कर रहा था, इसकारण उसकी व्यवस्थाका ठिकाना लगना अत्यन्त कठिन होगया ॥ २२ ॥ विमान और सेना सहित जहाँ जहाँ शाल्व दिखाई देता था वहाँ वहाँ यादवोंमें मुख्य वीरगण बाणोंको छोड़ते थे ॥ २३ ॥ अग्नि सूर्यके समान गरम स्पर्शवाले विषके तुल्य असह्य वैरियोंके चलाये बाणोंसे शाल्वकी सेना अत्यन्त पीडित होगई और शाल्वभी व्याकुल

बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते ॥ मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥ २१ ॥ क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ॥ अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम् ॥ २२ ॥ यत्रयत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः ॥ शाल्वस्ततस्ततोऽमुंचञ्छरान्सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ॥ पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥ २४ ॥ शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः ॥ न तत्यजू रणं स्वंस्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥ २५ ॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक्प्रपीडितः ॥ आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्बली ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षस्थलमरिंदमम् ॥ अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥

होगया ॥ २४ ॥ शाल्वकी सेनाके शस्त्रोंके समूहसे अत्यन्त पीडित होकर भी लोक परलोकके जीतनेकी इच्छावाले यादव शूरवीरोंने अपनी अपनी युद्धभूमिको नहीं छोडा ॥ २५ ॥ प्रद्युम्नके पहले गदाप्रहारसे पीडित हुआ शाल्वका बली द्युमान् नाम मंत्री लोहेकी गदा छातीमें मारकर पुकारने लगा ॥ २६ ॥ वैरीको शांत करनेवाले प्रद्युम्नजीका वक्षस्थल गदाके लगनेसे विदारित होगया, तब धर्मका जाननेवाला

* शंका–प्रद्युम्नने बाणोंसे शाल्वको और शाल्वकी सेनाको मूर्च्छित करदिया तब प्रद्युम्नके ऐसे पराक्रमको देखकर शाल्वकी सेना और प्रद्युम्नकी सेनाने क्यों आश्चर्य माना ? प्रद्युम्नका क्या यह नवीन कर्तव्य था ऐसा कर्तव्य तो प्रद्युम्नने अनेकबार किया था ॥

उत्तर–शाल्वको ब्रह्माने किसीसमय वर दिया था कि तुमको और तेरी सेनाको संग्राममें श्रीकृष्णजी मूर्च्छित करैंगे और त्रिलोकीमें कोई प्राणी तुझको और तेरी सेनाको दुःखित नहीं कर सकैगा जब प्रद्युम्नने शाल्वको और उसकी सेनाको मूर्च्छित करदिया तब ब्रह्मादिक सब देवता आश्चर्य मानने लगे, उससमय और प्राणियोंने आश्चर्य माना तो क्या बडी बात है ?

दारुकका पुत्र सारथी प्रद्युम्नजीको लेकर रणभूमिसे बाहर निकल आया ॥ २७ ॥ दोघड़ीमें चैतन्य हो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र, प्रद्युम्नजी सा र्थी
बो कि; अहो रथवान् ! तू रणमेंसे जो मुझे भगाकर ले आया; यह बुराकाम किया ॥ २८ ॥ व्याकुल चित्तवाले तुझ रथवानने मुझे कलंक
लगाय, क्योंकि मुझ विना यादवोंके कुलमें जन्म ले रणमेंसे भागा और किसीको नहीं सुना, परन्तु मेरा इसमें क्या दोप है, यह कलंक तो सारथीने
लगाया ॥ २९ ॥ पिता राम कृष्णसे मिलूंगा तो क्या कहूंगा वह पूछेंगे, तब युद्धमेंसे भागकर निकला हुआ मैं अपनी योग्यताके विपयमें किस
प्रकार निवेदन करूंगा ३० ॥ भाइयोंकी स्त्रियें, भाभी, हे वीर ! युद्धमें शत्रुओंके सन्मुख नपुंसकहो कैसे आज भाग आये, हमसे तो कहो

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ॥ अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥ न यदूनां कुले जातः
श्रूयते रणविच्युतः ॥ विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥ २९ ॥ किं नु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ ॥
युद्धात्सम्यगपक्रांतः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यंति हसंत्यो भ्रातृजामयः ॥ क्लैब्यं कथं
कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ३१ ॥ सारथिरुवाच ॥ धर्मं विजानताऽऽयुष्मन्कृतमेतन्मया विभो ॥ सूतः कृच्छ्रगतं
रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् ॥ उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया
हतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥ नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

इस प्रकार हँसकर मुझसे कहेंगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर रथवान बोला हे चिरंजीवित हे समर्थ ! धर्मका ज्ञाता मैं तुम्हें रणमेंसे निकाल लाया, क्योंकि
धर्ममें ऐसाही कहा है कि, जब रथमें बैठनेवालेको कष्ट आनकर उपस्थित हो तो रथवान् रक्षा करे और सारथीके ऊपर कष्ट आवे तो बैठनेवाला
उसकी रक्षा करे ॥ ३२ ॥ हे वीर ! शत्रुने आपके गदा जो मारी तो आप अति पीडित होकर मूर्च्छित होगये, इसलिये धर्म जानकर मैं तुम्हें रण
मेंसे निकाल लाया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ दोहा—सतहत्तर
अध्यायमें, शाल्ववीरको मार । तोरो सौभ विमान पुनि, यदुपति परम उदार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरान्त

प्रद्युम्नजीने हाथ पाँव धो कवच पहर और धनुष हाथमें लेकर कहा कि, हे रथवान् ! वीर द्युमानके पास मुझे लेचल ॥ १ ॥ रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने मुसकाकर अपनी सेनाके योद्धाओंको मारते हुये द्युमानको अत्यन्त तीक्ष्ण आठ बाण मारे ॥ २ ॥ चार बाणोंसे चारों घोडोंको एक बाणसे रथवान्को मारा, दो बाणोंसे धनुष और ध्वजाको काटडाला और एक बाणसे महारथी प्रद्युम्नजीने द्युमानका शिर काटलिया ॥ ३ ॥ गद, सात्यकी और सांब आदि यादव विमानका पालन करनेवाले शाल्वकी सेनाको मारनेलगे और शिर कटनेसे संपूर्ण विमानके बैठनेवाले समुद्रमें गिरगये ॥ ४ ॥ हे नृपोत्तप ! इसप्रकार २७ सत्ताइस दिनतक यादव और शाल्वकी सेनाका महाभयानक युद्ध हुआ ॥ ५ ॥

विधमंतं स्वसैन्यानि द्युमंतं रुक्मिणीसुतः ॥ प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्वयम् ॥ २ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान् सूतमेकेन चाहनत् ॥ द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसांबाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ॥ पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकंधराः ॥ ४ ॥ एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥ इंद्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ॥ राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥ कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन्द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥ आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसंगतः ॥ राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥ वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ॥ सौभं च शाल्वराजं च दारुक प्राह केशवः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा परीक्षित् ! धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरके बुलाये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें गये थे, वहाँ जब राजसूययज्ञ हो चुका और शिशुपाल मर चुका ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कौरवोंमें वृद्धोंसे और मुनियोंसे और पुत्रों सहित कुन्तीसे आज्ञा माँग मार्गमें कुत्सित शकुन देख द्वारकापुरीको प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ और मार्गमें खोटे शकुन देखकर विचार करनेलगे कि, बड़े भाई बलदेवजी सहित मैं यहाँ यज्ञमें आयाहूं, इससे शिशुपालकी ओरके राजा निश्चय मेरी पुरीका नाश करते होंगे ॥ ८ ॥ अपने यादवोंका कष्ट देख, बलदेवजीसे द्वारका

पुरीकी रक्षा करनेके लिये कहकर सौभविमानमें बैठे हुये शाल्वको देख केशव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्से कहने लगे कि ॥ ९ ॥ हे रथवान्! शीघ्र मेरे रथको शाल्वके समीप पहुँचादे, क्योंकि इस विमानका राजा शाल्व बडा मायावी है, इससे तू घबराना मत ॥ १० ॥ इसप्रकार वचन सुन रथवान् रथपर बैठकर रथको हाँकनेलगा और अपनी पराई सेनाके लोगोंने रथकी ध्वजामें गरुडको आता देखा ॥ ११ ॥ शाल्वकी बहुतसी सेना नाश होगई उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको युद्धमें आया देखकर शाल्वने उनके सारथीपर अत्यन्त भयंकर वेगवाली शक्ति फेंकी ॥ १२ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दिशाओंको प्रकाश करती बडे तारेके समान आकाशमें चली आती बरछीको अपने बाणोंसे सौ खण्ड करदिये ॥ १३ ॥ और

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यांतिकमाशु वै ॥ संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥ १० ॥ इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः ॥ विशंतं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ॥ प्राहरत्कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥ १२ ॥ तामापतंतीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ॥ भासयंतीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाऽच्छिनत् ॥ १३ ॥ तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् ॥ अविध्यच्छरसंदोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥ १४ ॥ शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ॥ बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥ १५ ॥ हाहाकारो महानासीद् भूतानां तत्र पश्यताम् ॥ विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥ यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ॥ प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥ १७ ॥

अत्यन्त कुपित हो सोलह बाणोंसे शाल्वको वींधडाला, फिर आकाशमार्गमें भ्रमण करनेवाले विमानको सूर्यकी किरणोंसे विंधे हुये आकाशके समान बाणोंके समूहोंसे वेध दिया ॥ १४ ॥ शार्ङ्गधनुषधारी शौरि श्रीकृष्णचन्द्रकी धनुषसहित वाम भुजाको शाल्वने वींध दिया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके हाथसे धनुष गिरगया, यह बडीही आश्चर्यकी बात हुई ॥ १५ ॥ हाथमेंसे धनुष गिरा देख प्राणियोंमें बडा हाहाकार शब्द हुआ, और उसी अवसरमें विमानका राजा शाल्व अत्यन्त ऊँचे स्वरसे गर्जना कर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि ॥ १६ ॥ हे मूर्ख! जो तू हमारे भाई अथवा सखा शिशुपालकी

स्त्रीको हमारे देखतेही हरकर लेगया और सभाके बीच असावधान विराजमान तैंने हमारे सखाको मारा ॥ १७ ॥ अपनेको अजित माननेवाले तू
जो आज मेरे सन्मुख खडा रहेगा तो निश्चय यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ १८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे अधम ! तू वृथा बकवाद
करताहै और निकटही जो तेरी मृत्यु उपस्थित है उसे नहीं देखता, शूरवीर बहुत बकते नहीं अपना पुरुषार्थ दिखातेहैं और जो बहुत बकतेहैं, सो
वह कुछ पराक्रम नहीं करते ॥ १९ ॥ इसप्रकार कह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बड़े वेगकी गदा क्रोध करके कण्ठके नीचे हाडमें मारी कि; जिसके
लगनेसे शाल्व रुधिर वमन करता हुआ काँपने लगा ॥ २० ॥ और तत्कालही शाल्व अंतर्धान होगया, फिर दो घड़ी पीछे एक पुरुष आय शिर

तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ॥ नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृथा त्वं
कत्थसे मंद न पश्यस्यंतिकेंतकम् ॥ पौरुषं दर्शयंति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा भगवाञ्छाल्वं गदया
भीमवेगया ॥ तताड जत्रौ संरब्धः स चकंपे वमन्नसृक् ॥ २० ॥ गदायां संनिवृत्तायां शाल्वस्त्वंतरधीयत॥ ततो मुहूर्त
आगत्य पुरुषः शिरसाऽच्युतम् ॥ देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥ २१ ॥ कृष्णकृष्ण महाबाहो पिता ते
पितृवत्सल॥ बध्वाऽपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥ निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ॥ विम
नस्को घृणी स्नेहाद्बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥ कथं राममसंभ्रांतं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः ॥ शाल्वेनाल्पीयसा नीतः
पिता मे बलवान्विधिः ॥२४॥ इति ब्रुवाणे गोविंदे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ॥ वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥

झुकाय श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर, रोता हुआ "मुझे देवकीने भेजा है" यह वचन कहने लगा ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! हे
पिताका हित करनेवाले ! जैसे कसाई पशुको बाँधकर लेजाताहै, उसीप्रकार शाल्व तुम्हारे पिताको बाँधकर लेगया ॥ २२ ॥ ऐसा अप्रियवचन
सुन मनुष्य स्वभावमें प्राप्त मन दयावान् श्रीकृष्णचन्द्र विमन होकर प्राकृत मनुष्यके समान कहने लगे ॥ २३ ॥ कि, संभ्रमरहित देवता असुरोंके
अजेय बलदेवजीको जीतकर तुच्छ शाल्व मेरे पिताको कैसे बाँधकर लेगया ? विधाता बलवान् है, कदाचित् लेगया होगा ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र
इतना कहते हीथे कि, इतनेमें मायाके वसुदेवको लेकर शाल्व आया और श्रीकृष्णचन्द्रसे बोला कि, हे नीच ! यह तेरा उत्पन्न करनेवाला पिता है,

मायावी शाल्वने इस
जिसके लिये तू जीवित है, सो अभी तेरे देखते इसे मारूंगा, यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य होय तो इसकी रक्षा कर * ॥२५॥२६॥ मायावी शाल्वने इस
प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको कटुवाक्य कह, तलवारसे वसुदेवजीका मस्तक काटडाला और उस मस्तकको ले आकाशमें स्थित सौभविमानमें पहुँचा ॥
॥२७॥ स्वतःसिद्ध ज्ञानवाले श्रीकृष्णचन्द्र अपने जनोंके संग दो घड़ी तक मनुष्योंके स्वभावसे शोकमें डूबे रहे इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण
चन्द्रने मय दैत्यकी प्रगट करी शाल्वकी चलाई आसुरी मायाको जान लिया ॥२८॥ जब इसप्रकार चेते तो जैसे जागता हुआ पुरुष स्वप्नके पदार्थको

एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ॥ वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ २६ ॥ एवं निर्भर्त्स्य
मायावी खड्गेनानकदुंदुभेः ॥ उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥ ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः
स्वबोध आस्ते स्वजनानुषंगतः ॥ महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥
न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ॥ स्वाप्नं यथा चांबरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहंतु
मुद्यतः ॥ २९ ॥ एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः केचनान्विताः ॥ यत्स्ववाचो विरुध्येत नूनं तन्नः स्मरंत्युत ॥ ३० ॥

न देखे उसी प्रकार रणभूमिमें श्रीकृष्णचन्द्रने न तो दूतको देखा और न पिताके देहको देखा, वरन् सौभ विमानमें विराजमान आकाशमें भ्रमण
करते हुए शत्रुको देखकर उसके मारनेका उपाय करनेलगे ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहनेलगे कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! पूर्वापरका अनुसंधान न
रखनेवाले कितने एक ऋषिलोग यह कहते हैं, पर वह अपनी वाणीमें, जो विरोध आता है, उसका ध्यान नहीं करते, उन्होंने पहले कहा कि,

* शंका–शाल्वने माया करके वसुदेवजीकी मूर्ति साक्षात् बनाली यह बडी शंका है ? क्या माया रात दिन सबकी बुद्धि भ्रमाती है, क्योंकि राक्षस मायाके द्वारा अनेक प्रकारकी वस्तु बनालेते हैं,
परन्तु शास्त्रोंमें लिखा है कि, वसुदेव सरीखे तपधारी, और श्रीकृष्ण भगवान् भक्त हितकारी वैकुण्ठनाथसे जिनके पुत्र, ऐसे धर्मात्माकी मूर्तिको मायासे क्षुद्र राक्षसने बनालिया यह महाआश्चर्यकी बात है !
उत्तर–ब्रह्माने किसी समय शाल्वको वर दियाथा कि, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकी मूर्ति तुझसे बनगी नहीं, और त्रिलोकीमें जिसकी मूर्ति बनाना चाहेगा उसकी मूर्ति बना लेगा, और ब्रह्माने वरदानके देते
समय शाल्वसे यह भी कहाथा कि, जब तू वसुदेवकी मूर्ति बनावेगा उसी समय तू मारा जायगा, उस ब्रह्माके वचनको कालवश होकर भूलगया और वसुदेवकी मूर्ति बनाई उसी समय वृन्दावनविहारी श्रीगो
वर्धनधारीने शाल्वको मारडाला । देखो जब मृत्युके दिन आते हैं, तब परमेश्वर वैसाही बनाव बना देता है, इसलिये शाल्वने वसुदेवकी मूर्ति बनाई थी मूर्ति क्या बनाईथी अपना काल बुलायाथा ॥

"बलदेवजीकी आज्ञा ले और उन्हें हस्तिनापुरमें छोड आप इन्द्रप्रस्थ गये" इसके उपरान्त कहते हैं कि, "इन्द्रप्रस्थसे आ, शाल्वको युद्ध करता देख बलदेवजीको द्वारकाकी रक्षा करनेके लिये भेजा, यह उनके वचनमें ही भेद होता है, सो शुकदेवजी कहते हैं कि, हे राजन् ! यह हमारा मत नहीं है,और ऋषियोंका है ॥ ३० ॥ शोक, मोह, स्नेह, भय यह कहाँ ? और अखण्ड विज्ञान ऐश्वर्य देवता जिनकी स्तुति करें ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ ॥३१॥ जिनके चरणारविन्दकी सेवासे पुष्ट हुई,आत्मविद्याके प्रभावसे सज्जन पुरुष अनादिकालकी देहात्मबुद्धिको त्याग अनन्त ईश्वरसम्बन्धी पद आत्माको पाते हैं,उन सर्वोत्तम शरणागतपालक श्रीकृष्णचन्द्रमें कदाचित् मोह नहीं हो सकता ॥३२॥ यही यथार्थ है कि,बडे पराक्रमी शूरवंशो

क शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः ॥ क चाखंडितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखंडितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितया ऽऽत्मविद्यया हिन्वंत्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ॥ लभंत आत्मीयमनंतमैश्वरं कुतो न मोहः परमस्य सद्गतेः ॥ ३२ ॥ तं शस्त्रपूगैः प्रहरंतमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ॥ विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥ ३३ ॥ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा ॥ विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद् द्रुतम् ॥ ३४ ॥ आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाथ रथांगमद्भुतम् ॥ वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ३५ ॥ जहार तेनैव शिरः सकुंडलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ॥ वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरंदरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥ ३६ ॥

त्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने बलपूर्वक शस्त्रोंके प्रहारसे शाल्वको वेध उसका कवच, धनुष और उसके शिरकी मणि काटकर उसके विमानको गदासे चूर्णकर दिया ॥३३॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हाथकी चलाई हुई गदासे हजारों खण्ड होकर वह विमान चूर्णीभूत हो पृथ्वीमें गिर गया, उस समय शाल्व विमान छोड़ गदा हाथमें ले श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपरको दौडा ॥ ३४ ॥ दौडते हुए शाल्वका गदासहित हाथ भालेसे काटकर उसके मारनेके लिये प्रलय कालके सूर्यके समान सुदर्शनचक्रको ग्रहणकर उदयाचल पर्वतपर सूर्यके समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शोभायमान लगनेलगे ॥ ३५ ॥ जैसे देवराज इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरका माथा काटा था, उसी प्रकार अत्यन्त मायावी शाल्वका कुण्डलों सहित शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट

लिया, उससमय मनुष्योंमें बडा हाहाकार शब्द हुआ ॥ २६ ॥ इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! जिससमय गदासे
विमान टूटा और अत्यन्त पापी दुराचारी शाल्व पृथ्वीमें गिरपड़ा,तब स्वर्गमें देवताओंके नगारे बजने लगे, इसके उपरान्त मित्र शिशुपाल और
शाल्व, तथा पौण्ड्रक इनका ऋण चुकानेके लिये क्रोधित हो दंतवक्र आया ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां
सौभशाल्ववधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥ दोहा–दन्तवक्र हरि मार पुनि, हनो विदूरथ वीर ॥ रोमहर्षण हलधर वधो, अठहत्तर रणधीर
॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! परलोकमें प्राप्तहुए शिशुपाल और शाल्व तथा पौण्ड्रकके परोक्षमें मित्रताका जानने

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥ नेदुर्दुंदुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः ॥ सखीनामपचितिं कुर्वन्दंतवक्त्रो
रुषाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा०म०द०उ० सौभशाल्ववधोनाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥ श्रीशुक उवाच ॥
शिशुपालस्य शाल्वस्य पौंड्रकस्यापि दुर्मतिः ॥ परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो
गदापाणिः प्रकंपयन् ॥ पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥२॥ तं तथाऽऽयांतमालोक्य गदामादाय सत्वरः ॥
अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिंधुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्य कारूषो मुकुंदं प्राह दुर्मदः ॥ दिष्ट्यादिष्ट्या भवा
नद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥ त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्‌ मां जिघांससि ॥ अतस्त्वां गदया मंद हनिष्ये वज्र
कल्पया ॥ ५ ॥ तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ॥ बंधुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

वाला दुष्टबुद्धि दंतवक्र क्रोधकर अकेलाही पांव प्यादा महाबलवान् गदा हाथमें लिये पृथ्वीको कम्पायमान करता अत्यन्त शीघ्रतासे आता हुआ
दिखाई दिया ॥ १ ॥ २ ॥ इसप्रकार दंतवक्रको आता हुआ देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गदा हाथमें ले रथसे उतर समुद्रके जैसे किनारे रोकै
हैं, उसी प्रकार दंतवक्रको रोकदिया ॥३॥ दुर्मद करूषदेशका राजा दंतवक्र मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि, तू जो मेरे
नेत्रोंके सन्मुख आया यह बड़ाही मंगल हुआ ॥ ४ ॥ हे कृष्ण ! तू हमारे मामाका पुत्र और हमारे मित्रका मारनेवाला है और मुझे भी मारना
चाहताहै, इसलिये हे मूर्ख ! वज्रके समान इस गदासे तेरा प्राण संहार करूंगा ॥ ५ ॥ हे अज्ञानी ! देहमें रहे रोगको जिस प्रकार नाश करतेहैं

उसी प्रकार बन्धुरूप वैरी जो तू है, उसे मारूंगा, तब मित्रवत्सल मैं मित्रोंके ऋणसे उऋण हूंगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार कठोर वाक्य कह श्रीकृष्णचन्द्रके माथेमें गदा मारकर सिंहके समान दंतवक्र गर्जनेलगा, जैसे हाथीके अंकुश लगे ऐसेही वह गदालगी ॥ ७ ॥ संग्राममें गदा लगनेसे भी श्रीकृष्णचन्द्र न गिरे, इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी कौमोदकी बडी गदाको ले दंतवक्रकी छातिमें मारी ॥ ८ ॥ अत्यन्त वेगवान् गदा पड़नेके कारण हृदय विदीर्ण होनेसे दंतवक्र मुखसे रुधिरका वमन करता हुआ प्राणोंको छोड केश, हाथ, पाँव, फैलाकर पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥९॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरान्त दंतवक्रके शरीरसे अद्भुत सूक्ष्मज्योति निकलकर सब प्राणियोंके देखते शिशुपालके वधके समान श्रीकृष्णचन्द्रमें प्रवेश करगई

एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् ॥ गदयाऽताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद् व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥ गदयाऽभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ॥ कृष्णोऽपि तमहन्गुर्व्या कौमोदक्या स्तनांतरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रुधिरं मुखात् ॥ प्रसार्य केशबाह्वंघ्रीन्धरण्यां न्यपतद् व्यसुः ॥ ९ ॥ ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥१०॥ विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ शिरो जहार राजेंद्र सकिरीटं सकुंडलम् ॥ १२ ॥ एवं सौभं च शाल्वं च दंतवक्रं सहानुजम् ॥ हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥ मुनिभिः सिद्धगंधर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ॥ अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥ १४ ॥

॥१०॥ इसके उपरान्त भाई दंतवक्रके शोकसे व्याकुल विदूरथ ढाल, तलवार ले श्रीकृष्णचन्द्रको मारनेके लिये बडे बडे श्वास लेता हुआ आया ॥११॥ हे परीक्षित् ! विदूरथको इसप्रकार आता हुआ देख मुकुट और कुण्डलोंसहित उसका शिर क्षुरेके समान धारवाले चक्रसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट लिया ॥ १२ ॥ इसप्रकार सौभ विमान और शाल्व तथा भ्राताओंसहित दंतवक्रको जब भगवान् वासुदेव मारचुके, तब देवता और मनुष्य स्तुति करने लगे ॥१३॥ मुनीश्वर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बडे सर्प, अप्सरा, पित्रोंके गण, यक्ष, किन्नर, चारण ॥ १४ ॥

यह सब कोई श्रीकृष्णचन्द्रकी विजय गाय फूल बरसाय कर चले गये, इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्र सब यादवोंको संग ले शोभायमान द्वारकापुरीको
गये ॥ १५ ॥ इसप्रकार योग और जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा जयकोही प्राप्त करते हैं, पशुओंके समान दृष्टिवाले अज्ञानी पुरुषोंको
जरासन्धसे हारे जीते प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ पीडित कौरवोंको एक तुल्य माननेवाले बलदेवजी उनके युद्धका उद्यम सुनकर तीर्थयात्राका बहानाकर
द्वारकासे चलेगये, क्योंकि यहाँ रहनेसे जिसकी ओर न हूंगा वही बुरा मानेगा ॥१७॥ प्रभासतीर्थमें स्नानकर देवता ऋषि, पितृ, मनुष्योंको तर्पणकर
और ब्राह्मणोंको संग ले सरस्वतीके प्रवाहके सन्मुख महात्मा बलदेवजी गये ॥ १८ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित! पृथूदक, बिंदुसरोवर, त्रित

**उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ॥ वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतां पुरीम् ॥ १५ ॥ एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवा
ञ्जगदीश्वरः ॥ ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पांडवैः ॥ तीर्थाभिषे
कव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥ १७ ॥ स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान्॥ सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मण
संवृतः ॥ १८ ॥ पृथूदकं बिंदुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ॥ विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९॥ यमुनामनु
यान्येव गंगामनु च भारत ॥ जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥ २० ॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥
अभिवंद्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्ऽचयन् ॥ २१ ॥ सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः॥ रोमहर्षणमासीनं महर्षेः
ऽशिष्यमैक्षत ॥२२॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणांजलिम् ॥ अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३ ॥**

कूप, सुदर्शन तीर्थ, विशालब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती, व यमुनाके तीर्थ गंगाके तीर्थ और जहाँ ऋषि यज्ञ करैं उस नैमिषा
रण्यमें बलदेवजी गये ॥ १९ ॥ २० ॥ बडे यज्ञवाले मुनि बलदेवजीको आयाहुआ देख प्रशंसा करतेहुए शीघ्र उठ प्रणाम कर यथायोग्य उनका
पूजन करने लगे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोसहित पूजापाय और आसनपर बैठ महात्मा बलदेवजीने वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षणको बैठा देखा ॥ २२ ॥
यह सूतजाति होकर उन सब ब्राह्मणोसे ऊँचे आसनपर विराजमान था, न तो इसने प्रत्युत्थान किया और न विनय की और न हाथ जोडकर
स्तुति करी, तब इसको देखकर भगवान् बलरामजीको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥

और अपने मनमें विचार करने लगे कि, यह प्रतिलोम जाति होकर इन ब्राह्मण और धर्मपालक हमसे भी ऊँचे आसनपर विराजमानहै, इस अपराधसे यह दुर्बुद्धि मारडालनेके योग्य है ॥ २४ ॥ क्योंकि भगवान् वेदव्यासजीका शिष्य होकर, इतिहास और पुराणोंसहित धर्मशास्त्र पढकर यह सूत ऐसा आचरण रखता है ॥ २५ ॥ सत्य है जो नटके समान वेष धारण करनेवाले, अजितेन्द्रिय, अजितमन, विनयरहित वृथा पण्डिताभिमानी पुरुषहैं उनको शास्त्राभ्यास भी गुणकारक नहीं होता ॥ २६॥ इसलोकमें मैंने इसलिये अवतार लियाहै कि,ऐसे धर्मध्वजी पुरुषोंका विनाश करना क्योंकि

कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ॥ धर्मपालांस्तथैवास्मान् वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४ ॥ ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ॥ सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ अदांतस्याविनीतस्य वृथापंडितमानिनः ॥ न गुणाय भवंति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥ २६ ॥ एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः॥वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि ॥ भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हाहेति वादिनः सर्व मुनयः खिन्नमानसाः ॥ ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥ अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनंदन॥आयुश्चात्माऽक्लमं तावद् यावत्सत्रं समाप्यते ॥ अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ॥ ३० ॥

वह सबसे अधिक पापी होतेहैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यद्यपि महात्मा बलरामजीने दुष्टोंको मारना छोड़ दिया था, परन्तु तोभी होनी ऐसेही थी. इस कारण इतना कहकर उन्होंने हाथमें स्थित डाभके अग्रसे उसको मारडाला ❋॥ २८ ॥ तब उसके मरतेही सब मुनिलोग महा हाहाकार करनेलगे और खेदको प्राप्त होकर बलरामजीसे बोले कि, हे भगवन् ! यह आपने बडा अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! जबतक यज्ञ सम्पूर्ण हो, तबतक

❋ शका–भावी प्राकृत जीवोंके लिये है उनहीसे भला बुरा कर्म करसक्ती है, कुछ भगवान्के ऊपर भावी नहीं चलसक्ती ! फिर बलदेवजी तो भगवान् शेषजी थे सो भावीके वश कैसे होगये ? जो सूतजीको मारडाला यह बडी शंका है !

उत्तर–ब्रह्मा, विष्णु, महेशके ऊपर भावी कुछ भी नहीं करसक्ती तो भी भावीकी मर्यादा पालन करनेवाले तीनों देव ससारमें भावीके वश होकर अनेक प्रकारका काम करते हैं, इसलिये अनन्त रूप बलदेवजीने मायाके वशीभूत हो सूतको मारडाला ॥

हमारे पास पुराणोंकी कथा कहनेके लिये हम लोगोने इस सूतको ब्रह्मासन दिया था और शरीर खेदित न हो, ऐसी आयु दी थी, परन्तु आपने विना जाने यह ब्रह्महत्याकासा कार्य किया ॥३०॥ हे लोकपावन बलरामजी ! तुम योगेश्वर हो इस कारण आपको वेदमें कहीं ब्रह्महत्याका निषेध नहीं लगता परन्तु तो भी आप स्वयं इस ब्रह्महत्याके समान पापका प्रायश्चित्त करोगे, तभी संसारकी मर्यादा रहेगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर बलरा जीने कहा जगत्की मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये मैं प्रायश्चित्त करूँगा, इस कारण मुख्य पक्षमें जो नियम होवै सो मुझे बताओ ॥३२॥ इस रोमहर्षणकी दीर्घ आयु, बल, इन्द्रिय और सामर्थ्य होनेमें जो तुम्हारी अभिलाषा हो सो वर्णन करो; क्योंकि जसी आप आज्ञा करेंगे वैसाही मैं योगमा

योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥ यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ॥ चरिष्यति भवान्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम्॥३२॥दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिंद्रियमेव च ॥ आसादितं यत्तद् ब्रूत साधये योगमायया ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ॥ यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ॥ तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिंद्रियसत्त्ववान् ॥ ३५ ॥ किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ॥ अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिंत्यतां बुधाः ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ॥ स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणिपर्वणि ॥ ३७ ॥

याके प्रभावसे करूंगा ॥ ३३ ॥ तब मुनि बोले कि, हे राम ! जिस प्रकार तुम्हारे अस्त्रकी, पराक्रमकी और मृत्युकी सत्यता हो और तुमने जो वचन हमसे कहा है, वहभी सत्य होजाय उसीप्रकार करो ॥ ३४ ॥ बलरामजी बोले कि, "पिताही पुत्ररूप उत्पन्न होताहै" इस प्रकार वेदकी आज्ञा है, सो इसका पुत्र उग्रश्रवा तुम्हें पुराण श्रवण करावेगा और आयुष्य इन्द्रियशक्ति व शरीरके बलसे परिपूर्ण होगा ॥ ३५ ॥ हे मुनिजनो ! आपको दूसरी किस बातकी अभिलाषा है ? सो हमसे कहो ? आप जो कहेंगे सो मैं करूंगा ? हे बुधलोगो ! मैं प्रायश्चित्त नहीं जानता, इस कारण उसकाभी विचार करो ॥ ३६ ॥ तब ऋषीश्वर बोले कि, हे राम ! घोररूप इल्वलका पुत्र बल्वल नाम दानव अमावस पूनोंको आनकर हमारे यज्ञको

भ्रष्ट करता है ॥ ३७ ॥ सो हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलदेवजी। पीब, रुधिर, मूत्र, विष्ठा, मदिरा और मांस इनकी वर्षा करनेवाले पापी वल्वलको मारो, यही हमारी सेवाहै ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त सावधान होकर कामक्रोधादिकोको त्याग भरतखण्डकी परिक्रमाकर जब एक वर्षतक तीर्थोंमे स्नान करोगे तब शुद्ध होगे ॥३९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां बलदेवचरित्रे वल्वलवधोपक्रमोनामाष्टसप्ततितमो ऽध्यायः ॥ ७८ ॥ दोहा–उन्नासी अध्यायमें, बल्वलको वध राम। बहुरि तीर्थयात्रा करी, जहाँ जहाँ शुभधाम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! इसके उपरान्त जब अमावास्याकी पूर्णमासीका पर्व आया तो धूरि वर्षासहित अत्यन्त भयानक प्रचण्ड पवन चलने

तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ॥ पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३८ ॥ ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥ चरित्वा द्वादशमासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भा० दशमस्कंधे उत्तरार्धे बलदेवचरित्रे सूत० बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचंडः पांसुवर्षणः ॥ भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगंधस्तु सर्वशः ॥ १ ॥ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ॥ अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नांजनचयोपमम् ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥ सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ॥ हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ॥ मुसलेनाहनत्क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥

लगा और चारों ओरसे राधकीसी दुर्गन्ध आई ॥ १ ॥ इसके पीछे बल्वल दैत्यकी करी विष्ठा और मूत्रकी वर्षा यज्ञ शालामें होनेलगी, फिर त्रिशूल हाथमें लिये वह बल्वल भी दीखपड़ा ॥ २ ॥ टूटेहुये अंजनके ढेरके समान बडे शरीरवाला तपे ताँबेकेसी लाल शिखाओं दाढ़ी मूंछवाला दाढ और भ्रुकुटीसे डरावने मुखवाले उस दैत्यको देख ॥ ३ ॥ शत्रुकी सेनाके विदीर्ण करनेवाले मूशलको स्मरणकर दैत्योंको मारनेवाले हलका स्मरण किया इसके उपरान्त पार्षदरूप हल मूशल आपही आनकर उपस्थित होगये ॥ ४ ॥ आकाशमें विचरनेवाले बल्वलको हलके अग्रभागसे

खेंच और अत्यन्त क्रोधमें भरकर महात्मा बलदेवजीने ब्रह्मद्रोही बल्वलके माथेमें मुशल मारा ॥ ५ ॥ उसके लगतेही माथेके फूटनेसे बल्वल रुधिरको वमन करता हुआ वज्रके मारे गेरुके पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥६॥ तब मुनीश्वरोंने बलदेवजीकी स्तुतिकर सफल आशीर्वाद दे, जैसे बडभागी देवतालोगोंने वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रका अभिषेक कियाथा, उसी प्रकार बलदेवजीका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ लक्ष्मीके निवास कोमल कमलोंकी वैजयन्ती माला और दिव्य नीलाम्बर धोती उपरना और अनेक प्रकारके आभूषण उन मुनियोंने महात्मा बलदेव

सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक् समुत्सृजन् ॥ मुंचन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥ संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः ॥ अभ्यषिंचन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥ ७ ॥ वैजयंतीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपंकजाम् ॥ रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥ अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ॥ स्नात्वा सरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥९॥ अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ॥ स्नात्वा संतर्प्य देवादीञ्जगाम पुलहाश्रमम् ॥ १० ॥ गोमतीं गंडकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः ॥ गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गंगासागरसंगमे ॥ ११ ॥ उपस्पृश्य महेंद्राद्रौ रामं दृष्ट्वाऽभिवाद्य च ॥ सप्तगोदावरीं वेणां पंपां भीमरथीं ततः ॥ १२ ॥

जीको दिये ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त मुनियोंसे आज्ञा पाय बलदेवजी ब्राह्मणोंको संग ले कौशिकी नदीमें आय स्नानकर जिस सरोवरसे सरयू निकली है, वहां गये ॥ ९ ॥ और सरयूप्रवाहके किनारे किनारे हो प्रयागमें आय स्नान व देवादिकोंका तर्पणकर पुलहऋषिके आश्रम हरिक्षेत्रको गये ॥ १० ॥ वहांसे गोमती और गण्डकी तथा विपाशा व शोणनदीमें स्नानकर बलदेवजी गयातीर्थमें गये और वहांसे पितरोंका पूजन कर गंगा और समुद्रके संगममें पहुँच * ॥११॥ इसके उपरान्त महेंद्राचल पर्वतमें भृगुवंशावतंस परशुरामजीका दर्शन व प्रणामकर सप्तगोदावरी

* शंका—बलदेवजी सब तीर्थोंमें गये परन्तु काशीको और उज्जैनको क्यों नहीं गये? और काशी और उज्जैनके जो आसपास तीर्थ थे उनको गये फिर क्याकारण जो दोनों मोक्षदायक तीर्थोंको छोडदिया? ॥
उत्तर—शास्त्रोंमें ऐसा लिखाहै कि बिना स्त्रीके जो मनुष्य अकेला इन तीर्थोंमें जाय और उनका दर्शन करै तब उसको आधा फल मिलता है? (शंका) आधे फलमें क्या हानि थी वहाँका तो किंचित्फल परमानन्दका देनेवाला है ? (उत्तर) वहाँ जानेसे सब तीर्थोंका आधाफल रहजाता इसलिये नहीं गये, क्योंकि यह अकेलेही गयेथे, स्त्री संग नहीं थी, बलदेवजीने विचारा कि स्त्रीको संग लेकर आवेंगे उससमय काशी और उज्जैनको दर्शन करैंगे, इसलिये काशी और उज्जैनको नहींगये ॥

तथा वेणा, तथा पंपामें जाकर भीमरथीमें गये ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त स्वामिकार्त्तिकका दर्शनकर जहांपर भगवान् महादेवजी विराजते हैं, ऐसे श्रीशैलपर्वतको गये और द्रविडदेशोंमें परमपवित्र वेंकटपर्वतका दर्शनकर कामकोष्णीपुरीमें गये, फिर कावेरीमें स्नानकर बडे पवित्र और जहां नित्य हरि विराजते हैं, ऐसे श्रीरंगनाम विख्यात स्थानको गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहाँसे ऋषभाद्रि पर्वत हरिक्षेत्रमें आय, दक्षिण मथुरामें जाकर फिर बड़े पापोंके नाश करनेवाले सेतुबंध रामेश्वरको गये ॥१५॥ वहाँ जाकर हलायुध धारण करनेवाले बलदेवजीने दशहजार गायोंका ब्राह्मणोंको दान किया पीछे कृतमाला नदी और ताम्रपर्णी नदियोमें होकर मलयाचल कुलाचल पर्वतोंमें गये ॥ १६ ॥ वहाँ पहुँच विराजमान अगस्त्यमुनिकी नमस्कार

स्कंदं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ॥ द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥ १३ ॥ कामकोष्णीं पुरीं कांचीं कावेरीं च सरिद्वराम् ॥ श्रीरंगाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ॥ सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ॥ कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥ १६ ॥ तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ॥ योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ॥ दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥१७॥ ततः फाल्गुनमासाद्य पंचाप्सरसमुत्तमम् ॥ विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद्गवायुतम् ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ॥ गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥१९॥ आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः ॥ तापीं पयोष्णीं निर्विंध्यामुपस्पृश्याथ दंडकम् ॥ २० ॥

पूर्वक स्तुतिकी, फिर अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और आज्ञा पाय बलदेवजीने दक्षिणदेशमें समुद्रके तटपर जाय कन्यानाम दुर्गादेवीका दर्शन किया ॥१७॥ इसके पीछे फाल्गुन अनंतपुरमें जाय जहां विष्णु भगवान् सदा विराजते हैं ऐसे श्रेष्ठ पंचाप्सरस नाम सरमें स्नानकर दशहजार गायोंका संकल्प किया ॥ १८ ॥ वहाँसे चलकर भगवान् बलदेवजी केरल और त्रिगर्तदेशमें हो धूर्जटी शिवसे नित्य सन्निहित गोकर्ण नाम शिवक्षेत्रमें गये ॥ १९ ॥ वहाँसे आर्याद्वीपवासिनी देवीका दर्शनकर शूर्पारक क्षेत्रमें आये, वहांसे तापी और पयोष्णी नदीम हो दण्डकारण्यमें आये ॥२०॥

जहां माहिष्मती पुरी है, वहां पहुँच रेवानदीपर गये फिर मनुतीर्थमें आचमनकर प्रभासक्षेत्रमें आये ॥ २१ ॥ तब कौरव और पाण्डवोंके संग्राममें सब क्षत्रियोंका नाश होगया यह ब्राह्मणोंका वचन सुन बलदेवजीने अपने मनमें जानलिया कि, पृथ्वीका भार उतरगया ॥ २२ ॥ यादवोंको आनन्द देनेवाले बलदेवजी संग्राममें गदाओंसे युद्ध करते भीमसेन और दुर्योधनको समझानेके लिये कुरुक्षेत्रको गये ॥ २३ ॥ राजा युधिष्ठिर नकुल, सहदेव और श्रीकृष्णचन्द्र व अर्जुन बलदेवजीको आया हुआ देख प्रणाम कर पूछनेलगे कि, हे बलदेवजी! आप कहां कहां हो आये? तो यह भयके मारे चुप होगये ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त क्रोधमें भरे एकको एक जीतना चाहै, चित्र विचित्र मण्डलोंमें फिरते भीमसेन और

प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी ॥ मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपांडवसंयुगे ॥ सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥ २२ ॥ स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ॥ वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनंदनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ॥ अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥ २४ ॥ गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ॥ मंडलानि विचित्राणि चरंताविदमब्रवीत् ॥ ॥ २५ ॥ युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन्हे वृकोदर ॥ एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥ २६ ॥ तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ॥ न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥ २७ ॥ न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् ॥ अनुस्मरंतावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥ २८ ॥ दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ॥ उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥

दुर्योधनको देख बलदेवजी कहनेलगे ॥२५॥ कि, हे राजा दुर्योधन! और भीमसेन! तुम दोनों शूरवीर हो और समान तुम्हारा बल है, भीमसेनमें कुछ बल अधिक है, दुर्योधनमें दाव पेंच अधिक हैं, यह मैं जानता हूं ॥२६॥ इसलिये बराबर पराक्रमवाले तुम दोनोंके बीचमें एककी भी जीत हार न होगी, इस कारण इस निष्फल युद्धको शान्त करो ॥२७॥ हे राजन्! परस्पर कुत्सित वचन और कुत्सित कर्मोंको स्मरण कर वैरमें भरे भीमसेन और दुर्योधनने बलरामजीके प्रयोजन भरे वाक्यको नहीं माना ॥२८॥ भीमसेन और दुर्योधनका पिछला कर्म ऐसाही है, यह जानकर

बलदेवजी द्वारकापुरीमें आये और वहां उग्रसेनसे आदिले प्रसन्नमन यादवोंसे मिले ॥ २९ ॥ समस्तविरोधरहित यज्ञमूर्त्ति भगवान् बलदेवजी फिर नैमिषारण्यमें आये, तब उन्हें आनन्दपूर्वक सब ऋषीश्वरोंने यज्ञोंसे यजन करवाया ॥ ३० ॥ तब सामर्थ्यवान् भगवान् बलदेवजीने उन ब्राह्मणोंको विशुद्ध ज्ञान दिया जिस ज्ञानसे आत्मामें विश्व और विश्वमें पुरुष आत्माको जानता है ॥ ३१ ॥ यज्ञ करनेके पीछे स्नानकर सुन्दर वस्त्र आभूषणोंसे अलंकृत ज्ञाति बंधु सुहृदोंको संग ले अपनी चांदनीसे शोभित चन्द्रमाके समान बलदेवजी अपनी स्त्रियोंसहित अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ बलवान् अनन्त अप्रमेय अर्थात् प्रमाण करनेमें न आवे मायासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले बलदेवजीके अनेक

तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयोजयन्मुदा ॥ क्रत्वंगं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान् व्यतरद्विभुः ॥ येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥ स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबंधुसुहृद्वृतः ॥ रेजे स्वज्योत्स्नयेवेंदुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ॥ ३२ ॥ ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य संति हि ॥ ३३॥ योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥ सायं प्रातरनंतस्य विष्णोः स दयितो भवेत ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्यानि चान्यानि मुकुंदस्य महात्मनः ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥ को नु श्रुत्वा सकृद् ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ॥ विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥

अनेक लीला और चरित्र हैं ॥ ३३ ॥ हे भारत ! अद्भुत कर्मकारी अनंत बलदेवजीके कर्मोंको जो पुरुष सायंकाल अथवा प्रातःकालके समय स्मरण करेगा, वह श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त प्यारा होगा ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ दोहा–अस्सीमें धनलोभसे, विप्र सुदामा रंक । गयो द्वारका कृष्णपै, धोवन हेत कलंक ॥ १ ॥ राजा परिक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे भगवन् ! समर्थ अनंत पराक्रम मुक्तिके देनेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रमको और भी सुननेकी मेरी अभिलाषा है ॥ १ ॥ हे श्रीशुकदेवजी ! उत्तमयशी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विषयोंमें वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली जो मनोहर कथा है, उसको निरन्तर सुनकर कामके बाणोंसे

खेदितहो त्रासपावे ऐसे सारके जाननेवाले कौन पुरुष हैं जो श्रवण न करै ? ॥२॥ जिस वाणीमें भगवान्के नाम और गुण निकलैं वही वाणी सफल है और जिन हाथोंमें भगवान् वासुदेवकी सेवा पूजाका कर्म बनैं वही हाथ सफल हैं, और स्थावर जंगम जीवोंमें अन्तर्यामी रूप होकर वसे भगवान्का जो स्मरण करे वही मन सफल है और जिन कानोंसे भगवान् हरिकी पवित्र कथा सुनै वही कान सफल हैं॥ ३ ॥ स्थावर जंगम सब भगवान्के रूप हैं, यह जानकर जो पुरुष शिरसे प्रणाम करै वही शिर धन्य है, जिन नेत्रोंसे देखे,वही नेत्र धन्य हैं और भगवान् अथवा भक्तजनोंके चरणोंका धोवन जल नित्य जिन अंगोंमें लगै वही अंग धन्य है॥४ ॥ श्रीसूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहनेलगे कि, विष्णुरात राजापरीक्षित्के यह प्रश्न करनेपर

सा वाग् यया तस्य गुणान्गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ॥ स्मरेद्वसंतं स्थिरजंगमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥ शिरस्तु तस्योभयलिंगमानमेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ॥ अंगानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजंति नित्यम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः ॥ वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ विरक्त इंद्रियार्थेषु प्रशांतात्मा जितेंद्रियः ॥ ६ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ॥ तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा॥ ७ ॥ पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ॥ दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च ॥ ८ ॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः ॥ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान्सात्त्वतर्षभः ॥ ९ ॥

वासुदेव भगवान्में निमग्नहृदय हो वेदव्यासके पुत्र श्रीशुकदेवजी बोले ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परमभागवत राजा परीक्षित् ! कोई एक ब्राह्मण ब्रह्मके जाननेवालोंमें उत्तम विषयोंमें वैराग्यवान् शांतमन जितेंद्रिय श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र था ॥६॥गृहस्थाश्रमको वर्त्तै और जो कुछ अनायास पूर्वक प्राप्तहो उसीसे अपना निर्वाह करै,जीर्णवस्त्रको धारण करै,उसीप्रकार उसकी स्त्री भी थी,क्षुधाके मारे पीड़ित होनेसे समस्त अंगोंसे कृशित और जो अन्न प्राप्तहो,उसे पतिको परोस दे,आप भूँखी रहजाय ॥७॥ बहुत दुःखित और भयके मारे थरथर काँपती वह पतिव्रता स्त्री दारिद्री पतिके समीप आनकर बोली हे ब्राह्मण ! साक्षात् लक्ष्मीके पति ब्रह्मभक्त शरणागतके पालक यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे सखा सुनेहैं ॥ ८॥९॥

अहो बड़भागी ! साधुओंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास तुम जाओ, दुःखित कुटुम्बी तुमको वह बहुतसा धन देंगे ॥ १० ॥
भोज, वृष्णि, अंधक यह यादवोंके गोत्र हैं, तिनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अब द्वारका पुरीमें विराजते हैं वह अपने चरणकमलोंके स्पर्श करने
वालोंको आत्मातक देनेको समर्थ हैं ॥ ११॥ जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भजन करनेवाले अपने भक्तोंको परिणाममें दुःखरूप धन और
विषयका देना कुछ बहुत नहीं है,इस प्रकार कोमल वचनोंसे स्त्रीने बहुत प्रार्थना करी॥१२॥तब तो सुदामा ब्राह्मण उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका
दर्शन होगा यह बड़ा लाभ है, इस प्रकार मनमें विचारकर जानेकी इच्छा करनेलगा, और स्त्रीसे बोला कि, हे मंगलरूपिणी ! तेरे घरमें कुछ

तमुपेहि महाभाग साधूनां च परायणम् ॥ दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुंबिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुना द्वारवत्यां
भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ ११ ॥ किं त्वर्थकामान्भजतो नात्यभीष्टाञ्ज
गद्गुरुः ॥ स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदुः ॥ १२ ॥ अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ इति
संचिंत्य मनसा गमनाय मतिं दधे ॥ अप्यस्त्युपायनं किंचिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥ १३ ॥ याचित्वा चतुरो
मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतंडुलान् ॥ चैलखंडेन तान्बद्धा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥ स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वा
रकां किल ॥ कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिंतयन् ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ॥
विप्रोऽगम्यांधकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥ गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ॥ विवेशैकतमं
श्रीमद् ब्रह्मानंदं गतो यथा ॥ १७ ॥

भेंट देनेको होय तो ला ॥ १३ ॥ यह सुन सुदामाकी स्त्री किसी पड़ोसी ब्राह्मणके घरसे चार मुट्ठी चावल मांगलाई और सुदामाके कपड़ेमें
बांधनेलगी हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको भेट देकर सुदामाको बिदा किया॥ १४॥ हे राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठ सुदामा चावलोंको
ले श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन मुझे कैसे होगा ? ऐसे विचार करताहुआ द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥ १५ ॥ सुदामा ब्राह्मण तीन चौकी और तीन
ड्योढीवानोंको उल्लंघनकर कृष्णके धर्मधारी और अगम्य अन्धक और वृष्णियोंके घरोंके बीचमें हो ॥ १६ ॥ उन घरोंके बीचमें सोलह हजार

श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके घरमेंसे एक अत्यन्त सुन्दर घरमें सुदामाने प्रवेश किया, उससमय ब्रह्मकी प्राप्तिके समान आनन्द पाया ॥ १७ ॥
हे राजा परीक्षित् ! प्यारी रुक्मिणीकी शय्यापर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने द्वारपालके मुखसे यह संदेशा सुन और निकट खड़े अपने
प्राचीन मित्र सुदामाको देख, शीघ्र उठ भुजा पसारके मिले ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! अपने अत्यन्त प्यारे मित्र सुदामा ब्राह्मणके मिलनेसे अति
आनन्दसे प्रसन्नहुए कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंसे ऑंशुओंकी बूंदें टपकनेलगीं ॥ १९ ॥ हे राजन् ! लोकोंके पवित्र करने
वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामासे मिल और उसको पलँगपर बैठाय, भेंटदे उसके चरणका धोवन जल अपने मस्तकपर चढाया और दिव्य

तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः ॥ सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य
विप्रर्षेरंगसंगातिनिर्वृतः ॥ प्रीतो व्यमुंचदब्बिंदून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥१९॥ अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणम् ॥
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन्भगवान्लोकपावनः ॥ व्यलिंपद्दिव्यगंधेन
चंदनागुरुकुंकुमैः ॥ २१ ॥ धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ॥ अर्चित्वाऽऽवेद्य तांबूलं गां च स्वागतमब्रवीत्
॥ २२ ॥ कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ॥ देवी पर्यचरच्छैव्या चामरव्यजनेन वै ॥२३ ॥ अंतःपुरजनो दृष्ट्वा
कृष्णेनामलकीर्तिना ॥ विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥

गंध, अतर चंदन, केशर इत्यादि सुदामाजीके लगाया ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठगंधयुक्त धूप दीप, और बराबर दीपक जलाकर धरदिये और बड़े
आनन्दसे मित्र सुदामाकी पूजा कर तांबूल दे सन्मुख खड़े हो "मित्र भले आये" इसप्रकार कृष्ण कहनेलगे ॥ २२ ॥ फटे मलीन वस्त्र पहरे और
दुर्बलताके कारण अंगोंकी नसें निकल रहीं, ऐसे सुदामा ब्राह्मणकी साक्षात् देवी रुक्मिणी चमर ढोर पंखा इत्यादिसे सेवा करनेलगी ॥ २३ ॥
हे राजन् ! इसप्रकार निर्मल कीर्त्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब सत्कार किया, तब अवधूत सुदामाको देख सब द्वारकावासी जन आश्चर्य

माननेलगे ❋ ॥ २४ ॥ और कहनेलगे कि, भिक्षा माँगनेवाले दरिद्री निंदित अधम फटे वस्त्र इस सुदामाने ऐसा क्या पुण्य किया है ? ॥ २५ ॥
क्योंकि जैसे बडे भाई बलदेवजीसे मिले उसी प्रकार त्रिलोकीके गुरु लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचन्द्र शय्याके ऊपर बैठी अपनी प्रियतमा रुक्मिणीको
त्यागकर इससे मिले ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरान्त सुदामा और श्रीकृष्णचन्द्र दोनों परस्पर हाथ पकड जब गुरुकुलमें वास किया
था, तबकी बात कहनेलगे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे धर्मके जाननेवाले ब्राह्मण ! दक्षिणा दे गुरुके पाससे जब हम तुम विद्या पढ़ कर

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ॥ श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन्गर्हितेनाधमेन च ॥ २५ ॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा
श्रीनिवासेन संभृतः ॥ पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥ २६ ॥ कथयांचक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ॥
आत्मनोर्ललिता राजन्करौ गृह्य परस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपि ब्रह्मन्गुरुकुलाद् भवता लब्धद
क्षिणात् ॥ समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ २८ ॥ प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ॥ नैवातिप्रीयसे
विद्वन्धनेषु विदितं हि मे ॥ २९ ॥ केचित्कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ॥ त्यजंतः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम्
॥ ३० ॥ कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन्स्मरसि नौ यतः ॥ द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥ ३१ ॥

आये, तबसे तुमने घर आय अपने योग्य स्त्रीसे विवाह किया या नहीं ? ॥२८॥ हे विवेकी मित्र सुदामा ! मैं निश्चय जानताहूं कि, तुम्हारा चित्त
विषयोंमें बहुत चलायमान नहीं है और घरमें वस्त्रादिकोंसे भी तुम प्रसन्न नहीं हो विवेकी हो, तुमको ऐसाही योग्य है ॥ २९ ॥ यदि कहो कि,
चाहना नहीं तो घरमें रहनेसे क्या प्रयोजन है ? उसके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि जैसे मैं ईश्वरहूं, उसी प्रकार ईश्वरकी मायासे रची विषयवासना
त्यागकर कितने एक पुरुष मेरे समान लोकमर्यादाकेलिये विषयोंमें आसक्त न होने पर भी कर्म करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मण ! हम तुम जब गुरुके

* शंका–श्रीकृष्ण भगवान्के द्वारपर मूर्ख लोग रहतेथे क्योंकि जो मूर्खलोग पहरा नहीं देते होते तो भगवान्ने सुदामाका पूजन किया तो उन लोगोंने आश्चर्य क्यों माना ? क्योंकि सज्जन लोग तो जानते हैं कि, भगवान् तो सदा ब्राह्मणोंका पूजन करतेथे वह आश्चर्य क्यों मानते ?

उत्तर–श्रीकृष्णके स्थानपर मूर्ख लोग नहीं रहतेथे गोलोकवासी थे, उन लोगोंकी यह प्रतिज्ञा थी कि त्रिलोकीमें श्रीकृष्णसे बडा कोई नहीं है सर्वोपर श्रीकृष्णचन्द्रहीको जानतेथे, ब्रह्मादिक देवताओं को तथा योगियोंको ब्राह्मणोंको भी श्रीकृष्णचन्द्रसे बडा नहीं जानतेथे, इसलिये सुदामाका पूजन जब श्रीकृष्णजीने किया तो सब आश्चर्य माननेलगे कि इनसे बडा यह कौन आया ? जिनका पूजन आप श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् त्रिलोकीनाथ करते हैं ॥

घरमें जाकर रहे थे, तबकी भी कुछ यादहै कि नहीं? जिन गुरुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जानने योग्य आत्माका स्वरूप जानकर पुरुष संसारसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें तीन गुरुहैं. जन्मदाता पिता, दूसरा यज्ञोपवीतकर वेद पढावे, संध्या गायत्री सुन्दर कर्म सिखानेवाला और तीसरा ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ, संन्यासी इन चारों आश्रमोंको ज्ञान देनेवाला गुरु है, इसमेंसे प्रथम गुरु पूज्य है, दूसरा मेरे बराबर पूज्य है और तीसरा गुरु साक्षत् मेराही स्वरूप है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष मनुष्यरूप धारण करके गुरुरूप मेरे उपदेशसे संसाररूपी समुद्रके पार लगते हैं, हे ब्राह्मण! वह पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णोंमें और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन चारों आश्रमोंमें चतुर हैं ॥ ३३ ॥ ज्ञानके देनेवाले गुरुसे अधिक और सेवा योग्य कोई नहीं है, इसलिये उन गुरुके भजनसे और कोई अधिक धर्म नहीं है, सब

स वै सत्कर्मणां साक्षाद् द्विजातेरिह संभवः ॥ आद्योंग यत्राश्रमिणां यथाऽहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२ ॥ नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह ॥ ये मया गुरुणा वाचा तरंत्यंजो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च ॥ तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥ अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन्वृत्तं निवसतां गुरौ ॥ गुरुदारैश्चोदितानामिंध नानयने कचित् ॥ ३५ ॥ प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद् द्विज ॥ वातवर्षमभूत् तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तंगतस्तावत्तमसा चावृता दिशः ॥ निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ३७ ॥ वयं भृशं तत्र महानिलां बुभिर्निहन्यमाना मुहुरंबुसंप्लवे ॥ दिशोऽविदंतोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥

प्राणियोंका आत्मा मैं जैसा गुरुकी सेवासे प्रसन्न होताहूं, ऐसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासधर्मसे भी प्रसन्न नहीं होता ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण! हम और तुम जब गुरुके घर रहा करतेथे उस समय हमें तुम्हें गुरुकी स्त्रीने लकड़ी काटनेको वनमें भेजा, वहां दैवइच्छासे जो कुछ हुआ वह तुम्हें स्मरण है? ॥३५॥ हे मित्र! लकडी लेनेको हम तुम एक महावनमें गये यद्यपि वहां वर्षाऋतु नहीं थी परन्तु तो भी महातीव्र पवनके साथ वर्षा होने लगी और अत्यन्त घोर कठोर गर्जना हुई ॥ ३६ ॥ इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्त होगये और सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धेरा छागया, सब स्थलमें जलमें जलहीजल दृष्टि आनेलगा, इसकारण ऊंचा नीचा कुछ दिखाई न दिया ॥ ३७ ॥ जलमय उस वनमें अति प्रचण्ड वायु तथा वर्षासे

हुए तुम दोनों पीडाको प्राप्त हुए दिशाओंकी कुछ सुधी न रही तब आतुर हो आपसमें हाथ पकड मस्तकपर लकड़ीके बोझोंको धरकर फिरने लगे ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मण ! जब गुरुजी को इस बातकी खबरहुई, तब सूर्योदय होतेही सांदीपन गुरु हमें तुम्हें ढूँढ़ते २ आये और आतुर अपने शिष्योंको बैठा देखा ॥ ३९ ॥ और उस समय कृपा करके तीन श्लोक कहे, जिनसे हम कृतार्थ होगये, हे पुत्रो ! तुम हमारे लिये बहुत दुःखित हुये क्योंकि प्राणियोंको देह बहुत प्यारा है, उसका निरादर करके तुमने हमारी सेवा करी ॥ ४० ॥ सत्पात्र शिष्योंको इसीप्रकार गुरुकी सेवा करनी योग्य है, शुद्ध भावना करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थ जिससे प्राप्तहों ऐसे

एतद्विदित्वा ह्युदिते रवौ सांदीपनिर्गुरुः ॥ अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥ अहो हे पुत्रका यमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ॥ आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ॥ यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥ ४१ ॥ तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः संतु मनोरथाः ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४२ ॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ॥ गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णः प्रशांतये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ॥ भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥ ४४ ॥

देहको गुरुके अर्पण करदे ॥४१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ हूं तुम्हारे मनोरथ सब सत्यहों, तुमने मुझसे जो वेद पढे हैं, सो इस लोक और परलोकमें सारभरे नवीन पढे याद बनेरहैं ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि, हे मित्र ! कलियुगमें चेले गुरु दोनों लोभी लालची होते हैं, गुरुके घर जब हम रहते थे, तब के ऐसे अनेक चरित्र हैं, वह आपको याद हैं ? गुरुओंकी कृपासेही मनुष्य पूर्ण मनोरथ होकर शांतिको प्राप्त होता है * ॥ ४३ ॥ तब सुदामा बोले कि, हे देवदेव जगतके गुरु ! सत्यसंकल्प तुम्हारे संग हमारा गुरुके पास वास हुआ था, फिर

* दृष्टान्त–एक चेला गुरूजीके पास आया और सेवा करने लगा, सेवा करनेहीपर माल भी बहुत मिलते हैं, नया जानकर पुराने चेलोंने सब काम धन्धा उसीपर डाल दिया, एक दिन उसने गुरूजीसे कहा कि, महाराज ! एकबात कहताहूँ गुरूजी बोले कह, चेलेने कहा कि, महाराज ! ऐसा भी कोई उपाय है कि, जो मैं गुरू होजाऊँ और तुम्हारे समान गद्दीपर बैठ हलुआपूरी उडाऊ, काम चेलोंसे कराऊं, गुरूजीने सुनतेही क्रोधकर उसे निकाल दिया और फिर अपने यहां न आने दिया, चेलेको तो चाट लगरहीथी एक दिन एक पल्लेदारको बुला दो पैसे दे उससे कहा कि. रेता पल्लेमें भरकर लेचलो, उसने पल्ला भरलिया यह गरूजीके दरवाजेपर पहुँच खबर दी कि चेला आया है, गुरूजी बोले कि, हम दर्शन नहीं देंगे, तब चेलेने कहा महाराज ! एक पल्लेमें कुछ लाया भी है, हम नहीं–

हमको कौन वस्तुकी प्राप्ति न हुई अर्थात् सब वस्तु पाचुके ॥ ४४ ॥ हे समर्थ ! संपूण कल्याणदायक छन्दोमय वेद आपकी मूर्त्ति हैं ऐसे आपने गुरुके यहाँ वास किया, यह तो लीलामात्र है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां सुदाम्नः उपाख्याने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ दोहा–इक्यासी हरि विप्रके, तन्दुल भोग लगाय। किये समर्पण लोक द्वै, तौहू रहे लजाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब प्राणियोंके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्विजोंमें मुख्य सुदामाके संग बातें करते मुसकाकर बोले ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले साधुपुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रेमभरी चितवनसे देखते और हँसतेहुये ब्राह्मण सुदामासे बोले कि ॥ २ ॥ हे

यस्य च्छंदोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो॥ श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यंतविडंबनम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भा०म०द०उ० अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥ श्रीशुक उवाच॥ स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः ॥ सर्वभूतमयोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ॥ प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् ॥ अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥ इत्युक्तोपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ॥ पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ॥ ५ ॥ सर्वभूतात्मदृक् साक्षात्तस्यागमनकारणम् ॥ विज्ञायाचिंतयन्नायं श्रीकामो माभजत्पुरा ॥ ६ ॥

ब्राह्मण ! तुम मेरे लिये क्या भेंट लाये हो ? क्योंकि भक्ति प्रेमपूर्वक जो मुझे थोडीसी भी भेंट देता है, सो बहुत होजाती है और जो भक्ति विना मुझे बहुत भी दे, परन्तु उससे मुझे संतोष नहीं होता ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्ति करके पत्र, पुष्प, फल मुझे देतेहैं, सो भक्तिसे भेंट करनेके कारण मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक भोजन करता हूं ॥ ४ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! इसप्रकार भगवान्ने जब कहा तो भी लज्जाके मारे नीचेको मस्तककर विराजमान सुदामाने लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको तंडुल नहीं दिये ॥ ५ ॥ हे राजन् ! साक्षात् सब प्राणियोंके साक्षी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाके आनेका

–जानते कि, बूरा या खाड है, इससे बुलालो, फिर भगा दीजो, गुरुजी बोले तो फिर बुलालो, चेला सुनते ही बुलाने गया, उसने आतेही आँगनमें पल्लागिरवाया और गुरुजीकी ओर चरणकर पल्लेको दण्डवत् करी गुरुजी बोले कि मूर्ख यह क्या करताहै ? चेलेने कहा कि महाराज ! मुझे तो यह पल्लाही लाया है यह कहकर भागगया गुरुजी रेता देख अत्यन्त लज्जित हुये, कलियुगमें गुरु चेले बहुधा कुपात्रही हैं ॥

विचार करनेलगे कि, धनकी चाहना करके इस सुदामाने मेरा भजन नहीं किया ॥ ६ ॥ पर अभी अपनी पतिव्रता स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये मेरे पास आया है, इसलिये जो संपत्ति देवताओको भी दुर्लभ है सो इसे दूंगा ॥ ७ ॥ इस प्रकार विचार कर चीरमें बँधे चावलोंको " यह क्याहै " ऐसे कह वह चावल सुदामाके वस्त्रमेंसे आपही ले लिये ॥ ८ ॥ और एक मुट्ठी चावल खाकर केशवमूर्त्ति बोले कि, हे मित्र सुदामा ! यह जो तुम चावल लाये हो सो मुझे अत्यन्त प्यारे लगे हैं, इनको थोड़ा मत जानो, यह चावल मेरे सब विश्वका पेट भरदेंगे ॥ ९ ॥ ऐसे कह एक मुट्ठी चावलोंका भोजनकर और दूसरी मुट्ठी खानेलगे, तबहीं श्रीकृष्णपरायण रुक्मिणी परमेष्ठी श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ पकडकर कहनेलगीं कि,

पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ॥ प्राप्तो मामस्य दास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥ इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ॥ स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतंडुलान् ॥ ८ ॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ॥ तर्पयंत्यंग मां विश्वमेते पृथुकतंडुलाः ॥९॥ इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ॥ तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये ॥ अस्मिल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमंदिरे ॥ भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेन आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवंदितः ॥ जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नंदितः ॥ १३ ॥

मित्रके घरकी सब वस्तु आपही भोजनकर जाओगे या कुछ हमको भी रहने दोगे ? ॥१०॥ रुक्मिणी बोली कि,हे विश्वके आत्मा ! एक मुट्ठी चावल भोजन करके तो सब विश्वकी संपत्ति इसे दे चुके और दूसरी मुट्ठी भोजन करके क्या मुझे भी दे चुकोगे ? क्योंकि इस लोक और परलोकमें तुम्हारे संतुष्ट होनेसेही संपत्ति प्राप्त होतीहै ॥ ११ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित ! ब्राह्मण सुदामाने उस रात्रिको श्रीकृष्णचन्द्रके मन्दिरमें रह, भोजन कर जल पी स्वर्गकी प्राप्तिके समान सुखपाया ॥१२॥ जब प्रातःकाल हुआ तो विश्वके पालन करनेवाले आत्माके आनन्दमें मग्न श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाको प्रणामकर मार्गमें पहुँचानेको पीछे पीछे संग आये, और बोले कि, मित्र सुदामा ! तुमने भला दर्शन किया, और इस प्रकार स्वाधीन

वचनोंसे आनंदहो सुदामा अपने घरको चला ॥ १३ ॥ हे नृप ! न तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसे धनदिया और न उसने लाजके मारे मांगा, श्री
कृष्णके दर्शनहीसे सुखपाकर अपने घरकी ओरको चला ॥ १४ ॥ चलते समय चित्तमें शोचनेलगा कि अहो ! ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवालोंके देवत
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति मैंने देखी, क्योंकि लक्ष्मीको छातीमें धारणकरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अतिदरिद्री मुझ सुदामाको छातीसे लगाकर
मिले ॥१५॥ कैसा आश्चर्य है कि दरिद्री पापी ब्राह्मण मैं कहाँ ? और लक्ष्मी जिनके अंगमें वासकरैं ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ ? मुझमें उनमें बड़ा अंतरहै,
सो भुजाःपसार कर मुझसे मिले ॥ १६ ॥ अपनी प्रिय भार्याके सेवा करनेयोग्य शय्यापर जैसे अपने भ्राता बलदेवजीको बैठालेते थे, उसी प्रकार

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् ॥ स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहो ब्रह्मण्यदे
वस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ॥ यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ काहं दरिद्रः पापीयान्क कृष्णः
श्रीनिकेतनः ॥ ब्रह्मबंधुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरंभितः ॥ १६ ॥ निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यंके भ्रातरो यथा ॥ महिष्या
वीजितः श्रांतो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ॥ पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन
देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥
अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ॥ इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात् ॥ २० ॥ इति तच्चिंतयन्नंतः
प्राप्तो निजगृहांतिकम् ॥ सूर्यानलेंदुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥

मुझे बैठाया और मार्गकी थकावट दूर होनेको श्रीकृष्णचन्द्रकी भार्या रुक्मिणीने चमर हाथमें लेकर मेरे पवन करी ॥ १७ ॥ बड़ी सेवा करके पांवों
का दाबना, धोना, पोंछना, इत्यादि सत्कार करके देवोंके देव ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके समान मेरी पूजा की ॥ १८ ॥ यद्यपि
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी शोभा मनुष्योंको स्वर्ग मोक्ष और पाताल, पृथ्वीकी संपत्ति, तथा सर्व सिद्धियोंका कारणहै, परन्तु तोभी ॥१९॥
दारिद्री सुदामा धनको पाय, बहुत मतवाला होकर मुझे भूल जायगा इसकारण करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुझे यत्किंचित् भी धन न
दिया ॥२०॥ हे महाराज ! इस प्रकार सुदामा मनहीमनमें विचार करता हुआ अपने नगरमें पहुँचा तो क्या देखता है कि, सूर्य, अग्नि, चंद्रमाके समान

प्रकाशमान चारों ओर विमान शोभित होरहेहैं ॥२१॥ चित्र विचित्र बगीचे शोभायमान तिनमें पक्षियोंके झुंडके झुंड बोल रहे हैं और कुमुद अंभोज
कह्लार, उत्पलसे शोभायमान सरोवर भर रहेहैं ॥ २२ ॥ शृंगार किये पुरुष और हरिणके तुल्य नेत्रवाली स्त्रियें जहाँ तहाँ फिररही हैं, ऐसी शोभा और
विमानोंका प्रकाश देख आश्चर्यमान "यह क्या है ? किसका स्थान है ?" फिर अपने मनमें विचार किया कि यह तो हमारेही रहनेका स्थान
है, ऐसा कैसे होगया ॥ २३ ॥ इसप्रकार बड़भागी सुदामाको देवताओंके समान शोभावाले स्त्री पुरुष गाते बजाते सम्मुख लिवानेको
आये ॥ २४ ॥ पतिका आगमन सुन आनन्द और घबराहटसे सुदामाकी स्त्री साक्षात् कमलवनमेंसे रूपधरे लक्ष्मीके समान शीघ्रही घरसे बाहर

विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ॥ प्रोत्फुल्लकुमुदांभोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥ जुष्टं स्वलंकृतैः पुंभिः
स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ॥ किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवं मीमांसमानं तं नरा नार्यो
ऽमरप्रभाः ॥ प्रत्यगृह्णन्महाभाग गीतवाद्येन भूयसा ॥ २४ ॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा ॥ निश्चक्राम
गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कंठाऽश्रुलोचना ॥ मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या
मनसा परिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरंतीं देवीं वैमानिकीमिव ॥ दासीनां निष्ककंठीनां मध्ये भांतीं स
विस्मितः ॥ २७ ॥ प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमंदिरम् ॥ मणिस्तंभशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥ २८ ॥
पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ पर्यंका हेमदंडानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥

निकली श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गको सुदामाके महलमें लायेथे इसलिये सुदामा और सुदामाकी स्त्री दोनों देवस्वरूप होगये ॥ २५ ॥ प्रेम और
उत्कंठासे नेत्रोंमें आंशू भरे पतिव्रता सुदामाकी स्त्रीने पतिको आया देख नेत्र मूँद, बुद्धिसे विचार मनमें आलिंगन कर नमस्कार किया ॥ २६ ॥
जैसे विमानमें बैठी देवी प्रकाशमान होती है, उसी प्रकार धुकधुकी कण्ठमें धारण किये दासियोंके मध्यमें प्रकाशमान अपनी स्त्रीको देख सुदा
माजीने बहुत आश्चर्य माना ॥ २७ ॥ और प्रसन्न हो अपनी स्त्रीके साथ अपने घरमें गये, जहाँ सहस्रों मणियोंके खंभ लग रहे थे, मानों इन्द्रभवन
है ॥ २८ ॥ दूधके श्वेत झागोंके समान कोमल श्वेत बिछौने बिछरहे, हाथीदाँत व सुवर्णके पलँग जिस मन्दिरमें बिछ रहे और सुवर्णकीही डंडीके

चमर पंखे धरे हैं ॥ २९ ॥ कोमल कोमल पथरनोवाले सुवर्णके सिंहासन और मोतियोंके झालरीदार प्रकाशमान चँदोवे तन रहे थे ॥ ३० ॥ और निर्मल स्फटिक मणियोंकी भीतोंमें महामरकतमणियोंकी तथा स्त्रीसहित मंदिरमें रत्नोंके दीपक प्रकाशमान होरहेथे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उस मंदिरमें संपत्तियोंकी वृद्धि देख स्थिर हो, "अकस्मात् इतनी संपत्ति कहाँसे आई" ऐसे सुदामाजी विचार करने लगे ॥ ३२ ॥ सदाके दारिद्री भाग्य हीन मुझे बड़े ऐश्वर्यमान यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवन विना निश्चय और कोई इस संपत्तिका कारण नहीं है ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार समुद्रको पूर्ण करनेवाला महाउदार मेघ किसी समय अधिक तर वृष्टिको भी सूक्ष्म जानकर मानो लज्जित होता हो ऐसे समक्षमें नहीं वरसता,

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ॥ मुक्तादामविलंबीनि वितानानि द्युमंति च ॥ ३० ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नदीपान्भ्राजमानाह्लँलनारत्नसंयुतान् ॥ ३१ ॥ विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसंपदाम् ॥ तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥ ३२ ॥ नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ॥ महाविभूते र्यदुत्तमस्य ॥ ३३ ॥ नन्वब्रुवाणो दिशतेऽसमक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ॥ पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥ किंचित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारि ॥ मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्रीदास्यं पुनर्ज न्मनिजन्मनि स्यात् ॥ महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसंगः ॥ ३६ ॥

रात्रिको नगरके लोगोंके सोजानेपर उनके खेतोंको जलसे पूर्ण करताहै, उसी प्रकार मेरे सखा पूर्णकाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी भक्तको देनेके लिये इन्द्रादिक पदको भी तुच्छ और उसके लिये भजनको अधिक मानकर समक्षमें न कहतेहुये सब सम्पदायें प्रदान करते हैं ॥ ३४ ॥ आप बहुत दें, उसे थोड़ा मानै और सुहृदोंके थोड़े दियेको भी बहुत मानते हैं, क्योंकि मैं एक मुट्ठी चावलोंकी लेगया था उसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर लिया ॥ ३५ ॥ मुझे जन्मजन्ममें उन्हींके विषयमें प्रेम हितेच्छुता मैत्री व दासपन प्राप्तहो और महानुभाव व गुणोंके धाम भगवान् वासुदेवमें आसक्त होते उनके भक्तोंका सत्संग प्राप्तहुआ करे यही उनसे विनय है ॥ ३६ ॥

धनी पुरुषोंके धनके अभिमानसे नीच जन्म होते देखकर विवेकसे श्रीकृष्णचन्द्र अपने अज्ञानी भोरे भक्तोंको विचित्र संपदा और राज्यके ऐश्वर्य नहीं देते किन्तु दृढ़ भक्ति देते हैं, मुझे भक्ति नहीं थी, इससे संपदाका सुख मिला परन्तु अब भक्तिहीकी प्रार्थना करताहूं ॥३७॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चयकर श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त भक्त सुदामा विषयोंका धीरे धीरे त्याग करता अति आसक्त न होकर स्त्रीके साथ विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ३८ ॥ देवदेव तथा यज्ञपति इन प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके ब्राह्मणही प्रभु और इष्ट देवता हैं, इन ब्राह्मणोंसे अधिक और कोई देवता नहीं है ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र वह ब्राह्मण सुदामा उस समय अजित भगवान्को भी भक्तोंके सम्मुख पराजित होते

भक्ताय चित्रा भगवान्हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समद्धयत्यजः ॥ अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥ ३७ ॥ इत्थं व्यवसितो बुद्धया भक्तोऽतीव जनार्दने ॥ विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलंपटः ॥ ३८ ॥ तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ॥ ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥ ३९ ॥ एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ॥ तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबंधनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥ एतद्ब्रह्मण्य देवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥ लब्धभावो भगवति कर्मबंधाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कंधोत्तरार्द्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥ सूर्योप रागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

देखकर उनके ध्यानके वेगसे अहंकार दूरकर शीघ्रही सत्पुरुषोंके शरणरूप श्रीकृष्णचन्द्रके धामको चलागया ॥ ४० ॥ जो पुरुष ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्रकी, ब्राह्मणकी गौरवता प्रतिपादन करनेवाली यह लीला मन लगाकर सुनतेहैं, वह भगवान् वासुदेवकी भक्तिको प्राप्त होकर कर्मबं धनसे छूट जातेहैं ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां सुदाम्न उपाख्याने एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ दोहा—अंकबयासीमें भयो, कुरुक्षेत्र रविपर्व । मिले प्रेम अरु प्रीतिसे, यादव औ नृप सर्व ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसके उपरान्त द्वारकापुरीमें वास करते रामकृष्णको एक समय प्रलयकालके समान बड़ा भारी सूर्यग्रहण आया ॥ १ ॥

हे महाराज! ज्योतिषियोंसे उस ग्रहणको पहलेही जानकर मनुष्य सब ओरसे दान, पुण्य, स्नान करनेके लिये कुरुक्षेत्रको जाने लगे ॥ २ ॥ जहाँ शस्त्रके धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीसवार निःक्षत्रियकरके राजाओंके रुधिर समूहसे कुण्ड भरदिये थे ॥ ३ ॥ यद्यपि पाप रहित हैं, परन्तु तोभी समर्थ भगवान् परशुरामजी अपने पाप दूर करनेके लिये अज्ञानी पुरुषके समान सब लोकोंको शिक्षा देनेके कारण जाकर कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किये ॥ ४ ॥ बडी तीर्थयात्रामें संपूर्ण भरतखण्डकी प्रजा आई उसीप्रकार वृष्णि, अक्रूर, वसुदेव, राजा उग्रसेनादि यादव ॥ ५ ॥ अपना अपना पाप दूरकरनेके लिये कुरुक्षेत्रमें आये, गद, प्रद्युम्न, सांबादि, श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र आये;

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः ॥ स्यमंतपंचकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥ निःक्षत्रियां महीं कुर्वन्
रामः शस्त्रभृतां वरः ॥ नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥ ईजे च भगवान्रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥
लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥ ४ ॥ महत्यां तीर्थयात्रायां तत्राऽऽगन् भारतीः प्रजाः ॥ वृष्णयश्च तथा
ऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ॥ गदप्रद्युम्नसांबाद्याः सुचंद्रशुकसारणैः ॥ ६ ॥
आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥ ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्या
धरद्युभिः ॥ ७ ॥ व्यरोचंत महातेजाः पथि कांचनमालिनः ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ ८ ॥ तत्र
स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासस्स्रग्रुक्ममालिनीः ॥ ९ ॥

परन्तु सुचन्द्र शुक सारण सहित अनिरुद्ध और कृतवर्मा यह दोनों द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये रहगये ॥ ६ ॥ बड़े तेजस्वी सुवर्णकी माला और दिव्य फूलोंकी माला वस्त्र कवच धारणकिये यादव देवताओंके विमानोंके समान प्रकाशमान और जलतरंगके समान चंचल घोडे और बादलोंकीसी कान्ति ऐसे हाथियोंके ऊपर विद्याधरोंकीसी कान्तिवाले सिपाहियोंसहित यादव मार्गमें जातेहुये देवांगनासहित देवताओंके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ बडे भाग्यवान् बहुत सावधान यादवोंने कुरुक्षेत्रमें व्रत स्नानकर वस्त्र और फूल व सुवर्णकी माला पहराय

गौ ब्राह्मणोंको दान करके दीं ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त यादवोंने परशुरामजीके सरोवरोंमें युक्त स्नान कर "श्रीकृष्णचन्द्रमें हमारी भक्ति होवै" यह संकल्प करके ब्राह्मणोंको बहुतसा सुवर्ण दान किया ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा पाय यादव आप यथेच्छ भोजन कर शीतल छायायुक्त वृक्षोंके नीचे बैठगये ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! वहाँ मत्स्य, उशीनर, कौशल्य, विदर्भ, कुरु, सृंजय कांबोज, कैकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त्त व केरल देशके वासी अपने मित्र, बांधव, व राजा और दूसरे भी अपने पक्षके और परपक्षके सैकडों मनुष्य और नंदआदि अपने प्रिय स्नेही ग्वाल

रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥ ददुः स्वर्णं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥ १० ॥ स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायांघ्रिपांघ्रिषु ॥ ११ ॥ तत्रागतास्ते ददृशुः सुहृत्संबंधिनो नृपान् ॥ मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृंजयान् ॥ १२ ॥ कांबोजकेकयान्मद्रान्कुंतीनानर्तकेरलान् ॥ अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान् परांश्च शतशो नृप ॥ नंदादीन्सुहृदो गोपीन्गोपीश्चोत्कंठिताश्चिरम् ॥ १३ ॥ अन्योऽन्यसंदर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ॥ आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १४ ॥ स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापांगदृशोभिरेभिरे ॥ स्तनैः स्तनान्कुंकुमपंकरूषितान्निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १५ ॥ ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान्यविष्टरभिवंदिताः ॥ स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथां मिथः ॥१६॥

व बहुत दिनोंकी उत्कण्ठावाली गोपियें प्रभृति जो आये, उन सबको देखा ॥ १२ ॥ १३ ॥ परस्पर दर्शनसे उत्पन्नहुए आनंदके वेगसे प्रफुल्लित हृदय और कमलमुखसे शोभायमान पुलकित शरीर प्रेमसे रुद्ध कण्ठ नेत्रोंसे जल बहाते परस्पर आलिंगन करते यादव और दूसरे लोग बडे आनंदमें मग्न होगये ॥ १४ ॥ अत्यन्त स्नेहभरी मुसकान निर्मल कटाक्षयुक्त दृष्टि और स्नेहके आँशू नेत्रोंमें भरे स्त्री स्त्रियोंको देख केशरलगे स्तनोंको स्तनोंसे लगाय भुजा पसार परस्पर मिलनेलगीं ॥ १५ ॥ जो छोटी अवस्थावाले बडोंको प्रणाम करचुके तब वह यादव वृद्धोंको प्रणामकर "भले आये" प्रसन्न

हो इसप्रकार कुशल पूछ आपसमें कृष्णकथाओंको पूँछनेलगे ॥ १६ ॥ कुन्ती भाई बहन, भतीजे, माता, पिता और भाइयोंकी बहुओंको देख
तथा मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रको देख आपसमें प्रेमकी बात चीतकर नेत्रोंसे आंशू बहानें लगीं ॥ १७ ॥ कुन्ती बोली कि, हे आर्य ! मैं अपनेको अपूर्ण
मनोरथ मानतीहूँ क्योंकि जब मुझपर विपत्ति पड़ती है, तब जो श्रेष्ठ मेरी बातको स्मरण भी नहीं करते ॥ १८ ॥ जिससे दैव रुष्ट होजाता है,
उसको कोई भी संबन्धी अर्थात् जातवाले, पुत्र, भाई, माता, पिता यह स्मरण नहीं करते ॥ १९ ॥ वसुदेवजी बोले कि हे बहन ! दैवके खिलौने

पृथा भ्रातन्स्वसृर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि ॥ भ्रातृपत्नीर्मुकुंदं च जहौ संकथया शुचः ॥ १७ ॥ कुंत्युवाच ॥ आर्य
भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ॥ यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १८ ॥ सुहृदो ज्ञातयः पुत्राः
भ्रातरः पितरावपि ॥ नानुस्मरंति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥१९॥ वासुदेव उवाच ॥ अंब मास्मानसूयेथा दैवक्रीड
नकान्नरान् ॥ ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥ २० ॥ कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशो दश ॥ एतर्ह्येव
पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ॥ आसन्नच्युतसंदर्श
परमानंदनिर्वृताः॥२२॥भीष्मो द्रोणोंबिकापुत्रो गांधारी ससुता तथा ॥ सदाराः पांडवाः कुन्ती सृंजयो विदुरः कृपः॥२३॥

ऐसे हम मनुष्योंको दोष मत लगावे, क्योंकि लोक ईश्वरके आधीन होकर कर्म करता है और ईश्वरही कर्म कराता है ॥ २० ॥ प्रथम हम कंससे
अत्यन्त दुःखित हो सब दिशाओंमें चले गयेथे, दैव इच्छासे अभी अपने स्थानपर आयेहैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् !
वसुदेव उग्रसेनादिक यादवोंसे पूजित हो व राजा लोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर सुखपूर्वक परमानन्दमें मग्न होगये ॥ २२ ॥ भीष्म
पितामह, द्रोणाचार्य अंबिकाका पुत्र धृतराष्ट्र, पुत्रों सहित गान्धारी, स्त्रियों सहित पांडव, कुंती, संजय, बुद्धिमान् विदुर, कृपाचार्य ॥ २३ ॥

कुन्तिभोज राजाविराट्, भीष्मक और नग्नजित पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, काशीनरेश, सहित धृष्टकेतु बड़ेनेत्रवाला राजा दमघोष, मिथिलादेशका राजा, मद्रदेशका राजा, कैकयदेशका राजा, युधामन्यु, सुशर्मा, और पुत्रों सहित बाह्लीकादिक हे राजाओंके इन्द्र राजा परीक्षित् ! महाराज युधिष्ठिरके आज्ञाकारी राजा संपूर्ण रानियों सहित अत्यन्त शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका रूप देखकर परम आश्चर्य मानने लगे ❀ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ दर्शन करनेके उपरान्त रामकृष्णसे भलीप्रकार सत्कार पाय राजालोग श्रीकृष्णचंद्रादि यादवोंकी

कुन्तीभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ॥ पुरुजिद्द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः स काशिराट् ॥ २४ ॥ दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ ॥ युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥ २५ ॥ राजानो ये च राजेंद्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ॥ श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २६ ॥ अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः ॥ प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥ २७ ॥ अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ॥ यत्पश्यथासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २८ ॥ यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ॥ भूः कालभर्जितभगापि यदंघ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ २९ ॥

प्रशंसा करनेलगे ॥ २७ ॥ "अहो ! महाराज उग्रसेन ! यहाँ मनुष्योंमें जन्म तो आपहीका सफल है, क्योंकि जिनके दर्शन योगीजनोंको भी दुर्लभ हैं उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आप नित्य प्रति दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ वेद जिनकी स्तुति कीर्त्ति वर्णन करते हैं, उन

शंका–मुनिसत्तम युधिष्ठिरकी आज्ञा करनेवाले राजा श्रीकृष्णचन्द्रको स्त्रीसहित देखकर विस्मयको क्यों प्राप्तहुए ?

उत्तर–सब शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके वचनको राजा लोग मुनियोंके मुखसे सुनतेथे कि भगवान्ने कहा था कि, सब शास्त्रोंमें लिखाहै कि स्त्री सदा नरककी देनेवाली है जो कोई प्राणी मोक्षकी अभिलाषा करै वह स्त्रीकी संगति न करै, फिर स्त्रियों सहित श्रीकृष्णको देखकर राजाओंने कहा कि जिस जिस कामको श्रीकृष्ण बुरा कहते हैं उसी कामको आप करतेहैं, इसप्रकार स्त्रियोंके वश हुये श्रीकृष्णको देखकर राजा लोगोंने बडा सन्देह किया देखो ! प्राणियोंको स्त्रियोंके वश होना मने करते हैं और आप स्त्रियोंके वशीभूत होरहेहैं, इसलिये राजा लोग विस्मयको प्राप्तहुए ।

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका धोवन गंगाजल और मुखारविन्दका वचनरूप वेद इस विश्वको अत्यन्त पवित्र करते हैं और कालसे दग्ध माहात्म्य जाननेवाली पृथ्वी भी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलके स्पर्शसे शक्तिमती हो हमारी चारों ओरसे संपूर्ण कामना पूर्ण करती है ॥ २९ ॥ उन श्रीकृष्ण चन्द्रके संग दर्शन, स्पर्शन, अनुसरण, आसन, गोष्ठी, पलँग, भोजन, विवाह और सपिंडताके संबंधसे बँधे हुए हो और आप यद्यपि नरकके मार्गरूप गृहमें वास करते हो, परन्तु तो भी तुम्हारे घरमें स्वर्ग व मोक्षकी तृष्णा निवृत्त करनेवाले विष्णु भगवान् आपही प्रगट हुए हैं, इसलिये तुम्हारा जन्म सफल है ॥३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! नंदरायजी कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णादि यादवोंका आगमन जान गोपों

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिंडबंधः ॥ येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदस्तत्र यदून्प्राप्तान्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ॥ तत्रागमद्वृतो गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ॥ परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३२ ॥ वासुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः ॥ स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासं च गोकुले ॥ ३३ ॥ कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ॥ नाकिंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकंठौ कुरूद्वह ॥ ३४ ॥ तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥ ३५ ॥

सहित और गाडियोंमें लदी वस्तु सहित देखनेके लिये यादवोंके पास आये ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंसे जिनका दर्शन न हुआ ऐसे कायरचित्त यादव नंदरायजीको देख अत्यन्त प्रसन्नहो, जैसे प्राण देहमें आनेसे इन्द्रियें उठकर सम्मुख होती हैं उसी प्रकार सम्मुख जाय चिरकालसे दर्शन न पानेसे उत्कंठित हो गाढ आलिंगनकर परस्पर मिले ॥३२ ॥ वसुदेवजी नंदरायजीसे मिल प्रसन्न हो प्रेममें विह्वल होगये और कंसके दिये कष्टको और गोकुलमें जैसे कृष्णको पहुँचा आये थे, उसका स्मरण किया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! कृष्ण बलदेव माता पिता नंद व यशोदासे मिल प्रणामकर ऐसे प्रेममें विह्वल होगये कि, आँशुओंसे कंठ रुक गये, इसलिये कुछ भी न बोलागया ॥ ३४ ॥ महाभागा यशोदा और नंदजी कृष्ण बलदेवको

अपने आसनपर बैठाय भुजाओंसे आलिंगनकर नेत्रोंसे आँशू बहानेलगे ॥ ३५ ॥ पीछे रोहिणी और देवकी व्रजकी रानी यशोदासे मिल व यशोदाकी करी मित्रताका स्मरण कर आँशू कंठमें भर यह कहनेलगीं ॥ ३६ ॥ कि, हे व्रजकी महारानी ! जिसका बदला न होसके, ऐसी तुम्हारी मित्रताको कौन भूल सकता है ? और देवराज इन्द्रका ऐश्वर्य पाकर भी संसारमें तुम्हारी मित्रताका बदला नहीं होसकता, हे यशोदे ! जिन्होंने अपने माता पिताको नेत्रोंसे नहीं देखा, ऐसे कृष्ण बलदेवको तुम माता पिताके पास रक्खे, तब तुमसे प्यार बढ़ाना पोषण, पालन, लालन पाय निर्भय तुम्हारे पास वास करनेलगे, जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, उसीप्रकार तुमने इनकी रक्षा करी, यह तुमको योग्यही है, क्योंकि, साधुओंको

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ॥ स्मरंत्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकंठ्यौ समूचतुः ॥ ३६ ॥ का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ॥ अवाप्याप्यैंद्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३७ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ॥ प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्रचभयौ न सतां परः स्वः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपंति ॥ दृग्भिर्हृदि कृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ३९ ॥ भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः ॥ आश्लिष्याऽनामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४० ॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ॥ गतांश्चिरायिताञ्शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४१ ॥

यह अपना विराना इसप्रकार बुद्धि नहीं होती है ॥३७॥३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जिनके दर्शनमें पलकोंकी ओट पडनेसे पलकोंके रचनेवाले विधाताको गालियाँ देती हैं, क्योंकि वह अतिप्यारे श्रीकृष्णचन्द्र बहुत दिनोंमें दृष्टिगोचर हुए, इसलिये नेत्रद्वारा उन्हें हृदयमें स्थापितकर समाधिनिष्ठ योगियोंको भी जिसकी प्राप्ति बहुत कठिन है, उन श्रीकृष्णचन्द्रके भाव (अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रके रूपको) उन गोपियोंने प्राप्त किया ॥ ३९ ॥ इसप्रकार प्रेम भरी गोपियोंके पास एकान्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जाय आलिंगनकर कुशल पूँछ मुसकायकर यह वचन बोले कि ॥ ४० ॥ हे सखियो ! हम अपने बाँधवोंका कार्य करनेकी कामनासे गयेथे और वहाँ वैरियोंके पक्षका नाश करनेमें लगगये

जिससे बहुत दिनोंतक रुकगये सो तुमने हमारा भी कभी स्मरण किया ? ॥ ४१ ॥ "यह कृतघ्नी है" क्या ऐसे तुमको हमपर कुछ क्रोध तो नहीं उत्पन्न होताहै ? हाँ हमको त्यागकर आप चलेगये, इससे यह बात सत्य है, इस प्रकार गोपियोंकी ओरसे संभावना करके कहते हैं कि, दैवही तो प्राणियोंको मिलाता है और वही वियोग करा देता है ॥ ४२ ॥ जैसे वायु बादलोंके समूहको तृणोंको रुईको और धूरिको उड़ाकर संयोग करता है, फिर वियोग करता है, उसी प्रकार सब प्राणियोंका उत्पत्तिकर्त्ता ईश्वर सबको मिलता है, और फिर अलग अलग कर देता है, इसमें मुझे क्या दोष है ? ॥ ४३ ॥ प्राणियोंकी मुझमें भक्तिही जन्म और मृत्युसे छुडाती है, तुम्हारा मुझमें स्नेह हुआ है, इसलिये मुझे प्राप्त होउगी, यही बड़ा मंगल है ॥ ४४ ॥ कैसे तुम हो जिन्हें स्नेह करके हम पावेंगी ऐसी इच्छा सब गोपियोंकी हुई तो अपना रूप कहते हैं कि, हे गोपियो ! जैसी

अप्यवध्या यथाऽस्मान्स्विदकृतज्ञा विशंकया ॥ नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च॥ ४२॥ वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ॥ संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४३ ॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४४ ॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरंतोंतरं बहिः ॥ भौतिकानां यथा खं वा भूर्वायुर्ज्योतिरंगनाः ॥४५॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः ॥ उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४६ ॥

पंचभूतोंके बने घटादिकके पृथ्वी जल, तेज, वायु, आकाश यह आदिमें भी हैं, अंतमें भी हैं, इसी प्रकार जरायुज मनुष्य तथा पशु आदि और अण्डोंसे जन्म पानेवाले पक्षी इत्यादिक और पसीनेसे जन्मवाले खटमल जुएँ इत्यादिक और उद्भिज्ज अर्थात् ब्रह्मादिक चारप्रकारके आदिमें भी मैं हूं,और अंतमेंभी मैं हूं,भीतर बाहर होनेके कारण व्यापक हूं ऐसे मुझे तुम प्राप्त हुई हो॥४५॥यहाँ एक शंका है कि, चारप्रकारके प्राणियोंका भोक्ता आत्मा आदि अंतमें है और व्यापक आत्मामें सब प्राणी वास करते हैं, फिर तुम्हारी प्राप्ति हमें कैसे हुई ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, मृत्तिका घटादिकोंके आदिमें भी है और अंतमें भी है ऐसे चार प्रकारके प्राणी अपने कारणसे भूतोंमें वर्त्तमान रहते हैं भोक्ता आत्मामें नहीं रहता है आत्मा देहमें भोक्ता रूपसे व्यापक है, पंचभूतरूप देहरूप भोग करनेयोग्य पदार्थ और भोग करनेवाले आत्मा परिपूर्णरूप मुझमें

प्रकाशित देखो ॥ ४६ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्। इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपका उपदेश कर गोपियोंको समझाया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके स्मरणसे उनके लिंगदेह छूटगये; तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति की ॥ ४७ ॥ गोपी बोली कि, हे कमल नाभ श्रीकृष्ण ! बड़े ज्ञानी योगीश्वरोंके ध्यान करने योग्य और संसाररूपी कुएँमें गिरे प्राणियोंके निकलनेका आश्रय तुम्हारे चरणकमल घरमें रहने पर भी सदा हमारे मनमें स्मरण बनारहै, यही वर माँगती हैं ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषा

श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ॥ तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४७ ॥ आहुश्च ते नलिननाभ पदारविंदं योगेश्वरैर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं गेहंजुषामपि मन स्युदियात्सदा नः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमो ऽध्यायः ॥ ८२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥ युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्य यम् ॥ १ ॥ त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ॥ प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥

टीकायां वृष्णिगोपसंगमोनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥८२॥ दोहा–कह्यो नारियोंकी कथा, सकल तिरासी अंक। पाणिग्रह जैसे कियो, श्रीव्रजचन्द निशंक ॥ ८३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशीय राजा परीक्षित्! गोपियोंके गुरु और शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोपियोंपर अनुग्रह करके पीछे राजा युधिष्ठिरसे और सब सुहृदोंसे कुशल पूंछी ❀ ॥ १ ॥ इस प्रकार लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कुशल पूँछने और

---

* शंका–वेद, शास्त्र, पुराणोंका यह प्रमाण है कि, तीन लोकमें जो चराचर जीव हैं उन सब जीवोंके भगवान् गुरु हैं और गति भी हैं, फिर व्यासजीने सब जीवोंको त्यागके भगवान्को गोपियोंका गुरु तथा गति क्यों कहा ? यह बडा भारी सन्देह है ?

उत्तर–"गोपीनां स गुरुर्गतिः" इस श्लोकका अर्थ व्यासजी व्रजकी गोपी जो श्रीकृष्णकी प्यारी थीं उन गोपियोंको गोपी नहीं कहे थे उस श्लोकका अर्थ तो व्यासजीने ऐसे किया है कि, गो शब्दको संसार भी कहते हैं, शास्त्रोंमें ऐसा कहा हैं गो कहिये चराचर संसार उसका जो पालन करै उसका नाम गोप है गो भगवान् है तथा गोपी भगवान्की माया है सोई मायारूप लक्ष्मीहै ऐसा अर्थ गोपीका श्री व्यास भगवान्ने किया है मायाके और जगदीश्वर जो जगतके पति भगवान् हैं सो श्रीकृष्ण होकर पृथ्वीमें विराजमान रहते थे इसलिये मायाके पति और गुरु भी भगवान् हैं क्योंकि मायारूप संसारहै इसलिये श्रीकृष्णको गोपीपति और गुरु, व्यासजीने कहाया, व्रजवासियोंको–पति गुरु अकेला नहीं कहाया ॥

सत्कार करनेसे भगवान्‌के चरणकमलके दर्शनसे पापरहित हो वह सब लोग प्रसन्न होकर कहनेलगे ॥ २ ॥ कि हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्दका रस जो कि, अभी महात्मालोगोंके मनद्वारा प्रगट हुआ है और जो देहधारण करनेवालोंके देहमें अभिमान उत्पन्न करनेवाली अविद्याको काटता है, उसे जो कर्णरूप दोनाओंसे पान करते हैं, उन पुरुषोंके अमंगल कहाँ ? ॥ ३ ॥ स्वरूपके प्रकाशसे बुद्धिकृत जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति अवस्था दूर होनेके कारणसे संपूर्ण आनंदके समूहरूप आवरण रहित, अकुण्ठचैतन्य शक्तिमान् कालसे नष्ट हुए वेदकी रक्षा करनेके लिये योगमायाको अंगीकार कर मनुष्यदेह धारण करनेवाले और परमहंसकी प्राप्तिके योग्य तुमको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ योगीवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे

कुतोऽशिवं त्वच्चरणांबुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ॥ पिबंति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥३॥ हित्वाऽत्मधामविधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानंदसंप्लवमखंडमकुंठबोधम् ॥ कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्मः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वंधककौरवस्त्रियः ॥ समेत्य गोविंदकथा मिथो गृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जांबवति कौसले ॥ हे सत्यभामे कालिंदि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान्स्वयम् ॥ उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ॥ ७ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरितांघ्रिरेणुः ॥ निन्ये मृगेंद्र इव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥

नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार निर्मलकीर्त्ति पुरुषोके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लोग प्रशंसा कर रहेथे कि, इतनेमें अंधक और कौरवोंकी स्त्रियें एकत्र हो परस्पर भगवान् संबंधी जो बातें करती थीं वही कथा जो त्रिलोकीमें गाई हैं,तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ५॥ द्रौपदी बोली कि, हे रुक्मिणि हे भद्रे ! हे जाम्बवति ! हे सत्यभामा ! हे सत्या ! हे कालिंदी ! हे मित्रविंदा ! हे रोहिणी ! हे लक्ष्मणा ! और हे सोलह सहस्र श्रीकृष्णकी रानियो ! स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी मायासे मनुष्यलीला कर जैसे तुम्हारे साथ विवाह किया सो सब बातें हमारे सम्मुख कहो ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणी बोली कि, जरासन्धादिक राजाओंके संग जब धनुष उठाय शिशुपाल मुझे व्याहनेके लिये आया तब

अजीत योद्धाओंके मस्तकपर चरणधर जैसे भेंड़ बकरीयोंके समूहमेंसे सिंह अपने बलिको बेखटके ले आता है, उसी प्रकार मुझे ले आये, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र लक्ष्मीनिवासके चरणोंकी मैं पूजा करती हूं ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त सत्यभामा अपने विवाहकी बात कहने लगी कि, भ्रातृवधके परितापसे दुःखितहृदय मेरे पिता सत्राजितने मिथ्या कलंक लगाया, उसको मिटानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ऋच्छराज जाम्बवान्को जीत मणि लाकर मेरे पिताको दी तब मिथ्या कलंक लगानेसे मेरे पिताने भयभीत हो अक्रूरादिकको देना स्वीकार करके भी मुझे श्रीकृष्ण चन्द्रकोही दिया ॥ ९ ॥ जाम्बवतीने कहा कि मेरे पिताने इन वासुदेवको "यह अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं" ऐसे न जानकर इनसे सत्ताईस दिनतक संग्राम किया इसके उपरान्त "यह अपने स्वामी साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी हैं" इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय होनेपर मेरे पिताने

सत्यभामोवाच ॥ यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ॥ जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात् स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥ जांबवत्युवाच ॥ प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्ययुध्यत् ॥ ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी ॥ १० ॥ कालिंद्युवाच ॥ तपश्चरंतीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाऽऽशया ॥ सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥ मित्रविंदोवाच ॥ यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः ॥ भ्रातंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्यास्तु मेऽनुभवमंघ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥

चरणोंमें गिरकर भेंटकी नाईं मणिसहित मुझे भी अर्पण कर दिया यह सुनकर द्रौपदीने कहा कि तुम बड़ी श्रेष्ठ हो, इसके उत्तरमें जाम्बवती बोली कि, मैं तो इनकी दासी हूं ॥ १० ॥ कालिंदी बोली कि, मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणस्पर्शकी आशासे तप कर रही थी कि, भगवान्ने अर्जुन सहित आनकर मेरा हाथ पकड़ लिया उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं बुहारी देनेवाली हूं ॥ ११ ॥ मित्रविन्दा बोली कि, लक्ष्मीके वक्षनिवास भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयंवरमें जा, राजाओंको जीत और उनका तिरस्कार कर मेरे भाइयोंको भी जीत हाथियोंका शत्रु सिंह जैसे कुत्तोंके बीचमेंसे अपने भक्ष्यको ले आता है उसी प्रकार मुझे अपने पुरमें लेआये, उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरण धोनेकी सेवा मुझे जन्म

जन्ममें प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ १२ ॥ सत्या बोली कि, बड़े बलवान् पराक्रमी बड़े पैने सींगवाले और शूरवीरोंके घमण्डको चूर्ण करनेवाले राजाओंकी परीक्षा लेनेके कारण मेरे पिताके पाले हुये सात बैलोंको पकड जैसे बालक काष्ठकी बकरियोंके बच्चोंको बाँधता है, उसी प्रकार भगवान्ने बाँधलिये ॥ १३ ॥ पराक्रमही है मोल जिसका ऐसी मुझे हाथी, घोडे, प्यादों सहित व दासियों सहित मार्गमें क्षत्रियोंको जीत श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार लाये उनकी मैं सदा दासी रहूं, यही प्रार्थना है ॥१४॥ भद्रा बोली कि, हे द्रौपदी ! मेरा मन श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त जान मेरे पिताने मेरे मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाय मुझे अक्षौहिणी सेना सहित इन्हें देदिया ॥ १५ ॥ अनेक कर्मोंसे भटकनेवाली मुझे जन्म

सत्योवाच ॥ सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृंगान्पित्रा कृतान्क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ॥ तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबंध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥ य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरंगिणीम् ॥ पथि निर्जित्य राजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥ भद्रोवाच ॥ पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् ॥ कृष्णे कृष्णाय तच्चितामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥ १५ ॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच ॥ ममापि राज्ञ्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ॥ चित्तं मुकुंदे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ॥ बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥

जन्ममें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हो, जिन चरणारविन्दके स्पर्शसे मोक्षनाम कल्याण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ १६ ॥ लक्ष्मणा बोली कि, हे रानी द्रौपदी ! वारम्वार देवर्षि नारदजीके गाये हुये भगवान् वासुदेवके जन्म, कर्म, श्रवण कर, आश्चर्य है कि, लक्ष्मीजीने भी लोकपालोंको त्यागकर श्रीकृष्णचन्द्रकोही वरण किया है, इस प्रकार विचारकर मेरा मन भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लगगया ॥ १७ ॥ हे सुशीले द्रौपदी ! पुत्री पै हित करनेवाले बृहत्सेन नाम विख्यात मेरे पिताने मेरे मनकी बात जान श्रीकृष्णचन्द्रके आनेके लिये

उपाय किया ॥ १८ ॥ हे रानी द्रौपदी! जैसे तेरे स्वयम्वरमें अर्जुनके आनेके लिये मत्स्य रचा गया था, उसी प्रकार मेरे पितानेभी मत्स्य रचा यह सुन द्रौपदी बोली कि, फिर अर्जुनने उस मत्स्यको क्यों नहीं वेधा? इसके उत्तरमें लक्ष्मणाने कहा कि, तेरे स्वयम्वरकी मछली बाहर ढकी थी, भीतरसे नहीं ढकीथी इसलिये खंभमें लगाकर ऊपरको दृष्टि करके देखनेसे दिखाई देती थी और मेरे स्वयम्वरकी मछली ऐसी नहीं थी, किन्तु खंभकी जडमें धरे कलशके जलमें केवल परछांई दिखाई देती थी, देखना तो नीचे जलमें और वेधना ऊपर, ऐसी मछलीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना और कौन वेध सक्ता है? ॥ १९ ॥ स्वयम्वर रचा है, यह बात सुनकर संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले उपाध्याय अर्थात् सिखाने

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ॥ अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रा संपूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ॥ आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥ २१ ॥ आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः ॥ आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥ २२ ॥ सज्यं कृत्वाऽपरे वीरा मागधांबष्ठचेदिपाः ॥ भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविदंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥ मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ॥ पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशे परम् ॥ २४ ॥

वालोंको संग ले सहस्रों राजा मेरे पिताके पुरमें आनकर उपस्थित हुये, उस समय जैसा जिसका पराक्रम और जैसी जिसकी अवस्था थी, उसी प्रकार उसका पूजन मेरे पिताने किया, इसके पीछे कोई भी राजा मुझमें मन लगनेके कारण हाथमें धनुष उठाय मत्स्यके वेधनेको सभामें समर्थ न हुआ ॥२०॥२१॥ बहुत राजाओंने तो धनुष हाथमें ले पटक दिया, बहुतसे प्रत्यंचाको खैंच धनुषके चपेटसेही गिरपड़े ॥ २२ ॥ और जो शूर वीर जरासंध, अंबष्ठ, चंदेलीका राजा भीम, दुर्योधन, कर्ण यह लोगभी अपने अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाय "मछली कैसे लगी है"? यह भी जाननेको समर्थ न हुए ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त जलमें मछलीकी-परछाईं देख 'ऐसे मछली लगी है' सो जान उपाय करनेवाले अर्जुनने

बाण चलाया वह बाण मछलीसे स्पश तो होगया परन्तु मछली कटी नहीं ॥ २४ ॥ जब समस्त क्षत्रिय हारकर बैठ रहे, तब अभिमानियोंका अभि
मान दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धनुष हाथमें ले लीलापूर्वकही प्रत्यंचा चढाय धनुषमें बाण लगाय और एकही बार मछलीको जलमें
देख मध्याह्न समय अभिजित् नक्षत्रमें अर्थात् सब कार्य सिद्ध करनेवाले मुहूर्त्तमें मछलीको बाणसे काटकर पटकदिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ उस
समय स्वर्गमें देवताओंके नगारे बजनेलगे पृथ्वीमें "जयहो जयहो" इसप्रकार शब्द होने लगा और देवतालोग आनन्दमें मग्न हो आकाशसे फूलों
की वर्षा करनेलगे ॥ २७ ॥ हे द्रौपदी ! इसके उपरान्त लाजभरी हँसनयुक्त मुख और चोटीमें पुष्पमाला गुहे नवीन रेशमी सुन्दर धोती, चद्दर पहर

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ॥ भगवान् धनुरादाय सज्यं कृत्वाऽथ लीलया ॥ २५ ॥ तस्मिन्संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ॥ छित्त्वेषुणाऽपातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥ २६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ॥ देवाश्च कुसुमासारान्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रंगमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वल रत्नमालाम् ॥ नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कवरीधृतस्रक् ॥ २८ ॥ उन्नीय वक्त्रमुरुकुंतल कुंडलत्विड्गंडस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ॥ राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥ २९ ॥ तावन्मृदंगपटहाः शंखभेर्यानकादयः ॥ निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायका जगुः ॥ ३० ॥ एवं वृते भगवति मयेशे नृपयूथपाः ॥ न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥

और श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्तहृदय में बड़े
सुवर्णकी जडी रत्नोंकी माला हाथमें ले और मनोहर नूपुरवाले चरणोंसे मैं रंगभूमिमें आई ॥ २८ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्तहृदय में बड़े
केश और कुण्डलोंसे शोभायमान कपोलवाले मुखको उठाय, संतापको दूर करनेवाले हास्य कटाक्षपूर्वक चितवनसे चारों ओरके राजाओंको
देख धीरे धीरे जाकर मुरारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें माला डाली ॥ २९ ॥ उस समय मृदंग, ढोल, शंख, भेरी, नगारे, आदि बाजे
बजने लगे, नट और नृत्यकारी नाचनेलगे और गवैये गानेलगे ॥ ३० ॥ हे यज्ञसेनकी पुत्री द्रौपदी ! इसप्रकार मैंने जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र
को अपने वशमें किया, तब ईर्षा और कामसे आतुर राजाओंके यूथोंने यह बात नहीं सहन की ॥ ३१ ॥

इसके उपरान्त अत्यन्त शोभायमान चार घोडे जुते रथमें उस समय मुझे बैठाय शार्ङ्ग धनुषको ले कवच पहर चारभुजायुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र खडे होगये॥३२॥हे रानी द्रौपदी ! तब रथवान्ने सुनहरी साजका रथ हाँकदिया और जैसे मृगोंके देखते सिंह चलाजाता है,उसी प्रकार राजाओंके बीचमेंसे उनके देखतेही चलेगये ॥३३॥ उनको जाता देखकर बडे बडे क्षत्रिय राजा इनके पकडनेके लिये पीछे दौडे और कोई राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके रोकनेको आगेजाय धनुषको ऊंचा उठाय, जैसे सिंहके रोकनेको कुत्ता खडा होताहै, उसी प्रकार मार्गमें सावधान होकर खडे होगये ॥३४॥ शार्ङ्ग धनुषसे छूटेहुए बाणोंके समूहोंसे भुजा, पाँव, नार कटनेसे अनेक क्षत्रिय युद्धमें गिरगये और बहुतसे संग्रामको छोडकर भागगये ॥३५॥ इसके उप

मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ॥ शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामास कांचनोपस्करं रथम् ॥ मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥ ३३ ॥ तेन्वसज्जंत राजन्या निषेद्धुं पथि केचन ॥ संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥ ३४ ॥ ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वंघ्रिकंधराः ॥ निपेतुः प्रधने केचिदेके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ॥ कुशस्थलीं दिवि भुवि चापि संस्तुतां समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पिता मे पूजयामास सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ महार्हवासोलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥ दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटभरथवाजिभिः ॥ आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ॥ सर्वसंगनिवृत्त्याऽद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥

रान्त यादवोंके पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शोभायमान सूर्यकी आवरण करनेवाली ध्वजाके वस्त्रोंसे शोभित,और चित्र विचित्र बन्दनवार माला बँधी स्वर्ग और पृथ्वीमें जिसकी स्तुति हो ऐसी द्वारकापुरीमें अस्ताचलमें सूर्यके समान प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त मेरे पिताने सुहृदयतासे गोत्री और बंधुओंको बडे मोलके वस्त्र, गहने, शय्या, आसन और साजसे पूजन किया ॥ ३७ ॥ संपूर्ण संपत्तिमान् दासी और प्यादे, रथ, हाथी, घोडे और बहुत मोलके शस्त्रों सहित मुझे मेरे पिताने परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रको दिया ॥३८॥ यह आठों हम आत्मामें रमण करनेवाले

महिष्य ऊचुः ॥ भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ॥ निर्मुच्य संसृ
तिविमोक्षमनुस्मरंतीः पादांबुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥ ४० ॥ न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भोज्यमप्युत ॥
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनंत्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजःश्रियः ॥ कुचकुंकुमगंधाढ्यं
मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥ ४२ ॥ व्रजस्त्रियो यद्वांछंति पुलिंद्यस्तृणवीरुधः ॥ गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥
॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दशमस्कंधोत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वा पृथा सुब
लपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥ कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबंधं सर्वा विसिस्म्युरल
मश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥ इति संभाष्यमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ॥ आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सब संग त्याग अपने धर्मसे साक्षात् घरकी दासीहुई हैं ॥३९॥ इसके उपरान्त सोलह हजार एकसौ रानियाँ कहनेलगीं कि,
भौमासुरने दिग्विजयमें जिन हम राजकन्याओंको जीतकर रोक रक्खा था, उन्हें संसारसे छुडानेवाले अपने चरणारविन्दका स्मरण करतेजान भगवान्
श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं पूर्णकाम रहतेभी संग्राममें भौमासुर और उसके कुटुम्बको मार हमारे साथ विवाह किया ॥ ४० ॥ हे द्रौपदी ! हम चक्रवर्ती
राज्य और इन्द्रपदके भोगका भोगना नहीं चाहती और अणिमादिक सिद्धि ब्रह्मलोक, मोक्ष तथा वैकुण्ठधामकी भी चाहना नहीं करती परन्तु
गदाके धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके लक्ष्मीके कुचोंकी केशर लगे सुन्दरचरणारविन्दोंकी रज अपने माथेके ऊपर चढानेकी चाहना करती हैं
॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महात्मा होतेभी गाय चराते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणरजको जैसे गोप, गोपियें, भीलनियें, तृण और लतायें चाहना
करती हैं उसी प्रकार हम भी उनकी चाहना करती हैं ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे भाषाटीकायां स्वयंवरादिवर्णनो नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ दोहा–भयो समागम मुनिनसों, चौरासी अध्याय । संस्कार वसुदेवको, कियो सबनि सुखपाय ॥ ८४ ॥ श्रीशुकदे
वजी बोले कि,हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, सुभद्रा, राजाओंकी स्त्रियें और भक्त गोपियोंने सबके महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें
रानियोंका इसप्रकार प्रेम सुन नेत्रोंमें आँसूभर बडा आश्चर्य माना ॥ १ ॥ उस कुरुक्षेत्रमें इसप्रकार स्त्रियोंके संग स्त्री, पुरुषोंके संग पुरुष, बात चीत

करही रहे थे कि, इतनेहीमें श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करनेको मुनि लोग आये ॥ २ ॥ उनके नाम यह हैं, यथा—वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानंद, भारद्वाज और गौतम ॥ ३ ॥ शिष्यों सहित भगवान् परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति ॥ ४ ॥ द्वित, त्रित, एकत, उसीप्रकार ब्रह्माके पुत्र अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, तथा वामदेवादि और मुनि भी संपूर्ण आये ॥ ५ ॥ विश्वपूजित ऐसे मुनियोंको आये देख राजा आदि जो प्रथम बैठे थे और पांडव अर्थात् राजा युधिष्ठिरादि तथा कृष्ण बलदेवने शीघ्र उठकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त इन मुनियोंका यथायोग्य सब जनोंने पूजन किया और बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृ

द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ॥ विश्वामित्रः शतानंदो भारद्वाजोऽथ गौतमः ॥३॥ रामः सशिष्यो भगवान्वसिष्ठो गालवो भृगुः ॥ पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कंडेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥ द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रस्तथांगिराः ॥ अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ॥ पांडवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववंदितान् ॥६॥ तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोर्चयत् ॥ स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥७॥ उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः ॥ सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कात्स्न्येंन तत्फलम् ॥ देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥

ष्णचन्द्र 'भले आये' इस प्रकार मुनियोंसे कह आसन दे अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप और चन्दन इत्यादिसे पूजा करनेलगे ॥ ७ ॥ चुपचाप हो संपूर्ण जिसमें बैठे ऐसी सभामें धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक बैठे ब्राह्मणोंसे कहनेलगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, अहो ! बडा आश्चर्य है, आज हम सफल जन्म हुए और सब जन्मका साफल्य हमको प्राप्त हुआ, क्योंकि जिनका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है उन योगीश्वरोंका दर्शन हुआ ॥ ९ ॥ केवल तीर्थस्नानादिकोंको तप जानै, प्रतिमाहीको देवतास्वरूप मानै, आपसरीखे मनुष्योंका दर्शन, स्पर्शन व वार्त्तालाप, प्रश्न, नमस्कार व चरणपूजा आदिकी प्राप्ति, कहाँ होसकती है ? अर्थात् नहीं होसकती ॥ १० ॥

जलमय तीर्थ नहीं हैं, सो नहीं हैं, मृत्तिका शिलाओंके देवता नहीं हैं, सो नहीं हैं, क्योंकि जब बहुत दिनोंतक देवताओंकी पूजा करें; तब वह पवित्र करते हैं और साधु महात्मा लोग तो केवल दर्शनहीसे पवित्र कर देतेहैं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, पवन, वाणी, मन यदि इनकी भली भाँतिसे उपासना कीजाय तो भेदबुद्धिके कर्त्ता होनेसे पुरुषके अज्ञानको दूर कर सकते हैं और विवेकी पुरुष तो केवल दो

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥ ११ ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चंद्र तारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ् मनः ॥ उपासिता भेदकृतो हरंत्यघं विपश्चितो घ्नंति मुहूर्त्तसेवया ॥१२॥ यस्यात्म बुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः॥यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुंठमेधसः ॥ वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः॥१४॥

घड़ी सेवा करतेही अज्ञानको दूर कर देतेहैं ॥ १२ ॥जो पुरुष वात, पित्त, कफमय देहकोही आत्मारूप समझते हैं और स्त्री पुत्रादिकोंकोही अपना मानते हैं वा मूर्त्तिकोही पूज्य समझते हैं और जलहीको तीर्थ जानते हैं, और विवेकी पुरुषोको आत्मारूप अपने व पूज्य तीर्थ इत्यादि नहीं समझते वह गायका चारा ढोनेवाले बैल और गधेके समान हैं * ॥ १३ ॥ "यहाँ साधुओंकी महिमा दिखानेका तात्पर्य है मूर्त्ति तथा तीर्थका

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणोंसे कुरुक्षेत्रमें कहा कि, भौम जो प्रतिमा देवताओंकी होती है, उस प्रतिमामें जो प्राणी देवता मानते है कि, यह प्रतिमामें भगवान् बसे हैं यह प्राणी नहीं है, ऐसा मानने वाले प्राणी बैल वा गधाही हैं, तथा जलमें तीर्थ मानते हैं कि, मैंने इस तीर्थमें स्नान किया मेरी मुक्ति होगी नहीं कभी मोक्ष न होगी वह बैल और गधाही होगा, मुझको यह बडा आश्चर्य है कि, भगवान्ने वेद और शास्त्रके विरुद्ध वचन क्यों कहे ? प्रतिमाकी तथा गंगादिक तीर्थोंकी निंदा क्यों की ? यह बडा भारी सन्देह है ?

उत्तर—वेदमें और शास्त्रमें दो मार्ग हैं, एक कर्ममार्ग, दूसरा मोक्षमार्ग, संसारीजीव दोनों मार्गोंका सेवन करते हैं, जो जीव कर्ममार्गका सेवन करता है जैसे गृहस्थादिक प्राणी प्रतिमामें देवताको मानते हैं, तब सेवन करते हैं वह पुरुष प्रतिमामें देवताको जानते हैं, तथा प्रतिमाका पूजन करेंगे वा जलमें स्नान कियेसे मोक्ष होना मानेंगे तब निश्चयसे कर्म करनेवाले मनुष्यको गिनतीसे हीन सुख होगा और जो प्राणी प्रतिमाको देवस्वरूप और जलको मोक्षरूप मानेंगे तब वह प्राणी बैल गधा हैं, श्रीकृष्णने कर्ममार्ग सेवन करनेवाले जीवके लिये यह वचन नहीं कहा, जो जीव संसारके कर्म त्यागकर ईश्वरका भजन करता उसके लिये यह वचन कहा है, श्रीकृष्णके वचनमें भ्रम नहीं है ।

निषेध नहीं है और विशेष करके यह दिखाया है कि तीर्थको जानेमें बहुतेरा द्रव्य उठावे पूजामें घंटों बैठे, परन्तु महात्मा और हरिभक्तोंको देखतेही दुर्वाक्य कहे उन्हें अन्न तो क्या जल भी न दे, ऐसे भेद बुद्धिवालोंके लिये यह वाक्य है ज्ञानी पुरुष तो सबमेंही उसका प्रकाश देखते हैं," श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इसप्रकार अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह वचन सुनकर चकित बुद्धि हो वह सब ब्राह्मण चुप होगये ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कर्मोंमें अधिकार बहुत देरतक विचार करके समझा कि, लोकोंको शिक्षा देनेके कारण हमारी स्तुति करते हैं, इस प्रकार मुनीश्वर लोग बुद्धिसे निश्चयकर कुछेक मुसकाय जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले ॥ १५ ॥ कि तत्त्वके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हम और विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक जिनकी मायासे मोहित हुए हैं, क्योंकि जिस मायासे आप मनुष्यलीला करनेको

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ॥ जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयंतस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥ यन्मायया तत्त्व विदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ॥ यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥ अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बुध्यते यथा ॥ भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडंबनम् ॥ १७॥ अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ॥ स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥ १८ ॥ ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥१९॥

गूढ़ रहकर मुनीश्वरके समान चेष्टा करते हो इसलिये आपकी लीला बड़ी विचित्र है ॥ १६ ॥ चेष्टारहित और एक होकर भी तुम अपने आत्मासे इस विश्वको बहुत प्रकार पालन उत्पत्ति और रक्षा करते हो जैसे पृथ्वी घटादि विकारोंसे बहुत नामकी होती है, यदि तुम कहो कि, मैं कैसे उत्पत्ति पालन व संहार करता हूं मैं तो वसुदेवका पुत्र हूं ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, परिपूर्ण रूप तुमने वसुदेवके घर जन्म लिया है, यह विचित्र लीलामात्र है सत्य नहीं है ॥ १७ ॥ समयपर अपने भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंको दंड देनेके लिये आप शुद्ध सतोगुण रूपको धारण करते हो और अपनी लीलासे सनातन वेदमार्गको प्रवृत्त करते हो यद्यपि तुम किसीके पुत्र नहीं हो, परन्तु तो भी चारवर्ण और चार आश्रमके आत्मा परमपुरुष तुम हो, इसलिये ब्राह्मणोंका बहुत सत्कार करतेहो ॥१८॥ शुद्ध वेद तुम्हारा भीतरका रूप है; क्योंकि तप करना, वेद पढना, इन्द्रियोंको

रोकना इन कार्य और कारण दोनोंसे परे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! वेदके कारण आत्मा तुम हो और अपने बतानेवाले ब्रह्मकुलका पूजन करते हो और इसीलिये ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो ॥ २० ॥ इसकारण ईश्वर होकर जो तुम हमारा सत्कार करते हो, सो पुरुषोंकी शिक्षा करनेके लिये है और हम तुम्हारे संगसे कृतार्थ हुए, साधुओंकी गति आपका संग हुआ, इसलिये हमारा जन्म, विद्या, तप, दृष्टि, यह संपूर्ण सफल हुए, क्योंकि तुम सब कल्याणकी अवधि हो ॥ २१ ॥ अकुंठित बुद्धि और अपनी योगमायासे गूढमहिमावाले परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हम नमस्कार करतेहैं ॥ २२ ॥ मायारूपी चित्रसे ढके, सृष्टि इत्यादिकोंके कारण ईश्वर आत्मा तुमको आपके साथ

तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मञ्शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ॥ सभाजयसि सद्धाम तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ॥ त्वया संगम्य सद्गत्या यदंतः श्रेयसां परः ॥ २१ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ स्वयोगमायया च्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥ २२ ॥ न यं विदंत्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम् ॥ २३ ॥ यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ॥ नाममात्रेंद्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥ २४ ॥ एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विंद्रियेहया ॥ मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात ॥ २५ ॥ तस्याद्य ते ददृशिमांघ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥ २६ ॥

एकही स्थानमें रहनेवाले यह यादव और राजा लोग नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥ जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें मिथ्या पदार्थको सत्य मानताहै मनसे सिंह व्याघ्रादि रूप आप बन जाता है और जाग्रत् अवस्थाके स्वरूपको नहीं जानता ॥ २४ ॥ उसीप्रकार स्वप्नादि तुल्य विषयपदार्थमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति रूप मायासे चलायमान चित्त पुरुष विवेकके नाशसे आपको नहीं जानता ॥ २५ ॥ पापोंके समूहोंको दूर करनेवाले गंगारूपी तीर्थ जिसमेंसे प्रगट हुआ और दृढ़ योगवाले योगीजनभी जिनका केवल हृदयमें ध्यान करते हैं परन्तु तुम उनको भी दिखाई नहीं दिये और तुम्हारे चरणारविन्दोंका हमने प्रत्यक्ष दर्शन किया, इसलिये हमें भक्ति करनेका अनुग्रह करो । यदि कहो कि, भक्ति करके क्या करोगे ? पहलेके समान तप करजाओ

इसका उत्तर देते हैं कि, वृद्धिको प्राप्त हुई भक्तिसे जिनके लिंगशरीरका नाश होगया है, वही पुरुष तुम्हारे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं और नहीं * ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! इसप्रकार मुनीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और राजा धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिरसे आज्ञा माँग अपने अपने आश्रमोंमें जानेकी इच्छा करनेलगे ॥ २७ ॥ तब महायशवान् वसुदेवजी उन मुनियोंको जाते देखकर उनके समीप आय सावधान

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ॥ राजर्षे स्वाश्रमान्गंतुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥ तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ॥ प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयंत्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ॥ कृष्णं मत्वाऽर्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥

होकर कहनेलगे ॥ २८ ॥ वसुदेवजी बोले कि, संपूर्ण देवतारूप तुम हो सो आपको मैं वारम्वार प्रणाम करताहूँ, हे ऋषीश्वरो ! मेरी एक आपसे प्रार्थना है, सो कृपा करके सुनिये, जिन कर्मोंके करनेसे कर्मोंका नाश होता है, सो हमें बताओ ? ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़कर हमसे कल्याण पूँछने आये हैं इस प्रकार आश्चर्य मान नारदजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! जो वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र जाननेके कारण

* दृष्टान्त–विना गुण जाने वस्तुकी महिमा प्रगट नहीं होती यहाँ एक महात्माने कृष्ण नामकी बहुत प्रशसा करी कि, एकवार नाम लेनेसे अनेक पाप दूर होजाते हैं चेले बोले महाराज ! फिर यह मनुष्य तो दिनरात नामका स्मरण करते हैं, यह क्यों दु ख पाते हैं ? गुरुजी बोले महिमा नहीं जाननेसे यह दशा है, चेला मनमें सदेह करने लगा, तो बाबाजीने अपने पाससे एक अमूल्य रत्न दे चेलेसे कहा कुँजडीसे पूछ, इसका कितना शाक देगी, चेलेने जाकर पूछा, उसने सेरभर शाक देनेको कहा, फिर गुरुजीने सराफपर भेजा, उसने वीस रुपये कहे, फिर गुरुजीने जौहरीके पास भेजा, उसने करोड रुपये कहे फिर गुरुजीने सबसे बडे जौहरीके पास रत्न लेकर भेजा, तव उसने कहा, मेरे यहाँ असख्य द्रव्य है, परन्तु यह तो इसके द्रव्यके ब्याजमें है मेरे यहाँ इसका मूल्य देनेको द्रव्य नहीं, यह अमूल्य है, चेलेने गुरुजीसे सब वृत्तान्त कहा, तब गुरुजी बोले इसीप्रकार कृष्ण नामकी महिमा है, जो जानते हैं, वह ससारसागरके पार होजाते हैं और जो नहीं जानते वह कर्म भोगते हैं ॥

अपना कल्याण हमसे पूँछते हैं यह आश्चर्य नहीं है ॥ ३० ॥ क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रको बालक मानना अविद्यासे है इस संसारमें मनुष्योंके पास रहनेसे अनादर होता है; जैसे गंगातटका रहनेवाला पुरुष गंगाको छोड शुद्ध होनेके लिये और जलमें स्नान करनेको जाता है ॥ ३१ ॥ जिन श्रीकृष्ण चन्द्रका ज्ञान किसी कारणसे भी नष्ट नहीं होता सोई कहते हैं जैसे कालसे काँकरी फटजाती है और इस विश्वको उत्पन्न कर पालन और नाश करनेसे भी तुम्हारा ज्ञान नहीं जाताहै और जैसे बिजली चमक कर बिलाय जातीहै और जिसप्रकार गुणोंसे पूर्वरूपका नाश और रूपान्तरकी प्राप्ति होती है उसी प्रकार नहीं जाय है ॥३२॥ ऐसे जो कृष्ण अद्वितीय ईश्वर और अखण्डित ज्ञानस्वरूप हैं उन्हें और मनुष्य जैसे रविमण्डलको बालक राहु

सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् ॥ गांगं हित्वा यथाऽन्यांभस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥ ३१॥ यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनाऽस्य वै ॥ स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥ तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ॥ प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥ अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुंदुभिम् ॥ सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधुनिरूपितः ॥ यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥ चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा ॥ दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥ अयं स्वस्त्ययनः पंथा द्विजातेर्गृहमेधिनः ॥ यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३७ ॥

वा हिमसे आच्छादित मानै, उसी प्रकार क्लेश कर्म सुख दुःख गुणोंका प्रवाह और अपने कार्यरूप प्राणादिकसे आच्छादित मानै तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥३३॥ हे राजन्! इसके उपरान्त वह मुनि सब राजा और श्रीकृष्ण बलदेवके सुनते वसुदेवजीको संबोधन देकर बोले ॥ ३४॥ मुनि बोले कि, सब यज्ञोंके ईश्वर विष्णु भगवान्का यज्ञोंद्वारा श्रद्धासहित यजन करना यही सर्वोत्कृष्ट कर्मसे कर्म मिटानेका उपाय कहा है ॥३५॥ पण्डितलोगोंने शास्त्ररूप नेत्रोंसे चित्तोपशम और मोक्षका उपाय व शनैःशनैः अंतःकरणको शुद्ध करनेवाला सुगम स्वधर्म भी यही दिखाया है ॥ ३६ ॥ गृहस्थी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको यही कल्याणका मार्ग है कि, निष्काम होकर प्राप्तहुए शुद्ध द्रव्यसे ईश्वरका पूजन करे, क्योंकि महात्मा पुरुषोंका ही

द्रव्य यज्ञादिकोंमें लगताहै और लोभियोंका धन वृथा जाताहै ॥ ३७ ॥ हे वसुदेवजी ! बुद्धिमान्‌को उचित है कि, धनके फलरूप यज्ञ और दान करके धनकी इच्छाका त्यागन कर घरके भोग भोगकर स्त्री पुत्रकी तृष्णा त्यागे और संसारको नाशवान् जानकर अपनी प्रतिष्ठा और स्वर्गादिककी कामना त्यागे ❀ ॥ ३८ ॥ ग्राममें चाहना त्यागकर समस्त वीरपुरुष तप करनेके लिये वनको गये, हे वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,

वित्तेषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतेषणाम् ॥ आत्मलोकेषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ॥ ३८ ॥ ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो ॥ यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत् ॥ ३९ ॥ त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ॥ यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव ॥ ४० ॥

देव, ऋषि, पितृ इन तीनों ऋणोंसे इस जन्ममें उद्धार हो यज्ञ करके देवताओंका ऋण और विद्या पढकर ऋपियोंका ऋण तथा पुत्र उत्पन्न करके पितरोंका ऋण चुकावे, इन ऋणोंके चुकाये विना जो कर्मोंका त्याग करै तो वह पुरुष नरकमें गिरता है ॥ ३९ ॥ हे मतिमान् वसुदेव ! अब तुम दो ऋणोंसे तो छूटगये, विद्या पढे, इसलिये ऋषियोंके ऋणसे तो उद्धार होगये और पुत्र होनेके कारण पितरोंके ऋणसे उद्धार होगये, अब यज्ञ

* दृष्टान्त–एक पीपलसाहके छप्पन कोटि द्रव्य था परन्तु रहे वडे सूम, वेटे कहैं पिताजी ! गंगा पुष्कर स्नान करनेको चलो पुण्य करो. वह कहैं कि, पुण्य करनेसे कुछ नहीं होताहै, और जो हम चलें तो पीछे घर चोर लूटकर ले जायँगे, रास्तेमें लूट जाओग, वेटोंने कहा हम तो जायँगे, सतोंके दर्शन करैंगे वह वोले तुम मेरा घर लुटानेको फिरते हो, तव वेटे वोले हम भीख माँगते चले जायँगे, यह वोले तो नाम डेजाओगे एक काम करो, गहना कपडा सव उतार धरो मैले कपडे पहरो उन्होंने वैसाही किया, सो इन्होंने भोजनमात्र खर्च दिया और कहदिया कि, पुण्य मत कीजो जल्दी आइयो वे सब स्त्री बालक गये पीछे इन्होंने गढा खोद सव गहना द्रव्य गाढदिया जव वे स्नान कर आये, तव यह वोले तुम न्हाने गये पीछे चोरी होगई, अव बनियेसे उधार लेकर खाते हैं, हमारे पास कुछ नहीं रहा ऐसा कह बागमें जा बैठे अब यह विलाप करनेलगे कि, परमेश्वर भले स्नान करनेको गये भोजनसेही ठरहे सन्ध्यासमयतक रोते रहे, उस समय महादेवजी शैरको आये, और इनको देखकर वोले कि, द्रव्य तो कोठेमें दव रहा है यह कह गये, उन्होंने झट गढा खोद सव धन निकाल लिया और बाँटनेलगे. पीछेसे पीपलसाह वोले अरे दुष्टो ! जल्दी किवाँड खोलो नहीं तो इसी जगह अपना मस्तक फोडकर मरजाऊंगा, इन्होंने किवाढखोलनेमें विलम्ब किया उन्होंने जाना, कि सव धन लूटगया सो शिर फोडकर मरगये ।

करके देवताओंके ऋणसे उद्धार हो, गृहको त्याग संन्यास ग्रहण करो॥ ४० ॥ और हे वसुदेवजी ! तुमने बड़ी भक्तिसे जगत्के ईश्वर हरि भगवान्का पूजन किया था, इसीलिये स्वयं भगवान् हरिने आनकर तुम्हारे यहाँ अवतार लिया ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उदारमन वसुदेवजी इसप्रकार ब्राह्मणोंका वचन सुन मस्तक नवाय नमस्कार कर उन ऋषियोंसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विक्जनोंका वर्णन करनेलगे ॥ ४२ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! धर्मसे वरणको प्राप्त हो, ऋषि महात्माओंने वसुदेवजीको कुरुक्षेत्रमें उत्तम सामग्रियोंसे यजन कराया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जिस समय वसुदेवजीको यज्ञदीक्षा दीगई, उस समय कमलोंकी माला पहरे यादव स्नानकर शोभायमान वस्त्र धारण कर शृंगार कियेहुए बहुतसे राजा

वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् ॥ जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महात्मनाम् ॥ तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ त एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् ॥ तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ॥ स्नाताः सुवाससो राजन्राजानः सुष्ठ्वलंकृताः ॥ ४४ ॥ तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥ ४५ ॥ नेदुर्मृदंगपटहशंखभेर्यानकादयः ॥ ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ॥ जगुः सुकंठ्यो गंधर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिचन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ॥ पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुंडलैः ॥ स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥

आये ॥ ४४ ॥ और कंठमें धुकधुकी व सुन्दर वस्त्र पहरे केशर चंदन लगाये राजाओंकी स्त्रियें पूजाकी सामग्री हाथमें लिये यज्ञशालामें आईं ॥ ४५ ॥ मृदंग, ढोल, शंख, भेरी, नगारे आदि बाजे बजनेलगे नट और नृत्य करनेवाली नाचनेलगीं सूत तथा मागध स्तुति करनेलगे और स्वरीले कंठवाली गन्धर्वपत्नियें अपने पति सहित सुन्दर गीत गानेलगीं ॥ ४६ ॥ नेत्रोंमें अंजन लगाये हुए, शरीरमें मक्खन मले वसुदेवजीका विधिपूर्वक अठारह स्त्रियों सहित ऋत्विजोंने अभिषेक किया, जैसे तारागणों सहित चन्द्रमाका अभिषेक करते हैं ॥४७॥ हे राजन् ! उस समय

वस्त्र, कंकण, हार, नूपुर, कुंडल पहरे; स्त्रीसहित दीक्षा लिये, मृगछाला ओढे वसुदेवजी अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! रत्नोंके गहने और वस्त्र धारण किये वसुदेवजी यज्ञ करनेवाले तथा, सभामें बैठे पुरुषोंसहित वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रके समान शोभाको प्राप्त हुए ॥४९॥ भगवान् कृष्ण बलदेवजी भी संपूर्ण जीवोंके ईश्वर अपने अपने बांधवोंको संग लिये और अपने अपने पुत्र स्त्रियोंसहित अपने अपने ऐश्वर्यसे सुन्दर लगनेलगे ॥५०॥ यज्ञमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रादि प्रकृति और विकृतिरूप यज्ञ अर्थात् समस्त अंगके ज्योतिष्टोम, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञ और थोड अंगवाले शौर्यसत्रादिक द्रव्य अर्थात् साकल्यमंत्र कर्मसे ईश्वर भगवान्का पूजन करनेलगे ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त वसुदेव

तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ॥ ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥ तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैःस्वैर्बंधुभिरन्वितौ ॥ रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ईजेऽनुयज्ञं विधिना ह्यग्निहोत्रादिलक्षणैः ॥ प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः ॥ स्वलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो गोभूकन्या महाधनाः ॥ ५२ ॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ॥ सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥ ५३ ॥ स्नातोऽलंकारवासांसि बंदिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ॥ ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥ ५४ ॥ बंधून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा ॥ विदर्भकोसलकुरून्काशिकेकयसृञ्जयान् ॥ ५५ ॥

जीने समयपर आभूषणोंसे शोभायमान यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको आभूषणोंसे शोभायमान कर गौ, पृथ्वी, कन्या और बडे धनकी बडी दक्षिणा वेदविधिसे दी ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त पत्नीसंयाजावभृथ्य यज्ञांग कराकर बड़े ऋषि ब्राह्मणोंने यजमान वसुदेवजीको आगे कर रामह्रदमें स्नान कराया ॥ ५३ ॥ स्नानकर वसुदेव और उसीप्रकार उनकी स्त्रीने बंदीजनोंको अपने अंगके आभूषण इत्यादि दिये इसके उपरान्त वसुदेवजीने और आभूषण पहर चारों वर्णोंका दान करके पूजन किया और जीवोंमें श्वानको भी अन्न दिया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त स्त्री पुत्रों सहित अपने बंधुओंकी बहुत द्रव्यसे पूजा की, फिर विदर्भ, कोसल, कुरु, कैकय, इन देशोंके राजा और सभासद, तथा यज्ञ

करनेवाले देवतागण, मनुष्य, भूत, पितर, चारण गणका पूजन किया और फिर सब राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको सम्बोधन दे, यज्ञकी प्रशंसा कर अपने अपने देशोंके जानेकी इच्छा करनेलगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त धृतराष्ट्र, विदुर, पृथाके पुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन भीष्म जी, द्रोणाचार्य, कुंती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासजी और सुहृद, उनसे तथा नाते गोतेवाले बंधु यादव सबसे मिल, स्नेहकर खेदित चित्त विरहके कष्टसे अपने २देशोंको चलेगये और जो मनुष्य वहाँपर थे; वह भी अपने अपने देशोंको चलेगये ॥५७॥५८॥ राम कृष्ण उग्रसेनादिक यादवोंसे बड़ी पूजा और सत्कार पाय गोप ग्वालोंसहित नंदरायजीने बन्धुबान्धवोंके निकट स्नेहके कारण कुछ दिनतक वहीं वास किया ॥ ५९ ॥

सदस्यर्त्विक्सुरगणान् नृभूतपितृचारणान् ॥ श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसंतः प्रययुः क्रतुम् ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्रोनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ॥ नारदो भगवान् व्यासः सुहृत्संबंधिबांधवाः ॥५७॥ बंधून् परिष्वज्य यदून् सौहृदाऽऽक्लिन्न चेतसः ॥ ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥ ५८ ॥ नंदस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ॥ कृष्णरामोग्रसे नाद्यैर्न्यवात्सीद्बंधुवत्सलः ॥ ५९ ॥ वसुदेवोंजसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ॥ सुहृद्वृतः प्रीतमना नंदमाह करे स्पृशन् ॥ ६० ॥ वसुदेव उवाच ॥ भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ॥ तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताऽज्ञेषु सत्तमैः ॥ मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हि चित् ॥ ६२ ॥ प्राग कल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि ॥ अधुना श्रीमदांधाक्षा न पश्याम पुरः सतः ॥ ६३ ॥

अनायाससे मनोरथरूप महासागरको पार उतर प्रसन्नचित्त और सम्बन्धी लोगोंसे आवृत्त वसुदेवजी हाथ पकड़ नंदजीसे बोले ॥ ६० ॥ कि, हे भाई नंदजी ! मनुष्योंको स्नेहरूपी फाँसी ईश्वरने रची है, इसकारण इसे शूरवीर बलसे और ज्ञानी ज्ञानसे भी नहीं काट सकते ॥ ६१ ॥ तुमसे महात्माने जो अकृतज्ञ हमारे साथ मित्रता करी है, उसका पलटा हम किसी प्रकार नहीं देसकते, तोभी वह सदा एकरूप बनी रहतीहै कभी निवृत्त नहीं होती ॥ ६२ ॥ हे नंदरायजी ! पहले तो हम असमर्थ थे, इसलिये तुम्हारा कुछ उपकार न करसके और अब धनसे अंधेहो सम्मुख बैठे तुमसे

महात्माओंकी ओरको देखते भी नहीं ॥ ६३ ॥ हे मानदेनेवाले भाई नंदजी ! कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले मनुष्यको राजलक्ष्मी, चाहे न मिलै, क्योंकि इससे अंधा होकर पुरुष अपने आश्रित तथा बंधु बांधवोंको भी नहीं देखता ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसप्रकार स्नेहसे शिथिलचित्त आँसू नेत्रोंमें भरे वसुदेवजी नन्दजीकी मित्रताको स्मरणकर रोनेलगे ॥ ६५ ॥ नन्दरायजी यादवोंसे मान पाकर अपने मित्र वसुदेवजीको प्रसन्न करते भगवान् कृष्ण बलदेवजीके प्रेमसे "आज कल, आज कल" करते तीन महीनेतक वहीं रहे ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त बड़े मोलके आभूषण रेशमीवस्त्र तथा अनेक प्रकारके बड़े मोलकी वस्तुसे व्रजवासियों सहित नंदरायजीको पूर्ण करदिया ॥ ६७ ॥

माराज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ॥ स्वजनानुत बंधून् वा न पश्यति ययांधदृक् ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुंदुभिः ॥ रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥ नंदस्तु सख्युः प्रियकृत् प्रेम्णा गोविंदरामयोः ॥ अद्य श्व इति मासांस्त्रीन् यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६ ॥ ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबांधवः ॥ परार्ध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ॥ दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥ ६८ ॥ नंदो गोपाश्च गोप्यश्च गोविंदचरणांबुजे ॥ मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥ ६९ ॥ बंधुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥ ७० ॥ जनेभ्यः कथयांचक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥ यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

और वसुदेव उग्रसेन तथा कृष्ण बलदेवादि यादवोंकी दी हुई प्रीति सहित सामग्रीको ग्रहण कर, जिससमय नंदरायजी बिदा हुए, उससमय यादवोंने इनके संग एक बडीभारी सेना कर दी थी ॥ ६८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लगे मनको हटानेमें असमर्थ नन्दरायजी व गोप गोपियें मथुराको चले ॥ ६९ ॥ बंधु लोगोंके जानेपर श्रीकृष्णचन्द्र इष्टदेव माननेवाले यादव, वर्षाऋतु निकट आई देख, पीछे द्वारकाको चलेगये ॥ ७० ॥ और जाकर सब यादव वसुदेवजीका यज्ञ और कुरुक्षेत्रकी यात्रामें सुहृदोंका मिलाप यह सब प्रजासे कहा ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमकन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां वसुदेवयज्ञसमाप्तिवर्णनो नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्!
दोहा–विनय पचासीमें करी, कृष्ण और बलराम। मरे पुत्र मातहिदिये, पितुहि ज्ञान सुखधाम ॥ १ ॥ पुत्रोंके
कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनेके उपरान्त एकसमय वसुदेवजी आय चरणोंमें प्रणाम और रामकृष्णकी प्रशंसा कर प्रीतिपूर्वक कहनेलगे ॥ १ ॥ वसुदेवजी
प्रभावको जाननेवाला जो मुनियोंका कहा वचन कि, तुम्हारे पुत्र परमेश्वर हैं, सुनकर श्रीकृष्ण बलदेवका पराक्रम देख विश्वासयुक्त पुरुषके
संबोधन देकर बोले ॥ २ ॥ कि, हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे राम! हे महायोगिन्! हे संकर्षण! हे सनातन! इस विश्वके कारण प्रकृति जो,
भी कारण साक्षात् ईश्वर तुम हो, यह मैं जानताहूँ ॥ ३ ॥ जिसमें, जिस साधनसे, जिससे, जिस कारणसे, जिसका, जिसके लिये, जिसको, आप जो
जैसे और जब यह संसार स्थित है और स्थित कियाजाताहै उस सब भोग्य और भोक्ताके नियंता साक्षात् आपहीहो ॥४॥ हे अधोक्षज!

वसुदेवोऽभिनंद्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥
श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवंदनौ ॥ परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्
मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ॥ तद्वीर्यैर्जातविश्रंभः परौ ॥३॥ यत्र येन यता यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ॥ स्यादिदं
संकर्षण सनातन ॥ जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ ॥ आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो
भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ॥ सादृश्याद्द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥
बिभर्ष्यजः ॥ ५ ॥ प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ॥ पारतंत्र्याद्वै

अजन्मा हो, वे अपने रचेहुए इस अनेकप्रकारके जगत्में अपने रूपसे प्रवेश कर क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिरूप होकर उसका पोषण और भरण
करतेहो ॥ ५ ॥ पृथक् पृथक् शक्तिवाले प्राणादिक इस विश्वके कारण जाननेमें न आवें परमेश्वरको कारण रूपसे सर्वरूप कैसे कहतेहो, यह शंका
जब हुई तो उसका समाधान यह है कि, प्राणादिकोंमें जो शक्ति है सो ईश्वरके करनेवाले प्राण आदि तत्त्वमें जो शक्तिहै सो परमकारण ईश्वरकी
ही है, क्योंकि प्राणादिक ईश्वरके आधीनहैं और जैसे तीरमें वेधनेकी स्वतंत्र शक्ति नहीं है किन्तु पुरुषकी शक्तिसे वेधताहै, उसीप्रकार प्राणादिकोंमें
ईश्वरकी शक्ति है, प्राणादिक जड़है, और ईश्वर चैतन्य है और जड़पदार्थको चैतन्यकी आधीनता योग्यहै, वहाँ कहतेहैं कि, प्राणादिकोंमें शक्ति

नहीं है तो क्रिया कैसे करते हैं, उसका उत्तर यह है कि, चेष्टा करनेवाले प्राणादिककी चेष्टा यहाँ कुछ शक्ति नहीं है, जैसे पवनकी शक्तिसे तृण हिलतेहैं, उसी प्रकार क्रिया करतेहैं ॥ ६ ॥ चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र, व बिजलियोंकी स्फुरसत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता और पृथ्वीकी आधारता तथा गंध यह संपूर्ण तुम्हारीही शक्तियें हैं ॥ ७ ॥ हे देव ! जल उसकी तृप्ति करनेकी शक्ति जीवित करनेकी शक्ति व उसका रस यह सब तुम्हीं हो हे ईश्वर। वायुके जो ओज, सह, बल, चेष्टा और गतिहैं यह सब तुम्हारेही रूपहैं ॥ ८ ॥ दिशाओंमें जो खालीपन और दिशाएँ समस्त तुम्हारेही रूपहैं और आकाश तथा आकाशमें शब्द रूप गुण सब तुम्हारेही रूप हैं, वाणी ॐकार और नामरूप कहनेमें न आवे सो सब तुम्हीं हो ॥ ९ ॥ नेत्रोंमें दर्शनशक्ति और कानोंमें श्रवणशक्ति तथा जिह्वामें रसकी ग्रहणशक्ति इत्यादिक इन्द्रियोंमें विषयोंके ग्रहण करनेकी शक्ति तुम्हीं हो और

कांतिस्तेजः प्रभा सत्ता चंद्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् ॥ यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गंधोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥ तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः ॥ ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥८॥ दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ॥ नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥ इंद्रियं त्विंद्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ॥ अवबोधो भवान् बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥ भूतानामसि भूतादिरिंद्रियाणां च तैजसः ॥ वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥ ११ ॥ नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ॥ यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ॥ त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥

इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री देवता तुम्हीं हो देवता इन्द्रियोंको प्रेरणा करतेहैं, यह तुम्हारीही शक्तिहै, बुद्धिमें निश्चय करनेकी शक्ति तुम्हींहो और जीवोंको श्रेष्ठवार्त्ता जो स्मरण रहती है, यह तुम्हारीही शक्ति है ॥ १० ॥ पंचभूतका कारण तामसाहंकार, इन्द्रियोंके देवताओंका कारण सात्त्विकाहंकार, इन्द्रियोंका कारण राजसाहंकार और जीवोंके संसारका कारण प्रधान यह सब तुम्हीं हो ॥ ११ ॥ नाशवान् पदार्थमें जो शेष रहै अर्थात् जिसका नाश न हो सो तुम्हींहो, जैसे मृत्तिका, सुवर्णके बने घड़े; मूँदरी, कड़े इत्यादि सब नाशवान् हैं, मृत्तिका सुवर्णका नाश नहीं होता ॥ १२ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी वृत्ति साक्षात् परब्रह्ममें योगमायासे कल्पित है ॥ १३ ॥

इसीकारण यह पदार्थ आपसे अलग नहीं हैं, जब यह पदार्थ कल्पना कियेजाते हैं तभी प्रतीतिमात्रसे आपमें हैं और आप कारणतासे उनमें अनुगत हो और जब कल्पना नहीं किये जाते, तब निर्विकल्प आप ही अवशेष रहते हो ॥ १४ ॥ यह जो गुणोंका प्रवाहरूप संसार है, उसमें सबके आत्मा तुम्हारी संसारसे अलग गतिको नहीं जाननेवाले अज्ञानी पुरुष देहमें अभिमानसे करे कर्मसे इस संसारमें जन्मे हो ॥ १५ ॥ हे ईश्वर ! शोभायमान हाथ, पाँव, नाक, कान, सब इंद्रिययुक्त बहुत दुर्लभ देहको इस संसारमें कोई एक पुण्यके फलसे पाकर स्वार्थमें भूलकर मैंने अपनी अवस्थामें तुम्हारी मायासे वृथाही गँवाई ॥ १६ ॥ मैं ब्राह्मण हूं, क्षत्रिय हूं, इसप्रकार देहमें अभिमान और इस देहके संबंधी स्त्री पुत्रादिक

तस्मान्न संत्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ॥ त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाऽव्यावहारिकः ॥१४॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ॥ गतिं सूक्ष्मावबोधेन संसरंतीह कर्मभिः ॥ १५ ॥ यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ॥ स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥ १६ ॥ असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ॥ स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥ युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ ॥ भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ॥१८॥ तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविंदमापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ॥ एतावताऽलमलमिंद्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक्त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥ सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ॥ नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥

मेरे हैं इस अभिमानसे स्नेहके रस्सोंमें यह जगत् तुमने बाँध रक्खाहै ॥ १७ ॥ हम तुम्हारे पुत्र हैं तुम क्यों हमारी स्तुति करते हो, उसके उत्तर में वसुदेवजी कहते हैं कि, तुम हमारे पुत्र नहीं हो, किन्तु प्रधानपुरुष ईश्वर हो, और पृथ्वीके भाररूप क्षत्रियोंका नाश करनेको आपने अवतार धारण किया है, क्योंकि आप ऐसे ही हैं ॥ १८ ॥ हे दीनबंधो ! शरण प्राप्तहुए पुरुषके संसारभयको दूर करनेवाले ! मैं तुम्हारे चरणारविन्दकी शरणमें प्राप्त हुआहूं "तुम तो बड़े सुखी हो वृथा क्यों खेद करते हो ऐसे जो कदाचित् श्रीकृष्ण कहें" इसके उत्तरमें वसुदेवजी कहतेहैं कि, विषयकी लालसा इतनीही है कि, मरणधर्मा शरीरको आत्मा माना और तुम परमेश्वरको पुत्र माना ॥ १९ ॥ तुमने सूतिकागृहमेंही हमसे कहा था, कि

"जब तुम सुतपा और पृश्नि व कश्यपजी, अदिति रूप दंपती हुए, तब और अभी वसुदेवजी देवकी रूप दंपती हो में अजन्मा प्रथम निजधर्मकी रक्षाके लिये आपसे प्रगट हुआ, और अब भी प्रगट हुआहूं" आप असंग रहकर भी अनेक अवतार धारण करते हो और छोड़ते . सर्वव्यापक आपकी विभूति रूप मायाको कौन जान सक्ता है? ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इसप्रकार पिताके वचन सुन अधीनतापूर्वक नम्र हो मनोहर वाणीसे कहा॥२१॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पितः! हम पुत्रोंके विषयमें आपने जो तत्त्वसमूहोंका भलीभाँति निरूपण किया सो तुम्हारे वचनको हम यथार्थ मानते हैं ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ पितः! तुम और बडे भ्राता बलदेवजी तथा सब द्वारका

श्रीशुक उवाच ॥ आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ प्रत्याह प्रश्रयाऽऽनम्रः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ॥ यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥ ॥ २२ ॥ अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ॥ सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ॥ आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥ २४ ॥ खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ॥ आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन्वसुदेव उदाहृतः ॥ श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥ २६ ॥ अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ॥ श्रुत्वाऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥ २७ ॥

वासी यादव और स्थावर जंगम जगत्को ब्रह्मरूप जानो ॥ २३॥ यहाँ एक शंका है, नाना विकारवान्को ब्रह्मरूपता कैसे बने? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, आत्मा एक स्वयंप्रकाश नित्य सबसे पृथक् निर्गुण है, अपने रचे सत्त्वगुण रजोगण तमोगुणसे उत्पन्न देहमें बहुत प्रकार प्रतीत हो फिर जैसी देह उसमें वैसाही प्रतीत होता है जैसे आकाश, पवन, ज्योति, जल, पृथ्वी यह पंचभूत घट पटादि पदार्थोंमें कहीं प्रगट कहीं अंतर्द्धान कहीं थोडे कहीं बहुत प्रतीत होय हैं ऐसे एक आत्मा ब्रह्मस्वरूप अनेक रूपसे प्रतीत होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कहा वचन सुन भेदभाव त्याग प्रसन्नमन हो वसुदेवजी चुप होगये ॥२६॥ हे कुरुश्रेष्ठ! फिर अपने

पुत्र, गुरुपुत्रको पीछे ले आये, यह वृत्तान्त सुन अत्यन्त आश्चर्य मान, कंसके मारे पुत्रोंकी सुधि करके सब जगत्की देवतारूप देवकी व्याकुल हो नेत्रोंमें ऑशू भर श्रीकृष्ण बलदेवको बतलाकर इसप्रकार दीन वचन कहने लगी ॥ २७ ॥ २८ ॥ देवकी बोली कि, हे राम ! हे राम ! हे अप्रमेय आत्मन् ! हे कृष्ण ! हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! आप विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! और आदिपुरुष हो तुमको मैं जानती हूँ ॥ २९ ॥ कालसे सत्त्वगुणका नाश होनेपर शास्त्रकी मर्यादा त्यागनेवाले पृथ्वीपर भाररूप राजाओंका नाश करनेके लिये तुम मेरे यहाँ आनकर प्रगट हुए हो ॥ ३० ॥ हे सबके कारण ! हे विश्वके आत्मा ! तुम्हारा अंश पुरुष है, उसकी अंश माया, उस मायाके अंश सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंके परमाणु

कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् ॥ स्मरंती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥ देवक्युवाच ॥ राम रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर ॥ वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञा मुच्छास्त्रवर्तिनाम् ॥ भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥ ३० ॥ यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ॥ भवंति किल विश्वात्मस्तं त्वाऽद्याहं गतिं गता ॥ ३१ ॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ ॥ आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तथा मे कुरु तं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ॥ भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥३३॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संचोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ॥ सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥३४॥

मात्रलेशसे इस विश्वकी उत्पत्ति पालन और प्रलय होती है, ऐसे तुम हो, सो मैं तुम्हारी शरण आई हूं ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वर ! चिरकालसे मरेहुये पुत्रको लानेके लिये गुरुने आज्ञा की, तब तुमने यमराजके लोकमेंसे उस पुत्रको लाकर गुरुको गुरुदक्षिणारूप अर्पण किया, उसी प्रकार मेरी कामना भी पूर्ण करो अर्थात् कंसके मारेहुए पुत्रोंको मैं यहाँ लायेहुए देखना चाहती हूं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब माता देवकीने इसप्रकार कहा, तब राम कृष्ण योगमायाका आश्रय ले सुतललोकमें गये ॥ ३४ ॥

वहाँ दैत्यराज बलिने विश्वके आत्मा देवता अपने इष्टदेव कृष्ण बलदेवको सुतललोकमें आया देख और उनके दर्शनसे आनन्द हो, परिपूर्ण अंतःकरणसे परिवार सहित शीघ्र उठकर नमस्कार किया ॥ ३५ ॥ और प्रीतिसहित आसन लाकर उन महात्माओंको आसनपर बैठाया फिर चरण पखार ब्रह्म पर्यन्त जगत्को पावन करनेवाला जल, दैत्यराज बलिने और उसके परिवारने अपने मस्तकपर चढ़ाया ॥ ३६ ॥ उत्तम वस्त्र आभूषण, लेपन, तांबूल, दीप और अमृतसे भोजन आदि अनेक वैभवसे उनकी पूजा की और अपना तन, धन, कुटुम्ब सब अर्पण किया ॥ ३७ ॥ हे नृप ! राजा बलि भगवान्के चरणारविन्दको बारम्बार मस्तकपर धर प्रेमसे द्रवीभूतहुई बुद्धिसे आनन्दके आँशू नेत्रोंमें भरे पुलकितशरीर हो

तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराट् विश्वात्मदेवं सुतरां तथात्मनः ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥ तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ॥ दधार पादाववनिज्य तज्जलं सवृंद आब्रह्म पुनद्यदंबु ह ॥ ३६ ॥ समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ तांबूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥ स इंद्रसेनो भगवत्पदांबुजं बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ॥ उवाच हाऽऽनंद जलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥ बलिरुवाच ॥ नमोऽनंताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ॥ रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥ ४० ॥ दैत्यदानवगंधर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥

इसप्रकार कहनेलगे ॥ ३८ ॥ राजा बलि बोले कि, समस्त विश्व फणके ऊपर धारण करनेवाले शेषरूप तुमको प्रणाम है और सब जगत्के रचनेवाले तुमको नमस्कार है, सांख्यशास्त्र योगशास्त्रके विस्तार करनेवाले ब्रह्म परमात्मा तुमको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ योगीश्वरोंकोभी तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है सो हमको हुआ, यह आश्चर्य नहीं है, यद्यपि प्राणियोंको तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, परन्तु तो भी तुम्हारी कृपासे किसी किसीको सुलभ होजाताहै, इसलिये रजोगुणी, तमोगुणी स्वभाववाले हम असुरोंको अकस्मात् आपने दर्शन दिया ॥ ४० ॥ बडा आश्चर्य है, हम शत्रु सत्त्व

गुणी भक्तोंसे भी बडभागी हैं,दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच भूत और प्रमथोंमें मुख्य हैं॥ ४१ ॥ हम और हमसे दूसरे लोगोंने शास्त्रकी रक्षा करनेवाले सत्त्वगुणी स्वभाव तुमसे नित्य शत्रुता कररक्खी है, उन्हें भी आपका दर्शन प्राप्त होजाता है ॥ ४२ ॥ कोई एक (शिशुपालादि) वैर भक्तिसे तुमको जैसे पागये, और गोपी आदिकोंने काम भक्तिसे जैसे तुम्हें पाया उसी सत्त्वगुणसे देवता तुमको प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! इसप्रकार तुम्हारी योगमायाको जब योगेश्वर भी नहीं जानते, तो हम असुर क्या जान सकते हैं ? ॥ ४४ ॥ इसलिये हमपर आप ऐसी दया करो कि, जिससे निष्काम पुरुषोंके ढूंढने योग्य तुम्हारे चरणारविन्दका आश्रय ले चरणारविन्दसे अलग घर रूप कुएंसे निक

विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ॥ नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्बद्धवैरेण
भक्त्या केचन कामतः ॥ न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥ इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ॥
न विदंत्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥ ४४ ॥ तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्दधिषणान्यगृहांधकू
पात् ॥ निष्क्रम्य विश्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तिः शांतो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥ शाध्यस्मानीशितव्येश
निष्पापान्कुरु नः प्रभो ॥ पुमान्यच्छ्रद्धया तिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसन्मरीचेः
षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेंऽतरे ॥ देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्य
कर्मणा ॥ हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥

लकर विश्वकी रक्षा करनेवाले वृक्षकी जड़ोंमें आपहीसे गिरे फल फूलको भोजन कर मैं शान्त चित्त होकर अकेला विचरूं, अथवा सबके सहाय करनेवाले महात्मा पुरुषोंके संग विचरूं ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! सब जीवोंके स्वामी ! हमें शिक्षा देकर पापरहित निष्पाप करो, कि जिस शिक्षाको श्रद्धापूर्वक पालनेसे पुरुषोंके विधिनिषेधरूप बन्धन छूट जाते हैं ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, इस स्वायंभुव मन्वन्तरमें मरीचि प्रजापतिके ऊर्णा स्त्रीमें छः पुत्र हुये एक समय देवतारूप छहों पुत्र अपनी कन्याके पीछे भाजे और ब्रह्माजीको देखकर हँसे ॥ ४७ ॥ इस पापकर्मसे असुरयोनिको प्राप्त हुये, फिर उन्होंने हिरण्य कशिपुसे जन्म लिया, सोई छहोंने हिरण्यकश्यपके यहाँसे योगमायाके प्रेरे ॥ ४८ ॥

देवकीके उदरमें जन्म लिया, जो कंसके हाथसे मारेगये, सो अब वह तुम्हारे पास हैं,इन्हें देवकी अपने पुत्र मानकर शोच करती है ॥ ४९ ॥ माता देव
कीका शोक दूर करनेके लिये यहाँसे इन छहों पुत्रोंको लेजायँगे इसके उपरान्त शापसे छूट खेद रहित होकर यह देवलोकमें जायँगे॥५०॥स्मर उद्गीथ, परि
ष्वंग, पतंग, क्षुद्रभुक् और घृणी ये जो छः पुत्र हैं, सो मेरे प्रसादसे मुक्त होजायँगे ॥ ५१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! इसप्रकार जब कहा तब
राजा बलिसे पूजित हो, श्रीकृष्ण बलदेव उन पुत्रोंको संगले,द्वारकापुरीमें आय माता देवकीको देदिये ॥ ५२ ॥ पुत्रोंके स्नेहसे स्तनोंमें दूध चुवै, ऐसी

देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः ॥ सा ताञ्छोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेंऽतिके ॥ ४९ ॥ इत
एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ॥ ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यंति विज्वराः ॥ ५० ॥ स्मरोद्गीथः परिष्वंगः
पतंगः क्षुद्रभृद् घृणी ॥ षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यंति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तान्समादाय इंद्रसेनेन पूजितौ ॥
पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ परिष्वज्यांकमारोप्य
मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥ अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ॥ मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः
प्रवर्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वाऽमृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥ नारायणांगसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ ते
नमस्कृत्य गोविंदं देवकीं पितरं बलम् ॥ मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥

देवकी उन बालकोंको देख गोदमें बैठाय छातीसे लगाय बारम्बार माथा सूँघनेलगी ॥५३॥ सृष्टिको उत्पन्न करनेवाली विष्णु भगवान्की मायासे मोहित
और पुत्रोंको छातीसे लगानेके कारण मग्न देवकी प्रसन्न होकर पुत्रोंको स्तन पिलाने लगी ॥५४॥ गदाके धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके
पीनेसे बचा अर्थात् भगवान्का प्रसाद वह अमृतरूप देवकीका दुग्ध पानकर और श्रीकृष्णके अंग स्पर्श करनेसे "हम देवता हैं" यह ज्ञान होनेसे वह
देवता गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र और देवकी तथा वसुदेवजीको नमस्कारकर सब प्राणियोंके देखते देवताओंके धाम देवलोकमें चलेगये ❀ ॥ ५५॥५६॥

* शंका—देवकीके सब बालकोंको श्रीकृष्णने लादिया, तब वह सब बालक देवकीके स्तनका दूध पीने लगे, श्रीमद्भागवतमें लिखाहै कि, ऐसा देवकीके स्तनोंका दूध था जिसको बालक पीरहथे, पहिले तो भगवान्ने देवकीके स्तनोंका दूध पियाया, जो दूध शेष रहाथा उसको देवकीके और बालकोंने पिया अब यहाँ मुझको यह सन्देह है कि, श्रीकृष्ण तो जन्मलेतेही गोकुलको चलेगये देवकीका दूध नहीं पिया फिर व्यासजी क्यों कहते हैं, देवकीके स्तनोंका दूध भगवान्ने पिया, और जो बाकी रहा उसको और पुत्रोंने पिया ? ॥

हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित ! मरेहुये पुत्रोंका आगमन और फिर गमन देखकर विस्मित देवकीने जानलिया कि, यह सब श्रीकृष्णचन्द्रकी रची हुई माया है ॥ ५७ ॥ अनंतशक्ति परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे ऐसे आश्चर्ययुक्त अनंत चरित्र हैं ॥ ५८ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिक ऋषीश्वरो ! व्यासनंदन महात्मा शुकदेवजीके कहेहुए और सब जगत्के पापोंके दूर करनेवाले, भक्तोके कानोंको आनन्ददायक अमृतरूपी कीर्त्ति मुरारी भगवान्के चारित्रोंको भगवान्में चित्त लगाकर जो पुरुष श्रवण करै अथवा श्रवण करावे, वह पुरुष काल और मायासे रहित भगवान्के

तद्दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ॥ मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥ एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य संत्यनंतानि भारत ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥ जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम॥५९॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे मृताग्रजानयनं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥ यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ॥ गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥

परमधामको प्राप्त होताहै ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मृताग्रजानयनं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

दोहा—हरण सुभद्राको कियो, छयासी अर्जुन धीर ॥ कियो सुखी श्रुतदेवको, अरु द्विजको यदुवीर ॥ ८६ ॥ राजा परीक्षित पूंछने लगे कि हे योगीश्वर श्रीशुकदेवजी ! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रकी भगिनी सुभद्रा जो मेरी दादी थी उसके संग अर्जुनने जिसप्रकार विवाह किया, सो मेरी सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! एक समय सामर्थ्यवान् अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये

—उत्तर—शास्त्रमें लोकमें तीन प्रकारका कर्म वर्णन होता है, एक वचनसे कर्म होताहै, दूसरा मनसे कर्म होताहै, तीसरा शरीरसे कर्म होताहै, इन तीनों कर्मोंमें कोई कर्म छोटा नहीं है, अरु कोई कर्म बडा भी नहीं है यह तीनों कर्म समान हैं देवकीके दूधको भगवान् सदा मनसे पीतेरहे, जो मनसे दूध पिया तो वचन तथा शरीरसे दूधका पीना सत्य होगया, इसलिये व्यासजीने देवकीके दूधको कहा ॥

पृथ्वीपर भ्रमण करता करता प्रभासतीर्थमें पहुँचा ॥ २ ॥ वहाँ जाय अपने मामाकी पुत्री सुभद्रा बलदेवजी दुर्योधनको व्याह देंगे और वसुदेवादिकोंकी इसमें सम्मति नहीं है, यह बात सुन उस सुभद्राके लेनेकी इच्छासे अर्जुन संन्यासी बन तीन दंड धारणकर द्वारकापुरीमें आया ॥ ३ ॥ अपने कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छासे अर्जुनने चार महीने वर्षाऋतुके द्वारकापुरीमें बिताये, पर वहाँके मनुष्योंको और बलरामजीको भी इस छलकी खबर न हुई, इस कारण वह उसका नित्यप्रति सन्मान करते थे ॥ ४ ॥ एक दिन संन्यासीभावसे अर्जुनका निमंत्रणकर घरमें बुला श्रद्धापूर्वक बलदेवजीने जो भोजन परोसा सो अर्जुनने भोजन किया ॥ ५ ॥ वहाँ शूरवीरोंके मनको हरनेवाली एक अत्यन्त सुन्दर कन्या अर्जुनने

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ॥ तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदंडी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः ॥ पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥ एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमंत्र्य तम् ॥ श्रद्धयोपाहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥ सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ॥ प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥ सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् ॥ हसंती व्रीडितापांगी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥ तां परं समनुध्यायन्नंतरं प्रेप्सुरर्जुनः ॥ न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ॥ जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चाऽऽरुंधतो भटान् ॥ विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥

देखी, जिसपर दृष्टि पड़तेही उसके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित होगये और रतिके अभिप्रायसे चलायमान मन सुभद्रामें लगगया ॥ ६ ॥ स्त्रियोंका मन हरनेवाले अर्जुनको देख सुभद्राने भी अपना मन अर्जुनमें लगाया और लाजभरे नेत्रोंसे कटाक्षसहित उसकी ओर देखनेलगी ॥ ७ ॥ बड़े बलवान् कामदेवसे चलायमान चित्त अर्जुनने केवल सुभद्राका ध्यान और हरण करनेका अवसर देखते बलदेवजीके किये सन्मानसे कुछ सुख नहीं पाया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त बडी देवीकी यात्रामें रथमें बैठकर निकली सुभद्राको माता, पिता, देवकी, वसुदेव, और श्रीकृष्णकी सम्मतिसे महारथी अर्जुनने हरण किया ॥ ९ ॥ रथमें बैठ धनुष हाथमें ले अर्जुन चारों ओरसे रोंके प्यादोंको भजाय उनके पुकारतेही जैसे सिंह अपने भागको ले

जाताहै, उसी प्रकार लेगया ॥ १० ॥ अर्जुन सुभद्राको लेगया, यह बात श्रवणकर जैसे पूर्णमासीको समुद्र उमडता है, उसीप्रकार क्रोधितहुए बलदेवजीको सुहृदोंसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शान्त किया ॥ ११ ॥ फिर बलदेवजीने अति आनन्दपूर्वक दहेजमें उन दूलह दुलहनके लिये अमूल्य सामान, हाथी, घोडे, रथ, दास, और दासियें आदि भेजे ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे महाराज परीक्षित! श्रीकृष्णचन्द्रकी एक भक्तिसे पूर्णमनोरथ, शान्तस्वभाव विवेकी विषयोंमें अनासक्त एक श्रुतदेव नाम प्रसिद्ध ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था ॥ १३ ॥ विना उपाय करे मिले भोजनहीसे निर्वाह करके अपने कर्मोंको करे, ऐसे गृहस्थी ब्राह्मण विदेहदेशकी मिथिलापुरीमें वास करता था ॥ १४ ॥ जितनेमें शरीरका

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ॥ गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ॥ महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ॥ कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शांतः कविरलंपटः ॥ १३ ॥ स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ॥ अनीहयाऽऽगताऽऽहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ॥ नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः ॥ मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥ तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् ॥ आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥ १७ ॥ नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ॥ अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥ १८ ॥

निर्वाह हो, उतना भोजन प्रतिदिन अकस्मात् उसके लिये आजाता था, और अधिक नहीं, परन्तु उतनेहीमें संतोष करके यथायोग्य संध्योपासनादि कर्म करता था ॥ १५ ॥ हे परीक्षित्! जैसा श्रुतदेव ब्राह्मण भक्त था, उसी प्रकार मिथिलादेशका पालन करनेवाला जनकके वंशमें हुआ निरभिमान बहुलाश्व नामसे विख्यात राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था, ब्राह्मण और राजा यह दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके प्यारे हैं ॥ १६ ॥ उन दोनों भक्तोंके ऊपर प्रसन्न हुए सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्के लाये रथमें बैठ मुनियोंको संगले विदेह देशको चलेगये ॥ १७॥ तब नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यासजी, परशुराम, असित, अरुणि मैं (शुकदेवजी) बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन, आदि ऋषि भी संगगये थे ॥ १८ ॥

हे राजन्! मार्गमें मुनियोंको संगलिये श्रीकृष्णचन्द्र जहाँ जहाँ गये तहाँ तहाँ पुरवासी उनके लिये अर्घ्य हाथमें लेकर उनकी स्तुति करतेथे, जैसे ग्रह उदयहोकर सूर्यको अर्घ्य देते हैं ॥ १९ ॥ आनर्त्तदेश, धन्व, कुरु, जांगल, कंक, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, कैकय, कोसल, अर्ण इन देशोंके वासी स्त्री पुरुष उदार हँसनियुक्त स्नेहभरी चितवनवाले श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द दृष्टि भरकर देखनेलगे ॥ २० ॥ अपनी कृपादृष्टिसे अज्ञान दूरकर पुरुषोंकी दृष्टिको कल्याण और तत्त्वज्ञान देते, दिशाओंके अंततक व्याप्त पापनाशक देवता और मनुष्योंसे गाये अपने यशको श्रवण करते

तत्रतत्र तमायांतं पौरा जानपदा नृप ॥ उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥ १९ ॥ आनर्तधन्वकुरुजांगलकंकमत्स्यपांचालकुंतिमधुकैकयकोसलार्णाः ॥ अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥ तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ॥ शृण्वन्दिगंतधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥ तेच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ॥ अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ॥ कैर्धृतांजलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥ २३ ॥

त्रिलोकीके गुरु श्रीकृष्णचन्द्र धीरे २ विदेहादिक देशोंमें पहुँचे ॥ २१ ॥ हे राजा परीक्षित्! वह संपूर्ण पुरवासी देशवासी जन श्रीकृष्णचन्द्रको आया सुन हर्षितहो पूजाके योग्य सामग्रियोंको हाथमें ले सम्मुख आये ॥ २२ ॥ उत्तमयशी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर प्रफुल्लित मुख और अंतःकरणवाले पुरुष हाथ जोड मस्तक झुकाकर नमस्कार करने लगे और उक्त मुनियोंको भी प्रणाम किया * ॥ २३ ॥

* शंका—मुनीश्वर लोग विदेह राजाके नगरको सदा आते थे और नगरमें कुछ दिन वास करके अपने अपने आश्रमोंको चलेजाते थे, जब कि, जनकपुरमें बडे बडे महात्मा और प्रजागण बसते थे, तब वह पुरवासी प्रजागण और महात्माजन मुनियोंको देखते थे और पहिचानते थे, फिर व्यासजीने क्यों कहा कि, प्रथम जिन मुनियोंको ब्राह्मणने सुन रक्खा था उन मुनियोंका पूजन किया, इस बातसे यह जान पडता है कि, नारदादि मुनि जनकपुरीको कभी भी नहीं गये, नये नये कृष्णके साथ गये हैं, इसलिये व्यासजी कहते हैं कि, जनकपुरवासी प्रजा देखे नहीं थे परन्तु सुने तो थे कि, अमुक अमुक मुनि पृथ्वीपर हैं, यह शका बडी भारी है!

उत्तर—"श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान्" इस श्लोकमें विद्वान् पुरुष सब दिन तथा वर्षको तथा बहुत दिनको बहुत पहिले नहीं मानतेथे बहुत दिन तथा वर्षसे तो पुरवासी प्रजा सब मुनियोंको जानते थे परन्तु जब श्रीकृष्णके साथ सब मुनि आये तब सब मुनियोंको पुरवासी प्रजाने देखा, उससमयसे पहिचाना और पहिलेसे तो सुन रक्खा था, मुनियोंको पुरवासी ऐसा अर्थ है क्योंकि जनकपुरमें बडा कोलाहल मच गयाथा कि श्रीकृष्णचन्द्र जनकपुर को आते हैं, उनके संग अमुक अमुक मुनि लोग भी आते हैं, ऐसा पुरवासियोंने सुनाथा तब जिन जिनके आनेको सुनाया सो सब आगये, उन सबका यथायोग्य पूजन किया "श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान्" का अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है और ऐसा नहीं किया कि कभी देखे नहीं थे सुने ही थे ॥

जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये आये हैं, इसप्रकार बुद्धिसे निश्चयकर मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें आनकर गिरपड़े ॥ २४ ॥ मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेवजी इन दोनोंमें एक संग हाथ जोड़ ब्राह्मणोंसहित श्रीकृष्णचन्द्रका आतिथ्यभाव कर निमंत्रण किया ॥२५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दोनोंका निमंत्रण मान दोनोंका प्रिय करनेके लिये ब्राह्मणोंसहित दो रूप धर दोनोंके घरगये, उससमय राजा और ब्राह्मणोंने यह नहीं जाना कि इन्होंने दो रूप करलिये हैं ॥ २६ ॥ उदारमन बड़ी भक्तिसे हृदयमें हर्ष, नेत्रोंमें आँशूभरे जनकवंशी राजा बहुलाश्व असत् पुरुषोंके सुननेमें भी न आवैं, ऐसे भगवान्को अपने घरलाय बिछाये

स्वानुग्रहाय संप्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥ २४ ॥ न्यमंत्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहतांजली ॥ २५ ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ॥ उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥ २६ ॥ श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः स्वगृहागतान् ॥ आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः ॥ २७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ॥ नत्वा तदंघ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥ २८ ॥ सकुटुंबो वहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् ॥ गंधमाल्यांबराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ॥ पादावंकगतौ विष्णोः संस्पृशन्शनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ॥ अथ नस्त्वत्पदांभोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥ ३१ ॥

आसनपर सुखसे बिठाया, और वह सुखसे यथायोग्य आसनपर बैठे ॥ २७ ॥ इसीप्रकार मुनियोंको नमस्कारकर उनके चरणोंको धोय लोकोंको पवित्र करनेवाला चरणोंका जल ॥ २८ ॥ कुटुम्ब सहित राजा बहुलाश्वने अपने माथेपर चढ़ाय ईश्वर और ईश्वरके समान ब्राह्मणोंका गंध, पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण, दीप, अर्घ्य, गौ, बैल, इन सामग्रियोंसे पूजन किया ॥ २९ ॥ भोजनकर तृप्त हुए उन ब्राह्मणों व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रसन्न करता गोदमें धरे श्रीकृष्णके चरण धीरे धीरे दाबता वह यह कहनेलगा ॥ ३० ॥ राजा बहुलाश्वने कहा कि हे समर्थ ! सब प्राणियोंके

आत्मा साक्षी स्वयंप्रकाश तुम्हीं हो, इसलिये तुम्हारे चरणारविन्दका स्मरण करनेवाले मुझे तुमने दर्शन दिया है ॥ ३१ ॥ "मेरे एकान्त भक्तसे बढ़कर शेषजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माजी भी प्यारे नहीं हैं" यह जो तुमने कहा, सो अपना वचन सत्य करनेके लिये आपने हमको दर्शन दिया ॥ ३२ ॥ भक्त तुम्हें प्रियहैं, इसप्रकार जानकर कौनपुरुष तुम्हारे चरणारविन्दको त्यागन करेगा? निष्किंचन अर्थात् जिनके पास कुछ नहीं है, शान्त शीलस्वभाव मुनियोंको तुम अपने पद दे चुके हो ॥ ३३ ॥ ऐसे तुम यदुवंशमें अवतार लेकर संसारी जीवोंके संसार छुडानेके लिये त्रिलोकीका दुःख दूर करनेवाले यशका विस्तार करते हो ॥ ३४ ॥ अकुंठबुद्धि शान्त तप करनेवाले नारायण ऋषि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ॥ यदात्थैकांतभक्तान्मे नानंतः श्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥ को नु त्वच्चरणांभोजमे
वंविद्विसृजेत्पुमान् ॥ निष्किंचनानां शांतानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥ योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसार
तामिह ॥ यशो वितेने तच्छांत्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ नारायणाय
ऋषये सुशांतं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥ दिनानि कतिचिद्भूमन्गृहान्नो निवस द्विजैः ॥ समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः
कुलम् ॥ ३६ ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ॥ उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥ ३७ ॥ श्रुत
देवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहान्जनको यथा ॥ नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥ ३८ ॥ तृणपीठबृसीष्वेतानानीते
षूपवेश्य सः ॥ स्वागतेनाभिनंद्यांघ्रीन्सभायाऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥

नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे व्यापक ! सब ब्राह्मणों सहित कुछ काल हमारे घरमें वास कर अपने चरणकमलकी रजसे इस निमिराजाके कुलको पवित्र करो ॥ ३६ ॥ राजा बहुलाश्वने जब इस प्रकार बहुत प्रार्थना की, तब लोकोंके उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथिलापुरीके पुरुष स्त्रियोंका कल्याण करनेके लिये कुछेक दिन तक वास किया ॥ ३७ ॥ जैसे जनकवंशोत्पन्न बहुलाश्व राजाको प्राप्त हुए, इसीप्रकार श्रुतदेव ब्राह्मण भी आया और श्रीकृष्णचन्द्र तथा मुनियोंको नमस्कार कर अत्यन्त हर्षित हो नाचनेलगा ॥ ३८ ॥ तृणपाटा लायकर बिछाय और कुशके आसन पर ब्राह्मणों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको बैठाय "भले आये" इसप्रकार बड़ाई कर स्त्रीसहित श्रुतदेव ब्राह्मण

उनके चरण धोनेलगा ॥ ३९ ॥ और अति प्रसन्नतासे पूर्ण मनोरथ हो बडभागी श्रुतदेव ब्राह्मणने चरणारविन्दके धोवन जलसे आत्मासहित संपूर्ण कुलको पवित्र किया ॥ ४० ॥ आमले आदि फलोंसे और मंगलरूप अमृतके समान मधुर जलसे तथा सुगंध युक्त मृत्तिका तुलसी, कुश और अनायास लब्ध पूजाकी सामग्रीसे, सत्त्वगुणको बढानेवाले शुद्ध अन्नसे श्रुतदेव ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करके आराधना करनेलगा ॥ ४१ ॥ जिनकी चरणरेणु सब तीर्थोंको पवित्र करनेवाली हैं और श्रीकृष्णचन्द्रके रहनेके स्थान ब्राह्मणोंका संग घररूप कुएँमें पड़े मुझे किसकारणसे प्राप्त हुआ, इस प्रकार ब्राह्मण तर्क करने लगा ॥ ४२ ॥ आतिथ्यकर भलीभाँति विराजमान किये ब्राह्मणोंके निकट स्त्री,

तदंभसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम् ॥ स्नापयांचक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥ फलार्हणोशीरशिवामृतांभसा मृदा सुरभ्या तुलसीकुशांबुजैः ॥ आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनांधसा ॥ ४१ ॥ स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्गृहांधकूपे पतितस्य संगमः ॥ यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥ सूपविष्टान्कृतातिथ्याञ्श्रुतदेव उपस्थितः ॥ सभार्यस्वजनापत्य उवाचांघ्र्यभिमर्शनः ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ॥ यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ॥ सृष्ट्वा लोकं परं स्वात्ममनुविश्यावभासते ॥ ४५ ॥ शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवंदताम् ॥ नृणां संवदतामंतर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥

कुटुम्ब और पुत्रसहित उपस्थितहो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोका स्पर्श करता श्रुतदेव यह वचन कहनेलगा ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव बोला कि, जिससमय शक्तिसे इस विश्वको रचकर अपनी सत्तासे इसमें प्रविष्टहुए, उसीसमय तुम परमपुरुष हमको प्राप्तहुए, परन्तु इस साँवरे स्वरूपका दर्शन अभी प्राप्त हुआ है ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार सोतेहुए पुरुषने अपनी अविद्यासे स्वप्नमें मनहीसे दूसरे शरीरको रचकर उसमें मानो प्रवेश किया हो इसीप्रकार तुमने भी इस संसारको निर्माणकर मानों इसमें घुसेहो, मुझको ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ तुम्हारी कथाओंको श्रवण करै तुम्हारे नामका कीर्त्तन करै, सदा तुम्हारी पूजा करै, तुमको प्रणाम करै, उन शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषोंकोभी आप हृदयमेंही दर्शन देते हो, परन्तु मुझे

तो आपने प्रत्यक्षही दर्शन दिया, इसकारण मुझे जान पडता है कि, मैं सबसे बढ़कर आजदिन सुभाग्य पुरुष हूं ॥ ४६ ॥ कर्मोंसे चलायमान चित्त पुरुषोंके हृदयमें भी स्थित हो, परन्तु अति दूरहो और तुम्हारी कथाको सुनने और तुम्हारे नाम लेनेसे जिनके निर्मल अंतःकरण होगये हैं, उन पुरुषोंके तुम सदा समीप रहतेहो ॥ ४७ ॥ देह और गेहमें अभिमान रहित पुरुषोंको मोक्ष देनेवाले और देह गेहमें अभिमान करनेवाले पुरुषोंको आप संसार देतेहो, कार्य महदादिक कारण माया जो दोनों उपाधि हैं उनको सेवन करतेहो अपनी मायासे आप ढके नहीं हो और जीवोंका ज्ञान मायासे आच्छादन करनेवाले आपको मैं प्रणाम करताहूं, तुम हम भक्तोंको शिक्षा दो, हे प्रकाशमान ! हम तुम्हारा क्या पूजन करें ? जबतक

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ॥ आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यंत्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ॥ सकारणाकारणलिंगमीयुषे स्वमाययाऽसंवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥ स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे ॥ एतदंतो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् ॥ संचरंति मया लोकान्पुनंतः पादरेणुभिः ॥ ५१ ॥ देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ॥ शनैः पुनंति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥

तुम नेत्रोंके सन्मुख नहीं आतेहो, तबतकही मनुष्यको क्लेश रहता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि; हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! इसप्रकार श्रुतदेव ब्राह्मणका कहा वचन सुन शरणागतोंका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड हँसकर यह वचन बोले ॥ ५० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्राह्मण ! यह मुनिलोग तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये यहाँ आये हैं यह तुम निश्चय जानो, क्योंकि यह पुरुष अपने चरणारविंदकी रजसे मनुष्योंको पवित्र करते मेरे साथ भ्रमण किया करते हैं ॥ ५१ ॥ देवता, क्षेत्र, तीर्थ, इनके दर्शन, स्पर्शन, अर्चन करनेसे

बहुत कालमें धीरे धीरे पवित्र करते हैं, सोभी महात्माओंकी इच्छा होय तो और ब्राह्मण तो शीघ्रही पवित्र करदेते हैं ॥ ५२ ॥ इस संसारमें समस्त प्राणियोंकी अपेक्षासे ब्राह्मण जन्महीसे श्रेष्ठ हैं और जो तप करके श्रेष्ठ होयतो इसमें कहनाही क्या है ? ॥५३॥ यह मेरा चतुर्भुज रूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे विशेष प्यारा नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण सर्व वेदमय हैं और देवतारूप मैं हूं और देवताओंकी सिद्धि वेदके आधीन होनेसे ब्राह्मण मुझे इस रूपसे भी अधिक प्रिय हैं ॥५४॥ खोटीबुद्धि गुणोंमें दोषको देखनेवाले पुरुष भी ब्राह्मण वेदमय हैं, यह न जान गुरुरूप, ब्राह्मणरूप सबके आत्मा मेरा निरादर करते हैं ॥ ५५ ॥ स्थावर,जंगम, यह विश्व और इस विश्वके कारण महदादिक पदार्थ सब ईश्वरही रूपहैं, इसप्रकारसे ब्राह्मण सब

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥ ५३ ॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ॥ गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥ चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ॥ मद्रूपाणीति चेतस्याऽऽधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥ तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय ॥ एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् ॥ आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥ ५८ ॥

ओर अपनी दृष्टिसे जानते हैं ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मण श्रुतदेव ! जैसी श्रद्धा मुझमें है, इसीप्रकार श्रद्धासहित ब्रह्मऋषियोंका पूजन करो, मुझमें इनमें एकसा भाव करोगे तो मेरी साक्षात् पूजा होजायगी और जो भेदभावसे मेरी बहुतसी संपत्तियोंसे भी पूजा करोगे तो मैं प्रसन्न न हूगा ॥ ५७ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित् ! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाय श्रुतदेव ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रसहित सब ब्राह्मणोंका एकभावसे आराधन कर सुन्दरगतिको प्राप्त हुआ और मिथिलापुरीके राजाने भी सुन्दरगति पाई ॥ ५८ ॥

हे राजन्! इसप्रकार भक्तोंपर प्रीतिकरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने भक्त बहुलाश्व और श्रुतदेवके यहाँ वासकर सन्मार्ग अर्थात् उपासना काण्ड, ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड इन तीनों काण्डोंका उपदेशकर फिर द्वारकापुरीमें आनकर सुशोभित हुए ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ दोहा–सत्तासी अध्यायमें, नारद हरि सुखधाम। परब्रह्म निश्चय कियो, वेदस्तुतिपरिणाम ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! गत अध्यायके अंतमें भगवान् वेदका मार्ग ब्रह्मपर इसप्रकार उपदेश करके द्वारकाको चलेगये, यह कहा, तहाँ शब्दरूप वेदोंको ब्रह्मपरत्व नहीं बनता, क्योंकि मुख्या, लक्षणा और गौणी इन तीन प्रकारकी वृत्तियोंसे शब्दकी प्रवृत्ति होती है मुख्यावृत्ति भी दो प्रकारकी है, रूढि और योग जो वस्तुस्वरूप जाति अथवा क्रियासे वा गुणसे निर्देश करी जाय, उसमें रूढिकी प्रवृत्ति होती है, जिसका स्वरूप जाति, क्रिया, गुणसे निर्देश न हो, उसमें यह संभव नहीं हो सकता, सो ब्रह्म तो

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ॥ उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥ कथं चरंति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बुद्धींद्रिय मनः प्राणाञ्जनानामसृजत्प्रभुः ॥ मात्राऽर्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥ २ ॥

जाति, गुण, क्रिया, अथवा स्वरूपसे निर्देश नहीं होता, इससे ब्रह्ममें रूढिकी प्रवृत्ति नहीं होसकती, और कार्य कारणसे परे और असंग होनेसे योगवृत्तिका भी संभव नहीं होसकता और लक्षणामें सम्बन्धकी आवश्यकता है, ब्रह्म सब सम्बन्धसे रहित है, इस लक्षणावृत्तिका भी संभव नहीं होसक्ता और जो श्रुति गुणका निरूपण करे, ब्रह्म स्वयं निर्गुणहै, इससे गौणी वृत्तिसे ब्रह्मका निरूपण नहीं होसकता, फिर ब्रह्मको श्रुति किस प्रकारसे प्रतिपादन करतीहै? ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्का यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! नित्यमुक्त सर्वशक्तिमान् ईश्वरने प्रलयकालमें अपनेमें लीनहुए प्राणियोंके विषयभोगरूप अर्थ जन्मसे कर्मपर्यन्त रूप धर्म परलोकमें उनके सुख भोग रूप काम और कल्पना निवृत्तिरूप मोक्ष पुरुषार्थ देनेके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राण इनकी रचना की है,यदि यह न हों तौ अर्थ धर्म कामकी प्राप्ति

नहीं होसक्ती और जो स्वरूपका विचार न हो तो मोक्ष भी नहीं मिलसकतीहै "यःसर्वज्ञः सर्वशक्तिमान्" इस लक्षणक निरूपण करनेवाली
श्रुति सगुणब्रह्मका निरूपण करतीहै, और जीवोंका संसारनिवृत्तिके लिये (तत्त्वमसि-वह तूहै) यह वाक्य ईश्वरकी ईश्वरत प्रतिपादन
करताहै, इसमें नित्य मुक्त ईश्वरका वाचक (तत्) शब्द संसारी जीवका वाचक त्वं पदका समानाधिकरण्य प्रतीत होताहै, सो यह अजहद
स्वार्थीलक्षणासे अथवा भागत्याग लक्षणासे बन सकै हैं, तत् पद तो सर्वज्ञादि गुणवाले ईश्वरका और त्वंपद अल्पज्ञादि गुणवाले पदार्थका वाचक
है, इन परस्पर विरुद्ध गुणवाले शब्दोंमेंसे परस्पर विरुद्ध रूप अंशका त्यागन करनेसे दोनोंमें प्राप्त चैतन्य रूपका समान अंश ग्रहण करके
(तत् त्वं) यह दोनों पद ब्रह्मरूप एक अर्थके प्रतिपादक होकर एकताका निरूपणकर शुद्ध ब्रह्मको कथन करतेहैं, और (स्थूलमनण्वह्रस्वम्) इत्यादि
निषेधका निरूपण करनेवाली श्रुति तत्पदार्थके शोधन करनेमें चारितार्थ हो उपाधिके निषेधसे साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें पर्यवसान होतीहै, उत्पत्ति,

सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ॥ श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥ ३ ॥
अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ॥ नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥
एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ॥ सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥
यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ॥ धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥

पालन और प्रलयकी प्रतिपादक श्रुति भी आवागमनरूप सृष्टिका निरूपण कर उसीसे वैराग्यरूप ज्ञानके साधनोंका उपदेश करती ज्ञानके
परम्परा सम्बन्धसे ब्रह्मकोही प्रतिपादन करती है, उपासनाकी निरूपण करनेवाली श्रुति उपासनाद्वारा अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञानसाधनका
उपदेश देती ज्ञानद्वारा ब्रह्मकोही प्रतिपादन करती है, इसकारण सर्वथा श्रुति ब्रह्मकोही प्रतिपादन करतीहै, यह अभिप्राय है ॥ २ ॥ यह जो ब्रह्मपर
उपनिषद् है, सो प्रथमहुए सनकादिकोंने पहले धारण करे हैं, जो पुरुष निष्किंचन होकर श्रद्धापूर्वक इसे धारण करेंगे, सो मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ हे
नृपोत्तम! यहाँ तुम्हें नारायणसम्बन्धी गाथा हम सुनातेहैं, जिस गाथामें नारदजी और ऋषि नारायणजीका संवादहै ॥४॥ एक समय भगवान्के प्यारे
नारदजी समस्त लोकोंमें फिरते फिरते सनातन ऋषिको देखनेके लिये नारायणके आश्रम बद्रिकाश्रममें आये ॥५॥ जो नारायण भरतखण्डमें

लोकोंके कारण क्षेम और मंगलके लिये धर्मज्ञानसे युक्त तपको कल्पपर्यन्त करतेहैं ❀॥ ६ ॥ वहाँ कलाप ग्रामके वासी ऋपियोंसहित विराजमान नारायणजीसे नम्र होकर यह पूँछनेलगे॥७॥ उससमय ब्रह्मविचार जनलोकनिवासी सनकादिकोंमें जो हुआथा, सोई भगवान् नव ऋपियोंके श्रवण करते नारदजीके अर्थ कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नारदजी ! पहले जनलोकमें ब्रह्माके मनसे उत्पन्नहुए नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादिक मुनियोंका ब्रह्मसत्र अर्थात् ब्रह्मविद्याका विचार हुआथा ॥९॥ अहो ! यह ब्रह्मसत्र मुझे ज्ञात नहीं,इसपर कहते हैं कि हे नारद ! उस समय श्वेतद्वीपके

तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ॥ परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥ ७ ॥ तस्मै ह्यवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ॥ यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायंभुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा ॥ तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ॥ ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ॥ तत्र हाऽयमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनु पृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः ॥ अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥ ११ ॥ सनंदन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः ॥ तदंते बोधयांचक्रुस्तल्लिंगैः श्रुतयः परम् ॥ १२ ॥

ईश्वर अनिरुद्ध मूर्त्ति देखनेके लिये श्वेतद्वीपमें तुम गये थे तब पीछे ब्रह्मवाद हुआ ब्रह्मवादमें श्रुति भगवान्का प्रतिपादन करती हैं, वहाँ यही प्रश्न हुआ जो तुमने मुझसे पूछाहै॥१०॥यद्यपि श्रवण तप शील शास्त्राभ्यास मित्र, शत्रु, मध्यम इन सबमें सनकादिक समानहैं परन्तु तोभी एकको वक्ता बनाकर संपूर्ण श्रोता होगये ॥ ११॥ सनंदनजी बोले, कि अपने निर्माण किये इस संसारका नाशकर अपनी शक्ति सहित सोये भगवान्को प्रलयके

* शंका—बद्रिकाश्रममें नारायणनाम मुनि मनुष्योंके कल्याण होनेके लिये बहुत युग कल्प कल्पान्तसे तप करते हैं सो उस तप करनेसे मनुष्योंका क्या कल्याण होताहै ? ॥
उत्तर—सब जीवोंको इन्द्रियोंको अलग अलग विषय सुख सब लोकमें, है परन्तु नारायणनाम मुनि भरतखण्डमें तप करते हैं, इसलिये मनुष्योंको ज्ञानका सुख तथा मोक्षरूप कल्याण ज्ञानसे होना सिवाय भरतखण्डके दूसरे द्वीप तथा खण्ड तथा और लोकमें ज्ञान नहीहै हे श्रोताओ ! ज्ञानसे दूसरा कल्याण मनुष्योंको कोई भी नहीं है इसलिये मनुष्योंके कल्याण होनेके कारण नारायण मुनि तप करतेहैं ऐसा लिखाहै ॥

अंतसमयमें ब्रह्मके प्रतिपादक वचनोंसे श्रुतियें जगानेलगीं ॥ १२ ॥ जैसे रात्रिके सोये चक्रवर्त्ती राजाको प्रातःकालको राजोपजीवी बंदीजन उठ उसके पराक्रमके सुन्दर यशको वर्णन करके जगाते हैं ॥ १३ ॥ श्रुतियें बोलीं कि; हे सर्वविजयी ईश्वर ! तुम्हारी जय हो, आप अपने वैभवको प्रगट करो और इस घोरनिद्राको त्यागकर हमारा प्रतिपादन करो, जिस प्रकार स्त्री और दूसरे पुरुषको छलनेके लिये अनेक प्रकारके रूप और गुण धारण करतीहै, उसीप्रकार आनन्दादिकका आवरण करनेके लिये गुण ग्रहण करनेवाली स्थावर और जंगम शरीराश्रित जीवोंकी अविद्याका नाश करो, क्योंकि अनादिकालसे यह अविद्या संसारके जीवोंको मोहित करके अनेक अनेक प्रकारके दुःख दिखाती है, और इसीकारण प्राणियोंको अनेक योनि-योंमें जन्म लेना पड़ताहै, यह सब अविद्याहीका प्रभावहै, क्योंकि यह अविद्या महाबलवान है, मनुष्योंकी तो क्या सामर्थ्य है ? देवताओंके मनको भी मोहनेवालीहै, वहभी इसके दूर करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते, आपही इसको दूर कर सक्तेहो, क्योकि आप सर्वान्तर्यामी और मायासे रहित हो,

यथा शयानं सम्राजं बंदिनस्तत्पराक्रमैः ॥ प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयंत्यनुजीविनः ॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः ॥ जयजय जह्यजामजित दोषगृहीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥ अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥ १४ ॥ बृहदुपलब्धमेतदवयंत्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाऽविकृतात् ॥ अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथाभवंति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥ १५ ॥

और इस महागंभीर संसारसागरसे पार उतार मोक्षके देनेवाले आपही हो, इसी लिये वारम्वार आपसे यह निवेदन है, कि आप इन जीवोंपर अनुग्रह करके इस महाप्रबल अविद्याका नाश करो, क्योंकि माया आपके वश होनेसे सब ऐश्वर्य आपको स्वरूपहीसे प्राप्त है इसीकारण अविद्या आपमें किसीप्रकारका दोष नहीं लगासक्ती और आप सनातन धर्म पालनेके और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये जगत्में अनेक अवतार धारण करतेहो, हे सर्व प्राणियोंके बोध करनेवाले परमेश्वर ! सृष्टिकी आदि समयमें माया करके क्रीडा करतेहो और आनन्द देकर अपने आत्मा करके वर्त्तमान जो आप हो सो आपका प्रतिपादन करे है और आपही सम्पूर्ण शक्तियोंके जगानेवाले हो, तुम अखण्ड विभव और ज्ञानशक्तिसे जीवोंका अज्ञान दूर करो हो, इस विषयमें हम (श्रुति) ही प्रमाण हैं ॥ १४ ॥ (१) यदि कहो कि, मंत्रोंमें अग्नि आदि देवताओंका प्रतिपादन देखनेमें

आताहै, वेभी सब तुम्हारेही रूपकेहैं, ऐसा ज्ञानी जानते हैं, क्योंकि यह जो कुछ दृश्यमान है, इसके न होनेपर आपही अवशेष रहतेहो, इस सब जगत्की उत्पत्ति नाश आपहीमें होता है, जैसे घटादिकोंका उदय, अस्त मृत्तिकामें होताहै, मंत्र दृष्टचा ऋषियोंके मन और वचनका तात्पर्य तुम्हारे विषय है, अन्यमें नहीं, जैसे मनुष्य अपने चरण मृत्तिका, पाषाण, ईंट, इनके ऊपर धरताहै, परन्तु भूमिसे पृथक् नहीं है, उसी प्रकार जो कुछ विचार है सो सब तुम्हींसे हुआहै, सर्व कारण परमार्थरूप तुम हो इस प्रकार हम (वेद) प्रतिपादन करतेहैं ॥ १५ ॥ (२) ॥ हे त्रिगुण मायामृगीके नचाने वाले ! विवेकी पुरुष तुम्हारे अखिल लोकोंके मल नाश करनेवाले कथारूपी अमृतके समुद्रको सेवन करके पाप और दुःखोंको त्यागदेते हैं जब तुम्हारी कथामात्रसेही पापोंका नाश होजाताहै, तब स्वरूपका स्मरणकर अंतःकरणके गुण रागादिक और कालके गुण जरादिक जिनके निवृत्त होगये हैं इसमें फिर क्या ? और हे प्रभो ! तुम्हारा परम अखण्ड आनंद अनुभव स्वरूपका भजन करके दुःखोंको त्यागे तो इसमें कहनाही क्या है ?

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ॥ किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजंति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ १६ ॥ दृतय इव श्वसंत्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोंऽडमसृजन्यदनुग्रहतः ॥ पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ १७ ॥

॥ १६ ॥ (३) अब जो पुरुष तुम्हारा भजन नहीं करते उनकी निन्दा है, और जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करते हैं, उनका सफल जन्म है, इस प्रकार स्तुति करते हैं, अथवा जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करके श्वासोंको पूर्ण करते हैं वही सफलजन्मा हैं और जो विना भजन करे श्वास लेते हैं, वह लुहारकी धौंकनीके समान वृथा श्वास हैं, तुम्हारे भजनके विना कृतघ्नियोंको फलकी सिद्धि नहीं होती फिर यह कहते कि जिसके अनुग्रहसे महत्तत्त्व अहंकारादिक तत्त्व इस देहको रचते हैं, उस देहमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश जो देह, प्राण, मन, बुद्धि और ज्ञान कहलातेहैं उनमें प्रवेश करके उनही उन आकारोंसे चेतन करनेवाले तुम्हीं हो इसप्रकार वेदने अंतमें वर्णन किया है, अन्नमयादिकों केसा आकारवाला पुरुष अन्नमयादिकोंमें मिल रहा है यद्यपि यह बात सत्य है परन्तु तोभी तुम्हारा असंगत्व नहीं मिटता तो अन्नमयादिकोंके अंतमेंही इसलिये रूपको वर्णन करते हैं, स्थूल सूक्ष्मसे परे हो और इनमें अविशेषरूप हो, इस कारण सत्य हो; शाखाचन्द्रकी तुल्य शुद्ध रूप

दिखानेके लिये अन्नमयादिकोंमें सम्बन्ध कहाहै, जैसे शुद्ध चन्द्रमाके दिखानेको वृक्षकी शाखाका अवलम्बन करतेहैं, इसीप्रकार ब्रह्मके दिखानेको
कोशादिका अवलम्बन है॥ १७॥ (४)हे अनन्त ! जो मनुष्य ऋषिवर्त्म अर्थात् वेदोक्त कर्ममार्गमें स्थित होकर वेदके उदररूपी कर्मकी उपासना करते हैं
अर्थात् अग्निहोत्र याग करते हैं भगवद्दर्शनमें रुचि नहीं करते वह कूर्पदृश हैं अर्थात् उनके नेत्रोंमें धूरिपडी हुई है, इसलिये सूक्ष्मवस्तुका दर्शन नहीं
करसकते "यज्ञो वै विष्णुः" इस श्रुतिके अनुसार वह भी भगवदुपासकही है और योगीजन नाड़ियों द्वारा हृदयमें भगवदुपासना करते हैं, इस
लिये वे आरुणी अर्थात् अरुणोदयमें थोडा प्रकाश होजाता है, इसीप्रकार इनकी उपासना है और आपकी प्राप्तिका स्थान सुषुम्ना नाडी जो मूला
धारसे हृदयमें हो ब्रह्मरंध्रतक गई है, जिसको पाकर फिर प्राणी संसारमें नहीं आते इसीका नाम मुक्ति है ॥ १८ ॥ (५) तुम सबके उपादान कारण

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ॥ तत उदगादनंत तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतंति कृतांतमुखे ॥ १८ ॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्त्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः ॥ अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयंत्यभिविपण्यव एकरसम् ॥ १९ ॥ स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरंतरसंवरणं तव पुरुषं वदंत्यखिलशक्तिधृतोंशकृतम् ॥ इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमाव पनं भवत उपासतेंघ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥ २० ॥

हो, इसलिये प्रथमही सबसे वर्त्तमान हो, इसीसे तुम्हारे निर्मित किये, ऊंच, नीच, मध्यम देहोंमें तुम्हारा प्रवेश होना संभव नहीं होसकता, तो भी
जैसे उनमें प्रवेश किये हो, इसीप्रकारसे देहादिकोंका अनुकरण करते न्यूनाधिक प्रतीत होते हो जैसे अग्नि तारतम्यरहित है परन्तु काष्ठमें
व्याप्त होनेसे उसीके समान प्रतीत होती है, इसीप्रकार आपको सब उपाधिसे रहित समान एक रस जानकर दोनों लोकके कर्म फल रहित उज्ज्वल
बुद्धिवाले मनुष्य असत्य देहादिमें आपको ही सत्य मानकर तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ १९ ॥ (६) अपने कर्मोंसे प्राप्त हुये
नरकादिक देहमें यह जीव भोक्तृत्वसे वर्त्तमान है, वह जीव भीतर बाहर आवरण रहित संपूर्ण शक्तियोंके धारण करनेवाले तुम्हारा अंशहीहैं, इस
प्रकार पण्डित जीवकी गतिको विचार वेदोंके उत्पत्ति स्थान और संसारसे छुड़ानेवाले तुम्हारे चरणोंकी उपासना करते हैं, इसप्रकार विश्वास

पूर्वक अर्चन वन्दन करना यही मत्यलोकमें उचित है ॥ २० ॥ (७) हे ईश्वर ! दुर्बोध आत्मतत्त्वके जनानेके लिये अवतार धारण करनेवाले तुम्हारे चरित्ररूपी अमृतसमुद्रमें अवगाहनकर श्रमरहित हो कोई एक तुम्हारे भक्त मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते, और तुम्हारे चरणकमलमें अवगाहन कर हंसकेसमान रमण करते हैं, ऐसे भक्तोंके संगके लिये घर भी उन्होंने त्याग दिये हैं, जब गृहादिका त्यागन कर दिया, तब परलोकके सुखकी क्या कथा है ? इसलिये आपकी भक्ति, मुक्तिसे भी अधिक है ॥ २१ ॥ (८) तुम्हारी सेवाका साधक यह शरीर जब आत्मा सुहृद और प्रियके समान स्वाधीन है, तो भी सन्मुख स्थित हितकारी प्यारे आत्मारूप आपका साक्षात् भावसे भजन नहीं करते हैं, और देहादिके लालन पालन करनेमें पडे रहते हैं, यह बडे कष्टकी बात है, मिथ्याभूत देहादिकोंके सेवनसे असत् उपासनामें वासनावाले नीच देहको धारण करनेवाले बडे

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ॥ न परिलषंति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥ त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ॥ न बत रमंत्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥ २२ ॥ निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ॥ स्त्रिय उरगेंद्रभोगभुजदंडविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोंघ्रिसरोजसुधाः ॥ २३ ॥ क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ॥ तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥ २४ ॥

भयरूप संसारमें भ्रमण करते हैं, इसलिये वह आत्मघाती हैं ॥२२॥ (९) प्राण, मन, इन्द्रिय जीतकर दृढ योगके करनेवाले मुनिलोग हृदयमें जिसकी उपासना करतेहैं, वह जिस तत्त्वको योगद्वारा प्राप्त हुये हैं, उसीप्रकार शत्रु भी तुम्हारे स्मरणसे तुमको प्राप्त हुये हैं, तथा शेषके शरीरके तुल्य तुम्हारे भुजदण्डमें आसक्त बुद्धि भी तुमको प्राप्त हुई है, इसी कारण हम कहते हैं कि, आपकी कृपादृष्टि सबपर समान है और हम तुम्हें देश काल परिच्छेद रहित देखते हैं, तुम्हारा प्रताप ऐसा है कि, जो जिस भावसे आपका ध्यान करे, उन सबको तुम्हारे शरीरकी प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥ (१०) हे भगवन् ! इस संसारमें पूर्व सिद्ध तुमको आधुनिक उत्पत्ति विनाशसे युक्त पुरुष कैसे जानेंगे ? अर्थात् नहीं जानेंगे, तुमसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है

ब्रह्माके पीछे अध्यात्मक आधिदैवके देवताओंके गण उत्पन्न हुये, इसके पीछे सब चराचर उत्पन्न हुये; इसलिये इन सबका वृत्तान्त आप तो भलीभाँति जानते हो क्योंकि, आप तो सबसे पूर्व अनादि हैं, फिर आपको पीछे उत्पन्न होनेवाला और नाशवान् कौन मूर्ख कह सक्ता है ? जिस समय तुम संहार करके शयन करते हो, उस समय जीवोंको ज्ञान साधन नहीं है, इसलिये प्रलयके समय स्थूल आकाशादिक नहीं हैं तथा स्थूल सूक्ष्मसे आरब्ध शरीर भी नहीं है और शरीरका कारणरूप कालका विषमभाव भी नहीं है, उस समय इंद्रिय प्राणादिक कुछ नहीं हैं और सबका जाननेवाला पुरुष भी नहीं है केवल तात्पर्य यह है कि, पूर्व कालके पुरुष अपने पीछे हुओंके वृत्तान्तको जानतेहैं परन्तु पीछे उत्पन्नहुये पूर्वजोंका चरित्र नहीं जानसक्ते, जिसप्रकार पिता पुत्रके वृत्तान्तको तो भले प्रकार जानता है, क्योंकि उसके सामने उसका जन्म और सब कार्य हुये, परन्तु पुत्र पिताका वृत्तान्त किसी रीतिसे नहीं जानसक्ता क्योंकि जब उसका जन्म कर्महीं उसके आगे नहीं हुवा, फिर उसके

जनिमसतः सतोमृतिमुतात्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मरंत्युपदिशंति त आरुपितैः॥त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥ सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशंत्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः॥ न हि विकृतिं त्यजंति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥ २६ ॥

भेदभावको वह कैसे जानसक्ता है, इसीप्रकार आपके पीछे हुये सब प्राणी आपको नहीं जान सक्ते इससे आपका भजनही करना उचित है ॥ २४ ॥ (११) मिथ्याभूत जगत्की उत्पत्ति है, अर्थात् यह पहले कुछ नहींथा इसप्रकार वैशेषिकादिक आचार्य कहते हैं और जीवोंमें ब्रह्मत्त्व नहीं है, परन्तु योगसाधनसे होजाता है, यह योगशास्त्रवाले कहते हैं और इक्कीस प्रकारके दुःखोंका नाश मोक्ष है, इस प्रकार नैयायिक कहते हैं, और सांख्याचार्य आत्मामें भेदभाव मानतेहैं और कर्मफलके व्यवहारको मीमांसक सत्य कहते हैं, सो संपूर्ण आरोपित भ्रमसे ही उपदेश करते हैं, तत्त्वदृष्टिसे उपदेश नहीं करते, वास्तवमें वह पुरुष त्रिगुणमय हो तो इनका कहना सत्य है, सो नहीं, त्रिगुणमय पुरुष यह भेद तुम्हारे विषे अज्ञानसे किया है, तुम अज्ञानसे परे संगरहित ज्ञानघन हो, इसलिये तुममें अज्ञानका होना संभव नहीं॥२५॥ (१२) जो पुरुष असत् नहीं उपजै और त्रिगुणमय पुरुष नहीं है, तो इससे यह विदित हुवा यहसब प्रपंच और पुरुष संपूर्णतः तुमसे भिन्न नहीं है, सो उनके स्वरूपसे सत्यकी प्रतीति

कैसे संभव है ? मनोमात्रविलसित, त्रिगुणात्मक प्रपंच मिथ्याही है, तो सत्य कैसे प्रतीत हो सक्ता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, तुम अधिष्ठान हो इसकारण तुम्हारी सत्तासे सत्यसा प्रतीत होता है, केवल निषेधसे प्रतीत हुआ है, अर्थात् अभिप्रायसे मनुष्यसे पुरुषकी भिन्न जो सत्ता प्रतीत होती है सो मनमात्रका विलास है, आत्माके जाननेवाले इस भोक्ता और भोग्यरूप जगत्को स्थितहुए आत्माकी सत्तासेही सत्तावाला कहते हैं आत्मासे भिन्नसत्तावाला नहीं मानते आत्माका कार्य है इसलिये भिन्न नहीं है, जैसे स्वर्णके विकार कुण्डलादिक आभूषणोंको स्वर्णके लेनेवाले त्याग नहीं करते हैं, किन्तु स्वर्णही जानकर ग्रहण करते हैं, इसकारणसे अपने किये विश्वमें प्रविष्ट पुरुषरूप जीव भी आत्माही है, यह निश्चय है ॥ २६ ॥ (१३) परमात्माको सर्वत्र जान लेना और भक्ति न करना यह बात नहीं परन्तु उसकी सदा भक्ति करनी, क्योंकि जो आपको संपूर्ण पदार्थोंमें स्थित जानकर तुम्हारी सेवा करते हैं, वे संसारको तिरस्कार कर मृत्युके मस्तकपर चरणधर मुक्त होजाते हैं और जो तुमसे विमुख

तव परि ये चरंत्यखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदाऽऽक्रमंत्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः॥परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनंति न ये विमुखाः ॥ २७ ॥ त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहंति समदंत्यजयाऽनिमिषाः ॥ वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥ २८ ॥ स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ॥ न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवाऽपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ २९ ॥

हैं और तुम्हारे अभक्त हैं उन्हें पशुओंके समान वाणीसे तुम बाँधते हो और जिनने आपसे प्रेम किया है, वह निश्चय आपको और दूसरोंको पवित्र कर सकते हैं ॥ २७ ॥ (१४) हे प्रभो ! तुम इन्द्रियोंके संबंधसे रहित हो और समस्त प्राणियोंकी इन्द्रियोंकी शक्तियोंको प्रवृत्ति करते हो, अपने स्वरूपसेही प्रकाशमान हो, स्वतःसिद्ध ज्ञानशक्ति होनेसे तुमको इंद्रियोंकी अपेक्षा नहींहै, इसीकारणसे विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक और इन्द्रादिक देवता संपूर्ण माया सहित तुम्हारी पूजा करते हैं और मनुष्योंका दिया द्रव्य कन्यादिक बलि भक्षण करते हैं, जैसे संपूर्ण पृथ्वीके ईश्वर चक्रवर्ती (राजा)को खण्ड मंडलोंके राजा भेट देते हैं और आप अपनी प्रजासे भेंट लेते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मणादिक तुमको भेंट देते हैं और जिन्हें आपने अधिकार दे रक्खाहै, उसी अधिकारको तुम्हारे भयसे पूर्णकरते हैं ॥ २८ ॥ (१५) हे नित्य मुक्त ! जिस समय मायासे

तुम्हारा विहार होता है, उसी समय आपकी दृष्टिसे प्रगटहुए कर्म अथवा कर्मयुक्त लिंग शरीरसे स्थावर, जंगम जातिके जीव उत्पन्न होतेहैं, यदि उत्तम, मध्यम, अधम सृष्टि होनेमें उन जीवोंके पूर्व कर्म निमित्त न मानैं तो मन, वाणीसे परे शून्य भावसे बराबरीके करनेवाले आकाशकी सदृश संपूर्णमें सब भाव और परमदयालु आपमें विषमताका लेश भी नहीं है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टिमें कोई अपना पराया नहीं है, इसलिये आपका भजनही मुख्य है ॥ २९ ॥ (१६) ॥ जो जीव अनंत और रूपसे नित्य हैं और सर्वव्यापी हैं, तो यह पक्ष हमारा नहीं, क्योंकि यदि जीव वास्तवमें अनंत नित्य और उसी रूपसे व्यापक हो तो वहव्यापकतादि गुणोंसे आपके समान होगये जब समान हुए तो आप उनके नियन्ता नहीं होसकते, जो यह न मानैं तो आपसे उनका नियम संभव न हो, क्योंकि जो वस्तु उपाधिसे जिस पदार्थका विकाररूप है, वह पदार्थ उस वस्तुका निश्चय नियन्ता होगा, क्योंकि उसमें अनुस्यूत रहा, वह पदार्थ कारणतासे उस वस्तुका त्याग नहीं करना तुम्हारे स्वरूपसे " यत्" " तत्" शब्दके अतिरिक्त कुछ

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ॥ अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियंतृ भवेत्समर्मनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ ३० ॥ न घटत उद्भवः प्रकृतिपुरुषयोरजयोरुभययुजा भवंत्यसु भृतो जलबुद्बुदवत् ॥ त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥ ३१ ॥

भी कहा जाय, ऐसे नहीं हैं, क्योंकि हम ब्रह्मको जानते हैं, इसप्रकार जो कहते हैं, वह ब्रह्मस्वरूपको कुछ भी नहीं जानते, क्योंकि ब्रह्म किसीका विषय नहीं और जो जाननेमें आता है, वह अनात्म पदार्थ है ॥ ३० ॥ (१७) ॥ प्रकृति और पुरुषका जन्म संभव नहीं क्योंकि प्रकृतिपुरुष अजन्मा हैं, इसलिये प्रकृति पुरुषके संबंधसे जीव जन्म लेता है, जैसे जलमें बबूला केवल जलसे और पवनसे भी नहीं उत्पन्न होता है, किन्तु दोनोंसे उत्पन्न होताहै तुम कारणरूप ईश्वरहो, तुम्हारे विषे अनेक नाम रूप गुण सहित जीव लीन होते हैं, जैसे शहतमें संपूर्ण वनस्पतियोंके रस लीन होते हैं, जैसे मधुमें सम्पूर्ण फूलोंके रस विशेषतासे दृष्टि नहीं आते, परन्तु सामान्य रूपसे दीख सकते हैं, वैसे निद्रामें और प्रलयकालमें आपमें लय हुए जीव विशेषरूपसे नहीं रहते और मोक्ष तो आपके निरुपाधिक रूपमें जो लीन होते हैं, जैसे समुद्रमें सम्पूर्ण नदी लीन होती हैं,

ऐसे वह मुक्तिदशामें आपमें लीन होजाते हैं ॥ ३१ ॥ (१८) जीवोंके विषे तुम्हारी मायासे वारम्वार जन्म, मरण रूप यह भ्रमण यह जानकर सुबुद्धि पुरुष संसारके निवृत्ति करनेवाले तुम्हारे विषे भावना करते हैं और जो तुम्हारी शरण होकर भजन करते हैं, उनको संसारका भय नहीं होता, क्योंकि शीत, उष्ण वर्षानेवाला संवत्सररूपी काल तुम्हारा भ्रूभंगरूप है और जो तुम्हारे शरण नहीं हैं उनके रक्षक नहीं; किन्तु भयकारक हो इसलिये बुद्धिमान् पुरुष तुममें भाव करते हैं ॥ ३२ ॥ (१९) हे अजित ! मनके निग्रह करनेसे ऐसा सेवन बनसक्ता है; परमदेव गुरुके चरणकी शरण लिये विना जो इन्द्रिय प्राणोंको जीतकर अति चंचल दुर्जय मनरूपी घोड़ेके जीतनेका यत्न करते हैं, वह उपायसे खेद पाते हैं और विघ्नोंसे व्याकुल होते हैं, क्योंकि, मनका जीतना गुरुकी कृपासेही होताहै, जैसे जो व्यापारी मल्लाहको नहीं

नृषु तव मायया भ्रमममीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम् ॥ कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥३२॥ विजितहृषीकवायुभिरदांतमनस्तुरगं य इह यतंति यंतुमतिलोलमुपायखिदः ॥ व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाऽज संत्यक्तकर्णधरा जलधौ ॥ ३३ ॥ स्वजनसुतात्मदारधनधामधराऽसुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ॥ इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति कोन्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ३४ ॥ भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदांबुजहृदोऽभिदंघ्रिजलाः ॥ दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥

रखते, वह समुद्रमें पड़े दुःख पाते हैं ॥ ३३ ॥ (२०) जो प्राणी आपका आश्रय लेते हैं, उनको सर्व सुखके स्थान आत्मरूप आपके होते सुजन, पुत्र, देह, घर, पृथ्वी, प्राण, रथ, इत्यादि वस्तुसे क्या प्रयोजन है ? जो पुरुष आत्माका सेवन करता है, उसको इन तुच्छ पदार्थोंसे क्या प्रयोजन है ? सत्य परमार्थ सुखको न जान स्त्री पुरुष मिलकर रतिके लिये विचरते हैं; उनको इस संसारमें तुम्हारे सिवाय कौन सुख है ? अर्थात् कोई नहीं, यह संसार आपसे मिथ्याभूत और साररहित है, इसलिये तुम्हाराही भजन करना उचित है ॥ ३४ ॥ (२१) अहंकारको त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दको हृदयमें धारण करना तुम्हारे भक्त ऋषि मुनि कि, जिनके चरणोंका जल स्वतःही पापनाशक है, परन्तु तो भी इस पृथ्वीमें

आपका भजनरूप महापुण्य करनेवाले महात्माजनोंके आश्रमोंका और अतिपावन तीर्थ क्षेत्रोंका सेवन करते हैं, और पुरुषोंके, ज्ञान वैराग्यके नाश करनेवाले गृहादिकोंका सेवन नहीं करते हैं, जिन्हें गुरुकी कृपासे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति और संसारकी मिथ्या प्रतीत होगई है, वह महात्माओंकी सं गति करते हैं, क्योंकि जिसे एकबार भी आत्माके सुखका अनुभव हुआ है, वह कदाचित् गृहमें आसक्त नहीं होता, तब उत्तम पुरुष किसप्रकारसे घरमें आसक्त हो सक्ते हैं ॥३५॥ (२२) यह जगत् सत्यसे उत्पन्न हुआ इसलिये सत्य है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्नहुए कुण्डलादिक सुवर्णही हैं, इसप्रकार मानोगे तो व्यभिचार प्राप्त होगा, जैसे पितासे पुत्र होता है, सो प्रथम क्यों मरजाता है ? तथा पृथ्वीसे उत्पन्नहुए घटादिक क्यों फूट जाते हैं इससे यह जगत् मिथ्या है, तो कहते हैं कि, उत्पन्न नाम उपादान कारण नहीं, निमित्त कारण है इससे कुछ दोष नहीं, इसमें दोष देकर समा धान करते हैं कि, जो वस्तु जिस उपादानसे हुई हो वह वस्तु उस उपादानसे भिन्न नहीं होती है, यह भी नियत नहीं, क्योंकि रज्जुरूप उपादा नसे हुआ सर्प रज्जुसे पृथक् होता है रज्जु सत्य और सर्प मिथ्या होता है, यदि सर्प सत्य हो तो जिस प्रकार कुण्डलका बाध नहीं होता, इसी

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्नतु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ॥
व्यवहृतये विकल्प इषितोंधपरंपरया भ्रमयति भारतीत उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥

प्रकार सर्पका भी बाध न हो "शंका" रज्जुमें हुए सर्पमें केवल रज्जुही उपादान कारण नहीं, किन्तु अज्ञान भी उपादानका कारण है, इस प्रकारके उपादान कारणसे हुई वस्तुका मिथ्यापन बनसकै और जो केवल सत्य उपादान कारणसे उत्पन्न हो उसको मिथ्यापना सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये द्वैत असत्य नहीं "उत्तर" यह द्वैत भी सत्यरूप ब्रह्म और उसके साथ अज्ञानरूप उपादान कारणसे हुआ है "शंका" जो इसप्रकार जगत् नित्य कहा है, तो मिथ्या किस प्रकार है ? "समाधान" कर्मफलको नित्य कहना वेदका तात्पर्य नहीं, किन्तु उन वाक्योंसे कर्मकी स्तुति की है, यदि वेद कर्मफलको नित्य मानता तो जैसे यहाँ परिश्रमसे उत्पन्न किये पदार्थ कालान्तरमें क्षीण होजाते हैं, उसी प्रकार परलोकमें पुण्यका सुख कालान्तरमें नष्ट होजाताहै "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति" इसकारण कर्म श्रद्धाके भारसे जिनकी बुद्धि मंद होगई है, उन्हें वेद वाणी गौणी और लक्षणा वृत्तिमें डालकर भ्रमयुक्त करदेती है, इससे वह यथार्थ वेदके तात्पर्यको न जानकर कर्मफलको

नित्य सनाते हैं, कर्मसे अंतःकरण शुद्ध होता है, इस बातको नहीं जानते आशय यह है कि, जैसे मकरी अपनेमेंसे तन्तु निकाल फिर आपही ग्रहण करलेती है, उसी प्रकार ईश्वर जगत्को उत्पन्नकर अपनेमें लय कर लेता है, वास्तवमें शुद्ध है, इसलिये अद्वैत सिद्ध है, मिथ्यासे द्वैत भासता है ॥ ३६ ॥ (२३) हम और कारणसे सत्य करेंगे जगत सत्य है, क्योंकि अर्थ क्रियाका करनेवाला है, यदि न हो तो सीपीमें रूपेकी प्रतीत कैसे होती है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, व्यवहारके लिये अर्थ क्रियाके लिये भ्रम इष्ट है;जैसे खोटे रुपयेसे व्यवहार खो जाता है, तो कहते हैं, जो एक ठौर सत्य है, उसको और भ्रम होता है, यह प्रसिद्ध है, अत्यन्त झूंठा प्रपंच होय तो भ्रम न हो, इससे सत्य है, तो कहते हैं, सत्य नहीं है किन्तु अंधपरम्परासे भ्रम किया है, इसकारण सत्य नहीं है, तहाँ वेदकर्मफलकी सत्यताका प्रतिपादन कराहै कि, चातुर्मासके पूजन करनेवालोंको अक्षय पुण्य होताहै और अमृतपान करेंगे इत्यादि वचनसे कर्मफलको यह द्वैत सृष्टिसे पहले भी नही था और आगेको भी न होगा, मध्यमें

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमंतरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ॥ अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयंत्यबुधाः ॥ ३७ ॥ स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ॥ त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ ३८ ॥

आपके शुद्ध अद्वैतरूपमें मिथ्याही प्रतीत होता है, यह निश्चय है, इसी कारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोह आदि पदार्थोंके घट, कुण्डल, परशु आदि निर्माण कियेहुए आकारसे नाममात्रही हैं, उनके कारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोहादि सत्य हैं, इसलिये पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाशादि कार्य नाममात्र हैं, उनका कारण ब्रह्म सत्यहै, इसकारण द्वैतकी सत्यतामें कुछ प्रणाम नहीं इसकारण मनके विलाससे इस मिथ्याभूत द्वैतको जो सत्य मानते हैं,वह अज्ञानी हैं ॥३७॥ (२४) जब द्वैत कोई वस्तु नहीं तो इसमें चैतन्यका संबंध लेशमात्र भी न होना चाहिये, फिर जीव किस अपराधसे जन्म, मरण, सुख, दुःखकी प्राप्ति करते हैं और ईश्वर नित्य मुक्त किसप्रकार है ? कर्मकाण्ड किसकारण है ? इसपर कहते हैं कि यह जीव मायामें पड़े अविद्याका आलिंगन करते हैं, इसलिये देह इन्द्रियादिकोंका सेवन करते उन्हें अपनाही स्वरूप मानते हैं इसीलिये देह और इन्द्रियोंके धर्मसे युक्तहो आनंदादि गुणोंके आवरणसे जन्म, मरणकी प्राप्ति करते हैं यह सब काण्ड अविद्यायुक्त जीवमें है और

आप तो मायाकी असत्यता जानते हो; जैसे सर्प केंचुली को सत्य नहीं समझता और उसे त्याग देता है, उसी प्रकार आप मायाको त्याग देतेहो, इसकारण तुम नित्य अखण्ड ऐश्वर्ययुक्त अप्रमेय अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यमान् अपनेमें आपही विराजते हो ॥ ३८ ॥ (२५) हे भगवन्! जो संन्यासी यती अपने हृदयमें स्थित कामकी वासनाओंको नहीं उन्मूलित करते, उन असाधुओंके हृदयमें तुम स्थित होकर भी नहीं मिलते। जैसे स्मृति न रहनेपर कंठस्थित मणि नहीं मिलती उन दुष्ट असाधुओंको आपकी प्राप्ति नहीं होती इतनाही नहीं किन्तु जो इन्द्रियोंके तृप्त करनेवाले हैं उनको इसलोक तथा परलोकमें दुःखही होता है क्योंकि लोकोंको प्रसन्न करना, धन संचय करना, भोग करना, गुप्त कार्य करना इत्यादिमें यहाँ दुःख होता है और आपकी प्राप्तिके लिये संन्यास लेनेपर यदि आपकी प्राप्ति न हुई और धर्मका अतिक्रमण किया, तो तुम्हारे दंडरूप

यदि न समुद्धरंति यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदिगतोऽस्मृतकंठमणिः ॥ असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्य सुखं भगवन्नपगतांतकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः ॥ अनुयुगमन्वहं सगुणगीतपरंपरया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥ द्युपतय एव ते न ययुरंतमनंततया त्वमपि यदंडतरांडनिचया ननु सावरणाः ॥ ख इव रजांसि वांति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलंत्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥

नरककी प्राप्ति हुई, इससे परलोकमें भी सुख नहीं, वह दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुए ॥ ३९ ॥ (२६) हे भगवन्! जिन भक्तोंको तुम्हारा ज्ञान होगया है, वे आपसे प्रगट हुए अपने प्राचीन पुण्य पापोंके फलरूप दुःख सुखके सम्बन्धको कुछ नहीं समझते और देहाभिमानियोंके सम्बन्धी प्रवृत्ति निवृत्तिके करनेवाले विधिनिषेधके वचनोंको नहीं सुनते, देहाभिमान रहित होजानेसे कार्याकार्यका सम्बन्ध नहीं रहता, हे ऐश्वर्यवान्! आप प्रत्येक युगमें अवतार धारण करके सन्मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको जो प्रतिदिन तुम्हारे चरित्र श्रवणकर हृदयमें धारणकरते श्रेष्ठ गति देतेहो, जब ऐसे पुरुषोंको भी किसीप्रकारकी बाधा नहीं रहती तो तत्त्ववेत्ताओंको कर्मकी शंका भी नहीं होसकती और जो पुरुष कपट प्रबंधकर इन्द्रियोंका भोगसे पूजन करते हैं, वह इस लोक और परलोकमें दुःख पाते हैं ॥ ४० ॥ (२७) हे भगवन्! स्वर्गलोकादिके पति ब्रह्मादिक

तुम्हारे प्रतापके अंतको नहीं पाते और आप भी अपने अंतको नहीं पाते, ब्रह्मादिक आपके अंतको नहीं जानते, इसमें क्या आश्चर्य है? अपने अन्तको न जाननेसे आपकी सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता नष्ट नहीं होती जैसे शशकके सींग न मिलनेसे सर्वज्ञका सर्वज्ञपन नहीं जाता, क्योंकि शशकके सींग हैंही नहीं फिर मिलें कहाँसे? इसी प्रकार आपका अंत जब हैही नहीं तो कोई जाने कहाँसे? क्योंकि तुम्हारे स्वरूपमें, आकाशमें, रजकणके सदृश दशदश गुण उत्तर उत्तर अधिक सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डोंके समूह कालचक्रसे भ्रमण करते हैं इसकारण श्रुति तात्पर्यसे आपकाही प्रतिपादन करती है साक्षात् नहीं कह सकती सगुण स्वरूपके तो गुण अपार हैं और निर्गुणमें वाणीकी गति नहीं इस कारण तुम्हारा संपूर्ण और साक्षात् निरूपण नहीं होता अनात्म पदार्थोंका निषेध कर अंतमें हम श्रुति आपकोही वर्णन करती हैं, क्योंकि अवधिके विना निषेध

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ॥ सनंदनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥ ४२ ॥ इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः ॥ समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥ ४३ ॥ त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् ॥ धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् ॥ पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाऽमलकीर्तये ॥ यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥ ४६ ॥

नहीं हो सकता, इसकारण निषेधके अवधिरूप आपमें ही हम वेदों का तात्पर्य निकलता है ॥ ४१ ॥ (२८) श्रीभगवान् बोले कि, हे नारदजी! इसप्रकार ब्रह्माके पुत्र सनकादिक वेदोंकी स्तुति सुनकर आत्माकी गति जान सनंदनजीकी पूजा करनेलगे ॥ ४२ ॥ इसप्रकार आकाशमें गमन करनेवाले सृष्टिमें प्रथम उत्पन्न हुये, ऐसे महात्मा सनकादिकोंने समस्त वेद पुराण और उपनिषद्का रस उद्धार किया है ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्माके पुत्र नारदजी! तुम श्रद्धापूर्वक आत्माके अनुशासनको धारण करके पृथ्वीमें यथेच्छ विचरो, यह आत्मानुशासन मनुष्योंकी विषयवासनाका नाश करनेवाला है ॥ ४४ ॥ इतनी कथा सुनाकर योगीवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित्! इसप्रकार श्रीनारायणके उपदेशको सुनकर कृतार्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रुतियोंके धारण करनेवाले नारदमुनि कहनेलगे ॥ ४५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, जो भगवान् श्रीकृष्णचंद्र संपूर्ण

भूतोंके कल्याणके लिये सुन्दर अवतार धारण करते हैं, उन निर्मलकीर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्रके अर्थ नमस्कार है ॥ ४६ ॥ उदार मन नारद आदि ऋषि
नारायण और उनके शिष्योंको नमस्कार कर मेरे पिता साक्षात् व्यासदेवके आश्रममें चलेगये ॥ ४७ ॥ व्यासदेवजीने सन्मानकर आसन दिया,
उसको ग्रहणकर नारदजीने नारायणके मुखसे जो श्रवण किया था वह सब व्यासजीके अर्थ वर्णन करदिया ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तुमने पूछाथा सो
हमने वर्णन किया, जैसे अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियें प्रवृत्त होती हैं ॥ ४९ ॥ मायाके दूर करनेवाले भक्तोंके भयनाशक नारायण जो कि
अपने स्वरूपमें शयन करते जीवोंके पुरुषार्थ सिद्ध करनेके लिये सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं, जो इस संसारके आदि, मध्य और अंतमें भी
रहते हैं, जो प्रकृति पुरुषके भी उपादान कारण हैं और जो इस जगत्को उत्पन्न करके जीवके साथही प्रवेश कररहे हैं, जिन्होंने जीवोंको

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ॥ ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता
कृतासनपरिग्रहः ॥ तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वर्णितं राजन्यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ॥
यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि श्रुतिश्चरेत् ॥ ४९ ॥ योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनु
प्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥ यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं
ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० म०द०उ० नारदनारायणसंवादे वेदस्तुतिर्नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥
राजोवाच ॥ देवासुरमनुष्येषु ये भजंत्यशिवं शिवम् ॥ प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥

भोग देनेके लिये पृथक् २ शरीर बनाये हैं, जो जीवोंको अनेक भोग देके शरीरोंका पालन करते हैं और प्रणामादिकसे भक्ति करनेवाले जीव
उन्हें प्राप्त होकर जैसे सुषुप्तिमें सोताहुआ शरीरके सन्बन्ध रहित होता है उसी प्रकार देहादिरूप अविद्याको वह भक्त त्यागन करदेते हैं,
उन्हीं नारायणका भजन करना चाहिये ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां नारदनारायणसंवादे देवस्तुतिर्नाम
सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ दोहा—विष्णुभक्तिसे मुक्ति है, अन्नदेवसे भोग ॥ अट्ठासी अध्यायमें, कहौं भक्तिके योग ॥ १ ॥ राजा
परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! देवता, असुर, मनुष्योंमें जो शिवका भजन करतेहैं वह धनवान् होते हैं और लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका

भजन करनेवाले धनी नही होते उसका कारण जाननेकी हमारी इच्छा है शिव और विष्णुके भजन करनेवालोंको संपूर्णतः विरुद्ध फल मिलते हैं क्योकि जो शिवजी विभूति लगा श्मशानमें वास करनेवाले अमंगलरूप हैं जिन शिवजीके कुछ नहीं, उनका जो पुरुष भजन करें, वह लक्ष्मीवान् हों और भोग भोगें और लक्ष्मीपति अच्छे भोग भोगें, सुन्दर वस्त्र पहरें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका जो भजन करें, वह बहुधा दरिद्रीही देखे जाते हैं यह स्वामियोंकी गति और है, सेवकोंकी गति और है उचित तो यह है कि, जैसा स्वामी होय उसी प्रकार सेवक हो ॥१॥२॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत! शिवमें शक्ति रहतीहै,गुणोंके परस्पर जो आपसमें संघर्षणसे तमोगुण तीन प्रकारका है, सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार और

एतद्वेदितुमिच्छामः संदेहोत्र महान्हि नः ॥ विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिंगो गुणसंवृतः ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभवन्षोडशामीषु कंचन ॥ उपधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥ निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ॥ शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥ स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥

तामस अहंकार ऐसे तीन प्रकारके अहंकारके अधिष्ठानसे विष्णु, ब्रह्मा, शिव यह तीन रूप धारण करते हैं ॥ ३ ॥ उस अहंकारसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पंचभूत और दश इंद्रियें तथा एक मन ऐसे सोलह विकार हुए इन विकारोंमें कोई एक विकारवान् उपाधिरूप विकारके भजन करनेसे संपत्ति मिलती है और उपाधिवालेका भजन करनेसे उपाधि मिलती है ॥ ४ ॥ निर्गुण साक्षात् मायासे परे सबके देखनेवाले साक्षीभूत हरि भगवान्का जो पुरुष भजन करें वह निर्गुण होतेहैं ॥ ५ ॥ अश्वमेधयज्ञ जब पूर्ण होचुका तब तुम्हारे दादा राजा युधिष्ठिरने वैष्णवधर्मको श्रवणकर पीछे श्रीकृष्णचन्द्रसे यही बात पूँछीथी ॥ ६ ॥ तब मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये यदुकुलमें आप अवतारधारी समर्थ भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरसे कहनेलगे ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जिस पुरुषके ऊपर मैं कृपा करताहूं, उस पुरुषका धन धीरे धीरे हर लेताहूं, इसके उपरान्त जब वह दरिद्री होजाताहै, तब उसे दुःखीके तुल्य और निर्धन जानकर उसे उसके भाई बंधु सब त्याग देते हैं ॥ ८ ॥ यह भक्त, भाई लोगोके आग्रहसे धन उपार्जन करनेका फिर उद्योग भी करे, परन्तु मेरे अनुग्रहसे उसके सब उद्योग व्यर्थ होजाते हैं और जब उसमें प्रबल वैराग्य उत्पन्न होजाता है, तब वह भक्त मेरे और भक्तोंके संग मित्रता करता है, तब उस पुरुषके ऊपर मैं असाधारण अनुग्रह करताहूं ॥ ९ ॥ मेरी कृपासे उस परब्रह्म सूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी नाशरहित आत्माका ज्ञान होता है इसीलिये मेरा आराधन बहुत कठिन है और इसीकारण मुझे त्यागकर वह पुरुष और देवताको भजताहै ॥ १० ॥ सेवन करनेसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले देवताओंसे राज्य और धन

श्रीभगवानुवाच ॥ यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ॥ ततोऽधनं त्यजंत्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ॥ ८ ॥ स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ॥ मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥ तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनंतकम् ॥ अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः ॥ १० ॥ ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ॥ मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरंत्यवजानते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ सद्यः शापप्रसादोंग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥ १२ ॥ अत्र चोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽऽप संकटम् ॥ १३ ॥ वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् ॥ दृष्ट्वाऽऽशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥

प्राप्ति होनेसे उद्धत मतवाले उन्मत्त होकर वे प्राणी वरके देनेवाले देवताओंको भूलकर अवज्ञा करते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे श्रेष्ठ ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादिक देव शाप और अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं, शिव, ब्रह्मा दोनों शीघ्रही प्रसन्न होते हैं और शीघ्रही शाप देते हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र प्रसन्न नहीं होते और जिसपर प्रसन्न होते हैं फिर उसे शाप नहीं देते ॥ १२ ॥ इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, सो वर्णन करते हैं, जैसे शिवजीने वृकासुरको वर देकर कष्ट पाया ॥ १३ ॥ दुष्टबुद्धि शकुनिका पुत्र वृकासुर मार्गमें देवर्षि नारदजीको देख ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इन तीनों देवताओमें शीघ्र कौन प्रसन्न होता है, यह पूँछने लगा ॥ १४ ॥

तब देवर्षि नारदजीने कहा कि तू भगवान् भूतनाथ महादेवजीकी पूजाकर यह करनेसे शीघ्र तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, क्योंकि शिवजी थोड़ेही गुणोंसे शीघ्र प्रसन्न और थोडेही दोषसे क्रोधित होजाते हैं ॥ १५ ॥ बंदीजनोंके समान स्तुति करनेवाले राक्षसराज रावण और बाणासुरके ऊपर प्रसन्न होकर शिवजीने बडा ऐश्वर्य दे फिर इन असुरोंसे आपहीने कष्ट पाया, रावणने तो कैलास उखाड़लिया और बाणासुरने कहा कि, मेरे पुरकी रक्षा करो ॥ ॥१६॥इसप्रकार जब देवर्षि नारदजीने कहा तो उसी समय वृकासुर अपने देहसे शिवजीका सेवन करनेलगा; इसके उपरान्त केदारतीर्थमें शिवजीके लिये अपने शरीरका माँस काटकर अग्निमें हवन करनेलगा ॥ १७ ॥ जब महादेवकी प्राप्ति न हुई, इसलिये सातवें दिन तीर्थमें स्नान करनेसे भीजे

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिध्यति ॥ योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥ दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्बंदिनोरिव ॥ ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसंकटम् ॥ १६ ॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः ॥ केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि ॥ शिरो वृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥ तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ॥ निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥ तमाह चांगाऽलमलं वृणीष्व मे यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ॥ प्रीये यतो येन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयाऽऽत्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥ २० ॥ देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् ॥ यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥ २१ ॥

केशवाले शिरको छूरी लेकर काटनेलगा ॥ १८ ॥ उससमय अत्यन्त करुणानिधान शिवजी हेम सरीखे मूर्तिमान्, अग्निके समान प्रकाशयुक्त अग्निकुण्डमेंसे निकल,हाथोंसे असुरकी भुजा पकड़ जैसे कोई दुःखके मारे मरनेको आवे उसे मने करते हैं, उसीप्रकार मनेकरने लगे और शिवजीका हाथ लगतेही उसका देह ज्योका त्यों होगया ॥ १९ ॥ वृकासुरसे शिवजी बोले कि, हे वृकासुर ! तू तप करके पूर्ण होगया, अब वर माँग, जो तेरी इच्छा हो,सोही वर दूंगा, क्योंकि जो मनुष्य मेरी शरण आते हैं, उनके ऊपर जलमात्रके चढातेही मैं प्रसन्न होजाताहूं, बडा आश्चर्य है ! तैंने वृथाही अपने शरीरको कष्ट दिया ॥ २० ॥ तब वृकासुरने जिस जिस पुरुषके शिरपर मैं हाथ धरूं, वह पुरुष उसी समय मरजावे इस

प्रकार संपूर्ण प्राणियोंको भयका देनेवाला वर माँगा ॥ २१ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस प्रकार वृकासुरका वचन सुन उदासीनसे हो "अच्छी बातहै" इस प्रकार शिवजीने मुसकाकर सर्पको दूध पिलानेके समान वृकासुरको वर देदिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार सुनतेही जगज्जननी पार्वतीके लेनेकी चाहनासे वह असुर वर मिथ्या है वा सत्य है, यह परीक्षा लेनेके लिये महादेवजीके माथेपर हाथ धरनेका उपाय करनेलगा, उससमय अपने कर्त्तव्यसे भयभीत होकर भगवान् शिवजी भागने लगे ॥ २३॥ असुर जिनके पीछे लगा; ऐसे शिवजी डरकर स्वर्गतक भागे और पृथ्वीका जहाँ

तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो दुर्मना इव भारत ॥ ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः ॥ स तद्वरपरीक्षार्थं शंभोर्मूर्ध्नि किलासुरः ॥ २३ ॥ स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥ तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावत्सवेपथुः ॥ यावदंतं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥ २४ ॥ अजानंतः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः ॥ ततो वैकुंठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ॥ शांतानां न्यस्तदंडानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥ तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः ॥ दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुको योगमायया ॥ २७ ॥ मेखलाजिनदंडाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् ॥ अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥

तक अंत है, तहाँतक भागे, फिर उत्तर दिशामें भागकर गये ॥ २४ ॥ उससमय उपायको न जान संपूर्ण देवता चुप होगये, इसके उपरान्त प्रकाशमान मायासे परे वैकुण्ठधाममें शिवजी गये ॥ २५ ॥ जिस वैकुण्ठधाममें शान्त स्वभाव और कालके दण्ड रहित संन्यासियोंकी परमगति अर्थात् प्राप्त होने योग्य नारायण विराजमान हैं ॥ २६ ॥ दुःखोंके दूर करनेवाले भगवान् नारायण शिवजीके पीछे दौड़े चले आते वृकासुरको दूरसे देख अपनी योगमायासे ॥ २७ ॥ ब्रह्मचारीका वेषधर मूंजकी करधनी मृगछाला दण्ड मालाओंको पहर तेजसे अग्निके समान प्रकाशमान कुश हाथमें

श्रीभगवानुवाच ॥ शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रांतः किं दूरमागतः ॥ क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक् ॥ २९ ॥
यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो ॥ भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥
एवं भगवता पृष्टो वचसामृतवर्षिणा ॥ गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं चेत्तर्हि
तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ॥ यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥ ३२ ॥ यदि वस्तत्र विश्रंभो दानवेंद्र
जगद्गुरौ ॥ तर्ह्यंगाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥ ३३ ॥ यद्यसत्यं वचः शंभोः कथंचिद्दानवर्षभ ॥ तदैनं
जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥ ३४ ॥

लिये भगवान् नम्र हो अभिवादन कर उससे बोले * ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे शकुनिके पुत्र ! तुझे निश्चय खेद है तू इतनी दूर क्यों आया ? थोड़ी देर विश्राम ले, क्योंकि समस्त कामनाओंका देनेवाला यह देह है इसे पीड़ा मत दे ॥ २९ ॥ हे समर्थ ! जो तुम्हारा अभिप्राय हमारे आगे सुनाने योग्य हो तो कहो, क्योंकि बहुधा दूसरोंकी सहायतासे पुरुष अपना कार्य सिद्ध करसते हैं ॥ ३० श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अमृतरूप वचनसे जब भगवान्ने पूँछा, तब खेद रहित वृकासुरने अपना सब वृत्तान्त सुनादिया ॥ ३१ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, शिवने तुमको वर दियाहै तो शिवके वचनको हम सत्य नहीं मान सकते, क्योंकि यह शिव दक्षके शापसे पिशाचोंकी दशाको प्राप्त हुआ है, और प्रेत पिशाचोंका राजा है ॥ ३२ ॥ हे दानवेन्द्र वृकासुर ! यदि इस शिवके वचनमें तुझे विश्वास है तो तू शीघ्र अपने मस्तकपर हाथ धरकर परीक्षा लेले ॥ ३३ ॥ हे दानवश्रेष्ठ ! इस महादेवका वचन कसे सत्य होगा ? यह तो मिथ्यावादी है, पीछे जो किसी प्रकार भी महादेवका वचन असत्य

* शंका—वृकासुरको छलनेके लिये परमेश्वरने ब्रह्मचारीका स्वरूप क्यों धारण किया ? क्योंकि वेदमें ब्रह्मचारीके लिये झूठ बोलना बुरा लिखा है, इसलिये और अनेकरूप भगवान्के बनाये संसारमें बहुत है दूसरा रूप धारण करके छल करना था, ब्रह्मचारी बनकर क्यों छला ?

उत्तर—वृकासुरको त्रिलोकीमें किसीका विश्वास नहीं था, क्योंकि यह बड़ा धूर्त था, और उसको अपने बलका बड़ा घमण्ड था परन्तु त्रिलोकीमें उसको दो जनोंका विश्वास था एक नारदमुनिका और दूसरे ब्रह्मचारी वेषका, भगवान्ने विचारा कि, यह दैत्य नारद मुनिकी आज्ञा मानके यह कर्म किया है, इसलिये ब्रह्मचारीका रूपधर भगवान्ने सब काम किये ।

विदित हो तो महादेवको मार, जो फिर कभी मिथ्या न बोले ॥ ३४ ॥ इस प्रकार मनोहर विचित्र विचित्र भगवान्‌के वचनोंसे भ्रष्टबुद्धि हो कुबुद्धि वृकासुरने भूलकर अपने शिरपर अपना हाथ रक्खा ॥३५॥ हे महाराज ! शिरपर हाथ धरतेही वज्रके मारेके समान क्षणभरमें शिर फूटनेसे वह वृका सुर गिरगया, उससमय स्वर्गमें जय जय और नमःनमः तथा साधुशब्द होनेलगा ॥ ३६ ॥ जिससमय पापात्मा वृकासुर मरगया उससमय देवता, पितृ, ऋषि, गंधर्व फूलोंकी वर्षा करनेलगे और भगवान् महादेवजीको भी कष्टसे छुड़ादिया ॥ ३७ ॥ जब शिवजी कष्टसे छूटगये तब श्रीपुरुषोत्तम भगवान् बोले कि अहो देव ! महादेव ! यह वृकासुर पापी अपनेही पापसे मराहै ॥ ३८ ॥ ईश्वर और बडोंका अपराध करनेसे कौन पुरुष कल्याण

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ॥ भिन्नधीर्विस्मितः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ॥ देवर्षिपितृगंधर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ३८ ॥ हतः को नु महत्स्वीश जंतुर्वै कृतकिल्बिषः ॥ क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥ गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे रुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

को प्राप्त होता है ? देखो विश्वके ईश्वर जगत्‌के गुरू तुम्हारा अपराध करनेसे कदापि भला नहीं होता है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार वाणीके अगोचर अनन्तशक्ति सबके साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीको कष्टसे छुडाया, यह चरित्र जो पुरुष कहै और सुनै और उनपर भरोसा करते हैं, वह संसार तथा शत्रुओंसे छूट जातेहैं ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां वृकासुरवधो नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

दोहा—तीन देवमें को बडो, सबको यही विचार ॥ भृगु मुनिने सबसे कह्यो, विष्णु जगत आधार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! एकसमय सरस्वती नदीके तटपर ऋषि यज्ञ कर रहेथे, तहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन तीनों देवताओंमें कौन बडा है ? इसप्रकार परस्पर झगड़ा होने लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! इनमें कौन बड़ा है, इसकी परीक्षा करनेके लिये भृगुको भेजा, सो भृगु परीक्षाके कारण ब्रह्माकी

श्रीशुक उवाच ॥ सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ॥ वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् १ ॥ तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ॥ तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम् ॥ २ ॥ न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ॥ तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥ स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ॥ अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणाऽऽत्मभूः ॥ ४ ॥

सभामें गये ❋ ॥ २ ॥ भृगुजीने ब्रह्माके स्वभावकी परीक्षा लेनेके लिये स्तुति प्रमाण कुछ भी नहीं किया, तब ब्रह्माजीने अपने क्रोधसे प्रज्वलित हो भृगुके ऊपर अत्यन्त क्रोध किया ॥ ३ ॥ परन्तु ब्रह्मा अपने पुत्रके लिये चित्तमें उठे क्रोधको आपही शान्त करनेलगे, जैसे अपने कारण जलसे अग्नि शान्त होती है और अग्निके शान्त करनेमें जैसे अग्निसे उत्पन्न जल काम आताहै, उसीप्रकार ब्रह्माका क्रोध शान्त करनेमें

❋ शंका—तीनों देवताओंमें बडा देवता कौन है ? ब्रह्मा बडे हैं कि, विष्णु बडे हैं कि, शिव बडे हैं, ऐसा विचार मुनि लोगोंने क्यों किया ? क्योंकि ऐसा विचार तो बडे बडे अज्ञानी तथा बालक और बडे बडे मूर्ख किया करते हैं, मुनि लोग ऐसा विचार कभी नहीं करते, फिर उन लोगोंने क्यों किया ?

उत्तर—सारस्वत मुनिके वंशमें जो जन्म लिये ब्राह्मण हैं सो सब ब्रह्मकर्ममें बडे निपुण होते थे, ऐसा ब्रह्मकर्मका अभिमान करके सब देवताओंका और मुनिजनोंका अनादर करने लगे, वचनोंसे भी किसीका आदर नहीं करते थे, ऐसा सारस्वत ब्राह्मणोंका अभिमान जानकर विचार किया कि, ऐसा अभिमान करके सब सारस्वत ब्राह्मण नरकमें पडेंगे, क्योंकि हमें आदि लेके जितने देवता हैं तथा ब्राह्मण हैं, उन सबको यह ब्राह्मण कुछ भी नहीं जानते, ऐसा भगवान्ने विचार करके उनहीं ब्राह्मणोंकी यज्ञमें कृपाकरके उनही ब्राह्मणोंकी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया, तब उन सब ब्राह्मणोंने ज्ञान त्याग दिया और मूर्ख होगये और उस मूर्खतासे मस्त होने लगे, कुछ कालोपरान्त भगवान्का चरित्र भृगुजीने वर्णन किया, तव सब सारस्वत ब्राह्मण अभिमान रहित होगये, इसलिये सारस्वत ब्राह्मण बुद्धि भ्रष्ट होगये ॥

उन्हींसे उत्पन्न हुए भृगुजी काम आये ॥ ४ ॥ वहाँ से भृगुजी कैलास पर्वतपर शिवजीके पास गये, उस समय शिवजी भाई भृगुसे प्रीतिपूर्वक उठकर मिलनेको उद्यत हुए ॥ ५ ॥ तब भृगुजीने महादेवजीसे मिलनेकी इच्छा न की और कहा तुम कुमार्गमें चलतेहो, हम तुमसे नहीं मिलैंगे. यह सुनतेही महादेवजी क्रोधसे लाल नेत्र कर हाथमें त्रिशूल ले मारनेको प्रस्तुत हुए ॥ ६ ॥ उससमय पार्वती महादेवजीके चरणोंमें गिरकर बोली कि, महाराज ! तुम्हारा भ्राता है, इसे कैसे मारते हो ? इस प्रकार वाणीसे शान्त करनेलगीं, इसके उपरान्त-भृगु वैकुण्ठमें गये जहाँ जनार्दन भगवान् वास करते हैं ॥ ७ ॥ लक्ष्मीकी गोदी शयन करते विष्णु भगवान्के हृदयमें भृगुने जाकर लात मारी, तदनंतर साधुओंकी गति विष्णुभगवान्ने

ततः कैलासमगमत्स तं देवो महेश्वरः ॥ परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ॥ शूलमुद्यम्य तं हंतुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥ पतित्वा पादयोर्देवी सांत्वयामास तं गिरा ॥ अथो जगाम वैकुंठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥ शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत् ॥ तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ॥ ८ ॥ आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् ॥ अजानतामागतान्वः क्षंतुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥ अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ॥ इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० ॥ पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ॥ पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ ११ ॥

लक्ष्मीसहित पलँगपरसे उठ और पृथ्वीमें मस्तक धर भृगुजीको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ और कहनेलगे कि, हे ब्रह्मन् "तुम भले आये" आसन ग्रहण करो. हे समर्थ ! आपके आनेको हमने नहीं जाना, सो अपराध क्षमा करो ॥ ९ ॥ हे तात ! हे महामुनि ! तुम्हारे चरण कोमल हैं और मेरी छाती अत्यन्त कठोर है, तुम्हारे चरणोंमें चोट लगी होगी, इसप्रकार कह अपने हाथोंसे ब्राह्मणके चरण सहलाने लगे ॥ १० ॥ गंगादिक तीर्थोंको पवित्र करनेवाले अपने चरणोंके जलसे मुझे और मुझमें अधिष्ठित लोक और लोकपालोंको पवित्र करो ॥ ११ ॥

हे ब्राह्मण ! अब मैं लक्ष्मीके वास करनेका अत्यन्त पात्र हुआ और तुम्हारे चरण स्पर्शसे पाप दूर हुए, इसलिये मेरी छातीमें सदा लक्ष्मी वास करेगी ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार श्रीनारायणकी कही मनोहर वाणीसे तृप्त होकर भक्तिसे आनंदमें मग्न हो भृगुजी नेत्रोंमें आँसू भरकर चुप होगये ॥१३॥ हे राजन् ! भृगुजीने फिर अपने यज्ञमें आय वेदपाठी मुनियोंसे तीनोंकी जो बात देखकर आये थे सो कहदी ॥ १४ ॥ भृगुकी बात सुन आश्चर्यको प्राप्त हो संदेहोंको त्याग मुनियोंने कहा कि इतना उनका अपराध किया, परन्तु क्रोध न आया विष्णु भगवान्मेंही शान्ति है और किसी देवतामें नहीं है, इसलिये सबसे बड़े विष्णुभगवान्ही हैं; यह निश्चय है ॥ १५ ॥ साक्षात् धर्म और धर्मके

अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकांतभाजनम् ॥ वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे वैकुंठे भृगुस्तन्मंद्रया गिरा ॥ निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कंठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥ १४ ॥ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ॥ भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शांतिर्यतोऽभयम् ॥ १५ ॥ धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ॥ ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्य शश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनां न्यस्तदंडानां शांतानां समचेतसाम् ॥ अकिंचनानां साधूनां यमाहुः परम गतिम् ॥ १७ ॥ सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ॥ भजंत्यनाशिषः शांता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ॥ गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥

लिये ज्ञान तथा वैराग्य और आठ प्रकारके ऐश्वर्य और आत्माके मलोंका दूरकरनेवाला यश यह सब भगवान्मेंही विद्यमान हैं ॥ १६ ॥ कालदंडके भयरहित, शान्त स्वभाव और समान चित्त, निर्किंचन अर्थात् किसी वस्तुकी जिनमें चाहना नहीं, साधु मुनियोंको जिन भगवान्की परमगति कहते हैं ॥ १७ ॥ सत्त्वगुण भगवन्का प्यारा रूप है और ब्राह्मण भगवान्के इष्ट देवता हैं, शांत और निष्काम बड़ी बुद्धिवाले जिनका भजन करते हैं, वही सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ जिन भगवान्ने अपनी मायासे सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी तीन प्रकारके देवता असुर

राक्षस बनाये हैं, सबही उनका रूप हैं परन्तु उनमें सत्त्वगुणी रूप कल्याणका देनेवाला है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार सरस्वतीके तीरवासी ब्राह्मण मनुष्योंका संदेह दूर करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दकी सेवा करके श्रीकृष्णचन्द्रकीही गतिको प्राप्त हुए ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि, ऋषीश्वरो! व्यासदेव मुनिके पुत्र श्रीशुकदेवजीके मुखकमलकी सुगंधि मिला अमृके समान संसारके भयका कटानेवाला श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रका यश कानरूपी दोनोंमें भरकर जो पान करैगा, वह ससारके आवागमनके परिश्रमसे छूट जायगा ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस चरित्रमें श्रीकृष्णचन्द्रका उत्कर्ष कहा अब श्रीकृष्णचन्द्रकाही उत्कर्ष करनेवाला और चरित्र वर्णन करतेहैं

श्रीशुक उवाच ॥ एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ॥ पुरुषस्य पदांभोजसेवया तद्गतिं गताः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगंधपीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः ॥ सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पांथोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ॥ जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥ २२ ॥ विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ॥ इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ॥ क्षत्रबंधोः कर्मदोषात्पंचत्वं मे गतोऽर्भकः ॥ २४ ॥ हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेंद्रियम् ॥ प्रजा भजंत्यः सीदंति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥ २५॥ एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ॥ विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥ २६ ॥

हे राजन्! एक समय द्वारकामें एक स्त्रीके पुत्र उत्पन्न होकर पृथ्वीका स्पर्श करतेही मरगया ॥ २२ ॥ वह ब्राह्मण मरे पुत्रको ले राजा उग्रसेनकी डयोढी पर धर विलापकर आतुर दीन मन होकर यह कहनेलगा ॥ २३ ॥ ब्रह्मणोंका द्वेषी शठबुद्धि लोभी विषयोंमें आसक्तमन क्षत्रियोंमें अधम इस राजाके दोषसेही मेरा पुत्र मरा है मेरा कुछ दोष नहीं है ॥ २४ ॥ हिंसा करनेवाले दुःस्वभाव अजितेन्द्रिय राजाके सेवन करनेसे प्रजा दुःखी और दरिद्री होती है ॥ २५ ॥ इसीप्रकार वह ब्राह्मण दूसरे पुत्रको फिर तीसरे पुत्रको लेकर राजाके द्वारपर धरकर यही कहने लगा, कि मेरा कुछ दोष

नहीं है, इस राजाके दोषसे यह सब मेरे पुत्र मरे हैं ॥ २६ ॥ किसीसमय अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके निकट ब्राह्मणकी बात श्रवणकर नवम बालक जब मर चुका, तब ब्राह्मणसे कहने लगा ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मण ! तू किसलिये रुदन करता है, क्या तेरे रहनेके स्थान द्वारकामें धनुषका धारण करने वाला कोई क्षत्रिय नहीं है ? धन, स्त्री और पुत्रोंमें आसक्त यह यादव तो यज्ञमें भोजनको आयेहुए ब्राह्मणोंके समान बैठे हैं ॥ २८ ॥ क्षत्रियोंके जीवित होनेपर भी धन, स्त्री, पुत्र, संयुक्त ब्राह्मण जहाँ शोच करते हैं वे उदरपोषक क्षत्रिय और उनके वेषसे नटही जीते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम दीन हो, इसलिये तुम्हारे पुत्रकी मैं रक्षा करूंगा और जो मुझसे रक्षा न होगी अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होगी तो ब्राह्मणकी

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवांतिके ॥ परेते नवमे बाले ब्राह्मण समभाषत ॥ २७ ॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः ॥ राजन्यबंधुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २८ ॥ धनदारात्मजाऽपृक्ता यत्र शोचंते ब्राह्मणाः ॥ ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवंत्यसुंभराः ॥ २९ ॥ अहं प्रजां वां भगवन्रक्षिष्ये दीनयोरिह ॥ अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥ ३० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥ अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवंति यत् ॥ ३१ ॥ तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ॥ चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥ ३२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नाहं संकर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ॥ अहं वा अर्जुनो नाम गांडीवं यस्य वै धनुः ॥ ३३ ॥

प्रीतिसे पापरहित हो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगा ॥ ३० ॥ ब्राह्मण बोला कि, महाराज ! संकर्षण, वासुदेव और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी तथा जिसके समान कोई योद्धा नहीं ऐसे अनिरुद्ध यह सब भी मेरे बालकोंकी रक्षा करनेको समर्थ न हुए ॥ ३१ ॥ जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी जिस कर्मको न करसके, हे अर्जुन ! उस कर्मको तू कैसे करसकेगा ? तू अज्ञानसे करना चाहताहै इसकारण तेरी बातका मुझे विश्वास नहीं होता ॥ ३२ ॥ अर्जुन बोले कि, हे ब्राह्मण ! मैं संकर्षण, कृष्ण, प्रद्युम्न नहीं हूं, गांडीव धनुषधारी अर्जुन नामक क्षत्रिय हूं ॥ ३३ ॥

हे ब्राह्मण ! तू मेरा अपमान मत करे,महादेवका प्रसन्न करनेवाला मेरा पराक्रम है, हे समर्थ ब्राह्मण ! संग्रामके बीच मृत्युको जीतकर भी तेरे पुत्र ला दूंगा ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित ! इसप्रकार धृष्टताके वचनोंसे विश्वासको प्राप्त हो, वह ब्राह्मण अर्जुनके पराक्रमको श्रवण कर प्रसन्न हो अपने घरको चला आया ॥३५॥ जब स्त्री के प्रसूतिकालका समय आया, तब ब्राह्मण "मृत्युसे पुत्रकी रक्षाकर" इसप्रकार वारम्वार आतुर हो अर्जुनसे कहने लगा ॥३६॥ उस समय अर्जुनने पवित्र जलका स्पर्श कर हाथ, पॉव धो, आचमनकर, शिवजीको नमस्कार करके दिव्य शस्त्रोंका स्मरण कर प्रत्यंचा चढाय गांडीव धनुषको हाथमें लिया ॥ ३७ ॥ अनेक शस्त्रोंमें मिलाये बाणोंसे सोवरके घरको पिंजरा बना दिया, तिरछे बाण चलाये,

माऽवमंस्था मम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यंबकतोषणम् ॥ मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥ ३४ ॥ एवं विश्रंभितो विप्रः फाल्गुनेन परंतप ॥ जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ॥ पाहिपाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥ ३६ ॥ स उपस्पृश्य शुच्यंभो नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गांडीवमाददे ॥ ३७ ॥ न्यरुणत्सूतिकाऽगारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपंजरम् ॥ ३८ ॥ ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ॥ सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३९ ॥ तदाऽह विप्रो विजयं विनिंदन्कृष्णसन्निधौ ॥ मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ ४० ॥ न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ॥ यस्य शेकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥

ऊपरको चलाये और नीचेको चलाकर घरके ऊपर बाणोंका पिंजरा करदिया ॥३८॥ इसके उपरान्त ब्राह्मणकी स्त्रीके उत्पन्न हुआ बालक बारम्बार रुदनकर शीघ्रही शरीर सहित आकाश मार्गमें होकर चलागया और बार देह पडा रहता था, अबकीबार देह भी न रहा ॥ ३९ ॥ उससमय ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रके निकटही अर्जुनकी निन्दा करके यह कहनेलगा कि,मेरी मूढता देखो, मैंने इस नपुंसक अर्जुनका कहना सत्य माना ॥४०॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलदेवजी और श्रीकृष्णचन्द्र यह सब मिलकर भी जिसकी रक्षा न करसके, उसकी रक्षा करनेको और कौन समर्थ है ? ॥ ४१ ॥

मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है, इस अपनी श्लाघा करनेवाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है,यह दुर्बुद्धि दैवके विनाश किये पदार्थको मूर्खतासे बचाना चाहताहै ॥ ४२ ॥ इसप्रकार जब ब्राह्मणने खोटा वचन कहा, तब अर्जुनने योगविद्याको धारणकर यमराज भगवानकी संयमनीपुरीमें शीघ्र प्रवेश किया ॥४३॥ वहाँ यमराजकी पुरीमें पुत्रोंको न देखा, तब वहाँसे अर्जुन इन्द्रकी पुरीमें गया, फिर अग्निकी पुरीमें गया, वहाँसे कुबेरकी पुरीमें गया वायुकी पुरीमें गया,वरुणकी पुरीमें गया,इसके उपरान्त रसातल और स्वर्गमें गया फिर धनुषको उठाये और स्थानोंको गया ॥ ४४ ॥ स्थान ढूंढे परन्तु कहीं ब्राह्मणके पुत्रका पता न मिला, तब प्रतिज्ञासे अर्जुन अग्निमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेलगा, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे मने करके

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ॥ दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥ ४२ ॥ एवं शपति विप्रर्षौ वि
द्यामास्थाय फाल्गुनः ॥ ययौ संयमिनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः ॥ ४३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐंद्रीमगात्पुरी
म् ॥ आग्नेयीं नैर्ऋतिं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ॥ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततोऽलब्ध
द्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ॥ अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥ ४५ ॥ दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मा
नमात्मना ॥ ये ते हि कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयंति नः ॥ ४६ ॥ इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ॥ दिव्य
स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत ॥ ४७ ॥ सप्त द्वीपान्सप्त सिंधून्सप्तसप्त गिरीनथ ॥ लोकालोकं तथाऽतीत्य
विवेश सुमहत्तमः ॥ ४८ ॥ तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ॥ तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥

बोले ॥ ४५ ॥ कि ब्राह्मणके पुत्रको मैं ला दूंगा, तू अग्निमें मत जलै, इसलिये जो तेरी निन्दा करते हैं वेही तुम्हारी निर्मल कीर्त्तिको हमारे साथ पृथ्वीपर निरन्तर गान करेंगे कि, अंतमें श्रीकृष्णके साथ अर्जुनने ब्राह्मणके पुत्रोंको लादी दिया ॥ ४६ ॥ सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसप्रकार कह और अर्जुनको संग ले अलौकिक अपने रथमें चढ पश्चिमदिशाको चलेगये ॥ ४७ ॥ और सात सात पर्वतके सात द्वीप उल्लंघनकर तथा सात समुद्रोंको और लोकालोक पर्वतोको उल्लंघन कर बड़े अंधकारमें घुसगये ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! उस अंधकारमें शैब्य, सुग्रीव,

मेघपुष्प, बलाहक इन रथके घोड़ोंकी गात शिथिल होगई ॥ ४९ ॥ महायोगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने घोड़ोंकी शिथिलगतिको देख हजार सूर्यके तेजवाले अपने सुदर्शन चक्रको रथके आगे चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५० ॥ अति घोर सघन प्रकृतिके परिमाण रूप अंधकारको अपनी उत्कृष्ट कांतिसे विदीर्णकर मनके तुल्य वेगवान् सुदर्शनचक्रने प्रत्यंचासे सेनापर श्रीरामचन्द्रके बाणके समान प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ चक्रके पीछे गमन करके उस अंधकारसे परे वर्त्तमान श्रेष्ठ व्याप्त भगवान्का प्रकाशरूप देख चकाचौंधीसे अर्जुनने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त बड़े पवन चलनेसे उठी लहरोंसे शोभायमान जलमें वह रथ गया, उस जलमें प्रकाशमान् वस्तुमें श्रेष्ठ और दीप्तिमान् सहस्रों मणि

तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ॥ सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥ ५० ॥ तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ॥ मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः परं परंज्योतिरनंतपारम् ॥ समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षो पिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ॥ तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तंभसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनंतमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ॥ विभ्राजमानं द्विगुणोल्वणेक्षणं सिताचलाभं शितिकंठजिह्वम् ॥ ५४ ॥ ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ॥ सांद्रांबुदाभं सुपिशंगवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥

योंके खंभ लग रहे हैं, उनसे शोभायमान अद्भुत भवन देखा ॥ ५३ ॥ उस भवनमें बड़ी देहवाले अद्भुत सहस्र मस्तकोंमें मणियोंकी कान्तिसे प्रकाशमान दो सहस्र नेत्रोंसे शोभायमान स्फटिकमणिके श्वेतपर्वतकी तुल्य कांति और श्याम कंठ तथा जिह्वा संयुक्त शेषनागको अर्जुनने देखा ॥ ५४ ॥ उन शेषनागके देहको सुखदायक आसन बनाये बड़े प्रभाववाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ उत्तम भूमा पुरुषको शयनकरते अर्जुनने देखा जिनकी वर्षाऊ मेघके समान कान्ति,सुन्दर पीत वस्त्रोंको धारण किये, मुख प्रसन्न मनोहर और बड़े बड़े नेत्र हैं ॥ ५५ ॥

जिनके केश बड़ी मणियोंसे जड़ित किरीट और कुण्डलोंकी कान्तिसे शोभायमान लंबी सुन्दर आठ भुजा कौस्तुभमणिको धारण करे और भृगुलताके चिह्न संयुक्त वनमाला पहररहे थे ॥ ५६ ॥ सुनंद, नंद, मुख्य अपने पार्षद और मूर्तिमान चक्रादि अपने शस्त्र और पुष्टि, श्री, कीर्त्ति, माया तथा समस्त अणिमादिक विभूतियोंसे सेवित ब्रह्मादिकोंके पालन करनेवाले॥५७॥इस प्रकार अनन्तभूमा भगवान्‌के दर्शनकर सब लोकोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपको प्रणाम किया और भयभीत अर्जुनने भी प्रणाम किया, इसके उपरान्त श्रीकृष्ण और अर्जुनको हाथ जोड़े खड़ा देख वह पुरुष गंभीर वाणीसे मुसकातेहुए बोले ॥ ५८ ॥ कि, तुम्हारे देखनेके लिये ब्राह्मणके पुत्रोंको मैं ले आयाहूं, पृथ्वीमें मेरी कलासे अवतीर्णहुए

महामणिव्रातकिरीटकुंडलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुंतलम् ॥ प्रलंबचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्म्या वनमालयावृतम् ॥ ५६ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ॥ पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाऽखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥ ५७ ॥ ववंद आत्मानमनंतमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ॥ तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धांजली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५८ ॥ द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ॥ कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमंति मे ॥ ५९ ॥ पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ॥ धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ॥ ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् ॥ विप्राय ददतुः पुत्रान्यथारूपं यथावयः ॥ ६२ ॥ निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ॥ यत्किंचित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकंपितम् ॥ ६३ ॥

तुम पृथ्वीके ऊपर बोझरूप असुरोंको मार शीघ्र मेरे पास आजाओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों पूर्ण मनोरथ महाश्रेष्ठ नरनारायण ऋषि हो तो भी लोकोंको शिक्षा करनेके लिये धर्म करते हो ॥ ६० ॥ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान भगवान् भूमापुरुषने जब इस प्रकार आज्ञा दी तो श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन भूमापुरुषको प्रणामकर ब्राह्मणके बालकोंको संग ले अपने धाम द्वारकापुरीमें आये और उन्होंने ब्राह्मणको उसी अवस्था और रूपवाले पुत्र देदिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का प्रभाव देख अर्जुननें महाआश्चर्य मानकर पुरुषमें जो कुछ पराक्रम है सो श्रीकृष्णचन्द्रकी

कृपासेही है यह निश्चय किया ॥ ६३ ॥ इसप्रकार अनेक पराक्रम इस संसारमें दिखाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जगत्के विषयोंको भोग किया और बड़े यज्ञोंसे यजन किया ॥ ६४ ॥ समयके अनुसार धर्ममार्गमें स्थित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणसे आदि ले सब प्रजाके मनोरथको जैसे न वर्षासे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं उसीप्रकार पूर्ण किया ॥ ६५ ॥ अधर्मी राजाओंको मारकर और कितनोंको अर्जुन भीमसेनादिकोंके द्वारा घात कराया धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि धार्मिक राजाओंके द्वारा अनायास संसारमें धर्म प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णचरित्रवर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ दोहा—नब्बेके अध्यायमें, यदुकुलको

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ॥ बुभुजे विषयान्ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥ ६४ ॥ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु ॥ यथाकालं यथैवेंद्रो भगवाञ्श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥ ६५ ॥ हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वाऽर्जुनादिभिः ॥ अंजसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे द्विजकुमारानयनं नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियः पतिः ॥ सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥ स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकांतिभिः ॥ कंदुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडंतीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥ नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतंगजैः ॥ स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥ उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ॥ निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायां समंततः ॥ ४ ॥

विस्तार ॥ हरिलीला संक्षेपसे, वरणों बारम्बार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! संपूर्ण संपत्तियोंसे भरी और श्रेष्ठ यादवोंसे सेवित द्वारकापुरीमें ॥ १ ॥ जहाँ नवयौवनकी शोभासे शोभायमान और विजलीके समान कान्तिवाली स्त्रियें महलोंमें गेंद क्रीड़ा कर रही हैं और शृंगारसे मनोहर वेष धारण कररही हैं ॥ २ ॥ जहाँके मार्गोंमें मद चुवाते हाथी और उत्तम वेषकिये योद्धा घोड़े और सुवर्णसे दीप्तिमान् रथोंकी सदा भीड़ बनी रहती है ॥ ३ ॥ जहाँ फूलसंयुक्त अत्यन्त शोभायमान बगीचे लगरहे हैं, और फूलेहुए वृक्षोंकी पंक्तियोंमें

चारों ओरसे भौंरे और पक्षी निरन्तर गुंजार करते रहते हैं ॥४॥ ऐसी द्वारकापुरीमें सोलह सहस्र पत्नियोंके प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रने जितने स्त्रियोंके जितने सम्पन्न महलहैं, उनमें उतनेही विचित्ररूप धारणकर उनके संग रमण किया ❋ ॥ ५ ॥ इन घरोंमें फूलेहुए उत्पल, कह्लार,

रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ॥ तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदांभोजरेणुभिः ॥ वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥ विजहार विगाह्यांभो ह्रदिनीषु महोदयः ॥ कुचकुंकुमलिप्तांगः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥ उपगीयमानो गंधर्वैर्मृदंगपणवानकान् ॥ वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवंदिभिः ॥ ८ ॥

कुमुद, अंभोज, परागकी सुगंधियुक्त निर्मल जलवाले सरोवरोंमें पक्षियोंके समूह शब्द कररहे ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके आलिंगनसे कुचोंकी केशर जिनके लगरही, ऐसे महाप्रतापी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सरोवरोंके भीतर विहार करते हैं ॥ ७ ॥ मृदंग, ढोलक आदि बाजे और वीणाओंको गंधर्वगण

❋ **शंका**—श्रीकृष्ण भगवान् अपनी स्त्रियोंके साथ मनुष्योंके समान क्रीडा क्यों करते थे ?

उत्तर—श्रीकृष्णने विचार किया कि, अब कलियुगके आनेके थोडेही दिन और रहे हैं, जब कलियुग अवेगा तो कलियुगमें बडे बडे दुष्ट अधर्मी मनुष्य जन्मैंगे और अपनी स्त्रियोंको छोडकर दूसरी स्त्रियोंसे मन लगावेंगे और उनहींको अनेक २ प्रकारके वस्त्र आभूषण पहिरावेंगे और अपनी स्त्रियोंको भरकर पेट रोटीभी न देंगे और हरेक वस्तुको तरसावेंगे और बात बातोंमें लात और घूसोंसे मार लगावेंगे तब वेदमें जो विवाहिता स्त्री पुरुषोंका धर्म लिखा है सो सब नष्ट हो जायगा तब सनातन धर्म नष्ट हुए पीछे सब प्रजा वर्णसकर होजायगी, तब पृथ्वी रसातलके जानेकी इच्छा करैगी, तब मुझको अवतार लेना पडेगा ऐसा भगवान् विचारके कलियुगमें जो मनुष्य उत्पन्न होवेंगे उन मनुष्योंको सिखानेके लिये और कलियुगमें स्त्रियोंकी रक्षा करनेकेलिये अपनी स्त्रियोंके साथ अत्यन्त क्रीडा और विहार करते थे श्रीकृष्णने विचारा कि अपनी स्त्रियोंके क्रीडाको कलियुगके मनुष्य सुनके जारकर्म छोडके अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ इसीप्रकार विहार करेंगे और आदर सत्कार सहित उनका पूजन करेंगे और अपनी स्त्री गृहस्थीमें परमोत्तम हैं, क्योंकि श्रीकृष्णने भी उनके साथ अत्यन्त प्रीति की थी इसीप्रकार हम भी उनसे प्यार करैं और जो परमोत्तम न होती तो श्रीकृष्ण अपनी स्त्रियोंका सन्मान क्यों करते इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा की थी कामदेवके वश होकर नहीं की थी ।

बजाय रहेहैं, और सूत, मागध, बंदीजन स्तुति कररहेहैं ॥ ८ ॥ हँसती हुई स्त्रियें अपनी २ पिचकारियोंसे भिजोती और श्रीकृष्णचन्द्र भी स्त्रियों को छिडकते यक्षराज कुबेरके समान क्रीडा करनेलगे ॥ ९ ॥ भीजे वस्त्रोंसे उर, कुच, प्रगटहोने और ढीली चोटियोंमेंसे फूल गिरनेसे स्त्रियें पिचकारीसे बचनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करतेही कामदेवके उत्सवसे प्रकाशमान मुखवाली होगईं और भगवान्‌को भिजोती शोभा पानेलगीं ॥ १० ॥ स्त्रियोंके स्तनोंकी केशरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी माला भरगई और हाथिनियोंके संग विहार करनेवाले हाथीके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ११ ॥ नट और नाचनेवालियोंको गीत गाने तथा बाजे बजाकर जीविका करनेवालोंको श्रीकृष्णचन्द्र और

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसंतीभिः स्म रेचकैः ॥ प्रतिषिंचन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥ ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिंचंत्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ॥ कांतं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥ कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुंकुमस्रक्क्रीडाभिषंगधुतकुंतलवृंदबंधः ॥ सिंचन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ॥ क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ॥ नर्मक्ष्वेलिपरिष्वंगैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥ १३ ॥ ऊचुर्मुकुंदैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ॥ चिंतयंत्योऽरविंदाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥ वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

उनकी स्त्रियोंने क्रीड़ा करनेके अलंकार और वस्त्र दिये ॥ १२ ॥ इसप्रकार विहार करते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी चलनि, बोलनि मुसकानि और हास्यकी वार्त्ता, क्रीड़ा, आलिंगनसे स्त्रियोंकी बुद्धि हरगईथी ॥ १३ ॥ हे राजन्! मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें बुद्धिवाली एक स्त्रीने पहले चुप होय फिर भगवान् वासुदेवका ध्यानकर, उन्मत्त हो जड़की नाईं जो वचन कहेथे, उन वचनोको मैं वर्णन करताहूं, तुम सुनो ॥ १४ ॥ स्त्रियें बोलीं कि, हे टिटहरी! संसारमें गुप्तबोध भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो शयन कररहेहैं और तू निद्रारहित हो विलाप करके उनकी नींदमें बाधा देतीहै,

तू शयन नहीं करती, सो यह सत्य नहीं, हे सखी ! क्या हमारीही नाई कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्रका हास्य लीला पूर्वक चितवनसे तेरा चित्त बँधगया है, इसीसे पुकारतीहै ? ॥ १५ ॥ हे चकवी ! तैंने क्यों नेत्र मूँदलिये हैं, रात्रिमें पतिको न देखनेसे करुणाके मारे रुदन करती है, अथवा दास्यभावमें प्राप्त हुई हमारी समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्रसादी माला अपनी चोटीपर चढ़ानेकी इच्छा करती है, क्या इसीलिये रोती है ? ॥१६॥ हे समुद्र ! निद्राके न आनेसे क्या तुझेभी प्रजागर होगया, जो सदा चिल्लाता रहता है ! अथवा हमारीसी दशा तेरी भी है जैसे भोगसे मुकुन्दने हमारे कुचोंकी केशर लेली है, क्या इसी प्रकार तुझेभी मथकर तुझमेंसे लक्ष्मी और कौस्तुभमणि निकालही है ? ॥ १७ ॥ हे

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबंधुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ॥ दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं
स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भोभोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥ किं वा मुकुंदापहृता
त्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥१७॥ त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इंदो क्षीणस्तमो न निजदीधि
तिभिः क्षिणोऽषि ॥ कच्चिन्मुकुंदगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥१८॥ किं त्वाचरितम
स्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ॥ गोविंदापांगनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो
यादवेंद्रस्य नूनं श्रीवत्सांकं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ॥ अत्युत्कंठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः स्मृत्वा
स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसंगः ॥ २० ॥

चन्द्रमा ! जान पड़ता है कि, तुझे बलिष्ठ क्षयके रोगने ग्रहण करलिया है, इसीकारण क्षीणताको प्राप्त हुआहै, अपनी किरणोंसे अंधकारको दूर नहीं करता, हमारीही समान मुकुन्दकी रहस्य वार्त्ताओंको भूल उसी चिन्ताके मारे क्षीण होगया है और हमें निश्चय है कि तेरी वाणीभी हमारी समान बंद होगई है । ॥१८॥ हे मलयाचलके पवन ! हमने ऐसा क्या तेरा अप्रिय कार्य किया है ? जिससे तू गोविन्दके अंगमें लगकर हमारे हृदयमें कामाग्निको प्रगट करता है ॥१९ ॥ हे मेघ ! हे श्रीमन् ! हम जानती हैं तू यादवोंके इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्यारा मित्र है, इसीलिये जो ताप दूर करनेको भगवान्में गुण है सो तुझमें भी है, सो हमारे समान भगवान्के प्रेममें बँधकर तूभी नारायणका चिंतवन करता है, क्योंकि तेरे हृदयमें जो अति

उत्कंठा है इससे भृगुलताके चिह्नवाले श्रीकृष्णका स्मरणकर हमारे समान अश्रुकी धारा बहाताहै, तेरा हृदय भी श्याम होरहाहै तैने उनके संग मित्रता क्यों करी ? उनका संग तो दुःखदायी ही है ॥ २० ॥ हे शोभायमान कंठवाले कोकिल ! मृतकको जिलानेवाली कोमल वाणीसे प्यारी बातें करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे वचन कहती हैं तेरा मैं क्या प्रिय करूं, सो मुझसे कह ॥२१॥ हे उदारबुद्धे ! हे पर्वत ! तू चलता और बोलताभी नहीं है, और बड़ी चिन्ता करता है, जैसे वसुदेवनंदनके चरण हम अपने हृदयमें धरनेकी चाहना करती हैं, उसी प्रकार तू भी अपने शिखरपर धरनेकी इच्छा करता है, यदि धरेगा तो हमारीसी दशा तेरी भी होगी ॥२२॥ हे समुद्रपत्नियो नदियो ! इस समय ग्रीष्मके आनेसे मेघद्वारा समुद्रका जल न पानेसे दुर्बल, सूखे ह्रद और कमलोंकी शोभासे हीन होगई हो, धारा वर्षाकर तुम्हें आनन्द नहीं देती, यह बडा कष्ट है, इसीसे

प्रियरावपदानि भाषसेऽमृतसंजीविकयाऽनया गिरा ॥ करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकंठ कोकिल ॥ २१ ॥ न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिंतयसे महांतमर्थम् ॥ अपि बत वसुदेवनंदनांघ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥२२॥ शुष्यद्ध्रदाः कुशतरा बत सिंधुपत्न्यः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ॥ यद्वद्वयं यदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥ २३ ॥ हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यंग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ॥ किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥ २४ ॥

तुम्हारे हृदय सूखकर लट गये हैं, जैसे वांछित पति यदुपति श्रीकृष्णचन्द्रकी स्नेहभरी चितवनके पडे विना हमारे हृदय चुरायेजानेसे हम दुर्बल होगई हैं ॥ २३ ॥ अकस्मात् आये हंसको दूत कल्पना करके कहती हैं कि, हे हंस ! आप अच्छे आये ! आओ विराजो, पयपान करो; श्रीकृष्णचन्द्रकी वार्ता कहो, आप दूतबनकर आयेहो सो हमको विदितहै, श्रीकृष्णचन्द्र भलीप्रकार तो हैं ? क्षणिकप्रीति रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आपही हमसे जो कुछ कहगये थे उसका किसी समय स्मरण करते हैं ? हे दूत ! हमारा भगवान् वासुदेवसे क्या अर्थ ? जो हमें कामके सुखके लिये बुलाते हों तो उन्हींको हमारे निकट बुलाकर लेआ, परन्तु यह बात है कि, लक्ष्मी हमसे छलकर श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा करती है, इसकारण लक्ष्मी

रहित श्रीकृष्णचन्द्रकोही बुलाकर ला, कमला एकनिष्ठावाली है, सो उसको किसप्रकार छोड़ा जाय, यदि तेरे मनमें यह बात हो तो क्या स्त्रियोंमें केवल लक्ष्मीही निष्ठावाली है, क्या हम वैसी नहीं ? ॥ २४ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें इसप्रकार भावकर श्रीकृष्णचन्द्रकी स्त्रियें वैष्णवगतिको प्राप्त हुईं ॥ २५ ॥ जो श्रीकृष्णचन्द्रका कीर्त्तन करने और श्रवण करनेसेही स्त्रियोंके मनको हर लेते हैं और जो दर्शन करने वालि योंके मनको हर लें तो क्या आश्चर्य है ? ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जो स्त्री जगत्के गुरु श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पति मान प्रेमपूर्वक उनकी चरण आदि सेवा करती थीं, उनका तप और भाग्य कहाँतक वर्णन करें ? ॥ २७ ॥ इसप्रकार साधुओंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, वेदविहित धर्मका

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥ २५॥ श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ॥ उरुगायोरुगीतो वा पश्यंतीनां कुतः पुनः ॥ २६ ॥ याः संपर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ॥ जगद्गुरुं भर्तृबुद्धया तासां किं वर्ण्यते तपः ॥ २७ ॥ एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः ॥ गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥ आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ॥ आसन्षोडशसाहस्रं महिष्योष्टशताधिकम् ॥ २९ ॥ तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ॥ रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३० ॥ एकैकस्यां दशदश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ॥ यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ॥ आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥

अनुष्ठानकर घरमें रह धर्म, अर्थ, विषय सेवन करनेवाले संसारी पुरुषोंको बारम्बार दिखाया ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गृहस्थियोंके उत्तम धर्मका पालन करते थे, उस समय भगवान्के सोलह सहस्र एकसौ आठ (१६१०८) रानियें थीं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! स्त्रियोंमें रत्नके समान सोलह हजार एकसौ आठ रानियोंमें रुक्मिणीसे आदिले आठ पटरानी थीं, जिनके पुत्रोंके नाम भी पहले वर्णन कर चुके हैं ॥ ३० ॥ अप्रमेयगति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जितनी भार्या थीं, सो एक एक भार्यामें दश दश पुत्रोंको उत्पन्न किया, वे सब मिलकर एक लाख इकसठ हजार और अस्सी १६१०८० हुये ॥ ३१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उनमें बड़े पराक्रमी उदार और यशस्वी अठारह १८ महारथी हुये, उनके नाम सुनो ॥ ३२ ॥

यथा प्रद्युम्न अनिरुद्ध, दीप्तिमान, भानु, सांब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण ॥३३॥ पुष्कर, वेवाहु, श्रुतदेव, सुनंदन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध॥३४॥हे राजन्!मधुदैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सब पुत्रोंमें रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजी श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुणी हुये॥३५॥महारथी प्रद्युम्नजीने रुक्मीकी पुत्रीसे विवाह किया, उन प्रद्युम्नजीसे रुक्मीकी पुत्रीमें दशहजार हाथियोंके बलवाले अनिरुद्ध पुत्र हुये॥३६॥ अनिरुद्धने रुक्मीकी पोती रोचनाको व्याहा उस रोचनामें अनिरुद्धके वज्रनाभ पुत्र हुआ, जो वज्रनाभ प्रभासक्षेत्रकी मुशललीलामें शेष रहा॥३७॥ उस वज्रनाभके प्रतिबाहु पुत्र हुआ, प्रतिबाहुके सुबाहु हुआ, सुबाहुके शांतसेन हुआ और शांतसेनके शतसेन हुआ ॥ ३८ ॥ इस यदुकुलमें धनहीन

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ॥ सांबो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करो देववाहुश्च श्रुतदेवः सुनंदनः ॥ चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥३४॥ एतेषामपि राजेंद्र तनुजानां मधुद्विषः ॥ प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ॥ तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥३६॥ स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ॥ वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥३७॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चात्मजः ॥ सुबाहोः शांतसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ॥ अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ॥ संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥४०॥ तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ॥ आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥ ४१ ॥संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ॥ यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥

प्रजाहीन किसीने जन्म नहीं लिया और थोड़ी आयु पराक्रम रहित ब्राह्मणोंका भक्तिहीन ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित्! यदुवंशमें उत्पन्नहुये विख्यातकर्मा पुरुषोंकी संख्या दशहजार वर्षोंमें भी कहनेको समर्थ नहीं होसक्ते ॥ ४० ॥ क्योंकि तीन करोड आठ सहस्र आठसौ ३०००८८०० यदुकुलके बालकोंको पढ़ानेवाले आचार्य नियत थे, यह मैंने सुनाहै ॥४१॥ महात्मा यादवोंकी संख्या कौन कर सकता है ? क्योंकि जिस कुलमें हजारोंके दशहजार उनके लाख इतने यादवोंको लेकर द्वारकापुरीमें उग्रसेनने वास किया ॥ ४२ ॥

देवता और असुरोंके युद्धमें मरे दारुण दैत्यही मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्ववंत होकर प्रजाको बाधा देनेलगे थे ॥ ४३ ॥ हे महाभागवत परीक्षित् ! उन असुरोंको दंड देनेके लिये हरि भगवान्‌की आज्ञा पाय देवताओंने यदुकुलमें अवतार लियाथा ॥ ४४ ॥ उन यादवोंकी प्रभुतामें भगवान्‌ही प्रमाण हुए, उन श्रीकृष्णचन्द्रके आज्ञानुवर्ती सब यादव हो वृद्धिको प्राप्तहुए ॥ ४५ ॥ सोते, बैठते, बोलते, क्रीडा, स्नान, भोजनादि कर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रमें चित्त लगाये यादवोंने अपने आत्माको नहीं जाना॥४६॥उससे प्रथम श्रीगंगाजीही अधिक तीर्थ रही, जब यादवोंमें श्रीकृष्णचन्द्रका यशरूपी तीर्थ प्रगट हुआ तबसे अपने चरणोदकरूप गंगातीर्थको भी न्यून करने लगे और आपही संपूर्ण तीर्थोंके ऊपर विराजनेवाले भगवान्

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ॥ ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥ ४३ ॥ तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ॥ अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४४ ॥ तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ॥ ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ॥ न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजित परा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः ॥ यन्नामाऽमंगलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥ जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ॥ स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितः श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने जिन पुरुषोंसे वैर किया और जिसने स्नेह किया वह भी तद्रूपको प्राप्त हुए. देखो ! जिस लक्ष्मीके लिये ब्रह्मादिक उपाय करते हैं, सो किसीको प्राप्त नहीं हुई, वह लक्ष्मी भी श्रीकृष्णचन्द्रको त्यागकर कहीं नहीं जाती, जिन श्रीकृष्णचन्द्रका नाम श्रवण करनेसे अथवा कथन करनेसे सब पापोंका नाश कर देताहै, फिर उनके स्वरूपका तो कहनाही क्या है ! और ऋषियोंके वंशमें धर्म चलाया काल चक्र आयुधधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दुष्टोंका मारना और पृथ्वीका बोझ उतारना, यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ ४७ ॥ सब जीवोंमें अंतर्यामीरूप होकर वास करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा उत्कर्षतापूर्वक विराजमान हैं, देवकीमें जन्म हुआ, यह तो कथनही मात्र है, श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवित इच्छामात्रसे अध

र्मके नाश करनेमें समर्थ है परन्तु तोभी क्रीडाके लिये अपनी भुजाओंसे अधर्मको दूरकर स्थावर, जंगम सब जीवोंका दुःख दूरकर सुन्दर मुसकान युक्त अपने श्रीमुखसे व्रजकी स्त्री गोपिका और पुरी मथुरा द्वारका की स्त्रियोंको कामदेव बढ़ानेवाले सर्वदा विराजमान रहते हैं, ऐसे सर्वोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो ॥ ४८ ॥ अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये मत्स्य कूर्मादिक अवतार धारण करनेवाले, यादवोंमें उत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो रूप धरकर योग्य कर्म कियेथे, उनको सुनकर पुरुष पाप कर्मसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ तीनों कालमें बड़ी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभायमान कथाका श्रवण कीर्त्तन और विचार करके पुरुष कालकी गतिरहित भगवान्के धामको प्राप्त होता है, यह श्रवण करके चक्रवर्त्ती राजा भी राज्य त्याग श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्तिके लिये ग्रामके बाहर वनको चलेगये ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादश

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपविडंबनानि ॥ कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥ ४९ ॥ मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुंदश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिंतयैति ॥ तद्धाम दुस्तरकृतांतजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कंधोत्तरार्द्धे कृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ॥ दशमस्कन्धः समाप्तः ॥

साहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णचन्द्रानन्दकन्दचरित्रवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ इति भाषाटीकासमेत दशमस्कन्ध समाप्त ॥ १० ॥ दोहा–श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज गुणग्राम । विद्वत्तम उपकारचित, सकल सुलक्षणधाम ॥ १ ॥ कहाँ होतहैं जगतमें, ऐसे पुरुष उदार । देशदेशमें छै रह्यो, जिनको सुयश प्रचार ॥ २ ॥ कुटुँब सहित रक्षा करें, जिनकी श्रीजगदीश । बार बार यह देत हैं, शालिग्राम अशीश ॥ ३ ॥ भई दशमस्कन्धकी, भाषा पूरण आज । विरची शालिग्राम कवि, सुमिरि श्रीव्रजराज ॥ ४ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धोत्तरार्धं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कंधप्रारम्भः ॥

एकादशस्कंधः



श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा–जय गणेश वारणवदन, विघ्नहरण सुखमूल । अनुपम भाल विशाल मुख, सोहत हाथ त्रिशूल ॥ १ ॥ जय जगजननी शारदा,सुखदानी गुणखान ॥ शीघ्र पूर्ण हो भागवत,दीजै यह वरदान ॥२॥ जय शिवकाशीनाथ पद, करन अनाथ सनाथ ॥ बारबार वर माँगिहौं, तिन पर धरकर माथ ॥३॥ सो०–जय हरि कृपानिधान, अधम उधारन सुखसदन । भाषत वेद पुरान, अस दयालु नहिं दूसरो ॥ १ ॥ प्रभुपद पोतहिं पाय, अगम अथाह भवाम्बुनिधि । मोसम पतित निकाय, तरन चहत गोपद सरिस ॥ २ ॥ दोहा–गुरुपद रज शिरधर कहौं, एकादशस्कन्ध ॥ हरि उद्धव सम्वाद वर, ज्ञान विराग प्रबन्ध ॥ ३ ॥ कहों प्रथम अध्यायमें, बहु अद्भुत इतिहास ॥ जैसे ऋषिके शापसे, यदुकुल भयो विनाश ॥ ४ ॥ पहले दशमस्कन्धमें भक्तोंका उद्धार और भूमिका भार उतारनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रगट हुए, उनकी लीला कही । अब एकादशस्कन्धमें भक्तोंको आत्मतत्त्वका उपदेश, और पूजामार्ग, भक्तिमार्ग, इनके फल निर्णय करके कहेंगे और सब भक्त पुरुषोंको अपने स्थानपर प्राप्त करेंगे. इसप्रकार इस एकादशस्कन्धमें मुक्तिलीला कहते हैं, तहाँ प्रथम कुरुक्षेत्रमें जैसे वसुदेवजीने नारदजीसे कर्मयोग पूँछा, तब नारदजीने कर्मयोग सब कहा

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥ भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

उससे जब चित्त शुद्ध हुआ तब वसुदेवजीको ज्ञान उत्पन्न हुआ, अर्थात् राम, कृष्ण, यह दोनों साक्षात् ईश्वर हैं और जब यह ज्ञान नहीं रहेगा तो फिर ब्रह्मज्ञान नारदजीसे पूछेंगे, तब नारदजी पॉच अध्यायोमें वर्णन करेंगे सो पहले अध्यायमें वैराग्य उत्पन्न करानेके लिये यदुकुलको ब्रह्मशापके बहानेसे विषयसुखको अनित्य कहते हैं, इसके उपरान्त चार अध्यायोंमें राजा जनक और नवयोगीश्वरोंका संवाद कहेंगे, उसमें परमतत्त्व निरूपण करेंगे, फिर छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण और उद्धवका संगम कहेंगे, इसके पीछे तेईस अध्यायमें उद्धवको श्रीकृष्ण परमतत्त्व निरूपण करेंगे फिर दो अध्यायोंमें यादवोंका संहार कहेंगे, इसीप्रकार इकतीस अध्यायोंमें “एकादशस्कन्ध” वर्णन करेंगे इसलिये पहले पूर्वस्कन्धकी कथा स्मरण करके श्रीशुकदेवजी प्रारंभ करते हैं ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जिसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने और बलदेवजीने मिलकर यादवो सहित शीघ्र कलह उत्पन्न कर संपूर्ण पृथ्वीका भार उतारा, सो हम तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं * ॥ १ ॥

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने त्रिलोकीके स्वामी होकर अनेकप्रकारके पुत्र, पौत्र, परपौत्र उत्पन्न करके फिर उनका विनाश क्यों किया ? जो कोई कहै कि, कृष्णचन्द्रने विचार किया कि, इन यदुवंशियोंको छोडकर परमधामको जायँगे तो यह सब पृथ्वीके मनुष्योंको दु ख देंगे, जो ऐसा कहैं, वे सम्पूर्ण मूर्ख हैं, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र महाराज तो घट घटकी जाननेवाले थे कुछ मनुष्य नहीं थे, जानते थे कि, हम वैकुण्ठधामको

कि, जो पाण्डुके पुत्र शत्रुओंसे बहुत कोपित कियेगये, जुआँ खेलनेसे जिनका राज्य जाता रहा, अवज्ञासे द्रौपदीके केश खैंचेगये, लाक्षाभवनमें पाण्डवोंको बन्द करके आग लगादी गई, जहाँतक होसका वहाँतक कष्टपर कष्ट दिये उन्हींके लिये दोनों पक्षोंमें मिले राजाओंको मार पृथ्वीका भार उतारा, परन्तु तोभी विचारनेलगे ॥ २ ॥ कि, यद्यपि पृथ्वीका भाररूप जो राजाओंकी सेना थी सो अपनी भुजाओंसे पालित यादवोंसे नाश भी

ये कोपिताः सुबहु पांडसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ॥ कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिंतयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ॥ अंतः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तंबस्य वह्निमिव शांतिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥

करवाई, परन्तु तोभी भार न गया, क्योंकि यदुकुल अभी अनन्त शेष है जिसका कि, पृथ्वीपर बडा भारी भार है ॥ ३ ॥ जिसके मैं आश्रय हूँ उसका पराजय तो और किसी दूसरेसे हो नहीं सक्ता, और यह संपूर्ण यादव वैभवसे उद्धत होगये हैं और विना इनका संहार किये किसी प्रकार पृथ्वीका

जायँगे, सर्वान्तर्यामी ईश्वरथे, विचारा कि, यह हमारे अंशसे जो जन्मे यादव हैं सो पृथ्वीको अत्यन्त दु:ख देवेंगे, ऐसा जानते थे तो उन सबको उत्पन्न क्यों किया ? क्योंकि आपही उत्पन्न करके आपही नाश करना यह बडा अयोग्य कर्म है क्योंकि शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, विषके खायेसे प्राणी मरजाते हैं, विष ऐसी बुरी वस्तु है, परन्तु जो अपने हाथसे विषका वृक्ष भी लगाते हैं, अपने हाथसे वह लोग उसको भी नहीं काटते और चेतनस्वरूपको उत्पन्न करके आपसे आपही उसको विनाश करना यह बडा खोटा कर्ममें है, फिर श्रीकृष्णने ऐसा खोटा कर्म क्यों किया ?

उत्तर–श्रीकृष्णने ऐसा विचार किया कि, जिस दिन हम इस लोकसे परलोकको जायँगे उसीदिन कलियुग महाघोर इस मर्त्यलोकका राजा होगा और यह सब यादव हमारे अंशसे जो उत्पन्न हुएहैं और गर्मे जो यह सब एसेही रहैंगे तो अनेक दु:ख पावेंगे, इसलिये इन सबका प्रबन्ध ऐसा कर कि, प्रथमही अपने लोकमें भेजकर पीछे हम जायँगे क्योंकि यादवोंके नाश होनेसे दु:ख तो होहीगा परन्तु होगा, कैसा ? कि जैसे कोई औषधि खानेके समय कडुवा मुख हो जाता है, परन्तु पीछेसे सुख होता है, फोडेको चीरनेके समय जीव दु:ख मानता है, परन्तु पीछे सुख पाता है, इस बातको पृथ्वीके भारके कारणसे अपने अंश करके जो यादव उत्पन्न किये उन सबको नाश करके अपने अंशको संग लेकर चलेगये, कुछ निर्दयपनसे यादवोंका विनाश नहीं किया ॥

भार उतर नहा सक्ता इसलिये इनमे परस्पर कलह उत्पन्न करा, जैसे बांसोंमें अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार सुलगाय शान्तिको प्राप्त हो पीछे अपने परमधामको जाऊँगा ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार बुद्धिसे निश्चयकर सत्यसंकल्प भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मशापके मिससे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ जिनके समान लोकमे कहीं लावण्यता नहीं और जिनके संबंधसेही लोकोको शोभा मिलती है, इसप्रकार अपनी देहसे पुरुषोंके चित्त हरकर जिमसे चित्त आपको स्मरण न करे और जो चरणारविन्द देखते हैं; उनकी योग और क्रिया चरणोंके देखनेसे हरली, फिर भक्तोकी सब इन्द्रियें वृत्तिमें और अपने संसारी जीवोंका अज्ञानरूपी अँधेरा दूरकर, उनके लिये पृथ्वीमें अतिविमल कीर्त्ति विस्तारकर श्रीकृष्णचन्द्र व

एवं व्यवसितो राजन्सत्य संकल्प ईश्वरः ॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्य निर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यंजसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यंतीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् ॥ विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ॥ कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुंदरसन्निवेशं कर्माऽऽचरन्भुवि सुमंगलमाप्तकामः ॥ आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥

बलरामजी अपने धामको चलेगये ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजा परीक्षित् पूँछने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! यादव तो ब्राह्मणोंके भक्त, अतिदानी और नित्य प्रति वृद्धोंकी सेवा करते थे, इतनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जिनके मन लगरहे थे उन्हें किसलिये ब्राह्मणलोगोंने शाप दिया ?॥ ८ ॥ हे भगवन् ! इस शापका क्या कारण है ? क्यों हुआ ? और यह सब लोग एक चित्त थे; उनमें भेद क्यों उत्पन्न हुआ ? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यह सब मुझसे कहो॥९॥ तब श्रीशुकदेवजी कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! प्रथम भक्तोंको सुख देनेके लिये संपूर्ण शोभायमान स्वरूप धारणकर भूमिपर अत्यंत मंगल कर्म किये और यद्यपि आप पूर्णकाम हैं, परन्तु तो भी फिर द्वारकापुरीमें घर बनाय अनेक क्रीड़ाकर सब भक्तोंको सुख दिया, इसका तात्पर्य

दोहा–दुसरेमें वसुदेव अरु, नारद प्रश्न सुस्वाद । योगेश्वर अरु जनक सों, भयो धर्म सम्वाद ॥ १ ॥ दूसरे अध्यायमें भक्तिसे पूँछे वसुदेवजीको नारद जनक और नव योगियोंके संवादसे शुद्ध धर्म कहेंगे श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! गोविन्दकी भुजासे पालित द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें प्रेम करनेवाले नारदजी निरंतर वास करते थे ॥ १ ॥ क्योंकि ऐसा कहा भी है, जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें मुक्त पुरुषोंको भी उत्कंठा होती है, उनको कौन नहीं भजता, सर्वत्र मृत्युसे त्रासित कौन इन्द्रियवन्त भगवान्‌के चरणारविन्दका भजन नहीं करता, जिन चरण कमलोंकी देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक सेवा करते हैं ॥ २ ॥ एक दिन देवर्षि नारदजी वसुदेवजीके घर आये, तब वसुदेवजीने अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाल पूजा और नमस्कार करके पूछा ॥ ३ ॥ कि, हे भगवन् ! जैसे हरिकी प्राप्तिका मार्गरूप महत् पुरुष है, उनका आगमन

श्रीशुक उवाच ॥ गोविंदभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥ अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥ को नु राजन्निंद्रियवान्मुकुंदचरणांबुजम् ॥ न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥ तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ॥ अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ॥ कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥ भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ॥ सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥ भजंति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ॥ छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥६॥

दीनोंका कल्याण करनेके लिये है और जैसे पिताका आना पुत्रादिकोंके सुखके लिये है उसी प्रकार तुम्हारा अगमन सब देहधारियोंके कल्याणार्थ है ॥ ४ ॥ महात्मा लोगोंको देवताओंकी उपमा भी अनुचित है, क्योंकि देवताओंका चरित्र बहुत वृष्टि आदिसे दुःख और सुख दोनों करता है, परन्तु साधुओंका चरित्र तो सदा सुखही करता है, इसकारण तुम सरीखे अच्युत रूप पुरुषोका आगमन सुखहीके लिये है ॥ ५ ॥ यद्यपि देवतालोग सुख देते हैं, परन्तु तो भी जिसने जितना भजन किया हो उसे उस भजनके अनुसारही सुख देते हैं, क्योंकि जैसे मनुष्य जितना कार्य करे, उतनाही उसकी परछाहीं कार्य करे, ऐसेही मनुष्य जैसा और जितना काम करै, उसे देवतालोग कर्मानुसारही फल देते हैं [illegible] सरीखे साधु पुरुष तो दीनोंके देखतेही [illegible]

हे नारद ! यद्यपि हम तुम्हारे आनेसेही कृतार्थ होगये, परन्तु तो भी आपसे जिन धर्मोंसे भगवान् प्रसन्न हों, सो वैष्णवधर्म पूछते हैं, जिस धर्मको श्रद्धासहित श्रवण करनेसे मनुष्य संसारसे छूट जाता है ॥ ७ ॥ यदि तुम कहो कि, भगवान्‌की प्रसन्नताके पात्र तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं सो इसका उत्तर यह है कि, मुक्तिदाता अनंतभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रथम मैंने पुत्रकामनासे आराधन कियाथा, देवमायासे मोहित हो मोक्षप्राप्तिके लिये आराधन नहीं किया, यह बात सूतिकागृह (सरोवर) में ही श्रीकृष्णचन्द्रने मुझसे कही थी सो मुझे याद है ॥ ८ ॥ हे नारद ! इसलिये अनेक दुःखसंयुक्त सब ओरसे भयदेनेवाले संसारसे जिसमें हम विनाही श्रमके छूट जायँ, वैसाही तुम शिक्षा दो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् !

ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव ॥ याञ्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते विश्वतो भयात् ॥ ७ ॥ अहं किल पुराऽनंतं प्रजाऽर्थो भुवि मुक्तिदम् ॥ अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतो भयात् ॥ मुच्येम ह्यंजसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ॥ प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्त्वतर्षभ ॥ यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥ श्रुतो नु पठितो ध्यात आदृतो वाऽनुमोदितः ॥ सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥ त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥

इसप्रकार जब अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने पूछा, तब भगवान्‌के गुणोंको स्मरण करानेसे प्रसन्न हो, देवर्षि नारदजी वसुदेवजीसे कहनेलगे ॥ १० ॥ कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ वसुदेवजी तुमने यह भला निश्चय उत्तम प्रश्न किया, क्योंकि, तुमने सबके चित्तको शुद्ध करनेवाला वैष्णवधर्म पूछा ॥ ११ ॥ यह धर्म सुननेसे, स्मरण करनेसे, श्रद्धापूर्वक आदरसे ध्यान करनेसे, सम्मति देनेसे समस्त विश्वके पातकी जनोंको शीघ्र पवित्र करदेताहै, क्योंकि यह भगवत् सम्बन्धी धर्म है ❀ ॥ १२ ॥ हे वसुदेव ! तुमने परमकल्याणरूप जिनके श्रवण और कीर्त्तन अत्यन्त पावन पवित्र

* शंका–ऐसा उत्तम कौनसा धर्म है, जो शीघ्रही दुष्टोंको पवित्र करता है ? कैसे दुष्टोंको ? जो दुष्ट तीन लोककी और देवताओंकी बुराई करते हैं, उनको पवित्र करना महाकठिन है, क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि, जो प्राणी किसी दूसरे प्राणीकी एक भी बुराई करेगा तो वह बुराई करनेवाला पुरुष कभी पवित्र नहीं होगा वह तो चण्डालके सदृश बना रहेगा और जो तीनलोककी तथा तीनलोकके देवताओंकी निन्दा करेगा वह कैसे पवित्र हो सक्ताहै ?

हैं ऐसे भगवान् नारायणको मुझे स्मरण कराकर मेरा आपने बड़ाही उपकार किया ॥ १३ ॥ अब मैं यहाँ तुमसे एक प्राचीन कथा कहताहूं, जिसमें उदारचित्त राजा जनक और ऋषभदेवके पुत्र नव योगीश्वरोंका संवाद है ॥ १४ ॥ स्वायंभुवमनुका प्रियव्रतनाम एक पुत्र हुआ उसके अग्नीध्र इनके नाभि और नाभिके ऋषभदेवजी हुए ॥ १५ ॥ यह वासुदेवके अंशरूप ऋषभदेवजी मोक्षसंबंधी धर्म कहनेकी कामनासे प्रगट हुएथे, इनके सौ १०० पुत्र हुए सो सब, वेदके जाननेवालेथे ॥ १६ ॥ इनमें नारायण और भरतजी अत्यन्त श्रेष्ठ हुए अधिक

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥ प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य यः ॥ तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥१५॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥ अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥ तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समंततः ॥ कर्मतंत्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥

कहनेकी अवश्यकता नहीं यह अजनाभखंडही जिनके नामसे भरतखण्ड प्रसिद्ध होगया ॥ १७ ॥ सो राजा भरत पृथ्वीको भली प्रकार भोगकर, अन्तमें पृथ्वीको छोड, तपस्या करनेको चलेगये और भगवान् हरिकी उपासना करते करते तीन जन्ममें हरिकी पदवीको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ शेष निन्नानवे पुत्रोंमें नौ पुत्र इस भरतखण्डके मध्य नवों द्वीपोंके पति हुए और इक्यासी पुत्र कर्ममार्गके प्रवर्त्तक ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ और जो नौ पुत्र यहाँ भागवतमुनि थे, वह परमार्थके उपदेश करनेवाले आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर दिगंबर

उत्तर–जो धर्म तीनलोक अथवा सब देवताओंकी निन्दा करनेवाले प्राणीको पवित्र करता है, वह धर्म यह है कि, मनमें दया करके भगवान्का भजन करना, यह ऐसा सुन्दर धर्म है कि, सब पापोंका नाश करता है, जैसे रूईके ढेरको एक सरसों प्रमाण अग्नि भस्म कर देती है, ऐसाही भगवान्के नामका जप है, थोडाभी करेगा तो अनेक जन्मके पापोंका नाश करदेगा ऐसा लिखा है ।

वेप आत्मविद्यामें निपुण हुए ॥२०॥ उनके नाम यथा—कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रूमिल, चमस और करभोजन ॥ २१ ॥
यह सब इस विश्वको भगवद्रूपसे देखनेलगे, स्थूल सूक्ष्मको आत्मासे भिन्न देखनेलगे, अधिक क्या कहें, वह सब आत्मरूपहीको देखते संपूर्ण
पृथ्वीमें फिरनेलगे ॥ २२ ॥ अप्रतिहत गतिसे आसक्ति रहित यह योगीश्वर देवता, सिद्ध,, साध्य, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग, मुनि,
चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओके लोकोंमें अपनी इच्छासे विचर रहेथे ॥ २३ ॥ विचरते २ यह सब अपनी इच्छासे एक दिन

कविर्हरिरंतरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ २१ ॥ एते वै भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यंतो व्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगंधर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् ॥ मुक्ताश्चरंति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥ २३ ॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ॥ वितायमानमृषिभिरजनाभे महात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृप ॥ यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥ विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ॥ प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७ ॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः ॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरंति हि ॥ २८ ॥

ऋषियोंसे विस्तार किया जाता अजनाभ राजा जनकके यज्ञमें आये ॥ २४ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी परमभागवत इन ऋषियोंको देख यजमान,
अग्नि, ब्राह्मण, सब उठकर खड़े होगये ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त राजा जनक उनको नारायणपरायण जान अतिप्रसन्न हो आसन दे यथायोग्य
पूजा करनेलगे ॥ २६ ॥ अपनी कांतिसे शोभासंयुक्त सनकादिकोंके समान उन नव योगीश्वरोंको देख, प्रसन्न हो, विनयकर, नम्र होकर पूंछने
लगे ॥ २७ ॥ आपको मैं ऐसा मानता हूं कि, तुम साक्षात् मधुदैत्यके द्वेषी भगवान्के पार्षद हो, जिससे विष्णुभक्त लोगोके पवित्र करनेको सब

ठौर विचरते हो ॥२८॥ मैंने दुर्लभ वस्तु पाई है, इसलिये मेरा बड़ा भाग्य है, क्योंकि ऐसा कहा है कि, देहधारियोंको मनुष्यदेह दुर्लभ है, सो भी क्षणभंगुर है, उसमें भी भगवान्के प्रिय भक्तोंका दर्शन तो अत्यन्तही दुर्लभ है ॥२९॥ हे निष्पाप ! इसलिये मैं आपसे पूँछताहूं कि, संसारमें सबसे उत्तम कल्याणका साधन क्या है क्योंकि इससंसारमें अर्द्धक्षणका सत्संग भी मनुष्योंको बड़ी निधि है ॥३०॥ इसकारण यदि आप हमें सुननेका अधिकारी समझो तो हमसे वैष्णवधर्म कहो, जिन धर्मोंसे प्रसन्न होकर भगवान् भक्तोंको अपना आत्मातक भी दे देते हैं ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि, हे वसुदेव ! इसप्रकार जब राजा जनकने पूछा, तब उन महंत ऋत्विजोंने सभासदों सहित राजा जनककी स्तुति करके प्रीतिपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठप्रियदर्शनम् ॥२९॥ अत आत्यंतिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ॥ यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥३१॥ नारद उवाच ॥ एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः ॥ प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥ कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादांबुजोपासनमत्र नित्यम् ॥ उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥ ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ॥ अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान्हि तान् ॥ ३४ ॥

जनकजीने नौ प्रश्न किये, प्रथम वैष्णवधर्म, दूसरा परमेश्वरकी भक्ति, तीसरे माया, चौथे मायाके तरनेका उपाय, पाँचवाँ ब्रह्म, छठा कर्म, सातवाँ अवतार चरित्र, आठवाँ भक्तिप्राप्ति, नवाँ युग, इन एक एक प्रश्नका उत्तर नवों मुनीश्वरोंने दिया, प्रथम अतिकल्याणरूप धर्म कवि योगेश्वर बोले कि, हरिके चरणारविन्दकी उपासनाही सब प्रकारके भय दूर करती है, जिसके करनेसे देहादि भिन्न पदार्थोंके गर्वसे सदा उद्वेगको प्राप्त होकर यह पुरुष संसारके भयसे छूट जाता है ॥ ३३ ॥ अब वैष्णवधर्मके लक्षण कहते हैं, प्रथम मनु आदि ऋषियोंके मुखसे सब वर्ण आश्रम धर्म कहते हैं कि अतिरहस्यसे अपने मुखसे भगवान्ने अज्ञानियोंको सुखपूर्वक आत्मज्ञान पानेके जो उपाय कहे हैं, वह सब वैष्णवधर्म हैं ॥ ३४ ॥

उन धर्मोंका आश्रयकर मनुष्य कभी विघ्नोंसे पीड़ित नहीं होता. हे राजन् ! नेत्र बन्द करके दौडे तो भी नहीं गिरता और यदि वर्ण आश्रम धर्म न बन पड़े तो भी प्रत्यवायी नहीं होता और न फलसे भ्रष्ट होताहै ॥ ३५ ॥ जिस विधिसे बताये शास्त्रोक्त किये कर्महीं नारायणके अर्पण करै, यह नियम नहीं हैं, किन्तु शरीर, वाणी, मन, बुद्धि, अहंकार और अध्याससे मानेहुए ब्राह्मणत्वादिसे भी जो कुछ कर्म करनेमें आवै, वह सब परमेश्वरके अर्पण करनेसे शारीरक क्रिया सब नारायण सम्बन्धी धर्मरूप होजाती हैं ॥ ३६ ॥ परमेश्वरसे विमुख पुरुषको ईश्वरकी मायासे भगवत् स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, बरन् उससे अहंदेह, मैं देहहूं, अभिमान होता है तब दूसरेके अभिनिवेशसे भय होता है, जिस कारण कि, उनकी मायासे भय होता है, इससे गुरुको देवता और इष्ट माननेवाले बुद्धिमान् निश्चय करके भक्तिसहित ईश्वरको ही भजें,

यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुश्रितस्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥३७॥ अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ॥ तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥ शृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ॥ गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः ॥ ३९ ॥

तहाँ पूर्वपक्षमें कहते हैं कि, चित्त तो विषयोंसे चंचल है, फिर निश्चल भक्ति कैसे हो ? और भक्ति न हो तो भय कैसे जाय ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, विषय कुछ वस्तु नहीं है, केवल मनका विलास मात्र है, इसलिये मनको निग्रह करके जो भजन करै तो अभय होय, यद्यपि यह प्रपंच सब ब्रह्मरूपही है, दूसरा कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ परंतु तोभी अविद्यासे द्वैत भासता है, जैसे ध्यान करनेवाले पुरुषको मनसे स्वप्न और मनोरथ दीखते हैं, इसकारण संकल्प विकल्पके कर्त्ता मनको बुद्धिमान् पुरुष रोके, तब निश्चल भक्तिसे भजन करै, तो अभय होवै ॥ ३८ ॥ जो जगदीशके शुभ कर्म जन्म हैं और जो जन्म कर्मसे हुये नाम लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनको लज्जा छोड निस्पृही होकर गाता फिरै ॥ ३९ ॥

इस प्रकार भजन करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तियोगको प्राप्त होनेसे उसकी संसारसे न्यारीही गति होजाती है, ऐसा जिसका आचरण है और भगवान् वासुदेवके नामकीर्तनसे अनुराग बढने और चित्त अतिकोमल होनेसे वह भक्त भगवान्‌को जीत लेतेहैं, तब उनकी यह दशा होजाती है कि, कभी भगवान्‌को अपने वशमें जानकर हँसते हैं और कभी इतना समय व्यर्थ गया, यह जानकर रोते हैं, कभी अति उत्कण्ठासे पुकारते हैं, कभी आनंदमें मग्न हो उच्च स्वरसे गाते हैं, अरु कभी नाचते हैं, इस प्रकार अलौकिक उन्मत्तोंकेसी चेष्टा करते हैं, जैसे मतवाले अज्ञानी पुरुष करते हैं ॥ ४० ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ज्योति, सब प्राणी मात्र, दिशा, वृक्ष, नदी सबको हरिहीका शरीर जाने, अनन्य चित्त होकर प्रणाम करै, यह वैष्णवोंके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ यदि कोई कहे कि, यह धर्म तो योगेश्वरोंकोभी दुर्लभ है, अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त नहीं हो

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ॥ हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ॥ ४० ॥ खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सर्वाणि दिशो द्रुमादीन् ॥ सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥ भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवंति वै भागवतस्य राजंस्ततः परं शांतिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ॥ यथा चरति यद्ब्रूते यैर्लिंगैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥

सक्ता, सो एक नाममात्रका कीर्त्तन करनेसे एकही जन्ममें कैसे होसक्ता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, प्रेमलक्षणा भक्ति और प्रेमाश्रय भगवत स्वरूपकी स्फूर्ति और गृहादिकोंमें वैराग्य, यह तीनों हरि भजनकर्त्ता पुरुषको एकहीसमय होते हैं, जिस प्रकार भोजन करनेसे सुख, पुष्टि, पेट भरना, भूंखकी निवृत्ति यह तीनों एकही कालमें ग्रास विषे होती हैं ॥ ४२ ॥ फिर भगवान्‌के प्रसादसे कृतार्थ होता है सो कहते हैं, इस प्रकार जब पुरुष हरिचरणारविन्दका नित्य भजन करै, तो उसे प्रेमलक्षणा भक्ति तथा वैराग्य और साक्षात् भगवत् स्वरूप ज्ञान तीनों होते हैं, तब पुरुष परमशान्तिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर राजा जनकने पूछा कि, हे मुनिश्रेष्ठ ! वैष्णव मनुष्योंके बीचमें कैसे होते हैं, किस

धर्मकेविषे स्थित, कैसा स्वभाव, कैसा आचरण, कैसा बोलना, और कैसे चिह्न हैं? जिससे भगवान्का प्रिय होता है, सो कृपापूर्वक संपूर्ण मेरे आगे वर्णन करो? ॥ ४४ ॥ इसका उत्तर हरिनामा योगीश्वर तीन श्लोकोंसे देते हैं कि, जो अपनेको सब प्राणीमात्रमें ब्रह्मस्वरूपसे स्थित देखे और ब्रह्मरूप अपनेमें सर्व प्राणीमात्रको देखे, सो उत्तम भागवत है ॥ ४५ ॥ ईश्वरमें प्रेम करै, भगवान्के भक्तोंसे मित्रता करै, मूर्खोंपर कृपाकरै और शत्रुओंकी उपेक्षा करै, वह मध्यम वैष्णव है ॥ ४६ ॥ भेदबुद्धिसे केवल प्रतिमाहीमें श्रद्धा रखता है और जीवोंमें तथा भक्तोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं है, वह प्राकृत भक्त है ॥ ४७ ॥ अब आठ श्लोकों उत्तम वैष्णवोंके लक्षण कहते हैं, जो इन्द्रियोंसे विषयोंको भोग करते हैं, परन्तु न किसीसे द्वेष

हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥ गृहीत्वापींद्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति ॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेंद्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ॥ सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥

है, न प्रीति है, सब वस्तुमात्रको ईश्वरकी मायासे जानते हैं, सो भक्तोंमें उत्तम हैं ॥ ४८ ॥ देहके संसारी धर्म, जन्म, मरण, इन्द्रियोंको कष्ट, प्राणोंको भूँख, मनको भय, बुद्धिको तृष्णा, इन संसारके धर्मोंसे जो मोह न पावैं और निरंतर भगवान् हरिका स्मरण करैं सो वैष्णव भक्तोंमें मुख्य हैं॥४९॥ जिसके मनमें काम, कर्म और वासना न उत्पन्न हो, चित्त केवल भगवान् वासुदेवके स्वरूपमेंही वसता रहै, सो वैष्णवोंमें उत्तम है, इन तीन श्लोकोंमें भक्तोंके आचरणको उत्तम कहा ॥५०॥ जिसके इस देहमें कुल, तप, वर्ण, आश्रम और जातिका अभिमान नहीं है, सो भगवान्का अतिप्यारा भक्त

है ॥ ५१ ॥ जिसके चित्त और आत्मामें अपनी पराई बुद्धि नहीं और सब प्राणीमात्रमें समान दृष्टि होकर शान्त हो सो वैष्णवोंमें उत्तम है ॥५२॥ त्रिलोकीके राज्यके लिये भगवान् वासुदेवमेंही जिनका चित्त है और जो देवताओंसे दुर्लभ भगवान्के चरणकमलके भजन विना अर्द्धक्षण लव मात्र भी नहीं व्यतीत करते, सो वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इनको ऐसा दृढ़ ज्ञान है कि, भगवान् वासुदेवके चरणोंसे अधिक और कुछ सार नहीं ॥ ५३ ॥ यदि विषयके संगसे और कामसे संतापित हुए भक्तोंके मन चंचल होयँ तो क्या ? इसपर कहते हैं कि, हरिसेवामें सुख माननेवालेका तो मन नही चलायमान हो, परन्तु अनंतपराक्रम भगवान् वासुदेवके चरणकी शाखारूप अंगुलियोंके नखरूप मणिकी चन्द्रिकासे सब कामादि ताप दूर

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ॥ सर्वभूतसमः शांतः स वै भागवतोऽत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवे ऽप्यकुंठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ॥ न चलति भगवत्पदारविंदाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥५३॥ भगवत उरुविक्रमांघ्रिशाखानखमणिचंद्रिकया निरस्ततापे ॥ हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चंद्र इवोदितेऽर्क तापः ॥५४॥ विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥ प्रणयरशनया धृतांघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधानउक्तः॥५५॥इति श्रीमद्भाग०म०एका०नारदवसुदेवसंवादांतर्गतनिमिजायंतेयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥ राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामि भगवंतो ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥

होनेसे भक्तके हृदयमें ताप उत्पन्न नहीं होता, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे सूर्यका ताप दूर होजाता है और भी मुख्यलक्षण कहते हैं॥ ५४ ॥ केवल नाम मात्रके लेतेही सम्पूर्ण पापोंके समूहका नाश करनेवाले साक्षात् भगवान् वासुदेवको हृदयमेंसे न त्यागे वही वैष्णवोंमें उत्तम है, क्योंकि इसने प्रेमडोरीसे हरिके चरणकमल हृदयमें बाँध रक्खे हैं ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां निमिजायंतेयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–माया मायासे तरन, ब्रह्म कर्म यह चार ॥ इनको उत्तर देत अब, योगेश्वर सुविचार ॥ १ ॥ माया और मायासे तरनेका उपाय तथा ब्रह्मकर्म इन चार प्रश्नोंका उत्तर ऋषभदेवके पुत्र मुनि तीसरे अध्यायमें कहेंगे, राजा जनकजी बोलेकि, हे भगवन्!परमात्मा ईश्वर विष्णुकी मायाको मैं जानना

चाहताहूं सो कृपापूर्वक तुम मुझसे कहो, जो माया बड़े जाननेवालोंकोभी मोहित करलेती है ॥१॥ यदि तुम कहो कि, उक्त (जिसको प्रथम कह आयेहैं) लक्षणवाला भक्त होकर कृतार्थ होय तो बहुत परिश्रम करके क्या करैंगे ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, मरणधर्ममें संसारके तापसे अत्यन्त ताप होताहै, उस तापकी औषध हरिकथारूप अमृतको तुम्हारे वचनोंद्वारा पीनेसे मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥२॥ यह सुनकर अंतरिक्ष नामा योगेश्वर बोले कि,हे राजन्! आदिपुरुष भगवान् सब प्राणिमात्रके कारण अपने अंशभूत जीवोंको मोक्षके अर्थ पंचमहाभूतोंकी शक्तिसे,बुद्धि,इन्द्रिय,मन,प्राण और शरीर उत्पन्नकरतेहैं सो शक्ति मायाकारूपहै ॥३॥ इसप्रकार पंचमहाभूतोंसे सृष्टि रच सम्पूर्ण प्राणियोंके मध्यमें भगवान् अंतर्यामी रूपसे प्रविष्ट

नानुतृप्य जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ॥ संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अंतरिक्ष उवाच ॥ ॥ एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पंचधातुभिः ॥ एकधा दशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान्स भुजान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ॥ मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्कर्मफलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बहभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥७॥ धातूपप्लव आसंन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ॥ अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥८॥ शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्वणा भुवि ॥ तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥

होकर एकप्रकार मन और दश इन्द्रियरूपसे जीवोंको भिन्न भिन्न विषयभोग कराते हैं ॥४॥ तब जीवात्मा अंतर्यामी से प्रकाशित इन्द्रियोंसे विषयभोग करते मायारचित शरीरको आत्मा मान उसी शरीरमें आसक्त होतेहैं ॥५॥ यह जीव कर्मेन्द्रियोंसे वासनासहित कर्म करते हैं और इन्हीं कर्मोंसे सुख दुःखरूप फलको भोग करते संसारमें भ्रमण करते हैं, परन्तु मोक्ष नहीं होते, यह परमेश्वरकी माया है ॥ ६ ॥ इस भाँति अनेक क्लेशयुक्त कर्ममार्गमें चलते जीवात्मा पराये वश होकर महाप्रलयतक जन्म मरणको प्राप्त होतेहैं ॥ ७॥ अब प्रलय कहते हैं कि, पंचमहाभूतोंके नाशका काल जब निकट आता है, तब आदि अंत रहित कालमें लीन करनेको इस स्थूल सूक्ष्म प्रपंचको खैंचलेतेहैं ॥ ८ ॥ अब नाशका कारण कहते हैं, पहले

पृथ्वीमें सौ १०० वर्षतक अतिदारुण अनावृष्टि होगी, पीछे उस कालमें बड़ी उष्णतासे सूर्य तीनों लोकोंमें तपैगा ॥ ९ ॥ और पाताल तलसे आरंभ होकर जलाताहुआ ऊंचेको शिखाकिये अग्नि, वायुसे प्रेराहुआ चारों दिशाओंमें बढैगा ॥ १० ॥ इसके उपरान्त सांवर्त्तकनाम प्रलयकालके मेघगण सौ १०० वर्षतक हाथीकी सूंड़के समान धारोंसे वर्षेंगे, तब उस जलमें यह ब्रह्माण्ड लीन होजायगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जैसे अग्नि काष्ट न हो तो शुद्ध अग्निमें मिलजाती है, इसीप्रकार ब्रह्माण्डरूप शरीरवाला विराट्पुरुष ब्राह्माण्डरूप अपने शरीको छोड़ कर सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेश करजाताहै ॥ १२ ॥ पृथ्वीका गुण गंध है, उसको प्रलयाकारकी पवन हरलेती है, तब पृथ्वी गुणरहित होकर जलमें लीन

पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ॥ दहन्नूर्द्धशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिंधन इवानलः ॥ १२ ॥ वायुना हृतगंधा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशंति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यंतकारिणी ॥ त्रिवर्णा वर्णितास्माभिर्भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥

होजाती है, पीछे जलके गुण रसको वही पवन सोख लेता है, तब जल तेजमें लीन होजाता है ॥ १३ ॥ प्रलयकालके अंधकारसे रूपरहित हो तेज वायुमें लीन होजाता है, पीछे आकाशसे स्पर्शगुण हरजानेसे वायु आकाशमें लीन होजाताहै, इसके उपरान्त आकाशके गुण शब्दको कालरूप ईश्वर हरलेते हैं, तब आकाश तामसाहंकारमें लीन होजाता है ॥ १४ ॥ फिर इन्द्रियें और बुद्धि राजसाहंकारमें लीन होती हैं, मन इन्द्रियोंके देवताओं सहित सात्त्विक अहंकारमें लीन होता है; हे राजन् ! इसीप्रकार तामस, राजस और सात्विक यह तीनों गुणोंका कार्य इन्द्रियादिक सहित अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होता है और वह महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन होता है ॥ १५ ॥ सात्त्विक, राजस, तामस, तीनों गुणयुक्त उत्पत्ति पालन और

प्रलय करनेवाली यह भगवान्की माया है, सो मैंने तुमसे इसका रूप वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले
कि, हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार अतिदयायुक्त मुनिको देख इस संसारकी मायासे तरनेका उपाय राजा जनक पूँछनेलगे, कि यह ईश्वरकी
माया अजितेंद्रियोंको अति दुस्तर है, इसलिये देहाभिमानी भी जिसप्रकार इसे सुखपूर्वक तरसके सो हे महाऋषि ! वोही उपाय तुम मुझे
बताओ ॥ १७ ॥ तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगीश्वर बोले कि, हे राजन् ! भगवान् स्त्री पुरुष मिलकर अपने सुखको और दुःख दूर करनेके कर्मोंका
आरंभ करते हैं, और फिर उन कर्मोंके फलमें दुःखही देखते हैं ॥ १८ ॥ कर्मके साधनसे धनादिक मिलकर भी सुख नहीं देते; इसपर कहते हैं कि,
नित्य दुःखदायी उसपर भी दुर्लभ, अपनी मृत्युकारक धन, गृह, पुत्र, बंधु और पशुओंके पायेसे क्या सिद्धि है ? यह तो सब मिथ्या है ॥ १९ ॥

राजोवाच ॥ अथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ तरंत्यंजः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥१७॥ प्रबुद्ध उवाच॥
कर्मण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन
दुर्लभेनात्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥१९॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ॥ सतु
ल्यातिशयध्वंसं यथा मंडलवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्म
ण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥ तत्र भागवतान्धर्माञ्छिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ॥ अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मप्रदो हरिः ॥ २२ ॥

इसीप्रकार कर्मोंसे उत्पन्न हुए परलोकको भी मिथ्या जानै, जिसमें अपने समानसे ईर्षा, अधिककी निन्दा स्वर्गसे गिरनेका भय, इतने दुःख
स्वर्गके विषे भी हैं, जैसे थोडी भूमिके राजाओंको समान देखकर ईर्षा अधिककी निन्दा और चक्रवर्ती राजासे भय इत्यादि दुःख होतेहैं
॥ २० ॥ इसलिये अपना उत्तम कल्याण चाहै तो भक्तिपूर्वक गुरुकी सेवा करै, गुरुके लक्षण कहते हैं, मुख्य तो वेदका अर्थ अतिश्रेष्ठ जानता
हो, जिससे कि, सब संदेह दूर करसकै और परब्रह्म भगवान्के स्वरूपको जानै, जो आप ब्रह्मको न जानै तो औरको कैसे ज्ञान देगा ? अति
शांतरूप हो, क्योंकि ब्रह्मज्ञान उसेही होगा जो पुरुष शांत होगा ॥ २१ ॥ भक्तोंको आत्माके देनेवाले परमात्मा भगवान् हरि जिन वैष्णवधर्मसे
संतुष्ट होतेहैं, उन धर्मोंको गुरुको आत्मा और इष्ट जानकर भक्तजनको गुरुकी निष्कपट सेवा करनी सीखै ॥ २२ ॥

पहले तो संपूर्ण वस्तुओंमें मनको चलायमान न करै, इसके उपरान्त सत्संग करै, फिर सब प्राणियोंमें और दीनोंपर मन वचनसे दयायुक्त चित्तमें सबसे मित्रता करै और उत्तमोंमें नम्रता सीखै ॥२३॥ बाह्य शौच सीखै, (मृत्तिकासे हाथ पाँव आदि धोवै) अन्तर शौच सीखै (मनमें दंभ अहंकार न रखे) धर्मका आचरण, क्षमा यथायोग अध्ययन, ब्रह्मचर्य सीखै, वृथा वार्त्ता न करै कुटिल न रहै, द्रोह न करै, सुख दुःखमें समान बुद्धि रखै ॥२४॥ सब प्राणिमात्रमें समान चैतन्य आनन्दरूपसे ब्रह्मको विचारै, नियंता समझकर ईश्वरको विचारै, एकान्तमें वास करै, गृहादिकोंमें अभिमान न करै; निर्जन मार्गमें पड़ेहुए वस्त्र अथवा वल्कलको पहरै, अधिक क्या कहैं, जो वस्तु प्राप्त हो उसीमें संतोष रक्खै औरकी इच्छा न करै ॥ २५ ॥ जो शास्त्र केवल भगवान्‌ही बताते हैं, वह भागवत शास्त्र है, इसे सुननेकी श्रद्धा रक्खै औरकी निन्दा भी न करै और मन, वचन, कर्म इन

सर्वतो मनसोऽसंगमादौ संगं च साधुषु ॥ दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥ शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वंद्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ॥ विविक्तचीरवसनं संतोषो येन केनचित् ॥२५॥ श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिंदामन्यत्र चापि हि ॥ मनोवाक्कर्मदंडं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥ श्रवणं कीर्त्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥

तीनोंको दण्ड दे, मनको तो प्राणायाम करके रोकै, वाणीका दण्ड यह है कि, मिथ्या वचन न कहै, कर्मका दण्ड चेष्टा न करै, सत्य वचन सीखै अंतःकरण और सब इन्द्रियोंको निग्रह करै ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् हरिके जन्म कर्म गुणका श्रवण कीर्त्तन तथा ध्यान करै और भी जो कर्म करै सो सब भगवान् वासुदेवमें अर्पण करै ॥ २७ ॥ यज्ञ, दान, तप, सदाचार और आपको जो प्रियवस्तु होय सो सब गंध पुष्पादिक और स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण यह सब परमपुरुष भगवान् वासुदेवको निवेदन करै और यह सब धर्म गुरुके पाससे सीखै ॥ २८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आत्मा माननेवाले मनुष्योंसे मित्रता और स्थावर, जंगम प्राणियोंमें सेवा विशेष करके मनुष्योंकी और उन्हों

भी महात्मा तथा साधुओंकी सेवा करै ॥ २९ ॥ इन साधुओंका सत्संग करके भगवान् वासुदेवके पवित्र यशको परस्पर कहना सीखै, फिर ईर्षा छोड़ आपसमें प्रीति, सबसे संतोष, परस्पर सुख समस्त दुःखोंकी निवृत्ति सीखै ॥ ३० ॥ सपूर्ण पापसमूहके नाश करनेवाले भगवान् हरिको आप निरंतर स्मरण करै तथा औरोंको स्मरण करावै तब स्मरण, कीर्तनरूप भक्तिके करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तिसे रोमांच युक्त शरीर होजाता है * ॥ ३१॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवका चिंतवन करनेवाले कभी रोवै हैं, कभी हँसै हैं, कभी आनन्दको प्राप्त होते हैं, कभी बालकोंके समान वचन

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरंतः स्मारयंतश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ॥ भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदंत्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसंति नंदंति वदंत्यलौकिकाः ॥ गायंति नृत्यंत्यनुशीलयंत्यजं भवंति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्माञ्छिक्षन्भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो मायामंजस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥

कहते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं, कभी भगवान्के स्वरूपकी लीला करते हैं, कभी परमसुखमें मग्न होते हैं, और कभी चुप चाप रहते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यह वैष्णवधर्म सीखकर प्राप्त हुई भक्तिसे नारायणपरायण होकर सुखपूर्वक दुस्तर मायासे तरैं ॥ ३३ ॥ यह सुनकर राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन्! तुमने कहा कि, नारायणपरायण होकर मायाको तरैं सो नारायणके तो तीन नाम सुने हैं, एक तो नारायण, दूसरा ब्रह्म, तीसरा परमात्मा सो इन तीन नामोंसे निर्विशेष वस्तु कहिये अथवा इनमें कुछ भेद है? सो विशेष करके मुझसे कहो, क्योंकि

---

* शंका–भक्ति करके उत्पन्न जो भक्ति है, उस भक्तिसे भगवान्के भक्तोंका रोम रोम खडा होजाताहै, ऐसी रोमाच हुई देहको धारण करके भक्तजन भगवान्का भजन करते हैं, ऐसी उत्तमभक्ति कौनसी है? उत्तर–भगवान्में बडी भक्ति जैसा अम्बरीप आदिकभक्त भक्ति करतेथे ऐसी भक्ति करके भगवान्के चरणकमलमें प्रीति उपन्न होय, उसी प्रीति करनेका नाम भक्तिसे उत्पन्न हुई भक्तिहै, ऐसी भक्ति करके भगवान्का भजन करैगा तब प्राणी मोक्षको प्राप्त होजायगा !

तुम ब्रह्मको भली प्रकार जानते हो ॥ ३४ ॥ तब पांचव पिप्पलायन ऋषि उत्तर देते हैं कि, हे राजा जनक ! जो इस विश्वके उत्पत्ति, पालन तथा प्रलयके कारण हैं और आप कारण रहित हैं, सो नारायण हैं वही परमतत्त्व हैं, जो स्वरूप स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्तिमें एकरस है, सो ब्रह्म है, वही परमतत्त्व है, समाधिमें जिसको मुनीश्वर देखते हैं, उसीको ब्रह्म कहते हैं वही परमतत्त्व है और जिससे देह, इंद्रिय, मन, प्राण, यह सब चैतन्यही कार्यको समर्थ होते हैं सो परमात्मा है वही भगवान्का स्वरूप है इस प्रकार तीनों नामके भेदसे एकही तत्त्व, जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यदि तुम कहो कि, इससे ब्रह्मको विषय तत्त्वता प्राप्त हुई तो इसका निषेध करते कि, इस ब्रह्मको वाणी, नेत्र, बुद्धि, प्राण और सब इंद्रियें स्पर्श नहीं करसक्ते जैसे छोटी चिनगारी महाभूत अग्निको नहीं प्रकाश करसकती और न जला सक्तीहै, ऐसेही मन आदिजड़ इंद्रियें सृष्टिके प्रकाशक ब्रह्मको क्योंकर ऐसा सकेगी ? तहाँ पूर्वपक्ष करते हैं कि, अहो वेद तो ब्रह्मको बतातेहैं, तो कहते हैं वेद भी प्रगट नहीं कारण यह है कि, वेद स्वयंही कहता है कि, वाणी

पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ॥ देहेंद्रियासुहृदयानि चरंति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेंद्र ॥ ३५ ॥ नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेंद्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ॥ शब्दोपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेक मादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदंति जीवम् ॥ ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥३७॥

मन आदिसे जो पदार्थ जाने जाते हैं, जो इनके बोध न करनेवाले हैं, वह ब्रह्मको नहीं प्राप्त होसक्ते, इससे यह न समझलेना कि, वेद ब्रह्मको नहीं कहते किन्तु वेद कहते हैं, कि, स्थूल भी ब्रह्म नहीं है, अणु भी ब्रह्म नहीं जो वाणीसे कहा जाय सो भी ब्रह्म नहीं इत्यादि इस निषेधकी जो अवधि है, वही ब्रह्म है, विना अवधिके निषेध नहीं होसक्ता ॥ ३६ ॥ फिर कहते हैं कि, जो सबका प्रमाण जहाँ वेदकी भी गम्य नहीं तो ब्रह्मही न होगा, इसका उत्तर देतेहैं, कि, ब्रह्म नहीं यह नहीं कहा जाता, जो कुछ स्थूल सूक्ष्म देखाजाता है, सो सब ब्रह्मही भासताहै इसलिये सब विश्वके कारण भगवान् वासुदेवही है (यहाँ पूछते हैं कि) एक ब्रह्म बहुविध विश्वका कारण क्यों है (सो कहते हैं कि) ब्रह्मकी शक्ति अनंत सामर्थ्यसे अनंतरूप है, पहले एक रूप होकर पीछे सत, रज, तम मायाके रूप हुये पीछे क्रियाशक्तिसे प्राणरूप हुये, फिर ज्ञानशक्तिसे महत्तत्त्व हुये,

फिर अहंकाररूप हुये, जिसमें जीव बँधा है. इसके उपरान्त इन्द्रियरूप हुये, फिर इन्द्रियोंके देवतारूप हुये, फिर कर्मोंके फल सुख दुःख रूप हुये, इसभाँति सबरूप ब्रह्महीहैं और सर्वरूप आपसे प्रकाशमान ब्रह्मकी स्थापना विषे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं ॥ ३७ ॥ तहाँ पूर्वपक्ष करते हैं, संपूर्ण रूप आपही हैं, तो यह सब विश्व तो मरताहै, फिर उत्पन्न होताहै, इससे ज्ञात होताहै कि, ब्रह्मका भी जन्म मरण होता है, इसके उत्तरमें कहते हैं कि, यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है न बढै है, न क्षीण होता है, इसकारण आगमापाई बालयुवादिक देहोंकी अवस्थाका साक्षी है और साक्षीको यह अवस्था नहीं लगती, केवल ज्ञानरूप है. यदि यहाँ कोई कहै कि, ज्ञान तो एकक्षणमें उत्पन्न होताहै, एकही क्षण रहताहै और एकही क्षणमें नाशको प्राप्त होजाताहै (सो कहते) यह ज्ञान सदा रहताहै, जो कोई कहै कि, नील ज्ञान उत्पन्न हुआ, पीत ज्ञान गया, ऐसे ज्ञानका भी उत्पत्ति और नाश सुना है इसके उत्तरमें कहते हैं कि नील पीत इन्द्रियोंकी वृत्ति उत्पन्न होती हैं और वृत्तियोंकाही नाश होता है, ज्ञान तो एक

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि॥ सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेंद्रियबलेन विकल्पितं सत्॥ ३८ ॥ अंडेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्रतत्र ॥ सन्ने यदिंद्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥

रूप है, यह प्राणके दृष्टान्त कहे गये ॥ ३८ ॥ इन्द्रियादि केवल हरिहीको दिखती हैं, जैसे पशु, पक्षी, स्वेदज, वृक्षादिकोंमें सर्वत्र जहाँ जहाँ जीव जाताहै, उसी उसी स्थानमें इनके संग प्राण भी जाते हैं, परन्तु प्राण निर्विकार हैं, जैसे आत्मा भी निर्विकार रहताहै, (यहाँ शंका है कि) मनुष्यादिक देहोमें आत्मा सब विकारसा क्यों दीखता है ? तो कहते हैं कि; जाग्रत्में इन्द्रियगणके दोपसे, स्वप्नमें अहंकारसे, सब विकारसा दीखता है, सुषुप्तिमें तो इन्द्रियगण और अहंकारके लयसे निर्विकार आत्मा है, इससे विकारके हेतु लिंगशरीरकी उपाधिका अभाव है (यहाँ शंका है) सब नष्ट होनेसे आत्मा रहता है यह कैसे जानैं ? सो इसका उत्तर यह है, कि जब जागताहै, तब जो सुषुप्तिमें आत्माको सुख अनुभव हुआ है उसका स्मरण होता है, आज मैं बहुत सुखसे सोया, यह ज्ञान अनुभवके स्मरण विना नहीं होता, इसलिये सुषुप्तिमें आत्माका

अनुभव निर्विकार होता है, पर विषयका सम्बन्ध नहीं, इसलिये वह अनुभव प्रगट नहीं होताहै ॥ ३९ ॥ फिर पूछते हैं कि, इसका सुस्वप्नमें निर्विकार अनुभव होय तो संसार फिर क्यों होताहै ? यदि कहो कि, इसकी अविद्या नहीं गई, उसकी वासनासे संसार होताहै, तो अविद्या कैसे जाय ? सो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जब गृह पुत्र धनादिकोंकी वासना छोड़कर केवल भगवान् वासुदेवकी इच्छा करै, ऐसा करनेसे भक्ति बढ़ती है, उस भक्तिसे चित्तके गुणकर्मसे उत्पन्न हुए सब पाप दूर होजाते हैं, तब चित्त शुद्ध होकर प्रगट आत्मतत्त्वको प्राप्त करताहै, जैसे निर्मल दृष्टिके होनेसे सूर्यमण्डलका प्रकाश दीखता है ॥ ४० ॥ राजा जनक बोले कि, भक्ति तो कर्मयोगके अधीन है, इसलिये प्रथम मुखसे कर्मयोग कहो ? जिस कर्मके करनेसे शुद्ध होकर फिर कर्मका वेग दूर करके पुरुष निष्कर्म श्रेष्ठ ज्ञान पाताहै जिससे सब कर्म निवृत्ति

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ॥ विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विंदते परम् ॥ ४१ ॥ एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरंतिके ॥ नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारण मुच्यताम् ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र उवाच ॥ कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ॥ वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यंति सूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥

होय सो कर्मयोग कहो ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने पिताके आगे जब सनकादिक आये थे, तब किया था, उन्होंने भी मुझे कुछ उत्तर न दिया इसका क्या कारण है, सो मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ तब आविर्होत्र बोले कि, हे राजन् ! वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है, वह कर्म है, जिसका निषेध है, वह अकर्म है और जिसके करनेकी आज्ञा है, वह न करै तो विकर्म कहाजाताहै, यह तीनों भेद वेदहीको गम्य हैं, इसका निर्णय मनुष्योंको अशक्य है, इससे वेद साक्षात् ईश्वररूप है, पुरुषके वचनमें वक्ताका अर्थ जानना अतिकठिन है, यहाँ पण्डित भी मोहको प्राप्त होतेहैं, तब तुम बालक थे, इसलिये तुमसे न कहा ॥ ४३ ॥ वेदका तात्पर्य क्यों नहीं जानाजाता सो कहते हैं, यह वेद सब परोक्षवाद है, अर्थ तो और भाँति होता हो उसके छिपानेको और भांति कहैं, इसे परोक्षवाद कहते हैं, उसीप्रकार वेदमें कर्म छुटानेका कर्म कहाहै मूर्ख उसी कर्मको

जानता है ,यहाँ पूछँते हैं कि, कर्मका तो स्वर्गादिक फल सुना जाता है, फिर कर्मको त्यागकर फल कैसे जाने ? इसका उत्तर कहते हैं कि, यह जो कर्म कारण कहेहैं, सो मूर्खोंकी शिक्षाके लिये है, नहीं तो धर्ममें किसीकी भी प्रवृत्ति नहीं होती; जैसे बालकोंको औषधी खिलानी चाहिये, तब लड्डू दिखाइये, और दीजिये उस लड्डूके लोभसे वह बालक औषधी पीलेगा, तब औषधीका यह फल नहीं, जो लड्डू खायऔषधीका तो यही फलहै कि,आरोग्य कर देगी, उसीप्रकार जीव सब विषयी हैं, लोभीहैं उनको स्वर्गादिकका लोभ दिखाय कर्ममें प्रवृत्ति करते हैं,पीछे इससे भी निवृत्तिका फल उत्तम है, इस ज्ञानसे उन कर्मोंको छुड़ाते हैं, यह वेदका तात्पर्य है ॥४४॥ जो कर्म त्यागनाही मुख्य है,तो पहलेही कर्म त्याग कीजिये तो कहते हैं कि, आप अज्ञ हो, अजितेन्द्रिय हो, जो वेदोक्त कर्म न करै तो कर्मके विना करै अधर्मसे मरकर फिर मृत्युहीको प्राप्त होता है और

नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेंद्रियः ॥ विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥ वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ य आशु हृदयग्रंथिं निर्जिहीर्षुः परमात्मनः ॥ विधिनोपचरेद्देवं तंत्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥ ४८ ॥

सदा कालकेही सुखमें रहता है ॥ ४५ ॥ इसलिये वेदोक्तही कर्म करै, निषिद्ध कर्म न करै, फिर कर्मके फलकी इच्छा न रक्खै, जो कुछ कर्म करै सो सब ईश्वर भगवान् वासुदेवमेंही समर्पण करै तब पुरुष मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्तहो (तहाँ पूर्वपक्ष कहते हैं) कि, अहो, वेद विषे जो फल सुने जाते हैं, जैसे औषध पिलानेके लिये बालकोंको लड्डू देता है, उसी प्रकार कर्म करनेसे फल अवश्य होगा, तो कहते हैं कि, यह मत कहो, कर्मोंमें प्रीति उपजानेका फल सुनाना है, जैसे औषध देनेके समय बालकोंको मीठी चीज दिखाते हैं, अब वैदिककर्म कहकर आगमकी विधि कहतेहैं ॥ ४६ ॥ जो कोई निर्विकार जीवकी अहंकारकी गांठि छुड़ाना चाहे सो आगम और वेदोक्तके प्रकारसे सबकी पूजा करै ॥ ४७ ॥ सो पूजाकी विधि कहते हैं कि, जब इस पुरुषपर ईश्वर अनुग्रह करै, तो सद्गुरु मिलते हैं, फिर उन गुरुओंसे पूजाकी विधि जाने तब आपको जैसी मूर्त्ति रुचे, उसी

प्रकार मूर्त्ति बनाकर भगवान् वासुदेवकी पूजा करै ॥ ४८ ॥ सो विधि कहते हैं कि, पहले तो स्नानादिक करके पवित्र हो और फिर उस मूर्त्तिके सन्मुख बैठ प्राणायाम और भूतशुद्धि कर देहको शुद्ध करै, इसके उपरान्त उत्तम न्यासोंको कर अपनी रक्षाकरके भगवान् हरिकी पूजा करै ॥ ४९ ॥ पुष्पादिक द्रव्यको जंतुआदि शोधन कर, भूमिको संमार्जन और मनको सावधानकर, मूर्त्तिको स्नानादिक कराय आसनको प्रोक्षणकर प्रतिमादिक विषे अथवा हृदयमें यथा प्राप्त उपचारोंसे पूजा करै ॥५०॥ पाद्य, अर्घ्य इत्यादि सब विधिपूर्वक देनेके उपरान्त पहले अपने हृदयमें पूजित भगवान् वासुदेवको संनिधापन मुद्रासे दृढ़ धर सावधान होकर ध्यान करै, इसके पीछे हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, मंत्र और

शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिंडं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥ अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ॥ द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमंत्रेण चार्चयेत् ॥ ५१ ॥ सांगोपांगां सपार्षदां तांतां मूर्तिं स्वमंत्रतः ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥ गंधमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ॥ सांगं संपूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥ आत्मानं तन्मय ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः ॥ शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥

मूलमंत्रसे पूजा करै ॥५१॥ इसके उपरान्त अंग हृदयादिक, उपांग, सुदर्शन आदि पार्षद परिवार, देवता सहित उस मूर्त्तिको, पाद्य, अर्घ्य, आच मन, स्नान, वस्त्र, भूषण, उपचार कर ॥५२॥ गंध, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजा करै; फिर स्तोत्रोंसे स्तुतिकर नमस्कार करै और अक्षत सहित उस मूर्त्तिको तिलक करके पूजे और समय न पूजे क्योंकि अक्षतसे भगवान् हरिकी और केतकीसे महादेवजीकी पूजा नि षिद्ध है ॥५३॥ और फिर मूर्त्तिरूप भगवान् सुदेवका ध्यान करके पूजा करै, इसके उपरान्त उस निर्माल्यको मस्तकपर चढा, देवताका स्वरूप हृदयमें धारण कर पूजीहुई मूर्त्तिको विसर्जन करके अपने स्थानमें रक्खे ॥ ५४ ॥

इसप्रकार अग्नि, सूर्य, जल आदिमें स्थित अतिथिमें, हृदयमें, आत्मारूप ईश्वर भगवान् वासुदेवकी जो पुरुष पूजा करेगा सो थोडेही कालमें संसारी बंधनोंसे छूटकर मुक्त हो जायगा, यह आगमकी विधि वर्णन की ॥ ५५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां निमि जायंतेयसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा—इस चौथे अध्यायमें, द्रुमिल् नाम योगीश ॥ लीला हरि अवतारकी, कहत धरनधर शीश ॥ १ ॥ राजा जनक बोले कि, हे भगवन् ! आपने प्रथम कहा कि, भगवान् हरिकी मूर्त्तिको जैसा मन मानै वैसी बनाकर पूजा और स्तुति करे, सो हमको

एवमभ्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥ यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते च सः ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छंदजन्मभिः ॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच ॥ यो वा अनंतस्य गुणाननंताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ॥ रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

न तो मूर्त्तिका ज्ञान है, न गुण कर्मका ज्ञान है, जो स्तुति करैं इसलिये तुम उनके अवतार और कर्म कहो कि, भगवान् वासुदेवने जो जो जन्म लिये हैं और जो जो कर्म किये हैं और अब करते हैं और जो आगेको करैंगे सो सब वर्णन कीजिये * ॥ १ ॥ राजा जनकने जब इसप्रकार पूॅछा तब द्रुमिल योगीश्वर बोले कि, जो पुरुष अनंतरूप भगवान् वासुदेवके चरित्रको गिनना चाहै,वह अज्ञानी है, क्योंकि पृथ्वीके परमाणुओंको तो बहुत कालतक परिश्रम करके कोई बुद्धिमान् गिन भी सकता है, परतु अनंतशक्तिका आश्रय भगवान् वासुदेवके गुणोंको कोई नहीं गिनसक्ता ॥ २ ॥

---

* शंका—राजा जनक बडे ब्रह्मके जाननेवालेथे, ऐसे ब्रह्मज्ञानी होकर ब्रह्मकी कथाको त्यागकर मुनिराजसे सगुण अवतारकी कथा क्यों बूझी ? क्योंकि ब्रह्मज्ञानी महात्मा पुरुष सगुणमें प्रीति नहीं करते। उत्तर—तीन लोकमें जो चर अचर जीव हैं, उन सबका बीज विना जन्म नहीं होसक्ता, किसीका भी जन्म आजतक बीज विना नहीं, तैसेही ब्रह्मज्ञानका बीज सगुण ब्रह्मका कीर्त्तन है, सगुणके कीर्त्तनसे ब्रह्मज्ञान होता है, इसलिये राजा जनकने ब्रह्मज्ञानी होकर सगुण भगवान् अवतारकी कथा बूझी ।

परन्तु तोभी संक्षेपसे उनके कितने एक गुण वर्णन करताहूं कि, जब स्वयं भगवान् वासुदेव पंचमहाभूत उत्पन्न कर ब्रह्माण्डरूप नगर बनाय उसमें लीलापूर्वक प्रविष्टहुए, इसलिये इनका आदि देव नारायण पुरुष नाम हुआ ॥ ३ ॥ यह तीन लोककी स्थापना जिस पुरुषको देता है और जिसकी इन्द्रियोंसे सब देहधारियोंकी इन्द्रियें होती हैं, जिसके स्वरूपसे भूत सत्त्वगुणसे ज्ञान होता है, प्राणसे देहशक्ति और इन्द्रियशक्ति तथा चेष्टा इत्यादि यह सब होती हैं, इससे ज्ञात होता है कि, विश्वका कर्त्ता भी कोई है ॥ ४ ॥ प्रथम इस विश्वके उत्पन्न करनेको रजोगुणसे ब्रह्मा हुए, सतोगुणसे यज्ञके फलदाता और धर्मके रक्षा करनेवाले विष्णु हुए, तमोगुणसे संहार करनेको रुद्र हुए. इसप्रकार प्रजाओंके बीच जिससे निरंतर जन्म,

भूतैर्यदा पंचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥
॥ ३ ॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येंद्रियैस्तनुभृतामुभयेंद्रियाणि ॥ ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा
सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्म
सेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट
मूर्त्यां नारायणो नरऋषिप्रवरः प्रशांतः ॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेवितांघ्रिः ॥
॥ ६ ॥ इंद्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुंक्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाप्सरोगणवसंतसुमंदवातैः
स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥

पालन और नाश होता है, वही आदि पुरुष हैं ॥ ५ ॥ वही आदिदेव दक्षकी बेटी मूर्ति नाम धर्मकी स्त्रीके विषे ऋषियोंमें श्रेष्ठ अतिशान्तस्वरूप नरनारायण अवतार हुआ और जिससे कर्म नष्ट न हो, ऐसा निष्कर्म ज्ञान बनाया और आपने भी उसीके अनुसार कर्म किया, सोही श्रेष्ठ ऋषियोंसे सेवित जिनके चरण सो भगवान् नरनारायणरूपसे बद्रिकाश्रममें आजतक विराजमान हैं ॥ ६ ॥ हे महाराज ! इससमय एक भगवान् वासुदेवके अवतारोंका बतानेवाला परमशक्ति दिखानेवाला इतिहास कहते हैं, सो आप मन लगाकर श्रवण करें. एकसमय नर नारायणको

परमशान्त तप करते देख देवराज इन्द्रने मनमें विचार किया कि, यह मेरा स्थान तप करके लेना चाहते हैं, यह विचार तपस्यामें विघ्न करनेके लिये परिवार सहित कामको भेजा और भगवान् वासुदेवकी महिमाको नहीं जाननेके कारण कामदेव उनके स्थानमें अप्सराओंके गण वसंत और मंद वायुसहित जाकर स्त्रियोके कटाक्षरूप बाणोंसे उनको मारने लगा ॥ ७ ॥ तब गर्वरहित नरनारायण इन्द्रका कियाहुआ अपराध जान शापके भयसे काँपतेहुए कामादिक देवताओंसे हँसकर बोले कि, हे कामदेव ! हे देवांगनाओ ! भय मत करो, हमरा आतिथ्य ग्रहण करके हमारे आश्रमको सुवास करो, क्योंकि जिस स्थानपर अतिथिका आदर सन्मान नहीं होता वह स्थान शून्य कहलाताहै ॥ ८ ॥ हे राजन् ! अभयके देनेवाले श्रीभगवान् हरिके इसप्रकार कहनेपर लज्जासहित और नम्र शिर हो, कामादिक देवता दयासंयुक्त श्रीनरनारायणसे बोले कि, हे प्रभो ! तुम्हारा

विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ॥ मा भैष्ट भो मदनमारुतदेववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ॥ नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥ त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तराया स्वौको विलंध्य परमं व्रजतां पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्न मूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ॥ क्रोधस्य यांति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जंति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजंति ॥ ११ ॥

इसप्रकार-कहना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि तुम मायासे परे हो, निर्विकार हो, आत्माराम और धीर मुनियोंके समूह तुम्हारे चरण कमलको नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हमारे अपराधका आचरण भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि हमारा स्वभावही ऐसा है, तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष देवताओंके स्थानको उल्लंघनकर आपका जो परमधाम वैकुण्ठ है उसमें जातेहैं, उनको इन्द्रादिक देवता बहुत विघ्न करते हैं तुम्हारी सेवा नहीं करनेवाले दूसरे पुरुष कि, जो यज्ञमें देवताओंको उनके भागरूप कर देते हैं, उनको विघ्न नहीं करते, परन्तु जिसके तुम रक्षक हो, वह तुम्हारा भक्त निश्चय विघ्नोंके माथेपर चरण धरकर तुम्हें प्राप्त होजाता है ॥ १० ॥ अभक्तोंको काम क्रोधादिक सब वशमें करलेते हैं, उनमें जो जो हमारे वश होते हैं,

सो भोग भी करते हैं और जो क्रोधके वश हैं, वह तो अतिमूर्ख क्षुधा,तृष्णा,शर्दी, गर्मी, वर्षा,पवन,जीभका रस और शिश्नका रस ये रूप हैं, उनको लाँघकर जो पुरुष निष्फल क्रोधके वशीभूत होजाते हैं, वह अपार समुद्रको पार उतरकर गायोंके खुरोंके गढोंमें डूब जाते हैं, यह लोग शाप आदि देकर अतिकठिन तपस्याको वृथा छोड़ देते हैं न तो मोक्षके अर्थ न भोगके अर्थ है ॥११॥ इसप्रकार भगवान् वासुदेवने कामादिककी स्तुति सुन अपने योगबलसे उत्पन्न अद्भुत रूपवाली सेवा करती अभूषणों सहित स्त्रियें कामादिकको दिखाई॥१२॥वह देवताओंके सेवक मूर्तिमान लक्ष्मीके समान उन स्त्रियोंको देख, उनकी गंधसे मोहित हो, उनके रूप गुण उदारतासे इनकी शोभा दर्प सब जाता रहा॥१३॥ तब देवोंके देव प्रभु भगवान् वासुदेव हास्यकर नम्रहुए कामादिक देवताओंसे बोले कि, इन स्त्रियोंमेंसे किसीको तुम वरो, यह सुनकर देवताओंने कहा कि, हम तुच्छ हैं, कहाँ

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः ॥ दर्शयामास· शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः ॥ गंधेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥ ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवंदिनः ॥ उर्वशीमप्सरः श्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥ इन्द्रमानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रा स विस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान्पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥

ऐसी स्त्रियें, और कहाँ हम, तब नारायण बोले कि, तुम्हारे समान जो हो उसे ग्रहण करो, तब कमादिक देवताओंने फिर कहा कि, हे महाराज ! इनमें हमारे समान एक भी नहीं है तब भगवान्ने कहा कि, एक तो तुम लो तुम्हारे स्वर्गका भूषण होगी ॥ १४ ॥ तब कामादिक देवता भगवान् नर नारायणकी आज्ञा मान अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको ले, प्रभुको नमस्कारकर स्वर्गको चलेगये ॥ १५ ॥ स्वर्गमें जाय देवराज इन्द्रको प्रणामकर सभामें सब देवताओंके सुनते नर नारायणका बल कहा, तब इन्द्र अतिआश्चर्यमान अत्यन्त भयको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ इन्हीं प्रभुने हंसावतार लेकर संपूर्ण आत्मयोग कहा, फिर एक दत्तात्रेय, एक सनकादिक, एक भगवान् ऋषभ

विष्णुरूपही अपने अंशसे जगत्का कल्याण करनेको प्रगट हुए थे और इन्हीं विष्णुने एक समय हयग्रीव अवतार ले, मधुदैत्यको मार वेदोंका उद्धार किया था ॥ १७ ॥ एक समय प्रलयके समुद्रमें मत्स्यरूप धारण कर मनु, पृथ्वी और औषधियोंकी रक्षा की थी, वाराह अवतार ले हिरण्याक्षको मार जलसे पृथ्वीका उद्धार किया, कूर्मावतार ले अमृत मथनेको अपनी पीठपर मंदराचल पर्वत धारण किया, इसके उपरान्त दुःखित होकर शरण आयेहुए गजेन्द्रको ग्राहसे छुडाया ॥ १८ ॥ एक समय वालखिल्य ऋषि कश्यपजीके लिये काष्ठ लेने गयेथे, सो वहाँ गायके खुरके गढेमें पानी भररहाथा उसमें डूबने लगे, तब इन्होंने बहुत स्तुति करी, वहाँसे आत्मविद्यामें तत्पर ऋषियोंको छुड़ाया और वृत्रा

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रोडे हतो दितिज उद्धरतांभसः क्ष्माम् ॥ कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताच्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेंद्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥ देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वांतरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाऽप्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबंध दशवक्त्रमहन्सलंकं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥

सुरके मारनेसे जो ब्रह्महत्या हुई थी, उससे देवराज इन्द्रको छुड़ाया, अनाथ देवताओंकी स्त्रियें असुरोंके घरमें रुक रहीथीं, उन सबको अनेक अवतार लेकर छुड़ाया, फिर नृसिंहरूप धाररणकर भक्तोंको अभयदान देनेके लिये हिरण्यकश्यपका वध किया ॥ १९ ॥ मन्वन्तरोंमें देवता और दैत्योंके संग्राममें देवताओंके लिये अपनी कलासे दैत्यपतियोंका संहार किया, संपूर्ण लोकोंकी रक्षा करी और वामनरूप धरकर राजा बलिसे भीखके मिष इस पृथ्वीको लेकर देवताओंको देदी ॥ २० ॥ परशुरामका अवतार ले इक्कीसबार पृथ्वीको क्षत्रियरहित किया और हैहय कुलके नाशको भृगुवंशमें अग्निरूप प्रगटहुए. उन्होंनेही फिर रामावतार लेकर समुद्र बाँधा और लंकापुरीमें स्थित परिवार समेत राक्षसराज रावणका

वध किया, जिनकी कीर्त्ति संसारके पाप नाश करती है, सोई रघुनाथजी अब विद्यमान हैं ॥ २१ ॥ भूमिका भार उतारनेके लिये अजन्मा आप
यादव कुलमें जन्म ले, जो देवताओंसे भी न करे जायँ ऐसे कर्म करेंगे. पीछे जो यज्ञादिक करनेके अयोग्य दैत्योंको बौद्धरूप धर मोहित करेंगे,
इसके उपरान्त कलियुगके अंतमें कल्किअवतार लेकर शूद्र जातिके राजाओंको मारेंगे ॥ २२ ॥ हे महाराज ! महाभुज ! इसप्रकार जगत्पति भग
वान् वासुदेवके जन्म और कर्म अनंत हैं, मैंने तो संक्षेपसे वर्णन किये ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां निमिजा
यंतेयसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–पंचम हरिकी भक्तिविन, नरकी गति है कौन । सो सब वर्णन करतहौं, पूजन सेवन जौन ॥ १ ॥ राजा
जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जिनकी कामना नहीं छूटीं वह पुरुष बहुधा भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते उनकी क्या गति होगी ? सो

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हाञ्छूद्रान्कलौ
क्षितिभुजो न्यहनिष्यदंते ॥२२॥ एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज
॥२३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ राजोवाच ॥ भगवंतं हरिं प्रायो न भजंत्यात्म
वित्तमाः॥तेषामशांतकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥१॥ चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ॥
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥२॥ य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ॥ न भजंत्यवजानंति स्थानाद्भ्रष्टाः
पतंत्यधः ॥ ३ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकंप्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥

कृपापूर्वक आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ तब आठवें चमस ऋषिने उत्तर दिया कि, हे राजन् ! पहले परमपुरुषके मुखद्वारा सतोगुणसे ब्राह्मण
उत्पन्न हुए, भुजाओंसे सत रजसे क्षत्रिय हुए, ऊरू द्वारा रजोगुण तमोगुणसे वैश्य हुए, चरणद्वारा केवल तमोगुणसे शूद्र हुए और आश्रम
सहित भिन्न २ वर्ण उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ अपना जन्मदाता पुरुष ईश्वरका इन वर्णोंके मध्य जो भजन नहीं करता और जान बूझकर
निरादर करता है, वह पुरुष वर्ण आश्रमसे भ्रष्ट होकर अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ कोई एक पुरुष इसप्रकारके हैं, जिनको हरिकथा
सुनना बहुत कठिन है, किसी किसीको हरिका कीर्तन बहुत कठिन है, इसप्रकार कितने एक द्विजलोग और स्त्रियें तथा शूद्रादिक कि, जो

भगवान् वासुदेवको न जाननेसे नहीं भजते उनके ऊपर आप सरीखेही कृपा करते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यह यज्ञोपवीतरूप दूसरे जन्मसे और वेदाध्ययनसे हरिभजनके उत्तम अधिकारी हैं परन्तु तो भी वेदके फल स्तुतिके वचनोंमें मोहित होकर जानने पर भी भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते और कर्मोंमें आसक्त होरहे हैं उन अर्द्धदग्ध लोगोंको सुधारनेका उपाय कोई न होनेसे आपसरीखे पुरुषोंको उनकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ कर्म करनेमें अकुशल मूर्ख अपनेको पण्डित माननेवाले, अनम्र, ऐसी मनोहर बातें कहते हैं कि, जिनमें मोह उत्पन्न हो, वह यह है कि यज्ञादिकोंका फल अक्षय होगा, न स्वर्गमें शीत है, न उष्ण है, न मलिनता है, न पराजय है और वचनसे उत्कंठित होकर कहते हैं कि, हम अप्सराओंसे विहार करेंगे, यह कहतेहुए कर्ममें बँधे रहते हैं ॥ ६ ॥ उनको उस फलके भ्रमसे कर्महीमें आदर होता है।

विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदांतिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाऽथापि मुह्यत्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पंडितमानिनः ॥ वदंति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः ॥ दांभिका मानिनः पापा विहसंत्यच्युतप्रियान् ॥ ७॥ वदंति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यसुखेषु चाशिषः ॥ यजंत्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नंति पशूनतद्विदः ॥८ ॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनांधधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यंति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥

उससे काम, क्रोध, मदादिक वृद्धिको प्राप्त होते हैं और यह भी कहा है कि, रजोगुणसे राग द्वेष उत्पन्न होता है, उससे अभिचारके कर्मोंपर मन होता है, तब वह घोरसंकल्पी, महातृष्णावाले सर्पके समान क्रोधी महाअभिमानी दुष्ट स्वभावसे अधजले लोग नारायणके भक्तोंपर हँसते हैं ॥ ७ ॥ सदा स्त्रियोंकीही सेवा करते हैं कि वृद्धोंकी सेवा नहीं करते केवल मैथुनमें ही सुख माननेवाले अतिथिकी पूजारहित घरोंमें रहकर मनके मनोरथवाले लोग कहा करते हैं कि, आज मैंने यह पाया यह मनोरथ फिर प्राप्त करूंगा और जो कदाचित् किसी देवताकी पूजा करें तो अपने स्वार्थके लिये पशुकी हिंसा करते हैं, न कुछ विधि न दक्षिणा, न अन्नदान करैं ऐसे मूर्ख हैं जो हिंसादोषको नहीं जानते ॥ ८ ॥ धन, ऐश्वर्य, कुल, विद्या, दान, रूप, बल और कर्मोंसे उनको गर्व उत्पन्न होता है, इससे मंदबुद्धि दुष्ट ईश्वर सहित साधु परमेश्वरके भक्तोंका निरादर करते हैं ॥ ९ ॥

यह दुष्ट पुरुष वेदके अर्थको नहीं जानते, वेद कहते हैं कि, यद्यपि सब देहधारियोंमें यह आत्मा सदा आकाशकी भाँति व्यापरहा है और अपने प्रिय ईश्वरको फिर वेद प्रगट बताते हैं, परन्तु तोभी यह मूर्ख नहीं सुनते, अपने मनोरथोंकीही बातोंमें वाद विवाद करते हैं ॥ १० ॥ तहाँ पूर्वपक्ष कहते हैं कि, स्त्री संभोग तो कहा है कि, रजस्वला होनेपर मैथुन करै देवताका बचाहुआ भोजन करै, फिर तुम क्यों निन्दा करते हो ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि लोकमें स्त्रीप्रसंग मांस भक्षण और मदिराका सेवन नित्य है और विषयासक्तोंको अनुराग स्वभावहीसे प्राप्त है,

सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां प्रवदंति वार्तया ॥ १० ॥ लोके व्यवायाऽऽमिषमद्यसेवा नित्यास्तु जंतोर्न हि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञ सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥ धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशांतिः ॥ गृहेषु युंजंति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यंति दुरंतवीर्यम् ॥ १२ ॥

फिर कुछ विधि नहीं बस एक यही चाहिये और जहाँ विधि कही है तहाँ ऋतुकालके दिन स्त्रीसंग करै, यज्ञहीमें मांस मद्य ग्रहण करै और २ दिन न करै इस नियमसे करै, परन्तु दिनका निषेध किया है, इसे विषयी मूर्खलोग नहीं समझते, जो कामी अरुचिसे अथवा द्वेषसे स्त्री प्रसंगा दिक करैं उनका यह नियमहै और जिनके यह कामना नहीं, उनका नियम नहीं। वेदका अभिप्राय तो सब दिन छुडानेकाही है, उसे मूर्ख नहीं समझते * ॥ ११ ॥ धर्म करनाही धर्मका फल है क्योंकि धर्मानुष्ठान करनेसे परोक्ष ज्ञान (नहीं दीखनेवाला ज्ञान) और तत्काल शांतिदायक

* दृष्टान्त—वास्तवमें उसका तात्पर्य यहहै जैसे किसीका लडका खेलमें अत्यन्त मतवाला हो और वेश्याके घर दिन रात पड़ा रहताहो और पढनेमें उसकी रुचि न हो, तो उसके पिताको कहना चाहिये कि, तू प्रातःकाल उठकर तो वेश्याके घर जायाकर, फिर एक घटामर खेलकर और जो तू प्रातःकाल वेश्यके घर नहीं गया और एक घंटामर न खेला तो मैं तुमको बहुत मारूगा, क्योंकि इन दोनों कामोंके दो घंटेमें निश्चित होकर फिर अपना चित्त कहीं इधर उधर मत मटकाना और जो फिर मटकावेगा तो पिटैगा, यह वाक्य निवृत्तिका निरूपण करता है इसी प्रकार वेद मी निवृत्तिका निरूपण करता हैं प्रवृत्तिका निरूपण नहीं कराता जो मनुष्य समीप आनेपर मी ऋतुस्नात भार्यासे प्रसंग न करै, तो गर्भहत्याका जो महापाप होता है, वही पाप उस मनुष्यको लगता है अनेक श्रुतियोंके वचन तो यह हैं कि, मनमें कामना होनेपर मी स्त्रीके विषे अरुचि अथवा द्वेषादिक होनेसे उसके साथ प्रसंग न करै, ऐसे जानना ?

अपरोक्ष ज्ञान दोनों प्राप्त होजातेहैं, ऐसे सुखदायक धनको यह पुरुष देहादिकके लिये घरोंमें वृथा खो देते हैं, हाँ ! न तो इसका विचार करतेहैं और न शिरपर घूमतीहुई मृत्युकोही देखते हैं ॥ १२ ॥ और वेदका तात्पर्य नहीं जानते कि, ऋतुके दिनभी स्त्रीप्रसंग गर्भाधानहीको कहा है कुछ यथेष्ट कामभोगको नहीं कहा और सुरापान भी नहीं कहाहै, आघ्राण कहाहै, पशुकी हिंसा देवताके लिये करै अपने लोभसे न करै, ऐसे शुद्ध धर्मको विषयकी आसक्तिसे न करै इस बातको यह मूर्ख नहीं जानते ॥ १३ ॥ जो इस धर्मको नहीं जानते सो आसाधु हैं, अनम्र हैं वैसेही अपनेको साधुकरके मानलेते हैं, विश्वाससे पशुओंका वध करते हैं और कहतेहैं कि, इसके करनेसे मनोरथ सिद्ध होगा

यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ॥ एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥१३॥ ये त्वनेवंविदोऽसंतः स्तब्धाः सदभिमानिनः ॥ पशून्द्रुह्यंति विस्रब्धाः प्रेत्य खादंति ते च तान्॥१४॥द्विषंतः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ॥ मृतके सानुबंधेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतंत्यधः ॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ॥ त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयंति ते ॥ १६ ॥ एत आत्महनोऽशांता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ सीदंत्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥

परन्तु ऐसा कहा गया है कि, इस जन्ममें उसका माँस यह खातेहैं, अगले जन्ममें वह इनका माँस भक्षण करैगा इसलिये इसका नाम माँस है ॥१४॥ मृतक समान अपने और पुत्रादिकोंमें स्नेहसे बद्ध हो पराये भी देहोंमें विद्यमान अपने आत्मा ईश्वर हरिसे जो पुरुष द्वेष करते हैं, वह मरनेके पीछे नरकमें पड़तेहैं ॥१५ ॥ जो अज्ञ हैं वह ज्ञानीपुरुषोंकी कृपासे संसारसागरको तरजाते हैं और जो मध्यवर्तीहैं, सो नरकमें गिरते हैं, अधिक क्या कहैं, जो जो तत्त्वज्ञानको प्राप्त नहीं हुए, मूढ़ताहीको प्राप्त हुए और अपने स्वार्थकेही लिये धर्म, अर्थ, कामादिक करै वह, पुरुष वारम्वार जन्म मरणको प्राप्त होतेहैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष आत्मघाती व अशांत हैं, अज्ञानहीको ज्ञान मानते हैं और जो कृतकृत्य नहीं हुए, सो कलासे

१ अत्र मनु —मासभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।

नष्ट मनोरथ हो दुःखही पातेहैं ॥ १७ ॥ और जो पुरुष भगवान् वासुदेवसे विमुख हैं, वह अतिश्रमसे गृह, पुत्र, मित्र, धन संपूर्णवस्तुको प्राप्त होकर इच्छा न रहनेपरभी नीच योनि अंधतममें पड़ते हैं * ॥ १८ ॥ राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन्! आपने जो सब त्यागकर केवल भगवान्

हित्वाऽऽत्मायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो विशंत्यनिच्छंतो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ॥ नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥

नारायणकी भक्ति करनेको कहा सो यह भगवान् किस समयमें? कैसे वर्णके? कैसी आकृतिके? कौनसे नामसे? और किस विधिसे लोकोंमें पूजे जातेहैं सो मुझे भली भाँति समझाकर आप कहिये ॥ १९ ॥ तब करभाजन ऋषीश्वर नौवें प्रश्नका उत्तर देते हैं कि, हे राजन्! सतयुग, त्रेता, द्वापर,

* शंका–राजा जनकने मुनियोंसे भगवान्का भजन और सेवन आदि सब कर्म युग युगके अलग अलग बूझे कि, सतयुगमें किस प्रकारका भजन सेवन होताहै और त्रेतामें और द्वापरमें और कलियुगमें किस किस प्रकारका भजन और सेवन होना चाहिये और मुनि भी चारों युगोंमें भिन्न भिन्न पूजन भजन आदि करतेहैं, यह बडा अनुचित कर्म है, किसलिये कि शास्त्रोंमें भगवान् सर्वव्यापी निरजन लिखा है भिन्न भिन्न कर्म तो जीवोंके लिये होताहै, ईश्वरके नहीं होता यह बडी शका है ॥

उत्तर–भगवान् तो भक्तवत्सल और दीनदयालु हैं, और त्रिलोकीमें जो चराचर प्राणी हैं, उन सब प्राणियोंमें भगवान् किसीयुगमें भी भिन्नभाव नहीं रखते, सबको एक समान मानते हैं, ऐसे कृपासिंधु हैं, परन्तु मनुष्योंमें अनेक प्रकारके जीव हैं, जितने मनुष्यके देह हैं, उतनेही जीव हैं, इसलिये सब जीवोंमें भगवान्की भक्ति अलग अलग होतीहै, सब युगोंमें कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है, कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है और भगवान्के नाम और चरित्रोंका भी अन्त नहीं, जिस नामपर जिसप्राणीको भक्ति हुई उसी नामको जपने लगा, युगयुगमें भगवान् उस अपने नाम जपनेवाले प्राणीकी रक्षा कैसे करतेहैं? जैसे गाय अपने वत्सकी रक्षा करती है और राजा जनकभी भगवान्के भक्तकी लीला करके उन्मत्त होरहेथे, भगवान्की भक्तिकी वृद्धि होनेके लिये युग युगमें भिन्न भिन्न भगवान्के नाम और सेवन बूझने लगे, कुछ भिन्न भाव मानकर नहीं बूझा।

और कलियुग इन चार युगोंमें नाना वर्ण, नाम, आकारयुक्त भगवान् केशव अनेक विधिसे पूजेजाते हैं ॥ २० ॥ सत्ययुगमें शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, जटा धारण करे, वल्कल वस्त्र पहरे, काले मृगका चर्म यज्ञोपवीत रुद्राक्ष दण्ड कमण्डलु धरे, ब्रह्मचारीके रूपसे दर्शन देतेहैं ॥ २१ ॥ उस युगमें मनुष्य सब शांत, निर्वैर, सुहृदय, समदृष्टि, शम, दम और ध्यानसे देवताको पूजते हैं ॥ २२ ॥ उस कालमें इन नामोंसे भगवान् हरि गाये जाते हैं, हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा ॥ २३ ॥ त्रेतामें आरक्त, चार भुजा, तीन मेखला धारण करे, सुवर्णके समान केशवाले, वेदत्रयीमय मूर्त्ति और स्रुक स्रुवा आदि चिह्नोंको धारण करते हैं ॥ २४ ॥ जो अति धर्मात्मा

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलांबरः ॥ कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दंडकमंडलू ॥ २१ ॥ मनुष्यास्तु तदा शांता निर्वैराः सुहृदः समाः ॥ यजंति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥ हंसः सुपर्णो वैकुंठो धर्मो योगेश्वरो मनुः ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् ॥ यजंति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ ॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृषाकपिर्जयंतश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ॥ श्रीवत्सादिभिरंकैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥ तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ॥ यजंति वेदतंत्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥ २८ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥

वेदके ज्ञाता मनुष्य हैं, व सर्ववेदरूप भगवान् वासुदेवका, तीनों वेदोंके कर्मसे, त्रेतामें पूजन करते हैं ॥ २५ ॥ और विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत, उरुगाय, यह नाम गाये जाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापरमें भगवान् वासुदेव श्याम मूर्त्ति, पीताम्बर धरे, श्रीवत्सादि चिह्न और कौस्तुभादिक लक्षण धारण करतेहैं ॥ २७ ॥ हे राजन्! जो मनुष्य ईश्वरके जाननेकी इच्छा रखतेहैं, वह मनुष्य उससमय महाराजोंके लक्षण संयुक्त उन महापुरुषकी वेदमंत्र और आगमके मंत्रोंसे पूजा करतेहैं ॥ २८ ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप भगवान् तुमको

नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ नारायण ऋषि, पुरुष, महात्मा, विश्वेश्वर, विश्वरूप, सर्वभूतोंके आत्माको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इसप्रकार द्वापरमें भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते हैं, अब नाना आगम मार्गोंसे कलियुगमें भी जैसे पूजे जाते हैं, सो सुनो ॥ ३१ ॥ कलि युगमें कृष्णवर्ण है, कांतिसे अति निर्मल है और जैसे नीलमणि होती है, इसी प्रकार अंग हृदयादि उपांग कौस्तुभ तथा सुदर्शनादिक अस्त्र पार्षद सुनदनादिकनामका कथन और स्तुति आदिक प्रधान पूजासे अतिबुद्धिमान् मनुष्य भगवान् हरिकी पूजा करते हैं ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त स्तुति करते हैं कि, हे प्राणियोंके रक्षक ! हे महापुरुष ! तुम्हारे चरणारविन्दको नमस्कार है, जो चरणारविन्द सदा ध्यान करनेके

नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवंति जगदीश्वरम् ॥ नानातंत्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥ कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम् ॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजंति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिंचिनुतं शरण्यम् ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥ मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ॥ मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥

योग्य है, इन्द्रिय कुटुम्बके संगसे अनिष्टको दूर करते हैं, मनके अभिलाष पूर्ण करते हैं, गंगादिक तीर्थके स्नानभूत हैं, शिव ब्रह्मादिकसे स्तुति किये हुए हैं, और जो दीन होकर शरण जाता है, उसके रक्षक हैं सेवककी पीडाको दूर करतेहैं, और संसार सागरसे तरनेको नौकारूप हैं ॥ ३३ ॥ हे धर्मात्मन् ! हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप जो देवताओंसे भी न त्यागी जाय, देवता जिसकी अभिलाषामेंही रहते हैं, ऐसी राज्यलक्ष्मी पिताकी आज्ञासे छोडकर धर्मकी रक्षा करनेके लिये वनको चलेगये, और प्रिय सीताके प्रेम तथा वचनसे मायामृगके पीछे दौडे उन भक्तप्रिय आपके चरणारविन्दोंको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजा जनक ! इसप्रकार चारोंही युगमें नाम रूप भेदसे उस उस युगके

मनुष्योंसे कल्याणके देनेवाले हरि भगवान् पूजे जातेहैं ॥ ३५ ॥ अब चारों युगोंमें कलियुग श्रेष्ठ है, क्योंकि जो श्रेष्ठ हैं गुणज्ञ सारग्राही हैं, वह कलियुगकी स्तुति करते हैं, और युगोंमें ध्यान, यज्ञ, पूजा आदिसे जो फल होता है, सो सब स्वार्थ कलियुगमें भगवान्के भजन कीर्तनमात्रसेही प्राप्त होजातेहैं ॥३६॥ यह प्राणी और देहके अभिमानसे संसारमें भ्रमण करते हैं,उनको इससे परम और लाभ नहीं ॥३७॥ हे राजन् ! सतयुगादि की प्रजा कलियुगमें जन्म पावैं, ऐसी इच्छा करती हैं, इसकारण निश्चय ज्ञात होता है कि, कलियुगमें सब जीव नारायणपरायण होंगे ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! कहीं कहीं महाराष्ट्रदेशमें भी भक्त होंगे और द्रविडदेशमें भी बहुत होंगे, जहाँ ताम्रपर्णी नदी, कृतमाला और पयस्विनी है ॥३९॥ कावेरी,

कलिं सभाजयंत्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो विंदेत परमां शांतिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥ कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छंति संभवम् ॥ कलौ खलु भविष्यंति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबंति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भविष्यन्ति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥४०॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितणां न किंकरो नायमृणी च राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरण शरण्यं गतो मुकुंदं परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ॥ विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

प्रतीची आदि परमपवित्र नदियें हैं, इनका जल जो पान करतेहैं, हे मनुजेश्वर ! वह मनुष्य निर्मलचित्त होकर श्रीभगवान् वासुदेवमें बहुधा भक्त हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य सर्वथा भेद छोड़कर केवल शरणदाता मुकुन्द भगवान्के शरण जाते हैं, उनपर देवता, ऋषि, भूत, कुटुम्बी मनुष्य और पितरोंका ऋण नहीं रहता,हे राजन् ! इनके लिये पंच यज्ञादिकोंके करनेकी भी प्रबलविधि नहीं, जो सर्वत्र एक हरिकोही देखते हैं ॥ ४१ ॥ यहां यह सन्देह राजा जनकने किया कि, हे महाराज ! जो कि सब कर्म छोड़कर केवल भजन करै तो कर्म छोड़नेका पाप लगैगा ? इसका समाधान यह है कि, जो सब देवादिकोंको छोड़कर एक हरिकेही चरणारविंदोंका भजन करते हैं,उनको विकर्म सर्वथा नहीं होते, जो कदाचित् प्रमादसे हों

तो उसके हृदयमें भगवान् हरि बैठ जाते हैं, यह यमादिकोंके भी नियंता हैं और उसके सब कर्म नाश करते हैं, इससे भगवान्‌को भक्तही प्यारे हैं ॥ ४२ ॥ इन नौ योगीश्वरोंका संवाद कहकर श्रीनारदजी बोले कि, हे वसुदेव ! इसप्रकार भगवद्धर्म सुन संतुष्ट होकर राजा जनकने अपने गुरुओं सहित जयंतीपुत्र योगीश्वरोंकी पूजा की ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त वह योगीश्वर संपूर्ण मुनि सिद्ध लोगोंके देखते देखते अंतर्धान होगये और राजा जनकभी उन्हीं धर्मोंके करनेसे परमगतिको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि, हे महाभाग वसुदेव ! तुमभी यह वैष्णवधर्म करो, इन धर्मोंमें श्रद्धा करनेसे निःसंग परममंगलको प्राप्त होगे ॥ ४५ ॥ यह तो मैंने शास्त्रादिकोंकी रीतिसे सब तुमसे कहा है, परन्तु हे वसुदेवजी !

नारद उवाच ॥ धर्मान्भागवतान्नित्यं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः ॥ जायंतेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत ॥ ४३ ॥ ततोंतर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥ ४४॥ त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवताच्छ्रुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसंगो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥ युवयोः खलु दंपत्योर्यशसा पूरितं जगत् ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥४६॥ दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः॥४७॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौंड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ॥ ध्यायंत आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

तुम तो विनाही शास्त्रके क्रम कृतार्थ हो तुम दोनों स्त्री पुरुष परम भागवत हो, तुम्हारे यशसे सब जगत् पूर्ण होरहा है क्योंकि तुम्हारे यहाँ स्वयं भगवान् ईश्वरने आनकर अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ तुमको और लोगोंके समान भ्रान्ति, सर्व कर्म समर्पण आदि वैष्णवधर्मोंसे चित्त शुद्ध करना नहीं पड़ेगा, क्योंकि दर्शन, आलिंगन, आलाप, शयन, आसन, भोजनसे श्रीकृष्णमें पुत्रस्नेह करनेसे तुम्हारा भगवान् ईश्वर, आत्मा पवित्र गहोगया है ॥ ४७ ॥ शिशुपाल पौण्ड्रक तथा शाल्व आदि राजा शय्या आसन आदिमें जिसका वैरसे भी ध्यानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति चिन्तवन आदिसे तदाकार हुई बुद्धिसे सारूप्य मुक्तिको प्राप्त होगये तो जो पुरुष स्नेहसे इनमें चित्त रखते हैं, वह सारूप्य गतिको प्राप्त हों तो इसमें आश्चर्यही क्या है ॥ ४८ ॥

अहो जो पुत्रस्नेह मुक्तिका कारण है, तो सबही मुक्त होने चाहिये ? तो कहते हैं कि, हे वसुदेवजी ! तुम इनपर पुत्रबुद्धि मत रक्खो यह तो सर्वात्मा ईश्वर हैं, मायासे मनुष्याकार दिखाई देते हैं अलौकिक ऐश्वर्य इनका गुप्त है यह श्रीकृष्णचन्द्र अविनाशी परमपुरुष हैं ॥४९॥ यह पृथ्वीका भाररूप राजाओंके मारनेको और साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेको तथा मोक्ष देनेको अवतार लेकर लोकोंमें यश विस्तार करते हैं ॥५०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित् ! यह सुन महाभाग वसुदेव देवकीने अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्तहो अपने आपका मोह स्नेह छोड़दिया ॥५१॥ यह इतिहास अतिपुण्यजनक है, जो पुरुष नेमसे इसे मनमें धरते हैं, सो इसी देहमें मोह दूरकर ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा॰ महा॰ एका॰

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्यपरेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहंतवे गुप्तये सताम् ॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्त्यै यशो लोके वितन्यते ॥५०॥ श्रीशुक उवाच॥एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ॥ देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥ स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा॰ म॰ ए॰ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ६॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इंद्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ॥ ऋभवोंगिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥ गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां निमिजायंतेयसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–छठवेंमें ब्रह्मादिकन, विनयकरी करजोरि ॥ मोहिं संग लीजे प्रभू, उद्धव कही निहोरि ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार वसुदेवजीसे नारदजी कहकर चलेगये, इसके उपरान्त द्वारकामें ब्रह्मा, सनकादिक और संपूर्ण देवता मिलकर आये, सृष्टि भूतोंके ईश्वर महादेव भूतगणोंसे मिलकर आये ॥१॥ देवताओंसे मिलकर देवराज इन्द्र आये, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अंगिरा, एकादश रुद्र, विश्वदेव, साध्य ॥२॥ गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर, किन्नर यह सब श्रीकृष्णचन्द्रका

दर्शन करनेको द्वारकामें आये ॥३॥ जिस देहसे भगवान्‌ने मनुष्यलोकमें परमसुन्दर मूर्त्तिसे सब लोगोंका पाप दूर करनेवाले यज्ञका विस्तार किया उसी मूर्त्तिके देखनेको आये ॥ ४ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान धनी पुरुषोंसे अति समृद्ध द्वारकामें आय अतृप्तरूप देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त नंदनवनके फूलोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा और विचित्र पद तथा अर्थयुक्त वाणियोंसे जगदीश्वरकी स्तुति करनेलगे ॥ ६॥ देवता बोले कि, हे नाथ ! जो जीव कर्मरूप बड़े पाशसे छूटनेको बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय, मन, वचनसे भावयुक्त हो जिनका हृदयमें सदा चितवन करते हैं, परन्तु तो भी दर्शन नहीं पाते और हम तुम्हारा प्रगट दर्शन कर रहे हैं, हमारा अहोभाग्य है, इसलिये हम तुम्हारे

द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयंतो यदूत्तमम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नताः स्म ते नाथ पदारविंदं बुद्धींद्रियप्राणमनोवचोभिः ॥ यच्चिंत्यतेंतर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुंपसि तद्गुणस्थः ॥ नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥ शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ॥ सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

चरणारविन्दको वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ तहाँ हरि यह एक तर्क करते हैं कि, मोक्षके लिये मेरे चरणारविन्दका चिंतवन क्यों करते हो ? क्योंकि मैं तो अनेक दुष्ट कर्म करताहूं, मेरा तो कर्म छूटताही नहीं तो तुम्हारे कर्म क्या छुड़ाऊंगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, हे अजित ! तुम ऐसी बात मत कहो, क्योंकि जो औरोंपर मनसे भी न जाने जायँ ऐसे महत्वादि प्रपंचको त्रिगुण अपनी मायासे आपहीमें उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहार करते हो, परन्तु तो भी इन कर्मोंमें लिप्त नहीं होते, तुम मायाके गुणोंमें नियंतास्वरूपसे स्थित हो रागादि रहित हो और नित्य अपने आनंदस्वरूपविषे मग्न रहते हो ॥ ८ ॥ तो मुझको कर्म करनेका क्या प्रयोजन है, मैं तो आत्म .

योग्य ! हे परम श्रेष्ठ देव ! विषयी पुरुषोंके चित्त विद्या, श्रवण, अध्ययन, दान, तप और कर्म करनेसे वैसे शुद्ध नहीं होते जैसे साधु पुरुषोंके चित्त तुम्हारे यश श्रवण करनेसे शुद्ध होजाते हैं ॥ ९ ॥ अब प्रार्थना करते हैं कि, तुम्हारे चरणकमल हमारी अशुभ वासना जलानेके लिये अग्निरूप हैं, जिन चरणोंका संपूर्ण मुनि अत्यन्त प्रेमपूर्वक कोमल हृदय हो, मोक्षके कारण ध्यान करते हैं और भक्तजन सारूप्य मुक्तिकी इच्छासे वासुदेव, संकर्षण व प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूहसे तीन कालमें पूजा करते हैं और उनके बीचमें भी जो ज्ञानी है, वे इन्हींसे स्वर्गको उल्लंघन करके वैकुण्ठ जानेके लिये पूजते हैं ॥ १० ॥ हे ईश ! सदा तुमको यज्ञ करनेवाले कर्ममार्गमें हाथ जोड़ यज्ञकी अग्निमें तीनों वेदकी विधिसे हविको लेकर चिंतवन करते हैं और योगिराज अध्यात्मयोगसे तुम्हारी माया अणिमादिक ऐश्वर्य जाननेका चिंत्तवन करते हैं और परम

स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदो ह्यमानः ॥ यः सात्त्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेशहविर्गृहीत्वा ॥ अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ॥ यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥

भक्त सर्वत्र पूजते हैं ॥ ११ ॥ हे विभो ! तुम्हारे सब अंगोंमें व्याप्त जो वनमाला सो उससे भगवती लक्ष्मीजी सौतकी समान ईर्षा रखती हैं और यह वनमाला भक्तोंने अर्पण करी है, इसी कारणसे तुम इसको धारण करते हो, उसी मालासे पूजाको ग्रहण करते हो, तुम्हारे चरण हमारी विषयवासनाके जलानेको अग्नि हैं ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! जब तुम त्रिविक्रमरूप हुए, तब आपने बलिराजाको बाँधा, तब तुम्हारा एक चरण सत्यलोकमें रहा सो वह चरण जैसे विजयपताका हो इसी प्रकार दिखाई देताथा और उसी चरणसे गंगाजीके तीन प्रवाह छूटे, सो पताका हुई चरण ध्वजदण्ड हुवा सो सुर, असुर सबकी सेनाको भय अभयका देनेवाला हुआ देवता और साधुओंको अभयका दाता स्वर्ग दिया असुर दुष्टोंको

भयदायक अधोगति दी वह आपका चरण हम कि, जो भजन कर रहे हैं, उनके पापको दूर करो और हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ यदि कहो कि, युद्धमें देवता, दैत्य परस्पर जीतते हैं, हारते हैं मेरा वहां क्या निमित्त है ? तो कहते हैं कि ब्रह्मासे आदि लेकर देहधारी सब जगत् परस्पर युद्धसे जब पीड़ित होते हैं, तब तुम्हारे वशमें आते हैं इसीलिये कालरूप तुम हो और कालके, अधीन सब हैं, इससे जय पराजय सब आपहीके अधीन है, जैसे नाथके अधीन बैल है, इसीप्रकार सब तुम्हारे अधीन हैं तुम प्रकृति पुरुषसे भी परे हो पुरुषोत्तम हो तुम्हारे चरण हमको सुखकारी हों ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! तुम इस जगत्के उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हो और प्रकृति पुरुष महत्तत्त्वके भी नियंता हो, यह काल संवत्सर है सो चक्ररूप है, इसके ग्रीष्म, वर्षा, शरद् तीन नाम हैं, सबका नाश करनेको प्रवृत्त है, इसका वेग अत्यन्त गंभीर है, सो काल तुम्हाराही रूप है इसलिये

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवंति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ॥ कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥ अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥ त्वत्तः पुमान्समधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्ते महांतमिव गर्भममोघवीर्यः ॥ सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आंडकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥ तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ॥ अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

तुम उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥ अब सृष्टिका प्रकार कहते हैं, प्रथम तुमसे सफल वीर्य एक पुरुष उत्पन्न होता है, सो पुरुष तुमसे शक्तिको प्राप्त हो मायासे मिलकर विश्वका गर्भरूप महत्तत्त्व उपन्न करता है और वही महत्तत्त्व मायासे मिल आत्मासे यह स्वर्णमय अण्डकोश बाहरके सात आवरण संयुक्त सृजता है ॥ १६ ॥ इसलिये सब तुमसेही प्रगट हुआ है और इसीकारण इस स्थावर, जंगम, विश्वाधीश तुम हो, हे संपूर्ण इन्द्रियोंके पति ! मायासे उत्पन्न हुई इन्द्रियें वृत्ति करके विषय भोग करते भी तुम निर्लेप रहते हो, यद्यपि योगीश्वर योगसे विषयको छोड़ देते हैं, परन्तु तो भी डरते हैं कि, कदाचित् हमको विषयवासना उत्पन्न न हो; क्योंकि तुम प्रपंचसे मिलरहेहो और विषय सम्बन्ध नहीं, यह

विशेष धर्म है ॥ १७ ॥ क्योंकि जो सोलह हजार (१६०००) स्त्रियें अपने मंदहास्य सहित चितवनके कटाक्षसे दिखाये अभिप्रायसे मनको हरनेवाली भ्रूमण्डलसे प्रेरे संभोग मंत्रोंके विषे निपुण, कामके बाण और कामकी कलासे भी वशमें न करसकीं तो तुम विषयोंसे निर्लिप्तही हो ॥ १८ ॥ इस लिये तुम्हारी अमृतरूपी कथा, जलभरी कीर्तिरूपी नदी और तुम्हारे चरणोदकरूपी गंगा, यह दोनों त्रिलोकीका पाप दूर करनेको समर्थ हैं, श्रवणेन्द्रियसे वेदमें गाये तुम्हारे यशके सुननेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं, गंगामें स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं, इसप्रकार जो पुरुष धर्म जानते हैं, सो इन दोनों तीर्थोंका सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि इसप्रकार ब्रह्मा, महादेव सहित देवताओंसे मिल, स्तुति और नमस्कार

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमंत्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येंद्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हंतुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमंगसंगैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशंति ॥ १९ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविंदं प्रणम्यांबरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥ धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसंधेषु वै त्वया ॥ कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ॥ शृण्वंतः कीर्तयंतश्च तरिष्यंत्यंजसा तमः ॥ २४ ॥

कर, आकाशहीमें खड़े भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे बोले ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा कि, हे प्रभो ! हे सर्वान्तर्यामी ! हमने भूमिका भार उतारनेके लिये प्रथम आपसे विनती की थी सो भार तुमने उसी प्रकार दूर किया ॥ २१ ॥ संतोंमें धर्म स्थापन किया, साधुओंमें सत्य रक्खा और सबोंका पाप दूरकर दशोंदिशाओंमें कीर्त्तिका विस्तार किया ॥ २२ ॥ यदुवंशमें अवतार ले उत्तमरूप धर जगत्का हित करनेके लिये अति उदार चरित्र और कर्म किये ॥ २३ ॥ हे ईश ! जिन कर्मोंको कलियुगमें साधुजन श्रवण कीर्त्तन करके सुखपूर्वक संसार सागरसे तरेंगे ॥ २४ ॥

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीयाय पंचविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥ नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुंठ किंकरान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ॥ कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोवतारितः ॥ २८ ॥ यदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ॥ लोकं जिघृक्षद्रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥

हे विभो ! हे पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें अवतार लिये तुमको एकसौ पचीस (१२५) वर्ष बीत गये ॥ २५ ॥ हे सर्वाश्रय ! अब तुमको कोई देव कार्य भी करना शेष नहीं है और यह तुम्हारा कुल भी ब्रह्मशापसे नष्ट होरहा है ॥ २६ ॥ इसलिये यदि अब आपकी इच्छा हो तो अपने वैकुण्ठ धामको चलो. हे वैकुण्ठनाथ ! हम तुम्हारे किंकर हैं, लोक सहित लोकपालोंकी रक्षा करो ❀ ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे देवताओंके ईश्वर ! तुमने जो कहा सो मैंने मनमें धारण किया, तुम्हारा सब काम पूर्ण करदिया और भूमिका भार उतारा ॥ २८ ॥ परन्तु अभी यह यादवकुल बल, शूरता और श्रीसे अतिउद्धत है, लोकको ग्रसा चाहता है, उसे भी महासमुद्रको जैसे वेला (तट) रोक रक्खे, उसीप्रकार

शंका—भगवान्ने अनेक अवतार धारण करके पृथ्वीपर अनेक प्रकारके चरित्र किये, परन्तु पृथ्वीसे भगवान्को वैकुण्ठधामके जानेके लिये किसी अवतारमें ब्रह्माने प्रार्थना नहीं की कि, महाराज ! आप अब परमधामको चलो ! और इन्द्रको तथा ब्राह्मणोंको ब्रह्माने अपने संग लेकर वैकुण्ठको संग चलनेके लिये श्रीकृष्णकी याचना क्यों किया कि, अब आप वैकुण्ठको चलो ॥

उत्तर—संसारको सुख देनेके लिये भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये, ऐसेही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीकृष्णरूप धरकर मर्त्यलोकमें आये. जब श्रीकृष्ण मर्त्यलोकमें आये तब तारकनाम राक्षस वैकुण्ठपुरीको भगवान्से हीन देखकर भगवान्की पुरीको दु:ख देनेका विचार करनेलगा, आज दु:खदें कल दु:खदें, ऐसा विचार करते करते एकसौ चौवीस १२४ वर्ष, दश १० महीने बीत गये, परन्तु जिस दिन निश्चय करके दुःख देनेको चला, तब कुछ थोडा थोडा उत्पात वैकुण्ठमें हुवा, तब सुदर्शनचक्र तारकके मारनेके लिये उसके पीछे दौडा उस समय सुदर्शनके डरके मारे तारक भाग निकला, तो उसी दिन ब्रह्माने विचार किया कि, आज दुष्ट राक्षसने वैकुण्ठमें उपद्रव कियाहै, न जानिये क्या हो ? ऐसा विचारकर ब्रह्माने श्रीकृष्णसे वैकुण्ठजानेके लिये प्रार्थना की।

मैंने रोक रक्खा है ॥ २९ ॥ जो मैं ऐसे गर्वसे उद्धत यादवोंके विशाल कुलका संहार किये विना अपने लोकको चला जाऊंगा तो यह लोक मर्यादा रहित या यदुकुलसे नष्ट होजायगा ॥ ३० ॥ सो विप्रशापसे इस कुलके नाशका अब आरंभ किया है, हे ब्रह्मा ! इनको संहार करके मैं वैकुण्ठ जाऊंगा, हे निष्पाप ! तुम्हारे घर आऊंगा ॥ ३१ ॥ लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इस प्रकार वाणी सुनकर स्वयंभू देव ब्रह्मा श्रीकृष्णको नमस्कार कर देवताओंसे मिल अपने धामको चलेगये ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त द्वारकापुरीमें बड़े बड़े उत्पात होनेलगे उन्हें देखकर बडे वृद्ध

यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ॥ गंतास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनंक्ष्यति ॥ ३० ॥ इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापजः ॥ यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदंते तवानघ ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् ॥ सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥३२॥ अथ तस्यां महोत्पातान्द्वारवत्या समुत्थितान् ॥ विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता ह्युत्तिष्ठंतीह सर्वतः ॥ शापश्च नः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ॥ प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद् गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥ विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥ वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ॥ भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवतान्धसा ॥ ३७ ॥

यादव इकट्ठे हुए, उन यादवोंको एकत्र देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ३३ ॥ कि, सब ओरसे यहाँ बडे बडे उत्पात उठते हैं और अपने कुलको ब्राह्मणोंका शाप भी हुआ है ॥३४॥ इसलिये हे यादवो ! जो जीनेकी इच्छा है तो हमको यहाँ रहना नहीं चाहिये, अतिपुण्य प्रभासतीर्थको आजही चलो, विलम्ब मत करो ॥ ३५ ॥ जिस तीर्थमें स्नान करके दक्षके शापसे क्षयरोगसे ग्रसा चन्द्रमा पापसे छूटा और तत्काल फिर कलाओंकी वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ हम भी वहाँ स्नान और पितरोंका तर्पण कर अनेक गुणसंयुक्त अन्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करवाय ॥ ३७॥

श्रद्धासहित महान् सत्पात्रों विषे बीज बोय उन दानोंसे पापोंको तरेंगे, जैसे नावमें बैठकर समुद्रको तरते हैं ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी तब सब यादव भगवान्‌की आज्ञा मान चलनेका उद्यम करनेलगे, तीर्थ जानेकी इच्छासे रथ जुतवाने लगे ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! उससमय यादवोंके प्रभासतीर्थ जानेका उद्यम देख और श्रीकृष्णके वचन सुन और घोर उत्पातोंको देख नित्य श्रीकृष्णके निकट रहनेवाले उद्धवजी ॥ ४० ॥ एकांतमें निकट जाय जगत्‌के ईश्वरोंके ईश्वरको माथेसे नमस्कारकर हाथ जोड कहनेलगे ॥ ॥ ४१ ॥ कि, हे देवदेवेश ! योगेश ! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन ! तुम्हारी ऐसी इच्छा जानी जाती है, कि इस कुलका संहारकर निश्चयसे भूलोकको

तेषु दानातिपात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महांति वै ॥ वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनंदन ॥ गंतुं कृतधियस्तीर्थे स्यंदनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥ तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्श्रुत्वा भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्त उपसंगम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ प्रांजलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥ उद्धव उवाच ॥ देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥

छोडना चाहतेहो यद्यपि तुम ईश्वर संपूर्ण कार्य करनेको समर्थ हो, परन्तु तोभी विप्रशापको निवारण नहीं किया ॥ ४२ ॥ हे केशव ! हे नाथ ! मैं तुम्हारे चरणकमल छोड़नेको असमर्थ हूं अर्थात् आधे क्षणकोभी नहीं छोड सक्ता, इसलिये मुझे भी अपने धामको ले चलो ॥ ४३ ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी लीला मनुष्योंको परममंगलदायक है, श्रवणेन्द्रियको अमृतरूप है उसका आस्वाद ले मनुष्य औरकी इच्छाको छोडते हैं, हम तुम्हारे दिन रात्रिके सेवक हैं ॥ ४४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्नान, क्रीडा, भोजन आदि और भी क्रियाओंमें सदा संग रहेहैं, सो हम भक्तप्रिय आत्मारूप

तुमको कैसे छोड़ सक्ते हैं ? ॥ ४५ ॥ तुम्हारे समीप तुम्हारे प्रसादकी माला सुगंध चंदन और प्रसाद वस्त्रसे चर्चित होकर बाह्य शुद्ध होते हैं, पीछे तुम्हारे उच्छिष्ट महाप्रसाद भोजनसे अंतर शुद्ध करके तुम्हारी मायाको जीतते हैं ॥ ४६ ॥ हे महायोगिन् ! जो केवल वायु भक्षण करके रहते, वह दिगंबर हैं, शमयुक्त हैं, जितेन्द्रिय हैं, संन्यासी हैं, निर्मल चित्त हैं, आत्मविद्यामें जिसने श्रम किया है, वह ऋपि अनेक क्लेशसे तुम्हारे वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं ॥४७॥ हे महायोगीश्वर ! हम तो तुम्हारे भक्तोंके संग तुम्हारी वार्ता करते सकल कर्मोंमें भ्रमते भी तुम्हारी दुस्तर मायाको तरेंगे ॥ ४८ ॥ मनुष्यलोकको आश्चर्यदायक तुम्हारे कर्म वचन गति हास्य चितवन हास्यकी वार्त्ता और जो कुछ मनुष्यलोकमें लीला करी है, उसका स्मरण

त्वयोपभुक्तस्रग्गंधवासोलंकारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥ वाताशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्द्धमंथिनः ॥ ब्रह्माख्यं धाम ते यांति शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७॥ वयं त्विह महायोगिन्भ्रमंतः कर्मवर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरंतः कीर्तयंतस्ते कृतानि गदितानि च ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलीर्यन्न्र लोके विडंबनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन्भगवान्देवकीसुतः ॥ एकांतिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० स्कं० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकांक्षिणः ॥ १ ॥

कीर्तन, करेंगे इससेही तरजायँगे, मैं यह आपके भयसे प्रार्थना नहीं करताहूं, परन्तु आपका संग नहीं छोडा जाता ॥ ४९ ॥ इतनी कथा कह शुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार उद्धवजीकी विनती सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा निकटवर्त्ति परमप्रिय भक्त उद्धवजीसे बोले ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां ब्रह्मादिस्तुतिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–हरि विवेककी सिद्धिको, वरणो जस इतिहास । सो सप्तम अध्यायमें, वर्णत सहित हुलास ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले कि, हे महाभाग उद्धव ! तुमने जो मुझसे कहा सो सब मुझे करना है, क्योंकि ब्रह्मा, महादेव और लोकपाल यह सब स्वर्ग जानेके लिये मेरी प्रार्थना करगये हैं । १ ॥

मैंने यहाँ वह सब देवकार्य सिद्ध किया, जिसके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे बलदेव सहित मैंने अवतार लियाथा ॥ २ ॥ हमारा कुल शेष रहा है, सो भी विप्रशापसे जल रहा है, इससे निश्चयही परस्परकी लड़ाइयोंसे नष्ट होजायगा और आजसे सातवें दिन इस द्वारकापुरीको समुद्र डुबा वेगा ॥ ३ ॥ जिस दिन मैं इस लोकको छोडूंगा उसदिन यह मंगल नष्ट होजायगा. हे उद्धव ! इसके उपरान्त फिर कलियुग भी प्रवृत्त होकर सब धर्मको दूर करेगा और थोड़ेही कालमें इसलोकका निरादर करेगा ॥ ४ ॥ मेरे त्याग किये महीतल विषे तुम मत वास करना, क्योंकि हे

मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ॥ यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥ कुलं वै शापनिर्दग्ध नंक्ष्यत्यन्यो न्यविग्रहात ॥ समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ तर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः ॥ भवि ष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः॥ ४ ॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भवि ष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबंधुषु ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक्समदृग्विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ॥ नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥ पुंसो युक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

उद्धव ! कलियुगमें मनुष्योंकी प्रीति अधर्ममें होगी * ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! तुम तो स्वजन, बन्धु और कुटुम्बका स्नेह छोड़ मेरे स्वरूपमें चित्त रख समदृष्टि होकर पृथ्वीमें विचरण करो ॥ ६ ॥ इस संसारमें दृष्टि मत रखना, क्योंकि वचन, नेत्र, श्रवणादिक करके जो ग्रहण किया है, सो सब झूठी मायाका रचा यह मन भी मिथ्या है, ऐसा जानो ॥७॥ विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषको वेदार्थ अनेक प्रकारसे दीखते हैं,सो भ्रमते हैं, गुण दोष

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवसे कहा कि, हम पृथ्वीको त्याग कर परमधामको जायँगे, तब पृथ्वी पर वास मत करना, तब श्रीकृष्णके वैकुण्ठ जानेके पीछे बदरिकाश्रममें उद्धवने वास क्यों किया ? उत्तर–वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, नैमिषारण्य, द्वारका, काशी, बदरिकाश्रम इन सब क्षेत्रोंकी सात द्वीपोंकी पृथ्वीपर गिनती नहीं है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है, यह सब मोक्षभूमि हैं, सात द्वीपकी सदृश भूमि नहीं इसलिये बदरिकाश्रममें उद्धवजीने वास किया ।

संयुक्त हो कर्म, अकर्म, विकर्म, भेद गुणदोषबुद्धिवालेको है, समदृष्टि आत्मज्ञानवंतको यह भेद नहीं ॥ ८ ॥ इसलिये इन्द्रियोंके समूहको और चित्तको वश करके इस विशाल जगत्को अपने आपमें देखो, आपको परमेश्वरमें ब्रह्मरूपसे देखो ॥ ९ ॥ यदि कहो कि, विघ्न बहुत हैं, कैसे देखें ? इसका उत्तर यह है कि, वेदके अभिप्रायका निश्चय और उसके अर्थका अनुभव मिलाय आत्माके ज्ञानसेही संतुष्ट और दीनता आदि भी आत्मरूप जानोगे तब कोई विघ्न नहीं करेगा और जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति न हो तबतक वर्णके अनुसार कर्म करे, अनुभव प्राप्त होनेपर विघ्नोंसे कुछ नहीं होता ॥ १० ॥ इससे यह न समझ लेना कि, " ज्ञानी मनुष्य यथेष्ट आचरण करे " क्योंकि जैसे बालक संकल्प विकलपसे

तस्माद्युक्तेंद्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ॥ आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ आत्मानुभवतुष्टात्मा नांतरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥ दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छांतो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ॥ पश्यन्मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥ उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसंभव ॥ निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥

रहित होनेपर भी कोई कर्म करता है, कोई नहीं करता, इसीप्रकार गुणदोषबुद्धिसे रहित हुआ यह पहले कर्मोंके संस्कारसे विवर्त्त होता है, किन्तु न दोषबुद्धिसे बहुधा विहित कर्मका कर्त्ता है, न गुणबुद्धिसे ॥ ११ ॥ सब प्राणियोंका मित्र हो ज्ञान विज्ञानका निश्चयवाला हो, सब विश्वको मेराही रूप समझकर देखे, वह पुरुष फिर कभी इस संसारमें न आवे ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत राजा परीक्षित् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने समझाया, तब परमभागवत उद्धवजी प्रणामकर तत्त्वज्ञानकी इच्छा कियेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगे ॥ १३ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे योगके फलदाता ! हे योगके आधार ! हे योगरूप ! हे योगके कारण ! मेरे मोक्षके अर्थ यह संन्यास रूपका त्याग मुझसे कहा

सो आपने सहज दयासे कहा, क्योंकि मैं तो ऐसा अधिकारी नहीं था ॥ १४ ॥ हे सर्वव्यापक ! हे सर्वात्मा ! मेरी बुद्धि तो ऐसी है कि, जिन पुरुषोंका मन विषयोंमें लगा हुआ है, उनसे ऐसा त्याग बनना अशक्य है और जो उसमें भी तुम्हारे भक्त नहीं उनको तो बहुतही कठिन है ॥ १५ ॥ और जो मुझसे तुम त्याग कहते हो सो महाराज ! मैं अहंता ममतामे मूढ़मति हूँ तुम्हारी मायासे उत्पन्न हुए पुत्र कलत्र देह आदिमें मग्न हूँ इसलिये हे भगवन् ! जैसे यह सब तुम्हारी आज्ञा विना परिश्रम करसकूं, उसी प्रकार तुम मुझे शिक्षा दो ॥ १६ ॥ तुम समानरूप हो, स्वप्रकाश हो, आत्मा हो, इसलिये हे ईश ! मुझे और ऐसा वक्ता देवताओंमें भी कोई नहीं देखपड़ता है, क्योंकि यह ब्रह्मादिक देहधारी तो तुम्हारी मायासे मोहितबुद्धि

त्यागोऽयं दुष्करो भूमन्कामानां विषयात्मभिः ॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥ १५ ॥ सोहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबंधे ॥ तत्त्वंजसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्ननु शाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥ सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहित धियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥ तस्माद्भवंतमनवद्यमनंतपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुंठविकुंठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमुह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरण प्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥ समुद्धरंति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते ॥ २० ॥

हैं और बाहरके विषयोंमें इनकी अर्थबुद्धि है ॥ १७ ॥ कोई एक दुष्टबुद्धि हैं और कोई एक ऐसे हैं जो सेवा करनेपरभी फल देनेके समय नष्ट होजाते हैं, कोई अज्ञानी हैं कोई रक्षाकरनेमें असमर्थ हैं, कोई स्थानभ्रष्ट हैं, इसलिये संसारके दुःखसे अतीत नहीं, मैं अति विरक्तचित्त हूं इसकारण तुम्हारी शरण आया हूं, क्योंकि तुम तो निंदारहित हो, तुम्हारा कालसे अंत और देशसे पार नहीं, सर्वज्ञ हो, ईश्वर हो, तुम्हारा नाशरहित वैकुण्ठ स्थान है, तुम सब जीवोंके आश्रय हो जीवके सखा हो ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जो लोग तत्त्वको अतिश्रेष्ठ जानते हैं, वह मनुष्य बहुधा गुरुविनाही अपने आत्माको संसारसे उद्धार करते हैं, गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥ १९ ॥ अपना गुरु आपही हैं, क्योंकि विशेषकर

पुरुष जो यह प्रत्यक्षसे अथवा अनुमानसे विचारै तो आपहीसे सुख पावै और सहजसेही अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो, पशुओंको अपने हित ज्ञानका कौन गुरु है, आपहीसे अपने हितमें प्रवृत्त होते हैं, इसलिये अपना आपही गुरु, तहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान दिखलाते हैं कि, जब जीव पुरुषजन्म प्राप्त करता है, तब यह ज्ञानमार्गमें निपुण होजाता है ॥ २० ॥ मनुष्यके शरीरमें आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है, यह सांख्य योगमें चतुर बुद्धिवाले धीर पुरुषोंका निश्चय है ॥ २१ ॥ वह शक्तियुक्त मुझे प्रत्यक्ष देखते हैं, मेरे उत्पन्न किये बहुतरूप और बहुत शरीर हैं, कोई एकचरण हैं, कोई अर्द्धचरण हैं, कोई नीचे चरण हैं, कोई चार चरण हैं, कोई बहुत चरण हैं, कोई चरण रहित हैं, परन्तु इन सबोंमें जो पुरुषरूप देह है, सो मुझे अतिप्रिय

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः ॥ आविस्तरां प्रपश्यंति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः ॥ बह्वयः संति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥ अत्र मां मार्गयंत्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ॥ गृह्यमाणैर्गुणैर्लिंगैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥ अवधूतं द्विजं कंचिच्चरंतमकुतोभयम् ॥ कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥ यदुरुवाच ॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥ यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥ प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥ हेतुनैव समीहंते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥

है ॥ २२ ॥ इस पुरुषदेहमें जो सावधान है, सो अहंकारादिकोंसे रहित मुझे प्रगट ढूँढ़लेते हैं, बुद्धि आदि यत्नोंको एक स्वप्रकाश आत्माविना प्रकाश नहीं होसका ऐसा अनुमान करके मुझे ढूंढ़लेतेहैं ॥ २३ ॥ इस विषयमें एक बड़े तेजस्वी राजा यदु और अवधूतका संवाद रूप प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥ २४ ॥ अवधूत वेष किये महापण्डित और सदा तरुण अवस्थावाले गुरु दत्तात्रेयजी कि जो निर्भय रीतिसे संसारमें घूम रहे थे उन्हें देखकर धर्मके ज्ञाता राजा यदुने इस प्रकार पूँछा ॥ २५ ॥ कि, हे ब्रह्मन् ! अकर्त्ता तुमको ऐसी निपुणमति कहाँसे प्राप्त हुई है, जिसको पाकर अवधूत पण्डित तुम बालकके समान इसलोकमें विचरतेहो ॥ २६ ॥ बहुधा मनुष्य धर्म, अर्थ, कामना

विषे और आत्माके विचार विषे आयुर्दाय कीर्ति और श्रीकी कामनासे प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु तुम तो कुछ नहीं चाहते हो न कोई कर्म करतेहो और जड उन्मत्त पिशाचके समान हो और सब कार्य करनेको समर्थ और पूर्ण ज्ञानवान् हो, अतिप्रवीण हो सुन्दर हो आपकी उत्तम मधुर वाणी है ॥ २८ ॥ मनुष्य काम, लोभरूप दावानलसे जलता है, उसमें तुम उस तापसे संतप्त नहीं हो, जैसे अग्निसे छूटकर गंगामें खडा हाथी उस तापसे तप्त नहीं होता है ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम विषयभोग रहित हो, कलत्र आदिसे शून्य हो, आनंदरूप हो इसलिये हम आपसे पूँछते कि, तुम्हारे आनंदका कारण क्या है ? सो हमसे कहो ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इसप्रकार जब अतिब्रह्मण्य सुबुद्धि राजा यदुने

त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गंगांभःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥ त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानंदकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं नृपम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ संति मे गुरवो राजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ताञ्छृणु ॥३२॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चंद्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिंधुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥

विनयपूर्वक पूजाकर पूँछा, तब महाभाग अवधूतजी राजा यदुसे बोले ॥ ३१ ॥ कि हे राजन् ! अपनी बुद्धि करके मेरे बहुत गुरु हैं, जिनसे मैं बुद्धि पाकर मुक्त हुआ हूँ और इसलोकमें फिरताहूं, उनको सुनो ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, सिंधु, पतंग, मधुकृत, गज ॥ ३३ ॥ मधुहा, मृग, मीन, पिंगला, कुररपक्षी, बालक, कुमारी, कडेडी (बाणका बनानेवाला) साँप, मकरी और भृंगी ॥ ३४ ॥ हे राजा यदु ! मैंने यह चौबीस गुरु सेवन किये हैं, इनके आचरणसे मैंने अपनी शिक्षा ग्रहण करली है ॥ ३५ ॥

हे ययातिपुत्र, ! हे पुरुषसिंह ! मैंने जहां जातेहुए जो शिक्षाग्रहण की है, सो उसीप्रकार कहताहूं, तुम श्रवण करो ॥३६॥ प्रथम भूमिसे क्षमा सीखी है सो कहते हैं कि, पृथ्वीको सब प्राणी खूँदतेहैं, परन्तु तो भी वह अपने नियमसे चलायमान नहीं होती इसीप्रकार दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट दे तो भी उनके दैवाधीनपनको जाननेवाले उस पुरुषको अपने नियमसे चलायमान होना उचित नहीं, यह पृथ्वीसे सीखा है ॥ ३७॥ पृथ्वी दोप्रकारकी है, एक तो पर्वतरूप, एक वृक्षरूप, यहाँसे जो सीखा है,सो कहतेहैं कि, पर्वतकी जो वस्तु है, वृक्ष, तृण, झरना, फूल, फल, यह सदा पराये अर्थ है और पर्वतका तो केवल जन्म भी पराये ही अर्थ है, अपना स्वार्थ कुछ नहीं, इसीप्रकार अपनी वस्तु और देह सब परोपकारार्थ लगा दीजिये, यह पर्वतरूप भूमिसे सीखा है और वृक्ष भी पराये अधीन हैं, यदि उनको कोई काटे उखाडे तो वह सहलेते हैं और क्षमाको नहीं तजते, इसीप्रकार साधुपुरुष

यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥ तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकांतसंभवः ॥ साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥ प्राणवृत्त्यैव संस्तुष्येन्मुनिर्नैवेंद्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ॥ ४० ॥ पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥ गुणैर्न युज्यते योगी गंधैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥

भी जो अपने संग भलाई बुराई करै तो उसे सहन करलें (१) ॥ ३८॥ वायु भी दो प्रकारकी है, एक तो प्राणरूप है दूसरी बाहर फिरती है, सो प्राण जसे आहार मात्रसे संतुष्ट रहते हैं और इन्द्रियोंके भोग नहीं चाहते इसीप्रकार मुनीश्वरभी रहैं आहार जो न मिले तो मन वचन विक्षिप्त होकर ज्ञान सिद्धि न हो इसलिये एक आहारमात्रसेही संतोष मानलें, इससे अधिककी चाहना न करै यह विद्या प्राणवायुसे सीखी है ॥ ३९॥ जैसे पवन सब जगह चलताहै, पर कहीं आसक्त नहीं होता, इसीप्रकार योगिराज भी शीत उष्ण आदि नानाधर्मवाले विषयभोग करते भी आसक्त नहीं होते, सबमें गुणदोषरहित मन होय, यह विद्या बाहिरकी वायुसे सीखी है ॥ ४० ॥ और भी एक बात पवनसे सीखी है सो कहते हैं कि,

यद्यपि वायु सुगंधसे मिलीसी चलती है और ऐसाही जाना जाता है, परन्तु तोभी वायु गंधसे मिला नहीं है, गंध कुछ वायुका गुण नहीं है पृथ्वीका गुण है, उसीप्रकार आत्मा पृथ्वीका विकार देहमें प्रविष्ट है देहके धर्मका आश्रय है, पर मिला नहीं है, देहोंसे अलग है, इसप्रकार समझे और स्थानमें आत्माहीको देखै यह विद्या भी पवनसेही सीखी इस लिये वायु गुरु हुआ (२) ॥४१ ॥ अब आकाशसे जो विद्या सीखी है, सो कहते हैं, जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक और बड़ा है परन्तु घटमें छोटा दिखाई देताहै, सो घटसे आकाशका कुछ सम्बन्ध नहीं क्योंकि वह निर्विकार है, तैसेही आत्मा इस देहमें है और यह देहसे मिला है, इसकारण इतनाही है और ठौर नहीं ऐसे न समझे, क्योंकि जो आत्मा देहमें है, सोई सर्वत्र है जैसे आकाश सब ठौर है,वैसेही स्थावर जंगमविषे ब्रह्म व्यापक है,यह एक विद्या आकाशसे सीखी है ॥४२॥द्वितीय वायु कहतेहैं जैसे पवनके

अंतर्हितश्च स्थिरजंगमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसंगमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभून्नृणाम् ॥ मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥ सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुंक्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥

प्रेरेसे तेज, जल, पृथ्वीमय मेघादिक आकाशमें व्याप्त होतेहैं, पर मेघादिकोंसे आकाशका स्पर्श नहीं होता, वह निर्लेप है, वैसेही यह पुरुष कालसे सृजे पंचभूत रूप इस देहसे संयुक्त है, उनका निजके साथ स्पर्श नहीं है, यह धर्मभी आकाशसेही सीखा (३) ॥ ४३ ॥ जैसे स्वभावहीसे जल अति निर्मल है ऐसेही मुनि भी निर्मल हो सबके ऊपर स्नेह करे मीठा बोले जल भी मधुर है जैसे जल तीर्थ स्थान है और मनुष्योंको पापसे छुडाता है इसीप्रकार मुनीश्वरभी दर्शन स्पर्श कीर्त्तनसे सबको पवित्र करें, यह गुण जलसे सीखे हैं (४) ॥ ४४ ॥ अब अग्निसे सीखा सो कहते हैं, जैसे अग्नि अतितेजस्वी है, तेजसे दीप्त है, अति दुःसह है और उसका उदरही पात्र है क्योंकि जो होम करतेहैं, वह अग्निके उदारमेंही डालते हैं, इससे वही पात्र है, जो संपूर्ण वस्तुको भक्षण करतीहै और तोभी पवित्र करनेवाली है, ऐसेही मुनीश्वरभी हों ॥ ४५ ॥ जैसे अग्नि कहीं गुप्त है, कहीं

प्रगट है,जो अपने कल्याणकी चाहना करते हैं, उनको सेव्य है,दाताकी इच्छासे सर्वत्र हविष्य लेती है,उनके भूत, भविष्य, वर्त्तमान पाप सब दूर करतीहै, इसीप्रकार मुनि रहैं ॥४६॥ और भी अग्निसे सीखा है, जैसे अग्नि एकरूप है, बहुत ईंधनसे बहुत भाँति बड़ी दिखाई देती है और जब ईंधन थोडा रहताहै तो छोटी दीख पडती है, ऐसेही जीवात्मा एकरूप है, न छोटा है, न बडा है, अपनी अविद्यासे उपजाये ऊंच नीच भेदसंयुक्त देहमें प्रविष्ट हुआ ऊँच नीच रूपसे दिखाई देता है (५) ॥ ४७ ॥ चन्द्रमासे जो सीखा है, सो कहते हैं, जन्मसे आदिलेकर मरणपर्यन्त धर्म देहकेही हैं आत्माके नहीं, इसमें दृष्टान्त कहते हैं, जैसे चन्द्रमाका मण्डल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय जो देखा जाता है सो कलाओंका है, जितना सूर्यमण्डलसे नित्य अलग पडे है, उतनाही दीखता है और ज्यों ज्यों मण्डलके नीचें दबता है, त्यों त्यों घटता है. इसीप्रकार आत्मा एकरूप है, अप्र

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥ विसर्गाद्याः श्मशानांता भावा देहस्य नात्मनः ॥ कलानामिव चंद्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥ कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुंचति ॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥

गट गति कालसे जन्ममरणादिक भाव देहके होते हैं, आत्माके नहीं, यह ज्ञान चन्द्रमासे पाया है, इससे चन्द्रमा गुरु है (६) ॥ ४८ ॥ अग्नि गुरुकी फिर प्रशंसा करते हैं, जैसा अग्निका स्वरूप है कि, नाश नहीं होता, अग्निकी ज्वालाओंका नाश होता है; परन्तु दीखता नहीं, वैसेही कालनदीके वेगसे जन्ममरण इस देहकोही है, आत्माको नहीं, क्योंकि आत्मा तो नित्य अर्थात् अमर है ॥४९॥ अब सूर्यसे जो सीखाहै सो कहते हैं, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल सोखताहै और फिर वर्षाके समय वही जल छोड देता है, परन्तु उसमें आसक्त नही है. इसीप्रकार योगीजन इन्द्रिय अपेक्षित पदार्थोंका ग्रहण करै और कोई, याचना करै तौ तत्काल देदें, ममता न रक्खें ॥ ५० ॥ जिसप्रकार सूर्य आकाशमें अपने स्वरूपमें रहता है और एकही है, परन्तु जलादिकमें प्रतिबिम्ब पडनेसे अनेकरूप दीखता है, इसी प्रकार आत्मा स्वरूपसे भिन्न नहीं है, देहादिकोंमें व्याप्त

होनेसे स्थूल बुद्धिवालोंको अनेकरूपका प्रतीत होता है (७)॥५१॥ अब कपोतसे जो सीखा है, सो कहते हैं, कहीं किसीसे अधिक स्नेह न करै, किसीसे आसक्त न हो, जो संग करे तो संतापको प्राप्त होता है और दीनमति होती है, जैसे कपोतको हुआ ॥ ५२ ॥ सो कपोतकी कथा कहते हैं, एक कपोत वनमें किसी वृक्षपर अपना घर बनाय कपोतिनी अपनी स्त्रीसे मिलकर कितने वर्षतक दोनोंने वास किया ॥ ५३ ॥ वह दोनों स्त्री पुरुष कपोत कपोतिनी परमस्नेहसे बँधेहुए दृष्टि दृष्टिसे बँधी, हृदय हृदयसे बँधा, अंग अंगसे बँधा, बुद्धि बुद्धिसे बँधी ॥ ५४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्थान, वार्त्ता, क्रीडा, भोजन, सब काम एकही स्थानपर बैठकर करैं, अलग २ होकर कभी न करैं इसप्रकार एक पंगतमें

नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन्विदेत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित्समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्यांगमंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबंधतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यंयं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयंत्यनुकंपिता ॥ तंतं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेंद्रियः ॥ ॥ ५६ ॥ कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥ अंडानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥ तेषु काले व्यजायंत रचितावयवा हरेः ॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दंपती पुत्रवत्सलौ ॥ शृण्वंतौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥

निःशंक हुए फिरा करैं ॥५५॥ इसके उपरान्त वह कपोतिनीने अपने हाव भाव, लावण्य मधुर भाषणसे प्रसन्नकर कपोतसे दीन होकर जो जो वस्तु माँगी, सो सो वह कपोत कष्टसे भी ले आवै, इसभाँति अजितेन्द्रिय उसके अधीन रहा करै ॥ ५६ ॥ एक समय प्रथमही गर्भवती हुई, सो पतिव्रता कपोतिनीने अपने समीपके आये पतिके समीपही अपने घरमें अंडे दिये ॥५७॥ कुछ समय बीतनेपर उन अण्डोंमेंसे अचिन्तनीय हरिकी शक्तियोसे हाथ पाँव आदि युक्त बच्चे उत्पन्न हुए और उनके कोमल अंगोंमें रूएँ हुए ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त यह दोनों कपोत कपोतिनी प्रसन्न हुये और अपने बच्चोंका यत्नसहित पालन करने लगे; पुत्रोंमें स्नेह बहुत हुआ और दिन दिन अपने बच्चोंका मधुर वचन सुननेसे

उनको बड़ा संतोष प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ उनके पंखोंसे जब आपको स्पर्श हो तब बहुत सुख पावैं प्रसन्न होजायँ, अपने पुत्रोंके मुखकी सुन्दर चेष्टा, उनके वचन और अपने निकट आनेसे परमसुख प्राप्त करनेलगे ॥ ६० ॥ उस स्नेहसे बद्धहृदय हो हरिकी मायासे परस्पर मोहित हुए अतिदीनबुद्धि यह स्त्री पुरुष बच्चोंको पालनेलगे ॥ ६१ ॥ एक दिन यह दोनों कुटुम्बी कपोत वनके चारों ओर बलकोंके अन्नके लिये बड़ी देरतक अभिलाषासे फिरे ॥ ६२ ॥ अपनी इच्छासे वनमें फिरते किसी एक क्रूर वधिकने अपने घोंसलेके निकट चुगते बालकोंको देख जाल रोपकर पकड़लिया ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त यह कपोत कपोतिनी सदा हर्ष संयुक्त, प्रजाका चुग्गा चारा लेनेको गये और लेके अपने घरमें आये ॥ ६४ ॥ तब वह कपोतिनी

तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥ प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ॥ विमोहितौ दीनधियौ शिशून्पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुंबिनौ ॥ परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः ॥ जगृहे जालमावृत्य चरतः स्वालयांतिके ॥ ६३ ॥ कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ॥ ६४ ॥ कपोती स्वात्मजान्वीक्ष्य बालकाञ्जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत्क्रोशंती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चावध्यत शिचा बद्धान्पश्यंत्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् ॥ भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥ अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥ अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥

अपने बालकोंको जालमें अतिदुःखित पुकारते देखकर आप भी पुकारती हुई दौड़ी ॥ ६५ ॥ वह कपोतिनी बहुत स्नेहसे बँधी दुःखित चित्त जालमें बँधे बालकोंको देख वहाँ हरिकी मायासे ज्ञानरहित हो आप भी जालमें बँधगई ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त वह कपोत भी आपसे अधिक प्यारे बालकोंको और अपने समान स्त्रीको भी बँधा देख अति दुःखित हो विलाप करनेलगा ॥ ६७ अहो ! देखो मैं अल्प पुण्य हूं, मूर्ख हूं, इन भोगोंमें अब भी तृप्त नहीं हुआ, देखो मैंने कुछ पुण्य नहीं किया, इसीलिये धर्म, अर्थ, काम, साधक मेरा घर नष्ट होगया ॥ ६८ ॥

यह स्त्री मेरे अनुकूल और पतिव्रता थी सो आज मुझे सूने घरमें छोड़कर साधु पुत्रों समेत स्वर्गको जाती है॥६९॥ मेरी स्त्री, पुत्र सब मरे सो मैं दीन हुआ विधुर अर्थात् रँडुआ हुआ, अतिदुःखित हुआ सो अब किसलिये जीनेकी इच्छा करूं, मेरा जीवन दुःखरूप है॥७०॥इसप्रकार वह कपोत विलाप करता उन बालकोंको और अपनी प्रियाको मृत्युसे ग्रसे जालमें, चेष्टा करते देख दीन हो आप भी उस पुरुषके देखते जालमें जा पड़ा ॥ ७१ ॥ इसके उपरान्त उस गृहस्थ कपोतको और कपोतिनी तथा उसके बालकोंको ले कार्य सिद्ध होनेपर वह दुष्ट वधिक अपने घरको चलागया ॥ ७२ ॥ अवधूत बोले कि, हे यदु ! जिस प्रकार कुटुम्बी कपोत अशान्तचित्त हुआ इसीप्रकार यह पुरुष सुखदुःखहीमें रति मान दीन होकर कुटुंबका भरण पोषण

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृतान्वीक्ष्य मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥ एवं कुटुंब्यशांतात्मा द्वंद्वारामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुंबं कृपणः सानुबंधोऽवसीदति ॥ ७३ ॥ यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैंद्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥ देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ १ ॥

करते कुटुम्बसहित दुःखही प्राप्त करते हैं, सुख कभी नहीं पाते किंतु कपोतकी भाँति बँध जाते हैं ॥ ७३ ॥ जो पुरुष मुक्तिका खुला द्वाररूप इस मनुष्यलोकको पाकर कपोतके समान गृहोंमें आसक्त होता है, वह उत्तम गति पाकर भी अधोगतिमें पड़ता है, घरकी आसक्ति पशु पक्षियोंकोभी अनर्थ देती है, वह मनुष्योंको भी दे तो इसमें कहनाही क्या है ? यह विद्या मैंने कपोतसे सीखी इसलिये कपोत गुरु हुआ (८) ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायामवधूतोपाख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा–इस अष्टम अध्यायमें, दत्तात्रेय सुजान ॥ नवमें अजगरकी कथा, सो सब कहौं बखान ॥ १ ॥ ब्राह्मण बोले हे राजन् ! प्रारब्धके, कर्मोंका भोग अवश्य करनेसेही छूटता है, इसलिये कर्मोंके उद्यमसे

वृथा आयु न खोवै, तहाँ अजगरकी सीख अवधूतजी कहते हैं कि, हे राजन् ! जिन पुरुषोंको देहाभिमान है, उन्हें इन्द्रियोंका सुख नरकमें भी होता
है, जैसे दुःख विना इच्छाके होता है, ऐसेही सुख भी होता है इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि, सुखकी चाहना न करै ॥ १ ॥ उद्यम विना
अनायाससे जो कुछ प्राप्त हो अथवा विरस हो, थोड़ाहो या बहुतहो, उसे प्रसन्नतापूर्वक करले, सबसे उदासीन रहै, शरीरके निर्वाहमात्रही ग्रहण
करै इस प्रकार अजगर रहताहै ॥ २ ॥ जिसदिन कुछ न प्राप्त हो उस दिन विना भोजन करेही सो रहे, तो अवश्य अजगरके समान ईश्वर देगा,
उद्यम न करै इस प्रकार धैर्यसे रहै ॥ ३ ॥ यद्यपि इन्द्रिय समर्थ हों, मन पुष्ट हो, शरीर पुष्ट हो, परन्तु तो भी कुछ कर्म न करे, जागताही पडा रहै;
किसी वस्तुकी अपेक्षा होय तो भी यत्न न करै, इस भाँति निरपेक्ष होकर रहै (९) ॥ ४ ॥ अब जो समुद्रसे सीखा है सो कहते हैं, जैसे समुद्रजल

शयीताहानि भूरीणि ग्रासं सुमृष्टं विरसं महांतं स्तोकमेव वा ॥ यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥ शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ॥ यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३॥ ओजःसहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥ शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेंद्रियवानपि ॥ ४ ॥ मुनिः प्रसन्नगंभीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनंतपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेंद्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यंधे तमस्यग्नौ पतंगवत् ॥ ७ ॥

निश्चल है, ऐसेही अंतःकरणमें प्रसन्न रहे, समुद्र महागंभीर है, उसका पार और अंत नहीं जिसको कोई लाँघ न सकै, कोई पकड न सकै; क्षोभ
न कर सकै यह सब गुण समुद्रसे सीखे हैं, यही महात्माओंको उचित है ॥ ॥ ५ ॥ जैसे समुद्र चौमासेमें नदियोंके जलसे चढता नहीं, ग्रीष्ममें
सूखता और घटता नहीं, इसीप्रकार योगिराजोको चाहिये कि,जो कुछ मिलै उसीमें संतोष करै यदि न मिलै तो खेद न करै, केवल एक नारायणके
विषेही तत्पर होकर विषयोंसे दूर रहै (१०) ॥ ६ ॥ इन्द्रियोंके पांच विषय हैं, रूप, गंध, स्पर्श, शब्द, रस इनमें आसक्त होनेसे यह जीव नष्ट
होजाता है, जैसे पतंग,भ्रमर, गज, हरिण, मीन इत्यादिक नाशको प्राप्त होते हैं, इसलिये इन पांच विषयोंमें आसक्त न हो यह बात इन पाँचोंके
पाससे सीखी है, इनमें पहले पतंगसे जो सीखी है सो कहते हैं, जैसे पतंग अग्निका रूप देख भ्रमके वश होकर उसमें जा पडता है ॥ ७ ॥

इसीप्रकार यह स्त्री देवमाया है, सुवर्ण, आवरण और वस्त्रादि मायाविलास देख उसके हावभावसे मोहित होकर अजितेन्द्रिय लोभी पुरुष भोगकी इच्छासे अंधकूपमें जा पडते हैं, इनकी दृष्टि नष्ट होगई है इसलिये अंध कूपको नहीं जानते, रूपको देखतेही उत्तमसे नष्ट होजाते हैं, यह विद्या पतंगसे सीखी (११) ॥ ८ ॥ अब भ्रमरसे जो सीखी है सो कहते हैं, भ्रमर दो प्रकारका होता है, एक शहतकी मक्खी, दूसरा भौंरा जो मुनि हो तो थोडा ग्रासमात्र माँगले जितनेसे देह रहे परन्तु एकही घरसे न माँगे जिससे गृहस्थको पीडा हो जैसे भ्रमर सुगंधिके लोभसे एक कमल ही में वसै तो उसमें बँध जाय, ऐसे ही यह एक ठौर माँगनेसे बँधजाते हैं ॥ ९ ॥ चतुर मनुष्यको चाहिये कि, सब शास्त्रोंसे सारवस्तु ग्रहण करले शास्त्र छोटे हों अथवा बडे हों, सार सबका लै ले जैसे भ्रमर पुष्पोंमेंसे मकरंदका सार लेलेता है यह बात भ्रमरसे सीखी है ॥ १० ॥ भ्रम

योषिद्धिरण्याभरणांबरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकंस्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्त्तेत यावता ॥ गृहानहिंसन्नातिष्ठेद्वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥१०॥ सायंतन श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ॥ पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११ ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ॥ मक्षिका इव संगृह्णन्सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥ पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अगसंगतः ॥ १३ ॥

रका दूसरा नाम मधुकर है सो मधुकर मधुमक्खियोंहीमें रहता है उन मधुमक्खियोसे जो सीखा है सो कहते हैं मुनि भिक्षाको ले आवे परन्तु साँझको अथवा दूसरे दिनको संग्रह न रक्खै पाणिपात्रमें लेकर उदरपात्र पूर्ण करै मधुमक्खीकी नाईं संग्रह न करै देखो मधुकी मक्खी सब वृक्षोंके पुष्पोंका रस संग्रह करके एक मुहाल बनाती है, वह शहद अनेक रोगोंको दूर करता है ऐसेही मुनि लोगोंको चाहिये कि शास्त्रोंमेंसे ऐसा उत्तम सार निकालैं जो मनुष्योंके मायारूप रोगोंको हरै ॥ ११ ॥ और जो मोहमें फँसकर संग्रह करै तो नष्ट होय, जैसे मधुमक्खी मधु सहित नष्ट होजाती हैं (१२) ॥ १२ ॥ अब हाथीकी सीख कहते हैं, भिक्षुक काष्ठकी स्त्री पूतरीको पाँवसे भी न छुवै और यदि छुवै तो बँधजाय

जैसे हाथी हथिनीके अंग संगसे बँध जाते हैं, यह विद्या मैंने हाथीसे भी सीखी ॥ १३ ॥ जो बुद्धिमान् होय तो कभी स्त्रीके निकट न जाय, जाय तो अवलम्बन करके पिटै, क्योंकि स्त्री आत्माकी मृत्यु है, जैसे और बलवान् हाथियोंसे हाथी माराजाता है (१३) ॥ १४ ॥ जो कोई मधुमक्खियोंके पास जाय, उन्हें छुड़ाय मधु हरकर ले आवे सो मधुहा कहावे, जो मनुष्य लोभी हैं और अनेक दुःखोंसे धनसंचय करते हैं, न दान करते हैं न आप भोग करते हैं, तो उस धनका भोग और ही कोई करैगा, जैसे मक्खी ठौर ठौरसे मधु लाकर संग्रह करती हैं, परन्तु भोग और ही कोई करता है, यह धनके उपाय जानने ॥ १५ ॥ अतिदुःखसे संचय करेहुए धनसे ग्रहण करे मनोरथोंकी चाहना करनेवाले गृहस्थोंके पहले संन्यासी भोजन करता है, जैसे मधुहा मक्खियोंसे प्रथम भोजन करता है, संन्यासी और ब्रह्मचारी रांधे अन्नके स्वामी हैं; इनको पहले दिये विना जो पुरुष

नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥ बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसंचितम् ॥ भुंक्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ १५ ॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः॥ मधुहेवाग्रतो भुंक्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत हरिणाद्बद्धा न्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगीतानि जुषन्ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्रीडनको राजन्नृष्यशृंगो मृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ॥ मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥

भोजन कर लेता है, वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है (१४) ॥ १६ ॥ संन्यासी वनमें फिरते हैं, गाँवके गीत प्राकृत कभी नहीं सुनते यदि सुनें तो बंधनमें पड़ें जैसे मृगगण वधिकके गीत सुनकर मरजाते हैं, यह विद्या हरिणसे सीखी ॥ १७॥ गाँवके गीत, नृत्य, वादित्र सुन और उनके वशमें हो बंधनमें पड़ते हैं, जैसे मृगीके पुत्र ऋष्यशृंगऋषि वेश्याओंके विषयसम्बन्धी नाच वाद्य और गाना सुननेसेही, उन वेश्याओंके खिलौने कैसे बनकर वशमें होगये (१५) ॥ १८॥ मीनसे जो विद्या सीखी सो कहते हैं, यह मूर्ख मनुष्य अतिबलवंत जिह्वाके वश हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, जैसे वंशीके लोहमें माँस लगाते हैं, उसके स्वादसे मछली वंशीको पकड़तीहै, तो मृत्युको प्राप्त होती है ॥ १९ ॥

पण्डितजन आहारको त्यागकर शीघ्र इन्द्रियोंको जीत लेते हैं परन्तु एक रसनेन्द्रियको नहीं जीत सकते हैं, क्योंकि आहार त्यागनेसे जिह्वाका लोभ बढता है ॥२०॥ जिस पुरुषने और इन्द्रिय जीत ली हैं; परन्तु तबतक जितेन्द्रिय नहीं होता है, जबतक जिह्वा न जीतै, क्योंकि जो जीभ जीते तो जानो कि, सब जीते. यहाँ अभिप्राय यह है कि, जो आहार छोड़िये तो केवल और इन्द्रियोंकी जय होय रसनेन्द्रिय बढ़े और भोजन करै तो रसकी आसक्तिसे सब इन्द्रियोंको लोभ होय इसलिये रसकी आसक्ति छोड़कर ओषधीके समान अन्न ले (१६) ॥ २१ ॥ अब पिंगलाका उपाख्यान कहते हैं, अवधूतजी बोले कि, हे महाराज ! पिंगला नामक एक वेश्या पहले विदेहनगरमें थी उससे भी मैंने कुछ सीखा है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! एक दिन उस कामचारिणी वेश्याने द्वारेपर नगारे धरकर यह संकेत किया कि, जो पुरुष इस नगाड़ेपर जितने डंके मारे वह रात्रिमें मेरे पास आनकर उतने

इंद्रियाणि जयंत्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥ तावज्जितेंद्रियो न स्याद्विजितान्येंद्रियः पुमान् ॥ न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिंगला नाम वेश्यासीद्विदेहनगरे पुरा ॥ तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनंदन ॥ २२ ॥ सा स्वैरिण्येकदा कांतं संकेत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ तान्छुल्कदान्वित्तवतः कांतान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥ आगतेष्वपयातेषु सा संकेतोपजीविनी ॥ अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥ एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलंबती ॥ निर्गच्छंती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥

हजार रुपये देगा, इसप्रकार समस्या बनाई, इतनेहीमें मैंने जाकर उस नगाड़ेपर दश बीस डंडे लगा दिये और सामने जो दूकान खुली पड़ी थी उसमें जा बैठा, तब उस वेश्याने समझा कि, आज कोई बड़ा धनी पुरुष आया, इस आशापर वह कंतको रतिस्थानमें लेजानेकी इच्छासे अत्युत्तम रूप धारण किये सायंकालके समय द्वारपर आनकर स्थित हुई ॥ २३ ॥ उस वेश्याने मार्गमें आतेहुए धनवान् मोलके दाता पुरुषोंको देख अपने मनमें जाना कि, यह भोगके योग्य हैं, क्योंकि उसके तो अधिक अर्थकी ही कामना थी ॥ २४ ॥ उनको आये और गये देखकर और कोई धनवान् मुझे बड़ा दाता प्राप्त होगा, इस आशासे वह संकेतकी जीवनहारी वेश्या द्वारपर बैठी रही ॥ २५ ॥ इसप्रकार दुराशासे जागतेहुए द्वारपर आवै कभी भीतर जाय

इस भाँति अर्द्धरात्रि होगई ॥२६॥ उसका धनकी आशासे चित्त दीन होगया मुख सूखने लगा और चिंतासे परमवैराग्य उत्पन्न होगया उस वैराग्यसे जो कहा सो सुनो ❋ ॥ २७ ॥ उसका धनकी आशासे चित्त दीन हुआ, मुख सूखने लगा, निर्वेद चित्तसे उससमय कामकंदलाने जो गाया सो मैं

तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः ॥ निर्वेदः परमो जज्ञे चिंताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ॥ निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ न ह्यंगाऽजातनिर्वेदो देहबंधं जिहासति ॥ २८ ॥ पिंगलोवाच ॥ अहो मे मोहविततिं पश्यताऽविजितात्मनः ॥ या कांतादसतः कामं कामये येन वालिशा ॥ २९ ॥

कहताहूं तुम सुनो वह मनमें विचार करे है कि, वैराग्य पुरुषके दुराशापाश काटनेको खड्ग है हे राजन्! जिसको वैराग्य नहीं उस पुरुषके देहके बंधन नहीं छूटते हैं ॥ २८ ॥ पिंगला बोली अहो देखो! मेरे लोभका विस्तार कि, मैंने अपना मन न जीता में विनकर हित हूं, जो ऐसे दुष्टोंका प्रियकर अपना

* शंका–ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मुनियोंने अनेक जन्म तप किया और तपस्याही करते करते अनन्तयुग वीत गये, परन्तु ज्ञानकी प्राप्ति मुनियोंको नहीं हुई, ज्ञान ऐसा महा कठिन है और पिंगला वेश्याने कभी भी सुन्दर कर्म नहीं किये कि, जिन कर्मों करके ईश्वर प्रसन्न हो ऐसी पतित महाअपवित्र पिंगला गणिका एक क्षणमात्रमें ज्ञानको कैसे प्राप्त होगई? यह वडे आश्चर्यकी वात है।

उत्तर–जिस काम करनेके लिये ब्रह्माने जिस प्राणीको वनाया है, वह प्राणी उसी कामको करेगा तो उसको किसी प्रकारका दोप नहीं लगनेका. देखो! हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी नौकरी की और मरघटमें मुर्दोंको उससमय फूकने देता था, जब अपना दह लेलेता था, परन्तु भगवान् उसपै अत्यन्त प्रसन्नहुए और ऐसेही सदना कसाईपर भगवान् प्रसन्न हुए सो अपने कारवारमें किसी प्रकारका दोप नहीं परन्तु अपने कुलका धर्म करके कुछ देर भगवान्का प्रीति सहित ध्यान करेगा तो निस्सन्देह भगवान् उससे प्रसन्न होंगे, ऐसेही ब्रह्माने जिस कर्म करनेके लिये पिंगलाको बनाया था, वही कर्म पिंगला करती थी, क्योंकि जनकपुरीमें सब प्राणी अपने अपने कुलके धर्मको करके पीछे भगवान्में प्रीति करते थे, ईश्वरको नहीं भूलते थे स्त्री पुरुष सब भगवानका नाम जपते थे और पिंगलाभी पुरुषोंके संग रति करके पीछेसे स्नान करके दूसरे वस्त्र पहनकर भगवानका ध्यान करती थी, और ईश्वरकी प्रार्थना करके अपनी देहसे जो पाप होते थे, उनको वारम्वार क्षमा कराती थी उस दिन भगवान्की कृपा होगई जो उसने पापकर्मसे ग्लानि मानी और ज्ञानमें लय होगई, एक क्षणमें पिंगलाको ज्ञान हुआ तो कुछ आश्चर्यकी वात नहीं।

अभिलाषा पूर्ण किया चाहती हूं ॥ २९ ॥ अपना अतिप्रिय निकटही सदा रहता है, अति सुखकारी रतिका दाता धनदाता नित्य प्रियको छोड दुःखित हुई, चिंता शोक मोहके देनेवाले तुच्छ मनुष्योंका मैंने सेवन किया, न तो उनसे मेरा काम पूर्ण होता है, न सुखही होताहै, मैं मूढ हूं ॥ ३० ॥ अहो ! मैंने यह आत्मा वृथा सताया, जिससे अतिनिन्दा संयुक्त शोकसे ग्रसे धन और रतिकी इच्छासे मेरी देह बिकी ॥ ३१ ॥ हाथ पावोंके हाड थूनी पँसलियोंके हाड बाँस और पीठके हाड जहाँ वरेंडा है, ऐसा शरीर रूपधर त्वचा रोम नखसे ढका है, जिसके नौ द्वार स्रवते हैं, सो विष्ठा

संतं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयादिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३० ॥ अहो मयात्मा परितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रैणान्नराद्याऽर्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥ ३१ ॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥ ३२ ॥ विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ याऽन्यमिच्छंत्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥ ॥३३॥ सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ॥ तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३४ ॥ कियत्प्रियं ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः ॥ आद्यंतवंतो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३५ ॥ नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३६ ॥

मूत्रसे पूर्ण नरकरूप कांतको मेरे विना कौन स्त्री सेवैगी ? ॥ ३२ ॥ इस विदेहराजाके नगरमें एक मैंही अति मूढ हूं, क्योंकि जो मैं असाध्वी साक्षात् अच्युत परमात्माको छोड तुच्छ कामभोगकी इच्छा करती हूं, ॥ ३३ ॥ यह ईश्वरही सब देहधारियोका आत्मा और सुहृद है, परमप्रिय नाथ है, क्योंकि अपने देहको देकर दूसरेको मोल लेलेता है, इसलिये अब उसीसे लक्ष्मीके समान रमण करूंगी ॥ ३४ ॥ विषय और कामके दाता मनुष्य और देवता यह सब उत्पत्ति मरण संयुक्त हैं, कालसे ग्रसे हैं, वह स्त्रीकी कामना क्या करेंगे ॥ ३५ ॥ अब अपने भाग्यकी सराहना

करती है मुझे जान पड़ता है कि, निश्चय मुझपर भगवान् विष्णु किसी कर्मसे प्रसन्न हुये हैं, जिससे दुष्ट आशासंयुक्त मुझे सुखदायक ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ कदाचित् कहो कि, धनकी प्राप्ति न हुई उसका खेद हुआ, विष्णु क्या प्रसन्न हुये ? तो कहते हैं कि, मंदभागिनीको ऐसे क्लेश वैराग्यके कारण नहीं होते, क्योंकि इसीप्रकार और भी पहले दिन होगयेथे जब धनकी प्राप्ति न हुईथी, न कोई पुरुष आयाथा, आज मुझे क्लेशसे वह वैराग्य हुआ है, जिस वैराग्यसे यह पुरुष गृहादिक बंधन छोड़कर शान्तिको प्राप्त होताहै ॥३७॥ ईश्वरने मेरा यह बड़ा उपकार किया है, इस उपकारको मैंने माथेपर चढ़ा लिया और नीच लोगोंके योग्य दुष्ट आशाओंको त्याग मैं उन्हीं जगदीशकी शरण लेतीहूं ॥ ३८ ॥ अब मैं

मैवं स्युर्मंदभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥ येनानुबंधं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३७ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः ॥ त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥ ३८ ॥ संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती ॥ विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ३९ ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४० ॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् ॥ अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कांततर्षजाम् ॥ छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥ ४२ ॥

संतुष्ट हो परमेश्वरमें श्रद्धा करती यथालाभसे जीविका करती, निश्चयसे आत्माकोही रमणकर आनंदसे विहार करूंगी ॥ ३९ ॥ जो पुरुष संसारके कुएँमें पड़ा है, विषयोंसे अंधदृष्टि है, कालस्वरूपसे ग्रस रहा है, ऐसे आत्माकी रक्षा करनेको इस आत्मस्वरूप भगवान् विना और कौन समर्थ है ॥ ४० ॥ जब सबसे यह आत्मा विरक्त हुआ तब अपनी आपही रक्षा करनेको सावधान हुआ, इस जगत्को जो कि, कालस्वरूपसे ग्रसित है, अप्रमत्त होकर देखै ॥४१॥ अवधूत बोले कि, हे महाराज! इसभाँति निश्चय मतिसे धन और विषयभोगकी आशा छोड़, शान्तिको प्राप्त हो

वह वेश्या शय्यापर सोगई ॥ ४२ ॥ इसमें मैंने फलितार्थ इतना लिया है कि, आशा परमदुःखरूप है, आशाको छोड़बेठनाही परमसुख है, जैसे
पिंगला कांतकी आशा छोड़ सुखसे सोई, साधुओंको संग्रह करना उचित नहीं है, इससे दुःख होता है (१७) ❋ ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते
महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभगवदुद्धवसंवादे पिंगलोपगीतेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–इस नवमें अध्यायमें, कुररीसों उपदेश ॥
जो पायो सो कहतहौं, सुनहु कृपालु नरेश ॥ १ ॥ अवधूतजी बोले कि, हे यदु ! अब कुरर पक्षीसे जो मैंने सीखा है, सो कहते हैं, मनुष्योंको जो
जो वस्तु प्रिय हैं सो सो मुझे दुःखदायी हैं, यह जानकर जो पुरुष संग्रहको छोड़े वह अनंत सुखको प्राप्त होगा ॥ १ ॥ यहाँ एक दृष्टान्त कहते हैं

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ यथा संछिद्य कांताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० एकाद० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥ अनंतं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥ १ ॥ सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ २ ॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिंता गेहपुत्रिणाम् ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥

एक कुरर पक्षीने मॉस पाया, तब उससे बलवंत मॉसरहित और पक्षी आये, सो उसको मारनेलगे, तब इसने वह मॉस डाल दिया, तब यह उसे
छोड़ मॉसको चिपट गये यह छूटकर अत्यन्त सुखी हुआ, मुनिजनोंको चाहिये कि, संसारके व्यवहारोंको मॉसकी नाईं परित्याग करदें (१८)
॥ २ ॥ अब बालककी सीख कहते हैं कि, हे राजन् ! न तो मुझे मान अपमानका सुख दुःख है, न घरकी चिंता है, न पुत्रोंकी चिन्ता है, एक

---

* दृष्टान्त–एक बाबाजीने महाकष्टसे पचीस अशरफी संग्रह करीं, जब तब निकाल चुटियामें धरा करते थे, एक दिन किसीने देखलीं, सो बाबाजीसे आनकर बोला महाराज ! आपका आज मेरे
यहाँ निमत्रण है, बाबाजी बोले अच्छा, तब वह घर लिवा लेगया और इतना हलुवा पूरी खिलाया कि, बाबाजीसे उठा न गया, तब उसने खाट बिछादी और अपनी स्त्रीसे कहा कि, इनके चरण खूब
दाबना और मैं जाताहूं, यह तो सेवा करने लगी और वह पुरुष थोडी देरमें व्याकुलतासे घरमें आय आलेमे ढूढने लगा, स्त्रीने कहा कि, क्या ढूढते हो ? तब उसने कहा कि, यहाँ पचीस अशरफी रक्खी थीं
सो कहां गई ? अब बाबाजी सकुचाये, वह स्त्रीको मारनेलगा कि, तैंने बाबाजीको देदीहोंगी बाबाजी बोले हमारे कपडे देखलो, दो चार आदमी इकट्ठे होगये, तब इसने बाबाजीकी चुटिया देखी उसमेंसे
अशरफी निकलीं बाबाजी बडे लज्जित हुये, धनका धन गँवाया, चोरके चोर हुये, जब बाबाजी चले तो इसने हाथ जोडकर कहा कि, महाराज ! फिर भी दर्शन देना, तब बाबाजी बोले कि, पचीश और
करदूंगा तब आऊँगा ।

आत्माहीके संग क्रीड़ा करता यहाँ फिरता हूं जैसे बालक चिन्तासे छूटकर आनन्दमें मग्न होते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दो मनुष्यही चिन्तारहित हो
परमानन्दमें मग्न होते हैं एक तो उद्यमसे रहित अज्ञ बालक दूसरा गुणरहित ईश्वरको प्राप्त होनेवाला ❀ (१९) ॥ ४ ॥ कुमारीसे जो विद्या
सीखी है, सो कहते हैं, कहीं एक कन्या थी उसके भाई बन्धु पिता कहीं गयेथे इसके पीछे कन्याको बिदा करानेके लिये घर पाहुने आये,
तब उनका आतिथ्यभाव उसने आपही किया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! कन्या उनके भोजन करानेके लिये एकान्तमें बैठकर धान कूटनेलगी, तब

द्वावेव चिंतया मुक्तौ परमानंद आप्लुतौ ॥ यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥४॥ कचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् ॥ स्वयं तानर्हयामास कापि यातेषु बंधुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यवहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिव ॥ अवघ्नंत्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभंजैकैकशः शंखान्द्वौद्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नंत्याः स्म शंखयोः ॥ तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम ॥ लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥

उसकी चूडियोंका बडा शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ वह कन्या आप धान कूटना निंदित दरिद्रका कर्म जान क्रमसे एक एक चूड़ी उतारने लगी केवल
हाथमें दो दो चूड़ी रक्खीं ॥७॥ परन्तु धान कूटनेमें दो दो चूडियोंका भी शब्द होनेलगा जब उसने उनमेंसे भी एक एक उतारदी तब एक एक
मेंसे शब्द न हुआ ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशक ! लोकोंको तत्त्व जाननेकी इच्छासे सर्वत्र फिरते मैंने एकदिन कुमारी इसप्रकार धान कूटती देखी तब यह
उपदेश उससे सीखा ॥ ९ ॥ बहुतोंका जहाँ वास होय वहाँ अवश्य कलह होता है, जो दो होयँ तो आपसमें बातैं तो भी करैं इसलिये अकेला ही

* शंका—उद्धवजीसे श्रीकृष्णने कहा था कि बालकोंके मनमें चिन्ता नहीं रहती इसमें हमको यह शका है कि, जो बालकोंको चिन्ता न होती तो जन्महीसे क्यों रोते हैं, जिससमय माताके उदरसे
और बालकका तो जबतक बालपन रहता है, तबतक रोते हैं ?
पृथ्वीपर गिरते हैं उसी कालसे राति दिन रोते हैं, जो प्राणी चिन्तासे रहित है उनको रोनेसे क्या प्रयोजन ?

* उत्तर—ज्ञानकी वार्तामें सज्जन लोग बालकको बालक नहीं कहते पंडित लोग बालक उसको कहते हैं कि, जो प्राणी संसारकी तथा अपने कुलकी लाजको तथा भयको त्यागदे इसप्रकार पण्डितों
के वचनके प्रमाणसे कृष्णचन्द्र भी उसी बालकको कहते हैं कि, चिन्ता नहीं रहती, जन्मलिये बालकको नहीं कहते ।

विचरण करै, जैसे कुमारीका कंकण (२०) ॥ १० ॥ अब बाण बनानेवालेसे जो सीखा है सो कहते हैं, मनको ईश्वरमें स्थिरकर प्राणोंको वशकर आसन जीतै, वैराग्यके अभ्याससे मन स्थिरकर सावधान रहे ॥ ११ ॥ गुण और तिनके कार्य रहित यह मन परमानन्दरूप भगवान् विषे जब स्थान पावै, तब शनैःशनैः कर्मवासना छोडै जब इसको सतोगुण बढै, तब रजोगुण, तमोगुणको दूर करके ब्रह्ममें लीन होय, तब ब्रह्मविना और कुछ दृष्टिमें नहीं आता ॥१२॥ इस प्रकार जब आत्मासे चित्त मिलजाय, तब बाहर भीतरका भेद नहीं रहता, सब एकरूपसे दीखते हैं, जैसे बाण बनानेवालेका चित्त बाण बनानेमें ऐसा लगाथा कि, निकट होकर सेनासमेत राजा चलागया परन्तु उसने न जाना, ऐसेही साधुओंको चाहिये

मन एकत्र संयुंज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतंद्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैःशनैर्मुंचति कर्मरेणून् ॥ सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिंधनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किंचिद्बहिरंतरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजंतमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥ एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥ गृहारंभो हि दुःखाय विफलश्च ध्रुवात्मनः ॥ सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १५ ॥ एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥ संहृत्य कालकलया कल्पांत इदमीश्वरः ॥ १६ ॥

कि, ईश्वरमें ऐसा मन लगावें जो और कुछ सुधि न रहे (२१) ॥ १३ ॥ अब सर्पसे जो सीखा है सो कहते हैं जैसा सर्प सब लोकोंसे डरताहुआ इकलाही रहता है, एकही ठौर घर बनाकर नहीं रहता सदा सावधान रहता है, एकान्तहीमें रहता है, दूसरेकी सहायता न चाहै अपनी गति दूसरेसे छिपाये रक्खै है, और विष निर्विष जाननेमें नहीं आता ऐसा रहता है, थोड़ा बोलता है, इसीप्रकार मुनियोंको रहना चाहिये ॥ १४ ॥ यह देह अनित्य है इसके लिये घर न कीजे घर दुःखका रूप है और फल कुछ नहीं है, जैसे सॉप परायेघरमें प्रविष्ट होकर सुखसे बैठै वैसे, परन्तु आप घर न करै ॥ १५ ॥ एक नारायण देव ईश्वर आप इस विश्वको अपनी मायासे सृजते हैं, फिर प्रलयमें कालशक्तिसे संहार करके आपही रखते हैं ॥ १६ ॥

तब एक अद्वितीय आत्मा आधार सबोंका आश्रयहो आपही एक रहता है, वे अपने इस समतारूप कालसे सतोगुण आदि शक्ति मायामें लीन करता है वही आदिपुरुष माया और पुरुषके ईश्वर हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्मादिक और मुक्त पुरुषोंके पाने योग्य हैं, मोक्षके रूप केवल अनुभव आनंदके पात्र निरुपाधि अनन्त हैं ॥ १८ ॥ हे शत्रुनाशक ! जब सृष्टि उत्पन्न करते हैं, तब केवल अपने प्रभावसे त्रिगुण अपनी मायाको क्षोभ उपजाय उस मायासे पहले सूत्ररूप महत्तत्त्व उपजाते हैं ॥ १९ ॥ उससे त्रिगुणरूप विश्व अहंकार द्वारा होता है, जिस महत्तत्त्वमें यह विश्व बँधा है, जिस प्राणसूत्रसे पुरुष संसारको प्राप्त होते हैं (२२) ॥ २० ॥ अब मकरीकी शिक्षाका दृष्टान्त कहते हैं, जैसे मकरी अपने हृदयसे उगलकर

एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ॥ कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥ सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥ केवलानुभवानंदसंदोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केव[लात्मानुभावेन] स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥ संक्षोभयन्सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृ[जन्ती] विश्वतोमुखम् ॥ यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्त्रतः ॥ तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥ यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ॥ स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥ २२ ॥ कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यांतेन प्रवेशितः ॥ याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्य[ज]न् ॥ २३ ॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ॥ स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥

तागा मुखसे निकाल फैलाय उससे क्रीड़ाकर फिर निगलजाती है, इसीप्रकार ईश्वर स्वयं इस जगतको बनाय फिर संहार करतेहैं ॥ २१ ॥ यह जीव स्नेहसे द्वेषसे अथवा भयसे बुद्धि कर जहाँ जहाँ एकाग्र मन धारण करता है और उसी उसी रूपको प्राप्त होता है, इसलिये जो ईश्वरका ध्यान करै तो ईश्वररूप होवे इसमें क्या आश्चर्य है (२३) ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जैसे भृंगीने भींतमें रक्खा कीट भृंगीका ध्यान करते २ उसी देहसे उस रूपको प्राप्त करता है (२४) ॥ २३ ॥ इसप्रकार इतने गुरुओसे मैंने यह मति सीखी परन्तु हे राजन् ! एक बुद्धि अपनी

देहसे सीखी है, सो मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ २४ ॥ देह मेरा गुरु है, क्योंकि इस देहसे मुझे वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ है, यह देह पीड़ा सहित सदा जन्म मरणको धारण करता है, इस देहसे यथार्थ तत्त्वोंका विचार करनेसे मुझे वैराग्य हुआ है, तो भी मैं इसपर प्रीति नहीं करता, क्योंकि यह कुत्ते और स्यारका भक्ष्य है यह निश्चय कर सर्व संग रहित हो विचरताहूं ॥ २५ ॥ जिस देहको प्रसन्न करनेकी इच्छासे स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, गृह, बंधुके समूहोंका पोषण करते हैं और बहुत कष्टसे धन संचय करते हैं; इतनेपर भी अंतमें यह देह आपही नाश होजाता है, फिर देहके जानेपर भी दुःख नहीं जाता, दूसरे देहका कर्मबीज उपजाये जाताहै, उस कर्मसे फिर दुःखरूप देह इसप्रकार उत्पन्न होजाता है, जिस

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततात्युदर्कम् ॥ तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि पारक्य मित्यवसितो विचराम्यसंगः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षिषया वितन्वन् ॥ स्वांते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः सदेहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥ २६ ॥ जिह्वैकतोमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति ॥ ॥ २७ ॥ सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवांते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसायविषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

प्रकार रूख अपना बीज छोड़ता है, उससे फिर रूख उत्पन्न होजाताहै ॥ २६ ॥ और इस देहको एक ओरसे जिह्वा रसके लिये खैंचतीहै, शिश्न स्त्रीसंगके लिये खैंचता है, त्वगिन्द्रिय एक ओरसे स्पर्शके लिये खैंचै है, श्रवण शब्दके लिये खैंचते हैं और घ्राण गंधके लिये खैंचते हैं चंचलदृष्टि रूपके लिये खैंचती है, कहीं कहीं कर्मशक्ति अपने विषयके लिये खैंचती हैं, जैसे बहुत सौत गृहस्थको लूटती हैं, इसीप्रकार यह सब इन्द्रियें देहको लूटती हैं ॥ २७॥ हे देव ! अपनी शक्ति मायासे वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, डांस, मछरी अनेक प्रकारके शरीरोंको उपजाकर ब्रह्मा संतुष्टहृदय न हुए परंतु ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंकी देह रचकर आनन्दको प्राप्त हुए ॥ २८॥ उससे यह अतिदुर्लभ मनुष्यदेह अनेक जन्मों पीछे पाया है

पुरुषार्थका दाता है, पर अनित्य है, यह जानकर शीघ्र मोक्षके लिये जबलों मृत्यु न हो शीघ्र यत्न करे क्योंकि विषय तो इसको सब योनिमें होंगे ॥ २९ ॥ इसप्रकार जब मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ और ज्ञानका प्रकाश हुआ, तब आत्मनिष्ठ हुआ, इसलिये संग और अहंकार छोडकर मैं पृथ्वीपर फिरताहूं ॥ ३० ॥ यदि कहो कि, तुमने बहुत गुरु क्यों किये ? गुरु तो एक करना चाहिये तो कहते हैं कि एक गुरुसे अति निश्चल ज्ञान विस्तारको प्राप्त नहीं होता है,इसलिये अद्वितीय ब्रह्मको ऋषि निश्चल बहुत भाँतिसे कहते हैं, कोई कहते हैं वह प्रपंचरहित है, कोई कहते हैं सप्रपंच है,जिससे भ्रम उत्पन्न होता है, सो भ्रम इन गुरुओंसे निवृत्त होजाता है,परमगुरु, मुख्य ज्ञानका देनेवाला एकही है, परन्तु ज्ञानके लिये पीछे

एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोऽनहंकृतिः ॥ ३० ॥ न ह्यकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतदद्वितीयं हि गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामंत्र्य गभीरधीः ॥ वंदितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥ सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धव संवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अपनी बुद्धिसे उपदेशके अनुकूल दृष्टान्त लेनेसे वह ज्ञान दृढ होजाता है ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इतना वृत्तान्त कह यदुकी आज्ञाले और गंभीर बुद्धिवाले राजासे प्रणामको प्राप्त हो उसको स्वीकार कर प्रसन्न हो अवधूत अपनी इच्छासे जैसे आये थे वैसेही चलेगये ॥ ३२ ॥ यह अवधूत दत्तात्रेय हैं, इनकेही वचन सुन हमारे बडोंके भी बडे राजा यदु सब संग छोड समचित्त होगये, यह सब श्रीभगवान्ने उद्धवजीसे कहा और कपोत, मत्स्य, मृग, कुमारी, हाथी, सर्प, पतंग, कुरर, यह आठ तो त्यागके लिये गुरु किये, भ्रमर, मधुहा, पिंगला यह तीनों त्याज्य और ग्राह्य अर्थके लिये गुरु किये ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां अवधूतोपाख्याने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा–दशवें तनु सम्बन्धसे, है सिगरो संसार ॥ तत्त्वज्ञानसे होत है, साधन और विचार ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! मेरे कहे स्वधर्मोंमें सावधान होकर मेरा आश्रय करै और वर्ण आश्रम कुलका आचरण निष्काम होकर करै ॥ १ ॥ जब अंतःकरण शुद्ध होजाय तब पुरुषको उचित हैं कि, विषयोंमें लगेहुए प्राणी जो विषयोंको निश्चल मानकर उद्योग करते हैं, उनके कार्योंके फल विपरीत होते हैं, उनको विचारता रहै इससे निष्कामता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ जो विषय इन्द्रियोंसे जाने जाते हैं, वह सदा नहीं रहते इसीसे वह अनेक प्रकारके प्रतीत होते हैं और जो अनेक प्रकारके हैं; वह अध्रुव हैं, जिसप्रकार मनसे उत्पन्न हुए स्वप्न और मनोरथ अनेक होनेसे चल हैं, ऐसा अनु मान करनेसे निष्कामता प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ निष्काम कर्म करै सकामका त्याग करै मुझमें तत्पर हो, आत्माके विचारमें रहै, कर्मकी विधिमें

श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥१॥ अन्वीक्षत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ॥ गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारंभविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मदभिज्ञं गुरुं शांतमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥ जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥

आदर करै ॥ ४ ॥ जो मेरे विषे तत्पर होकर आदरपूर्वक सयमोंको सेवै और जब सामर्थ्य होय तो शौचादिक नियमका सेवन करै इससे भी विशेष धर्म यह है कि, सहनशील हो, मेरे स्वरूपको जानताहो शांतहो सो मेराही रूप है ऐसे गुरुकी सेवा करै ॥५॥ अभिमान न रक्खे आलस्य न करै असहनता न करै, स्त्रीपुत्रादिकमें ममता न करै, गुरुओं सुहृदता रक्खै, कर्ममें व्यग्रचित्त न करै, परमार्थ जाननेकी इच्छा करै, किसीकी निन्दा न करै, व्यर्थ बातें न करै ॥ ६ ॥ स्त्री, सम्पत्ति, घर, खेत, स्वजन, धन इत्यादि सबसे उदासीन रहै, क्योंकि सबमें एकही आत्मा है इससे अपनीही भाँति सबोंमें सुखादिक समान देखे ॥ ७ ॥

यह आत्मा स्थूल सूक्ष्म देहसे भिन्न है, सबका द्रष्टा है, व्यापक है, स्वयं ज्ञानवान् है, आकाशवत् है, जैसे अग्नि दाह्य काष्ठके मध्यही रहता है, परन्तु काष्ठसे भिन्न है, प्रकाशक है और काष्ठको दाह कर्ता है ॥ ८ ॥ जैसे काष्ठमें प्रविष्ट अग्नि काष्ठके संगसे उत्पत्ति, नाश, अल्पता, महत्त्व, नानात्व गुणको धारण करती है और जैसे यह आत्मा भी इस देहके संगसे देहके गुणोंको धारण करताहै, पर देहसे आत्मा भिन्न और अमर है ॥ ॥ ९ ॥ यदि कोई कहे कि जो देहसे आत्मा भिन्न है, तो देहके गुण क्यों धारण करता है ? तो उत्तरमें इसके कहते हैं कि, ईश्वरके अधीन मायाके गुणसे पुरुषकाय सूक्ष्म स्थूल शरीर उपजायाहुआ है, जिस देहमें अहं यह अभिमान करनेसे संसारमें गिरता है, जिस देहको मेरा यह संसार काटनेको आत्मविद्या उपाय है ॥ १० इसलिये आपहीमें स्थित देहके भिन्न आत्मा ज्ञानकी इच्छासे आत्मामें चित्त मिलाय क्रमसे स्थूल सूक्ष्म

विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षिता स्वदृक् ॥ यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणु बृहन्नानात्वं तत्कृतान्गणान् ॥ अंतःप्रविष्ट आधत्ते एव देहगुणान्परः ॥ ९ ॥ योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसारस्तन्निबंधोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् ॥ संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादंतेवास्युत्तरारणिः ॥ तत्संधानं प्रवचनं विद्यासंधिः सुखावहः ॥ १२ ॥ वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत्स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः ॥ १३ ॥

देहादिकोंमें आत्मबुद्धिको छोडे ॥ ११ ॥ यह ज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है ? सो कहते हैं, आचार्य रूप नीचेकी अरणी शिष्यरूप ऊपरकी अरणी तथा उपदेशरूप मंथनका काष्ठ इनसे ब्रह्मविद्यारूप परमसुखदायक अग्नि उत्पन्न होती है ॥ १२ ॥ जिस समय बुद्धिमान् गुरुसे चतुर बुद्धिवाला शिष्य यह विद्या पाता है, तब यह विद्या गुणोंका कार्यरूप संसारकी ओर जिनसे निर्मित होकर यह जगत् जीवके संसारका निमित्तरूप होता है, उन गुणोंको भस्मकर काष्ठरहित अग्निके समान आप भी शांत होजाता है, इसीप्रकार कार्य, कारण और विद्याकी एकता होनेसे जीव परमानन्दरूप होता है ॥ १३ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! आत्मा स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप नित्य और एक है इसमें कर्त्ता भोक्ता धर्म देहकी उपाधिसे प्राप्त होते हैं, आत्माके अतिरिक्त और पदार्थ मायारचित हैं, इससे विरक्त हो पुरुष मुक्तिको प्राप्त होता है, परन्तु मीमांसक कहते हैं कि, मैं हूँ ऐसा प्रतीत करनेवाला आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है वही कर्म कर्त्ता और सुख दुःखका भोक्ता है इसका स्वरूपभूत कोई दूसरा निर्विकार परमात्मा नहीं है, भोगके स्थान रूप लोक, भोगका काल भोगरूप कर्मोंका बतानेवाला वेद भोगके साधन और भोग भोगनेवाला आत्मा यह अनित्य होवें तो वैराग्य होना संभव है परन्तु वह सब नित्य हैं, इससे वैराग्य होना संभव नहीं, भोग्य पदाथ बीचमें नष्ट होजाते हैं अथवा मायामय होवें, तोभी वैराग्य होना संभव है ॥ १४ ॥ माला, चन्दन, आदि भोगोंकी स्थिति प्रवाहरूपसे नित्य है और यथार्थ है, इससे वैराग्य होना असंभव है, क्योंकि जिस दशामें यह संसार देखा जाताहै, उस दशामें पहलेभी था इसकारण जगत्का कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं आत्मा स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं है,

अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ॥ तत्तदाकृतिभेदेन जायते विद्यते च धीः ॥ १५ ॥ एवमप्यंग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ॥ कालावयवतः संति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातंत्र्यं च लक्ष्यते ॥ भोक्तुश्च दुःखसुखयोः कोन्वर्थो विवशं भजेत् ॥ १७ ॥

उसमें अनेक ज्ञानका विपर्यास होता है, एक क्षणमें घटका ज्ञान नष्ट होकर पटका ज्ञान होता है, इस प्रकार अनेक ज्ञान उत्पन्न होते रहते हैं, पूर्व ज्ञानसे पृथक् होजाता है, इससे आत्मा नित्य ज्ञानमय नहीं सो कहते हैं कि, ज्ञानका विपर्यास होनेसे क्या आत्मा अनित्य होजाता है ? नहीं आशय यह है कि ज्ञानरूप विकार आत्मामें कुछ बाधा नहीं करसक्ता, मुक्तिमें आत्मा इंद्रियरहित है, इससे उसमें ज्ञानका परिणाम न होनेके कारण जड़ता होजायगी इसमें मुक्तिकी प्राप्ति होना पुरुषार्थ रूप नहीं प्रवृत्ति मार्गही इससे श्रेयस्कर है निवृत्ति नहीं ॥ १५॥ हे उद्धव ! सत्य प्रवृत्ति मार्ग ऐसाही है, परन्तु आगे अनर्थका हेतु है, इन देहियोंको देहके संयोगसे संवत्सररूप कालसे जन्ममरणादि भाव वारम्वार होते हैं ॥ १६ ॥ तुम्हारे मतहीमें कर्मोंके कर्त्ताओंको और सुखदुःखके भोक्ताओंको पराधीनता देखी जाती है, इसलिये ऐसे परवशका जो भजन करता है,

वह क्या सिद्ध है ? और जीव स्वतंत्र हो तो उसे दुष्टकर्म वा दुःखकी प्राप्ति संभव नहीं होसकती ॥ १७ ॥ इस प्रकार इसलोकमें तो सुख कहीं नहीं और लोकोमें भी सुख नहीं सो कहते हैं, ईर्षा, निंदा, नाशहोनेसे स्वर्गादिकमें भी कर्मोंकी विधिके जाननेवाले विद्वान् अभिमानीको किंचित् सुख प्राप्त नहीं होता, उसीप्रकार मूर्खोंको दुःख देखनेमें नहीं आता, जो कहते हैं कि, हम कर्ममें निपुण हैं, इससे सुखी हैं, यह उनका वृथा अहंकार है, इससे श्रेष्ठ कर्म करनेसे सुख मिलता है, यह नियम भी न रहा ॥ १८ ॥ और जो कदाचित् सुखदुःखकी प्राप्ति और विघात अर्थात् नाशको जानते हैं परन्तु इस उपायको वह भी नहीं जानते, जिससे साक्षात् मृत्यु न हो ॥ १९ ॥ क्योंकि जब मृत्यु अपने निकट है, तो अर्थ अथवा कामके प्राप्त होनेसे कौन सुखी होसक्ता है ? जैसे अपराधीको मारनेको लेजाते हैं, उससमय उस पुरुषको अर्थ कामादि सुख नहीं देते ॥ २० ॥

न देहिनां सुखं किंचिद्विद्यते विदुषामपि ॥ तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम् ॥ १८ ॥ यदि प्राप्तिं विघातं च जानंति सुखदुःखयोः ॥ तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥ १९ ॥ कोन्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरंतिके ॥ आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥ श्रुतं च दृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ॥ बह्वंतरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥२१॥ अंतरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ॥ तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥२२॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुंजीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ॥ गंधर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥

इस प्रकार जैसे यहाँ सुख नहीं ऐसेही परलोकमें भी नहीं है, स्वर्गादिकमें भी पराये सुखकी असहनता और ईर्षादिक रहती हैं, इससे यहाँके समान वहाँ भी दोष है, जैसे कृषीके सफल होनेमें अनेक विघ्न होते हैं ऐसेही यजनसे मिलनेवाले स्वर्गमें भी भूल चूकके अनेक विघ्न होते हैं ॥ २१ ॥ इतने पर विघ्नको निवारणकर जो धर्म अच्छी भांति करें; उन धर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्थानोंमें जैसे यह प्राणी जाते हैं, सो सुनो ॥२२॥ इसलोकमें देवताओंको यज्ञसे संतुष्टकर यज्ञके कर्त्ता स्वर्गमें जाते हैं और देवताओंके समान अपने उपार्जन किये हुए दिव्यभोग करते हैं ॥ २३ ॥ और वहाँ अपने पुण्यसे प्राप्तहुए उत्तम विमानमें बैठ सुन्दर वेष धरे, अप्सराओंके विषे विहार करते फिरते हैं, गंधर्व उनकी बडाई करते हैं ॥ २४ ॥

किंकिणि अर्थात् घुँघुँरुओंके समूहसे शोभित और मनकी रुचिके अनुसार चलनेवाले विमानमें बैठ सुखको प्राप्त हो देवताओंके बागोंमें देवस्त्रियोंके संग विहार करते फिरते हैं, परन्तु आत्मपातको नहीं जानते हैं ❀ ॥ २५ ॥ स्वर्गमें वहाँतक सुख करते हैं, जहाँतक पुण्य पूर्ण हो जब पुण्य क्षीण होजाता है, तब कालसे अनचाहत नीचे डालदिये जाते हैं ॥ २६ ॥ यह फल जो सकाम कर्म करता है, उसको है, तहाँ भी जो निषिद्ध प्रकार न करै जब हो, और जो असत् संग करै तो अधर्मी हो, जितेन्द्रिय न हो,स्त्री लंपट हो, कामहीमें चित्त हो,प्राणियोंको दुःख देताहो

स्त्रीभिः कामगयानेन किंकिणीजालमालिना ॥ क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः संगादसतां वाऽजितेंद्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥ पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान्यजन् ॥ नरकानवशो जंतुर्गत्वा यात्युल्वणं तमः ॥ २८ ॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन्देहेन तैः पुनः ॥ देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥ ब्रह्मणोपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥

लोभीहो, कृपण हो ॥ २७ ॥ और जो अविधिसे पशुओंको मारकर भूत प्रेतगणको पूजते हैं, ऐसे जीव परवश हो नरकमें पडे स्थावरके भावको प्राप्त होतेहैं ॥ २८ ॥ उन कर्मोंमें दुःखही फल है, ऐसे कर्मोको देहसे करते मरे पीछे फिर उन कर्मोंसे दुःख भोगकर वैसाही देह धरते हैं, इसलिये जो मरेगा उसको क्या सुख है ॥ २९ ॥ यद्यपि लोकपाल कल्पपर्यन्त जीते हैं, परन्तु तो भी उनको मुझ कालरूपसे भय रहता है

शंका–श्रीकृष्ण भगवान्ने उद्धवसे कहा था कि, ईर्षा, निन्दा आदि लेकर जो खोटे कर्म हैं, उन खोटे कर्मोंसे वेदोंके वचन नष्ट होगये, इसमें यह शका होती है कि, ईर्षा आदि जो बुरे कर्म सो सत्ययुग त्रेता, द्वापरमें भी थे ?

उत्तर–शास्त्रमें लिखाहै कि, भगवान्की देहमें धर्म और अधर्म दोनों रहते हैं, सत्ययुगमें अथवा और युगोंमें थोडा बुराकर्म भगवान्की देहमें रहता है और किसी युगमें अधिक रहता है, क्योंकि युगोंकी मर्यादा पालन करनेके लिये दूसरी वात मत जानना, इसलिये कृष्णचन्द्रने उद्धवजीसे कहाया ।

और कल्पपर्यंत जीनेवाले लोकपालोंको भी वह भय रहता है, और मेरे भयसे यह सब देवता अपना अपना काम करते हैं, ब्रह्माकी आयु दोही परार्द्ध है, परन्तु उसे भी मौतका डर है ॥ ३० ॥ कर्म कुछ ईश्वर नहीं, ईश्वर नियंता फलका दाता मैं हूं परन्तु मुझसे और उन कर्मोंसे सम्बन्ध नहीं कर्मका सम्बन्ध इस देहसे है, सो प्रकार बताते हैं. प्रथम इन्द्रियें कर्मोंसे सृजी हैं, गुण-सतोगुण, राजोगुण, तमोगुण, यह इन्द्रियोंको सृजते हैं, आत्मा कुछ नहीं करता है, पर यह जीव तो इन्द्रियोंके संगसे अहंकर्त्ता अभिमान धारण करता है, इसलिये कर्मोंके फल भोगता है ॥ ३१ ॥ यदि कहो कि, यह आत्मा अनेक क्यों दिखाई देते हैं, आत्मा तो एकही सुना है, तो कहते हैं कि, इन गुणोंके धर्मसे जबतक अहंभाव है तबतक अनेक प्रतीत होते है और जब यह मायाके गुण छूट जायँगे, तब आत्मा एकही दिखाई देगा और जहांतक उसे आत्मा अनेक

गुणाः सृजंति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुंक्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्पारतंत्र्यं तदैव हि ॥ ३२ ॥ यावदस्याऽस्वतंत्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ॥ य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यंति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥ काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च ॥ इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥ उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥

लगते हैं, तभी लों पराधीन भी हैं ॥ ३२ ॥ जबलों इसे पराधीनता है, तबलों ईश्वरका भय है, इसप्रकार प्रवृत्ति मार्गमें दोष है, इसका जो सेवन करते हैं, सो मोहमें पड़े शोकही युक्त हैं ॥ ३३ ॥ काल, आत्मा, शास्त्र, लोक, स्वभाव, धर्म, यह नाम गुण तो सम्बन्धसे कहे, परन्तु गुणसम्बन्ध छूटनेपर यह मेरेही स्वरूप हैं सब मैं ही हूं, मायाके सम्बन्धसे अनेक रूप दीखते हैं, इससे निवृत्तिमार्गही उत्तम मुक्तिका कारण है ॥ ३४ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन् ! यद्यपि यह आत्मा गुणोंसे मिला हुआ है,परन्तु तोभी गुणका कार्य सुख दुःख कर्मसे बद्ध नहीं है, इसलिये आकाशकी भाँति सर्वत्र व्यापक है और निर्लेप है,आवरणरहित तुम्हारे मतमें आत्मा एकही है,तो वह कैसे बंधनमें आताहै ? कि, जिससे उसे मुक्तिकी अपेक्षा होतीहै

सो कहिये ॥३५॥ और बँधनके पीछे किस प्रकारसे रहे, जब मुक्ति होजाय तब किस प्रकार रहै । सो कहो किस भाँति रहै कैसे अहारविहार करै, किस लक्षणसे जाना जाय ? क्या भोजन करै ? क्या छोड़ै ? कहां सोवै ? कैसे बैठे ? कहां जाय ? यह दोनों किन लक्षणोंसे दूसरोंके जाननेमें आवे सो कहो,॥ ३६ ॥ हे अच्युत ! हे विदाम्बर ! इसके उपरान्त मेरे मनमें एक और संदेह है कि, एकही आत्मा शरीरादिकोंके अनादि संबधके कारण अनादिकालसे बद्ध है, इस प्रकार निश्चय करना पड़ता है और इसभाँति निश्चयकर फिर उसको मोक्ष होजाता है इसप्रकार निश्चय करै तो मुक्ति उत्पन्न हुई मुक्ति होनेके कारण मुक्तिमें अनित्यता आजाती है, इसलिये वह आत्मा निरंतर मुक्तही है ऐसा भी मानता पड़ता है तब एकके समयमेंही बद्धत्व और मुक्तत्व यह दोनो एक संग होने कैसे संभव होसकते हैं इस प्रश्नका उत्तर कृपापूर्वक दीजिये ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एका

कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुंजीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ नित्यबद्धो नित्यमुक्त एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥ गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बंधनम् ॥ १ ॥ शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥ विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ॥ मोक्षबंधकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बंधोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥

दशस्कधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा–इस ग्यारह अध्यामें, बद्ध मुक्तका ज्ञान । साधु संत अरु भक्तिके, लक्षण कहौं बखान ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धवजी ! आत्मा बद्धमुक्त है यह कथन मेरे गुणसंबंधसे है सत्य नहीं गुणका मूल माया है, मैं तो मायाका नियंताहूं इसलिये मुझे न बन्ध है न मोक्ष है ॥ १ ॥ हे उद्धव ! मुझे मोह सुख दुःख देहको प्राप्त यह सब संसारके धर्म मायासे होतेहैं, जैसे स्वप्नसे बुद्धिका विवर्त्तहै इसीप्रकार संसार है सत्य नहीं है ॥ २ ॥ हे उद्धव ! एक विद्या दूसरी अविद्या यह दोनो मेरी मायासे रची हैं मेरी देहरूप शक्ति है अनादि देहधारियोंको मोक्ष और बंधन करती हैं ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धिमान् उद्धव ! यह सब मेराही

एक अंश जीव है उसे अविद्यासे अनादि बंध है विद्यासे मोक्ष है मुझे तो न बंधन है न मोक्ष है ॥ ४ ॥ अब इसका भेद बताते हैं परस्पर आत्मा और परमात्मा विरुद्ध धर्म होकर एकही देहमें स्थित हैं, इनमें एक तो जीव ईश्वरका भेद, दूसरे जीवसे जीवका भेद यह दो भेद हैं एक शरीरमें स्थित जीव ईश्वरमें ईश्वरका धर्म आनंद और जीवका धर्म दुःख है एक नियंता ईश्वर एक जीव है देहाभिमान धरे बद्ध हैं इन दोनोंका भेद दृष्टान्तसे कहते हैं ॥ ५ ॥ दोनों पक्षी हैं चैतन्यरूपसे समान हैं दोनों मित्र हैं, अपनी इच्छासे एक देहरूप वृक्षके ऊपर आन बैठे हैं, इनमें एक तो इस देहके फलको भोग करता है, दूसरा साक्षी हुआ देखता है. भोग नहीं करता, तो भी ज्ञानशक्तिसे अतिबलिष्ठ है, इस भाँति एकही रूपके दोनों विरुद्ध कर्म करते हैं ॥ ६ ॥ जो परमात्मा ईश्वर साक्षी ज्ञाता है वह अपने स्वरूपको और जीवके स्वरूपको भी जानता है और जो जीवात्मा है

अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ॥ विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥५॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥ एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ॥ योऽविद्यया युक्स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥ देहस्थोपि न देहस्थो विद्वान्स्वप्नाद्यथोत्थितः ॥ अदेहस्थोपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥ इंद्रियैरिंद्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान्यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥

सो न आपको जानते हैं न ईश्वरको जानते हैं वह अज्ञ हैं, इसलिये जो अविद्यासे मिलाहैं, सो नित्य बद्ध है, जो विद्यासे संयुक्त है, सो नित्यमुक्त है ॥ ७॥ ज्ञानकी विलक्षणता कहकर स्थितिकी विलक्षणता कहते हैं वही पण्डित हैं जो अपने स्वरूप और परमात्माको जानते हैं, सो यद्यपि देह हीमें हैं परन्तु देहसे न्यारे हैं देहके धर्म उसे व्याप्त नहीं जैसे स्वप्नसे उठेको स्वप्नको देहके धर्म नहीं लगते जो अज्ञानी हैं सो यद्यपि वस्तुसे और देहसे अलगही हैं परन्तु देहके अभिमानसे देहमें स्थित हैं सुख दुःखको भोग करते हैं, जैसे स्वप्नके देहमें स्थित स्वप्नके सुख दुःख भोगते हैं ॥ ८ ॥ और भी विलक्षणता कहते हैं यद्यपि इन्द्रिय अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं परन्तु तोभी रागद्वेषादि रहित मुक्तपुरुषमें इन विषयोंको भोगता हूं ऐसे नहीं मानते हैं इसका कारण यही है कि विषयोंको जो इन्द्रिय स्वीकार करती हैं वह गुणोंके कार्यको गुणही ग्रहण करते हैं ज्ञानी

उससे आपको निर्लेप मानते हैं ॥ ९ ॥ यह देह पूर्वकर्मके अधीन है, उस देहमें स्थित इन्द्रिय अपने विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं तहाँ मैं कर्त्ताहूं, इस अभिमानसे यह आत्मा बँधजाता है, यह अज्ञ है, शयन, आसन, गमन, स्नान, दर्शन, स्पर्शन, आघ्राण, भोजन, श्रवण यह सब इन्द्रियोंके धर्म हैं, मेरे धर्म नहीं वृथा अभिमान करनेसे बँध जाते है ॥ १० ॥ इसप्रकार वैराग्य और विवेक जिसे हो सो वह बद्ध नहीं होसक्ता, क्योंकि वह तो इन्द्रियोंको विषयभोग कराताहै, कुछ आप नहीं करता, इसीलिये बंधनमें नहीं पडता ॥ ११ ॥ यहाँ दृष्टान्त देते हैं कि जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है, पर सबसे निर्लेपहै जैसे सूर्य जलादिकोंमें प्रतिबिम्बित है परन्तु तोभी कम्परूप जलके धर्मसे भिन्न है, जैसे वायु सर्वत्र फिरती है पर तोभी

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा ॥ वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने ॥ दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन्गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः ॥१२॥ वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः ॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३ ॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेंद्रियमनोधियाम् ॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोपि हि तद्गुणैः ॥१४ ॥ यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया ॥ अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥ न स्तुवीत न निंदेत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥ १६ ॥

निर्लेप है, इसीप्रकार आत्मा इस देहमें स्थित हैऔर इन्द्रियोंके स्वभावसे उन उन विषयोंको ग्रहण करता है परन्तु तोभी उनसे भिन्न है ॥ १२ ॥ वैराग्यद्वारा तीक्ष्ण निर्मल ज्ञानसे सब संशय काट अनेक विधिके इस प्रपंचसे निवृत्त होवें जैसे स्वप्नसे जाग स्वप्नके धर्मोंसे निवृत्त होजाते हैं ॥ १३ ॥ जिसके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्ति संकल्प विकल्प रहित होगई हैं सो देहमें स्थित है तोभी देहके धर्मोंसे मुक्त है ॥ १४ ॥ जिसका देह स्वेच्छासे दुर्जनसे पीडितहो वा किसीसे पूजितहो तो जिसको इसमें सुख दुःख न हो और कुछ विकार उत्पन्न न हो वही ज्ञानवान् है ॥ १५ ॥ [illegible] रै अथवा बुरा, अच्छा कहै वा खोटा, परन्तु आप कीसीकी निन्दा स्तुति न करै लौकिक व्यवहारसे अलग रहै, और

समान दृष्टि होकर रहै, वही मुनि और मुक्त है ॥ १६ ॥ कर्मादिकोंमें उदासीन रहै, न कुछ करै न कुछ विचारै, भला बुरा मनमें न धरै, एक आत्माहीसे रमता रहै, इस वृत्तिसे जडकीसी नांई मुनि लोग फिरा करते हैं ॥ १७ ॥ मुक्त पुरुषके जो लक्षण हैं, वही मुमुक्षुके साधन हैं जो पुरुष वेदार्थमें निपुणहो वह प्रथम कहे साधनोंसे वेदमें निष्ठा रखकर ईश्वरका ध्यानादिक करैं तो उनका शास्त्र पढा हुआ जैसे बहुत

न कुर्यान्न वदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥

दिनोंकी प्रसूता गौसे फिर दूध मिलना संभव न हो तो उसके दूधकी आशावाले पुरुषके श्रमका फल केवल श्रमही होता है, इसीप्रकार क्रिया न करनेसे शास्त्राभ्यास व्यर्थ हैं ❀ ॥ १८ ॥

---

* शका–शास्त्रमें और वेदोंमें ऐसा लिखा है कि, गाय चाहै, व्याती हो चाहे न व्यातीहो चाहे व्यानेपरभी दूध न देतीहो, चाहै, लात मारती हो परन्तु गायको तो चारा, मोदक, जल, अन्न और अनेक प्रकारकी वस्तु खिलाकर उसकी सेवा करै और दश, मच्छर, मक्खी आदि अनेक कष्टोंसे उसकी रक्षा करना, दूध देय चाहै दूध न देय, गाय सदा कामधेनु और धर्मकी मूल है, इसका तो सेवनही करना उचित है, तो फिर उद्धवसे श्रीकृष्णने क्यों कहा कि, जो गाय दूध देना वदकर दे अयवा बाँझ हो, जो मनुष्य ऐसी गायका पालन पोषण करैगा वह दु·खसे वडा जो महादु ख है, उसको भोगेगा श्रीकृष्णके मुखका ऐसा वचन सुनके हमको अत्यन्त शका होती है।

उत्तर–' गां दुग्धदोहा यो ज्ञात्वा तामरक्षति कुर्वति । स नरो दु·खदु·ख वै भुनक्तीति विनिश्चितम्'' इस श्लोकमें भगवान्ने नीति वर्णन की है सो सुनिये हम कहते हैं श्रीकृष्णभगवान्ने कहा था कि, जो प्राणी गायको ऐसा जानकर कि, यह गाय अब दूध नहीं देती अयवा बाझ है. व्यायगी नहीं, ऐसा समझकर उस गायकी रक्षा करना छोडदेगा अथवा उसको खाने पीनेको नहीं देगा भूखी प्यासी रक्खेगा, तब इस लोकमें तो गायका मूल्य डूब जायगा क्योंकि पालन करता तो फिर व्याती अथवा बाँझ होती तो भी गोबर करती और अन्त समय रौरवनरकका वास होगा, इसी प्रकार जो स्त्री दुष्टा होजाय तो उसका भी पालन करना अवश्य चाहिये क्योंकि जो उसने खोटा कर्म किया तो संसारमें उस प्राणीकी निन्दा होगी और परलोकमें नरक भोगना पडेगा और जो उसका पालन करैगा तो धीरे धीरे चाहैं, ज्ञान उपदेश होनेसे सुधर भी जाय और सन्तान भी उत्पन्न होजाय फिर न जानिये कि, सन्तानमें कैसा महापुरुष निकलै ऐसेही पराधीन देह समझकर हानि मानकर देहका पालन करना नहीं छोडे, क्योंकि उसका पालन न करनेसे उसका नाश होजायगा और जो शरीरका पालन करैगा तो कभी न कभी सुख होहीगा, ऐसेही धनको मानलेवै कि इस धनमेंसे मैं पुण्य नहीं करताहू यह धन किस काम आवैगा, ऐसा जानकर धनकी रक्षा करनी छोडदेगा तो चोर चोरी करके लेजायँगे, और जो धनकी रक्षा करता रहैगा तो कभी न कभी तो पुण्यही होगा ऐसेही वचनसे भगवान्का नाम नहीं लिया, ऐसे खोटे वचन को जानकर सत्सग छोडदिया तो भ्रष्ट होजायगा और जो विगडे वचनसे सत्सग करैगा और अच्छा प्रवन्ध करैगा तो कभी भगवान्का नाम वचनसे निकलैहीगा ऐसा नीतियुक्त अर्थ भक्त उद्धवके सामने भगवान्ने किया है यह नहीं किया कि, गायका दूध देना वन्दकरदे तो उसकी पालना नहीं करना ।

हे उद्धव ! जिसके दूध दुही गौ, दुष्टा स्त्री, पराधीन देह और दुष्ट प्रजा, पात्र विषे न दिया धन, मेरा नामरहित वचन इतनी बातोंवाले सदा दुःखीही रहते हैं और आगे भी दुःख पावेंगे ॥१९॥ मेरा जिस वाणीमें नाम न हो वह बात न कहै, इस विश्वकी मर्यादा, जन्म, पालन, नाशरूप, पावन मेरे कर्म और लीला अवतारोंके विषे जगत्का प्रिय श्रीरामकृष्णादिक जन्म जिस वाणीमें नाम न हो, उस वाणीको बुद्धिमान् पुरुष धारण न करै ॥२०॥ इसप्रकार निश्चय कर आत्माविषे नानाप्रकारका भ्रम दूर कर विचारसे निर्मल मन मुझ अंतर्यामी विषे स्थिर होकर निवृत्त हो ॥ २१ ॥ जो मुझमें मन निश्चलकर नेको समर्थ न होय तो सब कर्म मुझमें अर्पण करै निरपेक्षहो कर्म करै ॥ २२ ॥ ज्ञानमार्ग कठिनहै, भक्तिमार्गहीसे कृतार्थ होगा, यह कहते हैं कि

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९ ॥ यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्वंध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥ २० ॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ॥ उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥ यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः ॥ गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥ मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥ सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां समुपासिता ॥ स वै मे दर्शितं सद्भिरंजसा विंदते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोकमतः कीदृग्विधः प्रभो ॥ भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥

प्रथम तो श्रद्धासंयुक्त हो, पीछे अतिसुन्दर लोकोंके पवित्र करनेको समर्थ मेरी कथा श्रवण करै, मेरे जन्मकर्म गावै, स्मरण करै, वारम्वार वैसाही लीला करै ॥२३॥ धर्म, अर्थ, काम मेरे लिये करै, विषयभोगार्थ न करै मेराही आश्रय करै, हे उद्धव ! तब सनातन स्वरूप मेरे विषे निश्चल भक्तिको प्राप्त हो ॥२४॥ इसप्रकार सत्संगकर प्राप्त हुई भक्तिसे मेरा सेवन करै तो मेरे स्थानको निश्चय प्राप्त होगा, यह मेरे पानेका मार्ग साधन करि दिखाया है ॥ २५ ॥ तब उद्धवजी साधुके और भक्तिके लक्षण पूँछने लगे कि, हे उत्तमश्लोक ! हे प्रभो ! साधुपुरुष कैसे होते हैं,

उनके चिह्न क्या होते हैं और उनकी कीहुई भक्ति कैसी होती है? जिस भक्तिको आप मानते हैं और साधु आदर करते हैं ॥२६॥ हे पुरुषके नियंता हे जगत्पते! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, अनुरक्त हूँ, आपकी शरण आया हूँ, इसलिये यह सब मुझसे कहिये ॥ २७ ॥ हे भगवन्! तुम साक्षात् परब्रह्म प्रगट हुये हो, प्रकृतिसे भी परेहो; पुरुषहो अकाशकी भाँति निर्लेप हो भक्तोंकी इच्छा से रूप धारण करतेहो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! जो पराया दुःख न देखसके और किसीसे द्रोह न करे. क्षमावंतहो, सत्यही बोले, निंदा आदि दोष रहितहो, समदृष्टि हो, सुखदुःखमें समान हो, यथाशक्ति सबका उपकार करे, सब प्राणियोंका अपराध सहै ॥ २९ ॥ काम करके बुद्धि चंचल न होय, बाहरकी इन्द्रिय जीती होंय

एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दांतो मृदुः शुचिरकिंचनः ॥ अनीहो मितभुक् शांतः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ॥ अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान् ॥ धर्मान्सत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥

कोमल शुद्ध चित्त होय, परिग्रही न होय, व्यर्थ कार्य न करे, भोजन थोडा करे शांत होय, स्वधर्ममें स्थित हो, मेराही एक आश्रय करे, मेराही स्मरण करे ॥३०॥ सावधान रहै, निर्विकार रहै, धैर्यवन्त होवै, क्षुधा, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु, यह सब जीते होय, अभिमानी न हो दूसरेको मान देनेवाला हो, औरके प्रबोधको समर्थ हो, सबका मित्र हो, सबका भला चाहे, दयावन्त हो, पूर्ण ज्ञानवान् हो ॥३१॥ ऐसेही पुरुष साधु कहातेहैं, मेरे स्वरूपभूत वेदके धर्म करनेसे अंतःकारण शुद्ध होता है, नहीं करनेमें दोष है, यह जाननेपर भी यह धर्म स्वामीके ध्यानमें विक्षेप करनेवाले हैं और जो यह धर्म मैं न करूं तो भक्तिसे ही सिद्ध होजायँगे, इस प्रकार भक्तिकी दृढताके लिये दृढ निश्चय कर अपने धर्मका

अधिकार रुद्ध हो जानेसे उन धर्मोंको छोडकर जो प्राणी मेरा भजन करै वह भी महात्मा है ॥ ३२ ॥ तव जैसे मेरे चरित्र हैं; उसी प्रकार मुझे जान अथवा विना जाने भी जैसे होय तैसे जो कोई अनन्य भावसे मेरा भजन करते हैं, सो मेरे परमभक्त हैं ॥ ३३ ॥ साधुओंके लक्षण कहकर अब भक्तिके लक्षण कहते हैं कि, मेरे चिह्न प्रतिमा आदि ले अनेक भांतिके और मेरे भक्त जनोंका दर्शन, स्पर्शन, पूजा, सेवा, स्तुति, प्रणाम, गुण, कर्म, कीर्त्तन ॥ ३४ ॥ हे उद्धव ! मेरी कथा श्रवण करनेमें श्रद्धा, मेरा ध्यान करै, जो कुछ मिले सो सब मुझे समर्पण करै दास्यभावसे अपनी आत्मा निवेदन करै ॥ ३५ ॥ मेरे जन्म, कर्म, गावै, जन्माष्टमी आदि पर्वमें फूल नैवेद्य आदिसे

ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥ भजंत्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥ मल्लिंगमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥ मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥ सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ॥ गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥ यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ॥ वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमंदिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमंडलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदंभित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि दीपावलोकं मे नोपयुंज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥

मेरी पूजा करै, गीत, नृत्य, वादित्र,गोष्ठीसे मेरे मंदिरमें उत्सव करै ॥३६॥ मेरेलिये यात्रा करै, पुष्पादिकोंसे पूजा करै, भेट समपर्ण करै, वर्ष प्रति वर्ष उत्सव करै, वैदिक, तांत्रिक दीक्षा ले रेमे व्रत करै ॥३७॥ और प्रतिमामें श्रद्धा रक्खै आपसे अथवा औरसे मिलकर मेरे लिये फूलोंका बाग, मंदिर, क्रीडास्थल, नगर, गाँवके करनेमें उद्यम करै ॥ ३८ ॥ मेरे मंदिरमें बुहारी देना, लीपना, छिड़काव करना, चौक पूरना और रंगवल्ली आदि चित्रांग करना, इस प्रकार मेरे गृहकी शोभा करै, दासकी भाँति निष्कपट मेरी उपासना करै ॥ ३९ ॥ आप अभिमान तथा दंभ

न करै जो करै सो कहै नहीं । मेरे निवेदित दीपादि वस्तुसे अपने घरका काम न करै ॥ ४० ॥ जो जो वस्तु इस लोकमें आपको अतिप्रिय हो, निषिद्ध न हो सो मुझे अर्पण करै तो वह वस्तु अनंत फलको करेगी ॥ ४१ ॥ अब यह ग्यारह ठौर पूजाके कहते हैं कि, हे उद्धव ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, भूमि, आत्मा इत्यादि सब प्राणीमात्र मेरी पूजाके स्थल हैं ॥ ४२ ॥ अब जिसकी पूजा जिस प्रकार करनी चाहिये सो कहते हैं वेदोक्त विद्यासे सूर्यकी पूजा करै, अग्निमें घृत होमकर मेरी पूजा करै, ब्राह्मणमें आतिथ्य अभ्यागतसे पूजे, गायमें अच्छे सुन्दर तृणादिकसे सेवा करै ॥ ४३ ॥ वैष्णवोंमें अपने बंधुके समान आदरसे मेरी पूजा करै, हृदय आकाशमें ध्यान धरके पूजा

यद्यदिष्टतम लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानंत्याय कल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भूरात्मा सर्वभूतानि भद्रपूजापदानि मे ॥ ४२ ॥ सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ॥ अतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वंग यवासादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बंधुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ॥ वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थंडिले मंत्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शांतं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥ इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ॥ लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥

करै, वायुमें प्राण बुद्धिसे पूजा करै, जलमें तर्पण आदि द्रव्यसे पूजा करै ॥ ४४ ॥ भूमिमें गोप्य मंत्र न्यासकर मेरी पूजा करै, अपने आपमें आत्माकी पूजा भोग करके जो भोग करै सो सब आत्माको समर्पण करदे, सब प्राणीमात्रमें समान दृष्टि रखकर मेरी पूजा करै, मैं अंतर्यामी हूं ॥ ४५ ॥ एकाग्र मन हो इन स्थलोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धरे चतुर्भुज शांतरूपका ध्यान कर मेरी पूजा करै ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य ऐसा करते हैं वे पुरुष निश्चयमन होकर यज्ञ, वापी, कूप, तडाग, बागसे मेरी पूजा कर साधुओंकी सेवासे मेरा स्मरण करते मुझमें परमभक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ४७ ॥ इसप्रकार ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहकर विशेषसे श्रेष्ठ भक्तिमार्गको कहते हैं कि, हे उद्धव ! पहले सत्संग करै कि, जिससे भक्ति उत्पन्न हो संसार

सागरसे तरनेका इससे उत्तम उपाय और कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि साधुओंका एक मैंही आश्रयहूं इसलिये अतिश्रेष्ठ उत्तम वैष्णवोंका सत्संग अतिश्रेष्ठ है ॥४८॥ हे उद्धव ! तुम सर्व प्रकारसे मेरे उत्तम सुहृद सखा हो इसलिये तुमसे कहा है कि, यह जो भक्तियोग गुप्त है सो तुमको सुनानेके लिये कहताहूं ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११॥ दोहा–बारहमें सत्संगकी, महिमा कहीं बखान । कर्म करन अरु त्यागको बरणों आत्मज्ञान ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! योग और तत्त्वोंका विवेक और अहिंसा आदि धर्म विद्याका अध्ययन, तप, त्याग, अग्निहोत्रादिक, वापी, कूप, तड़ाग, दक्षिणा ॥१॥ व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नेम, संयम

अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनंदन ॥सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० एकाद० भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥ २ ॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ॥ गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोंत्यजाः ॥ रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे ॥ ६ ॥

यह सब मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते, जैसे श्रेष्ठ विष्णुभक्तिका सत्संग मुझे वश करता है, क्योंकि सत्संग सब कुसंगोंका छुड़ानेवाला है ॥ २॥ दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥ ३ ॥ विद्याधर, मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री यह सब नीच जाति राजस तामस स्वभावयुक्त भी उन उन युगोंमें ॥ ४ ॥ मेरे पदको प्राप्त हुये और भी बहुत हैं वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय, विभीषण ॥ ५ ॥ सुग्रीव, हनुमान्, जांबवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार, व्याध, कुब्जा, गोपी, व्रजमें यज्ञपत्नी ऐसे और भी अनेक

मुझे प्राप्त हुये हैं ॥ ६ ॥ यह दोनों वेदार्थ नहीं पढे थे महत्पुरुषोंकी उपासना नहीं करी थीं, व्रत, दान, तप, कुछ नहीं करते थे, एक मेरे संग सेही मुझे प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ गोपी, गाय, यमलार्जुन, मृग और मूढबुद्धि कालीसे आदि ले नाग, सिद्ध अनायास मुझे प्राप्त होगये * ॥ ८ ॥ सांख्य, योग, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, अध्ययन इतने यत्नसे भी जिन्होंने मुझे न पाया, उसे एक भाव मात्रसेही प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ अब

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ॥ अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ॥ येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ॥ ८ ॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोध्वरैः ॥ व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ॥ विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृंदावनगोचरेण ॥ क्षणार्धवत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥

मुख्य उत्तमभाव गोपियोंका कहते हैं इसकारण पहले गोपियोके भावकी स्तुति करते हैं हे उद्धव ! जब अक्रूर आनकर बलदेव सहित हमको मथुरा लेगये, तब दृढप्रीतिसे मुझमें आसक्त चित्तवाली वियोगसे दुःसह चित्त गोपिगोंने सुखके लिये मेरे अतिरिक्त और किसीकी ओरको न देखा ॥ १० ॥ हे उद्धव ! वृन्दावनमें फिरते उनको अतिप्रिय मेरे संग जो जो रात्रिय एक क्षणके समान बीतीं हैं सो सो रात्रि मुझ विना उन

* शंका–श्रीकृष्णभगवान्ने उद्धवसे कहा कि, हे उद्धव ! पर्वत, पक्षी, मृग, यह सब सत्सगसे हमारे लोकको गये सो इस बातका हमको बडा सन्देह है कि, सत्सग तो बडे बडे महात्माओंको भी बडा दुर्लभ है सो इन तुच्छ जीवोंको क्योंकर हुआ ?

उत्तर–महात्मा पुरुष तो पर्वतोंपर वसते हैं इसलिये उनको पर्वतोंका सत्संग हुआ और महात्माओंके सन्मुख नित्य राति दिन पक्षी और मृग वसतेथे, महात्माओंका नित्य दर्शन करतेथे कुछ सत्सगकी बात कानोंसे सुनली कुछ भगवान्के पूजन आदिककी सामाग्री नेत्रोंसे देखली इसप्रकार योगियोंसे दुर्लभ जो सत्संग सो पर्वतोंको, पशुओंको तथा मृगोंको प्राप्त हुवा ऐसा कृष्णने कहा था ।

गोपियोंको कल्प समान वीतीं ॥ ११ ॥ मुझमें गोपियोंकी बुद्धि अधिक आसक्त होगईथी, इसलिये उन्हें पति, पुत्रादि तथा देह और परलोकका भी कुछ ध्यान न रहाथा, जैसे समाधिमें मुनियोंको नाम स्वरूपका ध्यान नहीं रहता. अथवा जैसे नदी समुद्रमें मिलजाती हैं, उसी प्रकार गोपियें मेरे स्वरूपमें लीन होगईं ॥ १२ ॥ इस प्रकार केवल मेरी इच्छावाली सहस्रों स्त्रियें यद्यपि मेरे स्वरूपको नहीं जानतीथीं परन्तु तो भी जारबुद्धिसे जाने हुए मुझ परब्रह्मके सत्संगकी महिमासे मुक्त होगईं ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! मेरे भजनका ऐसा प्रभाव है कि, गोपियें जारबुद्धिसे भजन करनेपर भी मुझे प्राप्त हुईं, इसलिये तुम श्रुति स्मृतिके विधिनिषेध छोड़, प्रवृत्ति निवृत्ति धर्म छोड़ सुना सुनाया छोड़ ॥ १४ ॥ सब देहधारियोंका आत्मा जो में हूं, इस कारण सबोंमें मेरा भाव रख केवल एक मेरी शरणको प्राप्त होकर तुम निर्भय होगे ॥ १५ ॥ यह सुनकर उद्धवजी बोले कि, हे योगे

ता नाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे
॥ १२ ॥ मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ॥ ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवो
त्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदे
हिनाम् ॥ याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतो वाचं तव योगे
श्वरेश्वर ॥ न निवर्त्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स एष जीवो विवरप्रसूतिः
प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥

श्वरोंके ईश्वर ! तुम्हारी वात सुनकर आत्मा विषयक मेरा संदेह निवृत्त नहीं होता क्योंकि प्रथम तो आपने कहा कि, मेरा भजन करो. अब कहते हो कि, सर्व धर्म छोड़कर हमारी शरण आओ इन दोनोंमें क्या करना उचित है ? त्याग करना चाहिये, अथवा भजन करना चाहिये यह मुझे बड़ा भ्रम है, सो निवारण करो ॥ १६ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! पहले तो यह जीव ईश्वर है, ब्रह्म है, परन्तु अविद्याके संगसे अपना धर्म भूलगयाहै, अविद्याके धर्महीको अपना धर्म समझ अहंकर्ता अभिमानसे बँधताहै, जब अविद्याके धर्म दूर होजायँ तब शुद्ध चित्त हो उसके लिये निष्काम कर्म करना कहाहै, जब चित्त शुद्ध हुआ, तब कर्मका त्याग कहा जब विवेक उसको उत्पन्न होगया, तब विवेकसे

सर्वत्र वह मेरा रूप जानता है, अब कर्म और ज्ञानका अधिकार हुआ, इसकारण सब कर्म त्यागकर मेरी शरण आवे, यह उपदेश दिया, अब ईश्वरसे वाणी इन्द्रिय द्वारा जीवके संसारका कारण भूत प्रपंचकी उत्पत्ति कहते हैं सो ईश्वर आधारादि चक्रोंमें प्रगट होते हैं उस प्रगटताको भी कहते हैं, सो ईश्वर नादवन्त परनाम प्राण सहित आधार चक्रोंमें प्रविष्ट होकर मनोमय सूक्ष्मरूप देखें और मध्यमा नाम मणिपूरक और विशुद्धचक्र विषे आनकर मुखमें हूं, स्वरादिक मात्रा, उदात्तादिक स्वर, अकारादिक अक्षर रूप वैखरी नाम अतिस्थूल नानाविध रूप होतेहैं ॥ १७ ॥ जैसे आकाशमें गर्भीरूप अग्निरूप अप्रगट है, बलपूर्वक काष्ठके मथनेसे वायुकी सहायतासे पहले सूक्ष्मरूपसे निकलती है, पीछे हविष्यसे वृद्धिको प्राप्त होती है, इसी प्रकार यह प्राणी मेरे प्रगट होनेके स्थान हैं ॥ १८ ॥ हाथोंका धर्म क्रिया, चरणका धर्म तीर्थगमन करना और गुह्येन्द्रियका

यथाऽनलः खेनिलबंधुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणु प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥ एवं गदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक्स्पर्शः श्रुतिश्च ॥ संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजः सत्त्वतमोविकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तंतुवितानसंस्थः ॥ य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥

धर्म मलादि विसर्जन करना आघ्राण, रस, दर्शन, श्रवण यह सब ज्ञानेन्द्रियोंके धर्म, संकल्प मनका धर्म, विज्ञान और बुद्धि चित्तका धर्म, अभिमान अहंकारका धर्म, सूत्र मायाका धर्म, सत, रज, तम, इन तीन गुणोंका विकार अधिदैव अध्यात्म अधिभूत यह सब मेरे प्रगट होनेके स्थान हैं ॥ १९ ॥ यह आत्मा ब्रह्म है, एकही है, अप्रगट है, कालसे अलगकरि वाणीरूप इन्द्रियोंकी शक्तियोंको अनेक भाँतिसे प्रकाशै है, जिससे आदि है, तीन गुणोंका आश्रय है सृष्टि कमलका कारणभूत है, जैसे बीज खेतको पाकर अनेक भाँति प्रकाशमान होताहै इसीप्रकार यह आदि कारण ईश्वर भी कालकी गतिसे मायाको अंगीकारकर प्रपंचरूप होजाते हैं ॥ २० ॥ इसमें दृष्टान्त कहते हैं, तंतुके विस्तारमें स्थितिमान् पट जैसे

तंतुओंमें ओतप्रोत है और तंतुओंसे पृथक् नहीं है, इसीप्रकार यह सब जगत् ब्रह्ममें विद्यमान है उससे भिन्न नहींहै, ऐसेही समष्टि व्यष्टिरूप अविद्यासे आत्मामें अध्यास कियाहुआ प्रपंचरूप वृक्षही जीवके कर्त्ता भोक्ता आदि संसारका कारण है, इससे जब यथार्थरीतिसे आत्माकी सत्यता और प्रपंचकी अनित्यता जाननेमें आवै उस समय कामादि सबका त्याग करना कहा है यह अनादि कालसे प्रवृत्तिवाला प्रपंचरूप वृक्ष अपने भोगादि रूप पुष्पफलोंको उत्पन्न करताहै ॥ २१ ॥ इसके पाप पुण्य दो बीज हैं. अनेकभाँतिकी वासना इसकी जड है तीनो गुण (रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण) इसकी पीडि है. पांच रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द यह रस हैं, पांच महाभूत इसके स्कंध है, एकादश इंद्रिय शाखा हैं,दो पक्षी जीव और परमात्माका घर है, वात, पित्त, कफ, यह तीनों वल्कल हैं, फल दो दुःख सुख हैं,सूर्यमण्डल तक यह वृक्षहै इससे

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कंधः पंचरसप्रसूतिः॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥ अदंति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ॥ हंसाय एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥ एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥ विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥ सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥

आगे संसार नहीं ॥ २२ ॥ अब इसके फलके भोक्ताको कहते हैं इसके एकफल दुःखरूपका गृहस्थ ग्रामचारी कामीके समान गीदड भोग करते हैं,दूसरे फलका सुख अरण्यवासी परमहंस सन्यासी भोग करते हैं इसके यह एकही परमात्मा मायामय अनंतरूप है इतना तत्त्वार्थ गुरुद्वारा जिस पुरुषने जान लिया है, उसने सब वेद जान लिया ॥ २३ ॥ इसप्रकार धीर सावधान होकर तुमभी गुरुकी सेवा कीजियो और एकान्त भक्तिसे तीक्ष्ण ज्ञानरूप कुठारसे त्रिगुणमय इस लिंगशरीरको काटि परमात्मासे मिले, पीछेसे सब साधन छोड़देना ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–इस तेरह अध्यायमें, हंसरूप इतिहास ॥ बढे अधिक जब सतोगुण, प्रगटे बुद्धि विलास ॥१३॥ श्रीभागवान् बोले कि, हे उद्धव ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीनों गुण प्रकृतिके हैं आत्माके नहीं

सत्त्वगुणका उपशमरूप सत्त्वगुणसे नाश करना ॥ १ ॥
इसकारण सतोगुणकी वृद्धिसे रजोगुण तमोगुणकी वृद्धिका नाशकर सत्त्व दयादिरूप सत्त्वगुणका उपशमरूप सत्त्वगुणसे नाश करना ॥ १ ॥
रजोगुण, तमोगुणके सन्मुख सतोगुण कैसे बढे और जो सतोगुण बढ़े तो मेरी भक्ति लक्षण धर्महो उसीसे रज, तम भी दूर हो ॥ २ ॥ सत्त्वकी वृद्धि
इसलिये होतीहै इसकारण भक्ति अतिश्रेष्ठ है रज, तमके दूर होनेपर रज, तम, मूलवाला अधर्म निश्चयसे शीघ्र दूर होता है ॥ ३ ॥ शास्त्र, जल,
प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र, संस्कार, यह सब गुणके हेतु हैं ॥ ४ ॥ यह भी दश सात्त्विक, राजस, तामस हैं इनके मध्य जिसकी,
बडाई करते हैं सो सात्त्विक है; जिसकी निन्दा करते हैं, सो तामस है, और न जिसकी स्तुति करते हैं न निन्दा करते हैं सो राजस है ॥ ५ ॥ सतो
गुण बढ़ानेके लिये पुरुषको सात्त्विकवृत्ति शास्त्रका सेवन करना चाहिये प्रवृत्ति मार्गके पाखण्डियोंके शास्त्र न देखे, जल तीर्थहीका सेवन करे,

सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मो रजस्तमो
हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ॥ आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३० ॥ आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च
जन्म च ॥ ध्यानं मंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ॥ निंदंति तामसं
यत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये ॥ ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोह
नम् ॥ ६ ॥ वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

परन्तु सुगंधित जलका सेवन न करे, संग निवृत्ति मार्गवालोंकाही करे, दुराचारियोंका न करे, देश एकान्तही सेवे चोर, ठग और जुआ खेलनेवा
लोंका संग न करे, ध्यानका सेवन काल ब्रह्म मुहूर्त्त आदिमें करे, आधीरातके समय प्रदोष कालका सेवन न करे, कर्म नित्यही करे काम्य और
अभिचारादि कर्म न करे, वैदिक तांत्रिक दीक्षारूप जन्मलेना क्षुद्र देवताओंकी दीक्षा न ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकोही गुरु करे, अस्त्रोंका और
शत्रुओंका ध्यान न करे, जब प्रणव आदि उत्तम मंत्रको जपै उससमय काम्य मंत्र और क्षुद्र मंत्रको न जपै, जो संसारसे आत्माका शोधक होय
सो करे, देह गृहको न करे. इसप्रकार सब सात्त्विक सेवै, तो सतोगुणकी वृद्धि हो और राजस, तामस छूटै, तब भक्तिरूपी तप धर्म होवे, उससे मेरे
स्वरूपका ज्ञान हो ॥ ६ ॥ जैसे बाँसोंके वनकी अग्नि आपसमें घिस और प्रज्वलित हो सब अरण्यको जलाय ईंधन घट जानेपर आपही शान्त

होजाती है उसीप्रकार गुणके क्षोभसे उत्पन्न हुवा देह आपही शान्त होजाता है ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! बहुधा सब मनुष्य कहते हैं कि विषय दुःख रूप है उससे दुःख पाते तो फिर क्यों इसीको यह पुरुष कूकर, गर्दभ, बकरेके समान निर्लज्ज हो उसीमें प्रवृत्त होते हैं ॥८॥ श्रीकृष्ण चन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! जब यह विवेकसे रहित होते हैं, तब इसके हृदयमें अहंभाव बुद्धि सत्यसी होती है,तब सात्त्विक भी मन दुःखरूप राजस धर्मसे व्याप्त होते हैं ॥ ९ ॥ यह पुरुष जब रजोगुणसे व्याप्त होता है तब मनमें संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं और संकल्पसे विषयका जो ध्यान करता है, इससे इस दुष्ट बुद्धि पुरुषको काम उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ इसके उपरांत उनके वश हो रजोगुणके वेगसे मोहित हुवा यह अजितेन्द्रिय

उद्धव उवाच ॥ विदंति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथापि भुंजते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ॥ उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ॥ ततः कामो गुणध्यानाद्दुःसहः स्याद्धि दुर्मतेः ॥१०॥ करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेंद्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहितः ॥ ११॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः पुनः ॥ अतंद्रितो मनो युंजन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२ ॥ अप्रमत्तोऽनुयुंजीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः ॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ॥ सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा ॥१४॥ उद्धव उवाच ॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ॥ योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५॥

दुःखही फलवाले कर्मोंको करताहै ॥ ११ ॥ इसमें भी जो विवेकी होय सो यद्यपि रजोगुण तमोगुणसे विक्षिप्त मन है सावधान है, परन्तु तो भी मनको खैंच खैंचकर रक्खै, तब वह दोष जानकर विषयमें आसक्त न होगा ॥१२॥ जो विवेकी स्नेहसे मुझमें मन लगाता है और आलस्य छोड़ श्वास रोक आसन दृढकर मुझमें मन स्थिर करताहै ॥ १३ ॥ सो हे उद्धव ! मेरे शिष्य सनकादिकोंने इतनाही योग बतायाहै कि, यह जीव सब ओरसे मन खैंच प्रत्यक्ष मुझमें रक्खै ॥ १४॥ उद्धवजी बोले कि, हे केशव ! सनकादिकोंके रूपसे जिससमय तुमने यह योग कहाथा सो तुम्हारा रूप और वह समय

जाननेकी इच्छा है सो कहिये ॥ १५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! एक समय ब्रह्माके मानसीपुत्र सनकादिक योगकी सूक्ष्म गति ब्रह्मदेवसे पूँछनेलगे ॥ १६ ॥ सनकादिक बोले कि, हे प्रभो ब्रह्माजी ! चित्त अपने स्वभावसेही रागादिकोंके हेतु विषय धर्ममें प्रविष्ट होताहै और अनुभूत विषयवासनारूपसे चित्तमें प्रवेश करते हैं; अब विषयोंका त्याग करनेकी इच्छावाला मुमुक्षु पुरुष परस्पर इनदोनोंको किसप्रकार भिन्न भिन्न करै ? ॥ १७ ॥ इसप्रकार पुत्रोंके पूँछनेपर ब्रह्माजीने जो कुछ कहाथा, वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे कहते हैं कि, इसभाँति जब सनकादिकोंने कहा, तब स्वयंभू ब्रह्मा बड़ेदेव विश्वके पालक विचारने लगे परन्तु प्रश्नका पार न पाया, इससे कर्मसे विक्षिप्त बुद्धि हुई ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकांतिकीं गतिम् ॥ १६ ॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ॥ कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितिर्षिषोः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभवानः ॥ ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥ स मामचिंतयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥

तब प्रश्नका उत्तर देनेके लिये ब्रह्माने मेरा चिंतवन किया, तब मैं हंसरूप हो ब्रह्माके निकट आया ॥ १९ ॥ तब मुझे देखतेही सब प्रणामकर ब्रह्माके आगेसे मेरे निकट आये तुम कौन हो ? इसप्रकार पूँछने लगे ॥ २० ॥ हे उद्धव ! तत्त्वके जाननेकी इच्छासे मुनीने जब इसप्रकार मुझसे पूँछा तब मैंने जो उनसे कहा वह तुम सुनो ॥ २१ ॥ यह सुनकर हंसरूप भगवान् सनकादिकोंसे बोले कि, तुम आत्माको आगेकर प्रश्न करते हो वा आत्माके उपाधिस्वरूप भूतसमूहको लेकर प्रश्न करते हो ? जो आत्माका अधिकार प्रश्न करते हो तो परमार्थसे आत्मामें अभेद होनेके कारण तुम कौन हो ? यह प्रश्न करना कि, जो अनेकोंमें एकका निश्चय करनेके लिये है संभव नहीं होसकता और मैं तुम्हें क्या विषय लेकर उत्तर दूं,

आत्मा कोई जाति वा गुणादिरूप हो तो उत्तर दिया जाय कि, मेरी यह जाति और मुझमें यहगुण है, परन्तु आत्मामें कोई बात नहीं इससे तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं बनसकता ॥ २२ ॥ और जो पंचभूत संधानका प्रश्न है वह अनर्थरूप है देवमनुष्यादि देह सब पंचभूतात्मक हैं वस्तुसे सब समान हैं अपने कारणसे न्यारे नहीं, वे सब कारणरूप एकही हैं ब्रह्मरूपही हैं यह नाम रूप अलग अलग धर लिये हैं, सो अज्ञान है इस कारण इसका मैं क्या उत्तर दूं॥२३॥ मन, वचन, दृष्टि और इन्द्रियोंसे जो ग्रहण किये जाते हैं, सो मैं हूं मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है. यह तत्त्वका विचार करके जानलो ॥ २४ ॥ इसप्रकार उनके प्रश्नका खण्डन करनेके बहाने आत्माका स्वरूप कहा, अब ब्रह्माकोभी जो अशक्य उत्तर है, सो देते हैं कि, यह विषय और चित्त दोनों गुँथे हैं, ब्रह्मरूप जीवका देह है, सो उपाधि है कुछ सत्य नहीं है जो पुरुष अपने आपको ब्रह्मरूपसे

पंचात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥ को भवानिति वः प्रश्नो वाचारंभो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपींद्रियैः ॥ अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुद्ध्यध्वमंजसा ॥२४ ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥ गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ ॥ २७ ॥ यर्हि संसृतिबंधोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥

विषयोंको मिथ्या करके जानते हैं और वैराग्यसे भगवान्‌का भजन करते हैं वह पुरुष उपाधि छोडकर मुक्त होजाते हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि विषयों कीही सेवा करनेसे और उनकी वासनासे विषयोंमें चित्त प्रविष्ट होता है, इसलिये विषय और चित्त यह दोनों जब मेरा रूप जानैं, तब छूटें ॥ २६ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थोंसे रहित जीव शुद्ध आत्मरूप कैसे हो ? सो कहते हैं कि, यह अवस्था तीन गुणसे होती है सो बुद्धिहीकी वृत्ति अवस्था है, जीव इन अवस्थाओंसे भिन्न है, ऐसा निश्चय किया गया है, इसलिये जीव इन सबका साक्षी है॥२७॥ जो यह साक्षी हुआ तो भिन्न क्यों है ? और " मैं सोया " " मैं जागा " ऐसे क्यों कहता है ? क्योंकि, जब अहंकारके धर्मसे संसारका बन्धन है, तब मैं जागता हूं सोता हूं,

यह बुद्धि है, जब अहंकार देहसे छूटै और आत्माके मध्यमें दृष्टि हो तब यह अवस्था भी सब जाती रहै और विषय तथा चित्तका परस्पर त्याग होय ॥२८॥ यह बन्धन देहके अभिमानसे है, इसीसे आत्माको भी अनर्थ लगता है, इसप्रकार निश्चयकर वैराग्यसे आत्मामें चित्त लगाय संसारकी सब चिन्ताको त्यागन करै ॥ २९ ॥ जबतक इसकी भेद बुद्धि युक्तियोंसे निवृत्त नहीं है, तबतक यह अज्ञानी पुरुष कर्मादिकोंमें जागता अर्थात् जानकर भी स्वप्नमें अपनेको जाग्रत् मानतेहुये मनुष्यके समान स्वप्नकोही देखते हैं, क्योंकि उन्हें यथार्थ ज्ञान नहीं है ॥ ३० ॥ यह सब देह और देहका किया सबसे भेद, वर्ण, आश्रम, स्वर्ग, आदि फल कर्म आत्माके धर्म नहीं हैं, यह देहके धर्म हैं, अविद्यासे उत्पन्न होते हैं, इसकारण मिथ्याहैं,

अहंकारकृतं बंधमात्मनोऽर्थविपर्ययम्॥ विद्वान्निर्विंद्य संसारचिंतां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥ यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्त्तेत युक्तिभिः ॥ जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ॥ गतयोहेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्भुंक्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ॥ स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिंद्रियेशः ॥ ३२ ॥ एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ॥ संच्छिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥

उत्तम नहीं, जैसे स्वप्न देखनेवालेके सब मनोरथ मिथ्या हैं ॥ ३१ ॥ यह जीव जागतेमें जो विषय भोग करता है, सो वह भोग एक क्षणभरका है, कुछ नित्य नहीं, जैसे बाल्यावस्था और तरुणापन आये और गये जाग्रत्के समान भोग करते हैं और सुषुप्तिमें यह सब धर्म लीन होजाते हैं केवल एक आत्मा ही रहता है, मैंने पहले तो स्वप्न देखा फिर सुखसे सोया, कुछ ज्ञान न रहा, इस अनुभवके स्मरणसे तीनों अवस्था बुद्धिकी हैं, इनका साक्षी एक आत्माही रहता है और सब लीन होजाते हैं, इसकारण आत्मा सब इन्द्रियोंका ईश्वर है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार यह तीनों अवस्था मनके वशमें हैं आत्माके वशमें नहीं, सो मेरी शक्ति अविद्यासे आपको मान लेती है, ऐसा निश्चय कर सब संदेहका स्थान अहंकार है, तिसको विवेकसे

अनुमानसे प्रमाण वचनसे उपजा जो ज्ञानरूपी खड्ग उससे काटकर हृदयमें स्थित मेरा भजन करे ॥ ३३ ॥ अनुमान किसप्रकारका है, सो कहते हैं कि, यह जो जगत् दीखता है, सो सब मनका विलास है, भ्रम और मिथ्या विलास है, यह द्वैत भी भ्रान्तिरूप है क्योंकि यह अति चंचल है और जो चंचल हो, वह अलातचक्रके समान भ्रान्तिरूप है, ब्रह्ममें द्वैतकी अनेक भ्रान्ति होती हैं, इसलिये भ्रान्तिका अधिष्ठान रूप एक ब्रह्मही अनेक प्रकारसा दीखता है और जो यथार्थ विचारसे देखते हैं, तो यह त्रिगुणात्मक मायाका भ्रम स्वप्नके समान है ॥३४॥ इससे हे उद्धव ! ऐसे प्रपंचसे दृष्टि फेर तृष्णा छोड़, आत्मसुखके विचारमें तत्पर हो इन्द्रियोंके सब धर्म छोड़ दे यदि कहो कि, देहवंतसे देहकी चेष्टा कैसे छूट

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥ दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ॥ संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात ॥ ३५ ॥ देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदांधः ॥३६ ॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रति समीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥

सकती है और न छूटनेसे द्वैतही होजायगा तो कहते हैं कि, कहीं ऐसे भी देहकी चेष्टा देखी जाती है, परन्तु वह चेष्टा अलंकाररहितहै, सत्य नहीं जिससे प्रपंचमें उनकी मिथ्याबुद्धि है, जो मिथ्या जानकर छोड़ दिया जाता है, वह फिर मोह उत्पन्न नहीं करता, यह निश्चय है । देहतक कर्मोंका संस्कारहै ॥३५॥ जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष इस विनाशीदेहको दैवगतिसे वा आसन उठा, आसनमें स्थित उठकर खडाहुआ, बाहरको गया अथवा दैवगतिसे फिर आयाहुआ नहीं देखते जैसे मदिरापानसे मत्त हुआ पुरुष पहने वस्त्रको नहीं जानता, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ब्रह्मको प्राप्त हो चुके हैं ॥ ३६ ॥ यहाँ तर्क करते हैं कि, देहको न जाने तो देह क्यों नहीं गिरे तो कहते हैं कि, देह भी दैवके आधीन है और जबतक

इसका प्रारब्ध कर्म है तबतक प्राण इंद्रियोंसहित देह रहता है, इसलिये जो समाधियोगमें आरूढ है, परमार्थ वस्तु और आत्मस्वरूपको जानते हैं, वह पुरुष प्रपंचसहित स्वप्नसमान इस देहको नहीं भजते ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! सांख्य और योगमार्गका जो रहस्य था, वह मैंने आपसे वर्णन किया, तुम्हें धर्म और ज्ञानका उपदेश देनेके लिये मैं यज्ञरूप विष्णु आया हूं, ऐसा जानो ॥ ३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! योगसांख्य, सत्यऋत, अर्थात् शास्त्रोक्त धर्म, तेज, प्रभाव, श्री, कीर्ति और इन्द्रियपन इन सब धर्मोंका मैं ही परमार्थ स्थान हूँ यह सब मुझीमें रहते हैं ॥ ३९ ॥ सब गुण मेरेहीमें आश्रय हैं मैं निरपेक्ष हूं, सुहृद् परमप्रिय हूं, सबका आत्मा और सब मुझे समान हैं संग किसीका नहीं, ऐसे गुण

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः ॥ जानीत माऽऽगतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥ मां जयंति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्याऽसंगादयो गुणाः ॥ ४० ॥ इति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः ॥ सभाजयित्वा परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहं पूजितः सम्यक्संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चित्तगुणविश्लेषवर्णनं त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ उद्धव उवाच ॥ वदंति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

मुझीमें हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार मेरे वचन सुन सन्देह निवृत्ति कर सनकादिक मुनियोंने अतिभक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की ॥ ४१ ॥ जब उन ऋषियोंने भलीभाँति स्तुति और पूजा की तब ब्रह्माके देखते २ मैं भी अपने धामको चला आया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा–इस चौदह अध्यायमें, सबका यही विचार ॥ सब साधनमें मुख्य है भक्ति मुक्ति दातार ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! जो पुरुष ब्रह्मका विचार करते हैं, वह तो ब्रह्माका साधन बहुत बताते हैं, इन सबोंमें जो एक मुख्य साधन है सो कहो ॥ १ ॥

हे ईश्वर! तुम निरपेक्ष भक्तिही एक मुख्य साधन कहते हो कि, सब संग छोड भक्तियोगसे मुझमें चित्त रक्खे ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! भक्तिही सबसे श्रेष्ठ साधन है और जो अनेक साधन हैं, वह अपनी इच्छानुसार संसारके लोगोंने मूर्खपनसे मुख्य मान रक्खे हैं, वह सब तुच्छ फलके देनेवाले हैं और मुख्य तो यह मेरी वेदरूप वाणी है जो प्रलयकालमें नष्ट होगईथी, यह वह वाणी है कि, जिससे प्राणीका मन मुझमें लगजाय यह पहले मैंने ब्रह्माजीसे कहा था ॥ ३ ॥ ब्रह्माने अपने बड़ेपुत्र मनुसे वह वाणी कही मनुने महर्षि भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, इन सात ब्रह्माके पुत्रोंसे वह वाणी कही ॥ ४ ॥ उनसे उनके पुत्र दैत्य, देवता, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर ॥५॥ चारण, किंदेव, (मनुष्य जातिमें देव

भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः ॥ निरस्य सर्वतः संगं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ॥ मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥ मनुष्याः सिद्धगंधर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥ किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः ॥ बह्व्यस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यंते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवंति हि ॥ ७ ॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यंते मतयो नृणाम् ॥ पारंपर्येण केषांचित्पाखंडमतयोऽपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदंत्यनेकांतं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥

तुल्य) किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुषादिक इन सबोंने वह वाणी ग्रहण की, जिनकी वासना रजोगुण, तमोगुण आदिसे अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥ जिन वासनाओंसे देवतुल्य मनुष्यादिक प्राणियोंके शरीर भिन्न भिन्न होते हैं और उनकी बुद्धियोंमें भी भेद पडता है, इन सबोंने अपनी वासनाके अनुसार भिन्न भिन्न वेदका व्याख्यान किया है ॥ ७ ॥ इस प्रकार प्रकृतिकी विचित्रतासे मनुष्योंकी बुद्धि विचित्र होगई और शास्त्रोंमें भी भेद पड़गये किसी प्राणीके उपदेशकी परंपरासे वेदविरुद्ध पाखण्डबुद्धि हुई ॥ ८ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! मेरी मायासे मोहितबुद्धि पुरुष अनेक प्रकारसे इच्छानुसार कल्याणके

साधन कहते हैं ॥ ९॥ कोई धर्महीको मुख्य कहता है, कोई यशको,कोई कामको, कोई सत्यको, कोई शम दमको कोई ऐश्वर्यको और कोई स्वार्थ हीको मुख्य कहते हैं, कोई दान करो, भोग करो यही कहते हैं कोई यज्ञ, तप, दान, व्रत, नेम, संयम, यह सब साधना कहते हैं ॥१०॥ इन प्राणियोंको अपने कर्मानुसार लोक कर्म फलसे मिलते हैं, वह सब परिणाममें दुःखसे पूर्ण किंचित् आनन्दयुक्त शोकसे व्याप्त आदि अंतवाले हैं ॥ ११ ॥ हे सौम्य ! मुझमें जिन्होंने आत्मसमर्पण किया है, और जो सबसे निरपेक्ष हैं, उनको मेरे परमानन्दस्वरूपकी प्राप्तिसे सुख मिल रहा है, वह सुख विषयोंमें लगे पुरुषोंको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो भक्तोंको सुख है वह विषयी पुरुषोंको कहाँ ?॥ १२ ॥ जो अकिंचन

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदंति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ १० ॥ केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥ आद्यंतवंत एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः॥ दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानंदाः शुचार्पिताः ॥ ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनः सौम्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥ मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२॥ अकिंचनस्य दांतस्य शांतस्य समचेतसः ॥ मया संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥ न पारमेष्ठ्यं न महेंद्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥ १४॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ॥ न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शनम् ॥ अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥ निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः शांता महांतोऽखिलजीववत्सलाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषंति यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥

दांत समचित्त वैसेही संतुष्ट मन हैं, उनको सब दिशायेंभी सुखरूप हैं ॥१३॥ जिन्होंने मुझमें आत्मा समर्पण करदिया है, उनको मेरे अतिरिक्त और किसी वस्तुकी चाहना नहीं है एक मैंहीं उन्हें प्रिय हूं, अधिक क्या कहें ब्रह्मलोक, इन्द्रका संपूर्ण राज्य, भूमिका राज्य, पातालका राज्य, अणिमा महिमादिक योग सिद्धि मोक्षतककी भी उनको चाहना नहीं है ॥ १४ ॥ इसलिये भक्तोंके समान मुझे कोई प्यारा नहीं, हे उद्धव ! अब मैं तेरे आगे अधिक क्या कहूं मेरा आत्मा भी मुझे प्रिय नहीं. हे उद्धव ! जैसे तुम मुझे प्यारे हो, वैसे मेरा पुत्र, ब्रह्मा, महादेव, संकर्षण और लक्ष्मीजी भी मुझे प्यारी नहीं हैं, यह अतिसंतोषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥१६॥ उत्तम भक्तोंकी तो कथाही क्या है, जो समान्य भी मेरे

भक्त हैं वह भी कृतार्थ हैं और जो मेरे भक्त विषयोंसे पीडित अजितेन्द्रिय हैं, उनकों भी दृढ़भक्ति होनेके कारण विषय पराभव नहीं कर सक्ते ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जिसप्रकार प्रचण्ड अग्नि काष्ठको भस्म कर देतीहै, इसीप्रकार मेरी दृढ़भक्ति सब पापोंका नाश करदेतीहै ॥ १९ ॥ इससे भक्तिविना और कोई उपाय नहीं है, हे उद्धव ! योग, सांख्य, धर्म, पाठ, तप, त्याग, यह कोई मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते हैं जैसी एक दृढ़ भक्ति मुझे वश कर लेती है ॥२०॥ भक्तोंको प्रिय आत्मा रूपमें श्रद्धासे उत्पन्न हुई भक्तिसेही महात्माओंके वश होजाताहूं, यदि मेरी भक्ति, चाण्डाल

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेंद्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥ यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥ भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥ भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भक्त्याऽपेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ॥ विनानंदाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाऽऽशयः ॥ २३ ॥ वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥ विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥

भी करै तो उसके जाति दोष पवित्र होजाते हैं ❀ ॥२१॥ इसपर एक दृष्टान्त है सत्य और दयासंयुक्त धर्म और तपसे संयुक्त विद्या भी उस पुरुषको पवित्र नहीं कर सक्ती, जिसके चित्तमें मेरी भक्ति नहीं ॥२२॥ जिसके रोमांच न हो, द्रवीभूत चित्त न हो, आनंदके आंशू न चलैं, उसकी भक्ति कैसे जानी जाय ? और भक्ति विना हृदय कैसे शुद्ध हो ? ॥२३॥ अब भक्तिका लक्षण कहते हैं, जिसकी वाणी गद्गद हो चित्त द्रवीभूत कोमल हो नेत्रोंसे

* दृष्टान्त—एक तिलोक सुनार बडे साधुसेवी थे जो कुछ वस्तु प्राप्त होती, सब साधुओंमें व्यय करदेते थे, एक समय राजाके यहाँसे कुछ आभूषण बनानेको आये, सो इनके यहाँ बहुत साधू आगये, इन्होंने उस राजाके द्रव्यकी भोजनसामग्री मँगाकर साधुओंको खिलादी और आप टालबाल करते रहे, जब राजाके यहाँ व्याहका दिन आया तो यह जंगलको भाग गये, भगवान्ने भक्तकी रक्षा करी और तिलोकका रूप बना गहना लेकर राजाके घर गये वहाँसे अच्छे आभूषण बनानेके कारण पुरस्कार पाया और गहना लिया भगवान् वह पुरस्कारका द्रव्य तिलोकके घर दे जंगलमें जाकर उससे कहने लगे कि, घरको जा, राजाने बहुत द्रव्य दिया है, तिलोक सुनतेही घर आय अत्यन्त प्रसन्नहुए सो ईश्वरके भक्त कभी नष्ट नहीं होते ।

वारंवार आंशू बहैं कभी हँसे, कभी लज्जा छोड़ उच्चस्वरसे गावे, नाचे इस प्रकार जो मेरी भक्तिसे युक्त हो, वही लोकोंको पवित्र करता है ॥२४॥ जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेसे श्यामता छोड़ निर्मल हो अपने रूपको प्राप्त होता है, वैसेही यह आत्मा मेरे भक्तियोगसे कर्म वासना त्यागकर मेरेही स्वरूपको प्राप्त होता है॥२५॥ज्ञान विना अविद्या नहीं जाती, अविद्याके गये विना तुम नहीं मिलते, इसप्रकार कहते हैं कि; यह पुरुष जैसे जैसे मेरी पुण्य कथा श्रावण कीर्त्तन करते हैं वैसेही वैसे शुद्ध चित्त होतेहैं, नेत्र जैसे जैसे अंजनसे सूक्ष्म होते हैं, वैसेही वैसे सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आते हैं ॥ ॥ २६ ॥ यद्यपि विषयके ध्यानमें मन विषयमें रहता है, परन्तु तो भी मेरा ध्यान करनेसे शुद्ध चित्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाता है, क्योंकि

यथाऽग्निना हेममलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम् ॥ आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ २५ ॥ यथायथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथातथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवांजनसंप्रयुक्तम् ॥ २६ ॥ विषयान्ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥ तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथान् ॥ हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥ स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ॥ क्षेमे विविक्त आसीनश्चिंतयेन्मामतंद्रितः ॥ २९ ॥ न तथाऽस्य भवेत्क्लेशो बंधश्चान्य प्रसंगतः ॥ योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३० ॥ उद्धव उवाच ॥ यथा त्वामरविंदाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ॥ ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

मेरी भक्ति विना ज्ञान नहीं होता और मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होनी वही ज्ञान है ॥ २७ ॥ हे उद्धव ! इसलिये स्वप्न मनोरथके समान मिथ्यावस्तुका ध्यान छोड़ मेरी भावनासे चित्त शुद्ध कर मेरे स्वरूपमें रक्खे ॥ २८ ॥ स्त्रियोंका संग और स्त्रियोंके संगियोंका संग दूरसे छोड़ आत्माको जान, धीर हो, एकान्तमें बैठ परमकल्याणरूप मेरा चिंतवन करे ॥ २९ ॥ क्योंकि जैसा स्त्रियोंके संगसे और स्त्रियोंके संगियोंके संगसे इसे क्लेश बंध होता है, ऐसा औरके संगसे नहीं होताहै ॥ ३० ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कमलनयन ! जो मोक्ष चाहै, वह तुम्हारा ध्यान किसप्रकार करे किस

स्वरूपका करै ? यह मुझसे कहो क्योंकि मैं तो आपके दासभावके पुरुषार्थको प्राप्त होचुकाहूं ❋ ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! समान आसनपर बैठ अपनी देह समरख जैसे सुखहो वैसेही बैठ, अपने दोनों हाथ गोदपर रक्खै नासिकाके अग्रपर दृष्टि रक्खै ॥ ३२ ॥ इसप्रकार बैठ प्राणके मार्ग पूरक, कुंभक, रेचक, करकेशुद्ध हो, जितेन्द्रिय हो शनैः शनैः प्राणायामका अभ्यास कर रेचक, पूरक, कुंभक, क्रमसे अभ्यास करै ॥ ३३ ॥ प्राणायाम दो प्रकारका है, एक तो प्रणवसहित प्राणसे प्रगट करके ॐकारमें घंटेके शब्दके समान उदात्त नाद स्थित करै ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ॥ हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुंभकरेचकैः ॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेंद्रियः ॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घंटानादं बिसोर्णवत् ॥ प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥ ३४ ॥ एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ॥ दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥ ३५ ॥ हृत्पुंडरीकमंतःस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥

इसप्रकार प्रणवसंयुक्त प्राणके अभ्याससे प्रगट करै और प्रणवमें घटाना, बढाना, साधनका, स्थित अभ्यास करै, दश प्राणायाम तीनों काल करै, इसप्रकार अभ्यास करनेसे एक महीनेमें प्रणवायु वशमें होजाता है ॥ ३५ ॥ इसदेहके भीतर हृदयकमल अधोमुख है, उसकी दंडी ऊपर रहती है, जैसे केलेकी फली होती हैं, ऐसेही कमलकी कली होती है, उसका ध्यान ऐसा करै कि, वह नीचे नालवाला और ऊपर मुखवाला खिलाहुआ

* शंका–श्रीकृष्णसे उद्धवने बूझा कि,मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीजन भगवान्का ध्यान कैसे करते हैं? तब श्रीकृष्णने उद्धवकी बातको त्यागकर सगुणरूपका वर्णन किया इसका क्या कारण? उत्तर–श्रीकृष्णचन्द्रने विचार किया कि, ब्रह्मका ध्यान मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीराज करते हैं, सो ध्यान सुननेसे और कहनेसे प्राप्त नहीं होता वह ध्यान तो बहुत दिनोंतक सत्सग करनेसे प्राप्त होता और उद्धवका हृदय ज्ञानमें कच्चा है और हमारी इच्छा परमधामके जानेकी है, जो कुछ अधिक दिन हमको मर्त्यलोकमें रहना होता तो भी उद्धव ब्रह्मज्ञान जाननेमें पक्का होजाता, ऐसा विचार करके सगुणका ध्यान वर्णन किया कि, धीरे धीरे सगुणका ध्यान करते करते ब्रह्मके ध्यानको उद्धव प्राप्त होजाँयगे, इसलिये ब्रह्मके ध्यानको त्यागकर सगुणका ध्यान श्रीकृष्णचन्द्रने वर्णन किया ।

आठ पखुरीसे युक्त है कर्णिकासहित मनमें चिंतवन करे ॥ ३६ ॥ उस कमलकी कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं, उस अग्निमें मेरे इस रूपका क्रमसे ध्यान करे उसमें प्रथम अग्निके बीचमें वक्ष्यमाण ध्यानके मंगलरूप विषय मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सम अति शान्त सुन्दर मुख दीर्घ सुन्दर चार भुजा धारण करे अतिसुन्दर ग्रीवा, उत्तम गोल कपोल, अति उज्वल मंद मुसकान युक्त ॥ ३८ ॥ समान कानोंमें प्रकाशमान मकराकृत कुण्डल धारण किये पीताम्बर पहरे मेघकी भाँति श्याम सुन्दर श्रीवत्स संयुक्त लक्ष्मीको वक्षस्थलमें धरे ॥ ३९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमालासे भूषित नूपुरोंसे शोभित चरण कमल कौस्तुभ मणिकी कांतिसे सयुक्त ॥ ४० ॥ प्रभावसे दीप्त मुकुट, कंकण,

कर्णिकायां न्यसेत्सूयसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ॥ वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमंगलम् ॥ ३७ ॥ समं प्रशांतं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ॥ सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ हेमांबरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभ प्रभया युतम् ॥ ४० ॥द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदाऽऽयुतम् ॥ सर्वांगसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥४१॥ सुकुमारम भिध्यायेत्सर्वांगेषु मनो दधत् ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ॥ बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिंतयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥ ४३ ॥ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ ४४ ॥

कटिमेखला, बाजूबंद धरे सर्वांगसुन्दर और मनोहर प्रसन्नताके कारण अतिसुन्दर शोभित मुख और नेत्र अति सुकुमार रूपका ध्यान करे, सब अंगोंमें मन दे ॥ ४१ ॥ प्रथम इन्द्रियोंको विषयोंसे खैंच मनमें मिलावै, मनको बुद्धि सारथीसे विषयोंसे निकाल मेरे स्वरूपमें मिलावै ॥ ॥ ४२ ॥ यह चित्त सर्वत्र व्याप्त है, अंग अंगमें फिरता है, उसको उन अंगोंसे निकाल मेरे मुखकी भावनामें रक्खै, मंदहास्य संयुक्त मेरे मुखका बहुत काल तक चिंतवन करै और कुछ मनमें न धरै ॥ ४३ ॥ जब मुखमें मन स्थिर होजाय, तब मुखसे भी खैंचकर सबके मूलभूत साक्षात् मेरे

स्वरूपमें रक्खे, उसे वहाँसे छुडाय साक्षात् शुद्ध ब्रह्मरूप मेरे संपूर्ण स्वरूपमें संलग्न होय, तब और कोई चिंतवन न करे ॥ ४४ ॥ इसप्रकार समाधिमें दृढ़ मति हो, अपने आत्मामें आत्मरूप मुझे ही देखे, जैसे ज्योतिमें ज्योति मिलजाती है, उसी प्रकार सर्वात्मरूपमें अपने आत्माको मिला देखे ॥ ४५ ॥ इसप्रकार सुदृढ़ तीक्ष्ण ध्यानसे योगीजन मुझमें मन संयुक्त करें, तब वह द्रव्य ज्ञान क्रियारूप भ्रम शीघ्रही निवृत्त होनेसे शान्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा–प्रथम धारणा अनुसरण, करत विष्णुपद प्रेम ॥ विघ्नरूप सिद्धी सकल, समझ यही दृढ़ नेम ॥१॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! जो जितेन्द्रिय हो और श्वास जीते चित्त मुझमें रखता हो, योगी हो, स्थिर चित्त हो; उसे यह सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥ तब उद्धवजी बोले कि हे श्रीकृष्ण ! कैसी धारणासे यह

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ॥ विचष्टे मयि सर्वात्मञ्ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युंजतो योगिनो मनः ॥ संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः॥४६॥इति श्रीमद्भागवते म० एकादशस्कंधे भक्तिध्यानयोर्वर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जितेंद्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठंति सिद्धयः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ कया धारणया कास्वित्कथं वा सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिंद्रियैः ॥ प्राकाश्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥

सिद्धि प्राप्त होती है और सिद्धि कितनी हैं ? इनका रूप क्या है ? सो सब मुझसे कहो क्योंकि, तुम योगियोंको भी सिद्धियोंके देनेवाले हो ॥ २ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! धारणा और योगके पारंगतों ने अठारह (१८) सिद्धि कही हैं, उनमें आठ मेरे आश्रय रहती हैं, वह मुझे ही प्राप्त होती हैं, अथवा जो मेरे सारूप्यको प्राप्त हैं उन्हें होती हैं, परन्तु कुछेक न्यून हो और दश सिद्धि गुणोंका कार्य हैं, सतोगुणका उत्कर्ष बढ़ातीहैं ॥ ३ ॥ उनको कहते हैं, अणिमा, महिमा, लघिमा, यह तीनों देहकी सिद्धि हैं प्राप्ति सिद्धि इंद्रियकी हैं इंद्रियोंसे मिल इंद्रियोंके देवताओंका संग होना, परलोक और इस लोकके विषयोंके भोग देखनेकी सामर्थ्य, तथा भूमिके गुप्त पदार्थका ज्ञान होना प्रकाश्य सिद्धि है ईश्वरमें मायाकी

और दूसरोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेकी सामर्थ्यको ईशिता सिद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥ गुणमें असंग हो, विषय भोग करे और संग दोष न लगे; उसे वशिता सिद्धि कहते हैं और जिसकी कामना करें वही प्राप्त हो उसे प्राकाम्य सिद्धि कहते हैं, हे उद्धव ! यह आठ सिद्धियें मेरे आश्रय रहती हैं ॥५॥ क्षुधा पिपासादिक शरीरमें न व्यापै, उसको अनूर्मिमत्व सिद्धि कहते हैं (१) दूरकी सब बातें सुननेमें भले प्रकार आवें, इसका नाम दूरश्रवण सिद्धि है (२) दूरके सब पदार्थ और सर्वत्र स्थान घर बैठे दीखें, उसका नाम दूर दर्शन सिद्धि है (३) जहाँ मन जाय वहाँ देह सहित पहुँचना इसका नाम मनोजव सिद्धिहै (४) जैसा रूप बनाना चाहै उसीप्रकारका रूप होजाय. इसका नाम कामरूप सिद्धि है (५) दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना इसका नाम परकाय प्रवेशन सिद्धि है (६) ॥ ६ ॥ अपनी इच्छानुसार मरना, इसका नाम स्वच्छन्द मृत्यु सिद्धि है (७)

गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् ॥ मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥६॥ स्वच्छंदमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम्॥यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः॥७॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वंद्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टंभोऽपराजयः॥८॥

देवता अप्सराओंके साथ क्रीडा करतेहैं उनको देखनेकी सामर्थ्य इसका नाम देवानांसह क्रीडानुदर्शन सिद्धिहै (८) जो मनमें इच्छा हो, वही वस्तु तत्काल प्राप्तहो, इसका नाम यथासंकल्पसे सिद्धिहै (९) किसी स्थलमें आज्ञाका भंग न हो इसका नाम अप्रतिहताज्ञा सिद्धि है (१०) यह दशसिद्धि सत्त्वगुणकी वृद्धिसे मिलती हैं ॥ ७ ॥ पांच सिद्धि तुच्छ हैं सो कहते हैं, तीन कालका ज्ञान होना, इसका नाम त्रिकालज्ञ सिद्धि है (१) शीत उष्ण कुछ न लगना, इसका नाम अद्वन्द्व सिद्धिहै (२) पराये मनकी बात जानलेना इसका नाम प्रचिताद्यभिज्ञता सिद्धिहै (३) अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिसे देहको किसीप्रकारकी हानि न हो, इसका नाम प्रतिष्टंभ सिद्धिहै (४) और कहीं पराजय न हो, इसका नाम अपराजय सिद्धिहै (५) यह पाँच क्षुद्रसिद्धि हैं ❀ ॥ ८ ॥

शंका–अग्नि, सूर्य, विष, जल, इत्यादि और बडे २पदार्थोंका तेज रोकनेके लिये श्रीकृष्णने सिद्धियें वर्णनकी हैं, ऐसी सिद्धियोंसे योगीजन अग्नि, सूर्य, विष, -जल, इन सबके सम्पूर्ण तेजको रोक लेतेहैं. इसमें यह शंकाहै कि, भगवान् वासुदेवमें जिन योगीश्वरोंका मन लगा है उनको इन सब पदार्थोंके रोकनेसे क्या प्रयोजन ?

हे उद्धव ! यह सब योगधारणाकी सिद्धि मात्र कहीं अब ज्ञान धारणासे सिद्धि जो प्राप्त होती हैं, वह मैं आपके सामने वर्णन करता हूँ सो सुनो ॥ ॥ ९ ॥ सूक्ष्म मेरे रूपमें सूक्ष्म भूत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, सूक्ष्म तन्मात्राके आकारसे इस भूत सूक्ष्म उपाधिमान मेरे स्वरूपमें धारण करनेसे सूक्ष्मरूपका उपासक पुरुष आणिमा सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ ज्ञानशक्ति महत्तत्त्वरूपमें महत्तत्त्वरूप मनमें धारणकरै तो महिमा सिद्धिको प्राप्तहो और भिन्न २ आकाशादिक भूतोंहीके रूपमें मन लगावै तो भूतोंकी महिमा सिद्धिको प्राप्तहो ॥ ११ ॥ पंचभूतोंके परमाणु

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥९॥ भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ॥ अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥ महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ॥ महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक्पृथक् ॥११॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रंजयन् ॥ कालसूक्ष्मार्थता योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेंद्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥ महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ॥ प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विंदतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥

अतिसूक्ष्म हैं, सो मेरा रूप है, उसमें चित्त अनुरक्त करै, तब योगी परमाणु कालके रूपको प्राप्त होता है; इसीका नाम लघिमा सिद्धि है ॥ १२ ॥ सात्त्विक अहंकार तत्त्वरूप मुझमें एकाग्रमन धरे तो सब इन्द्रियोंका अधिष्ठाता होवे, मुझमेंही मन लगानेके प्रभावसे यह प्राप्तिसिद्धि प्राप्त होतीहै ॥ १३ ॥ प्रकृतिसे क्रियाशक्ति रूप महत्त्व होयहै; सो रूपहै, उसमें मन लगावै, तो सबसे उत्तम प्राकाम्य सिद्धिको प्राप्त हो ॥ १४ ॥

—उत्तर—योगशास्त्रके जाननेवाले मुनिजन दो प्रकारके योगी होते हैं, एक तो गृहस्थ योगी जो घरमें बैठे २ योग करते हैं, जैसे राजा जनक दूसरे विरक्त योगी जो घर त्यागकर योग करते हैं, जैसे भूतनाथ शिव । आठ सिद्धि भी आदिसे चली आती हैं, श्रीकृष्णने गृहस्थ योगियोंके लिये इन सिद्धियोंको कहाया अग्नि, सूर्य, विष, जलका तेज रोकनेके लिये नहीं कहा जो कोई कहै कि, ऐसा भेद नहीं कहा कि, गृहस्थ, योगियोंके लिये यह सिद्धि तो ठीक हैं, भगवान्को वैकुण्ठके जानेकी इच्छार्थी इसलिये आतुरतासे योगियोंका नेम नहीं किया ॥

त्रिगुण मायाके नियंता अंतर्यामी कालरूपी व्यापक मेरे स्वरूपमें मन लगावै तौ सब जीव और चर अचर शरीरका नियंता होवे, सो ईशिता सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ विराट् हिरण्यगर्भ और कारणसे चौथे तुरीय ब्रह्म भगवान् नारायणमें जो मन लगावे तो वह योगी मेरे धर्मको प्राप्त होवे, तब वशिता सिद्धिको पावै ॥ १६ ॥ निर्गुण ब्रह्ममें निर्मलमन रखै तो परमानन्दको प्राप्तहो, जहाँ सब कामना समाप्त होती हैं ॥ १७॥ अब गुणहेतु सिद्धि कहते हैं–कि,श्वेतद्वीपके पति शुद्ध धर्ममय मेरे रूपमें मन लगावे तो मनुष्य शुद्धताको प्राप्त हो और उसे क्षुधा पिपासा आदि यह छः ऊर्मी–लहरी नहीं व्यापतीं ॥१८ ॥ आकाश रूप प्राण है, सो मेरा स्वरूप है, उसमें मन लगाकर शब्दका चिंतवन करे तब वह आका

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन्विशदं मनः ॥ परमानंदमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयञ्छ्वेततां याति षडूर्मिरहितो नरः ॥ १८॥ मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ॥ तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥ चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणाऽनुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥२१ ॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ॥ तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ॥ पिंडं हित्वा विशेत्प्राणो वायुभूतः षडंघ्रिवत् ॥ २३ ॥

शमें भूतोंकी वाणी प्रगट दूरहीसे सुनता है ॥ १९ ॥ यह नेत्र सूर्यमें मिलावे मनसे मेरा ध्यान करै तब सूक्ष्म दृष्टि हो विश्वको दूरहीसे देखे ॥२०॥ मन वायुके संग देहको मुझमें संयुक्त करके जो मेरी धारणा करै तो इस धारणाके प्रतापसे जहाँ मन करै वहाँही देह चली जाय ॥ २१ ॥ जब मन मेरे विषे मनकी धारणासे धरे तब मेरे प्रभावसे जैसा रूप करना चाहै वैसाही रूप करै क्योंकि उन्हें मेरे योगबलका आश्रय है ॥ २२ ॥ जो सिद्धि पराई कायामें प्रवेश करना चाहै, सो आत्माका चिंतवन करै, तब अपनी देह छोड प्राणरूप हो बाहरकी वायुमें प्रविष्ट हो

वायुके संग परकायामें प्रविष्ट होते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पसे दूसरे पुष्पमें अनायास चले जाते हैं ॥ २३ ॥ अब स्वच्छंद मृत्युकी क्रिया कहते हैं, योगधारणा करते समय प्रथम ऍडीसे गुदाका द्वार दाबकर रोके, पीछे प्राणको हृदयमें ले आवै फिर हृदयमें वक्षःस्थलमें मिलावै इसके पीछे कण्ठमें ले आवै, माथेमें लावै तब ब्रह्मरंध्रद्वारा इस देहको छोडै और जिस स्थानमें जाना चाहै वहां जाय ॥ २४ ॥ और जो देवताओंके क्रीडा स्थलमें विहार करना चाहै तो मेरी सतोगुणरूपी मूर्त्तिका ध्यान करै तब सतोगुणके अंशसे वहांहीं विमान समेत देवांगना आनकर उपस्थित हो जाती हैं ॥२५ ॥ पुरुष मुझमें विश्वासकर बुद्धिसे मनोरथ करै, तब सत्यसंकल्परूप मेरे रूपमें मन संयुक्त करै तब वैसेही मनोरथको प्राप्तहो यथासंकल्प नाम सिद्धिको पाता है ॥ २६ ॥ मैं सबोंका ईश्वर और नियंताहूं, स्वतंत्र हूं मेरे भावको प्राप्त हुआ पुरुष कहीं प्रतिहत नहीं होता जैसे मेरी

पाष्ण्याऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकंठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरंध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥ विहरिष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ॥ विमानेनोपतिष्ठंति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥ यथा संकल्पयेद्बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ॥ मयि सत्ये मनो युंजंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्म मृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रांतचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥२९ ॥ मद्वि भूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्साद्दिविभूषिताः ॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥

आज्ञा सब मानते हैं, वैसेही उसकी आज्ञाभी सब मानते हैं, कोई उल्लंघन नहीं करसकता, यह पुरुष सब गुण हेतु अप्रतिहताज्ञानाम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥२७॥ अब तुच्छ सिद्धि कहते हैं, मेरी भक्तिसे शुद्ध सत्त्वरूपमय होकर, योगी और त्रिकालके ज्ञाता ईश्वर इसप्रकार मेरी धारणा करै, तब जन्म, मृत्यु सहित तीनों कालका ज्ञान होय और इसीसे दूसरेके चित्तकी सब बात जानी जाती है ॥२८॥ मेरे योगसे जिसका चित्त युक्त हो उसकी देह भोगमय होय सो अग्निसे और अनेक उपाधिसे उपहत नहीं होते हैं, जैसे जलजंतुको जलबाधा नहीं करता, ऐसेही इसको कोई बाधा नहीं करसकता है ॥ २९ ॥ श्रीवत्स, अस्त्र, ध्वज, छत्र, चमरयुक्त मेरी विभूति अवतारका ध्यान करै, तो कभी इसकी पराजय न होय ॥३० ॥

इसप्रकार मेरी उपासना करे. तब मेरी योगधारणा करनेसे पहले कही हुई सब सिद्धि उसके आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं ॥३१॥ अनेक भाँतिकी धारणामें कष्ट बहुत हैं, इसकारण एकही धारण ऐसी करे कि, जिससे सब सिद्धि प्राप्तहों, सो कहते हैं, जितेन्द्रिय होय दांत जित होय, श्वासजित् होय मनजित होय, तुरीय ब्रह्म नारायणस्वरूप जो मैंहूं मेरी धारणा धरनेवाले पुरुषको कौन सिद्धि दुर्लभ है ? । ॥ ३२ ॥ जो मेरे साक्षात् स्वरूपकी धारणा करते हैं, उनको मेरी प्रीति होनेके कारण यह सिद्धि विघ्नकरती हैं, इसलिये इन सिद्धियोंसे व्यर्थ काल न खोवे, अर्थात् इन सिद्धियोंकी चाहना न करे ॥३३॥ एक सिद्धि जन्महीसे होतीहै जैसे देवताओंका सिद्धिसहितही जन्म होताहै, सहितही सिद्धिहैं; एक मंत्रसे, औषधीसे, तपसे जितनी सिद्धि होती हैं, यह सब योगसे पाते हैं परन्तु इनसे स.लोक्यादिक मुक्तिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ इसलिये हे उद्धव ! सब सिद्धियोंका

उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः ॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठंत्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जितेंद्रियस्य दांतस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ॥ मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अंतरायान्वदंत्येता युंजतो योगमुत्तमम् ॥ मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमंत्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ॥ योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्मांतरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥ यथा भूतानि भूतेषु बहिरंतः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥ इति श्रीम० म० एकादशस्कंधेऽष्टादशसिद्धिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यंतमपावृतम् ॥ सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

एक मैंही प्रभु हूँ क्योंकि उनकी उत्पत्ति और पालन में हीं करताहूं सिद्धियोंहीका प्रभु मैं नहीं हूं किन्तु मैं मोक्ष, सांख्य, ज्ञान, धर्म और ब्रह्मके जाननेवालोंका पालक हूँ इसलिये सिद्धियोंकी अपेक्षा नहीं रखकर मुझको प्राप्त होना यही योगका प्रधान फल है ॥ ३५ ॥ मैं सब जीवोंका आत्मा हूं क्योंकि मैं सबका अंतर्यामी हूं सर्वत्र व्यापक हूं जैसे भूतोंमें महाभूत सर्वत्र व्याप्त है और आवरणरहित है ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा–इस सोलह अध्यामें, ज्ञान प्रभाव विचार ॥ वह विभूति वर्णन करौं, देत सदा फल चार ॥१॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! तुम साक्षात् परब्रह्म निरावरण तथा स्वतंत्र हो जिनमें सब भूतमात्रकी

उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और जीवन होताहै ऐसे तुम सबके कारण हो; आदि अंतसे रहित हो ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जो वेदके तत्त्वको जानते हैं सो सर्वत्र ऊँचे नीचे पदार्थोंमें कारणरूप तुमको जान तुम्हारी उपासना करते हैं * ॥ २ ॥ जो आत्मतत्त्वको नहीं जानते हैं, उनके जाननेमें तुम नहीं आते और जिन जिन भावनाविषे ऋषीश्वर भक्ति करके तुम्हारी उपासना करके सिद्धिको प्राप्त होतेहैं, सो मुझसे उन पदार्थोंके नाम कहो ॥ ३ ॥ सब प्राणियोंके मध्यमें गुप्त तुम अंतर्यामी हो, प्राणियोंका कार्य कारण समर्थके दाता तुम्हें सब भूत तुम्हारी मायासे मोहित होकर नहीं देखते हैं ॥ ४ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ॥ उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥ येषुयेषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ॥ उपासीनाः प्रपद्यंते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥ ३ ॥ गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ॥ न त्वां पश्यंति भूतानि पश्यंतं मोहितानि ते ॥ ४ ॥ याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूतेः ॥ ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदांघ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदांवर ॥ युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

जिनमें गुप्त रहतेहो, उन विभूतियोंको पूछते हैं, हे महाविभूतियोंके पति ! जो तुम्हारी विभूति भूमिसे स्वर्ग, पाताल, दिशाओंमें निश्चय करी हैं और जो विभूति तुम्हारे प्रतापसंयुक्त हैं, सो मुझसे कहो, तुम्हारे तीर्थरूप चरणारविन्दोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसीप्रकार उद्धवका प्रश्न सुन अति संतुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे प्रश्नके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ! इसीभाँति शत्रुओंसे

* शंका—भक्तोंके प्यारे भगवान्की पूजन करे, भजन करे ध्यान करे और भगवान्की सेवा है. सो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सबको लिखा है, ऐसा नहीं लिखा है कि, ब्राह्मण अकेला भगवान्का पूजन करे, हे ब्राह्मणोंमें उत्तम कुलभूषण ! तो फिर श्रीकृष्णसे क्यों उद्धवजीने कही कि, हे भगवन् ! जिस विधिसे ब्राह्मण अपने आपको पूजन करते हैं सो विधि कहो हमको यह बडी भारी शका है क्योंकि वेदकी विधिके पूजनमे तो एक विधि है,और शूद्रकी अलग है और भक्तिमार्गमें सबकी एक विधि है सो उद्धव परमभक्त थे भक्तिमार्गकी पूजाका वृत्तान्त बूझा था ॥

उत्तर—उद्धवने ब्राह्मणके शापसे यदुवंशियोंकी क्षय देखकर ब्राह्मणोंने भगवान्को माना क्योंकि श्रीकृष्णके देखते ब्राह्मणोंके शापसे यादवोंका नाश होगया, श्रीकृष्णने कुछ सहाय नहीं की इस वास्ते उद्धवजीने जाना कि ब्राह्मणोंके ऊपर भगवान्का कुछ भी वश नहीं चलता ।

युद्धकरनेकी इच्छावाले अर्जुनने युद्धके समय कुरुक्षेत्रमें प्रश्न कियाथा ॥ ६ ॥ यदि कोई कहे कि, युद्धके समयमें इन प्रश्नका क्या प्रसंगथा, तो इसका उत्तर यह है कि, राज्यके लिये अपने जातिवालोका वध करना अनुचित अतिनिन्दित और अधर्मरूप जानकर कि, मैं इन्हें मारूंगा, यह मरेंगे इससे करुणा व्याप्त बुद्धि होनेसे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन युद्ध करनेसे निवृत्त हो स्थित हुआ ॥ ७ ॥ तब मैंने युक्तिसे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनको समझाया कि, कौन मारताहै ? और कौन मृत्युको प्राप्त होताहै ? उस उपदेशके प्रसंगमें उसने भी इसीप्रकार मुझसे पूँछाथा जैसे अभी तुमने पूँछा और उससे जो मैंने वर्णन किया है, वही मैं तुमसे कहताहूं ॥८॥ सो तुम सुनो हे उद्धव ! इन सब प्राणीमात्रका आत्मा मैं हूं, सुहृद ईश्वर नियंता मैं हूं और सब

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ॥ ततो निवृत्तो हंताऽहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७ ॥ स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥ अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥ अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ॥ गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥ गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भो वेदानां मंत्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छंदसामहम् ॥ १२ ॥ इंद्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ॥ आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ॥ देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥

प्राणिमात्रमें भी मैं हूं, सबकी उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयकर्त्ता भी मैंही हूं ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी जो गति चलती फिरती है, उनका भी योग, मन और कर्म मैंहीं हूं, जो सबको वशमें करते हैं, उनमें मेरा रूप है, अनंत गुण हैं, तिनमें समता गुण मेरा रूप है, गुण संयुक्त पुरुषका स्वाभाविक गुण मैं हूं ॥ १० ॥ गुणवाले पदार्थोंमें क्रियाशक्ति प्रधान जो महत्तत्त्व है, वह मैंही हूं, सूक्ष्मोंमें प्रथम जीव मैं हूं दुर्जयोंमें मन मैं हूं ॥ ११ ॥ देवोंका अध्यापक मैं हूं, मंत्रोंमें प्रणव मैं हूं, अक्षरोंमें अकार मैं हूं, छंदोंमें गायत्री मैं हूं ॥ १२ ॥ सब देवताओमें इन्द्र मैं हूं, आदित्योंमें विष्णु मैं हूं रुद्रोंमें नीललोहित मैं हूं ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षियोंमें भृगु मैं हूं देवर्षियोंमें नारद मैं हूं, राजऋषियोंमें मनु मैं हूं गायोंमें कामधेनु मैं हूं ॥ १४ ॥

सिद्धेश्वरोंमें कपिलदेव मैंहूं पक्षियोंमें गरुड मैंहूं प्रजापतियोंमें दक्षप्रजापति मैंहूं, पितरोंमें अर्यमा मैंहू ॥ १५ ॥ हे उद्धव! दैत्योंमें दैत्योंका राजा प्रह्लाद मैंहूं, नक्षत्र ओषधियोंका पति प्रभु चंद्रमा मैंहूं यक्ष राक्षसोंका प्रभु कुबेर मैंहूं॥१६॥गजेन्द्रोंमें ऐरावत मैंहूं,जलजंतुओंमें प्रभु वरुण मैंहूं, प्रतापवानोंमें और दीप्तवंतोंमें सूर्य मैंहूं, मनुष्योंमें नराधिप मैंहूं ॥ १७ ॥ घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा मैंहूं, धातुओंमें सुवर्ण मैंहू दण्डकर्त्ताओंमें यम मैं हूं, सर्पोंमें वासुकी मैंहूं ॥१८॥ नागेन्द्रोंमें अनंत शेषनाग मैंहूं, सींग तथा दाढवालोंमें सिंह मैंहूं, आश्रमोंमें संन्यास मैंहू हे निष्पाप! वर्णोंमें ब्राह्मण मैंहूं ॥ १९ ॥ तीर्थ

सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम्॥प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा॥५१॥मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥ ऐरावतं गजेंद्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ॥ तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥ उच्चैःश्रवास्तुरंगाणां धातूनामस्मि कांचनम् ॥ यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥ नागेंद्राणामनंतोऽहं मृगेंद्रः शृंगिदंष्ट्रिणाम् ॥ आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥ तीर्थानां स्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥ धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ औषधीनामहं यवः ॥२१ ॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ॥ स्कंदोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ॥ वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मंत्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥

और प्रवाहोंमें गंगारूप मैंहूं. स्थिर जलोंमें समुद्र मैंहूं,आयुधोंमें धनुपमैंहूं, धनुषधारियोंमें त्रिपुरका घाती महारुद्र मैंहूं निवासस्थानमें सुमेरु में हूं, दुर्गमस्थलोमें हिमालय मैंहूं वनस्पतियोंमें अश्वत्थ मैंहूं, औषधियोंमें यव मेरा रूपहै ॥२०॥२१॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ मैंहूं वेदार्थज्ञाताओंमें बृहस्पति मैंहूं, सेनापतियोंमें स्वामिकार्तिक मैंहूं उत्तम मार्ग प्रवृत्तियोंमें ब्रह्मा मैंहूं ॥२२॥ यज्ञमें ब्रह्मयज्ञमैंहूं, व्रतमें हिंसारहित व्रत मैंहूं,शोधकोंमें वायु,अग्नि, सूर्य, जल, वाणी,रूप शोधक मैं हूं, यह सदा पवित्रकारीहैं ॥ २३ ॥ योगीजनोंमें समाधि मैं हूं, विजयकी इच्छावालोंका जो विचारहै वह मैं हूं

विवेकियोंमें आत्मा,अनात्माके विवेककारी विद्या मेरा रूपहै,पांच प्रकारके जो व्याख्यादि वादी हैं,वह यह हैं,अख्याति,अन्यथाख्याति, शून्यथाख्याति असत ख्याति और अनीर्वचनीय ख्याति इनमें अनेक प्रकार वादविवाद करनेवालोंका यह इसप्रकारके हैं, वह उस प्रकारके हैं, इस रीतिके जो अनेक विकल्प हैं, वह मैंहूं॥२४॥स्त्रियोंमें शतरूपा मैंहूं,पुरुषोंमें स्वायंभुवमनु मैंहूं,मुनियोंमें नारायण मुनि मैंहूं ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैं हूं ॥२५॥ धर्मोंमें अभयदान मेराही रूप है, निर्भय स्थानोंमें आत्मनिष्ठा मैंहूं अति रहस्योंमें प्रियवचन और मौन मैंहूं, मिथुन अर्थात् स्त्री पुरुषोंमें ब्रह्मा मैं हूँ, जिनके दो अर्द्धभागोंसे स्त्री और पुरुष प्रगट हुए हैं ॥२६॥ जो पुरुष धर्ममें सावधान हैं, उनका संवतसररूपी काल मैंहूं, ऋतुओंमें वसंत मैंहूं, महीनोंमें मार्ग

स्त्रीणां तु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ॥ नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम्॥२५॥धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ॥ गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥२६॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाऽभिजित् ॥२७॥ अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः॥ द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ॥ किंपुरुषाणां हनुमान्विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ २९ ॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ॥ कुशोस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविष्ष्वहम् ॥३०॥ व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ॥ तितिक्षाऽस्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वताम् ॥ सात्त्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परः ॥ ३२ ॥

शिर मैंहूं, और सम्पूर्ण नक्षत्रोमें अभिजित मैंहूं ॥२७॥ युगोमें सतयुग मैंहूं, धीरोंमें असित देवल मैंहूं, वेदके विभाग कर्त्ताओंमें द्वैपायन व्यास मैंहूं, कवियोंमें शुक्राचार्य मैंहूं ॥२८॥ प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलयगति अगति विद्या अविद्याका जाननेवाला वासुदेव मैंहूं हे उद्धव ! वैष्णवोंमें तुम मेरे रूप हो, किंपुरुषोंमें हनुमान मैं हूं, विद्याधरोंमें सुदर्शन मैंहूं ॥२९॥ रत्नोंमें पद्मराग मै हूं, अति सुन्दर वस्तुओंमें पद्मकोश मैंहूँ, दर्भजातियोंमें कुश मैंहूं, घृतोंमें गौका घृत मैं हूं ॥३०॥ उद्यमी पुरुषोमें लक्ष्मी मेरा रूपहै, धूर्त्तोंमें छल करके जो ग्रहण करना है, वह मेरा रूप है, क्षमावान् पुरुषोंमें क्षमा मैंहू, सत्यवादियोंमें सत्य मैं हूं ॥३१॥ बलवानोंमें इन्द्रियबल और उछाहबल मैं हूं; भक्तोमें भक्तिरूप कर्म मैं हूं,नौमूर्त्तिभक्तोंकी पूजाको प्रगट हैं

उन वासुदेव,संकर्षण,प्रद्युम्न,अनिरुद्ध,नारायण,हयग्रीव,वाराह,नृसिंह,ब्रह्मामें आदि मूर्त्ति वासुदेव मैं हूं ॥ ३२ ॥ गंधर्वोंमें विश्वावसु मैं हूं, अप्सराओंमें पूर्व चित्ति मैंहूं, पर्वतोंमें स्थैर्य हिमालय मैं हूं॥ ३३॥ जलोमें उत्तम माधुर्यरस मेराही रूपहै,तेजस्वियोंमें अग्नि मैं हूं,सूर्य चन्द्र और तारोंमें कांति मैंहूं,आकाशमें परानाम शब्द मैं हूं ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणके भक्तोंमें बलिराजा मैं हूं,वीरोमें अर्जुन मैं हूं,हे उद्धव ! निश्चय करके संपूर्ण भूतमात्रकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय मैं हूं ॥ ३५ ॥ चरण,वाणी, गुदा, हस्त, लिंग इन पांच कर्मेन्द्रियोंका गमन, वचन, मलत्याग, आनंद लेना यह कर्म मैं हूं, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, श्रवण, नासिका ज्ञानेन्द्रियोंके स्पर्श,चितवन,आस्वाद,सुनना,आघ्राण कर्म मैं हूं,उन उनके अर्थ ग्रहण करनेकी शक्ति भी मैं हूं ॥ ३६ ॥ विशेष कहकर अब सामान्यसे सब विभूति कहतेहैं शब्द,स्पर्श, रूप, रस,गंध, यह पांच सूक्ष्म मात्राहैं, अहंकार महत्तत्त्व आदि यह सात प्रकृतिके विकार हैं पंच महाभूत और

विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गंधर्वाप्सरसामहम् ॥ भूधराणामहं स्थैर्यं गंधमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥ अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ॥ प्रभा सूर्येंदुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ॥ भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानंदस्पर्शलक्षणम् ॥ आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेंद्रियम् ॥ ३६ ॥ पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ॥ विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ ३७ ॥ अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ॥ मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ॥ सर्वात्मनाऽपि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ॥ न तथा मे विभूतीनां सृजतोंडानि कोटिशः ॥ ३९ ॥

एकादश इन्द्रिय यह सोलह तत्त्व हुए एक पुरुष और प्रकृति, दो यह हुए, इसप्रकार सब पचीस (२५) तत्त्व हुए, रजोगुण सत्त्वगुण, तमोगुण यह तीन गुण, इनसे आगे परब्रह्म सो सब मैंही हूं, इनकी संख्या, इनका लक्षण सहित ज्ञान और उसका फल तत्त्वका निश्चय सब मैंही हूं ॥ ३७ ॥ मैंही सबका ईश्वर हूं सब जीवरूप हूं, मैंही गुणीरूप हूं, मैंही क्षेत्ररूप और क्षेत्रज्ञरूप हूं, इसलिये मुझविना जीव, ईश्वर, गुण, गुणी, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ इत्यादिक भाव कहीं नहीं ॥ ३८ ॥ अहो ! तुम ऐसे संक्षेपसे क्या कहते हो अच्छी भाँति विस्तार सहित समझाकर कहो, तो इसका उत्तर यह देते हैं कि, पृथ्वीके परमाणुकी संख्या कितनेही कालमें मैं करताहूं और करके कहनेको भी समर्थ हूं परन्तु मेरी जो विभूतियें हैं उनकी

संख्या नहीं करीजाती, मैं अनेकू कोटि ब्राह्मण्डोंको सृजता हूं, जब ब्रह्माडोंकी ही संख्या नहीं तब उनमें स्थित मेरी विभूतियोंकी संख्या कौन करसक्ता है ? ॥ ३९ ॥ परन्तु तौभी संक्षेपसे विशेप कर विभूति कहताहूं कि, जहाँ जहाँ तेज, श्री, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, मान और नेत्रोंका आनंद, भाग्य, वीर्य, क्षमा, विज्ञान इत्यादि ये धर्म हैं, सो ये सब मेराही अंश हैं ॥ ४० ॥ ये विभूतियें संक्षेपसे मैंने इसलिये कहीं कि, ये मनका विकार हैं, परमार्थरूप नहीं जैसे आकाशके फूल, आदि वाणीमात्रसे कहीं हैं उनके तुल्य हैं ॥ ४१ ॥ पुरुषको उचित है कि, सतोगुणयुक्त बुद्धिसे वाणीको रोकै मनका नेम करै, प्राणोंको रोकै, इन्द्रियोंको निरोध करके बुद्धिको रोकै तब फिर संसारके मार्गमें न पडै ॥ ४२ ॥ यदि जो पुरुष इंद्रियोंका और बुद्धिका संयम नहीं करै तो दोष उपजै, सो कहते हैं, जो बुद्धिसे भली भाँति वाणी और मनका संयम नहीं करै तो उसके व्रत और ज्ञान सब

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ॥ वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्रयत्र स मेंशकः ॥ ४० ॥ एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ॥ मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छें द्रियाणि च ॥ आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः ॥ तस्य व्रतं तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटांबुवत् ॥ ४३ ॥ तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥ मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकाद० विभूतिव० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥ उद्धव उवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥

क्षीण होजाते हैं, जैसे कच्चे घड़ेका जल क्षण क्षणमें क्षीण होताहै ॥ ४३ ॥ इसलिये वचन, मन, प्राणको जीत मुझमें तत्पर हो, बुद्धि मेरे विषे युक्त करै, क्योंकि ऐसा करनेसे पुरुष कृत्यकृत्य होजाता है ॥ ४४ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा—इस सत्रह अध्यायमें, साधन भक्ति उपाय ॥ हंसरूप धर जो कही, सो वरणी यदुराय ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कमलदललोचन ! तुमने पहले कहदिया है कि, धर्मरूप कर्म भक्तिका और मोक्षका साधन है, परन्तु इसप्रकार कर्म करनेवालोंको अवश्य भक्ति मिलजाती है, ऐसा नियम देखनेमें नहीं आता, इसकारण वर्ण व आश्रमके आचारवालोंका तथा उस आचारके अधिकारसे रहित संपूर्ण

पुरुषोंका स्वधर्म वर्णन करो कि, वह धर्म जिस भाँति करनेसे पुरुषोंमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हो जाय सो श्रवण करनेकी इच्छा है तुम्हें अवश्य वर्णन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ हे प्रभो ! हे महाभुज ! हे श्रीमाधव ! पहले आपने हंसरूप धारणकर जो धर्म ब्रह्मजीसे कहा था वह परमसुखरूप निश्चय करके कहो ॥ ३ ॥ हे शत्रुनाशक ! बहुधा पहले सिखाया भी धर्म बहुत कालसे अब मनुष्यलोकमें न होगा ॥ ४ ॥ इस धर्मका वक्ता, कर्त्ता, रक्षक, तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा भूमिपर नहीं है, हे अच्युत ! हे प्रभो ! ब्रह्माजीकी सभामें भी तुम्हारे विना और नहीं जहाँ मूर्त्तिवंत वेदादिक हैं ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! सब धर्मके कार्यकर्त्ता, सब धर्मके वक्ता, रक्षक जब तुम इस पृथ्वीको छोड़ोगे, तब नष्टहुए धर्मोंको कौन कहैगा ?

यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ॥ स्वधर्मेणारविंदाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ॥ यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥ स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ॥ न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥ वक्ता कर्ताविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ॥ सभायामपि वैरिंच्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥ कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन ॥ त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥ तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥ (श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सभृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान्हरिः ॥ प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान्) ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ॥ वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ८ ॥ आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ॥ कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ सो सब धर्मके ज्ञाता तुम हो इससे हे प्रभो ! तुम्हारी भक्ति जिस प्रकार करें; सो सब धर्म जैसे जिसका कर्त्तव्य है, वैसेही मुझसे कहो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! इसप्रकार भक्त उद्धवजीके पूछनेसे भगवान् हरि अतिसंतुष्ट हो मनुष्योंका मरणधर्म दूर करनेवाला सनातन धर्म कहनेलगे, श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! यह तुम्हारा प्रश्न धर्मरूप है और वर्णाश्रमोंके आचारवंत पुरुषोंको भक्ति आनंदकारी है, उसको मैं कहताहूं तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ८ ॥ पहले सतयुगमें मनुष्योंका वर्ण हंसरूप था, तब सब प्रजा जन्महीसे कृत्यकृत्य

थी, इसीसे कृतयुग नाम हुआ, और कर्म भी कुछ कर्त्तव्य था, सो कहते हैं,॥९॥ उससमय प्रणव ओंकारही वेद था,चारों पाँवोंसे वृषभरूप धारण करे धर्मरूप मैं था,यह यज्ञादिक कर्म नहीं हैं,एक तपस्यासेही इन्द्रियोंको स्थिरकर एकाग्रचित्तहो हंसरूप शुद्ध मेरा ध्यान करते थे ॥१०॥ हे महा भाग ! जब त्रेतायुग हुआ तब विराट् मेरे प्राणसे और हृदयसे वेदत्रयीविद्या प्रगट हुई, उससे होता, अध्वर्यु, उद्गाता, सहित त्रिरूप यज्ञ प्रगट हुआ, सो यज्ञ मेरा रूप है ॥११॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह चारों वर्ण विराट् स्वरूपके मुख, बाहु, जंघा और चरणोंसे प्रगट हुए, और भी जो जिसका स्वधर्म था सो प्रगट हुआ ॥१२॥ गृहस्थका तो आश्रम जंघासे प्रगट हुआ, ब्रह्मचर्य्यका धर्म हृदयसे हुआ, वानप्रस्थ वक्षस्थलसे हुआ, संन्यास

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ॥ उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्विषाः ॥ १० ॥ त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी ॥ विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ ११ ॥ विप्रक्षत्रियविट्छूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ॥ वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १२ ॥ गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ॥ वक्षःस्थानाद्वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १३ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ॥ आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥ १४ ॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ॥ मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १५ ॥ तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ॥ स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥ आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदंभो ब्रह्मसेवनम् ॥ अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ॥ तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥

मस्तकसे प्रगट हुआ ॥ १३ ॥ और सब वर्ण आश्रमके स्वभाव भिन्न हुए, जिसने नीचयोनिमें जन्म धारण किया, उसका स्वभाव नीच हुआ, जिसने उत्तम योनिमें जन्म लिया, उसका स्वभाव उत्तम हुआ ॥ १४ ॥ शम, दम, तप, शौच, संतोष, क्षमा, शुद्ध भाव, मेरी भक्ति, दया, सत्य, यह सब ब्राह्मणका स्वभाव है ॥ १५ ॥ तेज, बल, धैर्य, शौर्य्य, क्षमा, उदारता, उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्यता, ऐश्वर्य यह क्षत्रियोंका स्वभाव है ॥१६॥ आस्तिकता, दान, निर्दम्भ ब्राह्मणकी सेवा, द्रव्य संग्रहमें अतृप्ति यह वैश्यका स्वभाव है ॥ १७ ॥ गायोंकी ब्राह्मणोंकी और देवताओंकी

निष्कपट सेवा करै जिससे जो पावै उसीमें संतोष रक्खे, यह शूद्रका स्वभाव है ॥ १८ ॥ अशौच, मिथ्या वाणी, चोरी, नास्तिकता, वृथा कलह, काम, क्रोध, तृष्णा, यह सब नीच जातिके स्वभाव हैं ॥ १९ ॥ हिंसा न करै, सत्य बोले, चोरी न करै, काम, क्रोध, लोभ, न हो, क्योंकि सबसे बडा जातिका धर्म है ॥ २० ॥ अब चार आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचारीका धर्म कहते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके गर्भसे लेकर सब संस्कार हुए हों अर्थात् जन्म धारण करनेके उपरान्त दूसरा जन्म गायत्री उपदेश होनेके पीछे गुरुके घर जायरहै इन्द्रियोंका दम करै, जब गुरू बुलावै तब वेद पढै ॥ २१ ॥ मेखला, मृगचर्म, दंड, रुद्राक्ष माला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, जटा इत्यादि सब धारण कियेरहै तेलसे स्नान न करै, दाँत

अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ॥ कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोंतेवसायिनाम् ॥ १९ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ॥ भूतप्रियहितेहा च धर्मोयं सार्ववर्णिकः ॥ २० ॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ॥ वसन्गुरुकुले दांतो ब्रह्माधीयीत चाऽऽहुतः ॥ २१ ॥ मेखलाजिनदंडाक्षब्रह्मसूत्रकमंडलून् ॥ जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान्दधत् ॥ २२ ॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ॥ न च्छिद्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २३ ॥ रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ॥ अवकीर्णेऽवगाह्याऽप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥२४॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्छुचिः ॥ समाहित उपासीत संध्ये च यतवाग्जपन् ॥ २५ ॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥ न मर्त्यबुद्धयाऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २६ ॥

धावन न करै; वस्त्र क्षारसे न धोवै आसनको न रंगै दर्भ धारण करै ॥ २२ ॥ स्नान, भोजन, होम, जप, मूत्र, पुरीष जब करै तो मौन रहै, नख, रोम और क्षौरकर्म न करावै, और कॉखके उपस्थके केश दूर न करावै ॥ २३ ॥ वीर्यस्खलन न करै, आप ब्रह्मचर्यको धारण करे रहै और जो प्रमादसे स्वप्नमें वीर्य स्खलितहुआ होय तो जलमें स्नान करके प्राणायाम करके गायत्रीका जप करै ॥ २४ ॥ अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु; वृद्ध, देवताओंकी पवित्र और एकाग्रचित्तसे उपासना करै और यतवाक् होकर जप करै ॥ २५ ॥ गुरुओंका मनुष्यबुद्धिसे

सेवन न करै,किन्तु मेरा स्वरूप जानकर सेवन करै, कभी अवज्ञा न करै, क्योंकि संपूर्ण देवता गुरुओंमें वास करते हैं ॥ २६ ॥ साँझ सवेरे भिक्षा ले आवे, सो गुरुके आगे धरै,और भी जो कुछ प्राप्त हो, सो सब गुरुके समर्पण करै और जब, गुरुजीकी आज्ञा होय तो संयमसे भोजन करै॥२७॥ जो गुरु कहींको जायँ,तो उनके संग जाय, जब गुरु सोवें तो उनके चरण दाबै, जब बैठें, तब सावधान हो हाथ जोड़ बहुत दूर न बैठे,आचार्यका आदर सन्मान करै, अच्छी भाँति सदा उपासना करै ॥ २८ ॥ इसप्रकार विषय भोग रहित होकर गुरुकुलमें वास करै और जबतक विद्या पूर्ण हो तबतक अखण्डित व्रत धारण करे रहै ॥ २९ ॥ यह तो ब्रह्मचारीके आश्रमका सामान्य धर्म कहा, अब जो ब्रह्मलोकके जानेकी इच्छा करै, सो मेरी

सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ॥ यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ २७ ॥ शुश्रूषमाण आचार्य सदोपासीत नीचवत् ॥ यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृतांजलिः ॥ २८ ॥ एवं वृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ॥ विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखंडितम् ॥ २९ ॥ यद्यसौ छंदसां लोकमारोक्ष्यन्ब्रह्मविष्टपम् ॥ गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३० ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ॥ अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३१ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ॥ प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३२ ॥ शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् ॥ तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याऽभक्ष्याऽसंभाष्यवर्जनम् ॥ ३३ ॥

निष्ठासे ब्रह्मचर्य्य व्रत करै सो कहते हैं कि,जो यह ब्रह्मचारी, जहाँ मूर्त्ति धारण करे वेद रहते हैं, ऐसे ब्रह्मलोकमें जाना चाहै तो गुरुओंहीके पास रहै, वेदाध्ययन करै, निष्काम ब्रह्मचर्य व्रत करै, अधिक क्या कहैं ? अपना देहतक भी गुरुके समर्पण कर दे ॥ ३० ॥ पूजाके स्थल कहते हैं, अग्नि, गुरु, आत्मा सब प्राणीमात्रमें मेरी बुद्धि रक्खे मुझसे भिन्न न जानै, इसप्रकार ब्रह्मतेजयुक्त निष्पाप मेरी उपासना करै ॥ ३१ ॥ स्त्रियोंका दर्शन, उनसे भाषण, परिहास न करै और जो कहीं कोई स्त्री पुरुष इकट्ठे होकर बैठे होयँ तो उनको न देखै, आप गृहमें न रहै ॥ ३२ ॥ यह धर्म सब आश्रमोंका कारण है, शौच मट्टीसे हाथ पाँव धोवै, आचमन करै, स्नान, संध्या, शुद्धभाव तीर्थ सेवन, तप, भिक्षा करै,परन्तु स्पर्श किसीका न

करै, जो असंभाष्य हैं, उन नीचोंका त्याग करै ॥ ३३ ॥ हे कुलनंदन ! सब प्राणीमात्रमें मेरा भाव रक्खै, मन वचन इन्द्रियोंको संयुक्त करै, यह नेम सब आश्रमोका है ॥ ३४॥ इस प्रकार जो व्रत रक्खे सो अग्निके समान तेजस्वी होवै, सब कर्म जला, निर्मल हो, मेरी भक्तिको प्राप्त होवै॥३५॥ यह निष्काम ब्रह्मचारीके लिये मोक्षका प्रकार कहा जो सकाम होय सो वेदार्थ विचार, ब्रह्मचर्य छोड़ गृहस्थके आश्रममें आना चाहे, तो गुरुको दक्षिणा दे, आज्ञा ले तब अभ्यंगादिक करके मेखला, दंड, मौंजी छोड़े (इस कर्मका नाम समावर्त्तन कहते हैं) ॥ ३६ ॥ तहाँ दोनों पक्ष कहते हैं कि, जो विवाहकी इच्छा होय तो गृहस्थ होजाय, निष्काम होय तो वानप्रस्थ आश्रम ले अथवा संन्यास ले, आश्रमसे आश्रममें जाय, आश्रम विना न रहै, ब्राह्मणमें श्रेष्ठ उस आश्रममें मेरी भक्ति करताहुआ विचरै और पिछले आश्रमसे पूर्वमें न आवै, अर्थात् संन्यासी गृहस्थी

सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनंदन ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥ ३४॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः॥ ३५ ॥ अथानंतरमावेक्ष्यन्यथा जिज्ञासितागमः ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद् गुर्वनुमोदितः ॥ ३६ ॥ गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्पर श्चरेत् ॥ ३७ ॥ गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ॥ यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३८ ॥ इज्या ध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्त पस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः ॥ ४० ॥

न हो ॥ ३७ ॥ जो गृहस्थ होना चाहै सो समावर्तन कर्मसे विवाह करै, गृहस्थी होकर लक्षणवंत अपने कुल समान कुलकी कन्या विवाहे, प्रथम तो अपने वर्णकी व्याहै पीछे और भी करना चाहै तो अनुक्रमसे और व्याहै ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यह तीन धर्म समान हैं यज्ञ, अध्ययन, दान, यह तीनों वर्णोंको समान हैं, परन्तु प्रतिग्रह, अध्यापन, यज्ञ कराना यह तीनों कर्म ब्राह्मणहीको करने उचित हैं ॥३९॥ प्रतिग्रह लेनेमें जप, यज्ञमें कृपणता आदि दोष जब देखे तो स्वामीसे छोड़े खेतमें पड़े कणसे आजीविका करै अथवा और किसी वस्तुसे आजीविका करै यज्ञ करै करावै अथवा पढ़ावै यह दो वृत्ति करै, जो इनमें भी हीनता दोष देखै तो उंछवृत्तिही करै ॥ ४० ॥

ब्राह्मणका यह देह निश्चयही तपस्याके कष्ट सहनेको उत्पन्न किया है, क्षुद्र कामको न करे, तो परलोकमें अनंत सुख ब्राह्मणको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ जो हाटमें अथवा क्षेत्रोंमें अन्न पड़ा रहै उसको बीन उसीसे निर्वाह करै और उसीसे संतोष रक्खै उत्तम निष्काम धर्म करै, मुझमें चित्त रक्खै घरमें तो रहै परन्तु बहुत आसक्त न हो, इसप्रकार शान्तिको प्राप्त हो ॥ ४२ ॥ दरिद्रीके लिये इसप्रकार निर्वाह करनेको कहाहै, जो सद्द्रव्य है, उसका

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ॥ कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ॥ ४१ ॥ शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचेता धर्मं महांतं विरजं जुषाणः ॥ मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शांतिम् ॥ ४२ ॥ समुद्धरंति ये विप्रं सीदंतं मत्परायणम् ॥ तानुद्धरिष्ये न चिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४३ ॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ॥ आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४४ ॥

प्रकार कहते हैं जो ब्राह्मण दरिद्री होय और मेरी भक्ति करनेमें तत्पर होय उसको जो आपदासे उद्धार करतेहैं, सो हे उद्धव ! उन मनुष्योंको मैं थोडेही कालमें उद्धार करूंगा, जैसे समुद्रमें डूबतेहुओंको नाव पार लगाती है, वैसेही जो मनुष्य अथवा ब्राह्मणका निर्वाह करते हैं, मैं संसाररूपी समुद्रसे उन मनुष्योंको निश्चय पार करूंगा ❀ ॥ ४३ ॥ राजा होय तो उसका आवश्यक धर्म यही है कि, जैसे पिता पुत्रको कष्टसे छुडाता है,

शंका–श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि, हमारा भजन करनेवाले ब्राह्मणको दुःखदारिद्र आदि लेके अनेक संकटसे जो कोई छुडाता है, तो उस छुडानेवाले मनुष्यको हम बहुत शीघ्र दुःख दारिद्रसे छुडा देते हैं, इस बातमें यह शंका होती है कि, अपने भजन करनेवाले ब्राह्मणको आप दुःख दारिद्रसे क्यों नहीं छुडाते, दूसरेको लोभ क्यों दिखातेहैं, जैसे बनिये आडती लोगोंसे काम करते हैं ऐसा वचन श्रीकृष्णचन्द्रने क्यों कहा ?

उत्तर–बडे बडे पाप ब्राह्मणलोग करते हैं, तो उन बडे पापोंसे दुःख दारिद्र ब्राह्मणोंको होता है और क्षत्रिय, वैश्य शूद्रको थोडेही पापोंसे दुःख होता है, इस बातका भगवान्ने विचार किया कि, हम शीघ्र ब्राह्मणोंको अपना भजन करनेवाला जानकर दुःख दारिद्रसे छुडा सकेंगे तो ब्राह्मण और अभिमान करके पाप करेंगे और जान लेंगे कि, भजनके प्रतापसे दुःखनाश जल्दी होजाताहै फिर संसारका सुख क्यों नहीं मांगे हमारा पाप क्या करैगा ? ऐसा विचार कर ब्राह्मणोंका मान नाश करनेके लिये जब तक ब्राह्मण पापसे नहीं छूटता, तबतक उस ब्राह्मणके दुःख दारिद्रको दूसरे मनुष्यसे दूर कराते हैं कि, ब्राह्मणोंको विदित होजाय कि, हम भगवान्का ऐसा बडा भजन करते हैं तो भी हमको पापी जानकर हमारे दुःख दारिद्रका नाश नहीं किया, जो हमारा पाप हमारे पास न होता तो शीघ्रही भजनके प्रभावसे हमारे दुःखका नाश करदेते, अब पाप कभी नहीं करेंगे ऐसा विचारके ब्राह्मण पापबुद्धिको त्यागदेते इसलिये दूसरेसे ब्राह्मणका दुःख दारिद्रनाश करनेके लिये श्रीकृष्णने कहा ।

तथा जैसे कीचडमें पडे हाथीको हाथी निकालता है, उसी प्रकार संपूर्ण प्रजाको दुःखसे उद्धार करै, इसीप्रकार धैर्यवान् राजाको विपत्तियोंसे अपनी आप रक्षा करनी उचितहै ॥ ४४ ॥ इसप्रकार राजालोग इस लोकमें सब पाप दूर कर सूर्यके समान प्रकाशित विमानमें बैठ इन्द्रके संग आनन्द करते हैं ॥४५॥ यदि ब्राह्मण दरिद्रसे दुःख पाता हो, तो उसको उचित है, कि वाणिज्य वृत्तिकर आपदासे छूटै, परन्तु मदिरा (शराब) और रसादिक न बेचे और इसमें भी जो निर्वाह न हो तो क्षत्रियवृत्ति करै, परन्तु नीच सेवाकी वृत्ति कभी न करै, यह ब्राह्मणका धर्म कहा ॥४६॥ अब क्षत्रियका धर्म कहते हैं, जो आपदा आनकर पडै तो वैश्यवृत्तिसे जीविका करै, या मृगया करके जीवन धारण करै, वा ब्राह्मणका रूपधर अध्यापनसे जीविका करै परन्तु नीचकी सेवा न करै ॥४७॥ वैश्यको यदि आपदा पडै तो शूद्रकी वृत्तिको करै, उसमें भी आपदा हो तो चतुर

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ॥ विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिंद्रेण सह मोदते ॥ ४५ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ॥ खड्गेन वाऽऽपदाक्रांतो न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४६ ॥ वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि ॥ चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४७ ॥ शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यश्शूद्रः कारुकटक्रियाम् ॥ कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४८ ॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ॥ देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत ॥ ॥ ४९ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ॥ धनेनाऽपीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥ ५० ॥ कुटुंबेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुंब्यपि ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५१ ॥

ताकी क्रियासे जीविका करै, जब अपनी आपदा निवृत्त होजाय तो नीचवृत्ति छोड़दे ॥ ४८ ॥ इसप्रकार सबोंकी वृत्ति कही, अब गृहस्थका आवश्यक पंचयज्ञ कर्त्तव्य कर्म कहते हैं कि,ब्रह्मयज्ञ करके तो ऋषियोंको संतुष्ट करै, श्राद्धमें स्वधासे पितृयज्ञ करै,होममें स्वाहा करके देवताओंका यज्ञ करै,बलिदानसे भूत यज्ञ करै,अन्न जलसे मनुष्योंको तृप्त करै, यथाशक्ति करै सबमें मेरी बुद्धि रक्खै यह कर्म सब अवश्य कर्तव्य हैं॥४९॥ शक्तिके अनुसार कर्त्तव्य कर्म कहते हैं, विनाही उद्यम अथवा उद्यमसे पाया हो और शुद्धहो, तो उस धनसे जिसमें कुटुम्बको पीड़ा न हो, वैसेही न्यायसे यज्ञोको करै ॥ ५० ॥ कुटुम्बमें आसक्त न हो, परन्तु मेरे भजनमें सावधान रहै, इस संसार प्रपंचको मिथ्या जानै स्वर्गको भी मिथ्या

माने, आत्माहीको केवल सत्य जाने ॥ ५१ ॥ पुत्र,स्त्री, कुटुम्बी, बन्धु इत्यादिकोंका संग यात्रा करनेवालोंके संगके समान है, जैसे निद्रामें स्वप्न देखते हैं और जागतेही नष्ट होजाते हैं, ऐसेही देहके नष्ट होनेपर यह सब चले जाते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार घरमें विचार करता अतिथिकी भाँति रहै, यह मेरा घर है, ऐसा अहंकार न रक्खै, क्योंकि अहंता और ममता छोडनेसेही पुरुष नहीं बँधता ॥ ५३ ॥ गृहस्थके जो धर्म कहे हैं, उनसे मेरी पूजा करै मुझमें भक्ति करै और गृहस्थाश्रममें रहनेके उपरान्त वानप्रस्थ होकर जो संतान हो तो संन्यास ले ॥ ५४ ॥ जो पुरुष केवल घरमें ही आसक्त हैं, पुत्र वित्तमें प्रीति कर स्त्रीके वशमें रहते हैं, वह महादीन हैं, मूर्ख हैं और अहंता ममतासे बँधे हैं ॥५५॥ मेरी माता और मेरा पिता

पुत्रदाराप्तबंधूनां संगमः पांथसंगमः ॥ अनुदेहं वियंत्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५२ ॥ इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् ॥ न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥ ५३ ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ॥ तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५४ ॥ यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ॥ स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥ ॥ ५५ ॥ अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः ॥ अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवंति दुःखिताः ॥५६ ॥ एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥ अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोंधं विशते तमः ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० ब्रह्मचर्यादि० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ॥ वन एव वसेच्छांतस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

वृद्ध हैं, स्त्री छोटी है, बालक छोटे हैं, यह मेरे विना कैसे जीवन धारण करैंगे ? हम विना यह दीन अनाथ दुःखी होजायँगे, इस प्रकार जो सोचते हैं ॥ ५६ ॥ और गृहकी आशा करके विक्षिप्तमन हो मति (बुद्धि) मूढ होनेसे स्त्री पुत्रादिकोंका ध्यान करते हैं सो पुरुष कभी तृप्त न होकर मरनेके उपरान्त अत्यन्त तामसी योनिमें पडतेहैं॥५७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा–अष्टादश अध्यायमें, वानप्रस्थ संन्यास ॥ कहूँ दोउनके धर्ममें, करहु यही अभ्यास ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जब आयुका तीसरा भाग आवै, अर्थात् सौ वर्षकी आयुके हिसाबसे पिछत्तर (७५) वर्ष पूरे हों तो पुत्रोंको घर सौंपकर वनमें बसै और यदि स्त्री अपने संग आवै तो वनमें

रक्खै, नहीं तो वह पुत्रके पास रहै आप वनमें शांत होकर रहै ॥ १ ॥ कंद, मूल, फलोंसे आत्माको तृप्त करै वल्कल वस्त्र पहरै तृण, पत्ते और मृगचर्म धारण करै यह सब वनकी वस्तु अतिपवित्र हैं ॥ २ ॥ केश, रोम, नख, दाढी, मूंछ दूर न करावै और इनको धोवै भी नहीं, जलमें तीन काल स्नान करै भूमिमें शयन करै ॥ ३ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तपै, वर्षामें जलवृष्टि सहै जाड़ेमें कंठतक जलमें मग्न रहै इस प्रकार तप करै॥ ॥ ४ ॥ अग्निसे पकाहुआ पदार्थ खाय या समयके पक्व फलादि खाय, ओखली व पत्थरसे कुटी होय वह वस्तु खाय, दाँतसे कुटी वस्तुको भी खाय ॥ ५ ॥ अपनी सब आजीविकाकी वस्तु आपही ले आवै और देशकालका बल देखै दूसरेका लायाहुवा अन्नादिक पदार्थ न ले ॥ ६ ॥ वनकी

कंदमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्दतः ॥ न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थंडिलेशयः ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषाड्जले ॥ आकंठमग्नः शिशिर एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समाश्नीयात्कालपक्वमथापि वा ॥ उलूखलाश्मकुट्टो वा दंतोलूखल एव वा ॥ ५ ॥ स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ॥ देशकालबलाभिज्ञो नाददीताऽन्यदाऽऽहृतम् ॥ ६ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालचोदितान् ॥ न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥ अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ॥ चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसंततः ॥ मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ॥ कामायाल्पीयसे युंज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥

वस्तुके चरू पुरोडाशनमें देवताओका यज्ञ करै, वनमें आश्रम बनाकर रहै, परन्तु वेदोक्त पशुसे मेरा यजन न करै ॥ ७ ॥ पूर्ववत् नाम गृहस्थाश्रम सरीखे अग्निहोत्र दर्श पूर्णम सेष्टि चातुर्मास्य यज्ञ इतन ही देदने गृहस्थाश्रमोंको अनुष्ठान कहा है ॥ ८ ॥ इसप्रकार जीवन तक तपस्या करनेसे जिसका माँस सूख जानेसे संपूर्ण देहमें नसें दिखाई देने लगे, वह वानप्रस्थ जो कि मैं तपोमय हूं सो मेरा आराधन करनेसे प्रथम ऋषिलोकसे मह लोकमें जाय, इसके उपरान्त क्रमसे मुझे भी प्राप्त होगा ॥ ९ ॥ इतने कष्टसे प्राप्त हुई मोक्ष फलदायक तपस्या तुच्छ काममें न लगावै, जो लगावै

तो उससे मूर्ख कौन है ?॥ १० ॥ इसप्रकार संपूर्ण धर्म निष्काम करै, तो निश्चय मोक्ष होजाय और जो आयुके तीसरे भागमें वैराग्य थोड़ासा उत्पन्न हो तो संन्यास ले,यदि शरीरकी सामर्थ्य पहलेही घट जाय तो विरक्त होकर रहै, संन्यास ले और जो विरक्त भी न होसकै उसे क्या करना चाहिये ? तो कहते हैं कि, जब यह धर्मके नेम करनेमें असमर्थ हो वृद्धावस्था हो तो अग्निहोत्रकी अग्नि आपमें रखकर चित्त मुझमें स्थिरकर अग्निमें प्रविष्ट हो शरीरको छोड़दे॥ ११ ॥ और जो विरक्त होय, सो कर्मोंका फल तथा देवताओंके लोकको नरकके समान जानैं, ऐसा करनेसे यह सब

यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥ यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यङ्‌ न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ॥ अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥ विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ॥ विघ्नान्कुर्वंत्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥ १४ ॥ बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दंडपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥ १५ ॥

अग्निहोत्रादिक कर्म छोड़ अच्छी भाँति संन्यास लेय ॥ १२ ॥ संन्यासके आरंभके उपदेशके अनुसार मेरा पूजन करे, ऋत्विजोंको सर्वस्व दे, अग्निहोत्रको अपने प्राणोंमें प्रविष्ट कर, आप निरपेक्ष हो संन्यास लेय ॥ १३ ॥ जब ब्राह्मण संन्यास लेता है, तब देवता, स्त्री पुत्ररूप होकर उसको इसकारण विघ्न करते हैं कि, यह हमारी अवज्ञा करके आगे चलना चाहता है, परन्तु तोभी यह पुरुष उन विघ्नोंको लाँघ संन्यास ग्रहण करे, उनके विघ्न न मानै ❋ ॥ १४ ॥ यदि संन्यासी वस्त्र पहरना चाहै तो जितनेसे कौपीन ढकै उतना वस्त्र पहरे और कुछ धारण न करे,

❋ शंका–जो ब्राह्मण वैराग्यमें मन लगाकर संन्यास लेनेकी इच्छा करते हैं उनके विघ्नको स्त्री आदि परिवार कैसे करेंगे ? क्योंकि मन कच्चा हो तब तो जो चाहे सो विघ्न करदेवै और जो मन पक्का होकर वैराग्यमें लग गया तो किसीका किया विघ्न नहीं होसक्ता ।

उत्तर–भाई, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बसे उत्पन्न हुई जो फाँसी है उसको सब चर अचर जीवजन्तु काटा चाहें तो किसीकी काटी नहीं कटसक्ती, जो कोई महात्मा काटनेकी इच्छा करेंगे तो बडी कठिनतासे वह फांसी कटसक्तीहै क्योंकि स्त्री पुत्रके मोहमें पशु पक्षी भी बँधगये हैं फिर मनुष्य बँधगया तो क्या आश्चर्यकी बात है ? इसलिये श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा कि, ब्राह्मणका मन वैराग्यमें लगा है तो भी स्त्री पुत्र आदि परिवार सन्यासमें विघ्न करतेहैं ।

एक दंड धारण करै; एक जल पात्र अर्थात् कमंडलु अपने पास रक्खे और कुछ नहीं रक्खे ॥ १५ ॥ पृथ्वीमें देखकर पांव धरै, वस्त्रसे छना जल पान करै, वचन सत्य बोले और आचरण मनमें विचार जब शुद्ध मन न होय तब करै ॥ १६ ॥ हे उद्धव ! वचनका दंड मौन रहना, देहका दंड सकाम कर्म नहीं करना, चित्तका दंड प्राणायाममें स्थिर करै, जिसके यह दंड नहीं वह बाँसके दंडका संन्यासी कहलाता है ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंमें ही प्रतिग्रह, यजन, अध्ययन, शिलोंच्छवृत्ति यह चार प्रकारके आचार रखते हैं, उनके घर भिक्षा करै और जो निन्दित हो उसके घर भिक्षा न करै यहाँ मुझे यह अलभ्य लाभ होगा इस उद्वेगसे रहित सात घर भिक्षा करै, जो कुछ प्राप्त हो उसीमें संतोष करै ॥ १८ ॥ भिक्षाले जहाँ जलाशय

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥१६॥ मौनाऽनीहानिलायामा दंडा वाग्देहचेतसाम् ॥ न ह्येते यस्य संत्यंग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥ १७ ॥ भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् ॥ सप्ता गारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥ १८॥ बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ॥ विभज्य पावितं शेषं भुंजी ताऽशेषमाहृतम् ॥ १९ ॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेंद्रियः ॥ आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ॥ २० ॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ॥ आत्मानं चिंतयेदेकमभेदेन मया मुनिः ॥ २१ ॥ अन्वीक्षेतात्मनो बंधं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ॥ बंध इंद्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरन्मुनिः ॥ विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥

होय वहाँ जाय पाँव धोवै आचमन करै मौन होकर मार्जन करै, मार्गके दोषकी शुद्धि करै, पीछे विभाग कर विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, भूतोंको समर्पण करै थोडा २ अलग अलग करके रक्खै, बाकी सब भोजन करै ॥ १९ ॥ अब एक दूसरी क्रिया और भी है कि, संपूर्ण पृथ्वीमें फिरे, परन्तु संग किसीका न करै. जितेन्द्रिय रहै, आत्माहीमें संतुष्ट धीर और समदृष्टि हो ॥ २० ॥ एकांत निर्भयस्थलमें रहै, मेरी भावनासे चित्त निर्मल रक्खै, आत्मामें और मुझमें भेद नहीं देखे, अभेदसे एक आत्मा विचारै ऐसा विचारशील हो ॥ २१ ॥ ज्ञाननिष्ठासे अपने बंध मोक्षका विचार करै । इन्द्रियोंके विक्षेपको बंध कहते हैं और इन्द्रियोंके संयमको मोक्ष कहतेहैं ॥ २२ ॥ इसलिये इन्द्रियोंको निग्रह करके मुझमें चित्त

रक्खे, तुच्छ कामनाओंसे विरक्त रहै, तब मुनि अतिउत्तम आत्मसुखको प्राप्त हो सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक विचरै ॥ २३॥ नगर, ग्राम, व्रजमें भिक्षाको जाय, जहाँ कहीं बहुतसे मनुष्योंका संग आया हो, या यात्रियोंका संग हो तहाँ भिक्षाको जाय, जो पुण्य देश, नदी, पर्वत, वन, आश्रम हैं, वहाँ पृथ्वीमें फिरै ॥ २४ ॥ वानप्रस्थके आश्रममें जाय नित्य भिक्षा करै, उसका अन्न शुद्ध है, उससे सत्त्व शुद्ध होताहै, तब शीघ्रही सिद्धि मिलती है और मोह संपूर्ण घटजाता है ॥ २५ ॥ गृहस्थके घर उत्तम सामग्री मिष्टान्न पावे, वहाँ भिक्षा छोड़ उंछवृत्तिके अन्नकी भिक्षाको मन कैसे चलै ? तो कहते हैं कि, इन मिष्टान्नादिकोंको वस्तु करके न देखे इससे नाशको प्राप्त होता है, इस लोक तथा परलोकमें मन आसक्त न करै मिष्टान्नादिकके लिये उपाय न करै ॥ २६ ॥ जो यह जगत् और शरीर, मन, वचन प्राणसे युक्त हैं, अहंता, ममताके धर्म यह आत्मामें सब

पुरग्रामव्रजान्सार्थान्भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ॥ पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥२४॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलांधसा ॥ २५ ॥ नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति ॥ असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ॥ सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः ॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ॥ वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतो न स्यान्न पाखंडी न हैतुकः ॥ शुष्कवादविवादेन कंचित्पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥

मायामात्र हैं, यथार्थ नहीं, ऐसी युक्तियोंसे आत्मनिष्ठहो फिर देहादिकका स्मरण न करै, क्योंकि स्मरणसे वैराग्यमें प्रतिबंध होता है ॥ २७ ॥ अब परमहंसधर्म कहते हैं; एक वैराग्यसे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पूर्ण ज्ञानी अथवा मुक्तिभी न चाहनेवाले मेरी दृढभक्ति, करनेवाले भक्त दंडादिककी आवश्यकतावाले आश्रमधर्मोंकी आसक्ति त्यागकर जितना अपनेसे होसके उतना आश्रमसम्बन्धी धर्म करै,परन्तु अत्यन्त उसमें लिप्त न हो॥२८॥ विवेकी होनेपर भी बालकके समान फिरते हैं, मान अपमानसे शून्य रहतेहैं, अति चतुर हैं परन्तु तोभी जड़की भाँति रहतेहैं,अनुसंधान नहीं रखते हैं, सो बुद्धिमान् हैं परन्तु उन्मत्तके समान वेदके धर्मोंमें निष्ठ हैं, परन्तु कुछ आचारका नेम नहीं है ॥ २९ ॥ कर्मही करना मुख्य

है, ऐसे वेदके वादमें आसक्त न हो, पाखण्डी न हो, केवल तर्कही सब जगह न करै और जहाँ प्रयोजन विना वाद होता हो वहाँ किसीका पक्ष न
करै ॥ ३० ॥ किसी मनुष्यसे उद्वेग न करै न मनुष्योंसे आप उद्विग्न हो, अपमान किसीका न करै, आप अपमान सहै, इस देहके लिये पशुके
समान किसीसे वैर नहीं करै ॥३१॥ क्योंकि सबमें आत्मा एकही है वैर किससे करै ? ऐसे समझकर निवृत्तिहोवै, जैसे जलके पात्र अनेक होते हैं और
उनमें अनेक चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब दीखते हैं परन्तु चन्द्रमा एकही है इसीप्रकार आत्मा भी एकही है, और अनंतसे भासै है ॥ ३२ ॥ और जो
समय समयमें भोजन न मिलै तो खेद न करै, पावै तो हर्ष न करै, धैर्य रक्खे क्योंकि प्राप्ति अप्राप्ति दोनों दैवाधीन हैं ॥३३॥ आहार तो अवश्य

नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं नोद्वेजयेन्न तु ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥ देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केन
चित् ॥ ३१ ॥ एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ॥ यथेंदुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥ अल
ब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित ॥ लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतंत्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत
युक्तं तत्प्राणधारणम् ॥ तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥
तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥ अन्यांश्च निय
माञ्ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ न हि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ॥ आदेहांतात्कचि
त्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥ ३७॥

चाहिये कि, जिससे जीवन हो, प्राण धारणका तो प्रयोजन यह है कि, जो तत्त्वको विचारै तो मुक्त हो ॥ ३४ ॥ ईश्वरेच्छासे जो कुछ मिलै सो
भक्षण करै, भला हो वा बुरा हो इसीप्रकार मुनि भी वस्त्र, शय्या जैसी पावै, उसेही ग्रहण करै ॥ ३५ ॥ जैसे मुझे कुछ चाहना नहीं और जैसे मैं
लीलापूर्वक धर्म करताहूं, उसीप्रकार ज्ञानीपुरुष भी आसक्ति छोड़ शौच, आचमन, स्नान और भी नेम करै, विधिके वश होकर न करै, ज्ञान
दृष्टि रखकर क ॥ ३६ ॥ ज्ञानीको भेदकी प्रतीति नहीं होती और जो होती है, वह पहलेही मेरे ज्ञानसे नष्ट होजाती है यद्यपि देह गिरनेतक कभी
कभी आहारादिकमें भेद प्रतीति देखीजाती है, परन्तु तो भी वह अयथार्थ रूप जानीहुई है, देहके गिरनेपर मुक्ति होजाती है ॥ ३७ ॥

अब केवल वैराग्ययुक्त हो ज्ञानकी इच्छा रखनेवालेका कर्त्तव्य कहते हैं कि, जो यह गृह पुत्र आदि सबको दुःखरूप जान वैराग्य युक्त हो और ज्ञानकी इच्छा करतेहो मेरे धर्म भी कुछ जानता हो, सो उत्तम गुरुका सेवन करे ॥ ३८ ॥ जबतक ब्रह्मज्ञान मिलै तबतक श्रद्धा और भक्ति रखकर ईर्षा छोड़ गुरुको मेराही स्वरूप जान अत्यन्त आदरसत्कारसे उसकी सेवा करै ॥ ३९ ॥ अब अधिकार विना जो संन्यास लेता है, उसकी निन्दा करते हैं जो इंद्रियोंका निग्रह न कियाहो, बुद्धि अति आसक्तहो, ज्ञान वैराग्यसे रहित हो, ऐसा जो संन्यास लेता है सो वह संन्यास जीविकाके अर्थ है, इसीकारण निंदित है ॥ ४० ॥ वह अधर्मी संन्यासी है जिन्होंने देवताओंकी वंचना करी है जो गृहस्थ धर्ममें देवता अतिथि पूजन करता था सो छोड़ दिया संन्यास धर्म भी नहीं करते इससे सबकी अवज्ञाही करते हैं, उनकी वासना दग्ध

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत ॥ ३८ ॥ तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ॥ यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचंडेंद्रियसारथिः ॥ ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदंडमुपजीवति ॥ ४० ॥ सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ॥ अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ॥ गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं संतोषो भूतसौहृदम् ॥ गृहस्थस्याप्यृतौ गंतुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् ॥ सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विंदतेऽचिरात् ॥ ४४ ॥

नहीं और आत्मरूप हृदयमें स्थित मेरी भी वंचना करतेहैं इसीलिये इस लोक और परलोकसे नष्ट होजाते हैं ॥ ४१ ॥ संन्यासीका मुख्य धर्म शम और अहिंसा है, वानप्रस्थका मुख्य धर्म तपस्या और विचार है, गृहस्थका मुख्य धर्म प्राणीमात्रकी दया, रक्षा और देवताओंका यज्ञ है और ब्रह्मचारीका धर्म यही है कि, गुरुओंकी सेवा करे ॥ ४२ ॥ यहाँ गृहस्थका और भी धर्म कहते हैं ब्रह्मचर्य, तप, शौच, संतोष, प्राणीमात्रसे सुहृदताई और ऋतुके दिन स्त्रीसंग करै यह गृहस्थके धर्म हैं, मेरी सेवा करनी तो सबकाही धर्म है ॥ ४३ ॥ हे उद्धव ! इसप्रकारके स्वधर्मसे मेरा नित्य भजन करै और स्त्री पुत्रादिकोंमें प्रीति न रक्खे सब प्राणीमात्रमें मेरी भावना रक्खै उस पुरुषको शीघ्रही मेरी भक्ति मिल

जाती है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! ऐसी अव्यभिचारिणी भक्तिसे सब लोकके महेश्वरको जो सबकी उत्पत्ति पालन और प्रलयका कारण ब्रह्मरूप मुझको प्राप्त होजाता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार स्वधर्मसे शुद्धचित्त होनेसे मेरा स्वरूप जाननेमें आता है, विज्ञान और वैराग्य युक्त होकर शीघ्र मुझे प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ अब सबका निर्धार तात्पर्य कहते हैं कि, वर्णाश्रमवालोंका यह आचाररूप धर्मका फल, पितृलोककी प्राप्ति कराने वाला है, यही धर्ममेंही भक्तिसे मुझे समर्पण करै तो परमफल मोक्षानन्दको प्राप्त हो ॥ ४७ ॥ हे साधो ! यह सब धर्म मैंने तुमसे कहा, जो तुमने मुझसे पूँछाथा जो भक्त स्वधर्म संयुक्त होकर इसे करै तो वह मेरे परब्रह्मरूपको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश

भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥४५॥ इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो न चिरात्समुपैति माम् ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ॥ स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम् ॥ यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ॥४८॥ इति श्रीमद्भा० महापु० एकदशस्कन्धे वनस्थयत्यादिधर्मनिरूपणं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥ मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत ॥१॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः॥ स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥ २ ॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ॥ ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥

स्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभगवदुद्धवसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा– उन्निसवें अध्यायमें, पूर्वधर्म निर्वाह ॥ सो सब वर्णन करतहूं, सुनो सहित उत्साह ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जिसको विद्या करके श्रवण करके आत्मतत्त्वका अनुभव तक ज्ञान प्राप्त होगया है, सो प्रपंचकी निवृत्तिका साधन मुझमें मायामात्र जाने, और ज्ञानके साधन सब छोड़ै, उसको विद्वान् संन्यास कहते हैं ॥ १ ॥ ज्ञानीपुरुषका आत्मरूप मैंहीं प्रिय हूं, उसको और स्वार्थका हेतु कुछ नहीं है, पर स्वार्थका हेतु मुझेही चाहते हैं, इससे स्वर्ग और मोक्ष तथा और भी अर्थ मुझ विना उन्हें प्रिय नहीं, इसकारण उसका न कुछ कर्त्तव्य है और प्राप्त करना है ॥ २ ॥ यहाँ ज्ञानका अनुभव प्रमाण बताते हैं, ज्ञान विज्ञानसे जो सिद्धिको प्राप्त

हुए हैं, वह मेरे श्रेष्ठ स्थानोंको जानते हैं इसकारण मुझे ज्ञानी अतिप्रिय हैं, वह ज्ञानहीसे मुझे हृदयमें धारण करे रहते हैं ॥ ३ ॥ तप, तीर्थ, जप, दान और पवित्र साधन उस सिद्धिको नहीं करते जो सिद्धि ज्ञानके लेशसे होती है* ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! इसलिये तुम ज्ञानके रूपको जान, ज्ञान विज्ञान युक्त होकर भक्तिसे मेरा भजन करो॥ ५ ॥ जो कि, मैं सब यज्ञोंका स्वामी और आत्मा हूं, उसका अपने आपमें ही ज्ञान वा विज्ञान रूप यज्ञसे यजन करके मुनिगण मेरेरूप सिद्धिको पाचुके हैं ॥ ६ ॥ इस लिये तुम भी इसी ज्ञानसे धर्ममें प्रवृत्त हो. हे उद्धव ! जो देह और

तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ॥ नाऽलं कुर्वंति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ॥ सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायांतराऽऽपतति नाद्यपवर्गयो र्यत् ॥ जन्मादयोऽस्य यदमी तव यस्य किं स्युराद्यंतयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ॥ आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥

इन्द्रियोंका विकार है, यह सब मायाके हैं कुछ परमार्थ वस्तु नहीं हैं, यह विकार देहसे पहले भी आत्माके नहीं हैं, पीछे भी नहीं, मध्यमें हैं, सो भ्रम जानिये, आत्मा शुद्ध है, जन्मादिक भी जो देखे जाते हैं, यह देहहीके हैं,कुछ आत्माके नहीं हैं, देहको जन्म मरण नहीं देह भी मायारूपी है देहके आदि अंत जो ब्रह्म हैं,सो मध्यमें रहते हैं, जब देहही नहीं तब सब ब्रह्म होते हैं तो फिर देहके जन्ममरण कहाँसे हो सकते हैं ! जब यथार्थसे देहके भी जन्ममरणादिक नहीं, सब ब्रह्मरूप है तो ब्रह्म न जन्मै है न मरै है, निर्विकार ब्रह्महीहै, इसमें क्या कहना ? ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि,

* शंका-तप, तीर्थ, जप, दान आदिक जो अनेक अनेक सुन्दर क्रिया हैं, उन सबको त्यागकर अकेले ज्ञानकोही श्रीकृष्णने बडा क्यों कहा ?

उत्तर—जितने ससारमें उत्तम क्रिया कर्म हैं तप तीर्थ आदि,यह सब बहुत जन्ममें फल देते है, क्योंकि जप शीघ्र फल नहीं देता,तीर्थमें स्नान करने मात्रसे स्वर्ग नहीं प्राप्त होगा और जिससमय शरीरमें ज्ञान उत्पन्न होजायगा तो उसीसमय अनेक जन्मोंका दुःख दूर होकर शीघ्र सुख प्राप्त होगा और लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने अपना और उद्धवका समागम थोडे दिनोंका समझा इसलिये उद्धव अपने परममित्रको सुख होनेके निमित्त ज्ञानकी उपासना बताई, क्योंकि श्रीकृष्णके वियोगका दुःख जप, तप, तीर्थ करनेसे दूर नहीं हो सक्ता और उस दुःखको ज्ञान बहुत शीघ्र दूर करसक्ता है, इसलिये जप तपको त्यागकर श्रीकृष्णने ज्ञानको श्रेष्ठ कहा ॥

हेविश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्ते ! जिसप्रकार मुझे निश्चय हो,वैसेही वैराग्ययुक्त और विज्ञानयुक्त पुरातन विशुद्ध ज्ञान तुम कहो और जिसको ब्रह्मादिक खोजते हैं, ऐसे भक्तियोगको कहो ॥ ८॥ हे ईश्वर ! इस घोर संसारमार्गमें तीन तापसे तपाहुआ मुझे तुम्हारे चरणद्वंद्वरूप छत्रके अतिरिक्त और शरण नहीं दीखती.यह छत्र केवल छायाही नहीं करताहै, बरन् सब ओरसे अमृत बरसाताहै ॥ ९॥हे महानुभाव।यह पुरुष इस संसारके कुएँमें गिरा हुआहै और वहाँ कालरूपी सर्प इसे काटगया है,तुच्छ सुखोंमें बहुत तृष्णाहै;ऐसे इस जनको कृपापूर्वक उद्धार करो और मोक्षको कहो,ऐसे अपने वचनरूपी अमृतसे सींचो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित ! जब इसप्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव !

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ॥ पश्यामि नान्यच्छरणं तवांघ्रिद्वंद्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥ दष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ॥ समुद्धरैनं कृपयाऽऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्च महानुभाव ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥ अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥ निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः ॥ श्रुत्वा धर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहं तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ॥ ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥ नवैकादश पञ्च त्रीन्भावान्भूतेषु येन वै ॥ ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥

इसी भाँति पहले राजा युधिष्ठिरने हमारे सबके सामने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहसे पूँछाथा ॥ ११ ॥ भारतयुद्ध निवृत्त होनेके उपरान्त बंधुवधसे व्याकुल हो राजा युधिष्ठिरने पहले बहुत धर्म श्रवण करके फिर मोक्षधर्म सुननेके वास्ते पूँछा ॥ १२॥ वहाँ भीष्मने जो धर्म युधिष्ठिरसे वर्णन किया, वह हमने भी सुना, सोई हम तुमसे कहते हैं. जो ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य,श्रद्धा भक्तिसे संयुक्त है ॥ १३ ॥ यहाँ प्रथम तो ज्ञान कहते हैं, प्रकृति और महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह नौ तत्त्व हुए और एकादश इन्द्रियें, पंचमहाभूत, तीन गुण, यह सब मिलकर अट्ठाईस (२८) तत्त्व हुए, सो यह सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं, ज्ञानसे देखे और इन तत्त्वोंमें भी एक परमात्माको जिस ज्ञानसे

व्याप्त देखै सो निश्चय मेरा ज्ञान है ॥ १४ ॥ जैसे ज्ञानके समय सब पदार्थ देखनेमें आते हैं; वैसे यह पदार्थ देखनेमें नहीं आते, केवल एक परब्रह्म देखनेमें आता है, वही ज्ञान विज्ञान कहाजाता है और उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति होनेसे पदार्थ त्रिगुणात्मक नाशवान् हैं ऐसा देखै ॥ १५ ॥ यदि कोई कहै कि, सब ब्रह्मरूपही हैं तो जन्मादिक क्यों होता है ? उत्पत्ति तथा दूसरे रूपकी प्राप्तिके मध्यमें सबका आश्रय कारण होनेसे जो कार्य और कार्यांतरमें रहता है, जो उत्पत्तिमें व्याप्त होताहै और इनके प्रलयमें जो अवशेष रहता है, सो ब्रह्म है, इसेही देखै ॥ १६ ॥ अब विज्ञान कहकर वैराग्य कहते हैं. वेद, प्रत्यक्ष, परंपराकी प्रसिद्धि और अनुमानसे यह प्रपंच मिथ्या है, अद्वैतही सत्य है, जैसे यह दृश्य ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, क्योंकि ब्रह्मसे उत्पन्न है, जो जिससे उत्पन्न है, वह उससे भिन्न नहीं, जैसे मिट्टीके बने घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं, इसप्रकार

एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावंते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात् ॥ पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत ॥ १६ ॥ श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ॥ प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥ १७ ॥ कर्मणां परिणामित्वादाविरिंचादमंगलम् ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥ श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ॥ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥ आदरः परिचर्यायां सर्वांगैरभिवंदनम् ॥ मद्भक्तपूजाऽभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥

भ्रमरूप द्वैत जानकर विकल्पसे विरक्त होना चाहिये ॥ १७ ॥ कदाचित् स्वर्गादिकमें सुखभोग हैं, वहाँकी इच्छा हो तो विरक्त होना किस प्रकार संभव है ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, ब्रह्मलोकतक स्वर्गादिकका भी सुख इस लोकके समान जो पण्डित हैं सो दुःखरूप मिथ्याही देखते हैं, क्योंकि यह विनाशी कर्मोंके फल हैं ॥ १८ ॥ अब वैराग्य कहकर भक्ति कहते हैं, हे निष्पाप उद्धव ! मैंने भक्तियोग पहले भी तुमसे कहाथा और अब फिर अपनी भक्तिके परमकारणसे प्रीतियुक्त तुमसे कहता हूं ॥ १९ ॥ हे उद्धव ! प्रथम अमृतरूप मेरी कथामें श्रद्धा हो कथाके सुननेमें आदर हो, सुननेके उपरान्त निरंतर मेरा कीर्त्तन करै ॥ २० ॥ मेरी पूजामें तत्पर हो, सर्वांगसे नमस्कार करै, आदरपूर्वक मेरे

भक्तकी अधिक पूजा करै, सब प्राणीमात्रमें मेरी बुद्धि रक्खै ॥ २१ ॥ लौकिक कार्योंको मेरेलिये करै, वचनसे मेरे गुणानुवादको कहै, मन मेरे रूपमेंही अर्पण करै, सब कामनाओंका त्याग करै ॥ २२ ॥ मेरे लिये अर्थका त्याग करै, भोग और सुखका त्याग करै, विषय भोग न करै, यज्ञ, दान, होम, जप, तप, सब मेरेलिये करै ॥ २३ ॥ हे उद्धव ! इसप्रकार धर्मसहित जो मनुष्य मुझमें आत्मा निवेदन करते हैं, उन मनुष्योंको प्रेम लक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है, फिर उनको कुछ करना नहीं रहता ॥ २४ ॥ क्योंकि जब शांत सतोगुणसे बढ़ा चित्त मुझमें लगादिया, तब और सब ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आपहीसे प्रगट होजाते हैं ॥ २५ ॥ और यही चित्त जब गृह कुटुम्बादिमें आसक्त होता है, तब इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें

मदर्थेष्वंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ॥ मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ॥ इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ॥ २३ ॥ एवं धर्मं मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ॥ मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्याऽवशिष्यते ॥ २४ ॥ यदात्मन्यर्पितं चित्तं शांतं सत्त्वोपबृंहितम् ॥ धर्मज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितं तद्विकल्प इन्द्रियैः परिधावति ॥ रजस्वलं चासनिष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ॥ गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन ॥ कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥ किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ॥ कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥ पुंसः किंस्विद्बलं श्रीमन्भगो लाभश्च केशव ॥ का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥

भ्रमण करता है, जिससे अधर्म, अज्ञान अनुरक्तता और कुभाग्यता प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ धर्म सोई है जो मेरी भक्ति करै, ज्ञान वही है, जिससे आत्माका रूप दीखै, इन्द्रियोंके धर्मोंमें आसक्त न होना वैराग्य और अणिमादिकका होना ऐश्वर्य है ॥ २७ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! हे शत्रु नाशक ! हे कृष्ण ! संयम नियम कै प्रकारके हैं ? शम दम किनको कहतेहैं ? क्षमा, धैर्य क्या है ? ॥२८॥ दान, तप, शौर्य, सत्य, ऋत, त्याग, धन, इष्ट, यज्ञ, दक्षिणा इत्यादि क्या हैं ? ॥ २९ ॥ हे श्रीमन् ! पुरुषका बहुत भाग्य क्या है ? परमविद्या क्या है ? लज्जा, श्री, दुःख, सुख क्या हैं ?॥३०॥

पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है ? मार्ग उन्मार्ग कौन है ? स्वर्ग नरक कौन है ? बंधु गृह कौन है ? ॥ ३१ ॥ धनी दारिद्री कौन है ? कृपण ईश्वर कौन है ? हे साधुओंके पति ! यह प्रश्न और इससे विरुद्धगुणवाले कौन हैं सो मुझसे समझाकर कहो ॥ ३२ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! जीवमात्रकी हिंसा न करै, सत्य बोले, मनसे भी पराई वस्तुको न चुगवे, आसक्ति कहीं न रक्खे, लज्जा, असंचय, धर्ममें विश्वास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा, यह बारह संयम हैं ॥ ३३ ॥ शौच दो भाँतिके हैं अंतःकरणकी शुद्धि और बाह्यशुद्धि, शौच, तप, जप, होम, श्रद्धा, अतिथि और मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार, संतोष, आचार्यसेवा यह बारह नियम हैं ॥ ३४ ॥ जो यह संयम, नियम

कः पंडितः कश्च मूर्खः कः पंथा उत्पथश्च कः ॥ कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्को बंधुरुत किं गृहम् ॥३१॥ क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ॥ एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ॥ आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ॥३३॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ॥ तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥३४॥ एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ॥ पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहंति हि ॥३५॥ शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इंद्रियसंयमः ॥ तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥३६॥ दंडन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ॥ स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ॥ कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥

नित्य करै तो जो कुछ चाहै सो सब पूर्ण हो ॥ ३५ ॥ अब शम, दम, कहतेहैं कि, मुझमें बुद्धि स्थिर होय सो शम है, केवल शान्तिही शम नहीं कहाती, इन्द्रियोंका संयम दम है, चोर दुष्टका मारना दम नहीं, दुःखका सहना क्षमा है, बहुत भार सहना क्षमा नहीं, जिह्वा और उपस्थवेग सहै सो धैर्य, उद्वेग मनमें न उत्पन्नहो, इतनाही धैर्य नहीं ॥ ३६ ॥ प्राणीमात्रसे द्रोह त्यागनेको दान कहते हैं, धनका त्याग दान नहीं, कामका त्याग तप कहाता है, कृच्छ्रचान्द्रायण तप नहीं, स्वभावको जिसने जीतलिया सोही शूर, पराक्रम शौर्य नहीं, ब्रह्मका दर्शन सत्य है ॥ ३७ ॥ पण्डितोंने सत्य और प्रियवाणीको ऋत कहाहै, कर्मोंकी अनासक्तिको शौच और त्यागको संन्यास कहा है ॥ ३८ ॥

मनुष्योंका श्रेष्ठ धन धर्म है, पशु पुत्रादिक धन नहीं, परमेश्वरही यज्ञ है, मेरी बुद्धिसे यज्ञ करे, कर्मबुद्धिसे न करे, मेरे ज्ञानका उपदेशही उस यज्ञकी दक्षिणा है, सुवर्णादि धन दक्षिणा नहीं, प्राणायामसे मनको वशमें करे, वही परमबल है ॥ ३९ ॥ मेरा ऐश्वर्य सौभाग्यहै, कुछ लौकिक संपत्ति सौभाग्य नहीं. मेरी भक्ति पावे, सोई परमलाभ है, कुछ धनका लाभ नहीं. आत्मामें भेदबुद्धि दूर हो सो विद्या है केवल ज्ञानमात्र विद्या नहीं. कुत्सित कर्मका त्यागही लज्जा है, सो केवल लाज लज्जा नहीं ॥ ४० ॥ गुण अच्छे हों वहीं शोभा है कुछ आभूषण शोभा नहीं. दुःख, सुखका स्मरण करे, वही सुख है, भोग सुख नहीं, बंध मोक्षको जाने सो पण्डित है, केवल शास्त्र पढै पण्डित नहीं, भोग सुखकी इच्छा दुःख है,

धर्म इष्टं धनं नणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ॥ दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ॥ विद्यात्मनि भिदा बाधो जुगुप्सा हीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्या सुख दुःखसुखात्ययः ॥ दुःखं कामसुखापेक्षा पंडितो बंधमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पंथा मन्निगमः स्मृतः ॥ उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥ नरकस्तम उन्नाहो बंधुर्गुरुरहं सखे ॥ गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥४३॥ दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेंद्रियः ॥ गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ४४ ॥

अग्नि दाहादिक दुःख नहीं ॥ ४१ ॥ देहादिकमें जिसके अहंकार हैं सो मूर्ख है, जिस मार्गमें मुझे पावे वही उत्तम मार्ग है; काँटोंसे रहित सन्मार्ग नहीं, जहाँ मन चंचलहो, ससारमें फिर प्रवृत्त होय सो ऐसे मार्गको कुत्सित मार्ग कहते हैं, चोरादिकोंसे व्याप्त उत्पथ मार्ग नहीं, सत्त्वगुण अधिकहो, राजस, तामस, गुण न हो, सोई स्वर्ग है, कुछ इन्द्रलोक स्वर्ग नहीं ॥ ४२ ॥ तमोगुण अधिक होय सोई नरक है और नरक नहीं, और बंधु सब बंधु नहीं परमबंधु गुरु है, सो गुरु मैं हूं,मनुष्यका शरीर गृह है और गृह नहीं, जो गुणसे सम्पन्न है, वही धनी है और धनी नहीं ॥ ४३ ॥ जो सदा असंतोष रक्खै, सो दारिद्री है, धनहीन दारिद्री नहीं, जो इन्द्रियोंको न जीतसकै सोई कृपण है, दीन कृपण नहीं, विषयोंमें

आसक्त न होकर जो स्वाधीन है, सो ईश्वर है, राजा स्वाधीन नहीं, जो गुणमें आसक्त है, वही परवश है॥४४॥श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! यह तुम्हारे सब प्रश्न तुमको अच्छी प्रकार समझाये, अब बहुत क्या वर्णन करें. गुण दोषका लक्षण इतनाही है, जो सबोंके गुण दोष विचारता रहै, वही दोष है और न गुण देखै न दोष देखै वही गुण है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा–कहूं बीस अध्यायमें, गुण अरु दोषके अर्थ ॥ भक्ति ज्ञान औ कर्म यह, तीनों योग समर्थ ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! विधिनिषेध वेद कहते हैं सो वेद तुम्हारी आज्ञा है, तुम सबोंके ईश्वर हो आपकी आज्ञासे वेद कर्मोंके पुण्य

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥ गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधेऽज्ञानत्यागो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ उद्धव उवाच ॥ विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥ अवेक्षतेऽरविंदाक्ष गुणदोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ॥ द्रव्यदेशवयःकालान्स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥ गुणदोषभिदा दृष्टिमंतरेण वचस्तव ॥ निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ॥ श्रेयस्त्वनुपलब्धेर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्तेन हि स्वतः ॥ निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ॥ ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

पापोंको देखते हैं ॥ १ ॥ उन धर्मोंके अधिकारी उत्तम, मध्यम, हीन तीन प्रकारके हैं सो वह वर्णाश्रम अलग हैं जिनका गुण दोष सब वेद देखते हैं ॥ २ ॥ अब आप कहते हो कि, गुण दोष छोड़कर धर्ममें प्रवृत्त हो सो गुण दोष भेददृष्टि विना विधिनिषेध तुम्हारा वचन मनुष्योंको कैसे फलदायक होसकता है ? ॥ ३ ॥ हे ईश्वर ! पितृदेवता तथा मनुष्योंको तुम्हारा वेदही मोक्ष और स्वर्गादिकोंमें श्रेष्ठ प्रमाण है और साध्य साधन विषे प्रमाण है ॥४॥ और गुण दोषके भेदका ज्ञान तुम्हारे वेदही हैं, आपसे नहीं मानी है, गुण दोषोंपर दृष्टि न रक्खै, यह अब तुम्हीं कहते हो, इसलिये भ्रम होता है ॥ ५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! मनुष्योंके कल्याणार्थ वेदमें भेदसे तीन योग मैंने कहे हैं

ज्ञान, कर्म, भक्ति इनसे परे और उपाय कहीं नहीं ॥ ६ ॥ इनके अधिकारी अलग अलग हैं, एकही नहीं सो कहते हैं इनमें जो कर्मोंसे विरक्त हैं फल कुछ नहीं चाहते उसे ज्ञानयोग कहा है ॥ ७ ॥ यदृच्छासे मेरी कथामें जिसको श्रद्धा हुईहो अतिविरक्त भी न हो अतिआसक्त भी न हो उसे भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है ॥ ८ ॥ प्रथम कर्मयोगको कहते हैं कर्म जहाँतक करै वहाँतक वैरग्य उत्पन्न न हो और मेरी कथा श्रवणादिकमें श्रद्धा न उपजै ॥ ९ ॥ हे उद्धव ! अपने स्वधर्ममें स्थित हो फलकी इच्छा छोड निष्काम यज्ञ करै तब उसे न नरक हो न स्वर्ग हो जो और आचरण न करै ॥ १० ॥ इस लोकमें स्वधर्ममें स्थित हो निषेधका त्याग करै ऐसा करनेसे जब मन शुद्धहो, तब विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त करै या यदृच्छासे मेरी

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ॥ तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ ७ ॥ यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ॥ मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीः काम उद्धव ॥ न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत ॥ १० ॥ अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ॥ ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥ स्वर्गिणोप्येनमिच्छंति लोकं निरयिणस्तथा ॥ साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥ १२ ॥ न नरः स्वर्गतिं कांक्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ॥ नेमं लोकं च कांक्षेत देहाऽऽवेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥ एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ॥ अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥

भक्ति पावै ॥ ११ ॥ ज्ञानभक्तिको यह मनुष्यदेह कर्त्ता है इससे मनुष्यदेह उत्तम है सो कहते हैं जो स्वर्गमें हैं और नरकमें हैं वह मनुष्यदेहकी बाधा करतेहैं जिस देहकी ज्ञानभक्ति करनेसे मोक्ष होती है, स्वर्ग और नरकमें भी शरीर है सो मोक्षसाधक नहीं ॥ १२ ॥ चतुर मनुष्य होय सो स्वर्गकी गति न चाहै जैसे मनुष्य नरककी गति नहीं चाहते हैं और यह लोक भी नहीं चाहते, क्योंकि देहके आवेशसे प्रमाद होता है ॥ १३ ॥ अर्थसिद्धिके दाता भी मनुष्यदेहको जानकर मृत्युसे पहले सावधान मनुष्य मोक्षका यत्न करै ॥ १४ ॥

जैसे पक्षीने एक रूखपर घर किया, उस वृक्षको कोई निर्दयी पुरुप आनकर काटै, उसे काटता जान अनासक्त होकर घर छोड़ दे तो जिये॥ १५॥ जैसे अहोरात्रसे काल आयुर्बलको काटे है, यह जान भयसे कॉपते इस देहकी आसक्ति छोड़ शांत चित्त होकर रहै ॥ १६ ॥ ऐसी देहको जानकर भी जो सावधान नहीं होता उसकी निंदा करते हैं यह मनुष्यदेह अत्यन्त दुर्लभ है, अनेक जन्मके पुण्यसे पाई है, साधन करनेको समर्थ है, संसारसमुद्रसे तरनेको नाव है गुरु नावके चलानेवाले हैं, मैंने अनुकूल पवनसे प्रेरित करी है, ऐसे साधनको पाय जो यह प्राणी संसारसमुद्रसे न तरै तो वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥ यह कर्मयोग तो जो विरक्त न हो उनको कहा, अब जो विरक्त होंय उनको ज्ञान उपजे, पहले जो कुछ

छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ॥ खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलंपटः ॥ १५ ॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः ॥ मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥ नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ॥ मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥ १७॥ यदारंभेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ॥ अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥ १८ ॥ धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् ॥ अतंद्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥१९॥ मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेंद्रियः ॥ सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥ एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ॥ हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥

कर्त्तव्य है सो प्रकार कहते हैं कि, जब कर्मोंमें उद्वेग हो वैराग्य उपजे तब इन्द्रियोंका निग्रह करै स्थिरतासे आत्माके अभ्याससे मनका निग्रह करै, तब यह योगी होय ॥ १८ ॥ मनका निग्रह करै परन्तु तो भी जब चंचल होय तब सावधान हो कुछ मनकी कांक्षा पूर्ण करके फिर मनको वश करै ॥ १९ ॥ मनकी धारणा नहीं छोडै प्राणवायु जीतै, इन्द्रियें जीतै और सतोगुणी बुद्धिमें अपने मनको वशमें करै ॥ २० ॥ यह मनको निग्रह निश्चय उत्तम योग है जैसे सवार दमन करने योग्य घोड़ेकी गतिको अपनी इच्छानुसार चाहताहुआ पहले उसे इच्छानुसार जाने

देता है, फिर लगामको थामकर चलाता है ऐसेही शनैः शनैः मनको वशमें करै ॥ २१ ॥ सब तत्त्वोंके विवेकसे और प्रकृतिसे उत्पत्तिका क्रम विचारै, वह पृथ्वी आदि क्रमसे अनुलोम प्रतिलोमसे लीन होते हैं, ऐसा ध्यान करता रहै, वह ध्यान उस समय तक करै जबतक चित्त प्रसन्न न हो ॥ २२ ॥ जब चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो, तब गुरुके बताये धर्मका विचार करै, क्रमसे यह चित्त देहका अभिमान छोड़देता है ॥ २३ ॥ संयम, नेम आदि योग धारण, आत्मविचार और मेरी प्रतिमाकी सेवा इन उपायोंसे योग्य परमात्माका मनसे स्मरण करै, क्योंकि मेरे स्मरणका इससे अधिक और उपाय नहीं है ॥ २४ ॥ जो प्रमादसे योगी कुछ निंदित कर्म करै, उस योगीको योगाभ्याससहीसे अपने पाप दूर करने

सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ॥ भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ॥ मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिंतितस्यानुचिंतया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ॥ ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ॥ योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥ स्वेस्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः ॥ कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ॥ गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ॥ वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥ ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ॥ जुषमाणश्च तान्कामा न्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥

चाहिये, क्योंकि इसका और प्रायश्चित नहीं है ॥ २५ ॥ अपने अधिकारमें रहनाही गुण है, प्रवृत्तिमार्ग स्वभावहीसे अशुद्ध है तथापि जो सहसा (एकाएकी) न छोड़ाजाय तो प्रवृत्ति संगके छुडानेकी इच्छासे गुण दोष कह इन कर्मोंके संकोचद्वारा निवृत्ति चाहिये, क्योंकि योगीको स्वाभाविक वृत्ति न होनेसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं ॥ २६ ॥ मेरी कथामें श्रद्धा कर्मोंमे वैराग्य होनेपर और काम्य कर्मोंको दुःखरूप जाननेपरभी उनका परित्याग न होसकै ॥ २७ ॥ तो प्रीतिपूर्वक श्रद्धायुक्त हो दृढनिश्चयसे मेरा भजन करै विषय भोग करै तो आसक्त न हो, उनकी निंदा करता

रहे, अब भजनका प्रकार कहते हैं ॥ २८ ॥ पहले मैंने भक्तियोग तुमसे कहा है इसरीतिसे जब निरन्तर मुनि मेरा भजन करै तो उसके हृदयमें मेरा वास होनेसे उसकी सब कामना नष्ट होजायँगी ॥ २९ ॥ सबके आत्मा रूपसे जब मुझे देखे तब इसके हृदयकी गाँठि छूट जाती है और सब संदेह मिटकर संपूर्ण कर्म क्षीण होजाते हैं ॥ ३० ॥ इसलिये मेरी भक्ति संयुक्त मुझमें चित्तयुक्त करनेवाले योगीको न तो ज्ञान और न वैराग्य कल्याणका साधन है, किन्तु भक्तियोगही कल्याणका साधक है ॥ ३१ ॥ जो फल कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म और तीर्थ यात्रादिकके साधनसे

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः ॥ कामा हृदय्या नश्यंति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चाऽस्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ॥ न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥ सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेंजसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वांछति ॥ ३३ ॥ न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकांतिनो मम ॥ वांछंत्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ॥ तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥

होता है ॥ ३२ ॥ वही फल केवल मेरी भक्ति करनेसे प्राप्त होजाता है, मेरे भक्त सुखसे मेरा वैकुण्ठधाम पाते हैं, परन्तु मेरे भक्त कुछ चाहना नहीं करते हैं * ॥ ३३ ॥ हे उद्धव ! जो पुरुष बुद्धिमान् हैं उनकी मुझमें अत्यन्त प्रीति है, वह परमसाधु हैं, यद्यपि मैं उनको अनेक विभव देता हूँ परन्तु, तो भी वह कुछ चाहना नहीं करते ॥ ३४ ॥ मेरी निरपेक्ष भक्तिही परमकल्याणरूप है उसमेंभी मेरी निष्काम भक्ति

* शंका—पहिले तो श्रीकृष्णने ज्ञानकी प्रशसा की, फिर कुछ कालोपरान्त ज्ञान, वैराग्य, तप, जप, तीर्थ आदि लेकर और जो सुन्दर सुन्दर कर्म हैं उनको मी त्यागकर भक्तिकी प्रशसा की कि सबसे भक्तिही बडी है, यह बडे सन्देह की बात है, किसको श्रेष्ठ मानै और किसको मध्यम मानै भगवान् श्रीकृष्ण तो कभी कुछ कहते हैं कभी कुछ कहतेहैं, ऐसे वचन सुनकर हमको बडा भ्रम होताहै।

उत्तर—श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि थोडही दिनोंमें कलियुग आवेगा, जप, तप, तीर्थादिक सब सुन्दर सुन्दर कर्मोंका नाश करदेंगे, परन्तु भक्तिका नाश नहीं होसक्ता, इसलिये भगवान्ने भक्तिकी प्रशसा की कि, कलियुगमें भक्तिके सिवाय मनुष्योंसे और कोई दूसरा काम नहीं होगा।

निष्कामभक्तकोही प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ जो मेरे विषे एकान्त भक्त रागद्वेषादि रहित समचित्त हैं और बुद्धिसे परे ईश्वरको प्राप्त हैं उनको विधिनिषेधके गुणदोषसे उत्पन्न हुए पुण्य पाप नहीं लगते ॥ ३६ ॥ इसप्रकार मेरे कहे मार्गोंमें जो पुरुष चलते हैं, वे परमकल्याणरूप मेरे धामको कि, जिसको परब्रह्म कहते हैं, प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा—इक्किसवें अध्यायमें, कर्म भक्ति औ ज्ञान ॥ सबके गुण अरु दोष में, वरणौं सहित विधान ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी बोले कि, हे उद्धव! जो पुरुष मेरे बताये मार्ग, भक्ति, ज्ञान, निष्काम कर्मको छोड़कर इन चंचल

न मय्येकांतभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ॥ साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥ एवमेतान्मयादिष्टाननु तिष्ठंति मे पथः ॥ क्षेमं विंदंति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० योगत्रयभक्त्यादिनि० विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥ क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषंतः संसरंति ते ॥ १ ॥ स्वेस्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ॥ द्रव्यस्य विचिकित्साऽर्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥ धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चाऽनघ ॥ दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥

प्राणोंसे तुच्छ कामनाओंका सेवन करतेहैं, वह संसारको फिर प्राप्त नहीं होतेहैं ॥ १ ॥ जिसप्रकार अग्निका किसीको ताप होना और किसीको न होना संभव नहीं, इसीप्रकार उन्हीं कर्मोंसे किसीके गुण और किसीके दोष होना संभव नहीं, यह संदेह करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि निज निज अधिकारमें निष्ठा रखनेको गुण और निष्ठा न रखनेको दोष कहतेहैं, गुण दोषके विचारका यही निश्चय है ॥ २ ॥ यह शुद्ध है लीजिये यह अशुद्ध है न लीजिये ऐसे संदेहसे स्वाभाविक प्रवृत्तिको निवृत्त करनेके लिये समान वस्तुओंमें भी वेदमें शुद्धि और अशुद्धिका विधान किया है और इसके लिये उनमें गुण दोष माने हैं इसीसे पुण्य और पाप मानते हैं ॥ ३ ॥ हे निष्पाप! धर्मका भार धारण करनेवाले पुरुषोंको मैंने ही

मनु आदिरूपसे यह आचार दिखाया है, यह शुद्धि और अशुद्धि धर्मव्यवहार तथा निर्वाहके लिये गुण और दोषरूपसे प्रतिपादन कियेहैं धर्मके लिये शुद्धिसे धर्म अशुद्धिसे अधर्म, व्यवहारमें अशौचादिसे अशुद्ध भी राजव्यवहारमें न्याय करनेको शुद्ध और दूसरे कार्योंमें अशुद्ध हैं, आपदामें निर्वाहमात्र पदार्थ लेनेसे शुद्धि और अधिक लेनेसे अशुद्धि होती है ॥ ४ ॥ यद्यपि यह सब वस्तु समान हैं, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, ब्रह्म आदि जड़तक सबकी देहके कारण पंचमहाभूत हैं और आत्मा भी सब एकही हैं ॥ ५ ॥ परन्तु तो भी हे उद्धव ! समान भी देहविषे वेदने नाम, रूप, वर्ण, आश्रम संपूर्ण इन जीवोंके स्वार्थ सिद्धिके लिये पृथक् पृथक् किये हैं ॥ ६ ॥ केवल देहमेंही विभाग नहीं, किन्तु देशकाल आदि

भूम्यंब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः ॥ आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥ वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ॥ धातुषूद्धव कल्प्यंत एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ॥ गुण दोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ॥ कृष्णसारोप्यसौवीरकीक टासंस्कृतेरिणम् ॥८॥ कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ॥ यतो निवर्त्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥

संपूर्ण वस्तुओंमें कर्मके संकोचके लिये गुण दोषका विधान किया है, अब शुद्धि अशुद्धिका विषय कहते हैं ॥ ७॥ जिस देशमें काला मृग न हो, वह देश अशुद्ध है और सत्पात्र रहित देश, मार्जन रहित देश, ऊषरदेश, यह अशुद्ध हैं और जहाँ ब्राह्मणोंमें भक्ति न हो वह तो अत्यन्त ही अशुद्ध है, अंग वंग, कलिंगादिक भी देश अशुद्ध हैं, जहाँ काली मृगी और सत्पात्र हो सो अशुद्ध भी देश शुभ है, देशकी शुद्धि अशुद्धि कहकर अब काल समयकी शुद्धि कहते हैं * ॥ ८ ॥ जो काल द्रव्यकी संपत्तिसे कर्मके योग्य है और जो स्वतःही प्रातः पूर्वाह्ण, मध्याह्न काल कर्मके योग्य है, सो काल उस

* शंका–श्रीकृष्णने कहाथा कि, जिस देशमें काला मृग नहीं होता वह देश भ्रष्ट है यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि, जिस देशमें गंगा यमुना आदि नदी प्रयाग पुष्कर आदि तीर्थ बदरीनारायण आदि आश्रम हैं, वह भी देश काले मृग विना भ्रष्ट है ? तो इस बातसे यह सिद्ध हुवा कि, काला हरिणही सर्वोपरि मुख्य ठहरा यह गंगा और प्रयागादितीर्थ किसीको शुद्ध नहीं करसक्ते ।

उत्तर–श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा सो सब सत्य है, परन्तु विना व्याकरण पढनेसे अर्थ करनेकी शक्ति नहीं होसक्ती वह पुरुष अर्थका अनर्थ कर देते हैं, क्योंकि भागवतमें अकृष्णसारका अर्थ है व्यासजीने–

कर्मको शुद्ध है, जो सूतकादिक काल कर्मके योग्य नहीं है, यद्यपि काल सब एक है, परन्तु तो भी यह भेद किया गया है कि, कर्मके अयोग्य काल अशुद्ध है॥९॥ अब द्रव्यकी शुद्धि कहते हैं, द्रव्यकी शुद्धिअशुद्धि द्रव्य,वचन, संस्कार,बड़ेपन और छोटेपनसे मानी जाती है, द्रव्यको शुद्धि जल करता है सूत्रादिक अशुद्ध करते हैं कि, ब्राह्मणका वचन प्रमाण है वह कहैं यह वस्तु शुद्ध है तो वह शुद्धही है, अशुद्ध कहैं तो अशुद्धही है, पुरुष सूंघ ले तो अशुद्ध हो जाय, प्रोक्षणादिक संस्कारसे शुद्ध होय, कालसे जलकी शुद्धता. दश दिन हो जानेसे नये जलकी शुद्धि, चातुर्मास्यमें तीन दिनसे, शुद्धता बड़ेपनसे, चाण्डालादिकके स्पर्शसे तालावका जल बहुत भरा हो तो चाहै कोई भरो वह जल शुद्ध है,छोटेपनसे घटादिका जल चाण्डालादिके स्पर्शसे अशुद्ध होजाता है॥१०॥ अब शक्ति अशक्तिसे शुद्धाशुद्धि कहते हैं, सूर्यग्रहणमें जिसको शक्ति हो, उसे सूतक लगै; स्नान

द्रव्यस्य शुद्धयशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ॥ संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथ वा ॥ १० ॥ शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्धया समृद्धया च यदात्मने ॥ अघं कुर्वंति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितंतूनांरसतैजसचर्मणाम् ॥ कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥

दानसे शुद्धि होती है और जो अशक्त हैं उन्हें नहीं, बुद्धिसे पुत्रजन्मादि आशौचकी दशदिनके भीतर जानेसे अशुद्धि उपरान्त शुद्धि समृद्धि होनेके कारण जीर्ण वस्त्र मलिन वस्त्र श्रीमंतको अशुद्ध हैं, दरिद्रीको शुद्ध हैं, सूतकका अन्न समर्थको तो अशुद्ध है, असमर्थको शुद्ध है, यह द्रव्य वचन आदि द्रव्यकी अशुद्धिसे आत्माको पातक लगाते हैं, सो देश काल अवस्थाके अनुसारही लगाते हैं,निर्भय देशमें यही पापदायक चौरादिके उपद्रव युक्त देशमें नहीं, युवावस्थामें यही पापदायक और वृद्धावस्था तथा बालकपनमें शुद्ध है ॥ ११ ॥ इसप्रकार द्रव्यकी शुद्धि द्रव्योंसे कही, वचन शुद्धि एक ही भाँति है, द्रव्यकी शुद्धि बहुत प्रकार है सो कहते हैं अन्न, काष्ठ, हाथीदाँत, सूत्र, रस, तैल, घृतआदि सुवर्ण और मार्गकी कीच,

—ऐसा कहा कि, जिस देशमें काला मृग नहीं होगा वह देह भ्रष्ट होगा जो कोई ऐसे मनुष्य हैं कि संसारको कुछभी नहीं मानते इससे कुछ भी सार नहीं है ऐसा जानकरके बड़ी निश्चयसे श्रीकृष्णको सार जानते हैं कि, सब झूठा है श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदका आश्रय सत्य है, ऐसे जाननेवाले पुरुष जिस देशमें नहीं हैं वह देश भ्रष्ट है सो श्रीकृष्णने ऐसा कहाया कुछ ऐसा नहीं कहाया कि, जिस देशमें काला मृग नहीं है वह देश भ्रष्ट है ॥

कलश,ईंट यह सब काल वायु अग्नि जलसे यथायोग्य शुद्ध हैं अर्थात् धान्यकी शुद्धि वायुसे, यज्ञ पात्र तथा काष्ठकी जलसे, हाथी दाँत आदिकी कालसे, तैल घृत सुवर्णादिकी अग्निसे, तंतुओंकी जलसे, चामकी काल और रंगसे, पार्थिव विकार ईंट आदिकी कालसे शुद्धि होती है, कहीं तो यह सब मिलकर शुद्धि करते हैं और कभी अकेले करते हैं तो भी जो काक और चाण्डालादिक नीच जातिका स्पर्शहुआ हो तो इसके देश अवस्था देखकर विचार करै तब शुद्ध हो ॥ १२ ॥ और भी शुद्धि कहते हैं, पीढ़ा पात्र वस्त्र आदिमें जो अपवित्र वस्तु लेपकी लगजाय तो काष्ठ छिलायेसे शुद्ध हो, द्रव्यकी शुद्धि राख और खटाईसे धोवे तब शुद्ध हो, वस्त्र खारसे गंध और लेप छूटनेतक धोवे तब शुद्ध हो, जब दुर्गंध न रहे स्वच्छ होजाय तब शुद्ध है ॥ १३ ॥ अब कर्त्ताकी शुद्धि कहते हैं—स्नान, ध्यान, तप, अवस्था, बाल्य, कौमार, वीर्यसंस्कार, गायत्री उपदेश कर्म,

अमेध्यलिप्तं यद्येन गंधं लेपं व्यपोहति ॥भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोऽवस्था वीर्यसंस्कारकर्मभिः ॥ मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद्द्विजः ॥ १४ ॥ मंत्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ॥ धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोपि दोषः स्याद्दोषोपि विधिना गुणः ॥ गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥

संध्या दीक्षादिक कर्मसे ब्राह्मण जब शुद्ध होय तब कर्म करै और आत्माकी शुद्धि मेरे स्मरणसे होती है और प्रकारसे नहीं, ब्राह्मणादिकके देहकी शुद्धि इन संस्कारोंसे होती है और प्रकार नहीं, देहकी शुद्धि इन संस्कारोंसे होती है, सो भी व्यवहारके लियेही है; उसके निमित्त विहित कर्म करे ॥१४॥ अब मंत्रकी शुद्धि कहते हैं, श्रेष्ठ गुरुके मुखसे सुने, इसके उपरान्त उस मंत्रका अच्छीप्रकार ज्ञान हो तो मंत्रकी शुद्धि हो, जो कुछ कर्म भले अथवा बुरे करै सो सब मुझे समर्पण करे, यह कर्म शुद्धि है, देश काल द्रव्य कर्त्ता मंत्र कर्म इन छःपदार्थोंके शुद्ध होनेसे धर्मकी शुद्धि होती है, यही अशुद्ध हो तो अधर्म होता है ॥ १५ ॥ यह गुण दोषका विभाग यथार्थ नहीं है, कहीं आपदामें प्रतिग्रह लेनेसे दोष गुण होजाता है, धन होनेसे निषेध होनेका कारण कहीं दोष है और कहीं दोष भी विधिसे गुण होजाता है, जैसे कुटुम्बका त्यागना दोष है, परन्तु

विरक्तको कुटुम्ब त्यागना दोष नहीं, गुण दोषके कहनेवाले शास्त्र गुण दोषके बाधक हैं ॥१६॥ दोष भी कहीं दोष नहीं होता, यहाँ एक दृष्टान्त कहते हैं, जो सुरापानसे पतित नहीं हैं, उन पतितोंको सुरापानसे दोष नहीं होता, क्योकि वह जातिकर्ममें पहलेही पतित हैं उनको सुरापान अधिक पातक क्या करेगा ? और जो धर्मशील हैं, उन्हें उसका संगही पातक है, संन्यासी को संगही बंधनमें डाल देता है, सोई गृहस्थका गुण है क्योंकि गृहस्थको संग करना होता है, जैसा कि वेदमें कहा है " ऋतुके दिन स्त्री संग न करै, परन्तु जो पहलेही पृथ्वीपर सोया है, वह नीचे नहीं गिरता" ॥ १७ ॥ इसप्रकार गुण दोष का विचार प्रवृत्तिमार्गमें है निवृत्ति होनेके उपरान्त कुछ नहीं, सो कहते हैं, वेदका यही तात्पर्य नहीं है कि, जो सदा प्रवृत्तिमेंही रहै, वेद प्रवृत्ति छुटाकर निवृत्ति बताते हैं, इस कारण जिस जिस विषयसे निवृत्त हुआ, उससे मुक्त होजाता है, यह

समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ॥ औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७ ॥ यतोयतो निवर्त्तेत विमुच्येत ततस्ततः ॥ एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततो भवेत् ॥ संगात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥ कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्त्तते ॥ तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥ तया विरहितः साधो जंतुः शून्याय कल्पते ॥ ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ॥ वृक्षजीविकया जीवन्व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥

धर्म मनुष्योंको अत्यन्त शुभकारी है और शोक, मोह तथा भयको दूर करनेवाला है ॥ १८ ॥ प्रवृत्तिमार्ग अनर्थरूप है सो कहते हैं कि, जब मनुष्योंको विषयमें इन्द्रियोंका अध्यास होजाताहै, तब आसक्ति उत्पन्न होती है आसक्तिसे काम और कामहीसे कलह उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ कलहसे अतिअसह्य क्रोध होता है, क्रोधसे तम और अज्ञान होता है, अज्ञानसे पुरुषकी चेतना जो सब देहमें व्यापरही है, सो शीघ्रही नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ हे साधो ! जब वह चेतनासे रहित हुआ, तब यह जीव आसाधुके तुल्य हो मूर्च्छित होता है, मूर्च्छा होतेही मृतक समान होनेसे इसके पुरुषार्थकी हानि होती है ॥ २१ ॥ जो मृतक समान है उसका स्वरूप कहते हैं, जो विषयोंमें आसक्त होनेके कारण आत्माको तथा और को भी नहीं जानते, सो वृक्षोंकी जीविका की नाईं वृथा जीते हैं, धौंकनीके समान श्वास लेते भी मृतक समान हैं ॥ २२ ॥

यह जो प्रवृत्तिमार्गकी आज्ञाहै, सो वेदने यहाँ कर्मोंके फल रुचि दिखानेके लिये वर्णन किये हैं, जैसे रोगीको औषधी रुचि उपजाकर पिलाते हैं, तात्पर्य आरोग्यतासे है. सदा औषधी सेवनसे नहीं. इसी प्रकार जब तक ज्ञान न हो तब तक कर्म करनेकी वेद आज्ञा करता है, सब काल कर्म करनेसे तात्पर्य नहीं ॥ २३ ॥ मनुष्य स्वभावहीसे पशु आदिमें और इन्द्रिय, बल वीर्यमें, पुत्रादिकोमें आसक्तचित्त होजाता है सो सब अपने आपको अनर्थका हेतु है ॥ २४ ॥ इससे स्वार्थ अर्थात् परमसुखको जो पुरुष नहीं जानते, वह अनेक पापरूप मार्गोंकी उन उन योनियोंमें भ्रमण करते हैं, इसके पीछे जड़रूप वृक्ष आदि योनियोंमें प्रविष्ट होते हैं, उनको फिर वेद भी धर्मोंमें नहीं प्रवृत्त करे, जिससे अनिष्ट हो उसीमें वेद वृप्रत्त करे तो हितकारी हो ॥ २५ ॥ कर्ममार्गी कैसे फल बताते हैं, सो कहते हैं, इसप्रकार वेदका अभिप्राय जाने विना कुबुद्धिही लोग वेदमें

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् ॥ श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥ उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च ॥ आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥ २४ ॥ न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ॥ कथं युंज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥ २५ ॥ एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ॥ फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥ कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ॥ अग्निमुग्धा धूमतांताः स्वं लोकं न विदंति ते ॥ २७ ॥ न ते मामंग जानंति हृदिस्थं य इदं यतः ॥ उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥ ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ॥ हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥

कहे हुये सुन्दर फलश्रुतिको सत्य समझतेहैं वह भ्रम है परन्तु जो वेदके तात्पर्यको जानते हैं, वह व्यास आदि ऋषि ऐसा नहीं कहते ॥ २६ ॥ कामीकृपण, लोभी, पुष्परूपी स्वर्गादि सुखरूप अवान्तर फल जो मुख्य माननेवाले अग्निहोत्रादिसे मुग्ध धूम्रयुक्त चित्तवाले अपने सुखदायक लोकको नहीं जानते ॥ २७ ॥ हे उद्धव ! जिससे यह जगत् प्रगट है और जो जगत्रूप हैं, ऐसे मुझ परमात्माको वे हृदयमें स्थित नहीं जानते, कर्मरूप शस्त्रोंसे पशु हिंसाकर बकवत प्राण पुष्ट करते हैं जैसे कुहरेसे कुछ नहीं दीखता, वैसेही अज्ञानसे उनके नेत्र व्याप्त हैं, क्योंकि जो समीपमें स्थित मुझे नहीं जानते ॥ ॥ २८ ॥ इसी कारणसे मेरे वाक्यरूप वेदके गूढ़ तात्पर्यको विषयी नहीं जानते, मेरा मत यह

है कि, यदि मांस भक्षणके लिये हिंसाकी विधिमें वेदकी प्रीति होती तो वेद यज्ञमेंही मांस भक्षणकी विधि नहीं करता, किन्तु सदाके लिये आज्ञा देता मनुष्योंकी मांसमें अधिक प्रवृत्ति देख उनको इससे छुड़ानेके लिये कि, एक संग तो छूट नहीं सकता, इस कारण छुडानेका उपाय प्रतिपादन करता है कि, पशुको यज्ञमेंही मारना और स्थलमें नहीं उसमें भी अमुक पशु मारना, इससे वेदका अभिप्राय पशुहिंसासे निवृत्तिही करनेका है ॥ २९ ॥ हिंसामें जिनके व्यवहार हैं, अपने विषय भोगोंके लिये पशुओंकी हिंसा करके देवता, पितृ, भूतपतियोंका जो पुरुष पूजन करते हैं वह अतिदुष्ट हैं ॥ ३० ॥ स्वप्नके समान कानोंको सुख दायक परलोकको और इस लोककी कामनाओंका मनमें संकल्प करके अपने धनको सकामकर्मोंमें व्यय करते हैं और दोनों लोकसे भ्रष्ट होजाते हैं, जैसे बनियाँ दुस्तर समुद्रके उल्लंघन करनेमें बहुत धन प्राप्तिकी इच्छाकर

हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ॥ यजंते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन्खलाः ॥३०॥ स्वप्नोपममसुं लोकमसंतं श्रवणप्रियम् ॥ आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजत्यर्थान्यथा वणिक् ॥ ३१ ॥ रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः ॥ उपासत इन्द्रमुख्यान्देवादीन्न तथैव माम् ॥ ३२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ॥ तस्यांत इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥ एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ॥ मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्तापि न रोचते ॥ ३४ ॥ वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे ॥ परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥

अपने संचित किये धनको छोड़ दोनोंओरसे भ्रष्ट होजाता है ॥ ३१ ॥ और जो रजो गुण, सतो गुण, तमोगुणसे युक्त होकर जैसे इन्द्रादिक देवताओंकी सेवा करतेहैं, वैसे मेरी सेवा नहीं करते॥३२॥मनमें अनेक मनोरथ करते हैं कि, "यहाँ यज्ञसे देवताओंको सन्तुष्टकर स्वर्गमें जाकर विहार करेंगे और फिर यह भोग भोगकर अंतमें यहाँ आय बड़े बड़े गृह तथा बड़े कुलमें स्थित होंगे" ॥ ३३ ॥ इस प्रकार फूली बातोंसे चंचल चित्त मनुष्य मान अहंकार भरे गृहमें रमे रहते हैं, उनको मेरी वार्त्ता अच्छी मालूम नहीं होती ॥ ३४ ॥ इसकारण वेदका तात्पर्य ब्रह्म विषेहै, निवृत्तिही को बतातेहैं, यद्यपि कर्मयोग, ज्ञानमार्ग, उपासनामार्ग, भिन्न भिन्न कहेहैं परन्तु तोभी तात्पर्य ब्रह्ममेंही है मंत्र और मत्रोंके द्रष्टा ऋषि परोक्ष रीतिसेही पदार्थका प्रतिपादन करते हैं, इससे ब्रह्म आत्मामें गूढ होनेके कारण प्रकाशित नहीं परोक्षरीतिसे कहनेका कारण यह है कि, मुझे

परोक्ष प्रियहै जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं वही उसको जान सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते दूसरोंके जाननेमें हित तो दूर रहे; किन्तु कर्मभ्रष्ट होनेकी आपत्ति आनपड़ती है ॥ ३५ ॥ तो कहते हैं कि, जैमिनि आदिऋषि वेदके ज्ञाता थे इन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा ? इसका उत्तर यह है कि, वेदका तत्त्व मुझ विना कोई नहीं जानता है क्योंकि शब्दब्रह्म अति दुर्ज्ञेय है वही सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दो प्रकारका है सूक्ष्मका तो स्वरूप जानना भी अतिकठिन है. क्योंकि प्रथम तो वह परा नामक प्राणमय है, दूसरा पश्यंती नाम मनोमय है, तीसरा मध्यमानाम इन्द्रियमय है, देहमें यह तीनों स्वरूप सूक्ष्मरूपसे रहते हैं, इसलिये इनका जानना कठिन है चौथा वैखरीस्वरूप है जिससे मनुष्यबोलते हैं, समष्टि प्राणमय वेदब्रह्मका देशकालसे परिच्छेद न होनेके कारण उसके पारका अंत नहीं है जिसप्रकार यह वेद ब्रह्मशब्दसे जानना कठिन है, उसी प्रकार अर्थसे भी महागंभीर समुद्रके

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेंद्रियमनोमयम् ॥ अनंतपारं गंभीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥ ३६ ॥ मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनंतशक्तिना ॥ भूतेषु घोषरूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ॥ आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छंदोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ॥ ओंकाराद्व्यंजितस्पर्शस्वरोष्मांतःस्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषावितता छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ॥ अनंतपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥ ४० ॥

समान अवगाह करनेको दुःसाध्य है ॥ ३६ ॥ अनन्तशक्ति व्यापकरूप अन्तर्यामी ब्रह्मसे यह नादवन्त वाणीरूप कमलनालमें तंतुके समान सब प्राणीमात्रमें प्रतीत होता है, इस स्वरूपका विद्वान् पुरुष विचार करते हैं ॥ ३७ ॥ जैसे मकरी हृदयसे निकाल मुखद्वारसे जालको प्रगट करती है उसी प्रकार प्राणोपाधि हिरण्यगर्भ प्रभु भगवान् वेदमूर्त्ति अमृतमय नादवंत स्पर्शादिकोंका कर्त्ता और मन करके हृदयाकाशसे वैखरी नाम वाणीको उपजाकर जाते हैं, जो बृहती वा वैखरी नामक वाणी उपजाते हैं फिर आपही संहार करते हैं वह कैसी वाणी है ? कि जिसके अनेक मार्ग हैं ॥ ३८ ॥ हृदयमें प्राप्त अतिसूक्ष्म प्रणवसे प्रगटहुए जो स्पर्श, स्वर, ऊष्मा, अंतस्थसे शोभित ॥ ३९ ॥ अनेक लौकिक भाषाओंसे फैली उत्तरोत्तर चार चार अक्षर जिनमें बढ़ैं ऐसे गायत्री आदिसे छंदोंसे युक्त पारावार रहित है, वह प्राण उसे आपही प्रगट

करके उपसंहार करते हैं ॥ ४० ॥ उनमें कितनेही छन्दोंको दिखाते हैं–गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अत्यष्टि, अतिजगती और अतिविराट् इत्यादि छन्द हैं, चार चार अक्षर बढानेसे बनते हैं जैसे चौबीस २४ अक्षरोंका गायत्री छन्द होता है, अट्ठाईश २८ अक्षरका उष्णिक् छन्द होता है, बत्तीस ३२ अक्षरका अनुष्टुप्छन्द होता है, इस प्रकार चार चार अक्षरोंको अधिक करके छन्दोंका लक्षण ज्ञानलेना ॥ ४१ ॥ यह वेदवाणी कर्मकाण्डोंमें विधिवाक्योंसे क्या प्रतिपादन करती है और मंत्रवाक्योंसे देवताकाण्डमें किसका प्रकाश करती है ज्ञान काण्डमें यही वेदवाणी किसका अनुवाद करके विकल्प बताती है इसप्रकार वेदवाणीके तात्पर्यको मेरे अतिरिक्त जाननेकी किसीको सामर्थ्य नहीं ॥ ४२ ॥ वेदवाणी देवतारूप मेराही प्रतिपादन करती है और (उस्से आकाश उत्पन्न हुआ) इत्यादि वाक्योंसे विकल्प कथनकर पीछे

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥ त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छंदो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ४१ ॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ॥ इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥ ४२ ॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ॥ एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥ मायामात्रमनूद्यांते प्रतिषिध्य प्रसीदति॥ ४३॥ इति श्रीभा० म० एका० गुणदोषव० एकविंशोध्यायः॥ २१ ॥ उद्धव उवाच ॥ कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥ नवैकादश पंच त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

निराकरण कहते हैं सोभी मेराही स्वरूप है सब वेदका तात्पर्य यही है कि, परमेश्वर परमार्थरूप है, भेद मायामात्र है, इसप्रकारजो ओंकारमें अर्थ है वही सब काण्डोंमें है, जैसे अंकुरका रस शाखा प्रशाखा फल पुष्पादि सब आजाता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा–बाइसवें अध्यायमें, प्रकृतीपुरुषविचार, तत्त्वोंकी संख्या सकल, अरु अविरोध प्रकार ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि हे भगवन् ! हे विश्वेश्वर ! हे प्रभो ! कितने एक महात्मा तत्त्वोंकी संख्यामें विवाद करते हैं, उन्होंने अपने शास्त्रोंमें तत्त्वोंकी संख्या पृथक् २ की है, आप सब मिलकर तत्त्वोंकी संख्या अट्ठाईस २८ कहते हैं यह आपकेही श्रीमुखसे सुना है ॥ १ ॥

कोई छब्बीस २६ कहता है, कोई पचीस कहता है, कोई सात७कहता है कोई नौ ९ कहताहै, कोई छः ६ कहता है, कोई चार ४ कहता है, कोई ग्यारह ११ कहता है, कोई सत्रह १७ कहता है, कोई सोलह १६ कहताहै कोई तेरह १३ कहताहै ऋषीश्वर जिस प्रयोजनके अर्थ इतनी संख्या भिन्न भिन्न कहते हैं, सो हे चिरंजीव ! यह मुझे समझाकर कहो ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित ! जब इसप्रकार पूँछा तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! ब्राह्मण जो कहते हैं, सो युक्त है, यह तत्त्व सर्वत्र हैं मेरी मायाको अंगीकार करके कहते हैं, जिस मायामें किसी प्रकारका कहना अशक्य नहीं है ॥ ४ ॥ तुम जैसे कहते हो, यह ऐसे नहीं जो मैं कहता हूं सो सत्य है, इसप्रकार उन तत्त्वोंके मूल कार

केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ॥ सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ॥ एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥ गायंति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युक्तं च संति सर्वत्र भाषंते ब्राह्मणा यथा ॥ मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥ नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ॥ एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ॥ प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ॥ पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नपि दृश्यंते प्रविष्टानीतराणि च ॥ पूर्वस्मिन्वाऽपरस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥ पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ॥ यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥ ९ ॥

णमें जो ब्राह्मणोंका विवाद है वह यथार्थरूपसे देखाजाय तो अपने अपने स्वभावके अनुसार परिणाम होनेवाले मायाके सत्त्वादि गुणही विवादका कारण है ॥ ५ ॥ जिन शक्तियोंके क्षोभसे विवाद कर्त्ताओंका भेद आश्रय हुआ है, जब शम प्राप्त होनेसे भेद दूर हो तो भेद जानकर पीछे विवाद शान्त होजाता है ॥ ६ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! तत्त्वोंके परस्पर अनुप्रवेशसे कार्य कारणरूप तत्त्वोंकी संख्या वक्ताकी इच्छानुसार होसकती है ॥ ७ ॥ अब अनुप्रवेशको कहते हैं, एकही तत्त्वमें सब तत्त्व कारणमें अथवा कार्यमें प्रविष्ट दीखते हैं, जैसे मृत्तिकामें घट और घटमें मृत्तिका अन्योन्य प्रविष्ट हैं ॥ ८ ॥ इन तत्त्वोंका कार्यकारणभाव और न्यून आदिक संख्याको वादियोंके मध्य जैसे कहनेकी इच्छासे जैसे कि

जिह्वा जिसप्रकार प्रवृत्त होती है, वह वैसीही सिद्धि करसकती है, हम इस सबको संभव जानते हैं॥ ९ ॥ जीव ईश्वर जो चैतन्यरूप है, उसके भेद अभेद माननेके कारणको कहताहूं कि, जो जीव अनादि कालसे अविद्यासे संयुक्त है, इसलिये उसे अपने स्वरूपका ज्ञान स्वयं नहीं होसक्ता, उसे ज्ञान दाता सर्वज्ञ ईश्वर पृथक् है, ऐसा जानकर जीव ईश्वरमें भेद माननेवालोंके मतमें चौबीस तत्त्व और पचीसवाँ जीव तथा छब्बीसवॉ तत्त्व है ॥ १० ॥ स्वयं संख्या विषे भेदकल्पना व्यर्थ है, क्योंकि जीव ईश्वर दोनों चैतन्य होनेसे उनमें कुछ भेद नहीं और ऐसा माननेवाले पचीस तत्त्व कहते हैं ज्ञान प्रकृतिका गुण है, इसीसे प्रकृतिमें गिना है, यह एक पक्ष है ॥ ११ ॥ अहो ! ज्ञान तो जीवका धर्म है, प्रकृतिका गुण कैसे है ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, तीनों गुणोंकी समान अवस्था प्रकृति है, गुण प्रकृतिहीके हैं, आत्माके नहीं. सत्व, रज, तम, गुण उत्पत्ति,

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ॥ स्वतो न संभवेदन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ॥ तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥ १२ ॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्मतमोऽज्ञानमिहोच्यते ॥ गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ॥ ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥ श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ॥ वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिः कर्माण्यंगोभयं मनः ॥ १५ ॥ शब्दः स्पर्शो रसो गंधो रूपं चेत्यथजातयः ॥ गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥

पालन और प्रलयके कारण हैं ॥ १२ ॥ सत्त्वमय ज्ञान प्रकृतिका गुण है, कर्म रजोगुणका गुण है, अज्ञान तमोगुणका गुण है और स्वभाव यह महत्तत्त्वका स्वरूप है; काल ईश्वरका स्वरूप है; इसलिये काल स्वभाव भिन्न तत्त्व नहीं हैं, मैंने जो अट्ठाईस तत्त्व कहे हैं, उनमें पूर्वोक्त पचीस और तीनगुण यह सब मिलाकर अट्ठाईस होते हैं ॥ १३ ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वीमें यह मैंने नौ तत्त्व कहे हैं ॥ १४ ॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका, जिह्वा; यह पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं. वाणी, हाथ, पाँव, उपस्थ, गुदा, यह पाँच कर्मेन्द्रिय हैं, हे उद्धव ! ज्ञान और कर्म, रूप, मन यह ग्यारह ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पाँच ज्ञानेन्द्रियके

विषय हैं, गति, वचन, मलत्याग, ग्रहण, आनंद, यह पाँच कर्मेन्द्रियोंके फल हैं, यह सब इन्द्रियोंके फल हैं, भिन्न नहीं. इससे अट्ठा ईसके भीतर हैं, तत्त्व नहीं है ॥ १६ ॥ इस विश्वकी आदिमें कार्य कारणरूपिणी प्रकृति सत्त्वादि गुणसे इस विश्वकी उत्पत्ति अंत, आदि अवस्था रखते हैं, निर्विकार पुरुष केवल साक्षी हुआ देखता है, इसकारण विकारयुक्त प्रकृतिसे पुरुष भिन्न है ॥ १७ ॥ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्त त्वादिक धातु विकारको पाकर पुरुषके चितवनसे बल पाय महत्तत्त्वादिक परस्पर मिल प्रकृतिके आश्रयसे ब्रह्माण्डरूप कार्यको उत्पन्न करते हैं इससे संघातको प्राप्त होकर उनके उत्पन्नकिये देहादिक पदार्थ उन्हींके अन्तर्भूत होजाते हैं, इससे देहादिक पृथक् तत्त्व नहीं हैं ॥ १८ ॥ किसीके मतमें आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, यह पाँच पदार्थ और द्रष्टा जीव आकाशादि पदार्थोंका और जीवका आधार आत्मा; यह सात तत्त्व हैं,

सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ॥ सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ॥ लब्धवीर्याः सृजंत्यंडं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥ सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पंच खादयः ॥ ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेंद्रियासवः ॥ १९ ॥ षडित्यत्रापि भूतानि पंच षष्ठः परः पुमान् ॥ तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥ चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः ॥ जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥ ॥ २१ ॥ संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेंद्रियाणि च ॥ पंचपंचैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ॥ भूतेंद्रियाणि पंचैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥

इस मतमें प्रकृति महत्तत्त्व और अहंकार इस कारण तत्त्वोंका आकाशादिमें अन्तर्भाव माना है, इन्हीं सातों देह इन्द्रियादिकी उत्पत्ति मानी है ॥ ॥ १९ ॥ जिनके मतमें छः तत्त्व हैं, वह पाँच तो पंचमहाभूत और छठे परमात्माको मानते हैं, इस मतमें परमात्मा अपनेसे उत्पन्न हुए भूतोंसे जगत्को रचकर उसमें प्रविष्ट है इससे सब पदार्थोंका परमात्मामें अंतर्भाव है ॥ २० ॥ जिनके मतमें चार तत्त्व हैं उनमें आत्मा और आत्मासे प्रादुर्भूत हुए तेज, जल, पृथ्वी, यही चारतत्त्व हैं इससे सब जगत् उत्पन्न हुआ है सब कार्यका उसमें अन्तर्भाव है ॥ २१ ॥ सत्रह तत्त्वके मतमें पंचमहाभूत पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच ज्ञानेन्द्रिय एक मन सत्रहवाँ आत्मा ॥ २२ ॥ सोलह तत्त्वके मतमें आत्माही मन कहा है और

तेरहके मतमें पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेन्द्रिय एक मन, जीवात्मा और परमात्मा यह तेरहहैं ॥ २३ ॥ ग्यारहके मतमें पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेन्द्रिय, एक आत्मा, नौके पक्षमें पांच महाभूत प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार और पुरुषसे यह कहते हैं ॥ २४ ॥ इसप्रकार ऋषियोंने तत्त्वोंकी पृथक् पृथक्संख्या कही है यह सब प्रकृतिसे पुरुषके भिन्न जाननेको हैं, यह सब यथार्थ है क्योंकि विद्वानोंका कहा न्यायसिद्ध है विद्वान् क्या नहीं कह सकते ? ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! प्रकृति और पुरुष जिनमें एक जड़ और एक चैतन्य है यद्यपि यह स्वभावसेही भिन्नहै परन्तु तो भी परस्परका त्याग करते उनकी प्रीति नहीं होती, इससे भेद नहीं देखा जाता ॥ २६ ॥ हे पंकजलोचन ! आत्मा देहमें भासता है,

एकादशत्वमात्मासौ महाभूतेंद्रियाणि च ॥ अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥ इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ॥ सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥२५॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ॥ अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥२६॥ प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥ एवं मे पुंडरीकाक्ष महांतं संशयं हृदि ॥ छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ॥ त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ॥ एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥ ममांग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धिश्च गुणैर्विधत्ते ॥ वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥

देह आत्माको ग्रहण कर प्रतीत होता है "मैं हूँ" इस प्रकार दोनोंका अभेद प्रकाशनेसे देहका आत्मासे भेद नहीं देखा जाता है हे सर्वज्ञ मेरे इस संदेहको युक्तिके वचनोंसे दूर करो ॥ २७ ॥ तुम्हारी कृपासेही संसारी जीवोंको ज्ञान प्राप्त होताहै, तुम्हारी मायासेही अज्ञान होता है, आपके अतिरिक्त आपकी मायाकी गति कोई नहीं जानता॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, देह और आत्मामें बहुत विलक्षणता है, गुणोंके क्षोभसे होनेवाला यह देह तो विकारी है, आत्मा विकाररहित है ॥२९ ॥ हे उद्धव ! मेरी गुणमयी मायाने, अनेक भाँतिभेद और भेदके ज्ञान रचे हैं, यद्यपि इस

देहमें अनेक भेद हैं परन्तु तो भी तीन प्रकारके कहे हैं, एक अध्यात्मरूप, एक अधिदैवरूप, एक अधिभूत रूप ॥ ३० ॥ दृष्टि अध्यात्म है और अधिभूत नेत्रगोलकमें प्रविष्ट सूर्यका अंश अधिदैव है, नेत्रोंसे रूप जानिये, सो नेत्रोंकी प्रवृत्ति प्रेरणावाले देवता विना नहीं होती, इससे अधिष्ठात्री देवतासे नेत्रोंकी प्रवृत्ति इससे रूपज्ञान होता है, इसप्रकार तीनों परस्पर सिद्ध होते हैं, जो आकाशविषे सूर्य है तो आपसेही सिद्ध है इसलिये आत्मा अध्यात्मादिकोंका कारण है इससे भिन्न है अपने आपसे सिद्ध प्रकाश करके परस्पर प्रकाश करनेवालोंका भी प्रकाशक है. जैसे नेत्रमें तीन प्रकार हैं ऐसेही त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, वायु अधिदैव, श्रवण अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदैव, जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, वरुण अधिदैव, श्रवण अध्यात्म, गंध अधिभूत, अश्विनीकुमार अधिदैव, चित्त अध्यात्म, जिसके चित्तसे जानने ऐसा अधिभूत, वासुदेव अधिदैव,

दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रंध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ॥ आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः ॥ एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥३१॥ योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ॥ अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐंद्रियश्च ॥ ३२ ॥ आत्मापरिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठः ॥ व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो ॥ उच्चावचान्यथा देहान्गृह्णंति विसृजंति च ॥ ३४ ॥

मन अध्यात्म, जिसको मन कीजे सो अधिभूत, चन्द्रमा अधिदैव, बुद्धि अध्यात्म, जो जानिये ऐसेही अधिभूत, ब्रह्मा अधिदैव, अहंकार अध्यात्म अहंकारसे जो कीजिये सो अधिभूत, रुद्र अधिदैव ॥ ३१ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है—सात्विक, राजस, तामस, गुणके क्षोभकर्त्ता कालसे और प्रकृतिसे मूल महत्तत्त्वसे उत्पन्न हुए विकार हैं, यही अधिदैव अध्यात्म अधिभूतरूपी मोहसे देहादिके विकल्पका कारण है, जब देहादि अहंकार मिटजाय तब आत्माकी प्रतीत होसकती है ॥ ३२ ॥ आत्माका न जानना इसका रूप है, यह है यह नहीं ऐसा विवाद मेटके अधर्ममें निष्ठा और यह विवाद व्यर्थ ही है परन्तु तोभी स्वरूपभूत मुझसे विमुख जिनकी बुद्धि है उनको निवृत्ति नहीं होती है परन्तु विवादसे किये कर्मोंसे ऊंच नीच देहमें जन्म, मरणको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! तुमसे जिनकी बुद्धि विमुख है वह अपने करे कर्मोंसे

आपही नीच देहोंको ग्रहण करते हैं, व्यापक आत्माको देहसे और देहमें जाना अकर्त्ताका कर्म और नित्यका जन्म, मरण कैसे संभव होसकता है ? ॥ ३४ ॥ हे गोविन्द ! अजितेन्द्रियोंसे जो जाननेयोग्य है वह मुझसे कहो, क्योंकि लोकमें बहुधा इसके जाननेवाले नहीं हैं और हैं भी तो वह मायासे मोहित हैं * ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! कर्ममय मनुष्योंका मन पाँच इन्द्रियोंके सहित इस लोकसे और लोकमें जाता है और मनसे भिन्न आत्मा अहंता ममतासे मनके पीछे जाता है ।लिंगदेहसे यह सब बन सकता है ॥ ३६ ॥ कर्मोंके अधीन मन इस

तन्ममाख्याहि गोविंद दुर्विभाव्यमनात्मभिः ॥ न ह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः संति वंचिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मनः कर्ममयं नृणामिंद्रियैः पंचभिर्युतम् ॥ लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥ ध्यायन्मनोऽनु विषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ ॥ उद्यत्सीदत्कर्मतंत्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत्स्मरेत्पुनः ॥ जंतोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यंतविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ॥ विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथाः ॥ ३९ ॥

लोक और परलोकके विषे ध्यान करता उन विषयोंमें प्रगट होता है और पहले विषयोंमें लीन होजाता है, इसके उपरान्त उसको पहले पिछलेका स्मरण जाता रहता है ॥ ३७ ॥ कर्मोंके द्वारा दूसरे देहमें अत्यन्त अभिनिवेश होनेपर वह देवतादिकका देह हो तो हर्षसे अधम हो, तो शोकके भयसे जीवको प्रथम देहका विस्मरण होना, और उस देहका अहंकार नष्ट होना, यही आत्माका मरण है, कुछ देहके समान उसका मरण नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे दानी ! मनका दूसरे देहके साथ सम्बन्ध होनेपर उसमें अत्यन्त अहंकार प्रादुर्भूत होताहै मनके अध्याससे आत्मामें देहका

* शंका–श्रीकृष्णने उद्धवसे कहाकि, पृथ्वीमें विद्वान् नहीं हैं एक विद्वान् तो वे हैं जो व्याकरण आदि शास्त्रको पढते हैं ऐसे विद्वान् तो पृथ्वीपर बहुत हैं परन्तु उद्धव जिनको विद्वान् कहै वह विद्वान्कोनहैं॰ उत्तर–शास्त्र पढनेवालेको विद्वान् योगीश्वर लोग नहीं कहते, विद्वान् उसका नाम है कि जो पुरुष मोक्ष विद्याको जानता हो मोक्ष विद्या कैसी है कि, जिस मोक्षविद्याकी प्राप्तिके लिये बड बड चतुर योगीजन अनेक उपाय कर करके हारगये, परन्तु मोक्षविद्या प्राप्त नहीं हुई और जो किसी योगी पुरुषको हो भी गई तो बडि कठिनतासे, ऐसी विद्या जाननेवाले विद्वान् पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये उद्धवजीने कहा । शास्त्र पढनेवाले विद्वानोंके लिये नहीं कहा ।

ममत्व होताहै, यही आत्माका जन्म है ॥ ३९ ॥ जैसे एक स्वप्न देखनेके उपरान्त दूसरा स्वप्न होता है तथा एक मनोरथके उपरान्त दूसरा होता है, तब पहला मनोरथ और स्वप्न विस्मृत होजाता है, इसीप्रकार अत्मा मनके आभ्याससे अपने आपको नवीन उत्पन्न मानता है, इस भाँतिकी दशा होनेसे मनके अभ्यासके कारण एक देहका अभिमान नष्ट होनेपर दूसरे देहका तीव्र अभिमान होनेसे यह अपने पूर्व जन्मको नहीं जानता ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंका आश्रय जो मन और देहके अभिनिवेशसे उत्पत्ति द्वारा आत्मामें उत्तम, मध्यम, नीचता, मिथ्या होनेपर भी प्रकाशित होते हैं, उन्हींके द्वारा आत्मा बाह्य विषयोंको और अंतरमें सुखादिकोंको देखता है, जैसे जीव स्वप्नमें झूठे बहुत देहोंका कर्त्ता देखता बहुत रूप भासे है अथवा जैसे दुष्ट पुत्रका पिता पुत्रके प्रेमसे पुत्रके शत्रु मित्रोंको अपना शत्रु मित्र मान लेता है, इसीप्रकार आत्मा मनके अभिनिवेशसे देहको अपना

स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ॥ तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥ इंद्रियायनसृष्टयेदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ॥ बहिरंतर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥ ४१ ॥ नित्यदा ह्यंग भूतानि भवंति न भवंति च ॥ कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ ४२ ॥ यथाऽर्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ॥ तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥

जानता है ॥ ४१ ॥ जिसकी तीव्र गति जाननेमें नहीं आती, ऐसे कालके लिये यह शरीर क्षण क्षणमें उत्पन्न होते और मरते हैं परन्तु कालकी सूक्ष्मताके कारण अज्ञानी इस जन्म मरणको नहीं जानते ॥ ४२ ॥ नित्य जन्म मरण होता है, यद्यपि इसका प्रमाण कहीं देखनेमें नहीं आताहै परन्तु तो भी अनुमानसे जन्म बताते हैं, जैसे ज्योति पहले कोमल होती है, फिर कुछेक अधिक होती है, इसके उपरान्त अतिक्षीण होजाती है, जैसे वृक्षका फल पहले कच्चा हुआ, फिर कुछेक पीला पड़ा, इसके उपरान्त पकगया जिसप्रकार क्रमसे भिन्न अवस्था कालसे होती है, पर जानी नहीं जाती, ऐसेही इसी अनुमानसे शरीरको भी कालसे नित्य वय अवस्थादिक होती हैं, परन्तु जानी नहीं जाती हैं, प्रथम अवस्थाका त्याग दूसरेका ग्रहण यही जन्म मरण नित्य होता है यही जगत् अवस्थाका भेदवाला है, इसीसे क्षण क्षण में उत्पत्ति और नाशको प्राप्त होता है, अवस्थाके भेदवालोंकी

यही दशा है ॥ ४३ यहां तर्क करते हैं कि, नित्य अवस्थाभेदसे जन्म मरण होनेवालेको ऐसा ज्ञान क्यों होता है ! कि यही देह है, सो यहां दृष्टान्त दिखाकर कहते हैं कि जातियोंके सादृश्यसे यह वही दोष है, ऐसा ज्ञान होता है जिसप्रकार जल क्षण क्षणमें बदलता है परन्तु नया जल आने परभी उन्हें वही जल है, यह भ्रांति होती है,इसीप्रकार शरीर क्षणक्षणमें परिवर्त्तित होता है, परन्तु यह वही शरीर है ऐसी वाणी अज्ञानी पुरुष भ्रांतिसे कहाकरतेहैं॥४४॥अहो!बड़ा आश्चर्यहै जिसको देहाभिमानहै,उसको कर्म जन्म मरण सबहै औरोंको नहीं, सो कैसे संभव होसकताहै?तो उत्तरमें कहतेहैं कि, वस्तुसे देहाध्यासवत्का भी जन्म मरण नहीं, अध्यासवत् पुरुष अपने कर्मबीजसे न उत्पन्न होता न जन्म लेता है भ्रांतिसे अजन्मा होनेपरभी जन्मतासा और अमर होनेपर भी मरतासा प्रतीत होताहै॥४५॥अब देहकी अवस्थाको कहतेहैं, देहका प्रथम तो उदरमें प्रवेश और फिर गर्भवास होत

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ॥ सोयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥ मा स्वस्य कर्म बीजेन जायते सोऽप्ययये पुमान् ॥ म्रियते वाऽमरो भ्रांत्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ॥ वयो मध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ॥ गुणसंगादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥ ४७ ॥ आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ॥ न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वाञ्जन्मसंयमौ ॥ तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥

है, पीछे जन्म फिर बाल्य कौमार यौवन मध्यम व्रय, (पैंतालीस वर्षसे पीछे साठ वर्षतक) उपरान्त जरा, पीछे मृत्यु, यह तो देहकी नव अवस्था हैं ॥ ४६ ॥ यह मनोरथमयी अवस्था ऊँच नीच देहको है. सत, रज, तम, गुणके संगसे आपको मान लेते हैं, इनमें कोई एक ईश्वरके अनुग्रहसे भक्त इन अवस्थाओंको बहुत विवेक ज्ञानसे छोड़ देते हैं ॥४७॥ यदि कहो कि, देहके जन्म मरणमें तो वह मूर्छित रहता है, इसे इतना ज्ञान कैसे होसके ? तो सुनो,पिता मरता है, उसकी क्रिया करते हैं, तब देहका नाश देखते हैं, पुत्र जन्म होता है, तब जातकर्म करते हैं. तहाँ देहका जन्म देखते हैं, उस अनुमानसे अपने देहका जन्म मरण जानते हैं, परन्तु जन्म मरण खाली देहको है, द्रष्टाको जन्म मरण नहीं होत ॥४८॥ जैसे धानादिके बीजसे जन्मका और पकानेसे मरणका जाननेवाला जो द्रष्टा है, वह वृक्ष और फलसे भिन्न है. इसीप्रकार देहके जन्म मरण जाननेवाला द्रष्टा

देहसे पृथक् हैं ॥ ४९ ॥ इस भाँति शरीरादिसे आत्माका यथार्थ विचार करना चाहिये. यदि यह विचार न किया जाय तो विषयमोहमें गिरनेके कारण यह मूढ़ प्राणी संसारमें गिरता है ॥ ५० ॥ गुणके भेदसे त्रिविध संसार कहते हैं, तहाँ एक एकके दो दो भेद हैं सो कहते हैं कि, सतो गुणके संगसे ऋषि देवता होते हैं, रजोगुणसे असुर और मनुष्य होते हैं, तमोगुणसे भूत, पशु, पक्षी, इत्यादि सब उत्पन्न होते हैं सो वह अपने कर्मोंसे भ्रमण करते हैं उनहीं उन योनियोंमें पड़े हैं ॥ ५१ ॥ अहो! आत्मा तो कर्त्ता नहीं तो कर्मोंसे क्यों भ्रमण करता है ? इसपर कहतेहैं कि, जैसे नाचते और गाते पुरुषोंको देखकर यह पुरुष उनमें स्थित गाने और तालको अपने मनमें अनुवर्त्तन करता है इसप्रकार बुद्धि और गुणोंके अवलोकनसे गुणोंकी सामर्थ्यसे अकर्त्ता पुरुष उन्हें अपने आपमें मान लेताहै ॥ ५२ ॥ जैसे जलके हिलनेसे तीरके वृक्ष हिलतेसे दीखते

प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ॥ तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥ सत्त्वसंगादृषीन्देवान्रज
साऽसुरमानुषान् ॥ तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ॥५१॥ नृत्यतो गायतः पश्यन्यथैवानुकरोति तान् ॥
एवं बुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथांभसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन
दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥ ५३ ॥ यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ॥ स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥
॥ ५४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेपि संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥

हैं जैसे दृष्टिके भ्रमसे पृथ्वी भी भ्रमतीसी दिखाई देतीहै, तो यह धर्म वृक्षमें भूमिमें नहीं यह अपने व्यवधानसे दीखते हैं इसी प्रकार दृश्यका धर्म द्रष्टामें स्फुरण होता है और आनन्दादि आत्माके लक्षण होनेपर भी विषयोंके गुणसे प्रतीत होते हैं ॥ ५३ ॥ यदि कोई कहै कि आत्मा भोग करता है सो भी मिथ्या है, जैसे मनोरथकी बुद्धि मिथ्या है और स्वप्नमें देखी बुद्धि सब मिथ्या है, इसीप्रकार आत्मामें प्रतीत होता हुआ विषयोंका अनुभवरूप संसार भी असत्य है ॥ ५४ ॥ तो निवृत्तिके उपायका प्रयोजन क्या है ? इसपर कहते हैं कि, यद्यपि स्वप्न असत्य है परन्तु तो भी उन विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके उन अवस्थामें स्वप्नके दुःख नहीं जाते, इसीप्रकार संसारके मिथ्या होनेपर भी विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके जन्म मरण नहीं जाते ॥ ५५ ॥

हे उद्धव ! इसीलिये तुम इन दुष्ट इन्द्रियोंसे विषय भोग मत करो आत्माके ज्ञान विना यह संसारका भ्रम हुआ है, ऐसा जानो ॥ ५६ ॥ कोई निन्दा करो, कोई अपमान करो; कोई उपहास करो, कोई वंचना करो, कोई ताड़ना करो, कोई रोक रक्खो, वृत्ति छीनलो ॥ ५७ ॥ कोई मूत्र डालो, जूँठन डालो, ब्रह्मनिष्ठा बिगाड़ै परन्तु अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष इतने कष्ट सहै और आत्मासे आत्माका उद्धार करे, क्रोधित होकर अपने धर्मको न खोवै ॥ ५८ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम्हारा वचन हम अच्छीरीतिसे समझ सकैं उसीप्रकार समझाकर कहो कि, नीच अधम पुरुष इसप्रकार पांडित्य करै तो उसका सहन करना महाकठिन है ॥ ५९ ॥ हे विश्वके आत्मरूप ! जो तुम्हारे

तस्मादुद्धव मा भुंक्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः ॥ आत्माऽग्रहणनिर्भातं पश्य वै कल्पितं भ्रमम् ॥५६॥ क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ॥ ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥५७॥ निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकंपितः ॥ श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥ उद्धव उवाच ॥ यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर ॥ सुदुःसहमिमं मन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥ विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥ ऋते त्वद्धर्मनिरताञ्छांतांस्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० तत्त्वसंख्याऽविरोधादिव० द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥ सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ॥ दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥

चरणके आश्रय हैं तुम्हारे धर्ममें तत्पर और शांत हैं उनको छोड़कर अति पंडितको भी ऐसे अपराधोंका सहन होना अतिकठिन है ऐसा मैं मानता हूं, क्योंकि स्वभाव बड़ा बली होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ दोहा–तेइसवें अध्यायमें, सहन भीख अपमान ॥ बुद्धीसे मनको करे, निग्रह मुनि विद्वान ॥ १ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम राजा परीक्षित् ! इसप्रकार भक्तोंमें मुख्य यादवोंमें श्रेष्ठ उद्धवजीके पूँछनेपर मुकुंद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उत्तर देने लगे जिन भगवान्के चरित्र श्रवण करनेमें अत्यन्त सुखकारी हैं ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव ! इस लोकमें

वह साधु नहीं है जो दुष्ट वचनसे खेदयुक्त मनको समाधान न करसके ॥ २ ॥ मर्मस्थानमें लगे बाणोंसे विद्ध पुरुष ऐसा ताप नहीं पाते जैसे मर्ममें लगे दुष्ट वचनसे व्यथा पाते हैं ॥ ३ ॥ तथापि मेरे कहे उपाय करै तो उपाय कहताहूँ; हे उद्धव! इस विषयमें एक अतिपवित्र इतिहास है सो मैं आपसे वर्णन करताहूं तुम भले प्रकार सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ कोई एक भिक्षुक था सो दुर्जनसे पीडित हो धैर्य धारणकर अपने प्रारब्ध कर्मोंका भोग मानकर यह कहने लगा ॥ परन्तु वह भिक्षुक पहिले बड़ा धनवान् और सज्ञान था अत्यन्त दुःखसे जो धन प्राप्त किया था उसके विनाश होजानेसे वह अत्यन्त पीड़ित और संतप्त होगया फिर चित्तमें धैर्य बढाने और वैराग्य आनेसे संन्यास धारणकर भिक्षावृत्तिसे

न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः ॥ यथा तुदंति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥ कथयंति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ॥ तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ॥ स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवंतिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया ॥ वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ॥ शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यंते पुत्रबांधवाः ॥ दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन्प्रियम् ॥ ८ ॥

अपना निर्वाह करनेलगा परन्तु नगरनिवासी उसको पिछले वैरभावसे अनेक प्रकारके दुःख देनेलगे, तब उस भिक्षुकने एक कथा कही सो उसके चारित्र हम आपके आगे कहते हैं अवन्तिका (उज्जैन) देशमें एक ब्राह्मण लक्ष्मीसे अतिसंपन्न खेती और वाणिज्य करै कामी लोभी महाक्रोधी महाकदर्य था * ॥ ६ ॥ बांधव और अतिथिको वचनसे भी न पूजे धर्म काम करके हीन शून्य देहरूप घरमें भोगोंसे कभी आत्माकी पूजा नहीं की ॥ ७ ॥ ऐसे दुःशील कदर्यके पुत्र, बांधव, स्त्री, बेटी, सेवक इत्यादि सब दुःख पावैं कोई उसे भला न कहै ॥ ८ ॥

---

* कदर्यका लक्षण स्मृतिमें कहा है आत्माका धर्म कार्य न करना पुत्र स्त्री देवता अतिथि और सेवकोंको दु.ख दे सो कदर्य है ॥

फिर वह इसप्रकार दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुआ कि, धर्म, अर्थ, कामसे हीन केवल भूतकी द्रव्यकी रक्षा करता रहै, ऐसे पुरुषपर नित्य कर्तव्य पांच महायज्ञोंके अंशके भागी देवता अत्यन्त क्रोधित हुए देवताओंके तिरस्कार करनेसे पुण्यका विस्तार सब क्षीण होगया, तब अनेक परिश्रमसे युक्त खेती आदि परिश्रमसे कमाया द्रव्य भी नष्ट होगया ॥ ९ ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! कुछेक द्रव्य उसके घरका बांधव लेगये, कितनाही द्रव्य चोर लेगये, कितना एक द्रव्य गृहदाहसे जाता रहा कितनाही जहाँ गाड़ दिया था वहाँसे गया, कुछ द्रव्य अधर्मी

तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः ॥ धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पंच भागिनः ॥ ९ ॥ तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कंधस्य भूरिद ॥ अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥ ज्ञातयो जगृहुः किंचित्किंचिद्दस्यव उद्धव ॥ दैवतः कालतः किंचिद्ब्रह्मबंधोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ॥ उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ॥ खिद्यतो वाष्पकंठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः ॥ न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥

ब्राह्मण और मनुष्य लेगये, कितनाही द्रव्य राजद्वारमें गया ॥ ११ ॥ सो फिर इसप्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे धर्म, अर्थ, कामसे रहित हुआ, स्वजन कुटुम्बी इसका अनादर करने लगे, तब यह अपार चिंताको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ द्रव्य जानेसे वह ब्राह्मण अतिचिन्ता करके उस धनका बहुत ध्यान करता संतप्त हुआ और गद्गद कंठ होकर उसको बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ * ॥ १३ ॥ तब यह कहनेलगा कि, अहो ! यह देखो बडाही कष्ट है,

* शंका—महादुष्ट, खोटी बुद्धि, अत्यन्त कृपण, भगवान्में प्रीति नहीं, ऐसा दुष्ट ब्राह्मण, मुनियों करके बडे दुःखसे प्राप्त होने योग्य जो ज्ञान, उस ज्ञानको क्यों प्राप्त हुवा ? यह भ्रम है। उत्तर—धनका नाश होगया तो ब्राह्मण दुःखी होकर वनमें भ्रमता भ्रमता सन्ध्या होगई तो क्या देखता है ? कि एक गाय गारमें सँदी हुई पडी है और दलदलसे किसी प्रकार निकल नहीं सक्ती, उस गायको देखकर ब्राह्मणको बडी दया आई और यह विचार किया कि, किसी प्रकार यह गाय इस दलदलसे बाहर निकले, उसने हाय हाय शब्द करके बडे परिश्रमसे उस सँदीहुई गायको दलदलसे बाहर खेंच खाँचकर निकाललिया, गाय प्रसन्न हो ब्राह्मणको आशीर्वाद देती हुई धीरे धीरे चली गई, गायकी कृपासे बहुत शीघ्र ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त होगया, वह ज्ञान जो ज्ञान मुनि लोगोंको महाकठिनतासे प्राप्त होताहै, गृहस्थीमें जो खोटे कर्म ब्राह्मणने किये थे उन कर्मोंसे धनका नाश हुवा, अनेक विघ्न हुए परन्तु ज्ञानको पाकर आनन्द होगया, इस उपायसे दुष्ट ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त हुआ था।

इतना बडा भारी मेरा द्रव्यका परिश्रम वृथाही गया जो यह आत्मा संतप्त किया न तो धर्मके अर्थ और न कामार्थ हुआ, सब वृथाही गया ॥ १४ ॥ बहुधा जो कदर्य हैं उनको द्रव्यका सुख कभी नहीं होता, जीवित इस लोकमें आपको सन्ताप होता है और मरनेपर नरक मिलता है ॥ १५ ॥ जो यशस्वी हैं उनका यश अतिनिर्मल है और गुणियोंको गुण है, सो बड़ाईके योग्य है, परन्तु जो थोड़ा भी लोभ होय तो सब गुण यशको दूर करे जैसे उत्तम रूपको थोड़ा भी कोढ़ दूर कर देता है ॥ १६ ॥ इसलिये द्रव्य सब दुःखरूप है, प्रथम तो साधनमें कष्ट है, इसके उपरान्त सिद्ध होनेपर वह द्रव्य बढ़ाना चाहै, उसमें भी कष्टहै फिर उसकी रक्षा करनी चाहिये भोगमें व्यय होताहै, नाश होताहै, इसप्रकार आदिसे अन्ततक, श्रम, भय,

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ॥ इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥ यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ॥ लोभः स्वल्पोऽपि तान्हंति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥ नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥ स्तेयं हिंसाऽनृतं दंभः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥ भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥ एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ॥ तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥ भिद्यंते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥ एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥ त्यजंत्याशुस्पृधो घ्नंति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥

चिन्ता, श्रम, मनुष्योंको रहते हैं, इस कारण कभी अर्थ सुखकारी नहीं है ॥ १७ ॥ और भी दोष कहते हैं चोरी हिंसा दंभ, झूंठ काम, क्रोध धनके साधनमें हैं गर्व, अहंकार, भेद, वैर, अविश्वास, अश्रद्धा, यह छः अनर्थ पाये पीछे होतेहैं और तीन व्यसन, स्त्री, मद्य, जुआ, इसी धनसे होते हैं ॥ ॥ १८ ॥ इसप्रकार पन्द्रह अनर्थ अर्थसे (द्रव्यसे) होते हैं, सुनो उद्धवजी ! इसका नाम तो अर्थ है पर अनर्थरूप है इसलिये जो पुरुष अपना भला चाहै तो वह दूरहीसे अर्थका त्याग करे ॥ १९ ॥ दोष यह कि माता, पिता, भ्राता, स्त्री, संबंधी जो स्नेहके कारण एक चित्त होकर मिले रहते हैं वह भी धनके लिये पृथक् होजाते हैं और काकिणी अर्थात बीस कौड़ीके ऊपर तत्काल वैरी होजाते हैं ॥ २० ॥ यह प्राणी थोड़ेही द्रव्यके लिये

क्षेमको प्राप्त हो महाक्रोध कर श्रद्धासे एक साथ सुहृदता और स्नेह छोडकर परस्पर मारनेलगते हैं ॥ २१ ॥ इस लोकमें जो अनर्थ उठे हैं और जो परलोकमें भी अनर्थ होंगे सो कहते हैं देवताओंके प्रार्थनीय मनुष्य जन्मको पाकर उसमें भी उत्तम ब्राह्मण जन्मको पाय उस जन्मका अनादर कर अपना स्वार्थ खोदेते हैं, वह अधमगतिको प्राप्त होंगे ॥ २२ ॥ इसलिये स्वर्ग और मोक्षका द्वार यह देह पाय, इस अनर्थके घर द्रव्यमें कौन मरणधर्मा पुरुष आसक्त हो ? ॥ २३ ॥ देवता, ऋषि, पितर, भूत, जाति बंधु और जो अंशके भागी हैं इनको और अपनी आत्माको जो न दे सो अधमगतिमें जाय इससे वे भूतकी नाईं द्रव्यके रक्षक हैं ॥ २४ ॥ अब अपनी अवस्था कहता हूं, मैं व्यर्थ अर्थकी क्रियासे सदा असावधान

लब्ध्वा जन्माऽमरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् ॥ तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नंति यांत्यशुभां गतिम् ॥२२॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान्॥द्रविणे कोनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि॥२३॥देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बंधूंश्च भागिनः॥ असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥ व्यर्थयाऽर्थेहया चित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम्॥ कुशला येन सिध्यंति जरठः किं नु साधये ॥ २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयाऽर्थेहयाऽसकृत् ॥ कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥ किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ॥ मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ॥ येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥

रहा, मेरा द्रव्य व्यर्थही गया और वय क्रम अवस्था भी व्यर्थ गई, जो विवेकी हैं; वह अर्थसे मोक्षके अधिकारी होते हैं, और मेरा बलभी व्यर्थ गया अब मैं वृद्ध होगया हाय ! मैं कुछ भी न कर सका ॥ २५ ॥ यह अर्थकी चेष्टा व्यर्थ होनेपर भी जानबूझकर इसकी तृष्णासे ज्ञानी पुरुष भी क्यों क्लेश पाते हैं ! इससे विदित होता है कि, किसीकी मायासे यह प्राणी अत्यन्त मोहित हो रहे हैं ॥ २६ ॥ यद्यपि धनसे संसारी भोगोंको भोगते हैं, परन्तु जब कि, इस प्राणीके निकट प्रतिदिन मृत्यु चली आती है, तब इसे धनसे, धनके देनेवालेसे, सुखसे, सुखके देने वालोंसे तथा बारबार जन्मदाता कर्मोंसे क्या सिद्ध है ? ॥ २७ ॥ मेरे ऊपर निश्चयही सर्वदेवरूप भगवान् संतुष्ट हुए जो भगवान्‌से मैं इस दशाको

प्राप्त हुआ, मुझे वैराग्य उपजा, वैराग्य संसारसमुद्रसे तरनेको नौका है ॥ २८ ॥ अब मेरा जितना समय शेष रहा है, उस कालसे तपस्या करके मैं अपने अंगोंको क्षीण करूंगा, आत्माहीसे संतोष मान समस्त धर्मोंमें सावधान होकर रहूंगा ॥ २९ ॥ मुझपर त्रिलोकीके ईश्वर तथा देवता अनुग्रह करते हैं, कदाचित् कहो कि, देवताओंके अनुग्रह करनेसे वृद्ध हुआ, सो समय थोडा रह गया; अब क्या कर सकूंगा ? तो कहते हैं कि खट्वांग राजा ने एक मुहूर्त्तमें ब्रह्मलोकको साध लिया था ॥३०॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जब अवंती नगरीका ब्राह्मण इसप्रकार मनमें निश्चय कर हृदयकी गाँठ अहंता ममताकी खोल शान्त मन हो संन्यासी होगया ॥ ३१ ॥ इन्द्रिय, वायु, मनको निश्चय करके पृथ्वीपर फिरने लगा, इसके उपरान्त भिक्षाके लिये एक नगरमें आया ॥ ३२ ॥ वहाँ भी कहीं आसक्त नहीं और न किसीको अपनी श्रेष्ठता दिखावै, विचरता रहै कल्याणरूप वह ब्राह्मण अतिवृद्ध भिक्षुक अवधूत वेषसे रहै, इसको देखकर दुष्टजन अनेक प्रकारके तिरस्कारसे दुःख देनेलगे ॥ ३३ ॥ अब सात श्लोकोंमें इसका उत्तर कहतेहैं, किसीने तो उसका त्रिदंड लेलिया और कोई पात्र, आसन, पीढ़ा, माला, कन्था, वस्त्र, लेलेकर चलेगये ॥ ३४ ॥ हे महापुरुष ! पहले इसप्रकार दिखाकर मुनिको देखकर फिर लेलिया और जब भिक्षा माँग अन्नले नदीके तीर भोजन करै ॥ ३५ ॥ तब पापी इसके माथेपर मूत्र

सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येंगमात्मनः ॥ अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥ तत्र मामनुमोदेरन्देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावंत्यो द्विजसत्तमः ॥ उन्मुच्य हृदयग्रंथीञ्छांतो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥ स चचार महीमेतां संयतात्मेंद्रियानिलः ॥ भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ॥ दृष्ट्वा पर्यभवन्भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमंडलुम् ॥ पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कंथां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥ प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नं च भैक्ष्यसंपन्नं भुंजानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयंति च पापिष्ठाः ष्ठीवंत्यस्य च मूर्धनि ॥ यतवाचं वाचयंति ताडयंति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥

करदें, फिर वह जो मौन रहें तो बुलावें, यदि न बोले तो मारें, कोई इसप्रकार डरावें कि यह चोरहै, ऐसे वचन कहें ॥ ३६ ॥ कितने एक यह कहने लगे कि इसे बाँधो, ऐसे कहकर उसको रस्सियोंसे बाँधतेथे, कितने एक कहने लगे कि मारोमारो क्योंकि यह धर्मका ढोंग बनानेवाला और लोगोंको ठगनेवालाहै, यह पाखण्डीहै, धूर्तहै, अब द्रव्य तो सब गया स्वजन संबंधियोंने सबने छोड़ दिया अब यह वृत्ति ग्रहण कीहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अहो ! देखो यह बड़ा ढीठ और अतिबली है, क्योंकि पर्वतके समान धैर्यवान मौनसे बकध्यानी होकर अपना स्वार्थ साधरहा है, इसका दृढ़ निश्चय है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार एक तो हँसैं, कोई उसके ऊपर अधोवायु छोड़ैं, कोई बाँधे, कोई रोक रक्खे जैसा बालकोंका खिलौना ॥ ४० ॥ इस भाँति

तर्जयंत्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ॥ बध्नंति रज्ज्वा तं केचिद्बध्यतांबध्यतामिति ॥ ३७ ॥ क्षिपंत्येकेऽवजानंत एष धर्मध्वजः शठः ॥ क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहो एष महासारो धृतिमान्गिरिराडिव ॥ मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥ इत्येके विहसंत्येनमेके दुर्वातयंति च ॥ तं बबंधुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥४०॥ एवं स भौतिकं दुःखं दैहिकं दैविकं च यत ॥ भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तंप्राप्तमबुध्यत ॥ ४१ ॥ परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ॥ पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥ द्विज उवाच ॥ नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परं कारणमामनंति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ॥ ४३ ॥ मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ॥ शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवंति ॥ ४४ ॥

बहुत दुःख दुर्जनोंने दिया, देहका सुख ज्वरादिकोंने हरलिया, दैवके दुःख शीत, उष्ण, "यह सब अपना प्रारब्ध भोग है" दुःख पाकर उस ब्राह्मणने ऐसे समझलिया ॥४१॥ यद्यपि यह ब्राह्मण नराधम दुर्जनोंसे तिरस्कृत हुआ, परन्तु तोभी सात्विक धैर्यसे अपने धर्ममें रहकर इस कथाको गाने लगा ॥४२॥ ब्राह्मण बोला कि यह जन, देवता, आत्मा गृह और काल कोई भी मेरे सुख दुःखका कारण नहीं है, मनही केवल कारण है, जो यह संसार चक्रको फिराता है ॥४३॥ सोई कारण कहते हैं, बलवान् मनही गुणकी वृत्ति सृजताहै फिर उन गुणोंसेही सात्त्विक, राजस, तामस भिन्न

भिन्न कर्म होते हैं और इन्हीं कर्मोंसे सात्विक, राजस, तामस देवता मनुष्य पक्षियोंकी जाति होती है ॥ ४४ ॥ अब कहते हैं कि, मनहीका संसार होताहै आत्माका संसार कैसे होसक्ताहै, तो कहतेहैं कि, अविद्या और मनके अभ्याससे आत्माका संसार है, आपसे संसार नहीं इससे वासनासहित मन है उसके संग नियन्ता होकर रहतेहैं, तथापि आत्माके संग नहीं, कर्म भी नहीं क्योंकि वह ज्ञानरूप है, जीवका सखा है और यह जो जीव है, सो मनके धर्मोंको ग्रहणकर अहंकार और गुणके संगसे विषयोंका सेवन करनेसे बँधा है ॥ ४५ ॥ मनका निग्रह किये विना सब व्यर्थ है सो कहतेहैं, दान, स्वधर्म, नेम, आचार, विद्याध्ययन, कर्म, उत्तम व्रत आदि यह सब एक मनके निग्रह करनेके उपाय हैं इससे निश्चय करके परमयोग

अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥ मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामाञ्जुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥४५॥ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि ॥ सर्वे मनोनिग्रहलक्षणांताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥ समाहितं यस्य मनः प्रशांतं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ॥ असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥ मनोवशेऽन्ये ह्यभवन्स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ॥ भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्युंज्याद्वशे तं स हि देवदेवः ॥ ४८ ॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ॥ कुर्वंत्य सद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनारिपून्विमूढाः ॥ ४९ ॥

मनका निग्रहही है ॥ ४६ ॥ जिसका मन स्थिर और शांत है उसे दान आदि करनेसे क्या प्रयोजन है ? मन तो समाधिमें स्थिर हुआ है, और जिसका मन विक्षिप्त है, तथा आलस्ययुक्त है सो उसे दानादिकोंसे और जपसे क्या होगा ? ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि, दान आदि धर्मसे और इंद्रियोंका तो जय होगा, वहाँ उनको जय तो नहीं होता ऐसा कहते हैं और जो देवता, इन्द्रिय यह सब मनके वश हैं कुछ मन उनके वशमें नहीं है, यह मन आपही देव है, महाबलिष्ठ है योगीजनोंको भी महाभयंकर है, इसको जो पुरुष अपने वशमें करलेतेहैं, वह देवको भी देखलेतेहैं ॥ ४८ ॥ अब मनरूप शत्रु दुर्जयहै इसका वेग नहीं सहाजाताहै, सबको पीड़ा करताहै, सबको जीते विना और मनुष्योंसे युद्ध करताहै, इसमें

और भी अनुकूल प्रतिकूल मित्र उदासीन शत्रु करलेते हैं वे मूर्ख हैं ॥ ४९ ॥ और इसीसे संसारमें भ्रमण करते हैं, यह देही एक मनकी वासनासे इस देहको ग्रहण करके यह मेरी देह है, इस ममतासे अहंकारसे अंधबुद्धि मनुष्य "यह मैं, यह तू" इस भ्रमसे अंतपारसे रहित संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ इससे सुख दुःखका कारण मन है और कोई नहीं है यह कहते हैं कि, सुख दुःखका कारण मन है तो आत्माका कारण क्या है? दोनों देह मट्टीके विकार हैं उनको सुख दुःखही कारणता है आत्माका कुछ नहीं लगता है जीव तो देहके अभिमानसे मानलेता है आत्माके मूर्त्ति नहीं, क्रिया नहीं किसको मारै? किसको सुख दे, परमात्मा दोनों जगह एक है, उसको कुछ नहीं लगता तो कहते हैं कि, जैसे अपनी जीभ अपनी दाँतोंसे आप काटै तो क्रोध किसपर करै, इसप्रकार देहसे देहका सुखदुःख मानले तो आत्मा क्या करै? ॥ ५१ ॥ जो सुख दुःखके हेतु देवता हैं

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यंधधियो मनुष्याः ॥ एषोहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरंतपारे तमसि भ्रमंति ॥ ॥ ५० ॥ जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हि भौमयोस्तत् ॥ जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥ दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ॥ यदंगमंगेन निहन्यते क्वचित्क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ॥ न ह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात्क्रुध्येत कस्मै न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥ ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्येव वदंति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४ ॥

तो यह आत्माको क्या? दुःखका कारण तो देवताओंको है और देवता विकारी हैं जैसे अंगसे अंगको मारिये तो पुरुष अपनी देहमें किसपर क्रोध करै जैसे एकके मुखमें हाथ डाले वह काट खाय, तो मुखका देवता अग्नि है, हाथका देवता इन्द्र है उनका किया दुःख है, अविकारी अहंकार रहित आत्माको कुछ नहीं लगता ॥ ५२ ॥ जो आत्माहीको सुख दुःखका कारण मानो तो औरसे क्या है? जिसके ऊपर कोप करै, इस पक्षमें भी औरसे दुःख हुआ, यह कहना संभव नहीं हो सक्ता, क्योंकि वह अपनाही स्वभाव है, आत्मा तो सर्वत्र एकही है आत्मासे और दूसरा नहीं कदाचित कहो कि, जो कुछ यह दीखता है सो मिथ्या है जब अपना आत्मा और दूसरेका आत्मा एकही है तो कोप किसपर करै इससे निमित्त नहीं दुःख भी नहीं ॥ ५३ ॥ जो कहो कि, ग्रह सुख दुःखका निमित्त है तो भी आत्माको क्या? ग्रह तो लगेहैं जिसका जन्म है, जन्म तो देहका है

आत्माका नहीं, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है; जिस लग्नमें देह जन्म लेताहै उस लग्नमें जैसे ग्रह हों, उसीके अनुसार सुख दुःखका निमित्त है, जिसको देहाभिमान है उसको ग्रहहैं इससे ग्रह तो अंतरिक्षमें हैं ग्रह परस्पर दृष्टि पड़नेसे ग्रहको पीड़ा देते हैं, ऐसा ज्योतिषी कहते हैं, परन्तु आत्माको क्या ? आत्मा ग्रह और देहसे भिन्न है, इसलिये पुरुष क्रोध किसपर करै ? ॥ ५४ ॥ जो कर्महीं सुख दुःखका हेतु है, तो भी आत्माको क्या ? आत्मा तो कर्मसे भिन्न है, सो कर्म हो तो दुःख होय और कर्मही नहीं तो दुःखका हेतु कहाँसे हो ? सो कहते हैं, कर्म तब होय, जब एक देहहीको जड़रूपता और अजड़रूपता हो, जड़रूपसे तो विकारी हो, अजड़रूपसे हितकारीपन, यह दोनों धर्म आने चाहिये उनमें विकारता जडतावालोंको हो और हितका अनुसंधान जड़तारहितोंको हो और जो कहैं कि, देह कर्म करता है; तो देह जड़ होनेसे उसमें अपने हितका अनुसंधान नहीं और आत्माको भी कम करना नहीं बनसकता क्योंकि वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है; जब सुख दुःखका कारणरूप कर्म सिद्ध

कर्माऽस्तु हेतुः सुखदुःखयोर्वै किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ॥ देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्ममूलम् ॥ ५५ ॥ कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ॥ नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात्क्रुद्ध्येत कस्मै न परस्य द्वंद्वम् ॥ ५६ ॥ न केनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वंद्वोपरागः परतः परस्य ॥ यथाऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥

नहीं तो फिर पुरुष किसपर क्रोध करै ? ॥ ५५ ॥ जो काल सुख दुःखका हेतु है तो भी आत्माको क्या ? क्योंकि आत्मा भी कालरूपही है, काल भी ब्रह्मका अंश आत्मा ब्रह्मही है, अपने अंशको आपसे भय उत्पन्न नहीं होता जिसप्रकार अग्निकी ज्वालाका ताप अग्निको नहीं व्यापता और हिमकण तुषारका शीत हिमको नहीं व्यापता, ऐसेही कालके किये सुख दुःखसे आत्माको सुख दुःख नहीं होता आत्मा असंग है इसकारण उसमें सुख दुःखका द्वंद्व नहीं व्यापता, दुःख सुखका कारण अज्ञान है, आत्मा नहीं ॥ ५६ ॥ इन छः दुःख सुखके कारण विना जो कोई और हेतु कहै, सो ईश्वरकी महिमा जानकर संभव नहीं यह कहते हैं, जो प्रकृतिसे भी परे हैं, उसे किसी भाँति भी सुख दुःखका संबंध नहीं, जैसे अहंकार संसाररूपी है, उसीसे सुख दुःख होता है, जो इसप्रकार समझता है वह किसीसे नहीं डरता, उसको डरही

नहीं, इस भाँति मैं परमात्मामें चित्त रखकर समुद्र तरूंगा ॥ ५७ ॥ पूर्व महर्षियोंकी यह जो परमात्माकी निष्ठा है उस निष्ठाको धारणकर साक्षात् मोक्षके देनेवाले भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंकी सेवा करके पारसे रहित संसारसमुद्रके पार जाऊंगा ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इसप्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे द्रव्यका लेश दूरकर संन्यास लेकर वह ब्राह्मण पृथ्वीपर फिरता रहा, यद्यपि दुष्टोंने उसका बहुत अपमान किया, परन्तु तोभी उसका चित्त अपने स्वधर्मसे चलायमान न हुआ, तब यह गाथा गाई ॥ ५९ ॥ कि, पुरुषको सुख दुःखका दाता मनके भ्रम विना और दूसरा कोई नहीं है, मित्र उदासीन शत्रु यह जो संसार है, सो अज्ञानसे होताहै, तत्त्वविचारसे कुछ नहीं ॥ ६० ॥ हे उद्धव ! इसलिये

एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ॥ अहं तरिष्यामि दुरंतपारं तमो मुकुन्दांघ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ॥ निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकंपितोऽमुं मुनिराह गाथाम् ॥ ५९ ॥ सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ॥ मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ॥ मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥ य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥ धारयेच्छ्रावयेच्छृण्वन्द्वंद्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकाद० भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥ यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥

तुम सब भावसे मुझमें बुद्धि रखकर मनको निग्रह करो इतनाही योगका तात्पर्य है ॥ ६१ ॥ जो कोई यह भिक्षुककी गाई ब्रह्मनिष्ठाको सावधान होकर धारण करैंगे, सुनैंगे अथवा सुनावैंगे, वह सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्मोंसे पराभव नहीं पावेंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा—चौबिसवें अध्यायकी, कथा कर्म आधीन ॥ आत्मासे सब होतहै, आत्माहीमें लीन ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! अब मैं तुमसे कपिलदेव आदि पहले आचार्योंका निश्चय कियाहुआ सांख्य वर्णन करूंगा कि, जिस सांख्यके जाननेसे पुरुष शीघ्र भेदबुद्धिसे उत्पन्नहुई सुख दुःखादिकी भ्रान्तिको त्यागदेता है ॥ १ ॥

महाप्रलयमें द्रष्टा और दृश्य भेदरहित एक ब्रह्ममें लीन होगया, इसके उपरान्त प्रथम सतयुगमें जब सब प्राणी विवेकसे निपुण थे तब भी कुछ भेद न होनेसे सब ईश्वररूपही जानाजाता था भेद नहीं था ॥ २ ॥ पीछे जब बहुत सृष्टिकी इच्छा हुई, तब वह अक्षर ब्रह्म भेदरहित केवल आनन्दमय एकरूप अपने रूपके द्रष्टा और दृश्य भेदरहित दोरूप करदिये, एक मायाका फल रूप वाणी मनको गम्य प्रपंच रूप करदिये, एक सत्य रूप दो हुए ॥ ३ ॥ ब्रह्मसे हुए, उनके मध्य एक कार्यकारणरूपिणी प्रकृति हुई, दूसरे भावसे ज्ञानरूप पुरुष हुआ जो प्रकृतिपुरुष कहाते हैं ॥ ४ ॥ पुरुषरूप मेरे देखनेसे क्षोभित हुई, प्रकृति द्वारा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण प्रगट हुए ॥ ५॥ प्रथम इन तीनों गुणोंसे सूत्र क्रिया शक्तिरूप हुआ

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम् ॥ यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ॥ वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥ ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥ तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ॥ मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥ तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ॥ ततो विकुर्वतो जातोऽहंकारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ॥ तन्मात्रेंद्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिंद्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥ मया संचोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ॥ अंडमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥

पीछे वह सूत्र ज्ञानशक्ति रूप तत्त्व प्रगट हुआ, एकही तत्त्वज्ञान क्रियाभदसे दोनों रूपहुए, उस महत्तत्त्वसे अहंकार हुआ, जो सबको मोह उत्पन्न करता है और जीवको भ्रमण करारहा है ॥ ६ ॥ सो अहंकार तीन प्रकारका है, सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार, तामस अहंकार यही अहंकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन्द्रिय, मन तथा देवताओंका कारण है, जीव और देहकी ग्रंथिरूप यही है ॥ ७ ॥ अब इस त्रिविध अहंकारसे त्रिविध प्रपंचकी उत्पत्ति हुई है, सो दिखाते हैं इनमें तामसअहंकारसे पहले भूत प्रगट हुए राजसअहंकारसे दश इन्द्रियें और सात्त्विक अहंकारसे ग्यारह देवता उत्पन्नहुई ॥ ८ ॥ इसके पीछे यह सब उत्पत्ति एकत्र होके कार्य कारणके विभागसे मेरे रहनेका उत्तम स्थान करके

एक अण्ड उत्पन्न करते भये ॥ ९ ॥ पीछे उत्पन्न किये अण्डमें विराट् पुरुषके अन्तर्यामी मेरा उत्तम घर है, जलमें अण्ड हुआ उस अण्डमें श्रीनारायणरूप लीलाशरीरसे मैं स्थित हुआ, वहाँ मेरी नाभिसे कमल उत्पन्न हुवा सब पद्म जगद्रूप तत्त्वात्मक लोकोंका कारणभूत है कमलोंमेंसे ब्रह्म उत्पन्न हुए ❀ ॥१०॥ उन ब्रह्माजीने विश्वरूप तपस्या करके गुणसे युक्त मेरे अनुग्रहसे लोकपाल समेत तीन लोक भूमि अंतरीक्ष, स्वार्गादिको सृजा, उन लोकोंमेंही चौदह लोक समझलेना, सो भूमि कहनेसे पाताल लोक नीचेके आये, भुवः कहनेसे अंतरिक्ष कहा और स्वर्ग कहनेसे महर्लोकसे लेकर सत्यलोक सब कहे ॥ ११ ॥ लोक सृष्टिका प्रयोजन कहतेहैं, देवताओंका स्थान स्वर्ग हुआ, भूत प्राणियोंका स्थान अंतरिक्ष

तस्मिन्नहं समभवमंडे सलिलसंस्थितौ ॥ मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ॥ लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवस्वारिति त्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ॥ मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ॥ १२ ॥ त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ॥ १३ ॥

हुआ. मनुष्योंका लोक भूमि हुई, जो सिद्ध हैं, और योगसाधना करते हैं, उनका स्थान महर्लोकसे आदि लोक जानलेना महात्मा ब्रह्माजीने नाग तथा असुरोंका निवास स्थान पृथ्वीके नीचे अर्थात् पाताल बनाया है ॥ १२ ॥ त्रिगुणात्मक कर्म करनेसे जो गतियें होती हैं; वह सब त्रिलोकीके मध्यमें हैं, इसप्रकार लोक भिन्न भिन्न रचे हैं ॥ महर्लोक, जनलोक, तप लोक और सत्यलोकमें योग संन्यास ज्ञानसे निर्मल गति होती है वैकुण्ठकी गति मेरी भक्ति विना नहीं होती सो भक्तियोग करनेसे होती है तहाँ वैकुण्ठकी गति विना और सब स्थान चंचल हैं

❀ शंका—श्रीकृष्णने वारम्वार "मम" ऐसा वचन क्यों कहा। क्योंकि, परमेश्वर होकर अभिमान युक्त वचन कहना यह बडे आश्चर्यकी वात है? ऐसी बात तो मूर्ख कहते हैं।
उत्तर—पहिलेही उद्धवने श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रार्थना की, थी हे महाराज! मेरे सामने आप किसी दूसरे देवताकी और अपने दूसरे अवतारकी कथा मत कहना और कहना भी तो अपनी एक कथा कहना क्योंकि आपके नामके रसके सुखमें मैं मग्न होगया हू दूसरेका चरित्र मुझको अच्छा नहीं जान पडता, ऐसी उद्धवकी प्रार्थनाको मानकर श्रीकृष्णचन्द्रने मम शब्द कहा था कुछ अभिमानसे नहीं कहा।

स्थिर नहीं, एक स्थिर तो मेरी गति है इससे और ठौर वैराग्य रखना उचित है, मैं कालरूप परमेश्वर हूं, यह सब जगत् मैंनेही कर्मयुक्त किया है, सो मायाके गुणप्रवाहमें सब विश्व डूबता, उछलता है इस लोकसे और लोकमें जाकर फिर गिरता है, इसलिये इसमें चित्त न लगावे ॥ १३ ॥ १४ ॥ इसको ब्रह्मरूप कहते हैं जो पदार्थ सूक्ष्म है जो बडाहै, जो स्थूलहै, दुर्बलहै सो प्रकृति और पुरुष इन दोनोंसे युक्त है ॥१५॥ जिस कार्यका जो आदि कारण है और जो पीछे भी रहनेका स्थान है सोई इसके मध्यमें है, तो वह इसीका रूप है बीच व्यवहारमें और प्रकार भासे है, जो सुवर्णके भूषणहैं और मट्टीके घडे सरैये हैं, नाम अलग हैं, वस्तुसे सुवर्ण और मिट्टी है इसप्रकार सब समझकर नाम भेदसे जो व्यवहार है, सोई विकार है, सो मिथ्याहै इत नाही समझना चाहिये १६ ॥ यहाँ तर्क करते हैं कि, जो तुम इसप्रकार कार्यको एक रूप कहकर सत्य रूप कहते हो, तो अपने अपने कार्यमें मह

महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १४ ॥ अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो योयो भावः प्रसिद्ध्यति ॥ सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १५ ॥ यस्तु यस्यादिरंतश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ॥ विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १६ ॥ यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम् ॥ आदिरंतो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १७ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥ सतोऽभिव्यंजकः कालो ब्रह्म तत्रितयं त्वहम् ॥ १८ ॥ सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ॥ महान्गुणविसर्गार्थः स्थित्यंतो यावदीक्षणम् ॥ १९ ॥

तत्त्व आदि लेके सब तत्त्व आदितत्त्व मध्यमें संयुक्त हैं, तो महत्तत्त्वोंको सत्यता होसक्ती है, तो कहते हैं कि, वे कारणरूप ब्रह्मभाव रूपको अंगी कार करके कार्यको सृजते हैं जैसे मृत्तिकाके पिण्ड निमित्त कारण घटको सृजते हैं, आदि, अंतमें उसके मृत्तिकाही है जो जिसका आदि अन्त है, सो सत्यहै, इससे सबके आदिसे मृत्तिकाको लेकरही सृजते हैं, अंत ब्रह्मही है ॥ १७ ॥ प्रकृति इस जगत्का उपादान कारण है उत्पत्ति स्थान है पुरुष अधार अधिष्ठाता है और काल गुणोंके क्षोभसे उसको प्रगट करनेवाला है सो यह तीनों ब्रह्मरूप मैंहीं हूं, मुझसे यह भिन्न नहीं है, प्रकृति मेरी शक्ति है पुरुष और काल मेरी अवस्था है मेरा रूप होनेसे मैंही अद्वितीय स्वरूप हूँ ॥ १८ ॥ अब इस सृष्टिकी अवधि कहतेहैं, जीवोंके भोग देनेके

लिये प्रगट हुई यह मेरी सृष्टि जबलों इसका अंत आवै तबतक पिता पुत्ररूपसे निरंतर चलतीहै और जबतक परमात्माका ईक्षण हो तबतक रहती है इसके उपरान्त प्रलय होजातीहै सो कहते हैं ॥ १९॥ यह ब्रह्माण्ड विराट्रूप जिसमें लोकोंकी कल्पना है, जब इसके निकट मेरा स्वरूप भूतकाल पहुँचने लगताहै, तब मुझसे पीड्यमानहो, सब लोक नाशको प्राप्त होतेहैं जैसे उत्पन्न हुएहैं, उसी क्रमसे तत्त्व भिन्न भिन्न होकर अपने कारणसे मिलकर नष्ट होजाते हैं ॥ २० ॥ यह शरीर अन्नसे हुआ है इसकारण शतवर्ष अनावृष्टिके होनेसे क्षीणहो उस अन्नमें लीन होताहै अन्न बीजमें लीन होताहै, बीज भूमिमें लीन होताहै, जब बोनेसे न उपजे भूमि गंधमें महाप्रलयकी अग्निसे दग्ध हो गंधमात्र रहता है॥ २१ ॥ गंध जलमें लीन होता

विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ॥ पंचत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २० ॥ अन्ने प्रलीयते मर्त्य मन्नं धानासु लीयते ॥ धाना भूमौ प्रलीयंते भूमिर्गंधे प्रलीयते ॥ २१ ॥ अप्सु प्रलीयते गंध आपश्च स्वगुणे रसे ॥ लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥२२॥ रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चांबरे ॥ अंबरं शब्दतन्मात्रे इंद्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २३ ॥ योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ॥ शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥ २४ ॥ स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ॥ तेऽव्यक्ते संप्रलीयंते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥ २५ ॥ कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ॥ आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २६ ॥

है, जल अपने गुणमें लीन होताहै,रस ज्योतिमें लीन होताहै, ज्योति रूपमें लीन होतीहै॥२२॥ रूप वायुमें लीन होताहै वायुस्पर्शमें लीन होताहै,स्पर्श आकाशमें लीन होताहै और आकाश शब्दमें लीन होजाताहै, इन्द्रियें उत्पत्त्यनुसार उस उस देवतामें लीन होती हैं ॥ २३ ॥ देवता और मन सात्त्विकाहंकारमें और शब्द अहंकारमें लीन होजाताहै त्रिविध अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होजाताहै ॥ २४ ॥ महत्तत्त्व अपने अपने उत्पत्तिके गुणानुसार उस उस गुणमें, त्रिविध गुण प्रकृतिमें और प्रकृति अव्यक्तमें एकत्र होके रहती है ॥ २५ ॥ काल ज्ञानरूप महापुरुषमें लीन होताहै, पुरुष

आत्मारूप जन्म रहित मुझमें लीन होताहै, तब आत्मा एक शुद्ध विकल्प संकल्प रहित अपनेही आनंदमें स्थित होकर रहताहै, इस भाँति सब सृष्टिका प्रकार कहा, अब इसका प्रयोजन कहते हैं ॥ २६ ॥ जब इसप्रकार ज्ञानसे देखै, तब उसके मनका कल्पना कियाहुआ भ्रम क्यों हो ? और हुआ भी भ्रम हृदयमें क्यों रहै ? जैसे आकाशमें सूर्योदयके भयसे अंधकार नहीं रहता है ॥२७॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि, हे उद्धव ! यह सांख्य ज्ञानकी विधि मैंने तुमसे वर्णन करी, इसके जानतेही हृदयकी गाँठ छूटजातीहै और इसीलिये उत्पत्ति तथा प्रलयके प्रकार तुमको समझाकर कहे, क्योंकि मुझे सब ज्ञान पूर्ण है ॥२८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ दोहा–पचिसमें कुछ निर्गुणता, अरु कुछ सत्य विवेक ॥ मनमें प्रगटतहै सदा, सतरज वृत्ति अनेक ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जबतक प्रकृति

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ॥ मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २७ ॥ एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रंथिभेदनः ॥ प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कंधे सांख्यनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ॥ तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥ शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ॥ तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥२॥ काम ईहा मदस्तृष्णा स्तंभ आशीर्भिदा सुखम् ॥ मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥३॥

पुरुषका ज्ञान न हो, तबतक तीनों गुणोंके स्वभाव न जीते हों, तबतक सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्म नहीं जाने जाते, इससे जैसे गुणके स्वभाव जाने जातेहैं उस उपाय करनेको प्रथम गुणके स्वभाव कहते हैं, हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ उद्धव ! तीनों गुण भिन्न भिन्न होतेहैं, जब जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है, सो आप मन लगाकर सुनिये. मैं कहताहूं ॥१॥ जिसका सतोगुणी स्वभाव होय, उसके यह धर्म होतेहैं. शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्य, दया, पहला और पिछला स्मरण, संतोष, त्याग, वैराग्य, आस्तिक्य बुद्धि, अनुचितकर्ममें लज्जा, दान, आत्मासे रति, यह सतोगुणकी वृत्ति कही ॥ २ ॥ अब रजोगुणकी वृत्ति कहते हैं, कामना, चेष्टा, दर्प, तृष्णा, गर्व, देवताओंसे सुखकी आकांक्षा, विषयभोग, बुद्ध्यादिकोंका उत्साह,

जगमें प्रीति, हास्य, वीर्य बलका उद्यम इत्यादि यह सब रजोगुणकी वृत्ति कही ॥ ३ ॥ अब तमोगुणकी वृत्ति कहते हैं, क्रोध, लोभ, मिथ्या, हिंसा, याच्ञा, दंभ, अनुद्यम, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दुःख, हीनता, निद्रा, आशा, भय यह तमोगुणकी वृत्ति भिन्न भिन्न कही अब जो एक मिली है, वह वृत्ति सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! "अहं मम" यह जो बुद्धि है, इसमें मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन्द्रिय और प्राण यह सात्त्विक, राजस, तामस हैं, इनसे जो कार्य है, उसे सन्निपात जनित कार्य कहना चाहिये, क्योंकि तीनों गुणोंके मिले कार्य हैं, मैं शान्तहूं, मैं कामीहूँ मैं क्रोधीहूं, मुझे शांति है, काम है, क्रोध है इसप्रकार व्यवहार तीनों गुणोंका सन्निपात कहाता है ॥ ६ ॥ जब यह पुरुष धर्म, अर्थ, काममें स्थित हो, तब जान लीजिये कि, तीनों गुणोंकी एकता है, धर्म सात्त्विक, अर्थ राजस, काम तामस, धर्ममें

क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दंभः क्लमः कलिः ॥ शोकमोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥ सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ॥ वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ॥ व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेंद्रियासुभिः ॥ ६ ॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः ॥ गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥ प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे ॥ स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥ पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ॥ कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९ ॥ यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ॥ तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव च ॥ १० ॥

श्रद्धाहो, अर्थसे प्रीति हो, काममें धनहो ॥ ७ ॥ प्रवृत्ति सकाम धर्ममें निष्ठा रक्खै, गृहस्थाश्रम धर्ममें निष्ठा रक्खै यह भी गुणोंके सन्निपातसे होता है, क्योंकि सकाम धर्म रजोगुणमय है, घरमें आसक्ति तमोगुणमय है, नित्य नैमित्तिक धर्ममें निष्ठा है, सो सत्त्वगुणमय है ॥ ८ ॥ इसप्रकार भिन्न भिन्न और मिले गुणोंकी अवस्था कहकर जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है, सो कहते हैं कि, पुरुषके जो शम, दम, क्षमा, दया यह धर्म होते हैं, सो सात्त्विक जानना, काम अनुरागसे राजस समझ लेना क्रोधादिसे तामस जानना ॥ ९ ॥ और जो भक्तिपूर्वक निरपेक्ष हो स्वकर्मसे मेरा भजन करै, सो पुरुष हो अथवा स्त्री हो, उसका सतोगुणरूपी स्वभाव जानना ॥ १० ॥

जो स्वकर्मसे मेरा भजन करतेहैं और मुझसे कुछ चाहना करते हैं सो रजोगुण स्वभाव जानना और जो किसीके मारनेको मेरा भजन करे उसे तमोगुणी स्वभाववाला जानना ॥ ११ ॥ अब कहते हैं कि, इन गुणोंके वश तो तुम भी देख पडते हो ? और जो नहीं हो तो तुम सेव्य क्यों हुये ? और जीव सेवक क्यों हुआ ? सो कहो इसका उत्तर देते हैं कि, यह तीनों गुण जीवको हैं, कुछ मुझे नहीं हैं, यह सब चित्तके विकारसे होते हैं, जिसमें प्राणी आसक्त होकर बँध जाता है, मैं तो आसक्त नहीं हूँ, नियंताहूं और द्रष्टा होरहा हूँ इससे बन्धनमें नहीं, इसलिये अपना भजन करनेके लिये वारंवार कहताहूं ॥ १२ ॥ जब एक गुणकी अधिकता होती है, उसका कार्य दिखाते हैं

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ॥ तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे ॥ चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥ यदेतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ॥ तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥१३॥ यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः संगं भिदा बलम् ॥ तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥ यदा जयेद्रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ॥ युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥ यदा चित्तं प्रसीदेत इंद्रियाणां च निर्वृतिः ॥ देहेऽभयं मनोऽसंगं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥१६॥

कि, जब प्रकाशरूप निर्मल शान्त सतोगुण बढ़कर रजोगुणको जीते, तब पुरुष धर्म ज्ञानसे परमसुख युक्त होताहै जब रजोगुण सतोगुण तमोगुणको जीते, तब पुरुष धर्म ज्ञानसे परमसुखयुक्त हो ॥ १३ ॥ जब रजोगुण सत्वगुण और तमोगुणको जीते, तब रजोगुणसे संग हो उस संगसे भेदबुद्धि सर्वत्र हो, उससे प्रवृत्ति मार्गका स्वभाव हो कर्म, यश, श्री और दुःखसे युक्त होता है ॥१४॥ जब तमोगुण सतोगुण और रजो गुणको जीते, तब अज्ञानसे मोहको प्राप्तहो शोक, मोह, निद्रा, हिंसा, आशासे युक्तहो, विवेक तज अनुद्यम रूप जडता होकर रहता है और लय होजाता है ॥ १५ ॥ जब चित्त निर्मल होकर इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्तिहो, देहमें अभयहो, मनकी आसक्ति कहीं न हो, वह सतोगुण मेरी

प्राप्तिका स्थान जानना चहिये ॥ १६ ॥ जब क्रियासे विकारको प्राप्तहो बुद्धिका विक्षेपहो ज्ञानेन्द्रियोंको शान्ति न हो कर्मेंद्रियोंको निश्चलता न हो, मन भ्रमै तब जानलो कि, रजोगुण बहुत बढगया है ॥ १७ ॥ जब चित्त अन्तर्धान होकर लीन होजाय, ज्ञानसे पदार्थ ग्रहणको असमर्थहो. मनमें भी संकल्प विकल्प उपजते रहैं, नष्ट होकर शून्यसा रहै, अज्ञान ग्लानि दुःखहो तब जानिये कि, तमोगुण बढाहैं ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! यदि संतोगुण बढै तो देवताओंका बल बढता है, रजोगुण बढै तो असुरोंका बल बढ़ता है और तमोगुण बढै तो सब राक्षसोंका बल बढ़जाताहै ॥ १९ ॥ सतोगुणसे जाग्रत्, रजोगुणसे स्वप्न और तमोगुणसे सुषुप्तिकी अवस्था होती है, इन तीनों अवस्थामें व्याप्त एक चतुर्थ अवस्थारूप आत्मतत्त्व

विकुर्वन्क्रियया चाऽऽधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् ॥ गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रांतं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥ सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ॥ मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८ ॥ एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ॥ असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ॥ प्रस्वापं तमसा जंतोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छंति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ॥ तमसाऽधोऽध आ मुख्याद्रजसांऽतरचारिणः ॥ २१॥ सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यांति नरलोकं रजोलयाः ॥ तमोलयास्तु निरयं यांति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ॥राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥

है सो वह, तुरीय निर्गुण अवस्था है ॥ २० ॥ गुणके उत्कर्षसे कर्म फलको दिखाते हैं, सतोगुणके उत्कर्षसे ब्राह्मण वेदोक्त कर्म कर्त्ता ऊपर ब्रह्मलोक तक जाते हैं, तमोगुणसे नीचेके लोकोंमें जाते है और रजोगुणसे मनुष्यदेहको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ अब जिस गुणकी अधिकतामें मरनेसे जो गति होती है, सो कहते हैं, सतोगुणमें मरै तो स्वर्गमें जाय रजोगुणमें मरै तो मनुष्यलोकमें जाय, तमोगुणमें मरै तो नरकमें जाताहै और निर्गुण हो तो मुझे ही प्राप्त होतेहैं ॥ २२ ॥ जो स्वकर्म करै और उनका फल न चाहै अथवा मुझे अर्पण करे, वह सात्त्विक कर्म है जिस कर्ममें फलकी

याचना है वह राजस है, जिसमें हिंसा अधिक है,सो तामस कर्म है ॥२३॥ अब सब गुण निर्गुण भेदसे ज्ञान और भक्ति भी चार प्रकारकी हैं, सो कहते हैं. केवल आत्मनिष्ठ ज्ञान सात्विक हैजो ज्ञान देह इन्द्रियोंके सम्बन्धसे लीन होता है सो राजस और जो बालक गूंगेका ज्ञान है, यह तामस है, केवल शुद्ध पुरुषोत्तम निष्ठ ज्ञान हो सो निर्गुण कहलाता है ॥२४ ॥ वनमें वास है, सो सात्त्विक है, ग्रामका वास राजस है, जएँके घरमें वास तामस है और भगवत् मंदिरमें निर्गुण वास है ॥ २५ ॥ आसक्ति विना कर्मका कर्त्ता सात्विक कहलाता है आसक्तिसे अंधा होकर कर्म करना राजस है, स्मरणसे रहित कर्त्ता तामस है और केवल एक मेरी शरणको प्राप्तहो, अहंकार छोड़कर कर्म करै सो निर्गुण है ॥२६॥ आत्माकी श्रद्धा

केवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ॥ प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ वने तु सात्त्विको वासो ग्रामे राजस उच्यते ॥ तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागांधो राजसः स्मृतः ॥ तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी ॥ तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥ पथ्यं पूतमनायस्तमहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाऽशुचि ॥ २८ ॥ सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ॥ तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥ २९ ॥ द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ॥ श्रद्धावस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

सात्त्विकी, कर्मकी श्रद्धा राजसी, अधर्ममें श्रद्धा तामसी और मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण है ॥ २७ ॥ जो आहार भक्ष्य भोज्य वस्तुहो, पवित्रहो,विना श्रम प्राप्त हुईहो सो सात्त्विक कहलाती है और इन्द्रियोंका परमप्रिय मधुर, कटु, अम्ल, लवण, यह सब राजस हैं,जिससे पीड़ा हो अशुद्ध हो उसे तामस कहते हैं और जो वस्तु मुझे निवेदन की हो वह निर्गुण कहलाती है ॥ २८ ॥ आत्माके अनुभवसे हुआ सुख सतोगुण रूपी है, विषय अनुभवसे हुआ सुख राजस है, मोह दीनतासे सुख हो सो तमोगुणी है और केवल मेरे आश्रयका सुख निर्गुण है ॥ २९॥ यह जितने पदार्थ कह आये हैं, द्रव्य, पवित्र वस्तु, देश, वन, ग्राम, फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा,अवस्था, आकृति, मरण यह सब त्रिगुणमय हैं ॥ ३० ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह सब प्रपंचरूप भाव गुणमय जानना; पुरुष और प्रकृतिसे अधिष्ठित है, जितना देखा है सुना है बुद्धिसे ध्यानमें रहता है सो सब गुणमय है ॥ ३१ ॥ यह गुण कर्मसे बँधे पुरुषको संसारकी गति हैं हे सौम्य ! जो जीव चित्तसे उपजे गुण जीतै सो भक्तियोग करके नेष्ठासे मेरे भावको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये विवेकी पुरुष जीतनेहीका उपाय करते हैं,सो कहते हैं ज्ञान विज्ञानकी देनेवाली मनुष्य देह या गुण संगको दूरकर निपुण मेरा भजन करै ॥ ३३ ॥ ज्ञानवान् सावधान जितेंद्रिय पुरुष सब संग छोडकर निस्संग हो मेरा भजन करै सतो गुणकी सेवासे रजो गुण तमो गुणको जीते इसके उपरान्त निरपेक्ष और शान्त बुद्धि हो मुझमें चित्तरखकर सतोगुणको भी जीते ॥३४॥ तब इसप्रकार मुझे प्राप्त

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाऽव्यक्तधिष्ठिताः ॥ दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥ एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबंधनाः ॥ येन मे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ॥ भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥ गुणसंगं विनिर्धूय मां भजंतु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥ निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ॥ रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शांतधीः ॥ ३४ ॥ संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ॥ मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नांतरश्चरेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा॰ म॰ एकादशस्कन्धे वृत्तिभेदनि॰ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

हो सो कहते हैं कि,जब यह जीव गुणोंसे छूटै तब अपने वासना देहको छोड मुझे प्राप्त हो और जब मुझे प्राप्तहुआ फिर उसे संसारका आवागमन नहीं रहता; लिंगशरीरसे और चित्तसे उत्पन्न हुए गुणसे मुक्त हुये अथवा मैं कि जो परब्रह्महूं उसीमें पूर्ण हुआ जीव विषयभोग नहीं करता और विषय भोगोंका स्मरणभी नहीं करता ❀ ॥३५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

*शंका–जीव क्या वस्तु है जो जीव छूट जाताहै ।

उत्तर–जीव ब्रह्मका रूप है. अजीव देह हैं जबतक देहके सुखकी इच्छा करता है तबतक दुःख भोगता है और देहसे बँधा भी रहता है और देहके सुखकी इच्छाको जब त्याग देता है. तब देहको भी त्यागके ब्रह्मसुखको प्राप्त होजाताहै यह अर्थ "जीवोऽजीवो विहाय माम्" इस श्लोकमें है ॥

दोहा—छब्बिसमाहिं कुसंगते, होत योगमें भंग ॥ योग भोग पूरण करै, सन्तनको सत्संग ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जिससे मेरा स्वरूप जानाजाय, ऐसा मनुष्य देहको पाकर मेरे धर्ममें स्थित हो सो अपने आत्मामें स्थित आनंदरूप परमात्माको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ ज्ञाननिष्ठाके प्रभावके कारण गुणमय लिंगशरीरसे मुक्त हुआ पुरुष गुणकी जो मायामात्र और वास्तविक रीति प्रतीत हो रही हैं उनमें निवास करनेपर भी इस मिथ्या गुणोंके संगको प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ यद्यपि उसे सर्वत्र वस्तुकी इच्छा नहीं है, परन्तु तो भी दुष्ट संग न करै, जो केवल उपस्थ इन्द्रिय और उदरको तृप्त करनेवाले हैं, ऐसे दुष्टोंका कभी संग न करै, क्योंकि जो एक भी दुष्टजनका संग होय तो भी महाघोर अंधतम नरकमें पड़ता है, जिसप्रकार एक अंधेके पीछे दूसरा अंधा गिरता है और बहुतोंका संग बाधा करता है, इसमें तो कहनाही

श्रीभगवानुवाच ॥ मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥ आनंदं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥ गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ॥ गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥ वर्तमानोऽपि न पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥ संगं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ॥ तस्यानुगस्तमस्यंधे पतत्यंधानुगांधवत् ॥ ३ ॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ॥ उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजंतीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ॥ विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥ ५ ॥ कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ॥ न वेद यांतीर्नायांतीरुर्वश्याऽऽकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥

क्या है ? ॥ ३ ॥ इलाका पुत्र बड़ा यशस्वी राजा पुरूरवा जब प्रथम उर्व्वशीके विरहसे मोहित हुआ था, तब अत्यन्त दुःखसे कातर हो कुरुक्षेत्रमें पहुँचा और वहाँ उर्व्वशीको देख प्रार्थना की तब उर्वसीने उपासना बताई, उसके द्वारा राजा गंधर्वलोकमें प्राप्तहुआ, जब वहाँ उसका शोक निवृत्तहुआ तब उसने यह गाथा गाई ॥ ४ ॥ पुरूरवा राजाको छोडकर जब उर्व्वशी चलीगई, तब उन्मत्तकी नाईं नग्न उसके पीछे विलाप करता जाय कि, हे घोरे ! तिष्ठ तिष्ठ, इस प्रकार विह्वल हो उठकर उसके पीछे चला ॥५॥ पुरूरवा राजा अपनी पहली अवस्था कहता है कि, तुच्छ कामनाओंका सेवन करनेमें मैं अभी तृप्त न हुआ क्योंकि अनेक वर्षोंकी रात्रियें आनकर बीतगईं, परन्तु मैंने नहीं जाना, चित्त उर्व्वशीसे हर रहाथा जब

ज्ञान हुआ, तब जैसे वचन कहे सोकहते हैं ॥ ६ ॥ पहले आठ श्लोकोंमें राजाका पश्चात्ताप कहते हैं, अहो ! देखो मेरे मोहका विस्तार कि, मैंने इतना विषय किया परन्तु तोभी कामसे मलीन चित्तमें उर्व्वशीने मेरे कंठका आलिंगन किया सो इसीमें मेरी इतनी आयु व्यर्थ गई, मैंने कुछ नहीं जानी ॥ ७ ॥ अब अत्यन्त खेदित होकर कहता है कि, देखो ! इस उर्वशीसे मैं वंचित हुआ, सूर्य उदय हुआ वा अस्त हुआ यह भी मैंने न जाना, बहुत वर्षोंके इतने दिन बीतगये, परन्तु मैंने कुछ न जाने ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! वह फिर कहनेलगा अहो मेरे मनको देखो कि, मेरा आत्मा इन स्त्रियोंने खेलनेको हरिण किया मैं राजाओंका राजा हूं सो मैं इसप्रकार पराधीन हुआ ॥ ९ ॥ राज्यादि सहित चक्रवर्ती मुझे देखो

ऐल उवाच ॥ अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ॥ देव्या गृहीतकंठस्य नायुःखंडा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥ नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमुया ॥ मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥८॥ अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा योषितां कृतः ॥ क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥ सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ॥ यांतीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावःस्यात्तेज ईशत्वमेव वा ॥ योऽन्वगच्छन्स्त्रियं यांतीं खरव त्पादताडितः ॥ ११ ॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ॥ किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ ॥ १२ ॥ स्वार्थस्याकोविदं धिङ् मां मूर्खं पंडितमानिनम् ॥ योहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥

जो तृणके समान मुझे छोड उठकर चली गई, उस स्त्रीके पीछे नग्न उन्मत्तकी भाँति मैं भी उठ चला ॥ १० ॥ ऐसे मुझे प्रताप, तेज, ऐश्वर्य, कहाँसे हों ? कि, जो मैं चलीजाती हुई स्त्रीके पीछे लगाही चला आया जैसे गधैयाके समान वह तो लातोंसे मारती-जाती है और गधा उसके पीछे जैसे चलाजाता है, ऐसेही मैं चलागया ॥ ११ ॥ जिसका मन स्त्रियोंसे हरगया है, उसको विद्या, तप, दान, अध्ययन, एकान्तवास मौन इन साधनोंसे क्या होता है ॥ १२ ॥ इससे मैंने अपना स्वार्थ न जाना और आपको पण्डित मानलिया,

इसलिये मैं अतिमूर्ख हूं मुझे धिक्कार है कि, जो मैं ऐश्वर्यको प्राप्त होकर भी स्त्रीसे बैल गधेकी भॉति आधीन हुआ ॥ १३ ॥ यद्यपि अनेक वर्षोंके समूहसे मैंने उर्वशीका अधरमधु पिया, परन्तु तोभी यह काम तृप्त नहीं होता है जैसे अहुतियोंसे अग्नि तृप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ इसप्रकार आठ श्लोकोंमें वैराग्य कहा अब दश श्लोकोंमें विवेक कहते हैं कि, जिनके चित्त वेश्याओंने हरलिये हैं, उन्हें छुड़ानेको आत्माराम ईश्वर अधोक्षज भगवान्के विना और कौन समर्थहै ! इसलिये एक परमेश्वरकाही भजन करना उचित है क्योंकि बहुतेरोंने यज्ञोंसे देवता प्रसन्न किये, परन्तु अंतसमयमें दुःखही पाया ॥ १५ ॥ ईश्वरके प्रसादविना मोह निवृत्त नहीं होता, इसलिये उन्हींका भजन करना चाहिये देखो उर्व्वशीने मुझे उत्तम वाक्योंसे समझयाथा परन्तु तोभी मेरे मनका मोह न गया, मैं अजितेन्द्रिय महामूढ़ हूं ॥ १६ ॥ उर्व्वशीका अपराध नहीं, यह मेराही अपराध

सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् ॥ न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं कोन्वन्यो मोचितुं प्रभुः ॥ आत्मारामेश्वरमृते भगवंतमधोक्षजम् ॥१५॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ॥ मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ॥ रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ क्वायं मलीमसः कायो दौर्गंध्याद्यात्मकोऽशुचिः ॥ क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः ॥ १८ ॥ पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः ॥ किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते ॥ १९ ॥ तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ॥ अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियाः ॥ २० ॥

है, क्योंकि मैं अपने अजितेन्द्रियपनसेही दुःखी हुआहूं, उसने मेरा क्या अपराध कियाहै ? रस्सीको न जान जैसे रस्सीमें सर्पका भ्रम करे तो विद्यमान रस्सीका क्या अपराध है ॥ १७ ॥ यदि कहो कि, इसने अपने रूप गुणसे मोह उत्पन्न किया, यह दोष इसीका है, यह दोनों दोष मनमें रचे हैं, अज्ञानसे हैं सो कहते हैं, यह अतिमलीन दुर्गंधादिसे भरी देह कहॉ और पुष्पकी सुगंधके तुल्य आत्माके गुण कहॉ, सब ठौर ममत्व अविद्याका किया है, वस्तुतः विचारसे सब मिथ्या है॥१८॥यह देह माताकी है, अथवा स्त्रीकी है, वा स्वामीकी है, वा अग्निकी है, या कूकर गिद्धोंकी है वा आत्माकी है, वा मित्रकी है? किसकी कहनी चाहिये, इतना तो इसका निश्चय होताही नहीं और न होगा ॥ १९ ॥ जैसे अपवित्र तुच्छ देहमें आसक्त

होते हैं, सो कहते हैं कि, देखो तो कैसा सुन्दर मुख है, कैसी सुन्दर नासिका है, कैसा सुन्दर हँसना है, यों भूले हैं और यह तो तव कृमि विष्ठा भस्म रूप है ॥२०॥ त्वचा, मांस, रुधिर, आँतें, मेद, मज्जा, हड्डी संघातरूप देहमें जो आसक्त हैं, उनमें और विष्ठा मूत्र पीवमें जो रमते हैं, उनमें क्या अंतर है कुछ नहीं. में जैसे कृमि, ऐसे वह मनुष्य हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि इसप्रकार स्त्री कदर्यमयी जाने है परन्तु तो भी उनके गुरु स्त्री लंपटोंके निकट जो विवेकी हो तो न जाय, विषय असत् इन्द्रियोंके संगसे मन सर्वथा विकारको प्राप्तहो, संग नहो तो न हो इससे दूर रहे ॥ २२ ॥ जो वस्तु देखी सुनी नहीं है, उसमें मनकी इच्छा नहीं होती, इसकारण जो पुरुष इन्द्रियोंको रोकता है, उस पुरुषका मन निश्चल होकर शान्त

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ॥ विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदंतरम् ॥ २१ ॥ अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ॥ विषयेंद्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते ॥ असंप्रयुञ्जतः प्राणाञ्छाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥ तस्मात्संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः ॥ विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं प्रगायन्नरदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय ॥ आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ॥ सन्त एतस्य छिंदंति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥ २६ ॥ सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रणताः समदर्शनाः ॥ निर्ममा निरहंकारा निर्द्वंद्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥

होजाता है ॥ २३ ॥ इससे इन्द्रियोका, स्त्रियोंका और स्त्रीलंपटोंका संग न करे, जो ज्ञानवंत हैं, उनको भी इन इन्द्रियोंका विश्वास करना योग्य नहीं है, मुझ सरीखोंकी तो वातही क्या है ? ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! इस प्रकार गाताहुआ वह राजाधिराज पुरूरवा उर्वशी लोकको छोड़ अपने आपमें आत्मारूपको जान ज्ञानसे मोह निवृत्ति कर निवृत्त होगया ॥ २५ ॥ इसलिये दुःखदायी संगको छोड़ बुद्धिमान् होकर साधुओंका संग करे, वह अपने वचनसे इसके मनकी गाँठि काट देते हैं ॥ २६ ॥ साधु पुरुष कुछ चाहना नहीं करते हैं, क्योकि वह तो निरपेक्ष हैं, और उनके चित्त मुझमें लग रहे हैं, वह समदृष्टि और ममतारहित हैं, अहंकाररहित शान्त हैं, सुख दुःख परिग्रहहीन हैं ।

इसकारण उनका संगही इन मनुष्योंको तारदेता है ॥ २७ ॥ हे महाभाग ! वह बडे भाग्यवंत हैं जो निरंतर मेरी कथाओंको श्रवण करते हैं, वह कथा मनुष्यके मनके संपूर्ण पाप दूर करतीं हैं ॥ २८ ॥ जो कोई मेरी कथा सुनेंगे, गावेंगे स्तुति करेंगे, अथवा आदर करेंगे, वह मुझमें तात्परहो श्रद्धासहित मेरी भक्तिको प्राप्त होगे ॥ २९ ॥ अनंत गुण पूर्ण आनन्द और अनुभवरूप मुझमें जिस साधुने भक्ति प्राप्त की, फिर उसे और क्या बाकी रहा ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निकी सेवासे अंधकार शीत जाता रहताहै, इसी प्रकार साधु पुरुषोंकी सेवा करनेसे संसारका

तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ॥ संभवंति हिता नॄणां जुषतां प्रपुनंत्यघम् ॥ २८ ॥ ता ये शृण्वंति गायंति ह्यनुमोदंति चादृताः ॥ मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विंदंति ते मयि ॥२९॥ भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते॥ मय्यनंतगुणे ब्रह्मण्यानंदानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवंतं विभावसुम् ॥ शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ॥ संतो ब्रह्मविदः शांता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥ अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्तानां शरणं त्वहम् ॥ धर्मो वित्तं नॄणां प्रेत्य संतोऽर्वाग्बिभ्यतोऽरणम् ॥ ॥ ३३ ॥ संतो दिशंति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ॥ देवता बांधवाः संतः संत आत्माहमेव च ॥ ३४ ॥

भय जाता रहताहै ॥ ३१ ॥ प्राणी घोर संसाररूपी समुद्रमें डूबते उछलतेहैं उनको ब्रह्मके ज्ञाता साधु शान्तही परमगति हैं जैसे जलमें डूबते पुरुषको दृढ़ नाव परमगति होती है ॥ ३२॥ प्राणियोंका जैसे अन्न प्राणहैं, ऐसेही आर्त्त पुरुषोंकी शरण मैं हूं मनुष्योंको परलोकका धर्मही धन है ऐसेही संसारसे डरे पुरुषको शरण देनेवाले साधु हैं* ॥ ३३ ॥ सूर्य तो भली भाँति उदय होनेपर भी बाहिरी एक चक्षु इन्द्रियकोही देताहै और साधुपुरुष तो सगुण तथा निर्गुण ज्ञानरूप आंतरीय अनेक चक्षुओंको देतेहैं, इस कारण देवता और बन्धुरूप साधु पुरुषहीहैं और आत्मा हैं तथा तद्रूप

* शंका–सब वेद और शास्त्रोंमें लिखाहै कि, भगवान् तीन लोक और १४ भवनके प्राणियोंके स्वामी हैं तो फिर श्रीकृष्णने अपने मुखसे क्यों कहा कि, दुःखी प्राणीकी शरण हम हैं, यह बडी शका है ? उत्तर–तुम्हारी सबकी बात सत्य है, परन्तु अभिमानी कामी दुष्ट यह सब परमेश्वरको नहीं जानते और दीन रात दिन परमेश्वरको जानते हैं, इसलिये दीन लोग परमेश्वरको प्यारे हैं, अभिमानी द्रोही हैं–इसलिये श्रीकृष्णने कहाया कि, मैं दीनलोगोंका स्वामी हूं ।

भी साधुओंमेंही है ॥ ३४ ॥ प्रथम इसका पिता शुद्ध मनसे स्त्रीरूप होकर पार्वतीके वनमें गयाथा, इसलिये उसके पुत्र पुरूरवाका नाम वैतसेन कहा सो उस उर्व्वशीलोकसे इसप्रकार निस्पृह होकर, संग छोड़ आत्मारामहो, इस पृथ्वीमें विचरण करने लगा ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ दोहा—सत्ताइस अध्यायमें, स्वस्थचित्तकी मूल ॥ सब फलदायक कहत हौं, पूजा हरिअनुकूल ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! अपना आराधनरूप क्रियायोग मुझसे कहो और तुम्हारे भक्त जैसे तुम्हारी पूजा करते हैं, सो सब कहो ॥ १ ॥ तुम्हारा यह पूजन मनुष्योंको परमश्रेयदायक है, नारद भगवान्, व्यास और अंगिराके पुत्र बृहस्पति यह सब मुनीश्वर बार बार कहते हैं ॥ २ ॥ जो वाणी तुम्हारे मुखकमलसे निकली वही भगवान् अजन्मा ब्रह्माजीने अपने पुत्र भृगुआदि सबसे कही जो महादेवजीने पार्वती जीसे कहाथा सोई तुमने हमसे कहाहै ॥ ३ ॥ हे मानके दाता ! यह सब वर्ण आश्रमोंका सम्मत है और स्त्री शूद्रोंको परमकल्याणकारी है ❀ ॥ ४ ॥

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिःस्पृहः ॥ मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कन्धे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ उद्धव उवाच ॥ क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥ यस्मात्त्वां ये यथार्चंति सात्त्वताः सात्त्वतर्षभ ॥ १ ॥ एतद्वदंति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥ नारदो भगवान्व्यास आचार्योंगिरसः सुतः ॥ २ ॥ निस्सृतं ते मुखांभोजाद्यदाह भगवानजः ॥ पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान्भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ॥ श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

* शंका—छहों शास्त्रोंका चारों वर्णोंका चारों आश्रमोंका मत यह है कि, स्नान, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नीरांजन और अनेक सामग्री करके ईश्वरका पूजन करना योग्य है परन्तु तीन आश्रम जैसे ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ यह तो तीनों भगवान्का पूजन करना मानते हैं, परन्तु इन तीनोंसे बडे जो सन्यासी लोग हैं, वह भगवान्का पूजन करना क्यों मानेंगे ? उन्होंने तो सब कर्म त्यागदिये हैं तो फिर उद्धवजीने क्यों कहा कि भगवान्का पूजन करना चारों आश्रमोंका मत है ।

उत्तर—मुनिजन पहिले तो बडी २ विधियोंसे वैकुण्ठनायकका पूजन करते पीछे सन्यास लेते हैं, सन्यास लिये पर फिर उनका मत यह नहीं है कि अब भी पहलेकी नाईं सामग्री समहकरके भगवान्का पूजन करना, परन्तु जो कोई सज्जन भगवानकी पूजा करनेकी विधि उनसे बूझताहै तो वह उसको बतादेते हैं, इसलिये उद्धवने कहा कि, संन्यासी देहसे पूजन नहीं करते परन्तु मनमें तो जानते हैं कि, पूजनको भूले नहीं जो भूल जाते तो दूसरेको कैसे बताते ? इसलिये चारों आश्रमोंका मत पूजन करनेको उद्धवने कहा ॥

हे कमलदललोचन ! हे विश्वेश्वरोंके ईश्वर ! इस कर्मबंधनका छुडानेवाला पूजाविधान मुझसे कहो क्योंकि मैं तुम्हारा भक्त हूं और तुम्हींमें अनुरक्तहूं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इसप्रकार उद्धवजीने प्रार्थना करी तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! यह कर्मकाण्ड अनंत है इसका पार नहीं इसलिये जैसे है वैसेही क्रमसे संक्षेपसे कहताहूं ॥ ६ ॥ वैदिक, तांत्रिक, मिश्रित, तप यह तीन प्रकारका मेरा पूजन है, इन तीनोंमें जिसकी जो इच्छा हो, उस विधिसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करै ॥ ७ ॥ जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों वर्ण अपनी विधिसे भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करना चाहैं, उसका प्रकार सुनो, प्रथम गर्भसे अष्टमके एकादशके द्वादशके वर्षमें अपने वेदमें कहा गायत्री उपदेश

एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबंधविमोचनम् ॥ भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न ह्यंतोऽनंतपारस्य कर्मकांडस्य चोद्धव ॥ संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तांत्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ॥ त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ॥ यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥ अर्चायां स्थंडिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाऽप्सु हृदि द्विजे ॥ द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥ पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदंतोंगशुद्धये ॥ उभयैरपि च स्नानं मंत्रैर्मृद्ग्रहणादिभिः ॥ १० ॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाऽऽचोदितानि मे ॥ पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम् ॥ ॥ ११ ॥ शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥

पाकर पुरुषको जिसप्रकार भक्तिपूर्वक मेरा भजन करना चाहिये, सो तुम मुझसे श्रवणकरो ॥ ८ ॥ प्रतिमामें पूजा, योग्य भूमिमें, अन्नमें, हृदयमें, सूर्यमें, जलमें, ब्राह्मणमें, द्रव्य करके भक्तिसे निष्कपट होकर अपने गुरुजीकी पूजा करै ॥ ९ ॥ आप प्रथम तो दंतधावन करै और फिर मट्टीले अंगशुद्धिके लिये स्नान करै, इसके उपरान्त वैदिक तांत्रिक मन्त्रोंसे स्नान करै ॥ १० ॥ इसके उपरान्त वेदविहित संध्योपासनादि कर्म सब करै, इसके पीछे उन कर्मों करके कर्मकी दूर करनेवाली मेरी पूजा करै, मनका संकल्प मुझमें रक्खै ॥ ११ ॥ अब प्रतिमाके भेद कहते हैं, शिलाकी,

काष्ठकी, धातुकी, मट्टीकी, चंदनकी, चित्रकी, रेतकी, मानसी, मणिजटितहो यह आठ प्रकारकी प्रतिमा कही हैं ॥ १२ ॥ हे प्यारे उद्धव ! भगवान्‌की मानसी पूजा करना हो तो हृदयमें मनोमयी मूर्तिकी पूजा करनी । प्रतिमा दो प्रकारकी है, एक तो चर, दूसरी अचर तहाँ स्थिर मूर्तिकी पूजामें आवाहन विसर्जन नहीं है ॥ १३ ॥ शालिग्राममें आवाहन विसर्जन न करै और स्थानमें करै स्थिर प्रतिमामेंभी आवाहन विसर्ज्जन है, कहीं नहीं भी है, मिट्टी और चंदनकी प्रतिमामें तथा चित्रकीमें मार्जन मात्र करै, स्नान नहीं करावै ॥ १४ ॥ अब सकाम निष्काम भेदसे विशेष कहते हैं; सकामका प्रसिद्ध द्रव्य पूजामें कहते हैं उनसे मेरी प्रतिमामें पूजा करै, जो भक्त निष्कामहो सो जो

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमंदिरम् ॥ उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥ अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थंडिले तु भवेद्द्वयम् ॥ स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥ द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ॥ भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥ स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ॥ स्थंडिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥ सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ॥ श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ गंधो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥ शुचिः संभृतसंभारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ॥ आसीनः प्रागुदग्वार्चेदर्चायामथ संमुखः ॥ १९ ॥

सामग्री यथालाभ पावै सो सब मुझे समर्पण करै, न पावै तो वह हृदयमें भावना करके पूजा करै तो वह पूजा मैं उसके भावसेही स्वीकार करलेताहूं ॥ १५ ॥ स्नान अलंकार यह सब प्रतिमामेंही मुझे प्रिय हैं. हे उद्धव ! स्थंडिलमें मंत्रहीसे अपने स्थानमें उन उन देवताओंका स्थापन है; अग्निमें घृतसयुक्त हविसे होम करै ॥ १६ ॥ सूर्यमें अर्घ्य उपस्थान करै, जलमें तर्पणादि करै, भक्तोंका दिया श्रद्धासे जलमात्र भी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥ सुगंध, फूल, धूप, दीप, अन्नादिक समर्पण करै तो उसकी तो बातही क्याहै ? मेरा भक्त न हो, बहुत समर्पण करै तो मैं उससे संतुष्ट नहीं होता ॥ १८ ॥ अब पूजाका प्रकार कहतेहैं कि, प्रथम तो आप स्नानादिक शौचसे शुद्ध हो, इसके उपरान्त पूजाकी

सब सामग्री शुद्ध करके रक्खै फिर पूर्वमुख वा उत्तरको मुख करके बैठे, पूर्वमुखको अग्र करके, दर्भोंसे आसन बनाय प्रतिमाके सन्मुख स्थिर होकर पूजा करै ॥ १९ ॥प्रथम तो न्यास करे, फिर मूलमंत्रोंसे न्यासकृत मेरी प्रतिमाको हाथसे स्पर्श करै, रातके निर्माल्य फूल पत्र जो कुछ होय तो दूर करे, अपने आगे जल भरा कलश रक्खै और प्रोक्षणी पात्र रक्खै उसे चंदन, तुलसीपत्र तथा पुष्पसे शोधन करै ॥ २० ॥ इसके उपरान्त प्रोक्षणीके जलसे पूजाका स्थान शुद्ध करै उसीसे द्रव्यका और अपने आपका प्रोक्षण करै, फिर पाद्यके लिये उस कलशके जलसे तीन पात्र भरकर रक्खै उनको भी इन वस्तुओंसे शोधन करै, पाद्यके पात्रमें श्यामा, दूब, कमल और विष्णुक्रान्ता आदि पदार्थ डालना, गंध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों यह अर्घ्यके आठ द्रव्य चाहिये. जावित्री, लौंग, कंकोल यह आचमनको चाहिये ॥ २१ ॥ पाद्य, अर्घ्य और आचमनके तीन पात्रोंका हृदय, मस्तक, शिखा, मन्त्रोंसे तथा गायत्रीसे अभिमंत्रण करै ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त देहको कोष्ठगत वायुसे शोधन करै

कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ॥ कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥ तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ॥ प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ २१ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि देशिकः ॥ हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्या चाभिमंत्रयेत् ॥ २२ ॥ पिंडे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ॥ अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादांते सिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥ तयात्मभूतया पिंडे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः ॥ आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्तांगं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् ॥ धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥ २५ ॥

मूलाधारमें स्थित अग्निमें जलावे फिर ललाटमें स्थित चन्द्रमण्डल है तहाँ अमृतप्रवाह करके अमृतमय करै, वहाँ हृदयकमलमें स्थित जीव कला श्रीनारायणजीकी मूर्ति है, उसका ध्यान करके प्रणव अक्षरके अकार उकार मकार कि, जिसका सिद्ध ध्यान करते हैं, ध्यान करै ॥ २३ ॥ दीपकके प्रकाशसे घरके समान अपने स्वरूपकी भावनासे जब देह व्याप्तहो, तो प्रथम उस देहहीमें पूजा करके आप तन्मय होय, इसके उपरान्त आवाहन करके प्रतिमामें स्थापन करै, फिर न्यास करनेके पीछे मेरी पूजा करै ॥२४॥ फिर आवाहनसे प्रतिमामें पाद्य, आचमन, अर्घ्यादि सब

उपचार करै, धर्मादिक नव शक्ति हैं, उनसे मुझे आसन दे ॥२५॥ अष्टदल कमल बनावै, केशरसे उज्ज्वल सुन्दर कर्णिकामें वेद आगममें कथित मुक्ति पाने और फलकी सिद्धिके लिये वैदिक तांत्रिक मार्गोंसे मेरी पूजा करै, वह आसन सुखशय्याहै, उसके चार कोनेहैं, चारपावेहैं, वहां धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, आग्नेय, नऋत्य, वायव्य, ईशान, इन चारों कोनोंमें रक्खै ॥२६॥ इसके उपरान्त सुदर्शनचक्र, पांचजन्य शंख, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूशल, कौस्तुभ, माला, श्रीवत्सादि आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये, तहाँ सुदर्शन आदि आठ आयुधोंका आठ दिशाओंमें और कौस्तुभ आदि तीनकी वक्षस्थलमें पूजा करै ॥२७॥ नंद, सुनंद, गरुड़, चण्ड, प्रचण्ड, महाबल, कुमुद, कुमुदेक्षण यह आठ पार्षद हैं,इनकी आठों

पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥ उभाभ्यां वेदतंत्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥ सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ॥ मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥ नंदं सुनंदं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च ॥ महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून्सुरान् ॥ स्वेस्वे स्थाने त्वभि मुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः ॥ सलिलैः स्नापयेन्मंत्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ॥ पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीता भरणपत्रस्रग्गंधलेपनैः ॥ अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥

दिशाओंमें पूजा करै ॥ २८ ॥ दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेनको कोनोंमें रक्खे, गुरुको वामभागमें रक्खै, देवता, इन्द्र आदि लोकपालोंको पूर्वसे लेकर अपनी अपनी दिशाओंमें ईश्वरके सम्मुख रक्खै, और अर्घ्य, पाद्य, देकर पूजा करै ॥ २९ ॥ चंदन, उशीर, कर्पूर, कंकुम, अगर,इन सुगंधियों करके रक्खै, मंत्रोंके जलसे स्नान करावै, जो वैभव हो तो यह सामग्रियें करै, न हो तो जो होय उससेही करै ॥ ३० ॥ सुवर्णघर्मानुवाक और महापुरुष विद्या, तथा सहस्रशीर्षा और सामवेदोक्त राजनादि सूक्तोंसे मेरी पूजा करै ॥ ३१ ॥ स्नान करनेके उपरान्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, मकराकृत कुण्डल, माला, सुगन्ध लेपन आदि करके शृंगार करै, इस प्रकार प्रेमपूर्वक मेरे भक्तको मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

यह सब श्रद्धा सहित मेरे भक्तको मुझे देने चाहिये ॥ ३३ ॥ यदि वैभव हो तो नैवेद्यसे पाद्य, आचमन, गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, यह सब श्रद्धा सहित मेरे भक्तको मुझे देने चाहिये ॥ ३३ ॥ यदि वैभव हो तो नैवेद्यसे गेहूंकी खीर, दहीको डालके करै ॥ ३४ ॥ पर्वमें, उत्सवमें अनेकप्रकारकी सामग्री बनावै, गुड़, मिश्री, खीर आदिक, घृत, पूरी, पूआ, लड्डू, गेहूंकी खीर, दहीको डालके करै ॥ ३४ ॥ पर्वमें, उत्सवमें अथवा नित्य फुलेलसे अभ्यंग, उबटन, दर्पण, दंतधावन, स्नान, अन्नादि पाकसामग्री, गीत, नृत्य यह सब करने चाहिये, यदि सदा न होसके तो पर्वमें वा उत्सवमें तो अवश्यही करै ॥ ३५ ॥ इसप्रकार प्रतिमामें पूजा कही है, अब अग्निमें पूजा कहते हैं, विधिपूर्वक कुंड बनावे, मेखला, गर्त्त और वेदीकर उसमें अग्नि रक्खै, प्रथम हाथमें जब एकत्र करले, तब कुण्डमें रक्खै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त कुशा बिछाकर चारों दिशा छिड़के

पाद्यमाचमनीयं च गंधं सुमनसोऽक्षतान् ॥ धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ॥ संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत ॥ ३४ ॥ अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदंतधावाभिषेचनम् ॥ अन्नाद्यं गीतनृत्यानि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥ विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः ॥ अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ॥ प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥ तप्तजांबूनदप्रख्यं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ लसच्चतुर्भुजं शांतं पद्मकिंजल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवरांगदम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥ ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाऽभिघृतानि च ॥ प्रास्याऽऽज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥

अन्वाधान नाम कर्म समाधिसे होम करै, फिर जल छिड़ककर मेरा ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इसप्रकार मेरे रूपका ध्यान करना चाहिये, सो कहते हैं कि जैसा तप्त सुवर्ण लाल होता है, उसी प्रकारका रूप पीताम्बर पहरे, शान्तरूप, शंख, चक्र, गदा, पद्मसे चारों भुजा शोभायमान ॥ ३८ ॥ प्रकाशित मुकुट, कंकण, मेखला, बाजूबंद, श्रीवत्सका वक्षस्थलमें चिह्न, शोभायुक्त वनमाला धारण किये हुए ॥ ३९ ॥ इसप्रकारके रूपका ध्यान करनेके उपरान्त, घृत, मिठाई, समिध इत्यादिसे होम करै, फिर आज्यभाग और अघोर नामक होम करै और घृतमें बूडी हविष्य ले ॥ ४० ॥

फिर मूलमंत्रके द्वारा सहस्रशीर्षाकी ऋचाओंसे धर्मादिक देवताओंके लिये यथायोग्य स्विष्टकृत् सहित होम करै ॥ ४१ ॥ पार्षदोंको बलि दे, नारायणरूप ब्रह्मका स्मरण कर, देवताओंके समीप बैठ, मूलमंत्र जपै फिर नैवेद्य करके भोजनकी सामग्रियोंका ध्यान करै ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त आचमन दे, और वह बचा हुआ उच्छिष्ट भाग विष्वक्सेनके आगे रख उनकी आज्ञासे आप ग्रहण करै, इसके पीछे मुखवासार्थ सुगंध तांबूल समर्पण करै ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त मेरे चरित्रोंका गान करै, नृत्य, करै, मेरे कर्मोंका अभिनय दिखावै, मेरी कथा मुझे सुनावै और आप भी सुनै; एक मुहूर्त्त भर निश्चल चित्त होकर रहै ॥ ४४ ॥ वेद पुराण तथा प्राकृत भाषाके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करै "हे भगवन् ! प्रसन्न होउ" इस

जुहुयान्मूलमंत्रेण षोडशर्चोऽवदानतः ॥ धर्मादिभ्यो यथान्यायं मंत्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ॥ मूलमंत्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥ दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥ मुखवासं सुरभिमत्तांबूलाद्यमथार्हयेत ॥ ४३ ॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम ॥ मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन्मुहूर्तं क्षणिको भवेत ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ॥ स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वंदेत दंडवत् ॥ ४५ ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥ इति शेषं मया दत्तं शिरस्याधाय सादरम् ॥ उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥ अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥

प्रकार कहकर दण्डवत् प्रणाम करै ॥ ४५ ॥ प्रणाम इसप्रकार करै कि मेरे चरणोंपर शिर रक्खै दोनों हाथ बाँधकर पीठपर रक्खै "अपराधीकी समान तुम्हारी शरणहूं" हे प्रभो ! मुझे शरणमें रखलो, क्योंकि मृत्युरूप जहाँ ग्राह है, ऐसे संसारसमुद्रसे भयभीतहूं ॥ ४६ ॥ इसप्रकार पूजाकरके शेष प्रसाद पुष्प, तुलसीदल मुझे दे, ऐसा ध्यान करै उसको लेकर माथेपर धरे आदरपूर्वक विसर्जन कर ज्योति ज्योतिसे जाकर मिलावै ॥४७॥ इतने स्थल तथा प्रतिमादिकोंमें कौन मुख्य हैं, इसपर कहते हैं कि, जिसकी जहाँ श्रद्धा हो वहाँ पूजा करै, क्योंकि सर्वभूतोंमें सर्वरूप मैंहीं स्थितहूं और सब भूत मुझमें निवास करते हैं ॥ ४८ ॥

इसप्रकार क्रियायोगके मार्ग तथा वैदिक तांत्रिकके प्रकारसे पूजा करनेवाले पुरुष मुझसे इस लोक और परलोककी वांछित सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ४९॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके दृढ़ मंदिर बनावे पीछे फूलोंका उत्तम बाग बनावे, जहाँ मेरी यात्राका उत्सव होता है ॥ ५० ॥ नित्य अथवा बड़े पर्वोंमें पूजा सदा चली जाय, उसके लिये क्षेत्र वा पुर ग्राम लगादें, तब मेरे समान ऐश्वर्यको प्राप्तहो ॥ ५१ ॥ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करै तो सब पृथ्वीका राजा होय, मंदिर बनानेवाला त्रिलोकीका राज्य पावै, पूजा आदि यह सब कृत्य करै तो ब्रह्मलोकको प्राप्तहो और तीनों प्रकार करनेसे मनुष्य मेरी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥ इसप्रकार पूजाका फल मुक्ति तक कहा, अब जो निष्काम है उनकी भक्तिका फल कहतेहैं, निरपेक्ष भक्तियोग करके मुझेही पावै सो भक्ति कैसे हो ? तो कहते हैं, भक्ति तब हो जब इस भाँति मेरी पूजा करै ॥ ५३ ॥

एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतांत्रिकैः ॥ अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विंदत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रति ष्ठाप्य मंदिरं कारयेद्दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाऽऽश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्व स्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान्दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं दानेन भुवनत्रयम् ॥ पूजा दिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्समतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विंदति ॥ भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ॥ ५४ ॥ कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥ कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भाग वते महापुराणे एकादशस्कन्धे प्रतिमापूजानि० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

यह दाताका फल कहा, अब जो देकर फिर छीन लेता है, उसका निंदित कर्म कहते हैं कि, जो अपनी दी तथा पराई दी ब्राह्मण देवताकी वृत्तिका हरण करलेता है, सो अयुत वर्षतक विष्ठा भोजन करता है ॥ ५४ ॥ जो फल कर्त्ताको होता है, वही सहाय करनेवालेको भी होता है, प्रेरक अनुमोदनकर्त्ता इन सबोंको परलोकमें फल होता है, कारण यह है कि, यह सब कर्मके विभागी हैं जिसने जितना अधिक किया, उसे उतनाही अधिक फल मिलता है यदि सहाय आदि बहुत कर्म किया होय तो बहुत फल मिलता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभगवदुद्धवसंवादे पुरुषार्चनविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा–अट्ठाइस अध्यायमें, ज्ञान योग विस्तार ॥ अब वरणौं संक्षेप सों, सज्जन लेहु विचार ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! जो मेरी भक्तिमें अथवा पूजामें रहै सो यह ज्ञान निष्ठा करै पराये स्वभाव कर्मोंकी स्तुति और निन्दा न करै संपूर्ण विश्वको प्रकृति पुरुष करके जाने मुक्तिसे भिन्न न जाने ❀ ॥ १ ॥ जो पराये स्वभाव और कर्मकी निन्दा करताहै, अथवा सराहना करता है, सो मिथ्या भूत प्रपंच दृष्टि होकर शीघ्रही ज्ञानसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ २ ॥ जब इन्द्रियगण निद्रासे व्याप्त होतीं हैं, तब मनसे यह जीव स्वप्न देखता है, मायारूप स्वप्नहै पीछे

श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निंदति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्याभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिंडस्थो नष्टचेतनः ॥ मायां पाप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक्पुमान् ॥ ३ ॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ॥ वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥ छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसंतोऽप्यर्थकारिणः ॥ एवं देहादयो भावा यच्छंत्यामृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥

मन भी लीन होजाता है तब चेतना नष्ट होजाती है, तब मनुष्य मृतक समान सुषुप्ति दशाको प्राप्त होता है, इसलिये जिसकी बुद्धि इस विश्वको नाना प्रकारसे जानती है सो विक्षेप लयको प्राप्त होती है वह स्वप्नमें जो होताहै, सोई भ्रमरूप यह है ॥ ३ ॥ और जो वस्तुही नहीं केवल भ्रम है, उसमें यह भला हुआ यह बुरा हुआ इतना भला, इतना बुरा इसका क्या कहना ? इसका धरा हुआ नाम सब मिथ्या है, मनसे ध्यानकरते हैं और नेत्रोंसे जो देखते हैं, सो सब मिथ्या है तहाँ भला बुरा कहै तो सब अपनाही अज्ञान भ्रम है ॥ ४ ॥ जैसे प्रतिबिम्बकी झांई

शंका–श्रीकृष्णने कहा कि, कोई सुन्दर कर्म करै तो उसकी बडाई नहीं करना और जो कोई बुरा कर्म करै तो उसकी निंदाभी नहीं करना, क्योंकि जैसा स्वभाव जिस जीवका होता है, वह वैसाही कर्म करता है तो सुन्दर वचन श्रीकृष्णचन्द्रने किसके लिये कहा ? गृहस्थ किसीकी निन्दा स्तुति न करै कि, विरक्त किसीकी निन्दा स्तुति न करै, यह बात बताओ ?
उत्तर–यह वचन भगवान्ने विरक्तोंके लिये कहा है और विरक्तोंमें जो कोई सन्यासी हो तो उसके लिये भी कहा है और सन्यासियोंमें जो कोई परमहंस होजाते हैं उनके लिये तो निश्चयही कहा है यह अर्थ है कि, सब साधु महात्माओंको किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करना चाहिये वह श्रीकृष्णके वचन गृहस्थ लोगोंके लिये नहीं है ।

मीपीमें रूपकी बुद्धि मिथ्याहै, कार्यको करते हुए उसीप्रकार यह देहादिक भाव मरनेतक भय देतेहैं ॥ ५ ॥ वेदमें जो सृष्टि कहीहै सो आपही ब्रह्म विश्वरूप होकर प्रगट होतेहैं आपही उत्पत्ति हो आपही सृजते हैं और आपही रक्षा करैं आपही ईश्वर संहार करते हैं, और जिसका संहार करते हैं वह आत्माही है ॥ ६ ॥ आत्मा जो सबसे पृथक् निरूपण कियाहै उससे कोई पदार्थ पृथक् नहीं है यह अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत रूप जो प्रतीत होताहै यह सब मायारचित होनेसे निर्मूल है, यह अध्यात्मादि तीन प्रकारका गुणयुक्त संसार आत्मामें मायाके द्वारा भासता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष यह मेरी कही हुई ज्ञान विज्ञानकी चेष्टाको जानते हैं, वह किसीकी निंदा स्तुति नहीं करते, सूर्यकी भाँति, समान होकर लोकोंमें विचरण करतेहैं ॥ ८ ॥ वह कैसे हो ? सो प्रकार कहते हैं, जो वस्तु आदिअन्तयुक्त है, सो मिथ्याहै यह जानकर प्रत्यक्ष उपजे और नष्ट

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ॥ त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥ तस्मान्न ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ॥निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ॥ न निंदति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥ आद्यंतवदसज्ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ अनात्मसदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ॥ अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥ ११ ॥

हुए जगत्को अनुमान वेद और अपने अनुभवसे ऐसे जाने कि, जो यह दीखता है, सो सब मिथ्या है, यह ज्ञान जब दृढ़ होजाय, तब निःसंग होकर, विचरण करै ॥ ९ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन्! आत्मा स्वयंप्रकाश है, ज्ञानरूप हैं; देह तो जड़ है तो यह संसार किसको लगता है ? हे प्रभो ! यह संसार आत्माका है अथवा देहका है इन्हीका आत्मा द्रष्टा है वही देखता है देह तो जड़ है आत्मा जड नहीं, परन्तु देखनेवाला है ॥ २० आत्मा अव्यय है, सगुण है, शुद्ध है, स्वयंज्योति है, आवरणरहित है और देह तो जड है; परंतु इसका संयोग काष्ठ और अग्निसे है, अग्नि और काष्ठ भिन्न नहीं है; इसीप्रकार आत्मामें एकता है, इन दोनोंमें संसार किसीको भी संभव नहीं और जो संभव है तोभी अग्नि प्रकाशकहै

काष्ठ प्रकाशकहै॥११॥यद्यपि सत्यहै, परन्तु तो भी संसारका अविवेक कारण है, तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जहाँतक देह इन्द्रिय और प्राणसे आत्माका सम्बंधहै, तहाँतक मिथ्या भी संसार भासताहै, यद्यपि आत्माका और इन्द्रियोंका संबंध नहीं परन्तु तोभी अविवेकसे मानलेतेहैं॥१२॥ उद्धवजी बोले कि, देह तो असत्यहै इसको संसार क्यों भासता है ? तो इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि, यद्यपि विषयभोगकी वस्तु पास नहीं परन्तु तो भी संसार नहीं जाता, क्योंकि इसका ध्यान विषयोंमें रहताहै, इससे संसार होता है और स्वप्नमें अनर्थको देखता है ॥ १३॥ अब तर्क करते हैं कि, ध्यानसे जो विषयकी स्फूर्ति है, सो तो जीवन्मुक्तिसे भी निवारण नहीं होती है, तो मोक्ष किसीकी होही नहीं ?

श्रीभगवानुवाच ॥ यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ अहंकारस्य दृश्यंते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानो जीवोंतरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ॥ सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतंत्रः ॥ १६ ॥ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनयाशितेन च्छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥

इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जैसे शोचनेवालेको स्वप्न भी अनर्थ देता है सोई जो जागता रहे; तो जागनेवालेको वह अनर्थ नहीं होते जीवन्मुक्त पुरुषोंको विषयकी स्फूर्ति अनर्थ नहीं करसकती ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, काम, जन्म और मृत्यु यह सब अहंकारसे हैं, आत्माको कुछ यह नहीं लगती है ॥ १५ ॥ देह, इन्द्रिय, प्राण और मनका अभिमान कर यह आत्माही उनके मध्यमें स्थित जीव है, इसीसे गुणकर्ममय मूर्ति है और इन्हीं गुणकर्मसे पुरुष बँधरहा है, इसीकारण ईश्वरके आधीन होकर सब संसारमें दौड़ते फिरते हैं सूत्र और महत्त्व आदि नानारूपसे अनेक प्रकारका कहा है, ॥ १६ ॥ इसप्रकारके अहंकारसे जब यह जीव बँधरहाहै तब ज्ञानसे मुक्ति होती है सो कहते हैं

कि, वचन मन प्राणी में अहंकार निर्मूल है, अज्ञानमें बहुतरूप प्रकाशते हैं, इसलिये गुरुकी सेवा कर तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग हाथमें ले, इस अहंकार बंधनको काट संग छोड, पृथ्वीमें फिरै, इसके कारणका यह उपाय है ॥ १७ ॥ अब वही ज्ञान कहते हैं, जो विवेक ज्ञान उस ज्ञानका साधन करनेवाला वेद है, सो वेदके कहे धर्म करै, तब विवेक उत्पन्न हो तब स्वधर्म अपना अनुभव उपदेश तर्क इतने साधनसे ज्ञान उत्पन्न हो उस ज्ञानका फल कहते हैं, कि, योग तप है और कारण है और जगत्के आदि अंत मध्यमें वही है ॥ १८ ॥ नानाभेदके व्यवहार भी एक ब्रह्म मध्यमेंही होते हैं सो कहते हैं, जैसे सुवर्णके अनेक आभूषण बनते हैं और उनकी उत्पत्ति प्रथम भी और पीछेभी सुवर्णही है, अनेक भाँति होनेके

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ॥ आद्यंतयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्रियवस्थमंग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥

उपरान्तभी सुवर्णही रहता है, क्योंकि सुवर्णसे और कोई वस्तु तो नहीं, इसीप्रकार यह विश्व अनेकरूपसे दीखता है सो भी मैंही हूं ऐसा जानना चाहिये ॥ १९ ॥ इसप्रकार विश्वका रूप कहकर इस देह इंद्रियोंमें जिससे प्रकाश होताहै, उसका तद्रूप कहते हैं, इस मनकी तीन अवस्था कारण हैं, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह गुण हैं जो सब कार्य कारण कर्त्ता रूप हैं अध्यात्म कारण कार्य अधिभूत कर्त्ता अधिदेव इसप्रकार त्रिगुण रूप जगत् है, इसप्रकार भी जिससे होता है और जिसके अनुभवसे प्रकाशै है, सो चतुर्थ स्थान ब्रह्म है, इंद्रियादिकके ज्ञान विना जो समाधि आदि विषे हैं, सोई सत्य है ॥ २० ॥ इसप्रकार ज्योतियोंमें भी और भाँति न हो, सो सत्य है, यह कहा अब जो और प्रकार होता है सो

असत्य है; इसप्रकार कहतेहैं कि जो वस्तु प्रथम नहीं और पीछे भी न होगी, मध्यमें भी नहीं केवल नाममात्रही कहनेको है जिससे प्रगट हुई और प्रकाशी सो वही है ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ २१ ॥ प्रपंचका ब्रह्मसे अभेद कहतेहैं कि, यद्यपि प्रथम मैंही हूं, यह रजोगुणसे उत्पत्ति हुआ विकारका समूह ब्रह्मका कार्य है, परन्तु तोभी ब्रह्मके प्रकाशसे भासता है ब्रह्म आप स्वयं ज्योति है इससे इन्द्रिय, विषय, आत्मा, देवता, पंचभूत, यह सब तत्त्व ब्रह्मरूप होकर भासते हैं, यह विचित्रता ब्रह्महीका कार्य है ॥ २२ ॥ इस प्रकार ब्रह्म विवेकके हेतुसे और देहादिकमें, आत्मबुद्धिका त्यागकर गुरुद्वारा अपना संदेह काट, सब कामनाओंसे निवृत्तहो आत्माके आनंदसे संतुष्ट होकर रहै ॥ २३ ॥ जो छोडनी चाहिये उनका स्वरूप कहते हैं, यह देह आत्मा नहीं, यह पृथ्वीका विकार है, इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह सब आत्मा

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः ॥ ब्रह्म स्वयं ज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेंद्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ॥ छित्त्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानंदतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिंद्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ॥ मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥२४॥ समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः ॥ विक्षिप्यमाणैरुत किन्नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥ २५ ॥ यथा नभो वाय्वनलांबुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ॥ तथाऽक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

नहीं है, क्योंकि अन्नमात्रके आश्रयसे रहता है, इससे विकारयुक्त है और वायु, जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, यह पंचभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध प्रकृति यह भी सब आत्मा नहीं, क्योंकि जड हैं ॥ २४ ॥ इसप्रकारके विवेक ज्ञानवंत, ज्ञानी मुक्तपुरुषको इन्द्रियोंका किया गुण दोष नहीं होता सो कहते हैं कि, जो विवेकी ज्ञानवंत हैं जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हैं उन्होंने गुणरूप इन इंद्रियोंका निग्रह किया हो अथवा न किया हो तो भी उसे न तो गुणहै, न दोष है जैसे मेघके आकाशमें आनेसे सूर्यको कुछ दोष नहीं लगता है और मेघ जानेके उपरान्त कुछ गुण भी नहीं लगता है ॥ २५॥ जो निःसंग हैं और ब्रह्मरूप होरहे हैं, उनको किसीसे गुण दोष नहीं लगता जैसे आकाश भूमिमें आते जाते ऋतुके गुण

संसारका हेतु कारणसे शीत उष्णादिक और वायु, अग्नि, जलसे, बंध नहीं होते; इसप्रकार अक्षय ब्रह्म सत्त्व, रज, तम यह गुण अहंकारके हैं, संसारका हेतु कारणसे नहीं मिलता, उनसे भिन्न भिन्न है ॥ २६ ॥ तथापि तबतक मायाके गुणोंका संगम करे, जहाँतक मेरी दृढ़भक्ति योग करके यह मनकी विषयोंमें आसक्ति न जाय ॥ २७ ॥ जैसे रोगको भले उपचारोंसे दूर न कियाहो तो वारंवार वह रोग उत्पन्नहोकर दुःख देता है, इसीप्रकार रागादिक और कर्म जिसके दग्ध नहीं हुए तो और सब विषयोंमें आसक्त मनभी योगी पुरुषको फिर बध करता है ॥ २८ ॥ और जो योगसे भ्रष्ट होगयाहो तो फिर उसका क्या उपाय? तो कहते हैं कि, योगीको देवताओंके प्रेरे जो बंधुरूप भ्रष्ट करते हैं योगके भ्रष्ट होनेसे फिर पूर्व अभ्यास बलकरके

तथापि संगः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ॥ मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥ २७ ॥ यथाऽऽमयोऽसाधु चिकित्सितो नृणां पुनःपुनः संतुदति प्ररोहन् ॥ एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्वसंगम् ॥ २८ ॥ कुयोगिनो ये विहतांतरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ॥ ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युंजंति योगं न तु कर्मतंत्रम् ॥ २९ ॥ करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आ निपातात् ॥ न तत्र विद्वान्प्रकृतौ स्थितोऽपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥ तिष्ठंतमासीनमुत व्रजंतं शयानमुक्षंतमदंतमन्नम् ॥ स्वभावमन्यत्किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदि स्म पश्यत्यसदिंद्रियार्थं नानानुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥ न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥

योग करै, परन्तु कर्ममार्गके धर्म न करै केवल धर्महीकी साधना करै ॥ २९ ॥ जो किसीसे प्रेरितहो तो मरनेतक कर्मोंसे सुख दुःख जाताहै, विकारको पावै, जो विवेकी होय सो देहमें स्थित भी आत्मसुखके अनुभव करके तृष्णासे निवृत्त हुए विकारको प्राप्त नहीं होगा ॥ ३० ॥ जिसकी मति बुद्धि आत्मामें स्थित है, सो खडेहोते, चलते, सोते, मूत्र करते, अन्न भोजन करते और भी स्वभावसे दर्शन आदिक करते देहको नहीं जानते हैं ॥ ३१ ॥ जो इन्द्रियवंत हैं सो विना देखे क्यों रहैं? सो कहते हैं कि, जो विवेक युक्त हैं, सो यद्यपि इन इन्द्रियोंके विषयोंको देखतेहैं,

परन्तु तोभी अनुमानसे विरुद्ध जान आत्मासे और वस्तुसे मानते हैं, वह स्वप्नकी भाँति सब मिथ्या जानते हैं, जैसे जागनेपर स्वप्नके विषय सब आपही अंतर्द्धान होजातेहैं ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! आत्मामें मुक्तावस्थादिमें भी विकार नहीं होता, क्योंकि वृद्धावस्थामें गुण और कर्मोंसे विचित्र अज्ञानके कार्यरूप करो, देहेन्द्रियादि अध्याससे अपने स्वरूपमें मिलेहुए मानेगयेहैं, वही देहेन्द्रियादि मुक्तावस्थामें ज्ञानसे निवृत्त होजातेहैं, यह आत्मा किसीसे त्याग और ग्रहण नहीं कियाजाता, यदि मुक्तिको क्रियाका फल माने तो आत्मामें विकार होताहै इससे मायिक पदार्थोंकी निवृत्तिका होनाही मोक्ष है. बंध मोक्ष अत्माका स्पर्श नहीं करते, इसकारण आत्मा निर्विकार है ॥ ३३ ॥

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमंग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥ यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते ॥ एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसव श्वरंति ॥ ३५ ॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलंबो न यस्य हि ॥ ३६ ॥

परन्तु प्रथमसेही विद्यमान घटादिक पदार्थोंमें कुछ विकार नहीं करता, इसी प्रकार मेरी अध्यात्मविद्या मनुष्योंके मनके अंधकारको दूर करती है. परन्तु आत्मामें कुछ विकार नहीं होता, आत्मा तो जिस स्थितिमें स्थित है, उसीमें रहता है ॥ ३४ ॥ यह स्वयंप्रकाश जन्म रहित ज्ञान विज्ञानसे भी जाना नहीं जाता, महान् प्रतापयुक्त किसी विकारसे न बढ़े न घटै, सदा एक रूप रहै और सबोंका प्रकाशक एक है, वह दूसरेसे रहित हैं, जिसमें वचनकी गति नहीं, श्रुति भी कहती है कि, जब आगे गम्य नहीं, वहाँसे मन समेत वाणी फिर आती है जिसके प्रेरे वाणी और प्राण कार्य करते हैं ॥ ३५ ॥ केवल भेदरहित आत्माहै, उसमें भेद देखना इतनाही भ्रम मनका है, अपने आत्माके विना इस भेदका

आश्रय देही नहीं ॥ ३६॥ और जो भेद मानतेहैं उनका मन दूषित है क्योंकि रूप और नामसे जो वस्तु कही जाती है, सो पंचभूत रूप है, देह इन्द्रिय दूसरा पदार्थ यह मत पण्डित लोगोंका वाद है, तत्त्व जाननेवालोंके लेखे वस्तु विचार कर देखो तो सब मिथ्या है ॥ ३७ ॥ जो कच्चा योगी योग साधे है, उसे उसकी देहसे उठे रागादिक उपद्रव करके योगभ्रष्ट करदेतेहैं उनको मैंने यह आगे लिखी विधि कही है ॥ ३८ ॥ सो कहते हैं कि, योगकी धारणासे चन्द्रमा तथा सूर्यके तापको जीते आसनसे प्राणवायु और धारण वायुसे वात रोग जीते.तप, ग्रह, औषधीसे पापग्रहकृत सर्व अशुभ उपसर्गोंको दूर करै ॥ ३९ ॥ चित्तका दोष मेरा ध्यान करके दूर करे, मेरे नाम कीर्त्तन आदिसे कामक्रोधादिकोंको दूर करै और कितनेही योगीश्वरोंकी सेवा

यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पंचवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाऽप्यर्थवादोऽयं द्वयं पंडितमानिनाम् ॥ ३७ ॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युंजतः काय उत्थितैः ॥ उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥३८॥ योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ॥ तपोमंत्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः ॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥४०॥ केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ॥ विधाय विविधोपायैरथ युंजंति सिद्धये ॥४१॥ न हि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ॥ अंतवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् ॥ तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान्योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥

करके सब दंभ अहंकारादिक अशुभोंको शनैः शनैः दूर करै ॥४०॥ कितनेही योगीश्वर इस देहको समर्थ तरुणतामें अनेक उपायोंसे स्थिर करके परकायाप्रवेशकी सिद्धिके लिये योग करते हैं, ज्ञानकी निष्ठा नहीं करते ॥ ४१ ॥ और जो कुशल ज्ञाता हैं, सो उनका आदर नहीं करते, क्योंकि देह अनित्य है, इसकारण निश्चय मनसे योग करके इसके रखनेका श्रम निरर्थक है, जैसे वट वृक्षके फल मिथ्या हैं ॥ ४२ ॥ यद्यपि योगसिद्धिका नित्य सेवन करते करते प्राणायामादिके प्रभावसे शरीरमें होही जाय, परन्तु तो भी बुद्धिमान् मेरे भक्त पुरुषको समाधि त्यागन कर इस

शरीरकी सिद्धिपर विश्वास करना योग्य नहीं है ॥ ४३ ॥ इसलिये योगीजनोंको चाहिये कि, मेरे आश्रयसे यह योग करें तब विघ्न न हो निस्पृह होकर आत्माका अनुभव प्राप्त हो, जब मेरे आश्रयसे सब विघ्न निवृत्त हों तो वह योगी आनन्दसे परिपूर्ण होता है ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ दोहा–उनतिसवें अध्यायमें, भक्तियोग विस्तार ॥ प्रथम निरूपण करचुके, अब संक्षेप विचार ॥ २९ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! यह तुमने योगकी क्रिया कही सो जिस पुरुषका मन वशमें नहीं उसको तो अति कठिन लगती और जिनका चित्त वशमें नहीं वे अज्ञानी हैं, इसलिये इसको जैसे शीघ्र सिद्ध हो सुगम हो सो उपाय मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे

योगचर्यामिमां योगी विचरन्मद्व्यपाश्रयः ॥ नांतरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥४४॥ इति श्रीमद्भा०म०एका० ज्ञानयोगनि०नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ उद्धव उवाच ॥ सुदुष्करामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥ यथांजसा पुमान्सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्यंजसाऽच्युत ॥ १ ॥ प्रायशः पुंडरीकाक्ष युंजंतो योगिनो मनः ॥ विषीदंत्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनंददुघं पदांबुजं हंसाः श्रयेरन्नरविंदलोचन ॥ सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबंधो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ॥ योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥

मलनेत्र ! बहुधा जो योग करते हैं वह मनका निग्रह करनेमें अत्यन्त क्लेशको प्राप्त होते हैं, परन्तु तोभी मननिग्रह नहीं होता तब थकित हो विषाद क्त होते हैं ॥ २ ॥ योगमें अतिक्लेश हैं, जो परमहंस हैं वह सार असारको जानते हैं, हे कमलदललोचन ! जो तुम्हारे चरणारविन्दोंका आश्रय रते हैं तो यह चरणारविन्द उनके आनंदकोही पूर्ण करतेहैं, हे कमलदललोचन ! आप भक्तोंको सुखरूप हो और जो तुम्हारी मायासे मोहित योगीश्वर ोगकर्म करके अभिमानको धारण करते हैं, वह सिद्ध नहीं ॥ ३ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे सबके बंधु ! जो अनन्य शरण तुम्हारे दास हैं, उनके तुम्हीं ।श हो यह क्या आश्चर्य है, जैसे नंद यशोदाके घर खेलते फिरे, रामरूप धारण कर बंदरोंसे मित्रताई करी, ब्रह्मा आदि देवताओंके शोभासंयुक्त

मुकुटोंके अग्रने तुम्हारे चरणारविन्दका सिंहासन पीड़ित किया है ऐसे तुम हो ॥ ४ ॥ जो तुम भक्तोंकी सेवा जानतेहो, सबके आत्मा हो इसीकारण अतिप्रिय हो, ईश्वर हो, जो पुरुष केवल तुम्हारेही आश्रय रहतेहैं, उनको सब अर्थ देतेहो, प्रह्लाद आदि भक्तोंमें किया उपकार जान कौन आपको छोड़सकता है तो किस फलके लिये मेरा सेवन करे, तो कहते नहीं और देवता अथवा धर्म ज्ञानादि साधन तो ऐश्वर्यके अर्थ है, फिर मोक्षके लिये कौन भजे ? सो कहते हैं कि,साधन विना मोक्षका फल कैसे होता है ? तो तुम्हारे चरणारविन्दकी रेणुका जो सेवन करते हैं, उनको क्या फल नहीं होता ? जो चहते हैं सो फल होता है ॥ ५॥ अब कहते हैं कि, और भजनकी बात तो दूर रहै, तुम्हारे किये उपकारको तुम्हारे विषे आत्मा निवेदन

तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥ नैवोपयंत्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरंतः ॥ योंतर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्त्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हंत ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमंगलान् ॥ याञ्छ्रद्धयाचरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥

करे तभी प्रत्युपकार हो और प्रकारसे नहीं होता सो कहतेहैं, आनंदबद्ध ब्रह्मके ज्ञाता तुम्हारे उपकारको स्मरण करके ब्रह्माकी आयुसे भी तुम्हारे उपकारसे उऋण नहीं होसकते उपकारको कहते हैं कि, जो तुम बाहर गुरुरूप हो और मध्यमें अंतर्यामी रूपसे प्राणियोंकी वासना दूर करतेहो, अपना आनन्द रूप प्रगट करतेहो, हम इसका प्रत्युपकार क्या करें ? ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! जब अनुरक्तचित्त उद्धवने इसप्रकार पूँछा, तब ईश्वरके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि, जो भगवान् सत्व, रज, तम इन शक्तियोंसे ब्रह्मादि तीन मूर्ति धारण करते हैं और जगत् जिनका खिलौना है ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! मैं सुमंगल अपने धर्म तुझसे कहूंगा, जिन धर्मोंको श्रद्धासहित करनेसे यह मनुष्य दुर्जय मृत्युको जीतलेताहै ॥ ८ ॥

मेरा स्मरण करते करते शनैः शनैः सब कर्म करै, वह सब कर्म मेरे लिये करै मुझमें ही मन तथा बुद्धि अर्पण करै तथा धर्मोंहीमें आत्माकी और मनकी प्रीति रक्खै ॥९॥ जहाँ मेरे भक्त साधु पुरुष निवास करते हों उन्हीं पुण्य दर्शनोंमें जाकर वास करै, देव, असुर, मनुष्योंमें जो मेरे भक्त हैं उनके कर्मोंका आश्रय करै ॥ १० ॥ उन भक्तोंसे मिलकर उत्सव करै, अथवा अलग आपही सबकी यात्रा उत्सव करै, नृत्य गीत सब करावे महाराजके छत्र चामरादि उपचारसे सब करावै॥११॥निर्मल चित्त पुरुष सब भूतमात्रमें अपनपेमें भी बाहर भीतर मुझेही देखै, मैं आकाशकी नाईं असंग होनेके कारण सबमें स्थित होकरभी आवरण रहित और बाहर भीतर सदा पूर्ण हू ॥ १२ ॥ जो इस प्रकार ज्ञानमें स्थितहो सब प्राणीमात्रको

कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यान्संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥ पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरंतरपावृतम् ॥ ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥ इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ॥ सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिंगके ॥ अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पंडितो मतः ॥ १४ ॥ नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ॥ स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियंति हि ॥ १५ ॥ विसृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचांडालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ॥ तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

मेराही भाव जानकर पूजै, वही पण्डित है ॥१३॥ ब्राह्मण, नीच जाति, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, अग्निके कणिका यह क्रूरहों अथवा न हों इनमें जो समदृष्टि हो वही पण्डित है ॥ १४ ॥ मनुष्योंमें मेरे भावकी भावना रक्खै तो वेगही पुरुषके ईर्षा, निंदा, तिरस्कार, अहंकार यह सब निश्चयही नष्ट होजांय ॥ १५ ॥ इसलिये अन्तर्यामी ईश्वरकी दृष्टिसे सबको प्रणाम करै, हँसीकरते अपने मित्रोंको छोड़ और अपनी ऊंच नीच दृष्टि लज्जा छोड़ भूमिको दण्डवत् करै कूकर, चाण्डाल, बैल, खर ऐसे नीचोंको भी मेरी बुद्धिसे प्रणाम करै ॥ १६ ॥ जबतक सब भूतमात्रमें मेरा भाव

न उत्पन्न हो तब तक पुरुषको चाहिये कि, वाणी मन और देहकी प्रवृत्तिसे मेरी उपासना करै ॥ १७ ॥ इस प्रकार उपासना करके उसे सब विश्व ब्रह्मरूपही भासता है, आत्मविद्यासे सर्वत्र ब्रह्महो देखते संदेह सब दूर होजाते हैं और आप सबसे विरक्त होजाता है ॥ १८ ॥ यह सब पक्षोंसे निश्चय किया हुआ मेरा उत्तमपक्ष है जो देह प्राण मनसे सब प्राणीमात्रमें मेरा भाव हो ॥ १९ ॥ हे उद्धवजी ! यदि निष्काम मेरे धर्म करते करते कुछ भूल चूक होजाय तो भी हानि नहीं क्योंकि यह उत्तम धर्म निर्गुणपनकेलिये मैंने निश्चय कियाहै ॥ २० ॥ हे साधुश्रेष्ठ ! जो जो व्यर्थ भी लौकिक परिश्रम करते हैं, सो भी जो मुझे समर्पण करै फल वाँछा विना मेरेलिये करै जैसे भय शोकादिकसे दौड़ना, रोना क्लेश व्यर्थ हैं सो भी मुझे समर्पण

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ॥ परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥ अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥ न ह्यंगोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ॥ मया व्यवसितः सम्यङ् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥२०॥ योयो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ॥ तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥२१॥ एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ॥ यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः ॥ समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥ अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥ सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ॥ सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥

कर देनेसे धर्म होजाते हैं ॥ २१ ॥ वही बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि और चतुरोंकी चतुरताहै जो असत्यरूप इस मनुष्यदेहसे सत्यरूप मुझे इस जन्ममें प्राप्त होवै ॥२२॥ हे उद्धव ! यह ब्रह्मवादका संपूर्ण संग्रह मैंने तुझसे संक्षेप और विस्तारसहित वर्णन किया, जो कि देवताओंको भी दुर्लभथा ॥२३॥ वारम्वार मैंने तुझसे प्रगट करके युक्तियोंसे यह ज्ञान कहा है, क्योंकि यह ब्रह्मवाद रीतिका ज्ञान जानकर पुरुष संदेहसे रहित और मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ जो इसका स्मरण रक्खै, कहै, सुनै, पढे तो भी इसका फल होता है सो कहते हैं, हे उद्धव ! मैंने यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दियाहै इसे जो कोई चित्तमें धारण करेगा वह नित्य वेदमें भी गोप्य परब्रह्मको प्राप्त होजायगा ॥ २५ ॥

जो पुरुष मेरे भक्तोंसे विस्तार सहित यह ज्ञान कहता है उसे मैं अपनी आत्मातक देदेता हूं, क्योंकि वह भक्तोंका दाता है ॥ २६ ॥ जो कोई परममित्र साधकको इस ज्ञानरूपी दीपकसे मेरा दर्शन करावे सो दिन प्रति दिन शुद्ध होता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इसको श्रद्धा सहित नित्य सावधान होकर श्रवण करते हैं, सो मुझमें परमभक्तिको प्राप्त होकर कर्मोंसे बद्ध नहीं होते ॥ २८ ॥ हे उद्धव ! हे मित्र ! तैंने यह ज्ञान अच्छी प्रकार मनमें धर लिया है इसलिये क्या तेरे मनका मोह शोक गया ? ॥ २९ ॥ बुद्धिमान्‌को चाहिये कि यह ज्ञान दंभी नास्तिक, धूर्त्त इत्यादि और जिसके सुननेकी इच्छा न हो उसे कभी न सुनावे ॥३०॥ हे उद्धव ! जो इन दोषोंसे रहित हो, ब्रह्मण्य हो, अतिप्रिय साधु हो, शुद्धहो उससे

य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम्॥ तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ॥ स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥२७॥ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ॥ मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ॥ अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥ नैतत्त्वया दांभिकाय नास्तिकाय शठाय च ॥ अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ॥ साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दंडधारणे ॥ यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

यह ज्ञान कहना चाहिये. जो भक्ति होय तो स्त्री शूद्रसे भी कहै ॥ ३१ ॥ जाननेवालेको इसके जाननेके उपरान्त फिर कुछ जाननेकी आवश्यकता नहीं, जैसे सुस्वाद अमृत पीनेके पीछे और पीनेके योग्य नहीं रहता ॥ ३२ ॥ भक्तोंको और साधना कुछ नहीं चाहिये, क्योंकि भक्तोंका तो केवल सब मैंही हूं, ज्ञानसे मोक्ष होती है, विहित कर्म करनेसे धर्म होता है योग करै, अणिमादि सिद्धि हो, सहजके कर्म करनेसे काम होय, खेती करै, अर्थ होय दण्ड नीति करै, ऐश्वर्य होय और इन साधनाओंसे चारों पुरुषार्थ सिद्धि होते हैं, हे उद्धव ! इस पुरुषार्थरूप तुमको मैंहूं इसलिये

तुमको और कुछ नहीं करना चाहिये, केवल एक मेरी शरण रहो ॥ ३३ ॥ जब यह मनुष्य सब कर्मोंको छोडकर मुझे आत्मा निवेदन कर, तब
मेरे श्रेष्ठ करनेके योग्य होता है, उसीसे फिर मोक्षको प्राप्त होता है और निश्चयही मेरे समान ऐश्वर्यके योग्य होजाता है ॥ ३४ ॥ जब इसप्रकार
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने सफल योगमार्गका स्वरूप दिखाया, तब उत्तमयश श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन, हाथ जोड प्रीतिपूर्वक गद्गद कंठ हो
नेत्रोंसे अश्रुपात करते, गला रुकजानेके कारण उद्धवजी कुछ भी न बोलसके ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत राजा परीक्षित !

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ॥ तदा मृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते
वै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ॥ बद्धांजलिः प्रीत्युपरुद्धकंठो
न किंचिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः ॥ कृतांजलिः प्राह यदुप्र
वीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविंदम् ॥ ३६ ॥ उद्धव उवाच ॥ विद्रावितो मोहमहांधकारो य आश्रितो मे तव सन्नि
धानात् ॥ विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवंत्यजाद्य ॥ ३७ ॥

अति स्नेहसे विह्वल चित्तको "धैर्यकर" थामकर, अपनेको कृतार्थ मानने लगे । इसके उपरान्त हाथ जोड माथेसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके
चरणारविन्दका स्पर्शकर उद्धवजी बोले ॥ ३६ ॥ कि हे ब्रह्मादिकोंके उत्पन्नकर्त्ता ! मैंने जो मोहरूपी अंधकारका आश्रय कियाथा सो तुम्हारे
समीपसे जातारहा, जैसे सूर्यके समीप अंधकार, शीत, भय, कहाँ होसकते हैं ? ❋ ॥ ३७ ॥

❋ शंका—श्रीकृष्णसे उद्धवने कहा कि, महाराज ! मेरा मोह अब मेरे शरीरको छोडकर भागगया, मोहसे अब मैं छूटगया, तो फिर यमुनाके तटपर विदुरजीने उद्धवसे श्रीकृष्णका वृत्तान्त बूझा तो
क्यों मोहग्रसित होगये ? श्रीकृष्णका वृत्तान्त भी पूरा नहीं कहसके, हालभी कुछ देर पीछे कहा जो कोई कहै कि, ज्ञान पानेके पीछे फिर मोहने घेरलिया होगा तो सत्य है जो बहुत दिन होगये होंगे होते तो
आश्चर्य नहीं था परन्तु ज्ञान पाकर कृष्णके पाससे दो अथवा तीनही दिन बीतेथे जब विदुरजीका और उद्धवका समागम हुआथा, यह शंका है ।

उत्तर—निस्सन्देह उद्धवजीका मोह नाश होगयाथा परन्तु मनुष्यके स्वभाव करके क्षणक्षणमें मोहके वश होकर श्रीकृष्णका स्मरणकर फिर मोहको त्याग दिया और श्रीकृष्णका मोह भी इसलिये किया कि,
श्रीकृष्णही भक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं, इसलिये यमुनाके निकट उद्धवको मोह प्राप्त हुआ कुछ अज्ञानपनसे मोह उत्पन्न नहीं हुआ ।

तुमने अति दयाकरके मुझे सेवकको विज्ञानदीपक दिया, इसकारण कौन तुम्हारे उपकारका ज्ञाता है, अब तुम्हारे चरणारविन्द मूलको छोडकर और मैं किसकी शरण जाऊं? ॥३८॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो! जो सृष्टिकी वृद्धिके लिये तुमने अपनी मायासे मेरा स्नेहरूप पाश दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, सात्वतनमें बढ़ाया था, सो आत्मज्ञान शस्त्रसे मनेही काटकर दूर करदिया ॥ ३९ ॥ हे महायोगिन्! तुमको प्रणाम है, मैं शरणहूं, इतनी शिक्षा दो कि, मेरी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें दृढ़ प्रीति हो ॥ ४० ॥ यह बात उद्धवजीकी अंगीकार करके लोकसंग्रहके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी कि, हे उद्धव! मेरी यह आज्ञा है कि, तुम बदरिकाश्रमको जाओ, क्योंकि वहाँ मेरे चरणतीर्थ गंगाजलसे स्नान आचमन करके

प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकंपिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ॥ हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥३८॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यंधकसात्त्वतेषु ॥ प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥३९॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन्प्रपन्नमनुशाधि माम् ॥ यया त्वच्चरणांभोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥४०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ॥ तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥ ईक्षयालकनंदाया विधूताशेषकल्मषः ॥ वसानो वल्कलान्यंग वन्यभुक्सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥ तितिक्षुर्द्वंद्वमात्राणां सुशीलः संयतेंद्रियः ॥ शांतः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ॥ मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ॥ शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिंचदद्वंद्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥

शुद्ध होग ॥४१॥ हे उद्धव! अलकनंदाके दर्शनसे सफल हो पाप दूरकर वल्कल वस्त्र पहर वनके फल खाय सुखमें निष्ठ होओ ॥ ४२ ॥ वहाँ सब इन्द्रियोके निग्रहसे शीत, उष्ण, सह सुशील शान्त हो, ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त समाधिमें बुद्धि स्थिर करो ॥ ४३ ॥ और मुझसे तुमने जो सीखा है, तथा अच्छी भाँति विचारा है उसकी भावना करते आवेशयुक्त वचन चित्तसे मेरे धर्ममें तत्पर हो, इन तीन गुणोंकी गतिका अतिक्रम करके आगे मुझे प्राप्त होगे ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कहनेसे उद्धवजी प्रदक्षिणा

कर माथा भगवान्‌के चरणोंमें रख अश्रुपातके जलसे भगवान्‌के चरणको अभिषेक करने लगे, यद्यपि सुखदुःख रहित हुए हैं, परन्तु तोभी चलनेके कारण स्नेहसे कोमल बुद्धि होगये ॥ ४५ ॥ अत्यन्त दुस्त्यज स्नेहके वियोगसे अतिअधीरहो अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके छोडनेको समर्थ न हुए और इसके उपरान्त अतिकष्ट पाय फिर अपने स्वामीकी पादुका माथेपर धर प्रणाम करके चले, इसप्रकार बारंबार प्रणाम करके चले ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त अपने अंतः करणमें श्रीकृष्णको धारणकर परम भागवत उद्धव बदरिकाश्रमको चले गये और जगद्बंधु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे इस भाँति उपदेश पाय, उसी भाँति तपस्याको साध हरिकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनके चरणकमलोंका योगीश्वर सेवन करते

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ॥ कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमंतर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् ॥ यथोपदिष्टां जगदेकबंधुना तपः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥ ४७ ॥ य एतदानंदसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ॥ कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ भवभयमपहंतुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥ अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भक्तियोगसंग्रहो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

हैं. उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह ज्ञानरूप अमृत आनंद समुद्र परम भागवत उद्धवजीसे कहा, जो पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका सेवन करते हैं, सो संसारसे मुक्त होजातेहैं ॥ ४८ ॥ जिन वेदकर्त्ता भगवान्‌ने संसारका भय दूर करनेके लिये एक ज्ञानरूप वेदसार अमृतका भ्रमरकी भाँति उद्धार किया, एक अमृत तो समुद्रमेंसे निकाला था सो तो देवताओंको पिलाया अब दूसरा यह वाणीरूप अमृत अपने सेवक तथा भक्तोंको पिलाया ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा—तीसमाहिं वैकुण्ठकी, सुरति करी करतार ॥ मुशलयुद्धमिस सबनको, क्षणमें कियो सँहार ॥ १ ॥ राजापरिक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन् ! परम भागवत उद्धवजीके वन चलेजानेपर विश्वके रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्या किया ? ॥ १ ॥ अपने कुलको ब्रह्मशापसे व्याप्त देख सबके नेत्रोंके परमप्रिय शरीरको यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रने कैसे छोड़दिया ? ॥२ ॥ जिस रूपमें लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियें खैंचनेको समर्थ न हुईं, जो स्वरूप कर्णद्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ और साधु पुरुषोंके मनमें तो लिखासा रहता है, जिस रूपकी शोभा वर्णन करनेसे पण्डितोंकी वाणीसे प्रीति उत्पन्न होती है अर्जुनके रथपर स्थित जिस स्वरूपको देखकर भारतमें मरे युद्ध विषे जो योद्धा हैं, वह सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुए॥३॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी

॥ राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥ द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ॥ प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् ॥ यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं न मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दिवि भुव्यंतरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् ॥ दृष्ट्वासीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ॥ मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुंगवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजंत्वितः ॥ वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ॥ देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥

बोले कि, हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गमें सूर्यके मण्डल आदि भूमिमें कंपादि, अंतरिक्षकी दिशामें दाहादिक उठे बड़े बड़े उत्पातोंको देख सुधर्मा सभामें बैठे यादवोंसे यह कहने लगे ॥४॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! यह घोर मृत्युको बतानेवाले उत्पात उठ रहे हैं, इसलिये अब हमको दो घड़ी भी द्वारकामें वास करना योग्य नहीं है ॥ ५ ॥ इसकारण सब स्त्री, बालक और वृद्ध शंखोद्धारको जाओ और हम प्रभासक्षेत्रको जायँगे, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती है ॥ ६ ॥ वहाँ स्नानसे पवित्र हो, उपवासकर भलीभाँति सावधानतासे स्नान कराय चंदन और पूजाकी सामग्रियोंसे देवताओंका पूजन करेंगे ॥ ७ ॥

बड़े भाग्यवान् ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र और हाथी घोड़े रथोंसे पूजेंगे ॥ ८ ॥ निश्चय करके यह विधि अरिष्टकी नाशकहै और उत्तम मंगलकी आश्रय है प्राणियोंमें देवता, ब्राह्मण, गौकी पूजा कल्याणका हेतुहै ॥ ९ ॥ यादवोंमें सब वृद्ध इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रका वचन सुन "ऐसेही हैं" इस भाँति स्तुतिकर, नावों द्वारा समुद्र उतर सब प्रभास क्षेत्रको चलेगये ॥ १० ॥ यादवोंके देव भगवान्के उपदेशको सब यादव मंगलोंसहित परमभक्तिसे प्रभासक्षेत्रमें करनेलगे ॥११॥ इसके उपरान्त प्रभासक्षेत्रमें दैवसे हतबुद्धि यादवोंने सुरस मदिराका महापान किया, जिस मदिराके रससे बुद्धि भ्रष्ट होजाती है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित मद्यपानसे अतिगर्व

ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् ॥ गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् ॥ देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ॥ तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ॥ चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ॥ दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ॥ कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ॥ धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ॥ मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहञ्छरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥ प्रद्युम्नसांबौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ॥ सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

युक्तचित्त यादवोंका अतिबड़ा कोलाहल हुआ ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त क्रोधितहो वधको उद्यत यादव समुद्रके तटपर धनुष, खड्ग, गदा, तोमर और रिष्टियोंसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ दुर्मद यादव चलायमान ध्वजावाले रथ, हाथी, खच्चर, ऊंट, बैल और भैंसोंसे परस्पर मिलकर बाणोंसे मारनेलगे जैसे वनमें हाथी दाँतोंसे परस्पर हाथियोंको मारते हैं ॥ १५ ॥ असहनताको प्राप्तहो प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर तथा भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित् अतिदारुण होकर गद श्रीकृष्णका भाई, एक श्रीकृष्णका पुत्र सुमित्र और सुरथ यह अति

क्रूर स्वभाववाले मत्सरसे व्याप्त होकर परस्पर घोर युद्ध करनेलगे ॥ १६ ॥ इसीप्रकार और भी निशठ, उल्मुक, सहस्रजित, शतजित, भानु आदि यादव जो भगवान्‌की इच्छासे मोहित होगयेथे, वह वारुणीके पानसे मत्त और अन्धप्राय हो परस्पर युद्ध करकरके लड़ने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, भोज, सात्वत, मधुके वंशके और अर्बुद मथुरा शूरसेन देशके विसर्जन, कुकुर, कुंति देशके स्नेहको तोड़ परस्पर मारने लगे ॥ १८ ॥ पुत्र पितासे और भाई भानजेसे, धेवतोंसे काकाओंसे, मित्रोंसे, सुहृदोंसे युद्ध करनेलगे, मूर्ख जाति जातियोंहीको

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ॥ अन्योऽन्यमासाद्य मदांधकारिता जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥ दाशार्हवृष्ण्यंधकभोजसात्त्वता मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ॥ विसर्जनाः कुकुराः कुंतयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ॥ मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहन्ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥ शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ॥ शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्नुरेरकाः ॥ २० ॥ ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः ॥ जघ्नुर्द्विषस्ते कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ ॥ २१ ॥ प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ॥ हंतुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनंदन ॥ एरकामुष्टिपरिघौ चरंतौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ॥ स्पर्द्धा क्रोधक्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४ ॥

मारने लगे ॥ १९ ॥ बाणोंसे हीन होनेके उपरान्त धनुषके टूटनेसे, शस्त्रोंके छिन जानेसे पटेरोंको ग्रहण करनेलगे ॥ २० ॥ वह पटेरे यादवोंके हाथमें लेतेही वज्रके समान दुधार खाँड़े होगये, उससे यादव वैरियोंको मारने लगे ॥ २१ ॥ और जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें वर्जा, तब हे परीक्षित ! वह श्रीकृष्ण और बलदेवजीको वैरी मान मारनेकी बुद्धिसे यादव मोहितहो शस्त्र ले सन्मुख आये ॥ २२ ॥ हे कुरुनंद ! इसके उपरान्त दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो खड्गरूप पटेरोंको हाथमें लेकर युद्धमें विचरते मारने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापसे व्याप्त श्रीकृष्णकी मायासे

मोहित आत्मा यादवोंको स्पर्द्धासे उत्पन्न हुए क्रोधने क्षय कर दिया, जैसे बाँसकी अग्नि वनका क्षय कर डालती है ॥ २४ ॥ इसप्रकार अपना सब कुल नाश होजानेके पीछे एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रही केवल अवशेष रहगये तब श्रीकृष्णने जाना कि अब भूमिका भार उतरगया ॥ २५ ॥ महात्मा बलदेवजीने समुद्रके तटपर परमपुरुषके ध्यानरूप योगसे आपको आपमें युक्तकर मनुष्यलोक छोड़ दिया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त श्रीदेवकीजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, बलरामजीका चलना देख पीपलका आश्रय ले मौन होकर भूमितलमें बैठगये ॥ २७ ॥ शोभायमान चतुर्भुजरूप धारण किये अपनी कांतिसे दिशाओंका अन्धकार दूर करते निर्मल अग्निसे दिखाई देने लगे ॥ २८ ॥ अब

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ॥ अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ॥ तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान्देवकीसुतः ॥ निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥ बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ॥ दिशो वितिमिराः कुर्वन्विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ॥ कौशेयांबरयुग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥ २९ ॥ सुंदरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुंतलमंडितम् ॥ पुंडरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकांगदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥ वनमालापरीतांगं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पंकजारुणम् ॥ ३२ ॥ मुसलावशेषायःखंडकृतेषुर्लुब्धको जरा ॥ मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ॥ ३३ ॥

चतुर्भुज रूपका वर्णन करते हैं, श्रीवत्सका चिह्न, मेचकके समान श्याम सुवर्णके समान कांतिवाले, पीताम्बर पहरे, परममंगल ॥ २९ ॥ सुन्दर हास्ययुक्त मुखकमल, नील केशसे शोभित, कमलसे सुन्दर नेत्र, देदीप्यमान मकराकृत कुण्डल ॥ ३० ॥ कटिसूत्र, जनेऊ, मुकुट, कंकण, विराजमान हार, नूपुर, मुद्रिका, कौस्तुभसे शोभित ॥ ३१ ॥ वनमालासे व्याप्त अंग मूर्तिवत् अपने आयुधोंसे युक्त, लाल कमलकीसी शोभावाला वामचरण दाहिनी जाँघपर धरकर बैठे ॥ ३२ ॥ मूशलके अवशेष लोहेके खण्डसे जिसने बाण बनायाथा उस

जरा नाम वधिकने मृगके आकारवाले उस चरणको मृगकी शंकासे बींध डाला "यह व्याधा कुछ बहुत समयका नहीं था, यह उसीसमय स्वर्गसे भगवान्की इच्छानुसार अंगद व्याधके रूपमें आया और मोहित हो बाण मार पिताके ऋणसे मुक्त हुआ" * ॥ ३३ ॥ फिर भगवान्के समीप आया चतुर्भुज श्रीभगवान्को देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ इसके उपरान्त वह अपराधी वधिक माथेसे दैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रके

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ॥ भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥ अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ॥ क्षंतुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोकमेऽनघ ॥ ३५ ॥ यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वांतनाशनम् ॥ वदंति तस्य ते विष्णो मयासाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥ तन्माशु जहि वैकुंठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ॥ यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥

चरणोंमें गिरपड़ा ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन ! पाप बुद्धि मैंने यह अपराध अज्ञानसे किया है, हे उत्तमयश ! मुझ निष्पाप पापीको क्षमा करो ॥ ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! जिसका स्मरण मनुष्योंके अज्ञान तमका नाश करता है, उन्हीं तुम विष्णुका मैं अपराधी हूं ॥ ३६ ॥ हे वैकुण्ठनाथ ! इसलिये

* शंका—वधिकको मनुष्यके और मृगके पहँचाननेमें भेद क्यों हुआ ? जिस भ्रमसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविंदको मृग समझकर महाराजके चरणमें वाण क्यों मारा ? निशाना लगानेवाले मनुष्य कभी नहीं चूकते छोटी वस्तु होती है तोभी देख दृष्टि से खेलते हैं और त्रिलोकीनाथकी देह तो बडीथी वह वधिक कैसा मूर्ख होगया ? मृग और मनुष्य उसको नहीं जान पडे ? बडे सन्देहकी बात है

उत्तर—अगद वालिका पुत्र श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंकी सेवा करके स्वर्गको जाने लगा तो रघुनाथजीने अगदसे कहा कि, जो वरदान तुझको चाहिये सो माग, तब अगदने कहा कि, हे रघुनन्दन! हे दीनवन्धु ! मेरे पिताको आपने विना अपराध मारडाला सो उसका वदला आपसे लियाचाहता हू तब रघुनाथजी वोले कि, हम कुछ युग वीते द्वापरमें कृष्णावतार धारण करेंगे तब तुम्हारे पिताका ऋण तुमको चुकावेंगे और तुम्हारे हाथके वाणसे हम प्राण तजकर परमधामको जायँगे, जिससमयको श्रीरघुनाथजी कहगयेथे वही समय देखकर वीर अंगदने स्वर्गलोकसे उसी वनमें आनकर वधिकका रूप धारणकर लक्ष्मीपति भगवान्के चरणमें वाण मारा इसलिये व्याधेको मनुष्यकी और मृगकी पहँचान नहीं हुई, क्योंकि वहुत दिनका व्याध नहीं था वह तो नया वधिक था केवल पिताका वदला लेनको आयाथा ।

मुझ मृगलोभी पापीको शीघ्र मारो, जिससे फिर कभी साधुओंका ऐसा अपराध न करूं ॥ ३७॥ जब तुम्हारी स्वाधीन मायाकी रचनाको ब्रह्मा और ब्रह्माके पुत्र रुद्रादिक तथा वेदके द्रष्टा भी नहीं जानते उन्हें ब्राह्मणोंके शापका लगना मायासे अंधे हुए पुरुषोसे किसप्रकार कहा जासकता है ? इससे यह बात चाहे कुछ भी हो, परन्तु आप मुझे मारडालिये ॥३८ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे जरा ! तू भय मत करै, उठकर खडा हो, तैंने तो यह मेरी इच्छानुसारही कार्य किया है, इसलिये तू मेरी आज्ञासे पुण्यवानोंके स्थान स्वर्गको जा ॥ ३९ ॥ इच्छा करके शरीरधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाय, वह वधिक श्रीकृष्णकी तीन परिक्रमा दे नमस्कारकर विमानमें बैठ स्वर्गको चलागया ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त दारुक

यस्याऽऽत्मयोगरचितं न विदुर्विरिंचो रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ॥ त्वन्मायया पिहितदृष्टय एतदंजः किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥३८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ॥ याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ॥ त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥४०॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् ॥ वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ॥ स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥४२॥ अपश्यतस्त्वच्चरणांबुजं प्रभो दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा ॥ दिशो न जाने न लभे च शांतिं यथा निशायामुडुपे प्रणष्टे ॥ ४३ ॥ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः ॥ खमुत्पपात राजेंद्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥

मार्गमें भगवानको विनापाये तुलसी चन्दनकी गंध मिली वायुको सूँघता श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आया ॥ ४१ ॥ उस पीपलके वृक्षके नीचे तीक्ष्ण कांतियुक्त आयुधोंसे व्याप्त अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रको बैठा देख स्नेहसे मग्न आत्मा, नेत्रोंमें जलभर दारुक रथसे उतर उनके चरणोंमें गिरा ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्द विना देखे मेरा सब ज्ञान नाशको प्राप्त होगया और मोहमें प्रविष्ट हुआ मैं दिशाओंको भी नहीं जानताहूं, तथा शान्ति भी मुझे नहीं है. जैसे रात्रिमें चंद्रमाके गये पीछे दिशा नहीं जानी जाती हैं ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जब इसप्रकार दारुक सारथीने कहा तब सारथीके देखतेही गरुडचिह्नयुक्त रथ घोड़े ध्वजा सहित आकाशको उडगया ॥ ४४ ॥

इसके उपरान्त विष्णुके दिव्य आयुध चलेगये। इससे विस्मित सारथीसे भगवान् जनार्दन कहने लगे ॥ ४५ ॥ कि, हे सूत ! तू द्वारकाको जा, बांधवोंसे परस्पर जातिका मरण, योगमार्गसे बलदेवजीका प्रस्थान और मेरी दशा जो कुछ तैंने देखी है सो कहना ॥ ४६ ॥ तुम बांधवोंसहित द्वारकामें मत रहना, क्योंकि मुझसे छोड़ीहुई द्वारकाको अब समुद्र बोरेगा ॥ ४७ ॥ इसलिये अपनी सब सामग्री तुम हमारे मातापिताको लेक रके अर्जुनसे रक्षित हो इन्द्रप्रस्थ जाओ, इसप्रकार बांधवोंसे कहो ॥ ४८ ॥ तुम ज्ञाननिष्ठ निस्पृहहो मेरे धर्मसे और यह मेरी मायाकी रचन

तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ॥ तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ॥ संकर्षणस्य निर्याणं बंधुभ्यो याहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः स्वस्व बंधुभिः ॥ मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वंस्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ॥ अर्जुनेनावि ताः सर्व इंद्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ॥ मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनःपुनः ॥ तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तत्रा गमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ॥ महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥

जान शान्तिको प्राप्त होओ ॥ ४९ ॥ जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब दारुक श्रीकृष्णचन्द्रकी वारम्वार परिक्रमा दे माथा नवाय कुलके नाश होनेसे मलीन चित्त हो द्वारकापुरीको चलागया ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां यादव निर्याणं नाम त्रिंशोध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा–इकतिसमें नरलोकते, कृष्ण गये निजधाम ॥ गये देव निज निज भवन, तज द्वारका ललाम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! दारुकसारथीके जाने उपरान्त वहाँ ब्रह्मा, पार्वतीसहित महादेव, इन्द्रादिक देवता, सनकादिक मुनि,

मरीचि आदि प्रजापति ॥ १ ॥ पितर, गंधर्व, विद्याधर, महानाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, पक्षी ॥२॥ भगवान्का प्रस्थान देखनेकी
इच्छासे, परमउत्कंठित श्रीकृष्णके जन्म कर्म गाते और कहते वहाँ आये ॥ ३ ॥ हे राजन् ! फूलोंकी वर्षा करते, परमभक्तिसे युक्त, विमानोंकी
पंक्तिसे आकाशको संकुल करनेलगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त प्रभु सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, ब्रह्मा इन्द्रादिक अपनी विभूतिको देख अपने
आपको अपने आपमें संयुक्त कर, अपने लोक लेजानेके लिये आये हुए बहुतसे देवताओंको देख, समाधि लगाकर अपने नेत्रकमल मूँदलिये ॥५॥
जैसे स्वेच्छा मृत्युवाले योगी अपने शरीरको योगधारणासे जलाय लोकोंमें प्रवेश करतेहैं- परन्तु श्रीकृष्णने वैसे नहीं किया. किन्तु उसी शरीरसे अपने

पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥ द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ॥ गायंतश्च गृणंतश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ॥ कुर्वंतः संकुलं राजन्भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥ भगवान्पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ॥ संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम् ॥ योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ॥ सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७॥ देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशंतं स्वधामनि ॥ अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥८॥ सौदामन्या यथाकाशे यांत्या हित्वाऽभ्रमंडलम् ॥ गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

परमधामरूप वैकुण्ठको चलेगये, कारण यह था कि, यदि इस शरीरको योगधारणसे जला देते तो उसमेंका संपूर्ण जगत् भी भस्म होजाता और इस
शरीरका ध्यान व धारणा करनेवाले उपासक लोगोंको पीछे उस देहका साक्षात्कार और फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ६॥ जिससमय भगवान् श्रीकृष्ण
चन्द्र स्वधाम पधारे, उस समय देवलोकमें नगाडे बाजनेलगे आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे भूमिसे सत्य, धर्म,
धैर्य, कीर्त्ति, लक्ष्मी यह सब चले गये ॥ ७ ॥ परन्तु ब्रह्मादिक देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको स्वधाममें प्रवेश करते न देखा, इस कारण
यह अति आश्चर्यको प्राप्त हुए, क्योंकि श्रीकृष्णकी गति किसीने न जानी ॥ ८ ॥ जैसे मेघमण्डलीको छोडकर आकाशमें जाती बिजलीकी गति

मनुष्योंसे नहीं देखी जाती, उसीप्रकार देवताओंमेंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति नहीं देखी गई, उनकी गति उनके पार्षदही जानतेहैं ॥ ९ ॥ सो ब्रह्मा रुद्रादिक देवता श्रीकृष्णचन्द्रकी योगगति देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए और उस गतिकी स्तुति करते अपने अपने लोकोंको चलेगये ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित ! यादवोंमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म धारण करना मायासे अनुकरण मात्र जानना, जैसे नट निर्विकार है परन्तु नानारूपोंसे अनुकरण करता है, इसप्रकार आपही इस जगत्‌को उत्पन्न कर, और अंतर्यामीभावसे उसमें आवेशकर अंतकालमें संहार करते हैं, परन्तु आप अपनी महिमासे निर्विकार हैं ॥ ११ ॥ तुम और मूर्त्ति मत जानो इसी अवतारमें श्रीकृष्णचन्द्रका प्रताप बहुत बड़ा देखा है, जिन्होंने परलोकसे सांदीपनका पुत्र प्राप्त किया और उसे उसी शरीरसे शरणागतरक्षक श्रीकृष्ण ले आये.

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ॥ विस्मितास्तां प्रशंसंतः स्वंस्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा माया विडंबनमवेहि यथा नटस्य ॥ सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चांते संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ॥ जिग्येंतकांतकमपीशमसावनीशः किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥ तथाऽप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ॥ नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

ब्रह्मास्त्रसे दग्ध तुम्हारी रक्षा करी, फिर कालोंके महाकाल रुद्र भगवान् महादेवजीको बाणसुरके संग्राममें जीतलिया और जरानाम वधिकको देहसहित स्वर्गको भेजदिया, तो वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्या अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे ? ॥ १२ ॥ अहो ! जो श्रीकृष्णचन्द्र समर्थ थे तो कुछ काल अभी यहाँही क्यों न रहे ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, संपूर्ण जगत्‌के सृष्टि प्रतिपालन और संहारमें आपही कारण हैं औरकी आकांक्षा वह नहीं रखतेहैं अनेक शक्तियोंको धारण करते हैं, यद्यपि ऐसे हैं परन्तु तो भी यादवोंका संहार होजानेसे अपने देहको इसलोकमें रखनेकी इच्छा न की, आपही निजधाममें अपने देहको प्राप्त किया, यहाँ हेतु कहतेहैं, भगवान्‌ने विचारा कि, अब इस देहका यहाँ क्या

कामहै ? स्वधर्मी आत्मनिष्ठोंकी जो रीतिथी सो दिखाई और भाँति वह आत्मनिष्ठ दिव्य गतिके अनादरसे, योगबलसे देहकी सिद्धि कर कहीं यहाँ हीं क्रीड़ा करनेको मन करै, इसकारण भगवान् आप भी चले गये ॥ १३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर, सावधान मनसे, अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रकी परमगतिको कहैगा, सो परम उत्तमगतिको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ अब वसुदेवादिककी गति कहते हैं, इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे बिछुडाहुवा दारुक नाम सारथी द्वारकामें आय, वसुदेव व उग्रसेनके चरणोंमें पड़, अपने अश्रुजलसे उनके चरणोंको सींचने

य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ॥ प्रयतः कीर्त्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिंचत्कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥ कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ॥ तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥ तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ॥ व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नंत आननम् ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ॥ कृष्णरामावपश्यंतः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ॥ उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥

लगा ॥ १५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसके पीछे उस सारथीने सब यादवोंके नाश होनेका वृत्तान्त कहा वह सुनकर वसुदेवादिकोंके हृदयमें अत्यन्त उद्वेग हुआ और शोकसे मूर्छितहो ॥१६॥ मुख काटते श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल उतावले वहीं आये, जहाँ बांधव प्राणरहित शयन कररहेथे ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी और वसुदेव, श्रीकृष्ण और बलदेव अपने पुत्रोंके विना देखे शोकसे आतुर हो बेसुधि होगये ॥ १८ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगसे अत्यन्त आतुरहो, वहाँही प्राण छोड़दिये और अपने अपने पतियोंसे मिलकर स्त्रियें चितामें प्रवेश करगईं ॥ १९ ॥

बलदेवजीकी स्त्री बलदेवजीके देहको आलिंगनकर चितामें प्रवेशकरगईं और वसुदेवकी स्त्री वसुदेवसे, श्रीकृष्णकी पुत्रवधू प्रद्युम्न आदि अपने अपने पतियोंसे मिलकर रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी स्त्री श्रीकृष्णमय हो अग्निमें प्रवेश करगईं ॥ २० ॥ अर्जुनने अपने परमप्रिय सखा श्रीकृष्णचन्द्रके विरहसे आतुर होनेपर भी सच्ची मुक्ति देनेवाले भगवान्के वचनोंको स्मरण करके उसने अपने आत्माको सांत्वना दी ॥ २१ ॥ जिनकी संपत्ति नाशको प्राप्त हुई और आपभी नाशको प्राप्त हुए, उन बांधवोंका अर्जुनने पिंडदान, तर्पण आदि कार्य विधिपूर्वक क्रमसे किया ॥ २२ ॥ हे महाराज परीक्षित ! इसके उपरान्त श्रीयुत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मंदिरको छोड़कर श्रीकृष्णसे त्यागी संपूर्ण द्वारकाको समुद्रने क्षणभरमें डुबा

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ॥ वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्र प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ॥ कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥ अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ॥ आत्मानं सांत्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बंधूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम् ॥ हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ॥ वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ स्मृत्याऽशेषाशुभहरं सर्वमंगलमंगलम् ॥ २४ ॥ स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान्धनञ्जयः ॥ इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राऽभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ॥ त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥ य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ॥ कीर्त्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

दिया ॥ २३ ॥ मंदिर बचानेका कारण यह है कि, भगवान् मधुसूदन वहाँ नित्य विराजाते हैं और वह मंदिर कैसा है कि, जिसका स्मरणमात्र करनेसेही संपूर्ण अमंगल नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ २४ ॥ मरनेसे बचेहुए स्त्री, बालक वृद्धको अर्जुनने लेकर इन्द्रप्रस्थमें प्रवेश कराय वहाँ वज्रनाभको अभिषेक किया ॥ २५ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परमभागवत परिक्षित् ! तुम्हारे पितामह पांडव अर्जुनके मुखसे सुहृदोंका वध सुनकर तुमको वंशधारी समझ महाप्रस्थानको चलेगये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासहित देवदेव भगवान् विष्णुके जन्म और

कर्मोंको सुनैंगे अथवा कहैंगे, वह संपूर्ण पापोंसे छूट जायँगे ॥ २७ ॥ इसप्रकार इस ग्रन्थमें और दूसरे ग्रन्थोंमें वर्णन कियेहुए परममंगल भगवान् वासुदेवके सुन्दर अवतारोंके चरित्र जो मनुष्य कहैंगे सो परमहंसोंके शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त होंगे * ॥ २८ ॥

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ॥ अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदन्तर्द्धानं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तोऽयं श्रीमद्भागवतस्यैकादशः स्कन्धः ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां भाषाटीकायां श्रीकृष्णपरिवारनिर्याणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

* भजन–जनप्रतिपाल दयाल दयानिधि क्यों चितवत नहिं ओर हमारी । कीजे कृपा जन जान हमपर हे व्रजेश गोपाल मुरारी । जबसे सतशिक्षा हम त्यागी । बुधिबल और सुख सम्पति भागी । पीछे विपति अविद्या लागी । निशिदिन देत रहत दुखभारी ॥ १ ॥ कुमतिकलह घटघटमें छाई । शुभगुण सुमति समूल नशाई । करत परस्पर द्वेष बुराई । हानिलाम नहिं तनक विचारी ॥ २ ॥ हम सब तुम्हरी ओर निहारैं । त्राहि त्राहि दिन रात पुकारैं । तुम बिन जाको जाय जुहारैं । एसो को भक्तन हितकारी ॥ ३ ॥ वेग जननकी ओर निहारो । कलह कुमतिकी मूल उखारो । दारिद दुर्गुण दुर्ग विदारो । दुष्टदलन दीनन दुखहारी ॥ ४ ॥ नाथ विनय मम स्वीकृत कीजे । विद्यादान दयाकर दीजे । चरण शरणमें हमको लीजे । लागरही दृढ आश तुह्मारी ।

इदं पुस्तकं क्षेमराज–श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालेन) स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वादशस्कंधप्रारम्भः ॥


शुकदेव
परीक्षित


श्रीव्यास


परीक्षित
ऋषिगण


कश्यप
तक्षक


श्रीव्यास


नरनारायण
मार्कंडेय


बालमुकुंद


श्रीधरस्वामी

श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा–आदि ब्रह्म अद्वैत अज, अविनाशी अविकार। श्रीमुकुन्द गोविन्दपद भज मन वारम्वार ॥१॥ कवित्त–काहूको सहारोहै भवानी राज रानीको, काहूको सहारो है गिरिजाके प्यारेको। काहूको सहारो है काल विकरालीको, काहूको सहारो भूतनाथ बेलवारेको ॥ काहूको सहारो है भैरों हनुमानूजीको, काहूको सहारो है पूरण नाथद्वारेको। जानै गिरधारो औ उबारो ब्रज शालिग्राम, मोहिं तो सहारो वा नन्दके दुलारेको ॥ १॥ काहूकी उमा रमा शारदामें बड़ी प्रीति, काहूको भवानी और लक्ष्मीमें मन है। काहूको गणेश औ महेश माहिं लागो चित्त, काहूको इष्ट देव पानी अरु पवन है ॥ काहूको ध्यान हनुमान और भैरवको, काहूको पूज्य शम्भु पुत्र गजानन है। काहूके शालिग्राम रामनाम अमर मूल, मेरे तो केवल एक राधाही धन है ॥ २ ॥ सोरठा–जय ब्रजचन्द मुकुन्द, आनँदनिधि ऋधि सिधि भवन ॥ जय वृन्दावन चन्द, नन्दसुवन

श्रीकृष्णाय नमः ॥ राजोवाच ॥ स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ॥ कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥
॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ योंत्यः पुरंजयो नाम भाव्यो बार्हद्रथो नृप ॥ तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मज
म् ॥ प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ॥ २ ॥ विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ नंदिवर्धनस्तत्पु
त्रः पञ्च प्रद्योतना इमे ॥ ३ ॥ अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यंति पृथिवीं नृपाः ॥ शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सु
तः ॥ क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ४ ॥

त्रिभुवनपती ॥ १ ॥ दोहा–अहे प्रथम अध्यायमें, भावी मागध वंश। धरा भोग करि है सविधि, सो वर्णब विनशंस ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने बूझा कि हे मुने! यदुकुलके भूषणरूप श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द जब अपने परमधामको चलेगये, तब पृथ्वीपर आगेको किसका वंश चला? यह मुझको समझाकर कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! बृहद्रथके कुलके अन्तमें पुरंजय नाम राजा होगा, जिसका वर्णन प्रथम नवमस्कन्धमें आपको सुनाचुकाहूं, उसका मंत्री शुनक पुरंजयको मारकर प्रद्योतनाम अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठावेगा, उसके पालक नाम पुत्र होगा ॥ २ ॥ उसके विशाखयूप नाम पुत्र होगा, उसके राजक नाम एक पुत्र होगा, राजकके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा, यह पाँच राजा प्रद्योतन नामसे प्रसिद्ध होंगे ॥ ३ ॥ और एकसौ अड़तीस (१३८) वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करैंगे, उनके पीछे शिशुनाग नाम राजा होगा, उसके काकवर्ण

विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ॥ दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ५ ॥ नंदिवर्धन आजेयो महानंदिः सुतस्ततः ॥ शिशुनागो दशैवते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ६ ॥ समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ॥ महानंदिसुतो राजञ्छूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ७ ॥ महापद्मपतिः कश्चिन्नंदः क्षत्रविनाशकृत् ॥ ततो नृपा भविष्यंति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ८ ॥ एकच्छत्रां स पृथिवीमनुल्लंघितशासनः ॥ शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ ९ ॥ तस्य चाष्टौ भविष्यंति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ॥ य इमां भोक्ष्यंति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ १० नव नंदान्द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ॥ तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यंति वै कलौ ॥ ११ ॥ स एव चंद्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ तत्पुत्रो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १२ ॥ सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुताः ॥ शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १३ ॥

नाम राजा होगा, काकवणके क्षेमधर्मा नाम पुत्र होगा, उसके क्षेत्रज्ञ नाम पुत्र होगा ॥ ४ ॥ क्षेत्रज्ञके विधिसार नाम पुत्र उत्पन्न होगा, उसके अजातशत्रु नाम पुत्र होगा, उसके दर्भकनाम पुत्र होगा, उसके अजय नाम पुत्र होगा ॥ ५ ॥ अजयके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा, उसके महानन्द नाम पुत्र होगा, हे कुरुवंशभूषण ! यह शिशुनागादिवंशी दश राजा तीनसौ साठ (३६०) वर्षतक कलियुगमें राज्यभोग करेंगे ॥ ६॥ हे महाराज ! महानन्दका पुत्र शूद्रीके गर्भसे बड़ा तेजस्वी और पराक्रमी ॥ ७ ॥ महापद्म सेनाका पति, नन्दनाम क्षत्रियवंशका विध्वंस करनेवाला होगा, इस नन्दराजासे लेकर आगेको शूद्रके तुल्य अधर्मी राजा होंगे ॥ ८ ॥ सो यह नन्द पृथ्वीपर एक महाछत्रधारी राजा होगा और कोई संसारमें उसकी आज्ञाको उल्लंघन न करेगा, मानो क्षत्रियोंका मानभंग करनेमें दूसरा परशुराम होगा ॥ ९ ॥ उस नन्दराजाके सुमाल्यादिक आठ पुत्र होंगे, वह सब राजा होकर सौ (१००) वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे ॥ १० ॥ अपने अनुगत उन नवो नन्दराजाओंको कोई एक चाणक्य नाम ब्राह्मण मारेगा, तिनके मरणोपरान्त कलियुगमें मौर्य नाम राजा पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ ११ ॥ फिर वही नवनंदका मारनेवाला चाणक्य नाम ब्राह्मण चन्द्रगुप्त मौर्यको राज्यसिंहासनपर बैठावेगा, उस चन्द्रगुप्तके वारिसार नाम पुत्र होगा, उसके अशोकवर्धन नाम पुत्र होगा ॥ १२ ॥ अशोकवर्धनके सुयशा

नाम पुत्र होगा, उसके संगतनाम पुत्र उत्पन्न होगा, संगतके शालिशूकनाम पुत्र होगा, उसके सोमशर्मानाम पुत्र होगा ॥ १२ ॥ सोमशर्माके शतधन्वा पुत्र होगा, उसके दूसरा बृहद्रथ पुत्र होगा; यह दश मौर्यवंशी राजा कलियुगमें एकसौ तेत्तीस (१३३) वर्षतक पृथ्वीपर आनन्द भोगेंगे, हे कौरवकुलमार्त्तण्ड ! इन सब मौर्योंमें पहले एकादश रथा नाम मौर्य होगा, यह जाननेयोग्य बात है॥ १४ ॥ फिर मौर्यवंशका राजा बृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामीको मारकर ाज्य करैगा पौष्पमित्रका पुत्र अग्निमित्र राजा होगा उसका सुज्येष्ठ नाम पुत्र होगा, सुज्येष्ठक पुत्र वसुमित्र होगा, वसुमित्रका भद्रक नाम पुत्र होगा, भद्रकका पुत्र पुलिन्द होगा, पुलिन्दका पुत्र घोष होगा,घोषका पुत्र वज्रमित्र होगा वज्रमित्रका

शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः ॥ मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥ समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कलौ । कुरुकुलोद्वह ॥ १४ ॥ अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिंदो भविता सुतः ॥ ॥ १५ ॥ ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ॥ ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरिति श्रुतः ॥ १६ ॥ शुंगा दशैते भोक्ष्यंति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ ततः काण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप ॥ १७ ॥ शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥ स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥ १८ ॥ तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ॥ काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ शतानि त्रीणि भोक्ष्यंति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ १९ ॥ हत्वा कण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ॥ गां भोक्ष्यत्यंध्रजातीयः कञ्चित्कालमसत्तमः ॥ २० ॥

पुत्र भागवत होगा; भागवतका पुत्र देवभूति होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ यह दश शुंगराजा कहे जायँगे और दशों राजा एकसौबारह ११२ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करैंगे, हे कुरुकुलभूषण। इन सबमें शुंगा नाम राजा पहिले होगा, हे नरेन्द्र। फिर यह भूमि अल्पगुणवाले कण्व नाम राजाओंके अधीन रहैगी ॥ १७ ॥ देवभूति नाम शुँगाका मंत्री बडा बुद्धिवान् वसुदेवनामा होगा सो परस्त्रीगामी देवभूति शुंगको मारकर आपही राज्य करैगा, उसके भूमित्र पुत्र होगा ॥ १८ ॥ भूमित्रके नारायण नाम पुत्र होगा। नारायणके सुशर्मा नाम पुत्र होगा यह कण्ववंशी चार राजा कलि युगमें तीनसै पैंतालीस ३४५ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करैंगे ॥ १९ ॥ सुशर्माका कोई चाकर महानीच शूद्र जाति अस

त्तम बली नाम कण्ववंशी सुशर्माको मारकर कुछ वर्षतक आप पृथ्वीका राज्य करैगा ॥२०॥ फिर उसके पीछे उस बली नाम राजाका भ्राता कृष्ण नाम पृथ्वीका पति होगा, उसके श्रीशान्तकर्ण नाम पुत्र होगा, श्रीशान्तकर्णके पौर्णमास नाम पुत्र होगा॥ २१॥ उसके लम्बोदर नाम पुत्र होगा, लम्बोदरका पुत्र चिविलक होगा, चिविलकके मेघस्वाति नाम पुत्र होगा, उसके अटमान नाम पुत्र होगा ॥ २२ ॥ अटमानके अनिष्टकर्मा नाम पुत्र होगा, उसके हालेय नाम पुत्र होगा, हालेयके तलक नाम पुत्र होगा, तलकके पुरीषभीरु नाम पुत्र होगा उसका सुनन्दन नाम पुत्र होगा ॥२३॥ सुनन्दनके चकोर नाम तनय होगा, चकोरके नवभाशिवस्वाति नाम पुत्र होगा, हे रिपुदमन! उसके गोमती नाम पुत्र होगा, गोमतीके पुरीमान् नाम

कृष्णनामाऽथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ॥ श्रीशांतकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ लंवोदरस्तु तत्पुत्र
स्तस्माच्चिविकलो नृपः ॥ मेघस्वातिश्च विकलादटमानस्तु तस्य च ॥ २२ ॥ अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चा
त्मजः ॥ पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २३ ॥ चकोरो नवमो यत्र शिवस्वातिररिंदम ॥ तस्यापि गोमती
पुत्रः पुरीमान्भविता ततः ॥ २४ ॥ मेदःशिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ॥ विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः
सलोमधिः ॥ २५ ॥ एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ॥ षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यंति कुरुनन्दन ॥ २६ ॥ सप्ता
भीरा आवभृत्या दशगर्दभिनो नृपाः ॥ कङ्काः षोडश भूपाला भविष्यंति च लोलुपाः ॥ २७ ॥ ततोऽष्टौ यवना
भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ॥ भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ २८ ॥

पुत्र होगा ॥२४॥ उसके मेदशिरा नाम पुत्र होगा मेदशिराके शिवस्कन्द नाम पुत्र होगा, ताके यज्ञश्रीनाम पुत्र होगा, यज्ञश्रीके विजय नाम पुत्र होगा, उसके चन्द्रविज्ञ नाम पुत्र होगा, और उसके सलोमधिनाम पुत्र होगा ॥ २५ ॥ हे कुरुनन्दन ! यह तीस राजा चारसौ छप्पन ४५६ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करैंगे ॥ २६॥ इनके उपरान्त आवभृत्य नामनगरीमें सात आभीर जातिके राजा होंगे, उनके पीछे फिर दश गर्दभ नाम राजा होंगे, उनके उपरान्त कंकजातिके सोलह राजा महालोभी होंगे ॥ २७ ॥ उनके पीछे आठ यवन राजा होंगे, उनके पीछे चौदह तरुष्क (तुरक, तुरकिस्तानके वासी) राजा होंगे, फिर दश गुरुण्ड (अंगेरज,इंगलिस्तान निवासी) राजा होंगे, उनके पीछे ग्यारह मौन राजा होंगे ॥ २८ ॥

यह ग्यारह मौन राजाके विना सब राजा एक सहस्र निन्यानवे (१०९९) वर्षतक पृथ्वी पर राज्य करेंगे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! ग्यारह मौन राजा तीनसो ३०० वर्षतक पृथ्वीका भोग करेंगे, उनके मरनेके पीछे किलकिला नगरमें भूतनन्दनाम राजा होगा, उसके पीछे वंगिर नाम राजा होगा ॥ ३० ॥ फिर उसके पीछे उसका भाई शिशुनंदि और शिशुनन्दिके पीछे यशोनंदि यशोनन्दिके पीछे प्रवीरक, यह सब राजा एकसौ छः (१०६) वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ ३१ ॥ उस शिशुनंदिके तेरह पुत्र होंगे और वह सब बाह्लीकही कहलावेंगे और आनन्द पूर्वक पृथ्वीका राज्य करेंगे, फिर और एक दूसरा पुष्पमित्र नाम राजा होगा, उसके दुर्मित्र नाम पुत्र होगा ॥ ३२॥ फिर सात तो

एते भोक्ष्यंति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ॥ नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ २९ ॥ भोक्ष्यंत्यब्दशतान्यंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ॥ किलिकिलायां नृपतयो भूतनंदोऽथ वंगिरिः॥३०॥शिशुनंदिश्च तद्भ्रातायशोनंदिः प्रवीरकः ॥ इत्येते वै वर्षशतं भविष्यंत्यधिकानि षट् ॥ ३१ ॥ तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ॥ पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ॥ ३२ ॥ एककाला इमे भूपाः सप्तांध्राः सप्त कौशलाः ॥ विदूरपतयो भाव्या नैषधास्तत एव हि ॥ ३३ ॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः ॥ करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिंदयदुमद्रकान् ॥ ३४ ॥ प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ॥ वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥ अनुगंगामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यंति मेदिनीम् ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्रावंत्याभीराश्च शूद्रा अर्बुदमालवाः ॥ व्रात्या द्विजा भविष्यंति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥ ३६ ॥

अंध, सात कौशल और एक वैदूर्य नगरका नरेश नैषध यह सब खण्ड मण्डलेश्वर राजा एकही समयमें होंगे ॥ ३३ ॥ फिर मगध देशमें विश्वस्फूर्जित पुरंजय नाम राजा होगा, सो बडा पराक्रमी विदुर्मति होगा और ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको धर्मसे भ्रष्ट करके पुलिन्द, यदु और मद्रक म्लेच्छकी तुल्य करदेगा ॥ ३४ ॥ और जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, न हों ऐसी नीच प्रजाको स्थापन करैगा, यह वीर्यवान् पुरंजय क्षत्रियोंका विध्वंस करके पद्मावती नाम पुरीमें बसकर हरिद्वारसे लेकर प्रयागतक राज्य करैगा ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्रदेश, उज्जैन, अभीर, शूद्र, अर्बुद, मालवादेशनिवासी द्विज अर्थात् तीनों वर्ण यज्ञोपवीत क्रिया न करके संस्कार हीन होजायँगे और राजा भी शूद्रके समान

काम करने लगेंगे ॥ ३६ ॥ सिन्धुनदीसे लेकर चन्द्रभागानदीके किनारेतक और कौंतीपुरी काश्मीर आदि सब देशोंमें शूद्र क्रियाहीन म्लेच्छप्राय वेदमर्यादारहित, तेजहीन राजा होंगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह सब एकही कालमें म्लेच्छप्राय अधर्मी, असत्यपरायण, अल्पदाता, महाक्रोधी ॥ ३८ ॥ स्त्री, बालक, गौ, ब्राह्मणको मारनेवाले, परनारी, पराये द्रव्यके, हरनेवाले उत्पन्न होंगे और मारेंगे, अल्पपराक्रम, अल्प आयुर्बलवाले होंगे ॥ ३९ ॥ गर्भाधानआदिक संस्कारोंसे रहित, सन्ध्या तर्पणादि क्रियाओसे हीन, रजोगुण, तमोगुणसे आवृत म्लेच्छ राजाओंका रूप धारण किये प्रजाको अनेक अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले होंगे ॥ ४० ॥ इन पालनेवाले राजाओंके सब देश उन राजाओंके भाव और

सिंधोस्तटं चंद्रभागां कौंतीं काश्मीरमंडलम् ॥ भोक्ष्यंति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३७ ॥ तुल्यकाला इमे राजन्म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ॥ एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ३८ ॥ स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः ॥ उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥३९॥ असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः ॥ प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४० ॥ तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥ अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यंति पीडिताः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वाद० कलौ भाविनृपान्वय० प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥ कालेन बलिना राजन्नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतीः ॥ १ ॥ वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ॥ धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥

आचरणको और अपवाद करनेवाले लोगोंको परस्पर क्लेशोंसे और राजाओके लिये किये हुए दुष्ट कर्मोंसे दुःखी होकर क्षयको प्राप्त होंगे ॥४१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां राजवंशवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–दुसरे जब कलिकालको, बढै दोष अत्यन्त ॥ तब हरि कल्की रूपधर, मारहिं दुष्ट असन्त ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके उपरान्त फिर महाबलवान् कालके प्रभावसे दिनपर दिन धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल, स्मरण आदि घटता चलाजायगा ॥ १ ॥ कलियुगके विषे जिस पुरुषके पास धन होगा, वही बलवान्, गुणनिधान, आचारवान् और बुद्धिवान् कहलावेगा और जो महाबलवान् होगा, वही धर्माध्यक्ष और न्यायशाली हो

मबको जीतैगा ॥२॥ रीति प्रीति केवल एक स्त्री और पुत्रहीमें रहेगी और सुहृद, मित्र, कुल, गोत्रादिकमें कपट व्यवहार रह जायगा स्त्री पुरुष होनेमें कुछ श्रेष्ठ कुल, आचार विचार न होगा केवल रति करनेमें कुशल देखलेंगे और ब्राह्मणपनमें केवल जनेऊ मात्रही रहजायगा ॥३॥ आश्रम चिह्नमात्रही करके पहिचाने जायँगे, परस्पर स्नेह कहीं नहीं रहैगा, धनहीन न्यायमें नित्य प्रति हारतेही रहा करैंगे;क्योंकि न्यायाध्यक्ष जबतक धनपात्रोसे द्रव्य पाते रहैंगे तबतक धनहीनको हरातेहीरहा करैंगे, और अधिक बोलनेवालेहीको लोग पण्डित कहैंगे ॥ ४ ॥ निर्धनोंका नाम लोग असाधु रक्खेंगे. दम्भवान् और कपटीहीको लोग साधु कहैंगे; विवाह स्वीकार मात्रहीं समझा जायगा, और स्नानही सब शृंगार मात्र होगा ॥५॥

दांपत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव ब्यावहारिके ॥ स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥ लिंगमेवाश्रमख्यातावन्योऽन्यापत्तिकारणम् ॥ अवृत्त्यां न्यायदौर्बल्यं पांडित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥ अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दंभ एव तु ॥ स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्ये केशधारणम् ॥ उदरंभरिता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥ ६ ॥ दाक्ष्यं कुटुंबभरणं यशोर्थं धर्मसेवनम् ॥ एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमंडले ॥ ७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ॥ प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यंति गिरिकाननम् ॥ शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥

जो ताल वा सरोवर दूर होगा, वही तीर्थ माना जायगा, माता पिता और गुरुको कोई तीर्थ नहीं मानेंगे, सब शिरपर बाल रखना यही सुन्दरता कहावेगी, जैसे तैसे पेट भरलना परम चतुरता और पराक्रम गिना जायगा. और ढीठ पुरुषही सत्यवादी कहलावेंगे ॥ ६ ॥ कुटुम्बका उदरपूर्ण करनाही स्थानपन और चतुराईका मूल समझा जायगा धर्मका सेवन केवल इसीलिये किया जायगा जिससे संसारमें यश हो, इसप्रकार जब सर्वत्र भूमण्डल प्रजाओंसे व्याप्त होजायगा ॥ ७॥ तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इनमें जो बली होगा वही भूपाल कहा जायगा लोभी, निर्दयी, लुटेरोसे और राजाओसे ॥ ८ ॥ अपना स्त्री, धन छीन लेनेके भयसे सब प्रजा भागकर पर्वतोंमें, वनोंमें जा छिपैगी और वहाँ शाक, कन्दमूल,

फल, मधु, मांस, पुष्प, बीज, इनसे अपना उदर पूर्ण करैंगी ॥९॥ अकाल और राजाओंके दण्डसे कष्टपाकर अनावृष्टि,शीत, वायु,धूप,वर्षा और हिमसे परस्पर अत्यन्त पीड़ित हो क्लेशपाकर सम्पूर्ण नष्ट होजायगा ॥ १० ॥ भूख, प्यास, रोग, संताप और चिन्तासे प्रजा अत्यन्त पीड़ितहो जायगी और मनुष्योंकी पूर्ण अवस्था कलियुगमें बीश २० अथवा तीस ३० वर्षकी हुआ करैगी ॥ ११ ॥ जब कलियुगका महादोष बढैगा तब प्राणी तनु क्षीण और महामलीन होजायँगे ॥ १२ ॥ धर्मके बदलेमें पाखण्डही पाखण्ड रहजायगा, राजा लुटेरे होंगे, वृथा हिंसा और बातबातमें झूठ बोलकर नाना प्रकारकी वृत्तियोंको करैंगे और सदा बुरे कामोंमें निष्ठा रहै गी ॥ १३ ॥ सब वर्णाश्रम शूद्रके सदृश होजायँगे और गायें

अनावृष्ट्या विनंक्ष्यंति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ शीतवातातपप्रावृड्ढिमैरन्योऽन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतापेन च चिंतया ॥ त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥ क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ॥ वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥ पाषंडप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ॥ चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु ॥ गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बंधुषु ॥ १४ ॥ अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ॥ विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥ १५ ॥ इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मणि ॥ धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६ ॥ चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ॥ धर्मत्राणाय साधूनां जन्मकर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥

बकरीके समान छोटी छोटी होंगी, चारों आश्रम गृहस्थप्राय होजायँगे और स्त्रीके भैयोंसे लोग प्यार करैंगे और घरको सम्बन्ध मात्र मानैंगे ॥ १४ ॥ अन्न और औषधियें सब क्षीण होजायँगी, केवल वृक्षोंमें प्रायः शमी के वृक्षही रहजायँगे, वर्षाकालमें बिजली अधिक चमकेगी वर्षा बहुत थोड़ी हुआ करैगी, गृहस्थियोंके घर धर्मकर्मसे शून्य होजायँगे ॥ १५ ॥ इसप्रकार कलियुगमें सब मनुष्य अधर्मी हो गधेके समान होजायँगे और महाभयंकर कलियुगके अंतका समय आवेगा, तब धर्मकी रक्षा करनेके लिये आदि पुरुष भगवान् शुद्ध सतोगुणमूर्ति धारण करके निष्कलंक रूपसे प्रगट होंगे ॥ १६ ॥ चराचरके गुरु सबके आत्मा ईश्वर विष्णुका अवतार महात्मा पुरुषोंके धर्मकी रक्षा और उनके कर्मोंके

प्रचारके लिये होगा ॥ १७ ॥ शंभग्राममें रहनेवाले विष्णुयशा ब्राह्मणके घरमें (चैत्रशुक्ला द्वादशीको) विष्णु भगवान् कल्किअवतार धारण करेंगे शीघ्रगामी देवदत्त नाम घोड़ेपर चढ़कर खड्ग हाथमें ले दुष्टोंके दमनकर्त्ता अणिमादिक अष्टसिद्धियोंसे संयुक्त ॥ १८ ॥ १९ ॥ जगदीश्वर भगवान् अनुपम कान्तिवाले महातेजस्वी कल्किरूपसे राजाओंकेसा वेष धारण किये उस घोडेपर चढ़ करोडों चोरोंका विध्वंस करेंगे ॥ २० ॥ जब सब चोरोंका संहार होजायगा, तब देश, देशान्तरके मनुष्योंके अतिपुण्यरूप सुगन्धयुक्त पवनके लगनेसे उन मनुष्योंके मन उज्ज्वल होजायँगे ॥

शंभलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥ अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ॥ असिनाऽसाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥ विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ॥ नृपलिंगच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥ अथ तेषां भविष्यंति मनांसि विशदानि वै ॥ वासुदेवांगरागातिपुण्यगंधानिलस्पृशाम् ॥ पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥ तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥ यदाऽवतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ॥ कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥ २३ ॥ यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ॥ एकाराशौ समेष्यंति तदा भवति तत्कृतम् ॥ २४ ॥ येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यंति च पार्थिवाः ॥ ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः ॥ २५ ॥ आरभ्य भवतो जन्म यावन्नंदाऽभिषेचनम् ॥ एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम् ॥ २६ ॥

॥ २१ ॥ और उन नगरनिवासियोंके हृदयमें शुद्ध चैन्य सत्त्वमूर्त्ति भगवान् वासुदेव स्थित होंगे, तब उन प्रजानके पुत्रादिक उत्तम और पुष्ट होंगे ॥ २२ ॥ जब धर्मके पालनेवाले कल्किभगवान् प्रगट होंगे तब सतयुग वर्त्तनेलगेगा और प्रजाकी सन्तान सत्विकी होगी ॥ २३ ॥ जब चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति यह सब पुष्यनक्षत्रके योग करके एक राशिमें आवेंगे तब सतयुग होगा ॥ २४ ॥ जो चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी राजा होचुकेहैं और जो ससमय विद्यमान हैं और जो आगेको होंगे, उन सबके नाम संक्षेपसे भिन्न भिन्न मैंने आपको सुनाये ॥ २५ ॥ तुम्हारे जन्मसे लेकर नन्दके

राज्यतक पन्द्रहसौ दश (१५१०) वर्ष बीतगये ॥ २६ ॥ आकाशमें सप्त ऋषियोंके मध्य जो दो तारे पुलह और क्रतु, उदयकालके पहिले दीखते हैं, उन दोनोके मध्यमें रात्रिके समय उन दोनोंके समान एक नक्षत्र देखनेमें आता है ॥ २७॥ वह अरुंधतीके नक्षत्रसहित सप्तऋषि मनुष्योंके सौ (१००) वर्षतक प्रत्येक नक्षत्रपर रहा करते हैं, अर्थात् जैसे चन्द्रमा एक नक्षत्रपर एक दिवस रहता है, इसीप्रकार सप्त ऋषि मनुष्योंके सौ १०० वर्षके अनुमान एक नक्षत्रपर रहते हैं, सो यह सप्तऋषि तुम्हारे जन्मके समय मघा नक्षत्रपर थे और इससमय भी मघा नक्षत्रपर स्थित हैं ॥ २८ ॥ कलियुगके आनेका समय ठीक ठीक इस प्रकार निश्चय कियाहै कि, जब महातेजस्वी शुद्ध सत्यमूर्त्ति श्रीकृष्ण

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ॥ तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥ २७ ॥ तेनैव ऋषयो युक्ता स्तिष्ठंत्यब्दशतानि च ॥ ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८ ॥ विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्यो ऽसौ दिवं गतः ॥ तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥ यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ॥ तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रांतुं न चाशकत् ॥ ३० ॥ यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरंति हि ॥ तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वाद शाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥ यदा मघाभ्यो यास्यंति पूर्वाषाढां महर्षयः ॥ तदा नंदात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ॥ ३२ ॥ यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ॥ प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

भगवान् अपने परमधामको सिधारे, उसीसमय कलियुगने इसलोकमें अपना प्रवेश किया, जिस कलियुगके आतेही मनुष्योंके मनकी पापमें रुचिहुई ॥ २९ ॥ हे राजन् ! जबतक रमापति भगवान् अपने चरणारविन्दोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते और इसपर विराजमान रहे, तबतक कलियुग पृथ्वीपर अपना कुछ कर्तव्य न करसका ॥ ३० ॥ जबसे मघा नक्षत्रमें सप्तऋषि वर्त्ते हैं, तबहींसे कलियुग प्रवृत्त होकर देवताओंके बारह सौ १२०० वर्षतक कलियुग रहता है ॥ ३१ ॥ जब सप्तऋषि मघानक्षत्रसे निकले पूर्वाषाढा नक्षत्रपर जायँगे, तब नन्दका राज्य वर्त्तेगा और उसी नन्दके राज्यसे कलियुगका अत्यन्त प्रताप बढेगा ॥ ३२ ॥ जिसदिनसे जिस मुहूर्त्तसे जिस क्षणसे श्रीकृष्ण भगवान् अपने परम

धामको सिधारे उसी दिन और उसीसमय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, ऐसे भूतकालके जाननेवाले ऋषि लोग कहतेहैं ॥ ३३ ॥ जब देवताओंके एक सहस्र १००० वर्ष व्यतीत होजायँगे जो कलियुगका प्रमाण है, फिर पीछे सतयुगका प्रवेश होगा और सतयुगके आनेका यही लक्षण दिखाई देगा कि, मनुष्योंके मनमें आपसे आप आत्माका प्रकाश होजायगा ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! जिसप्रकार पृथ्वीपर मनुका वंश हुआ और आपसे कहा, उसीप्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंका वंश युग युगमें जाननेको योग्य है ॥ ३५ ॥ जो आजतक नाममात्रसेही जानेजाते हैं, उन जाननेवालोंकी केवल कथामात्रही कहनेको रहगई है; ऐसे महात्मा पुरुषोंकी कीर्त्तिही संसारमें आजतक चली जाती है, वह लोग पृथ्वी

दिव्याब्दानां सहस्रांते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ॥ भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥ इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ॥ तथा विट्छूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगेयुगे ॥ ३५ ॥ एतेषां नामलिंगानां पुरुषाणां महात्मनाम् ॥ कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥ देवापिः शंतनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ॥ कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरंते वासुदेवानुशिक्षितौ ॥ वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्त्तते ॥ ३९ ॥ राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे ॥ भूमौ ममत्वं कृत्वांते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥

पर न रहे इसलिये प्राणियोंको चाहिये कि, राज्य और पुत्रादिककी मोह ममताको त्यागकर अपने धर्म कर्ममें तत्पर रहैं ॥ ३६ ॥ चन्द्रवंशी शन्तनुका भ्राता, देवापी और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ सूर्यवंशी राजा मरु यह दोनों राजा अत्यन्त योगबलके प्रतापसे कलापग्राममें वास करते हैं ॥३७॥ यह दोनों राजा कलियुगके अन्तमें भगवानकी शिक्षा पाकर पहिलेके समान सब वर्णाश्रमके धर्मोंका विस्तार करेंगे ॥ ३८ ॥ सत युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, यह चारों युग इस क्रमसे पृथ्वीपर मनुष्योंके विषे वर्त्तते रहतेहैं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! यह जो राजा मैंने आपके आगे वर्णन किये, और इनके सिवाय और भी जो हुए, सो सब इस भूमिमें ममता करके और भूमिको यहीं छोडकर आप रीते हाथों नाशको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

जिस देहका नाम राजाथा उस देहको अन्त समय कृमि, विष्ठा, राख, यह नाम होते हैं, ऐसे शरीरसे जो कोई शरीरधारी दूसरेसे द्रोह करते हैं, उनका कौनसा स्वार्थ सिद्ध होताहै ? नरकमें वास करनेके सिवाय कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता ॥ ४१ ॥ किसप्रकार इस महाअखण्ड भूमिके हमारे पुरुषाओंने पालीथी और अब किसप्रकार हमारे पुत्र पौत्रके पास और हमारे वंशजोंके पास स्थिर रहेगी ? ॥४२॥ वह मूर्खलोग पंचभूतमय इस देहको अपना मानकर भूमिसे ममता करके अन्तसमय दोनोंको छोडकर आप अकेले चलेगये ॥४३॥ हे राजन् ! जो जो भूपति हुए वे सब अपने पराक्रमसे भूमिका भोग करते रहे, इस महाविकराल कालने उन सबकी कथामात्रही कहनेको रक्खी ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां कल्क्यवतारवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–तिसरेमें वसुधा वचन, राज्यदोष गुणग्राम ॥ कुल कलंक कलिकालके, मेटन हरिका नाम ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह पृथ्वी अपने जीतनेका परिश्रम करते हुए राजाओंको देखकर अपने मनही मनमें ठट्ठे मारमारकर हँसती है कि, अहो ! यह सब मृत्युके खिलौने राजा मुझको जीतना चाहते हैं, यह नहीं जानते कि, हमसे अनन्त राजा मरमरकर खपगये ॥१॥ जिस कामनाने बुद्बुदेके समान इस देहके विषे जिन राजाओंको विश्वास उपजाया, उन राजाओंकीभी कामना निष्फल है ॥ २ ॥ मुख्य तो राजाओंका यह विचार है कि, पहले तो पाँचो इंद्रिय और छटे मनको जीतकर, पीछे मंत्री, प्रधान, सचिव, पुरवासी और कुटुम्बादिक

कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽन्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥ कथं सेयमखंडा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ॥ मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य च ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाऽबुधाः ॥ महीं ममतया चोभौ हित्वांतेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥ येये भूपतयो राजन्भुंजंति भुवमोजसा ॥ कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा॰ म॰ द्वा॰ कल्क्यवतारादि॰ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ॥ अहो मां विजिगीषंति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥ काम एष नरेन्द्राणां मोहः स्याद्विदुषामपि ॥ येन फेनोपमे पिंडे येऽतिविश्रंभिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमंत्रिणः ॥ ततः सचिवपौराप्तकरींद्रानस्य कंटकान् ॥ ३ ॥

अपने वशमें करके शत्रुओंकी जडको उखाडे, महाव्रत और कटककी ओरसे बेखटकहो राज्य करेंगे ॥ ३॥ और इस रीतिसे समुद्रतककी भूमिको जीतेंगे । इसप्रकार आशावेष्टित हृदयवाले सब अपने २ निकट रात दिन डंका बजानेवाले कालका कुछ ध्यान नहीं करते ॥ ४ ॥ अनेक राजा तो समुद्रके पारतक मुझको अपने पुरुषार्थसे जीतकर अत्यन्त तृष्णासे समुद्रके देशोंमें (द्वीपोंमें). भी प्रवेश करते हैं, इन्द्रिय और मनके जीतनेपर राज्य साधनेकी इच्छा करनी मूर्खता है और आत्मजयका फल तो एक मुक्तिही है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! वसुधा कहती है कि, देखो ! जो मुझको छोड़कर मनु और मनुकी सन्तान मेरे ऊपर जैसे आये वैसेही हाथ पसारे चलेगये, ऐसी मुझ

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥ इत्याशाबद्धहृदया न पश्यंत्यंतिकेंतकम् ॥ ४ ॥ समुद्रावरणां जित्वा मां विशंत्यब्धिमोजसा ॥ कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ॥ गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यंत्यबुद्धयः ॥ ६ ॥ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातॄणां चापि विग्रहः ॥ जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥ ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ॥ स्पर्धमाना मिथो घ्नंति म्रियंते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥ पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ॥ मांधाता सगरो रामः खट्वांगो धुंधुहा रघुः ॥ ९ ॥ तृणबिंदुर्ययातिश्च शर्यातिः शंतनुर्गयः ॥ भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ॥ नमुचिः शंबरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥

अचलाको यह कुबुद्धी राजा युद्धमें जीतना चाहते हैं॥६॥ देखो ! राज्यकी ममतामें बँधेहुए असत् राजा मेरेलिये पिता, पुत्र, भ्राता यह सब परस्पर भी क्लेश करते हैं ॥ ७ ॥ हे मूढ़ ! यह वसुधा मेरी है, इसमें तेरी किंचिन्मात्र भी नहीं है, यह कहते कहते और परस्पर स्पर्द्धा करते २ मेरे लिये अनेक राजा युद्धही करते करते मरगये ॥८॥ पृथु, पुरूवा, गाधि, नहुष, भरत, अर्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, धुन्धुमार, रघु ॥९॥ तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलायाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग ॥ १०॥ हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, रावण, नमुचि, शम्बर, नरकासुर,

हिरण्याक्ष, तारक ॥११॥ ऐसे ऐसे अनेक दैत्य और राजा जो कि, बड़े बडे बलवान् और सर्वगुण निधान, योद्धाओंके पराजय करनेवाले, जिन्होंने कहीं भी हार नहीं मानी, सबही अजीत होगये॥१२॥ सो सब मरणधर्मा मेरे विषे अत्यन्त ममता करके वर्त्ततेथे सो सब विनाही मनोरथ पूर्ण किये कालके गालमें चले गये ॥ १३॥ और सबकी एक कथाही मात्र रहगई। हे समर्थ! इसप्रकार पृथ्वीने हँसकर कहा कि, हे विभो! लोकोंमें यश विस्तार करके आप तो परलोकको चलेगये। ऐसे बडे बडे राजाओंकी कथा मैंने तुमसे कही, सो केवल, विषयोंकी असारता और विज्ञान और वैराग्यका निरूपणकरनेके लिये सो इसमें केवल वाणीका विलास है, कुछ परमार्थ नहीं ॥१४॥ जिस अमंगलके दूर करनेवाले उत्तमश्लोक भगवान्‌के गुणोंको कवीश्वर लोग सदा

अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ॥ सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मय्यवर्त्तंत कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ॥ कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥ कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ॥ विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः ॥ तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥ राजोवाच॥ केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः ॥ विधमिष्यंत्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥ युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ॥ कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृते प्रवर्त्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ॥ सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥ संतुष्टाः करुणा मैत्राः शांता दांतास्तितिक्षवः ॥ आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

गाते हैं, जो कोई श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी निर्मल भक्तिको चाहै सो निरन्तर उन गुणोंको सुनै॥१५॥राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! हे महामुने! कलियुगके बड़े बड़े दोषोंको कलियुगके मनुष्य कौनसे उपायसे दूरकरसक्ते हैं? सो तुम हमसे कहो॥१६॥पहले तो युगोंके धर्मका और प्रलयकल्प का प्रमाण कहो? फिर महात्मा कालरूप विष्णुभगवान्‌की गति कहो? ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नरेंद्र! सतयुगमें मनुष्योंका धर्म चार चरण करके वर्त्तैहै, एक तो सत्य, दूसरी दया, तीसरा तप, चौथा दान यह धर्मके चार चरणहैं॥१८॥सतयुगके मनुष्य सन्तोषी करुणावान् सब प्रेम प्रीति

रखनेवाले, शांतचित्त, जितेन्द्रिय, सहनशील, आत्माराम, समदृष्टि और परमार्थमें निरालस्य युक्त और परिश्रमी होतेहैं ॥ १९ ॥ त्रेतायुगके विषे झूठ, हिंसा, तृष्णा, विग्रह इन चार अधर्मके चरणोंसे सत्य, दया, तप, दान, यह धर्मके चरण हैं, इनमेंसे धीरे धीरे चौथा भाग क्षीण होता जाता है ॥ २० ॥ हे राजन्! क्रिया तपमें निपुण न तो अतिहिंसक और न अत्यन्त लम्पट, धर्म, अर्थ, काममें निष्ठा वेदत्रयी, धर्मपरायण ब्राह्मण वर्ण जिनमें मुख्य त्रेतायुगकी प्रजा होती है ॥ २१॥ द्वापरयुगमें अधैर्य, हिंसा, झूंठ बोलना और द्रोह इन धर्मके चार चरणोंसे दया, तप, सत्य, दान यह धर्म पाँच आधे २ घटगये ॥२२॥ इससे द्वापरयुगमें यशस्वी, बडे शीलवान्, वेदाध्ययनमें निपुण, अतिऐश्वर्यवाले कुटुंबी, प्रसन्नमुख, ब्राह्मण और क्षत्रिय चारों

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ॥ अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥ २० ॥ तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लंपटाः ॥ त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥ तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ॥ हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥ यशस्विनो महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ॥ आढ्याः कुटुंबिनो हृष्टाः वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥ कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ॥ एधमानैः क्षीयमाणो ह्यंते सोपि विनंक्ष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिँल्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ॥ दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यंते पुरुषे गुणाः ॥ कालसंचोदितास्ते वै परिवर्त्तंत आत्मनि ॥ २६॥ प्रभवंति यदा सत्त्वे मनोबुद्धींद्रियाणि च ॥ तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥ २७ ॥ यदा कार्मसु काम्येषु भक्तिर्भवति देहिनाम् ॥ तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

वर्णोंमें मुख्य मानेजायँगे ॥ २३ ॥ कलियुगमें जब अधर्मकी वृद्धि होगी तब धर्मका एक चरण रहजायगा सोभी शनैः शनैः करके अंतमें नष्ट होजायगा ॥ २४ ॥ कलियुगमें लोग लोभी, दुराचारी, निर्दयी, झूठी लडाई करनेवाले, दुर्भागी, अत्यन्त तृष्णावाले, शूद्र और दास जिनमें मुख्य माने जायँगे ॥ २५ ॥ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीनों गुण ईश्वरके आधीन हैं, काल करके प्रेरित हैं प्राणियोंमें सदा फिरते दिखाई देते हैं ॥२६॥ जब मन, बुद्धि और इंद्रिय सतोगुणमें स्थित होयँ तब सतयुग समझना चाहिये कि, जिस सतयुगके प्रभावसे ज्ञानमें रुचि होतीहै ॥२७॥ हे बुद्धिमान्

नृप ! जब प्राणियोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें होय तब रजोगुणयुक्त त्रेतायुग जानिये ॥ २८ ॥ जब लोभ, तृष्णा, अभिमान, दम्भ, मत्सरता और काम्य कर्ममें प्रवृत्ति होय तब रजोगुण उत्पन्न करनेवाला मुख्य द्वापर युग समझना चाहिये ॥ २९ ॥ जब मनुष्योंके मनमें कपट, झूंठ, आलस्य, निद्रा हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय, दीनता होय, तब तमोगुणका प्रगट करनेवाला मुख्य कलियुग जानिये ॥ ३० ॥ सो प्राणी कलियुगके हेतुको पाकर मन्दबुद्धि भाग्यहीन बहुत भोजन करनेवाले कामी और निर्धन होंगे और स्त्री असाध्वी और व्यभिचारिणी होंगी ॥ ३१ ॥ देश देशान्तरोमें चोरोंका बडा भय होगा वेद पाखण्डसे अत्यन्त दूषित होंगे. राजा प्रजाके लूटनेवाले होंगे, ब्राह्मण स्त्रीलम्पट उदरपरायण होंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्म

यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दंभोऽथ मत्सरः ॥ कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥२९॥ यदा मायानृतं तंद्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ॥ शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥३०॥ यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ॥ कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥ दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषंडदूषिताः ॥ राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥ अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुंबिनः ॥ तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥ ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ॥ शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥ पणयिष्यंति वै क्षुद्राः किरीटाः कूटकारिणः ॥ अनापद्यपि मंस्यंते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥ पतिं त्यक्ष्यंति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ॥ भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

चारी व्रत आचार भ्रष्ट होंगे, गृहस्थ भिखारी होंगे, तपस्वी ग्रामवासी होंगे संन्यासी द्रव्यके लोभी होंगे ॥३३॥ कलियुगकी नारी अत्यन्त ठिंगनी और बहुत भोजन करनेवाली काली काली, बहुत सन्तान उपजानेवाली, महानिर्लज्ज, सदा कटुक वचन बोलनेवाली चोर, ढीठ, कपटकी भरी हुई अनेक प्रकारकी मायादिखानेवाली होंगी ॥३४॥ तुच्छ किरातादि कपटी, दुराचारी, म्लेच्छ व्यापारी होंगे, आपदा विनाही सब लोक निन्दित जीविकाको श्रेष्ठ समझेंगे जिस वृत्तिको सत्पुरुष स्वप्नमें भी धिक्कार करतेथे ॥ ३५ ॥ धनहीन उत्तम पतिको भी स्त्री त्यागदेगी, और अपने

स्वामियोंकी नौकरी छोडकर भृत्य औरोंकी नौकरी करैंगे और नौकर रोगी होजायँगे तो स्वामी लोभके मारे नौकरीसे छुटा देंगे, विनादूधकी गायोंको लोग म्लेच्छोंके हाथ बेंचडालेंगे ॥ ३६ ॥ पिता, भ्राता, सुहृद और जातिवालोंको छोडकर स्त्रीके सम्बन्धियोंसे प्यार करैंगे और स्त्रीकी बहिन

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ॥ ननांदृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥

(साली) स्त्रीका भ्राता (शाला) और उसकी स्त्री (सलेहज) के साथ गुप्त मतिकी बातें करैंगे, दीन स्त्री और लम्पट नर कलिमें होंगे; ✻ ॥३७ ॥

* लावनी–धानि कलियुग महाराज आपने लीला अजव दिखाई है। उलटा चलन चला दुनियामें सवकी मति वौराई है॥ नीति पंथ उठगया कचहरी पापन आन लगाई है। धर्म गया पाताल सवके मनमें बेधरमी छाई है ॥ गुप्त हुए सच्चे वकील झूठोंकी वात सवाई है । सच्चोंकी परतीति नहीं झूठोंने सनद वनाई है ॥ न्याय छोड अन्याय करैं राजोंने नीति गँवाई है। हकदारोंका हकमेट बेहक पर कलम उठाई है ॥ जो जाली फरेववाले उनकीही वनिआई है। उलटा चलन चला दुनियामे सवकी मति वौराई है ॥ ॥ १ ॥ गूजर जाट वने संन्यासी पोथी वगल दवाई है । मूँड मुँडाकर इक धेलेमें कफनी लाल रँगाई है ॥ पन्थचले लाखों पाखण्डी अद्भुत कथा वनाई है ॥ मुँह काला कर लिया किसीने शिरपर जटा रखाई है ॥ हुए नीच कुरसी नसीन ऊँचोंको नही तिपाई है। जुगुनू पहुँचे आसमान पर जाकर दुम चमकाई है ॥ फाके करते सत मिलैं भडुओंको दूध मलाई है। उलटा चलन चला दुनियामें सवकी मति वौराई है ॥ २ ॥ सास वहूसे लडै वहू भी ऑख फेर झुँझलाई है। लेकर मूसल हाथ कोस्ती दाँत पीस उठधाई है ॥ खालेको छोड स्त्री कुलकी लाज गँवाई है। निजपतिकी सेवा तजकर परपतिसे प्रीति लगाई है ॥ पुरुष हुए ऐसे व्यभिचारी विपय वासना छाई है। वेश्याओंके फन्देमें पड घरकी तजी लुगाई है। मात पिताकी करैं बुराई नारि परमसुखदाई है ॥ उलटा चलन चला दुनियामें सवकी मति वौराई है ॥ ३ ॥ व्याह बुढापेमें जो करते उनपर गजन खुदाई है। साठ वरसके आप करी कन्याके सग सगाइ है ॥ कुछ दिन पीछे आप मरगये करके राँड विठाई है। लगी करने व्यभिचार स्त्री घर घर लोग हँसाई है ॥ पण्डित पाधा करैं दलाली मंत्री जिनका नाई है । शर्म रही नहि वेशर्मोंको वेटी वेचकर खाई है ॥ वहन भानजी त्यागन करके साली न्योति जिमाई है। उलटा चलन चला दुनियाँका सवकी मति वौराई है ॥ ४ ॥ गंगाजल गोरसको छोडकर गाढी भाँग छनाई है। भक्ष्य अभक्ष्य लगे खाने मदिराकी होति छकाई है ॥ श्वशुर वहूको कुदृष्टि देखै अपनी नियत डुलाई है। ठट्ठा अरु मसखरी करै सासुसे ज्वान जमाई है ॥ कहै भतीजा चचासे अपने तू मूरख सौदाई है । हमैं चैन करनेसे मतलव किसकी चाची ताई है ॥ वहिन वहिनसे लडै और लडता भाईसे भाई है। उलटा चलन चला दुनियामें सवकी मति वौराई है ॥ ५ ॥ जामा अंगा दिया त्याग अरु पगडी फाड वहाई है। पहन कोट पतलून शीशपर टापी गोल जमाई है ॥ तोड तख्त अरु सिंहासनको लाके वश्च विछाई है । खीर खाँडको त्यागन करके रोटी डवल पकाई है ॥ तोडके ठाकुरद्वारा मसजित सवकी करी सफाई है। गिरजाघरमें जाकरके ईसाकी करी वडाई है ॥ वात करै सभ अंगरेजी में निज भाषा विसराई है । उलटा चलन चला दुनियाँका सवकी मति वौराई है ॥ ६ ॥ मित्र शत्रुसम हुए प्रीति की डाली तोड जलाई है । विद्याहीन होगये विप्र गायत्री तलक भुलाई है ॥ क्षत्रिय बैठे नारी वनकर ले तरवार छिपाई है ॥ वन आई ना कुछ वनियासे

शूद्र तपस्वियोंका वेष धारण करके जीविका करेंगे और प्रतिग्रह लेंगे और अधर्मी लोग ऊँचे आसनोंपर बैठकर अपने धर्मका उपदेश करेंगे ॥३८॥ हे राजन् ! जब पृथ्वी अन्नहीन होजायगी तब प्राणी अनावृष्टिके भयसे अत्यन्त पीडित और सदा दुर्भिक्ष और राजाओंके करसे क्लेशवान् और अत्यन्त व्याकुल होजायँगे ॥ ३९ ॥ और वसन, भूषण, खान, पान, स्नान, शयन, मैथुन आदिसुखोंसे हीन पिशाचसे दिखाई देंगे, सब प्रजा

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यंति तपोवेषोपजीविनः ॥ धर्मं वक्ष्यंत्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥३९॥ वासोन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ॥ हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यंति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥ कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ॥ त्यक्ष्यंति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यंति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ न रक्षिष्यंति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ॥ पुत्रान्सर्वार्थकुशलान्क्षुद्राः शिश्नोदरंभराः ॥ ४२ ॥ कलौ न राजञ्जगतां परं गुरुं त्रैलोक्यनाथानतपादपंकजम् ॥ प्रायेण मर्त्या भगवंतमच्युतं यक्ष्यंति पाषंडविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥

कलियुगमें इस प्रकार होजायगी ॥४०॥ कलियुगमें बीसकौड़ियोंके लिये मित्रता छोडकर परस्पर लड़ैंगे और उसीको धन समझकर मरने मारनेको उपस्थित होंगे ॥ ४१ ॥ और अपने माता पिताका पालन नहीं करैंगे, सब अर्थोंसे निपुण पुत्रकी भी रक्षा न करैंगे, केवल स्त्रीसंग और उदर पूर्ण करके, सब प्रजा क्षुद्र होजायगी ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! सब सृष्टिके परमगुरु और त्रिभुवनके पति जिनके चरणकमलको ब्रह्मादिक देवता नित्य

माया मुफ्त लुटाई है ॥ शूद्र हुए धनवान ब्राह्मणोंने कीन्ही स्योकाई है । गयावाल और मथुराके चौबोंकी बात बन आई है ॥ चारों युगोंसे कलिने अपनी नई रीति दिखलाई है । उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ७ ॥ अपूज पुजने लगे कहें सब शिरपर देवी आई है । घर घरमें गुल गुले शेख सद्दोंकी चढी कढाई है ॥ परब्रह्मको छोड भूत प्रेतोंकी दई दुहाई है । मूँड हिलाती कहीं मलनियां कहै कुसुम्भी माईहै । बालभोग ठाकुरको नही सय्यदके लिये मिठाई है । सन्तको कम्मल नहीं पतुरियाको कुरती सिलवाई है ॥ गुरु हरै चेलोंका धन चेला करता चतुराई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥ ८ ॥ विधवा लग गईं पान चबाने दें सुर्मा मुसकाई है । नित करती शृंगार देखकर अहिवाती शरमाई है ॥ बैठे ज्वारी और अगामी हुआ जगत अन्यायी है । सब लक्षण विपरीत और घरघरमें होत लडाई है ॥ गायजायँ लाखों मारी करता नहि कोइ सुनाई है । इसीसे पडता काल सृष्टिमें संपति सकल विलाई है ॥ हो दयालु हे नाथ आज कलियुगकी महिमा गाई है । उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ९ ॥

प्रति नमस्कार करते हैं; ऐसे जगदीश्वर भगवान् अच्युतको कलियुगमें मनुष्य पाखण्डोंसे दूषित हो बहुधा पूजन न करैंगे, कभीरामनवमी, नृसिंह चौदश, जन्माष्टमीको भगवान्की पूजा करलिया करैंगे ॥ ४३ ॥ वा जब मरण समय आतुर होकर अथवा ऊँचेसे गिरकर वा मार्गमें रपटनेके समय विवश होकर कहैंगे कि, हे भगवन् ! परन्तु नाम लेतेही वह मनुष्य कर्मबन्धसे छूटकर परम गतिको प्राप्त होंगे, परन्तु तो भी उन भगवान्का कलियुगमें लोग पूजन नहीं करैंगे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! अब कलिकालके सम्पूर्ण दोषोके दूर करनेका उपाय आपके सामने वर्णन करता हूं, आप अवधान होकर सुनिये, द्रव्य देश शरीरसे उत्पन्नहुए कलियुगके सब दोषोंको पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके चित्तमें स्थित होकर हरलेते हैं ॥ ४५ ॥ जो प्राणी परमेश्वरका श्रवण, कीर्तन, ध्यान और सत्कार करते हैं, भगवान् उन पुरुषोके हृदयमें स्थित होकर

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ॥ विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यंति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥ पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसंभवान् ॥ सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ॥ ४५ ॥ श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोपि वा ॥ नृणां धुनोति भगवान्हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥ यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हंति धातुजम् ॥ एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशुभम् ॥४७॥ विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ॥ नात्यंतशुद्धिं लभतेन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनंते ॥ ४८॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हृदिस्थं कुरु केशवम् ॥ म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

दशसहस्र जन्मके पापोंको दूर करदेतेहैं ॥४६॥ जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होकर और सब धातुओंके मिलेहुए मलिनपनको दूर करदेता है, ऐसेही विष्णु भगवान् हृदयमें स्थित होकर सब अशुभवासनाओंको कलियुगमें दूर करैंगे॥४७॥विद्या अर्थात् आनदेवकी उपासना,तप,प्राणायाम, मित्रता, तीर्थस्नान, व्रत, दान, जप आदिकके करनेसे जैसा मन शुद्ध होता है वैसाही अत्यन्त भगवान् जब हृदयमें वास करैं तब शुद्ध होता है ॥४८॥ इस लिये हे राजन् ! आपका मरणसमय निकट आगया है अब तुम सब प्रकारसे सावधान हो वासुदेव भगवान्का हृदयमें ध्यान धरो, तब तुम परमग

तिको प्राप्त होओगे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! मनुष्यको चाहिये कि, जिसकी मृत्यु निकट आजाय, वह सर्वाश्रय सर्वात्मा, सर्वेश्वर भगवान्का ध्यान करनेसे आदिपुरुष अविनाशी परमत्माके विषे लय होजाताहै ॥ ५० ॥ हे राजन् ! यह महाघोर कलियुग अनेक दोषोंकी खानि है परन्तु इसमेंभी एक गुण बड़ा भारी है कि,इस युगमें केवल परमेश्वरके कीर्त्तन करनेहीसे मनुष्य सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूटकर कृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके परमधामको चलाजाताहै ॥ ५१ ॥ सतयुगमें विष्णु भगवान्के ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, त्रेतामें यज्ञोंके करनेसे जो फल होता है, द्वापरमें परिचर्या करनेसे जो फल होता है वह सब फल कलियुगमें केवल हरिके कीर्तनही करनेसे प्राप्त होजातेहैं, ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां कलियुगदोषगुणवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा—नैमित्तिक प्राकृतिक अरु, आत्यन्तिक औ नित्य । चौथे चार प्रकारके,

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ॥ आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ॥ कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥ द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० कलिदोषादिव० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्द्धावधिर्नृप ॥ कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युग सहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥ तदंते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता ॥ त्रयो लोका इमे तत्र कल्पंते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

प्रलय कहूँ हरिवित्य ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जो कि, आपने दो प्रश्न किये थे कि, कलियुगका दोष किसउपायसे निवारण हो सक्ता है ? और कलियुगमें कौनसा धर्म मुख्य है जो पालना चाहिये इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर तो मैंने आपसे वर्णन किया, अब प्रलय कालका निरूपण करताहूं, परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्धतक काल और युगोंके प्रमाण मैं तुमसे पहिले कहचुकाहूं, अब कल्प और प्रलय (सृष्टिका अन्त) का प्रमाण सुनो ॥ हे प्रजापालक ! युगोंकी सहस्र चौकड़ीका ब्रह्माका एक दिन होता है उसीको कल्प कहते हैं जिसमें चौदह मनु राज्य करते हैं ॥ २ ॥ फिर अन्तमें चार सहस्र युगवाली ब्रह्माकी रात्रि होती है, उस रातमें इस त्रिलोकीकी प्रलय होजाती है ॥ ३ ॥

इस प्रलयको विद्वान् लोग नैमित्तिक प्रलय कहतेहैं, इस प्रलयमें विश्वास्रष्टा श्रीनारायण ब्रह्मा सहित त्रिलोकीको अपने उदरमें धारण करके
अनन्त भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥ ४ ॥ अब प्राकृतिक प्रलयका वृत्तान्त सुनिये, परमेष्ठी ब्रह्माजीके द्विपरार्द्धका जब अन्त
होता है तब महत्तत्त्व अहंकार और पाँच तन्मात्रा इन सातों प्रकृतियोंकी प्रलय होती है ॥ ५ ॥ हे राजन्! इसलिये इसप्रलयको पण्डितलोग
प्राकृतिक प्रलय कहते हैं, जिस प्रलयमें नाशका कारण प्राप्त होनेसे सातों प्रकृतियाँ और उनके कार्यरूप सब ब्रह्माण्ड भी लय होजाते हैं ॥
॥ ६ ॥ हे राजन्! जब प्रलय होगा उससमय सौ १०० वर्षतक मेघ नहीं वर्षेगा, तब सब पृथ्वी अन्नरहित होजागी, उस समय सब प्रज

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ॥ शेतेऽनंतासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥ द्विपरार्द्धे त्वति
क्रांते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ तदा प्रकृतयः सप्त कल्पंते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥ एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते ॥
आंडकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥ ६ ॥ पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ॥ तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं
भक्ष्यमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ क्षयं यास्यंति शनैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७ ॥ सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्त्तको
रविः ॥ रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ॥ ८ ॥ ततः संवर्त्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ दहत्यनिलवेगोत्थः
शून्यान्भूविवरानथ ॥ ९ ॥ उपर्यधः समंताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ दह्यमानं विभात्यंडं दग्धगोमयपिंडवत् ॥
॥ १० ॥ ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ परः संवर्तको वाति धूम्रं खं रजसा वृतम् ॥ ११ ॥

क्षुधासे पीड़ितहो एक एकका भक्षण करनेलगेगी, इसप्रकार कालाधीन हो सहज सहजमें सब नाशको प्राप्त होजायगी ॥ ७ ॥ फिर प्रलय
कालका मार्त्तण्ड अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रके और सब शरीरोंके रसोंको खैंचलेगा किंचिन्मात्र भी नहीं छोड़ेगा ॥ ८ ॥ फिर संकर्षण
भगवान्के मुखमें जो स्थित प्रलयका अग्नि वायुके वेगसे भड़ककर इस शून्य मण्डलकको सातों पाताल सहित जलादेगा ॥ ९ ॥ फिर ऊपरनीचे
सब ओर सूर्यकी मित्राग्निसे जलकर ऐसा शोभित होगा जैसे जलताहुवा उपला (सूखाहुवा गोबर) शोभित होताहै ॥ १० फिर इसके पीछे प्रल

यकालकी महाप्रचण्ड पवन सौ १०० वर्षतक चलेगी, उससमय आकाश धूरीसे आवृत होकर धूम्रवर्ण होजायगा ॥ ११ ॥ हे अंग ! फिर पीछे विचित्र वर्णवाले अनेक प्रकारके मेघोंके समूह गम्भीर गर्जन शब्द करते सौ १०० वर्षतक बरसेंगे, फिर पीछे यह ब्रह्माण्डटूट फूटकर सब विश्व जलमय होजायगा ॥ १२ ॥ उस समय भूमिका गन्ध गुण जलग्रस्त हुआ सो पृथ्वी गन्धहीन होकर प्रलयको प्राप्त होगी ॥१३॥ जलके रसको तेजने ग्रस लिया, सो जल निरस होकर प्रलयको प्राप्त होगा, तेजका रूपगुण वायुने ग्रसलिया सो तेज रूपहीन हो पवनमें लीन होगा॥१४॥पवनका स्पर्श गुण आकाशने लिया, सो वायु आकाशमें लीन होगा ॥१५॥ हेराजन् ! फिर आकाशका शब्द गुण उसका तामस अहंकारने ग्रसलिया, सो आकाश गुणहीन होकर अहंकारमें लीन होगा राजस अहंकारने वृत्तियोंसहित इन्द्रियोंको ग्रसलिया सात्विक अहंकारने इन्द्रियोंकेदेवताओंकोग्रस

ततो मेघकुलान्यंग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ शतं वर्षाणि वर्षंति नदंति रभसस्वनैः ॥ १२ ॥ तदा भूमेर्गंधगुणं ग्रसंत्याप उदप्लवे ॥ ग्रस्तगंधा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १३ ॥ अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसः ॥ ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १४ ॥ लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ॥ स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १५ ॥ शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनु लीयते ॥ तैजसश्चेन्द्रियाण्यंग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १६ ॥ महान्ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ॥ ग्रसतेऽव्याकृतं राजन्गुणान्कालेन चोदितम् ॥ १७ ॥ न तस्य कालाव यवैः परिणामादयो गुणाः ॥ अनाद्यनंतमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १८ ॥ न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी ॥ न प्राणबुद्धींद्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ १९ ॥

लिया तब देवता सात्त्विक अहंकारमें लीन होजायँगे ॥१६॥हे राजन् ! तीनों प्रकारके अहंकारको महत्तत्त्वने ग्रसलिया, तब अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होजायगा और महत्तत्त्वको सत्त्वादि गुणोने ग्रसलिया, तब सत्त्वादिक गुणोंको कालकी प्रेरित माया ग्रसलेगी ॥ १७ ॥ इस मायाका काल के वेगसे राति दिन घट बढ़ नहीं होता और यह माया आदि अन्त करके अव्यक्त नित्य है , एकरस है, न स्पष्ट देखनमें आती है सर्वत्र जगत्‌की कारणरूप है ॥ १८ ॥ जहां वाणी मन सत्त्व रज तम तीनों गुण महत्तत्त्वादिक नहीं हैं और प्राण, बुद्धि इन्द्रियोके देवता विश्वकी रचना भी

नहीं है ॥ १९ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, आकाश, पवन, अग्नि, जल, भूमि और सूय भी वहाँ नहीं हैं सुषुप्ति शून्यकी समान है उसको कविलोग अतर्क्य मूलपद कहते हैं ॥ २० ॥ प्राकृतिक प्रलय यह आपसे कही, जिस प्रलयके पुरुष प्रकृतिकी शक्ति सब कालसे प्रेरित होकर लीन होजातीहै यह माया ईश्वरकी शक्ति है, इससे सबके कारणरूप एक परब्रह्म परमेश्वरही हैं, ॥ २१ ॥ हे राजन्! अब आपसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं बुद्धि इन्द्रिय विषयरूप इन सबका आश्रय ज्ञानही भासैहै जिससे अन्वय व्यतिरेक करके जो आदि अन्तवान् हैं, सो सब वस्तुहैं विचार करके देखो तो यही मोक्ष, आत्यन्तिक प्रलय है, क्योंकि यह मोक्ष आत्मज्ञानसे सब प्रपंचका लयरूप है यहाँपर प्रलय अर्थात् मृत्तिकाके ज्ञानसे जैसे घट वारुणी आदिका प्रतिरोध होता है इसीप्रकार ब्रह्मज्ञानसे और दूसरे सबका प्रतिरोध समझना, जो आत्माकी सदृश प्रपंच यथार्थ होय तो उसका प्रतिरोध होना

न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ॥ संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनंति ॥ २० ॥ लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ॥ शक्तयः संप्रलीयंते विवशाः कालविद्रुताः॥२१॥ बुद्धींद्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ॥ दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यंतवदवस्तु यत् ॥२२॥ दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् ॥ एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २३ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ॥ मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥२४॥ यथा जलधरा व्योम्नि भवंति न भवन्ति च ॥ ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥२५॥

ठीक नहीं इससे ज्ञात होता है कि, प्रपंच, परब्रह्मसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है यह ब्रह्मसे भिन्न सत्ताको नहीं रखते, इस लिये यह बुद्धि आदि प्रपंच भी दृश्यपनके हेतु और आदि अन्तवान् होनेके कारण और अपने कारणभूत परब्रह्मसे भिन्न नहीं है इसलिये वास्तविक भी नहीं है ॥ २२ ॥ जैसे दीपक, नेत्र, रूप यह सब ज्योतिसे भिन्न नही हैं ऐसेही बुद्धि, इंद्रिय तन्मात्रा ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ २३ ॥ हे राजन्! जब यह बुद्धि परमात्मासे विलग नहीं है, तब उसकी अवस्थारूप जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीनों परमात्मासे किसप्रकार विलग होसकती हैं क्योंकि यह तीनों अवस्था बुद्धिहीकी हैं सब विद्वान् लोग यही कहते हैं कि, तीनों अवस्थाओंके मानके लिये जगत् तैजस और प्राज्ञपन जो आत्मामें मानाजाता है वह केवल मायामात्रही है ॥ २४ ॥ जैसे किसी समय मेघ आकाशमें नहीं होते और कभी होतेहैं, ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् कभी दीखता है कभी नहीं

दीखता ॥२५॥ हे राजन् ! सब अवयवी जगत्‌में कारणभूत जो एक अवयव है वही मुख्य है, क्योंकि अवयवी विना भी अयवयकी प्रतीति होती है,
इसी प्रकार जगत् विना ब्रह्म भी प्रतीत होताहै इसलिये जगत्‌का कारण रूप ब्रह्मही है देखो ! तंतु विना वस्त्रका ज्ञान नहीं होता, परन्तु वस्त्र तंतुओंसे
भिन्न नहीं है, क्योंकि वस्त्र तन्तुरूपही है, इसप्रकार ब्रह्मविना जगत्‌की प्रतीति नहीं होती, इसलिये जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहींहै ॥ २६ ॥ कार्यकारण
मिलके जो कुछ होय सो सब भ्रमसे है, इसलिये आश्रयसे आदि लेकर अन्ततक जो कुछ है सो सब अवस्तु है ॥ २७ ॥ यद्यपि विकारमय यह सब
जगत् प्रकाशवान् भी है परन्तु ब्रह्म विना उसका किंचिन्मात्र भी प्रकाश नहीं होसक्ता और जो ब्रह्म विना प्रकाश होय तो उस आत्मासे ब्रह्मरूपही
होगा, किसी प्रकार भिन्न होही नहीं सक्ता ॥ २८ ॥ सत्य वस्तुमें अनेक रीति नहीं होसक्तीं और जिसमें अनेक रीति हैं उसमें सत्यता नहीं होसक्ती,

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ॥ विनार्थे न प्रतीयेरन्पटस्येवांग तंतवः ॥ २६ ॥ यत्सामान्यविशेषाभ्यामुप
लभ्येत स भ्रमः ॥ अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यंतवदवस्तु यत् ॥ २७ ॥ विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमं
तरा ॥ न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥ २८ ॥ न हि सत्यस्य नानात्वमविद्वान्यदि मन्यते ॥ नानात्वं
छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ २९ ॥ यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ॥ एवं वचो
भिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३० ॥

यद्यपि आत्मामें और जीव ब्रह्ममें भेद दृष्टि आताहै, परन्तु यह जीव और ब्रह्मका भेद घटाकाश और महाकाशकी समान है, घटाकाश परिच्छिन्न है
और महाकाश अपरिच्छिन्न होनेपर भी जैसे दोनोंके मध्यमें भेद नहीं है इसीप्रकार जीव परिच्छिन्न और जीव अपरिच्छिन्न होनेपर भी जीव ब्रह्ममें
कुछ भेद नहीं जैसे जलके बीचमें सूर्य कम्पायमान विकार सहित और आकाशमें निर्विकार सूर्य होनेपर कुछ भेद नहीं, इसी प्रकार ब्रह्मकी सृष्टि
आदि और जीवकी सृष्टि आदि क्रियामें अलग अलग होनेपर कुछ भेद नहीं जानपड़ता, यह सब उपाधिही मात्र भेदहै जीव ब्रह्ममें भेद
मानना मूर्खोंका कामहै ॥ २९ ॥ जैसे सुवर्ण मनुष्योंके व्यवहारादिकोंमें मुकुट कुण्डलादि रूपोंसे अनेक प्रकारका दृष्टि आता है इसीप्रकार
अहंकाररूप उपाधिवाले मनुष्य ऐसेही भगवान् अधोक्षजकी लौकिक वैदिक वाणियोंसे अनेक अनेक प्रकारकी महिमा वर्णन करतेहैं ॥ ३० ॥

जैसे बादल सूर्यसेही प्रगट हुए और सूर्यहीसे प्रकाशित हुए सूर्यके अंशरूप नेत्रोंकी आवरण करता है, ऐसेही ब्रह्मसे प्रगटहुवा और ब्रह्महीसे प्रकाशित अहंकार ब्रह्मके अंश जीवको उस ब्रह्मके दर्शनका आवरण करता है ॥ ३१ ॥ सूर्यसे उत्पन्न हुवा बादल जब विदीर्ण होजाता है, तब चक्षु सूयको देखै है ऐसेही अहंकाररूप उपाधि जब तत्त्व विचार करके विनष्ट होय, तब यह जीव अपने ब्रह्मस्वरूपको पहँचानता है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार अविवेक रूप खड्गसे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धनको काटकर जब शुद्ध ब्रह्मका अनुभव करके स्थित होय तब उसको कविलोग आत्यन्तिक प्रलय (मोक्ष) कहते हैं ॥ ३३ ॥ हे शत्रुओंके ताप देनेवाले ! सूक्ष्मवेत्ता विद्वान् लोग कहते हैं कि, ब्रह्मा

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ॥ एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मवस्तुनः ॥ ३१ ॥ घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ॥ यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३२ ॥ यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्मबंधनम् ॥ छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यंतिकमंगसंप्लवम् ॥ ३३ ॥ नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप ॥ उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥ ३४ ॥ कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ॥ परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३५ ॥ अनाद्यंतवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ अवस्था नैव दृश्यंते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३६ ॥ नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ॥ आत्यंतिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३७ ॥

दिक सब प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलय क्षण क्षणमें होती रहती है ॥ ३४ ॥ नदीका प्रवाह और दीपककी ज्वाला आदि परिणामी पदार्थोंकी जैसी क्षण क्षणमें लोट पोट होनेसे जो अवस्थायें हैं, वैसीही अवस्थायें कालरूप नदीके वेगसे नित्य आयुर्बल हरे जानेसे देहादिकनकी अवस्था नित्य जन्म मरणके कारणको प्राप्त होती हैं ॥ ३५ ॥ आदि अन्तसे हीन ईश्वरकी मूर्त्ति कालसे प्राणियोंकी सुक्ष्म अवस्था नहीं जानी जाती जैसे आकाशमें नक्षत्रादिकी क्षण क्षणकी चालें दिखाई नहीं देतीं इसीप्रकार कालसे झपटी हुई शरीरादिकोंकी क्षण क्षणकी अवस्थायेंभी दिखाई नहीं देतीं ॥ ॥ ३६ ॥ नित्य, नैमित्तिक प्राकृतिक और आत्यन्तिक यह चार प्रकारकी प्रलय आपसे कही और कालकी गति भी आपसे कही ॥ ३७ ॥

हे कौरवकुलभूषण ! जगतके कर्त्ता और सब प्राणियोंके जीवन आधार श्रीमन्नारायणकी लीला और कथा आपसे संक्षेपमात्र कही और सम्पूर्ण चरित्र कहनेकी तो ब्रह्माको सामर्थ्य नहीं ॥३८॥ जो प्राणी अनेक भाँतिके दुःखरूपी दावाग्निसे कष्ट पाकर इस महादुस्तर संसाररूपी समुद्रके पार

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कात्स्न्र्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३८ ॥ संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ॥ लीलाकथारसनिषेवणमंतरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ३९ ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ॥ नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४० ॥

उतरना चाहैं उनको भगवान् पुरुषोत्तमकी लीला और चरित्रोंकी कथारूपी रसपानके सिवाय इस संसारसागरसे पार होनेसे दूसरा उपाय नहीं विश्वासरूप नौकापर चढ़कर संसाररूपी समुद्रसे तर सक्ता है ❀ ॥ ३९॥ अव्ययरूप श्रीनारायण ऋषिने यह पुराणसंहिता पहिले नारद मुनिसे

* दृष्टान्त—एक गूजरी कहीं पण्डितजी की कथा सुननेको गई, पण्डितजी उस समय यह कथा कहरहे थे कि, परमेश्वरके नाम लेनेसे प्राणी ससाररूपी समुद्रके पार होजाता है, गूजरी इस बातको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, क्योंकि उसे प्रतिदिन यमुनाजीके उतरनेमें नाववालेको पैसा देना पडता था, वह विचारनेलगी कि, जब श्रीकृष्णके नामसे समुद्रको तर जायँ हैं, तो क्या यमुनाजी नहीं तरी जायँगी ? बस वह उसी समय श्रीकृष्णका नामले यमुनामें घुसपडी और क्षणमात्रमें पार उतर गई, इसी प्रकार प्रतिदिन यमुना उतर जाने लगी, तब एकदिन गूजरीने अपने मनमें विचार किया कि, पडितजीने मेरे सग बडा उपकार किया जो विनाही नौका यमुनापार हो जाती हूँ, उनको निमंत्रण देना चाहिये, सो उसने पडितजीको निमत्रण दिया और भोजन करानेके लिये पण्डितजीको अपने साथ लेकर घरको चली पडितजी उसको यमुनाजीमें घुसती देख आप भी उसके पीछे पीछे हो लिये और समझा कि, घाट बहुत गहरा न होगा, जब कण्ठतक पानी आगया और पाँवोंके नीचका रेता निकलने लगा, परन्तु उस गूजरीके घुटनेतक न भीजे, तब तो पंडितजीने घबराकर पुकारा कि, अरी ! तू किधरको ले आई मैं तो डबा ? मुझे किसी प्रकार बचा ? गूजरी बोली क्या तुमने श्रीकृष्णका नाम नहीं लिया ? श्रीकृष्णका नाम लेलो क्या तुम उसदिनकी कथाके वृत्तान्तको भूलगये, आपने कहाया एक श्रीकृष्णके नामसे प्राणी महादुस्तर समुद्रके पार होजाता है, पडितजी बोले क्या यह नदी भी श्रीकृष्णका नाम लेनेसे तरी जाती है ? गूजरीने कहा कि, क्या आप इतना भी नहीं जानते कि, जब समुद्रहीके पार होगये तो क्षुद्र नदी कहाँ रही ? गुजरीने पडितजीका हाथ पकडकर कहा कि, श्रीकृष्णका नाम लो और संग सग चले चलो, देखो ! विश्वासवाली गूजरी इसप्रकार पडितजीको पार उतार अपने घर लेगई और अत्यन्त प्रेम प्रीतिसे पडितजीको भोजन कराया, इसीसे कहते हैं कि, विश्वास करके भक्ति करे तो ससाररूप सागरके पार होय ।

कहीथी और नारदमुनिने श्रीवेदव्यासजीसे कही॥४०॥ हे महाराज ! उनआत्मज्ञानी भगवान् वेदव्यासदेवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह सब वेदों
के समान श्रीमद्भागवतसंहिता मुझको पढ़ाई ॥४१॥ हे कुरुकुलभूषण ! नैमिषारण्यमें बड़े यज्ञके करनेवाले शौनकादि ऋषि जब पूँछेंगे तब सूतजी
उन ऋषियोंको यह श्रीद्भागवत पुराण कहेंगे ॥४२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादस्कंधे भाषाटीकायां प्रलयवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
दोहा–पञ्चममें संक्षेप सों, परब्रह्म उपदेश ॥ सर्प डसन भय नृपतिको, काटो शुकदेवेश ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! इस भागवतमें निर
न्तर विश्व आत्महीका वर्णन है जिन भगवान्के रजोगुणसे ब्रह्मा और तमोगुणसे रुद्र हुए ऐसे ब्रह्मा रुद्रादि सब सृष्टिके कर्त्ता भगवान्का गुणानुवाद

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ॥ इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥ ४१ ॥ एतां वक्ष्यत्यसौ सूत
ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥ दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भा०म० द्वादशस्कन्धे प्रलयनि०
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ॥ यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः
क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥ त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ॥ न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नंक्ष्यसि ॥ २ ॥
न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ॥ बीजांकुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥ स्वप्ने यथा शिरश्छेदं
पंचत्वाद्यात्मनः स्वयम् ॥ यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥ घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाशः
स्याद्यथा पुरा ॥ एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः ॥ ५ ॥

जो हितचित्तसे सुनता है उसको किसी प्रकारका भय नहीं ॥ १ ॥ हे राजन् ! हम मरेंगे इस पशुबुद्धिको छोड़ दो, इस देहसे न तो तुम पहिले
उत्पन्न हुए और न नष्ट होओगे यह आत्मा तो अजर अमर अनादि है, यह तो न कभी मरता है न जीता है ॥२॥ यह शरीर बीज और अंकुरकी
नाईं पुत्र पौत्रादिरूप होकर जन्मता मरता रहताहै, कभी बीजसे अकुंर होताहै, कभी अंकुरसे बीज होताहै, ऐसे तुम बीज अंकुरवत् देहादिकोंसे
भिन्न हो, जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न है ॥ ३ ॥ जैसे कोई प्राणी स्वप्नमें अपना शिर कटाहुवा देखे, ऐसे ही जाग्रत् अवस्थामें देहके मरणको आप
देखता है, उससे मैं मरूंगा,यह केवल भ्रन्ति है क्योंकि अत्मा तो अजन्मा है ॥४॥ आत्माका जन्म मरणादिक जगतकी भ्रान्ति देहरूप उपाधिके

साथ है, इसलिये उपाधिकी निवृत्ति होनेसे इस जीवकी मुक्ति होजाती है, जैसे घट फूटजानेसे घटाकाशमें जामिलता है, जैसा प्रथम महाकाश
रूप था वैसाही फिर होजाता है जब जीवको आत्मज्ञान होजाता है तो फिर वह ब्रह्मका ब्रह्म होजाताहै ॥ ५ ॥ आत्माके देह, गुण और कर्मोंको
मनही उत्पन्न करता है और मनको माया उत्पन्न करती है और इसी करके जीवका जन्म मरण होता है और विचार करके देखो तो आत्मा निर्लेप
है ॥ ६ ॥ जबतक तेल सरवा बत्ती और अग्निका संयोग बनारहता है तबहीतक दीपक कहलाता है, ऐसेही जबतक कर्म मन चैतन्य संसारादिक
और इस देहको संयोग है, तबही तक संसार है और जब इन समुदायोंकी निवृत्ति होजाती है, तब यह संसार भी नहीं रहता यह देहही सत्त्वगुण

मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः ॥ तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥ स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्नि
संयोगो यावदीयते ॥ ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ॥ रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥ न
तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ॥ आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनंतोपमस्ततः ॥८॥ एवमात्मानमात्मस्थमा
त्मनैवामृश प्रभो ॥ बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिंतया ॥ ९ ॥ चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ॥
मृत्यवो नोपधक्ष्यंति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥१०॥ अहं ब्रह्म परं ब्रह्म ब्रह्माहं परमं पदम् ॥ एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्या
धाय निष्कले ॥ ११ ॥ दशंतं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ॥ न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

रजोगुण, तमोगुणसे जन्मता मरता है आत्मा जन्मैं न मरै, इससे स्थूल सूक्ष्म दोनों देहोंसे मरे है और स्वयंप्रकाश देहादिकोंका आश्रय है नित्य है.
निर्विकार है, अनन्त है, अनादि है निरुपम है, वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ ७॥ ८ ॥ हे प्रभो! अनुमानयुक्त बुद्धिसे भगवान् वासुदेवका चिन्तवनकरते
शरीरमें स्थित शुद्ध आत्माको मनसे विचारकरो ॥ ९ ॥ इसप्रकारका विचार करोगे तो ब्राह्मणके वाक्योंसे प्रेषित कियाहुवा तक्षक सर्प तुमको नहीं
जलासकेगा, क्योंकि परब्रह्मको मृत्यु भी नहीं जला सक्ती ॥ १० ॥ जो मैं हूँ सो परमधाम रूप ब्रह्म है और जो परमधाम रूप ब्रह्म है, वह मैं हूँ,
यह विचार करके निरुपाधि ब्रह्ममें तुम अपने आपको रक्खोगे तो ॥ ११ ॥ विषयुक्त मुखसे अपने चरणमें काटतेहुए तक्षक नागको किसीप्रकार

न देखोगे, न इस देहको देखोगे और न आत्मासे भिन्न विश्वको देखोगे ॥ १२ ॥ हे तात ! हे नृपेन्द्र ! विश्वके आत्मा भगवान्का चरित्र जो कुछ तुमने पूँछा वह सब मैंने आपसे कहा । अब आप क्या सुनना चाहते हो सो कहो ? १३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां ब्रह्मोपदेशो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–इस छठवें अध्यायमें, भये परीक्षित् मुक्त ॥ सुनते अहि होमे सकल, इन्द्रासन संयुक्त ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकऋषि ! सबकी बुद्धिको जाननेवाले निवृत्तिपरायण व्यासके पुत्र शुकदेवजीके गूढ़ वचन सुनकर, विष्णुरात परीक्षित् शिर झुकाय, चरणारविन्दोंकी वन्दना कर हाथ जोड़कर बोले ॥ १ ॥ हे मुने करुणानिधान ! आपने परम अनुग्रह करके मुझको कृतार्थ किया, जिससे आदि अन्तसे

एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ॥ हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥ इति श्रीमद्भा० महा०
द्वा० तत्त्वोपदेशेन मृत्युभीतिनिवारणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परी
क्षिद्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ॥ तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्धांजलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥
राजोवाच ॥ सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ॥ श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥ नात्य
द्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ॥ अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥ पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो
वयम् ॥ यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥ भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ॥ प्रविष्टो ब्रह्म
निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

हीन साक्षात् भगवान् परब्रह्मका चारित्र मुझको सुनाया, जिसको सुनकर मैं सिद्ध हुआ ॥ २ ॥ आपसे मुक्तरूप सज्जन; इस संसाराग्निके तापोंसे तपेहुए अधम लोगोंका अच्युत भगवान्में मन लगानेवाले और उनपर अनुग्रह करना मैं इसबातको कुछ अद्भुत नहीं समझता ॥ ३ ॥ यह पुराणसंहिता आपके मुखारविन्दसे मैंने सुनी, इस श्रीमद्भागवत संहितामें उत्तम यशवाले भगवान्का निरन्तर वर्णन है ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! तक्षकादिक मृत्युओंसे अब मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहा क्योंकि आपने जो परमानन्द ब्रह्मरूप मुझे दिखादिया मैं उसीमें लय

होगया ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो मुझको आज्ञा हो तो वाणीको रोककर निष्काम चित्तको भगवान् अधोक्षजमें रखकर प्राणोंका त्यागकर दूं ? ॥ ॥ ६ ॥ ज्ञान विज्ञानकी निष्ठासे मेरा सब अज्ञान निवृत्त होगया, जबसे आपने मंगलरूप भगवान्का परमपद मुझको दिखाया ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! राजा परीक्षित्ने इसप्रकार प्रार्थनाकर श्रीशुकदेवजीका पूजन किया तब भगवान् बादरायणि परीक्षित्की पूजा स्वीकार कर बिदा माँग, मुनियोंसहित वहाँसे पधारे ॥ ८ ॥ पीछे राजऋषि परीक्षित् बुद्धिसे मनको रोक, परब्रह्ममें मन लगा, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानमें मग्न

अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ॥ मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥ अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ॥ भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ॥ जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ॥ समाधाय परं दध्यावस्पंदासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गंगाकूल उदङ्मुखः ॥ ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ॥ हंतुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥ तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

हो, इन्द्रियोंको निश्चलकर, सूखे वृक्षकी नाईं अचल होगया ॥ ९ ॥ गंगाके किनारेपर पूर्व अग्र कुशासनपर बैठ, उत्तर दिशाकी ओरको मुख करके संशयछिन्न निस्संग महायोगी परब्रह्ममें तदाकर होगया ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो ! क्रोधी ब्राह्मणके पुत्रका भेजाहुवा तक्षक राजाके काटनेकी इच्छा करके चला, तब मार्गमें कश्यपजीको देखा ॥ ११ ॥ कि, कश्यपजी राजा परीक्षित्के पासको जातेहैं और यह विषके उतारनेमें चतुर हैं

१ जिसमय तक्षक ब्राह्मणका वेष धारण करके राजा परीक्षित्को काटनेके लिये चला तो मार्गमें उसको कश्यपजी मिले, तक्षकने कश्यपजीसे बूझा कि, आज आप कहाँको चलदिये ? कश्यपजी बोले कि, राजा परीक्षित्को आज सर्प काटैगा, हम उसको अच्छा करनेके लिये जातेहैं तब तक्षकने कहा कि, तक्षकके काटेको आरोग्य करनेकी किसीकी सामर्थ्य नहीं आप तो क्या वस्तु हैं ! कश्यपजी बोले कि यदि वह होता तो हम उसको अपना कर्त्तव्य दिखाते तक्षक बोला कि,मैंही तक्षकहूं,और इस वृक्षको काटता हू अब तुम इसको अच्छा करो ज्योंही वृक्षको डसा त्योंही यह जलकर भस्म होगया,बरन् उस वृक्षपर सूखी—

तब तक्षक ❀ ने उस विषके दूर करनेवाले कश्यपजीको धनसे तृप्तकर जानेसे रोंक लिया, तब इच्छारूपी तक्षकने ब्राह्मणका रूप धरके अपने
आपको छिपाकर राजा परीक्षित्को जाकर काटा ॥ १२ ॥ ब्रह्मस्वरूप राजऋषि परीक्षितकी देह विषाग्निसे सबके देखते उसी समय जलकर क्षार

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ॥ बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥
हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ॥ विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥

होगई ॥ १३ ॥ उस समय पृथ्वी, आकाश, सब दिशाओंमें बडा हाहाकार शब्द होनेलगा, सब नगरमें कुलाहल मचगया. देवता, असुर,

---

—लकडी तोडनेके लिये एक लकडहारा चढा था वहभी उस वृक्षके संग जलकर भस्म होगया, तब कश्यपजीने सजीवनी मंत्र पढकर दो घडीमें लकडहारेसहित उस वृक्षको यथावत् करदिया, तब तक्षक आश्चर्यमय
होकर कहने लगा कि, आप कुछ ज्योतिष विद्या भी जानत हैं ? कश्यपजी बोले हाँ । तब तक्षकने कहा कि, विचारो तो राजाकी अवस्था कितनी और रही है, कश्यपजी बोले कि, हमारे विचारमें ऐसा आता है
राजाकी आयुर्बल दो घडी शेष है, तब तक्षकने कहा कि, मंत्र अकालमृत्युवालेको जीवित करसक्ता है परन्तु जिसकी मृत्युही निकट आगई होय उसको कोई नहीं बचासक्ता फिर वृथा उपाय करनेसे मान
हानि होती है और जो आपको धनकी इच्छा है तो इसी वृक्षके नीचे बहुत गडा है, जितना चाहिये उतना लेजाओ, कश्यपजीको और किसी बातसे प्रयोजन नहीं था अपनी इच्छानुसार धन लेकर अपने
आश्रमको लौटगये, तब तक्षक राजाके पास जाकर एक पुष्पमें कीडेका रूप धारणकर घुस बैठा और तक्षकके पुत्रने ब्राह्मणका रूप धरकर वह फूल राजाको दिया राजा फूलको देखकर कहनेलगे कि,
संध्या होगई और तक्षक अभीतक नहीं आया कहीं ब्राह्मणका वचन झूठा न होजाय इस कारण इस कीडेहीसे मस्तकमें कटवालें, ज्यों राजाने कीडेसे कटवाया त्योंहि तक्षकने अपना रूपधर राजाको डसा
कि, वह तुरत भस्म होगया और तक्षक उसी समय उडगया, उस लकडहारेने जब सब वृत्तान्त कहा तब जन्मेजयने तक्षकका अपराध विचार सर्पसत्र यज्ञ किया ।

* शंका–द्वादशके पाँचवें अध्यायमें शुकदेवजीने कहा कि, हे राजन् ! ब्राह्मणके शापकी आज्ञाको जिस सर्पने पाया वह सर्प तुमको नहीं डसेगा, भागवतके श्लोकमें "त्वां" शब्द लिखा है सो शुकदेवजीने
"त्वां" किसको कहा था परीक्षितकी देहको कहा था कि, जीवको कहाथा ? जो जीवको त्वां कहा तोभी अयोग्य है, क्योंकि जीव किसीके जलानेसे जलनहीं सक्ता, जो कदापि ऐसा देखकर कि, संसारमें
शरीरहीकी प्रशंसा है जीवको कोई नहीं जानता, शरीरहीको त्वां कहाथा तो फिर सर्पके काटनेसे शरीर क्यों भस्म होगया ? मुनिने तो कहाथा कि भस्म नहीं होगा ! यह शंका होती है !

उत्तर–जो प्रश्न तुम लोगोंने किया सो सत्य है,संसारमें शरीरकी प्रशंसा देखकर कि देहके सिवाय जीवको कोईभी नहीं जानता इसलिये शुकदेवजीने देहको त्वां कहाथा, अब देह भस्म होनेका कारण
सुनो शुकदेवजीका वचन सत्य था कि,राजाका देह सर्पके काटनेसे भस्म नहीं होता परन्तु परीक्षित्ने मरनेके समयमें भगवान्का विचार शुकदेवजीसे भागवत सुनी सात दिनसे पहिले जो मरते हैं,उन प्राणियोंको

मनुष्यादिक सब आश्चर्यमय होगये ॥ १४ ॥ आकाशमें देवताओंके दुन्दुभी बजनेलगे, गन्धर्व गानेलगे, अप्सरा नृत्य करने लगीं और पुष्पोंकी वर्षा होनेलगीं और महात्मा पुरुष वारम्वार धन्यवाद देनेलगे ॥ १५ ॥ राजा जन्मेजय अपने पिता परीक्षित्‌को तक्षकसे डसा सुन कर महाक्रोधित हुआ और ब्राह्मणोंको बुला सर्पसत्र यज्ञमें सर्पोंका होम करानेलगा ॥ १६ ॥ उस यज्ञकी महाप्रचण्ड अग्निमें बड़े बड़े सर्पोंको जलता हुआ देखकर तक्षक डरका मारा अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्रकी शरण गया ॥ १७ ॥ परीक्षित्‌के पुत्र राजा जन्मेजयने जब तक्षकको

देवदुंदुभयो नेदुर्गंधर्वाप्सरसो जगुः ॥ ववर्षुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥ जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ॥ तथा जुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सहद्विजैः ॥ १६ ॥ सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ॥ दृष्ट्वेंद्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ॥ उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तं गोपायति राजेंद्र शक्रः शरणमागतम् ॥ तेन संस्तंभितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ॥ सहेंद्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥

यज्ञमें न देखा तो ब्राह्मणोसे बूझा कि, सर्पोंमें अधम तक्षक यहाँ आनकर क्यों नहीं भस्म हुआ ? ॥ १८ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि, हे नरेन्द्र ! अपनी शरण गये तक्षककी इन्द्र रक्षा करता है और इन्द्रनेही उसको अपने समीप बैठाल रक्खा है, इसीलिये वह अग्निमें आनकर नहीं पड़ा ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर उदार बुद्धिवाला राजा जन्मेजय ब्राह्मणोंसे बोला कि, हे ब्राह्मणो ! इन्द्र सहित उस तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं डाल देते, क्या इतनी सामर्थ्य आपको नहीं है ॥ २० ॥

—नरक होता है भागवतके प्रभावसे अब इसको नरक नहीं होना चाहिये, जो ऐसा करैंगे तो सर्पकी मर्यादा नाश होजायगी, इसलिये भागवतकी, सर्पकी, शुकदेवजीकी इन तीनोंकी मर्यादा रखनेके लिये भगवान्‌ने परीक्षित्‌को तीन कर्म करके तीनोंकी मर्यादा रक्खी, सर्पके काटनेसे मृत्यु होती है तो उस प्राणिको नरकमें जाना पड़ताहै सो श्रीमद्भागवत सुननेके प्रतापसे राजा परीक्षित्‌को भगवान्‌ने नरक वाससे छुटाया और शुकदेवजीका राजा शिष्य था इसलिये वैकुण्ठमें राजाको भेजा सर्पकी मर्यादा रखनेके लिये राजाका देह भस्म किया, इसलिये राजाकी देह भस्म होगई कुछ शुकदेवजीका वाक्य झूठा नहीं था, जो सर्पकी मर्यादा भगवान् । न रखते तो कभी राजाकी देह भस्म न होती ।

जन्मेजयका यह वचन सुनकर सब ब्राह्मण इन्द्रसहित उस तक्षकको आहुतिमंत्र पढ़कर आवाहन करने लगे "हे तक्षक ! मरुद्गणाधीश इन्द्रके संग तू शीघ्र यज्ञाग्निमें आनकर पड़" इसप्रकार आहुतिमंत्रोंसे इन्द्र सहित तक्षकको बुलाया ॥२१॥ ब्राह्मणोंके कठोर वचनोंसे और मंत्रोंके आकर्षणसे तक्षक सहित इन्द्र अपने स्थानसे चलायमान हो विमान और तक्षक सहित अपने मनमें घबरागया ॥ २२ ॥ इन्द्रको विमान और तक्षक सहित आकाशसे गिरता हुआ देखकर, अंगिराके पुत्र बृहस्पतिजीने जन्मेजयसे कहा ॥ २३ ॥ हे नरेन्द्र ! यह सर्पराज आपके हाथसे वधकरनेयोग्य नहीं है, क्योंकि इसने अमृतपान किया है, इसलिये यह अमर अजर है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तक्षकके डसनेसे पिताका मरण सुनकर आपको इतना क्रोध तक्षकपर

तच्छ्रुत्वा जुहुवुर्विप्राः सहेंद्रं तक्षकं मखे ॥ तक्षकाशु पतस्वेह सहेंद्रेण मरुत्त्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिंद्रः प्रचालितः ॥ बभूव संभ्रांतमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥ तं पतंतं विमानेन सहतक्षकमंबरात् ॥ विलोक्यांगिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥ नैष त्वया मनुष्येंद्र वधमर्हति सर्पराट् ॥ अनेन पीतममृतमथ वा अजरामरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जंतोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ॥ राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्पचोराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ॥ पंचत्वमृच्छते जंतुर्भुंक्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राजन्संस्थीयेताभिचारिकम् ॥ सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥२७॥ इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ॥ सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥

करना नहीं चाहिये, क्योंकि जीवोंका जीवन मरण और परलोक अपने कर्मोंहीसे होता है, इसे सुख दुःखका दाता और कोई दूसरा नहीं जान पड़ता ॥ २५ ॥ हे नरेश ! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली, क्षुधा, तृषा, रोगादिकोंसे प्राणी मृत्युको प्राप्त होताहै, सो वह अपने प्रारब्ध और कर्मोंहीके भोगसे भोगताहै कुछ सर्पादिक स्वतंत्र नहीं हैं, उनको भी प्रारब्ध और कर्महीं प्रेरणा करता है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह प्राणी अपने अदृष्टहीका भोग करै है, इसलिये इस अभिचार हिंसक यज्ञको समाप्तकरो. देखो ! इस यज्ञमें अनेक निरपराधी सर्प भस्म होगये, परन्तु उसमें आपकाभी कुछ दोष नहीं, क्योंकि प्राणी सदा अपने प्रारब्ध और कर्मोंका भोग भोगते रहते हैं ॥ २७ ॥ जब बृहस्पतिजीने इसप्रकारसे वचन कहे तब

राजाने उसीसमय बृहस्पतिजीके वचनोंको सन्मान दे, अभिचार यज्ञसे निवृत्त हो, देवगुरु बृहस्पतिजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ देखिये ! ब्राह्मणके क्रोधसे परीक्षितका मरण हुवा और परीक्षित्के पुत्र जन्मेजयने कोप करके करोडों सर्पोंको जलाडाला, सो यह क्रोधरूप मोह ऐसे ऐसे महात्मा पुरुषोंको भी हुवा, इसमें कोई आश्चर्य माननेकी बात नहीं है, क्योंकि विष्णुभगवान्की अलक्षित माया किसीप्रकार किसीसे निवारण न होसकी देखो ! उनहीं विष्णु भगवान्की मायासे विष्णु भगवान्हीके अंशरूप जीव दूसरे जीवोंपर अपनी देहमें तीनों गुणोंकी वृत्ति क्रोधादिकोंसे मोहित हो संसारमें भ्रमते हैं ॥ २९ ॥ यह माया तत्त्ववादी ब्रह्मविचार करनेवालोके सिवाय और सब स्थानोंमें यह माया निर्भय वास करती है और ब्रह्मवादी लोग जब तत्त्वविचार करते हैं तो वह लोग भलीभाँति जानते हैं कि, यह माया बड़ी कपटकारिणी है और लोकोंकी वंचना

सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यया ॥ मुह्यंत्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः॥ २९ ॥ न यत्र दंभीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ॥ न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो मनश्च संकल्पविकल्पवृत्तिमत् ॥ ३० ॥ न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ॥ तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमेत्स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥ परं पदं वैष्णवमामनंति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

करनेवाली है, जिन महात्मापुरुषोंने ऐसा समझ रक्खा है उनके सन्मुख निर्भय होकर माया अपना प्रकाश नहीं करसक्ती, क्योंकि उनसे भय मानती है और मोह ममतादिक कार्योंको नहीं करती, अपने दिन पूरे करती है और जहाँ तत्त्वविचार है माया कारणके अनेक वाद विवाद नहीं है और संकल्प विकल्प वृत्तियोंके युक्त मन भी जहाँ नहीं है ॥ ३० ॥ सृष्टिके करनेवाले सब कारण और कर्मसे सिद्ध हुए फल, इन तीनों सहित अहंकारयुक्त जीव जिस विष्णुमें विघ्न डालनेवाला विघ्नभी जहाँ नहीं रहता, अहंकारादि ऊर्मियोंके त्यागनेवाले मुनिलोग उसी विष्णुपदमें रमण करते हैं ॥ ३१ ॥ और स्थान, सौहृद, दुष्टता और अनात्मपदार्थोंको त्याग नेति नेति कह अहंभावकी निवृत्तिकर सिवाय

परमात्माके और किसीसे स्नेह न रखनेवाले विवेकी पुरुष परमतत्त्व रूपहीको विष्णुका परमपद कहतेहैं, उसीका ध्यानादिक सावधानतासे विज्ञानीलोग हृदयमें धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ विष्णुके परमपदको वही आत्मतत्त्ववेत्ता जानते हैं जिनके देह गेहमें अहंता, ममता, दुर्जनताका मिथ्या अभिमान नहीं है ॥ ३३ ॥ मनुष्यको उचित तो यह है कि, अज्ञानियोंके दुर्वाक्योको सहन करै किसीकी अवज्ञा न करै और इस देहके कारण किसीसे शत्रुता न करै ॥ ३४ ॥ अकुण्ठित बुद्धिवाले भगवान् व्यासदेवजीको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं कि, जिनके चरणकमलके ध्यानसे मैंने यह "श्रीमद्भागवत–सहिता" पढ़ी है॥३५॥शौनकऋषि बोले,हे सौम्य ! व्यासदेवजीके शिष्य ! वेदोंके अचार्य पैलादि महात्मा ऋषियोंने वेदोंका

न एतदधिगच्छंति विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ यत्पादांबुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥ शौनक उवाच ॥ पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः॥ वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ हृदाकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः ॥ द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यांत्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ॥ यत्तल्लिंगं भगवतो ब्राह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ॥ येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

कितनी रीतिसे विभाग किया सो यह वृन्तांत हम बूझतेहैं और पुराणोंकी संहिताओंके विभाग किसप्रकारसे कियेगयेहैं सो जाननेकी हमारी अभिलाषा है॥३६॥ श्रीसूतजी बोले कि, ब्रह्मन् ! एकाग्रमन परमेष्ठी ब्रह्माके हृदय आकाशसे प्रथम एक नाद शब्द उत्पन्न हुवा जो कि, कानोंपर हाथ रखनेसे सुनाई आताहै॥३७॥हे ब्रह्मन् ! जिस नादकी उपासना करके योगी पुरुष अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, इन तीनों मनके मलोंको दूर करके मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ ३८ ॥ उस नादशब्दसे स्वयंप्रकाश हुवा जिसकी उत्पत्ति स्पष्टरीतिसे किसीप्रकार जाननेमें न आवे, ऐसा अव्यक्त तीन अक्षर युक्त ॐकार हुवा जो कि, भगवान् परमात्मा परब्रह्मका जतानेवाला है ॥३९॥ इन्द्रिय मनविनाही जो भगवान् है सब शून्य होजानेपर भी आप ज्ञाता होनेसे

कानोंके बन्द करनेपरभी इस अव्यक्त ओंकारको सुनते हैं जीव इन्द्रियोंके अधीन है, इसलिये कान बन्द किये जानेपर भी कुछ नहीं सुनता, हृदयरूप आकाशमें आत्मासे उत्पन्नहुए ओंकारसे वैखरी विस्तृत वाणी प्रगट होतीहै ॥ ४० ॥ अपने आश्रयरूप सर्वव्यापक साक्षात् परमात्मा परब्रह्मका बतानेवाला सब मंत्रोंका रहस्य, वेदोंका बीज, सनातन ओंकार है॥ ४१ ॥ हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! उस ओंकारसे अकार, उकार, मकार यह तीन वर्ण हुए तीन वर्णसे सत्त्व, रज और तम तीन गुण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद यह तीन वेद, भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक यह तीनों लोक, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीनों अवस्था हुईं ॥ ४२ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इन्हीं वर्णोंसे अक्षरोंके समूह रचे सोलह ॥ १६ ॥ तो स्वर पचीस २५ स्पर्श चार ४ अन्तस्थ, चार ४ ऊष्मा, यह सब ह्रस्व दीर्घ जिह्वामूलीय करके युक्त हैं ॥ ४३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने उन्हीं अक्षरोंसे चारों मुखोंसे

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ॥ स सर्वमंत्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ॥ धार्यंते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥ ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ॥ अंतःस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ तेनासौ चतुरो वेदाश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ॥ सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥ पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ॥ ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ ॥ ४५ ॥ ते परंपरया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ॥ चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥ क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ॥ वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७ ॥

ओंकारसहित चारों वेदोंको रचा चातुर्होत्र कर्मोंके लिये अथर्वण, यजुर्वेदी उद्गाथा, सामवेदी होता, ऋग्वेदी ब्रह्मा, आहुतिदेनेवाले रचे ॥ ४४ ॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने वेदोंके उच्चारणादिकोंमें चतुर ब्रह्मर्षि अपने पुत्रोंको वह वेद पढाये और धर्मोंके उपदेष्टा होकर अपने पुत्रादिकोंके पढाने लगे ॥ ४५ ॥ उन सब वेदोंके हृदयमें धारण करनेवाले व्रतधारी शिष्योंकी परंपरा चारों युगोंमें चली आई है, द्वापरके अन्तमें महाऋषियोंने वेदोंके विभाग किये ॥ ४६ ॥ इसका कारण यह है कि भगवान्ने जाना कि, कलियुगमें सब ब्रह्मऋषि कालसे क्षीण, अल्प आयु, वीर्यहीन, अशक्ति और मन्दमति होंगे, यह विचारकर अच्युत भगवान्ने उनके हृदयमें विराजमान होकर प्रेरणा की तब उन ऋषियोंने वेदका विभाग किया ॥ ४७ ॥

हे ब्रह्मन्! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् धर्मकी रक्षाके लिये ब्रह्मा, शिवादिक लोकपालोंकी स्तुति करनेसे ॥ ४८ ॥ विभु भगवान्ने अपने अंशकलाओंसे पराशरमुनिके वीर्य करके सत्यवतीके गर्भमें वेदव्यासरूपसे अवतीर्ण होकर वेदके चार विभाग किये ॥ ४९ ॥ जैसे रत्नपारखी अनेक मणियोंकी राशियोंसे पद्मरागादि मणियोंको छाँटछाँटकर अलग कर लेता है, ऐसेही मंत्रोंके समुदाय एक वेदमेंसे ऋग, यजुर, साम और अथर्वण नामके मंत्रोंको उद्धारके उन मंत्रोंसे चार संहिता श्रीवेदव्यासजीने रची ॥ ५० ॥ हे शौनक! फिर पीछे महामति व्यासजीने

अस्मिन्नप्यंतरे ब्रह्मन्भगवाँल्लोकभावनः ॥ ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ॥ अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥ ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ॥ चतस्रः संहिताश्चक्रे मंत्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥ तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ॥ एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥ पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ॥ वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ॥ ५२ ॥ साम्नां जैमिनये प्राह तथा छंदोगसंहिताम् ॥ अथर्वांगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमंतवे ॥ ५३ ॥ पैलः स्वां संहितामूच इंद्रप्रमितये मुनिः ॥ बाष्कलाय च सोप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ॥ पराशरायाग्निमित्रे इंद्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥

अपने चार शिष्योंको बुलाकर एक एक संहिता देदी ॥ ५१ ॥ पैलनाम शिष्यको बहुत ऋचा होनेसे बह्वृचनाम ऋग्वेदकी संहिता दी, निगदानाम यजुर्वेदकी संहिता वैशंपायनको दी ॥ ५२ ॥ छन्दोगनाम सामवेदकी संहिता जैमिनीको पढाई और अंगिरसनाम अथर्वण वेदकी संहिता अपने शिष्य सुमंतुको पढाई ॥ ५३ ॥ पैलमुनिने अपनी पढीहुई संहिता इन्द्रप्रमित और बाष्कलनाम अपने दोनों शिष्योंको दी ॥ ५४ ॥ हे ब्रह्मन्! बाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग करके बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र, इन चारों अपने शिष्योंको पढाई. महात्मा

इन्द्रप्रमितने अपनी संहिता कवि मंडूक ऋषिको पढ़ाई मंडूकने देवमित्रको पढ़ाई देवमित्रने सौभर्यादि ऋषियोंको पढाई ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ मंडूकके पुत्र शाकल्यने अपनी संहिताके पाँच विभाग करके वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य, शिशिरनाम अपने पाँचो शिष्योंको दी ॥ ५७ ॥ शाकल्यके छठे जातूकर्ण्य नाम शिष्यने अपनी संहिताके तीन भाग किये और वैदिक पदार्थोंका व्याख्यानरूप निरुक्त नाम ग्रन्थ रचकर, बलाक, पैज, वैताल और विरज नाम अपने चार शिष्योंको पढाया ॥ ५८ ॥ बाष्कलि, बाष्कलके पुत्रने सब संहिताओंकी शाखाओंमेंसे बालखिल्यानाम संहिता बनाकर वह संहिता बालायनि, भज्य और कासारनाम अपने तीनों शिष्योंको दीं ॥ ५९ ॥ यह सब ब्रह्मऋषि ऋग्वेदकी बह्वृचानाम संहिताके

अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ॥ तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥ शाकल्यस्तत्सुतस्तां तु पंचधा व्यस्य संहिताम् ॥ वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७॥ जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ॥ बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥ बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ॥ चक्रे बालायनिर्भज्य काशारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥ बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ॥ श्रुत्वैनं छंदसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥ वैशंपायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ॥ यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ॥ चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥ इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ॥ विप्रावमंत्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥

धारण करनेवाले हुए जो पुरुष इस वेदके विस्तारको सुनेगा वह सब पापोंसे निवृत्त होजायगा ॥ ६० ॥ वैशंपायनके शिष्यने यजुर्वेदसंहिता पढी, इसलिये उन्होंने यज्ञमें अध्वर्युकी पदवी पाई, जब उनके गुरु वैशंपायनको ब्रह्महत्याका पाप लगा तब उस पापके निवारणके लिये अपने गुरुके बदले उन्होंने अपने आप प्रायश्चित्त किया उस दिनसे उनका नाम चरकाध्वर्यु हुआ ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यने ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करानेके समय वैशंपायन अपने गुरुसे कहा कि, हे स्वामिन् ! अल्प दृढतावाले जो और पापके शिष्य हैं, जो आपके पापका प्रायश्चित्त करें तो क्योंकर होगा ? यह महाकठिन प्रायश्चित्त मैं इकलाही करूंगा ॥ ६२ ॥ याज्ञवल्क्यका यह वचन सुनकर वैशंपायन अत्यन्त कुपित होकर बोले कि, तू मेरे सामनेसे

चलाजा, तू दूसरे ब्राह्मणकी अवज्ञा करनेवाला शिष्य है, इसलिये मुझसे तुझसे कुछ प्रयोजन नहीं तैंने मुझसे जो कुछ पढ़ा है, उसको इसी समय त्यागदे ॥६३॥ गुरुके मुखसे इस प्रकारके कठोर वचन सुनकर देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्यने अभिमानमें आनकर यजुर्वेदके मंत्रोंको उगल वहाँसे चलदिया उस समय मुनिगणोंने यजुर्वेदके अमूल्य मंत्रोंको पड़ा देखा॥६४॥जिन मंत्रोंमें उन मुनियोंकी परम इच्छाथी, उन मंत्रोंको उन मुनियोने तीतर पक्षीका रूप धारण करके याज्ञवल्क्यके वमन कियेहुए यजुर्वेदके मंत्रोंको ग्रहण करलिया, उसी दिनसे उस यजुर्वेदकी तैत्तिरीय नाम शाखा हुई ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन् ! याज्ञवल्क्यजीने गुरुसे भी अधिक वेदविद्या प्राप्त करनेके लिये श्रीसूर्यनारायणकी उपासना करनी आरम्भ की ॥ ६६ ॥

देवरातसुतः सोऽपि छर्दित्वा यजुषां गणम् ॥ ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥ यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः ॥ तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मञ्छन्दांस्यधि गवेषयन् ॥ गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ ॐनमो भगवते आदित्यायाखि लजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतानामंतर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवो पाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकया त्रामनुवहति ॥ ६७ ॥ यदु ह वा व विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृ जिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥

याज्ञवल्क्य बोले कि, हे सूर्यनारायण भगवान् ! आदित्यस्वरूप आपको वारम्वार नमस्कार है, आप ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके समुदाय रूपसहित इस विश्वके हृदयमें निरुपाधि अन्तर्यामीरूप हो और बाहर लव निमेष क्षणके अनेक अवयववाले वर्षोंके समुदायवाले कालरूपसे आकाशकी सदृश उपाधिसे आच्छादित नहीं होते और प्रत्येक वर्षमें पानीके सोखने और वर्षानेसे एकही आप इस जगत्की दिन रात यात्रा करते रहतेहो ऐसे जो आप त्रिलोकीनाथ हो आपको वारम्वार प्रणाम करताहूं ॥ ६७ ॥ हे त्रिभुवनपते ! हे त्रयतापके नशानेवाले ! हे नित्य त्रिकाल वेदविधिसे पूजन करनेवाले ! भक्त जनोंके अखिल पापोंके फल दूषण और बीज अज्ञानके जलानेवाले !

हे सर्व देवताओंमें श्रेष्ठ ! हे सविता भगवन् ! आपका जो यह मण्डल त्रिलोकीमें प्रकाश करता है, ऐसे जो आप निशिवासर जगत्के तपानेवाले हैं सो मैं एकाग्रचित्तसे आपका ध्यान करताहूं ॥६८॥ हे भास्कर ! आपके रहनेके स्थान स्थावर जंगम अनंत समुदायके जडरूप मन इन्द्रिय प्राणोंके समूहोंको आपही अन्तर्यामी आत्मारूप होकर प्रेरणा करतेहो ऐसे तेजरूपको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ ६९ ॥ हे विश्वतमनाशक ! हे कृपानिधे ! महाभयानक मुखवाले अन्धकाररूप अजगरसे ग्रसेहुये मृतकके समान संज्ञारहित अचेतन लोकोंको देखकर परमकरुणानिधान आप दयादृष्टिसे उनको उठाकर नित्य समय समयपर कल्याणरूप स्वधर्मनिष्ठामें प्रवृत्त करते हो और भूपतिकी तुल्य असाधु लोगोंको

य इह वा व स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइंद्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मांतर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥ य एवेमं लोकमतिकरालवदनांधकारसंज्ञाऽजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकंपया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्त्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥ परित आशापालैस्तत्रतत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वंदितमहमयातयामयजुष्काम उपसरामीति ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो हरिः ॥ यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥

भय देतेहुये सब ओर घूमते रहते हो, ऐसे जो आप दयालु हो सो आपको वारम्वार प्रणाम करताहूं ॥ ७० ॥ हे सूर्य ! जहाँ तहाँ दिक्पाल देवता कमलकोशयुक्त अंजलियोंसे आपको अर्घ्य देदेकर आराधना करते हैं, ऐसे जो सर्वान्तर्यामी आप हो आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥७१॥ हे भगवन् ! आप ऐसे दीनदयालु हो, त्रिलोकीके अधीश्वरोंसे पूजित आपके चरणारविन्दकी उत्तम यजुर्वेदकी कामनाके लिये मैं शरण आयाहूं ॥७२॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादि ऋषियों ! याज्ञवल्क्यने जब इस प्रकार सूर्यनारायणकी प्रार्थना की, तब उस प्रार्थनाको सुन, सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर अश्वका [illegible] इच्छानुसार सहित यजुर्वेदके मंत्र दिये ॥ ७३ ॥

तब याज्ञवल्क्य मुनिने उस यजुर्वेदकी पन्द्रह १५ शाखा करीं, सूर्यनारायणने अपनी केशावलीसे जो मंत्र निकाले इसलिये यह शाखा वाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई, उन शाखाओंको कण्व और मध्यंदिनादि ऋषियोने ग्रहण किया ॥ ७४ ॥ सामवेदके वेत्ता जैमिनिने सुमन्तु नाम अपने पुत्रको और सुन्वान् नाम अपने नातीको एक एक संहिता पढ़ादी ॥ ७५ ॥ फिर जैमिनिजीका दूसरा शिष्य सुकर्मा नाम द्विज बड़ा चतुरथा उसने सामवेदवृक्षकी सहस्र संहिता बनाकर अलग अलग शाखा रचीं ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, पौष्यंजि और वेदपाठी आवंत्य यह तीन शिष्य सुकर्माके हुये, उन्होंने सहस्रों संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ हिरण्यनाभ, पौष्यंजि और आवंत्यके महाचतुर पांचसौ ५०० शिष्य साम

यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपंच शतैर्विभुः ॥ जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिनादयः ॥ ७४ ॥ जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमंतुस्तनयो मुनिः ॥ सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ॥ सहस्रं संहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥७६॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यंजिश्च सुकर्मणः॥शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवंत्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥ उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पंच शतानि च ॥ पौष्यंज्यावंत्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते॥७८॥लौगाक्षिर्मांगलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ॥ पौष्यंजिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतंशतम् ॥ ७९ ॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ॥ शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवंत्य आत्मवान् ॥ ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादशस्कंधे वेदशाखाविभागनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ अथर्ववित्सुमंतुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकम् ॥ संहिता सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

वेदके गानेवाले उदीच्या नाम (उत्तर दिशानिवासी) हुए, उनमें कोई कोई पूर्वदिशाके वासी कहलाये ॥ ७८ ॥ पौष्यंजिके शिष्य लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुसीद, कुक्षी यह पांच शिष्य और थे, उन्होंने सौ सौ संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ हिरण्यनाभका कृतनाम दूसरा और शिष्य था, उसने अपने शिष्योंको चौबीस संहिता पढ़ाई और जो संहितायें अवशेष रहगईथीं वह ज्ञानवान् आवंत्यने अपने शिष्योंको पढ़ादीं ॥ ॥ ८० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां वेदशाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—सप्तममाहिं अथर्वको, कहों संहित विस्तार ॥ फेर पुराणोंके कहौं, लक्षण सकल विचार ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, अथर्ववेदपाठी सुमन्तुने अपनी संहिता अपने कबन्ध नाम शिष्यको पढ़ाई

कबन्धने अपनी संहिताके दो भाग करके पथ्य और वेददर्श नामको पढ़ाई ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! वेददर्शने अपनी संहिताके चार भाग किये और शौलकायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि नाम अपने चार शिष्योंको पढ़ाई, और पथ्यने अपनी संहिताके तीन भाग करके कुमुद, शुनक और जाजलि नाम तीन शिष्योंको पढ़ाई ॥२॥ शुनकके बभ्रु और सैन्धवायन नाम दो शिष्योंको अपनी संहिताके दो विभाग करके पढ़ाया सैन्धवायन आदिके सावर्णि आदि शिष्य हुए ॥३॥ नक्षत्रकल्प, शान्तिकल्प, कश्यप और आंगिरस आदि शिष्य हुए हे मुनिराज ! यह तो मैंने आपसे अथर्ववेदके आचार्य्य कहे अब मैं आपके सामने पुराणोंके आचार्योंका वर्णन करता हूँ. सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणि,

शौल्कायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ॥ वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ॥ कुमुदः शुनको ब्रह्मञ्जा
जलिश्चाप्यथर्ववित् ॥२॥ बभ्रुः शिष्योऽथांगिरसः सैंधवायन एव च ॥ अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथाऽपरे ॥ ३॥
नक्षत्रकल्पः शांतिश्च कश्यपांगिरसादयः ॥ एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च
सावर्णिरकृतव्रणः ॥ वैशंपायनहारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥ अधीयंत व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ॥ एकै
कामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥ कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ॥ अधीमहि व्यासशिष्या
च्चतस्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ॥ शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥

कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशंपायन और हारीत यह छः पुराणोंके आचार्य्य हुए ॥ ५ ॥ वेदव्यासजीने पहिले पुराणोंकी छः संहिता रचकर मेरे पिता रोमहर्षणको पढ़ाईथी, फिर रोमहर्षणके मुखसे इन छहों जनोंने छहों संहिताओंको पढ़ा, मैं इन छहों महात्मा जनोंका शिष्य हुवा और सबसे एक एक संहिता पढी ॥ ६ ॥ इनमें जो पुराणोंकी चार संहितायें मूल थीं उनको कश्यप, सावर्णि, परशुरामजीका शिष्य अकृतव्रण और चौथा मैं इन चारों जनोंने व्यासजीके शिष्य मेरे पितासे चारों मूलसंहिताओंको पढ़ा ॥ ७ ॥ हे शौनक ! ब्रह्मऋषियोंने जो पुराणोंके लक्षण वर्णन किये हैं, वेद शास्त्रके

अनुसार उसे हम कहते हैं आप सावधानहो ध्यान लगाकर सुनिये ॥ ८॥ सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, राजाओंके वंश, उन वंशवाले राजाओंके चरित्र, निरोध, मुक्ति, हेतु और अपाश्रय ॥९॥ जिसमें यह दश लक्षण होंय विद्वान् लोग उसको महापुराण कहते हैं और कोई कोई आचार्य लोग पाँच लक्षण (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित्र) वाले ग्रन्थको भी पुराण कहते हैं, यह केवल छोटे बडेकी व्यवस्था है ॥ १० ॥ इस मायाके गुण क्षोभसे महत्तत्त्व, तीन प्रकारका अहंकार, पंचमहाभूत और इन्द्रियगणकी उत्पत्तिको सर्ग कहतेहैं ॥ ११ ॥ ईश्वरके अनुग्रहसे महत्तत्त्व आदिसे प्रगट होता हुवा और बीजमेंसे बीजकी सदृश प्रवाहरूपसे चलतेहुए स्थावर जंगमरूप प्रपंचको विसर्ग कहतेहैं ॥ १२ ॥ जंगम

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षांतराणि च ॥ वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ॥ केचित्पंचविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥ अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ॥ भूतसूक्ष्मेंद्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ॥ विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥ वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ॥ कृता स्वेन नृणां तत्र कामाचोदनयापि वा ॥ १३ ॥ रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगेयुगे ॥ तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यंते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥ मन्वंतरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ॥ ऋषयोंशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥ राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ॥ वंश्यानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्रये ॥ १६ ॥

प्राणियोंके स्थावर आहार है और जंगमोंकी मांसमें भी साधारण प्रीति है, उनमें मनुष्योंके निमित्त रागसे अथवा शास्त्रवचनोंसे जो आजीविकाका विधान है, वह वृत्ति कहाती है ॥ १३ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवताओंमें भगवान् अवतीर्ण होकर युगयुगमें जो लीला करके विश्वकी रक्षा करते हैं, वही विश्वकी रक्षा कहलाती है और वही अनेक प्रकारके अवतार धारण करके वेदके द्रोही दुष्ट और पाखण्डियोंको मार पृथ्वीकी रक्षा करते हैं वही रक्षा कहलाती है ॥ १४ ॥ मनु, देवता, मनुके पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और हरिके अंशावतार, यह छः मिलकर मन्वन्तर कहलाता है ॥ १५ ॥ ब्रह्मासे उत्पन्न हुए शुद्ध राजाओंकी भूत, भविष्य, वर्त्तमान कालकी सन्तानको वंश कहते हैं, उन राजाओंके वंशको और

उन वंशोंमें हुए चारित्रोंको वंशानुचरित्र कहते हैं॥१६॥नित्य, नैमित्तिक,प्राकृत,आत्यन्तिक,चार प्रकारकी प्रलयको कविजन संस्था (निरोध) कहते हैं ॥१७॥ अविद्याके कारण कर्म कर्त्ता जीव जिसे मुख्यवेत्ता अनुशयी और उपाधिवेत्ता अव्याकृत कहते हैं, उसकी वासना इस जगत्की सृष्टि होनेमें निमित्त है, वह मुक्ति हेतु (ऊति) कहलाती है ॥ १८ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिमें जीवरूपसे वर्तनेवाले ईश्वर मायामें विश्व, तैजस और प्राज्ञमें प्रविष्ट हैं और ममाधिमें उनसे पृथक् हैं;इसलिये वह अपाश्रय कहलाते हैं ॥ १९ ॥ जैसे घटादिक पदार्थमें मृत्तिकादि प्रविष्टहै उनके नाम रूपमें सत्तामात्रही हैं, ऐसेही जन्मसे लेकर मरणतक उन सब अवस्थामें ब्रह्मयुक्तभी है और अलग भी है ॥ २० ॥ जब सत्त्व, रज,

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यंतिको लयः ॥ संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः ॥१७॥ हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ॥ यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥ व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥ पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ॥ बीजादिपंचतां तासु ह्यवस्था सुयुतायुतम् ॥ २० ॥ विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ॥ योगेन वा तदात्मानं वेदेहा या निवर्त्तते ॥ २१ ॥ एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ॥ मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महांति च ॥ २२ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् ॥ नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कांदसंज्ञितम् ॥ २३ ॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कंडेयं सवामनम् ॥ वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्मांडाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥

तम तीनों गुणोंकी वृत्तियोंको त्यागकर पुरुषका चित्त शान्त होय, अथवा योगाभ्यास करके शान्त होय तब यह पुरुष अपने शुद्धरूपको जानकर संसारचेष्टाओंसे छूट जाताहै ॥ २१ ॥ इन छोटे बड़े लक्षणोंसे पुराण पहँचाने जातेहैं, अठारह १८ महापुराण हैं और अठारह १८ लघु पुराण हैं, इसप्रकार बड़े बड़े प्राचीन कविवर कहते हैं ॥२२॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुड़पुरण, नारदीयपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण ॥ २३ ॥ भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण

कूर्म्मपुराँण, ब्रह्माँण्डपुराण, यह अठारह पुराण कहे ❋ ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन् ! वेदव्यासजीने और उनके शिष्योंने और उनके शिष्योंके शिष्योंने जो वेदकी शाखाओंका विस्तार किया है, वह वृत्तान्त मैंने आपको सुनाया क्योंकि वह ब्रह्मतेज और भक्तिका बढ़ानेवाला है ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां पुराणलक्षणवर्णनो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा–मोह मार्कण्डेयको, तपचर्य्या अरु काम॥

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ॥ शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेऽथर्ववेदपुराणलक्षणादिनि० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ॥ तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥ आहुश्चिरायुषमृषिं मृकंडतनयं जनाः ॥ यः कल्पांते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत ॥ २ ॥

इस अष्टमअध्यायमें, हरि स्तुति सुखधाम ॥ १ ॥ शौनकादि मुनि बोले कि, हे साधो ! हे श्रीसूतजी महाराज–वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! इस अपार संसारमें भ्रमनेवाले मनुष्योंको पार लगानेवाले तुम चिरंजीवित रहो ॥ १ ॥ मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेयजीको लोग चिरजीवी कहतेहैं ।

❋ शंका–राजा जन्मेजयकी यज्ञमें बृहस्पतिजीने राजा जन्मेजयसे कहा कि, हे राजन् ! तक्षकने अमृत पीलिया है अब आपके मारनेसे वह नहीं मरेगा क्योंकि अमृतको जो प्राणी पीलेता है वह किसीके मारनेसे नहीं मरता, इस वातमें यह सन्देह है कि, अमृतका स्वामी इन्द्र, जिसने रातदिन अमृत पिया, वरन् अमृत पीते पीते अनेक युग वीत गये ऐसे इन्द्रको ब्राह्मणोंने तप और मन्त्रोंके प्रभावसे राजा जन्मेजयके यज्ञवाले कुण्डमें भस्म करनेके लिये स्वर्गसे गिराकर भस्म करनेकी सामर्थ्य तो ब्राह्मणोमें थी और जिस तक्षकने राईभर अमृत पीलिया क्या वह ब्राह्मणोंके मंत्र और तपके प्रभावसे भस्म नहीं होसक्ता॰
उत्तर–जो प्राणी वहुत दुःखी होकर भगवान्का नाम एकवार भी लेताहै उसको असख्यनामके जपनेका फल प्राप्त होता है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है. ऐसा तक्षकने जाना कि, मैं वडे वडे देवताओंके पास गया किसीने भी मेरी सहायता नहीं की ऐसा विचार कर इन्द्रलोकमें गया, महादुःखी हो रहाथा । नेत्रोंसे आँसू चले जाते थे, तब अत्यन्त आतुर होकर हे भगवन् ! हे नारायण ! इसप्रकार वडे आदर सत्कारसे वारम्वार भगवान्का नाम जपा, तब वही भगवान्का नाम अमृत होगया उसी भगवन्नाम अमृतको तक्षकने पान किया, इसलिये गुप्त करके बृहस्पतिजीने कहाथा कि, तक्षकने अमृत पीलिया है तुम्हारे मारनेसे नहीं मरेगा, कुछ इन्द्रवाले अमृतको नहीं कहा था ॥

क्योंकि जिस प्रलयमें सब जगत् ग्रस्त हुवा तो उस कल्पांतमें मार्कण्डेयजी किसप्रकार बचरहे ? ॥ २ ॥ जो भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ इसी कल्पमें हमारे वंशमें उत्पन्न हुए, उस दिनसे लेकर आजतक प्राणियोंका प्राकृतिक अथवा नैमित्तिक कोई भी प्रलय नहीं हुवा, फिर उनका प्रलयमें अवशेष रहना क्योंकर संभव हो सकाहै ? ॥ ३ ॥ कोई कोई महात्माजन ऐसा भी कहते हैं कि, मार्कण्डेय ऋषि इकलेही प्रलके समुद्रमें घूम रहेथे और वहाँ उन्होंने वटवृक्षके पत्रके दुप्पेमें एक अद्भुत बालकको सोता हुवा देखा "सो प्रलयकालमें वटका वृक्ष कैसे रहगया" ॥ ४ ॥ हे सूत !

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ॥ न वाऽधुनापि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥ एक एवार्णवे
भ्राम्यन्ददर्श पुरुषं किल ॥ वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एष नः संशयो भूयान्सूत कौतूहलं यतः ॥
तं नश्छिन्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ॥ नारा
यणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कंडेयः पितुः क्रमात् ॥ छन्दांस्यधीत्य धर्मेण
तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥

हे महायोगिन् ! हमको बड़ा सन्देह है और उसका उत्तर सुननेकी अभिलाषा है, सो आप सब पुराणोंके ज्ञाता और परमज्ञानी हो, आप हमारे इस संशयको निवारण करो ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि, हे महापुरुषो ! आपका यह प्रश्न सम्पूर्ण लोकोंके पापोंका दूर करनेवाला है क्योंकि इस प्रश्नमें श्रीनारायणकी कथा कलियुगके दोषोंकी मिटानेवाली है * ॥ ६ ॥ क्रम करके पितासे द्विजन्म संस्कार पाय मार्कण्डेयने

* शंका—श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धके अष्टम अध्यायमें लिखा है कि, सूतके मुखसे ब्राह्मणोंने विद्या पढी, तो इसमें यह शका है कि, क्या उस समय ब्राह्मणोंको विद्या पढानेके लिये ब्राह्मण वश नहीं था क्या सब ब्राह्मण नष्ट होगयेथे ? जो ब्राह्मणोंने सूतके मुखसे विद्या पढीं यह बडा आश्चर्य है ?

उत्तर—सूतने व्यासदेवजीकी सेवा बहुतवर्षतक की, तब व्यासजीने सूतको अपना पुत्र मानकर शास्त्र और पुराण पढाये और यज्ञोपवीत कर्म भी सूतका किया क्योंकि व्यासजी साक्षात् भगवान्‌का अवतार थे, सत्कारकरके सूतको वरदान दिया कि, हे पुत्र सूत ! तुम्हारे मुखसे भगवान्‌की कथाको जो ब्राह्मण अभिमान त्यागकर सुनैंगे अथवा पढैंगे तब उन सुननेवाले पढनेवाले ब्राह्मणोंको सहस्रगुणा कथाका फल होगा और सहस्र गुणाही विद्या पढनेका फल होगा. इसलिये सब ब्राह्मण और सनकादिकोंने अभिमानको तजकर सूतसे कथा सुनी और विद्या पढी ब्राह्मणोंका वश नष्ट नहीं हुवा था, पुण्यके लोमसे सब ब्राह्मणोंने पढा सुना ॥

विद्याध्ययनयुक्त धर्मपूर्वक वेदोंको पढ़ा ॥ ७ ॥ नैष्ठिक बालब्रह्मचारी, शान्त, वल्कलवस्त्र धारण किये, जटा, दण्ड, कमण्डलु, उपवीत (जनेऊ) पहिरे ॥८॥ कृष्णमृगचर्म, कमलाक्षकी माला, नित्य नैमित्तिक सिद्धिके लिये कुशाओंको धारण किये, अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें दोनों सन्ध्या करके भगवत् आराधना करनेलगे ॥ ९ ॥ साँझ सबेरे भिक्षा लाकर गुरुके सन्मुख रखदेते और जब गुरु आज्ञा देते तब मौन साध एकबार भोजन करलेते और जो गुरु कभी आज्ञा न देते तो उसदिन निराहारही रहजाते ॥ १० ॥ इसप्रकार मार्कण्डेयजीने विद्याध्ययन परायण होकर दश करोड़ (१००००००००) वर्षतक हृषीकेशका आराधन करके तप किया और अतिदुर्जय मृत्युको जीतलिया ॥ ११ ॥ तब तो ब्रह्मा, महादेव, भृगु, दक्ष

बृहद्व्रतधरः शांतो जटिलो वल्कलांबरः ॥ बिभ्रत्कमण्डलुं दंडमुपवीतं समेखलम् ॥८॥ कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ॥ अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥ सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ॥ बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥ एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ॥ आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे ॥ नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥ इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशांतरात्मना ॥१३॥ तस्यैवं युंजतश्चित्तं महायोगेन योगिनः॥ व्यतीयाय महान्कालो मन्वंतरषडात्मकः ॥ १४ ॥ एतत्पुरंदरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलान्तरे ॥ तपोविशंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥ गंधर्वाप्सरसः कामं वसंतमलयानिलौ ॥ मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तदा ॥ ॥ १६ ॥ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ॥ पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

और भी ब्रह्माके अनेक पुत्र, मनुष्य, देवता, पितर, भूत और सम्पूर्ण देहधारियोंको बड़ा आश्चर्य हुवा ॥ १२ ॥ इसप्रकार नैष्ठिकब्रह्मचारी व्रत धारणकर मार्कण्डेययोगी तप अध्ययन संयमों करके क्लेशरहित मनसे अधोक्षज भगवान्का ध्यान करनेलगे ॥ १३ ॥ इसप्रकार भगवान्में मन लगाये उस महायोगी मार्कण्डेयको छः मन्वन्तर बीतगये ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! तब सातवें मन्वन्तरमें मार्कण्डेयके तपको देखकर इन्द्र शंकायुक्त हुवा और उनके तपमें विघ्न डालना चाहा ॥१५॥ तब इन्द्रने उनका तपभंग करनेके लिये गन्धर्व, अप्सरा, मनोभव, वसन्तऋतु, मलयपवन, रजोगुणके मित्र लोभ व मदको मार्कण्डेयमुनिके पास भेजा ॥ १६ ॥ हे विभो ! वह सब मिलकर हिमालयकी उत्तर ओर उन मुनिके आश्रममें गये, जहाँ पुष्प

भद्रानदी और चित्रानाम शिला है ॥१७॥ वह परमपवित्र मार्कंडेयजीका आश्रम जहाँ सुन्दर सुन्दर वृक्ष और लतायें शोभायमान थीं अनेकप्रकारके पक्षियोंके शब्दसे व्याप्त हो रहा था, जहाँ परमविद्वान् ब्राह्मणोंके कुल निवास करतेथे और सरोवरोंमें जहाँ तहाँ निर्मल जल झकोल रहेथे ॥ १८ ॥ मतवाले भ्रमर गुंजार रहे थे, मदोन्मत्त कोकिला कुहू कुहूपुकार रहीथीं, मदमाते मोर जहाँ तहाँ नटोंकी नाच नाचरहेथे और मत्त पक्षियोंके समुदाय अपनी अपनी वाणी बोलरहेथे ॥ १९ ॥ शीतल जलके झरनोंके कनकाओंको लेकर वनपवन पुष्पोंको स्पर्श करती परम सुगन्धवाली कामदेवको बढानेवाली कामदेवको देखकर सबके चित्तको प्रफुल्लित करनेलगी ॥ २० ॥ चन्द्रमाके उदय होनेसे सन्ध्या समयके सुन्दर नवीन पल्लव और

तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलतांचितम् ॥ पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥ वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ॥ सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तंभयन्स्मरम् ॥ २० ॥ उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ॥ गोपद्रुमलताजालस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥ २१ ॥ अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ॥ अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥ हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः ॥ मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमंतमिवानलम् ॥ २३ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ॥ मृदंगवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥ संदधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ॥ मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकंपयन् ॥ २५ ॥

फूलोंके गुच्छोंके समूह अनेक शाखा और वृक्ष लताओंसे युक्त वसन्तऋतु वहाँ आनकर प्रगट हुई ॥ २१ गीत और वादित्रवाले गन्धर्व और अप्सराओंके समूहोंसे युक्त कामदेव हाथमें धनुषबाण लिये दिखाई दिया ॥ २२ ॥ अग्निहोत्रसे निश्चिंत हो उस आश्रममें ध्यानसे नेत्र मूँदकर ऐसे बैठे थे जैसे मूर्त्तिमान अग्निके समान अनन्ततेजस्वी मार्कण्डेयजीको आसनपर विराजमान देखा ॥ २३॥ उस समय मार्कण्डेयजीके सामने अप्सरायें नाचनेलगीं, गन्धर्व गानेलगे, मृदंग, वीणा, ढोलकादि अनेक प्रकारके सुंदर सुन्दर बाजे बजानेलगे ॥ २४॥ ऐसा सुन्दर समय पाकर कामदेवने शोषण, दीपन, संमोहन, संतापन, उन्मादन नाम यह पाँच मुखवाले बाण अपने धनुषपर धारण किये और वसन्त लोभादिसे सब इन्द्रके अनुचर

मार्कण्डेयजीके मनको कम्पायमान करनेलगे ॥ २५ ॥ गेंदको उछालती अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करती पुंजिकस्थली नाम अप्सरा स्तनोंके भारसे जिसकी लंक लचक रहीथी कि, जिसके केशपाशसे शिथिल होनेके कारण पुष्प गिररहे थे ॥ २६ ॥ गेंदको उछालती तिरछी चितवनसे चारोंओर को देखती भालती जब वह चंचलचित्तवाली चली तब कटिमेखला टूटजानेसे उसका वस्त्र भी छूटगया, पीछे समीरने उस वीरबालाका सूक्ष्म वस्त्र हरण करलिया ॥ २७ ॥ उससमय पंचशरने मार्कण्डेयजीको अपने वशमें जानकर अपना महातीक्ष्ण शर चलाया, परन्तु उस अवसरमें कामदेवके सब शर उद्यम व्यर्थ होगये, जैसे भाग्यहीनके सब उद्यम निष्फल होजाते हैं ॥ २८ ॥ हे मुने ! इसप्रकार मुनिके तिरस्कार करनेवाले

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कंदुकैः स्तनगौरवात् ॥ भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥ २६ ॥ इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलंत्या अनुकन्दुकम् ॥ वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७ ॥ विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ॥ सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥ त इत्थमपकुर्वंतो मुनेस्तत्तेजसा मुने ॥ दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ २९ ॥ इतींद्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ॥ यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ॥ श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ ॥ तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥ तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलांबरौ ॥ पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥

मन्मथादिक मार्कण्डेयके तेजसे भस्म होनेलगे, तब तो भयभीत होकर वह अभागे भागनेलगे, जैसे बालक सर्पको जगाकर भागता है ॥ २९॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार पुरन्दरके अनुचारोके कियेहुए कर्त्तव्यको वृथा देखकर मार्कण्डेयजीके मनमें किसी प्रकारका अहंकार और विकार नहीं उपजा, सो इस बातका महात्मा पुरुषोमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ ३० ॥ गणोंसमेत कामदेवको निस्तेज देखकर और ब्रह्मर्षिका प्रभाव सुनकर इन्द्र अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुवा ॥ ३१ ॥ इसप्रकार तप, अध्ययन और संयमोसे मनको वशमें रखनेवाले भगवान्‌में जिनका चित्त लगरहा ऐसे मार्कण्डेयजी पर अनुग्रह करनेके लिये नर नारायण भगवान् वहाँ आनकर प्रगट हुए ॥ ३२ ॥ शुक्ल, श्याम, नवीन कमलसे

सुंदर नेत्र, चतुर्भुज मृगचर्मवल्कलके वस्त्र, हाथमें कमण्डलु, जनेऊ सूधेबाँसके दण्डको धारण किये ॥ ३३ ॥ कमलकी माला, जीव जन्तु न मरजायँ उनको हटानेके लिये वस्त्रकी झाडू वेदको धरे. गौरवर्ण तेजधारी, बिजलीके समान प्रकाशवान्, सक्षात् मूर्त्तिमान, तपरूप शरीर, परम श्रेष्ठ, देवताओंके पूज्य दोनों ऋषीश्वर आये ॥ ३४ ॥ भगवतरूप नर नरायण ऋपीश्वरोंको देखकर, मार्कण्डेयजीने बहुत आदरपूर्वक उठकर दण्डके समान गिरकर दोनोंको दण्डवत् साष्टांग किया ॥ ३५ ॥ नर नारायणके दर्शनके आनंदसे बुद्धि, इंद्रिय, मनसे शांत हो और अंगमें प्रफुछित होनेसे और नेत्रोंमें जलभर आनेसे मार्कण्डेयजी भगवान्की ओर देखनेको समर्थ न हुए ॥ ३६ ॥ फिर सँभलकर खड़े हो, हाथ जोड नम्रता

पद्माक्षमालामुत जंतुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ॥ तपत्तडिद्वर्णपिशंगरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥ ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ॥ दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामांगेन दंडवत् ॥ ३५ ॥ स तत्संदर्शनानंद निर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ॥ हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ॥ नमोनम इतीशानौ बभाषेगद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ॥ अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥ सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ॥ पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पंदते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ॥ स्पंदंति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजता मसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

और उत्कण्ठासे अलिंगन कर गद्गद वाणीसे केवल नमो नमो शब्द नरनारायणकी ओरको देखकर कहा ॥३७॥ फिर उन दोनोंको आसनपर बैठार, चरण पखार, अर्घ्यदे, चन्दन, धूप,मालासे पूजन किया ॥ ३८ ॥ सुखपूर्वक आसनपर बैठे प्रसन्नमुख, ऐसे दीनदयालु नर नारायणके चरणारविन्दोंमें मार्कण्डेयजीने फिर दण्डवत् करके यह वचन कहा ॥३९॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे प्रभो ! मैं आपकी क्या स्तुति करूं? जिस आपकी प्रेरणासे ब्रह्मा, शिवके,सब प्राणीमात्रके और मेरेभी प्राण चेष्टा करतेहैं,उन प्राणोंके पीछे मन, वाणी, इन्द्रियें चेष्टा करतीहैं, तोभी आप अपने भजन करनेवालोंपर अधिक दया करते हो, क्योंकि आप दयाके सागर हैं; पिता आदिक तो इस शरीरकेही बन्धु हैं परन्तु आप सदैव इस आत्माके बन्धु हो ॥ ४० ॥

हे भगवन्! सदासे जैसे इस विश्वकी रक्षाके लिये आप अनेक प्रकारके स्वरूप धारण करते हो इसीप्रकार यह दो स्वरूप भी त्रिलोकीके मंगल करनेके निमित्त, सांसारिक तापोंके दूर करनेके अर्थ और मृत्युको जीतनेके लिये आपने धारण किये हैं, जैसे आप सृष्टिकी रक्षा करनेमें प्रसिद्ध हैं, ऐसेही विश्वके संहार करनेमें भी आप विख्यातहैं जैसे मकरी जालेको रचकर पीछे आपही निगल जातीहै ॥४१ ॥ स्थावर जंगमके रक्षा करनेवाले ईश्वर, आपके चरणारविंदोंका मैं भजन करताहूं जिन चरणारविंदके आश्रयसे मनुष्योंको कालकर्म गुणोंके मान्य तपादिकोंको कोई स्पर्श भी नहीं करसक्ते और बड़े बड़े वेदपाठी महात्मालोग जिन चरणारविंदोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ध्यान करतेहैं यजन करतेहैं और दिन रात स्तुति करतेहैं ॥ ॥ ४२ ॥ हे ईश अपवर्गमूर्त्ति! जिन प्राणियोंको चोरोंसे भय है उन प्राणियोके लिये आपके चरणकमलकी प्राप्तिसे अधिक मंगल और निर्भय

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ॥ नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥ तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरंघ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः स्पृशंति ॥ यद्वै स्तुवंति निनमंति यजंत्यभीक्ष्णं ध्यायंति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥४२॥ नान्यं तवांघ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितो भिय ईश विद्मः ॥ ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्ध्यधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥ तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ॥ देहाद्यपार्थमसदंत्यमभिज्ञमात्रं विंदेत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबंधो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ॥ लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशांत्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

स्थान हम और कोई दूसरा नहीं समझते, दो परार्द्धकी आयुर्बलवाला ब्रह्मा भी आपकी भ्रुकुटीबंकरूप कालसे अतिशय भयभीत रहता है, उसके सृजेहुए प्राणी भयभीत हों तो इसमें, क्या आश्चर्य है? ॥ ४३ ॥ आत्माके आवरण करनेवाले तुच्छ, नश्वर निष्फल भी हैं, परन्तु सत्यसे दृष्टि आते हैं, ऐसे देहादिकोके भजनको छोडकर सत्य ज्ञान स्वरूप सब जीवोंके नियंता सबसे परे आपके उन चरणारविन्दोंको मैं भजता हूं, जो आपके चरणकमलके भजनेवाले हैं, उनको आपसेही सब अभिलाषा पूर्ण होती हैं ॥ ४४ ॥ हे ईश! सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, यह तीनों गुण आपकी मायाहीसे उत्पन्न हुए हैं और पालन, उत्पत्ति, संहारका कारण विष्णु आदि सब आपहीकी लीलामूर्त्ति हैं,

परन्तु उनमें जो सत्त्वगुणकी मूर्त्ति है वह मनुष्योंके मनको शान्त करनेवाली है और रजो तमो गुणवाली मूर्त्ति मनको शान्त नहीं करती बरन् दुःख, मोह और भय उपजानेवाली है ॥ ४५ ॥ हे भगवन्! ब्रह्मादिक देवता और भक्तलोग शुद्ध सत्त्व मूर्त्तिकाही भजन करते हैं और सत्त्व गुणकोही ईश्वर मानते हैं, रजोगुण तमोगुणमें प्रवृत्त नहीं होते और ज्ञानीलोग इसीलिये आपकी इस नरनारायण नाम सत्त्वमूर्त्तिका भजन करते हैं कि, जिस सत्त्वगुणके प्रभावसे पुरुष निर्भय और सुखी होकर तुम्हारे लोककी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ विश्वका गुरु, विश्वरूप सर्वोत्तम पुरुष देव शुद्धस्वरूप, वाणीके नियंता, वेदके प्रवर्त्तक भगवान् नरनारायण ऋषि आपको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ ४७ ॥ कपटरूप इन्द्रियोंके मार्गसे

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजंति ॥ यत्सात्त्वताः पुरुषरूपमुशंति सत्त्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चाऽन्यत् ॥ ४६ ॥ तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै ॥ नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥ यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः संतं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ॥ तन्मायया५ऽवृतमतिः स उ एव साक्षादाद्यश्च तेऽखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥४८ ॥ यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं मुह्यंति यत्र कवयोऽजपरा यतंतः ॥ तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वंदे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० मार्कण्डेयोपाख्याने नरनारायणस्तुतिर्नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

विक्षिप्त बुद्धिवाले और आपकी मायासे आवृत मतिवाले प्राणी, अपने हृदय आकाशमें, प्राणोंमें नेत्रोंमें, निरंतर विराजमान हों तोभी आपको नहीं जानते हे भगवन्! आदि पुरुष अखिलके गुरु ब्रह्माको भी जब आपने अपने प्रकाशे वेद दिये, तब ब्रह्माको भी आपके साक्षात् रूपका ज्ञानहुआ ॥४८॥ रहस्यतत्त्वका प्रकाश करनेवाला आपके दर्शनका ज्ञान एक वेदहीके जाननेसे होताहै, इसीसे सांख्ययोगादिकोंकी रीतिसे यत्नके करनेवाले ब्रह्मादिक कवि सब आपके दर्शनको पाते हैं, निर्गुण, सगुणादिक सबके वचनके अनुकूलस्वभाव और देहादिकके अभिनिवेशसे गूढ़ तत्त्वज्ञानवाले महापुरुष आपको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां मार्कण्डेयतपोवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—नववेंमें भगवानकी, माया परम अनूप ॥ बूड़त प्रलय समुद्रमें, देखेउ मुनि हरिरूप ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इस प्रकार स्तुति करनेसे नरके मित्र भगवान् नारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर मार्कण्डेय मुनिसे कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ ! मनकी एकाग्रतासे और तप अध्ययन संयमोंसे और अनपायिनी हमारी भक्तिसे तुम सिद्ध हुएहो ॥ २ ॥ हे मुने ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कर्मसे हम बहुत संतुष्ट हुए, वरदान देनेवालोंके ईश्वर हम तुमको वरदान देनेके लिये आये हैं, तुम मनवांछित वर मांगो, जो तुम्हारी इच्छा हो ! ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे देव ! हे ईश ! हे भक्तभयभंजन ! हे

सूत उवाच ॥ संस्तुतो भगवानित्थं मार्कंडेयेन धीमता ॥ नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भोभो ब्रह्मर्षिवर्योऽसि सिद्ध आत्मसमाधिना ॥ मयि भक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥ वयं ते परितुष्टाः स्म तद्बृहद्व्रतचर्यया ॥ वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जितं ते देव देवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ॥ वरेणैतावताऽलं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥ ४ ॥ गृहीत्वाऽजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ॥ मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षिगोचरः ॥ ५ ॥ अथाप्यंबुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ॥ द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

अच्युत ! आप जो वारम्वार वर देनेके लिये मुझसे कहते हो यह आप अपनी उत्कृष्टता (बड़ाई) प्रगट करतेहो । परन्तु मुझको किसी प्रकारके वरदानकी अभिलाषा नहीं, आपने जो मुझको दर्शन दिया यही महावरदान है, इससे अधिक और क्या वरदान होगा ? ॥ ४ ॥ योगकरके परिपक्व हुए मनसे, आपके स्वभावयुक्त चरणारविन्दके दर्शन पाकर प्राकृत पुरुष भी ब्रह्मादिक देवताओंके सदृश होकर कृतार्थ होतेहैं, सो आप साक्षात् मेरे नेत्रोंके आगे विरजमान हो, क्या इससे भी बढकर कोई और वरदान दोगे ? ॥ ५ ॥ हे कमलदललोचन ! हे पुण्यशिखामणी ! जो आपकी वरदेनेहीकी इच्छा है तो यह वर दीजिये कि, जिस आपकी मायासे लोकोंसहित लोकपाल मोहित होजाते हैं, उस अपनी मायाको

मुझे दिखाओ ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! इसप्रकार मार्कण्डेयसे स्तुति और वरदानका माँगना सुन भगवान् ईश्वर उन मुनिसे पूजित हो, मुसकाकर वही वर दे बद्रिकाश्रमको चलेगये * ॥७॥ तब मार्कण्डेयजी उस मायाके वरदानका चिन्तवन करनेलगे और अपने आश्रममें बैठकर अग्नि, सूर्य, जल, चन्द्रमा, पृथ्वी, पवन, आकाश और मनमें भगवान्का ध्यान करनेलगे ॥ ८ ॥ भावनारूपी द्रव्यसे नित्यप्रति भगवान्का पूजन किया करैं, कभी एक भक्तिके आवेशसे पूजाको भी भूलजाते ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! हे भृगुवंशियोमें श्रेष्ठ ! हे मुने !

सूत उवाच ॥ इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने ॥ तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेव चिंतयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ॥ वसन्नग्न्यर्कसोमांबुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥ ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ॥ क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९ ॥ तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुने ॥ उपासीनस्य संध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥ १० ॥ तं चण्डशब्दं समुदीरयंतं बलाहका अन्वभवन्करालाः ॥ अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनंत उच्चैरभिवर्षधाराः ॥ ११ ॥ ततो व्यदृश्यंत चतुःसमुद्राः समंततः क्ष्मातलमाग्रसंतः ॥ समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्त्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥

हे ब्रह्मन् ! एक दिन सन्ध्यासमय पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेयजी बैठे थे, वहाँ बड़ी भयंकर पवन चलने लगी ॥ १० ॥ महावेगसे प्रचण्ड शब्द होनेलगा, उस पवनके पीछे महाविकराल कालरूप प्रलयकीसी काली काली घटा चारो ओरसे उमड़ने लगीं, बड़े गम्भीर शब्दसे बिजली कड़कड़ाने लगीं, वज्रपात होने लगा, गजशुण्डके समान मोटी जलधारा वर्षने लगी ॥ ११ ॥ पवनके वेगसे पानीमें तरंगें उठने लगीं, पृथ्वी

* शंका—दुष्टलोगोंका लक्षण यह है कि, वात करते करते मुसका देते हैं और जो कोई मनुष्य उन दुष्टोंके स्थानपर जाय तो उनको आतादेखकर हँसते हैं और चलते समय भी वह दुष्ट मनुष्य उनके ठट्ठे उड़ाते हैं, वह दुष्ट उनके घर जाँय तो भी हँसी करै, चलते समयभी हसी करते हैं, यह दुष्ट लोगोंकी पहिचानके लक्षण हैं, मार्कण्डेय मुनिके आश्रमसे नारायण जब अपने आश्रमको चले तब मुसकातेहुये क्यों चले ? बडे मुनीश्वर होकर ऐसा बुरा कर्म क्यों किया ?

उत्तर—नारायणमुनिने विचार किया कि, मार्कण्डेयजी मायाका प्रभाव देखना चाहते हैं इनके मनमें ऐसा अभिमान है कि, मैंने मायाको तप करके जीत लिया है, ऐसा माया करके इनको मोह उपजा ऊगा, जो यह युगानयुग भूलैंगे नहीं, ऐसा विचारके अपने मनमें नारायणमुनि मुसकाये, कुछ दुष्टकर्मसे नहीं मुसकाये।

डूबने लगी, उग्र ग्राह जहाँ तहाँ दिखाई देने लगे, महाभयानक भ्रमर जलमें पड़नेलगे, चारों ओर समुद्रकेसा अरअराहट होनेलगा ॥ १२ ॥ आकाशके अतिक्रम करनेवाल जलसे और महातीक्ष्ण पवनसे और अत्यंत दमकती हुई दामिनीसे चार प्रकारके जगत्को बाहर भीतरसे व्याकुल देख और पृथ्वीको पानीमें डूबीहुई निहारकर मुनि अपने मनमें घबराने लगे और विस्मय होकर त्रासको प्राप्त हुए ॥१३ ॥ मार्कण्डेय जीके देखतेदेखते तरंगें उठनेसे भयानक पवनसे चलायमान वर्षतेहुए मेघोंसे पूर्ण हो समुद्र सब ओरसे द्वीप, खण्ड, पर्वतोंसहित पृथ्वीको डुबाने लगा ॥ १४॥ भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, नक्षत्र, दिशाओं सहित त्रिलोकी जलमय,होगई, उस समय केवल एक मार्कण्डेयजी अवशेष रहे, सो वह

अंतर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् ॥ चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥ तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः ॥ आपूर्यमाणो वरषद्भिरंबुदैः क्ष्मामप्य धाद्द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥ सक्ष्मांतरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सहदिग्भिराप्लुतम् ॥ स एक एवोर्वरि तो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटाजडांधवत् ॥१५॥ क्षुत्तृट्परीतैर्मकरैस्तिमिंगिलैरुपद्रुतो वीचिनभस्वता हतः ॥ तम स्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥ क्वचिद्गतो महावर्त्ते तरंगैस्ताडितः क्वचित् ॥ यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योऽन्यघातिभिः ॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ॥ क्वचिन्मृ त्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८ ॥

इकलेही अपनी बड़ी बड़ी जटाओंको फैलाये, जड़ अन्धकी सदृश जलमें भ्रमने लगे ॥ १५ ॥ भूख और प्याससे पीडित, मकर और तिमिंगिलोंसे भयभीत, महाप्रचण्ड पवनके झकोरोसे और जलकी तीव्र तरंगोके प्रहारसे व्याकुल, अपार अन्धकारमें दिशाओंमें भ्रमण करते हुए, आकाश और पृथ्वीको नहीं जानते भये ॥ १६ ॥ कभी महागम्भीर भँवरोंमें उछलते डूबतेथे; कभी तरंगोंमें आनकर इधर उधर चलेजाते थे, कभी भूखे जल जन्तु उनको खानेके लिये परस्पर लड़ रहेथे ॥ १७ ॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी दुखः, कभी सुख, कभी मरण, कभी जीवन, कभी रोगादिकोंसे ग्रसितहो अनेक प्रकारके क्लेश पातेथे ॥ १८ ॥

नारायणकी मायासे आवृत चित्तवाले मार्कण्डेयजीको उस जलमें भ्रमते भ्रमते अयुतायुत सहस्रों सैकडों अर्थात् एक शंख १००००००००००००००० वर्ष बीत गये ॥ १९ ॥ तब उस महाप्रलयके समुद्रमें भ्रमते भ्रमते एक टापू दिखाई दिया, उस टापूमें फल फूलोंसे अत्यन्त शोभायमान एक वटका वृक्ष दृष्टि आया ॥ २० ॥ उस वृक्षके पूर्व उत्तर (ईशान) की कोणकी शाखाके पत्रके जोड़में सोता अपनी कान्तिसे अन्धकारको दूर करनेवाला एक बालक देखा ॥ २१ ॥ महामरकत मणिके सदृश श्यामवर्ण, अत्यन्त शोभायमान मुखारविन्द, शंखके तुल्य तीन रेखा ओंसे युक्त ग्रीवा, परमविशाल वक्षस्थल, सुन्दर नासिका और सुन्दर भौंहें हैं ॥ २२ ॥ श्वाससे काँपतीहुई अलकोंकी मनोहर छवि,

अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मि
न्पृथिव्याः ककुदि द्विजः ॥ न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥ प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शि
शुम् ॥ शयानं पर्णपुटके ग्रसंतं प्रभया तमः ॥ २१ ॥ महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपंकजम् ॥ कंबुग्रीवं महोरस्कं सुनासं
सुंदरभ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्वासैजदलकाभातं कंबुश्रीकर्णदाडिमम् ॥ विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥
पद्मगर्भारुणापांगं हृद्यहासावलोकनम् ॥ श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥२४॥ चार्वंगुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय
चरणांबुजम् ॥ मुखे निधाय विप्रेंद्रो धयंतं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मवि
लोचनांबुजः ॥ प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशंकितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

भीतरकी ओरको शंखकी तुल्य आटी खाये हुए शोभित, कानोंमें दाडिमके फूलोंकी कली धरीं, विद्रुमसे अरुण अधरोंकी कान्ति सुधा सरस मन्दमुसकान ॥ २३ ॥ कमलकोशकेसे अरुण नेत्रोंके कोये, सुन्दर हास्ययुक्त चितवन, श्वास लेनेमें चलायमान, त्रिवलीसे शोभित, गम्भीर नाभि अत्यन्त शोभा देरही, पीपलके पत्रके समान सुन्दर उदर ॥ २४ ॥ अपने दोनों हाथोंकी उँगलियोंसे दाहिन चरणके अँगूठेको थाँमेंहुए मुखसे पीरहाथा, उस बालकको देखकर मार्कण्डेयजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २५ ॥ उसके दर्शनके आनन्दसे सब श्रम दूर होगया, हृदयकमल खिलगया, शरीर पुलकायमान होनेलगा इस अद्भुत प्रभावको देख मुनि अति सशंकित होकर बूझनेके लिये उस बालकके समीप गये ॥ २६ ॥

उस समय वह भृगुवंशी मार्कण्डेय मुनि उस बालकके मुखके समीप बूझनेको झुके, इतनेमें बालकनें श्वास जो लिया उसके श्वासके संगही मच्छ
रकी नाईं बालकके मुखके मार्ग होकर उसकें उदरमें पहुँच गये, वहाँभी यह विश्व प्रलयसे पहिलेकी नाईं देखा उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो
मोहित होगये ॥ २७ ॥ और वैसाही आकाश, भूमि, स्वर्ग, वृक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, पर्वत, समुद्र, द्वीप, खण्ड, दिशा, देवता, असुर, वन, देश, नदी, पुर,
खान, किसानोंके ग्राम, गायोंके खरक, वर्ण, आश्रम और इन सबकी जीविकाको देखा॥२८॥पंच महाभूतोंके रचे प्राणी, युग, अनेक पदार्थ और कल्पों
की कल्पनाकरानेवाला काल और भी जो जो व्यवहारोंके कारणथे वह सब उस बालककी सत्तासे सत्यसे प्रतीत होते मार्कण्डेयजीने देखे॥२९॥ घूमते

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोंतःशरीरं मशको यथाऽविशत् ॥ तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुराऽमु
ह्यदतीव विस्मितः ॥ २७ ॥ खं रोदसी भगणानद्रिसागरान्द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् ॥ वनानि देशान्त्सरितः
पुराकरान्खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥ महांति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ॥
यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं स दिवावभासितम् ॥ २९ ॥ हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र
ऋषीनपश्यत ॥ विश्वं विपश्यञ्श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥ तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि
प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ॥ तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपांगनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥ अथ तं बालकं
वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ॥ अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

घूमते हिमालयमें पहुँचगये, वहाँ पुष्पभद्रा नाम नदी और अपना आश्रम और उसमें रहनेवाले ऋषि और मुनियोंकोभी देखा तब "मार्कण्डेयजीने
अपना स्थान जानकर रहनेका विचार किया, परन्तु मनमें यही सन्देह कि, यह क्या मायाहैं" मार्कण्डेयजी यह विचार करही रहेथे इतनेमें बालकने
ऊर्ध्व श्वास जो लिया तो फिर मुखसे बाहर निकलकर उसी प्रलयरूप समुद्रके जलमें आन पड़े॥३०॥फिर वहाँ वही पृथ्वीका टापू और वही वटका
वृक्ष और वही बालक उस वटके पत्तेपर सोताहुवा देखा और उस बालकनेभी प्रेमरूप सुधासरस मन्द मुसकानसहित बाँकीचितवनसे मुनिकी ओरको
देखा॥३१॥ तब तो मनको मोहित करनेवाले बालकको दोनों नेत्रोंसे देखकर लज्जितहो अत्यन्त क्लेश मान मार्कण्डेयजी उन अधोक्षज भगवान्के

आलिंगन करनेके लिये उनके सन्मुख धाये ॥ ३२ ॥ इतनेमें वह बालरूप साक्षात् योगके ईश्वर सर्वान्तर्यामी भगवान् मार्कण्डेयजीके देखते २ अंतर्धान होगये जैसे हरिविमुखोंकी क्रिया लोप होजाती है ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन्! तब तो उस वटवृक्ष और प्रलयके जलसे लोकोंके डूबनेका चिह्न भी न रहा क्षणमात्रमेंही सब अन्तर्हित होगये और मार्कण्डेयजी पहिलेकी नाईं अपने आश्रममें बैठगये ॥ ३४ ॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–कह दशम अध्यायमें, शिवागमन मुनिधाम ॥ अति प्रसन्न हो वरदिये, शिव अरु शिवकी वाम ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, मार्कण्डेयजी नारायणसे निर्मित योगमायाके वैभवका ऐसा अद्भुत चरित्र देखकर भगवान्की शरणमें आये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे ईश्वर! शरणागतोंके अभयदान देनेवाले, आपके चरणारविन्दकी मैं शरण आया हूँ देखो! ज्ञानसी प्रकाशमान आपकी मायासे

तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ॥ अंतर्दधे ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥ तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः ॥ तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वादश० वटपत्रे शिशुदर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥ वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ प्रपन्नोऽस्म्यंघ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ॥ यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यंति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ॥ रुद्राण्या भगवान्रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ॥ पश्येमं भगवन् विप्रं निभृतात्मेंद्रियाशयम् ॥ ४ ॥ निभृतोदझषव्रातं वातापाये यथार्णवम् ॥ कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥

बड़े बड़े पंडित ज्ञानीभी मोहित होजाते हैं, क्योंकि अपने तप और पुरुषार्थके घमण्डमें आपका भजन नहीं करते वह मेरी समान मायारूप समुद्रमें उछलते डूबते रहतेहैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि, एक दिन बैलपर चढे भवानीको संगलिये भगवान् महादेवजी आकाशमें गणोंमे वेष्टित पर्यटन करते फिरते थे कि, पुष्पभद्रानदीके निकट एकाग्रचित्तवाले मार्कण्डेय मुनिको बैठा देखा ॥ ३ ॥ शैलनन्दिनी भवानी मार्कण्डेयजीको देखकर शिवजीसे बोलीं कि, हे भगवन्! जैसे पवन न चली होय उससमय समुद्रका जल और जलजन्तु आदि निश्चल रहतेहैं, ऐसेही इसके अंग, इन्द्रिय और मन निश्चल होगये हैं, ऐसे इस विप्रको देखो और इसके तपका फल इसको दो, क्योंकि तुम सब सिद्धियोंके दाता हो ॥ ४ ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि, हे पार्वती ! अव्यय अविनाशी आदिपुरुष भगवान्‌में प्रेमलक्षणा भक्ति होनेसे यह ब्रह्मऋषि मोक्षपर्यन्त कामनाको भी नहीं चाहता ॥ ६ ॥ तो भी हे भवानी ! इस साधु पुरुषसे कुछ सुख संवाद करेंगे, क्योंकि मनुष्योंमें साधुपुरुषोंका समागम होना परमलाभदायक है ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! सर्व मुनि और साधुओंकी गति जाननेवाले, सर्वविद्याओंके और सम्पूर्ण जीवोंके ईश्वर भगवान् शिवजी पार्वतीसे यह बात कहकर मार्कण्डेयजीके सन्निकट गये ॥ ८ ॥ अन्तःकरणकी वृत्तियोंके रोकनेके कारण मार्कण्डेयजीको अपने आत्मा और विश्वकी ओर कुछ ध्यान नहीं था, इसलिये साक्षात् ईश्वर और विश्वात्मा विश्वनाथ महादेव और पार्वतीके शुभागमनकोभी

श्रीभगवानुवाच ॥ नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ॥ भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥ अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ॥ अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥ तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ॥ न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरिशो योगमायया ॥ अविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥ आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिंगजटाधरम् ॥ त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यंतमिव भास्करम् ॥ ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मांबरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ॥ अक्षमालाडमरुककपालपरशुं सह ॥ बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः॥१२॥ किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ॥ १३ ॥

उन्होंने नहीं जाना ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय ऋषिको समाधिनिष्ठ जानकर पवन जैसे छिद्रमें घुस जाता है, ऐसेही कैलासपति भगवान् महादेवजीने योग माया करके मुनिके हृदयाकाशमें प्रवेश किया ॥१०॥ तीन नेत्र,दश भुजा,ऊँचा शरीर, बिजुली सदृश पीत जटाओंको धारण किये,प्रातःकालके सूर्यके समान शोभायमान तेजस्वी ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मके वस्त्र पहिने, त्रिशूल, धनुष, बाण, खड्ग, ढाल, डमरू, रुद्राक्ष, कपालमाला और परशु हाथमें लिये, शिवजीको अकस्मात्‌ही हृदयमें प्रकाशमान देख अत्यन्त विस्मित होकर बोले ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्य है ? यह कौन हैं ! कहाँसे आये ? इस विचारही विचारमें मुनिकी समाधि निवृत्त होगई, तब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती और गणोंसहित शिवजी सन्मुख खड़े हैं ॥ १३ ॥

त्रिभुवनका प्रधानगुरु शिवजीको समझकर मार्कण्डेयजीने मस्तक नवाकर नमस्कार किया, भले आये महाराज, यह कह आसन दे, चरणामृतले, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप, दीपादिसे गण और गिरिजासहित शिवजीका पूजन किया ॥ १४ ॥ और फिर कहा कि, हे विभो ! हे ईश ! हे नाथ ! आप तो अपने प्रभावहीसे पूर्णकाम और विश्वके आनन्ददाता हो मैं अपका क्या पूजन करूं ? ॥ १५ ॥ आप निर्गुण शान्त, सत्त्वके अधिष्ठाता सबके परमसुखदाता और रजोगुण तमोगुणके धारण करनेवाले होकर भी अघोर हो, सो मैं आपको वारम्वार नमस्कार करूं हूं ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनिने स्तुति की, तब संतुष्ट हृदयवाले, महात्मा पुरुषोंके शरणरूप आदिदेव

रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ तस्मै सपर्यां व्यदधात्सगणाय सहोमया ॥ स्वागतासनपाद्यार्घगंधस्रग्धूपदीपकैः ॥१४॥ आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ॥ करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥१५॥ नमः शिवाय शांताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ॥ रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे॥१६॥सूत उवाच॥एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः॥परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत॥१७॥श्रीभगवानुवाच॥वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः॥ अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विंदतेऽमृतम्॥ १८ ॥ ब्राह्मणाः साधवः शांता निःसंगा भूतवत्सलाः ॥ एकांतभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ १९ ॥ सलोका लोकपालास्तान्वंदंत्यर्चंत्युपासते ॥ अहं च भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥ २० ॥ न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ॥ नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥ २१ ॥

विश्वनाथ प्रसन्न होकर हास्यपूर्वक मुनिसे कहनेलगे ॥१७॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे मुने ! तुम हमसे मन वांछित वर माँगो ? क्योंकि हम तीनों वरदेनेवालोंके ईश्वर हैं, हमारा दर्शन तीनों देवताओंको अमोघ है, जो जिस कार्यके लिये भजता है उसका कार्य सफल होता है और मरणधर्माओंको मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण, साधु, सन्त, शान्तचित्त, रागरहित सब प्राणियोंपर दया रखनेवाले हमारे पूर्ण भक्त, वैरभावरहित, समदर्शी हैं ॥ १९ ॥ उनका लोकोंसहित लोकपाल और देवता वन्दन करते हैं, पूजते हैं और दिनरात सेवन करते हैं बस इतनाही न समझना. जो सबके अधिष्ठाता विष्णु, ब्रह्मा और हम उनका सेवन करते हैं ॥२०॥ आपकी समान ब्राह्मण हममें, विष्णुमें, ब्रह्मामें अपने आत्मा और लोकोंमें किंचि

न्मात्र भी भेददृष्टि नहींरखते, इसीलिये हम आपका निरन्तर भजन करते हैं* ॥२१॥ जलमें क्या तीर्थ नहीं हैं? क्या मूर्तियोंमें देवता नहीं हैं? निश्चय हैं परन्तु वह तत्काल फल नहीं देते, बहुतकाल करके पवित्र करते हैं और हे महाराज! आपसरीखे महात्मा तो दर्शनहीसे पवित्र करते हैं ॥२२॥ चित्तकी एकाग्रता, तपस्या, स्वाध्याय, संयम, वेदत्रयी, यम, हमारे रूपको जो ब्राह्मण धारण करते हैं, उनको हम भी नमस्कार करते हैं ॥२३॥ जब कि, आपके श्रवण अथवा दर्शनसे महापातकी और चाण्डाल भी शुद्ध और पवित्र होजाते हैं, तब आपके संभाषणसे शुद्ध हो तो उसमें कहनाही क्या है?

न ह्यम्मयानि तिर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २२ ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येस्मद्रूपं त्रयीमयम् ॥ बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २३ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोपि वः ॥ शुध्येरन्नंत्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् ॥ वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २५ ॥ स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ॥ शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत् ॥ २६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ॥ यन्नमंतीशितव्यानि स्तुवंति जगदीश्वराः ॥ २७ ॥

॥२४॥ सूतजी बोले कि, इसप्रकार चन्द्रभाल शिवजीके गूढ धर्ममय अमृतरूप वचनोंको श्रवणद्वारा पान करके मार्कण्डेयजी तृप्त न हुए ॥ २५ ॥ नारायणकी मायासे बहुत दिनतक भ्रमण करते और क्लेशपाते मार्कण्डेयजीने शिवजीकी सुधारूप मधुरवाणीसे सम्पूर्ण क्लेशोंके समुदायसे निवृत्त होकर भवानीपतिसे यह वचन कहा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले अहो! यह विष्णु भगवान्के चारित्र प्राणियोंके जाननेमें आने बहुत कठिन हैं,

* शंका—मार्कण्डेय मुनिने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवसे बूझा नहीं कि, तुम तीनों देवताओंमें कौन बडा कौन छोटा है। कि तुम तीनों एकसे हो, फिर विना बूझे शिवजीने क्यों कहा कि, हे मार्कण्डेय! ब्रह्मामें विष्णुमें और मुझमें कुछ भेद नहीं हम तीनों देव एक ही हैं, यह हमको सन्देह है।

उत्तर—मार्कण्डेयजीके मनमें यह सन्देह था कि, तीनों देवोंमें कौन बडा है और कौन छोटा है. परन्तु लज्जाके मारे बूझ नहीं सके थे, तब महादेवजी मार्कण्डेयके हृदयकी शान्ति होनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एक स्वरूपकी कथा कहने लगे।

क्योंकि आप त्रिलोकीके ईश्वर होकर अपनी शरणागत रहनेवाली प्रजागणकी स्तुति करके उनको नमस्कार करते हो ॥ २७ ॥ मुझको तो ऐसा जान पड़ता है कि, ईश्वर भी धर्मके उपदेष्टा होकर धर्मके ग्रहण करानेके लिये प्राणियोंके आचरणोंकी स्तुति और अनुमोदन करते हैं और आप भी उनहीं आचरणोंको करतेहैं ॥ २८ ॥ आप अपनी मायामय वृत्तियोंसे और लोकोंको नमस्कारादि किया करते हैं, इससे आपकी महिमामें किसी प्रकारका दोष नहीं लगता, क्योंकि जैसे नट नाटकके विषे दूसरा रूप धारण करनेके अपने पुत्र, पौत्र और दास दासियोंको दण्डवत् प्रणाम करताहै, और दीन वचन कहताहै, उस दीनता और दण्डवत् करनेसे उसकी महत्तामें किसीप्रकारका लांछन नहीं लगसक्ता ऐसेही आपको भी किसीप्रकारका दोष नहीं लगता ॥ २९ ॥ जो ईश्वर आपही अपने मनसे गुणोंके द्वारा इस सृष्टिको रचकर उसमें आप प्रवेश होकर कर्त्ताके

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ॥ आचरंत्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवंति च ॥ २८ ॥ नैतावता भगवतः स्व मायामयवृत्तिभिः ॥ न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥२९॥ सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ॥ गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तृवत्स्वप्नदृग्यथा ॥ ३० ॥ तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ॥ केवलायाऽद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३१ ॥ कं वृणे नु परं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् ॥ यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥ ३२ ॥ वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् ॥ भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ॥ तमाह भगवाञ्शर्वः शर्वया चाभिनंदितः ॥ ३४ ॥

समान जान पड़ताहै, जैसे स्वप्नमें कोई पुरुष नया नगर बनाकर उसमें आप प्रवेश होकर कर्त्ताहीके सदृश प्रतीत होताहै ॥३०॥ ऐसे त्रिगुणोंके नियन्ता शुद्धरूप अद्वितीय सबके गुरु ब्रह्ममूर्त्ति आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ३१ ॥ हे सर्वोत्तम ! हे भगवन् ! आपका दर्शन मुझको हो गया, अब इससे अधिक और क्या वर है ? जो मैं आपसे माँगू जिस मनुष्यपर आपकी कृपादृष्टि होती है, उस पुरुषके सब काम सत्य और पूर्ण होजाते हैं ॥ ३२ ॥ तोभी जो आप पूर्णकाम और भक्तोंकी कामनाओंको वर्षानेवाले हो तो मैं आपसे इतना वरदान मांगूहूं, सो वह वरदान यह है कि, अच्युत भगवान्में और उनके भक्तोंमें और उसीप्रकार आपके चरणकमलमें मेरी निश्चल भक्ति रहै ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले

कि, जब इस प्रकार शिवजीकी स्तुति और पूजा मार्कण्डेयजीने की तब भगवान् महादेव और गिरिराजकुमारी अतिप्रसन्न हो मुनिसे कहनेलगे ॥ ३४॥ हे महर्षि ! आपके सब मनोरथ पूर्ण होंगे क्योंकि आप तो पहिलेहीसे अधोक्षज भगवान्के भक्तहो, आपका यश और पुण्य कल्प कल्पान्तर अखंड हो और सदा आप अजर अमर रहैं ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम त्रिकालज्ञ होहु और विज्ञान सहित पूर्ण वैराग्य होय, ब्रह्मतेजमें पूर्ण और पुराणाचार्य भी होहुगे ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले कि, इसप्रकार मुनिको वर देकर मुनिके पिछले चरित्र जो कुछ भगवान्की मायाके वैभव देखेथे सो सब वृत्तान्त त्रिलोचन महादेवजी भवानीसे कहते हुए चले गये ॥३७॥ परमयोगकी महिमाको पाकर विष्णु भगवान्की एकान्त भक्तिसे

कामस्तेऽयं महर्षेऽस्तु भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ॥ आकल्पांताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३५ ॥ ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन्विज्ञानं च विरक्तिमत् ॥ ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यताऽस्तु ते ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वरान्स मुनये दत्त्वाऽगात्त्र्यक्ष ईश्वरः ॥ ॥ देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरामुना ॥ ३७ ॥ सोप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ॥ विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकांततां गतः ॥ ३८ ॥ अनुवर्णितमेतत्ते मार्कंडेयस्य धीमतः ॥ अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ३९ ॥ एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः ॥ अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४० ॥

भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अबतक पृथ्वीपर विचरते हैं ॥ ३८ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने भगवान् वासुदेवकी अद्भुत माया वैभव आदि जो देखी सो मार्कण्डेयजीका पवित्र चरित्र आपके सन्मुख वर्णन किया ॥ ३९ ॥ सृष्टिके जो उत्पत्ति प्रलय आदिक होते रहते हैं, वह सब आदि पुरुष भगवान्कीही माया है कोई कोई मूर्ख लोग इस बातको नहीं जानते मार्कण्डेयजीने जो यह मायाका वैभव देखा सो केवल भगवदिच्छासे देखनेमें आया, कुछ प्राकृतिक वा नैमित्तिकमेंका यह कोई प्रलय नहीं था और अज्ञानीलोग अबतक उसे अनादि कालके समान सातवारका हुवा नैमित्तिक प्रलयही समझ रहेहैं इसीसे मार्कण्डेयजीकी सात कल्पकी अवस्था संसारमें विख्यात है, परन्तु यह सम्पूर्ण भ्रान्तिहै और जो मायाके वेत्ता हैं

वह उसकालको निमेषमात्र कहते हैं, अर्थात् मायाका कौतुक देखाथा वह सब एक क्षणमात्रका था॥४०॥ हे भृगुवंशियोंमें उत्तम ! भगवान्‌के प्रभाव युक्त मार्कंडेयका यह चरित्र जो कोई प्रेम प्रीति एकाग्र चित्त हो सुने सुनावेगा उन दोनोंको कर्मवासनायुक्त संसारकी माया न व्यापैगी ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां शिववरदान नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ इस ग्यारह अध्यायमें, महापुरुषका ध्यान ॥ भिन्न भिन्न प्रतिमासमें, व्यूह सूर्य भगवान् ॥ १ ॥ शौनकादिक बोले कि, हे भागवतोंमें श्रेष्ठ महामुनि सूतजी ! आप सर्व तंत्र शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता हो इसलिये हे बहुज्ञाता ! महात्माओंमें मुकुटमणि हम आपसे यह प्रश्न करतेहैं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वतंत्रोंके उपासक

य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथांगपाणेरनुभावभावितम् ॥ संश्रावयेत्संशृणुयादुताप्युभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥४१॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वा० मार्कंडे० शिवदत्तवरदानं० दशमोऽध्यायः ॥१०॥ शौनक उवाच ॥ अथेममर्थं पृच्छामो भवंतं बहुवित्तमम् ॥ समस्ततंत्रराद्धांते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥ तांत्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः ॥ अंगोपांगायुधाकल्पं कल्पयंति यथैव यैः ॥ २ ॥ तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् ॥ येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नमस्कृत्वा गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ॥ याः प्रोक्ता वेदतंत्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥ ४ ॥

केवल हरि भगवान्‌की परिचर्या विषे अंग अर्थात् पादादिक, उपांग, गरुड़ादिक, आकल्प चक्रादिक, अलंकार कौस्तुभादिक, आभूषणोंकी रचना जिस जिस भाँति कल्पना करते ॥ २ ॥ उस क्रियायोगके जाननेकी हमारी इच्छा है, जिसकी निपुणतासे मरणधर्मा पुरुष अमरत्वको प्राप्त होजाँय, हे सूतजी ! आप उस विद्याके जाननेवाले हैं, सो अनुग्रह करके हमको बतलाइये ? आपका कल्याण होगा ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, गुरुओंको नमस्कार करके विष्णुभगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन करूंगा, जिन विभूतियोंका वर्णन ब्रह्मादिक देवताओंनेभी

वेद और तंत्रोंमें वर्णन कियाहै * ॥ ४ ॥ मायारूप महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच तन्मात्रा इन नौ तत्त्वोंसे ग्यारह इन्द्रिय पंचमहाभूतरूप यह विराट् शरीर ब्रह्माण्ड उत्पन्नहुवा कि,जिस चैतन्यसे अधिष्ठित ब्रह्माण्डमें पृथ्वीआदि सब लोक देखनेमें आतेहैं,इन्ही पृथ्वीआदि लोकोंसे भगवान्के अंगोंकी पूजा करनेमें आती है ॥ ५ ॥ इस ब्रह्माण्डको भगवान्में कल्पित होनेके कारण भगवान्का देहरूप मानकर उसमें पृथ्वीको चरण रूप, स्वर्गको मस्तकरूप, अन्तरिक्षको नाभिरूप, सूर्यको नेत्ररूप, पवनको नासिकारूप, दिशाओंको कानरूप ॥ ६ ॥ प्रजापतिको शिश्नेन्द्रियरूप, मृत्युको गुदेन्द्रियरूप लोकपालोंको भुजारूप, चन्द्रमाको मनरूप, यमको भ्रुकुटीरूप ॥ ७ ॥ लज्जाको ऊपरके ओष्ठरूप, लोभको नीचेके ओष्ठरूप,

मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् ॥ निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥ एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः ॥ नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥ प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः ॥ तद्बाहवो लोकपाला मनश्चंद्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥ लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दंता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः ॥ रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्द्धजाः ॥ ८ ॥ यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः ॥ तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥ कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ॥ तत्प्रभाव्यापिनी साक्षाच्छ्रीवत्समुरसा विभुः ॥ १० ॥

चॉदनीको दॉतरूप, भ्रान्तिको हास्यरूप, वृक्षोंको रोमरूप और मेघोंको केशरूप कल्पना करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे ब्रह्माण्डरूपका धूप, दीप, चन्दनादिसे पूजन और ध्यान एकबारमें नहीं बनसक्ता; इसलिये पाषाण,धातु आदिकी प्रतिमामें उस विराट् देहकी और अवयवोंकी कल्पना कर उसका पूजन और ध्यान ठीक ठीक करनेमें आता है, इस ब्राह्मण्डरूप पुरुषका जो प्रमाण है जैसी स्थिति है, वह प्रमाण और वह स्थिति भगवान्की छोटी मूर्त्तिमें भी जानी जाती है, इसलिये मूर्त्तिमें भगवान्का पूजन करते हैं ॥ ९॥ मूर्त्तिमें जो प्रभुने कौस्तुभमणि धारण की है, यही शुद्ध चैतन्य धारण

* शंका–बडे आश्चर्यकी बातहै कि, सूतजी कहते हैं कि, अब अपने गुरुको दण्डवत् करके विष्णुकी विभूति ऐश्वर्य मैं वर्णन करता हू यह मुझको सशय है कि, पहिले स्कन्धसे बारहवें स्कन्धके ग्यारह अध्यायतक विष्णुकी विभूतिका वर्णन नहीं हुवा ? फिर किसकी विभूतिका वर्णन पहिले हुवा ? यह सन्देह मेरे मनको स्थिर नहीं होने देता ?

उत्तर–पहिले ऐसा वर्णन हुवा है तीन लोक चौदह भुवन चराचर यह सब ईश्वरका स्वरूपहै, इसलिये विष्णुरूप जो सम्पूर्ण ससार है उनकी विभूतिका वर्णन हुआ है और अब अकेले भगवान्की महिमा और चरित्रोंका वर्णन होगा, इसलिये सूतने कहाया कि, अब हम भगवान्की विभूतिका वर्णन करतेहैं ।

किया है,ऐसा मान रक्खा है और प्रतिमाके वक्षस्थलमें श्रीका चिह्न है,उनकी प्रभासे व्याप्त जीव है॥ १०॥उनकी मायाही अनेक गुणमयी वनमाला है, और वेदही साक्षात् पीताम्बर है और अकार, उकार मकाररूप त्रिमात्रावाला ओंकारही यज्ञोपवीत है ॥ ११॥ सांख्ययोग और योग यह दोनों मकराकृत कुण्डल हैं, सब लोकोंसे नमस्कृत और अभयदायक ब्रह्मलोक मुकुटमणि है ॥ १२ ॥ वसुधाके आधाररूप शेष भगवान् हैं, वह अनंत नामसे प्रसिद्ध हैं, वही नारायणके विराजनेका कमलासन है और कोई कोई विद्वान् लोग ऐसा भी कहतेहैं, अनेक रंगकी जो परमेश्वरकी माया है, वह मायाही अनंत आसन है; कोई कहते हैं, धर्मज्ञानादिसहित सतोगुण कमलासन है ॥ १३ ॥ इन्द्रियोंकी निपुणता, मनका उत्साह,

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ॥ वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥ ११ ॥ बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ॥ मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम् ॥ १२ ॥ अव्याकृतमनंताख्यमासनं यदधिष्ठितः ॥ धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥ ओजःसहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ॥ अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥ नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ॥ कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यंदनम् ॥ तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥ मंडलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः ॥ परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥ भगवान्भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ॥ धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥

शरीरके बल सहित प्राणही विराट्स्वरूपकी गदा है, जलका तत्त्वही शंख है तेजका तत्त्वही सुदर्शनचक्र है ॥ १४ ॥ आकाशही नीलवर्ण बिजली युक्त झमझमाताहुवा खड्ग है आकाशरूप तत्त्व जो अन्धकार है वही ढाल है कालही शार्ंगधनुष है और कर्मही बाणोंसे भराहुवा तूणीर (तरकस) है॥ १५॥ इन्द्रियेंही भालवाले बाण हैं, मनही रथ है, तन्मात्राही इस रथकी चाल है, अभयवरदानकी देनेवाली क्रियाही विराट्पुरुषकी मुद्रा है ॥ १६ ॥ सूर्य, अग्नि, चन्द्रमण्डलपर पुरुष भगवान्की पूजा करनेका स्थान है गुरुकी दी हुई जो मंत्रदीक्षा है, वही पूजन करनेवालोंका संस्कार है, भगवान्की परिचर्याही आत्माके पापोंको नाश करनेवाली है ॥ १७ ॥ छःप्रकार भगवत् शब्दका अर्थ लीलाकमल है. धर्म, यश,दोनों

चामर और वीजना हैं ॥१८॥ हे द्विजो! छत्र धारण करनेका निर्भय धाम वैकुण्ठ है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदही यज्ञपुरुष भगवान्‌का वाहन गरुड़ है ॥ १९ ॥ साक्षात् भगवती लक्ष्मी जो भगवान्‌के पार्श्वमें विराजमान हैं, वह हरिकी अनपायिनी शक्ति हैं, पार्षदोंमें अधीश्वर जो मुख्य विष्वक्सेन हैं वही तंत्रशास्त्रकी मूर्त्ति है, अणिमादिक अष्टसिद्धियां जो हैं, वह नंदादिक भगवान् वैकुण्ठविहारीके द्वारपाल हैं ॥२०॥ हे ब्रह्मन्! वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यही श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी चार मूर्त्ति परमपवित्र हैं ॥ २१ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, चार अवस्थाओंसे और इनके कारण विषय, मन, अज्ञान और ज्ञानसे भगवान् जाने जाते हैं, यही भावना ईश्वरसम्बन्धी है॥२२ ॥ अंग, उपांग, चरणादिक

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाऽकुतोभयम्॥ त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥ अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ॥ विष्वक्सेनस्तंत्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥ २० ॥ नन्दादयोऽष्टौ द्वास्थाश्च तेऽणिमाद्या हरे र्गुणाः ॥ वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ॥ अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोभिधीयते ॥ २१ ॥ स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ॥ अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ २२ ॥ अंगोपांगायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ॥ बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥ द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्व येतत् ॥ सृजति हरति पातीत्याख्ययाऽनावृताक्षो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलक्ष्यः ॥२४॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृ षभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविंद गोपवनिताव्रजभृत्यगीत तीर्थश्रवः श्रवणमंगल पाहि भृत्यान् ॥२५॥

चार भुजावाली मनोहर मूर्त्ति, गरुड़ादिक, आयुध, आकल्प, अलंकार इन चारोंसे संयुक्त, चतुर्मूर्त्ति भगवान् हरि ईश्वर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय इन चारो अवस्थाओंको धारण करते हैं, जो पुरुष इन चारों मूर्त्तियोंका ध्यान धरते हैं, उनको भगवान् वासुदेव चार फल देतेहैं ॥२३ ॥ हे द्विजोत्तम! भगवान् वेदके कारण स्वयंद्रष्टा स्वमहिमासे परिपूर्ण, अपनी मायाहीसे सब जगत् उत्पन्न करते हैं, सँभारते हैं और नष्ट करते हैं, क्योंकि ईश्वर सबके अंतर्यामी हैं ॥२४॥ जिन मनोहर मूर्त्तियोंकी उपासना कही अब उनकी सूतजी स्तुति करते हैं। हे श्रीकृष्णचन्द्र! हे अर्जुनके प्रिय सखा! हे यदुकुल

भूषण ! वसुधाके द्रोही राजाओंके वंशके विध्वंस करनेवाले हे अग्निरूप ! एकरस पराक्रमी हे गोविंद ! हे श्रवणमंगल ! हे गोपवनिताओंके समुदाय और नारद भृत्यादिकोंसे पवित्र यश गायेहुये ! तीर्थोंके समान पवित्र कीर्तिवाले ! हे हरि ! हे विश्वभगवान् ! हे वैकुण्ठविहारी ! हमारी इस कालरूप संसारसे रक्षा करो ॥ २५ ॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्त हो महापुरुष भगवान्के इन लक्षणोंको चित्तमें रखकर ध्यान करेगा वह पुरुष सर्व घटवासी वासुदेवभगवान्को अपने हृदयमें विराजमान देखेगा ॥ २६ ॥ शौनकादिक बोले कि, हे सूतजी ! मूर्त्तियोंके विषयमें जो व्यूह आपने कहा उनको सुनकर हमको सूर्यके व्यूह सुननेकी अभिलाषा हुई, और राजा परीक्षित्से श्रीशुकदेवजीने (पंचमस्कन्धमें) वर्णन किया था कि "गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, दैत्य, ऋषि और देवता, इन सात सातका सूर्यसम्बन्धी गण मास मासप्रति कहा है" इन गणोंके नाम

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् ॥ तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥ शौनक उवाच ॥ शुको यदाह भगवान्विष्णुराताय शृण्वते ॥ सौरो गणो मासिमासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७ ॥ तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ॥ निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्त्तते ॥ २९ ॥ एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मा दिकृद्धरिः ॥ सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥ ३० ॥ कालो देशः क्रिया कर्ता कारणं कार्यमागमः ॥ द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः ॥ ३१ ॥

और इनके स्वामी सूर्योंके नाम और कर्म हमको सुनाओ । क्योंकि सूर्यनारायणभी नारायणहीका स्वरूप है, इसलिये उनका व्यूह श्रवण करनेकी हमारी श्रद्धा है ॥ २७ ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि, सर्वत्र जीवमात्रकी आत्मा विष्णु भगवान्की माया है, उस अनादि मायासे रचत सब लोकोंकी सीमामें प्रवृत्त करानेवाले यह सूर्यनारायण लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं ॥ २९ ॥ सब लोकोंके आत्मा और आदि कर्त्ता जो विष्णु भगवान् हैं वही प्रगटरूपसे सूर्यनारायण हैं, और यह भगवान्ही सब वेदोंकी क्रियाओंका कारण हैं इसीसे ऋषि लोग उन उन क्रियाओंसे नाना प्रकारका कहते हैं ॥ ३० ॥ हे शौनक ! भगवान्ही सब कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये मायाके संग, काल, देश, क्रिया, कर्त्ता, अनुष्ठान, यजमान,साधन,

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ॥ लोकतंत्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥ ३२ ॥ धाता कृतस्थली हेति वासुकी रथकृन्मुने ॥ पुलस्त्यस्तुंबुरुरिति मधुमासं नयंत्यमी ॥ ३३ ॥ अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुंजिकस्थली ॥ नारदः कच्छनीरश्च नयंत्येते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥ मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ॥ रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयंत्यमी ॥ ३५ ॥ वसिष्ठो वरुणो रंभा सहजन्यस्तथा हुहूः ॥ शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयंत्यमी ॥ ३६ ॥ इंद्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथांगिराः ॥ प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयंत्यमी ॥ ३७ ॥ विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ॥ अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयंत्यमी ॥ ३८ ॥ पूषा धनंजयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा ॥ घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥

यज्ञादिक, मंत्र, हविष्य यह नौ प्रकार हरिकी मायासे इसप्रकार कविलोग कहते हैं ॥ ३१ ॥ कालरूप सूर्य भगवान् चैत्रादिक, बारहों मास लोकोंके कर्मोंके विषे प्रवृत्त करनेको अपने गणोंको साथ लिये अलग अलग द्वादशरूप धारण किये घूमते रहते हैं ॥ ३२ ॥ चैत्रके महीनेमें कृतस्थली नाम अप्सरा, हेतिनाम राक्षस, वासुकी नाग, तुम्बुरू गन्धर्व, रथकृत् यक्ष, पुलस्त्य नाम ऋषि, इनके साथ धातानाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३३ ॥ वैशाखमें पुञ्जिकस्थली नाम अप्सरा, प्रहेति नाम राक्षस, कच्छनीर नाम नाग, नारद नाम गन्धर्व, अथौजा यक्ष, पुलह ऋषि, इनके साथ अर्यमा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठ मासमें मेनका नाम अप्सरा, पौरुषेय नाम राक्षस, तक्षक नाम नाग, हाहा नाम गन्धर्व रथस्वन यक्ष, अत्रि ऋषि, इनके साथ मित्र नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३५ ॥ आषाढ़ मासमें रम्भा नाम अप्सरा, मित्रस्वन नाम राक्षस, शुक्र नाम नाग, हूहू नाम गन्धर्व, सहजन्य यक्ष, वसिष्ठऋषि इनके साथ वरुण नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३६॥ श्रावण मासमें प्रम्लोचा नाम अप्सरा वर्य नाम राक्षस, एलापत्र नाम नाग, विश्वावसु नाम गन्धर्व, श्रोता यक्ष, अंगिरा नाम ऋषि, इनके साथ इन्द्रनाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३७ ॥ भाद्रपद महीनेमें अनुम्लोचा नाम अप्सरा, व्याघ्र नाम राक्षस, शंखमाल नाम नाग, उग्रसेन नाम गन्धर्व, आसारण यक्ष, भृगु नाम ऋषि, इनके साथ विवस्वान् नाम सूर्य विचरण करताहै ॥ ३८ ॥ आश्विनमासमें घृताची नाम अप्सरा, वात नाम राक्षस, धनंजय नाम नाग, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष

गौतम नाम ऋषि, इनके साथ पूषा नाम सूर्य विचरण करताहै ॥ ३९ ॥ कार्त्तिकके महीनेमें सेनजित् नाम अप्सरा, वर्चा नाम राक्षस, ऐरावत नाम नाग, विश्व नाम गन्धर्व, ऋतु यक्ष, भरद्वाज नाम ऋषि इनके साथ पर्जन्य नाम सूर्य भ्रमण करताहै ॥ ४० ॥ अगहनके महीनेमें उर्वशी नाम अप्सरा विद्युतशत्रु नाम राक्षस, महाशंख नाम नाग, ऋतुसेन नाम गन्धर्व, तार्क्ष यक्ष, कश्यप ऋषि, इनके साथ अंशुनाम सूर्य प्रकाश करताहै ॥ ४१ ॥ पौषके महीनेमें पूर्वचित्ती नाम अप्सरा, स्फूर्जेरा नाम राक्षस, कर्कोटक नाम नाग, अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्णयक्ष, आयु ऋषि, इनके साथ भग नाम सूर्य विचरण करताहै ॥४२॥ माघमासमें तिलोत्तमा नाम अप्सरा, ब्रह्मपेत नाम राक्षस, कंबल नाम नाग, धृतराष्ट्र नाम गन्धर्व, शतजित् यक्ष, जमदग्नि

ऋतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा॥ विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयंत्यमी॥४०॥ अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी ॥ विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयंत्यमी॥४१॥भगः स्फूर्जोरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पंचमः ॥ कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयंत्यमी॥४२॥त्वष्टा ऋचीकतनयः कंबलश्च तिलोत्तमा ॥ ब्रह्मापेतोथ शतजिद्धृतराष्ट्र इषंभराः॥४३॥ विष्णुरश्वतरो रंभा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ॥ विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयंत्यमी॥४४॥एता भगवतो विष्णो रादित्यस्य विभूतयः ॥ स्मरतां संध्ययोर्नृणां हरंत्यंहो दिनेदिने ॥ ४५ ॥ द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ॥ चरन्समंतात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥ ४६ ॥ सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिंगैर्ऋषयः संस्तुवंत्यमुम् ॥ गंधर्वास्तं प्रगायंति नृत्यंत्यप्सरसोऽग्रतः ॥ ४७ ॥ उन्नह्यंति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ॥ चोदयंति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः॥४८॥

ऋषि, इनके साथ त्वष्टा नाम सूर्य विचरण करताहै ॥ ४३ ॥ फाल्गुनमें रम्भा नाम अप्सरा मखापेत नाम राक्षस, अश्वतर नाम नाग, सूर्यवर्चा गधर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि, इनके साथ विष्णुनाम सूर्य विचारण करता है ॥ ४४ ॥ यह सब सूर्यरूप विष्णु भगवान्की विभुतियोंका जो पुरुष दोनों संध्याकालमें स्मरण करते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप विनष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ यह सूर्यनारायण इन छहोंगण सहित बारहमहीनेमें सब ओर घूमते हैं और लोकोंको इसलोकमें और परलोकमें उत्तम बुद्धि देतेहैं॥४६॥ अप्सरायें सुन्दर शृंगार कर करके सूर्यनारायणके सन्मुख नृत्य करती हैं, बलवान राक्षस रथको पीछेसे ढकेलते हैं, यक्ष रथको जोडते हैं, नाग रथको बाँधते हैं, गन्धर्व सूर्यके आगे यशगान करतेहैं और ऋषीश्वर, मुनीश्वर,

ऋग, यजु, सामवेदके मंत्रोंसे श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं ॥४७॥४८॥ साठसहस्र (६००००) निर्मल वालखिल्य ब्रह्मऋषि अंगुष्ठप्रमाणमात्र स्वरूप सब मिलके स्तोत्रोंसे विभुके सन्मुख होकर पिछले पावोंसे चलते श्रीनारायणकी स्तुति करते हैं ॥ ४९ ॥ आदि अंत रहित अजन्म भगवान् हरि ईश्वर इसप्रकार कल्प कल्पमें आपका सूर्यरूप विभाग करके सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायामादित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा–इस द्वादश अध्यायमें, श्रीभागवत पुराण ॥ वर्णों सब

वालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ पुरतोभिमुखं यांति स्तुवंति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥ एवं ह्यनादिनि धनो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ कल्पेकल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कधे आदित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥ एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ॥ भवद्भिर्य दहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥

संक्षेपसों, जो शुक किय निर्माण ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, श्रेष्ठधर्मको नमस्कार करके और सृष्टिकर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके अब सब ब्राह्मणोंके चरणोंमें शिरधर इस श्रीमद्भागवत पुराणमें जो जो सनातनधर्म और सब कथाओंकी अनुक्रमणिका है वह में आपसे कहताहूं * ॥१॥ हे ब्राह्मणो ! सम्पूर्ण प्राणियोंके सुनने योग्य यह विष्णुभगवान्का अद्भुत चरित्र इसमें जो जो प्रश्न आपने किये उन उनके उत्तर मैंने

* शंका–सूतजीने मुनियोंसे कहा कि, अब हम सनातनधर्म कहते हैं, आप सावधान होकर सुनो, इसमें हमको यह शका हैं कि, पहिले जो धर्म वर्णन हुवा सो सनातनधर्म नहीं है, क्या ये शीघ्रताके वनाये हैं ?

उत्तर–भागवतमें जो धर्म वर्णन कियेहैं, सो सव सनातन धर्म हैं शीघ्रतासे वनाये हुए कोई भी नहीं हैं परन्तु एक कारण है सो वह भी कहते हैं, मुनियोंने प्रथम इस धर्मको बहुत सक्षेपके साथ वर्णन कियाथा. वारम्वार वर्णन हुवा परन्तु जव हुवा तव सक्षेपसेही हुवा और धर्मका विस्तार बहुत श्लोकोंमें कविलोग वर्णन करतेहैं, इस अध्यायमें वारहस्कन्धोंकी कथाको व्यासजीने थोडेहीमें वर्णन की है, जैसे पहिले मुनिजनोंने थोडे थोडे श्लोकोंमें सम्पूर्ण धर्म वर्णन किये थे, इसलिये सूतजीने कहाया कि, अब मैं सनातनधर्म वर्णन करताहू, क्योंकि सनातनधर्म–

आपको दिये ॥२॥ इस पुराणमें सब पापोंके विध्वंस करनेवाले भक्तवत्सल हृषीकेश भगवान् हरि नारायणकी साक्षात् महिमा वर्णन की है ॥३॥ अब यहाँसे आगे पहले कही हुई "बारहों स्कन्ध" की कथाको सूतजी शौनकादिकोंको फिर स्मरण करातेहैं, जिसमें जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार, ऐसे परमगुह्य परब्रह्मके यशका गान, और उस परब्रह्मका प्रकाशक विज्ञान और ज्ञानके साधन, इस महापुराणमें कहेहैं ॥ ४ ॥ भक्तियोग और भक्तियोगसे प्रगट होनेवाला वैराग्य भी कहा, नारदजीका आख्यान और परीक्षितका उपाख्यान ॥ ५ ॥ ब्राह्मणके शापसे राज ऋषि परीक्षितका अनशन व्रत धारण करना, उन राजर्षि सहित ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजी महाराजका सम्वाद यह सब प्रथमस्कन्धमें वर्णन किया

अत्र संकीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः ॥ नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ ३ ॥ अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥ भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ॥ पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥ ५ ॥ प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः ॥ शुकस्यैव च ब्रह्मर्षेः संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥ योगधारणयोत्क्रांतिः संवादो नारदाजयोः ॥ अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ॥ ७ ॥ विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ॥ पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥ ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ॥ ततो ब्रह्मांडसंभूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥ कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ॥ भुव उद्धरणेंऽभोधौ हिरण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ योगधारणासे प्राणका छोड़ना, ब्रह्मा नारदका सम्वाद और अवतारोंका वर्णन, विराट् पुरुषकी उत्पत्ति, यह सब द्वितीयस्कन्धमें वर्णन किया ॥ ७ ॥ विदुर और उद्धवका सम्वाद, फिर विदुर और मैत्रेयका सम्भाषण, पुराणसंहिताके विषयमें प्रश्न; विराट् पुरुषकी रचना ॥ ८ ॥ पहिले मायाके गुणोंसे महत्तत्त्वादिक सातप्रकारकी सृष्टि रची गई, उससे फिर इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, जो कि वैराज पुरुषके रहनेका स्थान है ॥ ९ ॥ स्थूल सूक्ष्म कालकी गति, नाभिसे कमलकी उत्पत्ति, समुद्रसे पृथ्वीका उद्धार, हिरण्याक्ष

तो दोही हैं, जो मुनि लोग थोडे श्लोक करके वर्णन किये थे, बहुत विस्तार तो पीछेसे कविलोगोंने किया है, सूतने ऐसे विचारके नहीं कहाया कि, अबतक सनातन धर्म वर्णन नहीं हुआ, सनातन धर्म अब वर्णन करताहू ॥

का वध ॥१०॥ वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य, इन तीनोंकी सृष्टि, रुद्रकी सृष्टि, ब्रह्माके आधे अंगसे पुरुष और आधे अंगसे नारी (स्त्री) हुई, उनमें पुरुष तो स्वायंभुव मनु और स्त्री शतरूपा हुई, कर्दम प्रजापतिसे धर्मपत्नियोंकी सन्तान कही ॥ ११ ॥१२ ॥ जिन प्रजापति कर्दमजीसे महात्मा भगवान् कपिलदेवजीका अवतार, और उन बुद्धिमान् कपिलदेवजीसे देवहूतीका सम्भाषण, यह तीसरे स्कन्धकी कथा है ॥ १३ ॥ मरीच्यादिक ब्राह्मणोकी सन्तानकी उत्पत्ति, दक्षके यज्ञका विध्वंस, ध्रुवजीका चारित्र, पृथु और प्राचीनबर्हि राजाके चारित्रका वर्णन, यह चौथे स्कन्धकी कथा हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! नारद प्रियव्रतका सम्वाद, फिर राजा प्रियव्रतका चारित्र, नाभिराजाका आख्यान, ऋषभदेवजीका चारित्र,

ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ॥ अर्धनारीनरस्याथ यतः स्वायंभुवो मनुः ॥ ११ ॥ शतरूपा च या स्त्रीणा
माद्या प्रकृतिरुत्तमा ॥ संतानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥ अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ॥
देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥ नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ॥ ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः
प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥ नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः ॥ नाभेस्ततोऽनुचरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥
ततो द्वीपसमुद्राद्रिवर्षनद्युपवर्णनम् ॥ ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥ दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्त
त्पुत्रीणां च संततिः ॥ यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥ १७ ॥ त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ॥
दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥ मन्वंतरानुचरितं गजेंद्रस्य विमोक्षणम् ॥ मन्वंतरावतारश्च विष्णोर्ह
यशिरादयः ॥ १९ ॥ कौर्मं मात्स्यं नारसिंहं वामनं च जगत्पतेः ॥ क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥ २० ॥

राजा भरतका इतिहास ॥ १५ ॥ द्वीप, समुद्र, पर्वत, खण्ड और नदियोंका वर्णन, ज्योतिश्चक्रका स्थापन, पातालकी रचना, नरकोंका वर्णन, यह पञ्चमस्कन्धकी कथा हैं ॥ १६ ॥ प्रचेताओंसे दक्षका जन्म फिर उस दक्षकी पुत्रियोंका वृत्तान्त, जिस सन्तानसे देवता, असुर, नर, पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी आदिकी उत्पत्ति ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! वृत्रासुरका जन्म और दितिके दोनों पुत्रोकी उत्पत्ति, हिरण्यकशिपुका और महात्मा प्रह्लादका चारित्र, यह षष्ठ और सप्तम स्कन्धकी कथा हैं ॥ १८ ॥ मन्वन्तरोंका वर्णन, गजेंद्रका छुटाना, मन्वन्तरोंमें विष्णुभगवान्‌के हयग्रीवादिक अवतारोका वर्णन ॥ १९ ॥ उन विष्णुभगवान्‌के अवतार कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, वामनका उपाख्यान, देवताओंका समुद्रका मथना ॥ २० ॥

देवता, और असुरोंका महाभयकर संग्राम, यह अष्टमस्कन्धकी कथा हैं, राजाओंके वंशोंका वर्णन, राजा इक्ष्वाकुका जन्म और उनके वंशका वर्णन और महात्मा सुद्युम्नका इतिहास ॥ २१ ॥ इला और ताराका आख्यान, शशादादि, नृगादि सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन ॥ २२ ॥ सुकन्याका चारित्र, शर्यातिका चरित्र, बुद्धिमान् कुकुत्स्थका उपाख्यान, खट्वांग, मान्धाता, सौभरि, सगरका चरित्र ॥ २३ ॥ कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी कथा, सब पापोंका नाशक निमिके शरीरका त्यागन, जनकवंशियोंकी उत्पत्ति ॥ २४ ॥ भृगुवंशी परशुरामजीका पृथ्वीको निःक्षत्रिय करना, चन्द्रवंशी ऐलादि ययाति राजा नहुषका वृत्तान्त ॥ २५ ॥ दुष्यन्तका पुत्र राजा भरत, शन्तनु और शन्तनुके पुत्रका चारित्र और राजा ययातिके ज्येष्ठ पुत्र

देवासुरं महायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ॥ इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ॥ सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृगादयः ॥ २२॥ सौकन्यं चाथ शार्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः॥ खट्वांगस्य च मांधातुः सौभारेः सगरस्य च ॥ २३ ॥ रामस्य कोसलेंद्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ॥ निमेरंगपरित्यागो जनकानां च संभवः ॥ २४ ॥ रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः ॥ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नाहुषस्य च ॥२५॥ दौष्यंतेर्भरतस्यापि शंतनोस्तत्सुतस्य च ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोनुकीर्तितः ॥ २६ ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ॥ वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥२७॥ तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ॥ पूतनाऽसुपयःपानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥ तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ॥ धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलंबस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥ गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ॥ दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नंदमोक्षणम् ॥ ३० ॥

राजा यदुके वंशका वर्णन, ये नवमस्कन्धकी कथा हैं॥२६॥ जिस यदुके वंशमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जगदीश्वरने अवतार लेकर भूमिका भार उतारा था, वह वृत्तान्त इस भाँति है कि, वसुदेवके घर अवतीर्ण होकर गोकुल गये और वहाँ वृद्धि पाई ॥२७॥ असुरोंके शत्रु श्रीकृष्णजीके अपार चरित्र हमने कहे, बाल अवस्थामें पूतनाके प्राणसहित स्तनोंका पान, लात मारकर शकटका तोडना, तृणावर्त्त और वत्सासुरका मारना, अघासुरका वध, ब्रह्माका वत्स और बालकोंका हरना, धेनुक प्रलम्बासुरका वध ॥ २८ ॥ २९ ॥ सब ओर फैलीहुई दावानलसे गोप गायोंको बचाना,

कालिय सर्पका दमन और महा अजगर सर्पसे नन्दजीको छुटाना॥३०॥व्रजकन्याओंका व्रत करना और उस व्रतसे अच्युत भगवान्‌का प्रसन्न होना, द्विजपत्नियोंपर संतुष्ट होकर ब्राह्मणोंको पश्चात्ताप करना ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धन पर्वतका करपर धरना, सुरभिसहित इन्द्रका किया श्रीकृष्णका अभिषेक और रात्रिके समय व्रजबालाओं सहित श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ा॥३२॥ दुर्बुद्धि शंखचूड़का वध और केशी, अरिष्टका संहार, अक्रू का व्रजमें आना, फिर रामकृष्णका मथुराको प्रस्थान॥३३॥उस समय व्रजयुवतियोंका विलाप, उसके पीछे मथुराका देखना,और मुष्टिक, चाणूर, कंसादिक

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ॥ प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥ ३१ ॥ गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ ॥ यज्ञाभिषेकः कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च सत्रिषु ॥ ३२ ॥ शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ॥ अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥ ३३ ॥ व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ॥ गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥ ३४ ॥ मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सांदीपनेर्गुरोः ॥ मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ॥ ३५ ॥ कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ जरासंधसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ॥ घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥ आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् ॥ रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥ ३७ ॥ हरस्य जृंभणं युद्धे बाणस्य भुजकृंतनम् ॥ प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥

दैत्योंका वध ॥३४॥ सान्दीपन गुरुके मरेहुए पुत्रको फेरकर लादेना, मथुरामें वसकर उद्धव बलदेव सहित मिलकर यादवोंसे स्नेह करना हे ! विप्रो जरासन्धकी लाई हुई सेनाका वारम्वार वध करना और मुचुकुन्द द्वारा कालयवनका मारना और समुद्रके टापूपें द्वारकापुरीका बसाना ॥३५॥३६॥ इन्द्रलोकसे पारिजात और सुधर्मासभाका ले आना और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर रुक्मिणिको हरलाना॥३७॥युद्धमें जृंभास्त्र करके शिवको जँभाई लेना, बाणासुरकी भुजाओंका काटना, नरकासुरका मारना, सोलह सहस्र एकसौआठ कन्याओंका उद्धार ॥ ३८ ॥

शिशुपालका वध,मिथ्यावासुदेवका मारना,शाल्वका संहार, दुर्मति दन्तवक्रका हनन,द्विविदका हनन,पीठासुरका प्राणहरण,मुरका मारण, पंचजनको मारकर कृतार्थ करना॥काशीका जलाना,दैत्योंका प्रभाव प्रगट करना,पाण्डवोंको निमित्त मात्र बनाकर पृथ्वीका भार उतारना, यह दशमस्कन्धकी कथा हैं ॥३९॥४०॥ ब्राह्मणके शापका बहाना रखकर अपने कुलका संहार करना, वासुदेव और उद्धवका उत्तम सम्वाद ॥ ४१ ॥ जिस संवादमें आत्मतत्त्वका निर्णय और धर्मका निर्णय, फिर अपनी मायाके प्रभावसे मनुष्यलोकका छोड़ना, यह एकादशस्कन्धकी कथा हैं ॥ ४२ ॥ युगोंके लक्षण, उन युगोंमें जीविकाका वर्णन, कलियुगमें मनुष्योंका उपद्रव और चार प्रकारकी प्रलय, मायासे और ब्रह्मासे उत्पन्न होनेवाली तीन प्रकारकी

चैद्यपौंड्रकशाल्वानां दंतवक्रस्य दुर्मतेः ॥ शंबरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥ ३९ ॥ माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् ॥ भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पांडवान् ॥ ४० ॥ विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ॥ उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४१ ॥ यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ॥ ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥ ४२ ॥ युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः ॥ चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥ देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ॥ शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कंडेयस्य सत्कथा ॥ ४४ ॥ महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥ इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोहमिहास्मि वः ॥ लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४५ ॥ पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् ॥ हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥ संकीर्त्यमानो भगवाननंतः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ॥ प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवाऽतिवातः ॥ ४७

उत्पत्ति॥४३॥बुद्धिमान् राजर्षि विष्णुरातकी देहका त्यागना, व्यासजीसे वेदकी शाखाओंका विस्तार, मार्कण्डेय ऋषिकी सुन्दर कथा॥४४॥ हे द्विजोत्तम!जगत्के आत्मा सूर्यनारायणका मास मासका वर्णन,तुमने जो कुछ हमसे बूझा सो सब कहा,इस भागवत पुराणमें भगवान्की लीलाअवतार सम्बन्धी कर्मोंका यश गायाहै॥४५॥गिरते,पड़ते,उठते,बैठते, विपत्तिके समय,छींकके,विवशतासे ऊंचे स्वरसे'हरये नमः'जो पुरुष इसप्रकार कहताहै, वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है॥४६॥जो पुरुष भगवान्का कीर्त्तन करता है, अथवा उनके गुणोंको गाता है,तो अनन्त भगवान् उनके चित्तमें प्रवेश

करके सब पापोंको दूर करदेतेहैं, जैसे सूर्यनारायण अन्धकारको, पवन मेघोंको दूर करताहै ॥ ४७ ॥ जिस वाणीसे भगवान् अधोक्षजकी सत्कथा नहीं गाई जाती उस वाणीको मिथ्या और विषयवाली समझनी चाहिये, जिसमें भगवान्के नामका गुणानुवादहो, वही वाणी सत्य मंगलरूप और पवित्र करनेवाली है ॥ ४८ ॥ वही वाणी रमणीक और रुचिर नित्य नये २ मनको महाउत्सवरूप मनुष्योंके शोकसमुद्रकी सुखानेवाली है, जिस वाणीसे उत्तमश्लोक भगवान्का यश गाया जाता है ॥ ४९ ॥ जिस वाणीमें चित्र विचित्र पदभी हों और उत्तम रचना भी हो, परन्तु जगत्के पवित्र करनेवाले हरिका यश कुछ नहीं , तो उस वाणीमें काककी तुल्य विषयी रमण करतेहैं, हंसके समान साधुजन उस वाणीसे संतुष्ट नहीं होते, साधुजन उसी

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोऽक्षजः ॥ तदेव सत्यं तदु हैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥ तदेव रम्यं रुचिरं नवंनवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ॥ तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥ ४९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्ध्वांक्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥ स वाग्विसर्गो जनताऽघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनंतस्य यशोंकितानि यच्छृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥ ५१ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥ यशः श्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ॥ अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥

पवित्र वाणीमें रमणकरते हैं, जिस वाणीमें अच्युत भगवान्का वर्णन है ॥ ५० ॥ जिस वाणीमें श्लोक श्लोक विषे उत्तम पदरचना नहीं, केवल हरियश और हरिनामहीका वर्णन है वह वाणी प्राणियोंके पापोंके समूहोंको नाश करनेवाली है, उस वाणीको निर्मल चित्तवाले सब सुनते हैं, गाते हैं और कहतेहैं ॥ ५१ ॥ ब्रह्मका प्रकाश करनेवाला निर्मल ज्ञान भी जो अच्युत भगवान्के भावसे रहित है वह किसी प्रकार शोभित नहीं होता, उत्तम कर्म भी ईश्वरके अर्थ विना अमंगल रूप है सो किसी प्रकार शोभित नहीं होसक्ता ॥ ५२ ॥ वर्णाश्रमके आचार, तप, वेदाध्ययन आदिमें बडे परिश्रमसे केवल यश और ऐश्वर्य प्राप्त होताहै, परन्तु हरिके गुणका कथन और श्रवणादि करनेसे श्रीधर भगवान्के चरणकमलका नित्यप्रति

स्मरण होता है ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्मरण सदा अमंगलका हरनेवाला, मंगलका विस्तार करनेवाला और अंतःकरणको शुद्ध करताहै, परमात्मामें स्नेह बढाता है और ज्ञान विज्ञान सहित वैराग्यको उपजाताहै ॥५४॥ हे द्विजोत्तम ! आप बडे भाग्यवान् हो, जो अखिल लोकोंके आत्मा भगवान् सर्वोत्तम, सर्वान्तर्यामी सर्वहितकारी नारायण देवको निरन्तर हृदयमें धारण करके सदा अखण्ड भावसे भजते रहतेहो ॥५५॥ जब कि, राजा परीक्षित् अन्न पानी त्यागकर गंगाके किनारे जा बैठे, उससमय बडे २ ऋषीश्वर मुनीश्वर श्रीमद्भागवत सुननेको उस सभामें

अविस्मृतिः कृष्णपदारविंदयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च॥ सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ ५४ ॥ यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ॥ नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावा भजताऽऽविवेश्य॥५५॥ अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् ॥ प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥५६॥ एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ॥ माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम्॥ ५७ ॥ य एवं श्रावयेन्नित्यं यामं क्षणमनन्यधीः ॥ श्रद्धावान्योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५८ ॥

विद्यमान थे, वहाँ श्रीशुकदेवजीके मुखसे पहिले मैंने जो कुछ सुनाथा वह आत्मतत्त्वका ज्ञान मुझको आपने स्मरण कराया, यह आपने बडी कृपादृष्टि की ॥ ५६ ॥ हे विप्रो ! जिनके सब कर्म और चरित्र वर्णन करनेके योग्य हैं उन वासुदेव भगवान्का कीर्त्तन और माहात्म्य सब अशुभोंका विनाश करनेवाला है सो मैंने आप लोगोंके सन्मुख वर्णन किया ❋ ॥ ५७ ॥ जो कोई पुरुष अनन्यबुद्धि होकर नित्य

❋ दृष्टान्त–परन्तु ऐसी कथा नहीं सुननी चाहिये, जसी कथा एक पण्डितजीने कही और बुढिया स्त्रीने सुनी एक पण्डित किसी ठाकुरद्वारेमें कथा कहते थे और एक बुढियाभी कथा सुननेको जाया करती थी और वहाँ बैठकर बहुत रोती, पण्डितजीने समझा कि, यह बुढिया बडी प्रेमिन है, कुछ अधिक दक्षिणा चढावेगी, जब कथा सम्पूर्ण होनेका दिन आया तो बुढिया नहीं आई पण्डितजीने कथामें कुछ विलम्बभी किया बुढिया तोभी न आई अब कथा पूरी हो चुकी, पण्डीतजीने जाना कि बुढियाको कुछ होगया नहीं तो बुढिया अवश्य आती, दूसरे दिन पण्डितजीने कहा कि, बुढियाके घरको चलें कुछ दक्षिणा प्राप्त होजायगी, यह विचार उसके द्वारेपर पहुँचे और जाकर पुकारा, बुढिया चरखा कातरहीथी बोली पण्डितजी ! आओ बैठ जाओ कैसे कृपा करी ? पण्डितजी बोले बुढिया कैसे हो रही है ? कल कथाभी समाप्त होगई और तू न आई तू तो बडी प्रेमिनथी फिर न आनेका क्या कारण ? तू तो घटोंतक कथामें बैठी रोये करथी ? बुढिया बोली क्या कथाको सुनकर थोडेही रोतीथी, पण्डितजी बोले कि, फिर क्यों रोतीथी ? बुढिया बोली कि जसा तुम्हारी पोथी बांधनेका वस्त्र है ऐसाही मेरी लल्ली मोहिनीके लालाका पाजामाथा सो उसको देखतेही मोहिनीके लाला मुझको याद आ जाते थे इसलिये रोतीथी, पण्डितजी सुनतेही सुन्न होगये और उठकर सीधे अपने घरको चले गये।

एकपहर, वा एकक्षण इस माहात्म्यको सुनै अथवा जो कोई श्रद्धापूर्वक इसको सुनावै, वह प्राणी अपने आपको पवित्र करताहै ॥ ५८ ॥ जो कोई पुरुष एकादशी वा द्वादशीके दिन इस महापुराण भागवतको सुने उसकी आयुर्बल अधिक होतीहै और जो कोई निर्जलव्रत धारण करके एकाग्र चित्त हो इसका पाठ करै वह सब पापोंसे छूटकर निष्पाप होजाता है ॥ ५९ ॥ पुष्कर, मथुरा, द्वारकामें वास करके एकाग्रचित्त हो जो इस संहिताको पढैगा वह सब भयादिकोंसे छूट जायगा ॥ ६० ॥ जो कोई इस महापुराण संहिताको सुनता है, कीर्त्तन करता है, उसको देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनुष्य और राजालोग, यह सब मनोवाँछित मनोरथको देतेहैं ॥ ६१ ॥ द्विजवर्णोंको, ऋग्वेद, यजुर्वेद,

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् ॥ पठत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥ ५९ ॥ पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ॥ उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥ देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः ॥ यच्छंति कामान्गृणतः शृण्वतो यत्र कीर्तनात् ॥ ६१ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोधीत्यानुविंदते ॥ मधुकुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६२ ॥ पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजाः ॥ प्रोक्तं भगवतो यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ॥ वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात् ॥ ६४ ॥ कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ॥ इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥

सामवेदके पढ़नेसे जो शहतकी नदी, घृतकी नदी, दूधकी नदीके पानरूपी फल प्राप्त होता है, सो सब फल इस महापुराण संहिताके पढ़नेसे होताहै ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष पवित्र होकर इस महापुराण संहिताको पढ़ते हैं, वह भगवान् वासुदेवके परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥ इस महापुराणसंहिताको ब्राह्मण पढ़कर उत्तम बुद्धिको प्राप्त होते हैं, क्षत्रिय पढै तो उदय अस्ततक सर्वत्र भूमण्डलका राजा हो, वैश्य पढै तो निधिपति हो और शूद्र पढै तो सब पापोंसे छूटजाय ॥ ६४ ॥ कलिकालके मलके समूहोंका विध्वंस करनेवाले अखिलैश्वर्य वासुदेव भगवान् इसप्रकार और दूसरे शास्त्रोंमें वारम्वार नहीं गायेगये और इस पुराणमें तो कथाओंके प्रसंग

प्रसंगमें पद पदके विषे अशेष मूर्त्ति भगवान्हीके चरित्र गायेगये हैं, इसीसे इस पुराणका नाम महापुराण है ॥ ६५ ॥ जगत्की, उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाली जिनकी शक्ति है और ब्रह्मा इन्द्र शिवादिक देवताओंको जिनकी स्तुति दुर्लभ है, ऐसे अजन्मा अनंत आत्मतत्त्व अच्युत भगवान्को नमस्कारहै ॥ ६६ ॥ वृद्धिको प्राप्त हुई प्रकृति आदि शक्तियोंसे जिसने अपने स्वरूप स्थावर जंगम उत्पन्न कियेहैं ऐसे सबमें व्यापक देवताओंमें श्रेष्ठ, अनादि ज्ञानमात्र स्वरूप भगवान्को मैं वारम्वार प्रणाम करता हूं ॥ ६७ ॥ अपने आत्मसुखसेही सम्पूर्ण चित्त होनेसे अन्य पदार्थोंमें भाव न रखनेवाले कि, जिन्होंने अपना मन नारायणकी सुन्दर लीलाओंमें आकर्षित होजानेसे नारायणके तत्त्वका प्रकाशक यह पुराण संसारके उपकारके

तमहमजमनंतमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् ॥ द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि॥६६॥ उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मन्युपरचितस्थिरजंगमालयाय ॥भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥ स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तन्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ॥ व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि॥६८॥ इति श्रीमद्भा०म० द्वादश० द्वादशस्कन्धार्थसंग्रहो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ यं ब्रह्मा वरुणेंद्ररुद्रमरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः ॥ ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

लिये अनुग्रह करके प्रगट किया है, उन सब जगतके पाप दूर करनेवाले व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी महाराजको प्रणाम करता हूं ॥ ६८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशस्कंधार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा—इस तेरह अध्यायमें, पूरण होत पुराण । संख्या सकल पुराणकी, वरणौ सहित प्रणाम ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और मरुतदेवता दिव्य स्तोत्रोंसे जिन भगवान्की स्तुति करते हैं और सांगोपांग पदक्रम उपनिषद् सहित वेदोंसे सामवेदके गानेवाले जिनका गान किया करतेहैं और ध्यानमें स्थित होकर मन लगाय योगीजन जिनको देखा करते हैं, देवता; असुरगण जिनका आदि अन्त नहीं जानसक्ते ऐसे परमदेवको वारम्वार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥

पीठपर भ्रमते श्रेष्ठ मन्दराचलकी शिलाओंके अग्रसे गात्र खुजानेके समान निद्राका अनुभव करते कच्छपरूप भगवान्के श्वासोंकी पवन तुम सबोंकी रक्षा करो, जिस पवन संस्कारके लेश अनुवर्तनके वशसे समुद्रके क्षोभके मिसकरके निरंतर आना जाना बन्द नहीं होता, नित्य घटता बढता रहताहै आजतक विश्राम नहीं लेता, वह तुम्हारी रक्षा करो * ॥ २ ॥ पुराणोंकी संख्याका निरूपण और श्रीभागवतका आश्रय प्रयोजन, दान और दानका माहात्म्य और पाठादिकोंका माहात्म्य अब सावधान होकर हमसे सुनिये ॥३॥ ब्रह्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १००००है पद्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या पचपनसहस्र ५५०००है, विष्णुपुराणके श्लोकोंकी संख्या तेईस सहस्र २३००० है, शिवपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौवीस

पृष्ठे भ्राम्यदमंदमंदरगिरिग्रावाग्रकंडूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पांतु वः ॥ यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनांभसां यातायातमतंद्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥२॥ पुराणसंख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने॥ दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥ ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पंचोनषष्टि च ॥ श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥ दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पंचविंशति ॥ मार्कंडं नव वाह्नं तु दशपंचचतुःशतम् ॥ ५ ॥ चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पंचशतानि च ॥ दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिंगमेकादशैव तु ॥ ६ ॥

सहस्र२४०००है॥४॥श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८०००है,नारदपुराणके श्लोकोंकी संख्या पचीस सहस्र २५०००है,मार्कण्डेय पुराणके श्लोकोंकी संख्या नव सहस्र९०००है,अग्निपुराणके श्लोकोंकी संख्या पन्द्रह सहस्र चरसौ१५४००है, ॥५॥ भविष्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र पाँचसौ१४५००है,ब्रह्मवैवर्तपुराणकेश्लोकोंकी संख्या अठारहसहस्र१८०००है,लिंगपुराणके श्लोकोंकी संख्या ग्यारहसहस्र११०००है६

* शंका—श्रीमद्भागवतकी समाप्तिमें सूतजीने अपने गुरुको और सब देवताओंको, ब्रह्मा, विष्णु भगवान्के सब अवतारोंको, इन सबको त्यागकर कच्छप भगवान्को नमस्कार क्यों किया ?

उत्तर—कच्छप भगवान्की कृपासे समुद्रको मथकर देवतालोगोंने अमृत पाया अमृत पाकर देवताओंका मनोरथ सिद्ध हुवा तैसे सूतजी कूर्मका स्मरण करके समुद्ररूप भागवतके पार उतरगये,इसलिये सूतजीने अपने नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाय सबको त्यागकर कूर्मभगवान्को नमस्कार किया और भगवान्के अवतारोंमें कुछ भेद नहीं समझा ।

वीराहपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौवीससहस्र २४००० है, स्कंन्दपुराणके श्लोकोंकी संख्या इक्यासी सहस्र एकसौ ८११०० है, वामनपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है॥७॥ कूर्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या सत्रहसहस्र १७०० है, मत्स्यपुराणके श्लोकोंकी संख्याचौदहसहस्र १४००० है, गरुड़पुराणके श्लोकोंकी संख्या उन्नीससहस्र १९००० है ब्रह्मांण्डपुराणके श्लोकोंकी संख्या बारहसहस्र १२००० है ॥८॥ इसप्रकारअठारहपुराणके श्लोकोंकी संख्याका प्रमाण—समाहार चारलाख४००००० श्लोकका है,यह प्रमाण कवीश्वरोंने कहाहै,जिसमें भागवत अठारह सहस्र १८००० है॥९॥अपनी नाभिकमलमें विराजेहुए संसारमें भयभीत ब्रह्माजीको यह भगवत पुराण भगवान्‌ने सुनायाथा॥१०॥इस श्रीमद्भागवत महापुराणके आदि मध्य और

चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् ॥ स्कांदं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥ कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश ॥ एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्मांडं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥ एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ॥ तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥९॥ इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे ॥ स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥ १० ॥ आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ॥ हरिलीलाकथाव्रातामृतानंदितसत्सुरम् ॥ ११ ॥ सर्ववेदांतसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ॥ वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ १२॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥ ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥ राजंते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ॥ यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरः ॥ १४ ॥

अन्तमें संपूर्ण वैराग्यकेही उपाख्यान कहेहैं इसपुराणने हारिकी लीला और कथाओंके समूह अमृतसे साधुओंको और देवताओंको आनन्द कर रक्खाहै, ऐसा आनंददायक और अघ ओघ घायक यह श्रीमद्भागवत पुराणही है ॥११॥ सम्पूर्ण वेदान्तका सारभूत, ईश्वर जीवकी एकताको दर्शानेवाला जो यह अद्वितीय पदार्थ(परब्रह्म)है सो इस महापुराणका विषय है और मुख्य प्रयोजन इस महापुराणका केवल कैवल्य अर्थात् मोक्ष है॥१२॥ भादोंसुदी पूर्णमासीके दिन सोनेके सिंहासन सहित जो मनुष्य इस महापुराण श्रीमद्भागवतका दान करै वह परमोत्तम गतिको पाताहै॥१३॥उसी समयतक और दूसरे पुराण महात्मा पुरुषोंकी मण्डलीमें शोभा पातेहैं, जिस समयतक अमृतके समुद्ररूप यह श्रीमद्भागवत महापुराण सुननेमें नहीं आता॥१४॥

सब उपनिषद् और वेदान्तका सार श्रीमद्भागवतको माना है इसलिये इस पुराणके अमृतरससे जो प्राणी तृप्त होरहेहैं उनकी प्रीति कभी और ठौर नहीं होती ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ मानी हैं देवताओंमें अच्युत भगवान् सर्व सुखदानी हैं वैष्णवोंमें महादेव परमज्ञानी हैं ऐसे पुराणोंमें श्रीमद्भागवत बखानी है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें परमोत्तम काशी है ऐसेही सब पुराणोंमें अत्युत्तम "श्रीमद्भागवत" पुराण है ॥ १७ ॥ परमहंसोंका परमप्रिय निर्मल और श्रेष्ठ ज्ञान जिसमें गायाहै और निर्दोष परब्रह्मका निरूपण करके दरशायाहै, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको एकत्र करके भगवत्तत्त्वको जिसमें झलकायाहै ऐसे श्रीमद्भागवत पुराणको जो कोई भक्तजन भक्तिसे सुने, वा पढै और हित

सर्ववेदांतसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ॥ तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥ निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा ॥ वैष्णवानां यथा शंभुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥ क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ॥ तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्विपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥ कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥ योगींद्राय तदात्मनाऽथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥

चित्तसे विचारे, वह इस संसारसागरसे पार उतरकर परमधामको जाताहै ॥ १८ ॥ प्रथम विष्णु भगवान्ने इस अतुल श्रीमद्भागवतरूप ज्ञान दीपकको करुणा करके ब्रह्माजीके सन्मुख प्रकाशित किया, ब्रह्माजीने ब्रह्मरूप धारण करके नारदजीके आगे प्रकाशित किया, फिर नारदरूप होकर व्यासजीके निकट प्रकाशित किया, फिर वेदव्यासरूपसे परमयोगेश्वर श्रीशुकदेवजीके समीप प्रकाशित किया; अन्तमें श्रीशुकदेव रूप धरकर करुणानिधान भगवान्ने करुणा करके विष्णुरात राजा परीक्षित्के सामने प्रकाशित किया। उन शुद्ध सत्त्व निर्मल, सदा आनन्दमय निरुपाधि

सर्वोत्तम, मोक्षरूप परब्रह्म वासुदेव भगवान्का हम ध्यान करतेहैं ॥ १९ ॥ सर्वसाक्षी वासुदेव भगवान्ने जो अनुग्रह करके यह श्रीमद्भागवतपुराण संसारसे मुक्ति पानेवाले ब्रह्माजीके आगे वर्णन किया उन विष्णुभगवान्को वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ २० ॥ जिन्होंने संसाररूप सर्पसे डसे हुए विष्णुरात राजा परीक्षित्को छुटाया, उन ब्रह्मरूप योगिराज श्रीशुकदेवजीको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ २१ ॥ हे योगेश! हे प्रभो! जिसप्रकार जन्म जन्मान्तरमें आपके चरणकमल कोमल अमलकी भक्ति होय ऐसा कोई उपाय करो, क्योंकि हमारे ऊपर

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे ॥ य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥२०॥ योगींद्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ॥ संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥ भवेभवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ॥ तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ २२ ॥ नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां द्वादशस्कंधे पुराणसंख्यादानमाहात्म्यादिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ हरिः ॐ ॥

छ ॥

समाप्तोऽयं श्रीमद्भागवतस्य द्वादशस्कन्धः ॥ १२ ॥

दया करने और कष्ट हरनेवाले आपही नाथ हो ॥२२॥ जिन श्रीकृष्णभगवान्के नामका संकीर्त्तन सब पापोंका नाशक है और जिनको नमस्कार करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति होजाती है, उन सर्वोत्तम सर्वान्तर्यामी भगवान्को हम वारम्वार नमस्कार करतेहैं ॥२३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां शालिग्रामकृतभाषाटीकायां द्वादशकन्धे पुराणसंख्यादानमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा—व्यासपुत्र शुकदेवको, विनवत वारम्वार। जिनकी कृपाकटाक्षसे, मिटत अनेक विकार ॥ १ ॥
संपूरण भई भागवत, गुरुप्रसादसे आज। पढ़े सुनेते जासुके, सिद्ध होत सब काज ॥ २ ॥
हरिलीलामृत जानिकै, जहँ तहँ किय विस्तार। तामें दोष न दीजिये, सज्जन सकल उदार ॥ ३ ॥
यदपि मूल भर रचनको, निजमन किया विचार। वर्णत वर्णत बढ़गयो, कृष्णचरित्र अपार ॥ ४ ॥
होत न चितमें तृप्तता, निशिदिन यही विचार। बढे कृष्ण लीला अधिक, मुद मंगल दातार॥ ५ ॥
शशिशशिधरमुख रस धरणि, सम्वत विक्रम व्याप्त। ज्येष्ठ शुक्ल द्वितिको भयो, भागवत ग्रन्थसमाप्त॥ ६ ॥
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराजनिधिराज। छाय रह्यो जिनको सुयश, देश देशमें आज ॥ ७ ॥
वैश्यवंशमें जन्म ले, रविसम कियो प्रकाश। वास बंबईमें करत, पूजत जन मन आश ॥ ८ ॥
जिन जिन ग्रन्थनको कभी, नाम सुनो नहिं कान। मुद्रित करिकरि ग्रन्थ सो, निशिदिन करत प्रदान ॥९॥
पुत्र पौत्र परपौत्र हों, बढ़ै अधिक परिवार। माँगत शालिग्राम यह, 'हरिसों वर हर वार ॥१०॥
मैं अजान जानत नहीं, गद्यपद्यकी सार। पण्डितजन निजजान मोहिं, लीजो सकल सुधार ॥११॥



इदं पुस्तकं क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालैन) स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्। संवत् १९७०, शके १८३५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वादशस्कन्धसमाप्तिः ॥

इति श्रीमद्भागवतं भाषाटीकासमेतं समाप्तम् ।